संशोधित

महाभारत

प्रथम भाग

आरम्भ से भीष्मपर्व तक

संस्कृत-हिन्दी

प्राचीन भारतीय इतिहास के रजतयुग का दर्पण

प्रक्षिप्त अंशों पर तर्कपूर्ण गम्भीर विवेचन

सम्पादक

यशपाल शास्त्री

सूर्य भारती प्रकाशन

नई सड़क, दिल्ली-10006

ISBN 81-87182-73-3

लेखक	:	**यशपाल शास्त्री** एच–६२, फेज–१, अशोक विहार, दिल्ली–११००५२
दूरभाष	:	३०६१३६१२, ३१०६८४२६
प्रकाशक	:	**सूर्य भारती प्रकाशन** २५६६, नई सड़क, दिल्ली–११०००६
दूरभाष	:	२३२६६४१२
टाइप सेटर	:	**शर्मा प्रिंटर्स** ५७, निमड़ी कालोनी, दिल्ली–११००५२
दूरभाष	:	२७४४५६२१
मुद्रक	:	**एस.एन. प्रिंटर्स** नवीन शाहदरा, दिल्ली–११००३२
कापी राइट	:	लेखक और उसके उत्तराधिकारी
मूल्य	:	७५०.०० (सम्पूर्ण)
प्रथम संस्करण	:	सृष्टि संवत् : १९६०८५३१०४ कलि संवत् : ५१०४ विक्रमी : २०६० ईसवी : २००३

विनम्र निवेदन

यह रचना अत्यन्त परिश्रम से सम्पादित हुई है। इस अध्यवसाय को सार्थक बनाने के लिये कृपया मनोयोग सहित इसका स्वाध्याय कीजिये और परिवार के सदस्यों को लाभान्वित करने के लिये, अधिकाधिक समय तक अपने पास सुरक्षित रखिये। जब अपने पास रखना आपके लिये असम्भव हो जाये, तो कृपया इसे रद्दी में नहीं अपितु किसी सार्वजनिक पुस्तकालय को भेंट कर दीजिये।

भूमिका

महाभारत का संशोधित संस्करण संपादित करने में संपादक का प्रमुख उद्देश्य यह है कि भारतीयों के महान् आदरणीय महापुरुष भगवान् श्रीकृष्ण तथा महाभारत के पात्र और उनके जीवन सभी भारतवासियों और भारतवर्ष से बाहर संसार के दूसरे लोगों के भी समक्ष भारतीय इतिहास के महान् पुरुषों और भारतीय इतिहास की महान् घटनाओं के रूप में स्थापित हों।

हम भारतीयों को इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि हम श्रद्धा के कारण श्रीकृष्ण जी तथा महाभारत के दूसरे पात्रों को भले ही ऐतिहासिक महापुरुष मानें और अपने आपको उनकी सन्तान मान कर गौरवान्वित होते रहें, पर दुनिया के दूसरे लोग तथा भारतवर्ष के भी इतिहास के विद्वान् कहलाने वाले व्यक्ति उन्हें ऐतिहासिक नहीं मानते। कॉलिजों और विश्वविद्यालयों में इतिहास के प्राध्यापक बच्चों को यही पढ़ाते हैं कि भारतवर्ष का इतिहास केवल महात्मा बुद्ध से ही आरम्भ होता है। उससे पहले की महाभारत और रामायण की सारी घटनायें पौराणिक और माइथॉलौजिकल अर्थात् कपोल-कल्पित, सुनी-सुनायी बातें हैं।

हमारे देश के हजारों लाखों वर्ष पूर्व के स्वर्णिम तथा गौरवान्वित उस प्राचीन युग का(जिसमें वेदों का प्रादुर्भाव हुआ, ब्राह्मण, उपनिषद तथा दर्शन ग्रंथों की रचनाएँ हुईं, बड़े-बड़े महान् पुरुषों ने अपने महान कार्य प्रस्तुत किये) तथा राम, हनुमान्,श्रीकृष्ण,भीष्मपितामह और वीर अर्जुन जैसे महापुरुषों का, हमारे देश के इतिहास में से निकल जाना हमारे देश और जाति के लिये बहुत बड़ी दुर्घटना है। देशप्रेमी विद्वानों को इस दुर्घटना को सुघटना में बदलने के लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये। यदि कोई मुझसे यह कहे कि तुम्हारे पड़बाबा तो हुए ही नहीं थे। उनकी गौरव पूर्ण कहानी जो तुम बताते हो, वह सब असत्य है, तो मैं अपने को कितना अपमानित अनुभव करूँगा? इसी तरह हमारे पूर्व-पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण को इतिहास की श्रेणी से हटा कर उन्हें काल्पनिक बताना हम सब भारतीयों के लिये अपमान और दुःख की बात है। इसी अपमान का प्रक्षालन करने के लिये,अपने राम,कृष्ण आदि महापुरुषों को ऐतिहासिक महापुरुष सिद्ध करने के लिये, संपादक ने पहले वाल्मीकि रामायण के तथा अब महाभारत के संशोधित संस्करण के संपादन करने का प्रयास किया है।

महाभारत की घटनाओं को ऐतिहासिक न माने जाने का एक प्रमुख कारण है, वर्तमान काल में उपलब्ध महाभारत की पुस्तक में बहुत सारी असंभव, अस्वाभाविक और सृष्टिक्रम के विरुद्ध घटनाओं के वर्णन का पाया जाना, जिनके कारण आज का शिक्षित वर्ग यह समझता है कि जब इस प्रकार की घटनाएँ आज, किसी के जीवन में नहीं होतीं तो उस समय कैसे हो गयीं? इसलिये ये सारे वर्णन काल्पनिक हैं। किन्तु इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि व्यास जी ने जिस महाभारत की रचना की थी, वह आकार में बहुत छोटी थी और इसलिये उसमें इस प्रकार के वर्णन नहीं थे। जैसे देखिये स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में राजा भोज के संजीवनी नाम के इतिहास ग्रन्थ का उद्धरण दिया है। इसमें राजा भोज लिखते हैं कि *व्यास जी ने चार सहस्त्र,चार सौ श्लोक और उनके शिष्यों ने पाँच सहस्त्र, छह सौ श्लोक युक्त अर्थात् सब दश सहस्त्र श्लोकों के प्रमाण का भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्त्र,महाराज भोज कहते हैं कि मेरे पिताजी के समय में पच्चीस सहस्त्र और मेरी आधी उमर में तीस सहस्त्र श्लोक युक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत एक ऊँट का बोझा हो जायेगा।* इस समय महाभारत में तिरानवे हजार एक सौ छियासी श्लोक हैं,अर्थात् व्यास और उनके शिष्यों द्वारा निर्मित आकार से नौगुने से भी अधिक। निश्चय ही यह अनेक लोगों द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये समय-समय पर महाभारत में किये गये प्रक्षेपों का परिणाम है, जिनके फलस्वरूप आज महाभारत अनेक प्रकार की सृष्टि नियमों के विरुद्ध,असंभव घटनाओं, परस्पर विरोधी बातों और पुनरुक्त वर्णनों का जमावड़ा बनी हुई है।

इसलिये भगवान् कृष्ण और महाभारत के कथानक को इतिहास में स्थान दिलाने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि विद्वान् लोग महाभारत में डाले हुए उन प्रक्षेपों को वहाँ से हटायें, या उनकी युक्ति-युत्त व्याख्या कर उसे युक्ति-संगत रूप प्रदान करें। इसी दिशा में कदम बढ़ाते हुए संपादक ने प्रस्तुत संस्करण में संभव घटनाओं का व्याख्या की है तथा बाद में डाली गयी प्रक्षेप रूपी मैल मिट्टी को हटा कर उसे उसके वास्तविक युक्ति-संगत रूप तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। जिसके फलस्वरूप महाभारत के प्रचलित रूप का चौथाई आकार इस संशोधित महाभारत का बना है, पर यह कार्य केवल एक व्यक्ति के करने का नहीं है। अभी तो इसे आरम्भ ही किया गया है। पूरा तो यह तभी होगा जब भविष्य में दूसरे विद्वान् भी आगे आकर इस कार्य में सहयोग देंगे।

इस रचना में प्रमाण के लिये उद्धरण के रूप में दिये हुए श्लोक गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित महाभारत में से दिये गये हैं अतः उनके अध्याय और श्लोक नं० उसी पुस्तक के हैं।

एच ९२, फेस १, अशोक विहार, दिल्ली-११००५२

यशपाल शास्त्री

आमुख

अपने प्राचीन साहित्य के विषय में हमारी दृष्टि कैसी होनी चाहिये? क्या एक अन्ध-श्रद्धायुक्त भक्त की या एक विवेकशील अध्येता की? यदि सब कुछ स्वीकार कर लेने वाली केवल श्रद्धा ही प्रमुख है, तो हम न जाने कितना कुछ ऐसा सँजोये रखेंगे, जो हमें सत्य ज्ञान से दूर रखेगा। दूसरी दृष्टि अपना कर यदि हम नीर -क्षीर -विवेक का प्रयास करते रहे, तो उस अद्वितीय और विपुल वाङ्मय से निस्सन्देह जीवन जीने की कला सीख सकते हैं।

महाभारत एक ऐसा ही अद्भुत ग्रन्थ है, जिसकी कथा और काव्यत्व ने हमें सदियों से प्रभावित किया है, किन्तु कालचक्र-परिवर्तन के साथ -साथ उसका महत्त्व जैसे -जैसे बढ़ता गया, वैसे -वैसे उसके कलेवर में ऐसा बहुत कुछ जुड़ता गया, जो मूलतः कभी घटित ही नहीं हुआ। यहाँ तक कि वह सारा ग्रन्थ ही अनेक विद्वान् समीक्षकों को कपोल -कल्पित प्रतीत होने लगा। इस तरह के श्रद्धा-जनित और कल्पना-प्रसूत अंशों को उसमें से पृथक् पहचान पाना वास्तव में अति दुरूह एवम् श्रम-साध्य शोध-कर्म है।

इस महान् ग्रन्थ के तीन रूपान्तर तो इसी में स्पष्टतः स्वीकारे गये हैं, जो इस प्रकार हैं और सुविदित भी हैं-

१. जय	रचयिता - व्यास,	श्रोता—वैशम्पायन	
२. भारत	रचयिता—वैशम्पायन,	श्रोता-जनमेजय(उग्रश्रवा-सौती),	स्थान— अवसर-हस्तिनापुर में नाग -यज्ञ
३. महाभारत	रचयिता—उग्रश्रवा,	श्रोता-शौनक आदि मुनि,	स्थान—नैमिषारण्य

इसके बाद भी हजारों साल तक मिश्रण होते रहे, यद्यपि कोई भिन्न नामकरण नहीं किया गया।

संस्कृत के विद्वान् और तर्कों व युक्तियों के यथोचित प्रयोक्ता पण्डित श्री यशपाल शास्त्री ने अनेक वर्षों के अथक और सतत परिश्रम द्वारा उपलब्ध महाकाय महाभारत में से भारत के वास्तविक स्वरूप को उकेरने का अत्यन्त स्तुत्य प्रयास किया है। इसके लिये उन्होंने प्रत्येक श्लोक की चीरफाड़ की है, जो सचमुच जरूरी थी। उनकी काँट -छाँट किसी भक्त को कहीं -कहीं कुछ बेरहम -सी प्रतीत हो सकती है, किन्तु इसके लिये उनके द्वारा अपनायी गयी युक्ति अकाट्य है। संक्षेप में वह इस प्रकार है—

भारत नामक ग्रन्थ के निर्माण तक व्यास मुनि और वैशम्पायन, दोनों उपस्थित थे। अतः जितना कुछ वैशम्पायन ने कहा है उसी में मूल ग्रन्थ छुपा है।

दूसरे, जहाँ -जहाँ,जनमेजय उवाच के बाद वैशम्पायन उवाच आया है, वहाँ -वहाँ वह उग्रश्रवा जी की कृति है। अतः उसे भी बीच में आये हुए प्रश्नोत्तरों के रूप में उग्रश्रवा द्वारा जोड़ा गया मान कर मूल ग्रन्थ से बहिष्कृत करना होगा।

तीसरे, चूँकि प्रक्षेपों के पीछे श्रोता की श्रद्धा जगाने का उद्देश्य है, अतः उनमें ही सृष्टि-क्रम-विरुद्ध अवैज्ञानिक चमत्कारों की बातें हैं। उन्हें भी चुन -चुन कर निकालना उचित है।

यहाँ यह सन्देह हो सकता है कि तथ्यात्मक एवं कल्पनात्मक घटनाओं में, स्वभावोक्ति और अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णनों में भेद करते हुए क्या वैयक्तिक समझ की सीमाएँ आड़े नहीं आयेंगी? मेरा मानना है कि अवश्य आयेंगी, परन्तु क्या केवल इसी आशंकावश एक सत्प्रयत्न को त्याग दिया जाए? एक विद्वान् ने साहस करके इस दिशा में सार्थक और निष्ठापूर्ण कदम उठाया

है। सभी भारतीयता प्रेमी और प्राचीन गौरव के गुण -ग्राही विद्वानों को चाहिये कि वे धैर्य-पूर्वक इस शोध कर्म का निरीक्षण करें, और तब निर्णय करें कि लेखक ने अपने गुरु गम्भीर दायित्व का निर्वाह कितनी ईमानदारी से किया है। मुझे विश्वास है, उन्हें सन्तुष्टि मिलेगी।

प्रस्तुत ग्रन्थ की कतिपय उल्लेखनीय विशेषताओं की ओर, एक -आध उदाहरण के साथ ध्यान दिलाना यहाँ प्रासंगिक ही होगा। महाभारत की प्रमुख घटनाओं का समय, उनका पूर्वापर संबंध और उसमें भाग लेने वाले प्रमुख पात्रों का जीवन काल,अर्थात् आयु की गणना आदि कुछ ऐसी खोज-पूर्ण स्थापनाएँ हैं, जो तथ्याधारित एवं तर्क-युक्ति-युक्त होने के साथ -साथ संभवतः पहली बार स्थापित की गयी हैं। महाभारत स्थित अनेक घटनाओं में जो विचित्रता या चमत्कार-पूर्णता दिखायी देती है, उनमें से लगभग सभी के प्रति शंकायें उठा कर अपेक्षित समाधान प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ-

अनेक पात्रों, भीष्म,पाण्डव, परीक्षित आदि के जन्म कैसे हुए? क्या गान्धारी ने आँखों पर पट्टी बाँधी थी? क्या श्रीकृष्ण ने द्रौपदी का चीर बढ़ाया था? द्रौपदी का पति कौन था? पाण्डवों के तेरह वर्ष के वनवास व अज्ञातवास की समाप्ति कब हुई? वनवास के समय जयद्रथ ने क्या द्रौपदी का अपहरण किया था? क्या भीम की हनुमान् जी से भेंट हुई थी? क्या अजगर ने भीम को पकड़ा था? संजय की दिव्य-दृष्टि का क्या अर्थ है? भीष्म पितामह की शर-शय्या कैसी थी? अर्जुन की प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिये श्री कृष्ण के द्वारा सूर्यास्त कैसे हुआ? कर्ण की मृत्यु के समय की अलौकिक घटनाओं की वास्तविकता क्या है? ऐसे चालीस से भी अधिक प्रश्नों का उत्तर ढूँढा गया है।

इसके अतिरिक्त महाभारत में ऐसे अनेक शब्द हैं, जो अलौकिक व्यक्तित्व, घटना अथवा पदार्थों की ओर संकेत करते हैं। जैसे, देव, इन्द्र, यमराज, अश्विनीकुमार, राक्षस, नाग, नारद मुनि, सूर्य-पुत्र, त्रिलोक, स्वर्ग, नरक, पितर, दिव्यास्त्र, चक्र-सुदर्शन, अक्षय तरकस आदि। ऐसे लगभग दो दर्जन से अधिक शंकास्पद शब्दों की व्याख्या की गयी है।

ऐसे उत्तम कार्य के लिये वार्द्धक्य में अपने परिपक्व चिन्तन को समर्पित करने वाले शास्त्री जी को अनेक शुभ कामनाएँ। विश्वास है कि जगन्नियन्ता उन्हें स्वस्थ दीर्घायु देकर ऐसा उपयोगी लेखन कराते रहेंगे। अथ च,

वेदव्रत आलोक
सेवा-निवृत्त संस्कृत-विभागाध्यक्ष
स्वामी श्रद्धानन्द कालिज
(दिल्ली विश्व-विद्यालय)

विषय-सूची

(१) विचारणीय विषय

(२) विषय-सूची

पर्व-विवरण

आदिपर्व

सभापर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक

वनपर्व

विराटपर्व

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या	श्लोक

भीष्मपर्व

गीता-परिशिष्ट

भीष्मपर्व

अनुभूमिका

भारतीय इतिहास के आकाश में रामायण और महाभारत, दो ऐसे जगमगाते हुए रत्न हैं जो चन्द्र और सूर्य के समान अपने उद्भव काल से ही जन-जन के ह्रदयाकाश को अन्धकार से रहित करते चले आ रहे हैं और भविष्य में भी तब तक करते रहेंगे, जब तक चन्द्र और सूर्य का प्रकाश भूमण्डल को प्रकाशित करता रहेगा। महर्षि वाल्मीकि और व्यास जी की ये अमर कृतियाँ भारतीय इतिहास के उस हजारों लाखों वर्ष पुराने समय की घटनाओं का दिग्दर्शन करातीं हैं,जब भारतवर्ष भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों ही क्षेत्रों में विकास की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था। इन महान् ग्रन्थों को पढ़ने से हमें मालूम होता है कि उस समय आध्यात्मिक उन्नति के कारण किस प्रकार अगस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, नारद, वाल्मीकि और व्यास जैसे ऋषियों ने योगाभ्यास की सर्वोत्कृष्ट ऊँचाइयों तक पहुँच कर आत्मा और परमात्मा के साक्षात्कार को प्राप्त कर लिया था और किस प्रकार भौतिक उन्नति के कारण राम तथा उनके तीनों भाई,श्रीकृष्ण और उनका परिवार एवँ पाँचों पाण्डव आदि अनेक महान् पुरुष शस्त्रास्त्र विद्या के गहनतम ज्ञान को प्राप्त कर अपने समय के अद्वितीय योद्धा के रूप में प्रसिद्ध हुए थे। वायुयान आदि अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियाँ उस समय भारतीयों को प्राप्त थीं। उन महान् भारतीयों ने भौतिक उन्नति के साथ -साथ अपने निजी जीवन से चारित्रिक उत्कृष्टता के भी मापदण्ड संसार के समक्ष प्रस्तुत किये। रामायण और महाभारत से ही हमें पता लगता है कि उस समय भारतीयों ने जो उन्नति की थी, वह सभी क्षेत्रों में सर्वांगीण थी,जबकि उसके मुकाबले आज के विकसित देश,जो उन्नति की दौड़ में नक्षत्रों तक जाने की तैयारी कर रहे हैं, केवल एक ही क्षेत्र में अर्थात् भौतिक विज्ञान में ही आगे बढ़ रहे हैं, चारित्रिक विकास और अध्यात्म के क्षेत्र में तो वे अभी जंगली हैं और इसी एकांगी विकास के कारण अल्प काल में ही आज संसार के विनाश का भय प्रस्तुत होने लगा है,जब कि भारतवर्ष के अतीत में लाखों वर्षों तक विकास को सर्वांगीणता के कारण अक्षुण्ण बनाये रखा गया और अन्त में महाभारत के युद्ध द्वारा तभी विनाश हुआ, जब भौतिकवाद अध्यात्मवाद पर हावी होने लगा।

भौतिकवाद के बढ़ने के कारण ही महाभारत के युद्ध में सारे संसार के सर्वोत्कृष्ट शूरबीर अपनी शक्ति के मद में उन्मत्त हो कर आयुधों और अठारह अक्षौहिणी सेना (३९,३६,६००)के साथ कुरुक्षेत्र के मैदान में एकत्र हो परस्पर संघर्ष करते हुए १८ दिन में ही समाप्त हो गये। इतनी बड़ी सेना का १८ दिन के अल्प समय में ही समाप्त हो जाना यह दर्शाता है कि उस समय शस्त्रास्त्र विद्या कितनी उन्नत थी? महाभारत के युद्ध के पश्चात् शेष बचे हुए यदुवंशी भी कुछ वर्षों के बाद शराब के नशे में मस्त हो आपस में लड़ कर समाप्त हो गये। इस प्रकार सारी भूमि उत्तम शस्त्रास्त्रों और वीरों से विहीन हो गयी। अध्यात्मवाद के अन्तिम प्रहरी श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास (जो जनमेजय के राज्य तक जीवित रहे) के पश्चात् ऋषि मुनियों की परंपरा भी समाप्त हो गयी और भारतीय जनता विकास की चोटी से लुढ़क कर अज्ञान के गहरे गड्ढे में जा गिरी।

जब देश में वेदादि सत्शास्त्रों द्वारा प्रदर्शित मार्ग को दिखाने वाला कोई न बचा तो भौतिकवाद के नशे में मस्त अनुशासन हीन ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने मनमाने आचरण प्रारम्भ कर दिये। चार्वाक मत और वाम -मार्ग का प्रचार होने लगा,यज्ञों में पशु हिंसा होने लगी,मद्य -मांसादि को धार्मिक जामा पहना दिया गया। इसी की प्रतिक्रिया में बौद्ध और जैन मतों का आविर्भाव हुआ और उनकी प्रतिक्रिया में देश में अन्य मत-मतान्तर फूट निकले। इन मत-मतान्तर वालों ने जहाँ राम और कृष्ण को महापुरुषों की श्रेणी से निकाल कर उन्हें भगवान् बना कर मन्दिरों में कैद कर दिया वहाँ उनके चरित्रों का गुणगान करने वाले महाकाव्य रामायण-महाभारत तथा अन्य दूसरी प्राचीन उत्कृष्ट पुस्तकों में भी मिलावट करनी प्रारम्भ कर दी। रामायण और महाभारत, ये दोनों महाकाव्य जनता के लिये अत्यन्त श्रद्धास्पद थे, अतः जिस किसी ने अपने मत का जनता में प्रचार करना चाहा, अपने

अनुकूल सिद्धान्तों और कहानियों को रामायण और महाभारत में सम्मिलित कर दिया,ताकि जनता को यह बताया जा सके कि यह नयी बात मेरी अपनी ही नहीं है, वाल्मीकि और व्यास भी इसे मानते हैं। इस प्रकार इस प्रक्षेप विद्या के सहारे वाल्मीकि और व्यास के नाम से देश में असत्य और अज्ञान का खूब धड़ल्ले से प्रसार होने लगा। प्रक्षेप का यह सिलसिला यहाँ तक बढ़ा कि मूल रामायण जो कि हजार के लगभग श्लोकों की थी, आज उसमें चौबीस हजार श्लोक मिलते हैं और मूल महाभारत में (जो कि व्यास जी और वैशम्पायन दोनों के द्वारा निर्मित थी) जहाँ दस हजार श्लोक थे, वहाँ अब उसमें एक लाख श्लोक मिलते हैं।

प्रक्षेपकर्ताओं ने इतनी अलौकिकता से युक्त, सृष्टिक्रम के विरुद्ध, परस्पर विरोधी, ऊटपटाँग बातें इन ग्रन्थों में डाल दीं हैं कि विदेशी लोग और उनके प्रभाव से प्रभावित देशी शिक्षित लोग भी रामायण और महाभारत को सत्य कथा न मान कर परीकथाओं की तरह काल्पनिक और माइथॉलोजिकल मानते हैं। विदेशी लोगों को अपने देश की सभ्यता के मुकाबले भारतवर्ष की सभ्यता की इतनी अधिक प्राचीनता वैसे ही सहन नहीं हो रही थी, प्रक्षेपकर्ताओं की कृपा से उन्हें हमारी सभ्यता को अर्वाचीन ठहराने के लिये सहारा मिल गया। अब वे रामायण और महाभारत को असत्य कथा और भारतीय सभ्यता को तीन चार हजार वर्ष ही पुरानी मानते हैं। इस प्रकार हमारे लाखों वर्ष पुराने इतिहास को जहाँ विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा उसकी विशाल मात्रा को अग्नि में जला कर नष्ट कर दिया गया, वहाँ उनके आने से पहले ही हमारे देशी प्रक्षेपकर्ता भाइयों ने भी अपने तरीके से अपने देश के इतिहास को विकृत करके नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

किसी देश का इतिहास उस देश की अमूल्य निधि होती है। उस इतिहास में देश के महापुरुषों के महान् कार्यों तथा उस देश की सभ्यता और संस्कृति का विवरण होता है। महापुरुषों के कार्य देश की जनता के लिये प्रेरणा-स्रोत होते हैं।उनसे प्रेरणा लेकर ही देशभक्त देश की उन्नति के लिये दिन -रात एक कर देते हैं और देश की रक्षा के लिये प्राण तक न्यौछावर कर देते हैं। जो इतिहास जितना अधिक पुराना हो, वह उतना ही मूल्यवान् माना जाता है। इस प्रकार रामायण और महाभारत के रूप में हमारा इतिहास सबसे अधिक मूल्यवान् है,पर प्रक्षेपों के कारण आज उसे असत्य मान कर इतिहास की कोटि से हटा दिया गया है, इससे हमारे देश के सम्मान, सभ्यता और संस्कृति की जो अपार हानि हुई है वह देशभक्ति के दृष्टिकोण से सर्वथा अवर्णनीय है। इस क्षति की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि विद्वान् व्यक्ति आगे आयें और हमारे प्राचीन साहित्य की निष्पक्ष रूप से बुद्धि की कसौटी पर विवेचना कर प्रक्षेप रूपी गन्दगी को हटा कर उसे अपना असली रूप देने का प्रयत्न करें, ताकि वह काल्पनिक कथालोक न रह कर वास्तविक इतिहास कहलाया जाये।

अपनी इसी कथनी को करनी का रूप देने के लिये मैंने यह प्रयत्न प्रारम्भ किया है। महाभारत के इस संशोधन में उन घटनाओं को जो पुनरुक्त हैं,निकाल दिया है। उन घटनाओं की जो अलौकिक हैं या तो युक्ति-युक्त व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है या उन्हें निकाल दिया है। घटनाओं को निकालते समय कथा के तारतम्य को टूटने नहीं दिया गया है। संशोधन के फलस्वरूप महाभारत का आकार अपने तिरानवें हजार श्लोकों वाले स्वरूप से घट कर चौबीस हजार श्लोकों का रह गया है।

अन्त में मैं उन विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनके कार्यों से प्रेरणा और ज्ञान प्राप्त कर मैं इस योग्य बन सका।

क (१) महाभारत की रचना प्रक्रिया और प्रक्षेप

महाभारत भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है, पर महाभारत का महत्त्व केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं है, उसमें और दूसरी भी विशेषताएँ हैं। वह भारतीय संस्कृति का सुदृढ़ आधार स्तम्भ है। उसके अन्दर एक नहीं अनेक नीति -शास्त्र समाहित हैं। महाभारत एक उत्कृष्ट धर्मशास्त्र, आचारशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और हमारी सभ्यता का दिग्दर्शक गौरव -ग्रन्थ है। महाभारत एक ऐसा महाकाव्य है, जिसके कथानकों से सहारा पाकर भारतीय भाषाओं के हजारों साहित्यकारों ने अपनी साहित्य -कला को परिष्कृत किया है। इसकी महत्ता के विषय में इसकी अपनी ही भूमिका में देखिये क्या उल्लिखित है? जब श्री उग्रश्रवा जी जनमेजय के नाग-यज्ञ से घूमते हुए नैमिषारण्य में शौनक मुनि के आश्रम में पहुँचे तब वहाँ के निवासी उग्रश्रवा जी से महाभारत के सुनाने का आग्रह करते हुए महाभारत के विषय में कहने लगे *जो आख्यानों में सर्वश्रेष्ठ है,जिसका एक -एक पद, वाक्य एवं पर्व विचित्र शब्द -विन्यास और रमणीय अर्थ से परिपूर्ण है, जिसमें आत्मा -परमात्मा के सूक्ष्म स्वरूप का निर्णय और उसके अनुमान के लिये अनुकूल युक्तियाँ भरी हुई हैं, जो सम्पूर्ण वेदों के तात्पर्यानुकूल अर्थ से अलंकृत है, जो अद्भुत कर्मा व्यास की संहिता है, उसे हम सुनना चाहते हैं।* तब श्री उग्रश्रवा जी ने भी महाभारत की प्रशंसा करते हुए कहा *जैसे मोक्ष चाहने वाले पुरुष परं बैराग्य की शरण ग्रहण करते हैं, वैसे ही प्रज्ञावात् मनुष्य अलौकिक अर्थ, विचित्र पद, अद्भुत आख्यान और भाँति -भाँति की विलक्षण मर्यादाओं से युक्त इस महाभारत का आश्रय ग्रहण करते हैं। इस उपाख्यान को सुन लेने पर और कुछ सुनना अच्छा नहीं लगता। भला कोकिल का कलरव सुन कर कौवों की कठोर काँव -काँव किसे पसन्द आएगी? जैसे पंच भूतों से त्रिविध लोक -सृष्टियाँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार इस उत्तम इतिहास से कवियों को काव्य -रचना विषयक बुद्धियाँ प्राप्त होती हैं। सभी श्रेष्ठ कवि इस महाभारत की कथा का आश्रय लेते हैं और लेंगे,ठीक वैसे ही जैसे उन्नति चाहने वाले सेवक श्रेष्ठ स्वामी का सहारा लेते हैं।*

महाभारत के मूल रचनाकार श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास थे। जैसे वाल्मीकि राम के समकालीन थे, उसी प्रकार श्री व्यास जी भी महाभारत की घटनाओं के समकालीन थे। समकालीन ही नहीं बल्कि वे महाभारत की कथा में एक पात्र भी थे। उनका कौरवों और पाण्डवों से रक्त संबंध था, क्योंकि धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर उनके नियोगज पुत्र थे। इसीलिये जहाँ राम कथा की जानकारी वाल्मीकि को दूसरों से सुन कर प्राप्त हुई, वहाँ व्यास जी महाभारत की कथा के स्वयं द्रष्टा थे। श्री उग्रश्रवा जी के कथनानुसार जब व्यास जी के तीनों नियोगज पुत्र परम गति को प्राप्त हुए तब व्यास जी ने कुरुवंश में घटित घटनाओं पर जय नाम का महाकाव्य रचा, उसे उन्होंने अपने शिष्य वैशम्पायन को सुनाया। वैशम्पायन ने और निर्माण कर उसमें वृद्धि की। तब उसका नाम भारत हुआ। इस भारत नाम के महाकाव्य को ही व्यास जी की आज्ञा से वैशम्पायन ने नाग -यज्ञ में जनमेजय को सुनाया। वहाँ से सुन कर उग्रश्रवा अर्थात् सौति ने उसमें और बढ़ोतरी की और तब उसे महाभारत नाम से नैमिषारण्य में शौनक जी तथा अन्य श्रोताओं को सुनाया।

***प्रथम चरण (जय)*:-** इन तीनों रचनाकारों ने महाभारत के कौन -कौन से भाग का निर्माण किया इस विषय में भिन्न -भिन्न विद्वानों के भिन्न -भिन्न मत हैं, पर मेरा अपना अनुमान यह है कि व्यासजी ने जय नाम के काव्य का प्रारम्भ पाण्डवों के जन्म से थोड़ा पहले, जब पाण्डु राज्य छोड़ कर वन में रहने लगे वहाँ से किया होगा, क्योंकि जय काव्य के नायक युधिष्ठिर और खल नायक दुर्योधन थे। भारतीय परम्परा में महाकाव्य का प्रारम्भ नायक के जन्म के समय से ही किया जाता है, उसके पुराने बाप -दादों के जन्म से नहीं। जैसे वाल्मीकि ने भी रामायण का प्रारम्भ राम के जन्म की घटना से थोड़ा पूर्व किया है, दशरथ जी के पूर्व जीवन के वर्णन से नहीं। दूसरी बात यह है कि महाभारत के प्रारम्भ में अनुक्रमणिका पर्व में सर्वप्रथम महाभारत का जो संक्षेप दिया है, वहाँ भी महाभारत की कहानी पाण्डु के वन में निवास से प्रारम्भ की गयी है। तीसरी बात यह है कि पाण्डु के जीवन -वर्णन में पहले पाण्डु सुचारु रूप से राज्य कर रहे होते हैं। विदेशों में विजय-यात्रा पर भी जाते हैं। वहाँ से जीत कर

धन-धान्य से अपने कोष की वृद्धि करते हैं, पर फिर अचानक दोनों पत्नियों के साथ वन में जा कर रहने लगते हैं। इसका कोई कारण महाभारत में नहीं दिया गया और इसी कारण यहाँ पूर्वापर घटनाओं का सम्बन्ध नहीं मिल रहा है। इससे यह प्रतीत होता है कि पाण्डु के वन-निवास से पहले की घटनाएं शायद अन्य लेखक के द्वारा निर्मित हों।

जय काव्य की समाप्ति मेरे विचार से वहाँ पर होनी चाहिये, जहाँ दुर्योधन की जाँघ तोड़ कर उसे भूमि पर गिराया गया। क्योंकि युधिष्ठिर की जय और कुरुक्षेत्र के युद्ध की समाप्ति तभी माननी चाहिये जब मुख्य खल नायक को मृत्यु -पथ पर रवाना कर दिया गया। जय नाम भी यह स्पष्ट कर रहा है कि नायक की जय पर ही उसकी समाप्ति हुई होगी।

द्वितीय चरण (भारत):- दूसरे निर्माता वैशम्पायन जी द्वारा निर्मित भारत महाकाव्य के विषय में मेरा अनुमान यह है कि इसका प्रारम्भ महाभारत की कहानी के सबसे वयोवृद्ध और मुख्य अभिनेता भीष्म पितामह के जन्म की घटना अर्थात् शान्तनु के गंगा से विवाह से हुआ होगा। इससे पूर्व जो भी भरत वंशी राजा हुए, उनका महाभारत की कहानी से कोई संबंध नहीं है। भारत की समाप्ति भी या तो भीष्म पितामह के स्वर्गारोहण पर या अश्वमेध यज्ञ पर माननी चाहिये, क्योंकि इसमें पहली बात तो यह है कि यहाँ तक युद्ध में भाग लेने वाले न केवल भरतवंशी बल्कि भरतवंशियों से अलग भारतवर्ष के उन सारे योद्धाओं का जो युद्ध से संबद्ध रहे, वर्णन आ गया है। इसीलिये मैं समझता हूँ कि इसका नाम जय से भारत हुआ।

दूसरी बात यह है कि भारतीय काव्य -शास्त्र के नियमों के अनुसार महाकाव्य को सुखान्त होना चाहिये और यही भारतीय महाकाव्यों की परम्परा भी रही है। व्यास जी भारतीय मर्यादाओं के पोषक थे, अतः उनका काव्य जय जैसा कि इसके नाम से ही सूचित हो रहा है सुखान्त ही रहा होगा। उनके शिष्य वैशम्पायन ने उनके ही जीवन -काल में ज़ो कलेवर वृद्धि की, वह उनकी सहमति से ही की होगी। न तो व्यास जी ने अपने शिष्य को यह अनुमति दी होगी कि वह उनके सुखान्त काव्य को दुखान्त काव्य में बदल दे और न वैशम्पायन की ही ऐसी गुस्ताखी करने की हिम्मत रही होगी। सुखान्त काव्य रखने के लिये महाकाव्य की कहानी की समाप्ति अश्वमेध यज्ञ पर होनी आवश्यक है, उससे आगे बढ़ कर वर्तमान महाभारत सुखान्त नहीं बल्कि दुखान्त है। वह अलग बात है कि स्वर्गारोहण की अलौकिक घटना,(जो विश्वसनीय नहीं है) का प्रक्षेप करके महाकाव्य को सुखान्त बनाने का प्रयत्न किया गया है।

वैशाम्पायन के भारत महाकाव्य में जय महाकाव्य की प्रारम्भ और अन्त की सीमाओं को विस्तृत करने के साथ -साथ उसके अन्दरूनी भागों में भी परिवर्तन करके उसे पूरी तरह से अपने काव्य में घुला -मिला लिया गया है। इसका प्रमाण यह है कि महाभारत में जहाँ कहीं भी व्यास जी का वर्णन आया है, उनके आने-जाने या किसी से कुछ कहने आदि का उल्लेख अन्य पुरुष में किया गया है, जबकि व्यास जी की अपनी रचना में यह बात कदापि नहीं होनी चाहिये। कोई भी लेखक किसी कथानक को लिखते समय, यदि बीच में उसका अपना भी वर्णन हो तो स्वयं अपने को अन्य पुरुष में नहीं बल्कि उत्तम पुरुष में अर्थात् उस समय मैंने यह किया, मैं वहाँ गया आदि इस प्रकार से करेगा, फिर भला व्यास जी जैसा विद्वान् व्यक्ति ऐसी गलती क्यों करता? मेरे विचार से या तो व्यास जी ने जय काव्य में अपना वर्णन किया ही नहीं होगा या फिर उत्तम पुरुष में किया होगा, उसे वैशम्पायन जी द्वारा अन्य पुरुष में बदल देना नितान्त स्वाभाविक है।

तृतीय चरण(महाभारत):- भारत को महाभारत का रूप देने वाले उसके तीसरे रचयिता थे श्री उग्रश्रवा जी, जिन्होंने जनमेजय के यज्ञ में वैशम्पायन जी से महाभारत की कथा सुन कर नैमिषारण्य में जाकर उसे सुनाया। उग्रश्रवा जी क्योंकि कथा वाचक थे, उन्हें कहानियाँ कहने का बहुत शौक था, इसलिये उन्होंने महाभारत का प्रारम्भ पुरु वंश के आरम्भ से किया, पर यह किया इस प्रकार से जैसे उग्रश्रवा नहीं सुना रहे हैं, बल्कि वैशम्पायन ही जनमेजय को सुना रहे हैं। ग्रन्थ की समाप्ति मेरे विचार से उन्होंने पाण्डवों के वन -प्रस्थान पर की होगी। कथा कहने के उत्साह में उन्होंने महाभारत को सुखांत से दुःखांत बना दिया और ऐसी बहुत सारी कहानियों का समावेश कर दिया, जिनका महाभारत की कथा से कोई सम्बन्ध नहीं था। उनकी शैली यह है जब जहाँ चाहा, किसी घटना या व्यक्ति का किसी पात्र के मुख से जिक्र करवा दिया। फिर, जनमेजय से उसके विषय में प्रश्न करवा कर वैशम्पायन जी से उस व्यक्ति या घटना का विस्तृत वर्णन करवा दिया।

महाभारत का आकार बढ़ाने के लिये उग्रश्रवा जी ने एक कार्य यह भी किया कि जब वैशंपायन जी महाभारत की कथा सुना रहे थे, तब निश्चय ही उन्होंने केवल महाभारत की कथा ही नहीं सुनायी होगी,अपितु बीच में उससे हट कर जनमेजय के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर भी दिया होगा और स्वयं अपनी तरफ से उन्हें कुछ अतिरिक्त बातें भी बतायीं होंगीं। यह स्वाभाविक भी है,क्योंकि आज भी यदि कोई किसी को कुछ पढ़ कर सुनाये तो वह भी इसी प्रकार का कार्य करेगा। उग्रश्रवा जी ने वैशंपायन और जनमेजय के बीच में हुए उस वार्त्तालाप को, जो कि गद्य में था और महाभारत का भाग नहीं था, श्लोकबद्ध किया और उसे महाभारत में ही खिचड़ी में मिले हुए दाल -चावलों की तरह मिला कर उसका अविभाज्य अंग बना दिया। प्रमाण के लिये महाभारत में जगह -जगह आये हुए जनमेजय को संबोधन करने वाले शब्दों को देखा जा सकता है। बुद्धिपूर्वक विचारने पर इन सम्बोधनात्मक वाक्यों को उस महाभारत का अंग नहीं माना जा सकता, जो व्यास और वैशंपायन जी द्वारा पहले से तैयार की हुई थी और जिसे सुनाया जा रहा था। पर इन्हें निकालने पर सारी महाभारत में कुछ बचता ही नहीं है। महाभारत का संशोधन करने वालों के लिये यह बड़ी भारी समस्या है।

चतुर्थ चरण(वर्तमान रूप):- पीछे आने वाले प्रक्षेपकारों को उग्रश्रवा जी का यह तरीका बहुत पसंद आया और इस तरीके का सहारा ले कर उनके द्वारा महाभारत में प्रक्षेपों की भरमार कर दी गयी। प्रक्षेपों द्वारा महाभारत के आकार में किस तेजी से वृद्धि हुई इसके विषय में स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में राजा भोज द्वारा रचित संजीवनी नाम के इतिहास-ग्रन्थ का उद्धरण दिया है। उसमें राजा भोज लिखते हैं, ***व्यास जी ने चार सहस्त्र चार सौ और उनके शिष्यों ने पाँच सहस्त्र छह सौ श्लोक युक्त अर्थात् सब दश सहस्त्र श्लोकों के प्रमाण का भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय बीस सहस्त्र, महाराज भोज कहते हैं कि मेरे पिताजी के समय में पच्चीस सहस्त्र और अब मेरी आधी उमर में तीस सहस्त्र श्लोक युक्त महाभारत का ग्रंथ मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत एक ऊँट का बोझा हो जायेगा।*** इस समय महाभारत में तिरानवें हजार एक सौ छियासी श्लोक हैं। वर्तमान महाभारत में जितने भी जनमेजय उवाच तथा उसके उत्तर में वैशम्पायन उवाच हैं तथा जितने भी प्रसंग विरुद्ध और पुनरुक्त प्रसंग हैं एवं जितने भी अलौकिक, अप्राकृतिक, सृष्टिक्रम विरुद्ध तथा वरदान और अभिशाप पर आधारित वर्णन हैं, वे सब प्रक्षिप्त हैं। इस प्रकार के वर्णनों को निकाल कर मैंने महाभारत को वास्तविक रूप देने का प्रयत्न किया है। जनमेजय उवाच और वैंशम्पायन उवाच के विषय में एक बात यह भी समझने की है कि वैशम्पायन जी तो अपने गुरु की आज्ञानुसार महाभारत के उस काव्य को जो छन्दोबद्ध था और जिसे उन्होंने पहले से ही निर्मित किया हुआ था, सुना रहे थे, पर बीच में जनमेजय कुछ अन्य प्रश्न भी करते थे, जिनका उत्तर वैशम्पायन महाभारत की कथा से हट कर अपनी भाषा में देते थे। अत: निश्चित है कि जनमेजय के प्रश्न और वैशम्पायन के उत्तर गद्य में ही होंगे, पद्य में नहीं। इससे स्पष्ट है कि वह पद्य रचना बाद में प्रक्षेपकारों द्वारा की गयी है।

वर्तमान महाभारत के ग्रन्थ का आरम्भ नैमिषारण्य में श्री उग्रश्रवा जी के पहुँचने और वहाँ के वासियों द्वारा उनसे महाभारत की कथा सुनाने के आग्रह से होता है। इस घटना में क्योंकि उग्रश्रवा जी का वर्णन अन्य पुरुष में किया गया है,उत्तम पुरुष में नहीं अत: यह भाग उग्रश्रवा जी द्वारा नहीं बल्कि उनके पश्चात् किसी अन्य ने बनाया है। यह महाभारत का चौथा प्रारम्भ का भाग उग्रश्रवा जी के बहुत समय पश्चात् बनाया गया लगता है। उस समय भारत में अनेक मत -मतान्तर चालू हो चुके थे, पुराणों की रचना तथा उनका वेदादि सत्शास्त्रों की जगह पठन -पाठन प्रचलित हो गया था, अद्वैतवाद का जन्म हो चुका था और विद्या का स्तर काफी नीचे आ चुका था। उदाहरण के लिये नैमिषारण्य के निवासियों को ऋषि, ब्रह्मर्षि और मुनि कहा गया है, जबकि वे केवल सामान्य आश्रमवासी थे। ऋषि और मुनि शब्दों का भारतीय साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान है। महाभारत से पूर्व ऋषि शब्द का प्रयोग, ***ऋषिः दर्शनात्*** अर्थात् जिसने ज्ञान के दर्शन कर लिये, इस व्युत्पत्ति के आधार पर केवल वेद-वेदान्तों के द्रष्टाओं के लिये हुआ है। इसी प्रकार मुनि शब्द का प्रयोग विशेष मननशील तपस्वी व्यक्ति के लिये हुआ है। जैसे, स्मृति आदि शास्त्रों के रचयिता। सामान्य आश्रमवासियों के लिये इन विशिष्ट शब्दों का प्रयोग कभी नहीं हुआ। उग्रश्रवा को पौराणिक कहना भी उस समय पुराणों के प्रचार की बात प्रकट करता है। उग्रश्रवा जी आश्रमवासियों को ब्रह्मभूत अर्थात् ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए ऐसा कहते हैं। ब्रह्मत्व को प्राप्त होना अद्वैतवाद का ही सिद्धान्त है। महाभारत के इस भाग को मैंने अपने संशोधन में भूमिका

भाग प्रथम के रूप में देखा है और उग्रश्रवा जी द्वारा रचित पुरुवंश के वर्णन से शान्तनु के वर्णन तक का भाग भूमिका भाग द्वितीय के रूप में देखा है। उन प्रसंगों के उपरान्त शान्तनु द्वारा गंगा से विवाह से महाभारत के आदि पर्व का प्रारम्भ माना है। प्रक्षेपकारों ने केवल प्रक्षेप ही नहीं किया, बल्कि अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये वहाँ से वास्तविक वर्णनों को कहीं-कहीं निकाल भी दिया है। जैसेः—

धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः, स्वबाहुर्विजितम् धनम्।...................अश्वमेधशतैरीजे, धृतराष्ट्रो महामखैः।।

ये आदि पर्व के ११३ वें अध्याय के पहले पाँच श्लोक हैं। इनमें यह वर्णन किया गया है कि पाण्डु ने दिग्विजय में लाये हुए धन को किस प्रकार बाँटा, पर उसके तुरन्त पश्चात् छठा श्लोक देखिये—

सम्प्रयुक्तस्तु कुन्त्या च, माद्र्या च भरतर्षभः। जिततन्द्रीस्तदा पाण्डुः, बभूव वनगोचरः।।
हित्वा प्रासादनिलयं, शुभानि शयनानि च।।

अर्थात् भरत श्रेष्ठ राजा पाण्डु ने आलस्य को जीत लिया था, वे कुन्ती और माद्री की प्रेरणा से राज -महलों का निवास और सुन्दर शय्याएँ छोड़ कर वन में रहने लगे।

यहाँ पहले पाँच श्लोकों से छठे और आगे के श्लोकों का कोई संबंध नहीं है। जीती हुई सम्पत्ति का वितरण करके वे अचानक क्यों वन में रहने लगे? सिवाय इसके कि कुन्ती और माद्री की प्रेरणा पर और कोई कारण नहीं बताया गया है। दो पत्नियाँ एक साथ सहमत होकर कैसे अपने पति को लम्बे समय के लिये राज्य छोड़कर वन में रहने की सलाह दे सकतीं हैं? वन में जाने के ही पश्चात् पाण्डवों के जन्म हुए। जब पाण्डु का देहान्त हुआ तब अर्जुन की आयु चौदह वर्ष की थी, क्योंकि महाभारत के अनुसार अर्जुन का चौदहवाँ वर्ष पूरा होने के उपलक्ष्य में जिस दिन ब्राह्मणों को भोजन कराया जा रहा था, उसी दिन पाण्डु और माद्री वाली दुर्घटना हुई, जिसने पाण्डु को मृत्यु के मुख तक पहुँचा दिया। इस प्रकार अपनी मृत्यु तक पाण्डु २० वर्ष तो अवश्य ही वन में रह चुके थे। राम चौदह वर्ष वन में रहे, पाण्डव १२ वर्ष तक रहे। उन दोनों के वन में जाने के कारण परिवारों में भयानक उथल-पुथल हो गयी, पर पाण्डु २० वर्ष तक वन में रहे, फिर भी उनके जाने का कारण नहीं बताया गया? इससे स्पष्ट है कि उस कारण को वहाँ से निकाल दिया गया है। यह बड़ी दुःख -दायक बात है। प्रक्षेप को तो निकालने का प्रयत्न किया जा सकता है, पर निकाली हुई असली चीज को प्राप्त करना असम्भव है। इसलिये ऐसे स्थलों के कारण जहाँ कथा-सूत्र टूटा मालूम पड़ा है, मैंने विशेष नोट दे दिया है।

(२) महाभारत का काल

महाभारत के काल के विषय में न केवल भारतीय विद्वान् बल्कि सामान्य जनता के सदस्य भी यही मानते हैं कि द्वापर और कलियुग के बीच में अर्थात् या तो द्वापर के अन्त में या कलियुग के आरम्भ में महाभारत का युद्ध हुआ, क्योंकि स्वयं महाभारत में ही इसके विषय में संकेत दिये गये हैं। जैसे आदि पर्व में युद्ध के समय के विषय में कहा गया है कि *अन्तरे चैव संप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्* अर्थात् द्वापर और कलियुग के मध्य में यह युद्ध हुआ। इसी प्रकार जब भीम ने दुर्योधन की जाँघ गदा से तोड़ी तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि *प्राप्तम् कलि युगम् विद्धि* अर्थात् अब कलियुग को आया समझो।

कलियुग का आरम्भ भारतीय ज्योतिषियों ने ईसा से ३१०१ वर्ष पूर्व माना है। अर्थात् अब २००२ ई.में ३१०१ जोड़ कर ५१०३ कलि संवत् चल रहा है। अतः महाभारत का युद्ध इतने वर्ष पहले तो अवश्य ही हुआ था, यदि और भी अधिक बारीकी में जायें तो महाभारत की अन्तःसाक्षी के अनुसार भीष्म पितामह के स्वर्गारोहण के समय नक्षत्रों की जो स्थिति वर्णित की गई है उसके आधार पर श्री नारायण शास्त्री ने अपनी पुस्तक (शंकर का काल) में ज्योतिष की गणनाओं से यह सिद्ध किया है कि नक्षत्रों की यह स्थिति ईसा से ३१३९ वर्ष पूर्व ही हो सकती है। इस हिसाब के अनुसार ३१३९ में २००२ जोड़ कर ५१४१ वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध हुआ। कलि संवत् क्योंकि अब ५१०३ चल रहा है अतः कलि के आरम्भ होने से ३८ वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध हुआ। तत्पश्चात् ३६ वर्ष तक युधिष्ठिर ने राज्य किया, उसके दो वर्ष बाद कलियुग का आरम्भ हुआ।

→

आदि शंकराचार्य जी ने देश में अद्वैतवाद की स्थापना के उपरान्त उसके प्रचार और प्रसार के लिये विभिन्न स्थानों पर पाँच धर्मपीठों की स्थापना की थी। उन पीठों के मुख्य आचार्य भी शंकराचार्य की उपाधि से विभूषित किये जाते हैं। प्रत्येक धर्मपीठ में अलग अलग समयों पर पीठासीन शंकराचार्यों के नाम और समय का विवरण वहाँ के रिकार्ड में अब तक लिखा हुआ है। उनमें से शारदापीठ और काँचीकामकोटि पीठ के आचार्यों के नामों का इतिहास स्थापना से लेकर आजतक बिना किसी त्रुटि के अनुक्रम मिलता है, इसलिये वह अधिक विश्वसनीय है। शारदापीठ के विवरण में युधिष्ठिर संवत का, जिसका आरम्भ युधिष्ठिर ने महाभारत युद्ध के उपरान्त अपने राज्यारोहण पर किया था और काँचीकामकोटि के विवरण में कलिसंवत का, जिसका जन्म, युधिष्ठिर संवत से ३६ वर्ष उपरान्त, कलियुग के आरम्भ होने पर हुआ था, प्रयोग किया गया है।

शारदापीठ में लिखे विवरण के अनुसार वहाँ के ४५वें आचार्य "आनन्दाविर्भव" ने युधिष्ठिर संवत २०४० में वहाँ की अध्यक्षता स्वीकार की और इस पद पर वे ५२ वर्षों तक आसीन रहे। इनके ५२ वर्षों का परिगणन इस प्रकार से किया गया है कि आरम्भ के ४३ वर्ष युधिष्ठिर संवत ३०४० से ३०२३ तक और शेष ९ वर्ष विक्रम संवत के आरम्भ होने पर उसके अनुसार विक्रम संवत ९ तक। इस विवरण से यह स्पष्ट हो रहा है कि जब विक्रम संवत का आरम्भ किया गया तब युधिष्ठिर संवत ३०२३ था। अर्थात महाभारत के युद्ध के ३०२३ वर्ष के पश्चात विक्रम संवत का आरम्भ हुआ।

अब सन २०१३ में क्योंकि विक्रम संवत २०७० है, अतः यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि महाभारत का युद्ध आज से (युधिष्ठिर संवत के ३०२३+ विक्रम संवत के २०७० =) ५०९३ वर्ष पहले हुआ था।

उनके अनुसार भी कार्य करना परमात्मा के लिये संभव है? भगवान् प्रकृति की सहायता से अपने नियम के अनुसार ही सृष्टि का संचालन करते हैं, किसी व्यक्ति के वरदान और अभिशाप के अनुसार नहीं। यदि परमात्मा वरदान और अभिशापों को पूरा करने में लग जाये तो सृष्टि-संचालन के सारे नियम गड़बड़ा जायें और भगवान् की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाये। यह बात अवश्य है कि जो किसी को सुख या दुःख पहुँचा कर उसके वरदान या अभिशाप का उत्तरदायी बनता है, परमात्मा उसके अच्छे या बुरे कर्म का अच्छा या बुरा फल अवश्य देता है। पर वह अपनी व्यवस्था के अनुसार देता है,वरदान या अभिशाप देने वाले के अनुसार नहीं। अतः वरदान और अभिशाप का सिद्धान्त मान्य नहीं है, इसलिये यह कहानी भी अविश्वसनीय है। भीष्म पितामह के जन्म की कहानी का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिये—

जन्हु ऋषि का आश्रम हस्तिनापुर के समीप गंगा के किनारे वन में था। उनकी गंगा नाम की पुत्री सर्वगुण संपन्न और सौन्दर्यशालिनी थी। ऋषि के आश्रम के समीपवर्ती वनों में राजा शान्तनु भी शिकार खेलने के लिये आया करते थे। राजा शान्तनु भी सर्वगुण सम्पन्न थे, पर उनमें एक अवगुण यह था कि वे नारी-सौन्दर्य के अत्यन्त पिपासु थे। एक दिन उन्होंने शिकार के लिये घूमते हुए गंगा के किनारे घूमती हुई जन्हु की पुत्री गंगा को देख लिया और देखते ही उस पर आसक्त हो गये। यह जानते हुए भी कि मैं इसके अच्छे -बुरे स्वभाव के विषय में कुछ भी नहीं जानता, तुरन्त ही उससे अपनी पत्नी बनने के लिये आग्रह करने लगे। गंगा अत्यन्त समझदार और दूरदर्शी लड़की थी। उसने शान्तनु की सर्वगुण सम्पन्नता के विषय में तो आश्रमवासियों से ही सुन रखा होगा, पर इस मुलाकात के समय उसने यह भी समझ लिया कि यह राजा विलासी प्रकृति का है। इसलिये गृहस्थाश्रम में रहते हुए भविष्य में कोई परेशानी उत्पन्न न हो,उसने राजा का आग्रह स्वीकार करते हुए अपनी दूरदर्शिता से पहले ही राजा से यह निश्चित कर लिया कि वह उससे कोई अप्रिय बात नहीं कहेगा और उसके किसी कार्य को रोकेगा नहीं। यदि इन बातों का उसने उल्लंघन किया तो वह तत्काल उसे छोड़ कर चली जायेगी।

इस बात को शान्तनु के द्वारा स्वीकार कर लेने पर ही वह उनकी रानी बनी। पर दूसरी सन्तान के जन्म लेने की सम्भावना आरंभ होते ही राजा और रानी में मतभेद प्रकट होने लगे होंगे। गंगा यह चाहती होगी कि सन्तान एक ही हो और उसे ही पढ़ा लिखा कर सुयोग्य व्यक्ति के रूप में तैयार किया जाये, पर शान्तनु इस विचार के नहीं होंगे। सन्तानोत्पत्ति को वश में करने के लिये उस समय ब्रह्मचर्य पालन के सिवाय कोई दूसरा साधन भी नहीं था, पर ब्रह्मचर्य का पालन राजा शान्तनु के बस की बात नहीं थी। इस बात पर गंगा और शान्तनु के बीच में मनमुटाव रहने लगा होगा। इसीलिये विरोध प्रकट करने के लिये गंगा ने अपनी दूसरी सन्तान के जन्म की संभावना स्पष्ट होते ही, पहली सन्तान को सेवकों के द्वारा गंगा के पार कहीं भिजवा दिया होगा, किन्तु प्रकट यही किया होगा कि उसने विरोध के कारण पहले बच्चे को डुबवा दिया।

राजा शान्तनु गंगा के विचारों से सहमत नहीं हो पाये होंगे, इसीलिये उनके जल्दी-जल्दी लगातार आठ सन्तानें उत्पन्न होती चलीं गयीं। गंगा भी अपना विरोध प्रकट करती हुई प्रत्येक पहले पुत्र को अगले पुत्र के जन्म का निश्चय होते ही अज्ञात स्थान पर भिजवाती रही। अन्त में सातवें पुत्र के अज्ञात स्थान पर भिजवाने के पश्चात् और आठवें पुत्र के जन्म पर शान्तनु अपने आपको नहीं रोक सके। उन्होंने गंगा को अप्रिय वचन कहे और उसे उसके कार्य के लिये रोका भी। तब गंगा अपनी शर्त के अनुसार आठवें बच्चे को लेकर, शान्तनु का साथ छोड़ कर अपने पिता के आश्रम पर आ गयी। जहाँ उसने बालक को अपनी इच्छा के अनुसार उत्तम शिक्षा दिला कर, देवव्रत के रूप में तैयार किया और बड़े होने पर उसे राजा शान्तनु को सौंप दिया।

गंगा शान्तनु से अलग इसलिये हुई, क्योंकि वह उससे अलग नहीं होती तो उसके और सन्तानें पैदा होतीं रहतीं और वह किसी भी सन्तान को अपनी इच्छा के अनुसार योग्य नहीं बना पाती। उसने पहले की सन्तानों को भी शायद मरवाया नहीं होगा, अपितु अत्यन्त अज्ञात रूप से उन्हें ऋषियों के संरक्षण में उनके आश्रम में रखवा दिया होगा। वहीं उनकी देखरेख में पाले जा कर उन्होंने तपस्वी के रूप में जीवन व्यतीत किया होगा।

देवव्रत को शान्तनु को सौंपते हुए महाभारत में देवव्रत के द्वारा गंगा की धारा को रोकने का जिक्र है। देवव्रत ने यह कार्य दिव्यास्त्रों की सहायता से किया होगा, सामान्य बाणों के द्वारा नहीं।

(२) पाण्डवों के पिता पाण्डु

पाण्डवों के पिता पाण्डु धृतराष्ट्र के छोटे भाई तथा धृतराष्ट्र के ही समान महर्षि व्यास के नियोगज पुत्र थे। महाभारत में इनका जो जीवन -परिचय दिया गया है, उसमें कुछ बातें प्रक्षेप की गयी हैं और कुछ असली निकाली गयी हैं। जैसे कि–

जिस प्रकार धृतराष्ट्र के जन्म के लिये जब व्यास जी द्वारा नियोग किया गया तब धृतराष्ट्र की माता अम्बिका ने व्यास जी के कुरूप स्वरूप को देख कर भय के कारण आँखें बन्द कर ली थीं और इस कारण धृतराष्ट्र जन्मान्ध हुए थे, उसी प्रकार पाण्डु के जन्म के लिये भी जब व्यास जी द्वारा नियोग किया गया तो पाण्डु की माता अम्बालिका ने व्यास जी के कुरूप स्वरूप को देख कर आँखें तो बन्द नही कीं पर भय के कारण वह कान्तिहीन और पीले रंग की हो गई थी। इसी कारण पाण्डु का जन्म से ही पीला रंग था। बड़े होने पर बड़े भाई के अन्धे होने के कारण पाण्डु को राजा बनाया गया। पाण्डु ने राज्य को उत्तमता से सम्भाला, विदेशों में विजय -यात्राएँ कीं और वहाँ से ऐश्वर्य को लाकर अपने राज्य को समृद्ध किया। पर फिर अचानक वह राज्य को छोड़ कर अपनी दोनों रानियों के साथ वन में रहने लगा। वहाँ रहते हुए एक दिन उसने गलती से समागम युक्त एक मृग के जोड़े को बाण से मार डाला। तब उस मरणासन्न मृग ने उसे शाप दिया कि तू भी भविष्य में जब स्त्री समागम करेगा, तेरी मृत्यु हो जायेगी। पाण्डु तब बहुत संयत भाव से अपना जीवन बिताने लगा। पर एक दिन एकान्त में वह अपनी छोटी रानी माद्री को देख कर अपने पर संयम न रख सका और परिणामस्वरूप मृत्यु को प्राप्त हुआ।

पाण्डु के इस उपर्युक्त कथानक में तीन बातें विचारणीय हैं :—

पहली तो यह कि जिस प्रकार अपनी माता के नियोग के समय उचित अवस्था में अपने आपको न रख पाने के कारण धृतराष्ट्र में शारीरिक दोष आया, उसी प्रकार पाण्डु की माता के भी उस समय अपने आपको उचित अवस्था में न रख पाने के कारण पाण्डु में कौन -सा शारीरिक दोष आया? यदि उसके शरीर का रंग केवल पीला था और कोई बीमारी नहीं थी, तो मैं समझता हूँ कि पाण्डु को अपनी माता की गलती की कोई सजा नहीं मिली, क्योंकि उसमें कोई शारीरिक दोष नहीं था। पर दोष होना चाहिये क्योंकि यदि दोष नहीं था तो तीसरे नियोग की व्यवस्था क्यों कराई गयी?

दूसरी बात यह है कि पाण्डु के अचानक राज्य छोड़ कर वन में जाने का कोई कारण नहीं बताया गया है। पाण्डु ने राज्य उस अवस्था में छोड़ा, जब उसका बड़ा भाई अन्धा होने के कारण राज्य करने के अयोग्य था। क्योंकि यदि वह योग्य होता तो पहले ही उसे राजा बना दिया जाता,पाण्डु के राजा बनने की नौबत ही न आती। इससे स्पष्ट होता है कि कोई बड़ा कारण ही था, जिसके कारण पाण्डु को राज्य छोड़ना पड़ा।

तीसरी बात यह है कि पाण्डु के जीवन में वरदान और अभिशाप पर आधारित कहानी जोड़ दी गई है। वरदान और अभिशाप के सिद्धान्त की अमान्यता भीष्म पितामह के जन्म की विवेचना में विवेचित कर दी गई है। अतः यह कहानी सर्वथा अमान्य है। इस कहानी को पाण्डु के जीवन में स्थापित करने के लिये ही प्रक्षेपकार ने पाण्डु की शारीरिक अयोग्यता और वनवास के कारण के कथन सम्बन्धी वर्णन को निकाल दिया है। पाण्डु के जीवन की युक्तियुक्त व्याख्या इस प्रकार होनी चाहिये-

पाण्डु शब्द का अर्थ केवल पीला रंग ही नहीं है,पाण्डु पीलिया की बीमारी को भी कहते हैं; पीलिया में भी शरीर का रंग पीला हो जाता है, अतः पाण्डु राजा केवल शरीर से ही पीले रंग का नहीं था, बल्कि माता के दोष के कारण वह जन्म से ही भयंकर रूप से पीलियाग्रस्त भी था। बीमारी के कारण उसके लिये शारीरिक श्रम और स्त्री समागम बिल्कुल वर्जित था,पर एक तो भीष्म की गलती से उसके दो विवाह कर दिये गये। भीष्म पितामह की गलती इसलिये क्योंकि सबसे बड़े वही थे और पाण्डु आदि के विवाह उन्होंने करवाये थे। वे स्वयं पहले देख चुके थे कि दो रानियों के कारण ही स्वस्थ होते हुए भी विचित्रवीर्य

बीमार हो कर अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए थे। फिर, उन्होंने बीमार पाण्डु की दो शादियाँ क्यों करायीं? दूसरे, पाण्डु ने भी राज्य सम्भालते ही जवानी के जोश में विजय -यात्राएँ कीं, अर्थात् खूब शारीरिक श्रम किया। इस प्रकार राजसी विषय भोग और विजय यात्राओं के परिश्रम के कारण उसकी बीमारी बहुत अधिक बढ़ गयी, जिसके कारण विवश होकर पाण्डु को राज्य छोड़ कर वन में आराम करने और संयम से रहने के लिये जाना पड़ गया। पर वहाँ भी क्योंकि वह अपनी छोटी रानी के प्रति विशेष आसक्त था, अतः अपने संयम को न रख सका और उसका परिणाम यह हुआ कि वह गम्भीर रूप से बीमार हो गया और उस बीमारी ने ही उसके प्राणों का अन्त कर दिया।

(३) धृतराष्ट्र के विवाह और संतानें

महाभारत में लिखित और प्रचलित कहानी के अनुसार धृतराष्ट्र का एक ही विवाह गान्धारी से हुआ था और गांधारी से ही उसके निन्यानवें पुत्र और एक कन्या थी। इसके साथ ही एक वैश्य जातीय सेविका से भी उसके युयुत्सु नाम का पुत्र और था। अब प्रश्न यह है कि क्या एक ही स्त्री सौ संतानें उत्पन्न कर सकती है? यदि यह माना जाये कि गान्धारी ने २० वर्ष की आयु से बच्चों को जन्म देना प्रारम्भ किया और दो बच्चों में कम से कम एक वर्ष का भी अन्तर माना जाये तो भी सौ बच्चों के जन्म लेने में सौ वर्ष लगते हैं और गान्धारी ने आखिरी बच्चे को १२० वर्षकी आयु में अर्थात् अत्यधिक वृद्धावस्था में जन्म दिया। पर उस अवस्था तक कोई भी स्त्री जन्म देने योग्य नहीं रहती। महाभारत की कहानी से भी यह प्रमाणित नहीं होता कि गान्धारी बहुत लम्बे समय तक संतान उत्पत्ति करती रही थी। वहाँ कहानी में तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि सभी बच्चे थोड़े समय के अन्तराल में ही जन्म ले चुके थे। इस पहेली को सुलझाने के लिये महाभारत में एक बड़ी ही असंभव और अप्राकृतिक कहानी प्रक्षेप की हुई है। वह यह है कि जब गान्धारी ने यह सुना कि कुन्ती ने युधिष्ठिर को जन्म दे दिया तब उसे बड़ा दुःख हुआ कि मेरी संतान अब बाद में जन्म लेने के कारण राजा न बन सकेगी। इसी दुःख के कारण उसे गर्भपात हो गया। गर्भपात में उसके पेट से मांस का एक पिण्ड निकला। तभी व्यास जी वहाँ आ गये। व्यास जी ने गान्धारी को सौ पुत्र होने का वरदान दे रखा था। अपने वरदान को सत्य करने के लिये उन्होंने उस मांस पिण्ड के सौ टुकड़े किये और उन टुकड़ों को अलग अलग घी से भरे मटकों में रखवा दिया। उन्हीं मटकों में वे टुकड़े गर्भ के रूप में बढ़ते रहे, और कालान्तर में उन्हीं से सौ संतानों ने जन्म लिया।

धृतराष्ट्र के बच्चों के जन्म की यह कहानी प्रथम तो वरदान और अभिशाप के मिथ्या सिद्धान्त पर आधारित है, दूसरे प्राकृतिक नियम के सर्वथा विरुद्ध है। संसार में आज तक कहीं भी किसी मानव शिशु ने इस विधि से जन्म नहीं लिया कि पहले वह माता के पेट से समय से काफी पहले बाहर आये और फिर घी के घड़े में रखा जा कर अपने पूर्ण जन्म को प्राप्त हो। आज के वैज्ञानिक भी यदि चाहें तो इस प्रक्रिया पर अनुसंधान करके देख लें, उन्हें असफलता ही हाथ लगेगी। वास्तव में वरदान और अभिशाप की महत्ता और व्यास जी की अलौकिक शक्ति की स्थापना करने के लिये ही यहाँ महाभारत की कहानी में बड़ा भारी उलट फेर किया गया है।

इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि धृतराष्ट्र के एक नहीं बल्कि अनेक रानियाँ थीं। जैसे कि-

१-विद्या समाप्ति पर जब राजकुमार अपने शस्त्रास्त्र कौशल का प्रदर्शन करने वाले थे, तब-

स्त्रियश्च राज्ञः सर्वास्ताः, सप्रेष्याः सपरिच्छदाः। हर्षादारुरुहुर्मंचान्,.......... आदि १३३/१५

अर्थात् राजा धृतराष्ट्र की सारी स्त्रियाँ अपनी सेविकाओं और सामग्री के साथ हर्षपूर्वक मंचों पर चढ़ गयीं। यहाँ स्पष्ट रूप से धृतराष्ट्र की कई रानियों का जिकर है।

२-सभा पर्व के अध्याय ५४ के प्रथम श्लोक में धृतराष्ट्र दुर्योधन को समझाते हुए कहते हैं कि-

त्वम वै ज्येष्ठो ज्यैष्ठिनेयः, पुत्र मा पाण्डवान् द्विषः। सभा० ५४/१

अर्थात् हे दुर्योधन तुम मेरी सबसे बड़ी रानी के सबसे बड़े बेटे हो। तुम पाण्डवों से द्वेष मत करो। यहाँ सबसे बड़ी रानी शब्द यह सूचित कर रहा है कि धृतराष्ट्र के अनेक रानियाँ थीं।

३- संजय धृतराष्ट्र को युद्ध का वर्णन करता हुआ कहता है कि-

दृष्ट्वा कर्णम् तु पुत्रास्ते, भीमसेन पराजितम्। नामृष्यन्त महेष्वासाः, सोदर्याः पंच भारत।। द्रोण १३५/२९

अर्थात् हे भरत नन्दन! कर्ण को भीमसेन से पराजित हुआ देख कर आपके पाँच महाधनुर्धर पुत्र जो परस्पर सगे भाई थे, सह न सके। यहाँ धृतराष्ट्र के पाँच पुत्रों के लिये परस्पर सगे भाई यह विशेषण सूचित कर रहा है कि वे पाँचों धृतराष्ट्र की एक ही रानी के पुत्र थे। यदि धृतराष्ट्र की एक ही रानी होती तो पाँच विशेष पुत्रों के लिये परस्पर सगे भाई का प्रयोग नहीं होता क्योंकि सगे भाई तो वे सारे ही होते, पर ऐसा नहीं था।

४- द्रोणाचार्य के वध का समाचार सुन कर जब धृतराष्ट्र शोक से मूर्च्छित हो कर गिर पड़े। तब--

पतितं चैनमालोक्य, समन्तात् भरतस्त्रियः। परिवव्रुर्महाराजम्, अस्पृशंश्चैव पाणिभिः ।। द्रोण.१०/३

अर्थात् उन्हें गिरा हुआ देख कर, उन भरतवंशी की स्त्रियों ने महाराज को चारों तरफ से घेर लिया और हाथों से उन्हें सहलाने लगीं। यहाँ स्पष्ट रूप से बताया जा रहा है कि धृतराष्ट्र की अनेक पत्नियाँ थीं।

५- दुर्योधन आदि सारे कौरव भाइयों के मारे जाने पर जब युद्ध समाप्त हो गया और धृतराष्ट्र के पुत्रों की रानियाँ कुरुक्षेत्र में जाने के लिये राजमहल के आँगनमें एकत्र होने लगीं, तब वहाँ कहा गया है कि--

ता एकवस्त्राः निर्लज्जाः, श्वश्रूणां पुरतोभवन्।।

अर्थात् वे रानियाँ तब लज्जा को छोड़ कर एक वस्त्र में ही अपनी सासों के सामने आ गयीं। यहाँ सासों शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि धृतराष्ट्र की अनेक रानियाँ थीं।

६- महाभारत के पूना संस्करण में आदि पर्व में क्षेपक के रूप में निम्नलिखित चार श्लोक दिये हुए हैं, जो धृतराष्ट्र के अनेक विवाहों को सूचित करते हैं—

तस्याः सहोदराः कन्याः, पुनरेव ददौ दश। गान्धारराजः सुबलो, भीष्मेण वरितस्तदा।। १।।
सत्यश्रवां सत्यसेनां, सुदेष्णां च सुसंहिताम्। तेजःश्रवासुश्रवां च, तथैव निकृतिं शुभाम्।। २।।
शंभुवां च दशार्णां च, गान्धारीर्दश विश्रुताः। एकान्हा प्रतिजग्राह, धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।। ३।।
ततः शान्तनवो भीष्मो, धनुष्क्रीताः ततस्ततः। अददात् धृतराष्ट्रस्य, राजपुत्रीः परःशतम्।। ४।।

अर्थात् गान्धारराज सुबल ने भीष्म जी द्वारा वरण करने पर गान्धारी की दस सहोदरा बहनें भी धृतराष्ट्र को विवाह दीं। उनके नाम इस प्रकार हैं। १-सत्यश्रवा, २-सत्यसेना, ३- सुदेष्णा, ४-सुसंहिता, ५-तेजःश्रवा, ६-सुश्रवा, ७-निकृति, ८-शुभा, ९-शंभुवा और १०-दशार्णा। ये सभी गान्धार देश की राजकुमारियाँ विश्व प्रसिद्ध थीं। महाराज धृतराष्ट्र ने इन सबके साथ एक ही दिन विवाह किया। इसके पश्चात् शान्तनु के पुत्र भीष्म ने धनुष की शक्ति से और दूसरे स्थानों से भी सौ से अधिक अर्थात् बहुत सारी राजकुमारियाँ लाकर धृतराष्ट्र को दीं।

इन श्लोकों से साफ पता लग रहा है कि धृतराष्ट्र के बहुत सारे विवाह हुए थे, एक नहीं। जब बहुत सारे विवाह हुए तो सौ पुत्रों की समस्या भी हल हो गयी। वास्तव में उपर्युक्त ये चार श्लोक असली ही होंगे। व्यास जी की महत्ता को बताने के लिये मांस पिण्ड से सौ पुत्रों के जन्म की कहानी बनायी गयी और इन श्लोकों को पहले क्षेपक में डाला गया, फिर लुप्त कर दिया गया। संयोगवश पूना संस्करण में ये लुप्त होने से रह गये।

७-जैन शत्रुञ्जय माहात्म्य के १०/६४१-४३ अनुसार भी गान्धारी सहित आठ बहनों का विवाह धृतराष्ट्र से हुआ था।

८-महाभारत में लिखा हुआ है कि जब पाण्डव वारणावत नगर को जाने लगे तब परिवार से अलग होते हुए उन्होंने अपनी माताओं की परिक्रमा करके उनसे आज्ञा ली। जैसे देखिये–

सर्वा मातॄस्तथाऽऽपृच्छ्य, कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्।

यहाँ सारी माताओं वाला शब्द धृतराष्ट्र की अनेक रानियों के होने का प्रमाण है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धृतराष्ट्र की केवल गान्धारी ही एक रानी नहीं थी, उसकी और भी बहुत सी रानियाँ थीं। उसकी एक सौ एक संतानें उन सभी रानियों की सम्मिलित संतानें थीं।

(४) पाण्डवों के जन्म

पाण्डवों के जन्म के विषय में महाभारत में यह लिखा हुआ है कि पाण्डु मृग के शाप के कारण संतान उत्पन्न करने में अक्षम थे। अतः उन्होंने अपनी बड़ी रानी कुन्ती को नियोग से संतान उत्पन्न करने के लिये राजी किया। कुन्ती एक विशेष मन्त्र को जानती थी, जिसकी सहायता से वह किसी भी देवता को नियोग के लिये बुला सकती थी। तत्पश्चात् पाण्डु की आज्ञा से उसने क्रमशः धर्मराज, वायु देवता और इन्द्र देवताओं को बुलाया और उनसे नियोग के द्वारा युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को जन्म दिया। फिर उसने अपनी छोटी सौत माद्री के लिये भी अश्विनी कुमार नाम के देवता को बुलाया। माद्री ने उसके नियोग से नकुल और सहदेव नाम के दो जुड़वाँ पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार पाँचों पाण्डवों का जन्म हुआ। इस कहानी में निम्नलिखित बातों को स्वीकार किया गया है –

१- पाण्डु शाप के कारण संतान उत्पन्न करने में असमर्थ थे।

२- इस पृथ्वी लोक से बाहर किसी स्वर्ग नाम की जगह में जहाँ जीवात्मा मृत्यु के बाद पहुँचती है, अलौकिक शक्तियों से युक्त देवता नाम के इन्द्र, वायु और धर्मराज नाम के प्राणी रहते हैं।

३- उन देवताओं को मन्त्र शक्ति से बुलाया जा सकता है।

४- वह मन्त्र कुन्ती के पास था और किसी के नहीं।

ये सारी बातें प्राकृतिक नियम के विरुद्ध होने के कारण अमान्य हैं। पाण्डु को शाप नहीं मिला हुआ था। वरदान और अभिशाप के सिद्धान्त की अमान्यता भीष्म के जन्म के विषय में विवेचना करते हुए विवेचित कर दी गयी है। पृथ्वी लोक से बाहर स्वर्ग नाम की कोई जगह नहीं है। स्वर्ग और नरक इसी संसार में सुखी अवस्था और दुखी अवस्था के नाम हैं। इसके अतिरिक्त स्वर्ग पहले तिब्बत प्रदेश को भी कहते थे और वहाँ के निवासियों को देव कहते थे। यह बात देवता शब्द की व्याख्या में अलग से समझा दी गई है। धर्मराज, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमार, इन देवताओं का वास्तविक अभिप्राय भी अलग-अलग इन्हीं शीर्षकों के अन्तर्गत समझा दिया गया है। यह बिल्कुल गलत है कि किसी मन्त्र विशेष के द्वारा किसी को बुलाया जा सकता हो और यह भी कि वह मन्त्र केवल कुन्ती के ही पास था। पाण्डवों की कहानी का वास्तविक रूप इस प्रकार होगा –

पाण्डु अपनी जन्मजात पीलिया की बीमारी के कारण संतानोत्पत्ति करने में अक्षम थे, यह पाण्डु के विषय में समझाते हुए पहले ही बता दिया गया है। अपनी अक्षमता के कारण उन्होंने पहले रानियों को नियोग के द्वारा संतानोत्पत्ति के लिये तैयार किया, फिर उन्होंने उस समय के तिब्बत प्रदेश में रहने वाले इन्द्र, वायु, धर्मराज आदि विशेष उपाधिधारी व्यक्तियों को नियोग के लिये बुलवाया और उनसे संतानोत्पत्ति करवायी। पाण्डु राजा थे। उनके तिब्बत के राजा से मित्रता के सम्बन्ध थे। वैसे भी वे उस समय हिमालय के जंगलों में रहते थे। वहाँ से तिब्बत का प्रदेश समीप ही होगा।

(५) क्या गान्धारी ने अपनी आँखों पर पट्टी बाँधी थी?

महाभारत के सारे पाठक यह मानते हैं और महाभारत में भी ऐसा ही लिखा हुआ है कि गान्धारी जब विवाह के पश्चात् अपनी ससुराल आयी तो अपने पति धृतराष्ट्र के अन्धे होने के कारण उसने भी अपनी आँखों पर पट्टी इसलिये बाँध ली कि

मैं अपने पति के दोष को न देख सकूँ। उसने सारी आयु ऐसे ही अन्धेपन में गुजारी और इस प्रकार पातिव्रत धर्म का पालन किया। गान्धारी की इस कहानी में दो बातें बुद्धि से विचारणीय हैं—

१- पहली तो यह कि जिसका पति अन्धा हो, उसका स्वयं भी अन्धे बन जाना क्या उसका पातिव्रत धर्म माना जायेगा? पातिव्रत धर्म पति से प्रेम और उसकी सेवा करने को कहते हैं। गान्धारी ने अपनी आँखों पर पट्टी बाँध कर अपने पति की सेवा की या अपने आपको पति की सेवा से बचाया? बिना आँखों पर पट्टी बाँधे क्या वह अपने पति की सेवा ज्यादा नहीं कर सकती थी? अपनी आँखों पर पट्टी बाँध कर कौन किसी दूसरे की सेवा कर सकता है? इसलिये यदि गान्धारी ने अपनी आँखों पर पट्टी बाँधी तो किसी पातिव्रत धर्म का पालन नहीं किया। पातिव्रत धर्म यह कहता है कि यदि पति अन्धा है तो तुम अपनी आँखों को ज्यादा खुली रख कर पति की सेवा करो, यह नहीं कि तुम भी अपनी आँखें बन्द कर अपाहिज बन जाओ। पति या पत्नी में से यदि किसी में कोई कमी है तो बुद्धिमत्ता इसमें है कि दूसरा व्यक्ति स्वयं उस कमी से दूर रहते हुए अपने आपको अपने साथी की सेवा के लिये मजबूत बनाये रखे। अपने आप भी स्वयं उस कमी को धारण कर अपाहिज बन जाना मूर्खता है।

२- दूसरी बात यह है कि आँखों पर पट्टी इसलिये बाँधी कि मैं पति के अन्धेपन को न देख सकूँ, पर सोचने की बात यह है कि क्या आँखें बन्द कर लेने पर भी मन से वह पति के अन्धेपन को भुला पायी होगी? जब आँखें बन्द कर लेने पर भी कोई अपने साथी के अन्धेपन को नहीं भूल सकता तो आँखों को बन्द करने से क्या लाभ? बल्कि आँखों को बन्द करने से अपने पति का अन्धापन उसके ध्यान में ज्यादा गहराई से आता होगा कि मैंने इसी के कारण अपने आपको अन्धा बनाया हुआ है।

इसके अतिरिक्त महाभारत में ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे यह पता लगता है कि गान्धारी ने अपनी आँखों पर पट्टी नहीं बाँधी। जैसे –

१- जब श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बन कर कौरवों के पास गये तब धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को समझाने के लिये गान्धारी को बुलवाया। गान्धारी के बुलवाने पर जब दुर्योधन सभा भवन में आया तब गान्धारी के विषय में कहा गया है कि-

तं प्रविष्टमभिप्रेक्ष्य, पुत्रमुत्पथमाश्रितम्। विगर्हमाणा गान्धारी, शमार्थं वाक्यमब्रवीत्।।उद्योग पर्व १२९।२४

अर्थात् अपने उस कुमार्गगामी पुत्र को प्रवेश किये हुए अपने सामने देख कर गान्धारी उसकी निन्दा करती हुई शान्ति स्थापना के लिये इस प्रकार बोली। यहाँ अभिप्रेक्ष्य शब्द का अर्थ है अपने सामने देख कर। यह शब्द गान्धारी के लिये आया है और यह प्रकट कर रहा है कि गान्धारी ने अपनी आँखों पर पट्टी नहीं बाँधी थी, अन्यथा अभिप्रेक्ष्य शब्द का प्रयोग उसके लिये क्यों होता?

२- संपूर्ण स्त्री विलाप सर्ग यह प्रकट कर रहा है कि गान्धारी ने अपनी आँखों पर पट्टी नहीं बाँधी थी। इस पर्व में गान्धारी श्रीकृष्ण जी के साथ युद्ध के मैदान में घूम -घूम कर, विलाप करती हुई और बुरी अवस्था में विद्यमान, परिवार की स्त्रियों को अपने पतियों की लाशों को ढूँढ़ते हुए और उन्हें प्राप्त कर उनके प्रति अपने शोकोद्गार प्रकट करते हुए दिखाती है। गान्धारी उस समय अपने पतियों की लाशों को गोद में लिये रोती हुई स्त्रियों की विभिन्न चेष्टाओं के प्रति श्रीकृष्ण का ध्यान आकर्षित करती है। यदि यह कहा जाये कि उस समय थोड़ी देर के लिये पट्टी उतार दी गयी होगी, तो प्रश्न यह होता है कि पट्टी उतारने पर भी गांधारी ने अपने बच्चों की पहचान कैसे की? क्योंकि उसने तो पट्टी विवाह होते ही बाँध ली थी। उसके सारे बच्चे पट्टी बाँधे ही पैदा हुए और मरे होंगे। इसलिये यह स्पष्ट है कि गांधारी ने पट्टी नहीं बाँधी थी।

३- अपने अंतिम समय में धृतराष्ट्र और गान्धारी ने राजमहलों को छोड़ कर वन में जा कर तपस्या करने का निश्चय किया। यह निश्चय उन्होंने किस के बल बूते पर किया? क्योंकि स्वयं की तो उन दोनों की आँखें बन्द थीं। क्या सेवकों की सेवा के सहारे पर किया? सेवक दो अन्धे स्वामियों का उनके अन्त समय तक ईमानदारी से साथ निभाते रहेंगे, इसका क्या भरोसा? फिर, महाभारत की कहानी से भी ऐसा नहीं लगता कि नौकर -चाकर धृतराष्ट्र और गान्धारी के साथ वन में गये थे। कहा जा

सकता है कि विदुर, संजय और कुन्ती उनके साथ थे। पर उनमें विदुर अपनी तपस्या करने के लिये वन में गये थे। इसीलिये वन में जाकर वे जल्दी ही उनसे अलग होकर कठोर तपस्या में लग गये और उनसे पहले परम गति को प्राप्त हुए। कुन्ती का वन में जाने का पहले कोई प्रोग्राम नहीं था। उसने अचानक ही रास्ते में अपना वन में जाने का निश्चय कर लिया। संजय के विषय में सोचा जा सकता है कि शायद उसे धृतराष्ट्र ने अपनी सेवा के लिये साथ चलने के लिये कह दिया हो, पर अकेला संजय भी दो अन्धे अपाहिज राजा और रानी की सेवा कैसे कर सकता था? विशेष कर गान्धारी की सेवा के लिये तो स्त्री सेविका नितान्त आवश्यक थी। राजमहल में तो बैठे -बैठे सारे कार्य हो जाते थे, पर वन में उनकी कुटिया बनाना, उनके लिये खाना तैयार करना, खाने की कच्ची सामग्री जुटाना, अन्धे राजा रानी को नहलाना -धुलाना, शौच आदि कराना, उन्हें खाना खिलाना आदि इतने सारे कार्य क्या केवल सेवकों के सहारे हो सकते हैं? इसलिये यह मानना चाहिये कि गान्धारी ने अपनी आँखों पर पट्टी नहीं बाँधी हुई थी। संजय और गान्धारी, दो देखने वालों के सहारे ही धृतराष्ट्र ने वन में जाने की योजना बनायी। विदुर और कुन्ती बाद में उनके साथ हो लिये। यदि गान्धारी भी न देखने वाली होती तो धृतराष्ट्र कभी भी वन में रहने का विचार न करता।

४-स्त्री विलाप सर्ग में भी गांधारी श्रीकृष्ण जी से कहती है कि--

अपश्यं कृष्ण पृथिवीं धार्तराष्ट्रानुशासिताम्।।

अर्थात् हे कृष्ण मैंने दुर्योधन के द्वारा शासन किये गये राज्य को देखा है। यहाँ मैने देखा है से स्पष्ट है कि गांधारी की आँखें खुली हुई थीं, बन्द नहीं थीं।

पर ऐसा प्रतीत होता है कि गान्धारी ने बेशक अपने चर्म चक्षुओं को पट्टी से आवृत्त नहीं किया हुआ था, पर ज्ञान की आँखों पर अवश्य पट्टी बाँधी हुई थी। हम देखते हैं कि दुर्योधन ने पाण्डवों के विरुद्ध जो जो षड्यन्त्र रचे उनमें उसने धृतराष्ट्र की मौन स्वीकृति ले ली थी क्योंकि धृतराष्ट्र स्वयं अन्दर से पाण्डवों का विद्वेषी था। पर गान्धारी ने एक समझदार पत्नी और माता के नाते कभी अपने पति और पुत्र को सन्मार्ग के लिये नहीं समझाया। वह भीम को विष देने और लाक्षागृह के षड्यन्त्र के विरुद्ध अपने पति और पुत्र के समक्ष आवाज उठा सकती थी। यदि यह कहा जाये कि इन दोनों षड्यन्त्रों की उसे जानकारी नहीं हो पायी थी, तो जूआ खेलने और भरी सभा में द्रौपदी का अपमान करने की घटनाएं तो चुपचाप नहीं हुईं थीं। तब गान्धारी क्यों चुप रही? जूए में जब युधिष्ठिर एक -एक करके अपना सर्वस्व हारने लगा, तभी गान्धारी को एकदम बीच में कूद कर जूआ बन्द कराना चाहिये था और जब द्रौपदी को सभा में लाने का आदेश दिया गया तब तो उसे परिवार के भावी विनाश का अन्दाजा लगा कर अपनी जान पर खेल कर उस घिनौने कृत्य को रुकवाना चाहिये था। पर हम देखते हैं कि गान्धारी इतने बड़े काण्ड पर एक शब्द नहीं बोलती। वह केवल दूसरी बार जूआ खेले जाने का धृतराष्ट्र से विरोध करती है। वह दुर्योधन को सिर्फ एक बार ही उद्योग पर्व में समझाती है, किन्तु जब विनाश हो जाता है, तब वह स्त्री विलाप पर्व में श्रीकृष्ण के सामने फूट -फूट कर रोती है। ***यदि वह पहले ही अपनी ज्ञान की आँखों को खोल कर रखती और परिवार को विनाश से बचाने का प्राण -प्रण से प्रयत्न करती तो उसे शायद बाद में रोना न पड़ता।***

(६) माद्री का सती होना

जब महाराज पाण्डु का देहावसान हो गया तब महाभारत में लिखे वर्तमान वर्णन के अनुसार पहले उनकी दोनों रानियों कुन्ती और माद्री में विवाद होने लगा कि मैं अपने पति के साथ सती होऊँगी और तू पीछे रह कर बच्चों को पाल। अन्त में माद्री ने अपने पक्ष में यह तर्क दिया कि मैं पीछे बच्चों के साथ न्याय नहीं कर पाऊँगी आप मुझसे इस विषय में अधिक दक्ष हैं और विशाल हृदया हैं। दूसरे, पाण्डु क्योंकि मेरे ही कारण मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, इसलिये मुझे ही उनके साथ परलोक जाना चाहिये। यह कह कर उसने बच्चों के हाथ कुन्ती के हाथ में देकर उन्हें उचित शिक्षा दी और कुन्ती से स्वीकृति लेकर पाण्डु के साथ चिता पर जा बैठी। तत्पश्चात् वनवासी पुरोहित ने उनका दाह संस्कार कर दिया। इस वर्णन से दो बातें प्रकट होतीं हैं। जैसे-

१- उस समय भारत में सती -प्रथा का प्रचलन था। इसीलिये दोनों रानियों ने सती होने के लिये आग्रह किया।

२- माद्री का देहान्त सती धर्म का पालन करते हुए हुआ था।

पर यदि युक्तियुक्त विवेचना की जाये तो कि उपर्युक्त दोनों ही बातें मिथ्या हैं। सबसे पहले सती -प्रथा के विषय में देखिये। उस समय सती -प्रथा बिल्कुल भी नहीं थी। क्योंकि यदि सती -प्रथा होती तो पाण्डु के देहावसान से पूर्व राजा शान्तनु का और उनके पुत्र विचित्रवीर्य का भी पत्नियों से पूर्व देहान्त हुआ था। तब उनके साथ उनकी पत्नियाँ सती क्यों नहीं हुईं? पाण्डु के पश्चात् तो महाभारत के युद्ध में लाखों स्त्रियाँ विधवा हुई हैं, पर युद्ध के पश्चात् कोई भी अपने पति के साथ सती नहीं हुई। यदि सती -प्रथा प्रचलित होती तो उनमें से कम से कम दो-चार को तो सती होना चाहिये था। पर सारी महाभारत में सिवाय माद्री के किसी के भी सती होने का वर्णन नहीं है। इससे यह पता लगता है कि उस समय सती -प्रथा नहीं थी और माद्री की कहानी सती -प्रथा का मंडन करने के लिये बाद में मिलायी गयी है।

अब दूसरी बात को लेते हैं, माद्री का देहान्त सती -धर्म का पालन करते हुए हुआ था। इसमें इतना तो सत्य है कि माद्री ने आत्महत्या पाण्डु की मृत्यु से कुछ देर पश्चात् ही कर ली थी। कारण, उसे अपने प्रति यह ग्लानि थी कि मैं अपने पति की ठीक सुरक्षा नहीं कर सकी। बल्कि उनकी सुरक्षा की जगह मैंने ही अपने आकर्षण से उन्हें मोहित करके उनको मृत्यु के मुख में ढकेला। इसलिये अपने पति की मृत्यु की मैं ही उत्तरदायी हूँ। साथ ही यदि मैं जीवित रही तो आत्मग्लानि के अतिरिक्त परिवार और समाज में सारा जीवन लज्जित होते रहना पड़ेगा। इसलिये उसने अपने जीवन को समाप्त कर दिया। पर उसने चिता पर पाण्डु के साथ जल कर नहीं बल्कि किसी और तरीके से यह कार्य किया, जिसका वर्णन सती -प्रथा के प्रचारक प्रक्षेपकार ने महाभारत में से निकाल दिया है।

माद्री ने सती धर्म का पालन नहीं किया, इसके प्रमाण देखिये–

१- माद्री ने आत्महत्या करने से पहले कुन्ती से अपनी अन्तिम इच्छा बताते हुए कहा कि–

राज्ञः शरीरेण सह, ममापीदं कलेवरम्। दग्धव्यं सुप्रतिच्छन्नम्, एतदर्थे प्रियं कुरु।। आदि० १२४/२९

अर्थात् हे आर्ये! मेरा यह प्रिय कार्य कर देना कि राजा के शरीर के साथ मेरे भी इस शरीर को अच्छी तरह से ढक कर जला देना। यहाँ शरीर से अभिप्राय मृत शरीर से है, जीवित शरीर से नहीं। क्योंकि यदि जीवित शरीर यह अर्थ होता तो शरीर को, ढक कर, जला देना, इन तीनों शब्दों का वह प्रयोग नहीं करती, अपितु वह कहती कि मैं राजा के साथ चिता पर बैठ कर जल जाऊँगी। स्वयँ अपनी इच्छा से जलने वाले के शरीर को ढक कर नहीं जलाया जाता।

२– महाभारत में पाण्डु की कहानी यह प्रकट करती है कि पाण्डु का दाह -संस्कार वन में हुआ ही नहीं। पाण्डु और माद्री दोनों के दाह -संस्कार हस्तिनापुर में उनके परिवार वालों के द्वारा किये गये। दाह -संस्कार केवल एक बार ही होता है, दो बार नहीं। अतः वन में पाण्डु के दाह संस्कार का वर्णन प्रक्षेप किया हुआ है।

३– महाभारत में लिखा हुआ है कि पाण्डु और माद्री की मृत्यु के पश्चात् वनवासी ऋषि मुनि लोग उनके अवशेषों और कुन्ती सहित बच्चों को साथ ले कर हस्तिनापुर आये और वहाँ भीष्म, धृतराष्ट्र आदि परिवार के लोगों को उन्हें सौंपा। उसके पश्चात् परिवार वालों ने राजसी धूमधाम से उन दोनों की अन्त्येष्टि की। इस सारे वर्णन में महाभारत में पाण्डु और माद्री के अवशेषों के लिये शरीर शब्द का बार -बार प्रयोग हुआ है। अस्थि शब्द का तो एक बार भी प्रयोग नहीं है। जब दोनों का दाह संस्कार वन में ही हो चुका था तो उनके अवशेष तो अस्थि के रूप में ही बचे, उनके शरीर कहाँ से आ गये? शरीर शब्द का अस्थि अर्थ किसी भी शब्द-कोश में नहीं है। पर गीता प्रैस की महाभारत में हिन्दी अनुवादक ने संस्कृत के शरीर शब्द का गलत अस्थि अर्थ सती प्रथा के समर्थन के लिये अवश्य किया है।

४-पाण्डु और माद्री के शरीरों को श्मशान भूमि में ले जाने का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

नृसिंहं नरयुक्तेन, परमालंकृतेन तम्। अवहन् यानमुख्येन, सह माद्र्या सुसंयतम्।।

अर्थात् माद्री के साथ पाण्डु को भली -भाँति बाँध कर मनुष्यों द्वारा ढोई जाने वाली और अच्छी तरह से सजायी हुई उस शिविका के द्वारा वे सभी बन्धु -बाँधव माद्री सहित नर श्रेष्ठ पाण्डु को ढोने लगे। यहाँ माद्री सहित पाण्डु को तथा भली -भाँति बाँध कर ये शब्द मृत शरीर के साथ ही घटित हो सकते हैं। भस्मावशेष मुट्ठी भर हड्डियों के साथ नहीं।

५- श्मशान भूमि पर पहुँच कर क्या किया गया? देखिये—

चन्दनेन च शुक्लेन, सर्वतः समलेपयन्। अथैनं देशजैः शुक्लैः, वासोभिः समयोजयन्।।

अर्थात् उन पर सब तरफ सफेद चन्दन का लेप किया गया। उन्हें स्वदेशी कपड़े पहनाये गये। चन्दन का लेप और वस्त्र पहिराना शरीर ही पर हो सकता है।

६- आगे कहा गया है कि–

संछन्नः स तु वासोभिः, जीवन्निव नराधिपः। शुशुभे च नरव्याघ्रो, महार्हशयनोचितः।।

अर्थात् बहुमूल्य शय्या पर शयन करने योग्य नरश्रेष्ठ राजा पाण्डु वस्त्रों से आच्छादित हो कर जीवित मनुष्य की भाँति शोभा पाने लगे।

यह सारा वर्णन स्पष्ट कर रहा है कि उपर्युक्त सारे कार्य पाण्डु के मृत शरीर के साथ किये गये, क्योंकि भस्मावशेष अस्थियों के साथ ये कार्य हो ही नहीं सकते।

७- आगे भी देखिये–

घृतावसिक्तं राजानं, सह माद्र्या स्वलंकृतम्

अर्थात् माद्री सहित अलंकारयुक्त राजा का घृत से अभिषेक किया गया। गहने पहनाना और घी से स्नान कराना भी शरीरों का ही हो सकता है, अस्थियों का नहीं।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि पाण्डु का वन में दाह -संस्कार किया ही नहीं गया,वह हस्तिनापुर में ही किया गया। जब पाण्डु का वन में दाह -संस्कार नहीं किया गया तो माद्री सती कहाँ हुई? हस्तिनापुर तो उसका मृत शरीर ही ले जाया गया था। वास्तव में यह सारी उलट -पुलट सती -प्रथा के समर्थकों की करतूत है।

(७) भीम का विष पान और नाग लोक की यात्रा

महाभारत में यह घटना इस प्रकार से उल्लिखित है – दुर्योधन क्योंकि पाण्डवों और विशेषकर भीम के प्रति द्वेष से युक्त रहता था, इसलिये उसने एक दिन धोखे से भीम के भोजन में विष मिला कर उसे खिला दिया। जब भीम विष के प्रभाव से बेहोश हो गये, तब उन्हें बाँध कर चुपचाप गंगा में गिरवा दिया। गंगा में गिरने के बाद भीम बेहोशी की अवस्था में ही पानी के अन्दर ही अन्दर नागों के लोक में पहुँच गये। वहाँ नागों ने जब उन्हें काटा तब उनके विष से भीम का खाया हुआ विष शान्त हो गया और भीम को होश आ गया। होश में आकर उन्होंने नागों को मारना प्रारम्भ कर दिया। पर तभी भीम के नाना, जो कि नाग जाति के थे, वहाँ पहुँच गये। उन्होंने अपने नाती भीम को पहचान कर उनका स्वागत किया और अमृत के आठ कुण्ड उन्हें पिलाये, जिससे भीम के शरीर में अनेक हाथियों जैसी शक्ति आ गयी। भीम आठवें दिन वहाँ से अपने घर लौट आये।

यह कहानी अप्राकृतिक घटनाओं से युक्त होने के कारण मान्य नहीं है। इसमें इतनी बात सत्य माननी चाहिये कि दुर्योधन ने भीम को धोखे से विष खिला कर गंगा में गिरवा दिया। भीम तब मूर्छित अवस्था में ही डूबते उतराते गंगा के दूसरे किनारे जा लगे। वहीं किनारे पर साँपों के रहने की जगह अर्थात् बिल थे। उनमें से निकल कर जब साँपों ने भीम को काटा तब उनके विष के प्रभाव से भीम के शरीर में पहले से विद्यमान खाया हुआ विष प्रभाव हीन हो गया। पर फिर भी भीम आठ दिन तक वहीं

मूर्छित अवस्था में पड़े रहे। आठवें दिन जब उन्हें होश आया तब वे तुरन्त अपने परिवार में आकर मिल गये। अथवा यह मानना चाहिये कि गंगा के किनारे जहाँ भीम बेहोशी की अवस्था में जा लगे, वहाँ नाग जाति के लोगों की बस्ती थी। उन नाग लोगों ने भीम का उपचार किया। उनके उपचार से स्वस्थ हो कर भीम आठवें दिन परिवार में वापिस आ गये।

(८) धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के जन्म

धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के जन्म के विषय में महाभारत में यह वर्णित है कि जब द्रोणाचार्य ने अर्जुन की सहायता से द्रुपद को बन्दी बना कर और उसे जीवन -दान दे कर छोड़ दिया और साथ ही उसका आधा राज्य भी ले लिया, तब द्रुपद ने प्रतिशोध की भावना से द्रोणाचार्य को नष्ट करने वाली सन्तान की कामना से याज और उपयाज नाम के पुरोहितों से एक विशाल यज्ञ करवाया। पुरोहितों ने यज्ञ की समाप्ति के अवसर पर जब द्रोणाचार्य के अहित की कामना से आहुति दी, तब यज्ञ कुण्ड में से धृष्टद्युम्न नाम के एक राजकुमार और कृष्णा नाम की एक राजकुमारी का जन्म हुआ। उसी समय आकाश वाणी ने बताया कि यह बालक युद्ध में द्रोणाचार्य का वध करेगा और यह बालिका पुरु वंश के सर्वनाश का कारण बनेगी। इसीलिये आगे चल कर द्रौपदी के ही कारण महाभारत का युद्ध हुआ और युद्ध में धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का वध किया।

यह कहानी अप्राकृतिक घटनाओं से युक्त होने के कारण नहीं मानी जा सकती। यज्ञ कुण्ड में से कभी भी किसी प्राणी का जन्म नहीं हो सकता। वास्तव में बात यह थी कि द्रुपद और द्रोणाचार्य की कथा इस बात का ऐतिहासिक उदाहरण है कि किस प्रकार एक छोटी -सी बात बढ़ कर कितना भयानक रूप धारण कर लेती है? द्रुपद और द्रोणाचार्य, दोनों एक ही गुरु के आश्रम में रह कर शिक्षा पाते थे। द्रुपद उस समय काफी छोटे थे और द्रोणाचार्य काफी बड़े। हिसाब लगाने पर दोनों की आयु में लगभग २१ वर्ष का अन्तर बैठता है। सहपाठियों की आयु में इतना अधिक अन्तर होना पुराने जमाने में कोई अनहोनी बात नहीं थी। क्योंकि विद्या की अनेक शाखायें होती हैं। कोई विद्यार्थी पहले किन्हीं दूसरी शाखाओं का अध्ययन समाप्त करके अन्त में किसी विशेष शाखा में प्रविष्ट होता था, उसी शाखा में ऐसे विद्यार्थी भी हो सकते थे, जिन्होंने सर्वप्रथम उसी शाखा में अपना अध्ययन प्रारम्भ किया हो। ऐसी अवस्था में निश्चित ही उन विद्यार्थियों की आयु पहले वाले विद्यार्थियों से कम होगी। द्रुपद और द्रोणाचार्य ऐसे ही सहाध्यायी थे। उस अवस्था में खेल -खेल में द्रुपद ने कह दिया कि मैं जब राजा बनूँगा तब आधा राज्य तुम्हें दे दूँगा। द्रोणाचार्य ने परिपक्व आयु का होने के कारण यह बात अपने हृदय में दृढ़ कर ली, पर द्रुपद ने कच्ची उम्र का होने के कारण इस बात को कुछ समय बाद भुला दिया। बाद में जब द्रोणाचार्य अचानक उससे अपने कहे हुए के अनुसार राज्य माँगने पहुँचे,तब द्रुपद ने उसे अपना बाल -बुद्धि का प्रलाप मानते हुए उसका पालन करने से मना कर दिया। द्रोणाचार्य ने तब द्रुपद से बदला लेने का विचार बना लिया और जब कौरव पाण्डवों की शिक्षा पूरी हुई, तब गुरु -दक्षिणा के बहाने अर्जुन के द्वारा द्रुपद को पकड़ कर मँगवा लिया और उसे अपमानित करके तथा उसका आधा राज्य लेकर उसे छोड़ा।

तब द्रुपद भी द्रोणाचार्य से बदला लेने की राह ढूँढने लगे। इसके लिये उन्होंने पहला कार्य तो यह किया कि अपने पुत्र बालक धृष्टद्युम्न को द्रोणाचार्य के शत्रु के रूप में तैयार करना आरम्भ कर दिया। अर्थात् उसके मन में यह बात बिठा दी कि तुमने बड़े हो कर द्रोणाचार्य का वध कर उससे अपने पिता के अपमान का बदला लेना है। यही तुम्हारे जीवन का उद्देश्य है। इसीलिये पिता की इच्छा की पूर्ति के लिये महाभारत के युद्ध में धृष्टद्युम्न ने अवसर पाते ही द्रोणाचार्य की हत्या कर दी।

दूसरा कार्य द्रुपद ने यह किया कि अर्जुन को अपना बनाने के यत्न आरम्भ कर दिये, क्योंकि वह जानते थे कि द्रोणाचार्य वैसे ही महान् वीर हैं, फिर यदि अर्जुन भी उनके साथ हो तो कोई भी उनका मुकाबला नहीं कर पायेगा।अतः उसकी नीति यह थी कि अर्जुन को किसी तरह अपनी तरफ कर लिया जाये तो द्रोणाचार्य के विरुद्ध युद्ध में अर्जुन की सहायता ली जा सके। इसीलिये वह चाहता था कि द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ हो। पाण्डव क्योंकि उस समय लाक्षागृह की घटना के कारण अज्ञात वेश में थे, अतः अर्जुन को ढूँढने और उससे अपनी पुत्री का विवाह करने के लिये ही द्रुपद ने ऐसा मजबूत धनुष बनवाया और लक्ष्य वेध की ऐसी शर्त रखी, जिसे अर्जुन ही पूरा कर सकता था। यद्यपि द्रुपद की इस तरकीब से अर्जुन तो

प्रकट हो गया,पर द्रौपदी का विवाह अर्जुन से न हो कर युधिष्ठिर से हो गया। क्योंकि बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटा भाई कैसे विवाह कर सकता था? द्रुपद ने भी इस पर कोई आपत्ति नहीं की,क्योंकि युधिष्ठिर से द्रौपदी का विवाह होने पर भी अर्जुन तो अपना हो ही गया, द्रौपदी महारानी भी बनी।

द्रोणाचार्य और द्रुपद के आपसी बैर के कारण ही महाभारत के युद्ध में जहाँ द्रोणाचार्य ने द्रुपद की हत्या की, वहाँ धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का वध किया और अन्त में अश्वत्थामा ने सोते हुए धृष्टद्युम्न को तथा बचे हुए सारे पाँचालों को मार कर पाँचाल परिवार ही समाप्त कर दिया।

(९) द्रौपदी का पति कौन?

महाभारत के कथानक में द्रौपदी का विवाह किसके साथ हुआ था, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्न के उत्तर को ढूँढें तो सर्वप्रथम मस्तिष्क में यही आता है कि द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ ही होना चाहिये, क्योंकि अर्जुन ने ही स्वयंवर की शर्त पूरी करके द्रौपदी को जीता था। पर द्रौपदी का विवाह अर्जुन से नहीं हुआ। इसके समर्थन में निम्नलिखित कारण हैं—

१-उस समय तक युधिष्ठिर अविवाहित थे। बड़े भाई के अविवाहित रहते हुए यदि छोटा भाई विवाह कर ले तो उसे उस समय परिवेत्ता माना जाता था। परिवेत्ता को मनुस्मृति में निन्दनीय कहा गया है। जैसे कि—

परिवित्तिः,परिवेत्ता, यया च परिविद्यते। सर्वे ते नरकं यान्ति, दातृ, याजक पञ्चमाः।। मनु ३।१७२

अर्थात् क-परिवित्ति, अर्थात् अविवाहित बड़ा भाई ख-परिवेत्ता अर्थात् अविवाहित बड़े भाई के रहते अपनी शादी करने वाला, ग-विवाह की जाने वाली कन्या, घ-कन्या का पिता, ङ- विवाह संस्कार कराने वाला पुरोहित, ये पाँचों नरक में जाते हैं, अर्थात् पाप के भागी होते हैं। इसीलिये भीम ने भी हिडिम्बा के द्वारा विवाह की प्रार्थना किये जाने पर सर्वप्रथम यही कहा था कि वह परिवेत्ता नहीं बनना चाहता। वह बात अलग है कि कुन्ती और युधिष्ठिर के द्वारा बाध्य किये जाने पर भीम को हिडिम्बा से विवाह करना पड़ा। फिर, अर्जुन पहले विवाह करके स्वयं को परिवेत्ता क्यों बनवाता? जबकि पाँचों भाई एक दूसरे के हित का ध्यान रखने वाले अत्यन्त भ्रातृ -भक्त थे।

२-उस समय यह रिवाज था कि स्वयंवर को केवल अपने लिये ही नहीं अपने भाई के लिये भी जीत लिया करते थे। अर्थात् यह जरूरी नहीं था कि जिसने स्वयंवर को जीता है, वही विवाह करे। जीतने वाला अपने भाई से भी विवाह करा देता था। जैसे भीष्मपितामह स्वयं ब्रह्मचारी थे, पर अपने भाई विचित्र वीर्य के लिये स्वयंवर में से राज कन्यायें जीत कर लाये और उनसे भाई की शादी की। अतः अर्जुन के स्वयंवर को जीतने पर भी यह आवश्यक नहीं था कि अर्जुन ही द्रौपदी से विवाह करे, कोई और भाई भी उससे विवाह कर सकता था।

३-सारी महाभारत में कहीं भी यह नहीं लिखा कि द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ हुआ।

४-यदि अर्जुन का विवाह द्रौपदी के साथ हुआ होता तो युधिष्ठिर वन में तथा अज्ञातवास में अपनी पत्नी को न ले जाकर भाई की पत्नी को क्यों ले गये?

५-यदि द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ हुआ होता तो युधिष्ठिर को क्या अधिकार था कि वह जूए में पहले अपनी पत्नी को दाँव पर लगाये बिना भाई की पत्नी को दाँव पर लगा दे।

६-अर्जुन से विवाह के पश्चात् जब सुभद्रा हस्तिनापुर आती है और द्रौपदी से पहली बार मिलती है, तब द्रौपदी उसे आशीर्वाद देती है कि तुम्हारे पति शत्रु रहित हों। यदि द्रौपदी भी अर्जुन की पत्नी होती तो वह अपनी सौत से तुम्हारे पति ऐसा न कह कर हमारे पति ऐसा कहती।

इन बातों से यह सिद्ध है कि द्रौपदी अर्जुन की पत्नी नहीं थी। अब प्रश्न का दूसरा उत्तर सामने आता है कि द्रौपदी का विवाह पाँचों पाण्डवों से हुआ था। पर क्या वास्तव में द्रौपदी किसी एक पाण्डव की न हो कर पाँचों पाण्डवों की पत्नी थी? इस बात की विवेचना निम्नलिखित तीन आधारों पर की जा सकती है। जैसे—

१-परम्परा के आधार पर, २-युक्तियों के आधार पर, ३- प्रमाणों के आधार पर।

१-परम्परा के आधार पर

यदि परम्परा के आधार पर देखें तो भारतीय इतिहास में सिवाय उन दो उदाहरणों के जिनका युधिष्ठिर ने पुराणों का हवाला देकर व्यास जी के सामने जिक्र किया है, कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जहाँ एक पत्नी के साथ एक ही समय में कई पति हों। महाभारत में अनेक बार कहा गया है कि पाण्डव वेदों के ज्ञाता और अनुयायी थे। वैदिक शिक्षाओं में स्त्री और पुरुष, दोनों के लिये एक समय में एक ही पति और पत्नी का विधान है। वह बात अलग है कि पुरुषों ने इस वैदिक शिक्षा के विपरीत आचरण करके अनेक स्त्रियों से विवाह किये हैं,पर स्त्रियों द्वारा ऐसी गलती का उदाहरण भारतीय इतिहास में कहीं नहीं मिलता। जब उदाहरण नहीं है तो परम्परा कैसी? परम्परा तो अनेक उदाहरणों के मिलने से बनती है।

युधिष्ठिर ने पुराणों के हवाले से जिन जटिला और वार्क्षी नाम की दो स्त्रियों के उदाहरण दिये हैं, प्रथम तो वे इसलिये मान्य नहीं हैं, क्योंकि वे अप्राकृत और असम्भव घटनाओं से युक्त हैं। दूसरे उनमें दो ऐतराज की बातें और हैं। जैसे-

क- पुराणों का निर्माण महाभारत की रचना के बाद हुआ, क्योंकि इस प्रसंग को छोड़ कर महाभारत में कहीं भी पुराणों का जिक्र नहीं आया है। महाभारत का निर्माण भी महाभारत में लिखे के ही अनुसार व्यास जी ने धृतराष्ट्र के दिवंगत होने के पश्चात् किया। तब उस समय जब कि अभी महाभारत के पात्रों के जीवन के प्रारम्भिक वर्ष ही व्यतीत हुए थे, पुराणों का जिक्र, जिनका निर्माण महाभारत के पश्चात् हुआ कैसे किया जा सकता है? इससे यह स्पष्ट होता है कि युधिष्ठिर द्वारा पुराणों का जिक्र करना प्रक्षिप्त है। यह पुराणों के निर्माण के पश्चात् महाभारत में प्रक्षेप किया गया है।

ख- यद्यपि पुराणों का निर्माण भिन्न -भिन्न पुरुषों के द्वारा भिन्न -भिन्न समय में हुआ (क्योंकि यदि वे एक ही लेखक की कृति होते तो उनमें परस्पर विरोधी बातें न होतीं)पर कुछ लोग यह मानते हैं कि पुराणों के निर्माता व्यास जी ही थे। यदि थोड़ी देर के लिये यह मान लिया जाये कि व्यास जी ही पुराणों के निर्माता थे, तों रचनाकार ही रचना का सबसे अधिक ज्ञाता होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यास जी को ही स्वाभाविक रूप से पुराणों का सबसे अधिक जानकार होना चाहिये, पर यहाँ व्यास जी तो पुराणों में वर्णित जटिला और वार्क्षी के उदाहरणों का जिक्र करते नहीं, युधिष्ठिर ही उन्हें अर्थात् पुराणों के रचयिता को पुराणों का हवाला देकर समझाते हैं कि पुराणों में ऐसा वर्णन है। अर्थात् युधिष्ठिर को पुराणों का ज्ञान व्यास जी से भी ज्यादा है। यह कैसे हो गया? यही बेतुकापन इस सारे वर्णन को प्रक्षिप्त सिद्ध कर रहा है।

इस प्रकार द्रौपदी के पाँच पति होना भारतीय परम्परा के विरुद्ध है और बात -बात में धर्म को सामने रखने वाले पाण्डवगण परम्परा के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकते थे।

२-युक्तियों के आधार पर

महाभारत में विद्यमान वर्णन के अनुसार पाँचों पाण्डवों द्वारा द्रौपदी से विवाह की बात एक विशेष कहानी के कारण पैदा हुई। वह कहानी यह है कि स्वयंवर के पश्चात् राजाओं को जीत कर जब अर्जुन और भीम अपने डेरे पर आये तब द्रौपदी भी उनके साथ गयी। उधर देर हो जाने के कारण और भिक्षा का समय बीत जाने के कारण माता कुन्ती चिन्तित हो रही थी कि मेरे पुत्र क्यों नहीं आये? तभी ब्राह्मणों से घिरे हुए अर्जुन और भीम वहाँ पहुँचे और कुन्ती से जो कि पीठ किये बैठी थी, बोले कि देखो माँ हम भीख लाये हैं। कुन्ती ने बिना सिर घुमाये ही कह दिया कि तुम सब मिल कर खा लो। तब माता की उसी बात को पूरी करने के लिये पाण्डवों को द्रौपदी से मिल कर शादी करनी पड़ी।

इस कहानी में इतनी बेतुकी बातें हैं कि जिन्हें अनपढ़ और बे -समझ व्यक्ति भी स्वीकार नहीं करेगा। जैसे कि—

१- कहानी यह प्रकट कर रही है कि मानो कुन्ती को यह पता नहीं था कि मेरे बेटे कहाँ गये हैं। वह समझ रही थी कि मेरे पुत्र प्रतिदिन की तरह आज भी भिक्षा के लिये ही गये हैं, क्योंकि वहाँ लिखा है कि भिक्षा का समय व्यतीत हो जाने पर कुन्ती को चिन्ता होने लगी। पाण्डव लोग तो एकचक्रा नगरी से स्वयंवर के लिये ही यहाँ विशेष रूप से आये थे। क्या कुन्ती इस बात को भूल गयी थी कि आज वही दिन है, जिसके लिये मेरे पुत्र यहाँ आये हैं और वे कह कर गये हैं कि हम वहाँ जा रहे हैं।

२- यह सत्य है कि पाण्डव स्वयंवर को देखने के लिये ही एकचक्रा नगरी से चल कर विशेष रूप से वहाँ पहुँचे थे, तो यह भी निश्चित है कि पाण्डवों ने इस बात पर भी अवश्य ही विचार किया होगा कि स्वयंवर में अपना कौशल दिखाना है या नहीं? और जब कौशल दिखाना है तो यदि विजय हो जाये तो विवाह किस का होगा? उन्होंने यही तय किया होगा कि हम केवल स्वयंवर को देखने के लिये जा रहे हैं,विवाह करने के लिये नहीं, अतः जाते ही सबसे पहले अपना कौशल नहीं दिखाना है,पर यदि उपस्थित लोगों में से कोई भी लक्ष्य को न वेध सके तो द्रुपद को निराशा से बचाने के लिये लक्ष्य -वेध करना है। उन्होंने यह भी तय किया होगा कि क्योंकि लक्ष्य -वेध तो अर्जुन ही कर सकेगा, पर विवाह अर्जुन का होगा या किसी दूसरे का? क्योंकि अर्जुन से पहले बड़े भाई युधिष्ठिर का विवाह अभी होना था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, बड़े भाई से पहले विवाह करना उस समय बहुत निन्दनीय माना जाता था और अर्जुन उस निन्दनीय कार्य को करने के लिये कदापि तैयार नहीं था। क्योंकि जब युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा —

त्वया जिता फाल्गुन याज्ञसेनी, त्वयैव शोभिष्यति राजपुत्री।

अर्थात् हे अर्जुन तूने ही द्रौपदी को जीता है, अतः यह तेरे ही साथ सुशोभित होगी। तब अर्जुन ने उत्तर दिया कि-

मा मां नरेन्द्र त्वमधर्मभाजं, कृथा न धर्मोयमशिष्टदृष्टः।

अर्थात् हे महाराज आप मुझे अधर्म का भागी मत बनाइये। बड़े भाई से पहले छोटे भाई का विवाह हो जाये, यह धर्म नहीं है। यह तो अनार्यों में ही देखा गया है।

इस प्रकार जब सब कुछ ही पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार हो रहा था तो उपर्युक्त कहानी के अनुसार कुन्ती को भ्रान्ति क्यों हुई? और क्यों उसने कहा कि तुम सब मिल कर खा लो?

३- जब युधिष्ठिर नकुल और सहदेव के साथ पहले ही स्वयंवर से उठ कर चले आये थे, तब उन्होंने कुन्ती को स्वयंवर की सारी घटना नहीं बतायी होगी? या कुन्ती ने उन्हें बिना भीम और अर्जुन के आया देख कर उनसे नहीं पूछा होगा कि उन दोनों भाइयों को कहाँ और क्यों छोड़ आये? जब स्वयंवर की सारी घटनाओं की जानकारी उसे पहले ही मिल गयी तब उसने अर्जुन स्वयंवर से नहीं, बल्कि भिक्षा ले कर आये हैं, यह कैसे समझ लिया?

४- अर्जुन और भीम को भी जब मालूम था कि युधिष्ठिर आदि पहले ही घर पहुँच चुके हैं और उन्होंने माता को सारी बातें बता दीं होंगी, तब उन्होंने माता से झूठ क्यों बोला कि देखो हम भिक्षा में क्या लाये हैं? क्या वे द्रौपदी को भिक्षा समझते थे? भिक्षा तो माँग कर और देने वाले के अनुग्रह से प्राप्त होती है। पर वे तो अपनी शक्ति के बल पर उसे जीत कर लाये थे। क्या सारी महाभारत में पाण्डवों ने अपनी माँ से कभी झूठ बोला या मजाक किया है? फिर, इस स्थान पर उन्होंने यह निन्दनीय कार्य क्यों कर दिया?

५- भीम और अर्जुन, अकेले ही घर नहीं पहुँचे थे उनके साथ ब्राह्मणों की भीड़ भी थी। यदि यह मान भी लिया जाये कि उन दोनों पाण्डवों ने वास्तव में माता के साथ मजाक किया था,फिर भी ऐसा मजाक एकान्त में किया जा सकता है, बाहरी लोगों की भीड़ के सामने नहीं। जब अर्जुन और भीम ने ब्राह्मणों की भीड़ के सामने झूठ बोला तो उन्होंने उनसे कहा नहीं कि तुम अपनी माता से झूठ क्यों बोलते हो?

६- यह स्वाभाविक है कि जब बाहरी लोगों की भीड़ घर के सामने जमा हो तो उसके शोर से सोते हुए आदमी की भी नींद खुल जायेगी और वह बाहर आकर देखेगा कि क्या बात है? पर कुन्ती तो जाग रही थी और केवल पीठ किये हुये बैठी थी। तब भीड़ के शोर को सुन कर, भीम और अर्जुन के बोलने से पहले ही अपनी पीठ घुमा कर, उसने देखा नहीं होगा कि यह कोलाहल कैसा है? इतने सारे व्यक्ति मेरे घर में क्यों आए हैं?

७-पाण्डवों के लौटने में देर होने पर कुन्ती की पुत्रों के लिये चिन्ता का वर्णन महाभारत नें इस प्रकार किया गया है-

तेषां माता बहुविधं, विनाशं पर्यचिन्तयत्। अनागच्छत्सु पुत्रेषु, भैक्षकालेभिगच्छति।।

अर्थात् भिक्षा के समय के व्यतीत हो जाने पर भी, जब पुत्र लोग नहीं आये, तब उनकी माता उनके विनाश की आशंका करती हुई चिन्ता करने लगी। यहाँ पुत्रों के लिये बहुवचन का प्रयोग किया गया है, जबकि द्विवचन का प्रयोग करना चाहिये था, युधिष्ठिर तो नकुल और सहदेव के साथ पहले ही आ गये थे। केवल भीम और अर्जुन ही वहाँ बचे थे, जिनके लौटने में देर हो गयी थी। भाषा की इस गलती के कारण यह श्लोक और इसमें वर्णित चिन्ता करने की बात, दोनों प्रक्षिप्त हैं।

८-भिक्षा वाली कहानी में यह प्रकट किया गया है कि कुन्ती ने पाण्डवों से कहा कि तुम इसे खा लो या भोग लो और उसी आधार पर पाण्डवों को द्रौपदी से विवाह करना पड़ा। पर यह सरासर झूठ है। कुन्ती ने यह कहा ही नहीं कि तुम सब मिल कर इसे खा लो। कुन्ती ने वहाँ भुङ्क्त शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ भुज धातु का परस्मैपद में प्रयोग किया गया है। यदि भुज धातु का परस्मैपद में प्रयोग किया जाये तो उसका अर्थ खाना नहीं, बल्कि पालन करना और रक्षा करना होता है। भुज धातु का खाना अर्थ तब होता है जब उसका आत्मने पद में प्रयोग किया जाये। अतः व्याकरण के अनुसार यह स्पष्ट है कि कुन्ती ने यह कहा ही नहीं कि तुम मिल कर इसे खालो। उसने तो यह कहा था कि तुम मिल कर इसका पालन करो। क्या पाण्डवों को भाषा का ज्ञान नहीं था जो अपनी माता के द्वारा कही हुई बात नहीं समझ सके?

९- यदि माता ने न समझ पाने के कारण कोई गलत बात कह भी दी तो क्या यह जरूरी है कि पुत्र माँ की भावना को न समझ कर गलत बात का अक्षरशः पालन करने के लिये अधर्म का आचरण करे? वार्त्तालाप का सर्वसम्मत और सर्वमान्य सिद्धान्त यह है कि बात करने वाले की भावना को देखना चाहिये। यदि भावना सही हो तो गलत बात मुख से निकल जाने पर भी कहने वाले को क्षमा कर दिया जाता है। अतः पाण्डव अपनी माता की गलत बात को उपेक्षणीय कर सकते थे।

१०- यदि कुन्ती की बात के कारण विवाह की समस्या पैदा हो गयी थी, तो कृष्ण बलराम तो तभी पाण्डवों से मिलने आये थे। पाण्डवों ने उन्हें इसके विषय में बता कर उनसे राय क्यों नहीं ली? जब कि आगे के सारे जीवन में कृष्ण ही पाण्डवों के पथ -प्रदर्शक रहे हैं।

इस भिक्षा वाली कहानी में भिक्षा के अतिरिक्त दूसरा मुख्य बिन्दु है, द्रौपदी का अर्जुन के साथ पाण्डवों के डेरे पर जाना। क्योंकि द्रौपदी पाण्डवों के डेरे पर गयी, तभी भिक्षा वाली बात पैदा हुई। यदि वह वहाँ नहीं जाती तो समस्या ही जन्म नहीं लेती। इस विषय में यही समझना चाहिये कि द्रौपदी के पाण्डवों के डेरे पर जाने की बात पूरी तरह से मिथ्या है। क्योंकि-

क-स्वयंवर की शर्त पूरी करने का यह मतलब नहीं है कि शादी हो गयी। शादी तो उसके पश्चात् विवाह संस्कार होने पर मानी जाती जाती है, उससे पहले नहीं। कौन पिता अपनी पुत्री को शादी से पहले ही भावी पति के घर सोने के लिये भेज देगा? क्या धनुष -भंग होते ही जनक ने सीता को राम के निवास पर भेज दिया था?

ख-यदि द्रौपदी पाण्डवों के घर गयी थी तो जब श्रीकृष्ण और बलराम वहाँ पहुँचे तब द्रौपदी का उनसे परिचय क्यों नहीं कराया गया? इससे पता लगता है कि जब श्रीकृष्ण पाण्डवों के घर गये तब द्रौपदी वहाँ नहीं थी।

ग-द्रुपद ने पाण्डवों के अपने घर जाने पर धृष्टद्युम्न को उनके पीछे उनका पता लगाने के लिये भेजा, पर उन्होंने उसे थोड़ी देर के पश्चात् रवाना किया। जब तक धृष्टद्युम्न पाण्डवों के डेरे पर पहुंचा तब तक श्रीकृष्ण और बलराम अपनी बुआ कुन्ती

को प्रणाम करके वापिस भी चले गये थे, इसीलिये श्रीकृष्ण और धृष्टद्युम्न की रास्ते में भेंट नहीं हो सकी। धृष्टद्युम्न को देर से पाण्डवों के पास उनका पता लगाने के लिये भेजना ही यह सिद्ध करता है कि द्रौपदी पाण्डवों के साथ उनके डेरे पर नहीं गयी थी। अन्यथा अपनी लड़की के, ऐसे लोगों के साथ, जिनके बारे में किसी को कुछ पता ही नहीं था, चले जाने पर तो द्रुपद को तुरन्त उनके पीछे प्रकट या अप्रकट रूप से सुरक्षा सैनिकों आदि को भेजना चाहिये था।

घ-जब द्रुपद के दूत भोजन के लिये पाण्डवों को बुलाने के लिये आये तब उन्होंने यह कहा –

जन्यार्थमन्नं द्रुपदेन राज्ञा, विवाहहेतोरुपसंस्कृतं च।
तदाप्नुवध्वं कृतसर्वकार्याः, कृष्णां च तत्र चिरं न कार्यम्।।

अर्थात् महाराज द्रुपद ने विवाह के निमित्त बरातियों को जिमाने के लिये उत्तम भोजन सामग्री तैयार करायी है। अतः आप सम्पूर्ण दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर उसे पायें और राजकुमारी कृष्णा को भी वहीं प्राप्त करें। इसमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। यहाँ राजकुमारी कृष्णा को भी वहीं प्राप्त करें से यह स्पष्ट हो रहा है कि कृष्णा उस समय अपने घर पर ही थी,पाण्डवों के साथ उनके घर पर नहीं थी।

इस प्रकार युक्तियों के आधार पर यह सिद्ध नहीं हो रहा है कि कुन्ती ने भिक्षा को बाँट कर खाने के लिये कहा था और द्रौपदी पाण्डवों के साथ उनके डेरे पर गयी थी। जब ये दोनों बातें सिद्ध नहीं हो रहीं तो यह भी सिद्ध नहीं हो रहा है कि द्रौपदी का विवाह पाँचों पाण्डवों के साथ हुआ था।

३-प्रमाणों के आधार पर

१- वन में यात्रा करते हुए एक बार द्रौपदी मूर्छित हो जाती है। तब उसे होश में लाने के लिये नकुल और सहदेव उसके पैर दबाते हैं और उसके तलवों की मालिश करते हैं। नकुल और सहदेव द्वारा द्रौपदी के पैर दबाने का कार्य यह सिद्ध करता है कि नकुल और सहदेव द्रौपदी के पति नहीं थे। क्योंकि भारतीय नारी अपने पति से पैर नहीं दबवाती।

२-सारी महाभारत में, द्रौपदी ने युधिष्ठिर को छोड़ कर चारों पाण्डवों का भिन्न -भिन्न स्थानों पर नाम लिया है। भारतीय नारी अपने पति का नाम कभी नहीं लेती। इससे यह सिद्ध हो रहा है कि द्रौपदी का पति एक युधिष्ठिर था, पाँचों पाण्डव नहीं।

३-द्रुपद ने यदि अपनी पुत्री का विवाह पाँचों पाण्डवों से किया होता तो वे एक ही समय सारे पाँडवों को वेदी पर बैठा कर उन सबके हाथ में एक साथ अपनी कन्या का हाथ पकड़ा कर कन्यादान करते, पर महाभारत में ऐसा करने का वर्णन नहीं है। वहाँ तो द्रुपद ने पहले दिन युधिष्ठिर के साथ, दूसरे दिन भीम के साथ और तीसरे दिन अर्जुन के साथ आदि इस प्रकार अलग अलग दिन सबके साथ विवाह कराये।

अब यहाँ सोचना यह चाहिये कि जब पहले दिन उन्होंने वेद -मन्त्रों का उच्चारण करते हुए, अग्नि के समक्ष अपनी कन्या का दान युधिष्ठिर को कर दिया, फिर उन्हें यह अधिकार कहाँ रहा कि अगले दिनों में वे अपनी उसी पुत्री को फिर दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें भाई को दान कर दें। बिना वापिस लिये, दान की हुई चीज का पुनर्दान कैसे किया जा सकता है? यदि द्रुपद ने ऐसा किया भी तो सबसे अन्त में जिस पाँडव के साथ विवाह हुआ, वही द्रौपदी का पति रहा, पहले वाले कैसे रहे?

पाँचों भाई तो द्रौपदी के पति तभी बन सकते थे, जब पाँचों का उसके साथ एक साथ विवाह हुआ होता। महाभारत के अनुसार क्योंकि ऐसा नहीं हुआ, अतः जिसके साथ सबसे पहले विवाह हुआ, वह युधिष्ठिर ही द्रौपदी का पति था। दूसरे पाण्डवों के उसके साथ विवाहों के उल्लेख वहाँ प्रक्षिप्त और बाद में मिलाये गये हैं।

इस प्रकार परम्परा, युक्तियाँ और प्रमाण, तीनों आधारों पर यही सिद्ध हो रहा है कि द्रौपदी का विवाह पाँचों पाण्डवों से नहीं बल्कि एक पाण्डव युधिष्ठिर से हुआ था। युधिष्ठिर ही द्रौपदी का पति था, इसके लिये मिलने वाले प्रमाणों को देखिये–

१-सबसे पहला प्रमाण तो वही है जो ऊपर कहा गया है अर्थात् द्रौपदी ने केवल युधिष्ठिर को नाम लेकर सम्बोधित नहीं किया शेष सारे पाण्डवों को किया है इसीलिये वह युधिष्ठिर की पत्नी प्रतीत होती है।

२-दुःशासन ने जब द्रौपदी का अपमान करने के लिये उसके बाल पकड़े तब महाभारत में उसे युधिष्ठिर की पत्नी बताया गया है। जैसे :- **दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिवत्सु, जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम्।।** सभा. ६७/२९

अर्थात् उसने राजा की अर्थात् युधिष्ठिर की पत्नी द्रौपदी के लम्बे, नीले और लहराते हुए बालों को पकड़ लिया।

३-उसी अवसर पर द्रौपदी युधिष्ठिर को अपना पति बताती हुई उसके दोषों को बताने से मना करती है। जैसे-

वाचापि भर्तुः परमाणुमात्रम्, इच्छामि दोषं न गुणान्विसृज्य।। सभा. ६७/३८

अर्थात् मैं अपने पति के गुणों को छोड़ कर वाणी द्वारा उनके परमाणु तुल्य छोटे से छोटे दोष को भी नहीं कहना चाहती।

४-उसी अवसर पर द्रौपदी पुनः अपने आपको युधिष्ठिर की पत्नी बताती हुई कहती है कि-

तामिमां धर्मराजस्य, भार्यां सदृशवर्णजाम्। ब्रूत दासीमदासीं वा, तत् करिष्यामि कौरवाः।। सभा ६९।११

अर्थात् हे कौरवों! मैं धर्मराज युधिष्ठिर की पत्नी उनके समान वर्ण की कन्या हूँ। आप लोग बतायें कि मैं दासी हूँ या अदासी? आप लोग जैसा कहेंगे, वैसा ही मैं करूँगी।

५-उसी अवसर पर दुर्योधन भी द्रौपदी को युधिष्ठिर की पत्नी बताता हुआ कहता है -

तिष्ठत्वयं प्रश्न उदारसत्वे, भीमेर्जुने सहदेवे तथैव।
पत्यौ च ते नकुले याज्ञसेनि, वदन्त्वेते वचनं त्वत्प्रसूतम्।।

अर्थात् हे द्रौपदी! तुम्हारा यह प्रश्न महाबली भीम, अर्जुन, सहदेव, तुम्हारे पति अर्थात् युधिष्ठिर और नकुल पर छोड़ दिया जाता है। वे ही तुम्हारी पूछी हुई बात का उत्तर दें।

६-विराट् नगर में कीचक से परेशान द्रौपदी जब भीम को बताने के लिये गयी, तब वहाँ द्रौपदी को महारानी कहा गया है-

अथाब्रवीत् राजपुत्रीं, कौरव्यो महिषीं प्रियाम्।

अर्थात् उस कुरुनन्दन भीम ने राजकुमारी और प्यारी महारानी द्रौपदी से कहा। महारानी राजा की रानी को कहते हैं और राजा युधिष्ठिर ही थे। उनकी पत्नी द्रौपदी को इसीलिये यहाँ महारानी कहा गया है।

७-उसी कीचक प्रसंग में द्रौपदी भीम को अपना दुःख बताते हुए कहती है -

अशोच्यत्वं कुतस्तस्या, यस्या भर्ता युधिष्ठिरः।।

अर्थात् जिस स्त्री के पति राजा युधिष्ठिर हों, वह बिना शोक के रहे, यह कैसे हो सकता है? यहाँ स्पष्ट रूप से द्रौपदी ने अपने को युधिष्ठिर की पत्नी बताया है।

८- कीचक को मार कर भीम कहते हैं —

अद्याहमनृणो भूत्वा, भ्रातुर्भार्यापहारिणम्। शान्तिं लब्धोस्मि परमां, हत्वा सैरन्ध्रिकण्टकम्।।

अर्थात् जो सैरन्ध्री के लिये कण्टक था, जिसने मेरे भाई की पत्नी का अपहरण करने की चेष्टा की थी, उस दुष्ट कीचक को मार कर मैं उऋण हो रहा हूँ और मुझे बड़ी शान्ति मिल रही है। यहाँ भी भीम ने द्रौपदी को युधिष्ठिर की पत्नी बताया है।

९-कर्ण पर्व में जब अर्जुन ने युधिष्ठिर का अपमान किया था तब कटु वचनों को कहते हुए उसने उन्हें द्रौपदी के बिस्तरे पर बैठा रहने वाला बताया था- **मां मावमंस्था, द्रौपदीतल्पसंस्थो, महारथान्प्रतिहन्मि त्वदर्थे।**

अर्थात् द्रौपदी के बिस्तरे पर बैठने वाले युधिष्ठिर! मेरा अपमान मत कर। मैं तेरे लिये महारथियों का संहार कर रहा हूँ। यहाँ द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर का जो सम्बन्ध बताया गया है, वह उसके पतित्व को स्पष्ट कर रहा है।

१०-द्रौपदी युधिष्ठिर की पत्नी थी, इसलिये युधिष्ठिर ने उसे जूए में दाँव पर लगाया था। भाई की पत्नी को वह कैसे दाँव पर लगा सकता था?

११-द्रौपदी युधिष्ठिर की पत्नी थी, इसीलिये वह युधिष्ठिर के साथ वन में तथा अज्ञातवास में रही।

१२-महाभारत के युद्ध में हम देखते हैं कि जिस - जिस पाण्डव के पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुए, उस समय वैसे तो सभी ने शोक प्रकट किया, पर विशेष दुःख मृत के पिता को ही हुआ। जैसे अभिमन्यु की मृत्यु पर अर्जुन को औरों की अपेक्षा अधिक दुःख हुआ था। ऐसे ही घटोत्कच की मृत्यु पर भीम को ज्यादा दुःख हुआ। इसी प्रकार द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के रात्रि में सोते हुए अश्वत्थामा द्वारा मारे जाने पर युधिष्ठिर और द्रौपदी को शेष सभी पाण्डवों से अधिक दुःख हुआ। इससे यह पता लगता है कि द्रौपदी के पाँचों पुत्र युधिष्ठिर की ही सन्तान थे, क्योंकि वही द्रौपदी का पति था। इसीलिये पुत्रों के शोक में रोती हुई द्रौपदी युधिष्ठिर को ही उलाहने देती है और पाण्डवों को नहीं।

१३-उपर्युक्त प्रसंग में द्रौपदी युधिष्ठिर को उलाहने देते हुए कहती है कि यह बड़ी खुशी की बात है कि अपने आत्मजों अर्थात् पुत्रों को मृत्यु की भेंट चढ़ा कर आपने पृथ्वी का राज्य पा लिया है। यहाँ आत्मजों शब्द यह प्रकट कर रहा है कि वे पाँचों पुत्र केवल द्रौपदी के ही नहीं बल्कि युधिष्ठिर की भी सन्तान थे। क्योंकि द्रौपदी युधिष्ठिर की ही पत्नी थी, किसी और की नहीं। आत्मज अपने शरीर से उत्पन्न हुई सन्तान को ही कहते हैं, भाई की संतान को नहीं।

पत्नी होने के नाते द्रौपदी ने युधिष्ठिर को जहाँ उलाहने सबसे अधिक दिये हैं वहाँ प्रेम भी सबसे अधिक प्रकट किया है। हिमालय पर्वत पर सुगन्धित पुष्प के मिलने पर उसने उसे युधिष्ठिर को ही भेंट किया, इसी प्रकार अश्वत्थामा की मणि छीन कर लाये जाने पर उसने उस मणि से युधिष्ठिर के मस्तक को ही सजाया था।यद्यपि वह मणि भीम और अर्जुन के परिश्रम से लायी गयी थी।

इस प्रकार पूरी छान -बीन से यही सिद्ध हो रहा है कि द्रौपदी का पति युधिष्ठिर ही था, और कोई नहीं।

(१०) खाण्डवप्रस्थ का दाह

खाण्डवप्रस्थ एक वन का नाम था, जिसे अर्जुन और श्रीकृष्ण ने मिल कर जलाया था। उसके जलाने की कहानी महाभारत में इस प्रकार लिखी हुई है– जब पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ नाम के नगर को अपनी राजधानी के रूप में बसाया और वहाँ जाकर वे रहने लगे, तब एक दिन अर्जुन और श्रीकृष्ण यमुना के किनारे बैठे हुए वार्त्तालाप कर रहे थे, तभी वहाँ अग्नि देवता ब्राह्मण का रूप धर कर आये और आकर उन्होंने उनसे यह प्रार्थना की कि वे इस समीपवर्ती खाण्डवप्रस्थ नाम के वन को जलाना चाहते हैं, अतः आप दोनों इस कार्य में मेरी सहायता कीजिये, ताकि बीच में कोई अग्नि को बुझा न सके। अग्नि देवता खाण्डवप्रस्थ को क्यों जलाना चाहते थे, इसके लिये वहाँ एक कहानी दी हुई है कि पहले श्वेतकि नाम के राजा यज्ञों के बहुत प्रेमी थे। वे निरन्तर यज्ञ ही करते रहते थे। उनके यज्ञों में अग्नि देवता को इतना अधिक घी खाने को मिला कि जैसे चिकनाई ज्यादा खाने से मनुष्यों को मन्दाग्नि हो जाती है, उसी प्रकार यज्ञों के घी को खाने से अग्नि देवता को भी मन्दाग्नि हो गई। मन्दाग्नि का रोगी जैसे चटनी, चूर्ण आदि खा कर अपनी मन्दाग्नि को दूर करने का प्रयत्न करता है, उसी प्रकार अग्नि देवता भी जंगल के पेड़ों और पत्तियों को खाकर अपनी मन्दाग्नि को दूर करना चाहते थे। इस कार्य में उन्हें किसी की सहायता की इसलिये आवश्यकता थी, क्योंकि जब भी वे जंगल को जलाना शुरू करते, जंगल के निवासी प्राणी और देवता लोग अग्नि को बुझा देते थे। अर्जुन ने जब इस सहायता के लिये हथियारों की माँग की, तब अग्नि देव ने वरुण देव से विशेष हथियार लाकर अर्जुन और श्रीकृष्ण को दिये और उनकी सहायता से खाण्डवप्रस्थ नाम के वन को जलाया गया।

यह कहानी अस्वाभाविकता से युक्त होने के कारण मान्य नहीं हो सकती। इसका शुद्ध स्वरूप इस प्रकार होना चाहिये कि जब अर्जुन और श्रीकृष्ण यमुना के किनारे बैठे मनोविनोद कर रहे थे, तब वहाँ अग्नि नाम के एक ब्राह्मण आये। वे ब्राह्मण जैसा कि उनका नाम था, वैसे ही उग्र स्वभाव के भी थे। वे शायद वैसे ही थे जैसे हम चाणक्य के विषय में सुनते हैं, जिन्होंने अपने रास्ते में आने और पैरों में चुभने वाले कुश के काँटों के कारण कुशों को ही जड़ से उखाड़ना और उनके पुनः उगने से रोकने के लिये जड़ों में खट्टा मट्ठा डालना प्रारम्भ कर दिया था। इसी प्रकार वे अग्नि नाम के ब्राह्मण भी दैत्यों और नागों से परेशान थे। वन में दैत्यों और नागों की बस्ती थी और वे अग्नि देवता के यज्ञ, अग्निहोत्र आदि कार्यों में विघ्न डालते थे। इसलिये उनसे बदला लेने के लिये उन्होंने सारे वन को ही जला डालने का संकल्प किया था। पर उसे पूरा करने के लिये उन्हें श्रीकृष्ण और अर्जुन जैसे वीरों की आवश्यकता थी, जो उन दानवों और नागों से लड़ सकें। इसीलिए उन्होंने उनसे सहायता की याचना की।

अर्जुन भी पहले से ही उस वन को साफ कर वहाँ अपने नगर इन्द्रप्रस्थ का विस्तार करना चाहते थे, क्योंकि उन्हें नगर के फैलाव के लिये जगह की आवश्यकता थी। उन्हें यह मालूम था कि अग्नि नाम के उस ब्राह्मण के पास बहुत उत्तम कोटि के युद्धोपयोगी पदार्थ हैं। इसीलिये उन्होंने अग्नि ब्राह्मण की सहायता करने के लिये उनसे गाण्डीव धनुष आदि विविध शस्त्रास्त्रों को माँग लिया और तब वन को जलाने में उनकी सहायता की। इस प्रकार चतुराई से अर्जुन और श्रीकृष्ण ने एक पंथ और तीन काज कर लिये। अपने नगर के लिये भूमि भी प्राप्त कर ली, बढ़िया शस्त्रास्त्र ले लिये और ब्राह्मण देवता का उपकार भी कर दिया। लगातार पन्द्रह दिनों तक ब्राह्मण देवता उस वन को जलाते रहे और अर्जुन और श्रीकृष्ण वहाँ रहने वाले राक्षसों, नागों और जंगली जन्तुओं को अग्नि को बुझाने तथा भाग कर दूसरी मानव बस्तियों में घुस कर उपद्रव मचाने से रोकते रहे। यदि वे ऐसा न करते तो वे वनवासी या तो अग्नि को बुझा देते या समीप की बस्तियों में घुस कर वहाँ के निवासियों के लिये संकट उपस्थित करते।

(११) पाण्डवों की विजय यात्राएँ

महाभारत में पाण्डवों के द्वारा की गयीं विजय यात्राओं के वर्णन हैं। ये विजय यात्राएं चारों पाण्डवों के द्वारा राजसूय यज्ञ से पहले चारों दिशाओं में तथा अश्वमेध यज्ञ से पहले अकेले अर्जुन के द्वारा यज्ञ के घोड़े की रक्षार्थ की गयीं थीं। इन विजय यात्राओं में तीन बातें खटकने वालीं हैं। उनमें से पहली तो यह कि इन यात्राओं में उन स्थानों के भी नाम लिख दिये गये हैं जिनका नाम केवल पुराणों में ही पाया जाता है, भूमि पर जिनका कोई अस्तित्व नहीं है। यह बात अर्जुन के द्वारा राजसूय यज्ञ से पहले उत्तर दिशा की यात्रा में विशेष रूप से है।

दूसरी बात यह है कि पाण्डवों की यात्राओं के वर्णन में अलौकिक और असम्भव बातों को भर दिया गया है। जैसे सहदेव के द्वारा दक्षिण दिशा का वर्णन देखिये। राजा नील पर आक्रमण करने पर सहदेव की सेना का अग्नि से जलना और फिर सहदेव के द्वारा अग्निदेव को प्रार्थना द्वारा प्रसन्न करने पर उस मुसीबत से छुटकारा पाना अलौकिक घटना है। इसी प्रकार सहदेव का राम के सेनापति मैन्द और द्विविद से युद्ध करना, लंका के राजा विभीषण के पास घटोत्कच को भेजना, ये असम्भव घटनाएँ हैं। रामायण काल के व्यक्तियों से महाभारत काल का व्यक्ति कैसे बात कर सकता है? दोनों घटनाओं में लाखों वर्षों की दूरी है।

तीसरी बात यह है, यात्राओं के वर्णन में कोई क्रमबद्धता नहीं है। अर्थात् जैसे अर्जुन पहले किस देश में गये, फिर किस देश में पहुँचे, इस प्रकार वर्णन करते हुए देशों का इस क्रम से वर्णन नहीं है कि एक निश्चित रास्ते की परिकल्पना की जा सके। यदि कोई आज दिल्ली से आसाम की तरफ जाये तो उसे पहले उत्तर प्रदेश में जाना होगा, फिर बिहार में, फिर बंगाल में और तत्पश्चात् वह आसाम में पहुँचेगा। इस प्रकार पाण्डवों की यात्रा के वर्णन में नहीं है। अर्जुन उत्तर दिशा की तरफ गये। पूर्वोत्तर और पश्चिमोत्तर दिशाएँ भी विजय कीं, पर कभी वे पूर्वोत्तर दिशा के किसी देश में गये, तो तुरन्त उसके पश्चात् उन्हें पश्चिमोत्तर दिशा के किसी देश में पहुँचा हुआ दिखा दिया। यह कैसे सम्भव हो सकता है? एक निश्चित मार्ग तो होना चाहिये और उस मार्ग में पड़ने वाले सभी स्थानों पर यात्री को पहुँचना भी चाहिये। भूगोल और इतिहास सम्बन्धी ये गलतियाँ व्यास जी तो कर नहीं सकते।

यह प्रक्षेपकारों की ही माया है। उन्होंने ही काल्पनिक स्थानों और असम्भव घटनाओं का प्रक्षेप किया है, जिन्हें वहाँ से हटाया जाना चाहिये। उन्होंने ही रास्ते के क्रम को भी बिगाड़ा है। रास्ते के क्रम को ठीक करने के लिये श्लोकों को आगे पीछे करने की आवश्यकता है, पर वह भी तभी हो सकता है, जब इस बात का अनुसन्धान हो कि महाभारत काल में विभिन्न प्रदेशों के जो नाम मिलते हैं, उन्हें आजकल किस नाम से पुकारते हैं? महाभारतकालीन भारतवर्ष का एक नकशा बनाया जाये और उसकी आजकल के भारतवर्ष के नकशे से तुलना हो। तत्पश्चात् पाण्डवों की विजय यात्राओं के पथ का निश्चय हो। इस कार्य के लिये एक विस्तृत अनुसन्धान की आवश्यकता है।

(१२) जरासन्ध

जब युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ की तैयारी कर रहे थे, तब उस समय जरासन्ध भारतवर्ष में सबसे अधिक शक्तिशाली और अत्याचारी राजा था। अपने पराजित शत्रु के साथ वह बड़ी क्रूरता के साथ बर्ताव करता था। उसकी सेना बड़ी सुदृढ़ थी। सेना के साथ उसे हराना बड़ा मुश्किल था। कंस की मृत्यु का बदला लेने के लिये उसने अनेक बार मथुरा पर हमले किये और उन आक्रमणों से बचने के लिये ही श्रीकृष्ण को मथुरा से हट कर सुदूर पश्चिम में द्वारिका पुरी का निर्माण करना पड़ा। बिना जरासन्ध को हराए युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ करना असम्भव था, अतः श्रीकृष्ण ने उसे द्वन्द्व -युद्ध में परास्त करने की योजना बनायी और भीम ने मल्ल युद्ध में उसे मार दिया।

ये सारी बातें ठीक हैं, पर महाभारत में जरासन्ध के विषय में और अनेक असम्भव बातें भी वर्णित हैं। उन्हें प्रक्षिप्त माना जाना चाहिये। जैसे जरासन्ध के जन्म की कहानी, आधे -आधे अलग -अलग भागों में दो रानियों के गर्भ से उत्पन्न होना, राक्षसी के परस्पर जोड़ने से जीवित होना, मल्ल युद्ध में भीम के द्वारा उसकी दोनों टाँगों को चीर कर अलग कर देने पर दोनों टुकड़ों का फिर आपस में जुड़ जाना, उन्हें फिर चीर कर विपरीत दिशाओं में फैंकने पर न जुड़ना, मगध से ही मथुरा पर अनेक बार अपनी गदा को घुमा कर फैंकना आदि सारी बातें अप्राकृतिक होने के कारण प्रक्षिप्त हैं।

(१३) क्या श्रीकृष्ण जी ने द्रौपदी का चीर बढ़ाया था?

महाभारत में जब युधिष्ठिर जूए में अपना सर्वस्व हार गये और उन्होंने अपने भाइयों, अपने आपको और यहाँ तक कि अपनी पत्नी द्रौपदी को भी दाँव पर रख कर गवाँ दिया, तब दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनि ने विवेक शून्य होकर युधिष्ठिर की रानी द्रौपदी को भरी सभा में बुला कर उसे नंगा कर बेइज्जत करने का आदेश दे दिया। दुःशासन उसे बालों से पकड़ कर घसीटता हुआ वहाँ लाया और उसके कपड़े उतारने का प्रयत्न करने लगा। द्रौपदी बेचारी ने (जो उस समय अपने मासिक धर्म के दिनों में थी) सभा में उपस्थित सभी धर्मात्मा लोगों से अपनी सहायता की प्रार्थना की , पर सिवाय विदुर और विकर्ण के (पर वे शक्तिहीन थे) सभी उस समय अपने आपको किसी न किसी धर्म के बन्धन में बँधा हुआ महसूस कर रहे थे। सभी को उस समय द्रौपदी की अपेक्षा अपने धर्म को बचाने की चिन्ता थी। इसके पश्चात् महाभारत में कहानी है कि द्रौपदी ने श्रीकृष्ण जी को याद किया और श्रीकृष्ण जी ने अलौकिक चमत्कार दिखाते हुए द्रौपदी की साड़ी को इतना बढ़ाया कि दुःशासन उसे खींचते -खींचते थक गया और द्रौपदी की इज्जत बच गयी।

चीर हरण की यह कहानी दो कारणों से भारतीय जनमानस में ज्यादा प्रतिष्ठित है। पहला तो यह कि यह घटना भारतीय संस्कृति में उस समय आयी हुई गिरावट को दिखाती है कि किस तरह इतना धर्म -परायण और समझदार राजा जूए में न केवल अपने आपको बल्कि अपने भाइयों और अपनी पत्नी को भी दाँव पर चढ़ा देता है और दुःशासन जैसा पतित व्यक्ति अपनी माँ के समान आदरणीय भाभी के साथ ऐसा घृणित व्यवहार करता है।

दूसरा यह कि कृष्ण को भगवान् मानने वाले, भगवान् का चमत्कार और अपने भक्तों पर उनके द्वारा की गयी कृपा के उदाहरण के रूप में सामान्य जनता के सामने इस चीर -हरण और चीर -वर्धन की घटना को रखते हैं। इनमें पहला कारण तो ठीक है। भारतीय संस्कृति में महाभारत -काल में वास्तव में पतन के बीज अंकुरित हो गये थे। इसके लिये केवल चीरहरण

की घटना ही नहीं और दूसरे उदाहरण भी महाभारत से दिये जा सकते हैं। उन अंकुरित बीजों ने ही आगे चल कर एक विशाल वृक्ष का रूप धारण किया और हमारा देश दिनों -दिन अधोगति को प्राप्त होता चला गया। पर जहाँ दूसरे कारण अर्थात् कृष्ण भगवान् की कृपा की बात है, वह युक्ति के आधार पर सत्य नहीं ठहरती। जैसे-

१-साड़ी का बढ़ाया जाना, प्रकृति के नियमों के विरुद्ध एक चमत्कारिक घटना है। द्रौपदी से पूर्व और द्रौपदी के पश्चात् आज तक किसी के साथ ऐसा चमत्कार नहीं हुआ। फिर, यह कैसे मान लिया जाये कि द्रौपदी के साथ ही ऐसी असम्भव बात हुई?

२-यदि एक मिनट के लिये यह मान भी लिया जाये कि शायद चीर -वर्धन की घटना हुई हो,पर फिर जब श्रीकृष्ण पाण्डवों से मिलने वन में गये, तब द्रौपदी ने उन्हें रो -रो कर अपने साथ बीती हुई दुर्घटना का वर्णन क्यों किया? क्योंकि श्रीकृष्ण जी ने तो स्वयँ वहाँ जाकर उसका चीर बढ़ाया था, उन्हें तो सारी बातें पहले ही मालूम थीं, फिर द्रौपदी ने उन्हें दुबारा क्यों बतायीं?

३-श्रीकृष्ण जी पाण्डवों से मिलने जब वन में आये तब द्रौपदी को उन्हें धन्यवाद करना चहिये था कि उन्होंने ही उस समय उसकी रक्षा की, पर द्रौपदी ने तो उन्हें एक शब्द भी धन्यवाद का नहीं कहा। क्या वह इतनी कृतघ्न थी?

४-श्रीकृष्णजी ने वन में मिलने पर स्वयं ही यह कहा है कि मुझे तो इस जूए की घटना का पता ही नहीं था, क्योंकि द्वारिका पर हमारे शत्रु राजा शाल्व ने आक्रमण कर दिया था, अतः मैं उससे युद्ध करने चला गया था। जब शाल्व को युद्ध में मार कर मैं वापिस द्वारिका आया तब मुझे सब कुछ मालूम हुआ। तभी मैं सुनते ही आप लोगों के पास चला आ रहा हूँ। उन्होंने यह भी कहा कि यदि मुझे जूए के विषय में पता लग जाता तो मैं तुरन्त हस्तिनापुर आता और जूए को न होने देता, चाहे मुझे बल का प्रयोग करना पड़ता। जब चीर बढ़ाने वाले श्रीकृष्ण ही कह रहे हैं कि मैने चीर नहीं बढ़ाया तो कैसे मान लिया जाये कि उन्होंने द्रौपदी का चीर बढ़ाया था?

५-महाभारत में जहाँ -जहाँ सभा में द्रौपदी पर किये गये अत्याचारों का उल्लेख हुआ है, वहाँ उसे बाल पकड़ कर घसीटने का तो वर्णन है, चीर -हरण और चीर -वर्धन का नहीं।

अतः ऊपर दी गयीं युक्तियों के आधार पर चीर -हरण और चीर -वर्धन की यह घटना प्रक्षिप्त है। तब प्रश्न यही उठता है कि उस समय की उस घटना का अन्त कैसे हुआ? यहाँ यही समझना चाहिये कि दुःशासन ने प्रयत्न अवश्य किया, पर वह इसलिये सफल नहीं हो पाया, क्योंकि भीम ने उसी समय उसकी छाती का खून पीने और दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञाएँ कर डालीं, सभा में चारों तरफ से कौरवों को धिक्कारा जाने लगा और तभी धृतराष्ट्र ने घबरा कर द्रौपदी को वर दे दिये तथा द्रौपदी ने सबको छुड़ा लिया।

(१४) आकाश विचरण

वाल्मीकि रामायण और महाभारत को पढ़ते हुए अनेक स्थानों पर ऐसी घटनाओं का वर्णन आता है जिनका सम्बन्ध आकाश विचरण से है। हम पढ़ते हैं कि सीता की खोज में लंका जाते हुए हनुमान् जी ने समुद्र को आकाश मार्ग से लाँघा, मेघनाद ने आकाश में विचरण करते हुए बादलों में छिप कर श्रीराम और लक्ष्मण जी पर प्रहार कर उन्हें मूर्छित कर दिया, लक्ष्मण जी के लिये बूटी भी हनुमान् जी आकाश मार्ग से ही जाकर लाये। इसी प्रकार महाभारत में राजा शाल्व ने श्रीकृष्ण जी से युद्ध अपने विमान पर चढ़ कर किया आदि। आकाश विचरण की इन घटनाओं की सत्यता पर विचार करते हुये यदि हम यह मान कर सन्तोष कर लें कि ऐसा इसलिये सम्भव हो सका क्योंकि उन आकाश विचरण करने वाले व्यक्तियों में कोई अलौकिक शक्ति थी, तो यह युक्ति-युक्त नहीं होगा, क्योंकि पक्षी जाति के तथा उन प्राणियों को छोड़ कर जिनके पास उड़ने के लिये पंख होते हैं, संसार में कोई भी प्राणी स्वयं अपनी शक्ति से आकाश विचरण नहीं कर सकता, जब कि हनुमान् जी,मेघनाद, और शाल्व आदि के पास पंखों की कोई सहायता नहीं थी।

अतः आकाश विचरण की इस समस्या को सुलझाने के लिये हमें यह स्वीकार करना होगा कि उस समय वायुयान थे। पर वायुयान तो बिजली तेल आदि की ऊर्जा से चलते हैं। क्या ऐसे ही ऊर्जा चालित वायुयान हनुमान् आदि वानरों तथा घटोत्कच के पास थे? कदापि नहीं। यद्यपि ऊर्जा से चलने वाले विमान भी उस समय थे, जैसे रावण के पास पुष्पक विमान था,महाभारत काल में राजा शाल्व के पास भी ऊर्जा से चलने वाला विमान था। पर हनुमान् आदि वानर सेनापतियों के पास ऊर्जा चालित विमान नहीं थे। क्योंकि यदि उनके पास ऊर्जा चालित विमान होते तो सीताजी की खोज के लिये लंका जाते समय उनके सामने यह समस्या उत्पन्न नहीं होती कि विस्तृत सागर के पार कौन शक्तिशाली वानर जा सकता है? जैसे आजकल ऊर्जा चालित विमानों का कोई भी पायलट यह कहते हुए नहीं सुना जाता कि मैं अपने विमान को केवल एक हजार किलोमीटर तक ही ले जा सकता हूँ, दो हजार किलोमीटर तक नहीं ले जा सकता, क्योंकि ऊर्जा चालित विमानों को ऊर्जा ईंधन से प्राप्त होती है न कि चालक की शारीरिक शक्ति से, इसीलिये हनुमान् जी आदि वानरों के आकाश विचरण के विषय में यह मानना चाहिये कि उनके पास आजकल सड़कों पर दौड़ने वाली साइकिलों की तरह एयर साइकिलें होंगी जो ईंधन से प्राप्त ऊर्जा की जगह चालक की शारीरिक ऊर्जा से संचालित होती होंगी। जैसे आजकल की साइकिलों को बलिष्ठ व्यक्ति कमजोर व्यक्ति की अपेक्षा अधिक तेजी से और लगातार अधिक दूरी तक चला सकता है, वैसे ही उन एयर साइकिलों के लिये भी आवश्यक होता होगा। इसीलिये समुद्र पार जाने के लिये उन वानर वीरों को अपनी -अपनी सामर्थ्य को बताना पड़ा कि मैं इतनी दूर तक लगातार आकाश में जा सकता हूँ और मैं इतनी। हनुमान् जी क्योंकि शारीरिक शक्ति में अपने समय के सर्वोत्कृष्ट वानर थे, इसीलिये उन्होंने समुद्र पार करने और लंका में जाने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया। पर साथ ही यह अनुमान भी है कि जब हनुमान् जी बूटी लेने के लिये कैलाश पर्वत पर गये, तब उन्होंने अपनी एयर साइकिल की जगह, विभीषण अपने चार साथियों के साथ जिस ईंधनचालित वायुयान के द्वारा आये थे, उस विमान का प्रयोग किया होगा। लंका से कैलाश पर्वत की दूरी बहुत अधिक थी और हनुमान् जी को जड़ी बूटी भी उठा कर लानी थी।

यह निश्चित और प्रमाणित तथ्य है कि रामायण और महाभारत -कालीन समय में भारतीयों के पास विमान विद्या केवल सामान्य रूप में नहीं बल्कि अत्यन्त विकसित अवस्था में थी। उनके विमान आजकल के तीव्रतम विमानों से किसी भी प्रकार कम नहीं थे। इस बात के जिज्ञासुओं को महर्षि भारद्वाज लिखित बृहत् विमान -शास्त्र के एक अध्याय की एक खंडित प्रति, जो हिन्दी अनुवाद सहित सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, राम लीला मैदान दिल्ली द्वारा प्रकाशित है, को पढ़ना चाहिये। उसमें विमान विज्ञान के विभिन्न अंगों से सम्बद्ध ९७ ग्रन्थों और ३६ इस क्षेत्र के आचार्यों के नाम दिये हुए हैं। इस ग्रन्थ में विमानों के जो नमूने वर्णित हैं उनमें एक विमान की गति एक घण्टे में ८००० मील की होती है, एक विमान सुनहरे रंग की धातु का बनाया गया है और एक विमान ऐसा भी है जो जल, स्थल और आकाश, तीनों स्थानों में चल सकता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि यदि भारतीय लोग विमान विद्या में प्रवीण थे तो उस समय के ग्रन्थों में आजकल की तरह सामान्य नागरिकों द्वारा इस विद्या के द्वारा यातायात करते हुए वर्णन नहीं किया गया है और ना हीं आजकल की तरह राजाओं की सेना में हवाई सेना का जिक्र आता है, केवल कुछ विशिष्ट लोगों के द्वारा ही विमान यात्रा का वर्णन है, ऐसा क्यों? इसका उत्तर यह है कि उस समय के आचार्य लोग आजकल के अध्यापकों की तरह पैसे लेकर चाहे जिस किसी को पढ़ाने के लिये नहीं बैठ जाते थे। केवल विमान विद्या ही नहीं, किसी भी प्रकार की विद्या को उस समय के गुरु लोग तभी अपने शिष्य को देते थे, जब पहले उससे कड़ी तपस्या करा कर उसकी पात्रता और उसके आचार -विचार की परीक्षा कर लेते थे। अर्जुन ने शिव तथा दूसरे देवताओं से जो शस्त्रास्त्र प्राप्त किये, वे कठोर तपस्या के द्वारा उन्हें प्रसन्न करके ही प्राप्त किये थे। इसी प्रकार उपनिषदों में भी कथाएँ हैं, जिनमें वर्णित है कि आचार्य ने उपदेश करने से पूर्व किस प्रकार उसकी परीक्षा ली?

भारतीय आचार्य कुपात्र को अपनी विद्या देने की अपेक्षा उसे अपने साथ ही संसार से ले जाना अधिक अच्छा समझते थे। उनके इस नियम के कारण विद्या के विकास ने जहाँ हिमालय की ऊँचाइयों को स्पर्श किया वहाँ वह सागर की विस्तृतता को नहीं पा सकी। इस कारण जहाँ एक लाभ हुआ, वहाँ एक हानि भी हुई। लाभ यह हुआ कि ज्ञान -विज्ञान लम्बे समय तक

कुपात्रों के पास पहुँचने से बचा रहा और अयोग्य व्यक्ति ज्ञान -विज्ञान को प्राप्त कर उसके दुरुपयोग से समाज को जो हानि पहुँचाते, वह नहीं हो सकी। महाभारत काल में ज्ञान -विज्ञान अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में पहुँच गया था, इसीलिये इतना बड़ा युद्ध और उसमें महान् विनाश हुआ। हानि यह हुई कि विद्या का लोप हो गया। यदि उसका प्रसार आजकल की तरह घर -घर में होता तो वह लुप्त नहीं होती।

(१५) कर्ण के द्वारा दुर्योधन के लिये की गयी चतुर्दिक् विजय और दुर्योधन के द्वारा किया गया वैष्णव यज्ञ

महाभारत में यह वर्णित किया गया है कि दुर्योधन जब घोष यात्रा में बहुत अपमानित होने के कारण वापिस हस्तिनापुर लौटने की जगह मार्ग में ही अपने प्राणोत्सर्ग के लिये बैठ गया तब कर्ण उसे बड़ी कठिनाई से समझा -बुझा कर हस्तिनापुर ले गया। पर वहाँ भी जब भीष्म पितामह ने पाण्डवों की प्रशंसा करते हुए दुर्योधन और कर्ण की निन्दा की तब कर्ण ने अपने आपको अर्जुन से श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिये पहले चारों दिशाओं में जाकर दिग्विजय की और फिर दुर्योधन ने अपने आपको युधिष्ठिर जैसा ही प्रमाणित करने के लिये वैष्णव नाम का एक बड़ा यज्ञ किया।

इन उपर्युक्त घटनाओं चतुर्दिक् विजय और वैष्णव यज्ञ की सत्यता और असत्यता पर यदि विचार किया जाये तो प्रथम दृष्टि में यहाँ कोई अनहोनी या अप्राकृतिक बात दिखायी नहीं पड़ती। कर्ण इतना वीर था ही जो पाण्डवों के समान दूसरे राजाओं को जीत कर अपने आधीन कर सके और जब राजा लोग जीत लिये गये तब दुर्योधन के द्वारा यज्ञ करने में क्या कठिनाई हो सकती थी? पर फिर भी निम्नलिखित कारणों के कारण इस घटना की सत्यता को स्वीकार नहीं किया जा सकता—

१- जैसे युधिष्ठिर के द्वारा किये गये राजसूय यज्ञ का, यज्ञ होने के पश्चात् भी कई जगह युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए जिक्र आया है तथा पाण्डवों द्वारा की गयी अलग -अलग दिशाओं की विजयों की अनेक बार प्रशंसा की गयी है, उसी प्रकार कर्ण की दिग्विजयों तथा दुर्योधन के वैष्णव यज्ञ का महाभारत में पुनः उल्लेख कहीं नहीं है।

२-राजसूय यज्ञ का वर्णन जहाँ विस्तार के साथ किया गया है, वहाँ दुर्योधन के यज्ञ और कर्ण की दिग्विजयों का वर्णन बहुत संक्षेप में केवल एक या डेढ़ पृष्ठ में ही किया गया है। यहाँ तक कि किन -किन राजाओं ने उसमें भाग लिया, यह भी नहीं बताया गया। वैसे पाण्डवों को बुलावा देने का वर्णन विस्तार से किया गया है।

३-महाभारत का एक प्रमाण भी इस घटना की असत्यता को सिद्ध कर रहा है। जैसे विराट् नगर में जब अर्जुन उत्तर कुमार के साथ कौरवों की विशाल सेना का सामना करने पहुँचा, तब कर्ण के द्वारा अपनी बड़ाई करने पर कृपाचार्य ने उसे पाण्डवों से हीन बताते हुए कहा कि —

एकेन हि पुरा कर्ण, किन्नामेह कृतं पुरा। एकैकेन यथा तेषां, भूमिपालाः वशे कृताः।।

अर्थात् हे कर्ण तुम यह बताओ कि तुमने पहले कभी अकेले रह कर इस जगत में कौन -सा पुरुषार्थ किया है? पाण्डवों में से तो एक -एक ने विभिन्न दिशाओं में जाकर वहाँ के भूमिपालों को अपने वश में कर लिया था। क्या तुमने भी ऐसा कोई कार्य किया है?

यहाँ कृपाचार्य स्पष्ट रूप से कर्ण के सामने ही पूछ रहे हैं कि क्या उसने कभी पाण्डवों के समान अकेले ही दिग्विजय की है? अब यदि कर्ण ने ऐसा किया होता तो उससे पूछा क्यों जाता? और यदि पूछा भी गया तो कर्ण ने तुरन्त उत्तर क्यों नहीं दिया? इससे स्पष्ट है कि कर्ण ने दिग्विजय नहीं की और जब दिग्विजय नहीं की तो यज्ञ कैसा? क्योंकि वह तो दिग्विजय के उपलक्ष्य में किया गया था।

४-दुर्योधन की घोष यात्रा, फिर कर्ण की दिग्विजय और तत्पश्चात् दुर्योधन का यज्ञ, ये सारी बातें तभी हुईं वर्णन की गयीं हैं जब पाण्डव हिमालय पर्वत से लौट कर द्वैत वन में रहते थे। क्योंकि पाण्डवों को चिढ़ाने के लिये घोष यात्रा द्वैत वन में की

गयी थी और यज्ञ के लिये उन्हें निमंत्रण भी द्वैत वन में भेजा गया था। द्वैत वन में पाण्डव अधिक से अधिक छह मास रहे थे। इतने थोड़े समय में ये सारी उपर्युक्त घटनाएँ नहीं घट सकतीं।

पाण्डवों के द्वैत वन में रहने के समय का हिसाब इस तरह से है कि पाण्डव अपने वनवास के ११ वर्ष पूरे होने और बारहवाँ वर्ष आरम्भ होने पर हिमालय की यात्रा पूरी करके द्वैतवन में आये थे। जैसे –

ते द्वादशं वर्षमुपोपयातं, वने विहर्तुं कुरवः प्रतीताः।.............................
सरस्वतीमेत्य निवासकामाः, सरस्ततो द्वैतवनं प्रतीयुः।। वन पर्व १७७/२०,२१

अर्थात् अब पाण्डवों के वनवास का बारहवाँ वर्ष आ गया था। उसे भी वन में सानन्द व्यतीत करने के लिये उनके मन में बड़ा उत्साह था। तब वे सरस्वती के किनारे रहने की इच्छा से द्वैतवन के द्वैत सरोवर के समीप गये।

पाण्डवों के ११ वर्ष कब पूरे हुए थे, यह जानने के लिये अगली विवेचना संख्या १६ में देखो। वहाँ पाण्डवों के वन तथा अज्ञात वास के समय की समाप्ति ज्येष्ठ की कृष्ण पक्ष की द्वितीया को सिद्ध की हुई है। जिस तिथि को तेरह वर्ष पूरे हुए उसी तिथि को पिछले सारे वर्ष भी पूरे हुए थे। अतः ग्यारह वर्ष पूरे होने पर जब पाण्डव द्वैतवन में आये तब ज्येष्ठ मास की कृष्ण पक्ष की द्वितीया के पश्चात् कोई दिन था। इसके पश्चात् पाण्डव कार्तिक की पूर्णिमा तक द्वैतवन में रुके रहे। जैसे–

विमलाकाशनक्षत्रा, शरत् तेषां शिवाभवत्। मृगद्विजसमाकीर्णा, पाण्डवानां महात्मनाम्।।
तमिस्त्राभ्युदये तस्मिन्, धौम्येन सह पाण्डवाः। सूतैः पौरोगवैश्चैव, काम्यकं प्रययुर्वनम् ।।

वन पर्व १८२/११,१८

अर्थात् उन महात्मा पाण्डवों के लिये वन में मृगों और पक्षियों से भरी हुई तथा निर्मल आकाश में नक्षत्रों से युक्त शरद् ऋतु बहुत सुख देने वाली थी। फिर कृष्णपक्ष का उदय होने पर पाण्डव लोग धौम्य मुनि, सारथीगण और रसोइयों के साथ काम्यक वन की तरफ चल दिये।

इस प्रकार ज्येष्ठ के प्रारम्भ से लेकर शरद् ऋतु के अन्त तक, छह मास तक पाण्डव द्वैत वन में रहे। इतने छोटे समय में दुर्योधन की घोष यात्रा, कर्ण की दिग्विजय और दुर्योधन का यज्ञ, ये तीनों कार्य नहीं किये जा सकते। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि इस समयावधि में वर्षा ऋतु भी सम्मिलित है। पहले वर्षा ऋतु में तो कोई यात्रा करते ही नहीं थे। अतः यह समझा जाना चाहिये कि केवल घोष यात्रा की घटना ही सत्य है, शेष दोनों घटनाएँ कर्ण के महत्त्व को बढ़ाने के लिये प्रक्षेप की हुई हैं।

(१६) पाण्डवों के तेरहवें अज्ञात वास के वर्ष की समाप्ति कब?

पाण्डवों के १३ वर्ष कब पूरे हुए यह जानने के लिये निम्नलिखित वर्णन पढ़िये–

आदातुं गाः सुशर्माथ, कृष्णपक्षस्य सप्तमीम्। अपरे दिवसे सर्वे, राजन् संभूय कौरवाः।
अष्टम्यां ते न्यगृण्हन्त, गोकुलानि सहस्रशः।। विराट् पर्व ३०/२६,२७

अर्थात् कृष्ण पक्ष की सप्तमी को सुशर्मा ने राजा विराट् की गायों का अपहरण करने के लिये उस पर चढ़ाई की। उससे दूसरे दिन अष्टमी को कौरवों ने भी विराट् पर आक्रमण करके उसकी हजारों गायों को पकड़ लिया। मतलब यह है कि कृष्णपक्ष की अष्टमी को कौरवों ने विराट् पर आक्रमण किया। यह अष्टमी कौन से मास की थी इसके लिये देखिये–

अदेशिकाः महारण्ये, ग्रीष्मे शत्रुवशं गताः।

अष्टमी को कौरवों का आक्रमण होने पर जब अर्जुन उन्हें रोकने के लिये युद्ध क्षेत्र में आया तब कर्ण उपर्युक्त पंक्ति को कहता है। अर्थात् हम गर्मी की ऋतु में, विदेश में, जंगल के अन्दर शत्रु के वश में आये हुये हैं। इससे यह स्पष्ट है कि कृष्ण पक्ष की वह अष्टमी ग्रीष्म ऋतु की अर्थात् ज्येष्ठ मास की पहली अष्टमी थी। उस दिन तक पाण्डवों के तेरह वर्ष पूरे हो चुके थे। क्योंकि तभी दुर्योधन के द्वारा पूछे जाने पर भीष्म पितामह ने गिनती करके सबको बताया –

एषामभ्यधिकाः मासाः, पंच च द्वादश क्षपाः। त्रयोदशानां वर्षाणाम्, इति मे वर्तते मतिः।।

अर्थात् इस प्रकार तेरह वर्षों के पूरे होने के पश्चात् भी पाण्डवों के पाँच मास बारह दिन और अधिक बीत चुके हैं। ऐसा मेरा विचार है।

भीष्म जी ने यह गणना चन्द्रमा के मासों के आधार पर की थी, जब कि पाण्डव अपने समय को सूर्य के मासों के आधार पर गिन रहे थे। चन्द्रमा के मास छोटे होते हैं, अतः ढाई वर्ष के पश्चात् एक अधिमास अर्थात् फालतू मास उसमें और जोड़ना पड़ता है। इस प्रकार सूर्य के तेरह वर्षों में चन्द्रमा के तेरह वर्ष पाँच मास और छह दिन बनते हैं। पाण्डवों को उस दिन अष्टमी तक सूर्य के आधार पर छह दिन अधिक हो गये थे। इसीलिये भीष्म जी ने उस दिन तेरह वर्ष पाँच मास और बारह दिन की गिनती की।

इस प्रकार पाण्डवों के तेरह वर्ष ज्येष्ठ की कृष्ण पक्ष की द्वितीया को पूरे हुए थे। उसी तिथि को पिछले सारे वर्ष भी पूरे हुए थे। उसी तिथि को उनके वनवास का प्रारम्भ भी हुआ था और उसी तिथि को द्यूत क्रीडा की समाप्ति भी हुई थी।

(१७) जयद्रथ के द्वारा द्रौपदी हरण

पाण्डव लोग अपने वनवास की अवधि में जब काम्यक वन में रह रहे थे तब उनके साथ घटित जयद्रथ के द्वारा द्रौपदी के हरण की घटना सामान्य रूप से तो स्वाभाविक -सी ही लगती है, पर अन्तर्निहित विसंगतियों और विरोधाभासों के कारण वह मान्यता की परिधि में नहीं आती। वे असंगतियाँ इस प्रकार हैं—

१- सबसे पहली बात तो यही है कि जयद्रथ द्रौपदी के लिये अपरिचित व्यक्ति नहीं था। वह दुर्योधन की बहन दुःशला का पति था। रिश्तेदार होने के कारण वह पाण्डवों के पास पहले कभी आया भी होगा और उसने तब द्रौपदी को देखा भी होगा। राजसूय यज्ञ में भी वह आया होगा। ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो अपनी उस सलज को जो अपने अनेक गुणों के कारण विश्रुत हो, न पहचाने? फिर भी जयद्रथ ने द्रौपदी को देख कर उसे पहचाना ही नहीं और उसका परिचय पूछने के लिये अपने साथी कोटिकास्य को भेजा, जब कि द्रौपदी ने स्पष्ट कर दिया कि वह तो जयद्रथ को पहले से जानती है। यह अस्वाभाविक बात है।

२- द्रौपदी ने कोटिकास्य को उत्तर देते हुए कहा कि मुझ पतिव्रता नारी को दूसरे पुरुषों से बात नहीं करनी चाहिये, पर इस समय यहाँ कोई पुरुष नहीं है, अतः मुझे उत्तर देना पड़ रहा है। द्रौपदी की यह बात असत्य थी, क्योंकि उनके पुरोहित धौम्य मुनि उस समय आश्रम में ही थे। फिर द्रौपदी ने असत्य क्यों बोला? और धौम्य मुनि को तुरन्त वहाँ क्यों नहीं बुला लिया?

३-जब कोटिकास्य ने जाकर जयद्रथ को समझा दिया कि यह युधिष्ठिर की पत्नी है, तब भी उसने द्रौपदी के अपहरण की चेष्टा क्यों की? क्या वह पाण्डवों के पराक्रम को नहीं जानता था? जबकि अभी थोड़े ही दिन पहले घोष यात्रा की घटना हुई थी। जयद्रथ को इसका अवश्य ज्ञान होगा कि किस प्रकार कर्ण के भाग जाने पर अर्जुन ने दुर्योधन को गन्धर्वों की पकड़ से छुड़ाया था? फिर जयद्रथ ने अपने आपको पाण्डवों से अधिक बलवान् मानने की गलती कैसे कर दी? यह एक बड़ी असंगति है। नशे में बेहोश व्यक्ति ही ऐसा कर सकता है।

४-अकेले पाण्डव ही नहीं पाण्डवों के सहायक श्री कृष्ण, बलराम, द्रुपद आदि दूसरे राजा लोग भी थे, यह द्रौपदी ने जयद्रथ को बताया था। फिर भी, जयद्रथ ने पाण्डवों के साथ उन सभी राजाओं की भी अवहेलना कर जो द्रौपदी का अपहरण किया, वह क्या समझ कर किया? क्या उसे भविष्य की घटनाओं की पहचान नहीं थी?

५-अब जरा द्रौपदी के विषय में भी विचार कीजिये। जब जयद्रथ उसे जबरदस्ती पकड़ने लगा तब पहले तो उसने उसे धक्का दिया, पर जब उसने उसे पुनः घसीटना शुरु किया तो द्रौपदी धौम्य मुनि को प्रणाम कर चुपचाप उसके रथ में बैठ गयी। कोई चीख पुकार या छूटने का प्रयत्न नहीं। जरा इस घटना का मिलान रामायण में सीता हरण से कीजिये जो अन्त तक शोर मचाती हुई और रास्ते की पहचान के लिये अपने आभूषणों और वस्त्रों को गिराती हुई गयी थी। फिर जब पाण्डव जयद्रथ का

पीछा करते हुए उसके समीप पहुँचे तब द्रौपदी बड़े आराम से उनका परिचय जयद्रथ को देती है। अपहृत किये जाने पर भी उसकी बातों में कोई परेशानी नहीं झलकती। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसने जयद्रथ को मौन स्वीकृति दे दी थी कि यदि पाण्डव उसे नहीं जीत सकेंगे तो वह उसके समक्ष समर्पण कर देगी। जबकि उधर रामायण में सीता जी को तो यह आशा ही नहीं थी कि राम उसका पता पा लेंगे, फिर भी उसने समर्पण नहीं किया और आत्महत्या के लिये तैयार हो गयी। द्रौपदी की इन बातों में बनावटीपन -सा लगता है कि जैसे ये बाद में बना कर मिलायी गयी हैं।

६-जयद्रथ ने द्रौपदी से पाण्डवों का परिचय क्यों पूछा? क्या वह अपने सालों को नहीं पहचानता था?

७- जयद्रथ अपने आपको पाण्डवों से अधिक शक्तिशाली समझता था, जिसके कारण उसने जानते हुए भी द्रौपदी का अपहरण किया। फिर, पाण्डवों के सामने आने पर उसने थोड़ी देर भी उनका सामना क्यों नहीं किया? तुरन्त ही द्रौपदी को छोड़ कर क्यों भाग गया? यदि वह इतना कमजोर था तो उसने ऐसा दुःसाहस क्यों किया?

८-इसके अतिरिक्त इसमें वरदान और अभिशाप की घटना भी है कि जब पाण्डवों से अपमानित होकर और जीवनदान प्राप्त कर जयद्रथ वापिस गया तो उसने तपस्या कर शिव से वर प्राप्त किया। वरदान और अभिशाप के सिद्धान्त का पहले ही खण्डन किया जा चुका है। इस प्रकार ऊपर विवेचित असंगत बातों के आधार पर यह अपहरण की कहानी बनावटी और प्रक्षिप्त लगती है, सत्यता की कोटि में नहीं आती।

(१८) युधिष्ठिर के द्वारा सूर्य की उपासना कर उससे अक्षय पात्र की प्राप्ति।

(१९) युधिष्ठिर के द्वारा वनवास के समय तीर्थों की यात्रा।

(२०) हनुमान् जी की भीम से भेंट।

(२१) भीम के द्वारा जटासुर और मणिमान् का वध।

(२२) अर्जुन के द्वारा निवात कवचों,पौलोम तथा कालकेयों का संहार।

(२३) सर्प रूप धारी नहुष के द्वारा भीम का पकड़ा जाना और उससे मुक्ति।

(२४) दुर्वासा मुनि का आगमन।

(२५) सावित्री और सत्यवान की कथा।

(२६) युधिष्ठिर और यक्ष संवाद।

महाभारत के वन पर्व में वर्णित उपर्युक्त सारी कथाएँ, इनके अन्दर सृष्टिक्रम के विरुद्ध तथा वरदान और अभिशाप की असम्भव बातों की विद्यमानता के कारण प्रक्षिप्त मानी जानी चाहियें।

(२७) संजय को दिव्य दृष्टि

जब महाभारत का युद्ध आरम्भ होने को था, दोनों तरफ की सेनायें एक दूसरे के विरुद्ध मोर्चा जमाये कुरुक्षेत्र के मैदान में तैयार थीं, तब व्यास जी धृतराष्ट्र के पास, जो कि अपने अन्धेपन और वृद्धावस्था के कारण कुरुक्षेत्र में नहीं जा सकते थे, अतः हस्तिनापुर में ही थे, पहुँचे और उनसे कहा कि यदि तुम युद्धक्षेत्र का दृश्य देखना चाहो तो मैं तुम्हें दिव्य -दृष्टि प्रदान कर देता हूँ, जिससे तुम यहीं से सारा दृश्य देख सकोगे। तब धृतराष्ट्र ने कहा कि मैं अपने परिवार वालों को मरते हुए नहीं देखना चाहता, पर मैं युद्ध का वृत्तान्त अवश्य जानना चाहता हूँ। तब व्यास जी ने संजय को, जो उनकी सेवा के लिये उनके पास ही रहा करता था,वह दिव्य दृष्टि दी, जिससे वह युद्ध की सारी घटनाओं को प्रत्यक्ष देख कर उन्हें धृतराष्ट्र को सुनाया करे। साथ ही व्यास जी ने संजय को, सब कुछ जान लेने, अर्थात् मन में सोची हुई बातों को भी जान लेने की शक्ति दी और कहा कि तुम्हारे शरीर पर किसी भी शस्त्र का प्रहार प्रभावी नहीं होगा और तुम नहीं मर सकोगे। भीष्म पर्व में दी हुई इस कथा को निम्न आधारों पर प्रक्षिप्त मानना चाहिये—

१-सर्वप्रथम तो व्यास जी ने संजय को जो शक्तियाँ दीं, वे ही परस्पर विरोधी हैं। जब संजय को हस्तिनापुर में ही रहते हुए युद्ध का सारा वृत्तान्त धृतराष्ट्र को सुनाना था तो फिर उसे शस्त्र प्रहार के द्वारा शरीर को चोट न पहुँचने और मर न सकने की सामर्थ्य देने की क्या आवश्यकता थी? जो व्यास जी ने उसे प्रदान की।

२-शक्ति प्रदान की यह घटना वरदान और अभिशाप के सिद्धान्त पर आधारित और प्रकृति के नियमों के विपरीत होने के कारण भी अविश्वसनीय और इसलिये प्रक्षिप्त है।

३-यदि संजय दिव्य -दृष्टि की सहायता से युद्ध का वृत्तान्त धृतराष्ट्र को सुनाता तो जैसे आजकल खेलों की कमैण्ट्री सुनाते हैं वैसी शैली में और वर्तमान काल में सुनाता, भूत काल में उसने क्यों वर्णन किया?

४-महाभारत में ऐसे अनेक वर्णन हैं जिनसे प्रतीत होता है कि संजय दिव्य -दृष्टि के द्वारा नहीं बल्कि रणक्षेत्र में विद्यमान रह कर समाचार एकत्र करता था और जब उचित होता था तब वह धृतराष्ट्र के समीप जाकर उन्हें सुनाता था। जैसे कि भीष्म पितामह के पतन का समाचार उसने दसवें दिन युद्धक्षेत्र से आकर धृतराष्ट्र को सुनाया—

अथ गावल्गणिर्विद्वान्, संयुगादेत्य भारतं। ध्यायतेर्धृतराष्ट्राय, सहसोत्पत्य दुःखितः।
आचष्टे निहतं भीष्मम्, भरतानां पितामहम्।। भीष्मपर्व १३/१,२

अर्थात् एक दिन गवल्गण के पुत्र विद्वान् संजय ने युद्धभूमि से लौट कर, चिन्ता में मग्न धृतराष्ट्र के पास सहसा जा कर, अत्यन्त दुःखी होकर, भरत वंशियों के पितामह,भरत वंशी भीष्म के युद्धभूमि में गिरने का समाचार बताया।

इसी प्रकार द्रोणाचार्य और कर्ण आदि के वध का समाचार भी उसने युद्धभूमि से लौट कर ही धृतराष्ट्र को सुनाया। जब युद्ध समाप्ति पर था तब तो उसने युद्ध में भाग भी लिया, तब सात्यकि ने उसे पकड़ लिया और मारना चाहा पर तभी व्यास जी ने आकर संजय को छुड़ा दिया। यह सारे वर्णन दिव्य -दृष्टि का विरोध करते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि दिव्य -दृष्टि वाली घटना प्रक्षिप्त है।

वास्तव में संजय को यह जिम्मेदारी सौंपी गयी थी कि वह युद्ध में घटने वाली घटनाओं को विभिन्न साधनों से एकत्र करे और उनका वृत्तान्त धृतराष्ट्र को जा कर सुनाये। उसको दोनों पक्षों की सेनाओं के द्वारा उसी प्रकार अभयदान मिला हुआ था,जैसे आजकल रैड क्रास वालों को युद्ध के मैदान में मिला हुआ होता है, वे घायलों को उठाने के लिये युद्धक्षेत्र में जा सकते हैं। कोई भी उन पर गोली नहीं चलाता। समाचार एकत्र करने के लिये केवल संजय अकेला नहीं होगा, अनेक सहायक भी उसके साथ होंगे, जो इतने बड़े युद्धक्षेत्र की सब तरफ की घटनाओं का व्यौरा एकत्र करते होंगे तथा जब संजय हस्तिनापुर जाकर, धृतराष्ट्र को समाचार सुनाता होगा तब भी उसकी अनुपस्थिति में वे समाचारों को एकत्र करते होंगे।

(२८) महाभारत और गीता

वर्तमान समय में गीता महाभारत के एक भाग के रूप में प्रसिद्ध है। महाभारत के इस गीता नाम के भाग की प्रसिद्धि और प्रचार संसार में महाभारत से भी अधिक है। विदेशी भाषाओं में भी इसके अनेक अनुवाद हुए हैं और अनेक विदेशी विद्वान् भी इसकी प्रशंसा करते हुए सुने गये हैं। गीता की यह प्रसिद्धि निश्चय ही भारतवर्ष के लिये गर्व की बात है। गीता महाभारत का एक भाग है और महाभारत में लोगों ने खूब प्रक्षेप किये हैं, अतः गीता में भी उसके महाभारत का अंश होने के कारण प्रक्षेपों की खूब भरमार है। प्रायः सभी परस्पर विपरीत विचारधारा वाले विद्वानों ने गीता के भाष्य किये हैं और गीता के अर्थों को अपने -अपने मतानुसार सिद्ध करने की चेष्टा की है तथा प्रक्षेपों के द्वारा गीता की धारा को अपने पक्ष में मोड़ने का प्रयत्न किया है। इसीलिये गीता इस समय किसी एक निश्चित सिद्धान्त की पुस्तक न हो कर विभिन्न विरोधी विचारों का संग्रह हो गयी है।

उदाहरण के लिये देखिये गीता में जहाँ वेदों की प्रशंसा भी है जैसे--

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति, विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।

अर्थात् वेद के जानने वाले जिसे अक्षर कहते हैं, और जिसमें राग - रहित योगी लोग प्रवेश करते हैं, वहाँ वेदों की निन्दा भी है। जैसे-- *त्रैगुण्य विषयाः वेदाः, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।* अर्थात् हे अर्जुन ! वेदों में तो त्रिगुणात्मक सृष्टि का विषय वर्णित है पर तू इन तीनों गुणों से ऊपर उठ।

इसी प्रकार ईश्वर को एक स्थान पर जीवात्मा से पृथक् बताया है--*ईश्वरः सर्व भूतानां, हृदेशेर्जुन तिष्ठति।*- अर्थात् हे अर्जुन ! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में विद्यमान है तो दूसरे स्थान पर अद्वैतवाद का समर्थन किया है— *ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः सनातनः।*- अर्थात् इस प्राणिलोक में जीवात्मा बना हुआ यह मेरा ही अंश है। एक जगह कहा गया है,- *तमेव शरणं गच्छ, सर्वभावेन भारत*- तो दूसरी जगह कहा गया है कि- *सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।*

गीता में इन परस्पर विरोधी बातों को देख कर लोगों के गीता के विषय में भिन्न -भिन्न विचार हैं। अधिकांश लोग तो श्रद्धालु लोग हैं, जो गीता की सारी विपरीत बातों को बिना उनमें छेड़ -छाड़ किये ज्यों का त्यों मानने के हिमायती हैं। उनमें बहुसंख्यक तो वे अन्ध -भक्त हैं जो गीता का सम्पूर्ण रूप में क्या अर्थ है, इस बात की माथापच्ची न कर अपने मतलब की बात उसमें से ले लेते हैं, या गीता के केवल पाठ करने और उसे अपने पास रखने में ही अपने आपको मोक्ष का अधिकारी समझ लेते हैं। दूसरे, जो अल्पसंख्यक विचारशील लोग हैं, वे गीता के श्लोकों का अर्थ खींचतान कर एक अभिप्राय के अनुसार लगाने की कोशिश करते हैं। जैसे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, पं० तुलसी राम स्वामी तथा स्वामी समर्पणानन्द कृत गीता व्याख्याएँ। कुछ लोग इस पक्ष के हैं कि गीता सम्पूर्णरूप से प्रक्षिप्त है, अतः इसका पूरा बहिष्कार करना चाहिये, क्योंकि इसमें परस्पर विरोधी विचार होने के कारण यह लोगों में भ्रम का विस्तार करती है। जैसे पंडित राजेन्द्र, चक्खन लाल वेदार्थी तथा डा० श्रीराम आर्य आदि। कुछ प्रसिद्ध लोग ऐसे भी हैं जो न केवल गीता अपितु रामायण और महाभारत सबको वास्तविक घटना न मान कर कल्पना की उड़ान समझते हैं,पर फिर भी गीता के भक्त हैं। महात्मा गाँधी इसी कोटि के हैं। कुछ विद्वान् इस मत के हैं कि गीता में प्रक्षिप्तांश होने पर भी यह सम्पूर्ण रूप में त्याज्य नहीं है। इसके प्रक्षिप्तांशों को निकाल कर इसे ग्राह्य बनाया जा सकता है। स्वामी आत्मानन्द जी ने इसी आधार पर गीता का संशोधन अपनी वैदिक गीता में किया है।

गीता के विषय में मेरा अपना विचार सर्वप्रथम तो यह है कि गीता महाभारत का भाग नहीं है। इसे सम्पूर्ण रूप से महाभारत में प्रक्षेप किया गया है। इस विचार के निम्नलिखित आधार हैं--

१-गीता की भाषा महाभारत की भाषा की अपेक्षा काफी सरल है। भाषा विभिन्नता के कारण गीता महाभारत का भाग नहीं है।

२-महाभारत में गीता को छोड़ कर अन्यत्र सब जगह संजय ने कौरवों के लिये *धार्तराष्ट्र* शब्द का प्रयोग नहीं किया है केवल गीता में ही यह किया गया है। धृतराष्ट्र के सामने ही उसके पुत्रों के लिये *धार्तराष्ट्र* (अर्थात् धृतराष्ट्र के पुत्र) शब्द का प्रयोग प्रयोक्ता की भाषा विषयक अज्ञानता को बता रहा है, जब कि संजय ऐसा अज्ञानी नहीं होगा। इस *धार्तराष्ट्र* शब्द से यह सूचित हो रहा है कि गीता का निर्माण जिस व्यक्ति ने किया उसने पहले महाभारत के युद्ध का प्रसंग लेकर गीता की रचना एक स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में की। उसमें धृतराष्ट्र और संजय संवाद नहीं होगा, इसीलिये उसने *धार्तराष्ट्र* शब्द का प्रयोग किया, किन्तु पुस्तक रचना के पश्चात् उसने धृतराष्ट्र और संजय संवाद के सहारे उसे महाभारत में प्रक्षेप कर, महाभारत का अंश बना दिया,पर *धार्तराष्ट्र* शब्द की जगह *तव पुत्र* शब्द की स्थापना करना भूल गया। अलग पुस्तक के रूप में *धार्तराष्ट्र* शब्द का प्रयोग ठीक है, पर महाभारत के अंश के रूप में ठीक नहीं है।

३-गीता में स्वर्ग, नरक, अवतारवाद, पिण्डोदक क्रिया आदि अनेक वेद विरुद्ध बातों का वर्णन है। महाभारत के समय में इन बातों का प्रचलन बिल्कुल भी नहीं था। सारी महाभारत में श्रीकृष्ण ने कहीं भी अपने आपको भगवान् का अवतार नहीं

बताया। पर गीता में बताया है। इन बातों का प्रचार भारत में महाभारत के पश्चात् पुराणों की रचना के उपरान्त हुआ था। अतः गीता एक प्रक्षिप्त पुस्तक है।

४-गीता को पढ़ने से प्रतीत होता है कि गीताकार का उद्देश्य अर्जुन को युद्ध के लिये तैयार करना कम बल्कि मोक्ष की प्राप्ति के साधनों को बताना अधिक है। युद्ध के लिये प्रेरणा तो प्रारम्भ के कुछ अध्यायों में ही दी गयी है। ऐसा लगता है कि उपदेश युद्ध के मैदान में नहीं बल्कि किसी शान्त एकान्त आश्रम में बैठ कर दिया जा रहा है, जहाँ समय के कम होने की कोई समस्या नहीं है। यदि श्री कृष्ण अर्जुन को युद्ध के लिये प्रेरित करने को उपदेश देते तो उस समय जबकि युद्ध प्रारम्भ होने वाला था, समय की अत्यन्त कमी थी, वे मोक्ष सम्बन्धी अप्रासंगिक बातों का उपदेश क्यों करते? इससे भी यही प्रतीत होता है कि गीता की रचना पहले अध्यात्म की शिक्षा देने के लिये एक स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में हुई ,पर पीछे उसे महाभारत में प्रक्षेप कर दिया गया।

५- गीता के प्रारम्भ में अर्जुन का श्रीकृष्ण जी से यह कहना कि मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा करो। मैं यह जानना चाहता हूँ कि मुझे किन -किन वीरों से युद्ध करना है,गीता के प्रक्षिप्त होने की घोषणा कर रहा है। क्या अर्जुन को इतना भी पता नहीं था कि शत्रु -पक्ष के कौन कौन से वीर उससे युद्ध करने को उद्यत हैं? जिस अर्जुन ने एक दिन पहले ही उलूक को संदेश देते हुए शत्रु -पक्ष के प्रमुख वीरों से युद्ध करने और युद्ध में उन्हें विनष्ट करने की चेतावनी दी थी, वह एक दिन पश्चात् ही यह कैसे कह सकता है कि मैं अपने साथ लड़ने वाले वीरों के विषय में जानना चाहता हूँ।

६- गीता के दूसरे अध्याय में अर्जुन श्रीकृष्ण जी से यह कहता है—

न चैतद्विद्मः, कतरन्नो गरीयः, यद् वा जयेम, यदि वा नो जयेयुः।

अर्थात् हम यह भी नहीं जानते कि हम में से(दोनों पक्षों में से) कौन बलवान् है? हम जीतेंगे या वे हमें जीत लेंगे? अर्जुन का उपर्युक्त कथन उसके पहले के कथनों और आचरणों से बिल्कुल विपरीत है। जिस अर्जुन ने विराट् नगर में अकेले ही सारे कौरवों से युद्ध किया और भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य को भी जीत लिया, जिस अर्जुन ने संजय को कौरव सेना में सुनाने के लिये यह संदेश दिया —

पितामहं शान्तनवं, धृतराष्ट्रं च संजय। द्रोणं कृपं च कर्णं च, महाराजं च बाल्हिकम्।।
न चेत् प्रयच्छध्वममित्रघातिनो, युधिष्ठिरस्य समभीप्सितं स्वकम्।
नयामि वः साश्वपदातिकुंजरान्, दिशं पितृणामशिवां शितैः शरैः।।

अर्थात् हे संजय! शान्तनु पुत्र भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और महाराज बाल्हीक को, उनके मन्त्रियों समेत मेरा यह वचन सुना देना कि या तो वे शत्रुघाती महाराज युधिष्ठिर को उनका अपना अभीष्ट भाग लौटवा दें, नहीं तो मैं अपने तीखे बाणों के द्वारा उन्हें घोड़े,पैदल तथा हाथियों के साथ यमलोक की अमंगलमयी दिशा में भेज दूँगा। जिस अर्जुन ने एक दिन पहले ही उलूक को संदेश देते हुए कहा था —

प्रभावात् वासुदेवस्य, भवतां च प्रयत्नतः। समग्रं पार्थिवं क्षत्रम्, सर्वं न गणाम्यहम्।।
श्वो भूते कत्थितस्यास्य, प्रतिवाक्यं चमूमुखे। गाण्डीवेनाभिधास्यामि, क्लीवाः हि वचनोत्तराः।।

अर्थात् वासुदेव के प्रभाव और आप लोगों के प्रयत्न से मैं इस समस्त भूमण्डल के सम्पूर्ण क्षत्रियों को भी कुछ नहीं गिनता हूँ। कल सवेरे सेना के मुहाने पर उसकी इन शेखीभरी बातों का उत्तर गाण्डीव धनुष के द्वारा दे दूँगा, क्योंकि केवल बातों से उत्तर देने वाले नपुंसक होते हैं। उसी अर्जुन का अगले दिन यह कहना कि पता नहीं हम उन्हें जीत लेंगे या वे हमें जीत लेंगे? हममे से पता नहीं कौन श्रेष्ठ है? कितना अटपटा लगता है; इसीलिये गीता प्रक्षिप्त है।

७-गीता के प्रारम्भ में अर्जुन के शस्त्र रखने का तो वर्णन है,पर श्रीकृष्ण के उपदेश के पश्चात् पुनः शस्त्र धारण करने का जिक्र नहीं है, यह बात भी गीता की वास्तविकता में संदेह उत्पन्न करती है।

८-गीता के प्रारम्भ में यह बताया गया है कि सभी प्रमुख वीरों ने अपने शंख बजाये और फिर कहा गया है कि प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते अर्थात् हथियारों का शत्रुओं पर गिराना आरम्भ होने पर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से सेनाओं के बीच में अपना रथ खड़ा करने को कहा और तत्पश्चात् मोह होने पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। यह सारा प्रकरण अस्वाभाविक है और बनावटीपन का द्योतक है। हथियारों का चलना आरम्भ होने पर, सेनाओं के बीच में रथ को खड़ा कर सात सौ श्लोकों का उपदेश कैसे दिया जा सकता है? इसके पश्चात् युधिष्ठिर भीष्मादि को प्रणाम करने भी जाते हैं। यह सब कैसे हो गया? यह गीता को प्रक्षेप करने के कारण है। यदि गीता को निकाल दें तो कोई अस्वाभाविकता नहीं रह जाती है।

९-गीता के प्रारम्भ में धृतराष्ट्र संजय से पूछते हैं—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे, समवेताः युयुत्सवः। मामकाः पाण्डवाश्चैव, किमकुर्वत संजय।।

अर्थात् हे संजय! कुरुक्षेत्र के धर्मक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से एकत्र हुए मेरे पुत्रों और पाण्डवों ने क्या किया? यह प्रश्न केवल गीता को, जो एक स्वतन्त्र पुस्तक थी, महाभारत में जोड़ने के लिये किया गया एक पुनरुक्त प्रश्न है, अन्यथा इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। इससे पहले जब संजय ने धृतराष्ट्र को भीष्म के गिरने का समाचार सुनाया था, तभी धृतराष्ट्र संजय से पूछ चुके थे कि बताओ भीष्म का पतन कैसे हुआ? पुनः गीता से एक अध्याय पहले भी २४वें अध्याय में धृतराष्ट्र ने प्रश्न पूछा था— **के पूर्वं प्राहरंस्तत्र, युद्धे हृदयकम्पने। मामकाः पाण्डवेयाः वा, तन्मामाचक्ष्व संजय।।**

अर्थात् हे संजय उस हृदय को कँपाने वाले युद्ध में किन्होंने पहले प्रहार किया? मेरे पुत्रों ने या पाण्डवों ने ? यह मुझे बताओ। ऐसी स्थिति में पुनः तीसरी बार गीता में इसी तरह के प्रश्न को पूछना, गीता के प्रक्षेप की पुष्टि कर रहा है।

१०-गीता के उपदेश का मुख्य आधार अर्जुन का मोह ग्रस्त होना है, किन्तु जाँच करने से पता लगता है कि अर्जुन को मोह हुआ ही नहीं था।

क- जिस अर्जुन ने वन के लिये जाते हुए कर्ण और उसके साथियों को मारने की प्रतिज्ञा की थी, जिस अर्जुन ने विराट् नगर में अकेले ही बड़े उत्साह के साथ भीष्म, द्रोण और कर्ण के साथ युद्ध करके उन्हें हराया, जिस अर्जुन ने संजय को और उलूक को बड़ा ओजस्वी संदेश दिया, जो अर्जुन पाण्डवों की समग्र शक्ति का सहारा था, जिस अर्जुन ने स्वयं युधिष्ठिर के मोह -ग्रस्त होने पर उसे समझाया, वही अर्जुन कैसे अचानक युद्धभूमि में पहुँच पर मोह -ग्रस्त हो गया? यह एक बड़ा कमजोर और सन्देह युक्त आधार है, जिस पर गीता का ढाँचा खड़ा किया गया है।

ख- यह कैसे सम्भव है कि अर्जुन के मोह और श्रीकृष्ण के उपदेश का संजय को तो पता लग गया पर युधिष्ठिर, भीम आदि पाण्डव पक्ष के किसी भी योद्धा को उसका पता न लगा? क्या उन्होंने देखा नहीं कि क्यों अर्जुन हथियार डाले बैठा है? और श्री कृष्ण उसें कुछ समझा रहे हैं। यदि उन्हें पता था तो उन्होंने इस विषय में विशेष जानकारी के लिये बाद में श्रीकृष्ण या अर्जुन से पूछा क्यों नहीं? यहाँ तक कि धृतराष्ट्र भी चुपचाप सारी गीता का उपदेश सुनते रहे। उन्होंने बीच में कुछ भी नहीं पूछा,जब कि शेष महाभारत में ऐसा नहीं है।

ग-महाभारत के युद्ध में आगे अर्जुन ने जब कई जगह शिथिलता दिखायी जैसे अपने पुत्र इरावान की मृत्यु पर, भीष्म के प्रति युद्ध करते हुए,आदि तब श्रीकृष्ण स्वयं तो दो बार, एक बार चक्र लेकर और एक बार चाबुक लेकर, भीष्म की तरफ दौड़े पर उन्होंने अर्जुन को गीता के उपदेश की याद नहीं दिलायी कि मैंने अभी तो तुझे गीता का उपदेश देकर समझाया था, फिर क्यों शिथिल हो रहा है? दिलाते कैसे? गीता का उपदेश दिया ही नहीं था। वह तो बाद में प्रक्षेप किया हुआ है।

घ- अर्जुन सत्य प्रतिज्ञ था। उसने कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा की हुई थी। इसी प्रकार माता कुन्ती ने भी उसे युद्ध करने की आज्ञा दी हुई थी। फिर जब अर्जुन को मोह हुआ, तब श्रीकृष्ण ने उसे अपनी प्रतिज्ञा के पालन और माता की आज्ञा के निर्वाह की याद क्यों नहीं दिलायी? क्योंकि अर्जुन को मोह ही नहीं हुआ था, इसलिये।

इस प्रकार इस विवेचन से यह सिद्ध है कि गीता व्यास जी द्वारा निर्मित महाभारत का भाग नहीं है। इसका निर्माण किसी अन्य लेखक ने स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में किया और बाद में इसे महाभारत में प्रक्षेप कर दिया।

गीता को पूर्णतया प्रक्षिप्त मानने पर भी मेरा विचार उन लोगों से भिन्न है,. जो गीता को पूरी तरह से त्यागने या बहिष्कार करने की बात कहते हैं। गीता का प्रक्षेप जब महाभारत में किया गया, तब इसलिये किया गया ताकि उसका महाभारत के सहारे प्रचार हो जाये,पर आजकल गीता को महाभारत का भाग माना जाने पर भी उसकी ख्याति और प्रसार महाभारत से अधिक है। विदेशी भाषाओं में भी उसके अनुवाद हो चुके हैं और अनेक गैर हिन्दू लोग भी गीता को एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक समझते हैं। सरकारी विभागों और अदालतों में गीता के ही माध्यम से शपथ दिलायी जाती है। यदि प्रकाशन संख्या के हिसाब से देखें तो सारे संसार में बाइबल के पश्चात् गीता की ही प्रकाशन संख्या सर्वाधिक मिलेगी। ऐसी स्थिति में यदि यह कहा जाये कि गीता क्योंकि महाभारत का भाग नहीं है, उसमें परस्पर विपरीत विचार हैं, इसलिये उसका पूरी तरह से त्याग कर देना चाहिये, तो कोई व्यक्ति इस बात को नहीं मानेगा और कहने वालों के लिये उनका यह कथन अरण्यरोदन ही सिद्ध होगा। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि गीता में से वेद विरुद्ध बातों को निकाल कर उसका एक विशुद्ध वैदिक रूप तैयार किया जाये और उसे वर्तमान गीता के स्थान पर प्रचारित करने का प्रयत्न किया जाये।

मेरा अपना विचार है कि जिस अज्ञात लेखक ने गीता की रचना की उसने भी वेद के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये ही, सरल संस्कृत में, आसान शैली में अध्यात्मवाद को समझाने के लिये ही, महाभारत के युद्ध का प्रसंग लेकर गीता की रचना की होगी। पर उस समय देश में प्रसिद्ध पुस्तकों में प्रक्षेप करने की बाढ़-सी आयी हुई थी, प्रक्षेप करने का कार्य वेद विरुद्ध होने पर भी वह लेखक उस बाढ़ में बह गया और प्रसिद्धि के लोभ में उसने गीता को महाभारत में प्रक्षेप करने का अवैदिक कार्य कर दिया। गीता के महाभारत में प्रक्षेप होने के पश्चात् भी क्योंकि महाभारत में प्रक्षेप होने का कार्य लम्बे समय तक चलता रहा, अतः उस प्रक्षेप की गयी गीता में भी और दूसरे प्रक्षेप अलग अलग मतावलम्बियों द्वारा अपने -अपने मत के पोषण के लिये किये जाते रहे। फलतः वह गीता, जो अपने प्रक्षेप के समय वैदिक विचारों की ही समर्थक थी, अब अनेक परस्पर विपरीत विचारों का संग्रह बन गयी है। अतः कृष्ण द्वारा गीता का उपदेश देने की घटना ऐतिहासिक नहीं है और गीता महाभारत के युद्ध का प्रसंग लेकर निर्मित एक स्वतन्त्र रचना है, जैसे भवभूति का उत्तररामचरित्र आदि। यह मानते हुए यदि वैदिक गीता के रूप में संशोधित गीता का अध्ययन किया जाये, तो कर्म-योग और अध्यात्म को समझाने के लिये, सामान्य लोगों के लिये, वह एक बड़ी सुन्दर और सरल पुस्तक सिद्ध होगी। हर एक व्यक्ति, जो मोक्ष मार्ग को जानना चाहता है, दर्शनों और उपनिषदों का अध्ययन नहीं कर सकता, पर वैदिक गीता का अध्ययन कर अपनी जिज्ञासा शान्त कर सकता है।

इस उपर्युक्त दिशा में स्वर्गीय श्री आत्मानन्द जी ने बहुत सुन्दर प्रयास किया है। उनकी वैदिकगीता आर्ष कन्या गुरुकुल, नरेला, दिल्ली तथा गुरुकुल झज्झर से प्रकाशित हुई है। गीता का संशोधन करना कोई सरल कार्य नहीं है। गीता का संशोधन वही कर सकता है, जिसने उपनिषदों और दर्शनों का गहन अध्ययन किया हो। स्वामी आत्मानन्द जी ऐसे ही विद्वान् थे। उन्होंने अपनी विद्वत्ता के साथ कठोर परिश्रम करके गीता में से वेद विरुद्ध बातों को अलग किया है और सात सौ श्लोकों में से शेष बचे हुए,तीन सौ बासठ श्लोकों को वैदिक गीता के नाम से प्रकाशित कराया है। उसमें उन्होंने उन श्लोकों को प्रक्षिप्त मानने के कारण भी बताये हैं तथा गीता के विषय में अन्य जानकारी भी विस्तार से दी है। आत्मानन्द जी ने गीता को पूर्ण रूप से प्रक्षिप्त एक स्वतन्त्र पुस्तक न मान कर महाभारत का ही भाग माना है।

श्री आत्मानन्द जी ने अपनी वैदिक गीता में जिन श्लोकों को प्रक्षिप्त माना है, उनकी संक्षिप्त सूची निम्नलिखित है—

अध्याय	श्लोक संख्या	कुल संख्या,	कारण
२-	श्लोक नं २४	१	पुनरुक्ति
	श्लोक नं ४५, ४६	२	प्रकरण विरुद्ध और गीताकार के मत के अनुकूल नहीं।

	श्लोक नं ६०, ६१	२	प्रसंग विरोध और पुनरुक्ति।
	श्लोक नं ६७, ६८, ६९	३	प्रसंग विरोध।
३-	श्लोक नं ३०, ३१, ३२	३	प्रसंग विरोध।
४-	श्लोक नं १ से १५ तक।	१५	प्रसंग विरोध।
	श्लोक नं २४	१	प्रसंग विरोध।
	श्लोक नं ३४,३५,३६,३७	४	प्रसंग विरोध।
५-	श्लोक नं १३ से अन्त तक।	१७	प्रसंग विरोध।
६-	श्लोक नं १४ से २३	१०	प्रसंग विरोध।
	श्लोक नं २७	१	पुनरुक्ति।
	श्लोक नं ३०,३१ ४७	३	प्रसंग विरोध।
७-	सारा अध्याय।	३०	प्रसंग विरोध।
८-	श्लोक नं १ से ७, १२ से २१, २३ से २७	२२	प्रसंग विरोध।
९-	श्लोक नं २ से ३४	३३	प्रसंग विरोध।
१०-	सारा अध्याय।	४२	प्रसंग विरोध।
११-	सारा अध्याय।	५५	प्रसंग विरोध।
१२-	सारा अध्याय।	२०	प्रसंग विरोध।
१३-	श्लोक नं १से ६	६	प्रसंग विरोध।
	श्लोक नं १० और १८ से अन्त तक।	१८	पुनरुक्ति।
१४-	श्लोक नं २,३,४,१९,२६,२७	६	श्री कृष्ण जी को भगवान् बताना।
१५-	सारा अध्याय।	२०	श्री कृष्ण जी को भगवान् बताना और प्रसंग विरोध।
१६-	श्लोक नं १८, १९ २०	३	श्री कृष्ण जी को भगवान् बताना और प्रसंग विरोध।
१७-	श्लोक नं ५, ६	२	प्रसंग विरोध।
१८-	श्लोक नं ५० से ५८	९	प्रसंग विरोध और पुनरुक्ति।
	श्लोक नं ६४ से ७१	८	श्री कृष्ण जी को भगवान् बताना।
	श्लोक नं ७६, ७७	२	पुनरुक्ति।
		३३८	

प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक अपनी स्वल्प बुद्धि से श्री आत्मानन्द जी की वैदिक गीता के अतिरिक्त निम्नलिखित उनत्तीस श्लोकों को और प्रक्षिप्त मानने की धृष्टता कर रहा है —

१-प्रथम अध्याय में से निम्न साढ़े पाँच श्लोक—

क- **स घोषो धार्तराष्ट्राणां........................महीपते।** १९।२०,१/२

कारण- इन दोनों में संजय के द्वारा धार्तराष्ट्र शब्द का प्रयोग किया गया है।

ख- **कैर्मयासह..........रण समुद्यमे।** २२ (उत्तरार्ध)

कारण- इसमें अर्जुन बेतुका प्रश्न पूछता है कि मुझे किन -किन से लड़ना है?

ग- **निमित्तानि...........केशव।** ३१ (पूर्वार्ध)

कारण- इसमें अशुभ शकुन का वर्णन है।

घ- संकरो नरकायैव............लुप्त पिण्डोदक क्रियाः। ४२
उत्सन्नकु.................भवतीत्यनुशुश्रुमः। ४४

कारण- इन श्लोकों में स्वर्ग नरक और पिण्डोदक क्रिया जैसी अवैदिक मान्यताओं का जिक्र है।

२- दूसरे अध्याय में निम्नलिखित चार श्लोक–

क- कुतस्त्वा.......................अकीर्तिकरमर्जुन।।२

कारण–इसमें भी स्वर्ग लोक का जिकर है।

ख- यामिमां..................विधीयते। ४२,४३,४४

कारण–इनमें वेद की निन्दा की गयी है और स्वर्ग शब्द का प्रयोग है।

३– तीसरे अध्याय में निम्नलिखित सात श्लोक–

क- न मे पार्थास्ति.............हन्यामिमाः प्रजाः। २२,२३,२४

कारण– इन तीनों श्लोकों में कृष्ण ने अपने आपको परमात्मा के रूप में बताया है।

ख- प्रकृतेःक्रियमाणानि...........निग्रहःकिंकरिष्यति? २७,२८,२९,३३

कारण–- इन चारों में आत्मा को करने वाला नहीं, बल्कि साक्षी रूप माना है। कार्य अन्तःकरण रूप जड़ प्रकृति से स्वय्यं होते रहते हैं। यह अवैदिक सिद्धान्त है।

४ -पाँचवें अध्याय में दो श्लोक– नैव किंचित् ....वर्तन्त इति धारयन्। ८,९

कारण- इन दोनों श्लोकों में आत्मा को केवल साक्षी मान कर , कार्य अपने आप होते रहते हैं, इस अवैदिक सिद्धान्त का समर्थन किया गया है।

५-छठे अध्याय में निम्नलिखित आधा श्लोक–प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वती समाः।४१(पूर्वार्ध)

कारण–इसमें स्वर्गलोक का वर्णन है।

६- आठवें अध्याय में एक श्लोक–वेदेषु यज्ञेषु....................चाद्यम्। २८

कारण–इसमें वेदों की निन्दा है।

७-सत्रहवें अध्याय में एक श्लोक– यजन्ते सात्विकाः देवान्..................तामसाः जनाः। ४

कारण–इसमें भूत -प्रेतों का जिक्र है। यह अवैदिक सिद्धान्त है।

८- अठारहवें अध्याय में निम्नलिखित चार श्लोक–

क- न तदस्ति.................स्यात् त्रिभिर्गुणैः। ४०

कारण– इसमें चेतन देवताओं को द्यु लोक में रहने वाला बताया गया है, जब कि देवता भूलोक में ही रहने वाले श्रेष्ठ पुरुषों को कहते हैं।

ख- इत्यहं वासुदेवस्य.. ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम। ७४,७५,७८

कारण- ये तीनों श्लोक गीता की समाप्ति के पश्चात् होने के कारण गीता में सम्मिलित नहीं हैं।

इस प्रकार गीता पर की गयी उपर्युक्त विवेचना के पश्चात् गीता के विषय में मान्य विचारों का सारांश इस प्रकार है–

१-गीता महाभारत का भाग नहीं है। अर्जुन को मोह और श्री कृष्ण का उसे गीता का उपदेश अनैतिहासिक घटनाएँ हैं।

२- गीता की रचना किसी अज्ञात लेखक ने महाभारत के युद्ध का प्रसंग लेकर एक स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में की और उसे धृतराष्ट्र और संजय के वार्त्तालाप का सहारा लेकर महाभारत में प्रक्षेप कर दिया।

३-अपने प्रक्षेप के समय गीता वैदिक विचारधारा की ही समर्थक थी, उसके पश्चात् अन्य प्रक्षेपों के कारण वह परस्पर विरोधी विचारों का संग्रह बन गयी।

४-गीता के लेखक ने गीता को निर्मित करते समय यह गलती की कि उसने युद्ध के प्रसंग को अपनाया। यदि वह युद्ध की जगह किसी ऐसे समय और स्थान पर गीता का उपदेश करवाता, जहाँ समय की कमी की समस्या नहीं होती, कृष्ण और अर्जुन आराम से निश्चिन्त हो कर बैठे हुए होते तो समय की कमी और धार्तराष्ट्र शब्द का प्रयोग जैसे प्रश्न नहीं उठते।

५-श्री आत्मानन्द जी की वैदिक गीता का अध्ययन यदि उसमें ऊपर वर्णित पच्चीस श्लोकों को निकाल कर तथा यह मान कर कि गीता महाभारत का भाग नहीं बल्कि अध्यात्म का मार्ग बताने वाली एक स्वतन्त्र पुस्तक है, किया जाये तो यह बहुत लाभदायक रहेगा।

लेखक द्वारा संपादित महाभारत के संशोधित संस्करण में गीता का भी ३३७ श्लोकों वाला संशोधित स्वरूप दिया हुआ है। पाठक वहाँ उसे पढ़ कर उससे लाभान्वित हो सकते हैं।

(२९) भीष्म पितामह की शर - शय्या

महाभारत में भीष्म पितामह की मृत्यु के विषय में यह वर्णित है कि युद्ध के दसवें दिन, जब भीष्म पितामह शिखण्डी और अर्जुन के बाणों से अत्यन्त घायल हो गये, उनमें युद्ध करने का सामर्थ्य नहीं रहा,तब वे निढाल होकर अपने रथ से भूमि पर गिर पड़े। उस समय वे बाणों से इतने घिरे हुए थे कि उनका शरीर भूमि का स्पर्श न कर सका। उसी अवस्था में वे ५८ दिन तक युद्धभूमि में पड़े रहे और जब युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर को आत्म -ग्लानि के कारण राज्य से वैराग्य हुआ, तब उन्हें उपदेश देकर, समझा कर उन्होंने अपने प्राण त्यागे। इस बीच उन्होंने सिवाय पानी के कुछ भी ग्रहण नहीं किया।

भीष्म पितामह के उपर्युक्त विशेष स्थिति में लेटे रहने को उनका शर शय्या पर लेटना कहा जाता है। शर शय्या पर लेटते हुए उनके शरीर की स्थिति कैसी थी? और शर शय्या का क्या अभिप्राय है? यह एक विचारणीय विषय है। वैसे इस विषय पर किसी ने भी स्पष्ट रूप से अपना मत प्रकट नहीं किया है,पर लोग ऐसा समझते हैं और जैसा चित्रों में भी दिखाया जाता है कि भूमि पर बहुत सारे बाण सीधे खड़े किये हुए हैं। उन बाणों के ऊपर भीष्म पितामह आकाश की तरफ मुख किये सीधे लेटे हुए हैं। बाणों ने उनके शरीर को ऐसे ही जमीन से ऊपर उठाया हुआ है जैसे चारपायी के पाये चारपायी के ढाँचे को पृथ्वी से ऊपर उठाये रखते हैं।

१-अब यहाँ देखना यह है कि क्या बाण किसी के भी शरीर को इस स्थिति में उठाये रख सकते हैं? यदि मान लिया जाये शरीर में घुसे हुए बाणों की संख्या पचास हो, तो वे पचास बाण उसी स्थिति में शरीर को जमीन से ऊपर उठाये रख सकते हैं, जब कि वे शरीर के आर -पार न निकले हुए हों। यदि वे बाण शरीर के आर -पार निकले हुए होंगे तो वे पचास बाण भी शरीर को भूमि का स्पर्श करने से नहीं बचा सकते। क्योंकि बाणों के द्वारा शरीर में बनाये गये आर -पार सूराखों के कारण उन बाणों में शरीर के किसी भी भाग में फँस कर उसे उठाये रखने का सामर्थ्य समाप्त हो जायेगा। अनुसन्धानकर्ता चाहें तो किसी शव पर यह प्रयोग कर देख सकते हैं।

२-शरीर में चुभे हुए बाणों के सहारे, आकाश की तरफ मुँह किये, सीधे लेटे हुए भीष्म पितामह तभी हो सकते थे, जब बाण उनकी कमर में चुभे हुए हों। तो क्या भीष्म जी ने अपनी कमर पर बाणों का प्रहार सहा था? भागते हुए व्यक्ति की ही कमर पर बाण लग सकते हैं, लड़ते हुए योद्धा के नहीं। लड़ते हुए योद्धा के तो सामने छाती पर ही बाण लगते हैं। छाती पर लगे हुए बाणों के सहारे यदि भीष्म पितामह का शरीर भूमि से अधर रहा, तो इसका मतलब है कि वे उल्टे लेटे हुए थे, सीधे नहीं, किन्तु ऐसा हुआ नहीं था, क्योंकि उल्टे लेटे हुए व्यक्ति के सिर में तकिया लगाने की क्या आवश्यकता? जबकि अर्जुन ने भीष्म जी के सिर में बाणों का तकिया लगाया था। इसलिये यह मानना पड़ेगा कि बाणों ने भीष्म जी के शरीर को चारपायी के पायों के समान ऊपर नहीं उठाया हुआ था।

३-महाभारत में भीष्मपितामह के शर-शय्या पर लेटने का जहाँ भी जिक्र हुआ है, वहाँ शर तल्प, शर शय्या, शर शयान, शर प्रस्तर जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। ये तल्प, शय्या, शयान और प्रस्तर शब्द बिस्तरे के पर्यायवाची हैं, न कि चारपायी या पलंग के। इसका प्रमाण यह है कि दूत बन कर आये हुए श्रीकृष्ण को दुर्योधन जब पाण्डवों से सन्धि के लिये मना कर, उनसे युद्ध करने की इच्छा प्रकट करता है, तब वह यही कहता है कि मैं युद्धक्षेत्र में बाणों की शय्या पर सोना चाहता हूँ। वहाँ उसने शर तल्प शब्द का प्रयोग किया है जिसमें तल्प शब्द बिस्तरे का पर्यायवाची है, चारपायी का नहीं। बिस्तरा भी शरीर को भूमि के स्पर्श से बचाता है,पर उस तरीके से नहीं, जिस तरीके से चारपायी बचाती है।

४-जब भीष्म पितामह घायल होकर, जमीन पर गिरे, महाभारत में उस घटना का वर्णन इस प्रकार है–

स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन्। धरणीं न स पस्पर्श, शरसंघैः समावृतः।। भीष्म ११९/९०,९१

अर्थात् वह लम्बी बाहों वाले भीष्म पृथ्वी को कोलाहल से युक्त करते हुए गिर पड़े। तब उन्होंने भूमि को स्पर्श नहीं किया, क्योंकि वे बाणों के समूह से घिरे हुए थे।

इस श्लोक में किये गये वर्णन से यह स्पष्ट हो रहा है कि उन्होंने भूमि का स्पर्श इसलिये नहीं किया, क्योंकि वे बाणों से घिरे, या भरे, या लिपटे हुए थे, न कि बिंधे हुए। यदि बिंधे हुए होने के कारण वे भूमि का स्पर्श नहीं करते तो व्यास जी समावृतः की जगह निर्भिन्नः अर्थात् बिंधे हुए या समाविष्टः अर्थात् प्रवेश किये हुए का प्रयोग करते।

५-महाभारत के वर्णन के अनुसार भीष्म पितामह ने शर शय्या पर लेटे हुए कुछ ऐसे कार्य भी किये जिन्हें शरीर में चुभे हुए बाणों की चारपायी पर लेटा हुआ व्यक्ति कदापि नहीं कर सकता। जैसे युद्ध समाप्ति के पश्चात् जब युधिष्ठिर उपदेश सुनने उनके पास पहुँचे तब भीष्म ने उनका सिर सूँघा और जब वे प्राण त्याग करने को तैयार हुए तब उन्होंने सबको गले या छाती से लगाया। प्रमाण के लिये देखिये–

क- **अथास्य पादौ जग्राह, भीष्मश्चापि ननन्द तम्। मूर्ध्नि चैनमाघ्राय, निषीदेत्यब्रवीत्तदा।।** शान्ति ५५।२१

अर्थात् युधिष्ठिर ने उनके पैरों को पकड़ लिया। भीष्म जी ने भी उसका स्वागत किया और सिर सूँघ कर बैठ जाओ, ऐसा कहा।

ख- **इत्युक्त्वा सुहृदः सर्वान्, सम्परिष्वज्य चैव ह। पुनरेवाब्रवीत् श्रीमान्, युधिष्ठिरमिदं वचः।।**

अर्थात् ऐसा कह कर भीष्म जी ने सभी बन्धुओं का आलिंगन किया अर्थात् उन्हें छाती या गले से लगाया और फिर युधिष्ठिर से यह बात कही। उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में वर्णित कार्य सिर सूँघना और गले या छाती से लगाना वह व्यक्ति नहीं कर सकता, जिसके शरीर में सब तरफ बाण चुभे हुए हों।

६-मृत्यु के पश्चात् जब भीष्म पितामह को चिता पर लिटाया गया, तब महाभारत में यह तो वर्णन है कि उन्हें रेशमी वस्त्र पहराये गये, पर यह वर्णन नहीं है कि बाण शरीर से निकाले गये। बिना शरीर से बाण निकाले उन्हें वस्त्र कैसे पहराये जा सकते थे? इस समस्या को सुलझाने के लिये वहाँ एक अस्वाभाविक और असम्भव कहानी का प्रक्षेप किया हुआ है। वह यह कि भीष्म जी के प्राण जिस -जिस अंग को छोड़ते गये, उस -उस अंग के बाण उनके शरीर से अपने

आप अलग होते गये और उनके घाव भी ठीक होते चले गये। यह बात अवैज्ञानिक होने के कारण मानने योग्य नहीं है और पूरी तरह से प्रक्षिप्त है।

७- जब युधिष्ठिर युद्ध में हुई हत्याओं के लिये अपने को उत्तरदायी समझते हुए आत्म -ग्लानि से पीड़ित हो रहे थे और भीष्म पितामह विभिन्न प्रकार के उपदेशों से उन्हें समझा रहे थे, तब युधिष्ठिर ने उनसे कहा —

न स पश्यति दुष्टात्मा, त्वामद्य पतितं क्षितौ। अतः श्रेयो मृतं मन्ये, नेह जीवितमात्मनः।। अनुशासन १।११

अर्थात् जैसे मैं आज आपको भूमि पर गिरा हुआ देख रहा हूँ वैसे वह दुष्ट दुर्योधन नहीं देख रहा है। अतः मैं उसकी मृत्यु को अपने जीवन से अधिक अच्छी समझता हूँ। यहाँ भीष्म जी के लिये भूमि पर पड़ा हुआ (पतितं क्षितौ) इस विशेषण का प्रयोग, यह स्पष्ट कर रहा है कि वे भूमि पर बाणों के बिस्तरे पर लेटे हुए थे न कि बाणों की चारपायी पर।

इस प्रकार इस विवेचन से यह सिद्ध है कि भीष्म पितामह बाणों की चारपायी पर नहीं बल्कि बाणों के बिस्तरे पर लेटे हुए थे। पर बाणों का वह बिस्तरा कैसा था? और कैसे भीष्म पितामह उस बिस्तरे पर पहुँचे? इस विषय में कुछ विद्वानों का मत यह है कि शर जहाँ बाण को कहते हैं वहाँ सरकण्डे को भी कहते हैं। वस्तुतः बाण को शर भी इसीलिये कहा जाता है क्योंकि वह मुख्य रूप से सरकण्डे के आगे लोहे की नोक लगाकर बनाया जाता था। इसलिये उन विद्वानों के मत में भीष्म पितामह को सरकण्डे की चटायी पर लिटाया गया था, किन्तु यहाँ प्रश्न यह है कि यदि भीष्म दुर्योधन के द्वारा लायी गयी चटायी पर लेट सकते थे तो उन्हें फिर उस आरामदेह पलंग पर, जिस पर वे अभी तक लेटते आये थे, लेटने में क्या आपत्ति थी? वास्तव में युद्धभूमि में गिरने के पश्चात् भीष्म जी ने दुर्योधन की दी हुई कोई भी चीज स्वीकार न करने का निश्चय किया हुआ था। फिर, वे उसकी दी हुई चटायी को क्यों स्वीकार करते?

इसलिये यह मानना चाहिये कि उन दिनों युद्धक्षेत्र में धनुर्धारियों की सहायता के लिये धनुष और बाणों की आपूर्ति का अवश्य कोई प्रबन्ध रहता होगा। हो सकता है कि वहाँ मैदान में जगह -जगह बाणों के भण्डार स्थापित कर दिये जाते हों। उन स्थानों पर बाणों का समूह इस प्रकार तरतीब से चिन कर मंच या चबूतरे की आकृति में रखा जाता होगा, जिससे धनुर्धारी को जब -जब जरूरत हो, जल्दी से जल्दी अपने तरकशों को बाणों से भर सकें। भीष्म जी जहाँ रथ से गिरे होंगे, वहाँ भी बाणों का कोई आपूर्ति भण्डार मंच की आकृति में विद्यमान होगा और भीष्म पितामह,संयोगवश उसी बाणों के मंच पर गिर पड़े होंगे। उस मंचाकृति बाणों के भंडार ने ही उनकी शर शय्या का कार्य किया और उन्हें भूमि के स्पर्श से बचाये रखा।

जब भीष्म जी गिरे होंगे तब उनकी पीठ में नहीं बल्कि शरीर के आगे के भाग, वक्षस्थल आदि में बाण घुसे हुए होंगे। उन बाणों को उनके गिरने पर निकलवा दिया गया होगा, क्योंकि जैसी कि पहले विवेचना की जा चुकी है, उन्होंने अपने प्रिय जनों को गले या छाती लगाना, सिर सूँघना आदि जो कार्य किये थे, वे बाणों के शरीर में घुसे हुए होने पर किये ही नहीं जा सकते। पर अपने घावों की चिकित्सा भीष्म जी ने नहीं करवायी, क्योंकि वे स्वस्थ होकर पुनः युद्ध करने के इच्छुक नहीं थे और उन्होंने मृत्यु पथ पर अग्रसर होने का निश्चय कर लिया था।

(३०) भीष्म पितामह को शर शय्या पर तकिया लगाना तथा जल पिलाना और उनका उत्तरायण

तकिया लगाना— जैसा कि पहले विवेचित किया जा चुका है, युद्ध में अत्यन्त घायल होने पर भीष्म पितामह जब अपने रथ से एक मंचाकृति बाणों के ढेर पर गिरे,जिसने उनके शरीर को भूमि से ऊपर उठाया हुआ था, तब उनका सिर बाणों के उस ढेर का सहारा न पा सकने के कारण नीचे की तरफ ही लटकता हुआ रह गया। पितामह के गिरते ही युद्ध बन्द हो गया और उभय पक्ष के महारथी उनके प्रति समवेदना प्रकट करने के लिये जब उनके पास आये, तब उन्होंने उनसे अपने लटकते हुए सिर को ठीक स्थिति में लाने के लिये कहा। तब कौरव पक्ष के योद्धा उनके सिर के नीचे लगाने के लिये बड़े मुलायम -मुलायम तकिये ले कर आये, पर भीष्म पितामह ने यह कह कर सबको अस्वीकृत कर दिया कि वे युद्धक्षेत्र के उपयुक्त तकिया चाहते

हैं। तब उन्होंने अर्जुन से कहा और अर्जुन ने तीन बाण भूमि पर लगा कर उनके सहारे पितामह के सिर को उचित स्थिति में कर दिया।इस घटना में कोई असम्भव बात नहीं है, बाणों को भूमि में गाड़ कर उन पर सिर को सहारा दिया जा सकता है, किन्तु तीन शब्द का प्रयोग होने के कारण केवल तीन बाण ही प्रयोग में लाये गये ऐसा नहीं समझना चाहिये। त्रयः च, त्रयः च,त्रयः च इति त्रयः इस तरह एक शेष समास के द्वारा तीन से विभाजित होने वाली कोई भी संख्या ली जा सकती है।

जल पिलाना——अब जल पिलाने वाली घटना को देखते हैं। अगले दिन जब उभय पक्ष के वीर पुनः भीष्म जी की सेवा में आये, तब उन्हें प्यास लगी हुई थी। उनकी पिपासा को शान्त करने के लिये जब दुर्योधन की तरफ से जल लाया गया, तब उन्होंने उसे यह कह कर अस्वीकृत कर दिया कि वे प्राकृतिक जल चाहते हैं, किसी के घर का पानी नहीं। तब अर्जुन ने भूमि में बाण मार कर जल की धारा प्रकट की, जिसने फौवारे की तरह उछल कर और भीष्म के मुख में गिर कर उनकी प्यास बुझायी, ऐसा आजकल लोग समझते हैं। किन्तु इस घटना को इस रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस रूप में यह एक असम्भव घटना है। फिर यदि पानी की धारा ने भीष्म जी के मुख में गिर कर उनकी प्यास बुझायी तो प्यास बुझाने के पश्चात् वह धारा समाप्त हो गयी या अट्ठावन दिन तक, जब तक भीष्म शर शय्या पर रहे, वह पानी बहाती रही और उनकी शय्या के पास कीचड़ फैलाती रही। यदि वह समाप्त हो गयी तो पुनः प्यास लगने पर पितामह को पानी कैसे पिलाया गया?

इसलिये इस घटना को इस प्रकार समझना चाहिये कि भीष्म पितामह की जहाँ शर शय्या थी, वहाँ नदी का किनारा था। प्रमाण के लिये देखिये—

ततस्ते ददृशुः भीष्मम्, शरप्रस्तरशायिनम्। उपास्यमानं मुनिभिः,देवैरिव शतक्रतुम्।
देशे परम धर्मिष्ठे, नदीमोघवतीमनु।। शान्ति ५०।६,७

अर्थात् तब उन्होंने शर शय्या पर सोये हुए भीष्म पितामह को देखा। ओघवती नदी के किनारे उस अत्यन्त धार्मिक स्थान पर इन्द्र के समीप देवताओं के समान मुनि लोग उनके समीप बैठे हुए थे।

यह उस समय का वर्णन है जब युधिष्ठिर ज्ञान प्राप्ति के लिये भीष्म जी के पास गये। यहाँ स्पष्ट हो रहा है कि ओघवती नदी के किनारे भीष्म जी की शर शय्या थी। नदी के किनारे थोड़ा -सा भी गहरा गड्ढा किया जाने पर जमीन में से पानी निकल आता है। बच्चों को नदी के किनारे रेत में हाथ से कूआँ खोदने का खेल खेलते देखा जा सकता है। उनके एक हाथ गहरा खोदने पर ही पानी आ जाता है।

अर्जुन ने वहाँ दिव्यास्त्र का प्रयोग करके गड्ढा बनाया होगा और उसमें नदी का किनारा होने के कारण जल्दी ही पानी निकल आया होगा, उस पानी से पितामह की प्यास बुझा दी होगी। दिव्यास्त्र से भूमि में गड्ढा बना देना कोई कठिन काम नहीं है,क्योंकि गड्ढा तो आजकल भी बम की मार से बन जाता है। यहाँ यह प्रश्न भी उठता है कि यदि भीष्म पितामह की शर शय्या नदी के किनारे थी तो नदी में से ही पानी क्यों नहीं मँगा लिया? इसका उत्तर यह है कि नदी में तो उन दिनों रोज लाशें बहायी जाती होंगी, इसलिये प्रदूषण के कारण वह पानी पीने योग्य नहीं था।

भीष्म पितामह शर शय्या पर जितने दिन भी रहे उन्होंने उस दौरान कौरव, पाण्डव, दोनों से कोई वस्तु नहीं ली। ऐसा उन्होंने इसलिये किया क्योंकि जो गलती पहले करके उन्होंने उसका परिणाम भुगता था, उसी गलती को वे पुनः नहीं करना चाहते थे। पहले उन्होंने गलती की कि दुर्योधन के राज्य में रहे और उसका अन्न खाया, इसलिये दुर्योधन का पक्ष अधर्म युक्त होने पर भी उन्हें उसका ऋण उतारने के लिये उसकी तरफ से लड़ना पड़ा। दस दिन तक वे अपनी जान पर खेल कर लगातार पाण्डवों से लड़े, अन्त में जब वे शर शय्या पर गिर पड़े, तब उन्होंने समझ लिया कि मैंने दुर्योधन का ऋण उतार दिया। अब वे उसका दिया कोई पदार्थ ले कर अपने ऊपर नया ऋण चढ़ाना नहीं चाहते थे।

भीष्म पितामह का उत्तरायणः- भीष्म पितामह जब शर शय्या पर गिरे तब महाभारत में ऐसा वर्णन है कि उस समय सूर्य दक्षिणायन में था, इसलिये उन्होंने कहा कि मैं उत्तरायण के होने तक अपने प्राणों को रोके रखूँगा और जब सूर्य उत्तरायण

में आया, तभी ५८ दिन बाद उन्होंने अपने प्राण त्यागे। इस घटना के विषय में लोगों में दो गलत धारणाएँ हैं, एक तो यह कि उत्तरायण में मरने से पुण्य होता है, इसलिये भीष्म ने उत्तरायण की प्रतीक्षा की। दूसरी यह कि भीष्म जी इतने समय तक अपने को मरने से इसलिये बचाते रहे, क्योंकि उन्हें उनके पिता ने इच्छा -मृत्यु का वरदान दिया था। अर्थात् वे अपनी इच्छा से ही मर सकते थे, जबर्दस्ती नहीं, इसीलिये वे इतनी लम्बी आयु तक जीवित रहे। ये दोनों धारणाएँ सृष्टि -क्रम तथा प्रकृति के नियमों के विरुद्ध होने के कारण मान्य नहीं हो सकतीं। वरदान और अभिशाप के सिद्धान्त का पहले खण्डन किया जा चुका है, अतः भीष्म को पिता के वरदान की बात अमान्य है। भीष्म जी दीर्घायु प्राप्त करने और मृत्यु को इतने समय तक अपने से दूर रखने में इसलिये सफल रहे क्योंकि वे राजमहलों में रहते हुए भी योगाभ्यासी थे। उनके योगाभ्यास का पता उनके प्राण त्यागने के समय के वर्णन से लगता है। जैसे कि—

धारयामास चात्मानम्, धारणासु यथाक्रमम्। तस्योर्ध्वमगमन्प्राणाः, सन्निरुद्धाः महात्मनः।।

अर्थात् तदनन्तर वे मन सहित प्राण वायु को क्रमशः भिन्न-भिन्न धारणाओं में स्थापित करने लगे। इस तरह यौगिक क्रिया द्वारा रोके हुए भीष्म जी के प्राण क्रमशः ऊपर चढ़ने लगे।

अब रही उत्तरायण की बात। किसी विशेष समय या स्थान में मरने से पुण्य होता है, ऐसी धारणाएँ महाभारत के समय प्रचलित नहीं थीं। इन धारणाओं का प्रचार पुराणों की रचना के बाद हुआ। यदि महाभारत के समय यह बात मानी जाती थी कि उत्तरायण में मरना पुण्यदायक होता है, दक्षिणायन में नहीं, तो पाण्डवों और कौरवों ने ऐसी गलती क्यों की, कि युद्ध दक्षिणायन में प्रारम्भ कर दिया,क्योंकि सिवाय भीष्म के शेष सारे युद्ध में मरने वाले तो दक्षिणायन में ही मरे। वे बेचारे पुण्य लाभ से वंचित क्यों रह गये? युद्ध को प्रारम्भ ही, दो मास के पश्चात्, जब सूर्य उत्तरायण में आ जाता, तब किया जाता, ताकि सभी उत्तरायण में मरते और पुण्य के भागी होते। इसलिये यह मानना होगा कि भीष्म जी के उत्तरायण का यह अभिप्राय नहीं था।

दक्षिणायन में सूर्य भारतवर्ष से दूर चला जाता है, अतः उसका प्रभाव कम और शीत का प्रभाव अधिक रहता है। उत्तरायण में सूर्य देश की भूमि के समीप आ जाता है, अतः उसका तेज उस समय यहाँ अधिक रहता है। जिस समय महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हुआ तब भारत में, आकाश के सूर्य के समान, धर्म का सूर्य भी दक्षिणायन में गया हुआ था। अर्थात् धर्म का प्रसार कम हो गया था। इसीलिये पाण्डवों को दुर्योधन की अधर्म पूर्ण हठ धर्मिताओं को सहन करना पड़ा। धर्म रूपी सूर्य को उत्तरायण में लाने के लिये ही महाभारत का युद्ध लड़ा गया था। भीष्म क्योंकि अधर्मी दुर्योधन के राज्याश्रय में रहने की गलती कर चुके थे अतः धर्म के पोषक होते हुए भी, मन से पाण्डवों की विजय चाहते हुए भी, शरीर से उन्हें दुर्योधन के पक्ष में लड़ना पड़ा। उनके मन में यह गहरी इच्छा थी कि वे मरने से पूर्व धर्म के सूर्य का उत्तरायण देखें। पाण्डवों की विजय के पश्चात् भी जब युधिष्ठिर के मन में वैराग्य हो गया, तब भी धर्म की स्थापना की स्थिति डावाँडोल थी। तब भीष्म पितामह के उपदेश और समझाने के बाद जब युधिष्ठिर का मन शान्त हुआ और वे दृढ़ चित्त से राज्य को सम्भालने के लिये तैयार हुए तभी वास्तव में धर्म के सूर्य का उत्तरायण हुआ और भीष्म जी ने निश्चिन्त होकर प्राण त्यागे।

इसके अतिरिक्त एक बात और है। वह यह कि भीष्म पितामह ने दुर्योधन के लिये अपने प्राणों की आहुति देकर उसके अन्न को खाने का तो ऋण उतार दिया, किन्तु उस ऋण को चुकाने के लिये उन्होंने दस दिनों तक पाण्डव पक्ष के उन लोगों की हत्यायें कीं,जो भीष्म के अपने मन के ही अनुसार धर्म का पक्ष लेकर सही मार्ग पर चल रहे थे। इस प्रकार उन्होंने एक अधर्मी का ऋण चुकाने के लिये पिछले दस दिनों में एक नया पाप कर्म कर लिया। मैं समझता हूँ, इस बात का बोझ भी उनके मन पर अवश्य रहा होगा। वे इस पाप के लिये अवश्य ही प्रायश्चित करना चाहते होंगे। इस प्रायश्चित को करने के लिये ही वे लगातार अट्ठावन दिन तक निराहार बाणों के बिस्तरे पर पड़े रहे। तत्पश्चात् जब मन में भी शान्ति के सूर्य का उत्तरायण हो गया, तब उन्होंने अपने प्राण त्यागे।

इसके साथ ही भीष्म पितामह ने अपने पिता से यह प्रतिज्ञा की थी कि वे राज्य नहीं लेंगे पर, हस्तिनापुर के राज्य के संरक्षक रहेंगे, इसीलिये उन्होंने अपने सारा जीवन हस्तिनापुर के राज्य की रक्षा की। वे अपनी मृत्यु से पहले हस्तिनापुर के राज्य

सिंहासन पर किसी योग्य और दृढ़ राजा को बैठा देखना चाहते थे। युधिष्ठिर ने जब राज्य सम्भाल लिया तब उनकी यह इच्छा भी पूरी हो गयी। यही भीष्म पितामह के उत्तरायण का अभिप्राय समझना चाहिये।

(३१) दुर्योधन का अभेद्य कवच

महाभारत में यह वर्णित है कि जब अर्जुन जयद्रथ के वध के लिये उसको खोजता हुआ द्रोणाचार्य के द्वारा निर्मित सेना के अभेद्य व्यूह को भेद कर द्रोणाचार्य के देखते-देखते ही उनकी सेना में घुस गया तब दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के समीप आकर उन्हें अर्जुन को आगे बढ़ जाने देने के लिये उलाहना दिया, तब द्रोणाचार्य ने उसे समझाया कि अर्जुन को जीतना असम्भव है और प्रमाण के लिये उन्होंने उसे एक ऐसा अभेद्य कवच पहना दिया जिस पर किसी भी शस्त्रास्त्र का प्रभाव नहीं होता था। दुर्योधन उस कवच को पहन कर अर्जुन से लड़ने को गया। जब अर्जुन के बाण दुर्योधन को कोई चोट न पहुँचा सके, तब वह समझ गया कि आचार्य ने उसे अभेद्य कवच पहनाया हुआ है। तब उसने कहा कि इस कवच के विषय में मैं भी जानता हूँ। उसने तब दुर्योधन की हथेलियों पर और उन स्थानों पर जो कवच से ढके हुए नहीं थे, प्रहार किया, जिससे दुर्योधन को युद्ध छोड़ कर भागना पड़ा।

यहाँ इस अभेद्य कवच की बात को प्रक्षिप्त ही मानना चाहिये, क्योंकि ऐसे कवच का होना असम्भव है, जिस पर किसी भी हथियार का आघात न हो सके। यदि ऐसा कवच था तो द्रोणाचार्य ने स्वयं ही उसे क्यों नहीं पहना? यदि उन्होंने कवच पहना हुआ होता तो धृष्टद्युम्न उनकी गर्दन कैसे काटता? फिर द्रोणाचार्य ने वह कवच अपने पुत्र अश्वत्थामा को और दुर्योधन को युद्ध के पहले दिन ही क्यों नहीं पहनाया? या उसी दिन जयद्रथ को पहना दिया होता, जिसकी जान बचाने को इतना परिश्रम करना पड़ा। अर्जुन भी जब उस कवच के विषय में जानता था तो उसने भी अपने पक्ष के प्रधान -प्रधान वीरों को वह कवच क्यों नहीं पहना दिया? इन सभी बातों से यही स्पष्ट हो रहा है कि अभेद्य कवच का वर्णन प्रक्षिप्त है।

(३२) अर्जुन के द्वारा तालाब और बाणों के घर का निर्माण

जयद्रथ के वध के लिये जब अर्जुन शत्रु सेना को भेद कर उसमें आगे बढ़ता जा रहा था, तब श्री कृष्ण जी ने उससे कहा कि घोड़े बहुत थक गये हैं,इसलिये उन्हें थोड़ी देर आराम कराना चाहिये। उस समय अर्जुन ने घोड़ों के लिये एक तालाब का और बाणों के घर का निर्माण किया। श्रीकृष्ण जी ने फिर घोड़ों को रथ से खोल कर, उन्हें पानी पिलाया,नहलाया और दाना खिलाया। अर्जुन तब तक पैदल ही खड़े हुए शत्रुओं का सामना करते रहे। महाभारत के इस वर्णन में जहाँ तक बाणों के घर की बात है, इसे तो प्रक्षिप्त ही मानना चाहिये। क्योंकि बाणों का घर बनाना जहाँ शायद असम्भव है, वहाँ उस समय शीत ऋतु होने के कारण विश्राम के लिये छायादार जगह की आवश्यकता भी नहीं थी, तीसरे अर्जुन के पास शत्रुओं के आक्रमण का सामना करते हुए इतना समय भी नहीं था कि वह घर बनाने की कारीगरी में अपना ध्यान केन्द्रित करता, किन्तु घोड़ों के लिये पानी का प्रबन्ध करना नितान्त आवश्यक था, अतः अर्जुन ने तालाब का निर्माण अवश्य किया होगा।

तालाब का निर्माण करना अर्जुन के लिये कठिन नहीं था। महाभारत को पढ़ने से पता लगता है कि कुरुक्षेत्र में कई नदियाँ तथा तालाब आदि जल के भण्डार थे। भीष्म पितामह की शर शय्या भी नदी के किनारे ही थी। यह सर्वमान्य तथ्य है कि जहाँ पानी के भंडार होते हैं वहाँ भूमिगत पानी का स्तर भी ऊँचा होता है और थोड़ी गहरायी तक खोदने पर ही उसकी प्राप्ति हो जाती है। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि जैसे आजकल बम के प्रहार से भूमि में गड्ढा बन जाता है, वैसे ही उस समय भी दिव्यास्त्रों के द्वारा भूमि को गहरायी तक खोदा जा सकता था। अर्जुन ने यही किया होगा कि लगातार कई दिव्यास्त्रों के प्रयोग से उतना गहरा गर्त बना दिया होगा कि भूमि -जल ऊपर आ गया और वह गड्ढा एक कच्चे अस्थायी तालाब के रूप में बदल गया, जिसमें श्रीकृष्ण जी ने घोड़ों को पानी पिलाया और नहलाया।

(३३) जयद्रथ वध के समय श्रीकृष्ण द्वारा सूर्य को छिपा देना

जब छह महारथियों के द्वारा अर्जुन के वीर पुत्र अभिमन्यु को घेर कर मार दिया गया, तब अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा की कि कल सूर्यास्त से पहले या तो मैं जयद्रथ को मार दूँगा, नहीं तो स्वयं जल कर मर जाऊँगा। अर्जुन की इस प्रतिज्ञा के फलस्वरूप

अगले दिन कौरवों ने जयद्रथ की रक्षा के लिये भारी तैयारी की। द्रोणाचार्य ने अर्जुन के लिये भी सेना के अभेद्य व्यूह को बनाया। उस व्यूह के बीच में सर्वश्रेष्ठ महारथियों की सुरक्षा में जयद्रथ को रखा गया। पूरा प्रयत्न किया गया कि जयद्रथ बच जाये और अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा के कारण स्वयं ही मर जाये। पर अपनी अदम्य वीरता और श्रीकृष्ण जैसे कुशल सलाहकार की सहायता से, अर्जुन उस अभेद्य व्यूह को भी चीरता हुआ, प्रतिपक्षियों को मार -मार कर अपना रास्ता बनाता हुआ, शत्रु सेना में घुस गया और सायं सूर्यास्त से पूर्व ही अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों जयद्रथ के सामने जा पहुँचे।

पर उस समय जयद्रथ को कौरव पक्ष के छह सर्वश्रेष्ठ महारथियों ने घेरा हुआ था। अर्जुन उन सबको विजय करके ही जयद्रथ पर प्रहार कर सकता था, किन्तु समय कम था, महारथियों से लड़ने लग जाते तो सूर्य अस्त हो जाता। तब श्री कृष्णजी ने अर्जुन से कहा कि जयद्रथ को धोखे से ही मारा जा सकता है। बिना धोखा दिये तो सूर्य छिप जायेगा। इसलिये मैं सूर्य को ढकने का उपाय करता हूँ, तुम उस समय सूर्य को अस्त हुआ समझ कर शिथिल मत हो जाना और अपने कर्तव्य का पालन करना। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण जी ने अन्धकार की सृष्टि की। उस अँधेरे के पीछे सूर्य का दिखायी देना बन्द हो गया।

अब यहाँ लोग यह समझते हैं कि श्री कृष्ण जी ने किसी अलौकिक शक्ति से यह कार्य किया, पर ऐसा नहीं था। यह विज्ञान का ही चमत्कार था। आजकल भी हम देखते हैं कि हवाई जहाज उड़ते हुए आकाश में धूएँ की लकीर बना देते हैं, आँसू गैस के गोले फट कर भीड़ में आँसू वाली गैस फैला देते हैं। आतिशबाजी जमीन से छोड़ी हुई, आकाश में जाकर फटती है और वहाँ धूआँ फैला देती है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण जी के पास भी ऐसी चीजें थीं जो धूआँ फैलाती थीं, और ऐसी भी थीं जो धूएँ को हटातीं थीं। उन्होंने तब किसी विशेष साधन से धूआँ फैलाने वाली चीजों को आकाश में पश्चिम दिशा की तरफ फैंका होगा, जिससे उस तरफ धूआँ फैलने से सूर्य का दिखायी देना बन्द हो गया। सूर्य के न दिखायी देने से जयद्रथ की रक्षा करने वाले सूर्य की तरफ देखने में लग गये और जयद्रथ की रक्षा में असावधान हो गये। उधर जयद्रथ भी उनके बीच में से बाहर आकर यह जानने का प्रयत्न करने लगा कि वास्तव में सूर्य छिप गया है या नहीं? अर्जुन इसी अवसर की तलाश में थे। जयद्रथ के सामने आते ही उन्होंने तुरन्त बाण मार कर उसका सिर काट दिया और उधर श्रीकृष्ण जी ने भी धूआँ हटाने वाली चीजें आकाश में फैंक कर उनके द्वारा धूएँ को हटा दिया, जिससे सूर्य जो कि अस्त नहीं हुआ था, फिर दिखायी देने लग गया।

यहाँ यह बात अवश्य है कि धूआँ फैलाने और हटाने की रीति श्रीकृष्ण जी को ही पता थी किसी और को नहीं, इसीलिये उनकी तरकीब सफल हो गयी। अथवा श्रीकृष्ण जी ने कदाचित् वारुणास्त्र और वायवास्त्र का प्रयोग किया हो। युद्ध में अर्जुन और कर्ण ने अनेक बार वारुणास्त्र के द्वारा बादलों को फैलाया और वायवास्त्र के द्वारा उन्हें हटाया है।

(३४) अर्जुन के द्वारा जयद्रथ के सिर को काट कर उसे उसके पिता बृहद्रथ की गोद में गिराना

इस कहानी में बताया गया है कि जयद्रथ के पिता बृहद्रथ को यह वरदान प्राप्त था कि जो उसके पुत्र जयद्रथ का सिर काट कर भूमि पर गिरायेगा उसके सिर के टुकड़े -टुकड़े हो जायेंगे। इसलिये जब अर्जुन ने जयद्रथ का सिर काटा, तब श्रीकृष्ण के आदेश से उसे इस प्रकार काटा कि वह भूमि पर नहीं बल्कि बाणों की सहायता से आकाश में उड़ता हुआ जहाँ उसके पिता सन्ध्या कर रहे थे वहाँ जा कर उनकी गोद में गिरा। वे एकदम हड़बड़ा कर जैसे ही उठे, वह सिर उनकी गोद से भूमि पर जा गिरा और तब वरदान के अनुसार बृहद्रथ के ही सिर के टुकड़े हो गये।

यह कहानी अवैज्ञानिकता, अप्राकृतिकता और वरदान तथा अभिशाप पर आधारित होने के कारण प्रक्षिप्त है।

(३५) घटोत्कच के द्वारा मरते समय अपने आकार को बढ़ाना

इस कहानी के अनुसार जब कर्ण की अमोघ शक्ति के प्रहार से घटोत्कच के प्राण निकलने लगे, तब उसने अपने शरीर को जमीन से आकाश तक फैला हुआ बहुत बड़ा बना लिया और भूमि पर गिरते हुए वह कौरव सेना पर गिरा, जिससे उनकी एक अक्षौहिणी सेना कुचल कर मर गयी। यह कहानी भी सृष्टि नियमों के विपरीत होने के कारण असम्भव और प्रक्षिप्त है।

(३६) कर्ण की मृत्यु के समय की अलौकिक घटनाएँ

जब कर्ण और अर्जुन अपने प्राणों को दाँव पर रख कर परस्पर अन्तिम युद्ध कर रहे थे,उस समय महाभारत के अनुसार दो अलौकिक घटनाएं घटीं। पहली यह कि कर्ण के पास एक बहुत ही भयानक बाण था, जिसके प्रहार से जीवित रह पाना बहुत कठिन था। कर्ण ने लड़ते -लड़ते उस बाण को अर्जुन के वध के लिये छोड़ा, कृष्ण जो कि अर्जुन के सारथी बने हुए थे, बहुत सावधान व्यक्ति थे। उन्होंने कर्ण द्वारा उस बाण को धनुष पर रखते ही बाण की भयानकता के विषय में भाँप लिया और जैसे ही कर्ण ने अर्जुन के गले का निशाना लगा कर उस बाण को छोड़ा उन्होंने अपने पैरों से रथ को जोर से दबाया, जिससे रथ के पहिये भूमि के अन्दर थोड़ा धँस गये और रथ के घोड़े भी घुटनों के बल जमीन पर बैठ गये। उसका फल यह हुआ कि गले पर लक्ष्य करके छोड़ा हुआ वह बाण अर्जुन की गर्दन पर न लग कर उसके सिर पर बाँधे हुए किरीट पर लगा और वह किरीट टूट गया, पर अर्जुन बच गया। दूसरी अलौकिक घटना यह है कि युद्ध करते -करते अचानक कर्ण के रथ का पहिया जमीन में धँस गया, क्योंकि इसके विषय में उसे पहले शाप मिला हुआ था। जब कर्ण उस पहिये को भूमि में से निकालने के लिये रथ से नीचे उतरा तब अर्जुन ने उसका वध कर दिया।

उपर्युक्त दोनों घटनाएँ जिस रूप में वर्णित हैं उसी रूप में अपनी अलौकिकता के कारण नहीं मानी जा सकतीं। इनका वास्तविक रूप इस प्रकार समझना चाहिये कि दोनों घटनाओं का सम्बन्ध भूमि में विद्यमान गड्ढों से है। इसलिये हमें मानना होगा कि जहाँ अर्जुन और कर्ण का युद्ध हो रहा था, वहाँ कुछ गड्ढे थे। ज्यादा नहीं तो कम से कम एक गड्ढा तो अवश्य था और वह काफी खतरनाक गड्ढा था। यद्यपि युद्ध के प्रारम्भ होने से पहले दोनों पक्षों ने अवश्य ही सावधानीपूर्वक गड्ढों को ठीक कर दिया होगा, पर सत्रह दिन से चल रहे युद्ध में भयानक दिव्यास्त्रों के प्रयोग से गड्ढे बन जाना स्वाभाविक है। कृष्ण क्योंकि बहुत ही समझदार प्रकृति के थे, अतः वह गड्ढा अवश्य ही उनकी निगाह में होगा। चतुर सारथी को रथ चलाते हुए भूमि के प्रकार को तो ध्यान में रखना ही होता है। कृष्ण युद्ध में प्रतिक्षण अपने रथ को उस गड्ढे में गिरने से बचाते रहे, पर जब कर्ण ने उस भयानक बाण को अपने धनुष पर रखा तब कृष्ण ने एक दम अपने रथ को उस गड्ढे से सटा कर खड़ा कर दिया होगा। कृष्ण यह कार्य इतनी जल्दी इसलिये कर सके क्योंकि कर्ण को निशाना लगाने में कुछ समय लग गया। वहाँ वर्णन है कि जब कर्ण निशाना लगाने लगा तब शल्य ने उसे बीच में टोक दिया कि निशाना ठीक नहीं है, ध्यान से निशाना लगाओ, तब कर्ण ने उसे धमकाया और दुबारा निशाना लगाया। कर्ण ने जैसे ही बाण छोड़ा वैसे ही श्री कृष्ण ने घोड़ों को हाँक कर रथ को उस गड्डे में गिरा दिया होगा, जिसके झटके से घोड़े भी जमीन पर घुटनों के सहारे बैठ गये। कृष्ण ने इस प्रकार अहितकारी गड्ढे से भी हित सिद्ध कर लिया।

किन्तु कर्ण के सारथी राजा शल्य कृष्ण के समान चतुर नहीं निकले। वे अपने रथ को गड्ढे से नहीं बचा सके। फलतः उनके रथ का पहिया लड़ते -लड़ते उस गड्ढे में जा धँसा और वह दुर्घटना कर्ण के लिये प्राणघाती सिद्ध हुई। कृष्ण ने युद्ध के चलते -चलते ही आराम से अपने रथ को गड्ढे में से निकाल लिया,पर शल्य ऐसा नहीं कर सके।

(३७) धृतराष्ट्र के द्वारा भीमसेन की लोहे की प्रतिमा का ध्वंस

महाभारत में जब संजय ने युद्ध की समाप्ति का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट किया कि उसके सभी पुत्र मारे गये और कौरव पक्ष में केवल तीन और पाण्डव पक्ष में केवल सात महारथी ही शेष रहे हैं, तब धृतराष्ट्र और उसकी रानियों ने पहले तो शोक विह्वल होकर बहुत विलाप किया, फिर विदुर के द्वारा समझाने पर उन्होंने किसी तरह अपने को सम्भाला और विदुर की ही सलाह के अनुसार वे अपने मृत सम्बन्धियों के अन्त्येष्टि कर्म करने के लिये युद्ध -क्षेत्र की तरफ चल दिये। उधर, जब पाण्डवों ने सुना कि उनके ताऊ अन्त्येष्टि के लिये युद्ध क्षेत्र की तरफ आ रहे हैं, तब वे भी उनसे रास्ते में ही मिलने के लिये हस्तिनापुर की ओर रवाना हो गये। मार्ग में जब धृतराष्ट्र गंगा के किनारे विश्राम कर रहे थे, वहीं पाण्डवों की उनसे भेंट हुई।

महाभारत में वर्णन है कि पाण्डव यद्यपि धृतराष्ट्र के सगे भतीजे होने के कारण उनके पुत्रवत् थे,पर उस समय वे उनके ही पुत्रों के हत्यारे थे, अतः उन्हें उनके विजेता होने के कारण उनसे भेंट तो करनी पड़ी और प्रेम भाव भी प्रदर्शित करना पड़ा, पर अन्दर से वे प्रसन्न नहीं थे, विशेषतः भीम के प्रति तो उनका क्रोध उनकी बाह्य चेष्टाओं से भी प्रकट हो रहा था, क्योंकि भीम ने ही उनके सारे पुत्रों को मारा था। उन्होंने भीम के प्रति स्नेह दिखाते हुए उसे अपने गले लगाने की इच्छा प्रकट की ,पर श्री कृष्ण ने उनके हाव -भावों से उनकी आन्तरिक भावना को ताड़ लिया और अन्धे धृतराष्ट्र के आगे भीम को न जाने दे कर उन्होंने भीम की लोहे की प्रतिमा को धृतराष्ट्र के आगे कर दिया। धृतराष्ट्र ने उस प्रतिमा को भीम समझ कर अपने गले लगाया और अपने पूरे क्रोध को उसके ऊपर उँडेलते हुए उसे इतनी जोर से अपनी भुजाओं में दबाया कि लोहे की प्रतिमा भी पिचक कर टूट गयी। उसके पश्चात् भीम को मरा हुआ समझ कर वे पश्चात्ताप करने लगे। तब श्रीकृष्ण जी ने उन्हें सत्य बताया कि वह भीम नहीं अपितु उनकी प्रतिमा थी, इसलिये भीम इस समय सकुशल हैं।

यहाँ इस बात की बुद्धिपूर्वक विवेचना करनी है कि क्या यह घटना सत्यता की कोटि में आती है? या प्रक्षिप्त है?

क-पहले तो यही चिन्तनीय है कि एक व्यक्ति क्या इतना शक्तिशाली हो सकता है कि वह लोहे की प्रतिमा को अपनी छाती से दबा कर तोड़ दे? यहाँ विद्वान् लोग महाभारत के ही आधार पर यह कहेंगे कि धृतराष्ट्र में अत्यधिक बाहुबल था, इसीलिये वे ऐसा कर सके। यह ठीक है कि धृतराष्ट्र में शारीरिक शक्ति बहुत अधिक थी, किन्तु यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि उस समय धृतराष्ट्र जवान नहीं थे। भीमसेन के पुत्र घटोत्कच का पुत्र अंजनपर्वा जो कि नवयुवक था, महाभारत युद्ध में मारा गया था। अंजनपर्वा धृतराष्ट्र का प्रपौत्र था। जिसके जवान प्रपौत्र ने युद्ध में भाग लिया हो उसकी अपनी आयु उस समय क्या हो सकती है? यदि अंजनपर्वा की आयु उस समय २५ वर्ष तथा प्रत्येक पीढी में २५ वर्ष का अन्तर माना जाये तो भी इस हिसाब से धृतराष्ट्र ने निश्चय ही उस समय १०० वर्ष की आयु रेखा को पार कर लिया होगा। अब सोचने की बात यही है कि क्या इतना वृद्ध व्यक्ति इतनी शक्ति का काम कर सकता है?

ख— कुछ लोग यह कहेंगे कि हो सकता है कि वह लोहे की प्रतिमा नाममात्र के लिये लोहे की हो। वह पतली चादर की या केवल टीन की ही बनी हुई हो, जिसे धृतराष्ट्र ने कुचल दिया। पर ऐसा नहीं था। महाभारत में स्वयं श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र को बताया है कि वह लोहे की प्रतिमा वही थी, जिसके ऊपर दुर्योधन ने लगातार १३ वर्ष तक गदा युद्ध का अभ्यास किया था। अपने अभ्यास के लिये ही दुर्योधन ने उसे बनवाया था। जो लोहे की गदाओं की चोटों से नहीं टूटी, वह बूढ़े धृतराष्ट्र के द्वारा कैसे टूट सकती थी?

ग--यह देखा गया है कि अन्धे लोगों की छू कर पहचानने की शक्ति अन्य लोगों से अधिक होती है। पर अन्धे धृतराष्ट्र ने जब प्रतिमा को अपनी छाती से लगाया तब क्या क्रोध की अत्यधिकता के कारण वे यह नहीं पहचान सके कि मैं जिसे दबा रहा हूँ, वह हड्डी और माँस का बना मुलायम शरीर नहीं है, बल्कि लोहा है।

घ--यह बात भी विचारणीय है कि श्री कृष्ण के पास वह प्रतिमा, जो कि हस्तिनापुर में दुर्योधन के महलों में रखी होगी, आयी कैसे? श्री कृष्ण तो उस समय से पहले तक धृतराष्ट्र के शत्रुपक्ष के व्यक्ति थे, उन्हें वह मूर्ति कोई क्यों निकाल कर देता? यदि पाण्डव हस्तिनापुर में पहुँच कर धृतराष्ट्र से मिलते और उस समय महलों में बैठे हुए यह प्रतिमा ध्वंस की घटना होती तब तो प्रतिमा का मिलना सम्भव था। पर यह घटना तो मार्ग में हुई वर्णित है।

इस प्रकार बुद्धि की तराजू पर तोलने पर तो यह घटना प्रक्षिप्त ही लगती है।

(३८) परीक्षित का जन्म

अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित जब उत्पन्न हुआ, तब उसके जन्म की घटना से महाभारत में कुछ अलौकिक बातें जोड़ी हुई हैं। उनमें से एक यह है—

जब अश्वत्थामा ने रात्रि में सारे पाँचालों और द्रौपदी पुत्रों का सुप्तावस्था में संहार कर दिया, तब प्रातः पाण्डव जब उसके वध के लिये व्यासाश्रम में जहाँ वह छिप कर बैठा हुआ था, पहुँचे तब अपनी प्राण रक्षा के लिये अश्वत्थामा ने ब्रह्मशिर नाम का भयानक अस्त्र पाण्डवों के विनाश के लिये छोड़ दिया। ब्रह्मशिर का निवारण ब्रह्मशिर के द्वारा ही हो सकता था और अर्जुन भी उस अस्त्र के संचालन को जानता था, अतः अश्वत्थामा के अस्त्र के निवारण के लिये अर्जुन ने भी उसके विरोध में अपने ब्रह्मशिर अस्त्र को छोड़ दिया। फलस्वरूप दोनों अस्त्रों में से भयानक ज्वालाएँ निकलने लगीं। वे दोनों एक दूसरे से टकराने वाले ही थे कि महर्षि नारद और महर्षि व्यास वहाँ आये और दोनों से बोले कि अपने-अपने अस्त्रों को रोको, क्योंकि इनसे संसार का विनाश हो जायेगा और यदि ये परस्पर टकरा कर नष्ट भी हो गये तो १२ वर्ष तक यहाँ वर्षा नहीं होगी। तब उनकी आज्ञा से अर्जुन ने तो अपना अस्त्र शीघ्र ही वापिस कर लिया, किन्तु अश्वत्थामा कहने लगा कि मुझे इस अस्त्र को वापिस करना नहीं आता, अतः इससे विनाश तो होगा ही, पर मैं इसके प्रभाव को कम कर सकता हूँ। अब यह अस्त्र केवल उत्तरा के गर्भ का ही नाश करेगा और पाण्डवों के वंश को चलाने वाला उसका शिशु मृत अवस्था में जन्म लेगा।

तब महर्षियों ने उसे फटकारा कि जब उसे वापिस लेना नहीं आता था तब उसने ऐसे भयानक अस्त्र का प्रयोग क्यों किया? उन्होंने उसे यह भी आदेश दिया कि वह अपनी प्राणों से भी प्रिय बहुमूल्य मणि को जिसे वह सदा अपने सिर पर धारण किये रहता है, पाण्डवों को अर्पित कर दे तो पाण्डव उसके प्राण छोड़ देंगे। इसके साथ श्री कृष्ण जी ने भी उसे शाप दिया कि बाल-हत्या के लिये वह सदा दूसरों से निन्दा को प्राप्त होगा, वह तीन हजार वर्षों तक एकान्त जंगलों में मारा -मारा फिरेगा, उसका शरीर अनेक रोगों से ग्रस्त होगा और उससे रक्त तथा मवाद की दुर्गन्ध आयेगी, जिससे वह लोगों के समूह में नहीं टिक सकेगा।

दूसरी अलौकिक घटना यह है कि अश्वत्थामा के अस्त्र के प्रभाव से उत्तरा का पुत्र मृत अवस्था में पैदा हुआ, पर श्रीकृष्ण जी ने उसे अपने वरदान से जीवित कर दिया।

उपर्युक्त दोनों अलौकिक घटनाएँ सृष्टि नियम के विपरीत होने तथा वरदान और अभिशाप की शक्ति पर आधारित होने के कारण विश्वसनीय नहीं हो सकतीं। अश्वत्थामा वाली बात में इतना तो स्वीकृत हो सकता है कि ब्रह्मशिर जैसे संहारक अस्त्र शायद उस समय विद्यमान हों, पर आगे की बातें जैसे एक भयानक अस्त्र का केवल उत्तरा के गर्भ को ही प्रभावित करना तथा अश्वत्थामा को शाप आदि घटनाएँ प्रक्षिप्त ही माननी चाहियें। इसी प्रकार दूसरी घटना श्री कृष्ण का मृत परीक्षित को जीवित करना भी ऐसी ही है। यहाँ वास्तविकता यही होगी कि अश्वत्थामा और अर्जुन ने अपने -अपने अस्त्रों को छोड़ा नहीं होगा बल्कि छोड़ने की तैयारी कर रहे होंगे, तभी दोनों ऋषियों के अनुरोध से उन्होंने उनको वापिस ले लिया होगा। पाण्डवों ने गुरु पुत्र होने के कारण अश्वत्थामा को इस शर्त पर छोड़ा होगा कि वह अपनी मणि उन्हें दे दे तथा शस्त्रास्त्रों का परित्याग कर ब्राह्मण धर्म का पालन करता हुआ, वनों में तपस्या करता हुआ शेष जीवन व्यतीत करे। परीक्षित मृत नहीं, जीवित ही, पर मृतप्राय अवस्था में पैदा हुआ होगा। उत्तरा पर इतनी जल्दी और अचानक जो वैधव्य आ गया, उसका आघात गर्भस्थ शिशु पर पड़ना स्वाभाविक है। श्री कृष्ण जी ने उस शिशु को अपनी देख -रेख में चिकित्सा आदि करा कर, स्वस्थ बनाया होगा, उसी से यह समझा जाने लगा कि उन्होंने उसे नया जीवन दे दिया।

(३९) अर्जुन की मृत्यु और उसका जीवित होना
(४०) व्यास जी का मृत व्यक्तियों से मिलाना

ये दोनों घटनाएँ सृष्टि नियमों के विपरीत होने के कारण अमान्य और प्रक्षिप्त हैं। अर्जुन जब अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की रक्षा करते हुए मणिपुर में अपने और चित्राँगदा के पुत्र बभ्रुवाहन के समीप पहुँचे तब उन्होंने स्वयं उससे युद्ध का आग्रह किया और फिर उससे युद्ध करते हुए उसके बाण से मृत्यु को प्राप्त हो गये। पर अर्जुन की एक अन्य पत्नी, नाग कन्या उलूपी के द्वारा

संजीवनी मणि के स्पर्श कराने पर जीवित हो गये। मृत व्यक्ति का जीवित हो जाना पूरी तरह से असम्भव है। यदि उलूपी के पास मृत संजीवनी मणि थी तो उसने युद्ध में मारे गये पाण्डव पक्ष के सभी वीरों को तभी जीवित क्यों नहीं कर दिया? अधिक नहीं तो कम से कम अर्जुन के दोनों पुत्रों सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु और स्वयं उलूपी के पुत्र इरावान को तो अवश्य जीवित कर लेना चाहिये था। ऐसा क्यों नहीं किया?

इसी प्रकार व्यास जी द्वारा युद्ध में मृत वीरों से मिलवाने की बात है। महाभारत में लिखा है कि जब पाण्डव धृतराष्ट्र से मिलने वन में उनके आश्रम में गये, तब धृतराष्ट्र के शोक को शान्त करने के लिये, व्यास जी ने एक रात्रि गंगा के जल में से युद्ध में मृत वीरों को जीवित रूप में निकाला। वे सभी वीर अपने -अपने सम्बन्धियों तथा पत्नी आदि से उस रात्रि में मिले और प्रातः होने से पूर्व व्यास जी के आदेश से पुनः गंगा में डुबकी लगा कर वापिस परलोक चले गये। इन बातों को कैसे सत्य माना जा सकता है? यह सब प्रक्षेपकारों की माया है।

(४१) श्रीकृष्ण और बलराम का देहावसान

जब युधिष्ठिर को राज्य करते हुए उनका छत्तीसवाँ वर्ष चल रहा था, तब द्वारिका में श्रीकृष्ण और बलराम का देहावसान हो गया। महाभारत में उनके देहावसान से जुड़ी हुई चार अलौकिक घटनाओं का वर्णन है। वे इस प्रकार हैं–

(१) एक बार महर्षि विश्वामित्र, कण्व और नारद ने द्वारिका के वन में डेरा डाला हुआ था। तभी कुछ यादव नौजवान साम्ब नाम के एक नवयुवक को स्त्री वेश के वस्त्र पहना कर,उनके पास ले गये और पूछने लगे कि वे कृपया बतायें कि इस गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा या नहीं। उनके इस भद्दे मजाक से ऋषि लोग बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने उन्हें शाप दिया कि इस स्त्री के पेट से एक मूसल पैदा होगा और वही तुम सबका विनाश करेगा। उसके पश्चात् उस स्त्री वेशधारी पुरुष के पेट से एक लोहे का मूसल पैदा हुआ। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव जी ने उस मूसल को कुटवा और बारीक चूरा करा कर समुद्र में फिंकवा दिया और राज्य में शराब पीने पर कड़ी पाबंदी लगा दी। वह समुद्र में डाला हुआ मूसल का चूरा किनारे पर आकर घास के रूप में पैदा हो गया। कुछ दिनों के पश्चात् सारे यादवगण सपरिवार द्वारिका से बाहर प्रभास नाम के तीर्थ में, जो समुद्र के किनारे था, पहुँचे। वहाँ श्रीकृष्ण और बलराम के सामने ही उन्होंने खूब शराब पी और आपस में लड़ना आरंभ कर दिया। एक दूसरे को वे समुद्र के किनारे की घास के डंठल उखाड़ -उखाड़ कर मारने लगे। जैसे ही वे घास को उखाड़ते वह घास एक मूसल बन जाती और इस प्रकार सारे यादव एक दूसरे को मूसलों से मारते हुए मर कर नष्ट हो गये।

(२) जब सारे यदुवंशी नष्ट हो गये, तब बलराम जी वैराग्य वृत्ति से एकान्त में ध्यान लगा कर बैठ गये। तभी उनके प्राण नाग के रूप में उनके मुख के रास्ते से बाहर निकल गये।

(३) श्रीकृष्ण जी के निर्देशानुसार उनके देहान्त के पश्चात् जब अर्जुन अवशिष्ट द्वारिकावासियों को लेने द्वारिका पहुँचे तब जैसे ही वे सब द्वारिकावासी अर्जुन के साथ बाहर निकलने लगे, वैसे ही समुद्र ने द्वारिका को डुबोना आरंभ कर दिया तथा द्वारिका के पूरी तरह से खाली होते ही वह सारी नगरी समुद्र में डूब गयी।

(४) जब अर्जुन बचे हुए द्वारिकावासियों को लेकर इन्द्रप्रस्थ की तरफ जा रहे थे, तभी रास्ते में डाकुओं ने उन पर हमला कर दिया। अर्जुन ने उनका प्रतिरोध करना चाहा, पर श्रीकृष्ण के देहान्त के कारण उनका गाण्डीव धनुष बेकार हो गया। जिसके कारण वे कुछ भी न कर सके और डाकू उनके सामने ही लूटने योग्य पदार्थों को लूट कर ले गये।

ये सारी घटनाएं प्रकृति के नियमों के विपरीत तथा वरदान और अभिशाप पर आधारित होने के कारण प्रक्षिप्त माननी चाहियें। पहली घटना में लड़के के पेट से लोहे के मूसल का होना, लोहे के चूरे का घास के रूप में पैदा होना और घास का पुनः अलग अलग मूसलों के रूप धारण करना, प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। दूसरी घटना में प्राणों का नाग के रूप में शरीर से निकलना, असंभव है। तीसरी घटना में खाली होने वाली द्वारिका को समुद्र के द्वारा डुबाया जाना (मानों श्रीकृष्ण और

बलराम ने ही समुद्र को आगे बढ़ने से रोक रखा था, पर उनके मरते ही उसने उनकी नगरी को डुबो दिया) अप्राकृतिक बात है। चौथी घटना में श्रीकृष्ण जी के देहावसान के उपरान्त अर्जुन के गाण्डीव धनुष का भी निष्क्रिय हो जाना भी (मानों गाण्डीव धनुष में भी श्रीकृष्ण जी की शक्ति ही काम कर रही थी) अस्वाभाविक और इसलिये अविश्वसनीय है।

वास्तव में यादवों के विनाश तथा श्रीकृष्ण और बलराम के देहान्त की घटना इस प्रकार हुई होगी कि जब महाभारत युद्ध के पश्चात् सारे शत्रुओं के समाप्त हो जाने के कारण यादव लोग आराम से निष्कंटक राज्य करने लगे, तब आराम मिलने के कारण वे धीरे -धीरे नाना बुराइयों से ग्रस्त होने लगे। उनमें शराब, मॉंस और जूआ आदि दुर्गुणों ने घर कर लिया। यादव लोग पहले ही अलग -अलग समूहों में, (जैसे कुकुर, अंधक, वृष्णि, और भोज आदि में) बँटे हुए थे। श्रीकृष्ण जी ने ही उन्हें अपने अध्यवसाय और बुद्धि-चातुर्य से एक सूत्र में पिरोया हुआ था। पर अब उनकी वृद्धावस्था में, अनुशासनहीनता के कारण यादव लोग उनकी बातों को भी अनसुना करने लगे। उसी दौरान एक बार जब वे सब मिल कर प्रभास क्षेत्र में मनोरंजन के लिये पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने कृष्ण और बलराम के सामने ही खूब शराब पी और नशे में मोहित हो कर पुराने कलह कार्यों को याद करते हुए वे एक दूसरे को मारने लगे और इसी प्रकार नष्ट हो गये।

जब यादव लोग और श्रीकृष्ण तथा बलराम का सारा परिवार नष्ट हो गया, तब बलराम जी वैराग्य-युक्त होकर, एकान्त में ध्यान (समाधि) लगा कर बैठ गये और थोड़ी देर में उनके प्राणों ने नाग नाम की वायु के रूप में जो डकार लाती है, उनके शरीर को छोड़ दिया।

श्रीकृष्णजी ने तब बभ्रु नाम के बचे हुए यादव को स्त्रियों को सुरक्षित द्वारिका में पहुँचाने का तथा अपने सारथी दारुक को हस्तिनापुर जाकर समाचार देने का आदेश दिया और स्वयं द्वारिका में अपने पिता वसुदेव जी के पास जाकर ,उन्हें सारा घटना क्रम बताया और उन्हें प्रणाम कर तपस्या करने के लिये बलराम जी के पास आये। बलराम जी तब तक दिवंगत हो चुके थे। श्रीकृष्ण जी तब उनके पास लेटे हुए अपने आगे के कार्यक्रम के विषय में सोच रहे थे, तभी एक शिकारी का जहरीला बाण उनके पैर के तलुवे में लगा, जिसके कारण उनकी भी मृत्यु हो गयी।

समाचार मिलने पर अर्जुन ने द्वारिका में पहुँच, बूढ़े वसुदेव जी से भेंट की, जिन्होंने शोक के कारण दूसरे दिन अपने प्राण त्याग दिये। अर्जुन ने फिर उन सबके अन्त्येष्टि कर्म करवाये और शेष स्त्री -बच्चों और बूढ़ों को लाकर, इन्द्रप्रस्थ में बसा दिया तथा श्रीकृष्ण जी के पौत्र वज्र को वहाँ का राजा बना दिया। यहाँ यह समझना चाहिये कि तब द्वारिका पूरी तरह से खाली नहीं हुई होगी, क्योंकि राज्य में केवल यादव ही नहीं रहते थे, वे तो शासनकर्ता थे। ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र तथा कुछ अन्य क्षत्रिय भी अवश्य रहते होंगे। वे द्वारिका में बच गये होंगे। उस राजा रहित प्रदेश को उन्होंने धीरे - धीरे ही स्वयं अलग - अलग स्थानों में जाकर खाली किया होगा। समुद्र ने द्वारिका को विनाश के पश्चात् तुरन्त नहीं, बल्कि स्वाभाविक प्रक्रिया में ही डुबोया होगा।

(४२) पाण्डवों का स्वर्गारोहण

हस्तिनापुर पर छत्तीस वर्ष राज्य करने के उपरान्त, जब युधिष्ठिर को मालूम हुआ कि उनके सबसे अधिक शुभचिन्तक श्रीकृष्ण जी का द्वारिका में देहान्त हो गया है, तब उनका भी मन राज्य कार्य से विरक्त हो गया। परीक्षित भी तब आयु में छत्तीस वर्ष का, अर्थात् राज्य सम्भालने योग्य हो गया था, परिणामतः उन्होंने परीक्षित को राज्य गद्दी पर बैठाया और उसकी माता उत्तरा और दादी सुभद्रा को एवं धृतराष्ट्र के अन्तिम पुत्र युयत्सु (उसके दादा) को उसकी संरक्षा के लिये छोड़ कर युधिष्ठिर अपनी रानी द्रौपदी तथा चारों पाण्डव भाइयों के साथ वन में तपस्या करने के लिये चले गये। तपस्या करने के लिये वे कहाँ गये? इसका उत्तर यही है कि वे निश्चित रूप से हिमालय पर बद्रिकाश्रम से आगे गन्धमादन पर्वत पर गये होंगे। क्योंकि अपने वनवास के दिनों में अर्जुन के इन्द्रलोक से वापिस आने पर पाण्डवों ने चार वर्ष तक गन्धमादन पर्वत पर ही वास किया था। वह प्रदेश उन्हें बहुत प्रिय था। वहाँ से चलते हुए महाभारत के वन पर्व

अध्याय १७६,श्लोक २० के अनुसार युधिष्ठिर ने निश्चय किया था, कि मैं अपने जीवन के सारे कार्य समाप्त कर तपस्या करने के लिये एक बार फिर यहीं आऊँगा।

किन्तु पाण्डवों की इस अन्तिम यात्रा के वर्णन में भी महाभारत में अलौकिक घटनाएँ जोड़ दी गयीं हैं। जैसे कि वहाँ लिखा है कि पाण्डवों ने पहले सारे भारतवर्ष का चक्कर लगाया और उसके पश्चात् हिमालय की यात्रा आरंभ की। घर से निकलने पर वे न तो कहीं रुके और न कहीं कुछ खाया पिया। यह किस प्रकार सम्भव है? हिमालय पर चढ़ते हुए पहले द्रौपदी, फिर सहदेव, फिर नकुल, फिर अर्जुन और फिर भीम का रास्ते में गिर कर प्राणान्त हो गया। जब -जब जो व्यक्ति गिरा, उसी के विषय में युधिष्ठिर ने बताया कि यह इसलिये पहले गिरा क्योंकि इसके चरित्र में यह दोष था। अब जरा सोचिये कि जल्दी थक कर गिर जाने का चरित्र दोष से क्या सम्बन्ध? वह भीमसेन, जो अपने शारीरिक बल के कारण अपने भाइयों को उठा कर पहाड़ों पर ले जाता था, वह तो पहले गिर गया, पर जो शरीर में सबसे कमजोर थे, वे युधिष्ठिर अन्त तक पहाड़ पर चढ़ते रहे। इसी प्रकार वहाँ वर्णन है कि अन्त में स्वर्ग के राजा इन्द्र युधिष्ठिर को लेने आये तो वे अपने एक मात्र साथी एक कुत्ते के साथ स्वर्ग में गये। वह कुत्ता भी धर्मराज यम का अवतार था। स्वर्ग में जाकर भी युधिष्ठिर ने वहाँ तरह -तरह के दृश्य देखे। इस प्रकार ये सारी अलौकिक और अस्वाभाविक कहानियाँ मानने योग्य नहीं हैं। ये पीछे से जोड़ी हुई प्रक्षिप्त हैं।

(४३) महाभारत की प्रमुख घटनाओं का समय

महाभारत में घटने वाली सारी घटनाओं के विषय में तो नहीं कहा जा सकता, पर कुछ प्रमुख घटनाओं के विषय में समय के संकेत मिलते हैं। वे घटनाएं निम्नलिखित हैं—

१-युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ।
२-पाण्डवों के वनवास का आरंभ।
३-तेरहवें अज्ञातवास के वर्ष की समाप्ति।
४-महाभारत के युद्ध का आरंभ।
५-भीष्म पितामह की मृत्यु।
६-धृतराष्ट्र का वनगमन तथा देहान्त।
७-श्री कृष्ण जी का देहान्त और पाण्डवों का राज्य त्याग।

१-युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ— युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय के विषय में विचार अगली विवेचना संख्या ४४ में पात्रों की आयु पर विचार करते हुए किया गया है। वैसे, राजसूय यज्ञ वनवास के आरंभ होने की तिथि ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया से लगभग आठ मास पूर्व अर्थात् आश्विन के आरंभ में समझना चाहिये,क्योंकि उससे पूर्व वर्षा ऋतु होती है।

२-पाण्डवों के वनवास का आरंभ और ३- अज्ञातवास की समाप्ति— इस विषय पर विवेचन नं०-१६ में विचार कर लिया गया है। वहाँ इसकी तिथि ज्येष्ठ की कृष्णा द्वितीया मानी गयी है।

४-महाभारत के युद्ध का आरंभ—महाभारत का युद्ध कब आरंभ हुआ, यह जानने के लिये दो आधार हैं। पहला आधार तो यह है कि स्त्री -विलाप पर्व में जब गान्धारी श्रीकृष्ण जी को अलग -अलग स्त्रियों को कुरुक्षेत्र में विलाप करते हुए दिखाती है, तब वह उत्तरा की तरफ संकेत करते हुए बताती है, कि उत्तरा अपने मृत पति अभिमन्यु के शव से इस प्रकार बातें कर रही है—

एतावानिह संवासो, विहितस्ते मया सह। षण्मासान्सप्तमे मासि, त्वं वीर निधनं गतः।। स्त्री पर्व २१/२८

अर्थात् हे वीर इस संसार में छह मास तक ही तुम्हारा मेरा साथ रहा। सातवें मास में ही आपकी मृत्यु हो गयी।

इस प्रकार अभिमन्यु की मृत्यु अभिमन्यु के विवाह से छह मास पश्चात् तथा महाभारत के युद्ध के तेरहवें दिन हुई थी। अभिमन्यु का विवाह अज्ञात वास की समाप्ति के तुरन्त बाद हुआ था। इस रीति से गिनती करने पर अग्रहायण मास का उत्तरार्ध महाभारत युद्ध के आरंभ का समय बैठता है।

दूसरा आधार यह है कि भीष्म पितामह ने जब प्राण त्यागे,तब उन्होंने दो बातें अपने विषय में बतायीं। पहली यह कि मैं कितने दिन से इस शर शय्या में लेटा हुआ हूँ और दूसरी यह कि आज कौन -सी तिथि है। प्रमाण के लिये देखिये—

अष्ट पंचाशतं रात्र्यः, शयानस्याद्य मे गताः।
शरेषु निशिताग्रेषु, यथा वर्षशतं तथा।।
माघोयं समनुप्राप्तो, मासः सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षोयं, शुक्लो भवितुमर्हति।। अनुशासन पर्व १६७/२७, २८

अर्थात् भीष्म जी कहते हैं कि हे युधिष्ठिर इन तीखी नोकों वाले बाणों में सोते हुए मुझे आज अट्ठावन रातें बीत चुकीं हैं। ये रातें मुझे सौ वर्षों के समान बीतीं हैं। हे युधिष्ठिर यह माघ का सुन्दर महीना आ गया है।आज इसके तीन भाग शेष हैं, यह शुक्ल पक्ष होना चाहिये अर्थात् शुक्ला अष्टमी होनी चाहिये।

इन श्लोकों से स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि भीष्म जी ने महाभारत युद्ध आरंभ होने के ६८ दिन के बाद माघ शुक्ला अष्टमी को प्राण त्यागे, अर्थात् माघ शुक्ला अष्टमी से ६८ दिन पहले अग्रहायण शुक्ला प्रतिपदा को महाभारत के युद्ध का आरंभ हुआ। इस प्रकार दोनों ही प्रकारों से महाभारत के युद्ध का समय एक जैसा ही सिद्ध होता है।

५- *भीष्म पितामह की मृत्यु का समय*— यह समय तो उपर के श्लोकों में वर्णित है ही।

६- *धृतराष्ट्र का वन-गमन तथा देहान्त*—इसके विषय में महाभारत में निम्नलिखित श्लोक है—

एवं वर्षाण्यतीतानि, धृतराष्ट्रस्य धीमतः।
वनवासे तथा त्रीणि, नगरे दश पंच च।। आश्रमवासिक पर्व ३९/२५

अर्थात् धृतराष्ट्र ने युद्धोपरान्त पंद्रह वर्ष हस्तिनापुर में व्यतीत किये और तीन वनवास में। इस प्रकार युधिष्ठिर के राज्य के १८ वर्ष के पश्चात् उनका देहान्त हुआ।

७—*श्री कृष्णजी का देहान्त और पाण्डवों का वन-गमन*—जब युधिष्ठिर को राज्य करते हुए ३६वाँ वर्ष चल रहा था, तब द्वारिका में यादवों का परस्पर कलह से विनाश तथा कृष्ण और बलराम की मृत्यु हुई और उसके कुछ दिनों के पश्चात् ही पाण्डवों ने राज्य से उदासीन हो, परीक्षित को राजा बना कर, तपस्या करने के लिये वन की राह ली। प्रमाण के लिये देखिये—

षट्त्रिंशेथ ततो वर्षे, वृष्णीनामनयो महान् ।
अन्योन्यं मुसलैस्ते तु, निजघ्नुः काल चोदिताः।।मौसल २/१३

अर्थात् महाभारत के युद्ध के पश्चात् ३६वें वर्ष में यदुवंशियों में अन्यायपूर्वक लड़ाई -झगड़े आरंभ हो गये। फलतः उन्होंने मृत्यु से प्रेरित हो कर एक दूसरे को मूसलों से मार डाला।

इस दुर्घटना के पश्चात् पाण्डव भी तपस्या करने के लिये वन में चले गये। इस प्रकार युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष राज्य किया।

(४४) महाभारत के प्रमुख पात्रों का जीवन-काल (आयु)

महाभारत का आद्योपान्त अध्ययन करने के उपरान्त पाठकों के मन में प्रायः यह जिज्ञासा जागृत होती है कि महाभारत के घटना -क्रम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले प्रमुख पात्रों का जीवनकाल अर्थात् आयु कितनी थी? क्योंकि महाभारत में आयु के विषय में स्पष्ट उल्लेख नहीं है, अतः प्राप्त संकेतों के आधार पर ही विवेचना करके पाठकों की जिज्ञासा शान्त की जा सकती है। निम्नलिखित पंक्तियों में यही कुछ करने का प्रयास किया गया है।

१-राजा शान्तनु-- हस्तिनापुर के राजा शान्तनु प्रथम पात्र हैं, जो महाभारत आरंभ करने पर हमारे समक्ष आते हैं। प्राचीन काल में पूर्ण युवावस्था, विद्या समाप्ति और विवाह, इन तीनों का समय २५ वर्ष की अवस्था मानी जाती थी। प्राचीन भारत ही नहीं आज कल भी हम देखते हैं कि अधिकांश नवयुवक २५ वर्ष की अवस्था में ही पढ़ाई समाप्त कर रोजगार में लगते हैं। उन परिवारों की बात अलग है, जहाँ आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण बच्चों को पहले ही अपनी पढ़ाई बीच में छोड़ कर व्यवसाय अपनाना पड़ जाता है। इस हिसाब से हमें यह मानना चाहिये कि जब शान्तनु का गंगा से विवाह हुआ, तब उनकी आयु २५ वर्ष की होगी। विवाह के पश्चात् भीष्म पितामह शान्तनु की आठवीं संतान थे। सभी संतानों में कम से कम एक एक वर्ष का अंतर तो मानना ही चाहिये और इस प्रकार भीष्म का जन्म विवाह के आठ वर्ष पश्चात् अर्थात् शान्तनु की ३३ वर्ष की अवस्था में तो हुआ ही होगा।जन्म के पश्चात् भीष्म का पालन माता गंगा के पास हुआ। भीष्म क्योंकि विद्या समाप्ति के बाद ही पिता के पास आये अतः उनकी आयु उस समय २५ वर्ष और शान्तनु की आयु ५८ वर्ष की होगी। इसके पश्चात् निम्नलिखित श्लोक–

स तथा सह पुत्रेण.................................चत्वार्यमितविक्रमः।। आदि १००/४५

यह प्रकट कर रहा है कि सत्यवती से शान्तनु के विवाह से पहले भीष्म ४ वर्ष तक अपने पिता के साथ रहे। उसके बाद शान्तनु का सत्यवती से विवाह तथा भीष्म की प्रतिज्ञा वाली घटनाएँ हुईं, अर्थात् सत्यवती से विवाह के समय शान्तनु की आयु ६२ वर्ष और भीष्म की आयु २९ वर्ष थी। सत्यवती से शान्तनु के दो पुत्र हुए, चित्राँगद और विचित्र वीर्य। शान्तनु की मृत्यु के समय चित्रांगद पूर्ण युवावस्था को प्राप्त थे, पर विचित्रवीर्य अभी छोटे थे। इसका मतलब है कि चित्रांगद उस समय २५ वर्ष के होंगे। इसीलिये पिता की मृत्यु होने पर चित्रांगद को राजा बना दिया गया। इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि शान्तनु का देहान्त सत्यवती से विवाह के २६ वर्ष बाद हुआ। उस समय उनकी आयु ८८ वर्ष तथा भीष्म पितामह की आयु ५५ वर्ष की थी।

२–भीष्म पितामह– भीष्म पितामह के प्रारंभिक जीवन सम्बन्धी आयु का निर्णय ऊपर शान्तनु वाले प्रकरण में किया ही जा चुका है। वहाँ बताया गया है कि शान्तनु की मृत्यु के समय भीष्म जी ५५ वर्ष के थे। शान्तनु की मृत्यु के बाद उसके लड़के चित्राँगद को राजा बना दिया गया। महाभारत में लिखा है कि चित्राँगद शूरवीर तो थे, पर उन्हें अपनी वीरता का बड़ा अभिमान था। शायद इसी कारण एक चित्राँगद नाम के गन्धर्व ने उन्हें युद्ध के लिये ललकारा और कहा कि तुम्हारा और मेरा एक ही नाम है। एक नाम के दो प्रतिद्वंद्वी नहीं रहने चाहियें इसलिये तुम मुझसे युद्ध करो। या तो दुनिया में तुम रहोगे या मैं। परिणामतः निम्नलिखित श्लोक के अनुसार—

नद्यास्तीरे सरस्वत्याः.........................गन्धर्वः कुरुसत्तमम्।।आदि १११/८९

चित्राँगद राजा का अपने नामधारी गन्धर्व के साथ कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के तीर पर तीन वर्ष तक युद्ध हुआ और अन्त में वह गन्धर्व के हाथों मारा गया। इस प्रकार चित्राँगद ने कुल चार वर्ष तक राज्य किया। एक वर्ष का समय युद्ध से पहले का और तीन वर्ष युद्ध के। उसके पश्चात् छोटे भाई विचित्रवीर्य को गद्दी पर बैठाया गया। उस समय भीष्म की आयु ५५ और ४, कुल ५९ वर्ष होगी। विचित्रवीर्य ने आठ वर्ष तक राज्य किया। एक वर्ष विवाह के पहले और सात वर्ष विवाह के पश्चात्। विवाह से पहले एक वर्ष इसलिये क्योंकि राजा बनने के समय उन्हें अप्राप्त यौवन कहा गया है। महाभारत के ही अनुसार विवाहोपरान्त सात वर्ष पश्चात् भयंकर राजयक्ष्मा के कारण उनका देहान्त हो गया। उस समय भीष्म की आयु ५९ और ८, कुल ६७ वर्ष की माननी चाहिये।

विचित्रवीर्य की मृत्यु के पश्चात् नियोग के द्वारा पहले धृतराष्ट्र का जन्म हुआ और पीछे पांडु का। धृतराष्ट्र का जन्म यदि विचित्र वीर्य की मृत्यु के एक वर्ष पीछे माना जाये, तो उस समय भीष्म जी की आयु ६७ और १, कुल ६८ वर्ष की थी। अर्थात् भीष्म पितामह धृतराष्ट्र से ६८ वर्ष बड़े थे। धृतराष्ट्र से एक वर्ष पश्चात् पांडु का जन्म हुआ, जो भीष्म से ६९ वर्ष छोटे थे। पांडु जब पूर्ण यौवन को प्राप्त अर्थात् २५ वर्ष के होकर राज्य गद्दी पर बैठे, तब भीष्म पितामह की आयु ६९ और २५, कुल

१४ वर्ष की होगी। राज्याभिषेक के पीछे पांडु के दो विवाह हुए, तत्पश्चात् उन्होंने विजय यात्रा की, उसके बाद वे बीमार होकर वन में जाकर रहने लगे। तत्पश्चात् नियोग के द्वारा युधिष्ठिर का जन्म हुआ। मैं समझता हूँ कि इन सब कार्यों में राज्याभिषेक के बाद पाँच वर्ष तो अवश्य ही व्यतीत हो गये होंगे, इसलिये युधिष्ठिर के जन्म के समय भीष्म ९९ वर्ष के होंगे। अब यह मान कर कि भीष्म पितामह युधिष्ठिर से ९९ वर्ष बड़े थे, आगे कि पंक्तियों में भीष्म और युधिष्ठिर, दोनों की आयु का एक साथ विवेचन किया जायेगा।

३-*युधिष्ठिर*—युधिष्ठिर के पिता पांडु का जब देहान्त हुआ, तब युधिष्ठिर १६ वर्ष के थे। प्रमाण के लिये देखिये कि—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे, फाल्गुनस्य च धीमतः। आदि १२४/२

यह श्लोक बता रहा है कि अर्जुन के १४ वर्ष का होने पर अर्थात् जिस दिन अर्जुन का १५ वाँ जन्मदिन था, उस दिन माद्री और पांडु वाली दुर्घटना हुई, जो पांडु की मृत्यु का कारण बनी। तथा निम्न श्लोक के अनुसार—

अनुसंवत्सरं जाता, अपि ते कुरुसत्तमाः। आदि १२३/२२

पाण्डवों ने एक-एक वर्ष के पश्चात् जन्म लिया। अर्थात् भीम युधिष्ठिर से एक वर्ष और अर्जुन दो वर्ष छोटे थे तथा नकुल और सहदेव, दोनों क्योंकि जुड़वाँ थे अतः तीन वर्ष छोटे थे। क्योंकि पांडु की मृत्यु अर्जुन के चौदह वर्ष का होने पर हुई थी, अतः तब युधिष्ठिर १६ वर्ष के और भीष्म पितामह ११५ वर्ष के थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् पाण्डव वन से हस्तिनापुर आये। वहाँ आकर पहले कृपाचार्य से और उसके बाद द्रोणाचार्य से उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। इस कार्य में उनके नौ वर्ष व्यतीत हो गये होंगे। शिक्षा समाप्ति और पूर्ण युवावस्था की प्राप्ति का समय वैसे भी २५ वर्ष की आयु का माना जाता है, अतः द्रोणाचार्य से शिक्षा की समाप्ति तक युधिष्ठिर २५ वर्ष के हो गये होंगे। भीष्म पितामह उस समय १२४ वर्ष के होंगे। इसके पश्चात् युधिष्ठिर ने भावी राजा के रूप में प्रजा से अपना संपर्क बढ़ाना आरंभ कर दिया, उधर भीम ने बलराम से गदा युद्ध की विशेष शिक्षा ग्रहण की तथा अर्जुन ने भी अपना विशेष अभ्यास किया और उसके पश्चात् महाभारत के अनुसार भीम और अर्जुन ने साथ -साथ विजय -यात्रा कर के पूर्व, दक्षिण और पश्चिम के राज्यों को जीता। इन सब कार्यों में पाँच वर्ष तो अवश्य ही लग गये होंगे। इसके बाद पाण्डवों को लाक्षागृह में रहने के लिये वारणावत नगर भेज दिया गया। वहाँ वे निम्नलिखित श्लोक के अनुसार—

ताँस्तु दृष्ट्वा सुमनसः.............................हर्म्यं चक्रे पुरोचनः। आदि १४७/१

एक वर्ष तक रहे। उसके पश्चात् भीमसेन का हिडिम्बा से विवाह और पुत्र घटोत्कच का जन्म हुआ। उसके पश्चात् कुछ समय एक चक्रा नगरी में रहने के पश्चात् पाण्डव लोग द्रौपदी के स्वयंवर में पहुँचे। तब तक उन्हें हस्तिनापुर से निकले दो वर्ष अवश्य ही हो गये होंगे। अतः मानना चाहिये कि युधिष्ठिर के द्रौपदी से विवाह के समय उसकी आयु ३२ वर्ष और भीष्म जी की आयु १३१ वर्ष अवश्य थी। इसके पश्चात् अभिमन्यु के जन्म तक निम्नलिखित कार्य निम्नलिखित समय में हुए—

क—-पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ नाम के एक जंगल पर अपनी राजधानी को बनाया। अपने रहने के लिये महल बनवाये, नगर की चारदीवारी और नगर में सड़कों आदि का निर्माण करवाया। इसमें पाँच वर्ष अवश्य ही लग गये होंगे।

ख—आसपास के राजाओं को जीत कर अपने राज्य की समृद्धि और सीमा को बढ़ाया। इसमें एक वर्ष लगा होगा।

ग—-*स वै संवत्सरं पूर्णं, मासं चैकं वनेवसत्।।* आदि ६१/ ४२ इस श्लोक के अनुसार अर्जुन अकेले एक वर्ष और एक मास वन में रहे और उसके बाद विदेश यात्रा पर निकल गये। वहाँ उन्होंने तीन विवाह किये। सबसे पहले हरद्वार में नाग-कन्या उलूपी से, फिर मणिपुर की राजकुमारी चित्रांगदा से किया। मणिपुर में वे तीन वर्ष तक रहे। प्रमाण के लिये देखिये-
उवास नगरे तस्मिन्, तिस्रः कुन्तीसुतः समाः।। आदि ११५/ २६

इसके पश्चात् उन्होंने द्वारिका में जाकर सुभद्रा से विवाह किया। और वहाँ *उषित्वा तत्र कौन्तेयः, संवत्सरपराः क्षपाः।।* इस श्लोक के अनुसार वे एक वर्ष से कुछ अधिक दिन तक वहाँ रहे और उसके बाद सुभद्रा के साथ हस्तिनापुर लौट आये। वहाँ आने के कुछ मास पश्चात् अभिमन्यु का जन्म हुआ। अर्जुन के हस्तिनापुर से वन के लिये प्रस्थान करने से लेकर अभिमन्यु के जन्म तक के समय को छह वर्ष का गिनना चाहिये। इस प्रकार द्रौपदी के विवाह से बारह वर्ष पश्चात् अभिमन्यु का जन्म हुआ। उस समय युधिष्ठिर की आयु ४४ वर्ष की और भीष्म जी की आयु १४३ वर्ष की होनी चाहिये।

उसके पश्चात् युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। राजसूय यज्ञ के वर्णन में महाभारत में निम्नलिखित श्लोक–

द्रौपदेयाः ससौभद्राः, पर्वतीयान्महारथान् ।। सभा ४५/ ४९

यह बतला रहा है कि यज्ञ की समाप्ति पर अभिमन्यु ने और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों ने पर्वतीय राजाओं के विदा होने पर उन्हें राज्य की सीमाओं तक पहुँचाया। इस श्लोक में अभिमन्यु के जिस कार्य का वर्णन किया गया है,उसे छोटा बच्चा नहीं कर सकता। ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को करने के लिये उसकी आयु २० वर्ष की माननी चाहिये। इस प्रकार राजसूय यज्ञ के समय युधिष्ठिर की आयु ६४ वर्ष और भीष्म की आयु १६३ वर्ष की थी। इसके पश्चात् महाभारत के युद्ध की महान् घटना हुई। यह राजसूय यज्ञ से १४ वर्ष बाद हुई। क्योंकि यज्ञ के पश्चात् द्यूत-क्रीडा में ६ मास लग गये होंगे। उसके बाद १३ वर्ष का वनवास और अज्ञातवास हुआ तथा ६ मास युद्ध की तैयारी में लगे होंगे। इस तरह महाभारत के युद्ध के समय युधिष्ठिर की आयु ७८ वर्ष और भीष्मकी आयु १७७ वर्ष तथा अभिमन्यु की आयु ३४ वर्ष की हुई। अर्थात् भीष्म जी का सम्पूर्ण जीवन-काल १७७ वर्ष का ठहरता है। इसके पश्चात् निम्नलिखित श्लोक के अनुसार-

षट् त्रिंशेथ ततो वर्षे, वृष्णीनामनयो महान्। अन्योन्यं मुसलैस्ते तु, निजघ्नुः कालचोदिताः।।मौसल १/ १३

अर्थात् महाभारत के युद्ध के ३६ वें वर्ष में यदुवंशियों में बहुत अन्याय बढ़ गया और मृत्यु से प्रेरित होकर उन्होंने एक दूसरे को मूसलों से मार दिया।

इस श्लोक के अनुसार जब युधिष्ठिर को राज्य करते हुए ३६वाँ वर्ष चल रहा था, तब परस्पर संघर्ष में यदुवंशी मारे गये तथा कृष्ण और बलराम का भी देहान्त हो गया। कृष्ण के देहान्त के पश्चात् पाण्डवों ने भी परीक्षित को राजा बना कर तपस्या करने के लिये हिमालय पर्वत की राह ली। इस समय युधिष्ठिर की आयु ७८ में ३६ मिलाकर ११४ वर्ष की कम से कम होगी। यहाँ युधिष्ठिर और उनके भाइयों की आयु का हिसाब उनके राज्य-त्याग तक लगाया गया है। वन में तपस्या करते हुए उनमें किस का देहान्त कब कब हुआ, उसका कोई वर्णन प्राप्य नहीं है।

४–चारों पाण्डव, कृष्ण, बलराम और दुर्योधन—इन सातों व्यक्तियों की आयु का हिसाब युधिष्ठिर की आयु के अनुसार लगा लेना चाहिये। भीम युधिष्ठिर से एक वर्ष तो अर्जुन दो वर्ष छोटे थे। दोनों जुड़वाँ भाई नकुल और सहदेव तीन वर्ष छोटे थे। महाभारत में कृष्ण और बलराम के जब -जब पाण्डवों से भेंट करने का वर्णन आया है, तब -तब उन्होंने छोटे -बड़े के हिसाब से जिस -जिस प्रकार परस्पर अभिवादन किया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि बलराम युधिष्ठिर से छोटे पर भीम से बड़े थे। इसी प्रकार श्रीकृष्ण भीम से छोटे पर अर्जुन से आयु में बड़े थे। दुर्योधन और भीम समान अवस्था के थे।

५–*धृतराष्ट्र*—उपर्युक्त विवेचना से धृतराष्ट्र के विषय में भी यह स्पष्ट हो गया है कि धृतराष्ट्र भीष्म से ६८ वर्ष छोटे, पांडु से एक वर्ष बड़े और युधिष्ठिर से ३१ वर्ष बड़े थे। युधिष्ठिर को जब राज्य करते हुए १५ वर्ष हो गये, तब उन्होंने वन में वास किया और तीन वर्षों के वनवास के पश्चात् अर्थात् जब युधिष्ठिर की आयु ९६ वर्ष की थी, तब अपनी १२७ वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हुआ। प्रमाण के लिये देखिये निम्नलिखित श्लोक–

एवं वर्षाण्यतीतानि, धृतराष्ट्रस्य धीमतः। वनवासे तथा त्रीणि, नगरे दश पंच च।। आश्रम ३९/

अर्थात् महाभारत के युद्ध के पश्चात् श्रीमान् धृतराष्ट्र के पन्द्रह वर्ष नगर में और तीन वर्ष वनवास में व्यतीत हुए।

५–*कृपाचार्य*–कृपाचार्य और कृपी, ये दोनों जुड़वाँ भाई -बहन थे। महाभारत के अनुसार इनकी माता नहीं थी। ये बाल्यावस्था में पिता के पास ही (जो कि वन में कुटी बना कर तपस्या करते थे) रहते थे। एक बार इनके पिता इन्हें कुटी में छोड़ कर कहीं गये हुए थे। तभी शान्तनु के सैनिक वहाँ शिकार खेलते हुए पहुँच गये। उन्होंने दो बच्चों को आश्रम में अकेला देख कर उन्हें वहाँ से ले कर शान्तनु के पास पहुँचा दिया। तब शान्तनु ने उनको पालन -पोषण के लिये अपनाया। क्योंकि शान्तनु ने उन पर कृपा की इसलिये उनका नाम कृप और कृपी रख दिया गया। इस कहानी से कृपाचार्य की आयु के निर्धारण में यह तय होता है कि कृपाचार्य का जन्म शान्तनु के जीवन में ही हो चुका था। अब यदि यह माना जाये कि शान्तनु के पास पहुँचने के समय उनकी आयु कम से कम पाँच वर्ष होगी और शान्तनु का देहान्त उसके एक वर्ष पश्चात् ही हो गया तो कृपाचार्य की आयु शान्तनु के देहान्त के समय कम से कम छह वर्ष की ठहरती है। अब क्योंकि भीष्म जी की आयु उस समय पहले किये गये विवेचन के अनुसार ५५ वर्ष की थी, अतः यह सिद्ध हुआ कि कृपाचार्य भीष्म से ४९ वर्ष छोटे थे। भीष्म की आयु क्योंकि महाभारत के युद्ध के समय १७७ वर्ष की थी अतः कृपाचार्य की आयु उस समय १७७ में से ४९ घटा कर १२८ वर्ष थी। कृपाचार्य के देहान्त के विषय में महाभारत में कोई उल्लेख नहीं है। छत्तीस वर्ष के बाद जब युधिष्ठिर राज्य छोड़ कर तपस्या करने के लिये गये, तब कृपाचार्य की आयु १६४ वर्ष की थी और तब भी उन्हें जीवित बताया गया है।

६–*द्रोणाचार्य*– द्रोणाचार्य की आयु के विषय में विचार करने के लिये महाभारत में दो आधार उपलब्ध हैं। पहला तो यह कि द्रोणाचार्य कृपाचार्य की जुड़वाँ बहन कृपी के पति थे। भारतीय समाज में पति पत्नी से आयु में बड़ा होता है। किसी विशेष अवस्था में वह उसके बराबर भी हो जाता है पर पत्नी से छोटा कभी नहीं होता। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि क्योंकि कृपाचार्य की आयु पूर्व किये गये विवेचन के अनुसार महाभारत के युद्ध के समय १२८ वर्ष निश्चित की गई है, तो द्रोणाचार्य की भी आयु कम से कम १२८ या उससे कुछ अधिक होनी चाहिये।

द्रोणाचार्य की आयु के विषय में दूसरा आधार यह है कि महाभारत के द्रोण पर्व में द्रोणाचार्य की आयु के विषय में एक वाक्य है- ***वयसा अशीति पंचकः***- अर्थात् द्रोणाचार्य जी आयु से अस्सी और पाँच के थे। यह वाक्य द्रोण पर्व में एक स्थान पर ही नहीं, बल्कि तीन बार अध्याय १२५/७३, १९२/६४, और १९३/४३ में आया है, इसलिये इस श्लोक को प्रक्षिप्त भी नहीं कह सकते, किन्तु इसके अर्थ के विषय में विद्वानों का एक मत नहीं है।

कुछ विद्वान् इसका अर्थ यह करते हैं कि अस्सी और पाँच पिचासी, इसलिये द्रोणाचार्य उस समय पिचासी वर्ष के थे, किन्तु यह मानने योग्य नहीं है। क्योंकि युधिष्ठिर की आयु के विवेचन में युधिष्ठिर की आयु महाभारत के युद्ध के समय ७८ वर्ष की ठहरती है,तो क्या द्रोणाचार्य जो युधिष्ठिर के गुरु थे, उनसे केवल सात वर्ष बड़े थे? इसके साथ ही उनकी पत्नी कृपी तो उस समय १२८ वर्ष की थी। पति पत्नी से इतना छोटा कैसे? और कृपी की आयु ८५ वर्ष की कैसे सिद्ध की जाये?

यहाँ तीसरी बात यह भी है कि जब पिचासी की संख्या के लिये संस्कृत में-***पंचाशीति***-शब्द पहले ही विद्यमान है तो महाभारत के लेखक व्यास जी को क्या आवश्यकता थी कि वे इसके लिये दूसरे शब्द को बनाते। पर यहाँ उन्होंने ***पंचाशीति*** की जगह ***अशीतिपंच*** शब्द को बनाया, इससे यह स्पष्ट है कि यहाँ पिचासी अर्थ नहीं अपितु अन्य किसी विशेष अर्थ से अभिप्राय है। इसलिये यह मत मानने योग्य नहीं है।

कुछ दूसरे विद्वान् ***वयसा अशीति पंचक*** का अर्थ अस्सी गुणा पाँच करके द्रोणाचार्य की आयु ४०० वर्ष की बताते हैं। यह मत भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि एक तो इतनी अधिक आयु का होना सामान्य गृहस्थी व्यक्ति के लिये असंभव है, दूसरे यहाँ उनकी पत्नी की आयु उनसे बहुत छोटी हो जाती है, तीसरे द्रोणाचार्य द्रुपद के सहपाठी भी थे। सहपाठियों की आयु में २० या ३० वर्ष का अन्तर तो संभव है, पर इतना अधिक अन्तर होना कठिन है।

इस प्रकार ये दोनों मत स्वीकार नहीं किये जा सकते, पर इस श्लोक को प्रक्षिप्त भी नहीं माना जा सकता।

ऐसी परिस्थिति में मैं एक और तीसरे मत की स्थापना करने का साहस कर रहा हूँ। मेरे विचार से *वयसा अशीति पंचकः* इस वाक्य में संस्कृत के समास विषयक व्याकरण के नियमों की करामात है। यहाँ पंच शब्द केवल पाँच की संख्या का वाचक नहीं है। इस पंच शब्द में द्वन्द्व समास है। जैसे राम और लक्ष्मण और सीता इन तीनों में द्वन्द्व समास किया जाये तो इनका समस्त पद *रामलक्ष्मणसीता* बन जायेगा। वह इसलिये बनेगा क्योंकि इन तीनों शब्दों की आकृतियाँ अलग -अलग हैं। पर यदि राम नाम के तीन अलग-अलग व्यक्तियों के नामों में द्वन्द्व समास किया जाये तो उनका समस्त पद *रामरामराम* यह नहीं, बल्कि केवल *राम* यह बनेगा। क्योंकि संस्कृत व्याकरण के नियम के अनुसार समान आकृति वाले शब्दों में जब द्वन्द्व समास किया जाता है, तो उसके समस्त पद में एक ही शब्द शेष रहता है, बाकी लुप्त हो जाते हैं। इसी नियम के आधार पर यहाँ पंच शब्द में पंच नाम के दस शब्दों का परस्पर द्वन्द्व समास है और उस समास का समस्त पद पंच शब्द है। अर्थात् जैसे हिन्दी में हम कहें कि पाँच और पाँच और पाँच और पाँच इन सबका समूह पाँच। इस पाँच शब्द का अर्थ यहाँ पाँच नहीं अपितु बीस है। इसी प्रकार महाभारत के वाक्य में पंच शब्द पाँच का नहीं बल्कि पचास की संख्या का वाची है। पंच शब्द में समास के पश्चात् फिर अशीति और पंच में द्वन्द्व समास (अशीति और पंच) है। इस प्रकार *अशीति पंच* शब्द ८० और ५०, कुल १३० की संख्या का वाचक है। अशीति पंच के आगे *क* शब्द बहुब्रीहि समास के द्वारा जोड़ा हुआ है, जिसका अर्थ है वाला या जिसका। इस प्रकार *अशीति पंचक* का अर्थ हुआ एक सौ तीस वाला अर्थात् द्रोणाचार्य की आयु १३० वर्ष की थी। इस विवेचना में उपर्युक्त सारी शंकाओं का समाधान भी हो जाता है।

(४५) कर्ण का जीवन विश्लेषण

भारतवर्ष को उन्नति के उच्च शिखर से अवनति के गर्त में धकेलने वाले तथा १८ अक्षौहिणी सेना अर्थात् ३९,३६,६०० सैनिकों को १८ दिन में ही समाप्त कर देने वाले महाभारत के युद्ध के कारणों पर यदि विचार किया जाये तो उन सभी कारणों में कर्ण एक ऐसा व्यक्ति था, जो इस युद्ध का मुख्य कारण था। वैसे तो दुर्योधन की राज्य -लिप्सा ने युद्ध के बीज बोये, पर वे फलीभूत इसीलिये हो सके क्योंकि कर्ण की दुर्योधन से मित्रता थी। उसने अपनी शक्ति का दुर्योधन को अनेक बार बहुत अधिक भरोसा दिलाया था।

कर्ण का जीवन अनेक अलौकिक, अप्राकृतिक और असंगत बातों से भरा हुआ है। जिनकी विवेचना निम्नलिखित है–

१–कर्ण के जीवन की सबसे पहली बात यह है कि उसका पिता सूर्य और माता कुन्ती को बताया जाता है। इसके विषय में यह कहानी है कि दुर्वासा मुनि ने प्रसन्न हो कर कुन्ती को उसके विवाह से पहले ही एक ऐसा मन्त्र सिखाया था जिसके द्वारा वह किसी भी देवता को अपने पास बुला सकती थी। तब कुन्ती ने कौतूहलवश प्रयोग के लिये सूर्य देवता को अपने पास बुलाया तो सूर्य देवता तुरन्त उसके सामने उपस्थित हो गये। जब कुन्ती ने बताया कि उसने तो ऐसे ही मन्त्र का प्रयोग किया था, तब सूर्य ने कहा कि अब तो तुम्हें मेरी संतान को जन्म देना ही होगा। फलतः कुन्ती ने कर्ण को जन्म दिया, पर लोकापवाद के भय से उसने उसे गंगा में बहा दिया। गंगा में से रथ चलाने वाले अधिरथ नाम के सूत ने उसे निकाला और अपनी पत्नी राधा के साथ उसका पालन किया।

इस कहानी में बालक के गंगा में बहाये जाने से पहले की सारी घटनाएँ अलौकिक और अस्वाभाविक होने के कारण स्वीकार्य नहीं हो सकतीं। किसी भी मन्त्र से किसी देवता को नहीं बुलाया जा सकता। देवता की बात छोड़ो, कोई व्यक्ति अपने बच्चे को भी मन्त्र के द्वारा घर के दूसरे कमरे में से अपने कमरे में नहीं बुला सकता। देवता के विषय में भी इसी पुस्तक में पृथक् रूप से स्पष्ट कर दिया गया है कि देवता विद्वान् और गुणवान व्यक्ति को कहते हैं, किसी अलौकिक शक्ति को नहीं। पहले तिब्बत के निवासी पुराने आर्य लोगों को देवता कहते थे। सूर्य जो कि पृथ्वी से भी बहुत अधिक विशाल है और आग का गोला तथा जड़ पदार्थ है, कैसे भूमि पर आकर एक मानवी से वार्त्तालाप और उसके द्वारा संतानोत्पत्ति कर सकता है?

२–कर्ण के विषय में दूसरी विस्मयकारी बात यह है कि उसने अपने जन्म से ही एक सुदृढ़ कवच और कुंडल, जो कि किसी भी अस्त्र या शस्त्र से नहीं कट सकते थे, पहने हुए थे। वे उसके शरीर के साथ चिपके हुए थे और शरीर की बढ़ोतरी के साथ ही बढ़ रहे थे। इस कवच के कारण कर्ण को कोई भी शत्रु नहीं मार सकता था।

यह बात भी असंभव है। संसार में अभी तक किसी भी ऐसे प्राणी के बारे में नहीं सुना गया कि जिसके शरीर को परमात्मा ने ऐसे सुदृढ़ आवरण में लपेटा हुआ हो, जिस पर किसी भी शस्त्र का प्रभाव न पड़े। गैंडे की खाल के विषय में कहते हैं कि उस पर बन्दूक की गोली चोट नहीं पहुँचाती, किन्तु लोग उसका भी शिकार कर लेते हैं। पर कर्ण के विषय में यह कहा गया है कि यदि उसके शरीर पर उसका वह कवच होता तो अर्जुन उसे नहीं मार सकता था। यह कैसे?

३–कर्ण के विषय में तीसरी बात यह है कि जब इन्द्र ने उससे वह कवच माँगा तो उसने स्वयं ही उसे अपने शरीर से काट कर दे दिया। यह कैसे हो सकता है? वह कवच उसके शरीर के साथ उसकी त्वचा के समान ही चिपका हुआ था। कोई भी व्यक्ति यदि वह अपने सारे शरीर की खाल को स्वयं ही उतारना चाहे तो वह ऐसा नहीं कर सकता। उसे यह कार्य दूसरों से करवाना पड़ेगा। फिर चमड़ी उतर जाने के बाद जैसे कोई भी व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता, लगभग वैसी ही अवस्था शरीर से कवच को छील कर उतारने के बाद कर्ण की हो जानी चाहिये थी। शरीर के साथ बढ़ने वाला कवच अवश्य ही शरीर की नस नाड़ियों से जुड़ा हुआ होगा, उसे कर्ण ने कोट की तरह तो पहना नहीं होगा।

४–कर्ण के विषय में चौथी असंगत बात यह है कि कहते हैं कि, वह सूर्य का उपासक था और बड़ी देर तक सूर्य के आगे खड़ा होकर उसकी पूजा किया करता था। यह बात असंभव तो नहीं है, पर असंगत होने के कारण मान्य नहीं हो सकती। महाभारत के समय में जड़ पदार्थों को चेतन के समान मान कर उनकी पूजा करने का चलन नहीं था। यह बात तो पुराणों के द्वारा, जिनका निर्माण महाभारत के पश्चात् हुआ, प्रचालित की गयी थी।

५–पाँचवीं असंगत बात कर्ण की कहानी में यह है कि कर्ण के विषय में सत्य बात कुन्ती ने पाण्डवों को तब बतायी जब वे महाभारत के युद्ध के बाद गंगा में खड़े होकर अपने मृत सम्बन्धियों के लिये पिण्डदान और जलदान की क्रिया कर रहे थे। तब कुन्ती ने उनसे कहा कि कर्ण तुम्हारा भाई था, उसके लिये भी ये क्रियाएँ करो, नहीं तो उसे सद्‌गति नहीं मिलेगी।

यह बात भी इसीलिये असंगत और मान्यता से बाहर है, क्योंकि महाभारत के समय में मृत व्यक्तियों के लिये पिंडदान और जलदान करने की प्रथा तथा यह मान्यता कि इन कार्यों को करने से सद्‌गति मिलती है, प्रचलित नहीं थी। उस समय तो यही वैदिक मत माना जाता था कि अपने अच्छे -बुरे कार्यों से ही मृत व्यक्ति को सद्‌गति या असद्‌गति मिलती है। जलदान और पिंड दान आदि से नहीं। ये बातें भी पुराणों के द्वारा ही बाद में प्रचालित की गयीं थीं।

६–कर्ण की कहानी में छठी असंभव बात यह है कि कुन्ती से कर्ण के बारे में जान कर युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ। तब उसने सारी नारी जाति को शाप दिया कि अब आगे से कोई भी नारी अपने मन की बात को छिपा कर नहीं रख सकेगी। वह उसे किसी न किसी से अवश्य कह देगी। इसीलिये आजकल स्त्रियों के पेट में कोई भी बात नहीं पचती।

शाप और वरदान की अप्रामाणिकता तो इस पुस्तक में पहले ही विवेचित की जा चुकी है, इसलिये यह बात भी मानने योग्य नहीं है। यदि युधिष्ठिर के पास शाप देने की शक्ति थी, तो उन्होंने क्यों इतना भयानक युद्ध किया? क्यों इतना जन -संहार कराया? दुर्योधन को शाप के द्वारा भस्म कर देते। समस्या सुलझ जाती। इसके अतिरिक्त माता के अपराध के कारण सारी नारी जाति को शाप देना कैसा न्याय है? माता कुन्ती को ही शाप देना चाहिये था।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से यह सिद्ध हुआ कि कर्ण के विषय में ऊपर वर्णित सारी बातें प्रक्षिप्त हैं और कर्ण के महत्त्व को बढ़ाने के लिये बाद में मिला दी गयी हैं। कर्ण जन्म से ही सूत पुत्र था। वह गंगा में बहता हुआ नहीं मिला था। उसका कुन्ती से कोई सम्बन्ध नहीं था। उसने पिता के व्यवसाय को न अपना कर शस्त्र -विद्या सीखी थी और सूर्य के समान प्रतापी होने के कारण ही उसे सूर्य -पुत्र तथा वैकर्तन कहा जाता था, बेटा होने के कारण नहीं। कर्ण अपने पिता का अकेला पुत्र नहीं था। उसके और भी कई भाई थे और वे भी शस्त्र -विद्या में कुशल थे। वे भी महाभारत के युद्ध में लड़ते हुए मारे गये थे।

(ग) कुछ शब्दों की व्याख्या

(१) देव-सुर

देव और सुर ये नाम अच्छे गुणों से युक्त विद्वान् पुरुषों के थे। जो व्यक्ति अत्यधिक सदाचारी और साथ ही विद्वत्ता युक्त भी होते थे, उन्हें देव, देवता,सुर तथा उनके पर्यायवाची शब्दों से संबोधित करते थे। दशरथ जी के पुत्रेष्टि यज्ञ में जो खीर खाने के लिये यह कह कर दी गयी थी कि यह देवताओं के द्वारा तैयार की हुई है, वह वास्तव में पुत्रेष्टि यज्ञ के विद्वानों के द्वारा विभिन्न औषधियाँ डाल कर तैयार की हुई थी।

एक बात और भी है। मानव सृष्टि का प्रारंभ संसार के सबसे ऊँचे स्थान तिब्बत में हुआ था। वहीं से आर्य लोग भारतवर्ष तथा संसार के दूसरे भागों में गये। वैदिक शिक्षा का प्रारंभ भी तिब्बत में हुआ। इसलिये तिब्बत में रहने वाले आर्यों का जीवन भी वैदिक शिक्षाओं से अधिक ओतप्रोत था। इसीलिये संसार के अन्य भागों में रहने वाले आर्य लोग उसे त्रिविष्टप अर्थात् स्वर्ग के नाम से और वहाँ रहने आर्यों को देव नाम से पुकारते थे। उनके हृदय में तिब्बतवासी आर्यों के लिये विशेष आदर भाव था। तिब्बत अर्थात् स्वर्ग के निवासी आर्य अर्थात् देवता लोग शस्त्रास्त्र विद्या, आकाश विचरण आदि भौतिक विद्याओं और अध्यात्म -विद्या, दोनों में ही पारंगत थे। समय-समय पर अनेक लोगों के द्वारा देवताओं से शस्त्रास्त्र प्राप्ति का वर्णन हम पढ़ते हैं,पर वे वरीयता अध्यात्म -मार्ग को ही देते थे। जैसे कठोपनिषद में नचिकेता और यमाचार्य की कथा।

(२) इन्द्र

इन्द्र शब्द का सामान्य अर्थ ऐश्वर्यवान है, क्योंकि यह ऐश्वर्य अर्थ वाली इदि धातु से बना है।यहाँ ऐश्वर्य का अर्थ केवल धन, सम्पत्ति आदि सांसारिक सुख ही नहीं, अपितु शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सुख भी है। इसलिये जो व्यक्ति विद्वत्ता और सदाचार में देव कहलाने वाले व्यक्तियों से भी बढ़ कर होता था और साथ ही अनेक ऐश्वर्य प्रदान करने वाले गुणों से भी युक्त होता था, उसे इन्द्र की उपाधि दी जाती थी। इसके साथ ही जहाँ तिब्बत के निवासियों को देव कहते थे वहाँ तिब्बत के राजा को भी इन्द्र कहते थे। रावण से युद्ध के समय राम के लिये रथ इन्द्र अर्थात् तत्कालीन तिब्बत के राजा ने ही भेजा होगा, क्योंकि इन्द्र की राजा दशरथ के साथ मित्रता थी। दशरथ युद्धों में उसकी सहायता के लिये जाया करते थे।

इन्द्र केवल तिब्बत के ही राजा नहीं थे, अपितु हिमालय पर्वत पर रहने वाली जातियों, जिन्हें संस्कृत साहित्य में यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर आदि नामों से संबोधित किया गया है, के भी राजा माने जाते थे। इन जातियों के मुखिया अपनी जाति के प्रतिनिधि के रूप में इन्द्र की सभा में उपस्थित रहते थे। जैसे यक्षों के मुखिया कुबेर नाम से और गन्धर्वों के मुखिया चित्रसेन नाम से इन्द्र की सभा के सभासद थे। इन्द्र के सारथि को मातलि कहा जाता था।

(३) धर्मराज-यमराज

यदि यह माना जाये कि स्वर्ग इस पृथ्वी से अलग किसी अन्य विशेष लोक का नाम है, वहाँ के निवासियों को देवता कहते हैं और धर्मराज या यमराज उन्हीं में से एक देवता का नाम है, तो यह मानने योग्य नहीं है। क्योंकि इस पृथ्वी लोक पर मनुष्य जाति से श्रेष्ठ कोई दूसरा प्राणी नहीं है और दूसरे लोक के प्राणियों के विषय में अभी तक कोई जानकारी मिली नहीं है। देवता और इन्द्र शब्दों की व्याख्या में यह बता दिया गया है कि विद्वान् और सदाचारी मनुष्यों के अतिरिक्त प्राचीन तिब्बत के निवासियों को भी पहले देवता कहते थे और इन्द्र उन्हीं के राजा की एक उपाधि होती थी। इसी प्रकार धर्मराज और यमराज भी त्रिविष्टप

अर्थात् स्वर्ग अर्थात् तिब्बत निवासी उस व्यक्ति को कहा जाता था, जो उस प्रदेश का प्रधान न्यायाधीश होता था। पहले प्राचीन भारत में क्योंकि वर्ण व्यवस्था गुण कर्म के अनुसार होती थी, इसलिये गुण -कर्मों को श्रेष्ठ करने के लिये विशेष प्रयत्न किये जाते थे। तिब्बत क्योंकि वैदिक व्यवस्था में सबका आदर्श था, अतः वहाँ गुण -कर्मों को श्रेष्ठ बनाने के लिये राजा को इन्द्र और न्यायाधीश को धर्मराज तथा अन्य दूसरे लोगों को दूसरी गुणवाचक उपाधियाँ दी जातीं थीं। इसीलिये उन उपाधिधारी देवताओं को हम प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रत्येक काल में प्रायः प्राप्त कर लेते हैं।

स्वर्ग के प्रधान न्यायाधीश को धर्मराज इसलिये कहते थे क्योंकि वह अपने न्याय कर्म के द्वारा समाज में धर्म की स्थापना करता था। उस समय धर्म शब्द आज के गलत अर्थ में अर्थात् संप्रदाय अर्थ में नहीं, अपितु अपने शुद्ध और वास्तविक अर्थ में लिया जाता था। धर्म का वास्तविक अर्थ मनु ने अपनी मनुस्मृति के निम्न श्लोक में किया है। जैसे-

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्।।

अर्थात् धर्म के दस लक्षण हैं १-धैर्य २-क्षमा ३-दम अर्थात् संयम ४-अस्तेय अर्थात् चोरी न करना ५- शौच अर्थात् पवित्रता ६-इन्द्रियों का निग्रह ७-धी अर्थात् सुबुद्धि ८-विद्या ९-सत्य १०-अक्रोध धर्म शब्द धृ धातु से बना है, जिसका अर्थ है धारण करना और स्थापना करना। इसी आधार पर महाभारत में भी धर्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि-

धारणाद्धर्ममित्याहुः, धर्मः धारयति प्रजाः। यः स्याद्धारणसंयुक्तः, सः धर्म इति निश्चितः।।

अर्थात् धर्म को धर्म इसलिये कहते हैं, क्योंकि वह प्रजा को अर्थात् समाज को धारण अर्थात् उसकी स्थापना करता है। धर्म उसी बात को कहते हैं, जिसमें समाज की स्थापना करने अर्थात् उसे दृढ़ और स्थायी बनाने का गुण हो। जिसके अन्दर यह गुण नहीं, वह बात धर्म नहीं हो सकती।

मनुस्मृति में गिनाये धर्म के दसों लक्षण समाज को जोड़ने और उसे दृढ़ बनाने का कार्य करते हैं। जो समाज इन बातों का पालन करता है, वह विकसित होता है और जो पालन नहीं करता वह छिन्न -भिन्न हो जाता है। इसलिये महाभारत की उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार भी मनुस्मृति द्वारा प्रतिपादित व्याख्या धर्म की आदर्श व्याख्या है। क्योंकि न्यायाधीश अपने न्याय कर्म के द्वारा समाज में इसी धर्म की स्थापना कर समाज को दृढ़ बनाने का कार्य करता है, इसीलिये स्वर्ग के न्यायाधीश को धर्मराज की उपाधि दी जाती थी। न केवल स्वर्ग में अपितु भारत के दूसरे राजाओं के न्यायाधीश को भी इसी अनुकरण पर धर्माधिकारी,धर्माधिप या धर्माधिपति कहते थे।

धर्मराज को यमराज भी कहते थे। यमों की व्याख्या करते हुए योग - दर्शन में बताया गया है कि ***अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः*** अर्थात् १-अहिंसा, २-सत्य, ३-अस्तेय, अर्थात् चोरी न करना, ४-ब्रह्मचर्य, अर्थात् इन्द्रियों पर संयम रखना और ईश्वर -भक्त होना। क्योंकि ब्रह्म परमात्मा को भी कहते हैं। ***ब्रह्मणिं चरितुं शीलं यस्य सः ब्रह्मचारी*** इस व्याख्या के अनुसार भगवान् के भक्त को भी ब्रह्मचारी कहते हैं और ५- अपरिग्रहः अर्थात् लालची न होना,इन पाँच गुणों को यम कहते हैं। जो धर्मराज इन पाँच गुणों को धारण करने वाला अर्थात् यमों का राजा होता था, उसे यमराज कहते थे।

(४) वायुदेव

जैसे देवताओं अर्थात् प्राचीन तिब्बत के निवासियों के राजा को इन्द्र और प्रधान न्यायाधीश को धर्मराज और यमराज की उपाधियों से विभूषित किया जाता था, उसी प्रकार वहाँ जो देवता शारीरिक बल में अतुलनीय रहता होगा उसे वायु की उपाधि से भूषित किया जाता होगा। क्योंकि प्राकृतिक पदार्थों में वायु को सर्वाधिक बलशाली माना गया है। जब यह प्रचण्ड होती है, तब आँधी, तूफान और अंधड़ के द्वारा तबाही का संसार बसा देती है। भीम के जन्म के लिये जिन वायु देव को बुलाया गया था, वे उस समय के तिब्बत अर्थात् स्वर्ग के वायु उपाधि धारी देवता थे।

(५) अश्विनी कुमार

अश्विनी कुमार भी देवताओं में इस नाम की उपाधि को धारण करने वाले या इस वंश में उत्पन्न होने वाले देव विशेष का नाम था। अश्विनी कुमार के विषय में प्रसिद्ध है कि वे देवताओं के वैद्य थे। अश्विनी कुमार नाम का देवताओं का वैद्य तो सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम हुआ होगा। बाद में होने वाले अश्विनी कुमार या तो वे देवता होंगे, जो चिकित्सा कर्म में बड़े प्रवीण थे और जिन्हें इस कारण से अश्विनी कुमार की उपाधि दी गयी, या वे अश्विनी कुमार नाम के सर्वप्रथम होने वाले देवता के वंश में होने वाले देवता होंगे। नकुल और सहदेव के जन्म के लिये इन्हीं महाभारतकालीन अश्विनी कुमार को बुलाया गया था।

अश्विनी कुमार के विषय में एक बात और ध्यान में रखने की है । वह यह है कि अश्विनी कुमार एक ही देवता का नाम था। दो देवता भाइयों का नाम नहीं था। लोग भूल से उन्हें दो देवता भाई समझते हैं। यह इसलिये वे समझते हैं, क्योंकि संस्कृत में व्याकरण के नियम के अनुसार अश्विनी कुमार द्विवचन में आता है, यद्यपि यह संख्या में एक ही है। यदि अश्विनी कुमार दो देवता भाई होते तो महाभारत में यह उल्लेख होता कि माद्री से नियोग के लिये कौन -सा अश्विनी कुमार आया था, जिसके द्वारा नकुल और सहदेव नाम के दो जुड़वाँ भाइयों का जन्म हुआ। पर वहाँ ऐंसा नहीं है।

(६) राक्षस, असुर, दैत्य, दानव

ये शब्द देव और सुर शब्दों के विपरीतार्थवाची हैं। जिस प्रकार पहले देव और सुर उन व्यक्तियों को कहते थे, जो उच्च आचार-विचार वाले और वैदिक शिक्षाओं का पूर्णतः पालन करने वाले तथा विद्वान्, सर्व विद्या पारंगत होते थे, उसी प्रकार राक्षस,असुर आदि उन व्यक्तियों को कहते थे जो वैदिक -सिद्धान्तों के विरुद्ध आचरण करने वाले तथा उन सिद्धान्तों के विरोधी होते थे। संसार में आदर्श का पूरी तरह पालन न कर पाना या उससे स्खलित हो जाना तो जन - साधारण में हर जगह पाया जाता है। उसके लिये प्रायश्चित और दंड विधान भी निश्चित होते हैं,जिन्हें अपना कर गलती करने वाला मनुष्य अपने आपको सुधार कर पुनः आदर्श के पालन की चेष्टा में लग जाता है। किन्तु राक्षस उन लोगों को कहते थे, जो जान -बूझ कर वैदिक जीवनचर्या का विरोध करते थे। जैसे वैदिक विचारधारा जहाँ अध्यात्मवाद को प्रधान मानती है, वहाँ असुरविचारधारा भौतिकवादी है। वैदिक सिद्धान्तों में ब्रह्मचर्य और सदाचार को सर्वोच्च माना गया है, तो असुर सभ्यता में इन गुणों का कोई महत्त्व नहीं है। इसीलिये इतिहास में हम पढ़ते हैं कि आदिकाल से ही देवता और दानवों में परस्पर निरन्तर विरोध और वैमनस्य रहा है। राक्षस लोग आर्यों से बहिष्कृत होकर, उनसे अलग वनों में अपनी बस्तियाँ बना कर अथवा पाताल अर्थात् पयस्थल अर्थात् समुद्र तटवर्ती स्थानों में रहते थे। विरोध होने के कारण ही वनों में आश्रमवासी तपस्वी मुनियों को राक्षस लोग परेशान करते थे। मुनियों को परेशान करने के ही कारण राम के राक्षसों से युद्ध हुए थे।

राक्षस लोग क्योंकि वैदिक आचार विचारों के विरोधी थे, इसलिये उनमें मद्य और माँस का खूब प्रचलन था। उनमें से कई तो मानव माँस भोजी भी होते थे, जैसे महाभारत में हिडिम्बासुर और बकासुर आदि। भौतिकवाद ही जीवन का लक्ष्य होने के कारण ये भौतिक उन्नति में जैसे माया अर्थात् जादू का प्रयोग और आकाशविचरण आदि में आर्यों से आगे बढ़े हुए थे। उनकी ये विशेषताएँ हमें राम और रावण के युद्ध में तथा महाभारत में घटोत्कच और राक्षस अलंबुष के युद्ध में दिखाई देतीं हैं। जंगल में रहने के कारण लोग इन्हें जंगली और असभ्य व्यक्ति समझते हैं, पर ऐसा नहीं था। वनों में तो ये आर्यों के बहिष्कार और विरोध के कारण अपनी बस्तियाँ बना कर रहते थे, असभ्य होने के कारण नहीं। राक्षसों की कोई अलग से जाति विशेष नहीं थी, ना हीं ये अपनी किसी जन्मजात शारीरिक विशेषता से उपलक्षित थे। जैसे कि प्रायः लोग समझते हैं कि इनकी आकृति भयानक,लम्बे दाँत और सिर पर सींग होते थे, पर ऐसा नहीं था। यदि इनकी शारीरिक रचना मनुष्यों से भिन्न होती, तो राक्षसों और आर्यों की भाषा एक जैसी ही संस्कृत भाषा क्यों होती? और इनमें तथा आर्यों में विवाह सम्बन्ध क्यों होते? रामायण में रावण के पिता ऋषि थे और माता राक्षसी थी। इसी प्रकार महाभारत में भीम का विवाह हिडिम्बा राक्षसी से हुआ था। ये सामान्य व्यक्तियों जैसी ही आकृति वाले होते थे और केवल आचार विचारों की भिन्नता के कारण आर्यों से अलग कर दिये गये

थे। आचार -विचार बदलने पर कोई भी आर्य या देवता राक्षस बन सकता था, जैसे रावण के बाप -दादा आर्य थे, पर रावण राक्षस बन गया। राक्षस भी इसी प्रकार वैदिक आचार -विचार को अपना कर आर्य और देवता बन सकते थे। जैसे विभीषण राक्षसी आचार -विचार को छोड़ कर आर्य बन गया। तभी तो राम ने उससे मित्रता की। महाभारत में हिडिम्बा ने राक्षसी आचार विचार छोड़ कर वैदिक आचार -विचार अपनाया, तभी भीम ने उससे विवाह किया। भीम का पुत्र घटोत्कच राक्षस कहलाया जाने पर भी वैदिक सिद्धान्तों का पोषक था।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि इतिहास में महाभारत के पश्चात् कहीं भी राक्षसों का वर्णन नहीं है, इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है, महाभारत के पश्चात् वैदिक सभ्यता का पतन प्रारम्भ हो गया, इसलिये आदर्शों के विरोधियों का विरोध भी धीरे -धीरे समाप्त हो गया। पहले जहाँ आदर्शों के उच्च पालन कर्ता थे, वहाँ आदर्शों के नितान्त विरोधी भी राक्षसों के रूप में विद्यमान थे। पर जब लोगों के चरित्रों में गिरावट आने लगी और उत्तम आदर्शों का पालनकर्ता कोई इक्का -दुक्का ही रह गया, तब अलगाव से जन्म लेने वाली राक्षस जाति भी समाप्त हो गयी। सभी देवता और दानव रल मिल कर एक हो गये। परवर्ती काल में जो यज्ञों में हिंसा, मद्य, माँसादि का चलन हो गया, वाम मार्गी सिद्धान्तों का प्रचार होने लगा, वह राक्षसी सभ्यता के वैदिक सभ्यता से मेल का ही परिणाम था, जिसकी प्रतिक्रिया में बौद्धमत का प्रारंभ हुआ।

(७) विश्वकर्मा और मय दानव

विश्वकर्मा का नाम देवताओं के इंजीनियर के रूप में प्रसिद्ध है। वह इसलिये क्योंकि आदि सृष्टि का जन्म त्रिविष्टप अर्थात् स्वर्ग अर्थात् तिब्बत में हुआ था। वहाँ के निवासियों को उस समय देवता कहते थे। इन्हीं देवताओं में जो सृष्टि के आदि में प्रथम इंजीनियर हुआ,उसका नाम विश्वकर्मा था। विश्वकर्मा परमात्मा का भी नाम है, क्योंकि सबसे कुशल निर्माण कर्ता तो वही है। विश्वकर्मा के पश्चात् जो जो व्यक्ति अपने समय में सर्वाधिक कुशल निर्माणकर्ता होते गये, उन्हें प्राचीन भारत में विश्वकर्मा की उपाधि से विभूषित किया जाने लगा। जैसे एक विश्वकर्मा ने रामायणकाल में लंका के किले का निर्माण किया था तो एक विश्वकर्मा ने जिसे तत्कालीन इन्द्र ने पाण्डवों की सहायता के लिये भेजा था, पाण्डवों के नगर इन्द्रप्रस्थ का निर्माण किया था। इसीलिये पाण्डवों ने नगर का नाम इन्द्रप्रस्थ रखा।

जिस प्रकार देवताओं के कारीगर विश्वकर्मा के नाम से प्रसिद्ध थे, उसी प्रकार देवताओं के विरोधी जो राक्षस लोग थे, उनमें जो सर्वप्रथम कुशल इंजीनियर हुआ, उसका नाम मय था। (देवता और राक्षस दो अलग -अलग विरोधी संस्कृतियाँ थीं, इसकी व्याख्या देव और असुर नाम के अलग -अलग शीर्षकों में की हुई है।) उस आदि मय दानव के पश्चात् समय -समय पर जो दानव कारीगरी में अत्यधिक कुशल होते गये, उन्हें मय नाम की उपाधि मिलती गयी। अथवा यह कहा जा सकता है कि आदि मय दानव के वंशजों में जो दानव कारीगरी में प्रसिद्ध हुए, वे तत्कालीन मय कहलाये। रामायण काल में रावण की पत्नी मंदोदरी तत्कालीन मय दानव की पुत्री थी। इसी प्रकार महाभारतकालीन मय दानव को, जो खाण्डव दाह के समय अपने मित्र तक्षक नाग के घर (जो खाण्डव वन में ही था) में ठहरा हुआ था, अर्जुन ने अग्नि में जलने से बचाया था। उसी के प्रतिफल में उस मय दानव ने पाण्डवों के लिये सभा भवन का निर्माण किया।

(८) नाग जाति

महाभारत में नाग लोगों का वर्णन अनेक स्थानों पर आया है। नाग जाति मानवों की ही एक विशेष जाति थी, कोई मानवेतर प्राणी ये नहीं थे। इनकी सभ्यता वैदिक और राक्षस, दोनों सभ्यताओं के मध्य की सभ्यता थी, जैसे रामायण काल में वानर सभ्यता थी। इनका आर्य लोगों से द्वेष भाव नहीं था और उनके साथ इनके विवाह सम्बन्ध भी होते थे। जैसे एक उलूपी नाम की नाग कन्या अर्जुन की पत्नी थी और उससे अर्जुन का इरावान नाम का एक पुत्र भी था, जो महाभारत के युद्ध में मारा गया। उस समय नाग लोगों की भारतवर्ष में स्थान -स्थान पर बस्तियाँ थीं। जैसे उनकी एक बस्ती हरद्वार के समीप थी, अर्जुन की पत्नी उलूपी वहाँ के राजा की कन्या थी। आज दिल्ली का एक उप नगर नाँगलोई है। उसके नाम से ऐसा अनुमान होता है कि शायद

उसका आदि नाम नाग लोक हो और उसे नाग जाति के लोगों ने बसाया हो। इसी प्रकार नागपुर नगर के नाम के विषय में भी सोचा जा सकता है।

नाग जाति में तक्षक नाम का एक प्रसिद्ध नाग इतिहास में हुआ, जिसके वंश में अनेक प्रसिद्ध तक्षक समय -समय पर हुए। जैसे एक तक्षक खाण्डव दाह के समय खाण्डवप्रस्थ वन में रहता था, जिसकी मय दानव से मित्रता थी। अर्जुन का पौत्र परीक्षित तत्कालीन तक्षक नाग से युद्ध करते हुए मारा गया। जिसके प्रतिशोध स्वरूप परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने नाग जाति के विरुद्ध एक विशद अभियान छेड़ा तथा उसमें उसने नागों का बड़ा संहार किया। नागों पर विजय की खुशी में उसने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें महाभारत की कथा सर्वप्रथम वैशम्पायन जी के द्वारा सुनाई गई। शायद जनमेजय के द्वारा किये गये नागों के संहार के कारण ही नाग लोग अपनी जान बचाने के लिये भारतवर्ष के अन्य स्थानों से उठ कर सुदूर पूर्वी प्रदेश आसाम में ही सीमित हो गये, जहाँ आज वे नागा जाति के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(९) विमान

विमान आजकल तो हवाई जहाज को कहते हैं, पर प्राचीन काल में हवाई जहाज के अतिरिक्त विमान सात मंजिले मकान को भी कहते थे। जैसे हनुमान् जी जब सीता की खोज में लंका में गये, तब वहाँ रावण के महल को विमान शब्द से संबोधित किया गया है और यह बताया गया है कि वहाँ अन्य भी अनेक विमान थे। इसी प्रकार महाभारत में मय दानव ने युधिष्ठिर के लिये जिस सभा भवन का निर्माण किया था, वह भी विमान के रूप में अर्थात् सात मंजिला था। देखिये–

प्रतिगृह्य स तद्वाक्यं, सम्प्रहृष्टो मयस्तदा। विमानप्रतिमां चक्रे, पाण्डवस्य शुभासभाम्।। सभा० १/१४

अर्थात् श्रीकृष्ण जी की उस आज्ञा को शिरोधार्य करके मयासुर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने तब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के लिये विमान के आकार वाली सुन्दर सभा का निर्माण किया।

सात मंजिला मकान यह विमान का अर्थ शब्द - कोष से भी प्रमाणित है।

(१०) नारद

नारद शब्द का अर्थ है,*–नराणाम् समूहः नारम्। तेभ्य यः उपदेशान् यच्छति,सुपरामर्श ददाति, सन्मार्ग च दर्शयति सः नारदः।–* अर्थात् मनुष्यों के समूह को नार कहते हैं। इन मानव समूहों को जो अच्छे उपदेश प्रदान करे, सन्मार्ग दिखाये, अच्छा परामर्श दे, उसे नारद कहते हैं। इस आधार पर यह समझना चाहिये कि पुराने जमाने में नारद किसी एक ऋषि का नाम न हो कर एक उपाधि होती होगी। यह बात अलग है कि सबसे पहले सृष्टि के आदि में नारद नाम के एक ऋषि हुए होंगे और उन्होंने अपने नाम के अर्थ के अनुसार ही अपने जीवन में कार्य किया होगा। नार शब्द का अर्थ आध्यात्मिक ज्ञान भी है। यह अर्थ भी इसी पक्ष में लगता है। उन सर्वप्रथम जन्मे नारद मुनि के पश्चात् नारद एक उपाधि बन गयी और पीछे होने वाले जिस जिस ऋषि ने अपने समय में एक स्थान पर ही स्थित न रह कर, जनता के कल्याण के लिये विशेष रूप से भ्रमण किया और उसे सन्मार्ग दिखाया, उस उसको नारद कहा जाने लगा।

इसीलिये हम देखते हैं कि नारद नाम प्रायः प्रत्येक काल में मिल जाता है। रामायण में भी नारद मिलते हैं, तो महाभारत में भी नारद जी के दर्शन होते हैं। एक ही व्यक्ति इतने लम्बे समय तक कैसे जीवित रह सकता है? इसलिये नारद को एक व्यक्ति विशेष न मान कर, उपाधि मानना ही उचित होगा।

(११) परशुराम

परशुराम जी का नाम सामने आते ही एक ऐसे क्रोधी और शस्त्रास्त्र विद्या में निष्णात ब्राह्मण का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है, जिसने अपनी शस्त्रास्त्र विद्या और क्रोध का प्रयोग अत्याचारी और निरंकुश क्षत्रिय राजाओं को समाप्त करने में

किया। ब्राह्मण का मूल धर्म अहिंसा , तपश्चर्या और क्षमाशीलता है पर जब उन्होंने देखा कि मेरे पिताजी श्री जमदग्नि मुनि पूरी तरह निरपराध होने पर भी अत्याचारी राजा कार्तवीर्य की निरंकुशता के शिकार होकर मारे गये, उनके ब्राह्मणोचित गुणों का राजा की हरकतों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब उन्होंने उसे उचित दंड देने के लिये तपश्चर्या को छोड़ शस्त्रास्त्रों का आश्रय लिया और युद्ध में कार्तवीर्य के सारे परिवार को नष्ट कर दिया। इसके पश्चात् उन्होंने और भी जो - जो तत्कालीन अत्याचारी राजा थे, उनका भी संहार किया और इस प्रकार क्षत्रिय -हन्ता के रूप में प्रसिद्ध हुए। अपने गुरु शिव के धनुष को तोड़ने पर ये पहले तो श्रीराम से भी क्रुद्ध हुए, पर फिर राम की शक्ति से प्रभावित होकर और यह समझ कर कि ये कार्तवीर्य जैसे नहीं हैं, ,इन्होंने उनसे अपने विवाद को समाप्त कर लिया।

इन सर्वप्रथम हुए परशुराम जी के पश्चात् उनकी वंश -परम्परा या शिष्य -परम्परा में जो ऐसे ब्राह्मण समय -समय पर हुए, जिन्होंने परशुराम जी की जीवन -शैली के अनुसार अपनी जीवन -पद्धति को चलाया अर्थात् युद्ध के द्वारा अपने समय के अत्याचारी राजाओं का सामना किया, वे भी परशुराम ही कहलाये। जैसे आजकल भी वसिष्ठ ऋषि के तथा भरद्वाज ऋषि के वंशज अपने आपको वसिष्ठ और भारद्वाज ही कहते हैं। इसीलिये हम महाभारतकाल में भी परशुराम जी के दर्शन करते हैं, जिन्होंने भीष्म, द्रोण तथा कर्ण को भी शस्त्रास्त्रों की शिक्षा दी थी। ये परशुराम राम के समय वाले परशुराम नहीं थे।

परशुराम जी के विषय में यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने सारे भूमण्डल के क्षत्रियों का इक्कीस बार विनाश किया था। पर एक व्यक्ति तो अपने समग्र जीवन में इतना कार्य नहीं कर सकता। कदाचित परशुराम नामधारी जितने भी ब्राह्मण समय -समय पर हुए उन सबके द्वारा किये गये क्षत्रियों के विनाश की यह एकत्रीकृत गणना है।

(१२) शिव और उनके लिये अर्जुन की तपस्या

प्राचीन साहित्य में हम शिव के बारे में जो कुछ भी पढ़ते हैं, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि शिव एक ऐसे महात्मा थे, जो सदा समाधि अवस्था अर्थात् योगाभ्यास में लीन रहते थे। उन्हें संसार की किसी भी प्रकार की विषय - वासना और सुखोपभोग की इच्छा ने स्पर्श भी नहीं किया था। देवताओं अर्थात् तिब्बत निवासी आर्य लोगों ने जो कष्ट पूर्ण कार्य उन्हें सौंपे, उन्हें उन्होंने सहर्ष पूरा किया। कष्टों के प्रतीक के रूप में ही उनके शरीर पर सर्प और गले में विषपान की रेखा अंकित की जाती है। वे शस्त्रास्त्र विद्या के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे। इसीलिये उनके हाथ में त्रिशूल और पिनाक नाम का धनुष दिखाया जाता है। इस प्रकार वे सर्वश्रेष्ठ योगाभ्यासी, सर्वश्रेष्ठ त्यागी, सहनशील, परोपकारक और सर्वश्रेष्ठ शस्त्रास्त्र ज्ञाता थे। अपने इन गुणों के कारण वे देवताओं में भी सर्वश्रेष्ठ महादेव थे। अपने गुणों का प्रयोग उन्होंने सदा सज्जनों के कल्याण और दुष्टों के रुलाने के लिये किया। इसीलिये उन्हें शिव अर्थात् कल्याणकारी और रुद्र अर्थात् रुलाने वाला कहते थे। वे अत्यन्त ज्ञानी थे और अपने ज्ञान के तीसरे नेत्र को सदा खुला रखते थे। इसीलिये उन्हें त्रिनेत्र भी कहते थे।

यद्यपि प्राचीन तिब्बत के निवासी आर्य लोग, जिन्हें देवता के नाम से सम्बोधित किया जाता था, अपने यहाँ सर्वश्रेष्ठ ज्ञान वान् व्यक्ति को बृहस्पति की उपाधि से विभूषित किया करते थे, पर शिव बृहस्पति से भी श्रेष्ठ होने के कारण गुरुओं के भी गुरु थे। शिव के दर्शन भी हमें प्राचीन साहित्य में अनेक कालों में होते हैं। जैसे एक शिव वे थे जिन्होंने आदि परशुराम को शस्त्रास्त्र विद्या दी और जिनके धनुष का भंग श्री राम ने किया था। रावण ने भी जिनसे कुछ शस्त्रास्त्र ग्रहण किये थे। एक शिव वे थे, जिन्हें प्रसन्न करके महाभारत में अर्जुन ने पाशुपत अस्त्र की शिक्षा ली थी। इसी प्रकार अन्यत्र कथाओं में भी शिव का जिक्र हुआ है। ये सारे शिव एक व्यक्ति तो हो नहीं सकते, इसलिये मानना यही होगा कि आदि शिव के पश्चात् बाद वाले शिव उनकी शिष्य या संतति - परंपरा में वे महात्मा थे, जिन्होंने शिव के गुणों को अपने जीवन में अत्यधिक मात्रा में धारण किया और इसीलिये वे भी शिव की उपाधि से विभूषित किये गये।

अर्जुन की तपस्या--अब प्रश्न के दूसरे भाग पर विचार करना चाहिये कि अर्जुन ने शिव को प्रसन्न करने के लिये जो तपस्या की, उसका स्वरूप क्या था? प्राचीन साहित्य में अनेक स्थानों पर वर्णन आया है कि अमुक व्यक्ति ने किसी

विशेष लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कठोर तपस्या की और तब उस लक्ष्य को प्राप्त किया। उस की गयी तपस्या के विषय में भी कुछ इस प्रकार मिलता है कि तपस्वी ने अपनी तपस्या के दौरान एक पैर से खड़े होकर या हाथों को ऊपर उठा कर या भूखे रह कर दिन बिताये आदि -आदि अर्थात् शरीर को अत्यधिक कष्ट में डाल कर तपस्या की। पर शरीर को कष्ट पहुँचाने को तपस्या मानना शुद्ध विचार नहीं है, अपितु तपस्या के विषय में एक विकृत अवधारणा है, जो अज्ञान के कारण प्रचलित हुई है और प्रक्षेपकारों के द्वारा प्राचीन साहित्य में डाली गयी है। यह ठीक है कि शरीर जब कष्ट में होता है, तब मन बुराइयों की तरफ कम भागता है, भगवान् की याद भी दुखी मन को अधिक आती है, शरीर में सहनशीलता का भी विकास होता है। पर ये सारे गुण साधक में प्रासंगिक रूप में आते हैं, क्योंकि उस समय उसका मुख्य ध्येय तो शरीर को अधिकाधिक कष्ट पहुँचाना ही होता है। फिर, ये सारे गुण जो उस समय साधक को प्राप्त होते हैं, चिरस्थायी नहीं होते। जब शरीर को कष्ट देने वाली तपस्या समाप्त हो जाती है, तब संसार के सुखोपभोगों में पड़ने पर वे गुण भी छूट जाते हैं। अतः तपस्या का शुद्ध और उत्कृष्ट रूप तो वही है, जिसमें मन, बुद्धि, चरित्र और आत्मा के विकास के लिये प्रयत्न किया जाता है और उस प्रयत्न को करते समय शरीर को जो भी कष्ट झेलने पड़ते हैं, उन्हें सहन किया जाता है। मन और आत्मा की उन्नति का क्या उपाय है? मन और आत्मा की उन्नति का वही उपाय है, जो योग - दर्शन में योगाभ्यासी के लिये बताया गया है।

योग -दर्शन में योगाभ्यासी के लिये क्रमशः आठ निम्नलिखित प्रयत्नों का विधान किया गया है। ये हैं--

१-यम, २- नियम, ३- आसन (योगासन प्रसिद्ध हैं) ४- प्राणायाम (श्वास पर काबू पाना) ५-प्रत्याहार (ज्ञानेन्द्रियों को उनके विषयों से रोकना) ६-धारणा, ७-ध्यान, ८-समाधि (इन तीनों का अभिप्राय है कि चित्त को एकाग्र करके परमात्मा में अधिकाधिक लगाना।)

इनमें यम भी पाँच प्रकार के हैं --१- अहिंसा (किसी को दुःख न देना) २-सत्य (जो बात जैसी हो उसे वैसी ही समझना और प्रयोग में लाना) ३-अस्तेय (चोरी न करना) ४-ब्रह्मचर्य (इन्द्रियों पर संयम) ५-अपरिग्रह (भौतिक पदार्थों का यथाशक्ति त्याग)

नियम भी पाँच प्रकार के हैं--१-शौच (मन और इंद्रियों की स्वच्छता) २-संतोष ३-तप, ४-स्वाध्याय, ५-ईश्वर प्रणिधान (परमात्मा का ध्यान)

योग की उपर्युक्त आठ साधनाओं पर आचरण करना, सामान्य कार्य नहीं, अपितु एक बड़ी तपस्या है। इसीलिये प्राचीन पुस्तकों में जहाँ भी किसी के द्वारा तपस्या करने का वर्णन हुआ है, वहाँ उसने शरीर को निरर्थक कष्ट देने वाली तपस्या को नहीं, बल्कि योग के आठों अंगों का पालन करते हुए नियमपूर्वक योगाभ्यास रूपी तपस्या को ही अपनाया है, ऐसा मानना चाहिये।

अर्जुन ने भी शिव को प्रसन्न करने के लिये जो तपस्या की, वह इसी प्रकार से की होगी। अर्थात् शिव के आश्रम के समीप अपनी कुटी बना कर योगाभ्यास किया होगा। क्योंकि पहले के आचार्य सुपात्रता की परीक्षा किये बिना न तो किसी को अपना शिष्य बनाते थे और न उसे विद्यादान करते थे। अतः शिव ने भी पहले अर्जुन से तपस्या कराई और फिर गुप्त वेष में उनसे युद्ध कर उनके क्षत्रियत्व की जाँच की, फिर उसके पश्चात् उन्होंने अर्जुन को पाशुपत अस्त्र दिया।

(१३) सेनाओं की संख्या

महाभारत में सेनाओं की संख्या अक्षौहिणी के परिमाण में दी हुई है। अक्षौहिणी शब्द प्राचीन भारतीय साहित्य में एक बहु प्रचलित शब्द है। रामायण में भी अक्षौहिणी शब्द का प्रयोग किया गया है। अतः अक्षौहिणी के रूप में सेना का जो परिमाण महाभारत में बताया गया है, वह ठीक है। उस समय प्रायः सभी राजा लोग अपने राज्य की रक्षा के लिये एक अक्षौहिणी सेना

तो अपने पास रखते ही थे, किंतु वानरों और राक्षसों की सेना का परिमाण रामायण में तथा महाभारत के रामोपाख्यान पर्व में भी जो बहुत बढ़ा -चढ़ा कर बताया गया है, वह सब प्रक्षेपकारों की माया है।

एक अक्षौहिणी में १,०९,३५० पैदल, तथा ६५,६१० घोड़े और २१,८७० रथ एवं इतने ही हाथी अर्थात् कुल २,१८,७०० सैनिक होते थे।महाभारत के युद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेना ने भाग लिया था। दोनों पक्षों की सम्मिलित सेना २,१८,७०० गुणा १८, कुल ३९,३६,६०० सैनिकों की थी, जो कि अठारह दिन के युद्ध में ही परस्पर लड़ कर समाप्त हो गयी।

(१४) सूर्य पुत्र

महाभारत में सूर्यपुत्र कर्ण का नाम है। यह उसके सूर्य का पुत्र होने के कारण नहीं, बल्कि इसलिये है क्योंकि वह सूर्य के समान प्रतापी अर्थात् अपनी वीरता से शत्रुओं को तप्त करने वाला था। इसीलिये उसे इसके पर्यायवाची वैकर्तन शब्द से भी सम्बोधित किया गया है। जैसे रामायण में हनुमान् जी को वायु के समान बलशाली होने के कारण वायुपुत्र कहा गया है।

(१५) दस हजार हाथियों का बल

महाभारत में भीम के विषय में अनेक स्थानों पर कहा गया है कि उसमें दस हजार हाथियों के समान बल था। दस हजार हाथियों के समान बल एक ही व्यक्ति में होना पूरी तरह से असंभव है। अतः इस प्रसंग में दस हजार शब्द का अर्थ *अनेक* ऐसा समझना चाहिये। अर्थात् भीम में दस हजार हाथियों के समान, अर्थात् अनेक हाथियों के समान बल था।

(१६) कुरुक्षेत्र

आजकल हरियाणा राज्य में कुरुक्षेत्र नाम का जो स्थान है, वही महाभारत में वर्णित कुरुक्षेत्र का अवशिष्ट रूप है। महाभारत के समय कुरुक्षेत्र एक बहुत बड़ा मैदान था, जिसमें राजाओं के युद्ध लड़े जाते थे। भीष्म पितामह के छोटे भाई चित्राँगद का इसी नाम के गन्धर्व के साथ तीन वर्ष तक चलने वाला युद्ध, जिसमें चित्राँगद की मृत्यु हो गयी थी, कुरुक्षेत्र में ही हुआ था। कुरुक्षेत्र उस समय इतना विस्तृत प्रदेश था, जिसमें महाभारत के युद्ध की अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ न केवल परस्पर लड़ीं थीं,बल्कि उनके रहने का प्रबन्ध भी उसी स्थान में हुआ था। उस समय कुरुक्षेत्र के आसपास कुछ वन प्रदेश भी था, जिसमें ऋषि, मुनियों के आश्रम थे। महाभारत के अनुसार उस समय कुरुक्षेत्र में कई तालाब और नदियाँ थीं। एक तालाब के किनारे तो दुर्योधन और भीमसेन का अन्तिम गदा युद्ध हुआ था। पूर्व की ओर कुरुक्षेत्र यमुना नदी तक फैला हुआ था। युधिष्ठिर जब वन में रहने वाले धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती आदि से मिलने गये, तब कुरुक्षेत्र में यमुना नदी को पार करते ही नदी के किनारे उनका आश्रम था। पाण्डवों की सेनाएँ युद्ध के समय पूर्व की तरफ मुख करके लड़ीं थीं। उनकी छावनी हिरण्वती नदी के किनारे थी। निम्नलिखित श्लोक इसी तथ्य की पुष्टि कर रहा है—

आसाद्य सरितं पुण्यं, कुरुक्षेत्रे हिरण्वतीम्। उद्योग पर्व १५३/७

अर्थात् कुरुक्षेत्र में पवित्र हिरण्वती नदी को प्राप्त करके।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि शायद हिरण्वती नदी कुरुक्षेत्र की पश्चिमी सीमा पर थी। कुरुक्षेत्र की उत्तरी सीमा हिमालय और सरस्वती नदी तक थी। —

आकाशे विद्रुमे पुण्ये, प्रस्थे हिमवतः शुभे। अरुणां सरस्वतीं प्राप्य, पपुः सस्नुश्च ते जलम्।।शल्य पर्व ५/५१

यह कर्ण की मृत्यु के पश्चात् सायंकाल का वर्णन है। अर्थात् दुर्योधन आदि वीरों ने उस दिन हिमालय के समीप आकाश के नीचे वृक्ष रहित भूमि पर बहने वाली अरुण अर्थात् हल्के लाल रंग वाली सरस्वती नदी के किनारे जाकर स्नान और जल पान किया।

भीष्म पितामह की शरशय्या ओघवती नदी के किनारे थी। युद्ध के अन्तिम दिन की रात्रि को जब अश्वत्थामा ने सोये हुए पाण्डव पक्ष के वीरों की हत्या की, तब पाण्डव इसीलिये बच गये थे क्योंकि उन्होंने श्रीकृष्ण जी की सलाह मानी और वह रात्रि शिविर में न बिता कर ओघवती नदी के किनारे जा कर बिताई थी।

इस प्रकार महाभारत में उपर्युक्त चार नदियों हिरण्वती, ओघवती, यमुना और सरस्वती और हिमालय पर्वत के कुरुक्षेत्र से संबद्ध होने का वर्णन है। भूगोल विशेषज्ञों का कर्तव्य है कि वे इन नदियों के वर्तमान स्वरूप की जाँच करके कुरुक्षेत्र की तत्कालीन सीमाओं का निश्चय करें। कुरुक्षेत्र के प्रसंग में दृषद्वती नदी का भी उल्लेख मिलता है, पर वहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि दृषद्वती नदी कुरुक्षेत्र में थी या हस्तिनापुर से कुरुक्षेत्र के रास्ते में थी। हो सकता है कि दृषद्वती गंगा का ही दूसरा नाम हो और हिरण्वती तथा ओघवती सरस्वती नदी की ही दो शाखाएँ हों।

(१७) त्रिलोक

रामायण और महाभारत में त्रिलोक शब्द बहुत बार आया है। जैसे उसकी प्रसिद्धि तीनों लोकों में फैल गयी या उसने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली आदि। अब यहाँ देखिये कि भारतीय साहित्य में त्रिलोक का क्या अर्थ है?

तीनों लोक शब्द का प्रयोग रामायण और महाभारत में ही नहीं बल्कि हिंदी साहित्य में भी होता आया है। जैसे हिंदी में मुहावरा है-*तीन लोक से मथुरा न्यारी*-तीन लोक से सामान्यतः सारा संसार यह अर्थ ग्रहण किया जाता है। यहाँ सारे संसार से भी अभिप्राय सारे मानव संसार से है। आकाश के नक्षत्रों और सागर की अतल गहराइयों से नहीं, क्योंकि किसी भी महामानव के विजय अभियान या कीर्ति विस्तार का सम्बन्ध मानव सृष्टि से ही है, मानवेतर सृष्टि से नहीं। अब वे तीन लोक कौन-कौन से हैं जिन्होंने सारे मानव संसार को अपने में समेटा हुआ है, इस बात पर विचार करने पर हिंदी कथानकों में किसी की खोज करने का प्रयत्न करते हुए प्रयुक्त किया गया *-आकाश से ले कर पाताल तक-* यह वाक्यांश हमारी सहायता करता है। इस वाक्यांश का अर्थ भी सारा संसार है। इसमें अप्रत्यक्ष रूप से तीनों लोकों की झलक दिखा दी गयी है। अर्थात् ऊपर आकाश, बीच में यह सूखा धरातल,जिस पर हम रहते हैं और तीसरा नीचे की तरफ पाताल। ये तीनों लोक हैं, जिनसे हमारे मानव संसार का सम्बन्ध रहा है और जिनको लक्ष्य करके त्रिलोक शब्द प्रचलित हुआ। अब इन तीनों लोकों का अलग -अलग मतलब समझना चाहिये।

सबसे पहला लोक यह सूखा धरातल है, जिस पर वह व्यक्ति रहता है, जिसके कार्य के विषय में वर्णन किया जा रहा है। जैसे यदि राम के कार्यों के विषय में वर्णन किया जा रहा है तो सारा भारतवर्ष राम के लिये पहला लोक हो गया।

दूसरे लोक से मतलब है आकाश अर्थात् आकाश में विचरण करने वाले वायुयान आदि। यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि प्राचीन रामायण और महाभारत के समय में भारतीयों के पास विमान विद्या थी। आज जिस देश के ऊपर जो आकाश होता है, उस पर उसी देश की सरकार का अधिकार होता है। बिना उसकी आज्ञा के दूसरे देश का वायुयान उस आकाश में प्रवेश नहीं कर सकता। मतलब यह है कि आज हमारी भारत सरकार का अधिकार न केवल भारत की भूमि रूपी प्रथम लोक पर है, अपितु भारतीय आकाश रूपी द्वितीय लोक पर भी है।

तीसरे लोक का अर्थ है पाताल लोक। पाताल शब्द पादस्थल और पयस्थल, इन दोनों या इनमें से किसी एक शब्द से बना है। पादस्थल का अर्थ है पैरों की तरफ अर्थात् हमारी वर्तमान भूमि से नीचे की तरफ और पयस्थल का अर्थ है पानी के बीच में विद्यमान भूमि अर्थात् द्वीप। पाताल शब्द का निर्माण भारत में भारतीयों के द्वारा किया गया। भारतवर्ष के एक विस्तृत सूखा प्रदेश होने के कारण जितने भी दूरवर्ती द्वीप हैं, वे भूमि के गोलाकार होने के कारण भारतीयों के लिये पादस्थल हैं अर्थात् वे भारतभूमि से नीचे की तरफ हैं और पानी के मध्य में होने के कारण तो वे पयस्थल हैं ही। अमेरिका भी भारतवासियों के लिये पाताल है, क्योंकि वह भारतवर्ष के विपरीत तल पर है। इस प्रकार त्रिलोक शब्द का यह अर्थ समझना चाहिये।

(१८) स्वर्णमय

रामायण और महाभारत में स्वर्ण के उपयोग का बहुत वर्णन किया हुआ है। राजाओं के उपयोग में आने वाली बहुत -सी सामान्य वस्तुएँ भी जैसे कवच,धनुष और यहाँ तक कि विशेष बाणों में भी सोने के प्रयोग का उल्लेख है। यह तो ठीक है कि हमारा देश उस समय बहुत धनवान् था और यहाँ स्वर्ण का भंडार भी अतुल था, पर फिर भी, सामान्य से पदार्थों को भी जो सोने से निर्मित बताया गया है, वहाँ उसे शुद्ध सुवर्ण न मान कर सुनहले रंग का या सोने के पानी की पालिश किये हुए ऐसा समझना चाहिये। यह ठीक ऐसे ही है जैसे आज हम अमृतसर के स्वर्ण मंदिर को स्वर्ण मंदिर कहते हैं।

(१९) स्वर्ग, नरक

रामायण महाभारत में स्वर्ग शब्द के दो अर्थ हैं। पहला अर्थ है, परलोक में उत्तम गति अर्थात् मृत्यु के पश्चात् आत्मा को अच्छी योनि और अच्छी सुखदायक परिस्थितियों का प्राप्त होना ही उसके लिये स्वर्ग है। यह स्वर्ग आत्मा को अपने पहले जीवन में उसके द्वारा किये गये अच्छे कर्मों के आधार पर परमात्मा की न्याय व्यवस्था के द्वारा मिलता है। सूर्य, चंद्रमा की तरह के किसी विशेष लोक का नाम स्वर्ग नहीं है, जहाँ जीवात्मा को अच्छे कर्मों का फल मिलता हो। स्वर्ग इसी संसार में विद्यमान अच्छी योनियों और परिस्थितियों का नाम है।

स्वर्ग का दूसरा अर्थ रामायण और महाभारत में तिब्बत भी है, क्योंकि स्वर्ग त्रिविष्टप शब्द का पर्यायवाची है और तिब्बत त्रिविष्टप का बिगड़ा हुआ रूप है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का सृष्टि के आरंभ में सर्वप्रथम जन्म क्योंकि तिब्बत में हुआ, अतः तिब्बतवासियों के प्रति आर्यों के मन में विशेष सम्मान था। वे तिब्बत को स्वर्ग कहते थे।

नरक शब्द का भी मतलब आकाश में विद्यमान किसी विशेष कष्टदायक लोक से नहीं है, जहाँ जीवात्मा को मृत्यु के पश्चात् उसके बुरे कर्मों के लिये कड़ाहे में डाल कर खौलाना या भट्टी में डालकर जलाना जैसी सजाएँ दी जातीं हों। नरक भी स्वर्ग के ही समान आत्मा को मृत्यु के पश्चात् मिलने वाली विशेष दुःखभरी योनि और परिस्थितियों को कहते हैं, जो उसे उसके बुरे कर्मों का फल भुगतने के लिये परमात्मा की न्याय व्यवस्था के अनुसार मिलती हैं।

(२०) पितर

पितर शब्द का प्रयोग जीवित बड़े -बूढ़ों के लिये किया जाता है। परलोक में गये हुए मृत लोगों के लिये नहीं।

(२१) प्रारब्ध

कुछ लोग समझते हैं कि जब मनुष्य जन्म लेता है, तभी परमात्मा उसके कर्मों के आधार पर भविष्य में उसे मिलने वाले सुख और दुःख का चार्ट बना कर तैयार कर देता है, जिसे प्रारब्ध या भाग्य कहते हैं। इसी तैयार किये हुए चार्ट के अनुसार उसे सुख और दुःख मिलते रहते हैं। पर ऐसा नहीं है,क्योंकि यदि ऐसा हो, तो आत्मा को भविष्य में कार्य करने की स्वतंत्रता न मिलती। जब आत्मा ने अपनी स्वतंत्रता से कार्य नहीं किया, तो परमात्मा उसे उसके कार्यों का फल सुख और दुःख के रूप में देकर उसके साथ अन्याय क्यों करता है? इसलिये प्रारब्ध वास्तव में परमात्मा की न्याय -व्यवस्था और उसके अनुसार उसके संकल्प का नाम है। परमात्मा सर्वशक्तिमान है। उसे पहले से ही कर्मों का लेखा लिखने की क्या आवश्यकता है? हम किसी भी कार्य की योजना बनाते हैं और उसे लिख कर रखते हैं, ताकि भूल न जायें। पर यह बात परमात्मा पर लागू नहीं होती। वह तुरंत निर्णय करके उसे क्रियान्वित करता है, पहले से निश्चित करके नहीं रखता।

(२२) दिव्यास्त्र

रामायण और महाभारत में युद्ध के जिन आयुधों का उल्लेख मिलता है, वे दो प्रकार के हैं,एक शस्त्र और दूसरे अस्त्र। शस्त्र उन आयुधों को कहते हैं, जिन्हें हाथ से पकड़े हुए ही काम में लाया जाता है, जैसे तलवार और गदा आदि। अस्त्र उन आयुधों को कहते हैं, जिन्हें शत्रु के ऊपर फेंक कर उसका मुकाबला किया जाता है, जैसे धनुष बाण और बन्दूक आदि। ये

अस्त्र दो प्रकार के होते थे, एक सामान्य अस्त्र और दूसरे दिव्यास्त्र। सामान्य अस्त्र की श्रेणी में सामान्य प्रकार के धनुष बाण आते हैं। दिव्यास्त्र उन उपकरणों को कहते थे, जो यन्त्रीकृत होते थे और जिनकी प्रहार क्षमता अधिक होती थी। वे छोड़े भी यन्त्रों से जाते थे, यद्यपि उन यन्त्रों को भी धनुष ही कहते थे। अर्थात् दिव्यास्त्र जिन साधनों से छोड़े जाते थे, वे सामान्य धनुष नहीं बल्कि यन्त्रीकृत धनुष होते थे। उस समय जो दिव्यास्त्र होते थे, उनकी शान्ति के लिये भी अलग -अलग तरह के दिव्यास्त्र थे। आग्नेयास्त्र की शान्ति वारुणास्त्र से जल उत्पन्न कर या जल की वर्षा करके की जाती थी।

इन दिव्यास्त्रों की विषय के क्रम से कई श्रेणियाँ होती थीं। जैसे आजकल भी सबसे हल्की बन्दूक मानी जाती है, उससे तेज रायफल होती है, उससे ऊपर ए -के ४७ रायफल होती है, उससे भी ऊपर स्टेनगन और उससे भी ऊपर मशीनगन होती है। उस समय सबसे नीची श्रेणी के दिव्यास्त्र अर्थात् जिनकी मारक क्षमता निम्नतम होती थी, सम्मोहनास्त्र आदि थे। सम्मोहनास्त्र के द्वारा शत्रु सेना को मूर्च्छित कर दिया जाता था। ये ऐसे ही थे जैसे आजकल आँसु गैस के गोले। आँसु गैस आँखों से आँसु बहाती है तो सम्मोहनास्त्र की गैस मूर्च्छित कर देती थी।

द्वितीय श्रेणी के दिव्यास्त्रों में आग्नेयास्त्र (जिससे आग लगा दी जाती थी), वारुणास्त्र (जिससे आग बुझा दी जाती थी) तथा वायवास्त्र आदि आते थे। इन दिव्यास्त्रों को आजकल के उच्चतम शक्तिवाले बमों के समान समझना चाहिये। इन दिव्यास्त्रों की सहायता से अर्जुन ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में, जयद्रथ वध के अपने अभियान के रास्ते में घोड़ों को पानी पिलाने के लिये तालाब का निर्माण कर दिया था। आजकल भी बमों की मार से भूमि में गड्ढे बन जाते हैं।

तीसरी श्रेणी के दिव्यास्त्रों में ब्रह्मास्त्र का नाम आता है। इसकी विनाश - क्षमता और भी अधिक थी। यह आजकल के निम्नतम शक्तिवाले परमाणु बम के समान था। ब्रह्मास्त्र का प्रतिरोध ब्रह्मास्त्र के द्वारा ही किया जा सकता था। ब्रह्मास्त्र का प्रयोग उच्चकोटि के योद्धा वीर ही कर सकते थे, दूसरे वीर नहीं। जो योद्धा अकेले ही चौदह हजार सैनिकों का सामना कर सकता था, उसे ही उच्चतम कोटि का या महारथी कहते थे। जैसे श्रीराम ने वन में अकेले ही खर, दूषण, और त्रिशिरा समेत उनके चौदह हजार राक्षसों का विनाश कर दिया था। इन दिव्यास्त्रों का सामान्य सैनिकों पर प्रयोग करना अधर्म माना जाता था।

सबसे उच्च - कोटि दिव्यास्त्र वे माने जाते थे, जो संसार में प्रलय का सा दृश्य उपस्थित करने में सक्षम थे। इस श्रेणी में नारायणास्त्र, पाशुपत और ब्रह्मशिरा अस्त्र आते थे। इन दिव्यास्त्रों की तुलना आजकल के हाइड्रोजन बम से की जा सकती है। ये दिव्यास्त्र किसी -किसी सर्वश्रेष्ठ महारथी के पास ही होते थे। वे भी उन्हें अपने सारे शिष्यों को उनका ज्ञान नहीं देते थे। उनकी कड़ी परीक्षा कर,उनकी योग्यता और पात्रता की जाँच करके ही वे उनको इन महान् अस्त्रों का ज्ञान देते थे,पर साथ ही यह चेतावनी भी देते थे कि सिवाय उस समय के, जब प्राण बचाने का कोई अन्य साधन न हो, दूसरे समय भूल कर भी इनका प्रयोग न किया जाये। अर्जुन ने शिव को प्रसन्न करके उनसे पाशुपत और द्रोणाचार्य को प्रसन्न कर उनसे ब्रह्मशिरा अस्त्र ग्रहण किये और योग्य शिष्य होने के कारण उनका कभी प्रयोग नहीं किया, किन्तु अश्वत्थामा को द्रोणाचार्य ने पुत्र प्रेम के कारण नारायण अस्त्र की शिक्षा दे दी, पर अश्वत्थामा ने पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर महाभारत के युद्ध में उसका प्रयोग कर दिया।

(२३) चक्र

दिव्यास्त्रों के अतिरिक्त एक अन्य अस्त्र भी उस समय प्रचलित था और वह था चक्र। चक्र श्रीकृष्ण जी का प्रिय और प्रसिद्ध अस्त्र था। श्री कृष्ण जी चक्र के संचालन की विधा में विशेष प्रवीण भी थे। उनके चक्र के विषय में प्रसिद्ध था कि उसकी मार अचूक थी। जिसके ऊपर वे उसे छोड़ते थे, उसे वह नष्ट ही कर देता था। श्री कृष्ण जी के चक्र के विषय में यह भी प्रसिद्ध था कि वह शत्रु को नष्ट करके वापिस उनके पास आ जाता था। रामायण और महाभारत के गंभीर अध्ययन से यह बात भी प्रकट होती है कि चक्र केवल श्रीकृष्ण जी का ही अस्त्र नहीं था अपितु उसे सामान्य सैनिक भी प्रयोग में लाते थे। रामायण में राम और रावण के युद्ध में राक्षस सेनाओं के पास चक्र के होने का वर्णन है। इसी तरह महाभारत में चक्र के दूसरों के द्वारा भी किये गये प्रयोग का प्रमाण देखिये—

चक्रेण चक्रमासाद्य, वीरो वीरस्य संयुगे। अतीतेषु पथे काले, जहार गदया शिरः।। द्रोण ३२/२६

अर्थात् इस श्लोक में दोनों पक्षों के सैनिकों के परस्पर युद्ध का वर्णन है। इसमें कहा गया है कि युद्ध में कोई वीर अपने शत्रु वीर के चक्र का पहले अपने चक्र से निवारण करता था, पुनः बाण चलाने का अवसर न मिलने के कारण गदा से उसके सिर को नष्ट कर देता था।

इस श्लोक के द्वारा चक्र के विषय में दो बातें स्पष्ट हो रहीं हैं, पहली यह कि चक्र का प्रयोग सामान्य सैनिकों के द्वारा भी किया जाता था। दूसरी यह कि शत्रु के चक्र का निवारण अपने चक्र के द्वारा किया जाता था। सम्पूर्ण महाभारत में चक्र के विषय में एक ही श्लोक है, इससे यह भी पता लगता है कि चक्र का प्रयोग उस समय अधिक प्रचलन में नहीं था। श्री कृष्ण जी के चक्र ने जो इतनी प्रसिद्धि प्राप्त की, उसके यही कारण थे कि एक तो श्रीकृष्ण जी चक्र -विद्या के पंडित थे। दूसरे, उनका चक्र सामान्य चक्रों से विशेष उच्च -कोटि का था। तीसरे, श्रीकृष्ण जी चक्र का प्रयोग अन्य अस्त्रों की तुलना में अधिक करते थे।

(२४) धनुष, गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकस

युद्ध क्षेत्र में पहले धनुष का, एक अस्त्र संचालक के रूप में प्रयोग केवल भारतवर्ष में ही नहीं, अपितु सारे संसार में किया जाता था। आजकल धनुष का निर्माण बाँस में ताँत की डोर बाँध कर किया जाता है। महाभारत के समय में भी निश्चित रूप से धनुष का निर्माण इसी प्रकार किया जाता होगा, किन्तु इस विषय में लेखक का विचार है कि इस प्रकार का धनुष जैसा आज हम निंशानेबाजों को प्रयोग में लाता हुआ देखते हैं, महाभारत के काल में केवल सामान्य सैनिकों के द्वारा ही उपयोग किया जाता होगा, महारथियों और अतिरथियों के द्वारा नहीं। वे पराक्रमी योद्धा लोग, जो हजारों सैनिकों की सेना का अकेले ही ध्वंस कर देते थे, ऐसे भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण जैसे महारथियों के धनुष सामान्य नहीं, अपितु विशेष प्रकार के यन्त्रीकृत धनुष होते होंगे। क्योंकि महाभारत में स्थान -स्थान पर एक व्यक्ति के द्वारा एक ही समय में सैकड़ों की संख्या में बड़ी तीव्र गति से बाणों के छोड़े जाने का जो वर्णन मिलता है, वह यंत्रीकृत धनुष के द्वारा ही संभव है, सामान्य धनुष के द्वारा नहीं। यन्त्रीकृत होने पर भी उन धनुषों को कहते तो धनुष ही थे, पर उनका प्रयोग केवल विशेष प्रशिक्षित धनुर्धर ही कर सकते थे। महाभारत में यन्त्रीकृत धनुष का प्रमाण देखिये—

सर्व पारशवैः बाणैः, कर्मारपरिमार्जितैः। स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैः, धनुयन्त्रप्रचोदितैः।। शल्य १५/१४

यह शल्य पर्व में नकुल और शल्य के युद्ध में नकुल के द्वारा छोड़े गये बाणों का वर्णन है। अर्थात् नकुल ने शल्य पर जिन बाणों से प्रहार किया था, वे सभी लोहे के बने हुए, कारीगर के द्वारा साफ किये हुए, सुनहले पंखों वाले, सान पर चढ़ा कर तेज किये हुए और धनुष रूपी यन्त्र पर रख कर चलाये गये थे। यहाँ धनुष रूपी यन्त्र शब्द यन्त्रीकृत धनुष के होने को प्रमाणित कर रहा है।

गाण्डीव धनुष—गाण्डीव धनुष अर्जुन के धनुष का नाम था। यह एक पूर्णतया यन्त्रीकृत, अपने समय में सर्व प्रसिद्ध और अत्युच्च कोटि का धनुष था। इसके यंत्रीकृत होने का प्रमाण देखिये–

बिन्दवो जातरूपस्य, शतं यस्मिन् निपातिताः। सहस्रकोटिः सौवर्णाः, कस्यैतद्धनुरुत्तमम्।।विराट०४२/१

इस श्लोक में उत्तर कुमार ने गाण्डीव धनुष का वर्णन करते हुए उसे सहस्र कोटि वाला कहा है। सहस्र कोटि का सामान्य अर्थ है हजार कोटि अर्थात् किनारे या नोक वाला। हम देखते हैं कि सामान्य धनुष में दो ही किनारे या नोक होती हैं। सहस्र का दूसरा अर्थ बहुत सारे और कोटि का दूसरा अर्थ विभाग भी है, इसलिये सहस्र कोटि शब्द का अर्थ यहाँ हमें बहुत सारे विभाग वाला समझना चाहिये। अर्थात् गाण्डीव धनुष में भिन्न -भिन्न कार्य करने के लिये भिन्न -भिन्न विभाग अर्थात् कल पुर्जे विद्यमान थे। यह अर्जुन को खाण्डवप्रस्थ वन के दाह के समय अग्नि नाम के ब्राह्मण देवता से प्राप्त हुआ था। इसकी उत्कृष्टता के कारण अर्जुन ने उसे प्राप्त करने के पश्चात् अन्त तक किसी भी दूसरे धनुष का प्रयोग नहीं किया।

महाभारत में अध्ययन के द्वारा इसकी निम्नलिखित चार विशेषताएँ प्रकट होती हैं। जैसे–

१–गाण्डीव धनुष की पहली विशेषता यह थी कि यह अत्यन्त सुदृढ़ था। महाभारत के युद्ध में भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि सभी वीरों के धनुष शत्रु -पक्ष के द्वारा अनेक बार विनष्ट किये गये और उन्हें अपना धनुष बदलने के लिये विवश होना पड़ा, पर गाण्डीव धनुष को कोई भी शत्रु चोट नहीं पहुँचा सका।

२–गाण्डीव धनुष की दूसरी विशेषता यह थी कि उसमें सौ प्रत्यंचाओं का प्रबन्ध था, जो एक प्रत्यंचा के टूटने पर अपने आप बारी -बारी से चढ़ती जातीं थीं। प्रमाण के लिये देखिये —

नवमीं, दशमीं चास्य, तथा चैकादशीं वृषः। ज्याशतं, शतसंधानः, स कर्णो नावबुध्यते।।

तस्य ज्याछेदनं कर्णो, ज्यावधानं च संयुगे। नान्वबुध्यत् शीघ्रत्वात्, तदद्भुतमिवाभवत्।। द्रोण ९०/९८, १००

अर्थात् कर्ण ने युद्ध करते हुए अर्जुन के गाण्डीव धनुष की पहली से लेकर लगातार ग्यारहवीं प्रत्यंचा तक काट डालीं, पर सौ बाण एक साथ छोड़ने वाले कर्ण को यह पता नहीं था कि अर्जुन के धनुष में सौ डोरियाँ लगीं हुई हैं।

गाण्डीव धनुष की एक डोरी के कटने पर दूसरी डोरी का चढ़ जाना इतनी शीघ्रता से होता था कि कर्ण को इसका पता ही न लगता था। यह एक आश्चर्यजनक बात थी।

३– गाण्डीव धनुष की तीसरी विशेषता यह थी कि उसके द्वारा एक साथ पाँच सौ बाण छोड़े जाते थे। ऐसा समझिये कि आजकल जैसे मशीनगन से गोलियाँ छूटतीं हैं, वैसे ही गाण्डीव धनुष से बाण छूटते थे। इसलिये जो महत्त्व आजकल रायफल के मुकाबले मशीनगन का है वही महत्त्व सामान्य धनुष के सामने उस समय गाण्डीव धनुष का था। प्रमाण के लिये देखिये -

क्षिपत्येकेन वेगेन, पंच बाणशतानि यः। उद्योग पर्व ९०/२९

अर्थात् जब श्रीकृष्ण जी दूत बन कर हस्तिनापुर गये और वहाँ विदुर के घर कुन्ती से मिले, तब कुन्ती अपने पुत्रों का कुशल समाचार पूछती हुई अर्जुन के विषय में उनसे कहती है कि जो अर्जुन एक ही बार में पाँच सौ बाणों को फेंकता है, उसका क्या हाल है? अर्जुन की इस विशेषता का उल्लेख द्रौपदी ने भी वन पर्व २७/३० में किया है।

४– गाण्डीव धनुष की चौथी विशेषता यह थी कि उसकी प्रत्यंचा की ध्वनि बहुत भयानक और शत्रु के हृदय में भय उत्पन्न करने वाली थी। प्रमाण के लिये देखिये –

सिंहनादाच्च भीमस्य, पाँचजन्यस्वनेन च। गाण्डीवस्य च निर्घोषात्, सम्मुह्यन्ते मनाँसि नः।। शल्य ४/१७

इस श्लोक में कृपाचार्य दुर्योधन को पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेने के लिये समझाते हुए कहते हैं कि भीम के सिंहनाद से, पाँचजन्य शंख की ध्वनि से तथा गाण्डीव धनुष की टंकार से हमारा दिल दहल उठता है।

अपनी इन विशेषताओं के कारण ही गाण्डीव धनुष का महाभारत के शस्त्रास्त्रों में एक विशेष स्थान है। अर्जुन वैसे ही उच्च -कोटि का महारथी था, गाण्डीव धनुष ने उसकी शूरवीरता को और भी उच्चकोटि का कर दिया था।

अक्षय तरकस-- अर्जुन को अग्नि नाम के ब्राह्मण देवता से गाण्डीव धनुष के साथ दो अक्षय तरकस भी मिले थे। अक्षय तरकस का मतलब प्रायः यह समझा जाता है कि उन तरकसों के बाण कभी समाप्त नहीं होते थे। अब देखना यह है कि तरकसों के विषय में क्या यह बात सम्भव है या नहीं। तरकस में से बाणों की समाप्ति का न होना तभी संभव हो सकता है, जब - क–बाण तरकस में से निकाले ही न जायें।

ख–निकाल कर चलाये हुए बाण फिर लौट कर तरकस में आ जायें।

ग–तरकस में ही नये बाण बनाने का कारखाना हो।

इन तीनों में अर्जुन के बारे में पहली बात लागू नहीं होती, क्योंकि उसने युद्ध में शत्रुओं के प्रति बाणों का प्रयोग किया था। दूसरी बात भी लागू नहीं होती, क्योंकि महाभारत में कहीं भी यह वर्णन नहीं है कि अर्जुन के बाण लौट कर वापिस उसके तरकस में आ जाते थे। तीसरी बात भी नितान्त असम्भव है, क्योंकि तरकस में नये बाणों का निर्माण नहीं कराया जा सकता। इसलिये यह मानना पड़ेगा कि अक्षय तरकस का यह अर्थ नहीं अपितु कुछ और है।

अक्षय तरकस का मतलब यह होना चाहिये कि वे तरकस इस प्रकार की सुदृढ़ता से निर्मित थे कि उनका क्षय अर्थात् विनाश होना कठिन था। शत्रुपक्ष के आघातों से उन तरकसों को नष्ट नहीं किया जा सकता था। उनके अक्षय होने का बाणों की आपूर्ति से कोई सम्बन्ध नहीं था। यदि अक्षय शब्द का वास्तव में बाणों के समाप्त न होने वाला अर्थ होता, तो अर्जुन को उन तरकसों के साथ और दूसरे बाणों के तरकस रखने की क्या आवश्यकता थी? पर महाभारत में इस बात का उल्लेख है कि अर्जुन को बहुत सारे तरकस अपने पास रखने पड़ते थे। –

एतान् सर्वानुपासंगान्, क्षिप्रं बध्नीहि मे रथे। एकं चाहर निस्त्रिंशम्, जातरूपपरिष्कृतम्।। विराट पर्व ४५/४

अर्थात् विराट् पर्व में राजा विराट् की गायों को कौरवों के चंगुल से छुड़ाने के लिये गये हुए अर्जुन ने जब नर्तक के रूप को छोड़ कर, अपना असली रूप धारण किया और विराट् के पुत्र कुमार को सारथी बना कर स्वयं कौरवों का सामना करने की तैयारी की, तब पेड़ पर से अपने शस्त्रों को उतरवाते समय इस श्लोक में वह कुमार से कह रहा है कि मेरे इन सब तरकसों को शीघ्र रथमें बाँध दो और एक स्वर्ण भूषित खड्ग भी ले आओ।

यहाँ ***मेरे इन सब तरकसों को*** इस प्रयोग से स्पष्ट हो रहा है, कि अर्जुन केवल दो तरकसों के लिये नहीं, बल्कि बहुत सारे तरकसों के लिये उसे आदेश दे रहा है। यदि अर्जुन के वे दोनों तरकस बाणों के भंडार के कभी समाप्त न होने वाले होते तो उसे और अधिक तरकसों की क्या आवश्यकता थी? अतः अक्षय तरकस का अर्थ सुदृढ़ तरकस ही समझना चाहिये और कुछ नहीं।

(२५) शत, सहस्र

ये संख्या वाचक शब्द वैसे तो सौ और हजार की गिनती के लिये प्रयुक्त होते हैं, पर शत का अर्थ बहुत और अनेक तथा सहस्र का अर्थ असंख्य भी समझना चाहिये। महाभारत के युद्ध में योद्धाओं के द्वारा छोड़े गये बाणों की संख्या के संदर्भ में तो निश्चित रूप से सौ का अर्थ बहुत और सहस्र का अर्थ असंख्य है।

(२६) दुर्योधन का तालाब में छिपना

महाभारत के युद्ध के अन्त में जब दुर्योधन के प्रायः सारे साथी मारे गये और उसने युद्धस्थल में अपने -आपको अकेला ही खड़े हुए देखा,तब स्वयं को बचाने के लिये वह वहाँ से भाग कर एक तालाब के किनारे पर पहुँचा और उसके पानी के अन्दर छिप कर बैठ गया। इस विषय में वहाँ यह लिखा हुआ है कि दुर्योधन को एक ऐसी विद्या आती थी, जिसके द्वारा वह पानी को रोक कर, उसके बीच में खाली जगह बना कर, उस खाली जगह में घंटों तक आराम से बैठा रह सकता था। उसी विद्या का सहारा लेकर दुर्योधन तालाब के पानी में सुरक्षित हो कर बैठ गया।

इस विषय में लेखक का यह विचार है कि ऐसी किसी विद्या का होना असंभव है, जिसके द्वारा बिना किसी बाह्य उपकरण की सहायता के पानी के बीच में साँस लेते हुए घंटों तक बैठा जा सके और बाहर के लोगों से बातें भी की जा सकें। जब कि दुर्योधन ने उस समय ऐसा ही किया था। उसने पानी में कई घंटे तक विश्राम किया और तालाब के किनारे खड़े हुए पाण्डवों से बातें भी की। लेखक का अनुमान है कि कदाचित दुर्योधन ने युद्ध आरम्भ होने से पहले युद्ध की तैयारियाँ करते हुए, आपत्ति काल के लिये उस तालाब के किनारे भूतल में एक तहखाना बनवा लिया होगा, जिसमें जाने का मार्ग पानी के बीच में से जाता होगा। बरसात के दिनों को छोड़ कर जब सूखे समय में तालाब पानी से ऊपर तक भरा हुआ न हो, तब पानी में डुबकी लगा कर उस रास्ते से तहखाने में जा कर वहाँ बैठने और आराम करने की व्यवस्था होगी। जिस समय युद्ध समाप्त हुआ, उस समय सर्दी का सूखा मौसम था, इसलिये दुर्योधन सरलतापूर्वक जल मार्ग से उस तहखाने में जाकर और छिप कर बैठ सका।

(२७) महाभारत के द्वारा प्रमाणित ऐतिहासिक तथ्य

१- रामायण की घटनाओं और पात्रों का उल्लेख – आदि पर्व– अध्याय-४१ श्लोक-६। सभापर्व अध्याय-३४ श्लोक-३। वनपर्व-अध्याय-५ श्लोक-३०। विराट पर्व- अध्याय-२१ श्लोक १२, १३, अध्याय-२२ श्लोक-५५। द्रोणपर्व-अध्याय-७९ श्लोक-२८, अध्याय-१०६ श्लोक-१७, अध्याय-१०७ श्लोक-२८, अध्याय-१०९ श्लोक-१३ अध्याय-१०९ श्लोक-४, अध्याय-१५६ श्लोक ९८, अध्याय-१५७ श्लोक-१७। शान्ति पर्व- अध्याय-९ श्लोक-३७। आश्वमेधिक पर्व अध्याय-३ श्लोक-९।

२- समुद्र और बादल एक दूसरे की पूर्ति करते हैं– वनपर्व-अध्याय-१८ श्लोक-२७

३- मनु का उल्लेख- वनपर्व- अध्याय-३२ श्लोक-३९ अध्याय-३५ श्लोक-२१। विराट पर्व अध्याय-७० श्लोक-१५। शान्ति पूर्व- अध्याय-८+अध्याय-२१ श्लोक-१२ अध्याय-५५ श्लोक-१९।

४- शकुन्तला और दुष्यन्त पुत्र भरत का उल्लेख– आदि पर्व– अध्याय-९५ श्लोक-२९। आश्वमेधिक पर्व– अध्याय-३ श्लोक-१०।

५- शुक्राचार्य और उनके शास्त्र का उल्लेख– शान्ति पर्व- अध्याय-५७ श्लोक-२, अध्याय-५८ श्लोक-२। आश्रमवासिक पर्व- अध्याय-७ श्लोक-१५ शल्य पर्व - अध्याय-५८ श्लोक-१४

६- लेशनकला का प्रमाण – सभा पर्व-अध्याय-५५ श्लोक-१०। उद्योग पर्व-अध्याय-३३ श्लोक-२८। शान्ति पूर्व- अध्याय-११५ श्लोक-२२ आश्रमवासिक पर्व- अध्याय-१४ श्लोक-८

७- व्यास जी ने महाभारत की रचना धृतराष्ट्र के देहान्त के पश्चात की– आदि पर्व- आध्याय-१ श्लोक-९६,८७

८- जैमिनी और याज्ञवल्क्य का उल्लेख - सभा पर्व- अध्याय-४५ श्लोक-३८

९- गान्धारी ने आँखों पर पट्टी नहीं बाँधी थी- भूमिका में दर्शित प्रमाणों के अतिरिक्त, आश्रमवासिकपर्व- अध्याय-३ श्लोक-३२

१०- पूर्णिमा को पौर्णमासी कहा गया अर्थात् शुक्लान्तमास- आश्वमेधिक पर्व- अध्याय-७२ श्लोक-४

११- शिशुपाल की पुत्री नकुल की पत्नी थी- वनपर्व- अध्याय-२२ श्लोक-५०

१२- जरासन्ध की पुत्री सहदेव की पत्नी थी- आश्रम वासिक पर्व- अध्याय-२५ श्लोक-१२

१४- भीष्मपिता मह के गिरने कर कौरवों की अवशिष्ट सेना की संख्या–आश्ववमेधिक पर्व अध्याय-६० श्लोक-१४

१५- द्रोणाचार्य के मरने पर कौरवों और पाण्डवों की अवशिष्टसेनाओं की संख्या- आश्वमेधिक पर्व- अध्याय-६० श्लोक-१९-२०

१६- कर्ण के मरने पर कौरवों और पाण्डवों की अवीशिष्टिसेनाओं की संख्या- आश्वमेधिक पर्व- अध्याय-६० श्लोक-२२, २३।

१७- अर्जुन का शिव के लिये तपस्या स्थल गंगा का प्रथम श्लेशियर- वन पर्व- अध्यय-४२ श्लोक-२०

१८- चार दाँतों वाले हाथियों का उल्लेख- वनपर्व- अध्याय-१५८ श्लोक-९०

१९- राजा नल का उल्लेख– वनपर्व- अध्याय-१३ श्लोक-५

२०- वृक्षों में जान है– वनपर्व- अध्याय-३२ श्लोक-३। शान्तिपर्व- अध्याय-१० श्लोक-१६

२१- सोमलता महाभारत के समय भी विलुप्त थी– वनपर्व- अध्याय-३५ श्लोक-३३

शेष देखिये पृष्ठ ७८२ पर............

आदिपर्व : भूमिका भाग-प्रथम

लोमहर्षपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये
शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे।। १।।
सुखासीनानभ्यगच्छद् ब्रह्मर्षीन् संशितव्रतान्।
विनयावनतो भूत्वा कदाचित् सूतनन्दनः।। २।।
तमाश्रममनुप्राप्तं नैमिषारण्यवासिनाम्।
चित्राः श्रोतुं कथास्तत्र परिवव्रुस्तपस्विनः।। ३।।
अभिवाद्य मुनींस्तांस्तु सर्वानेव कृताञ्जलिः।
अपृच्छत् स तपोवृद्धिं सद्‌भिश्चैवाभिपूजितः।। ४।।

एक बार जब नैमिषारण्य में शौनक नाम के कुलपति का बारह वर्षीय यज्ञ चल रहा था, तब वहाँ लोमहर्षण के पुत्र, सूत वंशी सौति उग्रश्रवा, जो पुराणों की कथा कहते थे अर्थात् देश विदेश के राजाओं की कथा कहते थे, वहाँ विनीत भाव से पहुँचे। उस समय व्रतों का पालन करने वाले ब्रह्मर्षि लोग वहाँ सुख पूर्वक बैठे हुए थे। नैमिषारण्य-वासियों के आश्रम में आये हुए उन्हें उन तपस्वियों ने उनसे विचित्र कथाएँ सुनने के लिये घेर लिया। तब उन सभी मुनियों को अभिवादन करके और उन सत्पुरुषों द्वारा स्वयं भी सम्मानित होकर उन उग्रश्रवा जी ने हाथ जोड़कर उनसे उनकी तपोवृद्धि के विषय में पूछा—

अथ तेषूपविष्टेषु सर्वेष्वेव तपस्विषु।
निर्दिष्टमासनं भेजे विनयाल्लौमहर्षणिः।। ५।।
सुखासीनं ततस्तं तु विश्रान्तमुपलक्ष्य च।
अथापृच्छदृषिस्तत्र कश्चित् प्रस्तावयन् कथाः।। ६।।
कुत आगम्यते सौते क्व चायं विहृतस्त्वया।
कालः कमलपत्राक्ष शंसैतत् पृच्छतो मम।। ७।।

अपने अपने आसनों पर बैठ जाने पर लोहर्षण पुत्र भी विनयपूर्वक निर्दिष्ट आसन पर बैठ गये। तत्पश्चात् उन्हें सुख से बैठा हुआ और विश्राम किया हुआ देखकर उन ऋषियों में से किसी ने, उनसे वार्त्तालाप का प्रश्न उठाते हुए यह पूछा कि हे कमलनयन सूतपुत्र! आप कहाँ से आ रहे हैं और आपने पिछला समय कहाँ व्यतीत किया है, यह हमें बताइये।

सौतिरुवाच- **जनमेजयस्य राजर्षेः सर्पसत्रे महात्मनः।। ८।।**
समीपे पार्थिवेन्द्रस्य सम्यक् पारिक्षितस्य च।
कृष्णद्वैपायनप्रोक्ताः सुपुण्या विविधाः कथाः।। ९।।
कथिताश्चापि विधिवद् या वैशम्पायनेन वै।
श्रुत्वाहं ता विचित्रार्था महाभारतसंश्रिताः।। १०।।
बहूनि सम्परिक्रम्य तीर्थान्यायतनानि च।
समन्तपञ्चकं नाम पुण्यं द्विजनिषेवितम्।। ११।।
गतवानस्मि तं देशं युद्धं यत्राभवत् पुरा।

उग्रश्रवा जी ने कहा कि महात्मा राजर्षि परीक्षितपुत्र चक्रवर्ती सम्राट् जनमेजय के सर्पयज्ञ में कृष्णद्वैपायनव्यास द्वारा विरचित महाभारत के अन्तर्गत जो अनेक प्रकार की पवित्र और विचितार्थ से युक्त कथाएँ हैं, जिन्हें वैशम्पायन ने विधिपूर्वक बखान किया है, उन्हें सुनकर मै आ रहा हूँ। उसके पश्चात् मैं बहुत से तीर्थो और स्थानों में घूमता हुआ ब्राह्मणों के द्वारा सेवित समन्तपञ्चक क्षेत्र कुरुक्षेत्र नाम के पवित्र देश में गया जहाँ पहले कुरुओं और पाण्डवों और सारे राजाओं का युद्ध हुआ था।

कुरूणां पाण्डवानां च सर्वेषां च महीक्षिताम्।। १२।।
दिदृक्षुरागतस्तस्मात् समीपं भवतामिह।
कृताभिषेकाः शुचयः कृतजप्याहुताग्नयः।। १३।।
भवन्त आसने स्वस्था ब्रवीमि किमहं द्विजाः।
पुराणसंहिताः पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रिताः।। १४।।
इतिवृत्तं नरेन्द्राणामृषीणां च महात्मनाम्।

वहाँ से मैं आप लोगों के दर्शन की इच्छा से यहाँ आपके समीप आया हूँ। आप सब स्नान, सन्ध्या, हवन आदि से पवित्र होकर स्वस्थ अवस्था में अपने आसनों पर बैठे हैं। इसलिये हे ब्राह्मणों मैं आपको क्या सुनाऊँ? मैं आपको पुराणों की पवित्र पुस्तक सुनाऊँ या महात्मा राजाओं और ऋषियों का इतिहास सुनाऊँ?

ऋषय ऊचुः- जनमेजयस्य यां राज्ञो, वैशम्पायन उक्तवान्।। १५।।
यथावत् स ऋषिस्तुष्ट्या, सत्रे द्वैपायनाज्ञया।
संहिता श्रोतुमिच्छामः, व्यासस्याद्‌भुत कर्मणः।। १६।।

ऋषियों ने कहा कि हम अद्‌भुत कर्म करने वाले व्यास जी की उस संहिता को, जिसे वैशम्पायन जी ने व्यास जी की आज्ञा से जनमेजय के यज्ञ में उन्हें प्रसन्नता से ज्यों का त्यों सुनाया था, सुनना चाहते हैं।

सौतिरुवाच- **महर्षेः पूजितस्येह सर्वलोकैर्महात्मनः।**
प्रवक्ष्यामि मतं पुण्यं व्यासस्याद्भुतकर्मणः।। १७।।
मातुर्नियोगाद् धर्मात्मा गाङ्गेयस्य च धीमतः।
क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य कृष्णद्वैपायनः पुरा।। १८।।
त्रीनग्नीनिव कौरव्यान् जनयामास वीर्यवान्।
उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च।। १९।।
जगाम तपसे धीमान् पुनरेवाश्रमं प्रति।
तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम्।। २०।।
अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः।

उग्रश्रवा जी ने कहा कि अद्भुत कर्म करने वाले, सब लोगों से पूजित महात्मा महर्षि व्यास के पवित्र मत अर्थात महाभारत को मैं आप लोगों से कहूँगा। माता के तथा धीमान गंगापुत्र भीष्म के आदेश से शक्तिशाली, धर्मात्मा कृष्ण द्वैपायन व्यास ने पहले विचित्रवीर्य की पत्नियों के गर्भ से तीन अग्नियों के समान तेजस्वी कुरुवंशी पुत्र उत्पन्न किये थे। उसके पश्चात वे धीमान पुनः अपने आश्रम पर तपस्या के लिये चले गये। उन तीनों पुत्रों के वृद्ध होने पर, परमगति को प्राप्त होने पर उन महा ऋषि ने मनुष्य लोक में इस भारत नाम ही संहिता का प्रवचन किया।

यत्तु शौनक सत्रे ते भारताख्यानमुत्तमम्।। २१।।
जनमेजयस्य तत् सत्रे व्यासशिष्येण धीमता।
कथितं विस्तरार्थं च यशो वीर्यं महीक्षिताम्।। २२।।
विचित्रार्थपदाख्यानमनेक समयान्वितम्।
प्रतिपन्नं नरैः प्राज्ञैर्वैराग्यमिव मोक्षिभिः।। २३।।
अनाश्रित्यैदमाख्यानं कथा भुवि न विद्यते।
आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम्।। २४।।

हे शौनक जी! आपके इस यज्ञ में मैं उसी उत्तम भारत नाम के आख्यान को सुना रहा हूँ जिसे जनमेजय के यज्ञ में धीमान व्यास जी के शिष्य ने विस्तार के लिये राजाओं के यश और पराक्रम के साथ वर्णन किया है। विचित्रपद, अर्थ, आख्यान और अनेक मर्यादाओं से युक्त इस ग्रन्थ का प्रज्ञावान् लोग उसी प्रकार आश्रय लेते हैं, जैसे मोक्ष चाहने वाले वैराग्य भावना का आश्रय लेते हैं। जैसे बिना आहार का आश्रय लिये किसी भी शरीर का निर्वाह नहीं हो सकता ऐसे ही भूमि पर इस समय ऐसी कोई कथा नहीं है, जिसने इस महाभारत के आख्यान का सहारा नहीं लिया हो।

तदेतद् भारतं नाम कविभिस्तूपजीव्यते।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः।। २५।।
इतिहासोत्तमे यस्मिन्नर्पिता बुद्धिरुत्तमा।
स्वरव्यंजनयोः कृत्स्ना लोकवेदाश्रयेव वाक्।। २६।।
श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं श्राव्यमन्यत्र रोचते।
पुंस्कोकिलरुतं श्रुत्वा रूक्षा ध्वाङ्क्षस्य वागिव।। २७।।
इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
पंचभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः।। २८।।

इस भारत नाम के काव्य की कवियों के द्वारा ऐसे ही सेवा की जाती है, जैसे अपनी उन्नति को चाहने वाले सेवक अपने कुलीन स्वामी की सेवा करते हैं। जैसे वैदिक और लौकिक सारी वाणी स्वर और व्यंजनों में समायी हुई है, इसी प्रकार इस उत्तम इतिहास में उत्तम बुद्धि विद्यमान है। इस आख्यान को सुनकर फिर दूसरे आख्यान को सुनने की इच्छा नहीं होती। जैसे कोयल की मधुर ध्वनि सुनकर कौवे की रूखी आवाज अच्छी नहीं लगती। जैसे पंचभूतों से तीनों प्रकार की लोक सृष्टियाँ जन्म लेती हैं, वैसे ही इस उत्तम इतिहास से ही कवियों की काव्य रचना विषय बुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं।

श्रुत्वा तु सर्पसत्राय दीक्षितं जनमेजयम्।
अभ्यगच्छदृषिर्विद्वान् कृष्णद्वैपायनस्तदा।। २९।।
जनमेजयस्य राजर्षेः स महात्मा सदस्तदा।
विवेश सहितः शिष्यैर्वेदवेदाङ्गपारगैः।। ३०।।
जनमेजयस्तु राजर्षिर्दृष्ट्वा तमृषिमागतम्।
सगणोऽभ्युद्ययौ तूर्णं प्रीत्या भरतसत्तमः।। ३१।।
तत्रोपविष्टं वरदं देवर्षिगणपूजितम्।
पूजयामास राजेन्द्रः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।। ३२।।

यह सुनकर कि जनमेजय सर्पयज्ञ की दीक्षा ले चुके हैं, विद्वान ऋषि कृष्ण द्वैपायन वहाँ पहुँचे। उन महात्मा ने अपने वेद वेदांगों के विद्वान शिष्यों के साथ राजर्षि जनमेजय के यज्ञ में तब प्रवेश किया। राजर्षि भरतश्रेष्ठ जनमेजय ने उन ऋषि को आया हुआ देखकर प्रसन्नता सहित अपने सेवकों सहित तुरन्त उठ कर उनका स्वागत किया। देवर्षियों द्वारा सम्मानित वरदायक जब वे ऋषि वहाँ गये तब उन राजेन्द्र ने उनका शास्त्र विधि से स्वागत किया।

तथा च पूजयित्वा तं प्रणयात् प्रपितामहम्।
उपोपविश्य प्रीतात्मा पर्यपृच्छदनामयम्।। ३३।।
भगवानपि तं दृष्ट्वा कुशलं प्रतिवेद्य च।
सदस्यैः पूजितः सर्वैः सदस्यान् प्रत्यपूजयत्।। ३४।।
ततस्तु सहितः सर्वैः सदस्यैर्जनमेजयः।
इदं पश्चाद् द्विजश्रेष्ठं पर्यपृच्छत् कृतांजलिः।। ३५।।
कुरुणां पाण्डवानां च भवान् प्रत्यक्षदर्शिवान्।
तेषां चरितमिच्छामि कथ्यमानं त्वया द्विज।। ३६।।

इस प्रकार प्रेम से प्रपितामह व्यास जी की पूजा कर के प्रसन्न भगवान व्यास ने भी उन्हें देख कर और अपनी कुशलता बता कर सभा के दूसरे सदस्यों द्वारा सम्मानित होने पर उनका अभिवादन किया। उसके बाद अपने सारे सदस्यों के साथ हृदय से उनके पास बैठकर उन्होंने उनकी कुशलता पूछी। जनमेजय ने हाथ जोड़कर उन ब्राह्मण श्रेष्ठ से पूछा कि हे ब्रह्मन्! आपने कौरवों और पाण्डवों को आँखों से देखा है। मैं आपके द्वारा वर्णन किया हुआ उनका चरित्र सुनना चाहता हूँ।

कथं समभवद् भेदस्तेषामक्लिष्टकर्मणाम्।
तच्च युद्धं कथं वृत्तं भूतान्तकरणं महत्।। ३७।।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनस्तदा।
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके।। ३८।।
कुरूणां पाण्डवानां च यथा भेदोऽभवत् पुरा।
तदस्मै सर्वमाचक्ष्व यन्मत्तः श्रुतवानसि।। ३९।।
गुरोर्वचनमाज्ञाय स तु विप्रर्षभस्तदा।
आचचक्षे ततः सर्वमितिहासं पुरातनम्।। ४०।।
राज्ञे तस्मै सदस्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च सर्वशः।
भेदं सर्वविनाशं च कुरुपाण्डवयोस्तदा।। ४१।।

उन सत्कर्म करने वालों में वह भेद कैसे पैदा हो गया? और प्राणियों का विनाश करने वाला वह महान युद्ध कैसे हुआ? उनके उस वचन को सुनकर कृष्ण द्वैपायन ने अपने समीप बैठे हुए शिष्य वैशम्पायन को आदेश दिया कि कौरवों और पाण्डवों में पहले जैसे वैमनस्य हुआ वह सब जो तुमने मुझसे सुना है, इनसे कहो। गुरु की आज्ञा को सुनकर उन ब्राह्मणश्रेष्ठ वैशम्पायन जी ने वह सारा पुराना इतिहास तब उस राजा को, सारे सदस्यों को और अन्य राजाओं को, पूरी तरह से कौरव पाण्डवों में वैमनस्य तथा उनके विनाश का वर्णन करना आरम्भ किया।

भूमिका भाग-द्वितीय

शृणु राजन् पुरा सम्यङ्मया द्वैपायनाच्छ्रुतम्।
प्रोच्यमानमिदं कृत्स्नं स्ववंशजननं शुभम्।। १।।
दक्षाददितिरदितेर्विवस्वान् विवस्तो मनुर्मनोरिला
इलायाः पुरूरवाः पुरूरवस आयुरायुषो नहुषो।
नहुषाद् ययातिः ययातेर्द्वेभार्ये बभूवतुः।। २।।
उशनसो दुहिता देवयानीः।
वृषपर्वणश्च दुहिता शर्मिष्ठा नाम।। ३।।
यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी।। ४।।

वैशम्पायन जी ने कहा कि हे राजन्! जिसे मैंने पहले द्वैपायन जी से भली भाँति सुना था उस अपने वंश की उत्पत्ति का सम्पूर्ण वृतान्त मुझसे सुनो। दक्ष से अदिति, अदिति से विवस्वान, विवस्वान से मनु, मनु से इला, इला से पुरुरवा, पुरुरवा से आयु, आयु से नहुष, और नहुष से ययाति का जन्म हुआ। ययाति की दो पत्नियाँ थी, शुक्राचार्य की कन्या देवयानी और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा। देवयानी ने यदु और तुर्वसु नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया और द्रुह्यु, अनु तथा पुरु को वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने जन्म दिया।

तत्र यदोर्यादवाः पूरोः पौरवाः।। ५।।
पूरोस्तु भार्या कौसल्या नाम, तस्यामस्य जज्ञे
जनमेजयो नामः सस्त्रीनश्वमेधानाजहार,।
विश्वजिता चेष्ट्वा वनं विवेश।। ६।।
जनमेजयः खल्वनन्तां नामोपयेमे माधवीम्।
तस्यामस्य जज्ञे प्राचिन्वान्; यः प्राचीं दिशं जिगाय।
यावत् सूर्योदयात्, ततस्तस्य प्राचिन्वत्त्वम्।। ७।।
प्राचिन्वान् खल्वश्मकीमुपयेमे यादवीम्।
तस्यामस्य जज्ञे संयातिः।। ८।।

यदु की सन्तानें यादव कहलाई और पुरु की सन्तानें पौरव कहलाई। पुरु की पत्नी कौसल्या थी। उससे जनमेजय का जन्म हुआ, जिसने तीन अश्वमेधों को किया और विश्वजित यज्ञ करके वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। जनमेजय ने मधुवंश की कन्या अनन्ता से विवाह किया, उससे प्राचिन्वान का जन्म हुआ। उसने सूर्योदय के स्थान तक सारी पूर्व दिशा को जीता था। इसीलिये उसका नाम प्राचिन्वान हुआ। प्राचिन्वान ने यदुवंश की कन्या अश्मकी से विवाह किया। उसके द्वारा उसके संयाति नाम का पुत्र हुआ।

संयातिः खलु वृषद्वतो दुहितरं वराङ्गीं
नामोपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे अहंयातिः।। ९।।
अहंयातिः खलु कृतवीर्यदुहितरमुपयेमे भानुमतीं
नाम। तस्यामस्य जज्ञे सार्वभौमः।। १०।।
सार्वभौमः खलु जित्वा जहार कैकेयीं सुनन्दां नाम।
तामुपयेमे। तस्यामस्य जज्ञे जयत्सेनो नाम।। ११।।
जयत्सेनो खलु वैदर्भीमुपयेमे सुश्रवां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे अवाचीनः।। १२।।

संयति ने दृषद्वान की पुत्री वराङ्गी से विवाह किया। उससे उसके अहंयाति नाम का पुत्र हुआ। अहंयाति ने कृतवीर्य की पुत्री भानुमती से विवाह किया। उससे उसके सार्वभौम नाम के पुत्र ने जन्म लिया। सार्वभौम ने केकय कुमारी सुनन्दा को जीत कर उसके साथ विवाह किया। उससे उसके जयत्सेन नाम का पुत्र हुआ। जयत्सेन ने सुश्रवा नाम की विदर्भ राजकुमारी से विवाह किया। उससे उसको अवाचीन नाम का पुत्र हुआ।

अवाचीनोऽपि वैदर्भीमपरामेवोपयेमे
मर्यादां नाम। तस्यामस्य जज्ञे अरिहः।। १३।।
अरिहः खल्वाङ्गीमुपयेमे।
तस्यामस्य जज्ञे महाभौमः।। १४।।
महाभौमः खलु प्रासेनजितीमुपयेमे
सुयज्ञां नाम। तस्यामस्य जज्ञे अयुतनायी।। १५।।
अयुतनायी खलु पृथुश्रवसो दुहितरमुपयेमे
कामां नाम। तस्यामस्य जज्ञे अक्रोधनः।। १६।।

अवाचीन ने भी विदर्भ राजकुमारी मर्यादा से विवाह किया और उससे उसके अरिह नाम के पुत्र ने जन्म लिया। अरिह ने अंग देश की राजकुमारी से विवाह किया। उससे उसके महाभौम नाम का पुत्र हुआ। महाभौम ने प्रसेनजित की पुत्री सुयज्ञा से विवाह किया। उससे उसके अयुतनायी नामक पुत्र का जन्म हुआ। अयुतनायी ने पृथुश्रवा की पुत्री कामा से विवाह किया। उससे उसके अक्रोधन नाम का पुत्र हुआ।

स खलु कालिङ्गीं करम्भां नामोपयेमे।
तस्यामस्य जज्ञे देवातिथिः।। १७।।
देवातिथिः खलु वैदेहीमुपयेमे मर्यादां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे अरिहो नाम।। १८।।
अरिहः खल्वाङ्गेयीमुपयेमे सुदेवां नाम।
तस्यां पुत्रमजीजनदृक्षम्।। १९।।
ऋक्षः खलु तक्षकदुहितरमुपयेमे ज्वालां नाम।
तस्यां पुत्रं मतिनारं नामोत्पादयामास।। २०।।

उसने कलिंग देश की राजकुमारी करम्भा के साथ विवाह किया। उससे उसके देवातिथि ने जन्म लिया। देवातिथि ने विदेहराज कुमारी मर्यादा से विवाह किया उससे उसके अरिह ने जन्म लिया। अरिह ने अंगराज कुमारी सुदेवा से विवाह किया। उससे ऋक्ष नामक पुत्र ने जन्म लिया। ऋक्ष ने तक्षक की पुत्री ज्वाला के साथ विवाह किया और उसने मतिनार नाम के पुत्र को जन्म दिया।

तंसु सरस्वती पुत्रं मतिनारादजीजनत्।
ईलिनं जनयामास कालिङ्ग्यां तंसुरात्मजम्।। २१।।
ईलिनस्तु रथन्तर्यां दुष्यन्ताद्यान् पंच पुत्रानजीजनत्।। २२।।
दुष्यन्तः खलु शकुन्तलां नामोपयेमे।
तस्यामस्य जज्ञे भरतः।। २३।।
भरतः खलु काशेयीमुपयेमे सार्वसेनीं।
सुनन्दां नाम। तस्यामस्य जज्ञे भुमन्युः।। २४।।
भुमन्युः खलु दाशार्हीमुपयेमे विजयां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे सुहोत्रः।। २५।।

मतिनार की पत्नी सरस्वती ने तंसु नामके पुत्र को जन्म दिया। तंसु ने कलिंग देश की राजकुमारी से ईलिन नाम के पुत्र को जन्म दिया। ईलिन ने रथन्तरी के गर्भ से दुष्यन्त आदि पाँच पुत्रों को जन्म दिया। दुष्यन्त ने शकुन्तला से विवाह किया। उससे उसके भरत ने जन्म लिया। भरत ने काशीराज सर्वसेन की पुत्री सुनन्दा से विवाह किया। उससे उसके भुमन्यु नाम के पुत्र ने जन्म लिया। भुमन्यु ने दशार्ह कन्या विजया से विवाह किया। उससे उसके सुहोत्र नामके पुत्र ने जन्म लिया।

सुहोत्रः खल्विक्ष्वाकुकन्यामुपयेमे सुवर्णां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे हस्तीः य इदं हास्तिनपुरं स्थापयामास।। २६।।
हस्ती खलु त्रैगर्तीमुपयेमे यशोधरां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे विकुण्ठनो नाम।। २७।।
विकुण्ठनः खलु दाशार्हीमुपयेमे सुदेवां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे अजमीढो नाम।। २८।।
अजमीढस्य चतुर्विंशं पुत्रशतं बभूव।
कैकेय्यां, गान्धार्यां, विशालायामृक्षायां चेति।। २९।।
तत्र वंशकरः संवरणः खलु वैवस्वतीं।
तपतीं नामोपयेमे, तस्यामस्य जज्ञे कुरुः।। ३०।।

सुहोत्र ने इक्ष्वाकुकुल की कन्या सुवर्णा से विवाह किया। उससे उसके हस्ती नामके पुत्र ने जन्म लिया, जिसने हस्तिनापुर नाम का नगर बसाया। हस्ती ने त्रिगर्त देश की राजकुमारी यशोधरा से विवाह किया। उससे उसके विकुण्ठन नाम का पुत्र हुआ। विकुण्ठन ने दशार्हकुल की कन्या सुदेवा से विवाह किया। उससे उसके अजामीढ़ नाम का पुत्र हुआ। अजामीढ़ के एक सौ चौबीस पुत्र उसकी कैकेयी, गान्धारी, विशाला और ऋक्षा नाम की रानियों से हुए। इनमें संवरण से वंश चला। संवरण ने विवस्वान की पुत्री तपती से विवाह किया। उससे उसके कुरु नाम के पुत्र ने जन्म लिया।

कुरुः खलु दाशार्हीमुपयेमे शुभाङ्गीं नाम।
तस्यामस्य जज्ञे विदूरः।। ३१।।
विदूरस्तु माधवीमुपयेमे सम्प्रियां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे अनश्वा नाम।। ३२।।
अनश्वा खलु मागधीमुपयेमे अमृतां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे परीक्षित्।। ३३।।
परीक्षित् खलु बाहुदामुपयेमे सुयशां नाम।
तस्यामस्य जज्ञे भीमसेनः।। ३४।।

कुरु ने दशार्ह कुल की कन्या शुभांगी से विवाह किया। उससे उसके विदुर नाम का पुत्र हुआ। विदुर ने मधुवंश की कन्या सम्प्रिया से विवाह किया। उससे उसके अनश्वा नाम का पुत्र हुआ। अनश्वा ने मगध देश की राजकुमारी अमृता से विवाह किया। उससे उसके परीक्षित नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। परीक्षित ने बाहुद राज की पुत्री सुयशा से विवाह किया। उससे उसके भीमसेन नामका पुत्र हुआ।

भीमसेनः खलु कैकेयीमुपयेमे कुमारीं नाम।
तस्यामस्य जज्ञे प्रतिश्रवा नाम।। ३५।।
प्रतिश्रवसः प्रतीपः खलु। शैव्यामुपयेमे सुनन्दां नाम।
तस्यां पुत्रानुत्पादयामास देवापिं शान्तनुं बाह्लीकं चेति।। ३६।।
देवापिः खलु बाल एवारण्यं विवेश।
शान्तनुस्तु महीपालो बभूव।। ३७।।

भीमसेन ने कैकेय देश की राजकुमारी कुमारी से विवाह किया और उससे उसके प्रतिश्रवा नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रतिश्रवा के प्रतीप नाम का पुत्र हुआ। प्रतीप ने शिवि देश की राजकुमारी से विवाह किया। उसका नाम सुनन्दा था। सुनन्दा से उसके तीन पुत्र हुए। देवापि, शान्तनु, बाह्लीक। इनमें देवापि बाल्यावस्था में ही वन में चले गये, इसलिये शान्तनु राजा हुए।

पहला अध्याय : भीष्म का जन्म

स राजा शान्तनुर्धीमान् देवराजसमद्युतिः।
बभूव मृगयाशीलः शान्तनुर्वनगोचरः।। १।।
स कदाचिन्महाराजः ददर्श परमां स्त्रियम्।
जाज्वल्यमानां वपुषा साक्षाच्छ्रियमिवापराम्।। २।।
सर्वानवद्यां सुदतीं दिव्याभरणभूषिताम्।
सूक्ष्माम्बरधरामेकां पद्मोदरसमप्रभाम्।। ३।।
तां दृष्ट्वा हृष्टरोमाभूद् विस्मितो रूपसम्पदा।
पिबन्निव च नेत्राभ्यां नातृप्यत नराधिपः।। ४।।

बुद्धिमान राजा शान्तनु देवराज इन्द्र के समान सौन्दर्यशाली थे। वे अकेले वन में शिकार खेला करते थे। उन महाराज ने किसी दिन एक परम सुन्दरी स्त्री को देखा, जो अपने जगमगाते हुए शरीर से ऐसे प्रतीत हो रही थी, मानो साक्षात् सुन्दरता ही शरीर धारण करके आ गयी हो। वह सब तरफ से निर्दोष रूप में सुन्दरी थी, उसके दाँत बड़े सुन्दर थे, दिव्य आभूषण उसने धारण किये हुए थे और एक बारीक साड़ी पहनी हुई थी। कमल के भीतरी भाग के समान कान्तिवाली वह स्त्री वहाँ अकेली थी। उसे देख कर उसकी सौन्दर्य सम्पदा से वह राजा प्रसन्नता से रोमांचित और विस्मित हो गये। आँखों से उसके रूप को पीते हुए भी उनकी तृप्ति नहीं हो रही थी।

सा च दृष्ट्वैव राजानं विचरन्तं महाद्युतिम्।
स्नेहादागतसौहार्दा नातृप्यत विलासिनी।। ५।।
तामुवाच ततो राजा सान्त्वयंश्लक्ष्णया गिरा।
देवी वा दानवी वा त्वं गन्धर्वी चाथ वाप्सराः।। ६।।
यक्षी वा पन्नगी वापि मानुषी वा सुमध्यमे।
वाचे त्वां सुरगर्भाभे भार्या मे भव शोभने।। ७।।
एतत् श्रुत्वा वचो राज्ञः, सस्मितं, मृदु वल्गु च।
उवाच चैव राज्ञः सा ह्लादयन्ती मनो गिरा।। ८।।
भविष्यामि महीपाल महिषी ते वशानुगा।

वह विलासिनी स्त्री भी उस विचरण करते हुए महा तेजस्वी राजा को देख कर स्नेहवश उस पर मुग्ध हो गयी और उसको देखते हुए वह तृप्त नहीं हो रही थी, तब राजा ने उसे मधुर वाणी से सान्त्वना देते हुए कहा कि हे सुमध्यमे! मुझे पता नहीं कि तुम कौन हो? पर तुम चाहे देवी हो, या दानवी हो, या गन्धर्वपुत्री हो, या अप्सरा हो, या यक्षी हो, या नागकन्या हो, या मनुष्य हो, कुछ भी हो, मैं तुमसे यह याचना करता हूँ कि हे देवकन्या के समान सौन्दर्यवाली शोभने तुम मेरी भार्या बन जाओ। राजा का मुस्कराहट के साथ कहा हुआ मधुर और मनोहर वचन सुनकर वह मन को प्रसन्न करने वाली मधुर वाणी में बोली कि हे राजा! मैं तुम्हारी तुम्हारे वश में रहने वाली रानी बन जाऊँगी।

यत् तु कुर्यामहं राजञ्छुभं वा यदि वाशुभम्।। ९।।
न तद् वारयितव्यास्मि न वक्तव्या तथाप्रियम्।
एवं हि वर्तमानेऽहं त्वयि वत्स्यमि पार्थिव।। १०।।
वारिता विप्रियं चोक्ता त्यजेयं त्वामसंशयम्।
रममाणस्तया सार्धं यथाकामं नरेश्वरः।। ११।।

अष्टावजनयत् पुत्रांस्तस्याममरसंनिभान्।
जातं जातं च सा पुत्रं, गंगास्त्रोतस्यमज्जयत्।। १२।।

पर तुम्हें यह स्वीकार करना होगा कि तुम्हारे साथ रहते हुए मैं जो कुछ अच्छा या बुरा काम करूँ, तुम मुझे मना नहीं करोगे और मुझे कटु वचन भी नहीं कहोगे। हे राजन, यदि तुम ऐसा करोगे तो मैं तुम्हारे साथ रहूँगी। पर यदि मुझे मना किया या मुझे कटु वचन कहा तो मैं निश्चित रूप से तुम्हें छोड़कर चली जाऊँगी। उसके पश्चात् उसके साथ आनन्द पूर्वक इच्छानुसार रहते हुए राजा ने आठ देवताओं के समान सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया, पर जो जो पुत्र उत्पन्न होता उसी को वह गंगा के जल में डुबा देती थी।

तस्य तत्र प्रियं राज्ञः शान्तनोरभवत् तदा।
न च तां किंचनोवाच त्यागाद् भीतो महीपतिः।। १३।।
अथैनामष्टमे पुत्रे जाते प्रहसतीमिव।
उवाच राजा दुःखार्तः परीप्सन् पुत्रमात्मनः।। १४।।
मावधीः कस्य कासीति किं हिनत्सि सुतानिति।

उसका यह कार्य राजा शान्तनु को अच्छा नहीं लगता था, पर वह इस डर से कि कहीं यह मुझे छोड़ कर चली न जाये, उसे कुछ भी नही कहता था। पर आठवें पुत्र के होने पर मुस्काराती हुई रानी से दुःख से परेशान राजा अपने पुत्र के प्राण बचाने की इच्छा से कहने लगा कि अरी, इस बालक को तो मत मार, तू किसकी कन्या है? कौन है? क्यों अपने बेटों को मार डालती है?

स्त्र्युवाच- **पुत्रकाम न ते हन्मि पुत्रं पुत्रवतां वर।। १५।।**
जीर्णस्तु मम बासोऽयं यथा स समयः कृतः।
अहं गंगा जन्हु सुता, उषितांहत्वया सह।। १६।।

तब उस रानी ने कहा कि हे पुत्र की कामना वाले और पुत्रवानों में श्रेष्ठ! मैं तुम्हारे इस पुत्र को नहीं मारूँगी। पर जैसा तुमने मेरे साथ समझौता किया था, उसके अनुसार अब मेरा तुम्हारे साथ रहने का समय समाप्त हो गया है। मैं जह्नु की गंगा नाम की पुत्री तुम्हारे साथ रह रही थी।

अयं देवव्रतश्चैव गङ्गादत्तश्च मे सुतः।
अयं कुमारः पुत्रस्ते विवृद्धः पुनरेष्यति।। १७।।
एतदाख्याय सा देवी तत्रैवान्तरधीयत।
आदाय च कुमारं तं जगामाथ यथेप्सितम्।। १८।।
शान्तनुश्चापि शोकार्तो जगाम स्वपुरं ततः।

यह मेरा और तुम्हारा बालकपुत्र गंगादत्त और देवव्रत नाम से प्रसिद्ध होगा और जब बड़ा हो जायेगा तब आपके पास आ जायेगा। ऐसा कह कर वह देवी उस बच्चे को साथ लेकर वहीं से राजा की निगाहों के सामने से दूर होकर अपने मन चाहे स्थान पर चली गयी और शान्तनु भी शोक से पीड़ित होकर अपने नगर में आ गये।

स कदाचिन्मृगं विद्ध्वा गङ्गामनुसरन् नदीम्।। १९।।
भागीरथीमल्पजलां शान्तनुर्दृष्टवान् नृपः।
ततो निमित्तमन्विच्छन् ददर्श स महामनाः।। २०।।
कुमारं रूपसम्पन्नं गृह्णन्तं चारुदर्शनम्।।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं यथा देवं पुरन्दरम्।। २१।।
कृत्स्नां गङ्गां समावृत्य शरैस्तीक्ष्णैरवस्थितम्।।
अभवद् विस्मितो राजा दृष्ट्वा कर्मातिमानुषम्।। २२।।

एक बार राजा शान्तनु किसी जँगली पशु का शिकार कर गंगा नदी के किनारे विचरण कर रहे थे, तब उन्होंने गंगा नदी में देखा कि उसमें पानी थोड़ा रह गया है। तब उसके कारण का पता लगाने के लिये जब वे आगे बढ़े तो उन्होंने देखा कि एक सौन्दर्य सम्पन्न आकर्षक रूप वाला नवयुवक देवराज इन्द्र के समान दिव्यास्त्रों का प्रयोग करते हुए उनके द्वारा सारी गंगा के पानी को रोक कर अपने तीक्ष्ण बाणों के साथ विद्यमान है। उसके इस अमानुषिक कर्म को देखकर राजा को बड़ा विस्मय हुआ।

जातमात्रं पुरा दृष्ट्वा तं पुत्रं शान्तनुस्तदा।
नोपलेभे स्मृतिं धीमानभिज्ञातुं तमात्मजम्।। २३।।
दर्शयामास तं गंगा, तं कुमारमलंकृतम्।

गङ्गोवाच

यं पुत्रमष्टमं राजंस्त्वं पुरा मय्यविन्दथाः।। २४।।
स चायं पुरुषव्याघ्रः सर्वास्त्रविदनुत्तमः।
गृहाणेमं महाराज मया संवर्धितं सुतम्।। २५।।
आदाय पुरुषव्याघ्र नयस्वैनं गृहं विभो।

उस धीमान राजा ने क्योंकि अपने उस पुत्र को जन्म के समय ही देखा था, इसलिये उस समय उसे देख कर उन्हें न तो उसकी याद आयी और न वे उसे पहचान सके। तब गंगा ने आकर उस सुशोभित कुमार को राजा को दिखाया अर्थात् उनका परिचय कराया और कहा कि हे राजन्! तुमने जिस आठवें पुत्र को पहले मुझसे प्राप्त किया था, वह यह पुरुष व्याध्र सारे शस्त्र वेत्ताओं में उत्तम है। हे पुरुषव्याघ्र, महाराज स्वामी! अब आप मेरे द्वारा पालन किये गये इस पुत्र को ग्रहण कीजिये और इसे अपने महल में ले लाइये।

वेदानधिजगे साङ्गान् वसिष्ठादेष वीर्यवान्।। २६।।
उशना वेद यच्छास्त्रमयं तद् वेद सर्वशः।

तथैवाङ्गिरसः पुत्रः सुरासुरनमस्कृतः।। २७।।
यद् वेद शास्त्रं तच्चापि कृत्स्नमस्मिन् प्रतिष्ठितम्।
ऋषिः परैरनाधृष्यो जामदग्न्यः प्रतापवान्।। २८।।
यदस्त्रं वेद रामश्च तदेतस्मिन् प्रतिष्ठितम्।
महेष्वासमिमं राजन् राजधर्मार्थकोविदम्।। २९।।
मया दत्तं निजं पुत्रं वीरं वीर गृहं नय।

इस तेजस्वी ने वसिष्ठ से अंगों सहित वेदों का अध्ययन किया है। शुक्राचार्य जिस शास्त्र को जानते हैं, उसे सम्पूर्णरूप से यह जानता है। इसी प्रकार देव और दानवों के वन्दित अँगिरा के पुत्र जिस शास्त्र को जानते हैं, वह भी पूर्णरूप से इसमें विद्यमान है। जमदग्नि की पुत्र परम्परा में उत्पन्न परशुराम ऋषि जो शत्रुओं से परास्त नहीं होते, वे जिस अस्त्र विद्या को जानते हैं, वह भी इसमें प्रतिष्ठित है। यह महाधनुर्धर राजधर्म और अर्थशास्त्र का पण्डित है। हे वीर! आप मेरे द्वारा प्रदान किये गये इस वीर पुत्र को अपने घर ले जाइये।

तथैवं समनुज्ञातः पुत्रमादाय शान्तनुः।। ३०।।
भ्राजमानं यथादित्यमाययौ स्वपुरं प्रति।
सर्वकामसमृद्धार्थं मेने सोऽऽत्मानमात्मना।। ३१।।
पौरवेषु ततः पुत्रं राज्यार्थमभयप्रदम्।
गुणवन्तं महात्मानं यौवराज्येऽभ्यषेचयत्।। ३२।।
पौरवांछान्तनोः पुत्रः पितरं च महायशाः।
राष्ट्रं च रंजयामास वृत्तेन भरतर्षभ।। ३३।।
स तथा सह पुत्रेण रममाणो महीपतिः।
वर्तयामास वर्षाणि चत्वार्यमितविक्रमः।। ३४।।

उसके द्वारा इस प्रकार अनुमति देने पर शान्तनु सूर्य के समान तेजस्वी अपने पुत्र को लेकर अपने नगर में आ गए। उसे पाकर उन्होंने अपने मन में सब कामनाओं से पूर्ण माना। उसके बाद अपने राज्य को अभय प्रदान करने वाले गुणवान महात्मा पुत्र का उन्होंने पुरवासियों के समक्ष यौवराज्याभिषेक कर दिया। शान्तनु के उस भरतवंशियों में श्रेष्ठ, महायशस्वी पुत्र ने अपने आचरण से पुरवासियों को, अपने पिता को, और सारे देशवासियों को प्रसन्न कर दिया था। उस अमित पराक्रमी राजा ने इस प्रकार अपने गुणवान पुत्र के साथ आनन्दपूर्वक चार वर्ष व्यतीत कर दिये।

दूसरा अध्याय : भीष्म की प्रतिज्ञा

स कदाचित् वनं यातो, यमुनामभितो नदीम्।
स ददर्श तदा कन्यां दाशानां देवरूपिणीम्।। १।।
तामपृच्छत् स दृष्ट्वैव कन्यामसितलोचनाम्।
कस्य त्वमसि का चासि किं च भीरु चिकीर्षसि।। २।।
साब्रवीद् दाशकन्यास्मि धर्मार्थं वाहये तरिम्।
पितुर्नियोगाद् भद्रं ते दाशराज्ञो महात्मनः।। ३।।
रूपमाधुर्यगन्धैस्तां संयुक्तां देवरूपिणीम्।
समीक्ष्य राजा दाशेयीं कामयामास शान्तनुः।।४।।

एक बार वह शान्तनु यमुना नदी के समीपवर्ती वन में गये हुए थे। वहाँ उन्होंने मल्लाहों की एक देवताओं के समान सुन्दरी कन्या को देखा। उस काले नेत्रवाली कन्या को देखते ही राजा ने उससे पूछा कि हे भीरु। तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? और क्या करना चाहती हो? वह बोली मैं मल्लाहपुत्री हूँ। हे राजा आपका कल्याण हो। अपने पिता महात्मा निषादराज की आज्ञा से मैं धर्मार्थ नाव चलाती हूँ। तब उस निषादपुत्री को जो अपने रूप, मधुर वचन और गुणों की गन्ध के कारण देवकन्या सी प्रतीत होती थी, देख कर राजा ने, उसे प्राप्त करने की इच्छा की।

पर्यपृच्छत् ततस्तस्याः पितरं सोऽऽत्मकारणात्।
स च तं प्रत्युवाचेदं दाशराजो महीपतिम्।। ५।।
जातमात्रैव मे देया वराय वरवर्णिनी।
हृदि कामस्तु मे कश्चित् तं निबोध जनेश्वर।। ६।।
यदीमां धर्मपत्नीं त्वं मत्तः प्रार्थयसेऽनघ।
सत्यवागसि सत्येन समयं कुरु मे ततः।। ७।।
अस्यां जायेत यः पुत्रः स राजा पृथिवीपते।
त्वदूर्ध्वमभिषेक्तव्यो नान्यः कश्चन पार्थिव।। ८।।

तब उसने उसके पिता से उस कन्या को अपने लिये देने के लिये पूछा। तब उस निषादराज ने राजा को उत्तर दिया कि इस सुन्दरी कन्या को मैं इसके जन्म से ही अच्छे वर को देना चाहता हूँ। पर हे प्रजानाथ! मेरे हृदय में एक कामना है, उसे समझिये! यदि आप धर्मपत्नी के रूप में इसे मुझसे लेने की प्रार्थना करते हैं तो हे निष्पाप। आप सत्यवादी हैं अतः सत्य को बीच में रख कर मेरे साथ एक समझौता कीजिये। हे पृथिवीपति! वह समझौता यह होगा कि इसके जो पुत्र होगा, उसी का आपके पश्चात राज्याभिषेक किया जाये किसी और का नहीं।

नाकामयत तं दातुं वरं दाशाय शान्तनुः।
शरीरजेन तीव्रेण दह्यमानोऽपि भारतः।। ९।।
स चिन्तयन्नेव तदा दाशकन्यां महीमतिः।
प्रत्ययाद्धास्तिनपुरं कामोपहतचेतनः।। १०।।

ततः कदाचिच्छोचन्तं शान्तनुं ध्यानमास्थितम्।
पुत्रो देवव्रतोऽभ्येत्य पितरं वाक्यमब्रवीत्।। ११।।

यद्यपि वह भरतवंशी शान्तनु उस समय तीव्र मनोकामना से पीड़ित थे पर फिर भी उन्होंने उस मल्लाह को वह वर देने की इच्छा नहीं की और वह कामनाओं से मूढ़ चेतना वाले राजा उस मल्लाह कन्या के बारे में सोचते हुए ही हस्तिनापुर वापस आ गये। एक बार शान्तनु चिन्ता में मग्न होकर सोचविचार कर रहे थे कि पुत्र देवव्रत ने आकर अपने पिता से कहा कि-

सर्वतो भवतः क्षेमं विधेयाः सर्वपार्थिवाः।
तत् किमर्थमिहाभीक्ष्णं परिशोचसि दुःखितः।। १२।।
ध्यायन्निव च मां राजन्नाभिभाषसि किंचन।
न चाश्वेन विनिर्यासि विवर्णो हरिणः कृशः।। १३।।
व्याधिमिच्छामि ते ज्ञातुं प्रतिकुर्यां हि तत्र वै।
एवमुक्तः स पुत्रेण शान्तनुः प्रत्यभाषत।। १४।।

आपका सब प्रकार से कुशलमंगल है। सारे राजा लोग आपके वश में हैं, फिर क्यों आप दुखी से होकर हर समय चिन्तित रहते हैं। हे राजन्! आप चिन्ता सी करते हुए मुझसे भी कोई बात नहीं करते, न घोड़े पर चढ़कर आप बाहर घूमने जाते हैं। आप कान्तिहीन, पीले और कमजोर हो गये हैं। मैं आपकी बीमारी को जानना चाहता हूँ, जिससे उसका प्रतिकार कर सकूँ। पुत्र के ऐसा कहने पर शान्तनु ने उत्तर दिया कि—

असंशयं ध्यानपरो यथा वत्स तथा शृणु।
अपत्यं नस्त्वमेवैकः कुले महति भारत।। १५।।
शस्त्रनित्यश्च सततं पौरुषे पर्यवस्थितः।
अनित्यतां च लोकानामनुशोचामि पुत्रक।। १६।।
कथंचित् तव गाङ्गेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम्।
असंशयं त्वमेवैकः शतादपि वरः सुतः।। १७।।
न चाप्यहं वृथा भूयो दारान् कर्तुमिहोत्सहे।
संतानस्याविनाशाय कामये भद्रमस्तु ते।। १८।।

हे पुत्र! इसमें शक नहीं है कि मैं चिन्ता में डूबा रहता हूँ, पर उसका कारण सुनो। हे भरतवंशी! हमारे इस महान कुल में तुम्हीं एक पुत्र हो। तुम सदा शास्त्राभ्यास में लगे हुए, पुरुषार्थ प्रकट करने के लिये उद्यत रहते हो। मैं लोगों की अनित्यता को देखकर सोच करता रहता हूँ। हे गंगापुत्र! किसी प्रकार यदि तुम्हारे ऊपर कोई विपत्ति आई तो हमारा कुल नहीं बचेगा। यद्यपि इसमें शक नहीं है कि तुम अकेले ही सौ पुत्रों से भी श्रेष्ठ पुत्र हो। तुम्हारा कल्याण हो। मैं व्यर्थ ही पुनः विवाह नहीं करना चाहता। पर सन्तान का लोप न हो इसलिये चाहता हूँ।

ततस्तत्कारणं राज्ञो ज्ञात्वा सर्वमशेषतः।
देवव्रतो महाबुद्धिः प्रज्ञया चान्वचिन्तयत्।। १९।।
अभ्यागच्छत् तदैवाशु वृद्धामात्यं पितुर्हितम्।
तमपृच्छत् तदाभ्येत्य पितुस्तच्छोककारणम्।। २०।।
सूतं भूयोऽपि संतप्त आह्वयामास वै पितुः।
तमुवाच महाप्राज्ञो भीष्मो वै सारथिं पितुः।। २१।।
त्वं सारथे पितुर्मह्यं सखासि रथयुग् यतः।
अपि ज्ञानासि यदि वै कस्यां भावो नृपस्य तु।। २२।।

तब राजा से उसके दुख के कारण को जानकर महाबुद्धिमान देवव्रत ने सारी बात पर पूरी तरह से अपनी बुद्धि द्वारा विचार किया और तभी जल्दी से आपने पिता के हितैषी बूढ़े मन्त्री के पास जाकर, उससे अपने पिता के शोक के कारण को पूछा और फिर पिता के दुख से दुखी देवव्रत ने पिता के सारथि को भी बुलवाया। महाप्राज्ञ भीष्म ने पिता के सारथी से कहा कि हे सारथी! तुम मेरे पिता के मित्र हो, क्योंकि तुम उनका रथ हाँकते हो। क्या तुम किसी लड़की को जानते हो, जिसमें पिताजी की भावना है।

सूत उवाच- **दाशकन्या नरश्रेष्ठ तत्र भावः पितुर्गतः।**
वृतः स नरदेवेन तदा वचनमब्रवीत्।। २३।।
योऽस्यां पुमान् भवेद्गर्भः स राजा त्वदनन्तरम्।
नाकामयत तं दातुं पिता तव वरं तदा।। २४।।
स चापि निश्चयस्तस्य न च दद्यामतोऽन्यथा।
ततो देवव्रतो वृद्धैः क्षत्रियैः सहितस्तदा।। २५।।
अभिगम्य दाशराजं कन्यां वव्रे पितुः स्वयम्।
तं दाशः प्रतिजग्राह विधिवत् प्रतिपूज्य च।। २६।।
अब्रवीच्चैनमासीनं राजसंसदि भारतं।

सारथी ने कहा कि हे नरश्रेष्ठ! एक मल्लाह की लड़की है, उसके प्रति तुम्हारे पिता को प्रेम हो गया है। जब राजा ने उस मल्लाह से उस लड़की को माँगा तो उसने उनसे कहा कि इसके गर्भ से जो पुत्र हो, वही आपके बाद राजा होना चाहिये। आपके पिता ने उसे यह वर नहीं देना चाहा, पर वह मल्लाह भी इस निश्चय पर दृढ़ है कि बिना इस शर्त को माने मैं अपनी पुत्री को नहीं दूँगा। तब देवव्रत वृद्ध क्षत्रियों के साथ उस निषादराज के पास गया और उसने उससे अपने पिता के लिये स्वयं वह कन्या माँगी। निषादराज ने उसका स्वागत किया और विधिवत् सत्कार कर उन क्षत्रियों के समूह में बैठे हुए भरतवंशी देवव्रत से कहा कि—

राज्यशुल्का प्रदातव्या कन्येयं याचतां वर।। २७।।
अपत्यं यद् भवेत् तस्याः स राजास्तु पितुः परम्।
अर्थितश्चापि राजर्षिः प्रत्याख्यातः पुरा मया।। २८।।
सचाप्यासीत् सत्यवत्या भृशमर्थी महायशाः।
कन्यापितृत्वात् किंचित् वक्ष्यामि त्वां नराधिप।। २९।।
बलवत्सपत्नतामत्र दोषं पश्यामि केवलम्।
यस्य हि त्वं सपत्नः स्या गन्धर्वस्यासुरस्य वा।। ३०।।
न स जातु चिरं जीवेत् त्वयि क्रुद्धे परंतप।
एवमुक्तस्तु गाङ्गेयस्तद्युक्तं प्रत्यभाषत।। ३१।।

हे याचकों में श्रेष्ठ राजकुमार! इस कन्या को देने के लिये मैंने राज्य की शर्त रखी हुई है। जो इसका पुत्र हो, वही पिता के पश्चात् राजा होना चाहिये। महायशस्वी, राजर्षि शान्तनु भी इस कन्या के अत्यन्त याचक थे, पर उनको भी मैंने इस शर्त के कारण अस्वीकृत कर दिया। हे राजा! कन्या का पिता होने के कारण मैं आपसे भी कुछ कहना चाहता हूँ। वह यह कि आपके परिवार से सम्बन्ध करने पर मेरी बलवान के साथ शत्रुता का दोष मुझे दिखाई देता है। हे परंतप। आप जिसके शत्रु हो जायें, वह आपके क्रुद्ध होने पर चाहे गन्धर्व हो या असुर हो, वह अधिक देर तक जीवित नहीं रह सकता। ऐसा कहे जाने पर गंगापुत्र ने उसे उचित उत्तर दिया कि—

एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे।
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति।। ३२।।
इत्युक्तः पुनरेवाथ तं दाशः प्रत्यभाषत।
इदं तु वचनं सौम्य कार्यं चैव निबोध मे।। ३३।।
कौमारिकाणां शीलेन वक्ष्याम्यहमरिन्दम।
यत् त्वया सत्यवत्यर्थे सत्यधर्मपरायण।। ३४।।
राजमध्ये प्रतिज्ञातमनुरूपं तवैव तत्।
नान्यथा तन्महाबाहो संशयोऽत्र न कश्चन।। ३५।।
तवापत्यं भवेद् यत् तु तत्र नः संशयो महान्।

ठीक है। मैं ऐसा ही करूँगा, जैसा तुम कहते हो। जो इसका पुत्र होगा, वही राजा होगा। भीष्म के ऐसा कहने पर निषादराज ने पुनः कहा कि ठीक है पर हे शत्रुओं का दमन करने वाले सौम्य राजकुमार! कन्याओं के सम्बन्धियों के स्वभाव के अनुसार मैं आपसे एक बात और भी कहना चाहता हूँ, आप उसे समझिये। हे सत्य धर्म का पालन करने वाले! आपने सत्यवती के लिये इस राजाओं के बीच में जो प्रतिज्ञा की है, वह आपके ही योग्य है। यह प्रतिज्ञा हे महाबाहु! असत्य नहीं हो सकती। इसमें कोई संशय नहीं है, पर आपका जो पुत्र होगा, उसके विषय में हमें महान् संशय है कि वह इस प्रतिज्ञा का पालन करेगा या नहीं।

गाङ्गेय उवाच- **दाशराज निबोधेदं वचनं मे नरोत्तम।। ३६।।**
शृण्वतां भूमिपालानां यद् ब्रवीमि पितुः कृते।
राज्यं तावत् पूर्वमेव मया त्यक्तं नराधिपाः।। ३७।।
अपत्यहेतोरपि च करिष्येऽद्य विनिश्चयम्।
अद्यप्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति।। ३८।।
न हि जन्मप्रभृत्युक्तं मम किंचिदिहानृतम्।
यावत् प्राणा ध्रियन्ते वै मम देहं समाश्रिताः।। ३९।।
तावन्न जनयिष्यामि पित्रे कन्यां प्रयच्छ मे।
ऊर्ध्वरेता भविष्यामि दाश सत्यं ब्रवीमि ते।। ४०।।

तब भीष्म ने कहा कि हे नरश्रेष्ठ निषादराज। मेरी यह बात सुनो। जो इन राजाओं के सुनते हुए मैं अपने पिता के लिये कह रहा हूँ। हे राजाओं! राज्य तो मैंने पहले ही छोड़ दिया है, पर अब सन्तान के लिये भी आज से मैं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा। मैंने जन्म से लेकर आज तक कभी असत्य नहीं बोला है। जब तक मेरे प्राण मेरे शरीर में रहेंगे, तब तक मैं सन्तान उत्पन्न नहीं करूँगा। मैं नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहूँगा। यह मैं सत्य कहता हूँ। तुम मेरे पिता के लिये अपनी कन्या दे दो।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
ददानीत्येव तं दाशो धर्मात्मा प्रत्यभाषत।। ४१।।
ततः स पितुरर्थाय तामुवाच यशस्विनीम्।
अधिरोह रथं मातर्गच्छावः स्वगृहानिति।। ४२।।
एवमुक्त्वा तु भीष्मस्तां रथमारोप्य भाविनीम्।
आगम्य हास्तिनपुरं शान्तनोः संन्यवेदयत्।। ४३।।
तस्य तद् दुष्करं कर्म प्रशशंसुर्नराधिपाः।
समेताश्च पृथक् चैव भीष्मोऽयमिति चाब्रुवन्।। ४४।।

देवव्रत के इन वचनों को सुनकर धर्मात्मा निषादराज के रोंगटे खड़े हो गये और उसने उत्तर दिया कि मैं अवश्य अपनी पुत्री आपके पिता को दूँगा। तब अपने पिता के मनोरथ के लिये भीष्म ने उस यशस्विनी निषाद कन्या से कहा कि हे माता! रथ पर बैठो। अपने घर चलते हैं। ऐसा कह कर भीष्म ने उस भामिनी को रथ पर बैठाकर हस्तिनापुर आकर उसे अपने पिता शान्तनु को सौंप दिया। देवव्रत के इस कार्य की राजाओं ने इकट्ठे होकर भी और अलग अलग भी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि यह तो वास्तव में भीष्म है।

तीसरा अध्याय : सत्यवती की सन्तानों का जन्म विवाह और मृत्यु।

ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा शान्तनुर्नृपः।
तां कन्यां रूपसम्पन्नां स्वगृहे संन्यवेशयत्।। १।।
ततः शान्तनवो धीमान् सत्यवत्यामजायत।
वीरश्चित्राङ्गदो नाम वीर्यवान् पुरुषेश्वरः।। २।।
अथापरं महेष्वासं सत्यवत्यां सुतं प्रभुः।
विचित्रवीर्यं राजानं जनयामास वीर्यवान्।। ३।।
अप्राप्तवति तस्मिंस्तु यौवनं पुरुषर्षभे।
स राजा शान्तनुर्धीमान् कालधर्ममुपेयिवान्।। ४।।

तब विवाह के हो जाने पर उस शान्तनु राजा ने उस रूपवती कन्या को अपने महल में रख लिया। उसके बाद धीमान शान्तनु ने उस सत्यवती से चित्रांगद नाम का वीर, तेजस्वी और पुरुषों में श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त किया। इसके बाद उस पराक्रमी राजा ने दूसरे विचित्रवीर्य नाम के महा धनुर्धर राजा को जन्म दिया। उस पुरुषश्रेष्ठ विचित्रवीर्य के युवावस्था को पहुँचने से पहले ही वह धीमान् शान्तनु राजा मृत्यु को प्राप्त हो गये।

स्वर्गते शान्तनौ भीष्मश्चित्राङ्गदमरिंदमम्।
स्थापयामास वै राज्ये सत्यवत्या मते स्थितः।। ५।।
स तु चित्राङ्गदः शौर्यात् सर्वांश्चिक्षेप पार्थिवान्।
मनुष्यं न हि मेने स कंचित् सदृशमात्मनः।। ६।।
गन्धर्वराजो बलवांस्तुल्यनामाभ्ययात् तदा।

शान्तनु के स्वर्गवासी हो जाने पर भीष्म ने शत्रुओं का दमन करने वाले चित्रांगद को सम्यवती की सम्मति से राज्य पर स्थापित कर दिया। वह चित्रांगद अपने शौर्य के अभिमान में सारे राजाओं की अवहेलना करने लगे। वह किसी भी मनुष्य को अपने समान नहीं समझते थे। तब उन्हीं के समान नाम वाला अर्थात् चित्रांगद नाम वाला गन्धर्व उनके पास आया।

गन्धर्व उवाच- **त्वं वै सदृशनामासि युद्धं देहि नृपात्मज।। ७।।**
नाम चान्यत् प्रगृणीष्व यदि युद्धं न दास्यसि।
त्वयाहं युद्धमिच्छामि त्वत्सकाशात् तु नामतः।। ८।।
आगतोऽस्मि वृथाभाष्यो न गच्छेन्नामतो यथा।
तेनास्य सुमहद् युद्धं कुरुक्षेत्रे बभूव ह।। ९।।
नद्यास्तीरे सरस्वत्याः समास्तिस्त्रोऽभवद् रणः।
तस्मिन् विमर्दे तुमुले शस्त्रवर्षसमाकुले।। १०।।
मायाधिकोऽवधीद्वीरं गन्धर्वः कुरुसत्तमम्।

गन्धर्व ने कहा हि हे राजकुमार! तुम मेरे समान नाम वाले हो इसलिये मुझसे युद्ध करो। यदि युद्ध कहीं करना चाहते तो दूसरा नाम रख लो। मैं नाम के ही कारण आया हूँ। मेरे नाम के द्वारा व्यर्थ ही पुकारा जाने वाला पुरुष मेरे सामने से बचकर नहीं जा सकता। तब उसके साथ चित्रांगद का कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के किनारे महान् युद्ध हुआ। तीन वर्ष तक युद्ध चलता रहा। शस्त्रास्त्रों की वर्षा से युक्त उस तुमुल युद्ध में उस वीर कुरुश्रेष्ठ को छल कपट में अधिक गन्धर्व ने मार दिया।

विचित्रवीर्यं च तदा, बालमप्राप्तयौवनम्।। ११।।
कुरुराज्ये महाबाहुरभ्यषिंचदनन्तरम्।
विचित्रवीर्यः स तदा, भीष्मस्य वचने स्थितः।।१२।।
अन्वशासन्महाराजः, पितृपैतामहं पदम्।
सम्प्राप्तयौवनं दृष्ट्वा भ्रातरं धीमतां वरः।। १३।।
भीष्मो विचित्रवीर्यस्य विवाहायाकरोन्मतिम्।
अथ काशिपतेः कन्याः, वृण्वाना वै स्वयंवरम्।। १४।।

विचित्रवीर्य उस समय बालक और अप्राप्त यौवन थे। पर उसके बाद महाबाहु भीष्म ने उसी का राज्याभिषेक कर दिया। तब महाराज विचित्रवीर्य भीष्म जी की आज्ञा के अनुसार बाप दादों के राज्य पर शासन करने लगे। उसके बाद धीमानों में श्रेष्ठ भीष्म ने जब अपने भाई को युवावस्था को प्राप्त हुआ देखा तब वे विचित्रवीर्य के विवाह के विषय में विचार करने लगे। उस समय काशिराज की कन्याओं का स्वयंवर होने वाला था।

ततः स रथिनां श्रेष्ठो रथेनैकेन शत्रुजित्।
जगामानुमते मातुः पुरीं वाराणसीं प्रभुः।। १५।।
तत्र राज्ञः समुदितान् सर्वतः समुपागतान्।
ददर्श कन्यास्ताश्चैव भीष्मः शान्तनुनन्दनः।। १६।।
ब्रह्मचारीति भीष्मो हि वृथैव प्रथितो भुवि।
इत्येवं प्रब्रुवन्तस्ते हसन्ति स्म नृपाधमाः।। १७।।
क्षत्रियाणां वचः श्रुत्वा वरयामास ताः प्रभुः।
उवाच च महीपालान्, भीष्मः प्रहरतां वरः।। १८।।
ता इमाः पृथिवीपाला जिहीर्षामि बलादितः।
ते यतध्वं परं शक्त्या विजयायेतराय वा।। १९।।

तब शत्रुओं को जीतने वाले, रथियों में श्रेष्ठ वह सामर्थ्यवान भीष्म माता सत्यवती की अनुमति से काशी नगर में पहुँचे। वहाँ शान्तनु पुत्र भीष्म ने सब तरफ से आकर एकत्र हुए राजाओं और उन कन्याओं को देखा। तब वहाँ दुष्ट राजा लोग भीष्म तो ब्रह्मचारी हैं, ऐसी इन्होंने संसार में झूठी ही

अपनी प्रसिद्धि फैला रखी है ऐसा कहते हुए उन पर हँसने लगे। उन क्षत्रियों की ये बातें सुनकर उस सामर्थ्यवान और प्रहार करने में श्रेष्ठ भीष्म ने उन कन्याओं का वरण कर लिया और उन राजाओं से कहा कि हे राजाओं! मैं इन कन्याओं को बलपूर्वक यहाँ से ले जाना चाहता हूँ। तुम लोग अपनी पूरी शक्ति से विजय या पराजय के लिये प्रयत्न कर लो।

स्थितोऽहं पृथिवीपाला युद्धाय कृतनिश्चयः।
एवमुक्त्वा महीपालान् काशिराजं च वीर्यवान्।। २०।।
सर्वाः कन्याः स कौरव्यो रथमारोप्य च स्वकम्।
आमन्त्र्य च स तान् प्रायाच्छीघ्रं तिस्रः प्रगृह्य ताः।। २१।।
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे समुत्पेतुरमर्षिताः।
संस्पृशन्तः स्वकान् बाहून् दशन्तो दशनच्छदान्।। २२।।
तेषामाभरणान्याशु त्वरितानां विमुञ्चताम्।
आमुञ्चतां च वर्माणि सम्भ्रमः सुमहानभूत्।। २३।।

हे राजाओं! मैं युद्ध के लिये निश्चय कर यहाँ डटा हुआ हूँ। ऐसा उन राजाओं और काशीराज से कह कर वे तेजस्वी कुरुश्रेष्ठ उन तीनों कन्याओं को अपने रथ पर बैठा कर, साथ ले कर और उन सबको ललकार कर शीघ्रता से वहाँ से चल दिये। तब अमर्षशील वे सारे राजा लोग अपनी भुजाओं को स्पर्श करते और दाँतों से ओठों को चबाते हुए अपनी जगहों से उछल पड़े। तब उन सबके द्वारा अपने आभूषणों को उतारते हुए और कवचों को पहनते हुए वहाँ बड़ा कोलाहल होने लगा।

सक्रोधामर्षजिह्मभ्रू कषायीकृतलोचनाः।
सूतोपक्लृप्तान् रुचिरान् सदश्वैरुपकल्पितान्।। २४।।
रथानास्थाय ते वीराः सर्वप्रहरणान्विताः।
प्रयान्तमथ कौरव्यमनुसस्रुरुदायुधाः।। २५।।

क्रोध और अमर्ष के कारण जिनकी भौंहें टेढी और आँखें लाल हो रहीं थीं, वे वीर लोग सारथियों के द्वारा तैयार किये हुए, सुन्दर और उत्तम घोड़ों से युक्त रथों पर बैठ कर और सब प्रकार के शस्त्रास्त्रों से युक्त होकर अपने अपने आयुधों को उठाये, जाते हुए कुरुश्रेष्ठ के पीछे दौड़े। तब उनमें रोंगटे खड़े कर देने वाला भयानक युद्ध हुआ।

ततः समभवद् युद्धं तुमुलं लोम हर्षणम्।
तेत्विषून् दश साहस्रांस्तस्मिन् युगपदाक्षिपन्।। २६।।
अप्राप्तांश्चैव तानाशु भीष्मः सर्वांस्तथान्तरा।
अच्छिनच्छरवर्षेण महता लोमवाहिना।। २७।।
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे सर्वतः परिवार्य तम्।
ववृषुः शरवर्षेण वर्षेणेवाद्रिमम्बुदाः।। २८।।
स तं बाणमयं वर्षं शरैरावार्य सर्वतः।
ततः सर्वान् महीपालान् पर्यविध्यात् त्रिभिस्त्रिभिः।। २९।।

उन्होंने भीष्म पर एक साथ दस हजार बाण फैंके। पर भीष्म ने उन सबको अपने पास आने से पहले ही बीच में शीघ्रता से अपने पंखधारी बाणों की महान् वर्षा से काट दिया। तब उन राजाओं ने उन्हें सब तरफ से घेर कर उन पर बादलों के द्वारा पर्वत पर की जानेवाली वर्षा के समान बाणों की वर्षा की। भीष्म ने उस बाण वर्षा को अपने बाणों से सब तरफ से हटा कर उन राजाओं को तीन तीन बाणों से बींध दिया।

स धनूंषि ध्वजाग्राणि वर्माणि च शिरांसि च।
चिच्छेद समरे भीष्मः शतशोऽथ सहस्रशः।। ३०।।
तस्याति पुरुषानन्याँल्लाघवं रथचारिणः।
रक्षणं चात्मनः संख्ये शत्रवोऽप्यभ्यपूजयन्।। ३१।।
तान् विनिर्जित्य तु रणे सर्वशस्त्रभृतां वरः।
कन्याभिः सहितः प्रायाद्, शाल्वराजो महारथः।। ३२।।
अभ्यगच्छदमेयात्मा भीष्मं शान्तनवं रणे।
वारणं जघने भिन्दन् दन्ताभ्यामपरो यथा।। ३३।।
वासितामनुसम्प्राप्तो यूथपो बलिनां वरः।
स्त्रीकामस्तिष्ठ तिष्ठेति भीष्ममाह स पार्थिवः।। ३४।।
शाल्वराजो महाबाहुरमर्षेण प्रचोदितः।
ततः सः पुरुषव्याघ्रो भीष्मः परबलार्दनः।। ३५।।
तद्वाक्याकुलितः क्रोधाद् विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्।
विततेषुधनुष्पाणिर्विकुंचित ललाटभृत्।। ३६।।

भीष्म ने उस युद्ध में सैकड़ों और हजारों, धनुषों, ध्वजाओं के अग्रभागों, कवचों और मस्तकों का छेदन कर दिया। रथ से विचरण करते हुए उनके दूसरे पुरुषों से बढ़कर हस्तलाघव और आत्मरक्षा की शत्रुओं ने भी प्रशंसा की। सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भीष्म उन सबको जीत कर आगे चल दिये। तभी महारथी और असीमित बलवाले शाल्वराज ने पीछे से आकर, जैसे कामनायुक्त हथिनी के पीछे जाते हुए हाथी के पीछे से दूसरा बलवानों में श्रेष्ठ यूथपति दान्तों से उसके पैरों में प्रहार करे, स्त्री की कामना से उस राजा ने भीष्म से अरे ठहर अरे ठहर ऐसा कहकर युद्ध के लिये ललकारा। महाबाहु शाल्वराज उस समय अमर्ष से उत्तेजित हो रहा था। तब शत्रु के बल को नष्ट करने वाले, पुरुष व्याघ्र भीष्म ने उसके वाक्य से क्रोध से व्याकुल होकर धूम रहित अग्नि के समान जलते हुए और माथे पर सिकुड़न डाले हुए, अपने धनुष बाण को तान लिया।

क्षत्रधर्मं समास्थाय व्यपेतभयसम्भ्रमः।
निवर्तयामास रथं शाल्वं प्रति महारथः।। ३७।।
निवर्तमानं तं दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त भीष्मशाल्वसमागमे।। ३८।।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे।
अन्योन्यमभ्यवर्तेतां बलविक्रमशालिनौ।। ३९।।
ततो भीष्मं शान्तनवं शरैः शतसहस्रशः।
शाल्वराजो नरश्रेष्ठः समवाकिरदाशुगैः।। ४०।।

वह महारथी भीष्म, क्षात्रधर्म का आश्रम लेकर भय और घबराहट के बिना अपने रथ को शाल्वराज की तरफ लौटा लाये। उन्हें लौटा हुआ देखकर वे सारे राजा लोग भीष्म और शाल्व के युद्ध में दर्शक बनकर खड़े हो गये। बल और पराक्रम वाले वे दोनों ही कामना युक्त गाय के लिये गर्जते हुए दो बलवान सांडों की तरह एक दूसरे से भिड़ गये। तब नरश्रेष्ठ शाल्वराज ने शीघ्रगामी सैंकड़ों और हजारों बाणों से शान्तनु पुत्र भीष्म को भर दिया।

पूर्वमभ्यर्दितं दृष्ट्वा भीष्मं शाल्वेन ते नृपाः।
विस्मिताः समपद्यन्त साधुसाध्विति चाब्रुवन्।। ४१।।
लाघवं तस्य ते दृष्ट्वा समरे सर्वपार्थिवाः।
अपूजयन्त संहृष्टा वाग्भिः शाल्वं नराधिपम्।। ४२।।
क्षत्रियाणां ततो वाचः श्रुत्वा परपुरंजयः।
क्रुद्धः शान्तनवो भीष्मस्तिष्ठ तिष्ठेत्यभाषत।। ४३।।
सारथिं चाब्रवीत् क्रुद्धो याहि यत्रैष पार्थिवः।
यावदेनं निहन्म्यद्य भुजङ्गमिव पक्षिराट्।। ४४।।

भीष्म को शाल्व के द्वारा पहले पीड़ित देखकर वे राजा लोग आश्चर्य चकित होकर साधु, साधु कहने लगे। उसकी फुर्ती को देखकर युद्ध में सारे राजा लोग प्रसन्न होकर शाल्वराज का वाणी से सत्कार करने लगे। उन क्षत्रियों की वाणियों को सुन कर शत्रुओं के नगर को नष्ट करने वाले शान्तनु पुत्र भीष्म क्रुद्ध होकर ठहर ठहर ऐसा कहकर सारथी से बोले कि जहाँ यह राजा खड़ा है, उस तरफ ही रथ को ले चलो। मैं इसे साँप को गरुड़ के समान अभी मारता हूँ।

ततोऽस्त्रं वारुणं सम्यग् योजयामास कौरवः।
तेनाश्वांश्चतुरोऽमृद्नन् च्छाल्वराजस्य भूपते।। ४५।।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शाल्वराजस्य कौरवः।
भीष्मो नृपतिशार्दूलःन्यवधीत् तस्य सारथिम्।। ४६।।
कन्याहेतोर्नरश्रेष्ठः भीष्मः शान्तनवस्तदा।
जित्वा विसर्जयामास जीवन्तं नृपसत्तमम्।। ४७।।

तब उस कुरुश्रेष्ठ ने वारुणास्त्र का ठीक प्रकार से प्रयोग कर शाल्वराज के चारों घोड़ों को मार दिया। फिर राजाओं के ऊपर सिंह के समान प्रबल भीष्म ने अपने अस्त्रों से शाल्वराज के अस्त्रों का निवारण करके उसके सारथी को मार गिराया। फिर शान्तनु पुत्र नरश्रेष्ठ भीष्म ने कन्याओं के लिये किये गये उस युद्ध में नृपश्रेष्ठ शाल्वराज को जीतकर उसे केवल जीने के लिये छोड़ दिया।

एवं धर्मेण धर्मज्ञः कृत्वा कर्मातिमानुषम्।
भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य विवाहायोपचक्रमे।। ४८।।
सत्यवत्या सह मिथः कृत्वा निश्चयमात्मवान्।
विवाहं कारयिष्यन्तं भीष्मं काशिपतेः सुता।। ४९।।
ज्येष्ठा तासामिदं वाक्यमब्रवीद्ध सती तदा।
मया सौभपतिः पूर्वं मनसा हि वृतः पतिः।। ५०।।
तेन चास्मि वृता पूर्वमेष कामश्च मे पितुः।
मया वरयितव्योऽभूच्छाल्वस्तस्मिन् स्वयंवरे।। ५१।।
एतद् विज्ञाय धर्मज्ञ धर्मतत्त्वं समाचर।

इस प्रकार उन धर्मज्ञ ने धर्मपूर्वक यह अलौकिक कार्य करके अपने भाई विचित्रवीर्य के विवाह की तैयारी आरम्भ की। उन मनस्वी ने इस विषय में सत्यवती से भी सलाह कर ली थी। तब विवाह की तैयारी करते हुए भीष्म से काशीराज की सबसे बड़ी पुत्री जो अपने निश्चय पर दृढ़ थी, यह बोली कि मैंने सौभ नामक विमान के स्वामी शाल्वराज को ही पहले अपने मन से पति वरण किया हुआ है। उसने भी मेरा वरण किया हुआ है। मेरे पिता की भी यही इच्छा थी। उस स्वयंवर में मैं शाल्वराज को ही वरण करती। यह सब जानकर हे धर्मज्ञ! जो धर्मानुकूल हो वही करिये।

एवमुक्तस्तया भीष्मः कन्यया विप्रसंसदि।। ५२।।
चिन्तामभ्यगमद् वीरो युक्तां तस्यैव कर्मणः।
विनिश्चित्य स धर्मज्ञो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।। ५३।।
अनुजज्ञे तदा ज्येष्ठामम्बां काशिपतेः सुताम्।
अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद् भ्रात्रे यवीयसे।। ५४।।
भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा।

ब्राह्मणों की सभा में उस कन्या के द्वारा यह कहे जाने पर वह वीर भीष्म विवाह के कार्य के विषय में युक्ति युक्त विचार करने लगे। तब उस धर्मज्ञ ने वेद के विद्वान ब्राह्मणों से सलाह करके काशीराज की उस सबसे बड़ी कन्या को (अम्बा को) जाने की आज्ञा दे दी। फिर उन्होंने अम्बिका और अम्बालिका नाम की दोनों छोटी कन्याओं को पत्नी

के रूप में अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य को विधि के अनुसार प्रदान कर दिया।

तयोः पाणी गृहीत्वा तु रूपयौवनदर्पितः।। ५५।।
विचित्रवीर्यो धर्मात्मा कामात्मा समपद्यत।
ताभ्यां सह समाः सप्त विहरन् पृथिवीपतिः।। ५६।।
विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्मणा समगृह्यत।
सुहृदां यतमानानामाप्तैः सह चिकित्सकैः।
जागामास्तमिवादित्यः कौरव्यो यमसादनम्।। ५७।।

उन दोनों से विवाह करके रूप और यौवन के दर्प से युक्त धर्मात्मा विचित्रवीर्य कामात्मा बन गये। उस राजा ने उन दोनों के साथ निरन्तर सात वर्ष तक विहार किया। उसके परिणामस्वरूप नवयुवक विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा से ग्रस्त हो गये। उनके हितैषियों ने योग्य चिकित्सकों द्वारा उनके लिये बड़ा प्रयत्न किया, पर अस्ताचल को जाने वाले सूर्य के समान वे कुरुकुल नरेश मृत्यु लोक को चले गये।

चौथा अध्याय : सत्यवती की पौत्रोत्पत्ति हेतु भीष्म, व्यास जी से प्रार्थना।

ततः सत्यवती दीना कृपणा पुत्रगृद्धिनी।
समाश्वास्य स्नुषे ते च भीष्मं शस्त्रभृतां वरम्।। १।।
धर्मं च पितृवंशं च मातृवंशं च भाविनी।
प्रसमीक्ष्य महाभागा गाङ्गेयं वाक्यमब्रवीत्।। २।।

तब पुत्र की इच्छा रखने वाली सत्यवती पुत्र के वियोग से दीन और दुखी हो गयी। वह महाभागा अपनी दोनों पुत्रवधुओं को धीरज बँधाकर, धर्म, पितृकुल और मातृकुल का विचार करते हुए शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ गंगापुत्र भीष्म से यह वाक्य बोली कि—

मम पुत्रस्तव भ्राता वीर्यवान् सुप्रियश्च ते।
बाल एव गतः स्वर्गमपुत्रः पुरुषर्षभ।। ३।।
इमे महिष्यौ भ्रातुस्ते काशिराजसुते शुभे।
रूपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च भारत।। ४।।
तयोरुत्पादयापत्यं संतानाय कुलस्य नः।
मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्तुमिहार्हसि।। ५।।
तथोच्यमानो मात्रा स सुहृद्भिश्च परंतपः।
इत्युवाचाथ धर्मात्मा धर्म्यमेवोत्तरं वचः।। ६।।

हे भरतवंशी! हे पुरुषश्रेष्ठ! मेरा एक पुत्र जो पराक्रमी और तुम्हें अत्यन्त प्रिय था, बचपन में ही बिना सन्तान के स्वर्ग को चला गया। तुम्हारे दूसरे भाई की ये दोनों रानियाँ, काशीराज की सुन्दर पुत्रियाँ, रूप यौवन सम्पन्न और पुत्र की कामना वाली हैं। हे महाबाहु! तुम मेरी आज्ञा से हमारे कुल की सन्तान के लिये इन दोनों से पुत्र उत्पन्न करो। तुम यह धर्म का कार्य अवश्य करो। माता और हितैषियों के द्वारा यह कहे जाने पर शत्रुओं को संतप्त करने वाले धर्मात्मा भीष्म ने यह धर्मयुक्त उत्तर दिया कि—

असंशयं परो धर्मस्त्वया मातरुदाहृतः।
राज्यार्थे नाभिषिंचेयं नोपेयां जातु मैथुनम्।। ७।।
त्वमपत्यं प्रति च मे प्रतिज्ञां वेत्थ वै पराम्।
जानासि च यथावृत्तं शुल्कहेतोस्त्वदन्तरे।। ८।।
स सत्यवति सत्यं ते प्रतिजानाम्यहं पुनः।
त्यजेच्च पृथ्वी गन्धमापश्च रसमात्मनः।। ९।।
ज्योतिस्तथा त्यजेद् रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत्।
प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मताम्।। १०।।
त्यजेच्छब्दं तथाऽऽकाशं सोमः शीतांशुतां त्यजेत्।
न त्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन।। ११।।

हे माता! निस्सन्देह तुमने परम धर्म से युक्त बात कही है, किन्तु राज्य के लिये न तो मैं अपना अभिषेक कराऊँगा और न कभी मैथुन करूँगा। सन्तान के विषय में तुम मेरी उस परम प्रतिज्ञा को जानती हो, जो तुम्हारे शुल्क के लिये मैंने की थी। हे सत्यवती! वह सत्य है और मैं पुनः उसके विषय में बताता हूँ। चाहे पृथिवी अपनी गन्ध को छोड़ दे, चाहे पानी अपने रस का परित्याग कर दे, अग्नि चाहे अपने रूप को छोड़ दे, या वायु स्पर्श गुण को छोड़ दे, सूर्य अपनी प्रभा को त्याग दे, अग्नि उष्णता को छोड़ दे, आकाश शब्द गुण को छोड़ दे और चन्द्रमा शीतलता को छोड़ दे, पर मैं अपने सत्य को छोड़ने का किसी प्रकार भी विचार नहीं कर सकता।

एवमुक्ता तु पुत्रेण भूरिद्रविणतेजसा।
माता सत्यवती भीष्ममुवाच तदनन्तरम्।। १२।।
यथा ते कुलतन्तुश्च धर्मश्च न पराभवेत्।
सुहृदश्च प्रहृष्येरंस्तथा कुरु परंतप।। १३।।
लालप्यमानां तामेवं कृपणां पुत्रगृद्धिनीम्।
धर्मादपेतं ब्रुवतीं भीष्मो भूयोऽब्रवीदिदम्।। १४।।

महान तेजरूप सम्पत्ति से युक्त पुत्र के द्वारा यह कहे जाने पर माता सत्यवती ने तत्पश्चात् भीष्म से कहा कि हे परंतप! तुम वैसे ही करो जिससे तुम्हारे कुल की परम्परा नष्ट न हो, धर्म का भी उल्लंघन न हो और हितैषी भी प्रसन्न

हो जायें। तब पुत्र की इच्छुक और पुत्र की कामना से इस प्रकार दीन बनी हुई और धर्म से हट कर बोलने वाली सत्यवती से भीष्म ने पुनः यह कहा कि—

राज्ञि धर्मानवेक्षस्व मा नः सर्वान् व्यनीनशः।
सत्याच्च्युतिः क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रशस्यते।। १५।।
शान्तनोरपि संतानं यथा स्यादक्षयं भुवि।
तत् ते धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम्।। १६।।
श्रुत्वा तं प्रतिपद्यस्व प्राज्ञैः सह पुरोहितैः।
आपद्धर्मार्थकुशलैर्लोक तन्त्रमवेक्ष्य च।। १७।।
ब्राह्मणो गुणवान् कश्चिद् धनेनोपनिमन्त्र्यताम्।
विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु यः समुत्पादयेत् प्रजाः।। १८।।
ततः सत्यवती भीष्मं वाचा संसज्जमानया।
विहसन्तीव सव्रीडमिदं वचनमब्रवीत्।। १९।।

हे राजमाता! धर्म की तरफ से दृष्टि मत हटाओ! हम सब का नाश मत करो। क्षत्रिय का सत्य से च्युत हो जाना किसी भी धर्म में प्रशंसनीय नहीं है। शान्तनु की सन्तान जैसे बिना नष्ट हुए संसार में रहे, मैं तुम्हें क्षत्रियों के उस सनातन धर्म के बारे में बताऊँगा, तुम उसे सुनकर आपद्धर्म कुशल, प्राज्ञ पुरोहितों के साथ परामर्श करके और लोकतंत्र का ध्यान रखते हुए निश्चय करो। आप किसी गुणवान् ब्राह्मण को धन देकर बुलवाओ, जो विचित्रवीर्य की पत्नियों से सन्तान उत्पन्न कर दे। तब सत्यवती ने कुछ हँसते हुए लज्जा के साथ लड़खड़ाती हुई वाणी से भीष्म को यह कहा कि—

पाराशर्यो महायोगी स बभूव महानृषिः।
कन्यापुत्रो मम पुरा द्वैपायन इति श्रुतः।। २०।।
यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः।
लोके व्यासत्वमापेदे कार्ष्ण्यात् कृष्णत्वमेव च।। २१।।
सत्यवादी शमपरस्तपस्वी दग्धकिल्बिषः।
स नियुक्तो मया व्यक्तं त्वया चाप्रतिमद्युतिः।। २२।।
भ्रातुः क्षेत्रेषु कल्याणमपत्यं जनयिष्यति।
महर्षेः कीर्तने तस्य भीष्मः प्रांजलिरब्रवीत्।। २३।।
तदिदं धर्मयुक्तं च हितं चैव कुलस्य नः।
उक्तं भवत्या यच्छ्रेयस्तन्मह्यं रोचते भृशम्।। २४।।

पाराशर के पुत्र महायोगी और महा ऋषि जो द्वैपायन नाम से प्रसिद्ध हैं, वे मेरे पहले कन्यापुत्र हैं। उन भगवान् ऋषि ने अपनी तपस्या से चारों वेदों की व्याख्या की इसलिए संसार में व्यास नाम से प्रसिद्ध हैं और शरीर के काला होने के कारण कृष्ण नाम से प्रसिद्ध हैं। वह सत्यवादी और शम का पालन करने वाले तपस्वी और पापों का दहन करने वाले हैं। वह अद्वितीय तेजस्वी मेरे और तुम्हारे द्वारा कहने पर भाई के क्षेत्र में अवश्य ही कल्याणकारी सन्तान उत्पन्न कर देंगे। तब उन महर्षि के बारे में बताने पर भीष्म ने हाथ जोड़ कर कहा कि आपकी यह बात धर्म से युक्त और कल्याणकारी है। आपने जो अच्छी बात कही है, वह मुझे अत्यधिक पसन्द आयी है।

कृष्णद्वैपायनं काली चिन्तयामास वै मुनिम्।
तस्मै पूजां ततः कृत्वा सुताय विधिपूर्वकम्।। २५।।
परिष्वज्य च बाहुभ्यां प्रस्रवैरभ्यषिञ्चत।
मुमोच बाष्पं दाशेयी पुत्रं दृष्ट्वा चिरस्य तु।। २६।।
तामद्भिः परिषिंच्यार्तो महर्षिरभिवाद्य च।
मातरं पूर्वजः पुत्रो व्यासो वचनमब्रवीत्।। २७।।
भवत्या यदभिप्रेत तदहं कर्तुमागतः।
शाधि मां धर्मतत्त्वज्ञे करवाणि प्रियं तव।। २८।।

तब काली अर्थात् सत्यवती ने कृष्णद्वैपायन के विषय में विचार कर उन्हें बुलवाया और उनके आने पर उन अपने पुत्र का विधिपूर्वक सत्कार किया। उन्होंने उन्हें अपनी भुजाओं में भर लिया और पुत्र प्रेम के कारण स्तनों से झरते हुए दूध से उनका अभिषेक किया। अपने पुत्र को बड़े दिनों के बाद देखकर सत्यवती की आँखों से आँसू बहने लगे। उस दुःखिनी माता का अपने कमण्डलु के जल से अभिषेक कर और उन्हें अभिवादन कर उनके प्रथम पुत्र व्यास ऋषि ने तब उनसे कहा कि आपकी जो इच्छा है, मैं उसे पूरा करने के लिये आ गया हूं। हे धर्म के तत्त्व को जानने वाली! आप मुझे आदेश दीजिये मैं आपका क्या प्रिय कार्य करूं।

तमासनगतं माता पृष्ट्वा कुशलमव्ययम्।
सत्यवत्यथ वीक्ष्यैनमुवाचेद मनन्तरम्।। २९।।
मातापित्रोः प्रजायन्ते पुत्राः साधारणाः कवे।
तेषां पिता यथा स्वामी तथा माता न संशयः।। ३०।।
विधानविहितः सत्यं यथा मे प्रथमः सुतः।
विचित्रवीर्यो ब्रह्मर्षे तथा मेऽवरजः सुत।। ३१।।
यथैव पितृतो भीष्मस्तथा त्वमपि मातृतः।
भ्राता विचित्रवीर्यस्य यथा वा पुत्र मन्यसे।। ३२।।
अयं शान्तनवः सत्यं पालनयन् सत्यविक्रमः।

उनके आसन पर बैठ जाने पर, उनका कुशल मंगल पूछने के उपरान्त माता सत्यवती ने उन्हें देखकर यह कहा हे विद्वान्! पुत्र माता और पिता दोनों से उत्पन्न होते हैं, इसलिये उन पर दोनों का समान अधिकार होता है। जैसे उनका पिता स्वामी होता है वैसे ही माता भी होती है, इसमें

संशय नहीं है। हे ब्रह्मर्षि! परमात्मा की व्यवस्था के कारण जैसे तुम सचमुच मेरे पहले पुत्र हो वैसे विचित्रवीर्य मेरा सबसे छोटा पुत्र था। जैसे एक पिता होने के कारण ये भीष्म उनके भाई हैं वैसे एक माता होने के कारण तुम भी विचित्रवीर्य के भाई हो और जैसे तुम समझो। ये सत्य पराक्रमी भीष्म तो अपने सत्य का पालन कर रहे हैं।

बुद्धिं न कुरुतेऽपत्ये तथा राज्यानुशासने।। ३३।।
स त्वं व्यपेक्षया भ्रातुः संतानाय कुलस्य च।
भीष्मस्य चास्य वचनान्नियोगाच्च ममानघ।। ३४।।
अनुक्रोशाच्च भूतानां सर्वेषां रक्षणाय च।
आनृशंस्याच्च यद् ब्रूयां तच्छ्रुत्वा कर्तुमर्हसि।। ३५।।
यवीयसस्तव भ्रातुर्भार्ये सुरसुतोपमे।
रूपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च धर्मतः।। ३६।।
तयोरुत्पादयापत्यं समर्थो ह्यसि पुत्रक।
अनुरूपं कुलस्यास्य संतत्याः प्रसवस्य च।। ३७।।

इनकी बुद्धि सन्तान पैदा करने और राज्य पर शासन करने की नहीं है। इसलिये तुम इस कुल के हितार्थ और भाई की सन्तान के लिये हे निष्पाप! इन भीष्म के आग्रह से और मेरी आज्ञा से प्राणियों पर दयालुता से और प्रजाओं की रक्षा के लिये और अपनी कोमल वृत्ति के कारण जो मैं कहूं, उसका पालन करो। तुम्हारे छोटे भाई की ये दो पत्नियाँ हैं, जो देवकन्या के समान हैं। ये रूप यौवन से सम्पन्न हैं और धर्मानुसार पुत्रप्राप्ति की इच्छुक हैं। हे पुत्र! तुम इन दोनों से ऐसे पुत्र उत्पन्न करो, जो इस कुल के योग्य हों। तुम सन्तान को जन्म देने के लिये समर्थ हो।

व्यास उवाच- **वेत्थ धर्मं सत्यवति परं चापरमेव च।**
तथा तव महाप्राज्ञे धर्मे प्रणिहिता मतिः।। ३८।।
तस्मादहं त्वन्नियोगाद् धर्ममुद्दिश्य कारणम्।
ईप्सितं ते करिष्यामि दृष्टं ह्येतत् सनातनम्।। ३९।।
व्रतं चरेतां ते देव्यौ निर्दिष्टमिह यन्मया।
संवत्सरं यथान्यायं ततः शुद्धे भविष्यतः।। ४०।।

तब व्यास जी ने कहा हे माता सत्यवती! आप पर और अपर दोनों प्रकार के धर्म को जानती हैं। हे महाप्राज्ञे! आपकी बुद्धि भी धर्म में लगी रहती है। इसीलिये मैं आपके आदेश से चाहा हुआ कार्य करूंगा। इस प्रकार का कार्य पहले से होता भी आया है। वे दोनों देवियाँ विधि पूर्वक मेरे निर्देश के अनुसार एक वर्ष तक व्रत का पालन करें। तब वे शुद्ध हो जायेंगी।

सत्यवत्युवाच- **सद्यो यथा प्रपद्येते देव्यौ गर्भं तथा कुरु।**
अराजकेषु राष्ट्रेषु प्रजानाथा विनश्यति।। ४१।।
कथं चाराजकं राष्ट्रं शक्यं धारयितुं प्रभो।
तस्माद् गर्भं समाधत्स्व भीष्मः संवर्धयिष्यति।। ४२।।

तब सत्यवती ने कहा कि जिस प्रकार दो देवियां जल्दी गर्भ को धारण करें, वैसे करो, क्योंकि बिना राजा के अनाथ प्रजा का नाश हो जाता है। हे प्रभो! बिना राजा वाली प्रजा की रक्षा कैसे की जा सकती है? इसलिये जल्दी गर्भाधान करो। भीष्म उन बच्चों का पालन कर लेंगे।

व्यास उवाच- **यदि पुत्रः प्रदातव्यो मया भ्रातुरकालिकः।**
विरूपतां मे सहतां तयोरेतत् परं व्रतम्।। ४३।।
ततोऽभिगम्य सा देवी स्नुषां रहसि संगताम्।
धर्म्यमर्थसमायुक्तमुवाच वचनं हितम्।। ४४।।
कौसल्ये धर्मतन्त्रं त्वां यद् ब्रवीमिनिबोध तत्।।

तब व्यास जी ने कहा कि यदि मुझे भाई के लिये, असमय में ही पुत्र देना है तो उन दोनों देवियों के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे मेरी कुरूपता को सहन करें। तब वह देवी सत्यवती एकान्त में बैठी हुई अपनी पुत्रवधु के पास जाकर उससे धर्मानुकूल और प्रयोजन से युक्त हितकारी वचन बोली कि हे कौशल्या। मैं तुमसे जो धर्म के अनुसार बात कह रही हूँ, उसे समझो।

भरतानां समुच्छेदो व्यक्तं मद्भाग्यसंक्षयात।। ४५।।
व्यथितां मां च सम्प्रेक्ष्य पितृवंशं च पीडितम्।
भीष्मो बुद्धिमदान्मह्यं कुलस्यास्य विवृद्धये।। ४६।।
सा च बुद्धिस्त्वय्यधीना पुत्रि प्रापय मां तथा।
नष्टं च भारतं वंशं पुनरेव समुद्धर।। ४७।।
पुत्रं जनय सुश्रोणि देवराजसमप्रभम्।
स हि राज्यधुरं गुर्वीमुद्वक्ष्यति कुलस्य नः।। ४८।।
सा धर्मतोऽनुनीयैनां कथंचिद् धर्मचारिणीम्।
भोजयामास विप्रांश्च देवर्षीनतिथींस्तथा।। ४९।।

यह स्पष्ट है कि मेरे भाग्य के क्षय अर्थात् मेरे बुरे कर्मों के कारण भरतवंशियों के वंश का नाश होने लगा है। पितृवंश को पीड़ित और मुझे दुखी देख कर भीष्म ने मुझे इस वंश की वृद्धि के लिये सलाह दी है। उस सलाह की पूर्ति तुम्हारे आधीन है। इसलिये हे पुत्री! तुम मुझे उस अवस्था में पहुँचाओ, जिससे मैं उस सलाह को पूरा हुआ देख सकूँ। तुम इस नष्ट होने वाले भरतवंश का पुनरुद्धार करो। इसलिये हे सुन्दरी! इन्द्र के समान तेजस्वी पुत्र को उत्पन्न करो। वह ही हमारे इस कुल के विशाल राज्य के महान बोझ को वहन करेगा। धर्म का आचरण करने वाली कोशल्या को उसने इस प्रकार किसी तरह से मनाया और उसके तैयार हो जाने पर उसने ब्राह्मणों, देवर्षियों और अतिथियों को भोजन कराया।

पाँचवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र आदि के जन्म

ततः सत्यवती काले वधूं स्नातामृतौ तदा।
संवेशयन्ती शयने शनैर्वचनमब्रवीत्।। १।।
कौसल्ये देवरस्तेऽस्ति सोऽद्य त्वानुप्रवेक्ष्यति।
अप्रमत्ता प्रतीक्षैनं निशीथे ह्यागमिष्यति।। २।।
श्वश्र्वास्तद् वचनं श्रुत्वा शयाना शयने शुभे।
साचिन्तयत् तदा भीष्ममन्यांश्च कुरुपुङ्गवान्।। ३।।
ततोऽम्बिकायां प्रथमं नियुक्तः सत्यवागृषिः।
दीप्यमानेषु दीपेषु शरणं प्रविवेश ह।।४।।

उसके बाद सत्यवती पुत्रवधु को ठीक समय पर उसके ऋतु स्नान कर लेने पर, उसे शय्या पर बैठाती हुई, धीरे से उससे यह बोली कि हे कौशल्या! तेरा एक देवर है। वह आज तेरे पास आयेगा। सास का यह वचन सुन कर शय्या पर लेटी हुई वह भीष्म के विषय में तथा दूसरे श्रेष्ठ कुरुवंशियों के विषय में सोचने लगी। तब पहले अम्बिका के लिये जिन्हें नियुक्त किया गया था, वह सत्यवादी ऋषि उस महल में, जहां बहुत सारे दीपक जल रहे थे, प्रविष्ट हुए।

तस्य कृष्णस्य कपिलां जटां दीप्ते च लोचने।
बभ्रूणि चैव श्मश्रूणि दृष्टवा देवी न्यमीलयत्।। ५।।
सम्बभूव तया सार्धं मातुः प्रियचिकीर्षया।
भयात् काशिसुता तं तु नाशक्नोदभिवीक्षितुम्।। ६।।
सापि कालेन कौसल्या सुषुवेऽन्धं तमात्मजम्।
पुनरेव तु सा देवी परिभाष्य स्नुषां ततः।। ७।।
ऋषिमावाहयत् सत्या, महर्षिस्तामपद्यत।
अम्बालिकामथाभ्यागादृषिं दृष्ट्वा च सापि तम।। ८।।
विवर्णा पाण्डुसंकाशा समपद्यत भामिनी।

तब उन ऋषि की, जिनका रंग काला था, पिंगल वर्ण की जटाओं तथा चमकती हुई आँखों और दाढ़ी एवं मूँछों को देख कर उस देवी ने अपनी दोनों आँखें बन्द कर लीं। माता का प्रिय करने की इच्छा से उन ऋषि ने उसके साथ समागम किया, पर वह काशी राज की पुत्री भय के कारण उनकी तरफ देख नहीं सकी। समय आने पर कौसल्या ने तब अपने उस पुत्र को जो अन्धा था, जन्म दिया। तब उस देवी सत्यवती ने पुनः अपनी दूसरी पुत्रवधु को समझाकर ऋषि को बुलाया। महर्षि उसके पास गये और उस अम्बालिका के साथ समागम किया, पर वह भामिनी भी ऋषि को देखकर भय से कान्तिहीन और पीली पड़ गयी।

ततः कुमारं सा देवी, प्राप्त कालमजीजनत्।। ९।।
पाण्डुं लक्षण सम्पन्नं, दीप्यमानमिवश्रिया।
तं माता पुनरेवान्यमेकं पुत्रमयाचत।। १०।।
तथेति च महर्षिस्तां मातरं प्रत्यभाषत।
ऋतुकाले ततो ज्येष्ठां वधूं तस्मै न्ययोजयत्।। ११।।
सा तु रूपं च गन्धं च महर्षेः प्रविचिन्त्य तम्।
नाकरोद् वचनं देव्या भयात् सुरसुतोपमा।। १२।।

तब समय आने पर उस देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। वह अपनी सुन्दरता से देदीप्यमान पर पाण्डु रोग के लक्षणों से युक्त पीले रंग का था। तब माता सत्यवती ने पुनः एक पुत्र के लिये याचना की और ऋषि ने बहुत अच्छा कहकर माता की बात मान ली। तब ऋतु समय आने पर उसने सबसे बड़ी पुत्रवधु को व्यास जी से मिलने को तैयार किया, पर उस देवकन्या के समान सुन्दरी ने उन महर्षि के रूप और शरीर की गन्ध को याद कर भय के कारण देवी सत्यवती के वचन का पालन नहीं किया।

ततः स्वैर्भूषणैर्दासीं भूषयित्वाप्सरोपमाम्।
प्रेषयामास कृष्णाय ततः काशिपतेः सुता।। १३।।
सा तमृषिमनुप्राप्तं प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च।
संविवेशाभ्यनुज्ञाता सत्कृत्योपचचार ह।। १४।।
कामोपभोगेन रहस्तस्यां तुष्टिमगादृषिः।
स जज्ञे विदुरो नाम कृष्णद्वैपायनात्मजः।। १५।।
धृतराष्ट्रस्य वै भ्राता पाण्डोश्चैव महात्मनः।

तब अप्सरा के समान सुन्दरी अपनी एक दासी को अपने आभूषणों से सजाकर उस काशीराज की कन्या ने उसे व्यास जी के लिये भेज दिया। ऋषि के आने पर उस दासी ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और उन्हें प्रणाम कर शय्या पर बैठी और सत्कारपूर्वक उसने उनकी सेवा की। एकान्त में इच्छा पूर्वक उसका उपभोग कर ऋषि बहुत सन्तुष्ट हुए उससे तब कृष्णद्वैपायन के पुत्र विदुर ने जन्म लिया, जो धृतराष्ट्र और महात्मा पाण्डु के भाई थे।

धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरश्च महामतिः।। १६।।
जन्मप्रभृति भीष्मेण पुत्रवत् परिपालिताः।
संस्कारैः संस्कृतास्ते तु व्रताध्ययनसंयुताः।। १७।।
श्रमव्यायामकुशलाः समपद्यन्त यौवनम्।
इतिहासपुराणेषु नानाशिक्षासु बोधिताः।। १८।।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वत्र कृतनिश्चयाः।

धृतराष्ट्र, पाण्डु और महामति विदुर, इन तीनों का जन्म से ही भीष्म ने पुत्र के समान पालन किया। उन्हें

संस्कारों से संस्कृत किया गया, व्रतों और अध्ययन से युक्त किया गया। श्रम करने और व्यायाम करने में कुशल होकर वे युवावस्था को प्राप्त हो गये। उन तीनों को इतिहास पुराण और अनेक तरह की शिक्षाओं का ज्ञान कराया गया। वे वेद और वेदांगों के तत्व को जानने वाले और हर जगह निश्चित सिद्धांत पर निश्चय करने वाले थे।

पाण्डुर्धनुषि विक्रान्तो नरेष्वभ्यधिकोऽभवत्।। १९।।
अन्येभ्यो बलवानासीद् धृतराष्ट्रो महीपतिः।
त्रिषु लोकेषु न त्वासीत् कश्चिद् विदुरसम्मितः।। २०।।
धर्मनित्यस्तथा धर्मेऽधर्मे च परमं गतः।
धृतराष्ट्रस्त्वचक्षुष्ट्वाद् राज्यं न प्रत्यपद्यत।
पारशवत्वाद् विदुरो राजा पाण्डुर्बभूव ह।। २१।।

पाण्डु धनुर्विद्या में अत्यधिक चतुर और सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ हुए। राजा धृतराष्ट्र दूसरे लोगों से शारीरिक बल में अधिक थे। विदुर के समान तीनों लोकों में कोई भी धर्म का परायण करने वाला तथा धर्म और अधर्म के ज्ञान में परम उच्चता को प्राप्त नहीं था। इनमें से धतराष्ट्र तो आँख न होने के और विदुर दासीपुत्र होने के कारण राज्य को न पा सके। केवल पाण्डु ही राजा हुए।

छठा अध्याय : धृतराष्ट्र आदि के विवाह, पाण्डु की विजय यात्राएँ।

कदाचिदथ गाङ्गेयः सर्वनीतिमतां वरः।
विदुरं धर्मतत्त्वज्ञं वाक्यमाह यथोचितम्।। १।।
श्रूयते यादवी कन्या स्वनुरूपा कुलस्य नः।
सुबलस्यात्मजाश्चैव तथा मद्रेश्वरस्य च।। २ ।।
कुलीना रूपवत्यश्च ताः कन्याः पुत्र सर्वशः।
उचिताश्चैव सम्बन्धे तेऽस्माकं क्षत्रियर्षभाः।। ३।।
मन्ये वरयितव्यास्ता इत्यहं धीमतां वर।
संतानार्थं कुलस्यास्य यद् वा विदुर मन्यसे।। ४।।

एक बार सब नीतिज्ञों में श्रेष्ठ भीष्म धर्म के तत्व को जानने वाले विदुर से यह उचित वाक्य बोले कि सुना गया है कि यदुवंशियों की एक कन्या है, जो हमारे कुल के अनुरूप है। इसी प्रकार गान्धार राज सुबल की भी पुत्रियाँ हैं और मद्र नरेश की भी एक पुत्री है। हे पुत्र! ये सारी कन्याएँ सब प्रकार से कुलीन और रूपवाली हैं और ये क्षत्रिय श्रेष्ठ लोग हमारे साथ सम्बन्ध करने के योग्य भी हैं। हे धीमानों में श्रेष्ठ विदुर! मैं समझता हूँ कि हमें इन कन्याओं का इस कुल की सन्तानों के लिये वरण करना चाहिये। जैसी तुम्हारी सलाह हो बताओ।

विदुर उवाच

भवान् पिता भवान् माता भवान् नः परमोगुरूः।
तस्मात् स्वयं कुलस्यास्य विचार्य कुरु यद्धितम्।। ५।।
ततो गान्धारराजस्य प्रेषयामास भारतः।
अचक्षुरिति तत्रासीत् सुबलस्य विचारणा।। ६।।
कुलं ख्यातिं च वृत्तं च बुद्ध्या तु प्रसमीक्ष्य सः।
ददौ तां धृतराष्ट्राय गान्धारीं धर्मचारिणीम्।। ७।।

विदुर बोले कि आप हमारे पिता और माता तथा आप ही हमारे परम गुरु हैं। इसलिये इस कुल के लिये जो हितकारी हो वह आप स्वयं विचार करके कीजिये। तब उस भरतवंशी भीष्म ने गान्धार राज के पास कन्याओं के लिये सन्देश भेजा। उस समय गान्धार राज के मन में धृतराष्ट्र अन्धे हैं, यह विचार कर मन में चिन्ता थी। फिर उनके कुल, प्रसिद्धि और चरित्र का बुद्धि से विचार कर उसने धर्म का आचरण करने वाली गान्धारी को धृतराष्ट्र के लिये दे दिया।

तस्याः सहोदराः कन्याः, पुनदेव ददौ दश।
गान्धारराजः सुबलो, भीष्मेण वरितास्तदा।। ८।।
सत्यव्रतां, सत्यसेनां, सुदेष्णां, च सुसंहिताम्।
तेजःश्रवां, सुश्रवां, च, तथैव निकृतिं, शुभाम्।। ९।।
शंभुवां, च दशार्णां, च, गान्धारीर्दश विश्रुताः।
एकाह्ना प्रति जग्राह, धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।। १०।।
ततः शान्तनवो भीष्मो, धनुष्क्रीतास्ततस्ततः।
आददात् धृतराष्ट्रस्य, राजपुत्री, परःशतम्।। ११।।

फिर गान्धार राज सुबल ने भीष्म जी द्वारा वरण करने पर गान्धारी की दस सहोदरा बहनें भी धृतराष्ट्र को विवाह दीं। उनके नाम इस प्रकार हैं। सत्यव्रता, सत्यसेना, सुदेष्णा, सुसंहिता, तेजःश्रवा, सुश्रवा, निकृति, शुभा, शंभुवा और दशार्णा। ये सभी गान्धार देश की राजकुमारियाँ विश्व प्रसिद्ध थीं। महाराज धृतराष्ट्र ने इन सबके साथ एक ही दिन विवाह किया। इसके पश्चात् शान्तनु पुत्र भीष्म ने धनुष की शक्ति से और दूसरे स्थानों से भी सौ से अधिक अर्थात् अनेक राजकुमारियाँ ला कर धृतराष्ट्र को दीं।

नोट :— महाभारत के आदिपर्व के पूना संस्करण में पृष्ठ ४६७ पर क्षेपक के रूप में उपर्युक्त चार श्लोक पढ़े गये हैं, जिनमें धृतराष्ट्र के विवाहों का वर्णन है। भारतवर्ष का बृहद इतिहास के रचयिता श्री भगवद्दत्त जी के अनुसार प्रतीत होता है कि एक

ही मांस पिण्ड से धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों की कथा गढ़ने के लिये इन श्लोकों को जो वास्तव में असली थे पहले क्षेपक माना गया फिर धीरे धीरे लोप कर दिया गया। वस्तुतः इन्हीं रानियों से धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे। यही विचार श्री भगवद्दत्त जी के अतिरिक्त संक्षिप्त महाभारत के सम्पादक श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द और प्रस्तुत सम्पादक का भी है।

जैन शत्रुञ्जय माहात्म्य जो कि महाभारत के बहुत बाद का ग्रन्थ है के १०/१६४-४३ के अनुसार भी गान्धारी सहित आठ बहिनों का विवाह धृतराष्ट्र से हुआ था।

शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेवपिताभवत्।
तस्य कन्या पृथा नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि।। १२।।
अग्रजामथ तां कन्यां शूरोऽनुग्रहकाङ्क्षिणे।
प्रददौ कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने।। १३।।
तां तु तेजस्विनीं कन्यां रूपयौवनशालिनीम्।
व्यवृण्वन् पार्थिवाः केचिदतीव स्त्रीगुणैर्युताम्।। १४।।
ततः सा कुन्तिभोजेन राज्ञाऽऽहूय नराधिपान्।
पित्रा स्वयंवरे दत्ता दुहिता राजसत्तमान्।। १५।।

यदुवंशियों में श्रेष्ठ शूरसेन वसुदेव के पिता थे। उनकी पृथा नाम की कन्या अपने सौन्दर्य से संसार में अद्वितीय थी। अपनी सबसे बड़ी उस कन्या को शूरसेन ने अनुग्रह की इच्छा वाले अपने मित्र महात्मा कुन्तीभोज को दे दिया। उस रूपयौवनशालिनी, तेजस्विनी और अत्यधिक स्त्रियोचित गुणों से युक्त, कन्या को कई राजाओं ने माँगा। तब राजा कुन्तीभोज ने उन श्रेष्ठ राजाओं को बुलाकर स्वयंवर में उस पुत्री को उनके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया।

ततः सा रङ्गमध्यस्थं तेषां राज्ञां मनस्विनी।
ददर्श राजशार्दूलं पाण्डुं भरतसत्तमम्।। १६।।
सिंहदर्पं महोरस्कं वृषभाक्षं महाबलम्।
आदित्यमिव सर्वेषां राज्ञां प्रच्छाद्य वै प्रभाः।। १७।।
तिष्ठन्तं राजसमितौ पुरन्दरमिवापरम्।
तं दृष्ट्वा सानवद्याङ्गी कुन्तिभोजसुता शुभा।। १८।।
व्रीडमाना स्रजं कुन्ती राज्ञः स्कन्धे समासजत्।

उस मनस्विनी कुन्ती ने जब उन राजाओं के बीच में रंगमंच पर भरतवंश शिरोमणि, राजसिंह पाण्डु को देखा, जो सिंह के समान दर्पशील, विशाल वक्षस्थल तथा बैल की तरह नेत्रवाले और महाबली थे, जिन्होंने सूर्य के समान अपने तेज से सारे राजाओं के तेज को आच्छादित किया हुआ था, जो राजाओं की सभा में दूसरे इन्द्र के समान विद्यमान थे। तब उन्हें देखकर उस निर्दोष अंगों वाली कुन्तीभोज की सुन्दरी पुत्री कुन्ती ने लजाते हुए माला को उनके कन्धे पर डाल दिया।

कुन्त्याःपाण्डोश्च राजेन्द्रः कुन्तिभोजो महीपतिः।। १९।।
कृत्वोद्वाहं तदा तं तु नानावसुभिरर्चितम्।
स्वपुरं प्रेषयामास स राजा कुरुसत्तमं।। २०।।
सम्प्राप्य नगरं राजा पाण्डुः कौरवनन्दनः।
न्यवेशयत तां भार्यां कुन्तीं स्वभवने प्रभुः।। २१।।

तब राजेन्द्र पृथिवीपति कुन्तीभोज ने कुन्ती और पाण्डु का विवाह करके अनेक प्रकार की धन सम्पत्ति के द्वारा उनका सम्मान किया और फिर उस राजा ने उन कुरुश्रेष्ठ को उनके नगर भेज दिया। तब वे प्रभावशाली कौरव नन्दन राजा पाण्डु अपने नगर में आये और उन्होंने भार्या कुन्ती को अपने भवन में प्रवेश कराया।

ततः शान्तनवो भीष्मो राज्ञः पाण्डोर्यशस्विनः।
विवाहस्यापरस्यार्थे चकार मतिमान् मतिम्।। २२।।
सोऽमात्यैः स्थविरैः सार्धं ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः।
बलेन चतुरङ्गेण ययौ मद्रपतेः पुरम्।। २३।।
तमागतमभिश्रुत्य भीष्मं बाह्लीकपुङ्गवः।
प्रत्युद्गम्यार्चयित्वा च पुरं प्रावेशयन्नृपः।। २४।।
दत्त्वा तस्यासनं शुभ्रं पाद्यमर्घ्यं तथैव च।
मधुपर्कं च मद्रेशः पप्रच्छागमनेऽर्थिताम्।। २५।।

उसके बाद शान्तनुपुत्र मतिमान् भीष्म यशस्वी पाण्डु के दूसरे विवाह के लिये विचार करने लगे। वे तब बूढ़े मन्त्रियों, ब्राह्मणों, महर्षियों और चतुरंगिणी सेना के साथ मद्र देश के राजा की राजधानी में गये। उन्हें आया हुआ सुन कर बाह्लीक श्रेष्ठ राजा ने आगे बढ़ कर भीष्म की अगवानी की और उन्हें अपने पुर में प्रवेश कराया। उन्होंने उन्हें सुन्दर आसन, पैर धोने का जल, अर्ध्य और मधुपर्क देकर उनसे आने का प्रयोजन पूछा।

तं भीष्मः प्रत्युवाचेदं मद्रराजं कुरूद्वहः।
आगतं मां विजानीहि कन्यार्थिनमरिन्दम।। २६।।
श्रूयते भवतः साध्वी स्वसा माद्री यशस्विनी।
तामहं वरयिष्यामि पाण्डोरर्थे यशस्विनीम्।। २७।।
युक्तरूपो हि सम्बन्धे त्वं नो राजन् वयं तव।
एतत् संचिन्त्य मद्रेश गृहाणास्मान् यथाविधि।। २८।।
तमेवंवादिनं भीष्मं प्रत्यभाषत मद्रपः।
न हि मेऽन्यो वरस्त्वत्तः श्रेयानिति मतिर्मम।। २९।।

तब कुरुकुल का भार वहन करने वाले भीष्म ने मद्रराज को यह उत्तर दिया कि हे शत्रुओं का दमन करने

वाले! आप मुझे कन्या की इच्छा से आया हुआ समझिये। यह सुना गया है कि आपकी बहन यशस्विनी माद्री है। मैं उस यशस्विनी का पाण्डु के लिये वरण करूँगा। हे राजन्! इस सम्बन्ध के लिये आप हमारे योग्य हैं और हम भी आपके योग्य हैं। यह सोच कर हे मद्रेश! आप हमें विधि के अनुसार ग्रहण करो। तब ऐसा कहने वाले भीष्म को मद्र नरेश ने उत्तर दिया कि मुझे आपके वर से अधिक अच्छा वर नहीं मिल सकेगा। यह मेरा विचार है।

पूर्वैः प्रवर्तितं किंचित् कुलेऽस्मिन् नृपसत्तमैः।
साधु वा यदि वासाधु तन्नातिक्रान्तुमुत्सहे।। ३०।।
व्यक्तं तद् भवतश्चापि विदितं नात्र संशयः।
न च युक्तं तथा वक्तुं भवान् देहीति सत्तम।। ३१।।
कुलधर्मः स नो वीर प्रमाणं परमं च तत्।
तेन त्वां न ब्रवीम्येतदसंदिग्धं वचोऽरिहन्।। ३२।।
तं भीष्मः प्रत्युवाचेदं मद्रराजं जनाधिपः।
नात्र कश्चन दोषोऽस्ति पूर्वैर्विधिरयं कृतः।। ३३।।
विदितेयं च ते शल्य मर्यादा साधुसम्मता।

पर हमारे पूर्वज श्रेष्ठ राजाओं ने इस कुल में कुछ लेने का रिवाज चलाया हुआ है। चाहे वह उचित हो, या अनुचित हो, पर मैं उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आप भी इसे जानते होंगे। सबके सामने यह बात प्रकट है। इसलिये हे साधु शिरोमणि! आपको भी मुझसे यह नहीं कहना चाहिये कि कन्या को दीजिये। हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले वीर! हमारे लिये हमारा कुल धर्म परम आदरणीय है। इसलिये मैं आपसे यह नहीं कह सकता कि निस्सन्देह मैं आपको कन्या दे दूँगा। तब जनता के स्वामी भीष्म ने मद्रराज को यह उत्तर दिया कि पूर्वजों ने यदि यह नियम बना दिया है, तो इसमें कोई दोष नहीं है। हे शल्य! तुम्हारी साधु पुरुषों द्वारा सम्मानित यह मर्यादा हमें मालूम है।

इत्युक्त्वा स महातेजाः शातकुम्भं कृताकृतम्।। ३४।।
रत्नानि च विचित्राणि शल्यायादात् सहस्रशः।
गजानश्वान् रथांश्चैव वासांस्याभरणानि च।। ३५।।
मणिमुक्ताप्रवालं च गाङ्गेयो व्यसृजच्छुभम्।
तत् प्रगृह्य धनं सर्वं शल्यः सम्प्रीतमानसः।। ३६।।
ददौ तां समलंकृत्य स्वसारं कौरवर्षभे।
ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा कुरुनन्दनः।। ३७।।
स्थापयामास तां भार्यां शुभे वेश्मनि भाविनीम्।

ऐसा कह कर महातेजस्वी गंगापुत्र भीष्म ने स्वर्ण और उसके बने हुए पदार्थ, हजारों विचित्र रत्न, हाथियों, घोड़ों, रथों, वस्त्रों, और आभूषणों को और सुन्दर मणि, मोती तथा मूँगों को शल्य को दिया। उस सारे धन को ग्रहण कर प्रसन्न होकर शल्य ने अपनी उस बहन को अलंकृत करके कुरुश्रेष्ठ को दे दिया। तब विवाह हो जाने पर कुरुनन्दन राजा पाण्डु ने अपनी उस कल्याणमयी भार्या को सुन्दर महल में ठहराया।

स ताभ्यां व्यचरत् सार्धं भार्याभ्यां राजसत्तमः।। ३८।।
कुन्त्या माद्र्या च राजेन्द्रो यथाकामं यथासुखम्।
अथ पारशवीं कन्यां देवकस्य महीपतेः।। ३९।।
ततस्तु वरयित्वा तामानीय भरतर्षभः।
विवाहं कारयामास विदुरस्य महामतेः।। ४०।।
ततः स कौरवो राजा विहृत्य त्रिदशा निशाः।
जिगीषया महीं पाण्डुर्निरक्रामत् पुरात् प्रभुः।। ४१।।

वह राजाओं में श्रेष्ठ राजेन्द्र पाण्डु तब उन दोनों पत्नियों कुन्ती और माद्री के साथ इच्छानुसार सुखपूर्वक विहार करने लगे। इसके बाद भरतश्रेष्ठ भीष्म ने राजा देवक के यहाँ ब्राह्मण और शूद्रा से उत्पन्न एक कन्या वरण करके और उसे लाकर उसका विवाह महामति विदुर के साथ करा दिया। फिर वे सामर्थ्यवान कौरवराज पाण्डु तीस रात्रियों तक विहार करके पृथिवी पर विजय प्राप्त करने के लिये नगर से बाहर निकले।

स भीष्मप्रमुखान् वृद्धानभिवाद्य प्रणम्य च।
धृतराष्ट्रं च कौरव्यं तथान्यान् कुरुसत्तमान्।। ४२।।
आमन्त्र्य प्रययौ राजा तैश्चैवाप्यनुमोदितः।
मङ्गलाचारयुक्ताभिराशीर्भि रभिनन्दितः।। ४३।।
गजवाजिरथौघेन बलेन महतागमत्।
स राजा देवगर्भाभो विजिगीषुर्वसुंधराम्।। ४४।।
हृष्टपुष्टबलैः प्रायात् पाण्डुः शत्रूननेकशः।

उन्होंने भीष्म आदि वृद्धों को अभिवादन तथा प्रणाम किया। धृतराष्ट्र और दूसरे कुरुश्रेष्ठ कुरुवंशियों से सलाह ली, और उनका समर्थन प्राप्त किया और मंगलाचार से युक्त विशाल सेना के साथ प्रस्थान किया। वसुन्धरा को जीतने के इच्छुक देवकुमारों के समान कान्तिवाले उस राजा पाण्डु ने हृष्ट-पुष्ट सैनिकों के साथ अनेक शत्रुओं पर आक्रमण किया।

पूर्वमागस्कृतो गत्वा दशार्णाः समरे जिताः।। ४५।।
पाण्डुना नरसिंहेन कौरवाणां यशोभृता।
आगस्कारी महीपानां बहूनां बलदर्पितः।। ४६।।
गोप्ता मगधराष्ट्रस्य दीर्घो राजगृहे हतः।
ततः कोशं समादाय वाहनानि च भूरिशः।। ४७।।

पाण्डुना मिथिलां गत्वा विदेहाः समरे जिताः।
तथा काशिषु असुह्मेषु पुण्ड्रेषु च नरर्षभः।। ४८।।
स्वबाहुबलवीर्येण कुरूणामकरोद् यशः।

कौरवों के यश को बढ़ाने वाले नरसिंह पाण्डु ने पहले पूर्व के अपराधी दशार्णों को युद्ध में जीता। फिर बहुत सारे राजाओं का अपराधी, बल का अभिमानी मगधराज दीर्घ राजगृह में उनके द्वारा मारा गया। फिर बहुत सा खजाना और वाहनों को लेकर पाण्डु ने मिथिला जाकर युद्ध में विदेहवंशी क्षत्रियों को जीता। फिर उस नरश्रेष्ठ ने काशी, सुह्म और पुण्ड्र देशों पर अपने बाहुबल और पराक्रम से कुरुओं के यश को स्थापित किया।

प्रत्युद्ययुश्च तं प्राप्तं सर्वे भीष्मपुरोगमाः।। ४९।।
ते नदूरमिवाध्वानं गत्वा नागपुरालयात्।
सोऽभिवाद्य पितुः पादौ कौसल्यानन्दवर्धनः।। ५०।।
यथार्हं मानयामास पौरजानपदानपि।
प्रमृद्य परराष्ट्राणि कृतार्थं पुनरागतम्।। ५१।।
पुत्रमाश्लिष्य भीष्मस्तु हर्षादश्रूण्यवर्तयत्।
स तूर्यशतशङ्खानां भेरीणां च महास्वनैः।। ५२।।
हर्षयन् सर्वशः पौरान् विवेश गजसाह्वयम्।

उसके पश्चात् पाण्डु वापिस लौटे। उन्हें आता हुआ सुनकर भीष्म आदि कौरव उनकी अगवानी के लिये हस्तिनापुर के बाहर मार्ग पर आ गये। कौसल्या माता के आनन्द को बढ़ाने वाले पाण्डु ने तब पिता के समान भीष्म के चरणों में प्रणाम करके पुरवासियों का भी यथा योग्य सम्मान किया। शत्रुओं के देशों को कुचलकर, सफल होकर वापिस आये हुए अपने पुत्र पाण्डु को अपनी छाती से लगाकर भीष्म हर्ष से आँसू बहाने लगे। तब सैकड़ों तुरही, शंख, और नगाड़ों की महान ध्वनि के साथ पाण्डु ने पुरवासियों को हर्षित करते हुए हस्तिनापुर में प्रवेश किया।

धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः स्वबाहुविजितं धनम्।। ५३।।
भीष्माय सत्यवत्यै च मात्रे चोपजहार सः।
विदुराय च वै पाण्डुः प्रेषयामास तद् धनम्।
सुहृदश्चापि धर्मात्मा धनेन समतर्पयत्।। ५४।।

तब धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर पाण्डु ने अपने बाहुबल से जीते हुए उस धन को, भीष्म, सत्यवती और माता अम्बिका और अम्बालिका को भेंट कर दिया। उन धर्मात्मा पाण्डु ने विदुर को भी वह धन भेजा तथा अपने दूसरे मित्रों को भी उस धन से तृप्त किया।

सातवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र और पाण्डु की सन्तानों के जन्म।

नोट – यहाँ प्रक्षेपकारों ने मूल में से निकाला हुआ है इसीलिये कहानी का पिछले वर्णन से सम्बन्ध नहीं मिल रहा है। यह पता नहीं लग रहा है कि पाण्डु अचानक राज्य को छोड़ कर वन में क्यों रहने लगे?

सम्प्रयुक्तस्तु कुन्त्या च माद्र्या च भरतर्षभः।
जिततन्द्रीस्तदा पाण्डुर्बभूव वनगोचरः।। १।।
हित्वा प्रासादनिलयं शुभानि शयनानि च।
अरण्यनित्यः सततं बभूव मृगयापरः।। २।।
स चरन् दक्षिणं पार्श्वं रम्यं हिमवतो गिरेः।
उवास गिरिपृष्ठेषु महाशालवनेषु च।। ३।।
रराज कुन्त्या माद्र्या च पाण्डुःसह वने चरन्।
करेण्वोरिव मध्यस्थः श्रीमान् पौरंदरो गजः।। ४।।

इसके पश्चात कुन्ती और माद्री की प्रेरणा से भरत श्रेष्ठ राजा पाण्डु महलों के निवास और सुन्दर शय्याओं को छोड़ कर आलस्य को जीत कर वन में रहने लगे। सदा वन में ही रहते हुए वे लगातार शिकार खेलने में लगे रहते थे। हिमालय के रमणीय दक्षिणी भाग में विचरण करते हुए वे पर्वत शिखरों पर और शाल वृक्षों के घने वनों में रहते थे। कुन्ती और माद्री के साथ वन में विचरण करते हुए वे दो हथिनियों के बीच में इन्द्र के ऐरावत हाथी के समान सुशोभित होते थे।

तस्य कामांश्च भोगांश्च नरा नित्यमतन्द्रिताः।
उपाजह्रुर्वनान्तेषु धृतराष्ट्रेण चोदिताः।। ५।।
ततः पुत्रशतं जज्ञे धृतराष्ट्रस्य धीमतः।
महारथानां वीराणां कन्या चैका शताधिका।। ६।।
युयुत्सुश्च महातेजा वैश्यापुत्रः प्रतापवान्।
ज्येष्ठानुज्येष्ठतां तेषां नामानि च पृथक् पृथक्।। ७।।

उनके आराम तथा भोगों की सामग्री को धृतराष्ट्र की आज्ञा से सेवक मनुष्य सावधानी के साथ नित्य वन में पहुँचाया करते थे। उसके बाद धीमान् धृतराष्ट्र के यहाँ सौ पुत्रों ने जन्म लिया। उन महारथी वीरों के अतिरिक्त एक कन्या भी उनके उत्पन्न हुई और वैश्य जातीय स्त्री से युयुत्सु नाम का एक प्रतापी और महा तेजस्वी पुत्र भी हुआ। उत्तरोत्तर छोटे क्रम से उनके अलग अलग नाम इस प्रकार हैं।

दुर्योधनो युयुत्सुश्च राजन् दुःशासनस्तथा।
दुःसहो दुःशलश्चैव जलसंधः समः सहः।। ८।।
विन्दानुविन्दौ दुर्धर्षः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः।
दुर्मर्षणो दुर्मुखश्च दुष्कर्णः कर्ण एव च।। ९।।
विविंशतिर्विकर्णश्च शलः सत्त्वः सुलोचनः।
चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुचित्रशरासनः।। १०।।
दुर्मदो दुर्विगाहश्च विवित्सुर्विकटाननः।
ऊर्णनाभः सुनाभश्च तथा नन्दोपनन्दकौ।। ११।।
चित्रबाणश्चित्रवर्मा सुवर्मा दुर्विरोचनः।
अयोबाहुर्महाबाहुश्चित्राङ्गश्चित्रकुण्डलः ।। १२।।
भीमवेगो भीमबलो बलाकी बलवर्धनः।
उग्रायुधः सुषेणश्च कुण्डोदरमहोदरौ।। १३।।
चित्रायुधो निषङ्गी च पाशी वृन्दारकस्तथा।
दृढवर्मा दृढक्षत्रः सोमकीर्तिरनूदरः।। १४।।
दृढसंधो जरासंधः सत्यसंधः सदःसुवाक्।
उग्रश्रवा उग्रसेनः सेनानीर्दुष्पराजयः।। १५।।
अपराजितः पण्डितको विशालाक्षो दुराधरः।
दृढहस्तः सुहस्तश्च वातवेगसुवर्चसौ।। १६।।
आदित्यकेतुर्बह्वाशी नागदत्तोऽग्रयाय्यपि।
कवची क्रथनः दण्डी दण्डधारो धनुर्ग्रहः।। १७।।
उग्रभीमरथौ वीरौ वीरबाहुरलोलुपः।
अभयो रौद्रकर्मा च तथा दृढरथाश्रयः।। १८।।
अनाधृष्यः कुण्डभेदी विरावी चित्रकुण्डलः।
प्रमथश्च प्रमाथी च दीर्घरोमश्च वीर्यवान्।। १९।।
दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोरुः कनकध्वजः।
कुण्डाशी विरजाश्चैव दुःशला च शताधिका।। २०।।

१. दुर्योधन, २. युयुत्सु, ३. दुश्शासन, ४. दुस्सह, ५. दुश्शल, ६. जलसंध, ७. सम, ८. सह, ९. विन्द, १०. अनुविन्द, ११. दुर्धर्ष, १२. सुबाहु, १३. दुष्प्रधर्षण, १४. दुर्मर्षण, १५. दुर्मुख, १६. दुष्कर्ण, १७. कर्ण, १८. विविंशति, १९. विकर्ण, २०. शल, २१. सत्व, २२. सुलोचन, २३. चित्र, २४. उपचित्र, २५. चित्राक्ष, २६. चारुचित्रशरासन, २७. दुर्मद, २८. दुर्विगाह, २९. विवित्सु, ३०. विकटानन, ३१. ऊर्णनाभ, ३२. सुनाभ, ३३. नन्द, ३४. उपनन्द, ३५. चित्रबाण, ३६. चित्रवर्मा, ३७. सुवर्मा, ३८. दुर्विरोचन, ३९. अयोबाहु, ४०. महाबाहु, ४१. चित्रकुण्डल, ४२. भीमवेग, ४३. भीमबल, ४४. बलाकी, ४५. बलवर्धन, ४६. उग्रायुध, ४७. सुषेण, ४८. कुण्डोदर, ४९. महोदर, ५०. चित्रायुध, ५१. निषंगी, ५२. पाशी, ५३. वृन्दारक, ५४. दृढ़वर्मा, ५५. दृढ़क्षत्र, ५६. सोमकीर्ति, ५७. अनूदर, ५८. दृढ़संध, ५९. जरासंध, ६०. सत्यसंध, ६१. सदःसुवाक्, ६२. उग्रश्रवा, ६३. उग्रसेन, ६४. सेनानी, ६५. दुष्पराजय, ६६. अपराजित, ६७. पण्डितक, ६८. विशालाक्ष, ६९. दुराधर, ७०. दृढ़हस्त, ७१. सुहस्त ७२. वातवेग, ७३. सुवर्चा, ७४. आदित्यकेतु, ७५. बह्वाशी, ७६. नागदत्त, ७७. अग्रयायी, ७८. कवची, ७९. क्रथन, ८०. दण्डी, ८१. दण्डधार, ८२. धनुर्ग्रह, ८३. उग्र, ८४. भीमरथ, ८५. वीरबाहु ८६. अलोलुप, ८७. अभय, ८८. रौद्रकर्मा, ८९. दृढ़रथाश्रय, ९०. अनाधृष्य ९१. कुण्डभेदी, ९२. विचित्र कुंडलों वाला विरावी, ९३. प्रमथ, ९४. प्रमाथी, ९५. दीर्घरोमा, ९६. दीर्घबाहु, ९७. महाबाहु ९८. व्यूढोरु, ९९. कनकध्वज, १००. कुण्डाशी, १०१ विरजा। इनके अतिरिक्त दुःशला नाम की एक कन्या सौ से अधिक थी।

सोऽब्रवीद् विजने कुन्तीं धर्मपत्नीं यशस्विनीम्।
अपत्योत्पादने यत्नमापदि त्वं समर्थय।। २१।।
मन्त्रियोगात् सुकेशान्ते द्विजाते स्तपसाधिकात्।
पुत्रान् गुणसमायुक्तानुत्पादयितुमर्हसि।। २२।।
सा तथोक्ता तथेत्युक्त्वा तेन भर्त्रा वराङ्गना।
अभिवाद्याभ्यनुज्ञाता प्रदक्षिणमवर्तत।। २३।।
संयुक्ता सा हि धर्मेण योगमूर्तिधरेण ह।
ऐन्द्रे चन्द्रसमायुक्ते मुहूर्तेऽभिजितेऽष्टमे।। २४।।
दिवामध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेऽतिपूजिते।
समृद्धयशसं कुन्ती सुषाव प्रवरं सुतम्।। २५।।

उधर वन में एक दिन पाण्डु अपनी यशस्विनी धर्मपत्नी कुन्ती से बोले कि इस समय हमारे आपत्तिकाल में, सन्तान उत्पन्न करने के प्रयत्न का तुम समर्थन करो। हे सुन्दर केशों वाली! तुम मेरी सलाह से नियोग के द्वारा तपस्या में बढ़े चढ़े किसी द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, या वैश्य से गुणवान पुत्रों को जन्म दो। पति के द्वारा ऐसा कहे जाने पर उस श्रेष्ठ नारी ने बहुत अच्छा कह कर उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर उनकी परिक्रमा की। उसके बाद योगमूर्ति धारण किये हुए धर्माचार्य के साथ समागम करके, जब चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र पर थे, सूर्य तुलाराशि में विद्यमान थे, शुक्ल पक्ष की पूर्णा नाम की पंचमी तिथि थी, और अभिजित नाम का आठवाँ अत्यन्त श्रेष्ठ मुहूर्त था, उस समय कुन्ती ने एक यश से समृद्ध उत्तम पुत्र को जन्म दिया।

ततस्तामागतो वायुर्मृगारूढो महाबलः।
तस्माज्जज्ञे महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः।। २६।।

मघे चन्द्रमसा युक्ते सिंहे चाभ्युदिते गुरौ।
दिवामध्यगते सूर्ये तिथौ पुण्ये त्रयोदशे।। २७।।
मैत्रे मुहुर्ते सा कुन्ती सुषुवे भीममच्युतम्।
जाते वृकोदरे पाण्डुरिदं भूयोऽन्वचिन्तयत्।। २८।।
कथं नु मे वरः पुत्रो लोकश्रेष्ठो भवेदिति।
उवाच कुन्तिं धर्मात्मा मन्त्रयित्वा महर्षिभिः।। २९।।

उसके पश्चात् वायु नाम के महा बलवान देवता मृग पर अर्थात किसी पशु पर या एक विशेष जाति के हाथी पर चढ़ कर कुन्ती के पास आये। उनसे कुन्ती के भयानक पराक्रम वाले और विशाल भुजाओं वाले पुत्र भीम ने जन्म लिया। जब चन्द्रमा मघा नाम के नक्षत्र पर विद्यमान थे, बृहस्पति सिंह लग्न में थे, सूर्य दोपहर के समय आकाश के मध्य में थे, पवित्र त्र्योदशी तिथि थी और मैत्र नाम का मुहूर्त था, तब कुन्ती ने अविचल शक्ति वाले भीम को जन्म दिया। भीम के जन्म लेने पर पाण्डु सोचने लगे कि मुझे कैसे ऐसा पुत्र प्राप्त हो, जो सारे लोगों में श्रेष्ठ और उत्तम हो। तब उस धर्मात्मा ने महर्षियों से सलाह करके कुन्ती से कहा कि–

पुत्रं जनय सुश्रोणि धाम क्षत्रिय तेजसाम्।
अथाजगाम देवेन्द्रो जनयामास चार्जुनम्।। ३०।।
उत्तराभ्यां तु पूर्वाभ्यां फल्गुनीभ्यां ततो दिवा।
जातस्तु फाल्गुने मासि तेनासौ फाल्गुनः स्मृतः।। ३१।।
ततो माद्री विचार्यैवं जगाम मनसाश्विनौ।
तावागम्य सुतौ तस्यां जनयामासतुर्यमौ।। ३२।।
नकुलं सहदेवं च रूपेणाप्रतिमौ भुवि।

हे सुन्दरी! अब एक ऐसे पुत्र को जन्म दो, जो क्षत्रियों के तेज का भंडार हो। तब देवराज इन्द्र आये और उनकी सहायता से कुन्ती ने अर्जुन को जन्म दिया। उसने फाल्गुन मास में दिन के समय पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रों के बीच में जन्म लिया। फाल्गुन मास और फल्गुनी नक्षत्र में जन्म लेने के कारण वह फाल्गुन नाम से भी प्रसिद्ध हुआ। फिर माद्री ने सन्तानोत्पत्ति के विषय में विचार किया और मन में अश्विनी कुमार के लिये अपने को तैयार किया। तब अश्विनी कुमार ने आकर उसके दो जुड़वाँ पुत्रों को जन्म दिया। उनमें से एक का नाम नकुल और दूसरे का सहदेव था। दोनों अपने सौन्दर्य के कारण संसार में अप्रतिम थे।

नोट – अश्विनी कुमार तिब्बत (त्रिविष्टप) निवासी देवताओं का एक वैद्य था, किन्तु अश्विनी कुमार शब्द का संस्कृत में सदा द्विवचन में ही प्रयोग होता है। जैसे दारा शब्द का सदा बहुवचन में प्रयोग किया जाता है।

नामानि चक्रिरे तेषां शतशृङ्गनिवासिनः।। ३३।।
ज्येष्ठं युधिष्ठिरेत्येवं भीमसेनेति मध्यमम्।
अर्जुनेति तृतीयं च कुन्तीपुत्रानकल्पयन्।। ३४।।
पूर्वजं नकुलेत्येवं सहदेवेति चापरम्।
माद्रीपुत्रावकथयंस्ते विप्राः प्रीतमानसाः।। ३५।।
अनुसंवत्सरं जाता अपि ते कुरुसत्तमाः।
महासत्त्वा महावीर्या महाबलपराक्रमाः।। ३६।।

शतशृंग निवासी ऋषियों ने उनके नाम इस प्रकार रखे कि सबसे बड़े का नाम युधिष्ठिर और बीच वाले का भीम सेन और तीसरे कुन्ती पुत्र का नाम उन्होंने अर्जुन रखा। फिर उन ब्राह्मणों ने प्रसन्न मन से माद्री के पहले वाले पुत्र को नकुल और बाद वाले पुत्र को सहदेव नाम दिया। वे सारे कुरुश्रेष्ठ पाण्डु के पुत्र एक-एक वर्ष के उपरान्त (सिवाय नकुल और सहदेव के) उत्पन्न हुए थे। वे सारे महा धैर्यशाली और महा पराक्रमी थे।

आठवाँ अध्याय : पाण्डु और माद्री की मृत्यु।

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे फाल्गुनस्य च धीमतः।
तदा उत्तरफल्गुन्यां प्रवृत्ते स्वस्तिवाचने।। १।।
रक्षणे विस्मृता कुन्ती व्यग्रा ब्राह्मणभोजने।
तस्मिन् काले समाहूय माद्रीं मदनमोहितः।। २।।
सुपुष्पितवने काले कदाचिन्मधुमाधवे।
भूतसम्मोहने राजा सभार्यो व्यचरद् वनम्।। ३।।

वन में वहाँ रहते हुए धीमान् अर्जुन का जब चौदहवाँ वर्ष पूरा हो गया, तब उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में अर्थात अर्जुन की जन्मतिथि के दिन, जब ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन प्रारम्भ किया गया तब ब्राह्मणों को भोजन कराने में व्यस्त कुन्ती पाण्डु की देखभाल करना भूल गयी। उस समय प्राणियों को मोहित करने वाली वसन्त ऋतु आरम्भ होने लगी थी। वनों में फूल खिलने लगे थे। ऐसे समय काम से मोहित राजा पाण्डु माद्री को बुला कर पत्नी सहित वन में घूमने चले गये।

रहस्येकां तु तां दृष्ट्वा राजा राजीवलोचनाम्।
न शशाक नियन्तुं तं कामं कामवशीकृतः।। ४।।

तत एनां बलाद् राजा निजग्राह रहो गताम्।
वार्यमाणस्तया देव्या विस्फुरन्त्या यथाबलम्।। ५।।
स तथा सह संगम्य भार्यया कुरुनन्दनः।
पाण्डुः परमधर्मात्मा युयुजे कालधर्मणा।। ६।।

वहाँ एकान्त में उस कमलनयनी को देख कर, काम के वश में हुए वे अपनी इच्छाओं को न रोक सके। छटपटाती हुई देवी माद्री के द्वारा यथाशक्ति मना किये जाने पर भी एकान्त में प्राप्त उसे राजा ने बल पूर्वक पकड़ लिया। कुरुकुल को आनन्द देने वाले परम धर्मात्मा पाण्डु इस प्रकार उस पत्नी से समागम करके काल के गाल में पड़ गये। अर्थात् उनके ऊपर उनकी जन्मजात पीलिया की बीमारी का भयानक आक्रमण हो गया और उसके कारण वे मृत्यु को प्राप्त हो गये।

ततो माद्री समालिङ्ग्य राजानं गतचेतसम्।
मुमोच दुःखजं शब्दं पुनः पुनरतीव हि।। ७।।
कुन्ती शोकपरीताङ्गी विललाप सुदुःखिता।
रक्ष्यमाणो मया नित्यं वीरः सततमात्मवान्।। ८।।
ननु नाम त्वया माद्रि रक्षितव्यो नराधिपः।
सा कथं लोभितवती विजने त्वं नराधिपम्।। ९।।

तब चेतना रहित उन राजा से लिपट कर माद्री अत्यन्त दुख भरी वाणी में विलाप करने लगी। शोक से व्याप्त शरीर वाली कुन्ती भी अत्यन्त दुखी होकर विलाप करने लगी। वह कहने लगी कि हे माद्री! मैं तो इन वीर और मनस्वी महाराज की रक्षा करती आ रही थी। तुम्हें भी इन नरेश की रक्षा करनी चाहिये थी। तुमने इन्हें एकान्त में आकर्षित क्यों किया?

माद्री उवाच

विलपन्त्यां मया देवि वार्यमाणेन चासकृत्।
आत्मा न वारितोऽनेन सत्यं दिष्टं चिकीर्षुणा।। १०।।
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा कुन्ती शोकाग्नितापिता।
पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः।। ११।।
निश्चेष्टा पतिता भूमौ मोहान्नैव चचाल सा।
कुन्तीमुत्थाप्य माद्री च मोहेनाविष्टचेतनाम्।। १२।।
परिरभ्य तदा मोहाद् विललापाकुलेन्द्रिया।

तब माद्री ने कहा कि हे देवी! मैंने रोते हुए इन्हें बहुत रोका, पर ये अपने आपको न रोक सके। मानो भगवान की इच्छा को सत्य करना चाहते थे। उसके इन वचनों को सुन कर शोकाग्नि से तपती हुई कुन्ती जड़ कटे वृक्ष की तरह एक दम भूमि पर गिर पड़ी। मूर्च्छा के कारण भूमि पर वह चेष्टा रहित होकर पड़ी हुई थी और हिल डुल नहीं रही थी। मूर्च्छा वश अचेत उस कुन्ती को माद्री ने उठाया और छाती से लगा कर दुख से व्याकुल इन्द्रियों वाली वह विलाप करने लगी।

कुन्त्युवाच

हा राजन् कस्य नौ हित्वा गच्छसि त्रिदशालयम्।। १३।।
निधनं प्राप्तवान् राजन् मद्भाग्यपरिसंक्षयात्।
युधिष्ठिरं भीमसेनमर्जुनं च यमावुभौ।। १४।।
कस्या हित्वा प्रियान् पुत्रान् प्रयातोऽसि विशाम्पते।
विलपित्वा भृशं त्वेवं निःसंज्ञे पतिते भुवि।। १५।।
युधिष्ठिरमुखाः सर्वे पाण्डवा वेदपारगाः।
तेऽप्यागत्य पितुर्मूले निःसंज्ञाः पतिता भुवि।। १६।।
पाण्डोः पादौ परिष्वज्य विलपन्ति स्म पाण्डवाः।

तब कुन्ती विलाप करते हुए बोली कि हाय महाराज! आप हम दोनों को किसके सहारे छोड़ कर स्वर्ग को जा रहे हैं? हे राजन्! मेरा भाग्य नष्ट हो गया। इसी लिये आप मृत्यु को प्राप्त हुए। हे पृथिवीपति! अपने इन प्यारे पुत्रों को, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और इन दोनों जुड़वाँ भाइयों को किसके सहारे छोड़ कर आप चले गये? इस प्रकार अत्यधिक विलाप करके वे दोनों अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ीं। युधिष्ठिर आदि सारे पाण्डव जो उस समय तक वेद विद्या में पारंगत हो चुके थे, आकर पाण्डु के पैरों से लिपट कर विलाप करने लगे और अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े।

माद्री उवाच

नाहं त्वमिव पुत्राणां समर्था धारणे तथा।। १७।।
भर्तृलोकस्य तु ज्येष्ठा देवी मामनुमन्यताम्।
धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य सत्यधर्मस्य धीमतः।। १८।।
पादौ परिचरिष्यामि तदार्ये ह्यनुमन्यताम्।
ददौ कुन्त्यै यमौ माद्री शिरसाभिप्रणम्य च।। १९।।
अभिवाद्य ऋषीन् सर्वान् परिष्वज्य च पाण्डवान्।
मूर्ध्न्युपाघ्राय बहुशः पार्थानात्मसुतौ तथा।। २०।।
हस्ते युधिष्ठिरं गृह्य माद्री वाक्यमभाषत।

फिर माद्री बोली–आप बड़ी हैं। मैं आपके समान पुत्रों का पालन नहीं कर सकूँगी, इसलिये आप मुझे पतिलोक में जाने की आज्ञा दीजिये। मैं वहीं इन धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यधर्म का पालन करने वाले धीमान् महाराज के चरणों की सेवा करूँगी। हे आर्ये! आप

मुझे आज्ञा दीजिये। फिर माद्री ने कुन्ती को प्रणाम कर अपने दोनों जुड़वाँ बच्चों को कुन्ती को सौंप दिया। ऋषियों का अभिवादन करके, पाण्डवों को कुन्ती के पुत्रों और अपने पुत्रों को अनेक बार छाती से लगा कर और उनके सिर सूँघ कर, तथा युधिष्ठिर का हाथ पकड़ कर माद्री ने कहा कि–

माद्री उवाच

कुन्ती माता अहं धात्री युष्माकं तु पिता मृतः।। २१।।
युधिष्ठिरः पिता ज्येष्ठश्चतुर्णां धर्मतः सदा।
वृद्धानुशासने सक्ताः सत्यधर्मपरायणाः।। २२।।
तादृशा न विनश्यन्ति नैव यान्ति पराभवम्।
तस्मात् सर्वे कुरुध्वं वै गुरुवृत्तिमतन्द्रिताः।। २३।।

हे बच्चों! कुन्ती ही तुम्हारी असली माता है। मैं तो केवल दूध पिलाने वाली धाय थी। तुम्हारे पिता जी तो मर गये। अब धर्म के अनुसार तुम चारों के सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर ही पिता हैं। तुम सत्य धर्म का पालन करते हुए सदा बड़ों के अनुशासन के पालन में लगे रहना। इस प्रकार के लोग न तो पराजय को प्राप्त होते हैं और न नष्ट होते हैं, इसलिये तुम बिना आलस्य के बड़ों की सेवा करते रहना।

ऋषीणां च पृथायाश्च नमस्कृत्य पुनः पुनः।
आयासकृपणा माद्री प्रत्युवाच पृथां तथा।। २४।।
धन्या त्वमसि वार्ष्णेयि नास्ति स्त्री सदृशी त्वया।
वीर्यं तेजश्च योगं च माहात्म्यं च यशस्विनाम्।। २५।।
कुन्ति द्रक्ष्यसि पुत्राणां पञ्चानाममितौजसाम्।
आर्या चाप्यभिवाद्या च मम पूज्या च सर्वतः।। २६।।
ज्येष्ठा वरिष्ठा त्वं देवि भूषिता स्वगुणैः शुभैः।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि त्वया यादवनन्दिनि।। २७।।
धर्मं स्वर्गं च कीर्तिं च त्वत्कृतेऽहमवाप्नुयाम्।
यथा तथा विधत्स्वेह मा च कार्षीर्विचारणाम्।। २८।।

इसके बाद ऋषियों और कुन्ती को बार-बार नमस्कार करके, क्लेश से क्लान्त माद्री कुन्ती से बोली, कि हे वृष्णिकुल नन्दिनी! आप धन्य हैं। आपके समान दूसरी स्त्री नहीं है, क्योंकि आप अपने अमित तेजस्वी, यशस्वी पाँचों पुत्रों के वीर्य, तेज, योग, और माहात्म्य को देखोगी। आप मेरी बड़ी, वन्दनीय, सब तरफ से पूज्य, मेरी गुरु, और अपने सुन्दर गुणों से भूषित मुझसे श्रेष्ठ हैं। हे यादवों को आनन्दित करने वाली! मैं आपकी आज्ञा चाहती हूँ। आप ऐसा कार्य कीजिये, जिससे आपके सहयोग से मैं धर्म, स्वर्ग और कीर्ति को प्राप्त करूँ। आप कोई और विचार मन में न करें।

बाष्पसंदिग्धया वाचा कुन्त्युवाच यशस्विनी।
अनुज्ञातासि कल्याणि त्रिदिवे संगमोऽस्तु ते।। २९।।
भर्त्रा सह विशालाक्षि क्षिप्रमद्यैव भामिनि।
संगता स्वर्गलोके त्वं रमेथाः शाश्वतीः समाः।। ३०।।

तब आँसुओं के साथ यशस्विनी कुन्ती ने कहा कि हे कल्याणी! मैंने तुम्हें आज्ञा दे दी। हे विशाल नेत्रों वाली! तुम्हारा आज ही स्वर्ग में पति से मेल हो और तुम उनके साथ रह कर बहुत वर्षों तक आनन्द उठाओ।

माद्री उवाच

राज्ञः शरीरेण सह ममापीदं कलेवरम्।
दग्धव्यं सुप्रतिच्छन्नमेतदार्ये प्रियं कुरु।। ३१।।
दारकेष्वप्रमत्ता च भवेथाश्च हिता मम।
अतोऽन्यत्र प्रपश्यामि संदेष्टव्यं हि किंचन।। ३२।।

फिर माद्री बोली कि राजा के शरीर के साथ मेरे भी इस शरीर को (अर्थात मृत शरीर को, जीवित को नहीं) अच्छी तरह से ढक कर जलवा देना। हे आर्ये! यह तुम मेरा प्रिय कार्य कर देना। आप मेरे बच्चों का हित चाहती हुई सावधानी से उनका पालन पोषण करें और मुझे कहने योग्य कुछ भी नहीं जान पड़ता।

नोट – यहाँ प्रक्षेपकारों ने मूल में से निकाला हुआ है। कहानी का सम्बन्ध टूट रहा है। माद्री ने आत्महत्या कैसे थी यह स्पष्ट नहीं है, क्योंकि पाण्डु के शरीर का दाह संस्कार हस्तिनापुर में हुआ था, वन में नहीं यह आगे की घटनाओं से स्पष्ट है। वास्तव में सती प्रथा के समर्थकों ने यहाँ कहानी में काँट-छाँट की है।

ते परस्परमामन्त्र्य देवकल्पा महर्षयः।
पाण्डोः पुत्रान् पुरस्कृत्य नगरं नागसाह्वयम्।। ३३।।
उदारमनसः सिद्धा गमने चक्रिरे मनः।
भीष्माय पाण्डवान् दातुं धृतराष्ट्राय चैव हि।। ३४।।
तस्मिन्नेव क्षणे सर्वे तानादाय प्रतस्थिरे।
पाण्डोर्दारांश्च पुत्रांश्च शरीरे ते च तापसाः।। ३५।।
सा त्वदीर्घेण कालेन सम्प्राप्ता कुरुजाङ्गलम्।
वर्धमानपुरद्वारमाससाद यशस्विनी।। ३६।।
द्वारिणं तापसा ऊचू राजानं च प्रकाशय।

इसके पश्चात् (अर्थात् माद्री के द्वारा भी अपनी आत्महत्या के पश्चात्) उन देवतुल्य उदारचेता

सिद्ध ऋषियों ने पाण्डु के पुत्रों को भीष्म को, धृतराष्ट्र को देने के लिये, उन्हें आगे करके हस्तिनापुर को जाने के लिये विचार किया। तब उसी समय वे सारे पाण्डु की पत्नी कुन्ती, पुत्रों तथा पाण्डु और माद्री के मृत शरीरों को ले कर चल दिये। वह यशस्विनी कुन्ती थोड़े ही समय में कुरुजांगल देश में आ गयी और हस्तिनापुर के वर्धमान नाम के द्वार पर पहुँची। तब उन तपस्वियों ने द्वारपालों से कहा कि राजा को हमारे आने की सूचना दो।

तदा भीष्मः शान्तनवः सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः।। ३७।।
प्रज्ञाचक्षुश्च राजर्षिः क्षत्ता च विदुरः स्वयम्।
सा च सत्यवती देवी कौसल्या च यशस्विनी।। ३८।।
राजदारैः परिवृता गान्धारी चापि निर्ययौ।

तब शान्तनु पुत्र भीष्म, सोमदत्त, बाल्हिक, प्रज्ञाचक्षु राजर्षि धृतराष्ट्र, संजय और स्वयं विदुर, सत्यवती देवी, यशस्विनी कौसल्या और राजरानियों से घिरी हुई गान्धारी भी बाहर निकल कर आयी।

ऋषयः ऊचुः

पितृलोकं गतः पाण्डुरितः सप्तदशेऽहनि।। ३९।।
सा गता सह तेनैव माद्री हित्वा जीवितम्।
तस्यास्तस्य च यत् कार्यं क्रियतां तदनन्तरम्।। ४०।।
इमे तयोः शरीरे द्वे पुत्राश्चेमे तयोर्वराः।
क्रियाभिरनुगृह्यन्तां सह मात्रा परंतपाः।। ४१।।

तब ऋषियों ने कहा कि आज से सत्रह दिन पूर्व पाण्डु स्वर्गवासी हो गये और माद्री भी अपने जीवन का त्याग करके उन्हीं के साथ चली गयी। अब इसके पश्चात् उन दोनों के जो कार्य करने हैं, उन्हें आप कराइये। ये उन दोनों के मृत शरीर हैं और ये उन दोनों के उत्तम पुत्र हैं। हे शत्रुओं को संतप्त करने वालो! आप उन दोनों की अन्त्येष्टि क्रियाओं के साथ माता सहित इन पुत्रों को भी अनुगृहीत करें।

नवाँ अध्याय : पाण्डु और माद्री का दाह संस्कार।

धृतराष्ट्र उवाच

पाण्डोर्विदुर सर्वाणि प्रेतकार्याणि कारय।
राजवद् राजसिंहस्य माद्र्याश्चैव विशेषतः।। १।।
पशून् वासांसि रत्नानि धनानि विविधानि च।
पाण्डोःप्रयच्छमाद्र्याश्च येभ्यो यावच्च वाञ्छितम्।। २।।
यथा च कुन्ती सत्कारं कुर्यान्माद्र्यास्तथा कुरु।
न शोच्यः पाण्डुरनघः प्रशस्यः स नराधिपः।। ३।।
यस्य पञ्च सुता वीरा जाताः सुरसुतोपमाः।

तब धृतराष्ट्र ने कहा हे विदुर! राजसिंह पाण्डु के और विशेषकर माद्री के मृत्यु अनन्तर सारे कार्य राजकीय ढंग से कराओ। पाण्डु और माद्री की स्मृति में पशुओं को, अनेक प्रकार के वस्त्रों, रत्नों और धनों को, जिसको जितने की इच्छा हो, उतना दान करो। कुन्ती माद्री का जिस प्रकार का सत्कार करना चाहे, वैसे करे। निष्पाप राजा पाण्डु शोक करने योग्य नहीं, अपितु प्रशंसा करने योग्य थे, जिनके देव पुत्रों के समान पाँच वीर पुत्रों ने जन्म लिया है।

अथैनामार्तवैः पुष्पैर्गन्धैश्च विविधैर्वरैः।। ४।।
शिबिकां तामलंकृत्य वाससाऽऽच्छाद्य सर्वशः।
तां तथा शोभितां माल्यैर्वासोभिश्च महाधनैः।। ५।।
अमात्या ज्ञातयश्चैनं सुहृदश्चोपतस्थिरे।
नृसिंहं नरयुक्तेन परमालंकृतेन तम्।। ६।।
अवहन् यानमुख्येन सह माद्र्या सुसंयतम्।
पाण्डुरेणातपत्रेण चामरव्यजनेन च।। ७।।
सर्ववादित्रनादैश्च समलंचक्रिरे ततः।

इसके बाद एक शिबिका अर्थात शव वाहन को सब तरफ से वस्त्रों से ढक कर उसे ऋतु में होने वाले अनेक प्रकार के उत्तम सुगन्धित फूलों से अलंकृत किया गया। इस प्रकार से बहुमूल्यों वस्त्रों और मालाओं से सुसज्जित शिबिका के समीप मन्त्री, परिवार के लोग और हितैषी लोग उपस्थित हुए। फिर वे नरसिंह पाण्डु को माद्री के साथ शिबिका पर अच्छी तरह से बाँध कर, उस मनुष्यों के द्वारा ले जायी जाने वाली सुसज्जित शिबिका के द्वारा उन्हें ले जाने लगे। शिबिका के ऊपर श्वेत छत्र ताना हुआ था, चँवर और पंखे डुलाए जा रहे थे। सब तरह के वाद्य यंत्रों की ध्वनि उस शव यात्रा को अलंकृत कर रही थी।

रत्नानि चाप्युपादाय बहूनि शतशो नराः।। ८।।
प्रददुः काङ्क्षमाणेभ्यः पाण्डोस्तस्यौर्ध्वदेहिके।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव सहस्रशः।। ९।।
रुदन्तः शोकसंतप्ता अनुजग्मुर्नराधिपम्।
क्रोशन्तः पाण्डवाः सर्वे भीष्मो विदुर एव च।। १०।।

रमणीये वनोद्देशे गङ्गातीरे समे शुभे।
न्यासयामासुरथ तां शिबिकां सत्यवादिनः।। ११।।
सभार्यस्य नृसिंहस्य पाण्डोरक्लिष्टकर्मणः।

सैकड़ों लोगों ने तब पाण्डु के अन्त्येष्टि संस्कार में बहुत से रत्नों को लाकर उन्हें याचकों को दान में दिया। हजारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शोक से संतप्त होकर रोते हुए उस राजा की शिबिका के पीछे जा रहे थे। सारे पाण्डव, भीष्म और विदुर भी रोते हुए जा रहे थे। उन्होंने गंगा के किनारे सुन्दर, समतल और पवित्र वन प्रान्त में जाकर उस सत्यवादी महान पराक्रम करने वाले नरसिंह पाण्डु की पत्नी सहित शिबिका को ले जाकर रख दिया।

ततस्तस्य शरीरं तु सर्वगन्धाधिवासितम्।। १२।।
शुचिकालीयकादिग्धं दिव्यचन्दनरूषितम्।
पर्यषिञ्चञ्जलेनाशु शातकुम्भमयैर्घटैः।। १३।।
चन्दनेन च शुक्लेन सर्वतः समलेपयन्।
कालागुरुविमिश्रेण तथा तुङ्गरसेन च।। १४।।
अथैनं देशजैः शुक्लैर्वासोभिः समयोजयन्।
संछन्नः स तु वासोभिर्जीवन्निव नराधिपः।। १५।।
शुशुभे स नरव्याघ्रो महार्हशयनोचितः।

फिर उस पाण्डु के शरीर को जो पहले सब तरफ से सब तरह की सुगन्धों से सुगन्धित किया हुआ था और जिस पर कालीयक आदि उत्तम पदार्थों को और उच्चकोटि के दिव्य चन्दन को लपेटा हुआ था, उन्होंने जल्दी से सोने के घड़ों में लाये जल से स्नान कराया और उन पर सब तरफ काले अगर और तुंगरस मिले हुए सफेद चन्दन का लेप किया और उन्हें स्वदेशी सफेद वस्त्रों को पहनाया। तब बहुमूल्य शय्या पर सोने योग्य वे नर सिंह, वस्त्रों से ढके हुए जीवित व्यक्ति के समान सुशोभित होने लगे।

याजकैरभ्यनुज्ञाते प्रेतकर्मण्यनुष्ठिते।। १६।।
घृतावसिक्तं राजानं सह माद्र्या स्वलंकृतम्।
तुङ्गपद्मकमिश्रेण चन्दनेन सुगन्धिना।। १७।।
अन्यैश्च विविधैर्गन्धैर्विधिना समदाहयन्।
ततस्तयोः शरीरे द्वे दृष्ट्वा मोहवशं गता।। १८।।
हा हा पुत्रेति कौसल्या पपात सहसा भुवि।
तां प्रेक्ष्य पतितामार्तां पौरजानपदो जनः।। १९।।
रुरोद दुःखसंतप्तो राजभक्त्या कृपान्वितः।
कुन्त्याश्चैवार्तनादेन सर्वाणि च विचुक्रुशुः।। २०।।
तथा भीष्मः शान्तनवो विदुरश्च महामतिः।
सर्वशः कौरवाश्चैव प्राणदन् भृशदुःखिताः।। २१।।

याजकों की अनुमति मिलने पर अन्त्येष्टि संस्कार आरम्भ करते हुए उन्होंने अच्छी तरह से अलंकृत किये हुए माद्री सहित पाण्डु का घी से अभिषेक किया। फिर तुंग और पद्मक मिश्रित सुगन्धित चन्दन तथा दूसरे अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थों के साथ उन्होंने उनका दाह संस्कार कराया। उस समय उन दोनों के शरीरों को देख कर उनकी माता कोसल्या (अम्बालिका) हा पुत्र ऐसा कहती हुई मूर्च्छित होकर एक दम भूमि पर गिर पड़ी। उन्हें इस प्रकार शोक व्याकुल अवस्था में पड़ा हुआ देख कर पुरवासी और देशवासी लोग दुख से संतप्त, राजभक्ति और दया से युक्त होकर रोने लगे। कुन्ती के आर्तनाद को सुन कर तो सभी करुण क्रन्दन करने लगे। शान्तनु पुत्र भीष्म, महामति विदुर और सारे कौरव भी अत्यन्त दुखी होकर विलाप करने लगे।

दसवाँ अध्याय : दुर्योधन का भीम को विष देकर गंगा में डालना।

सम्मूढां दुःखशोकार्तां व्यासो मातरमब्रवीत्।
अतिक्रान्तसुखाः कालाः पर्युपस्थितदारुणाः।। १।।
गच्छ त्वं योगमास्थाय युक्ता वस तपोवने।
तथेत्युक्त्वा त्वम्बिकया भीष्ममामन्त्र्य सुव्रता।। २।।
वनं ययौ सत्यवती स्नुषाभ्यां सह भारतं।

तब शोक में आर्त और मोह में पड़ी हुई अपनी माता सत्यवती से व्यास जी बोले कि अब सुख के दिन बीत गये हैं। आगे दुख दायी दिन आने वाले हैं। इसलिये तुम तपोवन में जाओ और योगाभ्यास से युक्त होकर उसके सहारे रहो। तब 'अच्छा' यह कह कर, भरतवंशी भीष्म से और अम्बिका से सलाह कर वह अच्छे व्रतवाली सत्यवती अपनी दोनों पुत्रवधुओं अम्बिका और अम्बालिका के साथ वन में चली गयी।

अथाप्तवन्तो वेदोक्तान् संस्कारान् पाण्डवास्तदा।। ३।।
संव्यवर्धन्त भोगांस्ते भुञ्जानाः पितृवेश्मनि।
धार्तराष्ट्रैश्च सहिताः क्रीडन्तो मुदिताः सुखम्।। ४।।
बालक्रीडासु सर्वासु विशिष्टास्तेजसाभवन्।

जवे लक्ष्याभिहरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे।। ५।।
धार्तराष्ट्रान् भीमसेनः सर्वान् स परिमर्दति।

इसके बाद पाण्डव लोग वेदोक्त शिक्षाओं के अनुसार संस्कारों को प्राप्त करने लगे और अनेक तरह के भोगों को भोगते हुए पिता के घर में बढ़ने लगे। वे धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ खेलते हुए और सारी बाल्यक्रीड़ाओं में सुख पूर्वक आनन्द लेते हुए अपने तेज में औरों की अपेक्षा विशिष्टता को प्राप्त कर रहे थे। फुर्ती में, लक्ष्य पर पहुँच कर वस्तु को उठाने में, भोजन करने में धूल उड़ाने में भीमसेन धृतराष्ट्र के पुत्रों को पछाड़ देते थे।

शिरःसु विनिगृह्यैतान् योधयामास पाण्डवैः।। ६।।
शतमेकोत्तरं तेषां कुमाराणां महौजसाम्।
एक एव निगृह्णाति नातिकृच्छ्राद् वृकोदरः।। ७।।
कचेषु च निगृह्यैनान् विनिहत्य बलाद् बली।
चकर्ष क्रोशतो भूमौ घृष्टजानुशिरोंऽसकान्।। ८।।
दश बालाञ्जले क्रीडन् भुजाभ्यां परिगृह्य सः।
आस्ते स्म सलिले मग्नो मृतकल्पान् विमुञ्चति।। ९।।

वह उनके सिर पकड़ कर उन्हें पाण्डवों के साथ भिड़ा देते थे। उन एक सौ एक महा तेजस्वी कुमारों को अकेले भीमसेन ही सरलता से वश में कर लेते थे। वे बलवान भीम उन्हें बालों से पकड़ कर एक दूसरे से टकरा देते और उनके चिल्लाने पर भी उन्हें भूमि पर घसीटते रहते, जिससे उनके घुटने, सिर और कन्धे छिल जाया करते थे। पानी में खेल करते हुए वे दस बच्चों को अपने हाथों से पकड़ कर पानी में डुबकी लगवा देते थे और उन्हें अधमरा करके छोड़ते थे।

फलानि वृक्षमारुह्य विचिन्वन्ति च ते सदा।
तदा पादप्रहारेण भीमः कम्पयते द्रुमान्।। १०।।
प्रहारवेगाभिहता द्रुमा व्याघूर्णितास्ततः।
सफलाः प्रपतन्ति स्म द्रुतं त्रस्ताः कुमारकाः।। ११।।
न ते नियुद्धे न जवे न योग्यासु कदाचन।
कुमारा उत्तरं चक्रुः स्पर्धमाना वृकोदरम्।। १२।।
एवं स धार्तराष्ट्रांश्च स्पर्धमानो वृकोदरः।
अप्रियेऽतिष्ठदत्यन्तं बाल्यान्न द्रोहचेतसा।। १३।।

जब धृतराष्ट्र के पुत्र वृक्ष पर चढ़ कर फलों को तोड़ते होते तब भीम पैरों के प्रहार से पेड़ों को हिला देते थे। तब उनके प्रहार के वेग से वृक्ष हिलने लगते और डरे हुए वे कुमार फलों के साथ ही तेजी से नीचे गिर पड़ते थे। वे धृतराष्ट्रकुमार भीम से स्पर्धा रखते हुए भी न तो कुश्ती में, न दौड़ में, और न किसी और योग्यता के प्रदर्शन में उसकी बराबरी कर पाते थे। इसी प्रकार भीमसेन भी धृतराष्ट्र के पुत्रों से स्पर्धा रखते हुए उनके अप्रिय कार्य में लगे रहते थे। पर वे बचपन के कारण ऐसा करते थे, द्वेषभाव से नहीं।

ततो बलमतिख्यातं धार्तराष्ट्रः प्रतापवान्।
भीमसेनस्य तज्ज्ञात्वा दुष्टभावमदर्शयत्।। १४।।
तस्य धर्मादपेतस्य पापानि परिपश्यतः।
मोहादैश्वर्यलोभाच्च पापा मतिरजायत।। १५।।
अयं बलवतां श्रेष्ठः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः।
मध्यमः पाण्डुपुत्राणां निकृत्या संनिगृह्यताम्।। १६।।
प्राणवान् विक्रमी चैव शौर्येण महतान्वितः।
स्पर्धते चापि सहितानस्मानेको वृकोदरः।। १७।।

तब यह जान कर कि इसका बल अत्यन्त विख्यात है, धृतराष्ट्र का प्रतापी पुत्र दुर्योधन उसके प्रति दुष्टता के भाव दिखाने लगा। पाप कर्मों को ही देखता हुआ वह धर्म से दूर हटा हुआ दुर्योधन मोह और ऐश्वर्य के लोभ से पापपूर्ण विचार करने लगा। वह सोचने लगा कि पाण्डु पुत्रों में यह बीच का पाण्डव कुन्ती पुत्र वृकोदर बलवानों में श्रेष्ठ है, इसे धोखे से पकड़ कर कैद कर लेना चाहिये। यह बलवान, पराक्रमी, और महान शौर्य से युक्त भीमसेन अकेला ही हम सब इकट्ठों का मुकाबला कर लेता है।

तं तु सुप्तं पुरोद्याने गङ्गायां प्रक्षिपामहे।
अथ तस्मादवरजं श्रेष्ठं चैव युधिष्ठिरम्।। १८।।
प्रसह्य बन्धने बद्ध्वा प्रशासिष्ये वसुंधराम्।
एवं स निश्चयं पापः कृत्वा दुर्योधनस्तदा।। १९।।
नित्यमेवान्तरप्रेक्षी भीमस्यासीन्महात्मनः।
ततो जलविहारार्थं विचित्राणि महान्ति च।। २०।।
चैल कम्बल वेश्मानि पताकोच्छ्राय वन्ति च।
तत्र संजनयामास नानागाराण्यनेकशः।। २१।।

हम इसे नगर उद्यान में सोते हुए को गंगा में फेंक दें और फिर उससे बड़े युधिष्ठिर और छोटे अर्जुन को बलपूर्वक बन्धन में डाल कर हम पृथिवी पर शासन करेंगे। इस प्रकार का पापपूर्ण निश्चय करके वह दुर्योधन सदा महात्मा भीम के लिये मौका देखता रहता था। फिर उसने जल क्रीड़ा करने के

लिये वहाँ गंगा के किनारे ऊनी और सूती कपड़ों के बहुत से कमरों वाले विचित्र और बड़े-बड़े घर बनवाये, जिन पर पताकाएँ लहरा रहीं थीं।

प्रमाणकोट्यां तं देशं स्थलं किंचिदुपेत्य ह।
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च चोष्यं लेह्यमथापि च।। २२।।
उपपादितं नरैस्तत्र कुशलैः सूदकर्मणि।
ततो दुर्योधनस्तत्र पाण्डवानाह दुर्मतिः।। २३।।
गङ्गां चैवानुयास्याम उद्यानवनशोभिताम्।
सहिता भ्रातरः सर्वे जलक्रीडामवाप्नुमः।। २४।।
ते रथैर्नगराकारैर्देशजैश्च गजोत्तमैः।
निर्ययुर्नगराच्छूराः कौरवाः पाण्डवैः सह।। २५।।
विशन्ति स्म तदा वीराः सिंहा इव गिरेर्गुहाम्।
उद्यानमभिपश्यन्तो भ्रातरः सर्व एव ते।। २६।।

प्रमाण कोटि नाम के स्थान पर किसी जगह जाकर उसने यह आयोजन करवाया था। वहाँ उसने कुशल रसोइयों के द्वारा, खाने, भोगने, पीने, चूसने और चाटने के योग्य अनेक प्रकार के पदार्थ तैयार कराये। फिर उस दुष्टमति दुर्योधन ने पाण्डवों से कहा कि उद्यान वनों से सुशोभित गंगा के किनारे आज हम चलेंगे और सारे भाइयों के साथ जल विहार करेंगे। तब वे शूरवीर कौरव पाण्डवों के साथ नगराकार विशाल रथों और स्वदेशी उत्तम हाथियों के द्वारा नगर से बाहर निकले और जैसे सिंह गुफा में प्रवेश करे वैसे ही वे सारे वीर भाई उद्यान को देखते हुए उन घरों में प्रविष्ट हुए।

तत्रोपविष्टास्ते सर्वे पाण्डवाः कौरवाश्च ह।
उपपन्नान् बहून् कामांस्ते भुञ्जन्ति ततस्ततः।। २७।।
ततो दुर्योधनः पापस्तद्भक्ष्ये कालकूटकम्।
विषं प्रक्षेपयामास भीमसेनजिघांसया।। २८।।
स्वयमुत्थाय चैवाथ हृदयेन क्षुरोपमः।
स वाचामृतकल्पश्च भ्रातृवच्च सुहृद् यथा।। २९।।
स्वयं प्रक्षिपते भक्ष्यं बहु भीमस्य पापकृत्।
प्रतीच्छितं स्म भीमेन तं वै दोषमजानता।। ३०।।
ततो दुर्योधनस्तत्र हृदयेन हसन्निव।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते पुरुषाधमः।। ३१।।

वहाँ बैठ कर वे सारे पाण्डव प्राप्त हुए उन बहुत सारे कामना युक्त भोगों का उपभोग करने लगे। तब उस पापी दुर्योधन ने भीमसेन को मारने की इच्छा से उसके भोजन में विष मिला दिया। उसका हृदय छुरे के समान तीखा था, पर वाणी भाई और हितैषी के समान अमृत से भरी हुई थी। वह पापी भीम के लिये स्वयं बहुत सा भोजन परोसने लगा और भोजन के दोष से अपरिचित भीम उस सारे भोजन को खाते गये। तब वह अधम पुरुष दुर्योधन अपने हृदय में हँसता हुआ अपने आपको सफल मनोरथ समझने लगा।

ततस्ते सहिताः सर्वे जलक्रीडामकुर्वत।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च तदा मुदितमानसाः।। ३२।।
खिन्नस्तु बलवान् भीमोव्यायम्याभ्यधिकं तदा।
वाहयित्वा कुमारांस्ताञ्जलक्रीडागतांस्तदा।। ३३।।
प्रमाणकोट्यां वासार्थी सुष्वापावाप्य तत् स्थलम्।
शीतं वातं समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः।। ३४।।
विषेण च परीताङ्गो निश्चेष्टः पाण्डुनन्दनः।
ततो बद्ध्वा लतापाशैर्भीमं दुर्योधनः स्वयम्।। ३५।।
मृतकल्पं तदा वीरं स्थलाज्जलमपातयत्।

तब पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र मिल कर एक साथ प्रसन्न होकर जल क्रीड़ाएँ करने लगे। उस जलक्रीड़ा में व्यायाम के अधिक करने से बलवान भीम बहुत थक गये थे। वे तब जलक्रीड़ा के लिये आये कुमारों को लेकर प्रमाणकोटि के उस स्थान में आराम की इच्छा से सो गये। थके हुए और विष के नशे से मोहित भीम सारे शरीर में विष का प्रभाव फैल जाने के कारण अचेत से होकर पड़ गये। तब उन मृत के समान बने हुए वीर को स्वयं लतापाशों से बाँध कर दुर्योधन ने उन्हें गंगा के जल में ढकेल दिया।

ततस्ते धवाः सर्वे विना भीमं च पाण्डवाः।। ३६।।
वृत्तक्रीडाविहारास्तु प्रतस्थुर्गजसाह्वयम्।
ब्रुवन्तो भीमसेनस्तु यातो ह्यग्रत एव नः।। ३७।।
ततो दुर्योधनः पापस्तत्रापश्यन् वृकोदरम्।
भ्रातृभिः सहितो हृष्टो नगरं प्रविवेश ह।। ३८।।
युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा ह्यविदन् पापमात्मनि।
स्वेनानुमानेन परं साधुं समनुपश्यति।। ३९।।
सोऽभ्युपेत्य तदा पार्थो मातरं भ्रातृवत्सलः।
अभिवाद्याब्रवीत् कुन्तीमम्ब भीम इहागतः।। ४०।।
क्व गतो भविता मातर्नेह पश्यामि तं शुभे।
उद्यानानि वनं चैव विचितानि समन्ततः।। ४१।।
तदर्थे न च तं वीरं दृष्टवन्तो वृकोदरम्।
मन्यमानास्ततः सर्वे यातो नः पूर्वमेव सः।। ४२।।

तब वे सारे कौरव और बिना भीम के पाण्डव, क्रीड़ा विहार समाप्त कर हस्तिनापुर की तरफ

चले। वे आपस में यह कह रहे थे कि भीम तो हमसे पहले ही हस्तिनापुर चला गया। पापी दुर्योधन भीम को वहाँ न देखता हुआ, प्रसन्न होता हुआ, भाइयों के साथ नगर में प्रविष्ट हुआ। युधिष्ठिर धर्मात्मा थे। वे अपने मन में दूसरों के पाप को नहीं समझ पाते थे और अपने जैसा ही सबको साधु पुरुष मानते थे। उन्होंने आ कर भाई के प्रति प्रेम से माता कुन्ती को प्रणाम करके उससे पूछा कि माता क्या भीम यहाँ आ गया है? वह कहाँ गया होगा? हे पवित्र माता! मैं उसे यहाँ नहीं देख रहा हूँ। हमने वहाँ, बाग और वन सब में सब तरफ ढूँढ लिया, पर फिर भी उसको वहाँ न देख कर हम यही मानते रहे कि वह हमसे पहले ही चला गया है।

आगताः स्म महाभागे व्याकुलेनान्तरात्मना।
इहागम्य क्व नु गतस्त्वया वा प्रेषितः क्व नु।।४३।।
इत्युक्ता च ततः कुन्ती धर्मराजेन धीमता।
हा हेति कृत्वा सम्भ्रान्ता प्रत्युवाच युधिष्ठिरम्।।४४।।
न पुत्र भीमं पश्यामि न मामभ्येत्यसाविति।
शीघ्रमन्वेषणे यत्नं कुरु तस्यानुजैः सह।।४५।।
इत्युक्त्वा तनयं ज्येष्ठं हृदयेन विदूयता।
क्षत्तारमानाय्य तदा कुन्ती वचनमब्रवीत्।।४६।।
क्व गतो भगवन् क्षत्तर्भीमसेनो न दृश्यते।

हे महाभागे! हम बड़े व्याकुल हृदय से यहाँ आए हैं। यहाँ आ कर वह कहाँ गया? तुमने तो उसे कहीं नहीं भेज दिया? धीमान् धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा यह कहे जाने पर कुन्ती हाय हाय कह कर घबरा उठी और युधिष्ठिर से बोली कि पुत्र! मैंने भीम को नहीं देखा। वह मेरे पास आया ही नहीं। तुम छोटे भाइयों के साथ उसे ढूँढने के लिये शीघ्र प्रयत्न करो। अपने ज्येष्ठ पुत्र से दुखी हृदय से यह कह कर कुन्ती ने विदुर को बुला कर उससे कहा कि हे भगवन्! भीम पता नहीं कहाँ गया? वह कहीं दिखाई ही नहीं दे रहा है?

उद्यानान्निर्गताः सर्वे भ्रातरो भ्रातृभिः सह।।४७।।
तत्रैकस्तु महाबाहुर्भीमो नाभ्येति मामिह।
न च प्रीणयते चक्षुः सदा दुर्योधनस्य सः।।४८।।
क्रूरोऽसौ दुर्मतिः क्षुद्रो राज्यलुब्धोऽनपत्रपः।
निहन्यादपि तं वीरं जातमन्युः सुयोधनः।।४९।।
तेन मे व्याकुलं चित्तं हृदयं दह्यतीव च।

विदुर उवाच

मैवं वदस्व कल्याणि शेषसंरक्षणं कुरु।।५०।।
प्रत्यादिष्टो हि दुष्टात्मा शेषेऽपि प्रहरेत् तव।

उद्यान से निकले हुए सारे भाई अपने भाइयों के साथ आ गये, पर अकेला महाबाहु भीम मेरे पास लौट कर नहीं आया। वह दुर्योधन की आँखों को अच्छा नहीं लगता है। यह क्रुद्ध दुर्मति, क्षुद्र विचारों वाला, राज्य लोभी और निर्लज्ज है। यह क्रोध में आकर भीम को मार भी सकता है। इसलिये मेरा व्याकुल हृदय जल सा रहा है। यह सुन कर विदुर जी ने कहा कि हे कल्याणी! ऐसा मत कहो। शेष पुत्रों की रक्षा करो। यदि दुर्योधन पर दोषारोपण किया गया तो वह शेष पाण्डवों पर भी प्रहार कर सकता है।

स निःसञ्ज्ञो जलस्यान्तमथ वै पाण्डवोऽविशत्।।५१।।
आक्रामन्नागभवने तदा नागकुमारकान्।
ततः समेत्य बहुभिस्तदा नागैर्महाविषैः।।५२।।
अदश्यत भृशं भीमो महादंष्ट्रैर्विषोल्बणैः।
ततोऽस्य दश्यमानस्य तद् विषं कालकूटकम्।।५३।।
हतं सर्वविषेणैव स्थावरं जङ्गमेन तु।
ततोऽष्टमे तु दिवसे प्रत्यबुध्यत पाण्डवः।।५४।।

उधर बेहोशी की अवस्था में पानी में तैरता हुआ वह पाण्डव भीम साँपों के रहने की जगह पर पहुँच गया। वहाँ बहुत से साँपों के बच्चे उसके शरीर से दब गये। तब बहुत से महा विषैले साँपों ने आकर उसे एक साथ अपनी भयंकर विष वाली दाढ़ों से काटा। तब साँपों के उस विष से भीम के अन्दर विद्यमान उस खाये हुए विष का प्रभाव उतर गया। तब आठवें दिन उन पाण्डव भीम को होश आ गया।

तत उत्थाय कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः।
आजगाम महाबाहुर्मातुरन्तिकमञ्जसा।।५५।।
ततोऽभिवाद्य जननीं ज्येष्ठं भ्रातरमेव च।
कनीयसः समाघ्राय शिरःस्वरिविमर्दनः।।५६।।
तैश्चापि सम्परिष्वक्तः सह मात्रा नरर्षभैः।
अन्योन्यगतसौहार्दाद् दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रुवन्।।५७।।
ततस्तत् सर्वमाचष्ट दुर्योधनविचेष्टितम्।
भ्रातृणां भीमसेनश्च महाबलपराक्रमः।।५८।।

तब वे कुन्ती पुत्र, महाबली भीमसेन उठ कर तेजी से अपनी माता के पास आ गये। माता और बड़े भाई को प्रणाम कर, शत्रुओं का मर्दन करने

वाले भीम ने छोटे भाइयों के सिर को सूँघा। उन पुरुष श्रेष्ठों और माता के द्वारा भी उन्हें छाती से लगाये जाने के पश्चात् सबने प्रेम से अपने सौभाग्य की प्रशंसा की। तब महाबली और महापराक्रमी भीम ने दुर्योधन के सारे कार्यों के बारे में अपने भाइयों को बताया।

ततो युधिष्ठिरो राजा भीममाह वचोऽर्थवत्।
तूष्णीं भव न ते जल्प्यमिदं कार्यं कथंचन॥५९॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्धर्मराजो युधिष्ठिरः।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैरप्रमत्तोऽभवत् तदा॥६०॥
सारथिं चास्य दयितमपहस्तेन जघ्निवान्।
धर्मात्मा विदुरस्तेषां पार्थानां प्रददौ मतिम्॥६१॥
भोजने भीमसेनस्य पुनः प्राक्षेपयद् विषम्।
वैश्यापुत्रस्तदाचष्ट पार्थानां हितकाम्यया॥६२॥

तब राजा युधिष्ठिर ने भीम से यह अर्थ भरी बात कही कि तुम अब चुप रहो। किसी से इस घटना के बारे में किसी प्रकार भी नहीं कहना चाहिये। ऐसा कह कर महाबाहु धर्मात्मा युधिष्ठिर अपने सारे भाइयों के साथ सावधान होकर रहने लगे। दुर्योधन ने भीम के प्यारे सारथि को गला घोट कर मार दिया, पर धर्मात्मा विदुर ने उनसे चुप रहने की ही सलाह दी। दुर्योधन ने भीम के भोजन में एक बार फिर विष मिलवाया, पर वैश्या पुत्र युयुत्सु ने पाण्डवों की भलाई की इच्छा से उन्हें इसके विषय में बता दिया।

ग्यारहवाँ अध्याय : कृपाचार्य से राजकुमारों को शिक्षा। द्रोणाचार्य का आना।

कुमारान् क्रीडमानांस्तान् दृष्ट्वा राजातिदुर्मदान्।
गुरुं शिक्षार्थमन्विष्य गौतमं तान् न्यवेदयत्॥१॥

उन कुमारों को खेल कूद में ही लगे रहने के कारण उदण्ड होते हुए देख कर राजा धृतराष्ट्र नें शिक्षा के लिये गुरु गौतम को खोज कर उनसे कुमारों की शिक्षा के लिये निवेदन किया।

ततोऽधिजग्मुः सर्वे ते धनुर्वेदं महारथाः।
धृतराष्ट्रात्मजाश्चैव पाण्डवाः सह यादवैः॥२॥
वृष्णयश्च नृपाश्चान्ये नानादेशसमागताः।

उन्हीं कृपाचार्य से वे सारे कौरव और पांडव महारथी, यदुवंशी तथा वृष्णीवंशी और दूसरे अनेक देशों से आये हुए राजकुमार धनुर्वेद की शिक्षा लेने लगे।

कुमारास्त्वथ निष्क्रम्य समेता गजसाह्वयात्॥ ३॥
क्रीडन्तो वीटया तत्र वीराः पर्यचरन् मुदा।
पपात कूपे सा वीटा तेषां वै क्रीडतां तदा॥ ४॥
ततस्ते यत्नमातिष्ठन् वीटामुद्धर्तुमादृताः।
न च ते प्रत्यपद्यन्त कर्म वीटोपलब्धये॥५॥
ततोऽन्योन्यमवैक्षन्त व्रीडयावनताननाः।
तस्या योगमविन्दन्तो भृशं चोत्कण्ठिताभवन्॥ ६॥

एक दिन वे वीर राजकुमार इकट्ठे हस्तिनापुर से निकल कर गुल्ली से खेलते हुए प्रसन्नता पूर्वक विचरण करने लगे। उनके वहाँ खेलते हुए उनकी गुल्ली एक कूएँ में गिर पड़ी। तब वे तत्परता से उस गुल्ली को कूएँ में से निकालने के लिये प्रयत्न करने लगे। पर उस गुल्ली को निकालने का कोई भी उपाय उनकी समझ में नहीं आया। तब वे लज्जा से सिर झुकाए एक दूसरे की तरफ देखने लगे। वे कोई उपाय न मिलने के कारण उस गुल्ली को प्राप्त करने के लिये अति उत्कंठित भी हो रहे थे।

तेऽपश्यन् ब्राह्मणं श्याममापन्नं पलितं कृशम्।
कृत्यवन्तमदूरस्थमग्निहोत्रपुरस्कृतम् ॥७॥
ते तं दृष्ट्वा महात्मानमुपगम्य कुमारकाः।
भग्नोत्साहक्रियात्मानो ब्राह्मणं पर्यवारयन्॥ ८॥
अथ द्रोणः कुमारांस्तान् दृष्ट्वा कृत्यवतस्तदा।
प्रहस्य मन्दं पैशल्यादभ्यभाषत वीर्यवान्॥ ९॥
अहो वो धिग् बलं क्षात्रं धिगेतां वः कृतास्त्रताम्।
भरतस्यान्वये जाता ये वीटां नाधिगच्छत॥१०॥
वीटां च मुद्रिकां चैव ह्यहमेतदपि द्वयम्।
उद्धरेयमिषीकाभिर्भोजनं मे प्रदीयताम्॥ ११॥

तभी उन्होंने समीप ही आये हुए एक ब्राह्मण को देखा, जो पतले शरीर और सफेद बालों वाले थे। वे अभी अग्निहोत्र को समाप्त करके बैठे थे। उन ब्राह्मण को देख कर वे कुमार जिनका उत्साह भंग हो गया था और जिनके अपने सारे कार्य रुक गये थे, ब्राह्मण को घेर कर खड़े हो गये। तब उन तेजस्वी द्रोणाचार्य ने यह देख कर कि वे अकृत कार्य हैं, धीरे से मुस्करा कर कुशलता के साथ उनसे कहा कि अरे तुम्हारे क्षत्रिय बल को धिक्कार है और तुम्हारी अस्त्र विद्या को भी धिक्कार है, जो

तुम भरत कुल में जन्म लेकर भी अपनी गुल्ली को नहीं निकाल सकते। देखो मैं इन सींकों से इस गुल्ली को और इस अपनी अँगूठी को भी कूएँ से निकाल दूँगा। तुम मेरे भोजन की व्यवस्था करो।

एवमुक्त्वा कुमारांस्तान् द्रोणः स्वाङ्गुलिवेष्टनम्।
कूपे निरुदके तस्मिन्नपातयदरिंदमः।। १२।।
ततोऽब्रवीत् तदा द्रोणं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
कृपस्यानुमते ब्रह्मन् भिक्षामाप्नुहि शाश्वतीम्।। १३।।
एवमुक्तः प्रत्युवाच प्रहस्य भरतानिदम्।
भेत्स्यामीषीकया वीटां तामिषीकां तथान्यया।। १४।।
तामन्यया समायोगे वीटाया ग्रहणं मम।
ततो यथोक्तं द्रोणेन तत् सर्वं कृतमञ्जसा।। १५।।

उन कुमारों से ऐसा कह कर उन शत्रुओं को दमन करने वाले द्रोणाचार्य ने अपनी अंगुली की अँगूठी भी उस सूखे कूएँ में डाल दी। तब कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर ने कहा कि आप कृपाचार्य की अनुमति से यहाँ रह कर सदा यहीं भिक्षा को प्राप्त करें। तब द्रोणाचार्य ने हँस कर उन भरत वंशी राजकुमारों से कहा मैं इस गुल्ली को एक पतले तीर से बींधूँगा और तीर को दूसरे पतले तीर से बींधूँगा तथा उस तीर को तीसरे पतले तीर से, इस प्रकार तीरों को बींधने से गुल्ली मेरे हाथ में आ जायेगी। फिर द्रोणाचार्य ने जैसा कहा था वैसा ही फुर्ती से कर दिखाया।

तदवेक्ष्य कुमारास्ते विस्मयोत्फुल्ललोचनाः।
आश्चर्यमिदमत्यन्तमिति मत्वा वचोऽब्रुवन्।। १६।।
मुद्रिकामपि विप्रर्षे शीघ्रमेतां समुद्धर।
ततः शरं समादाय धनुर्द्रोणो महायशाः।। १७।।
शरेण विद्ध्वा मुद्रां तामूर्ध्वमावाहयत् प्रभुः।
सशरं समुपादाय कूपादङ्गुलिवेष्टनम्।। १८।।
ददौ ततः कुमाराणां विस्मितानामविस्मितः।
मुद्रिकामुद्धृतां दृष्ट्वा तमाहुस्ते कुमारकाः।। १९।।
अभिवादयामहे ब्रह्मन् नैतदन्येषु विद्यते।
कोऽसि कस्यासि जानीमो वयं किं करवामहे।। २०।।

यह देख कर वे राजकुमार आश्चर्य चकित होकर यह बड़े आश्चर्य का कार्य है, ऐसा मान कर बोले कि हे, ब्रह्मर्षि! आप इस अँगूठी को भी जल्दी निकालिये। तब महा यशस्वी द्रोणाचार्य ने धनुषबाण लेकर उस अँगूठी को बाण से बींध कर पहले जैसी रीति से ही, कूएँ से बाहर निकाल लिया और स्वयं बिना किसी विस्मय में पड़ते हुए उन्होंने विस्मित होते हुए उन कुमारों के हाथ में वह अँगूठी दे दी। अँगूठी को कूएँ से निकाला हुआ देख कर वे कुमार बोले कि हे ब्राह्मण! हम आपका अभिवादन करते हैं। यह कौशल किसी और में नहीं है। आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? हम जानना चाहते हैं। हम आपकी क्या सेवा करें।

एवमुक्तस्ततो द्रोणः प्रत्युवाच कुमारकान्।
आचक्षध्वं च भीष्माय रूपेण च गुणैश्च माम्।। २१।।
स एव सुमहातेजाः साम्प्रतं प्रतिपत्स्यते।
तथेत्युक्त्वा च गत्वा च भीष्ममूचुः कुमारकाः।। २२।।
ब्राह्मणस्य वचस्तथ्यं तच्च कर्म तथाविधम्।
भीष्मः श्रुत्वा कुमाराणां द्रोणं तं प्रत्यजानत।। २३।।
युक्तरूपः स हि गुरुरित्येवमनुचिन्त्य च।
अथैनमानीय तदा स्वयमेव सुसत्कृतम्।। २४।।
परिपप्रच्छ निपुणं भीष्मः शस्त्रभृतां वरः।
हेतुमागमने तच्च द्रोणः सर्वं न्यवेदयत्।। २५।।

ऐसा कहने पर तब द्रोणाचार्य ने उनसे कहा कि तुम भीष्म जी को मेरे रूप और गुण के बारे में कह दो। वे महा तेजस्वी ही इस समय मुझे पहचान सकते हैं। तब बहुत अच्छा यह कह कर वे कुमार जाकर भीष्म जी से मिले और उनसे उन्होंने उन ब्राह्मण की बात और उनके कार्य उसी प्रकार से उन्हें बताये। भीष्म जी ने कुमारों से सारी बातें सुन कर पहचान लिया कि ये द्रोणाचार्य हैं। फिर यह सोच कर कि ये ही कुमारों के लिये योग्य गुरु हो सकते हैं, वे स्वयं जाकर उन्हें घर पर लाये और उनका अत्यन्त सत्कार कर उनसे उन शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भीष्म ने उनके आने का कारण पूछा। तब द्रोणाचार्य ने उनसे अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

महर्षेरग्निवेशस्य सकाशमहमच्युत।
अस्त्रार्थमगमं पूर्वं धनुर्वेदजिघृक्षया।। २६।।
ब्रह्मचारी विनीतात्मा जटिलो बहुलाः समाः।
अवसं सुचिरं तत्र गुरुशुश्रूषणे रतः।। २७।।
पाञ्चालो राजपुत्रश्च यज्ञसेनो महाबलः।
इष्वस्त्रहेतोर्न्यवसत् तस्मिन्नेव गुरौ प्रभुः।। २८।।
स मे तत्र सखा चासीदुपकारी प्रियश्च मे।
तेनाहं सह संगम्य वर्तयन् सुचिरं प्रभो।। २९।।

द्रोणाचार्य ने कहा कि हे अपनी प्रतिज्ञा से न च्युत होने वाले! मैं पहले अस्त्र विद्या की प्राप्ति

और धनुर्वेद को ग्रहण करने की इच्छा से महर्षि अग्निवेश के समीप गया था। मैं वहाँ विनीतात्मा और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, जटाओं को धारण किये हुए अनेक वर्षों तक गुरु की सेवा करते हुए रहा। पांचाल देश का राजपुत्र महाबली और प्रभावशाली यज्ञसेन अर्थात् द्रुपद भी उन्ही गुरु के पास अस्त्र विद्या के लिये रहता था। वह मेरा उपकार करने वाला मित्र और प्रिय था। हे प्रभो! मैं उसके साथ हिल मिल कर बहुत दिनों तक वहाँ रहा।

अब्रवीदिति मां भीष्म वचनं प्रीतिवर्धनम्।
अहं प्रियतमः पुत्रः पितुर्द्रोण महात्मनः।। ३०।।
अभिषेक्ष्यति मां राज्ये स पाञ्चालो यदा तदा।
त्वद्भोग्यं भविता तात सखे सत्येन ते शपे।। ३१।।
मम भोगाश्च वित्तं च त्वदधीनं सुखानि च।
एवमुक्त्वाथ वव्राज कृतास्त्रः पूजितो मया।। ३२।।

उसने मुझसे एक दिन यह प्रेम को बढ़ाने वाली बात कही कि हे द्रोण! मैं अपने महात्मा पिता का सबसे प्यारा पुत्र हूँ। वह पाञ्चालराज जब मेरा राज्य पर अभिषेक करेंगे, तब हे मेरे प्रिय मित्र! वह मेरा राज्य तुम्हारे भोग के लिये होगा। यह मैं सत्य की सौगन्ध खाकर कहता हूँ।.मेरे सारे भोग, धन और सुख के साधन सब तुम्हारे ही आधीन होंगे। ऐसा कह कर अपनी अस्त्रविद्या पूरी कर और मेरे द्वारा सम्मानित होकर वह अपने घर चला गया।

तच्च वाक्यमहं नित्यं मनसा धारयंस्तदा।
सोऽहं पितृनियोगेन पुत्रलोभाद् यशस्विनीम्।। ३३।।
नातिकेशीं महाप्रज्ञामुपयेमे महाव्रताम्।
अग्निहोत्रे च सत्रे च दमे च सततं रताम्।। ३४।।
अलभद् गौतमी पुत्रमश्वत्थामानमौरसम्।
पुत्रेण तेन प्रीतोऽहं भरद्वाजो मया यथा।। ३५।।
गोक्षीरं पिवतो दृष्ट्वा धनिनस्तत्र पुत्रकान्।
अश्वत्थामारुदद् बालस्तन्मे संदेहयद् दिशः।। ३६।।

मैंने उसकी उस बात को सदा अपने मन में याद रखा। इसके पश्चात मैंने पिता की आज्ञा से और पुत्र के लोभ से शरद्वान गौतम की पुत्री यशस्विनी कृपी से, जिसके केश बड़े नहीं हैं, जो महाप्राज्ञी और महान व्रतों का पालन करने वाली तथा अग्निहोत्र, विशाल यज्ञ, एवं इन्द्रिय दमन में सदा लगी रहती है, विवाह कर लिया। उस गौतम वंश वाली से मैंने अश्वत्थामा नाम के औरस पुत्र को प्राप्त किया। उस पुत्र की प्राप्ति से मुझे वैसी ही प्रसन्नता हुई जैसी मेरे पिता भरद्वाज को मुझसे हुई थी। एक दिन धनी बच्चों को गाय का दूध पीते देख कर बालक अश्वत्थामा रोने लगा। तब मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा गया।

न स्नातकोऽवसीदेत वर्तमानः स्वकर्मसु।
इति संचिन्त्य मनसा तं देशं बहुशो भ्रमन्।। ३७।।
विशुद्धमिच्छन् गाङ्गेय धर्मोपेतं प्रतिग्रहम्।
अन्तादन्तं परिक्रम्य नाध्यगच्छं पयस्विनीम्।। ३८।।
अथ पिष्टोदकेनैनं लोभयन्ति कुमारकाः।
पीत्वा पिष्टरसं बालः क्षीरं पीतं मयापि च।। ३९।।
ननर्तोत्थाय कौरव्य हृष्टो बाल्याद् विमोहितः।
तं दृष्ट्वा नृत्यमानं तु बालैः परिवृतं सुतम्।। ४०।।
हास्यतामुपसम्प्राप्तं कश्मलं तत्र मेऽभवत्।
द्रोणं धिगस्त्वधनिनं यो धनं नाधिगच्छति।। ४१।।

मेरे गाय माँगने से किसी स्नातक को अपने नित्य कर्मों के करने में भी कष्ट न उठाना पड़े, ऐसा सोच कर मैं उस देश में विशुद्ध धर्म से युक्त दान प्राप्त करने के लिये बहुत घूमा, पर एक किनारे से दूसरे किनारे तक बहुत घूमने पर भी हे गंगापुत्र! मुझे दूध वाली गाय नहीं मिल सकी। लौट कर मैंने देखा कि दूसरे बच्चे आटे के पानी से अश्वत्थामा को ललचा रहे हैं। हे कौरव्य! और वह बच्चा अश्वत्थामा भी अपने बचपन के कारण मोहित होकर आटा मिले पानी को पीकर, मैंने भी दूध पी लिया यह समझ कर उठ कर खुशी से नाच रहा है। बच्चों से घिरे हुए और उनके उपहास का पात्र बन कर नाचते हुए उसे देख कर मेरे मन में बड़ा दुख हुआ। मैंने अपने आपसे कहा कि हे निर्धन द्रोण! तुझे धिक्कार है, जो अपने बच्चे के पालन के लिये तू धनोपार्जन नहीं करता है।

इति मत्वा प्रियं पुत्रं भीष्मादाय ततो ह्यहम्।
पूर्वस्नेहानुरागित्वात् सदारः सौमकिं गतः।। ४२।।
अभिषिक्तं तु श्रुत्वैव कृतार्थोऽस्मीति चिन्तयन्।
प्रियं सखायं सुप्रीतो राज्यस्थं समुपागमम्।। ४३।।
संस्मरन् संगमं चैव वचनं चैव तस्य तत्।
ततो द्रुपदमागम्य सखिपूर्वमहं प्रभो।। ४४।।
अब्रुवं पुरुषव्याघ्र सखायं विद्धि मामिति।
उपस्थितस्तु द्रुपदं सखिवच्चास्मि संगतः।। ४५।।

हे भीष्म! तब मैं ऐसा मान कर पहले के स्नेह और प्रेम का ध्यान कर, पत्नी सहित, पुत्र को लेकर

द्रुपद के पास गया। यह सुन कर कि वह राजसिंहासन पर अभिषिक्त हो गया है, राज्यगद्दी पर बैठे हुए अपने उस मित्र के पास अत्यन्त प्रेम में भरा हुआ गया। उसके पिछले वचनों को तथा उसकी मित्रता को याद करता हुआ मैं द्रुपद के पास जाकर उससे मित्र के समान ही मिला और बोला कि हे पुरुषव्याघ्र! मैं तुम्हारा मित्र हूँ। मुझे पहचानो।

स मां निराकारमिव प्रहसन्निदमब्रवीत्।
अकृतेयं तव प्रज्ञा ब्रह्मन् नातिसमञ्जसा।। ४६।।
साम्याद्धि सख्यं भवति वैषम्यान्नोपपद्यते।
न सख्यमजरं लोके विद्यते जातु कस्यचित्।। ४७।।
कालो वैनं विहरति क्रोधो वैनं हरत्युत।
मैवं जीर्णमुपास्स्व त्वं सत्यं भवत्वपाकृधि।। ४८।।

पर वह मुझ पर छोटे मनुष्य की तरह हँसता हुआ बोला कि हे ब्राह्मण! तुम्हारी यह बुद्धि असंगत और अशुद्ध है। समानता में ही मित्रता होती है, विषमता में नहीं होती। संसार में किसी की मित्रता अजर अमर भी नहीं होती। समय या क्रोध उस मित्रता को तोड़ देता है। तुम सचमुच क्षीण होने वाली मित्रता की उपासना कर रहे हो। तुम अब मित्रता भाव हृदय से निकाल दो।

आसीत् सख्यं द्विजश्रेष्ठ त्वया मेऽर्थनिबन्धनम्।
न ह्यनाढ्यः सखाढ्यस्य नाविद्वान् विदुषःसखा।। ४९।।
न शूरस्य सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते।
न हि राज्ञामुदीर्णानामेवम्भूतैर्नरैः क्वचित्।। ५०।।
सख्यं भवति मन्दात्मन् श्रियाहीनैर्धनच्युतैः।
नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा।। ५१।।
नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते।
अहं त्वया न जानामि राज्यार्थे संविदं कृताम्।। ५२।।

हे द्विजश्रेष्ठ! तुम्हारी मेरे साथ मित्रता अपने उस समय के प्रयोजन को पूरा करने के लिये थी। गरीब धनवान् का, मूर्ख विद्वान् का, कायर शूरवीर का, मित्र नहीं हो सकता। तुम पहले की मित्रता पर क्यों भरोसा करते हो? उन्नति को प्राप्त करते हुए राजाओं की तुम्हारे जैसे कान्तिहीन और निर्धन व्यक्तियों के साथ हे मन्दबुद्धि! कभी मित्रता नहीं हो सकती। जो श्रोत्रिय नहीं है, वह श्रोत्रिय का, जो रथी नहीं है वह रथी का, और जो राजा नहीं है वह राजा का भी मित्र नहीं हो सकता। तुम पहले की मित्रता का क्या भरोसा करते हो? मुझे तो याद नहीं है कि मैंने राज्य के लिये तुमसे कोई प्रतिज्ञा की थी।

एकरात्रं तु ते ब्रह्मन् कामं दास्यामि भोजनम्।
एवमुक्तस्त्वहं तेन सदारः प्रस्थितस्तदा।। ५३।।
ततोऽहं भवतः कामं संवर्धयितुमागतः।
इदं नागपुरं रम्यं ब्रूहि किं करवाणि ते।। ५४।।
एवमुक्तस्तदा भीष्मो भारद्वाजमभाषत।
अपज्यं क्रियतां चापं साध्वस्त्रं प्रतिपादय।। ५५।।
भुङ्क्ष्व भोगान् भृशं प्रीतः पूज्यमानः कुरुक्षये।
यच्च ते प्रार्थितं ब्रह्मन् कृतं तदिति चिन्त्यताम्।
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि विप्रर्षे महान् मेऽनुग्रहः कृतः।। ५६।।

हे ब्राह्मण! मैं एक रात तो तुम्हें यथेष्ट भोजन दे सकता हूँ। उसके ऐसा कहने पर मैं पत्नी सहित वहाँ से वापिस लौट आया। वहाँ से मैं इस रमणीय हस्तिनापुर में आपकी कामना पूरी करने के लिये आया हूँ। बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ? ऐसा कहे जाने पर भीष्म जी ने द्रोणाचार्य जी से कहा कि आप अपने धनुष की डोरी उतार दीजिये अर्थात् क्रोध को त्याग दीजिये और राजकुमारों को उत्तम अस्त्रों की शिक्षा दीजिये। आप इस कौरवों के घर में प्रेम और सम्मान पूर्वक यथेच्छ भोगों को भोगिये। आपकी जो प्रार्थना है, आप समझिये कि वह पूरी हो गयी। हे ब्रह्मर्षि! आप मेरे सौभाग्य से यहाँ पधारे हैं। आपने मेरे ऊपर महान् अनुग्रह किया है।

बारहवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य द्वारा राजकुमारों की शिक्षा और परीक्षा।

स ताञ्शिष्यान् महेष्वासःप्रतिजग्राह कौरवान्।
पाण्डवान् धार्तराष्ट्रांश्च द्रोणो मुदितमानसः।। १।।
वृष्णयश्चान्धकाश्चैव नानादेश्याश्च पार्थिवाः।
सूतपुत्रश्च राधेयो गुरुं द्रोणमियात् तदा।। २।।
स्पर्धमानस्तु पार्थेन सूतपुत्रोऽत्यमर्षणः।
दुर्योधनं समाश्रित्य सोऽवमन्यत पाण्डवान्।। ३।।

तब उन महा धनुर्धर द्रोणाचार्य ने प्रसन्न मन से उन कुरुवंशी पाण्डवों और धृतराष्ट्र के पुत्रों को शिष्य

के रूप में ग्रहण कर लिया। वृष्णिवंशी, अन्धकवंशी तथा और दूसरे देशों के राजकुमार और राधेय सूतपुत्र कर्ण भी तब गुरु द्रोण के पास शिक्षा लेने के लिये आये। अत्यन्त अमर्षशील सूतपुत्र कर्ण अर्जुन से स्पर्धा रखता हुआ, दुर्योधन का सहारा लेकर सदा पाण्डवों का अपमान किया करता था।

अभ्ययात् स ततो द्रोणं धनुर्वेदचिकीर्षया।
शिक्षाभुजबलोद्योगैस्तेषु सर्वेषु पाण्डवः।। ४।।
अस्त्रविद्यानुरागाच्च विशिष्टोऽभवदर्जुनः।
तुल्येष्वस्त्रप्रयोगेषु लाघवे सौष्ठवेषु च।। ५।।
सर्वेषामेव शिष्याणां बभूवाभ्यधिकोऽर्जुनः।
अर्जुनः परमं यत्नमातिष्ठद् गुरुपूजने।। ६।।
अस्त्रे च परमं योगं प्रियो द्रोणस्य चाभवत्।

द्रोणाचार्य के उन सारे शिष्यों में पाण्डव अर्जुन धनुर्वेद को पूरा करने की इच्छा के कारण, शिक्षा, बाहुबल और अध्यवसाय के द्वारा और अस्त्रविद्या के प्रति अनुराग के कारण सबसे बढ़ कर हो गये। तुल्य अस्त्रों के प्रयोग, फुर्ती और कौशल में अर्जुन सारे शिष्यों में सर्वाधिक हुए और वे लगभग द्रोणाचार्य की समानता को पहुँच गये। अर्जुन गुरु की सेवा भी बड़े यत्न से किया करते थे। अस्त्रों का अभ्यास भी वे बड़े मनोयोग से करते थे। इसलिये वे द्रोणाचार्य के अत्यन्त प्रिय हो गये थे।

ततः कदाचिद् भुञ्जाने प्रववौ वायुरर्जुने।। ७।।
तेन तत्र प्रदीपः स दीप्यमानो विलोपितः।
भुङ्क्त एव तु कौन्तेयो नास्यादन्यत्र वर्तते।। ८।।
हस्तस्तेजस्विनस्तस्य अनुग्रहणकारणात्।
तदभ्यासकृतं मत्वा रात्रावपि स पाण्डवः।। ९।।
योग्यां चक्रे महाबाहुर्धनुषा पाण्डुनन्दनः।
तस्य ज्यातलनिर्घोषं द्रोणः शुश्राव भारतं।। १०।।
उपेत्य चैनमुत्थाय परिष्वज्येदमब्रवीत्।
प्रयतिष्ये तथा कर्तुं यथा नान्यो धनुर्धरः।। ११।।
त्वत्समो भविता लोके सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।

तब एक बार जब अर्जुन रात में भोजन कर रहे थे, तब हवा तेजी से चलने लगी। जिससे वहाँ जल रहा दीपक बुझ गया। पर अँधेरे में भी भोजन करते हुए अर्जुन का हाथ मुख के अतिरिक्त किसी और स्थान को स्पर्श नहीं करता था, सीधे मुख को ही स्पर्श करता था। उन तेजस्वी पाण्डव ने इस बात को लक्ष्य किया और यह समझ कर कि यह अभ्यास के ही कारण है, वे रात्रि के अँधेरे में भी धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगे। उनके धनुष की टंकार और हथेली की रगड़ की ध्वनि को सुन कर, द्रोणाचार्य उन भरतवंशी के पास आये और उन्हें अपनी छाती से लगा कर यह बोले कि मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि तुम्हारे बराबर और कोई भी संसार में धनुर्धर न होगा। यह मैं सत्य कहता हूँ।

ततो द्रोणोऽर्जुनं भूयो हयेषु च गजेषु च।। १२।।
रथेषु भूमावपि च रणशिक्षामशिक्षयत्।
गदायुद्धेऽसिचर्यायां तोमरप्रासशक्तिषु।। १३।।
द्रोणः संकीर्णयुद्धे च शिक्षयामास कौरवान्।
द्रोणस्य तु तदा शिष्यौ गदायोग्यौ बभूवतुः।। १४।।
दुर्योधनश्च भीमश्च सदा संरब्धमानसौ।
अश्वत्थामा रहस्येषु सर्वेष्वभ्यधिकोऽभवत्।। १५।।
तथाति पुरुषानन्यान् त्सारुकौ यमजावुभौ।
युधिष्ठिरो रथश्रेष्ठः सर्वत्र तु धनंजयः।। १६।।

फिर द्रोणाचार्य अर्जुन को रथों पर, घोड़ों पर, हाथियों पर, और भूमि पर खड़े रह कर भी युद्ध करने की शिक्षा देने लगे। उन्होंने कुरुवंशियों को गदा युद्ध की, तलवार चलाने की, तोमर, प्रास और शक्तियों के प्रयोग की और अकेले अनेक शत्रुओं से युद्ध करने की शिक्षा दी। द्रोणाचार्य के दो शिष्य गदायुद्ध में सबसे योग्य थे। वे थे भीम और दुर्योधन। दोनों ही एक दूसरे के प्रति क्रोध में भरे रहते थे। अश्वत्थामा को धनुर्विद्या का रहस्य सबसे अधिक पता था। दोनों युगल भाई नकुल और सहदेव तलवार चलाने में दूसरों से बढ़ कर थे। युधिष्ठिर रथ पर बैठ कर युद्ध करने में श्रेष्ठ थे। किन्तु अर्जुन सारी विद्याओं में बढ़ कर थे।

बुद्धियोगबलोत्साहैः सर्वास्त्रेषु च निष्ठितः।
अस्त्रे गुर्वनुरागे च विशिष्टोऽभवदर्जुनः।। १७।।
तुल्येष्वस्त्रोपदेशेषु सौष्ठवेन च वीर्यवान्।
एकः सर्वकुमाराणां बभूवातिरथोऽर्जुनः।। १८।।
प्राणाधिकं भीमसेनं कृतविद्यं धनंजयम्।
धार्तराष्ट्रा दुरात्मानो नामृष्यन्त परस्परम्।। १९।।
तांस्तुसर्वान् समानीय सर्वविद्यास्त्रशिक्षितान्।
द्रोणः प्रहरणज्ञाने जिज्ञासुः पुरुषर्षभः।। २०।।

बुद्धि, मन की एकाग्रता, बल, उत्साह के कारण अर्जुन सारी अस्त्र विद्याओं में सबसे बढ़ कर थे। गुरु के प्रति अनुराग में भी वे विशिष्ट थे। यद्यपि

द्रोणाचार्य सबको समान रूप से अस्त्रों का उपदेश देते थे, पर पराक्रमी अर्जुन अपनी प्रतिभा के कारण अकेले ही सबसे बढ़ कर अतिरथी हुए। धृतराष्ट्र के पुत्र भीमसेन को बल में अधिक और अर्जुन को अस्त्र विद्या में अधिक देख कर परस्पर सहन नहीं कर पाते थे। जब वे सारे राज कुमार सारी शस्त्राशस्त्रविद्या में शिक्षित हो गये, तब उन्हे एकत्र कर उन पुरुष श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने उनकी प्रहार विद्या की कुशलता की जाँच करने का विचार किया।

कृत्रिमं भासमारोप्य वृक्षाग्रे शिल्पिभिः कृतम्।
अविज्ञातं कुमाराणां लक्ष्यभूतमुपादिशत्।। २१।।

द्रोण उवाच

शीघ्रं भवन्तः सर्वेऽपि धनूंष्यादाय सर्वशः।
भासमेतं समुद्दिश्य तिष्ठध्वं संधितेषवः।। २२।।
मद्वाक्यसमकालं तु शिरोऽस्य विनिपात्यताम्।
एकैकशो नियोक्ष्यामि तथा कुरुत पुत्रकाः।। २३।।

उन्होंने शिल्पियों से बनावटी गिद्ध को बनवा कर उसे कुमारों से छिप कर वृक्ष की चोटी पर स्थापित करवा दिया। फिर उन्होंने कुमारों से कहा कि तुम लोग शीघ्र ही अपने-अपने धनुषों को लेकर उन पर बाण चढ़ा कर इस गिद्ध को बींधने के लिये खड़े हो जाओ। तुम मेरे कहने के साथ ही इसके सिर को काट कर गिराना। मैं एक एक से निशाना लगवाऊँगा। हे पुत्रों! जैसे मैं कहूँ वैसे ही करना।

ततो युधिष्ठिरं पूर्वमुवाचाङ्गिरसां वरः।
संधत्स्व बाणं दुर्धर्ष मद्वाक्यान्ते विमुञ्च तम्।। २४।।
ततो युधिष्ठिरः पूर्वं धनुर्गृह्य परंतपः।
तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः।। २५।।
ततो विततधन्वानं द्रोणस्तं कुरुनन्दनम्।
स मुहूर्तादुवाचेदं वचनं भरतर्षभं।। २६।।
पश्यैनं तं द्रुमाग्रस्थं भासं नरवरात्मज।
पश्यामीत्येवमाचार्यं प्रत्युवाच युधिष्ठिरः।। २७।।

आंगिरस गोत्र वाले ब्राह्मणों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने पहले युधिष्ठिर से कहा कि हे दुर्धर्षवीर! तुम अपने बाण का सन्धान करो और मेरे कहने पर उसे छोड़ना। तब शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले युधिष्ठिर पहले धनुष को लेकर, गुरु के आदेशानुसार गिद्ध पर निशाना बना कर खड़े हो गये। तब उन कुरुनन्दन, भरत श्रेष्ठ से जो धनुष को तान कर खड़े हुए थे, थोड़ी देर में द्रोणाचार्य ने कहा कि हे राजकुमार! तुम इस वृक्ष की चोटी पर बैठे हुए गिद्ध को देखो। युधिष्ठिर ने कहा कि मैं देख रहा हूँ।

स मुहूर्तादिव पुनर्द्रोणस्तं प्रत्यभाषत।
अथ वृक्षमिमं मां वा भ्रातॄन् वापि प्रपश्यसि।। २८।।
तमुवाच स कौन्तेयः पश्याम्येनं वनस्पतिम्।
भवन्तं च तथा भ्रातॄन् भासं चेति पुनः पुनः।। २९।।
तमुवाचापसर्पेति द्रोणोऽप्रीतमना इव।
नैतच्छक्यं त्वया वेद्धुं लक्ष्यमित्येव कुत्सयन्।। ३०।।
ततो दुर्योधनादींस्तान् धार्तराष्ट्रान् महायशाः।
तेनैव क्रमयोगेन जिज्ञासुः पर्यपृच्छत।। ३१।।
अन्यांश्च शिष्यान् भीमादीन् राज्ञश्चैवान्यदेशजान्।
तथा च सर्वे तत् सर्वं पश्याम इति कुत्सिताः।। ३२।।

तब थोड़ी देर में द्रोण ने फिर उनसे पूछा कि क्या तुम इस वृक्ष को, मुझे और भाइयों को भी देख रहे हो। तब युधिष्ठिर ने कहा कि मैं इस वृक्ष को, आपको, गिद्ध को और भाइयों को बार-बार देख रहा हूँ। तब द्रोणाचार्य ने नाराज सा होकर उनसे झिड़कते हुए कहा कि हट जाओ यहाँ से। तुम इस लक्ष्य को नहीं बेध सकते। तब उन महा यशस्वी ने दुर्योधन और धृतराष्ट्र के पुत्रों से भी उसी क्रम से जिज्ञासु होकर पूछा और दूसरे भीम आदि शिष्यों तथा दूसरे देश के राजकुमारों से भी इसी प्रकार पूछा। सारे ही हम सब कुछ देख रहे हैं, ऐसा बोले और झिड़क कर हटा दिये गये।

ततो धनंजयं द्रोणः स्मयमानोऽभ्यभाषत।
त्वयेदानीं प्रहर्तव्यमेतल्लक्ष्यं विलोक्यताम्।। ३३।।
मद्वाक्यसमकालं ते मोक्तव्योऽत्र भवेच्छरः।
वितत्य कार्मुकं पुत्र तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम्।। ३४।।
एवमुक्तः सव्यसाची मण्डलीकृतकार्मुकः।
तस्थौ भासं समुद्दिश्य गुरुवाक्यप्रचोदितः।। ३५।।
मुहूर्तादिव तं द्रोणस्तथैव समभाषत।
पश्यस्येनं स्थितं भासं द्रुमं मामपि चार्जुन।। ३६।।
पश्याम्येकं भासमिति द्रोणं पार्थोऽभ्यभाषत।
न तु वृक्षं भवन्तं वा पश्यामीति च भारत।। ३७।।

तब मुस्कराते हुए द्रोणाचार्य ने अर्जुन से कहा कि तुमने इस लक्ष्य पर प्रहार करना है, इसे देख लो। मेरे कहने के साथ ही बाण छोड़ना। हे पुत्र! धनुष को तान कर थोड़ी देर तक खड़े रहो। गुरु के आदेश के अनुसार अर्जुन गोलाकार बने हुए धनुष को खींच कर और गिद्ध को निशाना बना कर खड़े

हो गये। थोड़ी देर बाद द्रोणाचार्य ने उनसे भी वैसे ही पूछा कि हे अर्जुन! क्या तुम गिद्ध को, वृक्ष को, और मुझे भी देखते हो? तब भरतवंशी अर्जुन ने द्रोणाचार्य से कहा कि मैं केवल एक गिद्ध को ही देख रहा हूँ। आपको और वृक्ष को नहीं देख रहा।

ततः प्रीतमना द्रोणो मुहूर्तादिव तं पुनः।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः पाण्डवानां महारथम्।। ३८।।
भासं पश्यसि यद्येनं तथा ब्रूहि पुनर्वचः।
शिरः पश्यामि भासस्य न गात्रमिति सोऽब्रवीत्।। ३९।।
अर्जुनेनैवमुक्तस्तु द्रोणो हृष्टतनूरुहः।
मुञ्चस्वेत्यब्रवीत् पार्थं स मुमोचाविचारयन्।। ४०।।
ततस्तस्य नगस्थस्य क्षुरेण निशितेन च।
शिर उत्कृत्य तरसा पातयामास पाण्डवः।। ४१
तस्मिन् कर्मणि संसिद्धे पर्यष्वजत पाण्डवम्।

तब प्रसन्न हो कर द्रोणाचार्य ने थोड़ी देर बाद फिर अर्जुन से पूछा कि यदि तुम गिद्ध को देख रहे हो तो उसके बारे में विस्तार से बताओ। तो अर्जुन ने कहा कि मैं केवल गिद्ध के सिर को देख रहा हूँ उसके आगे शरीर को नहीं। अर्जुन के उत्तर को सुन कर द्रोणाचार्य के शरीर में हर्ष से रोमांच हो गया। उन्होंने अर्जुन से कहा कि चलाओ बाण और अर्जुन ने बिना सोचे विचारे तुरन्त बाण छोड़ दिया। फलवरूप उस वृक्ष की चोटी पर विद्यमान उस गिद्ध का सिर क्षुर नाम के तीखे बाण से अर्जुन ने काट गिराया। उस कार्य की सफलता पर द्रोणाचार्य ने अर्जुन को अपने हृदय से लगा लिया।

अथाब्रवीन्महात्मानं भारद्वाजो महारथम्।। ४२।।
गृहाणेदं महाबाहो विशिष्टमतिदुर्धरम्।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम सप्रयोगनिवर्तनम्।। ४३।।
न च ते मानुषेष्वेतत् प्रयोक्तव्यं कथंचन।
जगद् विनिर्दहेदेतदल्पतेजसि पातितम्।। ४४।।
असामान्यमिदं तात लोकेष्वस्त्रं निगद्यते।
तद् धारयेथाः प्रयतः शृणु चेदं वचो मम।। ४५।।
बाधेतामानुषः शत्रुर्यदि त्वां वीर कश्चन।
तद्वधाय प्रयुञ्जीथास्तदस्त्रमिदमाहवे।। ४६।।
तथेति सम्प्रतिश्रुत्य बीभत्सुः स कृताञ्जलिः।
जग्राह परमास्त्रं तदाह चैनं पुनर्गुरुः।
भविता त्वत्समो नान्यः पुमाँल्लोके धनुर्धरः।। ४७।।

तब उस महात्मा महारथी अर्जुन से भरद्वाज वंशी द्रोण ने यह कहा कि हे महाबाहु! तुम इस विशिष्ट और अति दुर्धर्ष ब्रह्मशिर नाम के अस्त्र को प्रयोग और उपसंहार के साथ मुझ से ग्रहण करो। तुम्हें इसका प्रयोग मनुष्यों पर कभी नहीं करना चाहिये। कमजोर शत्रु पर चलाने पर यह संसार को भस्म कर सकता है। इसे संसार में असामान्य बताया गया है। तुम संयम के साथ इसे धारण करो और मेरी इस बात को सुनो। यदि कोई अमानव शत्रु अर्थात सामान्य मनुष्य से अत्यधिक उच्चकोटि का शत्रु हे वीर! यदि तुम्हें युद्ध में पीड़ा दे तो तुम उसके वध के लिये इस अस्त्र का प्रयोग कर सकते हो। तब अर्जुन ने बहुत अच्छा ऐसा कह कर और हाथों को जोड़ कर उस परम उत्तम अस्त्र को ग्रहण किया। तब गुरु ने पुनः उनसे यह कहा कि तुम्हारे समान धनुर्धर व्यक्ति कोई भी इस संसार में नहीं होगा।

तेरहवाँ अध्याय : राजकुमारों के द्वारा रंग भूमि में अस्त्र कौशल प्रदर्शन।

कृतास्त्रान् धार्तराष्ट्रांश्च पाण्डुपुत्रांश्च भारतं।
दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद् भीष्मम् धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्।। १।।
सन्ति सम्प्राप्तविद्यास्ते कुमाराः कुरुसत्तम।
ये दर्शयेयुः स्वां शिक्षां राजन्ननुमते तव।। २।।
ततोऽब्रवीन्महाराजः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
भारद्वाज महत् कर्म कृतं ते द्विजसत्तम।। ३।।
यदानुमन्यसे कालं यस्मिन् देशे यथा यथा।
तथा तथा विधानाय स्वयमाज्ञापयस्व माम्।। ४।।

धृतराष्ट्र के पुत्रों और पाण्डुपुत्रों को अस्त्रविद्या समाप्त किये हुए देख कर द्रोणाचार्य ने भरतवंशी भीष्म और जनेश्वर धृतराष्ट्र से कहा कि हे कुरुश्रेष्ठ राजन्! आपके कुमार अपनी विद्या को पूरा कर चुके हैं। हे राजन्! यदि आपकी अनुमति हो तो वे अपनी शिक्षा का आपके सामने प्रदर्शन करें। तब महाराज धृतराष्ट्र प्रसन्न हृदय से बोले कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ भरद्वाज नन्दन! आपने बड़ा भारी काम कर दिया। आप जो समय उचित समझें, जिस स्थान पर जैसे-जैसे प्रबन्ध किया जाये, उसके लिये आप स्वयं मुझे आज्ञा दीजिये।

स्पृहयाम्यद्य निर्वेदात् पुरुषाणां सचक्षुषाम्।
अस्त्रहेतोः पराक्रान्तान् ये मे द्रक्ष्यन्ति पुत्रकान्।। ५।।

ततो राजानमामन्त्र्य निर्गतो विदुरो बहिः।
भारद्वाजो महाप्राज्ञो मापयामास मेदिनीम्।। ६।।
रङ्गभूमौ सुविपुलं शास्त्रदृष्टं यथाविधि।
प्रेक्षागारं सुविहितं चक्रुस्ते तस्य शिल्पिनः।। ७।।

आज मैं उन नेत्रवाले लोगों के सौभाग्य की स्पर्धा कर रहा हूँ, जो अपने अस्त्र कौशल को दिखाने के लिये पराक्रम करते हुए मेरे पुत्रों को देखेंगे। फिर राजा की आज्ञा से विदुर जी बाहर आये और महाप्राज्ञ द्रोणाचार्य ने भूमि का नाप करवाया। तब राजा के शिल्पियों ने उस रंगभूमि पर एक विशाल और सुन्दर प्रेक्षागार का शास्त्रीय रीति से विधि पूर्वक निर्माण किया।

तस्मिंस्ततोऽहनि प्राप्ते राजा ससचिवस्तदा।
बाह्लीकं सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च।। ८।।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रेक्षासागरमुपागमत्।
स्त्रियश्च राज्ञः सर्वास्ताः सप्रेष्याः सपरिच्छदाः।। ९।।
हर्षदारुरुहुर्मञ्चान् मेरुं देवस्त्रियो यथा।
ब्राह्मणक्षत्रियाद्यं च चातुर्वर्ण्यं पुराद् द्रुतम्।। १०।।
दर्शनेप्सु समभ्यागात् कुमाराणां कृतास्त्रताम्।
क्षणेनैकस्थता तत्र दर्शनेप्सु जगाम ह।। ११।।
प्रवादितैश्च वादित्रैर्जनकौतूहलेन च।
महार्णव इव क्षुब्धः समाजः सोऽभवत् तदा।। १२।।

तब उस निश्चित दिन के आने पर राजा धृतराष्ट्र अपने मंत्रियों सहित, बाह्लीक, सोमदत्त, भूरिश्रवा और भीष्म को आगे करके उस प्रेक्षागार में आ गये। राजा की सारी स्त्रियाँ भी अपनी सेविकाओं तथा आवश्यक सामग्री के साथ हर्ष पूर्वक उन मंचों पर ऐसे चढ़ गयीं जैसे हिमालय पर्वत के शिखरों पर देवताओं की स्त्रियाँ चढ़ती हैं। कुमारों की अस्त्रविद्या को देखने के इच्छुक ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णों के लोग शीघ्रता से नगर से बाहर निकल कर थोड़ी देर में वहाँ एकत्र हो गये। उस समय बजते हुए बाजों और लोगों के कौतुहलपूर्ण कोलाहल से वह सारा वातावरण क्षुब्ध हुए सागर के समान प्रतीत हो रहा था।

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान्।
शुक्लकेशः सितश्मश्रुः शुक्लमाल्यानुलेपनः।। १३।।
रङ्गमध्यं तदाऽऽचार्यः सपुत्रः प्रविवेश ह।
नभो जलधरैर्हीनं साङ्गारक इवांशुमान्।। १४।।
ततो बद्धाङ्गुलित्राणा बद्धकक्षा महारथाः।
बद्धतूणाः सधनुषो विविशुर्भरतर्षभाः।। १५।।

तब श्वेत वस्त्र और श्वेत यज्ञोपवीत एवं श्वेत चन्दन तथा श्वेत माला धारण किये, श्वेत बालों तथा श्वेत दाढ़ी मूँछ वाले आचार्य द्रोण ने अपने पुत्र के साथ रंगशाला में इस प्रकार प्रवेश किया जैसे स्वच्छ आकाश में मंगल के साथ चन्द्रमा का उदय हुआ हो। तब उनके पीछे दस्ताने बाँधे, कमर कसे हुए, तूणीर बाँधे, धनुष लिये हुए महारथी भरतश्रेष्ठ राजकुमारों ने प्रवेश किया।

अनुज्येष्ठं तु ते तत्र युधिष्ठिरपुरोगमाः।
रणमध्ये स्थितं द्रोणमभिवाद्य नरर्षभाः।। १६।।
आशीर्भिश्च प्रयुक्ताभिः सर्वे संहृष्टमानसाः।
द्रोणेन समनुज्ञाता गृह्य शस्त्रं परंतपाः।। १७।।
धनूंषि पूर्वं संगृह्य तप्तकाञ्चनभूषिताः।
सज्यानि विविधाकारैः शरैः संधाय कौरवाः।। १८।।
ज्याघोषं तलघोषं च कृत्वा भूतान्यपूजयन्।
चक्रुरस्त्रं महावीर्याः कुमाराः परमाद्भुतम्।। १९।।

वे सब युधिष्ठिर आदि नरश्रेष्ठ राजकुमार बड़े छोटे के क्रम से, रंगभूमि के मध्य खड़े हुए द्रोणाचार्य को प्रणाम करके, उनके द्वारा प्रयोग किये हुए आशीर्वादों से प्रसन्न होकर, द्रोणाचार्य की आज्ञा से अपने विविध आकार वाले बाणों से सुसज्जित धनुषों को लेकर और उनका संधान करके प्रत्यंचा की टंकार और ताल ठोकने की ध्वनि से प्राणियों का पहले सम्मान कर शत्रुओं को तपाने वाले, स्वर्ण आभूषणों से विभूषित वे महा तेजस्वी कुमार अपने अस्त्रों का परम अद्भुत प्रदर्शन करने लगे।

केचिच्छराक्षेपभयाच्छिरांस्यवननामिरे ।
मनुजा धृष्टमपरे वीक्षाञ्चक्रुः सुविस्मिताः।। २०।।
ते स्म लक्ष्याणि विभिदुः उह्यन्तो वाजिभिः द्रुतम्।
कृत्वा धनुषि ते मार्गान् रथचर्यासु चासकृत्।। २१।।
गजपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च नियुद्धे च महाबलः।
गृहीतखड्गचर्माणस्ततो भूयः प्रहारिणः।। २२।।
त्सरुमार्गान् यथोद्दिष्टांश्चेरुः सर्वासु भूमिषु।
लाघवं सौष्ठवं शोभां स्थिरत्वं दृढमुष्टिताम्।। २३।।
ददृशुस्तत्र सर्वेषां प्रयोगं खड्गचर्मणोः।

तब कुछ लोग बाण लग जाने के भय से अपने सिरों को झुका लेते थे तथा दूसरे साहसी लोग विस्मय के साथ देखते रहते थे। उन्होंने घोड़ों के द्वारा तेजी से दौड़ते हुए अपने लक्ष्यों को भेदा। उन्होंने पहले धनुर्विद्या के कौशल दिखाये। फिर रथ

संचालन के अनेक पैंतरों का प्रदर्शन किया, फिर उन महाबली राजकुमारों ने हाथी पर बैठ कर, घोड़े पर बैठ कर युद्ध करने और मल्लयुद्ध करने की कलाएँ दिखाईं। फिर उन्होंने ढाल और तलवार लेकर प्रतिद्वन्द्वी पर प्रहार करते हुए सब तरह की भूमियों पर तलवार के पैंतरों को दिखाया। तलवार चलाने में उनकी फुर्ती, चतुराई, सुन्दरता और स्थिरता तथा मुट्ठी की दृढ़ता को वहाँ सब लोगों ने देखा।

अथ तौ नित्यसंहृष्टौ सुयोधनवृकोदरौ।। २४।।
अवतीर्णौ गदाहस्तावेकशृङ्गाविवाचलौ।
बद्धकक्षौ महाबाहू पौरुषे पर्यवस्थितौ।। २५।।
बृंहन्तौ वासिताहेतोः समदाविव कुञ्जरौ।
तौ प्रदक्षिणसव्यानि मण्डलानि महाबलौ।। २६।।
चेरतुर्मण्डलगतौ समदाविव कुञ्जरौ।
कुरुराजे हि रङ्गस्थे भीमे च बलिनां वरे।। २७।।
पक्षपातकृतस्नेहः स द्विधेवाभवज्जनः।

उसके बाद एक दूसरे को जीतने के उत्साही भीम और दुर्योधन एक-एक शिखर वाले दो पर्वतों के समान गदा हाथ में लेकर उतरे। वे दोनों महाबाहु अपना-अपना पौरुष दिखाने के लिये कमर कस कर खड़े थे, मानो कामना युक्त किसी हथिनी के लिये दो मदोन्मत हाथी चिंघाड़ते हुए खड़े हों। मदोन्मत्त हाथियों के समान वे दोनों महाबली अपनी गदाओं को दायें, बायें मण्डलाकार घुमाते हुए वहाँ घूमने लगे। तब रंगभूमि में कुरुराज दुर्योधन और बलवानों में श्रेष्ठ भीम के प्रदर्शन करते हुए, दर्शक लोग उन दोनों में से एक के प्रति स्नेह के कारण दो भागों में बँट गये।

ही वीर कुरुराजेति ही भीम इति जल्पताम्।। २८।।
पुरुषाणां सुविपुलाः प्रणादाः सहसोत्थिताः।
ततः क्षुब्धार्णवनिभं रङ्गमालोक्य बुद्धिमान्।। २९।।
भारद्वाजः प्रियं पुत्रमश्वत्थामानमब्रवीत्।
वारयैतौ महावीर्यौ कृतयोग्यावुभावपि।। ३०।।
मा भूद् रङ्गप्रकोपोऽयं भीमदुर्योधनोद्भवः।
ततस्तावुद्यतगदौ गुरुपुत्रेण वारितौ।। ३१।।
युगान्तानिलसंक्षुब्धौ महावेलाविवार्णवौ।

अहो कुरुराज वीर! अहो भीमसेन ऐसा कहते हुए लोगों का महान कोलाहल वहाँ गूँजने लगा। तब क्षुब्ध सागर के समान रंगभूमि को उत्तेजित अवस्था में देख कर बुद्धिमान द्रोणाचार्य ने अपने प्रिय पुत्र अश्वत्थामा से कहा कि इन दोनों योग्य अभ्यासियों और महा पराक्रमियों को बन्द कराओ। कहीं ऐसा न हो कि भीम और दुर्योधन के कारण रंगभूमि में क्रोध फैल जाये। तब गदा उठाये हुए उन दोनों को गुरुपुत्र ने ऐसे ही रोक दिया, जैसे प्रलय काल में वायु से क्षुब्ध दो सागरों को विशाल किनारा रोक देता है।

आचार्यवचनेनाथ कृतस्वस्त्ययनोयुवा।। ३२।।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः पूर्णतूणः सकार्मुकः।
काञ्चनं कवचं बिभ्रत् प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः।। ३३।।
सार्कः सेन्द्रायुधतडित् ससंध्य इव तोयदः।
ततः सर्वस्य रङ्गस्य समुत्पिञ्जलकोऽभवत्।। ३४।।
प्रावाद्यन्त च वाद्यानि सशंखानि समन्ततः।
एष कुन्तीसुतः श्रीमानेष मध्यमपाण्डवः।। ३५।।
एषोऽस्त्रविदुषां श्रेष्ठ एष धर्मभृतां वरः।
एष शीलवतां चापि शीलज्ञाननिधिः परः।। ३६।।
इत्येवं तुमुला वाचः शृण्वत्याः प्रेक्षकेरिताः।
कुन्त्याः प्रस्रवसंयुक्तैरस्रैः क्लिन्नमुरोऽभवत्।। ३७।।

तब आचार्य की आज्ञा से युवा अर्जुन, जिन्होंने स्वस्तिवाचन कराया हुआ था, गोह के चमड़े के दस्ताने हाथ में पहने हुए थे, सुनहला कवच धारण किया हुआ था, बाणों से भरे हुए तरकस और धनुष के साथ उसी प्रकार सुशोभित होते हुए दिखाई दिये, जैसे सूर्य, इन्द्रधनुष, विद्युत् और सन्ध्या से बादल सुशोभित होते हैं। तब सारे रंग मंडप में हर्ष और उल्लास छा गया। सब तरफ शंख और वाद्ययन्त्र बजने लगे। यह श्रीमान पाण्डु के मझले बेटे कुन्ती के पुत्र हैं। ये अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं, ये धर्मधारियों में भी उत्तम हैं, यह शीलवानों में भी उत्तम हैं, ये शील और ज्ञान के परम भंडार हैं, इस प्रकार की ऊँची ध्वनियाँ दर्शकों के मुख से सुन-सुन कर कुन्ती के स्तनों से स्नेह के कारण दूध और आँखों से आँसू बहने लगे। उनका वक्षस्थल उन दूध मिले आँसुओं से भीग गया।

तेन शब्देन महता पूर्णश्रुतिरथाब्रवीत्।
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठो विदुरं हृष्टमानसः।। ३८।।
क्षत्तः क्षुब्धार्णवनिभः किमेष सुमहास्वनः।
सहसैवोत्थितो रङ्गे भिन्दन्निव नभस्तलम्।। ३९।।

उन महान शब्दों से कानों के भर जाने के कारण नरश्रेष्ठ धृतराष्ट्र ने प्रसन्न होकर विदुर से पूछा कि हे विदुर! क्षुब्ध सागर के समान यह कैसी भारी आवाज इस रंगभूमि में एकदम उठ कर आकाश को फाड़ सी रही है?

विदुर उवाच

एष पार्थो महाराज फाल्गुनः पाण्डुनन्दनः।
अवतीर्णः सकवचस्तत्रैष सुमहास्वनः॥ ४०॥

धृतराष्ट्र उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि रक्षितोऽस्मि महामते।
पृथारणिसमुद्भूतैस्त्रिभिः पाण्डववह्निभिः॥ ४१॥

तब विदुर ने कहा कि हे महाराज! यह पाण्डु नन्दन अर्जुन कवच धारण कर उतरे हैं। इसीलिये महान् कोलाहल है। तब धृतराष्ट्र ने कहा कि मैं कुन्ती रूपी अरणी से उत्पन्न पाण्डव रूपी इन तीन अग्नियों से हे महामते! बहुत धन्य हूँ, अनुगृहीत हूँ और अच्छी तरह से सुरक्षित हूँ।

तस्मिन् प्रमुदिते रङ्गे कथंचित् प्रत्युपस्थिते।
दर्शयामास बीभत्सुराचार्यायास्त्रलाघवम्॥ ४२॥
आग्नेयेनासृजद् वह्निं वारुणेनासृजत् पयः।
वायव्येनासृजद् वायुं पार्जन्येनासृजद् घनान्॥ ४३॥
सुकुमारं च सूक्ष्मं च गुरुं चापि गुरुप्रियः।
सौष्ठवेनाभिसंक्षिप्तः सोऽविध्यद्विविधैः शरैः॥ ४४॥
भ्रमतश्च वराहस्य लोहस्य प्रमुखे समम्।
पञ्च बाणानसंयुक्तान् सम्मुमोचैकबाणवत्॥ ४५॥
गव्ये विषाणकोषे च चले रज्ज्ववलम्बिनि।
निचखान महावीर्यः सायकानेकविंशतिम्॥ ४६॥
इत्येवमादि सुमहत् खड्गे धनुषि चानघः।
गदायां शस्त्रकुशलो मण्डलानि ह्यदर्शयत्॥ ४७॥

उस हर्षित रंगभूमि में जब कुछ शान्ति हुई तब अर्जुन ने आचार्य को अपना अस्त्र कौशल दिखाना आरम्भ किया। उन्होंने आग्नेय अस्त्र से अग्नि को उत्पन्न कर दिया और वारुणास्त्र से जल का उत्पादन कर दिया। वायवास्त्र से आँधी चला दी और पर्जन्यास्त्र से बादल पैदा कर दिये। फिर गुरु के प्रिय शिष्य अर्जुन ने सुकुमार सूक्ष्म और भारी निशाने को भी बड़ी चतुराई और फुर्ती से अनेक बाणों द्वारा बींध दिया। उन्होंने घूमते हुए लोहे के वराह के मुख में एक साथ, पर अलग-अलग पाँच बाणों को एक बाण के ही समान मारा। रस्सी के सहारे लटकाये हुए गाय के हिलते हुए सींग के कोने पर उस महा तेजस्वी ने इक्कीस बाण गड़ा दिये। इस प्रकार उस निष्पाप अर्जुन ने बड़ा भारी शस्त्र कौशल दिखाया। उस शस्त्र निष्णात अर्जुन ने धनुष, खड्ग और गदा संचालन में भी अनेक पैंतरे दिखाये।

चौदहवाँ अध्याय : कर्ण का रंगभूमि में प्रवेश और राज्याभिषेक।

दत्तेऽवकाशे पुरुषैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः।
विवेश रङ्गं विस्तीर्णं कर्णः परपुरंजयः॥ १॥
सिंहर्षभगजेन्द्राणां बलवीर्यपराक्रमः।
दीप्तिकान्तिद्युतिगुणैः सूर्येन्दुज्वलनोपमः॥ २॥
प्रांशुः कनकतालाभः सिंहसंहननो युवा।
स निरीक्ष्य महाबाहुः सर्वतो रङ्गमण्डलम्॥ ३॥
प्रणामं द्रोणकृपयोर्नात्यादृतमिवाकरोत्।
स समाजजनः सर्वो निश्चलः स्थिरलोचनः॥ ४॥
कोऽयमित्यागतक्षोभः कौतूहलपरोऽभवत्।

तभी उस विस्तृत रंगभूमि में शत्रुओं के नगर को विजय करने वाले कर्ण ने, जिसे आश्चर्य चकित द्वारपालों ने अन्दर आने का मार्ग दे दिया था, प्रवेश किया। वह ऊँचे कद का, सुनहरे ताड़ के वृक्ष के समान और सिंह के समान शरीर के गठन वाला युवक था। उसमें शेर के समान शक्ति, साँड के समान धैर्य और गजराज के समान पराक्रम था। वह दीप्ति में सूर्य के समान, कान्ति में चन्द्रमा के समान और तेज में अग्नि के समान था। उस महाबाहु ने रंग भूमि में सब तरफ देख कर द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य को उनका अनादर सा करते हुए प्रणाम किया। तब वहाँ उपस्थित सारे लोग निश्चल होकर एकटक निगाह से उसे देखने लगे। उनमें यह जानने की जिज्ञासा और उत्कण्ठा थी कि यह कौन है?

सोऽब्रवीन्मेघगम्भीरस्वरेण वदतां वरः॥ ५॥
पार्थ यत् ते कृतं कर्म विशेषवदहं ततः।
करिष्ये पश्यतां नृणां माऽऽत्मना विस्मयं गमः॥ ६॥
ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः कर्णः प्रियरणः सदा।
यत् कृतं तत्र पार्थेन तच्चकार महाबलः॥ ७॥
अथ दुर्योधनस्तत्र भ्रातृभिः सह भारतः।
कर्णं परिष्वज्य मुदा ततो वचनमब्रवीत्॥ ८॥

तब वक्ताओं में उत्तम कर्ण मेघ के समान गम्भीर ध्वनि में बोला कि हे पार्थ! तुमने जो विशेष कार्य यहाँ करके दिखाये हैं, मैं उन सभी को यहाँ

दर्शकों के सामने करके दिखाऊँगा, इसलिये अपने आप पर विस्मय मत करो। तब युद्ध से सदा प्रेम करने वाले महाबली कर्ण ने द्रोण की आज्ञा से जो कार्य अर्जुन ने दिखाये थे, वे सारे कर दिखाये। तब भरतवंशी दुर्योधन ने प्रसन्नता पूर्वक भाइयों के साथ कर्ण को गले लगा कर कहा कि –

स्वागतं ते महाबाहो दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद।
अहं च कुरुराज्यं च यथेष्टमुपभुज्यताम्।। ९।।

कर्ण उवाच

कृतं सर्वमहं मन्ये सखित्वं च त्वया वृणे।
द्वन्द्वयुद्धं च पार्थेन कर्तुमिच्छाम्यहं प्रभो।। १०।।

दुर्योधन उवाच

भुङ्क्ष्व भोगान् मया सार्धं बन्धूनां प्रियकृद् भव।
दुर्हृदां कुरु सर्वेषां मूर्ध्नि पादमरिंदम।। ११।।
ततः क्षिप्तमिवात्मानं मत्वा पार्थोऽभ्यभाषत।
कर्णं भ्रातृसमूहस्य मध्येऽचलमिव स्थितम्।। १२।।

हे महाबाहु! तुम्हारा स्वागत है। हे मानद! यह हमारा सौभाग्य है कि आप यहाँ आए हैं। मैं और यह कुरुराज्य आपके यथेष्ट उपभोग के लिये है। तब कर्ण ने कहा कि मैं तुम्हारे साथ मित्रता को स्वीकार करता हूँ। तुमने जो कुछ कहा उसे मैं किया हुआ ही समझता हूँ। हे प्रभो! मैं अर्जुन के साथ द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूँ। तब दुर्योधन ने कहा कि तुम मेरे साथ भोगों को भोगो और बन्धुओं का प्रिय करो और हे शत्रुओं का दमन करने वाले! शत्रुओं के सिर पर पैर रखो। तब अपने आपको तिरस्कृत सा समझ कर अर्जुन ने भाइयों के बीच में पर्वत के समान खड़े हुए कर्ण से कहा कि–

अनाहूतोपसृष्टानामनाहूतोपजल्पिनाम् ।
ये लोकास्तान् हतः कर्ण मया त्वं प्रतिपत्स्यसे।। १३।।

कर्ण उवाच

रङ्गोऽयं सर्वसामान्यः किमत्र तव फाल्गुन।
वीर्यश्रेष्ठाश्च राजानो बलं धर्मोऽनुवर्तते।। १४।।
किं क्षेपैर्दुर्बलायासैः शरैः कथय भारत।
गुरोः समक्षं यावत् ते हराम्यद्य शिरः शरैः।। १५।।
ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः पार्थः परपुरंजयः।
भ्रातृभिस्त्वरयाऽऽश्लिष्टो रणायोपजगाम तम्।। १६।।

हे कर्ण! बिना बुलाये आने वालों और बिना कहे डींग मारने वालों को जो लोक प्राप्त होते हैं उन्हीं लोकों को तू मेरे द्वारा मारा जाकर प्राप्त होगा। तब कर्ण ने कहा कि हे अर्जुन! यह रंगभूमि तो सबके लिये समान है। इसमें तुम्हारा क्या है? राजा लोग तो पराक्रम के आधार पर श्रेष्ठ माने जाते हैं। धर्म भी शक्ति का अनुकरण करता है। दुर्बलों के समान आक्षेप करने से क्या? हे भरतवंशी! बाणों से बात करो। मैं आज तुम्हारे गुरु के सामने ही तुम्हारे सिर को धड़ से अलग कर दूँगा। तब द्रोणाचार्य की आज्ञा से शत्रुओं के नगर को विजय करने वाला अर्जुन तुरन्त भाइयों को गले लगा कर युद्ध के लिये उसके समीप आ गया।

ततो दुर्योधनेनापि सभ्रात्रा समरोद्यतः।
परिष्वक्तः स्थितः कर्णः प्रगृह्य सशरं धनुः।। १७।।
धार्तराष्ट्रा यतः कर्णस्तस्मिन् देशे व्यवस्थिताः।
भारद्वाजः कृपो भीष्मो यतःपार्थस्ततोऽभवन्।। १८।।
तावुद्यतमहाचापौ कृपः शारद्वतोऽब्रवीत्।
द्वन्द्वयुद्धसमाचारे कुशलः सर्वधर्मवित्।। १९।।

तब भाइयों समेत दुर्योधन के द्वारा भी गले लगाया हुआ कर्ण धनुष बाण लेकर युद्ध के लिये तैयार होकर खड़ा हो गया। उस समय धृतराष्ट्र के पुत्र जिस तरफ कर्ण था, उस तरफ खड़े थे और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्म जिस तरफ अर्जुन था, उस तरफ खड़े थे। तब द्वन्द्व युद्ध की रीतियों में कुशल, और सब धर्मों को जानने वाले शरद्वान पुत्र कृपाचार्य ने धनुष बाण लेकर तैयार खड़े उन दोनों से कहा कि–

अयं पृथायास्तनयः कनीयान् पाण्डुनन्दनः।
कौरवो भवता सार्धं द्वन्द्वयुद्धं करिष्यति।। २०।।
त्वमप्येवं महाबाहो मातरं पितरं कुलम्।
कथयस्व नरेन्द्राणां येषां त्वं कुलभूषणम्।। २१।।
ततो विदित्वा पार्थस्त्वां प्रतियोत्स्यति वा न वा।
वृथाकुलसमाचारैर्न युध्यन्ते नृपात्मजाः।। २२।।
एवमुक्तस्य कर्णस्य व्रीडावनतमाननम्।
बभौ वर्षाम्बुविक्लिन्नं पद्ममागलितं यथा।। २३।।

यह पाण्डुनन्दन कुन्ती का छोटा पुत्र है। यह कुरुवंशी तुम्हारे सथ द्वन्द्व युद्ध करेगा। हे महाबाहु! तुम भी अपने माता पिता और कुल के बारे में बताओ। उन राजाओं के नाम बताओ जिनके कुल के तुम भूषण हो। यह जान कर निश्चय होगा कि अर्जुन तुम्हारे साथ युद्ध करेगा या नहीं। क्योंकि राजकुमार हीन कुल और हीन आचरण वालों के

साथ युद्ध नहीं करते। यह सुन कर कर्ण का मुख लज्जा से नीचे भुक कर वर्षा के जल से मुर्भाये हुए और गले हुए कमल के समान हो गया।

दुर्योधन उवाच

आचार्य त्रिविधा योनी राज्ञां शास्त्रविनिश्चये।
सत्कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेनां प्रकर्षति।। २४।।
यद्ययं फाल्गुनो युद्धे नाराज्ञा योद्धुमिच्छति।
तस्मादेषोऽङ्गविषये मया राज्येऽभिषिच्यते।। २५।।
ततः स्रस्तोत्तरपटः सप्रस्वेदः सवेपथुः।
विवेशाधिरथो रङ्गं यष्टिप्राणो ह्वयन्निव।। २६।।
ततः पादाववच्छाद्य पटान्तेन ससम्भ्रमः।
पुत्रेति परिपूर्णार्थमब्रवीद् रथसारथिः।। २७।।

तब दुर्योधन ने कहा कि आचार्य! शास्त्रों के अनुसार राजाओं की तीन प्रकार की जातियाँ हैं। अच्छा कुल होना, शूरवीर होना और सेना का अधिपति होना। यदि यह अर्जुन बिना राजा से लड़ना नहीं चाहता तो मैं इस कर्ण को अंग देश के राज्य पर अभिषिक्त करता हूँ। तभी जिसका उत्तरीय नीचे खिसक रहा था, जिसके शरीर से पसीना बह रहा था, जिसका शरीर काँप रहा था, लाठी ही जिसका सहारा थी, वह अधिरथ कर्ण को पुकारता हुआ सा रंग भूमि में प्रविष्ट हुआ। रथ को चलाने वाले उस अधिरथ ने तब अपने पैरों को जल्दी से वस्त्रों से ढक लिया और कर्ण को बेटा-बेटा कह कर पुकारते हुए अपने को कृतार्थ समभा।

तं दृष्ट्वा सूतपुत्रोऽयमिति संचिन्त्य पाण्डवः।
भीमसेनस्तदा वाक्यमब्रवीत् प्रहसन्निव।। २८।।
न त्वमर्हसि पार्थेन सूतपुत्र रणे वधम्।
कुलस्य सदृशस्तूर्णं प्रतोदो गृह्यतां त्वया।। २९।।
अङ्गराज्यं च नार्हस्त्वमुपभोक्तुं नराधम।
श्वा हुताशसमीपस्थ पुरोडाशमिवाध्वरे।। ३०।।
एवमुक्तस्ततः कर्णः किंचित्प्रस्फुरिताधरः।
गगनस्थं विनिःश्वस्य दिवाकरमुदैक्षत।। ३१।।

उसे देख कर और यह जान कर कि यह सूतपुत्र है, पाण्डुपुत्र भीमसेन ने हँसने हुए कहा कि अरे सूत पुत्र! तू तो युद्ध में अर्जुन के द्वारा मारे जाने के भी योग्य नहीं है। तुम तो अपने कुल के अनुसार जल्दी से हाथ में चाबुक पकड़ो। अरे नराधम! जैसे यज्ञ में अग्नि के समीप रखे हुए पुराडोश को कुत्ता नहीं खा सकता वैसे ही तू अंग देश के राज्य का उपभोग करने योग्य नहीं है। ऐसा कहे जाने पर कर्ण लम्बी साँस लेकर फड़कते हुए होठों के साथ आकाश में सूर्य की तरफ देखने लगा।

ततो दुर्योधनः कोपादुत्पपात महाबलः।
भ्रातृपद्मवनात् तस्मान्मदोत्कट इव द्विपः।। ३२।।
सोऽब्रवीद् भीमकर्माणं भीमसेनमवस्थितम्।
वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशम्।। ३३।।
क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना।
शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल।। ३४।।

तब महा बली दुर्योधन क्रोध से उस अपने भाइयों रूपी कमलों के वन में से मदोन्मत हाथी के समान उछल कर बाहर आया। उसने भयानक कर्म करने वाले उस खड़े हुए भीम से कहा कि हे भीम! तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये। क्षत्रियों में बल ही प्रधान है बलवान होने पर क्षत्रबन्धु अर्थात् हीन जाति के क्षत्रिय से भी युद्ध करना चाहिये। वीरों और नदियों के उद्‌गम के बारे में पता लगाना कठिन होता है।

पृथिवीराज्यमर्होऽयं नाङ्गराज्यं नरेश्वरः।
अनेन बाहुवीर्येण मया चाज्ञानुवर्तिना।। ३५।।
यस्य वा मनुजस्येदं न क्षान्तं मद्विचेष्टितम्।
रथामारुह्य पद्भ्यां स विनामयतु कार्मुकम्।। ३६।।
ततः सर्वस्य रङ्गस्य हाहाकारो महानभूत्।
साधुवादानुसम्बद्धः सूर्यश्चास्तमुपागमत्।। ३७।।

यह नरेश्वर अपने इस बाहुबल से और मेरे जैसे आज्ञा पालक मित्र की सहायता से अंगदेश का ही नहीं पृथिवी का भी राज्य पाने का अधिकारी है। जिस मनुष्य को मेरा यह कार्य सहन नहीं हो रहा है, वह रथ पर चढ़ कर या पैदल अपने धनुष को भुका कर आ जाये। तब सारी रंगभूमि में बहुत जोर से हा हा कार और साधुवाद का कोलाहल होने लगा। पर तभी सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये और सारा कार्यक्रम रुक गया।

पन्द्रहवाँ अध्याय : द्रोण का अर्जुन द्वारा द्रुपद का आधा राज्य छीनना।

पाण्डवान् धार्तराष्ट्रांश्च कृतास्त्रान् प्रसमीक्ष्य सः।
गुर्वर्थं दक्षिणाकाले प्राप्तेऽमन्यत वै गुरुः।। १।।
ततः शिष्यान् समानीय आचार्योऽर्थमचोदयत्।
पञ्चालराजं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि।। २।।
पर्यानयत भद्रं वः सा स्यात् परमदक्षिणा।
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे रथैस्तूर्णं प्रहारिणः।। ३।।
आचार्यधनदानार्थं द्रोणेन सहिता ययुः।

तब पाण्डवों और धृतराष्ट्र के पुत्रों को शस्त्रास्त्र विद्या प्राप्त किया हुआ देख कर, गुरुदक्षिणा लेने का समय आया हुआ देख कर, उसके लिये द्रोणाचार्य ने मन में कुछ विचार किया। तब शिष्यों को बुला कर आचार्य ने उनसे अर्थभरी यह बात कही कि तुम लोग युद्ध के मुहाने पर पांचालराज द्रुपद को यहाँ पकड़ कर ले आओ। तुम्हारा कल्याण हो। यही तुम्हारी गुरु दक्षिणा होगी। तब वे सारे प्रहार करने में कुशल बहुत अच्छा यह कह कर, आचार्य को गुरु दक्षिणा देने के लिये, जल्दी से रथों के द्वारा द्रोणाचार्य के साथ चल दिये।

ततोऽभिजग्मुः पञ्चालान् निघ्नन्तस्ते नरर्षभाः।। ४।।
ममृदुस्तस्य नगरं द्रुपदस्य महौजसः।
अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येवं क्षत्रियर्षभाः।। ५।।
ततस्तु कृतसंनाहा यज्ञसेनसहोदराः।
शरवर्षाणि मुञ्चन्तः प्रणेदुः सर्व एव ते।। ६।।
ततो रथेन शुभ्रेण समासाद्य तु कौरवान्।
यज्ञसेनः शरान् घोरान् ववर्ष युधि दुर्जयः।। ७।।

इसके पश्चात वे नरश्रेष्ठ पांचाल निवासियों को मारते हुए महा तेजस्वी द्रुपद के नगर को रौंदने लगे। वे क्षत्रिय श्रेष्ठ कुमार मैं पहले मैं पहले कहते हुए युद्ध कर रहे थे। तब द्रुपद के सारे भाइयों ने कवच पहन कर बाणों की वर्षा करते हुए जोर से गर्जना की। युद्ध में दुर्जय द्रुपद भी चमकीले रथ पर सवार होकर कौरवों पर आक्रमण करते हुए भयानक बाणों की वर्षा करने लगे।

पूर्वमेव तु सम्मन्त्र्य पार्थो द्रोणमथाब्रवीत्।
दर्पोद्रेकात् कुमाराणामाचार्यं द्विजसत्तमम्।। ८।।
एषां पराक्रमस्यान्ते वयं कुर्याम साहसम्।
एतैरशक्यः पाञ्चालो ग्रहीतुं रणमूर्धनि।। ९।।
एवमुक्त्वा तु कौन्तेयो भ्रातृभिः सहितोऽनघः।
अर्धक्रोशे तु नगरादतिष्ठद् बहिरेव सः।। १०।।

उन धृतराष्ट्र पुत्रों के बढ़े हुए अभिमान के कारण, अर्जुन ने पहले ही विचार करके ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोण से कहा कि इनके पराक्रम दिखा लेने के बाद हम साहस करेंगे। इनके द्वारा युद्ध के मुहाने पर पांचाल राज को पकड़ना सम्भव नहीं है। ऐसा कह कर वे निष्पाप अर्जुन अपने भाइयों के साथ नगर से बाहर आधे कोस की दूरी पर ही ठहर गये।

द्रुपदः कौरवान् दृष्ट्वा प्राधावत समन्ततः।
तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे।। ११।।
अनेकमिव संत्रासान्मेनिरे तत्र कौरवाः।
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्च सहस्रशः।। १२।।
सिंहनादश्च संजज्ञे पाञ्चालानां महात्मनाम्।
धनुर्ज्यातलशब्दश्च संस्पृश्य गगनं महान्।। १३।।
दुर्योधनो विकर्णश्च सुबाहुर्दीर्घलोचनः।
दुःशासनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन्।। १४।।

तब द्रुपद ने कौरवों को देख कर उन पर सब तरफ से आक्रमण किया। युद्ध में फुर्ती से लड़ता हुआ यद्यपि वह एक ही रथ पर विद्यमान था, पर कौरवों ने उसे भय त्रस्त होकर अनेकों द्रुपदों जैसा समझा। तब वहाँ हजारों शंख, भेरी और मृदंग बजने लगे। महात्मा पाञ्चाल सैनिकों का सिंहनाद और धनुषों की महान् टंकार तथा हथेलियों की रगड़ की ध्वनि उत्पन्न होकर आकाश में गूँजने लगी। दुर्योधन, विकर्ण, सुबाहु, दीर्घलोचन, और दुःशासन क्रुद्ध होकर बाणों की वर्षा करने लगे।

ततस्तु नागराः सर्वे मुसलैर्यष्टिभिस्तदा।
अभ्यवर्षन्त कौरव्यान् वर्षमाणा घना इव।। १५।।
सबालवृद्धास्तेपौराः कौरवानभ्ययुस्तदा।
पाण्डवास्तुस्वनं श्रुत्वा आर्तानां लोमहर्षणम्।। १६।।
अभिवाद्य ततो द्रोणं रथानारुरुहुस्तदा।
युधिष्ठिरं निवार्याशु मा युध्यस्वेति पाण्डवम्।। १७।।
माद्रेयौ चक्ररक्षौ तु फाल्गुनश्च तदाकरोत्।
सेनाग्रगो भीमसेनः सदाभूद् गदया सह।। १८।।

तब सारे नगरवासी भी कौरवों के ऊपर मूसलों की और डंडों की मेघों के समान वर्षा करने लगे। उस समय बच्चे और बूढ़े भी कौरवों का सामना कर रहे थे। तब पीड़ित कौरवों के रोमांचक आर्तनाद को सुन कर पाण्डव द्रोणाचार्य को प्रणाम कर अपने रथों पर तुरन्त आरूढ़ हुए। उन्होंने युधिष्ठिर को यह

कह कर रोक दिया कि आप युद्ध मत कीजिये। तब अर्जुन ने माद्रीपुत्रों नकुल और सहदेव को अपने दोनों पहियों का रक्षक बनाया और सदा गदा लेकर चलने वाले भीम को अपने आगे चलने वाला बनाया।

पाञ्चालानां ततः सेनामुद्धूतार्णवनिःस्वनाम्।
प्रविवेश महासेनां मकरः सागरं यथा।। १९।।
स्वयमभ्यद्रवद् भीमो नागानीकं गदाधरः।
स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चातुलः।। २०।।
अहनत् कुञ्जरानीकं गदया कालरूपधृत्।

पांचालों की सेना उस समय उमड़ते हुए सागर के समान गर्ज रही थी। भीमसेन ने उस सेना में ऐसे प्रवेश किया जैसे मगरमच्छ समुद्र में प्रवेश करता है। गदा को धारण किये हुए भीम ने स्वयं हाथियों की सेना पर आक्रमण किया। भुजाओं के पराक्रम में अतुलनीय उस कुन्ती के पुत्र ने मृत्यु के समान रूप धारण कर हाथियों की सेना का संहार करना आरम्भ किया।

ते गजा गिरिसंकाशाः क्षरन्तो रुधिरं बहु।। २१।।
भीमसेनस्य गदया भिन्नमस्तकपिण्डकाः।
पतन्ति द्विरदा भूमौ वज्रघातादिवाचलाः।। २२।।
गजानश्वान् रथांश्चैव पातयामास पाण्डवः।
पदातींश्च रथांश्चैव न्यवधीदर्जुनाग्रजः।। २३।।
गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान् वने।
चालयन् रथनागांश्च संचचाल वृकोदरः।। २४।।

वे पर्वतों के समान विशाल हाथी, जिनके मस्तक भीमसेन की गदा से फट गये थे, अत्यधिक रक्त बहाते हुए ऐसे गिरने लगे, जैसे विद्युत् के आघात से पर्वतों के शिखर टूट जाते हैं। अर्जुन के बड़े भाई पाण्डव भीमसेन ने हाथियों, घोड़ों, और रथों को गिरा दिया तथा पैदलों और रथियों का संहार कर दिया। जैसे वन में ग्वाला पशुओं को हाँकता है, वैसे ही भीम ने रथों को और हाथियों को खदेड़ना आरम्भ कर दिया।

भारद्वाजप्रियं कर्तुमुद्यतः फाल्गुनस्तदा।
पार्षतं शरजालेन क्षिपन्नागात् स पाण्डवः।। २५।।
ततस्ते हन्यमाना वै पाञ्चालाः सृञ्जयास्तथा।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पार्थं संछाद्य सर्वशः।। २६।।
सिंहनादं मुखैः कृत्वा समयुध्यन्त पाण्डवम्।
तद् युद्धमभवद् घोरं सुमहाद्भुतदर्शनम्।। २७।।
सिंहनादस्वनं श्रुत्वा नामृष्यत् पाकशासनिः।
ततः किरीटी सहसा पाञ्चालान् समरेऽद्रवत्।। २८।।
छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव।
शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान् संदधानस्य चानिशम्।। २९।।
नान्तरं ददृशे किंचित् कौन्तेयस्य यशस्विनः।

तब अर्जुन ने द्रोणाचार्य का प्रिय करने के लिये तैयार होकर द्रुपद पर बाण वर्षा से आक्रमण किया। तब वे पांचाल और सृंजय वीर, जो अर्जुन के द्वारा मारे जा रहे थे, अनेक प्रकार के बाणों की वर्षा से अर्जुन को ढक कर और मुख से सिंहनाद करते हुए उसका मुकाबला करने लगे। वह युद्ध भयानक और देखने में अद्भुत था। अर्जुन उनकी सिंह नाद की ध्वनि को सहन नहीं कर सका। उसने अचानक उन्हें महान बाण वर्षा से आच्छादित करते हुए और मोहित सा करते हुए उन पर आक्रमण किया। शीघ्रता से बाण छोड़ते और निरन्तर नये नये बाणों का सन्धान करते हुए उन यशस्वी अर्जुन के धनुष पर बाण रखने और छोड़ने में जरा भी अन्तर दिखाई नहीं देता था।

ततः पञ्चालराजस्तु तथा सत्यजिता सह।। ३०।।
त्वरमाणोऽभिदुद्राव महेन्द्रं शम्बरो यथा।
महता शरवर्षेण पार्थः पाञ्चालमावृणोत्।। ३१।।
ततो हलहलाशब्द आसीत् पाञ्चाले बले।
जिघृक्षति महासिंहो गजानामिव यूथपम्।। ३२।।
दृष्ट्वा पार्थं तदाऽऽयान्तं सत्यजित् सत्यविक्रमः।
पाञ्चालं वै परिप्रेप्सुर्धनंजयमुपाद्रवत्।। ३३।।
ततस्त्वर्जुनपाञ्चालौ युद्धाय समुपागतौ।

तब पांचालराज ने अपने भाई सत्यजित के साथ अर्जुन पर तेजी से ऐसे ही आक्रमण किया जैसे इन्द्र पर शम्बरासुर ने किया था। तब अर्जुन ने पांचालराज को महान् बाण वर्षा से ढक दिया। जैसे महान् सिंह यूथपति गजराज को पकड़ने की चेष्टा करे, वैसे ही जब अर्जुन ने द्रुपद को पकड़ना चाहा तब पांचालों की सेना में जोर से कोलाहल होने लगा। पांचाल राज को पकड़ने के लिये अर्जुन को आते देख कर सत्य पराक्रमी सत्यजित ने अर्जुन पर आक्रमण किया और फिर अर्जुन और वह पांचाल नरेश युद्ध के लिये आमने सामने जुट गये।

ततः सत्यजितं पार्थो दशभिर्मर्मभेदिभिः।। ३४।।
विव्याध बलवद् गाढं तदद्भुतमिवाभवत्।

ततः शरशतैः पार्थं पाञ्चालः शीघ्रमार्दयत्।। ३५।।
पार्थस्तु शरवर्षेण छाद्यमानो महारथः।
वेगं चक्रे महावेगो धनुर्ज्यामवमृज्य च।। ३६।।
ततः सत्यजितश्चापं छित्त्वा राजानमभ्ययात्।
अथान्यद् धनुरादाय सत्यजिद् वेगवत्तरम्।। ३७।।
साश्वं ससूतं सरथं पार्थं विव्याध सत्वरः।

तब दस मर्मभेदी बाणों के द्वारा अर्जुन ने सत्यजित पर बलपूर्वक आक्रमण कर उसे अधिक घायल कर दिया और यह एक अद्भुत बात थी। सत्यजित ने अर्जुन को शीघ्र ही सौ बाणों से पीड़ित कर दिया। महारथी अर्जुन ने भी उसकी बाण वर्षा से आच्छादित होते हुए अपनी धनुष की डोरी को साफ कर वेग पूर्वक बाण छोड़ना आरम्भ किया तथा सत्यजित के धनुष को काट कर राजा द्रुपद पर आक्रमण किया। तब सत्यजित ने दूसरे दृढ़ धनुष को लेकर जल्दी से घोड़े सहित सारथि को और रथ सहित अर्जुन को बींध दिया।

स तं न ममृषे पार्थः पाञ्चालेनार्दितो युधि।। ३८।।
ततस्तस्य विनाशार्थं सत्वरं व्यसृजच्छरान्।
हयान् ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ तौ पार्ष्णिसारथी।। ३९।।
स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः।
हयेषु विनियुक्तेषु विमुखोऽभवदाहवे।। ४०।।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा ध्वजं चोर्व्यामपातयत्।
पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान् सूतं स सायकैः।। ४१।।

उस पांचाल के द्वारा युद्ध में पीड़ित अर्जुन उसे सहन न कर सका और उसने उसके विनाश के लिये शीघ्रता से बाणों को छोड़ा। उन्होंने उसके घोड़ों, ध्वजा को, धनुष को, मुट्ठी को, पार्श्वरक्षक और सारथि को क्षत-विक्षत कर दिया। धनुषों के बार-बार काटे जाने और घोड़ों के मारे जाने पर सत्यजित युद्ध से बाहर हो गया। तब अर्जुन ने द्रुपद के धनुष को काट कर उसकी ध्वजा को भूमि पर गिरा और पाँच बाणों से उसके घोड़ों और सारथि को बींध दिया।

तत उत्सृज्य तच्चापमाददानं शरावरम्।
खड्गमुद्धृत्य कौन्तेयः सिंहनादमथाकरोत्।। ४२।।
पांचाल रथमास्थाय तं नागमिव सोऽग्रहीत्।
ततस्तु सर्वपाञ्चाला विद्रवन्ति दिशो दश।। ४३।।
दर्शयन् सर्वसैन्यानां स बाह्वोर्बलमात्मनः।
सिंहनादस्वनं कृत्वा निर्जगाम धनंजयः।। ४४।।
ते यज्ञसेनं द्रुपदं गृहीत्वा रणमूर्धनि।
उपाजह्रुः सहामात्यं तं तथा वशमागतम्।। ४५।।

जब द्रुपद उस टूटे हुए धनुष को डाल कर दूसरे धनुष को लेने लगे, तब अर्जुन ने तलवार निकाल कर सिंहनाद किया और पांचालराज के रथ पर कूद कर उन्हें साँप के समान पकड़ लिया। तब सारे पांचाल सैनिक भयभीत होकर सब तरफ भागने लगे। तब सारी सेनाओं को अपना बाहुबल दिखाते हुए, और सिंहनाद करते हुए अर्जुन वहाँ से लौटे। युद्ध के मुहाने पर द्रुपद को पकड़ कर तथा मंत्रियों सहित अपने वश में कर उसे उन्होंने द्रोणाचार्य को उपहार के रूप में दे दिया।

स वैरं मनसा ध्यात्वा द्रोणो द्रुपदमब्रवीत्।
विमृद्य तरसा राष्ट्रं पुरं ते मृदितं मया।। ४६।।
प्राप्य जीवं रिपुवशं सखिपूर्वं किमिष्यते।
एवमुक्त्वा प्रहस्यैनं किंचित् स पुनरब्रवीत्।। ४७।।
मा भैः प्राणभयाद् वीर क्षमिणो ब्राह्मणा वयम्।
आश्रमे क्रीडितं यत् तु त्वया बाल्ये मया सह।। ४८।।
तेन संवर्द्धितः स्नेहः प्रीतिश्च क्षत्रियर्षभ।
प्रार्थयेयं त्वया सख्यं पुनरेव जनाधिप।। ४९।।
वरं ददामि ते राजन् राज्यस्यार्धमवाप्नुहि।

उस समय पुराने बैर को मन में सोच कर द्रोणाचार्य ने द्रुपद से कहा कि मैंने तुम्हारे देश को बल पूर्वक रौंद दिया, तुम्हारे नगर को मिट्टी में मिला दिया। तुम जीवित ही शत्रु के वश में पड़े हुए मुझे प्राप्त हुए हो। क्या तुम अब पुरानी मित्रता को चाहते हो? ऐसा कह कर और थोड़ा हँस कर उन्होंने फिर कहा कि हे वीर! प्राणों के भय से डरो मत। हम क्षमा करने वाले ब्राह्मण हैं। हे क्षत्रियश्रेष्ठ! तुम आश्रम में मेरे साथ बचपन में जो खेले हो, उससे तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह और प्रीति बढ़ गयी है। हे जनाधिप! मैं तुमसे पुनः मैत्री के लिये प्रार्थना करता हूँ। मैं तुम्हें वर देता हूँ कि तुम अपने राज्य का आधा भाग मुझसे प्राप्त कर लो।

अराजा किल नो राज्ञः सखा भवितुमर्हति।। ५०।।
अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन मया तव।
राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे।। ५१।।
सखायं मां विजानीहि पाञ्चाल यदि मन्यसे।

तुम्हारे कथनानुसार जो राजा नहीं है वह राजा का मित्र नहीं हो सकता, इसलिये हे यज्ञसेन! मैंने

तुम्हारे राज्य के लिये प्रयत्न किया है। अब तुम गंगा के दक्षिणी किनारे की तरफ के अपने राज्य के राजा होगे और मैं गंगा के उत्तरी किनारे की तरफ के राज्य का राजा होऊँगा। हे पांचालराज! यदि ठीक समझते हो तो मुझे अपना मित्र समझना।

द्रुपद उवाच

अनाश्चर्यमिदं ब्रह्मन् विक्रान्तेषु महात्मसु।।५२।।
प्रीये त्वयाहं त्वत्तश्च प्रीतिमिच्छामि शाश्वतीम्।
माकन्दीमथ गङ्गायास्तीरे जनपदायुताम्।।५३।।
सोऽध्यावसद् दीनमनाःकाम्पिल्यं च पुरोत्तमम।
दक्षिणांश्चापि पञ्चालान् यावच्चर्मण्वती नदी।
अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत।।५४।।

तब द्रुपद ने कहा कि हे ब्रह्मन्! आप जैसे पराक्रमी महात्माओं में ऐसी उदारता का होना आश्चर्य की बात नहीं है। मैं आपसे प्रसन्न हूँ और आपके साथ शाश्वत रहने वाली मित्रता को चाहता हूँ। तब द्रुपद दीन मन से गंगा के किनारे अनेक जनपदों से युक्त माकन्दी नगरी में तथा श्रेष्ठ नगर काम्पिल्य में तथा चर्मण्वती नदी तक के पाँचाल देश में शासन करते हुए रहने लगे। अहिच्छत्र नाम के राज्य को द्रोणाचार्य ने प्राप्त कर लिया।

सोलहवाँ अध्याय : पाण्डवों की कीर्ति से धृतराष्ट्र को चिन्ता।

ततोऽदीर्घेण कालेन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
पितुरन्तर्दधे कीर्तिं शीलवृत्तसमाधिभिः।। १।।
असियुद्धे गदायुद्धे रथयुद्धे च पाण्डवः।
संकर्षणादशिक्षद् वै शश्वच्छिक्षां वृकोदरः।। २।।
समाप्तशिक्षो भीमस्तु द्युमत्सेनसमो बले।
पराक्रमेण सम्पन्नो भ्रातॄणामचरद् वशे।। ३।।

उसके पश्चात कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर ने थोड़े ही समय में अपने उत्तम स्वभाव, उत्तम आचार व्यवहार और मनोयोग पूर्वक प्रजा का ध्यान रखने की प्रवृत्ति के द्वारा अपने पिता पाण्डु की कीर्ति को भी ढक दिया। पाण्डव भीमसेन तलवार युद्ध, गदायुद्ध, और रथयुद्ध की विशेष शिक्षा बलराम जी से लगातार लेने लगे। उनसे शिक्षा समाप्त होने पर वे बल में राजा द्युमत्सेन के समान हो गये। वे पराक्रम से युक्त होकर अपने भाइयों के अनुसार रहने लगे।

प्रगाढदृढमुष्टित्वे लाघवे वेधने तथा।
क्षुरनाराचभल्लानां विपाठानां च तत्त्ववित्।। ४।।
ऋजुवक्रविशालानां प्रयोक्ता फाल्गुनोऽभवत्।
स्वाभावादगमच्छब्दो महीं सागरमेखलाम्।।५।।
अर्जुनस्य समो लोके नास्ति कश्चिद् धनुर्धरः।

अर्जुन मजबूती और दृढ़ता के साथ धनुष को पकड़ने, फुर्ती, लक्ष्य को बेधने, क्षुर, नाराच, भल्ल, विपाठ नाम के सीधे टेढ़े और बड़े बाणों के रहस्यों के ज्ञान तथा उनके प्रयोग में कुशल थे। उस समय सागर पर्यन्त सारी भूमि पर यह बात फैल गयी कि अर्जुन के समान संसार में कोई भी धनुर्धर नहीं है।

न शशाक वशे कर्तुं यं पाण्डुरपि वीर्यवान्।। ६।।
सोऽर्जुनेन वशं नीतो राजाऽऽसीद् यवनाधिपः।
अतीव बलसम्पन्नः सदा मानी कुरून् प्रति।। ७।।
विपुलो नाम सौवीरः शस्तः पार्थेन धीमता।
दत्तामित्र इति ख्यातं संग्रामे कृतनिश्चयम्।। ८।।
सुमित्रं नाम सौवीरमर्जुनोऽदमयच्छरैः।
भीमसेनसहायश्च रथानामयुतं च सः।। ९।।
अर्जुनः समरेप्राच्यान् सर्वानेकरथोऽजयत्।

जिस यवन राजा को तेजस्वी पाण्डु भी अपने वश में नहीं कर सके उसे अर्जुन ने अपने बस में कर लिया। जो अत्यन्त बल सम्पन्न था और कौरवों के प्रति अभिमान रखने वाला था, वह सौवीर देश का राजा विपुल धीमान् अर्जुन के द्वारा मारा गया। सुमित्र नाम के उस सौवीर निवासी का जो दत्तामित्र के नाम से प्रसिद्ध था, जो संग्राम के लिये दृढ़ निश्चय किये रहता था, अर्जुन ने अपने बाणों से दमन कर दिया। भीम की सहायता से अर्जुन ने एक रथ के द्वारा ही पूर्व दिशा के सारे योद्धाओं और दस हजार रथियों को जीत लिया।

तथैवैकरथो गत्वा दक्षिणामजयद् दिशम्।।१०।।
धनौघं प्रापयामास कुरुराष्ट्रं धनंजयः।
ततो बलमतिख्यातं विज्ञाय दृढधन्विनाम्।।११।।
दूषितः सहसा भावो धृतराष्ट्रस्य पाण्डुषु।
स चिन्तापरमो राजा न निद्रामलभन्निशि।।१२।।

उसी प्रकार एक रथ के द्वारा ही जाकर अर्जुन ने दक्षिण दिशा को जीता और कुरु देश को धन का भंडार पहुँचाया। तब उन दक्ष धनुर्धारी पाण्डवों

की शक्ति को जान कर धृतराष्ट्र के मन में पाण्डवों के प्रति सहसा दूषित भाव जागृत होने लगे। फिर उस राजा को रात में चिन्ता में डूबे हुए होने के कारण नींद नहीं आती थी।

सत्रहवाँ अध्याय : कणिक का धृतराष्ट्र को कूटनीति का उपदेश।

तत आहूय मन्त्रज्ञं राजशास्त्रार्थवित्तमम्।
कणिकं मन्त्रिणां श्रेष्ठं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद् वचः।। १।।
उत्सिक्ताःपाण्डवा नित्यं तेभ्योऽसूये द्विजोत्तम।
तत्र मे निश्चिततमं संधिविग्रहकारणम्।। २।।
कणिक त्वं ममाचक्ष्व करिष्ये वचनं तव।
स प्रसन्नमनास्तेन परिपृष्टो द्विजोत्तमः।। ३।।
उवाच वचनं तीक्ष्णं राजशास्त्रार्थदर्शनम्।
शृणु राजन्निदं तत्र प्रोच्यमानं मयानघ।। ४।।
न मेऽभ्यसूया कर्तव्या श्रुत्वैतत् कुरुसत्तम।

तब राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र के श्रेष्ठ पण्डित, मन्त्रणा के जान कार मंत्रियों में श्रेष्ठ कणिक को बुला कर धृतराष्ट्र ने उनसे कहा कि हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! पाण्डव लोग नित्य उन्नति कर रहे हैं। मैं उनसे ईर्ष्या करता हूँ। तुम मुझे निश्चय करके बताओ कि मुझे उनसे संधि करनी चाहिये या लड़ाई। मैं तुम्हारी सलाह के अनुसार करूँगा। उसके द्वारा इस प्रकार पूछने पर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ कणिक मन में प्रसन्न हो कर राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र का परिचय देने वाली बातें कहने लगे। उन्होंने कहा कि हे निष्पाप राजन्! आप मेरे द्वारा कही बातों को सुनिये! हे कुरुश्रेष्ठ! आप उन्हें सुन कर मेरे प्रति दोष भावना न करें।

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः।। ५।।
अच्छिद्र श्छिद्रदर्शी स्यात् परेषां विवरानुगः।
नित्यमुद्यतदण्डाद्धि भृशमुद्विजते जनः।। ६।।
तस्मात् सर्वाणि कार्याणि दण्डेनैव विधारयेत्।
गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद् विवरमात्मनः।। ७।।
नासम्यक्कृतकारी स्यादुपक्रम्य कदाचन।
कण्टको ह्यपि दुश्छिन्न आस्रावं जनयेच्चिरम्।। ८।।

राजा को चाहिये कि वह सदा दण्ड देने के लिये उद्यत रहे। उसे अपना पौरुष भी सदा प्रकट करते रहना चाहिये। अपने अन्दर कोई कमजोरी न रखे। शत्रुओं की कमजोरी को देखता रहे। उनकी निर्बलता का पता लगने पर उन पर आक्रमण कर दे। दण्ड देने के लिये सदा तैयार रहने वाले राजा से प्रजा के लोग बहुत डरते हैं, इसलिये सारे कार्य दण्ड के द्वारा ही पूरे करे। कछुए की तरह उसे चाहिये कि वह अपने सारे राजकीय अंगों को छिपाये रखे। अपनी कमजोरियों की रक्षा करता रहे। किसी काम को आरम्भ कर उसे अधूरा नहीं छोड़ना चाहिये। क्योंकि काँटा थोड़ा सा भी शरीर में रह जाय, तो बहुत दिनों तक मवाद पैदा करता रहता है।

वधमेव प्रशंसन्ति शत्रूणामपकारिणाम्।
सुविदीर्णं सुविक्रान्तं सुयुद्धं सुपलायितम्।। ९।।
आपद्यापदि काले च कुर्वीत न विचारयेत्।
नावज्ञेयो रिपुस्तात दुर्बलोऽपि कथंचन।। १०।।
अल्पोऽप्यग्निर्वनं कृत्स्नं दहत्याश्रयसंश्रयात्।
अन्धः स्यादन्धवेलायां बाधिर्यमपि चाश्रयेत्।। ११।।
कुर्यात् तृणमयं चापं शयीत मृगशायिकाम्।
सान्त्वादिभिरुपायैस्तु हन्याच्छत्रुं वशे स्थितम्।। १२।।

नीतिज्ञ लोग अपकार करने वाले शत्रु का वध करना ही प्रशंसनीय कहते हैं। आपत्तिकाल में पड़ा हुआ देख कर अच्छे पराक्रमी शत्रु को भी अच्छी तरह से विदीर्ण और अच्छी तरह से युद्ध करने वाली सेना को भी अच्छी तरह से भगा देना चाहिये। हे तात! शत्रु यदि कमजोर हो तो भी उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। आश्रय मिल जाने पर एक चिनगारी भी सारे वन को जला देती है। राजा को चाहिये कि वह समय आने पर अन्धा और बहरे जैसा भी बन जाये। समय के अनुसार अपने धनुष को भी तिनके जैसा बना लेना चाहिये और शिकारी की तरह सोने जैसा अर्थात असावधान होने जैसा अभिनय करे। राजा को चाहिये कि सान्त्वना आदि उपायों से शत्रु को वश में करके उसे मार दे।

दया न तस्मिन् कर्तव्या शरणागत इत्युत।
निरुद्विग्नो हि भवति न हताज्जायते भयम्।। १३।।
हन्यादमित्रं दानेन तथा पूर्वोपकारिणम्।
हन्यात् त्रीन् पञ्च सप्तेति परपक्षस्य सर्वशः।। १४।।
मूलमेवादितश्छिन्द्यात् परपक्षस्य नित्यशः।

ततः सहायांस्तत्पक्षान् सर्वांश्च तदनन्तरम्।। १५।।
छिन्नमूले ह्यधिष्ठाने सर्वे तज्जीविनो हताः।
कथं नु शाखास्तिष्ठेरंश्छिन्नमूले वनस्पतौ।। १६।।

यह मेरी शरण में आया हैं, ऐसा सोच कर शत्रु के प्रति दया नहीं करनी चाहिये। शत्रु को मार कर व्यक्ति निर्भय हो जाता है और शत्रु के जीवित रहने पर भय बना रहता है। शत्रु को दान देकर अपने वश में करके मार देना चाहिये। जिसने पहले अपना उपकार किया हो, उसे भी मार देना चाहिये। शत्रुपक्ष के त्रिवर्ग, पंचवर्ग और सप्तवर्ग को पूरी तरह से नष्ट कर देना चाहिये। राजा को चाहिये कि वह शत्रुपक्ष को तो जड़ सहित उखाड़ दे। उसके पश्चात् वह उसके सारे सहायकों और उससे संबंध रखने वालों का संहार कर दे। शत्रु के समूल नष्ट हो जाने पर उसका सहारा लेने वाले भी नष्ट हो जाते हैं। जैसे वृक्ष की जड़ें काट दी जायें, तो उसकी शाखाएँ कैसे ठहर सकती हैं।

अग्न्याधानेन यज्ञेन काषायेण जटाजिनैः।
लोकान् विश्वासयित्वैव ततो लुम्पेद् यथा वृकः।। १७।।
फलार्थोऽयं समारम्भो लोके पुंसां विपश्चिताम्।
वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत् कालस्य पर्ययः।। १८।।
ततः प्रत्यागते काले भिन्द्याद् घटमिवाश्मनि।
अमित्रो न विमोक्तव्यः कृपणं बह्वपि ब्रुवन्।। १९।।
कृपा न तस्मिन् कर्तव्या हन्यादेवापकारिणम्।
हन्यादमित्रं सान्त्वेन तथा दानेन वा पुनः।। २०।।
तथैव भेददण्डाभ्यां सर्वोपायैः प्रशातयेत्।

अग्निहोत्र के द्वारा, यज्ञ के द्वारा, गेरुएँ वस्त्र पहन कर, या जटाएँ और मृगचर्म धारण करके पहले लोगों में विश्वास पैदा करे और फिर भेड़िये की तरह उन्हें आक्रमण करके मार डाले। बुद्धिमान लोग सारे कार्य संसार में फल की प्राप्ति के लिये ही करते हैं। जब तक उचित समय प्राप्त न हो जाए, तब तक शत्रु को कन्धे पर भी उठा कर ले जाना चाहिये। फिर समय आने पर उसे ऐसे नष्ट कर देना चाहिये जैसे घड़े को पत्थर पर पटक कर फोड़ दिया जाता है। बहुत दीनतापूर्ण वचन बोलने पर भी शत्रु को छोड़ना नहीं चाहिये। अपकारी व्यक्ति को तो मार ही देना चाहिये। उस पर कृपा नहीं करनी चाहिये। शत्रु को सभी तरह के उपायों से साम, दाम दण्ड और भेद के द्वारा मार देना चाहिये।

एवं समाचरन्नित्यं सुखमेधेत भूपतिः।। २१।।
भयेन भेदयेद् भीरुं शूरमञ्जलिकर्मणा।
लुब्धमर्थप्रदानेन समं न्यूनं तथौजसा।। २२।।
एवं ते कथितं राजञ्शृणु चाप्यपरं तथा।
पुत्रःसखा वा भ्राता वा पिता वा यदि वा गुरुः।। २३।।
रिपुस्थानेषु वर्तन्तो हन्तव्या भूतिमिच्छता।
शपथेनाप्यरिं हन्यादर्थदानेन वा पुनः।। २४।।
विषेण मायया वापि नोपेक्षेत कथंचन।

इस प्रकार से आचरण करता हुआ राजा सुख पूर्वक उन्नति करता है। जो कमजोर हो उसे भयभीत करके, और जो शूरवीर हो उसे हाथ जोड़ कर अर्थात् विनम्रता से वश में करना चाहिये। लोभी को धन देकर और जो अपने बराबर या कमजोर हो उसे अपने पराक्रम से वश में करना चाहिये। इस प्रकार हे राजन! आपसे ये बातें कहीं। अब दूसरी बातों को सुनिये। ऐश्वर्य को चाहने वाले को चाहिये कि चाहे पिता हो, चाहे सखा हो, या पुत्र हो, या भाई हो या गुरु हो, यदि कोई भी शत्रुतापूर्ण बर्ताव करे, तो उसे भी मार देना चाहिये। शत्रु को शपथ खा कर विश्वास में ले कर मार दे या धन देकर या विष देकर, या धोखे से कैसे भी मार देना चाहिये। उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।। २५।।
उत्पथप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम्।
क्रुद्धोऽप्यक्रुद्धरूप स्यात् स्मितपूर्वाभिभाषिता।। २६।।
न चाप्यन्यमपध्वंसेत् कदाचित् कोपसंयुतः।
प्रहरिष्यन् प्रियं ब्रूयात् प्रहरन्नपि भारत।। २७।।
प्रहृत्य च कृपायीत शोचेत च रुदेत च।
अपि घोरापराधस्य धर्ममाश्रित्य तिष्ठतः।। २८।।
स हि प्रच्छाद्यते दोषः शैलो मेघैरिवासितैः।

गुरु भी यदि अभिमान में हो, कर्तव्य और अकर्त्तव्य को न जानता हो और बुरे मार्ग पर चले तो उसे भी दण्ड देना न्याय के अनुसार उचित माना गया है। दिल में चाहे क्रोध भरा हुआ हो, पर ऊपर से मुस्करा कर बात करनी चाहिये। क्रोध में आकर दूसरे का तिरस्कार न करे। हे भारत! शत्रु पर प्रहार करने से पहले भी और प्रहार करते हुए भी उससे मीठा ही बोले। शत्रु पर प्रहार करके उसके प्रति दया दिखानी चाहिये। उसके प्रति शोक करके और रोकर दिखाना चाहिये। भयानक अपराध करके भी धर्म के आचरण का दिखावा करके रहने से वह

दोष ऐसे छिप जाता है, जैसे पर्वत काले बादलों से छिप जाता है।

यः स्यादनुप्राप्तवधस्तस्यागारं प्रदीपयेत्॥ २९॥
प्रत्युत्थानासनाद्येन सम्प्रदानेन केनचित्।
प्रतिविश्रब्धघाती स्यात् तीक्ष्णदंष्ट्रो निमग्नकः॥ ३०॥
अशङ्कितेभ्यः शङ्केत शङ्कितेभ्यश्च सर्वशः।
अशङ्क्याद् भयमुत्पन्नमपि मूलं निकृन्तति॥ ३१॥
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति॥ ३२॥
चारः सुविहितः कार्य आत्मनश्च परस्य वा।
पाषण्डांस्तापसादींश्च परराष्ट्रेषु योजयेत्॥ ३३॥

जो जल्दी मार देने योग्य हो, उसके घर में आग लगा देनी चाहिये। शत्रु को उठ कर आसन दे, उसे उपहार दे और किसी भी प्रकार से उसे अपने ऊपर विश्वास करने वाला बना ले। फिर उसे तीखे दाँतों वाले साँप की तरह ऐसे काटे कि वह पूरी तरह से डूब जाये। जिनसे भय प्राप्त होने की शंका न हो, उनसे भी शंकित रहना चाहिये और जिनसे भय प्राप्त होने की आशंका हो उनसे तो पूरी तरह से सावधान रहना ही चाहिये। शंका रहित लोगों से भी भय उत्पन्न होकर समूल नष्ट कर देता है। जो विश्वास पात्र नहीं है, उस पर विश्वास नहीं करना चाहिये। विश्वास पात्र पर भी बहुत विश्वास नहीं करना चाहिये। विश्वास करने से भय उत्पन्न होकर जड़ को भी काट देता है। गुप्तचरों को अच्छी तरह से परीक्षा करके अपने और शत्रु के राज्य में स्थापित करना चाहिये। दूसरों के राज्य में पाखण्ड पूर्ण तपस्वी आदि का वेष धारण किये हुओं को लगाये।

उद्यानेषु विहारेषु देवतायतनेषु च।
पानागारेषु रथ्यासु सर्वतीर्थेषु चाप्यथ॥ ३४॥
चत्वरेषु च कूपेषु पर्वतेषु वनेषु च।
समवायेषु सर्वेषु सरित्सु च विचारयेत्॥ ३५॥
वाचा भृशं विनीतः स्याद्धृदयेन तथा क्षुरः।
स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात् सृष्टो रौद्राय कर्मणे॥ ३६॥
अञ्जलिः शपथः सान्त्वं शिरसा पादवन्दनम्।
आशाकरणमित्येवं कर्तव्यं भूतिमिच्छता॥ ३७॥

उद्यानों में, घूमने फिरने के स्थानों में, मन्दिरों में, मदिरालयों में, गलियों में, सारे तीर्थ स्थानों पर, चौराहों पर, कूओं पर, पर्वतों पर, वनों में, नदियों के किनारे, जहाँ भी मनुष्यों की भीड़ होती हो, वहीं अपने गुप्तचरों को घुमाते रहना चाहिये। राजा को चाहिये कि वह वाणी से तो अत्यन्त विनम्र रहे, पर हृदय में छुरे के समान तीखा हो, भयानक कर्म करने के लिये तैयार हो, पर फिर भी मुस्करा कर बात करे। हाथ जोड़ना, सान्त्वना देना, पैरों पर सिर रख कर प्रणाम करना, आशा दिलाना यह सारे कार्य ऐश्वर्य को चाहने वाले राजा को समयानुसार करने चाहिये।

सुपुष्पितः स्यादफलः फलवान् स्याद् दुरारुह।
आमः स्यात् पक्वसंकाशो न च जीर्येत कर्हिचित्॥ ३८॥
त्रिवर्गे त्रिविधा पीडा ह्यनुबन्धस्तथैव च।
अनुबन्धाः शुभा ज्ञेयाः पीडास्तु परिवर्जयेत्॥ ३९॥
अगर्वितात्मा युक्तश्च सान्त्वयुक्तोऽनसूयिता।
अवेक्षितार्थः शुद्धात्मा मन्त्रयीत द्विजैः सह॥ ४०॥
कर्मणा येन केनैव मृदुना दारुणेन च।
उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्॥ ४१॥

राजा को ऐसे वृक्ष की तरह से होना चाहिये, जिस पर फूल तो हों पर फल न लगे, फलवान हो तो ऐसा हो जिस पर चढ़ना बहुत कठिन हो, उसका फल रहे तो कच्चा पर दिखाई पके के समान दे। स्वयं वह कभी कमजोर न हो। धर्म अर्थ और काम इन तीन वर्गों में तीन प्रकार की पीड़ाएँ और तीन प्रकार के लाभ विद्यमान होते हैं। उन लाभों को ग्रहण करना चाहिये और बाधाओं से बचना चाहिये। राजा गर्व रहित हो, चित्त को एकाग्र रखे, सान्त्वना के साथ बोले, दूसरे के दोषों को प्रकट न करे, अपने प्रयोजन पर दृष्टि रखे और शुद्ध चित्त हो कर शिक्षित लोगों के साथ मन्त्रणा करे। राजा को चाहिये कि जब संकट आये तो जिस किसी भी कोमल या भयानक कर्म के द्वारा अपना उस संकट से उद्धार करे और फिर समर्थ हो कर धर्म का आचरण करे।

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति॥ ४२॥
यस्य बुद्धिः परिभवेत् तमतीतेन सान्त्वयेत्।
अनागतेन दुर्बुद्धिं प्रत्युत्पन्नेन पण्डितम्॥ ४३॥
योऽरिणा सह संधाय शयीत कृतकृत्यवत्।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते॥ ४४॥
मन्त्रसंवरणे यत्नः सदा कार्योऽनसूयता।
आकारमभिरक्षेत चारेणाप्यनुपालितः॥ ४५॥

बिना प्राणों को संकट में डाले मनुष्य कल्याण की प्राप्ति नहीं करता। प्राणों को संकट में डाल

कर यदि वह जीवित रह जाता है, तो कल्याण को प्राप्त होता है। जिसकी बुद्धि शोक के कारण विचलित हो रही है, उसे पिछली बातें सुना कर सान्त्वना देनी चाहिये। जो निर्बुद्धि हो उसे भविष्य की आशा दिला कर समझाना चाहिये और जो विद्वान् पुरुष हो, उसके साथ तत्काल जैसे उचित हो वैसे करना चाहिये। जो शत्रु से संधि कर अपने को कृतार्थ समझ कर बेखबर हो जाता है, उसकी अवस्था वृक्ष की चोटी पर सोये पुरुष के समान होती हे, जो गिरने पर ही जगता है। राजा को चाहिये कि दूसरों के दोष न प्रकट करते हुए अपनी मन्त्रणा को गुप्त रखने में सदा प्रयत्न करता रहे। गुप्तचरों से तो अपनी मुखाकृति पर प्रकट होने वाले भावों को भी प्रकट होने से सावधानी पूर्वक बचाये।

नाच्छित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दारुणम्।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम्।। ४६।।
कर्शितं व्याधितं क्लिन्नमपानीयमघासकम्।
परिविश्वस्तमन्दं च प्रहर्तव्यमरेर्बलम्।। ४७।।
नार्थिकोऽर्थिनमभ्येति कृतार्थे नास्ति संगतम्।
तस्मात् सर्वाणि साध्यानि सावशेषाणि कारयेत्।। ४८।।
संग्रहे विग्रहे चैव यत्नः कार्योऽनसूयता।
उत्साहश्चापि यत्नेन कर्तव्यो भूतिमिच्छता।। ४९।।

मछली मारों के समान राजा बिना दूसरों के मर्म को विदीर्ण किये, बिना दारुण कर्म किये, बिना दूसरों को मारे महान् ऐश्वर्य को प्राप्त नहीं कर सकता। शत्रु की सेना जब दुर्बल हो, बीमारी से ग्रस्त हो, जल या कीचड़ में फँसी हुई हो, भूखी और प्यासी हो और सब तरफ से विश्वस्त होकर निश्चेष्ट पड़ी हो तब उस पर आक्रमण करे। जिसके पास धन होता है, वह दूसरे धनवान के पास नहीं जाता, जिसके कार्य पूरे हो जाते हैं, वह दूसरों से मित्रता नहीं करता, इसलिये अपने द्वारा होने वाले दूसरों के कार्य को अधूरा ही रखना चाहिये जिससे वे लोग आते रहें। ऐश्वर्य को चाहने वाले राजा को दूसरों के दोषों को न प्रकट करते हुए आवश्यक सामग्री के संग्रह के लिये तथा शत्रुओं से विग्रह के लिये यत्न करते रहना चाहिये और अपने उत्साह को भी बनाये रखना चाहिये।

नास्य कृत्यानि बुध्येरन् मित्राणि रिपवस्तथा।
आरब्धान्येव पश्येरन् सुपर्यवसितान्यपि।। ५०।।
भीतवत् संविधातव्यं यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत्।। ५१।।
दण्डेनोपनतं शत्रुमनुगृह्णाति यो नरः।
स मृत्युमुपगृह्णीयाद् गर्भमश्वतरी यथा।। ५२।।
अनागतं हि बुध्येत यच्च कार्यं पुरः स्थितम्।
न तु बुद्धिक्षयात् किंचिदतिक्रामेत् प्रयोजनम्।। ५३।।

राजा को अपने कार्य इस प्रकार से करने चाहिये कि इसके कार्यों को न तो शत्रु और न मित्र जान सके। वे उसे केवल आरम्भ करते हुए और समाप्त करते हुए ही देखें। जब तक भय की प्राप्ति न हो तब तक भयभीत के समान उसके निवारण का उपाय करना चाहिये। किन्तु जब भय की प्राप्ति हो जाये तब निर्भय होकर उस पर प्रहार करना चाहिये। जो मनुष्य दण्ड के द्वारा वश में किये हुए शत्रु पर अनुग्रह करता है वह गर्भ को धारण करने वाली खच्चरी के समान मृत्यु को ग्रहण करता है। जो कार्य भविष्य में करना हो और जो कार्य सामने प्रस्तुत हो, उन दोनों पर बुद्धि से विचार करना चाहिये। बुद्धि को नष्ट करके किसी प्रयोजन का त्याग नहीं करना चाहिये।

तालवत् कुरुते मूलं बालः शत्रुरुपेक्षितः।
गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः क्षिप्रं संजायते महान्।। ५४।।
अग्निं स्तोकमिवात्मानं संधुक्षयति यो नरः।
स वर्धमानो ग्रसते महान्तमपि संचयम्।। ५५।।
आशां कालवतीं कुर्यात् कालं विघ्नेन योजयेत्।
विघ्नं निमित्ततो ब्रूयान्निमित्तं चापि हेतुतः।। ५६।।

शत्रु यदि बच्चा भी हो, पर उसकी उपेक्षा की जाये तो वह ताड़ के वृक्ष के समान अपनी जड़ जमा लेता है और गहन वन में छोड़ी हुई चिनगारी के समान जल्दी ही विशाल रूप धारण कर लेता है। जो मनुष्य अग्नि की चिनगारी के समान अपनी उन्नति करता रहता है, वह एक दिन बड़ा होकर शक्तिशाली शत्रु को भी विशाल ईंधन के ढेर की तरह नष्ट कर देता है। किसी को आशा दिलाने पर उसे जल्दी पूरा नहीं करना चाहिये। उसे लम्बे समय तक लटकाये रखना चाहिये। उस लम्बे समय को भी विघ्न उत्पन्न करके बढ़ाते रहना चाहिये, उन विघ्नों को भी विशेष कारणों से जोड़ देना चाहिये और उन कारणों को युक्तियों से सिद्ध कर देना चाहिये। अर्थात् इन परिस्थितियों से ये कारण उत्पन्न हुए और इन कारणों ने इन विघ्नों को जन्म दिया तथा इन विघ्नों ने कार्य के पूरा होने में रुकावट डाली।

क्षुरो भूत्वा हरेत् प्राणान् निशितः कालसाधनः।
प्रतिच्छन्नो लोमहारी द्विषतां परिकर्तनः।।५७।।
पाण्डवेषु यथान्यायमन्येषु च कुरूद्वह।
वर्तमानो न मज्जेस्त्वं तथा कृत्यं समाचार।।५८।।
सर्वकल्याणसम्पन्नो विशिष्ट इति निश्चयः।
तस्मात् त्वं पाण्डुपुत्रेभ्यो रक्षात्मानं नराधिप।।५९।।
भ्रातृव्या बलिनो यस्मात् पाण्डुपुत्रा नराधिप।
पश्चात्तापो यथा न स्यात् तथा नीतिर्विधीयताम्।।६०।।

राजा को चाहिये कि वह समय की साधना करता रहे और उचित समय आने पर उस्तरे के समान तीखा बन कर शत्रु के प्राण हर ले। जैसे उस्तरा आवरण में छिपा हुआ रहता है, पर बाहर निकल कर बालों को काट देता है, वैसे ही राजा को गुप्त रूप से रहना चाहिये और समय मिलने पर प्रकट होकर शत्रुओं को काट देना चाहिये। हे कुरुश्रेष्ठ! आप पाण्डवों से दूसरों पर नीति के अनुसार यथोचित व्यवहार करें और ऐसा करें जिससे स्वयं संकट के सागर में न डूब जायें। यह निश्चित है कि आप सारे कल्याण के साधनों से सम्पन्न विशिष्ट व्यक्ति हैं इसलिये हे राजन्! आप पाण्डुपुत्रों से अपनी रक्षा कीजिये क्योंकि हे राजन्! आपके भतीजे बलवान् हैं। आप ऐसी नीति बनाइये कि पीछे पछताना न पड़े।

अठारहवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र का पाण्डवों को वारणावत जाने का आदेश।

गुणैः समुदितान् दृष्ट्वा पौराः पाण्डुसुतांस्तदा।
राज्यप्राप्तिं च सम्प्राप्तं ज्येष्ठं पाण्डुसुतं तदा।। १।।
कथयन्ति स्म सम्भूय चत्वरेषु सभासु च।
ते वयं पाण्डवज्येष्ठं तरुणं वृद्धशीलिनम्।। २।।
अभिषिञ्चाम साध्वद्य सत्यकारुण्यवेदिनम्।
स हि भीष्मं शांतनवं धृतराष्ट्रं च धर्मवित्।। ३।।
सपुत्रं विविधैर्भोगैर्योजयिष्यति पूजयन्।
तेषां दुर्योधनः श्रुत्वा तानि वाक्यानि जल्पताम्।। ४।।
युधिष्ठिरानुरक्तानां पर्यतप्यत दुर्मतिः।

तब पाण्डु के पुत्रों को गुणों में वृद्धि करता हुआ देख कर पुरवासी ज्येष्ठ पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर को चौराहों पर और सभाओं में राज्य प्राप्ति के योग्य बताया करते थे। वे कहते थे कि ज्येष्ठ पाण्डव यद्यपि तरुण हैं, पर उनका शील वृद्धों जैसा है। वे सत्य और दया से युक्त तथा वेदवेत्ता हैं, इसलिये अब हमें उन्हीं का राज्य के लिये अभिषेक करना चाहिये। वे धर्म को जानने वाले युधिष्ठिर शान्तनु पुत्र भीष्म को और पुत्रों सहित धृतराष्ट्र को सम्मानित करते हुए उन्हें अनेक प्रकार के सुखों से सम्पन्न रखेंगे। युधिष्ठिर के प्रति अनुरक्त, हुए उनकी इन बातों को सुन कर दुर्मति दुर्योधन मन में जलने लगा।

स तप्यमानो दुष्टात्मा धृतराष्ट्रमुपागमत।। ५।।
ततो विरहितं दृष्ट्वा पितरं प्रतिपूज्य सः।
पौरानुरागसंतप्तः पश्चादिदमभाषत।। ६।।
श्रुता मे जल्पतां तात पौराणामशिवा गिरः।
त्वामनादृत्य भीष्मं च पतिमिच्छन्ति पाण्डवम्।। ७।।
मतमेतच्च भीष्मस्य न स राज्यं बुभुक्षति।
अस्माकं तु परां पीडां चिकीर्षन्ति पुरे जनाः।। ८।।

इस प्रकार सन्तप्त होता हुआ वह दुष्टात्मा तब धृतराष्ट्र के समीप आया और वहाँ अपने पिता को एकान्त में देख कर उनका सम्मान करने के उपरान्त, पुरवासियों के प्रेम से दुखी वह यह बोला कि हे पिता जी! आपने अशुभ बातें कहते हुए पुरवासियों की बातें सुनी हैं? वे आपका और भीष्म का अनादर कर युधिष्ठिर को अपना राजा बनाना चाहते हैं। भीष्म तो उनके मत से सहमत हो जायेंगे, क्योंकि वे राज्य को भोगना नहीं चाहते। पर पुरवासी लोग हमारे लिये बड़े कष्ट को जन्म देना चाहते हैं।

पितृतः प्राप्तवान् राज्यं पाण्डुरात्मगुणैः पुरा।
त्वमन्धगुणसंयोगात् प्राप्तं राज्यं न लब्धवान्।। ९।।
स एष पाण्डोर्दायाद्यं यदि प्राप्नोति पाण्डवः।
तस्य पुत्रो ध्रुवं प्राप्तस्तस्य तस्यापि चापरः।।१०।।
ते वयं राजवंशेन हीनाः सह सुतैरपि।
अवज्ञाता भविष्यामो लोकस्य जगतीपते।।११।।
सततं निरयं प्राप्ताः परपिण्डोपजीविनः।
न भवेम यथा राजंस्तथा नीतिर्विधीयताम्।।१२।।

पहले पाण्डु ने अपने गुणों के कारण पिता से राज्य प्राप्त कर लिया और आप अन्धेपन के कारण प्राप्त होने वाले राज्य को भी नहीं प्राप्त कर सके। अब यदि युधिष्ठिर पाण्डु के उत्तराधिकार को प्राप्त कर लेते हैं तो उनका पुत्र और फिर उनका पुत्र परम्परा से राज्य को प्राप्त करते जायेंगे। हे महाराज!

तब हम अपने पुत्रों के साथ राजवंश से अलग होकर लोगों की उपेक्षा के पात्र बन जायेंगे। हे राजन् आप ऐसी नीति करिये, जिससे हम दूसरों के सहारे जीवन बिताने वाले होकर लगातार कष्टों को प्राप्त न करें।

एवं श्रुत्वा तु पुत्रस्य प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः।
कणिकस्य च वाक्यानि तानि श्रुत्वा स सर्वशः।। १३।।
धृतराष्ट्रो द्विधाचित्तः शोकार्तः समपद्यत।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिः सौबलस्तथा।। १४।।
दुःशासनचतुर्थास्ते मन्त्रयामासुरेकतः।
ततो दुर्योधनो राजा धृतराष्ट्रमभाषत।। १५।।
पाण्डवेभ्यो भयं न स्यात् तान् विवासयतां भवान्।
निपुणेनाभ्युपायेन नगरं वारणावतम्।। १६।।
धृतराष्ट्रस्तु पुत्रेण श्रुत्वा वचनमीरितम्।
मुहूर्तमिव संचिन्त्य दुर्योधनमथाब्रवीत्।। १७।।

पुत्र की ये बातें सुन कर और कणिक की बातों को सुन कर वे अन्धे राजा धृतराष्ट्र सब तरह से उद्विग्न चित्त वाले और शोक से पीड़ित हो गये। तब दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और दुःशासन इन चारों ने एकान्त में मन्त्रणा की और फिर दुर्योधन धृतराष्ट्र से बोला कि हमें पाण्डवों से भय न हो, इसके लिये आप उन्हें कुशल उपाय से वारणावत नगर में निर्वासित कर दीजिये। तब धृतराष्ट्र ने पुत्र के द्वारा कही हुई बात सुन कर थोड़ी देर सोच कर दुर्योधन से कहा कि–

धर्मनित्यः सदा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः।
सर्वेषु ज्ञातिषु तथा मयि त्वासीद् विशेषतः।। १८।।
नासौ किंचिद् विजानाति भोजनादि चिकीर्षितम्।
निवेदयति नित्यं हि मम राज्यं धृतव्रतः।। १९।।
तस्य पुत्रो यथा पाण्डुस्तथा धर्मपरायणः।
गुणवाँल्लोकविख्यातः पौरवाणां सुसम्मतः।। २०।।
स कथं शक्यतेऽस्माभिरपाकर्तुं बलादितः।
पितृपैतामहाद् राज्यात् ससहायो विशेषतः।। २१।।
भृता हि पाण्डुनामात्या बलं च सततं भृतम्।
भृताः पुत्राश्च पौत्राश्च तेषामपि विशेषतः।। २२।।

पाण्डु सदा धर्म को ही नित्य मान कर सब बन्धुओं के साथ और मेरे साथ तो विशेष रूप से धर्म का पालन करते थे। वे अपने भोजन आदि करणीय कार्यों का ध्यान नहीं रखते थे और व्रतों को धारण करते हुए मुझसे यही सदा कहते थे, कि यह राज्य आपका ही है। उसका पुत्र युधिष्ठिर भी पाण्डु के समान ही धर्म परायण है। वह गुणवान, लोगों में विख्यात है और पुरवासियों को उत्तम रीति से मान्य है। उसे हम बल पूर्वक बाप दादों के राज्य से कैसे निकाल सकते हैं, जबकि उनकी विशेष रूप से सहायता करने वाले हैं। पाण्डु ने मन्त्रियों का और सेना का भी सदा भरण पोषण किया था। उसने उनके पुत्र और पौत्रों का भी विशेष ध्यान रखा था।

एवमेतन्मया तात भावितं दोषमात्मनि।
दृष्ट्वा प्रकृतयः सर्वा अर्थमानेन पूजिताः।। २३।।
ध्रुवमस्मत्सहायास्ते भविष्यन्ति प्रधानतः।
अर्थवर्गः सहामात्यो मत्संस्थोऽद्य महीपते।। २४।।
स भवान् पाण्डवानाशु विवासयितुमर्हति।
मृदुनैवाभ्युपायेन नगरं वारणावतम्।। २५।।
यदा प्रतिष्ठितं राज्यं मयि राजन् भविष्यति।
तदा कुन्ती सहापत्या पुनरेष्यति भारत।। २६।।

तब दुर्योधन ने कहा कि हे पिता! यह ऐसा ही है। मैंने अपने मन में इस दोष पर विचार किया था। इसी बात को निगाह में रख कर मैंने प्रजा के लोगों का धन और सम्मान के द्वारा सत्कार किया है। इसलिये अब निश्चय ही वे हमारे विशेष रूप से सहायक होंगे। हे राजन्! इस समय मंत्रियों के साथ खजाना भी हमारे आधीन है। आप किसी कोमल उपाय से जल्दी ही पाण्डवों को वारणावत नगर में भेज दीजिये। हे भरत वंश के महाराज! जब इस राज्य पर मेरा अधिकार प्रतिष्ठित हो जायेगा, तब कुन्ती अपने पुत्रों के साथ यहाँ फिर आकर रह जायेगी।

धृतराष्ट्र उवाच– **दुर्योधन ममाप्येतद्धृदि सम्परिवर्तते।**
अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम्।। २७।।
न च भीष्मो न च द्रोणो न च क्षत्ता न गौतमः।
विवास्यमानान् कौन्तेयाननुमंस्यन्ति कर्हिचित्।। २८।।
समा हि कौरवेयाणां वयं ते चैव पुत्रक।
नैते विषममिच्छेयुर्धर्मयुक्ता मनस्विनः।। २९।।

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि दुर्योधन! मेरे दिल में भी यही बात घूम रही है, पर पाप पूर्ण अभिप्राय होने के कारण मैं इसे कह नहीं पाता हूँ। न तो भीष्म, न द्रोण, न विदुर, और न कृपाचार्य, कुन्ती पुत्रों को बाहर भेजे जाने का किसी प्रकार भी अनुमोदन करेंगे! हे पुत्र इन धर्म का पालन करने वाले मनस्वी कुरुवंशियों के लिये हम और वे समान हैं। इसलिये ये कभी भी विषम व्यवहार करना नहीं चाहेंगे।

दुर्योधन उवाच

मध्यस्थः सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो मयि स्थितः।
यतः पुत्रस्ततो द्रोणो भविता नात्र संशयः।। ३०।।
कृपः शारद्वतश्चैव यत एतौ ततो भवेत्।
द्रोणं च भागिनेयं च न स त्यक्ष्यति कर्हिचित्।। ३१।।
क्षत्तार्थबद्धस्त्वस्माकं प्रच्छन्नं संयतः परैः।
न चैकः स समर्थोऽस्मान् पाण्डवार्थेऽधिबाधितुम्।। ३२।।
स विस्रब्धः पाण्डुपुत्रान् सह मात्रा प्रवासय।
वारणावतमद्यैव यथा यान्ति तथा कुरु।। ३३।।
विनिद्रकरणं घोरं हृदि शल्यमिवार्पितम्।
शोकपावकमुद्भूतं कर्मणैतेन नाशय।। ३४।।

तब दुर्योधन बोला कि भीष्म तो सदा मध्यस्थ रहते हैं। द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा मेरे पक्ष में है। जहाँ पुत्र होगा वहीं द्रोणाचार्य होंगे, इसमें संशय नहीं है। शरद्वान् कृपाचार्य भी जिस तरफ वे दोनों होंगे, उसी तरफ रहेंगे। वे कभी भी द्रोणाचार्य और अपने भानजे को नहीं छोड़ सकेंगे। विदुर धन के कारण हमारे आधीन हैं। वे छिपे हुए ही शत्रुओं के स्नेह बन्धन से बँधे हुए हैं। वे पाण्डवों के लिये अकेले हमारे मार्ग में रुकावट नहीं डाल सकते। इसलिये आप निश्चिन्त होकर पाण्डवों को माता के साथ आज ही वारणावत में भेज दीजिये और ऐसा प्रयत्न कीजिये कि वे आज ही चले जायें। मेरे दिल में भयानक काँटा सा चुभ रहा है, जो मुझे नींद नहीं लेने दे रहा है। आप इस भयानक शोकाग्नि को जो मेरे हृदय में जल रही है, इस कार्य के द्वारा शान्त कर दीजिये।

ततो दुर्योधनो राजा सर्वाः प्रकृतयः शनैः।
अर्थमानप्रदानाभ्यां संजहार सहानुजः।। ३५।।
धृतराष्ट्रप्रयुक्तास्ते केचित् कुशलमन्त्रिणः।
कथयांचक्रिरे रम्यं नगरं वारणावतम्।। ३६।।
सर्वरत्नसमाकीर्णं पुंसां देशे मनोरमे।
इत्येवं धृतराष्ट्रस्य वचनाच्चक्रिरे कथाः।। ३७।।
यदा त्वमन्यत नृपो जातकौतूहला इति।
उवाचैतानेत्य तदा पाण्डवानम्बिकासुतः।। ३८।।

तब राजा दुर्योधन ने अपने छोटे भाइयों सहित आमात्यों आदि सारे राज्य अधिकारियों को धन और सम्मान को प्रदान करके धीरे-धीरे अपनी तरफ कर लिया। धृतराष्ट्र की प्रेरणा से कुछ कुशल मन्त्री लोग इस बात को कहने भी लगे कि वारणावत नगर बड़ा सुन्दर है। वह सब प्रकार के रत्नों से भरापूरा है और लोगों के मन को मोहित कर लेने वाला है। वे धृतराष्ट्र के कहने से इसी प्रकार की बातें करते रहते थे। जब अम्बिका पुत्र धृतराष्ट्र को यह विश्वास हो गया कि पाण्डवों के हृदय में भी वारणावत के लिये कौतूहल होने लगा है, तब उसने पाण्डवों से कहा कि–

ममैते पुरुषा नित्यं कथयन्ति पुनः पुनः।
रमणीयतमं लोके नगरं वारणावतम्।। ३९।।
ते ताता यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते।
कंचित् कालं विहृत्यैवमनुभूय परां मुदम्।। ४०।।
इदं वै हास्तिनपुरं सुखिनः पुनरेष्यथ।
धृतराष्ट्रस्य तं काममनुबुध्य युधिष्ठिरः।। ४१।।
आत्मनश्चासहायत्वं तथेति प्रत्युवाच तम्।

मेरे ये मंत्री बार-बार रोज कहते हैं कि वारणावत नगर बहुत सुन्दर है। हे पुत्रों! यदि तुम ठीक समझो तो वारणावत में जो उत्सव अर्थात मेला लगने वाला है, उसमें कुछ समय घूम फिर कर और सुख को उठा कर तुम लोग पुनः आनन्द से हस्तिनापुर में आ जाना। धृतराष्ट्र की उस बात को सुन कर और उसकी इच्छा को समझ कर तथा अपनी विवशता को भी जान कर युधिष्ठिर ने बहुत अच्छा यह कहा।

ततो भीष्मं शांतनवं विदुरं च महामतिम्।। ४२।।
द्रोणं च बाह्लिकं चैव सोमदत्तं च कौरवम्।
कृपमाचार्यपुत्रं च भूरिश्रवसमेव च।। ४३।।
मान्यानन्यानमात्यांश्च ब्राह्मणांश्च तपोधनान्।
पुरोहितांश्च पौरांश्च गान्धारीं च यशस्विनीम्।। ४४।।
युधिष्ठिरः शनैर्दीन उवाचेदं वचस्तदा।
रमणीये जनाकीर्णे नगरे वारणावते।। ४५।।
सगणास्तत्र यास्यामो धृतराष्ट्रस्य शासनात्।

तब शान्तनुपुत्र भीष्म, महामति विदुर, द्रोण, बाह्लीक, और कुरुवंशी सोमदत्त, कृपाचार्य, आचार्य पुत्र अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, आदरणीय मंत्रियों, तपस्वी ब्राह्मणों, पुरोहितों, पुरवासियों, और यशस्विनी गान्धारी को युधिष्ठिर ने धीरे-धीरे दीनभाव से कहा कि हम सुन्दर वारणावत नगर में जहाँ मेला लग रहा है, धृतराष्ट्र के आदेश से परिवार सहित जायेंगे।

प्रसन्नमनसःसर्वे पुण्या वाचो विमुञ्चत।। ४६।।
आशीर्भिर्बृंहितानस्मान् न पापं प्रसहिष्यते।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे पाण्डुपुत्रेण कौरवाः।। ४७।।

प्रसन्नवदना भूत्वा तेऽन्ववर्तन्त पाण्डवान्।
स्वस्त्यस्तु वः पथिसदा भूतेभ्यश्चैव सर्वशः।। ४८।।
मा च वोऽस्त्वशुभं किंचित् सर्वशः पाण्डुनन्दनाः।

आप सब प्रसन्न मन से पवित्र वाणी से हमें आशीर्वाद दीजिये। इससे हमारी वृद्धि होगी और पाप का हमारे ऊपर वश नहीं चलेगा। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर सभी कुरुवंशी लोग प्रसन्न होकर पाण्डवों के अनुकूल यह कहने लगे कि तुम्हें मार्ग में सभी प्राणियों से सुख प्राप्त हों, तुम्हारा कल्याण हो। हे पाण्डुपुत्रों! तुम्हारा कहीं से अनिष्ट न हो।

उन्नीसवाँ अध्याय : वारणावत में लाक्षागृह का निर्माण।

एवमुक्तेषु राज्ञा तु पाण्डुपुत्रेषु भारतः।
दुर्योधनः परं हर्षमगच्छत् स दुरात्मवान्।। १।।
स पुरोचनमेकान्त मानीय वाक्यम ब्रवीत्।
ममेयं वसुसम्पूर्णा पुरोचन वसुंधरा।। २।।
यथेयं मम तद्वत् ते स तां रक्षितुमर्हसि।
नहि मे कश्चिदन्योऽस्ति विश्वासिकतरस्त्वया।। ३।।
सहायो येन संधाय मन्त्रयेयं यथा त्वया।
संरक्ष तात मन्त्रं च सपत्नांश्च ममोद्धर।। ४।।
निपुणेनाभ्युपायेन यद् ब्रवीमि तथा कुरु।

राजा धृतराष्ट्र के द्वारा पाण्डव पुत्रों को वारणावत जाने को कहे जाने पर दुरात्मा भरतवंशी दुर्योधन को बड़ा हर्ष हुआ और उसने पुरोचन को एकान्त में बुला कर यह कहा कि हे पुरोचन! मेरी यह सारी भूमि जैसे मेरी है, वैसे ही तुम्हारी भी है, इसलिये तुम्हें इसकी रक्षा के लिये प्रयत्न करना चाहिये। मेरा तुमसे अधिक विश्वासपात्र और सहायक और कोई नहीं है, जिसके साथ मैं तुम्हारे समान इतनी गुप्त मन्त्रणा कर सकूँ। इसलिये हे तात! तुम इस गुप्त मन्त्रणा की रक्षा करो, अर्थात् इसे किसी से न कहना और मेरे शत्रुओं को उखाड़ फैंको। मैं जैसा कहता हूँ, उसे कुशलता पूर्ण उपाय से पूरा करो।

पाण्डवा धृतराष्ट्रेण प्रेषिता वारणावतम्।। ५।।
उत्सवे विहरिष्यन्ति धृतराष्ट्रस्य शासनात्।
वारणावतमद्यैव यथा यासि तथा कुरु।। ६।।
तत्र गत्वा चतुःशालं गृहं परमसंवृतम्।
नगरोपान्तमाश्रित्य कारयेथा महाधनम्।। ७।।
शणसर्जरसादीनि यानि द्रव्याणि कानिचित्।
आग्नेयान्युत सन्तीह तानि तत्र प्रदापय।। ८।।

धृतराष्ट्र पाण्डवों को वारणावत भेज रहे हैं। वहाँ वे धृतराष्ट्र की आज्ञा से उत्सव में घूमेंगे फिरेंगे। तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे आज ही वारणावत पहुँच सको। वहाँ जाकर चारों तरफ कमरों वाला और बहुत सुरक्षित ऐसा भवन नगर के समीप तैयार कराओ जो बहुत धन खर्च कर सुन्दर रूप से बना हुआ हो। सन, राल, आदि जो भी आग को भड़काने वाले पदार्थ हैं, उन्हें वहाँ दीवारों में लगवाना।

सर्पिस्तैलवसाभिश्च लाक्षया चाप्यनल्पया।
मृत्तिकां मिश्रयित्वा त्वं लेपं कुड्येषु दापय।। ९।।
शणं तैलं घृतं चैव जतु दारूणि चैव हि।
तस्मिन् वेश्मनि सर्वाणि निक्षिपेथाः समन्ततः।। १०।।
यथा च तत्र पश्येरन् परीक्षन्तोऽपि पाण्डवाः।
आग्नेयमिति तत् कार्यमपि चान्येऽपि मानवाः।। ११।।
वेश्मन्येवं कृते तत्र गत्वा तान् परमार्चितान्।
वासयेथाः पाण्डवेयान् कुन्तीं च ससुहृज्जनाम्।। १२।।

बड़ी मात्रा में घी तेल, चर्बी और लाख को मिट्टी में मिला कर उससे दीवारों पर लेप करवाना। सन, तेल, घी, लाख और लकड़ी ये चीजें उस घर में जगह-जगह रख देना। यह काम इस प्रकार से करना कि परीक्षा करने पर भी पाण्डव इस बात को न जान सकें कि यह घर आग्नेय पदार्थों से बना है और दूसरे लोग भी इसे न जान सकें। इस प्रकार से उस घर को बना कर पाण्डवों के वहाँ जाने पर उनका बड़ा सत्कार कर हितैषियों सहित पाण्डवों को और कुन्ती को वहाँ ठहराना।

आसनानि च दिव्यानि यानानि शयनानि च।
विधातव्यानि पाण्डूनां यथा तुष्येत वै पिता।। १३।।
यथा च तत्र जानन्ति नगरे वारणावते।
तथा सर्वं विधातव्यं यावत् कालस्य पर्ययः।। १४।।

वहाँ सुन्दर आसन, सवारियाँ और सुख के साधन ऐसे जुटाना, जिसे सुन कर मेरे पिता जी सन्तुष्ट हों। जब तक उपयुक्त कार्य करने के लिये उचित समय न आ जाये तब तक ऐसा प्रयत्न करते रहना कि इस बात को वारणावत नगर में कोई न जान सके।

ज्ञात्वा च तान् सुविश्वस्ताञ्शयानानकुतोभयान्।
अग्निस्त्वया ततो देयो द्वारतस्तस्य वेश्मनः।। १५।।

दह्यमाने स्वके गेहे दग्धा इति ततो जनः।
न गर्हयेयुरस्मान् वै पाण्डवार्थाय कर्हिचित्।। १६।।
स तथेति प्रतिज्ञाय स्यन्दनेनाशु गामिना।
यथोक्तं राजपुत्रेण सर्वं चक्रे पुरोचनः।। १७।।

जब तुम यह समझ लो कि पाण्डव लोग अच्छी तरह से विश्वस्त हो कर रह रहे हैं, तब वे जब निर्भय होकर सो रहे हों, तुम उस घर के दरवाजे की तरफ से उसमें आग लगा देना। तब लोग यह समझ कर कि पांडव तो अपने ही घर में आग लग जाने के कारण जल गये, वे उनके लिये हमें दोष नहीं देंगे। तब पुरोचन ने बहुत अच्छा यह कह कर, तेज दौड़ने वाले रथ से वारणावत जाकर, जैसा राजकुमार दुर्योधन ने कहा था वैसा ही पूरा कर दिया।

बीसवाँ अध्याय : पाण्डवों की वारणावत यात्रा, विदुर का उन्हें गुप्त उपदेश।

पाण्डवास्तु रथान् युक्तान् सदश्वैरनिलोपमैः।
आरोहमाणा भीष्मस्य पादौ जगृहुरार्तवत्।। १।।
राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य द्रोणस्य च महात्मनः।
अन्येषां चैव वृद्धानां कृपस्य विदुरस्य च।। २।।
एवं सर्वान् कुरून् वृद्धानभिवाद्य यतव्रताः।
समालिङ्ग्य समानान् वै बालैश्चाप्यभिवादिताः।। ३।।
सर्वा मातृस्तथाऽऽपृच्छ्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्।
सर्वाः प्रकृतयश्चैव प्रययुर्वारणावतम्।। ४।।

तब वायु के समान तेज दौड़ने वाले अच्छे घोड़ों से युक्त रथों पर सवार होते हुए पाण्डवों ने दुखी होकर भीष्म जी के चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने राजा धृतराष्ट्र, महात्मा द्रोण तथा दूसरे बड़ों और कृपाचार्य तथा विदुर के चरणों का स्पर्श किया। इस प्रकार उन संयमी पांडवों ने सारे कुरुवंशी वृद्धों को अभिवादन कर अपनी समान आयु के लोगों को गले से लगाया। और बच्चों का अभिवादन स्वीकार किया। अपनी सारी माताओं की आज्ञा ले और उनकी प्रदक्षिणा कर तथा सारी प्रजाओं से भी विदा लेकर वे वारणावत की तरफ चल दिये।

विदुरश्च महाप्राज्ञस्तथान्ये कुरुपुङ्गवाः।
पौराश्च पुरुषव्याघ्रानन्वीयुः शोककर्शिताः।। ५।।
तत्र केचिद् ब्रुवन्ति स्म ब्राह्मणा निर्भयास्तदा।
दीनान् दृष्ट्वा पाण्डुसुतानतीव भृशदुःखिताः।। ६।।
विषमं पश्यते राजा सर्वथा स सुमन्दधीः।
कौरव्यो धृतराष्ट्रस्तु न च धर्मं प्रपश्यति।। ७।।
अधर्म्यमिदमत्यन्तं कथं भीष्मोऽनुमन्यते।
विवास्यमानानस्थाने नगरे योऽभिमन्यते।। ८।।

महाप्राज्ञ विदुर तथा दूसरे कुरुश्रेष्ठ और पुरवासी शोक से दुखी होकर उनके पीछे-पीछे चले। उनमें कुछ निर्भय ब्राह्मण लोग पाण्डु पुत्रों को दीनता से युक्त देख कर अत्यन्त दुखी होकर कहने लगे कि अत्यन्त मन्दबुद्धि वाले कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र की दृष्टि पूरी तरह से विषमता से युक्त है। वे धर्म की तरफ नहीं देख रहे हैं। भीष्म भी इस अधर्मयुक्त कार्य को कैसे समर्थन दे रहे हैं, जो इन्हें न रहने योग्य नगर में निर्वासित किये जाने पर भी चुपचाप हैं।

पितेव हि नृपोऽस्माकमभूच्छांतनवः पुरा।
विचित्रवीर्यो राजर्षिः पाण्डुश्च कुरुनन्दनः।। ९।।
स तस्मिन् पुरुषव्याघ्रे देवभावं गते सति।
राजपुत्रानिमान् बालान् धृतराष्ट्रो न मृष्यते।। १०।।
वयमेतदनिच्छन्तः सर्व एव पुरोत्तमात्।
गृहान् विहाय गच्छामो यत्र गन्ता युधिष्ठिरः।। ११।।
तांस्तथावादिनः पौरान् दुःखितान् दुःखकर्शितः।
उवाच मनसा ध्यात्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।। १२।।

पहले शान्तनु पुत्र विचित्रवीर्य और कुरु नन्दन राजर्षि पाण्डु हमारे पिता के समान राजा थे। उन पुरुष व्याघ्र के दिवंगत हो जाने पर उनके इन बालक राजपुत्रों को धृतराष्ट्र सहन नहीं कर रहे हैं। हम इस कार्य को नहीं चाहते, इसलिये हम सारे ही इस उत्तम पुर से अपने घरों को छोड़ कर वहीं चलेंगे, जहाँ युधिष्ठिर जा रहे हैं। तब उन दुखी हुए पुरवासियों से, जो इस प्रकार कह रहे थे, दुख से पीड़ित धर्मराज युधिष्ठिर ने मन में सोच कर यह कहा कि–

पिता मान्यो गुरुः श्रेष्ठो यदाह पृथिवीपतिः।
अशङ्कमानैस्तत् कार्यमस्माभिरिति नो व्रतम्।। १३।।
भवन्तः सुहृदोऽस्माकमस्मान् कृत्वा प्रदक्षिणम्।
प्रतिनन्द्य तथाशीर्भिर्निवर्तध्वं यथा गृहम्।। १४।।
यदा तु कार्यमस्माकं भवद्भिरुपपत्स्यते।
तदा करिष्यथास्माकं प्रियाणि च हितानि च।। १५।।

एवमुक्तास्तदा पौराः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
आशीर्भिश्चाभिनन्द्यैतान्जग्मुर्नगरमेव हि।। १६।।

राजा धृतराष्ट्र हमारे आदरणीय पिता और श्रेष्ठ गुरु हैं। उन्होंने जो कुछ हमसे कहा है, हमें उसका पालन करना चाहिये, यह हमारा व्रत है। आप हमारे हितैषी हैं, इसलिये हमें दाहिने करते हुए और हमें आशीर्वादों से सन्तुष्ट करते हुए आप अपने अपने घर लौट जाइये। हमें जब आपसे कार्य हो, तब आप हमारा प्रिय और कल्याण करें। ऐसा कहे जाने पर वे पुर वासी उनकी प्रदक्षिणा कर और आशीर्वादों से उनका सम्मान कर नगर की तरफ चले गये।

पौरेषु विनिवृत्तेषु विदुरः सत्यधर्मवित्।
बोधयन् पाण्डवश्रेष्ठमिदं वचनमब्रवीत्।। १७।।
प्राज्ञः प्राज्ञप्रलापज्ञः प्रलापज्ञमिदं वचः।
प्राज्ञं प्राज्ञः प्रलापज्ञः प्रलापज्ञं वचोऽब्रवीत्।। १८।।
यो जानाति परप्रज्ञां नीतिशास्त्रानुसारिणीम्।
विज्ञायेह तथा कुर्यादापदं निस्तरेद् यथा।। १९।।
अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्तनम्।
यो वेत्ति न तु तं घ्नन्ति प्रतिघातविदं द्विषः।। २०।।

पुरवासियों के लौट जाने पर सत्य बात को और धर्म को जानने वाले विदुर पाण्डव श्रेष्ठ युधिष्ठिर को समझाते हुए यह बोले कि– (विदुर जी विद्वान थे और मूर्खों के प्रलाप जैसी प्रतीत होने वाली म्लेच्छों की भाषा को जानते थे। युधिष्ठिर भी विद्वान थे और प्रलाप जैसी उस भाषा के ज्ञाता थे। इसलिये म्लेच्छ भाषा के ज्ञाता विदुर ने तब म्लेच्छ भाषा के ज्ञाता युधिष्ठिर से म्लेच्छ भाषा में ही बात की और जो कुछ उन्होंने कहा उसका अर्थ यह है कि–) जो व्यक्ति शत्रु की नीति शास्त्र के अनुसार कार्य करने वाली बुद्धि को समझ लेता है, उसे अच्छी तरह समझ कर ऐसे उपाय करने चाहिये जिनसे वह संकट से पार उतर सके। अर्थात् शत्रु तुम्हारे साथ छल कपट का व्यवहार कर रहे हैं, तुम्हें सावधान रहते हुए संकट से निकलने के उपाय करते रहना चाहिए। लोहे से बने हुए शस्त्र ही शरीर को नष्ट नहीं करते, बिना लोहे वाले शस्त्र भी शरीर को नष्ट कर देते हैं, जो उन्हें जानता है और उनसे बचने का उपाय भी उसे मालूम होता है, उसे उसके शत्रु भी नहीं मार सकते। अर्थात् लोहे के शस्त्रास्त्रों के द्वारा तुम्हें कोई भी नहीं मार सकता पर बिना लोहे के मारने वाले साधन भी जैसे, आग, विष, पानी आदि होते हैं, यह समझ कर यदि इनसे भी बचने का उपाय करोगे तो शत्रु तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।

कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः।
न दहेदिति चात्मानं यो रक्षति स जीवति।। २१।।
नाचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाचक्षुर्विन्दते दिशः।
नाधृतिर्बुद्धिमाप्नोति बुध्यस्वैवं प्रबोधितः।। २२।।
अनाप्तैर्दत्तमादत्ते नरः शस्त्रमलोहजम्।
श्वाविच्छरणमासाद्य प्रमुच्येत हुताशनात्।। २३।।
चरन् मार्गान् विजानाति नक्षत्रैर्विन्दते दिशः।
आत्मना चात्मनः पञ्च पीडयन् नानुपीड्यते।। २४।।

सारे वन को और सर्दी को समाप्त कर देने वाली आग सारे वन में फैल जाने पर भी बिल में रहने वाले प्राणियों को नहीं जला सकती, यह समझ कर जो अपनी रक्षा करता है, वह जीवित रहता है। अर्थात् यदि तुम्हारे मकान को आग लगा दी जाये तो तुम यदि भूमि में बिल बना कर उसमें रहोगे तो बच जाओगे। जो अन्धा हो जाता है वह न तो रास्ते को जान पाता है और न दिशाओं को और जो धैर्य को छोड़ देता है, उसे सद्बुद्धि नहीं मिलती। मैं तुम्हें समझा रहा हूँ। मेरी बात को समझ लो अर्थात् ज्ञान की आँखों को मत खोना। ज्ञानवान को संकट में भी रास्ते और दिशाएँ मिलती रहती हैं। धैर्य को बनाये रखना। संकट में धैर्य को धारण करने वाला अपनी बुद्धि से काम लेता रहता है और संकट से पार उतर जाता है। जो मनुष्य शत्रु के द्वारा प्रयोग किये हुए बिना लोहे के शस्त्र का सामना कर लेता है वह बिल में घुस कर आग में बच जने वाले साही के समान संकट से बच जाता है। मनुष्य इधर उधर घूम फिर कर रास्तों को समझ लेता है। नक्षत्रों को देख कर दिशाओं का पता लगा लेता है। जो अपनी पाँचों इन्द्रियों को वश में कर के रहता है, वह शत्रु से पीड़ित नहीं होता अर्थात् यदि तुम वहाँ से भागते हुए रास्ता भटक जाओ तो घबराना मत। इधर उधर घूमने से रास्ता मिल जाता है और नक्षत्रों के द्वारा दिशाओं का पता लगा लिया जाता है। यदि तुम पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को अपने बस में रखोगे और पाँचों भाई एक अनुशासन में रहोगे तो शत्रु तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा।

एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजो युधिष्ठिरः।
विदुरं विदुषां श्रेष्ठं ज्ञातमित्येव पाण्डवः।। २५।।

अनुशिक्ष्यानुगम्यैतान् कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्।
पाण्डवानभ्यनुज्ञाय विदुरः प्रययौ गृहान्।। २६।।
निवृत्ते विदुरे चापि भीष्मे पौरजने तथा।
अजातशत्रुमासाद्य कुन्ती वचनमब्रवीत्।। २७।।
क्षत्ता यदब्रवीद् वाक्यं जनमध्येऽब्रुवन्निव।
त्वया च स तथेत्युक्तो जानीमो न च तद् वयम्।। २८।।

ऐसा समझाए जाने पर धर्मराज पाण्डव युधिष्ठिर ने विद्वानों में श्रेष्ठ विदुर से कहा कि मैंने समझ लिया। इस प्रकार उन्हें शिक्षा देकर तथा कुछ दूर तक उनके पीछे चल कर फिर उन्हें जाने की आज्ञा देकर उन्हें दाहिने कर विदुर जी अपने घर को लौट आये। इस प्रकार जब पुर वासी, भीष्म और विदुर सब चले गये, तब कुन्ती अजात शत्रु युधिष्ठिर के पास आकर बोली कि विदुर जी ने हम लोगों के बीच में जो इस प्रकार से बातें कहीं थी जैसे कुछ भी न कहा जा रहा हो और तुमने बहुत अच्छा मैं समझ गया यह कहा था, पर हम लोग कुछ भी नहीं समझ सके।

यदीदं शक्यमस्माभिर्ज्ञातुं न च सदोषवत्।
श्रोतुमिच्छामि तत् सर्वं संवादं तव तस्य च।। २९।।

युधिष्ठिर उवाच

गृहादग्निश्च बोद्धव्य इति मां विदुरोऽब्रवीत्।
पन्थाश्च वो नाविदितः कश्चित् स्यादिति धर्मधीः।। ३०।।
जितेन्द्रियश्च वसुधां प्राप्स्यतीति च मेऽब्रवीत्।
विज्ञातमिति तत् सर्वं प्रत्युक्तो विदुरो मया।। ३१।।

यदि हम भी उन बातों को जान जायें और हमारे जानने पर कोई दोष न होता हो तो मैं तुम्हारी और उनकी सारी बातचीत को जानना चाहती हूँ। तब युधिष्ठिर ने कहा कि धर्म में बुद्धि रखने वाले विदुर जी ने मुझसे कहा है कि तुम्हारे घर में आग लगाये जाने का भय है, यह अच्छी तरह से समझ लो। तुम्हें वहाँ के सारे मार्गों का जानकार होना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा है कि यदि तुम जितेन्द्रिय रहोगे तो सारी भूमि का राज्य प्राप्त कर लोगे। तब मैंने विदुर जी से कहा था कि मैं समझ गया।

इक्कीसवाँ अध्याय : पाण्डवों का लाक्षागृह में निवास, युधिष्ठिर और भीम संवाद।

ततः सर्वाः प्रकृतयो नगराद् वारणावतात्।
सर्वमङ्गलसंयुक्ता यथाशास्त्रमतन्द्रिताः।। १।।
श्रुत्वाऽऽगतान् पाण्डुपुत्रान् नानायानैः सहस्रशः।
अभिजग्मुर्नरश्रेष्ठान् श्रुत्वैव परया मुदा।। २।।
ते प्रविश्य पुरीं वीरास्तूर्णं जग्मुरथो गृहान्।
ब्राह्मणानां महीपालाः रतानां स्वेषु कर्मसु।। ३।।
नगराधिकृतानां च गृहाणि रथिनां तदा।
उपतस्थुर्नरश्रेष्ठा वैश्यशूद्रगृहाण्यपि।। ४।।

तब वारणावत नगर की प्रजा के लोग यह सुन कर कि पाण्डव लोग आ रहे हैं, आलस्य छोड़ कर शास्त्र विधि के अनुसार सारे मंगल के पदार्थों को लेकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अनेक प्रकार की हजारों सवारियों के साथ उनकी आगवानी करने के लिये आगे बढ़ कर आये। तब भूमि पर रहने वाली प्रजाओं का पालन करने वाले वे वीर पाण्डव उस पुरी में प्रवेश कर सबसे पहले शीघ्रता के साथ उन ब्राह्मणों के घरों में गये, जो अपने कर्तव्य पालन में लगे हुए थे। फिर वे नरश्रेष्ठ नगर के अधिकारी रथी क्षत्रियों के घर गये और फिर वैश्य और शूद्रों के घर भी गये।

अर्चिताश्च नरैः पौरैः पाण्डवा भरतर्षभाः।
जग्मुरावसथं पश्चात् पुरोचनपुरस्सराः।। ५।।
तेभ्यो भक्ष्याणि पानानि शयनानि शुभानि च।
आसनानि च मुख्यानि प्रददौ स पुरोचनः।। ६।।
तत्र ते सत्कृतास्तेन सुमहार्हपरिच्छदाः।
उपास्यमानाः पुरुषैरूषुः पुरनिवासिभिः।। ७।।
दशरात्रोषितानां तु तत्र तेषां पुरोचनः।
निवेदयामास गृहं शिवाख्यमशिवं तदा।। ८।।

वे श्रेष्ठ भरतवंशी पुरवासी लोगों के द्वारा सम्मानित होकर पुरोचन को आगे कर अपने अस्थायी निवास स्थान पर पहुँचे। पुरोचन ने उनके लिये अनेक प्रकार के खाने और पीने के पदार्थ, सुन्दर शय्याएँ और श्रेष्ठ आसन प्रस्तुत किये। वहाँ वे बहुमूल्य सामग्रियों का उपभोग करते हुए, पुरोचन के द्वारा सत्कार पाते हुए और पुरवासियों के द्वारा सेवा किये जाते हुए आनन्द से रहने लगे। उनके दस रात्रियों तक वहाँ रहने के पश्चात् पुरोचन ने उनसे उस नये घर के लिये निवेदन किया, जो प्रसिद्धि में तो कल्याणकारी था, पर वास्तव में अकल्याणकारी था।

तत्र ते पुरुषव्याघ्रा विविशुः सपरिच्छदाः।
तच्चागारमभिप्रेक्ष्य सर्वधर्मभृतां वरः॥ ९॥
उवाचाग्नेयमित्येवं भीमसेनं युधिष्ठिरः।
जिघ्राणोऽस्य वसागन्धं सर्पिर्जतुविमिश्रितम्॥ १०॥
कृतं हि व्यक्तमाग्नेयमिदं वेश्म परंतप।

उस घर में वे पुरुष श्रेष्ठ अपने सामान के साथ प्रविष्ट हुए। उस घर को देख कर सारे धर्मात्मा लोगों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने भीम से कहा कि यह घर आग्नेय पदार्थों से बना हुआ है। हे शत्रुओं को संताप देने वाले! सूँघने पर इसमें घी और लाख से मिली हुई चर्बी की गन्ध आ रही है। यह स्पष्ट है कि यह घर अग्नि दीपक पदार्थों से बना हुआ है।

शणसर्जरसव्यक्तमानीय गृहकर्मणि॥ ११॥
मुञ्जबल्वजवंशादि द्रव्यं सर्वं घृतोक्षितम्।
शिल्पिभिः सुकृतं ह्याप्तैर्विनीतैर्वेश्मकर्मणि॥ १२॥
विश्वस्तं मामयं पापो दग्धुकामः पुरोचनः।
तथा हि वर्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः॥ १३॥
इमां तु तां महाबुद्धिर्विदुरो दृष्टवांस्तथा।
आपदं तेन मां पार्थ स सम्बोधितवान् पुरा॥ १४॥
ते वयं बोधितास्तेन नित्यमस्मद्धितैषिणा।
पित्रा कनीयसा स्नेहाद् बुद्धिमन्तोऽशिवं गृहम्॥ १५॥
अनार्यैः सुकृतं गूढैर्दुर्योधनवशानुगैः।

सन, राल, मूँज बल्वज और बाँस आदि को लाकर, उन्हें अच्छी तरह से मिला कर और घी से सींच कर गृह निर्माण कार्य में कुशल तथा आज्ञाकारी शिल्पियों के द्वारा यह सुन्दर ढंग से बनाया गया है। दुर्योधन का आज्ञाकारी यह मन्द बुद्धि पुरोचन हमें विश्वस्त जान कर जलाने की इच्छा रखता है और इसी ताक में लगा रहता है। इन सारी बातों को महा बुद्धिमान विदुर ने समझ लिया था। हे पार्थ! उन्होंने इस आपत्ति के बारे में मुझे पहले ही सचेत कर दिया था। विदुर जी हमारे छोटे पिता हैं। वे हमारे सदा हितैषी हैं। उन बुद्धिमान ने हमारे प्रति स्नेह के कारण इस अकल्याणकारी घर के बारे में कि यह दुर्योधन के वशवर्ती दुष्ट कारीगरों के द्वारा गुप्त रूप से बनाया हुआ है, आदि सारी बातें मुझे समझा दी थीं।

भीमसेन उवाच

यदीदं गृहमाग्नेयं विहितं मन्यते भवान्॥ १६॥
तथैव साधु गच्छामो यत्र पूर्वोषिता वयम्।

युधिष्ठिर उवाच

इह यत्तैर्निराकारैर्वस्तव्यमिति रोचये॥ १७॥
अप्रमत्तैर्विचिन्वद्भिर्गतिमिष्टां ध्रुवामितः।
यदि विन्देत चाकारमस्माकं स पुरोचनः॥ १८॥
क्षिप्रकारी ततो भूत्वा प्रदह्यादपि हेतुतः।
वयं तु यदि दाहस्य बिभ्यतः प्रद्रवेमहि॥ १९॥
स्पशैर्निर्घातयेत् सर्वान् राज्यलुब्धःसुयोधनः।

तब भीमसेन ने कहा कि यदि आप इस घर को आग्नेय पदार्थों से बना हुआ मानते हैं, तो हम उसी घर में जा कर कुशल पूर्वक रहें, जहाँ हम पहले रहते थे। तब युधिष्ठिर ने कहा कि यहाँ हमें संयम पूर्वक अपनी आकृतियों से किसी भी प्रकार अपने मनोभावों को न प्रकट करते हुए रहना चाहिये। यही मुझे उचित लगता है। हमें यहाँ प्रमाद रहित होकर अपने इष्ट निश्चित मार्ग का पता लगाते हुए, जिससे हम यहाँ से भाग कर जायें, रहना चाहिये। यदि पुरोचन हमारी आकृतियों से हमारे मनोभावों को जान लेगा तो वह जल्दी अपना काम पूरा करने के लिये किसी दूसरे कारण से हमें जला सकता है। हम यदि जलने के डर से यहाँ से भाग जायें तो राज्य का लोभी दुर्योधन अपने गुप्तचरों के द्वारा हमें मरवा सकता है।

अपदस्थान् पदे तिष्ठन्नपक्षान् पक्षसंस्थितः॥ २०॥
हीनकोशान् महाकोशः प्रयोगैर्घातयेद् ध्रुवम्।
तदस्माभिरिमं पापं तं च पापं सुयोधनम्॥ २१॥
वञ्चयद्भिर्निवस्तव्यं छन्नावासं क्वचित् क्वचित्।
ते वयं मृगयाशीलाश्चराम वसुधामिमाम्॥ २२॥
तथा नो विदिता मार्गा भविष्यन्ति पलायताम्।
भौमं च बिलमद्यैव करवाम सुसंवृतम्॥ २३॥
गूढश्वासान्न नस्तत्र हुताशः सम्प्रधक्ष्यति।
वसतोऽत्र यथा चास्मान्न बुध्येत पुरोचनः।
पौरो वापि जनः कश्चित् तथा कार्यमतन्द्रितैः॥ २४॥

वह इस समय अधिकार युक्त है और हम अधिकार रहित हैं। वह सहायकों के साथ है और हम सहायकों से रहित हैं। उसके पास धन है, हम धन से रहित हैं। अतः वह निश्चित रूप से और दूसरे उपायों से हमें मरवा सकता है, इसलिये हमें इस पापी पुरोचन को और पापी दुर्योधन को भी धोखा देते हुए यहीं किसी गुप्त जगह में रहना चाहिये। हम शिकार के बहाने इस भूमि के आस पास घूमें। इससे हमें भागने के लिये रास्तों का पता

लग जायेगा। हम आज से ही भूमि के अन्दर एक छिपा हुआ गड्‌ढा बिल जैसा बनायें, जहाँ हमारी साँस तक छिपी रहेगी, वहाँ हमें आग नहीं जला सकेगी। यहाँ रहते हुए हमें तन्द्रा रहित होकर इस प्रकार कार्य करना चाहिये, जिससे पुरोचन को और किसी पुरवासी जन को हमारे कार्यों का पता न लगे।

बाईसवाँ अध्याय : सुरंग, का निर्माण, लाक्षागृहदाह, पाण्डवों का बचाव।

विदुरस्य सुहृत् कश्चित् इदं वचनमब्रवीत्।
प्रहितो विदुरेणास्मि खनकः कुशलो ह्यहम्।। १।।
पाण्डवानां प्रियं कार्यमिति किं करवाणि वः।
प्रच्छन्नं विदुरेणोक्तःश्रेयस्त्वमिति पाण्डवान्।। २।।
प्रतिपादय विश्वासादिति किं करवाणि वः।
किंचिच्च विदुरेणोक्तो म्लेच्छवाचासि पाण्डव।। ३।।
त्वया च तत् तथेत्युक्तमेतद् विश्वासकारणम्।

एक दिन विदुर के किसी हितैषी ने आकर पाण्डवों से कहा कि मैं विदुर जी के द्वारा भेजा हुआ हूँ। मैं खुदाई करने में कुशल हूँ। मुझे पाण्डवों का प्रिय करना है। बताइये, मैं क्या करूँ? मुझे विदुर जी ने गुप्त रूप से यह कहा है कि तुम पाण्डवों को विश्वास में लेकर उनके हित का कार्य गुप्त रूप से करो। इसलिये आप बताइये कि मैं आपका क्या कार्य करूँ? हे पाण्डुपुत्र! आपसे विदुर जी ने म्लेच्छ भाषा में कुछ कहा था, आपने तब कहा था कि बहुत अच्छा। मैं यह बात आपको अपने ऊपर विश्वास दिलाने के लिये कह रहा हूँ।

उवाच तं सत्यधृतिः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।। ४।।
अभिजानामि सौम्य त्वां सुहृदं विदुरस्य वै।
शुचिमाप्तं प्रियं चैव सदा च दृढभक्तिकम्।। ५।।
न विद्यते कवेः किंचिदविज्ञातं प्रयोजनम्।
यथा तस्य तथा नस्त्वं निर्विशेषा वयं त्वयि।। ६।।
भवतश्च यथा तस्य पालयास्मान् यथा कविः।
इदं शरणमाग्नेयं मदर्थमिति मे मतिः।। ७।।
पुरोचनेन विहितं धार्तराष्ट्रस्य शासनात्।

तब सत्य को धारण करने वाले कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर ने कहा कि हे सौम्य! मैं तुम्हें पहचानता हूँ। तुम विदुर जी के मित्र, पवित्र भावना वाले, शुद्ध आचरण वाले, प्रिय और उनके प्रति दृढ़ भक्ति रखने वाले हो। उन ज्ञान वान विदुर जी को हमारा कोई भी प्रयोजन छिपा नहीं है। जैसे तुम उनके हो वैसे ही हमारे भी हो। हम भी तुम्हे उन जैसा ही समझते हैं। जैसे हम उनके हैं वैसे ही आपके भी हैं। इसलिये जैसे वे हमारा पालन करते हैं, वैसे ही तुम भी करो। मेरा विचार है कि यह घर अग्निदीपक है और धृतराष्ट्र के पुत्र के आदेश से पुरोचन ने इसे हमारे लिये बनाया है।

स तथेति प्रतिश्रुत्य खनको यत्नमास्थितः।। ८।।
चक्रे च वेश्मनस्तस्य मध्येनातिमहद् बिलम्।
पुरोचनभयादेव व्यदधात् संवृतं मुखम्।। ९।।
स तस्य तु गृहद्वारि वसत्यशुभधीः सदा।
दिवा चरन्ति मृगयां पाण्डवेया वनाद् वनम्।। १०।।
विश्वस्तवदविश्वस्ता वञ्चयन्तः पुरोचनम्।
न चैनानन्वबुध्यन्त नरा नगरवासिनः।। ११।।
अन्यत्र विदुरामात्यात् तस्मात् खनकसत्तमात्।

तब उस खनक ने बहुत अच्छा ऐसा ही होगा ऐसी प्रतिज्ञा करके प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। उसने उस घर के बीच में एक बड़ी सुरंग बनाई और पुरोचन के भय से उसके मुख को ढक दिया। वह अशुभ बुद्धि वाला पुरोचन सदा उस घर के द्वार पर ही रहता था। पाण्डव लोग दिन में शिकार के लिये एक वन से दूसरे वन में घूमते रहते थे। वे पुरोचन को धोखा देते हुए अविश्वासी होते हुए भी विश्वासी के समान रहते थे। उस उत्तम खनक के अतिरिक्त जो विदुर जी का मंत्री था, नगर के निवासी लोग भी पाण्डवों की गतिविधियों के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे।

तांस्तु दृष्ट्वा सुमनसः परिसंवत्सरोषितान्।। १२।।
विश्वस्तानिव संलक्ष्य हर्षं चक्रे पुरोचनः।
पुरोचने तथा हृष्टे कौन्तेयोऽथ युधिष्ठिरः।। १३।।
भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमौ प्रोवाच धर्मवित्।
अस्मानयं सुविश्वस्तान् वेत्ति पापः पुरोचनः।। १४।।
वञ्चितोऽयं नृशंसात्मा कालं मन्ये पलायने।

जब उन्हें विश्वस्त लोगों के समान प्रसन्नता युक्त हो कर रहते हुए एक वर्ष हो गया तब उन्हें देख कर पुरोचन को बड़ा हर्ष हुआ। पुरोचन को हर्षित देख कर धर्मज्ञ कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर ने भीमसेन और अर्जुन तथा दोनों जुडवाँ भाइयों से कहा कि यह

पापी पुरोचन हमें यहाँ अच्छी तरह से विश्वस्त होकर रहते हुए समझ रहा है। इस क्रूर आत्मा को हम धोखा देते रहे हैं। अब हमारा भागने का समय आ गया है।

अथ प्रवाते तुमुले निशि सुप्ते जने तदा।। १५।।
तदुपादीपयद् भीमः शेते यत्र पुरोचनः।
ततो जतुगृहद्वारं दीपयामास पाण्डवः।। १६।।
समन्ततो ददौ पश्चादग्निं तत्र निवेशने।
ज्ञात्वा तु तद् गृहं सर्वमादीप्तं पाण्डुनन्दनाः।। १७।।
सुरङ्गां विविशुस्तूर्णं मात्रा सार्धमरिंदमाः।
बिलेन तेन निर्गत्य जग्मुर्द्रुतमलक्षिताः।। १८।।

उसके बाद एक दिन जब रात में सब लोग सोये हुए थे, भयानक आँधी चलने लगी। तब भीम ने उस जगह आग लगा दी, जहाँ पुरोचन सोया हुआ था। उसके बाद उस लाख के घर के दरवाजे पर उसने आग लगा दी। फिर उसने उस घर में सब तरफ आग लगा दी। जब उन्होंने यह समझ लिया कि सारा घर आग की लपेट में आ गया है, वे शत्रुओं का दमन करने वाले पाण्डु नन्दन जल्दी से माता के साथ उस सुरंग में घुस गये। वे उस सुरंग के मार्ग से बिना किसी के देखे हुए बाहर निकल कर जल्दी से दूर चले गये।

तेईसवाँ अध्याय : पाण्डवों हेतु शोक, विदुर के दूत का उन्हें गंगा पार कराना।

अथ रात्र्यां व्यतीतायामशेषो नागरो जनः।
तत्राजगाम त्वरितो दिदृक्षुः पाण्डुनन्दनान्।। १।।
निर्वापयन्तो ज्वलनं ते जनाः दृशुस्ततः।
जातुषं तद् गृहं दग्धं अमात्यं च पुरोचनम्।। २।।
खनकेन तु तेनैव वेश्मशोधयता बिलम्।
पांसुभिः पिहितं तच्च पुरुषैस्तैर्न लक्षितम्।। ३।।
ततस्ते ज्ञापयामासुः धृतराष्ट्रस्य नागराः।
पाण्डवानग्निना दग्धानमात्यं च पुरोचनम्।। ४।।

तब रात के बीतने पर सारे नगर वासी लोग पाण्डवों को देखने के लिये वहाँ जल्दी से एकत्र हो गये। आग को बुझाते हुए उन्होंने देखा कि सारा घर लाख का बना हुआ था और मंत्री पुरोचन भी उसमें जल कर मर गया था। तब उस खनक ने जले हुए घर को साफ करते हुए उस सुरंग के छिद्र को धूल मिट्टी से भर दिया, जिससे और दूसरे लोगों की निगाह उस पर नहीं पड़ी। फिर नगर वासियों ने धृतराष्ट्र को यह सूचित कर दिया कि पाण्डव और आमात्य पुरोचन अग्नि में जल गये।

श्रुत्वा तु धृतराष्ट्रस्तद् राजा सुमहदप्रियम्।
विनाशं पाण्डु पुत्राणां विललाप सुदुःखितः।। ५।।
अद्य पाण्डुर्मृतो राजा मम भ्राता महायशाः।
तेषु वीरेषु दग्धेषु मात्रा सह विशेषतः।। ६।।
गच्छन्तु पुरुषाः शीघ्रं नगरं वारणावतम्।
सत्कारयन्तु तान् वीरान् कुन्तिराजसुतां च ताम्।। ७।।
कारयन्तु च कुल्यानि शुभानि च बृहन्ति च।
ये च तत्र मृतास्तेषां सुहृदो यान्तु तानपि।। ८।।

तब राजा धृतराष्ट्र पाण्डु पुत्रों के विनाश के इस महान दुखदायी समाचार को सुन कर बड़े दुखी होकर विलाप करने लगे कि माता के साथ उन वीरों के भस्म हो जाने पर आज मुझे विशेष रूप से यह लग रहा है कि आज मेरे महा यशास्वी भाई राजा पाण्डु की मृत्यु हुई है। लोग जल्दी ही वारणावत नगर को जायें और कुन्तीराज की पुत्री कुन्ती तथा उन वीरों के प्रति सम्मान अर्पित करें। वे उनके लिये पवित्र कुल धर्म के कार्यों को विशाल रूप से करायें। उनके अतिरिक्त और दूसरे भी जो लोग मरे हैं, उनके पारिवारिक लोग भी वहाँ जायें।

एवं गते मयाशक्यं यद् यत् कारयितुं हितम्।
पाण्डवानां च कुन्त्याश्च तत् सर्वं क्रियतां धनैः।। ९।।
रुरुदुः सहिताः सर्वे भृशं शोकपरायणाः।
हा युधिष्ठिर कौरव्य हा भीम इति चापरे।। १०।।
हा फाल्गुनेति चाप्यन्ये हा यमाविति चापरे।
अन्ये पौरजनाश्चैवमन्वशोचन्त पाण्डवान्।। ११।।
विदुरस्त्वल्पशश्चक्रे शोकं वेद परं हि सः।

इस दुर्घटना के हो जाने पर मेरे द्वारा उनकी भलाई के लिये जो कुछ भी किया जा सकता है वह सब धन व्यय करके पाण्डवों और कुन्ती के लिये किया जाये। उस समय सारे लोग शोक परायण होकर हा कुरुवंश शिरोमणि युधिष्ठिर! हा भीम! हा अर्जुन! हा नकुल! सहदेव! ऐसा कहते हुए एक साथ रो रहे थे। इसी प्रकार और दूसरे पुर निवासी भी पाण्डवों के लिये अपना शोक प्रकट कर रहे थे।

विदुर जी भी शोक प्रकट कर रहे थे, पर उन्होंने थोड़ा शोक प्रकट किया क्योंकि वे वास्तविकता को जानते थे।

एतस्मिन्नेव काले तु यथासम्प्रत्ययं कविः।। १२।।
विदुरः प्रेषयामास तद् वनं पुरुषं शुचिम्।
स गत्वा तु यथोद्देशं पाण्डवान् ददृशे वने।। १३।।
जनन्या सह कौरव्यान् मापयानान् नदीजलम्।
ततः पुनरथोवाच ज्ञापकं पूर्वचोदितम्।। १४।।
युधिष्ठिर निबोधेदं संज्ञार्थं वचनं कवेः।
कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः।। १५।।
न हन्तीत्येवमात्मानं यो रक्षति स जीवति।

इसी समय के बीच में ज्ञानी विदुर जी ने अपने विश्वस्त और शुद्ध विचारों वाले एक पुरुष को उस वन में जहाँ पाण्डव लोग जा रहे थे, भेजा। उस व्यक्ति ने वन में उसी स्थान पर पहुँच कर, जहाँ के लिये विदुर जी ने उसे बताया था, अपनी माता के साथ कुरुश्रेष्ठ पाण्डवों को देखा जो नदी के किनारे खड़े हुए पानी की माप के बारे में अनुमान लगा रहे थे। उसने युधिष्ठिर से कहा कि आपसे विदुर जी ने जो बात पहले कही थी, उसी पहचान कराने वाली बात को मैं आपको यह बताने के लिये कि मैं विदुर जी का विश्वस्त पुरुष हूँ, आपसे कह रहा हूँ। आप इसे समझिये। उन्होंने आपसे कहा था कि वनों को और सर्दी को समाप्त कर देने वाली आग विशाल वन में फैल जाने पर भी बिल में रहने वाले प्राणियों को नहीं जला पाती। इसी प्रकार जो अपनी रक्षा करता है, वह जीवित रहता है।

तेन मां प्रेषितं विद्धि विश्वस्तं संज्ञयानया।। १६।।
भूयश्चैवाह मां क्षत्ता विदुरः सर्वतोऽर्थवित्।
कर्णं दुर्योधनं चैव भ्रातृभिः सहितं रणे।। १७।।
शकुनिं चैव कौन्तेय विजेतासि न संशयः।
इयं वारिपथे युक्ता नौरप्सु सुखगामिनी।। १८।।
मोचयिष्यति वः सर्वानस्माद् देशान्न संशयः।

इस पहचान वाक्य से आप मुझे विदुर जी के द्वारा भेजा हुआ समझें। दक्ष विदुर जी ने मुझसे यह भी कहा है कि इसमें कोई संशय नहीं है कि तुम कुन्ती पुत्र युद्ध में कर्ण, भाइयों सहित दुर्योधन, और शकुनि को जीत लोगे।

अथ तान् व्यथितान् दृष्ट्वा सह मात्रा नरोत्तमान्।। १९।।
नावमारोप्य गङ्गायां प्रस्थितानब्रवीत् पुनः।
विदुरो मूर्ध्न्युपाघ्राय परिष्वज्य वचो मुहुः।। २०।।
अरिष्टं गच्छताव्यग्राः पन्थानमिति चाब्रवीत्।
तारयित्वा ततो गङ्गां पारं प्राप्तांश्च सर्वशः।। २१।।
जयाशिषः प्रयुज्याथ यथागतमगाद्धि सः।

उसके पश्चात् उन नरश्रेष्ठ पांडवों को माता के साथ नाव में बैठा कर गंगा में प्रस्थान करने पर उन्हें दुखी देख कर उसने फिर कहा कि विदुर जी ने अपनी भावनाओं के द्वारा आप लोगों को गले लगा कर और आपके सिर सूँघ कर पुनः यह कहा है कि तुम बिना व्यग्र हुए कुशल पूर्वक अपने मार्ग पर बढ़ते जाओ। उसके बाद गंगा को पार कर उन्हें पूरी तरह से उस पार पहुँचा कर उन्हें आपकी जय हो, यह आशीर्वाद सुना कर वह व्यक्ति जैसे आया था वैसे ही लौट गया।

चौबीसवाँ अध्याय : भीम का कुन्ती के लिये जल लाना, विषाद, दुर्योधन के प्रति क्रोध।

पाण्डवाश्चापि निर्गत्य प्रययुर्दक्षिणां दिशम्।
विज्ञाय निशि पन्थानं नक्षत्र गण सूचितम्।। १।।
अगमंश्च वनोद्देशमल्पमूलफलोदकम्।
क्रूरपक्षिमृगं घोरं सायाह्ने भरतर्षभाः।। २।।
अप्रकाशा दिशः सर्वा वातैरासन्ननार्तवैः।
ते श्रमेण च कौरव्यास्तृष्णया च प्रपीडिताः।। ३।।
नाशक्नुवंस्तदा गन्तुं निद्रया च प्रवृद्धया।
ततस्तृषापरिक्लान्ता कुन्ती पुत्रानथाब्रवीत्।। ४।।

पाण्डव भी तब उस गंगा के तटवर्ती स्थान से बाहर निकल कर रात में नक्षत्रों के सहारे दिशाओं को जानते हुए, दक्षिण दिशा की तरफ चल दिये। वे लगातार चलते रहे और दिन भर यात्रा के उपरान्त सायँकाल वे भरतश्रेष्ठ एक ऐसे भयानक वन प्रदेश में पहुँचे, जो क्रूर स्वभाव वाले पक्षियों और पशुओं से युक्त था और जहाँ फल, मूल और पानी भी बहुत कम था। उस समय बे मौसम की हवाएँ चलने से सारी दिशाएँ प्रकाश से रहित हो रहीं थीं। वे कुरुश्रेष्ठ उस समय थकावट और प्यास से पीड़ित होकर, तथा निद्रा का प्रकोप होने के कारण आगे और चलने में असमर्थ हो गये, तब प्यास से परेशान होकर कुन्ती अपने पुत्रों से बोली कि—

तृष्णया परीतास्मि पंचानां मध्यतः स्थिता।
तच्छ्रुत्वा भीमसेनस्य मातृस्नेहात् प्रजल्पितम्।। ५।।
कारुण्येन मनस्तप्तं गमनायोपचक्रमे।
ततो भीमो वनं घोरं प्रविश्य विजनं महत्।। ६।।
न्यग्रोधं विपुलच्छायं रमणीयं ददर्श ह।
तत्र निक्षिप्य तान् सर्वानुवाच भरतर्षभः।। ७।।
एते रुवन्ति मधुरं सारसा जलचारिणः।
ध्रुवमत्र जलस्थानं महच्चेति मतिर्मम।। ८।।

मैं प्यास से परेशान हूँ। तुम पाँच भाई मेरे साथ हो। अर्थात् तुम पाँचों इधर उधर जाकर पानी की खोज करो। माता का स्नेह से भरा हुआ वह वचन सुन कर भीमसेन का मन करुणा से भर आया और वे पानी के लिये जाने की तैयारी करने लगे। फिर भीम ने उस भयानक और सुनसान तथा विशाल वन में प्रवेश कर एक पीपल के गहरी छाया वाले सुन्दर वृक्ष को देखा। वहाँ उन सबको ठहरा कर उस भरत श्रेष्ठ ने कहा कि ये जल चर सारस यहाँ मीठी ध्वनि बोल रहे हैं। मेरा विश्वास है कि यहाँ निश्चित रूप से कोई विशाल जल का भण्डार है।

अनुज्ञातः स गच्छेति भ्रात्रा ज्येष्ठेन भारतः।
जगाम तत्र यत्र स्म सारसा जलचारिणः।। ९।।
तेषामर्थे स जग्राह भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलः।
उत्तरीयेण पानीयमानयामास भारतः।। १०।।
गव्यूतिमात्रादागत्य त्वरितो मातरं प्रति।
शोकदुःखपरीतात्मा निःशश्वासोरगो यथा।। ११।।
स सुप्तां मातरं दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च वसुधातले।
भृशं शोकपरीतात्मा विललाप वृकोदरः।। १२।।

तब बड़े भाई युधिष्ठिर के द्वारा अनुमति दिये जाने पर वे भरतवंशी भीम उस तरफ गये, जहाँ जलचर सरस विद्यमान थे। वहाँ उन भाइयों के प्रेमी भीम ने अपनी उन भाइयों के लिये अपनी चादर में पानी को लिया और उसे लेकर वहाँ आये। वे दो कोस की दूरी से जल्दी-जल्दी माता के पास आये थे और उस समय शोक और दुख से भरे हुए साँप की तरह लम्बे साँस ले रहे थे। वहाँ उन्होंने देखा कि माता और भाई थकावट के कारण भूमि पर सो गये थे। तब अत्यधिक शोक से भरे हुए भीमसेन विलाप करने लगे।

अतः कष्टतरं किं नु द्रष्टव्यं हि भविष्यति।
यत् पश्यामि महीसुप्तान् भ्रातॄनद्य सुमन्दभाक्।। १३।।
शयनेषु परार्ध्येषु ये पुरा वारणावते।
नाधिजग्मुस्तदा निद्रां तेऽद्य सुप्ता महीतले।। १४।।

वे कहने लगे कि मैं बड़ा मन्दभागी हूँ, जो आज अपने भाइयों को भूमि पर सोये हुए देख रहा हूँ। इससे अधिक कष्टदायक और क्या बात हो सकती है? पहले वारणावत में जिन्हें बहुमूल्य शय्याओं पर भी नींद नहीं आती थी, वे ही आज भूमि पर सो रहे हैं।

स्वसारं वसुदेवस्य शत्रुसङ्घावमर्दिनः।
कुन्तिराजसुतां कुन्तीं सर्वलक्षणपूजिताम्।। १५।।
स्नुषां विचित्रवीर्यस्य भार्यां पाण्डोर्महात्मनः।
तथैव चास्मज्जननीं पुण्डरीकोदरप्रभाम्।। १६।।
सुकुमारतरामेनां महार्हशयनोचिताम्।
शयानां पश्यताद्येह पृथिव्यामतथोचिताम्।। १७।।
त्रिषु लोकेषु यो राज्यं धर्मनित्योऽर्हते नृपः।
सोऽयं भूमौ परिश्रान्तः शेते प्राकृतवत् कथम्।। १८।।

जो शत्रुओं का मर्दन करने वाले वसुदेव की बहिन हैं, उन कुन्ती राज की पुत्री सारे उत्तम लक्षणों से युक्त कुन्ती को, जो विचित्रवीर्य की पुत्रवधु और महात्मा पाण्डु की पत्नी और हमें जन्म देने वाली है, जो कमल के मध्यभाग के समान कान्ति वाली है, अत्यन्त सुकुमार और बहुमूल्य बिस्तरे पर सोने योग्य है, उन्हें आज यहाँ भूमि पर अनुचित अवस्था में सोता हुआ देखो। जो राजा सदा धर्म का पालन करते हैं, जो तीनों लोकों पर राज्य करने योग्य हैं, वे ही थके हुए सामान्य मनुष्यों की तरह कैसे भूमि पर सो रहे हैं।

अयं नीलाम्बुदश्यामो नरेष्वप्रतिमोऽर्जुनः।
शेते प्राकृतवद् भूमौ ततो दुःखतरं नु किम्।। १९।।
अश्विनाविव देवानां याविमौ रूपसम्पदा।
तौ प्राकृतवदद्येमौ प्रसुप्तौ धरणीतले।। २०।।
वयं तु धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण दुरात्मना।
विवासिता न दग्धाश्च कथंचिद् दैवसंश्रयात्।। २१।।
तस्मान्मुक्ता वयं दाहादिमं वृक्षमुपाश्रिताः।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामः प्राप्ताः क्लेशमनुत्तमम्।। २२।।

ये नीले मेघों के समान साँवले, मनुष्यों में अद्वितीय अर्जुन सामान्य व्यक्तियों के समान भूमि पर सो रहे हैं, इससे अधिक दुखदायक बात क्या होगी? जो ये दोनों भाई अपनी सौन्दर्य सम्पत्ति से देवताओं में अश्विनी कुमार के समान हैं, वे भी

आज सामान्य मनुष्यों के समान भूमि पर सो रहे हैं। हमें तो उस दुरात्मा पुत्रों सहित धृतराष्ट्र ने घर से निकाल दिया और जला दिया, पर हम परमात्मा के सहारे से किसी प्रकार जलने से बच गये। उस जलने से बचे हुए हम इस वृक्ष के नीचे पड़े हुए हैं। हम भारी कष्ट का सामना कर रहे हैं। हमें पता नहीं कि हमें किस तरफ जाना है?

सकामो भव दुर्बुद्धे धार्तराष्ट्राल्पदर्शन।
प्रयच्छति वधे तुभ्यं नानुज्ञां मे युधिष्ठिरः।। २३।।
गत्वा क्रोधसमाविष्टः प्रेषयिष्ये यमक्षयम्।
किं नु शक्यं मया कर्तुं यत् ते न क्रुध्यते नृपः।। २४।।
धर्मात्मा पाण्डवश्रेष्ठः पापाचार युधिष्ठिरः।
एवमुक्त्वा महाबाहुः क्रोधसंदीप्तमानसः।। २५।।
करं करेण निष्पिष्य निःश्वसन् दीनमानसः।
पुनर्दीनमना भूत्वा शान्तार्चिरिव पावकः।। २६।।
भ्रातृन् महीतले सुप्तानवैक्षत वृकोदरः।
विश्वस्तानिव संविष्टान् पृथग्जनसमानिव।। २७।।

अरे धृतराष्ट्र के मूर्ख और दुर्बुद्धि पुत्र दुर्योधन! आज तेरी इच्छा पूरी हुई। युधिष्ठिर मुझे तेरे वध की आज्ञा नहीं दे रहे। नहीं तो क्रुद्ध होकर तुझे आज ही मन्त्रियों, कर्ण, छोटे भाई, और शकुनि के साथ मृत्यु के घर भेज दूँ। पर अरे पापाचारी मैं क्या करूँ? श्रेष्ठ पाण्डव धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर तेरे ऊपर क्रोध नहीं कर रहे हैं। ऐसा कह कर वे महाबाहु, जिनका हृदय क्रोध से जल रहा था, हाथ को हाथ से मलते हुए दीनता से युक्त होकर लम्बी साँसें लेने लगे। इसके पश्चात् वे फिर जिसकी लपटें शान्त हो गयीं हैं, ऐसी अग्नि के समान, दीन मन से अपने उन भाइयों को देखने लगे, जो सामान्य लोगों के समान भूमि तल पर निश्चिन्त होकर सोये पड़े थे।

नातिदूरेण नगरं वनादस्माद्धि लक्षये।
जागर्तव्ये स्वपन्तीमे हन्त जागर्म्यहं स्वयम्।। २८।।
पास्यन्तीमे जलं पश्चात् प्रतिबुद्धा जितक्लमाः।
इति भीमो व्यवस्यैव जजागार स्वयं तदा।। २९।।

तब भीम ने विचार किया कि इस वन के समीप ही नगर दिखाई देता है, इन्हें अब जागना चाहिये, पर ये सो रहे हैं, इसलिये मैं ही जागता हूँ। जब इनकी थकावट दूर हो जाएगी, तब ये जाग कर जल पी लेंगे। ऐसा सोच कर भीमसेन जाग कर पहरा देने लगे।

पच्चीसवाँ अध्याय : हिडिम्बा राक्षसी का भीम से प्रेम, भीम द्वारा हिडिम्ब का वध।

तत्र तेषु शयानेषु हिडिम्बो नाम राक्षसः।
अविदूरे वनात् तस्मात् शालवृक्षं समाश्रितः।। १।।
क्रूरो मानुषमांसादो महावीर्य पराक्रमः।
प्रावृड जलधरश्यामः पिंगाक्षो दारुणाकृतिः।। २।।
पिशितेप्सुः क्षुधार्तश्च तानपश्यत् यदृच्छया।
हृष्टो मानुषमांसस्य भगिनीमिदमब्रवीत्।। ३।।
उपपन्नश्चिरस्याद्य भक्षोऽयं मम सुप्रियः।
स्नेहस्रवान् प्रस्रवति जिह्वा पर्यैति मे सुखम्।। ४।।

जहाँ वे पाण्डव लोग सो रहे थे, उस वन के समीप ही एक शाल वृक्ष का आश्रय लेकर अर्थात् शाल वृक्ष के नीचे एक हिडिम्ब नाम का राक्षस रहता था। वह बड़ा क्रूर, मनुष्य के माँस को खाने वाला, महान बल और पराक्रम वाला था। वह वर्षाकालीन मेघों के समान काला, पिंगल आँखों, और भयानक आकृति वाला था। वह उस समय भूखा था और कच्चा माँस खाने का इच्छुक था। उसने अचानक उन पांडवों को देख लिया। मनुष्य का मांस खाने के लिये हर्षित वह अपनी बहिन से बोला कि आज बहुत दिनों के बाद मुझे मेरा प्यारा भोजन मिला है। उस भोजन के सुख की कल्पना कर मेरी जिह्वा से लार टपक रही है।

गच्छ जानीहि के त्वेते शेरते वनमाश्रिताः।
हत्वैतान् मानुषान् सर्वानानयस्व ममान्तिकम्।। ५।।
अस्मद्विषयसुप्तेभ्यो नैतेभ्यो भयमस्ति ते।
भक्षयित्वा च मांसानि मानुषाणां प्रकामतः।। ६।।
नृत्याव सहितावावां दत्ततालावनेकशः।
एवमुक्ता हिडिम्बा तु हिडिम्बेन तदा वने।। ७।।
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणेव राक्षसी।
ददर्श तत्र सा गत्वा पाण्डवान् पृथया सह।। ८।।
शयानान् भीमसेनं च जाग्रतं त्वपराजितम्।

तू जाकर मालूम कर कि ये कौन वन में सो रहे हैं। इन सबको मार कर मेरे पास ले आ। ये हमारे राज्य में सो रहे हैं, इसलिये इनसे तुझे कोई भय नहीं है। इन मनुष्यों के माँस को इच्छानुसार खाकर हम फिर दोनों ताल देते हुए एक साथ नृत्य करेंगे। ऐसा कहने पर वह राक्षसी हिडिम्बा भाई

हिडिम्ब के कथनानुसार जल्दी से वहाँ गयी और वहाँ उसने पाण्डवों को कुन्ती के साथ सोये हुए और किसी से पराजित न होने वाले भीम को जागते हुए देखा।

दृष्ट्वैव भीमसेनं सा शालपोतमिवोद्गतम्।। ९।।
राक्षसी कामयामास रूपेणाप्रतिमं भुवि।
अयं श्यामो महाबाहुः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः।। १०।।
कम्बुग्रीवः पुष्कराक्षो भर्ता युक्तो भवेन्मम।
नाहं भ्रातृवचो जातु कुर्यां क्रूरोपसंहितम्।। ११।।
पतिस्नेहोऽतिबलवान् न तथा भ्रातृसौहृदम्।
मुहूर्तमेव तृप्तिश्च भवेद् भ्रातुर्ममैव च।। १२।।
हतैरेतैरहत्वा तु मोदिष्ये शाश्वतीः समाः।

उस भीमसेन को देखते ही, जो शाल वृक्ष के पौधे के समान लम्बे और रूप में पृथिवी पर अद्वितीय थे, वह राक्षसी उन्हें चाहने लगी। वह सोचने लगी कि यह साँवले रंग का, विशाल भुजाओं वाला व्यक्ति, जिसके सिंह के समान कन्धे हैं, शंख के समान ग्रीवा है, कमल के समान नेत्र हैं, और महान कान्ति वाला है मेरा उपयुक्त पति हो सकता है। मैं अब क्रूरता से भरे हुए भाई के वचनों का पालन नहीं करूँगी। भाई के प्रेम से पति का स्नेह अधिक बलवान होता है। इनको मारने से तो मेरी और मेरे भाई की थोड़ी देर के लिये ही तृप्ति होगी पर न मार कर तो मैं अनेकों वर्षों तक इनके साथ आनन्द का उपभोग करूँगी।

स्मितपूर्वमिदं वाक्यं भीमसेनमथाब्रवीत्।। १३।।
कुतस्त्वमसि सम्प्राप्तः कश्चासि पुरुषर्षभ।
क इमे शेरते चेह पुरुषा देवरूपिणः।। १४।।
केयं वै बृहती श्यामा सुकुमारी तवानघ।
शेते वनमिदं प्राप्य विश्वस्ता स्वगृहे यथा।। १५।।
नेदं जानाति गहनं वनं राक्षससेवितम्।
वसति ह्यत्र पापात्मा हिडिम्बो नाम राक्षसः।। १६।।

तब वह मुस्कराहट के साथ भीमसेन के पास जाकर उससे बोली कि हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम कहाँ से आये हो और कौन हो? ये देवताओं के समान पुरुष कौन हैं? जो सो रहे हैं। हे निष्पाप! यह बड़ी आयु की साँवले रंग की सुकुमार स्त्री तुम्हारी कौन है? जो इस वन में आकर भी अपने घर की तरह से विश्वस्त होकर सो रही है। इन्हें यह पता नहीं है कि यह वन राक्षसों का निवास स्थान है, यहाँ पापात्मा हिडिम्ब नाम का राक्षस रहता है।

तेनाहं प्रेषिता भ्रात्रा दुष्टभावेन रक्षसा।
बिभक्षयिषता मांसं युष्माकममरोपम।। १७।।
साहं त्वामभिसम्प्रेक्ष्य देवगर्भसमप्रभम्।
नान्यं भर्तारमिच्छामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।। १८।।
एतद् विज्ञाय धर्मज्ञ युक्तं मयि समाचार।
कामोपहतचित्ताङ्गीं भजमानां भजस्व माम्।। १९।।
त्रास्यामि त्वां महाबाहो राक्षसात् पुरुषादकात्।
वत्स्यावो गिरिदुर्गेषु भर्ता भव ममानघ।। २०।।

हे देवताओं के समान! उस मेरे भाई राक्षस ने मुझे यहाँ दुष्ट भाव से, तुम्हारा माँस खाने की इच्छा से भेजा है। पर मैं तो तुम्हें देवताओं के समान सुन्दर देख कर किसी और को अपना पति नहीं बनाना चाहती। यह मैं आपसे सत्य कह रही हूँ। हे धर्मज्ञ! आप यह जान कर, जिसके मन और शरीर को कामदेव ने वश में कर लिया है और जो आपकी सेविका है, उस मेरे साथ उचित व्यवहार कीजिये तथा मुझे स्वीकार कीजिये। हे महाबाहु! हे निष्पाप! मैं आपको उस मनुष्य मांसभक्षी राक्षस से बचाऊँगी। आप मेरे पति बन जाइये। हम दोनों पर्वतों के दुर्गम स्थानों में रहेंगे।

भीमसेन उवाच

एष ज्येष्ठो मम भ्राता मान्यः परमको गुरुः।
अनिविष्टश्च तन्माहं परिविद्यां कथंचन।। २१।।
मातरं भ्रातरं ज्येष्ठं सुखसुप्तान् कथं त्विमान्।
परित्यजेत को न्वद्य प्रभवन्निह राक्षसि।। २२।।

राक्षस्युवाच

यत् ते प्रियं तत् करिष्ये सर्वानेतान् प्रबोधय।
मोक्षयिष्याम्यहं कामं राक्षसात् पुरुषादकात्।। २३।।

तब भीमसेन बोले ये मेरे बड़े भाई मेरे आदरणीय परम गुरु हैं। ये अभी अविवाहित हैं। ऐसी अवस्था में मैं तुमसे पहले विवाह करके किसी प्रकार परिवेत्ता अर्थात निन्दनीय नहीं बनना चाहता। फिर हे राक्षसी! कौन ऐसा पुरुष है जो शक्तिशाली होते हुए भी अपनी सुख से सोती हुई माता को, बड़े भाई को और दूसरे भाइयों को असुरक्षित छोड़ कर कहीं और चला जाये। तब वह राक्षसी बोली कि जो तुम्हें अच्छा लगे मैं वही करूँगी। तुम इन सबको जगा दो। मैं निस्सन्देह उस मनुष्यभक्षी राक्षस से इन सबको बचा लूँगी।

भीमसेन उवाच

सुखसुप्तान् वने भ्रातृन् मातरं चैव राक्षसि।
न भयाद् बोधयिष्यामि भ्रातुस्तव दुरात्मनः।। २४।।
न हि मे राक्षसा भीरु सोढुं शक्ताः पराक्रमम्।
न मनुष्या न गन्धर्वा न यक्षाश्चारुलोचने।। २५।।
गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे यद् वापीच्छसि तत् कुरु।
तं वा प्रेषय तन्वङ्गि भ्रातरं पुरुषादकम्।। २६।।

तब भीमसेन ने कहा कि हे राक्षसी! वन में सुख से सोये हुए अपने भाइयों और माता को मैं तुम्हारे दुष्ट भाई के डर से जगाऊँगा नहीं। हे भीरु! हे सुन्दर आँखों वाली? मेरे पराक्रम को राक्षस, मनुष्य, गन्धर्व और यक्ष कोई भी सहन नहीं कर सकते। हे कल्याणी! तुम यहाँ से जाओ या यहीं रहो, जो इच्छा हो करो या हे तन्वंगी! उस मनुष्यभक्षी भाई को यहाँ भेज दो।

तां विदित्वा चिरगतां हिडिम्बो राक्षसेश्वरः।
लोहिताक्षो महाबाहुः आजगामाशु पाण्डवान्।। २७।।
तमापतन्तं दृष्ट्वैव तथा विकृतदर्शनम्।
हिडिम्बोवाच वित्रस्ता भीमसेनमिदं वचः।। २८।।
आपतत्येष दुष्टात्मा संक्रुद्धः पुरुषादकः।
साहं त्वां भ्रातृभिः सार्धं यद् ब्रवीमि तथा कुरु।। २९।।

बहन को गये हुए जब बहुत देर हो गयी, तब लाल आँखों और विशाल बाहों वाला राक्षसराज हिडिम्ब जल्दी से वहाँ पाण्डवों के पास आ गया। उस देखने में भयानक राक्षस को आते हुए देखते ही हिडिम्बा भयभीत हो कर भीमसेन से बोली कि यह मनुष्यभक्षी, दुष्टात्मा, क्रोध में भरा हुआ आ रहा है। इसलिये मैं जो कहती हूँ, तुम अपने भाइयों के साथ वही करो।

भीम उवाच

मा भैस्त्वं पृथुसुश्रोणि नैष कश्चिन्मयि स्थिते।
अहमेनं हनिष्यामि प्रेक्षन्त्यास्ते सुमध्यमे।। ३०।।
नायं प्रतिबलो भीरु राक्षसापसदो मम।
पश्य बाहू सुवृत्तौ मे हस्तिहस्तनिभाविमौ।। ३१।।
ऊरू परिघसंकाशौ संहतं चाप्युरो महत्।
विक्रमं मे यथेन्द्रस्य साद्य द्रक्ष्यसि शोभने।। ३२।।
मावमंस्थाः पृथुश्रोणि मत्वा मामिह मानुषम्।

हिडिम्बोवाच

नावमन्ये नरव्याघ्र त्वामहं देवरूपिणम्।। ३३।।
दृष्टप्रभावस्तु मया मानुषेष्वेव राक्षसः।

तब भीमसेन ने कहा कि हे सुन्दरी तुम डरो मत। मेरे सामने यह राक्षस कुछ भी नहीं है। हे सुमध्यमे! मैं तुम्हारे देखते हुए ही इसे मार दूँगा। हे भीरु! यह दुष्ट राक्षस मेरा सामना नहीं कर सकता। मेरी इन गोल और हाथी की सूँड के समान बाहों को देखो। मेरी जाँघे परिघ के समान हैं और मेरा वक्षस्थल विशाल और सुदृढ़ है। हे शोभने! मेरा पराक्रम इन्द्र के समान है, जिसे तुम अभी देखोगी। हे सुन्दरी! तुम मुझे मनुष्य समझ कर मेरा तिरस्कार मत करो। तब हिडिम्बा ने कहा कि हे नरश्रेष्ठ! मैं देवता के समान रूप वाले आपका तिरस्कार नहीं कर रही। पर मैंने इस राक्षस का मनुष्यों पर पहले प्रभाव देखा हुआ है।

संक्रुद्धो राक्षसस्तस्याः ततस्तामिदमब्रवीत्।। ३४।।
को हि मे भोक्तुकामस्य विघ्नं चरति दुर्मतिः।
न बिभेषि हिडिम्बे किं मत्कोपाद् विप्रमोहिता।। ३५।।
एवमुक्त्वा हिडिम्बां स हिडिम्बो लोहितेक्षणः।
वधायाभिपपातैनान् दन्तैर्दन्ता नुपस्पृशन्।। ३६।।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य भीमः प्रहरतां वरः।
भर्त्सयामास तेजस्वी तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।। ३७।।

तब अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ वह राक्षस अपनी बहन से बोला कि कौन दुर्मति मनुष्य भोजन के इच्छुक मेरे मार्ग में विघ्न डाल रहा है। अरी हिडिम्बा! क्या तू मोह में पड़ कर मेरे क्रोध से डरती नहीं है? हिडिम्बा से यह कह कर वह लाल आँखों वाला हिडिम्ब दाँतों को कटकटाता हुआ उन सबका वध करने के लिये उनकी तरफ झपटा। उसे आक्रमण करते हुए देख कर प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ तेजस्वी भीम ने उसे धमकाते हुए अरे खड़ा रह, खड़ा रह, ऐसा कहा।

मय्येव प्रहरेहि त्वं न स्त्रियं हन्तुमर्हसि।
विशेषतोऽनपकृते परेणापकृते सति।। ३८।।
न हीयं स्ववशा बाला कामयत्यद्य मामिह।
चोदितैषा ह्यनङ्गेन शरीरान्तरचारिणा।। ३९।।
मयि तिष्ठति दुष्टात्मन् न स्त्रियं हन्तुमर्हसि।
संगच्छस्व मया सार्धमेकेनैको नराशन।। ४०।।
अहमेको नयिष्यामि त्वामद्य यमसादनम्।
अद्य मद्बलनिष्पिष्टं शिरो राक्षस दीर्यताम्।। ४१।।
कुञ्जरस्येव पादेन विनिष्पिष्टं बलीयसः।

उन्होंने कहा अरे आ पहले मुझ पर ही प्रहार कर। तू स्त्री को नहीं मार सकता और विशेष रूप

से जब कि इसने तेरा कोई अपराध नहीं किया है। तेरा अपराध तो दूसरे के द्वारा हुआ है। यह भोली स्त्री इस समय अपने वश में नहीं है। यह शरीर के अन्दर संचरण करने वाले कामदेव से प्रेरित होने के कारण आज मेरी इच्छा कर रही है। हे दुरात्मा! तू मेरे होते हुए स्त्री की हत्या नहीं कर सकता। अरे मनुष्यभक्षी! तू मुझ अकेले के साथ ही युद्ध कर ले। मैं अकेला ही तुझे मृत्यु के घर भेज दूँगा। जैसे बलवान हाथी के पैर से कुचले जाने पर सिर फट जाता है, वैसे ही मेरी शक्ति से भी कुचला हुआ तेरा सिर आज फट जायेगा।

अद्य गात्राणि ते कङ्काः श्येना गोमायवस्तथा।।४२।।
कर्षन्तु भुवि संहृष्टा निहतस्य मया मृधे।
क्षणेनाद्य करिष्येऽहमिदं वनमराक्षसम्।।४३।।
पुरा यद् दूषितं नित्यं त्वया भक्षयता नरान्।
अद्य त्वां भगिनी रक्षः कृष्यमाणं मयासकृत्।।४४।।
द्रक्ष्यत्यद्रिप्रतीकाशं सिंहेनेव महाद्विपम्।
निराबाधास्त्वयि हते मया राक्षसपांसन।।४५।।
वनमेतच्चरिष्यन्ति पुरुषा वनचारिणः।

आज तेरे शरीर के अंगों को, युद्ध में मेरे द्वारा मारे जाने पर गिद्ध, बाज और गीदड़ प्रसन्न होकर भूमि पर घसीटेंगे। पहले तूने जिसे प्रतिदिन आदमियों को खाकर दूषित किया हुआ है, उस वन को आज मैं थोड़ी देर में ही बिना राक्षसों का बना दूँगा। जैसे सिंह पर्वताकार गजराज को घसीटता है, वैसे ही हे राक्षस! मेरे द्वारा बार बार घसीटे जाते हुए तुझे तेरी बहन देखेगी। अरे राक्षस कुलकलंक! मेरे द्वारा तेरे मारे जाने पर वन में विचरण करने वाले मनुष्य बिना किसी रुकावट के इस वन में विचरण करेंगे।

हिडिम्ब उवाच

गर्जितेन वृथा किं ते कत्थितेन च मानुष।।४६।।
कृत्वैतत् कर्मणा सर्वं कत्थेथा मा चिरं कृथाः।
बलिनं मन्यसे यच्चाप्यात्मानं सपराक्रमम्।।४७।।
ज्ञास्यस्यद्य समागम्य मयाऽऽत्मानं बलाधिकम्।
न तावदेतान् हिंसिष्ये स्वपन्त्वेते यथासुखम्।।४८।।
एष त्वामेव दुर्बुद्धे निहन्म्यद्याप्रियंवदम्।
पीत्वा तवासृग् गात्रेभ्यस्ततः पश्चादिमानपि।।४९।।
हनिष्यामि ततः पश्चादिमां विप्रियकारिणीम्।

तब हिडिम्ब ने कहा कि अरे मनुष्य! व्यर्थ गर्जना करने और डींग मारने से क्या लाभ? ये सारे कार्य करने के बाद इनका बखान करना। अब देर मत कर। तू अपने को बड़ा बलवान और पराक्रमी मानता है। तू आज मुझसे भिड़ कर अपनी अधिक शक्ति के बारे में जान लेगा। मैं पहले इन लोगों को नहीं मारूँगा। ये सुख से सो लें। पहले मैं आज तुझ अप्रिय बातें कहने वाले को ही मारता हूँ। तेरे शरीर से तेरा खून पीकर, फिर इनको भी मारूँगा और फिर इस बुरा काम करने वाली हिडिम्बा को भी मार दूँगा।

एवमुक्त्वा ततो बाहुं प्रगृह्य पुरुषादकः।।५०।।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो भीमसेनमरिंदमम्।
तस्याभिद्रवतस्तूर्णं भीमो भीमपराक्रमः।।५१।।
वेगेन प्रहितं बाहुं निजग्राह हसन्निव।
निगृह्य तं बलाद् भीमो विस्फुरन्तं चकर्ष ह।।५२।।
तस्माद् देशाद् धनूंष्यष्टौ सिंहः क्षुद्रमृगं यथा।
ततः स राक्षसः क्रुद्धः पाण्डवेन बलार्दितः।।५३।।
भीमसेनं समालिङ्ग्य व्यनदद् भैरवं रवम्।

ऐसा कह कर क्रोध में भरा हुआ वह नरभक्षी राक्षस अपनी बाँह उठा कर शत्रुओं का दमन करने वाले भीम सेन पर झपटा। तब उस झपटते हुए की बाँह को भयानक पराक्रम वाले भीम ने मुस्कराते हुए फुर्ती से बल पूर्वक पकड़ लिया। पकड़ कर, छूटने के लिये छटपटाते हुए उसे भीमसेन घसीट कर उस स्थान से आठ धनुष अर्थात बत्तीस हाथ दूर इस प्रकार ले गये जैसे सिंह किसी छोटे मृग को घसीट कर ले जाता है। तब भीमसेन की शक्ति से पीड़ित वह क्रोध में भरा हुआ राक्षस भीमसेन को दोनों हाथों से कस कर भयानक रूप से गर्जने लगा।

पुनर्भीमो बलादेनं विचकर्ष महाबलः।।५४।।
मा शब्दः सुखसुप्तानां भ्रातॄणां मे भवेदिति।
अन्योन्यं तौ समासाद्य विचकर्षतुरोजसा।।५५।।
हिडिम्बो भीमसेनश्च विक्रमं चक्रतुः परम्।
तयोः शब्देन महता विबुद्धास्ते नरर्षभाः।।५६।।
सह मात्रा च ददृशुर्हिडिम्बामग्रतः स्थिताम्।

महाबली भीम फिर उसको कुछ दूर और घसीट कर ले गये, जिससे उसका शब्द सुख से सोये हुए भाइयों की नींद में विघ्न न डाले। तब वे दोनों एक दूसरे से गुथ कर एक दूसरे को बलपूर्वक खींचने लगे। भीमसेन और हिडिम्ब दोनों ही उस समय अपना पूरा पराक्रम दिखा रहे थे। उन दोनों

की महान ध्वनि से वे नरश्रेष्ठ पांडव अपनी माता के साथ जाग उठे और उन्होंने हिडिम्बा को अपने सामने खड़े हुए देखा।

प्रबुद्धास्ते हिडिम्बाया रूपं दृष्ट्वातिमानुषम्।।५७।।
विस्मिताः पुरुषव्याघ्रा बभूवुः पृथया सह।
ततः कुन्ती समीक्ष्यैनां विस्मिता रूपसम्पदा।।५८।।
उवाच मधुरं वाक्यं सान्त्वपूर्वमिदं शनैः।
कस्य त्वं सुरगर्भाभे का वासि वरवर्णिनि।।५९।।
केन कार्येण सम्प्राप्ता कुतश्चागमनं तव।

जागने पर हिडिम्बा के अमानवीय सौन्दर्य को देख कर वे पुरुष व्याघ्र अपनी माता कुन्ती सहित आश्चर्य में पड़ गये। तब उसकी रूप सम्पत्ति से आश्चर्य चकित हुई कुन्ती ने उसे देख कर उससे सान्त्वना पूर्वक मधुर ध्वनि में धीरे से पूछा कि हे देवकन्याओं के समान उत्तम कान्ति और सौन्दर्य वाली तुम कौन हो? और किसकी पुत्री हो? तुम कहाँ से और किस कार्य से यहाँ आई हो?

हिडिम्बोवाच

यदेतत् पश्यसि वनं नीलमेघनिभं महत्।।६०।।
निवासो राक्षसस्यैष हिडिम्बस्य ममैव च।
तस्य मां राक्षसेन्द्रस्य भगिनीं विद्धि भाविनि।।६१।।
भ्रात्रा सम्प्रेषितामार्ये त्वां सपुत्रां जिघांसता।
क्रूरबुद्धेरहं तस्य वचनादागता त्विह।।६२।।
अद्राक्षं नवहेमाभं तव पुत्रं महाबलम्।
ततोऽहं सर्वभूतानां भावे विचरता शुभे।।६३।।
चोदिता तव पुत्रस्य मन्मथेन वशानुगा।

तब हिडिम्बा ने कहा यह जो आप नीले बादलों के समान विशाल वन को देख रही हैं, यह राक्षस हिडिम्ब का और मेरा निवास स्थान है। हे महाभागे! आप मुझे उस राक्षसराज हिडिम्ब की बहिन समझिये। हे आर्ये! मेरे भाई ने मुझे आपको पुत्रों सहित मारने के लिये भेजा था। उस क्रूर बुद्धि के कहने से मैं यहाँ आ तो गयी। पर जब मैंने यहाँ नये सोने की सी आत्मा वाले आपके महाबली पुत्र को देखा तो हे कल्याणी! मैं सारे प्राणियों के अन्दर विचरने वाले कामदेव से प्रेरित होकर आपके पुत्र के वश में हो गयी।

ततो वृतो मया भर्ता तव पुत्रो महाबलः।।६४।।
अपनेतुं च यतितो न चैव शकितो मया।
चिरायमाणां मां ज्ञात्वा ततः स पुरुषादकः।।६५।।
स्वयमेवागतो हन्तुमिमान् सर्वांस्तवात्मजान्।
स तेन मम कान्तेन तव पुत्रेण धीमता।।६६।।
बलादितो विनिष्पिष्य व्यपनीतो महात्मना।
विकर्षन्तौ महावेगौ गर्जमानौ परस्परम्।।६७।।
पश्यैवं युधि विक्रान्तावेतौ च नरराक्षसौ।

तब मैंने आपके महाबली पुत्र को अपने पति के रूप में स्वीकार कर लिया और उनको यहाँ से दूर हटाने का प्रयत्न किया, पर मैं सफल नहीं हो सकी। मुझे वापिस लौटने में देर होने पर वह नरभक्षी राक्षस स्वयं यहाँ आपके इन पुत्रों को मारने के लिये आ गया। तब मेरे पति और आपके धीमान् तथा महात्मा पुत्र उसे बल पूर्वक रगड़ते हुए यहाँ से दूर ले गये हैं। देखो! वे दोनों महान् वेग वाले पराक्रमी मनुष्य और राक्षस परस्पर युद्ध में गर्ज रहे हैं तथा एक दूसरे को खींच रहे हैं।

तस्याः श्रुत्वैव वचनमुत्पपात युधिष्ठिरः।।६८।।
अर्जुनो नकुलश्चैव सहदेवश्च वीर्यवान्।
तौ ते ददृशुरासक्तौ विकर्षन्तौ परस्परम्।।६९।।
काङ्क्षमाणौ जयं चैव सिंहाविव बलोत्कटौ।
अथान्योन्यं समाश्लिष्य विकर्षन्तौ पुनः पुनः।।७०।।
दावाग्निधूमसदृशं चक्रतुः पार्थिवं रजः।
वसुधारेणुसंवीतौ वसुधाधर संनिभौ।।७१।।
बभ्राजतुर्यथा शैलौ नीहारेणाभिसंवृतौ।

उसकी यह बात सुनते ही पराक्रमी युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव उछल कर खड़े हो गये। तब उन्होंने देखा कि वे दोनों उत्कट बलशाली सिंहों के समान एक दूसरे से गुँथे हुए, विजय को चाहते हुए एक दूसरे को घसीट रहे हैं। एक दूसरे को भुजाओं में जकड़ कर बार-बार खींचते हुए उन्होंने उस स्थान की मिट्टी को दावानल के धूएँ के समान बना दिया था। पर्वत के समान विशालकाय वे दोनों भूमि की धूल से भर गये थे। वे दोनों कुहरे से ढके हुए दो पर्वतों के समान प्रतीत हो रहे थे।

राक्षसेन तदा भीमं क्लिश्यमानं निरीक्ष्य च।।७२।।
उवाचेदं वचः पार्थः प्रहसञ्छनकैरिव।
भीम मा भैर्महाबाहो न त्वां बुध्यामहे वयम्।।७३।।
समेतं भीमरूपेण रक्षसा श्रमकर्शितम्।
साहाय्येऽस्मि स्थितः पार्थ पातयिष्यामि राक्षसम्।।७४।।
नकुलः सहदेवश्च मातरं गोपयिष्यतः।

भीम उवाच

उदासीनो निरीक्षस्व न कार्यः सम्भ्रमस्त्वया।।७५।।
न जात्वयं पुनर्जीवेन्मद्बाह्वन्तरमागतः।

तब भीम को राक्षस के द्वारा क्लेश पाते हुए देख कर अर्जुन ने हँसते हुए धीरे से कहा कि हे महाबाहु भीम! डरना मत। हमें अब तक पता नहीं था कि तुम इस भयंकर रूप वाले राक्षस के साथ युद्ध करते हुए परिश्रम से कष्ट पा रहे हो। हे कुन्ती के पुत्र! मैं तुम्हारी सहायता के लिये खड़ा हूँ। मैं इस राक्षस को मार गिराऊँगा। नकुल और सहदेव माता की रक्षा करेंगे। तब भीम ने कहा कि तुम तटस्थ होकर देखते रहो। तुम्हें घबराने की आवश्यकता नहीं है। मेरे दोनों हाथों के बीच में आकर यह राक्षस कभी जीवित नहीं रह सकता।

अर्जुन उवाच

किमनेन चिरं भीम जीवता पापरक्षसा।।७६।।
गन्तव्ये न चिरं स्थातुमिह शक्यमरिंदम।
पुरा संरज्यते प्राची पुरा संध्या प्रवर्तते।।७७।।
त्वरस्व भीम मा क्रीड जहि रक्षो विभीषणम्।
ततस्तस्याम्बुदाभस्य भीमो रोषात् तु रक्षसः।।७८।।
उत्क्षिप्याभ्रामयद् देहं तूर्णं शतगुणं तदा।

तब अर्जुन ने कहा कि इस पापी राक्षस को देर तक जीवित रखने से क्या लाभ? हे शत्रुओं का दमन करने वाले भीम! हमें आगे भी जाना है, इसलिये यहाँ देर तक ठहरना ठीक नहीं है। सामने पूर्व दिशा में प्रातः कालीन संध्या की लाली फैल रही है। इसलिये भीम जल्दी करो। इसके साथ खेल मत करो! इस भयानक राक्षस को मार दो। तब भीम ने क्रोध से काले बादलों के समान उस राक्षस के शरीर को फुर्ती से ऊपर उठा लिया और उसे सौ बार घुमाया।

अर्जुन उवाच

यदि वा मन्यसे भारं त्वमिमं राक्षसं युधि।।७९।।
करोमि तव साहाय्यं शीघ्रमेष निपात्यताम्।
अथवाप्यहमेवैनं हनिष्यामि वृकोदर।।८०।।
कृतकर्मा परिश्रान्तः साधु तावदुपारम।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षणः।।८१।।
निष्पिष्यैनं बलाद् भूमौ पशुमारममारयत्।
स मार्यमाणो भीमेन ननाद विपुलं स्वनम्।।८२।।
पूरयंस्तद् वनं सर्वं जलार्द्र इव दुन्दुभिः।

तब अर्जुन ने कहा कि यदि तुम इस राक्षस को युद्ध में बोझ समझ रहे हो तो मैं तुम्हारी सहायता करता हूँ। इसे शीघ्र ही मार गिराओ। अथवा हे भीम! तुम लड़ते हुए थक गये हो, थोड़ी देर अच्छी तरह से आराम कर लो। मैं ही इसे मार दूँगा। अर्जुन की यह बात सुन कर अत्यन्त अमर्षशील भीम ने उसे भूमि पर पटक दिया और बल पूर्वक रगड़ते हुए पशुओं के समान मारना आरम्भ किया। भीमसेन के द्वारा मारा जाता हुआ वह राक्षस अपनी आवाज से सारे वन को गुँजाता हुआ, पानी से भीगे हुए नगाड़े की तरह जोर जोर से चीखने लगा।

बाहुभ्यां योक्त्रयित्वा तं बलवान् पाण्डुनन्दनः।।८३।।
मध्येभङ्क्त्वा महाबाहुर्हर्षयामास पाण्डवान्।
हिडिम्बं निहतं दृष्ट्वा संहृष्टास्ते तरस्विनः।।८४।।
अपूजयन् नरव्याघ्रं भीमसेनमरिंदमम्।
पुनरेवार्जुनो वाक्यमुवाचेदं वृकोदरम्।।८५।।
न दूरं नगरं मन्ये वनादस्मादहं विभो।
शीघ्रं गच्छाम भद्रं ते न नो विद्यात् सुयोधनः।।८६।।
ततः सर्वे तथेत्युक्त्वा सह मात्रा महारथाः।
प्रययुः पुरुषव्याघ्रा हिडिम्बा चैव राक्षसी।।८७।।

तब बलवान महाबाहु पाण्डुपुत्र भीम ने दोनों हाथों से बाँध कर उसे उलटा मोड़ दिया और बीच में से तोड़ कर उन्होंने पाण्डवों को हर्षित कर दिया। हिडिम्ब को मारा हुआ देख कर उन वेगशाली पाण्डवों ने अत्यन्त हर्षित होकर शत्रु का दमन करने वाले उस नर व्याघ्र भीमसेन की भूरि भूरि प्रशंसा की। फिर अर्जुन ने भीम से यह कहा कि हे प्रभो! मैं समझता हूँ कि नगर इस वन से दूर नहीं है। इसलिये हमें जल्दी चलना चाहिये। जिससे दुर्योधन हमारे विषय में न जान सके। तुम्हारा कल्याण हो। तब उन सारे महारथी पुरुषव्याघ्र पाण्डवों ने ठीक है ऐसा कह कर अपनी माता के साथ आगे चलना आरम्भ किया। हिडिम्बा भी उनके साथ चली।

छब्बीसवाँ अध्याय: भीमसेन और हिडिम्बा मिलन, घटोत्कच का जन्म।

अभिवाद्य ततः कुन्तीं धर्मराजं च पाण्डवम्।
अब्रुवाणा हिडिम्बा तु भीमसेनमभाषत॥ १॥
अहं ते दर्शनादेव मन्मथस्य वशं गता।
क्रूरं भ्रातृवचो हित्वा सा त्वामेवानुरुन्धती॥ २॥
राक्षसे रौद्रसंकाशे तवापश्यं विचेष्टितम्।
अहं शुश्रूषुरिच्छेयं तव गात्रं निषेवितुम्॥ ३॥

भीमसेन उवाच

स्मरन्ति वैरं रक्षांसि मायामाश्रित्य मोहिनीम्।
हिडिम्बे व्रज पन्थानं त्वमिमं भ्रातृसेवितम्॥ ४॥

तब हिडिम्बा कुन्ती को और धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम करके उनसे कुछ न कहती हुई भीमसेन से बोली कि मैं आपके दर्शनमात्र से कामदेव के वश में होकर अपने क्रूर भाई के वचनों की अवहेलना करके आपका ही अनुसरण कर रही हूँ। मैंने उस भयानक आकृति वाले राक्षस पर आपके पराक्रम को देखा है। मैं सेवा करने की इच्छा से आपके शरीर की सेवा करना चाहती हूँ। तब भीम ने कहा कि राक्षस लोग मोहित करने वाले छल कपट का सहारा लेकर अपने बैर को बहुत दिनों तक याद रखते हैं अर्थात् तुम भी मुझे मोहित करके कपट पूर्वक मुझसे अपने भाई के बैर का बदला ले सकती हो, इसलिये हे हिडिम्बा! तुम भी अपने भाई के मार्ग पर चली जाओ अर्थात् मैं तुम्हें भी मार देता हूँ।

युधिष्ठिर उवाच

क्रुद्धोऽपि पुरुषव्याघ्र भीम मा स्म स्त्रियं वधीः।
शरीरगुप्त्यभ्यधिकं धर्मं गोपाय पाण्डव॥ ५॥
वधाभिप्रायमायान्तमवधीस्त्वं महाबलम्।
रक्षसस्तस्य भगिनी किं नः क्रुद्धा करिष्यति॥ ६॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे पुरुषव्याघ्र भीम! यद्यपि तुम इस समय क्रोध में हो, पर स्त्री का वध मत करो! हे पाण्डव! अपने शरीर की रक्षा से भी पहले धर्म की रक्षा करो। तुमने वध के लिये आये हुए महाबली राक्षस को मार दिया, यह ठीक किया। पर उसकी यह बहन यदि क्रुद्ध भी हो तो हमारा क्या बिगाड़ेगी?

हिडिम्बा तु ततः कुन्तीमभिवाद्य कृताञ्जलिः।
युधिष्ठिरं तु कौन्तेयमिदं वचनमब्रवीत्॥ ७॥
मया ह्युत्सृज्य सुहृदः स्वधर्मं स्वजनं तथा।
वृतोऽयं पुरुषव्याघ्रस्तव पुत्रः पतिः शुभे॥ ८॥
वीरेणाहं तथानेन त्वया चापि यशस्विनि।
प्रत्याख्याता न जीवामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ९॥
तदर्हसि कृपां कर्तुं मयि त्वं वरवर्णिनि।
मत्वा मूढेति तन्मा त्वं भक्ता वानुगतेति वा॥ १०॥
भर्त्रानेन महाभागे संयोजय सुतेन ह।

तब हिडिंबा कुन्ती और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को प्रणाम कर और हाथ जोड़ कर उनसे बोली कि मैंने अपने हितैषियों को, अपने राक्षस धर्म को छोड़ दिया है, और अपने बन्धुओं को भी छोड़ दिया है और हे शुभे! आपके पुरुषों में व्याघ्र इस पुत्र को पतिरूप में वरण किया है। हे यशस्विनी! यदि आपके इस वीर पुत्र ने और आपने भी मुझे ठुकरा दिया तो मैं अपने प्राणों को त्याग दूँगी। यह मैं आपसे सत्य कहती हूँ। इसलिये हे उत्तम आचरणवाली! आप मुझे मूर्ख समझ कर या अपनी भक्त जान कर या सेविका मान कर मेरे ऊपर कृपा कीजिये। हे महाभागे! आप अपने इन पुत्र और मेरे पति के साथ मेरा मेल करा दीजिये।

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा कुन्ती वचनमब्रवीत्॥ ११॥
युधिष्ठिरं महाप्राज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम्।

कुन्त्युवाच

त्वं हि धर्मभृतां श्रेष्ठ मयोक्तं शृणु भारत॥ १२॥
राक्षस्येषा हि वाक्येन धर्मं वदति साधु वै।
भावेन दुष्टा भीमं सा किं करिष्यति राक्षसी॥ १३॥
भजतां पाण्डवं वीरमपत्यार्थं यदीच्छसि।

उसकी यह बात सुन कर कुन्ती ने सर्वशास्त्र विशारद महाप्राज्ञ युधिष्ठिर से यह कहा कि हे भरतवंशी! तुम धर्मात्माओं में श्रेष्ठ हो, इसलिये मेरी बात सुनो। यह राक्षसी अपनी बातों से तो उत्तम धर्म की ही बात कह रही है। यदि इसकी भावना में दुष्टता हो तो यह भीम का क्या बिगाड़ लेगी। यदि तुम्हारी सम्मति हो तो यह पुत्र के लिये कुछ समय तक वीर पाण्डव भीम की सेवा करना चाहती है। इसे कर लेने दो।

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतद् यथाऽऽत्थ त्वं हिडिम्बे नात्र संशयः॥ १४॥
स्थातव्यं तु त्वया सत्ये यथा ब्रूयां सुमध्यमे।

स्नातं कृताह्निकं भद्रे कृतकौतुकमङ्गलम्।। १५।।
भीमसेनं भजेथास्त्वं प्रागस्तगमनाद् रवेः।
एष ते समयो भद्रे शुश्रूष्यश्चाप्रमत्तया।। १६।।
नित्यानुकूलया भूत्वा कर्तव्यं शोभनं त्वया।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे हिडिम्बा! जैसा तुम कह रही हो, वह ठीक है। इसमें कोई सन्देह नहीं है, पर हे सुमध्यमे! जैसे मैं कहूँ तुम्हें उसी बात पर सत्यता पूर्वक स्थिर रहना चाहिये। तुम हे भद्रे! प्रातः नित्य कर्म कर लेने पर और मंगल कार्य पूरे कर लेने पर भीमसेन की सेवा सायँ सूर्य के अस्त होने से पहले तक कर सकती हो। हे भद्रे! इसी शर्त पर तुम्हें सावधानी से इनकी सेवा करनी है। तुम्हें सदा इनके अनुकूल रहकर इनकी भलाई करनी है।

युधिष्ठिरेणैवमुक्ता कुन्त्या चाङ्केऽधिरोपिता।। १७।।
भीमार्जुनान्तरगता यमाभ्यां च पुरस्कृता।
तिर्यग् युधिष्ठिरे याति हिडिम्बा भीमगामिनी।। १८।।
शालिहोत्रसरो रम्यमासेदुस्ते जलार्थिनः।
तत् तथैति प्रतिज्ञाय हिडिम्बा राक्षसी तदा।। १९।।
वनस्पतितलं गत्वा परिमृज्य गृहं यथा।
पाण्डवानां च वासं सा कृत्वा पर्णमयं तथा।। २०।।
आत्मनश्च तथा कुन्त्या एकोद्देशे चकार सा।
ततस्ते पाण्डवाः सर्वे विश्रान्ताः पृथया सह।। २१।।
यथा जतुगृहे वृत्तं राक्षसेन कृतं च यत्।
कृत्वा कथा बहुविधाः कथान्ते पाण्डुनन्दनम्।। २२।।
कुन्तिराजसुता वाक्यं भीमसेनमथाब्रवीत्।

युधिष्ठिर के हिडिम्बा से इस प्रकार कहने पर कुन्ती ने हिडिम्बा को अपनी गोद में बैठा लिया। इसके पश्चात् वे जल के लिये शालिहोत्र नाम के तालाब की तरफ चल दिये। जाते हुए हिडिम्बा युधिष्ठिर से थोड़ा दूर, नकुल और सहदेव के पीछे और भीम तथा अर्जुन के बीच में चल रही थी। शालिहोत्र सरोवर पर पहुँच कर हिडिम्बा ने युधिष्ठिर के द्वारा कहे गये वचनों के अनुसार चलने की प्रतिज्ञा की। फिर उसने एक वृक्ष के नीचे जाकर उसे घर के आँगन की तरह झाड़ू देकर साफ किया। फिर उसने पाण्डवों के निवास के लिये एक पत्तों की कुटिया बनाई और दूसरी तरफ अपने तथा कुन्ती के लिये एक दूसरी पत्तों की कुटिया बनाई। तब वे सारे पाण्डव लोग कुन्ती के साथ विश्राम करते हुए लाक्षागृह की घटना तथा राक्षस हिडिम्ब की घटना आदि के विषय में वार्त्तालाप करने लगे। जब वे अनेक प्रकार की परस्पर बातें समाप्त कर चुके, तब कुन्तीराज की पुत्री कुन्ती ने पाण्डु पुत्र भीम से कहा कि–

कुन्त्युवाच

यथा पाण्डुस्तथा मान्यस्तव ज्येष्ठो युधिष्ठिरः।। २३।।
अहं धर्मविधानेन मान्या गुरुतरा तव।
तस्मात् पाण्डुहितार्थे मे युवराज हितं कुरु।। २४।।
निकृता धार्तराष्ट्रेण पापेनाकृतबुद्धिना।
दुष्कृतस्य प्रतीकारं न पश्यामि वृकोदर।। २५।।
तस्मात् कतिपयाहेन योगक्षेमं भविष्यति।
क्षेमं दुर्गमिमं वासं वसिष्यामो यथासुखम्।। २६।।
इदमद्य महद् दुःखं धर्मकृच्छ्रं वृकोदर।
दृष्ट्वैव त्वां महाप्राज्ञ अनङ्गाभिप्रचोदिता।। २७।।
युधिष्ठिरं च मां चैव वरयामास धर्मतः।
धर्मार्थं देहि पुत्रं त्वं स नः श्रेयः करिष्यति।। २८।।
प्रतिवाक्यं तु नेच्छामि ह्यावाभ्यां वचनं कुरु।

जैसे तुम्हारे लिये तुम्हारे पिता पाण्डु मान्य थे, वैसे ही तुम्हारे बड़े भाई युधिष्ठिर भी मान्य हैं और मैं धर्म के अनुसार युधिष्ठिर से भी अधिक तुम्हारे लिये मान्य हूँ। इसलिये हे युवराज! तुम पाण्डु की भलाई के लिये मेरी हितकारी बात मानो। धृतराष्ट्र के अपवित्र बुद्धि वाले पापी पुत्र ने हमें घर से निकाल दिया। हे वृकोदर! उसके इस दुष्कर्म का प्रतिकार तो अभी कोई दिखाई नहीं देता, इसलिये कुछ दिन के बाद ही हमारा कल्याण हो सकेगा। यह स्थान दूसरों के लिये दुर्गम है और हमारे लिये कुशलता युक्त है, इसलिये यहीं हमें सुख से रहना चाहिये। हे वृकोदर! इस समय हमारे सामने यह बड़ा दुःखदायी धर्म संकट प्रस्तुत हुआ है। यह हिडिम्बा हे महाप्राज्ञ! तुम्हें देखते ही कामदेव से प्रेरित है और मेरे तथा युधिष्ठिर के सामने इसने तुम्हें अपना धर्मानुकूल पति वरण किया है। इसलिये तुम इस धर्म संकट के समाधान के लिये इसे एक पुत्र प्रदान करो। वह हमारे लिये कल्याणकारी होगा। मैं इस विषय में तुम्हारा कोई प्रतिवाद नहीं सुनना चाहती। तुम हम दोनों के सामने प्रतिज्ञा करो।

तथेति तत् प्रतिज्ञाय भीमसेनोऽब्रवीदिदम्।। २९।।
शृणु राक्षसि सत्येन समयं ते वदाम्यहम्।
यावत् कालेन भवति पुत्रस्योत्पादनं शुभे।। ३०।।
तावत् कालं गमिष्यामि त्वया सह सुमध्यमे।

तब भीम ने बहुत अच्छा कह कर वैसा करने की प्रतिज्ञा की और हिडिम्बा के साथ गन्धर्व विवाह किया। उसके बाद उन्होंने हिडिम्बा से कहा कि हे राक्षसी! सुनो! मैं सत्य की शपथ खा कर एक शर्त रख रहा हूँ और वह यह है कि हे शुभे! जब तक तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होती है, तभी तक हे सुमध्यमे! मैं तुम्हारे साथ विहार के लिये चलूँगा।

तथेति तत्प्रतिज्ञाय हिडिम्बा राक्षसी तदा।। ३१।।
मृगपक्षिविघुट्टेषु रमणीयेषु सर्वदा।
काननेषु विचित्रेषु पुषितद्रुम वल्लिषु।। ३२।।
सरस्सु रमणीयेषु पद्मोत्पलयुतेषु च।
भीमसेनभुपादाय महाशालवनेषु च।। ३३।।
संजल्पन्ती सुमधुरं, रमयामास पाण्डवम्।

तब हिडिम्बा राक्षसी ने ऐसा ही होगा, यह प्रतिज्ञा करके, भीमसेन को ले जाकर पशुओं और पक्षियों के समूह से भरे हुए, सदा रमणीय रहने वाले, जहाँ वृक्ष और लताएँ फूलों से युक्त थीं, ऐसे विचित्र वनों में, कमलों और उत्पलों से भरे हुए सरोवरों के किनारे, विशाल शाल वृक्षों के जंगलों में, विहार करते हुए, उसके साथ मधुर वाणी में वार्त्तालाप करते हुए उसे आनन्दित किया।

प्रजज्ञे राक्षसी पुत्रं भीमसेनान्महाबलम्।। ३४।।
घटो हास्योत्कच इति माता तं प्रत्यभाषत।
अब्रवीत् तेन नामास्य घटोत्कच इति स्म ह।। ३५।।
संवाससमयो जीर्ण इत्याभाष्य ततस्तु तान्।
हिडिम्बा समयं कृत्वा स्वां गतिं प्रत्यपद्यत।। ३६।।

तब राक्षसी हिडिम्बा ने भीमसेन से एक महाबली पुत्र को जन्म दिया। क्योंकि उसके सिर पर उस समय बाल नहीं थे, इसलिये उसकी माता ने उसका नाम घटोत्कच रखा। उसके बाद हिडिम्बा पाण्डवों से यह कह कर कि मेरा आपके साथ रहने का समय समाप्त हो गया और फिर मिलने की प्रतिज्ञा करके अपने अभीष्ट स्थान पर चली गयी।

सत्ताईसवाँ अध्याय : पाण्डवों का एकचक्रा नगरी में ब्राह्मण के घर निवास।

ते वनेन वनं गत्वा घ्नन्तो मृगगणान् बहून्।
मत्स्यांस्त्रिगर्तान् पञ्चालान् कीचकानन्तरेण च।। १।।
रमणीयान् वनोद्देशान् प्रेक्षमाणाः सरांसि च।
जटाः कृत्वाऽऽत्मनः सर्वे वल्कलाजिनवाससः।। २।।
सह कुन्त्या महात्मानो बिभ्रतस्तापसं वपुः।
क्वचिद् वहन्तो जननीं त्वरमाणा महारथाः।। ३।।
क्वचिच्छन्देन गच्छन्तस्ते जग्मुः प्रसभं पुनः।

इसके पश्चात् वे पाण्डव लोग एक वन से दूसरे वन में जाकर पशुओं का शिकार करते हुए मत्स्य, त्रिगर्त, पञ्चाल और कीचक इन देशों के बीच में से होकर सुन्दर वन प्रान्तों और सरोवरों को देखते हुए यात्रा करने लगे। उन्होंने अपनी जटाएँ बढ़ा लीं थीं और वल्कल तथा मृगचर्म धारण कर लिया था। वे महात्मा लोग तपस्वियों का वेष धारण कर कुन्ती के साथ, कहीं उसे उठा कर जल्दी चलते हुए, कभी आराम से धीरे चलते हुए और कभी फिर तेज चाल से चलते हुए जा रहे थे।

ब्राह्मं वेदमधीयाना वेदाङ्गानि च सर्वशः।। ४।।
नीतिशास्त्रं च सर्वज्ञा ददृशुस्ते पितामहम्।
तेऽभिवाद्य महात्मानं कृष्णद्वैपायनं तदा।। ५।।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे सह मात्रा परंतपाः।

पाण्डव सारे शास्त्रों के जानकार थे। वे कभी ईश्वर कृत वेदों का अध्ययन करते, कभी सभी वेदांगों का और कभी नीति शास्त्र का स्वाध्याय करते रहते थे। तभी एक दिन उन्होंने अपने पितामह व्यास जी के दर्शन किये। शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले वे सभी उस महात्मा कृष्ण द्वैपायन को प्रणाम कर अपनी माता के साथ हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

व्यास उवाच

समास्ते चैव मे सर्वे यूयं चैव न संशयः।। ६।।
दीनतो बालतश्चैव स्नेहं कुर्वन्ति मानवाः।
तस्मादभ्यधिकःस्नेहो युष्मासु मम साम्प्रतम्।। ७।।
स्नेहपूर्वं चिकीर्षामि हितं वस्तन्निबोधत।
इदं नगरमभ्याशे रमणीयं निरामयम्।। ८।।
वसतेह प्रतिच्छन्ना ममागमनकाङ्क्षिणः।
एवं स तान् समाश्वास्य व्यासः सत्यवतीसुतः।। ९।।
एकचक्रामभिगतः कुन्तीमाश्वासयत् प्रभुः।
एवमुक्त्वा निवेश्यैनान् ब्राह्मणस्य निवेशने।। १०।।
जगाम भगवान् व्यासो यथागतमृषिः प्रभुः।

तब व्यास जी ने कहा कि इसमें सन्देह नहीं है कि मेरे लिये वे सारे धृतराष्ट्रपुत्र और तुम समान हो, पर फिर भी जहाँ दीनता और सीधापन होता है, उधर मनुष्य अधिक प्रेम करते हैं, इसलिये इस समय मेरा तुम्हारे प्रति अधिक स्नेह है। मैं स्नेह के कारण ही आपका कल्याण करना चाहता हूँ, इस बात को आप लोग समझें। यहाँ समीप ही एक सुन्दर और व्याधियों से रहित नगर है। वहाँ तुम छिप कर रहो और मुझसे मिलने की इच्छा करते रहो अर्थात् मुझे जब तुम लोगों से मिलना होगा, तब मैं वहीं आ जाऊँगा। इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर वे सत्यवती पुत्र भगवान् व्यास उन्हें लेकर एकचक्रा नगरी में गये और उन्होंने कुन्ती को भी ढाढस बँधाया। ये सारी बातें कह कर उन्होंने उन्हें एक ब्राह्मण के घर में ठहरा दिया और उसके बाद वे भगवान् व्यास ऋषि जैसे आये थे, वैसे ही चले गये।

बभूवुर्नागराणां च स्वैर्गुणैः प्रियदर्शनाः।। ११।।
निवेदयन्ति स्म तदा कुन्त्या भैक्षं सदा निशि।
तया विभक्तान् भागांस्ते भुञ्जते स्म पृथक् पृथक्।। १२।।
अर्धं ते भुञ्जते वीराः सह मात्रा परंतपाः।
अर्धं सर्वस्य भैक्षस्य भीमो भुङ्क्ते महाबलः।। १३।।
ततः कदाचिद् भैक्षाय गतास्ते पुरुषर्षभाः।
संगत्या भीमसेनस्तु तत्रास्ते पृथया सह।। १४।।

वहाँ रहते हुए पांडव अपने गुणों से नगरवासियों के प्यारे बन गये। वे रात्रि के आरम्भ में भिक्षा के लिये जाते थे और सारी भिक्षा लाकर कुन्ती के आगे रख देते थे। उसके द्वारा बाँटे हुए भागों को वे अलग अलग खाते थे। आधी भिक्षा वे शत्रुओं को संतप्त करने वाले अपनी माता के साथ खाते थे और आधी महाबली भीम खाया करते थे। एक दिन वे सारे पुरुषश्रेष्ठ भिक्षा के लिये गये हुए थे और केवल भीम ही माता के साथ थे।

अथार्तिजं महाशब्दं ब्राह्मणस्य निवेशने।
भृशमुत्पतितं घोरं कुन्ती शुश्राव न चक्षमे।। १५।।
मथ्यमानेन दुःखेन हृदयेन पृथा तदा।
उवाच भीमं कल्याणी कृपान्वितमिदं वचः।। १६।।
वसाम सुसुखं पुत्र ब्राह्मणस्य निवेशने।
अज्ञाता धार्तराष्ट्रस्य सत्कृता वीतमन्यवः।। १७।।

तभी अचानक ब्राह्मण के घर में से दुःख से उत्पन्न हुई भयानक महान ध्वनि जोर जोर से आने लगी, जिसे सुन कर कुन्ती सहन न कर सकी। दुःख से उसका हृदय मथित होने लगा। वह कल्याणी तब दया से भर कर भीम से बोली कि हे पुत्र! हम इस ब्राह्मण के घर में बड़े सुख पूर्वक रहते हैं! यहाँ हम धृतराष्ट्र के पुत्रों से छिपे हुए हैं और यहाँ हमारा इतना सत्कार इनके द्वारा हुआ है कि हम अपना दुख भूल गये हैं।

सा चिन्तये सदा पुत्र ब्राह्मणस्यास्य किं न्वहम्।
प्रियं कुर्यामिति गृहे यत् कुर्युरुषिताः सुखम्।। १८।।
एतावान् पुरुषस्तात कृतं यस्मिन् न नश्यति।
यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्यादभ्यधिकं ततः।। १९।।
तदिदं ब्राह्मणस्यास्य दुःखमापतितं ध्रुवम्।
तत्रास्य यदि साहाय्यं कुर्यामुपकृतं भवेत्।। २०।।

मैं इसलिये सदा यही सोचती रहती हूँ कि इस ब्राह्मण का मैं कौन सा ऐसा प्रिय कार्य करूँ, जो किसी के घर में सुख पूर्वक रहने वाले के लिये उचित हो। किसी के द्वारा किया हुआ उपकार बिना प्रत्युपकार किये नष्ट नहीं होता। इसलिये पुरुष का पौरुष इसी में है कि जितना कोई उसके लिये करे, वह उसका उससे अधिक प्रत्युपकार करे। इस ब्राह्मण के ऊपर अब निश्चित रूप से कोई दुःख आया हुआ है। उस दुःख में यदि हम इसकी सहायता कर सकें तो उसका प्रत्युपकार हो सकता है।

भीमसेन उवाच

ज्ञायतामस्य यद् दुःखं यतश्चैव समुत्थितम्।
विदित्वा व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात् सुदुष्करम्।। २१।।
अन्तःपुरं ततस्तस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः।
विवेश त्वरिता कुन्ती बद्धवत्सेव सौरभी।। २२।।
ततस्तं ब्राह्मणं तत्र भार्यया च सुतेन च।
दुहित्रा चैव सहितं ददर्शावनताननम्।। २३।।

तब भीमसेन ने कहा कि इसके दुख के बारे में मालूम करो कि वह कहाँ से आया है। मैं जान कर प्रयत्न करूँगा, चाहे वह अत्यन्त दुष्कर भी क्यों न हो। तब उस महात्मा ब्राह्मण के अन्तःपुर में कुन्ती उसी प्रकार तेजी से प्रविष्ट हो गयी, जैसे गाय अपने बँधे हुए बछड़े के पास पहुँच जाती है। वहाँ उसने ब्राह्मण को, अपनी पत्नी, पुत्र और पुत्री के साथ सिर झुकाये बैठे हुए देखा।

ब्राह्मण उवाच

न हि योगं प्रपश्यामि येन मुच्येयमापदः।
पुत्रदारेण वा सार्धं प्राद्रवेयमनामयम्।। २४।।

यतितं वै मया पूर्वं वेत्थ ब्राह्मणि तत् तथा।
क्षेमं यतस्ततो गन्तुं त्वया तु मम न श्रुतम्।। २५।।
इह जाता विवृद्धास्मि पिता चापि ममेति वै।
उक्तवत्यसि दुर्मेधे याच्यमाना मयासकृत्।। २६।।
स्वर्गतोऽपि पिता वृद्धस्तथा माता चिरं तव।
बान्धवा भूतपूर्वाश्च तत्र वासे तु का रतिः।। २७।।

ब्राह्मण कह रहा था कि मुझे कोई ऐसा तरीका दिखाई नहीं देता, जिससे इस मुसीबत से छुटकारा पा सकूँ और पुत्र तथा पत्नी आदि के साथ निर्विघ्न स्थान पर भाग सकूँ। हे ब्राह्मणी! तुम जानती हो कि मैंने पहले यहाँ से कल्याणमय स्थान पर जाने के लिये प्रयत्न किया था। पर तुमने मेरी बात नहीं सुनी। हे मूर्खे! मेरे अनेक बार प्रार्थना करने पर भी तुम यही कहती रही कि मैं यहाँ उत्पन्न हुई, यहीं बड़ी हुई और मेरे पिता जी भी यहीं रहते हैं। तुम्हारे बूढ़े माता पिता बहुत दिन पहले परलोक चले गये। पुराने बान्धव भी छोड़ गये। तब इस स्थान से क्या प्रेम करना।

सोऽयं ते बन्धुकामाया अशृण्वत्या वचो मम।
बन्धुप्रणाशः सम्प्राप्तो भृशं दुःखकरो मम।। २८।।
अथवा मद्विनाशोऽयं न हि शक्ष्यामि कंचन।
परित्यक्तुमहं बन्धुं स्वयं जीवन् नृशंसवत्।। २९।।
सहधर्मचरीं दान्तां नित्यं मातृसमां मम।
सखायं विहितां देवैर्नित्यं परमिकां गतिम्।। ३०।।
पित्रा मात्रा च विहितां सदा गार्हस्थ्यभागिनीम्।
वरयित्वा यथान्यायं मन्त्रवत् परिणीय च।। ३१।।

बन्धुओं के पास रहने की इच्छा से तेरे मेरी बात को न सुनने का ही यह फल है कि आज मेरे बन्धु बान्धवों के विनाश की यह अत्यन्त दुःखकारी घड़ी आ गयी है। अथवा यह मेरे ही विनाश का समय है। मैं किसी प्रकार भी एंक निर्दय मनुष्य के समान स्वयं जीवित रहते हुए अपने बन्धु का त्याग नहीं कर सकता। तुम मेरी सहधर्मिणी हो। अपनी इन्द्रियों का दमन कर तुम सदा मेरा माता के समान पालन करती हो। देवताओं ने अर्थात् पंडितों ने तुम्हें मेरी मित्र अर्थात् सहायिका बनाया है। तुम मेरी परम गति अर्थात् सबसे बड़ा सहारा हो। तुम्हारे माता पिता ने धर्म के अनुसार मेरा वरण कर, मंत्रोच्चारण के द्वारा तुम्हारे साथ विवाह किया, तुम्हें मेरी गृहस्थी की सहभागी बनाया है।

कुलीनां शीलसम्पन्नामपत्यजननीमपि।
त्वामहं जीवितस्यार्थे साध्वीमनपकारिणीम्।। ३२।।
परित्यक्तुं न शक्ष्यामि भार्यां नित्यमनुव्रताम्।
कुत एव परित्यक्तुं सुतं शक्ष्याम्यहं स्वयम्।। ३३।।
बालमप्राप्तवय समजातव्यञ्जनाकृतिम्।
भर्तुरर्थाय निक्षिप्तां न्यासं धात्रा महात्मना।। ३४।।
स्वयमुत्पाद्य तां बालां कथमुत्स्रष्टुमुत्सहे।
मन्यन्ते केचिदधिकं स्नेहं पुत्रे पितुर्नराः।। ३५।।
कन्यायां केचिदपरे मम तुल्यावुभौ स्मृतौ।

तुम उत्तम कुल उत्पन्न और शील से युक्त हो। तुम मेरी सन्तानों को जन्म देने वाली हो। मैं तुम जैसी साध्वी मेरा कभी अपकार न करने वाली, सदा मेरे अनुसार रहने वाली पत्नी को अपने जीवन के लिये नहीं छोड़ सकता। फिर स्वयं अपने उस पुत्र को कैसे त्याग सकता हूँ, जो अभी बच्चा है, जिसने न तो अभी युवावस्था में प्रवेश किया है और न जिसमें युवावस्था के लक्षण उत्पन्न हुए हैं। फिर उस कन्या को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ, जिसे मैंने स्वयं जन्म दिया है, जिसे परमात्मा, विधाता ने पति के लिये मेरे पास धरोहर के रूप में छोड़ा हुआ है। कुछ लोग यह मानते हैं कि पिता का पुत्र पर अधिक स्नेह होता है। कुछ लोग पुत्री पर अधिक स्नेह बताते हैं। पर मुझे तो दोनों ही समान रूप से प्रिय हैं।

यस्यां लोकाः प्रसूतिश्च स्थिता नित्यमथो सुखम्।। ३६।।
अपापां तामहं बालां कथमुत्स्रष्टुमुत्सहे।
आत्मानमपि चोत्सृज्य तप्स्यामि परलोकगः।। ३७।।
त्यक्ताह्येते मया व्यक्तं नेह शक्ष्यन्ति जीवितुम्।

जिसके आधार पर संसार की स्थिति, संसार का जन्म और संसार का सार्वकालिक सुख निर्भर है, उस निष्पाप बालिका को त्यागने का साहस मैं कैसे कर सकता हूँ? अपना जीवन छोड़ कर भी परलोक में जाकर मुझे यही संताप रहेगा कि मेरे द्वारा त्यागे हुए ये लोग जीवित नहीं रह सकते।

एषां चान्यतमत्यागो नृशंसो गर्हितो बुधैः।। ३८।।
आत्मत्यागे कृते चेमे मरिष्यन्ति मया विना।
स कृच्छ्रामहमापन्नो न शक्तस्तर्तुमापदम्।। ३९।।
अहो धिक् कां गतिं त्वद्य गमिष्यामि सबान्धवः।
सर्वैः सह मृतं श्रेयो न च मे जीवितं क्षमम्।। ४०।।

इनमें से किसी का भी त्याग विद्वानों ने निर्दयता से युक्त और निन्दनीय बताया है, पर मेरे मर जाने

पर ये सारे मेरे बिना मर जायेंगे। इस प्रकार मैं ऐसी मुसीबत को प्राप्त हुआ हूँ जिससे किसी भी प्रकार छुटकारा नहीं हो सकता। मुझे धिक्कार है। पता नहीं आज मेरी अपने परिवार के साथ क्या गति होगी? मेरे लिये जीवित रहना उचित नहीं है, इसलिये सबके साथ मर जाना ही अच्छा है।

अट्ठाईसवाँ अध्यायः ब्राह्मण परिवार की बक राक्षस जन्य चिन्ता।

ब्राह्मणी उवाच

न संतापस्त्वया कार्यः प्राकृतेनेव कर्हिचित्।
न हि संतापकालोऽयं वैद्यस्य तव विद्यते।। १।।
अवश्यं निधनं सर्वैर्गन्तव्यमिह मानवैः।
अवश्यम्भाविन्यर्थे वै संतापो नेह विद्यते।। २।।
व्यथां जहि सुबुद्ध्या त्वं स्वयं यास्यामि तत्र च।
एतद्धि परमं नार्याः कार्यं लोके सनातनम्।। ३।।
प्राणानपि परित्यज्य यद् भर्तृहितमाचरेत्।

तब ब्राह्मणी ने कहा कि हे स्वामी! आपको एक सामान्य व्यक्ति के समान शोक नहीं करना चाहिये। आप जैसे विद्वान् के लिये यह शोक करने का समय नहीं है। इस संसार में सभी मनुष्यों को एक दिन तो अवश्य ही मरना होता है, इसलिये भविष्य में जो बात अवश्य होगी, उसके लिये शोक मत कीजिये। आप अपनी उत्तम बुद्धि का आश्रय लेकर शोक को छोड़ दीजिये। मैं वहाँ स्वयं जाऊँगी। पत्नी के लिये संसार में यह परम सनातन कर्तव्य है कि वह अपने प्राणों को भी छोड़ कर अपने पति की भलाई करे।

तच्च तत्र कृतं कर्म तवापीदं सुखावहम्।। ४।।
भवत्यमुत्र चाक्षय्यं लोकेऽस्मिंश्च यशस्करम्।
एष चैव गुरुर्धर्मो यं प्रवक्ष्याम्यहं तव।। ५।।
अर्थश्च तव धर्मश्च भूयानत्र प्रदृश्यते।
यदर्थमिष्यते भार्या प्राप्तः सोऽर्थस्त्वया मयि।। ६।।
कन्या चैका कुमारश्च कृताहमनृणा त्वया।
समर्थः पोषणे चासि सुतयो रक्षणे तथा।। ७।।
न त्वहं सुतयोः शक्ता तथा रक्षणपोषणे।

इस समय मेरे द्वारा किया हुआ यह कार्य आपके लिये भी सुखकारी होगा और मैं जहाँ परलोक में उत्तम गति को प्राप्त करूँगी वहाँ इस संसार में भी यशस्विनी बनूँगी। जिस कार्य के लिये मैं आपको बता रही हूँ इस समय वही सबसे बड़ा धर्म है। इससे आप सांसारिक कार्यों और धर्म का पालन दोनों कर सकते हैं। जिस उद्देश्य के लिये पत्नी की इच्छा की जाती है, वह उद्देश्य आपका मुझसे पूरा हो गया। एक पुत्री और एक पुत्र को जन्म देकर आपने मुझे भी ऋण से उऋण कर दिया। आप दोनों बच्चों का पालन करने तथा रक्षा करने में समर्थ हैं, किन्तु मैं अकेली बच्चों का पालन और रक्षा नहीं कर सकूँगी।

मम हि त्वद्विहीनायाः सर्वप्राणधनेश्वर।। ८।।
कथं स्यातां सुतौ बालौ भरेयं च कथं त्वहम्।
कथं हि विधवानाथा बालपुत्रा बिना त्वया।। ९।।
मिथुनं जीवयिष्यामि स्थिता साधुगते पथि।
उत्सृष्टमामिषं भूमौ प्रार्थयन्ति यथा खगाः।। १०।।
प्रार्थयन्ति जनाः सर्वे पतिहीनां तथा स्त्रियम्।
साहं विचाल्यमाना वै प्रार्थ्यमाना दुरात्मभिः।। ११।।
स्थातुं पथि न शक्ष्यामि सज्जनेष्टे द्विजोत्तम।

हे मेरे सर्वस्व के स्वामी प्राणेश्वर! आपके बिना मेरे इन बच्चों की क्या अवस्था होगी? मैं कैसे इन बच्चों का भरण पोषण करूँगी? तुम्हारे बिना, जिसका पुत्र अभी बच्चा है, ऐसी अनाथ विधवा मैं कैसे इन बच्चों को उत्तम मार्ग पर स्थित रहते हुए जीवित रख सकूँगी। जैसे भूमि पर पड़े हुए माँस की तरफ पक्षी झपटते हैं, उसी तरह पति से रहित स्त्री की तरफ लोग झपटते हैं। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! उस अवस्था में दुष्टात्माओं के द्वारा याचना करने और विचलित करने का प्रयत्न करने पर मैं सज्जनों के मार्ग पर स्थिर रहने में समर्थ नहीं हो सकूँगी।

कथं तव कुलस्यैकामिमां बालामनागसम्।। १२।।
पितृपैतामहे मार्गे नियोक्तुमहमुत्सहे।
कथं शक्ष्यामि बालेऽस्मिन् गुणानाधातुमीप्सितान्।। १३।।
अनाथे सर्वतो लुप्ते यथा त्वं धर्मदर्शिवान्।
इमामपि च ते बालामनाथां परिभूय माम्।। १४।।
अनर्हाः प्रार्थयिष्यन्ति शूद्रा वेदश्रुतिं यथा।
तां चेदहं न दित्सेयं त्वद्गुणैरुपबृंहिताम्।। १५।।
प्रमथ्यैनां हरेयुस्ते हविर्ध्वाङ्क्षा इवाध्वरात्।

मैं तुम्हारे कुल की इस अकेली और निरपराध बालिका को कैसे बाप दादाओं के धर्म मार्ग पर लगाये रखने में समर्थ हो सकूँगी? आप धर्म के

ज्ञाता हैं। आप जिस प्रकार अपने पुत्र को योग्य बना सकते हैं, उस प्रकार मैं कैसे सब तरफ से आश्रयहीन हो जाने पर इसके अन्दर इष्ट गुणों की स्थापना कर सकूँगी? जैसे अनधिकारी शूद्र वेद की श्रुति को प्राप्त करना चाहते हैं वैसे ही अयोग्य व्यक्ति आपकी इस अनाथ पुत्री को मेरी अवहेलना करके प्राप्त करने के लिये कहेंगे। आपके उत्तम गुणों से युक्त इसे यदि मैं उन्हें नहीं दूँगी तो वे बलपूर्वक इसे ऐसे ही हर कर ले जायेंगे, जैसे कौवे यज्ञ में हविष्य पदार्थ को लेकर उड़ जायें।

सम्प्रेक्षमाणा पुत्रं ते नानुरूपमिवात्मनः।। १६।।
अनर्हवशमापन्नामिमां चापि सुतां तव।
अवज्ञाता च लोकेषु तथाऽऽत्मानमजानती।। १७।।
अवलिप्तैर्नरैर्ब्रह्मन् मरिष्यामि न संशयः।
तौ च हीनौ मया बालौ त्वया चैव तथाऽऽत्मजौ।। १८।।
विनश्येतां न संदेहो मत्स्याविव जलक्षये।
त्रितयं सर्वथाप्येवं विनशिष्यत्यसंशयम्।। १९।।
त्वया विहीनं तस्मात् त्वं मां परित्यक्तुमर्हसि।

हे ब्रह्मन्! आपके इस पुत्र को आपके अनुरूप न देख कर, और इस आपकी पुत्री को भी अयोग्य व्यक्ति के बस में पड़ा देख कर तथा दुनिया में दुष्ट मनुष्यों के द्वारा अपमानित होकर, अपने को सम्मानित अवस्था में न जानते हुए मैं निश्चित रूप से मर जाऊँगी। तब आपके और मेरे द्वारा रहित ये दोनों अपने बच्चे ऐसे ही नष्ट हो जायेंगे जैसे पानी के सूख जाने पर तालाब की मछलियाँ नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार आपसे रहित हो जाने पर हम तीनों ही पूरी तरह से नष्ट हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है, इसलिये आप मुझे छोड़ दीजिये।

व्युष्टिरेषा परा स्त्रीणां पूर्वं भर्तुः परां गतिम्।। २०।।
गन्तुं ब्रह्मन् सपुत्राणामिति धर्मविदो विदुः।
यज्ञैस्तपोभिर्नियमैर्दानैश्च विविधैस्तथा।। २१।।
विशिष्यते स्त्रिया भर्तुर्नित्यं प्रियहिते स्थितिः।
तदिदं च्चिकीर्षामि धर्मं परमसम्मतम्।। २२।।
इष्टं चैव हितं चैव तव चैव कुलस्य च।

हे ब्रह्मन्! धर्म के जानकार जानते है कि पुत्रवाली स्त्री यदि पति से पहले परलोक को चली जाये तो उसके लिये यह परम सौभाग्य की बात है। पति के हित में सदा लगी रहने वाली स्त्री के लिये उसका कार्य यज्ञों तथा तपों और अनेक प्रकार के नियमों का पालन करने और दान देने से भी बढ़कर है। इसलिये मैं जो कार्य करना चाहती हूँ, वह लोगों के द्वारा अत्यन्त सम्मानित धर्म है। यह आपके और आपके कुल के लिये हितकारी और अनुकूल भी है।

अवध्यां स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये।। २३।।
धर्मज्ञान् राक्षसानाहुर्न हन्यात् स च मामपि।
निस्संशयं वधः पुंसा स्त्रीणां संशयितो वधः।। २४।।
अतो मामेव धर्मज्ञ प्रस्थापयितुमर्हसि।
भुक्तं प्रियाण्यवाप्तानि धर्मश्च चरितो महान्।। २५।।
त्वत् प्रसूतिः प्रिया प्राप्ता न मां तप्स्यत्यजीवितम्।
एतत् सर्वं समीक्ष्य त्वमात्मत्यागं च गर्हितम्।। २६।।
आत्मानं तारयाद्याशु कुलं चेमौ च दारकौ।

धर्म का निश्चय करने वाले धर्मज्ञों ने स्त्री को अवध्य बताया है। कुछ राक्षस भी धर्म का पालन करने वाले होते हैं इसलिये शायद वह मुझे न मारे। पुरुष का वध तो राक्षस के द्वारा निस्सन्देह होगा ही। स्त्री के वध में सन्देह है। इसलिये भी हे धर्मज्ञ! तुम्हें मुझे ही भेजना चाहिये। मैंने आपसे अपने प्रिय भोगों को भोग लिया, प्रिय पदार्थो को प्राप्त कर लिया, महान धर्म का भी पालन कर लिया और आपसे प्यारी सन्तान भी प्राप्त कर ली। अब मुझे मरने पर कोई दुख नहीं होगा। इन सब बातों पर विचार कर और अपने देह त्याग को निन्दित मानकर आप जल्दी ही अपनी, कुल की और इन दोनों बच्चों की रक्षा कीजिये।

तयोर्दुःखितयोर्वाक्यमतिमात्रं निशम्य तु।। २७।।
ततो दुःखपरीताङ्गी कन्या तावभ्यभाषत।
किमेवं भृशदुःखार्तौ रोरूयेतामनाथवत्।। २८।।
ममापि श्रूयतां वाक्यं श्रुत्वा च क्रियतां क्षमम्।
धर्मतोऽहं परित्याज्या युवयोर्नात्र संशयः।। २९।।
त्यक्तव्यां मां परित्यज्य त्राहि सर्वं मयैकया।
इत्यर्थमिष्यतेऽपत्यं तारयिष्यति मामिति।। ३०।।
अस्मिन्नुपस्थिते काले तरध्वं प्लववन्मया।

अत्यधिक दुखी अपने उन दोनों माता पिता की बातों को सुनकर शोक जिसके सारे शरीर में व्याप्त हो गया था, वह पुत्री उन दोनों से बोली कि आप इतने अधिक दुःख से पीड़ित होकर क्यों अनाथों के समान बार बार रो रहे हैं। आप मेरी भी बात सुनिये और सुन कर उचित कार्य कीजिये। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि धर्म के अनुसार आपको

मुझे एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा, सो मुझ छोड़ी जाने वाली लड़की को आप इस समय ही छोड़ कर, मुझ अकेली के द्वारा सबकी रक्षा कीजिये। सन्तान की इसलिये इच्छा की जाती है, कि यह संकट के समय मेरा उद्धार करेगी। इसलिये इस मुसीबत के समय के आने पर आप नाव की तरह मेरा प्रयोग कर शोक से पार हो जाइये।

भ्राता च मम बालोऽयं गते लोकममुं त्वयि।। ३१।।
अचिरेणैव कालेन विनश्येत न संशयः।
पित्रा त्यक्ता तथा मात्रा भ्रात्रा चाहमसंशयम्।। ३२।।
दुःखाद् दुःखतरं प्राप्य म्रियेयमतथोचिता।
अनाथा कृपणा बाला यत्रक्वचनगामिनी।। ३३।।
भविष्यामि त्वया तात विहीना कृपणा सदा।

मेरा भाई अभी बच्चा है, आपके परलोक चले जाने पर यह जल्दी ही नष्ट हो जाएगा इसमें संशय नहीं है। पिता, माता और भाई से वंचित होकर मैं एक दुःख से दूसरे दुःख में पड़ती हुई मर जाऊँगी। यद्यपि मैं उन दुःखों को भोगने के योग्य नहीं होऊँगी, पर निश्चित रूप से मुझे उन्हें भोगना पड़ेगा। हे पिता जी! आपके बिना मैं अनाथ और असहाय हो जाऊँगी। मुझ अनाथ और असहाय को विवशता में कहीं भी जाना पड़ जायेगा।

अथवाहं करिष्यामि कुलस्यास्य विमोचनम्।। ३४।।
फलसंस्था भविष्यामि कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।
अथवा यास्यसे तत्र त्यक्त्वा मां द्विजसत्तम।। ३५।।
पीडिताहं भविष्यामि तदवेक्षस्व मामपि।
तदस्मदर्थं धर्मार्थं प्रसवार्थं स सत्तम।। ३६।।
आत्मानं परिरक्षस्व त्यक्तव्यां मां च संत्यज।

मेरे सामने दो ही मार्ग हैं या तो मैं इस मृत्यु रूपी अत्यन्त कठिन कार्य को कर आपके परिवार को दुःख से छुटकारा दिलादूँ और उत्तम फल को प्राप्त करूँ। या हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! आपके राक्षस के पास चले जाने पर मैं अत्यन्त दुःख में पड़ जाऊँ। इसलिये आप मेरी तरफ भी देखिये। हे सज्जनों में श्रेष्ठ। अतः आप मेरे लिये, सन्तान के लिये और धर्म की रक्षा के लिये अपनी रक्षा कीजिये और मुझे जिसे आपको एक दिन छोड़ना ही है, आज ही छोड़ दीजिये।

अवश्यकरणीये च मा त्वां कालोऽत्यगादयम्।। ३७।।
किं त्वतः परमं दुःखं यद् वयं स्वर्गते त्वयि।
याचमानाः परादन्नं परिधावेमहि श्ववत्।। ३८।।
त्वयि त्वरोगे निर्मुक्ते क्लेशादस्मात् सबान्धवे।
अमृते वसती लोके भविष्यामि सुखान्विता।। ३९।।
एवं बहुविधं तस्या निशम्य परिदेवितम्।
पिता माता च सा चैव कन्या प्ररुरुदुस्त्रयः।। ४०।।
ततः प्ररुदितान् सर्वान् निशम्याथ सुतस्तदा।
उत्फुल्लनयनो बालः कलमव्यक्तमब्रवीत्।। ४१।।

जो कार्य अवश्य करना है, उसमें आप समय को नष्ट मत कीजिये। इससे अधिक दुःख की बात क्या होगी कि हम आपके परलोक को जाने पर दूसरों से भीख माँगते हुए कुत्तों की तरह इधर उधर दौड़ते फिरें। यदि आप मेरे द्वारा परिवार सहित इस क्लेश से मुक्त होकर स्वस्थ रहेंगे तो मैं उस अमर लोक में रहती हुई भी सुख को प्राप्त करूँगी। इस प्रकार कन्या के अनेक प्रकार के विलाप को सुनकर माता पिता वह कन्या भी तीनों जोर जोर से रोने लगे। तब उन तीनों को फूट फूट कर रोते हुए देख कर, उनका पुत्र वह छोटा बच्चा, खिली हुई आँखों से उनको देखता हुआ, अपनी तुतलाती हुई अस्पष्ट आवाज में बोला कि–।

मा पिता रुद मा मातर्मा स्वसस्त्विति चाब्रवीत्।
प्रहसन्निव सर्वांस्तानेकैकमनुसर्पति।। ४२।।
ततः स तृणमादाय प्रहृष्टः पुनरब्रवीत्।
अनेनाहं हनिष्यामि राक्षसं पुरुषादकम्।। ४३।।
तथापि तेषां दुःखेन परीतानां निशम्य तत्।
बालस्य वाक्यमव्यक्तं हर्षः समभवन्महान्।। ४४।।
अयं काल इति ज्ञात्वा कुन्ती समुपसृत्य तान्।
गतासूनमृतेनेव जीवयन्तीदमब्रवीत्।। ४५।।

पिता जी! रोओ मत, माता जी और बहिन जी! आप भी मत रोओ, यह हँसते हुए कहता हुआ वह हर एक के पास जाने लगा। फिर वह एक तिनका उठा कर खुशी के साथ कहने लगा कि मैं इससे उस आदमियों को खाने वाले राक्षस को मार दूँगा। यद्यपि वे सब उस समय दुःख से भरे हुए थे, पर बच्चे की उस तोतली बोली को सुन कर प्रसन्न हो गये। यही इनसे बात करने का समय है, यह समझ कर कुन्ती तब उनके पास गयी और जैसे कोई मरणान्त व्यक्ति को अमृत का दान कर उसे जीवित कर दे, वैसे ही उनसे बोली कि–।

उनत्तीसवाँ अध्याय : कुन्ती का बक राक्षस हेतु भीम का प्रस्ताव और युधिष्ठिर को समझाना।

कुतोमूलमिदं दुःखं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः।
विदित्वाप्यपकर्षेयं शक्यं चेदपकर्षितुम्।। १।।

ब्राह्मण उवाच

उपपन्नं सतामेतद् यद् ब्रवीषि तपोधने।
न तु दुःखमिदं शक्यं मानुषेण व्यपोहितुम्।। २।।
समीपे नगरस्यास्य बको वसति राक्षसः।
इतो गव्यूतिमात्रेऽस्ति यमुनागह्वरे गुहा।। ३।।
तस्यां घोरः स वसति जिघांसुः पुरुषादकः।
तेनेयं पुरुषादेन भक्ष्यमाणा दुरात्मना।। ४।।
अनाथा नगरी नाथं त्रातारं नाधिगच्छति।

आप लोगों के दुःख का कारण क्या है? मैं उसे ठीक ठीक जानना चाहती हूँ। जान कर यदि दूर कर सकी तो दूर करूँगी। तब ब्राह्मण ने कहा कि हे तपोधने! आपने जो कुछ कहा है, वह सज्जन लोगों के योग्य है, पर यह दुःख मनुष्य के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता। इस नगर के समीप यहाँ से दो कोस की दूरी पर यमुना के किनारे गुफा में बक नाम का भयानक नरभक्षी हिंसा प्रिय राक्षस रहता है। उस दुष्ट नरभक्षी के द्वारा खायी जाती हुई यह अनाथ नगरी अपने किसी रक्षक को नहीं प्राप्त कर पा रही है।

वेतनं तस्य विहितं शालिवाहस्य भोजनम्।। ५।।
महिषौ पुरुषश्चैको यस्तदादाय गच्छति।
एकैकश्चापि पुरुषस्तत् प्रयच्छति भोजनम्।। ६।।
स वारो बहुभिर्वर्षैर्भवत्यसुकरो नरैः।
तद्विमोक्षाय ये केचिद् यतन्ति पुरुषाः क्वचित्।। ७।।
सपुत्रदारांस्तान् हत्वा तद् रक्षो भक्षयत्युत।

उसके लिये इस नगरी की तरफ से यह कर नियत किया गया है कि चावल का भात, दो भैंसे और एक आदमी, जो यह सामान लेकर उसके पास जाता है। एक एक व्यक्ति उसके लिये अपनी बारी आने पर भोजन का प्रबन्ध करता है। वह बारी यद्यपि बहुत वर्षों के बाद आती है, पर उसकी पूर्ति करना लोगों के लिये बहुत कठिन होता है। जो मनुष्य उससे छूटने का यत्न करते हैं, वह राक्षस उन्हें पुत्र और स्त्री सहित मार कर खा जाता है।

वेत्रकीयगृहे राजा नायं नयमिहास्थितः।। ८।।
उपायं तं न कुरुते यत्नादपि स मन्दधीः।
अनामयं जनस्यास्य येन स्यादद्य शाश्वतम्।। ९।।
एतदर्हा वयं नूनं वसामो दुर्बलस्य ये।
विषये नित्यवास्तव्याः कुराजानमुपाश्रिताः।। १०।।

यहाँ का राजा वेत्रकीयगृह नाम के स्थान पर रहता है। वह न्याय के मार्ग पर नहीं चलता। वह मन्दबुद्धि राजा कोई ऐसा उपाय करने का प्रयत्न नहीं करता, जिससे यहाँ की प्रजा का, सदा के लिये संकट दूर हो जाये। हम क्योंकि इस दुष्ट और दुर्बल राजा का आश्रय लेकर इसके राज्य में स्थायी रूप से निवास करते हैं, इसलिये यह अत्याचार भोगने के योग्य भी हैं।

सोऽयमस्माननुप्राप्तो वारः कुलविनाशनः।
भोजनं पुरुषश्चैकः प्रदेयं वेतनं मया।। ११।।
गतिं चैव न पश्यामि तस्मान्मोक्षाय रक्षसः।
सोऽहं दुःखार्णवे मग्नो महत्यसुकरे भृशम्।। १२।।

अब यह कुल को नष्ट करने वाली बारी आज मेरी आ गयी है। मुझे उसे भोजन और एक व्यक्ति की भेंट करनी है। उस राक्षस से छुटकारे का कोई उपाय मुझे दिखाई नहीं देता। मैं इस समय महान दुस्तर अत्यन्त दुःख के सागर में डूब रहा हूँ।

कुन्त्युवाच

न विषादस्त्वया कार्यो भयादस्मात् कथंचन।
उपायः परिदृष्टोऽत्र तस्मान्मोक्षाय रक्षसः।। १३।।
एकस्तव सुतो बालः कन्या चैका तपस्विनी।
न चैतयोस्तथा पत्न्या गमनं तव रोचये।। १४।।
मम पञ्च सुता ब्रह्मंस्तेषामेको गमिष्यति।
त्वदर्थं बलिमादाय तस्य पापस्य रक्षसः।। १५।।

तब कुन्ती ने कहा कि इस भय के कारण किसी प्रकार का विषाद नहीं करना चाहिये। उस राक्षस से मुक्ति पाने का उपाय मुझे दिखाई दे रहा है। तुम्हारा तो एक ही बालक पुत्र है और एक ही तपस्विनी पुत्री है। इसलिये इन दोनों का और आपकी पत्नी का भी जाना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। हे ब्रह्मन्! मेरे पाँच पुत्र हैं। उनमें से एक आपके हिस्से की बलि की सामग्री लेकर उस पापी राक्षस के पास चला जाएगा।

ब्राह्मण उवाच

नाहमेतत् करिष्यामि जीवितार्थी कथंचन।
ब्राह्मणस्यातिथेश्चैव स्वार्थे प्राणान् वियोजयन्।। १६।।

न त्वेतदकुलीनासु नाधर्मिष्ठासु विद्यते।
यद् ब्राह्मणार्थं विसृजेदात्मानमपि चात्मजम्।। १७।।
आत्मनस्तु मया श्रेयो बोद्धव्यमिति रोचते।
ब्रह्मवध्याऽऽत्मवध्या वा श्रेयानात्मवधो मम।। १८।।
ब्रह्मवध्या परं पापं निष्कृतिर्नात्र विद्यते।
अबुद्धिपूर्वं कृत्वापि वरमात्मवधो मम।। १९।।

तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं अपने जीवन के लिये किसी प्रकार भी यह नहीं करूँगा कि अपने लिये ब्राह्मण और अतिथि के प्राणों का त्याग करवा दूँ। ऐसा कार्य तो नीच और अधर्मी लोगों में भी नहीं होता। चाहिये तो यह कि ब्राह्मण की रक्षा के लिये अपना और अपने पुत्र का भी त्याग कर दे। मुझे तो यही अच्छा लगता है कि मैं अपने कल्याण की बात को समझूँ। मुझे आत्महत्या करनी चाहिये या ब्रह्म हत्या करनी चाहिये? इसमें से मुझे आत्म हत्या ही अपने लिये कल्याणकारी लगती है। ब्रह्महत्या तो महा पाप है। उससे छूटने का तो कोई उपाय नहीं है। अनजाने में भी की हुई ब्रह्महत्या से आत्महत्या श्रेष्ठ है।

न त्वहं वधमाकाङ्क्षे स्वयमेवात्मनः शुभे।
परैः कृते वधे पापं न किंचिन्मयि विद्यते।। २०।।
अभिसंधिकृते तस्मिन् ब्राह्मणस्य वधे मया।
निष्कृतिं न प्रपश्यामि नृशंसं क्षुद्रमेव च।। २१।।
आगतस्य गृहं त्यागस्तथैव शरणार्थिनः।
याचमानस्य च वधो नृशंसो गर्हितो बुधैः।। २२।।

हे शुभे! मैं स्वयं तो अपनी हत्या भी करना नहीं चाहता, पर जब दूसरे मेरी हत्या कर देंगे तो इसमें मुझे कोई पाप नहीं लगेगा। उस राक्षस के लिये यदि समझ बूझकर मैंने ब्राह्मण का वध करा दिया, तो यह बड़ा तुच्छ और निर्दयता पूर्ण कार्य होगा। इससे छुटकारे का कोई उपाय मुझे दिखाई नहीं देता। अपने घर पर आये हुए का तथा शरणार्थी का त्याग और रक्षा के लिये याचना करने वाले का वध, ये कार्य विद्वानों ने बड़े निन्दनीय कहे हैं।

कुर्यान्न निन्दितं कर्म न नृशंसं कथंचन।
इति पूर्वे महात्मान आपद्धर्मविदो विदुः।। २३।।
श्रेयांस्तु सहदारस्य विनाशोऽद्य मम स्वयम्।
ब्राह्मणस्य वधं नाहमनुमंस्ये कदाचन।। २४।।

आपद्धर्म के ज्ञाता पुराने महात्मा लोग जानते थे कि मनुष्य को किसी प्रकार भी निन्दित और निर्दयतापूर्ण कार्य को नहीं करना चाहिये। इसलिये यह अच्छा है कि पत्नी के साथ मेरा विनाश हो जाये, पर मैं ब्राह्मण के वध की अनुमति कभी नहीं दूँगा।

कुन्ती उवाच

ममाप्येषा मतिर्ब्रह्मन् विप्रा रक्ष्या इति स्थिरा।
न चाप्यनिष्टः पुत्रो मे यदि पुत्रशतं भवेत्।। २५।।
न चासौ राक्षसः शक्तो मम पुत्रविनाशने।
वीर्यवान् मन्त्रसिद्धश्च, तेजस्वी च सुतो मम।। २६।।
राक्षसाय च तत् सर्वं प्रापयिष्यति भोजनम्।
मोक्षयिष्यति चात्मानमिति मे निश्चिता मतिः।। २७।।
समागताश्च वीरेण दृष्टपूर्वाश्च राक्षसाः।
बलवन्तो महाकाया निहताश्चाप्यनेकशः।। २८।।

तब कुन्ती बोली कि हे ब्रह्मन्! मेरी भी यही स्थिर मति है कि ब्राह्मणों की रक्षा करनी चाहिये और मेरे यदि सौ पुत्र भी होते तो भी मुझे अपना कोई भी पुत्र अप्रिय नहीं होता। पर यह राक्षस मेरे पुत्र को मार नहीं सकता क्योंकि मेरा पुत्र पराक्रमी और तेजस्वी है। उसने एक मन्त्र की सिद्धि की हुई है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह राक्षस के पास उसके भोजन को पहुँचा देगा और अपने को भी राक्षस से छुड़ा लेगा। मेरे वीर पुत्र ने पहले भी अनेक आये हुए बलवान और महाकाय राक्षसों को देखा है और उन्हें मारा भी है।

न त्विदं केषुचिद् ब्रह्मन् व्याहर्तव्यं कथंचन।
विद्यार्थिनो हि मे पुत्रान् विप्रकुर्युः कुतूहलात्।। २९।।
गुरुणा चाननुज्ञातो ग्राहयेद् यत् सुतो मम।
न स कुर्यात् तथा कार्यं विद्ययेति सतां मतम्।। ३०।।
एवमुक्तस्तु पृथया स विप्रो भार्यया सह।
हृष्टः सम्पूजयामास तद्वाक्यममृतोपमम्।। ३१।।
ततः कुन्ती च विप्रश्च सहितावनिलात्मजम्।
तमब्रूतां कुरुष्वेति स तथेत्यब्रवीच्च तौ।। ३२।।

पर हे ब्रह्मन्! यह बात किसी और से किसी प्रकार भी मत कहना। नहीं तो सीखने के इच्छुक लोग कौतुहलवश मेरे पुत्रों को तंग करेंगे। फिर सज्जनों का यही मत है कि बिना गुरु की आज्ञा लिये मेरा पुत्र उस मन्त्र को किसी को सिखा देगा तो वह विद्या उस व्यक्ति के लिये वैसी प्रभावकारी नहीं होगी। कुन्ती के द्वारा यह कहे जाने पर वह ब्राह्मण अपनी पत्नी के साथ बड़ा प्रसन्न हुआ और उसके अमृत के समान उन वाक्यों की उसने बड़ी

प्रशंसा की। तब कुन्ती और उस ब्राह्मण दोनों ने वायुपुत्र भीमसेन से कहा कि आप यह काम कर दीजिये। तब भीम ने उनसे कहा अच्छा ऐसा ही होगा।

आजग्मुस्ते ततः सर्वे भैक्षमादाय पाण्डवाः।
आकारेणैव तं ज्ञात्वा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः।। ३३।।
रहः समुपविश्यैकस्ततः पप्रच्छ मातरम्।
किं चिकीर्षत्ययं कर्म भीमो भीमपराक्रमः।। ३४।।
भवत्यनुमते कच्चित् स्वयं वा कर्तुमिच्छति।

कुन्ती उवाच

ममैव वचनादेष करिष्यति परंतपः।। ३५।।
ब्राह्मणार्थे महत् कृत्यं मोक्षाय नगरस्य च।

युधिष्ठिर उवाच

किमिदं साहसं तीक्ष्णं भवत्या दुष्करं कृतम्।। ३६।।
परित्यागं हि पुत्रस्य न प्रशंसन्ति साधवः।

तभी वे सारे पाण्डव भिक्षा लेकर आ गये। तब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ने भीम की आकृति को देख कर ही उसके बारे में कुछ समझ कर एकान्त में बैठ कर अपनी माता से पूछा कि भयानक पराक्रम वाले भीम क्या काम करना चाहते हैं? ये वह काम आपकी अनुमति से करेंगे या स्वयं अपनी इच्छा से करेंगे। तब कुन्ती ने कहा ये शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले भीम मेरे कहने से ही जो इस ब्राह्मण के लिये और सारे नगर की मुक्ति के लिये जो महान् कार्य है, उसे करेंगे। तब युधिष्ठिर ने कहा कि आपने ऐसा भयानक और दुष्कर साहस क्यों किया? सज्जन लोग अपने पुत्र के त्याग की प्रशंसा नहीं करते।

कथं परसुतस्यार्थे स्वसुतं त्यक्तुमिच्छसि।। ३७।।
यस्य बाहू समाश्रित्य सुखं सर्वे शयामहे।
राज्यं चापहृतं क्षुद्रैराजिहीर्षामहे पुनः।। ३८।।
यस्य दुर्योधनो वीर्यं चिन्तयन्नमितौजसः।
न शेते रजनीः सर्वा दुःखाच्छकुनिना सह।। ३९।।
यस्य वीरस्य वीर्येण मुक्ता जतुगृहाद् वयम्।
अन्येभ्यश्चैव पापेभ्यो निहतश्च पुरोचनः।। ४०।।

आप दूसरे के पुत्र के लिये अपने पुत्र को छोड़ना क्यों चाहती हैं? जिसकी भुजाओं का सहारा लेकर हम सुख से सोते हैं और जिसके भरोसे नीच लोगों के द्वारा छीने गये अपने राज्य को फिर प्राप्त करना चाहते हैं, जिस अमित तेजस्वी के पराक्रम की चिन्ता करते हुए दुःख के कारण दुर्योधन को शकुनि के साथ सारी रात नींद नहीं आती। जिस वीर के पराक्रम से हम लाक्षागृह से छूटे और दूसरे पापमय संकटों से बचे और पुरोचन भी मारा गया।

यस्य वीर्यं समाश्रित्य वसुपूर्णां वसुन्धराम्।
इमां मन्यामहे प्राप्तां निहत्य धृतराष्ट्रजान्।। ४१।।
तस्य व्यवसितस्त्यागो बुद्धिमास्थाय कां त्वया।
कच्चिन्नु दुःखैर्बुद्धिस्ते विलुप्ता गतचेतसः।। ४२।।

जिसके पराक्रम का सहारा लेकर हम धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर सारी भूमि को प्राप्त करना चाहते हैं, उसका निश्चय पूर्वक त्याग आपने किस बुद्धि का सहारा लेकर सोचा है? क्या दुखों के कारण आपकी बुद्धि विलुप्त हो गयी है? या आप मोह में पड़ गयी हैं?

कुन्त्युवाच

युधिष्ठिर न संतापस्त्वया कार्यो वृकोदरे।
न चायं बुद्धिदौर्बल्याद् व्यवसायः कृतो मया।। ४३।।
इह विप्रस्य भवने वयं पुत्र सुखोषिताः।
अज्ञाता धार्तराष्ट्राणां सत्कृता वीतमन्यवः।। ४४।।
तस्य प्रतिक्रिया पार्थ मयेयं प्रसमीक्षिता।
एतावानेन पुरुषः कृतं यस्मिन् न नश्यति।। ४५।।

तब कुन्ती के कहा कि हे युधिष्ठिर! तुम्हें भीम के लिये सन्ताप नहीं करना चाहिये। मैंने यह कार्य बुद्धि की दुर्बलता से नहीं किया है। हे पुत्र! हम इस ब्राह्मण के घर में यहाँ सुखपूर्वक रह रहे हैं। यहाँ हम धृतराष्ट्र के पुत्रों से भी छिपे हुए हैं और यहाँ हमारा इतना सत्कार हो रहा है कि हमने अपने दुःख को भुला दिया है। उसी के बदले के लिये मैंने हे पार्थ! यह विचार किया है। सच्चा पुरुष वही है जिसके प्रति किया हुआ उपकार व्यर्थ नष्ट न हो जाये अर्थात् जो अपने प्रति किये हुए उपकार को भुला न दे।

यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्याद् बहुगुणं ततः।
दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तं तदा जतुगृहे महत्।। ४६।।
हिडिम्बस्य वधाच्चैवं विश्वासो मे वृकोदरे।
तदहं प्रज्ञया ज्ञात्वा बलं भीमस्य पाण्डव।। ४७।।
प्रतिकार्ये च विप्रस्य ततः कृतवती मतिम्।
नेदं लोभान्न चाज्ञानान्न च मोहाद् विनिश्चितम्।। ४८।।
बुद्धिपूर्वं तु धर्मस्य व्यवसायः कृतो मया।

अर्थौ द्वावपि निष्पन्नौ युधिष्ठिर भविष्यतः।। ४९।।
प्रतीकारश्च वासस्य धर्मश्च चरितो महान्।

जितना कोई अपने प्रति उपकार करे, उससे अनेक गुणा उपकार उसका करना चाहिये। तब लाक्षागृह में भीम का पराक्रम देख कर तथा उसके द्वारा हिडिंब का वध करने से मेरा भीम पर विश्वास है। इसलिये हे पाण्डव! मैंने बुद्धि से भीम की शक्ति को समझ कर इस ब्राह्मण का प्रत्युपकार करने के लिये यह निश्चय किया है। मैंने यह निश्चय लोभ के कारण या अज्ञान के कारण या मोह के कारण नहीं किया है। मैंने बुद्धि से विचार कर इस धर्म के कार्य को करने का निश्चय किया है। युधिष्ठिर! मेरे इस निश्चय से हमारे दोनों कार्य पूरे हो जायेंगे। यहाँ रहने के बदले में प्रत्युपकार हो जायेगा और महान् धर्म का पालन भी हो जायेगा।

युधिष्ठिर उवाच

उपपन्नमिदं मातस्त्वया यद् बुद्धिपूर्वकम्।। ५०।।
आर्तस्य ब्राह्मणस्यैतदनुक्रोशादिदं कृतम्।
ध्रुवमेष्यति भीमोऽयं निहत्य पुरुषादकम्।। ५१।।
सर्वथा ब्राह्मणस्यार्थे यदनुक्रोशवत्यसि।
यथा त्विदं न विन्देयुर्नरा नगरवासिनः।
तथायं ब्राह्मणो वाच्यः परिग्राह्यश्च यत्नतः।। ५२।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे माता! तुमने जो बुद्धिपूर्वक निश्चय किया है, वह इस दुखी ब्राह्मण पर दया करके ही किया है। आपने ब्राह्मण पर जो इतनी दया दिखाई है तो भीम निश्चित रूप से उस नरभक्षी को मार कर वापिस आयेंगे। आपको इस ब्राह्मण पर यत्न पूर्वक अनुग्रह तो करना चाहिये, पर इस ब्राह्मण से कह दीजिये कि इस बात को दूसरे नगरवासी न जान पायें।

तीसवाँ अध्याय : भीम का बकासुर के पास जाना और उसका वध।

ततो रात्र्यां व्यतीतायामन्नमादाय पाण्डवः।
भीमसेनो ययौ तत्र यत्रासौ पुरुषादकः।। १।।
आसाद्य तु वनं तस्य रक्षसः पाण्डवो बली।
आजुहाव ततो नाम्ना तदन्नमुपपादयन्।। २।।
ततः स राक्षसः क्रुद्धो भीमस्य वचनात् तदा।
आजगाम सुसंक्रुद्धो यत्र भीमो व्यवस्थितः।। ३।।
महाकायो महावेगो दारयन्निव मेदिनीम्।
लोहिताक्षः करालश्च लोहितश्मश्रुमूर्धजः।। ४।।

तब उस रात्रि के बीतने पर पाण्डव भीम राक्षस के लिये निश्चित भोजन लेकर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ वह नरभक्षी राक्षस रहता था। वे बलवान पाण्डव उस राक्षस के वन में पहुँच कर राक्षस का नाम लेकर उसे पुकारने लगे और उसके भोजन को स्वयं खाने लगे। भीम के इस प्रकार पुकारने पर वह राक्षस क्रुद्ध हो गया और अत्यन्त क्रोध में भर कर वहाँ आया, जहाँ भीम बैठे हुए थे। वह राक्षस विशाल शरीर वाला था। उसकी आँखें लाल थीं, आकृति भयानक थी, और दाढ़ी मूँछ तथा सिर के बाल लाल थे। वह पृथिवी को विदीर्ण सा करता हुआ बड़ी तेजी से चलता था।

त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा संदश्य दशनच्छदम्।
भुञ्जानमन्नं तं दृष्ट्वा भीमसेनं स राक्षसः।। ५।।
विवृत्य नयने क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत्।
कोऽयमन्नमिदं भुङ्क्ते मदर्थमुपकल्पितम्।। ६।।
पश्यतो मम दुर्बुद्धिर्यियासुर्यमसादनम्।
भीमसेनस्ततः श्रुत्वा प्रहसन्निव भारतः।। ७।।
राक्षसं तमनादृत्य भुङ्क्त एव पराङ्मुखः।

तीन रेखाओं वाली अपनी भौंहों को टेढ़ा कर और दाँतों से ओठ चबाते हुए, भीम को अपना भोजन खाते हुए देख कर, वह राक्षस क्रोध में भर कर और आँखें तरेर कर बोला कि यह कौन मूर्ख मेरे लिये निश्चित किये गये भोजन को मेरे देखते हुए खा रहा है और मृत्यु के घर में जाना चाहता है। तब वे भरतवंशी भीम उसकी बात सुन कर और उसकी परवाह न कर मुस्कराते हुए उस राक्षस की तरफ से पीठ फेर कर खाते ही रहे।

रवं स भैरवं कृत्वा समुद्यम्य करावुभौ।। ८।।
अभ्यद्रवद् भीमसेनं जिघांसुः पुरुषादकः।
तथापि परिभूयैनं प्रेक्षमाणो वृकोदरः।। ९।।
राक्षसं भुङ्क्त एवान्नं पाण्डवः परवीरहा।
अमर्षेण तु सम्पूर्णः कुन्तीपुत्रं वृकोदरम्।। १०।।
जघान पृष्ठे पाणिभ्यामुभाभ्यां पृष्ठतः स्थितः।
तथा बलवता भीमः पाणिभ्यां भृशमाहतः।। ११।।
नैवावलोकयामास राक्षसं भुङ्क्त एव सः।

तब वह नरभक्षी भयानक शब्द करता हुआ, अपने दोनों हाथ उठा कर भीमसेन को मारने की इच्छा से उसकी तरफ झपटा। फिर भी उस राक्षस की उपेक्षा कर उसकी तरफ देखते हुए शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले पाण्डव भीम उसके भोजन को खाते रहे। तब उसने अमर्ष से भर कर कुन्ती पुत्र भीम के पीछे खड़े हो कर दोनों हाथों से उसकी पीठ पर प्रहार किया। उस बलवान राक्षस के हाथों से जोर से मारे जाने पर भी भीम ने उसकी तरफ देखा ही नहीं और वे उसके भोजन को खाते ही रहे।

ततः स भूयः संक्रुद्धो वृक्षमादाय राक्षसः।। १२।।
ताडयिष्यंस्तदा भीमं पुनरभ्यद्रवद् बली।
क्षिप्तं क्रुद्धेन तं वृक्षं प्रतिजग्राह वीर्यवान्।। १३।।
सव्येन पाणिना भीमः प्रहसन्निव भारतः।
ततः स पुनरुद्यम्य वृक्षान् बहुविधान् बली।। १४।।
प्राहिणोद् भीमसेनाय तस्मै भीमश्च पाण्डवः।
नाम विश्राव्य तु बकः समभिद्रुत्य पाण्डवम्।। १५।।
भुजाभ्यां परिजग्राह भीमसेनं महाबलम्।

तब उस बलवान राक्षस ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक वृक्ष को उखाड़ कर भीम को मारने के लिये दुबारा उस पर आक्रमण किया। पराक्रमी भरतवंशी भीम ने उस क्रुद्ध राक्षस के द्वारा फेंके हुए वृक्ष को मुस्कराते हुए बाँये हाथ से पकड़ लिया। तब उस बलवान राक्षस ने पुनः अनेक वृक्षों को उखाड़ कर उन्हें भीमसेन के ऊपर फैंका और भीमसेन ने उन्हीं वृक्षों को उसके ऊपर फैंका। तब बक ने अपना नाम सुनाते हुए दौड़ कर महा बली पाण्डव भीम को दोनों भुजाओं में जकड़ लिया।

भीमसेनोऽपि तद् रक्षः परिरभ्य महाभुजः।। १६।।
विस्फुरतं महाबाहुं विचकर्ष बलाद् बली।
स कृष्यमाणो भीमेन कर्षमाणश्च पाण्डवम्।। १७।।
समयुज्यत तीव्रेण क्लमेन पुरुषादकः।
हीयमानं तु तद् रक्षः समीक्ष्य पुरुषादकम्।। १८।।
निष्पिष्य भूमौ जानुभ्यां समाजघ्ने वृकोदरः।

विशाल भुजाओं वाले बलवान भीम ने भी उसे अपनी छाती से जकड़ लिया और छूटने के लिये छटपटाते हुए राक्षस को बल पूर्वक खींचना आरम्भ कर दिया। तब वह भी भीमसेन को खींचने लगा और भीम भी उसे खींचने लगे। दोनों के इस प्रकार परस्पर जोर लगाते हुए वह नरभक्षी राक्षस बहुत थक गया। तब उस नरभक्षी राक्षस को कमजोर होता हुआ देख कर भीम ने उसे भूमि पर पटक कर रगड़ते हुए घुटनों से मारना आरम्भ कर दिया।

ततोऽस्य जानुना पृष्ठमवपीड्य बलादिव।। १९।।
बाहुना परिजग्राह दक्षिणेन शिरोधराम्।
सव्येन च कटीदेशे गृह्य वाससि पाण्डवः।। २०।।
तद् रक्षो द्विगुणं चक्रे रुवन्तं भैरवं रवम्।
ततः स भग्नपार्श्वाङ्गो नदित्वा भैरवं रवम्।। २१।।
शैलराजप्रतीकाशो गतासुरभवद् बकः।

फिर भीम ने एक घुटने से उसकी कमर को बल पूर्वक दबा कर दायें हाथ से उसकी गर्दन पकड़ ली और बायें हाथ से उसकी कमर के लंगोट को पकड़ कर भयानक आवाज में चीखते हुए उस राक्षस को उन्होंने दुहरा मोड़ दिया। तब बगल के अंगों के टूट जाने के कारण पर्वत के समान विशालकाय बकासुर भयंकर रूप से चीख कर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

तेन शब्देन वित्रस्तो जनस्तस्याथ रक्षसः।। २२।।
तान् भीतान् विगतज्ञानान् भीमः प्रहरतां वरः।
सान्त्वयामास बलवान् समये च न्यवेशयत्।। २३।।
न हिंस्या मानुषा भूयो युष्माभिरिति कर्हिचित्।
हिंसतां हि वधः शीघ्रमेवमेव भवेदिति।। २४।।
ततो भीमस्तमादाय गतासुं पुरुषादकम्।
द्वारदेशे विनिक्षिप्य गत्वा ब्राह्मण वेश्म तत्।। २५।।
आचचक्षे यथावृत्तं राज्ञः सर्वमशेषतः।

राक्षस के उस चीत्कार के शब्द से उसके परिवार के लोग बहुत डर गये। तब उन्हें डरा हुआ और अचेत सा जान कर प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ बलवान भीम ने उन्हें ढाढ़स बँधाया और उनसे यह शर्त करा ली कि तुमने भविष्य में कभी भी किसी मनुष्य की हत्या नहीं करनी है। जो मनुष्य की हत्या करेगा, उस का जल्दी ही इसी प्रकार वध कर दिया जायेगा। तब उस मृत नरभक्षी को भीम ने वहाँ से उठा कर अर्थात् उसके परिवार के लोगों से उठवा कर नगर के दरवाजे पर डलवा दिया और स्वयं ब्राह्मण के घर में जाकर युधिष्ठिर को सारा वृत्तान्त पूरी तरह से सुना दिया।

ततो नरा विनिष्क्रान्ता नगरात् कल्यमेव तु।। २६।।
ददृशुर्निहतं भूमौ राक्षसं रुधिरोक्षितम्।
तमद्रिकूटसदृशं विनिकीर्णं भयानकम्।। २७।।

दृष्ट्वा संहृष्टरोमाणो बभूवुस्तत्र नागराः।
एकचक्रां ततो गत्वा प्रवृत्तिं प्रददुः पुरे।। २८।।
ततस्ते विस्मिताः सर्वे नराः नगर वासिनः।
तत्रा जग्मुर्बकं द्रष्टुम् सस्त्री वृद्धकुमारका।। २९।।

अगले दिन प्रातःकाल जब लोग नगर से बाहर निकले तब उन्होंने खून से लथपथ मरे हुए राक्षस को भूमि पर पड़े हुए देखा। उस भयानक और पर्वत शिखर के समान विशालकाय राक्षस को भूमि पर पटका हुआ देख कर वे नगरवासी हर्ष से रोमांचित हो गए। उन्होंने फिर एकचक्रा नगरी के अन्दर जाकर सब तरफ यह खबर फैला दी। तब वे सारे नगर के निवासी आश्चर्य चकित होते हुए अपनी स्त्री, बच्चों और बूढ़ों के साथ वहाँ उस बक राक्षस को देखने के लिये आये।

ततः प्रगणयामासुः कस्य वारोऽद्य भोजने।
ज्ञात्वा चागम्य तं विप्रं पप्रच्छुः सर्व एव ते।। ३०।।
एवं पृष्टः स बहुशो रक्षमाणश्च पाण्डवान्।
उवाच नागरान् सर्वानिदं विप्रर्षभस्तदा।। ३१।।

फिर उन नगरवासियों ने गिन कर हिसाब लगाया कि आज किसकी भोजन की बारी थी? उन्हें पता लगा कि उस ब्राह्मण की बारी थी। तब सभी ने जाकर उससे राक्षस की मृत्यु के बारे में पूछा। बहुत बार पूछे जाने पर वह ब्राह्मण श्रेष्ठ पाण्डवों के नाम को छिपाते हुए बोला कि–

आज्ञापितं मामशने रुदन्तं सह बन्धुभिः।
ददर्श ब्राह्मणः कश्चिन्मन्त्रसिद्धो महामनाः।। ३२।।
परिपृच्छ्य स मां पूर्वं परिक्लेशं पुरस्य च।
अब्रवीद् ब्राह्मणश्रेष्ठो विश्वास्य प्रहसन्निव।। ३३।।
प्रापयिष्याम्यहं तस्मा अन्नमेतद् दुरात्मने।
मन्निमित्तं भयं चापि न कार्यमिति चाब्रवीत्।। ३४।।
स तदन्नमुपादाय गतो बकवनं प्रति।
तेन नूनं भवेदेतत् कर्म लोकहितं कृतम्।। ३५।।

मुझे जब राक्षस को भोजन पहुँचाने की आज्ञा मिली तो मैं अपने बन्धु बान्धवों के साथ रो रहा था। उस समय मुझे किसी महात्मा ब्राह्मण ने देखा, जिन्होंने किसी मंत्र की सिद्धि की हुई थी। उन्होंने पहले मुझ से सारे नगर के दुःख का कारण पूछा फिर मुझे अपनी शक्ति का विश्वास दिला कर उन ब्राह्मण श्रेष्ठ ने मुस्कराते हुए कहा कि उस दुष्ट के लिये भोजन मैं पहुँचाऊँगा। साथ ही उन्होंने कहा कि तुम्हें मेरे लिये भय नहीं करना चाहिये। फिर वे उस भोजन को लेकर बकासुर के वन की तरफ चले गये। निश्चय ही उन्होंने लोगों की भलाई के लिये यह कार्य किया होगा।

इकत्तीसवाँ अध्याय : द्रौपदी के स्वयंवर हेतु पाण्डवों का पांचाल देश जाना।

ततः कतिपयाहस्य ब्राह्मणः संशितव्रतः।
प्रतिश्रयार्थी तद् वेश्म ब्राह्मणस्य जगाम ह।। १।।
स सम्यक् पूजयित्वा तं विप्रं विप्रर्षभस्तदा।
ददौ प्रतिश्रयं तस्मै सदा सर्वातिथिव्रतः।। २।।
कथयामास देशांश्च तीर्थानि सरितस्तथा।
राज्ञश्च विविधाश्चर्यान् देशांश्चैव पुराणि च।। ३।।
पञ्चालेष्वद्भुताकारं याज्ञसेन्याः स्वयंवरम्।
ततः कुन्ती सुतान् दृष्ट्वा सर्वांस्तद्गतचेतसः।। ४।।
युधिष्ठिरमुवाचेदं वचनं सत्यवादिनी।

तब कुछ दिनों के बाद एक व्रतों का पालन करने वाला ब्राह्मण उस ब्राह्मण के घर पर ठहरने के लिये आया। उस ब्राह्मण श्रेष्ठ का यह व्रत था कि वह घर पर आये सभी अतिथियों की सेवा करता था। इसलिये उसने उसका सत्कार कर उसे अपने घर पर ठहरा लिया। उस ब्राह्मण ने अनेक देशों की, तीर्थों की, नदियों, राजाओं, अनेक आश्चर्ययुक्त स्थानों, नगरों और पंचाल देश में द्रौपदी के अद्भुत स्वयंवर का वर्णन किया। तब सत्यवादिनी कुन्ती ने अपने सारे पुत्रों को उस स्वयंवर को देखने का इच्छुक देख कर युधिष्ठिर से कहा कि–

चिररात्रोषिताः स्मेह ब्राह्मणस्य निवेशने।। ५।।
रममाणाः पुरे रम्ये लब्धभैक्षा महात्मनः।
यानीह रमणीयानि वनान्युपवनानि च।। ६।।
सर्वाणि तानि दृष्टानि पुनः पुनररिंदम।
पुनर्द्रष्टुं हि तानीह प्रीणयन्ति न नस्तथा।। ७।।
भैक्षं च न तथा वीर लभ्यते कुरुनन्दन।
ते वयं साधु पञ्चालान् गच्छाम यदि मन्यसे।। ८।।
अपूर्वदर्शनं वीर रमणीयं भविष्यति।

हम यहाँ सुन्दर नगर में आनन्द उठाते हुए इस महात्मा ब्राह्मण के घर में बहुत दिनों से रह रहे हैं। हमें यहाँ भिक्षा भी पर्याप्त प्राप्त हुई है। यहाँ

जितने भी सुन्दर वन उपवन हैं, उन सबको हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! हमने बार-बार देख लिया है। हे कुरुनन्दन! अब उन स्थानों को बार-बार देखने में उतना आनन्द नहीं आता और अब भिक्षा भी यहाँ पहले जैसी नहीं मिल रही है। हे वीर! यदि तुम ठीक समझो तो आराम से पांचाल देश को चलें। उसे हमने देखा नहीं है, इसलिये वह हमें रमणीय लगेगा।

सुभिक्षाश्चैव पञ्चालाः श्रूयन्ते शत्रुकर्शन।। ९।।
यज्ञसेनश्च राजासौ ब्रह्मण्य इति शुश्रुम।
एकत्र चिरवासश्च क्षमो न च मतो मम।। १०।।
ते तत्र साधु गच्छामो यदि त्वं पुत्र मन्यसे।

युधिष्ठिर उवाच

भवत्या यन्मतं कार्यं तदस्माकं परं हितम्।। ११।।
अनुजांस्तु न जानामि गच्छेयुर्नेति वा पुनः।
ततः कुन्ती भीमसेनमर्जुनं यमजौ तथा।। १२।।
उवाच गमनं ते च तथेत्येवाब्रुवंस्तदा।

हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! सुना है कि पंचाल देश में भिक्षा अच्छी मिलती है और ऐसा भी हम सुनते हैं कि राजा यज्ञसेन (द्रुपद) भी ब्राह्मणों के भक्त हैं। मेरे विचार से एक स्थान पर बहुत दिनों तक रहना भी ठीक नहीं है। इसलिये हे पुत्र! यदि तुम ठीक समझो तो हम यहाँ से सुख पूर्वक चलें। तब युधिष्ठिर ने कहा कि आपका जो विचार है, उसके अनुसार कार्य करना हमारे लिये अत्यन्त हितकारी है। पर छोटे भाइयों के विषय में मुझे पता नहीं कि वे चलेंगे या नहीं। तब कुन्ती ने भीम अर्जुन और दोनों जुड़वाँ भाई नकुल और सहदेव से भी जाने के बारे में पूछा और उन्होंने भी अच्छा ऐसा कह दिया।

ततस्ते नरशार्दूला भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः।। १३।।
प्रययुर्द्रौपदीं द्रष्टुं तं च देशं महोत्सवम्।

तब वे नरसिंह भाई पाँचों पाण्डव, द्रौपदी को, उसके देश को और उस महोत्सव को देखने के लिये वहाँ से चल दिये।

पश्यन्तो रमणीयानि वनानि च सरांसि च।। १४।।
तत्र तत्र वसन्तश्च शनैर्जग्मुर्महारथाः।
स्वाध्यायवन्तः शुचयो मधुराः प्रियवादिनः।। १५।।
आनुपूर्व्येण सम्प्राप्ताः पञ्चालान् पाण्डुनन्दनाः।
ते तु दृष्ट्वा पुरं तच्च स्कन्धावारं च पाण्डवाः।। १६।।
कुम्भकारस्य शालायां निवासं चक्रिरे तदा।
तत्र भैक्षं समाजह्रुर्ब्राह्मणीं वृत्तिमाश्रिताः।
तान् सम्प्राप्तांस्तथावीराञ्ज्ञिरे न नराःक्वचित्।। १७।।

तब वे स्वाध्यायशील पवित्र, मधुर आकृति वाले, प्रियवादी महारथी पाण्डुपुत्र सुन्दर वनों, सरोवरों को देखते हुए और वहाँ क्रमशः डेरा डालते हुए धीरे-धीरे चलते गये और पंचाल देश को प्राप्त हो गये। वहाँ सेना की छावनी तथा उस नगर को देख कर उन्होंने एक कुम्हार के घर में रहने का प्रबन्ध किया। वहाँ वे ब्राह्मण वृत्ति का आश्रय लेकर भिक्षा के द्वारा अपना निर्वाह करते थे। वहाँ आये हुए उन वीरों को किसी भी मनुष्य ने नहीं पहचाना।

बत्तीसवाँ अध्याय : स्वयंवर सभा का वर्णन और राजाओं का परिचय।

यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने।
कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद् विवृणोति सः।। १।।
सोऽन्वेषमाणः कौन्तेयं पाञ्चाल्यो जनमेजय।
दृढं धनुरनानम्यं कारयामास भारत।। २।।
यन्त्रं वैहायसं चापि कारयामास कृत्रिमम्।
तेन यन्त्रेण समितं राजा लक्ष्यं चकार सः।। ३।।

द्रुपद उवाच

इदं सज्यं धनुः कृत्वा सज्जैरेभिश्च सायकैः।
अतीत्य लक्ष्यं यो वेद्धा स लब्धा मत्सुतामिति।। ४।।

राजा यज्ञसेन अर्थात द्रुपद की यह कामना थी कि मैं अपनी पुत्री कृष्णा को पाण्डु पुत्र अर्जुन को दूँ। पर वे अपनी इस इच्छा को किसी पर प्रकट नहीं करते थे। तब शत्रुओं को कम्पित करने वाले उन पंचाल नरेश ने भरत वंशी कुन्ती पुत्र को ढूँढने के लिये एक दृढ़ धनुष जिसे कोई दूसरा न झुका सके, बनवाया। उसने एक कृत्रिम आकाश यन्त्र भी बनवाया और उस यन्त्र के छिद्र के ऊपर उसी के आकार का लक्ष्य बनवा कर रखवा दिया। तब द्रुपद ने यह घोषणा की कि जो योद्धा इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर, इन बाणों से यन्त्र के छिद्र में से उस लक्ष्य को वेध देगा, वही मेरी पुत्री को प्राप्त करेगा।

इति स द्रुपदो राजा स्वयंवरमघोषयत्।
ऋषयश्च महात्मानः स्वयंवरदिदृक्षवः।। ५।।

दुर्योधनपुरोगाश्च सकर्णाः कुरवो नृपाः।
ब्राह्मणाश्च महाभागा देशेभ्यः समुपागमन्।। ६।।
ततोऽर्चिता राजगणा द्रुपदेन महात्मना।
उपोपविष्टा मञ्चेषु द्रष्टुकामाः स्वयंवरम्।। ७।।

इस प्रकार राजा द्रुपद ने स्वयंवर की घोषणा करा दी। तब स्वयंवर को देखने की इच्छा से बहुत सारे महात्मा, ऋषि, मुनि दुर्योधन आदि कुरुवंशी राजा कर्ण के साथ तथा महाभाग ब्राह्मण लोग बहुत से देशों से वहाँ आये। महात्मा द्रुपद ने उन सभी राजाओं का स्वागत सत्कार किया। वे सब स्वयंवर को देखने की इच्छा से वहाँ विद्यमान मंचों पर बैठ गये।

शिशुमारशिरः प्राप्य न्यविशंस्ते स्म पार्थिवाः।
प्रागुत्तरेण नगराद् भूमिभागे समे शुभे।। ८।।
समाजवाटः शुशुभे भवनैः सर्वतो वृतः।
प्राकारपरिखोपेतो द्वारतोरणमण्डितः।। ९।।
वितानेन विचित्रेण सर्वतः समलंकृतः।
तूर्यौघशतसंकीर्णः परार्घ्यागुरुधूपितः।। १०।।
चन्दनोदकसिक्तश्च माल्यदामोपशोभितः।

वह स्वयंवर सभा शिशुमार अर्थात सूँस के आकार की बनाई गयी थी। राजा लोग उस सूँस की आकृति वाली सभा के सिर वाले भाग में बैठे हुए थे। उस स्वयंवर सभा का निर्माण नगर के पूर्व और उत्तर के अर्थात् ईशानकोण में समतल और सुन्दर स्थान पर हुआ था। चारों तरफ से भवनों से घिरी हुई वह सभा बड़ी सुन्दर लग रही थी। उसके चारों तरफ चार दीवारी और खाई बनी हुई थी। वह तोरणों और द्वारों से सुशोभित थी। एक विचित्र शामियाने से उस सभा को सब तरफ से सजाया गया था। वहाँ सैकड़ों प्रकार के वाद्य यन्त्र बज रहे थे। बहुमूल्य अगरु का धूआ फैल रहा था। चन्दन के जल का छिड़काव किया जा रहा था। सारा स्थान मालाओं और हारों से सजाया हुआ था।

तत्रोपविष्टान् ददृशुर्महासत्त्वपराक्रमान्।। ११।।
राजसिंहान् महाभागान् कृष्णागुरुविभूषितान्।
महाप्रसादान् ब्रह्मण्यान् स्वराष्ट्रपरिरक्षिणः।। १२।।
प्रियान् सर्वस्य लोकस्य सुकृतैः कर्मभिः शुभैः।
मञ्चेषु च परार्घ्येषु पौरजानपदा जनाः।। १३।।
कृष्णादर्शनसिद्ध्यर्थं सर्वतः समुपाविशन्।
ब्राह्मणैस्ते च सहिताः पाण्डवाः समुपाविशन्।। १४।।
ऋद्धिं पाञ्चालराजस्य पश्यन्तस्तामनुत्तमाम्।

नगर के तथा जनपद के लोगों ने जब महा तेजस्वी पराक्रमी महाभाग राजसिंहों को, जो काले अगुरु के लेप से विभूषित थे, जो महान कृपा वाले, ब्राह्मणभक्त, अपने-अपने देशों की रक्षा करने वाले और अपने शुभ कार्यों से सारे लोगों के प्रिय थे, बहुमूल्य मंचों पर बैठे हुए देखा, तो कृष्णा को देखने के लिये वे भी सब तरफ बैठ गये। पाण्डव भी पंचालराज की सर्वोत्तम समृद्धि का अवलोकन करते हुए वहाँ उन ब्राह्मणों के साथ बैठे हुए थे।

पुरोहितः सोमकानां मन्त्रविद् ब्राह्मणः शुचिः।। १५।।
परिस्तीर्य जुहावाग्निमाज्येन विधिवत् तदा।
संतर्पयित्वा ज्वलनं ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य च।। १६।।
वारयामास सर्वाणि वादित्राणि समन्ततः।
कृष्णामादाय विधिवन्मेघदुन्दुभिनिःस्वनः।। १७।।
रङ्गमध्ये धृष्टद्युम्नः मेघगम्भीरया गिरा।
वाक्यमुच्चैर्जगादेदं श्लक्ष्णमर्थवदुत्तमम्।। १८।।

तब सोमक वंशी क्षत्रियों के अर्थात् राजा द्रुपद के मन्त्रज्ञ पवित्र ब्राह्मण पुरोहित ने अग्नि के चारों तरफ कुशा बिछा कर विधि के अनुसार अग्नि में घी की आहुति डाली अर्थात् हवन किया। इस प्रकार अग्नि को तृप्त कर तथा ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन करवा कर सब तरफ बजने वाले बाजों को बन्द करवा दिया गया। तब मेघ और दुन्दुभि के समान ध्वनि वाले धृष्टद्युम्न ने कृष्णा को विधि के अनुसार रंगमंच पर लाकर बादलों के समान ही ऊँची आवाज में यह मधुर और अर्थ से युक्त उत्तम बात कही कि–

इदं धनुर्लक्ष्यमिमे च बाणाः
शृण्वन्तु मे भूपतयः समेताः।
छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वं
शरैः शितैर्व्योमचरैर्दशार्धैः।। १९।।
एतन्महत् कर्म करोति यो वै
कुलेन रूपेण बलेन युक्तः।
तस्याद्य भार्या भगिनी ममेयं
कृष्णा भवित्री न मृषा ब्रवीमि।। २०।।

हे यहाँ आये हुए भूपालों! आप सब लोग मेरी बात सुनें। यह धनुष है, ये बाण हैं और यह लक्ष्य है। आप लोग आकाश में छोड़े हुए इन पाँच तीक्ष्ण बाणों से यन्त्र के छिद्र के बीच में से लक्ष्य को बींधिये। जो कुल, रूप और बल से युक्त वीर यह महान् कर्म करेगा, उसी की मेरी यह बहिन कृष्णा धर्मपत्नी होगी। मैं यह असत्य नहीं कह रहा हूँ।

हलायुधस्तत्र जनार्दनश्च
वृष्ण्यन्धकाश्चैव यथाप्रधानम्।
प्रेक्षां स्म चक्रुर्यदुपुङ्गवास्ते
स्थिताश्च कृष्णस्य मते महान्तः।। १।।
दृष्ट्वा तु तान् मत्तगजेन्द्ररूपान्
भस्मावृताङ्गानिव हव्यवाहान्
कृष्णः प्रदध्यौ यदुवीरमुख्यः।। २।।
शशंस रामाय युधिष्ठिरं स
भीमं स जिष्णुं च यमौ च वीरौ।
शनैः शनैस्तान् प्रसमीक्ष्य रामो
जनार्दनं प्रीतमना ददर्श ह।। ३।।

यदुश्रेष्ठ बलराम और श्रीकृष्ण तथा प्रधान वृष्णि एवं अन्धक महान् वीर भी जो श्रीकृष्ण जी की सलाह के अनुसार चलते थे, वहाँ विद्यमान थे और इस दृश्य को देख रहे थे। तब यदुवंशियों के प्रधान श्रीकृष्ण ने मस्त हाथियों के समान रूप वाले उन पाण्डवों को, जो अंगों में भस्म लगाये, राख में छिपी आग के समान प्रतीत हो रहे थे, पहचान लिया। उन्होंने धीरे-धीरे बलराम से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव के बारे में बताया। बलराम ने भी उन्हें देख कर प्रसन्नता से कृष्ण की तरफ देखा।

ततस्तु ते राजगणाः क्रमेण
कृष्णानिमित्तं कृतविक्रमाश्च।
सकर्णदुर्योधन शाल्वशल्य-
द्रौणायनिक्राथ सुनीथवक्राः।। ४।।
कलिङ्गवङ्गाधिप पाण्ड्यपौण्ड्रा
विदेहराजो यवनाधिपश्च।
अन्ये च नानानृपपुत्रपौत्रा
राष्ट्राधिपाः पङ्कजपत्रनेत्राः।। ५।।
किरीटहाराङ्गद चक्रवालै-
र्विभूषिताङ्गाः पृथुबाहवस्ते।
अनुक्रमं विक्रमसत्त्वयुक्ता
बलेन वीर्येण च नर्दमानाः।। ६।।

इसके पश्चात् वे राजा लोग जैसे कर्ण सहित दुर्योधन, शाल्वराज, शल्य, अश्वत्थामा, क्राथ, सुनीथ, वक्र, कलिंगराज, बंगराज, पाण्ड्यराज, पौण्ड्रराज, विदेहराज, और यवन देश के अधिपति तथा और बहुत से राजा, राजपुत्र, राजपौत्र, राष्ट्राधिप, जिनके नेत्र कमल के समान थे, जिनके अंग किरीट, हार, बाजूबन्द, कड़े आदि आभूषणों से सुशोभित हो रहे थे। जिनकी भुजाएँ मोटी थीं, जो पराक्रम, धैर्य, बल और वीर्य से युक्त थे और अपने बारे में डींग मार रहे थे, बारी बारी से उठने और कृष्णा की प्राप्ति के लिये उस धनुष पर अपना पराक्रम अजमाने लगे।

तत् कार्मुकं संहननोपपन्नं
सज्यं न शेकुर्मनसापि कर्तुम्।
ते विक्रमन्तः स्फुरता दृढेन
विक्षिप्यमाणा धनुषा नरेन्द्राः।। ७।।
विचेष्टमाना धरणीतलस्था
यथाबलं शैक्ष्यगुणक्रमाश्च।
गतौजसः स्रस्तकिरीटहारा
विनिःश्वसन्तः शमयाम्बभूवुः।। ८।।

किन्तु दृढ़ता से युक्त उस धनुष को वे मन से भी प्रत्यंचा से युक्त नहीं कर सके। वे अपनी शक्ति, शिक्षा, और गुणों के अनुसार प्रयत्न करते हुए और पराक्रम दिखाते हुए उस दृढ़ धनुष के झटके से दूर फैंक दिये जाते थे और लड़खड़ा कर भूमि पर गिर पड़ते थे। उस समय उनके किरीट और हार आदि आभूषण भी इधर उधर बिखर जाते थे और वे तेज से रहित हो कर लम्बी साँस लेते हुए चुपचाप बैठ जाते थे।

एवं तेषु निवृत्तेषु क्षत्रियेषु समन्ततः।
चेदीनामधिपो वीरो बलवानन्तकोपमः।। ९।।
दमघोषसुतो धीरः शिशुपालो महामतिः।
धनुरादायमानस्तु जानुभ्यामगमन्महीम्।। १०।।
ततो राजा महावीर्यो जरासंधो महाबलः।
धनुषोऽभ्याशमागत्य तस्थौ गिरिरिवाचलः।। ११।।
धनुषा पीड्यमानस्तु जानुभ्यामगमन्महीम्।
तत उत्थाय राजा स स्वराष्ट्राण्यभिजग्मिवान्।। १२।।

इस प्रकार सभी क्षत्रियों के निबट जाने पर चेदिदेश का वीर और मृत्यु के समान बलवान, महामति और धैर्यवान दमघोष पुत्र शिशुपाल धनुष पर प्रयत्न करने लगा। पर वह भी घुटनों के बल भूमि पर गिर पड़ा। तब महा पराक्रमी और महा बलवान राजा जरासन्ध धनुष के पास आकर पर्वत

के समान स्थिर भाव से खड़ा हो गया। पर वह भी धनुष का झटका खा कर घुटनों के बल भूमि पर गिर पड़ा और फिर उठ कर अपने देश को वापिस लौट गया।

यदा निवृत्ता राजानो धनुषः सज्यकर्मण:।
अथोदतिष्ठद् विप्राणां मध्याज्जिष्णुरुदारधीः।। १३।।
उदक्रोशन् विप्रमुख्या विधुन्वन्तोऽजिनानि च।
दृष्ट्वा सम्प्रस्थितं पार्थमिन्द्रकेतुसमप्रभम्।। १४।।
केचिदासन् विमनसः केचिदासन् मुदान्विताः।
आहुः परस्परं केचिन्निपुणा बुद्धिजीविनः।। १५।।

जब राजा लोग धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने के कार्य से निबट गये, तब उदार बुद्धि अर्जुन ब्राह्मणों के बीच में से उठ कर खड़े हो गये। इन्द्र की ध्वजा के समान लम्बे अर्जुन को धनुष के समीप प्रस्थान करते हुए देख कर ब्राह्मणों के प्रमुख अपने मृगचर्मों को हिलाते हुए चिल्लाने लगे। उनमें से कुछ उदास थे तो कुछ प्रसन्न थे। कुछ चतुर और बुद्धिजीवी ब्राह्मण आपस में कहने लगे कि–

यत् कर्णशल्यप्रमुखैः क्षत्रियैर्लोकविश्रुतैः।
नानतं बलवद्भिर्हि धनुर्वेदपरायणैः।। १६।।
तत् कथं त्वकृतास्त्रेण प्राणतो दुर्बलीयसा।
वटुमात्रेण शक्यं हि सज्यं कर्तुं धनुर्द्विजाः।। १७।।
अवहास्या भविष्यन्ति ब्राह्मणाः सर्वराजसु।
कर्मण्यस्मिन्नसंसिद्धे चापलादपरीक्षिते।। १८।।
यद्येष दर्पाद्धर्षाद् वाप्यथ ब्राह्मणचापलात्।
प्रस्थितो धनुरायन्तुं वार्यतां साधु मा गमत्।। १९।।

हे ब्राह्मणों! जो धनुष धनुर्वेद कुशल, बलवान, संसार प्रसिद्ध क्षत्रियों कर्ण और शल्य आदि के द्वारा प्रत्यंचा नहीं चढ़ाया जा सका, तो वह केवल ब्रह्मचारी, शरीर से दुर्बल, अस्त्र ज्ञान से रहित इसके द्वारा कैसे चढ़ाया जा सकता है? यह केवल चपलता के कारण ही बिना विचार किये यह कार्य कर रहा है। जब यह असफल हो जायेगा तो सारे राजाओं में ब्राह्मणों की हँसी होगी। यदि यह दर्प, हर्ष या ब्राह्मण सुलभ चपलता के कारण धनुष को झुकाने के लिये प्रस्थान कर रहा है तो अच्छा यही है कि इसे रोक दिया जाये।

केचिदाहुर्युवा श्रीमान् नागराजकरोपमः।
पीनस्कन्धोरुबाहुश्च धैर्येण हिमवानिव।। २०।।
सिंहखेलगतिः श्रीमान् मत्तनागेन्द्रविक्रमः।
सम्भाव्यमस्मिन् कर्मेदमुत्साहाच्चानुमीयते।। २१।।
शक्तिरस्य महोत्साहा न ह्यशक्तः स्वयं व्रजेत्।
जामदग्न्येन रामेण निर्जिताः क्षत्रिया युधि।। २२।।
तस्माद् ब्रुवन्तु सर्वेऽत्र बटुरेष धनुर्महान्।
आरोपयतु शीघ्रं वै तथेत्यूचुर्द्विजर्षभाः।। २३।।
एवं तेषां विलपतां विप्राणां विविधा गिरः।
अर्जुनो धनुषोऽभ्याशे तस्थौ गिरिरिवाचलः।। २४।।

कुछ ब्राह्मण कहने लगे कि यह युवक है, कान्ति वाला है, देखने में गजराज की सूँड जैसा लगता है। इसके कन्धे, छाती और बाहें मोटी हैं। यह हिमालय जैसा धैर्यवान प्रतीत होता है। यह श्रीमान सिंह के समान चाल वाला और मस्त हाथी के समान विक्रमी प्रतीत होता है। इसके उत्साह को देख कर अनुमान होता है कि शायद इसके द्वारा धनुष को चढ़ाना संभव हो जाये। इसमें शक्ति और महान उत्साह है। यदि यह असमर्थ होता तो स्वयं क्यों उठ कर जाता। जमदग्नि पुत्र परशुराम ने भी तो युद्ध में क्षत्रियों को जीत लिया था। इसलिये आप सब आशीर्वाद दीजिये कि यह ब्रह्मचारी इस महान धनुष को चढ़ा दे। तब वे ब्राह्मणश्रेष्ठ बहुत अच्छा यह कह कर अर्जुन को आशीर्वाद देने लगे। इस प्रकार उन ब्राह्मणों के तरह-तरह की बातें करते हुए अर्जुन धनुष के समीप जाकर पर्वत के समान अविचल भाव से खड़े हो गये।

यत् पार्थिवै रुक्मसुनीथवक्रैः
राधेयदुर्योधन शल्यशाल्वैः।
तदा धनुर्वेदपरैर्नृसिंहैः।
कृतं न सज्यं महतोऽपि यत्नात्।। २५।।
तदर्जुनो वीर्यवतां सदर्पः
सज्यं च चक्रे निमिषान्तरेण।
शरांश्च जग्राह दशार्धसंख्यान्
विव्याध लक्ष्यं निपपात तच्च
छिद्रेण भूमौ सहसातिविद्धम्।
समाज मध्ये च बभूव नादः।। २६।।

तब जिस धनुष को रुक्म, सुनीथ, वक्र, कर्ण, दुर्योधन, शल्य, शाल्व जैसे धनुर्वेद, कुशल नरसिंह राजाओं के द्वारा बड़े प्रयत्न से भी प्रत्यंचा से युक्त नहीं किया जा सका, उसे वीर्य वालों में दर्पशील अर्जुन ने पलक मारते ही चढ़ा दिया और पाँचों बाणों को उठा लिया। उन्होंने उस छिद्र में से लक्ष्य

को सहसा ही बेध दिया और वह लक्ष्य भूमि पर गिर पड़ा। तब लोगों में महान कोलाहल होने लगा।

चैलानि विव्यधुस्तत्र ब्राह्मणाश्च सहस्रशः।
विलक्षितास्ततश्चक्रुर्हाहाकारांश्च सर्वशः।। २७।।
शताङ्गानि च तूर्याणि वादकाः समवादयन्।
सूतमागधसङ्घाश्चाप्यस्तुवंस्तत्र सुस्वराः।। २८।।

हजारों ब्राह्मण हर्षित होकर अपने दुपट्टे हिलाने लगे और जो लोग लक्ष्य को बेधने में असफल हो गये थे, वे सब हा हा कार करने लगे। उस समय सैकड़ों प्रकार के वाद्ययन्त्र वादक लोग बजाने लगे तथा सूत और मागधों के समूह मीठे स्वर में स्तुतिगान करने लगे।

तस्मिंस्तु शब्दे महति प्रवृद्धे
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः।
आवासमेवोपजगाम शीघ्रं
सार्धं यमाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्याम्।। २९।।

तब उस महान कोलाहल के बढ़ने पर धर्मधारियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर दोनों पुरुष श्रेष्ठ नकुल और सहदेव के साथ उठ कर जल्दी अपने निवास स्थान पर ही चले गये।

चौंतीसवाँ अध्याय : भीम और अर्जुन का राजाओं से युद्ध, अपने डेरे पर जाना।

तस्मै दित्सति कन्यां तु ब्राह्मणाय तदा नृपे।
कोप आसीन्महीपानामालोक्यान्योन्यमन्तिकात्।। १।।
अस्मानयमतिक्रम्य तृणीकृत्य च संगतान्।
दातुमिच्छति विप्राय द्रौपदीं योषितां वराम्।। २।।
अवरोप्येह वृक्षं तु फलकाले निपात्यते।
न ह्यर्हत्येष सम्मानं नापि वृद्धक्रमं गुणैः।। ३।।
हन्मैनं सह पुत्रेण दुराचारं नृपद्विषम्।

यह देख कर कि राजा द्रुपद इस ब्राह्मण को अपनी कन्या देना चाहते हैं, राजा लोग एक दूसरे की तरफ देख कर और समीप जाकर अपना क्रोध प्रकट करने लगे। वे कहने लगे कि यह यहाँ एकत्र हुए हम लोगों का उल्लंघन कर, हमें तिनके के समान समझ कर, युवतियों में श्रेष्ठ द्रौपदी को ब्राह्मण को देना चाहता है। यह तो वृक्ष को लगा कर फल आने के समय उसे काट कर गिरा रहा है। यह न अपने गुणों के कारण और ना ही वृद्ध होने के कारण सम्मान करने के योग्य है। इस दुराचारी और राजाओं से द्वेष करने वाले को हम पुत्र सहित मार देते हैं।

अयं हि सर्वानाहूय सत्कृत्य च नराधिपान्।। ४।।
गुणवद् भोजयित्वान्नं ततः पश्चान्न मन्यते।
न च विप्रेष्वधीकारो विद्यते वरणं प्रति।। ५।।
स्वयंवरः क्षत्रियाणामितीयं प्रथिता श्रुति।
अथवा यदि कन्येयं न च कञ्चिद् बुभूषति।। ६।।
अग्नावेनां परिक्षिप्य याम राष्ट्राणि पार्थिवाः।
अवमानभयाच्चैव स्वधर्मस्य च रक्षणात्।। ७।।
स्वयंवराणामन्येषां मा भूदेवंविधा गतिः।

इसने पहले सब राजाओं को बुलाया, उनका सत्कार किया, उन्हें उत्तम गुणवान् भोजन कराया और फिर उसके बाद उनका अपमान कर रहा है। स्वयंवर में वरण किये जाने का ब्राह्मणों को अधिकार नहीं है। यह सुनते आये हैं कि स्वयंवर तो क्षत्रियों के लिये ही होता है। अथवा यदि यह कन्या हम में से किसी को भी वरण नहीं करना चाहती है तो हम इसे आग में फैंक कर अपने-अपने देश को चलते हैं। हम अपने अपमान के लिये, अपने धर्म की रक्षा के लिये और दूसरे स्वयंवरों की भविष्य में ऐसी दुर्गति न हो, इसलिये द्रुपद को दण्ड देना चाहते हैं।

इत्युक्त्वा राजशार्दूला हृष्टाः परिघबाहवः।। ८।।
द्रुपदं तु जिघांसन्तः सायुधाः समुपाद्रवन्।
वेगेनापततस्तांस्तु प्रभिन्नाविव वारणान्।
पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ प्रतियातावरिंदमौ।। ९।।

ऐसा कह कर वे परिघ जैसी मोटी बाँहों वाले राजसिंह उत्साह में भर कर द्रुपद को मारने की इच्छा से हथियारों सहित दौड़ पड़े। मदमस्त हाथियों के समान उन्हें वेग से आते हुए देख कर महा धनुर्धर और शत्रुओं का दमन करने वाले पाण्डु पुत्र भीम और अर्जुन उनका सामना करने के लिये आगे आ गये।

ततः समुत्पेतुरुदायुधास्ते
महीक्षितो बद्धगोधाङ्गुलित्राः।
जिघांसमानाः कुरुराजपुत्रा-
वमर्षयन्तोऽर्जुन भीमसेनौ।। १०।।

ततस्तु भीमोऽद्भुतभीमकर्मा
महाबलो वज्रसमानसारः।
उत्पाट्य दोर्भ्यां द्रुममेकवीरो
निष्पत्रयामास यथा गजेन्द्रः।। ११।।
तत् प्रेक्ष्य कर्मातिमनुष्यबुद्धि-
र्जिष्णुः स हि भ्रातुरचिन्त्यकर्मा।
विसिस्मिये चापि भयं विहाय
तस्थौ धनुर्गृह्य महेन्द्रकर्मा।। १२।।

तब वे राजा लोग गोह के चमड़े के दस्ताने अंगुलियों में पहने, अपने शस्त्रों को उठाये हुए क्रोध में भर कर कुरुराज पुत्र भीम और अर्जुन को मारने की इच्छा से उनके ऊपर टूट पड़े। तब अद्भुत और भयानक कर्म करने वाले, वज्र के समान शक्तिशाली महाबली भीम ने अकेले ही एक वृक्ष को दोनों हाथों से उखाड़ कर हाथी के समान उसके पत्ते झाड़ दिये। भाई भीम के इस कार्य को देख कर असाधारण बुद्धि वाले, और अचिन्तनीय कर्म करने वाले महेन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन विस्मित हो गये और निर्भय होकर धनुष को उठा कर डट कर खड़े हो गये।

अजिनानि विधुन्वन्तः करकांश्च द्विजर्षभाः।
ऊचुस्ते भीर्न कर्तव्या वयं योत्स्यामहे परान्।। १३।।
तानेवं वदतो विप्रानर्जुनः प्रहसन्निव।
उवाच प्रेक्षका भूत्वा यूयं तिष्ठथ पार्श्वतः।। १४।।
इति तद् धनुरानम्य शुल्कावाप्तं महाबलः।
भ्रात्रा भीमेन सहितस्तस्थौ गिरिरिवाचलः।। १५।।

तब वे श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने मृगचर्मों और कमण्डलुओं को हिलाते हुए कहने लगे कि तुम लोग डरना मत हम भी शत्रुओं से युद्ध करेंगे। ऐसा कहते हुए उन ब्राह्मणों से अर्जुन ने मुस्कराते हुए कहा कि आप लोग केवल दर्शक बन कर चुपचाप एक तरफ खड़े रहें। ऐसा कह कर लक्ष्य वेध में प्राप्त उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर महा बली अर्जुन अपने भाई भीम के साथ पर्वत के समान अविचल भाव से खड़े हो गये।

ततः कर्णो महातेजा जिष्णुं प्रति ययौ रणे।
युद्धार्थी वासिताहेतोर्गजः प्रतिगजं यथा।। १६।।
भीमसेनं ययौ शल्यो मद्राणामीश्वरो बली।
ततोऽर्जुनः प्रत्यविध्यदापतन्तं शितैः शरैः।। १७।।
कर्णं वैकर्तनं श्रीमान् विकृष्य बलवद् धनुः।
तेषां शरणां वेगेन शितानां तिग्मतेजसाम्।। १८।।
विमुह्यमानो राधेयो यत्नात् तमनुधावति।
तावुभावप्यनिर्देश्यौ लाघवाज्जयतां वरौ।। १९।।
अयुध्येतां सुसंरब्धावन्योन्यविजिगीषिणौ।
कृते प्रतिकृतं पश्य पश्य बाहुबलं च मे।। २०।।
इति शूरार्थवचनैरभाषेतां परस्परम्।

तब महा तेजस्वी कर्ण युद्ध के लिये अर्जुन की तरफ बढ़ा और जैसे हथिनी को प्राप्त करने के लिये एक हाथी प्रतिद्वन्द्वी हाथी की तरफ जाता है वैसे ही मद्रराज बलवान शल्य भीमसेन की तरफ बढ़ा। तब श्रीमान अर्जुन ने अपने दृढ़ धनुष को खींच कर आक्रमण करते हुए सूर्य पुत्र कर्ण को तीक्ष्ण बाणों से बींध दिया। उन तीखे और दुस्सह तेज वाले बाणों के वेग से कर्ण को मूर्च्छा सी आने लगी। वह यत्न पूर्वक अर्जुन की तरफ बढ़ा। विजय प्राप्त करने वालों में श्रेष्ठ वे दोनों ही क्रोध में भरे हुए, एक दूसरे को जीतने की इच्छा से कौशल के साथ युद्ध करने लगे। उन दोनों के बारे में यह बताना कठिन था कि उनमें से कौन श्रेष्ठ है? देखो तुमने जो बाण छोड़ा था, उसका मैंने यह प्रतिकार कर दिया। मेरे हाथों की शक्ति को देखो। इस प्रकार शौर्य को प्रकट करने वाले वचन वे परस्पर युद्ध करते हुए बोल रहे थे।

अर्जुनेन प्रयुक्तांस्तान् बाणान् वेगवतस्तदा।। २१।।
प्रतिहत्य ननादोच्चैः सैन्यानि तदपूजयन्।

कर्ण उवाच

तुष्यामि ते विप्रमुख्य भुजवीर्यस्य संयुगे।। २२।।
अविषादस्य चैवास्य शस्त्रास्त्रविजयस्य च।
तमेवं वादिनं तत्र फाल्गुनः प्रत्यभाषत।। २३।।
स्थितोऽस्म्यद्य रणे जेतुं त्वां वै वीर स्थिरो भव।
एवमुक्तस्तु राधेयो युद्धात् कर्णो न्यवर्तत।। २४।।
ब्राह्मं तेजस्तदाजय्यं मन्यमानो महारथः।

अर्जुन के द्वारा छोड़े गये वेगवान बाणों को काट कर कर्ण ने तब जोर से गर्जना की। वहाँ खड़े सैनिकों ने भी उसकी प्रशंसा की। तब कर्ण बोला! हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! युद्ध में तुम्हारी भुजाओं के पराक्रम से मैं सन्तुष्ट हूँ। आपने सभी शस्त्रास्त्रों पर विजय पायी हुई है और आपमें थकावट का भी कोई चिह्न नहीं है। ऐसा कहते हुए उस कर्ण से तब अर्जुन ने कहा कि हे वीर! मैं आज युद्ध में जीतने के

लिये खड़ा हूँ, तुम भी स्थिरता के साथ खड़े रहो। ऐसा कहने पर राधा पुत्र महारथी कर्ण ब्राह्मण के तेज को अविजेय मानता हुआ, युद्ध से हट गया।

अपरस्मिन् वनोद्देशे वीरौ शल्यवृकोदरौ।। २५।।
बलिनौ युद्धसम्पन्नौ विद्यया च बलेन च।
अयोन्यमाह्वयन्तौ तु मत्ताविव महागजौ।। २६।।
मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव निघ्नन्तावितरेतरम्।
प्रकर्षणाकर्षणयोरभ्या कर्षविकर्षणैः।। २७।।

उधर एक दूसरे स्थान को युद्ध भूमि बना कर बलवान वीर भीम और शल्य मदोन्मत गजराजों के समान एक दूसरे को ललकारते हुए विद्या और बल के आधार पर परस्पर युद्ध में लगे हुए थे। घूँसों और घुटनों से एक दूसरे को मारते हुए वे कभी एक दूसरे को परे धकेलते, कभी अपनी तरफ खींचते, कभी नीचे गिराने का यत्न करते और अगल बगल से पैंतरे देकर गिराने का प्रयत्न करते थे।

आचकर्षतुरन्योन्यं मुष्टिभिश्चापि जघ्नतुः।
ततश्चटचटाशब्दः सुघोरो ह्यभवत् तयोः।। २८।।
पाषाणसम्पातनिभैः प्रहारैरभिजघ्नतुः।
मुहूर्तं तौ तदान्योन्यं समरे पर्यकर्षताम्।। २९।।
ततो भीमः समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां शल्यमाहवे।
अपातयत् कुरुश्रेष्ठो ब्राह्मणा जहसुस्तदा।। ३०।।
तत्राश्चर्यं भीमसेनश्चकार पुरुषर्षभः।
यच्छल्यं पातितं भूमौ नावधीद् बलिनं बली।। ३१।।

वे एक दूसरे को खींचते और घूँसों से मारते थे, उनकी मार से भयानक चटचट की ध्वनि हो रही थी। वे एक दूसरे को पत्थर के समान कठोर प्रहारों से मार रहे थे। एक मुहूर्त तक वे एक दूसरे को खींचते और ठेलते रहे। फिर कुरुश्रेष्ठ भीम ने शल्य को युद्ध में हाथों से उठा कर भूमि पर पटक दिया। तब ब्राह्मण लोग हँसने लगे। पुरुषश्रेष्ठ भीम ने यह आश्चर्य की बात की कि उस बलवान् ने बलवान् शल्य को भूमि पर गिरा कर भी मारा नहीं।

तत् कर्म भीमस्य समीक्ष्य कृष्णः
कुन्तीसुतौ तौ परिशङ्कमानः।
निवारयामास महीपतींस्तान्
धर्मेण लब्धेत्यनुनीय सर्वान्।। ३२।।

भीम के उस कार्य को देख कर श्रीकृष्ण ने यह निश्चित करके कि ये दोनों कुन्ती के पुत्र ही हैं, उन सारे राजाओं को यह समझा कर कि इन्होंने धर्म के अनुसार ही द्रौपदी को प्राप्त किया है, उन्हें युद्ध से हटाया।

एवं ते विनिवृत्तास्तु युद्धाद् युद्धविशारदाः।
यथावासं ययुः सर्वे विस्मिता राजसत्तमाः।। ३३।।
वृत्तो ब्रह्मोत्तरो रङ्गः पाञ्चाली ब्राह्मणैर्वृता।
इति ब्रुवन्तः प्रययुर्ये तत्रासन् समागताः।। ३४।।
ब्राह्मणैस्तु प्रतिच्छन्नौ रौरवाजिनवासिभिः।
कृच्छ्रेण जग्मतुस्तौ तु भीमसेनधनंजयौ।। ३५।।
ततः सुप्तजनप्राये दुर्दिने मेघसम्प्लुते।
महत्यथापराह्णे तु घनैः सूर्य इवावृतः।। ३६।।
ब्राह्मणैः प्राविशत् तत्र जिष्णुर्भार्गववेश्म तत्।

इस प्रकार युद्ध से हटाये गये वे युद्ध विशारद श्रेष्ठ राजा लोग, आश्चर्य में भरे हुए अपने अपने निवास स्थानों पर चले गये। दूसरे जो दर्शक थे, वे भी इस रंग मण्डप में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता सिद्ध हुई है, पाँचाली ने ब्राह्मणों को वरण किया है, ऐसा कहते हुए अपने अपने घरों को चले गये। तब रुरुमृग के चर्म को वस्त्रों के रूप में धारण किये हुए ब्राह्मणों से घिरे हुए भीम और अर्जुन कठिनाई के साथ धीरे-धीरे वहाँ से चले। उस समय दोपहर में बादलों के घिर आने के कारण वह दुर्दिन सा प्रतीत हो रहा था। सूर्य बादलों में छिप गया था, लोग सोते हुए के समान चुपचाप घरों में बैठे हुए थे। तब ब्राह्मणों से घिरे हुए अर्जुन ने वहाँ कुम्हार के घर में प्रवेश किया।

पैंतीसवाँ अध्याय : बलराम, श्रीकृष्ण की पाण्डवों से भेंट, धृष्टद्युम्न की गुप्त जाँच।

वृष्णिप्रवीरस्तु कुरुप्रवीरा-
नाशंसमानः सहरौ हिणेयः।
जगाम तां भार्गवकर्मशालां
यत्रासते ते पुरुषप्रवीराः।। १।।

तत्रोपविष्टं पृथुदीर्घबाहुं
ददर्श कृष्णः सहरौहिणेयः।
अजातशत्रुं परिवार्य तांश्चा-
प्युपोपविष्टाज्ज्वलन प्रकाशान्।। २।।

तब वृष्णिवंशियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ, उन कुरुश्रेष्ठ पाण्डवों को पहचान कर उस कुम्हार के घर पहुँचे जहाँ वे नरश्रेष्ठ रह रहे थे। वहाँ श्रीकृष्ण जी ने बलराम जी के साथ मोटी और लम्बी भुजाओं वाले अजात शत्रु युधिष्ठिर को घेर कर बैठे हुए उन अग्नि के समान तेजस्वी भाइयों को देखा।

ततोऽब्रवीद् वासुदेवोऽभिगम्य
कुन्तीसुतं धर्मभृतां वरिष्ठम्।
कृष्णोऽहमस्मीति निपीड्य पादौ
युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः।। ३।।
तथैव तस्याप्यनु रौहिणेय-
स्तौ चापि हृष्टाः कुरवोऽभ्यनन्दन्।
पितृष्वसुश्चापि यदुप्रवीरा-
वगृह्णतां तौ हर्षेण पादौ।। ४।।

तब वासुदेव श्रीकृष्ण ने धर्मधारियों में श्रेष्ठ अजमीढ वंशी, कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर के समीप जाकर उनके पैरों को स्पर्श कर मैं कृष्ण हूँ, यह कहा। उसके बाद बलराम जी ने भी वैसे ही उनके चरण स्पर्श किये। उन दोनों यदुश्रेष्ठों ने अपनी बुआ कुन्ती के भी चरणों का हर्ष पूर्वक स्पर्श किया। उन पाण्डवों ने भी उन दोनों का प्रसन्नता के साथ स्वागत किया।

अजातशत्रुश्च कुरुप्रवीरः
पप्रच्छ कृष्णं कुशलं विलोक्य।
कथं वयं वासुदेव त्वयेह
गूढा वसन्तो विदिताश्च सर्वे।। ५।।
तमब्रवीद् वासुदेवः प्रहस्य
गूढोऽप्यग्निर्ज्ञायत एव राजन्।
तं विक्रमं पाण्डवेयानतीत्य
कोऽन्यः कर्ता विद्यते मानुषेषु।। ६।।

तब अजात शत्रु कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने उनका कुशल समाचार पूछा और श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे वासुदेव! हम तो यहाँ छिप कर रहे हैं। तुमने कैसे हमें पहचान लिया? तब श्रीकृष्ण जी ने हँस कर उनसे कहा कि हे राजन्! अग्नि को कितना ही छिपाओ, वह पहचानी जाती है। उस पराक्रम को जो आज करके दिखाया गया, पाण्डुपुत्रों के अतिरिक्त मनुष्यों में कोई दूसरा कौन कर सकता है।

दिष्ट्या सर्वे पावकाद् विप्रमुक्ता
यूयं घोरात् पाण्डवाः शत्रुसाहाः।
दिष्ट्या पापो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः
सहामात्यो न सकामोऽभविष्यत्।। ७।।
भद्रं वोऽस्तु निहितं यद् गुहायां
विवर्धध्वं ज्वलना इवैधमानाः।
मा वो विदुः पार्थिवाः केचिदेव
यास्यावहे शिविरायैव तावत्।
सोऽनुज्ञातः पाण्डवेनाव्ययश्रीः
प्रायाच्छीघ्रं बलदेवेन सार्धम्।। ८।।

यह सौभाग्य की बात है कि शत्रुओं को सहन करने की शक्ति वाले आप सारे पाण्डव लोग उस भयानक आग से बच गये। यह सौभाग्य की बात है कि धृतराष्ट्र का पापी पुत्र दुर्योधन अपने मन्त्रियों सहित इस षड्यन्त्र में सफल नहीं हो सका। हमारे हृदय में जो कल्याण की भावना विद्यमान है, वह अपको प्राप्त हो। आप लोग प्रज्वलित होती हुई अग्नि के समान बढ़ते रहें। आपको कोई राजा जान न पाये, इसलिये हम अभी अपने शिविर को ही लौट जायेंगे। ऐसा कह कर वह अक्षय शोभा वाले श्रीकृष्ण युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर बलदेव जी के साथ शीघ्र ही लौट गये।

धृष्टद्युम्नस्तु पाञ्चाल्यः पृष्ठतः कुरुनन्दनौ।
अन्वगच्छत् तदा यान्तौ भार्गवस्य निवेशने।। ९।।
सोऽज्ञायमानः पुरुषानवधाय समन्ततः।
स्वयमारान्निलीनोऽभूद् भार्गवस्य निवेशने।। १०।।

जब वे दोनों कुरुनन्दन भीम और अर्जुन कुम्हार के घर जा रहे थे तब पांचाल राजकुमार धृष्टद्युम्न उनके पीछे लग गया। उसने कुम्हार के घर के सब तरफ अपने गुप्तचरों को लगा दिया और स्वयं भी वहीं छिप कर बैठ गये।

सायं च भीमस्तु रिपुप्रमाथी
जिष्णुर्यमौ चापि महानुभावौ।
भैक्षं चरित्वा तु युधिष्ठिराय
निवेद्याञ्चक्रुर दीनसत्त्वाः।। ११।।
ते तत्र शूराः कथयाम्बभूवुः
कथा विचित्राः पृतनाधिकाराः।
अस्त्राणि दिव्यानि रथांश्चनागान्
खड्गान् गदाश्चापि परश्वधांश्च।। १२।।

तब सायँकाल होने पर शत्रुओं को मथने वाले भीम, अर्जुन और नकुल तथा सहदेव ने बिना किसी दीनता के भिक्षाचरण किया और भिक्षा को लाकर

उसे युधिष्ठिर को दिया। उस समय वे शूरवीर लोग अनेक प्रकार के विचित्र सेनापतियों के योग्य वृत्तान्तों को परस्पर कह रहे थे। वे दिव्यास्त्रों, रथों, हाथियों खड्गों, गदाओं, और फरसों आदि के विषय में बातें कर रहे थे।

धृष्टद्युम्नो राजपुत्रस्तु सर्वं
वृत्तं तेषां कथितं चैव रात्रौ।
सर्वं राज्ञे द्रुपदायाखिलेन
निवेदयिष्यंस्त्वरितो जगाम॥ १३॥
पाञ्चालराजस्तु विषण्णरूप-
स्तान् पाण्डवानप्रतिविन्दमानः।
कच्चिन्न शूद्रेण न हीनजेन
वैश्येन वा करदेनोपपन्ना॥ १४॥
कच्चित् पदं मूर्ध्नि न पङ्कदिग्धं
कच्चिन्न माला पतिता श्मशाने।
कच्चित् सवर्णप्रवरो मनुष्य
उद्रिक्तवर्णोऽप्युत एव कच्चित्॥ १५॥

धृष्टद्युम्न राजपुत्र तब उनके द्वारा परस्पर कही उन सारी बातों के विषय में मालूम कर रात होने पर उन सबको सम्पूर्ण रूप से द्रुपद को कहने के लिये शीघ्रता से वहाँ गया। उधर पाण्डवों के विषय में न जान पाने के कारण पांचाल राजा द्रुपद बड़े उदास थे। वे सोच रहे थे कि कहीं किसी शूद्र ने या शूद्र से उत्पन्न व्यक्ति ने, या कर देने वाले वैश्य ने तो यह कार्य नहीं किया और अपना कीचड़ भरा पैर मेरे सिर पर रख दिया। कहीं माला श्मशान में तो नहीं गिर गयी। या वह पुरुष हमारे ही समान वर्ण का क्षत्रिय है या हमसे भी श्रेष्ठ कोई ब्राह्मण है?

विचित्रवीर्यस्य सुतस्य कच्चित्
कुरुप्रवीरस्य ध्रियन्ति पुत्राः॥ १६॥
कच्चित् तु पार्थेन यवीयसाद्य
धनुर्गृहीतं निहतं च लक्ष्यम्।
ततस्तथोक्तः परिहृष्टरूपः
पित्रे शशंसाथ स राजपुत्रः॥ १७॥

वे अपने पुत्र से कहने लगे कि हे महानुभाव पुत्र! मुझे सही सही बताओ कि आज मेरी पुत्री को जीतने वाला वह कौन पुरुष है? कहीं कुरुश्रेष्ठ विचित्र वीर्य के पुत्र पाण्डु के पुत्र पांडव अभी जीवित है? क्या कुन्ती के छोटे पुत्र अर्जुन ने आज धनुष को उठाया और लक्ष्य को भेदा था? ऐसा कहे जाने पर वह राजकुमार अत्यन्त प्रसन्न होकर कहने लगे कि–

ते नर्दमाना इव कालमेघाः
कथा विचित्राः कथयाम्बभूवुः।
न वैश्यशूद्रौपयिकीः कथास्ता
न च द्विजानां कथयन्ति वीराः॥ १८॥
निःसंशयं क्षत्रियपुङ्गवास्ते
यथा हि युद्धं कथयन्ति राजन्।
आशा हि नो व्यक्तमियं समृद्धा
मुक्तान् हि पार्थाञ्छृणुमोऽग्निदाहात्॥ १९॥
यथा हि लक्ष्यं निहतं धनुश्च
सज्यं कृतं तेन तथा प्रसह्य।
यथा हि भाषन्ति परस्परं ते
छन्न धुवं ते प्रचरन्ति पार्थाः॥ २०॥

वे वर्षा ऋतु के बादलों के समान वर्षा सी करते हुए परस्पर अनेक प्रकार की चर्चाएँ कर रहे थे। वे वीर लोग जो बातें कर रहे थे, वे शूद्रों, वैश्यों, और ब्राह्मणों जैसी नहीं थीं। हे राजन्! वे जिस प्रकार से युद्धों का वर्णन कर रहे थे, उनसे प्रतीत होता है कि वे निस्सन्देह श्रेष्ठ क्षत्रिय हैं। हमने यह भी सुना है कि पाण्डव लोग अग्नि में जलने से बच गये हैं। इसलिये हमारी उनके विषय में जो आशा थी, वह बलवान होती प्रतीत हो रही हैं जिस कौशल के साथ उसने बलपूर्वक धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई और लक्ष्य को बेधा और जिस प्रकार की बातें वे परस्पर करते हैं, उनसे यह निश्चित प्रतीत होता है कि वे कुन्ती के पुत्र गुप्तवेश में विचरण कर रहे हैं।

छत्तीसवाँ अध्याय : द्रुपद के द्वारा युधिष्ठिर से द्रौपदी का विवाह करना।

ततः स राजा द्रुपदः प्रहृष्टः
पुरोहितं प्रेषयामास तेषाम्।
गृहीतवाक्यो नृपतेः पुरोधा
गत्वा प्रशंसाममिधाय तेषाम्॥ १॥
वाक्यं समग्रं नृपतेर्यथाव-
दुवाच चानुक्रमविक्रमेण।
विज्ञातुमिच्छत्यवनीश्वरो वः
पाञ्चालराजो वरदो वरार्हाः॥ २॥

लक्ष्यस्य वेद्धारमिमं हि दृष्ट्वा
हर्षस्य नान्तं प्रतिपद्यते सः।
आख्यात च ज्ञातिकुलानुपूर्वीं
पदं शिरस्सु द्विषतां कुरुध्वम्।। ३।।
प्रह्लादयध्वं हृदयं ममेदं
पाञ्चालराजस्य च सानुगस्य।

राजा द्रुपद ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने पुरोहित को पाण्डवों के पास भेजा। राजा के सन्देश को ग्रहण कर पुरोहित ने पाण्डवों के समीप जाकर प्रशंसा कर, राजा के सन्देश को जैसा उन्होंने कहा था, वैसा ही यथाक्रम समग्र रूप से उन्हें सुनाया। उन्होंने कहा हे वरदान देने वाले! स्वामी पांचालराज पृथिवीपति आपका परिचय जानना चाहते हैं। लक्ष्य को बेधने वाले इन वीर पुरुष को देखकर उनके हर्ष की सीमा नहीं है। आप अपनी जाति कुल, आदि का वर्णन करें, शत्रुओं के सिर पर अपना पैर रखें और मेरे तथा सेवकों सहित पांचाल नरेश के हृदय को आनन्दित करें।

अथोक्तवाक्यं हि पुरोहितं स्थितं
ततो विनीतं समुदीक्ष्य राजा।। ४।।
समीपतो भीममिदं शशास
प्रदीयतां पाद्यमर्घ्यं तथास्मै।
मान्यः पुरोधा द्रुपदस्य राज्ञः
तस्मै प्रयोज्याभ्यधिका हि पूजा।। ५।।
सुखोपविष्टं तु पुरोहितं तदा
युधिष्ठिरो ब्राह्मणमित्युवाच।

विनीत पुरोहित जब अपनी बात कह चुके तब राजा युधिष्ठिर ने उन्हें देख कर अपने समीप बैठे हुए भीम को आदेश दिया कि इन्हें पैर धोने का पानी और अर्घ्य प्रदान करो। ये राजा द्रुपद के आदरणीय पुरोहित हैं, इसलिये ये हमसे विशेष सत्कार के अधिकारी हैं। इसके पश्चात् सुख से बैठे हुए उन ब्राह्मण पुरोहित से युधिष्ठिर ने कहा कि–

पाञ्चालराजेन सुता निसृष्टा
स्वधर्मदृष्टेन यथा न कामात्।। ६।।
प्रदिष्टशुल्का द्रुपदेन राज्ञा
सा तेन वीरेण तथानुवृत्ता।
न तत्र वर्णेषु कृता विवक्षा
न चापि शीले न कुले न गोत्रे।। ७।।
कृतेन सज्येन हि कार्मुकेण
विद्धेन लक्ष्येण हि सा विसृष्टा।
सेयं तथानेन महात्मनेह
कृष्णा जिता पार्थिवसङ्घमध्ये।। ८।।
न तद् धनुर्मन्दबलेन शक्यं
मौर्व्या समायोजयितुं तथा हि।
न चाकृतास्त्रेण न हीनजेन
लक्ष्यं तथा पातयितुं हि शक्यम्।। ९।।
न चापि तत्पातनमन्यथेह
कर्तुं हि शक्यं भुवि मानवेन

पांचाल राज ने अपनी कन्या अपनी इच्छा से नहीं दी है, उन्होंने अपने धर्म के अनुसार अपनी शर्त रख कर कन्या को दिया है। इस वीर ने उनकी शर्त को पूरा करके उसे प्राप्त किया है। उन्होंने वहाँ वर्ण, कुल, गोत्र या शील के विषय में कोई बात नहीं की थी। उन्होंने धनुष को तैयार करके उसके द्वारा लक्ष्य को बेधने वाले को ही उसे देने को कहा था। उसी के अनुसार इन महात्मा ने राजाओं के बीच में कृष्णा को जीता है। किन्तु कोई भी कम शक्ति वाला व्यक्ति उस धनुष पर प्रत्यंचा को नहीं चढ़ा सकता और जिसने अस्त्र विद्या का पूरा अभ्यास नहीं किया हो और हीन कुल का हो, वह इस लक्ष्य को नहीं बेध सकता। कोई दूसरा व्यक्ति इस वीर के अतिरिक्त इस भूमि पर उस लक्ष्य को नहीं बेध सकता।

एवं ब्रुवत्येव युधिष्ठिरे तु
पाञ्चालराजस्य समीपतोऽन्यः।। १०।।
तत्राजगामाशु नरो द्वितीयो
निवेदयिष्यन्निह सिद्धमन्नम्।

दूत उवाच- जन्यार्थमन्नं द्रुपदेन राज्ञा
विवाहहेतोरुपसंस्कृतं च।। ११।।
तदाप्नुवध्वं कृतसर्वकार्याः
कृष्णां च तत्रैव चिरं न कार्यम्।
इमे रथाः काञ्चनपद्मचित्राः
सदश्वयुक्ता वसुधाधिपार्हाः।। १२।।
एतान् समारुह्य समेत सर्वे
पाञ्चालराजस्य निवेशनं तत्।
ततः प्रयाताः कुरुपुङ्गवास्ते
आस्थाय यानानि महान्ति तानि।। १३।।

युधिष्ठिर जब ऐसा कह रहे थे तभी पांचालराज के पास से एक दूसरा व्यक्ति वहाँ शीघ्रता से आया

और उसने निवेदन किया कि भोजन तैयार है। राजा द्रुपद ने बरातियों के लिये उत्तम भोजन तैयार कराया है। आप लोग भोजन के लिये चलिये। वहीं सारे कार्य कर कृष्णा को भी प्राप्त कीजिये। विलम्ब मत कीजिये। ये सुनहले कमलों से चित्रित, अच्छे घोड़ों से युक्त, राजाओं के योग्य रथ तैयार हैं। आप सब इन पर आरूढ़ होकर पांचालराज के घर चलें। तब वे सभी कुरुश्रेष्ठ वीर उन विशाल रथों पर चढ़ कर वहाँ से चले।

फलानि माल्यानि च संस्कृतानि
बीजानि चान्यानि कृषीनिमित्तम्।
अन्येषु शिल्पेषु च यान्यपि स्युः
सर्वाणि कृत्यान्यखिलेन तत्र।। १४।।
क्रीडानिमित्तान्यपि यानि तत्र
सर्वाणि तत्रोपजहार राजा।
वर्माणि चर्माणि च भानुमन्ति
खड्गा महान्तोऽश्वरथाश्च चित्राः।। १५।।
धनूंषि चाग्र्याणि शराश्च चित्राः
शक्त्यृष्टयः काञ्चनभूषणाश्च।
प्रासा भुशुण्ड्यश्च परश्वधाश्च
सांग्रामिकं चैव तथैव सर्वम्।। १६।।
शय्यासनान्युत्तम वस्तुवन्ति
तथैव वासो विविधं च तत्र।

राजा द्रुपद ने वहाँ तरह तरह के फलों, सुन्दर ढंग से बनाई हुई मालाओं, कृषि के योग्य बीजों और दूसरे पदार्थों और दूसरे शिल्पकला के जो पदार्थ थे, उन सबको सम्पूर्ण रूप से तथा खेल की जो सामग्री थी, उन सभी को भी वहाँ सजाया हुआ था। दूसरी तरफ उन्होंने क्षत्रियों के उपयोग की वस्तुएँ, कवच, ढाल, चमकती हुई, विशाल तलवारें, घोड़े, चित्रित रथ, उत्तम धनुष, विचित्र बाण, स्वर्ण भूषित शक्ति एवं ऋष्टियाँ, प्रास, भुशुण्डी, फरसे, सब प्रकार की युद्ध सामग्री, सुन्दर बिस्तरे, आसन, और तरह तरह के सुन्दर परिधान वस्त्र वहाँ प्रदर्शित किये हुए थे।

तान् सिंहविक्रान्तगतीन् निरीक्ष्य
महर्षभाक्षान जिनोत्तरीयान्।। १७।।
गूढोत्तरांसान् भुजगेन्द्रभोग-
प्रलम्बबाहून् पुरुषप्रवीरान्।
राजा च राज्ञः सचिवाश्च सर्वे
हर्षं समापेतुरतीव तत्र।। १८।।
ते तत्र वीराः परमासनेषु
सपादपीठेष्व विशङ्कमानाः।
यथानुपूर्वं विविशुर्नराग्र्याः
तथा महार्हेषु न विस्मयन्तः।। १९।।

उन सिंह के समान पराक्रम को सूचित करने वाली चाल ढाल वाले, विशाल साँड के समान आँखों वाले, मृगचर्म का उत्तरीय ओढ़े हुए पाण्डवों को देख कर, जिनकी हँसली की हड्डियाँ माँस से छिपी हुई थी, जिनकी भुजायें नागराज के शरीर के समान लम्बी थीं, जो श्रेष्ठ पुरुष थे, राजा और उनके सारे मन्त्री अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुए। तब वहाँ रखे हुए उन पाद पीठ सहित बहुमूल्य उत्तम सिंहासनों पर, बिना किसी हिचकिचाहट के वे नर श्रेष्ठ छोटे बड़े के क्रम से जाकर बैठ गये।

उच्चावचं पार्थिवभोजनीयं
पात्रीषु जाम्बूनदराजतीषु।
दासाश्च दास्यश्च सुमृष्टवेषाः
सम्भोजकाश्चाप्यु पजह्रुरन्नम्।। २०।।
ते तत्र भुक्त्वा पुरुषप्रवीरा
यथाऽऽत्मकामं सुभृशं प्रतीताः।
उत्क्रम्य सर्वाणि वसूनि तत्र
सांग्रामिकं ते विविशुर्नृवीराः।। २१।।

तत्पश्चात् राजाओं को खिलाने वाली सामान्य तथा उत्तम प्रकार की भोजन सामग्री, सोने और चाँदी के बर्तनों में सुन्दर वस्त्र पहने हुए सेवकों, सेविकाओं और खिलाने वालों ने लाकर परोसनी आरम्भ की। उस भोजन को अपनी इच्छा के अनुसार खाकर वे पुरुष श्रेष्ठ अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसके पश्चात् वे वीर लोग वहाँ प्रदर्शित सारी वस्तुओं को छोड़ कर जो युद्ध की सामग्री थी, उसी को जाकर देखने लगे।

तत आहूय पाञ्चाल्यो राजपुत्रं युधिष्ठिरम्।
पर्यपृच्छददीनात्मा कुन्तीपुत्रं सुवर्चसम्।। २२।।
कथं जानीम भवतः क्षत्रियान् ब्राह्मणानुत।
वैश्यान् वा गुणसम्पन्नानथवा शूद्रयोनिजान्।। २३।।
ब्रवीतु नो भवान् सत्यं संदेहो ह्यत्र नो महान्।
अपि नः संशयस्यान्ते मनः संतुष्टिमावहेत्।। २४।।
श्रुत्वा ह्यमरसंकाश तव वाक्यमरिंदम।
ध्रुवं विवाहकरणमास्थास्यामि विधानतः।। २५।।

तब उदारचित्त पांचाल राजा ने सुन्दर तेज वाले राजकुमार युधिष्ठिर को बुला कर उनसे पूछा कि

हमें कैसे पता हो कि आप ब्राह्मण हैं, या क्षत्रिय हैं, या गुणों से सम्पन्न वैश्य या शूद्र हैं। आप सत्य बताइये। हमें इस बारे में बड़ा सन्देह है। क्या हमारे इस संशय का नाश होगा और मन को सन्तुष्टि प्राप्त होगी? हे देवताओं के समान शत्रुओं को नष्ट करने वाले! फिर मैं इसके पश्चात् निश्चित रूप से विधान पूर्वक विवाह की तैयारी करूँगा।

युधिष्ठिर उवाच

मा राजन् विमना भूस्त्वं, पाञ्चाल्य प्रीतिस्तु ते।
ईप्सितस्ते ध्रुवः कामः संवृत्तोऽयमसंशयम्।। २६।।
वयं हि क्षत्रिया राजन् पाण्डोः पुत्रा महात्मनः।
ज्येष्ठं मां विद्धि कौन्तेयं भीमसेनार्जुनाविमौ।। २७।।
आभ्यां तव सुता राजन् निर्जिता राजसंसदि।
यमौ च तत्र कुन्ती च यत्र कृष्णा व्यवस्थिता।। २८।।
व्येतु ते मानसं दुःखं क्षत्रियाः स्मो नरर्षभ।
पद्मिनीव सुतेयं ते ह्रदादन्यह्रदं गता।। २९।।
इति तथ्यं महाराज सर्वमेतद् ब्रवीमि ते।
भवान् हि गुरुरस्माकं परमं च परायणम्।। ३०।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे राजन्! पांचालराज! आप उदास मत होइये, प्रसन्न होइये। आपकी जो निश्चित कामना थी, वह निस्सन्देह पूरी हो गयी है। हम महात्मा पाण्डु के पुत्र क्षत्रिय हैं। आप मुझे सबसे बड़ा कुन्ती पुत्र जानिये और ये दोनों भीमसेन तथा अर्जुन हैं। इन दोनों ने हे राजन्! आपकी पुत्री को राजाओं की सभा में जीता है। वे दोनों जुड़वाँ भाई नकुल और सहदेव हैं। माता कुन्ती वहाँ है, जहाँ कृष्णा विद्यमान है। हे नरश्रेष्ठ! आपकी चिन्ता अब समाप्त हो जानी चाहिये। आपकी कमलिनी के समान पुत्री एक सरोवर से दूसरे सरोवर को प्राप्त हुई है। महाराज! मैं यह आपसे सत्य कह रहा हूँ। आप हमारे बड़े और परम आश्रय हैं।

ततः स द्रुपदो राजा हर्षव्याकुललोचनः।
प्रतिवक्तुं मुदा युक्तो नाशकत् तं युधिष्ठिरम्।। ३१।।
यत्नेन तु स तं हर्षं संनिगृह्य परंतपः।
अनुरूपं तदा वाचा प्रत्युवाच युधिष्ठिरम्।। ३२।।
पप्रच्छ चैनं धर्मात्मा यथा ते प्रद्रुताः पुरात्।
स तस्मै सर्वमाचख्यावानुपूर्व्येण पाण्डवः।। ३३।।

तब उन राजा द्रुपद की आँखे हर्ष से खिल गयीं। प्रसन्नता के कारण वे युधिष्ठिर को तुरन्त कोई उत्तर नहीं दे सके। उन शत्रुओं का दमन करने वाले राजा ने बड़े प्रयत्न से अपने हर्ष को वश में कर तब अनुकूल वाणी में युधिष्ठिर को उत्तर दिया। उन धर्मात्मा ने उनसे पूछा कि वे किस प्रकार उस नगर से भागे। तब उन पाण्डव ने सारी बातें उन्हें यथाक्रम से सुनाई।

तच्छ्रुत्वा द्रुपदो राजा कुन्तीपुत्रस्य भाषितम्।
विगर्हयमास तदा धृतराष्ट्रं नरेश्वरम्।। ३४।।
आश्वासयामास च तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
प्रतिजज्ञे च राज्याय द्रुपदो वदतां वरः।। ३५।।
प्रत्याश्वस्तस्ततो राजा सह पुत्रैरुवाच तम्।
गृह्णातु विधिवत् पाणिमद्यायं कुरुनन्दनः।। ३६।।
पुण्येऽहनि महाबाहुरर्जुनः कुरुतां क्षणम्।
तमब्रवीत् ततो राजा धर्मात्मा च युधिष्ठिरः।। ३७।।

द्रुपद उवाच

ममापि दारसम्बन्धः कार्यस्तावद् विशाम्पते।
भवान् वा विधिवत् पाणिं गृह्णातु दुहितुर्मम।। ३८।।

कुन्ती पुत्र की कही गयी उन बातों को सुन कर राजा द्रुपद ने नरेश्वर धृतराष्ट्र की बड़ी निन्दा की और युधिष्ठिर को आश्वासन दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे उन्हें उनका राज्य दिलवायेंगे। इस प्रकार सन्देह मिट जाने पर राजा ने पुत्रों के साथ युधिष्ठिर से कहा कि अब ये कुरुश्रेष्ठ महाबाहु अर्जुन आज पवित्र दिन मेरी कन्या का पाणि ग्रहण करें। तब धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि हे राजन्! विवाह तो तब तक अर्थात् इससे पहले आपको मेरा भी कराना है। तब द्रुपद ने कहा फिर आप मेरी कन्या के साथ विधि पूर्वक विवाह कीजिये।

नोट- यहाँ युधिष्ठिर ने यह बात इसलिये कही क्योंकि उस समय बड़े भाई से पहले छोटे का विवाह निन्दनीय समझा जाता था। भीम का हिडिम्बा से विवाह तो विशेष परिस्थिति के कारण हुआ था, पर अब अर्जुन से पहले युधिष्ठिर का विवाह आवश्यक था।

ततो राजा यज्ञसेनः सपुत्रो
जन्यार्थमुक्तं बहु तत् तदग्र्यम्।
समानयामास सुतां च कृष्णा-
माप्लाव्य रत्नैर्बहुभिर्विभूष्य।। ३९।।
ततस्तु सर्वे सुहृदो नृपस्य
समाजग्मुः सहिता मन्त्रिणश्च।
द्रष्टुं विवाहं परमप्रतीता
द्विजाश्च पौराश्च यथा प्रधानाः।। ४०।।

तब राजा यज्ञसेन ने अपने पुत्र के साथ वर तथा बरातियों के लिये उत्तम-उत्तम वस्तुओं को मँगवाया और अपनी पुत्री कृष्णा को अनेक रत्न तथा आभूषणों से विभूषित करके वहाँ बुलवाया। तत्पश्चात् राजा के परिवार के लोग, मन्त्रीगण, प्रमुख ब्राह्मण और पुरवासी अत्यन्त प्रसन्न होकर विवाह को देखने के लिये वहाँ आकर बैठे।

ततोऽस्य वेश्माग्र्यजनोपशोभितं
विस्तीर्णपद्मोत्पल भूषिताजिरम्।
बलौघरत्नौघ विचित्रमाबभौ
नभो यथा निर्मलतारकान्वितम्।।४१।।
ततस्तु ते कौरवराजपुत्रा
विभूषिताः कुण्डलिनो युवानः।
महार्हवस्त्राम्बर चन्दनोक्षिताः
कृताभिषेकाः कृतमङ्गलक्रियाः।।४२।।

तब राजा के घर का आँगन बिखरे हुए पद्मों और उत्पलों से सजाया गया। वहाँ श्रेष्ठ पुरुष विराजमान हो रहे थे। उस जगह एक स्थान पर रत्नों का ढेर सजाया हुआ था तो दूसरी तरफ सेनाएँ खड़ी थीं। इस प्रकार वह स्थान तारों से सुशोभित स्वच्छ आकाश के समान प्रतीत हो रहा था। तब वे युवा कुरुराज पुत्र स्नान करके, मंगल क्रियाएँ कराकर, बहुमूल्य वस्त्रों तथा केसर और चन्दन से सुसज्जित एवं कुण्डलों से विभूषित होकर तैयार हो गये।

ततः समाधाय स वेदपारगो
जुहाव मन्त्रैर्ज्वलितं हुताशनम्।
युधिष्ठिरं चाप्युपनीय मन्त्रवि-
न्नियोजयामास सहैव कृष्णया।।४३।।
प्रदक्षिणं तौ प्रगृहीतपाणी
समानयामास स वेदपारगः।
ततोऽभ्यनुज्ञाय तमाजिशोभिनं
पुरोहितो राजगृहाद् विनिर्ययौ।।४४।।

तब वेद के ज्ञाता पुरोहित ने अग्नि की स्थापना कर उस प्रज्वलित अग्नि में मन्त्रों द्वारा हवन किया। फिर उन मन्त्रवेत्ता ने युधिष्ठिर को नया यज्ञोपवीत पहना कर कृष्णा के साथ उनका गठबन्धन कर दिया। उन वेद के विद्वान् ने उन दोनों का हाथ पकड़वा कर उन्हें अग्नि की प्रदक्षिणा करायी। पुनः उन्होंने विवाह क्रिया समाप्त होने पर युद्ध में सुशोभित होने वाले युधिष्ठिर को वेदी से उठने की आज्ञा दी और स्वयं भी राजमहल से बाहर निकले।

कुन्तीमासाद्य ता नार्यो द्रुपदस्य महात्मनः।
नाम संकीर्तयन्त्योऽस्या जग्मुः पादौ स्वमूर्धभिः।।४५।।
कृष्णा च क्षौमसंवीता कृतकौतुकमङ्गला।
कृताभिवादना श्वश्र्वास्तस्थौ प्रह्वा कृताञ्जलिः।।४६।।
रूपलक्षणसम्पन्नां शीलाचारसमन्विताम्।
द्रौपदीमवदत् प्रेम्णा पृथाऽऽशीर्वचनं स्नुषाम्।।४७।।

उसके पश्चात् महात्मा द्रुपद के घर की स्त्रियाँ अपना नाम बताती हुईं और कुन्ती के चरणों में प्रणाम करती हुई जाने लगीं। द्रौपदी भी रेशमी वस्त्र पहने, मंगलकार्य समाप्त करने के पश्चात् अपनी सास को प्रणाम कर, विनीत भाव से हाथ जोड़ कर उनके सामने खड़ी हो गयी। तब सौन्दर्य और सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न, और शील एवं आचार से युक्त अपनी पुत्रवधु को प्रेम के साथ आशीर्वाद देती हुई कुन्ती बोली कि–

जीवसूर्वीरसूर्भद्रे बहुसौख्यसमन्विता।
सुभगा भोगसम्पन्ना यज्ञपत्नी पतिव्रता।।४८।।
अतिथीनागतान् साधून् वृद्धान् बालांस्तथा गुरून्।
पूजयन्त्या यथान्यायं शश्वद् गच्छन्तु ते समाः।।४९।।
कुरुजाङ्गलमुख्येषु राष्ट्रेषु नगरेषु च।
अनु त्वमभिषिच्यस्व नृपतिं धर्मवत्सला।।५०।।
पृथिव्यां यानि रत्नानि गुणवन्ति गुणान्विते।
तान्याप्नुहि त्वं कल्याणि सुखिनी शरदां शतम्।।५१।।
यथा च त्वाभिनन्दामि वध्वद्य क्षौमसंवृताम्।
तथा भूयोऽभिनन्दिष्ये जातपुत्रां गुणान्विताम्।।५२।।

हे भद्रे! तुम बहुत सुख से युक्त होकर लम्बी आयु प्राप्त करो और वीर पुत्रों की माता बनो। तुम सौभाग्यशाली ऐश्वर्य से युक्त, यज्ञ में अपने पति के साथ बैठने वाली और पतिव्रता बनो। तुम्हारे वर्ष आये हुए अतिथियों, साधुओं, वृद्धों, बच्चों, और गुरुजनों का यथायोग्य सत्कार करते हुए व्यतीत हों। तुम धर्म से प्रेम करती हुई अपने पति के पीछे कुरुजांगल देश के मुख्य राष्ट्रों और नगरों की रानी बनो। हे गुणों से युक्त कल्याणी! भूमि पर जितने भी गुणों से युक्त रत्न हैं, वे सब तुम्हें प्राप्त हों और तुम सौ वर्षों तक सुख से रहो। हे गुणवती बहु! मैं जैसे आज तुम्हारा इन रेशमी वस्त्रों में स्वागत कर रही हूँ, वैसे ही पुनः तुम्हारा स्वागत करूँगी, जब तुम पुत्रवती बनोगी।

वासांसि च महार्हाणि नानादेश्यानि माधवः।। ५३।।
कम्बलाजिनरत्नानि स्पर्शवन्ति शुभानि च।
शयनासनयानानि विविधानि महान्ति च।। ५४।।
वैदूर्यवज्रचित्राणि शतशो भाजनानि च।
गजान् विनीतान् भद्रांश्च सदश्वांश्च स्वलंकृतान्।। ५५।।
रथांश्च दान्तान् सौवर्णैः शुभ्रैः पट्टैरलंकृतान्।
कोटिशश्च सुवर्णं च प्राहिणोत् मधुसूदनः।। ५६।।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण जी ने वैदूर्यमणियों से जटित सोने के आभूषण, विभिन्न देशों के बहुमूल्य वस्त्र, मुलायम और सुन्दर कम्बल और मृगचर्म, अनेक प्रकार के विशाल आसन, शय्याएँ और वाहन, वैदूर्यमणि जटित सैकड़ों बर्तन, विनीत और उत्तम कोटि के हाथी, अच्छे और सुसज्जित घोड़े, सुनहले और सुन्दर पत्रों से अलंकृत रथ और करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं को उपहार के रूप में पाण्डवों के पास भिजवाया।

सैंतीसवाँ अध्याय : पाण्डवों के विवाह से दुर्योधन की चिन्ता।

ततो राज्ञां चरैराप्तैः प्रवृत्तिरुपनीयत।
येन तद् धनुरादाय लक्ष्यं विद्धं महात्मना।। १।।
सोऽर्जुनो जयतां श्रेष्ठो महाबाणधनुर्धरः।
यः शल्यं मद्रराजं वै प्रोत्क्षिप्यापातयद् बली।। २।।
त्रासयामास संक्रुद्धो वृक्षेण पुरुषान् रणे।
न चास्य सम्भ्रमः कश्चिदासीत् तत्र महात्मनः।। ३।।
स भीमो भीमसंस्पर्शः शत्रुसेनाङ्गपातनः।
ब्रह्मरूपधराञ्छ्रुत्वा प्रशान्तान् पाण्डुनन्दनान्।। ४।।
कौन्तेयान् मनुजेन्द्राणां विस्मयः समजायत।

राजाओं को जब अपने विश्वसनीय जासूसों के द्वारा यह पता लगा कि जिस महात्मा ने धनुष को उठा कर लक्ष्य को बींधा था, वह विजयी वीरों में श्रेष्ठ, महान् धनुष बाण धारण करने वाला अर्जुन था। जिस बलवान ने मद्रराज शल्य को उठा कर गिराया था और जिसने क्रोध में भर कर वहाँ युद्ध में वृक्ष के द्वारा भयभीत किया था तथा जिस महात्मा को उस समय कुछ भी घबराहट नहीं थी, वह भयानक स्पर्श वाला शत्रु सेना के विभिन्न अंगों को नष्ट करने वाला भीम था। ब्राह्मण का रूप धारण कर वहाँ प्रशान्त भाव से बैठे हुए कुन्ती पुत्री पाण्डव थे। तब उन राजाओं को बड़ा आश्चर्य हुआ।

सपुत्रा हि पुरा कुन्ती दग्धा जतुगृहे श्रुता।। ५।।
पुनर्जातानिव च तांस्तेऽमन्यन्त नराधिपाः।
धिगकुर्वंस्तदा भीष्मं धृतराष्ट्रं च कौरवम्।। ६।।
कर्मणातिनृशंसेन पुरोचनकृतेन वै।
अथ दुर्योधनो राजा विमना भ्रातृभिः सह।। ७।।
अश्वत्थाम्ना मातुलेन कर्णेन च कृपेण च।
विनिवृत्तो वृतं दृष्ट्वा द्रौपद्या श्वेतवाहनम्।। ८।।
तं तु दुःशासनो व्रीडन् मन्दं मन्दमिवाब्रवीत्।

पहले उन्होंने सुना था कि कुन्ती अपने पुत्रों के साथ लाक्षागृह में जल गयी है, अब उन्हें जीवित जान कर उन्होंने उनका पुनर्जन्म जैसा समझा और वे पुरोचन के द्वारा किये हुए उस अत्यन्त निर्दयता पूर्ण कर्म के कारण कुरुवंशी धृतराष्ट्र और भीष्म को धिक्कारने लगे। तब द्रौपदी के द्वारा अर्जुन को वरण करता हुआ देख कर राजा दुर्योधन उदास भाव से भाइयों, अश्वत्थामा, मामा शकुनि, कर्ण, और कृपाचार्य के साथ लौट पड़ा। मार्ग में दुःशासन ने लज्जित होते हुए उससे धीरे-धीरे यह कहा कि-

यद्यसौ ब्राह्मणो न स्याद् विन्देत द्रौपदीं न सः।। ९।।
न हि तं तत्त्वतो राजन् वेद कश्चिद् धनंजयम्।
दैवं च परमं मन्ये पौरुषं चाप्यनर्थकम्।। १०।।
धिगस्तु पौरुषं तात ध्रियन्ते यत्र पाण्डवाः।
एवं सम्भाषमाणास्ते निन्दन्तश्च पुरोचनम्।। ११।।
विविशुर्हास्तिनपुरं दीना विगतचेतसः।

यदि यह अर्जुन ब्राह्मण के वेष में नहीं होता तो द्रौपदी को प्राप्त नहीं कर सकता था। हे राजन्! उसे किसी ने पहचाना ही नहीं कि यह अर्जुन है। मैं तो भाग्य को ही उत्तम मानता हूँ। पुरुष का प्रयत्न व्यर्थ है। हे तात! हमारे पौरुष को धिक्कार है कि पाण्डव अभी तक जी रहे हैं। इस प्रकार वे परस्पर बातें करते हुए और पुरोचन की निन्दा करते हुए, दीन और चेतना रहित से बने हुए हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए।

त्रस्ता विगतसंकल्पा दृष्ट्वा पार्थान् महौजसः।। १२।।
मुक्तान् हव्यभुजश्चैव संयुक्तान् द्रुपदेन च।
धृष्टद्युम्नं तु संचिन्त्य, तथैव च शिखण्डिनम्।। १३।।
द्रुपदस्यात्मजाश्चान्यान्, सर्वयुद्धविशारदान्।

विदुरस्त्वथ तां श्रुत्वा द्रौपदीं पाण्डवैर्वृतान्।। १४।।
व्रीडितान् धार्तराष्ट्रांश्च भग्नदर्पानुपागतान।
ततः प्रीतमनाः क्षत्ता धृतराष्ट्रं विशाम्पतिं।। १५।।
उवाच दिष्ट्या कुरवो वर्धन्ते इति विस्मितः।

महातेजस्वी कुन्ती पुत्रों को आग से बचा हुआ और द्रुपद से सम्बन्ध हुआ देख कर धृष्टद्युम्न और शिखण्डी के विषय में सोच कर तथा युद्ध में चतुर द्रुपद के दूसरे सारे पुत्रों के बारे में विचार कर वे सब धृतराष्ट्र पुत्र डरे हुए और निराश हो रहे थे। विदुर जी ने जब सुना कि द्रौपदी को पाण्डवों के द्वारा वरण कर लिया गया है और धृतराष्ट्र के पुत्रों का अभिमान टूट गया है तथा वे लज्जित होकर वापिस आये हैं, तब वे प्रसन्न होकर महाराज धृतराष्ट्र के पास जाकर आश्चर्य पूर्वक बोले कि बड़े सौभाग्य की बात है कि कौरवों की बढ़ोतरी हो रही है।

वैचित्रवीर्यस्तु वचो निशम्य विदुरस्य तत्।। १६।।
अब्रवीत् परमप्रीतो दिष्ट्या दिष्ट्येति भारतः।
मन्यते स वृतं पुत्रं ज्येष्ठं द्रुपदकन्यया।। १७।।
दुर्योधनमविज्ञानात् प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः।
अथ त्वाज्ञापयामास द्रौपद्या भूषणं बहु।। १८।।
आनीयतां वै कृष्णेति पुत्रं दुर्योद्रधनं तदा।
अथास्य पश्चाद् विदुर आचख्यौ पाण्डवान् वृतान्।। १९।।
सर्वान् कुशलिनो वीरान् पूजितान् द्रुपदेन ह।
तेषां सम्बन्धिनश्चान्यान् बहून् बलसमन्वितान्।। २०।।
समागतान् पाण्डवेयैस्तस्मिन्नेव स्वयंवरे।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं विदुरस्य नराधिपः।। २१।।
आकारच्छादनार्थं तु दिष्ट्या दिष्ट्येतिचाब्रवीत्।

तब विचित्र वीर्य के पुत्र भरतवंशी धृतराष्ट्र ने विदुर की इस बात को सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहा कि बड़े सौभाग्य की बात है। वह अन्धा राजा उस समय अज्ञानवश अपने ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन को द्रुपदपुत्री के द्वारा वरण किया हुआ समझ रहा था। इसलिये उसने आज्ञा दी कि द्रौपदी के लिये बहुत से आभूषण मँगवाओ और कृष्णा और दुर्योधन को सम्मान के साथ नगर में लाओ। तब विदुर जी ने उन्हें समझाया कि द्रौपदी ने पाण्डवों का वरण किया है। वे सारे वीर सकुशल हैं और उनका द्रुपद ने बड़ा सम्मान किया है। उसी स्वयंवर में उनके दूसरे आये हुए बलवान सम्बन्धी भी पाण्डवों से मिले हैं। तब विदुर की यह बात सुन कर राजा ने अपने मुख के बदले हुए भावों को छिपाने के लिये कहा कि अहोभाग्य है, अहोभाग्य है।

एवं विदुर भद्रं ते यदि जीवन्ति पाण्डवाः।। २२।।
साध्वाचारा तथा कुन्ती सम्बन्धो द्रुपदेन च।
अन्ववाये वसोर्जातः प्रकृष्टे मान्यके कुले।। २३।।
व्रतविद्यातपोवृद्धः पार्थिवानां धुरन्धरः।
पुत्राश्चास्य तथा पौत्राः सर्वे सुचरितव्रताः।। २४।।
तेषां सम्बन्धिनश्चान्ये बहवः सुमहाबलाः।
यथैव पाण्डोः पुत्रास्तु तथैवाभ्यधिका मम।। २५।।
यथा चाभ्यधिका बुद्धिर्मम तान् प्रति तच्छृणु।

हे विदुर यदि ऐसा है और पाण्डव जीवित हैं तो तुम्हारा कल्याण हो। कुन्ती अच्छे आचार की है। वसु राजा के उत्तम और मान्य कुल में उत्पन्न द्रुपद के साथ हमारा संबंध आदरणीय है। द्रुपद व्रत पालन, विद्या और तप तीनों में वृद्ध हैं। वे राजाओं में धुरन्धर हैं। उनके पुत्र और पौत्र भी सारे व्रतों का पालन करने वाले हैं। उनके दूसरे संबंधी भी बहुत सारे और महाबली हैं। पाण्डव जैसे पाण्डु के पुत्र हैं, वैसे ही और उससे भी अधिक मेरे हैं। उनके प्रति मेरा अधिक प्रेम क्यों है? इसे सुनो–

यत् ते कुशलिनो वीरा मित्रवन्तश्च पाण्डवाः।। २६।।
तेषां सम्बन्धिनश्चान्ये बहवश्च महाबलाः।
तं तथा भाषमणं तु विदुरः प्रत्यभाषत।
नित्यं भवतु ते बुद्धिरेषा राजञ्छतं समाः।। २७।।

क्योंकि वे पाण्डव कुशल पूर्वक हैं और उन्हें मित्रों की प्राप्ति भी हो गयी है। उनके दूसरे बहुत से महाबली सम्बन्धी भी हैं। धृतराष्ट्र जब ऐसा कह रहे थे, तब विदुर जी ने कहा कि हे राजन्! आपकी यह बुद्धि सैकड़ों वर्षों तक बनी रहे।

अड़तीसवाँ अध्याय : पाण्डवों के लिये धृतराष्ट्र, दुर्योधन और कर्ण बातचीत।

दुर्योधन उवाच

सपत्नवृद्धिं यत् तात मन्यसे वृद्धिमात्मनः।
अभिष्टौषि च यत् क्षत्तुः समीपे द्विषतां वर॥ १॥
अन्यस्मिन् नृप कर्तव्ये त्वमन्यत् कुरुषेऽनघ।
तेषां बलविघातो हि कर्तव्यस्तात नित्यशः॥ २॥
ते वयं प्राप्तकालस्य चिकीर्षां मन्त्रयामहे।
यथा नो न ग्रसेयुस्ते सपुत्रबलबान्धवान्॥ ३॥

तब दुर्योधन ने धृतराष्ट्र के पास जाकर कहा कि पिता जी आप तो शत्रुओं की वृद्धि को ही अपनी वृद्धि मानने लगे हैं और विदुर के सामने हमारे शत्रुओं की प्रशंसा करते हैं। हे निष्पाप नरेश! करना तो कुछ और चाहिये पर आप करते कुछ और हैं। हे तात! हमें तो नित्य उनके बल को नष्ट करने का उपाय करना चाहिये, जिससे वे पाण्डव पुत्र सेना और बान्धवों समेत हमारा नाश न कर दें।

धृतराष्ट्र उवाच

विवेक्तुं नाहमिच्छामि त्वाकारं विदुरं प्रति।
ततस्तेषां गुणानेव कीर्तयामि विशेषतः॥ ४॥
नावबुध्येत विदुरो ममाभिप्रायमिङ्गितैः।
यच्च त्वं मन्यसे प्राप्तं तद् ब्रवीहि सुयोधन॥ ५॥
राधेय मन्यसे यच्च प्राप्तकालं वदाशु मे।

दुर्योधन उवाच

अद्य तान् कुशलैर्विप्रैः सुगुप्तैराप्तकारिभिः॥ ६॥
कुन्तीपुत्रान् भेदयामां माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।

तब धृतराष्ट्र ने कहा मैं अपने मुख पर आयी हुई भावनाओं को विदुर पर प्रकट नहीं करना चाहता था। इसलिये मैं विशेष रूप से उनके गुणों का ही कीर्तन कर रहा था, जिससे विदर मेरे भावों को संकेतों द्वारा भी न जान पायें। हे सुयोधन! तुम जो कार्य उचित समझते हो उसे बताओ। हे राधापुत्र! तुम भी जो ठीक समझते हो उसे जल्दी बोलो। तब दुर्योधन ने कहा कि हम आज ही अपने विश्वस्त और कुशल ब्राह्मणों को गुप्त रूप से भेज कर कुन्ती पुत्रों और माद्री पुत्रों में परस्पर फूट करवा दें।

इहैषां दोषवद्वासं वर्णयन्तु पृथक् पृथक्॥ ७॥
ते भिद्यमानास्तत्रैव मनः कुर्वन्तु पाण्डवाः।
भीमसेनस्य वा राजन्नुपायकुशलैर्नरैः॥ ८॥
मृत्युर्विधीयतां छन्नैः स हि तेषां बलाधिकः।
तमाश्रित्य हि कौन्तेयः पुरा चास्मान् न मन्यते॥ ९॥
स हि तीक्ष्णश्च शूरश्च तेषां चैव परायणम्।
तस्मिंस्त्वभिहते राजन् हतोत्साहा हतौजसः॥ १०॥
यतिष्यन्ते न राज्याय स हि तेषां व्यपाश्रयः।

अथवा वे पाण्डवों से अलग अलग वर्णन करें कि आप लोगों का हस्तिनापुर में निवास हानिकारक होगा। जिससे उनका मन यहाँ से हट जाये और वे वहीं रहने लगें। हे राजन! या उपाय में कुशल छिपे हुए लोगों के द्वारा भीम का वध करा दिया जाये, क्योंकि वही सबमें अधिक बलवान है। उसका सहारा लेकर कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर हमें कुछ नहीं समझता है। भीम तेज स्वभाव का और शूरवीर है। पाण्डवों का वही सहारा है। उसके मारे जाने पर हे राजन्! पाण्डवों का उत्साह और तेज नष्ट हो जायेगा और वे राज्य के लिये प्रयत्न नहीं करेंगे। वही उनका प्रमुख आधार है।

अजेयो ह्यर्जुनः संख्ये पृष्ठगोपे वृकोदरे॥ ११॥
तमृते फाल्गुनो युद्धे राधेयस्य न पादभाक्।
इहागतेषु वा तेषु निदेशवशवर्तिषु॥ १२॥
प्रवर्तिष्यामहे राजन् यथाशास्त्रं निबर्हणम्।
एषा मम मतिस्तात निग्रहाय प्रवर्तते॥ १३॥
साध्वी वा यदि वासाध्वी किं वा राधेय मन्यसे।

भीम के पृष्ठ रक्षक होने पर ही अर्जुन युद्ध में अजेय बना हुआ है। उसके बिना तो वह युद्ध में राधा पुत्र कर्ण का चौथाई भी नहीं है। हे राजन्! यदि यहाँ आकर वे अपनी आज्ञा के आधीन रहते हैं तो हम पुनः नीति के अनुसार उनको नष्ट करने के लिये लग जायेंगे। पिता जी! उन्हें वश में करने के लिये तो यही बुद्धि है, चाहे यह ठीक है या बुरी। हे कर्ण! तुम क्या समझमे हो?

कर्ण उवाच

दुर्योधन तव प्रज्ञा न सम्यगिति मे मतिः॥ १४॥
न ह्युपायेन ते शक्याः पाण्डवाः कुरुवर्धन।
पूर्वमेव हि ते सूक्ष्मैरुपायैर्यतितास्त्वया॥ १५॥
निग्रहीतुं तदा वीर न चैव शकितास्त्वया।
इहैव वर्तमानास्ते समीपे तव पार्थिव॥ १६॥
अजातपक्षाः शिशवः शकिता नैव बाधितुम्।

जातपक्षा विदेशस्था विवृद्धाः सर्वशोऽद्य ते।। १७।।
नोपायसाध्याः कौन्तेया ममैषा मतिरच्युत।

तब कर्ण ने कहा कि हे दुर्योधन! तुम्हारे विचार मेरे अनुसार ठीक नहीं हैं। हे कुरुवर्धन! वे पाण्डव लोग उपाय के द्वारा वश में नहीं किये जा सकते। तुमने पहले भी गुप्त उपायों से उन्हें समाप्त करने का प्रयत्न किया है, पर तुम सफल नहीं हुए। उस समय वे यहीं तुम्हारे पास रहते थे और उनके पक्ष में भी कोई नहीं था, तब भी तुम उन्हें बाधा नहीं पहुँचा सके। पर आज तो अनेक सहायक भी हो गये हैं। वे विदेश में हैं। उनकी सब तरफ से वृद्धि भी हो गयी है, इसलिये वे उपाय से वश में नहीं किये जा सकते। हे अच्युत! मेरा ते यही विचार है।

इदं त्वद्य क्षमं कर्तुमस्माकं पुरुषर्षभ।। १८।।
यावन्न कृतमूलास्ते पाण्डवेया विशाम्पते।
तावत् प्रहरणीयास्ते तत् तुभ्यं तात रोचताम्।। १९।।
अस्मत्पक्षो महान् यावद् यावत् पाञ्चालको लघुः।
तावत् प्रहरणं तेषां क्रियतां मा विचारय।। २०।।

हे पुरुषश्रेष्ठ! इस समय तो हम यही कामना कर सकते हैं, कि हे राजन्! जब तक वे पाण्डव अपनी जड़ नहीं जमा लेते, तब तक उन पर आक्रमण कर देना चाहिये। मेरे विचार से यह कार्य तुम्हें भी पसन्द आयेगा। जब तक हमारा पक्ष बड़ा है और पांचालराज कमजोर है, तभी तक उन पर आक्रमण कर दो। इसमें कुछ विचार मत करो।

वाहनानि प्रभूतानि मित्राणि च कुलानि च।
यावन्न तेषां गान्धारे तावद् विक्रम पार्थिव।। २१।।
यावच्च राजा पाञ्चाल्यो नोद्यमे कुरुते मनः।
सह पुत्रैर्महावीर्यैस्तावद् विक्रम पार्थिव।। २२।।
यावन्नायाति वार्ष्णेयः कर्षन् यादववाहिनीम्।
राज्यार्थे पाण्डवेयानां पाञ्चाल्यसदनं प्रति।। २३।।
वसूनि विविधान् भोगान् राज्यमेव च केवलम्।
नात्याज्यमस्ति कृष्णस्य पाण्डवार्थे कथंचन।। २४।।

हे राजन्! हे गान्धारी पुत्र! जब तक उनके पास प्रचुर मात्रा में वाहन, मित्र और कुटुम्बी नहीं हो जाते हैं, उससे पहले ही पराक्रम कर लो! हे राजन्! जब तक पांचाल राज अपने महापराक्रमी पुत्र के साथ पाण्डवों के लिये प्रयत्न करने के लिये तैयार न हों, उससे पहले ही आप पराक्रम करो। जब तक श्रीकृष्ण पाण्डवों की सेना को लेकर पाण्डवों को राज्य दिलाने के लिये पांचालराज के घर नहीं आ जाते हैं, तभी तक तुम्हारे लिये अवसर है। पाण्डवों के लिये कृष्ण अपना सब कुछ, धनसम्पत्ति, तरह तरह के भोगों और राज्य को भी त्याग सकते हैं।

विक्रमं च प्रशंसन्ति क्षत्रियस्य विशाम्पते।
स्वको हि धर्मः शूराणां विक्रमः पार्थिवर्षभ।। २५।।
ते बलेन वयं राजन् महता चतुरङ्गिणा।
प्रमथ्य द्रुपदं शीघ्रमानयामेह पाण्डवान्।। २६।।
न हि साम्ना न दानेन न भेदेन च पाण्डवाः।
शक्याः साधयितुं तस्माद् विक्रमेणैव ताञ्जहि।। २७।।
तान् विक्रमेण जित्वेमामखिलांभुङ्क्ष्व मेदिनीम्।
अतो नान्यं प्रपश्यामि कार्योपायं जनाधिप।। २८।।

हे राजन्! क्षत्रियों में पराक्रम की ही प्रशंसा होती है। हे नरश्रेष्ठ! वीरों का अपना धर्म विक्रम करना ही है। इसलिये हे राजन्! हम अपनी विशाल चतुरंगिणी सेना के द्वारा शीघ्र ही द्रुपद को मथ कर यहाँ पाण्डवों को कैद करके ले आएँ। पाण्डवों को साम, दाम और भेद से वश में नहीं किया जा सकता। इसलिये पराक्रम से ही उन्हें नष्ट करो।

श्रुत्वा तु राधेयवचो धृतराष्ट्रः प्रतापवान्।
अभिपूज्य ततः पश्चादिदं वचनमब्रवीत्।। २९।।
उपपन्नं महाप्राज्ञे कृतास्त्रे सूतनन्दने।
त्वयि विक्रमसम्पन्नमिदं वचनमीदृशम्।। ३०।।
भूय एव तु भीष्मश्च द्रोणो विदुर एव च।
युवां च कुरुतं बुद्धिं भवेद् या नः सुखोदया।। ३१।।
तत आनाय्य तान् सर्वान् मन्त्रिणः सुमहायशाः।
धृतराष्ट्रो महाराजः मन्त्रयामास वै तदा।। ३२।।

कर्ण की बात सुन कर प्रतापी धृतराष्ट्र, उसकी बात का सत्कार कर यह बोले कि हे महाप्राज्ञ! सूतनन्दन! अस्त्र विद्या के ज्ञाता! इस प्रकार का पराक्रम से युक्त वचन तुम्हारे जैसे ही कह सकते हैं। फिर भी आप दोनों भीष्म, द्रोण और विदुर के साथ परामर्श कर उस कार्य पर विचार कर लो, जो हमारे लिये सुखदायी हो। तब महाराज, महायशस्वी धृतराष्ट्र ने उन भीष्म आदि मन्त्रणा करने वालों को बुला कर उनके साथ विचार करना आरम्भ किया।

उन्तालीसवाँ अध्याय : भीष्म की पाण्डवों को आधा राज्य देने की सलाह।

भीष्म उवाच—

न रोचते विग्रहो मे पाण्डुपुत्रैः कथंचन।
यथैव धृतराष्ट्रो मे तथा पाण्डुरसंशयम्।। १।।
गान्धार्याश्च यथा पुत्रास्तथा कुन्तीसुता मम।
यथा च मम ते रक्ष्या धृतराष्ट्र तथा तव।। २।।

तब भीष्म ने कहा कि मुझे पाण्डु पुत्रों के साथ युद्ध करना किसी प्रकार भी पसन्द नहीं है। निश्चित रूप से मेरे लिये जैसे धृतराष्ट्र हैं, वैसे ही पाण्डु हैं। मेरे लिये गान्धारी और कुन्ती के पुत्र समान हैं। इसलिये जैसे वे मेरे लिये रक्षणीय हैं, वैसे ही हे धृतराष्ट्र! वे तुम्हारे लिये भी रक्षणीय हैं।

यथा च मम राज्ञश्च तथा दुर्योधनस्य ते।
तथा कुरूणां सर्वेषामन्येषामपि पार्थिव।। ३।।
एवं गते विग्रहं तैर्न रोचे
संधाय वीरैर्दीयतामर्धभूमिः।
तेषामपीदं प्रपितामहानां
राज्यं पितुश्चैव कुरूत्तमानाम्।। ४।।
दुर्योधन यथा राज्यं त्वमिदं तात पश्यसि।
मम पैतृकमित्येवं तेऽपि पश्यन्ति पाण्डवाः।। ५।।
यदि राज्यं न ते प्राप्ताः पाण्डवेया यशस्विनः।
कुत एव तवापीदं भारतस्यापि कस्यचित्।। ६।।

हे राजन्! जैसे वे मेरे लिये और तुम्हारे लिये रक्षणीय हैं, वैसे ही वे दुर्योधन और सारे कौरवों के लिये भी रक्षणीय हैं। ऐसी अवस्था में मैं उनके साथ युद्ध को पसन्द नहीं करता। इसलिये उनसे सन्धि कर उन्हें आधा रज्य दे दो। उन कुरुश्रेष्ठ पाण्डवों के भी पिता, दादा, पड़दादाओं का यह राज्य है। हे तात दुर्योधन! जैसे तुम यह समझते हो कि यह राज्य मेरी पैतृक सम्पत्ति है, वैसे ही वे भी समझते हैं। यदि वे यशस्वी पाण्डव इस राज्य को नहीं प्राप्त कर सकते, तो तुम भी या कोई और भरत वंशी भी कैसे इसे प्राप्त कर सकते हैं?

अधर्मेण चराज्यं त्वं प्राप्तवान् भरतर्षभ।
तेऽपि राज्यमनुप्राप्ताः पूर्वमेवेति मे मतिः।। ७।।
मधुरेणैव राज्यस्य तेषामर्धं प्रदीयताम्।
एतद्धि पुरुषव्याघ्र हितं सर्वजनस्य च।। ८।।
अतोऽन्यथा चेत् क्रियते न हितं नो भविष्यति।
तवाप्यकीर्तिः सकला भविष्यति न संशयः।। ९।।
कीर्तिरक्षणमातिष्ठ कीर्तिर्हि परमं बलम्।
नष्टकीर्तेर्मनुष्यस्य जीवितं ह्यफलं स्मृतम्।। १०।।

हे भरतश्रेष्ठ! तुमने अधर्म से इस राज्य को पाया है। मेरा विचार है कि वे तुमसे पहले ही इस राज्य को प्राप्त कर चुके थे। इसलिये हे पुरुषव्याघ्र! प्रेम पूर्वक ही उन्हें आधा राज्य दे दो। इसी में सबकी भलाई है। यदि इससे विपरीत कुछ किया गया तो उससे हमारा भला नहीं होगा और निश्चित रूप से तुम्हारी भी सब तरफ अपकीर्ति होगी। अपनी कीर्ति की रक्षा करो। कीर्ति ही बड़ी शक्ति है। जिस पुरुष की कीर्ति नष्ट हो जाती है उसका जीवन व्यर्थ है।

यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य न प्रणश्यति कौरव।
तावज्जीवति गान्धारे नष्टकीर्तिस्तु नश्यति।। ११।।
तमिमं समुपातिष्ठ धर्मं कुरुकुलोचितम्।
अनुरूपं महाबाहो पूर्वेषामात्मनः कुरु।। १२।।
दिष्ट्या ध्रियन्ते पार्था हि दिष्ट्या जीवति सा पृथा।
दिष्ट्या पुरोचनः पापो न सकामोऽत्ययं गतः।। १३।।
यदा प्रभृति दग्धास्ते कुन्तिभोजसुतासुताः।
तदा प्रभृति गान्धारे न शक्नोम्यभिवीक्षितुम्।। १४।।
न चापि दोषेण तथा लोको मन्येत् पुरोचनम्।
यथा त्वां पुरुषव्याघ्र लोको दोषेण गच्छति।। १५।।

हे गान्धारी पुत्र! जब तक मनुष्य की कीर्ति नष्ट नहीं होती, तभी तक ही उसका जीवन है! नष्ट कीर्ति वाले का जीवन भी नष्ट हो जाता है। इसलिये हे महाबाहु! तुम कुरुकुल के योग्य इस धर्म का पालन करो और अपने पूर्वजों के अनुसार कार्य करो। यह सौभाग्य की बात है कि पाण्डव जीवित हैं और कुन्ती भी जीवित है। सौभाग्य से ही वह पापी पुरोचन अपने कार्य में सफल न होकर नष्ट हो गया। जब से वे कुन्ती के पुत्र जल गये और कुन्ती भी उसी अवस्था को प्राप्त हुई ऐसा मैं समझता रहा, तब तक हे गान्धारी पुत्र! मैं लज्जा के कारण किसी की तरफ आँख उठा कर भी नहीं देख सकता था। लोग पुरोचन को उतना दोषी नहीं मानते, जितना कि हे नरश्रेष्ठ! तुम्हें दोषी मानते हैं।

तदिदं जीवितं तेषां तव किल्विषनाशनम्।
सम्मन्तव्यं महाराज पाण्डवानां च दर्शनम्।।१६।।
ते सर्वेऽवस्थिता धर्मे सर्वे चैवैकचेतसः।
अधर्मेण निरस्ताश्च तुल्ये राज्ये विशेषतः।।१७।।

इसलिये हे महाराज! पाण्डवों का जीवित रहना और उनका दिखाई देना, तुम्हारे कलंक को नष्ट करने वाला है। वे सब एक चित्त वाले और धर्म में लगे हुए हैं। जिस पर उनका तुम्हारे समान अधिकार था, उस राज्य से उन्हें अधर्म पूर्वक हटाया गया है।

यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्यं प्रियं च मे।
क्षेमं च यदि कर्तव्यं तेषामर्धं प्रदीयताम्।।१८।।

यदि तुम्हें धर्म के अनुसार कार्य करना है। यदि तुम्हें मेरा प्रिय कार्य करना है। यदि तुम्हें कल्याण मार्ग को अपनाना है तो उन्हें आधा राज्य दे दो।

चालीसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य की पाण्डवों को सादर बुलाने की सम्मति।

द्रोण उवाच– मन्त्राय समुपानीतैर्धृतराष्ट्र हितैर्नृप।
धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च वाच्यमित्यनुशुश्रुम।। १।।
ममाप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः।
संविभज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष सनातनः।। २।।
प्रेष्यतां द्रुपदायाशु नरः कश्चित् प्रियंवदः।
बहुलं रत्नमादाय तेषामर्थाय भारत।। ३।।

तब द्रोणाचार्य ने कहा हे राजा धृतराष्ट्र! हम यही सुनते आए हैं कि जिसे सलाह देने के लिये बुलाया जाये उसे ऐसी सलाह देनी चाहिये, जो धर्म अर्थ और यश की प्राप्ति कराने वाली हो। हे तात! मेरी भी वही सम्मत्ति है जो महात्मा भीष्म की है। कुन्ती के पुत्रों को आधा राज्य बाँट देना चाहिये। यही सनातन धर्म है। हे भारत! किसी प्रिय बोलने वाले व्यक्ति को जल्दी ही पाण्डवों के लिये बहुत से रत्न आदि लेकर द्रुपद के पास भेजना चाहिये।

मिथः कृत्यं च तस्मै स आदाय वसु गच्छतु।
वृद्धिं च परमां ब्रूयात् त्वत्संयोगोद्भवां तथा।। ४।।
सम्प्रीयमाणं त्वां ब्रूयाद् राजन् दुर्योधनं तथा।
असकृद् द्रुपदे चैव धृष्टद्युम्ने च भारत।। ५।।
उचितत्वं प्रियत्वं च योगस्यापि च वर्णयेत्।
पुनः पुनश्च कौन्तेयान् माद्रीपुत्रौ च सान्त्वयन्।। ६।।

विवाह में दोनों पक्ष की तरफ से जो कार्य किये जाते हैं, उनकी पूर्ति के लिये वह व्यक्ति वर पक्ष की तरफ से धन लेकर जाये। वह वहाँ जाकर द्रुपद और धृष्टद्युम्न के सामने बार-बार यह कहे कि आपके साथ सम्बन्ध होने से राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधन अपना अत्यन्त अभ्युदय मान रहे हैं और उन्हें इस सम्बन्ध से बड़ी प्रसन्नता है। वह व्यक्ति कुन्ती पुत्रों और माद्री पुत्रों को भी बार-बार सान्त्वना देकर उनके सामने इस सम्बन्ध के उचित और प्रिय होने का जिक्र करे।

हिरण्मयानि शुभ्राणि बहून्याभरणानि च।
वचनात् तव राजेन्द्र द्रौपद्याः सम्प्रयच्छतु।। ७।।
तथा द्रुपदपुत्राणां सर्वेषां भरतर्षभ।
पाण्डवानां च सर्वेषां कुन्त्या युक्तानि यानि च।। ८।।
एवं सान्त्वसमायुक्तं द्रुपदं पाण्डवैः सह।
उक्त्वा सोऽनन्तरं ब्रूयात् तेषामागमनं प्रति।। ९।।
अनुज्ञातेषु वीरेषु बलं गच्छतु शोभनम्।
दुःशासनो विकर्णश्चाप्यानेतुं पाण्डवानिह।। १०।।

हे राजेन्द्र! वह आपकी आज्ञा से द्रौपदी के लिये बहुत से सोने के आभूषण भेंट करे। उसी प्रकार वह हे भरत श्रेष्ठ! सारे द्रुपदपुत्रों, पाण्डवों और कुन्ती के लिये जो जो उपहार की वस्तुएँ हैं, उन्हें वह वहाँ अर्पित करे। इस प्रकर सान्त्वना पूर्वक द्रुपद और पाण्डवों के साथ बात कर वह पुनः पाण्डवों के यहाँ आने के विषय में चर्चा करे। द्रुपद की पाण्डवों के यहाँ आने की अनुमति मिल जाने पर दुःशासन और विकर्ण एक अच्छी सेना के साथ उन्हें यहाँ लाने को जायें।

ततस्ते पाण्डवाः श्रेष्ठाः पूज्यमानाः सदा त्वया।
प्रकृतीनामनुमते पदे स्थास्यन्ति पैतृके।। ११।।
एतत् एव महाराज पुत्रेषु तेषु चैव हि।
वृत्तमौपयिकं मन्ये भीष्मेण सह भारत।। १२।।

उसके पश्चात् वे पाण्डव लोग यहाँ आने पर आपके द्वारा सत्कार पाते हुए, प्रजा की इच्छा से अपने राज्य पर स्थित हो जायेंगे। हे भरतवंशी महाराज! आपको अपने पुत्रों और उन पर इसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, यह मैं भीष्म जी के साथ मानता हूँ।

कर्ण उवाच
योजितावर्थमानाभ्यां सर्वकार्येष्वनन्तरौ।
न मन्त्रयेतां त्वच्छ्रेयः किमद्भुततरं ततः।। १३।।

दुष्टेन मनसा यो वै प्रच्छन्नेनान्तरात्मना।
ब्रूयान्निःश्रेयसं नाम कथं कुर्यात् सतां मतम्।। १४।।
एवं विद्वन्नपादत्स्व मन्त्रिणां साध्वसाधुताम्।
दुष्टानां चैव बोद्धव्यमदुष्टानां च भाषितम्।। १५।।

तब कर्ण बोला कि महाराज! इन दोनों भीष्म और द्रोणाचार्य को आपके द्वारा सारे कार्यों में लगा कर धन और मान दिया जाता है। फिर भी ये दोनों आपके कल्याण की सलाह न दें, इससे अधिक आश्चर्य की बात क्या होगी? जिसके छिपे हुए मन में दुष्ट भाव भरे हुए हों, वह कल्याण की बातें कैसे कह सकता है और सज्जनों की मति के अनुसार कार्य कैसे कर सकता है? ऐसा समझते हुए आप अपने मन्त्रणा देने वालों की साधुता और असाधुता को पहचानिये और समझिये कि कौन दुष्टता के साथ सलाह दे रहा है और कौन बिना दुष्टता के साथ कह रहा है।

द्रोण उवाच– विद्म ते भावदोषेण यदर्थमिदमुच्यते।
दुष्ट पाण्डवहेतोस्त्वं दोषमाख्यापयस्युत।। १६।।
हितं तु परमं कर्ण ब्रवीमि कुलवर्धनम्।
अतोऽन्यथा चेत् क्रियते यद् ब्रवीमि परंहितम्।
कुरवो वै विनङ्क्ष्यन्ति नचिरेणैव मे मतिः।। १७।।

तब द्रोणाचार्य ने कहा कि हे दुष्ट! तेरी भावनाओं में दोष क्यों है? और क्यों तू इस प्रकार कह रहा है? इसे हम समझते हैं। तू पाण्डवों से जो द्वेष करता है, उसी के कारण हमारी बातों में दोष निकाल रहा है। अरे कर्ण! मैं तो कुल की वृद्धि करने वाली जो परम कल्याण की बात है, वही कह रहा हूँ। जो मेरी कही हुई इस परम हित की बात से अलग कार्य किया गया तो कौरवों का जल्दी ही विनाश हो जायेगा, ऐसा मेरा विचार है।

इकतालीसवाँ अध्याय : विदुर द्वारा भीष्म और द्रोणाचार्य का समर्थन।

विदुर उवाच
राजन् निःसंशयं श्रेयो वाच्यस्त्वमसि बान्धवैः।
न त्वशुश्रूषमाणे वै वाक्यं सम्प्रतितिष्ठति।। १।।
प्रियं हितं च तद् वाक्यमुक्तवान् कुरुसत्तमः।
भीष्मः शांतनवो राजन् प्रतिगृह्णासि तन्न च।। २।।
तथा द्रोणेन बहुधा भाषितं हितमुत्तमम्।
तच्च राधासुतः कर्णो मन्यते न हितं तव।। ३।।

तब विदुर जी ने कहा कि हे राजन्! आपके बन्धुओं को निस्सन्देह आपके कल्याण की बात ही बतानी चाहिये, पर क्योंकि आप उन्हें सुनना नहीं चाहते, इसलिये वे बातें आपके हृदय में बैठती ही नहीं हैं। हे राजन्! शान्तनुपुत्र, कुरुश्रेष्ठ भीष्म ने आपको प्रिय और कल्याणकारी बात कही, पर आप उन्हें ग्रहण नहीं कर रहे हैं, इसी प्रकार द्रोणाचार्य जी ने भी अपने प्रकार से आपको कल्याण की बातें बतायीं। उन्हें भी राधा पुत्र कर्ण आपके लिये हितकारी नहीं मानता।

चिन्तयंश्च न पश्यामि राजंस्तव सुहृत्तमम्।
आभ्यां पुरुषसिंहाभ्यां यो वा स्यात् प्रज्ञयाधिकः।। ४।।
इमौ हि वृद्धौ वयसा प्रज्ञया च श्रुतेन च।
समौ च त्वयि राजेन्द्र तथा पाण्डुसुतेषु च।। ५।।
धर्मे चानवरौ राजन् सत्यतायां च भारत।
रामाद् दाशरथेश्चैव गयाच्चैव न संशयः।। ६।।
न चोक्तवन्तावश्रेयः पुरस्तादपि किंचन।
न चाप्यपकृतं किंचिदनयोर्लक्ष्यते त्वयि।। ७।।
तावुभौ पुरुषव्याघ्रावनागसि नृपे त्वयि।
न मन्त्रयेतां त्वच्छ्रेयः कथं सत्यपराक्रमौ।। ८।।

हे राजन्! मैं विचार करने पर भी किसी ऐसे पुरुष को नहीं देखता हूँ, जो इन दोनों पुरुषसिंहों से अधिक आपका हितैषी हो और बुद्धि में इनसे अधिक हो। हे राजेन्द्र! ये दोनों वृद्ध पुरुष आयु, बुद्धि और विद्या तीनों बातों में वृद्ध हैं और आप में तथा पाण्डु पुत्रों में समान भाव रखते हैं। हे भरतवंशी राजन्! ये दोनों धर्म पालन और सत्य प्रियता में दशरथ पुत्र राम तथा राजा गय से कम नहीं हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इन्होंने पहले कभी आपके लिये कोई अकल्याणकारी बात नहीं कही है और ना ही इनके द्वारा आपका कोई अपकार किया हुआ दिखाई देता है। इन दोनों पुरुष व्याघ्रों ने हे राजन्! कभी आपका कोई अपराध नहीं किया है। फिर ये सत्य पराक्रमी आपको कल्याण कारी सलाह क्यों नहीं देंगे।

प्रज्ञावन्तौ नरश्रेष्ठावास्मिँल्लोके नराधिप।
त्वन्निमित्तमतो नेमौ किंचिज्जिह्मं वदिष्यतः।। ९।।
इति मे नैष्ठिकी बुद्धिर्वर्तते कुरुनन्दन।
न चार्थहेतोर्धर्मज्ञौ वक्ष्यतः पक्षसंश्रितम्।। १०।।

एतद्धि परमं श्रेयो मन्येऽहं तव भारत।
दुर्योधनप्रभृतयः पुत्रा राजन् यथा तव।। ११।।
तथैव पाण्डवेयास्ते पुत्रा राजन् न संशयः।
तेषु चेदहितं किंचिन्मन्त्रयेयुरतद्विदः।। १२।।
मन्त्रिणस्ते न च श्रेयः प्रपश्यन्ति विशेषतः।

हे नराधिप! ये दोनों बुद्धिमान नरश्रेष्ठ, आपके लिये कोई कुटिलता वाली बात नहीं कहेंगे। हे कुरुनन्दन! मेरा इनके विषय में यह निश्चित विचार है कि वे दोनों धर्म को जानने वाले, स्वार्थ के लिये केवल एक पक्ष की ही बात नहीं कहेंगे। हे भरतवंशी राजन्! मैं इसमें ही आपका परम कल्याण समझता हूँ कि जैसे दुर्योधन आदि आपके पुत्र हैं, वैसे ही पाण्डव भी आपके पुत्र हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यदि आपके मन्त्री उनके प्रति कुछ अहित की सलाह देते हैं, तो यह समझना चाहिये कि वे आपका कल्याण विशेष रूप से नहीं देख रहे हैं।

यच्चाप्यशक्यतां तेषामाहतुः पुरुषर्षभौ।। १३।।
तत् तथा पुरुषव्याघ्र तव तद् भद्रमस्तु ते।
कथं हि पाण्डवः श्रीमान् सव्यसाची धनंजयः।। १४।।
भीमसेनो महाबाहुः, नागायुतबलो महान्।
कथंस्म युधि शक्येत, विजेतुममरैरपि।। १५।।
शक्यो विजेतुं संग्रामे राजन् मघवतापि हि।
येषां पक्षधरो रामो येषां मन्त्री जनार्दनः।। १६।।
किं नु तैरजितं संख्ये येषां पक्षे च सात्यकिः।

इन दोनों पुरुष श्रेष्ठों ने जो कुछ भी पाण्डवों की अजेयता के बारे में कहा है, हे पुरुषव्याघ्र! आपका कल्याण हो, वह वैसा ही है। हे राजन्! बायें हाथ से भी बाण छोड़ने वाले अर्जुन को युद्ध में इन्द्र भी कैसे जीत सकता है। विशाल भुजाओं वाला भीमसेन अनेक हाथियों के समान महान बलशाली है। उसे युद्ध में देवता लोग भी कैसे जीत सकते हैं। बलराम जी जिनके पक्ष में हैं, श्रीकृष्ण जिनके सलाहकार हैं और जिनके पक्ष में सात्यकि है, वे पाण्डव युद्ध में किसे नहीं जीत सकते हैं?

द्रुपदः श्वशुरो येषां येषां श्यालाश्च पार्षताः।। १७।।
धृष्टद्युम्नमुखा वीरा भ्रातरो द्रुपदात्मजाः।
सोऽशक्यतां च विज्ञाय तेषामग्रे च भारत।। १८।।
दायाद्यतां च धर्मेण सम्यक् तेषु समाचार।
इदं निर्दिष्टमयशः पुरोचनकृतं महत्।। १९।।
तेषामनुग्रहेणाद्य राजन् प्रक्षालयात्मनः।
तेशामनुग्रहश्चायं सर्वेषां चैव नः कुले।। २०।।
जीवितं च परं श्रेयः क्षत्रस्य च विवर्धनम्।

द्रुपद जिनके श्वसुर हैं, द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न आदि वीर भाई जिनके साले हैं, ऐसे पाण्डवों को युद्ध में जीतना असम्भव है, यह जानकर और यह समझ कर कि राज्य उनके पिता का है, आप उनके साथ धर्म पूर्वक आचरण कीजिये। पुरोचन के कार्य से आपका महान अयश फैल गया है। हे राजन्! अब उन पर अनुग्रह कर आप उस अपयश को धो डालिये। उन सब पर आपके द्वारा किया गया अनुग्रह हमारे कुल में सबके जीवन के लिये परम कल्याणकारी तथा क्षत्रिय जाति की बढ़ोतरी करने वाला होगा।

द्रुपदोऽपि महान् राजा कृतवैरश्च नः पुरा।। २१।।
तस्य संग्रहणं राजन् स्वपक्षस्य विवर्धनम्।
बलवन्तश्च दाशार्हा बहवश्च विशाम्पते।। २२।।
यतः कृष्णस्ततः सर्वे यतः कृष्णस्ततो जयः।
यच्च साम्नैव शक्येत कार्यं साधयितुं नृप।। २३।।
को दैवशप्तस्तत् कार्यं विग्रहेण समाचरेत्।
श्रुत्वा च जीवतः पार्थान् पौरजानपदा जनाः।। २४।।
बलवद् दर्शने हृष्टास्तेषां राजन् प्रियं कुरु।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः।। २५।।
अधर्मयुक्ता दुष्प्रज्ञा बाला मैषां वचः कृथाः।

द्रुपद भी बड़े राजा हैं। पहले उनके साथ हमारा वैर हो चुका है। हे राजन्! उनकी मित्रता भी हमारे पक्ष की उन्नति का कारण होगी। हे पृथिवीपति! यादव लोग संख्या में भी बहुत हैं और बलवान हैं। वे सब उधर ही होंगे, जहाँ कृष्ण होंगे। इसलिये श्रीकृष्ण जिनके पक्ष में होंगे, उसी की विजय होगी। हे राजा! जो कार्य समझाने से ही बन सकता है, तो ऐसा कौन अभागा है कि उसे युद्ध के द्वारा पूरा करे। हे राजन्! पाण्डवों के बारे में यह सुन कर कि वे जीवित हैं, पुरवासी और देशवासी लोग उनको देखने के लिये अत्यन्त उत्सुक हैं। आप उनका यह प्रिय कार्य कीजिये। दुर्योधन, कर्ण, और सुबल पुत्र शकुनि, ये अभी बच्चे हैं, कुटिल बुद्धि वाले और अधर्म से युक्त हैं। आप इनकी बातों को पूरा मत कीजिये।

बयालीसवाँ अध्याय : विदुर का द्रुपद के यहाँ जाकर पाण्डवों की वापिसी हेतु कहना।

धृतराष्ट्र उवाच

भीष्मः शांतनवो विद्वान् द्रोणश्च भगवानृषिः।
हितं च परमं वाक्यं त्वं च सत्यं ब्रवीषि माम्॥ १॥
यथैव पाण्डोस्ते वीराः कुन्तीपुत्रा महारथाः।
तथैव धर्मतः सर्वे मम पुत्रा न संशयः॥ २॥
यथैव मम पुत्राणामिदं राज्यं विधीयते।
तथैव पाण्डुपुत्राणामिदं राज्यं न संशयः॥ ३॥
क्षत्तरानय गच्छैतान् सह मात्रा सुसत्कृतान्।
तया च देवरूपिण्या कृष्णया सह भारत॥ ४॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि शान्तनु पुत्र भीष्म विद्वान हैं और भगवान द्रोण भी ऋषि हैं और तुम भी मुझे परम हितकारी और सत्य बातें कह रहे हो। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे कुन्ती के वीर पुत्र महारथी पाण्डव जैसे पाण्डु के पुत्र हैं, वैसे ही धर्म के अनुसार मेरे भी हैं। जैसे मेरे पुत्रों का यह राज्य है, वैसे ही यह पाण्डु पुत्रों का भी है। इसलिये हे भरतवंशी विदुर! तुम जाओ और उन्हें अपनी माता के साथ और देवरूपिणी कृष्णा के साथ अच्छी तरह से सत्कार करके ले आओ।

ततो जगाम विदुरो धृतराष्ट्रस्य शासनात्।
समुपादाय रत्नानि वसूनि विविधानि च॥ ५॥
द्रौपद्याः पाण्डवानां च यज्ञसेनस्य चैव ह।
तत्र गत्वा स धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः॥ ६॥
स्नेहात् परिष्वज्य स तान् पप्रच्छानामयं ततः।
तैश्चाप्यमितबुद्धिः स पूजितो हि यथाक्रमम्॥ ७॥
प्रददौ चापि रत्नानि विविधानि वसूनि च।
द्रुपदस्य च पुत्राणां यथा दत्तानि कौरवैः॥ ८॥
प्रोवाच चामितमतिः प्रश्रितं विनयान्वितः।
द्रुपदं पाण्डुपुत्राणां संनिधौ केशवस्य च॥ ९॥

फिर धृतराष्ट्र के आदेश से विदुर जी द्रौपदी के लिये, पाण्डवों के लिये, तथा द्रुपद के लिये अनेक प्रकार के रत्न आभूषण और धन भेंट के लिये लेकर उनके पास गये। उन सारे शास्त्रों में विशारद और धर्मज्ञ विदुर जी ने वहाँ जाकर स्नेह पूर्वक उन पाण्डवों को गले लगाया और उनकी कुशलता उनसे पूछी। उन्होंने भी क्रम से उन अमित बुद्धि की पूजा की। विदुर जी ने भी उन्हें तथा द्रुपद के पुत्रों को तरह तरह के रत्न, आभूषण और धन, जो उन्हें कौरवों ने दिये थे, भेंट किये। फिर उन्होंने विनीत भाव से नम्रता पूर्वक पाण्डवों के तथा श्रीकृष्ण के सामने द्रुपद से कहा कि—

राजञ्छृणु सहामात्यः सपुत्रश्च वचो मम।
धृतराष्ट्रः सपुत्रस्त्वां सहामात्यः सबान्धवः॥ १०॥
अब्रवीत् कुशलं राजन् प्रीयमाणः पुनः पुनः।
प्रीतिमांस्ते दृढं चापि सम्बन्धेन नराधिप॥ ११॥
तथा भीष्मः शांतनवः कौरवैः सह सर्वशः।
कुशलंत्वां महाप्राज्ञः सर्वतः परिपृच्छति॥ १२॥
भारद्वाजो महाप्राज्ञो द्रोणः प्रियसखस्तव।
समाश्लेषमुपेत्य त्वां कुशलं परिपृच्छति॥ १३॥

हे राजन्! आप अपने मन्त्रियों और पुत्रों के साथ मेरी बात सुनिये। धृतराष्ट्र पुत्रों, मंत्रियों और परिवार के साथ प्रसन्न भाव से आपकी बार-बार कुशलता को पूछ रहे हैं। हे नराधिप! आपके साथ जो यह दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हुआ है, उससे वह बड़े प्रसन्न हैं। उसी प्रकार महाप्राज्ञ शान्तनु पुत्र भीष्म भी सारे कौरवों साथ आपकी सब प्रकार की कुशलता के बारे में पूछ रहे हैं। आपके प्रिय मित्र महाप्राज्ञ भरद्वाज पुत्र द्रोण भी आपको अपने गले लगा कर आपकी कुशलता के बारे में पूछ रहे हैं।

धृतराष्ट्रश्च पाञ्चाल्य त्वया सम्बन्धमीयिवान्।
कृतार्थं मन्यतेऽऽत्मानं तथा सर्वेऽपि कौरवाः॥ १४॥
न तथा राज्यसम्प्राप्तिस्तेषां प्रीतिकरी मता।
यथा सम्बन्धकं प्राप्य यज्ञसेन त्वया सह॥ १५॥
एतद् विदित्वा तु भवान् प्रस्थापयतु पाण्डवान्।
द्रष्टुं हि पाण्डुपुत्रांश्च त्वरन्ति कुरवो भृशम्॥ १६॥

हे पांचाल नरेश! धृतराष्ट्र और दूसरे सारे कौरव आपके साथ सम्बन्ध को प्राप्त कर अपने आपको कृतार्थ समझ रहे हैं। हे यज्ञसेन! उन्हें राज्य पाकर भी उतनी प्रसन्नता नहीं होगी जितनी आपके साथ सम्बन्ध को प्राप्त कर हो रही है। आप यह सब जान कर पाण्डवों को हस्तिनापुर भेज दीजिये। कौरव लोग पाण्डु पुत्रों को देखने के लिये अत्यन्त उत्सुक हैं।

विप्रोषिता दीर्घकालमेते चापि नरर्षभाः।
उत्सुका नगरं द्रष्टुं भविष्यन्ति तथा पृथा॥ १७॥
कृष्णामपि च पाञ्चालीं सर्वाः कुरुवरस्त्रियः।
द्रष्टुकामाः प्रतीक्षन्ते पुरं च विषयाश्च नः॥ १८॥

स भवान् पाण्डुपुत्राणामाज्ञापयतु मा चिरम्।
निसृष्टेषु त्वया राजन् पाण्डवेषु महात्मसु।।१९।।
ततोऽहं प्रेषयिष्यामि धृतराष्ट्रस्य शीघ्रगान्।
आगमिष्यन्ति कौन्तेयाः कुन्ती च सह कृष्णया।।२०।।

ये नरश्रेष्ठ भी लम्बे समय से घर से बाहर रहे हैं, इसलिये ये तथा कुन्ती भी नगर को देखने के लिये उत्सुक होंगे। सारी कौरवों की स्त्रियाँ, नगर और देश के लोग भी कृष्णा को देखने की इच्छा से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसलिये आप पाण्डु पुत्रों को हस्तिनापुर के लिये जल्दी आज्ञा दीजिये। हे राजन्। आपके द्वारा महात्मा पाण्डवों को आज्ञा देने पर मैं धृतराष्ट्र के पास शीघ्र गामी दूतों को यह सन्देश देकर भेज दूँगा कि पाण्डव और कुन्ती कृष्णा के साथ हस्तिनापुर में आ रहे हैं।

तेतालीसवाँ अध्याय : पांडवों का हस्तिनापुर आना, आधा राज्य पाना राजधानी का निर्माण करना।

द्रुपद उवाच

एवमेतन्महाप्राज्ञ यथाऽऽत्थ विदुराद्य माम्।
ममापि परमो हर्षः सम्बन्धेऽस्मिन् कृते प्रभो।। १।।
गमनं चापि युक्तं स्याद् दृढमेषां महात्मनाम्।
न तु तावन्मया युक्तमेतद् वक्तुं स्वयं गिरा।। २।।
यदा तु मन्यते वीरः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
भीमसेनार्जुनौ चैव यमौ च पुरुषर्षभौ।। ३।।
रामकृष्णौ च धर्मज्ञौ तदा गच्छन्तु पाण्डवाः।
एतौ हि पुरुषव्याघ्रावेषां प्रियहिते रतौ।। ४।।

तब द्रुपद ने कहा हे महाप्राज्ञ विदुर! आपने जो मुझसे कहा है, वह ठीक है, हे प्रभो! मुझे भी इस संबंध के बनने से बड़ा हर्ष है। यह भी निश्चित है कि इन महात्माओं का जाना उचित है, पर यह बात मुझे इनसे अपने मुख से नहीं कहनी चाहिये। जब कुन्ती पुत्र वीर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन और ये दोनों नरश्रेष्ठ जुड़वें भाई नकुल सहदेव उचित समझें तथा धर्म को जानने वाले बलराम और कृष्ण भी ठीक समझें, क्योंकि ये दोनों पुरुषव्याघ्र सदा इनकी भलाई में लगे रहते हैं, ये लोग जा सकते हैं।

युधिष्ठिर उवाच

परवन्तो वयं राजंस्त्वयि सर्वे सहानुगाः।
यथा वक्ष्यसि नः प्रीत्या तत् करिष्यामहे वयम्।। ५।।
ततोऽब्रवीद् वासुदेवो गमनं रोचते मम।
यथा वा मन्यते राजा द्रुपदः सर्वधर्मवित्।। ६।।

द्रुपद उवाच

यथैव मन्यते वीरो दाशार्हः पुरुषोत्तमः।
प्राप्तकालं महाबाहुः सा बुद्धिर्निश्चिता मम।। ७।।
यथैव हि महाभागाः कौन्तेया मम साम्प्रतम्।
तथैव वासुदेवस्य पाण्डुपुत्रा न संशयः।। ८।।
न तद् ध्यायति कौन्तेयः पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः।
यथैषां पुरुषव्याघ्रः श्रेयो ध्यायति केशवः।। ९।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे राजन्! हम सब अपने साथियों के साथ आपके वश में हैं। आप प्रेम पूर्वक जैसे हमसे कहेंगे, हम वैसे ही करेंगे। तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि मुझे भी आपका जाना अच्छा लगता है या सारे धर्मों को जानने वाले द्रुपद जैसा समझें। तब द्रुपद ने कहा पुरुषोत्तम, दाशार्ह कुल के रत्न, महाबाहु वीर श्रीकृष्ण इस समय जैसा उचित समझते हैं, मेरी भी वही सलाह है। ये कुन्ती पुत्र महाभाग इस समय, जैसे मुझे प्रिय हैं, वैसे ही ये पाण्डुपुत्र श्रीकृष्ण जी के भी हैं, इसमें संशय नहीं है। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर भी पाण्डवों का उतना ध्यान नहीं रखते जितना ये पुरुषव्याघ्र केशव ध्यान रखते हैं।

पृथायास्तु तथा वेश्म प्रविवेश महाद्युतिः।
पादौ स्पृष्ट्वा पृथायास्तु शिरसा च महीं गतः।।१०।।
दृष्ट्वा तु देवरं कुन्ती शुशोच च मुहुर्मुहुः।
वैचित्रवीर्य ते पुत्राः कथंचिज्जीवितास्त्वया।।११।।
त्वत्प्रसादाज्जतुगृहे त्राताः प्रत्यागतास्तव।
कूर्मश्चिन्तयते पुत्रान् यत्र वा तत्र वा गतान्।।१२।।
चिन्तया वर्धयेत् पुत्रान् यथा कुशलिनस्तथा।
तव पुत्रास्तु जीवन्ति त्वं त्राता भरतर्षभ।।१३।।
यथा परभृतः पुत्रानरिष्टा वर्धयत् सदा।
तथैव तव पुत्रास्तु मया तात सुरक्षिताः।।१४।।
दुःखास्तु बहवः प्राप्ता तथा प्राणान्तिका मया।
अतः परं न जानामि कर्तव्यं ज्ञातुमर्हसि।।१५।।

तब महातेजस्वी विदुर कुन्ती के आवास पर गये और उनके चरणों को स्पर्श कर सिर को भूमि पर झुका कर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया। अपने देवर को देख कर कुन्ती बार-बार शोक करती हुई कहने

लगी कि हे विचित्रवीर्य के पुत्र विदुर! आपके ये पुत्र आपके प्रयत्न से किसी प्रकार जीवित हैं। ये आपकी ही कृपा से लाक्षागृह से बच कर आये हैं। जैसे कछुआ चाहे वे कहीं भी हो, अपने बच्चों की चिन्ता करता रहता है और उस चिन्ता से ही उनको सकुशल रखता है और उनको पालता पोषता है, वैसे ही ये आपकी चिन्ता से जीवित हैं। हे भरत श्रेष्ठ! आप ही इनके रक्षक हैं। जैसे कोयल के पुत्रों को सदा कौए की माता पालती है, ऐसे ही हे तात! मैंने तो आपके पुत्रों की ही रक्षा की है। मैंने अब तक बहुत प्राणान्तक दुख उठाये हैं, इसलिये मैं अब नहीं जानती कि हमें क्या करना चाहिये। यह तो आप ही समझ सकते हैं।

इत्येवमुक्ता दुःखार्ता शुशोच परमातुरा।
प्रणिपत्याब्रवीत् क्षत्ता मा शोच इति भारतः।। १६।।
न विनश्यन्ति लोकेषु तव पुत्रा महाबलाः।
नचिरेणैव कालेन स्वराज्यस्था भवन्ति ते।। १७।।
बान्धवैः सहिताः सर्वैर्मा शोकं कुरु माधवि।
ततस्ते समनुज्ञाता द्रुपदेन महात्मना।। १८।।
सविहारं सुखं जग्मुर्नगरं नागसाह्वयम्।

ऐसा कह कर दुख से व्याकुल कुन्ती अत्यन्त बेचैन होकर शोक करने लगी। तब भरतवंशी विदुर जी ने प्रणाम करके उनसे कहा कि आप शोक न करें। आपके पुत्र महाबली हैं। ये संसार में नष्ट नहीं हो सकते। ये जल्दी ही अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे। ये अपने सारे बान्धवों के साथ वहाँ रहेंगे। हे यदुवंशिनी! आप शोक मत कीजिये। इसके पश्चात् महात्मा द्रुपद की आज्ञा पाकर वे सब सुखपूर्वक विहार करते हुए हस्तिनापुर नगर की तरफ चल दिये।

अधिष्ठितान् महामात्रैः सर्वशस्त्रसमन्वितान्।। १९।।
सहस्रं प्रददौ राजा गजानां वरवर्णिनाम्।
रथानां च सहस्रं वै सुवर्णमणिचित्रितम्।। २०।।
चतुर्युजां भानुमच्च पञ्चानां प्रददौ तदा।
सुवर्णपरिबर्हाणां वरचामरमालिनाम्।। २१।।
जात्यश्वानां च पञ्चाशत्सहस्रं प्रददौ नृपः।
शिबिकानां शतं पूर्णं वाहान् पञ्चशतं नरान्।। २२।।
एवमेतानि पाञ्चालो कन्यार्थे प्रददौ धनम्।

तब द्रुपद ने सारे शस्त्रों से युक्त महावतो के द्वारा संचालित उत्तम कोटि के एक हजार हाथी, सुनहरी मणियों से चित्रित, प्रभा वाले चार घोड़ों से जुते हुए एक हजार रथ पाँचों पाण्डवों को दिये। अच्छी जाति के सुनहरे साज से युक्त, अच्छे चँवर तथा मालाओं से सुशोभित पचास हजार घोड़े दिये। राजा ने सौ पालकियाँ और उनको ढोने के लिये पाँच सौ कहार दिये। इस प्रकार उन्होंने अपनी कन्या के लिये बहुत सा धन दिया।

श्रुत्वा चाप्यागतान् वीरान् धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।। २३।।
प्रतिग्रहाय पाण्डूनां प्रेषयामास कौरवान्।
विकर्णं च महेष्वासं चित्रसेनं च भारतः।। २४।।
द्रोणं च परमेष्वासं गौतमं कृपमेव च।
तैस्ते परिवृता वीराः शोभमाना महाबलाः।। २५।।
नगरं हास्तिनपुरं शनैः प्रविविशुस्तदा।

उन वीरों को आया हुआ सुन कर जनेश्वर भरतवंशी धृतराष्ट्र ने पाण्डवों की अगवानी के लिये महाधनुर्धर विकर्ण और चित्रसेन, द्रोणाचार्य, और गौतमवंशी कृपाचार्य को भेजा। वे महाबली पाण्डव वीर तब उनसे घिरे हुए, सुशोभित होते हुए, धीरे धीरे हस्तिनापुर नगर में प्रविष्ट हुए।

पाण्डवानागतांछ्रुत्वा नागरास्तु कुतूहलात्।। २६।।
मण्डयां चक्रिरे तत्र नगरं नागसाह्वयम्।
मुक्तपुष्पावकीर्णं तज्जलसिक्तं तु सर्वशः।। २७।।
धूपितं दिव्यधूपेन मण्डनैश्चापि संवृतम्।
पताकोच्छ्रितमाल्यं च पुरमप्रतिमं बभौ।। २८।।
शङ्खभेरीनिनादैश्च नानावादित्रनिःस्वनैः।
कौतूहलेन नगरं दीप्यमानमिवाभवत्।। २९।।
ततस्ते धृतराष्ट्रस्य भीष्मस्य च महात्मनः।
अन्येषां च तदर्हाणां चक्रुः पादाभिवन्दनम्।। ३०।।
कृत्वा तु कुशलप्रश्नं सर्वेण नगरेण च।
न्यविशन्ताथ वेश्मानि धृतराष्ट्रस्य शासनात्।। ३१।।

पाण्डवों को आया हुआ सुन कर नागरिकों ने कौतूहल वश सारे नगर को सजाया हुआ था। सड़कों पर फूल बिखरे हुए थे और सब तरफ जल का छिड़काव किया हुआ था। धूप की सुगन्ध चारों तरफ फैल रही थी और सजावट की सामग्रियाँ लगायी गयीं थीं। घरों पर ऊँची पताकाएँ लहरा रहीं थी तथा मालाएँ लटकायी हुई थीं। शंख भेरी तथा अन्य तरह-तरह के वाद्ययन्त्रों की ध्वनि से वह हस्तिनापुर नगर अद्वितीय और जगमगाता हुआ लग रहा था। तब उन पाण्डवों ने महात्मा भीष्म, धृतराष्ट्र, तथा

दूसरे योग्य व्यक्तियों के चरणों में प्रणाम किया। नगरवासियों से कुशल प्रश्न करके वे धृतराष्ट्र की आज्ञा से अपने अपने महलों में चले गये।

विश्रान्तास्ते महात्मानः कंचित् कालं महाबलाः।
आहूता धृतराष्ट्रेण राज्ञा शांतनवेन च।। ३२।।

धृतराष्ट्र उवाच

भ्रातृभिः सह कौन्तेय निबोध गदतो मम।
मम पुत्रा दुरात्मानो दर्पाहंकारसंयुताः।। ३३।।
शासनं न करिष्यन्ति मम नित्यं युधिष्ठिर।
स्वकार्यनिरतैर्नित्यमवलिप्तैर्दुरात्मभिः ।। ३४।।
पुनर्वो विग्रहो माभूत् शासनं कुरु मा चिरम्।
अर्धं राज्यस्य सम्प्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविश।। ३५।।

कुछ समय तक विश्राम कर लेने के बाद उन महात्माओं को शान्तनु पुत्र भीष्म और धृतराष्ट्र ने बुलाया। तब धृतराष्ट्र ने उनसे कहा कि हे कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर! तुम मेरी बात को अपने भाइयों के साथ ध्यान से सुनो और समझो। मेरे पुत्र दुष्ट हैं। ये दर्प और अहंकार से युक्त हैं। हे युधिष्ठिर! ये सदा मेरी आज्ञा को नहीं मानेंगे। इन अपने स्वार्थ को सिद्ध करने में सदा लगे हुए दुरात्माओं का तुम्हारे साथ फिर झगड़ा न हो, इसलिये तुम शीघ्रता से मेरे आदेश का पालन करो और आधे राज्य को प्राप्त कर खाण्डवप्रस्थ में चले जाओ।

प्रतिगृह्य तु तद् वाक्यं नृपं सर्वे प्रणम्य च।
प्रतस्थिरे ततो घोरं वनं तन्मनुजर्षभाः।। ३६।।
अर्धं राज्यस्य सम्प्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविशन्।
नगरं मापयामासुर्द्वैपायनपुरोगमाः।। ३७।।
सागरप्रतिरूपाभिः परिखाभिरलंकृतम्।
प्राकारेण च सम्पन्नं दिवमावृत्य तिष्ठता।। ३८।।
द्विपक्षगरुडप्रख्यैर्द्वारैः सौधैश्च शोभितम्।
गुप्तमभ्रचयप्रख्यैर्गोपुरैर्मन्दरोपमैः ।। ३९।।

तब धृतराष्ट्र के उन वचनों को मान कर वे पाण्डव नरश्रेष्ठ राजा को प्रणाम कर, आधे राज्य को प्राप्त कर वहाँ चल दिये और खाण्डवप्रस्थ में पहुँचे, जो कि उस समय एक घोर वन के रूप में था। वहाँ उन्होंने वेदव्यास जी को आगे करके नगर निर्माण के लिए भूमि का माप करवाया। उसके पश्चात् उन्होंने वहाँ एक सुन्दर नगर का निर्माण कराया, जो एक ऐसी चार दिवारी से घिरा हुआ था, जिसने अपनी ऊँचाई से मानो आकाश को घेरा हुआ था और जिसके चारों तरफ सागर के समान विशाल खाई थी। उस नगर के द्वार इस प्रकार लगते थे जैसे दो गरुड़ पंख फैलाये हुए हों। वहाँ अनेक बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ थीं। बादलों की घटाओं के समान सुशोभित तथा मन्दराचल के समान ऊँचे गोपुरों से वह नगर सुरक्षित था।

विविधैरपि निर्विद्धैः शस्त्रोपेतैः सुसंवृतैः।
शक्तिभिश्चावृतं तद्धि द्विजिह्वैरिव पन्नगैः।। ४०।।
तल्पैश्चाभ्यासिकैर्युक्तं शुशुभे योधरक्षितम्।
तीक्ष्णाङ्कुशशतघ्नीभिर्यन्त्रजालैश्च शोभितम्।। ४१।।
आयसैश्च महाचक्रैः शुशुभे तत् पुरोत्तमम्।
सुविभक्तमहारथ्यं देवताबाधवर्जितम्।। ४२।।
विरोचमानं विविधैः पाण्डुरैर्भवनोत्तमैः।
तत् त्रिविष्टपसंकाशमिन्द्रप्रस्थं व्यरोचत।। ४३।।

अनेक तरह के दुर्भेद्य, तथा सब तरफ से घिरे हुए और शस्त्रों से युक्त शस्त्रागार वहाँ विद्यमान थे। नगर के चारों तरफ दो जिह्वाओं वाले सर्पों के समान भयानक शक्तियाँ लगायी हुई थीं। शस्त्राभ्यास करने के स्थानों से युक्त तथा योद्धाओं से सुरक्षित, उस नगर की शोभा तीखे अंकुशों, शतघ्नियों, तथा यन्त्र समूहों से बढ़ रही थी। वह श्रेष्ठ नगर लोहे के विशाल चक्रों से सुशोभित था। सारा नगर विशाल तथा चौड़ी सड़कों में बँटा हुआ था। वहाँ कोई दैवी आपत्ति भी नहीं थी। उस नगर का नाम इन्द्रप्रस्थ था। वह अनेक प्रकार के शुभ्र भवनों से सुशोभित था और स्वर्ग के समान लग रहा था।

मेघवृन्दमिवाकाशे विद्धं विद्युत्समावृतम्।
तत्र रम्ये शिवे देशे कौरव्यस्य निवेशनम्।। ४४।।
उद्यानानि च रम्याणि नगरस्य समन्ततः।
आम्रैराम्रातकैर्नीपैरशोकैश्चम्पकैस्तथा ।। ४५।।
पुन्नागैर्नागपुष्पैश्च लकुचैः पनसैस्तथा।
शालतालतमालैश्च बकुलैश्च सकेतकैः।। ४६।।
मनोहरैः सुपुष्पैश्च फलभारावनामितैः।

वहाँ एक पवित्र और सुन्दर स्थान पर युधिष्ठिर का महल था, जो आकाश में विद्युत से युक्त बादलों के समान देदीप्यमान था। वहाँ नगर के चारों तरफ सुन्दर उद्यान थे, जो अनेक प्रकार के वृक्षों, आम, आमड़ा, कदम्ब, अशोक, चम्पा, पुन्नाग, नागपुष्प,

लकुच, कटहल, साल, ताल, तमाल, मौलसिरी, केवड़ा आदि से, जो फूलों से युक्त और फलों के भार से झुके हुए थे, सुशोभित थे।

प्राचीनामलकैर्लोध्रैरङ्कोलैश्च सुपुष्पितैः।।४७।।
जम्बूभिः पाटलाभिश्च कुब्जकैरतिमुक्तकैः।
करवीरैः पारिजातैरन्यैश्च विविधैर्द्रुमैः।।४८।।
नित्यपुष्पफलोपेतैर्नाना द्विजगणायुतैः।
मत्तबर्हिणसंघुष्टकोकिलैश्च सदामदैः।।४९।।
गृहैरादर्शविमलैर्विविधैश्च लतागृहैः।

उन उद्यानों में प्राचीन आँवले, लोध्र, अच्छी तरह से फूलों से युक्त अंकोल, जामुन, पाटल, कुब्जक, अतिमुक्तक, करवीर, पारिजात, तथा अन्य अनेक प्रकार के वृक्ष जो सदा फूलों और फलों से भरे रहते थे और तरह-तरह के पक्षी जिन पर कलरव किया करते थे, विद्यमान थे। उन बगीचों में मतवाली कोयलें और मोरों के झुण्ड अपनी कूक और केका सुनाते रहते थे। वहाँ अनेक प्रकार के स्वच्छ क्रीडा भवन और लतागृह थे।

मनोहरैश्चित्रगृहैस्त थाजगतिपर्वतैः।।५०।।
वापीभिर्विविधाभिश्च पूर्णाभिः परमाम्भसा।
सरोभिरतिरम्यैश्च पद्मोत्पलसुगन्धिभिः।।५१।।
हंसकारण्डवयुतैश्चक्र वाकोपशोभितैः।
रम्याश्च विविधास्तत्र पुष्करिण्यो वनावृताः।।५२।।

उस नगर में सुन्दर चित्रशालाएँ थीं, बनावटी पर्वत थे, जल से भरी हुई तरह-तरह की बावलियाँ थीं। वहाँ पद्म और उत्पलों से सुगन्धित, हंस और कारण्डव पक्षियों से युक्त तथा चक्रवाकों से सुशोभित सुन्दर तालाब थे। वहाँ उद्यानों से घिरी हुई तरह-तरह की सुन्दर पुष्करिणी थीं।

चवालीसवाँ अध्याय : अर्जुन का देशाटन। उलूपी और चित्रांगदा से विवाह।

एवं धर्मप्रधानास्ते सत्यव्रतपरायणाः।
अप्रमोत्थिताः क्षान्ताः प्रतपन्तोऽहितान् बहून्।। १।।
पंचभिः सूर्यसंकाशैः सूर्येण च विराजता।
षट्सूर्येवाभवत् पृथ्वी पाण्डवैः सत्यविक्रमैः।। २।।
ततो निमित्ते कश्चिद्धर्मराजो युधिष्ठिरः।
वनं प्रस्थापयामास तेजस्वी सत्यविक्रमः।। ३।।
प्राणेभ्योऽपि प्रियतरं भ्रातरं सव्यसाचिनम्।
अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं स्थिरात्मानं गुणैर्युतम्।। ४।।
धैर्यात् सत्याच्च धर्माच्च विजयाच्चाधिक प्रियः।
अर्जुनो भ्रातरं ज्येष्ठं नात्यवर्तत जातुचित्।। ५।।
स वै संवत्सरं पूर्णं मासं चैकं वनेऽवसत्।
तीर्थयात्रां च कृतवान्, नाग कन्यामवाप्य च।। ६।।

इस प्रकार धर्म को प्रधानता देने वाले, सत्यव्रत के पालन में तत्पर, सदा सावधान एवं सजग रहने वाले क्षमाशील, पाण्डववीर, बहुत से शत्रुओं को संतप्त करते हुए वहाँ निवास करने लगे। वे पाँचों भाई सूर्य के समान तेजस्वी थे। आकाश में नित्य उदित होने वाले सूर्य के साथ, इन सत्य पराक्रमी पाण्डवों के होने से यह पृथिवी मानो छह सूर्यों से प्रकाशित होने वाली हो गयी। तदनन्तर कोई निमित्त बन जाने के कारण, सत्यपराक्रमी, तेजस्वी, धर्मराज, युधिष्ठिर ने अपने प्राणों से भी अत्यन्त प्रिय, स्थिर बुद्धि, तथा सद्गुणयुक्त, भाई, नरश्रेष्ठ, सव्यसाची, अर्जुन को वन में भेज दिया। (हो सकता है कि राज्य के वन प्रदेशों का निरीक्षण करने और वनवासियों के सुख दुख की जानकारी लेने के लिये युधिष्ठिर ने अर्जुन को वन में भेजा हो और तत्पश्चात् तीर्थाटन के बहाने अपने देश और दूसरे राज्यों का समाचार जानने के लिये भेजा हो।) अर्जुन अपने धैर्य, सत्य, धर्म, और विजयशीलता के कारण भाइयों को अधिक प्रिय थे। उन्होंने अपने बड़े भाई की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया। वे पूरे एक वर्ष और एक मास तक वन में रहे। इसके पश्चात् उन्होंने तीर्थों की अर्थात् प्रसिद्ध स्थानों की यात्रा की। वहाँ वे नागकन्या उलूपी से मिले।

नोट- ये श्लोक आदि पर्व अध्याय ६१ के श्लोक नं.- ३६, ३९, ४०, ४१ और ४२ से लिये गये हैं।

शरणं च प्रपन्नाऽस्मि, त्वामद्य पुरुषोत्तम।
वाचे त्वां चाभिकामाहं तस्मात् कुरु मम प्रियम्।। ७।।
स त्वगात्म प्रदानेन, सकामां कर्तुमर्हसि।
एवमुक्तस्तु कौन्तेयः, पन्नगेश्वर कन्यया।। ८।।
कृतवाँस्तत् तथा सर्वम् धर्ममुद्दिश्य कारणम्।
स नागभवने रात्रिं तामुषित्वा प्रतापवान्।। ९।।
आगतस्तु पुनस्तत्र गंगाद्वारं तया सह।
परित्यज्य गता साध्वी, उलूपी निजमन्दिरम्।। १०।।
पुत्रमुत्पादयामास स तस्यां सुमनोहरम्।
इरावन्तं महाभागं महाबल पराक्रमम्।। ११।।

हे पुरुषोत्तम! मैं आज तेरी शरण में आयी हूँ। मैं आपके प्रति अनुरक्त हूँ और आपसे समागम की याचना करती हूँ। अतः आप मेरा प्रिय मनोरथ पूर्ण कीजिये। मुझे आत्मदान देकर मेरी कामना सफल कीजिये, ऐसा नागराज की कन्या उलूपी के कहने पर कुन्ती कुमार अर्जुन ने धर्म को ही सामने रख कर वह सब कार्य पूर्ण किया। प्रतापी अर्जुन ने नागराज के घर में ही वह रात्रि व्यतीत की और फिर उलूपी के साथ गंगा द्वार के अपने स्थान (जहाँ से वे नागराज के घर गये थे) में आ पहुँचे। साध्वी उलूपी उन्हें वहीं छोड़ कर अपने घर लौट गयी। उस उलूपी के गर्भ से अर्जुन ने अत्यन्त मनोहर तथा महान् बल पराक्रम से सम्पन्न इरावान् नाम का महाभाग पुत्र उत्पन्न किया।

नोट- ये श्लोक आदि पर्व अध्याय २१३ के श्लोक नं.- ३१, ३२, ३३, ३४, ३५ और ३७ से लिये गये हैं।

प्रययौ हिमवत्पार्श्वं ततो वज्रधरात्मजः।
आनुपूर्व्येण तीर्थानि दृष्टवान् कुरुसत्तमः।।१२।।
नदीं चोत्पलिनीं रम्यामरण्यं नैमिषं प्रति।
नन्दामपरनन्दां च कौशिकीं च यशस्विनीम्।।१३।।
महानदीं गयां चैव गङ्गामपि च भारतः।
अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु यानि तीर्थानि कानिचित्।।१४।।

फिर वह भरतश्रेष्ठ पूर्व दिशा को देखने की इच्छा से उस तरफ गये। उन कुरुश्रेष्ठ ने वहाँ के प्रसिद्ध स्थानों को क्रम से देखा। उन्होंने सुन्दर नैमिषारण्य में बहने वाली उत्पलिनी नदी, नन्दा, अपरनन्दा, यशस्विनी कौशिकीनदी, महानदी तथा गया और गंगा को भी देखा। उन्होंने अंग, बंग, और कलिंग देशों में भी जो जो प्रसिद्ध स्थान थे, उन्हें देखा।

स कलिङ्गानतिक्रम्य देशानायतनानि च।।१५।।
हर्म्याणि रमणीयानि प्रेक्षमाणो ययौ प्रभुः।
महेन्द्रपर्वतं दृष्ट्वा तापसैरुपशोभितम्।।१६।।
समुद्रतीरेण शनैर्मणिपूरं जगाम ह।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।।१७।।
अभिगम्य महाबाहुरभ्यगच्छन्महीपतिम्।

कलिंग के देश को पार कर वे शक्तिशाली अर्जुन अनेक देशों, सुन्दर भवनों को, मन्दिरों को देखते हुए तपस्वियों से सुशोभित महेन्द्र पर्वत को देखकर समुद्र के किनारे किनारे चलते हुए धीरे धीरे मणिपूर में पहुँच गये। वहाँ के प्रसिद्ध स्थानों और देवस्थानों को देखकर वे महाबाहु वहाँ के राजा से मिले।

तस्य चित्राङ्गदा नाम दुहिता चारुदर्शना।।१८।।
तां ददर्श पुरे तस्मिन् विचरन्तीं यदृच्छया।
दृष्ट्वा च तां वरारोहां चकमे चैत्रवाहनीम्।।१९।।
अभिगम्य च राजानमवदत् स्वं प्रयोजनम्।
देहि मे खल्विमां राजन् क्षत्रियाय महात्मने।।२०।।
तच्छ्रुत्वा त्वब्रवीद् राजा कस्य पुत्रोऽसि नाम किम्।
उवाच तं पाण्डवोऽहं कुन्तीपुत्रो धनंजयः।।२१।।

उसकी चित्रांगदा नाम की एक पुत्री थी। उसे उन्होंने स्वेच्छा से नगर में विचरण करते हुए देखा। उस सुन्दरी चित्रवाहन की पुत्री को देख कर उन्होंने उसे प्राप्त करने की इच्छा की। उन्होंने तब राजा के पास जाकर उससे अपना प्रयोजन प्रकट करते हुए कहा कि हे राजन्! आप मुझ मनस्वी क्षत्रिय को अपनी इस पुत्री को प्रदान कीजिये। यह सुन कर तब राजा ने पूछा कि तुम्हारा क्या नाम है? और तुम किसके पुत्र हो? तब उन्होंने कहा कि मैं पाण्डव कुन्तीपुत्र हूँ। मेरा नाम धनंजय है।

तमुवाचाथ राजा स, सान्त्वपूर्वमिदं वचः।
पुत्रिका हेतुविधिना संज्ञिता भरतर्षभ।।२२।।
तस्मादेकः सुतो योऽस्यां जायते भारत त्वया।
एतच्छुल्कं भवत्वस्याः कुलकृज्जायतामिह।।२३।।
एतेन समयेनेमां प्रतिगृह्णीष्व पाण्डव।
स तथेति प्रतिज्ञाय तां कन्यां प्रतिगृह्य च।।२४।।
उवास नगरे तस्मिंस्तिस्रः कुन्तीसुतः समाः।
तस्यां सुते समुत्पन्ने परिष्वज्य वराङ्गनाम्।
आमन्त्र्य नृपतिं तं तु जगाम परिवर्तितुम्।।२५।।

तब राजा ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि हे भरतश्रेष्ठ! यद्यपि यह मेरी पुत्री है, पर फिर भी हेतु विधि से मैंने इसे पुत्र ही नाम दे रखा है अर्थात् इससे जो एक पुत्र उत्पन्न होगा वह यहीं रहकर इस कुल को चलायेगा। यही इसका शुल्क है। हे पाण्डव! आप इस समझौते के अनुसार इसे ग्रहण कीजिये। तब अच्छा ऐसा ही होगा, ऐसी प्रतिज्ञा कर कुन्ती पुत्र ने उस कन्या से विवाह किया और उस नगर में तीन वर्ष तक निवास किया। उसके गर्भ से पुत्र के उत्पन्न होने पर, उस सुन्दरी को हृदय से लगाकर और राजा से आज्ञा लेकर वे पुनः यात्रा के लिये चल दिये।

पैंतालीसवाँ अध्याय : अर्जुन, श्रीकृष्ण भेंट, सुभद्रा पर आसक्ति

सोऽपरान्तेषु तीर्थानि जगामामितविक्रमः।
तानि सर्वाणि गत्वा स प्रभासमुपजग्मिवान्॥ १॥
प्रभासदेशं सम्प्राप्तं बीभत्सुमपराजितम्।
सुपुण्यं रमणीयं च सुश्राव मधुसूदनः॥ २॥
ततोऽभ्यगच्छत् कौन्तेयं सखायं तत्र माधवः।
ददृशाते तदान्योन्यं प्रभासे कृष्णपाण्डवौ॥ ३॥
तौ विहृत्य यथाकामं प्रभासे कृष्णपाण्डवौ।
महीधरं रैवतकं वासायैवाभिजग्मतुः॥ ४॥

तदनन्तर अमित पराक्रमी अर्जुन पश्चिम समुद्र तटवर्ती देश के प्रसिद्ध स्थानों में गये और उन्हें देखते हुए प्रभास क्षेत्र में जा पहुँचे। जब श्रीकृष्ण जी ने सुना कि किसी से न पराजित होने वाले अर्जुन रमणीय और पवित्र प्रभास क्षेत्र में आये हुए हैं। तब अपने मित्र कुन्तीपुत्र अर्जुन की अगवानी के लिये श्रीकृष्ण वहाँ आ गये तथा तब वे दोनों कृष्ण और पाण्डव एक दूसरे से मिले। वे दोनों प्रभास क्षेत्र में यथेच्छ घूम फिर कर ठहरने के लिये रैवतक पर्वत पर गये।

पूर्वमेव तु कृष्णस्य वचनात् तं महीधरम्।
पुरुषा मण्डयाञ्चक्रुरुपाहुश्च भोजनम्॥ ५॥
प्रतिगृह्यार्जुनः सर्वमुपभुज्य च पाण्डवः।
सहैव वासुदेवेन दृष्टवान् नटनर्तकान्॥ ६॥
अभ्यनुज्ञाय तान् सर्वानर्चयित्वा च पाण्डवः।
सत्कृतं शयनं दिव्यमभ्यगच्छन्महामतिः॥ ७॥
ततस्तत्र महाबाहुः शयानः शयने शुभे।
तीर्थानां पल्वलानां च पर्वतानां च दर्शनम्॥ ८॥
आपगानां वनानां च कथयामास सात्वते।

श्री कृष्ण के आदेश से लोगों ने रैवतक पर्वत को पहले ही सजा रखा था और भोजन भी तैयार कर दिया था। तब अर्जुन ने भोजन को ग्रहण कर और उसे खाकर श्रीकृष्ण जी के साथ वहाँ नटों और नर्तकों के खेल देखे। उन सबका सत्कार कर और उन्हें जाने की आज्ञा देकर वे महामति सजी हुई दिव्य शय्या पर सोने के लिये चले गये। उस सुन्दर शय्या पर सोते हुए उन महाबाहु ने श्री कृष्ण जी से अपनी यात्रा के समय की, प्रसिद्ध स्थानों की, तालाबों की, पर्वतों की, नदियों की और वनों की बातें बताईं।

मधुरेणैव गीतेन वीणाशब्देन चैव ह॥ ९॥
प्रबोध्यमानो बुबुधे स्तुतिभिर्मङ्गलैस्तथा।
स कृत्वावश्यकार्याणि वार्ष्णेयेनाभिनन्दितः॥ १०॥
रथेन काञ्चनाङ्गेन द्वारकामभिजग्मिवान्।
दिदृक्षन्तश्च कौन्तेयं द्वारकावासिनो जनाः॥ ११॥
नरेन्द्रमार्गमाजग्मुस्तूर्णं शतसहस्रशः।
स तथा सत्कृतः सर्वैर्भोजवृष्ण्यन्धकात्मजैः॥ १२॥
अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वैश्च प्रतिनन्दितः।

प्रातः मधुर गाने की तथा वीणा की ध्वनि और स्तुति मंगल पाठों के द्वारा उनकी आँख खुली। तब अपने दैनिक आवश्यक कार्य करके और श्रीकृष्ण जी के द्वारा अभिनन्दित होकर वे सुनहरे रथ के द्वारा द्वारिका में गये। उस समय कुन्तीपुत्र को देखने की इच्छा से द्वारिका के लोग जल्दी से राज मार्ग पर लाखों की संख्या में आ गये थे। वहाँ भोज, अंधक, वृष्णिवंशी लोगों ने उनका स्वागत किया। सबके द्वारा अभिनन्दित किये जाते हुए उन्होंने वन्दनीय लोगों को प्रणाम कर उनका अभिवादन किया।

कुमारैः सर्वशो वीरः सत्कारेणाभिचोदितः॥ १३॥
समानवयसः सर्वानाश्लिष्य स पुनः पुनः।
कृष्णस्य भवने रम्ये रत्नभोज्यसमावृते॥ १४॥
उवास सह कृष्णेन बहुलास्तत्र शर्वरीः।
तत्र चङ्क्रममाणौ तौ वसुदेवसुतां शुभाम्॥ १५॥
अलंकृतां सखीमध्ये भद्रां ददृशतुस्तदा।
दृष्ट्वैव तामर्जुनस्य कन्दर्पः समजायत॥ १६॥
तं तदैकाग्रमनसं कृष्णः पार्थमलक्षयत्।

वहाँ छोटे कुमारों ने अर्जुन का बड़ा सत्कार किया। वे अपने समान आयु के लोगों से बार बार उन्हें गले लगा कर मिले। वहाँ श्रीकृष्ण जी के सुन्दर भवन में जो रत्नों और भोज्य सामग्रियों से भरपूर था वे बहुत रात्रियों तक रहे। वहाँ वसुदेव जी की सुन्दर पुत्री सुभद्रा को, जो शृंगार पूर्वक सखियों के साथ थी, टहलते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन ने देखा। उसे देखते ही अर्जुन के मन में प्रेम भावना जागृत हो गयी। तब श्रीकृष्ण जी ने समझ लिया कि ये सुभद्रा के प्रति एकाग्र मन हो रहे हैं।

अब्रवीत् पुरुषव्याघ्रः प्रहसन्निव भारत॥ १७॥
वनेचरस्य किमिदं कामेनालोड्यते मनः।
ममैषा भगिनी पार्थ सारणस्य सहोदरा॥ १८॥

सुभद्रा नाम भद्रं ते पितुर्मे दयिता सुता।
यदि ते वर्तते बुद्धिर्वक्ष्यामि पितरं स्वयम्॥१९॥

तब श्रीकृष्ण जी हँसते हुए से बोले कि हे भारत! वन में भ्रमण करने वालों का मन काम भावना से क्यों विचलित हो रहा है? तुम्हारा कल्याण हो। यह सुभद्रा नाम की मेरी बहिन तथा बलराम जी की सगी बहिन है। यह मेरे पिता की बड़ी प्यारी है, यदि तुम्हारा विचार है तो मैं स्वयं पिता जी से कह दूँगा।

अर्जुन उवाच

दुहिता वसुदेवस्य वासुदेवस्य च स्वसा।
रूपेण चैषा सम्पन्ना कमिवैषा न मोहयेत्॥२०॥
कृतमेव तु कल्याणं सर्वं मम भवेद् ध्रुवम्।
यदि स्यान्मम वार्ष्णेयी महिषीयं स्वसा तव॥२१॥
प्राप्तौ तु क उपायः स्यात् तं ब्रवीहि जनार्दन।
आस्थास्यामि तदा सर्वं यदि शक्यं नरेण तत्॥२२॥

तब अर्जुन ने कहा कि यह वसुदेव की पुत्री और वासुदेव की बहन है तथा सौन्दर्य से सम्पन्न है, तो यह किसको मोहित नहीं कर लेगी? हे सखे! यदि यह वृष्णिकुल की कन्या तुम्हारी बहिन मेरी रानी बन जाये तो निश्चित रूप से मेरा सारा कल्याण हो जाये। हे जनार्दन! इसे प्राप्त करने का क्या उपाय है? उसे बताओ। यदि मनुष्य के द्वारा वह करने के योग्य होगा तो मैं उसे अवश्य ही समग्र रूप से करूँगा।

वासुदेव उवाच

स्वयंवरः क्षत्रियाणां विवाहः पुरुषर्षभ।
स च संशयितः पार्थ स्वभावस्यानिमित्ततः॥२३॥
प्रसह्य हरणं चापि क्षत्रियाणां प्रशस्यते।
विवाहहेतुः शूराणामिति धर्मविदो विदुः॥२४॥
स त्वमर्जुन कल्याणीं प्रसह्य भगिनीं मम।
हर स्वयंवरे ह्यस्याः को वै वेद चिकीर्षितम्॥२५॥
ततोऽर्जुनश्च कृष्णश्च विनिश्चित्येतिकृत्यताम्।
शीघ्रगान् पुरुषानन्यान् प्रेषयामासतुस्तदा॥२६॥
धर्मराजाय तत् सर्वमिन्द्रप्रस्थगताय वै।
श्रुत्वैव च महाबाहुरनुजज्ञे स पाण्डवः॥२७॥

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे पुरुषश्रेष्ठ! क्षत्रियों में विवाह के लिये स्वयंवर होता है पर स्वभाव की अनिश्चितता के कारण उसमें संन्देह रहता है। क्षत्रियों में विवाह के लिये बलपूर्वक हरण करना भी प्रशंसनीय माना गया है, ऐसा धर्म को जानने वाले मानते हैं। इसलिये हे अर्जुन! तुम इस कल्याणी मेरी बहिन को हरण कर लो, क्योंकि स्वयंवर में पता नहीं यह किसको वरण करना चाहे। तब अर्जुन और श्रीकृष्ण ने आगे किये जाने वाले कार्य का निश्चय कर कुछ दूसरे शीघ्रगामी पुरुषों को युधिष्ठिर के पास इन्द्रप्रस्थ में भेजा। उनसे सारी बातें जान कर पाण्डु पुत्र महाबाहु युधिष्ठिर ने इस विषय में अपनी अनुमति दे दी।

छियालीसवाँ अध्याय : सुभद्रा का अपहरण और बलराम का अर्जुन के प्रति क्रोध।

ततः संवादिते तस्मिन्ननुज्ञातो धनंजयः।
वासुदेवाभ्यनुज्ञातः कथयित्वेतिकृत्यताम्॥ १॥
रथेन काञ्चनाङ्गेन कल्पितेन यथाविधि।
शैब्यसुग्रीवयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना॥ २॥
सर्वशस्त्रोपपन्नेन जीमूतरवनादिना।
ज्वलिताग्निप्रकाशेन द्विषतां हर्षघातिना॥ ३॥
संनद्धः कवची खड्गी बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्।
मृगयाव्यपदेशेन प्रययौ पुरुषर्षभः॥ ४॥

इस प्रकार युधिष्ठिर के साथ संवाद हो जाने पर और उनकी आज्ञा मिल जाने पर कृष्ण के द्वारा यह समझा कर कि उसे क्या करना है, अनुमति दिये जाने पर पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन कवच और तलवार बाँध कर, हाथों में गोह के दस्ताने पहन कर, युद्ध के लिये तैयार होकर एक सुनहले रथ के द्वारा, जिसे अच्छी तरह से सजाया हुआ था, जिसमें शैव्य और सुग्रीव नाम के घोड़े जुते हुए थे, जिसमें छोटी घंटिया और झालरें लगी हुई थीं, जिसमें सारे शस्त्रास्त्र रखे हुए थे, जो मेघों के समान आवाज करता था तथा प्रज्वलित अग्नि के समान देदीप्यमान था और शत्रुओं के हर्ष को नष्ट करने वाला था, शिकार खेलने के बहाने से चल दिये।

गतां रैवतके कन्यां प्रसह्यारोपयद् रथम्।
सुभद्रां चारुसर्वाङ्गीं कामबाणप्रपीडितः॥ ५॥
ततः स पुरुषव्याघ्रः प्रययौ स्वपुरं प्रति।
ह्रियमाणां तु तां दृष्ट्वा सुभद्रां सैनिका जनाः॥ ६॥
विक्रोशन्तोऽद्रवन् सर्वे द्वारकामभितः पुरीम्।
ते समासाद्य सहिताः सुधर्मामभितः सभाम्॥ ७॥
सभापालस्य तत् सर्वमाचख्युः पार्थविक्रमम्।

तेषां श्रुत्वा सभापालो भेरीं सांनाहिकीं ततः।। ८।।
समाजघ्ने महाघोषां जाम्बूनदपरिष्कृताम्।

उसके पश्चात् प्रेम की भावना से अत्यन्त पीड़ित हुए उन्होंने रैवतक पर्वत पर गयी हुई सर्वांग सुन्दरी सुभद्रा को बल पूर्वक उठा कर रथ पर बैठा लिया और वे पुरुष व्याघ्र अर्जुन तब अपने नगर की तरफ चल दिये। इस प्रकार सुभद्रा को हरण किया जाता हुआ देख कर उसके रक्षक सैनिक लोग चिल्लाते हुए द्वारिका पुरी की तरफ दौड़े। उन सबने सुधर्मा नाम की सभा के सभापाल के पास पहुँच कर उससे कुन्तीपुत्र के पराक्रम की सारी बात कह सुनाई। उनकी बात सुनते ही सभापाल ने युद्ध के लिये बजने वाले स्वर्ण खचित नगाड़े को, जिसकी ध्वनि बहुत दूर-दूर तक जाती थी, बजवाना आरम्भ कर दिया।

क्षुब्धास्तेनाथ शब्देन भोजवृष्ण्यन्धकास्तदा।। ९।।
अन्नपानमपास्याथ समापेतुः समन्ततः।
भेजिरे पुरुषव्याघ्रा वृष्ण्यन्धकमहारथाः।। १०।।
सिंहासनानि शतशो धिष्ण्यानीव हुताशनाः।
तेषां समुपविष्टानां देवानामिव संनये।। ११।।
आचख्यौ चेष्टितं जिष्णोः सभापालः सहानुगः।
तच्छ्रुत्वा वृष्णिवीरास्ते मदसंरक्तलोचनाः।। १२।।
अमृष्यमाणाः पार्थस्य समुत्पेतुरहंकृताः।

उसकी आवाज सुन कर क्षुब्ध हुए भोज, वृष्णि और अन्धक वीर अपने खानपान को छोड़ कर तुरन्त सभा भवन की तरफ सब तरफ से दौड़े हुए आये। वे सैकड़ों की संख्या में पुरुषव्याघ्र आकर वहाँ रखे हुए सिंहासनों पर बैठ गये। उन पर बैठे हुए वे लोग वेदी में प्रज्वलित होती हुई अग्नि के समान सुशोभित हो रहे थे। देव समूह के समान उन बैठे हुए वीरों को सभापाल ने अपने सेवकों सहित अर्जुन की चेष्टा का वर्णन किया। यह सुन कर वे वृष्णि वीर, जिनकी आँखें युद्धोन्माद से लाल हो रही थीं और जो अर्जुन के प्रति अमर्ष से भरे हुए थे, गर्व से उछल कर खड़े हो गये।

योजयध्वं रथानाशु प्रासानाहरतेति च।। १३।।
धनूंषि च महार्हाणि कवचानि बृहन्ति च।
सूतानुच्चुक्रुशुः केचिद् रथान् योजयतेति च।। १४।।
स्वयं च तुरगान् केचिदयुञ्जन् हेमभूषितान्।
रथेष्वानीयमानेषु कवचेषु ध्वजेषु च।। १५।।
अभिक्रन्दे नृवीराणां तदासीत् तुमुलं महत्।
वनमाली ततः क्षीबः कैलासशिखरोपमः।। १६।।
नीलवासा मदोत्सिक्त इदं वचनमब्रवीत्।

वे चिल्ला चिल्ला कर कहने लगे कि जल्दी रथों को जोड़ो, प्रासों को, धनुषों को और विशाल तथा बहुमूल्य कवचों को लाओ। कुछ सारथियों को चिल्लाने लगे कि जल्दी रथ तैयार करो और कुछ स्वयं ही सुनहरे साज से सज्जित घोड़ों को जोतने लगे। उस समय रथों के, कवचों के और ध्वजाओं के लाये जाते हुए उन नर वीरों का महान कोलाहल वहाँ होने लगा। तब वनमाला और नीले वस्त्रों को धारण करने वाले, कैलाश पर्वत के शिखर के समान श्वेत वर्ण और अभिमान से युक्त बलराम जी यह बोले कि–

किमिदं कुरुथाप्रज्ञास्तूष्णींभूते जनार्दने।। १७।।
अस्य भावमविज्ञाय संक्रुद्धा मोघगर्जिताः।
एष तावदभिप्रायमाख्यातु स्वं महामतिः।। १८।।
यदस्य रुचिरं कर्तुं तत् कुरुध्वमतन्द्रिताः।
समं वचो निशम्यैव बलदेवस्य धीमतः।। १९।।
पुनरेव सभामध्ये सर्वे ते समुपाविशन्।
ततोऽब्रवीद् वासुदेवं वचो रामः परंतपः।। २०।।
किमवागुपविष्टोऽसि प्रेक्षमाणो जनार्दन।

अरे श्रीकृष्ण तो चुपचाप बैठे हुए हैं, तुम अपने आप ही यह क्या सोच रहे हो? इनके विचारों को बिना जाने तुम्हारी क्रोध पूर्वक ये गर्जनाएँ व्यर्थ हैं। पहले ये महाबुद्धिमान् अपने मत को प्रकट करें। फिर जो इनके अनुसार योग्य कर्म हो, उसे आप लोग बिना प्रमाद के पूरा करें। धीमान् बलदेव के यह वचन सुनते ही, वे सारे सभा में फिर बैठ गये। फिर शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले बलराम वासुदेव जी से बोले कि हे जनार्दन! तुम यह सब देखते हुए भी क्यों चुपचाप बैठे हुए हो?

सत्कृतस्त्वत्कृते पार्थः सर्वैरस्माभिरच्युत।। २१।।
न च सोऽर्हति तां पूजां दुर्बुद्धिः कुलपांसनः।
को हि तत्रैव भुक्त्वान्नं भाजनं भेत्तुमर्हति।। २२।।
मन्यमानः कुले जातमात्मानं पुरुषः क्वचित्।
इच्छन्नेव हि सम्बन्धं कृतं पूर्वं च मानयन्।। २३।।
को हि नाम भवेनार्थी साहसेन समाचरेत्।
सोऽवमन्य तथास्माकमनादृत्य च केशवम्।। २४।।
प्रसह्य हृतवानद्य सुभद्रां मृत्युमात्मनः।

हे अच्युत! तुम्हारे ही कारण से हम सबने उस कुन्तीपुत्र का सत्कार किया, पर वह कुल को कलंकित करने वाला दुर्बुद्धि उस सत्कार के योग्य नहीं था। कौन ऐसा पुरुष है जो अपने को उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ माने पर जिस बर्तन में खाये उसी में छेद करे। कौन ऐसा कल्याण को चाहने वाला पुरुष होगा, जो सम्बन्ध की इच्छा रखते हुए भी, पहले किये हुए उपकार को याद कर इस प्रकार का दुस्साहस करेगा। उसने आज हम सबको कुछ भी न समझ कर, कृष्ण का अपमान कर, अपनी मृत्यु के समान सुभद्रा का बलपूर्वक हरण किया है।

कथं हि शिरसो मध्ये कृतं तेन पदं मम।। २५।।
मर्षयिष्यामि गोविन्द पादस्पर्शमिवोरगः।
अद्य निष्कौरवामेकः करिष्यामि वसुंधराम्।। २६।।
न हि मे मर्षणीयोऽयमर्जुनस्य व्यतिक्रमः।
तं तथा गर्जमानं तु मेघदुन्दुभिनिःस्वनम्।
अन्वपद्यन्त ते सर्वे भोजवृष्ण्यन्धकास्तदा।। २७।।

हे गोविन्द! उसने मेरे सिर पर अपना पैर रख दिया है। पैर से कुचले हुए साँप के समान मैं उसे कैसे सहन कर सकता हूँ। आज मैं अकेला ही इस भूमि को कौरवों से रहित कर दूँगा। मैं अर्जुन के इस दुस्साहस को सहन नहीं कर सकता। तब उस बादल तथा नगाड़े के समान गर्जना करते हुए बलराम का सारे भोज, वृष्णि तथा अन्धक वीरों ने भी अनुसरण किया। अर्थात् वे भी गर्जना करने लगे।

सैंतालीसवाँ अध्याय : अर्जुन सुभद्रा विवाह, इन्द्रप्रस्थ लौटना, अभिमन्यु का जन्म।

ततोऽब्रवीद् वासुदेवो वाक्यं धर्मार्थसंयुतम्।
नावमानं कुलस्यास्य गुडाकेशः प्रयुक्तवान्।। १।।
सम्मानोऽभ्यधिकस्तेन प्रयुक्तोऽयं न संशयः।
अर्थलुब्धान् न वः पार्थो मन्यते सात्वतान् सदा।। २।।
स्वयंवरमनाधृष्यं मन्यते चापि पाण्डवः।
अतः प्रसह्य हृतवान् कन्यां धर्मेण पाण्डवः।। ३।।
उचितश्चैव सम्बन्धः सुभद्रां च यशस्विनीम्।
एष चापीदृशः पार्थः प्रसह्य हृतवानिति।। ४।।
भरतस्यान्वये जातं शान्तनोश्च यशस्विनः।
कुन्तिभोजात्मजापुत्रं को बुभूषेत नार्जुनम्।। ५।।

तब श्रीकृष्ण जी ने धर्म और अर्थ से युक्त यह बात कही कि अर्जुन ने इस कुल का अपमान नहीं किया है, अपितु इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा करके उन्होंने हमारे प्रति सम्मान प्रकट किया है। अर्जुन समझते हैं कि सात्वतवंश के लोग धन के लोभी नहीं हैं। इसलिये उन्हें धन देकर कन्या को नहीं प्राप्त किया जा सकता। वे पाण्डव स्वयंवर को भी स्वीकार करने योग्य नहीं समझते, क्योंकि स्वयंवर में अनिश्चय होता है। इसलिये उन्होंने क्षत्रिय धर्म के अनुसार कन्या को बलपूर्वक हरण किया है। मेरे विचार से यह सम्बन्ध उचित है, क्योंकि जिस प्रकार से सुभद्रा यशस्विनी है, वैसे ही अर्जुन भी यशस्वी हैं। इसलिये उसने उसका बलपूर्वक हरण किया है। यशस्वी भरत के तथा शान्तनु के वंश में जन्मे तथा कुन्तीभोज कुमारी कुन्ती के पुत्र अर्जुन को कौन अपने सम्बन्ध के द्वारा विभूषित नहीं करना चाहेगा?

स च नाम रथस्तादृङ्मदीयास्ते च वाजिनः।
योद्धा पार्थश्च शीघ्रास्त्रः को नु तेन समो भवेत्।। ६।।
तमभिद्रुत्य सान्त्वेन परमेण धनंजयम्।
न्यवर्तयत सुहृष्टा ममैषा परमा मतिः।। ७।।
यदि निर्जित्य वः पार्थो बलाद् गच्छेत् स्वकं पुरम्।
प्रणश्येद् वो यशः सद्यो न तु सान्त्वे पराजयः।। ८।।

मेरा प्रसिद्ध रथ इस समय अर्जुन के पास है। उसमें मेरे प्रसिद्ध घोड़े भी जुते हुए हैं। अर्जुन स्वयं शीघ्रता से अस्त्रों के संचालन वाले योद्धा हैं। उनके समान कौन युद्ध कुशल है? इसलिये मेरा तो यही विचार है कि आप लोग दौड़ कर अर्जुन को अत्यधिक सान्त्वना देकर प्रसन्नता पूर्वक लौटा लाओ। यदि अर्जुन आपको जीतकर नगर में चले गये तो आप सबका यश नष्ट हो जायेगा। जबकि उनके साथ मेल करने में पराजय नहीं मानी जायेगी। श्रीकृष्ण जी की यह बात सुन कर यादव लोगों के अधिपति बलराम ने ऐसा ही किया।

निवृत्तश्चार्जुनस्तत्र विवाहं कृतवान् प्रभुः।। ९।।
उषित्वा तत्र कौन्तेयः संवत्सरपराः क्षपाः।
विहृत्य च यथा कामं खाण्डवप्रस्थमागतः।। १०।।
ववन्दे धौम्यमासाद्य मातरं च धनंजयः।
स्पृष्ट्वा च चरणौ राज्ञो भीमस्य च धनंजयः।। ११।।
यमाभ्यां वन्दितो हृष्टः सस्वजे तौ ननन्द च।

सुभद्रां त्वरमाणश्च रक्तकौशेयवासिनीम्।। १२।।
पार्थःप्रस्थापयामास कृत्वा गोपालिकावपुः।

तब अर्जुन को वापिस लौटाया गया और उस सामर्थ्यशाली कुन्ती पुत्र ने सुभद्रा से विवाह किया। इसके पश्चात् वे एक वर्ष से कुछ अधिक दिन तक वहाँ रहे। वहाँ यथेच्छ विहार कर वे पुनः खांडव प्रस्थ आ गये। वहाँ आकर अर्जुन ने पुरोहित धौम्य और माता की वन्दना की। राजा युधिष्ठिर और भीमसेन के चरणों को छूकर, दोनों जुड़वाँ भाइयों नकुल और सहदेव के द्वारा वन्दना किये जाने पर उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें गले लगाया और आनन्दित किया। फिर उन्होंने शीघ्रता से लाल रेशमी साड़ी पहने हुए सुभद्रा को ग्वालिनी का सा वेष बना कर महल में भेजा।

साधिकं तेन रूपेण शोभमाना यशस्विनी।। १३।।
भवने श्रेष्ठमासाद्य वीरपत्नी वराङ्गना।
ववन्दे पृथुताम्राक्षी पृथां भद्रा यशस्विनी।। १४।।
तां कुन्ती चारुसर्वाङ्गीमुपाजिघ्रत मूर्धनि।
प्रीत्या परमया युक्ता आशीर्भिर्युञ्जतातुलाम्।। १५।।
ततोऽभिगम्य त्वरिता पूर्णेन्दुसदृशानना।
ववन्दे द्रौपदीं भद्रा प्रेष्याहमिति चाब्रवीत्।। १६।।
प्रत्युत्थाय तदा कृष्णा स्वसारं माधवस्य च।
परिष्वज्यावदत् प्रीत्या निःसपत्नोऽस्तु ते पतिः।। १७।।
तथैव मुदिता भद्रा तामुवाचैवमस्त्विति।

वह यशस्विनी, वीर पत्नी, विशाल कुछ लाल नेत्रों वाली सुन्दरी सुभद्रा उस वेशभूषा में अधिक सुशोभित होती हुई उस श्रेष्ठ भवन में प्रविष्ट हुई और उसने कुन्ती की वन्दना की। तब कुन्ती ने उस सर्वांग सुन्दरी सुभद्रा के सिर को सूँघा। उसने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस अतुलनीया वधु को अनेक आशीर्वाद दिये। फिर पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाली उस सुभद्रा ने तुरन्त द्रौपदी की वन्दना की और कहा कि मैं आपकी दासी हूँ। द्रौपदी ने तब उठ कर श्रीकृष्ण की उस बहन को गले से लगा कर प्रेम पूर्वक यह आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे पति शत्रु रहित हों। तब सुभद्रा ने भी प्रसन्न होकर उत्तर दिया कि आपके आशीर्वाद से ऐसा ही हो।

ततः सुभद्रा सौभद्रं केशवस्य प्रिया स्वसा।
जयन्तमिव पौलोमी ख्यातिमन्तमजीजनत्।। १८।।
दीर्घबाहुं महोरस्कं वृषभाक्षमरिंदमम्।
सुभद्रा सुषुवे वीरमभिमन्युं नरर्षभम्।। १९।।
स सात्वत्यामतिरथः सम्बभूव धनंजयात्।
मखे निर्मथनेनेव शमीगर्भाद्धुताशनः।। २०।।
यस्मिञ्जाते महातेजाः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
अयुतं गा द्विजातिभ्यः प्रादान्निष्कांश्च भारतः।। २१।।
जन्मप्रभृति कृष्णश्च चक्रे तस्य क्रियाः शुभाः।
स चापि ववृधे बालः शुक्लपक्षे यथा शशी।। २२।।

तब कुछ दिनों पश्चात् श्रीकृष्ण जी की प्यारी बहन सुभद्रा ने अपने यशस्वी पुत्र को उसी प्रकार जन्म दिया जैसे इन्द्र पत्नी शची ने जयन्त को जन्म दिया था। सुभद्रा ने जिस पुत्र को जन्म दिया वह लम्बी भुजाओं और विशाल वक्षस्थल और बैल जैसी आँखों वाला था। उसका नाम अभिमन्यु था। जैसे यज्ञ में शमी नाम की लकड़ी को रगड़ने से अग्नि उत्पन्न होती है, वैसे ही अर्जुन के द्वारा सुभद्रा के गर्भ से उस महान् अतिरथी वीर का जन्म हुआ। उसके जन्म होने पर भरतवंशी कुन्ती पुत्र महातेजस्वी युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को दस हजार गायें और बहुत सी स्वर्ण मुद्राएँ दान में दीं। श्रीकृष्ण जी ने उसके जन्म से ही उसके लिये अच्छे कार्यों का प्रबन्ध किया और वह बालक भी शुक्ल पक्ष में बढ़ने वाले चन्द्रमा के समान प्रतिदिन बढ़ने लगा।

अड़तालीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर का राज्य।अग्नि नाम के ब्राह्मण की प्रार्थना।

आश्रित्य धर्मराजानं सर्वलोकोऽवसत् सुखम्।
पुण्यलक्षणकर्माणं स्वदेहमिव देहिनः।। १।।
स समं धर्मकामार्थान् सिषेवे भरतर्षभः।
त्रीनिवात्मसमान् बन्धून् नीतिमानिव मानयन्।। २।।
तेषां समविभक्तानां क्षितौ देहवतामिव।
बभौ धर्मार्थकामानां चतुर्थ इव पार्थिवः।। ३।।
अध्येतारं परं वेदान् प्रयोक्तारं महाध्वरे।
रक्षितारं शुभाँल्लोकान् लेभिरे तं जनाधिपम्।। ४।।

उस समय धर्मराज युधिष्ठिर का आश्रय लेकर उनकी प्रजा के सारे लोग उसी प्रकार सुख से रहते थे, जैसे जीवात्मा अपने उत्तम कर्मों के फलस्वरूप उत्तम शरीर को पाकर सुखी रहता है। वे भरतश्रेष्ठ

और नीतिमान युधिष्ठिर, धर्म, अर्थ और काम इन तीनों को आत्मा के समान प्रिय बन्धु समझते हुए इन तीनों का एक साथ सेवन करते थे। राजा युधिष्ठिर ने इन तीनों को मानो साक्षात् मूर्तिमान करके उन्हें इस भूमि पर समान रूप से विभाजित किया हुआ था और स्वयं इन तीनों के मध्य साक्षात् चौथे वर्ग मोक्ष के समान सुशोभित हो रहे थे। प्रजा ने युधिष्ठिर के रूप में एक ऐसे राजा को प्राप्त किया था, जो वेदों का अध्ययन करने वाला और अच्छी बातों का संरक्षक था।

भ्रातृभिः सहितो राजा चतुर्भिरधिकं बभौ।
प्रयुज्यमानैर्विततो वेदैरिव महाध्वरः।। ५।।
धर्मराजे ह्यतिप्रीत्या पूर्णचन्द्र इवामले।
प्रजानां रेमिरे तुल्यं नेत्राणि हृदयानि च।। ६।।
न तु केवलदैवेन प्रजा भावेन रेमिरे।
यद् बभूव मनःकान्तं कर्मणा स चकार तत्।। ७।।
न ह्ययुक्तं न चासत्यं नासह्यं न च वाप्रियम्।
भाषितं चारुभाषस्य जज्ञे पार्थस्य धीमतः।। ८।।

राजा युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों के साथ इस प्रकार अत्यधिक शोभा को प्राप्त करते थे, जैसे चारों वेदों के प्रयोग पूर्वक विस्तार से किये जाने वाले महायज्ञ सुशोभित होते हैं। निर्मल और पूर्ण चन्द्रमा के समान धर्मराज में प्रजा का इतना अधिक प्रेम था कि उन्हें देखते ही आँखें और हृदय दोनों प्रसन्नता से भर जाते थे। प्रजाजन केवल इसी बात से युधिष्ठिर से प्रसन्न नहीं थे कि वे प्रजा पालन रूप अपने कर्त्तव्य का पूरी तरह से पालन कर रहे थे, अपितु इसलिये भी वे उनसे प्रसन्न थे, क्योंकि वे उनकी मनोवांछित कामनाओं को भी पूर्ति कर दिया करते थे। सदा मधुर वचन बोलने वाले युधिष्ठिर के मुख से कभी अनुचित, असत्य, कड़वी, और अप्रिय बात नहीं निकलती थी।

स हि सर्वस्य लोकस्य हितमात्मन एव च।
चिकीर्षन् सुमहातेजा रेमे भरतसत्तमः।। ९।।
तथा तु मुदिताः सर्वे पाण्डवा विगतज्वराः।
अवसन् पृथिवीपालांस्तापयन्तः स्वतेजसा।। १०।।
ततः कतिपयाहस्य बीभत्सुः कृष्णमब्रवीत्।
उष्णानि कृष्ण वर्तन्ते गच्छावो यमुनां प्रति।। ११।।
सुहृज्जनवृतौ तत्र विहृत्य मधुसूदन।
सायाह्ने पुनरेष्यावो रोचतां ते जनार्दन।। १२।।

वे महातेजस्वी भरतश्रेष्ठ सारी प्रजा का तथा अपना हित करने की इच्छा करते हुए ही आनन्द का अनुभव करते थे। इसी प्रकार दूसरे पांडव भी अपने तेज से दूसरे भूमिपालों को संतप्त करते हुए निश्चिन्तता और प्रसन्नता के साथ समय बिताते थे। तब कुछ दिनों के बाद एक दिन अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि हे कृष्ण! गर्मी पड़ रही है, चलो यमुना पर चलते हैं। हे मधुसूदन! यदि आपको अच्छा लगे तो हम वहाँ मित्रों के साथ विहार कर सायँकाल वापिस आ जायेंगे।

वासुदेव उवाच

कुन्तीमातर्ममाप्येतद् रोचते यद् वयं जले।
सुहृज्जनवृताः पार्थ विहरेम यथासुखम्।। १३।।
विहारदेशं सम्प्राप्य नानाद्रुमगनुत्तमम्।
गृहैरुच्चावचैर्युक्तं पुरन्दरपुरोपमम्।। १४।।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च रसवद्भिर्महाधनैः।
माल्यैश्च विविधैर्गन्धैर्युक्तं वार्ष्णेयपार्थयोः।। १५।।
विवेशान्तःपुरं तूर्णं रत्नैरुच्चावचैः शुभैः।

तब श्रीकृष्ण जी बोले कि हे कुन्ती पुत्र! मेरी भी यही इच्छा है कि हम मित्रों के साथ सुख पूर्वक विहार करें। तब वे दोनों अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ उस विहार स्थल में पहुँचे, जो अनेक वृक्षों से युक्त सुन्दर स्थान और अनेक छोटे बड़े भवनों के कारण इन्द्रपुरी सा लग रहा था। अन्तःपुर की स्त्रियाँ वहाँ तरह-तरह के खाने और बहुमूल्य सरस पीने के पदार्थों के साथ उन घरों में तुरन्त चली गयीं। उनके पास अनेक प्रकार की सजावट की चीज़े, जैसे मालाएँ, सुगन्धित पदार्थ तथा रत्नादि थे।

वने काश्चिज्जले काश्चित् काश्चित् वेश्मसु चाङ्गनाः।। १६।।
यथायोग्यं यथाप्रीति चिक्रीडुः पार्थकृष्णयोः।
काश्चित् प्रहृष्टा ननृतुश्चुक्रुशुश्च तथापराः।। १७।।
जहसुश्च परा नार्यो जगुश्चान्या वरस्त्रियः।
रुरुधुश्चापरास्तत्र प्रजघ्नुश्च परस्परम्।। १८।।
मन्त्रयामासुरन्याश्च रहस्यानि परस्परम्।
वेणुवीणामृदङ्गानां मनोज्ञानां च सर्वशः।। १९।।
शब्देन पूर्यते हर्म्यं तद् वनं सुमहर्द्धिमत्।

श्रीकृष्ण और अर्जुन की रुचि के अनुसार उन स्त्रियों में से कोई वन में, कोई जल में तथा कोई घर में बैठ कर तरह तरह की क्रीड़ाएँ करने लगीं। वहाँ कुछ स्त्रियाँ हर्षोल्लास में भर कर कोलाहल

करने लगीं। कुछ नाचने लगीं, कुछ जोर जोर से हँसने लगीं और कुछ गीत गाने लगीं। कुछ एक दूसरे के मार्ग को रोकने लगीं और एक दूसरे को मारने लगीं। वहाँ के समृद्धिशाली भवन तथा वन उस समय बाँसुरी, वीणा, मृदंग और वाद्य यन्त्रों की ध्वनि से पूर्ण हो रहे थे।

तस्मिंस्तदा वर्तमाने कुरुदाशार्हनन्दनौ।। २०।।
समीपं जग्मतुः कंचिदुद्देशं सुमनोहरम्।
तत्र पूर्वव्यतीतानि विक्रान्तानीतराणि च।। २१।।
बहूनि कथयित्वा तौ रेमाते पार्थमाधवौ।
अभ्यागच्छत् तदा विप्रो वासुदेवधनंजयौ।। २२।।
बृहच्छालप्रतीकाशः प्रतप्तकनकप्रभः।
हरिपिङ्गोज्ज्वलश्मश्रुः प्रमाणायामतः समः।। २३।।
तरुणादित्यसंकाशश्चीरवासा जटाधरः।
पद्मपत्राननः पिङ्गस्तेजसा प्रज्वलन्निव।। २४।।

इस प्रकार जब वहाँ उत्सव का वातावरण चल रहा था, तब श्रीकृष्ण और अर्जुन वहाँ से समीप के ही किसी सुन्दर स्थान पर जाकर बैठ गये। वहाँ वे दोनों अपनी पिछली पराक्रम की तथा दूसरी अनेक बातें परस्पर कहते हुए मनोविनोद करने लगे। तभी एक ब्राह्मण देवता उन अर्जुन और श्रीकृष्ण के पास आये। वे बड़े शाल वृक्ष के समान ऊँचे थे और तपे हुए सोने के समान उनका रंग था। उनकी मूँछें लालिमायुक्त भूरे रंग की थीं और शरीर की मोटाई भी लम्बाई के अनुसार थी। चीर वस्त्र पहने और जटाएँ धारण किये कमल के समान मुख वाले वे अपने पिंगल वर्ण के तेज से प्रज्वलित हो रहे थे।

उपसृष्टं तु तं कृष्णौ भ्राजमानं द्विजोत्तमम्।
अर्जुनो वासुदेवश्च तूर्णमुत्पत्य तस्थतुः।। २५।।
सोऽब्रवीदर्जुनं चैव वासुदेवं च सात्वतम्।
भिक्षे वार्ष्णेयपार्थौ वामेकां तृप्तिं प्रयच्छतम्।। २६।।
एवमुक्तौ तमब्रूतां ततस्तौ कृष्णपाण्डवौ।
केनान्नेन भवांस्तृप्येत् तस्यान्नस्य यतावहे।। २७।।
एवमुक्तः स भगवानब्रवीत् तावुभौ ततः।
नाहमन्नं बुभुक्षे वै पावकं मां निबोधतम्।। २८।।
वसत्यत्र सखा तस्य तक्षकः पन्नगः सदा।
सगणस्तत्कृते दावं परिरक्षति वज्रभृत्।। २९।।
तत्र भूतान्यनेकानि रक्षतेऽस्य प्रसङ्गतः।
तं दिधक्षुर्न शक्नोमि दग्धुं शक्रस्य तेजसा।। ३०।।

उस तेजस्वी श्रेष्ठ ब्राह्मण को अपने पास आया हुआ जान अर्जुन और श्रीकृष्ण तुरन्त उठ कर खड़े हो गये। उस ब्राह्मण ने अर्जुन और यदुवंशी वासुदेव कहा कि हे कृष्ण और अर्जुन! मैं आपसे भिक्षा माँगता हूँ। आप मेरी तृप्ति कीजिये। उसके ऐसा कहने पर उन दोनों ने उससे पूछा कि उसकी तृप्ति किस प्रकार के अन्न को खाने से होगी? वे उस के लिये प्रयत्न करेंगे। उनके ऐसा कहने पर उसने कहा कि मुझे अन्न खाने की इच्छा नहीं है। मेरा नाम अग्नि आप समझें। मैं इस वन को जलाना चाहता हूँ। पर यहाँ इन्द्र का मित्र तक्षक अपने साथियों के साथ रहता है। उसके लिये इन्द्र सदा इस वचन की रक्षा करता है, इसी कारण वह यहाँ रहने वाले दूसरे प्राणियों की भी रक्षा करता है। इसलिये इन्द्र के तेज के कारण मैं जलाने का इच्छुक भी इसे जला नहीं पाता।

स युवाभ्यां सहायाभ्यामस्त्रविद्भ्यां समागतः।
दहेयं खाण्डवं दावमेतदन्नं वृतं मया।। ३१।।

अर्जुन उवाच

उत्तमास्त्राणि मे सन्ति दिव्यानि च बहूनि च।
यैरहं शक्नुयां योद्धुमपि वज्रधरान् बहून्।। ३२।।
धनुर्मे नास्ति भगवन् बाहुवीर्येण सम्मितम्।
कुर्वतः समरे यत्नं वेगं यद् विषहेन्मम।। ३३।।
न हि वोढुं रथः शक्तः शरान् मम यथेप्सितान्।
तथा कृष्णस्य वीर्येण नायुधं विद्यते समम्।। ३४।।
येन नागान् पिशाचांश्च निहन्यान्माधवो रणे।
पौरुषेण तु यत् कार्यं तत् कर्तारौ स्व पावक।
करणानि समर्थानि भगवन् दातुमर्हसि।। ३५।।

मैं अब तुम दोनों अस्त्र विद्या के विद्वानों की सहायता लेने के लिये आया हूँ, जिससे मैं खाण्डव वन को जला सकूँ। यही मेरी भिक्षा है। तब अर्जुन ने कहा कि मेरे पास उत्तम अस्त्र तो बहुत हैं, जिनके द्वारा मैं अनेक इन्द्रों से भी लड़ सकता हूँ, पर हे भगवन्! मेरे बाहुबल के उपयुक्त मेरे पास कोई धनुष नहीं है, जो युद्ध में लड़ते हुए मेरे वेग को सहन कर ले। इसी प्रकार मेरी इच्छा के अनुसार बाणों को ढोने के लिये मेरे पास शक्तिशाली रथ भी नहीं है। इसी प्रकार इन कृष्ण के पास भी इनके पराक्रम के अनुरूप कोई अस्त्र नहीं है, जिससे ये युद्ध में नागों और पिशाचों को मार सकें। हे अग्नि नाम के ब्राह्मण! पुरुषार्थ से जो कुछ हो सकता है, वह तो हम कर सकते हैं, पर योग्य साधनों का प्रबन्ध तो आपको करना चाहिये।

तद्द्भुतं महावीर्यं यशःकीर्तिविवर्धनम्।
सर्वशस्त्रैरनाधृष्यं सर्वशस्त्रप्रमाथि च॥ १॥
सर्वायुधमहामात्रं परसैन्यप्रधर्षणम्।
एकं शतसहस्रेण सम्मितं राष्ट्रवर्धनम्॥ २॥
चित्रमुच्चावचैर्वर्णैः शोभितं श्लक्ष्णमव्रणम्।
प्रादाच्चैव धनूरत्नमक्षय्ये च महेषुधी॥ ३॥

तब उस अग्नि ब्राह्मण ने अर्जुन को वह धनुष रत्न प्रदान किया, जो बड़ा अद्भुत, बड़ा तेजस्वी और यश एवं कीर्ति को बढ़ाने वाला था। वह किसी भी शस्त्र के द्वारा खण्डित नहीं हो सकता था और सारे शस्त्रों को नष्ट करने वाला था। वह सारे आयुधों से आकार में विशाल था तथा शत्रु सेना को नष्ट करने वाला था। वह अकेला ही दूसरे लाखों के बराबर था और धारण करने वाले के राष्ट्र की वृद्धि करने वाला था। विभिन्न प्रकार के रंगों से सुशोभित होने वाला वह धनुष रत्न चिकना और छिद्रों अर्थात् दोषों से रहित था। उस धनुष के साथ उसने दो विशाल और अक्षय अर्थात नष्ट न होने वाले तरकस भी दिये।

रथं च दिव्याश्वयुजं कपिप्रवरकेतनम्।
उपेतं राजतैरश्वैर्गान्धर्वैर्हेममालिभिः॥ ४॥
पाण्डुराभ्रप्रतीकाशैर्मनोवायुसमैर्जवे ।
सर्वोपकरणैर्युक्तमजय्यं देवदानवैः॥ ५॥
भानुमन्तं महाघोषं सर्वरत्न मनोरमम्।
नवमेघप्रतीकाशं ज्वलन्तमिव च श्रिया॥ ६॥
आश्रितौ तं रथश्रेष्ठं शक्रायुधसमावुभौ।

उन अग्नि ब्राह्मण ने अर्जुन को एक रथ भी दिया, जो दिव्य घोड़ों से युक्त था। उसकी पताका पर वानर का चित्र बना हुआ था। वे घोड़े चाँदी के समान श्वेत वर्ण के तथा गन्धर्व देश में उत्पन्न थे। उन्हें सुनहरी मालाओं से सजाया हुआ था। वे घोड़े श्वेत बादलों के समान थे और मन तथा वायु के समान वेग वान थे। वह रथ सारे उपकरणों से युक्त तथा देवताओं तथा दानवों से भी अजेय था। सब प्रकार के रत्न उसमें जड़े हुए थे। उसकी ध्वनि महान थी और वह सूर्य के समान देदीप्यमान था। नूतन मेघ के समान वह रथ अपनी कान्ति से मानो प्रज्वलित हो रहा था। इन्द्रधनुष के समान रंग वाले वे दोनों वीर तब उस रथ पर सवार हुए।

गाण्डीवमुपसंगृह्य बभूव मुदितोऽर्जुनः॥ ७॥
हुताशनं पुरस्कृत्य ततस्तदपि वीर्यवान्।
जग्राह बलमास्थाय ज्यया च युयुजे धनुः॥ ८॥
मौर्व्यां तु योज्यमानायां बलिना पाण्डवेन ह।
येऽशृण्वन् कूजितं तत्र तेषां वै व्यथितं मनः॥ ९॥
लब्ध्वा रथं धनुश्चैव तथाक्षय्ये महेषुधी।
बभूव कल्यः कौन्तेयः प्रहृष्टः साह्यकर्मणि॥ १०॥

उस गाण्डीव धनुष को प्राप्त करके अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अग्नि ब्राह्मण के सामने ही उसे उठाया और बल लगा कर उस पर प्रत्यंचा को चढ़ा दिया। उस तेजस्वी और बलवान पाण्डव के द्वारा उस धनुष पर प्रत्यंचा को चढ़ाये जाते समय, जिन्होंने उसकी टंकार सुनी, उनका दिल दहल गया। उस रथ को, धनुष को तथा उन अक्षय तरकसों को प्राप्त कर प्रसन्न हुए कुन्तीपुत्र उस ब्राह्मण की सहायता के लिये तैयार हो गये।

वज्रनाभं ततश्चक्रं ददौ कृष्णाय पावकः।
आग्नेयमस्त्रं दयितं स च कल्योऽभवत् तदा॥ ११॥
अब्रवीत् पावकश्चैवमेतेन मधुसूदन।
अमानुषानपि रणे जेष्यसि त्वमसंशयम्॥ १२॥
अनेन तु मनुष्याणां देवानामपि चाहवे।
रक्षःपिशाचदैत्यानां नागानां चाधिकस्तथा॥ १३॥
भविष्यसि न संदेहः प्रवरोऽपि निबर्हणे।
क्षिप्तं क्षिप्तं रणे चैतत् त्वया माधव शत्रुषु॥ १४॥
हत्वाप्रतिहतं संख्ये पाणिमेष्यति ते पुनः।

फिर अग्नि ब्राह्मण ने श्री कृष्ण जी को एक चक्र दिया, जिसका मध्यभाग वज्र का बना हुआ था। अग्नि के द्वारा दिये हुए प्रिय अस्त्र को पाकर श्रीकृष्ण जी भी तैयार हो गये। तब अग्नि ने उनसे कहा कि हे श्रीकृष्ण! तुम इस चक्र से युद्ध में अमानव प्राणियों को भी जीत सकोगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसकी सहायता से निस्सन्देह तुम युद्ध में मनुष्यों, देवताओं, राक्षसों, पिशाचों, दैत्यों, और नागों से भी अधिक तथा उनको नष्ट करने में कुशल हो जाओगे। जब-जब तुम इसे युद्ध में चलाओगे, यह बेरोकटोक शत्रु को मार कर पुनः तुम्हारे हाथ में आ जायेगा।

सर्वतः परिवार्यैवं दावमेतं महाप्रभो॥ १५॥
कामं सम्प्रज्वलाद्यैव कल्यौ स्वः साह्यकर्मणि।

एवमुक्तः स भगवान् दाशार्हेणार्जुनेन।।१६।।
ददाह खाण्डवं दावं युगान्तमिव दर्शयन्।

तब अर्जुन ने कहा कि हे प्रभो! आप इस वन को चारों तरफ से घेर कर आज ही इच्छा के अनुसार जलाइये। हम आपकी सहायता के लिये तैयार है। अर्जुन और श्रीकृष्ण के द्वारा यह कहे जाने पर वह अग्नि नाम के ब्राह्मण उस खाण्डव वन को प्रलय का सा दृश्य उपस्थित करते हुए जलाने लगे।

यत्र यत्र च दृश्यन्ते प्राणिनः खाण्डवालयाः।।१७।।
पलायन्तः प्रवीरौ तौ तत्र तत्राभ्यधावताम्।
खाण्डवे दह्यमाने तु भूताः शतसहस्रशः।।१८
उत्पेतुर्भैरवान् नादान् विनदन्त. समन्ततः।
तक्षकस्तुन तत्रासीन्नागराजो महाबलः।।१९।।
दह्यमाने वने तस्मिन् कुरुक्षेत्रं गतो हि सः।

उस समय जहाँ-जहाँ खाण्डव वन के निवासी प्राणी दिखाई देते थे। वे दोनों वीर वहीं दौड़ कर उनका पीछा करते थे। जब खाण्डव वन में चारों तरफ आग फैल गयी तो सैकड़ों हजारों प्राणी भयानक चीत्कार करते हुए सब तरफ उछलने कूदने लगे। जब खाण्डव वन जलाया जा रहा था, महाबली तक्षक नाग वहाँ नहीं था। वह कुरुक्षेत्र में गया हुआ था।

ततोऽसुराः सगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।।२०।।
उत्पेतुर्नादमतुलमुत्सृजन्तो रणार्थिनः।
अयः कणपचक्राश्मभुशुण्ड्युद्यतबाहवः।।२१।।
कृष्णपार्थौ जिघांसन्तः क्रोधसम्मूर्छितौजसः।
तेषामतिव्याहरतां शस्त्रवर्षं प्रमुञ्चताम्।।२२।।
प्रममाथोत्तमाङ्गानि बीभत्सुर्निशितैः शरैः।
कृष्णश्च सुमहातेजाश्चक्रेणारिविनाशनः।।२३।।
दैत्यदानवसङ्घानां चकार कदनं महत्।
न च स्म किंचिच्छक्नोति भूतं निश्चरितुं ततः।।२४।।
संछिद्यमानमिषुभिरस्यता सव्यसाचिना।

तब असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, और नाग जाति के लोग युद्ध के लिये महान कोलाहल करते हुए दौड़े हुए आये। उनके पास लोहे की गोली छोड़ने वाले यन्त्र, चक्र, पत्थर, भुशुण्डी, हाथों में थीं। वे क्रोध से बढ़े हुए तेज वाले होकर कृष्ण और अर्जुन को मार देना चाहते थे। शस्त्रास्त्रों की वर्षा करते हुए और डींग मारते हुए उनके सिर अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उड़ा दिये। शत्रुओं का विनाश करने वाले, महातेजस्वी श्रीकृष्ण ने भी चक्र के द्वारा दैत्यों और दानवों का महान विनाश किया। बाण चलाते हुए अर्जुन के बाणों से कट जाने के कारण कोई भी प्राणी वहाँ से बाहर नहीं मिल सका।

तथासुरं मयं नाम तक्षकस्य निवेशनात्।।२५।।
विप्रद्रवन्तं सहसा ददर्श मधुसूदनः।
विज्ञाय दानवेन्द्राणां मयं वै शिल्पिनां वरम्।।२६।।
जिघांसुर्वासुदेवस्तं चक्रमुद्यम्य धिष्ठितः।
स चक्रमुद्यतं दृष्ट्वा दिधक्षन्तं च पावकम्।।२७।।
अभिधावार्जुनेत्येवं मयस्त्राहीति चाब्रवीत्।
तं न भेतव्यमित्याह मयं पार्थो दयापरः।।२८।।
तद् वनं पावको धीमान् दिनानि दश पञ्च च।
ददाह कृष्णपार्थाभ्यां रक्षितः पाकशासनात्।।२९।।

तब श्रीकृष्ण जी ने अचानक तक्षक नाग के घर से निकल कर भागते हुए मय नाम के राक्षस को देखा। मय दानव राक्षसों का श्रेष्ठ शिल्पी था। उसे पहचान कर श्रीकृष्ण जी मारने के लिये चक्र लेकर खड़े हो गये। तब एक तरफ अग्नि और दूसरी तरफ श्री कृष्ण जी देख कर मयदानव अर्जुन दौड़ कर 'मुझे बचाओ' यह कहता हुआ चिल्लाने लगा। तब अर्जुन को उस पर दया आ गयी और वे बोले कि 'डरो मत' इस प्रकार उन बुद्धिमान अग्नि ब्राह्मण ने इन्द्र के आक्रमण से कृष्ण और अर्जुन के द्वारा रक्षा किये जाते हुए उस वन को पन्द्रह दिनों तक जलाया।

सभापर्व

पहला अध्याय : सभा भवन बनाने की तैयारी, श्रीकृष्ण का द्वारिका गमन।

ततोऽब्रवीन्मयः पार्थं वासुदेवस्य संनिधौ।
प्राञ्जलिःश्लक्ष्णया वाचा पूजयित्वा पुनः पुनः।। १।।
त्वया त्रातोऽस्मि कौन्तेय ब्रूहि किं करवाणि ते।

अर्जुन उवाच

कृतमेव त्वया सर्वं स्वस्ति गच्छ महासुर।। २।।
प्रीतिमान् भव मे नित्यं प्रीतिमन्तो वयं च ते।

मय उवाच

युक्तमेतत् त्वयि विभो यथाऽऽत्थ पुरुषर्षभ।। ३।।
प्रीतिपूर्वमहं किंचित् कर्तुमिच्छामि भारत।
अहं हि विश्वकर्मा वै दानवानां महाकविः।। ४।।
सोऽहं वै त्वत्कृते कर्तुं किंचिदिच्छामि पाण्डव।

उसके पश्चात् श्रीकृष्ण के पास बैठे हुए अर्जुन से मयदानव ने हाथ जोड़ कर उनकी बार-बार प्रशंसा करके मधुर वाणी में कहा कि हे कुन्ती पुत्र! आपने मेरी रक्षा की है, इसलिये आप बताइये कि मैं आपके लिये क्या कार्य करूँ? तब अर्जुन ने कहा कि हे महान असुर! तुमने ऐसा कह कर सब कुछ कर दिया। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम जाओ। तुम हमसे प्रेम रखना और हम तुम्हारे प्रति स्नेह का भाव रखेंगे। तब मय ने उत्तर दिया कि हे पुरुष श्रेष्ठ प्रभो! हे भारत! आपने जो कुछ कहा है वह आप जैसे श्रेष्ठ पुरुष ही कह सकते हैं, पर फिर भी मैं प्रेम पूर्वक आपके लिये कोई कार्य करना चाहता हूँ। मैं दानवों का विश्वकर्मा और शिल्पविद्या का महा पण्डित हूँ। हे पाण्डव! मैं आपके लिये किसी वस्तु का निर्माण करना चाहता हूँ।

अर्जुन उवाच

प्राणकृच्छ्राद् विमुक्तं त्वमात्मानं मन्यसे मया।। ५।।
एवं गते न शक्ष्यामि किंचित् कारयितुं त्वया।
न चापि तव संकल्पं मोघमिच्छामि दानव।। ६।।
कृष्णस्य क्रियतां किंचित् तथा प्रतिकृतं मयि।
ततो विचिन्त्य मनसा लोकनाथः प्रजापतिः।। ७।।
चोदयामास तं कृष्णः सभां वै क्रियतामिति।
यदि त्वं कर्तुकामोऽसि प्रियं शिल्पवतां वर।। ८।।
धर्मराजस्य दैतेय यादृशीमिह मन्यसे।

तब अर्जुन ने कहा कि क्योंकि तुम मेरे द्वारा अपने को प्राणों के संकट से मुक्त हुआ समझते हो, ऐसी स्थिति में मैं तुमसे अपना कोई कार्य नहीं करा सकता। किन्तु हे दानव! तुम्हारे संकल्प को मैं व्यर्थ भी नहीं करना चाहता, इसलिये तुम श्रीकृष्ण जी के लिये कोई कार्य कर दो। वही मेरे लिये भी किया हुआ हो जायेगा। तब प्रजा के स्वामी और प्रजा का पालन करने वाले श्रीकृष्ण ने मन ही मन कुछ सोच कर उससे कहा कि हे शिल्पकारों में श्रेष्ठ! यदि तुम कोई प्रिय कार्य करना चाहते हो तो हे दैत्य! तुम धर्मराज युधिष्ठिर के लिये जैसा तुम ठीक समझो एक सभा भवन बना दो।

यां कृतां नानुकुर्वन्ति मानवाः प्रेक्ष्य विस्मिताः।। ९।।
मनुष्यलोके सकले तादृशीं कुरु वै सभाम्।
यत्र दिव्यानभिप्रायान् पश्येम हि कृतांस्त्वया।। १०।।
असुरान् मानुषांश्चैव सभां तां कुरु वै मय।
प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं सम्प्रहृष्टो मयस्तदा।। ११।।
विमानप्रतिमां चक्रे पाण्डवस्य शुभां सभाम्।

वह सभा भवन ऐसा होना चाहिये, जिसकी कोई मनुष्य नकल नहीं कर सके और सारे मानव लोक में लोग उसे देख कर विस्मित हों। उस सभा भवन में देवताओं, असुरों, और मानवों की शिल्प कलाओं का प्रदर्शन हो। तब श्रीकृष्ण जी के उन वाक्यों को स्वीकार कर प्रसन्न हुए मय दानव ने पाण्डवों के लिये सात मंजिले भवन के रूप में उस सभा भवन को बनाने का विचार किया।

ततः कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजे युधिष्ठिरे।। १२।।
सर्वमेतत् समावेद्य दर्शयामासतुर्मयम्।
तस्मै युधिष्ठिरः पूजां यथार्हमकरोत् तदा।। १३।।
स तु तां प्रतिजग्राह मयः सत्कृत्य भारतः।
स कालं कंचिदाश्वस्य विश्वकर्मा विचिन्त्य तु।। १४।।
सभां प्रचक्रमे कर्तुं पाण्डवानां महात्मनाम्।

सर्वर्तुगुणसम्पन्नां दिव्यरूपां मनोरमाम्।। १५।।
दशकिष्कुसहस्रां तां मापयामास सर्वतः।

तब श्रीकृष्ण और अर्जुन ने धर्मराज युधिष्ठिर को सारी बातें बतायीं और मयदानव को उनसे मिलवाया। भरतवंशी युधिष्ठिर ने तब उसका यथायोग्य सत्कार किया और मयदानव ने भी आदर पूर्वक उनके सत्कार को ग्रहण किया। तब उसके बाद विश्वकर्मा मयदानव ने वहाँ कुछ दिनों तक आराम कर और विचार कर उन महात्मा पाण्डवों के लिये सभा भवन के निर्माण की तैयारी की। उसने तब सब ऋतुओं के योग्य, गुणों से युक्त, दिव्य रूप, और सुन्दर भूमि को चुन कर उसे सब तरफ से दस हजार हाथ के नाप से नपवाया।

उषित्वा खाण्डवप्रस्थे सुखवासं जनार्दनः।। १६।।
पार्थैः प्रीतिसमायुक्तैः पूजनार्होऽभिपूजितः।
गमनायं मतिं चक्रे पितुर्दर्शनलालसः।। १७।।
धर्मराजमथामन्त्र्य पृथां च पृथुलोचनः।
ववन्दे चरणौ मूर्ध्ना जगद्वन्द्यः पितृष्वसुः।। १८।।
स तया मूर्ध्न्युपाघ्रातः परिष्वक्तश्च केशवः।

पूजा के योग्य श्री कृष्ण जी, प्रेम से युक्त कुन्ती पुत्र के द्वारा सम्मानित होते हुए खाण्डव प्रस्थ में बहुत दिनों से सुख पूर्वक रह रहे थे। फिर उन विशाल नेत्रों वाले ने पिता के दर्शन की इच्छा से धर्मराज युधिष्ठिर और कुन्ती की आज्ञा लेकर जाने का विचार किया। लोगों के पूज्य श्रीकृष्ण जी ने तब अपनी बुआ कुन्ती के चरणों में प्रणाम किया और उन्होंने भी उन्हें अपनी छाती से लगा कर उनके सिर को सूँघा।

ददर्शानन्तरं कृष्णो भगिनीं स्वां महायशाः।। १९।।
तामुपेत्य हृषीकेशः प्रीत्या बाष्पसमन्वितः।
अर्थ्यं तथ्यं हितं वाक्यं लघु युक्तमनुत्तरम्।। २०।।
उवाच भगवान् भद्रां सुभद्रां भद्रभाषिणीम्।
तया स्वजनगामीनि श्रावितो वचनानि सः।। २१।।
सम्पूजितश्चाप्यसकृच्छिरसा चाभिवादितः।

फिर महायशस्वी, हृषीकेश अपनी बहिन सुभद्रा से मिले। उससे मिल कर प्रेम से उनकी आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने मंगलमय वचन बोलने वाली, कल्याणमयी, सुभद्रा को थोड़े अर्थभरे, सत्य हितकारी, युक्तियुक्त, और अकाट्य वचनों के द्वारा अपने जाने की आवश्यकता बताई। तब सुभद्रा ने उन्हें अपने बान्धवों से कहने के लिये अनेक सन्देश दिये और अनेक बार उनका सत्कार कर उन्हें सिर झुका कर अभिवादन किया।

तामनुज्ञाय वार्ष्णेयः प्रतिनन्द्य च भामिनीम्।। २२।।
ददर्शानन्तरं कृष्णां धौम्यं चापि जनार्दनः।
ववन्दे च यथान्यायं धौम्यं पुरुषसत्तमः।। २३।।
द्रौपदीं सान्त्वयित्वा च आमन्त्र्य च जनार्दनः।
भ्रातॄनभ्यगमद् विद्वान् पार्थेन सहितो बली।। २४।।

तब सुभद्रा को प्रसन्न कर और उससे अनुमति लेकर श्रीकृष्ण द्रौपदी और धौम्य मुनि से भी मिले। उन पुरुष श्रेष्ठ ने धौम्यमुनि की यथायोग्य वन्दना की, फिर द्रौपदी को सान्त्वना देकर तथा उसकी अनुमति लेकर वे विद्वान् और बलवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ दूसरे भाइयों के पास गये।

यात्राकालस्य योग्यानि कर्माणि गरुडध्वजः।
कर्तुकामः शुचिर्भूत्वा स्नातवान् समलंकृतः।। २५।।
स कृत्वा सर्वकार्याणि प्रतस्थे तस्थुषां वरः।
उपेत्य स यदुश्रेष्ठो बाह्यकक्षाद् विनिर्गतः।। २६।।
काञ्चनं रथमास्थाय तार्क्ष्यकेतनमाशुगम्।
गदाचक्रासिशार्ङ्गाद्यैरायुधैरावृतं शुभम्।। २७।।
प्रययौ पुण्डरीकाक्षः शैब्यसुग्रीववाहनः।

उसके पश्चात गरुड़ की ध्वजा वाले श्रीकृष्ण जी ने यात्रा के समय किये जाने वाले उचित कार्यों को करने के लिये पवित्र होकर स्नान किया और अलंकार धारण किये। उन प्रतिष्ठित पुरुषों में श्रेष्ठ, यदुश्रेष्ठ ने सारे कार्य करके वहाँ से प्रस्थान किया और भीतर से बाहरी ड्योढी को पार कर बाहर निकले। फिर गरुड़ की ध्वजा वाले, शीघ्रगामी शैब्य और सुग्रीव नाम के घोड़ों से युक्त, गदा, चक्र, खड्ग और शार्ङ्ग धनुष आदि आयुधों से सम्पन्न, उत्तम रथ पर आरूढ़ होकर उन कमलनयन ने अपनी यात्रा आरम्भ कर दी।

अन्वारुरोह चाप्येनं प्रेम्णा राजा युधिष्ठिरः।। २८।।
अपास्य चास्य यन्तारं दारुकं यन्तृसत्तमम्।
अभीषून् सम्प्रजग्राह स्वयं कुरुपतिस्तदा।। २९।।
उपारुह्यार्जुनश्चापि चामरव्यजनं सितम्।
रुक्मदण्डं बृहद्बाहुर्विदुधाव प्रदक्षिणम्।। ३०।।
तथैव भीमसेनोऽपि यमाभ्यां सहितो बली।
पृष्ठतोऽनुययौ कृष्णमृत्विक्पौरजनैः सह।। ३१।।
छत्रं शतशलाकं च दिव्यमाल्योपशोभितम्।

वैदूर्यमणिदण्डं च चामीकरविभूषितम्।। ३२।।
दधार तरसा भीमश्छत्रं तच्छार्ङ्गधन्वने।
उपारुह्य रथं शीघ्रं चामरव्यजने सिते।। ३३।।
नकुलः सहदेवश्च धूयमानौ जनार्दनम्।
स तथा भ्रातृभिः सर्वैः केशवः परवीरहा।। ३४।।
अन्वीयमानः शुशुभे शिष्यैरिव गुरुः प्रियैः।

जब श्रीकृष्ण जी चलने लगे, तब राजा युधिष्ठिर प्रेम में भर कर, उनके रथ पर चढ़ कर, उनके श्रेष्ठ सारथी दारुक को हटा कर स्वयं उसकी जगह जा बैठे और उन कुरुराज ने घोड़ों की बागडोर अपने हाथ में ले ली। फिर विशाल भुजाओं वाले अर्जुन भी रथ पर चढ़ कर स्वर्ण दंड वाले श्वेत चँवर को उनकी दायीं तरफ़ से डुलाने लगे। इसी प्रकार बलवान भीमसेन भी, जो नकुल और सहदेव, ऋत्विजों एवं पुरवासियों के साथ पीछे-पीछे आ रहे थे, उन शार्ङ्गधनुषधारी श्रीकृष्ण के ऊपर शीघ्रता से दिव्यमालाओं से सुशोभित, सौ तीलियों वाले, स्वर्ण से विभूषित, उस छत्र को लगाने लगे जिसका डण्डा वैदूर्यमणि निर्मित था। नकुल सहदेव भी शीघ्रता से रथ पर चढ़ कर श्रीकृष्ण जी के ऊपर सफेद चँवरों के डुलाने लगे। इस प्रकार शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले वे श्री कृष्ण उन सारे भाइयों के साथ ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे अपने प्रिय शिष्यों के साथ उनके गुरु यात्रा करते हुए सुशोभित होते हैं।

योजनार्धमथो गत्वा कृष्णः परपुरंजयः।। ३५।।
युधिष्ठिरं समामन्त्र्य निवर्तस्वेति भारतं।
ततोऽभिवाद्य गोविन्दः पादौ जग्राह धर्मवित्।। ३६।।
उत्थाप्य धर्मराजस्तु मूर्ध्न्युपाघ्राय केशवम्।
पाण्डवो यादवश्रेष्ठं कृष्णं कमललोचनम्।। ३७।।
गम्यतामित्यनुज्ञाप्य धर्मराजो युधिष्ठिरः।
ततस्तैः संविदं कृत्वा यथावन्मधुसूदनः।। ३८।।
निवर्त्य च तथा कृच्छ्रात् पाण्डवान् सपदानुगान्।
स्वां पुरीं प्रययौ हृष्टो यथा शक्रोऽमरावतीम्।। ३९।।
लोचनैरनुजग्मुस्ते तमादृष्टिपथात् तदा।

तब दो कोस दूर जाने पर शत्रुओं के नगर को नष्ट करने वाले श्रीकृष्ण जी ने भरत श्रेष्ठ युधिष्ठिर से जाने की अनुमति लेकर उनसे अनुरोध किया कि वे वापिस लौट जायें। धर्म को जानने वाले श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर के पैरों को पकड़ लिया और धर्मराज पाण्डव ने भी उन कमल नयन यादव श्रेष्ठ कृष्ण को उठा कर उनके मस्तक को सूँघ कर उन्हें जाओ कह कर जाने की अनुमति दी। फिर पुनः आने का निश्चित वादा कर श्रीकृष्ण जी ने बड़ी कठिनाई से पाण्डवों और उनके साथ पैदल चलते हुए नागरिकों को लौटाया और अपनी द्वारिका की तरफ प्रसन्नता पूर्वक ऐसे प्रस्थान किया जैसे इन्द्र अपनी अमरावती की तरफ जा रहे हों। पाण्डव लोग जब तक वे दिखाई देते रहे, उनका अपनी निगाहों से पीछा करते रहे।

मनोभिरनुजग्मुस्ते कृष्णं प्रीतिसमन्वयात्।। ४०।।
अतृप्तमनसामेव तेषां केशवदर्शने।
क्षिप्रमन्तर्दधे शौरिश्चक्षुषां प्रियदर्शनः।
अकामा एव पार्थास्ते गोविन्दगतमानसाः।। ४१।।

यद्यपि श्रीकृष्ण जी का दिखाई देना बन्द हो गया था, फिर भी आँखों को प्रिय लगने वाले उनके प्रति प्रेम से भरे हुए कुन्ती पुत्रों की उनके दर्शनों से तृप्ति नहीं हुई थी, इसलिये वे मन से ही उनका पीछा करते रहे।

दूसरा अध्याय : मयासुर के द्वारा सभा भवन का निर्माण।

मयोऽपि स महाभागः सर्वरत्नविभूषिताम्।
विधिवत् कल्पयामास सभां धर्मसुताय वै।। १।।
गदां च भीमसेनाय प्रवरां प्रददौ तदा।
देवदत्तं चार्जुनाय शङ्खप्रवरमुत्तमम्।। २।।
यस्य शङ्खस्य नादेन भूतानि प्रचकम्पिरे।
दशकिष्कुसहस्राणि समन्तादायताभवत्।। ३।।
भ्राजमाना तथात्यर्थं दधार परमं वपुः।
अभिघ्नतीव प्रभया प्रभामकर्मस्य भास्वराम्।। ४।।

तत्पश्चात् महाभाग मयदानव ने भी धर्म पुत्र युधिष्ठिर के लिये सब प्रकार के रत्नों से विभूषित सभाभवन को बनाने के लिये विधिवत् कल्पना की। उसने भीमसेन को एक उत्तम गदा प्रदान की और अर्जुन को एक श्रेष्ठ और उत्तम देवदत्त नाम का शंख भेंट किया, जिसकी ध्वनि से प्राणी लोग काँपने लगते थे। फिर उसने उस सभाभवन का निर्माण किया, जो सब तरफ से दस हजार बालिश्त लम्बा और चौथा था, जिसकी आकृति अत्यन्त देदीप्यमान

और मनोहर थी। वह अपनी प्रभा से सूर्य की तेजोमयी प्रभा की स्पर्धा करता था।

नवमेघप्रतीकाशा दिवमावृत्य विष्ठिता।
उत्तमद्रव्यसम्पन्ना रत्नप्राकारतोरणा।। ५।।
बहुचित्रा बहुधना सुकृता विश्वकर्मणा।
तस्यां सभायां नलिनीं चकाराप्रतिमां मयः।। ६।।
पद्मसौगन्धिकवतीं नानाद्विजगणायुताम्।
पुष्पितैः पङ्कजैश्चित्रां कूर्मैर्मत्स्यैश्च काञ्चनैः।। ७।।
मन्दानिलसमुद्धूतां मुक्ताबिन्दुभिराचिताम्।
चित्रस्फटिकसोपानां निष्पङ्कसलिलां शुभाम्।

अपनी ऊँचाई के कारण वह नये बादलों की घटा के समान मानों आकाश को घेर कर खड़ा हुआ था। उसका निर्माण उत्तम कोटि के द्रव्यों से किया गया था। उसके परकोटे और तोरण में कीमती पत्थर जड़े हुए थे, उसमें बहुत सुन्दर चित्र बने हुए थे, वह बहुत से गुणों से युक्त था। उसका निर्माण मयदानव के द्वारा बहुत उत्तम रीति से किया गया था। उस सभाभवन में मयदानव ने एक सुन्दरता में अप्रतिम पुष्करिणी बनाई हुई थी। उसमें सुगन्ध वाले कमल खिले रहते थे और अनेक तरह के पक्षी निवास करते थे। उन खिले हुए कमलों और उसमें रहने वालीं सुनहरी मछलियों और कछुओं से उस पुष्करिणी की बड़ी विचित्र शोभा हो रही थी। उसमें कीचड़ रहित निर्मल जल भरा हुआ था और पानी में उतरने के लिये स्फटिक पत्थर की विचित्र सीढ़ियाँ बनी हुईं थीं।

महामणिशिलापट्टबद्ध पर्यन्तवेदिकाम्।। ८।।
मणिरत्नचितां तां तु केचिदभ्येत्य पार्थिवाः।
दृष्ट्वापि नाभ्यजानन्त तेऽज्ञानात् प्रपतन्त्युत।। ९।।
तां सभामभितो नित्यं पुष्पवन्तो महाद्रुमाः।
आसन् नानाविधा लोकाः शीतच्छायामनोरमाः।। १०।।
ईदृशीं तां सभां कृत्वा मासैः परिचतुर्दशैः।
निष्ठितां धर्मराजाय मयो राज्ञे न्यवेदयत्।। ११।।

जब वायु के चलने से जल के उद्वेलित होने पर बूँदें उछल कर कमल की पंखुड़ियों पर गिरती थीं, तब उनकी जगमगाहट से वह पुष्करिणी मोतियों से भरी हुई प्रतीत होती थी। उसके चारों तरफ बैठने के लिये मूल्यवान पत्थरों से जड़ाऊ वेदियाँ बनायी हुई थीं। मणियों और रत्नों से जटित होने के कारण उसके देखने के लिये आये हुए कुछ राजा लोग तो उसे देखकर भी नहीं पहचान पाते थे और सूखी जमीन समभ्र कर उसमें गिर पड़ते थे। उस सभा भवन के चारों तरफ सदा फूलों से युक्त रहने वाले सुन्दर विशाल वृक्ष थे, जिनकी छाया शीतल थी और जो सदा वायु के चलने से लहराते रहते थे। इस प्रकार के उस सभा भवन को मयदानव ने चौदह मास में तैयार किया और उसके तैयार होने पर राजा धर्मराज को उसने सूचित किया।

ततः प्रवेशनं तस्यां चक्रे राजा युधिष्ठिरः।
अयुतं भोजयित्वा तु ब्राह्मणानां नराधिपः।। १२।।
साज्येन पायसेनैव मधुना मिश्रितेन च।
भक्ष्यप्रकारैः विविधैः पेयैश्च बहुविस्तरैः।। १३।।

तब राजा युधिष्ठिर ने घी और शहद मिलायी हुई खीर, सब प्रकार से तरह-तरह के भक्ष्य पदार्थों और बहुत प्रकार के पेय पदार्थों के द्वारा दस हजार ब्राह्मणों को भोजन करा कर उस सभा भवन में प्रवेश किया।

तीसरा अध्याय : युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ के विषय में विचार विमर्श।

भूयश्चाद्भुतवीर्यौजा धर्ममेवानुचिन्तयन्।
किं हितं सर्वलोकानां भवेदिति मनो दधे।। १।।
अनुगृह्णन् प्रजाः सर्वाः सर्वधर्मभृतां वरः।
अविशेषेण सर्वेषां हितं चक्रे युधिष्ठिरः।। २।।
सर्वेषां दीयतां देयं मुञ्चन् कोपमदावुभौ।
साधु धर्मेति धर्मेति नान्यच्छ्रूयेत भाषितम्।। ३।।
एवंगते ततस्तस्मिन् पितरीवाश्वसञ्जनाः।
न तस्य विद्यते द्वेष्टा ततोऽस्याजातशत्रुता।। ४।।

इसके पश्चात् अद्भुत् पराक्रम और तेज वाले धर्मराज अपने धर्म का ही चिन्तन करते हुए, किस प्रकार सारी प्रजा की भलाई हो, इस विषय पर ही मन को लगाने लगे। सारे धर्मधारियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर सारी प्रजाओं पर कृपा करते हुए बिना किसी भेदभाव से सबकी भलाई करने लगे। क्रोध और अभिमान को छोड़ कर उन्होंने आदेश दिया हुआ था कि देने योग्य पदार्थ सबको दिये जायें। उस समय उनके राज्य में धर्म पालन करने वाले युधिष्ठिर

धन्य हैं, धर्मस्वरूप युधिष्ठिर धन्य हैं, इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सुना जाता था। इस प्रकार के वातावरण में प्रजा उन पर पिता के समान भरोसा करने लगी थी। उनसे द्वेष करने वाला क्योंकि उस समय कोई नहीं था, इसलिये वे अजातशत्रु के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

परिग्रहान्नरेन्द्रस्य भीमस्य परिपालनात्।
शत्रूणां क्षपणाच्चैव बीभत्सोः सव्यसाचिनः।। ५।।
धीमतः सहदेवस्य धर्माणामनुशासनात्।
वैनत्यात् सर्वतश्चैव नकुलस्य स्वभावतः।। ६।।
अविग्रहा वीतभयाः स्वधर्मनिरताः सदा।
यस्मिन्नधिकृतः सम्राड् भ्राजमानो महायशाः।। ७।।
अनुरक्ताः प्रजा आसन्नागोपाला द्विजातयः।
स मन्त्रिणः समानाय्य भ्रातृंश्च वदतां वरः।। ८।।
राजसूयं प्रति तदा पुनः पुनरपृच्छत।

युधिष्ठिर के द्वारा सब पर कृपा करने से, भीम सेन के द्वारा सबकी रक्षा करने से, अर्जुन के द्वारा शत्रुओं को नष्ट करने से, धीमान सहदेव के द्वारा धर्म का पालन करवाने से और नकुल के द्वारा सबके साथ विनय पूर्ण व्यवहार के कारण प्रजा के लोग कलह रहित, भय से रहित, और सदा अपने कर्तव्य का पालन करने वाले बन गए थे। वे तेजस्वी महायशस्वी सम्राट जिस देश पर अधिकार करते थे, वहाँ की प्रजा भी ग्वालों से लेकर ब्राह्मणों तक उनसे प्रेम करने लगती थी। एक बार वक्ताओं में श्रेष्ठ उन राजा युधिष्ठिर ने भाइयों और मंत्रियों को बुला कर उनसे राजसूय यज्ञ के विषय में बार-बार पूछा।

ते पृच्छमानाः सहिता वचोऽर्थ्यं मन्त्रिणस्तदा।। ९।।
युधिष्ठिरं महाप्राज्ञं यियक्षुमिदमब्रुवन्।
समर्थोऽसि महाबाहो सर्वे ते वशगा वयम्।। १०।।
अचिरात् त्वं महाराज राजसूयमवाप्स्यसि।
अविचार्य महाराज राजसूये मनः कुरु।। ११।।
इत्येवं सुहृदः सर्वे पृथक् च सह चाब्रुवन्।
स भ्रातृभिः पुनर्धीमानृत्विग्भिश्च महात्मभिः।। १२।।
मन्त्रिभिश्चापि सहितो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
धौम्यद्वैपायनाद्यैश्च मन्त्रयामास मन्त्रवित्।। १३।।

पूछे जाने पर उन मंत्रियों ने तब एक साथ यज्ञ के इच्छुक महाप्राज्ञ युधिष्ठिर से अर्थ से युक्त यह बात कही कि हे महाबाहु महाराज! हम आपकी आज्ञा के आधीन हैं। आप राजसूय यज्ञ करने में समर्थ हैं, आप शीघ्र ही उसे पूरा करेंगे। आप बिना कुछ सोच विचार के राजसूय यज्ञ को करने में अपना मन लगाइये। इस प्रकर उन सब हितैषियों ने अलग-अलग और एक साथ भी यही बात कही। मन्त्रणा के महत्व को जानने वाले धीमान् धर्मराज युधिष्ठिर ने फिर अपने महात्मा भाइयों से, ऋत्विजों से, मंत्रियों से, धौम्य और व्यास मुनि आदि से इस बारे में मन्त्रणा की।

स तु राजा महाप्राज्ञः पुनरेवात्मनाऽऽत्मवान्।
भूयो विममृशे पार्थो लोकानां हितकाम्यया।। १४।।
स निश्चयार्थं कार्यस्य कृष्णमेव जनार्दनम्।
सर्वलोकात् परं मत्वा जगाम मनसा हरिम्।। १५।।
पाण्डवस्तर्कयामास कर्मभिर्देवसम्मतैः।
नास्य किंचिदविज्ञातं नास्य किंचिदकर्मजम्।। १६।।
गुरुवद् भूतगुरवे प्राहिणोद् दूतमञ्जसा।
शीघ्रगेन रथेनाशु स दूतः प्राप्य यादवान्।। १७।।
द्वारकावासिनं कृष्णं द्वारवत्यां समासदत्।

तब उस मनस्वी और महाप्राज्ञ कुन्ती पुत्र राजा ने लोगों के हित की कामना से अपने मन में सोच विचार किया और फिर जनार्दन श्रीकृष्ण को सब लोगों से श्रेष्ठ मान कर कार्य के निश्चय के लिये मन से उनका चिन्तन किया। उन्होंने विचार किया कि अपने देवोचित कर्मों के कारण श्री कृष्ण के लिये न तो कोई कार्य अज्ञात है और न कोई कार्य ऐसा है, जिसे वे न कर सकें। इसलिये उन्होंने गुरु के समान श्रीकृष्ण के पास, जो कि दूसरे लोगों के भी गुरु थे, शीघ्रता के साथ दूत को भेजा। वह दूत तब शीघ्रगामी रथ के द्वारा जल्दी ही यादवों के पास पहुँच कर द्वारिका में द्वारिकानिवासी श्रीकृष्ण के पास पहुँच गया।

स प्रह्वः प्राञ्जलिर्भूत्वा व्यज्ञापयत माधवम्।। १८।।
त्वद्दर्शनं महाबाहो काङ्क्षते स युधिष्ठिरः।
इन्द्रसेनवचः श्रुत्वा यादवप्रवरो बली।। १९।।
दर्शनाकाङ्क्षिणं पार्थं दर्शनाकाङ्क्षयाच्युतः।
इन्द्रसेनेन सहित इन्द्रप्रस्थमगात् तदा।। २०।।
इन्द्रप्रस्थगतं पार्थमभ्यगच्छज्जनार्दनः।
स गृहे पितृवद् भ्रात्रा धर्मराजेन पूजितः।। २१।।
भीमेन च ततोऽपश्यत् स्वसारं प्रीतिमान् पितुः।

उस दूत ने विनीतभाव से हाथ जोड़ कर श्रीकृष्ण जी से निवेदन किया कि हे महाबाहु! युधिष्ठिर को

आपके दर्शन की अभिलाषा है। तब दूत इन्द्रसेन के वचन सुन कर वे बलवान्, अच्युत, यदुश्रेष्ठ उन कुन्तीपुत्र के दर्शन की अभिलाषा से इन्द्रसेन के साथ ही इन्द्रप्रस्थ में आ गये। वहाँ वे इन्द्रप्रस्थ में उन कुन्तीपुत्र से मिले तथा भाई धर्मराज युधिष्ठिर ने और भीम ने पिता के समान उनका सत्कार किया। उसके पश्चात् वे अपनी बुआ कुन्ती से प्रसन्नतापूर्वक मिले।

प्रीतः प्रीतेन सुहृदा रेमे स सहितस्तदा।। २२।।
अर्जुनेन यमाभ्यां च गुरुवत् पर्युपासितः।
तं विश्रान्तं शुभे देशे क्षणिनं कल्यमच्युतम्।। २३।।
धर्मराजः समागम्याज्ञापयत् स्वप्रयोजनम्।
प्रार्थितो राजसूयो मे न चासौ केवलेप्सया।। २४।।
प्राप्यते येन तत् ते हि विदितं कृष्ण सर्वशः।
यस्मिन् सर्वं सम्भवति यश्च सर्वत्र पूज्यते।। २५।।
यश्च सर्वेश्वरो राजा राजसूयं स विन्दति।

फिर वे बड़े प्रेम से अपने मित्र अर्जुन से मिल कर प्रसन्न हुए। अर्जुन और दोनों जुड़वाँ भाई नकुल सहदेव के द्वारा उनका गुरु की भाँति सत्कार किया गया। जब वे अच्युत एक पवित्र स्थान में विश्राम कर चुके तब धर्मराज के उनके पास आकर उन्हें अपने प्रयोजन को बताया। उन्होंने कहा हे कृष्ण! मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ, पर केवल इच्छा करने से यह यज्ञ नहीं हो सकता। इस यज्ञ को करने के लिये क्या करना चाहिये, वह आपको सब विदित है। जो सारे कर्य कर सकता है, जिसकी सब जगह पूजा होती है, जो सारे राजाओं में श्रेष्ठ है, वही इस यज्ञ को कर सकता है।

तं राजसूयं सुहृदः कार्यमाहुः समेत्य मे।। २६।।
तत्र मे निश्चिततमं तव कृष्ण गिरा भवेत्।
केचिद्धि सौहृदादेव न दोषं परिचक्षते।। २७।।
स्वार्थहेतोस्तथैवान्ये प्रियमेव वदन्त्युत।
प्रियमेव परीप्सन्ते केचिदात्मनि यद्धितम्।। २८।।
एवम्प्रायाश्च दृश्यन्ते जनवादाः प्रयोजने।
त्वं तु हेतूनतीत्यैतान् कामक्रोधौ व्युदस्य च।
परमं यत् क्षमं लोके यथावद् वक्तुमर्हसि।। २९।।

इस राजसूय यज्ञ के लिये मेरे सारे मित्र एकत्र होकर कह रहे हैं, पर हे कृष्ण! इस विषय में अन्तिम निर्णय तो आपकी वाणी से ही होगा। मुझसे इस यज्ञ के लिये कहने वालों में से कुछ तो केवल मित्र भाव से ही मेरे दोषों को नहीं देख रहे हैं, कुछ अपने स्वार्थ के कारण ऐसी प्रिय बात कहते हैं। कुछ जो उनके अपने लिये हितकर है, उसी को मेरे लिये भी हितकारी समझते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रयोजनों को लेकर लोग अपनी सलाह देते हैं। पर आप तो इन सारे कारणों से ऊपर उठ कर काम और क्रोध से रहित होकर जो कुछ अत्यन्त कल्याणकारी और करने योग्य है, उसी को यथार्थ रूप में कहेंगे।

चौथा अध्याय : श्रीकृष्ण की राजसूय यज्ञ के लिये सम्मति।

कृष्ण उवाच

सर्वैर्गुणैर्महाराज राजसूयं त्वमर्हसि।
जानतस्त्वेव ते सर्वं किंचिद् वक्ष्यामि भारत।। १।।
ऐलस्येक्ष्वाकुवंशस्य प्रकृतिं परिचक्षते।
राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथान्ये क्षत्रिया भुवि।। २।।
ऐलवंश्याश्च ये राजंस्तथैवेक्ष्वाकवो नृपाः।
तानि चैकशतं विद्धि कुलानि भरतर्षभ।। ३।।
इदानीमेव वै राजञ्जरासंधो महीपतिः।
अभिभूय श्रियं तेषां कुलानामभिषेचितः।। ४।।
स्थितो मूर्ध्नि नरेन्द्राणामोजसाऽऽक्रम्य सर्वशः।

तब श्रीकृष्ण जी कहा कि हे भरत श्रेष्ठ महाराज! आप अपने अन्दर विद्यमान सारे गुणों के कारण राजसूय यज्ञ को कर सकते हैं। आप सब कुछ जानते ही हैं फिर भी आपसे कुछ कहता हूँ कि आजकल राजाओं के समूह तथा दूसरे भी पृथ्वी पर जो क्षत्रिय हैं, वे अपने को इक्ष्वाकु की और पुरुरवा की सन्तान कहते हैं। हे भरत श्रेष्ठ! वे पुरुरवा के और इक्ष्वाकु के वंश के जो राजा लोग हैं, उनके एक सौ कुल इस समय विद्यमान हैं। पर इस समय राजा जरासन्ध उन सब राजाओं की राजलक्ष्मी के लाँघ कर सम्राट् के पद पर अभिषिक्त है। वह अपने तेज से सब पर आक्रमण कर उनका सिरमौर हो रहा है।

सोऽवनिं मध्यमां भुक्त्वा मिथोभेदममन्यत।। ५।।
प्रभुर्यस्तु परो राजा यस्मिन्नेकवशे जगत्।
तं स राजा जरासंधं संश्रित्य किल सर्वशः।। ६।।

राजन् सेनापतिर्जातः शिशुपालः प्रतापवान्।
तमेव च महाराज शिष्यवत् समुपस्थितः॥ ७॥
वक्रः करूषाधिपतिर्मायायोधी महाबलः।
अपरौ च महावीर्यौ महात्मानौ समाश्रितौ॥ ८॥
जरासंधं महावीर्यं तौ हंसडिम्मकावुभौ।

वह मध्यमार्ग का प्रयोग करता हुआ आपस में भेद उत्पन्न करना पसन्द करता है। वही इस समय सबसे अधिक प्रभावशाली है। उसके वश में सारा जगत है। प्रतापी शिशुपाल भी सब तरफ से जरासन्ध का ही आश्रय लेकर उसका प्रधान सेनापति हो गया है। छल कपट से युद्ध करने वाला महाबली करूष देश का स्वामी दन्तवक्र भी उसके सामने शिष्य के समान खड़ा रहता है। दूसरे हंस और डिम्भक नाम के महापराक्रमी महान् योद्धा भी महापराक्रमी जरासन्ध का आश्रय ले चुके हैं।

दन्तवक्रः करूषश्च करमो मेघवाहनः॥ ९॥
मूर्ध्ना दिव्यमणिं बिभ्रद् यमद्भुतमणिं विदुः।
मुरं च नरकं चैव शास्ति यो यवनाधिपः॥ १०॥
भगदत्तो महाराज वृद्धस्तव पितुः सखा।
स वाचा प्रणतस्तस्य कर्मणा च विशेषतः॥ ११॥
स्नेहबद्धश्च मनसा पितृवद् भक्तिमांस्त्वयि।
प्रतीच्यां दक्षिणं चान्तं पृथिव्याः प्रति यो नृपः॥ १२॥
मातुलो भवतः शूरः पुरुजित् कुन्तिवर्धनः।
स ते सन्नतिमानेकः स्नेहतः शत्रुसूदनः॥ १३॥

करूष देश का राजा दन्तवक्र, करभ और मेघवाहन अपने सिर पर दिव्य मणियों को धारण करते हुए भी जरासन्ध को ही अपने सिर की अद्‌भुत मणि मानते हैं। जो शक्तिशाली यवन राजा मुर देश तथा नरक देश पर शासन करता है, वह बूढ़ा भगदत्त भी जो आपके पिता का मित्र है, वाणी और कार्यों के द्वारा उसके आगे नत मस्तक रहता है, यद्यपि वह मन से आपके प्रति पिता के समान प्रेम करता है। जो पश्चिम से लेकर दक्षिण किनारे तक की भूमि पर शासन करते हैं, जो तुम्हारे मामा है, वे शूरवीर कुन्तीभोज के कुल के वर्धक, पुरुजित, शत्रुसूदन, अकेले आपके प्रति स्नेह का भाव रखते हैं।

जरासंधं गतस्त्वेव पुरा यो न मया हतः।
पुरुषोत्तमविज्ञातो योऽसौ चेदिषु दुर्मतिः॥ १४॥
आत्मानं प्रतिजानाति लोकेऽस्मिन् पुरुषोत्तमम्।
वङ्गपुण्ड्रकिरातेषु राजा बलसमन्वितः॥ १५॥
पौण्ड्रको वासुदेवेति योऽसौ लोकेऽभिविश्रुतः।
चतुर्थभाग् महाराज भोज इन्द्रसखो बली॥ १६॥
विद्याबलाद् यो व्यजयत् सपाण्ड्यक्रथकैशिकान्।
भ्राता यस्याकृतिः शूरो जामदग्न्यसमोऽभवत्॥ १७॥
स भक्तो मागधं राजा भीष्मकः परवीरहा।

जिसे पहले मैंने मारा नहीं था, जो दुष्ट चेदि देश में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध है। जो स्वयं भी अपने को इस संसार में पुरुषोत्तम समझता है, जो बल से युक्त बंग, पुण्ड्र और किरात देशों का राजा है, जो संसार में वासुदेव नाम से प्रसिद्ध है, वह पौण्ड्र राजा भी जरासन्ध से ही मिला हुआ है। जो भोजवंशी राजा भीष्मक, बलवान और पृथिवी के एक चौथाई भाग के स्वामी हैं तथा इन्द्र के मित्र हैं जिन्होंने अपनी विद्या के बल से पाण्ड्य, क्रथ और कैशिक देशों पर विजय की है। जिनका भाई आकृति, शूरवीरता में परशुराम जी के समान है, वह शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले भी मगधराज जरासन्ध के भक्त हैं।

प्रियाण्याचरतः प्रह्वान् सदा सम्बन्धिनस्ततः॥ १८॥
भजतो न भजत्यस्मानप्रियेषु व्यवस्थितः।
न कुलं स बलं राजन्नभ्यजानात् तथाऽऽत्मनः॥ १९॥
पश्यमानो यशो दीप्तं जरासंधमुपस्थितः।
उदीच्याश्च तथा भोजाः कुलान्यष्टादश प्रभो॥ २०॥
जरासंधभयादेव प्रतीचीं दिशमास्थिताः।

हम उनके संबंधी हैं, सदा विनीत होकर उनका प्रिय करते हैं, फिर भी वे अपने भक्त हमसे मेल नहीं करते हैं और हमारे शत्रुओं से मेल करते हैं। हे राजन्! वे अपने कुल और बल की ओर ध्यान न देकर जरासन्ध के उज्ज्वल यश को देखकर ही उसके सामने उपस्थित रहते हैं। हे प्रभो! उत्तर में रहने वाले भोज वंशियों के अट्‌ठारह कुल भी जरासन्ध के भय से ही पश्चिम दिशा की तरफ चले गये हैं।

शूरसेना भद्रकारा बोधाः शाल्वाः पटच्चराः॥ २१॥
सुस्थलाश्चसुकुट्टाश्च कुलिन्दाः कुन्तिभिः सह।
शाल्वायनाश्च राजानः सोदर्यानुचरैः सह॥ २२॥
तथोत्तरां दिशं चापि परित्यज्य भयार्दिताः।
मत्स्याः संन्यस्तपादाश्च दक्षिणां दिशमाश्रिताः॥ २३॥

शूरसेन, भद्रकार, बोध, शाल्व, पटच्चर, सुस्थल, सुकुट्ट, कुलिन्द, कुन्ति, शाल्यवायन, मत्स्य,

संन्यस्तपाद जो उत्तर दिशा में रहते थे, जरासन्ध के भय से पीड़ित होकर अपने सगे भाइयों और सेवकों के साथ दक्षिण दिशा को भाग गये हैं।

कस्यचित् त्वथ कालस्य कंसो निर्मथ्य यादवान्।
बार्हद्रथसुते देव्यावुपागच्छद् वृथामतिः।। २४।।
अस्तिः प्राप्तिश्च नाम्ना ते सहदेवानुजेऽबले।
बलेन तेन स्वज्ञातीनभिभूय वृथामतिः।। २५।।
श्रैष्ठ्यं प्राप्तः स तस्यासीदतीवापनयो महान्।
भोजराजन्यवृद्धैश्च पीड्यमानैर्दुरात्मना।। २६।।
ज्ञातित्राणमभीप्सद्भिरस्मत्सम्भावना कृता।
दत्त्वाक्रूराय सुतनुं तामाहुकसुतां तदा।। २७।।
संकर्षणद्वितीयेन ज्ञातिकार्यं मया कृतम्।
हतौ कंससुनामानौ मया रामेण चाप्युत।। २८।।

कुछ समय पहले व्यर्थ बुद्धि वाले कंस ने जरासंध की दो पुत्रियों के साथ विवाह किया। वे दोनों बहनें अस्ति और प्राप्ति नाम की थीं और सहदेव की छोटी बहन थीं। कंस अपने बल से अपने जाति भाइयों को दबा कर श्रेष्ठता को प्राप्त हो गया था। वह व्यर्थ बुद्धि वाला बड़ा अत्याचारी था। तब उस दुष्ट से पीडित भोजराज आदि वृद्धों ने अपने जाति भाइयों की सुरक्षा को चाहते हुए हमसे प्रार्थना की। तब आहुक पुत्री सुतनु का विवाह अक्रूर से करा कर बलराम की सहायता से मैंने जाति भाइयों का कार्य किया। मैंने तथा बलराम ने कंस और सुनामा को मार दिया।

भये तु समतिक्रान्ते जरासंधे समुद्यते।
मन्त्रोऽयं मन्त्रितो राजन् कुलैरष्टादशावरैः।। २९।।
अनारभन्तो निघ्नन्तो महास्त्रैः शत्रुघतिभिः।
न हन्यामो वयं तस्य त्रिभिर्वर्षशतैर्बलम्।। ३०।।
तस्य ह्यमरसंकाशौ नामभ्यां हंसडिम्भकौ।
तावुभौ सहितौ वीरौ जरासंधश्च वीर्यवान्।। ३१।।
त्रयस्त्रयाणां लोकानां पर्याप्ता इति मे मतिः।
न हि केवलमस्माकं यावन्तोऽन्ये च पार्थिवाः।। ३२।।
तथैव तेषामासीच्च बुद्धिर्बुद्धिमतां वर।

तब कंस का भय तो समाप्त हो गया, पर जरासन्ध का भय उपस्थित हो गया। हे राजन् तब अठारह कुलों ने आपस में यह सलाह की कि यदि हम शत्रुओं का विनाश करने वाले महान् अस्त्रों से लगातार प्रहार करते रहें तो भी तीन सौ वर्षों में भी उसकी सेना को समाप्त नहीं कर सकते। उसके देवताओं के समान बलशाली हंस और डिम्भक नाम के दो सहायक थे। उन दोनों वीरों के साथ प्रतापी जरासन्ध मिल कर ये तीनों, तीनों लोकों का सामना कर सकते थे, ऐसा मेरा विचार है।

अथ हंस इति ख्यातः कश्चिदासीन्महान् नृपः।। ३३।।
रामेण स हतस्तत्र संग्रामेऽष्टादशावरे।
हतो हंस इति प्रोक्तमथ केनापि भारत।। ३४।।
तच्छ्रुत्वाडिम्भको राजन् यमुनाम्भस्यमज्जत।
विना हंसेन लोकेऽस्मिन् नाहं जीवितुमुत्सहे।। ३५।।
इत्येतां मतिमास्थाय डिम्भको निधनं गतः।
तथा तु डिम्भकं श्रुत्वा हंसः परपुरंजयः।। ३६।।
प्रपेदे यमुनामेव सोऽपि तस्यां न्यमज्जत।

कोई हंस नाम से प्रसिद्ध महान् राजा था। वह जरासन्ध के साथ सत्रहवें युद्ध में बलराम के हाथ मारा गया। हे भरतश्रेष्ठ! तब किसी ने चिल्ला कर कहा कि हंस मारा गया। हे राजन्! यह सुन कर डिम्भक यमुना के जल में कूद कर मर गया। मैं हंस के बिना जीवित नहीं रह सकता यह सोचकर डिम्भक ने आत्महत्या कर ली। तब डिम्भक को इस प्रकार मरा हुआ सुन कर शत्रुओं के नगर को नष्ट करने वाला हंस भी यमुना में कूद गया और उसमें डूब कर मर गया।

तौ स राजा जरासंधः श्रुत्वा च निधनं गतौ।। ३७।।
पुरं शून्येन मनसा प्रययौ भरतर्षभ।
ततो वयममित्रघ्न तस्मिन् प्रतिगते नृपे।। ३८।।
पुनरानन्दिनः सर्वे मथुरायां वसामहे।
यदा त्वभ्येत्य पितरं सा वै राजीवलोचना।। ३९।।
कंसभार्या जरासंधं दुहिता मागधं नृपम्।
चोदयत्येव राजेन्द्र पतिव्यसनदुःखिता।। ४०।।
पतिघ्नं मे जहीत्येवं पुनः पुनररिंदम।
ततो वयं महाराज तं मन्त्रं पूर्वमन्त्रितम्।। ४१।।
संस्मरन्तो विमनसो व्यपयाता नराधिप।

तब राजा जरासंध उन दोनों की मृत्यु के बारे में सुन कर हे भरत श्रेष्ठ! उदास मन से अपने नगर को लौट गया। तब हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! उसके लौट जाने पर हम पुनः आनन्द के साथ मथुरा में रहने लगे। हे शत्रु का दमन करने वाले राजेन्द्र! किन्तु जब कंस की कमल नयना पत्नी, पति की मृत्यु से दुखी अपने पिता मगध के राजा जरासंध को बार-बार प्रेरणा देने लगी कि मेरे पति के घातकों

को मारो तब हम हे महाराज! पहले की हुई अपनी मंत्रणा को याद कर उदास हो गये और हमने मथुरा को छोड़ दिया।

पृथक्त्वेन महाराज संक्षिप्य महतीं श्रियम्।।४२।।
पलायामो भयात् तस्य ससुतज्ञातिबान्धवाः।
इति संचिन्त्य सर्वे स्म प्रतीचीं दिशमाश्रिताः।।४३।।
कुशस्थलीं पुरीं रम्यां रैवतेनोपशोभिताम्।
ततो निवेशं तस्यां च कृतवन्तो वयं नृप।।४४।।
तस्यां वयममित्रघ्न निवसामोऽकुतोभयाः।
आलोच्य गिरिमुख्यं तं मागधं तीर्णव च।।४५।।
माधवाः कुरुशार्दूल परां मुदमवाप्नुवन्।

तब हे महाराज! हमने यही निश्चय किया कि यहाँ की महान सम्पत्ति को अलग-अलग बाँट कर अपने पुत्रों और जाति भाइयों के साथ हम उसके भय से यहाँ से भाग जाते हैं। ऐसा सोच कर हमने पश्चिम दिशा का आश्रय लिया। रैवतक पर्वत से सुशोभित जो कुशस्थली नाम की सुन्दर नगरी थी, हे राजन्! हमने तब वहाँ अपना निवास किया। हे शत्रुसूदन! हम वहाँ निर्भय होकर रहते हैं। उस पर्वत श्रेष्ठ की दुर्गमता को विचार कर अपने को मगध के संकट से पार समझते हुए हम वहाँ हे कुरुश्रेष्ठ! अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए।

एवं वयं जरासंधादभितः कृतकिल्बिषा।।४६।।
सामर्थ्यवन्तः सम्बन्धाद् गोमन्तं समुपाश्रिताः।
त्रियोजनायतं सद्म त्रिस्कन्धं योजनावधि।।४७।।
अष्टादशावरैर्नद्धं क्षत्रियैर्युद्धदुर्मदैः।
अष्टादश सहस्राणि भ्रातॄणां सन्ति नः कुले।।४८।।
आहुकस्य शतं पुत्रा एकैकस्त्रिदशावरः।

इस प्रकार से हम जरासंध के सामने उसके अपराधी हैं। स्वयं शक्तिशाली होते हुए भी, इस कारण गोमान् अर्थात् रैवतक पर्वत के आश्रय में आये हुए हैं। रैवतक दुर्ग की लम्बाई तीन योजन की है। एक-एक योजन पर तीन-तीन दलों की छावनी है। युद्ध में पराक्रम दिखाने वाले हमारे अठारह कुल वाले क्षत्रियों से वह किला सुरक्षित है। हमारे कुल में अठारह हजार भाई हैं। आहुक के सौ पुत्र हैं, जिनमें से एक-एक देवताओं के समान वीर है।

चारुदेष्णः सह भ्रात्रा चक्रदेवोऽथ सात्यकिः।।४९।।
अहं च रौहिणेयश्च साम्बः प्रद्युम्न एव च।
एवमतिरथाः सप्त राजनन्यान् निबोध मे।।५०।।
कृतवर्मा ह्यनाधृष्टिः समीकः समितिंजयः।
कङ्कः शङ्कुश्च कुन्तिश्च सप्तैते वै महारथाः।।५१।।
पुत्रौ चान्धकभोजस्य वृद्धो राजा च ते दश।
वज्रसंहनना वीरा वीर्यवन्तो महारथाः।।५२।।

अपने भाई के साथ चारुदेष्ण, चक्रदेव, सात्यकि, मैं, बलराम, साम्ब, प्रद्युम्न, ये सात अतिरथी वीर हैं। हे राजन्! और दूसरों के बारे में मुझसे समझिये। कृतवर्मा, अनाधृष्टि, समीक, समितिंजय, कंक, शंकु, कुन्ति, ये सात महारथी हैं। अन्धकभोज के दो पुत्रों और बूढ़े राजा उग्रसेन को भी गिन लेने पर ये दस महारथी हैं। ये सारे वीर वज्र के समान शरीर वाले, पराक्रमी और महारथी हैं।

स त्वं सम्राड्गुणैर्युक्तः सदा भरतसत्तम।
क्षत्रे सम्राजमात्मानं कर्तुमर्हसि भारत।।५३।।
दुर्योधनं शान्तनवं द्रोणं द्रौणायनिं कृपम्।
कर्णं च शिशुपालं च रुक्मिणं च धनुर्धरम्।।५४।।
एकलव्यं द्रुमं श्वेतं शैब्यं शकुनिमेव च।
एतानजित्वा संग्रामे कथं शक्नोषि तं क्रतुम्।।५५।।
अथैतेगौरवेणैव न योत्स्यन्ति नराधिपाः।
न तु शक्यं जरासंधे जीवमाने महाबले।।५६।।
राजसूयस्त्वयावाप्तुमेष राजन् मतिर्मम।

हे भरत श्रेष्ठ! आप सम्राट् होने के गुणों से सदा युक्त हैं। आप क्षत्रियों में अपने आपको सम्राट् बना सकते हैं। पर दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शिशुपाल, धनुर्धर रुक्मी, एकलव्य, द्रुम, श्वेत, शैब्य, और शकुनि, सबको युद्ध में बिना जीते आप उस यज्ञ को कैसे कर सकते हैं? किन्तु ये राजा आपके बडप्पन का ध्यान रख कर आप से युद्ध नहीं करेंगे। पर महाबली जरासंध के जीवित रहते हुए हे राजन्! आप राजसूय यज्ञ को नहीं कर सकते, यह मेरा विचार है।

तेन रुद्धा हि राजानः सर्वे जित्वा गिरिव्रजे।।५७।।
कन्दरे पर्वतेन्द्रस्य सिंहेनेव महाद्विपाः।
यदि त्वेनं महाराज यज्ञं प्राप्तुमभीप्ससि।।५८।।
यतस्व तेषां मोक्षाय जरासंधवधाय च।
समारम्भो न शक्योऽयमन्यथा कुरुनन्दन।।५९।।
राजसूयश्च कार्त्स्न्येन कर्तुं मतिमतां वर।
जरासंधवधोपायश्चिन्त्यतां भरतर्षभ।।६०।।

उसने जिन-जिन राजाओं को जीता है, उन्हें गिरिव्रज में कैद किया हुआ है, जैसे सिंह ने किसी

पर्वत की गुफा में हाथियों को रोक रखा हो। हे महाराज! यदि आप इस यज्ञ को पूरा करना चाहते हैं, तो आप जरासंध के वध और उन राजाओं को छुड़ाने का प्रयत्न करिये। हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, कुरुनन्दन! और किसी तरीके से यह आयोजन, राजसूय यज्ञ की पूर्ति सम्भव नहीं है। इसलिये हे भरतश्रेष्ठ! आप जरासंध के वध का उपाय कीजिये।

पाँचवाँ अध्याय : श्री कृष्ण, भीम और अर्जुन की मगध यात्रा।

युधिष्ठिर उवाच

उक्तं त्वया बुद्धिमता यन्नान्यो वक्तुमर्हति।
संशयानां हि निर्मोक्ता त्वन्नान्यो विद्यते भुवि।। १।।
वयं चैव महाभाग जरासंधभयात् तदा।
शङ्किताः स्म महाभाग दौरात्म्यात् तस्य चानघ।। २।।
अहं हि तव दुर्द्धर्ष भुजवीर्याश्रयः प्रभो।
नात्मानं बलिनं मन्ये त्वयि तस्माद् विशङ्किते।। ३।।
त्वत्सकाशाच्च रामाच्च भीमसेनाच्च माधव।
अर्जुनाद् वा महाबाहो हन्तुं शक्यो न वेति वै।। ४।।
त्वं मे प्रमाणभूतोऽसि सर्वकार्येषु केशव।
तच्छ्रुत्वा चाब्रवीद् भीमो वाक्यं वाक्यविशारदः।। ५।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि आपने जो बुद्धिमत्ता की बातें की हैं, उन्हें कोई दूसरा नहीं कह सकता। आपके सिवाय कोई दूसरा पुरुष संसार में संशयों को दूर करने वाला नहीं है। हे अनघ! हे महाभाग! हम भी जरासंध की दुष्टता के कारण उससे सदा शंकित रहते हैं। हे दुर्धर्ष प्रभो! हम तो आपकी भुजाओं की शक्ति का सहारा लेकर हैं। आपके भी उससे शंकित होने पर मैं अपने आपको बलवान नहीं मान सकता। हे केशव! हे महाबाहु! वह आपसे, बलराम से, भीमसेन से अर्जुन से मारा जा सकता हैं या नहीं? हमारे सारे कार्यों में तो आप ही प्रमाण हैं। तब वाक्य विशारद भीम ने कहा कि-

अनारम्भपरो राजा वल्मीक इव सीदति।
दुर्बलश्चानुपायेन बलिनं योऽधितिष्ठति।। ६।।
अतन्द्रितश्च प्रायेण दुर्बलो बलिनं रिपुम्।
जयेत् सम्यक् प्रयोगेण नीत्यार्थानात्मनो हितान्।। ७।।

कृष्ण उवाच

जित्वा जय्यान् यौवनाश्विः पालनाच्च भगीरथः।
कार्तवीर्यस्तपोवीर्याद् बलात् तु भरतो विभुः।। ८।।
ऋद्ध्या मरुत्तस्तान् पञ्च सम्राजस्त्वनुशुश्रुम।
साम्राज्यमिच्छतस्ते तु सर्वाकारं युधिष्ठिर।। ९।।
निग्राह्यलक्षणं प्राप्तिधर्मार्थनयलक्षणैः।
बार्हद्रथो जरासंधस्तद् विद्धि भरतर्षभ।। १०।।

जो राजा उद्योग नहीं करता तथा जो दुर्बल होने पर भी बलवान से भिड़ जाता है, ये दोनों प्रकार के लोग दीमक के बनाये मिट्टी के ढेर के समान नष्ट हो जाते हैं। पर जो राजा दुर्बल होने पर भी आलस्य को त्याग कर अपने लिये हितकारी नीति और युक्ति का ठीक तरह से प्रयोग करता है, वह प्राय बलवान शत्रु को भी जीत लेता है। तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि युवनाश्व के पुत्र मान्धाता ने शत्रुओं को जीत कर, भगीरथ ने प्रजा के पालन से, कार्तवीर्य ने तपोबल से और भरत ने अपने स्वभाविक बल से तथा मरुत्त ने अपनी समृद्धि के प्रभाव से सम्राट पद प्राप्त किया था, ऐसा हम सुनते आये हैं। पर हे युधिष्ठिर! आपमें तो सारे गुण है। आप अपने उन सारे गुणों से शत्रुओं का निग्रह, प्रजापालन, धर्मसम्पत्ति, नीति से सम्राट् बनना चाहते हैं। पर हे भरत श्रेष्ठ! बृहद्रथ का पुत्र जरासन्ध ही आपके मार्ग में बाधक है।

युधिष्ठिर उवाच

अस्मिंस्त्वर्थान्तरे युक्तमनर्थः प्रतिपद्यते।
तस्मान्न प्रतिपत्तिस्तु कार्या युक्ता मता मम।। ११।।
यथाहं विमृशाम्येकस्तत् तावच्छ्रूयतां मम।
संन्यासं रोचये साधु कार्यस्यास्य जनार्दन।। १२।।
प्रतिहन्ति मनो मेऽद्य राजसूयो दुराहरः।
पार्थः प्राप्य धनुः श्रेष्ठमक्षय्ये च महेषुधी।। १३।।
रथं ध्वजं सभां चैव युधिष्ठिरमभाषत।

तब युधिष्ठिर बोले कि यह कार्य तो विपरीत फल को देने वाला जान पड़ता है, इसको करने से अनर्थ की प्राप्ति होगी। इसलिये मेरा विचार तो यही है कि हमें अब इस राजसूय यज्ञ की तरफ ध्यान नहीं देना चाहिये। हे जनार्दन! इस विषय में मैं जैसे सोचता हूँ, आप सुनिये! मुझे तो अब इस कार्य को छोड़ देना ही अच्छा लगता है। राजसूय यज्ञ

की कठिनाइयाँ मेरे मन को निरुत्साहित कर रही हैं। किन्तु अर्जुन श्रेष्ठ धनुष, नष्ट न होने वाले तरकस, रथ, ध्वज और सभा को प्राप्त कर उत्साहित हो रहे थे। अतः वे युधिष्ठिर से बोले कि--

धनुः शस्त्रं शरा वीर्यं पक्षो भूमिर्यशो बलम्।। १४।।
प्राप्तमेतन्मया राजन् दुष्प्रापं यदभीप्सितम्।
कुले जन्म प्रशंसन्ति वैद्याः साधु सुनिष्ठिताः।। १५।।
बलेन सदृशं नास्ति वीर्यं तु मम रोचते।
कृतवीर्यकुले जातो निर्वीर्यः किं करिष्यति।। १६।।
निर्वीर्ये तु कुले जातो वीर्यवांस्तु विशिष्यते।

धनुष, शस्त्र, बाण, पराक्रम, अच्छे सहायक, भूमि, यश और बल, ये चीजें बड़ी कठिनाई से मिलती हैं, पर हे राजन्! ये मुझे मन के अनुकूल प्राप्त हो गयी हैं। अनुभवी श्रेष्ठ विद्वान उत्तम कुल में जन्म की प्रशंसा करते हैं, पर वह शक्ति के समान नहीं, मुझे तो शक्ति और पराक्रम ही अच्छा लगता है। यदि कोई कृतवीर्य के कुल में भी उत्पन्न हो और स्वयं निर्बल हो तो वह क्या करेगा, पर यदि किसी ने कमजोर कुल में जन्म लिया है, पर वह पराक्रमी है, तो वह श्रेष्ठ है।

क्षत्रियः सर्वशो राजन् यस्य वृत्तिर्द्विषज्जये।। १७।।
सर्वैर्गुणैर्विहीनोऽपि वीर्यवान् हि तरेद् रिपून्।
सर्वैरपि गुणैर्युक्तो निर्वीर्यः किं करिष्यति।। १८।।
गुणीभूता गुणाः सर्वे तिष्ठन्ति हि पराक्रमे।
जयस्य हेतुः सिद्धिर्हि कर्म दैवं च संश्रितम्।। १९।।
संयुक्तो हि बलैः कश्चित् प्रमादान्नोपयुज्यते।
तेन द्वारेण शत्रुभ्यः क्षीयते सबलो रिपुः।। २०।।

हे राजन्! जिसकी शत्रु को जीतने में वृत्ति हो वही, वास्तव में क्षत्रिय है। यदि अन्य सारे गुणों से रहित भी हो, पर पराक्रमी हो, तो भी वह शत्रुओं के संकट से पार हो जाता है। पर सारे गुणों से युक्त हो, पर पराक्रमी न हो, तो वह क्या कर लेगा? सारे गुण पराक्रमी व्यक्ति के ही अंग बन कर उसमें रहते हैं। पुरुषार्थ, प्रारब्ध और मनोयोग इनका मेल ही विजय प्राप्ति का हेतु है। यदि कोई बल से युक्त हो, पर प्रमाद करे तो उसे सफलता नहीं मिल सकती। बलवान शत्रु भी इस प्रमादरूपी कमी के कारण शत्रुओं द्वारा नष्ट हो जाता है।

दैन्यं यथा बलवति तथा मोहो बलान्विते।
तावुभौ नाशकौ हेतू राज्ञा त्याज्यौ जयार्थिना।। २१।।
जरासंधविनाशंच राज्ञां च परिरक्षणम्।
यदि कुर्याम यज्ञार्थं किं ततः परमं भवेत्।। २२।।
अनारम्भे हि नियतो भवेदगुणनिश्चयः।
गुणान्निःसंशयाद् राजन् नैर्गुण्यं मन्यसे कथम्।। २३।।
काषायं सुलभं पश्चान्मुनीनां शममिच्छताम्।
साम्राज्यं तु भवेच्छक्यं वयं योत्स्यामहे परान्।। २४।।

बलवान व्यक्ति में जैसे दीनता वैसे ही मोह का भी होना बड़ा दुर्गुण हैं। ये दोनों विनाश करने वाले हैं। इसलिये विजय के इच्छुक राजा को इन्हें त्याग देना चाहिये। यदि हम यज्ञ के लिये जरासन्ध का विनाश कर दें और राजाओं की रक्षा कर सकें तो इससे बढ़ कर क्या बात होगी? यदि हम यज्ञ को आरम्भ न करें तो हमारी गुण हीनता प्रकट होगी। पर यज्ञ को करने से हमारी महानता की प्रसिद्धि होगी। तो हे राजन्! आप निश्चित महानता का त्याग कर गुण हीनता के कलंक को क्यों स्वीकार कर रहे हो? फिर तो हमें शान्ति की इच्छा रखने वाले मुनियों के गेरुए वस्त्र पहनना ही उचित होगा। पर हम साम्राज्य को प्राप्त कर सकते हैं, इसलिये हम शत्रुओं से युद्ध करेंगे।

वासुदेव उवाच

जातस्य भारते वंशे तथा कुन्त्याः सुतस्य च।
या वै युक्ता मतिः सेयमर्जुनेन प्रदर्शिता।। २५।।
न स्म मृत्युं वयं विद्म रात्रौ वा यदि वा दिवा।
न चापि कंचिदमरमयुद्धेनानुशुश्रुम।। २६।।
एतावदेव पुरुषैः कार्यं हृदयतोषणम्।
नयेन विधिदृष्टेन यदुपक्रमते परान्।। २७।।
अनयस्यानुपायस्य संयुगे परमः क्षयः।
संशयो जायते साम्याज्जयश्च न भवेद् द्वयोः।। २८।।

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि भरत वंश में उत्पन्न हुए और कुन्ती के पुत्र के लिए जो उचित विचार हो सकता है, वही अर्जुन ने इस समय प्रकट किया है। हम नहीं जानते कि मृत्यु कब आयेगी? रात्रि में आयेगी या दिन में आयेगी? हमने यह भी नहीं सुना कि युद्ध न करने से कोई अमर हो गया हो। इसलिये वीर पुरुषों का यही कर्तव्य है कि अपने हृदय को सन्तुष्ट करते हुए, नीतिशास्त्र के नियम के अनुसार शत्रुओं पर आक्रमण करें। जब दोनों पक्षों में समानता हो तो विजय में संशय रहता है। दोनों पक्षों में से किसी भी जय का निश्चय नहीं होता। ऐसे में जो नीति और उत्तम

उपाय का आश्रय नहीं लेता उसका सर्वथा विनाश होता है।

ते वयं नयमास्थाय शत्रुदेहसमीपगाः।
कथमन्तं न गच्छेम वृक्षस्येव नदीरयाः।। २९।।
पररन्ध्रे पराक्रान्ताः स्वरन्ध्रावरणे स्थिताः।
व्यूढानीकैरतिबलैर्न युद्ध्येदरिभिः सह।। ३०।।
इति बुद्धिमतां नीतिस्तन्ममापीह रोचते।
अनवद्या ह्यसम्बुद्धाः प्रविष्टाः शत्रुसद्म तत्।। ३१।।
शत्रुदेहमुपाक्रम्य तं कामं प्राप्नुयामहे।
अथवैनं निहत्याजौ शेषेणापि समाहताः।। ३२।।
प्राप्नुयाम ततः स्वर्गं ज्ञातित्राणपरायणाः।

हम नीति का आश्रय लेकर शत्रु के शरीर के निकट तक पहुँच जायेंगे। उस समय अपने छिद्रों को छिपाते हुए शत्रु के छिद्रों को देख कर उस पर आक्रमण करेंगे। उस समय जैसे नदी का पानी किनारों के वृक्षों को नष्ट कर देता है, वैसे ही हम अपने शत्रु का अन्त कैसे नहीं कर देंगे? बुद्धिमानों की यह नीति है कि जो अत्यन्त बलवान हो और जिसकी सेनाएँ व्यूहबद्ध होकर खड़ी हों, ऐसे शत्रु के साथ युद्ध नहीं करना चाहिये। मुझे भी यही उचित लगता है। असावधान अवस्था में शत्रु के घर में यदि हम प्रविष्ट हो जाते हैं, तो भी हम दोष रहित माने जाएँगे तथा उस समय उसके शरीर पर आक्रमण कर अपनी कामना को प्राप्त लेंगे। अथवा यदि हम शत्रुओं को मार कर उसके शेष साथियों सैनिकों आदि के द्वारा मारे भी गये तो हम अपने जाति भाइयों की रक्षा में लगे हुए प्राण देकर परलोक में उत्तम गति को प्राप्त होंगे।

न शक्योऽसौ रणे जेतुं सर्वैरपि सुरासुरैः।। ३३।।
बाहुयुद्धेन जेतव्यः स इत्युपलभामहे।
मयि नीतिर्बलं भीमे रक्षिता चावयोर्जयः।। ३४।।
मागधं साधयिष्याम इष्टिं त्रय इवाग्नयः।
त्रिभिरासादितोऽस्माभिर्विजने स नराधिपः।। ३५।।
न संदेहो यथा युद्धमेकेनाप्युपयास्यति।
अवमानाच्च लोभाच्च बाहुवीर्याच्च दर्पितः।। ३६।।
भीमसेनेन युद्धाय ध्रुवमप्युपयास्यति।

सारे देवता और दानवों द्वारा भी उसे युद्धक्षेत्र में नहीं जीता जा सकता, इसलिये उसे बाहुयुद्ध में जीतना चाहिये, यह मेरी समझ में आता है। मेरे अन्दर नीति है, भीम में शक्ति है और अर्जुन हम दोनों के रक्षक हैं। हम तीनों मगधराज को उसी प्रकार बस में कर लेंगे जैसे तीन अग्नियाँ यज्ञ की सिद्धि करती हैं। हम तीनों के द्वारा जब एकान्त में उससे मिला जाएगा, तब वह निस्सन्देह एक के साथ द्वन्द्व युद्ध करना स्वीकार कर लेगा। अपने अपमान के भय से बड़े योद्धा के साथ लड़ने के लोभ से और अपनी भुजाओं की शक्ति के अभिमान से वह निश्चय ही भीम सेन के साथ युद्ध करना स्वीकार करेगा।

अलं तस्य महाबाहुर्भीमसेनो महाबलः।। ३७।।
लोकस्य समुदीर्णस्य निधनायान्तको यथा।
यदि मे हृदयं वेत्सि यदि ते प्रत्ययो मयि।। ३८।।
भीमसेनार्जुनौ शीघ्रं न्यासभूतौ प्रयच्छ मे।
एवमुक्तो भगवता प्रत्युवाच युधिष्ठिरः।। ३९।।
भीमार्जुनौ समालोक्य सम्प्रहृष्टमुखौ स्थितौ।
क्षिप्रमेव यथा त्वेतत् कार्यं समुपपद्यते।। ४०।।
अप्रमत्तो जगन्नाथ तथा कुरु नरोत्तम।
त्रिभिर्भवद्भिर्हि विना नाहं जीवितुमुत्सहे।। ४१।।
धर्मकामार्थरहितो रोगार्त इव दुःखितः।

महाबाहु महाबली भीम उसके विनाश के लिये पर्याप्त हैं, जैसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण संसार को नष्ट करने के लिये एक मृत्यु ही पर्याप्त है। यदि आप मेरे हृदय के विचारों को समझते हैं, यदि आपका मुझ पर विश्वास है तो आप भीम और अर्जुन को जल्दी ही धरोहर के रूप में मुझे दे दीजिये। ऐसा कहे जाने पर युधिष्ठिर ने प्रसन्न मुख से विद्यमान भीम और अर्जुन की तरफ देख कर उत्तर दिया कि हे नरश्रेष्ठ! हे संसार के स्वामी! आप उसी प्रकार कीजिये, जिससे यह कार्य जल्दी ही सम्पन्न हो जाये। हे संसार के स्वामी! आप सावधानी से कार्य करें। धर्म, अर्थ और काम से रहित, रोग से पीड़ित, दुखी व्यक्ति के समान मैं आप तीनों के बिना जीवित रहना नहीं चाहूँगा।

एवमेव यदुश्रेष्ठ यावत्कार्यार्थसिद्धये।। ४२।।
अर्जुनः कृष्णमन्वेतु भीमोऽन्वेतु धनंजयम्।
नयो जयो बलं चैव विक्रमे सिद्धिमेष्यति।। ४३।।
एवमुक्तास्ततः सर्वे भ्रातरो विपुलौजसः।
वार्ष्णेयः पाण्डवेयौ च प्रतस्थुर्मागधं प्रति।। ४४।।
वर्चस्विनां ब्राह्मणानां स्नातकानां परिच्छदम्।
आच्छाद्य सुहृदां वाक्यैर्मनोज्ञैरभिनन्दिताः।। ४५।।

हे यदुश्रेष्ठ आप कार्य के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये इसी प्रकार कीजिये। अर्जुन कृष्ण का

अनुकरण करें और भीम अर्जुन का अनुकरण करें। नीति, विजय और पराक्रम तीनों मिल कर पराक्रम करें, तो सफलता अवश्य मिलेगी। ऐसा कहे जाने पर वे सारे महान् तेजस्वी भाई श्रीकृष्ण और दोनों पाण्डव मगध की तरफ चल दिये। उन्होंने तेजस्वी ब्राह्मण स्नातकों के वस्त्रों से अपने को ढक लिया और तब हितैषियों ने मनोहारी वचनों के द्वारा उनका अभिनन्दन किया।

कुरुभ्यः प्रस्थितास्ते तु मध्ये कुरुजाङ्गलम्।
रम्यं पद्मसरो गत्वा कालकूटमतीत्य च।।४६।।
गण्डकीं च महाशोणं सदानीरां तथैव च।
एकपर्वतके नद्यः क्रमेणैत्याव्रजन्त ते।।४७।।
उत्तीर्य सरयूं रम्यां दृष्ट्वा पूर्वांश्च कोसलान्।
अतीत्य जग्मुर्मिथिलां पश्यन्तो विपुला नदीः।।४८।।
अतीत्य गङ्गां शोणं च त्रयस्ते प्राङ्मुखास्तदा।
कुशचीरच्छदा जग्मुर्मागधं क्षेत्रमच्युताः।।४९।।
ते शश्वद् गोधनाकीर्णमम्बुमन्तु शुभद्रुमम्।
गोरथं गिरिमासाद्य ददृशुर्मागधं पुरम्।।५०।।

कुरु देश से प्रस्थान करके वे कुरुजाँगल के बीच में से होते हुए, रमणीय पद्म सरोवर पर पहुँचे। फिर कालकूट पर्वत को पार करके गण्डकी, महाशोण, सदानीरा और एकपर्वतक प्रदेश की नदियों को क्रम से पार कर वे आगे बढ़ गये। रमणीय सरयू नदी को पार कर पूर्वी कौसल प्रदेश को देखते हुए उसे पार कर वे बहुत सी नदियों को देखते हुए मिथिला नगरी में गए। फिर वे तीनों शोण नदी को पार कर पूर्व की तरफ चलते गये। इस प्रकार वे तीनों अच्युत कुश और चीर के वस्त्र को धारण किये मगध के क्षेत्र में पहुँच गए। फिर उन्होंने सदा गोधनपूर्ण, जल वाले, सुन्दर वृक्षों से सुशोभित गोरथ पर्वत पर पहुँच कर मगध की राजधानी को देखा।

छठा अध्याय : तीनों की जरासंध से भेंट, उसे द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारना।

वासुदेव उवाच

एष पार्थ महान् भाति पशुमान् नित्यमम्बुमान्।
निरामयः सुवेश्माढ्यो निवेशो मागधः शुभः।। १।।
वैहारो विपुलः शैलो वराहो वृषभस्तथा।
तथा ऋषिगिरिस्तात शुभाश्चैत्यकपञ्चमाः।। २।।
एते पञ्च महाशृङ्गाः पर्वताः शीतलद्रुमाः।
रक्षन्तीवाभिसंहत्य संहताङ्गा गिरिव्रजम्।। ३।।
पुष्पवेष्टितशाखाग्रै गन्धवद्भिर्मनोहरैः।
निगूढा इव लोध्राणां वनैः कामिजनप्रियैः।। ४।।

तब श्रीकृष्ण ने कहा कि देखो कुन्तीपुत्र! यह मगध की राजधानी, जो सदा पशुओं से और जल से भरपूर रहती है, जिसमें कोई रोग नहीं है और जो अच्छे भवनों से भरी पूरी है, बड़ी सुन्दर लग रही है। यहाँ विहारोपयोगी विपलु, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक नाम के सुन्दर पाँच पर्वत हैं। ये पाँच महान शिखरों वाले पर्वत, जो एक दूसरे से सटे हुए हैं और शीतल छाया वाले वृक्षों से युक्त हैं, मानो इकट्ठे होकर गिरिव्रज नगर की रक्षा कर रहे हैं। जिनके अग्रभाग गन्धवाले फूलों से भरे हैं, जो बड़े सुन्दर हैं और कामीजनों को प्रिय हैं, उन लोध के वृक्षों के वनों से ये पर्वत ढके हुए से जान पड़ रहे हैं।

एवं प्राप्य पुरं रम्यं दुराधर्षं समन्ततः।
अर्थसिद्धिं त्वनुपमां जरासंधोऽभिमन्यते।। ५।।
वयमासादने तस्य दर्पमद्य हरेमहि।
एवमुक्त्वा ततः सर्वे भ्रातरो विपुलौजसः।। ६।।
वार्ष्णेयः पाण्डवौ चैव प्रतस्थुर्मागधं पुरम्।
हृष्टपुष्टजनोपेतं चातुर्वर्ण्यसमाकुलम्।। ७।।
स्फीतोत्सवमनाधृष्यमासेदुश्च गिरिव्रजम्।
ततो द्वारमनासाद्य पुरस्य गिरिमुच्छ्रितम्।। ८।।
मगधानां सुरुचिरं चैत्यकान्तं समाद्रवन्।
ततस्ते मागधं हृष्टाः पुरं प्रविविशुस्तदा।। ९।।

ऐसे इस नगर को प्राप्त कर जो सुन्दर है और सब तरफ से दुर्धर्ष है, जरासंध को यह अभिमान रहता है कि मुझे बहुत बड़े प्रयोजन की सिद्धि हो गयी है। हम आज उसके घर में ही जाकर उसके अभिमान को दूर कर देंगे। ऐसा कह कर वे सारे महान् तेजस्वी भाई कृष्ण और दोनों पाण्डव उस मगध की राजधानी में प्रवेश के लिये चल दिये, जो चारों वर्णों के हृष्ट पुष्ट लोगों से भरी हुई थी। वे उस गिरिव्रज नगर को प्राप्त हुए, जहाँ सदा उत्सव होते रहते थे और जो शत्रुओं द्वारा जीते जाने के अयोग्य था। फिर वे नगर के प्रवेश द्वार पर न जाकर, मगधवासियों के अत्यन्त प्रिय चैत्यक नाम

के ऊँचे पर्वत पर चले गये। उस मार्ग से प्रसन्न हृदय के साथ उन्होंने नगर में प्रवेश किया।

भक्ष्यमाल्यापणानां च ददृशुः श्रियमुत्तमाम्।
स्फीतां सर्वगुणोपेतां सर्वकामसमृद्धिनीम्।। १०।।
तां तु दृष्ट्वा समृद्धिं ते वीथ्यां तस्यां नरोत्तमाः।
राजमार्गेण गच्छन्तः कृष्णभीमधनंजयाः।। ११।।
निवेशनमथाजग्मुर्जरासंधस्य धीमतः।
ते त्वतीत्य जनाकीर्णाः कक्षास्तिस्रो नरर्षभाः।। १२।।
अहंकारेण राजानमुपतस्थुर्गतव्यथाः।
प्रत्युत्थाय जरासंध उपतस्थे यथाविधि।। १३।।

वहाँ उन्होंने खाद्य पदार्थों की, फूल मालाओं की, तथा दूसरी दूकानों की उत्तम शोभा को देखा। बाजारों की वह शोभा बहुत बढ़ी चढ़ी, सारे गुणों से युक्त और कामनाओं की पूर्ति करने वाली थी। सड़कों पर उस ऐश्वर्य को देखते हुए वे नरश्रेष्ठ कृष्ण, भीम और अर्जुन राजमार्ग से चलते हुए धीमान् जरासन्ध के महल पर आ पहुँचे। वे नरश्रेष्ठ तब लोगों से भरी हुई तीन ड्योढ़ियों को पार कर बिना किसी व्यथा के अभिमान के साथ राजा के समीप जा पहुँचे। तब जरासंध ने उठकर यथोचित रीति से उनका स्वागत किया।

उवाच चैतान् राजासौ स्वागतं वोऽस्त्विति प्रभुः।
तेषां मध्ये महाबुद्धिः कृष्णो वचनमब्रवीत्।। १४।।
वक्तुं नायाति राजेन्द्र एतयोर्नियमस्थयोः।
अर्वाङ्‌निशीथात् परतस्त्वया सार्धं वदिष्यतः।। १५।।
यज्ञागारे स्थापयित्वा राजा राजगृहं गतः।
ततोऽर्धरात्रे सम्प्राप्ते यातो यत्र स्थिता द्विजाः।। १६।।
तांस्त्वपूर्वेण वेषेण दृष्ट्वा स नृपसत्तमः।
उपतस्थे जरासंधो विस्मितश्चाभवत् तदा।। १७।।

शक्तिशाली राजा ने तब उनसे कहा कि आपका स्वागत है। तब उनमें से महा बुद्धिमान कृष्ण ने कहा कि हे राजेन्द्र! इन दोनों ने नियम किया हुआ है कि ये दोनों आधी रात से पहले नहीं बोलते हैं। आधी रात के बाद ये आप से बात करेंगे। तब राजा ने उनको यज्ञशाला में ठहरा दिया और स्वयं राजभवन में चला गया। फिर आधी रात होने पर वह वहाँ गया जहाँ वे ब्राह्मण लोग ठहरे हुए थे। वह नृपश्रेष्ठ जरसंध! उन्हें अनोखे वेश में देख कर बड़ा विस्मित हुआ। वह उनके समीप गया।

तानुवाच जरासंधः सत्यसंधो नराधिपः।
न स्नातकव्रता विप्रा बहिर्माल्यानुलेपनाः।। १८।।
भवन्तीति नृलोकेऽस्मिन् विदितं मम सर्वशः।
के यूयं पुष्पवन्तश्च भुजैर्ज्याकृतलक्षणैः।। १९।।
बिभ्रतः क्षात्रमोजश्च ब्राह्मण्यं प्रतिजानथ।
एवं विरागवसना बहिर्माल्यानुलेपनाः।। २०।।
सत्यं वदत के यूयं सत्यं राजसु शोभते।
एवं च मामुपास्थाय कस्माच्च विधिनार्हणाम्।। २१।।
प्रतीतां नानुगृह्णीत कार्यं किं वास्मदागमे।

तब सत्य का पालन करने वाला राजा जरासन्ध उनसे बोला कि हे ब्राह्मणो! स्नातक व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मण इस संसार में माला धारण और चन्दन का लेप नहीं करते हैं, यह मुझे अच्छी तरह से मालूम है। आप लोग कौन हैं, जिन्होंने फूल धारण किये हुए हैं और जिनकी भुजाओं पर धनुष की प्रत्यंचा के चिह्न हैं? आप लोग क्षत्रियों के तेज को धारण कर रहे हैं, पर अपने आपको ब्राह्मण बता रहे हैं। इस प्रकार के रंग बिरंगे वस्त्र आपने पहने हुए हैं और माला तथा चन्दन का लेप धारण किया हुआ है। आप लोग सत्य बताइये कि आप कौन हैं? राजाओं में सत्य की ही प्रतिष्ठा होती है। आप मेरे यहाँ आकर विधि पूर्वक अर्पित की गयी पूजा को क्यों ग्रहण नहीं कर रहे हैं? अथवा आपका मेरे यहाँ आने का प्रयोजन क्या है?

एवमुक्ते ततः कृष्णः प्रत्युवाच महामनाः।। २२।।
स्निग्धगम्भीरया वाचा वाक्यं वाक्यविशारदः।
स्नातकव्रतिनो राजन् ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः।। २३।।
स्ववीर्यं क्षत्रियाणां तु बाह्वोर्धाता न्यवेशयत्।
तद् दिदृक्षसि चेद् राजन् द्रष्टास्यद्य न संशयः।। २४।।
कार्यवन्तो गृहानेत्य शत्रुतो नार्हणां वयम्।
प्रतिगृह्णीम तद् विद्धि एतन्नः शाश्वतं व्रतम्।। २५।।

ऐसा कहे जाने पर वाक्य विशारद मनस्वी श्रीकृष्ण मधुर और गम्भीर वाणी में बोले कि हे राजन्! स्नातक के व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों, और वैश्यों तीनों में होते हैं। भगवान ने क्षत्रियों का पराक्रम उसकी भुजाओं में स्थापित किया हुआ है, यदि आप उसे देखना चाहते हैं तो निस्सन्देह आज ही देख लेंगे। हम कार्य की पूर्ति के लिये आपके घर आये हैं। इसलिये हम अपने शत्रु की पूजा को ग्रहण नहीं कर सकते। यह आप समझ लीजिये कि यह हमारा सनातन व्रत है।

जरासंध उवाच

न स्मरामि कदा वैरं कृतं युष्माभिरित्युत।
चिन्तयंश्च न पश्यामि भवतां प्रति वैकृतम्।। २६।।
वैकृते वासति कथं मन्यध्वं मामनागसम्।
अरिं वै ब्रूत हे विप्राः सतां समय एष हि।। २७।।
अथ धर्मोपघाताद्धि मनः समुपतप्यते।
योऽनागसि प्रसजति क्षत्रियो हि न संशयः।। २८।।
अतोऽन्यथा चरँल्लोके धर्मज्ञः सन् महारथः।
वृजिनां गतिमाप्नोति श्रेयसोऽप्युपहन्ति च।। २९।।
त्रैलोक्येक्षत्रधर्मो हि श्रेयान् वै साधुचारिणाम्।
नान्यं धर्मं प्रशंसन्ति ये च धर्मविदो जनाः।। ३०।।

तब जरासंध ने कहा कि मुझे तो याद नहीं है कि मैंने आप लोगों के साथ कब बैर किया है? बहुत सोचने पर भी मैं आप लोगों के प्रति किये हुए अपराध को नहीं देख पा रहा हूँ। जब मेरा कोई अपराध ही नहीं है, तो मुझ निरपराध को आप लोग कैसे अपना शत्रु समझ रहे हैं? हे ब्राह्मणों! यह बताओ कि साधु पुरुषों का यही व्यवहार होता है? धर्म के कार्य में बाधा डालने से मन को अवश्य ही सन्ताप प्राप्त होता है। इसमें कोई संशय नहीं है कि जो धर्मज्ञ, महारथी क्षत्रिय धर्म के विपरीत आचरण करता हुआ, निरपराध पर दोषारोपण करता है, वह कष्टमयी गति को प्राप्त करता है और कल्याण से भी अपने को अलग कर लेता है। सत्कर्म करने वालों के लिये तीनों लोकों में क्षत्रिय धर्म ही श्रेष्ठ है। धर्म को जानने वाले किसी अन्य धर्म की प्रशंसा नहीं करते हैं।

तस्य मेऽद्य स्थितस्येह स्वधर्मे नियतात्मनः।
अनागसं प्रजानां च प्रमादादिव जल्पथ।। ३१।।

श्रीकृष्ण उवाच

त्वया चोपहृता राजन् क्षत्रिया लोकवासिनः।
तदागः क्रूरमुत्पाद्य मन्यसे किमनागसम्।। ३२।।
राजा राज्ञः कथं साधून् हिंस्यान्नृपतिसत्तम।
अस्मांस्तदेनो गच्छेद्धि कृतं बार्हद्रथ त्वया।। ३३।।
वयं हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिणः।
सवर्णो हि सवर्णानां पशुसंज्ञां करिष्यसि।। ३४।।
कोऽन्य एवं यथा हि त्वं जरासंध वृथामतिः।

जब मैं अपने मन को वश में रख कर अपने धर्म में स्थित रहता हूँ, प्रजा का कोई अपराध नहीं करता तो आप प्रमाद पूर्वक ही मुझे अपराधी या शत्रु बता रहे हो। तब श्रीकृष्ण जी बोले कि हे राजन्! तुमने संसार में रहने वाले राजाओं को कैद किया हुआ है। इस क्रूरता पूर्ण अपराध को करके भी तुम अपने आपको निर्दोष कैसे मानते हो? हे नृपश्रेष्ठ! एक राजा दूसरे भले राजाओं की हत्या कैसे कर सकता है? हे व्यर्थ बुद्धि वाले जरासन्ध! तुम उसी वर्ण के हो, जिसके वे राजा लोग हैं। समान वर्ण वाले होकर भी तुम समान वर्ण वाले उन राजाओं के साथ पशुओं जैसा व्यवहार करोगे? तुम्हारे जैसा क्रूर कौन है?

ते त्वां ज्ञातिक्षयकरं वयमार्तानुसारिणः।। ३५।।
ज्ञातिवृद्धिनिमित्तार्थं विनिहन्तुमिहागताः।
नास्ति लोके पुमानन्यः क्षत्रियेष्विति चैव तत्।। ३६।।
मन्यसे स च ते राजन् सुमहान् बुद्धिविप्लवः।
युयुक्षमाणास्त्वत्तो हि न वयं ब्राह्मणा ध्रुवम्।। ३७।।
शौरिरस्मि हृषीकेशो नृवीरौ पाण्डवाविमौ।
अनयोर्मातुलेयं च कृष्णं मां विद्धि ते रिपुम्।। ३८।।

हम दुखियों की रक्षा करने वाले हैं। हम अपने जाति भाइयों की वृद्धि के लिये तुझ अपनी जाति वालों का नाश करने वाले को मारने के लिये यहाँ आये हैं। हे राजन्! तुम जो यह मानते हो कि तुम्हारे समान क्षत्रियों में कोई दूसरा पुरुष नहीं है, यह तुम्हारी बुद्धि का बहुत बड़ा भ्रम है। तुमसे युद्ध की इच्छा करने वाले हम लोग निश्चय ही ब्राह्मण नहीं हैं। मैं शूरसेन वंशीय हृषीकेश हूँ और ये दोनों नरश्रेष्ठ पाण्डव हैं। मैं इन दोनों के मामा का लड़का कृष्ण तुम्हारा शत्रु हूँ, तुम मुझे पहचान लो।

त्वामाह्वयामहे राजन् स्थिरो युध्यस्व मागध।
मुञ्च वा नृपतीन् सर्वान् गच्छ वा त्वं यमक्षयम्।। ३९।।

जरासंध उवाच

नाजितान् वै नरपतीनहमादद्मि कांश्चन।
अजितः पर्यवस्थाता कोऽत्र यो न मया जितः।। ४०।।
क्षत्रियस्यैतदेवाहुर्धर्म्यं कृष्णोपजीवनम्।
विक्रम्य वशमानीय कामतो यत् समाचरेत्।। ४१।।
सैन्यं सैन्येन व्यूढेन एक एकेन वा पुनः।
द्वाभ्यां त्रिभिर्वा योत्स्येऽहं युगपत् पृथगेव वा।। ४२।।

हे मगध के राजा! हम तुम्हें युद्ध के लिये निमंत्रण देते हैं। तुम स्थिर होकर युद्ध करो। या इन राजाओं को छोड़ दो! अथवा मृत्यु के घर की राह लो। तब जरासंध बोला कि मैंने बिना जीते हुए

किसी भी राजा को कैद नहीं किया है। यहाँ कौन ऐसा राजा है, जो दूसरों से अजेय होते हुए भी मेरे द्वारा न जीता गया हो। हे कृष्ण! क्षत्रिय की तो यही धर्मानुकूल जीविका बतायी गयी है कि पराक्रम से शत्रुओं को वश में करके, उनके साथ अपनी इच्छानुसार बर्ताव करे। तुम्हारी सेना मेरी व्यूह रचना युक्त सेना के साथ लड़ ले या तुममें से कोई एक मुझ अकेले के साथ युद्ध कर ले। या मैं अकेला ही तुममें से दो या तीनों के साथ एक साथ या बारी बारी से युद्ध कर सकता हूँ।

सातवाँ अध्याय : भीमसेन और जरासंध का युद्ध और जरासंध का वध।

श्रीकृष्ण उवाच

त्रयाणां केन ते राजन् योद्धुमुत्सहते मनः।
अस्मदन्यतमेनेह सज्जीभवतु को युधि।। १।।
एवमुक्तः स नृपतिर्युद्धं वव्रे महाद्युतिः।
जरासंधस्ततो राजा भीमसेनेन मागधः।। २।।
आदाय रोचनां माल्यं मङ्गल्यान्यपराणि च।
धारयन्नगदान् मुख्यान् निर्वृतीर्वेदनानि च।। ३।।
उपतस्थे जरासंधं युयुत्सुं वै पुरोहितः।
कृतस्वस्त्ययनो राजा ब्राह्मणेन यशस्विना।। ४।।
समनह्यज्जरासंधः क्षात्रं धर्ममनुस्मरन्।

तब श्रीकृष्ण ने जरासंध से पूछा कि हे राजन! तुम्हारा मन हम तीनों में से किसके साथ युद्ध करने का उत्साही है? कौन तुम्हारे साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो? ऐसा कहे जाने पर उस महातेजस्वी मगधराज जरासंध ने भीमसेन के साथ युद्ध करना वरण किया। जरासंध को युद्ध के लिये तैयार देख कर उसके पुरोहित उसके लिये गोरोचन, मालाएँ, दूसरी मांगलिक सामग्रियाँ तथा उन उत्तम ओषधियों को लेकर, जो पीड़ा के समय भी सुख देने वाली थीं, जरासंध के समीप आये। तब यशस्वी ब्राह्मण के द्वारा स्वस्तिवाचन करा कर जरासन्ध अपने क्षत्रिय धर्म को स्मरण करता हुआ कमर कस कर तैयार हो गया।

अवमुच्य किरीटं स केशान् समनुगृह्य च।। ५।।
उदतिष्ठज्जरासंधो वेलातिग इवार्णवः।
उवाच मतिमान् राजा भीमं भीमपराक्रमः।। ६।।
भीम योत्स्ये त्वया सार्धं श्रेयसा निर्जितं वरम्।
ततः सम्मन्त्र्य कृष्णेन कृतस्वस्त्ययनो बली।। ७।।
भीमसेनो जरासंधमाससाद युयुत्सया।
ततस्तौ नरशार्दूलौ बाहुशस्त्रौ समीयतुः।। ८।।
वीरौ परमसंहृष्टावयोन्यजयकाङ्क्षिणौ।

उसने अपने मुकुट को उतार दिया और बालों को बाँध लिया। युद्ध के लिये वह ऐसे तैयार हो गया जैसे समुद्र अपने तट का उल्लंघन करने वाला हो। वह भीम पराक्रमी मतिमान् राजा तब भीमसेन से बोला कि हे भीम! मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष से हार जाना भी अच्छा है। तब बलवान भीमसेन भी श्रीकृष्ण जी से सलाह लेकर, स्वस्तिवाचन करा कर, युद्ध की इच्छा से, जरासंध के सम्मुख आ गये। तब एक दूसरे को जीतने की इच्छा वाले, अत्यन्त प्रसन्न होकर, वे दोनों नरसिंह वीर, हाथों को अपना हथियार बना कर एक दूसरे से भिड़ गये।

करग्रहणपूर्वं तु कृत्वा पादाभिवन्दनम्।। ९।।
कक्षैः कक्षां विधनुन्वानावास्फोटं तत्र चक्रतुः।
चित्रहस्तादिकं कृत्वा कक्षाबन्धं च चक्रतुः।। १०।।
गलगण्डाभिघातेन सस्फुलिङ्गेन चाशनिम्।
बाहुपाशादिकं कृत्वा पादाहतशिरावुभौ।। ११।।
उरोहस्तं ततश्चक्रे पूर्णकुम्भौ प्रयुज्य तौ।
करसम्पीडनं कृत्वा गर्जन्तौ वारणाविव।। १२।।
नर्दन्तौ मेघसंकाशौ बाहुप्रहरणावुभौ।

पहले उन्होंने हाथ मिलाये, फिर एक दूसरे के चरणों का अभिवन्दन किया और ताल ठोकने लगे। उन्होंने पहले चित्रहस्त आदि दाँवों का प्रयोग किया फिर कक्षा बन्ध को एक दूसरे पर आजमाया। वे गले और कनपटी पर वज्र के समान ऐसे आघात करने लगे, मानो वहाँ से चिनगारियाँ सी निकल रही हों। उन दोनों ने बाहुपाश आदि का प्रयोग कर पैरों से सिरों पर वार किये और पूर्ण कुम्भ दाँव का प्रयोग कर उरोहस्त दाँव से छाती पर थप्पड़ मारना आरम्भ किया। एक दूसरे के हाथों को दबा कर वे हाथियों के समान गर्जना करने लगे। मेघ के समान गर्जना करते हुए वे परस्पर हाथों से प्रहार करने लगे।

तलेनाहन्यमानौ तु अन्योन्यं कृतवीक्षणौ।। १३।।
सिंहाविव सुसंक्रुद्धावाकृष्याकृष्य युध्यताम्।

अङ्गेनाङ्गं समापीड्य बाहुभ्यामुभयोरपि।। १४।।
आवृत्य बाहुभिश्चापि उदरं च प्रचक्रतुः।
उभौ कट्यां सुपार्श्वे तु तक्षवन्तौ च शिक्षितौ।। १५।।
अधोहस्तं स्वकण्ठे तूदरस्योरसि चाक्षिपत्।
सर्वातिक्रान्तमर्यादं पृष्ठभङ्गं च चक्रतुः।। १६।।
सम्पूर्णमूर्च्छां बाहुभ्यां पूर्णकुम्भं प्रचक्रतुः।

एक दूसरे की तरफ घूरते हुए और थप्पड़ों से मारते हुए वे क्रोधित सिंहों के समान युद्ध कर रहे थे। वे दोनों हाथों तथा शरीर के अंगों से शत्रु के अंगों को दबाते हुए हाथों से लपेट कर उसके पेट को दबाते थे। दोनों ही मल्लविद्या में शिक्षित थे। वे प्रतिद्वन्द्वी की कमर और बगल को पकड़ कर उसे पछाड़ देते थे। वे पेट और पेट से नीचे हाथ लगा कर शत्रु को छाती और गले तक उठा कर फैंक देते थे। उन्होंने सारी मर्यादाओं से मुक्त पृष्ठभंग दाँव का भी प्रयोग किया और दोनों हाथों से सम्पूर्ण मूर्च्छा का प्रयोग करते हुए पूर्ण कुम्भ का प्रयोग करने लगे।

तृणपीडं यथाकामं पूर्णयोगं समुष्टिकम्।। १७।।
एवमादीनि युद्धानि प्रकुर्वन्तौ परस्परम्।
तयोर्युद्धं ततो द्रष्टुं समेताः पुरवासिनः।। १८।।
ब्राह्मणा वणिजश्चैव क्षत्रियाश्च सहस्रशः।
तयोरथ भुजाघातान्निग्रहप्रग्रहात् तथा।। १९।।
आसीत् सुभीमसम्पातो वज्रपर्वतयोरिव।
उभौ परमसंहृष्टौ बलेन बलिनां वरौ।। २०।।
अन्योन्यस्यान्तरं प्रेप्सू परस्परजयैषिणौ।

इसके पश्चात इच्छा के अनुसार वे तृणपीड़ नाम के दाँव का प्रयोग करने लगे और फिर घूँसे मारते हुए पूर्णयोग का उन्होंने प्रयोग किया। इस प्रकार विभिन्न दाँव पेचों को अपनाते हुए वे परस्पर युद्ध कर रहे थे। उनके युद्ध को देखने के लिये नगर के निवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हजारों की संख्या में वहाँ एकत्र होने लगे। एक दूसरे का निग्रह और प्रग्रह करते हुए तथा परस्पर हाथों से मारते हुए ऐसा शब्द होता था जैसे विद्युत पर्वत से टकरा रही हो। बलवानों में श्रेष्ठ वे दोनों ही अपनी शक्ति के अत्यन्त उत्साह में भरे हुए थे। वे दोनों एक दूसरे के छिद्रों को देखते हुए विजय की इच्छा रखते थे।

प्रकर्षणाकर्षणाभ्या मनुकर्षविकर्षणैः।। २१।।
आचकर्षतुरन्योन्यं जानुभिश्चावजघ्नतुः।
ततः शब्देन महता भर्त्सयन्तौ परस्परम्।। २२।।
पाषाणसंघातनिभैः प्रहारैरभिजघ्नतुः।
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ।। २३।।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव।

वे परस्पर आकर्ष, प्रकर्ष, अनुकर्ष, विकर्ष, आचकर्ष का प्रयोग करते हुए घुटनों से प्रहार कर रहे थे। वे जोर जोर से एक दूसरे को धमकाते हुए पत्थर के समान प्रहारों से मार कर रहे थे। विशाल वक्षस्थल और लम्बी भुजाओं वाले वे दोनों ही मल्लयुद्ध में कुशल थे। लोहे के परिघों के समान मोटी भुजाओं से वे एक दूसरे से भिड़ रहे थे।

कार्तिकस्य तु मासस्य प्रवृत्तं प्रथमेऽहनि।। २४।।
तद् वृत्तं तु त्रयोदश्यां समवेतं महात्मनोः।
चतुर्दश्यां निशायां तु निवृत्तो मागधः क्लमात्।। २५।।
ततस्तमजितं जेतुं जरासंधं वृकोदरः।
संरम्भं बलिनां श्रेष्ठो जग्राह कुरुनन्दनः।। २६।।
उत्क्षिप्य भ्रामयामास बलवन्तं महाबलः।
बभञ्ज पृष्ठं संक्षिप्त निष्पिष्य विननाद च।। २७।।
करे गृहीत्वा चरणं द्वेधा चक्रे महाबलः।

कार्तिक मास के पहले दिन वह युद्ध आरम्भ हुआ था। त्रयोदशी तक उन दोनों महात्माओं का वह युद्ध चलता रहा। चतुर्दशी की रात को मगध राज थकावट के कारण युद्ध से निवृत्त सा होने लगा। तब उस अजेय जरासंध को जीतने के लिये बलवानों में श्रेष्ठ कुरुनन्दन भीम ने क्रोध को धारण किया। उस महाबली ने उस बलवान को उठा कर घुमाना आरम्भ किया। फिर भूमि पर पटक कर कमर को मोड़ कर तोड़ दिया और उसे रगड़ते हुए जोर से गर्जना की। फिर उस महाबली ने उसके एक पैर को हाथ से पकड़ कर उसे दो भागों में चीर दिया।

आठवाँ अध्याय : बन्दी राजाओं की मुक्ति, श्रीकृष्ण आदि की वापिसी।

जरासंधरथं कृष्णो योजयित्वा पताकिनम्।
आरोप्य भ्रातरौ चैव मोक्षयामास बान्धवान्।। १।।
तत्रैनं नागराः सर्वे सत्कारेणाभ्ययुस्तदा।
बन्धनाद् विप्रमुक्ताश्च राजानो मधुसूदनम्।। २।।
पूजयामासुरूचुश्च स्तुतिपूर्वमिदं वचः।
जरासंधह्रदे घोरे दुःखपङ्के निमज्जताम्।। ३।।

राज्ञां समभ्युद्धरणं यदिदं कृतमद्य वै।
किं कुर्मः पुरुषव्याघ्र शाधि नः प्रणतिस्थितान्।। ४।।
कृतमित्येव तद् विद्धि नृपैर्यद्यपि दुष्करम्।

तब श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के पताका वाले रथ को जुड़वाया, उस पर दोनों भाइयों को बैठा कर और जा कर कारागार में बन्द अपने बान्धवस्वरूप राजाओं को मुक्त करवाया। तब सभी नागरिकों ने वहाँ आकर उनका सत्कार किया। बन्धन से छूटे हुए राजाओं ने भी श्रीकृष्ण जी की पूजा की और उनकी स्तुति करते हुए कहा कि हम दुख रूपी कीचड़ से भरे हुए जरासंध रूपी भयानक तालाब में डूब रहे थे। आज आपने हम सब राजाओं का उद्धार कर दिया। हम आपके चरणों में पड़े हुए हैं। हे पुरुषव्याघ्र! हम आपकी क्या सेवा करें? हमें आदेश दीजिये। यदि कठिन कार्य भी हो तो उसे हम सबके द्वारा पूरा किया हुआ समझें।

तानुवाच हृषीकेशः समाश्वास्य महामनाः।। ५।।
युधिष्ठिरो राजसूयं क्रतुमाहर्तुमिच्छति।
तस्य धर्मप्रवृत्तस्य पार्थिवत्वं चिकीर्षतः।। ६।।
सर्वैर्भवद्भिर्विज्ञाय साहाय्यं क्रियतामिति।
तथेत्येवाब्रुवन् सर्वे प्रतिगृह्यास्य तां गिरम्।। ७।।
जरासंधात्मजश्चैव सहदेवो महामनाः।
निर्ययौ सजनामात्यः पुरस्कृत्य पुरोहितम्।। ८।।
स नीचैः प्रणतो भूत्वा बहुरत्नपुरोगमः।
सहदेवो नृणां देवं वासुदेवमुपस्थितः।। ९।।

तब महामना हृषीकेश ने उन्हें सान्त्वना देकर कहा कि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ को करना चाहते हैं। धर्म में प्रवृत्त रहते हुए वे सम्राट् पद प्राप्त करना चाहते हैं। यह जान कर आप लोग उनकी सहायता कीजिये। तब उन राजाओं ने ऐसा ही होगा, यह कह कर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। तब जरासंध का पुत्र महामना सहदेव भी अपने बन्धुओं, आमात्यों सहित पुराहित को आगे कर बाहर निकल कर आया। बहुत से रत्नों के साथ, नीचे को झुक कर प्रणाम करते हुए वह नरदेव वासुदेव के समक्ष उपस्थित हुआ।

सहदेव उवाच

यत् कृतं पुरुषव्याघ्र मम पित्रा जनार्दन।
तत् ते हृदि महाबाहो न कार्यं पुरुषोत्तम।। १०।।
त्वां प्रपन्नोऽस्मि गोविन्द प्रसादं कुरु मे प्रभो।
पितुरिच्छामि संस्कारं कर्तुं देवकिनन्दन।। ११।।
प्रहृष्टो देवकीपुत्रः पाण्डवौ च महारथौ।
क्रियतां संस्क्रिया राजन् पितुस्त इति चाब्रुवन्।। १२।।

सहदेव ने कहा कि हे पुरुषव्याघ्र! जनार्दन, पुरुषोत्तम, महाबाहु! मेरे पिता ने जो कुछ किया, उसे आप अपने हृदय से निकाल दें। हे देवकीनन्दन, हे गोविन्द! हे प्रभो! मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। आप मुझ पर कृपा कीजिये। मैं अपने पिता का अन्त्येष्टि संस्कार करना चाहता हूँ। तब देवकीपुत्र श्रीकृष्ण और महारथी दोनों पाण्डवों ने प्रसन्न होकर कहा कि हे राजन्! आप अपने पिता का अन्त्येष्टि संस्कार कीजिये।

तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य पार्थयोश्च स मागधः।
प्रविश्य नगरं तूर्णं सह मन्त्रिभिरप्युत।। १३।।
कृत्वा पितुः स्वर्गगतिं निर्ययौ यत्र केशवः।
पाण्डवौ च महाभागौ भीमसेनार्जुनावुभौ।। १४।।
स प्रह्वः प्राञ्जलिर्भूत्वा व्यज्ञापयत माधवम्।
इमेरत्नानि भूरीणि गोऽजाविमहिषादयः।। १५।।
हस्तिनोऽश्वाश्चगोविन्द वासांसि विविधानि च।
दीयतां धर्मराजाय यथा वा मन्यते भवान्।। १६।।

श्री कृष्ण के तथा उन दोनों कुन्ती पुत्रों के वचनों को सुन कर सहदेव मंत्रियों के साथ शीघ्रता से नगर में प्रविष्ट हुआ और पिता का अन्त्येष्टि कर्म करके वह बाहर निकल कर वहाँ आया जहाँ महाभाग दोनों पाण्डव भीम और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण विद्यमान थे। उसने विनम्रता के साथ हाथ जोड़ कर श्रीकृष्ण जी से निवेदन किया कि ये बहुत से रत्न, गाय, भेड़, बकरे, भैंस, हाथी, घोड़े, और तरह-तरह के वस्त्र आप धर्मराज को दीजिये। अथवा जैसे आप उचित समझें, मुझे आज्ञा कीजिये।

भयार्ताय ततस्तस्मै कृष्णो दत्त्वाभयं तदा।
अभ्यषिञ्चत तत्रैव जरासंधात्मजं मुदा।। १७।।
गत्वैकत्वं च कृष्णेन पार्थाभ्यां चैव सत्कृतः।
कृष्णस्तु सह पार्थाभ्यां श्रिया परमया युतः।। १८।।
रत्नान्यादाय भूरीणि प्रययौ पुरुषर्षभः।
इन्द्रप्रस्थमुपागम्य पाण्डवाभ्यां सहाच्युतः।। १९।।
समेत्य धर्मराजानं प्रीयमाणोऽभ्यभाषत।

तब श्रीकृष्ण जी ने उस भय से पीड़ित सहदेव को अभय देकर उस जरासंध के पुत्र को वहीं मगध के राज्य पर अभिषिंचित कर दिया। श्रीकृष्ण ने उसे

अपना मित्र बना लिया और दोनों कुन्ती पुत्रों ने भी उसका बड़ा सम्मान किया। तब परम शोभा से युक्त पुरुष श्रेष्ठ श्री कृष्ण ने दोनों कुन्ती पुत्रों के साथ बहुत से रत्नों की भेंट लेकर वहाँ से प्रस्थान किया। दोनों पाण्डवों के साथ इन्द्रप्रस्थ में आ कर उन अच्युत श्रीकृष्ण ने धर्मराज से भेंट कर प्रसन्नता के साथ उनसे कहा कि–

दिष्ट्या भीमेन बलवाञ्जरासंधो निपातितः।। २०।।
राजानो मोक्षिताश्चैव बन्धनान्नृपसत्तम।
दिष्ट्या कुशलिनौ चेमौ भीमसेनधनंजयौ।। २१।।
पुनः स्वनगरं प्राप्तावक्षताविति भारत।
ततो युधिष्ठिरः कृष्णं पूजयित्वा यथार्हतः।। २२।।
भीमसेनार्जुनौ चैव प्रहृष्टः परिषस्वजे।
यथावयः समागम्य भ्रातृभिः सह पाण्डवः।। २३।।
सत्कृत्य पूजयित्वा च विससर्ज नराधिपान्।

हे राजश्रेष्ठ! सौभाग्य से भीम सेन ने बलवान जरासन्ध को मार गिराया है और राजाओं को बन्धन से छुड़ा दिया है। हे भरत श्रेष्ठ! ये दोनों भीम और अर्जुन कुशलता पूर्वक बिना चोट खाये सौभाग्य से पुनः अपने नगर को आ गये हैं। तब युधिष्ठिर ने प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण जी की यथायोग्य पूजा की और भीम तथा अर्जुन को अपने गले से लगाया। फिर उन पांडव ने अपने भाइयों के साथ आकर उन राजाओं से भेंट की और आयु के अनुसार उनका सत्कार कर उन्हें बिदा किया।

घातयित्वा जरासंधं बुद्धिपूर्वमरिंदमः।। २४।।
धर्मराजमनुज्ञाप्य पृथां कृष्णां च भारतं।
सुभद्रां भीमसेनं च फाल्गुनं यमजौ तथा।। २५।।
धौम्यमामन्त्रयित्वा च प्रययौ स्वां पुरीं प्रति।
तेनैव रथमुख्येन मनसस्तुल्यगामिना।
धर्मराजविसृष्टेन दिव्येनानादयन् दिशः।। २६।।

इस प्रकार शत्रुओं को दमन करने वाले श्रीकृष्ण बुद्धि पूर्वक जरासन्ध का नाश करा कर, भरतश्रेष्ठ धर्मराज की आज्ञा लेकर कुन्ती, कृष्णा, सुभद्रा, भीमसेन, अर्जुन, और नकुल सहदेव तथा धौम्य मुनि से बिदा लेकर उसी धर्मराज के दिये हुए मन के समान तीव्रगामी, दिव्य और उत्तम रथ के द्वारा दिशाओं को गुँजाते हुए अपनी नगरी को चले गये।

नवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा उत्तर की दिशा की विजय के लिये प्रस्थान।

पार्थः प्राप्य धनुः श्रेष्ठमक्षय्यौ च महेषुधी।
रथं ध्वजं सभां चैव युधिष्ठिरमभाषत।। १।।
धनुरस्त्रं शरा वीर्यं पक्षो भूमिर्यशो बलम्।
प्राप्तमेतन्मया राजन् दुष्प्रापं यदभीप्सितम्।। २।।
तत्र कृत्यमहं मन्ये कोशस्य परिवर्धनम्।
करमाहारयिष्यामि राज्ञः सर्वान् नृपोत्तम।। ३।।
विजयाय प्रयास्यामि दिशं धनदपालिताम्।
धनंजयवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।। ४।।
स्निग्धगम्भीरनादिन्या तं गिरा प्रत्यभाषत।

श्रेष्ठ धनुष, नष्ट न होने वाले तरकस, रथ को, ध्वजा को और सभा भवन को प्राप्त कर कुन्ती पुत्र अर्जुन युधिष्ठिर से बोले कि हे राजन्! धनुष, अस्त्र, बाण, पराक्रम, सहायक, भूमि, यश और बल ये सारे दुर्लभ मनोवांछित पदार्थ मुझे मिल गये हैं। अब मैं राजकोष को बढ़ाना ही आवश्यक कार्य समझता हूँ। हे नृप श्रेष्ठ! मैं सारे राजाओं को जीत कर उनसे कर ग्रहण करूँगा। मैं कुबेर के निवास स्थान उत्तर दिशा की तरफ विजय के लिये जाऊँगा। अर्जुन की बात सुन कर धर्मराज युधिष्ठिर ने मधुर और गम्भीर वाणी में उनसे कहा कि–

स्वस्तिवाच्यार्हतो विप्रान् प्रयाहि भरतर्षभ।। ५।।
दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां नन्दनाय च।
विजयस्ते ध्रुवं पार्थ प्रियं काममवाप्स्यसि।। ६।।

हे भरतश्रेष्ठ! तुम शत्रुओं के शोक तथा मित्रों के हर्ष को बढ़ाने के लिये योग्य ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर जाओ। हे पार्थ! तुम्हारी निश्चित रूप से विजय होगी और तुम अपनी प्रिय कामना को प्राप्त करोगे।

इत्युक्तः प्रययौ पार्थः सैन्येन महताऽऽवृतः।
अग्निदत्तेन दिव्येन रथेनाद्भुतकर्मणा।। ७।।
तथैव भीमसेनोऽपि यमौ च पुरुषर्षभौ।
ससैन्याः प्रययुः सर्वे धर्मराजेन पूजिताः।। ८।।
खाण्डवप्रस्थमध्यस्थो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
आसीत् परमया लक्ष्म्या सुहृद्गणवृतः प्रभुः।। ९।।

ऐसा कहे जाने पर अर्जुन अग्नि ब्राह्मण के द्वारा दिये हुए अद्भुतकर्मा दिव्यरथ के द्वारा, विशाल सेना

से घिरे हुए वहाँ से चल दिये। उसी प्रकार भीमसेन भी, तथा पुरुषश्रेष्ठ दोनों जुड़वें भाई नकुल सहदेव भी धर्मराज के द्वारा सत्कृत होकर सेना सहित विजय के लिये चल दिये। खाण्डव प्रस्थ में केवल राजा धर्मराज युधिष्ठिर ही अपने हितैषियों से घिरे हुए उत्तम राजलक्ष्मी के साथ रह गये।

पूर्वं कुलिन्दविषये वशे चक्रे महीपतीन्।
धनंजयो महाबाहुर्नातितीव्रेण कर्मणा।। १०।।
सुमण्डलं च विजितं कृतवान् सहसैनिकम्।
स किरातैश्च चीनैश्च वृतः प्राग्ज्योतिषोऽभवत्।। ११।।
अन्यैश्च बहुभिर्योधैः सागरानूपवासिभिः।
ततः स दिवसानष्टौ योधयित्वा धनंजयम्।। १२।।
प्रहसन्नब्रवीद् राजा संग्रामविगतक्लमम्।

महाबाहु अर्जुन ने पहले बिना अधिक पराक्रम प्रकट किये कुलिन्द देश के राजाओं को अपने वश में किया। उसके पश्चात् उसने सेना सहित सुमण्डल राजा को जीत लिया। उस समय प्राग्ज्योतषिपुर के राजा भगदत्त, किरात, चीन तथा समुद्र के समीप रहने वाले बहुत से योद्धाओं से घिरे हुए थे। उन्होंने आठ दिन तक अर्जुन से युद्ध किया फिर भी उन्हें संग्राम में थकावट रहित देख कर वे हँसते हुए बोले कि–

उपपन्नं महाबाहो त्वयि कौरवनन्दन।। १३।।
पाकशासनदायादे वीर्यमाहवशोभिनि।
अहं सखा महेन्द्रस्य शक्रादनवरो रणे।। १४।।
न शक्ष्यामि च ते तात स्थातुं प्रमुखतो युधि।
त्वमीप्सितं पाण्डवेय ब्रूहि किं करवाणि ते।। १५।।
यद् वक्ष्यसि महाबाहो तत् करिष्यामि पुत्रक।

हे लम्बी भुजाओं वाले कुरुनन्दन! युद्ध की शोभा बढ़ाने वाले, इन्द्र के पुत्र! तुम्हारे अन्दर ऐसा पराक्रम उचित ही है। मैं इन्द्र का मित्र हूँ और युद्ध में उससे कम नहीं हूँ, पर हे तात! मैं संग्राम में तुम्हारे सामने खड़ा नहीं हो सकूँगा। हे पाण्डव! तुम अपनी इच्छा बताओ। मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ? हे महाबाहु पुत्र! जो कहोगे, वहीं करूँगा।

अर्जुन उवाच–

कुरूणामृषभो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।। १६।।
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च यज्वा विपुलदक्षिणः।
तस्य पार्थिवतामीप्से करस्तस्मै प्रदीयताम्।। १७।।
भवान् पितृसखा चैव प्रीयमाणो मयापि च।
ततो नाज्ञापयामि त्वां प्रीतिपूर्वं प्रदीयताम्।। १८।।

भगदत्त उवाच

कुन्तीमातर्यथा मे त्वं तथा राजा युधिष्ठिरः।
सर्वमेतत् करिष्यामि किं चान्यत् करवाणि ते।। १९।।
एवमुक्तः प्रत्युवाच भगदत्तं धनंजयः।
अनेनैव कृतं सर्वमनुजानीहि याम्यहम्।। २०।।

तब अर्जुन ने कहा कि कुरुओं में श्रेष्ठ राजा धर्म पुत्र युधिष्ठिर जो धर्मज्ञ और सत्यसंध हैं, बहुत दक्षिणा देकर राजसूय यज्ञ करने वाले हैं। उन सम्राट बनने के इच्छुक के लिये आप कर दीजिये। आप मेरे पिता के मित्र हैं और मुझसे भी प्रेम रखते हैं, इसलिये मैं आपको आज्ञा नहीं दूँगा। आप प्रेम पूर्वक ही दीजिये। तब भगदत्त ने कहा कि हे कुन्ती के पुत्र! मेरे लिये जैसे तुम हो, वैसे ही राजा युधिष्ठिर हैं। मैं यह सब कुछ करूँगा और क्या मैं तुम्हारे लिये करूँ? ऐसा कहे जाने पर अर्जुन ने उत्तर दिया कि इतने से ही सब कुछ हो गया। अब आज्ञा दीजिये, मैं जाता हूँ।

विजित्य महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
प्रययावुत्तरां तस्माद् दिशं धनदपालिताम्।। २१।।
अन्तर्गिरिं च कौन्तेयस्तथैव च बहिर्गिरिम्।
तथैवोपगिरिं चैव विजिग्ये पुरुषर्षभः।। २२।।
विजित्य पर्वतान् सर्वान् ये च तत्र नराधिपाः।
तान् वशे स्थापयित्वा स धनान्यादाय सर्वशः।। २३।।
मृदङ्गवरनादेन रथनेमिस्वनेन च।
हस्तिनां च निनादेन कम्पयन् वसुधमिमाम्।। २४।।
ततो बृहन्तस्त्वरितो बलेन चतुरङ्गिणा।
निष्क्रम्य नगरात् तस्माद् योधयामास फाल्गुनम्।। २५।।
सुमहान् संनिपातोऽभूद् धनंजयबृहन्तयोः।
न शशाक बृहन्तस्तु सोढुं पाण्डवविक्रमम्।। २६।।
सोऽविषह्यतमं मत्वा कौन्तेयं पर्वतेश्वरः।
उपावर्तत दुर्धर्षो रत्नान्यादाय सर्वशः।। २७।।

विशाल भुजाओं वाले कुन्ती पुत्र अर्जुन भगदत्त को जीत कर कुबेर द्वारा सुरक्षित उत्तर दिशा में गये। उस पुरुष श्रेष्ठ कौन्तेय ने अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, और उपगिरि नाम के प्रदेशों को जीता। उन पर्वतों और वहाँ के राजाओं को जीत कर उन्होंने उनसे धन प्राप्त किया। उसके बाद जब वे श्रेष्ठ नगाड़ों की ध्वनि, रथों की घर्घराहट और हाथियों की चिंघाड़ों के साथ भूमि को कँपाते हुए से आगे बढ़

रहे थे, तब राजा बृहन्त अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ शीघ्रता पूर्वक अपने नगर से निकल कर अर्जुन से भिड़ गया। तब अर्जुन और बृहन्त में महान् युद्ध हुआ। पर वह पाण्डु पुत्र के शौर्य को सहन नहीं कर सका। तब वह दुर्धर्ष पर्वतेश्वर अर्जुन को असह्य मान कर युद्ध से हट गया और सब तरह के रत्न लेकर सेवा में उपस्थित हुआ।

मोदापुरं वामदेवं सुदामानं सुसंकुलम्।
उलूकानुत्तरांश्चैव तांश्च राज्ञः समानयत्।। २८।।
स देवप्रस्थमासाद्य सेनाबिन्दोः पुरं प्रति।
बलेन चतुरङ्गेण निवेशमरोत्‌ प्रभुः।। २९।।
स तैः परिवृतः सर्वैर्विष्वगश्वं नराधिपम्।
अभ्यगच्छन्महातेजाः पौरवं पुरुषर्षभः।। ३०।।
पौरवं युधि निर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः।
गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पाण्डवः।। ३१।।

इसके पश्चात् उन्होंने मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सुसंकुल, और उत्तर उलूक देशों और वहाँ के राजाओं को विजित किया। फिर सेना बिन्दु की राजधानी देवप्रस्थ में आकर अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ शक्तिशाली अर्जुन ने पड़ाव डाला। फिर पराजित राजाओं से घिरे हुए महातेजस्वी, नरश्रेष्ठ अर्जुन ने पौरव राजा विश्वग पर आक्रमण किया। पौरव राजा को युद्ध में जीत कर अर्जुन पर्वत निवासी लुटेरों के सात दलों को, जो उत्सव संकेत कहलाते थे, जीता।

ततः काश्मीरकान् वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः।
व्यजयल्लोहितं चैव मण्डलैर्दशभिः सह।। ३२।।
अभिसारीं ततो रम्यां विजिग्ये कुरुनन्दनः।
उरगावासिनं चैव रोचमानं रणेऽजयत्।। ३३।।
ततः सिंहपुरं रम्यं चित्रायुधसुरक्षितम्।
प्राधमद् बलमास्थाय पाकशासनिराहवे।। ३४।।
स विनिर्जित्य संग्रामे हिमवन्तं सनिष्कुटम्।
श्वेतपर्वतमासाद्य न्यविशत् पुरुषर्षभः।। ३५।।

फिर क्षत्रिय श्रेष्ठ अर्जुन ने काश्मीर के वीर क्षत्रियों को तथा दस मण्डलों के साथ राजा लोहित को भी जीत लिया। इसके बाद कुरुनन्दन ने रमणीय अभिसारी नगरी पर विजय प्राप्त की और उरगावासी रोचमान राजा को भी जीत लिया। फिर इन्द्रपुत्र ने चित्रायुध राजा के द्वारा सुरक्षित सुन्दर सिंहपुर नगर पर सेना के साथ आक्रमण किया और उस पर विजय प्रापत की। फिर उस पुरुष श्रेष्ठ ने हिमवान् और निष्कुटक प्रदेश के अधिपतियों को जीत कर धवलगिरि पर सेना का पड़ाव डाला।

स श्वेतपर्वतं वीरः समतिक्रम्य वीर्यवान्।
देशं किम्पुरुषावासं द्रुमपुत्रेण रक्षितम्।। ३६।।
महा संनिपातेन क्षत्रियान्तकरेण ह।
अजयत् पाण्डवश्रेष्ठः करे चैनं न्यवेशयत्।। ३७।।
तं जित्वा हाटकं नाम देशं गुह्यकरक्षितम्।
पाकशासनिरव्यग्रः सहसैन्यः समासदत्।। ३८।।
तांस्तु सान्त्वेन निर्जित्य मानसं सर उत्तमम्।
ऋषिकुल्यास्तथा सर्वा ददर्श कुरुनन्दनः।। ३९।।

फिर वह तेजस्वी वीर, पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन धवलगिरि को लाँघ कर द्रुमपुत्र के द्वारा सुरक्षित किम्पुरुष देश में गये, जहाँ किन्नरों का आवास था। वहाँ क्षत्रियों का विनाश करने वाले महान संग्राम के द्वारा उन्होंने उसे जीत लिया और उससे कर लेकर पुनः राज्य पर बैठा दिया। उसके पश्चात् इन्द्रपुत्र ने गुह्यक लोगों के द्वारा सुरक्षित हाटक नाम के देश पर अव्यग्र होकर सेना के साथ आक्रमण किया। उन गुह्यक लोगों को समझा बुझा कर ही वश में कर लेने के पश्चात् वे उत्तम मानसरोवर पर गये। वहाँ उन्होंने ऋषि कुल्याओं अर्थात् ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध जलस्रोतों के दर्शन किये।

सरो मानसमासाद्य हाटकानभितः प्रभुः।
गन्धर्वरक्षितं देशमजयत् पाण्डवस्ततः।। ४०।।
तत्र तित्तिरिकल्माषान् मण्डूकाख्यान् हयोत्तमान्।
लेभे स करमत्यन्तं गन्धर्वनगरात् तदा।। ४१।।
एवं स पुरुषव्याघ्रो विजित्य दिशमुत्तराम्।
संग्रामान् सुबहून् कृत्वा क्षत्रियैर्दस्युभिस्तथा।। ४२।।
स विनिर्जित्य राज्ञस्तान् करे च विनिवेश्य तु।
धनान्यादाय सर्वेभ्यो रत्नानि विविधानि च।। ४३।।
हयांस्तित्तिरिकल्माषाञ्छु कपत्रनिभानपि।
मयूरसदृशानन्यान् सर्वाननिलरंहसः।
आजगाम पुरवीरः शक्रप्रस्थ पुरोत्तमम्।। ४४।।

मानसरोवर पर पहुँच कर हाटक देश के पड़ौसी गन्धर्वो से सुरक्षित उनके देश भी पाण्डु पुत्र ने आक्रमण करके जीते। वहाँ से उन्होंने तित्तिरि, कल्माष, और मण्डूक नाम के उत्तम घोड़ों को कर के रूप में प्राप्त किया। इस प्रकार वह वीर पुरुषव्याघ्र उत्तर दिशा को जीत कर, क्षत्रियों और दस्युओं के

साथ बहुत से युद्ध कर, उन राजाओं को जीत कर तथा उनसे कर ग्रहण कर, उन्हें अपने राज्य में स्थापित कर, सबसे तरह-तरह से रत्न और धन लेकर वायु के समान वेग वाले तित्तिर, चितकबरे, तोते के पंख जैसे तथा मोर जैसे रंग वाले घोड़ों को लेकर पुनः नगरों में श्रेष्ठ इन्द्रप्रस्थ को लौट आये।

दसवाँ अध्याय : भीमसेन का पूर्व दिशा की विजय के लिये प्रस्थान।

एतस्मिन्नेव काले तु भीमसेनोऽपि वीर्यवान्।
धर्मराजमनुप्राप्य ययौ प्राचीं दिशं प्रति।। १।।
महता बलचक्रेण परराष्ट्रावमर्दिना।
हस्त्यश्वरथपूर्णेन दंशितेन प्रतापवान्।। २।।
वृतो भरतशार्दूलो द्विषच्छोकविवर्द्धनः।
स गत्वा नरशार्दूलः पञ्चालानां पुरं महत्।। ३।।
ततः स गण्डकाञ्छूरो विदेहान् भरतर्षभः।
विजित्याल्पेन कालेन दशार्णानजयत् प्रभुः।। ४।।
तत्र दाशार्णको राजा सुधर्मा लोमहर्षणम्।
कृतवान् भीमसेनेन महद् युद्धं निरायुधम्।। ५।।
भीमसेनस्तु तद् दृष्ट्वा तस्य कर्म महात्मनः।
अधिसेनापतिं चक्रे सुधर्माणं महाबलम्।। ६।।

इसी समय शत्रुओं के शोक को बढ़ाने वाले भरतश्रेष्ठ, प्रतापी और पराक्रमी भीमसेन भी धर्मराज से अनुमति लेकर शत्रु देशों को कुचलने वाली, हाथी, रथ तथा घोड़ों से भरी हुई, कवच पहने हुए, विशाल सेना के साथ पूर्व दिशा की तरफ गये। वह नरश्रेष्ठ पहले पांचालों की महान् नगरी में गये, फिर उस शक्तिशाली भरतश्रेष्ठ शूरवीर ने गण्डकी नदी के किनारों के देशों और मिथिला देश को थोड़े ही समय में जीत लिया। वहाँ दशार्ण देश के राजा सुधर्मा ने भीम के साथ बिना आयुधों के ही लोमहर्षक महान् मल्लयुद्ध किया। भीमसेन ने उस महात्मा के उस महान कार्य को देखकर महाबली सुधर्मा को अपना प्रधान सेनापति बना लिया।

ततस्तु धर्मराज्य शासनाद् भरतर्षभः।
शिशुपालं महावीर्यमभ्यगाज्जनमेजयः।। ७।।
चेदिराजोऽपि तच्छ्रुत्वा पाण्डवस्य चिकीर्षितम्।
उपनिष्क्रम्य नगरात् प्रत्यगृह्णात् परंतपं।। ८।।
तस्य भीमस्तदाऽऽचख्यौ धर्मराजचिकीर्षितम्।
स च तं प्रतिगृह्यैव तथा चक्रे नराधिपः।। ९।।

फिर शत्रुओं को कँपाने वाले वे भरतश्रेष्ठ धर्मराज की आज्ञा से महापराक्रमी शिशुपाल के यहाँ गये। चेदिराज ने पाण्डवों की इच्छा को जान कर उस परंतप का नगर से बार आकर सत्कार किया। तब भीम ने उन्हें धर्मराज युधिष्ठिर की इच्छा को बताया। राजा शिशुपाल ने उसे स्वीकार कर वैसा ही किया।

ततः कुमारविषये श्रेणिमन्तमथाजयत्।
कोसलाधिपतिं चैव बृहद्बलमरिंदमः।। १०।।
अयोध्यायां तु धर्मज्ञं दीर्घयज्ञं महाबलम्।
अजयत् पाण्डवश्रेष्ठो नातितीव्रेण कर्मणा।। ११।।
ततो गोपालकक्षं च सोत्तरानपि कोसलान्।
मल्लानामधिपं चैव पार्थिवं चाजयत् प्रभुः।। १२।।
ततो हिमवतः पार्श्वं समभ्येत्य जलोद्भवम्।
सर्वमल्पेन कालेन देशं चक्रे वशं बली।। १३।।

उसके पश्चात् शत्रुओं का दमन करने वाले भीम ने कुमार देश के राजा श्रेणीमान् और कोसलराज बृहद्बल को जीता। अयोध्या के महाबली और धर्मज्ञ राजा दीर्घयज्ञ को उस पाण्डव श्रेष्ठ ने समझा बुझा कर वश में कर लिया। उसके पश्चात् उस शक्तिशाली ने गोपालकक्ष और उत्तर कोसल राज्यों को जीत कर मल्ल देश के अधिपति को भी जीत लिया। फिर हिमालय के पास जाकर उस बलवान् ने सारे जलोद्भव देश को थोड़े ही समय में वश में कर लिया।

एवं बहुविधान् देशान् विजिग्ये भरतर्षभः।
भल्लाटमभितो जिग्ये शुक्तिमन्तं च पर्वतम्।। १४।।
पाण्डवः सुमहावीर्यो बलेन बलिनां वरः।
स काशिराजं समरे सुबाहुमनिवर्तिनम्।। १५।।
वशे चक्रे महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः।
अनघानभयांश्चैव पशुभूमिं च सर्वशः।। १६।।
निवृत्य च महाबाहुः मदधारं महीधरम्।
सोमधेयांश्च निर्जित्य, मलदांश्च महाबलान्।। १७।।
वत्सभूमिं च कौन्तेयो विजिग्ये बलवान् बलात्।

इस प्रकार भरत श्रेष्ठ भीम ने अनेक देश जीते। उसने भल्लाट के पड़ौसी देशों और शुक्तिमान पर्वत पर भी विजय प्राप्त की। भयानक पराक्रम वाले, महाबाहु, बलवानों में श्रेष्ठ, महातेजस्वी भीम ने युद्ध से मुँह न मोड़ने वाले काशिराज सुबाहु को शक्ति से अपने वश में कर लिया। फिर उन्होंने अनघ

और अभय नाम के देशों को जीत कर पशुभूमि को सब तरफ से जीत लिया। फिर वहाँ से लौटकर उन महाबाहु ने मदधार पर्वत और सोमधेय निवासियों को जीत कर महाबली मलदों को भी जीत लिया। बलवान कुन्तीपुत्र ने वत्स भूमि पर भी बल पूर्वक अधिकार जमा लिया।

भर्गाणामधिपं चैव निषादाधिपतिं तथा।। १८।।
विजिग्ये भूमिपालांश्च मणिमत्प्रमुखान् बहून्।
ततो दक्षिणमल्लांश्च भोगवन्तं च पर्वतम्।। १९।।
तरसैवाजयद् भीमो नातितीव्रेण कर्मणा।
शर्मकान् वर्मकांश्चैव व्यजयत् सान्त्वपूर्वकम्।। २०।।
शकांश्च बर्बरांश्चैव अजयच्छद्मपूर्वकम्।
वैदेहस्थस्तु कौन्तेय इन्द्रपर्वतमन्तिकात्।। २१।।
किरातानामधिपतीनजयत् सप्त पाण्डवः।

फिर उन्होंने भर्गों के स्वामी, निषादों के स्वामी, तथा मणिमान् आदि बहुत से राजाओं को जीता। फिर दक्षिण मल्ल देश और भोगवान् पर्वत को भीम ने बिना अधिक प्रयास किये शीघ्रता से जीत लिया। शर्मकों और वर्मकों को उन्होंने समझा कर वश में कर लिया और शकों तथा बर्बरों को छल पूर्वक जीत लिया। इसके बाद उन्होंने विदेह देश में ही ठहर कर इन्द्र पर्वत के समीप के सात किरात राजाओं को जीत लिया।

दण्डं च दण्डधारं च विजित्य पृथिवीपतीन्।। २२।।
तैरेव सहितैः सर्वैर्गिरिव्रजमुपाद्रवत्।
सः कम्पयन्निव महीं बलेन चतुरङ्गिणा।। २३।।
युयुधे पाण्डवश्रेष्ठः कर्णेनामित्रघातिना।
स कर्णं युधि निर्जित्य वशे कृत्वा च भारतः।। २४।।
ततो विजिग्ये बलवान् राज्ञः पर्वतवासिनः।
अथ मोदागिरौ चैव राजानं बलवत्तरम्।। २५।।
पाण्डवो बाहुवीर्येण निजघान महामृधे।

दण्ड, दण्डधार तथा दूसरे राजाओं को जीत कर उनके साथ वे गिरिव्रज में आये। फिर उसके पश्चात् चतुरंगिणी सेना के साथ भूमि को कँपाते हुए उस पाण्डव श्रेष्ठ ने अमित्रघाती कर्ण के साथ युद्ध किया। उस बलवान भरतश्रेष्ठ ने कर्ण को युद्ध में जीत कर पर्वतीय राजाओं पर विजय प्राप्त की। फिर मोदागिरि के बलवान राजाओं को पाण्डु पुत्र ने अपनी भुजाओं की शक्ति से महासमर में मार गिराया।

समुद्रसेनं निर्जित्य चन्द्रसेनं च पार्थिवम्।। २६।।
ताम्रलिपं च राजानं कर्वटाधिपतिं तथा।
सुह्मानामधिपं चैव ये च सागरवासिनः।। २७।।
सर्वान् म्लेच्छगणांश्चैव विजिग्ये भरतर्षभः।
एवं बहुविधान् देशान् विजित्य पवनात्मजः।। २८।।
वसु तेभ्य उपादाय लौहित्यमगमद् बली।

इसके पश्चात समुद्रसेन को, चन्द्रसेन राजा को, ताम्रलिप्त के राजा को, कर्वट अधिपति को, सुह्म देश के राजा को, और समुद्र के किनारे रहने वाले म्लेच्छ लोगों, सभी को उस भरतश्रेष्ठ ने अपने वश में कर लिया। इस प्रकार वायुपुत्र बलवान भीम ने बहुत से देशों पर अधिकार कर उनसे धन लेकर लौहित्य देश की यात्रा की।

चन्दनागुरुवस्त्राणि मणिमौक्तिककम्बलम्।। २९।।
काञ्चनं रजतं चैव विद्रुमं च महाधनम्।
ते कोटिशतसंख्येन कौन्तेयं महता तदा।। ३०।।
अभ्यवर्षन् महात्मानं धनवर्षेण पाण्डवम्।
इन्द्रप्रस्थमुपागम्य भीमो भीमपराक्रमः।
निवेदयामास तदा धर्मराजाय तद् धनम्।। ३१।।

उन राजाओं ने चन्दन, अगर, वस्त्र, मणि, मोती, कम्बल, सोना, चाँदी और बहुमूल्य मूँगे कुन्ती पुत्र को भेंट किये। उन्होंने महात्मा पाण्डु पुत्र के ऊपर करोड़ों की संख्या में धन की वर्षा की। भयंकर पराक्रमी भीमसेन ने तब इन्द्रप्रस्थ में आकर वह सारा धन धर्मराज युधिष्ठिर को अर्पित कर दिया।

ग्यारहवाँ अध्याय : सहदेव द्वारा विजय के लिये दक्षिण दिशा की तरफ प्रस्थान।

तथैव सहदेवोऽपि प्रययौ दक्षिणां दिशाम्।
स शूरसेनान् कार्त्स्न्येण पूर्वमेवाजयत् प्रभुः।। १।।
मत्स्यराजं च कौरव्यो वशे चक्रे बलाद् बली।
अधिराजाधिपं चैव दन्तवक्रं महाबलम्।। २।।
जिगाय करदं चैव कृत्वा राज्ये न्यवेशयत्।
सुकुमारं वशे चक्रे सुमित्रं च नराधिपम्।। ३।।
तथैवापरमत्स्यांश्च व्यजयत् स पटच्चरान्।
निषादभूमिं गोशृङ्गं पर्वतप्रवरं तथा।। ४।।

तब सहदेव ने भी उसी प्रकार दक्षिण दिशा की तरफ प्रस्थान किया। उस शक्तिशाली ने शूरसेन निवासियों को पहले पूर्ण रूप से जीता और मत्स्यराज को उस बलवान ने बल से वश में किया। फिर उसने राजाओं के राजा महाबली दन्तवक्र को जीत कर, उसे कर देने वाला बना कर अपने राज्य पर ही प्रतिष्ठित कर दिया। उसने राजा सुकुमार को, सुमित्र को वश में किया। फिर उसने अपर मत्स्यों और लुटेरों पर भी विजय प्राप्त की और निषाद देश तथा पर्वत श्रेष्ठ गोशृंग को जीता।

नरराष्ट्रं च निर्जित्य कुन्तिभोजमुपाद्रवत्।
प्रीतिपूर्वं च तस्यासौ प्रतिजग्राह शासनम्।। ५।।
ततश्चर्मण्वतीकूले जम्भकस्यात्मजं नृपम्।
ददर्श वासुदेवेन शेषितं पूर्ववैरिणा।। ६।।
स तमाजौ विनिर्जित्य दक्षिणाभिमुखो ययौ।
सेकानपरसेकांश्च व्यजयत् सुमहाबलः।। ७।।
करं तेभ्य उपादाय रत्नानि विविधानि च।
ततस्तेनैव सहितो नर्मदामभितो ययौ।। ८।।

फिर नरराष्ट्र को जीत कर कुन्तीभोज पर आक्रमण किया, जिन्होंने प्रेम पूर्वक ही उनका शासन स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने चम्बल नदी के किनारे जम्भक के पुत्र राजा को देखा, जिसे पूर्व वैरी श्रीकृष्ण ने जीवित छोड़ दिया था। उसे युद्ध में जीत कर वे दक्षिण की तरफ बढ़ गये। फिर उस महाबली ने सेक और अपरसेक देशों पर विजय पायी। उनसे कर तथा तरह-तरह के रत्न लेकर उनके साथ वे नर्मदा की तरफ गये।

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्येन महताऽऽवृतौ।
जिगाय समरे वीरावाश्विनेयः प्रतापवान्।। ९।।
ततो रत्नान्युपादाय पुरं भोजकटं ययौ।
स विजित्य दुराधर्षं भीष्मकं माद्रिनन्दनः।। १०।।
नाटकेयांश्च समरे तथा हेरम्बकान् युधि।
मारुधं च विनिर्जित्य रम्यग्राममथो बलात्।। ११।।
नाचीनानर्बुकांश्चैव राज्ञश्चैव महाबलः।
तांस्तानाटविकान् सर्वानजयत् पाण्डुनन्दनः।। १२।।
वाताधिपं च नृपतिं वशे चक्रे महाबलः।

अश्विनी कुमार के प्रतापी पुत्र सहदेव ने अवन्तीराज को पुत्र विन्द और अनुविन्द को, जो विशाल सेना से घिरे हुए थे, युद्ध में जीता। वहाँ से रत्नों के लेकर वे भोजकट पुर को गये और वहाँ माद्रीपुत्र ने दुराधर्ष भीष्मक को जीता और उसके पश्चात् उसने युद्ध में नाटकेय तथा हेरम्बकों को हराया। महाबली पाण्डुपुत्र सहदेव ने मारुध को और रम्यग्राम को बलपूर्वक हराया। उसके पश्चात् उन्होंने नाचीन, अर्बुक और सारे वनेचर राजाओं को जीता। उन्होंने राजा वाताधिप को भी वश में कर लिया।

ततो रत्नान्युपादाय पुरं माहिष्मतीं ययौ।। १३।।
तत्र नीलेन राज्ञा स चक्रे युद्धं नरर्षभः।
माद्रीसुतस्ततः प्रायाद् विजयी दक्षिणां दिशम्।। १४।।
त्रैपुरं स वशे कृत्वा राजानममितौजसम्।
निजग्राह महाबाहुस्तरसा पौरवेश्वरम्।। १५।।
आकृतिं कौशिकाचार्यं यत्नेन महता ततः।
वशे चक्रे महाबाहुः सुराष्ट्राधिपतिं तदा।। १६।।

उस नरश्रेष्ठ ने वहाँ से रत्नों को ग्रहण किया और फिर महिष्मती पुरी में गए। वहाँ उन्होंने राजा नील के साथ युद्ध किया। वहाँ विजय प्राप्त कर माद्रीपुत्र आगे दक्षिण दिशा में गए। वहाँ उन्होंने त्रिपुरी के राजा अमितौजा को बस में करके उस महाबाहु ने पौरवेश्वर को तेजी से बन्दी बना लिया। फिर उन्होंने सुराष्ट्र के राजा कौशिकाचार्य आकृति को बड़े प्रयत्न से वश में किया।

ततः शूर्पारकं चैव तालाकटमथापि च।
वशे चक्रे महातेजा दण्डकांश्च महाबलः।। १७।।
कृत्स्नं कोलगिरिं चैव सुरभीपत्तनं तथा।
द्वीपं ताम्राह्वयं चैव पर्वतं रामकं तथा।। १८।।
तिमिङ्गिलं च स नृपं वशे कृत्वा महामतिः।
नगरीं संजयन्तीं च पाखण्डं करहाटकम्।। १९।।
दूतैरव वशे चक्रे करं चैनानदापयत्।

फिर महातेजस्वी, महाबली सहदेव ने शूरपाटक और तालाकट देशों को और दण्डकारण्य को अपने वश में किया उन्होंने सारे कोलगिरि, सुरभि पतन, ताम्रद्वीप, रामक पर्वत और तिमिंगलक नरेश को वश में किया और उसके पश्चात् उस महामति ने संजयन्ती नगरी, पाखण्ड और करहाटक देशों को दूतों के द्वारा ही वश में कर लिया और उनसे कर ग्रहण किया।

पाण्ड्यांश्च द्रविडांश्चैव सहितांश्चोण्ड्रकेरलैः।। २०।।
आन्ध्रांस्तालवनांश्चैव, कलिंगानुष्ट्रकर्णिकान्।

आटवीं च पुरीं रम्यां यवनानां पुरं तथा।। २१।।
दूतैरेव वशे चक्रे करं चैनानदापयत्।
एवं निर्जित्य तरसा सान्त्वेन विजयेन च।
करदान् पार्थिवान् कृत्वा प्रत्यागच्छदरिंदमः।। २२।।

पाण्डय, द्रविड, उण्ड्र, केरल, आन्ध्र, तालवन, कलिंग, उष्ट्रकर्णिक, रमणीय आटवीपुरी और यवनों के नगर इन सबको उन्होंने दूतों के द्वारा ही वश में कर लिया और उनसे कर ग्रहण किया। इस प्रकार वेग पूर्वक जीत कर और सामनीति से राजाओं को समझा कर, उन्हें कर देने वाला बना कर वे शत्रुओं को दमन करने वाले सहदेव वापिस आ गये।

बारहवाँ अध्याय : नकुल का विजय के लिये पश्चिम दिशा की तरफ प्रस्थान।

निर्याय खाण्डवप्रस्थात् प्रतीचीमभितोदिशम्।
उद्दिश्य मतिमान् प्रायान्महत्या सेनया सह।। १।।
सिंहनादेन महता योधानां गर्जितेन च।
रथनेमिनिनादैश्च कम्पयन् वसुधामिमाम्।। २।।
ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत्।
कार्तिकेयस्य दयितं रोहीतकमुपाद्रवत्।। ३।।
तत्र युद्धं महच्चासीच्छूरैर्मत्तमयूरकैः।
मरुभूमिं स कार्त्स्न्येन तथैव बहुधान्यकम्।। ४।।
शैरीषकं महोत्थं च वशे चक्रे महाद्युति।
आक्रोशं चैव राजर्षिं तेन युद्धमभून्महत्।। ५।।

तब वह बुद्धिमान नकुल विशाल सेना के साथ पश्चिम दिशा को उद्देश्य करके खाण्डवप्रस्थ से निकले। वे योद्धाओं के महानसिंहनाद और गर्जना तथा रथों की घर्घराहट से इस भूमि को कम्पित कर रहे थे। तब वे बहुत धनवान, सुन्दर और गायों से बहुल और कार्तिकेय के प्रिय रोहितक प्रदेश में गये। वहाँ उनका मत्त मयूर नाम के शूरवीरों के साथ युद्ध हुआ। उस पर अधिकार करने के पश्चात् सम्पूर्ण मरुभूमि तथा बहुत धन धान्य वाले शैरीषक और महोत्थ पर उस महातेजस्वी ने अधिकार कर लिया। उन्होंने राजर्षि आक्रोश के साथ महान् युद्ध कर उसे भी जीत लिया।

तान् दशार्णान् स जित्वा च प्रतस्थे पाण्डुनन्दनः।
शिबींस्त्रिगर्तानम्बष्ठान् मालवान् पञ्चकर्पटान्।। ६।।
तथा माध्यमिकांश्चैव वाटधानान् द्विजानथ।
पुनश्च परिवृत्याथ पुष्करारण्यवासिनः।। ७।।
गणानुत्सवसंकेतान् व्यजयत् पुरुषर्षभः।
सिन्धुकूलाश्रिता ये च ग्रामणीया महाबलाः।। ८।।
शुद्राभीरगणाश्चैव ये चाश्रित्य सरस्वतीम्।
वर्तयन्ति च ये मत्स्यैर्ये च पर्वतवासिनः।। ९।।

फिर उस पाण्डु पुत्र ने दशार्ण देश पर विजय पायी और आगे प्रस्थान कर शिवि, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, मालव, पंचकर्पट, माध्यमिक देश और वाटधान देशी क्षत्रियों को हराया। फिर उस पुरुषश्रेष्ठ ने वहाँ से लौटकर पुष्करारण्यवासी उत्सव संकेत नाम के गणों को जीता। समुद्र के किनारे रहने वाले जो महाबली ग्रामणीय क्षत्रिय थे, सरस्वती के किनारे रहने वाले जो शूद्र आभीरगण थे, मछलियों से निर्वाह करने वाले जो धीवर जाति के लोग थे तथा जो पर्वतों पर निवास करते थे, उन सबको उन्होंने जीत लिया।

कृत्स्नं पञ्चनदं चैव तथैवामरपर्वतम्।
उत्तरज्योतिषं चैव तथा दिव्यकटं पुरम्।। १०।।
द्वारपालं च तरसा वशे चक्रे महाद्युतिः।
रामठान् हारहूणांश्च प्रतीच्याश्चैव ये नृपाः।। ११।।
तान् सर्वान् स वशे चक्रे शासनादेव पाण्डवः।
तत्रस्थः प्रेषयामास वासुदेवाय भारतः।। १२।।
ततः शाकलमभ्येत्य मद्राणां पुटभेदनम्।
मातुलं प्रीतिपूर्वेण शल्यं चक्रे वशे बली।। १३।।

फिर सारे पंजाब को अमर पर्वत को, उत्तर ज्योतिष्, दिव्यकट नगर को और द्वारपालपुर को महान कान्तिमान् नकुल ने वेग पूर्वक अपने वश में कर लिया। उन्होंने पश्चिम में जो रामठ, हारहूण तथा दूसरे जो राजा थे, उन सबको उन्होंने आज्ञा मात्र से अपने वश में कर लिया। फिर भरतवंशी कुल ने वहीं रह कर श्री कृष्ण जी के पास अपने दूत को भेजा। इसके पश्चात् शाकल देश को जीत कर मद्र देश की राजधानी में उन बलवान् ने अपने मामा शल्य को प्रेम पूर्वक ही वश में कर लिया।

स तेन सत्कृतो राज्ञा सम्प्रतस्थे युधाम्पतिः।
ततः सागरकुक्षिस्थान् म्लेच्छान् परमदारुणान्।। १४।।
पह्लवान् बर्बरांश्चैव किरातान् यवनाञ्छकान्।
ततो रत्नान्युपादाय वशे कृत्वा च पार्थिवान्।। १५।।

न्यवर्तत कुरुश्रेष्ठो नकुलश्चित्रमार्गवित्।
इन्द्रप्रस्थगतं वीरमभ्येत्य स युधिष्ठिरम्।
ततो माद्रीसुतः श्रीमान् धनं तस्मै न्यवेदयत्।। १६।।

राजा शल्य से सत्कार प्राप्त कर योद्धाओं के अधिपति नकुल आगे बढ़ गये। फिर वे समुद्री द्वीपों में रहने वाले अत्यन्त भयानक म्लेच्छों, पह्लवों, बर्बर, किरात, यवन, और शकों को जीत कर उन राजाओं को अपने वश में करके, उनसे रत्नों को ग्रहण करके, विजय के विचित्र उपायों को जानने वाले कुरुश्रेष्ठ नकुल वापिस लौट आये। उन श्रीमान् माद्रीपुत्र ने इन्द्रप्रस्थ में विद्यमान वीर युधिष्ठिर से मिल कर वह धन उन्हें समर्पित कर दिया।

तेरहवाँ अध्याय : राजसूय यज्ञ की तैयारी।

स्वकोष्ठस्य परीमाणं कोशस्य च महीपतिः।
विज्ञाय राजा कौन्तेयो यज्ञायैव मनो दधे।। १।।
सुहृदश्चैव ये सर्वे पृथक् च सह चाब्रुवन्।
यज्ञकालस्तव विभो क्रियतामत्र साम्प्रतम्।। २।।
अथैवं ब्रुवतामेव तेषामभ्याययौ हरिः।
बलाधिकारे निक्षिप्य सम्यगानकदुन्दुभिम्।। ३।।
उच्चावचमुपादाय धर्मराजाय माधवः।
धनौघं पुरुषव्याघ्रो बलेन महताऽऽवृतः।। ४।।

तब कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अपने भण्डार और कोष का परिमाण समझ कर यज्ञ करने के लिये ही अपना मन बनाया। जितने उनके हितैषी थे, वे भी सब इकट्ठे और अलग-अलग भी यह कहने लगे कि हे प्रभो! यह आपके यज्ञ करने का समय है, अब इसे आरम्भ कर दीजिये। वे सब ऐसा कह ही रहे थे, कि श्रीकृष्ण जी भी वहाँ आ गये। सेना के अधिकार पर अपने पिता वसुदेव को स्थापित करके, और अनेक प्रकार की भेंट सामग्री तथा धन भण्डार लेकर वे पुरुष श्रेष्ठ माधव विशाल सेना के साथ आये थे।

तं मुदाभिसमागम्य सत्कृत्य च यथाविधि।
स पृष्ट्वा कुशलं चैव सुखासीनं युधिष्ठिरः।। ५।।
भीमार्जुनयमैश्चैव सहितः कृष्णमब्रवीत्।
त्वत्कृते पृथिवी सर्वा मद्वशे कृष्ण वर्तते।। ६।।
धनं च बहु वार्ष्णेय त्वत्प्रसादादुपार्जितम्।
सोऽहमिच्छामि तत् सर्वं विधिवद् देवकीसुत।। ७।।
उपयोक्तुं द्विजाग्रेभ्यो हव्यवाहे च माधव।
तदहं यष्टुमिच्छामि दाशार्ह सहितस्त्वया।। ८।।
अनुजैश्च महाबाहो तन्मानुज्ञातुमर्हसि।

बड़ी प्रसन्नता से उनका यथाविधि सत्कार कर, उनका कुशल मंगल पूछ कर, जब वे आराम से बैठ गये, तब युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और दोनों जुड़वाँ भाइयों के साथ उनसे बोले कि हे कृष्ण! तुम्हारे करने से ही यह सारी भूमि मेरे अधिकार में हुई है और तुम्हारी कृपा से ही मैंने बहुत धन एकत्र कर लिया है। हे देवकी पुत्र! माधव! इसलिये मैं इस धन को श्रेष्ठ ब्राह्मणों और हव्यवाहन अग्नि के उपयोग में लाना चाहता हूँ। हे महाबाहु, दाशार्ह, मैं आपके और अपने छोटे भाइयों के साथ यज्ञ करना चाहात हूँ। आप मुझे इसके लिये आज्ञा दीजिये।

तद् दीक्षाय गोविन्द त्वमात्मानं महाभुज।। ९।।
त्वयीष्टवति दाशार्ह विपाप्मा भविता ह्यहम्।
मां वाप्यभ्यनुजानीहि स हैभिरनुजैर्विभो।। १०।।
अनुज्ञातस्त्वया कृष्ण प्राप्नुयां क्रतुमुत्तमम्।
तं कृष्णः प्रत्युवाचेदं बहूक्त्वा गुणविस्तरम्।। ११।।
त्वमेव राजशार्दूल सम्राडर्हो महाक्रतुम्।
सम्प्राप्नुहि त्वया प्राप्ते कृतकृत्यास्ततो वयम्।। १२।।

हे महाबाहु, दाशार्ह, गोविन्द! आप स्वयं यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कीजिये। आपके यज्ञ करने पर मैं पाप रहित हो जाऊँगा। या हे प्रभो! आप मुझे अपने छोटे भाइयों के साथ आज्ञा दीजिये। आपके आज्ञा देने पर मैं हे कृष्ण! इस उत्तम यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करूँगा। तब श्रीकृष्ण जी ने राजसूय यज्ञ के गुणों का विस्तार से वर्णन करके कहा कि हे राजसिंह! आप ही साम्राट् बनने के योग्य हैं! इसलिये आप ही इस महान यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कीजिये। आपके दीक्षा लेने पर हम सब कृतार्थ हो जायेंगे।

यजस्वाभीप्सितं यज्ञं मयि श्रेयस्यवस्थिते।
नियुङ्क्ष्व त्वं च मां कृत्ये सर्वं कर्तास्मि ते वचः।। १३।।

युधिष्ठिर उवाच

सफलः कृष्ण संकल्पः सिद्धिश्च नियता मम।
यस्य मे त्वं हृषीकेश यथेप्सितमुपस्थितः।। १४।।

अनुज्ञातस्तु कृष्णेन पाण्डवो भ्रातृभिः सह।
ईजितुं राजसूयेन साधनान्युपचक्रमे।। १५।।
ततस्त्वाज्ञापयामास पाण्डवोऽरिनिबर्हणः।
सहदेवं युधां श्रेष्ठं मन्त्रिणश्चैव सर्वशः।। १६।।

आप अपने इस इच्छित यज्ञ को आरम्भ कीजिये। मैं आपके कल्याण के लिये विद्यमान हूँ। आप मुझे यज्ञ के कार्य में लगाइये। मैं आपके कहने के अनुसार सब कुछ करूँगा। तब युधिष्ठिर बोले कि हे हृषीकेश! मेरा संकल्प सफल हो गया, मेरी सिद्धि निश्चित है, क्योंकि आप मेरी इच्छानुसार स्वयं यहाँ उपस्थित हैं। तब कृष्ण से अनुमति पाकर पाण्डव युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ राजसूय यज्ञ करने के लिये साधन जुटाने में लग गये। तब शत्रुओं का दमन करने वाले युधिष्ठिर ने योद्धाओं में श्रेष्ठ सहदेव को और सारे मंत्रियों को आज्ञा दी कि–

अस्मिन् क्रतौ यथोक्तानि यज्ञाङ्गानि द्विजातिभिः।
तथोपकरणं सर्वं मङ्गलानि च सर्वशः।। १७।।
अधियज्ञांश्च सम्भारान् धौम्योक्तान् क्षिप्रमेव हि।
समानयन्तु पुरुषा यथायोगं यथाक्रमम्।। १८।।
इन्द्रसेनो विशोकश्च पूरुश्चार्जुनसारथिः।
अन्नाद्याहरणे युक्ताः सन्तु मत्प्रियकाम्यया।। १९।।
सर्वकामाश्च कार्यन्तां रसगन्धसमन्विताः।
मनोरथप्रीतिकरा द्विजानां कुरुसत्तम।। २०।।

इस यज्ञ के लिये ब्राह्मणों के द्वारा बताये गये यज्ञ के अंग जो भी उपकरण हैं और मांगलिक पदार्थ हैं तथा धौम्य जी द्वारा बतायी गयी यज्ञ की आवश्यक वस्तुएँ हैं, उन सबको सेवक लोग जैसे मिलें, वैसे ही क्रमशः लायें। इन्द्रसेन, विशोक, तथा अर्जुन का सारथि पुरु, मेरा प्रिय करने की इच्छा से अन्न आदि एकत्र करने में लग जायें। जिनकी सब कामना करते हैं, वे रसीले और सुगन्धित खाद्य पदार्थ, जो तीनों वर्णों के मनोवांछित हों, हे कुरुश्रेष्ठ! उन्हें तैयार कराया जाये।

स्वयं ब्रह्मत्वमकरोत् तस्य सत्यवतीसुतः।
धनंजयानामृषभः सुसामा सामगोऽभवत्।। २१।।
याज्ञवल्क्यो बभूबाथ ब्रह्मिष्ठोऽध्वर्युसत्तमः।
पैलो होता वसोः पुत्रो धौम्येन सहितोऽभवत्।। २२।।
तत्र चक्रुरनुज्ञाताः शरणान्युत शिल्पिनः।
गन्धवन्ति विशालानि वेश्मानीव दिवौकसाम्।। २३।।

सत्यवती पुत्र व्यास जी स्वयं उस यज्ञ में ब्रह्मा बने। धनंजय गोत्रीय ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सुसाम, सामवेद का गान करने वाले हुए। ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवल्क्य उस यज्ञ के श्रेष्ठतम अध्वर्यु थे। वसु के पुत्र पैल धौम्य के साथ होता बने थे। वहाँ राजा की आज्ञा से शिल्पियों ने देवताओं के आवासों के समान विशाल और गन्ध वाले मकान बनाये थे।

तत आज्ञापयामास स राजा राजसत्तमः।
सहदेवं तदा सद्यो मन्त्रिणं पुरुषर्षभः।। २४।।
आमन्त्रणार्थं दूतांस्त्वं प्रेषयस्वाशुगान् द्रुतम्।
उपश्रुत्य वचो राज्ञः स दूतान् प्राहिणोत् तदा।। २५।।
ततस्ते तु यथाकालं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
दीक्षयाञ्चक्रिरे विप्रा राजसूयाय भारत।। २६।।
दीक्षितः स तु धर्मात्मा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
जगाम यज्ञायतनं वृतो विप्रैः सहस्रशः।। २७।।

तब नरश्रेष्ठ राजशिरोमणि राजा युधिष्ठिर ने तुरन्त अपने मंत्री सहदेव को आज्ञा दी कि तुम जल्दी से आमंत्रित करने के लिये शीघ्रगामी दूतों को भेजो। राजा की आज्ञा सुन कर उसने तब दूतों को भेजा। उसके पश्चात् भरतवंशी, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को ब्राह्मणों ने यथा समय यज्ञ की दीक्षा दी। यज्ञ की दीक्षा लेकर वे धर्मात्मा युधिष्ठिर हजारों ब्राह्मणों से घिरे हुए यज्ञमण्डप में गए।

भ्रातृभिर्ज्ञातिभिश्चैव सुहृद्भिः सचिवैः सह।
क्षत्रियैश्च मनुष्येन्द्रैर्नानादेशसमागतैः।। २८।।
अमात्यैश्च नरश्रेष्ठो धर्मो विग्रहवानिव।
आजग्मुर्ब्राह्मणास्तत्र विषयेभ्यस्ततस्ततः।। २९।।
सर्वविद्यासु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगाः।
तेषामावसथांश्चक्रुर्धर्मराजस्य शासनात्।। ३०।।
बह्वन्नाच्छादनैर्युक्तान् सगणानां पृथक् पृथक्।
सर्वर्तुगुणसम्पन्नान् शिल्पिनोऽथ सहस्रशः।। ३१।।

उस समय अपने भाइयों, बन्धुओं, हितैषियों, सचिवों, क्षत्रियों, अनेक देश से आए हुए राजाओं और मंत्रियों के साथ वह नरश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर साक्षात् शरीर धारी धर्म ही जान पड़ते थे। वहाँ दूर-दूर के देशों से ब्राह्मण लोग आये हुए थे, जो कि सारी विद्याओं में निष्णात और वेद वेदांगों के पारंगत थे। धर्मराज की आज्ञा से उन आत्मीयों के साथ आये हुओं के रहने के लिये हजारों शिल्पियों ने बहुत से अन्न और वस्त्रों से भरपूर,

सारी ऋतुओं की सुविधाओं से युक्त, अलग-अलग मकान बनाये थे।

भुञ्जतां चैव विप्राणां वदतां च महास्वनः।
अनिशं श्रूयते तत्र मुदितानां महात्मनाम्।। ३२।।
दीयतां दीयतामेषां भुज्यतां भुज्यतामिति।
एवम्प्रकाराः संजल्पाः श्रूयन्ते स्मात्र नित्यशः।। ३३।।
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रेषयामास पाण्डवम्।
नकुलं हास्तिनपुरं, भीष्माय पुरुषर्षभः।। ३४।।
द्रोणाय धृतराष्ट्राय विदुराय कृपाय च।
भ्रातॄणां चैव सर्वेषां येऽनुरक्ता युधिष्ठिरे।। ३५।।

वहाँ आनन्द में मग्न महात्मा ब्राह्मणों की भोजन करते हुए और बातें करते हुए महान् ध्वनि लगातार सुनायी देती थी। दीजिये, इन्हें दीजिये, भोजन कीजिये, भोजन कीजिये। इस प्रकार की बातें वहाँ नित्य सुनायी देतीं थीं। तब पुरुष श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने पाण्डव नकुल को भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर, कृपाचार्य, सारे भाइयों और जो युधिष्ठिर में अनुरक्त थे, उन सबको बुलाने के लिये हस्तिनापुर भेजा।

स गत्वा हास्तिनपुरं नकुलः समितिंजयः।
भीष्ममामन्त्रयाञ्चक्रे धृतराष्ट्रं च पाण्डवः।। ३६।।
सत्कृत्यामन्त्रितास्तेन आचार्यप्रमुखास्ततः।
प्रययुः प्रीतमनसो यज्ञं ब्रह्मपुरस्सराः।। ३७।।

युद्ध को जीतने वाले पाण्डव नकुल ने हस्तिनापुर जाकर भीष्म को और धृतराष्ट्र को यज्ञ के लिये आमंत्रित किया। फिर उसने सत्कार के साथ आचार्य आदि को भी आमंत्रित किया। वे सब प्रसन्न हृदय से ब्राह्मणों को आगे कर के यज्ञ में गए।

धृतराष्ट्रश्च भीष्मश्च विदुरश्च महामतिः।
दुर्योधनपुरोगाश्च भ्रातरः सर्व एव ते।। ३८।।
गान्धारराजः सुबलः शकुनिश्च महाबलः।
अचलो वृषकश्चैव कर्णश्च रथिनां वरः।। ३९।।
तथा शल्यश्च बलवान् बाह्लिकश्च महाबलः।
सोमदत्तोऽथ कौरव्यो भूरिर्भूरिश्रवाः शलः।। ४०।।
अश्वत्थामा कृपो द्रोणः सैन्धवश्च जयद्रथः।
यज्ञसेनः सपुत्रश्च भगदत्तो महारथः।। ४१।।
स तु सर्वैः सह म्लेच्छैः सागरानूपवासिभिः।
पर्वतीयाश्च राजानो राजा चैव बृहद्बलः।। ४२।।
पौण्ड्रको वासुदेवश्च वङ्गः कालिङ्गकस्तथा।
आकर्षाः कुन्तलाश्चैव मालवाश्चान्ध्रकास्तथा।। ४३।।
द्राविडाः सिंहलाश्चैव राजा काश्मीरकस्तथा।
कुन्तिभोजो महातेजाः पार्थिवो गौरवाहनः।। ४४।।
विराटः सह पुत्राभ्यां मावेल्लश्च महाबलः।
शिशुपालो महावीर्यः नानाजनपदेश्वराः।। ४५।।
रामश्चैवानिरुद्धश्च कङ्कश्च सहसारणः।
वृष्णयो निखिलाश्चान्ये समाजग्मुर्महारथाः।। ४६।।

धृतराष्ट्र, भीष्म, महामति विदुर, दुर्योधन आदि सारे भाई, गान्धारराज सुबल, महाबली शकुनि, अचल, वृषक, रथियों में श्रेष्ठ कर्ण, बलवान शल्य, महाबली बाह्लीक, सोमदत्त, कौरव्यभूरि, भूरिश्रवा, शल, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, सिन्धुराज जयद्रथ, पुत्रों सहित द्रुपद, समुद्र तट निवासी म्लेच्छों के साथ महारथी भगदत, पर्वतीय राजा लोग, राजा बृहद्बल, पौण्ड्रक वासुदेव, बंगनरेश, कलिंग नरेश, आकर्ष, कुन्तल, मालव, आन्ध्र, द्रविड, और सिंहल नरेश, काश्मीर नरेश, महातेजस्वी कुन्तीभोज, राजा गौरवाहन, पुत्रों सहित राजा विराट्, महाबली मावेल्ल, महापराक्रमी शिशुपाल और अनेक देशों के राजा, सारण सहित बलराम, अनिरुद्ध, कंक, और दूसरे सारे यदुवंशी महारथी वहाँ आये थे।

एतेचान्ये च बहवो राजानो मध्यदेशजाः।
आजग्मुः पाण्डुपुत्रस्य राजसूयं महाक्रतुम्।। ४७।।
ददुस्तेषामावसथान् धर्मराजस्य शासनात्।
तथा धर्मात्मजः पूजां चक्रे तेषां महात्मनाम्।। ४८।।
सत्कृताश्च यथोद्दिष्टाञ्जग्मुरावसथान् नृपाः।
कैलासशिखरप्रख्यान् मनोज्ञान् द्रव्यभूषितान्।। ४९।।
हंसेन्दुवर्णसदृशानायोजनसुदर्शनान्।
असम्बाधान् समद्वारान् युतानुच्चावचैर्गुणैः।। ५०।।

ये सारे और दूसरे बहुत से मध्यदेश के राजा लोग पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर के महान राजसूय यज्ञ में आये थे। धर्मराज की आज्ञा से उन्हें भवनों में ठहराया गया और धर्म पुत्र युधिष्ठिर ने उन सबका स्वागत सत्कार किया। सत्कृत और सम्मानित होते हुए वे राजा लोग यथा निर्दिष्ट भवनों में जाकर ठहरते थे। वे भवन कैलाश पर्वत के शिखर के समान ऊँचे, मनोहर और नाना प्रकार की सामग्रियों से विभूषित थे। वे भवन हंस और चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण के थे तथा एक योजन दूर से ही दिखाई देने लगते थे। उन भवनों में किसी तरह की कोई रुकावट नहीं थी। उनके दरवाजे समान आकृति के थे। वे भवन अनेक प्रकार की सुविधाओं से युक्त थे।

पितामहं गुरुं चैव प्रत्युद्गम्य युधिष्ठिरः।
भीष्मं द्रोणं कृपं द्रौणिम् इदं वचनमब्रवीत्।। १।।
अस्मिन् यज्ञे भवन्तो मामनुगृह्णन्तु सर्वशः।
इदं वः सुमहच्चैव यदिहास्ति धनं मम।। २।।
प्रणयन्तु भवन्तो मां यथेष्टमभिमन्त्रिताः।
एवमुक्त्वा स तान् सर्वान् दीक्षितः पाण्डवाग्रजः।। ३।।
युयोज स यथायोगमधिकारेष्वनन्तरम्।

तब युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य की अगवानी कर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा से यह कहा कि यह मेरा जो महान् धन है, इसे आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर यथेष्ट अच्छे कार्यों में लगाइये। ऐसा कह कर यज्ञ की दीक्षा लिये हुए ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर ने उन सबको यथा योग्य कार्यों में लगाया।

भक्ष्यभोज्याधिकारेषु दुःशासनमयोजयत्।। ४।।
परिग्रहे ब्राह्मणानामश्वत्थामानमुक्तवान्।
राज्ञां तु प्रतिपूजार्थं संजयं स न्ययोजयत्।। ५।।
कृताकृतपरिज्ञाने भीष्मद्रोणौ महामती।
हिरण्यस्य सुवर्णस्य रत्नानां चान्वेक्षणे।। ६।।
दक्षिणानां च वै दाने कृपं राजा न्ययोजयत्।
तथान्यान् पुरुषव्याघ्रांस्तस्मिंस्तस्मिन् न्ययोजयत्।। ७।।
वाह्लिको धृतराष्ट्रश्च सोमदत्तो जयद्रथः।
नकुलेन समानीताः स्वामिवत् तत्र रेमिरे।। ८।।

उन्होंने खाद्य सामग्री की देखभाल के लिये दुःशासन को लगाया। अश्वत्थामा को ब्राह्मणों के सत्कार्य में लगाया। राजाओं की सेवा सत्कार के लिये संजय को लगाया। महाबुद्धिमान भीष्म और द्रोण को उन्होंने क्या काम हुआ और क्या काम नहीं हुआ, इसकी देखभाल का कार्य सौंपा। उत्तम कोटि के स्वर्ण तथा रत्नों की देखभाल करने और दक्षिणा देने के कार्य में राजा ने कृपाचार्य को लगाया। इस प्रकार और दूसरे पुरुषव्याघ्रों को उन्होंने अलग-अलग कार्यों में नियोजित किया। नकुल के द्वारा आमंत्रित किये गये बाह्लिक, धृतराष्ट्र, सोमदत्त, जयद्रथ वहाँ घर के मालिकों के समान रह रहे थे और आनन्द ले रहे थे।

क्षत्ता व्ययकरस्त्वासीद् विदुरः सर्वधर्मवित्।
दुर्योधनस्त्वर्हणानि प्रतिजग्राह सर्वशः।। ९।।
चरणक्षालने कृष्णो ब्राह्मणानां स्वयं ह्यभूत्।
सर्वलोकसमावृत्तः पिप्रीषुः फलमुत्तमम्।। १०।।
द्रष्टुकामाः सभां चैव धर्मराजं युधिष्ठिरम्।
न कश्चिदाहरत् तत्र सहस्रावरमर्हणम्।। ११।।
रत्नै श्च बहुभिस्तत्र धर्मराजमवर्धयत्।
कथं तु मम कौरव्यो रत्नदानैः समाप्नुयात्।। १२।।
यज्ञमित्येव राजानः स्पर्धमाना ददुर्धनम्।

उस समय सारे धर्मों के ज्ञाता विदुर व्यय करने के कार्यों में नियुक्त थे और दुर्योधन सब प्रकार के भेंटपदार्थों को ग्रहण कर रहे थे। सब लोगों से घिरे हुए श्रीकृष्ण उत्तम फल को प्राप्त करने की इच्छा से स्वयं ही ब्राह्मणों के चरणों को धोने के कार्य में लग गये थे। धर्मराज युधिष्ठिर और उनके सभा भवन को देखने की इच्छा से आये हुए राजाओं में से कोई भी एक हजार से कम स्वर्ण मुद्राएँ भेंट में नहीं लाया था। प्रत्येक राजा बहुसंख्यक रत्नों की भेंट देकर धर्मराज के धन की वृद्धि कर रहा था। राजा लोग धन की भेंट करते हुए परस्पर स्पर्द्धा कर रहे थे कि किसी प्रकार कौरव्य राजा मेरे दिये हुए धन से ही अपने यज्ञ को पूरा करें।

सर्वाञ्जनान् सर्वकामैः समृद्धैः समतर्पयत्।। १३।।
अन्नवान् बहुभक्ष्यश्च भुक्तवज्जनसंवृतः।
रत्नोपहारसम्पन्नो बभूव स समागमः।। १४।।
यथा देवास्तथा विप्रा दक्षिणान्नमहाधनैः।
ततृपुः सर्ववर्णाश्च तस्मिन् यज्ञे मुदान्विताः।। १५।।

उस यज्ञ में सभी लोगों की सभी कामनाएँ पूरी कर उन्हें सन्तुष्ट किया गया। उस यज्ञ में अन्न और भोज्य पदार्थों का बहुत बड़ा भंडार था। वहाँ सारे लोग खा पीकर तृप्त हो रहे थे। उस समारोह में रत्नों के ही उपहार दिये जा रहे थे। उस यज्ञ में जैसे विद्वान् लोग, वैसे ही ब्राह्मण लोग और सारे वर्णों के लोग दक्षिणा में अन्न तथा महान् धन को पाकर तृप्त हो गये थे और प्रसन्नता से भरे हुए थे।

ततोऽभिषेचनीयेऽह्नि ब्राह्मणा राजभिः सह।
अन्तर्वेदीं प्रविविशुः सत्कारार्हा महर्षयः।। १६।।
कर्मान्तरमुपासन्तो जजल्पुरमितौजसः।
एवमेतन्न चाप्येवमेवं चैतन्न चान्यथा।। १७।।
इत्यूचुर्बहवस्तत्र वितण्डा वै परस्परम्।

कृशानर्थांस्ततः केचिदकृशांस्तत्र कुर्वते।। १८।।
अकृशांश्च कृशांश्चक्रुर्हेतुभिः शास्त्रनिश्चयैः।
तत्र मेधाविनः केचिदर्थमन्यैरुदीरितम्।। १९।।
विचिक्षिपुर्यथा श्येना नभोगतमिवामिषम्।

उसके पश्चात् अभिषेचनीय कर्म के दिन ब्राह्मण लोग और सत्कार के योग्य महर्षिगण राजाओं के साथ यज्ञभूमि में गये। वहाँ यज्ञ के कर्म से अवकाश पाकर बीच-बीच में अमित तेजस्वी विद्वान् लोग आपस में वाद विवाद किया करते थे जैसे यह क्रिया ऐसे नहीं ऐसे होनी चाहिये। यह बात ऐसी ही है, इससे भिन्न नहीं है, नहीं यह ऐसे भी हो सकती है आदि। कुछ विद्वान शास्त्र निश्चित अनेक तरह की युक्तियों से दुर्बल पक्षों को पुष्ट और पुष्ट पक्षों को दुर्बल सिद्ध कर देते थे। कुछ मेधावी पण्डित दूसरों के द्वारा कही बात को बीच में ही इस प्रकार काट देते थे, जैसे बाज पक्षी माँस के लोथड़े को आकाश में ही एक दूसरे से छीन लेते हैं।

केचिद् धर्मार्थकुशलाः केचित् तत्र महाव्रताः।। २०।।
रेमिरे कथयन्तश्च सर्वभाष्यविदां वराः।
सा वेदिर्वेदसम्पन्नैर्देवद्विजमहर्षिभिः।। २१।।
आबभासे समाकीर्णा नक्षत्रैर्द्यौरिवायता।

उन विद्वानों में से कुछ महान् व्रतों का पालन करने वाले थे, कुछ धर्म और अर्थ के निर्णय में कुशल थे, कुछ सारे शास्त्रों के भाष्यों को जानने वालों में उत्तम थे और शास्त्रों की बातें सुना कर स्वयं भी आनन्द लेते थे और दूसरों को भी देते थे। वह यज्ञवेदी वेद के विद्वानों, ब्राह्मणों, और ऋषियों से उसी प्रकार सुशोभित हो रही थी, जैसे नक्षत्रों से भरा हुआ विशाल आकाश सुशोभित होता है।

ततो भीष्मोऽब्रवीद् राजन् धर्मराजं युधिष्ठिरम्।। २२।।
क्रियतामर्हणं राज्ञां यथार्हमिति भारत।
एषामेकैकशो राजन्नर्घ्यमानीयतामिति।। २३।।
अथ चैषां वरिष्ठाय समर्थायोपनीयताम्।

युधिष्ठिर उवाच

कस्मै भवान् मन्यतेऽर्घ्यमेकस्मै कुरुनन्दन।। २४।।
उपनीयमानं युक्तं च, तन्मे ब्रूहि पितामह।
ततो भीष्मः शान्तनवो बुद्ध्या निश्चित्य वीर्यवान्।। २५।।
अमन्यत तदा कृष्णमर्हणीयतमं भुवि।

भीष्म उवाच

एष ह्येषां समस्तानां तेजोबलपराक्रमैः।। २६।।
मध्ये तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः।
असूर्यमिव सूर्येण निर्वातमिव वायुना।। २७।।
भासितं ह्लादितं चैव कृष्णेनेदं सदो हि नः।

तब भीम ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा कि हे भरतश्रेष्ठ राजन् आप यहाँ आये हुए राजाओं का यथायोग्य सत्कार करो। आप इनमें से एक एक को बुला कर उन्हें अर्घ्य दीजिये और इनमें जो सबसे अधिक आदरणीय है, उसे सबसे महले बुला कर उसका सम्मान करो। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे कुरुनन्दन! आप किस एक को इसके लिये उपयुक्त समझते हैं। आप मुझे उसके बारे में बताइये। तब शान्तनुपुत्र पराक्रमी भीष्म ने बुद्धि से निश्चय करके श्रीकृष्ण जी को संसार में सबसे अधिक पूजा के योग्य माना। भीष्म ने कहा ये श्रीकृष्ण अपने तेज बल और पराक्रम से देदीप्यमान होते हुए, सारे राजाओं के बीच में उसी प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, जैसे नक्षत्रों के बीच में सूर्य। जैसे सूर्य से रहित स्थान सूर्य के उदय होने पर प्रकाश से पूर्ण हो जाता है, वायु से रहित स्थान वायु के संचार से सजीव हो जाता है वैसे ही श्रीकृष्ण के द्वारा हमारी यह सभा भासित और आह्लादित हो रही है।

तस्मै भीष्माभ्यनुज्ञातः सहदेवः प्रतापवान्।। २८।।
उपजह्रेऽथ विधिवद् वार्ष्णेयायार्घ्यमुत्तमम्।
प्रतिजग्राह तत् कृष्णः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।। २९।।
शिशुपालस्तु तां पूजां वासुदेवे न चक्षमे।
स उपालभ्य भीष्मं च धर्मराजं च संसदि।
अपाक्षिपद् वासुदेवं चेदिराजो महाबलः।। ३०।।

तब भीष्म की आज्ञा से प्रतापी सहदेव ने श्रीकृष्ण जी को विधिवत् उत्तम अर्घ्य भेंट किया। श्री कृष्ण जी ने भी तब शास्त्र की विधि के अनुसार अर्घ्य को स्वीकार किया। किन्तु शिशुपाल श्रीकृष्ण की उस पूजा को सहन नहीं कर सका। वह महाबली चेदिराज उस सभा में भीष्म को और धर्मराज को उलाहना देकर श्रीकृष्ण के प्रति आक्षेप करने लगा।

पन्द्रहवाँ अध्याय : शिशुपाल का कृष्ण के प्रति आक्षेप, भीष्म से वाद-विवाद।

शिशुपाल उवाच

नायमर्हति वार्ष्णेयस्तिष्ठत्स्विह महात्मसु।
महीपतिषु कौरव्य राजवत् पार्थिवार्हणम्॥ १॥
नायं युक्तः समाचारः पाण्डवेषु महात्मसु।
यत् कामात् पुण्डरीकाक्षं पाण्डवार्चितवानसि॥ २॥
बाला यूयं न जानीध्वं धर्मः सूक्ष्मो हि पाण्डवाः।
अयं च स्मृत्यतिक्रान्तो ह्यापगेयोऽल्पदर्शनः॥ ३॥
त्वादृशो धर्मयुक्तो हि कुर्वाणः प्रियकाम्यया।
भवत्यभ्यधिकं भीष्म लोकेष्ववमतः सताम्॥ ४॥

शिशुपाल ने कहा कि हे कौरव्य! यह वृष्णिवंशी कृष्ण, यहाँ बैठे हुए महात्मा राजाओं में राजाओं के समान बैठ कर राजोचित पूजा का अधिकारी नहीं है। हे पाण्डव! यह महात्मा पाण्डवों का उचित आचरण नही है, जो तुमने अपनी इच्छा से ही इस कमलनयन की पूजा कर दी। हे पाण्डवों! तुम अभी बच्चे हो, तुम धर्म के सूक्ष्म स्वरूप को नहीं जानते हो। यह गंगा पुत्र भी अब कम समझ वाले हो गये हैं। इनकी स्मरण शक्ति समाप्त हो गयी है। हे भीष्म! तुम्हारे जैसा धर्म से युक्त व्यक्ति भी जब प्रिय करने की इच्छा से कार्य करने लगता है, तो वह सत्पुरुषों की सभा में निन्दनीय बन जाता है।

कथं ह्यराजा दाशार्हो मध्ये सर्वमहीक्षिताम्।
अर्हणामर्हति तथा यथा युष्माभिरर्चितः॥ ५॥
अथ वा मन्यसे कृष्णं स्थविरं कुरुपुङ्गव।
वसुदेवे स्थिते वृद्धे कथमर्हति तत्सुतः॥ ६॥
अथ वा वासुदेवोऽपि प्रियकामोऽनुवृत्तवान्।
द्रुपदे तिष्ठति कथं माधवोऽर्हति पूजनम्॥ ७॥
आचार्यं मन्यसे कृष्णमथ वा कुरुनन्दन।
द्रोणे तिष्ठति वार्ष्णेयं कस्मादर्चितवानसि॥ ८॥

यह दाशार्ह कृष्ण राजा नहीं है। फिर सारे राजाओं के बीच में जैसे तुमने इसकी पूजा की है, यह उस पूजा के योग्य किस प्रकार है? हे कुरुश्रेष्ठ! यदि तुम कृष्ण को बूढ़ा समझते हो, तो बूढ़े वसुदेव के होते हुए उनका यह पुत्र बूढ़ा कैसे हो गया? अथवा यदि कृष्ण तुम्हारा प्रिय चाहने वाला और तुम्हारा अनुसरण करने वाला है तो द्रुपद के होते हुए यह पूजा का अधिकारी कैसे हो सकता है? हे कुरुनन्दन! यदि तुम कृष्ण को आचार्य मानते हो, तो द्रोणाचार्य के रहते हुए तुमने इसका पूजन कैसे किया?

ऋत्विजं मन्यसे कृष्णमथवा कुरुनन्दन।
द्वैपायने स्थिते वृद्धे कथं कृष्णोऽर्चितस्त्वया॥ ९॥
भीष्मे शान्तनवे राजन् स्थिते पुरुषसत्तमे।
अश्वत्थाम्नि स्थिते वीरे सर्वशास्त्रविशारदे॥ १०॥
कथं कृष्णस्त्वया राजन्नर्चितः कुरुनन्दन।

हे कुरुनन्दन! यदि तुम कृष्ण को ऋत्विज समझते हो तो कृष्ण द्वैपायन जैसे वृद्ध के होते हुए तुमने इसका पूजन क्यों किया? पुरुषश्रेष्ठ शान्तनु पुत्र भीष्म के होते हुए, सारे शास्त्रों के विशारद वीर अश्वत्थामा के होते हुए हे राजन्! तुमने कृष्ण की पूजा क्यों की?

दुर्योधने च राजेन्द्रे स्थिते पुरुषसत्तमे॥ ११॥
कृपे च भारताचार्ये कथं कृष्णस्त्वयार्चितः।
द्रुमं किम्पुरुषाचार्यमतिक्रम्य तथार्चितः॥ १२॥
भीष्मके चैव दुर्धर्षे पाण्डुवत् कृतलक्षणे।
नृपे च रुक्मिणि श्रेष्ठे एकलव्ये तथैव च॥ १३॥
शल्ये मद्राधिपे चैव कथं कृष्णस्त्वयार्चितः।

पुरुषश्रेष्ठ, राजेन्द्र दुर्योधन के रहते हुए, भरत वंश के आचार्य कृपाचार्य के रहते हुए तुमने कृष्ण की पूजा क्यों की? तुमने किंपुरुषों के आचार्य द्रुम की उपेक्षा कर कृष्ण की पूजा की है। पाण्डु के समान लक्षणों वाले दुर्धर्ष भीष्मक के होते हुए, राजा रुक्मी के होते हुए श्रेष्ठ धनुर्धर एकलव्य के होते हुए और मद्रराज शल्य के होते हुए तुमने कृष्ण की पूजा क्यों की?

अयं च सर्वराज्ञां वै बलश्लाघी महाबलः॥ १४॥
जामदग्न्यस्य दयितः शिष्यो विप्रस्य भारत।
येनात्मबलमाश्रित्य राजानो युधि निर्जिताः॥ १५॥
तं च कर्णमतिक्रम्य कथं कृष्णस्त्वयार्चितः।

यह सारे राजाओं में बल की होड़ लगाते हुए, महाबली विप्र परशुराम जी के प्रिय शिष्य, जिन्होंने अपने बल पर भरोसा कर युद्ध में अनेक राजाओं को जीता है, उस कर्ण की अवहेलना कर हे भरतश्रेष्ठ! तुमने कृष्ण की पूजा क्यों की?

अथ वाप्यर्चनीयोऽयं युष्माकं मधुसूदनः॥ १६॥
किं राजभिरिहानीतैरवमानाय भारत।

वयं तु न भयादस्य कौन्तेयस्य महात्मनः॥ १७॥
प्रयच्छामः करान् सर्वे न लोभान्न च सान्त्वनात्।
अस्य धर्मप्रवृत्तस्य पार्थिवत्वं चिकीर्षतः॥ १८॥
करानस्मै प्रयच्छामः सोऽयमस्मान् न मन्यते।
किमन्यदवमानाद्धि यदेनं राजसंसदि॥ १९॥
अप्राप्तलक्षणं कृष्णमर्घ्येणार्चितवानसि।
अकस्माद् धर्मपुत्रस्य धर्मात्मेति यशो गतम्॥ २०॥
को हि धर्मच्युते पूजामेवं युक्तां नियोजयेत्।

हे भारत! यदि यह मधुसूदन तुम्हारे लिये पूज्य है, तो राजाओं को यहाँ अपमानित करने के लिये बुलाने की क्या आवश्यकता थी? हम जो इन कुन्ती पुत्र महात्मा को कर दे रहे हैं, वह भय, लोभ, या कोई आश्वासन मिलने के कारण नहीं दे रहे। हम तो यह समझ कर कि यह धर्म में रहने वाला राजा सम्राट् बनना चाहता है, तो अच्छी बात है, इसे कर दे रहे हैं, पर यह हमें समझता ही नहीं है। राजाओं की सभा में जिसे राजाओं के चिह्न छत्र चँवर आदि प्राप्त नहीं हैं, उस कृष्ण को जो तुमने अग्रपूजा अर्पित की, इससे अधिक अपमान और क्या हो सकता है? इस धर्मपुत्र युधिष्ठिर को अकस्मात् ही धर्मात्मा होने का यश प्राप्त हो गया, नहीं तो कौन धर्म से च्युत पुरुष की इस प्रकार पूजा करेगा।

योऽयं वृष्णिकुले जातो राजानं हतवान् पुरा॥ २१॥
जरासंधं महात्मानमन्यायेन दुरात्मवान्।
अद्य धर्मात्मता चैव व्यपकृष्टा युधिष्ठिरात्॥ २२॥
दर्शितं कृपणत्वं च कृष्णेऽर्घ्यस्य निवेदनात्।
यदि भीतश्च कौन्तेयाः कृपणाश्च तपस्विनः॥ २३॥
ननु त्वयापि बोद्धव्यं यां पूजां माधवार्हसि।
अयुक्तामात्मनः पूजां त्वं पुनर्बहु मन्यसे॥ २४॥
हविषः प्राप्य निष्यन्दं प्राशिता श्वेव निर्जने।

वृष्णि कुल में पैदा हुए इस दुरात्मा ने अभी कुछ दिन पहले महात्मा राजा जरासन्ध को अन्याय से मरवाया है। आज युधिष्ठिर ने क्योंकि कृष्ण को अर्घ्य देकर कायरता दिखाई है, इसलिये इसका धर्मात्मापन निकल गया है। अरे माधव! यदि ये कुन्तीपुत्र डरपोक हैं, कायर हैं, और तपस्वी हैं, तो तुम्हें जो जानना चाहिये था कि तुम किस पूजा के अधिकारी हो? जैसे कुत्ता एकान्त में भूमि पर गिरे हुए यज्ञ के घी को चाट ले और प्रसन्न हो जाये, उसी तरह से तुम भी जो तुम्हारे योग्य नहीं थी, उस पूजा को प्राप्त कर अपने को धन्य समझ रहे हो।

न त्वयं पार्थिवेन्द्राणामपमानः प्रयुज्यते॥ २५॥
त्वामेव कुरवो व्यक्तं प्रलम्भन्ते जनार्दन।
क्लीबे दारक्रिया यादृगन्धे वा रूपदर्शनम्॥ २६॥
अराज्ञो राजवत् पूजा तथा ते मधुसूदन।
दृष्टो युधिष्ठिरो राजा दृष्टो भीष्मश्च यादृशः॥ २७॥
वासुदेवोऽप्ययं दृष्टः सर्वमेतद् यथातथम्।
इत्युक्त्वा शिशुपालस्तानुत्थाय परमासनात्॥ २८॥
निर्ययौ सदसस्तस्मात् सहितो राजभिस्तदा।

तुम्हारी इस पूजा से केवल राजाओं का ही अपमान नहीं हुआ है, बल्कि हे जनार्दन! इन कुरुवंशी पाण्डवों ने तुम्हें भी ठगा है। क्योंकि जैसे नपुंसक का विवाह करना, अन्धे को रूप दिखाना व्यर्थ है, वैसे ही तुम्हारी भी राजा न होते हुए भी राजाओं के समान पूजा व्यर्थ है। आज मैंने युधिष्ठिर को भी देख लिया कि वह कैसे हैं? और इस श्रीकृष्ण को भी देख लिया। इन सबकी वास्तविकता को भी देख लिया। उन सबको ऐसा कह कर शिशुपाल अपने उत्तम आसन से उठ कर अपने साथी राजाओं के साथ सभा भवन से जाने को तैयार हो गया।

ततो युधिष्ठिरो राजा शशिुपालमुपाद्रवत्॥ २९॥
उवाच चैनं मधुरं सान्त्वपूर्वमिदं वचः।
नेदं युक्तं महीपाल यादृशं वै त्वमुक्तवान्॥ ३०॥
अधर्मश्च परो राजन् पारुष्यं च निरर्थकम्।
न हि धर्मं परं जातु नावबुध्येत पार्थिवः॥ ३१॥
भीष्मः शान्तनवस्त्वेनं मावमंस्थास्त्वमन्यथा।
पश्य चैतान् महीपालांस्त्वत्तो वृद्धतरान् बहून्॥ ३२॥
मृष्यन्तेचार्हणां कृष्णे तद्वत् त्वं क्षन्तुमर्हसि।
वेद तत्त्वेन कृष्णं हि भीष्मश्चेदिपते भृशम्॥ ३३॥
न ह्येनं त्वं तथा वेत्थ यथैनं वेद कौरवः।

तब राजा युधिष्ठिर दौड़ कर शिशुपाल के पास गये और उससे सान्त्वना पूर्वक मधुर वणी में बोले कि हे महीपाल! जैसा तुमने कहा है वह उचित नहीं है। हे राजन्! किसी के प्रति व्यर्थ और कठोर बातें कहना महान् अधर्म है। शान्तनु पुत्र भीष्म परम धर्म को न जानते हों ऐसा नहीं है। इसलिये तुम इनका निरादर नहीं करो। देखो यहाँ बहुत सारे राजा हैं, जो आपसे अधिक बूढ़े हैं, ये सब कृष्ण की

पूजा को सहन कर रहे हैं। ऐसे ही तुम्हें भी क्षमा कर देना चाहिये। हे चेदिराज! भीष्म कृष्ण को बहुत यथार्थ रूप से जानते हैं। तुम इन्हें इतना नहीं जानते, जितना वे जानते हैं।

भीष्म उवाच

नास्मै देयो ह्यनुनयो नायमर्हति सान्त्वनम्।। ३४।।
लोकवृद्धतमे कृष्णे योऽर्हणां नाभिमन्यते।
क्षत्रियः क्षत्रियं जित्वा रणे रणकृतां वरः।। ३५।।
यो मुञ्चति वशे कृत्वा गुरुर्भवति तस्य सः।
अस्यां हि समितौ राज्ञामेकमप्यजितं युधि।। ३६।।
न पश्यामि महीपालं सात्वतीपुत्रतेजसा।
तस्मात् सत्स्वपि वृद्धेषु कृष्णमर्चाम नेतरान्।। ३७।।
एवं वक्तुं न चार्हस्त्वं मा ते भूद् बुद्धिरीदृशी।

तब भीष्म जी ने कहा इससे प्रार्थना मत करो, नाहीं इसे समझाओ, जो यह लोगों में सबसे महान कृष्ण की पूजा को स्वीकार नहीं करता है। योद्धाओं में श्रेष्ठ जो क्षत्रिय युद्ध में दूसरे क्षत्रिय के जीत कर, अपने वश में करके, छोड़ देता है, वह उसका गुरु बन जाता है। राजाओं की इस सभा में मैं एक को भी ऐसा नहीं देखता हूँ, जिसे श्रीकृष्ण ने अपने तेज से जीत नहीं लिया हो। इसलिये दूसरे वृद्धों के होते हुए भी हम कृष्ण की ही पूजा कर रहे हैं, दूसरों की नहीं। तुम्हें कृष्ण के लिये ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये और ना ही तुम्हें उनके लिये ऐसी बुद्धि रखनी चाहिये।

ज्ञानवृद्धा मया राजन् बहवः पर्युपासिताः।। ३८।।
तेषां कथयतां शौरेरहं गुणवतो गुणान्।
समागतानामश्रौषं बहून् बहुमतान् सताम्।। ३९।।
कर्माण्यपि च यान्यस्य जन्मप्रभृति धीमतः।
बहुशः कथ्यमानानि नरैर्भूयः श्रुतानि मे।। ४०।।

मैंने बहुत से ज्ञानवृद्धों का संग किया है और उनके मुख से इन शूरसेनवंशी गुणवान् कृष्ण के गुणों को सुना है। यहाँ आये बहुत से बहुमान्य सज्जनों से भी मैंने इनके गुणों को सुना है। इस धीमान् व्यक्ति के जन्म से लेकर अब तक किये गये कार्यों को भी दूसरे लोगों के द्वारा अनेक बार वर्णन किये जाते हुए सुना है।

न केवलं वयं कामाच्चेदिराज जनार्दनम्।
न सम्बन्धं पुरस्कृत्य कृतार्थं वा कथंचन।। ४१।।
अर्चामहेऽर्चितं सद्भिर्भुवि भूतसुखावहम्।
यशः शौर्यं जयं चास्य विज्ञायार्चां प्रयुञ्ज्महे।। ४२।।
न च कश्चिदिहास्माभिः सुबालोऽप्यपरीक्षितः।
गुणैर्वृद्धानतिक्रम्य हरिरर्च्यतमो मतः।। ४३।।
ज्ञानवृद्धो द्विजातीनां क्षत्रियाणां बलाधिकः।
वैश्यानां धान्यधनवाञ्छूद्राणामेव जन्मतः।। ४४।।
पूज्यतायां च गोविन्दे हेतू द्वावपि संस्थितौ।

हे चेदिराज! हम केवल किसी कामना के कारण, या इन्हें अपना संबंधी मान कर, या इनके द्वारा किये गये किसी उपकार के कारण इन जनार्दन की पूजा नहीं कर रहे हैं। हम इसलिये इनकी पूजा कर रहे हैं, क्योंकि इन्हें सत्पुरुषों ने पूजित किया है और ये संसार में प्राणियों को सुख देने वाले हैं। हम इनके यश, शौर्य, और विजय को जान कर इनकी पूजा कर रहे हैं। यहाँ विद्यमान लोगों में से एक बालक भी ऐसा नहीं है, जिसकी हमने परीक्षा न की हो। गुणों के कारण ही, वयोवृद्धों का उल्लंघन कर हमने कृष्ण को अग्रपूजा के योग्य माना है। ब्राह्मणों में ज्ञान से व्यक्ति वृद्ध माना जाता है और क्षत्रियों में शक्ति से वृद्ध माना जाता है, वैश्यों में धन से वृद्ध माना जाता है। जन्म से वृद्ध तो शूद्रों में ही माना जाता है। श्रीकृष्ण के पूज्य होने में दोनों ही कारण विद्यमान हैं। अर्थात् ये ज्ञान में भी अधिक हैं और बल में भी अधिक हैं।

वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।। ४५।।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते।
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा।। ४६।।
सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते।
तमिमं गुणसम्पन्नमार्यं च पितरं गुरुम्।
अर्घ्यमर्चितमर्चार्हं सर्वे संक्षन्तुमर्हथ।। ४७।।

इनमें वेदों और वेदांगों का भी ज्ञान है और बल भी सबसे अधिक है। मनुष्यों के संसार में कौन ऐसा है जो कृष्ण से बढ़ कर हो। दान, दक्षता, विद्या, शौर्य, लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धैर्य, सन्तोष और पुष्टि ये सारे गुण इन अच्युत श्रीकृष्ण में नित्य विद्यमान रहते हैं। हमने उन इन गुणों से सम्पन्न, आर्य, पिता, और गुरु तथा पूजा के योग्य कृष्ण की पूजा की है। इसके लिये सारे राजा लोग हमें क्षमा करें।

सोलहवाँ अध्याय : शिशुपाल का अन्य नरेशों को युद्ध के लिये भड़काना।

व्याजहारोत्तरं तत्र सहदेवोऽर्थवद् वचः।
केशवं केशिहन्तारमप्रमेयपराक्रमम्।। १।।
पूज्यमानं मया यो वः कृष्णं न सहते नृपाः।
सर्वेषां बलिनां मूर्ध्नि मयेदं निहितं पदम्।। २।।
एवमुक्ते मया सम्यगुत्तरं प्रब्रवीतु सः।
स एव हि मया वध्यो भविष्यति न संशयः।। ३।।
मतिमन्तश्च ये केचिदाचार्यं पितरं गुरुम्।
अर्च्यमर्चितमर्घार्हमनुजानन्तु ते नृपाः।। ४।।
ततो न व्याजहारैषां कश्चिद् बुद्धिमतां सताम्।
मानिनां बलिनां राज्ञां मध्ये वै दर्शिते पदे।। ५।।

तब सहदेव ने वहाँ यह प्रयोजन युक्त बात कही कि हे राजाओं! अप्रमेय, पराक्रमी, केशव नाम के दैत्य को मारने वाले केशव श्रीकृष्ण की मेरे द्वारा की गयी पूजा को आपमें से जो सहन नहीं कर रहा है, उन सब बलवानों के सिर पर मैंने अपना यह पैर रखा हुआ है। मेरे ऐसा कहने पर जो इसका उत्तर दे, वह मेरे द्वारा निश्चित रूप से मारने योग्य होगा और जो बुद्धिमान राजा हैं वे इन आचार्य, पिता, गुरु, पूज्य और अर्घ्य को ग्रहण करने योग्य की पूजा के कार्य का समर्थन करें। तब उन मानी और बलवान राजाओं के बीच में अपना पैर सहदेव के द्वारा दिखाने पर भी जो बुद्धिमान् और सज्जन राजा थे, उनमें से कोई कुछ नहीं बोला।

तस्मिन्नभ्यर्चिते कृष्णे सुनीथः शत्रुकर्षणः।
अतिताम्रेक्षणः कोपादुवाच मनुजाधिपान्।। ६।।
स्थितः सेनापतिर्वोऽहं, मन्यध्वं किंनु साम्प्रतम्।
युधि तिष्ठाम संनह्य, समेतान् वृष्णिपाण्डवान्।। ७।।
इति सर्वान् समुत्साह्य राज्ञस्तांश्चेदिपुङ्गवः।
यज्ञोपघाताय ततः सोऽमन्त्रयत राजभिः।। ८।।
तत्राहूता गताः सर्वे सुनीथप्रमुखा गणाः।
समदृश्यन्त संक्रुद्धा विवर्णवदनास्तथा।। ९।।
सुहृद्भिर्वार्यमाणानां तेषां हि वपुराबभौ।
आमिषादपकृष्टानां सिंहानामिव गर्जताम्।। १०।।

तब श्रीकृष्ण की पूजा हो जाने पर शत्रु विजयी शिशुपाल क्रोध से आँखें अत्यन्त लाल करके राजाओं से बोला कि मैं तुम्हारा सेनापति खड़ा हुआ हूँ, तुम क्या सोच रहे हो? हम तैयार होकर इन इकट्ठे पाण्डवों और यादवों के साथ युद्ध करते हैं। इस प्रकार वह चेदिनरेश सब राजाओं को भड़का कर यज्ञ में विघ्न डालने के लिये राजाओं से सलाह करने लगा। इस प्रकार बुलाये जाने पर शिशुपाल को अपना नेता मानने वाले सारे राजा वहाँ आकर एकत्र हो गये। उनके मुख के रंग बदले हुए थे और वे क्रुद्ध दिखाई दे रहे थे। मित्रों के द्वारा मना करने पर भी उन राजाओं के शरीर क्रोध से इस प्रकार प्रतीत हो रहे थे जैसे मांस से वंचित कर देने के कारण सिंह दहाड़ रहे हों।

ततः सागरसंकाशं दृष्ट्वा नृपतिमण्डलम्।
संवर्तवाताभिहतं भीमं क्षुब्धमिवार्णवम्।। ११।।
रोषात् प्रचलितं सर्वमिदमाह युधिष्ठिरः।
भीष्मं मतिमतां मुख्यं वृद्धं कुरुपितामहम्।। १२।।
असौ रोषात् प्रचलितो महान् नृपतिसागरः।
अत्र यत् प्रतिपत्तव्यं तन्मे ब्रूहि पितामह।। १३।।
यज्ञस्य च न विघ्नः स्यात् प्रजानां च हितं भवेत्।
यथा सर्वत्र तत् सर्वं ब्रूहि मेऽद्य पितामह।। १४।।

तब तूफान के थपेड़ों से उद्वेलित भयंकर महासागर के समान क्रोध से चंचल राजाओं के उस समूह को देख कर कौरवों के पितामह, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ वृद्ध भीष्म से युधिष्ठिर कहने लगे कि यह राजाओं का महासमुद्र क्रोध से क्षुब्ध हो रहा है। हे पितामह! अब यहाँ क्या करना चाहिये, वह बताइये। जिससे यज्ञ में विघ्न भी न पड़े और प्रजाओं की भलाई हो, सब जगह शान्ति बनी रहे। हे पितामह! यह बताइये।

इत्युक्तवति धर्मज्ञे धर्मराजे युधिष्ठिरे।
उवाचेदं वचो भीष्मस्ततः कुरुपितामहः।। १५।।
मा भैस्त्वं कुरुशार्दूल श्वा सिंहं हन्तुमर्हति।
शिवः पन्थाः सुनीतोऽत्र मया पूर्वतरं वृतः।। १६।।
भषन्ते तात संक्रुद्धाः श्वानः सिंहस्य संनिधौ।
न हि सम्बुध्यते यावत् सुप्तः सिंह इवाच्युतः।। १७।।
तेन सिंहीकरोत्येतान् नृसिंहश्चेदिपुङ्गवः।
पार्थिवान् पार्थिवश्रेष्ठःशिशुपालोऽप्यचेतनः।। १८।।
सर्वान् सर्वात्मना तात नेतुकामो यमक्षयम्।

धर्मराज युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर कुरुकुल के पितामह भीष्म तब यह बोले कि हे कौरवसिंह! डरो मत। क्या कभी कुत्ता सिंह को मार सकता है? मैंने

पहले ही यहाँ कल्याणमय मार्ग को चुन लिया है। जैसे सोये हुए सिंह के पास कुत्ते तभी तक भौंकते हैं, जब तक वह सोया हुआ रहता है, उसी प्रकार जब तक कृष्ण जी सिंह के समान जागृत नहीं हो जाते हैं, तभी तक ये लोग व्यर्थ में बोल रहे हैं। नृसिंह! राजाओं में श्रेष्ठ चेदिनरेश शिशुपाल भी चेतना रहित हो रहा है, इसलिये हे तात! यह सबको सब तरह से मृत्युलोक में पहुँचाने के लिये सिंह बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

विप्लुता चास्य भद्रं ते बुद्धिर्बुद्धिमतां वर।। १९।।
चेदिराजस्य कौन्तेय सर्वेषां च महीक्षिताम्।
इति तस्य वचः श्रुत्वा ततश्चेदिपतिर्नृपः।। २०।।
भीष्मं रूक्षाक्षरा वाचः श्रावयामास भारतं।

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र! तुम्हारा कल्याण हो। इस चेदिराज की और इन सारे राजाओं की बुद्धि नष्ट हो गयी है। उनकी यह बात सुन कर चेदिनरेश शिशुपाल भरतश्रेष्ठ भीष्म को कड़वी बातें कहने लगा।

विभीषिकाभिर्बह्वीभिर्भीषयन् सर्वपार्थिवान्।। २१।।
न व्यपत्रपसे कस्माद् वृद्धः सन् कुलपांसन।
युक्तमेतत् तृतीयायां प्रकृतौ वर्तता त्वया।। २२।।
वक्तुं धर्मादपेतार्थं त्वं हि सर्वकुरूत्तमः।
नावि नौरिव सम्बद्धा यथान्धो वान्धमन्वियात्।। २३।।
तथाभूता हि कौरव्या येषां भीष्म त्वमग्रणीः।
यस्य चानेन धर्मज्ञ भुक्तमन्नं बलीयसः।। २४।।
स चानेन हतः कंस इत्येतत्र महाद्भुतम्।

शिशुपाल बोला कि हे कुल को कलंकित करने वाले भीष्म! तुम तरह-तरह की विभीषिकाओं के द्वारा इन सारे राजाओं को डरा रहे हो। तुम्हें बूढ़े होने पर भी लज्जा क्यों नहीं आती? तुम क्योंकि तीसरी जाति में हो अर्थात् नपुंसक हो, इसलिये तुम्हारे द्वारा धर्म के विरुद्ध बातें कहा जाना उचित ही है। पर आश्चर्य की बात यह है कि फिर भी तुम सारे कौरवों में उत्तम माने जाते हो। जैसे एक नाव से दूसरी नाव को बाँध दिया जाये या जैसे एक अन्धा दूसरे अन्धे के पीछे चलने लगे, ऐसे ही जिनके तुम नेता हो, उन कौरवों की भी यही दशा है। हे धर्मज्ञ! जिस बलवान कंस का अन्न खा कर यह कृष्ण पला था, उसे भी इसने मार दिया। यह इसके लिये कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

नूनं प्रकृतिरेषा ते जघन्या नात्र संशयः।। २५।।
अति पापीयसी चैषा पाण्डवानामपीष्यते।
येषामर्च्यतमः कृष्णस्त्वं च येषां प्रदर्शकः।। २६।।
धर्मवांस्त्वमधर्मज्ञः सतां मार्गादवप्लुतः।
को हि धर्मिणमात्मानं जानञ्ज्ञानविदां वरः।। २७।।
कुर्याद् यथा त्वया भीष्म कृतं धर्ममवेक्षता।
चेत् त्वं धर्मं विजानासि यदि प्राज्ञा मतिस्तव।। २८।।
अन्यकामा हि धर्मज्ञा कन्यका प्राज्ञमानिना।
अम्बा नामेति भद्रं ते कथं सापहृता त्वया।। २९।।

वास्तव में तुम्हारा स्वभाव ही अधम है, इसमें संशय की बात नहीं है, इसलिये इन पाण्डवों की प्रवृत्ति भी पापमयी होती जा रही है। जिनका कृष्ण पूज्यतम है और जिनका तुम जैसा सज्जनों के पथ से पतित, अधर्म का ज्ञानी पर धर्मात्मा बना हुआ पथ प्रदर्शक है, उनकी ऐसी ही अवस्था होगी। हे भीष्म! अपने आपको धर्मात्मा और ज्ञानवानों में उत्तम मानते हुए और धर्म की तरफ दृष्टि रखते हुए भी कौन पुरुष ऐसे कार्य करेगा, जैसे तुम्हारे द्वारा किये गये। तुम्हारा कल्याण हो। यदि तुम धर्म को जानते हो, यदि तुम्हारे अन्दर ज्ञान और बुद्धि है, तो अपने को पंडित मानने वाले तुमने दूसरे पुरुष को चाहने वाली अम्बा नाम की लड़की का अपहरण क्यों किया?

तां त्वयापि हृतां भीष्म कन्यां नैषितवान् यतः।
भ्राता विचित्रवीर्यस्ते सतां मार्गमनुष्ठितः।। ३०।।
दारयोर्यस्य चान्येन मिषतः प्राज्ञमानिनः।
तव जातान्यपत्यानि सज्जनाचरिते पथि।। ३१।।
को हि धर्मोऽस्ति ते भीष्म ब्रह्मचर्यमिदं वृथा।
यद् धारयसि मोहाद् वा क्लीबत्वाद् वा न संशयः।। ३२।।
न त्वहं तव धर्मज्ञ पश्याम्युपचयं क्वचित्।
न हि ते सेविता वृद्धा य एवं धर्ममब्रवीः।। ३३।।

हे भीष्म! तुम्हारे द्वारा अपहृत उस कन्या को भी तुम्हारे भाई विचित्र वीर्य ने नहीं चाहा, क्योंकि वह सज्जनों के मार्ग पर चल रहे थे। तुम जैसे अपने को झूठे ही समझदार मानने वाले के सामने ही उसकी दोनों विधवा पत्नियों से दूसरे के द्वारा सन्तानें उत्पन्न की गयीं। फिर भी तुम अपने को सज्जनों के मार्ग पर चलने वाला मानते हो। हे भीष्म! तुम्हारा धर्म क्या है? तुम्हारा यह ब्रह्मचर्य बेकार है, इसे तुमने मोह के कारण या नपुंसकता के कारण धारण किया हुआ है, इसमें कोई शक नहीं है। हे धर्मज्ञ!

मैं तो तुम्हारी कहीं भी कोई उन्नति नहीं देख रहा हूँ। तुमने ज्ञानवृद्धों की सेवा भी नहीं की है, तभी तुम उलटे धर्म का उपदेश करते हो।

य मे बहुमतो राजा जरासंधो महाबलः।
योऽनेन युद्धं नेयेष दासोऽयमिति संयुगे।। ३४।।
केशवेन कृतं कर्म जरासंधवधे तदा।
भीमसेनार्जुनाभ्यां च कस्तत् साध्विति मन्यते।।३५।।
इदं त्वाश्चर्यभूतं मे यदिमे पाण्डवास्त्वया।
अपकृष्टाः सतां मार्गान्मन्यन्ते तच्च साध्विति।। ३६।।
अथ वा नैतदाश्चर्यं येषां त्वमसि भारत।
स्त्रीसधर्मा च वृद्धश्च सर्वार्थानां प्रदर्शकः।। ३७।।

वह मेरा बहुत मान्य महाबली राजा जरासन्ध था, जो इस कृष्ण को यह दास है, ऐसा मान कर इसके साथ युद्ध करना नहीं चाहता था। इस श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के वध के लिये भीम और अर्जुन के साथ जो नीच कार्य किया, उसे कौन अच्छा मान सकता है? मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि तुम्हारे द्वारा सज्जनों के मार्ग से भ्रष्ट किये गये ये पाण्डव लोग भी कृष्ण के इस कार्य को उत्तम मानते हैं। हे भारत! अथवा इसमें आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि उनके तुम जैसे बूढ़े और स्त्रियों के समान स्वभाव वाले अर्थात नपुंसक सारे कार्यों में मार्ग दर्शक हैं।

सत्रहवाँ अध्याय : भीष्म और शिशुपाल का वाद विवाद।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रूक्षं रूक्षाक्षरं बहु।
चुकोप बलिनां श्रेष्ठो भीमसेनः प्रतापवान्।। १।।
तथा पद्मप्रतीकाशे स्वभावायतविस्तृते।
भूयः क्रोधाभिताम्राक्षे रक्ते नेत्रे बभूवतुः।। २।।
त्रिशिखां भ्रुकुटीं चास्य ददृशुः सर्वपार्थिवाः।
दन्तान् संदशतस्तस्य कोपाद् ददृशुराननम्।। ३।।
युगानते सर्वभूतानि कालस्येव जिघत्सतः।

शिशुपाल की वे कड़वी और कड़वी से भी बहुत कड़वी बातें सुन कर बलवानों में श्रेष्ठ और प्रतापी भीमसेन क्रोध में भर गये। उनकी कमल के समान बड़ी और स्वभाव से ही चौड़ी आँखें ताँबे जैसी लाल रंग की हो गयीं। सारे राजाओं ने तब उनकी तीन रेखाओं वालीं भृकुटियों को तना हुआ देखा। वे अपने दाँतों से दाँतों को पीसने लगे और क्रोध के कारण उनका मुख ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे प्रलय के समय सारे प्राणियों को मारने की इच्छा से मृत्यु ने ही साक्षात् मानव रूप धारण कर लिया हो।

शिशुपालस्तु संक्रुद्धे भीमसेने जनाधिपः।। ४।।
नाकम्पत तदा वीरः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः।
प्रहसंश्चाब्रवीद् वाक्यं चेदिराजः प्रतापवान्।। ५।।
भीमसेनमभिक्रुद्धं दृष्ट्वा भीमपराक्रमम्।
मुञ्चैनं भीष्म पश्यन्तु यावदेनं नराधिपाः।। ६।।
मत्प्रभावविनिर्दग्धं पतङ्गमिव वह्निना।
ततश्चेदिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा तत् कुरुसत्तमः।। ७।।
भीमसेनमुवाचेदं भीष्मो मतिमतां वरः।

पर वीर राजा शिशुपाल तो भीम के कुपित होने पर भी कम्पित नहीं हुआ। उसे अपने पौरुष पर विश्वास था। हँसते हुए वह प्रतापी चेदिराज भयानक पराक्रमी भीम सेन को क्रुद्ध हुआ देख बोला कि हे भीष्म! तुम इसे छोड़ दो, जिससे सारे राजा लोग देख लें कि यह मेरे प्रभाव से ऐसे ही दग्ध हो जायेगा, जैसे पतंगा आग में पड़ कर हो जाता है। तब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कुरुश्रेष्ठ, भीष्म चेदिराज के वाक्यों को सुन कर भीमसेन से यह बोले कि–

को हि मां भीमसेनाद्य क्षितावर्हति पार्थिवः।। ८।।
क्षेप्तुं कालपरीतात्मा यथैष कुलपांसनः।
येनैष कुरुशार्दूल शार्दूल इव चेदिराट्।। ९।।
गर्जत्यतीव दुर्बुद्धिः सर्वानस्मानचिन्तयन्।
ततो न ममृषे चैद्यस्तद् भीष्मवचनं तदा।। १०।।
उवाच चैनं संक्रुद्धः पुनर्भीष्ममथोत्तरम्।

हे भीमसेन! पृथ्वी पर कौन ऐसा राजा है, जो मुझ पर ऐसे आक्षेप कर सके, जैसे यह कुल कलंक कर रहा है। पर मृत्यु ने इसकी बुद्धि को हर लिया है। हे कुरुसिंह! इसलिये यह दुष्ट चेदिराज हम सबकी अवहेलना करते हुए सिंह के समान इतना गर्ज रहा है। भीष्म की इन बातों को तब शिशुपाल सहन न करते हुए फिर क्रोध में भर कर उनसे बोला कि–

द्विषतां नोऽस्तु भीष्मैष प्रभावः केशवस्य यः।। ११।।
यस्य संस्तववक्ता त्वं वन्दिवत् सततोत्थितः।
संस्तवे च मनो भीष्म परेषां रमते यदि।। १२।।

तदा संस्तौषि राज्ञस्त्वमिमं हित्वा जनार्दनम्।
दरदं स्तुहि बाह्लीकमिमं पार्थिवसत्तमम्।। १३।।
स्तुहि कर्णमिमं भीष्म महाचापविकर्षणम्।

हे भीष्म! कृष्ण का वह प्रभाव, जिसके कारण तुम सदा भाटों की तरह खड़े रह कर स्तुतिगान किया करते हो, हमारे शत्रुओं के पास ही रहे। हे भीष्म! यदि तुम्हारा मन दूसरों की स्तुति करने में ही आनन्दित होता है तो तुम इस कृष्ण को छोड़ कर इन राजाओं की ही स्तुति करो। तुम दरदों के श्रेष्ठ राजा इन बाह्लीक की स्तुति करो। हे भीष्म! तुम महान धनुष की प्रत्यंचा खींचने वाले इस कर्ण की स्तुति करो।

द्रोणं द्रौणिं च साधु त्वं पितापुत्रौ महारथौ।। १४।।
स्तुहि स्तुत्यावुभौ भीष्म सततं द्विजसत्तमौ।
पृथिव्यां सागरान्तायां यो वै प्रतिसमो भवेत्।। १५।।
दुर्योधनं त्वं राजेन्द्रमतिक्रम्य महाभुजम्।
जयद्रथं च राजानं कृतास्त्रं दृढविक्रमम्।। १६।।
द्रुमं किम्पुरुषाचार्यं लोके प्रथितविक्रमम्।
अतिक्रम्य महावीर्यं किं प्रशंससि केशवम्।। १७।।

हे भीष्म! तुम द्रोणाचार्य, और अश्वत्थामा दोनों पिता पुत्रों की सदा स्तुति करो। क्योंकि ये दोनों महारथी हैं और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। जो सागरपर्यन्त पृथिवी पर अद्वितीय वीर है, उस विशाल भुजाओं वाले दुर्योधन को छोड़ कर और राजा जयद्रथ को जिसे अस्त्र विद्या का पूरा ज्ञान है और जो दृढ़ पराक्रमी है और संसार में विख्यात पराक्रमी किं पुरुषाचार्य द्रुम को छोड़ कर, जो महातेजस्वी है, तुम केवल कृष्ण की प्रशंसा ही क्यों करते हो?

वृद्धं च भारताचार्यं तथा शारद्वतं कृपम्।
अतिक्रम्य महवीर्यं किं प्रशंससि केशवम्।। १८।।
धनुर्धराणां प्रवरं रुक्मिणं पुरुषोत्तमम्।
अतिक्रम्य महावीर्यं किं प्रशंससि केशवम्।। १९।।
भीष्मकं च महावीर्यं दन्तवक्रं च भूमिपम्।
भगदत्तं यूपकेतुं जयत्सेनं च मागधम्।। २०।।
विराटद्रुपदौ चोभौ शकुनिं च बृहद्बलम्।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पाण्ड्यं श्वेतमथोत्तरम्।। २१।।
शङ्खं च सुमहाभागं वृषसेनं च मानिनम्।
एकलव्यं च विक्रान्तं कालिङ्गं च महारथम्।। २२।।
अतिक्रम्य महावीर्यं किं प्रशंससि केशवम्।

ये वृद्ध महातेजस्वी, भरत वंश के आचार्य शरद्वान पुत्र कृपाचार्य हैं। इन्हें छोड़ कर तुम कृष्ण की क्यों प्रशंसा करते हो? धनुर्धरों में श्रेष्ठ, महापराक्रमी रुक्मी को छोड़ कर तुम कृष्ण की प्रशंसा क्यों करते हो? महातेजस्वी भीष्मक, राजा दन्तवक्र, भगदत्त, यूपकेतु, मगध नरेश जयत्सेन, विराट् और द्रुपद, शकुनि, बृहद्बल, अवन्ती के राजा विन्द और अनुविंद, पाण्ड्यनरेश, श्वेत, उत्तर, महाभाग शंख, अभिमानी वृषसेन, पराक्रमी एकलव्य, महारथी और महाबली कलिंग नरेश, इन सबकी अवहेलना करके तुम कृष्ण की ही प्रशंसा क्यों कर रहे हो?

शल्यादीनपि कस्मात् त्वं न स्तौषि वसुधाधिपान्।। २३।।
स्तवाय यदि ते बुद्धिर्वर्तते भीष्म सर्वदा।
यदस्तव्यमिमं शश्वन्मोहात् संस्तौषि भक्तितः।। २४।।
केशवं तच्च ते भीष्म न कश्चिदनुमन्यते।
इच्छतां भूमिपालानां भीष्म जीवस्यसंशयम्।। २५।।
लोकविद्विष्टकर्मा हि नान्योऽस्ति भवता समः।

हे भीष्म! यदि तुम्हारी बुद्धि सदा प्रशंसा ही करना चाहती है तो तुम शल्यादि राजाओं की प्रशंसा क्यों नही करते। हे भीष्म! जो स्तुति के सर्वथा अयोग्य है, उस कृष्ण की तुम मोह के कारण सदा स्तुति करते रहते हो। तुम्हारे इस कार्य का कोई भी अनुमोदन नहीं करता। निश्चित रूप से हे भीष्म! तुम राजाओं की इच्छा के कारण ही जी रहे हो। संसार में किसी के भी इतने द्वेष करने वाले नहीं हैं, जितने तुम्हारे हैं।

भीष्म उवाच

इच्छतां किल नामाहं जीवाम्येषां महीक्षिताम्।। २६।।
सोऽहं न गणयाम्येतांस्तृणेनापि नराधिपान्।
एवमुक्ते तु भीष्मेण ततः संचुक्रुशुर्नृपाः।। २७।।
केचिज्जहृषिरे तत्र केचिद् भीष्मं जगर्हिरे।
केचिदूचुर्महेष्वासाः श्रुत्वा भीष्मस्य तद् वचः।। २८।।
पापोऽवलिप्तो वृद्धश्च नायं भीष्मोऽर्हति क्षमाम्।
हन्यतां दुर्मतिर्भीष्मः पशुवत् साध्वयं नृपाः।। २९।।
सर्वैः समेत्य संरब्धैर्दह्यतां वा कटाग्निना।

तब भीष्म ने कहा कि इसके कहने के अनुसार मैं इन राजाओं की इच्छा के आधार पर जी रहा हूँ। मैं इन्हीं राजाओं को तिनके के बराबर गिनता हूँ। भीष्म के ऐसा कहने पर राजा लोग चिल्लाने लगे। उनमें से कुछ आनन्दित हुए तो कुछ भीष्म

की निन्दा करने लगे। कुछ महाधनुर्धर भीष्म की यह बात सुन कर कहने लगे कि यह पापी बूढ़ा भीष्म घमण्डी है। यह क्षमा के योग्य नहीं है। हे राजाओं! क्रोध में भरे हुए हम सब लोग मिल कर या तो इस दुष्ट भीष्म का अच्छी तरह से गला घोट कर इसे पशुओं की तरह मार दें, या इसे घास फूस की अग्नि में जीते जी जला दें।

इति तेषां वचः श्रुत्वा ततः कुरुपितामहः॥ ३०॥
उवाच मतिमान् भीष्मस्तानेव वसुधाधिपान्।
उक्तस्योक्तस्य नेहान्तमहं समुपलक्षये॥ ३१॥
यत् तु वक्ष्यामि तत् सर्वं शृणुध्वं वसुधाधिपाः।
पशुवद् घातनं वा मे दहनं वा कटाग्निना।
क्रियतां मूर्ध्नि वो न्यस्तं मयेदं सकलं पदम्॥ ३२॥

उन राजाओं की ये बातें सुन कर कुरुकुल के पितामह बुद्धिमान भीष्म तब उन्हीं राजाओं से बोले कि यदि मैं जिसने जो-जो बात कही है, उन सबका अलग-अलग उत्तर दूँ तो उसका अन्त ही नहीं होगा। इसलिये मैं सबका एक साथ उत्तर देता हूँ। आप सब लोग सुनो। चाहे आप लोग मुझे पशु के समान मार दें या घासफूस की आग में जला दें। तुम्हारी जो इच्छा हो करो। मैंने तो अपना यह पूरा पैर तुम्हारे सिरों पर रख दिया है।

अठारहवाँ अध्याय : शिशुपाल वध। राजसूय यज्ञ की समाप्ति।

ततः श्रुत्वैव भीष्मस्य चेदिराडुरुविक्रमः।
युयुत्सुर्वासुदेवेन वासुदेवमुवाच ह॥ १॥
आह्वये त्वां रणं गच्छ मया सार्धं जनार्दन।
यावदद्य निहन्मि त्वां सहितं सर्वपाण्डवैः॥ २॥
सह त्वया हि मे वध्याः सर्वथा कृष्ण पाण्डवाः।
नृपतीन् समतिक्रम्य यैरराजा त्वमर्चितः॥ ३॥
ये त्वां दासमराजानं बाल्यादर्चन्ति दुर्मतिम्।
अनर्हमर्हवत् कृष्ण वध्यास्त इति मे मतिः॥ ४॥

तब भीष्म की बातें सुन कर महापराक्रमी चेदिनरेश शिशुपाल श्रीकृष्ण जी के साथ युद्ध करने की इच्छा से उनसे बोला कि हे जनार्दन! मैं तुम्हें ललकारता हूँ। तू मेरे साथ युद्ध कर। जिससे मैं आज तुम्हें सारे पाण्डवों के साथ मार दूँ। हे कृष्ण! पाण्डव लोग भी तेरे साथ मेरे वध्य हैं, जिन्होंने राजाओं की अवहेलना कर तुझ अराजा का सम्मान किया है। मेरा विचार है कि जो मूर्खता के कारण तुम जैसे दुर्मति दास, अराजा और अयोग्य की योग्य के समान पूजा करते हैं, वे भी मार देने के योग्य हैं।

एवमुक्तस्ततः कृष्णो मृदुपूर्वमिदं वचः।
उवाच पार्थिवान् सर्वान् स समक्षं च वीर्यवान्॥ ५॥
एष नः शत्रुरत्यन्तं पार्थिवाः सात्वतीसुतः।
सात्वतानां नृशंसात्मा न हितोऽनपकारिणाम्॥ ६॥
क्रीडतो भोजराजस्य एष रैवतके गिरौ।
हत्वा बद्ध्वा च तान् सर्वानुपायात् स्वपुरं पुरा॥ ७॥

यह कहे जाने पर पराक्रमी कृष्ण ने सारे राजाओं से मधुरता के साथ यह कहा कि हे राजाओं! यह यद्यपि यदुकुल की कन्या का पुत्र है और यादवों ने इसका कभी कोई अपकार नहीं किया है, तो भी यह दुष्टात्मा उनके लिये अकल्याणकारी रहा है। भोजराज के रैवतक पर्वत पर खेल कूद में लगे हुए होने पर यह उनके सेवकों को मारकर और शेष सबको कैद कर अपने नगर में ले गया।

सौवीरान् प्रति यातां च बभ्रोरेष तपस्विनः।
भार्यामभ्यहरन्मोहादकामां तामितो गताम्॥ ८॥
एष मायाप्रतिच्छन्नः करूषार्थे तपस्विनीम्।
जहार भद्रां वैशालीं मातुलस्य नृशंसकृत्॥ ९॥
पितृष्वसुः कृते दुःखं सुमहन्मर्षयाम्यहम्।
दिष्ट्या हीदं सर्वराज्ञां संनिधावद्य वर्तते॥ १०॥
पश्यन्ति हि भवन्तोऽद्य मय्यतीव व्यतिक्रमम्।
कृतानि तु परोक्षं मे यानि तानि निबोधत॥ ११॥
इमं त्वस्य न शक्ष्यामि क्षन्तुमद्य व्यतिक्रमम्।
अवलेपाद् वधार्हस्य समग्रे राजमण्डले॥ १२॥

इसने तपस्वी बभ्रु की पत्नी को जो यहाँ से सौवीर देश की तरफ जा रही थी, और जिसके हृदय में इसके प्रति जरा भी कामना नहीं थी, मोह के वश में अपहरण कर लिया। इस क्रूर कर्मा ने अपने मामा विशाला नरेश की तपस्विनी कन्या भद्रा का, जो करूषराज के लिये तपस्या कर रही थी, धोखे से अपहरण कर लिया। मैं अपनी बुआ को सुख पहुँचाने के लिये ही इसके द्वारा दिये गये महान् दुखों को अब तक सहन करता आया हूँ । सौभाग्य से आज यह आप सब राजाओं के सामने अपनी हरकतों के साथ विद्यमान है। मेरे साथ जो अभद्र बर्ताव यह कर रहा है, उसे आप लोग देख ही

रहे हैं। इसने जो परोक्ष में मेरे प्रति अपराध किये हैं, उन्हें भी आप समझ लीजिये। पर आज इसने अभिमान के कारण सारे राजाओं के सामने जो अपराध किये हैं, वध करने के योग्य इसके उन अपराधों को अब मैं सहन नहीं कर सकूँगा।

रुक्मिण्यामस्य मूढस्य प्रार्थनाऽऽसीन्मुमूर्षतः।
न च तां प्राप्तवान् मूढः शूद्रो वेदश्रुतीमिव।। १३।।
एवमुक्त्वा यदुश्रेष्ठश्चेदिराजस्य तत्क्षणात्।
व्यपाहरच्छिरः क्रुद्धश्चक्रेणामित्रकर्षणः।। १४।।
ततः केचिन्महीपाला नाब्रुवंस्तत्र किंचन।
अतीतवाक्पथे काले प्रेक्षमाणा जनार्दनम्।। १५।।

मरने के इच्छुक इस मूर्ख ने पहले रुक्मिणी को प्राप्त करने के लिये उसके बान्धवों से प्रार्थना की थी, पर जैसे अनपढ़ शूद्र वेद मन्त्र का पाठ नहीं कर सकता, वैसे ही यह मूर्ख भी उसे प्राप्त नहीं कर सका। ऐसा कह कर क्रुद्ध हुए शत्रुमर्दन यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने चक्र के द्वारा चेदिराज शिशुपाल का सिर तत्काल धड़ से अलग कर दिया। उस अवर्णनीय क्षण में कोई भी राजा कुछ भी नहीं बोल सका। वे सब श्रीकृष्ण की तरफ देखते ही रह गये।

हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिंषन्नमर्षिताः।
अपरे दशनैरोष्ठानदशन् क्रोधमूर्च्छिताः।। १६।।
रहश्च केचिद् वार्ष्णेयं प्रशशंसुर्नराधिपाः।
केचिदेव सुसंरब्धा मध्यस्थास्त्वपरेऽभवन्।। १७।।
पाण्डवस्त्वब्रवीद् भ्रातॄन् सत्कारेण महीपतिम्।
दमघोषात्मजं वीरं संस्कारयत मा चिरम्।। १८।।
तथा च कृतवन्तस्ते भ्रातुर्वै शासनं तदा।
चेदीनामाधिपत्ये च पुत्रमस्य महीपतेः।। १९।।
अभ्यषिञ्चत् तदा पार्थः सह तैर्वसुधाधिपैः।

उनमें से कुछ राजा लोग अमर्ष में भर कर हाथों को मसलते रह गये। दूसरे क्रोध से मूर्च्छित से होकर दाँतों से अपने ओठों को काटने लगे। कुछ राजा लोग एकान्त में कृष्ण की प्रशंसा करने लगे। कुछ राजा लोग अत्यन्त क्रोध में थे, तो कुछ तटस्थ थे। तब पाण्डव युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा कि दमघोष के पुत्र वीर राजा का सम्मान पूर्वक अन्तिम संस्कार कराओ। देर मत करो। भाई के आदेश से उन सब ने वैसा ही किया। तब कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर ने राजा शिशुपाल के पुत्र का चेदिदेश के राजसिंहासन पर वहीं उन राजाओं के समक्ष अभिषेक कर दिया।

शान्तविघ्नः सुखारम्भः प्रभूतधनधान्यवान्।। २०।।
अन्नवान् बहुभक्ष्यश्च केशवेन सुरक्षितः।
ओदनानां विकाराणि स्वादूनि विविधानि च।। २१।।
सुबहूनि च भक्ष्याणि पेयानि मधुराणि च।
ददुर्द्विजानां सततं राजप्रेष्या महाध्वरे।। २२।।
पूर्णे शतसहस्रे तु विप्राणां भुञ्जतां तदा।
स्थापिता तत्र संज्ञाभूच्छङ्खोऽध्मायत नित्यशः।। २३।।

अब उस यज्ञ का विघ्न शान्त हो गया था, इसलिये उसका आरम्भ सुख पूर्वक हुआ। उस यज्ञ में बहुत धन और धान्य का उपयोग किया गया था। वहाँ खाद्य पदार्थ और अन्न बहुत बड़ी मात्रा में थे। उस यज्ञ का सम्पादन श्री कृष्ण जी की सुरक्षा में चल रहा था। उस महान यज्ञ में राजसेवक तरह-तरह के स्वादिष्ट भात, और दूसरे बहुत से खाद्य पदार्थ और मधुर पेय पदार्थ ब्राह्मणों को परोसते रहते थे। भोजन करने वाले विप्रों की संख्या जब एक लाख पूरी हो जाती थी, तब वहाँ प्रतिदिन शंख बजाया जाता था।

राजानः स्रग्विणस्तत्र सुमृष्टमणिकुण्डलाः।
विविधान्यन्नपानानि लेह्यानि विविधानि च।। २४।।
तेषां नृपोपभोग्यानि ब्राह्मणेभ्यो ददुः स्म ते।
एतानि सततं भुक्त्वा तस्मिन् यज्ञे द्विजातयः।। २५।।
परां प्रीतिं ययुः सर्वे मोदमानास्तदा भृशम्।
ऋत्विजश्च यथाशास्त्रं राजसूयं महाक्रतुम्।। २६।।
पाण्डवस्य यथाकालं जुहुवुः सर्वयाजकाः।
व्यासधौम्यादयः सर्वे विधिवत् षोडशर्त्विजः।। २७।।
स्वस्वकर्माणि चक्रुस्ते पाण्डवस्य महाक्रतौ।

वहाँ विशुद्ध सोने के तथा मणियों के हार और कुण्डल पहने हुए राजा लोग राजाओं के खाने योग्य अनेक प्रकार के अन्न, पेय पदार्थ, और चटनियाँ ब्राह्मणों को परोसा करते थे। उस यज्ञ में वे ब्राह्मण लोग उन पदार्थों को खाकर अत्यन्त आनन्दित होकर बड़ी तृप्ति को प्राप्त करते थे। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के उस राजसूय महायज्ञ में शास्त्रों के अनुसार और यथासमय ऋत्विज और सारे याजक लोग आहुतियाँ दिया करते थे। युधिष्ठिर के उस महान यज्ञ में व्यास और धौम्य मुनि आदि जो सोलह ऋत्विज थे, सारे अपने-अपने निश्चित कार्यों का विधि के अनुसार सम्पादन करते थे।

इतिहासपुराणानि आख्यानानि च सर्वशः।। २८।।
ऊचुर्वै शब्दशास्त्रज्ञा नित्यं कर्मान्तरेष्वथ।

भेर्यश्च मुरजाश्चैव मड्डुका गोमुखाश्च ये।। २९।।
शृङ्गवंशाम्बुजाश्चैव श्रूयन्ते स्म सहस्रशः।
भीष्मद्रोणादयः सर्वे कुरवः ससुयोधनाः।। ३०।।
वृष्णयश्च समग्राश्च पञ्चालाश्चापि सर्वशः।
यथार्हं सर्वकर्माणि चक्रुर्दासा इव क्रतौ।। ३१।।

यज्ञ के कार्यों में से जब समय मिलता था, तब बीच-बीच में व्याकरण शास्त्र के विद्वान लोग इतिहास, पुराण और सब तरह के उपाख्यान लोगों को सुनाया करते थे। वहाँ सहस्त्रों की संख्या में नगाड़े, मुरज, मड्डुक, गोमुख, शृंग, वंशी और शंखों के शब्द सुनाई दिया करते थे। भीष्म, द्रोणादि और सारे दुर्योधन सहित कौरव, वृष्णिवंशी तथा सारे पाँचाल अपने-अपने योग्य सारे कार्यों को सेवकों के समान उस यज्ञ में किया करते थे।

वस्त्राणि कम्बलांश्चैव प्रावारांश्चैव सर्वदा।
निष्कहेमजभाण्डानि भूषणानि च सर्वशः।। ३२।।
प्रददौ तत्र सततं धर्मराजो युधिष्ठिरः।
व्यासं धौम्यं च प्रयतो नारदं च महामतिम्।। ३३।।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं वैशम्पायनमेव च।
याज्ञवल्क्यं कठं चैव कलापं च महौजसम्।। ३४।।
सर्वांश्च विप्रप्रवरान् पूजयामास सत्कृतान्।

युधिष्ठिर उवाच

युष्मत्प्रभावात् प्राप्तोऽयं राजसूयो महाक्रतुः।। ३५।।
जनार्दनप्रभावाच्च सम्पूर्णो मे मनोरथः।

उस यज्ञ में धर्मराज युधिष्ठिर सदा वस्त्र, कम्बल, चादर, स्वर्ण पदक, स्वर्णपात्र, और सब प्रकार के आभूषणों का दान किया करते थे। उन्होंने व्यास, धौम्य, महामति नारद, सुमन्तु जैमिनी, पैल, वैशम्पायन, याज्ञवल्क्य, कठ, और महातेजस्वी कलाप, इन सारे विप्रों की प्रयत्न पूर्वक सत्कार कर पूजा की। युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि आप लोगों के और श्रीकृष्ण जी के प्रभाव से ही मेरा यह महान राजसूय यज्ञ पूरा हुआ है और मेरे मनोरथ की पूर्ति हुई है।

ततस्त्ववभृथस्नातं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।। ३६।।
समस्तं पार्थिवं क्षत्रमुपगम्येदमब्रवीत्।
दिष्ट्या वर्धसि धर्मज्ञ साम्राज्यं प्राप्तवानसि।। ३७।।
आजमीढाजमीढानां यशः संवर्धितं त्वया।
कर्मणैतेन राजेन्द्र धर्मश्च सुमहान् कृतः।। ३८।।
आपृच्छामो नरव्याघ्र सर्वकामैः सुपूजिताः।

श्री धर्मात्मा युधिष्ठिर जब अवभृथ स्नान कर चुके, तब सारे राजा और क्षत्रिय उनके पास जाकर बोले कि हे धर्मज्ञ! बड़े सौभाग्य की बात है कि आपकी उन्नति हो रही है और आपने सम्राट् पद प्राप्त कर लिया है। हे राजेन्द्र! हे आजमीढ वंशी, आपने अपने इस कार्य से सारे आजमीढ वंशियों के यश को बढ़ाया है और महान धर्म का सम्पादन किया है। हे नरव्याघ्र! आपने हमारा सभी मनोवांछित पदार्थों से सत्कार किया है। अब हम आपसे जाने की अनुमति चाहते हैं।

श्रुत्वा तु वचनं राज्ञां धर्मराजो युधिष्ठिरः।। ३९।।
यथार्हं पूज्य नृपतीन् भ्रातॄन् सर्वानुवाच ह।
राजानः सर्व एवैते प्रीत्यास्मान् समुपागताः।। ४०।।
प्रस्थिताःस्वानि राष्ट्राणि मामापृच्छ्य परंतपाः।
अनुव्रजत भद्रं वो विषयान्तं नृपोत्तमान्।। ४१।।
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय पाण्डवा धर्मचारिणः।
यथार्हं नृपतीन् सर्वानेकैकं समनुव्रजन्।। ४२।।
विराटमन्वयात् तूर्णं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
धनंजयो यज्ञसेनं महात्मानं महारथम्।। ४३।।
भीष्मं च धृतराष्ट्रं च भीमसेनो महाबलः।
द्रोणं तु ससुतं वीरं सहदेवो युधाम्पतिः।। ४४।।

राजाओं के वचन सुन कर धर्मराज युधिष्ठिर ने उन राजाओं की यथायोग्य पूजा की और अपने सारे भाइयों से कहा कि शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले ये सारे ही राजा प्रेम पूर्वक हमारे पास आये थे। अब ये मुझसे पूछ कर अपने अपने देश को प्रस्थान कर रहे हैं। आप लोगों का भला हो। आप इन श्रेष्ठ राजाओं को अपने देश की सीमा तक पहुँचा कर आओ। तब भाई के वचनों का पालन करते हुए वे धर्म का आचरण करने वाले पाण्डव यथा योग्य उन सारे राजाओं के साथ उन्हें पहुँचाने गये। प्रतापी धृष्टद्युम्न तुरन्त राजा विराट् के साथ गया। अर्जुन महारथी महात्मा द्रुपद के साथ गये। महाबली भीमसेन भीष्म और धृतराष्ट्र के साथ गये। पुत्र सहित वीर द्रोणाचार्य के साथ योद्धाओं में श्रेष्ठ सहदेव गये।

द्रौपदेयाः ससौभद्राः पर्वतीयान् महारथान्।
अन्वगच्छंस्तथैवान्यान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभाः।। ४५।।
एवं सुपूजिताः सर्वे जग्मुर्विप्राः सहस्रशः।
गतेषु पार्थिवेन्द्रेषुसर्वेषु ब्राह्मणेषु च।। ४६।।
युधिष्ठिरमुवाचेदं वासुदेवः प्रतापवान्।

आपृच्छे त्वां गमिष्यामि द्वारकां कुरुनन्दन।।४७।।
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठं दिष्ट्या त्वं प्राप्तवानसि।

द्रौपदी के पुत्र अभिमन्यु के साथ पर्वतीय राजाओं को पहुँचाने के लिये गये। इसी प्रकार दूसरे क्षत्रिय श्रेष्ठ दूसरे राजाओं के साथ गये। इसी प्रकार वे हजारों ब्राह्मण भी अच्छी तरह से सत्कार पाकर वहाँ से विदा हुए। सारे ब्राह्मणों और राजाओं के चले जाने पर, प्रतापी श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा हे कुरुनन्दन! सौभाग्य से आपने अपने श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ को पूरा कर लिया है। अब मैं आपसे अनुमति चाहता हूँ। मैं द्वारिका को जाऊँगा।

तमुवाचैवमुक्तस्तु धर्मराजो जनार्दनम्।।४८।।
तव प्रसादाद् गोविन्द प्राप्तः क्रतुवरो मया।
क्षत्रं समग्रमपि च त्वत्प्रसादाद् वशे स्थितम्।।४९।।
उपादाय बलिं मुख्यं मामेव समुपस्थितम्।
कथं त्वद्गमनार्थं मे वाणी वितरतेऽनघ।।५०।।
न ह्यहं त्वामृते वीर रतिं प्राप्नोमि कर्हिचित्।
अवश्यं चैव गन्तव्या भवता द्वारकापुरी।।५१।।

ऐसा कहे जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे गोविन्द! आपकी कृपा से ही मैंने इस श्रेष्ठ यज्ञ को पूरा किया है। आपकी कृपा से ही सारे क्षत्रियों को भी अपने वश में कर लिया और वे क्षत्रिय उत्तम उपहारों को लेकर मेरे समीप आये। हे निष्पाप! आपको जाने के लिये मेरी वाणी कैसे कह सकती है? हे वीर! मैं तुम्हारे बिना किसी प्रकार भी सुखी नहीं रह सकता। पर द्वारिकापुरी में भी आपको अवश्य ही जाना है।

एवमुक्तः स धर्मात्मा युधिष्ठिरसहायवान्।
अभिगम्याब्रवीत् प्रीतः पृथां पृथुयशा हरिः।।५२।।
साम्राज्यं समनुप्राप्ताः पुत्रास्तेऽद्य पितृष्वसः।
सिद्धार्था वसुमन्तश्च सा त्वं प्रीतिमवाप्नुहि।।५३।।
अनुज्ञातस्त्वया चाहं द्वारकां गन्तुमुत्सहे।
सुभद्रां द्रौपदीं चैव सभाजयत केशवः।।५४।।
निष्क्रम्यान्तःपुरात् तस्माद् युधिष्ठिरसहायवान्।

ऐसा कहे जाने पर वे धर्मात्मा महान यश वाले श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर युधिष्ठिर के साथ कुन्ती के पास जाकर बोले कि हे बुआ जी! आपके पुत्र सम्राट् बन गये हैं। आज उनकी इच्छा पूरी हो गयी और वे ऐश्वर्यवान् बन गये हैं। इसलिये आप प्रसन्न हो जाओ। अब आप आज्ञा दीजिये। मैं द्वारिका को जाना चाहता हूँ। फिर उन्होंने सुभद्रा और द्रौपदी को प्रसन्न किया और युधिष्ठिर के साथ अन्तःपुर से बाहर निकले।

स्नातश्च कृतजप्यश्च ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य च।।५५।।
ततो मेघवपुःप्रख्यं स्यन्दनं च सुकल्पितम्।
योजयित्वा महाबाहुर्दारुकः समुपस्थितः।।५६।।
उपस्थितं रथं दृष्ट्वा तार्क्ष्यप्रवरकेतनम्।
प्रययौ पुण्डरीकाक्षः समारुह्य महामनाः।।५७।।
बलदेवश्च देवेशो यादवाश्च सहस्रशः।
प्रययू राजवत् सर्वे धर्मपुत्रेण पूजिताः।।५८।।
एको दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः।
तस्यां सभायां दिव्यायामूषतुस्तौ नरर्षभौ।।५९।।

तब उसके पश्चात् स्नान कर, जप कर और ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर जब वे तैयार हुए तब उनके बादलों के समान सुन्दर रथ को जोत कर उनका सारथी महाबाहु दारुक उपस्थित हुआ। गरुड़ की ध्वजा वाले रथ को देख कर वे कमलनयन महामना श्रीकृष्ण उस पर बैठकर चल दिये। देवताओं के स्वामी के समान बलदेव और हजारों यादव भी तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर से राजाओं के समान सम्मान पाकर चल दिये। एक दुर्योधन और सुबल पुत्र शकुनि ये दोनों नरश्रेष्ठ, उस दिव्य सभा भवन में रह गये थे।

उन्नीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर के वैभव पर दुर्योधन की चिन्ता, शकुनि से परामर्श।

वसन् दुर्योधनस्तस्यां सभायां पुरुषर्षभः।
शनैर्ददर्श तां सर्वां सभां शकुनिना सह।।१।।
तस्यां दिव्यानभिप्रायान् ददर्श कुरुनन्दनः।
न दृष्टपूर्वा ये तेन नगरे नागसाह्वये।।२।।
स कदाचित् सभामध्ये धार्तराष्ट्रो महीपतिः।
स्फाटिकं स्थलमासाद्य जलमित्यभिशङ्कया।।३।।
स्ववस्त्रोत्कर्षणं राजा कृतवान् बुद्धिमोहितः।
दुर्मना विमुखश्चैव परिचक्राम तां सभाम्।।४।।

नरश्रेष्ठ दुर्योधन ने उस सभाभवन में रहते हुए धीरे-धीरे शकुनि के साथ सारी सभा को देखा। उस सभा भवन में कुरुनन्दन ने उन अनेक ऐसी अनोखी चीजों को देखा, जिन्हें उसने हस्तिनापुर में कभी

नहीं देखा था। एक बार धृतराष्ट्र का पुत्र वह राजा सभा भवन के अन्दर घूमता हुआ स्फटिक पत्थर के बने हुए फर्श को प्राप्त कर उसे यहाँ जल है, ऐसा समझकर, मोहित हुई बुद्धि के कारण अपने वस्त्र ऊपर उठाने लगा और फिर वास्तविकता को समझ कर उदास हो, उस सभा भवन में दूसरी तरफ चक्कर लगाने लगा।

ततः स्थले निपतितो दुर्मना व्रीडितो नृपः।
निःश्वसन् विमुखश्चापि परिचक्राम तां सभाम्।। ५।।
ततः स्फाटिकतोया वै स्फाटिकाम्बुजशोभिताम्।
वापीं मत्वा स्थलमिव सवासाः प्रापतज्जले।। ६।।
तथागतं तु तं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः।
अर्जुनश्च यमौ चोभौ सर्वे ते प्राहसंस्तदा।। ७।।
नामर्षयत् ततस्तेषामवहासममर्षणः।
आकारं रक्षमाणस्तु न स तान् समुदैक्षत।। ८।।

एक बार वह राजा सूखी भूमि पर ही फिसल कर गिर पड़ा और लज्जित तथा उदास हो कर लम्बी साँसें लेता हुआ वहाँ से हट कर उस सभा भवन में दूसरी तरफ घूमने लगा। उसके पश्चात् स्फटिक पत्थर के समान निर्मल जल वाली और स्फटिक के बने हुए कमलों वाली बावली को देख कर, वह उसे सूखी भूमि समझ कर उसमें वस्त्रों सहित गिर पड़ा। उसे इस अवस्था में देख कर महाबली भीमसेन, अर्जुन और दोनों जुड़वाँ भाई वे सारे हँसने लगे। उनके इस उपहास को वह अमर्षशील दुर्योधन सहन नहीं कर सका। उस समय अपने मुख के आकार को छिपाने के लिये वह उनकी तरफ मुख उठा कर नहीं देख रहा था।

द्वारं तु पिहिताकारं स्फाटिकं प्रेक्ष्य भूमिपः।
प्रविशन्नाहतो मूर्ध्नि व्याघूर्णित इव स्थितः।। ९।।
तादृशं च परं द्वारं स्फाटिकोरुकपाटकम्।
विघट्टयन् कराभ्यां तु निष्क्रम्याग्रे पपात ह।। १०।।
द्वारं तु वितताकारं समापेदे पुनश्च सः।
तद्वृत्तं चेति मन्वानो द्वारस्थानादुपारमत्।। ११।।
पाण्डवेयाभ्यनुज्ञातस्ततो दुर्योधनो नृपः।
अप्रहृष्टेन मनसा राजसूये महाक्रतौ।। १२।।
प्रेक्ष्य तामद्भुतामृद्धिं जगाम गजसाह्वयम्।

उसके बाद उस राजा ने एक स्फटिक पत्थर के बने द्वार को देखा जो वास्तव में बन्द था, पर खुला हुआ सा प्रतीत हो रहा था, इसलिये उसमें प्रवेश करने का प्रयत्न करते हुए उसका सिर उससे टकरा गया और उसे चक्कर सा आने लगा। उसी तरह के एक दूसरे स्फटिक द्वार को देख कर, जो वास्तव में खुले किवाड़ वाला था, पर उसे बन्द समझकर खोलने के लिये हाथों से धक्का देते हुए वह स्वयं द्वार से बाहर निकल कर गिर पड़ा। इसी प्रकार एक और बड़े आकार के द्वार को देख कर और इस आशंका से कि यहाँ कोई दुर्घटना न हो जाये, वह उसके स्थान से वापिस लौट आया। उसके बाद वह राजा दुर्योधन राजसूय यज्ञ में आयी हुई महान् समृद्धि को देख कर पाण्डवों से अनुमति लेकर उदास मन से हस्तिनापुर को लौट गया।

पार्थान् सुमनसोदृष्ट्वा पार्थिवांश्च वशानुगान्।। १३।।
कृत्स्नं चापि हितं लोकमाकुमारं कुरूद्वह।
महिमानं परं चापि पाण्डवानां महात्मनाम्।। १४।।
दुर्योधनो धार्तराष्ट्रो विवर्णः समपद्यत।
स तु गच्छन्ननेकाग्रः सभामेकोऽन्वचिन्तयत्।। १५।।
श्रियं च तामनुपमां धर्मराजस्य धीमतः।
प्रमत्तो धृतराष्ट्रसय पुत्रो दुर्योधनस्तदा।। १६।।
नाभ्यभाषत् सुबलजं भाषमाणं पुनः पुनः।

वह कुरुनन्दन धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन यह देख कर कि कुन्ती पुत्र प्रसन्न हैं, राजा लोग उनके वश में हैं, बच्चे से लेकर बूढ़े तक सारा जगत उनका हितैषी है तथा पाण्डवों की महान् महिमा को देख कर फीके रंग वाला हो गया। वह जाता हुआ रास्ते में व्यग्रचित्त होकर अकेला ही धीमान युधिष्ठिर की अनुपम समृद्धि और सभाभवन के बारे में सोच रहा था। धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन उस समय पागल सा बना हुआ था और शकुनि के बार-बार बोलने पर भी उसे उत्तर नहीं दे रहा था।

अनेकाग्रं तु तं दृष्ट्वा शकुनिः प्रत्यभाषत।। १७।।
दुर्योधन कुतोमूलं निःश्वसन्निव गच्छसि।

दुर्योधन उवाच

दृष्ट्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां युधिष्ठिरवशानुगाम्।। १८।।
जितामस्त्रप्रतापेन श्वेताश्वस्य महात्मनः।
तं च यज्ञं तथाभूतं दृष्ट्वा पार्थस्य मातुल।। १९।।
यथा शक्रस्य देवेषु तथाभूतं महाद्युतेः।
अमर्षेण तु सम्पूर्णो दह्यमानो दिवानिशम्।। २०।।
शुचिशुक्रागमे काले शुष्येत् तोयमिवाल्पकम्।

उसे व्यग्र हुआ देख कर शकुनि ने तब उससे कहा कि हे दुर्योधन! तुम किस लिये लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए चल रहे हो? तब दुर्योधन ने कहा कि इस सारी भूमि को युधिष्ठिर के वश में आया हुआ देख कर जो कि महात्मा अर्जुन के प्रताप से जीती गयी है। हे मामा! जैसे महातेजस्वी इन्द्र का यज्ञ देवताओं के बीच में पूरा हुआ था, वैसे ही कुन्ती पुत्र के उस यज्ञ को सम्पन्न हुआ देख कर अमर्ष से मैं दिन रात उसी तरह जलता रहता हूँ जैसे ग्रीष्म के आने पर थोड़ा सा पानी जल्दी सूख जाता है।

पश्य सात्वतमुख्येन शिशुपालो निपातितः।। २१।।
न च तत्र पुमानासीत् कश्चित् तस्य पदानुगः।
दह्यमाना हि राजानः पाण्डवोत्थेन वह्निना।। २२।।
क्षान्तवन्तोऽपराधं ते को हि तत् क्षन्तुमर्हति।
वासुदेवेन तत् कर्म यथायुक्तं महत् कृतम्।। २३।।
सिद्धं च पाण्डुपुत्राणां प्रतापेन महात्मनाम्।
तथा हि रत्नान्यादाय विविधानि नृपा नृपम्।। २४।।
उपातिष्ठन्त कौन्तेयं वैश्या इव करप्रदाः।

देखो श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को मार गिराया। पर वहाँ कोई भी पुरुष उसके पीछे चलने वाला नहीं था। पाण्डवों रूपी प्रज्वलित अग्नि से जलते हुए उन राजाओं ने उस अपराध को क्षमा कर दिया नहीं तो कौन उसको क्षमा कर सकता था। श्रीकृष्ण ने जो वह महान् अयुक्त कर्म किया, वह महात्मा पाण्डु पुत्रों के प्रताप से सफल हो गया। इसी प्रकार तरह-तरह के रत्नों को लेकर वे राजा लोग उस कुन्तीपुत्र राजा के सामने ऐसे ही खड़े थे जैसे कर देने वाले व्यापारी खड़े हुआ करते हैं।

श्रियं तथाऽऽगतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमिव पाण्डवे।। २५।।
अमर्षवशमापन्नो दह्यामि न तथोचितः।
एवं स निश्चयं कृत्वा ततो वचनमब्रवीत्।। २६।।
पुनर्गान्धारनृपतिं दह्यमान इवाग्निना।
वह्निमेव प्रवेक्ष्यामि भक्षयिष्यामि वा विषम्।। २७।।
अपो वापि प्रवेक्ष्यामि न हि शक्ष्यामि जीवितुम्।
को हि नाम पुमाँल्लोके मर्षयियति सत्त्ववान्।
सपत्नानृद्ध्यतो दृष्ट्वा हीनमात्मानमेव च।। २८।।

उस पाण्डु पुत्र के समीप आती हुई प्रज्वलित होती हुई सी लक्ष्मी को देख कर मैं ईर्ष्या के वश में होकर जल रहा हूँ। यद्यपि यह उचित नहीं है। इस प्रकार चिन्ता की अग्नि में जलते हुए वह गान्धार राज से फिर निश्चय करके बोला कि मैं अग्नि में प्रवेश कर लूँगा या विष खा लूँगा या जल में डूब मरूँगा पर अब मैं जीवित नहीं रह सकता। संसार में कौन शक्तिशाली पुरुष ऐसा होगा जो शत्रुओं को बढ़ता हुआ और अपने को घटता हुआ देख कर सहन कर लेगा?

ईश्वरत्वं पृथिव्याश्च वसुमत्तां च तादृशीम्।। २९।।
यज्ञं च तादृशं दृष्ट्वा मादृशः को न संज्वरेत्।
अशक्तश्चैक एवाहं तामाहर्तुं नृपश्रियम्।। ३०।।
सहायांश्च न पश्यामि तेन मृत्युं विचिन्तये।
कृतो यत्नो मया पूर्वं विनाशे तस्य सौबल।। ३१।।
तच्च सर्वमतिक्रम्य संवृद्धोऽप्स्विव पङ्कजम्।
तेन दैवं परं मन्ये पौरुषं च निरर्थकम्।। ३२।।
धर्तराष्ट्राश्च हीयन्ते पार्था वर्धन्ति नित्यशः।
स मामभ्यनुजानीहि मातुलाद्य सुदुःखितम्।। ३३।।
अमर्षं च समाविष्टं धृतराष्ट्रे निवेदय।

पृथिवी का स्वाभित्व और इतनी अधिक सम्पत्ति का होना, और ऐसे महान् यज्ञ को देख कर मेरे जैसा कौन पुरुष चिन्तित नहीं होगा। उस राज्यलक्ष्मी को छीन लेने में मैं असमर्थ हूँ और अपने सहायकों को भी मैं नहीं देख पा रहा हूँ, इसलिये मृत्यु का ही विचार कर रहा हूँ। हे सुबल पुत्र! मैंने पहले युधिष्ठिर को नष्ट कर देने के प्रयत्न किये थे, पर वह उन सब प्रयत्नों को निष्फल कर जल में कमल के समान बढ़ते ही चले गये। इसलिये मैं तो परमात्मा की इच्छा को ही प्रधान मानता हूँ, पुरुषार्थ करना बेकार है। धृतराष्ट्र के पुत्र नित्य अवनत होते जा रहे हैं और कुन्ती के पुत्र बढ़ते जा रहे हैं। इसलिये अमर्ष में भरे हुए मुझे हे मामा! आप मरने की आज्ञा दीजिये और मेरी यह अवस्था धृतराष्ट्र से कह दीजिये।

शकुनि उवाच

दुर्योधन न तेऽमर्षः कार्यः प्रति युधिष्ठिरम्।। ३४।।
भागधेयानि हि स्वानि पाण्डवा भुञ्जते सदा।
विधानं विविधाकारं परं तेषां विधानतः।। ३५।।
अनेकैरभ्युपायैश्च त्वया न शकिताःपुरा।
आरब्धाश्च महाराज पुनः पुनररिंदम।। ३६।।
विमुक्ताश्च नरव्याघ्रा भागधेयपुरस्कृताः।

तब शकुनि ने कहा कि हे दुर्योधन! तुझे युधिष्ठिर के प्रति अमर्ष नहीं करना चाहिये। पाण्डव लोग

सदा परमात्मा के द्वारा प्रदत्त भोगों का ही उपभोग करते आये हैं। आपने उन्हें वश में करने के लिये बहुत से प्रयत्न किये, पर वे आपके वश में नहीं हो सके। वे षड्यन्त्र महाराज! आपने उन पर बार-बार चलाये, पर वे नरश्रेष्ठ भगवान की कृपा से पुरस्कृत होने के कारण उनसे विमुक्त होते चले गये।

लब्धश्चानभिभूतार्थैः पित्र्योंऽशः पृथिवीपते।। ३७।।
विवृद्धस्तेजसा तेषां तत्र का परिदेवना।
धनंजयेन गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी।। ३८।।
लब्धान्यस्त्राणि दिव्यानि तोषयित्वा हुताशनम्।
तेन कार्मुकमुख्येन बाहुवीर्येण चात्मनः।। ३९।।
कृता वशे महीपालास्तत्र का परिदेवना।
अग्निदाहान्मयं चापि मोक्षयित्वा स दानवम्।। ४०।।
सभां तां कारयामास सव्यसाची परंतपः।

हे पृथिवीपति! उन्होंने अपने प्रयोजन से विचलित न होकर अपना पैतृक भाग प्राप्त कर लिया। वह उनकी सम्पत्ति अब उनके तेज से और बढ़ गयी, तो इसमें परेशान होने की क्या आवश्यकता है? अर्जुन ने अग्नि ब्राह्मण को सन्तुष्ट करके गाण्डीव धनुष और दो नष्ट न होने वाले विशाल तरकस तथा दिव्यास्त्र प्राप्त कर लिये। उसने उस श्रेष्ठ धनुष के तथा अपनी भुजाओं के पराक्रम से राजाओं को अपने वश में कर लिया तो इसमें परेशान होने की क्या आवश्यकता है। शत्रुओं को संतप्त करने वाले अर्जुन ने मयदानव को अग्नि में जलने से बचाकर उससे सभाभवन बनवा लिया।

द्रोणस्तव महेष्वासः सह पुत्रेण वीर्यवान्।। ४१।।
सुतपुत्रश्च राधेयो गौतमश्च महारथः।
अहं च सह सोदर्यैः सौमदत्तिश्च पार्थिवः।। ४२।।
एतैस्त्वं सहितः सर्वैर्जय कृत्स्नां वसुन्धराम्।

दुर्योधन उवाच

त्वया च सहितो राजन्नेतैश्चान्यैर्महारथैः।। ४३।।
एतानेव विजेष्यामि यदि त्वमनुमन्यसे।
एतेषु विजितेष्वद्य भविष्यति मही मम।। ४४।।
'सर्वे च पृथिवीपालाः सभा सा च महाधना।

महाधनुर्धर पराक्रमी द्रोणाचार्य अपने पुत्र के साथ, राधा का सूत पुत्र कर्ण और महारथी कृपाचार्य, मैं अपने भाइयों के साथ और राजा भूरिश्रवा, इनके साथ तुम भी इस सारी वसुन्धरा पर विजय प्राप्त करो। तब दुर्योधन बोला कि तुम्हारी अनुमति हो तो मैं तुम्हारे और इन महारथियों के साथ इन पाण्डवों को ही युद्ध में जीत लूँ। इनके जीत लेने पर यह सारी भूमि, सारे राजा, यह सभा भवन, और यह सारी सम्पत्ति मेरी हो जायेगी।

शकुनि उवाच

धनंजयो वासुदेवो भीमसेनो युधिष्ठिरः।। ४५।।
नकुलः सहदेवश्च द्रुपदश्च सहात्मजैः।
महारथा महेष्वासाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः।। ४६।।
अहं तु तद् विजानामि विजेतुं येन शक्यते।
युधिष्ठिरं स्वयं राजंस्तन्निबोध जुषस्व च।। ४७।।

दुर्योधन उवाच

अप्रमादेन सुहृदामन्येषां च महात्मनाम्।
यदि शक्य विजेतुं ते तन्ममाचक्ष्व मातुल।। ४८।।

तब शकुनि ने कहा कि धनंजय, श्रीकृष्ण, भीम, युधिष्ठिर, नकुल सहदेव, अपने पुत्रों के साथ द्रुपद, ये सारे महारथी, महाधनुर्धर, अस्त्रविद्या के पण्डित और युद्ध में उन्मत्त होकर लड़ने वाले हैं। मैं तो उस उपाय को जानता हूँ, जिससे, तुम हे राजन्! युधिष्ठिर को जीत सकते हो। उसे सुनो और उस पर आचरण करो। तब दुर्योधन बोला कि हे मामा! यदि हितैषियों के तथा दूसरे महात्माओं के अप्रमाद से पाण्डवों को जीता जा सकता है तो उसे मुझे बताओ।

शकुनि उवाच

द्यूतप्रियश्च कौन्तेयो न स जानाति देवितुम्।
समाहूतश्च राजेन्द्रो न शक्ष्यति निवर्तितुम्।। ४९।।
देवने कुशलश्चाहं न मेऽस्ति सदृशो भुवि।
त्रिषु लोकेषु कौरव्यं तं त्वं द्यूते समाह्वय।। ५०।।
तस्याक्षकुशलो राजन्नादास्येऽहमसंशयम्।
राज्यं श्रियं च तां दीप्तां त्वदर्थं पुरुषर्षभ।। ५१।।
इदं तु सर्वं त्वं राज्ञे दुर्योधन निवेदय।
अनुज्ञातस्तु ते पित्रा विजेष्ये तान् न संशयः।। ५२।।

दुर्योधन उवाच

त्वमेव कुरुमुख्याय धृतराष्ट्राय सौबल।
निवेदय यथान्यायं नाहं शक्ष्ये निवेदितुम्।। ५३।।

तब शकुनि ने कहा कि कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर को जूआ खेलने का शौक है पर वह खेलना नहीं जानते हैं। यदि उसे जूआ खेलने के लिये बुलाया जाये तो वह राजेन्द्र वापिस नहीं लौट सकता। उधर

मैं जूआ खेलने में बहुत कुशल हूँ। इस पृथिवी पर तीनों लोकों में मेरे समान कोई नहीं है। इसलिये हे कुरुश्रेष्ठ! तुम उसे जूआ खेलने के लिये बुलाओ। हे पुरुष श्रेष्ठ राजन्! मैं जूए की कुशलता से उसके राज्य को, उसकी देदीप्यमान लक्ष्मी को तेरे लिये निश्चित रूप से प्राप्त कर लूँगा। हे दुर्योधन! यह सारी बात तुम राजा धृतराष्ट्र से कहो। पिता की आज्ञा मिल जाने पर मैं उन सबको जीत लूँगा, इसमें संशय की बात नहीं है। तब दुर्योधन बोला कि हे सुबल पुत्र! तुम ही कुरुकुल प्रमुख धृतराष्ट्र से यथोचित्त रूप में निवेदन करो। मैं निवेदन नहीं कर सकता।

बीसवाँ अध्याय : दुर्योधन का धृतराष्ट्र को पाण्डवों के साथ द्यूतक्रीड़ा हेतु मनाना।

दुर्योधनवचः श्रुत्वा धृतराष्ट्रं जनाधिपम्।
उपगम्य महाप्राज्ञं शकुनिर्वाक्यमब्रवीत्।। १।।
दुर्योधनो महाराज विवर्णो हरिणः कृशः।
दीनश्चिन्तापरश्चैव तं विद्धि मनुजाधिप।। २।।
न वै परीक्षसे सम्यगसह्यं शत्रुसम्भवम्।
ज्येष्ठपुत्रस्य हृच्छोकं किमर्थं नावबुध्यसे।। ३।।

दुर्योधन की बात सुन कर शकुनि जनता के राजा, महाप्राज्ञ धृतराष्ट्र के समीप जाकर बोला कि हे महाराज! हे लोगों के स्वामी! दुर्योधन की कान्ति फीकी पड़ गयी है, वह कमजोर हो गया है और पीला पड़ता जा रहा है। दीनता से युक्त वह सदा चिन्ता में ही पड़ा रहता है। आप उसकी परेशानी को जानिये। आपके ज्येष्ठ पुत्र के हृदय को शत्रुओं की तरफ से कोई असह्य शोक प्राप्त हुआ है। आप उसे समझते नहीं हैं और उसकी ठीक प्रकार से परीक्षा भी नहीं कराते हैं।

धृतराष्ट्र उवाच

दुर्योधन कुतोमूलं भृशमार्तोऽसि पुत्रक।
श्रोतव्यश्चेन्मया सोऽर्थो ब्रूहि मे कुरुनन्दन।। ४।।
अयं त्वां शकुनिः प्राह विवर्णं हरिणं कृशम्।
चिन्तयंश्च न पश्यामि शोकस्य तव सम्भवम्।। ५।।
ऐश्वर्यं हि महत् पुत्र त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
भ्रातरः सुहृदश्चैव नाचरन्ति तवाप्रियम्।। ६।।
आच्छादयसि प्रावारानश्नासि विशदौदनम्।
आजानेया वहन्त्यश्वाः केनासि हरिणः कृशः।। ७।।

तब धृतराष्ट्र बोले कि हे पुत्र दुर्योधन! तुम क्यों अत्यधिक दुखी हो! हे कुरुनन्दन! यदि मेरे सुनने योग्य हो तो तुम अपने दु:ख के कारण को बताओ। इस शकुनि ने तुम्हारे बारे में कहा है कि तुम कान्तिहीन, कमज़ोर और पीले पड़ते जा रहे हो। मैं सोचने पर भी तुम्हारे शोक के कारण को समझ नहीं पा रहा हूँ। हे पुत्र! यह सारा महान् ऐश्वर्य तुम्हारे ऊपर ही स्थापित है। तुम्हारे भाई और मित्र भी अप्रिय कार्य नहीं करते हैं। तुम बहुमूल्य वस्त्रों को पहनते ओढ़ते हो। बढ़िया भात खाते हो। अच्छी जाति के घोड़ों की तुम सवारी करते हो, फिर किसलिये कमजोर और पीले पड़ते जा रहे हो?

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा मन्दः क्रोधवशानुगः।
पितरं प्रत्युवाचेदं स्वमतिं सम्प्रकाशयन्।। ८।।
अश्नाम्याच्छादये चाहं यथा कुपुरुषस्तथा।
अमर्षं धारये चोग्रं निनीषुः कालपर्ययम्।। ९।।
अमर्षणः स्वाः प्रकृतीरभिभूय परं स्थितः।
क्लेशान् मुमुक्षुः परजान् स वै पुरुष उच्यते।। १०।।
संतोषो वै श्रियं हन्ति ह्यभिमानं च भारत।
अनुक्रोशभये चोभे यैर्वृतो नाश्नुते महत्।। ११।।

उनकी यह बात सुन कर मन्दबुद्धि और क्रोध के वश में पड़ा हुआ दुर्योधन अपने अभिप्राय को प्रकट करता हुआ अपने पिता से यह बोला कि मैं कायर पुरुषों की तरह खूब अच्छा खाता पीता हूँ और समय के बदलने की प्रतीक्षा में ईर्ष्या को हृदय में धारण किये रहता हूँ। जो अमर्षशील अपनी प्रजा को वश में तथा शत्रुओं को पराजित करके शत्रुओं से प्राप्त क्लेशों से छुटकारा पाने का इच्छुक रहता है, वही पुरुष कहलाता है। हे भरतश्रेष्ठ! सन्तोष, लक्ष्मी और अभिमान को नष्ट कर देता है। दया और भय भी ऐसे ही हैं, जिनसे घिरा हुआ मनुष्य महानता की प्राप्ति नहीं कर सकता।

न मां प्रीणाति मद्भुक्तं श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे।
अति ज्वलन्तीं कौन्तेये विवर्णकरणीं मम।। १२।।
पृथग्विधानि रत्नानि पार्थिवाः पृथिवीपते।
आहरन् क्रतुमुख्येऽस्मिन् कुन्तीपुत्राय भूरिशः।। १३।।
न क्वचिद्धि मया तादृग् दृष्टपूर्वो न च श्रुतः।
यादृग् धनागमो यज्ञे पाण्डुपुत्रस्य धीमतः।। १४।।

अपर्यन्तं धनौघं तं दृष्ट्वा शत्रोरहं नृप।
शमं नैवाभिगच्छामि चिन्तयानो विशाम्पते।। १५।।

कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर में विद्यमान अत्यन्त देदीप्यमान लक्ष्मी को जो मुझे कान्तिहीन बना रही है, देख मुझे अपना भोजन अच्छा नहीं लगता है। हे पृथिवीपति! उस महान यज्ञ में कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर के लिये राजा लोग बहुत तरह-तरह के रत्नों को लेकर आये थे। धीमान् पाण्डु पुत्र के यज्ञ में जितनी अधिक धन की प्राप्ति हुई, उतनी न तो कहीं मैंने पहले देखी और न पहले सुनी। हे महाराज! शत्रु की उस असीम धन राशि को देख कर चिन्ता के कारण मुझे शान्ति नहीं मिल रही है।

ब्राह्मणा वाटधानाश्च गोमन्तः शतसङ्घशः।
त्रिखर्वं बलिमादाय द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः।। १६।।
कमण्डलूनुपादाय जातरूपमयाञ्छुभान्।
एतद् धनं समादाय प्रवेशं लेभिरे न च।। १७।।
शैक्यं रुक्मसहस्रस्य बहुरत्नविभूषितम्।
शङ्खप्रवरमादाय वासुदेवोऽभिषिक्तवान्।। १८।।
दृष्ट्वा च मम तत् सर्वं ज्वररूपमिवाभवत्।
गृहीत्वा तत् तु गच्छन्ति समुद्रौ पूर्वदक्षिणौ।। १९।।
तथैव पश्चिमं यान्ति गृहीत्वा भरतर्षभ।
उत्तरं तु न गच्छन्ति विना तात पतत्रिणः।। २०।।
तत्र गत्वार्जुनो दण्डमाजहारामितं धनम्।

ब्राह्मण और व्यापारी लोग जो बहुत सारी गायों को रखते थे, सैकड़ों दलों में एकत्र होकर तीन खरब की भेंट लेकर राजा के द्वार पर रोके हुए खड़े थे। वे लोग इतना धन और सोने के सुन्दर कलशों को लेकर आये थे, पर फिर भी उन्हें राज द्वार में प्रवेश नहीं मिलता था। अनेक रत्नों से विभूषित, सहस्र सुवर्ण मुद्राओं के मूल्य का कलश जो छींके पर रखा हुआ था, उसमें से श्रेष्ठ शंख में जल लेकर श्रीकृष्ण जी ने युधिष्ठिर का अभिषेक किया था। यह देख कर मुझे बुखार सा हो गया। हे भरतश्रेष्ठ पिता जी! लोग पूर्व, दक्षिण और पश्चिम समुद्र तक तो विजय के लिये जाया करते है, पर उत्तर समुद्र की तरफ नहीं जाते हैं, पर अर्जुन उस तरफ भी वहाँ तक जाकर जहाँ सिवाय पक्षियों के कोई नहीं जाता, कर के रूप में अपार धन लेकर आया।

इदं चाद्भुतमत्रासीत् तन्मे निगदतः शृणु।। २१।।
पूर्णे शतसहस्रे तु विप्राणां परिविष्यताम्।
स्थापिता तत्र संज्ञाभूच्छङ्खो ध्मायति नित्यशः।। २२।।
मुहुर्मुहुः प्रणदतस्तस्य शङ्खस्य भारत।
अनिशं शब्दमश्रौषं ततो रोमाणि मेऽहृषन्।। २३।।
पार्थिवैर्बहुभिः कीर्णमुपस्थानं दिदृक्षुभिः।
अशोभत महाराज नक्षत्रैर्द्यौरिवामला।। २४।।
वैश्या इव महीपाला द्विजातिपरिवेषकाः।
तां दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रस्य श्रियं परमिकामहम्।। २५।।
शान्तिं न परिगच्छामि दह्यमानेन चेतसा।

वहाँ एक और अद्भुत बात हुई। उसे बताता हूँ, सुनिये। वहाँ जब एक लाख ब्राह्मणों को भोजन परोस दिया जाता था, तब उसे सूचित करने का संकेत निश्चित किया हुआ था। उसके अनुसार उस समय बड़े जोर से शंख बजाया जाता था। हे भारत! इस प्रकार का शंख वहाँ रोज़ बार-बार बजता था। मैं लगातार उस शंख की ध्वनि को सुनता था और मेरे शरीर में रोमांच हो जाता था। हे महाराज! वहाँ यज्ञ स्थान, यज्ञ देखने के इच्छुक बहुत सारे राजाओं से भरा हुआ था। वह इसी प्रकार शोभित होता था जैसे तारों से भरा हुआ निर्मल आकाश। वहाँ राजा लोग वैश्यों की तरह से ब्राह्मणों को भोजन कराते थे। पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर की उस महान सम्पत्ति को देख कर जलते हुए मेरे दिल में शान्ति नहीं हो रही है।

शकुनि उवाच

यामेतामतुलां लक्ष्मीं दृष्टवानसि पाण्डवे।। २६।।
तस्याः प्राप्तावुपायं मे शृणु सत्यपराक्रम।
अहमक्षेष्वभिज्ञातः पृथिव्यामपि भारत।। २७।।
हृदयज्ञः पणज्ञश्च विशेषज्ञश्च देवने।
द्यूतप्रियश्च कौन्तेयो न च जानाति देवितुम्।। २८।।
आहूतश्चैष्यति व्यक्तं द्यूतादपि रणादपि।
नियतं तं विजेष्यामि कृत्वा तु कपटं विभो।। २९।।
आनयामि समृद्धिं तां दिव्यां चोपाह्वयस्व तम्।

तब शकुनि बोला कि तुमने पाण्डव युधिष्ठिर के पास जिस अतुल सम्पत्ति को देखा है। हे सत्य पराक्रम! तुम उसको प्राप्त करने का उपाय सुनो। हे भारत! मैं जूआ खेलने में सारी भूमि पर प्रसिद्ध हूँ। मैं द्यूतविद्या के रहस्यों को जानता हूँ, पासे फैंकने, दाँव लगाने का भी मैं विशेषज्ञ हूँ। उधर युधिष्ठिर भी जूआ खेलने के शौकीन हैं पर उन्हें खेलना नहीं आता है। यदि उन्हें जूआ या युद्ध के लिये बुलाया जाये तो वह अवश्य आयेंगे। हे प्रभो!

तब मैं कपट करके उन्हें निश्चित रूप से जीत लूँगा और उनकी उस अलौकिक समृद्धि को यहाँ मँगा लूँगा। आप उन्हें यहाँ बुला लो।

एवमुक्तः शकुनिना राजा दुर्योधनस्ततः।। ३०।।
धृतराष्ट्रमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत्।
अयमुत्सहते राजञ्छ्रियमाहर्तुमक्षवित्।। ३१।।
द्यूतेन पाण्डुपुत्रस्य तदनुज्ञातुमर्हसि।

धृतराष्ट्र उवाच

क्षत्ता मन्त्री महाप्राज्ञः स्थितो यस्यास्मि शासने।। ३२।।
तेन संगम्य वेत्स्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम्।
स हि धर्मं पुरस्कृत्य दीर्घदर्शी परं हितम्।। ३३।।
उभयोः पक्षयोर्युक्तं वक्ष्यत्यर्थविनिश्चयम्।

शकुनि के ऐसा कहने पर तब राजा दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से यह कहा कि हे राजन्! ये अक्षविद्या के जानने वाले द्यूतक्रीड़ा के द्वारा पाण्डु पुत्र की लक्ष्मी को लाना चाहते हैं। आप इन्हें आज्ञा दीजिये। तब धृतराष्ट्र ने कहा कि महाविद्वान् विदुर मंत्री हैं। मैं उनकी सलाह पर चलता हूँ। मैं उससे मिल कर इस कार्य के विषय में निश्चय करूँगा। वे दूरदर्शी हैं और धर्म को सामने रख कर दोनों पक्षों के लिये जो परम हितकारी होगा उस उचित कार्य का निश्चय करेंगे।

दुर्योधन उवाच

निवर्तयिष्यति त्वासौ यदि क्षत्ता समेष्यति।। ३४।।
निवृत्ते त्वयि राजेन्द्र मरिष्येऽहमसंशयम्।
स त्वं मयि मृते राजन् विदुरेण सुखी भव।। ३५।।
मोक्ष्यसे पृथिवीं कृत्स्नां किं मया त्वं करिष्यसि।
आर्तवाक्यं तु तत् तस्य प्रणयोक्तं निशम्य सः।। ३६।।
धृतराष्ट्रो महाराजः प्राहिणोद् विदुराय वै।
अपृष्ट्वा विदुरं स्वस्य नासीत् कश्चिद् विनिश्चयः।। ३७।।
द्यूते दोषांश्च जानन् स पुत्रस्नेहादकृष्यत।

तब दुर्योधन ने कहा कि यदि विदुर आपसे मिलेंगे तो वे आपको इस कार्य से निवृत्त कर देंगे। हे राजेन्द्र! आपके इस कार्य से निवृत्त होने पर मैं निश्चित रूप से मर जाऊँगा। हे राजन्! मेरे मर जाने पर आप विदुर के साथ सुखी रह कर सारी पृथ्वी का भोग करना। मेरे जिन्दा रहने से आपको क्या लाभ है? दुर्योधन के प्यार और दुख से भरे हुए इन वाक्यों को सुन कर महाराज धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाने के लिये दूत भेजा। विदुर से पूछे बिना उनका अपना निश्चय नहीं होता था, पर जूए के दोषों को जानते हुए भी वह पुत्र प्रेम के कारण उसकी तरफ आकृष्ट हो गये थे।

तच्छ्रुत्वा विदुरो धीमान् कलिद्वारमुपस्थितम्।। ३८।।
विनाशमुखमुत्पन्नं धृतराष्ट्रमुपाद्रवत्।
सोऽभिगम्य महात्मानं भ्राता भ्रातरमग्रजम्।। ३९।।
मूर्ध्ना प्रणम्य चरणाविदं वचनमब्रवीत्।
नाभिनन्दामि ते राजन् व्यवसायमिमं प्रभो।। ४०।।
पुत्रैर्भेदो यथा न स्याद् द्यूतहेतोस्तथा कुरु।

तब कलह के द्वार और विनाश के कारण जूए को उपस्थित हुआ सुन कर बुद्धिमान विदुर धृतराष्ट्र के पास दौड़े हुए आये। उन्होंने आकर अपने महात्मा बड़े भाई के पैरों में सिर झुका कर प्रणाम किया और यह कहा कि हे राजन्! मैं आपके इस निश्चय का स्वागत नहीं करता। प्रभो! आप ऐसा कीजिये जिससे जूए के कारण आपके पुत्रों में भेदभाव उत्पन्न न हो।

धृतराष्ट्र उवाच

अशुभं वा शुभं वापि हितं वा यदि वाहितम्।। ४१।।
प्रवर्ततां सुहृद्द्यूतं दिष्टमेतन्न संशयः।
गच्छ त्वं रथमास्थाय हयैर्वातसमैर्जवे।। ४२।।
खाण्डवप्रस्थमद्यैव समानय युधिष्ठिरम्।
इत्युक्तो विदुरो धीमान् नेदमस्तीति चिन्तयन्।
गांगेयं महाप्राज्ञमभ्यगच्छत् सुदुःखितः।। ४३।।

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि अशुभ हो या शुभ, हितकारी हो या अहितकारी, मित्रों में यह द्यूतक्रीड़ा होनी ही चाहिये। निस्सन्देह यह परमात्मा की इच्छा से ही हो रहा है। तुम वायु के समान वेगशाली घोड़ों से युक्त रथ पर बैठ कर आज ही खाण्डव प्रस्थ को जाओ और युधिष्ठिर को बुला लाओ। ऐसा कहे जाने पर धीमान् विदुर यह ठीक नहीं है, ऐसा सोचते हुए अत्यन्त दुखी महाज्ञानी गंगा पुत्र भीष्म के पास गये।

इक्कीसवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र का दुर्योधन को समझाने का प्रयत्न।

धृतराष्ट्र उवाच

त्वं वै ज्येष्ठो ज्यैष्ठिनेयः पुत्र मा पाण्डवान् द्विषः।
द्वेष्टा ह्यसुखमादत्ते यथैव निधनं तथा।। १।।
अव्युत्पन्नं समानार्थं तुल्यमित्रं युधिष्ठिरम्।
अद्विषन्तं कथं द्विष्यात् त्वादृशो भरतर्षभ।। २।।
तुल्याभिजनवीर्यश्च कथं भ्रातुः श्रियं नृप।
पुत्र कामयसे मोहान्मैवं भूः शाम्य मा शुचः।। ३।।

तब धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा कि हे पुत्र! तुम मेरी सबसे बड़ी रानी के सबसे बड़े पुत्र हो। इसलिय हे पुत्र! पाण्डवों से द्वेष मत करो। द्वेष करने वाला मृत्यु के समान दुख को प्राप्त करता है। जो युधिष्ठिर किसी के साथ छल नहीं करते, जिनका धन तुम्हारे जैसा ही है, जिनके मित्र तुम्हारे भी मित्र हैं, जो किसी से भी द्वेष नहीं करते हे भरतश्रेष्ठ! उनके साथ तुम्हारे जैसे व्यक्ति को क्यों द्वेष करना चाहिये? हे राजा! तुम्हारा और उनका कुल और पराक्रम एक जैसा ही है, फिर हे पुत्र! तुम मोह वश उनकी सम्पत्ति को क्यों चाहते हो? ऐसे मत बनो! शान्त रहो और शोक मत करो।

अथ यज्ञविभूतिं तां काङ्क्षसे भरतर्षभ।
ऋत्विजस्तव तन्वन्तु सप्ततन्तुं महाध्वरम्।। ४।।
आहरिष्यन्ति राजानस्तवापि विपुलं धनम्।
प्रीत्या च बहुमानाच्च रत्नान्याभरणानि च।। ५।।
अनार्याचरितं तात परस्वस्पृहणं भृशम्।
स्वसंतुष्टः स्वधर्मस्थो यः स वै सुखमेधते।। ६।।
अव्यापारः परार्थेषु नित्योद्योगः स्वकर्मसु।
रक्षणं समुपात्तानामेतद् वैभवलक्षणम्।। ७।।

हे भरतश्रेष्ठ! यदि तुम यज्ञ के द्वारा प्राप्त होने वाले वैभव को प्राप्त करना चाहते हो तो ऋत्विज लोग तुम्हारे लिये भी उस सात प्रकार के क्रिया कलापों से युक्त राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करा देंगे। तब राजा लोग तुम्हारे लिये भी प्रेम से और बड़े आदर से विपुल धन रत्न और आभूषणों की भेंट लेकर आयेंगे। हे तात! दूसरे के धन की इच्छा रखना अत्यन्त अनार्यों का आचरण है। जो अपनी सम्पत्ति में सन्तुष्ट रहता है, अपने धर्म का पालन करता है, वही सुख पूर्वक उन्नति करता है। दूसरे के धन के लिये प्रयत्न नहीं करना, अपने कर्तव्य की पूर्ति के लिये ही सदा उद्योग करना तथा अपने को जो कुछ प्राप्त है, उसकी रक्षा करना, वैभव का लक्षण है।

विपत्तिष्वव्यथो दक्षो, नित्यमुत्थानवान् नरः।
अप्रमत्तो विनीतात्मा नित्यं भद्राणि पश्यति।। ८।।
बाहूनिवैतान् मा छेत्सीः पाण्डुपुत्रास्तथैव ते।
भ्रातृणां तद्धनार्थं वै मित्रद्रोहं च मा कुरु।। ९।।

पाण्डोः पुत्रान् माद्विषस्वेह राजं-
स्तथैव ते भ्रातृधनं समग्रम्।
मित्रद्रोहे तात महानधर्मः
पितामहा ये तव तेऽपि तेषाम्।। १०।।

अन्तर्वेद्यां ददद् वित्तं कामाननुभवन् प्रियान्।
क्रीडन् स्त्रीभिर्निरातङ्कः प्रशाम्य भरतर्षभ।। ११।।

जो कुशल व्यक्ति विपत्तियों में व्यथित नहीं होता, सदा उन्नति के लिये प्रयत्न करता है, प्रमाद नहीं करता और विनम्र रहता है वह कल्याण को प्राप्त करता है। ये पाण्डु पुत्र तुम्हारी बाहों के समान हैं। उन्हें काटो मत। भाइयों के धन के लिये मित्रों से द्रोह मत करो। हे राजा! पाण्डु के पुत्रों से द्वेष मत कर। वे तुम्हारे भाई हैं। भाइयों का धन तुम्हारा ही है। मित्रों से द्रोह करना महान अधर्म है। जो तुम्हारे बाप दादा हैं, वे उनके भी हैं। हे भरत श्रेष्ठ! तुम यज्ञ के लिये धन का दान करते हुए, इच्छानुसार भोगों को भोगते हुए निर्भय होकर स्त्रियों से क्रीड़ा करते हुए शान्त रहो।

दुर्योधन उवाच

यस्य नास्ति निजा प्रज्ञा केवलं तु बहुश्रुतः।
न स जानाति शास्त्रार्थं दर्वी सूपरसानिव।। १२।।
जानन् वै मोहयसि मां नावि नौरिव संयता।
स्वार्थे किं नावधानं ते उताहो द्वेष्टि मां भवान्।। १३।।
न सन्तीमे धार्तराष्ट्रा येषां त्वमनुशासिता।
भविष्यमर्थमाख्यासि सर्वदा कृत्यमात्मनः।। १४।।

तब दुर्योधन बोला कि जिसने केवल बहुत से शास्त्रों को सुना है, पर जिसकी अपनी बुद्धि नहीं है, वह शास्त्रों के अभिप्राय को उसी प्रकार नहीं समझ पाता है। जैसे कलछी दाल के स्वाद को नहीं जानती है। आपकी बुद्धि एक नाव से बँधी हुई दूसरी नाव के समान विदुर की बुद्धि के सहारे है। आप जानते हुए भी मुझे मोह में डाल रहे हैं। स्वार्थ को पूरा करने में आपका ध्यान क्यों नहीं है?

या आप मुझसे द्वेष करते हैं? जिन पुत्रों के आप शासक हैं, वे कुछ भी उन्नति नहीं कर रहे हैं। आप अपने कर्तव्य कर्मों को सदा भविष्य पर टालते रहते हैं।

परनेयोऽग्रणीर्यस्य स मार्गान् प्रति मुह्यति।
पन्थानमनुगच्छेयुः कथं तस्य पदानुगाः।। १५।।
राजन् परिणतप्रज्ञो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः।
प्रतिपन्नान् स्वकार्येषु सम्मोहयसि नो भृशम्।। १६।।
लोकवृत्ताद् राजवृत्तमन्यदाह बृहस्पतिः।
तस्माद् राज्ञाप्रमत्तेन स्वार्थश्चिन्त्यः सदैव हि।। १७।।
क्षत्रियस्य महाराज जये वृत्तिः समाहिता।
स वै धर्मस्त्वधर्मो वा स्ववृत्तौ का परीक्षणा।। १८।।

जिसका नेता दूसरे की बुद्धि पर चलता है, वह अपने कर्तव्य मार्गों के प्रति सदा मोहित रहता है। फिर उसके पीछे चलने वाले दूसरे लोग सही मार्ग पर कैसे चल सकते हैं? हे राजन्! आपकी बुद्धि परिपक्व है, आप वृद्धों की सेवा करते हैं, जितेन्द्रिय हैं, पर हम जब अपने कार्यों में अग्रसर होते हैं, तब आप हमें अत्यधिक मोहित कर देते हैं। बृहस्पति ने राजाओं के आचरण को लोकाचरण से भिन्न प्रकार का बताया है, इसलिये राजाओं को बिना प्रमाद के सदा अपने स्वार्थ की ही चिन्ता करनी चाहिये। हे महाराज! क्षत्रिय की वृत्ति सदा विजय प्राप्ति में ही लगी रहती है। वह चाहे धर्म हो या अधर्म। अपनी वृत्ति के विषय में क्या परीक्षा करनी?

प्रकालयेद् दिशः सर्वाः प्रतोदेनेव सारथिः।
प्रत्यमित्रश्रियं दीप्तां जिघृक्षुर्भरतर्षभ।। १९।।
प्रच्छन्नो वा प्रकाशो वा योगो योऽरिं प्रबाधते।
तद् वै शस्त्रं शस्त्रविदां न शस्त्रं छेदनं स्मृतम्।। २०।।
शत्रुश्चैव हि मित्रं च न लेख्यं न च मातृका।
यो वै संतापयति यं स शत्रुः प्रोच्यते नृप।। २१।।
असंतोषः श्रियो मूलं तस्मात् तं कामयाम्यहम्।
समुच्छ्रये यो यतते स राजन् परमो नयः।। २२।।

हे भरतश्रेष्ठ! जैसे सारथी चाबुक से घोड़ों को अपनी इच्छानुसार चलाता है, वैसे ही शत्रु की जगमगाती हुई लक्ष्मी को अपने अधिकार में करने की इच्छा वाले को सारी दिशाओं का संचालन करना चाहिये। जो भी उपाय चाहे वह गुप्त हो या प्रकट शत्रु को संकट में डालता है, शस्त्र-विद्वानों के लिये शस्त्र है केवल काटने वाला उपकरण ही शस्त्र नहीं है। कौन शत्रु है कौन मित्र है इसका कोई लेखा नहीं है और ना ही यह सूचित करने वाले विशेष अक्षर हैं। हे राजन्! जो संतप्त करता है, वही शत्रु कहलाता है। असन्तोष ही लक्ष्मी का कारण है, इसलिये मैं उसे चाहता हूँ। हे राजन् जो अपनी उन्नति के लिये यत्न करता है, उसका यह यत्न ही परम नीति है।

द्वावेतौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्।। २३।।
नास्ति वै जातितः शत्रुः पुरुषस्य विशाम्पते।
येन साधारणी वृत्तिः स शत्रुर्नेतरो जनः।। २४।।
शत्रुपक्षं समृध्यन्तं यो मोहात् समुपेक्षते।
व्याधिराप्यायित इव तस्य मूलं छिनत्ति सः।। २५।।
अल्पोऽपि ह्यरिरत्यर्थे वर्धमानः पराक्रमैः।
वल्मीको मूलज इव ग्रसते वृक्षमन्तिकात्।। २६।।

जैसे साँप बिल में रहने वाले प्राणियों को निगल जाता है, वैसे ही यह भूमि विरोध न करने वाले राजा को और यात्रा न करने वाले ब्राह्मण को निगल जाती है। हे राजन्! पुरुष का जन्म से कोई शत्रु नहीं होता। जिनका रोजगार एक जैसा होता है, वे ही परस्पर शत्रु होते हैं, दूसरे नहीं। जो बढ़ते हुए शत्रु की मोह वश उपेक्षा कर देता है, वह बढ़ी हुई बीमारी के समान उसकी जड़ को काट देता है। छोटा शत्रु भी यदि बढ़ जाये, तो वह जैसे वृक्ष की जड़ में लगी हुई दीमक उसे खा जाती है, वैसे ही अपने पराक्रम से विनाश कर देता है।

आजमीढ रिपोर्लक्ष्मीर्मा ते रोचिष्ट भारत।
एष भारः सत्त्ववतां नयः शिरसि विष्ठितः।। २७।।
जन्मवृद्धिमिवार्थानां यो वृद्धिमिकाङ्क्षते।
एधते ज्ञातिषु स वै सद्यो वृद्धिर्हि विक्रमः।। २८।।
नाप्राप्य पाण्डवैश्वर्यं संशयो मे भविष्यति।
अवाप्स्ये वा श्रियं तां हि शयिष्ये वा हतो युधि।। २९।।
एतादृशस्य किं मेऽद्य जीवितेन विशाम्पते।
वर्धन्ते पाण्डवा नित्यं वयं त्वस्थिरवृद्धयः।। ३०।।

हे आजमीढ वंशी भरतश्रेष्ठ! आपको शत्रु की लक्ष्मी अच्छी नहीं लगनी चाहिये। न्याय को सदा सिर पर ढोये रहना भी बलवानों के लिये बोझा है। जन्म से शरीर की वृद्धि के समान सम्पत्ति की भी जो वृद्धि को चाहता है, वही अपने जाति भाइयों में आगे बढ़ता है। तुरन्त पराक्रम करना ही उन्नति का

कारण है, बिना पाण्डवों के ऐश्वर्य को प्राप्त किये, मेरे मन में संशय बना रहेगा। इसलिये या तो मैं उनकी उस सम्पत्ति को ले लूँगा या मारा जाकर युद्ध भूमि में शयन करूँगा। हे राजन्! मेरे इस प्रकार के जीवन से क्या लाभ? जबकि पाण्डव लोग प्रतिदिन उन्नति कर रहे हैं और हमारी वृद्धि अस्थिर है।

बाईसवाँ अध्याय : विदुर और युधिष्ठिर की बातचीत तथा युधिष्ठिर का हस्तिनापुर आना।

ततः प्रायाद् विदुरोऽश्वैरुदारै-
महाजवैर्बलिभिः साधुदान्तैः।
बलान्नियुक्तो धृतराष्ट्रेण राज्ञा
मनीषिणां पाण्डवानां सकाशे।। १।।
सोऽभिपत्य तदध्वानमासाद्य नृपतेः पुरम्।
प्रविवेश महाबुद्धिः पूज्यमानो द्विजातिभिः।। २।।
स राजगृहमासाद्य कुबेरभवनोपमम्।
अभ्यागच्छत धर्मात्मा धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।। ३।।

तब राजा धृतराष्ट्र के द्वारा बलपूर्वक भेजने पर विदुर उच्च कोटि के अत्यन्त वेगशाली अच्छी तरह से अनुशासित बलवान् घोड़ों के द्वारा विद्वान् पाण्डवों के पास गये। द्विजातियों से सम्मानित उस महाबुद्धिमान् विदुर ने उस मार्ग को तय कर राजा के नगर को प्राप्त कर उसमें प्रवेश किया। उस धर्मात्मा ने कुबेर के भवन के समान भव्य राजभवन में पहुँच कर धर्मपुत्र युधिष्ठिर से भेंट की।

तं वै राजा सत्यधृतिर्महात्मा
अजातशत्रुर्विदुरं यथावत्।
पूजापूर्वं प्रतिगृह्याजमीढ-
स्ततोऽपृच्छद् धृतराष्ट्रं सपुत्रम्।। ४।।
विज्ञायते ते मनसोऽप्रहर्षः
कच्चित् क्षत्तः कुशलेनागतोऽसि।
कच्चित् पुत्राः स्थविरस्यानुलोमा
वशानुगाश्चापि विशोऽथ कच्चित्।। ५।।

अजामीढ़वंशी, सत्यवादी, अजातशत्रु महात्मा युधिष्ठिर ने विदुर जी की पूजा कर उनका स्वागत किया। उनसे पुत्रों सहित धृतराष्ट्र की कुशलता को पूछा। उन्होंने कहा कि हे विदुर जी! आपका मन प्रसन्न नहीं जान पड़ता। क्या आप कुशलता सहित आए हैं? क्या बूढ़े राजा के पुत्र उनके अनुसार हैं? क्या उनकी प्रजा उनके वश में है,?

विदुर उवाच– राजा महात्मा कुशली सपुत्र
आस्ते वृतो ज्ञातिभिरिन्द्रकल्पः।
प्रीतो राजन् पुत्रगणैर्विनीतै-
र्विशोक एवात्मरतिर्महात्मा।। ६।।
इदं तु त्वां कुरुराजोऽभ्युवाच
पूर्वं पृष्ट्वा कुशलं चाव्ययं च।
इयं सभा त्वत्सभातुल्यरूपा
भ्रातॄणां ते दृश्यतामेत्य पुत्र।। ७।।
समागम्य भ्रातृभिः पार्थ तस्यां
सुहृद्द्यूतं क्रियतां रम्यतां च।
प्रीयामहे भवतां संगमेन
समागताः कुरवश्चापि सर्वे।। ८।।
दुरोदरा विहिता ये तु तत्र
महात्मना धृतराष्ट्रेण राज्ञा।
तान् द्रक्ष्यसे कितवान् संनिविष्टा-
नित्यागतोऽहं नृपते तज्जुषस्व।। ९।।

विदुर जी बोले कि महात्मा राजा अपने पुत्रों सहित सकुशल हैं और इन्द्र के समान विद्यमान हैं। हे राजन्! वे अपने विनीत पुत्रों से प्रसन्न हैं और शोक रहित हैं। वे अपनी आत्मा से ही प्रेम करते हैं। उन कुरुराज ने पहले आपकी कुशलता और आरोग्य को पूछ कर आपको यह सन्देश दिया है कि तुम्हारे सभा भवन के समान ही हमने भी सभा भवन सुसज्जित कराया है। हे कुन्ती पुत्र! तुम भाइयों के साथ आकर अपने भाइयों की इस सभा को देखो। इस सभा भवन में सब मित्र लोग मिल कर द्यूतक्रीड़ा करें और आनन्द मनायें। तुम्हारे आने पर तुम्हारे मेल से हम और सारे कौरव बहुत प्रसन्न होंगे। महात्मा राजा धृतराष्ट्र ने वहाँ जूआ खेलने के स्थान बनवाये हैं। वहाँ तुम चतुर जुआरियों को बैठा हुआ देखोगे। हे राजन्! मैं इसलिये आया हूँ ताकि तुम उस सभा भवन और क्रीड़ा का सेवन करो।

युधिष्ठिर उवाच–द्यूते क्षत्तः कलहो विद्यते नः
को वै द्यूतं रोचयेतद् बुध्यमानः।
किं वा भवान् मन्यते युक्तरूपं
भवद्वाक्ये सर्व एव स्थिताः स्म।। १०।।

विदुर उवाच– जानाम्यहं द्यूतमनर्थमूलं
कृतश्च यत्नोऽस्य मया निवारणे।

राजा च मां प्राहिणोत् त्वत्सकाशं
श्रुत्वा विद्वञ्छ्रेय इहाचरस्व।। ११।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि विदुर जी! हमारे विचार से तो जूए में झगड़ा होता है। कौन समझदार व्यक्ति जूए को पसन्द करेगा? अथवा आपकी क्या उचित राय है? हम तो आपकी बात को मानते हैं। तब विदुर जी ने कहा कि मैं जानता हूँ कि जूआ अनर्थ की जड़ है। मैंने इसे रोकने के लिये यत्न किया था, पर राजा ने मुझे तुम्हारे पास भेज दिया। तब यह सुन कर तुम जो कुछ कल्याणकारी समझो वही करो।

युधिष्ठिर उवाच– के तत्रान्ये कितवा दीव्यमाना
विना राज्ञो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः।
पृच्छामि त्वां विदुर ब्रूहि नस्तान्
यैर्दीव्यामः शतशः संनिपत्य।। १२।।

विदुर उवाच– गान्धारराजः शकुनिर्विशाम्पते
राजातिदेवी कृतहस्तो मताक्षः।
विविंशतिश्चित्रसेनश्च राजा
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयश्च।। १३।।

युधिष्ठिर उवाच– महाभयाः कितवाः संनिविष्टा
मायोपधा देवितारोऽत्र सन्ति।
धात्रा तु दिष्टस्य वशे किलेदं
सर्वं जगत् तिष्ठति न स्वतन्त्रम्।। १४।।

तब युधिष्ठिर बोले कि वहाँ धृतराष्ट्र के पुत्रों के अतिरिक्त कौन धूर्त जुआरी विद्यमान हैं? हे विदुर जी! मैं आपसे पूछता हूँ। आप मुझे बताइये। जिनके साथ हमें सैकड़ों की बाजी लगानी होगी। विदुर ने कहा कि हे राजन्! गान्धारराज शकुनि, जो बहुत बड़ा जुआरी है, वह अपनी इच्छा के अनुसार पासे फैंकने में चतुर है। विविंशति और राजा चित्रसेन, सत्यव्रत, पुरुमित्र और जय भी होंगे। तब युधिष्ठिर बोले, वहाँ तो बड़े कपटी बैठे हुए हैं। ये छल कपट से जूआ खेलने वाले हैं। वास्तव में यह सारा संसार भगवान के ही आधीन है। हम स्वतन्त्र नहीं हैं।

नाहं राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शासना–
न्न गन्तुमिच्छामि कवे दुरोदरम्।
इष्टो हि पुत्रस्य पिता सदैव
तदस्मि कर्ता विदुरात्थ मां यथा।। १५।।
न चाकामः शकुनिना देविताहं
न चेन्मां जिष्णुराह्वयिता सभायाम्।
आहूतोऽहं न निवर्ते कदाचित्
तदाहितं शाश्वतं वै व्रतं मे।। १६।।

हे विदुर! मैं जूए में जाना नही चाहता, पर मैं राजा धृतराष्ट्र के आदेश से परे भी नहीं जाना चाहता। पुत्र के लिये पिता सदैव प्रिय होता है, इसलिये आपने जो कुछ कहा है, मैं उसे पूरा करूँगा। यदि धृतराष्ट्र मुझे नहीं बुलाते तो मैं इच्छा न होने के कारण शकुनि से नहीं खेलता। बुलाये जाने पर मैं पीछे कभी नहीं हटता यह मेरा नियम है।

एवमुक्त्वा विदुरं धर्मराजः
प्रायात्रिकं सर्वमाज्ञाप्य तूर्णम्।
प्रायाच्छ्वोभूते सगणः सानुयात्रः
सह स्त्रीभिर्द्रौपदीमादि कृत्वा।। १७।।

विदुर जी से ऐसा कह कर धर्मराज युधिष्ठिर ने जल्दी ही जाने की तैयारी की आज्ञा दी और अगले दिन सवेरे उन्होंने अपने भाइयों सेवकों तथा द्रौपदी आदि स्त्रियों के साथ हस्तिनापुर प्रस्थान किया।

धृतराष्ट्रेण चाहूतः कालस्य समयेन च।
स हास्तिनपुरं गत्वा धृतराष्ट्रगृहं ययौ।। १८।।
अभिवाद्य स गान्धारीं तया च प्रतिनन्दितः।
ददर्श पितरं वृद्धं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्।। १९।।
तथा भीष्मेण द्रोणेन कर्णेन च कृपेण च।
समियाय यथान्यायं द्रौणिना च विभुः सह।। २०।।

इस प्रकार धृतराष्ट्र के द्वारा बुलाये जाने पर वे निर्दिष्ट दिन को निर्दिष्ट समय पर हस्तिनापुर पहुँच गये और वहाँ जाकर युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के भवन में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने गान्धारी को प्रणाम किया और उसके द्वारा अभिनन्दित होकर उन्होंने अपने बूढ़े और अन्धे चाचा राजा धृतराष्ट्र का दर्शन किया। फिर उन महाराज ने भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा के पास जाकर उनसे यथायोग्य भेंट की।

सुखोषितास्ते रजनीं प्रातः सर्वे कृताह्निकाः।
सभां रम्यां प्रविविशुः कितवैरभिनन्दिताः।। २१।।

पाण्डवों ने वह रात्रि वहाँ हस्तिनापुर में सुख पूर्वक व्यतीत की। फिर प्रातः नित्यकर्म कर वे सारे उस रमणीय सभा में गये। वहाँ जुआरियों ने उनका अभिनन्दन किया।

तेईसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर की शकुनि से बातचीत और जूए का प्रारम्भ।

प्रविश्य तां सभां पार्था युधिष्ठिरपुरोगमाः।
समेत्य पार्थिवान् सर्वान् पूजार्हानभिपूज्य च।। १।।
यथावयः समेयाना उपविष्टा यथार्हतः।
आसनेषु विचित्रेषु स्पर्ध्यास्तरणवत्सु च।। २।।
तेषु तत्रोपविष्टेषु सर्वेष्वथ नृपेषु च।
शकुनिः सौबलस्तत्र युधिष्ठिरमभाषत।। ३।।
उपस्तीर्णा सभा राजन् सर्वे त्वयि कृतक्षणाः।
अक्षानुप्त्वा देवनस्य समयोऽस्तु युधिष्ठिर।। ४।।

युधिष्ठिर आदि कुन्ती पुत्रों ने उस राजभवन में प्रवेश कर वहाँ उपस्थित सारे राजाओं से भेंट की और सम्मान के योग्य उन सभी का अवस्था क्रम से यथायोग्य सम्मान किया। वे यथायोग्य उन रमणीय और बहुमूल्य गलीचों वाले सुन्दर आसनों पर बैठ गये। उनके और सारे राजाओं के वहाँ बैठ जाने पर सुबल पुत्र शकुनि युधिष्ठिर से बोला कि हे राजन्! अब सारी सभा विद्यमान है, सब तुम्हारी प्रतिभा कर रहे हैं, इसलिये हे युधिष्ठिर! अब पासों को फेंकर खेलने का समय आरम्भ होना चाहिये।

युधिष्ठिर उवाच-

निकृतिर्देवनं पापं न क्षात्रोऽत्र पराक्रमः।
न च नीतिर्ध्रुवा राजन् किं त्वं द्यूतं प्रशंससि।। ५।।
न हि मानं प्रशंसन्ति निकृतौ कितवस्य हि।
शकुने मैव नो जैषीरमार्गेण नृशंसवत्।। ६।।

शकुतिरुवाच- अक्षग्लहः सोऽभिवेत् परं न-
स्तेनैव दोषो भवतीह पार्थ।
दीव्यामहे पार्थिव मा विशङ्कां
कुरुष्व पाणं च चिरं च मा कृथाः।। ७।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि जूआ खेला छल और पाप है। इसमें क्षत्रियों का पराक्रम नहीं है। इसमें कोई निश्चित नीति भी नहीं है, फिर तुम जूए की प्रशंसा क्यों करते हो? जुआरियों को छल कपट के द्वारा जो सम्मान मिलता है उसकी सज्जन लोग प्रशंसा नहीं करते हैं। हे शकुनि! तुम क्रूर मनुष्य की तरह अनुचित रास्ते से हमें जीतने का प्रयत्न मत करो। तब शकुनि ने कहा यदि पासा उलटा पड़ जाये तो वह हमारे किसी भी पक्ष को पराजित कर सकता है। हे कुन्ती पुत्र! उसी का यहाँ भय है। हे राजन्! पर फिर भी हम खेलते हैं। तुम शंका मत करो। पासे फैंको। देर मत करो।

युधिष्ठिर उवाच

एवमाहायमसितो, देवलो मुलि सत्तमः।
इमानि लोकद्वाराणि, यो वै भ्राम्यति सर्वदा।। ८।।
इदं वै देवनं पापं निकृत्या कितवैः सह।
धर्मेण तु जयो युद्धे तत्परं न तु देवनम्।। ९।।
नार्या म्लेच्छन्ति भाषाभिर्मायया न चरन्त्युत।
अजिह्ममशठं युद्धमेतत् सत्पुरुषव्रतम्।। १०।।
निकृत्या कामये नाहं सुखान्युत धनानि वा।
कितवस्येह कृतिनो वृत्तमेतन्न पूज्यते।। ११।।

युधिष्ठिर बोले मुनिश्रेष्ठ असित देवल ने, जो सारे देशों में सदा घूमते रहते हैं, यह कहा है कि जिसमें छल पूर्वक खेला जाता है, ऐसा जूए का खेल पाप है। धर्मपूर्वक विजय तो युद्ध में प्राप्त होती है। इसलिये क्षत्रियों के लिये तो युद्ध श्रेष्ठ है, जूआ खेलना नहीं। श्रेष्ठ लोग किसी के प्रति अनुचित शब्द नहीं कहते और ना ही किसी के साथ धोखे का बर्ताव करते हैं। कुटिलता और शठता से रहित हो युद्ध करना ही सत्पुरुषों का व्रत है। मैं छल कपट के द्वारा न तो धन प्राप्त करना चाहता हूँ और न सुखों को। जुआरी के कार्यों को विद्वान् पुरुष अच्छा नहीं समझते हैं।

शकुनिरुवाच

श्रोत्रियः श्रोत्रियानेति निकृत्यैव युधिष्ठिर।
विद्वानविदुषोऽभ्येति नाहुस्तां निकृतिं जनाः।। १२।।
अक्षैर्हि शिक्षितोऽभ्येति निकृत्यैव युधिष्ठिर।
अकृतास्त्रं कृतास्त्रश्च दुर्बलं बलवत्तरः।। १३।।
एवं कर्मसु सर्वेषु निकृत्यैव युधिष्ठिर।
एवं त्वं मामिहाभ्येत्य निकृतिं यदि मन्यसे।। १४।।
देवनाद् विनिवर्तस्व यदि ते विद्यते भयम्।

तब शकुनि ने कहा कि एक श्रोत्रिय दूसरे श्रेत्रिय को जीतने के लिये उसके पास शठता का आश्रय लेकर ही जाता है। इसी प्रकार एक विद्वान् भी अविद्वान् के पास जाता है, पर तब लोग उसे छल-कपट नहीं कहते! हे युधिष्ठिर इसी प्रकार द्यूतक्रीडा में विद्वान् अविद्वान् पुरुष पर विजय प्राप्त करता है। हे युधिष्ठिर! शस्त्रविद्या में निपुण व्यक्ति अकुशल व्यक्ति को तथा बलवान् व्यक्ति दुर्बल व्यक्ति को शठता से ही जीतता है, पर उसे लोग शठता नहीं कहते। इसी प्रकार यदि तुम यहाँ मेरे

पास आकर यह समझते हो कि तुम्हारे साथ छल कपट किया जायेगा और यदि तुम्हें भय प्रतीत होता है तो इस द्यूतक्रीड़ा से अलग हो जाओ।

युधिष्ठिर उवाच

आहूतो न निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम्।। १५।।
विधिश्च बलवान् राजन् दिष्टस्यास्मि वशे स्थितः।
अस्मिन् समागमे केन देवनं मे भविष्यति।। १६।।
प्रतिपाणश्च कोऽन्योऽस्ति ततो द्यूतं प्रवर्तताम्।

दुर्योधन उवाच

अहं दातास्मि रत्नानां धनानां च विशाम्पते।। १७।।
मदर्थे देविता चायं शकुनिर्मातुलो मम।

युधिष्ठिर उवाच

अन्येनान्यस्य वै द्यूतं विषमं प्रतिभाति मे।। १८।।
एतद् विद्वन्नुपादत्स्व काममेवं प्रवर्तताम्।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि यह मेरा व्रत है कि बुलाये जाने पर मैं पीछे नहीं हटता। हे राजन्! परमात्मा की इच्छा ही बलवान है। मैं भी उसी के वश में हूँ। इस सभा में किसके साथ मेरा खेल होगा। मेरे मुकाबले में कौन दाँव लगायेगा, यह निश्चय करो। फिर जूआ आरम्भ होगा। तब दुर्योधन ने कहा कि हे राजन्! मैं रत्नों और धन को दूँगा, पर मेरी तरफ से मेरे मामा शकुनि खेलेंगे। युधिष्ठिर ने तब कहा कि दूसरे के लिये दूसरे का जूआ खेलना मुझे अनुचित प्रतीत होता है। हे विद्वानों! तुम इस बात को अच्छी तरह से समझ लो। फिर इच्छानुसार खेलते हैं।

उपोह्यमाने द्यूते तु राजानः सर्व एव ते।। १९।।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्तां सभां ततः।
ते द्वन्द्वशः पृथक् चैव सिंहग्रीवा महौजसः।। २०।।
सिंहासनानि भूरीणि विचित्राणि च भेजिरे।

जब जूए का खेल आरम्भ हो गया तब सारे राजा लोग धृतराष्ट्र को आगे कर सभा भवन में प्रविष्ट हुए। वे सिंह के समान ग्रीवा वाले महातेजस्वी राजा लोग अलग-अलग या दो दो मिल कर वहाँ रखे हुए बहुत से सुन्दर और विचित्र आसनों पर बैठ गये।

युधिष्ठिर उवाच-

अयं बहुधनो राजन् सागरावर्तसम्भवः।। २१।।
मणिर्हारोत्तरः श्रीमान् कनकोत्तमभूषणः।
एतद् राजन् मम धनं प्रतिपाणोऽस्ति कस्तव।। २२।।
येन मां त्वं महाराज धनेन प्रतिदीव्यसे।

दुर्योधन उवाच-

सन्ति मे मणयश्चैव धनानि सुबहूनि च।। २३।।
मत्सरश्च न मेऽर्थेषु जयस्वैनं दुरोदरम्।
ततो जग्राह शकुनिस्तानक्षानक्षतत्त्ववित्।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। २४।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे राजन्! यह समुद्र के आवर्त में उत्पन्न हुई बहूमूल्य कान्तिमान मणि मेरे हारों में सर्वोत्तम है। इस पर उत्तम सुवर्ण जड़ा हुआ है। हे राजन्! यही धन मेरी तरफ से दाँव पर रखा गया है। इसके मुकाबले में तुम्हारा कौन सा धन है, जिससे तुम खेलना चाहते हो? तब दुर्योधन ने कहा कि मेरे पास भी बहुत सारी मणियाँ और बहुत सारा धन है। मुझे अपने धन पर अभिमान नहीं है। आप इन्हें जूए में जीतिये। तब पासों के रहस्य को जानने वाले शकुनि ने पासों को पकड़ा और उन्हें फेंक युधिष्ठिर से कहा कि लो मैंने इस दाँव को जीत लिया।

चौबीसवाँ अध्याय : शकुनि के छल से युधिष्ठिर की प्रत्येक दाँव पर हार।

युधिष्ठिर उवाच

मत्तः कैतवकेनैव यज्जितोऽस्मि दुरोदरे।
शकुने हन्त दीव्यामो ग्लहमानाः परस्परम्।। १।।
सन्ति निष्कसहस्रस्य भाण्डिन्यो भरिताः शुभाः।
कोशो हिरण्यमक्षय्यं जातरूपमनेकशः।। २।।
एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया।
कौरवाणां कुलकरं ज्येष्ठं पाण्डवमच्युतम्।। ३।।
इत्युक्तः शकुनिः प्राह जितमित्येव तं नृपम्।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि तुमने छल के आश्रय से ही मुझे इस दाँव में हराया है और तुम गर्वित हो गये हो। अच्छा आओ हे शकुनि! हम फिर पासे फेंक कर आपस में खेलते हैं। मेरे पास हजारों निष्कों से भरी हुई सुन्दर पेटियाँ हैं। इसके अतिरिक्त खजाना हे, अक्षय धन है और अनेक प्रकार के सुवर्ण हैं। हे राजन्! यह सब मेरा धन है। इसके साथ मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ। यह कहे

जाने पर मर्यादा से च्युत न होने वाले, कौरवों के वंश धर ज्येष्ठ पाण्डु पुत्र से शकुनि ने कहा कि यह दाँव भी मैंने जीत लिया।

युधिष्ठिर उवाच

अयं सहस्रसमितो वैयाघ्रः सुप्रतिष्ठितः।। ४।।
सुचक्रोपस्करः श्रीमान् किङ्किणीजालमण्डितः।
संह्लादनो राजरथो य इहास्मानुपावहत्।। ५।।
जैत्रो रथवरः पुण्यो मेघसागरनिःस्वनः।
अष्टौ यं कुरच्छायाः सदश्वा राष्ट्रसम्मताः।। ६।।
वहन्ति नैषां मुच्येत पदाद् भूमिमुपस्पृशन्।
एतद् राजन् धनं मह्यं तेन दीव्याम्यहं त्वया।। ७।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि यह बाघ के चमड़े से मँढ़ा हुआ, हजार रथों के बराबर, अच्छे पहियों से युक्त, शोभायमान घंटियों की जालियों से सुशोभित, आनन्ददायक राजकीय रथ जो हमें यहाँ तक लाया है, यह जैत्र नामक पवित्र श्रेष्ठ रथ जिसके चलते हुए समुद्र और बादलों के समान ध्वनि होती है। कुरर पक्षी के समान शोभा वाले, सारे राष्ट्र में सम्मानित, आठ घोड़े जिसे खींचते हैं, भूमि को स्पर्श कर चलने वाला, कोई भी प्राणी जिसके आगे आकर बच नहीं सकता, मेरी सम्पत्ति है। हे राजन्! मैं इससे तुम्हारे साथ खेलता हूँ।

एवं श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। ८।।

युधिष्ठिर उवाच

सहस्रसंख्या नागा मे मत्तास्तिष्ठन्ति सौबल।
सुदान्ता राजवहनाः सर्वशब्दक्षमा युधि।। ९।।
ईषादन्ता महाकायाः सर्वे चाष्टकरेणवः।
सर्वे च पुरभेत्तारो नवमेघनिभा गजाः।। १०।।
एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया।
इत्येवंवादिनं पार्थं प्रहसन्निव सौबलः।। ११।।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।

ऐसा सुन कर अपनी जीत के बारे में निश्चिंत शकुनि ने छल का आश्रय लेकर युधिष्ठिर से कहा कि यह दाँव भी मैंने जीत लिया। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे सुबल पुत्र! मेरे पास एक हजार मस्त हाथी हैं। ये अच्छी तरह से वश में किये हुए, राजाओं की सवारी में काम आने वाले, युद्ध में सब प्रकार के शब्दों को सहन करने वाले, हल के समान लम्बे दाँतों वाले और विशाल शरीर वाले हैं। इनमें प्रत्येक के साथ आठ-आठ हथिनियाँ हैं। ये सारे नये बादलों के समान और शत्रु के नगरों को नष्ट करने वाले हैं। हे राजन्! यह मेरी सम्पत्ति है। मैं इनके साथ तुम्हारे साथ खेलता हूँ। इस प्रकार कहने वाले कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से तब सुबल पुत्र, शकुनि ने हँस कर कहा कि इन्हें भी मैंने जीत लिया।

युधिष्ठिर उवाच

रथास्तावन्त एवेमे हेमदण्डाः पताकिनः।। १२।।
हयैर्विनीतैः सम्पन्ना रथिभिश्चित्रयोधिभिः।
एकैको ह्यत्र लभते सहस्रपरमां भृतिम्।। १३।।
युध्यतोऽयुध्यतो वापि वेतनं मासकालिकम्।
एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया।। १४।।
इत्येवमुक्ते वचने कृतवैरो दुरात्मवान्।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। १५।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि इतने ही मेरे पास रथ हैं, जिनमें सुनहले डण्डों पर पताकाएँ लगी हुई हैं, जिनमें विनम्र घोड़े जुते हुए हैं, जिनमें विचित्र प्रकार के युद्ध करने वाले रथी बैठते हैं, जिन्हें एक-एक हजार मुद्राएँ वेतन में मिलती हैं। चाहे युद्ध हो या शान्ति हो, उन्हें उनका वेतन प्रतिमास मिलता रहता है। हे राजन्! यह सब मेरा धन है, मैं इससे तुम्हारे साथ खेलता हूँ। उनके ऐसा कहने पर दुष्ट शकुनि ने, जिसने उनके साथ वैर ठान रखा था, युधिष्ठिर से कहा कि लो इन्हें भी मैंने जीत लिया।

युधिष्ठिर उवाच

अश्वांस्तित्तिरिकल्माषान् गान्धर्वान् हेममालिनः।
ददौ चित्ररथस्तुष्टो यांस्तान् गाण्डीवधन्वने।। १६।।
युद्धे जितः पराभूतः प्रीतिपूर्वमरिंदमः।
एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया।। १७।।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। १८।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि सुनहली मालाओं को धारण करने वाले, तीतर के समान विचित्र रंग वाले गन्धर्व देश के घोड़े, जिन्हें युद्ध में जीते जाने पर शत्रुओं को दमन करने वाले चित्ररथ ने प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक अर्जुन को दिया था, मेरी सम्पत्ति हैं। हे राजन्! मैं इनके द्वारा तुम्हारे साथ खेलता हूँ। यह सुन कर अपनी जीत के विश्वासी, छल का सहारा

लिये हुए शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा कि इन्हें भी मैंने जीत लिया।

युधिष्ठिर उवाच

रथानां शकटानां च श्रेष्ठानां चायुतानि मे।
युक्तान्येव हि तिष्ठन्ति वाहैरुच्चावचैस्तथा।। १९।।
एवं वर्णस्य वर्णस्य समुच्चीय सहस्रशः।
यथा समुदिता वीराः सर्वे वीरपराक्रमाः।। २०।।
क्षीरं पिबन्तस्तिष्ठन्ति भुञ्जानाः शालितण्डुलान्।
षष्टिस्तानि सहस्राणि सर्वे विपुलवक्षसः।। २१।।
एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।। २२।।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि मेरे पास दस हजार समान ढोने के श्रेष्ठ रथ और छकड़े हैं, जिनमें छोटे बड़े वाहन सदा जुड़े रहते हैं। इसी प्रकार अलग-अलग वर्णों के हजारों चुने हुए योद्धा हैं। वे सब शूरवीर और वीरोचित पराक्रम से युक्त हैं। वे दूध पीते हुए और शालि चावलों का भात खाते हुए रहते हैं। उनकी संख्या साठ हजार है। उन सबकी छाती चौड़ी है। हे राजन्! ये सब मेरा धन है। मैं इनके द्वारा तुम्हारे साथ खेलता हूँ। यह सुन कर अपनी जीत के विषय में निश्चिन्त, छली शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा कि इनको भी मैंने जीत लिया।

युधिष्ठिर उवाच

ताम्रलोहैः परिवृता निधयो ये चतुःशताः।। २३।।
पञ्चद्रौणिक एकैकः सुवर्णस्याहतस्य वै।
एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया।। २४।।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। २५।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि मेरे पास ताम्बे और लोहे से बनी हुई चार सौ खजाना रखने की पेटियाँ हैं। इनमें से हर एक में पाँच-पाँच द्रोण तपा कर शुद्ध किया हुआ सोना भरा हुआ है। यह सब मेरी सम्पत्ति है। मैं इसके द्वारा तुम्हारे साथ खेलता हूँ। यह सुन कर अपनी जीत के विश्वासी और छल का सहारा लिये हुए शकुनि ने कहा कि यह दाँव भी मैंने जीत लिया।

पच्चीसवाँ अध्याय : विदुर का जूए के प्रति विरोध प्रकट करना।

एवं प्रवर्तिते द्यूते घोरे सर्वापहारिणि।
सर्वसंशयनिर्मोक्ता विदुरो वाक्यमब्रवीत्।। १।।
महाराज विजानीहि यत् त्वां वक्ष्यामि भारत।
मुमूर्षोरौषधमिव न रोचेतापि ते श्रुतम्।। २।।
गृहे वसन्तं गोमायुं त्वं वै मोहान्न बुध्यसे।
दुर्योधनस्य रूपेण शृणु काव्यां गिरं मम।। ३।।

इस प्रकार सर्वस्व का अपहरण करने वाली वह भयानक द्यूतक्रीड़ा जब चल रही थी, तब सारे संशयों का निवारण करने वाले विदुर जी बोले कि हे भरतकुल वंशी महाराज! जैसे मरने की इच्छा वाले बीमार को औषधि अच्छी नहीं लगती, वैसे ही यद्यपि मेरा कथन आपको अच्छा नहीं लगेगा, पर फिर भी मैं जो कुछ कहूँगा, उसे समझिये। आपके घर में दुर्योधन के रूप में एक गीदड़ रह रहा है, पर आप मोह के कारण उसे समझ नहीं पा रहे हैं। मैं शुक्राचार्य की कही एक बात को बताता हूँ। आप उसे सुनिये।

मधु वै माध्विको लब्ध्वा प्रपातं नैव बुध्यते।
आरुह्य तं मज्जति वा पतनं चाधिगच्छति।। ४।।
सोऽयं मत्तोऽक्षद्यूतेन मधुवन्न परीक्षते।
प्रपातं बुध्यते नैव वैरं कृत्वा महारथैः।। ५।।
अन्धका यादवा भोजाः समेताः कंसमत्यजन्।
नियोगात् तु हते तस्मिन् कृष्णेनामित्रघातिना।। ६।।

मधु के बेचने वाले को जब मधु का छत्ता मिल जाता है तो वह वहाँ से गिरने के भय को भूल जाता है और ऊँचे स्थान पर चढ़ कर या तो मधु को प्राप्त कर मग्न हो जाता है या वहाँ से गिर कर चोट खा लेता है। उसी प्रकार यह दुर्योधन भी मधु के समान जूए के खेल में मस्त हो रहा है और इन महारथियों से बैर कर होने वाले अपने भावी विनाश को नहीं समझ रहा है। अन्धकों, यादवों और भोजों ने पहले मिल कर कंस का त्याग कर दिया था और फिर उनके आदेश से शत्रुघाती कृष्ण ने उसे मार दिया था।

एवं ते ज्ञातयः सर्वे मोदमानाः शतं समाः।
त्वन्नियुक्तः सव्यसाची निगृह्णातु सुयोधनम्।। ७।।
निग्रहादस्य पापस्य मोदन्तां कुरवः सुखम्।
काकेनेमांश्चित्रबर्हान् शार्दूलान् क्रोष्टुकेन च।। ८।।

क्रीणीष्व पाण्डवान् राजन् मा मज्जीः शोकसागरे।
त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।। ९।।

इस प्रकार सबके मारे जाने पर वे सारे उसके जाति भाई सदा के लिये सुखी हो गये। इसी प्रकार यदि आप आज्ञा दें तो सव्यसाची अर्जुन दुर्योधन को बन्दी बना सकते हैं। इस पापी के बन्दी हो जाने पर सारे कौरव सुखपूर्वक आनन्द से रहेंगे। आप इस अकेले कौवे के बदले इन पाण्डव रूपी सुन्दर मोरों को और इस गीदड़ के बदले सिंहों को खरीद लीजिये और शोक के सागर में अपने आपको निमग्न मत कीजिये। मनुष्य को चाहिये कि कुल की उन्नति के लिये एक व्यक्ति को छोड़ दे। एक गाँव की उन्नति के लिये एक कुल को छोड़ दे। देश की उन्नति के लिये एक गाँव का त्याग कर दें और अपनी आत्मा की उन्नति के लिये संसार के सारे पदार्थों को छोड़ दें।

प्रातीपेयाः शान्तनवा भैमसेनाः सबाह्लिकाः।
दुर्योधनापराधेन कृच्छ्रं प्राप्स्यन्ति सर्वशः।। १०।।
दुर्योधनो मदेनैष क्षेमं राष्ट्रादपोहति।
विषाणं गौरिव मदात् स्वयमारुजतेऽऽत्मनः।। ११।।

यश्चित्तमन्वेति परस्य राजन्
वीरः कविः स्वामवमन्य दृष्टिम्।
नावं समुद्रे इव बालनेत्रा-
मारुह्य घोरे वयसने निमज्जेत्।। १२।।

इस दुर्योधन के अपराध से प्रतीप, शान्तनु, भीमसेन, और बाह्लीक के वंशज पूरी तरह से संकट में पड़ जायेंगे। जैसे मस्त साँड, अपने सींगों को स्वयं तोड़ लेता है, उसी प्रकार यह दुर्योधन, अपने उन्माद से देश में से कल्याण की समाप्ति कर रहा है। हे राजन्! जो वीर और विद्वान व्यक्ति अपनी बुद्धि की अवहेलना कर दूसरे की इच्छा के अनुसार चलता है, वह समुद्र में बालक के समान अज्ञानी नाविक के द्वारा चलाई जाने वाली नाव में बैठे हुए व्यक्ति के समान भयानक विपत्ति के सागर में डूब जाता है।

दुर्योधनो ग्लहते पाण्डवेन
प्रियायसे त्वं जयतीति तच्च।
अतिनर्मा जायते सम्प्रहारो
यतो विनाशः समुपैति पुंसाम्।। १३।।

आकर्षस्तेऽवाक्फलः सुप्रणीतो
हृदि प्रौढो मन्त्रपदः समाधिः।
युधिष्ठिरेण कलहस्तवाय-
मचिन्तितोऽनभिमतः स्वबन्धुना।। १४।।
प्रातीपेयाः शान्तनवाः शृणुध्वं
काव्यां वाचं संसदि कौरवाणाम्।
वैश्वानरं प्रज्वलितं सुघोरं
मा यास्यध्वं मन्दमनुप्रपन्नाः।। १५।।

आप यह सोच कर प्रसन्न हो रहे हो कि दुर्योधन पाण्डवों के साथ जूआ खेल रहा है, पर यह अत्यधिक प्रसन्नता युद्ध में परिवर्तित हो जायेगी और जिससे मनुष्यों का विनाश होगा। यह जूए का खेल, जिसे सुन्दर रूप में बना कर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, हृदयों में विकास करती हुई गुप्त मन्त्रणाओं की परिणति और आपके मौन रहने का परिणाम है। यह आपके बन्धु युधिष्ठिर के साथ उस कलह को, जिसके विषय में आप न तो चिन्ता करते हैं और न चाहते हैं, जन्म देगा। हे प्रतीप और शान्तनु के वंशजो! आप लोग कौरवों की इस सभा में विद्वानों की कही हुई बात को मेरे द्वारा सुनो। भयानक अग्नि प्रज्वलित हो रही है। आप लोग इस मूर्ख दुर्योधन के पीछे चलते हुए इस आग में मत कूदो।

यदा मन्युं पाण्डवोऽजातशत्रु-
र्न संयच्छेदक्षमदाभिभूतः।
वृकोदरः सव्यसाची यमौ च
कोऽत्र द्वीपः स्यात् तुमुले वस्तदानीम्।। १६।।
महाराज प्रभवस्त्वं धनानां
पुरा द्यूतान्मनसा यावदिच्छेः।
बहुवित्तान् पाण्डवांश्चेज्जयस्त्वं
किं ते तत् स्याद् वसु विन्देह पार्थान्।। १७।।
जानीमहे देवितं सौबलस्य
वेद द्यूते निकृतिं पर्वतीयः।
यतः प्राप्तः शकुनिस्तत्र यातु
मा यूयुधो भारत पाण्डवेयान्।। १८।।

इस समय जूए के मद के वश में पड़े हुए अजातशत्रु पाण्डव युधिष्ठिर जब अपने क्रोध को नहीं रोक सकेंगे और भीम, अर्जुन, तथा दोनों जुड़वाँ भाइयों की भी यही दशा होगी, तब उस भयानक युद्ध के छिड़ जाने पर तुम्हारा कौन सहारा होगा? हे महाराज! जूए से पहले आप जितना धन चाहते

उतना पा सकते थे। बहुत धन वाले पाण्डवों को यदि आपने जीत लिया तो उससे क्या होगा? आप जो स्वयं धन रूप पाण्डव हैं, उन्हें अपनाइये। मैं सुबल पुत्र के जूआ खेलने के तरीके को जानता हूँ। यह पर्वतीय द्यूत क्रिया में किये जाने वाले कपटों को जानता है। यह शकुनि जहाँ से आया है, वहीं चला जाये। हे भारत! आप पाण्डवों को युद्ध के लिये तैयार मत करो।

दुर्योधन उवाच- परेषामेव यशसा श्लाघसे त्वं
सदा क्षत्तः कुत्सयन् धार्तराष्ट्रान्।
जानीमहे विदुर यत् प्रियस्त्वं
बालानिवास्मानवमन्यसे नित्यमेव।। १९।।
स विज्ञेयः पुरुषोऽन्यत्रकामो
निन्दाप्रशंसे हि तथा युनक्ति।
जिह्वा कथं ते हृदयं व्यनक्ति यो
न ज्यायसः कृथा मनसः प्रातिकूल्यम्।। २०।।

तब दुर्योधन ने कहा कि हे विदुर! तुम सदा धृतराष्ट्र के पुत्रों की निन्दा करते हुए उनके शत्रुओं के यश की प्रशंसा करते रहते हो। हम जानते हैं कि तुम किसके प्रेमी हो औ हमें मूर्ख समझ कर सदा हमारा अपमान करते रहते हो। जो व्यक्ति दूसरों को चाहता है, वह जाना जाता है, क्योंकि वह उनकी प्रशंसा और अपने पक्ष की निन्दा में लगा रहता है। तुम्हारी जिह्वा यह बताती रहती है, कि तुम्हारा हृदय कैसा है? तुम अपने मन को अपने से बड़ों के प्रतिकूल मत बनाओ।

उत्सङ्गे च व्याल इवाहितोऽसि
मार्जारवत् पोषकं चोपहंसि।
भर्तृघ्नं त्वां न हि पापीय आहु-
स्तस्मात् क्षत्तः किं न बिभेषि पापात्।। २१।।
जित्वा शत्रून् फलमाप्तं महद् वै
मास्मान् क्षतः परुषाणीह वोचः।
द्विषद्भिस्त्वं सम्प्रयोगाभिनन्दी
मुहुर्द्वेषं यासि नः सम्प्रयोगात्।। २२।।
अमित्रतां याति नरोऽक्षमं ब्रुवन्
निगूहते गुह्यममित्रसंस्तवे।
तदाश्रितोऽपत्रप किं नु बाधसे
यदिच्छसि त्वं तदिहाभिभाषसे।। २३।।

तुम गोद में बैठे हुए साँप के समान हो और बिलाव के समान पालने वाले को ही मारते हो। तुम स्वामी द्रोही हो फिर भी लोग तुम्हें पापी नहीं कहते। हे विदुर! तुम इस पाप से डरते क्यों नहीं हो? हमने शत्रुओं को ज़ीत कर महान् फल प्राप्त किया है। हे विदुर! तुम हमसे कड़वे वचन मत कहो। तुम हमारे शत्रुओं के साथ मेल करके प्रसन्न हो रहे हो। पर अपने इस मेल से बार बार हमारे द्वेष के पात्र बन रहे हो। अनुचित बातें कहने वाला व्यक्ति शत्रु बन जाता है। शत्रु की प्रशंसा करने वाले लोग अपने भावों को छिपा कर रहते हैं। पर अरे निर्लज्ज! तुम भी उसी नीति का आश्रय क्यों नहीं लेते? हमारे मार्ग में बाधा क्यों बनते हो? तुम जो कुछ चाहते हो, वही बोलने लग जाते हो।

मा नोऽवमंस्था विद्म मनस्तवेदं
शिक्षस्व बुद्धिं स्थविराणां सकाशात्।
यशो रक्षस्व विदुर सम्प्रणीतं
मा व्यापृतः परकार्येषु भूस्त्वम्।। २४।।
अहं कर्तेति विदुर मा च मंस्था
मा नो नित्यं परुषाणीह वोचः।
न त्वां पृच्छामि विदुर यद्धितं मे
स्वस्ति क्षत्तर्मा तितिक्षून् क्षिणु त्वम्।। २५।।
न वासयेत् पारवर्ग्यं द्विषन्तं
विशेषतः क्षत्तरहितं मनुष्यम्।
स यत्रेच्छसि विदुर तत्र गच्छ
सुसान्त्विता ह्यसती स्त्री जहाति।। २६।।

तुम हमारा अपमान मत करो। हम तुम्हारे मन को जानते हैं। तुम बूढ़ों के पास बैठ कर उनसे शिक्षा ग्रहण करो। हे विदुर! तुम अपने पूर्व अर्जित यश की रक्षा करो। दूसरों के कार्य में दखल मत दो। हे विदुर! तुम यह मत समझो कि मैं ही कर्ता धर्ता हूँ। हमें सदा कड़ी बातें मत कहा करो। हे विदुर! हमारी जो भलाई की बात है, उसके बारे में हम तुमसे सलाह नहीं लेते हैं। तुम्हारा भला हो। तुम हम सहनशीलों को छेदो मत। हे विदुर! जो अपने से द्वेष करता हो और शत्रु का पक्ष करता हो, तथा अपना अहितकारी हो, उसे घर में नहीं रहने देना चाहिये। इसलिये हे विदुर! तुम जहाँ चाहते हो वहीं चले जाओ। कुलटा स्त्री को कितना ही समझाया जाये, वह अपने पति को छोड़ ही देती है।

विदुर उवाच- अबालत्वं मन्यसे राजपुत्र
बालोऽहमत्येव सुमन्दबुद्धे।
यः सौहृदे पुरुषं स्थापयित्वा

पश्चादेनं दूषयते स बालः।। २७।।
न श्रेयसे नीयते मन्दबुद्धिः
स्त्री श्रोत्रियस्येव गृहे प्रदुष्टा।
ध्रुवं न रोचेद् भरतर्षभस्य
पतिः कुमार्या इव षष्टिवर्षः।। २८।।
अतः प्रियं चेदनुकाङ्क्षसे त्वं
सर्वेषु कार्येषु हिताहितेषु।
स्त्रियश्च राजञ्जडपङ्गुकांश्च
पृच्छ त्वं वै तादृशांश्चैव सर्वान्।। २९।।

तब विदुर ने कहा अरे अत्यन्त मन्द बुद्धि राजकुमार! तुम अपने को समझदार और मुझे मूर्ख समझते हो। जो पहले किसी व्यक्ति को सुहृद के पद पर स्थापित कर, फिर उस पर दोषारोपण करने लगता है, वही मूर्ख है। जैसे दुराचारिणी स्त्री को श्रोत्रिय के घर में कल्याणकारी पवित्र कार्यों में नहीं लगाया जाता, उसी प्रकार मन्द बुद्धि को कल्याण के मार्ग पर नहीं चलाया जा सकता। जैसे कुमारी कन्या को साठ वर्ष का बूढ़ा पति पसन्द नहीं आ सकता वैसे ही इस भरतश्रेष्ठ को मेरी बात अच्छी नहीं लग सकती। इसलिये हे राजन्! यदि तुम भले बुरे सारे कार्यों में मीठे वचन ही सदा सुनना चाहते हो तो तुम स्त्रियों, मूर्खों, पंगुओं और उसी प्रकार के दूसरे लोगों से ही सलाह लिया करो।

लभ्यते खलु पापीयान् नरो नु प्रियवागिह।
अप्रियस्य हि पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।। ३०।।
यस्तु धर्मपरश्च स्याद्धित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान्।। ३१।।
अव्याधिजं कटुकं तीक्ष्णमुष्णं
यशोमुषं परुषं पूतिगन्धि।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य।। ३२।।
वैचित्रवीर्यस्य यशो धनं च
वाञ्छाम्यहं सहपुत्रस्य शश्वत्।
यथा तथा तेऽस्तु नमश्च तेऽस्तु
ममापि च स्वस्ति दिशन्तु विप्राः।। ३३।।

इस संसार में मीठी बातें कहने वाले, पर पापी लोग तो निश्चित रूप से बहुत मिल जाते हैं, किन्तु हितकारी पर कड़वी बात को कहने वाले और उसे सुन सकने वाले कठिनता से मिलते हैं। जो स्वामी को अच्छा लगने या बुरा लगने की परवाह न कर, धर्म का पालन करते हुए, कल्याणकारी कड़वी बात को भी कह देता है, वही राजा का सच्चा सहायक है। हे महाराज! जो कड़वाहट से जन्म लेता है, जो तीखा और ताप को देने वाला है, जो यश को चुराने वाला और कठोर तथा दूषित गन्ध वाला है, जिसे सज्जन लोग ही पी सकते हैं, दुष्ट नहीं पी सकते, जो पी जाने पर स्वास्थ्य को देता है, उस क्रोध को आप पी जाइये और शान्ति को प्राप्त कीजिये। मैं तो विचित्रवीर्य वंशी पुत्रों सहित धृतराष्ट्र के यश और धन की सदा बढ़ोत्तरी चाहता हूँ, पर हे दुर्योधन! तुम्हें नमस्कार है। तुम जैसे रहना चाहते हो, वैसे रहो। ब्राह्मण लोग मेरे लिये भी कल्याण का आशीर्वाद दें।

छब्बीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर का द्रौपदी सहित अपना सर्वस्व हारना।

शकुनिरुवाच

बहु वित्तं पराजैषीः पाण्डवानां युधिष्ठिर।
आचक्ष्व वित्तं कौन्तेय यदि तेऽस्त्यपराजितम्।। १।।

युधिष्ठिर उवाच

गवाश्वं बहुधेनूकमसंख्येयमजाविकम्।
एतन्मम धनं सर्वं तेन दीव्याम्यहं त्वया।। २।।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।
जितमित्ये शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। ३।।

तब शकुनि बोला कि हे युधिष्ठिर! तुम अब तक पाण्डवों का बहुत धन हार चुके। यदि कोई और भी धन न हारा हुआ है तो उसे बताइये। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे सुबल पुत्र! मेरे पास मेरे बैल, घोड़े, गाय, बकरी और भेड़ हैं, जो असंख्य हैं। वे सब मेरा धन हैं। मैं उन्हें दाँव पर रख कर तुम्हारे साथ खेलता हूँ। यह सुन कर अपनी जीत के विषय में निश्चिन्त छल का आश्रय लेने वाला शकुनि बोला कि यह दाँव भी मैंने जीत लिया।

युधिष्ठिर उवाच

पुरं जनपदो भूमिरब्राह्मणधनैः सह।
अब्राह्मणाश्च पुरुषा राजञ्छिष्टं धनं मम।। ४।।
एतद् राजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया।

एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।। ५।।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि नगर, देश और वह भूमि जो ब्राह्मणों की नहीं है और ब्राह्मणों को छोड़ कर दूसरे पुरुष जो मेरे पास रहते हैं, ये मेरे बचे हुए धन हैं। मैं इनके साथ तुम्हारे साथ खेलता हूँ। यह सुन कर अपनी जीत के विषय में विश्वासी छल का सहारा लिये हुए शकुनि ने कहा कि इन्हें भी मैंने जीत लिया।

युधिष्ठिर उवाच

राजपुत्रा इमे राजञ्छोभन्ते यैर्विभूषिताः।। ६।।
कुण्डलानि च निष्काश्च सर्वं राजविभूषणम्।
एतन्मम धनं राजंस्तेन दीव्याम्यहं त्वया।। ७।।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। ८।।

तब युधिष्ठिर ने कहा ये राजपुत्र जिन आभूषणों से विभूषित हैं, वे कुण्डल और गले के हार सारे राजकीय आभूषण हैं और मेरे धन हैं, मैं इनके साथ तुम्हारे साथ खेलता हूँ। यह सुन कर अपनी जीत के विषय में निश्चित और छल का सहारा लिये हुए शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा कि इन्हें भी मैंने जीत लिया।

युधिष्ठिर उवाच

श्यामो युवा लोहिताक्षः सिंहस्कन्धो महाभुजः।
नकुलो ग्लह एवैको विद्ध्येतन्मम तद्धनम्।। ९।।

शकुनिरुवाच

प्रियस्ते नकुलो राजन् राजपुत्रो युधिष्ठिर।
अस्माकं वशतां प्राप्तो भूयः केनेह दीव्यसे।। १०।।
एवमुक्त्वा तु तानक्षाञ्छकुनिः प्रत्यदीव्यत।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। ११।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि जो साँवले रंग का युवा, लाल आँखों, सिंह के समान कन्धों और विशाल भुजाओं वाला नकुल मेरा धन है। इस एक को तुम दाँव पर रखा हुआ समझो। तब शकुनि ने कहा कि हे राजा युधिष्ठिर! तुम्हारा प्यारा राजपुत्र तो हमारे आधीन हो गया। अब आप किस धन से खेल रहे हैं। यह कह कर शकुनि ने पासों को फैंका और युधिष्ठिर से कहा कि इन्हें मैंने जीत लिया।

युधिष्ठिर उवाच- अयं धर्मान् सहदेवोऽनुशास्ति
लोके ह्यस्मिन् पण्डिताख्यां गतश्च।
अनर्हता राजपुत्रेण तेन
दीव्याम्यहं चाप्रियवत् प्रियेण।। १२।।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। १३।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि यह सहदेव धर्मों का उपदेश करते हैं। संसार में इनकी पंडित के रूप में प्रसिद्धि है। यद्यपि ये प्रिय राजपुत्र दाँव पर लगाये जाने के योग्य नहीं हैं, फिर भी मैं अप्रिय वस्तु के समान इन्हें दाँव पर लगाता हूँ और खेलता हूँ। यह सुन कर छल का आश्रय लिये हुए और अपनी जीत के प्रति विश्वस्त शकुनि ने कहा कि यह दाँव भी मैंने जीत लिया।

माद्रीपुत्रौ प्रियौ राजंस्तवेमौ विजितौ मया।
गरीयांसौ तु ते मन्ये भीमसेनधनंजयौ।। १४।।

युधिष्ठिर उवाच

अधर्मं चरसे नूनं यो नावेक्षसि वै नयम्।
यो नः सुमनसां मूढ विभेदं कर्तुमिच्छसि।। १५।।
यो नः संख्ये नौरिव पारनेता
जेता रिपूणां राजपुत्रस्तरस्वी।
अनर्हता लोकवीरेण तेन
दीव्याम्यहं शकुने फाल्गुनेन।। १६।।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। १७।।

फिर शकुनि ने कहा कि हे राजन्! जो ये आपके प्यारे माद्री के पुत्र हैं, उन्हें तो मैंने जीत लिया, पर मैं समझता हूँ कि भीम और अर्जुन आपके लिये ज्यादा गौरव वाले हैं, तब युधिष्ठिर ने कहा कि अरे मूर्ख! तू वास्तव में अधर्म पर चल रहा है, जो न्याय को नहीं देख रहा है। तू शुद्ध हृदय वाले हमारे भाइयों में भेद पैदा करना चाहता है। जो हमें युद्ध में नाव के समान पार लगाने वाला है, जो राजपुत्र वेगवान और शत्रुओं को विजय करने वाला है, वह विश्वविख्यात वीर अर्जुन यद्यपि दाँव पर लगाने के योग्य नहीं है, फिर भी मैं उन्हें दाँव पर लगा कर खेलता हूँ। यह सुन कर छल का आश्रय लिये हुए, अपनी जीत के प्रति निश्चिन्त शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा कि इन्हें भी मैंने जीत लिया।

युधिष्ठिर उवाच- यो नो नेता युधि नः प्रणेता
यथा वज्री दानवशत्रुरेकः।

तिर्यक्प्रेक्षी संनतभ्रूर्महात्मा
सिंहस्कन्धो यश्च सदात्यमर्षी।। १८।।
बलेन तुल्यो यस्य पुमान् न विद्यते
गदाभृतामग्र्य इहारिमर्दनः।
अनर्हता राजपुत्रेण तेन
दीव्याम्यहं भीमसेनेन राजन्।। १९।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि वज्र धारण करने वाले इन्द्र के समान जो अकेले ही युद्धों में हमारे नेता और आगे बढ़ने वाले हैं। जो महात्मा तिरछा देखते और जिनकी भौहें टेढ़ी हैं, जिनके कन्धे सिंह के समान हैं तथा जो सदा अत्यन्त अमर्ष में रहते हैं जिनके समान बलशाली कोई पुरुष नहीं है, जो गदाधारियों में अग्रणी और शत्रुओं को कुचलने वाले हैं, इस प्रकार के राजपुत्र ये भीम यद्यपि दाँव पर लगाने के योग्य नहीं हैं, पर फिर भी मैं इन्हें दाँव पर लगा कर खेलता हूँ।

एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। २०।।
बहु वित्तं पराजैषीर्भ्रातृंश्च सहयद्विपान्।
आचक्ष्व वित्तं कौन्तेय यदि तेऽस्त्यपराजितम्।। २१।।

युधिष्ठिर उवाच

अहं विशिष्टः सर्वेषां भ्रातॄणां दयितस्तथा।
कुर्यामहं जितः कर्म स्वयमात्मन्युपप्लुते।। २२।।
एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। २३।।

ऐसा सुन कर छली और अपनी जीत के प्रति विश्वस्त शकुनि ने कहा कि यह दाँव भी मैंने जीत लिया है। हे कुन्ती पुत्र! तुम अपने भाइयों और हाथी घोड़ों सहित अपने बहुत सारे धन को हार गये। अब यदि कोई धन तुम्हारा न हारा हुआ हो तो उसे भी बताओ। तब युधिष्ठिर ने कहा कि मैं सारे भाइयों का प्यारा और सबसे बड़ा हूँ। मैं अपने आपको ही दाँव पर लगाता हूँ। जीते जाने पर दास के समान कार्य करूँगा। यह सुन कर कपटी शकुनि ने अपनी जीत के प्रति आश्वस्त हो कर कहा कि यह दाँव भी मैंने जीत लिया।

शकुनिरुवाच– एतत् पापिष्ठमकरोर्यदात्मानमहारयः।
शिष्टे सति धने राजन् पाप आत्मपराजयः।। २४।।
अस्ति ते वै प्रिया राजन् ग्लह एकोऽपराजितः।
पणस्व कृष्णां पाञ्चालीं तयाऽऽत्मानं पुनर्जय।। २५।।

युधिष्ठिर उवाच

नैव ह्रस्वा न महती न कृष्णा नातिरोहिणी।
नीलकुञ्चितकेशी च तया दीव्याम्यहं त्वया।। २६।।

तब शकुनि फिर बोला कि हे राजन्! यह तो आपने बड़ा पाप कर दिया जो अपने आपको हार गये। अपने पास धन के शेष रहने पर अपने आपको हार जाना पाप है। हे राजन्! आपकी प्यारी पत्नी अकेली है, जिसे आप नहीं हारे हैं। आप पांचाल राजकुमारी कृष्णा को दाँव पर लगाइये और उसके द्वारा अपने आप को भी जीत लीजिये। तब युधिष्ठिर ने कहा जो न तो नाटे कद की है और न लम्बी है, जो न तो काले रंग की है और न अधिक लाल रंग की है, जिसके बाल नीले और घुँघराले हैं, उस द्रौपदी के द्वारा मैं तुम्हारे सथ खेलता हूँ।

एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन धीमता।
धिग्धिगित्येव वृद्धानां सभ्यानां निःसृता गिरः।। २७।।
भीष्मद्रोण कृपादीनां, स्वेदः समाजायत।
शिरो गृहीत्वा विदुरो गतसत्त्व इवाभवत्।। २८।।
आस्ते ध्यायन्नधोवक्त्रो निःश्वसन्निव पन्नगः।
बाह्लीकः सोमदत्तश्च प्रातीपेयः ससंजयः।। २९।।
द्रौणिभूरिश्रवाश्चैव युयुत्सुर्धृतराष्ट्रजः।
हस्तौ पिंषन्नधोवक्त्रा निःश्वसन्त इवोरगाः।। ३०।।

धीमान् धर्मराज के ऐसा कहने पर उस सभा में बैठे हुए सारे बूढ़े लोगों के मुख से धिक्कार है, धिक्कार है की ध्वनियाँ निकलने लगीं। विदुर जी अपना सिर पकड़ कर निर्जीव के समान हो गये। वे नीचा मुख किये चिन्तामग्न हो, सर्प के समान लम्बी साँसें भरते हुए बैठे रह गये। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि के शरीर से पसीना छूटने लगा। प्रतीपवंशी बाह्लीक, सोमदत्त, संजय, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा और धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु, ये सब नीचा मुख किये, सर्प के समान लम्बी साँसें लेते हुए हाथों को मलने लगे।

धृतराष्ट्रस्तु तं हृष्टः पर्यपृच्छत् पुनः पुनः।
किं जितं किं जितमिति ह्याकारं नाभ्यरक्षत।। ३१।।
जहर्ष कर्णोऽतिभृशं सह दुःशासनादिभिः।
इतरेषां तु सभ्यानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम्।। ३२।।
सौबलस्त्वभिधायैवं जितकाशी मदोत्कटः।
जितमित्येव तानक्षान् पुनरेवान्वपद्यत।। ३३।।

धृतराष्ट्र तो उस समय प्रसन्न होकर बार-बार पूछ रहे थे क्या जीत लिया? क्या जीत लिया? वे अपनी प्रसन्नता से युक्त आकृति को छिपा नहीं पा रहे थे। दुश्शासन आदि के साथ कर्ण अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था, पर दूसरे सभासदों की आँखों से आँसू गिर रहे थे। तब विजय के उल्लास से मदोन्मत्त शकुनि ने यह दाँव भी मैंने जीत लिया यह कह कर पासों को पुनः हाथ में उठा लिया।

सत्ताईसवाँ अध्याय : दुश्शासन का द्रौपदी को सभा में लाना।

दुर्योधन उवाच— एहि क्षत्तर्द्रौपदीमानयस्व,
सम्मार्जतां वेश्म परैतु शीघ्रम्।
तत्रास्तु दासीभिरपुण्यशीला,
विदुर उवाच- दुर्विभाषं भाषितं त्वादृशेन।
न मन्द सम्बुध्यसि पाशबद्धः,
व्याघ्रान् मृगः कोपयसेऽतिवेलम्।। १।।

तब दुर्योधन बोला कि हे विदुर! तुम यहाँ द्रौपदी को लेकर आओ। वह पापाचारिणी जल्दी आये और मेरे महल में झाड़ू लगाये। वहाँ वह दासियों के साथ रहेगी। तब विदुर ने उत्तर दिया कि अरे मूर्ख! तुझ जैसे व्यक्ति ही ऐसे दुर्वचन बोल सकते हैं। तू मौत के फन्दे से बँधा हुआ है इसलिये तेरी समझ में नहीं आ रहा है। तू मृग हो कर भी व्याघ्रों को अत्यन्त क्रुद्ध कर रहा है।

न हि दासीत्वमापन्ना, कृष्णा भवितुमर्हति।
अनीशेन हि राज्ञैषा, पणे न्यस्तेति मे मतिः।। २।।

अयं धत्ते वेणुरिवात्मघाती,
फलं राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रः।
द्यूतं हि वैराय महाभयाय,
मत्तो न बुध्यत्ययमन्तकालम्।। ३।।

मेरे विचार से द्रौपदी दासी नहीं बन सकती क्योंकि राजा पहले स्वयं अपने को दाँव पर हार कर, जब वह दाँव पर लगाने का अधिकार खो चुके थे, तब उन्होंने उसे दाँव पर लगाया था। जैसे बाँस अपने विनाश के लिये फल को धारण करता है, वैसे ही इस धृतराष्ट्र के पुत्र राजा दुर्योधन ने महान भय वाले वैरभाव को उत्पन्न करने के लिये जूए के खेल को अपनाया है। यह पागल हो गया है। यह अपने अन्तकाल को नहीं पहचान रहा है।

न किंचिदित्थं प्रवदन्ति पार्था
वनेचरं वा गृहमेधिनं वा।
तपस्विनं वा परिपूर्णविद्यं
भषन्ति हैवं श्वनराः सदैव।। ४।।
द्वारं सुघोरं नरकस्य जिह्मं
न बुध्यते धृतराष्ट्रस्य पुत्रः।
तमन्वेतारो बहवः कुरूणां
द्यूतोदये सहदुःशासनेन।। ५।।

कुन्ती के पुत्र कभी किसी वनवासी, गृहस्थ, तपस्वी या विद्वान् से इस प्रकार की बात नहीं करते। तुम्हारे जैसे कुत्ते जैसे स्वभाव वाले ही इस प्रकार भौंका करते हैं। यह धृतराष्ट्र का पुत्र नरक के अत्यन्त भयानक और कुटिल मार्ग को नहीं देख रहा है। दुश्शासन के साथ और दूसरे बहुत से कौरव भी इस द्यूतक्रीड़ा में दुर्योधन का अनुसरण कर रहे हैं।

मज्जन्त्यलाबूनि शिलाः प्लवन्ते
मुह्यन्ति नावोऽम्भसि शश्वदेव।
मूढो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो
न मे वाचः पथ्यरूपाः शृणोति।। ६।।
अन्तो नूनं भवितायं कुरूणां
सुदारुणः सर्वहरो विनाशः।
वाचः काव्याः सुहृदां पथ्यरूपा
न श्रूयन्ते वर्धते लोभ एव।। ७।।

तूँबी जल में डूब सकती है, शिला तैर सकती है, नावें भी सदा जल में डूबी रह सकती हैं, पर धृतराष्ट्र का यह मूर्ख पुत्र मेरी कल्याणकारी बातों को नहीं सुन सकता। यह अवश्य ही कौरवों का अन्त करायेगा। इसके द्वारा बड़ा भयानक सर्वनाश होगा। यह हितैषियों की कल्याणमय, विद्वत्ता से युक्त बातों को नहीं सुनता है और इसका लोभ बढ़ता ही जा रहा है।

धिगस्तु क्षत्तारमिति ब्रुवाणो
दर्पेण मत्तो धृतराष्ट्रस्य पुत्रः।
अवैक्षत प्रातिकामीं सभाया-
मुवाच चैनं परमार्यमध्ये।। ८।।
प्रातिकामिन् द्रौपदीमानयस्व
न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः।
क्षत्ता ह्ययं विवदत्येव भीतो

न चास्माकं वृद्धिकामः सदैव।
एवमुक्तः प्रातिकामी स सूतः
प्रायाच्छीघ्रं राजवचो निशम्य।। ९।।

तब अभिमान से पागल धृतराष्ट्र के पुत्र ने विदुर को धिक्कार है, ऐसा कह कर प्रतिकामी की तरफ देखा और सभा में बैठे हुए श्रेष्ठ पुरुषों के बीच उससे कहा कि हे प्रतिकामी! तुम द्रौपदी को यहाँ ले आओ। तुम्हें पाण्डवों से कोई भय नहीं है। ये डरपोक विदुर तो इस प्रकार विवाद करते रहते हैं। ये हमारी वृद्धि को नहीं चाहते हैं। ऐसा कहे जाने पर राजा के वचनों को सुन कर प्रतिकामी सूत जल्दी से द्रौपदी के पास गया।

प्रातिकाम्युवाच– युधिष्ठिरो द्यूतमदेन मत्तो
दुर्योधनो द्रौपदि त्वामजैषीत्।
नयामि त्वां कर्मणे याज्ञसेनि।। १०।।

द्रौपद्युवाच– कथं त्वेवं वदसि प्रातिकामिन्
को हि दीव्येद् भार्यया राजपुत्रः।
मूढो राजा द्यूतमदेन मत्तो
ह्यभून्नान्यत् कैतवमस्य किंचित्।। ११।।

प्रतिकामी ने द्रौपदी से कहा कि हे द्रौपदी! युधिष्ठिर जूए के नशे में पागल हो गये हैं। दुर्योधन ने जूए में तुम्हें जीत लिया। अब तुम धृतराष्ट्र के महलों में चलो। हे यज्ञसेन की पुत्री! मैं तुम्हें काम पर लगाने के लिये ले चलता हूँ। तब द्रौपदी ने उत्तर दिया कि अरे प्रतिकामी! तू यह कैसे कहता है? कौन राजपुत्र अपनी पत्नी को दाँव पर लगा कर जूआ खेलेगा? क्या राजा जूए के नशे में इतने मूर्ख और पागल हो गए कि उनके पास दाँव पर लगाने के लिये और कोई चीज़ नहीं रह गयी?

प्रातिकाम्युवाच– यदा नाभूत् कैतवमन्यदस्य
तदादेवीत् पाण्डवोऽजातशत्रुः।
न्यस्ताः पूर्वं भ्रातरस्तेन राज्ञा
स्वयं चात्मा त्वामथो राजपुत्रि।। १२।।

द्रौपद्युवाच

गच्छ त्वं कितवं गत्वा सभायां पृच्छ सूतज।
किं नु पूर्वं पराजैषीरात्मानमथवा नु माम्।। १३।।
एतज्ज्ञात्वा समागच्छ ततो मां नय सूतज।
ज्ञात्वा चिकीर्षितमहं राज्ञो यास्यामि दुःखिता।। १४।।

तब प्रतिकामी बोला कि हे राजपुत्री! जब उनके पास दाँव पर लगाने के लिये कुछ भी नहीं बचा तो वे अजातशत्रु पाण्डु पुत्र इस प्रकार जूआ खेलने लगे कि पहले उन्होंने अपने भाइयों को दाँव पर लगाया, फिर अपने को भी दाँव पर लगाया और उसके बाद आपको भी लगा दिया। तब द्रौपदी ने कहा कि हे सूतपुत्र! तू जाकर सभा में उस जुआरी से पूछ कि पहले अपने को हारा था या मुझे? हे सूतपुत्र! यह जान कर आओ और फिर मुझे ले चलना। यह जान कर कि राजा क्या करना चाहते हैं? मैं दुःखी स्त्री चलूँगी।

सभां गत्वा स चोवाच द्रौपद्यास्तद् वचस्तदा।
युधिष्ठिरं नरेन्द्राणां मध्ये स्थितमिदं वचः।। १५।।
कस्येशो नः पराजैषीरिति त्वामाह द्रौपदी।
किं नु पूर्वं पराजैषीरात्मानमथवापि माम्।। १६।।
युधिष्ठिरस्तु निश्चेता गतसत्त्व इवाभवत्।
न तं सूतं प्रत्युवाच वचनं साध्वसाधु वा।। १७।।

तब प्रतिकामी ने सभा में जाकर युधिष्ठिर से राजाओं के बीच में द्रौपदी का यह वचन कहा कि द्रौपदी ने आपसे पूछा है कि आप उस समय किस पदार्थ के स्वामी थे, जब आपने मुझे हारा था। आप पहले अपने को हारे थे, या मुझे? किन्तु युधिष्ठिर तो उस समय चेतना रहित निष्प्राण से हो रहे थे। उन्होंने सूत को भला या बुरा कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

दुर्योधन उवाच

इहैवागत्य पाञ्चाली प्रश्नमेनं प्रभाषताम्।
इहैव सर्वेशृण्वन्तु तस्याश्चैतस्य यद् वचः।। १८।।
स गत्वा राजभवनं दुर्योधनवशानुगः।
उवाच द्रौपदीं सूतः प्रातिकामी व्यथान्वितः।। १९।।

प्रातिकाम्युवाच– सभ्यास्त्वमी राजपुत्र्याह्वयन्ति
मन्ये प्राप्तः संक्षयः कौरवाणाम्।

द्रौपदी उवाच– सभ्यान् गत्वा पृच्छ धर्म्यं वचो मे।
ते मां ब्रूयुर्निश्चितं तत् करिष्ये।। २०।।
श्रुत्वा सूतस्तद्वचो याज्ञसेन्याः
सभां गत्वा प्राह वाक्यं तदानीम्।
अधोमुखास्ते न च किंचिदूचु–
र्निर्बन्धं तं धार्तराष्ट्रस्य बुद्ध्वा।। २१।।

तब दुर्योधन ने कहा कि द्रौपदी यहीं आकर इस प्रश्न को पूछे। यहीं सारे लोग उसके प्रश्न और युधिष्ठिर के उत्तर को सुनेंगे। तब दुर्योधन के बस में पड़ा हुआ वह प्रतिकामी फिर राजमहल में गया और दुःखी होकर द्रौपदी से बोला कि हे राजपुत्री!

वे सभा में बैठे हुए अर्थात् दुर्योधन आदि तुम्हें सभा में ही बुला रहे हैं। मैं समझता हूँ कि अब कौरवों के विनाश का समय आ गया है। तब द्रौपदी ने कहा कि तुम सभा में जाकर सभी सभासदों से मेरी इस धर्मयुक्त बात को पूछो, वे जैसा मेरे लिये कहेंगे मैं वैसा ही करूँगी। द्रौपदी की यह बात सुन कर सूत ने उसकी बात को सभा में जाकर कहा, पर वे सारे सभासद धृतराष्ट्र के पुत्र के दुराग्रह को जान मुँह लटकाये बैठे रहे। किसी ने कुछ भी नहीं कहा।

पाण्डवाश्च महात्मनो दीना दुःखसमन्विताः।
सत्येनातिपरीताङ्गा नोदीक्षन्ते स्म किंचन।। २२।।

ततस्त्वेषां मुखमालोक्य राजा
दुर्योधनः सूतमुवाच हृष्टः।
इहैवैतामानय प्रातिकामिन्
प्रत्यक्षमस्याः कुरवो ब्रुवन्तु।। २३।।

ततः सूतस्तस्य वशानुगामी
भीतश्च कोपाद् द्रुपदात्मजायाः
विहाय मानं पुनरेव सभ्या-
नुवाच कृष्णां किमहं ब्रवीमि।। २४।।

उस समय महात्मा पाण्डव दुःख से भरे हुए बड़े दीन हो रहे थे। वे सत्य के बन्धन से बँधे हुए थे। उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। तब उनके मुखों को देख कर राजा दुयोधन प्रसन्न होकर सूत से बोला कि अरे प्रतिकामी! तू उसे यहीं ले आ। उसके सामने ही कौरव उसका उत्तर देंगे। तब उसके वश में पड़ा हुआ भी वह सूत द्रौपदी के क्रोध से डरा हुआ होकर अपने सम्मान का ध्यान छोड़ कर सभासदों से फिर पूछने लगा कि आप लोग बतायें कि मैं द्रौपदी से क्या कहूँ?

दुर्योधन उवाच– दुःशासनैष मम सूतपुत्रो
वृकोदरादुद्विजतेऽल्पचेताः।
स्वयं प्रगृह्यानय याज्ञसेनीं
किं ते करिष्यन्त्यवशाः सपत्नाः।। २५।।

ततः समुत्थाय स राजपुत्रः
श्रुत्वा भ्रातुः शासनं रक्तदृष्टिः।
प्रविश्य तद् वेश्म महारथाना-
मित्यब्रवीद् द्रौपदीं राजपुत्रीम्।। २६।।

तब दुर्योधन दुश्शासन से बोला कि हे दुश्शासन! यह मेरा मूर्ख सूतपूत्र भीम से डरता है। तुम स्वयं द्रौपदी को पकड़ कर लाओ। ये लाचार बने हुए हमारे शत्रु तुम्हारा क्या कर लेंगे? तब भाई के आदेश को सुन कर वह राजपुत्र लाल आँखें किये उठा और उन महारथियों के महल में प्रवेश कर राजपुत्री द्रौपदी से यह बोला कि–

एह्येहि पाञ्चालि जितासि कृष्णे
दुर्योधनं पश्य विमुक्तलज्जा।
कुरून् भजस्वायतपत्रनेत्रे
धर्मेण लब्धासि सभां परैहि।। २७।।

ततः समुत्थाय सुदुर्मनाः सा
विवर्णमामृज्य मुखं करेण।
आर्ता प्रदुद्राव यतः स्त्रियस्ता
वृद्धस्य राज्ञः कुरु पुंगवस्य।। २८।।

ततो जवेनाभिससार रोषाद्
दुःशासनस्तामभिगर्जमानः।
दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु
जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम्।। २९।।

आओ आओ पांचाली द्रौपदी! तुम्हें जीत लिया गया है। अब तुम लज्जा को छोड़ कर दुर्योधन की तरफ देखो। कमल के समान विशाल नेत्रों वाली द्रौपदी! अब तुम कौरवों की सेवा करो। हमने तुम्हें धर्म से प्राप्त किया है। तुम सभा में चलो। तब उस दुःखी द्रौपदी ने उठ कर अपने कान्तिहीन मुख को हाथ से पौंछा और फिर वह आर्त अबला उस तरफ भागी, जिस तरफ कुरुश्रेष्ठ बूढ़े राजा धृतराष्ट्र की स्त्रियाँ बैठीं हुई थीं। तब दुश्शासन क्रोध से गर्जता हुआ तेजी से उसके पीछे दौड़ा और उसने उस राजरानी के नीले और घुँघराले बालों को पकड़ लिया।

स तां पराकृष्य सभासमीप-
मानीय कृष्णामतिदीर्घकेशीम्।
दुःशासनो नाथवतीमनाथव-
च्चकर्ष वायुः कदलीमिवार्ताम्।। ३०।।

सा कृष्यमाणा नमिताङ्गयष्टिः
शनैरुवाचाथ रजस्वलास्मि।
एकं च वासो मम मन्दबुद्धे
सभां नेतुं नार्हसि मामनार्य।। ३१।।

दुःशासन उवाच– रजस्वला वा भव याज्ञसेनि
एकाम्बरा वाप्यथवा विवस्त्रा।
द्यूते जिता चासि कृतासि दासी
दासीषु वासश्च यथोपजोषम्।। ३२।।

दुश्शासन उस लम्बे केश वाली द्रौपदी को, जो सनाथा थी, पर फिर भी उसे अनाथा के समान, जो कि वायु के द्वारा झुकाये हुए केले के वृक्ष के समान हो रही थी, खींचता हुआ, सभा के समीप ले आया। उसके द्वारा खींची जाती हुई द्रौपदी, जिसका शरीर झुक गया था, धीरे से बोली कि, अरे मन्द बुद्धि अनार्य! मैं इस समय रजस्वला हूँ और एक वस्त्र में हूँ। मुझे इस अवस्था में सभा में मत ले चल। तब दुश्शासन बोला कि हे द्रौपदी! तुम चाहे रजस्वला हो या एक वस्त्र में हो या नंगी भी क्यों न हो, तुझे हमने जूए में जीता है और अपनी दासी बनाया है। तुझे जैसे हम चाहें, वैसे और दासियों में रहना पड़ेगा।

प्रकीर्णकेशी पतितार्धवस्त्रा
दुःशासनेन व्यवधूयमाना।
ह्रीमत्यमर्षेण च दह्यमाना
शनैरिदं वाक्यमुवाच कृष्णा।। ३३।।
इमे सभायामुपनीतशास्त्राः
क्रियावन्तः सर्व एवेन्द्रकल्पाः।
गुरुस्थाना गुरवश्चैव सर्वे
तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम्।। ३४।।
नृशंसकर्मं स्त्वमनार्यवृत्त
मा मां विवस्त्रां कुरु मा विकर्षीः।
न मर्षयेयुस्तव राजपुत्राः
सेन्द्राश्च देवा यदि ते सहायाः।। ३५।।

उस समय दुश्शासन के द्वारा खींची जाती हुई द्रौपदी के बाल बिखर गये थे, उसका आधा वस्त्र भी नीचे खिसक गया था। लज्जा से भरी हुई वह क्रोध से जली जा रही थी। वह धीरे से बोली कि ये सभा में शास्त्रों के विद्वान्, कर्मठ, और सारे इन्द्र के समान तेजस्वी मेरे पिता के समान गुरुजन बैठे हुए हैं। मैं उनके आगे इस अवस्था में खड़ी होना नहीं चाहती। अरे क्रूर कर्मा और दुराचारी दुश्शासन! तू मुझे मत खींच, मुझे नंगा मत कर। यदि इन्द्र और देवता भी तेरी सहायता को आ जाएँ तो भी ये पाण्डव राजपुत्र तेरे इस कार्य को सहन नहीं करेंगे।

इदं त्वकार्यं कुरुवीरमध्ये
रजस्वलां यत् परिकर्षसे माम्।
न चापि कश्चित् कुरुतेऽत्र कुत्सां
ध्रुवं तवेदं मतमभ्युपेताः।। ३६।।
धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां
धर्मस्तथा क्षत्रविदां च वृत्तम्।
यत्र ह्यतीतां कुरुधर्मवेलां
प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम्।। ३७।।
द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्त्वं
क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोऽपि।
राज्ञस्तथा हीममधर्ममुग्रं
न लक्ष्यन्ते कुरुवृद्धमुख्याः।। ३८।।
इमं प्रश्नमिमे ब्रूत सर्व एव सभासदः।
जितां वाप्यजितां वा मां मन्यध्वे सर्वभूमिपाः।। ३९।।

अरे यह कितना अनुचित कार्य है, जो तू मुझ रजस्वला को कौरव वीरों के बीच में खींच कर ले जा रहा है। पर मैं देख रही हूँ कि यहाँ कोई भी तेरी निन्दा नहीं कर रहा है। निश्चित रूप से ये सब तेरे ही मत के हो गये हैं। धिक्कार है। वास्तव में क्षत्रिय धर्म को जानने वाले भरतवंशियों का धर्म और सदाचार दोनों नष्ट हो गये हैं, जो इस सभा में यहाँ कौरवों की मर्यादा को तोड़ा जा रहा है, सारे कौरव चुपचाप देख रहे हैं। वास्तव में द्रोणाचार्य, भीष्म, महात्मा विदुर, और राजा धृतराष्ट्र में कोई शक्ति नहीं रही है। तभी तो ये सारे कुरुवंश के प्रधान बूढ़े लोग इस होते हुए अधर्म की तरफ नहीं देख रहे हैं। ये सारे सभासद मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें कि क्या ये मुझे जीता हुआ मानते हैं, या न जीता हुआ मानते हैं।

तथा ब्रुवन्ती करुणं सुमध्यमा
सा पाण्डवान् कोपपरीतदेहान्
संदीपयामास कटाक्षपातैः।। ४०।।
हृतेन राज्येन तथा धनेन
रत्नैश्च मुख्यैर्न तथा बभूव।
यथा त्रपाकोपसमीरितेन
कृष्णाकटाक्षेण बभूव दुःखम्।। ४१।।
दुःशासनश्चापि समीक्ष्य कृष्णा–
माधूय वेगेन विसंज्ञकल्पा–
मुवाच दासीति हसन् सशब्दम्।। ४२।।
कर्णस्तु तद्वाक्यमतीव हृष्टः
सम्पूजयामास हसन् सशब्दम्।
गान्धारराजः सुबलस्य पुत्र
स्तथैव दुःशासनमभ्यनन्दत्।। ४३।।

इस प्रकार करुण स्वर में बोलती हुई उस सुन्दरी द्रौपदी ने क्रोध में भरे हुए पाण्डवों को

अपनी तिरछी निगाहों से बार-बार देख कर और भी उद्दीप्त कर दिया। राज्य के, धन के और प्रमुख रत्नों के हरण हो जाने पर भी उन्हें उतना दुःख नहीं हुआ था, जितना दुःख उन्हें द्रौपदी के लज्जा और क्रोध से युक्त कटाक्षों से हो रहा था। दुश्शासन भी उस समय मूर्च्छित सी हो रही द्रौपदी को देखकर, उसे जोर से झकोरते हुए, और जोर-जोर से हँसते हुए उसे दासी-दासी कहने लगा। कर्ण भी दुश्शासन के उस शब्द से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने जोर से हँसते हुए उसकी प्रशंसा की। गान्धारराज सुबल के पुत्र शकुनि ने भी दुश्शासन की प्रशंसा की।

भीष्म उवाच— न धर्मसौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तुं
शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्।
अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं
स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य।। ४४।।

तब भीष्म ने कहा कि हे सौभाग्यशालिनी! जो स्वामी नहीं है वह पराये धन को दाँव पर नहीं लगा सकता, पर साथ ही यह भी है कि स्त्री को सदा पुरुष के आधीन माना जाता है। इसलिये धर्म की इस अत्यन्त सूक्ष्मता के कारण मैं तुम्हारे इस प्रश्न की ठीक-ठीक विवेचना नहीं कर सकता।

द्रौपद्युवाच—आहूय राजा कुशलैरनार्यै-
र्दुष्टात्मभिर्नैकृतिकैः सभायाम्।
द्यूतप्रियैर्ना तिकृतप्रयत्नः
कस्मादयं नाम निसृष्टकामः।। ४५।।
अशुद्धभावै र्निकृतिप्रवृत्तै-
रबुध्यमानः कुरुपांडवाग्र्यः।
सम्भूय सर्वैश्च जितोऽपि यस्मात्,
पश्चादयं कैतवमभ्युपेतः।। ४६।।
तिष्ठन्ति चेमे कुरवः सभाया-
मीशाः सुतानां च तथा स्नुषाणाम्।
समीक्ष्य सर्वे मम चापि वाक्यं
विब्रूत मे प्रश्नमिमं यथावत्।। ४७।।

तब द्रौपदी ने कहा कि राजा युधिष्ठिर को जूआ खेलना नहीं आता, फिर इन चालाक, अनाचारी, दुष्ट, धोखेबाज जुआरियों ने उन्हें सभा में बुला कर क्यों उनके मन में जूए के लिये इच्छा उत्पन्न की? इन सब दुरात्माओं, कपटियों ने कुरु पाण्डव शिरोमणि युधिष्ठिर को पहले जूए में जीत लिया और फिर उन्हें जूआ खेलने और मुझे दाँव पर लगाने के लिये विवश किया। इस सभा में सारे कुरुवंशी बैठे हुए हैं, जो कि पुत्रों और पुत्र वधुओं के स्वामी हैं अर्थात् उनके घरों में भी पुत्र और पुत्रवधुएँ हैं। वे मेरी बात पर विचार कर मेरे इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर दें।

तां कृष्यमाणां च रजस्वलां च
स्रस्तोत्तरीया मतदर्हमाणाम्।
वृकोदरः प्रेक्ष्य युधिष्ठिरं च
चकार कोपं परमार्तरूपः।। ४८।।

द्रौपदी उस समय रजस्वला थी, उसे घसीटा जा रहा था, उसके सिर का कपड़ा खिसक गया था। वह इस अवस्था को प्राप्त होने के बिल्कुल योग्य नहीं थी। उसे उस हालत में देख कर भीम को बड़ा दुख हुआ। उन्हें युधिष्ठिर की तरफ देख कर बड़ा गुस्सा आया।

अट्ठाईसवाँ अध्याय : सभा में द्रौपदी का अपमान और भीमसेन का क्रोध।

भीम उवाच

भवन्ति गेहे बन्धक्यः कितवानां युधिष्ठिर।
न ताभिरुत दीव्यन्ति दया चैवास्ति तास्वपि।। १।।
काश्यो यद् धनमाहार्षीद् द्रव्यं यच्चान्यदुत्तमम्।
तथान्ये पृथिवीपाला यानि रत्नान्युपाहरन्।। २।।
वाहनानि धनं चैव कवचान्यायुधानि च।
राज्यमात्मा वयं चैव कैतवेन हृतं परैः।। ३।।

भीमसेन ने कहा कि हे युधिष्ठिर! जुआरियों के घर में प्रायः कुलटा स्त्रियाँ होती हैं, पर वे उनको भी दाँव पर लगा कर जूआ नहीं खेलते, उनके प्रति भी उनके हृदय में दया होती है। काशीराज ने जो धन और दूसरे उत्तम सामान उपहार में दिये थे, तथा दूसरे राजाओं ने भी जो रत्न उपहार में दिये थे, हमारे वाहन, धन, कवच, आयुध, राज्य, आपको और हम सबको भी इन शत्रुओं ने जूए के द्वारा हरण कर लिया।

न च मे तत्र कोपोऽभूत् सर्वस्येशो हि नो भवान्।
इमं त्वतिक्रमं मन्ये द्रौपदी यत्र पण्यते।। ४।।
एषा ह्यनर्हती बाला पाण्डवान् प्राप्य कौरवैः।
त्वत्कृते क्लिश्यते क्षुद्रैर्नृशंसैरकृतात्मभिः।। ५।।

अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन् निपात्यते।
बाहू ते सम्प्रधक्ष्यामि सहदेवाग्निमानय।। ६।।

किन्तु इन सबके लिये मुझे क्रोध नहीं हुआ, क्योंकि आप हमारे सर्वस्व के स्वामी हैं। किन्तु द्रौपदी को जो दाँव पर लगाया गया, यह मेरे विचार से मर्यादा का अतिक्रमण है। यह बाला पाण्डवों की संरक्षा पाकर भी जो इन नीच, क्रूर और अजितेन्द्रिय कौरवों के द्वारा कष्ट पा रही है, यह तुम्हारे कारण है। हे राजन्! इसकी तकलीफ के कारण जो मुझे क्रोध हो रहा है, उसे मैं तुम्हारे ऊपर उतारूँगा। मैं तुम्हारे दोनों हाथ जला दूँगा। सहदेव! अग्नि लेकर आओ।

अर्जुन उवाच

न पुरा भीमसेन त्वमीदृशीर्वदिता गिरः।
परैस्ते नाशितं नूनं नृशंसैर्धर्मगौरवम्।। ७।।
न सकामाः परे कार्या धर्ममेवाचरोत्तमम्।
भ्रातरं धार्मिकं ज्येष्ठं कोऽतिवर्तितुमर्हति।। ८।।
आहूतो हि परै राजा क्षात्रं व्रतमनुस्मरन्।
दीव्यते परकामेन तन्नः कीर्तिकरं महत्।। ९।।

तब अर्जुन ने कहा कि हे भीमसेन! तुमने पहले कभी ऐसी बात नहीं कही थी। इन दुष्ट शत्रुओं ने निश्चय ही तुम्हारी धर्म के प्रति गौरव बुद्धि को नष्ट कर दिया है। आप उत्तम धर्म का ही आचरण करो। शत्रुओं की कामना को सफल मत करो। धर्मात्मा बड़े भाई का अपमान कौन कर सकता है? शत्रुओं ने राजा को जूआ खेलने के लिये बुलाया। वे अपने क्षत्रिय व्रत को ध्यान में रखते हुए, दूसरों की इच्छा से जूआ खेलते हैं। यह हमारी महान् कीर्ति की बात है।

भीमसेन उवाच

एवमस्मिन् कृतं विद्यां यदि नाहं धनंजय।
दीप्तेऽग्नौ सहितौ बाहू निर्दहेयं बलादिव।। १०।।
तथा तान् दुःखितान् दृष्ट्वा पाण्डवान् धृतराष्ट्रजः।
कृष्यमाणां च पाञ्चालीं विकर्ण इदमब्रवीत्।। ११।।

तब भीम ने कहा कि हे अर्जुन! यदि इस विषय में मैं तुम्हारी कही बात को नहीं जान पाता तो प्रदीप्त अग्नि में इनकी दोनों बाहों को एक साथ ही बल पूर्वक जला देता। तब पांडवों को दुःखी और पांचाल राजकुमारी द्रौपदी को इस प्रकार खींचा जाता हुआ देख कर धृतराष्ट्र पुत्र विकर्ण ने यह कहा कि–

याज्ञसेन्या यदुक्तं तद् वाक्यं विब्रूत पार्थिवाः।
अविवेकेन वाक्यस्य नरकः सद्य एव नः।। १२।।
भीष्मश्च धृतराष्ट्रश्च कुरुवृद्धतमावुभौ।
समेत्य नाहतुः किंचिद् विदुरश्च महामतिः।। १३।।
भारद्वाजश्च सर्वेषामाचार्यः कृप एव च।
कुत एतावपि प्रश्नं नाहतुर्द्विजसत्तमौ।। १४।।
ये त्वन्ये पृथिवीपालाः समेताः सर्वतो दिशः।
कामक्रोधौ समुत्सृज्य ते ब्रुवन्तु यथामति।। १५।।
यदिदं द्रौपदीवाक्यमुक्तवत्यसकृच्छुभा।
विमृश्य कस्य कः पक्षः पार्थिवा वदतोत्तरम्।। १६।।

हे राजाओं! द्रौपदी ने जो बात कही है। इसके बारे में आप लोग बताइये। इस बात की विवेचना नहीं की गयी तो हमें जल्दी ही दुःख भोगना पड़ेगा। भीष्म, धृतराष्ट्र ये दोनों कौरवों में सबसे बूढ़े हैं और ये महामति विदुर भी इनसे सलाह करके कुछ भी नहीं बोलते। द्रोणाचार्य और कृपाचार्य हम सबके आचार्य और श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। वे भी इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट क्यों नहीं करते? और जो सब तरफ से आये राजा लोग हैं, वे भी काम और क्रोध से रहित होकर अपनी बुद्धि के अनुसार इस बारे में कहें। इस कल्याणी द्रौपदी ने बार-बार जो प्रश्न पूछा है, राजा लोग विचार कर उसका उत्तर दें, जिससे पता लगे कि किसका क्या पक्ष है?

उक्त्वा सकृत् तथा सर्वान् विकर्णः पृथिवीपतीन्।
पाणौ पाणिं विनिष्पिष्य निःश्वसन्निदमब्रवीत्।। १७।।
विब्रूत पृथिवीपाला वाक्यं मा वा कथंचन।
मन्ये न्याय्यं यदत्राहं तद्धि वक्ष्यामि कौरवाः।। १८।।
चत्वार्याहुर्नरश्रेष्ठा व्यसनानि महीक्षिताम्।
मृगयां पानमक्षांश्च ग्राम्ये चैवातिरक्तताम्।। १९।।
एतेषु हि नरः सक्तो धर्ममुत्सृज्य वर्तते।
यथायुक्तेन च कृतां क्रियां लोको न मन्यते।। २०।।

विकर्ण ने जब अनेक बार राजाओं से कहा, पर उसे उनसे कोई उत्तर नहीं मिला तब हाथों को मल कर और लम्बी साँस लेकर वह बोला कि हे राजाओं! आप द्रौपदी की बात का उत्तर दें या किसी कारण से न दें, पर हे कौरवों! मैं जो कुछ यहाँ न्याययुक्त मानता हूँ, उसे कहूँगा। श्रेष्ठ लोगों ने राजाओं के चार व्यसन बताये हैं। वे हैं मृगया, मदिरापान, जूआ खेलना और विषयभोग में अत्यन्त आसक्ति। इनमें आसक्त होकर मनुष्य धर्म के

विपरीत आचरण करने लगता है और उस किये हुए अयुक्त आचरण को लोग सम्मान नहीं देते हैं।

तदयं पाण्डुपुत्रेण व्यसने वर्तता भृशम्।
समाहूतेन कितवैरास्थितो द्रौपदीपणः।। २१।।
जितेन पूर्वं चानेन पाण्डवेन कृतः पणः।
इयं च कीर्तिता कृष्ण सौबलेन पणार्थिना।। २२।।
एतत् सर्वं विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम्।
एतच्छ्रुत्वा महान् नादः सभ्यानामुदतिष्ठत।। २३।।
विकर्णं शंसमानानां सौबलं चापि निन्दताम्।
तस्मिन्नुपरते शब्दे राधेयः क्रोधमूर्च्छितः।। २४।।
प्रगृह्य रुचिरं बाहुमिदं वचनमब्रवीत्।

इन पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर को जुआरियों ने जूआ खेलने के लिये बुलाया। तब जूए में अत्यन्त आसक्त होकर इन्होंने द्रौपदी को दाँव पर लगाया। इसके अतिरिक्त ये पाण्डव पहले स्वयं को हार गये थे, उसके पश्चात् इन्होंने द्रौपदी को दाँव पर लगाया। जूए की इच्छा रखने वाले शकुनि ने ही द्रौपदी को दाँव पर लगाने का आग्रह किया था। इन सब बातों पर विचार कर मैं द्रौपदी को जीता हुआ नहीं मानता। विकर्ण की यह बात सुन कर सभा के लोग विकर्ण की प्रशंसा और शकुनि की निन्दा करने लगे और वहाँ बड़ा कोलाहल होने लगा। उस कोलाहल के शान्त होने पर कर्ण क्रोध से मूर्च्छित होकर और विकर्ण की सुन्दर बाँह पकड़ कर बोला कि–

दृश्यन्ते वै विकर्णेह वैकृतानि बहून्यपि।। २५।।
तज्जातस्तद्विनाशाय यथाग्निररणिप्रजः।
व्याधिर्बलं नाशयते शरीरस्थोऽपि सम्भृतः।। २६।।
तृणानि पशवो घ्नन्ति स्वपक्षं चैव कौरवः।
द्रोणो भीष्मः कृपो द्रौणिर्विदुरश्च महामतिः।। २७।।
धृतराष्ट्रश्च गान्धारी भवतः प्राज्ञवत्तराः।
एते न किंचिदप्याहुश्चोदिता ह्यपि कृष्णया।। २८।।
धर्मेण विजितामेतां मन्यन्ते द्रुपदात्मजाम्।
त्वं तु केवलबाल्येन धार्तराष्ट्र विदीर्यसे।। २९।।
यद् ब्रवीषि सभामध्ये बालः स्थविरभाषितम्।

हे विकर्ण! इस संसार में बहुत सी चीज़ें विपरीत परिणाम वाली देखी जाती हैं। वे जिससे पैदा होती है, उसी का विनाश कर देती हैं, जैसे अरणि से अग्नि उत्पन्न होकर उसी को जला देती है। रोग शरीर में ही पलता है और शरीर की शक्ति को ही नष्ट करता है। पशु घास को खाते हैं और उसी को पैरों से कुचलते हैं, उसी तरह तुम भी जिस कुरुकुल में पैदा हुए हो, उसी को हानि पहुँचा रहे हो। द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, महामति विदुर, धृतराष्ट्र और गान्धारी तुमसे अधिक बुद्धिमान हैं। ये द्रौपदी के द्वारा बार-बार पूछने पर भी कुछ भी नहीं बोले, क्योंकि ये द्रौपदी को धर्म के अनुसार जीता हुआ मानते हैं। पर हे धृतराष्ट्र कुमार! तुम केवल अपने बचपने के कारण अपने पक्ष को विदीर्ण कर रहे हो। तुम बच्चा होकर भी सभा में बूढ़ों की सी बातें करते हो।

न च धर्मं यथावत् त्वं वेत्सि दुर्योधनावर।। ३०।।
यद् ब्रवीषि जितां कृष्णां न जितेति सुमन्दधीः।
कथं ह्यविजितां कृष्णां मन्यसे धृतराष्ट्रज।। ३१।।
यदा सभायां सर्वस्वं न्यस्तवान् पाण्डवाग्रजः।
अभ्यन्तरा च सर्वस्वे द्रौपदी भरतर्षभ।। ३२।।
एवं धर्मजितां कृष्णां मन्यसे न जितां कथम्।
कीर्तिता द्रौपदी वाचा अनुज्ञाता च पाण्डवैः।। ३३।।
भवत्यविजिता केन हेतुनैषा मता तव।
दुःशासन सुबालोऽयं विकर्णः प्राज्ञवादिकः।। ३४।।
पाण्डवानां च वासांसि द्रौपद्याश्चाप्युपाहर।

दुर्योधन के छोटे भाई! तुम मन्दबुद्धि हो और धर्म को ठीक तरह से नहीं जानते हो। इसीलिये जीती हुई द्रौपदी को, यह नहीं जीती गयी है, ऐसा कह रहे हो। जब युधिष्ठिर ने सभा में अपने सर्वस्व को दाँव पर लगा दिया, फिर तुम हे धृतराष्ट्र सुत! द्रौपदी को न जीती हुई कैसे मानते हो? हे भरतश्रेष्ठ! सर्वस्व में द्रौपदी भी तो सम्मिलित है। इस प्रकार धर्मपूर्वक जीती हुई द्रौपदी को तुम न जीती हुई कैसे मानते हो? युधिष्ठिर ने वाणी से कह कर द्रौपदी को दाँव पर रखा और पाण्डवों ने चुप रह कर उसका समर्थन किया, फिर तुम्हारे विचार से कैसे यह जीती हुई नहीं है। हे दुश्शासन! यह विद्वानों की तरह बातें करने वाला विकर्ण बच्चा है। तुम पाण्डवों के और द्रौपदी के भी वस्त्रों को उतार लो।

ततो हलहलाशब्दस्तत्रासीद् घोरदर्शनः।। ३५।।
शशाप तत्र भीमस्तु राजमध्ये बृहत्स्वनः।
क्रोधाद् विस्फुरमाणौष्ठो विनिष्पिष्य करे करम्।। ३६।।
इदं मे वाक्यमादध्वं क्षत्रियां लोकवासिनः।
नोक्तपूर्वं नरैरन्यैर्न चान्यो यद् वदिष्यति।। ३७।।

यद्येतदेवमुक्त्वाहं न कुर्यां पृथिवीश्वराः।
पितामहानां पूर्वेषां नाहं गतिमवाप्नुयाम्।।३८।।
अस्य पापस्य दुर्बुद्धेर्भारतापसदस्य च।
न पिबेयं बलाद् वक्षो भित्त्वा चेद् रुधिरं युधि।।३९।।

तब यह सुन कर सारी सभा में भयानक कोलाहल होने लगा। तब उन राजाओं के बीच में भीम ने क्रोध के कारण फड़कते हुए ओठों से तथा अपने हाथों को मलते हुए जोर से चिल्ला कर यह प्रतिज्ञा की कि हे देश विदेश के निवासी क्षत्रियों! मेरी बात पर ध्यान दो। जो बात मैं कहने जा रहा हूँ, वह न तो पहले किसी ने कही है और न कोई भविष्य में कहेगा। यह दुश्शासन भरतवंश का कलंक है। इस दुष्ट और पापी की युद्ध में बल पूर्वक छाती फाड़ कर यदि मैं इसका खून न पीऊँ और अपने इस कथन को पूरा न करूँ तो हे राजाओं! मुझे अपने बाप दादों की श्रेष्ठ गति प्राप्त न हो।

तस्य ते तद् वचः श्रुत्वा रौद्रं लोमप्रहर्षणम्।
प्रचक्रुर्बहुलां पूजां कुत्सन्तो धृतराष्ट्रजम्।।४०।।
न विब्रुवन्ति कौरव्याः प्रश्नमेतमिति स्म ह।
स जनः क्रोशति स्मात्र धृतराष्ट्रं विगर्हयन्।।४१।।
ततो बाहू समुच्छ्रित्य निवार्य च सभासदः।
विदुरः सर्वधर्मज्ञ इदं वचनमब्रवीत्।।४२।।
द्रौपदी प्रश्नमुक्त्वैवं रोरवीति ह्यनाथवत्।
न च विब्रूत तं प्रश्नं सभ्या धर्मोऽत्र पीड्यते।।४३।।

रोंगडे खड़े कर देने वाली भीम की उस भयानक वाणी को सुन कर उन राजाओं ने भीम की प्रशंसा की और दुश्शासन की वे निन्दा करने लगे। वे धृतराष्ट्र की भी निन्दा कर रहे थे, क्योंकि कौरव लोग द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर नहीं दे पा रहे थे। तब धर्मों के ज्ञाता विदुर जी ने दोनों हाथ उठा कर सभासदों को चुप कराया और यह कहा कि द्रौपदी यहाँ अपना प्रश्न उपस्थित कर अनाथों के समान रो रही है, किन्तु आप लोग उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहे हैं, इस प्रकार यहाँ धर्म की हानि हो रही है।

सभां प्रपद्यते ह्यार्तः प्रज्वलन्निव हव्यवाट्।
तं वै सत्येन धर्मेण सभ्याः प्रशमयन्त्युत।।४४।।
धर्मप्रश्नमतो ब्रूयादार्यः सत्येन मानवः।
विब्रूयुस्तत्र तं प्रश्नं कामक्रोधबलातिगाः।।४५।।
विकर्णेन यथाप्रज्ञमुक्तः प्रश्नो नराधिपाः।
भवन्तोऽपि हि तं प्रश्नं विब्रुवन्तु यथामति।।४६।।
यो हि प्रश्नं न विब्रूयाद् धर्मदर्शी सभां गतः।
अनृते या फलावाप्तिस्तस्याः सोऽर्धं समश्नुते।।४७।।
यः पुनर्वितथं ब्रूयाद् धर्मदर्शी सभां गतः।
अनृतस्य फलं कृत्स्नं सम्प्राप्नोतीति निश्चयः।।४८।।

जब कोई संकट में पड़ा हुआ मनुष्य अग्नि के समान चिन्ता में जलता हुआ सभा में आता है तो सभा के लोग सत्य और धर्म का आश्रय लेकर उसकी चिन्ता को शान्त करते हैं। इसलिये श्रेष्ठ मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह सच्चाई के साथ धर्म युक्त प्रश्न को उपस्थित करे और सभासद भी काम और क्रोध के वेग से ऊपर उठ कर उस प्रश्न की ठीक-ठीक विवेचना करें। हे राजाओं! विकर्ण ने अपनी बुद्धि के अनुसार प्रश्न का उत्तर दिया है, आप लोग भी जैसा जिसका विचार हो, इस प्रश्न के बारे में कहिये। जो धर्म की तरफ अपनी दृष्टि रखने वाला सभा में जाकर वहाँ प्रस्तुत किये गये प्रश्न का उत्तर नहीं देता है तो झूठ बोलने का जो फल होता है, वह उसके आधे का भागीदारी होता है। जो धर्मज्ञ सभा में जाकर असत्य बोलता है, वह तो निश्चित रूप से असत्य बोलने का फल पाता ही है।

विदुरस्य वचः श्रुत्वा नोचुः किंचन पार्थिवाः।
कर्णो दुःशासनं त्वाह कृष्णां दासीं गृहान् नय।।४९।।
तां वेपमानां सव्रीडां प्रलपन्तीं स्म पाण्डवान्।
दुःशासनः सभामध्ये विचकर्ष तपस्विनीम्।।५०।।
सा तेन च समाधूता दुःखेन च तपस्विनी।
पतिता विललापेदं सभायामतथोचिता।।५१।।

द्रौपद्युवाच

स्वयंवरे यास्मि नृपैर्दृष्टा रङ्गे समागतैः।
न दृष्टपूर्वा चान्यत्र साहमद्य सभां गता।।५२।।

विदुर की बात सुन कर राजा लोग कुछ भी नहीं बोले तब कर्ण ने दुश्शासन से कहा कि तू इस द्रौपदी दासी को घरों में ले जा। द्रौपदी उस समय लज्जा में भरी हुई काँप रही थी और पाण्डवों को रोकर पुकार रही थी। दुश्शासन ने उस तपस्विनी को उसी अवस्था में खींचना आरम्भ कर दिया। वह तपस्विनी उसके द्वारा खींचे जाने पर दुःख के कारण भूमि पर गिर पड़ी और सभा में विलाप करने लगी। वह इस दुर्दशा को प्राप्त होने के योग्य कदापि नहीं थी। द्रौपदी रोते हुए कहने लगी पहले मुझे आये

हुए राजाओं ने मेरे स्वयंवर में ही देखा था और कहीं किसी ने मुझे नहीं देखा, किन्तु आज मुझे सभा में लाया गया है।

मृष्यन्ति कुरवश्चेमे मन्ये कालस्य पर्ययम्।
स्नुषां दुहितरं चैव क्लिश्यमानामनर्हतीम्।। ५३।।
किं न्वतः कृपणं भूयो यदहं स्त्री सती शुभा।
सभामध्यं विगाहेऽद्य क्व नु धर्मो महीक्षिताम्।। ५४।।
धर्म्यां स्त्रियं सभां पूर्वं न नयन्तीति नः श्रुतम्।
स नष्टः कौरवेयेषु पूर्वो धर्मः सनातनः।। ५५।।

मैं कुरुवंश की पुत्रवधु और पुत्री के समान हूँ। मैं इस प्रकार सताये जाने के योग्य नहीं हूँ, पर फिर भी ये कौरव लोग इसे सहन कर रहे हैं। वास्तव में अब उलटा समय आ गया है। इससे अधिक दुःख की बात और क्या हो सकती है कि मेरे शुभ कर्मों वाली सती स्त्री होने पर भी, मुझे सभा में बलपूर्वक लाया गया है। इन राजाओं का धर्म कहाँ चला गया है? हमने सुना है कि पहले लोग धर्मचारिणी स्त्री को सभा में नहीं लाते थे, किन्तु वह पुराना सनातन धर्म कौरवों में नष्ट हो गया है।

तामिमां धर्मराजस्य भार्यां सदृशवर्णजाम्।
ब्रूत दासीमदासीं वा तत् करिष्यामि कौरवाः।। ५६।।
अयं मां सुदृढं क्षुद्रः कौरवाणां यशोहरः।
क्लिश्नाति नाहं तत् सोढुं चिरं शक्ष्यामि कौरवाः।। ५७।।
जितां वाप्यजितां वापि मन्यध्वं मां यथा नृपाः।
तथा प्रत्युक्तमिच्छामि तत् करिष्यामि कौरवाः।। ५८।।

हे कौरवों! मैं धर्मराज युधिष्ठिर की उनके समान वर्ण में उत्पन्न हुई पत्नी हूँ। आप लोग बतायें कि मैं इस समय दासी हूँ या अदासी? आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगी। हे कौरवों! यह कौरवों की कीर्ति को कलंक लगाने वाला नीच दुश्शासन मुझे अत्यन्त कष्ट दे रहा है। मैं इसे देर तक सहन नहीं कर सकूँगी। हे कुरुवंशी राजाओं! आप लोग मुझे जीता गया या न जीता गया जैसा मानते हैं, मैं वैसा उत्तर चाहती हूँ। मैं फिर उसके अनुसार ही कार्य करूँगी।

भीष्म उवाच

उक्तवानस्मि कल्याणि धर्मस्य परमा गतिः।
लोके न शक्यते ज्ञातुमपि विज्ञैर्महात्मभिः।। ५९।।
नूनमन्तः कुलस्यायं भविता नचिरादिव।
तथा हि कुरवः सर्वे लोभमोहपरायणाः।। ६०।।
उपपन्नं च पाञ्चालि तवेदं वृत्तमीदृशम्।
यत् कृच्छ्रमपि सम्प्राप्ता धर्ममेवान्ववेक्षसे।। ६१।।

तब भीष्म ने कहा कि हे कल्याणी! मैंने पहले ही कह दिया है कि धर्म की गति बहुत सूक्ष्म है। संसार में विद्वान् महात्मा लोग भी उसे ठीक-ठीक नहीं जान पाते हैं। वास्तव में इस कुल का जल्दी ही अन्त आने वाला है, क्योंकि ये सारे कौरव लोभ और मोह के आधीन हो गए हैं। हे पांचाल राजकुमारी! तुम्हारा यह आचरण तुम्हारे ही योग्य है, जो कष्ट में पड़ कर भी तुम धर्म का ही सहारा लिये हुए हो।

उनत्तीसवाँ अध्याय : भीमसेन की प्रतिज्ञा और धृतराष्ट्र से द्रौपदी को वरों की प्राप्ति।

दृष्ट्वा तथा पार्थिवपुत्रपौत्रां-
स्तूष्णींभूतान् धृतराष्ट्रस्य पुत्रः।
स्मयन्निवेदं वचनं बभाषे
पाञ्चालराजस्य सुतां तदानीम्।। १।।
तिष्ठत्वयं प्रश्न उदारसत्त्वे
भीमेऽर्जुने सहदेवे तथैव।
पत्यौ च ते नकुले याज्ञसेनि
वदन्त्वेते वचनं त्वत्प्रसूतम्।। २।।

तब राजाओं के पुत्रों और पौत्रों को चुप बैठा हुआ देख कर धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने पांचाल राज की पुत्री द्रौपदी से मुस्कारते हुए यह कहा कि हे द्रौपदी! तुम्हारा यह प्रश्न बलवान् भीम, अर्जुन, सहदेव, तुम्हारे पति युधिष्ठिर और नकुल पर छोड़ दिया जाता है। ये तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देंगे।

अनीश्वरं विब्रुवन्त्वार्यमध्ये
युधिष्ठिरं तव पाञ्चालि हेतोः।
कुर्वन्तु सर्वे चानृतं धर्मराजं
पाञ्चालि त्वं मोक्ष्यसे दासभावात्।। ३।।
धर्मे स्थितो धर्मसुतो महात्मा
स्वयं चेदं कथयत्विन्द्रकल्पः।
ईशो वा ते ह्यनीशोऽथ वैष
वाक्यादस्य क्षिप्रमेकं भजस्व।। ४।।

हे पांचाली! ये सारे राजाओं के बीच में यह कह दें कि युधिष्ठिर को उस समय तुम्हें दाँव पर लगाने

का अधिकार नहीं था, क्योंकि वह पराधीन था। ये तुम्हारे लिये युधिष्ठिर को भूठा सिद्ध कर दें, फिर तुम दास्यभाव से छूट जाओगी। धर्म पुत्र महात्मा युधिष्ठिर जो धर्म में विद्यमान रहते हैं और इन्द्र के समान तेजस्वी हैं, स्वयं अपने विषय में कह दें कि उन्हें उस समय दाँव पर रखने का अधिकार था या नहीं। फिर इनके कहने से ही तुम दासीपना या अदासीपना एक अवस्था का आश्रय लो।

द्रौपदी उवाच– धर्मे स्थितो धर्मसुतो महात्मा
धर्मश्च सूक्ष्मो निपुणोपलक्ष्यः।
वाचापि भर्तुः परमाणुमात्र–
मिच्छामि दोषं न गुणान् विसृज्य।। ५।।

तब द्रौपदी ने कहा कि धर्मपुत्र महात्मा धर्म में ही स्थित हैं। धर्म का स्वरूप बड़ा सूक्ष्म है, इसे विद्वान् व्यक्ति ही समझ सकते हैं। मैं अपने पति के गुणों को छोड़ कर उनके परमाणु तुल्य दोष को भी वाणी से नहीं कहना चाहती।

भीमसेन उवाच

यद्येष गुरुरस्माकं धर्मराजो महामनाः।
न प्रभुः स्यात् कुलस्यास्य न वयं मर्षयेमहि।। ६।।
धर्मपाशसितस्त्वेवं नाधिगच्छामि संकटम्।
गौरवेण विरुद्धश्च निग्रहादर्जुनस्य च।। ७।।
धर्मराजनिसृष्टस्तु सिंहः क्षुद्रमृगानिव।
धार्तराष्ट्रानिमान् पापान् निष्पिषेयं तलासिभिः।। ८।।

तब भीमसेन ने कहा कि यदि ये धर्मराज, महामना युधिष्ठिर हमारे कुल के स्वामी नहीं होते और हमारे पितृतुल्य नहीं होते तो हम कौरवों के इस बर्ताव को कभी सहन नहीं करते। मैं धर्म के बन्धन में बँधा हूँ, इसलिये इस संकट से पार उतरने का मार्ग नहीं पा रहा हूँ। बड़े भाई के गौरव के विरुद्ध मैं नहीं जा सकता और अर्जुन ने भी मुझे रोक रखा है। यदि ये धर्मराज मुझे आज्ञा दे दें तो जैसे सिंह छोटे मृगों को दबोच लेता है, वैसे ही मैं धृतराष्ट्र के पापी पुत्रों को अपनी हथेली रूपी तलवार से पीस डालूँ।

भीमसेनवचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा।
युधिष्ठिरमुवाचेदं तूष्णीम्भूतमचेतनम्।। ९।।
भीमार्जुनौ यमौ चैव स्थितौ ते नृप शासने।
प्रश्नं ब्रूहि च कृष्णां त्वमजितां यदि मन्यसे।। १०।।
एवमुक्त्वा तु कौन्तेयमपोह्य वसनं स्वकम्।
स्मयन्नवेक्ष्य पाञ्चालीमैश्वर्यमदमोहितः।। ११।।
अभ्युत्स्मयित्वा राधेयं भीममाधर्षयन्निव।
द्रौपद्याः प्रेक्षमाणायाः सव्यमूरुमदर्शयत्।। १२।।

भीमसेन की बात सुन कर राजा दुर्योधन ने तब अचेतन की सी अवस्था में मौन बैठे हुए युधिष्ठिर से यह कहा कि हे नरेश! भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव आपकी आज्ञा में हैं। द्रौपदी के प्रश्न पर आप कुछ बोलिये। आप क्या द्रौपदी को जीता हुआ नहीं मानते? कुन्तीपुत्र से ऐसा कह कर, ऐश्वर्य के मद से मोहित हुए दुर्योधन ने कर्ण को प्रोत्साहित करते हुए, भीम का तिरस्कार सा करते हुए, मुस्कराते हुए द्रौपदी की तरफ देख कर, द्रौपदी के देखते हुए अपनी बायीं जाँघ का वस्त्र हटा कर उसे द्रौपदी को दिखाया।

भीमसेनस्तमालोक्य नेत्रे उत्फाल्य लोहिते।
प्रोवाच राजमध्ये तं सभां विश्रावयन्निव।। १३।।
पितृभिः सह सालोक्यं मा स्म गच्छेद् वृकोदरः।
यद्येतमूरुं गदया न भिन्द्यां ते महाहवे।। १४।।
क्रुद्धस्य तस्य सर्वेभ्यः स्रोतोभ्यः पावकार्चिषः।
वृक्षस्येव विनिश्चेरुः कोटरेभ्यः प्रदह्यतः।। १५।।

तब भीम ने उसे देख कर अपनी लाल आँखें फाड़ कर राजाओं के बीच में सभा को सुनाते हुए यह कहा कि यदि महान् युद्ध में मैं तेरी इस जाँघ को गदा से न तोड़ दूँ, तो भीम को अपने पूर्वजों जैसी सद्गति प्राप्त न हो। उस समय क्रोधाग्नि से जलते हुए भीम के रोम-रोम से मानों आग की लपटें निकल रहीं थीं जैसे जलते हुए पेड़ के कोटरों से आग की लपटें निकलती दिखाई देती हैं।

विदुर उवाच– परं भयं पश्यत भीमसेनात्
तद् बुध्यध्वं धृतराष्ट्रस्य पुत्राः।
दैवेरितो नूनमयं पुरस्तात्
परोऽनयो भरतेषूदपादि।। १६।।
अतिद्यूतं कृतमिदं धार्तराष्ट्रा
यस्मात् स्त्रियं विवदध्वं सभायाम्।
योगक्षेमौ नश्यतो वः समग्रौ
पापान् मन्त्रान् कुरवो मन्त्रयन्ति।। १७।।

तब विदुर ने कहा कि अरे धृतराष्ट्र के पुत्रों! तुम्हें भीमसेन से बड़ा भारी संकट उत्पन्न हो गया है। तुम इस बात को समझो। निश्चय ही परमात्मा की इच्छा से भरतवंशियों के सामने यह महान् अन्याय

उत्पन्न हो गया हैं। हे धृतराष्ट्र के पुत्रों! तुमने द्यूतक्रीड़ा में मर्यादा का उल्लंघन कर दिया है, जिसके कारण तुम सभा में स्त्री को ला कर उसके लिये विवाद कर रहे हो। तुम्हारे सारे योग और क्षेम नष्ट हो रहे हैं। वास्तव में कौरव लोग पाप से युक्त मन्त्रणा ही करते हैं।

इमं धर्मं कुरवो जानताशु
ध्वस्ते धर्मे परिषत् सम्प्रदुष्येत्।
इमां चेत् पूर्वं कितवोऽग्लहिष्य-
दीशोऽभविष्यद पराजितात्मा।। १८।।
स्वप्ने यथैतद् विजितं धनं स्या-
देवं मन्ये यस्य दीव्यत्यनीशः।
गान्धारराजस्य वचो निशम्य
धर्मादस्मात् कुरवो मापयात।। १९।।

हे कौरवों! तुम धर्म की इस बात को जल्दी ही समझ लो कि धर्म के नष्ट हो जाने पर सारी सभा को दोष लगता है। ये जुआरी युधिष्ठिर यदि इस द्रौपदी को पहले ही अर्थात् अपने आपको हारने से पहले दाँव पर लगाते, तो उस समय स्वयं न हारने के कारण ये उसे दाँव पर लगाने के अधिकारी हो सकते थे। मैं समझता हूँ कि जो अपना स्वामी नहीं है अर्थात् दास है, वह यदि किसी धन से जूआ खेलता है, तो उसका खेलना ऐसे ही है जैसे कोई स्वप्न में खेल कर हार या जीत को प्राप्त करता है। इसलिये हे कौरवों! तुम शकुनि की बात को सुन कर अपने धर्म से भ्रष्ट मत हो जाओ।

दुर्योधन उवाच– **भीमस्य वाक्ये तद्वदेवार्जुनस्य**
स्थितोऽहं वै यमयोश्चैवमेव।
युधिष्ठिरं ते प्रवदन्त्वनीश-
मथो दास्यान्मोक्ष्यसे याज्ञसेनि।। २०।।

अर्जुन उवाच– **ईशो राजा पूर्वमासीद् ग्लहे नः**
कुन्तीसुतो धर्मराजो महात्मा।
ईशस्त्वयं कस्य पराजितात्मा
तज्जानीध्वं कुरवः सर्व एव।। २१।।

तब दुर्योधन ने कहा कि हे द्रौपदी! मैं भीम, अर्जुन, नकुल, और सहदेव की बात मानने को तैयार हूँ, वे कह दें कि युधिष्ठिर उस समय अपने स्वामी नहीं थे, तभी तुम इस दासीपने से मुक्त हो जाओगी। तब अर्जुन ने कहा कि कुन्तीपुत्र, महात्मा धर्मराज राजा युधिष्ठिर पहले जूए में हमारे स्वामी थे, पर जब ये अपने आप को हार गये, तो ये किसके स्वामी रहे? इस बात को तुम सारे कौरव लोग समझो।

धृतराष्ट्र उवाच– **हतोऽसि दुर्योधन मन्दबुद्धे**
यस्त्वं सभायां कुरुपुङ्गवानाम्।
स्त्रियं समाभाषसि दुर्विनीत
विशेषतो द्रौपदीं धर्मपत्नीम्।। २२।।
एवमुक्त्वा धृतराष्ट्रो मनीषी
हितान्वेषी बान्धवानामपायात्।
कृष्णां पाञ्चालीमब्रवीत् सान्त्वपूर्वं
विमृश्यैतत् प्रज्ञया तत्त्वबुद्धिः।। २३।।
वरं वृणीष्व पाञ्चालि मत्तो यदभिवाञ्छसि।
वधूनां हि विशिष्टा मे त्वं धर्मपरमा सती।। २४।।

तब धृतराष्ट्र बोले कि अरे मन्दबुद्धि दुर्योधन! तू मारा गया। अरे दुर्विनीत! जो तू कुरुश्रेष्ठों की सभा में स्त्री से विशेष कर द्रौपदी जैसी धर्मपत्नी से पापयुक्त बातें कर रहा है। ऐसा कह कर मनीषी, तत्वदर्शी धृतराष्ट्र ने बान्धवों को विनाश से बचा कर उनके हित की इच्छा से बुद्धिपूर्वक सोच कर द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए यह कहा कि हे पांचाली! तू मुझ से जो वर चाहती है, माँग ले। तू मेरी पुत्रवधुओं में सबसे श्रेष्ठ और धर्मपरायण तथा सती है।

द्रौपद्युवाच– **ददासि चेद् वरं मह्यं वृणोमि भरतर्षभ।**
सर्वधर्मानुगः श्रीमानदासोऽस्तु युधिष्ठिरः।। २५।।
मनस्विनमजानन्तो मैवं ब्रूयुः कुमारकाः।
एष वै दासपुत्रो हि प्रतिविन्ध्यं ममात्मजम्।। २६।।
राजपुत्रः पुरा भूत्वा यथा नान्यः पुमान् क्वचित्।
राजभिर्लालितस्यास्य न युक्ता दासपुत्रता।। २७।।

तब द्रौपदी ने कहा कि हे भरतश्रेष्ठ! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मैं यह वर माँगती हूँ कि सारे धर्मों का पालन करने वाले श्रीमान् युधिष्ठिर दासता से छूट जायें, जिससे मेरे मनस्वी पुत्र प्रतिविन्ध्य को दूसरे राजकुमार अनजाने में भी यह न कह दें कि यह दास पुत्र है। जैसे पहले कोई राजा का पुत्र होकर पीछे दास का पुत्र नहीं होता, उसी प्रकार राजाओं द्वारा पाले गये मेरे इस पुत्र का दास पुत्र होना उचित नहीं है।

धृतराष्ट्र उवाच

एवं भवतु कल्याणि यथा त्वमभिभाषसे।
द्वितीयं ते वरं भद्रे ददानि वरयस्व ह।। २८।।

मनो हि मे वितरति नैकं त्वं वरमर्हसि।
द्रौपद्युवाच- **सरथौ सधनुष्कौ च भीमसेनधनंजयौ।। २९।।**
यमौ च वरये राजन्नदासान् स्ववशानहम्।

धृतराष्ट्र उवाच

तथास्तु ते महाभागे यथा त्वं नन्दिनीच्छसि।। ३०।।
तृतीयं वरयास्मत्तो नासि द्वाभ्यां सुसत्कृता।
त्वं हि सर्वस्नुषाणां मे श्रेयसी धर्मचारिणी।

द्रौपद्युवाच

लोभो धर्मस्य नाशाय भगवन् नाहमुत्सहे।। ३१।।

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि कल्याणी! जैसा तू कहती है ऐसा ही होगा। हे भद्रे! मैं तुझे दूसरा वर भी देता हूँ। तू उसे भी माँग ले। मेरा मन मुझे प्रेरणा दे रहा है कि तू एक ही वर के योग्य नहीं है। तब द्रौपदी ने कहा कि हे राजन्! मैं भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को अपने रथों और धनुषों के साथ दास भाव से रहित स्वतन्त्र देखना चाहती हूँ। यह मेरा दूसरा वर है। तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे महाभागे, अपने कुल को आनन्द देने वाली! जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा। तू तीसरा भी वर माँग। दो वरों से तेरा अच्छा सत्कार नहीं हुआ है। तुम मेरी सारी पुत्र वधुओं में श्रेष्ठ और धर्म का पालन करने वाली हो। तब द्रौपदी ने कहा कि हे भगवन्! लोभ धर्म का नाश करने वाला है, इसलिये मैं और कुछ नहीं माँगती।

तीसवाँ अध्याय : पाण्डवों का इन्द्रप्रस्थ की तरफ प्रस्थान।

कर्ण उवाच

या नः श्रुता मनुष्येषु स्त्रियो रूपेण सम्मताः।
तासामेतादृशं कर्म न कस्याश्चन शुश्रुम।। १।।
क्रोधाविष्टेषु पार्थेषु धार्तराष्ट्रेषु चाप्यति।
द्रौपदी पाण्डुपुत्राणां कृष्णा शान्तिरिहाभवत्।। २।।
अप्लवेऽम्भसि मग्नानामप्रतिष्ठे निमज्जताम्।
पाञ्चाली पाण्डुपुत्राणां नौरेषा पारगाभवत्।। ३।।

तब कर्ण बोला कि हमने मनुष्यों में जितनी सुन्दर स्त्रियों के बारे में सुना है, उनमें से किसी का भी ऐसा अद्भुत कर्म नहीं सुना। धृतराष्ट्र के पुत्र और कुन्ती के पुत्र क्रोध में भरे हुए थे। तब यह द्रुपद कुमारी कृष्णा ने पाण्डुपुत्रों के लिये शान्ति प्रदान करने का कार्य किया। पाण्डु के पुत्र बिना नौका और बिना आधार के संकट रूपी सागर में डूब रहे थे। तभी इस पांचाली ने नाव बन कर उन्हें पार लगा दिया।

तद् वै श्रुत्वा भीमसेनः कुरुमध्येऽत्यमर्षणः।
स्त्रीगतिः पाण्डुपुत्राणामित्युवाच सुदुर्मनाः।। ४।।

भीम उवाच

इहैवैतांस्त्वहं सर्वान् हन्मिशत्रून् समागतान्।
अथ निष्क्रम्य राजेन्द्र समूलान् हन्मि भारत।। ५।।
किं नो विवदितेनेह किमुक्तेन च भारत।
अद्यैवैतान् निहन्मीह प्रशाधि पृथिवीमिमाम्।। ६।।

कौरवों के बीच कर्ण की यह बात सुन कर अत्यन्त असहनशील भीमसेन बहुत दुःखी होकर कहने लगे कि हाय पाण्डवों का उद्धार एक स्त्री से हुआ। वे राजा युधिष्ठिर से बोले कि हे भरतवंशी राजेन्द्र! मैं यहाँ आए हुए सारे शत्रुओं को यहाँ से निकल कर जड़ सहित नष्ट कर देता हूँ। हमें किसी से विवाद करने या कुछ कहने की क्या आवश्यकता है। हे भरतवंशी मैं आज ही इन सबको यहाँ मार देता हूँ। आप फिर सारी पृथिवी पर राज्य कीजिये।

इत्युक्त्वा भीमसेनस्तु कनिष्ठैर्भ्रातृभिः सह।
मृगमध्ये यथा सिंहो मुहुर्मुहुरुदैक्षत।। ७।।
सान्त्व्यमानो वीक्षमाणः पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा।
खिद्यत्येव महाबाहुरन्तर्दाहेन वीर्यवान्।। ८।।
युधिष्ठिरस्तमावार्य बाहुना बाहुशालिनम्।
मैवमित्यब्रवीच्चैनं जोषमास्स्वेति भारतः।। ९।।
निवार्य च महाबाहुं कोपसंरक्तलोचनम्।
पितरं समुपातिष्ठद् धृतराष्ट्रं कृताञ्जलिः।। १०।।

ऐसा कह कर भीमसेन छोटे भाइयों के साथ अपने शत्रुओं को बार-बार उसी प्रकार देखने लगे जैसे सिंह मृगों की तरफ देख रहा हो। अनायास ही महान् कर्म करने वाले अर्जुन उन्हें सान्त्वना दे रहे थे, पर वे पराक्रमी महाबाहु अपने अन्दर की क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो रहे थे। भरतवंशी युधिष्ठिर भी विशाल बाहों वाले भीम को अपनी बाँह से रोकते हुए बोले कि ऐसा मत करो। शान्ति धारण करो। क्रोध से लाल आँखों वाले महाबाहु भीम को निवारण कर युधिष्ठिर हाथ जोड़ कर अपने ताऊ धृतराष्ट्र के समीप गये।

युधिष्ठिर उवाच

राजन् किं करवामस्ते प्रशाध्यस्मांस्त्वमीश्वरः।
नित्यं हि स्थातुमिच्छामस्तव भारत शासने।। ११।।

धृतराष्ट्र उवाच

अजातशत्रो भद्रं ते अरिष्टं स्वस्ति गच्छत।
अनुज्ञाताः सहधनाः स्वराज्यमनुशासत।। १२।।
इदं चैवावबोद्धव्यं वृद्धस्य मम शासनम्।
मया निगदितं सर्वं पथ्यं निःश्रेयसं परम्।। १३।।
वेत्थ त्वं तात धर्माणां गतिं सूक्ष्मां युधिष्ठिर।
विनीतोऽसि महाप्राज्ञ वृद्धानां पर्युपासिता।। १४।।

युधिष्ठिर तब बोले कि हे राजन्! आप हमारे स्वामी हैं। आप हमें आदेश दीजिये कि हम क्या करें? हे भरतश्रेष्ठ! हम सदा ही आपके आदेश में रहना चाहते हैं। तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे अजातशत्रु! तुम्हारा कल्याण हो! तुम विघ्न बाधाओं से रहित कुशल पूर्वक जाओ। मेरी आज्ञा से तुम अपने सारे धन के साथ अपने राज्य पर शासन करो। मुझ बूढ़े की यही आज्ञा है। इस बात को समझना कि मेरे द्वारा कही हुई सारी बातें तुम्हारे लिये लाभदायक और अत्यन्त कल्याणकारी होगी। हे तात युधिष्ठिर! तुम धर्म की सूक्ष्म जाति को जानते हो। हे महाप्राज्ञ! तुम विनीत हो और तुमने बड़े बूढ़ों की सेवा की है।

यतो बुद्धिस्ततः शान्तिः प्रशमं गच्छ भारत।
नादारुणि पतेच्छस्त्रं दारुण्येतन्निपात्यते।। १५।।
न वैराण्यभिजानन्ति गुणान् पश्यन्ति नागुणान्।
विरोधं नाधिगच्छन्ति ये त उत्तमपूरुषाः।। १६।।
स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि।
सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ते प्रतिक्रियाम्।। १७।।

हे भारत! जहाँ बुद्धि है वहीं शान्ति होती है। इसलिये तुम शान्त हो जाओ। कुल्हाड़ी जो लकड़ी नहीं है, उस पर नहीं डाली जाती। लकड़ी पर ही कुल्हाड़ी से प्रहार किया जाता है। जो पुरुष वैर-भावना को याद नहीं रखते, गुणों की तरफ ही देखते हैं, अवगुणों की तरफ नहीं देखते हैं और विरोध नहीं करते, उन्हीं को उत्तम पुरुष कहा जाता है। भले आदमी अच्छे कार्यों को ही याद रखते हैं, शत्रुता के कार्यों को याद नहीं रखते। वे दूसरों की भलाई करते हुए उनकी प्रतिक्रिया की राह नहीं देखते।

संवादे परुषाण्याहुर्युधिष्ठिर नराधमाः।
प्रत्याहुर्मध्यमास्त्वेतेऽनुक्ताः परुषमुत्तरम्।। १८।।
न चोक्ता नैव चानुक्तास्त्वहिताः परुषा गिरः।
प्रतिजल्पन्ति वै धीराः सदा तूत्तमपूरुषाः।। १९।।
स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि।
सन्तः प्रतिविजानन्तो लब्ध्वा प्रत्ययमात्मनः।। २०।।

ये युधिष्ठिर! नीच मनुष्य वार्तालाप के आरम्भ में कटु वचन कहने लगते हैं, मध्यम श्रेणी के मनुष्य वे हैं जो पहले कटु वचन नहीं कहते हैं पर जब उनसे कहे जाते हैं, तब वे प्रत्युत्तर में कटु वचन कहते हैं। पर जो किसी के कटु वचन कहने पर भी और न कहने पर भी स्वयं उत्तर में कटु वचन नहीं कहते, वे सदा उत्तम पुरुष माने जाते हैं। वे अपने साथ किये हुए अच्छे कार्यों को ही याद रखते हैं वैर के कार्यों को नहीं। वे अपने अनुभवों को सामने रख कर दूसरों के दुःख सुख को भी अपने समान ही मानते हैं।

असम्भिन्नार्थमर्यादाः साधवः प्रियदर्शनाः।
तथा चरितमार्येण त्वयास्मिन् सत्समागमे।। २१।।
दुर्योधनस्य पारुष्यं तत् तात हृदि मा कृथाः।
मातरं चैव गान्धारीं मां च त्वं गुणकाङ्क्षया।। २२।।
उपस्थितं वृद्धमन्धं पितरं पश्य भारत।
प्रेक्षापूर्वं मया द्यूतमिदमासीदुपेक्षितम्।। २३।।
मित्राणि द्रष्टुकामेन पुत्राणां च बलाबलम्।
अशोच्याः कुरवो राजन् येषां त्वमनुशासिता।। २४।।
मन्त्री च विदुरो धीमान् सर्वशास्त्रविशारदः।

साधु लोग आर्य मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते, उनके दर्शन प्रिय लगने वाले होते हैं। हे तात! दुर्योधन की उस कठोरता को अपने हृदय में स्थान मत देना। हे भारत! तुम उत्तम गुणों की इच्छा से माता गान्धारी और अपने सामने उपस्थित मुझ अन्धे और बूढ़े ताऊ को देखना। मैंने सोच विचार कर भी इस जूए के कार्यक्रम की इसलिये उपेक्षा कर दी थी, क्योंकि मैं अपने पुत्रों के बलाबल और तुम जैसे मित्रों से मिलना चाहता था। हे राजन्! जिन कुरुवंशियों का तुम जैसा शासक है और सर्वशास्त्र विशारद महामति विदुर जैसा मन्त्री है, वे कौरव शोक करने योग्य नहीं हैं।

त्वयि धर्मोऽर्जुने धैर्यं भीमसेने पराक्रमः।। २५।।
श्रद्धा च गुरुशुश्रूषा यमयोः पुरुषाग्र्ययोः।

अजातशत्रो भद्रं ते खाण्डवप्रस्थमाविश।
भ्रातृभिस्तेऽस्तु सौभ्रात्रं धर्मे ते धीयतां मनः।। २६।।
इत्युक्तो भरतश्रेष्ठः धर्मराजो युधिष्ठिरः।
कृत्वाऽऽर्यसमयं सर्वं प्रतस्थे भ्रातृभिः सह।। २७।।
ते रथान् मेघसंकाशानास्थाय सह कृष्णया।
प्रययुर्हृष्टमनस इन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम्।। २८।।

तुम्हारे अन्दर धर्म है, अर्जुन में धैर्य है और भीमसेन में पराक्रम है और पुरुषश्रेष्ठ दोनों जुड़वाँ भाइयों में श्रद्धा और गुरुओं की सेवा है। हे अजातशत्रु! तुम्हारा कल्याण हो। तुम खाण्डव प्रस्थ में जाओ। तुम्हारे अन्दर भाइयों के प्रति प्रेम बना रहे और तुम्हारा मन धर्म में लगा रहे। ऐसा कहे जाने पर भरतश्रेष्ठ, धर्मराज युधिष्ठिर सारे श्रेष्ठ आदेशों को स्वीकार कर भाइयों के साथ वहाँ से विदा हुए। वे द्रौपदी के साथ मेघ के समान ध्वनि करने वाले रथों पर बैठ कर प्रसन्न हृदय से उत्तम नगर इन्द्रप्रस्थ की तरफ चल दिये।

इकत्तीसवाँ अध्याय : दुर्योधन का धृतराष्ट्र से पुनः द्यूतक्रीड़ा की स्वीकृति लेना।

दुर्योधन उवाच-

अहीनाशीविषान् क्रुद्धान् नाशाय समुपस्थितान्।
कृत्वा कण्ठे च पृष्ठे च कः समुत्स्रष्टुमर्हति।। १।।
आत्तशस्त्रा रथगताः कुपितास्तात पाण्डवाः।
निःशेषं वः करिष्यन्ति क्रुद्धा ह्याशीविषा इव।। २।।
ते त्वास्थाय रथान् सर्वे बहुशस्त्रपरिच्छदान्।
अभिघ्नन्तो रथव्रातान् सेनायोगाय निर्ययुः।। ३।।
न क्षंस्यन्ते तथास्माभिर्जातु विप्रकृता हि ते।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं कस्तेषां क्षन्तुमर्हति।। ४।।

तब दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से कहा कि भयंकर विष वाले साँपों को, जो क्रोध में भरे हुए हों और नाश करने के लिये तैयार हों, अपने गले और पीठ में लटका कर कौन ऐसे ही छोड़ सकता है? हे तात! अस्त्र शस्त्रों से युक्त रथ में बैठे हुए, क्रोध में भरे हुए वे पाण्डव भयंकर विषधर सर्प के समान आपके कुल को नष्ट कर देंगे। वे सब लोग बहुत सारे शस्त्रास्त्रों से युक्त रथों पर बैठ कर, शत्रुओं के रथियों के संहार के लिये सेना इकट्ठी करने के लिये गये हैं। हमारे द्वारा उनका तिरस्कार किया गया है, इसके लिये वे निश्चित रूप से हमें क्षमा नहीं करेंगे। द्रौपदी को जो क्लेश दिया गया है, उसे उनमें से कौन क्षमा कर देगा?

पुनर्दीव्याम भद्रं ते वनवासाय पाण्डवैः।
एवमेतान् वशे कर्तुं शक्ष्यामः पुरुषर्षभ।। ५।।
ते वा द्वादश वर्षाणि वयं वा द्यूतनिर्जिताः।
प्रविशेम महारण्यमजिनैः प्रतिवासिताः।। ६।।
त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम्।
ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश।। ७।।
अक्षानुप्त्वा पुनर्द्यूतमिदं कुर्वन्तु पाण्डवाः।

हे पुरुषश्रेष्ठ! आपका कल्याण हो। हम चाहते हैं कि वनवास की शर्त रख कर हम पाण्डवों के साथ फिर जूआ खेलें। इस प्रकार हम उन्हें अपने वश में कर सकेंगे। जीते जाने पर या तो वे, या हम बारह वर्षों के लिये महान वन में प्रवेश कर वहाँ रहें। तेरहवें वर्ष में किसी नगर में अज्ञात रूप से रहें। यदि तेरहवे वर्ष में पहचान में आ जायें तो पुनः बारह वर्ष के लिये वन में रहें। इस शर्त पर पाण्डव पुनः हमारे साथ जूआ खेलें।

धृतराष्ट्र उवाच

तूर्णं प्रत्यानयस्वैतान् कामं व्यध्वगतानपि।। ८।।
आगच्छन्तु पुनर्द्यूतमिदं कुर्वन्तु पाण्डवाः।
ततो द्रोणः सोमदत्तो बाह्लीकश्चैव गौतमः।। ९।।
विदुरो द्रोणपुत्रश्च वैश्यापुत्रश्च वीर्यवान्।
भूरिश्रवाः शान्तनवो विकर्णश्च महारथः।। १०।।
मा द्यूतमित्यभाषन्त शमोऽस्त्विति च सर्वशः।

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि उन्हें जल्दी से बुला लो। भले ही वे दूर रास्ते पर चले गये हों। पाण्डव लोग आयें और फिर इस जूए के खेल को खेलें। तब द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, कृपाचार्य, विदुर, अश्वत्थामा, तेजस्वी युयुत्सु, भूरिश्रवा, भीष्म, महारथी विकर्ण, सब यह कहने लगे कि जूआ नहीं होना चाहिये। सब जगह शान्ति बनी रहनी चाहिये।

अथाब्रवीन्महाराज धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्।। ११।।
पुत्रहार्दाद् धर्मयुक्ता गान्धारी शोककर्षिता।
मा निमज्जीः स्वदोषेण महाप्सु त्वं हि भारत।। १२।।
मा बालानामशिष्टानामभिमंस्था मतिं प्रभो।
मा कुलस्य क्षये घोरे कारणं त्वं भविष्यसि।। १३।।
बद्धं सेतुं को नु भिन्द्याद् धमेच्छान्तं च पावकम्।

शमे स्थितान् को नु पार्थान् कोपयेद् भरतर्षभ।। १४।।
स्मरन्तं त्वामाजमीढ स्मारयिष्याम्यहं पुनः।

तब पुत्र के स्नेह के कारण शोक से कातर धर्मपरायणा गान्धारी राजा धृतराष्ट्र से बोली कि हे महाराज, भरतश्रेष्ठ प्रभो! आप अपने ही दोष से विपत्ति के महासागर में मत डूबिये। आप इन अशिष्ट बच्चों की बुद्धि का समर्थन मत कीजिये। इस कुल के भयंकर विनाश में आप कारण मत बनो। बँधे हुए पुल को कौन तोड़ता है? शान्त हुई अग्नि को कौन पुनः प्रज्वलित करता है? हे भरतश्रेष्ठ! कुन्ती के शान्ति परायण पुत्रों को कौन क्रोध दिलाना चाहेगा? हे अजामीढनन्दन! आप सब कुछ जानते हैं, फिर भी मैं आपको पुनः याद दिलाती रहूँगी।

शास्त्रं न शास्ति दुर्बुद्धिं श्रेयसे चेतराय च।। १५।।
न वै वृद्धो बालमतिर्भवेद् राजन् कथंचन।
त्वन्नेत्राः सन्तु ते पुत्रा मा त्वां दीर्णाः प्रहासिषुः।। १६।।
तस्मादयं मद्वचनात् त्यज्यतां कुलपांसनः।
तथा ते न कृतं राजन् पुत्रस्नेहान्नराधिप।
तस्य प्राप्तं फलं विद्धि कुलान्तकरणाय यत्।। १७।।

हे राजन्! दुर्बुद्धि पुरुष को शास्त्र भी भला या बुरा कुछ भी नहीं सिखा सकते। जो बच्चों जैसी बुद्धिवाला है, वह किसी प्रकार भी बूढ़ों के समान ज्ञानवान नहीं हो सकता। आप ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे आपके पुत्र आपके शासन में रहें। ऐसा न हो कि ये विनाश को प्राप्त होकर आपको छोड़ कर चले जायें। इसलिये आप मेरे कहने से इस कुल कलंक दुर्योधन का त्याग कर दीजिये। हे नराधिप! पुत्र के स्नेह से आपने वह कार्य नहीं किया, जो आपको करना चाहिये था। आप समझिये कि उसी का यह फल कुल को नष्ट करने के लिये उपस्थित हो गया है।

शमेन धर्मेण नयेन युक्ता
या ते बुद्धिः सास्तु ते मा प्रमादीः।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्री-
र्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान्।। १८।।
अथाब्रवीन्महाराजो गान्धारीं धर्मदर्शिनीम्।
अन्तः कामं कुलस्यास्तु न शक्नोमि निवारितुम्।। १९।।
यथेच्छन्ति तथैवास्तु प्रत्यागच्छन्तु पाण्डवाः।
पुनर्द्यूतं च कुर्वन्तु मामकाः पाण्डवैः सह।। २०।।

आपकी बुद्धि इस समय जो शम, धर्म, और नीति से युक्त है, वह ऐसी ही बनी रहे। आप प्रमाद न करें। क्रूरता के कार्यों से प्राप्त हुई लक्ष्मी विनाश करने वाली होती है पर वही यदि कोमल उपायों से प्राप्त की जाती है, तो बढ़ती हुई पुत्र और पौत्रों तक चली जाती है। तब धर्म पर दृष्टि रखने वाली गन्धारी से महाराज धृतराष्ट्र ने कहा कि भले ही इस कुल का अन्त हो जाये। मैं इन लोगों को रोक नहीं सकता। जैसा ये चाहते हैं, वैसा ही हो। पाण्डव लौट आयें और मेरे पुत्र पाण्डवों के साथ फिर जूआ खेलें।

बत्तीसवाँ अध्याय : पाण्डवों को पुनः जूआ खिलवाना, युधिष्ठिर का हारना।

ततो व्यध्वगतं पार्थं प्रातिकामी युधिष्ठिरम्।
उवाच वचनाद् राज्ञो धृतराष्ट्रस्य धीमतः।। १।।
उपास्तीर्णा सभा राजन्नक्षानुप्त्वा युधिष्ठिर।
एहि पाण्डव दीव्येति पिता त्वाऽऽहेति भारत।। २।।

युधिष्ठिर उवाच

अक्षद्यूते समाह्वानं नियोगात् स्थविरस्य च।
जानन्नपि क्षयकरं नातिक्रमितुमुत्सहे।। ३।।
इति ब्रुवन् निववृते भ्रातृभिः सह पाण्डवः।
जानंश्च शकुनेर्मायां पार्थो द्यूतमियात् पुनः।। ४।।

तब मार्ग में बहुत दूर तक गये हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के पीछे प्रतिकामी ने जाकर धीमान् धृतराष्ट्र की आज्ञा से यह कहा कि हे भरतवंशी राजन्! आपके पिता ने आपसे यह कहा है कि हे युधिष्ठिर! सभा फिर सदस्यों से भर गयी है। हे पाण्डु पुत्र! आओ और पुनः पासे फैंक कर जूआ खेलो। तब युधिष्ठिर ने कहा कि यह जानते हुए भी कि जूए के खेल के लिये बूढ़े आदमी की आज्ञा से बुलाया जाना विनाश करने वाला है, पर फिर भी मैं उनके आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकता। ऐसा कहते हुए वे पाण्डव कुन्तीपुत्र शकुनि के छल को जानते हुए भी जूए के लिये फिर लौट आये।

विविशुस्ते सभां तां तु पुनरेव महारथाः।
व्यथयन्ति स्म चेतांसि सुहृदां भरतर्षभाः।। ५।।
यथोपजोषमासीनाः पुनर्द्यूतप्रवृत्तये।

सर्वलोकविनाशाय दैवेनोपनिपीडिताः।। ६।।

शकुनिरुवाच

अमुञ्चत् स्थविरो यद् वो धनं पूजितमेव तत्।
महाधनं ग्लहं त्वेकं शृणु भो भरतर्षभ।। ७।।
वयं वा द्वादशाब्दानि युष्माभिर्द्यूतनिर्जिताः।
प्रविशेम महारण्यं रौरवाजिनवाससः।। ८।।
त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम्।
ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश।। ९।।

वे महारथी उस सभा में पुनः प्रविष्ट हुए। वे भरतश्रेष्ठ उस समय अपने हितैषियों के हृदयों को व्यथित कर रहे थे। परमेश्वर की व्यवस्था के वशीभूत हुए वे संसार के विनाश के लिये पुनः द्यूतक्रीड़ा के लिये यथोचित स्थानों पर आकर बैठ गये। तब शकुनि ने कहा कि वृद्ध राजा ने जो तुम्हारा धन छोड़ दिया वह तो आदरणीय है, पर अब सारे विशाल धन को एक ही दाँव पर खेलते हैं। हे भरत श्रेष्ठ! सुनो। तुम्हारे द्वारा जीते जाने पर या तो हम मृगचर्म धारण कर बारह वर्ष के लिये महान् वन में प्रवेश करेंगे और तेरहवें वर्ष में नगर में अज्ञात रूप से रहेंगे। यदि उस समय हमें किसी ने पहचान लिया तो फिर बारह वर्ष के लिये वन में जाएँगे।

अस्माभिर्निर्जिता यूयं वने द्वादश वत्सरान्।
वसध्वं कृष्णया सार्धमजिनैः प्रतिवासिताः।। १०।।
त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम्।
ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश।। ११।।
त्रयोदशे च निर्वृत्ते पुनरेव यथोचितम्।
स्वराज्यं प्रतिपत्तव्यमितरैरथवेतरैः।। १२।।
अनेन व्यवसायेन सहास्माभिर्युधिष्ठिर।
अक्षानुप्त्वा पुनर्द्यूतमेहि दीव्यस्व भारत।। १३।।

यदि आप हमारे द्वारा हार गये तो मृगचर्म पहन कर, द्रौपदी के साथ, बारह वर्ष वन में रहेंगे। आपको तेरहवाँ वर्ष नगर में लोगों से अज्ञात रह कर बिताना पड़ेगा। यदि उस समय किसी के द्वारा जाने गये तो फिर बारह वर्ष के लिये वन में रहना होगा। तेरहवाँ वर्ष पूरा होने पर हम या आप यथोचित रीति से अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे। हे भारत! युधिष्ठिर! इस शर्त के साथ तुम फिर पासे फैंक कर हमारे साथ जूआ खेलने के लिये आओ।

अथ सभ्याः सभामध्ये समुच्छ्रितकरास्तदा।
ऊचुरुद्विग्नमनसः संवेगात् सर्व एव हि।। १४।।
अहो धिग् बान्धवा नैनं बोधयन्ति महद् भयम्।
बुद्ध्या बुध्येन्न वा बुध्येदयं वै भरतर्षभः।। १५।।
जनप्रवादान् सुबहूच्छृण्वन्नपि नराधिपः।
ह्रिया च धर्मसंयोगात् पार्थो द्यूतमियात् पुनः।। १६।।

शकुनिरुवाच

समुत्क्षेपेण चैकेन वनवासाय भारत।
प्रति जग्राह तं पार्थो, ग्लहं जग्राह सौबलः।
जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत।। १७।।

तब सारे ही सभासद उद्विग्न मन से, आवेश के साथ अपने हाथ उठा कर कहने लगे कि अरे धिक्कार है। बान्धव लोग भी इन्हें जो महान् भय इनके ऊपर आने वाला है, उसके बारे में समझाते नहीं हैं। पता नहीं ये भरतश्रेष्ठ! अपनी बुद्धि से इस बात को समझेंगे या नहीं? लोगों की इस तरह की बहुत सी बातों को सुनते हुए भी वह राजा कुन्ती पुत्र लज्जा के कारण और धृतराष्ट्र की आज्ञापालन के धर्म के कारण फिर जूआ खेलने के लिये बैठ गये। तब शकुनि ने कहा कि हे भारत! एक पासे को फेंकने से ही वनवास वाला यह जूए का खेल पूरा हो जाएगा। कुन्तीपुत्र ने इस बात को स्वीकार किया। तब शकुनि ने पासे उठाये तथा उन्हें फेंक कर कहा कि मेरी जीत हो गयी।

ततः पराजिताः पार्था वनवासाय दीक्षिताः।
अजिनान्युत्तरीयाणि जगृहुश्च यथाक्रमम्।। १८।।
अजिनैः संवृतान् दृष्ट्वा हतराज्यानरिंदमान्।
प्रस्थितान् वनवासाय ततो दुःशासनोऽब्रवीत्।। १९।।

तब पराजित पाण्डवों ने वनवास की दीक्षा ली और क्रमशः सबने मृगचर्म को उत्तरीय के रूप में धारण किया। उन शत्रुओं को नष्ट कर देने वाले पाण्डवों को, जिनका राज्य हरण कर लिया गया था, तथा जो मृग चर्म धारण कर वनवास के लिये प्रस्थान कर रहे थे, दुःशासन ने कहा कि—

प्रवृत्तं धार्तराष्ट्रस्य चक्रं राज्ञो महात्मनः।
पराजिताः पाण्डवेया विपत्तिं परमां गताः।। २०।।
अद्यैव ते सम्प्रयाताः समैर्वर्त्मभिरस्थलैः।
गुणज्येष्ठास्तथा श्रेष्ठाः श्रेयांसो यद् वयं परैः।। २१।।
नरकं पातिताः पार्था दीर्घकालमनन्तकम्।
सुखाच्च हीना राज्याच्च विनष्टाः शाश्वतीः समाः।। २२।।
धनेन मत्ता ये ते स्म धार्तराष्ट्रान् प्रहासिषुः।
ते निर्जिता हतधना वनमेष्यन्ति पाण्डवाः।। २३।।

धृतराष्ट्र पुत्र महात्मा दुर्योधन का चक्रवर्ती राज्य स्थापित हो गया। पाण्डव लोग पराजित होकर अत्यन्त विपत्ति में पड़ गये। आज ही वे सामान्य मार्ग से, जिस पर सामान्य जनता की भीड़ के कारण चलने की जगह भी नहीं है, वन की तरफ जा रहे हैं। अब हम अपने शत्रुओं से गुणों में बड़े हैं, वैसे भी श्रेष्ठ हैं और उनसे अधिक लाभयुक्त स्थिति में हैं। कुन्तीपुत्रों को लम्बे समय तक न अन्त होने वाले नरक में गिरा दिया गया है। वे सदा के लिये सुखों से और राज्य से रहित हो गये हैं। जो पाण्डव पहले अपने धन के कारण मस्त होकर धृतराष्ट्र के पुत्रों की हँसी उड़ाया करते थे, वे पराजित हो गये। उनका धन हरण कर लिया गया। अब वे वन में जायेंगे।

न सन्ति लोकेषु पुमांस ईदृशा
इत्येव ये भावितबुद्धयः सदा।
ज्ञास्यन्ति तेऽऽत्मानमिमेऽद्य पाण्डवा
विपर्यये षण्ढतिला इवाफलाः।। २४।।
इदं हि वासो यदि वेदृशानां
मनस्विनां रौरवमाहवेषु।
अदीक्षितानामजिनानि यद्वद्
बलीयसां पश्यत पाण्डवानाम्।। २५।।

जो पाण्डव यह समझा करते थे कि तीनों लोकों में हमारे समान पुरुष कहीं नहीं है, वे विपरीत अवस्था में पहुँचे हुए, और थोथे तिलों के समान निस्सत्व हुए अपनी वास्तविक स्थिति को समझेंगे। मनस्वी लोगों के द्वारा यज्ञों में पहने जाने वाले इन रुरुमृगों, के चर्म वस्त्रों को देखो। इस प्रकार के इन बलवान् कहे जाने वाले पाण्डवों के शरीर पर ये वस्त्र यज्ञ से बहिष्कृत जंगली लोगों के मृगचर्म के समान दिखाई देते हैं।

सूक्ष्मप्रवारान जिनोत्तरीयान्
दृष्ट्वारण्ये निर्धनानप्रतिष्ठान्।
कां त्वं प्रीतिं लप्स्यसे याज्ञसेनि
पतिं वृणीष्वेह यमन्यमिच्छसि।। २६।।
एते हि सर्वे कुरवः समेताः
क्षान्ता दान्ताः सुद्रविणोपपन्नाः।
एषां वृणीष्वैकतमं पतित्वे
न त्वां तपेत् कालविपर्ययोऽयम्।। २७।।

हे द्रौपदी! जो पाण्डव पहले सुन्दर बारीक वस्त्र पहना करते थे, उन्हीं को मृगचर्म धारण किये हुए वन में रहते हुए, प्रतिष्ठा से रहित, निर्धन अवस्था में देख कर तुम्हें क्या प्रसन्नता होगी? इसलिये तुम और किसी दूसरे को, जिसे तुम चाहती हो, पति बना लो। ये सारे कौरव यहाँ विद्यमान हैं, ये सभी क्षमाशील, दमनशील, और उत्तम धन से युक्त हैं। तुम इनमें से किसी एक को अपना पति बना लो, जिससे तुम्हें यह दिनों का फेर दुख न पहुँचाये।

यथाफलाः षण्ढतिला यथा चर्ममया मृगाः।
तथैव पाण्डवाः सर्वे यथा काकयवा अपि।। २८।।

किं पाण्डवांस्ते पतितानुपास्य
मोघः श्रमः षण्ढतिलानुपास्य।
एवं नृशंसः परुषाणि पार्था-
नश्रावयद् धृतराष्ट्रस्यपुत्रः।। २९।।
तद् वै श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षी
निर्भर्त्स्योच्चैः संनिगृह्यैव रोषात्।
उवाच चैनं सहसैवोपगम्य
सिंहो यथा हैमवतः शृगालम्।। ३०।।

जैसे थोथे तिल, चमड़े से बने हुए नकली हिरण और बिना अन्न वाली बालें बेकार होती हैं, वैसे ही अब सारे पाण्डव भी हो गये हैं। इन थोथे तिलों के समान पतित पाण्डवों की सेवा करने से तुम्हें क्या लाभ? बेकार का परिश्रम है। इस प्रकार उस क्रूर धृतराष्ट्र के पुत्र ने बहुत से कठोर वाक्य कुन्ती पुत्रों को सुनाये। उन्हें सुन कर अत्यन्त असहनशील भीमसेन क्रोध में भर कर तुरन्त उसके पास इस प्रकार जा पहुँचे, जैसे हिमालय पर रहने वाला सिंह किसी गीदड़ के पास जाये और उसे पकड़ कर जोर से फटकारते हुए बोले कि–

क्रूर पापजनैर्जुष्टमकृतार्थं प्रभाषसे।
गान्धारविद्यया हि त्वं राजमध्ये विकत्थसे।। ३१।।
यथा तुदसि मर्माणि वाक्शरैरिह नो भृशम्।
तथा स्मारयिता तेऽहं कृन्तन् मर्माणि संयुगे।। ३२।।
ये च त्वामनुवर्तन्ते क्रोधलोभवशानुगाः।
गोप्तारः सानुबन्धांस्तान् नेतास्मि यमसादनम्।। ३३।।

अरे क्रूर! तू पापी लोगों के द्वारा कही जाने वाली घटिया बातें बोल रहा है और छल विद्या के सहारे राजाओं के बीच में अपनी डींग मार रहा है। जैसे तू अपनी बातों के बाणों से हमारे दिल को अधिक दुःख पहुँचा रहा है, वैसे ही युद्ध में मैं जब तेरे मर्म स्थानों को काटने लगूँगा, तब तुझे इन बातों

की याद दिलाऊँगा। क्रोध और लोभ के वश में होकर, जो लोग तेरा अनुकरण करते हैं और तेरी रक्षा करते हैं, उनको उनके सम्बन्धियों सहित मैं तब मृत्यु के घर भेज दूँगा।

एवं ब्रुवाणमजिनैर्विवासितं
दुःशासनस्तं परिनृत्यति स्म।
मध्ये कुरूणां धर्मनिबद्धमार्गं
गौर्गौरिति स्माह्वयन् मुक्तलज्जः।। ३४।।

इस प्रकार कहते हुए, मृगचर्म धारण किये हुए भीम को, जिनका मार्ग धर्मराज युधिष्ठिर ने रोका हुआ था, दुश्शासन कौरवों के बीच में निर्लज्ज होकर ओ बैल, ओ बैल ऐसा कहते हुए हँसने लगा और नाचने लगा।

भीमसेन उवाच

नृशंस परुषं वक्तुं शक्यं दुःशासन त्वया।
निकृत्या हि धनं लब्ध्वा को विकत्थितुमर्हति।। ३५।।
मैव स्म सुकृताँल्लोकान् गच्छेत् पार्थो वृकोदरः।
यदि वक्षो हि ते भित्त्वा न पिबेच्छोणितं रणे।। ३६।।
धार्तराष्ट्रान् रणे हत्वा मिषतां सर्वधन्विनाम्।
शमं गन्तास्मि नचिरात् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।। ३७।।

तब भीम ने कहा कि अरे नृशंस दुश्शासन! इस तरह की कड़वी बातें तुझ जैसे ही कह सकते हैं। कपट से धन प्राप्त कर अपनी प्रशंसा कौन करेगा? यदि यह कुन्तीपुत्र भीम युद्ध में तेरी छाती फाड़ कर तेरा खून न पीये, तो उसे उत्तम गति प्राप्त न हो। सारे धनुर्धरों के देखते हुए मैं जल्दी ही धृतराष्ट्र के पुत्रों को युद्ध में मार कर शान्ति को प्राप्त करूँगा। यह मैं सत्य कह रहा हूँ।

तस्य राजा सिंहगतेः सखेलं
दुर्योधनो भीमसेनस्य हर्षात्।
गतिं स्वगत्यानुचकार मन्दो
निर्गच्छतां पाण्डवानां सभायाः।। ३८।।

पाण्डव जब सभा से बाहर निकल रहे थे, तब मन्दबुद्धि राजा दुर्योधन हर्ष में भर कर सिंह के समान गति वाले भीम की खिल्ली उड़ाते हुए उनकी चाल की नकल करने लगा।

नैतावता कृतमित्यब्रवीत् तं
वृकोदरः संनिवृत्तार्धकायः।
शीघ्रं हि त्वां निहतं सानुबन्धं
संस्मार्याहं प्रतिवक्ष्यामि मूढ।। ३९।।

अहं दुर्योधनं हन्ता कर्णं हन्ता धनंजयः।
शकुनिं चाक्षकितवं सहदेवो हनिष्यति।। ४०।।
शिरः पादेन चास्याहमधिष्ठास्यामि भूतले।

तब भीमसेन ने अपना आधा शरीर पीछे मोड़ कर कहा कि अरे मूर्ख! केवल दुश्शासन की छाती के खून पीने मात्र से मेरा कार्य पूरा नहीं हो जाएगा। जल्दी ही तुझे संबंधियों के साथ मार कर, याद दिलाते हुए इसका उत्तर दूँगा। मैं दुर्योधन को मारूँगा। कर्ण को अर्जुन मारेगा और धोखेबाज जुआरी शकुनि को सहदेव मारेगा। मैं इसके भूमि पर पड़े हुए सिर को पैर से ठोकर मारूँगा।

अर्जुन उवाच–

नैवं वाचा व्यवसितं भीम विज्ञायते सताम्।। ४१।।
इतश्चतुर्दशे वर्षे द्रष्टारो यद् भविष्यति।
असूयितारं द्रष्टारं प्रवक्तारं विकत्थनम्।। ४२।।
भीमसेन नियोगात् ते हन्ताहं कर्णमाहवे।
अर्जुनः प्रतिजानीते भीमस्य प्रियकाम्यया।। ४३।।
कर्णं कर्णानुगांश्चैव रणे हन्तास्मि पत्रिभिः।
ये चान्ये प्रतियोत्स्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः।। ४४।।
तांश्च सर्वानहं बाणैर्नेतास्मि यमसादनम्।

तब अर्जुन ने कहा कि हे भीम! भले आदमी जो करना चाहते हैं, उसे अपनी वाणी से सूचित नहीं करते। आज से चौदहवें वर्ष में जो कुछ होगा, उसे सब लोग देखेंगे। हे भीमसेन! तुम्हारे आदेशों से दोष देखने वाले, ईर्ष्यालु और अपनी प्रशंसा करने वाले कर्ण को मैं युद्ध में मार दूँगा। भीम का प्रिय करने की इच्छा से अर्जुन यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं युद्ध में कर्ण को और उसके पीछे चलने वालों को बाणों से मार दूँगा और जो भी दूसरे राजा लोग अपनी मूर्खतावश मुझसे युद्ध करेंगे, मैं उन सबको अपने बाणों से मृत्यु के घर भेज दूँगा।

चेद्धि हिमवान् स्थानान्निष्प्रभः स्याद् दिवाकरः।। ४५।।
शैत्यं सोमात् प्रणश्येत मत्सत्यं विचलेद् यदि।
न प्रदास्यति चेद् राज्यमितो वर्षे चतुर्दशे।। ४६।।
दुर्योधनोऽभिसत्कृत्य सत्यमेतद् भविष्यति।

हिमालय अपने स्थान से विचलित हो जाये, सूर्य प्रभाहीन हो जाये, चन्द्रमा से शीतलता नष्ट हो जाये, यदि मेरा सत्य विचलित हो जाये। आज से चौदहवें वर्ष में यदि दुर्योधन हमारा सम्मान कर हमें हमारा राज्य नहीं देगा तो ये सारी बातें अवश्य ही सत्य होंगी।

इत्युक्तवति पार्थे तु श्रीमान् माद्रवतीसुतः।।४७।।
प्रगृह्य विपुलं बाहुं सहदेवः प्रतापवान।
सौबलस्य वधं प्रेप्सुरिदं वचनमब्रवीत्।।४८।।
क्रोधसंरक्तनयनो निश्वसन्निव पन्नगः।

कुन्ती पुत्र अर्जुन के ऐसा कहने पर माद्री के शोभावान् और प्रतापी पुत्र सहदेव ने अपनी विशाल बाहु को पकड़ कर, क्रोध से लाल आँखे किये और साँप के समान लम्बी साँसें लेते हुए शकुनि के वध की इच्छा से यह कहा कि–

अक्षान् यान् मन्यसे मूढ गान्धाराणां यशोहर।।४९।।
नैतेऽक्षा निशिता बाणास्त्वयैते समरे वृताः।
यथा चैवोक्तवान् भीमस्त्वामुद्दिश्य सबान्धवम्।।५०।।
कर्ताहं कर्मणस्तस्य कुरु कार्याणि सर्वशः।
हन्तास्मि तरसा युद्धे त्वामेवेह सबान्धवम्।।५१।।
यदि स्थास्यसि संग्रामे क्षत्रधर्मेण सौबल।

अरे गान्धार निवासियों के यश का हरण करने वाले मूर्ख! जिनको तू पासे समझ रहा है, वे पासे नहीं हैं, तीखे बाण हैं, जिन्हें तू ने युद्ध में वरण किया है। भीम ने तेरे बारे में बन्धु-बान्धवों सहित जो बात कही है, मैं उन कार्यों को अवश्य पूरा करूँगा। तुझे जो कुछ करना हो, वे सारे कार्य कर लेना। अरे सुबल के लड़के! यदि तू क्षत्रिय धर्म का सहारा लेकर युद्ध में डटा रहेगा, तो मैं तुझे युद्ध में बन्धु बान्धवों सहित वेग पूर्वक मार डालूँगा।

नकुल उवाच

सुतेयं यज्ञसेनस्य द्यूतेऽस्मिन् धृतराष्ट्रजैः।।५२।।
यैर्वाचः श्राविता रूक्षाः स्थितैर्दुर्योधनप्रिये।
तान् धार्तराष्ट्रान् दुर्वृत्तान् मुमूर्षून् कालनोदितान्।
गमयिष्यामि भूयिष्ठानहं वैवस्वतक्षयम्।।५३।।

तब नकुल ने कहा कि दुर्योधन का प्रिय करने में लगे हुए, जिन धृतराष्ट्र के पुत्रों ने, इस जूए के खेल में यज्ञसेन की पुत्री द्रौपदी को रूखी बातें सुनायी हैं, उन बहुसंख्यक दुराचारी, मरने के इच्छुक, मृत्यु से प्रेरित, धृतराष्ट्र के पुत्रों को मैं मृत्यु के घर में भेज दूँगा।

तेतीसवाँ अध्याय : पाण्डवों का कुन्ती को विदुर के घर छोड़ कर वन प्रस्थान।

युधिष्ठिर उवाच

आमन्त्रयामि भरतांस्तथा वृद्धं पितामहम्।
राजानं सोमदत्तं च महाराजं च बाह्लिकम्।।१।।
द्रोणं कृपं नृपां श्चान्यानश्वत्थामानमेव च।
विदुरं धृतराष्ट्रं च धार्तराष्ट्रांश्च सर्वशः।।२।।
युयुत्सुं संजयं चैव तथैवान्यान् सभासदः।
सर्वानामन्त्र्य गच्छामि द्रष्टास्मि पुनरेत्य वः।।३।।
न च किंचिदथोचुस्तं ह्रिया सन्ना युधिष्ठिरम्।
मनोभिरेव कल्याणं दध्युस्ते तस्य धीमतः।।४।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि मैं सारे भरतवंशियों से वन में जाने की आज्ञा चाहता हूँ। मैं बूढ़े भीष्म पितामह, राजा सोमदत्त, महाराजा बाह्लीक,द्रोणाचार्य, दूसरे राजाओं, अश्वत्थामा, विदुर, धृतराष्ट्र, सारे धृतराष्ट्र पुत्रों, युयुत्सु, संजय और सारे सभासदों से आज्ञा ले वन में जा रहा हूँ। वहाँ से आकर मैं फिर आप लोगों के दर्शन करूँगा। युधिष्ठिर की बात सुन कर वे सब लज्जा के कारण स्तब्ध हो गये और कुछ भी न बोल सके। वे केवल मन में ही उस धीमान् के कल्याण की कामना करते रहे।

विदुर उवच

आर्या पृथा राजपुत्री नारण्यं गन्तुमर्हति।
सुकुमारी च वृद्धा च नित्यं चैव सुखोचिता।।५।।
इह वत्स्यति कल्याणी सत्कृता मम वेश्मनि।
इति पार्था विजानीध्वमगदं वोऽस्तु सर्वशः।।६।।

पाण्डवा ऊचुः

तथेत्युक्त्वाब्रुवन् सर्वे यथा नो वदसेऽनघ।
त्वं पितृव्यः पितृसमो वयं च त्वत्परायणाः।।७।।
यथाऽऽज्ञापयसे विद्वंस्त्वं हि नः परमो गुरुः।
यच्चान्यदपि कर्तव्यं तद् विधत्स्व महामते।।८।।

तब विदुर ने कहा कि हे कुन्ती पुत्रों! तुम यह समझो कि राजपुत्री आर्या कुन्ती वृद्धा और सुकुमारी हैं। वे सदा सुखों में रहने के योग्य हैं। वे वन में नहीं जा सकतीं। वे कल्याणी मेरे घर में सत्कार पूर्वक रहेंगी। तुम लोग सदा सुखपूर्वक और नीरोग रहो। तब पाण्डवों ने कहा कि हे निष्पाप! जैसे आप कहते हैं वैसे ही हो। आप हमारे चाचा हैं और पिता के समान हैं। हम आपके आदेश का पालन करने वाले हैं। हे विद्वान्! जैसी आप आज्ञा देंगे, हम वैसा ही करेंगे। आप हमारे परम गुरु हैं। हे महामति!

और भी हमारे लिये जो कुछ करणीय है, उसे बताइये।

विदुर उवाच

युधिष्ठिर विजानीहि ममेदं भरतर्षभ।
नाधर्मेण जितः कश्चिद् व्यथते वै पराजये।। ९।।
त्वं वै धर्मं विजानीषे युद्धे जेता धनंजयः।
हन्तारीणां भीमसेनो नकुलस्त्वर्थसंग्रही।। १०।।
संयन्ता सहदेवस्तु धौम्यो ब्रह्मविदुत्तमः।
धर्मार्थकुशला चैव द्रौपदी धर्मचारिणी।। ११।।
अन्योन्यस्य प्रियाः सर्वे तथैव प्रियदर्शनाः।
परैरभेद्याः संतुष्टाः को वो न स्पृहयेदिह।। १२।।

तब विदुर ने कहा कि हे भरत श्रेष्ठ युधिष्ठिर! तुम मेरी यह बात समझ लो कि जिसे अधर्म के द्वारा जीता जाता है, वह अपनी पराजय पर कभी दुखी नहीं होता। तुम धर्म को जानते हो। अर्जुन युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले हैं, भीम शत्रुओं को मारने वाले हैं और नकुल आवश्यक पदार्थों को जुटाने में चतुर हैं, सहदेव संयमी हैं और तुम्हारे पुरोहित धौम्य ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। द्रौपदी धर्म और अर्थ के सम्पादन में कुशल है। आप सब लोग एक दूसरे से प्रेम करते हैं। आप लोगों को देख कर सभी को प्रसन्नता होती है। शत्रु तुम्हारे अन्दर फूट नहीं डाल सकते। आप लोग सन्तुष्ट रहने वाले हैं। कौन आप लोगों से स्पर्धा नहीं करता?

एष वै सर्वकल्याणः समाधिस्तव भारत।
नैनं शत्रुर्विषहते शक्रेणाति समोऽप्युत।। १३।।
भूमेः क्षमा च तेजश्च समग्रं सूर्यमण्डलात्।
वायोर्बलं प्राप्नुहि त्वं भूतेभ्यश्चात्मसम्पदम्।। १४।।
अगदं वोऽस्तु भद्रं वो द्रष्टास्मि पुनरागतान्।
आपद्धर्मार्थकृच्छ्रेषु सर्वकार्येषु वा पुनः।। १५।।
यथावत् प्रतिपद्येथाः काले काले युधिष्ठिर।
आपृष्टोऽसीह कौन्तेय स्वस्ति प्राप्नुहि भारत।। १६।।

हे भारत! तुम्हारा क्षमाशीलता का गुण सब प्रकार से कल्याणकारी है। इन्द्र के समान पराक्रमी शत्रु भी इसका सामना नहीं कर सकता। तुम भूमि से क्षमा को, सूर्य मण्डल से तेज को, वायु से बल को और सम्पूर्ण प्राणियों से अपनी सम्पत्ति को प्राप्त करो। तुम स्वस्थ रहो। तुम्हारा कल्याण हो। जब तुम लौट कर आओगे, तब मैं तुम्हें फिर देखूँगा। हे युधिष्ठिर! आपत्ति के समय धर्म और अर्थ के संकट में, और दूसरे सारे कार्यों में अपने उचित कर्तव्य का पालन करना। हे भारत, हे कुन्तीपुत्र! तुम्हें जाने की मेरी अनुमति है। तुम कल्याण को प्राप्त करो।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा पाण्डवः सत्यविक्रमः।
भीष्मद्रोणौ नमस्कृत्य प्रातिष्ठत युधिष्ठिरः।। १७।।
तस्मिन् सम्प्रस्थिते कृष्णा पृथां प्राप्य यशस्विनीम्।
अपृच्छद् भृशदुःखार्ता याश्चान्यास्तत्र योषितः।। १८।।
यथार्हं वन्दनाश्लेषान् कृत्वा गन्तुमियेष सा।
ततो निनादः सुमहान् पाण्डवान्तः पुरेऽभवत्।। १९।।
कुन्ती च भृशसंतप्ता द्रौपदीं प्रेक्ष्य गच्छतीम्।
शोकविह्वलया वाचा कृच्छ्राद् वचनमब्रवीत्।। २०।।

विदुर के द्वारा ऐसा कहने पर, ऐसा ही होगा यह कह कर, सत्य पराक्रमी पाण्डव युधिष्ठिर भीष्म और द्रोणाचार्य को नमस्कार कर वहाँ से प्रस्थित हुए। उनके वहाँ से चलने पर द्रौपदी यशस्विनी कुन्ती के पास गयी और अत्यन्त दुःखी होकर उसने उनसे जाने की आज्ञा ली। उसने वहाँ और दूसरी जो स्त्रियाँ थीं, उनसे भी यथायोग्य उनकी वन्दना तथा छाती से लगाना आदि करके जाने के लिये विदा ली। तब पाण्डवों के अन्तःपुर में बहुत दुःख से भरी आवाज़ें उठने लगीं। द्रौपदी को जाते हुए देख कर कुन्ती बहुत दुःखी और शोक से बेचैन होकर, बहुत कठिनाई, से यह बात बोली कि--

वत्से शोको न ते कार्यः प्राप्येदं व्यसनं महत्।
स्त्रीधर्माणामभिज्ञासि शीलाचारवती तथा।। २१।।
भाविन्यर्थे हि सत्स्त्रीणां वैकृतं नोपजायते।
गुरुधर्माभिगुप्ता च श्रेयः क्षिप्रमवाप्स्यसि।। २२।।
सहदेवश्च मे पुत्रः सदावेक्ष्यो वने वसन्।
यथेदं व्यसनं प्राप्य नायं सीदेन्महामतिः।। २३।।
तथेत्युक्त्वा तु सा देवी, स्रवन्नेत्रजलाविला।
शोणिताक्तैकवसना मुक्तकेशी विनिर्ययौ।। २४।।

हे बेटी! इस महान संकट को पाकर भी तुम शोक मत करना। तुम स्त्री के धर्म को जानती हो और शीलवती तथा आचारवती हो। जो मुसीबत अवश्यंभावी होती है, अच्छी स्त्रियाँ उसमें व्याकुल नहीं होतीं। तुम अपने महान् धर्म से सुरक्षित हो और जल्दी ही कल्याण को प्राप्त करोगी। वन में रहते हुए तुम मेरे पुत्र सहदेव की सदा देखभाल रखना, जिससे यह महामति संकट को प्राप्त कर दुखी न हो। तब वह द्रौपदी जो उस समय खून से सने एक वस्त्र में ही थी, जिसके बाल बिखरे हुए थे, अच्छा ऐसा ही होगा, यह कह कर नेत्रों

से आँसू बहाती हुई वहाँ से चली गयी।

तां क्रोशन्तीं पृथा दुःखादनुवव्राज गच्छतीम्।
अथापश्यत् सुतान् सर्वान् हृताभरणवाससः।। २५।।
रुरुचर्मावृततनून् ह्रिया किंचिदवाङ्मुखान्।
परैः परीतान् संहृष्टैः सुहृद्भिश्चानुशोचितान्।। २६।।
तदवस्थान् सुतान् सर्वानुपसृत्यातिवत्सला।
स्वजमानावदच्छोकात् तत्तद् विलपती बहु।। २७।।

उस रोती बिलखती और वन को जाती हुई द्रौपदी के पीछे कुन्ती भी दुख से व्याकुल होकर दूर तक गयी। उसने अपने सारे पुत्रों को देखा, जिनके आभूषण और वस्त्र उतार लिये गये थे। उनके शरीर रुरुमृग के चर्म से ढके हुए थे। वे अपने शोक करते हुए शुभ चिन्तकों और प्रसन्न होते हुए शत्रुओं से उस समय घिरे हुए थे। वह उन्हें छाती से लगा कर और बहुत प्रकार से विलाप करती हुई कहने लगी कि–

कथं सद्धर्मचारित्रान् वृत्तस्थितिविभूषितान्।
अक्षुद्रान् दृढभक्तांश्च दैवतेज्यापरान् सदा।। २८।।
व्यसनं वः समभ्यागात् कोऽयं विधिविपर्ययः।
कथं वत्स्यथ दुर्गेषु वने ऋद्धिविनाकृताः।। २९।।
वीर्यसत्त्वबलोत्साहतेजोभिरकृशाः कृशाः।
यद्येतदेवमज्ञास्यं वने वासो हि वो ध्रुवम्।। ३०।।
शतशृङ्गान्मृते पाण्डौ नागमिष्यं गजाह्वयम्।

तुम लोग सत्य धर्म का पालन करते हो, आचरण की मर्यादा से विभूषित हो, क्षुद्रता से रहित हो, भगवान के दृढ़ भक्त हो, नित्य ईश्वर स्तुति में लगे रहते हो, फिर यह परमात्मा की इच्छा तुम्हारे प्रति विपरीत क्यों हो गयी? यह संकट तुम्हारे ऊपर क्यों आ गया? तुम सम्पत्ति से रहित किये हुए, वन के दुर्गम स्थानों में कैसे रहोगे? यद्यपि तुम पराक्रम, धैर्य, बल और उत्साह से युक्त हो, पर फिर भी तुम सुकुमार हो। यदि मैं यह जानती कि तुम्हें वन में ही रहना है तो पाण्डु के देहान्त के पश्चात् मैं शतशृंग के वन से हस्तिनापुर नहीं आती। वहीं रहती।

धन्यं वः पितरं मन्ये तपोमेधान्वितं तथा।। ३१।।
यः पुत्राधिमसम्प्राप्य स्वर्गेच्छामकरोत् प्रियाम्।
धन्यां चातीन्द्रियज्ञानामिमां प्राप्तां परां गतिम्।। ३२।।
मन्ये तु माद्रीं धर्मज्ञां कल्याणीं सर्वथैव तु।
रत्या मत्या च गत्या च ययाहमभिसन्धिता।। ३३।।
जीवितप्रियतां मह्यं धिङ् मां संक्लेशभागिनीम्।

मैं तो तुम्हारे तपस्वी और मेधावी पिता को ही धन्य मानती हूँ, जो अपने पुत्रों को देख कर स्वर्ग को चले गये। अर्थात् उन्हें तुमसे बिछुड़ने का दुख नहीं देखना पड़ा। मैं तो अतीन्द्रिय ज्ञान से सम्पन्न, धर्मज्ञा और कल्याणी माद्री को भी धन्य मानती हूँ, जो अपने प्रेम, बुद्धि और सद्व्यवहार द्वारा मुझे भुला कर जीवित रहने के लिये छोड़ दिया और स्वयं परमगति को चली गयी। जीवन की इच्छा रखने वाली मुझे धिक्कार है, जिससे मुझे अब क्लेश भोगना पड़ रहा है।

पुत्रका न विहास्ये वः कृच्छ्रलब्धान् प्रियान् सतः।। ३४।।
साहं यास्यामि हि वनं हा कृष्णे किं जहासि माम्।
अन्तवत्यसुधर्मेऽस्मिन् धात्रा किं नु प्रमादतः।। ३५।।
ममान्तो नैव विहितस्तेनायुर्न जहाति माम्।
सेयं नीत्यर्थविज्ञेषु भीष्मद्रोणकृपादिषु।। ३६।।
स्थितेषु कुलनाथेषु कथमापदुपागता।
हा पाण्डो हा महाराज क्वासि किं समुपेक्षसे।। ३७।।
पुत्रान् विवास्यतः साधूनरिभिर्द्यूतनिर्जितान्।

हे पुत्रों! मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगी। तुम सदाचारी और मेरे प्यारे हो। मैंने तुम्हें बड़ी कठिनाई से पाया है। मैं तुम्हारे साथ वन में चलूँगी। हा द्रौपदी! तू मुझे क्यों छोड़े जाती है? यद्यपि यह प्राण धर्म अनित्य है, पर फिर भी भगवान् ने पता नहीं क्यों प्रमादवश मेरे अन्त का निश्चय नहीं किया है। तभी तो आयु मुझे नहीं छोड़ रही है। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य जैसे नीति और अर्थ के विद्वानों के कुल का संरक्षक होने पर भी पता नहीं हम पर यह विपत्ति क्यों आयी है। हाय महाराज पाण्डु! तुम कहाँ हो? तुम्हारे भले पुत्रों को शत्रुओं ने जूए में हरा कर वनवास दे दिया है। आप इनकी दुरवस्था की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?

एवं विलपतीं कुन्तीमभिवाद्य प्रणम्य च।। ३८।।
पाण्डवा विगतानन्दा वनायैव प्रवव्रजुः।
विदुरश्चापि तामार्तां कुन्तीमाश्वास्य हेतुभिः।
प्रावेशयद् गृहं क्षत्ता स्वयमार्ततरः शनैः।। ३९।।

इस प्रकार विलाप करती हुई माता कुन्ती को प्रणाम और अभिवादन कर पाण्डव दुःखी हृदय से वन के लिये ही चले गये। विदुर भी भी उस दुखी कुन्ती को अनेक युक्तियों से समझा कर, सान्त्वना देकर धीरे-धीरे अपने घर ले गये। वे स्वयं भी उस समय बहुत दुखी थे।

चौंतीसवाँ अध्याय : प्रजाजनों के विषय में धृतराष्ट्र विदुर वार्त्तालाप।

धार्तराष्ट्रस्त्रियस्ताश्च निखिलेनोपलभ्य तत्।
गमनं परिकर्षं च कृष्णाया द्यूतमण्डले।। १।।
रुरुदुः सुस्वनं सर्वा विनिन्दन्त्यः कुरून् भृशम्।
दध्युश्च सुचिरं कालं करासक्तमुखाम्बुजाः।। २।।

द्रौपदी के जाने पर धृतराष्ट्र के पुत्रों की स्त्रियों ने भी जब सारा वृत्तान्त सुना कि किस प्रकार द्रौपदी का द्यूत सभा में जाना हुआ और उसके वस्त्र खींचे गये आदि तब वे भी सारी कौरवों की अत्यन्त निन्दा करती हुई फूट-फूट कर रोने लगीं और अपने मुखारविन्दों को अपनी हथेलियों पर रख कर बहुत देर तक चिन्ता में डूबीं रहीं।

राजा च धृतराष्ट्रस्तु पुत्राणामनयं तदा।
ध्यायन्नुद्विग्नहृदयो न शान्तिमधिजग्मिवान्।। ३।।
स चिन्तयन्ननेकाग्रः शोकव्याकुलचेतनः।
क्षत्तुः सम्प्रेषयामास शीघ्रमागम्यतामिति।। ४।।
ततो जगाम विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम्।
तं पर्यपृच्छत् संविग्नो धृतराष्ट्रो जनाधिपः।। ५।।

राजा धृतराष्ट्र का भी हृदय अपने पुत्रों के अन्याय को सोच कर उद्विग्न हो गया और उन्हें शान्ति नहीं मिली। चिन्ता करते करते उनकी एकाग्रता नष्ट हो गई और शोक के कारण उनकी चेतना में व्याकुलता भर गयी। उन्होंने विदुर के पास सन्देश भेजा कि शीघ्र मेरे पास आ जाओ। तब विदुर जी धृतराष्ट्र के महल में गये। उस समय राजा धृतराष्ट्र ने अत्यन्त बेचैन होकर उनसे पूछा कि--

किमब्रुवन् नागरिकाः किं वै जानपदा जनाः।
मह्यं तत्त्वेन चाचक्ष्व क्षत्तः सर्वमशेषतः।। ६।।

विदुर उवाच

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा येऽन्ये वदन्त्यथ।
तच्छृणुष्व महाराज वक्ष्यते च मया तव।। ७।।

हे विदुर! उस समय अर्थात् पाण्डवों के वन को जाते समय नगर के और देश के लोग क्या कह रहे थे? तुम मुझे उनकी सारी भावनाएँ पूरी तरह से और वास्तविक रूप में बताओ। तब विदुर ने कहा कि हे महाराज! उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों के लोग तथा दूसरे भी जो कुछ कहते थे, उसे मैं आपको सुनाता हूँ, आप सुनिये।

हा हा गच्छन्ति नो नाथाः समवेक्षध्वमीदृशम्।
इति पौराः सुदुःखार्ताः शोचन्ति स्म समन्ततः।। ८।।
तदहृष्टमिवाकूजं गतोत्सवमिवाभवत्।
नगरं हास्तिनपुरं सस्त्रीवृद्धकुमारकम्।। ९।।
सर्वे चासन् निरुत्साहा व्याधिना बाधिता यथा।
पार्थान् प्रति नरा नित्यं चिन्ताशोकपरायणाः।। १०।।
तत्र तत्र कथां चक्रुः समासाद्य परस्परम्।

उस समय पाण्डवों के प्रस्थान करते हुए सारा हस्तिनापुर स्त्री, बूढ़ों, और बच्चों सहित प्रसन्नता रहित, शब्द शून्य और उत्सव रहित सा हो गया। सारे लोग तब कुन्ती पुत्रों के लिये निरन्तर चिन्ता और शोक में डूबे हुए, उत्साह से रहित, बीमार से हो गये थे। वे जगह-जगह परस्पर एकत्र होकर पाण्डवों के विषय में ही बातें करते थे।

कथं नु राजा धर्मात्मा वने वसति निर्जने।। ११।।
तस्यानुजाश्च ते नित्यं कृष्णा च द्रुपदात्मजा।
सुखार्हापि च दुःखार्ता कथं वसति सा वने।। १२।।

वे कहते थे कि हाय धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर, उनके छोटे भाई और द्रुपदपुत्री कृष्णा निर्जन वन में कैसे रहेंगे? वे लोग सदा सुख भोगने योग्य हैं, पर अब दुख से पीड़ित होकर वन में कैसे रहेंगे?

यदवस्था बभूवार्ता ह्ययोध्या नगरी पुरा।
रामे वनं गते दुःखाद्धृतराज्ये सलक्ष्मणे।। १३।।
तदवस्थं बभूवार्तमद्येदं गजसाह्वयम्।
गते पार्थे वनं दुःखाद्धृतराज्ये सहानुजैः।। १४।।
विदुरस्य वचः श्रुत्वा नागरस्य गिरं च वै।
भूयो मुमोह शोकाच्च धृतराष्ट्रः सबान्धवः।। १५।।

पुराने समय में राज्य का हरण होने पर लक्ष्मण सहित राम के दुख पूर्वक वन में जाने पर जो अवस्था उस समय दुःख से पीड़ित अयोध्या की हुई थी, वही अवस्था अब राज्य का हरण होने पर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के अपने छोटे भाइयों के साथ दुखी होकर वन में जाने पर दुख से भरे हुए हस्तिनापुर की हो रही है। विदुर की बातें तथा नगरवासियों के वचन अपने बान्धवों सहित सुन कर राजा धृतराष्ट्र शोक के कारण पुनः मूर्च्छित हो गये।

वन पर्व

पहला अध्याय : पाण्डवों का वन गमन, तथा प्रमाण कोटि स्थान पर निवास।

वर्धमानपुरद्वारादभिनिष्क्रम्य पाण्डवाः।
उदङ्मुखाः शस्त्रभृतः प्रययुः सह कृष्णया।। १।।
इन्द्रसेनादयश्चैव भृत्या परि चतुर्दश।
रथैरनुययुः शीघ्रैः स्त्रिय आदाय सर्वशः।। २।।
गतानेतान् विदित्वा तु पौराः शोकाभिपीडिताः।
गर्हयन्तोऽसकृद् भीष्मविदुरद्रोणगौतमान्।। ३।।
ऊचुर्विगतसंत्रासाः समागम्य परस्परम्।

शस्त्रों को धारण किये हुए पाण्डव लोग तब वर्धमान नाम के पुरद्वार से बाहर निकल कर द्रौपदी के साथ उत्तराभिमुख होकर यात्रा करने लगे। उस समय चौदह से अधिक इन्द्रसेन आदि सेवक सारी स्त्रियों को शीघ्रगामी रथों पर बिठा कर उनके पीछे चले। उन्हें वन की तरफ जाते हुए जान कर पुरवासी लोग शोक से पीड़ित होकर एकत्र होकर बिना भय के भीष्म, विदुर, द्रोण, कृपाचार्य, आदि की निन्दा करते हुए परस्पर कहने लगे कि–

दुर्योधनो गुरुद्वेषी त्यक्ताचारसुहृज्जनः।। ४।।
अर्थलुब्धोऽभिमानी च नीचः प्रकृतिनिर्घृणः।
नेयमस्ति मही कृत्स्ना यत्र दुर्योधनो नृपः।। ५।।
साधु गच्छामहे सर्वे यत्र गच्छन्ति पाण्डवाः।
सानुक्रोशा महात्मानो विजितेन्द्रियशत्रवः।। ६।।
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च धर्माचारपरायणाः।
एवमुक्त्वानुजग्मुस्ते पाण्डवांस्तान् समेत्य च।। ७।।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे कौन्तेयान् माद्रिनन्दनान्।

कि यह दुर्योधन गुरुजनों से द्वेष करने वाला है। इसने सदाचार और सज्जन लोगों का त्याग कर दिया है। यह धनलोलुप, अभिमानी, नीच, और स्वभाव से निष्ठुर है। जहाँ दुर्योधन जैसा राजा होगा, वहाँ की सारी भूमि न होने के बराबर है, इसलिये यही अच्छा होगा कि हम भी वहीं चलें जहाँ पाण्डव जा रहे हैं। ये दयालु, महात्मा, जितेन्द्रिय, शत्रुविजयी, लज्जायुक्त, कीर्तिमान्, धर्माचारी और सदाचारी हैं। ऐसा कह कर वे एकत्र होकर पाण्डवों के पीछे पीछे आये और हाथ जोड़ कर उन कुन्ती तथा माद्री के पुत्रों से बोले कि–

अधर्मेण जिताञ्छ्रुत्वा युष्मांस्त्यक्तघृणैः परैः।। ८।।
उद्विग्नाः स्मो भृशं सर्वे नास्मान् हातुमिहार्हथ।
भक्तानुरक्तान् सुहृदः सदा प्रियहिते रतान्।। ९।।
कुराजाधिष्ठिते राज्ये न विनश्येम सर्वशः।
बुद्धिश्च हीयते पुंसां नीचैः सह समागमात्।। १०।।
मध्यमैर्मध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः।
इच्छामो गुणवन्मध्ये वस्तुं श्रेयोऽभिकाङ्क्षिणः।। ११।।

निर्दय शत्रुओं के द्वारा आपको अधर्म से जीत लिया गया है, यह सुन कर हम सब बड़े उद्विग्न हैं। आप लोग हमें छोड़ कर न जायें, क्योंकि हम आपसे प्रेम करने वाले आपके भक्त और हितैषी हैं। हम सदा आपके प्रिय और भलाई में लगे रहते हैं। हम चाहते हैं कि हम इस दुष्ट कुरुराज के राज्य में रह कर नष्ट न हों। नीच लोगों का साथ करने से मनुष्यों की बुद्धि नष्ट हो जाती है, मध्यम लोगों के साथ रहने से बुद्धि मध्यम रहती है और उत्तम कोटि के मनुष्यों के साथ रहने से श्रेष्ठता को प्राप्त करती है। उत्तमता को चाहने वाले हम आप जैसे गुणवानों के साथ रहना चाहते हैं।

युधिष्ठिर उवाच

धन्या वयं यदस्माकं स्नेहकारुण्ययन्त्रिताः।
असतोऽपि गुणानाहुर्ब्राह्मणप्रमुखाः प्रजाः।। १२।।
तदहं भ्रातृसहितः सर्वान् विज्ञापयामि वः।
नान्यथा तद्धि कर्तव्यमस्मत्स्नेहानुकम्पया।। १३।।
भीष्मः पितामहो राजा विदुरो जननी च मे।
सुहृज्जनश्च प्रायो मे नगरे नागसाह्वये।। १४।।
ते त्वस्मद्धितकामार्थं पालनीयाः प्रयत्नतः।
युष्माभिः सहिताः सर्वे शोकसंतापविह्वलाः।। १५।।
निवर्ततागता दूरं समागमनशापिताः।
स्वजने न्यासभूते मे कार्या स्नेहान्विता मतिः।। १६।।

तब युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि हम धन्य हैं, जो ब्राह्मण आदि प्रजा के लोग हमारे प्रति स्नेह और करुणा से बँध कर जो गुण हमारे अन्दर नहीं हैं, उन्हें भी हमारे अन्दर बता रहे हैं। मैं अपने भाइयों के साथ आप सबसे यह कहता हूँ कि आप लोग हमारे प्रति स्नेह और दया के विपरीत कार्य न करें। भीष्म पितामह, राजा धृतराष्ट्र, विदुर और मेरी माता कुन्ती और दूसरे संबंधी भी प्राय हस्तिनापुर में ही हैं। हमारी भलाई की इच्छा से आप लोग प्रयत्न पूर्वक उनका पालन करें। आप लोगों के साथ वे भी सब शोक और सन्ताप से पीड़ित हैं। आप लोग बहुत दूर तक आ गये हैं। अब लौट जाइये। मैं अपनी शपथ दिला कर आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप लोग लौट जायें। हमारे स्वजन आपके पास धरोहर के रूप में हैं। उनके प्रति आप स्नेह बुद्धि रखें।

एतद्धि मम कार्याणां परमं हृदि संस्थितम्।
कृता तेन तु तुष्टिर्मे सत्कारश्च भविष्यति।। १७।।
तथानुमन्त्रितास्तेन धर्मराजेन ताः प्रजाः।
चक्रुरार्तस्वरं घोरं हा राजन्निति संहताः।। १८।।
गुणान् पार्थस्य संस्मृत्य दुःखार्ताः परमातुराः।
अकामाः संन्यवर्तन्त समागम्याथ पाण्डवान्।। १९।।
निवृत्तेषु तु पौरेषु रथानास्थाय पाण्डवाः।
आजग्मुर्गंगातीरे प्रमाणाख्यं महावटम्।। २०।।

मेरे हृदय में विद्यमान सारे कार्यों में सबसे उत्तम कार्य यही है। आप यदि इसका पालन करेंगे तो उससे मेरी सन्तुष्टि और सत्कार हो जायेगा। धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा इस प्रकार अनुरोध किये जाने पर वे सब अत्यन्त दुखी होकर हाय राजन्! ऐसा कह कर विलाप करने लगे। वे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के गुणों का स्मरण कर अत्यन्त दुख से पीड़ित और व्याकुल हो रहे थे। अन्त में बिना अपनी कामना पूर्ति के ही पाण्डवों से केवल मिल कर ही वे लौट गये। पुर वासियों के लौट जाने पर पाण्डव लोग रथों पर बैठ कर गंगा के किनारे प्रमाण कोटि नाम के विशाल वट के समीप आये।

ते तं दिवसशेषेण वटं गत्वा तु पाण्डवाः।
ऊषुस्तां रजनीं वीराः संस्पृश्य सलिलं शुचि।। २१।।
उदकेनैव तां रात्रिमूषुस्ते दुःखकर्षिताः।
अनुजग्मुश्च तत्रैतान् स्नेहात् केचिद् द्विजातयः।। २२।।
स तैः परिवृतो राजा शुशुभे ब्रह्मवादिभिः।
तेषां प्रादुष्कृताग्नीनां मुहूर्ते रम्यदारुणे।। २३।।
ब्रह्मघोषपुरस्कारः संजल्पः समजायत।
राजानं तु कुरुश्रेष्ठं ते हंसमधुरस्वराः।
आश्वासयन्तो विप्राग्र्याः क्षपां सर्वां व्यनोदयन्।। २४।।

संध्या के समय उस वट के समीप जाकर पाण्डव वीरों ने वहाँ वह रात्रि केवल पवित्र जल का स्पर्श करके ही बितायी। दुख से पीड़ित उन्होंने उस रात्रि में केवल पानी ही पीया। उनके स्नेह के कारण कुछ ब्राह्मण लोग भी उनके साथ वहाँ आये थे। उस समय उन ब्रह्मवादी ब्राह्मणों से घिरे राजा युधिष्ठिर बड़े सुशोभित हो रहे थे। जो उनके समागम से रमणीय लग रहा था, पर रात्रि का अन्धकार होने से भयानक भी लग रहा था, ऐसे उस समय अग्नि प्रकट करके वेदमन्त्रों के उच्चारण के साथ अग्निहोत्र करने के बाद उन ब्राह्मणों में परस्पर ब्रह्मचर्चा होने लगी। इस प्रकार हंस के समान मधुर ध्वनि वाले ब्राह्मणों ने उन कुरुकुल श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर को आशवासन देते हुए सारी रात उनका मनोरंजन किया।

दूसरा अध्याय : धृतराष्ट्र का विदुर से रुष्ट होना, विदुर का पाण्डवों के पास जाना।

वनं प्रविष्टेष्वथ पाण्डवेषु
प्रज्ञाचक्षुस्तप्यमानोऽम्बिकेयः ।
धर्मात्मानं विदुरमगाधबुद्धिं
सुखासीनो वाक्यमुवाच राजा।। १।।

पाण्डवों के वन में जाने पर अन्धे अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र बहुत सन्तप्त हो गये। उन्होंने जब वे सुखप्रद आसन पर बैठे हुए थे, अगाध बुद्धि वाले धर्मात्मा विदुर से कहा कि–

प्रज्ञा च ते भार्गवस्येव शुद्धा
धर्मं च त्वं परमं वेत्थ सूक्ष्मम्।
समश्च त्वं सम्मतः कौरवाणां
पथ्यं चैषां मम चैव ब्रवीहि।। २।।
एवंगते विदुर यदद्य कार्यं
पौराश्च मे कथमस्मान् भजेरन्।
तेचाप्यस्मान् नोद्धरेयुः समूलां–
स्तत्त्वं ब्रूयाः साधु कार्याणि वेत्सि।। ३।।

तुम्हारी बुद्धि शुक्राचार्य के समान शुद्ध है, तुम परम धर्म को सूक्ष्म रूप से जानते हो। तुम्हारी सबके प्रति समान दृष्टि है। तुम्हारा सारे कौरव सम्मान करते हैं। तुम मेरे और पाण्डवों के लिये जो हितकारी बात हो उसे बताओ। हे विदुर! अब इस स्थिति में हमें क्या करना चाहिये? हमारे नगरवासी कैसे हमसे प्रेम करें। वे पाण्डव हमें जड़ से उखाड़ कर न फैंक दें, ऐसा उपाय बताओ। तुम अच्छे कार्यों को जानते हो।

विदुर उवाच– त्रिवर्गोऽयं धर्ममूलो नरेन्द्र
राज्यं चेदं धर्ममूलं वदन्ति।
धर्मे राजन् वर्तमानः स्वशक्त्या
पुत्रान् सर्वान् पाहि पाण्डोः सुतांश्च।। ४।।
स वै धर्मो विप्रलब्धः सभायां
पापात्मभिः सौबलेयप्रधानैः।
आहूय कुन्तीसुतमक्षवत्यां
पराजैषीत् सत्यसंधं सुतस्ते।। ५।।
एतस्य ते दुष्प्रणीतस्य राज-
ञ्छेषस्याहं परिपश्याम्युपायम्।
यथा पुत्रस्तव कौरव्य पापा-
न्मुक्तो लोके प्रतितिष्ठेत साधु।। ६।।

विदुर जी ने तब कहा कि हे राजन्! धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का मूल धर्म ही है। राज्य का भी मूल धर्म को ही बताया जाता है। इसलिये आप धर्म में ही वर्तमान रह कर यथाशक्ति अपने पुत्रों और पाण्डु पुत्रों का पालन कीजिये। उस दिन सभा में इस धर्म के साथ ही पापात्मा शकुनि आदि ने धोखा किया। आपके पुत्र ने सत्यसंध कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर को जूए में बुला कर कपट पूर्वक उन्हें पराजित किया। हे राजन्! आपके द्वारा उनके साथ इस किये गए दुर्व्यवहार की समाप्ति का उपाय मैं जानता हूँ। जिससे आपका पुत्र दुर्योधन पाप से मुक्त होकर लोगों में अच्छी तरह प्रतिष्ठा को प्राप्त करे।

तद् वै सर्वं पाण्डुपुत्रा लभन्तां
यत् तद् राजन्नभिसृष्टं त्वयाऽऽसीत्।
एष धर्म परमो यत् स्वकेन
राजा तुष्येन्न परस्वेषु गृध्येत्।। ७।।
यशो न नश्येत् जातिभेदश्च न स्यात्
धर्मो न स्यान्नैव चैवं कृते त्वाम्।
एतत् कार्यं तव सर्वप्रधानं
तेषां तुष्टिः शकुनेश्चावमानः।। ८।।
एवं शेषं यदि पुत्रेषु ते स्या-
देतद् राजंस्त्वरमाणः कुरुष्व।
तथैतदेवं न करोषि राजन्
ध्रुवं कुरूणां भविता विनाशः।। ९।।

हे राजन्! आपने पाण्डवों को जो उनका राज्य दिया था, वह सब उन्हें मिल जाना चाहिये। यह परम धर्म है कि राजा अपने धन से सन्तुष्ट रहे, दूसरों के धन का लालच न करे। ऐसा करने पर आपका यश भी नष्ट नहीं होगा, भाइयों में फूट भी नहीं होगी और धर्म की प्राप्ति होगी। आपका सबसे प्रमुख कार्य यह है आप पाण्डवों को संतुष्ट करें और शकुनि का तिरस्कार करें। ऐसा करने पर आपके पुत्रों के पास राज्य शेष रह जाएगा। इसलिये हे राजन्! यह कार्य आप शीघ्रता से कीजिये। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो कौरवों का विनाश निश्चित है।

न हि क्रुद्धो भीमसेनोऽर्जुनो वा
शेषं कुर्याच्छात्रवाणामनीके।
येषां योद्धा सव्यसाची कृतास्त्रो
धनुर्येषां गाण्डिवं लोकसारम्।। १०।।
येषां भीमो बाहुशाली च योद्धा
तेषां लोके किं नु न प्राप्यमस्ति।
इदं च राजन् हितमुक्तं न चेत् त्व–
मेवं कर्ता परितप्तासि पश्चात्।। ११।।
यद्येतदेवमनुमन्ता सुतस्ते
सम्प्रीयमाणः पाण्डवैरेकराज्यम्।
तापो न ते भविता प्रीतियोगा-
न्न चेन्निगृह्णीष्व सुतं सुखाय।। १२।।

भीमसेन या अर्जुन क्रुद्ध होने पर शत्रु की सेना में से किसी को जीवित नहीं छोड़ेंगे। जिन पाण्डवों का योद्धा अस्त्र विद्या में निष्णात, बाएँ हाथ से भी बाण चलाने वाला अर्जुन है, जिसके पास सारे संसार में श्रेष्ठ गाण्डीव धनुष है, और जिनके योद्धा बाहुबल से सुशोभित भीम हैं, उनके लिये संसार में कुछ भी अप्राप्य नहीं है। यदि आप इसे नहीं करेंगे तो बाद में पछतायेंगे। यदि आपका पुत्र दुर्योधन इस बात को मान ले और प्रसन्न होकर एक राज्य को स्वीकार कर ले, तो आपको कोई संताप नहीं होगा, बल्कि आपको प्रेम की ही प्राप्ति होगी। नहीं तो आप कुल के सुख के लिये दुर्योधन को वश में कीजिये।

दुर्योधनं त्वहितं वै निगृह्य
पाण्डोः पुत्रं कुरुष्वाधिपत्ये।
अजातशत्रुर्हि विमुक्तरागो
धर्मेणेमां पृथिवीं शास्तु राजन्।। १३।।
ततो राजन् पार्थिवाः सर्व एव
वैश्या इवास्मानुपतिष्ठन्तु सद्यः।
दुर्योधनः शकुनिः सूतपुत्रः
प्रीत्या राजन् पाण्डुपुत्रान् भजन्तु।। १४।।
दुःशासनो याचतु भीमसेनं
सभामध्ये द्रुपदस्यात्मजां च।
युधिष्ठिरं त्वं परिसान्त्वयस्व
राज्ये चैनं स्थापयस्वाभिपूज्य।। १५।।

आप अहितकारी दुर्योधन को वश में करके पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को अधिपति बना दीजिये। वे अजातशत्रु हैं, उन्हें कोई राग द्वेष नहीं है। वे धर्म पूर्वक पृथिवी का शासन करेंगे। हे राजन्! तब सारे राजा वैश्यों की तरह हमारी सेवा में शीघ्र उपस्थित होंगे। दुर्योधन, शकुनि और सूत पुत्र कर्ण प्रेम पूर्वक पाण्डवों को अपनायें। दुश्शासन भीमसेन से तथा द्रुपदपुत्री द्रौपदी से सभा के अन्दर क्षमा माँगे। आप युधिष्ठिर को अच्छी तरह से सान्त्वना दें और सम्मान पूर्वक राज्य पर बिठायें।

त्वया पृष्टः किमहमन्यद् वदेय-
मेतत् कृत्वा कृतकृत्योऽसि राजन्।
धृतराष्ट्र उवाच- एतद् वाक्यं विदुर यत् ते सभाया-
मिह प्रोक्तं पाण्डवान् प्राप्य मां च।। १६।।
हितं तेषामहितं मामकाना-
मेतत् सर्वं मम नावैति चेतः।
इदं त्विदानीं गत एव निश्चितं
तेषामर्थे पाण्डवानां यदात्थ।। १७।।
तेनाद्य मन्ये नासि हितो ममेति
कथं हि पुत्रं पाण्डवार्थे त्यजेयम्।

हे राजन्! आपने पूछा है तो मैं इसके अतिरिक्त और क्या बताऊँ? तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे विदुर! तुमने यहाँ सभा में पाण्डवों और मेरे लिये जो बात कही है, वह पाण्डवों के लिये तो लाभकारी है, पर मेरे पुत्रों के लिये अलाभकारी है, इसलिये इस सब को मेरा मन स्वीकार नहीं करता। तुमने उन पाण्डवों के लिये जो कहा है, उससे यह निश्चित हो गया है और मैं समझ गया हूँ कि तुम मेरे हितैषी नहीं हो। मैं पाण्डवों के लिये अपने पुत्रों को कैसे त्याग दूँ?

स मां जिह्मं विदुर सर्वं ब्रवीषि
मानं च तेऽहमधिकं धारयामि।। १८।।
यथेच्छकं गच्छ वा तिष्ठ वा त्वं
सुसान्त्व्यमानाप्यसती स्त्री जहाति।
नेदमस्तीत्यथ विदुरो भाषमाणः
सम्प्राद्रवद् यत्र पार्था बभूवुः।। १९।।

हे विदुर! मैं तुम्हारा बहुत मान करता हूँ, पर तुम मुझसे सारी बातें कुटिलता पूर्वक कहते हो। इसलिये अब जैसी तुम्हारी इच्छा हो, यहाँ रहो, या चले जाओ। कुलटा स्त्री को कितना ही समझाया जाये, पर वह अपने स्वामी को त्याग ही देती है। तब विदुर जी यह कह कर कि अब इस कुल का बचना कठिन है, वहाँ चले गये, जहाँ पाण्डव लोग विद्यमान थे।

पाण्डवास्तु वने वासमुद्दिश्य भरतर्षभाः।
प्राययुर्गंगायाः कूलात् कुरुक्षेत्रं सहानुगाः।। २०।।
सरस्वतीदृषद्वत्यौ यमुनां च निषेव्य ते।
ययुर्वनेनैव वनं सततं पश्चिमां दिशम्।। २१।।
ततः सरस्वतीकूले समेषु मरुधन्वसु।
काम्यकं नाम ददृशुर्वनं मुनिजनप्रियम्।। २२।।
तत्र ते न्यवसन् वीरा वने बहुमृगद्विजे।
विदुरस्त्वथ पाण्डूनां सदा दर्शनलालसः।
जगामैकरथेनैव काम्यकं वनमृद्धिमत्।। २३।।

भरत श्रेष्ठ पाण्डव तब वनवास का उद्देश्य कर गंगा के किनारे से अपने साथियों के साथ कुरुक्षेत्र की तरफ गये। वे यमुना, दृषद्वती और सरस्वती नदी का सेवन करते हुए, एक वन से दूसरे वन में प्रवेश करते हुए लगातार पश्चिम दिशा की तरफ चलते गये। उसके बाद वे सरस्वती नदी के किनारे तथा समतल मरुभूमियों की यात्रा करते हुए काम्यक वन में पहुँचे, जो मुनियों को बहुत प्रिय था। वे वीर उस वन में जिसमें बहुत पशु और पक्षी थे, रहने लगे। तब विदुर जी भी जो सदा पाण्डवों के दर्शन के इच्छुक होते थे, अकेले एक रथ में जो यथोचित विशेषताओं से भरपूर था, उस काम्यक वन में पाण्डवों के समीप पहुँचे।

ततो गत्वा विदुरः काम्यकं त-
च्छीघ्रैरश्वैर्वाहिना स्यन्दनेन।
ददर्शासीनं धर्मात्मानं विविक्ते

साधँ द्रौपद्या भ्रातृभिर्ब्राह्मणैश्च।। २४।।
ततोऽपश्यद् विदुरं तूर्णमारा-
दभ्यायान्तं सत्यसंधः स राजा।
अथाब्रवीद् भ्रातरं भीमसेनं
किं नु क्षत्ता वक्ष्यति नः समेत्य।। २५।।

तब विदुर जी शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा खींचे जाते हुए रथ से काम्यक वन में पहुँचे। वहाँ उन्होंने महात्मा युधिष्ठिर को एकान्त स्थान में द्रौपदी, अपने भाइयों तथा ब्राह्मणों के साथ बैठे हुए देखा। जब उन सत्यसंध राजा ने विदुर को जल्दी से अपने समीप आते हुए देखा, तब वे अपने भाई भीमसेन से कहने लगे कि पता नहीं विदुर जी हमारे पास आ कर हमसे क्या कहेंगे?

कच्चिन्नायं वचनात् सौबलस्य
समाह्वाता देवनायोपयातः।
कच्चित् क्षुद्रः शकुनिर्नायुधानि
जेष्यत्यस्मान् पुनरेवाक्षवत्याम्।। २६।।
तैः सत्कृतः स च तानाजमीढो
यथोचितं पाण्डुपुत्रान् समेयात्।
समाश्वस्तं विदुरं ते नरर्षभा-
स्ततोऽपृच्छन्नागमनाय हेतुम्।। २७।।
स चापि तेभ्यो विस्तरतः शशंस
यथावृत्तो धृतराष्ट्रोऽम्बिकेयः।

कहीं ये शकुनि के कहने से पुनः जूआ खेलने के लिये बुलाने को तो नहीं आ रहे हैं? कहीं नीच शकुनि दुबारा जूए में हमारे शस्त्रास्त्रों को तो नहीं जीत लेगा? उसके पश्चात पाण्डवों के द्वारा सत्कृत होकर वे अजमीढ़वंशी विदुर सबसे यथोचित रूप से मिले। उनका स्वागत करने पर उन नरश्रेष्ठों ने उनसे उनके आने का कारण पूछा। तब उन्होंने भी उन्हें विस्तार से सारा हाल कह सुनाया जैसा कि अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र ने उनसे व्यवहार किया था।

अवोचन्मां धृतराष्ट्रोऽनुगुप्त-
मजातशत्रो परिगृह्याभिपूज्य।। २८।।
एवं गते समतामभ्युपेत्य
पथ्यं तेषां मम चैव ब्रवीहि।
मयाप्युक्तं यत् क्षेमं कौरवाणां
हितं पथ्यं धृतराष्ट्रस्य चैव।। २९।।
तद् वै तस्मै न रुचामभ्युपैति
ततश्चाहं क्षेममन्यन्न मन्ये।

विदुर जी ने कहा कि हे अजातशत्रु! धृतराष्ट्र ने मुझे अपना रक्षक समझ कर, मुझे बुला कर और मेरा सम्मान करके कहा कि हे विदुर! अब इन परिस्थितियों में तुम समान भाव रखते हुए पाण्डवों के लिये और मेरे लिये हितकारी बात को बताओ। तब मैंने भी उन्हें ऐसी बातें बतायीं जो कौरवों के लिये हितकारी और धृतराष्ट्र के लिये लाभदायक थीं। पर वे बातें उन्हें रुचि कर नहीं लगीं और मैं उन बातों के अतिरिक्त दूसरी बातों को उनके लिये कल्याणकारी नहीं समझता।

परं श्रेयः पाण्डवेया मयोक्तं
न मे तच्च श्रुतवानाम्बिकेयः।। ३०।।
यथाऽऽतुरस्येव हि पथ्यमन्नं
न रोचते स्मास्य तदुच्यमानम्।
न श्रेयसे नीयतेऽजातशत्रो
स्त्री श्रोत्रियस्येव गृहे प्रदुष्टा।। ३१।।
ध्रुवं न रोचेद् भरतर्षभस्य
पतिः कुमार्या इव षष्टिवर्षः।
ध्रुवं विनाशो नृप कौरवाणां
न वै श्रेयो धृतराष्ट्रः परैति।। ३२।।
यथा च पर्णे पुष्करस्यावसिक्तं
जलं न तिष्ठेत् पथ्यमुक्तं तथास्मिन्।

हे पाण्डवों! मैंने उन्हें अत्यन्त कल्याण की बातें बतायीं, किन्तु अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र ने उन्हें नहीं सुना। जैसे रोगी को हित कर भोजन अच्छा नहीं लगता, वैसे ही धृतराष्ट्र को मेरी कही हुई बातें कल्याणकारी होते हुए भी पसन्द नहीं आयीं। हे अजातशत्रु! वेदपाठी ब्राह्मण के घर में यदि दुष्टा स्त्री हो तो उसे भी कल्याण के मार्ग पर ले जाया नहीं जा सकता। जैसे कुमारी कन्या को साठ वर्ष का पति अच्छा नहीं लगता, वैसे ही धृतराष्ट्र को मेरी बात अच्छी नहीं लगती। कौरवों के कुल का विनाश निश्चित है। धृतराष्ट्र कल्याणकारी मार्ग पर नहीं चल रहे हैं। जैसे कमल के पत्ते पर पानी नहीं ठहरता, वैसे ही हितकारी कही हुई बात भी उसे अच्छी नहीं लगती।

ततः क्रुद्धो धृतराष्ट्रोऽब्रवीन्मां
यस्मिन् श्रद्धा भारत तत्र याहि।। ३३।।
नाहं भूयः कामये त्वां सहायं
महीमिमां पालयितुं पुरं वा।
सोऽहं त्यक्तो धृतराष्ट्रेण राज्ञा

प्रशासितुं त्वामुपयातो नरेन्द्र।। ३४।।
तद् वै सर्वं यन्मयोक्तं सभायां
तद् धार्यतां यत् प्रवक्ष्यामि भूयः।

तब धृतराष्ट्र ने क्रुद्ध होकर मुझसे कहा कि हे भारत! जहाँ तुम्हारी श्रद्धा हो, वहीं जा कर रहो। मैं इस भूमि और नगर का पालन करने में तुम्हारी सहायता नहीं चाहता। इसलिये हे राजा! मैं धृतराष्ट्र के द्वारा त्यागा हुआ तुम्हें सदुपदेश देने के लिये तुम्हारे पास आया हूँ। मैंने वहाँ जो कुछ सभा में कहा था और अब जो फिर कहूँगा, तुम उसे धारण करो।

क्लेशैस्तीव्रैर्युज्यमानः सपत्नैः
क्षमां कुर्वन् कालमुपासते यः।। ३५।।
संवर्धयन् स्तोकमिवाग्निमात्मवान्
स वै भुङ्क्ते पृथिवीमेक एव।
यस्याविभक्तं वसु राजन् सहायै-
स्तस्य दुःखेऽप्यंशभाजः सहायाः।। ३६।।
सहायानामेष संग्रहणेऽध्युपायः
सहायाप्तौ पृथिवीप्राप्तिमाहुः।
सत्यं श्रेष्ठं पाण्डव विप्रलापं
तुल्यं चान्नं सह भोज्यं सहायैः।। ३७।।
आत्मा चैषामग्रतो न स्म पूज्य
एवंवृत्तिवर्धते भूमिपालः।

जो व्यक्ति शत्रुओं के द्वारा तीव्र क्लेश दिये जाने पर भी उन्हें क्षमा करते हुए उचित समय आने की राह देखता है और जैसे थोड़ी सी आग को भी घास के फूस के द्वारा बढ़ा लिया जाता है, वैसे ही वह मनस्वी अपनी शक्ति और सहायकों को बढ़ाता रहता है, वह अकेला ही सारी भूमि का उपभोग करता है। हे राजन्! जिसका धन सहायकों के लिये बँटा हुआ नहीं है, अर्थात् सहायक लोग जिसके धन को अपना ही समझ कर उपभोग करते हैं, वे सहायक उसके दुख में भी हिस्सा बँटाते हैं। सहायकों को प्राप्त करने का यही उपाय है। सहायकों के प्राप्त होने पर पृथ्वी की प्राप्ति हो जाती है। ऐसा कहा जाता है। पाण्डव! व्यर्थ की बकवास करने की जगह सत्य बोलना श्रेष्ठ है। अपने सहायकों के साथ समान अर्थात् उनके जैसा ही भोजन करना चाहिये। उनके सामने अपनी पूजा नहीं करानी चाहिये। इस प्रकार के स्वभाव वाला राजा सदा वृद्धि को प्राप्त होता है।

युधिष्ठिर उवाच– एवं करिष्यामि यथा ब्रवीषि
परां बुद्धिमुपगम्याप्रमत्तः।
यच्चाप्यन्यद्दे शकालोपपन्नं
तद् वै वाच्यं तत् करिष्यामि कृत्स्नम्।। ३८।।

तब युधिष्ठिर ने कहा मैं सदा प्रमाद रहित होकर और अच्छी बुद्धि का सहारा लेकर, जैसा आप कहते हैं, वैसे ही करूँगा। इसके अतिरिक्त और जो कुछ भी देश काल के योग्य बात हो, उसे भी कहिये। मैं उसका भी पूरी तरह से पालन करूँगा।

तीसरा अध्याय : धृतराष्ट्र का विदुर को बुला कर उनसे क्षमा माँगना।

धृतराष्ट्रो महाप्राज्ञः पर्यतप्यत भारतः।
विदुरस्य प्रभावं च संधिविग्रहकारितम्।। १।।
विवृद्धिं च परां मत्वा पाण्डवानां भविष्यति।
स सभाद्वारमागम्य विदुरस्मारमोहितः।। २।।
समक्षं पार्थिवेन्द्राणां पपाताविष्टचेतनः।
स तु लब्ध्वा पुनः संज्ञां समुत्थाय महीतलात्।। ३।।
समीपोपस्थितं राजा संजयं वाक्यमब्रवीत्।

तब अर्थात् विदुर के अपने पास से चले जाने पर भरतवंशी महाप्राज्ञ धृतराष्ट्र बहुत संताप करने लगे। वे सोचने लगे कि विदुर संधि विग्रह आदि नीतियों में बहुत चतुर हैं, इसलिये उनका बड़ा प्रभाव है। वृद्धि को प्राप्त कराने वाली उनकी सारी सलाह अब पाण्डवों को ही मिलेगी। यही सोचते हुए, विदुर को याद करते हुए वे मोहित से हो गये और सभा भवन के द्वार के समीप आकर सारे राजाओं के सामने अचेत होकर गिर पड़े। फिर चेतना में आकर और भूमि से उठ कर, वे अपने समीप विद्यमान संजय से कहने लगे कि–

भ्राता मम सुहृच्चैव साक्षाद् धर्म इवापरः।। ४।।
तस्य स्मृत्याद्य सुभृशं हृदयं दीर्यतीव मे।
तमानयस्व धर्मज्ञं मम भ्रातरमाशु वै।। ५।।
इति ब्रुवन् न नृपतिः कृपणं पर्यदेवयत्।
पश्चात्तापाभिसंतप्तो विदुरस्मारमोहितः।। ६।।

विदुर मेरे भाई और मेरे हितैषी हैं। वे साक्षात् धर्म के रूप हैं। उन्हें याद करके आज मेरा हृदय अत्यन्त विदीर्ण सा हो रहा है। तुम उन मेरे धर्मज्ञ

भाई को जल्दी बुला कर लाओ। ऐसा कहते हुए वे राजा दीन भाव से रोने लगे। वे पश्चाताप की भावना से सन्तप्त और विदुर की याद से मोहित से होकर संजय से पुनः कहने लगे कि—

गच्छ संजय जानीहि भ्रातरं विदुरं मम।
यदि जीवति रोषेण मया पापेन निर्धुतः।। ७।।
न हि तेन मम भ्रात्रा सुसूक्ष्ममपि किंचन।
व्यलीकं कृतपूर्वं वै प्राज्ञेनामितबुद्धिना।। ८।।
स व्यलीकं परं प्राप्तो मत्तः परमबुद्धिमान्।
त्यक्ष्यामि जीवितं प्राज्ञ तं गच्छानय संजय।। ९।।

जाओ संजय! मेरे भाई विदुर का पता लगाओ। क्या वे जीवित भी हैं या नहीं? मुझ पापी ने क्रोध में आकर उन्हें निकाल दिया। उस विशाल बुद्धि वाले मेरे प्राज्ञ भाई ने पहले कभी मेरा छोटा सा भी अपराध नहीं किया है पर मैंने उस परम मेधावी का बड़ा अपराध कर दिया। हे बुद्धिमान संजय! तुम उन्हें बुला कर लाओ नहीं तो मैं अपने प्राणों को छोड़ दूँगा।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राज्ञस्तमनुमान्य च।
संजयो वाढमित्युक्त्वा प्राद्रवत् काम्यकं प्रति।। १०।।
सोऽचिरेण समासाद्य तद् वनं यत्र पाण्डवाः।
रौरवाजिनसंवीतं ददर्शाथ युधिष्ठिरम्।। ११।।
विदुरेण सहासीनं ब्राह्मणैश्च सहस्रशः।
भ्रातृभिश्चाभिसंगुप्तं देवैरिव पुरंदरम्।। १२।।
युधिष्ठिरमुपागम्य पूजयामास संजयः।
भीमार्जुनयमाश्चापि तद्युक्तं प्रतिपेदिरे।। १३।।
राज्ञा पृष्टः स कुशलं सुखासीनश्च संजयः।
शशंसागमने हेतुमिदं चैवाब्रवीद् वचः।। १४।।

राजा के ये वचन सुन कर और उनका सम्मान करके संजय बहुत अच्छा यह कह कर काम्यक वन की तरफ गया। वन के उस भाग को जहाँ पाण्डव थे, जल्दी ही प्राप्त कर, उसने रुरुमृग के चर्म को धारण किये हुए युधिष्ठिर को देखा। वे अनेक ब्राह्मणों से घिरे हुए विदुर के साथ बैठे हुए थे। जैसे देवता लोग इन्द्र की रक्षा करते हैं, वैसे ही उनके भाई उनकी रक्षा कर रहे थे। युधिष्ठिर के समीप जाकर संजय ने उनका सम्मान किया और फिर भीम अर्जुन आदि ने भी उनका यथोचित स्वागत किया। राजा के द्वारा कुशल प्रश्न पूछे जाने के पश्चात् सुख से बैठे हुए संजय ने अपने आने का कारण बताते हुए कहा कि—

राजा स्मरति ते क्षत्तर्धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।
तं पश्य गत्वा त्वं क्षिप्रं संजीवय च पार्थिवम्।। १५।।
सोऽनुमान्य नरश्रेष्ठान् पाण्डवान् कुरुनन्दनान्।
नियोगाद् राजसिंहस्य गन्तुमर्हसि सत्तम।। १६।।

हे विदुर जी! अम्बिका पुत्र राजा धृतराष्ट्र आपको याद कर रहे हैं। आप जल्दी जाकर उनसे मिलिये और उन्हें जीवन दान दीजिये। हे सज्जनों में श्रेष्ठ! आप कुरुकुल को आनन्दित करने वाले इन नरश्रेष्ठ पाण्डवों से आज्ञा लेकर उस राज सिंह के आदेश से उनके पास चलिये।

एवमुक्तस्तु विदुरो धीमान् स्वजनवल्लभः।
युधिष्ठिरस्यानुमते पुनरायाद् गजाह्वयम्।। १७।।
तमब्रवीन्महातेजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि धर्मज्ञ दिष्ट्या स्मरसि मेऽनघ।। १८।।
अद्य रात्रौ दिवाचाहं त्वत्कृते भरतर्षभ।
प्रजागरे प्रपश्यामि विचित्रं देहमात्मनः।। १९।।
सोऽङ्कमानीय विदुरं मूर्धन्याघ्राय चैव ह।
क्षम्यतामिति चोवाच यदुक्तोऽसि मयानघ।। २०।।

ऐसा कहे जाने पर अपने बन्धुओं को प्रिय धीमान् विदुर युधिष्ठिर की अनुमति से पुनः हस्तिनापुर लौट आये। तब महातेजस्वी अम्बिका पुत्र धृतराष्ट्र ने उनसे कहा कि सौभाग्य की बात है कि हे निष्पाप! हे धर्मज्ञ, कि तुम मुझे याद रखते हो और यहाँ आ गये हो। हे भरतश्रेष्ठ! मैं दिन रात तुम्हारे लिये जागता रहा हूँ और मेरे शरीर की विचित्र अवस्था हो गयी है। ऐसा कह कर उन्होंने विदुर को अपनी गोद में बैठा लिया और उनके सिर को सूँघ कर कहा कि हे निष्पाप! जो कुछ भी मैंने तुमसे कहा है, उसे क्षमा करो।

विदुर उवाच

क्षान्तमेव मया राजन् गुरुर्मे परमो भवान्।
एषोऽहमागतः शीघ्रं त्वद्दर्शनपरायणः।। २१।।
भवन्ति हि नरव्याघ्र पुरुषा धर्मचेतसः।
दीनाभिपातिनो राजन् नात्र कार्या विचारणा।। २२।।
पाण्डोः सुता यादृशा मे तादृशास्तव भारत।
दीना इतीव मे बुद्धिरभिपन्नाद्य तान् प्रति।। २३।।
अन्योन्यमनुनीयैवं भ्रातरौ द्वौ महाद्युती।
विदुरो धृतराष्ट्रश्च लेभाते परमां मुदम्।। २४।।

तब विदुर ने कहा कि हे राजन्! मैंने तो क्षमा ही कर दिया है। आप मेरे परम गुरु हैं। मैं आपके

दर्शन के लिये तुरन्त आया हूँ। हे नरव्याघ्र! धर्म को अपने हृदय में स्थान देने वाले पुरुष, दीनों की तरफ ज्यादा झुकाव रखने वाले होते हैं, इसलिये इसके लिये मन में कुछ विचार नहीं करना चाहिये। हे भारत! मेरे लिये जैसे पाण्डु के पुत्र हैं, वैसे ही आपके भी हैं, पर क्योंकि आजकल वे दीन अवस्था को प्राप्त हो रहे हैं, इसलिये बुद्धि कुछ उनकी तरफ झुक गयी है। इस प्रकार वे दोनों महा तेजस्वी भाई विदुर और धृतराष्ट्र एक दूसरे की अनुनय विनय कर अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हो गये।

चौथा अध्याय : व्यास जी का धृतराष्ट्र को तथा मैत्रेय जी का दुर्योधन को समझाना

श्रुत्वा च विदुरं प्राप्तं राज्ञा च परिसान्त्वितम्।
धृतराष्ट्रात्मजो राजा पर्यतप्यत दुर्मतिः।। १।।
स सौबलेयमानाय्य कर्णदुःशासनौ तथा।
अब्रवीद् वचनं राजा प्रविश्याबुद्धिजं तमः।। २।।

यह सुन कर कि विदुर पुनः आ गये हैं और राजा ने उन्हें सान्त्वना देकर रख लिया है, धृतराष्ट्र पुत्र दुर्मति राजा दुर्योधन अत्यन्त सन्तप्त हो उठा। अज्ञानजनित मोह में पड़ कर उसने शकुनि, कर्ण और दुश्शासन को बुला कर उनसे कहा कि—

एष प्रत्यागतो मन्त्री धृतराष्ट्रस्य धीमतः।
विदुरः पाण्डुपुत्राणां सुहृद् विद्वान् हिते रतः।। ३।।
यावदस्य पुनर्बुद्धिं विदुरो नापकर्षति।
पाण्डवानयने तावन्मन्त्रयध्वं हितं मम।। ४।।
अथ पश्याम्यहं पार्थान् प्राप्तानिह कथंचन।
पुनः शोषं गमिष्यामि निरम्बुर्निरवग्रहः।। ५।।
विषमुद्बन्धनं चैव शस्त्रमग्निप्रवेशनम्।
करिष्ये न हि तानृद्धान् पुनर्द्रष्टुमिहोत्सहे।। ६।।

यह बुद्धिमान् धृतराष्ट्र का मन्त्री विदुर फिर वापिस आ गया है। विदुर विद्वान् है, पर पाण्डवों का हितैषी तथा उनकी भलाई में लगा रहता है। इसलिये विदुर पाण्डवों को वापिस बुलाने के लिये, जब तक इन पिता जी की बुद्धि को परिवर्तित नहीं करता है, तब तक तुम मेरी भलाई के बारे में सोचो। यदि मैं किसी प्रकार भी पाण्डवों को यहाँ आया हुआ देख लूँगा तो मैं स्वेच्छा से ही जल का त्याग कर अपने आपको सुखा दूँगा। मैं विष खा लूँगा या फाँसी लगा लूँगा, या शस्त्र से अपने आपको मार दूँगा, या अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा पर पाण्डवों को पुनः बढ़ते हुए नहीं देख सकता।

शकुनिरुवाच

किं बालिशमतिं राजन्नास्थितोऽसि विशाम्पते।
गतास्ते समयं कृत्वा नैतदेवं भविष्यति।। ७।।
सत्यवाक्यस्थिताः सर्वे पाण्डवा भरतर्षभ।
पितुस्ते वचनं तात न ग्रहीष्यन्ति कर्हिचित्।। ८।।
अथवा ते ग्रहीष्यन्ति पुनरेष्यन्ति वा पुरम्।
निरस्य समयं सर्वे पणोऽस्माकं भविष्यति।। ९।।
सर्वे भवामो मध्यस्था राज्ञश्छन्दानुवर्तिनः।
छिद्रं बहु प्रपश्यन्तः पाण्डवानां सुसंवृता।। १०।।

तब शकुनि ने कहा कि हे राजन्! तुमने क्या नादान बच्चों की बुद्धि अपना रखी है? वे प्रतिज्ञा करके गये हैं, इसलिये ऐसा नहीं होगा। हे भरतश्रेष्ठ! वे सारे पाण्डव सत्य वचन का पालन करने में स्थित हैं। हे तात! वे तुम्हारे पिता की बात कभी स्वीकार नहीं करेंगे। यदि वे उनकी बात स्वीकार कर और प्रतिज्ञा को तोड़ कर फिर नगर में आ जायेंगे, तो हमारा उनके प्रति दाँव यह होगा कि हम राजा की आज्ञा का पालन करते हुए, तटस्थ बन जायेंगे और गुप्त रूप से पाण्डवों के दोषों को देखते रहेंगे।

दुश्शासन उवाच

एवमेतन्महाप्राज्ञ यथा वदसि मातुल।
नित्यं हि मे कथयतस्तव बुद्धिर्विरोचते।। ११।।

कर्ण उवाच

काममीक्षामहे सर्वे दुर्योधन तवेप्सितम्।
ऐकमत्यं हि नो राजन् सर्वेषामेव लक्षये।। १२।।
नागमिष्यन्ति ते धीरा अकृत्वा कालसंविदम्।
आगमिष्यन्ति चेन्मोहात् पुनर्द्यूतेन ताञ्जय।। १३।।
एवमुक्तस्तु कर्णेन राजा दुर्योधनस्तदा।
नातिहृष्टमनाः क्षिप्रमभवत् स पराङ्मुखः।। १४।।

तब दुश्शासन ने कहा कि हे महा बुद्धिमान् मामा जी! जैसा आप कहते हैं, वही ठीक है। आपकी कही बात मुझे सदा अच्छी लगती है। तब कर्ण ने कहा कि हे दुर्योधन! हम सब तुम्हारी इच्छा को पूरा करने के लिये सचेष्ट हैं। इस विषय में हम सबमें सहमति है। वे धीर लोग समय की अवधि को पूरा किये बिना यहाँ नहीं आयेंगे। यदि वे मोहवश यहाँ आ भी जायें, तो तुम उन्हें फिर जूए

के द्वारा जीत लेना। कर्ण के यह कहने पर दुर्योधन बहुत प्रसन्न नहीं हुआ और उसने तुरन्त अपना मुँह उसकी तरफ से घुमा लिया।

उपलभ्य ततः कर्णो निवृत्य नयने शुभे।
रोषाद् दुःशासनं चैव सौबलं च तमेव च।। १५।।
उवाच परमक्रुद्ध उद्यम्यात्मनमात्मना।
अथो मम मतं यत् तु तन्निबोधत भूमिपाः।। १६।।

तब दुर्योधन के अभिप्राय को समझ कर कर्ण क्रोध से अपनी सुन्दर आँखें फाड़ कर दुश्शासन से, शकुनि से, और दुर्योधन से, उत्साह में भर कर बोला कि हे भूमिपालों! इस विषय में मेरा जो मत है, उसे समझ लो।

प्रियं सर्वे करिष्यामो राज्ञः किङ्करपाणयः।
न चास्य शक्नुमः स्थातुं प्रिये सर्वे ह्यतन्द्रिताः।। १७।।
वयं तु शस्त्राण्यादाय रथानास्थाय दंशिताः।
गच्छामः सहिता हन्तुं पाण्डवान् वनगोचरान्।। १८।।
तेषु सर्वेषु शान्तेषु गतेष्वविदितां गतिम्।
निर्विवादा भविष्यन्ति धार्तराष्ट्रास्तथा वयम्।। १९।।
यावदेव परिद्यूना यावच्छोकपरायणाः।
यावन्मित्रविहीनाश्च तावच्छक्या मतं मम।। २०।।

हम सब राजा दुर्योधन की सेवा करने वाले उसके हाथ हैं। हम इनका प्रिय कार्य करेंगे। पर हम तन्द्रा रहित होकर इनके कार्य में लग नहीं पा रहे हैं। हम सब कवच पहन कर शस्त्रों को धारण कर और रथों पर बैठ कर एक साथ वन में गये हुए पाण्डवों को मारने के लिये चलते हैं। जब वे परलोक में पहुँच कर शान्त हो जायेंगे तो हम तथा धृतराष्ट्र के पुत्र सारे विवादों से रहित हो जायेंगे। मेरा मत है कि वे जब तक शोकग्रस्त और मुसीबत में पड़े हुए हैं, और अपने मित्रों से रहित हैं तब तक उन्हें जीता जा सकता है।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा पूजयन्तः पुनः पुनः।
वाढमित्येव ते सर्वे प्रत्यूचुः सूतजं तदा।। २१।।
एवमुक्त्वा सुसंरब्धा रथैः सर्वे पृथक्पृथक्।
निर्ययुः पाण्डवान् हन्तुं सहिताः कृतनिश्चयाः।। २२।।
आजगाम विशुद्धात्मा कृष्ण द्वैपायनः प्रभुः।
प्रतिषिध्याथ तान् सर्वान् भगवाँल्लोकपूजितः।। २३।।
प्रज्ञाचक्षुषमासीनमुवाचाभ्येत्य सत्वरम्।

उसकी इस बात को सुन कर उन सबने बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, यह कहा और उस सूत पुत्र की बार-बार प्रशंसा की। इस प्रकार सलाह करके, वे उत्साह के साथ अपने-अपने रथों पर चढ़ कर निश्चय करके पाण्डवों को मारने के लिये नगर से बाहर निकले। पर तभी विशुद्ध आत्मा वाले भगवान् कृष्ण द्वैपायन मुनि वहाँ आ पहुँचे। सारे संसार में सम्मानित उन ऋषि ने उन्हें रोका और जल्दी से बैठे हुए अन्धे राजा धृतराष्ट्र के पास आ कर कहा कि—

धृतराष्ट्र महाप्राज्ञ निबोध वचनं मम।। २४।।
वक्ष्यामि त्वां कौरवाणां सर्वेषां हितमुत्तमम्।
न मे प्रियं महाबाहो यद् गताः पाण्डवा वनम्।। २५।।
निकृत्या निकृताश्चैव दुर्योधनपुरोगमैः।
ते स्मरन्तः परिक्लेशान् वर्षे पूर्णे त्रयोदशे।। २६।।
विमोक्ष्यन्ति विषं क्रुद्धाः कौरवेयेषु भारत।
यदयं किं नु पापात्मा तव पुत्रः सुमन्दधीः।। २७।।
पाण्डवान् नित्यसंक्रुद्धो राज्यहेतोर्जिघांसति।

हे महाप्राज्ञ धृतराष्ट्र! तुम मेरी बात को समझो। मैं तुम्हें सारे कौरवों की भलाई की उत्तम बात को कहूँगा। हे विशाल भुजाओं वाले! मुझे यह अच्छा नहीं लगा है जो पाण्डवों को वन में भेजा गया है। दुर्योधन आदि ने उन्हें छल से ठगा है। हे भारत! वे अपने दुखों को याद करते हुए तेरह वर्ष पूरे होने पर क्रोध में भरे हुए विष के समान घातक अस्त्रों को कौरवों के ऊपर छोड़ेंगे। फिर भी तुम्हारा यह पापी मूर्ख पुत्र, सदा उनसे क्रुद्ध रहते हुए, राज्य के लिये उन्हें क्यों मारना चाहता है?

वार्यतां साध्वयं मूढः शमं गच्छतु ते सुतः।। २८।।
वनस्थांस्तानयं हन्तुमिच्छन् प्राणान् विमोक्ष्यति।
विग्रहो हि महाप्राज्ञ स्वजनेन विगर्हितः।। २९।।
अधर्म्यमयशस्यं च मा राजन् प्रतिपद्यताम्।
समीक्षा यादृशी ह्यस्य पाण्डवान् प्रति भारत।। ३०।।
उपेक्ष्यमाणा सा राजन् महान्तमनयं स्पृशेत।

अपने इस मूर्ख पुत्र को अच्छी तरह से रोको और शान्त करो। यह उन वन में गये हुओं को भी मारने की इच्छा रखते हुए अपने प्राणों से हाथ धो बैठेगा। हे महाप्राज्ञ! अपने बन्धुओं के साथ विरोध अत्यन्त निन्दित माना गया है, इसलिये हे राजन्! इस अधर्म से युक्त और अकीर्ति को बढ़ाने वाले कार्य को मत कराओ। हे भारत! इस दुर्योधन की पाण्डवों की प्रति जैसी भावना है, यदि उसकी उपेक्षा की गयी तो यह महान अनीति को ग्रहण कर लेगा।

धृतराष्ट्र उवाच

भगवन् नाहमप्येतद् रोचये द्यूतसम्भवम्।। ३१।।
मन्ये तद्विधिनाऽऽकृष्य कारितोऽस्मीति वै मुने।
नैतद् रोचयते भीष्मो न द्रोणो विदुरो न च।। ३२।।
गान्धारी नेच्छति द्यूतं तत्र मोहात् प्रवर्तितम्।
परित्यक्तुं न शक्नोमि दुर्योधनमचेतनम्।। ३३।।
पुत्रस्नेहेन भगवञ्जानन्नपि प्रियव्रत।

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे मुने! मैं भी इस जूए के खेल को पसन्द नहीं करता हूँ, पर मैं समझता हूँ कि ईश्वर की इच्छा ने ही मुझे बल पूर्वक खींच कर इसमें लगवा दिया। भीष्म, द्रोण, विदुर और गान्धारी भी कोई इस जूए को नहीं चाहता, पर मैंने ही मोह के कारण इसे चालू करवा दिया। हे भगवन्! प्रियव्रत! यह जानते हुए भी कि दुर्योधन मूर्ख है, मैं पुत्र स्नेह के कारण उसे छोड़ नहीं सकता।

व्यास उवाच

दृढं विद्मः परं पुत्रं सत्यमाह यथा भवान्।। ३४।।
सुतेषु राजन् सर्वेषु हीनेष्वभ्यधिका कृपा।
यादृशो मे सुतः पाण्डुस्तादृशो मेऽसि पुत्रक।। ३५।।
विदुरश्च महाप्राज्ञः स्नेहादेतद् ब्रवीम्यहम्।
चिराय तव पुत्राणां शतमेकश्च भारत।। ३६।।
पाण्डोः पञ्चैव लक्ष्यन्ते तेऽपि मन्दाः सुदुःखिताः।
कथं जीवेयुरत्यन्तं कथं वर्धेयुरित्यपि।। ३७।।
इति दीनेषु पार्थेषु मनो मे परितप्यते।
यदि पार्थिव कौरव्याञ्जीवमानानिहेच्छसि।। ३८।।
दुर्योधनस्तव सुतः शमं गच्छतु पाण्डवैः।

तब व्यास जी बोले कि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जैसा तुमने कहा है, वह सत्य है, पर हे राजन्! सारे पुत्रों में जो पुत्र हीन अवस्था में हों, उन पर अधिक कृपा करनी चाहिये। मैं स्नेह के कारण यह कहता हूँ कि जैसे पाण्डु मेरे पुत्र थे, वैसे ही तुम मेरे पुत्र हो और महाप्राज्ञ विदुर भी उसी प्रकार के हैं हे भारत! तुम्हारे लम्बे समय से एक सौ एक पुत्र हैं, पर पाण्डु के केवल पाँच ही हैं और वे भी सीधे तथा अत्यन्त दुःख में पड़े हुए हैं। उन दीन कुन्ती पुत्रों के बारे में यह सोचते हुए कि वे कैसे जीवित रहेंगे और कैसे उन्नति को प्राप्त करेंगे? मेरा मन बड़ा सन्तप्त हो रहा है। हे राजन् यदि तुम यह चाहते हो कि कौरव यहाँ जीवित अवस्था में रहें, तो दुर्योधन को पाण्डवों के साथ शान्ति से रहना चाहिये।

धृतराष्ट्र उवाच

एवमेतन्महाप्राज्ञ यथा वदसि नो मुने।। ३९।।
अहं चैव विजानामि सर्वे चेमे नराधिपाः।
भवांश्च मन्यते साधु यत् कुरूणां महोदयम्।। ४०।।
तदेव विदुरोऽप्याह भीष्मो द्रोणश्च मां मुने।
यदि त्वहमनुग्राह्यः कौरव्येषु दया यदि।। ४१।।
अन्वशाधि दुरात्मानं पुत्रं दुर्योधनं मम।

तब धृतराष्ट्र बोले कि हे महाप्राज्ञ मुने! जैसे आप कहते हैं, वैसे ठीक है। मैं भी इसे ठीक मानता हूँ और ये सारे राजा लोग भी ठीक मानते हैं। आप भी उसी बात को ठीक मानते हैं, जो कौरवों के लिये उन्नति कारक है। ऐसा ही विदुर ने, भीष्म ने और द्रोणाचार्य ने मुझसे कहा है। यदि आपका मुझ पर अनुग्रह और कौरवों पर दया है तो आप मेरे इस दुरात्मा पुत्र दुर्योधन को समझाइये।

व्यास उवाच

अयमायाति वै राजन् मैत्रेयो भगवानृषिः।। ४२।।
अन्विष्य पाण्डवान् भ्रातृनिहैत्यस्मद्दिदृक्षया।
एष दुर्योधनं पुत्रं तव राजन् महानृषिः।। ४३।।
अनुशास्ता यथान्यायं शमायास्य कुलस्य च।
एवमुक्त्वा ययौ व्यासो मैत्रेयः प्रत्यदृश्यत।। ४४।।
पूजया प्रतिजग्राह सपुत्रस्तं नराधिपः।

तब व्यास जी ने कहा कि हे राजन्! ये भगवान् मैत्रेय ऋषि पाण्डव भाइयों से मिल कर यहाँ हम लोगों से मिलने के लिये आ रहे हैं। हे राजन्! ये महान् ऋषि इस कुल की शान्ति के लिये आपके पुत्र दुर्योधन को यथोचित रूप से समझायेंगे। ऐसा कह कर व्यास जी वहाँ से चले गये और मैत्रेय जी का वहाँ आगमन हुआ। राजा ने तब अपने पुत्र सहित उनकी पूजा के द्वारा अगवानी की।

अर्घ्याद्याभिः क्रियाभिर्वै विश्रान्तं मुनिसत्तमम्।। ४५।।
प्रश्रयेणाब्रवीद् राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।
सुखेनागमनं कच्चिद् भगवन् कुरुजाङ्गलान्।। ४६।।

मैत्रेय उवाच

यदृच्छया धर्मराजं दृष्टवान् काम्यके वने।
तं जटाजिनसंवीतं तपोवननिवासिनम्।। ४७।।
समाजग्मुर्महात्मानं द्रष्टुं मुनिगणाः प्रभो।
तत्राश्रौषं महाराज पुत्राणां तव विभ्रमम्।। ४८।।
अनयं द्यूतरूपेण महाभयमुपस्थितम्।

जब अर्घ्य आदि क्रियाओं से सम्मानित होकर वे श्रेष्ठ मुनि आराम से बैठे तब अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्र ने नम्रता पूर्वक उनसे कहा कि महाराज! इस कुरुजांगल देश में आपका आगमन सुखपूर्वक हुआ है ना? तब मैत्रेय मुनि ने कहा कि स्वाभाविक रूप से घूमते हुए काम्यक वन में मेरी भेंट धर्मराज युधिष्ठिर से हो गयी थी। जटाओं और मृगचर्म से युक्त होकर तपोवन में निवास करते हुए उन महात्मा से मिलने के लिये हे प्रभो! अनेक मुनि लोग वहाँ गये हुए थे। हे महाराज! वहीं मैंने तुम्हारे पुत्रों की भ्रान्त बुद्धि के बारे में सुना। उन्होंने जूए के रूप में जिस अन्याय का आश्रय लिया है, उससे उनके ऊपर महान् भय उपस्थित हो गया है।

ततोऽहं त्वमानुप्राप्तः कौरवाणामवेक्षया।। ४९।।
सदा ह्यभ्यधिकः स्नेहः प्रीतिश्च त्वयि मे प्रभो।
नैतदौपयिकं राजंस्त्वयि भीष्मे च जीवति।।५०।।
यदन्योन्येन ते पुत्रा विरुध्यन्ते कथंचन।
मेढीभूतः स्वयं राजन् निग्रहे प्रग्रहे भवान्।।५१।।
किमर्थमनयं घोरमुत्पद्यन्तमुपेक्षसे।
दस्यूनामिव यद् वृत्तं सभायां कुरुनन्दन।।५२।।
तेन न भ्राजसे राजंस्तापसानां समागमे।

तब मैं कौरवों से मिलने के लिये तुम्हारे पास आया हूँ। हे प्रभो! मेरा सदा से ही तुम्हारे प्रति अधिक स्नेह और प्रेम रहा है। हे राजन्! यह उचित नहीं है कि भीष्म और तुम्हारे जीवित रहते हुए तुम्हारे पुत्र किसी प्रकार से आपस में विरोध करें। हे राजन्! आप स्वयं इन्हें बाँध कर वश में रखने के लिये एक स्तम्भ के समान हैं। फिर उत्पन्न होते हुए इस महान् अन्याय की उपेक्षा क्यों कर रहे हो? हे कुरुनन्दन! तुम्हारी सभा में जो डाकुओं के समान बर्ताव किया गया, उससे आप मुनियों के समुदाय में शोभा नहीं पा रहे हैं।

ततो व्यावृत्य राजानं दुर्योधनममर्षणम्।।५३।।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा मैत्रेयो भगवानृषिः।
दुर्योधन महाबाहो निबोध वदतां वर।।५४।।
वचनं मे महाभाग ब्रुवतो यद्धितं तव।
मा द्रुहः पाण्डवान् राजन् कुरुष्व प्रियमात्मनः।। ५५।।
पाण्डवानां कुरूणां च लोकस्य च नरर्षभ।
ते हि सर्वे नरव्याघ्राः शूरा विक्रान्तयोधिनः।।५६।।
सत्यव्रतधराः सर्वे सर्वे पुरुषमानिनः।
हन्तारो देवशत्रूणां रक्षसां कामरूपिणाम्।। ५७।।
हिडिम्बकमुख्यानां किर्मीरस्य च रक्षसः।

तब राजा धृतराष्ट्र से यह कह कर भगवान मैत्रेय ऋषि ने अमर्षशील दुर्योधन से मधुर वाणी में यह कहा कि हे वक्ताओं में श्रेष्ठ, महाभाग, महाबाहु दुर्योधन! जो मैं तुम्हारे हित की बात कह रहा हूँ, उसे समझो। हे नरश्रेष्ठ! हे राजन्! तुम पाण्डवों से द्रोह मत करो और अपना, कौरवों का, पाण्डवों का तथा सारे संसार का प्रिय साधन करो। वे सारे पाण्डव शूरवीर और पराक्रम के साथ युद्ध करने वाले हैं। वे सत्यव्रत को धारण करने वाले, अपने पौरुष को समझने वाले, देवताओं के शत्रु तथा छल पूर्वक रूप बदलने वाले राक्षसों को मारने वाले हैं। उन्होंने हिडिम्ब आदि तथा किर्मीर राक्षस का भी वध किया है।

इतः प्रद्रवतां रात्रौ यः स तेषां महात्मनाम्।। ५८।।
आवृत्य मार्गं रौद्रात्मा तस्थौ गिरिरिवाचलः।
तं भीमः समरश्लाघी बलेन बलिनां वरः।। ५९।।
जघान पशुमारेण व्याघ्रः क्षुद्रमृगं यथा।
पश्य दिग्विजये राजन् यथा भीमेन पातितः।। ६०।।
जरासंधो महेष्वासो नागायुतबलो युधि।
सम्बन्धी वासुदेवश्च श्यालाः सर्वे च पार्षताः।। ६१।।

उनके यहाँ से जाते हुए, रात्रि में वह किर्मीर नाम का भयानक राक्षस उनके रास्ते को रोक कर पर्वत के समान स्थिर खड़ा हो गया। तब युद्ध की इच्छा रखने वाले बलवानों में श्रेष्ठ भीम ने उसे इस प्रकार पशुओं की तरह से मारा जैसे बाघ छोटे से हिरण को मार देता है। हे राजन्! देखो। अपनी दिग्विजय में भीम ने महाधनुर्धर और अनेक हाथियों के समान बल वाले जरासन्ध को भी युद्ध में गिरा दिया था। वे पाण्डव श्रीकृष्ण के संबंधी हैं और द्रुपद के पुत्र उनके साले हैं।

कस्तान् युधि समासीत जरामरणवान् नरः।
तस्य ते शम एवास्तु पाण्डवैर्भरतर्षभ।। ६२।।
कुरु मे वचनं राजन् मा मन्युवशमन्वगाः।
एवं तु ब्रुवतस्तस्य चरणेनोल्लिखन् महीम्।। ६३।।
न किंचिदुक्त्वा दुर्मेधास्तस्थौ किंचिदवाङ्मुखः।
स कोपवशमापन्नो मैत्रेयो मुनिसत्तमः।। ६४।।

मैत्रेय उवाच

नाहं वक्ष्यामि ते भूयः न ते शुश्रुषते सुतः।
इत्येवमुक्त्वा मैत्रेयः प्रातिष्ठत यथाऽऽगतम्।। ६५।।

उन पाण्डवों का सामना युद्ध में कौन बुढ़ापे और मृत्यु के वश में रहने वाला कर सकता है? इसलिये हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हें पाण्डवों के साथ शान्ति से ही रहना चाहिये। हे राजन्! तुम मेरी बात मानो और क्रोध के वश में मत होओ। इस प्रकार जब मैत्रेय जी कह रहे थे, तब वह दुर्योधन, कुछ भी न बोल कर, नीचे मुख किये हुए पैरों से भूमि को कुरेदता रहा। तब उन मुनिश्रेष्ठ मैत्रेय को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा कि हे राजन्! तुम्हारा पुत्र मेरी बात नहीं सुनना चाहता, इसलिये अब मैं कुछ और नहीं कहूँगा। ऐसा कह कर मैत्रेय जी जैसे आये थे, वैसे ही चले गये।

पाँचवाँ अध्याय : भीम के द्वारा किर्मीर वध की कथा।

धृतराष्ट्र उवाच

किर्मीरस्य वधं क्षत्तः श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम्।
रक्षसा भीमसेनस्य कथमासीत् समागमः।। १।।

विदुर उवाच

शृणु भीमस्य कर्मेदमतिमानुषकर्मणः।
श्रुतपूर्वं मया तेषां कथान्तेषु पुनः पुनः।। २।।
इतः प्रयाता राजेन्द्र पाण्डवा द्यूतनिर्जिता।
जग्मुस्त्रिभिरहोरात्रैः काम्यकं नाम तद् वनम्।। ३।।

तब धृतराष्ट्र ने विदुर से पूछा कि हे विदुर! उस राक्षस के साथ भीमसेन की मुठभेड़ कैसे हुई? मैं किर्मीर के वध का वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। मुझे बताओ। तब विदुर ने कहा कि मानव शक्ति से बढ़ कर काम करने वाले भीमसेन के इस कर्म के बारे में सुनो। मैंने वहाँ लोगों के द्वारा किये वर्णनों में इसे बार बार सुना है। हे राजेन्द्र! जब जूए में हारे हुए पाण्डव यहाँ से गये, तब वे तीन दिन और तीन रात में काम्यक नाम के उस वन में पहुँचे।

रात्रौ निशीथे त्वाभीले गतेऽर्धसमये नृप।
प्रचारे पुरुषादानां रक्षसां घोरकर्मणाम्।। ४।।
तद् वनं तापसा नित्यं गोपाश्च वनचारिणः।
दूरात् परिहरन्ति स्म पुरुषादभयात् किल।। ५।।
तेषां प्रविशतां तत्र मार्गमावृत्य भारत।
दीप्ताक्षं भीषणं रक्षः सोल्मुकं प्रत्यपद्यत।। ६।।
मुञ्चन्तं विपुलान् नादान् सतोयमिव तोयदम्।

हे राजन्! आधी रात के उस भयभीत करने वाले समय, जब कि वन में मनुष्य भक्षी, और भयानक कर्म करने वाले राक्षसों का संचार हो रहा था तथा वन में विचरण करने वाले तपस्वी और ग्वाले भी उस मनुष्यभक्षी राक्षस के भय से वन को सदा दूर से ही छोड़ दिया करते थे, पाण्डवों के उस वन में प्रवेश करते ही, हे भारत! वह राक्षस जिसकी आँखें चमक रहीं थी, एक मशाल लेकर जल भरे बादलों के समान भयानक गर्जना करते हुए उनके रास्ते को रोक कर खड़ा हो गया।

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणामविज्ञातो महारिपुः।। ७।।
पञ्चानामिन्द्रियाणां तु शोकावेश इवातुलः।
तं समासाद्य वित्रस्ता कृष्णा कमललोचना।। ८।।
अदृष्टपूर्वं संत्रासान्न्यमीलयत लोचने।
दुःशासनकरोत्सृष्टविप्रकीर्णशिरोरुहा ।। ९।।
पञ्चपर्वतमध्यस्था नदीवाकुलतां गता।
मोमुह्यमानां तां तत्र जगृहुः पञ्च पाण्डवाः।। १०।।
इन्द्रियाणि प्रसक्तानि विषयेषु यथा रतिम्।

पाँचों पाण्डुपुत्रों का वह महान् शत्रु उनके लिये अनजाना था। वह उनके सामने अचानक इस प्रकार आ गया था, जैसे पाँचों इन्द्रियों को व्याकुल करने वाला शोक का महान् वेग अचानक उनके सामने प्रस्तुत हो जाता है। उस अदृष्टपूर्व राक्षस को प्राप्त कर कमल लोचना डरी हुई द्रौपदी ने भय के कारण अपनी आँखें बन्द कर लीं। दुश्शासन के हाथों से बिखेरे हुए उसके बाल सब तरफ बिखरे हुए थे। वह उस समय पाँच पर्वतों के बीच में रुकी हुई नदी के समान व्याकुल हो रही थी। तब मूर्च्छित होती हुई उस द्रौपदी को पाँचों पाण्डवों ने उसी प्रकार थाम लिया जैसे विषयों में फँसी हुई इन्द्रियाँ अपनी उस अनुरक्ति को धारण किये रहती हैं।

तमुवाच ततो राजा दीर्घप्रज्ञो युधिष्ठिरः।। ११।।
को भवान् कस्य वा किं ते क्रियतां कार्यमुच्यताम्।
प्रत्युवाचाथ तद् रक्षो धर्मराजं युधिष्ठिरम्।। १२।।
अहं बकस्य वै भ्राता किर्मीर इति विश्रुतः।
वनेऽस्मिन् काम्यके शून्ये निवसामि गतज्वरः।। १३।।
युधि निर्जित्य पुरुषानाहारं नित्यमाचरन्।
के यूयमभिसम्प्राप्ता भक्ष्यभूता ममान्तिकम्।। १४।।
युधि निर्जित्य वः सर्वान् भक्षयिष्ये गतज्वरः।

तब विशाल बुद्धि वाले राजा युधिष्ठिर ने उससे पूछा कि आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? तुम्हारा क्या कार्य किया जाये? बताइये। तब उस राक्षस ने युधिष्ठिर को उत्तर दिया कि मैं बक का भाई हूँ। मेरा नाम किर्मीर है। मैं इस सूने काम्यक वन में निश्चिन्त होकर रहता हूँ। मैं मनुष्यों को युद्ध में जीत कर नित्य उनका भोजन किया करता हूँ। तुम कौन हो जो मेरे भोजन के रूप में मेरे पास आ गये हो? मैं युद्ध में तुम सबको जीत कर निश्चिन्त हो कर खाऊँगा।

युधिष्ठिरस्तु तच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दुरात्मनः॥ १५॥
आचचक्षे ततः सर्वं गोत्रनामादि भारत।

किर्मीर उवाच

भीमसेनवधार्थे हि नित्यमभ्युद्यतायुधः॥ १६॥
चरामि पृथिवीं कृत्स्नां नैनं चासादयाम्यहम्।
सोऽयमासादितो दिष्ट्या भ्रातृहा काङ्क्षितश्चिरम्॥ १७॥
अनेन हि मम भ्राता बको विनिहतः प्रियः।
वैत्रकीयवने राजन् ब्राह्मणच्छद्मरूपिणा॥ १८॥

हे भारत! युधिष्ठिर ने उस दुरात्मा के वचन सुन कर अपने गोत्रादि सबका परिचय उसे दिया। तब किर्मीर राक्षस बोला कि मैं भीमसेन के वध के लिये हथियारों को उठा कर सदा इस सारी भूमि पर विचरण कर रहा था, पर यह मुझे मिल नहीं रहा था। मेरे भाई का हत्यारा यह, जिसकी मुझे बहुत दिनों से चाह थी, सौभाग्य से आज मिल गया है। हे राजन्! इसने ब्राह्मण का कपट रूप धारण करके वैत्रकीय वन में मेरे प्यारे भाई बक को मारा था।

हिडिम्बश्च सखा मह्यं दयितो वनगोचरः।
हतो दुरात्मनानेन स्वसा चास्य हृता पुरा॥ १९॥
सोऽयमभ्यागतो मूढो ममेदं गहनं वनम्।
प्रचारसमयेऽस्माकमर्धरात्रे स्थिते स मे॥ २०॥
अद्याहमनृणो भूत्वा भ्रातुः सख्युस्तथैव च।
शान्तिं लब्धास्मि परमां हत्वा राक्षसकण्टकम्॥ २१॥
यदि तेन पुरा मुक्तो भीमसेनो बकेन वै।
अद्यैनं भक्षयिष्यामि पश्यतस्ते युधिष्ठिर॥ २२॥

इसी दुष्ट ने पहले मेरे प्रिय मित्र हिडिम्ब को जो वन में रहता था, मारा था, और उसकी बहन का अपहरण कर लिया था। यह मूर्ख अब हमारे विचरण करने के समय आधी रात में मेरे इस गहन वन में आ गया है। आज मैं राक्षसों के लिये कण्टक स्वरूप इसको मार कर भाई और मित्र के ऋण से उऋणी होकर परम शान्ति को प्राप्त करूँगा। हे युधिष्ठिर! बक ने पहले बेशक छोड़ दिया, पर मैं आज इसे तुम्हारे देखते हुए ही खाऊँगा।

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा सत्यसंधो युधिष्ठिरः।
नैतदस्तीति सक्रोधो भर्त्सयामास राक्षसम्॥ २३॥
ततो भीमो महाबाहुरारुज्य तरसा द्रुमम्।
निमेषान्तरमात्रेण निष्पत्रमकरोत् तदा॥ २४॥
चकार सज्यं गाण्डीवं तथैव विजयोऽर्जुनः।
निवार्य भीमो जिष्णुं तं तद् रक्षो मेघनिःस्वनम्॥ २५॥
अभिद्रुत्याब्रवीद् वाक्यं तिष्ठ तिष्ठेति भारतः।

हे भारत! ऐसा कहे जाने पर सत्यसंध, धर्मात्मा युधिष्ठिर ने क्रोध में भर कर उस राक्षस को धमकाते हुए कहा कि ऐसा नहीं हो सकता। तब महाबाहु भीमसेन ने एक वृक्ष को क्षण मात्र में तेजी से उखाड़ कर उसके पत्ते झाड़ लिये। इसी प्रकार विजयी अर्जुन ने भी गाण्डीव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा ली। तब उस भरतवंशी भीम ने अर्जुन को रोक कर, उस बादलों जैसी ध्वनि वाले राक्षस पर आक्रमण की तैयारी करते हुए उससे कहा कि ठहर जा, ठहर जा।

इत्युक्त्वैनमतिक्रुद्धः कक्ष्यामुत्पीड्य पाण्डवः॥ २६॥
निष्पिष्य पाणिना पाणिं संदष्टौष्ठपुटो बली।
तमभ्यधावद् वेगेन भीमो वृक्षायुधस्तदा॥ २७॥
पातयामास वेगेन ततस्तं तस्य मूर्धनि।
असम्भ्रान्तं तु तद् रक्षः समरे प्रत्यदृश्यत॥ २८॥
किर्मीरश्चापि सहसा वृक्षमुत्पाट्य पाण्डवम्।
दण्डपाणिरिव क्रुद्धः समरे प्रत्यधावत॥ २९॥
तद् वृक्षयुद्धमभवन्महीरुहविनाशनम्।
बालिसुग्रीवयोर्भ्रात्रोर्यथा स्त्रीकाङ्क्षिणोः पुरा॥ ३०॥

उसे ऐसा कह कर उन बलवान् पाण्डव ने अपनी कमर को अच्छी तरह से बाँध लिया और अत्यन्त क्रोध से अपने हाथों को परस्पर मलते हुए तथा होठों को दाँतों से दबाते हुए वे वृक्ष को हाथ में लेकर उसकी तरफ दौड़े तथा तेजी से उसे उन्होंने उसके सिर पर दे मारा। पर वह राक्षस उस प्रहार से युद्ध में विचलित नहीं हुआ। तब किर्मीर ने भी सहसा एक वृक्ष उखाड़ कर काल रूपी दण्ड को धारण किये क्रुद्ध मृत्यु के समान युद्ध में उस पाण्डव पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार दूसरे वृक्षों को भी नष्ट करने वाला वह वृक्ष युद्ध उन

दोनों में उसी प्रकार चलने लगा, जैसे पहले स्त्री के लिये बाली और सुग्रीव दोनों भाइयों में युद्ध हुआ था।

तावन्योन्यं समाश्लिष्य प्रकर्षन्तौ परस्परम्।
उभावपि चकाशेते प्रवृद्धौ वृषभाविव।। ३१।।
तयोरासीत् सुतुमुलः सम्प्रहारः सुदारुणः।
नखदंष्ट्रायुधवतोर्व्याघ्रयोरिव दृप्तयोः।। ३२।।
दुर्योधननिकाराच्च बाहुवीर्याच्च दर्पितः।
कृष्णानयनदृष्टश्च व्यवर्धत वृकोदरः।। ३३।।
अभिपद्य च बाहुभ्यां प्रत्यगृह्णादमर्षितः।
मातङ्गमिव मातङ्गः प्रभिन्नकरटामुखम्।। ३४।।

वे दोनों एक दूसरे को छाती से जकड़ कर इधर उधर खींच रहे थे। लड़ते हुए वे दोनों मस्त सांडों के समान लग रहे थे। नख और दाँतों से काम लेने वाले दो उन्मत्त बाघों के समान उन दोनों में बड़ा भयानक और घमासान युद्ध छिड़ा हुआ था। दुर्योधन के द्वारा अपमान का प्रतिशोध करने के लिये, अपने बाहुबल के अभिमान से तथा द्रौपदी के द्वारा उनके पराक्रम को देखे जाने के कारण भीमसेन उस समय अत्यन्त उत्साहित हो रहे थे। उन्होंने अमर्ष के साथ आक्रमण कर उस राक्षस को दोनों हाथों से ऐसे पकड़ लिया, जैसे एक मस्त हाथी मद की धारा बहाने वाले दूसरे हाथी को पकड़ लेता है।

स चाप्येनं ततो रक्षः प्रतिजग्राह वीर्यवान्।
तमाक्षिपद् भीमसेनो बलेन बलिनां वरः।। ३५।।
तयोर्भुजविनिष्पेषादु भयोर्बलिनोस्तदा।
शब्दः समभवद् घोरो वेणुस्फोटसमो युधि।। ३६।।
अथैनमाक्षिप्य बलाद् गृह्य मध्ये वृकोदरः।
धूनयामास वेगेन वायुश्चण्ड इव द्रुमम्।। ३७।।
स भीमेन परामृष्टो दुर्बलो बलिना रणे।
व्यस्पन्दत यथाप्राणं विचकर्ष च पाण्डवम्।। ३८।।

तब उस बलवान राक्षस ने भी उसे पकड़ लिया। बलवानों में श्रेष्ठ भीम ने उसे बल पूर्वक दूर फैंक दिया। उन दोनों बलवानों की भुजाओं की रगड़ से बाँसों के फटने के समान भयानक ध्वनि हो रही थी। तब उसके पश्चात् भीम ने उसे कमर के बीच में से पकड़ कर, बल पूर्वक ऐसे घुमाना आरम्भ कर दिया, जैसे प्रचण्ड वायु वृक्ष को झकझोर देती है। बलवान् भीमसेन के द्वारा युद्ध में पकड़ा हुआ वह दुर्बल राक्षस यथाशक्ति उससे छूटने का प्रयत्न करने लगा और उसने पाण्डु पुत्र को इधर उधर खींचा।

तत एनं परिश्रान्तमुपलक्ष्य वृकोदरः।
योक्त्रयामास बाहुभ्यां पशुं रशनया यथा।। ३९।।
विनदन्तं महानादं भिन्नभेरीस्वनं बली।
भ्रामयामास सुचिरं विस्फुरन्तमचेतसम्।। ४०।।
तं विषीदन्तमाज्ञाय राक्षसं पाण्डुनन्दनः।
प्रगृह्य तरसा दोर्भ्यां पशुमारममारयत्।। ४१।।
आक्रम्य च कटीदेशे जानुना राक्षसाधमम्।
पीडयामास पाणिभ्यां कण्ठं तस्य वृकोदर।। ४२।।
अथ जर्जरसर्वाङ्गं व्यावृत्तनयनोल्वणम्।
भूतले भ्रामयामास वाक्यं चेदमुवाच ह।। ४३।।
हिडिम्बबकयोः पाप न त्वमश्रुप्रमार्जनम्।
करिष्यसि गतश्चापि यमस्य सदनं प्रति।। ४४।।

तब यह जान कर कि यह राक्षस थक गया है, उन्होंने उसे हाथों से ऐसे ही जकड़ लिया जैसे पशु को डोरी से बाँध देते हैं। फटे हुए नगाड़े के समान जोर से चीत्कार करते हुए और छटपटाते हुए उस राक्षस को उन बलवान् भीम ने बहुत देर तक घुमाया, जिससे वह मूर्च्छित हो गया। तब उस राक्षस को विषादयुक्त जान कर पाण्डु पुत्र भीम ने दोनों हाथों से उसे जोर से पकड़ कर पशुओं की तरह मारना आरम्भ कर दिया। उस अधम राक्षस की कमर में घुटनों से प्रहार कर, भीम ने दोनों हाथों से उसका गला मरोड़ दिया। किर्मीर का सारा शरीर जर्जर हो रहा था और उसकी भयानक आँखें घूम रहीं थीं। भीम ने उसे भूमि पर घुमाया और कहा कि अरे पापी! अब तू मृत्यु लोक में जाकर हिडिम्ब और बक के आँसू भी नहीं पूँछ सकेगा।

इत्येवमुक्त्वा पुरुषप्रवीर-
स्तं राक्षसं क्रोधपरीतचेताः।
विस्रस्तवस्त्राभरणं स्फुरन्त-
मुद्भ्रान्तचित्तं व्यसुमुत्ससर्ज।। ४५।।

ऐसा कह कर क्रोध से भरे हुए हृदय वाले पुरुष श्रेष्ठ भीम ने उस राक्षस को, जिसके वस्त्र और आभूषण बिखर गये थे, जिसका चित्त भ्रान्त हो रहा था और जो छटपटा रहा था, प्राण निकल जाने पर छोड़ दिया।

ततो निष्कण्टकं कृत्वा वनं तदपराजितः।
द्रौपद्या सह धर्मज्ञो वसतिं तामुवास ह।। ४६।।

स मया गच्छता मार्गे विनिकीर्णो भयावहः।
वने महति दुष्टात्मा दृष्टो भीमबलाद्धतः।।४७।।
एवं विनिहतं संख्ये किर्मीरं रक्षसां वरम्।
श्रुत्वा ध्यानपरो राजा निशश्वासार्तवत् तदा।।४८।।

तब विजयी और धर्मज्ञ पाण्डुकुमार उस वन को निष्कंटक बना कर द्रौपदी के साथ वहाँ रहने लगे। मैंने महान् वन में जाते हुए मार्ग में उस भयानक, दुष्टात्मा, और भीम के बल से मारे हुए राक्षस को पड़ा हुआ देखा था। तब इस प्रकार राक्षसों में श्रेष्ठ किर्मीर को युद्ध में मारा हुआ सुन कर राजा धृतराष्ट्र चिन्ता में डूबे हुए, दुखियों के समान लम्बी साँसें भरने लगे।

छठा अध्याय : श्रीकृष्ण का आना, द्रौपदी को सान्त्वना देना।

भोजाः प्रव्रजिताञ्छ्रुत्वा वृष्णयश्चान्धकैः सह।
पाण्डवान् दुःखसंतप्तान् समाजग्मुर्महावने।। १।।
पाञ्चालस्य च दायादो धृष्टकेतुश्च चेदिपः।
केकयाश्च महावीर्या भ्रातरो लोकविश्रुताः।। २।।
वने द्रष्टुं ययुः पार्थान् क्रोधामर्षसमन्विताः।
गर्हयन्तो धार्तराष्ट्रान् किं कुर्म इति चाब्रुवन्।। ३।।

जब भोजवंशियों, वृष्णिवंशियों और अन्धक वंशियों ने सुना कि पाण्डव दुख से संतप्त होकर महान् वन में चले गये हैं, तब वे उनसे मिलने के लिये वन में पहुँचे। पांचाल राजकुमार धृष्टद्युम्न, चेदी देश का राजा धृष्टकेतु और महा पराक्रमी कैकेय राजकुमार भाई, क्रोध और अमर्ष में भर कर, धृतराष्ट्र के पुत्रों की निन्दा करते हुए और हमें अब क्या करना चाहिये, ऐसा कहते हुए, पाण्डवों से मिलने के लिये पहुँचे।

वासुदेवं पुरस्कृत्य सर्वे ते क्षत्रियर्षभाः।
परिवार्योपविविशुर्धर्मराजं युधिष्ठिरम्।। ४।।
अभिवाद्य कुरुश्रेष्ठं विषण्णः केशवोऽब्रवीत्।
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्च दुरात्मनः।। ५।।
दुःशासनचतुर्थानां भूमिः पास्यति शोणितम्।
एतान् निहत्य समरे ये च तस्य पदानुगाः।। ६।।
तांश्च सर्वान् विनिर्जित्य सहितान् सनराधिपान्।
ततः सर्वेऽभिषिञ्चामो धर्मराजं युधिष्ठिरम्।। ७।।
निकृत्योपचरन् वध्य एष धर्मः सनातनः।

वे सारे क्षत्रियश्रेष्ठ श्रीकृष्ण जी को आगे करके, धर्मराज युधिष्ठिर को घेर कर बैठ गये। तब उन कुरुश्रेष्ठ को अभिवादन कर उदास श्रीकृष्ण जी ने कहा कि यह भूमि दुर्योधन, कर्ण, दुष्ट शकुनि और दुश्शासन इन चारों के खून को पीयेगी। इन सबको तथा इनके पीछे चलने वाले सभी को अन्य राजाओं के साथ जीत कर हम धर्मराज युधिष्ठिर का पुनः अभिषेक कर दें। जो छल कपट का बर्ताव करे, उसे मार देना चाहिये। यह सनातन धर्म है।

पार्थानामभिषङ्गेण तथा क्रुद्धं जनार्दनम्।। ८।।
अर्जुनः शमयामास दिधक्षन्तमिव प्रजाः।
धृष्टद्युम्नमुखैर्वीरैर्भ्रातृभिः परिवारिता।। ९।।
पाञ्चाली पुण्डरीकाक्षमासीनं भ्रातृभिः सह।
अभिगम्याब्रवीत् क्रुद्धा शरण्यं शरणैषिणी।। १०।।

कुन्ती पुत्रों के अपमान से श्रीकृष्ण जी इतना क्रुद्ध हो रहे थे, मानो सारी प्रजा को जलाना चाहते हों। तब अर्जुन ने उन्हें शान्त किया। उस समय धृष्टद्युम्न आदि अपने वीर भाइयों से घिरी द्रौपदी अपने भाइयों के साथ उन कमल नयन श्रीकृष्ण जी के सामने जाकर उन शरणदाता से शरण की इच्छा रखती हुई क्रोध में भरी हुई यह बोली कि—

स्त्रीधर्मिणी वेपमाना शोणितेन समुक्षिता।
एकवस्त्रा विकृष्टास्मि दुःखिता कुरुसंसदि।। ११।।
राज्ञां मध्ये सभायां तु रजसातिपरिप्लुता।
दृष्ट्वा च मां धार्तराष्ट्रा प्राहसन् पापचेतसः।। १२।।
दासीभावेन मां भोक्तुमीषुस्ते मधुसूदन।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु पञ्चालेषु च वृष्णिषु।। १३।।
नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः।
स्नुषा भवामि धर्मेण साहं दासीकृता बलात्।। १४।।

मैं उस समय स्त्रीधर्म में विद्यमान थी, काँप रही थी, मैंने एक ही वस्त्र पहना हुआ था और उस पर खून के धब्बे लगे हुए थे, ऐसी अवस्था में मुझ दुःखिनी को खींच कर कौरवों की सभा में लाया गया। उस सभा में राजाओं के बीच में मुझ खून से भरी हुई को देख कर पापी धृतराष्ट्र के पुत्र जोर से हँसने लगे। हे मधुसूदन! पाण्डुपुत्रों, पांचालों और वृष्णिवंशियों के जीवित होते हुए उन्होंने मुझे दासी भाव से भोगने की इच्छा प्रकट की। हे कृष्ण! मैं

धर्म से भीष्म और धृतराष्ट्र दोनों की पुत्रवधु हूँ, फिर भी उनके सामने मुझे बल पूर्वक दासी बनाया गया।

धिग् बलं भीमसेनस्य धिक् पार्थस्य च पौरुषम्।
यत्र दुर्योधनः कृष्ण मुहूर्तमपि जीवति।। १५।।
भोजने भीमसेनस्य पापः प्राक्षेपयद् विषम्।
तज्जीर्णमविकारेण सहान्नेन जनार्दन।। १६।।
सशेषत्वान्महाबाहो भीमस्य पुरुषोत्तम।
प्रमाणकोट्यां विश्वस्तं तथा सुप्तं वृकोदरम्।। १७।।
बद्ध्वैनं कृष्ण गङ्गायां प्रक्षिप्य पुरमाव्रजत्।
सारथिं चास्य दयितमपहस्तेन जघ्निवान्।। १८।।

भीम के बल को धिक्कार है, अर्जुन के पौरुष को धिक्कार है, हे कृष्ण! जो इतना बड़ा अनर्थ कर के भी दुर्योधन एक क्षण के लिये भी जीवित है। इस पापी ने भीम के भोजन में जहर मिला दिया, पर हे महाबाहु, पुरुषोत्तम जनार्दन! भीम का जीवन शेष था, इसलिये वह कोई विकार किये बिना भोजन के साथ ही हजम हो गया। उसने प्रमाण कोटि में जब भीम विश्वस्त हो कर सो रहे थे, तब उन्हें बाँध कर गंगा में फैंक दिया और चुपचाप नगर में आ गया। भीम के प्यारे सारथी को उसने बायें हाथ से मार दिया।

पुनः सुप्तानुपाधाक्षीद् बालकान् वारणावते।
शयानानार्यया सार्धं को नु तत् कर्तुमर्हति।। १९।।
एवं सुयुद्धे पार्थेन जिताहं मधुसूदन।
स्वयंवरे महत् कर्म कृत्वा न सुकरं परैः।। २०।।
एवं क्लेशैः सुबहुभिः क्लिश्यमाना सुदुःखिता।
निवासाम्यार्यया हीना कृष्ण धौम्यपुरःसरा।। २१।।
त इमे सिंहविक्रान्ता वीर्येणाभ्यधिकाः परैः।
विहीनैः परिक्लिश्यन्तीं समुपैक्षन्त मां कथम्।। २२।।

फिर वारणावत नगर में जब ये बालक पाण्डव आर्या कुन्ती के साथ सो रहे थे, तब उसने घर में आग लगवा दी। ऐसा दुष्कर्म कौन दूसरा व्यक्ति कर सकता है। हे कृष्ण! स्वयंवर में अर्जुन ने वह कार्य करके, जो दूसरों के लिये सरल नहीं था, महान् युद्ध में मुझे जीता था। पर अब मैं इनके होते हुए भी, बहुत सारे क्लेशों से पीड़ित होती हुई, बहुत दुखी अवस्था में अपनी सास कुन्ती से अलग होकर, धौम्य जी को आगे रख कर, वन में निवास कर रही हूँ। ये पाण्डव सिंह के समान पराक्रमी हैं और बल में भी अधिक हैं, पर फिर भी कमजोर शत्रुओं से क्लेश पाती हुई मुझे देख कर भी इन्होंने मेरी उपेक्षा क्यों की?

एतादृश्यानि दुःखानि सहन्ती दुर्बलीयसाम्।
दीर्घकालं प्रदीप्तास्मि पापानां पापकर्मणाम्।। २३।।
कचग्रहमनुप्राप्ता सास्मि कृष्ण वरा सती।
पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां प्रेक्षतां मधुसूदन।। २४।।
इत्युक्त्वा प्रारुदत् कृष्णा मुखं प्रच्छाद्य पाणिना।
पद्मकोशप्रकाशेन मृदुना मृदुभाषिणी।। २५।।

उन पापकर्मी पापियों और दुर्बलों के दिये हुए इस प्रकार के दुखों को सहन करते हुए मैं लम्बे समय से चिन्ता की आग में जल रही हूँ। हे कृष्ण! सती और श्रेष्ठ होते हुए भी, पाँचों पाण्डु पुत्रों के देखते हुए मेरे बाल पकड़ कर खींचे गये। ऐसा कह कर वह मृदुभाषिणी द्रौपदी अपने मुख को कमलकोष के समान कान्ति वाले कोमल हाथ से ढक कर रोने लगी।

चक्षुषी परिमार्जन्ती निःश्वसन्ती पुनः पुनः।
बाष्पपूर्णेन कण्ठेन क्रुद्धा वचनमब्रवीत्।। २६।।
न च मे शाम्यते दुःखं कर्णो यत् प्राहसत् तदा।
अथ तामब्रवीत् कृष्णस्तस्मिन् वीरसमागमे।। २७।।

फिर अपनी आँखों को पोंछती हुई और लम्बी-लम्बी साँसें लेती हुई, आँसू भरे गले से वह क्रोध में भर कर बोली कि उस समय कर्ण ने जो मेरी हँसी उड़ाई थी, उसका दुख तो मेरे हृदय से दूर ही नहीं होता है। तब श्रीकृष्ण ने उस वीरों के समुदाय में द्रौपदी से यह कहा कि–

रोदिष्यन्ति स्त्रियो ह्येवं येषां क्रुद्धासि भाविनि।
बीभत्सुशरसंछन्नाञ्छोणितौघपरिप्लुतान्।। २८।।
निहतान् वल्लभान् वीक्ष्य शयानान् वसुधातले।
यत् समर्थं पाण्डवानां तत् करिष्यामि मा शुचः।। २९।।
सत्यं ते प्रतिजानामि राज्ञो राज्ञी भविष्यसि।
पतेद् द्यौर्हिमवाञ्छीर्येत् पृथिवी शकलीभवेत्।
शुष्येत् तोयनिधिः कृष्णे न मे मोघं वचो भवेत्।। ३०।।

हे भाविनी! तुम जिनके ऊपर आज क्रुद्ध हो, उनकी स्त्रियाँ भी अर्जुन के बाणों से छिन्न भिन्न खून से लथपथ होकर मरे हुए तथा पृथिवी पर सोये हुए अपने पतियों को देख कर इसी प्रकार ही रोयेंगी। पाण्डवों की भलाई के लिये मैं जो कुछ भी कर सकता हूँ वह सब कुछ करूँगा। तू शोक मत कर। मैं तेरे सामने सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि तू राजा

की रानी बनेगी। यह आकाश गिर जाये, या हिमालय विदीर्ण हो जाये, या भूमि के टुकड़े हो जायें, या सागर सूख जाये, पर हे द्रौपदी! मेरी बात असत्य नहीं होगी।

सातवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण का जूए के दोष बताते हुए अपनी व्यस्तता का वर्णन करना।

नैतत् कृच्छ्रमनुप्राप्तो भवान् स्याद् वसुधाधिप।
यद्यहं द्वारकायां स्यां राजन् संनिहितः पुरा।। १।।
आगच्छेयमहं द्यूतमनाहूतोऽपि कौरवैः।
आम्बिकेयेन दुर्धर्ष राज्ञा दुर्योधनेन च।। २।।
वारयेयमहं द्यूतं बहून् दोषान् प्रदर्शयन्।
भीष्मद्रोणौ समानाय्य कृपं बाह्लीकमेव च।। ३।।
वैचित्रवीर्यं राजानमलं द्यूतेन कौरव।
पुत्राणां तव राजेन्द्र त्वन्निमित्तमिति प्रभो।। ४।।
तत्राचक्षमहं दोषान् यैर्भवान् व्यतिरोपितः।

श्रीकृष्ण जी ने फिर आगे कहा कि हे राजन्! यदि मैं पहले द्वारिका में विद्यमान होता, तो आप इस संकट को प्राप्त नहीं होते। हे दुर्धर्ष वीर! मैं उस समय अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र, राजा दुर्योधन तथा दूसरे कौरवों के द्वारा न बुलाये जाने पर भी द्यूतक्रीड़ा में आता और जूए के बहुत से दोष गिनाते हुए उन्हें खेलने से रोकता। मैं भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, बाह्लीक तथा धृतराष्ट्र को बुला कर आपके लिये उनसे कहता कि हे कुरुवंश के महाराज! अपने पुत्रों को जूआ खेलने से रोको। वहाँ मैं जूए के उन दोषों को बताता, जिनके कारण आपको राज्य से वंचित होना पड़ा है।

वीरसेनसुतो यैस्तु राज्यात् प्रभ्रंशितः पुरा।। ५।।
अतर्कितविनाशश्च देवनेन विशाम्पते।
सातत्यं च प्रसङ्गस्य वर्णयेयं यथातथम्।। ६।।
स्त्रियोऽक्षा मृगया पानमेतत् कामसमुत्थितम्।
दुःखं चतुष्टयं प्रोक्तं यैर्नरो भ्रश्यते श्रियः।। ७।।
तत्र सर्वत्र वक्तव्यं मन्यन्ते शास्त्रकोविदाः।
विशेषतश्च वक्तव्यं द्यूते पश्यन्ति तद्विदः।। ८।।

जूए के जिन दोषों ने वीरसेन के पुत्र नल को पहले राज्य से भ्रष्ट कर दिया था, वे दोष हे राजन्! कल्पनातीत विनाश को प्रस्तुत कर देते हैं। फिर लगातार जूआ खेलने की आदत पड़ जाती है। यह बात मैं ठीक-ठीक बता रहा हूँ। स्त्रियों के प्रति आसक्ति, जूआ, शिकार और मद्यपान, ये कामना जनित चार प्रकार के दुख बताये गए हैं, जिनके द्वारा मनुष्य अपने ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाता है। शास्त्रज्ञ लोग इन दोषों की सब जगह निन्दा करते हैं, पर जूए के दोषों को जानने वाले लोग जूए की विशेष रूप से निन्दा करते हैं।

एकाह्नाद् द्रव्यनाशोऽत्र ध्रुवं व्यसनमेव च।
अभुक्तनाशश्चार्थानां वाक्पारुष्यं च केवलम्।। ९।।
एतच्चान्यच्च कौरव्य प्रसङ्गिकटुकोदयम्।
द्यूते ब्रूयां महाबाहो समासाद्याम्बिकासुतम्।। १०।।
एवमुक्तो यदि मया गृह्णीयाद् वचनं मम।
अनामयं स्याद् धर्मश्च कुरूणां कुरुवर्धन।। ११।।
न चेत् स मम राजेन्द्र गृह्णीयान्मधुरं वचः।
पथ्यं च भरतश्रेष्ठ निगृह्णीयां बलेन तम्।। १२।।
अथैनमपनीतेन सुहृदो नाम दुर्हृदः।
सभासदोऽनुवर्तेरंस्तांश्च हन्यां दुरोदरान्।। १३।।

जूए के द्वारा एक ही दिन में सारी संपत्ति का नाश हो जाता है, साथ ही खेलने वाले की उसके प्रति आसक्ति तो निश्चित रूप से हो जाती है। बिना भोगे ही ऐश्वर्य का नाश हो जाता है और बदले में केवल कटु वचन ही मिलते हैं। हे कुरुनन्दन महाबाहु! ये तथा और बहुत से दोष जो जूए के प्रसंग में कटु परिणाम को उपस्थित कर देते हैं, इनको मैं धृतराष्ट्र के समीप जाकर उन्हें बताता। मेरे इस प्रकार समझाने पर यदि वह मेरी बातों को मान लेता, तो हे कुरुवर्धन! कौरवों में शान्ति बनी रहती और धर्म का उल्लंघन नहीं होता। हे भरतश्रेष्ठ! हे राजेन्द्र! यदि वह मेरी मीठी और लाभदायक बातों को ग्रहण नहीं करता तो मैं बल प्रयोग के द्वारा उन्हें रोक देता। यदि मित्र नाम के शत्रु सभासद, अन्याय का सहारा लेकर धृतराष्ट्र की सहायता करते तो मैं उन जुआरियों को मार देता।

असांनिध्यं तु कौरव्य ममानर्तेष्वभूत् तदा।
येनेदं व्यसनं प्राप्ता भवन्तो द्यूतकारितम्।। १४।।
सोऽहमेत्य कुरुश्रेष्ठ द्वारकां पाण्डुनन्दन।
अश्रौषं त्वां व्यसनिनं युयुधानाद् यथातथम्।। १५।।
श्रुत्वैव चाहं राजेन्द्र परमोद्विग्नमानसः।
तूर्णमभ्यागतोऽस्मि त्वां द्रष्टुकामो विशाम्पते।। १६।।

अहो कृच्छ्रमनुप्राप्ताः सर्वे स्म भरतर्षभ।
सोऽहं त्वां व्यसने मग्नं पश्यामि सह सोदरैः।। १७।।

हे कुरुनन्दन! उन दिनों मैं आनर्त देश में था ही नहीं, जिससे आप लोगों पर जूए के कारण संकट आ गया। हे कुरुश्रेष्ठ पाण्डुनन्दन! मैंने जब द्वारिका में आकर सात्यकि से सारा वृत्तान्त तुम्हारे संकट में पड़ने का सुना, तो हे राजेन्द्र! मैं सुनते ही अत्यन्त उद्विग्न मनवाला होकर हे प्रजाधीश! मैं जल्दी से आपके दर्शन के लिये आ गया हूँ। हे भरत श्रेष्ठ! अहो, आप सब तो अब बड़ी कठिनाई में पड़ गये। मैं आपको अपने भाइयों के साथ संकट में डूबा हुआ देख रहा हूँ।

युधिष्ठिर उवाच

असांनिध्यं कथं कृष्ण तवासीद् वृष्णिनन्दन।
क्व चासीद् विप्रवासस्ते किं चाकार्षीः प्रवासतः।। १८।।

श्रीकृष्ण उवाच

शाल्वस्य नगरं सौभं गतोऽहं भरतर्षभ।
निहन्तुं कौरवश्रेष्ठ तत्र मे शृणु कारणम्।। १९।।
महातेजा महाबाहुर्यः स राजा महायशाः।
दमघोषात्मजो वीरः शिशुपालो मया हतः।। २०।।
यज्ञे ते भरतश्रेष्ठ राजसूयेऽर्हणां प्रति।
स रोषवशमापन्नो नामृष्यत दुरात्मवान्।। २१।।
श्रुत्वा तं निहतं शाल्वस्तीव्ररोषसमन्वितः।
उपायाद् द्वारकां शून्यामिहस्थे मयि भारत।। २२।।

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि हे वृष्णिनन्दन कृष्ण! आप द्वारिका में क्यों नहीं थे? आप कहाँ गये हुए थे? और वहाँ रह कर आपने क्या कार्य किया? तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे भरतश्रेष्ठ! हे कौरव श्रेष्ठ! मैं शाल्व के सौभ नगर में उसे मारने के लिये गया हुआ था। इसका कारण मुझसे सुनो। महा तेजस्वी, महाबाहु, महायशस्वी, जो दमघोष का वीर पुत्र, शिशुपाल, हे भरत श्रेष्ठ! आपके यज्ञ में मेरे द्वारा मारा गया था, जो दुष्ट अग्रपूजा को सहन नहीं कर सका था और क्रोध में आ गया था, उसकी मृत्यु का समाचार सुन कर शाल्व बहुत क्रोध में भर कर मेरे यहाँ होते हुए हे भारत! उस सूनी द्वारिका पर चढ कर आ गया।

स तत्र योधितो राजन् कुमारैर्वृष्णिपुङ्गवैः।
आगतः कामगं सौभमारुह्यैव नृशंसवत्।। २३।।
ततो वृष्णि प्रवीरांस्तान् बालान् हत्वा बहूंस्तदा।
पुरोद्यानानि सर्वाणि भेदयामास दुर्मतिः।। २४।।
उक्तवांश्च महाबाहो क्वासौ वृष्णिकुलाधमः।
वासुदेवः स मन्दात्मा वसुदेवसुतो गतः।। २५।।
तस्य युद्धार्थिनो दर्पं युद्धे नाशयितास्म्यहम्।
आनर्ताः सत्यमाख्यात तत्र गन्तास्मि यत्र सः।। २६।।

हे राजन्! उसने वहाँ वृष्णिवंश के श्रेष्ठ कुमारों के साथ युद्ध किया। वह इच्छानुसार चलाये जा सकने वाले सौभ विमान पर चढ़ कर क्रूर मनुष्य की भाँति वहाँ आ गया। उस दुष्ट ने वहाँ वृष्णि श्रेष्ठ बहुत से बच्चों अर्थात् नौजवानों को मार कर नगर के सारे बागों को उजाड़ दिया। हे महाबाहु! उसने उन यादवों से पूछा कि वृष्णिकुलकलंक, महात्मा वसुदेव का पुत्र वह कृष्ण कहाँ गया है? युद्ध के इच्छुक उसका घमण्ड मैं युद्ध में नष्ट कर दूँगा। हे अनार्त वासियों! सत्य बताओ। वह जहाँ है, मैं वहीं जाऊँगा।

तं हत्वा विनिवर्तिष्ये कंसकेशिनिषूदनम्।
अहत्वा न निवर्तिष्ये सत्येनायुधमालभे।। २७।।
अद्य तं पापकर्माणं क्षुद्रं विश्वासघातिनम्।
शिशुपालवधामर्षाद् गमयिष्ये यमक्षयम्।। २८।।
मम पापस्वभावेन भ्राता येन निपातितः।
शिशुपालो महीपालस्तं वधिष्ये महीपते।। २९।।
भ्राता बालश्च राजा च न च संग्राममूर्धनि।
प्रमत्तश्च हतो वीरस्तं हनिष्ये जनार्दनम्।। ३०।।

कंस और केशी के हत्यारे उसको मार कर मैं लौट जाऊँगा। पर बिना उसको मारे मैं लौटूँगा नहीं, यह मैं अपने शस्त्रों की सत्य शपथ खा कर कहता हूँ। उसने जो शिशुपाल का वध किया है, उस कारण से उत्पन्न हुए क्रोध के कारण आज मैं उस पापी और विश्वासघाती तुच्छ व्यक्ति को मृत्युलोक में पहुँचाऊँगा। हे राजन्! वह कहता था कि उस पापी को, जिसने मेरे भाई राजा शिशुपाल को मारा है, मैं मारूँगा। मेरा भाई वह शिशुपाल अभी छोटी आयु का था, दूसरे वह राजा था, तीसरे वह युद्ध के मोर्चे पर नहीं खड़ा था, चौथे वह असावधान था, इस अवस्था में उस वीर की जिसने हत्या की, मैं उस कृष्ण को मारूँगा।

एवमादि महाराज विलप्य दिवमास्थितः।
कामगेन स सौभेन क्षिप्त्वा मां कुरुनन्दन।। ३१।।
तमश्रौषमहं गत्वा यथावृत्तः स दुर्मतिः।

मयि कौरव्य दुष्टात्मा मार्तिकावतको नृपः।। ३२।।
ततोऽहमपि कौरव्य रोषव्याकुलमानसः।
निश्चित्य मनसा राजन् वधायास्य मनो दधे।। ३३।।

हे कुरुनन्दन महाराज! इस प्रकार बहुत तरह से शिशुपाल के लिये विलाप कर, इच्छानुसार चलाये जाने वाले सौभ विमान पर आकाश में ही ठहर कर, उसने मेरे प्रति अनेक प्रकार के आक्षेप किये। मैंने द्वारिका में उन सबको सुना कि उस दुष्टमति ने मेरे प्रति कैसा व्यवहार किया था। हे कुरुनन्दन! वह मार्तिकावत का राजा बड़ा दुरात्मा था। हे कुरुनन्दन! तब मैंने भी क्रोध से व्याकुल होकर उसके वध के लिये मन में निश्चय करके अपने आपको उसके लिये तैयार किया।

आनर्तेषु विमर्दं च क्षेपं चात्मनि कौरव।
प्रवृद्धमवलेपं च तस्य दुष्कृतकर्मणः।। ३४।।
ततः सौभवधायाहं प्रतस्थे पृथिवीपते।
स मया सागरावर्ते दृष्ट आसीत् परीप्सता।। ३५।।

हे कुरुवर! उसने आनर्त देश में, जो विनाश किया, तथा मेरे ऊपर जो आक्षेप किये और उस दुष्टकर्मा का घमंड जो बहुत बढ गया था, इन सब कारणों से हे पृथिवीपति! मैं उस सौभ विमान के स्वामी के वध के लिये चल पड़ा। मैंने उसे ढूँढते हुए समुद्र के एक द्वीप में देखा।

ततः प्रध्माप्य जलजं पाञ्चजन्यमहं नृप।
आहूय शाल्वं समरे युद्धाय समवस्थितः।। ३६।।
तन्मुहूर्तमभूद् युद्धं तत्र मे दानवैः सह।
वशीभूताश्च मे सर्वे भूतले च निपातिताः।। ३७।।
एतत् कार्यं महाबाहो येनाहं नागमं तदा।
श्रुत्वैव हास्तिनपुरं द्यूतं चाविनयोत्थितम्।। ३८।।
द्रुतमागतवान् युष्मान् द्रष्टुकामः सुदुःखितान्।
अद्याहं किं करिष्यामि भिन्नसेतुरिवोदकम्।। ३९।।

हे राजन्! फिर मैंने अपने पांचजन्य शंख को बजा कर शाल्व को युद्ध के लिये ललकारा और उसके साथ युद्ध के लिये उपस्थित हुआ। वहाँ उन दानवों के साथ मेरा एक मूहूर्त तक युद्ध हुआ और मैंने उस सबको अपने वश में करके भूमि पर गिरा दिया। हे महाबाहु! यही कार्य था, जिसमें मैं लगा हुआ था और जिसके कारण मैं उस समय वहाँ नहीं आ सका। वापिस लौटने पर जैसे ही मैंने सुना कि हस्तिनापुर में दुर्योधन की उद्दंडता के कारण जूआ खेला गया, तब अत्यन्त दुःखी आप लोगों को देखने के लिये मैं यहाँ आ गया हूँ। पर अब जबकि बाँध तोड़ कर पानी निकल चुका है, मैं क्या कर सकूँगा।

एवमुक्त्वा महाबाहुः कौरवं पुरुषोत्तमः।
अभिवाद्य महाबाहुर्धर्मराजं युधिष्ठिरम्।। ४०।।
राज्ञा मूर्धन्युपाघ्रातो भीमेन च महाभुजः।
परिष्वक्तश्चार्जुनेन यमाभ्यां चाभिवादितः।। ४१।।
सम्मानितश्च धौम्येन द्रौपद्या चार्चितोऽश्रुभिः।
सुभद्रामभिमन्युं च रथमारोप्य काञ्चनम्।। ४२।।
आरुरोह रथं कृष्णः पाण्डवैरभिपूजितः।
शैब्यसुग्रीवयुक्तेन रथेनादित्यवर्चसा।। ४३।।
द्वारकां प्रययौ कृष्णः समाश्वास्य युधिष्ठिरम्।

उन कुरुश्रेष्ठ से यह कह कर महाबाहु पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया। राजा ने तथा भीम सेन ने उनका सिर सूँघा। अर्जुन ने उन्हें छाती से लगाया। दोनों जुड़वें भाइयों नकुल और सहदेव ने उन्हे प्रणाम किया। धौम्य ऋषि ने उनका सम्मान किया और द्रौपदी ने आँसुओं से उनकी पूजा की। फिर सुभद्रा और अभिमन्यु को अपने सुनहरे रथ पर बिठा कर, पाण्डवों से सम्मानित होते हुए श्रीकृष्ण रथ पर सवार हुए। इस प्रकार युधिष्ठिर को आश्वासन देकर, शैव्य और सुग्रीव नाम के घोड़ों से सूर्य के समान जगमगाते हुए रथ के द्वारा श्री कृष्ण जी द्वारिका को चले गये।

ततः प्रयाते दाशार्हे धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः।। ४४।।
द्रौपदेयानुपादाय प्रययौ स्वपुरं तदा।
धृष्टकेतु स्वसारं च समादायाथ चेदिराट्।। ४५।।
जगाम पाण्डवान् दृष्ट्वा रम्यां शुक्तिमतीं पुरीम्।
केकयाश्चाप्यनुज्ञाताः कौन्तेयेनामितौजसा।। ४६।।
आमन्त्र्य पाण्डवान् सर्वान् प्रययुस्तेऽपि भारतान्।

तब श्रीकृष्ण जी के जाने पर द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न भी द्रौपदी के पुत्रों को लेकर अपने नगर की तरफ चला गया। चेदिराज धृष्टकेतु भी अपनी बहन को लेकर और पाण्डवों से मिल कर अपनी सुन्दर नगरी शुक्तिमती को चला गया। कैकेय राजकुमार भी अमित तेजस्वी कुन्ती पुत्र से आज्ञा लेकर तथा भरतवंशी पाण्डवों से मिल कर अपने नगर को चले गये।

आठवाँ अध्याय : पाण्डवों का द्वैतवन में जाना।

ततस्तेषु प्रयातेषु कौन्तेयः सत्यसंगरः।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भ्रातॄन् सर्वान् युधिष्ठिरः।। १।।
द्वादशेमानि वर्षाणि वस्तव्यं निर्जने वने।
समीक्षध्वं महारण्ये देशं बहुमृगद्विजम्।। २।।
बहुपुष्पफलं रम्यं शिवं पुण्यजनावृतम्।
यत्रेमाः शरदः सर्वाः सुखं प्रतिवसेमहि।। ३।।
एवमुक्ते प्रत्युवाच धर्मराजं धनंजयः।
गुरुवन्मानवगुरुं मानयित्वा मनस्विनम्।। ४।।

तब उनके चले जाने पर सत्यप्रतिज्ञ, धर्मात्मा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर सारे भाइयों से बोले कि हमने इन बारह वर्षों तक निर्जन वन में रहना है इसलिये विशालवन में ऐसे स्थान को ढूँढो जहाँ बहुत पशु पक्षी रहते हों, जहाँ फल और फूल बहुत हों, जो सुन्दर और कल्याणकारी हो और जहाँ हम इन सारे वर्षों तक सुख पूर्वक रहते रहें। उनके ऐसा कहने पर अर्जुन ने उस मनस्वी मानवगुरु धर्मराज का गुरु के समान सम्मान करके यह उत्तर दिया कि–

इदं द्वैतवनं नाम सरः पुण्यजलोचितम्।
बहुपुष्पफलं रम्यं नानाद्विजनिषेवितम्।। ५।।
अत्रेमा द्वादश समा विहरेमेति रोचये।
यदि तेऽनुमतं राजन् किमन्यन्मन्यते भवान्।। ६।।

युधिष्ठिर उवाच

ममाप्येतन्मतं पार्थ त्वया यत् समुदाहृतम्।
गच्छामः पुण्यविख्यातं महद् द्वैतवनं सरः।। ७।।
ततस्ते प्रययुः सर्वे पाण्डवा धर्मचारिणः।
ब्राह्मणैर्बहुभिः सार्धं पुण्यं द्वैतवनं सरः।। ८।।

द्वैतवन नाम का जो पवित्र जल से भरा हुआ सरोवर है, उसके आस पास का प्रदेश बड़ा सुन्दर, बहुत प्रकार के फल फूल वाला और अनेक प्रकार के पक्षियों का वासस्थान है। हे राजन्! यदि आपकी आज्ञा हो हम बारह वर्ष तक वहीं रहें, यह मुझे अच्छा लगता है या आप किसी दूसरे स्थान को उचित समझते हैं? तब युधिष्ठिर ने कहा हे कुन्ती पुत्र! मेरा भी यही विचार है, जो तुमने कहा है। इसलिये हम उस पवित्र प्रसिद्ध और विशाल द्वैत वन नाम के सरोवर के समीप चलते हैं। तब वे धर्म का आचरण करने वाले पाण्डुपुत्र बहुत से ब्राह्मणों के साथ, उस पवित्र द्वैतवन नाम के सरोवर की तरफ चल दिये।

महाद्रुमाणां शिखरेषु तस्थु–
र्मनोरमां वाचमुदीरयन्तः।
मयूरदात्यूह चकोरसङ्घा
स्तस्मिन् वने बर्हिणकोकिलाश्च।। ९।।
करेणुयूथैः सह यूथपानां
मदोत्कटानामचल प्रभाणाम्।
महान्ति यूथानि महाद्विपानां
तस्मिन् वने राष्ट्रपतिर्ददर्श।। १०।।

राष्ट्रपति युधिष्ठिर ने वहाँ वन में पहुँच कर देखा कि उस महान् वन में विशाल वृक्षों की चोटियों पर मोर, चातक, चकोर, बर्हिण नाम से मोर विशेष और कोयल इन पक्षियों के समूह बैठे हुए थे। उस वन में राष्ट्रपति ने हथिनियों के समूहों के साथ पर्वतों के समान विशालकाय, मदोन्मत बड़े-बड़े यूथपति गजराजों के झुण्डों को देखा।

स पुण्यशीलः पितृवन्महात्मा
तपस्विभिर्धर्म परैरुपेत्य।
प्रत्यर्चितः पुष्पधरस्य मूले
महाद्रुमस्योपविवेश राजा।। ११।।
भीमश्च कृष्णा च धनंजयश्च
यमौ च ते चानुचरा नरेन्द्रम्।
विमुच्य वाहानवशाश्च सर्वे
तत्रोपतस्थु र्भरतप्रबर्हाः।। १२।।
लतावतानावनतः स पाण्डवै–
र्महाद्रुमः पञ्चभिरेव धन्विभिः।
बभौ निवासोपगतैर्महात्मभि–
र्महागिरिर्वारण यूथपैरिव।। १३।।

उस वन में रहने वाले धर्मपरायण तपस्वियों ने तब वहाँ आ कर उन पुण्यशील महात्मा युधिष्ठिर का पिता के समान सम्मान किया। उसके बाद राजा युधिष्ठिर फूलों से भरे हुए एक विशाल वृक्ष के नीचे बैठ गये। तब पराधीन अवस्था में विद्यमान भीम, द्रौपदी, अर्जुन, नकुल, सहदेव ये सारे भरतश्रेष्ठ वीर और सारे सेवक भी वाहनों से उतर कर वहाँ युधिष्ठिर के पास बैठ गये। लता समूहों से झुका हुआ वह विशाल वृक्ष, निवास करने के

लिये आये हुए उन पाँचों महात्मा धनुर्धरों से इस प्रकार सुशोभित हो रहा था, जैसे पाँच गजराज यूथपतियों से महान पर्वत सुशोभित होता है।

तत् काननं प्राप्य नरेन्द्रपुत्राः
सुखोचिता वासमुपेत्य कृच्छ्रम्।
विजह्रुरिन्द्रप्रतिमाः शिवेषु
सरस्वतीशालवनेषु तेषु।। १४।।
यतींश्च राजा स मुनींश्च सर्वां
स्तस्मिन् वने मूलफलैरुदग्रैः।
द्विजातिमुख्यानृषभः कुरूणां
संतर्पयामास महानुभावः।। १५।।

इन्द्र के समान तेजस्वी सुख प्राप्त करने के योग्य वे राजकुमार वनवास के कष्टमय जीवन को प्राप्त करके, उस वन में आकर सरस्वती नदी के तटवर्ती सुखदायी शालवनों में विहार करने लगे। कुरुओं में श्रेष्ठ महानुभाव राजा युधिष्ठिर वहाँ रहते हुए उस वन में रहने वाले मुनियों, यतियों और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को उत्तम फल मूलों से तृप्त करते रहते थे।

नवाँ अध्याय : द्रौपदी का युधिष्ठिर को उत्तेजित करने का प्रयत्न।

ततो वनगताः पार्थाः सायाह्ने सह कृष्णया।
उपविष्टाः कथाश्चक्रुर्दुःखशोकपरायणाः।। १।।
प्रिया च दर्शनीया च पण्डिता च पतिव्रता।
अथ कृष्णा धर्मराजमिदं वचनमब्रवीत्।। २।।
न नूनं तस्य पापस्य दुःखमस्मासु किंचन।
विद्यते धार्तराष्ट्रस्य नृशंसस्य दुरात्मनः।। ३।।
यस्त्वां राजन् मया सार्धमजिनैः प्रतिवासितम्।
वनं प्रस्थाप्य दुष्टात्मा नान्वतप्यत दुर्मतिः।। ४।।

वन में रहते हुए कुन्तीपुत्र एक दिन सायँकाल के समय द्रौपदी के साथ बैठे हुए, शोक में भरे हुए तरह तरह की बातें कर रहे थे। तब सुन्दरी, विदुषी पतिव्रता और पाण्डवों की प्यारी द्रौपदी धर्मराज युधिष्ठिर से कहने लगी कि निश्चय ही उस पापी क्रूर और दुरात्मा धृतराष्ट्र पुत्र के हृदय में हमारे लिये कोई दुःख नहीं होगा। जिसने हे राजन्! आपको मेरे साथ मृगचर्म पहना कर वन में भेज दिया, पर उस दुष्टात्मा और दुर्मति को सन्ताप नहीं हुआ।

आयसं हृदयं नूनं तस्य दुष्कृतकर्मणः।
यस्त्वां धर्मपरं श्रेष्ठं रूक्षाण्यश्रावयत् तदा।। ५।।
सुखोचितमदुःखार्हं दुरात्मा ससुहृद्गणः।
ईदृशं दुःखमानीय मोदते पापपूरुषः।। ६।।
चतुर्णामेव पापानामस्त्रं न पतितं तदा।
त्वयि भारत निष्क्रान्ते वनायाजिनवाससि।। ७।।
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्च दुरात्मनः।
दुर्भ्रातुस्तस्य चोग्रस्य राजन् दुःशासनस्य च।। ८।।
इतरेषां तु सर्वेषां कुरूणां कुरुसत्तम।
दुःखेनाभिपरीतानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम्।। ९।।

उस पापकर्मा का हृदय वास्तव में लोहे का बना हुआ है, जो उसने आप जैसे धर्म का पालन करने वाले श्रेष्ठ व्यक्ति को भी कड़वी बातें कहीं। वह पापी आप जैसे सुख भोगने योग्य और दुःख के लिये अयोग्य व्यक्ति को भी दुःख में डाल कर अपने मित्रों के साथ खुशी मना रहा है। हे भरतश्रेष्ठ! जब आप मृगचर्म धारण कर वन के लिये निकले, तब चार पापियों की आँखों से आँसू नहीं गिरे। हे राजन्! ये चार पापी दुर्योधन, कर्ण, दुरात्मा शकुनि और दुष्ट भ्राता दुःशासन ही थे। हे कुरुश्रेष्ठ! शेष सारे कौरव लोग दुःख से भरे हुए थे और उनकी आँखों से आँसू गिर रहे थे।

इदं च शयनं दृष्ट्वा यच्चासीत् ते पुरातनम्।
शोचामि त्वां महाराज दुःखानर्हं सुखोचितम्।। १०।।
दान्तं यच्च सभामध्य आसनं रत्नभूषितम्।
दृष्ट्वा कुशवृषीं चेमां शोको मां प्रदहत्ययम्।। ११।।
यदपश्यं सभायां त्वां राजभिः परिवारितम्।
तच्च राजन्नपश्यन्त्याः का शान्तिर्हृदयस्य मे।। १२।।
या त्वाहं चन्दनादिग्धमपश्यं सूर्यवर्चसम्।
सा त्वां पङ्कमलादिग्धं दृष्ट्वा मुह्यामि भारत।। १३।।

हे महराजा दुःखों के लिये अयोग्य और सदा सुख भोगने योग्य आपकी इस शय्या को देख कर मुझे उस पहले की राजसी शय्या की याद आती है। आपका राजभवन में जो हाथीदाँत का बना और रत्नों से जड़ा आसन था, उसके सामने मैं जब इस कुश के आसन को देखती हूँ तो मुझे शोक जलाने लगता है। हे राजन्! मैंने पहले आपको सभा में जो राजाओं से घिरा हुआ देखा था, अब उन्हीं आपको वैसी अवस्था में न देखकर मुझे कैसे शान्ति हो

सकती है? हे भारत! जिसने पहले आपको उस अवस्था में देखा था, जब आपका तेज सूर्य के समान था और आपके शरीर में चन्दन का लेप रहता था, वही मैं आपको अब कीचड़ और मैल से लिपटा हुआ देख कर मूर्च्छित सी होने लगती हूँ।

या त्वाहं कौशिकैर्वस्त्रैः शुभ्रैराच्छादितं पुरा।
दृष्टवत्यस्मि राजेन्द्र सा त्वां पश्यामि चीरिणम्।। १४।।
यच्च तद्रुक्मपात्रीभिर्ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः।
ह्रियते ते गृहादन्नं संस्कृतं सार्वकामिकम्।। १५।।
सत्कृतानि सहस्राणि सर्वकामैः पुरा गृहे।
सर्वकामैः सुविहितैर्यदपूजयथा द्विजान्।। १६।।

हे राजेन्द्र! मैं पहले आपको उज्ज्वल रेशमी वस्त्रों से ढका हुआ देख चुकी हूँ, पर वही मैं अब आपको चीर वस्त्र पहने देख रही हूँ। पहले आपके घर से सुनहले थालों में हजारों ब्राह्मणों के लिये, सबकी रुचि के अनुसार तैयार किया हुआ भोजन जाया करता था। पहले घर में उत्तम प्रकार के हजारों पात्र थे, जो सबकी रुचि के अनुकूल भोज्य पदार्थों से भरे रहते थे। उनके द्वारा आप ब्राह्मणों की सारी कामनाओं को पूरा करते हुए उनकी पूजा करते थे।

तच्च राजन्नपश्यन्त्याः का शान्तिर्हृदयस्य मे।
यत् ते भ्रातृन् महाराज युवानो मृष्टकुण्डलाः।। १७।।
अभोजयन्त मिष्टान्नैः सूदाः परमसंस्कृतैः।
सर्वांस्तानद्य पश्यामि वने वन्येन जीविनः।। १८।।
अदुःखार्हान् मनुष्येन्द्र नोपशाम्यति मे मनः।
भीमसेनमिमं चापि दुःखितं वनवासिनम्।। १९।।
ध्यायतः किं न मन्युस्ते प्राप्ते काले विवर्धते।
भीमसेनं हि कर्माणि स्वयं कुर्वाणमच्युतम्।। २०।।
सुखार्हं दुःखितं दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते।

हे राजन्! उपर्युक्त सारी चीज़ें जो पहले हमारे पास थीं, पर अब उन्हें अपने पास न देखते हुए मेरे हृदय को क्या शान्ति मिल सकती है? हे महाराज! पहले आपके जिन भाइयों को जवान रसोइये कानों में जगमगाते हुए कुण्डल पहले हुए बहुत सुन्दर रीति से बनी हुई मिठाइयों के साथ खाना खिलाया करते थे, उन सबको आज मैं वन में जंगली पदार्थों से गुजारा करते हुए देख रही हूँ। हे मनुष्यों के राजा! आपके ये भाई दुःख पाने योग्य नहीं हैं। इन्हें दुःख में देख कर मेरे चित्त को शान्ति नहीं मिलती। इस भीम को वन में रह कर दुःख पाते हुए देख कर क्या आपका क्रोध समय आने पर नहीं बढ़ेगा? जो सुख भोगने के योग्य है, जो युद्ध से कभी पीछे नहीं हटता, उस भीमसेन को स्वयं अपने कार्य करते हुए देख कर आपका क्रोध क्यों नहीं भड़कता?

सत्कृतं विविधैर्यानैर्वस्त्रैरुच्चावचैस्तथा।। २१।।
तं ते वनगतं दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते।
अयं कुरून् रणे सर्वान् हन्तुमुत्सहते प्रभुः।। २२।।
त्वत्प्रतिज्ञां प्रतीक्षंस्तु सहतेऽयं वृकोदरः।

जो भीम अनेक प्रकार की सवारियों और वस्त्रों के द्वारा सत्कार को प्राप्त करते थे, उनको आज वन में विद्यमान देख कर आपका क्रोध क्यों नहीं उमड़ता? हे प्रभो! ये भीमसेन युद्धक्षेत्र में सारे कौरवों को नष्ट करने का उत्साह रखते हैं, पर आपकी प्रतिज्ञापूर्ति की प्रतीक्षा करने के कारण कष्टों को सह रहे हैं।

शरावमर्दे शीघ्रत्वात् कालान्तकयमोपमः।। २३।।
यस्य शस्त्रप्रतापेन प्रणताः सर्वपार्थिवाः।
यज्ञे तव महाराज ब्राह्मणानु पतस्थिरे।। २४।।
तमिमं पुरुषव्याघ्रं पूजितं देवदानवैः।
ध्यायन्तमर्जुनं दृष्ट्वा कस्माद् राजन् न कुप्यसि।। २५।।
दृष्ट्वा वनगतं पार्थमदुःखार्हं सुखोचितम्।
न च ते वर्धते मन्युस्तेन मुह्यामि भारत।। २६।।

जो अर्जुन बाण फैंकने में फुर्ती के कारण सबका अन्त कर देने वाले काल तथा मृत्यु के समान भयानक होते हैं, जिनके शस्त्रों के प्रताप से सारे राजा सिर झुका कर, हे महाराज! आपके यज्ञ में ब्राह्मणों की सेवा के लिये उपस्थित हुए थे, देवताओं और दानवों से पूजित इन पुरुष व्याघ्र को अब चिन्ता में पड़ा हुआ देख कर भी हे भरतवंशी, राजन्! आप क्रोध क्यों नहीं करते? ये कुन्तीपुत्र अर्जुन दुःख के अयोग्य और सुख भोगने योग्य हैं, पर इनको वन में आया हुआ देख कर जो आपका क्रोध नहीं बढ़ रहा है, इससे मैं मोहित सी हो रही हूँ।

यो यानैरद्भुताकारैर्हयैर्नागैश्च संवृतः।
प्रसह्य वित्तान्यादत्त पार्थिवेभ्यः परंतप।। २७।।
क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्चबाणशतानि यः।
तं ते वनगतं दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते।। २८।।
श्यामं बृहन्तं तरुणं चर्मिणामुत्तमं रणे।
नकुलं ते वने दृष्ट्वा कस्मान्मन्युर्न वर्धते।। २९।।

दर्शनीयं च शूरं च माद्रीपुत्रं युधिष्ठिर।
सहदेवं वने दृष्ट्वा कस्मात् क्षमसि पार्थिव।। ३०।।

हे परंतप! अद्‌भुत आकार के रथों, हाथियों और घोड़ों से घिरे हुए जिस अर्जुन ने हराये हुए राजाओं से बल पूर्वक धन को ग्रहण किया था, जो एक ही वेग से पाँच सौ बाणों को फैंकते हैं, उनको वन में आया हुआ देख कर आपका क्रोध क्यों नहीं बढ़ता? जो साँवले रंग के, ऊँचे कद के जवान हैं और ढाल तलवार से लड़ने वालों में श्रेष्ठ हैं उन नकुल को वन में देख कर आपका क्रोध क्यों नहीं बढ़ रहा है? हे राजा युधिष्टिर! माद्री के पुत्र सहदेव, जो दर्शनीय और शूरवीर हैं, उनको भी वन में देख कर आप शत्रुओं को क्यों क्षमा कर रहे हैं?

नकुल सहदेवं च दृष्ट्वा ते दुःखितावुभौ।
अदुःखार्हौ मनुष्येन्द्र कस्मान्मन्युर्न वर्धते।। ३१।।
द्रुपदस्य कुले जातां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनीं वीरपत्नीमनुव्रताम्।। ३२।।
मां वै वनगतां दृष्ट्वा कस्मात् क्षमसि पार्थिव।
नूनं च तव वै नास्ति मन्युर्भरतसत्तम।। ३३।।
यत् ते भ्रातृंश्च मां चैव दृष्ट्वा न व्यथते मनः।

हे नरेन्द्र! ये दोनों नकुल और सहदेव दुःख भोगने के योग्य नहीं है, पर फिर भी इन्हें दुःख में पड़ा हुआ देख कर आपका क्रोध क्यों नहीं बढ़ रहा है? मैं द्रुपद के कुल में जन्मी, धृष्टद्युम्न की बहिन हूँ। महात्मा पाण्डु की मैं पुत्रवधु हूँ और वीर पत्नी तथा पतिव्रता हूँ। हे राजन्! मुझे भी वन में आया हुआ देख कर आप अपने शत्रुओं को क्यों क्षमा कर रहे हैं? हे भरतश्रेष्ठ! निश्चित रूप से आपके हृदय में क्रोध नहीं है, जो आप अपने भाइयों और मुझे दुःख में देख कर भी दुःखी नहीं हो रहे हैं?

ननिर्मन्युः क्षत्रियोऽस्ति लोके निर्वचनं स्मृतम्।। ३४।।
तदद्य त्वयि पश्यामि क्षत्रिये विपरीतवत्।
यो न दर्शयते तेजः क्षत्रियः काल आगते।। ३५।।
सर्वभूतानि तं पार्थ सदा परिभवन्त्युत।
तत् त्वया न क्षमा कार्या शत्रून् प्रति कथंचन।। ३६।।
तेजसैव हि ते शक्या निहन्तुं नात्र संशयः।
तथैव यः क्षमाकाले क्षत्रियो नोपशाम्यति।
अप्रियः सर्वभूतानां सोऽमुत्रेह च नश्यति।। ३७।।

क्षत्रिय शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार संसार में कोई भी क्षत्रिय क्रोध से रहित नहीं होता *अर्थात् क्षरते इति क्षत्रम् जो दुष्टों का क्षरण-नाश करता है, वह क्षत्रिय है* पर इस समय मैं आपका स्वभाव क्षत्रिय के गुण के विपरीत देख रही हूँ। हे कुन्तीपुत्र! जो क्षत्रिय समय पर अपने तेज को नहीं दिखाता है उसका सारे प्राणी तिरस्कार करते हैं इसलिये आपको शत्रुओं के प्रति किसी प्रकार का भी क्षमाभाव नहीं दिखाना चाहिये। उन्हें तेज के द्वारा ही मारा जा सकता है, इसमें कोई संशय नहीं है। इसी प्रकार जो क्षत्रिय क्षमा भाव दिखाने के समय भी शान्त नहीं होता है, वह सारे प्राणियों का बुरा बन जाता है। इस संसार में और परलोक में भी उसका नाश हो जाता है।

दसवाँ अध्याय : प्रहलाद और बलि संवाद का वर्णन।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
प्रह्लादस्य च संवादं बलेर्वैरोचनस्य च।। १।।
असुरेन्द्रं महाप्राज्ञं धर्माणामागतागमम्।
बलिः पप्रच्छ दैत्येन्द्रं प्रह्लादं पितरं पितुः।। २।।

द्रौपदी ने कहा कि इस विषय में प्रह्लाद और विरोचन के पुत्र बलि के संवाद का उदाहरण दिया करते हैं। बलि ने एक बार अपने पिता के पिता प्रह्लाद से, जो दैत्यों के राजा और धर्म के सारे रहस्यों को जानने वाले परम बुद्धिमान् थे, पूछा कि—

क्षमा स्विच्छ्रेयसी तात उताहो तेज इत्युत।
एतन्मे संशयं तात यथावद् ब्रूहि पृच्छते।। ३।।
श्रेयो यदत्र धर्मज्ञ ब्रूहि मे तदसंशयम्।
करिष्यामि हि तत् सर्वं यथावदनुशासनम्।। ४।।
तस्मै प्रोवाच तत् सर्वमेवं पृष्टः पितामहः।
सर्वनिश्चयवित् प्राज्ञः संशयं परिपृच्छते।। ५।।

हे तात! क्षमा अधिक श्रेष्ठ है या तेज अधिक श्रेष्ठ है? इस विषय में मुझे संशय है। आप इसका यथावत् उत्तर दीजिये। हे धर्मज्ञ! इनमें जो श्रेय है, उसके विषय में बिना किसी संशय के बजाइये। मैं फिर आप जैसा आदेश देंगे वैसे ही आचरण करूँगा। तब अपने संशय के विषय में प्रश्न करते हुए उसे सारे सिद्धान्तों के ज्ञाता, विद्वान

उसके बाबा ने अच्छी तरह से समझा कर कहा कि–

न श्रेयः सततं तेजो न नित्यं श्रेयसी क्षमा।
इति तात विजानीहि द्वयमेतदसंशयम्।। ६।।
यो नित्यं क्षमते तात बहून् दोषान् स विन्दति।
भृत्याः परिभवन्त्येनमुदासीनास्तथारयः।। ७।।
सर्वभूतानि चाप्यस्य न नमन्ति कदाचन।
तस्मान्नित्यं क्षमा तात पण्डितैरपि वर्जिता।। ८।।
अवज्ञाय हि तं भृत्या भजन्ते बहुदोषताम्।
आदातुं चास्य वित्तानि प्रार्थयन्तेऽल्पचेतसः।। ९।।

हे तात! इन दोनों के विषय में यह निश्चित रूप से समझ लो कि सदा तेज का प्रदर्शन करना भी कल्याणकारी नहीं है और सदा क्षमाशील बने रहना भी कल्याणकारी नहीं है। हे तात! जो सदा क्षमा ही करता रहता है, वह बहुत से दोषों को प्राप्त करता है। उसके सेवक, उसके शत्रु तथा तटस्थ रहने वाले व्यक्ति भी उसका तिरस्कार करते हैं! सारे प्राणी उससे विनम्रता पूर्वक व्यवहार नहीं करते! इसलिये हे तात! पंडितों ने भी सदा क्षमाशील रहने का निषेध किया है। उसके सेवक उसकी अवज्ञा कर बहुत से अपराध करते रहते हैं। वे मूर्ख उसकी सम्पत्ति को हड़पने का प्रयत्न करने लगते हैं।

यानं वस्त्राण्यलंकाराञ्छयनान्यासनानि च।
भोजनान्यथ पानानि सर्वोपकरणानि च।। १०।।
आददीरन्नधिकृता यथाकाममचेतसः।
प्रदिष्टानि च देयानि न दद्युर्भर्तृशासनात्।। ११।।
न चैनं भर्तृपूजाभिः पूजयन्ति कथंचन।
अवज्ञानं हि लोकेऽस्मिन् मरणादपि गर्हितम्।। १२।।
क्षमिणं तादृशं तात ब्रुवन्ति कटुकान्यपि।
प्रेष्याः पुत्राश्च भृत्याश्च तथोदासीनवृत्तयः।। १३।।

क्षमाशील व्यक्ति जब अपने सेवकों को विभिन्न कार्यों में लगाता है, तब वे मूर्ख लोग अपनी इच्छा के अनुसार ही उसकी सवारी, वस्त्रों, आभूषणों, शय्या, आसन, भोजन पेय पदार्थों और सारे साधनों का अपने लिये प्रयोग करते रहते हैं। स्वामी के द्वारा विभिन्न पदार्थों को विशिष्ट व्यक्तियों को देने का आदेश देने पर वे उन्हें देते नहीं है। वे स्वामी का जितना आदर उन्हें करना चाहिये, उतना आदर कभी नहीं करते। सेवकों के द्वारा प्राप्त अपमान इस संसार में मृत्यु से भी बढ़ कर होता है। हे तात! क्षमा करने वाले स्वामी को उसके सेवक पुत्र, भृत्य और तटस्थ रहने वाले व्यक्ति भी कड़वे वचन सुना दिया करते हैं।

अथास्य दारानिच्छन्ति परिभूय क्षमावतः।
दाराश्चास्य प्रवर्तन्ते यथाकाममचेतसः।। १४।।
तथा च नित्यमुदिता यदि नाल्पमपीश्वरात्।
दण्डमर्हन्ति दुष्यन्ति दुष्टाश्चाप्यपकुर्वते।। १५।।
एते चान्ये च बहवो नित्यं दोषाः क्षमावताम्।
अथ वैरोचने दोषानिमान् विद्ध्यक्षमावताम्।। १६।।

वे लोग उस क्षमाशील की अवहेलना कर उसकी पत्नियों को भी अपने वश में करना चाहते हैं और ऐसे पुरुष की मूर्ख स्त्रियाँ भी अपनी मनमानी करने लग जाती हैं। ऐसी स्त्रियों को यदि अपने स्वामी से थोड़ा भी दण्ड नहीं मिलता है, तो वे सदा मौज उड़ाती हैं, दुश्चरित्र हो जाती हैं और स्वामी का अपकार करने लगती हैं। नित्य क्षमा करने वालों को ये दोष तथा और भी बहुत से दोष प्राप्त होते हैं। हे विरोचनपुत्र! अब सदा क्षमा न करने वालों के दोषों को सुनो।

अस्थाने यदि वा स्थाने सततं रजसाऽऽवृतः।
क्रुद्धो दण्डान् प्रणयति विविधान् स्वेन तेजसा।। १७।।
मित्रैः सह विरोधं च प्राप्नुते तेजसाऽऽवृतः।
आप्नोति द्वेष्यतां चैव लोकात् स्वजनतस्तथा।। १८।।
सोऽवमानादर्थहानिमु पालम्भमनादरम्।
संतापद्वेषमोहांश्च शत्रूंश्च लभते नरः।। १९।।
क्रोधाद्दण्डान्मनुष्येषु विविधान् पुरुषोऽनयात्।
भ्रश्यते शीघ्रमैश्वर्यात् प्राणेभ्यः स्वजनादपि।। २०।।

जो व्यक्ति सदा क्रोध में भरा हुआ, रजोगुण से युक्त होकर अपने तेज के द्वारा लोगों को अनेक प्रकार के दण्ड उचित और अनुचित सारे समय देता रहता है, वह अपने तेज के कारण मित्रों से विरोध को उत्पन्न कर लेता है। सामान्य लोग भी और अपने लोग भी उसके बैरी बन जाते हैं। दूसरों का अपमान करने के कारण वह अपने धन की हानि, दूसरों से उपालम्भ और अनादर प्राप्त करता है। वह अपने शत्रुओं को जन्म देता है तथा सन्ताप द्वेष और मोह को प्राप्त करता है। ऐसा मनुष्य क्रोध के कारण मनुष्यों पर अन्याय पूर्वक अनेक तरह

के दण्डों का प्रयोग करता है और शीघ्र ही अपने ऐश्वर्य, अपने बन्धुओं और अपने प्राणों से भी हाथ धो बैठता है।

योपकर्तृंश्च हर्तृंश्च तेजसैवोपगच्छति।
तस्मादुद्विजते लोकः सर्पाद् वेश्मगतादिव।। २१।।
यस्मादुद्विजते लोकः कथं तस्य भवो भवेत्।
अन्तरं तस्य दृष्ट्वैव लोको विकुरुते ध्रुवम्।। २२।।
तस्मान्नात्युत्सृजेत् तेजो न च नित्यं मृदुर्भवेत्।
काले काले तु सम्प्राप्ते मृदुस्तीक्ष्णोऽपि वा भवेत्।। २३।।
काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः।
स वै सुखमवाप्नोति लोकेऽमुष्मिन्निहैव च।। २४।।

जो अपने उपकार करने वालों और चोरी करने वालों के प्रति भी क्रोध से ही व्यवहार करता है, उससे लोग उसी प्रकार परेशान रहते हैं, जैसे घर में रहने वाले साँप से रहते हैं। जिससे लोग परेशान रहते हैं उसे ऐश्वर्य की प्राप्ति कैसे हो सकती है? लोग उसका ज़रा सा भी छिद्र देख कर उसकी बुराई करने लगते हैं। इसलिये न तो सर्वदा अपने तेज को दिखाना चाहिये और न सदा मुलायम बने रहना चाहिये। समय समय पर जैसा उचित हो वैसा ही कोमल और कठोर बनता रहे। जो उचित समय पर कोमल व्यवहार करता है और उचित समय पर भयानक बन जाता है, वह इस लोक में तथा परलोक में भी सुख को प्राप्त करता है।

क्षमाकालांस्तु वक्ष्यामि शृणु मे विस्तरेण तान्।
ये ते नित्यमसंत्याज्या यथा प्राहुर्मनीषिणः।। २५।।
पूर्वोपकारी यस्ते स्यादपराधे गरीयसि।
उपकारेण तत् तस्य क्षन्तव्यमपराधिनः।। २६।।
अबुद्धिमाश्रितानां तु क्षन्तव्यमपराधिनाम्।
न हि सर्वत्र पाण्डित्यं सुलभं पुरुषेण वै।। २७।।
अथ चेद् बुद्धिजं कृत्वा ब्रूयुस्ते तदबुद्धिजम्।
पापान् स्वल्पेऽपितान् हन्यादपराधे तथानृजून्।। २८।।

अब मैं तुम्हें क्षमा करने के समयों का वर्णन करता हूँ। तुम उन्हें ध्यान से सुनो। मनीषी लोगों ने कहा है कि उन अवसरों पर क्षमा करना बिल्कुल नहीं छोड़ना चाहिये। जिसने पहले तुम्हारा उपकार किया हुआ हो, उसके द्वारा बड़ा अपराध हो जाने पर भी उसके पहले उपकार को ध्यान में रखते हुए उसे क्षमा कर देना चाहिये। जिसने मूर्खता वश अपराध किया हो, उस अपराधी के अपराध को क्षमा कर देना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति विद्वान् हो यह जरूरी नहीं है। यदि कोई बुद्धि पूर्वक अपराध करे, पर कहे कि मैंने अज्ञान के कारण किया है, ऐसे उदण्ड अपराधी को उसके थोड़े अपराध पर भी दण्ड देना चाहिये।

सर्वस्यैकोऽपराधस्ते क्षन्तव्यः प्राणिनो भवेत्।
द्वितीये सति वध्यस्तु स्वल्पेऽप्यपकृते भवेत्।। २९।।
तदहं तेजसः कालं तव मन्ये नराधिप।
धार्तराष्ट्रेषु लुब्धेषु सततं चापकारिषु।। ३०।।
न हि कश्चित् क्षमाकालो विद्यतेऽद्य कुरून् प्रति।
तेजसश्चागते काले तेज उत्स्रष्टुमर्हसि।। ३१।।

सारे प्राणियों का एक अपराध तो तुम्हें क्षमा कर ही देना चाहिये। पर उसके दुबारा अपराध करने पर अपराध छोटा होने पर भी उसे अवश्य ही दण्ड देना चाहिये। इसलिये हे राजन्! मैं समझती हूँ कि यह आपके अपने तेज को दिखाने का समय है। क्योंकि धृतराष्ट्र के पुत्र सदा लोभी और हमारा अपकार करने वाले रहे हैं। इस समय कौरवों पर क्षमाभाव दिखाने का समय नहीं है। अब क्रोध को दिखाने का अवसर है, अतः आपको उनके प्रति क्रोध को प्रकट करना चाहिये।

ग्यारहवाँ अध्याय : युधिष्ठिर द्वारा क्रोध की निन्दा और क्षमा की प्रशंसा।

युधिष्ठिर उवाच

क्रोधो हन्ता मनुष्याणां क्रोधो भावयिता पुनः।
इति विद्धि महाप्राज्ञे क्रोधमूलौ भवाभवौ।। १।।
यो हि संहरते क्रोधं भवस्तस्य सुशोभने।
यः पुनः पुरुषः क्रोधं नित्यं न सहते शुभे।। २।।
तस्याभावाय भवति क्रोधः परमदारुणः।
क्रोधमूलो विनाशो हि प्रजानामिह दृश्यते।। ३।।
तत् कथं मादृशः क्रोधमुत्सृजेल्लोकनाशनम्।
क्रुद्धः पापं नरः कुर्यात् क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि।। ४।।
क्रुद्धः परुषया वाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि क्रोध मनुष्य को नष्ट करने वाला है। यदि उसे जीत लिया जाये तो वह अभ्युदय को करता है। हे परमबुद्धिमती! यह समझो कि क्रोध ही उन्नति और अवनति दोनों का कारण

है। हे सुशोभने! जो क्रोध को नष्ट कर देता है, उसकी उन्नति होती है, पर जो क्रोध के वेग को कभी सहन नहीं कर पाता, वह अत्यन्त भयानक क्रोध उसका विनाश कर देता है। क्रोध के कारण प्रजाओं का विनाश देखा जाता है, फिर लोगों का नाश करने वाले क्रोध का मुझ जैसा व्यक्ति कैसे प्रयोग कर सकता है? क्रोध में भर कर मनुष्य पाप कर्म को कर बैठता है, वह गुरुओं की भी हत्या कर देता है। क्रुद्ध मनुष्य कड़वी बात से श्रेष्ठ लोगों का अपमान कर देता है।

वाच्यावाच्ये हि कुपितो न प्रजानाति कर्हिचित्।। ५।।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते तथा।
एतान् दोषान् प्रपश्यद्भिर्जितः क्रोधो मनीषिभिः।। ६।।
इच्छद्भिः परमं श्रेय इह चामुत्र चोत्तमम्।
तं क्रोधं वर्जितं धीरैः कथमस्मद्विधश्चरेत्।। ७।।
एतद् द्रौपदि संधाय न मे मन्युः प्रवर्धते।
आत्मानं च परांश्चैव त्रायते महतो भयात्।। ८।।
क्रुध्यन्तमप्रतिक्रुध्यन् द्वयोरेष चिकित्सकः।

कुपित व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि क्या कहना चाहिये और क्या नहीं कहना चाहिये। क्रोधी मनुष्य कुछ भी कर सकता है और कुछ भी बोल सकता है? क्रोध के इन्हीं दोषों को देख कर इस लोक और परलोक में उत्तम कल्याण को चाहने वाले मनीषी लोगों ने क्रोध पर विजय प्राप्त की है। जिस क्रोध का धैर्यवान् लोगों ने त्याग किया है, उसे मुझ जैसा व्यक्ति कैसे अपना सकता है? यही सोच कर हे द्रौपदी! मेरा क्रोध कभी बढ़ता नहीं है। जो व्यक्ति क्रोध करने वाले के प्रति क्रोध नहीं करता, वह अपने को और दूसरों को भी महान् भय से बचा लेता है। वह दोनों के दोष को दूर करने वाला चिकित्सक बन जाता है।

मूढो यदि क्लिश्यमानः क्रुध्यतेऽशक्तिमान् नरः।। ९।।
बलीयसां मनुष्याणां त्यजत्यात्मानमात्मना।
तस्यात्मानं संत्यजतो लोका नश्यन्त्यनात्मनः।। १०।।
तस्माद् द्रौपद्यशक्यस्य मन्योर्नियमनं स्मृतम्।
विद्वांस्तथैव यः शक्तः क्लिश्यमानो न कुप्यति।। ११।।
अनाशयित्वा क्लेष्टारं परलोके च नन्दति।
तस्माद् बलवता चैव दुर्बलेन च नित्यदा।। १२।।
क्षन्तव्यं पुरुषेणाहुरापत्स्वपि विजानता।

यदि मूर्ख और कमजोर व्यक्ति कष्ट पाने पर बलवान के प्रति क्रोध करता है, तो अपने आप ही अपना विनाश करता है। अपने मन को बस में न करने वाले और क्रोध वश अपने शरीर को नष्ट करने वाले के दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं। इसलिये हे द्रौपदी! कमजोर व्यक्ति के लिये क्रोध को वश में करना ही अच्छा है। इसी प्रकार जो शक्तिशाली व्यक्ति समझदार होने के कारण क्लेश पाने पर भी क्लेश देने वाले पर क्रोध नहीं करता है, वह उसे नष्ट न करके परलोक में सुख पाता है।

मन्योर्हिविजयं कृष्णे प्रशंसन्तीह साधवः।। १३।।
क्षमावतो जयो नित्यं साधोरिह सतां मतम्।
तेजस्वीति यमाहुर्वै पण्डिता दीर्घदर्शिनः।। १४।।
न क्रोधोऽभ्यन्तरस्तस्य भवतीति विनिश्चितम्।

हे द्रौपदी! सज्जन लोग क्रोध पर विजय पाने की प्रशंसा करते हैं। उनका यह मत है कि क्षमा वान् की सदा जीत होती है। जिसे दूरदर्शी पण्डित लोग तेजस्वी कहते हैं उसके अन्दर क्रोध नहीं होता यह बात निश्चित है।

दाक्ष्यं ह्यमर्षः शौर्यं च शीघ्रत्वमिति तेजसः।। १५।।
गुणाः क्रोधाभिभूतेन न शक्याः प्राप्तुमञ्जसा।
क्रोधं त्यक्त्वा तु पुरुषः सम्यक् तेजोऽभिपद्यते।। १६।।
कालयुक्तं महाप्राज्ञे क्रुद्धैस्तेजः सुदुःसहम्।
क्रोधस्त्वपण्डितैः शश्वत् तेज इत्यभिनिश्चितम्।। १७।।
रजस्तु लोकनाशाय विहितं मानुषं प्रति।
तस्माच्छश्वत् त्यजेत् क्रोधं पुरुषः सम्यगाचरन्।। १८।।
श्रेयान् स्वधर्मानपगो न क्रुद्ध इति निश्चितम्।

तेज के ये चार गुण हैं दक्षता, अमर्ष, शौर्य और शीघ्रता। क्रोध से पराजित व्यक्ति इन गुणों को सरलता से नहीं प्राप्त कर सकता। क्रोध को छोड़ कर ही मनुष्य तेज के वास्तविक रूप को प्राप्त कर सकता है। हे महाप्राज्ञे! क्रोधित मनुष्य तेज का समयोचित प्रयोग नहीं कर सकता। जो पण्डित नहीं हैं, वे ही क्रोध को सदा तेज का लक्षण मानते हैं। रजोगुण युक्त क्रोध का मनुष्यों के लिये प्रयोग उनके विनाश के लिये होता है। इसलिये सदाचार पर चलने वाले मनुष्य को क्रोध का सर्वदा त्याग करना चाहिये। अपने वर्ण धर्म का पालन न करने वाला मनुष्य क्रोधी मनुष्य की अपेक्षा अच्छा है।

यदि सर्वमबुद्धीनामतिक्रान्तमचेतसाम्।। १९।।
अतिक्रमो मद्विधस्य कथंस्वित् स्यादनिन्दिते।
यदि न स्युर्मानुषेषु क्षमिणः पृथिवीसमाः।। २०।।

न स्यात् संधिर्मनुष्याणां क्रोधमूलो हि विग्रहः।
अभिषक्तो ह्यभिषजेदाहन्याद् गुरुणा हतः।। २१।।
एवं विनाशो भूतानामधर्मः प्रथितो भवेत्।

हे अनिन्दिते! जो बुद्धिहीन और अज्ञानी पुरुष होते हैं, वे तो सद्गुणों का उल्लंघन कर देते हैं, पर मैं तो समझदार हूँ, मैं कैसे उनका उल्लंघन कर सकता हूँ। मनुष्यों में पृथिवी के समान क्षमाशील मनुष्य भी विद्यमान हैं। यदि क्षमाशील मनुष्य न हों तो लोगों में लड़ाइयाँ ही होती रहें, मेल न हो। क्योंकि झगड़े की जड़ तो क्रोध ही है। यदि ऐसी धारणा रखी जाये कि जो अपने को सताये, उसे भी सताना चाहिये, यहाँ तक कि यदि गुरु लोग भी मारें तो उन्हें भी मार देना चाहिये, तो सारे प्राणियों का विनाश हो जाये और लोगों में अधर्म फैल जाये।

आक्रुष्टः पुरुषः सर्वं प्रत्याक्रोशेदनन्तरम्।। २२।।
प्रतिहन्याद्धतश्चैव तथा हिंस्याच्च हिंसितः।
हन्युर्हि पितरः पुत्रान् पुत्राश्चापि तथा पितॄन्।। २३।।
हन्युश्च पतयो भार्याः पतीन् भार्यास्तथैव च।
एवं संकुपिते लोके शमः कृष्णे न विद्यते।। २४।।
प्रजानां संधिमूलं हि शमं विद्धि शुभानने।

यदि सारे मनुष्य क्रोध के आधीन हो जायें तो एक के गाली देने पर दूसरे भी बदले में उसे गाली दें। दूसरे से मारा हुआ मनुष्य बदले में उसे भी मार दे। एक का अनिष्ट होने पर वह दूसरे का भी अनिष्ट कर दे, फिर तो पिता पुत्रों को मारेंगे और पुत्र पिता को मारेंगे। पति पत्नियों को मार दें और इसी प्रकार पत्नियाँ पतियों को मार दें। हे शुभानने द्रौपदी! इस प्रकार सारे लोगों के क्रोध में हो जाने पर कहीं भी शान्ति न हो, क्योंकि प्रजाओं में मेल कराने वाली तो शान्ति की ही भावना है।

ताः क्षिपेरन् प्रजाः सर्वाः क्षिप्रं द्रौपदि तादृशे।। २५।।
तस्मान्मन्युर्विनाशाय प्रजानामभवाय च।
यस्मात् तु लोके दृश्यन्ते क्षमिणः पृथिवीसमाः।। २६।।
तस्माज्जन्म च भूतानां भवश्च प्रतिपद्यते।
क्षन्तव्यं पुरुषेणेह सर्वापत्सु सुशोभने।। २७।।
क्षमावतो हि भूतानां जन्म चैव प्रकीर्तितम्।

हे द्रौपदी! यदि राजा क्रोधी हो जाये तो वह सारी प्रजा का शीघ्र ही नाश कर दे। इसलिये क्रोध प्रजाओं का विनाश और अवनति करने वाला है। क्योंकि इस संसार में पृथिवी के समान क्षमावान् पुरुष भी देखे जाते हैं, इसलिये लोगों का जन्म और उन्नति देखी जाती है। हे सुशोभने! मनुष्य को सारी आपत्तियों में भी क्षमा का ही पालन करना चाहिये। क्षमावान् पुरुषों के कारण ही प्राणियों का जीवन बताया गया है।

अत्राप्युदाहरन्तीमा गाथा नित्यं क्षमावताम्।। २८।।
गीताः क्षमावता कृष्णे काश्यपेन महात्मना।
क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञः क्षमा वेदाः क्षमा श्रुतम्।। २९।।
य एतदेवं जानाति स सर्वं क्षन्तुमर्हति।
क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्यं क्षमा भूतं च भावि च।। ३०।।
क्षमा तपः क्षमा शौचं क्षमयेदं धृतं जगत्।

हे द्रौपदी! इस विषय में लोग क्षमावान् महात्मा काश्यप के विचारों को बताया करते हैं। वे दूसरे क्षमाशीलों के विचार भी बताया करते हैं। काश्यप के विचार प्रकार हैं कि क्षमा ही धर्म है, क्षमा ही यज्ञ, क्षमा ही वेद है और क्षमा ही शास्त्र है। जो क्षमा के विषय में इस प्रकार समझता है, वही क्षमा कर सकता है। क्षमा ही ब्रह्म है, क्षमा ही सत्य है, क्षमा ही भूत है और क्षमा ही भविष्य है, क्षमा ही तप और शौच है। क्षमा ने ही इस सारे संसार को धारण किया हुआ है।

अति यज्ञविदां लोकान् क्षमिणः प्राप्नुवन्ति च।। ३१।।
अति ब्रह्मविदां लोकानति चापि तपस्विनाम्।
अन्ये वै यजुषां लोकाः कर्मिणामपरे तथा।। ३२।।
क्षमावतां ब्रह्मलोके लोकाः परमपूजिताः।
क्षमा तेजस्विनां तेजः क्षमा ब्रह्म तपस्विनाम्।। ३३।।
क्षमा सत्यं सत्यवतां क्षमा यज्ञः क्षमा शमः।

क्षमाशील व्यक्ति यज्ञवेत्ताओं, ब्रह्मवेत्ताओं और तपस्वियों से भी अधिक उत्कृष्ट गति को प्राप्त होते हैं। यजुर्वेदादि वेदों को जानने वालों की गति दूसरी है, कर्मकाण्डों को करने वालों की गति भी दूसरी है, पर क्षमा वाले की गति ब्रह्मलोक में है और परम आदरणीय है। क्षमा तेजस्वियों का तेज है, क्षमा तपस्वियों का ब्रह्म है, क्षमा सत्यवादियों का सत्य है, क्षमा ही यज्ञ है और क्षमा ही शम है।

क्षमावतामयं लोकः परश्चैव क्षमावताम्।। ३४।।
इह सम्मानमृच्छन्ति परत्र च शुभां गतिम्।
येषां मन्युर्मनुष्याणां क्षमयाभिहतः सदा।। ३५।।
तेषां परतरे लोकास्तस्मात् क्षान्तिः परा मता।

इति गीता: काश्यपेन गाथा नित्यं क्षमावताम्।। ३६।।
श्रुत्वा गाथा: क्षमायास्त्वं तुष्य द्रौपदि मा क्रुध:।

क्षमा वालों के लिये ही यह लोक है, परलोक भी क्षमा वालों के लिये ही है। क्षमाशील व्यक्ति यहाँ भी सम्मान को प्राप्त करते हैं और परलोक में भी उनको उत्तम गति मिलती है। जिन लोगों का क्रोध क्षमा के द्वारा दबा रहता है, उन्हें उत्तम परलोक की प्राप्ति होती है। इसलिये क्षमा तो सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। श्री काश्यप जी ने क्षमा के विषय में ये अपने विचार प्रकट किये हैं। हे द्रौपदी! तुम भी क्षमा के इन गुणों को सुन कर सन्तुष्ट हो जाओ और क्रोध मत करो।

पितामह: शान्तनव: शमं सम्पूजयिष्यति।। ३७।।
कृष्णश्च देवकीपुत्र: शमं सम्पूजयिष्यति:।
आचार्यो विदुर: क्षत्ता शममेव वदिष्यत:।। ३८।।
कृपश्च संजयश्चैव शममेव वदिष्यत:।
सोमदत्तो युयुत्सुश्च द्रोणपुत्रस्तथैव च।। ३९।।
पितामहश्च नो व्यास: शमं वदति नित्यश:।
एतैर्हि राजा नियतं चोद्यमान: शमं प्रति।। ४०।।
राज्यं दातेति मे बुद्धिर्न चेल्लोभान्नशिष्यति।

शान्तनु पुत्र भीष्म पितामह शान्ति का ही सम्मान करेंगे। देवकी पुत्र कृष्ण भी शान्ति का समर्थन करेंगे। आचार्य द्रोण और विदुर, कृपाचार्य और संजय ये सब शान्ति की ही सलाह देंगे। सोमदत्त, युयुत्सु, अश्वत्थामा और हमारे पितामह व्यास ये भी सदा शान्ति के लिये ही कहते हैं। इन सबके द्वारा शान्ति के लिये प्रेरित करते रहने पर धृतराष्ट्र हमें राज्य दे देंगे, ऐसा मेरा विचार है। यदि वह नहीं देंगे तो लोभ के कारण नष्ट हो जायेंगे।

कालोऽयं दारुण: प्राप्तो भरतानामभूतये।। ४१।।
निश्चितं मे सदैवेतत् पुरस्तादपि भाविनि।
सुयोधनो नार्हतीति क्षमामेवं न विन्दति।। ४२।।
अर्हस्तत्राहमित्येवं तस्मान्मां विन्दते क्षमा।
एतदात्मवतां वृत्तमेष धर्म: सनातन:।
क्षमा चैवानृशंस्यं च तत् कर्तास्म्यहमञ्जसा।। ४३।।

हे भामिनी! भरतवंश के विनाश के लिये यह बड़ा भयानक समय आ रहा है। मेरा यह निश्चित विचार रहा है और आगे भी रहेगा कि दुर्योधन न तो क्षमा को धारण करने के योग्य है और न वह क्षमा को कभी धारण करेगा। पर मैं क्षमा को धारण करने के योग्य हूँ इसलिये क्षमा मेरा ही आश्रय लेती है। क्षमा करना मनस्वी लोगों का चरित्र है, यही सनातन धर्म है, इसलिये मैं क्षमा और दया को उचित रीति से अपनाऊँगा।

बारहवाँ अध्याय : द्रौपदी का धर्म और ईश्वर के न्याय पर आक्षेप।

त्वां च व्यसनमभ्यागदिदं भारत दु:सहम्।
यत् त्वं नार्हसि नापीमे भ्रातरस्ते महौजस:।। १।।
न हि तेऽध्यगमञ्जातु तदानीं नाद्य भारत।
धर्मात् प्रियतरं किंचिदपि चेज्जीवितादिह।। २।।
धर्मार्थमेव ते राज्यं धर्मार्थं जीवितं च ते।
भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रेयौ च मया सह।। ३।।
त्यजेस्त्वमिति मे बुद्धिर्न तु धर्मं परित्यजे:।

तब द्रौपदी ने कहा कि हे भारत! आप लोगों पर यह इतना दुस्सह संकट आ गया है, जिसके योग्य न तो आप हैं और न ये आपके महान् तेजस्वी भाई हैं। हे भारत! आपके इन भाइयों ने न तो कभी पहले और न अब धर्म से बढ़ कर किसी भी पदार्थ को प्रिय नहीं समझा है, बल्कि धर्म को जीवन से भी बढ़ कर माना है। आपका राज्य और आपका जीवन धर्म के लिये ही रहा है। मेरा विचार है कि आप भीम अर्जुन, माद्री के दोनों पुत्रों और मुझे भी त्याग देंगे पर धर्म का त्याग नहीं करेंगे।

राजानं धर्मगोप्तारं धर्मो रक्षति रक्षित:।। ४।।
इति मे श्रुतमार्याणां त्वां तु मन्ये न रक्षति।
अनन्या हि नरव्याघ्र नित्यदा धर्ममेव ते।। ५।।
बुद्धि: सततमन्वेतिच्छायेव पुरुषं निजा।
नावमंस्था हि सदृशान् नावराञ्छ्रेयस: कुत:।। ६।।
अवाप्य पृथिवीं कृत्स्नां न ते शृङ्गमवर्धत।
अस्मिन्नपि महारण्ये विजने दस्युसेविते।। ७।।
राष्ट्रादपेत्य वसतो धर्मस्तेनावसीदति।

मैंने आर्यो के मुख से सुना है कि धर्म की रक्षा करने वाले राजा की वह रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है, पर मैं समझती हूँ कि वह धर्म आपकी रक्षा नहीं कर रहा है। जैसे पुरुष की छाया सदा उसके पीछे रहती है, हे नरव्याघ्र! उसी प्रकार

आपकी बुद्धि भी सदा धर्म का ही अनुसरण करती है। आपने न तो किसी बराबर वाले का अपमान किया और न छोटों का, बड़ों का तो कैसे कर सकते हैं? सारी पृथ्वी का राज्य पा कर भी आपका अहंकार नहीं बढ़ा। अपने देश से बाहर निकल इस लुटेरों से युक्त निर्जन विशाल जंगल में रहते हुए भी आपका धर्म पालन शिथिल नहीं हुआ है।

अतीव मोहमायाति मनश्च परिभूयते।। ८।।
निशाम्य ते दुःखमिदमिमां चापदमीदृशीम्।
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनं।। ९।।
ईश्वरस्य वशे लोकास्तिष्ठन्ते नात्मनो यथा।
यथा दारुमयी योषा नरवीर समाहिता।। १०।।
ईरयत्यङ्गमङ्गानि तथा राजन्निमाः प्रजा।
शकुनिस्तन्तुबद्धो वा नियतोऽयमनीश्वरः।। ११।।
ईश्वरस्य वशे निष्ठेन्नान्येषां नात्मनः प्रभुः।

आपके इस दुःख को और आपके ऊपर आये इस भयानक संकट को देख कर मुझे बड़ा मोह हो रहा है और मेरा मन बहुत दुख पा रहा है। इस विषय में लोग एक पुराने इतिहास का उदाहरण देते हैं, जिसमें कहा गया है कि सारे लोग ईश्वर के आधीन हैं, कोई भी स्वाधीन नहीं है। हे नरवीर राजा! जैसे कठपुतली दूसरों से चलाये जाने पर ही अपने अंगों को चलाती है, वैसे ही ये सारी प्रजाएँ भी ईश्वर की प्रेरणा से ही अपने हाथ पैरों आदि का संचालन करके विविध कार्य करती हैं। डोर में बँधे हुए पक्षी की तरह जीवात्मा परतन्त्र है। यह अपना स्वामी नहीं है। ईश्वर के आधीन होकर रहता हुआ यह न तो दूसरों पर शासन करता है न अपने ऊपर।

मणिः सूत्र इव प्रोतो नस्योत इव गोवृषः।। १२।।
स्रोतसो मध्यमापन्नः कूलाद् वृक्ष इव च्युतः।
धातुरादेशमन्वेति तन्मयो हि तदर्पणः।। १३।।
नात्माधीनो मनुष्योऽयं कालं भजति कंचन।
अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।। १४।।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं नरकमेव च।
यथा वायोस्तृणाग्राणि वशं यान्ति बलीयसः।। १५।।
धातुरेवं वशं यान्ति सर्वभूतानि भारत।

जैसे मणि सूत में पियोयी हुई हो, जैसे बैल को नाक से नाथा हुआ हो, जैसे किनारे से उखड़ कर वृक्ष धारा के बीच में जा पड़ा हो, वैसे ही यह मनुष्य परमात्मा से व्याप्त और उसी के आधीन होकर उसी के आदेशानुसार चलता है। यह मनुष्य स्वाधीनता के साथ कुछ भी समय नहीं बिताता। यह जीवात्मा अज्ञानी है और अपने सुख और दुःख की व्यवस्था करने में भी असमर्थ है। ईश्वर की प्रेरणा से ही यह स्वर्ग अर्थात् सुख और नरक अर्थात् दुःख को प्राप्त करता है। हे भारत! जैसे बलवान् वायु के वश में होकर तिनके उड़ते फिरते हैं, वैसे ही ये सारे प्राणी परमात्मा के वश में होकर ही आवागमन करते हैं।

हेतुमात्रमिदं धातुः शरीरं क्षेत्रसंज्ञितम्।। १६।।
येन कारयते कर्म शुभाशुभफलं विभुः।
पश्य मायाप्रभावोऽयमीश्वरेण यथा कृतः।। १७।।
यो हन्ति भूतैर्भूतानि मोहयित्वाऽऽत्ममायया।
अन्यथा परिदृष्टानि मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।। १८।।
अन्यथा परिवर्तन्ते वेगा इव नभस्वतः।
अन्यथैव हि मन्यन्ते पुरुषास्तानि तानि च।। १९।।
अन्यथैव प्रभुस्तानि करोति विकरोति च।

यह शरीर जिसे क्षेत्र कहते हैं, ईश्वर का साधन मात्र है, जिसके द्वारा परमात्मा शुभ और अशुभ कार्य कराया करता है। देखिये, परमात्मा ने अपनी माया का कैसा प्रभाव फैलाया हुआ है कि वह प्राणियों को अपनी माया से मोहित करके उनके द्वारा दूसरे प्राणियों का वध करवाया करता है। पदार्थों को तत्वदर्शी मुनि किसी और रूप में देखते हैं, पर व्यवहार रूप में वे किसी और रूप में प्रतीत होते हैं जैसे आकाशवर्ती सूर्य की किरणें। लोग अलग-अलग पदार्थों को किसी और रूप में मानते हैं पर शक्तिशाली प्रभु उन्हें किसी और रूप में बनाते और बिगाड़ते रहते हैं।

सत्प्रयोज्य वियोज्यायं कामकारकरः प्रभुः।। २०।।
क्रीडते भगवान् भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव।
न मातृपितृवद् राजन् धाता भूतेषु वर्तते।
रोषादिव प्रवृत्तोऽयं यथायमितरो जनः।। २१।।
आर्याञ्छीलवतो दृष्ट्वा ह्रीमतो वृत्तिकर्शितान्।
अनार्यान् सुखिनश्चैव विह्वलामीव चिन्तया।। २२।।

जैसे बच्चा खिलौनों से खेलता है, वैसे ही शक्तिशाली परमात्मा अपनी स्वेच्छा से प्राणियों को एक दूसरे से जोड़ते और अलग करते हुए खेल करते रहते हैं। हे राजन्! भगवान् प्राणियों के साथ माता पिता के समान बर्ताव नहीं कर रहे हैं। वे

तो दूसरे सामान्य लोगों की तरह मानों क्रोध में भर कर ही उनसे व्यवहार कर रहे हैं, क्योंकि जो अच्छे आचरण वाले, शीलवान और संकोची हैं, वे अपनी आजीविका के लिये कष्ट पा रहे हैं और जो दुष्ट आचरण वाले हैं, वे सुख पा रहे हैं। यही देख कर मैं चिन्ता के कारण बेचैन हो रही हूँ।

तवेमामापदं दृष्ट्वा समृद्धिं च सुयोधने।
धातारं गर्हये पार्थ विषमं योऽनुपश्यति।। २३।।
आर्यशास्त्रातिगे क्रूरे लुब्धे धर्मापचायिनि।
धार्तराष्ट्रे श्रियं दत्त्वा धाता किं फलमश्नुते।। २४।।
कर्म चेत् कृतमन्वेति कर्तारं नायमृच्छति।
कर्मणा तेन पापेन लिप्यते नूनमीश्वरः।। २५।।
अथ कर्म कृतं पापं न चेत् कर्तारमृच्छति।
कारणं बलमेवेह जनाञ्छोचापि दुर्बलान्।। २६।।

आपके ऊपर आयी इस विपत्ति को तथा दुर्योधन के पास आयी समृद्धि को देख कर मैं हे कुन्ती पुत्र! उस भगवान् की निन्दा करती हूँ जो हमें विषम अन्याय युक्त दृष्टि से देख रहा है। जो श्रेष्ठ शास्त्रों का उल्लंघन करने वाला है, क्रूर है, लोभी है, धर्म को नष्ट करने वाला है, ऐसे उस धृतराष्ट्र के पुत्र को समृद्धि देकर परमात्मा को क्या फायदा हो रहा है? यदि यह सिद्धान्त है कि किया हुआ कर्म कर्ता के ही साथ रहता है, किसी अन्य के पास नहीं जाता, तो भगवान् हमारे साथ जो बुरा कर रहा है, उसका पाप भी परमात्मा को अवश्य लगेगा। यदि यह माना जाये कि किया हुआ पाप कर्म शक्तिशाली कर्त्ता को नहीं लगता और इसलिये ईश्वर को भी नहीं लगता, तो मुझे निर्बलों के लिये बड़ा शोक है।

तेरहवाँ अध्याय : युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी के आक्षेप का समाधान।

युधिष्ठिर उवाच

वल्गु चित्रपदं श्लक्ष्णं याज्ञसेनि त्वया वचः।
उक्तं तच्छ्रुतमस्माभिर्नास्तिक्यं तु प्रभाषसे।। १।।
नाहं कर्मफलान्वेषी राजपुत्रि चराम्युत।
ददामि देयमित्येव यजे यष्टव्यमित्युत।। २।।
धर्मं चरामि सुश्रोणि न धर्मफलकारणात्।
आगमाननतिक्रम्य सतां वृत्तमवेक्ष्य च।। ३।।
धर्म एव मनः कृष्णे स्वभावाच्चैव मे धृतम्।
धर्मवाणिज्यको हीनो जघन्यो धर्मवादिनाम्।। ४।।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे द्रौपदी! तुम्हारी बातें सुनने में बड़ी मनोहर, विचित्र पदों से युक्त और मधुर हैं। मैंने वे सारी बड़े ध्यान से सुनी हैं, पर तुम इस समय नास्तिकों के मन के अनुसार कह रही हो। हे राजपुत्री! मैं कर्म फल की इच्छा से सुकर्म का आचरण नहीं करता हूँ, मैं तो अपने कर्तव्य पालन की भावना से कि मुझे देना है, मुझे यज्ञ करना है, देता हूँ और यज्ञ करता हूँ। हे सुश्रोणि! मैं धर्म के फल को प्राप्त करने के लिये धर्म का पालन नहीं करता, मैं तो शास्त्रों का उल्लंघन न करते हुए, सज्जनों के चरित्रों को देखते हुए, हे द्रौपदी! स्वभाव से ही धर्म में मन लगाता हूँ। जो कुछ पाने की इच्छा से धर्म का व्यापार करता है, वह धर्मवादियों की दृष्टि में हीन और निन्दनीय माना गया है।

न धर्मफलमाप्नोति यो धर्मं दोग्धुमिच्छति।
यश्चैनं शङ्कते कृत्वा नास्तिक्यात् पापचेतनः।। ५।।
वेदाध्यायी धर्मपरः कुले जातो मनस्विनि।
स्थविरेषु स योक्तव्यो राजर्षिर्धर्मचारिभिः।। ६।।
व्यासो वसिष्ठो मैत्रेयो नारदो लोमशः शुकः।
अन्ये च ऋषयः सर्वे धर्मेणैव सुचेतसः।। ७।।
अतो नार्हसि कल्याणि धातारं धर्ममेव च।
राज्ञि मूढेन मनसा क्षेप्तुं शङ्कितुमेव च।। ८।।

जो पाप चेतना वाला मनुष्य अपने नास्तिकपने के कारण धर्म कार्य को करके उस पर शंका करता है, जो धर्म को दुहना चाहता है, वह धर्म के फल को प्राप्त नहीं करता है। हे मनस्विनी! जो वेद का अध्ययन करने वाला, धर्म का पालन करने वाला और कुलीन हो, उस राजर्षि को धर्मचारियों के द्वारा वृद्ध अर्थात सबसे बड़ा मानना चाहिये। व्यास, वसिष्ठ, मैत्रेय नारद, लोमश, शुक, तथा दूसरे ऋषि सारे धर्म के आचरण से ही शुद्ध हृदय वाले हुए हैं। इसलिये हे कल्याणी! हे महारानी! तुम अपने मूढ मन से परमात्मा और धर्म के ऊपर आक्षेप तथा शंका मत करो।

उन्मत्तान् मन्यते बालः सर्वानागतनिश्चयान्।
धर्माभिशङ्की नान्यस्मात् प्रमाणमधिगच्छति।। ९।।
आत्मप्रमाण उन्नद्धः श्रेयसो ह्यवमन्यकः।
इन्द्रियप्रीतिसम्बद्धं यदिदं लोकसाक्षिकम्।। १०।।

एतावन्मन्यते बालो मोहमन्यत्र गच्छति।
प्रमाणाद्धि निवृत्तो हि वेदशास्त्रार्थनिन्दकः।। ११।।
कामलोभातिगो मूढो नरकं प्रतिपद्यते।
यस्तु नित्यं कृतमतिर्धर्ममेवाभिपद्यते।। १२।।
अशङ्कमानः कल्याणि सोऽमुत्रानन्त्युमश्नुते।

जो अज्ञानी व्यक्ति होता है वह धर्म के विषय में निश्चित विचार वाले ज्ञानी लोगों को पागल समझता है। वह स्वयं तो धर्म के विषय में शंका रखता है, पर दूसरों के द्वारा दिये गये शास्त्रों के प्रमाणों को ग्रहण नहीं करता। केवल अपनी ही बुद्धि को प्रमाण मानने वाला वह उद्दण्ड पुरुष श्रेष्ठ लोगों की अवमानना करता है। वह इन्द्रियों से जो कुछ दिखाई देता है उसी को प्रमाण मानता है, अप्रत्यक्ष वस्तुओं के विषय में उसकी बुद्धि मोह में पड़ जाती है। ऐसे प्रमाणों से मुँह मोड़ने वाले, वेदों और शास्त्रों के सिद्धान्तों की निन्दा करने वाले, काम और लोभ में फँसे हुए व्यक्ति नरक को अर्थात् निम्न गति को प्राप्त होते हैं। किन्तु जो निश्चित बुद्धि को बना कर धर्म का ही पालन करते हैं, इस विषय में शंका नहीं करते हैं, वे परलोक में अनन्त आनन्द को प्राप्त करते हैं।

आर्षं प्रमाणमुत्क्रम्य धर्मं न प्रतिपालयन्।। १३।।
सर्वशास्त्रातिगो मूढः शं जन्मसु न विन्दति।
यस्य नार्षं प्रमाणं स्याच्छिष्टाचारश्च भाविनि।। १४।।
न वै तस्य परो लोको नायमस्तीति निश्चयः।
शिष्टैराचरितं धर्मं कृष्णे मा स्मा स्माभिशङ्किथाः।। १५।।
पुराणमृषिभिः प्रोक्तं सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः।
धर्म एव प्लवो नान्यः स्वर्गं द्रौपदि गच्छताम्।। १६।।
सैव नौः सागरस्येव वणिजः पारमिच्छतः।

जो व्यक्ति आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों की अवहेलना कर, धर्म का पालन नहीं करता है, सारे शास्त्रों के विरुद्ध आचरण करने वाला वह मूर्ख अनेक जन्मों में शान्ति को प्राप्त नहीं करता। हे भामिनी! जिसके लिये न तो ऋषियों के वचन प्रमाण हैं और न शिष्ट लोगों का आचरण प्रमाण है, उसके लिये न तो यह लोक है और न परलोक है, यह निश्चित बात है। हे द्रौपदी! सर्वज्ञ और सर्वदृष्टा ऋषियों के द्वारा उपदेश किये हुए पुराने धर्म पर, जिस पर शिष्ट पुरुषों ने आचरण किया है, तुम शंका मत करो। हे द्रौपदी! स्वर्ग अर्थात् उत्तम गति को प्राप्त करने वालों के लिये धर्म ही एकमात्र सहारा है, जैसे समुद्र के पार जाने वाले व्यापारियों के लिये जहाज का ही सहारा होता है।

अफलो यदि धर्मः स्याच्चरितो धर्मचारिभिः।। १७।।
अप्रतिष्ठे तमस्येतज्जगन्मज्जेदनिन्दिते।
निर्वाणं नाधिगच्छेयुर्जीवेयुः पशुजीविकाम्।। १८।।
विद्यां ते नैव युज्येयुर्न चार्थं केचिदाप्नुयुः।
तपश्च ब्रह्मचर्यं च यज्ञः स्वाध्याय एव च।। १९।।
दानमार्जवमेतानि यदि स्युरफलानि वै।
नाचरिष्यन् परे धर्मं परे परतरे च ये।। २०।।
विप्रलम्भोऽयमत्यन्तं यदि स्युरफलाःक्रियाः।
फलदं त्विह विज्ञाय धातारं श्रेयसि ध्रुवम्।। २१।।
धर्मं ते व्यचरन् कृष्णे तद्धि श्रेयः सनातनम्।

हे अनिन्दिते! यदि धर्माचरण वाले लोगों के द्वारा पालन किया हुआ धर्म व्यर्थ होता तो यह सारा संसार असीम अंधकार में डूब जाता। किसी को मोक्ष प्राप्त नहीं होता, कोई विद्या की प्राप्ति में नहीं लगता, किसी को प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती, सारे मनुष्य पशुओं जैसी जिन्दगी जीते। तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, स्वाध्याय, दान, कोमलता, यदि ये सारे गुण निष्फल होते तो पहले के श्रेष्ठ और श्रेष्टतर मनुष्य धर्म का आचरण नहीं करते। यदि धर्म के कार्य निष्फल होते तो यह सब अत्यन्त ठग विद्या होती। हे द्रौपदी! धर्म के कार्यों का फल देने वाले ईश्वर निश्चित रूप से कल्याण में लगे हुए हैं यह जान कर ऋषियों ने धर्म का पालन किया है। धर्म ही सनातन श्रेय है।

स नायमफलो धर्मो नाधर्मोऽफलवानपि।। २२।।
दृश्यन्तेऽपि हि विद्यानां फलानि तपसां तथा।
तस्मात् ते संशयः कृष्णे नीहार इस नश्यतु।। २३।।
व्यवस्य सर्वमस्तीति नास्तिक्यं भावमुत्सृज।
ईश्वरं चापि भूतानां धातारं मा च वै क्षिप।। २४।।
शिक्षस्वैनं नमस्वैनं मा तेऽभूद् बुद्धिरीदृशी।
उत्तमां देवतां कृष्णे मावमंस्थाः कथंचन।। २५।।

न तो धर्म निष्फल है और न ही अधर्म निष्फल है! विद्या और तपस्या के भी फल देखे जाते हैं। इसलिये हे द्रौपदी! तुम्हारा संशय कोहरे के समान नष्ट हो जाना चाहिये। सब कुछ सत्य है, यह निश्चय करके तुम अपने नास्तिकता के विचारों को छोड़ दो। तुम सारे प्राणियों को धारण करने वाले

ईश्वर पर आक्षेप मत करो। उसे समझो और नमस्कार करो। आज जैसे तुम्हारे विचार भविष्य में नहीं रहने चाहिये। हे द्रौपदी! उस श्रेष्ठ देवता की तुम किसी भी प्रकार से निन्दा मत करो।

चौदहवाँ अध्याय : द्रौपदी के द्वारा पुरुषार्थ का समर्थन।

द्रौपद्युवाच

नावमन्ये न गर्हे च धर्मं पार्थ कथंचन।
ईश्वरं कुत एवाहमवमंस्ये प्रजापतिम्।। १।।
आर्ताहं प्रलपामीदमिति मां विद्धि भारत।
भूयश्च विलपिष्यमि सुमनास्त्वं निबोध मे।। २।।
कर्म खल्विह कर्तव्यं जानतामित्रकर्शन।
अकर्माणो हि जीवन्ति स्थावरा नेतरे जनाः।। ३।।

तब द्रौपदी ने कहा कि हे कुन्ती पुत्र! मैं धर्म की न तो अवमानना कर रही हूँ और न किसी प्रकार की निन्दा कर रही हूँ। फिर सारी प्रजाओं का पालन करने वाले ईश्वर की अवमानना कैसे कर सकती हूँ? हे भारत! आप यह समझिये कि मैं दुखी हूँ और दुःख में भरकर प्रलाप कर रही हूँ। आगे भी दुख के कारण विलाप करती रहूँगी। आप शान्त चित्त से मेरी बात समझिये। हे शत्रुनाशन! इस संसार में ज्ञानी लोगों को कर्म अवश्य करना चाहिये। बिना कर्म किये तो सिवाय स्थावर प्राणियों वृक्ष आदि के दूसरे प्राणी जी नहीं सकते।

जङ्गमेषु विशेषेण मनुष्या भरतर्षभ।
इच्छन्ति कर्मणा वृत्तिमवाप्तुं प्रेत्य चेह च।। ४।।
उत्थानमभिजानन्ति सर्वभूतानि भारत।
प्रत्यक्षं फलमश्नन्ति कर्मणां लोकसाक्षिकम्।। ५।।
अकर्मणां वै भूतानां वृत्तिः स्यान्न हि काचन।
तदेवाभिप्रपद्येत न विहन्यात् कदाचन।। ६।।
स्वकर्म कुरु मा ग्लासीः कर्मणा मव दंशितः।
कृतं हि योऽभिजानाति सहस्रे सोऽस्ति नास्ति च।। ७।।

हे भरतश्रेष्ठ! जंगम जीवों में मनुष्य विशेष रूप से कर्म के द्वारा न केवल इस लोक में ही अपितु परलोक में भी अपनी अच्छी अवस्थिति बनाना चाहते हैं। हे भारत! सारे प्राणी इस बात को जानते हैं कि उनके उत्थान के लिये कौन सा कर्म आवश्यक है और उस कर्म को कर वे उसका प्रत्यक्ष फल प्राप्त करते हैं। सारा संसार इसका साक्षी है। कर्म न करने वाले का कोई कार्य सिद्ध नहीं होता इसलिये कर्म का ही आश्रय लिये रखना चाहिये। उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिये। इसलिये आप अपने कर्म को कीजिये। ग्लानि मत करो। कर्म के कवच से सुरक्षित रहिये। किये हुए कार्य को जो अच्छी तरह से समझता है, ऐसा पुरुष हजारों में से शायद ही कोई एक होता है।

तस्य चापि भवेत् कार्यं विवृद्धौ रक्षणे तथा।
भक्ष्यमाणो ह्यनादानात् क्षीयेत हिमवानपि।। ८।।
उत्सीदेरन् प्रजाः सर्वा न कुर्युः कर्म चेद् भुवि।
तथा ह्येता न वर्धेरन् कर्म चेदफलं भवेत्।। ९।।
अपि चाप्यफलं कर्म पश्यामः कुर्वतो जनान्।
नान्यथा ह्यपि गच्छन्ति वृत्तिं लोकाः कथंचन।। १०।।
यो हि दिष्टमुपासीनो निर्विचेष्टः सुखं शयेत्।
अवसीदेत् स दुर्बुद्धिरामो घट इवोदके।। ११।।
तथैव हठदुर्बुद्धिः शक्तः कर्मण्यकर्मकृत्।
आसीत न चिरं जीवेदनाथ इव दुर्बलः।। १२।।

धन की वृद्धि और रक्षा के लिये भी कर्म की आवश्यकता होती है। क्योंकि यदि धन का व्यय होता रहे पर उसकी आय न हो तो हिमालय जितनी धन राशि भी नष्ट हो जायेगी। यदि लोग कर्म करना छोड़ दें तो उनका संहार हो जाये। यदि करने का कुछ फल न हो तो सारी प्रजाओं की उन्नति रुक जाये। बिना कर्म किए किसी और प्रकार से लोग अपनी जीविका चला ही नहीं सकते। इसलिये हम देखते हैं कि बहुत से लोग व्यर्थ के कर्म भी करते रहते हैं। जो व्यक्ति भाग्य पर भरोसा कर बिना कोई कर्म किये आराम से बैठा रहता है, वह दुर्बुद्धि जल में रखे हुए कच्चे घड़े की तरह नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार जो हठी और दुर्बुद्धि मनुष्य कर्म करने में समर्थ होने पर भी अकर्मण्य बना रहता है, वह दुर्बल और अनाथ की तरह दीर्घजीवी नहीं होता।

यत् स्वयं कर्मणा किंचित् फलमाप्नोति पूरुषः।
प्रत्यक्षमेतल्लोकेषु तत् पौरुषमिति श्रुतम्।। १३।।
मनसार्थान् विनिश्चित्य पश्चात् प्राप्नोति कर्मणा।
बुद्धिपूर्वं स्वयं वीर पुरुषस्तत्र कारणम्।। १४।।
संख्यातुं नैव शक्यानि कर्माणि पुरुर्षभ।
अगारनगराणां हि सिद्धिः पुरुषहैतुकी।। १५।।

तिले तैलं गवि क्षीरं काष्ठे पावकमन्ततः।
धिया धीरो विजानीयादुपायं चास्य सिद्धये।। १६।।
ततः प्रवर्तते पश्चात् कारणैस्तस्य सिद्धये।
तां सिद्धिमुपजीवन्ति कर्मजामिह जन्तवः।। १७।।

मनुष्य स्वयं कार्य करके जो कुछ भी फल प्राप्त करता है, उसे उसका पौरुष कहते हैं, यह संसार में प्रत्यक्ष है। मनुष्य पहले अपने प्रयोजन को निश्चित करता है और फिर बुद्धि पूर्वक कर्म करके उसे प्राप्त करता है। हे वीर! इसमें उसका पुरुषार्थ ही कारण होता है। हे नरश्रेष्ठ! कार्य अनन्त हैं। उनकी गिनती नहीं की जा सकती। घर और नगर सबकी प्राप्ति पुरुषार्थ से ही होती है। पहले मनुष्य को बुद्धि से यह जानना चाहिये क्या तिल में तेल है? गाय में दूध है, लकड़ी के अन्दर आग है, उसके पश्चात् उनकी प्राप्ति के लिये उपाय को जानना चाहिये। फिर उन उपायों के द्वारा उन पदार्थों की सिद्धि के लिये कर्म में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार कर्म अर्थात् पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त सिद्धि अर्थात् प्राप्ति से लोग अपने निर्वाह करते हैं।

कुशलेन कृतं कर्म कर्त्रा साधु स्वनुष्ठितम्।
इदं त्वकुशलेनेति विशेषादुपलभ्यते।। १८।।
कर्तव्यमेव कर्मेति मनोरेष विनिश्चयः।
एकान्तेन ह्यनीहोऽयं पराभवति पूरुषः।। १९।।
असम्भवे त्वस्य हेतुः प्रायश्चित्तं तु लक्षयेत्।
कृते कर्मणि राजेन्द्र तथानृण्यमवाप्नुते।। २०।।

यदि कोई कार्य कुशल व्यक्ति के द्वारा किया जाता है तो वह अच्छी तरह से पूरा होता है। किन्तु यदि वही कार्य अकुशल व्यक्ति के द्वारा किया जाये, तो उसका पता उसके परिणाम को देख कर लग जाता है। मनु का यह विचार है कि मनुष्य को कर्म करते ही रहना चाहिये। जो मनुष्य बिना किसी इच्छा के एकान्त में बैठ जाता है, वह पराभव को प्राप्त होता है। हे राजेन्द्र! कार्य के करने पर भी यदि फल की प्राप्ति न हो तो उसके कारण को समझना चाहिये। ऐसा करने पर पुरुष को कोई दोष प्राप्त नहीं होता।

अलक्ष्मीराविशत्येनं शयानमलसं नरम्।
निःसंशयं फलं लब्ध्वा दक्षो भूतिमुपाश्नुते।। २१।।
अनर्थाः संशयावस्थाः सिद्ध्यन्ते मुक्तसंशयाः।
धीरा नराः कर्मरता ननु निःसंशयाः क्वचित्।। २२।।
एकान्तेन ह्यनर्थोऽयं वर्ततेऽस्मासु साम्प्रतम्।
स तु निःसंशयं न स्यात् त्वयि कर्मण्यवस्थिते।। २३।।
अन्येषां कर्म सफलमस्माकमपि वा पुनः।
विप्रकर्षेण बुध्येत कृतकर्मा यथाफलम्।। २४।।

आलसी बन कर सोते रहने वाले को दरिद्रता मिलती है, किन्तु पुरुषार्थी निस्सन्देह फल को प्राप्त कर ऐश्वर्य का भोग करता है। इसी प्रकार जो फल प्राप्ति के विषय में संशय में पड़े रहते हैं, उन्हें भी फल नहीं मिलता, पर जिन्हें कोई संशय नहीं होता पूरा निश्चय होता है, वे सिद्धि को प्राप्त होते हैं। पर धैर्यवान और सन्देह रहित होकर कार्य में लगने वाले पुरुष थोड़े ही होते हैं। इस समय हमारे ऊपर यह एकान्त वन में रहने की विपत्ति आयी हुई है। पर यदि आप लोग कर्म करने में लग जायें तो इसे टाला जा सकता है। दूसरों का ही कर्म सफल हुआ है, या हमारा भी हुआ है? यह बात कर्म को कर लेने पर ही परस्पर तुलना के द्वारा जानी जा सकती है।

पृथिवीं लाङ्गलेनेह भित्त्वा बीजं वपत्युत।
आस्तेऽथ कर्षकस्तूष्णीं पर्जन्यस्तत्र कारणम्।। २५।।
वृष्टिश्चेन्नानुगृह्णीयादनेनास्तत्र कर्षकः।
यदन्यः पुरुषः कुर्यात् तत् कृतं सफलं मया।। २६।।
तच्चेदं फलमस्माकमपराधो न मे क्वचित्।
इति धीरोऽन्ववेक्ष्यैव नात्मानं तत्र गर्हयेत्।। २७।।
सिद्धिर्वाप्यथवासिद्धिर प्रवृत्तिरतोऽन्यथा।
बहूनां समवाये हि भावानां कर्म सिद्ध्यति।। २८।।

खेती करनेवाला भूमि को जोत कर उसमें बीज बो देता है। उसके पश्चात् वह चुपचाप बैठा रहता है, क्योंकि आगे का कार्य बादल को करना है। यदि वर्षा उस पर कृपा न करे, तो किसान का उसमें कोई अपराध नहीं होता। किसान के मन में यह सोच कर शान्ति होती है, कि जितना कार्य दूसरे किसानों ने किया, उतना ही मैंने किया, पर यदि फल नहीं मिला तो इसमें मेरा दोष नहीं है। इसी प्रकार धैर्यवान् पुरुष भी कार्य को करने पर सफलता न मिलने पर अपनी निन्दा नहीं करते। इसलिये कार्य करने पर हमें सिद्धि मिलेगी या असिद्धि, यह सोच कर आप कार्य में प्रवृत्त ही न हो, यह उचित नहीं है, क्योंकि कार्य की सिद्धि बहुत सारे कारणों का मेल होने पर होती है।

गुणाभावे फलं न्यूनं भवत्यफलमेव च।
अनारम्भे हि न फलं न गुणो दृश्यते क्वचित्।। २९।।
देशकालावुपायांश्च मङ्गलं स्वस्तिवृद्धये।
युनक्ति मेध्या धीरो यथाशक्ति यथाबलम्।। ३०।।
अप्रमत्तेन तत् कार्यमुपदेष्टा पराक्रमः।
भूयिष्ठं कार्ययोगेषु दृष्ट एव पराक्रमः।। ३१।।
यत्र धीमानवेक्षेत श्रेयांसं बहुभिर्गुणैः।
साम्नैवार्थं ततो लिप्सेत् कर्म चास्मै प्रयोजयेत्।। ३२।।

पुरुषार्थ करते हुए यदि करने वाले में किसी गुण की कमी हुई तो हो सकता है कि फल कम या बिल्कुल नहीं प्राप्त हो। किन्तु यदि पुरुषार्थ को आरम्भ ही न किया जाये तो फल तो मिलेगा ही नहीं, करने वाले का गुण भी दिखाई नहीं देगा। धैर्यवान् पुरुष अपने मंगल और कल्याण की वृद्धि के लिये अपनी शक्ति और बल के अनुसार देश काल और उपायों का अपनी बुद्धि के अनुसार प्रयोग करता है। पुरुषार्थी व्यक्ति को सावधान होकर कार्य करना चाहिये। उसकी सफलता में उसका पराक्रम ही मुख्य कारण होता है, क्योंकि कार्य सिद्धि के अनेक कारणों में पराक्रम को ही श्रेष्ठ माना गया है। जहाँ बुद्धिमान् पुरुष शत्रु को अपने से अनेक गुणों में श्रेष्ठ देखे, वहाँ उसे प्रयोजन सिद्धि के लिये साम नीति को अपनाना चाहिये और उसके लिये जो उचित हो उसी कर्म को करना चाहिये।

उत्थानयुक्तः सततं परेषामन्तरैषणे।
आनृण्यमाप्नोति नरः परस्यात्मन एव च।। ३३।।
नत्वेवात्माव मन्तव्यः पुरुषेण कदाचन।
न ह्यात्म परिभूतस्य भूतिर्भवति शोभना।। ३४।।

जो व्यक्ति लगातार अपनी उन्नति के लिये तथा शत्रु के छिद्रों को देखने के लिये प्रयत्नशील रहता है, वह अपनी दृष्टि में तथा दूसरों की दृष्टि में भी निर्दोष रहता है। मनुष्य को कभी भी अपना अनादर अर्थात् अपने को छोटा नहीं समझना चाहिये अपना अनादर करने वाले को उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं होती।

पन्द्रहवाँ अध्याय : भीम द्वारा युधिष्ठिर को उत्तेजित करने का यत्न।

याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा भीमसेनो ह्यमर्षणः।
निःश्वसन्नुपसंगम्य क्रुद्धो राजानमब्रवीत्।। १।।
राज्यस्य पदवीं धर्म्यां व्रज सत्पुरुषोचिताम्।
धर्मकामार्थहीनानां किं नो वस्तुं तपोवने।। २।।
नैव धर्मेण तद् राज्यं नार्जवेन न चौजसा।
अक्षकूटमधिष्ठाय हृतं दुर्योधनेन वै।। ३।।
गोमायुनेव सिंहानां दुर्बलेन बलीयसाम्।
आमिषं विघसाशेन तद्वद्राज्यं हि नो हृतम्।। ४।।

द्रौपदी के वचनों को सुन कर अमर्षशील भीमसेन क्रोध में भर कर लम्बी साँसें लेते हुए राजा युधिष्ठिर के समीप आये और कहने लगे कि हे महाराज! राज्य को प्राप्त करने के लिये जो धर्म से युक्त और सत्पुरुषों के योग्य उपाय हो, आप उस उपाय का आश्रय लीजिये। यहाँ इस तपोवन में धर्म, अर्थ और काम तीनों से रहित होकर रहते हुए हमारा कौनसा प्रयोजन सिद्ध होगा? दुर्योधन ने हमसे हमारा राज्य, धर्म के द्वारा, कोमलता के द्वारा, या शक्ति के द्वारा नहीं छीना है। उसने तो कपट से भरे जूए का सहारा लेकर हमारे राज्य का हरण किया है। जैसे अत्यन्त बलवान् सिंहों का भोजन बचे हुए भोजन को खाने वाला कमजोर गीदड़ हर ले, उसी प्रकार उसने हमारे राज्य का अपहरण किया है।

धर्मलेशप्रतिच्छन्नः प्रभवं धर्मकामयोः।
अर्थमुत्सृज्य किं राजन् दुःखेषु परितप्यसे।। ५।।
भवतोऽनवधानेन राज्यं नः पश्यतां हृतम्।
अहार्यमपि शक्रेण गुप्तं गाण्डीवधन्वना।। ६।।
कुणीनामिव बिल्वानि पङ्गूनामिव धेनवः।
हृतमैश्वर्यमस्माकं जीवतां भवतः कृते।। ७।।
भवतः प्रियमित्येवं महद् व्यसनमीदृशम्।
धर्मकामे प्रतीतस्य प्रतिपन्नाः स्म भारत।। ८।।

हे राजन्! आप धर्म और काम के साधन राज्य को गवाँ कर अब दुःखों के अन्दर थोड़े से धर्म से घिरे हुए क्यों सन्तप्त हो रहे हैं? गाण्डीव धनुष को धारण करने वाले अर्जुन के द्वारा सुरक्षित हमारा वह राज्य जिसे इन्द्र भी नहीं छीन सकता था, आपकी असावधानी से हमारे देखते-देखते हरण कर लिया गया। आपके कारण, हमारे जीवित रहते हुए, हमारा ऐश्वर्य उसी प्रकार हरण कर लिया गया जैसे लूले के पास से उसके बेलफल और पंगु के पास

पास से उसकी गायें छिन जाती हैं। आप धर्म के कार्य में विश्वास रखते हैं, इसलिये आपका प्रिय करने की इच्छा से ही हम हे भारत! इस महान् संकट में पड़ गये हैं।

कर्शयामः स्वमित्राणि नन्दयामश्च शात्रवान्।
आत्मानं भवतां शास्त्रैर्नियम्य भरतर्षभ।। ९।।
यद् वयं न तदैवैतान् धार्तराष्ट्रान् निहन्महि।
भवतः शास्त्रमादाय तन्नस्तपति दुष्कृतम्।।१०।।
अथैनामन्ववेक्षस्व मृगचर्यामिवात्मनः।
दुर्बलाचरितां राजन् न बलस्थैर्निषेविताम्।।११।।
यां न कृष्णो न बीभत्सुर्नाभिमन्युर्न सृंजयाः।
न चाहमभिनन्दामि न च माद्रीसुतावुभौ।।१२।।

हे भरतश्रेष्ठ! आपके सिद्धान्तों से अपने आपको नियन्त्रण में रखकर हम अपने मित्रों को दुःखी और शत्रुओं को प्रसन्न कर रहे हैं। आपके आदेश को मान कर हमने जो उसी समय धृतराष्ट्र के पुत्रों को नहीं मार दिया, हमारा वह दुष्कृत्य आज हमें दुःख दे रहा है। हे राजन्! आप अपनी मृगों जैसी दिनचर्या को देखिये। इस प्रकार वन में दुर्बल व्यक्ति ही रहते हैं, बलवान् व्यक्ति नहीं रहते। इस प्रकार के जीवन को न तो श्रीकृष्ण, न अर्जुन, न अभिमन्यु, न सृंजयवंशी वीर, नाही मैं और न ये दोनों माद्री के पुत्र ही अच्छा समझते हैं।

भवान् धर्मो धर्म इति सततं व्रतकर्शितः।
कच्चिद् राजन् न निर्वेदादापन्नः क्लीबजीविकाम्।।१३।।
दुर्मनुष्या हि निर्वेदमफलं स्वार्थघातकम्।
अशक्ताः श्रियमाहर्तुमात्मनः कुर्वते प्रियम्।।१४।।
स भवान् दृष्टिमाञ्छक्तः पश्यन्नस्मासु पौरुषम्।
आनृशंस्यपरो राजन् नानर्थमवबुध्यसे।।१५।।
अस्मानमी धार्तराष्ट्राः क्षममाणानलं सतः।
अशक्तानिव मन्यन्ते तद् दुःखं नाहवे वधः।।१६।।

आप यह धर्म है, यह धर्म है, ऐसा कहते हुए व्रतों का पालन करते हुए कमजोर हो रहे हैं। हे राजन्! कहीं आप वैराग्य के कारण तो यह नपुंसकों का सा जीवन नहीं बिताने लगे हैं। जो अपनी लक्ष्मी को वापिस लेने में असमर्थ होते हैं, वे दुर्बल मनुष्य ही निष्फल, स्वार्थनाशक, वैराग्य को प्रिय मानते और उसका आश्रय लेते हैं। हे राजन्! आप तो दूरदर्शी, शक्तिशाली हैं और हमारे पौरुष को देख चुके हैं, पर फिर भी आप दया को अपना कर इससे होने वाले अनर्थ को नहीं समझ रहे हैं। क्षमा करते हुए हम लोगों को ये धृतराष्ट्र के पुत्र कमजोर समझने लगे हैं। यह बात हमारे लिये अधिक दुःखदायी है, अपेक्षाकृत युद्ध में मर जाने के।

तत्र चेद् युध्यमानानामजिह्ममनिवर्तिनाम्।
सर्वशो हि वधः श्रेयान् प्रेत्य लोकान् लभेमहि।।१७।।
अथवा वयमेवैतान् निहत्य भरतर्षभ।
आददीमहि गां सर्वां तथापि श्रेय एव नः।।१८।।
सर्वथा कार्यमेतन्नः स्वधर्ममनुतिष्ठताम्।
काङ्क्षतां विपुलां कीर्तिं वैरं प्रतिचिकीर्षताम्।।१९।।
आत्मार्थं युध्यमानानां विदिते कृत्यलक्षणे।
अन्यैरपि हृते राज्ये प्रशंसैव न गर्हणा।।२०।।

ऐसी अवस्था में यदि निष्कपट भाव से लड़ते हुए और युद्ध में पीठ न दिखाते हुए हम सबका वध भी हो जाये तो वह भी इस अवस्था से अधिक कल्याणकारी होगा क्योंकि हम तब मर कर उत्तम गति को प्राप्त करेंगे, अथवा हे भरतश्रेष्ठ! यदि हम ही इनको मार कर सारी भूमि को ले लें तो वह भी हमारे लिये अधिक कल्याणकारी होगा। हम अपने बैर का बदला लेना चाहते हैं और विपुल कीर्ति को प्राप्त करना चाहते हैं। यह सब हमें अपने धर्म का पालन करते हुए ही करना है। शत्रुओं ने हमारा राज्य छीन लिया है, ऐसी अवस्था में अपने कर्तव्य को समझ कर, यदि हम अपने राज्य की प्राप्ति के लिये युद्ध करें, तो उसमें हमारी प्रशंसा ही होगी, निन्दा नहीं।

कर्शनार्थो हि यो धर्मो मित्राणामात्मनस्तथा।
व्यसनं नाम तद् राजन् न धर्मः स कुधर्म तत्।।२१।।
सर्वथा धर्मनित्यं तु पुरुषं धर्मदुर्बलम्।
त्यजतस्तात धर्मार्थौ प्रेतं दुःखसुखे यथा।।२२।।
यस्य धर्मो हि धर्मार्थं क्लेशभाङ् न स पण्डितः।
न स धर्मस्य वेदार्थं सूर्यस्यान्धः प्रभामिव।।२३।।
यस्य चार्थार्थमेवार्थः स च नार्थस्य कोविदः।
रक्षेत भृतकोऽरण्ये यथा गास्तादृगेव सः।।२४।।

हे राजन्! जो धर्म अपने को और मित्रों को दुःख देने वाला हो, वह तो मुसीबत है, धर्म नहीं वह तो कुधर्म है। सर्वदा धर्म के ही पालन में लगे रह कर जो व्यक्ति धर्मदुर्बल हो गया है अर्थात् जिसने धर्म के विषय में अपनी बुद्धि को दुर्बल कर लिया है, उसको धर्म और अर्थ हे तात! ऐसे ही छोड़

देते हैं जैसे मृत व्यक्ति को सुख और दुःख छोड़ देते हैं। जो केवल धर्म के लिये ही धर्म का पालन करता है, वह तो केवल कष्ट ही उठाता है। वह बुद्धिमान् नहीं है। जैसे अन्धा सूर्य के प्रकाश को नहीं जान पाता, वैसे ही वह भी धर्म के अर्थ को नहीं जानता। इसी प्रकार जिसका धन भी केवल धन के लिये ही होता है, वह धन के तत्त्व को नहीं जानता। जैसे जंगल में सेवक गायों की रक्षा करता है, वैसे ही वह भी धन का केवल रखवाला ही है।

सततं यश्च कामार्थी नेतरावनुतिष्ठति।
मित्राणि तस्य नश्यन्ति धर्मार्थाभ्यां च हीयते।। २५।।
तस्माद् धर्मार्थयोर्नित्यं न प्रमाद्यन्ति पण्डिताः।
प्रकृतिः सा हि कामस्य पावकस्यारणिर्यथा।। २६।।
सर्वथा धर्ममूलोऽर्थो धर्मश्चार्थपरिग्रहः।
इतरेतरयोर्नीतौ विद्धि मेघोदधी यथा।। २७।।

इसी प्रकार जो सदा काम की पूर्ति को ही चाहता है, धर्म और अर्थ का पालन नहीं करता, उसके मित्र उसे छोड़ देते हैं और वह धर्म तथा धन दोनों से रहित हो जाता है इसलिये बुद्धिमान् लोग धर्म और अर्थ के पालन में प्रमाद नहीं करते हैं। क्योंकि जैसे अरणि नाम की लकड़ी अग्नि की उत्पत्ति का कारण है, वैसे ही धर्म और अर्थ भी काम की पूर्ति के कारण हैं! धन का कारण है धर्म और धर्म की सिद्धि धन से होती है। दोनों को एक दूसरे के आश्रित समझना चाहिये, जैसे समुद्र और बादल एक दूसरे की पूर्ति करते हैं।

व्यक्तं ते विदितो राजन्नर्थो द्रव्यपरिग्रहः।
प्रकृतिं चापि वेत्थास्य विकृतिं चापि भूयसीम्।। २८।।
तस्य नाशे विनाशे वा जरया मरणेन वा।
अनर्थ इति मन्यन्ते सोऽयमस्मासु वर्तते।। २९।।
इन्द्रियाणां च पञ्चानां मनसो हृदयस्य च।
विषये वर्तमानानां या प्रीतिरुपजायते।। ३०।।
स काम इति मे बुद्धिः कर्मणां फलमुत्तमम्।

हे राजन्! आपको यह अच्छी तरह से पता है कि धन से ही पदार्थों को एकत्र किया जाता है। धन का जो कारण है, उसे भी आप जानते हैं, धन के द्वारा जो कार्य होते हैं उसे भी आप जानते हैं। उस धन का अभाव होने पर या विनाश होने पर या परिवार के लोगों के वृद्ध होने पर या मृत्यु को प्राप्त होने पर जो अवस्था होती है, उसे अनर्थ के रूप में माना जाता हैं। वही अनर्थ इस समय हमारे ऊपर आया हुआ है। पाँचों इन्द्रियों का, मन का और हृदय का विषयों से सम्पर्क होने पर जो प्रीति उत्पन्न होती है, वही मेरे विचार से काम है और कर्मों का उत्तम फल है।

एवमेव पृथग् दृष्ट्वा धर्मार्थौ काममेव च।। ३१।।
न धर्मपर एव स्यान्न चार्थपरमो नरः।
न कामपरमो वा स्यात् सर्वान् सेवेत सर्वदा।। ३२।।
धर्मं पूर्वे धनं मध्ये, जघन्ये काममाचरेत्।
अहन्यनुचरेदेवमेष, शस्त्रकृतो विधिः।। ३३।।
कामं पूर्वे धनं मध्ये, जघन्ये धर्ममाचरेत्।
वयस्यनुचरेदेवमेष शास्त्रकृतो विधिः।। ३४।।
धर्मं चार्थं च कामं च यथावद् वदतां वर।
विभज्यकाले कालज्ञः सर्वान् सेवेत पण्डितः।। ३५।।

इस प्रकार से ही धर्म, अर्थ और काम को अलग अलग समझकर मनुष्य को चाहिये कि वह न तो केवल धर्म का ही सेवन करे, न केवल अर्थ का ही सेवन करे और न केवल काम का ही सेवन करे। उसे सदा तीनों का सेवन करना चाहिये। इस विषय में शास्त्रों का मत यह है कि दिन के पूर्व भाग में धर्म का सेवन करना चाहिये, मध्य भाग मे अर्थ का सेवन करना चाहिये और अन्तिम भाग में काम का सेवन करना चाहिये। इसी प्रकार शास्त्रों के अनुसार आयु के पूर्व भाग में अर्थात् युवावस्था काम का, मध्यभाग अर्थात् प्रौढ़ावस्था में धन का, और अन्तिम भाग अर्थात् वृद्धावस्था में धर्म का पालन करना चाहिये। हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! इस प्रकार उचित समय का ज्ञान रखने वाले पण्डित को धर्म, अर्थ, और काम को यथावत् बाँट कर उचित समय पर सबका सेवन करना चाहिये।

मोक्षो वा परमं श्रेय एष राजन् सुखार्थिनाम्।
प्राप्तिर्वा बुद्धिमास्थाय सोपायां कुरुनन्दन।। ३६।।
तद् वाऽऽशु क्रियतां राजन् प्राप्तिर्वाप्यधिगम्यताम्।
जीवितं ह्यातुरस्येव दुःखमन्तरवर्तिनः।। ३७।।
विदितश्चैव मे धर्मः सततं चरितश्च ते।
जानन्तस्त्वयि शंसन्ति सुहृदः कर्मचोदनाम्।। ३८।।

हे राजन्! परम सुख को चाहने वालों के लिये मोक्ष ही परम कल्याणमय है। या तो आप उसके लिये उपायों से युक्त बुद्धि को बना कर उसकी

प्राप्ति कीजिये या लौकिक सुखों के लिये जल्दी धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति कीजिये। इन दोनों के बीच में रहने वाले का जीवन तो बीमार व्यक्ति के समान दु:खी ही रहता है। मुझे पता है कि आपने सदा धर्म का ही पालन किया है, पर यह जानते हुए भी आपके हितैषी आपको कर्म करने के लिये प्रेरित करते हैं।

दानं यज्ञाः सतां पूजा वेदधारणमार्जवम्।
एष धर्मः परो राजन् बलवान् प्रेत्य चेह च।।३९।।
एष नार्थविहीनेन शक्यो राजन् निषेवितुम्।
अखिलाः पुरुषव्याघ्र गुणाः स्युर्यद्यपीतरे।।४०।।
धर्ममूलं जगद् राजन् नान्यद् धर्माद् विशिष्यते।
धर्मश्चार्थेन महता शक्यो राजन् निषेवितुम्।।४१।।
न चार्थो भैक्ष्यचर्येण नापि क्लैब्येन कर्हिचित्।
वेत्तुं शक्यः सदा राजन् केवलं धर्मबुद्धिना।।४२।।

हे महाराज! दान देना, यज्ञ करना, सज्जनों का सम्मान करना, वेदों को धारण करना और कोमलता ये कार्य इस लोक और परलोक दोनों के लिये उत्तम और बलवान धर्म कार्य माने गये हैं। यद्यपि मनुष्य में और सारे गुण हों पर ये दान और यज्ञ के कार्य धनहीन व्यक्ति के द्वारा नहीं किये जा सकते। हे राजन्! इस संसार का मूल धर्म ही है, धर्म से बढ़ कर कोई दूसरी चीज़ नहीं है, पर धर्म का अनुष्ठान भी धन के द्वारा ही किया जा सकता है। वह धन भिक्षा के द्वारा या कायरता के द्वारा या केवल धर्म में ही बुद्धि लगाये रखने से नहीं प्राप्त हो सकता।

प्रतिषिद्धा हि ते याञ्चा यया सिद्ध्यति वै द्विजः।
तेजसैवार्थलिप्सायां यतस्व पुरुषर्षभ।।४३।।
भैक्ष्यचर्या न विहिता न च विट्शूद्रजीविका।
क्षत्रियस्य विशेषेण धर्मस्तु बलमौरसम्।।४४।।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व जहि शत्रून् समागतान्।
धार्तराष्ट्रवनं पार्थ मया पार्थेन नाशय।।४५।।
उदारमेव विद्वांसो धर्मं प्राहुर्मनीषिणः।
उदारं प्रतिपद्यस्व नावरे स्थातुमर्हसि।।४६।।

जिस भिक्षा कर्म के द्वारा ब्राह्मण धन प्राप्त कर लेता है, वह आपके लिये निषिद्ध है। इसलिये हे नरश्रेष्ठ! आप तेज के द्वारा ही धन की प्राप्ति के लिये यत्न कीजिये। क्षत्रिय के लिये न तो भिक्षा का और न वैश्य तथा शूद्रों के कार्य करने का विधान है। क्षत्रिय के लिये तो विशेष रूप से उसका बल और उत्साह ही धर्म है। इसलिये आप अपने धर्म का आश्रय लीजिये और प्राप्त हुए शत्रुओं का संहार कीजिये। हे पार्थ! आप मेरे और अर्जुन के द्वारा धृतराष्ट्र के पुत्ररूपी वन को कटवा दीजिये। दानशीलता को विद्वानों ने धर्म कहा है। आप दानशीलता को प्राप्त कीजिये, इस दयनीय अवस्था में मत रहिये।

अनुबुध्यस्व राजेन्द्र वेत्थ धर्मान् सनातनान्।
क्रूरकर्माभिजातोऽसि यस्मादुद्विजते जनः।।४७।।
प्रजापालनसम्भूतं फलं तव न गर्हितम्।
एष ते विहितो राजन्, धात्रा धर्मः सनातनः।। ४८।।
तस्मादपचितः पार्थ लोके हास्यं गमिष्यसि।
स्वधर्माद्धि मनुष्याणां चलनं न प्रशस्यते।।४९।।
स क्षात्रं हृदयं कृत्वा त्यक्त्वेदं शिथिलं मनः।
वीर्यमास्थाय कौरव्य धुरमुद्वह धुर्यवत्।।५०।।

हे राजेन्द्र! आप सनातन धर्मों को जानते हैं। आप क्रूर कर्म करने वाले उस क्षत्रिय कुल में जन्मे हैं, जिससे लोग भयभीत रहते हैं। आप अपने कर्तव्य की तरफ ध्यान दीजिये। हे राजन्! विधाता ने आपके लिये यही धर्म विहित किया है। जब आप राज्य को प्राप्त कर प्रजापालन रूपी फल को प्राप्त करेंगे, वह फल आपके लिये निन्दनीय नहीं माना जायेगा। हे पार्थ! यदि आप प्रजापालन रूपी अपने धर्म से हीन रहेंगे तो संसार में उपहास को प्राप्त होंगे। मनुष्य का अपने धर्म से विचलित होना प्रशंसनीय नहीं माना जाता। इसलिये हे कुरुनन्दन! आप मन की इस शिथिलता को छोड कर अपने हृदय को क्षात्र धर्म के अनुकूल बनाइये और पराक्रम का आश्रय लेकर एक धुरन्धर वीर पुरुष की तरह युद्ध का भार वहन कीजिये।

न हि केवलधर्मात्मा पृथिवीं जातु कश्चन।
पार्थिवो व्यजयद् राजन् न भूतिं न पुनः श्रियम्।।५१।।
यथा राजन् प्रजाः सर्वाः सूर्यः पाति गभस्तिभिः।
अत्ति चैव तथैव त्वं सदृशः सवितुर्भव।।५२।।
एतच्चापि तपो राजन् पुराणमिति नः श्रुतम्।
विधिना पालनं भूमेर्यत् कृतं नः पितामहैः।।५३।।
न तथा तपसा राजँल्लोकान् प्राप्नोति क्षत्रियः।
यथा सृष्टेन युद्धेन विजयेनेतरेण वा।।५४।।

हे राजन्! आज तक केवल धर्म में ही लगे रह कर किसी भी राजा ने पृथिवी पर ऐश्वर्य या लक्ष्मी

पर विजय नहीं पायी है। हे राजा! जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथिवी का रस ग्रहण करता है और फिर प्रजाओं का पालन भी करता है, वैसे ही आप भी सूर्य के समान बनिये अर्थात् प्रजाओं से कर लेते हुए उनकी रक्षा करिये। हे राजन्! हमने सुना है कि यह भी पुराना चला आने वाला तप है कि विधि पूर्वक पृथिवी का पालन किया जाये। हमारे बाप दादों ने भी यही किया है। क्षत्रिय तपस्या करके उन उत्तम लोकों को नहीं प्राप्त करता जिनको वह अपने लिये निश्चित किये हुए युद्ध के द्वारा विजय से या मृत्यु से प्राप्त करता है।

यदेनः कुरुते किंचिद् राजा भूमिमवाप्नुवन्।
सर्वं तन्नुदते पश्चाद् यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः।।५५।।
ब्राह्मणेभ्यो ददद् ग्रामान् गाश्च राजन् सहस्रशः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तमोभ्य इव चन्द्रमाः।।५६।।
स भवान् रथमास्थाय सर्वोपकरणान्वितम्।
त्वरमाणोऽभिनिर्यातु विप्रेभ्योऽर्थविभावकः।।५७।।

राजा भूमि को प्राप्त करने में जो कुछ भी हिंसा आदि पाप करता है वह उसका सारा पाप बाद में यज्ञों के द्वारा और उनमें दी जाने वाली दक्षिणाओं के द्वारा नष्ट हो जाता है। तब राजा ब्राह्मणों को हजारों गायों और ग्रामों का दान कर हे राजन्! उन पापों से उसी प्रकार छूट जाता है, जैसे चन्द्रमा अँधेरे से। इसलिये हे महाराज! आप ब्राह्मणों को धन का दान करने के लिये सब प्रकार के आयुधों से युक्त रथ पर बैठ कर शीघ्रता से युद्ध के लिये निकलिये।

न हि गाण्डीवमुक्तानां शराणां गार्ध्रवाससाम्।
स्पर्शमाशीविषाभानां मर्त्यः कश्चन संसहेत्।।५८।।
न स वीरो न मातङ्गो न च सोऽश्वोऽस्ति भारत।
यः सहेत गदावेगं मम क्रुद्धस्य संयुगे।।५९।।
सृञ्जयैः सह कैकेयैर्वृष्णीनां वृषभेण च।
कथंस्विद् युधि कौन्तेय न राज्यं प्राप्नुयामहे।।६०।।
शत्रुहस्तगतां राजन् कथंस्विन्नाहरेर्महीम्।
इह यत्नमुपाहृत्य बलेन महतान्वितः।।६१।।

कोई भी मनुष्य गाण्डीव धनुष से छूटे हुए गृध्रपंखों से युक्त विषैले सर्पों के समान भयानक बाणों के स्पर्श को सहन नहीं कर सकता। हे भारत! इसी प्रकार कोई ऐसा वीर पुरुष, या गजराज या घोड़ा नहीं है, जो युद्ध में क्रोध में भरे हुए मेरी गदा के प्रहार को सहन कर सके। हे कौन्तेय! हम सृंजयवीरों, केकय-वंशी वीरों, वृष्णि वंश के श्रेष्ठ पुरुष श्रीकृष्ण के साथ मिल कर युद्ध में अपना राज्य कैसे नहीं प्राप्त कर लेंगे? हे राजन्! आप यहाँ युद्ध में महान् सेना से युक्त होकर यत्न पूर्वक शत्रुओं के हाथ में गये अपने राज्य को क्यों नहीं छीन लेते?

सोलहवाँ अध्याय : युधिष्ठिर और भीम संवाद।

स एवमुक्तस्तु महानु भावः
सत्यव्रतो भीमसेनेन राजा।
अजातशत्रु स्तदनन्तरं वै
धैर्यान्वितो वाक्यमिदं बभाषे।। १।।
असंशयं भारत सत्यमेतद्
यन्मां तुदन् वाक्यशल्यैः क्षिणोषि।
न त्वां विगर्हे प्रतिकूलमेव
ममानयाद्धि व्यसनं व आगात्।। २।।

भीमसेन के द्वारा इस प्रकार उपर्युक्त बातों के कहे जाने पर उन महानुभाव, सत्यव्रत, धैर्ययुक्त, अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर ने तब यह कहा कि हे भारत! इसमें कोई सन्देह नहीं है कि तुम अपने वाक्य रूपी बाणों से मुझे जो छेद रहे हो, वह ठीक है। तुम्हारी बातें मेरे प्रतिकूल होने पर भी मैं इनके लिये तुम्हारी निन्दा नहीं करता क्योंकि मेरे अन्याय से ही तुम लोगों पर यह संकट आया है।

अहं ह्यक्षानन्वपद्यं जिहीर्षन्
राज्यं सराष्ट्रं धृतराष्ट्रस्य पुत्रात्।
तन्मां शठः कितवः प्रत्यदेवीत्
सुयोधनार्थं सुबलस्य पुत्रः।। ३।।
महामायः शकुनिः पर्वतीयः
सभामध्ये प्रवपन्नक्षपूगान्।
अमायिनं मायया प्रत्यजैषीत्
ततोऽपश्यं वृजिनं भीमसेन।। ४।।

मैं धृतराष्ट्र के पुत्र से उसका राज्य पद और राष्ट्र का अपहरण करने की इच्छा से द्यूतक्रीड़ा में लगा था। पर दुर्योधन की जगह वह धूर्त जुआरी सुबल का पुत्र शकुनि मेरे साथ खेलने लगा। वह पर्वतीय प्रदेश का निवासी बड़ा कपटी है। उसने

उस सभा में माया से पासे फैंक कर मुझे जीत लिया, क्योंकि मैं कपट करना नहीं जानता था। इसी लिये हे भीमसेन! मुझे वह संकट देखना पड़ा।

अक्षांश्च दृष्ट्वा शकुनेर्यथावत्
कामानुकूलानयुजो युजश्च।
शक्यो नियन्तुमभविष्यदात्मा
मन्युस्तु हन्यात् पुरुषस्य धैर्यम्।। ५।।
यन्तुं नात्मा शक्यते पौरुषेण
मानेन वीर्येण च तात नद्धः।
न ते वाचो भीमसेनाभ्यसूये
मन्ये तथा तद् भवितव्यमासीत्।। ६।।

जैसे शकुनि चाहता था, वैसे ही सम और विषम दोनों प्रकार के पासों को ठीक उसकी इच्छा के अनुसार ही पड़ते देख कर यदि मैं अपने आप को रोक लेता तो यह संकट नहीं आता, पर क्रोध का आवेश मनुष्य के धैर्य को नष्ट कर देता है। किसी विषय में फँसे हुए मन को पौरुष, अभिमान और पराक्रम से नहीं रोका जा सकता। इसलिये हे भीमसेन! मैं तेरी बातों का बुरा नहीं मान रहा। मैं समझता हूँ कि परमात्मा की यही इच्छा थी।

स नो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो
न्यपातयद् व्यसने राज्यमिच्छन्।
दास्यं च नोऽगमयद् भीमसेन
यत्राभवच्छरणं द्रौपदी नः।। ७।।
त्वं चापि तद् वेत्थ धनंजयश्च
पुनर्द्यूतायागतानां सभां नः।
यन्माऽब्रवीद् धृतराष्ट्रस्य पुत्र
एकग्लहार्थं भरतानां समक्षम्।। ८।।
वने समा द्वादश राजपुत्र
यथाकामं विदितमजातशत्रो।
अथापरं चाविदितं चरेथाः
सर्वैः सह भ्रातृभिश्छद्मगूढः।। ९।।
त्वां चेच्छ्रुत्वा तात तथा चरन्त-
मवभोत्स्यन्ते भरतानां चराश्च।
अन्यांश्चरेथास्तावतोऽब्दांस्तथा त्वं
निश्चित्य तत् प्रतिजानीहि पार्थ।। १०।।

उस धृतराष्ट्र के पुत्र ने हमारा राज्य पाने की इच्छा से हमें विपत्तियों में डाल दिया। हे भीमसेन! उसने तो हमें दास भी बना दिया, पर द्रौपदी ही उस समय हमें बचाने वाली हुई। तुम भी जानते हो और अर्जुन भी जानते हैं कि हमें जब पुनः द्यूत के लिये सभा में बुलाया गया तब दुर्योधन ने भरत वंशियों के सामने मुझसे एक ही दाँव लगाने के लिये इस प्रकार कहा कि हे अजातशत्रु राजपुत्र! यदि आप हार जायेंगे तो आपको अपने सारे भाइयों के साथ अपनी इच्छानुसार प्रकट रूप में बारह वर्षों तक वन में और फिर छिपे रूप में एक वर्ष तक निवास करना होगा। हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारे अज्ञातवास को सुन कर भरतवंशियों के गुप्तचर पता लगाने का प्रयत्न करेंगे। यदि उन्हें आपके बारे में पता लग जाये तो आपको पुनः दूसरे बारह वर्षों तक वन में रहना पड़ेगा इस बात का निश्चय करके तुम प्रतिज्ञा करो।

चरेश्चेन्नोऽविदितः कालमेतं
युक्तोराजन् मोहयित्वा मदीयान्।
ब्रवीमि सत्यं कुरुसंसदीह
तवैव ता भारत पञ्च नद्यः।। ११।।
वयं चैतद् भारत सर्व एव
त्वया जिताः कालमपास्य भोगान्।
वसेम इत्याह पुरा स राजा
मध्ये कुरूणां स मयोक्तस्तथेति।। १२।।

हे राजन्! यदि आप मेरे गुप्तचरों को मोह में डाल कर, छिपे रह कर, इस समय को बिता लोगे तो मैं कौरव सभा में सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि हे भारत! सारे पंचनद प्रदेश में तुम्हारा ही अधिकार होगा। हे भारत! यदि आपने हमें जीत लिया तो हम सारे भी सारे भोगों का त्याग कर उतने ही समय तक उसी प्रकार रहेंगे। ऐसा उस राजा दुर्योधन ने कौरवों के बीच में कहा, तब मैंने भी तथास्तु कहकर उस बात को मान लिया।

तत्र द्यूतमभवन्नो जघन्यं
तस्मिञ्जिताः प्रव्रजिताश्च सर्वे।
इत्थं तु देशाननुसंचरामो
वनानि कृच्छ्राणि च कृच्छ्ररूपाः।। १३।।
सुयोधनश्चापि न शान्तिमिच्छन्
भूयः स मन्योर्वशमन्वगच्छत्।
उद्योजयामास कुरूंश्च सर्वान्
ये चास्य केचिद् वशमन्वगच्छन्।। १४।।
तं संधिमास्थाय सतां सकाशे

को नाम जह्यादिह राज्यहेतोः।
आर्यस्य मन्ये मरणाद् गरीयो
यद्धर्ममुत्क्रम्य महीं प्रशासेत्।। १५।।

फिर हमारा वह निन्दनीय जूआ हुआ। उसमें हम हारे और सब यहाँ वन में निकल आये। इस प्रकार अब हम कष्टप्रद रूप धारण करके कष्टदायक वनों और विभिन्न स्थानों पर घूम रहे हैं। दुर्योधन को भी शान्ति नहीं है। वह और क्रोध के वश में हो गया है। उसने उन सारे कौरवों को, जो उसके आधीन रहते हैं, ऊँचे ऊँचे पदों पर नियुक्त कर दिया है। सज्जन पुरुषों के सामने उस सभा में उस संधि का आश्रय लेकर, फिर राज्य के लिये उसे कौन तोड़ सकता है? मैं समझता हूँ कि श्रेष्ठ पुरुष के लिये धर्म का उल्लंघन कर पृथिवी पर राज्य करना मृत्यु से बढ़कर है।

तदैव चेद् वीर कर्माकरिष्यो
यदा द्यूते परिघं पर्यमृक्षः।
बाहू दिधक्षन् वारितः फाल्गुनेन
किं दुष्कृतं भीम तदाभविष्यत्।। १६।।
प्रागेव चैवं समयक्रियायाः
किं नाब्रवीः पौरुषमाविदानः।
प्राप्तं तु कालं त्वभिपद्य पश्चात्
किं मामिदानीमतिवेलमात्थ।। १७।।
भूयोऽपि दुःखं मम भीमसेन
दूये विषस्येव रसं हि पीत्वा।
यद् याज्ञसेनीं परिक्लिश्यमानां
संदृश्य तत् क्षान्तमिति स्म भीम।। १८।।

हे भीम! तब जूए के समय तुम मेरे हाथों को जला देना चाहते थे, पर तुम्हें अर्जुन ने रोका था। उस समय तुम अपनी गदा पर हाथ फेरने लगे थे। हे वीर! यदि तुमने उस समय अपना काम कर दिया होता तो कितना अनर्थ हो जाता। तुम अपने पौरुष को तो जानते ही थे। जब मैं प्रतिज्ञा करने लगा तब तुमने पहले ही वे बातें क्यों नहीं कहीं? आये हुए समय के बीत जाने पर और प्रतिज्ञा के किये जाने पर अब मुझसे ऐसी बातें क्यों कहते हो? हे भीमसेन! मुझे इस बात का भी बड़ा दुःख है कि जब द्रौपदी को क्लेश दिया जा रहा था, तब उसे देख कर भी हमने उसे क्षमा कर दिया। मैं उस बात के लिये ऐसे पीड़ित हो रहा हूँ, जैसे कोई विष को घोल कर पीले और उसकी पीड़ा से तड़पने लगे।

न त्वद्य शक्यं भरतप्रवीर
कृत्वा यदुक्तं कुरुवीरमध्ये।
कालं प्रतीक्षस्व सुखोदयस्य
पक्तिं फलानामिव बीजवापः।। १९।।
मम प्रतिज्ञां च निबोध सत्यां
वृणे धर्मममृताज्जीविताच्च।
राज्यं च पुत्राश्च यशो धनं च
सर्वं न सत्यस्य कलामुपैति।। २०।।

हे भरतवंश के प्रमुख वीर! कौरवों के बीच में जो कुछ कहा गया था, उसके पालन की प्रतिज्ञा करके अब इस समय जो कुछ तुमने कहा है, उसे नहीं किया जा सकता। इसलिये बीज बोने वाला जैसे फलों के पकने की बाट देखता है, वैसे ही तुम भी हमें सुख प्राप्त कराने वाले समय की प्रतीक्षा करो। तुम मेरी इस सत्य प्रतिज्ञा को समझो कि मैं जीवन और अमरत्व की अपेक्षा धर्म का वरण करूँगा। राज्य, पुत्र, यश और धन ये सब सत्यधर्म की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं हैं।

भीमसेन उवाच

संधिं कृत्वैव कालेन ह्यन्तकेन पतत्त्रिणा।
अनन्तेनाप्रमेयेण स्रोतसा सर्वहारिणा।। २१।।
प्रत्यक्षं मन्यसे कालं मर्त्यः सन् कालबन्धनः।
फेनधर्मा महाराज फलधर्मा तथैव च।। २२।।
निमेषादपि कौन्तेय यस्यायुरपचीयते।
सूच्येवाञ्जनचूर्णस्य किमिति प्रतिपालयेत्।। २३।।
प्रतीक्ष्यमाणः कालो नः समा राजंस्त्रयोदश।
आयुषोऽपचयं कृत्वा मरणायोपनेष्यति।। २४।।

तब भीमसेन ने कहा कि हे महाराज! आपने सबका अन्त करने वाले, सबको हरण करने वाले, बाण के समान वेगवान, अनन्त, अप्रमेय, जल के समान प्रवाहशील, काल को बीच में डाल कर संधि की। यद्यपि आप स्वयं काल के बन्धन में बँधे हुए मरणधर्मा, फेन के समान नश्वर और फल के समान पतनशील हैं, पर उस लम्बे समय को अपने सामने प्रत्यक्ष आया हुआ समझते हैं। हे कौन्तेय! सुई से थोड़ा उठाये जाने वाले सुरमे की तरह प्रत्येक पल जिसकी आयु क्षीण हो रही है, वह व्यक्ति समय की प्रतीक्षा कैसे कर सकता है? हे राजन्! जिस समय की हमें तेरह वर्ष तक प्रतीक्षा करनी है वह हमारी आयु को क्षीण कर हमें मृत्यु के निकट पहुँचा देगा।

शरीरिणां हि मरणं शरीरे नित्यमाश्रितम्।
प्रागेव मरणात् तस्मात् राज्यायैव घटामहे।। २५।।
यो न याति प्रसंख्यानमस्पष्टो भूमिवर्धनः।
अयातयित्वा वैराणि सोऽवसीदति गौरिव।। २६।।
यो न यातयते वैरमल्पसत्त्वोद्यमः पुमान्।
अफलं जन्म तस्याहं मन्ये दुर्जातजायिनः।। २७।।
हैरण्यौ भवतो बाहू श्रुतिर्भवति पार्थिवी।
हत्वा द्विषन्तं संग्रामे भुङ्क्ष्व बाहुजितं वसु।। २८।।

शरीरधारियों की मृत्यु तो सदा उसके शरीर में ही निवास करती है इसलिये मृत्यु से पहले ही हमें राज्य प्राप्ति के लिये चेष्टा करनी चाहिये। जो संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त नहीं करता, कोई उसे तंग भी नहीं करता, पर वह भूमि के लिये बोझ के समान है। क्योंकि वह अपने बैर का प्रतिशोध नहीं ले सकता इसलिये सदा बैल की तरह से दुःख उठाता रहता है। जो पुरुष उद्यम और बल के कम होने के कारण अपने शत्रु से बैर का बदला नहीं ले सकता मैं उस घृणित जन्म वाले के जीवन को निष्फल समझता हूँ। आपकी भुजाएँ स्वर्ण को धारण करने के योग्य हैं, आपकी प्रसिद्धि राजा पृथु के समान है। आप युद्ध में अपने शत्रुओं को मार कर अपने बाहुबल से जीते हुए धन का उपभोग कीजिये।

हत्वा वै पुरुषो राजन् निकर्तारमरिंदम।
अह्नाय नरकं गच्छेत् स्वर्गेणास्य स सम्मितः।। २९।।
अमर्षजो हि संतापः पावकाद् दीप्तिमत्तरः।
येनाहमभिसंतप्तो न नक्तं न दिवा शये।। ३०।।
अयं च पार्थो बीभत्सुर्वरिष्ठो ज्याविकर्षणे।
आस्ते परमसंतप्तो नूनं सिंह इवाशये।। ३१।।
योऽयमेकोऽभिमनुते सर्वान् लोके धनुर्भृतः।
सोऽयमात्मजमूष्माणं महाहस्तीव यच्छति।। ३२।।

हे शत्रुओं को दमन करने वाले राजन्! अपने को धोखा देने वाले शत्रु को मार कर यदि मनुष्य को तुरन्त नरक में भी जाना पड़े तो वह नरक उसके लिये स्वर्ग के बराबर है। अमर्ष से उत्पन्न होने वाला सन्ताप अग्नि से अधिक तीव्र होता है। मैं उसी से संतप्त हूँ, जिससे मुझे न तो रात को नींद आती है और न दिन में चैन मिलता है। ये अर्जुन तो अकेले ही संसार के सारे धनुर्धारियों का सामना कर सकते हैं, जो धनुष की प्रत्यंचा को खींचने में सबसे श्रेष्ठ हैं, ये भी परम सन्तप्त हो कर गुफा में बैठे हुए सिंह के समान बैठे रहते हैं। ये अपने मन में उत्पन्न होने वाले क्रोध की गर्मी को महान् गजराज के समान रोक रहे हैं।

प्रियमेव तु सर्वेषां यद् ब्रवीम्युत किंचन।
सर्वे हि व्यसनं प्राप्ताः सर्वे युद्धाभिनन्दिनः।। ३३।।
नातः पापीयसी काचिदापद् राजन् भविष्यति।
यन्नो नीचैरल्पबलै राज्यमाच्छिद्य भुज्यते।। ३४।।

मैं जो कुछ भी कह रहा हूँ वह सबको प्रिय है, सारे ही संकट में पड़े हुए और सारे ही युद्ध का अभिनन्दन करते हैं। हे राजन्! इससे अधिक दुखदायी विपत्ति और क्या हो सकती है कि जो नीच और कमजोर शत्रु हैं, वे हमारा राज्य छीनकर उसका उपभोग कर रहे हैं।

शीलदोषाद् घृणाविष्ट आनृशंस्यात् परंतप।
क्लेशांस्तितिक्षसे राजन् नान्यः कश्चित् प्रशंसति।। ३५।।
श्रोत्रियस्येव ते राजन् मन्दकस्याविपश्चितः।
अनुवाकहता बुद्धिर्नैषा तत्त्वार्थदर्शिनी।। ३६।।
घृणी ब्राह्मणरूपोऽसि कथं क्षत्रेऽभ्यजायथाः।
अस्यां हि योनौ जायन्ते प्रायशः क्रूरबुद्धयः।। ३७।।

हे शत्रुओं को तपाने वाले राजन्! आप अपने सुशील स्वभाव के दोष के कारण, कोमलता के कारण और दयाभाव के कारण इतने क्लेशों को सहन कर रहे हैं। हे राजन्! मन्दबुद्धि और अविद्वान् वेदपाठी के समान आपकी बुद्धि गुरु की वाणी को ही बार बार दुहराने के कारण नष्ट हो गयी है। यह तात्विक अर्थ को समझने वाली नहीं है। आप दयालु और ब्राह्मण रूपधारी हैं पता नहीं कैसे आपका जन्म क्षत्रिय कुल में हो गया? क्षत्रिय योनि में तो प्रायः क्रूर बुद्धि के लोग ही पैदा होते हैं।

अश्रौषीस्त्वं राजधर्मान् यथा वै मनुरब्रवीत्।
क्रूरान् निकृतिसम्पन्नान् विहितानशमात्मकान्।। ३८।।
धार्तराष्ट्रान् महाराज क्षमसे किं दुरात्मनः।
कर्तव्ये पुरुषव्याघ्र किमास्से पीठसर्पवत्।। ३९।।
बुद्ध्या वीर्येण संयुक्तः श्रुतेनाभिजनेन च।

आपने मनु के द्वारा बताये गये राजधर्मों को तो सुना है, फिर आप हे महाराज! उन धृतराष्ट्र के पुत्रों को जो क्रूर, मायावी, हमारे हित के विपरीत कार्य करने वाले, अशान्तचित्त वाले और दुरात्मा हैं, क्यों क्षमा कर रहे हैं? आप बुद्धि से, पराक्रम से, विद्या से और उत्तम कुल से युक्त हैं। हे पुरुषव्याघ्र!

फिर आप कर्तव्य कर्म में अजगर के समान चुपचाप क्यों बैठे हुए हैं।

तृणानां मुष्टिनैकेन हिमवन्तं च पर्वतम्।।४०।।
छन्नामिच्छसि कौन्तेय योऽस्मान् संवर्तुमिच्छसि।
अज्ञातचर्यां गूढेन पृथिव्यां विश्रुतेन च।।४१।।
दिवीव पार्थ सूर्येण न शक्याचरितुं त्वया।
बृहच्छाल इवानूपे शाखापुष्पपलाशवान्।।४२।।
हस्ती श्वेत इवाज्ञातः कथं जिष्णुश्चरिष्यति।
इमौ च सिंहसंकाशौ भ्रातरौ सहितौ शिशू।।४३।।
नकुलः सहदेवश्च कथं पार्थ चरिष्यतः।
पुण्यकीर्ती राजपुत्री द्रौपदी वीरसूरियम्।।४४।।
विश्रुता कथमज्ञाता कृष्णा पार्थ चरिष्यति।
मां चापि राजञ्जानन्ति ह्याकुमारमिमाः प्रजाः।।४५।।
नाज्ञातचर्यां पश्यामि मेरोरिव निगूहनम्।

हे कौन्तेय! फिर आप अज्ञातवास के समय हमें जो छिपाकर रखना चाहते हैं, वह ऐसे ही है जैसे मुट्ठीभर तिनकों से हिमालय पर्वत को ढकना चाहते हों। हे पार्थ! आप सारे संसार में विख्यात हैं। जैसे सूर्य आकाश में छिप कर नहीं कर सकता, वैसे ही आपके द्वारा भी छिप कर अज्ञातवास करना सम्भव नहीं है। अधिक जलवाले प्रदेश में जैसे अधिक शाखाओं, पुष्पों और पत्तों वाला विशाल शाल का वृक्ष नहीं छिप सकता या श्वेत गजराज नहीं छिप सकता, वैसे ही ये अर्जुन कैसे छिप कर रह सकेंगे? ये दोनों भाई बालक नकुल और सहदेव सिंह के समान हैं। हे कुन्तीपुत्र! ये कैसे छिप कर रह सकेंगे? यह पवित्र कीर्तिवाली, वीर जननी, राजकुमारी द्रौपदी सारे संसार में विख्यात है। यह कैसे अज्ञातवास में रह सकेगी? हे राजन्! मुझे भी बच्चे तक जानते हैं। मेरु पर्वत को छिपाने के समान मुझे अपना अज्ञातवास भी सम्भव नहीं दिखाई देता।

तथैव बहवोऽस्माभी राष्ट्रेभ्यो विप्रवासिताः।।४६।।
राजानो राजपुत्राश्च धृतराष्ट्रमनुव्रताः।
अवश्यं तैर्निकर्तव्यमस्माकं तत्प्रियैषिभिः।।४७।।
तेऽप्यस्मासु प्रयुञ्जीरन् प्रच्छन्नान् सुबहूंश्चरान्।
आचक्षीरश्च नो ज्ञात्वा ततः स्यात् सुमहद् भयम्।।४८।।

इसके अतिरिक्त बहुत से राजा और राजकुमार हमारे द्वारा अपने राज्यों से निकाले गये हैं। वे अब सब धृतराष्ट्र के पुत्रों से मिल गये होंगे। उनका प्रिय करने की इच्छा से वे अवश्य ही हमें धोखा देंगे। वे भी हमारे खोजने के लिये बहुत से छिपे हुए गुप्तचरों को लगायेंगे। हमारा पता लगने पर वे दुर्योधन से कह देंगे। तब हम लोगों के लिये बड़ा भय उपस्थित हो जायेगा।

अस्माभिरुषिताः सम्यग् वने मासास्त्रयोदश।
परिमाणेन तान् पश्य तावतः परिवत्सरान्।।४९।।
अस्ति मासः प्रतिनिधिर्यथा प्राहुर्मनीषिणः।
पूतिकामिव सोमस्य तथेदं क्रियतामिति।।५०।।
तस्माच्छत्रुवधे राजन् क्रियतां निश्चयस्त्वया।
क्षत्रियस्य हि सर्वस्य नान्यो धर्मोऽस्ति संयुगात्।।५१।।

हमने अब तक वन में ठीक तरह से तेरह मास व्यतीत कर दिये हैं। आप उनको तेरह वर्ष के परिमाण में समझ लीजिये। विद्वानों ने कहा हैं कि मास वर्ष का प्रतिनिधि है, जैसे यज्ञ में पूतिका सोमलता की प्रतिनिधि बन कर उसकी जगह काम में जायी जाती है, आप भी इसी प्रकार कर लीजिये। इसलिये हे राजन्! आप शत्रु के वध के लिये निश्चय कर लीजिये क्योंकि सारे क्षत्रियों के लिये युद्ध से बढ़ कर कोई दूसरा धर्म नहीं है।

सत्रहवाँ अध्याय : युधिष्ठिर भीम संवाद, व्यास विमर्श, काम्यक वन में जाना।

भीमसेनवचः श्रुत्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
निःश्वस्य पुरुषव्याघ्रः सम्प्रदध्यौ परंतपः।। १।।
श्रुता मे राजधर्माश्च वर्णानां च विनिश्चयाः।
आयत्यां च तदात्वे च यः पश्यति स पश्यति।। २।।
धर्मस्य जानमानोऽहं गतिमग्र्यां सुदुर्विदाम्।
कथं बलात् करिष्यामि मेरोरिव विमर्दनम्।। ३।।
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा विनिश्चित्येतिकृत्यताम्।
भीमसेनमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत्।। ४।।

भीमसेन की बातों को सुन कर पुरुषश्रेष्ठ, परन्तप, कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर ने लम्बी साँस लेकर विचार किया कि मैंने राजाओं के धर्म और अलग अलग वर्णों के कर्त्तव्य भी सुने हैं। जो मनुष्य वर्तमान और भविष्य दोनों के बारे में विचार करता है, वही विद्वान है। धर्म की दुर्बोध और अग्र गति को जानते हुए भी मैं बल पूर्वक मेरु पर्वत के समान महान् धर्म का मर्दन कैसे करूँगा? तब एक

मुहूर्त तक विचार कर और अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर उन्होंने भीमसेन से अविलम्ब यह बात कही कि?

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत।
इदमन्यत् समादत्स्व वाच्यं मे वाक्यकोविद।।५।।
महापापानि कर्माणि यानि केवलसाहसात्।
आरभ्यन्ते भीमसेन व्यथन्ते तानि भारत।।६।।
सुमन्त्रिते सुविक्रान्ते सुकृते सुविचारिते।
सिध्यन्त्यर्था महाबाहो दैवं चात्र प्रदक्षिणम्।।७।।
यत् तु केवलचापल्याद् बलदर्पोत्थितः स्वयम्।
आरब्धव्यमिदं कार्यं मन्यसे शृणु तत्र मे।।८।।

हे विशाल भुजाओं वाले भारत, हे वाक्य विशारद! जैसा तुम कह रहे हो, वह ठीक है, पर तुम मेरी इस दूसरी बात को भी ग्रहण करो। हे भरतनन्दन भीमसेन! महान पापों वाले वे कर्म जो केवल साहस के बल पर ही आरम्भ किये जाते हैं, दुख देते हैं। हे महाबाहु! जो कार्य अच्छी तरह से मन्त्रणा करके, विचार करके, सुन्दर रूप से, अच्छे पराक्रम के द्वारा किये जाते हैं, वे सफल होते हैं और उनमें परमात्मा भी सहायक हो जाते हैं। जो तुम केवल चपलता से, बल के अभिमान में, यह मान रहे हो कि युद्ध का यह कार्य आरम्भ कर देना चाहिये, इस विषय में मेरी बात सुनो।

भूरिश्रवाः शलश्चैव जलसंधश्च वीर्यवान्।
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान्।। ९।।
धार्तराष्ट्रा दुराधर्षा दुर्योधनपरोगमाः।
सर्व एव कृतास्त्राश्च सततं चाततायिनः।।१०।।
राजानः पार्थिवाश्चैव येऽस्माभिरुपतापिताः।
संश्रिताः कौरवं पक्षं जातस्नेहाश्च तं प्रति।।११।।
दुर्योधनहिते युक्ता न तथास्मासु भारत।
पूर्णकोशा बलोपेताः प्रयतिष्यन्ति संगरे।।१२।।

भूरिश्रवा, शल, प्रतापी जलसंध, भीष्म, द्रोण, कर्ण, प्रतापी अश्वत्थामा सर्वदा के आततायी अस्त्र निष्णात, दुर्धर्ष दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र, वे राजा और भूमिपाल जिन्हें हमने कष्ट पहुँचाया है, वे सारे कौरवों के प्रति स्नेह रखते हुए उनके पक्ष में मिल गये हैं। हे भारत! ये सब दुर्योधन के हित में रहेंगे। इनका हमारे साथ वैसा प्रेम नहीं होगा। इनके पास धन भी है और सेना भी है। ये युद्ध में उन्हीं की तरफ से युद्ध करेंगे।

सर्वे कौरवसैन्यस्य सपुत्रामात्यसैनिकाः।
संविभक्ता हि मात्राभिर्भोगैरपि च सर्वशः।।१३।।
दुर्योधनेन ते वीरा मानिताश्च विशेषतः।
प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति संग्रामे इति मे निश्चिता मतिः।।१४।।
समा यद्यपि भीष्मस्य वृत्तिरस्मासु तेषु च।
द्रोणस्य च महाबाहो कृपस्य च महात्मनः।।१५।।
अवश्यं राजपिण्डस्तैर्निर्वेश्य इति मे मतिः।
तस्मात् त्यक्ष्यन्ति संग्रामे प्राणानपि सुदुस्त्यजान्।।१६।।

कौरव सेना के सारे सैनिकों, मन्त्रियों और उनके पुत्रादि परिवार के लोगों को पूरा वेतन और उपभोग सामग्री बाँटी जा रही है। दुर्योधन ने उन वीरों का विशेष सम्मान किया हुआ है, इसलिये मेरा विश्वास है कि वे युद्ध में उसके लिये अपने प्राणों का त्याग कर देंगे। यद्यपि भीष्म पितामह, महाबाहु द्रोण और महात्मा कृपाचार्य का हमारे और उनके ऊपर समान भाव है, पर क्योंकि वे उसका दिया अन्न खाते हैं, इसलिये वे उसका ऋण अवश्य चुकायेंगे। युद्ध में वे दुर्योधन की तरफ से ही लड़ कर अपने दुस्त्यज प्राणों का त्याग करेंगे, यह मेरा विश्वास है।

सर्वे दिव्यास्त्रविद्वांसः सर्वे धर्मपरायणाः।
अमर्षी नित्यसंरब्धस्तत्र कर्णो महारथः।।१७।।
अनिर्जित्य रणे सर्वानेतान् पुरुषसत्तमान्।
अशक्यो ह्यसहायेन हन्तुं दुर्योधनस्त्वया।।१८।।
न निद्रामधिगच्छमि चिन्तयानो वृकोदर।
अतिसर्वान् धनुर्ग्राहान् सूतपुत्रस्य लाघवम्।।१९।।
एतद् वचनमाज्ञाय भीमसेनोऽत्यमर्षणः।
बभूव विमनास्त्रस्तो न चैवोवाच किंचन।।२०।।

ये सारे दिव्यास्त्रों के ज्ञाता और धर्म परायण हैं। उनकी तरफ महारथी कर्ण भी है, जो अमर्षशील और क्रोध में भरा रहता है। तुम युद्ध में इन सारे वीर पुरुषों को जीते बिना, अकेले दुर्योधन को नहीं मार सकते। हे भीम! मैं उस सारथी के पुत्र की सारे धनुर्धारियों से बढ़ कर फुर्ती को सोचता हुआ सो भी नहीं पाता हूँ। युधिष्ठिर के इन वचनों को सुन कर अत्यन्त अमर्षशील भीम तब उदास और शंकायुक्त हो गये और कुछ भी नहीं बोले।

तयोः संवदतोरेवं तदा पाण्डवयोर्द्वयोः।
आजगाम महायोगी व्यासः सत्यवतीसुतः।।२१।।
सोऽभिगम्य यथान्यायं पाण्डवैः प्रतिपूजितः।
युधिष्ठिरमिदं वाक्यमुवाच वदतां वरः।।२२।।

भीष्माद् द्रोणात् कृपात् कर्णाद् द्रोणपुत्राच्च भारत।
दुर्योधनान्नृपसुतात् तथा दुःशासनादपि।। २३।।
यत् ते भयममित्रघ्न हृदि सम्परिवर्तते।
तत् तेऽहं नाशयिष्यामि विधिदृष्टेन कर्मणा।। २४।।

वे दोनों पाण्डव जब इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे, तभी महान योगी, सत्यवती पुत्र व्यास जी वहाँ आ पहुँचे। तब पाण्डवों ने उठ कर उनकी यथोचित रूप से अगवानी की। उसके पश्चात् वक्ताओं में श्रेष्ठ उन्होंने युधिष्ठिर से यह कहा कि हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले भारत! तुम्हें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, द्रोणपुत्र, राजपुत्र दुर्योधन और दुःशासन से भी जो भय हृदय में विद्यमान है, उसे मैं उचित विधि से युक्त कार्य के द्वारा नष्ट करा दूँगा।

तच्छ्रुत्वा धृतिमास्थाय कर्मणा प्रतिपादय।
प्रतिपाद्य तु राजेन्द्र ततः क्षिप्रं ज्वरं जहि।। २५।।
तत एकान्तमुन्नीय पाराशर्यो युधिष्ठिरम्।
अब्रवीदुपपन्नार्थमिदं वाक्यविशारदः।। २६।।
श्रेयस्ते परः कालः प्राप्तो भरतसत्तम।
येनाभिभविता शत्रून् रणे पार्थो धनुर्धरः।। २७।।
अस्त्रहेतोर्महेन्द्रं च रुद्रं चैवाभिगच्छतु।
वरुणं च कुबेरं च धर्मराजं च पाण्डव।। २८।।
शक्तो ह्येष सुरान् द्रष्टुं तपसा विक्रमेण च।

हे राजेन्द्र! उसे सुन कर, धैर्य को धारण कर उसके अनुसार कार्य करो और उस कार्य को करके शीघ्र ही अपनी चिन्ता का परित्याग कर दो। तब पाराशर पुत्र, वाक्य विशारद, व्यास युधिष्ठिर को एकान्त में ले जाकर उनसे यह युक्तियुक्त वचन बोले कि– हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे कल्याण का अब उत्तम समय आ गया है, जिससे कुन्ती पुत्र धनुर्धर अर्जुन युद्ध में शत्रुओं को परास्त कर देंगे। हे पाण्डु पुत्र! ये अर्जुन अस्त्रों की प्राप्ति के लिये, इन्द्र रुद्र, वरुण, कुबेर और धर्मराज के पास जायें। ये अपनी तपस्या और पराक्रम से उन देवताओं से मिल सकते हैं।

वनादस्माच्च कौन्तेय वनमन्यद् विचिन्त्यताम्।। २९।।
निवासार्थाय यद् युक्तं भवेद् वः पृथिवीपते।
एकत्र चिरवासो हि न प्रीतिजननो भवेत्।। ३०।।
तापसानां च सर्वेषां भवेदुद्वेगकारकः।
मृगाणामुपयोगश्च वीरुदोषधिसंक्षयः।। ३१।।
बिभर्षि च बहून् विप्रान् वेदवेदाङ्गपारगान्।
स व्यासवाक्यमुदितो वनाद् द्वैतवनात् ततः।। ३२।।
ययौ सरस्वतीकूले काम्यकं नाम काननम्।

हे कौन्तेय! हे पृथिवीपति! इसके अतिरिक्त तुम लोग इस वन से अब दूसरे वन में चले जाओ। जो तुम्हारे निवास के लिये उचित हो। एक ही जगह देर तक रहना आनन्ददायक नहीं होता। तुम्हारे कारण तपस्या करने वाले तपस्वियों की तपस्या में भी विघ्न पड़ने के कारण उनके हृदय में उद्वेग होगा। तुम्हारे यहाँ रहने से जंगली पशु भी कम हो गये हैं और लता, गुल्मों तथा ओषधियों का क्षय हो गया है। क्योंकि तुम बहुत सारे वेद वेदांगों के विद्वान् ब्राह्मणों का भी पालन करते हो। तब व्यास जी की बातों से प्रसन्न हुए युधिष्ठिर उस द्वैतवन से सरस्वती नदी के किनारे काम्यक वन में चले आये।

अठारहवाँ अध्याय : अर्जुन का तपस्यार्थ इन्द्र कील पर्वत पर जाना।

कस्यचित् त्वथ कालस्य धर्मराजो युधिष्ठिरः।
संस्मृत्य मुनिसंदेशमिदं वचनमब्रवीत्।। १।।
सान्त्वपूर्वं स्मितं कृत्वा पाणिना परिसंस्पृशन्।
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा वनवासमरिंदमः।। २।।
धनंजयं धर्मराजो रहसीदमुवाच ह।

उसके पश्चात् कुछ दिनों के बाद शत्रुओं को नष्ट करने वाले धर्मराज युधिष्ठिर ने व्यास मुनि के सन्देश को याद कर अर्जुन के वनवास के विषय में एक मुहूर्त तक विचार कर मुस्कराते हुए और अर्जुन के शरीर को हाथ से सहलाते हुए, उनसे एकान्त में यह कहा कि–

भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे द्रोणपुत्रे च भारत।। ३।।
धनुर्वेदश्चतुष्पाद एतेष्वद्य प्रतिष्ठितः।
ते सर्वे धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण परिसान्त्विताः।। ४।।
संविभक्ताश्च तुष्टाश्च गुरुवत् तेषु वर्तते।
सर्वयोधेषु चैवास्य सदा प्रीतिरनुत्तमा।। ५।।
आचार्या मानितास्तुष्टाः शान्तिं व्यवहरन्त्युत।

हे भारत! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा इनमें धनुर्विद्या अपने चारों चरणों अर्थात् अंगों के साथ विद्यमान है। इन सबको दुर्योधन ने बड़े सम्मान के साथ रखा हुआ है। उनके साथ वह गुरुओं जैसा व्यवहार करता है और दूसरे सारे

योद्धाओं पर भी उसका अत्यन्त प्रेम है। आचार्य लोग सम्मान से सन्तुष्ट होकर उसके लिये सदा शान्ति का प्रयत्न करते हैं।

शक्तिं न हापयिष्यन्ति ते काले प्रतिपूजिताः।। ६।।
अद्य चेयं मही कृत्स्ना दुर्योधनवशानुगा।
सग्रामनगरा पार्थ ससागरवनाकरा।। ७।।
भवानेव प्रियोऽस्माकं त्वयि भारः समाहितः।

जो लोग उसके द्वारा इस समय सम्मानित हो रहे हैं, वे उसकी शक्ति को क्षीण नहीं होने देंगे। हे पार्थ! इस समय यह सारी भूमि, ग्राम, नगर, सागर, वन, खानों सहित दुर्योधन के ही अधिकार में है। इस समय तुम ही हमारे अत्यन्त प्रिय हो और तुम्हारे ऊपर ही हमारे उद्धार का भार विद्यमान है।

अत्र कृत्यं प्रपश्यामि प्राप्तकालमरिंदम।। ८।।
कृष्णद्वैपायनात् तात गृहीतोपनिषन्मया।
तेन त्वं ब्रह्मणा तात संयुक्तः सुसमाहितः।। ९।।
देवतानां यथाकालं प्रसादं प्रतिपालय।
तपसा योजयात्मानमुग्रेण भरतर्षभ।। १०।।
धनुष्मान् कवची खड्गी मुनिः साधुव्रते स्थितः।
न कस्यचिद् ददन्मार्गं गच्छ तातोत्तरां दिशम्।। ११।।

इसके लिये जो कार्य मुझे उचित दिखाई दे रहा है, उसके करने का समय आ गया है। हे तात! मैंने कृष्ण द्वैपायन जी से गुप्त परामर्श प्राप्त किया है। तुम उनकी उस सलाह से युक्त हो कर एकाग्रचित से यथा समय देवताओं की प्रसन्नता को प्राप्त करो। हे भरतश्रेष्ठ! तुम अपने आपको उग्र तपस्या में लगाओ। तुम धनुष, कवच और खड्ग धारण कर मुनिवेष में साधुओं के व्रत के पालन में लग जाओ और हे तात! किसी को अपने ऊपर आक्रमण का अवसर न देते हुए उत्तर दिशा की तरफ जाओ।

इन्द्रे ह्यस्त्राणि दिव्यानि समस्तानि धनंजय।
शक्रमेव प्रपद्यस्व स तेऽस्त्राणि प्रदास्यति।। १२।।
दीक्षितोऽद्यैव गच्छ त्वं द्रष्टुं देवं पुरंदरम्।
एवमुक्त्वा धर्मराजस्तमध्यापयत प्रभुः।। १३।।
दीक्षितं विधिनानेन धृतवाक्कायमानसम्।
अनुजज्ञे तदा वीरं भ्राता भ्रातरमग्रजः।। १४।।

हे अर्जुन! इन्द्र के पास ही सारे दिव्यास्त्र हैं, अतः तुम इन्द्र के पास ही जाओ। वे तुम्हें उन अस्त्रों को देंगे। तुम आज ही दीक्षा लेकर इन्द्र देवता के दर्शन के लिये यात्रा करो। ऐसा कह कर पाण्डवों के स्वामी धर्मराज युधिष्ठिर ने मन वाणी और शरीर को संयम में रख कर विधि पूर्वक व्रत ग्रहण करने वाले अर्जुन को उचित उपदेश दिया और उन बड़े भाई ने अपने वीर भाई अर्जुन को वहाँ से प्रस्थान करने की आज्ञा दी।

निदेशाद् धर्मराजस्य द्रष्टुकामः पुरंदरम्।
धनुर्गाण्डीवमादाय तथाक्षय्ये महेषुधीः।। १५।।
कवची सतलत्राणो बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्।
प्रातिष्ठत् महाबाहुः निःश्वस्योर्ध्वमुदीक्ष्य च।। १६।।
अब्रुवन् ब्राह्मणाः पार्थमिति कृत्वा जयाशिषः।
संसाधयस्व कौन्तेय ध्रुवोऽस्तु विजयस्तव।। १७।।
तं तथा प्रस्थितं वीरं शालस्कन्धोरुमर्जुनम्।
मनांस्यादाय सर्वेषां कृष्णा वचनमब्रवीत्।। १८।।

इस प्रकार धर्मराज के आदेश से वे महाबाहु अर्जुन इन्द्र के दर्शन की इच्छा से अपने गाण्डीव धनुष और दोनों अक्षय विशाल तरकसों को लेकर, कवच धारण कर, अंगुलियों में गोह के दस्ताने पहन कर ऊपर की तरफ देखते हुए लम्बी साँस लेकर वहाँ से प्रस्थान कर गये। तब ब्राह्मणों ने अर्जुन को विजय के लिये आशीर्वाद देते हुए कहा कि हे कौन्तेय! तुम्हें सफलता प्राप्त हो, तुम्हारी विजय हो। तब शाल वृक्ष के समान कन्धे और जाँघों वाले अर्जुन को सबके मनों को अपने पास खींच कर इस प्रकार जाते हुए देख कर द्रौपदी ने उससे यह कहा कि–

यत् ते कुन्ती महाबाहो जातस्यैच्छद् धनंजय।
तत् तेऽस्तु सर्वं कौन्तेय यथा च स्वयमिच्छसि।। १९।।
मास्माकं क्षत्रियकुले जन्म कश्चिदवाप्नुयात्।
ब्राह्मणेभ्य नमो नित्यं येषां भैक्ष्येण जीविका।। २०।।
इदं मे परमं दुःखं यः स पापः सुयोधनः।
दृष्ट्वा मां गौरिति प्राह प्रहसन् राजसंसदि।। २१।।
तस्माद् दुःखादिदं दुःखं गरीय इति मे मतिः।
यत् तत् परिषदो मध्ये बह्वयुक्तमभाषत।। २२।।

हे कुन्ती पुत्र महाबाहु! तुम्हारे जन्म लेते समय कुन्ती ने जो इच्छाएँ की थीं तथा जो इच्छाएँ तुम स्वयं अपने मन में रखते हो, वे सब तुम्हें प्राप्त हों। हममें से किसी को भी क्षत्रियों के कुल में जन्म न मिले। मैं ब्राह्मणों को नमस्कार करती हूँ, जिनकी तो सदा भिक्षा से ही आजीविका चल जाती है। मुझे यह बड़ा दुःख है कि उस पापी दुर्योधन

ने राजाओं की सभा में मुझे देख कर और गाय कह कर मेरा उपहास किया। उससे भी अधिक दुःख मुझे इस बात से है कि उसने उस सभा के बीच में मुझे बहुत सी अनुचित बातें कहीं।

नूनं ते भ्रातरः सर्वे त्वत्कथाभिः प्रजागरे।
रंस्यन्ते वीर कर्माणि कथयन्तः पुनः पुनः।। २३।।
त्वयि नः पार्थ सर्वेषां सुखदुःखे समाहिते।
जीवितं मरणं चैव राज्यमैश्वर्यमेव च।। २४।।
आपृष्टो मेऽसि कौन्तेय स्वस्ति प्राप्नुहि भारत।
बलवद्भिर्विरुद्धं न कार्यमेतत् त्वयानघ।। २५।।
प्रयाह्यविघ्नेनैवाशु विजयाय महाबल।
नमो धात्रे विधात्रे च स्वस्ति गच्छ ह्यनामयम्।। २६।।

हे वीर! निश्चय ही तुम्हारे सारे भाई अब जागते हुए तुम्हारी ही कहानियों को, तुम्हारे ही महान् कार्यों की चर्चा करते हुए अपना मन बहलाया करेंगे। हे पार्थ! तुम्हारे ऊपर ही हम सबके सुख दुख आश्रित हैं। हमारे जीवन, मरण, राज्य और ऐश्वर्य सब तुम्हारे ही सहारे हैं। हे कुन्तीपुत्र! मैंने तुम्हें विदा दे दी। हे भारत! तुम कल्याण को प्राप्त होवो। हे निष्पाप! तुम्हें बलवानों से विरोध नहीं करना चाहिये। हे महाबली! तुम विजय की प्राप्ति के लिये, विघ्नों से रहित होकर जल्दी ही यात्रा करो। धाता और विधाता को नमस्कार है। तुम कुशलता पूर्वक और स्वस्थ रहते हुए जाओ।

ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भ्रातॄन् धौम्यं च पाण्डवः।
प्रातिष्ठत महाबाहुः प्रगृह्य रुचिरं धनुः।। २७।।
हिमवन्तमतिक्रम्य गन्धमादनमेव च।
अत्यक्रामत् स दुर्गाणि दिवारात्रमतन्द्रितः।। २८।।
इन्द्रकीलं समासाद्य ततोऽतिष्ठद् धनंजयः।
अन्तरिक्षेऽतिशुश्राव तिष्ठेति स वचस्तदा।। २९।।

इसके पश्चात् वे पाण्डु पुत्र महाबाहु अर्जुन भाइयों और धौम्य मुनि की प्रदक्षिणा कर, अपने सुन्दर धनुष को हाथ में लेकर वहाँ से चल दिये। हिमालय और गन्धमादन पर्वत को लाँघ कर, दिन रात आलस्य रहित होकर, चलते हुए उन्होंने और भी अनेक दुर्गम स्थानों को पार किया। इन्द्रकील पर्वत पर पहुँच कर उन्होंने आकाश में एक जोर की आवाज सुनी कि ठहर जाओ। तब वे वहीं ठहर गये।

तच्छ्रुत्वा सर्वतो दृष्टिं चारयामास पाण्डवः।
अथापश्यत् सव्यसाची वृक्षमूले तपस्विनम्।। ३०।।
ब्राह्मया श्रिया दीप्यमानं पिङ्गलं जटिलं कृशम्।
सोऽब्रवीदर्जुनं तत्र स्थितं दृष्ट्वा महातपाः।। ३१।।

उस ध्वनि को सुन कर अर्जुन ने सब तरफ अपनी निगाह दौड़ाई, और तब एक वृक्ष के नीचे एक तपस्वी को देखा। वे तपस्वी अपने ब्रह्मतेज से उद्भासित हो रहे थे, वे पिंगल वर्ण के थे, उन्होंने जटाएँ धारण की हुई थीं। उनका शरीर कमजोर था। उन महातपस्वी ने अर्जुन को वहाँ खड़ा हुआ देख कर पूछा कि–

कस्त्वं तातेह सम्प्राप्तोः धनुष्मान् कवची शरी।
निबद्धासितलत्राणः क्षत्रधर्ममनुव्रतः।। ३२।।
नेह शस्त्रेण कर्तव्यं शान्तानामेष आलयः।
विनीतक्रोधहर्षाणां ब्राह्मणानां तपस्विनाम्।। ३३।।
नेहास्ति धनुषा कार्यं न संग्रामोऽत्र कर्हिचित्।
निक्षिपैतद् धनुस्तात प्राप्तोऽसि परमां गतिम्।। ३४।।
ओजसा तेजसा वीर यथा नान्यः पुमान् कचित्।
तथा हसन्निवाभीक्ष्णं ब्राह्मणोऽर्जुनमब्रवीत्।। ३५।।
न चैनं चालयामास धैर्यात् सुधृतनिश्चयम्।

हे तात! तुम कौन हो? तुम धनुष बाण धारण करके, कवच पहन कर, तलवार और दस्तानों से सुसज्जित होकर क्षात्रधर्म का पालन करते हुए यहाँ आये हो। यहाँ शस्त्रों का कोई काम नहीं है। यह तो शान्त हृदय वाले तपस्वी ब्राह्मणों का, जिन्होंने हर्ष और क्रोध को जीत लिया है, उनका स्थान है। यहाँ कोई युद्ध नहीं होता, इसलिये धनुष का यहाँ कोई काम नहीं है। इसलिये हे तात! अब तुम धनुष को फैंक दो। तुम उत्तम गति को प्राप्त हो चुके हो। हे वीर! ओज में और तेज में तुम्हारे जैसा कोई दूसरा पुरुष नहीं है। इस प्रकार हँसते हुए से उन ब्राह्मण ने अर्जुन से बार-बार धनुष का त्याग करने को कहा, पर वे उस अर्जुन को, जिसने दृढ़ निश्चय किया हुआ था, अपने धैर्य से विचलित नहीं कर सके।

तमुवाच ततः प्रीतः स द्विजः प्रहसन्निव।। ३६।।
वरं वृणीष्व भद्रं ते शक्रोऽहमरिसूदन।
एवमुक्तः सहस्राक्षं प्रत्युवाच धनंजयः।। ३७।।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा शूरः कुरुकुलोद्वहः।
ईप्सितो ह्येष वै कामो वरं चैनं प्रयच्छ मे।। ३८।।
त्वत्तोऽद्य भगवन्नस्त्रं कृत्स्नमिच्छामि वेदितुम्।

तब उस ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर हँसते हुए से उनसे कहा कि हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! तुम्हारा कल्याण हो, मैं इन्द्र हूँ। वर माँगो। यह सुन कर

कुरुवंश के रत्न शूरवीर अर्जुन ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और सहस्रनेत्र धारी अर्थात् अनेक ज्ञान के नेत्रों वाले इन्द्र से कहा कि मेरी यही इच्छा है, यही कामना है, मुझे आप यही वर दीजिये कि हे भगवन्! मैं आपसे सारे अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।

एवमुक्तः प्रत्युवाच वृत्रहा पाण्डुनन्दनम्।। ३९।।
सान्त्वयञ्छ्लक्ष्णया वाचा सर्वलोकनमस्कृतः।
यदा द्रक्ष्यसि भूतेशं त्र्यक्षं शूलधरं शिवम्।। ४०।।
तदा दातास्मि ते तात दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः।
इत्युक्त्वा फाल्गुनं शक्रो जगामादर्शनं पुनः।
अर्जुनोऽप्यथ तत्रैव तस्थौ योगसमन्वितः।। ४१।।

ऐसा कहे जाने पर विश्ववन्दित शत्रुविनाशक इन्द्र ने पाण्डुपुत्र को सान्त्वना देते हुए मधुर वाणी में कहा कि हे तात! जब तुम तीन नेत्रों से विभूषित अर्थात् जिनका ज्ञान का नेत्र विशेष तीव्र है, त्रिशूल धारण करने वाले भूतेश अर्थात् सारे भूतों, प्राणियों से उत्कृष्ट होने के कारण जो सबके ईश कहे जाते हैं, उन महात्मा शिव के दर्शन करोगे अर्थात् उन्हें प्रसन्न करोगे, तब मैं तुम्हें सम्पूर्ण दिव्यास्त्र प्रदान करूँगा। अर्जुन से ऐसा कह कर इन्द्र पुनः वहाँ से अदृश्य हो गये अर्थात् चले गये। अर्जुन भी वहीं रह कर योगाभ्यास करने लगे।

उन्नीसवाँ अध्याय : अर्जुन की तपस्या, शिव द्वारा उसकी परीक्षा, शस्त्रदान।

रमणीये वनोद्देशे रममाणोऽर्जुनस्तदा।
तपस्युग्रे वर्तमान उग्रतेजा महामनाः।। १।।
ततो महर्षयः सर्वे जग्मुर्देवं पिनाकिनम्।
निवेदयिषवः पार्थं तपस्युग्रे समास्थितम्।। २।।
तं प्रणम्य महादेवं शशंसुः पार्थकर्म तत्।
एष पार्थो महातेजा हिमवत्पृष्ठमास्थितः।। ३।।
तस्य देवेश न वयं विद्मः सर्वे चिकीर्षितम्।

उग्र तेजस्वी, महामना अर्जुन फिर उस रमणीय वन प्रदेश में रहते हुए उग्र तपस्या में संलग्न हो गये। तब उस प्रदेश में रहने वाले सारे महर्षि लोग, उग्र तपस्या में लगे हुए कुन्तीपुत्र अर्जुन के विषय में कहने का इच्छा से पिनाक धनुष को धारण करने वाले देव शिवजी की सेवा में गये। वहाँ उन महादेव जी को प्रणाम कर उन्होंने उनसे अर्जुन के तपस्या कर्म के विषय में कहा कि ये महातेजस्वी अर्जुन इस समय यहाँ हिमालय के पृष्ठ भाग पर रहते हैं। हे देवेश! हम उनकी इच्छा के बारे में नहीं जानते।

महादेव उवाच

शीघ्रं गच्छत संहृष्टा यथागतमतन्द्रिताः।। ४।।
अहमस्य विजानामि संकल्पं मनसि स्थितम्।
यत् तस्य काङ्क्षितं सर्वं तत् करिष्येऽहमद्य वै।। ५।।
तच्छ्रुत्वा शर्ववचनमृषयः सत्यवादिनः।
प्रहृष्टमनसो जग्मुर्यथा स्वान् पुनरालयान्।। ६।।

तब महादेव जी ने कहा कि आप लोग जैसे आये हैं वैसे ही शीघ्रता से सावधानी पूर्वक प्रसन्नता के साथ वापिस लौट जाइये। मैं उनके मन में विद्यमान संकल्प को जानता हूँ। जो उसकी इच्छा है, वह सारी मैं आज पूरी कर दूँगा। महादेव जी के उन वचनों को सुन कर वे सत्यवादी ऋषि लोग प्रसन्नता के साथ अपने स्थानों पर पुनः लौट गये।

गतेषु तेषु सर्वेषु तपस्विषु महात्मसु।
कैरात वेषमास्थाय काञ्चनद्रुमसंनिभम्।। ७।।
श्रीमद् धनुरुपादाय शरांश्चाशीविषोपमान्।
निष्पपात महावेगो दहनो देहवानिव।। ८।।

उन सारे तपस्वी महात्माओं के चले जाने पर महादेव जी ने किरात के वेष को धारण कर लिया, जिससे वे सुनहले वृक्ष समान प्रतीत होने लगे या जैसे साक्षात् अग्नि ने ही शरीर का रूप धारण कर लिया हो। तब शोभाशाली धनुष और विषैले सर्पों के समान भयानक बाणों को उठा कर वे बड़ी तेजी के साथ वहाँ से चले।

स संनिकर्षमागम्य पार्थस्याक्लिष्टकर्मणः।
मूकं नाम दनोः पुत्रं ददर्शाद्भुतदर्शनम्।। ९।।
वाराहं रूपमास्थाय तर्कयन्तमिवार्जुनम्।
हन्तुं परं दीप्यमानं तमुवाचाथ फाल्गुनः।। १०।।
गाण्डीवं धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान्।
सज्यं धनुर्वरं कृत्वा ज्याघोषेण निनादयन्।। ११।।

अनायास ही महान् कर्म करने वाले अर्जुन के समीप आकर उन्होंने देखा कि एक मूक नाम का अद्भुत रूप में दिखाई देने वाला दानव शूकर का रूप धारण कर परम तेजस्वी अर्जुन को मारने की घात में लगा हुआ था। तभी अर्जुन ने अपने गांडीव धनुष और सर्प के समान भयानक बाणों को उठा

कर, धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर उसको टंकारते हुए कहा कि–

यन्मां प्रार्थयसे हन्तुमनागसमिहागतम्।
तस्मात् त्वां पूर्वमेवाहं नेताद्य यमसादनम्।। १२।।
दृष्ट्वा तं प्रहरिष्यन्तं फाल्गुनं दृढधन्विनम्।
किरातरूपी सहसा वारयामास शंकरः।। १३।।
मयैष प्रार्थितः पूर्वमिन्द्रकीलसमप्रभः।
अनादृत्य च तद् वाक्यं प्रजहाराथ फाल्गुनः।। १४।।
किरातश्च समं तस्मिन्नेकलक्ष्ये महाद्युतिः।
प्रमुमोचाशनिप्रख्यं शरमग्निशिखोपमम्।। १५।।

अरे यहाँ आए हुए मुझ निरपराध को जो तू मारना चाहता है, इसलिये मैं तुझे पहले ही आज मृत्यु के घर पहुँचा देता हूँ। दृढ़ धनुर्धारी अर्जुन को उस पर प्रहार करते हुए देख कर किरात का रूप धारण किये हुए शिव ने उसे एकदम मना किया और कहा कि इन्द्रकील पर्वत के समान इस सूअर को मैंने पहले ही अपना लक्ष्य बना रखा है, इसलिये तुम इसे न मारो। पर अर्जुन ने उनकी इस बात को अनसुना कर उस सूअर के ऊपर प्रहार कर दिया। तब उस महान् तेजस्वी ने भी उसी एक लक्ष्य पर उसी समय विद्युत् और अग्नि शिखा के समान तेजस्वी बाण को छोड़ा।

तौ मुक्तौ सायकौ ताभ्यां समं तत्र निपेततुः।
मूकस्य गात्रे विस्तीर्णे शैलसंहनने तदा।। १६।।
ममार राक्षसं रूपं भूयः कृत्वा विभीषणम्।
तमब्रवीत् प्रीतमनाः कौन्तेयः प्रहसन्निव।। १७।।

उन दोनों के द्वारा छोड़े हुए वे दोनों बाण उस एक लक्ष्य पर उस मूक नाम के दानव के विशाल शरीर के ऊपर विद्यमान पर्वत के समान दृढ़ कवच पर एक साथ ही पड़े। जिससे वह अपने भयानक राक्षस रूप को पुनः धारण करके मर गया। तब अर्जुन ने प्रसन्नचित्त होकर हँसते हुए से उक्त किरात से कहा कि–

न त्वमस्मिन् वने घोरे बिभेषि कनकप्रभ।
किमर्थं च त्वया विद्धो वराहो मत्परिग्रहः।। १८।।
मयाभिपन्नः पूर्वं हि राक्षसोऽयमिहागतः।
कामात् परिभवाद् वापि न मे जीवन् विमोक्ष्यसे।। १९।।
न ह्येष मृगयाधर्मो यस्त्वयाद्य कृतो मयि।
तेन त्वां भ्रंशयिष्यामि जीविताद् पर्वताश्रयम्।। २०।।

हे सुवर्ण के समान चमकीले पुरुष! तुझे इस भयानक वन में डर नहीं लगता। इस सूअर को जो मेरा शिकार था, तुमने अपने बाण से क्यों बींधा? यह राक्षस पहले यहाँ आया था और मैंने इसे काबू में कर लिया था, फिर तुमने किसी कामना से या मेरा तिरस्कार करने के लिये इसे मारा। तुम अब जीवित रहते हुए मुझसे नहीं छूट सकते। तुमने आज मेरे साथ तो बर्ताव किया है, वह शिकार का नियम नहीं है, इसलिये पर्वत पर रहने वाले आपको मैं जीवन से वंचित कर दूँगा।

इत्युक्तः पाण्डवेयेन किरातः प्रहसन्निव।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा पाण्डवं सव्यसाचिनम्।। २१।।
न मत्कृते त्वया वीर भीः कार्या वनमन्तिकात्।
इयं भूमिः सदास्माकमुचिता वसतां वने।। २२।।
त्वया तु दुष्करः कस्मादिह वासः प्ररोचितः।
वयं तु बहुसत्त्वेऽस्मिन् निवसामस्तपोधन।। २३।।
भवांस्तु कृष्णवर्त्माभः सुकुमारः सुखोचितः।
कथं शून्यमिमं देशमेकाकी विचरिष्यति।। २४।।

अर्जुन के द्वारा यह कहने पर उस किरात ने मुस्कराते हुए उस बायें हाथ से भी बाण चला सकने वाले पाण्डुपुत्र से मधुर वाणी में कहा कि हे वीर! इस वन में तुम्हें मेरे लिये भय करने की आवश्यकता नहीं है। हम तो वन में ही रहते हैं, इसलिये हमारा सदा यहाँ घूमते रहना उचित ही है। पर हे तपस्वी! तुमने यहाँ कष्टप्रद निवास क्यों पसन्द किया? हम तो अनेक प्रकार के जन्तुओं से भरे इस स्थान में रहते ही हैं। आप तो अग्नि के समान रूपवान्, सुकुमार, और सुखों में रहने योग्य हैं। इस सूने प्रदेश में अकेले क्यों घूम रहे हो?

अर्जुन उवाच

गाण्डीवमाश्रयं कृत्वा नाराचांश्चाग्निसंनिमान्।
निवसामि महारण्ये द्वितीय इव पावकिः।। २५।।
एष चापि मया जन्तुर्मृगरूपं समाश्रितः।
राक्षसो निहतो घोरो हन्तुं मामिह चागतः।। २६।।

तब अर्जुन ने कहा कि गाण्डीव धनुष और अग्नि के समान तेजस्वी बाणों के सहारे मैं इस महान् वन में दूसरे कार्तिकेय के समान निर्भय होकर रहता हूँ। यह प्राणी हिंसक पशु के रूप में मुझे मारने आया था, इसलिये इस भयानक राक्षस को मैंने मारा है।

किरात उवाच

ममैष लक्ष्यभूतो हि मम पूर्वपरिग्रहः।
ममैव च प्रहारेण जीविताद् व्यपरोपितः।। २७।।
दोषान् स्वान् नार्हसेऽन्यस्मै वक्तुं स्वबलदर्पितः।
अवलिप्तोऽसि मन्दात्मन् न मे जीवन् विमोक्ष्यसे।। २८।।
स्थिरो भवस्व मोक्ष्यामि सायकानशनीनिव।
घटस्व परया शक्त्या मुञ्च त्वमपि सायकान्।। २९।।

तब किरात ने उत्तर दिया कि मैंने ही इसे पहले अपना निशाना बनाया हुआ था इसलिये मेरा ही इस पर पहले अधिकार था। मेरे ही प्रहार से यह मरा है। अपने बल के घमण्ड में आकर तुम अपने दोष दूसरे पर नहीं मढ सकते। हे मन्दबुद्धि! तुम अभिमानी हो। अब जीवित रहते हुए मुझसे नहीं छूट सकते। तुम ठहर जाओ। मैं वज्र के समान अपने बाणों को छोड़ूँगा। तुम भी पूरी शक्ति से प्रयत्न करो और बाणों को छोड़ो।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा किरातस्यार्जुनस्तदा।
रोषमाहारयामास ताडयामास चेषुभिः।। ३०।।
ततो हृष्टेन मनसा प्रतिजग्राह सायकान्।
भूयो भूय इति प्राह मन्दमन्देत्युवाच ह।। ३१।।
इत्युक्तो बाणवर्षं स मुमोच सहसार्जुनः।
तत् प्रसन्नेन मनसा प्रतिजग्राह शंकरः।। ३२।।

किरात के उन वचनों को सुन कर अर्जुन को बड़ा क्रोध आया और उसने उस किरात पर बाणों से प्रहार किया। तब किरात ने प्रसन्न मन से ही अर्जुन के उन बाणों का उत्तर देकर उन्हें निष्फल कर दिया और उससे कहा कि अरे मन्दबुद्धि! फिर प्रहार कर, फिर प्रहार कर। उसके ऐसा कहने पर अर्जुन ने तुरन्त उस पर बाणों की झड़ी लगा दी, किन्तु शिव ने प्रसन्नता दिखाते हुए ही उस सारी बाण वर्षा को काट गिराया।

स दृष्ट्वा बाणवर्षं तु मोघीभूतं धनंजयः।
परमं विस्मयं चक्रे साधु साध्विति चाब्रवीत्।। ३३।।
अहोऽयं सुकुमाराङ्गो हिमवच्छिखराश्रयः।
गाण्डीवमुक्तान् नाराचान् प्रतिगृह्णात्यविह्वलः।। ३४।।
न हि मद्बाणजालानामुत्सृष्टानां सहस्रशः।
शक्तोऽन्यः सहितुं वेगमृते देवं पिनाकिनम्।। ३५।।

अपनी बाण वर्षा को व्यर्थ होते हुए देख कर अर्जुन को बड़ा विस्मय हुआ और उसने किरात की प्रशंसा करते हुए उसे साधु, साधु कहा। वह कहने लगे कि अरे! हिमालय के शिखर पर रहने वाला यह कोमल शरीर का दिखाई देने वाला किरात बिना घबराये, बड़ी सरलता से गाण्डीव धनुष से छोड़े हुए बाणों को निष्फल कर देता है। बड़ा आश्चर्य है। मेरे द्वारा छोड़े हुए हजारों बाणों के जाल के वेग को सिवाय पिनाक नाम के धनुष को धारण करने वाले शिव के कोई दूसरा सहन नहीं कर सकता।

पपात पादयोस्तस्य ततः प्रीतोऽभवद् भवः।
उवाच चैनं वचसा मेघगम्भीरगीर्हरः।। ३६।।
जातविस्मयमालोक्य तपः क्षीणाङ्गसंहतिम्।
भो भोः फाल्गुन तुष्टोऽस्मि कर्मणाप्रतिमेन ते।। ३७।।
शौर्येणानेन धृत्या च क्षत्रियो नास्ति ते समः।
समं तेजश्च वीर्यं च ममाद्य तव चानघ।। ३८।।
प्रीतस्तेऽहं महाबाहो पश्य मां भरतर्षभ।
स जानुभ्यां महीं गत्वा शिरसा प्रणिपत्य च।। ३९।।
प्रसादयामास हरं पार्थः परपुरंजयः।

तब वे उन किरातरूपधारी शिव के चरणों पर गिर पड़े। उस समय तपस्या से जिनके शरीर के अंग कमजोर हो रहे थे उन अर्जुन को विस्मय में भरा हुआ देख कर शिव उनसे प्रसन्न हो कर मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोले कि हे अर्जुन! तुम्हारे इस अद्वितीय कर्म, पराक्रम और धैर्य से मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे समान कोई क्षत्रिय नहीं है। हे निष्पाप! तुम्हारा तेज और पराक्रम आज मेरे समान प्रकट हुआ है। हे भरतश्रेष्ठ! महाबाहु! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम मेरी तरफ देखो। तब शत्रुओं के नगर पर विजय प्राप्त करने वाले अर्जुन ने घुटनों को भूमि पर टिका कर और सिर से प्रणाम कर शिव को प्रसन्न किया।

अर्जुन उवाच

व्यतिक्रमं मे भगवन् क्षन्तुमर्हसि शंकर।। ४०।।
भगवन् दर्शनाकाङ्क्षी प्राप्तोऽस्मीमं महागिरिम्।
न मे स्यादपराधोऽयं महादेवातिसाहसात्।
कृतो मयायमज्ञानाद् विमर्दो यस्त्वया सह।। ४२।।
शरणं प्रतिपन्नाय तत् क्षमस्वाद्य शंकर।

तब अर्जुन ने शिव से कहा कि हे कल्याण करने वाले भगवन्। आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैं आपके ही दर्शनों की इच्छा से इस महान् पर्वत पर आया हूँ। हे देवताओं के स्वामी! यह तपस्वियों

का उत्तम स्थान और आपका प्रिय है। हे महादेव! अत्यन्त साहस से जो मैंने आपके साथ युद्ध किया, वह अज्ञान के कारण हो गया। इसमें मेरा अपराध नहीं है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। हे शंकर! आप मुझे क्षमा कीजिये।

तमुवाच महातेजाः प्रहस्य वृषभध्वजः।। ४३।।
प्रगृह्य रुचिरं बाहुं क्षान्तमित्येव फाल्गुनम्।
परिष्वज्य च बाहुभ्यां प्रीतात्मा भगवान् हरः।। ४४।।
पुनः पार्थं सान्त्वपूर्वमुवाच वृषभध्वजः।
प्रीतिमानस्मि ते पार्थ भवान् सत्यपराक्रमः।। ४५।।
गृहाण वरमस्मत्तः काङ्क्षितं पुरुषोत्तम।

तब बैल के चिह्न से अंकित ध्वज वाले, महा तेजस्वी शिव ने हँस कर अर्जुन के सुन्दर हाथ को पकड़ कर कहा कि मैंने तुम्हारा अपराध पहले ही क्षमा कर दिया। फिर प्रसन्न हुए भगवान् शिव ने अर्जुन को बाँहों से अपनी छाती से लगाया और सान्त्वना पूर्वक उनसे कहा कि हे पुरुषश्रेष्ठ कुन्ती पुत्र! तुम्हारा पराक्रम सत्य है। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम हमसे अपनी इच्छा का वर माँगो।

अर्जुन उवाच

भगवन् ददासि चेन्मह्यं कामं प्रीत्या वृषध्वज।। ४६।।
कामये दिव्यमस्त्रं तद् घोरं पाशुपतं प्रभो।
कर्णभीष्मकृपद्रोणैर्भविता तु महाहवः।। ४७।।
त्वत्प्रसादान्महादेव जयेयं तान् यथा युधि।
युध्येयं येन भीष्मेण द्रोणेन च कृपेण च।। ४८।।
सूतपुत्रेण च रणे नित्यं कटुकभाषिणा।

तब अर्जुन ने कहा कि हे भगवन्! हे वृषभध्वज! यदि आप मुझे प्रसन्नता से इच्छानुसार वर देते हैं, तो हे प्रभो! मैं उस घोर पाशुपत अस्त्र को प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरा कर्ण, भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य आदि के साथ महान् युद्ध होने वाला है। हे महादेव! मैं चाहता हूँ कि आपकी कृपा से उन्हें युद्ध में जीत सकूँ। उस अस्त्र की सहायता से मैं भीष्म, द्रोण कृपाचार्य और सदा कड़वी बात कहने वाले सारथी के पुत्र कर्ण से युद्ध में लड़ सकूँ।

भव उवाच

ददामि तेऽस्त्रं दयितमहं पाशुपतं विभो।। ४९।।
समर्थो धारणे मोक्षे संहारे चासि पाण्डव।
नैतद् वेद महेन्द्रोऽपि न यमो न च यक्षराट्।। ५०।।
वरुणोऽप्यथवा वायुः कुतो वेत्स्यन्ति मानवाः।
न त्वेतत् सहसा पार्थ मोक्तव्यं पुरुषे क्वचित्।। ५१।।
जगद् विनाशयेत् सर्वमल्पतेजसि पातितम्।
अवध्यो नाम नास्त्यत्र त्रैलोक्ये सचराचरे।। ५२।।

तब शिव ने कहा कि हे शक्तिशाली पाण्डुपुत्र! मैं अपने प्रिय अस्त्र पाशुपत को तुम्हें देता हूँ। तुम इसके धारण करने, छोड़ने और वापिस लौटाने में समर्थ हो। इस अस्त्र को इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण, या वायु देव भी नहीं जानते फिर सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या है? पर हे अर्जुन! तुम इसको किसी भी पुरुष पर अचानक ही मत छोड़ देना। यदि अल्पशक्ति योद्धा पर इसे छोड़ा गया तो यह संसार का विनाश कर देगा। चराचर सहित त्रिलोक में कोई ऐसा प्राणी नहीं है जिसे यह न मार सके।

तच्छ्रुत्वा त्वरितः पार्थः शुचिर्भूत्वा समाहितः।
उपसंगम्य विश्वेशमधीष्वेत्यथ सोऽब्रवीत्।। ५३।।
ततस्त्वध्यापयामास सरहस्यनिवर्तनम्।
तदस्त्रं पाण्डवश्रेष्ठं मूर्तिमन्तमिवान्तकम्।। ५४।।
प्रतिजग्राह तच्चापि प्रीतिमानर्जुनस्तदा।
तस्य सम्पश्यतस्त्वेव पिनाकी वृषभध्वजः।
जगामादर्शनं भानुर्लोकस्येवास्तमीयिवान्।। ५५।।

यह सुन कर अर्जुन जल्दी से पवित्र होकर एकाग्रचित से उन सर्व शक्तिशाली शिव के समीप बैठे और बोले कि पढ़ाइये। तब शिवजी ने उस अस्त्र को जो साक्षात् मृत्यु के समान भयंकर था, रहस्यों और उपसंहार की रीति सहित पाण्डव श्रेष्ठ अर्जुन को पढ़ाया। अर्जुन ने भी प्रसन्नता सहित उसे ग्रहण किया। उसके पश्चात् पिनाक धनुष और बैल से अंकित ध्वजा को धारण करने वाले शिव वहाँ से चले गए और अर्जुन के देखते-देखते ही ऐसे आँखों से ओझल हो गये जैसे संसार को प्रकाशित करने वाले सूर्य अस्ताचल को चले जाते हैं।

बीसवाँ अध्याय : इन्द्र का अर्जुन को अपने पास बुलवा कर सम्मान करना।

ततश्चिन्तयमानस्य गुडाकेशस्य धीमतः।
रथो मातलिसंयुक्त आजगाम महाप्रभः।। १।।
दृष्ट्वा पार्थो महाबाहुर्देवमेवान्वतर्कयत्।
तथा तर्कयतस्तस्य फाल्गुनस्याथ मातलिः।। २।।
संनतः प्रस्थितो भूत्वा वाक्यमर्जुनमब्रवीत्।

निद्रा विजयी बुद्धिमान् अर्जुन कुछ सोच ही रहे थे तभी मातलि नाम के सारथि से चलाया जाता हुआ एक महान् शोभायमान रथ वहाँ आकर खड़ा हो गया। उस मातलि को देख कर महाबाहु अर्जुन ने उसे कोई देवता ही समझा। उसके विषय में विचार करते हुए अर्जुन के समक्ष विनीत भाव से उपस्थित होकर मातलि ने कहा कि–

भो भोः शक्रात्मज श्रीमाञ्छक्रस्त्वां द्रष्टुमिच्छति।। ३।।
आरोहतु भवाञ्छीघ्रं रथमिन्द्रस्य सम्मतम्।
आह माममरश्रेष्ठः पिता तव शतक्रतुः।। ४।।
कुन्तीसुतमिह प्राप्तं पश्यन्तु त्रिदशालयाः।
ततोऽर्जुनो हृष्टमना गङ्गायामाप्लुतः शुचिः।। ५।।
आरुरोह रथं दिव्यं द्योतयन्निव भास्करः।

हे इन्द्रकुमार! श्रीमान् इन्द्र आपको देखना चाहते हैं। आप शीघ्र ही उनके इस प्रिय रथ पर सवार हो जाइये। आपके पिता देवताओं में श्रेष्ठ शतक्रतु इन्द्र ने मुझसे कहा है कि कुन्ती पुत्र को यहाँ ले आओ, जिससे सारे देवता लोग उन्हें देखें। तब अर्जुन प्रसन्न मन से गंगा में स्नान करके पवित्र हुए और प्रकाश फैलाते हुए सूर्य के समान उस रथ पर आरूढ़ हो गये।

तत्र सौगन्धिकानां च पुष्पाणां पुण्यगन्धिनाम्।। ६।।
उद्वीज्यमानो मिश्रेण वायुना पुण्यगन्धिना।
स तद् दिव्यं वनं पश्यन् दिव्यगीतनिनादितम्।। ७।।
प्रविवेश महाबाहुः शक्रस्य दयितां पुरीम्।
तत्र देवविमानानि कामगानि सहस्रशः।। ८।।
संस्थितान्यभियातानि ददर्शायुतशस्तदा।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।। ९।।
हृष्टाः सम्पूजयामासुः पार्थमक्लिष्टकारिणम्।
तान् स सर्वान् समागम्य विधिवत् कुरुनन्दनः।। १०।।
ततः पार्थो महाबाहुरवतीर्य रथोत्तमात्।
ददर्श साक्षाद् देवेशं पितरं पाकशासनम्।। ११।।

उस समय वहाँ पवित्र सुगन्ध वाले सौगन्धिक नाम के पुष्पों की मनोहर सुगन्ध से मिश्रित वायु मानों उन्हें पंखा कर रही थी। दिव्य संगीत से गुंजायमान उस वन को देखते हुए उन महाबाहु ने इन्द्र की प्रिय नगरी में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने देवताओं के वे विमान, जिन्हें इच्छानुसार चाहे जहाँ ले जाया जा सकता था, बड़ी संख्या में खड़े हुए और आते जाते हुए देखे। तब अनायास ही महान् कर्म करने वाले उस कुन्ती पुत्र का देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों, और ऋषियों ने प्रसन्न होकर स्वागत किया। उन सबसे विधिपूर्वक मिल कर उसके पश्चात् महाबाहु, कुरुनन्दन कुन्तीपुत्र ने उस उत्तम रथ से उतर कर देवताओं के राजा अपने पिता इन्द्र को प्रत्यक्ष में देखा।

ततोऽभिगम्य कौन्तेयः शिरसाभ्यगमद् बली।
स चैनं वृत्तपीनाभ्यां बाहुभ्यां प्रत्यगृह्णत।। १२।।
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय देवेन्द्रः परवीरहा।
अङ्कमारोपयामास प्रश्रयावनतं तदा।। १३।।
ततः प्रेम्णा वृत्रशत्रुरर्जुनस्य शुभं मुखम्।
पस्पर्श पुण्यगन्धेन करेण परिसान्त्वयन्।। १४।।

तब बलवान् कुन्तीपुत्र ने उनके समक्ष जाकर उन्हें सिर से प्रणाम किया और उन्होंने अपनी गोल मोटी भुजाओं से उन्हें उठा लिया। शत्रु के वीरों का संहार करने वाले देवराज ने तब विनीत भाव से झुके हुए अर्जुन का सिर सूँघा और उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया। तब प्रेम से भर कर वृत्रशत्रु इन्द्र ने सान्त्वना देते हुए अर्जुन के सुन्दर मुख का अपने पवित्र गन्धयुक्त हाथ से स्पर्श किया।

प्रमार्जमानः शनकैर्बाहू चास्यायतौ शुभौ।
ज्याशरक्षेपकठिनौ स्तम्भाविव हिरण्मयौ।। १५।।
वज्रग्रहणचिह्नेन करेण परिसान्त्वयन्।
मुहुर्मुहुर्वज्रधरो बाहू चास्फोटयच्छनैः।। १६।।
एकासनोपविष्टौ तौ शोभयांचक्रतुः सभाम्।
सूर्याचन्द्रमसौ व्योम चतुर्दश्यामिवोदितौ।। १७।।

अर्जुन की सोने के खम्बे जैसी सुन्दर विशाल भुजायें, जो प्रत्यंचा खींच कर बाण चलाने की रगड़ से कठोर हो गयी थीं, उन्हें वज्रधारी इन्द्र धीरे-धीरे सहलाने लगे। वे उन्हें सान्त्वना देते हुए अपने वज्र

धारण करने के चिह्न से सुशोभित हाथ से अर्जुन की भुजाओं को बार-बार थपथपाने लगे। एक ही आसन पर बैठे हुए वे दोनों इन्द्र और अर्जुन उस सभा में ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को उदय हुए सूर्य और चन्द्रमा आकाश की शोभा बढ़ाते हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय : अर्जुन को संगीत और अस्त्रों की शिक्षा।

ततो देवाः सगन्धर्वाः समादायार्घ्यमुत्तमम्।
शक्रस्य मतमाज्ञाय पार्थमानर्चुरञ्जसा।। १।।
पाद्यमाचमनीयं च प्रतिग्राह्य नृपात्मजम्।
प्रवेशयामासुरथो पुरन्दरनिवेशनम्।। २।।
एवं सम्पूजितो जिष्णुरुवास भवने पितुः।
उपशिक्षन् महास्त्राणि ससंहाराणि पाण्डवः।। ३।।
गृहीतास्त्रस्तु कौन्तेयो भ्रातृन् सस्मार पाण्डवः।
पुरन्दरनियोगाच्च पञ्चाब्दानवसत् सुखी।। ४।।

तब देवताओं और गन्धर्वों ने इन्द्र का अभिप्राय समझ कर उत्तम अर्घ्य लेकर अर्जुन का यथोचित सत्कार किया। उस राजकुमार को पैर धोने और आचमन करने के लिये जल प्रस्तुत करके उन्होंने अर्जुन को इन्द्र के भवन में पहुँचा दिया। इस प्रकार सत्कृत होकर अर्जुन अपने पिता इन्द्र के घर में रहने लगे। वहाँ वे पाण्डु पुत्र महान् अस्त्रों की शिक्षा उनके उपसंहार सहित ग्रहण करने लगे। अस्त्रों की शिक्षा ग्रहण कर उन्होंने अपने भाइयों को याद दिया, पर इन्द्र के आग्रह से वे वहाँ पाँच वर्ष तक सुख पूर्वक ठहरे रहे।

ततः शक्रोऽब्रवीत् पार्थं कृतास्त्रं काल आगते।
नृत्यं गीतं च कौन्तेय चित्रसेनादवाप्नुहि।। ५।।
वादित्रं देवविहितं नृलोके यन्न विद्यते।
तदर्जयस्व कौन्तेय श्रेयो वै ते भविष्यति।। ६।।
सखायं प्रददौ चास्य चित्रसेनं पुरन्दरः।
स तेन सह संगम्य रेमे पार्थो निरामयः।। ७।।

तब जिन्होंने अस्त्रों की शिक्षा ग्रहण करली थी, उन कुन्तीपुत्र से इन्द्र ने उपयुक्त समय पर कहा कि हे कौन्तेय! तुम यहाँ चित्रसेन से नृत्य और गान विद्या को ग्रहण कर लो। देवलोक की उस वाद्ययन्त्र विद्या को भी जो नरलोक में प्रचलित नहीं है, तुम सीख लो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। फिर इन्द्र ने उनके मित्र चित्रसेन को उन्हें संगीत की शिक्षा के लिये नियुक्त कर दिया। उनसे मिल कर अर्जुन बड़े प्रसन्न हुए। वे अपने दुःख और शोक से रहित हो गये।

स शिक्षितो नृत्यगुणाननेकान्
वादित्रगीतार्थगुणांश्च सर्वान्।
न शर्म लेभे परवीरहन्ता
भ्रातृन् स्मरन् मातरं चैव कुन्तीम्।। ८।।

वहाँ रहते हुए उस शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले अर्जुन ने नृत्य विद्या के अनेक गुण तथा गान विद्या और वाद्ययन्त्र विद्या के सारे गुण सीख लिये। फिर भी अपने भाइयों और माता कुन्ती को याद करते हुए वे सुख को नहीं प्राप्त कर पाते थे।

कदाचिदटमानस्तु महर्षिरुत लोमशः।
जगाम शक्रभवनं पुरन्दरदिदृक्षया।। ९।।
स समेत्य नमस्कृत्य देवराजं महामुनिः।
ददर्शार्धासनगतं पाण्डवं वासवस्य हि।। १०।।
ततः शक्राभ्यनुज्ञात आसने विष्टरोत्तरे।
निषसाद द्विजश्रेष्ठः पूज्यमानो महर्षिभिः।। ११।।
तस्य दृष्ट्वाभवद् बुद्धिः पार्थमिन्द्रासने स्थितम्।
कथं नु क्षत्रियः पार्थः शक्रासनमवाप्तवान्।। १२।।

एक बार लोमश मुनि घूमते हुए इन्द्र को देखने की इच्छा से उनके भवन में पहुँचे। वहाँ उन महामुनि ने देवराज से मिलकर उन्हें नमस्कार किया और देखा कि इन्द्र के आधे आसन पर उनके साथ पाण्डुपुत्र अर्जुन बैठे हुए हैं। तब वे श्रेष्ठ ब्राह्मण दूसरे महर्षियों से सत्कृत होकर इन्द्र की आज्ञा से एक दूसरे आसन पर, जिस पर कुश का आसन बिछा हुआ था, बैठे। अर्जुन को इन्द्रासन पर बैठे हुए देखकर वे विचारने लगे कि यह क्षत्रिय कुन्ती पुत्र इन्द्र के आसन पर कैसे पहुँच गया।

तस्य विज्ञाय संकल्पं शक्रो वृत्रनिषूदनः।
लोमशं प्रहसन् वाक्यमिदमाह शचीपतिः।। १३।।
महर्षे मम पुत्रोऽयं कुन्त्यां जातो महाभुजः।
अस्त्रहेतोरिह प्राप्तः कस्माच्चित् कारणान्तरात्।। १४।।
भवान स्मन्नियोगेन यातु तावन्महीतलम्।
काम्यके द्रक्ष्यसे वीरं निवसन्तं युधिष्ठिरम्।। १५।।
स वाच्यो मम संदेशाद् धर्मात्मा सत्यसंगरः।
नोत्कण्ठा फाल्गुने कार्या कृतास्त्रः शीघ्रमेष्यति।। १६।।

उनके विचारों को समझ कर शचीपति और वृत्रहन्ता इन्द्र ने हँसते हुए लोमश मुनि से यह कहा कि हे महर्षि! ये विशाल भुजाओं वाले कुन्ती से उत्पन्न मेरे पुत्र हैं। ये किसी कारण से अस्त्रों की प्राप्ति के लिये यहाँ आए हुए हैं। आप मेरे आग्रह से निचली भूमि पर जाइये। आप वहाँ काम्यकवन में वीर युधिष्ठिर को निवास करते हुए देखेंगे। उन धर्मात्मा और सत्यवादी से मेरा सन्देश कहना कि वे अर्जुन के लिये चिन्ता न करें। अस्त्रों की प्राप्ति के पश्चात् वे शीघ्र ही आयेंगे।

तथेति सम्प्रतिज्ञाय लोमशः सुमहातपाः।
काम्यकं वनमुद्दिश्य समुपायान्महीतलम्॥ १७॥
ददर्श तत्र कौन्तेयं धर्मराजमरिंदमम्।
तापसैर्भ्रातृभिश्चैव सर्वतः परिवारितम्॥ १८॥

तब बहुत अच्छा यह कह कर महातपस्वी लोमश मुनि काम्यकवन में जाने के लिये निचली भूमि पर आये। वहाँ उन्होंने शत्रुओं को नष्ट करने वाले कुन्तीपुत्र धर्मराज को अपने भाइयों तथा तपस्वियों से सब तरफ से घिरे हुए बैठे देखा।

बाईसवाँ अध्याय : भीम, युधिष्ठिर संवाद। बृहदश्व मुनि का युधिष्ठिर को द्यूतविद्या सिखाना।

अस्त्रहेतोर्गते पार्थे शक्रलोकं महात्मनि।
आवसन् कृष्णया सार्धं काम्यके भरतर्षभाः॥ १॥
ततः कदाचिदेकान्ते विविक्त इव शाद्वले।
दुःखार्ता भरतश्रेष्ठा निषेदुः सह कृष्णया॥ २॥
धनंजयं शोचमानाः साश्रुकण्ठाः सुदुःखिताः।
तद्वियोगार्दितान् सर्वाञ्छोकः समभिपुप्लुवे॥ ३॥
धनंजयवियोगाच्च राज्यभ्रंशाच्च दुःखिताः।
अथ भीमो महाबाहुर्युधिष्ठिरमभाषत॥ ४॥

महात्मा अर्जुन के अस्त्रों की प्राप्ति के लिये इन्द्रलोक को जाने पर भरतश्रेष्ठ पाण्डव लोग द्रौपदी के साथ काम्यक वन में रहने लगे। तब एक दिन किसी एकान्त और पवित्र घास वाले स्थान पर द्रौपदी के साथ बैठे हुए वे भरतश्रेष्ठ दुःख से बेचैन हो रहे थे। वे अर्जुन के लिये शोकाकुल थे, उनके कण्ठ आँसुओं से भरे हुए थे। वे बड़े दुःखी थे। अर्जुन के वियोग से पीड़ित उन सबको शोक सागर ने डुबाया हुआ था। वे राज्य के छिन जाने और अर्जुन के वियोग में दुःखी थे, तब महाबाहु भीम ने युधिष्ठिर से कहा कि–

निदेशात् ते महाराज गतोऽसौ भरतर्षभः।
अर्जुनः पाण्डुपुत्राणां यस्मिन् प्राणाः प्रतिष्ठिताः॥ ५॥
यस्मिन् विनष्टे पाञ्चालाः सह पुत्रैस्तथा वयम्।
सात्यकिर्वासुदेवश्च विनश्येयुर्न संशयः॥ ६॥
योऽसौ गच्छति धर्मात्मा बहून् क्लेशान् विचिन्तयन्।
भवन्नियोगाद् बीभत्सुस्ततो दुःखतरं नु किम्॥ ७॥
यस्य बाहू समाश्रित्य वयं सर्वे महात्मनः।
मन्यामहे जितानाजौ परान् प्राप्तां च मेदिनीम्॥ ८॥

हे महाराज! आपकी आज्ञा से वह भरतश्रेष्ठ अर्जुन चला गया, जिसमें सारे पाण्डुपुत्रों के प्राण विद्यमान हैं। उसके नष्ट हो जाने पर पुत्रों के सहित पांचाल, हम पाण्डव, सात्यकि और श्रीकृष्ण सब नष्ट हो जायेंगे इसमें संशय नहीं है। बहुत सारे कष्टों का चिन्तन करते हुए भी धर्मात्मा अर्जुन जो आपके आदेश से चला गया, इससे बढ़कर दुःख क्या होगा? उस अर्जुन की भुजाओं का सहारा लेकर ही हम सब महात्मा लोग युद्ध में शत्रुओं को जीता हुआ और अपनी भूमि को प्राप्त किया हुआ समझते हैं।

यस्य प्रभावान्न मया सभामध्ये धनुष्मतः।
नीता लोकममुं सर्वे धार्तराष्ट्राः ससौबलाः॥ ९॥
ते वयं बाहुबलिनः क्रोधमुत्थितमात्मनः।
सहामहे भवन्मूलं वासुदेवेन पालिताः॥ १०॥
वयं हि सह कृष्णेन हत्वा कर्णमुखान् परान्।
स्वबाहुविजितां कृत्स्नां प्रशासेम वसुन्धराम्॥ ११॥
भवतो द्यूतदोषेण सर्वे वयमुपप्लुताः।
अहीनपौरुषा बाला बलिभिर्बलवत्तराः॥ १२॥

उसी धनुर्धारी अर्जुन के प्रभाव से मैंने उस समय सभा में शकुनि सहित सारे धृतराष्ट्र के पुत्रों को परलोक में नहीं भेज दिया। श्रीकृष्ण द्वारा रक्षा किये हुए हम सब बाहुबल से युक्त हैं पर फिर भी अपने बढ़ते हुए क्रोध को आपके कारण से सहन कर रहे हैं। हम श्रीकृष्ण जी के साथ कर्ण आदि शत्रुओं

को मारकर अपने बाहुबल से जीती हुई सारी भूमि का शासन कर सकते हैं। आपके जूए के दोष से ही हम सब पुरुषार्थ से हीन न होते हुए भी दीन हो गये हैं और वे दुर्योधन आदि मूर्ख हम बलवानों से अधिक बलवान् बन गये हैं।

द्यूतप्रियेण राजेन्द्र तथा तद् भवता कृतम्।
प्रायेणाज्ञातचर्यायां वयं सर्वे निपातिताः॥ १३॥
न तं देशं प्रपश्यामि यत्र सोऽस्मान् सुदुर्जनः।
न विज्ञास्यति दुष्टात्मा चारैरिति सुयोधनः॥ १४॥
अधिगम्य च सर्वान् नो वनवासमिमं ततः।
प्रव्राजयिष्यति पुनर्निकृत्याधमपूरुषः॥ १५॥

हे राजेन्द्र! आपने अपने इस जूए के प्रति प्रेम से ऐसा कर दिया कि हम सबको प्रायः अज्ञातवास के संकट में डाल दिया है। मैं ऐसा कोई स्थान नहीं देखता, जहाँ रहते हुए वह अत्यन्त दुर्जन दुष्टात्मा दुर्योधन अपने गुप्तचरों के द्वारा हमारा पता न लगा ले। हमें पहचान कर वह अधम पुरुष अपनी कपटवाली नीति से हमें फिर इस वनवास में भिजवा देगा।

यद्यस्मानभिगच्छेत पापः स हि कथंचन।
अज्ञातचर्यामुत्तीर्णान् दृष्ट्वा च पुनराह्वयेत्॥ १६॥
द्यूतेन ते महाराज पुनर्द्यूतमवर्तत।
भवांश्च पुनराहूतो द्यूते नैवापनेष्यति॥ १७॥
स तथाक्षेषु कुशलो निश्चितो गतचेतनः।
चरिष्यसि महाराज वनेषु वसतीः पुनः॥ १८॥

यदि हम अज्ञातवास को पार कर गए और वह पापी दुर्योधन हमारा पता किसी प्रकार भी न लगा सके, तो वह आपको फिर जूआ खेलने के लिये बुलायेगा। हे महाराज! एक जूए से निकल कर आप फिर दूसरे जूए में लग गये थे और आपको यदि फिर जूए के लिये बुलाया जाये तो उससे पीछे नहीं हटेंगे। इस बात को आप निश्चित रूप से जानते हैं कि वह मूर्ख शकुनि जूए में कितना कुशल है, फिर भी हे महाराज! आप उससे हारकर पुनः वनवास में विचरेंगे।

एवं बुवाणं भीमं तु धर्मराजो युधिष्ठिरः।
उवाच सान्त्वयन् राजा मूर्ध्न्युपाघ्राय पाण्डवम्॥ १९॥
असंशयं महाबाहो हनिष्यसि सुयोधनम्।
वर्षात् त्रयोदशादूर्ध्वं सह गाण्डीवधन्वना॥ २०॥
अन्तरेणापि कौन्तेय निकृतिं पापनिश्चयम्।
हन्ता त्वमसि दुर्धर्ष सानुबन्धं सुयोधनम्॥ २१॥

इस प्रकार कहते हुए पाण्डुपुत्र भीम को तब धर्मराज युधिष्ठिर ने सान्त्वना देते हुए, उनके सिर को सूँघकर यह कहा कि हे महाबाहु! इसमें संशय नहीं है कि तुम तेरहवें वर्ष के पश्चात् गाण्डीवधारी अर्जुन के साथ दुर्योधन को मार दोगे। हे दुर्धर्ष कुन्तीपुत्र! तुम बिना छल कपट के भी उस पापी दुर्योधन को उसके संबन्धियों सहित मार सकते हो।

एवं ब्रुवति भीमं तु धर्मराजे युधिष्ठिरे।
आजगाम महाभागो बृहदश्वो महानृषिः॥ २२॥
तमभिप्रेक्ष्य धर्मात्मा सम्प्राप्तं धर्मचारिणम्।
शास्त्रवन्मधुपर्केण पूजयामास धर्मराट्॥ २३॥
आश्वस्तं चैनमासीनमुपासीनो युधिष्ठिरः।
अभिप्रेक्ष्य महाबाहुः कृपणं बह्वभाषत॥ २४॥

धर्मराज युधिष्ठिर जब भीम से ऐसा कह ही रहे थे कि तभी महाभाग महर्षि वृहदश्व वहाँ आ पहुँचे। उन धर्मात्मा को आया हुआ देखकर धर्मात्मा और धर्मराज युधिष्ठिर ने शास्त्रीय विधि से मधुपर्क के द्वारा उनका सत्कार किया। जब वे विश्राम कर आराम से बैठ गये, तब महाबाहु युधिष्ठिर ने उनके समीप बैठकर उनकी तरफ देखते हुए बड़ी दीनता के साथ उनसे कहा कि–

अक्षद्यूते च भगवन् धनं राज्यं च मे हृतम्।
आहूय निकृतिप्रज्ञैः कितवैरक्षकोविदैः॥ २५॥
अनक्षज्ञस्य हि सतो निकृत्या पापनिश्चयैः।
भार्या च मे सभां नीता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥ २६॥
पुनर्द्यूतेन मां जित्वा वनवासं सुदारुणम्।
प्राव्राजयन् महारण्यमजिनैः परिवारितम्॥ २७॥
अहं वने दुर्वसतीर्वसन् परमदुःखितः।
अक्षद्यूताधिकारे च गिरः शृण्वन् सुदारुणाः॥ २८॥
आर्तानां सुहृदां वाचो द्यूतप्रभृति शंसताम्।
अहं हृदि श्रिताः स्मृत्वा सर्वरात्रीर्विचिन्तयन्॥ २९॥

महाराज! धोखा देने में कुशल धूर्त जुआरियों ने पासा फेंककर खेले जाने वाले जूए के लिये मुझे बुलाकर मेरे धन और राज्य का अपहरण कर लिया है। मुझे जूआ खेलना नहीं आता। उन पापपूर्ण विचार वालों ने मेरी प्राणों से भी बढ़कर सम्मानित पत्नी को सभा में लाकर अपशब्दों से उसका अपमान

किया। एक बार जूए के दुष्प्रभाव से छूट जाने पर उन्होंने मुझे फिर दुबारा जूए में जीता और मृगचर्म पहनाकर इस महान् वन में अत्यन्त कष्टदायक निवास करने के लिये भेज दिया। मैं यहाँ वन में बड़े कष्टों के साथ रहता हूँ और बड़ा दुःखी हूँ। वहाँ द्यूतसभा में मैंने बड़ी कठोर बातें सुनी। मैं अपने दुःखी बन्धुओं की जूए आदि के बारे में कही जाने वाली बातें भी सुनता हूँ। वे सब मेरे हृदय में विद्यमान हैं, उन्हें याद करता हुआ मैं सारी रात सोचता रहता हूँ।

यस्मिंश्चैव समस्तानां प्राणा गाण्डीवधन्वनि।
विना महात्मना तेन गतसत्त्व इवाभवम्॥ ३०॥
कदा द्रक्ष्यामि बीभत्सुं कृतास्त्रं पुनरागतम्।
प्रियवादिनमक्षुद्रं दयायुक्तमतन्द्रितः॥ ३१॥
अस्ति राजा मया कश्चिदल्पभाग्यतरो भुवि।
भवता दृष्टपूर्वो वा श्रुतपूर्वोऽपि वा क्वचित्।
न मत्तो दुःखिततरः पुमानस्तीति मे मतिः॥ ३२॥

जिस गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन में हम सबके प्राण रहते हैं, उस महात्मा के बिना तो अब मैं निष्प्राण सा हो गया हूँ। मैं सदा बिना आलस्य के यही सोचता रहता हूँ कि उस महान् प्रियवादी, दयालु अर्जुन को अस्त्र विद्या ग्रहण कर वापिस आया हुआ कब देखूँगा। क्या मुझसे भी अधिक भाग्यहीन कोई राजा इस संसार में है? आपने किसी को, पहले देखा है? या किसी के बारे में पहले सुना है? मेरा विचार है कि मुझ से अधिक दुःखी पुरुष कोई नहीं है।

बृहदश्व उवाच

यद् ब्रवीषि महाराज न मत्तो विद्यते क्वचित्।
अल्पभाग्यतरः कश्चित् पुमानस्तीति पाण्डव॥ ३३॥
दुःखमेतादृशं प्राप्तो नलः परपुरंजयः।
देवनेन नरश्रेष्ठ सभार्यो भरतर्षभ॥ ३४॥
एकाकिनैव सुमहन्नलेन पृथिवीपते।
दुःखमासादितं घोरं प्राप्तश्चाभ्युदयः पुनः॥ ३५॥

तब बृहदश्व जी ने कहा कि हे पाण्डुपुत्र महाराज! आप जो कहते हैं कि मुझ से कम भाग्यवाला पुरुष कोई नहीं है, इसी प्रकार का दुःख शत्रुओं के नगरों पर विजय पाने वाले नल को भी जूए के कारण अपनी पत्नी सहित हे भरत श्रेष्ठ पुरुषोत्तम! प्राप्त हुआ था। हे पृथिवीपति राजा नल ने तो अकेले ही बड़ा भयंकर और महान् दुःख भोगा था और फिर अभ्युदय को प्राप्त किया था।

त्वं पुनर्भ्रातृसहितः कृष्णया चैव पाण्डव।
रमसेऽस्मिन् महारण्ये धर्ममेवानुचिन्तयन्॥ ३६॥
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः।
नित्यमन्वास्यसे राजंस्तत्र का परिदेवना॥ ३७॥

तुम तो हे पाण्डुपुत्र! अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ इस महान् वन में धर्म का पालन करते हुए आराम से रहते हो। महाभाग्यशाली, वेद और वेदांगों के ज्ञाता ब्राह्मण तुम्हारे साथ सदा रहते हैं। हे राजन्! फिर शोक की क्या बात है?

अस्थिरत्वं च संचिन्त्य पुरुषार्थस्य नित्यदा।
तस्योदये व्यये चापि न चिन्तयितुमर्हसि॥ ३८॥
विषमावस्थिते दैवे पौरुषेऽफलतां गते।
विषादयन्ति नात्मानं सत्त्वोपाश्रयिणो नराः॥ ३९॥

मनुष्य को प्राप्त होने वाले सारे पदार्थ सदा अस्थायी होते हैं। यह सोचकर उनके प्राप्त होने और नष्ट हो जाने के लिये तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। यदि परमात्मा की इच्छा प्रतिकूल हो और पुरुषार्थ निष्फल हो रहा हो, तब भी सत्वगुण का आश्रय लेने वाले पुरुष मन में विषाद को नहीं लाते हैं।

भयात् त्रस्यसि यच्च त्वमाह्वयिष्यति मां पुनः।
अक्षज्ञ इति तत् तेऽहं नाशयिष्यामि पार्थिव॥ ४०॥
वेदाक्षहृदयं कृत्स्नमहं सत्यपराक्रम।
उपपद्यस्व कौन्तेय प्रसन्नोऽहं ब्रवीमि ते॥ ४१॥
ततो हृष्टमना राजा बृहदश्वमुवाच ह।
भगवन्नक्षहृदयं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ४२॥
ततोऽक्षहृदयं प्रादात् पाण्डवाय महात्मने।

जो तुम इस भय से चिन्तित हो कि तुम्हें द्यूतविद्या का पण्डित फिर जूआ खेलने के लिये बुला लेगा तो हे राजा! तुम्हारा यह भय मैं दूर कर दूँगा। हे सत्यपराक्रमी कुन्तीपुत्र! मैं द्यूतविद्या के सारे रहस्यों को जानता हूँ। मैं तुमसे प्रसन्न होकर कह रहा हूँ कि तुम उन्हें मुझ से सीख लो। तब प्रसन्न होकर राजा युधिष्ठिर ने बृहदश्व जी से कहा कि हे भगवन्! मैं द्यूतविद्या के रहस्यों को वास्तविक रूप से जानना चाहता हूँ। तब बृहदश्व जी ने उस पाण्डुपुत्र महात्मा को द्यूतविद्या के रहस्य सिखाये।

बृहदश्वे गते पार्थमश्रौषीत् सव्यसाचिनम्॥ ४३॥
ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यः सम्पतद्भ्यस्ततस्ततः।

तीर्थशैलवनेभ्यश्च समेतेभ्यो दृढव्रतः॥ ४४॥
इति पार्थो महाबाहुर्दुरापं तप आस्थितः।
न तथा दृष्टपूर्वोऽन्यः कश्चिदुग्रतपा इति॥ ४५॥
यथा धनंजयः पार्थस्तपस्वी नियतव्रतः।
मुनिरेकचरः श्रीमान् धर्मो विग्रहवानिव॥ ४६॥

बृहदश्व मुनि के चले जाने पर दृढ़व्रती राजा युधिष्ठिर ने इधर उधर से आने वाले ब्राह्मणों और तपस्वियों से जो तीर्थों, वनों और पर्वतों से आ रहे थे, कुन्तीपुत्र अर्जुन के विषय में सुना कि वे महाबाहु अर्जुन बड़ी दुष्कर तपस्या में स्थित हैं। उन जैसा कठोर तपस्वी पहले कभी नहीं देखा गया है। कुन्तीपुत्र अर्जुन जिस प्रकार नियमों और व्रतों का पालन करते हुए तपस्वी मुनि के रूप में अकेले ही रहते हैं, उससे वे श्रीमान् धर्म के ही स्वरूप जान पड़ते हैं।

तेईसवाँ अध्याय : महर्षि लोमश द्वारा अर्जुन का कुशल समाचार। पाण्डवों की यात्रा

आक्षिप्तसूत्रा मणयश्छिन्नपक्षा इव द्विजाः।
अप्रीतमनसः सर्वे बभूवुरथ पाण्डवाः॥ १॥
वनं तु तदभूत् तेन हीनमक्लिष्टकर्मणा।
कुबेरेण यथा हीनं वनं चैत्ररथं तथा॥ २॥

अर्जुन के बिना पाण्डवों की वही अवस्था हो रही थी, जैसे माला का धागा टूटने पर माणियाँ, पंख कटने पर पक्षी, बेहाल हो जाते हैं। उस अनायास ही महान् कर्म करने वाले अर्जुन के बिना उन्हें वह वन वैसे ही शोभाशून्य लगता था, जैसे कुबेर के बिना उसका चैत्ररथ नाम का वन हो।

पाँचाली उवाच

तमृते पाण्डवश्रेष्ठ वनं न प्रतिभाति मे।
शून्यामिव प्रपश्यामि तत्र तत्र महीमिमाम्॥ ३॥
बह्वाश्चर्यमिदं चापि वनं कुसुमितद्रुमम्।
न तथा रमणीयं वै तमृते सव्यसाचिनम्॥ ४॥
नीलाम्बुदसमप्रख्यं मत्तमातङ्गगामिनम्।
तमृते पुण्डरीकाक्षं काम्यकं नातिभाति मे॥ ५॥
यस्य वा धनुषो घोषः श्रूयते चाशनिस्वनः।
न लभे शर्म वै राजन् स्मरन्ती सव्यसाचिनम्॥ ६॥

तब द्रौपदी युधिष्ठिर से बोली कि हे पाण्डवश्रेष्ठ! उस अर्जुन के बिना मुझे यह वन अच्छा नहीं लगता। मैं जहाँ जहाँ भी दृष्टि डालती हूँ, मुझे यह भूमि सूनी सी दिखाई देती है। बड़े आश्चर्य की बात है कि यद्यपि यह वन फूलों वाले वृक्षों से भरा हुआ है पर फिर भी अर्जुन के बिना वैसा सुन्दर नहीं लग रहा है। उस नीले बादलों के समान कान्ति वाले, मस्त हाथी के समान चाल वाले कमलनेत्र अर्जुन के बिना यह काम्यक मुझे बहुत अच्छा नहीं लगता। जिसके धनुष की ध्वनि बिजली की गड़गड़ाहट की तरह सुनाई देती थी, उस अर्जुन को याद करते हुए हे राजन्! मुझे शान्ति नहीं मिलती।

भीम उवाच

मनः प्रीतिकरं भद्रं यद् ब्रवीषि सुमध्यमे।
तन्मे प्रीणाति हृदयममृतप्राशनोपमम्॥ ७॥
यस्य दीर्घौ समौ पीनौ भुजौ परिघसंनिभौ।
मौर्वीकृतकिणौ वृत्तौ खड्गायुधधनुर्धरौ॥ ८॥
निष्काङ्गदकृतापीडौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ।
तमृते पुरुषव्याघ्रं नष्टसूर्यमिवाम्बरम्॥ ९॥

तब भीमसेन ने कहा कि हे भद्रे सुमध्यमे! तुम मेरे मन को प्रसन्न करने वाली बात कह रही हो। तुम्हारी बात मुझे अमृतपान के समान प्रसन्न कर रही है। जिसकी दोनों भुजाएँ परिघ के समान मोटी, समानरूप से लम्बी, धनुष की प्रत्यंचा की रगड़ के चिह्न से चिह्नित, गोलाकार, खड्ग आदि शस्त्रों और धनुष को धारण करने वाली हैं, जो सोने के बाजूबन्दों से सुशोभित और पाँच फनों वाले दो साँपों के समान प्रतीत होती हैं उस पुरुषव्याघ्र के बिना यह वन सूर्यहीन आकाश के समान जान पड़ता है।

यमाश्रित्य महाबाहुं पाञ्चालाः कुरवस्तथा।
सुराणामपि मत्तानां पृतनासु न बिभ्यति॥ १०॥
यस्य बाहू समाश्रित्य वयं सर्वे महात्मनः।
मन्यामहे जितानाजौ परान् प्राप्तां च मेदिनीम्॥ ११॥
तमृते फाल्गुनं वीरं न लभे काम्यके धृतिम्।
पश्यामि च दिशः सर्वास्तिमिरेणावृता इव॥ १२॥

जिस महाबाहु का आश्रय लेकर पांचाल और कुरुवंश के वीर मस्त देवताओं की सेनाओं से भी

नहीं डरते। जिसकी भुजाओं का सहारा लेकर हम सारे मनस्वी युद्धक्षेत्र में शत्रुओं को जीता हुआ और उनकी भूमि को अपने अधिकार में आया हुआ समझते हैं उस वीर अर्जुन के बिना मुझे इस काम्यक वन में धैर्य प्राप्त नहीं होता। मुझे सारी दिशायें अन्धकार से ढकी हुई सी प्रतीत हो रही हैं।

ततोऽब्रवीत् साश्रुकण्ठो नकुलः पाण्डुनन्दनः।
उदीचीं यो दिशं गत्वा जित्वा युधि महाबलान्॥ १३॥
गन्धार्वमुख्याञ्छतशो हयाँल्लेभे महाद्युतिः।
राज्ञे तित्तिरिकल्माषाञ्छ्रीमतोऽनिलरंहसः॥ १४॥
प्रादाद् भ्रात्रे प्रियः प्रेम्णा राजसूये महाक्रतौ।
तमृते भीमधन्वानं भीमादवरजं वने॥ १५॥
कामये काम्यके वासं नेदानीममरोपमम्।

तब पाण्डुपुत्र नकुल आँसू भरे गले से बोले कि जो महातेजस्वी उत्तर दिशा में जाकर और वहाँ महाबली गन्धर्वों के नेताओं को जीतकर उनसे सैकड़ों घोड़ों को प्राप्त करके लाया था। जिसने प्रिय भाई राजा युधिष्ठिर के राजसूय महायज्ञ में प्रेमपूर्वक तित्तिरि और कल्माष नाम के सुन्दर और वायु के समान वेगवान् घोड़े भेंट किये थे। उस भयंकर धनुष को धारण करने वाले, देवताओं के समान भीम के छोटे भाई अर्जुन के बिना अब इस काम्यक वन में निवास करना अच्छा नहीं लगता।

सहदेव उवाच

यः समेतान् मृधो जित्वा यादवानमितद्युतिः॥ १६॥
सुभद्रामाजहारैको वासुदेवस्य सम्मते।
तस्य जिष्णोर्वृसीं दृष्ट्वा शून्यामिव निवेशने॥ १७॥
हृदयं मे महाराज न शाम्यति कदाचन।
वनादस्माद् विवासं तु रोचयेऽहमरिंदम॥ १८॥
न हि नस्तमृते वीरं रमणीयमिदं वनम्।

जिस अमितकान्ति वाले ने श्रीकृष्ण जी की सम्मति से अकेले ही युद्ध के लिये एकत्र हुए यादवों को नीचा दिखाकर सुभद्रा को प्राप्त किया था, उस अर्जुन की शय्या को अपनी कुटिया में सूना देखकर हे महाराज! मेरा हृदय कभी शान्ति प्राप्त नहीं करता और इस वन से चल पड़ना अच्छा लगता है। उस वीर के बिना यह वन रमणीय नहीं है।

लोमशः स महातेजा ऋषिस्तत्राजगाम ह॥ १९॥
तं पाण्डवाग्रजो राजा सगणो ब्राह्मणाश्च ते।
उपातिष्ठन्महाभागं दिवि शक्रमिवामराः॥ २०॥
समभ्यर्च्य यथान्यायं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
पप्रच्छागमने हेतुमटने च प्रयोजनम्॥ २१॥
स पृष्टः पाण्डुपुत्रेण प्रीयमाणो महामनाः।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा हर्षयन्निव पाण्डवान्॥ २२॥

पाण्डवों के इस प्रकार शोकाकुल होते हुए तभी महातेजस्वी लोमश ऋषि वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर पाण्डवों के बड़े भाई युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित तथा उनके साथ विद्यमान ब्राह्मण लोग भी उन महाभाग के लिये उठकर उसी प्रकार खड़े हो गये, जैसे इन्द्रलोक में इन्द्र के लिये देवता लोग खड़े हो जाते हैं। उनका यथोचित सत्कार कर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने उनसे वनभ्रमण और वहाँ आने का प्रयोजन पूछा। पाण्डुपुत्र के पूछने पर प्रसन्न होते हुए महामना ऋषि ने मधुर वाणी से पाण्डवों को प्रसन्न करते हुए कहा कि–

संचरन्नस्मि कौन्तेय सर्वाल्लौकान् यदृच्छया।
गतः शक्रस्य भवनं तत्रापश्यं सुरेश्वरम्॥ २३॥
तव च भ्रातरं वीरमपश्यं सव्यसाचिनम्।
शक्रस्यार्धासनगतं तत्र मे विस्मयो महान्॥ २४॥
आह मां तत्र देवेशो गच्छ पाण्डुसुतान् प्रति।
सोऽहमभ्यागतः क्षिप्रं दिदृक्षुस्त्वां सहानुजम्॥ २५॥

हे कुन्तीपुत्र! मैं अपनी इच्छा से ही सारे देशों में घूमता रहता हूँ। मैं एक दिन इन्द्र के भवन में गया था और वहाँ मैं इन्द्र से मिला। वहाँ मैंने तुम्हारे भाई वीर अर्जुन को भी देखा जो इन्द्र के आधे आसन पर बैठे हुए थे। तब मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ इन्द्र ने मुझ से कहा कि तुम पाण्डुपुत्र के पास जाओ। तब मैं महात्मा इन्द्र के तथा अर्जुन के कहने से शीघ्रतापूर्वक भाइयों सहित आपसे मिलने आया हूँ।

वचनात् पुरुहूतस्य पार्थस्य च महात्मनः।
आख्यास्ये ते प्रियं तात महत् पाण्डवनन्दन॥ २६॥
ऋषिभिः सहितो राजन् कृष्णया चैव तच्छृणु।
यत् त्वयोक्तो महाबाहुरस्त्रार्थं भरतर्षभ॥ २७॥
तदस्त्रमाप्तं पार्थेन रुद्रादप्रतिमं विभो।
यमात् कुबेराद् वरुणादिन्द्राच्च कुरुनन्दन॥ २८॥
अस्त्राण्यधीतवान् पार्थो दिव्यान्यमितविक्रमः।
विश्वावसोस्तु तनयाद् गीतं नृत्यं च साम च॥ २९॥
वादित्रं च यथान्यायं प्रत्यविन्दद् यथाविधिः।

हे पाण्डुपुत्र तात! मैं तुम्हारी महान् प्रिय बात तुम्हें बताऊँगा। हे राजन्! तुम ऋषियों और द्रौपदी के साथ उसे सुनो। हे भरतश्रेष्ठ! तुमने उस महाबाहु को जो अस्त्रों की प्राप्ति के लिये कहा था, अर्जुन ने भगवान् शिव से वह अद्वितीय अस्त्र प्राप्त कर लिया है। उस अमित पराक्रमी कुन्तीपुत्र ने हे कुरुनन्दन! यम, कुबेर, वरुण, और इन्द्र से भी दिव्य अस्त्रों का अध्ययन कर लिया है। उसने विश्वावसु के पुत्र से गीत, नृत्य, सामगान और वाद्ययन्त्र कला की भी यथाविधि शिक्षा प्राप्त कर ली है।

सुखं वसति बीभत्सुरनुजस्यानुजस्तव॥ ३०॥
यदर्थं मां सुरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत्।
तच्च ते कथयिष्यामि युधिष्ठिर निबोध मे॥ ३१॥
ब्रूयाद् -युधिष्ठिरं तत्र वचनान्मे द्विजोत्तम।
आगमिष्यति ते भ्राता कृतास्त्रः क्षिप्रमर्जुनः॥ ३२॥

तुम्हारे छोटे भाई भीम के छोटे भाई अर्जुन इस समय वहाँ सुख से रह रहे हैं। हे युधिष्ठिर! देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र ने तुम्हे कहने के लिये जो सन्देश दिया है, वह मैं अभी तुमसे कहता हूँ। तुम उसे समझो। उन्होंने मुझसे कहा है कि हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! तुम मेरी तरफ से युधिष्ठिर से यह बात कहना कि तुम्हारे भाई अर्जुन अस्त्रों का पूरा ज्ञान कर जल्दी ही तुम्हारे पास आ जायेंगे।

युधिष्ठिर उवाच

न हर्षात् सम्प्रपश्यामि वाक्यस्यास्योत्तरं क्वचित्।
भवता संगमो यस्य भ्राता चैव धनंजयः॥ ३३॥
वासवः स्मरते यस्य को नामाभ्यधिकस्ततः।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि मुझे आपके वचनों से इतना हर्ष हो रहा है कि मैं इनका कोई उत्तर नहीं दे पा रहा हूँ। जिसे आपका संग प्राप्त हो, जिसके अर्जुन जैसा भाई हो और जिसे इन्द्र याद करे, उससे अधिक संसार में कौन है?

गमने कृतबुद्धिं तु पाण्डवं लोमशोऽब्रवीत्॥ ३४॥
लघुर्भव महाराज लघुः स्वैरं गमिष्यसि।

युधिष्ठिर उवाच

भिक्षाभुजो निवर्तन्तां ब्राह्मणा यतयश्च ये॥ ३५॥
क्षुत्तृडध्वश्रमायासशीतार्तिमसहिष्णवः ।
ये चाप्यनुरताः पौरा राजभक्तिपुरःसराः॥ ३६॥
धृतराष्ट्रं महाराजमभिगच्छन्तु ते च वै।
स दास्यति यथाकालमुचिता यस्य या भृतिः॥ ३७॥
स चेद् यथोचितां वृत्तिं न दद्यान्मनुजेश्वरः।
अस्मत्प्रियहितार्थाय पाञ्चाल्यो वः प्रदास्यति॥ ३८॥

तब यात्रा के लिये जिन्होंने निश्चित विचार कर लिया था, उन युधिष्ठिर से लोमश मुनि ने कहा कि महाराज! आप लोगों से हल्के हो जाइये अर्थात् थोड़े लोगों को साथ रखिये। थोड़े साथी होने पर आप स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण कर सकेंगे। तब युधिष्ठिर ने कहा कि जो भिक्षाभोजी सन्यासी हैं, ब्राह्मण हैं तथा जो भूख प्यास रास्ते की थकावट और सर्दी की पीड़ा को न सहन कर सकें वे लौट जायें। जो (पुर वासी) मेरे प्रेम और राजभक्ति के कारण मेरे पीछे चले आये थे, वे महाराज धृतराष्ट्र के पास चले जायें, वे उनके लिये यथासमय उचित आजीविका का प्रबन्ध कर देंगे। यदि वे महाराज उचित आजीविका की व्यवस्था न करें तो हमारा प्रिय और हित करने के लिये पांचाल नरेश अवश्य ही तुम्हारे लिये जीविका का प्रबन्ध कर देंगे।

ततो भूयिष्ठशः पौरा गुरुभारप्रपीडिताः।
विप्राश्च यतयो मुख्या जग्मुर्नागपुरं प्रति॥ ३९॥
तान् सर्वान् धर्मराजस्य प्रेम्णा राजाम्बिकासुतः।
प्रतिजग्राह विधिवद् धनैश्च समतर्पयत्॥ ४०॥
ततः कुन्तीसुतो राजा लघुभिर्ब्राह्मणैः सह।
लोमशेन च सुप्रीतस्त्रिरात्रं काम्यकेऽवसत्॥ ४१॥

तब भारी मानसिक बोझ से पीड़ित बहुत से पुरवासी ब्राह्मण और सन्यासी हस्तिनापुर चले गये। उन सबको अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्र ने धर्मराज युधिष्ठिर के प्रेम के कारण विधिपूर्वक अपनाया और धन देकर उन्हें तृप्त किया। उसके पश्चात् कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर थोड़े से ब्राह्मणों के साथ और लोमश मुनि के साथ प्रसन्नतापूर्वक तीन रात्रि तक काम्यक वन में रहे।

ततः स पाण्डवश्रेष्ठो भ्रातृभिः सहितो वशी।
द्रौपद्या चानवद्याङ्गया गमनाय मनो दधो॥ ४२॥
धौम्येन सहिता वीरास्तथा तैर्वनवासिभिः।
मार्गशीर्ष्यामतीतायां पुष्येण प्रययुस्ततः॥ ४३॥
इन्द्रसेनादिभिर्भृत्यै रथैः परिचतुर्दशैः।
महानसव्यापृतैश्च तथान्यैः परिचारकैः॥ ४४॥

तब मन को वश में रखने वाले उस पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने अपने भाइयों तथा सुन्दरी द्रौपदी के साथ

यात्रा करने के लिये अपने मन को तैयार किया। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के व्यतीत होने पर पुष्य नक्षत्र में वे वीर पाण्डव धौम्य पुरोहित तथा वनवासी तपस्वियों के साथ यात्रा के लिये निकले। चौदह से अधिक रथ, इन्द्रसेन आदि भृत्य तथा रसोई के काम में लगे हुए दूसरे सेवक भी उनके साथ थे।

चौबीसवाँ अध्याय : पाण्डवों का सुबाहु के राज्य में पहुँचना।

लोमश उवाच

एते कनखला राजन्नृषीणां दयिता नगाः।
एषा प्रकाशते गङ्गा युधिष्ठिर महानदी॥ १॥
सनत्कुमारो भगवानत्र सिद्धिमगात् पुरा।
अपां ह्रदं च पुण्याख्यं भृगुतुङ्गं च पर्वतम्॥ २॥
उष्णीगङ्गे च कौन्तेय सामात्यः समुपस्पृश।
आश्रमः स्थूलशिरसो रमणीयः प्रकाशते॥ ३॥
अत्र मानं च कौन्तेय क्रोधं चैव विवर्जय।
एष रैभ्याश्रमः श्रीमान् पाण्डवेय प्रकाशते॥ ४॥

जब पाण्डव लोग यात्रा करते हुए हिमालय पर्वत के समीप पहुँचे तब लोमश मुनि ने उनसे कहा कि हे राजन्! ये ऋषियों को प्रिय लगने वाली कनखल की पर्वत मालाएँ हैं। यह महानदी गंगा सुशोभित हो रही है। हे युधिष्ठिर! पहले यहीं भगवान् सनत्कुमार ने सिद्धि को प्राप्त किया था। यह पवित्र जल का सरोवर है, यह भृगुतुंग पर्वत है। हे कौन्तेय! यह उष्णी गंगा है। तुम मन्त्रियों सहित यहाँ स्नान करो। यह स्थूलशिरा मुनि का रमणीय आश्रम सुशोभित हो रहा है। हे कुन्तीपुत्र! यहाँ तुम अभिमान और क्रोध का त्याग करो। हे पाण्डुपुत्र! यह रैभ्य का सुन्दर आश्रम प्रकाशित हो रहा है।

उशीरबीजं मैनाकं गिरिं श्वेतं च भारत।
समतीतोऽसि कौन्तेय कालशैलं च पार्थिव॥ ५॥

हे भारत! कुन्तीपुत्र राजन्! तुमने अब उशीर बीज मैनाक पर्वत, श्वेत तथा कालशैल पर्वतों को पार कर लिया है।

युधिष्ठिर उवाच

संनिवर्तय कौन्तेय क्षुत्पिपासे बलाश्रयात्।
ततो बलं च दाक्ष्यं च संश्रयस्व वृकोदर॥ ६॥
बुद्ध्या प्रपश्य कौन्तेय कथं कृष्णा गमिष्यति।
अथवा सहदेवेन धौम्येन च समं विभो॥ ७॥
सूतैः पौरोगवैश्चैव सर्वैश्च परिचारकैः।
रथैरश्वैश्च ये चान्ये विप्राः क्लेशासहाः पथि॥ ८॥
सर्वैस्त्वं सहितो भीम निवर्तस्वायतेक्षण।

तब युधिष्ठिर भीमसेन से बोले कि हे कुन्तीपुत्र वृकोदर! तुम यहाँ अपनी भूख और प्यास को शक्ति का सहारा लेकर रोको और फिर अतिरिक्त शक्ति तथा चतुराई को धारण करो। अब तुम बुद्धि से विचार करो कि द्रौपदी यहाँ कैसे चल सकेगी? अथवा हे विशाल नेत्रों वाले जितेन्द्रिय भीम! तुम सहदेव, धौम्य, सारथियों रसोइयों और सारे सेवकों, रथों, घोड़ों, तथा दूसरे जो ब्राह्मण मार्ग के कष्टों को नहीं सहन कर सकते, उन सबके साथ यहाँ से लौट जाओ।

त्रयो वयं गमिष्यामो लघ्वाहारा यतव्रताः॥ ९॥
अहं च नकुलश्चैव लोमशश्च महातपाः।
ममागमनमाकाङ्क्षन् गङ्गाद्वारे समाहितः॥ १०॥
वसेह द्रौपदीं रक्षन् यावदागमनं मम।

भीम उवाच

राजपुत्री श्रमेणार्ता दुःखार्ता चैव भारत॥ ११॥
व्रजत्येव हि कल्याणी श्वेतवाहदिदृक्षया।
तव चाप्यरतिस्तीव्रा वर्तते तमपश्यतः॥ १२॥
गुडाकेशं महात्मानं संग्रामेष्वपलायिनम्।

मैं, नकुल और महातपस्वी लोमश ही लघु आहार, संयम और व्रत का पालन करते हुए आगे जायेंगे। जब तक मैं वापिस न लौटूँ, तुम गंगाद्वार अर्थात् हरद्वार में द्रौपदी की एकाग्रचित्त से रक्षा करते हुए और मेरे आने की प्रतीक्षा करते हुए रहो। तब भीम ने कहा कि हे भारत! द्रौपदी यद्यपि थकावट से और दुःख से पीड़ित है, फिर भी यह कल्याणी देवी अर्जुन को देखने की इच्छा से हमारे साथ चल ही रही है। निद्राविजयी, संग्राम में पीछे न रहने वाले उस महात्मा अर्जुन को न देखने के कारण आप भी अत्यन्त खिन्न हो रहे हैं।

किं पुनः सहदेवं च मां च कृष्णां च भारत॥ १३॥
द्विजाः कामं निवर्तन्तां सर्वे च परिचारकाः।
सूताः पौरोगवाश्चैव यं च मन्येत नो भवान्॥ १४॥
न ह्यहं हातुमिच्छामि भवन्तमिह कर्हिचित्।

शैलेऽस्मिन् राक्षसाकीर्णे दुर्गेषु विषमेषु च॥ १५॥
इयं चापि महाभागा राजपुत्री पतिव्रता।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र नोत्सहेद् विनिवर्तितुम्॥ १६॥
तथैव सहदेवोऽयं सततं त्वामनुव्रतः।
न जातु विनिवर्तेत मनोज्ञो ह्यहमस्य वै॥ १७॥
अपि चात्र महाराज सव्यसाचिदिदृक्षया।
सर्वे लालसभूताः स्म तस्माद् यास्यामहे सह॥ १८॥

हे भारत! फिर सहदेव, मेरा और द्रौपदी का तो कहना ही क्या है? ब्राह्मण लोग चाहें तो लौट जायें। सारथि, रसोइये, या जिसको आप उचित समझें लौट जायें। मैं आपको इस राक्षसों से भरे हुए, दुर्गम, ऊँचे, नीचे पर्वत पर किसी प्रकार भी छोड़ना नहीं चाहता और यह महाभागा राजकुमारी पतिव्रता है। यह हे पुरुष व्याघ्र! आपके बिना लौटने के लिये इच्छुक नहीं होगी। इसी प्रकार यह सहदेव भी सदा आपके पीछे चलता है, यह वापिस नहीं लौटेगा। मैं इसके मन का भाव जानता हूँ। महाराज! अर्जुन को देखने के लिये हम सब लालायित हैं, इसलिये हम सब साथ ही चलेंगे।

यद्यशक्यो रथैर्गन्तुं शैलोऽयं बहुकन्दरः।
पद्भिरेव गमिष्यामो मा राजन् विमना भव॥ १९॥
अहं वहिष्ये पाञ्चालीं यत्र यत्र न शक्ष्यति।
सुकुमारौ तथा वीरौ माद्रीनन्दिकरावुभौ॥ २०॥
दुर्गे संतारयिष्यामि यत्राशक्तौ भविष्यतः।

यदि इस बहुत गुफाओं वाले पर्वत पर रथों के द्वारा यात्रा असम्भव हो तो हम पैदल ही चलेंगे। हे राजन्! आप उदास मत होइये। जहाँ द्रौपदी चल नहीं सकेगी, मैं इसे अपने कन्धों पर बैठा कर ले चलूँगा। ये माद्रीपुत्र दोनों वीर राजकुमार सुकुमार हैं। जहाँ दुर्गम स्थान पर ये असमर्थ होंगे, वहाँ मैं इन्हें भी पार लगाऊँगा।

युधिष्ठिर उवाच

एवं ते भाषमाणस्य बलं भीमाभिवर्धताम्॥ २१॥
यत् त्वमुत्सहसे वोढुं पाञ्चालीं च यशस्विनीम्।
यमजौ चापि भद्रं ते नैतदन्यत्र विद्यते॥ २२॥
बलं तव यशश्चैव धर्मः कीर्तिश्च वर्धताम्।
मा ते ग्लानिर्महाबाहो मा च तेऽस्तु पराभवः॥ २३॥

ततः कृष्णाब्रवीद् वाक्यं प्रहसन्ती मनोरमा।
गमिष्यामि न संतापः कार्यो मां प्रति भारत॥ २४॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे भीम! इस प्रकार की बातें कहते हुए तुम्हारा बल बढ़े; जो तुम यशस्विनी द्रौपदी को, और नकुल सहदेव को भी उठाकर ले जाने की हिम्मत रखते हो। तुम्हारा कल्याण हो। ऐसा साहस और किसी में नहीं है। तुम्हारा बल, तुम्हारी कीर्ति, तुम्हारा धर्म और यश बढ़े। हे महाबाहु! तुम्हें कभी ग्लानि न हो और तुम्हारी किसी से पराजय न हो। तब सुन्दरी द्रौपदी ने हँसते हुए कहा कि हे भारत! मैं आपके साथ ही चलूँगी। आप मेरे लिये चिन्ता न करें।

एवं सम्भाषमाणास्ते सुबाहुविषयं महत्।
किराततङ्गणाकीर्णं पुलिन्दशतसंकुलम्॥ २५॥
सुबाहुश्चापि तान् दृष्ट्वा पूजया प्रत्यगृह्णत।
विषयान्ते कुलिन्दानामीश्वरः प्रीतिपूर्वकम्॥ २६॥
ततस्ते पूजितास्तेन सर्व एव सुखोषिताः।

इस प्रकार बातें करते हुए वे कुलिन्दराज सुबाहु के महान् राज्य में पहुँचे। वहाँ बड़ी संख्या में किरात, तंगण और पुलिंद जाति के लोग रहते थे। कुलिन्दों के स्वामी सुबाहु ने भी उनके बारे में जानकर अपने राज्य की सीमा पर आकर उनका प्रेमपूर्वक सत्कार किया। उसके द्वारा सत्कृत होकर वे सब वहाँ सुखपूर्वक रहे।

प्रतस्थुर्विमले सूर्ये हिमवन्तं गिरिं प्रति॥ २७॥
इन्द्रसेनमुखांश्चापि भृत्यान् पौरोगवांस्तथा।
राज्ञः कुलिन्दाधिपतेः परिदाय महारथाः॥ २८॥
पद्भिरेव महावीर्या ययुः कौरवनन्दनाः।
ते शनैः प्राद्रवन् सर्वे कृष्णया सह पाण्डवाः॥ २९॥
तस्माद् देशात् सुसंहृष्टा द्रष्टुकामा धनंजयम्।

प्रातः निर्मल सूर्य के उदय होने पर, उन महारथियों ने इन्द्रसेन आदि सेवकों को और रसोइयों को कुलिन्दराज के पास छोड़कर हिमालय की तरफ प्रस्थान किया। वे महातेजस्वी, कुरुनन्दन, पाण्डव सारे अर्जुन से मिलने की इच्छा वाले, प्रसन्नता सहित, द्रौपदी के साथ उस स्थान से पैदल ही धीरे-धीरे चल दिये।

पच्चीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर का अर्जुन को याद करना।

युधिष्ठिर उवाच

भीमसेन यमौ चोभौ पाञ्चालि च निबोधत।
नास्ति भूतस्य नाशो वै पश्यतास्मान् वनेचरान्॥ १॥
दुर्बलाः क्लेशिताः स्मेति यद् ब्रुवामेतरेतरम्।
अशक्येऽपि व्रजामो यद् धनंजयदिदृक्षया॥ २॥
तस्य दर्शनतृष्णं मां सानुजं वनमास्थितम्।
याज्ञसेन्याः परामर्शः स च वीर दहत्युत॥ ३॥

तब हिमालय पर्वत पर यात्रा करते हुए युधिष्ठिर बोले कि हे भीम, नकुल, सहदेव और द्रौपदी! तुम सब ध्यान देकर सुनो। किये हुए कर्मों का बिना भोगे नाश नहीं होता। इसीलिये देखो, हम राजकुमार होकर भी वन में भटक रहे हैं, हम दुर्बल हैं, कष्ट में पड़े हुए हैं, पर फिर भी एक दूसरे से उत्साह पूर्वक बातें कर रहे हैं और जहाँ जाना सम्भव नहीं है, उस मार्ग पर भी अर्जुन को देखने की इच्छा से आगे बढ़ते जा रहे हैं। उसके दर्शन की प्यास से मैं भाइयों सहित इस वन में आया हूँ, पर फिर भी हे वीर! उस समय द्रौपदी के बालों को जो पकड़ा गया, वह घटना मुझे जलाये देती है।

तीर्थानि चैव रम्याणि वनानि च सरांसि च।
चरामि सह युष्माभिस्तस्य दर्शनकाङ्क्षया॥ ४॥
यमयोः पूर्वजः पार्थः श्वेताश्वोऽमितविक्रमः।
दुःखेन महताविष्टस्तं न पश्यामि फाल्गुनम्॥ ५॥
अजेयमुग्रधन्वानं तेन तप्ये वृकोदर।
सततं यः क्षमाशीलः क्षिप्यमाणोऽप्यणीयसा॥ ६॥
ऋजुमार्गप्रपन्नस्य शर्मदाताभयस्य च।
स तु जिह्मप्रवृत्तस्य माययाभिजिघांसतः॥ ७॥
अपि वज्रधरस्यापि भवेत् कालविषोपमः।

मैं तुम्हारे साथ तीर्थों, सुन्दर वनों और तालाबों पर उस अर्जुन को देखने की वजह से ही विचर रहा हूँ। जो नकुल और सहदेव से बड़ा है, जिसके घोड़े श्वेत वर्ण के हैं, जो अमित पराक्रमी है, जो अजेय और उग्र धनुर्धर है. उस अर्जुन को देखने से मैं वंचित हूँ। इसलिये हे वृकोदर! मैं महान् दुःख से भरा हुआ हूँ और चिन्ता से तपा जा रहा हूँ। छोटे लोगों के द्वारा आक्षेप करने पर भी वह अर्जुन सदा क्षमाशील रहता है। जो कोमलता के साथ शरण में आता है, उसे वह सुख और अभय का दान देता है। किन्तु यदि कोई कुटिल मार्ग पर चलता हुआ छल कपट से मारना चाहता है तो उसके लिये, चाहे वह वज्र को धारण करने वाला इन्द्र ही क्यों न हो, काल और विष के समान भयानक हो जाता है।

शत्रोरपि प्रपन्नस्य सोऽनृशंसः प्रतापवान्॥ ८॥
दाताभयस्य बीभत्सुरमितात्मा महाबलः।
सर्वेषामाश्रयोऽस्माकं रणेऽरीणां प्रमर्दिता॥ ९॥
आहर्ता सर्वरत्नानां सर्वेषां नः सुखावहः।
रत्नानि यस्य वीर्येण दिव्यान्यासन् पुरा मम॥ १०॥
बहूनि बहुजातीनि यानि प्राप्तः सुयोधनः।
यस्य बाहुबलाद् वीर सभा चासीत् पुरा मम॥ ११॥
सर्वरत्नमयी ख्याता त्रिषु लोकेषु पाण्डव।

यदि शत्रु भी उसकी शरण में आ जाये, तो वह प्रतापी वीर उसके प्रति दयालु हो जाता है और उसे अभयदान कर देता है। महाबली मनस्वी अर्जुन हम सबका सहारा है। वह युद्ध में शत्रुओं का मर्दन करने वाला है। उसने हमें सब प्रकार के रत्न लाकर दिये हैं। वह हम सबको सदा सुख पहुँचाने वाला है। उसी के पराक्रम से पहले मेरे पास बहुत प्रकार के दिव्य रत्न बड़ी मात्रा में एकत्र हो गये थे, जिन्हें दुर्योधन ने ले लिया। उसी के बाहुबल से पहले मेरे पास हे वीर पाण्डव! सारे रत्नों से युक्त, सारे लोकों में प्रसिद्ध वह सभा भवन था।

संकर्षणं महावीर्यं त्वां च भीमापराजितम्॥ १२॥
अनुयातः स्ववीर्येण वायुदेवं च शत्रुहा।
यस्य बाहुबले तुल्यः प्रभावे च पुरंदरः॥ १३॥
जवे वायुर्मुखे सोमः क्रोधे मृत्युः सनातनः।
ते वयं तं नरव्याघ्रं सर्वे वीर दिदृक्षवः।
प्रवेक्ष्यामो महाबाहो पर्वतं गन्धमादनम्॥ १४॥

वह शत्रुओं को नष्ट करने वाला अर्जुन अपने पराक्रम से महापराक्रमी बलराम की, किसी से पराजित न होने वाले तुम्हारी और वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण की समानता करता है। जिसका बाहुबल और प्रभाव इन्द्र के समान है, जिसके वेग में वायु, मुख में चन्द्रमा और क्रोध में सनातन मृत्यु निवास करती है, हे महाबाहु वीर! हम सब उस नर व्याघ्र को देखने की इच्छा से अब इस गन्धमादन पर्वत की घाटियों में प्रवेश करेंगे।

छब्बीसवाँ अध्याय : आँधी पानी। द्रौपदी की मूर्च्छा। घटोत्कच को बुलाना।

ते शूरास्ततधन्वानस्तूणवन्तः समार्गणाः।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणाः खड्गवन्तोऽमितौजसः॥ १॥
परिगृह्य द्विजान् श्रेष्ठान्, प्रययुर्गन्धमादनम्।
सरांसि सरितश्चैव पर्वतांश्च वनानि च॥ २॥
वृक्षांश्च बहुलच्छायान् ददृशुर्गिरिमूर्धनि।
चेरुरुच्चावचाकारान् देशान् विषमसंकटान्॥ ३॥
पश्यन्तो मृगजातानि बहूनि विविधानि च।

तब उन अमित तेजस्वी शूरवीर पाण्डवों ने धनुष बाण, तरकस, तलवार लिये हुए और गोह के चमड़े के दस्ताने अंगुलियों में पहने हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ गन्धमादन पर्वत की तरफ प्रस्थान किया। पर्वत के शिखर पर उन्होंने नदियों, तालाबों, पर्वतों, वनों, और बहुत छाया वाले वृक्षों को देखा। वे अनेक प्रकार की जातियों के बहुत सारे मृगसमूहों को देखते हुए, ऊँचे नीचे विषम संकटपूर्ण स्थानों पर विचरण कर रहे थे।

ततो रेणुः समुद्भूतः सपत्रबहुलो महान्॥ ४॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च द्यां चैव सहसाऽऽवृणोत्।
न स्म प्रज्ञायते किंचिदावृते व्योम्नि रेणुना॥ ५॥
न चापि शेकुस्तत् कर्तुमन्योन्यस्याभिभाषणम्।
न चापश्यंस्ततोऽन्योन्यं तमसावृतचक्षुषः॥ ६॥
द्रुमाणां वातभग्नानां पततां भूतलेऽनिशम्।
अन्येषां च महीजानां शब्दः समभवन्महान्॥ ७॥

तभी पेड़ों के पत्तों से भरी हुई धूल बहुत भयानक रूप से उड़ने लगी। उस धूल मिट्टी ने तुरन्त ही सारी पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष को भर दिया। आकाश में धूल के भर जाने से कुछ भी नहीं सूझ रहा था। पाण्डव लोग आपस में बात भी नहीं कर पा रहे थे। अँधेरे ने उनकी आँखों को ढक दिया था। इसलिये वे एक दूसरे को देख भी नहीं रहे थे। उस समय वायु से टूट कर लगातार भूमि पर गिरते हुए वृक्षों की तथा झाड़ झंखाड़ों की बड़ी भयंकर ध्वनि हो रही थी।

ते पथानन्तरान् वृक्षान् वल्मीकान् विषमाणि च।
पाणिभिः परिमार्गन्तो भीता वायोर्निलिल्यिरे॥ ८॥
ततः कार्मुकमादाय भीमसेनो महाबलः।
कृष्णामादाय संगम्य तस्थावाश्रित्य पादपम्॥ ९॥
धर्मराजश्च धौम्यश्च निलिल्याते महावने।
अग्निहोत्राण्युपादाय सहदेवस्तु पर्वते॥ १०॥
नकुलो ब्राह्मणाश्चान्ये लोमशश्च महातपाः।
वृक्षानासाद्य संत्रस्तास्तत्र तत्र निलिल्यिरे॥ ११॥

उस समय पाण्डव लोग, मार्ग के किनारे पर विद्यमान वृक्षों को, मिट्टी के ढेरों को और ऊँचे नीचे स्थानों को हाथों से टटोलते हुए हवा से डरकर इधर उधर छिपने लगे। तब महाबली भीमसेन धनुष लेकर, द्रौपदी को साथ लेकर एक वृक्ष का सहारा लेकर खड़े हो गये। धर्मराज युधिष्ठिर और धौम्य मुनि अग्निहोत्र की सामग्री लेकर उस महान् वन में जा छिपे तथा सहदेव उस पर्वत पर किसी और सुरक्षित स्थान पर छिप गए। नकुल और दूसरे ब्राह्मण तथा महातपस्वी लोमश मुनि भी वायु से डरे हुए इधर उधर वृक्षों का सहारा लेकर छिप रहे।

मन्दीभूते तु पवने तस्मिन् रजसि शाम्यति।
महद्भिर्जलधारौघैर्वर्षमभ्याजगाम ह॥ १२॥
भृशं चटचटाशब्दो वज्राणां क्षिप्यतामिव।
ततस्ताश्चञ्चलाभासश्चेरुरभ्रेषु विद्युतः॥ १३॥
ततोऽश्मसहिता धाराः संवृण्वन्त्यः समन्ततः।
प्रपेतुरनिशं तत्र शीघ्रवातसमीरिताः॥ १४॥
तत्र सागरगा ह्यापः कीर्यमाणाः समन्ततः।
वहन्त्यो वारि बहुलं फेनोडुपपरिप्लुतम्॥ १५॥
परिसस्रुर्महाशब्दाः प्रकर्षन्त्यो महीरुहान्।

जब वायु कुछ कम हुई और धूल का वेग शान्त हो गया तब महान् जलधाराओं के साथ धूआँधार वर्षा होने लगी, वज्रपात के समान बादल अत्यधिक गड़गड़ाने लगे और उन बादलों में चंचल चमक वाली बिजलियाँ संचरण करने लगीं। तीव्र वायु से प्रेरित होकर सारी दिशाओं को आच्छादित करती हुई और ओलों से भरी हुई जल की धाराएँ लगातार गिरने लगीं। उस समय समुद्र की तरफ जाने वाली सब तरफ बिखरीं हुई जलधाराएँ, फेन रूपी नौकाओं से भरे हुए विशाल पानी के समूह को बहाती हुई, उखड़े पेड़ों के समूह को ले जाती हुई और महान् कोलाहल करती हुई बह रहीं थीं।

तस्मिन्नुपरते शब्दे वाते च समतां गते॥ १६॥
गते ह्यम्भसि निम्नानि प्रादुर्भूते दिवाकरे।
प्रतस्थिरे पुनर्वीराः पर्वतं गन्धमादनम्॥ १७॥

क्रोशमात्रं प्रयातेषु पाण्डवेषु महात्मसु।
पद्भ्यामनुचिता गन्तुं द्रौपदी समुपाविशत्॥ १८॥
श्रान्तादुःखपरीता च वातवर्षेण तेन च।
सौकुमार्याच्च पाञ्चाली सम्मुमोह तपस्विनी॥ १९॥

उस कोलाहल के शान्त होने पर, वायु का वेग हल्का होने पर, पानी के नीचे की तरफ बह जाने पर और सूर्य के प्रकट होने पर उन वीर पाण्डवों ने गन्धमादन पर्वत की तरफ फिर प्रस्थान किया। किन्तु महात्मा पाण्डव, एक कोस दूर ही गये होंगे, पैदल चलने में असमर्थ होकर द्रौपदी वहीं बैठ गयी। आँधी और वर्षा से थकी हुई और दुःख से भरी हुई वह द्रौपदी अपनी मुकुमारता के कारण मूर्च्छित होने लगी।

सा कम्पमाना मोहेन बाहुभ्यामसितेक्षणा।
वृत्ताभ्यामनुरूपाभ्यामूरू समवलम्बत॥ २०॥
आलम्बमाना सहितावूरू गजकरोपमौ।
पपात सहसा भूमौ वेपन्ती कदली यथा॥ २१॥
तां पतन्तीं वरारोहां भज्यमानां लतामिव।
नकुलः समभिद्रुत्य परिजग्राह वीर्यवान्॥ २२॥

श्यामनेत्रों वाली द्रौपदी उस समय घबराहट से काँप रही थी। उसने अपनी गोल और सुन्दर भुजाओं से जाँघों को थाम लिया। हाथी की सूँड के समान अपनी जाँघों का सहारा लिये और केले के वृक्ष की तरह काँपती हुई वह अचानक ही भूमि पर गिर पड़ी। उस सुन्दरी को टूटी हुई लता की तरह गिरते हुए देखकर पराक्रमी नकुल ने दौड़ कर थाम लिया।

नकुल उवाच

राजन् पञ्चालराजस्य सुतेयमसितेक्षणा।
श्रान्ता निपतिता भूमौ तामवेक्षस्व भारत॥ २३॥
अदुःखार्हा परं दुःखं प्राप्तेयं मृदुगामिनी।
आश्वासय महाराज तामिमां श्रमकर्शिताम्॥ २४॥
राजा तु वचनात् तस्य भृशं दुःखसमन्वितः।
भीमश्च सहदेवश्च सहसा समुपाद्रवन्॥ २५॥
तामवेक्ष्य तु कौन्तेयो विवर्णवदनां कृशाम्।
अङ्कमानीय धर्मात्मा पर्यदेवयदातुरः॥ २६॥

नकुल ने तब कहा कि हे भरतश्रेष्ठ! यह कृष्णनयनी पांचालराज की पुत्री, थकी हुई भूमि पर गिर पड़ी है, आप इसे देखिये। यह मन्दगामिनी दुःख भोगने योग्य नहीं है। परिश्रम से दुर्बल हुई इसको हे महाराज! आप आश्वासन दीजिये। नकुल की इस बात से राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दुःखी हो गये। भीम और सहदेव भी वहाँ तुरन्त दौड़े हुए आये। उसे कमजोर और कान्तिहीन मुखवाली देखकर धर्मात्मा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर व्याकुल होकर और उसे गोद में उठाकर विलाप करने लगे।

कथं वेश्मसु गुप्तेषु स्वास्तीर्णशयनोचिता।
भूमौ निपतिता शेते सुखार्हा वरवर्णिनी॥ २७॥
सुकुमारौ कथं पादौ मुखं च कमलप्रभम्।
मत्कृतेऽद्य वरार्हायाः श्यामतां समुपागतम्॥ २८॥
किमिदं द्यूतकामेन मया कृतमबुद्धिना।
आदाय कृष्णां चरता वने मृगगणायुते॥ २९॥

वे कहने लगे कि हाय जो सुन्दरी सुरक्षित भवनों में सुसज्जित शय्याओं पर सोने वाली है और सुख पाने योग्य है, आज वह किस प्रकार भूमि पर पड़ी हुई सो रही है। मेरे ही कारण आज इस सुन्दरी का मुलायम और कमल जैसा मुख काला पड़ गया है। द्यूतक्रीड़ा की कामना रखने वाले मुझ मूर्ख ने यह क्या कर दिया कि आज इस द्रौपदी को लेकर पशुओं से भरे हुए वन में विचरण कर रहा हूँ।

तथा लालप्यमाने तु धर्मराजे युधिष्ठिरे।
स्पृश्यमाना करैः शीतैः पाण्डवैश्च मुहुर्मुहुः॥ ३०॥
सेव्यमाना च शीतेन जलमिश्रेण वायुना।
पाञ्चाली सुखमासाद्य लेभे चेतः शनैः शनैः॥ ३१॥
परिगृह्य च तां दीनां कृष्णामजिनसंस्तरे।
पार्था विश्रामयामासुर्लब्धसंज्ञां तपस्विनीम्॥ ३२॥
तस्या यमौ रक्ततलौ पादौ पूजितलक्षणौ।
कराभ्यां किणजाताभ्यां शनकैः संववाहतुः॥ ३३॥

धर्मराज युधिष्ठिर के इस प्रकार विलाप करने पर पाण्डवों ने अपने शीतल हाथों से द्रौपदी के शरीर को बार बार स्पर्श किया। जल से भरी हुई ठंडी वायु के लगने से सुख मिलने पर द्रौपदी को धीरे-धीरे होश आया। तब उस दीन बनी हुई तपस्विनी द्रौपदी को पाण्डवों ने पकड़कर कृष्णमृगचर्म के बिस्तरे पर आराम कराया। नकुल और सहदेव ने अपने धनुष की रगड़ से चिह्नित हाथों के द्वारा उसके सुन्दर लक्षणों से युक्त लाल तलवे वाले पैरों को धीरे-धीरे दबाया।

पर्याश्वासयदप्येनां धर्मराजो युधिष्ठिरः।
उवाच च कुरुश्रेष्ठो भीमसेनसिदं वचः॥ ३४॥
बहवः पर्वता भीम विषमा हिमदुर्गमाः।
तेषु कृष्णा महाबाहो कथं नु विचरिष्यति॥ ३५॥

भीमसेन उवाच

स्वयं नेष्यामि राजेन्द्र मा विषादे मनः कृथाः।
हैडिम्बश्च महावीर्यो विहगो मद्बलोपमः॥ ३६॥
वहेदनघ सर्वान्नो वचनात् ते घटोत्कचः।

धर्मराज युधिष्ठिर ने भी द्रौपदी को आश्वासन दिया और फिर उन कुरुश्रेष्ठ ने भीमसेन से यह कहा कि हे महाबाहु भीम! ये पहाड़ बड़े ऊँचे नीचे हैं, बर्फ के कारण भी ये दुर्गम बने हुए हैं। इन पर यह द्रौपदी कैसे चल सकेगी? तब भीम ने कहा कि हे राजेन्द्र! मैं स्वयं इन्हें उठाकर ले चलूँगा। आप शोक में मन मत लगाइये। हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच बड़ा पराक्रमी है, वह बल में मेरे समान है और सूर्य के समान तेजस्वी और तीर के समान शीघ्रगामी है। हे निष्पाप! वह आपके कहने से हम सबको ले जाएगा।

अनुज्ञातो धर्मराज्ञा पुत्रं सस्मार राक्षसम्॥ ३७॥
घटोत्कचस्तु धर्मात्मा स्मृतमात्रः पितुस्तदा।
कृताञ्जलिरुपातिष्ठदभिवाद्याथ पाण्डवान्॥ ३८॥
उवाच भीमसेनं स पितरं भीमविक्रमम्।
स्मृतोऽस्मि भवता शीघ्रं शुश्रूषुरहमागतः॥ ३९॥
आज्ञापय महाबाहो सर्वं कर्तास्म्यसंशयम्।
तच्छ्रुत्वा भीमसेनस्तु राक्षसं परिषस्वजे॥ ४०॥

तब धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा मिलने पर भीम ने अपने राक्षसजातीय पुत्र को बुलवाया। धर्मात्मा घटोत्कच अपने पिता के स्मरण करने मात्र से अर्थात् बुलवाते ही वहाँ आकर उपस्थित हो गया। उसने हाथ जोड़कर पाण्डवों का अभिवादन किया। फिर उसने अपने भयानक विक्रम वाले पिता भीमसेन से कहा कि आपने मुझे याद किया है, इसलिये मैं शीघ्रता से आपकी सेवा करने की इच्छा से आ गया हूँ। हे महाबाहु! आप मुझे आज्ञा दीजिये। मैं निश्चितरूप से उसे पूरा करूँगा। यह सुनकर भीम ने उस राक्षस घटोत्कच को छाती से लगा लिया।

नोट :— यहाँ घटोत्कच को बुलाने की घटना से यह स्पष्ट होता है कि पुत्रजन्म के पश्चात् भी हिडिम्बा और घटोत्कच का भीम से निरन्तर सम्पर्क रहता था और पाण्डवों के वन प्रवास के समय भी घटोत्कच गुप्तरूप से उनकी रक्षा के लिये उनके आस पास ही रहता था। इसे भीम के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था। तभी उसने उसको उस समय तुरन्त बुला लिया।

सत्ताईसवाँ अध्याय : घटोत्कच की सहायता, गन्धमादन पर्वत में प्रवेश।

युधिष्ठिर उवाच

धर्मज्ञो बलवाञ्शूरः सत्यो राक्षसपुङ्गवः।
भक्तोऽस्मानौरसः पुत्रो भीम गृह्णातु मा चिरम्॥ १॥
तव भीम सुतेनाहमतिभीमपराक्रम।
अक्षतः सह पाञ्चाल्या गच्छेयं गन्धमादनम्॥ २॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे भीम! तुम्हारा राक्षसों में श्रेष्ठपुत्र, धर्मज्ञ, बलवान्, शूरवीर, सत्यवादी और हमारा भक्त है। यह हमें शीघ्र ही उठा कर ले चले। अत्यन्त भयानक पराक्रम वाले भीम। तुम्हारे पुत्र की सहायता से मैं बिना कोई चोट खाये ही गन्धमादन पर्वत पर पहुँच जाऊँगा।

भ्रातुर्वचनमाज्ञाय भीमसेनो घटोत्कचम्।
आदिदेश नरव्याघ्रस्तनयं शत्रुकर्शनम्॥ ३॥
हैडिम्बेय परिश्रान्ता तव मातापराजित।
त्वं च कामगमस्तात बलवान् वह तां खगः॥ ४॥
गच्छ नीचिकया गत्या यथा चैनां न पीडयेः।

तब भाई की बात को आज्ञा के रूप में स्वीकार कर नरव्याघ्र भीम ने शत्रुओं को कुचलने वाले अपने पुत्र घटोत्कच को आदेश दिया कि हे किसी से पराजित न होने वाले हिडिम्बा के पुत्र! तुम्हारी यह माता थक गयी है। तुम बलवान् और इच्छानुसार वायु के समान तेज चलने वाले हो। इसलिये इसे उठाकर ले चलो। हे पुत्र! ऐसी धीमी गति से चलो जिससे इन्हें कष्ट न हो।

एवमुक्तः ततः कृष्णामुवाह स घटोत्कचः॥ ५॥
पाण्डूनां मध्यगो वीरः पाण्डवानपि चापरे।
ब्राह्मणांश्चापि तान् सर्वान् समुपादाय राक्षसाः॥ ६॥
नियोगाद् राक्षसेन्द्रस्य जग्मुर्भीमपराक्रमाः।
एवं सुरमणीयानि वनान्युपवनानि च॥ ७॥
आलोकयन्तस्ते जग्मुर्विशालां बदरीं प्रति।
ते त्वाशुगतिभिर्वीरा राक्षसैस्तैर्महाजवैः॥ ८॥
उह्यमाना ययुः शीघ्रं दीर्घमध्वानमल्पवत्।

ऐसा कहे जाने पर उस घटोत्कच ने द्रौपदी को उठा लिया। उसके दूसरे साथियों ने पाण्डवों को उठा लिया। वीर घटोत्कच पाण्डवों के बीच में चलने लगा। राक्षसों के राजा घटोत्कच की आज्ञा से भयानक पराक्रमी राक्षसों ने उन सारे ब्राह्मणों को भी उठा कर चलना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार अत्यन्त रमणीय छोटे बड़े वनों को देखते हुए वे विशाला बदरी नाम के स्थान की तरफ चल पड़े। वे पाण्डववीर उन महावेगशाली और तीव्र गति से चलने वाले राक्षसों के द्वारा ले जाये जाते हुए उस लम्बे रास्ते को शीघ्र ही इस प्रकार पार कर गये, जैसे कि वह बहुत छोटा हो।

ददृशुर्गिरिपादांश्च नानाधातुसमाचितान्॥ ९॥
मयूरैश्चमरैश्चैव वानरै रुरुभिस्तथा।
वराहैर्गवयैश्चैव महिषैश्च समावृतान्॥ १०॥
नदीजालसमाकीर्णान् नानापक्षियुतान् बहून्।
ददृशुर्विविधाश्चर्यं कैलासं पर्वतोत्तमम्॥ ११॥
तस्याभ्याशे तु ददृशुर्नरनारायणाश्रमम्।
उपेतं पादपैर्दिव्यैः सदापुष्पफलोपगैः॥ १२॥
अवतेरुस्ततः सर्वे राक्षसस्कन्धतः शनैः।

उन्होंने मार्ग में अनेक प्रकार की धातुओं से युक्त, पर्वत शृंखलाएँ देखीं। वे पर्वतशृंखलाएँ मोरों, चमरीगायों, वानरों, रुरुमृगों, वराहों, गवयों और भैंसों से भरी हुई थीं। वे बहुत सी प्राकृतिक जलधाराओं और बहुत प्रकार के पक्षियों से युक्त थीं। उन्होंने अनेक प्रकार के विस्मयजनक दृश्यों से युक्त उत्तम कैलाश पर्वत के समीप ही नर और नारायण ऋषियों के आश्रम को देखा। वहाँ सदा फूलों और फलों से युक्त रहने वाले अलौकिक वृक्ष थे अर्थात् ऐसे वृक्ष थे, जो और दूसरी जगह नहीं मिलते। तब वे सब राक्षसों के कंधों से धीरे धीरे उतर गए।

बलिहोमार्चितं दिव्यं सुसम्मृष्टानुलेपनम्॥ १३॥
दिव्यपुष्पोपहारैश्च सर्वतोऽभिविराजितम्।
विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भाण्डैराचितं शुभैः॥ १४॥
महद्भिस्तोयकलशैः कठिनैश्चोपशोभितम्।
शरण्यं सर्वभूतानां ब्रह्मघोषनिनादितम्॥ १५॥
दिव्यमाश्रयणीयं तमाश्रमं श्रमनाशनम्।

नर और नारायण ऋषि का वह आश्रम पूजा और होम से अर्चित था और अलौकिक प्रकार से झाड़ पौंछ कर लीपा गया था। अलौकिक पुष्पों के उपहार वहाँ सब तरफ से उसकी सुन्दरता को बढ़ा रहे थे। वहाँ विशाल हवनकुण्ड बने हुए थे और स्रुक्, स्रुवा आदि पवित्र यज्ञपात्र सजा कर रखे हुए थे। वह आश्रम जल से भरे हुए बड़े-बड़े कलशों और बर्तनों से सुशोधित था। वहाँ वेदमन्त्रों की ध्वनि गूँजती रहती थी। वह आश्रम सारे प्राणियों के रहने योग्य था। वह अलौकिक और थकावट को दूर करने वाला था।

श्रिया युतमनिर्देश्यं देवचर्योपशोभितम्॥ १६॥
सूर्यवैश्वानरसमैस्तपसा भावितात्मभिः।
महर्षिभिर्मोक्षपरैर्यतिभि र्नियतेन्द्रियैः॥ १७॥
फलमूलाशनैर्दान्तैः उपेतं ब्रह्मवादिभिः।

उस आश्रम की शोभा अवर्णनीय थी। देवोचित कार्यों के अनुष्ठान से वह सदा शोभित रहता था। उस आश्रम में फल मूल खा कर रहने वाले दमनशील और परमात्मा के विषय में वार्तालाप करने वाले ऋषि लोग रहते थे, जो सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी थे, जिन्होंने अपनी आत्मा को शुद्ध कर लिया था। वे मोक्षपरायण, सन्यासी और जितेन्द्रिय थे।

सोऽभ्यगच्छन्महातेजास्तानृषीन् प्रयतः शुचिः॥ १८॥
भ्रातृभिः सहितो धीमान् धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते दृष्ट्वा प्राप्तं युधिष्ठिरम्॥ १९॥
अभ्यगच्छन्त सुप्रीताः सर्व एव महर्षयः।
आशीर्वादान् प्रयुञ्जानाः स्वाध्यायनिरता भृशम्॥ २०॥
प्रीतास्ते तस्य सत्कारं विधिना पावकोपमाः।
उपाजह्रुश्च सलिलं पुष्पमूलफलं शुचि॥ २१॥

तब धीमान्, महातेजस्वी धर्मपुत्र युधिष्ठिर पवित्र और एकाग्रचित्त होकर अपने भाइयों के साथ उन ऋषियों के पास गये। दिव्यज्ञान से युक्त वे ऋषि युधिष्ठिर को वहाँ आया हुआ देख कर अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे मिले। सदा स्वाध्याय में लगे रहने वाले, अग्नि के समान तेजस्वी, वे महर्षि लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर युधिष्ठिर को अनेक प्रकार के आशीर्वाद देने लगे। उन्होंने विधिपूर्वक उनका सत्कार किया और उन्हें पवित्र फल मूल पुष्प और जल अर्पित किया।

स तैः प्रीत्याथ सत्कारमुपनीतं महर्षिभिः।
प्रयतः प्रतिगृह्याथ धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ २२॥
प्रीतः स्वर्गोपमं पुण्यं पाण्डवः सह कृष्णया।
विवेश शोभया युक्तं भ्रातृभिश्च सहानघः॥ २३॥

उन ऋषियों के द्वारा प्रेमपूर्वक प्रस्तुत किये गये सत्कार को शुद्ध आत्मा से ग्रहण कर निष्पाप धर्मराज युधिष्ठिर प्रसन्नता के साथ उस शोभाशाली स्वर्ग के समान पुण्यों से युक्त आश्रम में द्रौपदी और अपने भाइयों के साथ रहने लगे।

आलोकयन्तो मैनाकं नानाद्विजगणायुतम्।
हिरण्यशिखरं चैव तच्च बिन्दुसरः शिवम्॥ २४॥
तस्मिन् विहरमाणाश्च पाण्डवाः सह कृष्णया।
मनोज्ञे काननवरे सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वले॥ २५॥
पादपैः पुष्पविकचैः फलभारावनामिभिः।
शोभिते सर्वतो रम्यैः पुंस्कोकिलगणायुतैः॥ २६॥
स्निग्धपत्रैरविरलैः शीतच्छायैर्मनोरमैः।
सरांसि च विचित्राणि प्रसन्नसलिलानि च॥ २७॥
कमलैः सोत्पलैश्चैव भ्राजमानानि सर्वशः।
पश्यन्तश्चारुरूपाणि रेमिरे तत्र पाण्डवाः॥ २८॥

वहाँ वे पाण्डव लोग अनेक प्रकार के पक्षिसमूहों से भरे हुए सुनहले शिखर वाले मैनाक पर्वत और पवित्र बिन्दुसर नाम के तालाब को देखते हुए, उस सुन्दर श्रेष्ठ वन में, जो सारी ऋतुओं में फूलों से जगमगाता रहता था, जो खिले हुए फूलों से युक्त फलों के बोझ से झुकी हुई डालियों वाले, कोकिलों के समूहों से युक्त, चिकने और घने पत्तों वाले, शीतल छायादार, मन को हरने वाले, सब तरफ से सुन्दर वृक्षों से सुशोभित हो रहा था, दूसरे स्वच्छ जल वाले, सब तरफ से कमलों और उत्पलों से सुशोभित, विचित्र और सुन्दर सरोवरों को देखते हुए, द्रौपदी के साथ विचरण करते हुए आनन्द का अनुभव करने लगे।

अट्ठाईसवाँ अध्याय : भीम का सौगन्धिक कमल लाने के लिये जाना।

तत्र ते पुरुषव्याघ्राः परमं शौचमास्थिताः।
षड्रात्रमवसन् वीरा धनंजयदिदृक्षवः॥ १॥
ततः पूर्वोत्तरे वायुः प्लवमानो यदृच्छया।
सहस्रपत्रमर्काभं दिव्यं पद्ममुपाहरत्॥ २॥
तदवैक्षत पाञ्चाली दिव्यगन्धं मनोरमम्।
अनिलेनाहृतं भूमौ पतितं जलजं शुचि॥ ३॥
तच्छुभा शुभमासाद्य भीमसेनमथाब्रवीत्।

अर्जुन को देखने के इच्छुक वे पुरुषव्याघ्र वीर पाण्डव परम पवित्रता के साथ वहाँ छः रात्रियों तक रहे। उसके पश्चात् अर्थात् अगले दिन पूर्वोत्तर कोण की दिशा से स्वेच्छा से आने वाली वायु ने एक सूर्य के समान तेजस्वी अलौकिक सहस्रदल कमल को वहाँ ला कर डाल दिया। द्रौपदी ने वायु के द्वारा उड़ा कर लाये गये और भूमि पर गिराये गये, अलौकिक गन्धवाले मनोरम और पवित्र उस कमल को देखा। तब उस सुन्दरी ने उस सुन्दर कमल को प्राप्त कर भीमसेन से कहा कि—

पश्य दिव्यं सुरुचिरं भीम पुष्पमनुत्तमम्॥ ४॥
गन्धसंस्थानसम्पन्नं मनसो मम नन्दनम्।
इदं च धर्मराजाय प्रदास्यामि परंतप॥ ५॥
हरेदं मम कामाय काम्यके पुनराश्रमे।
यदि तेऽहं प्रिया पार्थ बहूनीमान्युपाहर॥ ६॥
तान्यहं नेतुमिच्छामि काम्यकं पुनराश्रमम्।

हे भीम! इस अलौकिक अत्यन्त सुन्दर और श्रेष्ठ फूल को देखो। यह सुगन्ध के भण्डार से भरा हुआ है और मेरे मन को आनन्द प्रदान कर रहा है। हे परंतप! मैं इसे धर्मराज को भेंट करूँगी। तुम मेरी इच्छा के लिये इसे काम्यक वन के आश्रम में ले चलना। हे पार्थ! तुम्हारा मुझ पर स्नेह है तो इस प्रकार के और बहुत से फूलों को लाओ। मैं उन्हें काम्यक वन के आश्रम में ले जाना चाहती हूँ।

अभिप्रायं तु विज्ञाय महिष्याः पुरुषर्षभः॥ ७॥
प्रियायाः प्रियकामः स प्रायाद् भीमो महाबलः।
वातं तमेवाभिमुखो यतस्तत् पुष्पमागतम्॥ ८॥
आजिहीर्षुर्जगामाशु स पुष्पाण्यपराण्यपि।
रुक्मपृष्ठं धनुर्गृह्य शरांश्चाशीविषोपमान्॥ ९॥
मृगराडिव संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः।
द्रौपद्याः प्रियमन्विच्छन् स बाहुबलमाश्रितः॥ १०॥
व्यपेतभयसम्मोहः शैलमभ्यपतद् बली।

तब प्रिय महारानी अर्थात् युधिष्ठिर की पत्नी के अभिप्राय को समझकर वह पुरुषश्रेष्ठ महाबली भीम, उसका प्रिय करने की इच्छा से वहाँ से चल दिये और दूसरे फूलों को लाने की इच्छा से वे जिधर की वायु उस फूल को उड़ा लायी थी, उधर की वायु के सामने मुख करके उस तरफ ही शीघ्रता से गये। पीठ पर सोना लगे हुए धनुष को तथा विषैले

सर्पों के समान भयंकर बाणों को लेकर वे क्रुद्ध सिंह और मदबहाने वाले हाथी के समान जा रहे थे। द्रौपदी का प्रिय करने की इच्छा से वे बलवान् भीम अपने ही बाहुबल के सहारे भय और भ्रम से रहित होकर सामने के पर्वत पर चढ़ गये।

स तं द्रुमलतागुल्मच्छन्नं नीलशिलातलम्॥ ११॥
गिरिं चचारारिहरः किन्नराचरितं शुभम्।
नानावर्णधरैश्चित्रं धातुद्रुममृगाण्डजैः॥ १२॥
सर्वभूषणसम्पूर्णं भूमेर्भुजमिवोच्छ्रितम्।
सर्वत्र रमणीयेषु गन्धामादनसानुषु॥ १३॥
सक्तचक्षुरभिप्रायान् हृदयेनानुचिन्तयन्।
पुंस्कोकिलनिनादेषु षट्पदाचरितेषु च॥ १४॥
बद्धश्रोत्रमनश्चक्षुर्ज गामामितविक्रमः।
आजिघ्रन् स महातेजाः सर्वर्तुकुसुमोद्भवम्॥ १५॥
गन्धामुद्धतमुद्दामो वने मत्त इव द्विपः।

वे शत्रुओं को नष्ट करने वाले भीम उस सुन्दर पर्वत पर जो वृक्षों और लतासमूहों से आच्छादित था, जहाँ नीले रंग की शिलाएँ थीं, जहाँ किन्नर लोग भ्रमण करते थे, विचरण करने लगे। वह पर्वत अनेक प्रकार के रंगों वाली धातुओं, वृक्षों, मृगों और पक्षियों से बड़ा विचित्र लग रहा था और ऐसा प्रतीत होता था मानो सब प्रकार के आभूषण धारण किये हुए भूमि की बाँह ऊपर को उठी हुई हो। उन गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर, जो सब तरफ से रमणीय थे, जहाँ कोयल निनाद कर रहीं थीं और भ्रमर गुंजार रहे थे अपनी आँखे गड़ाये, अपने उद्देश्य का मन से चिन्तन करते हुए, अपने कान, मन, और नेत्रों को एकाग्र किये हुए, सारी ऋतुओं के फूलों की उत्कट गन्ध को ग्रहण करते हुए, वन में विचरने वाले मस्त हाथी के समान उद्दाम गति से वे अमित विक्रमी और महातेजस्वी भीम चले जा रहे थे।

स यक्षगन्धर्वसुरब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥ १६॥
विलोकयामास तदा पुष्पहेतोररिंदम।
विषमच्छदैरचितैरनुलिप्त इवाङ्गुलैः॥ १७॥
वलिभिर्धातुविच्छेदैः काञ्चनाञ्जनराजतैः।
सपक्षमिव नृत्यन्तं पार्श्वलग्नैः पयोधरैः॥ १८॥
मुक्ताहारैरिव चितं च्युतैः प्रस्रवणोदकैः।
अभिरामदरीकुञ्जनिर्झ रोदककन्दरम्॥ १९॥

शत्रुओं को नष्ट करने वाले उस भीम ने तब यक्ष, गन्धर्व, देवता, और ब्रह्मर्षियों के निवास स्थान उस पर्वत पर सब तरफ दृष्टि डालकर देखा। अनेक धातुओं से रँगे हुए सप्तपर्ण के पत्तों द्वारा उस समय उनके ललाट में धातुओं के सुनहले, काले और सफेद रंग लग गये थे, जो ऐसे प्रतीत होते थे, मानो अंगुलियों के द्वारा तरह तरह के लेप किये गये हों। पर्वत के दोनों तरफ जो बादल लहरा रहे थे, उनसे ऐसा प्रतीत होता था मानो पर्वत पंख वाला होकर नृत्य कर रहा हो। बहते हुए झरनों की धाराएँ पर्वत के गले में मोतियों के हार सी प्रतीत हो रहीं थीं। उस पर्वत पर कन्दराएँ, कुंज, झरने, जल और गुफाएँ सभी सुन्दर थे।

सशष्पकवलैः स्वस्थैरदूरपरिवर्तिभिः।
भयानभिज्ञैर्हरिणैः कौतूहलनिरीक्षितः॥ २०॥
चालयन्नुरुवेगेन लताजालान्यनेकशः।
आक्रीडमानो हृष्टात्मा श्रीमान् वायुसुतो ययौ॥ २१॥
प्रांशुः कनकवर्णाभः सिंहसंहननो युवा।
मत्तवारणविक्रान्तो मत्तवारणवेगवान्॥ २२॥
मत्तवारणताम्राक्षो मत्तवारणवारणः।
नवावतारो रूपस्य विक्रीडन्निव पाण्डवः॥ २३॥
चचार रमणीयेषु गन्धमादनसानुषु।

उस समय वे हिरण भय से अनभिज्ञ होने के कारण भाग नहीं रहे थे। वे स्वस्थ थे और उन्होंने मुख में घास का ग्रास लिया हुआ था। वे कौतुहलवश उस भीम को देख रहे थे, जो श्रीमान् वायुपुत्र अपनी जाँघों से बेलों के समूहों को अनेक प्रकार से हिलाते हुए, प्रसन्नता के साथ खेल सा करते हुए जा रहे थे। भीम का कद ऊँचा था, रंग सुनहला था, शरीर सिंह के समान दृढ़ था। वे अभी युवा थे, वे मस्त हाथी के समान पराक्रमी थे, मस्त हाथी के समान ही उनका वेग था, उनकी आँखें भी मस्त हाथी के समान लाल थीं और वे युद्ध में मस्त हाथियों को भी पीछे हटाने वाले थे। सौन्दर्य के नये अवतार के समान वे पाण्डुपुत्र खेल सा करते हुए गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर विचरण कर रहे थे।

संस्मरन् विविधान् क्लेशान् दुर्योधनकृतान् बहून्॥ २४॥
द्रौपद्या वनवासिन्याः प्रियं कर्तुं समुद्यतः।
सोऽचिन्तयद् गते स्वर्गमर्जुने मयि चागते॥ २५॥
पुष्पहेतोः कथं त्वार्यः करिष्यति युधिष्ठिरः।
स्नेहान्नरवरो नूनमविश्वासाद् बलस्य च॥ २६॥
नकुलं सहदेवं च न मोक्ष्यति युधिष्ठिरः।

कथं तु कुसुमावाप्तिः स्याच्छीघ्रमिति चिन्तयन्॥ २७॥
प्रतस्थे नरशार्दूलः पक्षिराडिव वेगितः।
सज्जमानमनोदृष्टिः फुल्लेषु गिरिसानुषु॥ २८॥

वे दुर्योधन के द्वारा दिये हुए अनेक क्लेशों को याद करते हुए वनवासिनी द्रौपदी का प्रिय करने के लिये तैयार हुए थे। वे उस समय सोचने लगे कि अर्जुन इन्द्रलोक में गये हुए हैं और मैं यहाँ फूलों के लिये आ गया हूँ। अब आर्य युधिष्ठिर कोई कार्य कैसे करेंगे? स्नेह के कारण और बल पर अविश्वास के कारण वे नरश्रेष्ठ नकुल और सहदेव को निश्चय ही कहीं भेजेंगे नहीं। इसलिये मुझे फूलों की प्राप्ति जल्दी कैसे हो जाये यह सोचते हुए और अपने मन तथा दृष्टि को फूलों वाली पर्वतों की चोटियों पर लगाये हुए वे नरशार्दूल गरुड़ के समान तेजी से आगे बढ़े।

द्रौपदीवाक्यपाथेयो भीमः शीघ्रतरं ययौ।
त्रासयन् गजयूथानि वातरंहा वृकोदरः॥ २९॥
उपर्युपरि शैलाग्रमारुरुक्षुरिव द्विपः।

उस समय द्रौपदी के वाक्य ही उन्हें प्रेरित कर रहे थे। इसलिये वायु के समान वेग वाले वृकोदर भीम, हाथियों के समूहों को डराते हुए इस प्रकार तेजी से चले जा रहे थे, जैसे कोई हाथी पर्वत की सबसे ऊँची चोटी पर चढ़ना चाहता हो।

स गत्वा नलिनीं रम्यां राक्षसैरभिरक्षिताम्॥ ३०॥
कैलासशिखराभ्याशे ददर्श शुभकाननाम्।
कुबेरभवनाभ्याशे जातां पर्वतनिर्झरैः॥ ३१॥
सुरम्यां विपुलच्छायां नानाद्रुमलताकुलाम्।
हरिताम्बुजसंच्छन्नां दिव्यां कनकपुष्कराम्॥ ३२॥
नानापक्षिजनाकीर्णां सूपतीर्थामकर्दमाम्।
अतीवरम्यां सुजलां जातां पर्वतसानुषु॥ ३३॥
विचित्रभूतां लोकस्य शुभामद्भुतदर्शनाम्।

आगे जाकर भीमसेन ने कैलाशपर्वत के समीप कुबेर के भवन के निकट सुन्दर बगीचों से घिरा हुआ एक रमणीय सरोवर देखा। वह सरोवर पहाड़ी झरनों के जल से भरा हुआ था। उसके चारों तरफ गहरी छाया वाले बहुत सारे वृक्षों और लताओं के झुंड थे। वह दिव्य सरोवर हरे रंग के कमलों से भरा हुआ था। उसमें सुनहरे रंग के पुष्कर जाति के कमल खिले हुए थे। वहाँ अनेक प्रकार के पक्षीगण निवास करते थे। उस सरोवर के किनारे बहुत सुन्दर थे। उनमें कीचड़ नहीं था। वह तालाब बड़ा रमणीय, स्वच्छ जल से भरा हुआ, पर्वतों के शिखरों के बीच में स्थित, पवित्र, देखने में लोगों को विचित्र रूप से अद्भुत प्रतीत होता था। बहुत से राक्षस उसकी रक्षा कर रहे थे।

ते तु दृष्ट्वैव कौन्तेयमजिनैः प्रतिवासितम्॥ ३४॥
रुक्माङ्गदधरं वीरं भीमं भीमपराक्रमम्।
सायुधं बद्धनिस्त्रिंशमशङ्कितमरिंदमम्॥ ३५॥
पुष्करेप्सुमुपायान्त मन्योन्यमभिचुक्रुशुः।

उन राक्षसों ने जब मृगचर्म और सोने के बाजूबन्द धारण किये हुए, आयुधों से युक्त, तलवार बाँधे हुए, शत्रुओं को नष्ट करने वाले, भयानक पराक्रमी वीर भीमसेन को निर्भयता के साथ पुष्करों को लेने की इच्छा से समीप आते हुए देखा, तो वे परस्पर कोलाहल करने लगे।

आक्रीडोऽयं कुबेरस्य दयितः पुरुषर्षभ॥ ३६॥
देवर्षयस्तथा यक्षा देवाश्चात्र वृकोदर।
आमन्त्र्य यक्षप्रवरं पिबन्ति रमयन्ति च॥ ३७॥
अन्यायेनेह यः कश्चिदवमान्य धनेश्वरम्।
विहर्तुमिच्छेद् दुर्वृत्तः स विनश्येन्न संशयः॥ ३८॥
आमन्त्र्य यक्षराजं वै ततः पिब हरस्व च।
नातोऽन्यथा त्वया शक्यं किंचित् पुष्करमीक्षितुम्॥ ३९॥

उन्होंने भीम से कहा कि हे पुरुषश्रेष्ठ! यह कुबेर की क्रीडास्थली है। देवर्षि, यक्ष और देवता भी आज्ञा लेकर ही यहाँ जल पीते हैं और विहार करते हैं। तुम पहले यक्षराज की आज्ञा लो और फिर पानी पीओ तथा कमल के फूल ले जाओ। इसके बिना तुम यहाँ के किसी कमल की तरफ देख भी नहीं सकते।

भीमसेन उवाच

राक्षसास्तं न पश्यामि धनेश्वरमिहान्तिके।
दृष्ट्वापि च महाराजं नाहं याचितुमुत्सहे॥ ४०॥
न हि याचन्ति राजान एष धर्मः सनातनः।
न चाहं हातुमिच्छामि क्षात्रधर्मं कथंचन॥ ४१॥
इयं च नलिनी रम्या जाता पर्वतनिर्झरे।
नेयं भवनमासाद्य कुबेरस्य महात्मनः॥ ४२॥
तुल्या हि सर्वभूतानामियं वैश्रवणस्य च।
एवं गतेषु द्रव्येषु कः कं याचितुमर्हति॥ ४३॥

तब भीम ने कहा कि हे राक्षसों! मैं उन कुबेर को कहीं भी आसपास देख नहीं रहा हूँ। यदि मैं

उन महाराज को देख भी लूँ तो भी उनसे याचना नहीं करूँगा, क्योंकि राजा लोग किसी से माँगते नहीं हैं। यह उनका सनातन धर्म है। मैं अपने क्षत्रिय धर्म को किसी प्रकार भी छोड़ना नहीं चाहता। यह सुन्दर सरोवर पर्वतीय झरनों से बना हुआ है। यह महामना कुबेर के घर में नहीं है। इसलिये इस पर कुबेर और दूसरे प्राणियों का समान अधिकार है। ऐसी सार्वजनिक वस्तुओं के लिये कौन किससे याचना करेगा?

इत्युक्त्वाराक्षसान् सर्वान् भीमसेनो ह्यमर्षणः।
व्यगाहत महाबाहुर्नलिनीं तां महाबलः॥ ४४॥
ततः स राक्षसैर्वाचा प्रतिषिद्धः प्रतापवान्।
मा मैवमिति सक्रोधैर्भर्त्सयद्भिः समन्ततः॥ ४५॥
कदर्थीकृत्य तु स तान् राक्षसान् भीमविक्रमः।
व्यगाहत महातेजास्ते तं सर्वे न्यवारयन्॥ ४६॥

सारे राक्षसों से यह कह कर, अमर्षशील, महाबाहु, भीमसेन उस सरोवर में उतरने लगे। तब वे राक्षस क्रोध में भरकर उस प्रतापी को चारों तरफ से धमकाते हुए मना करने लगे कि ऐसा मत करो, ऐसा मत करो, पर वे महातेजस्वी, भयानक पराक्रमी भीम उन राक्षसों की अवहेलना कर उस सरोवर में उतर ही गये। तब वे सारे उन्हें मना करते हुए चिल्लाने लगे।

क्रुद्धा ब्रुवन्तोऽभिययुर्द्रुतं ते
शस्त्राणि चोद्यम्य विवृत्तनेत्राः।
ततः स गुर्वीं यमदण्डकल्पां
महागदां काञ्चनपट्टनद्धाम्॥ ४७॥
प्रगृह्य तानभ्यपतत् तरस्वी
ततोऽब्रवीत् तिष्ठत तिष्ठतेति।

आँखें फाड़कर क्रोध में चिल्लाते हुए उन राक्षसों ने शस्त्रों को उठाकर भीम पर आक्रमण कर दिया। तब वेगवान् भीम ने भी अपनी मृत्युदण्ड के समान भारी और विशाल गदा को जिसमें सोने के पतरे जड़े हुए थे, उठा लिया और उनपर आक्रमण करते हुए वे बोले कि ठहर जाओ, ठहर जाओ।

ते तं तदा तोमरपट्टिशाद्यै-
र्व्याविद्धशस्त्रैः सहसा निपेतुः॥ ४८॥
जिघांसवः क्रोधवशाः सुभीमा
भीमं समन्तात् परिवव्रुरुग्राः।
तेषां स मार्गान् विविधान् महात्मा
विहत्य शस्त्राणि च शात्रवाणाम्॥ ४९॥
यथा प्रवीरान् निजघान भीमः
परं शतं पुष्करिणीसमीपे।

तब उन क्रोधवश नामक भयानक राक्षसों ने भीम को मारने की इच्छा से शत्रुओं के शस्त्रों को नष्ट करने वाले तोमर पट्टिश आदि शस्त्रों के साथ उन्हें सब तरफ से घेर लिया। पर उन मनस्वी भीम ने शत्रुओं के अनेक तरह के सारे पैंतरों और शस्त्रों को विफल कर उनके सौ से अधिक वीरों को उस सरोवर के समीप मार गिराया।

ते तस्य वीर्यं च बलं च दृष्ट्वा
विद्याबलं बाहुबलं तथैव॥ ५०॥
अशक्नुवन्तः सहितं समन्ताद्
हतं प्रवीराः सहसा निवृत्ताः।
दीर्यमाणास्तत एव तूर्णं
कैलासशृङ्गाण्य भिदुद्रुवुस्ते॥ ५१॥

वे वीर राक्षस भीमसेन के पराक्रम, शक्ति, विद्याबल, और बाहुबल को देखकर एकत्र होकर भी उनका वेग न सह सके और शीघ्र ही एकदम युद्ध से निवृत्त हो गये। भीम के द्वारा मारे जाते हुए वे जल्दी से कैलाश पर्वत के शिखरों पर भाग गये।

ततः स पीत्वामृतकल्पमम्भो
भूयो बभूवोत्तमवीर्यतेजाः।
उत्पाट्य जग्राह च सोऽम्बुजानि
सौगन्धिकान्युत्तम गन्धवन्ति॥ ५२॥

तब भीम उस सरोवर के अमृत के समान जल को पीकर फिर उत्तम बल और तेज वाले बन गये तथा श्रेष्ठ सुगन्ध से युक्त सौगन्धिक कमलों को उखाड़ उखाड़ कर एकत्र करने लगे।

ततस्तु ते क्रोधवशाः समेत्य
धनेश्वरं भीमबलप्रणुन्नाः।
भीमस्य वीर्यं च बलं च संख्ये
यथा वदाचख्युरतीव भीताः॥ ५३॥
तेषां वचस्तत् तु निशम्य देवः
प्रहस्य रक्षांसि ततोऽभ्युवाच।
गृह्णातु भीमो जलजानि कामात्
कृष्णानिमित्तं विदितं ममैतत्॥ ५४॥

तब वे क्रोधवश नाम के राक्षस जो भीम की शक्ति से पीड़ित थे, इकट्ठे हो कर कुबेर के पास गये और उन्होंने उन्हें युद्ध में भीम के बल और पराक्रम का यथावत् वर्णन कह सुनाया। उनकी बातों को सुनकर श्रेष्ठदेवता कुबेर ने हँसकर राक्षसों से कहा कि मुझे पता है। भीम को इच्छानुसार कमल द्रौपदी के लिये ले जाने दो।

अपश्यमानो भीमं तु धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
ततः कृष्णां यमौ चापि समीपस्थावरिंदमः॥ ५५॥
पप्रच्छ भ्रातरं भीमं भीमकर्माणमाहवे।
कच्चित् क्व भीमः पाञ्चालि किंचित् कृत्यं चिकीर्षति॥ ५६॥
तं तथावादिनं कृष्णा प्रत्युवाच मनस्विनी।
प्रिया प्रियं चिकीर्षन्ती महिषी चारुहासिनी॥ ५७॥

उधर जब धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने भीम को नहीं देखा तब उन शत्रुओं को नष्ट करने वाले ने अपने समीप बैठे दोनों नकुल और सहदेव से तथा द्रौपदी से युद्ध में भयानक कर्म करने वाले भाई भीम के विषय में पूछा कि हे द्रौपदी! भीम कहाँ है? क्या वे कुछ विशेष काम करना चाहते हैं? तब ऐसा कहते हुए उनसे सुन्दर मुस्कराहट वाली, उनका प्रिय करने की इच्छा वाली, उनकी प्यारी मनस्विनी महारानी द्रौपदी ने उत्तर दिया कि--

यत् तत् सौगन्धिकं राजन्नाहृतं मातरिश्वना।
तन्मया भीमसेनस्य प्रीतयोद्योपपादितम्॥ ५८॥
अपि चोक्तो मया वीरो यदि पश्येर्बहून्यपि।
तानि सर्वाण्युपादाय शीघ्रमागम्यतामिति॥ ५९॥
स तु नूनं महाबाहुः प्रियार्थं मम पाण्डवः।
प्रागुदीचीं दिशं राजंस्तान्याहर्तुमितो गतः॥ ६०॥

हे राजन्! वायु जिस सौगन्धिक कमल को उड़ा कर लायी थी, उसे मैंने प्रसन्नता से भीमसेन को दिया है और उस वीर से कहा कि यदि तुम ऐसे और भी बहुत से फूलों को देखो, तो उन सबको लेकर जल्दी से आ जाओ। हे राजन्! वे महाबाहु पाण्डव मेरा प्रिय करने के लिये निश्चित ही उन्हें लेने के लिये यहाँ से उत्तर पूर्व दिशा की तरफ गये हैं।

उक्तस्त्वेवं तया राजा यमाविदमथाब्रवीत्।
गच्छाम सहितास्तूर्णं येन यातो वृकोदरः॥ ६१॥
तमन्वियाम भवतां प्रभावाद् रजनीचराः।
पुरा स नापराध्नोति सिद्धानां ब्रह्मवादिनाम्॥ ६२॥
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे हैडिम्बप्रमुखास्तदा।
आदाय पाण्डवाँश्चैव, प्रययुः प्रीतमानसाः॥ ६३॥
ते सर्वे त्वरिता गत्वा ददृशुः शुभकाननाम्।
पद्मसौगन्धिकवतीं नलिनीं सुमनोरमाम्॥ ६४॥

द्रौपदी के द्वारा ऐसा कहे जाने पर राजा युधिष्ठिर ने नकुल और सहदेव से कहा कि हम भी एक साथ जल्दी से उधर ही चलते हैं, जिधर भीम गए हैं। हे राक्षसों! जब तक भीम ब्रह्मवादी सिद्धों का कुछ अपराध न कर दें, हम आप लोगों के प्रभाव से उन्हें ढूँढ लेते हैं। तब अच्छा ऐसा ही होगा ऐसा कहकर वे घटोत्कच आदि राक्षस प्रसन्नता के साथ उन पाण्डवों को लेकर वहाँ से चल दिये। उन सबने शीघ्रता से जाकर उस सुन्दर वनस्थली वाले सौगन्धिक कमलों से युक्त अत्यन्त रमणीय सरोवर को देखा।

तं च भीमं महात्मानं तस्यास्तीरे मनस्विनम्।
ददृशुर्निहतांश्चैव यक्षांश्च विपुलेक्षणान्॥ ६५॥
भिन्नकायाक्षिबाहूरून् संचूर्णितशिरोधरान्।
तं च भीमं महात्मानं तस्यास्तीरे व्यवस्थितम्॥ ६६॥
सक्रोधं स्तब्धनयनं संदष्टदशनच्छदम्।
उद्यम्य च गदां दोर्भ्यां नदीतीरेष्ववस्थितम्॥ ६७॥

वहाँ उन्होंने उस महात्मा और मनस्वी भीम को भी देखा तथा मोटी आँखों वाले उन यक्षों को भी देखा जिनके शरीर आँखें, बाहें, जाँघें तोड़ दी गयीं थीं और गर्दनें कुचल दी गयीं थीं। वे महात्मा भीम नदी के किनारे खड़े हुए थे। वे क्रोध से भरे हुए थे, उनकी आँखें स्तब्ध थीं और वे अपने ओठों को चबा रहे थे, उन्होंने दोनों हाथों से गदा को उठाया हुआ था।

तं दृष्ट्वा धर्मराजस्तु परिष्वज्य पुनः पुनः।
उवाच श्लक्ष्णयावाचा कौन्तेय किमिदं कृतम्॥ ६८॥
साहसं बत भद्रं ते देवानामथ चाप्रियम्।
पुनरेवं न कर्तव्यं मम चेदिच्छसि प्रियम्॥ ६९॥
अनुशिष्य तु कौन्तेयं पद्मानि परिगृह्य च।
प्रत्यागतः पुनस्तं तु नरनारायणाश्रमम्।
भीमसेनादिभिः सर्वैर्भ्रातृभिः परिवारितः॥ ७०॥

धर्मराज युधिष्ठिर ने उन्हें इस अवस्था में देखकर उन्हें बार-बार हृदय से लगाया और उन कुन्तीपुत्र से मधुर वाणी में कहा कि यह क्या कर दिया।

तुम्हारा यह कार्य साहसपूर्ण है। तुम्हारा कल्याण हो। पर देवताओं के लिये यह अप्रिय है। यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो फिर इस प्रकार मत करना। इस प्रकार उन्हें उपदेश देकर और कमलों को ग्रहण कर वे भीमसेन आदि सारे भाइयों से घिरे हुए पुनः उस नारायण आश्रम में लौट आए।

उनत्तीसवाँ अध्याय : पाण्डवों का राजर्षि आर्ष्टिसेन के आश्रम पर पहुँचना।

स समानीय तान् सर्वान् भ्रातॄनित्यब्रवीद्वचः।
द्रौपद्या सहितान् काले संस्मरन् भ्रातरं जयम्॥ १॥
समाश्चतस्त्रोऽभिगताः शिवेन चरतां वने।
कृतोद्देशः स बीभत्सुः पञ्चमीमभितः समाम्॥ २॥
अत्र गाण्डीवधन्वानमवाप्तास्त्रमरिन्दमम्।
देवलोकादिमं लोकं द्रक्ष्यामः पुनरागतम्॥ ३॥
इत्युक्त्वा ब्राह्मणान् सर्वानामन्त्रयत पाण्डवः।
कारणं चैव तत् तेषामाचचक्षे तपस्विनाम्॥ ४॥

उन युधिष्ठिर ने एक दिन द्रौपदी के सहित सारे भाइयों को एकत्र कर अपने भाई अर्जुन को याद करते हुए कहा कि हमें अर्जुन के बिना कुशल पूर्वक वन में विचरण करते हुए चार वर्ष व्यतीत हो गये। अर्जुन ने हमें यह स्पष्ट किया था कि वह पाँचवें वर्ष में लौट आयेगा। अब हम शत्रुओं को नष्ट करने वाले गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन को, जिसने अब अस्त्रों की प्राप्ति कर ली होगी, देवताओं के देश से इस देश में पुनः आया हुआ देखेंगे। ऐसा कहकर उन्होंने अपने साथ आये ब्राह्मणों को बुलाया और उन तपस्वियों को बुलाये जाने का कारण बताया।

प्रतस्थे सह विप्रैस्तैर्भ्रातृभिश्च परन्तपः।
क्वचित् पद्भ्यां ततोऽगच्छद् राक्षसैरुह्यते क्वचित्॥ ५॥
सिंहव्याघ्रगजाकीर्णामुदीचीं प्रययौ दिशम्।
अवेक्षमाणः कैलासं मैनाकं चैव पर्वतम्॥ ६॥
गन्धमादनपादांश्च श्वेतं चापि शिलोच्चयम्।
पृष्ठं हिमवतः पुण्यं ययौ सप्तदशेऽहनि॥ ७॥

फिर वह परंतप भाइयों और ब्राह्मणों के साथ वहाँ से चल दिये। वे कहीं पैदल चलते थे तो कहीं राक्षसों के द्वारा ढोये जाते थे। वे सिंह व्याघ्र और हाथियों से भरी हुई उत्तर दिशा की तरफ कैलाश, मैनाक, गन्धमादन और श्वेत पर्वतों को, जो शिलाओं के भंडार थे, देखते हुए जा रहे थे। सत्रहवें दिन वे हिमालय के पवित्र पृष्ठ पर पहुँचे।

पृष्ठे हिमवतः पुण्ये नानाद्रुमलतावृते।
सलिलावर्तसंजातैः पुष्पितैश्च महीरुहैः॥ ८॥
समावृतं पुण्यतममाश्रमं वृषपर्वणः।
तमुपागम्य राजर्षिं धर्मात्मानमरिन्दमाः॥ ९॥
पाण्डवा वृषपर्वाणमवन्दन्त गतक्लमाः।
अभ्यनन्दत् स राजर्षिः पुत्रवद् भरतर्षभान्॥ १०॥
पूजितास्त्वावसंस्तत्र सप्तरात्रमरिन्दमाः।
अष्टमेऽहनि सम्प्राप्ते तमृषिं लोकविश्रुतम्॥ ११॥
आमन्त्र्य वृषपर्वाणं प्रस्थानं प्रत्यरोचयन्।

हिमालय के उस पवित्र पृष्ठ पर जो अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से भरा हुआ था, जल धाराओं से सींचे जाते हुए वहाँ उत्पन्न हुए फूलों वाले वृक्षों से घिरा हुआ वृषपर्वा का अत्यन्त पवित्र आश्रम था। उन धर्मात्मा राजर्षि वृषपर्वा के समीप पहुँचकर वे शत्रुदमन पांडव थकावट से रहित हो गये और उन्होंने उन्हें प्रणाम किया। तब उन राजर्षि ने उन भरतश्रेष्ठों का पुत्र के समान अभिनन्दन किया। उनसे सत्कार पाकर वे शत्रुदमन पांडव वहाँ सात रात्रियों तक रहे। आठवें दिन के आने पर उन्होंने लोकप्रसिद्ध वृषपर्वा ऋषि से आज्ञा लेकर आगे प्रस्थान के लिये विचार किया।

अन्वशासत् स धर्मज्ञः पुत्रवद्भरतर्षभान्॥ १२॥
तेऽनुज्ञाता महात्मानः प्रययुर्दिशमुत्तराम्।
तान् प्रस्थितानभ्यगच्छद् वृषपर्वा महीपतिः॥ १३॥
उपन्यस्य महातेजा विप्रेभ्यः पाण्डवांस्तदा।
अनुसंसार्य कौन्तेयानाशीर्भिरभिनन्द्य च॥ १४॥
वृषपर्वा निववृते पन्थानमुपदिश्य च।
नानामृगगणैर्जुष्टं कौन्तेयः सत्यविक्रमः॥ १५॥
पदातिर्भ्रातृभिः सार्धं प्रातिष्ठत युधिष्ठिरः।

तब उन धर्मज्ञ वृषपर्वा ने उन भरतश्रेष्ठों को पुत्र की भाँति उपदेश दिया और वे महात्मा लोग उनसे आज्ञा लेकर उत्तर दिशा की तरफ चल दिये। जाते हुए कुन्तीपुत्र पाण्डवों को उन महातेजस्वी वृषपर्वा ने आशीर्वादों से अभिनन्दित किया, और उन्हें रास्ते के जानकार ब्राह्मणों को सौंपकर, तथा थोड़ी दूर तक उनके साथ चलकर उन्हें मार्ग के

विषय में स्वयं बताकर, वे लौट गये। अनेक मृगों के समूहों से भरे हुए उस मार्ग पर वे सत्यपराक्रमी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ पैदल ही चल दिये।

नानाद्रुमनिरोधेषु वसन्तः शैलसानुषु॥ १६॥
पर्वतं विविशुः श्वेतं चतुर्थेऽहनि पाण्डवाः।
महाभ्रघनसंकाशं सलिलोपहितं शुभम्॥ १७॥
मणिकाञ्चनरूप्यस्य शिलानां च समुच्चयम्।
ते समासाद्य पन्थानं यथोक्तं वृषपर्वणा॥ १८॥
अनुसस्त्रुर्यथोद्देशं पश्यन्तो विविधान्नगान्।

अनेक प्रकार के वृक्षों से हरे भरे पर्वत शिखरों पर पड़ाव डालते हुए वे पाण्डव चौथे दिन श्वेत पर्वत पर पहुँचे। वह श्वेत पर्वत विशाल गहरे बादलों के समान प्रतीत होता था। वहाँ पवित्र जल बहुत मात्रा में विद्यमान था, वह शिलाओं का भंडार था और वहाँ मणि स्वर्ण और चाँदी की खानें थीं। वे वृषपर्वा जी के बताये हुए मार्ग पर चलते हुए, अनेक तरह के वृक्षों को देखते हुए अपने उद्दिष्ट स्थान की तरफ जा रहे थे।

उपर्युपरि शैलस्य गुहाः परमदुर्गमाः॥ १९॥
सुदुर्गमांस्ते सुबहून् सुखेनैवाभिचक्रमुः।
धौम्यः कृष्णा च पार्थाश्च लोमशश्च महानृषिः॥ २०॥
अगच्छन् सहितास्तत्र न कश्चिदवहीयते।
ते मृगद्विजसंघुष्टं नानाद्रुमलतायुतम्॥ २१॥
शाखामृगगणैश्चैव सेवितं सुमनोरमम्।
पुण्यं पद्मसरोयुक्तं सपल्वलमहावनम्॥ २२॥
उपतस्थुर्महाभागा माल्यवन्तं महागिरिम्।

उस पर्वत के उपर अत्यन्त दुर्गम गुफाएँ थीं। वे लोग उन दुर्गम स्थानों को सुख से ही पार कर गये। धौम्य, द्रौपदी, पाण्डव और लोमश ऋषि, ये सारे इकट्ठे चल रहे थे। कोई किसी का साथ नहीं छोड़ता था। इसके पश्चात् वे लोग मृगों और पक्षियों से भरे हुए, अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से युक्त, बन्दरों के समूहों से सेवित और बड़े सुन्दर पवित्र कमलों वाले सरोवर और जलकुण्ड जिनमें थे, ऐसे विशाल वनों वाले माल्यवान् नाम के पर्वत पर पहुँचे।

ते गन्धमादनवनं तन्नन्दनवनोपमम्॥ २३॥
मुदिताः पाण्डुतनया मनोहृदयनन्दनम्।
विविशुः क्रमशो वीराः शरण्यं शुभकाननम्॥ २४॥
कमलोत्पलकह्लारपुण्डरीक सुगन्धिना।
सेव्यमाना वने तस्मिन् सुखस्पर्शेन वायुना॥ २५॥
ततो युधिष्ठिरो भीममाहेदं प्रीतिमद् वचः।
अहो श्रीमदिदं भीम गन्धमादनकाननम्॥ २६॥

उसके पश्चात् वे पाण्डुपुत्र गन्धमादन पर्वत के उस वन में जो नन्दनवन के समान सुन्दर था, जो मन को हृदय को प्रसन्न करने वाला था और सबको शरण देने वाला था, प्रसन्नता के साथ प्रविष्ट हुए। उस समय कमल, उत्पल, कह्लार और पुण्डरीक की सुन्दर गन्ध से युक्त, सुखद स्पर्श वाली वायु उनकी सेवा कर रही थी। तब युधिष्ठिर ने भीम से प्रसन्नता के साथ यह कहा कि हे भीम! यह गन्धमादन पर्वत का वन कितना सौन्दर्यशाली है।

वने ह्यस्मिन् मनोरम्ये दिव्याः काननजा द्रुमाः।
लताश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलोपगाः॥ २७॥
भान्त्येते पुष्पविकचाः पुंस्कोकिलकुलाकुलाः।
नात्र कण्टकिनः केचिन्न च विद्यन्त्यपुष्पिताः॥ २८॥
स्निग्धपत्रफला वृक्षा गन्धमादनसानुषु।
भ्रमरारावमधुरा नलिनीः फुल्लपङ्कजाः॥ २९॥

इस मन को हरने वाले वन में अलौकिक वृक्ष हैं और विविध आकार वाली लताएँ हैं। ये सब पत्तों फूलों और फलों से भरी हुई हैं। गन्धमादन पर्वत की चोटियों पर ये वृक्ष जिनके पत्ते और फल चिकने हैं, जो फूलों से भरे हुए और कोकिलों से अलंकृत हैं बड़े सुन्दर लग रहे हैं। यहाँ कोई भी वृक्ष ऐसे नहीं हैं, जिनमें काँटें हो और जिनमें फूल न हों। फूले कमलों वाले सरोवर भ्रमरों की गुंजार से मनोहर लग रहे हैं।

विलोड्यमानाः पश्येमाः करिभिः सकरेणुभिः।
पश्येमां नलिनीं चान्यां कमलोत्पलमालिनीम्॥ ३०॥
नानाकुसुमगन्धाढ्यास्तस्येमाः काननोत्तमे।
उपगीयमाना भ्रमरै राजन्ते वनराजयः॥ ३१॥
लताभिः पुष्पिताग्राभिः पुष्पिताः पादपोत्तमाः।
संश्लिष्टाः पार्थ शोभन्ते गन्धमादनसानुषु॥ ३२॥

इन तालाबों में हाथी हथिनियों के साथ घुसकर उन्हे विलोडित कर रहे हैं। इस दूसरे सरोवर को देखो, जो कमल और उत्पलों की मालाओं को धारण किये हुए है। गन्धमादन पर्वत के इस उत्तम वन में दूसरी छोटी-छोटी वन श्रेणियाँ, जो अनेक प्रकार के फूलों की गन्ध से भरी हुई हैं और भ्रमरों की

गुंजार के रूप में मानों गान कर रही हैं कैसी सुशोभित हो रहीं हैं? हे पार्थ! गन्धमादन की चोटियों पर वे फूलों वाले वृक्ष फूलों वाली लताओं से लिपटे हुए कैसे सुन्दर लग रहे हैं।

शिखण्डिनीभिश्चरतां सहितानां शिखण्डिनाम्।
नदतां शृणु निर्घोषं भीम पर्वतसानुषु॥ ३३॥
चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलसारिकाः।
पत्रिणः पुष्पितानेतान् संपतन्ति महाद्रुमान्॥ ३४॥
रक्तपीतारुणाः पार्थ पादपाग्रगताः खगाः।
परस्परमुदीक्षन्ते बहवो जीवजीवकाः॥ ३५॥
हरितारुणवर्णानां शाद्वलानां समीपतः।
सारसाः प्रतिदृश्यन्ते शैलप्रस्त्रवणेष्वपि॥ ३६॥
वदन्ति मधुरा वाचः सर्वभूतमनोरमाः।
भृङ्गराजोपचक्राश्च लोहपृष्ठाः पतत्रिणः॥ ३७॥
चतुर्विषाणाः पद्माभाः कुञ्जराः सकरेणवः।
एते वैदूर्यवर्णाभं क्षोभयन्ति महत् सरः॥ ३८॥

हे भीम! मोरनियों के साथ विचरण करते हुए और कूजते हुए मोरों के केकारव को तो सुनो। ये चकोर, शतपत्र, मत्तकोकिल, सारिका आदि पक्षी फूलों से भरे उन विशाल वृक्षों की तरफ उड़े जा रहे हैं। हे पार्थ! वृक्षों की शिखाओं पर बैठे हुए ये लाल, पीले और अरुण रंग के बहुत से चकोर एक दूसरे की तरफ देख रहे हैं। हरी और गुलाबी रंग की घासों तथा पहाड़ी झरनों के समीप ये सारस दिखाई दे रहे हैं। मृगराज, उपचक्र अर्थात् चक्रवाक लोहपृष्ठ अर्थात् कंक नाम के पक्षी सारे प्राणियों के मन को हरने वाली मीठी बोली बोल रहे हैं। ये चार दाँतों वाले, कमल के समान कान्ति वाले हाथी अपनी हथिनियों के साथ वैदूर्यमणि के समान कान्ति वाले विशाल सरोवर को विलोडित कर रहे हैं।

बहुतालसमुत्सेधाः शैलशृङ्गपरिच्युताः।
नानाप्रस्त्रवणेभ्यश्च वारिधाराः पतन्ति च॥ ३९॥
भास्कराभाः प्रभाभिश्च शारदाभ्रघनोपमाः।
शोभयन्ति महाशैलं नानारजतधातवः॥ ४०॥
क्वचिदञ्जनवर्णाभाः क्वचित् काञ्चनसंनिभाः।
धातवो हरितालस्य क्वचिद्धिङ्गुलकस्य च॥ ४१॥
मनःशिलागुहाश्चैव सन्ध्याभ्रनिकरोपमाः।
शशलोहितवर्णाभाः क्वचिद्गैरिकधातवः॥ ४२॥
सितासिताभ्रप्रतिमा बालसूर्यसमप्रभाः।

अनेकों झरनों से जल की धाराएँ, जिनकी ऊँचाई कई ताड़ के वृक्षों के बराबर है, पर्वत के ऊँचे शिखरों से गिर रही हैं। अनेक प्रकार की रजतमय धातुएँ, जो कहीं सूर्य के समान, कहीं शरद ऋतु के बादलों के समान, कहीं अंजन के समान काली, कहीं सुवर्ण के समान सुनहरी रंग की दिखाई देती है, इस विशाल पर्वत की शोभा को बढ़ा रही हैं। यहाँ कहीं, हरिताल संबंधी धातुएँ हैं तो कहीं हिंगुल संबंधी। कहीं मैनसिल की गुफाएँ हैं, जो सन्ध्या वर्ण के लाल बादलों के समान जान पड़ती हैं। कहीं खरगोश के खून के रंग के समान गेरू की धातुएँ हैं तो कहीं सफेद और काले बादलों के रंग की धातुएँ हैं तो कहीं प्रातः काल के सूर्य के समान अरुण रंग की धातुएँ हैं।

नातृप्यन् पर्वतेन्द्रस्य दर्शनेन परन्तपाः॥ ४३॥
उपेतमथ माल्यैश्च फलवद्भिश्च पादपैः।
आर्ष्टिषेणस्य राजर्षेराश्रमं ददृशुस्तदा॥ ४४॥
ततस्ते तिग्मतपसं कृशं धमनिसंततम्।
पारगं सर्वधर्माणामार्ष्टिषेणमुपागमन्॥ ४५॥

इस प्रकार शत्रुओं को तपाने वाले वे पाण्डव उस पर्वतराज को देखते हुए तृप्त नहीं हुए। उसके पश्चात् उन्होंने पुष्प मालाओं से युक्त और फलदार वृक्षों से सम्पन्न आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम को देखा। तब वे उन आर्ष्टिषेण ऋषि के जो कठोर तपस्वी, दुर्बल शरीर वाले थे, जिनकी नस-नाड़ियाँ दिखाई दे रहीं थीं, जो सारे धर्मों के ज्ञाता थे, समीप गये।

तीसवाँ अध्याय : आर्ष्टिषेण की शिक्षा, पाण्डवों का निवास, अर्जुन प्रतीक्षा।

युधिष्ठिरस्तमासाद्य तपसा दग्धकिल्बिषम्।
अभ्यवादयत प्रीतः शिरसा नाम कीर्तयन्॥ १॥
ततः कृष्णा च भीमश्च यमौ च सुतपस्विनौ।
शिरोभिः प्राप्य राजर्षिं परिवार्योपतस्थिरे॥ २॥
तथैव धौम्यो धर्मज्ञः पाण्डवानां पुरोहितः।
यथान्यायमुपाक्रान्तस्तमृषिं संशितव्रतम्॥ ३॥
कुरूणामृषभं पार्थं पूजयित्वा महातपाः।
सह भ्रातृभिरासीनं पर्यपृच्छदनामयम्॥ ४॥

तब तपस्या के द्वारा जिन्होंने अपने पापों को दग्ध कर दिया था उन राजर्षि आर्ष्टिषेण के पास जाकर युधिष्ठिर ने सिर झुकाकर अपना नाम बताते हुए उन्हें प्रणाम किया। तब द्रौपदी, भीम, और तपस्वी नकुल और सहदेव भी सिर झुका कर उन राजर्षि को प्रणाम कर और घेर कर खड़े हो गये। उसी प्रकार पाण्डवों के पुरोहित धर्मज्ञ धौम्य भी कठोर व्रत का पालन करने वाले उन राजर्षि के समक्ष यथोचित रूप से उपस्थित हुए। तब उन महातपस्वी ने कुरुश्रेष्ठ उन कुन्तीपुत्र का उनके भाइयों के साथ सत्कार किया और उनके बैठ जाने पर उनका कुशल समाचार पूछा।

नानृते कुरुषे भावं कच्चिद् धर्मे प्रवर्तसे।
मातापित्रोश्च ते वृत्तिः कच्चित् पार्थ न सीदति॥ ५॥
कच्चित् ते गुरवः सर्वे वृद्धा वैद्याश्च पूजिताः।
कच्चिन्न कुरुषे भावं पार्थ पापेषु कर्मसु॥ ६॥
सुकृतं प्रतिकर्तुं च कच्चिद्धातुं च दुष्कृतम्।
यथान्यायं कुरुश्रेष्ठ जानासि न विकत्थसे॥ ७॥
यथार्हं मानिताः कच्चित् त्वया नन्दन्ति साधवः।
वनेष्वपि वसन् कच्चिद् धर्ममेवानुवर्तसे॥ ८॥

उन्होंने पूछा कि हे कुन्तीपुत्र! असत्य में तो अपना मन नहीं लगाते? धर्म में ही लगे रहते हो? माता पिता की सेवा में तुम्हारी मनोवृत्ति कष्ट तो अनुभव नहीं करती? क्या तुमने अपने गुरुओं, वृद्धों और विद्वानों का सदा आदर किया है? कभी पाप कर्म में तो तुम्हारी रुचि नहीं होती? हे कुरुश्रेष्ठ! क्या तुम किये हुए उपकार का बदला देने और किये हुए उपकार को भूल जाने को यथोचित रूप में समझते हो? तुम अपनी बड़ाई तो नहीं करते? तुम्हारे द्वारा यथायोग्य सम्मानित होकर क्या सज्जन लोग आनन्द का अनुभव करते हैं? वनों में रहते हुए भी क्या धर्म का ही पालन करते हो?

कच्चिद् धौम्यस्त्वदाचारैर्न पार्थ परितप्यते।
दानधर्मतपःशौचैरार्जवेन तितिक्षया॥ ९॥
पितृपैतामहं वृत्तं कच्चित् पार्थानुवर्तसे।
कच्चिद् राजर्षियातेन पथा गच्छसि पाण्डव॥ १०॥
पिता माता तथैवाग्निर्गुरुरात्मा च पञ्चमः।
यस्यैते पूजिताः पार्थ तस्या लोकावुभौ जितौ॥ ११॥

युधिष्ठिर उवाच

भगवन्नार्य माहैतद् यथावद् धर्मनिश्चयम्।
यथाशक्ति यथान्यायं क्रियते विधिवन्मया॥ १२॥

हे पार्थ! तुम्हारे व्यवहार से कहीं ये धौम्य दुःखी तो नहीं होते? क्या तुम दान धर्म, तप, पवित्रता, सरल व्यवहार और सहनशीलता के द्वारा अपने बाप दादाओं के चरित्र का अनुकरण करते हो? हे पाण्डव! क्या राजर्षियों के मार्ग पर चलते हो? हे कुन्तीपुत्र! जो माता-पिता अग्नि, गुरु और अपनी आत्मा का सम्मान करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों को जीत लेता है। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे भगवन्! हे आर्य! आपने जो कुछ भी धर्म के विषय में निश्चित बातें बतायीं हैं, मैं यथाशक्ति, यथायोग्य, और यथाविधि उनका पालन करता हूँ।

आर्ष्टिषेण उवाच

भुञ्जाना मुनिभोज्यानि रसवन्ति फलानि च।
वसध्वं पाण्डवश्रेष्ठा यावदर्जुनदर्शनात्॥ १३॥
न तात चपलैर्भाव्यमिह प्राप्तैः कथंचन।
उषित्वेह यथाकामं यथाश्रद्धं विहृत्य च॥ १४॥
ततः शस्त्रजितां तात, पृथिवीं पालयिष्यसि।
एतदात्महितं श्रुत्वा तस्याप्रतिमतेजसः॥ १५॥
शासनं सततं चक्रुस्तथैव भरतर्षभाः।
भुञ्जाना मुनिभोज्यानि रसवन्ति फलानि च॥ १६॥
मेध्यानि हिमवत्पृष्ठे मधूनि विविधानि च।
एवं ते न्यवसंस्तत्र पाण्डवा भरतर्षभाः॥ १७॥
तथा निवसतां तेषां पञ्चमं वर्षमभ्यगात्।
शृण्वतां लोमशोक्तानि वाक्यानि विविधान्युत॥ १८॥

आर्ष्टिषेण जी ने कहा कि हे पाण्डव श्रेष्ठों! तुम लोग मुनियों के खाने योग्य रसीले फलों का भोजन करते हुए अर्जुन के आने तक यहीं रहो। हे तात! यहाँ रहने वालों को किसी भी तरह चपलता नहीं करनी चाहिये। आप लोग यहाँ अपनी इच्छा के अनुसार रहकर और श्रेष्ठों के अनुसार घूमफिर कर लौट जाओगे और शस्त्रों के द्वारा जीती हुई पृथिवी का पालन करोगे। उन अमित तेजस्वी की ये अपने कल्याण की बातें सुनकर उन भरतश्रेष्ठों ने लगातार उनका पालन किया। इस प्रकार वे भरतश्रेष्ठ पाण्डव मुनियों के खाने योग्य रसीले फलों को खाते हुए और उस हिमालय के पृष्ठ पर अनेक प्रकार के पवित्र मधु का उपभोग करते हुए वहाँ रहने लगे। वहाँ रहते हुए और लोमश जी की कहीं हुई अनेक प्रकार की बातों को सुनते हुए उनका वहाँ पाँचवाँ वर्ष बीत गया।

तस्मिन् नगेन्द्रे वसतां तु तेषां
महात्मनां सद्व्रतमास्थितानाम्।
रतिः प्रमोदश्च बभूव तेषा-
माकाङ्क्षतां दर्शनमर्जुनस्य॥ १९॥
तान् वीर्ययुक्तान् सुविशुद्धकामां-
स्तेजस्विनः सत्यधृतिप्रधानान्।
सम्प्रीयमाणा बहवोऽभिजग्मु-
र्गन्धर्वसङ्घाश्च महर्षयश्च॥ २०॥

अर्जुन को देखने की इच्छा से उस पर्वत पर रहते हुए, अच्छे व्रतों का पालन करते हुए वे महात्मा पाण्डव बड़े आनन्द का अनुभव कर रहे थे। उनमें उस स्थान के प्रति लगाव अर्थात् प्रेम उत्पन्न हो गया था। उन तेजस्वी, विशुद्ध कामनाओं वाले, पराक्रमी, सत्य और धैर्य को ही प्रधानता देने वाले पाण्डवों से प्रसन्न होकर अनेक गन्धर्वों के समूह और महर्षिगण उनसे मिलने के लिये आया करते थे।

मयूरहंसस्वन नादितानि
पुष्पोपकीर्णानि महाचलस्य।
शृङ्गाणि सानूनि च पश्यमाना
गिरेः परं हर्षमवाप्य तस्थुः॥ २१॥
साक्षात् कुबेरेण कृताश्च तस्मिन्
नगोत्तमे संवृतकूलरोधसः।
कादम्बकारण्डव हंसजुष्टाः
पद्माकुलाः पुष्करिणीरपश्यन्॥ २२॥

उस महान् पर्वत के फूलों से भरे हुए, मोर हंसों की सुन्दर ध्वनि से गूँजते हुए, शिखरों को देखते हुए पाण्डव लोग बड़े हर्ष के साथ वहाँ रह रहे थे। वहाँ उस श्रेष्ठ पर्वत पर साक्षात् कुबेर ने अनेक सरोवर बनवाये थे जो शैवाल आदि से ढके रहते थे, जिनके जल कमलों से आच्छादित थे और हंस कारण्डव आदि पक्षी उनका सेवन करते थे। पाण्डव उन सरोवरों को देखा करते थे।

अनेकवर्णैश्च सुगन्धिभिश्च
महाद्रुमैः संततमभ्रजालैः।
तपःप्रधानाः सततं चरन्तः।
शृङ्गं गिरेश्चिन्तयितुं न शेकुः॥ २३॥
यमास्थितः स्थावरजङ्गमानि
विभावसुर्भावय तेऽमितौजाः।
तस्योदयं चास्तमनं च वीरा-
स्तत्र स्थितास्ते ददृशुर्नृसिंहाः॥ २४॥

मेघ मालाओं तथा अनेक रंगवाले सुगन्धित महान् वृक्षों से व्याप्त उस पर्वत के शिखर पर लगातार विचरण करते हुए, तपस्या को ही प्रधानता देने वाले पाण्डव लोग उस पर्वत की महानता का अनुमान नहीं कर पाते थे। जिस सूर्य का सहारा लेकर अमित तेजस्वी अग्नि स्थावर-जंगम पदार्थों का पोषण करती है, उस सूर्य के उदय और अस्त होने के दृश्यों को वे नरसिंह पाण्डव देखा करते थे।

स्वाधयायवन्तः सततक्रियाश्च
धर्मप्रधानाश्च शुचिव्रताश्च।
सत्ये स्थितास्तस्य महारथस्य
सत्यव्रतस्यागमन प्रतीक्षाः॥ २५॥
इहैव हर्षोऽस्तु समागतानां
क्षिप्रं कृतास्त्रेण धनंजयेन।
इति ब्रुवन्तः परमाशिषस्ते
पार्थास्तपोयोगपरा बभूवुः॥ २६॥
दृष्ट्वा विचित्राणि गिरौ वनानि।
किरीटिनं चिन्तयतामभीक्ष्णम्।
बभूव रात्रिर्दिवसश्च तेषां
संवत्सरेणैव समानरूपः॥ २७॥

पाण्डव लोग वहाँ स्वाध्याय में लगे हुए, शुभ कार्यों को करते हुए धर्म को ही प्रधानता देते थे। पवित्र व्रतों का पालन करते हुए, सत्य का आचरण करते हुए वे उस सत्यव्रत महारथी अर्जुन के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। यहाँ आए हुए हमें अस्त्रों को प्राप्त कर आने वाले अर्जुन से जल्दी ही हर्ष की प्राप्ति हो ऐसा आपस में कहते हुए, अर्जुन के लिये शुभकामना और आशीर्वाद प्रकट करते हुए वे कुन्तीपुत्र तपस्या और योग की साधना में लगे रहते थे। उस पर्वत पर विचित्र वनों को देखते हुए और लगातार अर्जुन की चिन्ता करते हुए उनके लिए एक-एक दिन और रात्रि का समय एक-एक वर्ष के समान व्यतीत हो रहा था।

उषित्वा पञ्च वर्षाणि सहस्राक्षनिवेशने।
अवाप्य दिव्यान्यस्त्राणिसर्वाणि विबुधेश्वरात्॥ २८॥
अनुज्ञातस्तदा तेन कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
आगच्छदर्जुनः प्रीतः प्रहृष्टो गन्धमादनम्॥ २९॥

तब इन्द्र के भवन में पाँच वर्ष तक रहकर, उनसे सारे दिव्य अस्त्र प्राप्त कर, फिर उनसे आज्ञा लेकर और उनकी प्रदक्षिणा कर अर्जुन अत्यन्त प्रसन्नता और हर्षोल्लास में भर कर गन्धमादन पर्वत पर आये।

इकत्तीसवाँ अध्याय : अर्जुन का लौटकर पांडवों से मिलना।

ततः कदाचिद्धरिसम्प्रयुक्तं
महेन्द्रवाहं सहसोपयातम्।
विद्युत्प्रभं प्रेक्ष्य महारथानां
हर्षोऽर्जुनं चिन्तयतां बभूव॥ १॥

तब किसी एक दिन जिसमें घोड़े जुते हुए थे, उस विद्युत् के समान जगमगाते हुए इन्द्र के रथ को सहसा अपने सम्मुख आया हुआ देखकर अर्जुन की चिन्ता करते हुए उन महारथियों को बड़ा हर्ष हुआ।

तमास्थितः संददृशे किरीटी
महेन्द्रवाहादवरुह्य तस्मात्।
धौम्यस्य पादावभिवाद्य धीमा-
नजातशत्रोस्तदनन्तरं च॥ २॥
वृकोदरस्यापि च वन्द्यपादौ
माद्रीसुताभ्याम भिवादितश्च।
समेत्य कृष्णां परिसान्त्व्य चैनां
प्रह्वोऽभवद् भ्रातुरुपह्वरे सः॥ ३॥

उस रथ में उन्हें अर्जुन बैठे हुए दिखाई दिये। अर्जुन ने तब इन्द्र के रथ से उतरकर धौम्य मुनि के चरणों में प्रणाम किया। उसके उपरान्त उस धीमान् ने अजातशत्रु और वृकोदर के चरणों की वन्दना की। माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव ने अर्जुन का अभिवादन किया। अर्जुन ने तब द्रौपदी से मिलकर उसे सान्त्वना दी और विनीत भाव से फिर अपने भाई युधिष्ठिर के समीप खड़े हो गये।

बभूव तेषां परमः प्रहर्ष-
स्तेनाप्रमेयेण समागतानाम्।
स चापि तान् प्रेक्ष्य किरीटमाली
ननन्द राजानमभिप्रशंसन्॥ ४॥

उस अप्रमेय वीर अर्जुन से मिलकर वहाँ उससे मिलने के लिये आये हुए पाण्डवों को बड़ा ही हर्ष हुआ और अर्जुन भी उनसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे राजा युधिष्ठिर की प्रशंसा करने लगे।

ते मातलेश्चक्रुरतीव हृष्टाः
सत्कारमग्र्यं सुरराजतुल्यम्।
सर्वान् यथावच्च दिवौकसस्ते
पप्रच्छुरेनं कुरुराजपुत्राः॥ ५॥

तानप्यसौ मातलिरभ्यनन्दत्
पितेव पुत्राननुशिष्य पार्थान्।
ययौ रथेनाप्रतिमप्रभेण
पुनः सकाशं त्रिदिवेश्वरस्य॥ ६॥

अत्यन्त प्रसन्न होते हुए पाण्डवों ने सारथि मातलि का इन्द्र के समान ही सत्कार किया और उन्होंने उनसे सारे देवताओं का यथावत् कुशल समाचार पूछा। मातलि ने भी पांडवों का अभिनन्दन किया और पिता जैसे पुत्रों को उपदेश देता है, वैसे ही उन्हें उपदेश देकर वे अपने उस अद्वितीय रथ से फिर इन्द्र के पास लौट गये।

ततः स तेषां कुरुपुङ्गवानां
तेषां च सूर्याग्निसमप्रभाणाम्।
विप्रर्षभाणामुपविश्य मध्ये
सर्वं यथावत् कथयांबभूव॥ ७॥
एवं मयास्त्राण्युपशिक्षितानि
शक्राच्च वाताच्च शिवाच्च साक्षात्।
तथैव शीलेन समाधिनाथ
प्रीताः सुरा मे सहिताः सहेन्द्राः॥ ८॥
संक्षेपतो वै स विशुद्धकर्मा
तेभ्यः समाख्याय दिवि प्रवासम्।
माद्रीसुताभ्यां सहितः किरीटी
सुष्वाप तामावसतिं प्रतीतः॥ ९॥

फिर अर्जुन ने सूर्य तथा अग्नि के समान प्रभा वाले श्रेष्ठ ऋषियों तथा कुरुश्रेष्ठों के बीच में बैठकर सारी घटनाएँ उन्हें यथावत् कह सुनाईं कि इस प्रकार मैंने साक्षात् शिव से इन्द्र से वायु से अस्त्रों की शिक्षा ग्रहण की। मेरे शील स्वभाव और एकाग्रता से इन्द्र सहित सारे देवजाति के लोग मुझसे प्रसन्न रहते थे। इस प्रकार निर्दोष कर्म करने वाले अर्जुन ने अपने स्वर्ग में रहने का वृत्तान्त संक्षेप में उन्हें सुनाया और फिर उन्होंने उस आश्रम में निश्चिन्त होकर नकुल और सहदेव के साथ शयन किया।

वनेषु तेष्वेव तु ते नरेन्द्राः
सहार्जुनेनेन्द्रसमेन वीराः।
तस्मिंश्च शैलप्रवरे सुरम्ये
धनेश्वराक्रीडगता विजह्रुः॥ १०॥
समेत्य पार्थेन यथैकरात्र

मूषुः समास्तत्र तदा चतस्रः।
पूर्वाश्च षट् ता दश पाण्डवानां
शिवा बभूवुर्वसतां वनेषु॥ ११॥
ततोऽब्रवीद् वायुसुतस्तरस्वी
जिष्णुश्च राजानमुपोपविश्य।
यमौ च वीरौ सुरराजकल्पा-
वेकान्तमास्थाय हितं प्रियं च॥ १२॥

वे नरश्रेष्ठ वीर पाण्डव इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन के साथ उस सुन्दर श्रेष्ठ पर्वत पर कुबेर की क्रीड़ास्थली में सुखपूर्वक रहने लगे। अर्जुन के साथ वे वहाँ चार वर्ष तक रहे, पर वह समय उन्हें इस प्रकार प्रतीत हुआ, जैसे एक ही रात हो। पहले के छह और बाद के चार इस प्रकार दस वर्ष पाण्डवों के वनों में आनन्दपूर्वक बीत गये। तब एक दिन वेगवान् भीम अर्जुन तथा देवताओं के समान वीर नकुल, सहदेव एकान्त में राजा युधिष्ठिर के समीप बैठकर यह हितकारी और प्रिय वचन बोले कि—

तव प्रतिज्ञां कुरुराज सत्यां
चिकीर्षमाणास्तदनु प्रियं च।
ततो न गच्छाम वनान्यपास्य
सुयोधनं सानुचरं निहन्तुम्॥ १३॥
एकादशं वर्षमिदं वसामः
सुयोधनेनात्तसुखाः सुखार्हाः।
तं वञ्चयित्वाधमबुद्धिशील-
मज्ञातवासं सुखमाप्नुयाम॥ १४॥

हे कुरुराज! आपकी प्रतिज्ञा को सत्य करने की इच्छा से और आपका प्रिय करने की अभिलाषा से हम वनों को छोड़कर दुर्योधन का उसके अनुचरों सहित वध करने नहीं जा रहे हैं। सुख भोगने के योग्य हम दुर्योधन के द्वारा सुखों का हरण कर लिये जाने पर अब ग्यारहवें वर्ष में रह रहे हैं। उस अधम बुद्धि और चरित्र वाले को धोखा देकर हम अज्ञातवास भी सुखपूर्वक कर लेंगे।

तवाज्ञया पार्थिव निर्विशंका
विहाय मानं विचरन् वनानि।
समीपवासेन विलोभितास्ते
ज्ञास्यन्ति नास्मानपकृष्टदेशान्॥ १५॥
संवत्सरं तत्र विहृत्य गूढं
नराधमं तं सुखमुद्धरेम।
निर्यात्य वैरं सफलं सपुष्पं
तस्मै नरेन्द्राधमपूरुषाय॥ १६॥
सुयोधनाया नुचरैर्वृताय
ततो महीमावस धर्मराज।

हे राजन्! आपकी आज्ञा से हम बिना किसी शंका के मान अपमान का विचार छोड़कर वनों में घूमते हुए, पहले उसके समीपवर्ती स्थान में रहेंगे, फिर वहाँ के भ्रम में उन्हें डालकर चुपचाप दूरवर्ती स्थान में चले जायेंगे। जिससे वे लोग हमारा पता न लगा सकें। एक वर्ष तक छिपे हुए विचरण कर हम नराधम को सरलता से उखाड़ फैंकेंगे। हे नरेन्द्र! उस अधम पुरुष दुर्योधन ने अपने सहायकों से घिरे होकर जो यह बैर का फलों और फूलों वाला वृक्ष लगा रखा है, उसे उखाड़ कर हम बैर का बदला लेंगे। इसलिये हे धर्मराज! अब आप भूमि पर चल कर वास कीजिये।

स्वर्गोपमं देशमिमं चरद्भिः
शक्यो विहन्तुं नरदेव शोकः॥ १७॥
कीर्तिस्तु ते भारत पुण्यगन्धा
नश्येद्धि लोकेषु चराचरेषु।
तत् प्राप्य राज्यं कुरुपुङ्गवानां
शक्यं महत् प्राप्तुमथ क्रियाश्च॥ १८॥
कुरुष्व बुद्धिं द्विषतां वधाय
कृतागसां भारत निग्रहे च।

हे नरदेव! यद्यपि इस स्वर्ग के समान देश में रहते हुए शोक को भुलाया जा सकता है, किन्तु इससे हे भारत! आपकी सारे संसार में फैली हुई पवित्र कीर्ति नष्ट हो जायेगी। इसलिये कुरुश्रेष्ठों के राज्य को प्राप्त करके ही हमारे लिये दूसरे महान् उद्देश्यों को प्राप्त करना और कार्य करना उचित है। इसलिये हे भारत! अब आप अपराधी शत्रुओं के वध और उनके निग्रह के लिये निश्चय कीजिये।

न हि व्यथां जातु करिष्यतस्तौ
तवार्थसिद्ध्यर्थमपि प्रवृत्तौ॥ १९॥
सुपर्णकेतुश्च शिनेश्च नप्ता।
तथैव कृष्णोऽप्रतिमो बलेन
तथैव चाहं नरदेववर्य
यमौ च वीरौ कृतिनौ प्रयोगे॥ २०॥
त्वदर्थयोग प्रभवप्रधानाः
शमं करिष्याम परान् समेत्य।

आपका कार्य सिद्ध करने के लिये गरुड़ध्वज श्रीकृष्ण और शिनि के नाती सात्यकि कभी दुःख का अनुभव नहीं करेंगे। इसी प्रकार हे नरदेव शिरोमणि अद्वितीय वीर अर्जुन और वैसे ही मैं और अस्त्रों के प्रयोग में कुशल वीर नकुल तथा सहदेव हैं। आपको धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति हो, यही हमारा प्रधान लक्ष्य है। इसलिये हम शत्रुओं से भिड़ कर वैर की शान्ति करेंगे।

ततस्तदाज्ञाय मतं महात्मा
सम्प्रार्थयामास नगेन्द्रवर्यम्॥ २१॥
समाप्तकर्मा सहितः सुहृद्भि-
र्जित्वा सपत्नान् प्रतिलभ्य राज्यम्।
शैलेन्द्र भूयस्तपसे जितात्मा
द्रष्टा तवास्मीति मतिं चकार॥ २२॥
तान् प्रस्थितान् प्रीतमना महर्षिः
पितेव पुत्राननुशिष्य सर्वान्।
स लोमशः प्रीतमना जगाम
दिवौकसां पुण्यतमं निवासम्॥ २३॥
तेनार्ष्टिषेणेन तथानुशिष्टा-
स्तीर्थानि रम्याणि तपोवनानि।
महान्ति चान्यानि सरांसि पार्थाः
सम्पश्यमानाः प्रययुर्नराग्र्याः॥ २४॥

उन्हें वहाँ से प्रस्थान करते हुए देख कर महर्षि लोमश ने जैसे पिता पुत्र को उपदेश देता है, वैसे ही प्रेम पूर्वक उन्हें उपदेश दिया और फिर प्रसन्नता के साथ वे देवताओं के प्रसिद्ध पवित्र स्थान को चले गये। आर्ष्टिषेण राजर्षि ने भी उन्हें उपदेश दिया। उसके पश्चात् वे नरश्रेष्ठ पवित्र स्थानों, तपोवनों, विशाल सरोवरों को देखते हुए आगे बढ़े।

बत्तीसवाँ अध्याय : पाण्डवों का पूर्ववर्ती मार्ग से लौटते हुए द्वैतवन में प्रवेश।

समुच्छ्रयान् पर्वतसंनिरोधान्
गोष्ठान् हरीणां गिरिसेतुमालाः।
बहून् प्रपातांश्च समीक्ष्य वीराः
स्थलानि निम्नानि च तत्र तत्र॥ १॥
तथैव चान्यानि महावनानि
मृगद्विजानेक पसेवितानि।
आलोकयन्तोऽभिययुः प्रतीता-
स्ते धान्विनः खड्गधरानराग्र्याः॥ २॥

अपने हाथों में धनुष और खड्ग लिये हुए नरश्रेष्ठ वीर पाण्डव ऊँचे शिखरों, पर्वतीय सँकरे मार्गों, सिंहों की माँदों, पर्वतीय पुलों, बहुत से झरनों तथा पर्वतीय निम्न भूमियों को देखते हुए तथा इसी प्रकार दूसरे मृगों और पक्षियों द्वारा सेवित विशाल वनों का अवलोकन करते हुए निश्चिन्तता के साथ आगे बढ़ते जा रहे थे।

वनानि रम्याणि नद्यो सरांसि
गुहा गिरीणां गिरिगह्वराणि।
एते निवासाः सततं बभूवु-
र्दिवानिशं प्राप्य नरर्षभाणाम्॥ ३॥
ते दुर्गवासं बहुधा निरुष्य
व्यतीत्य कैलासमचिन्त्यरूपम्।
आसेदुरत्यर्थमनोरमं ते
तमाश्रमाग्र्यं वृषपर्वणस्तु॥ ४॥

वे नरश्रेष्ठ यात्रा करते हुए रात में या दिन में कभी रमणीय वनों में कभी नदियों और सरोवरों के किनारे, कभी पर्वत की छोटी या बड़ी गुफाओं में ठहर जाते थे। इसी प्रकार के स्थान उनका आश्रयस्थल होते थे। इस प्रकार अनेक दुर्गम स्थानों पर अनेक बार निवास करके, अचिन्त्यरूप कैलाश पर्वत को पीछे छोड़कर वे फिर अत्यन्त मनोरम वृषपर्वा के श्रेष्ठ आश्रम पर आ पहुँचे।

समेत्य राज्ञा वृषपर्वणा ते
प्रत्यर्चितास्तेन च वीतमोहाः।
शशंसिरे विस्तरशः प्रवासं
गिरौ यथावद् वृषपर्वणस्ते॥ ५॥
सुखोषितास्तस्य त एकरात्रं
पुण्याश्रमे देवमहर्षिजुष्टे।
अभ्याययुस्ते बदरीं विशालां
सुखेन वीराः पुनरेव वासम्॥ ६॥

वहाँ राजा वृषपर्वा से मिलकर और उनके द्वारा सत्कारित होकर उनका शोक मोह दूर हो गया। उन्होंने वृषपर्वा को अपने गन्धमादन पर्वत पर रहने का वृत्तान्त विस्तार से बताया। विद्वानों और महर्षियों से सेवित उस पवित्र आश्रम में वे एक रात्रि सुखपूर्वक रहे। इसके पश्चात् विशालापुरी के बदरिकाश्रम में

वे वीर पाण्डव आ गये और वहाँ सुख पूर्वक रहने लगे।

ततः क्रमेणोपययुर्नृवीरा
यथागतेनैव पथा समग्राः।
विहृत्य मासं सुखिनो बदर्यां
किरातराज्ञो विषयं सुबाहोः॥ ७॥
पीनांस्तुषारान् दरदांश्च सर्वान्
देशान् कुलिन्दस्य च भूमिरत्नान्।
अतीत्य दुर्गं हिमवत्प्रदेशं
पुरं सुबाहोर्ददृशुर्नृवीराः॥ ८॥

बदरिकाश्रम में एक मास तक रहकर वे नर वीर किरातराजा सुबाहु के राज्य की तरफ जिस रास्ते से आये थे, उसी रास्ते से चल दिये। कुलिन्द के तुषार, दरद आदि धनधान्य से रत्नों से युक्त देशों को तथा हिमालय के दुर्गम प्रदेशों को पार कर उन्होंने राजा सुबाहु का नगर देखा।

श्रुत्वा च तान् पार्थिवपुत्रपौत्रान्
प्राप्तान् सुबाहुर्विषये समग्रान्।
प्रत्युद्ययौ प्रीतियुतः स राजा
तं चाभ्यनन्दन् वृषभाः कुरूणाम्॥ ९॥
समेत्य राज्ञा तु सुबाहुना ते
सूतैर्विशोकप्रमुखैश्च सर्वे
सहेन्द्रसेनैः परिचारिकैश्च
पौरोगवैर्ये च महानसस्थाः॥ १०॥
सुखोषितास्तत्र त एकरात्रं
सूतान् समादाय रथांश्च सर्वान्।
विशाखयूपं समुपेत्य चक्रु-
स्तदा निवासं पुरुषप्रवीराः॥ ११॥

जब सुबाहु ने उन राजपुत्रों को अपने देश में आया हुआ सुना तब उसने आगे आकर उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया और उन कुरुश्रेष्ठ पाण्डवों ने भी उनका समादर किया। राजा सुबाहु से मिलकर वे विशोक आदि अपने सारथियों, इन्द्रसेन आदि सेवकों और रसोई का काम करने वाले रसोइयों से भी मिले। वहाँ वे एक रात सुखपूर्वक रहे। फिर उसके पश्चात् सारथियों और सारे रथों को लेकर तथा घटोत्कच को उसके साथियों सहित बिदा कर उन्होंने वहाँ उस पर्वतराज की तरफ प्रस्थान किया, जहाँ यमुना का उद्गम स्थल है।

तस्मिन् गिरौ प्रस्रवणोपपन्न-
हिमोत्तरीयारुण पाण्डुसानौ।
विशाखयूपं समुपेत्य चक्रु-
स्तदा निवासं पुरुषप्रवीराः॥ १२॥
वराहनानामृग पक्षिजुष्टं
महावनं चैत्ररथप्रकाशम्।
शिवेन पार्थाः मृगयाप्रधानाः
संवत्सरं तत्र वने विजह्रुः॥ १३॥

उस पर्वत पर फैली हुई वह विशाल हिमराशि जिसमें बीच बीच में झरने बह रहे थे, पर्वत के उत्तरीय जैसी लग रही थी। उस हिमराशि का रंग सूर्य की किरणों के पड़ने से लाल और पीताभ दिखाई देता था। यमुना के उस उद्गम स्थल के समीप विशाखयूप नामके वन में उन पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवों ने निवास किया। वह महावन अनेक प्रकार के वाराह, पशुओं और पक्षियों से सेवित तथा चैत्ररथ के समान सुन्दर था। पाण्डव लोग, जिनका मुख्य कार्य उस समय मृगया था, एक वर्ष तक वहाँ सुखपूर्वक विचरते रहे।

ते द्वादशं वर्षमुपोपयातं
वने विहर्तुं कुरवः प्रतीताः।
तस्माद् वनाच्चैत्ररथप्रकाशात्
श्रिया ज्वलन्तस्तपसा च युक्ताः॥ १४॥
ततश्च यात्वा मरुधन्वपार्श्वं
सदा धनुर्वेदरतिप्रधानाः।
सरस्वतीमेत्य निवासकामाः
सरस्ततो द्वैतवनं प्रतीयुः॥ १५॥

बारहवाँ वर्ष समीप आने पर, वन में विहार करने के लिये उत्साहित, अपने तेज से प्रकाशित और तपस्या से युक्त, वे पाण्डव उस चैत्ररथ के समान सुन्दर वन से निकलकर मरुभूमि के समीप बहने वाली सरस्वती नदी के किनारे द्वैत सरोवर से युक्त द्वैतवन में चले गये। उस समय वे धनुर्वेद में ही विशेष रूप से अभ्यास करते थे।

समीक्ष्य तान् द्वैतवने निविष्टान्
निवासिनस्तत्र ततोऽभिजग्मुः।
प्लक्षाक्षरौहीत कवेतसाश्च
तथा बदर्यः खदिराः शिरीषाः॥ १६॥
बिल्वेङ्गुदाः पीलुशमीकरीराः

सरस्वतीतीररुहा बभूवुः।
सरस्वतीं प्रीतियुताश्चरन्तः
सुखं विजहुर्नरदेवपुत्राः॥ १७॥

उन्हें द्वैतवन में आया हुआ देख कर वहाँ के निवासी उनसे मिलने के लिये आये। सरस्वती के तटपर पाकड़, बहेड़ा, रोहितक, बैंत बेर, खैर, सिरस, बेल, इंगुदी, पीलु, शमी, करीर, आदि के वृक्ष खड़े थे। वे राजपुत्र वहाँ सरस्वती के किनारे बड़े सुख और प्रीति के साथ विचरण करने लगे।

निदाघान्तकरः कालः सर्वभूतसुखावहः।
तत्रैव वसतां तेषां प्रावृट् समभिपद्यत॥ १८॥
छादयन्तो महाघोषाः खं दिशश्च बलाहकाः।
प्रववर्षुर्दिवारात्रमसिताः सततं तदा॥ १९॥
तपात्ययनिकेताश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
अपेतार्कप्रभाजालाः सविद्युद्विमलप्रभाः॥ २०॥
विरूढशष्पा धरणी मत्तदंशसरीसृपा।
बभूव पयसा सिक्ता शान्ता सर्वमनोरमा॥ २१॥

वहाँ पाण्डवों के रहते हुए ही, ग्रीष्म का अन्त करने वाली, सारे प्राणियों को सुख देने वाली वर्षा ऋतु आ गयी। महान् शब्द करते हुए काले बादल सारी दिशाओं को आच्छादित कर रातदिन लगातार बरसने लगे। धूप से बचाने वाले सैकड़ों और हजारों तम्बुओं के समान प्रतीत होने वाले, विद्युत् की विमल प्रभा से युक्त उन बादलों ने सूर्य के प्रभापुञ्ज को ढक दिया था। जिस पर मतवाले डाँस और रेंगने वाले जन्तु विचरने लगे थे, और घास जम गयी थी, वह पृथिवी जल से सिक्त होकर शान्त और सबके लिये मनोरम हो गयी थी।

न स्म प्रज्ञायते किंचिदम्भसा समवस्तृते।
समं वा विषमं वापि नद्यो वा स्थावराणि च॥ २२॥
क्षुब्धतोया महावेगाः श्वसमाना इवाशुगाः।
सिन्धवः शोभयांचक्रुः काननानि तपात्यये॥ २३॥
नदतां काननान्तेषु श्रूयन्ते विविधाः स्वनाः।
वृष्टिभिश्छाद्यमानानां वराहमृगपक्षिणाम्॥ २४॥
स्तोककाः शिखिनश्चैव पुंस्कोकिलगणैः सह।
मत्ताः परिपतन्ति स्म दर्दुराश्चैव दर्पिताः॥ २५॥

उस समय सब तरफ पानी भर जाने के कारण ऊँचा नीचा या नदी, पेड़ पौधे आदि का पता नहीं लगता था। जल से उफनती हुई, सनसनाते हुए बाणों के समान तीव्र गति वाली नदियाँ तथा गर्मी के समाप्त हो जाने से वन सुन्दर प्रतीत होते थे। वनों में वर्षा से भीगते हुए वराह, पशुओं और पक्षियों की तरह तरह की ध्वनियाँ सुनायी पड़ती थीं। पपीहे और मोर मस्त होकर कोयलों के साथ इधर उधर उड़ने लगे और मेंढक भी घमण्ड में आकर टर्राने लगे थे।

क्रौञ्चहंससमाकीर्णा शरत् प्रमुदिताभवत्।
रूढकक्षवनप्रस्था प्रसन्नजलनिम्नगा॥ २६॥
विमलाकाशनक्षत्रा शरत् तेषां शिवाभवत्।
मृगद्विजसमाकीर्णा पाण्डवानां महात्मनाम्॥ २७॥
दृश्यन्ते शान्तरजसः क्षपा जलदशीतलाः।
ग्रहनक्षत्रसङ्घैश्च सोमेन च विराजिताः॥ २८॥
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च शीतवारिधराः शिवाः।
नदीः पुष्करिणीश्चैव ददृशुः समलंकृताः॥ २९॥
आकाशनीकाशतटां तीरवानीरसंकुलाम्।
बभूव चरतां हर्षः पुण्यतीर्थां सरस्वतीम्॥ ३०॥

उसके पश्चात् प्रसन्नता से भरी हुई शरद ऋतु आ गयी। चारों तरफ क्रौञ्च और हंस आदि पक्षी विचरने लगे। वन भूमि में कास और कुश आदि बढ़ गये। नदियों का जल स्वच्छ हो गया, निर्मल आकाश में तारे जगमगाने लगे, सब तरफ मृगों और पक्षियों की बहुतायत हो गयी। उन महात्मा पाण्डवों के लिये वह शरद् ऋतु बड़ी सुख देने वाली थी। रातें उस समय बादलों के समान शीतल, धूल रहित और शान्त दिखाई देती थीं। वे नक्षत्रों, तारागणों और चन्द्रमा से सुशोभित थीं। नदियाँ, पुष्करिणियाँ शीतल जल से भरी हुई और कुमुदों और कमलों से अलंकृत हो रहीं थीं। पाण्डवों ने देखा कि वे सबके लिये सुखदायिनी थीं। पवित्र स्नान करने योग्य स्थानों, घाटों वाली, किनारों पर बेंत की बेलों से भरी हुई, आकाश के समान निर्मल किनारों वाली सरस्वती नदी पर विचरण करते हुए पाण्डवों को बड़ा आनन्द और प्रसन्नता होती थी।

तेतीसवाँ अध्याय : पाण्डवों के प्रति धृतराष्ट्र का खेद, चिन्ता।

तथा वने तान् वसतः प्रवीरान्
स्वाध्यायवन्तश्च तपोधनाश्च।
अभ्याययुर्वेदविदः पुराणा-
स्तान् पूजयामासुरथो नराग्र्याः॥ १॥
ततः कदाचित् कुशलः कथासु
विप्रोऽभ्यगच्छद्भुवि कौरवेयान्।
स तैः समेत्याथ यदृच्छयैव
वैचित्रवीर्यं नृपमभ्यगच्छत्॥ २॥
अथोपविष्टः प्रतिसत्कृतश्च
वृद्धेन राज्ञा कुरुसत्तमेन।
प्रचोदितः संकथयाम्बभूव
धर्मानिलेन्द्रप्रभवान् यमौ च॥ ३॥

इस प्रकार वन में रहते हुए उन वीर पाण्डवों के पास बहुत से स्वाध्यायशील, तपस्वी, वेदों के विद्वान् वृद्ध लोग आते थे और वे नर वीर उनका स्वागत सत्कार करते थे। तब एक बार कथाओं को सुनाने में कुशल एक ब्राह्मण उस वन्य भूमि में पाण्डवों के पास गया और उनसे मिलकर फिर अपनी इच्छा से ही धृतराष्ट्र के समीप भी जा पहुँचा। वहाँ कुरुश्रेष्ठ वृद्ध राजा धृतराष्ट्र के द्वारा सत्कार किये जाने और अपने पास बैठाकर पूछने पर उसने उन्हें युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव के समाचार सुनाए।

कृशांश्च वातातपकर्शिताङ्गान्
दुःखस्य चोग्रस्य मुखे प्रपन्नान्।
तां चाप्यनाथामिव वीरनाथां
कृष्णां परिक्लेशगुणेन युक्ताम्॥ ४॥

उसने बताया कि पाण्डव इस समय वायु धूप आदि के द्वारा कमजोर अंगों वाले हो गये हैं और भयानक दुःख के मुख में पड़े हुए हैं। वह वीर पति वाली द्रौपदी भी अनाथा के समान सब तरफ से क्लेश ही क्लेश भोग रही है।

ततः कथास्तस्य निशम्य राजा
वैचित्रवीर्यः कृपयाभितप्तः।
वने तथा पार्थिवपुत्रपौत्रान्
श्रुत्वा तथा दुःखनदीं प्रपन्नान्॥ ५॥
प्रोवाच दैन्याभिहतान्तरात्मा
निःश्वासवातोपह तस्तदानीम्।
वाचं कथंचित् स्थिरतामुपेत्य
तत् सर्वमात्मप्रभवं विचिन्त्य॥ ६॥

पाण्डवों का समाचार सुनकर राजा धृतराष्ट्र दया से भर गये। राजपुत्रों और पौत्रों को इस प्रकार से दुःख की नदी में डूबा हुआ सुनकर, अपनी अन्तरात्मा में करुणा से भरकर, लम्बी साँसें खींचते हुए किसी तरह अपने आपको स्थिर करके और सब मेरी ही करतूत का परिणाम है, यह सोच कर बोले कि–

कथं नु सत्यः शुचिरार्यवृत्तो
ज्येष्ठः सुतानां मम धर्मराजः।
अजातशत्रुः पृथिवीतले स्म
शेते पुरा राङ्कवकूटशायी॥ ७॥
प्रबोधयते मागधसूतपूगै-
र्नित्यं स्तुवद्भिः स्वयमिन्द्रकल्पः।
पतत्त्रिसङ्घैः स जघन्यरात्रे
प्रबोध्यते नूनमिडातलस्थ॥ ८॥

अरे! मेरे पुत्रों में सबसे बड़े, सत्यवादी, पवित्र, सदाचारी धर्मराज, अजातशत्रु युधिष्ठिर जो पहले रंकु मृग के नर्म बिछौनों पर सोया करते थे, अब भूमि तल पर कैसे सोते होंगे? जिन्हें पहले मागध और सूतों के समूहों के द्वारा नित्य स्तुतिगान करके जगाया जाता था, जो स्वयं इन्द्र के समान पराक्रमी हैं, वे ही अब भूमितल पर सोते हुए निश्चय ही रात्रि के अन्तिम प्रहर में पक्षियों के द्वारा जगाये जाते होंगे।

कथं नु वातातपकर्शिताङ्गो
वृकोदरः कोपपरिप्लुताङ्गः।
शेते पृथिव्यामतथोचिताङ्गः
कृष्णासमक्षं वसुधातलस्थः॥ ९॥
तथार्जुनः सुकुमारो मनस्वी
वशे स्थितो धर्मसुतस्य राज्ञः।
विदूयमानैरिव सर्वगात्रै-
र्ध्रुवं न शेते वसतीरमर्षात्॥ १०॥

जिसका शरीर कष्ट भोगने के योग्य नहीं है, उस भीम के अंग वायु और धूप से कमजोर होकर अब क्रोध से भरे हुए होंगे। वह द्रौपदी के सामने भूमिपर कैसे सोते होंगे। इस प्रकार अर्जुन भी सुकुमार और मनस्वी हैं। वे धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर के आधीन रहते हैं। क्रोध के कारण उनके भी सारे अंगों में

संताप हो रहा होगा और उन्हें भी निश्चितरूप से नींद नहीं आती होगी।

यमौ च कृष्णां च युधिष्ठिरं च
भीमं च दृष्ट्वा सुखविप्रयुक्तम्।
विनिःश्वसन् सर्प इवोग्रतेजा
ध्रुवं न शेते वसतीरमर्षात्॥ ११॥
तथा यमौ चाप्य सुखौ सुखार्हौ
समृद्धरूपावमरौ दिवीव।
प्रजागरस्थौ ध्रुवमप्रशान्तौ
धर्मेण सत्येन व वार्यमाणौ॥ १२॥

नकुल, सहदेव, द्रौपदी, युधिष्ठिर और भीम को सुख से वियुक्त देखकर उग्रतेज वाले अर्जुन सर्प के समान लम्बी साँसें लेते होंगे और निश्चय ही क्रोध के कारण उन्हें नींद नहीं आती होगी। वे दोनों जुड़वाँ भाई नकुल और सहदेव भी जो सुख भोगने योग्य हैं, अब सुख से वंचित हो गये हैं, वे स्वर्ग के देवताओं के समान सुन्दर हैं, वे भी सत्य और धर्म के द्वारा रोके जाते हुए निश्चय ही अशान्त भाव से जागते हुए समय बिताते होंगे।

समीरणेनाथ समो बलेन
समीरणस्यैव सुतो बलीयान्।
स धर्मपाशेन सितोऽग्रजेन
ध्रुवं विनिःश्वस्य सहत्यमर्षम्॥ १३॥
स चापि भूमौ परिवर्तमानो
वधं सुतानां मम काङ्क्षमाणः।
सत्येन धर्मेण च वार्यमाणः
कालं प्रतीक्षत्यधिको रणेऽन्यैः॥ १४॥

जो बलवान् बल में वायु के समान हैं, वे वायुपुत्र भीमसेन बड़े भाई के द्वारा धर्म के बन्धन में बाँधे हुए हैं। निश्चित रूप से वे भी लम्बी साँसें लेकर ही अपने क्रोध को सहन कर रहे हैं। वह युद्ध में दूसरों से अधिक प्रचण्ड हैं। वे सत्य और धर्म के द्वारा मना किये जाने पर मेरे पुत्रों के वध की इच्छा करते हुए, भूमि पर करवटें बदलते हुए समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

अजातशत्रौ तु जिते निकृत्या
दुःशासनो यत् परुषाण्यवोचत्।
तानि प्रविष्टानि वृकोदराङ्गं
दहन्ति कक्षाग्निरिवेन्धनानि॥ १५॥

न पापकं ध्यास्यति धर्मपुत्रो
धनंजयश्चाप्यनुवर्त्स्यते तम्।
अरण्यवासेन विवर्धते तु
भीमस्य कोपोऽग्निरिवानिलेन॥ १६॥

युधिष्ठिर को कपट से जूए में हराकर दुःशासन ने जो कठोर बातें कहीं थीं, वे भीम के अंगों में प्रविष्ट होकर वैसे ही जला रही होंगी जैसे अग्नि सूखे तिनकों और लकड़ी को जलाती है। धर्मपुत्र युधिष्ठिर मेरे अपराधों पर ध्यान नहीं देंगे। अर्जुन भी उनकी आज्ञा में चलते हैं, पर भीम का क्रोध वन में रहने के कारण ऐसे ही बढ़ रहा होगा जैसे अग्नि वायु के द्वारा बढ़ जाती है।

स तेन कोपेन विदह्यमानः
करं करेणाभिनिपीड्य वीरः।
विनिःश्वसत्युष्णमतीव घोरं
दहन्निवेमान् मम पुत्रपौत्रान्॥ १७॥
गाण्डीवधन्वा च वृकोदरश्च
संरम्भिणावन्तक कालकल्पौ।
न शेषयेतां युधि शत्रुसेनां
शरान् किरन्तावशनिप्रकाशान्॥ १८॥

वह वीर भीम उस क्रोध से जलाया जाता हुआ, हाथ को हाथ से मलते हुए, इतनी अधिक गर्म और लम्बी साँसें खींच रहा होगा, मानो मेरे इन पुत्रों और पौत्रों को भस्म कर डालेगा। गाण्डीवधारी अर्जुन और भीम जब क्रोध में भर जायेंगे, तब मृत्यु और काल के समान हो जायेंगे। विद्युत् के समान चमकीले बाणों को छोड़ते हुए वे शत्रु सेना में किसी को भी जीवित नहीं छोड़ेंगे।

दुर्योधनः शकुनिः सूतपुत्रो
दुःशासनश्चापि सुमन्दचेताः।
मधु प्रपश्यन्ति न तु प्रपातं
यद् द्यूतमालम्ब्य हरन्ति राज्यम्॥ १९॥
कृतं मताक्षेण यथा न साधु
साधुप्रवृत्तेन च पाण्डवेन।
मया च दुष्पुत्रवशानुगेन
तथा कुरूणामयमन्तकालः॥ २०॥

दुर्योधन, शकुनि और सारथि का बेटा कर्ण और दुश्शासन ये बड़े मूर्ख हैं। इन्होंने जूए का सहारा लेकर जो इनका राज्य छीना है, ये केवल वृक्ष की

शाखा से टपकते हुए मधु को ही देख रहे हैं, पर वहाँ से गिरने की तरफ इनकी निगाह नहीं है। जैसे द्यूतप्रेमी शकुनि ने अच्छा काम नहीं किया, वैसे ही साधुता में लगे हुए युधिष्ठिर ने भी अच्छा काम नहीं किया। मैंने भी अपने कुपुत्र के बस में होकर अच्छा काम नहीं किया। इसलिये अब यह कौरवों का अन्त समय आ पहुँचा है।

गतो ह्यरण्यादपि शक्रलोकं
धनंजयः पश्यत वीर्यमस्य।
अस्त्राणि दिव्यानि चतुर्विधानि
ज्ञात्वा पुनर्लोकमिमं प्रपन्नः॥ २१॥
धनुर्ग्राहश्चार्जुनः सव्यसाची
धनुश्च तद् गाण्डिवं भीमवेगम्।
अस्त्राणि दिव्यानि च तानि तस्य
त्रयस्य तेजः प्रसहेत कोऽत्र॥ २२॥

अर्जुन के पराक्रम को देखो, वह वन से इन्द्रलोक में चला गया और वहाँ चारों प्रकार के दिव्य अस्त्रों को सीखकर वापिस लौट आया। धनुर्धर अर्जुन बाँयें हाथ से भी बाण चलाते हैं। उनका धनुष भी भयंकर वेग वाला गाण्डीव धनुष है। उनके पास दिव्यास्त्र भी सारे है। इन तीनों विशेषताओं के तेज को कौन सह सकता है?

निशम्य तद् वचनं पार्थिवस्य
दुर्योधनं रहिते सौबलोऽथ।
अबोधयत् कर्णमुपेत्य सर्वं
स चाप्यहृष्टोऽभवदल्पचेताः॥ २३॥

राजा धृतराष्ट्र की एकान्त में कही हुई इन बातों को सुनकर सुबलपुत्र शकुनि ने दुर्योधन और कर्ण के पास जाकर उन्हें वे सारी बातें बतायीं, जिन्हें सुनकर वह मन्दमति दुर्योधन भी प्रसन्नता रहित हो गया।

चौंतीसवाँ अध्याय : शकुनि और कर्ण का घोषयात्रा हेतु दुर्योधन को उकसाना।

धृतराष्ट्रस्य तद् वाक्यं निशम्य शकुनिस्तदा।
दुर्योधनमिदं काले कर्णेन सहितोऽब्रवीत्॥ १॥
श्रूयते हि महाराज सरो द्वैतवनं प्रति।
वसन्तः पाण्डवाः सार्धं ब्राह्मणैर्वनवासिभिः॥ २॥
स प्रयाहि महाराज श्रिया परमया युतः।
तापयन् पाण्डुपुत्रांस्त्वं रश्मिवानिव तेजसा॥ ३॥
स्थितो राज्ये च्युतान् राज्याच्छ्रिया हीनाञ्छ्रिया वृतः।
असमृद्धान् समृद्धार्थः पश्य पाण्डुसुतान् नृप॥ ४॥

धृतराष्ट्र की उन बातों को सुनकर शकुनि ने उचित अवसर पाकर कर्ण सहित दुर्योधन से कहा कि हे महाराज! सुना गया है कि आजकल पाण्डव द्वैतवन में सरोवर के समीप ब्राह्मणों के साथ रह रहे हैं। जैसे सूर्य अपने तेज से संसार को तप्त करते हैं वैसे ही महाराज! आप भी अपने परम ऐश्वर्य से युक्त होकर वहाँ चलो और पाण्डवों को सन्ताप दो आप राज्य में स्थित हैं, पाण्डव राज्य से भ्रष्ट हो गये हैं। आप ऐश्वर्य से युक्त हैं, पाण्डव ऐश्वर्य से हीन हैं। आप समृद्धिशाली हैं और वे निर्धन हैं। हे राजन्! आप ऐसी अवस्था में पाण्डवों को चल कर देखो।

महाभिजनसम्पन्नं भद्रे महति संस्थितम्।
पाण्डवास्त्वाभिवीक्षन्तां ययातिमिव नाहुषम्॥ ५॥
यां श्रियं सुहृदश्चैव दुर्हृदश्च विशाम्पते।
पश्यन्ति पुरुषे दीप्तां सा समर्था भवत्युत॥ ६॥
समस्थो विषमस्थान् हि दुर्हृदो योऽभिवीक्षते।
जगतीस्थानिवाद्रिस्थः किमतः परमं सुखम्॥ ७॥
पुत्रधनलाभेन न राज्येनापि विन्दति।
प्रीतिं नृपतिशार्दूल याममित्राघदर्शनात्॥ ८॥
किं तु तस्य सुखं न स्यादाश्रमे यो धनंजयम्।
अभिवीक्षेत सिद्धार्थो वल्कलाजिनवाससम्॥ ९॥

पाण्डव लोग तुम्हें नहुष पुत्र ययाति के समान महान् वंश में उत्पन्न और महान् कल्याणमयी स्थिति में प्रतिष्ठित देखें। हे प्रजापालक! पुरुष में प्रकाशित होने वाली उसकी जिस लक्ष्मी को उसके मित्र और शत्रु दोनों देखते हैं, वही लक्ष्मी सफल होती है। जैसे पर्वत की चोटी पर खड़ा हुआ व्यक्ति समतल भूमि पर विद्यमान सारी वस्तुओं को अपने से नीचा और छोटा देखता है, वैसे ही जो स्वयं सुख में रहता हुआ अपने शत्रुओं को दुख में देखता है, उसके लिये इससे अधिक सुख की बात और क्या हो सकती है? हे नृपश्रेष्ठ! पुत्र, धन और राज्य की प्राप्ति पर भी मनुष्य को वैसा सुख नहीं मिलता, जैसा उसे शत्रुओं को कष्ट में पड़े हुए देखकर होता है। हम में से जो भी सफल मनोरथ होकर वल्कल और मृगचर्म पहने अर्जुन

को आश्रम में बैठा हुआ देखेगा, उसे कौन सा सुख नहीं मिल जायेगा।

सुवाससो हि ते भार्या वल्कलाजिनसंवृताम्।
पश्यन्तु दुःखितां कृष्णां सा च निर्विद्यतां पुनः॥ १०॥
विनिन्दतां तथाऽऽत्मानं जीवितं च धनच्युतम्।
न तथा हि सभामध्ये तस्या भवितुमर्हति॥ ११॥
वैमनस्यं यथा दृष्ट्वा तव भार्याः स्वलंकृताः।
कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्ततः॥ १२॥
हृष्टो भूत्वा पुनर्दीन इदं वचनमब्रवीत्।
ब्रवीषि यदिदं कर्ण सर्वं मनसि मे स्थितम्॥ १३॥
न त्वभ्यनुज्ञां लप्स्यामि गमने यत्र पाण्डवाः।

तुम्हारी रानियाँ अच्छे वस्त्र पहन कर वल्कल और मृगचर्म से लिपटी हुई और दुःख में डूबी हुई द्रौपदी को देखें और फिर वह और दुःखी हो। वह अपनी आत्मा को और धन से रहित अपने को धिक्कारे। सभा में अपने प्रति दुर्व्यवहार से उसे उतना दुःख नहीं हुआ होगा जितना उसे तुम्हारी रानियों को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित देख कर होगा। कर्ण की बात सुन कर दुर्योधन पहले प्रसन्न हुआ पर फिर दीन होकर बोला कि हे कर्ण! जो तुम कहते हो, वह सब मेरे मन में विद्यमान है, पर जहाँ पाण्डव विद्यमान हैं वहाँ जाने की मुझे आज्ञा नहीं मिल सकेगी।

परिदेवति तान् वीरान् धृतराष्ट्रो महीपतिः॥ १४॥
मन्यतेऽभ्यधिकांश्चापि तपोयोगेन पाण्डवान्।
अथवाप्यनुबुध्येत नृपोऽस्माकं चिकीर्षितम्॥ १५॥
एवमप्यायतिं रक्षन् नाभ्यनुज्ञातुमर्हति।
न हि द्वैतवने किंचिद् विद्यतेऽन्यत् प्रयोजनम्॥ १६॥
उत्सादनमृते तेषां वनस्थानां महाद्युते।
जानासि हि यथा क्षत्ता द्यूतकाल उपस्थिते॥ १७॥
अब्रवीद् यच्च मां त्वां च सौबलं वचनं तदा।
तानि सर्वाणि वाक्यानि यच्चान्यत् परिदेवितम्॥ १८॥
विचिन्त्य नाधिगच्छामि गमनायेतराय वा।

राजा धृतराष्ट्र उन वीरों के लिये दुःखी होते रहते हैं। वे पाण्डवों को तप के प्रभाव से हमसे अधिक भी समझते हैं। यदि राजा को हमारी इच्छा का पता लग गया तो वे भावी संकट से रक्षा करने के लिये हमें वहाँ जाने की आज्ञा नहीं दे सकते। हे महातेजस्वी कर्ण! वनवासी पाण्डवों को चिढ़ाने के अतिरिक्त द्वैतवन में जाने का हमारा और कोई प्रयोजन भी नहीं है। तुम जानते हो कि जूए के समय विदुर ने मुझे, तुम्हें और शकुनि से जो बातें कहीं थीं, उन बातों पर और पाण्डवों के लिये जो कुछ विलाप किया गया उन सब पर विचार करते हुए मैं यह निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि मुझे द्वैतवन में जाना चाहिये या नहीं।

ममापि हि महान् हर्षो यदहं भीमफाल्गुनौ॥ १९॥
क्लिष्टावरण्ये पश्येयं कृष्णया सहिताविति।
न तथा ह्याप्नुयां प्रीतिमवाप्य वसुधामिमाम्॥ २०॥
दृष्ट्वा यथा पाण्डुसुतान् वल्कलाजिनवाससः।
किं नु स्यादधिकं तस्माद् यदहं द्रुपदात्मजाम्॥ २१॥
द्रौपदीं कर्ण पश्येयं काषायवसनां वने।
यदि मां धर्मराजश्च भीमसेनश्च पाण्डवः॥ २२॥
युक्तं परमया लक्ष्म्या पश्येतां जीवितं भवेत्।

यदि मैं भीम और अर्जुन को क्लेश पाते हुए द्रौपदी के साथ वन में देखूँ, तो यह मेरे लिये महान् हर्ष की बात होगी। सारी पृथिवी को पाकर भी मुझे उतनी प्रसन्नता नहीं होगी, जितनी पाण्डुपुत्रों को वन में वल्कल और मृगचर्म पहने हुए देख कर होगी। इससे अधिक और क्या प्रसन्नता की बात होगी हे कर्ण! कि मैं द्रौपदी को वन में गेरुए वस्त्र पहने देखूँ। यदि मुझे युधिष्ठिर और पाण्डव भीम परम उत्कृष्ट राज्य लक्ष्मी से युक्त देखकर लें तो मेरा जीवन सफल हो जाये।

उपायं न तु पश्यामि येन गच्छेम तद् वनम्॥ २३॥
यथा चाभ्यनुजानीयाद् गच्छन्तं मां महीपतिः।
स सौबलेन सहितस्तथा दुःशासनेन च॥ २४॥
उपायं पश्य निपुणं येन गच्छेम तद् वनम्।
अहमप्यद्य निश्चित्य गमनायेतराय च॥ २५॥
कल्यमेव गमिष्यामि समीपं पार्थिवस्य ह।
मयि तत्रोपविष्टे तु भीष्मे च कुरुसत्तमे॥ २६॥
उपायो यो भवेद् दृष्टस्तं ब्रूयाः सहसौबलः।

मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिखाई दे रहा है, जिससे राजा मुझे जाने के लिये आज्ञा दे दें और मैं उस वन में जा सकूँ। तुम शकुनि और दुश्शासन के साथ किसी ऐसे अच्छे उपाय को ढूँढ़ो, जिससे हम उस वन में जा सकें। मैं भी आज जाने या न जाने के विषय में निश्चय करके कल प्रातः काल ही महाराज के समीप जाऊँगा। मेरे वहाँ बैठने पर और कुरुश्रेष्ठ भीष्म के भी वहाँ उपस्थित होने पर

तुम्हें जो उपाय सूझा हुआ हो उसे शकुनि के साथ बताना।

वचो भीष्मस्य राज्ञश्च निशम्य गमनं प्रति॥ २७॥
व्यवसायं करिष्येऽहमनुनीय पितामहम्।
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे जग्मुरावसथान् प्रति॥ २८॥
व्युषितायां रजन्यां तु कर्णो राजानमभ्ययात्।
ततो दुर्योधनं कर्णः प्रहसन्निदमब्रवीत्॥ २९॥
उपायः परिदृष्टोऽयं तं निबोध जनेश्वर।
घोषा द्वैतवने सर्वे त्वत्प्रतीक्षा नराधिप॥ ३०॥
घोषयात्रापदेशेन गमिष्यामो न संशयः।

जाने के विषय में भीष्म की और राजा की क्या सलाह है, उसे सुनकर ही मैं पितामह से अनुनय विनय करके चलने के विषय में निश्चय करूँगा। ऐसा ही हो, यह कहकर तब वे सब अपने विश्राम स्थानों पर चले गये। रात के बीतने पर कर्ण राजा दुर्योधन के पास गया। तब कर्ण दुर्योधन से हँसते हुए बोला कि हे जनेश्वर! उपाय सोच लिया है, उसे सुनो। हमारी गायें सारी द्वैतवन में ही हैं, ग्वाले वहाँ निरीक्षण के लिये आपके आने की प्रतीक्षा करते हैं इसलिये घोषयात्रा (गायों के निरीक्षण) के बहाने से वहाँ हम जा सकेंगे, इसमें संशय नहीं है।

उचितं हि सदा गन्तुं घोषयात्रां विशाम्पते॥ ३१॥
एवं च त्वां पिता राजन् समनुज्ञातुमर्हति।
तथा कथयमानौ तौ घोषयात्राविनिश्चयम्॥ ३२॥
गान्धारराजः शकुनिः प्रत्युवाच हसन्निव।
उपायोऽयं मया दृष्टो गमनाय निरामयः॥ ३३॥
अनुज्ञास्यति नो राजा बोधयिष्यति चाप्युत।
ततः प्रहसिताः सर्वे तेऽन्योन्यस्य तलान् ददुः॥ ३४॥
तदेव च विनिश्चित्य ददृशुः कुरुसत्तमम्।

हे राजन्! गायों के निरीक्षण के लिये घोषयात्रा पर जाना उचित ही है। इसलिये तुम्हारे पिता तुम्हें आज्ञा दे देंगे। घोषयात्रा के निश्चय के लिये इस प्रकार बातें करते हुए उन दोनों से गान्धारराज शकुनि ने हँसते हुए कहा कि मुझे यह उपाय पूरी तरह से आपदा रहित दिखाई दे रहा है। राजा तुम्हें जाने के लिये आज्ञा दे देंगे बल्कि वहाँ क्या करना चाहिये, इसके विषय में समझाएँगे भी। तब वे सारे प्रसन्न होकर एक दूसरे के हाथ पर हाथ मारने लगे और उसी उपाय के बारे में निश्चय करके कुरुश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र से मिले।

पैंतीसवाँ अध्याय : घोषयात्रा के लिये अनुमति।

ततस्तैर्विहितः पूर्वं समङ्गो नाम बल्लवः।
समीपस्थास्तदा गावो धृतराष्ट्रे न्यवेदयत्॥ १॥

राधेयः शकुनिश्च ऊचतुः

रमणीयेषु देशेषु घोषाः सम्प्रति कौरव।
स्मारणे समयः प्राप्तो वत्सानामपि चाङ्कनम्॥ २॥
मृगया चोचिता राजन्नस्मिन् काले सुतस्य ते।
दुर्योधनस्य गमनं समनुज्ञातुमर्हसि॥ ३॥

धृतराष्ट्र उवाच

मृगया शोभना तात गवां हि समवेक्षणम्।
विश्रम्भस्तु न गन्तव्यो बल्लवानामिति स्मरे॥ ४॥

तब उन लोगों अर्थात् दुर्योधन आदि के द्वारा पहले से ही समझाया हुआ एक समंग नाम का ग्वाला धृतराष्ट्र की सेवा में जाकर निवेदन करने लगा कि महाराज। आजकल आपकी गायें समीप ही आयीं हुई हैं। तभी शकुनि और कर्ण धृतराष्ट्र से यह बोले कि महाराज! इस समय आपकी गायें रमणीय प्रदेश में हैं। उनकी गिनती करने तथा बछड़ों आदि का हिसाब लगाने का समय आ गया है। हे राजन्! इस समय आपके पुत्र दुर्योधन के लिये शिकार खेलने का भी अच्छा अवसर है, इसलिये आप उन्हें वहाँ जाने की आज्ञा प्रदान करें। तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे तात! शिकार खेलना अच्छा है। गायों का निरीक्षण भी ठीक है, पर मुझे नीतिशास्त्र का यह वचन याद है कि ग्वालों की बात का विश्वास नहीं करना चाहिये।

ते तु तत्र नरव्याघ्राः समीप इति नः श्रुतम्।
अतो नाभ्यनुजानामि गमनं तत्र वः स्वयम्॥ ५॥
छद्मना निर्जितास्ते तु कर्शिताश्च महावने।
तपोनित्याश्च राधेय समर्थाश्च महारथाः॥ ६॥
धर्मराजो न संक्रुद्ध्येद् भीमसेनस्त्वमर्षणः।
यज्ञसेनस्य दुहिता तेज एव तु केवलम्॥ ७॥
अथ यूयं बहुत्वात् तानभियात कथंचन।
अनार्यं परमं तत् स्यादशक्यं तच्च वै मतम्॥ ८॥

हमने सुना है कि वे नरश्रेष्ठ पाण्डव वहाँ समीप ही रह रहे हैं। इसलिये मैं स्वयं तुम्हें वहाँ जाने की

आज्ञा नहीं दे सकता। वे लोग कपट के द्वारा जीते गये हैं, महान् वनों में वे कष्ट उठा रहे हैं। हे कर्ण! तपस्या करते हुए वे महारथी अब अधिक शक्तिशाली हो गये हैं। धर्मराज युधिष्ठिर भले ही क्रोध न करें, पर भीम सदा से असहनशील है और द्रौपदी तो साक्षात् अग्नि है। यदि तुमने संख्या में अधिक होने के कारण किसी प्रकार उन पर चढ़ाई कर दी, तो यह बड़ा गलत कार्य होगा और मेरे विचार से तुम्हारे लिये उन पर विजय पाना असम्भव है।

उषितो हि महाबाहुरिन्द्रलोके धनंजयः।
दिव्यान्यस्त्राण्यवाप्याथ ततः प्रत्यागतो वनम्॥ ९॥
अकृतास्त्रेण पृथिवी जिता बीभत्सुना पुरा।
किं पुनः स कृतास्त्रोऽद्य न हन्याद् वो महारथः॥ १०॥
अथवा मद्वचः श्रुत्वा तत्र यत्ता भविष्यथ।
उद्विग्नवासो विश्रम्भाद् दुःखं तत्र भविष्यति॥ ११॥
अथवा सैनिकाः केचिदपकुर्युर्युधिष्ठिरम्।
तदबुद्धिकृतं कर्म दोषमुत्पादयेच्च वः॥ १२॥
तस्माद् गच्छन्तु पुरुषाः स्मारणायाप्तकारिणः।
न स्वयं तत्र गमनं रोचये तव भारत॥ १३॥

महाबाहु अर्जुन इन्द्रलोक में रहकर और वहाँ से दिव्य अस्त्रों की शिक्षा लेकर लौटे हैं। इन दिव्य अस्त्रों को प्राप्त करने से पहले ही अर्जुन ने पृथिवी को जीत लिया था, पर अब तो उन्हें और दिव्यास्त्र प्राप्त हो गये हैं। ऐसी अवस्था में वे महारथी तुम्हें मार दें तो कोई बड़ी बात नहीं होगी। अथवा मेरी बात मान कर यदि तुम वहाँ अपने को संयम में रखो तो भी वनवास से उद्विग्न हुए पाण्डवों के बीच में उन पर विश्वास करके रहना दुःखदायी ही होगा। अथवा यह भी हो सकता है कि तुम्हारे सैनिक युधिष्ठिर का कुछ अपमान कर दें तो वह अनजाने में किया गया कार्य भी तुम्हारे लिये हानिकारक बन जायेगा। इसलिये दूसरे विश्वसनीय व्यक्ति गायों के कार्य के लिये वहाँ चले जायें। हे भारत! मैं तुम्हारा स्वयं वहाँ जाना पसन्द नहीं करता।

शकुनिरुवाच

धर्मज्ञः पाण्डवो ज्येष्ठः प्रतिज्ञातं च संसदि।
तेन द्वादश वर्षाणि वस्तव्यानीति भारत॥ १४॥
अनुवृत्ताश्च ते सर्वे पाण्डवा धर्मचारिणः।
युधिष्ठिरस्तु कौन्तेयो न नः कोपं करिष्यति॥ १५॥
मृगयां चैव नो गन्तुमिच्छा संवर्तते भृशम्।
स्मारणं तु चिकीर्षामो न तु पाण्डवदर्शनम्॥ १६॥
न चानार्य समाचारः कश्चित् तत्र भविष्यति।
न च तत्र गमिष्यामो यत्र तेषां प्रतिश्रयः॥ १७॥

तब शकुनि बोला कि धर्मज्ञ पाण्डव युधिष्ठिर ने सभा में प्रतिज्ञा की थी कि वे बारह वर्ष तक वन में रहेंगे। दूसरे पाण्डव भी धर्म का आचरण करते हैं और युधिष्ठिर के अनुसार चलते हैं। कौन्तेय युधिष्ठिर हम पर कभी क्रोध नहीं करेंगे। हमारी शिकार खेलने की बहुत गहरी अच्छा है। हम केवल गायों की गणना करना चाहते हैं पाण्डवों से मिलना नहीं चाहते। हमारी तरफ से वहाँ कोई गलत आचरण नहीं होगा। जहाँ पाण्डव रहते हैं, उस तरफ हम जायेंगे ही नहीं।

एवमुक्तः शकुनिना धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।
दुर्योधनं सहामात्यमनुजज्ञे न कामतः॥ १८॥
अनुज्ञातस्तु गान्धारिः कर्णेन सहितस्तदा।
निर्ययौ भरतश्रेष्ठो बलेन महता वृतः॥ १९॥
दुःशासनेन च तथा सौबलेन च धीमता।
संवृतो भ्रातृभिश्चान्यैः स्त्रीभिश्चापि सहस्रशः॥ २०॥

शकुनि के इस प्रकार कहने पर जनेश्वर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को मंत्रियों सहित वहाँ जाने की आज्ञा देदी। यद्यपि उनकी स्वयं की इच्छा नहीं थी। धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर गान्धारीपुत्र भरतश्रेष्ठ दुर्योधन महान् सेना से युक्त होकर कर्ण के साथ यात्रा के लिये चला। वह उस समय दुश्शासन, धीमान् शकुनि तथा दूसरे भाइयों तथा बहुत सारी स्त्रियों से भी घिरा हुआ था।

छत्तीसवाँ अध्याय : गन्धर्वों से झगड़ा।

अथ दुर्योधनो राजा तत्र तत्र वने वसन्।
जगाम घोषानभितस्तत्र चक्रे निवेशनम्॥ १॥
ददर्श स तदा गावः शतशोऽथ सहस्रशः।
अङ्कैर्लक्षैश्च ताः सर्वा लक्षयामास पार्थिवः॥ २॥
अङ्कयामास वत्सांश्च जज्ञे चोपसृतांस्त्वपि।
बालवत्साश्च या गावः कालयामास ता अपि॥ ३॥
अथ स स्मारणं कृत्वा लक्षयित्वा त्रिहायनान्।
वृतो गोपालकैः प्रीतो व्यहरत् कुरुनन्दनः॥ ४॥

इसके पश्चात् राजा दुर्योधन वन में जगह जगह पड़ाव डालता हुआ अपनी गौशालाओं के समीप पहुँच गया। उसने वहाँ अपनी छावनी डाल दी। वहाँ उसने अपनी सैकड़ों और हजारों गायों का निरीक्षण किया। उस राजा ने उन सबको विशेष नम्बरों और निशानियों से चिह्नित करवा दिया। फिर उसने बछड़ों पर निशान लगवाये, जो बछड़े नाथने योग्य थे, उनकी भी पहचान करायी तथा जिन गायों के बछड़े बहुत छोटे थे, उनकी भी गिनती करायी। तीन साल के बछड़ों की भी गिनती कराकर और इस प्रकार जाँच पड़ताल का सारा काम पूरा कराकर ग्वालों से घिरा हुआ वह दुर्योधन उस वन में विहार करने लगा।

ततस्ते सहिताः सर्वे तरक्षून् महिषान् मृगान्।
गवयर्क्षवराहांश्च समन्तात् पर्यकालयन्॥ ५॥
स ताञ्छरैर्विनिर्भिद्य गजांश्च सुबहून् वने।
रमणीयेषु देशेषु ग्राहयामास वै मृगान्॥ ६॥
गोरसानुपयुञ्जान उपभोगांश्च भारतः।
पश्यन् स रमणीयानि वनान्युपवनानि च॥ ७॥
मत्तभ्रमरजुष्टानि बर्हिणाभिरुतानि च।
अगच्छदानुपूर्व्येण पुण्यं द्वैतवनं सरः॥ ८॥

फिर वे सब मिलकर लकड़बग्घों, भैंसों, मृगों, गवयों, रीछों, और शूकरों का शिकार करने लगे। उस रमणीय वन में बहुत से हाथियों को बाणों से बींधकर उन्होंने बहुत से पशुओं को पकड़ लिया। वह भरतश्रेष्ठ दुर्योधन गोरस अर्थात् इन्द्रियों को सुख देने वाले भोगों को भोगता हुआ, वहाँ के वनों और उपवनों को, जिनमें भौंरे गुंजार रहे थे और मोर अपनी बोली सुना रहे थे, देखता हुआ, धीरे धीरे क्रमपूर्वक आगे बढ़ता हुआ द्वैतवन के पवित्र सरोवर के समीप पहुँच गया।

मत्तभ्रमरसंजुष्टं नीलकण्ठरवाकुलम्।
सप्तच्छदसमाकीर्णं पुन्नागबकुलैर्युतम्॥ ९॥
ततो दुर्योधनः प्रेष्यानादिदेश सहस्रशः।
आक्रीडावसथाः क्षिप्रं क्रियन्तामिति भारतः॥ १०॥
ते तथेत्येव कौरव्यमुक्त्वा वचनकारिणः।
चिकीर्षन्तस्तदाऽऽक्रीडाञ्जग्मुर्द्वैतवनं सरः॥ ११॥
प्रविशन्तं वनद्वारि गन्धर्वाः समवारयन्।
सेनाग्र्यं धार्तराष्ट्रस्य प्राप्तं द्वैतवनं सरः॥ १२॥

द्वैतसरोवर का वह प्रदेश मस्त भौरों की गुञ्जार से शब्दायमान हो रहा था। वहाँ सप्तच्छद, मौलसिरी, नागकेसर के वृक्ष चारों तरफ भरे हुए थे। तब उस भारत दुर्योधन ने अपने हजारों सेवकों को आज्ञा दी कि वे जल्दी ही खेलों के मण्डप तैयार करें। तब उसके वचन को पूरा करने वाले उसके सेवक ऐसा ही होगा यह कहकर उसके लिये क्रीडाभवन बनाने की इच्छा से उस द्वैत सरोवर के किनारे गये। पर सरोवर के निकट पहुँचे हुए दुर्योधन के सेनापति को उसके द्वैतवन में प्रवेश करते ही गन्धर्वों ने रोक दिया।

तत्र गन्धर्वराजो वै, आजगाम गणावृतः।
विहारशीलः क्रीडार्थं तेन तत् संवृतं सरः॥ १३॥
स तु तेषां वचः श्रुत्वा सैनिकान् युद्धदुर्मदान्।
प्रेषयामास कौरव्यः उत्सारयत तानिति॥ १४॥
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राज्ञः सेनाग्रयायिनः।
सरो द्वैतवनं गत्वा गन्धर्वानिदमब्रुवन्॥ १५॥
राजा दुर्योधनो नाम धृतराष्ट्रसुतो बली।
विजिहीर्षुरिहायाति तदर्थमपसर्पत॥ १६॥

गन्धर्वराज चित्रसेन अपने सैनिको के साथ वहाँ आए हुए थे। विहार प्रेमी उन्होंने उस तालाब को घेरा हुआ था। अपने सेवकों की बात सुनकर दुर्योधन ने युद्ध के लिये उन्मत्त रहने वाले सैनिकों को यह कहकर भेजा कि उन्हें अर्थात् गन्धर्वो को वहाँ से भगा दो। उसका यह सन्देश सुनकर राजा के सेनापतियों ने द्वैतसरोवर के समीप जाकर गन्धर्वो से यह कहा कि धृतराष्ट्र के बलवान् पुत्र दुर्योधन विहार करने की इच्छा से यहाँ आ रहे हैं, इसलिये तुम उनके लिये यह स्थान छोड़कर चले जाओ।

न चेतयति वो राजा मन्दबुद्धिः सुयोधनः।
योऽस्मानाज्ञापयत्येवं वैश्यानिव दिवौकसः॥ १७॥
यूयं मुमूर्षवश्चापि मन्दप्रज्ञा न संशयः।
ये तस्य वचनादेवमस्मान् ब्रूत विचेतसः॥ १८॥
गच्छध्वं त्वरिताः सर्वे यत्र राजा स कौरवः।
न चेदद्यैव गच्छध्वं धर्मराजनिवेशनम्॥ १९॥
एव मुक्तास्तु गन्धर्वै राज्ञः सेनाग्रयायिनः।
सम्प्राद्रवन् यतो राजा धृतराष्ट्रसुतोऽभवत्॥ २०॥

यह सुनकर गन्धर्वो ने कहा कि तुम्हारे मन्दबुद्धि राजा दुर्योधन ने समझा नहीं है, जो हम देवलोक के निवासियों को बनियों के समान आज्ञा दे रहा है। इसमें सन्देह नहीं है कि तुम लोग भी मन्दबुद्धि और मरने के इच्छुक हो, जो उसके कहने से ही

हमसे इस प्रकार मूर्खों जैसी बातें कर रहे हो। तुरन्त यहाँ से अपने कौरव राजा के पास चले जाओ। नहीं तो तुम्हें आज ही मृत्यु के घर पहुँचा दिया जायेगा। गन्धर्वों के द्वारा ऐसा कहे जाने पर राजा के सेनानायक लोग भाग कर वहीं पहुँचे जहाँ धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन था।

सैंतीसवाँ अध्याय : गन्धर्वों द्वारा दुर्योधन का अपहरण। पाण्डवों की शरण।

गन्धर्वैर्वारिते सैन्ये धार्तराष्ट्रः प्रतापवान्।
अमर्षपूर्णः सैन्यानि प्रत्यभाषत भारतः॥ १॥
शासतैनानधर्मज्ञान् मम विप्रियकारिणः।
यदि प्रक्रीडते सर्वैर्देवैः सह शतक्रतुः॥ २॥
दुर्योधनवचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रा महाबलाः।
सर्व एवाभिसंनद्धा योधाश्चापि सहस्रशः॥ ३॥
ततः प्रमथ्य सर्वांस्तांस्तद् वनं विविशुर्बलात्।
सिंहनादेन महता पूरयन्तो दिशो दश॥ ४॥

तब गन्धर्वों द्वारा अपनी सेना रोक दिये जाने पर, प्रतापी, अमर्षपूर्ण भारत धृतराष्ट्र के पुत्र ने अपनी सेनाओं को उत्तर दिया कि यदि सारे देवताओं के साथ इन्द्र भी यहाँ विहार कर रहे हों, तो मेरा अप्रिय करने वाले उन सब अधर्मियों को दण्ड दो। दुर्योधन की बात सुनकर धृतराष्ट्र के वे सारे महाबली पुत्र और हजारों सैनिक भी सारे युद्ध के लिये तैयार हो गये। फिर वे सिंहनादों से दशों दिशाओं को गुँजाते हुए, उन गन्धर्वों को रौंदते हुए बलपूर्वक द्वैतवन में घुस गये।

गन्धर्वराजस्तान् सर्वानब्रवीत् कौरवान् प्रति।
अनार्याञ्छासतेत्येतांश्चित्रसेनोऽत्यमर्षणः ॥ ५॥
तान् दृष्ट्वा पततः शीघ्रान् गन्धर्वानुद्यतायुधान्।
प्राद्रवंस्ते दिशः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः॥ ६॥
आपतन्तीं तु सम्प्रेक्ष्य गन्धर्वाणां महाचमूम्।
महता शरवर्षेण राधेयः प्रत्यवारयत्॥ ७॥
क्षुरप्रैर्विशिखैर्भल्लैर्वत्सदन्तैस्तथाऽऽयसैः ।
गन्धर्वाञ्छतशोऽभ्यघ्नँल्लघुत्वात् सूतनन्दनः॥ ८॥

तभी अमर्षशील गन्धर्वों के राजा चित्रसेन ने भी उन कौरवों के लिये सारे गन्धर्वों से कहा कि अरे इन दुष्टों का दमन करो। तब शस्त्रास्त्र लेकर तेजी से आक्रमण करते हुए गन्धर्वों को देखकर दुर्योधन के सैनिक दुर्योधन के देखते ही देखते भागने लगे। तब गन्धर्वों की उस विशाल सेना को आक्रमण करते हुए देखकर कर्ण ने अपनी बाणवर्षा से उसे रोक दिया। सारथी के पुत्र कर्ण ने अपने हाथों की फुर्ती से लोहे के क्षुरप्र, विशिख, भल्ल और वत्सदन्त बाणों से सैकड़ों गन्धर्वों को मार दिया।

ते वध्यमाना गन्धर्वाः सूतपुत्रेण धीमता।
भूय एवाभ्यवर्तन्त शतशोऽथ सहस्रशः॥ ९॥
अथ दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः।
दुःशासनो विकर्णश्च ये चान्ये धृतराष्ट्रजाः॥ १०॥
न्यहनंस्तत् तदा सैन्यं रथैर्गरुडनिःस्वनैः।
भूयश्च योधयामासुः कृत्वा कर्णमथाग्रतः॥ ११॥
महता रथसङ्घेन रथचारेण चाप्युत।
वैकर्तनं परीप्सन्तो गन्धर्वान् समवाकिरन्॥ १२॥

धीमान् कर्ण के द्वारा मारे जाते हुए वे गन्धर्व फिर सैंकड़ों और हजारों की संख्या में इकट्ठे हो गये। तब राजा दुर्योधन, सुबलपुत्र शकुनि, दुश्शासन, विकर्ण और दूसरे धृतराष्ट्र के पुत्र गरुड़ के समान ध्वनि वाले रथों पर चढ़कर गन्धर्वों की सेना को मारने लगे। उन्होंने कर्ण को आगे कर पुनः गन्धर्वों का सामना किया। वे महान् रथ समूहों के द्वारा, रथों को अलग अलग पैंतरों से चलाते हुए, कर्ण की रक्षा करते हुए गन्धर्वों पर बाण वर्षा करने लगे।

ततः संन्यपतन् सर्वे गन्धर्वाः कौरवैः सह।
तदा सुतुमुलं युद्धमभवल्लोमहर्षणम्॥ १३॥
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः।
गन्धर्वान् योधयामासुः समरे भृशविक्षताः॥ १४॥
सर्व एव तु गन्धर्वाः शतशोऽथ सहस्रशः।
जिघांसमानाः सहिताः कर्णमभ्यद्रवन् रणे॥ १५॥
असिभिः पट्टिशैः शूलैर्गदाभिश्च महाबलाः।
सूतपुत्रं जिघांसन्तः समन्तात् पर्यवाकिरन्॥ १६॥

तब गन्धर्व भी संगठित होकर कौरवों से लड़ने लगे। इस प्रकार वहाँ बड़ा भयानक लोमहर्षक युद्ध होने लगा। तब दुर्योधन कर्ण और सुबल पुत्र शकुनि युद्ध में बहुत घायल हो गये, पर फिर भी वे गन्धर्वों से युद्ध करते रहे। तब सैंकड़ों और हजारों की संख्या में एकत्र होकर गन्धर्वों ने कर्ण को मारने की इच्छा से उसके ऊपर आक्रमण कर दिया। उन महाबलियों

ने कर्ण को मारने के उद्देश्य से उस पर चारों तरफ से तलवारों, पट्टिशों, शूलों और गदाओं से प्रहार करना आरम्भ कर दिया।

अन्येऽस्य युगमच्छिन्दन् ध्वजमन्ये न्यपातयन्।
ईषामन्ये हयानन्ये सूतमन्ये न्यापतयन्॥ १७॥
अन्ये छत्रं वरूथं च बन्धुरं च तथापरे।
गन्धर्वा बहुसाहस्रास्तिलशो व्यधमन् रथम्॥ १८॥
ततो रथादवप्लुत्य सूतपुत्रोऽसिचर्मभृत्।
विकर्णरथमास्थाय मोक्षायाश्वानचोदयत्॥ १९॥

किसी ने उसके रथ का जूआ काट दिया, किसी ने उसकी ध्वजा काट कर गिरा दी, किसी ने उसके ईषादण्ड को तोड़ दिया, किसी ने छत्र, किसी ने वरूथ, और किसी ने रथ के बन्धन काट दिये। कई हजार गन्धर्वों ने उसके रथ के टुकड़े टुकड़े कर दिये। तब सारथी का पुत्र कर्ण तलवार और ढाल लेकर रथ से कूद पड़ा और विकर्ण के रथ पर बैठ कर अपने प्राण बचाने के लिये घोड़ों को भगाकर ले गया।

तान् दृष्ट्वा द्रवतः सर्वान् धार्तराष्ट्रान् पराङ्मुखान्।
दुर्योधनो महाराजो नासीत् तत्र पराङ्मुखः॥ २०॥
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य गन्धर्वाणां महाचमूम्।
महता शरवर्षेण सोऽभ्यवर्षदरिंदमः॥ २१॥
अचिन्त्य शरवर्षं तु गन्धर्वास्तस्य तं रथम्।
दुर्योधनं जिघांसन्तः समन्तात् पर्यवारयन्॥ २२॥
युगमीषां वरूथं च तथैव ध्वजसारथी।
अश्वांस्त्रिवेणुं तल्पं च तिलशो व्यधमच्छरैः॥ २३॥
दुर्योधनं चित्रसेनो विरथं पतितं भुवि।
अभिद्रुत्य महाबाहुर्जीवग्राहमथाग्रहीत्॥ २४॥

उन सारे धृतराष्ट्र के पुत्रों को युद्ध में पीठ दिखा कर भागते हुए देख कर भी महाराज दुर्योधन युद्ध से नहीं भागा। गन्धर्वों की उस महान् सेना को अपने ऊपर आक्रमण करते देखकर वह शत्रु का दमन करने वाला उसके ऊपर बाणों की बड़ी वर्षा करने लगा। किन्तु गन्धर्वों ने उसकी बाण वर्षा की परवाह न कर उसे मारने की इच्छा से उसके रथ को चारों ओर से घेर लिया। उन्होंने उसके रथ के युग, ईषादण्ड, वरूथ, ध्वजा, सारथी, घोड़ों, त्रिवेणु और बैठने के स्थान बाणों से टुकड़े टुकड़े कर दिये। तब रथहीन होकर भूमि पर गिरे हुए दुर्योधन को महाबाहु चित्रसेन ने दौड़कर जीते जी बन्दी बना लिया।

तस्मिन् गृहीते राजेन्द्रे स्थितं दुःशासनं रथे।
पर्यगृह्णन्त गन्धर्वाः परिवार्य समन्ततः॥ २५॥
विविंशतिं चित्रसेनमादायान्ये विदुद्रुवुः।
विन्दानुविन्दावपरे राजदारांश्च सर्वशः॥ २६॥
सैन्यं तद् धार्तराष्ट्रस्य गन्धर्वैः समभिद्रुतम्।
पूर्वं प्रभग्नाः सहिताः पाण्डवानभ्ययुस्तदा॥ २७॥

सैनिका ऊचुः

प्रियदर्शी महाबाहुर्धार्तराष्ट्रो महाबलः।
गन्धर्वैर्ह्रियते राजा पार्थास्तमनुधावत॥ २८॥
दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुर्जयस्तथा।
बद्ध्वा ह्रियन्ते गन्धर्वै राजदाराश्च सर्वशः॥ २९॥

उस राजेन्द्र दुर्योधन के पकड़े जाने पर, रथ में बैठे हुए दुश्शासन को भी गन्धर्वों ने चारों तरफ से घेर कर पकड़ लिया। दूसरे गन्धर्व धृतराष्ट्र के पुत्र विविंशति और चित्रसेन को पकड़ कर ले चले और कुछ गन्धर्वों ने विन्द और अनुविन्द को तथा राजकुल की सारी महिलाओं को अपने अधिकार में कर लिया। धृतराष्ट्र पुत्र की उस सेना को गन्धर्वों ने मार भगाया। सेना के वे सैनिक तथा वे सैनिक जो पहले ही मैदान से हट गये थे, तब मिल कर पाण्डवों की शरण में गए। सैनिक पाण्डवों से बोले कि धृतराष्ट्र के पुत्र महाबली, महाबाहु, प्रियदर्शी राजा दुर्योधन गन्धर्वो के द्वारा पकड़कर ले जाये जा रहे हैं। हे कुन्तीपुत्रों! आप उनकी रक्षा के लिये दौड़िये। दुश्शासन, दुर्विषह, दुर्मुख और दुर्जय को भी उनके द्वारा ले जाया जा रहा है और सारी राजकुल की स्त्रियों को भी वे ले जा रहे हैं।

तांस्तथाव्यथितान् दीनान् भिक्षमाणान् युधिष्ठिरम्।
वृद्धान् दुर्योधनामात्यान् भीमसेनोऽभ्यभाषत॥ ३०॥
महता हि प्रयत्नेन संनह्य गजवाजिभिः।
अस्माभिर्यदनुष्ठेयं गन्धर्वैस्तदनुष्ठितम्॥ ३१॥
अन्यथा वर्तमानानामर्थो जातोऽयमन्यथा।
दुर्मन्त्रितमिदं तावद् राज्ञो दुर्द्यूतदेविनः॥ ३२॥

दुर्योधन के उन बूढ़े मन्त्रियों को युधिष्ठिर से इस प्रकार दुःखी और दीन होकर सहायता की भीख माँगते हुए देख कर भीमसेन ने कहा कि जो कार्य हमें हाथी और घोड़ों के द्वारा बड़े प्रयत्न से, कमर कस कर करना पड़ता, वह गन्धर्वों ने ही कर दिया। ये लोग करना तो कुछ और चाहते

थे, पर हो कुछ और गया। यह इस कपट द्यूत खेलने वाले राजा का षड्यन्त्र था, जो पूरा नहीं हो सका।

द्वेष्टारमन्यं क्लीबस्य पातयन्तीति नः श्रुतम्।
इदं कृतं नः प्रत्यक्षं गन्धर्वैरतिमानुषम्॥ ३३॥
दिष्ट्यालोके पुमानस्ति कश्चिदस्मत्प्रिये स्थितः।
येनास्माकं हृतो भार आसीनानां सुखावहः॥ ३४॥
शीतवातातपसहांस्तपसा चैव कर्शितान्।
समस्थो विषमस्थान् हि द्रष्टुमिच्छति दुर्मतिः॥ ३५॥
एवं ब्रुवाणं कौन्तेयं भीमसेनमपस्वरम्।
न कालः परुषस्यायमिति राजाभ्यभाषत॥ ३६॥

हमने सुना था कि असमर्थ व्यक्ति से द्वेष करने वालों को दूसरे लोग ही नीचा दिखा देते हैं। गन्धर्वों ने अलौकिक पराक्रम से इस कथन को हमारे सामने सच कर दिया। यह सौभाग्य की बात है कि संसार में कोई व्यक्ति हमारी भलाई करने में भी लगा हुआ है, जिसने हमारा बोझा उतार दिया। हम यहाँ सर्दी, गर्मी, और हवा को सहन करते हुए तपस्या से दुबले हो रहे हैं और वह दुष्ट स्वयं अच्छी हालत में होते हुए हमें बुरी अवस्था में देखना चाहता है। इस प्रकार बिगड़े स्वर में बोलते हुए कुन्तीपुत्र भीमसेन से राजा युधिष्ठिर से कहा कि हे भाई! यह कठोर शब्द कहने का समय नहीं है।

अड़तीसवाँ अध्याय : पाण्डवों की युद्ध के लिये तैयारी।

युधिष्ठिर उवाच

अस्मानभिगतांस्तात भयार्ताञ्छरणैषिणः।
कौरवान् विषमप्राप्तान् कथं ब्रूयास्त्वमीदृशम्॥ १॥
भवन्ति भेदा ज्ञातीनां कलहाश्च वृकोदर।
प्रसक्तानि च वैराणि कुलधर्मो न नश्यति॥ २॥
यदा तु कश्चिज्ज्ञातीनां बाह्यः पोथयते कुलम्।
न मर्षयन्ति तत् सन्तो बाह्येनाभिप्रधर्षणम्॥ ३॥
परैः परिभवे प्राप्ते वयं पञ्चोत्तरं शतम्।
परस्परविरोधे तु वयं पञ्च शतं तु ते॥ ४॥

युधिष्ठिर ने कहा कि हे तात! ये लोग भय से पीड़ित होकर शरण के लिये हमारे पास आये हैं। कौरव लोग भारी संकट में पड़े हुए हैं, फिर तुम इस प्रकार कटु बातें क्यों कह रहे हो? हे भीम! भाइयों में मनमुटाव भी होता है, लड़ाई भी होती है, उनमें शत्रुता भी बन जाती है, पर फिर भी कुल का धर्म नष्ट नहीं होता। जब कोई अपने भाइयों से बाहर का आदमी अपने कुल पर आक्रमण करता है, तब अच्छे आदमी बाहरी व्यक्ति के द्वारा अपने कुल का अपमान सहन नहीं करते। हमारा आपस में विरोध हो तो वे सौ हैं और हम पाँच हैं। पर यदि दूसरों के साथ हमारा झगड़ा हो तो हम एक सौ पाँच हैं।

जानात्येष हि दुर्बुद्धिरस्मानिह चिरोषितान्।
स एवं परिभूयास्मानकार्षीदिदमप्रियम्॥ ५॥
दुर्योधनस्य ग्रहणाद् गन्धर्वेण बलात् प्रभो।
स्त्रीणां बाह्याभिमर्शाच्च हतं भवति नः कुलम्॥ ६॥
शरणं च प्रपन्नानां त्राणार्थं च कुलस्य च।
उत्तिष्ठत नरव्याघ्राः सज्जीभवत मा चिरम्॥ ७॥
अर्जुनश्च यमौ चैव त्वं च वीरापराजितः।
मोक्षयध्वं नरव्याघ्रा ह्रियमाणं सुयोधनम्॥ ८॥

यह दुर्बुद्धि यक्ष यह जानता है कि हम यहाँ बहुत समय से रह रहे हैं, पर फिर भी हमारा तिरस्कार कर इसने यह अप्रिय कार्य किया है। हे शक्तिशाली भीम! दुर्योधन के बलपूर्वक पकड़े जाने और स्त्रियों के अपहरण होने से हमारे कुल का जो अपमान हुआ है, वह मृत्यु के समान है। इसलिये हे नर व्याघ्रों! शरणागतों की रक्षा के लिये और अपने कुल की सुरक्षा के लिये तैयार हो जाओ, देर मत करो। हे वीर! अर्जुन, नकुल, सहदेव और तुम किसी से पराजित होने वाले नहीं हो, इसलिये हे नरव्याघ्रों! अपहरण करके ले जाये जाते हुए दुर्योधन को छुड़ाओ।

य एव कश्चिद् राजन्यः शरणार्थमिहागतम्।
परं शक्त्याभिरक्षेत किं पुनस्त्वं वृकोदर॥ ९॥
किं चाप्यधिकमेतस्माद् यदापन्नः सुयोधनः।
त्वद्बाहुबलमाश्रित्य जीवितं परिमार्गते॥ १०॥
स्वयमेव प्रधावेयं यदि न स्याद् वृकोदर।
विततो मे क्रतुर्वीर न हि मेऽत्र विचारणा॥ ११॥

हे भीम! यदि कोई सामान्य क्षत्रिय भी हो, वह भी शरण में आये व्यक्ति की पूरी शक्ति से रक्षा करता है, फिर तुम जैसे वीरों की तो बात ही क्या है? तुम्हारे लिये इससे अच्छी और बात ही क्या होगी कि मुसीबत में पड़ा हुआ दुर्योधन तुम्हारे

बाहुबल का सहारा लेकर अपने जीवन की रक्षा करना चाहता है। हे वीर भीम! यदि मेरे यज्ञ का कार्य फैला हुआ नहीं होता तो मैं स्वयं युद्ध के लिये दौड़ता। अतः इस विषय में कोई दूसरा मेरा विचार नहीं है।

साम्नैव तु यथा भीम मोक्षयेथाः सुयोधनम्।
तथा सर्वैरुपायैस्त्वं यतेथाः कुरुनन्दन॥ १२॥
न साम्ना प्रतिपद्येत यदि गन्धर्वराडसौ।
पराक्रमेण मृदुना मोक्षयेथाः सुयोधनम्॥ १३॥
अथासौ मृदुयुद्धेन न मुञ्चेद् भीम कौरवान्।
सर्वोपायैर्विमोच्यास्ते निगृह्य परिपन्थिनः॥ १४॥
एतावद्धि मया शक्यं संदेष्टुं वै वृकोदर।
वैताने कर्मणि तते वर्तमाने च भारत॥ १५॥

हे भीम कुरुनन्दन! सारे उपायों से इस प्रकार यत्न करना, जिससे समझाने से ही दुर्योधन को छुड़ा सको। यदि गन्धर्वराज समझाने से नहीं समझे, तो थोड़े पराक्रम से दुर्योधन को छुड़ा लो। हे भीम! यदि वह कौरवों को थोड़ा सा युद्ध करने पर भी न छोड़े, तो उन शत्रुओं को सारे उपायों से वश में करके उन्हें छुड़ाना। हे भारत भीम! क्योंकि इस समय मेरा यज्ञकर्म चालू है, इसलिये मैं तुमसे इतना ही कह सकता हूँ।

अजातशत्रोर्वचनं तच्छ्रुत्वा तु धनंजयः।
प्रतिजज्ञे गुरोर्वाक्यं कौरवाणां विमोक्षणम्॥ १६॥
यदि साम्ना न मोक्ष्यन्ति गन्धर्वा धृतराष्ट्रजान्।
अद्य गन्धर्वराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम्॥ १७॥
युधिष्ठिरवचः श्रुत्वा भीमसेन पुरोगमाः।
प्रहृष्टवदनाः सर्वे समुत्तस्थुर्नरर्षभाः॥ १८॥
आयुधानि च दिव्यानि विविधानि समादधुः।
ते दंशिता रथैः सर्वे ध्वजिनः सशरासनाः॥ १९॥
पाण्डवाः प्रत्यदृश्यन्त ज्वलिता इव पावकाः।

तब अपने बड़े भाई अजातशत्रु की बात सुनकर अर्जुन ने उनके कहने के अनुसार कौरवों को छुड़ाने की प्रतिज्ञा की। उन्होंने कहा कि गन्धर्व यदि समझाने से धृतराष्ट्र के पुत्रों को यदि नहीं छोड़ेंगे तो यह भूमि गन्धर्वराज के खून को पीयेगी। युधिष्ठिर की बात सुनकर फिर सारे नरश्रेष्ठ भीमसेन आदि पाण्डव प्रसन्न मुख से खड़े हो गये। उन्होंने अनेक प्रकार के विविध आयुधों को धारण किया। कवच पहनकर, ध्वज और धनुष बाण के साथ रथों में बैठकर वे प्रज्वलित अग्नि के समान दिखाई देने लगे।

तान् रथान् साधुसम्पन्नान् संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः॥ २०॥
आस्थाय रथाशार्दूलाः शीघ्रमेव ययुस्ततः।
ततः कौरवसैन्यानां प्रादुरासीन्महास्वनः॥ २१॥
प्रयातान् सहितान् दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रान् महारथान्।
क्षणेनैव वने तस्मिन् समाजग्मुरभीतवत्।
न्यवर्तन्त ततः सर्वे गन्धर्वा जितकाशिनः॥ २२॥

जिनमें तीव्रगामी घोड़े जुते हुए थे उन युद्ध सामग्रियों से अच्छी तरह से युक्त रथों पर बैठकर वे रथियों में श्रेष्ठ शीघ्र ही वहाँ से चल दिये। महारथी पाण्डुपुत्रों को एक साथ प्रस्थान करते हुए देखकर कौरव सेना में महान् कोलाहल होने लगा। तब विजय से उल्लासित गन्धर्व भी उस वन में युद्ध के लिये निर्भयता के साथ लौट कर एकत्र हो गये।

उन्तालीसवाँ अध्याय : पाण्डवों का गन्धर्वो को हराना, दुर्योधन को छुड़ाना।

ततो दिव्यास्त्रसम्पन्ना गन्धर्वा हेममालिनः।
विसृजन्तः शरान् दीप्तान् समन्तात् पर्यवारयन्॥ १॥
यथा कर्णस्य च रथो धार्तराष्ट्रस्य चोभयोः।
गन्धर्वैः शतशश्छिन्नौ तथा तेषां प्रचक्रिरे॥ २॥
प्रत्यगृह्णन् नरव्याघ्राः शरवर्षैरनेकशः।
न शेकुः पाण्डुपुत्राणां समीपे परिवर्तितुम्॥ ३॥
अभिक्रुद्धानभिक्रुद्धो गन्धर्वानर्जुनस्तदा।
लक्षयित्वाथ दिव्यानि महास्त्राण्युपचक्रमे॥ ४॥

तब दिव्यास्त्रों से युक्त और सोने की माला पहने हुए गन्धर्वों ने जगमगाते हुए बाणों की वर्षा करते हुए पाण्डवों को चारों ओर से घेर लिया। गन्धर्वों ने जैसे कर्ण और दुर्योधन के रथों को तोड़ दिया था, वैसे ही वे पाण्डवों के भी रथों को तोड़ने का प्रयत्न करने लगे, पर उन नरव्याघ्र पाण्डवों ने बार बार बाणों की वर्षा कर उन्हें रोक दिया। वे पाण्डवों के समीप नहीं जा सके। उन क्रोध में भरे गन्धर्वों के ऊपर अर्जुन ने भी दिव्यास्त्रों को छोड़ना आरम्भ कर दिया।

स्थूणाकर्णेन्द्रजालं च सौरं चापि तथार्जुनः।
आग्नेयं चापि सौम्यं च ससर्ज कुरुनन्दनः॥ ५॥
चित्रसेनो गदां गृह्य सव्यसाचिनमाद्रवत्।

तस्याभिपततस्तूर्णं गदाहस्तस्य संयुगे॥ ६॥
गदां सर्वायसीं पार्थः शरैश्चिच्छेद सप्तधा।
स गदां बहुधा दृष्ट्वा कृत्तां बाणैस्तरस्विना॥ ७॥
संवृत्य विद्ययाऽऽत्मानं योधयामास पाण्डवम्।
अस्त्राणि तस्य दिव्यानि सम्प्रयुक्तानि सर्वशः॥ ८॥
दिव्यैरस्त्रैस्तदा वीरः पर्यवारयदर्जुनः।

कुरुनन्दन अर्जुन ने तब स्थूणाकर्ण, इन्द्रजाल, सौर, आग्नेय तथा सौम्य नाम के दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया। तब चित्रसेन ने गदा लेकर अर्जुन के ऊपर आक्रमण किया। पर युद्ध में गदा लेकर आक्रमण करते हुए चित्रसेन की उस सब तरफ से लोहे की बनी हुई गदा के कुन्तीपुत्र ने बाणों से सात टुकड़े कर दिये। अपनी गदा को वेगवान् अर्जुन के बाणों से काटा हुआ देखकर चित्रसेन विद्या से अदृश्य होकर अर्थात् छिपकर पाण्डुपुत्र से युद्ध करने लगा। पर वीर अर्जुन ने तब भी उसके द्वारा छोड़े हुए सारे दिव्यास्त्रों को अपने दिव्यास्त्रों से शान्त कर दिया।

स वध्यमानस्तैरस्त्रैरर्जुनेन महात्मना॥ ९॥
ततो ऽस्यदर्शयामास तदाऽऽत्मानं प्रियः सखा।
चित्रसेनस्तथोवाच सखायं युधि विद्धि माम्॥ १०॥
चित्रसेनमथालक्ष्य सखायं युधि दुर्बलम्।
संजहारास्त्रमथ तत् प्रसृष्टं पाण्डवर्षभः॥ ११॥
दृष्ट्वा तु पाण्डवाः सर्वे संहृतास्त्रं धनंजयम्।
संजह्रुः प्रद्रुतानश्वाञ्छरवेगान् धनूंषि च॥ १२॥

तब अर्जुन के उस प्रिय मित्र चित्रसेन ने अर्जुन के अस्त्रों से घायल होकर अपने आपको अर्जुन के सामने प्रकट कर दिया। चित्रसेन ने तब अर्जुन से कहा कि तुम मुझे अपना मित्र चित्रसेन समझो। अपने मित्र को युद्ध में दुर्बल हुआ देखकर उस पाण्डव श्रेष्ठ ने धनुष पर चढ़ाये हुए बाण का उपसंहार कर लिया। तब अर्जुन को अपने अस्त्र को लौटाते हुए देखकर दूसरे सारे पाण्डवों ने भी अपने दौड़ते हुए घोड़ों, बाणों के वेग और धनुषों को रोक लिया।

चित्रसेनश्च भीमश्च सव्यसाची यमावपि।
पृष्ट्वा कौशलमन्योन्यं रथेष्वेवावतस्थिरे॥ १३॥
ततोऽर्जुनश्चित्रसेनं प्रहसन्निदमब्रवीत्।
मध्ये गन्धर्वसैन्यानां महेष्वासो महाद्युतिः॥ १४॥
किं ते व्यवसितं वीर कौरवाणां विनिग्रहे।
किमर्थं च सदारोऽयं निगृहीतः सुयोधनः॥ १५॥

तब चित्रसेन, भीम, अर्जुन, और नकुल तथा सहदेव एक दूसरे का कुशल समाचार पूछकर अपने रथों में ही बैठे रहे। उसके पश्चात् गन्धर्वों की सेना के बीच में महाधनुर्धर और महातेजस्वी अर्जुन ने हँसते हुए चित्रसेन से पूछा- हे वीर! कौरवों को बन्दी बनाने में तुम्हारा क्या उद्देश्य है? तुमने स्त्रियों सहित दुर्योधन को किसलिये बंधन में डाला हुआ है?

चित्रसेन उवाच

विदितोऽयमभिप्रायस्तत्रस्थेन दुरात्मनः।
दुर्योधनस्य पापस्य कर्णस्य च धनंजय॥ १६॥
वनस्थान् भवतो ज्ञात्वा क्लिश्यमानाननाथवत्।
समस्थो विषमस्थांस्तान् द्रक्ष्यामीत्यनवस्थितान्॥ १७॥
इमेऽवहसितुं प्राप्ता द्रौपदीं च यशस्विनीम्।
ज्ञात्वा चिकीर्षितं चैषां मामुवाच सुरेश्वरः॥ १८॥
गच्छ दुर्योधनं बद्ध्वा सहामात्यमिहानय।
धनंजयश्च ते रक्ष्यः सह भ्रातृभिराहवे॥ १९॥
स च प्रियः सखा तुभ्यं शिष्यश्च तव पाण्डवः।
वचनाद् देवराजस्य ततोऽस्मीहागतो द्रुतम्॥ २०॥

तब चित्रसेन ने कहा कि हे अर्जुन! पापी दुर्योधन और कर्ण की इस योजना का इन्द्र को अपने राज्य में ही बैठे हुए पता लग गया था कि आप लोगों को वन में रहते हुए, अनाथों के समान क्लेश पाते हुए जानकर, हम ऐश्वर्य में रहते हुए, विषम परिस्थितियों में अस्थिर भाव से रहते हुए उन्हें देखेंगे, यह सोचकर और यशस्विनी द्रौपदी पर हँसने के लिये ये लोग यहाँ आए थे। इनकी इस इच्छा को जानकर इन्द्र ने मुझसे कहा कि तुम जाओ और दुर्योधन को उसके सलाह-कारों के साथ बाँध कर ले आओ। तुमने युद्ध में अर्जुन की उनके भाइयों सहित रक्षा करनी है, क्योंकि अर्जुन तुम्हारे प्रिय मित्र और शिष्य हैं। तब इन्द्र के कहने से मैं यहाँ शीघ्रतापूर्वक आ गया।

अयं दुरात्मा बद्धश्च गमिष्यामि सुरालयम्।
नेष्याम्येनं दुरात्मानं पाकशासनशासनात्॥ २१॥

अर्जुन उवाच

उत्सृज्यतां चित्रसेन भ्रातास्माकं सुयोधनः।
धर्मराजस्य संदेशान्मम चेदिच्छसि प्रियम्॥ २२॥

चित्रसेन उवाच

पापोऽयं नित्यसंतुष्टो न विमोक्षणमर्हति।

प्रलब्धा धर्मराजस्य कृष्णायाश्च धनंजय॥ २३॥
नेदं चिकीर्षितं तस्य कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
जानाति धर्मराजो हि श्रुत्वा कुरु यथेच्छसि॥ २४॥

इस दुष्ट को मैंने पकड़ लिया है। अब इन्द्र के आदेश से मैं इसे देवलोक में लेकर जाऊँगा। तब अर्जुन ने कहा हे चित्रसेन! दुर्योधन हमारा भाई है, इसलिये यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो धर्मराज युधिष्ठिर के आदेश से इसे छोड़ दो। तब चित्रसेन बोला कि हे अर्जुन! यह पापी राज्य का सुख भोगने के कारण पागल हो गया है! यह छोड़ने के योग्य नहीं है। इसने धर्मराज और द्रौपदी को धोखा दिया है। कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर उसकी करतूत को नहीं जानते। इसलिये अब यह सुनकर जैसा चाहो वैसे कर लो।

ते सर्व एव राजानमभिजग्मुर्युधिष्ठिरम्।
अभिगम्य च तत् सर्वं शशंसुस्तस्य चेष्टितम्॥ २५॥
अजातशत्रुस्तच्छ्रुत्वा गन्धर्वस्य वचस्तदा।
मोक्षयामास तान् सर्वान् गन्धर्वान् प्रशशंस च॥ २६॥

तब वे सारे राजा युधिष्ठिर के पास गये और वहाँ उनके पास जाकर उन्होंने उनसे दुर्योधन की कुचेष्टाएँ कह सुनायीं। अजातशत्रु युधिष्ठिर ने गन्धर्वों की बातें सुनकर उन सारे कौरवों को छुड़वा दिया और गन्धर्वों की बड़ी प्रशंसा की।

दिष्ट्या भवद्भिर्बलिभिः शक्तैः सर्वैर्न हिंसितः।
दुर्वृत्तो धार्तराष्ट्रोऽयं सामात्यज्ञातिबान्धवः॥ २७॥
कुलं न परिभूतं मे मोक्षणेऽस्य दुरात्मनः।
आज्ञापयध्वमिष्टानि प्रीयामो दर्शनेन वः॥ २८॥
अनुज्ञातास्तु गन्धर्वाः, चित्रसेन मुखा ययुः।

उन्होंने उनसे कहा कि आप लोग बलवान् और सामर्थ्यशाली हैं। यह सौभाग्य की बात है कि आप लोगों ने इस दुराचारी दुर्योधन का मंत्रियों और जाति भाइयों सहित वध नहीं कर दिया। इस दुष्ट को छोड़ने से मेरे कुल का अपमान नहीं हुआ है। हम लोग आपके दर्शनों से बहुत प्रसन्न हैं। आप अपनी मनचाही सेवा के लिये हमें आज्ञा दीजिये, तब चित्रसेन आदि गन्धर्व उनसे आज्ञा लेकर वहाँ से चले गये।

ज्ञातीं स्तानवमुच्याथ राजदारांश्च सर्वशः॥ २९॥
कृत्वा च दुष्करं कर्म प्रीतियुक्ताश्च पाण्डवाः।
सस्त्रीकुमारैः कुरुभिः पूज्यमाना महारथाः॥ ३०॥
बभ्राजिरे महात्मानः क्रतुमध्ये यथाग्नयः।
ततो दुर्योधनं मुक्तं भ्रातृभिः सहितस्तदा॥ ३१॥
युधिष्ठिरस्तु प्रणयादिदं वचनमब्रवीत्।

इस प्रकार अपने भाई बन्धुओं को और राजकुल की महिलाओं को गंधर्वों से छुड़वाकर, यह कठिनकार्य कर प्रसन्नता से भरे हुए, महारथी, महात्मा पाण्डव स्त्री और बच्चों सहित कौरवों से पूजित और प्रशंसित होते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे यज्ञ के अन्दर अग्नि सुशोभित होती है। तब बन्धनमुक्त हुए दुर्योधन से युधिष्ठिर ने भाइयों सहित यह प्रेमपूर्वक बात कही कि–

मा स्म तात पुनः कार्षीरीदृशं साहसं क्वचित्॥ ३२॥
न हि साहसकर्तारः सुखमेधन्ति भारत।
स्वस्तिमान् सहितः सर्वैर्भ्रातृभिः कुरुनन्दन।
गृहान् व्रज यथाकामं वैमनस्यं च मा कृथाः॥ ३३॥

हे भारत! इस प्रकार का साहस फिर कभी मत करना। दुस्साहस करने वालों को सुख नहीं मिलता है। हे कुरुनन्दन! तुम सारे भाइयों के साथ कुशलपूर्वक इच्छानुसार घर जाओ और मन में बैर भाव मत रखो।

चालीसवाँ अध्याय : दुर्योधन कर्ण वार्त्तालाप।

धर्मराजनिसृष्टस्तु धार्तराष्ट्रः सुयोधनः।
लज्जयाधोमुखः सीदन्नपासर्पत् सुदुःखितः॥ १॥
स्वपुरं प्रययौ राजा चतुरङ्गबलानुगः।
शोकोपहतया बुद्ध्या चिन्तयानः पराभवम्॥ २॥
विमुच्य पथि यानानि देशे सुयवसोदके।
संनिविष्टः शुभे रम्ये भूमिभागे यथेप्सितम्॥ ३॥
हस्त्यश्वरथपादातं यथास्थानं न्यवेशयत्।
अथोपविष्टं राजानं पर्यङ्के ज्वलनप्रभे॥ ४॥
उपप्लुतं यथा सोमं राहुणा रात्रिसंक्षये।

धर्मराज युधिष्ठिर से विदा लेकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अत्यन्त दुःखी और खिन्न होता हुआ, लज्जा से सिर नीचा किये वहाँ से चल दिया। शोक से जिसकी बुद्धि मारी गयी थी, वह चतुरंगिणी सेना के साथ राजा दुर्योधन अपनी पराजय के विषय में

सोचता हुआ अपने नगर की तरफ चल दिया। रास्ते में जहाँ घास और पानी की अधिकता थी, वहाँ अपने वाहनों को छोड़कर वह एक सुन्दर भूमि भाग पर अपनी इच्छा के अनुसार बैठ गया। हाथी, रथ, घोड़े और पैदल सैनिकों को भी उसने यथास्थान टिका दिया। तब अपने अग्नि के समान प्रकाशित पलंग पर बैठा हुआ वह राजा ऐसे लग रहा था जैसे रात्रि के अन्त में राहु से ग्रसित होने पर चन्द्रमा प्रतीत होता है।

उपागम्याब्रवीत् कर्णो दुर्योधनमिदं तदा॥ ५॥
दिष्ट्या जीवसि गान्धारे दिष्ट्या नः सङ्गमः पुनः।
दिष्ट्या त्वया जिताश्चैव गन्धर्वाः कामरूपिणः॥ ६॥
दिष्ट्या समग्रान् पश्यामि भ्रातॄं स्तेकुरुनन्दन।
विजिगीषून् रणे युक्तान् निर्जितारीन् महारथान्॥ ७॥
अहं त्वभिद्रुतः सर्वैर्गन्धर्वैः पश्यतस्तव।
नाशक्नुवं स्थापयितुं दीर्यमाणां च वाहिनीम्॥ ८॥

तभी कर्ण उसके समीप आया और उससे कहने लगा कि हे गान्धारी पुत्र! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम जीवित हो। यह सौभाग्य की बात है कि तुम्हारा और हमारा मेल हो गया। यह भी सौभाग्य की बात है कि तुमने उन मनचाहा रूप बनाने वाले गन्धर्वों पर विजय पाली। हे कुरुनन्दन! यह भी सौभाग्य की बात है कि जिन्होंने युद्ध में शत्रुओं पर विजय पाली है, तुम्हारे उन महारथी भाइयों को मैं पुनः विजय की अभिलाषा से युक्त देख रहा हूँ। मैं तो तुम्हारे देखते हुए ही सारे गन्धर्वों से पराजित होकर भाग गया था। मैं बिखरती हुई सेना को इकट्ठा नहीं कर सका।

शरक्षताङ्गश्च भृशं व्यपयातोऽभिपीडितः।
इदं त्वत्यद्भुतं मन्ये यद् युष्मानिह भारत॥ ९॥
अरिष्टानक्षतांश्चापि सदारबलवाहनान्।
विमुक्तान् सम्प्रपश्यामि युद्धात् तस्मादमानुषात्॥ १०॥
नैतस्य कर्ता लोकेऽस्मिन् पुमान् भारत विद्यते।
यत् कृतं ते महाराज सह भ्रातृभिराहवे॥ ११॥
एवमुक्तस्तु कर्णेन राजा दुर्योधनस्तदा।
उवाच चाङ्गराजानं वाष्पगद्गदया गिरा॥ १२॥

बाणों की चोट से मेरा सारा शरीर क्षतविक्षत हो गया था। शरीर में बड़ी पीड़ा हो रही थी इसलिये मुझे भागना पड़ा। हे भारत! मुझे यह बात बड़ी अद्भुत मालूम हो रही है कि तुम लोग उस अमानुषिक युद्ध से छूट कर स्त्रियों, सेना और सवारियों के साथ सकुशल और क्षतरहित दिखाई दे रहे हो। हे महाराज भारत! आपने अपने भाइयों के साथ युद्ध में जो पराक्रम दिखाया है, संसार में कोई दूसरा पुरुष नहीं है, जो ऐसा कर सके। कर्ण के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राजा दुर्योधन तब अश्रुगद्गद वाणी से अंगराज कर्ण से बोला कि-

अजानतस्ते राधेय नाभ्यसूयाम्यहं वचः।
जानासि त्वं जिताञ्छत्रून् गन्धर्वां स्तेजसा मया॥ १३॥
पराजयं च प्राप्ताः स्मो रणे बन्धनमेव च।
सभृत्यामात्यपुत्राश्च सदारबलवाहनाः॥ १४॥
अथ नः सैनिकाः केचिदमात्याश्च महारथाः।
उपगम्याब्रुवन् दीनाः पाण्डवाञ्छरणप्रदान्॥ १५॥
एवमुक्ते तु धर्मात्मा ज्येष्ठः पाण्डुसुतस्तदा।
प्रसाद्य पाण्डवान् सर्वानाज्ञापयत मोक्षणे॥ १६॥

हे राधा के पुत्र! तुम बिना जाने हुए ये बातें कह रहे हो, इसलिये मैं तुम्हारी बातों का बुरा नहीं मानता। तुम यह समझते हो कि गन्धर्वों को मैंने अपने तेज से जीता है। युद्ध में हमारी पराजय हुई थी। हम अपने सेवकों, मंत्रियों, पुत्रों, पत्नियों, सेना और सवारियों के साथ बन्दी बना लिये गये थे।तब हमारे कुछ सैनिकों और महारथी मंत्रियों ने शरण देने वाले पाण्डवों के पास जाकर दीनता पूर्वक उनसे सारी बात बतायी। तब उनके इस प्रकार कहने पर धर्मात्मा ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र ने पाण्डवों को राजी कर उन्हें हमें मुक्त कराने के लिये आज्ञा दी।

आगम्य तमुद्देशं पाण्डवाः पुरुषर्षभाः।
सान्त्वपूर्वमयाचन्त शक्ताः सन्तो महारथाः॥ १७॥
यदा चास्मान् न मुमुचुर्गन्धर्वाः सान्त्विता अपि।
ततोऽर्जुनश्च भीमश्च यमजौ च बलोत्कटौ॥ १८॥
मुमुचुः शरवर्षाणि गन्धर्वान् प्रत्यनेकशः।
समावृता दिशो दृष्ट्वा पाण्डवेन शितैः शरैः॥ १९॥
धनंजयसखाऽऽत्मानं दर्शयामास वै तदा।
चित्रसेनः पाण्डवेन समाश्लिष्य परस्परम्॥ २०॥

तब पुरुषश्रेष्ठ महारथी पाण्डव, उस स्थान पर आये और शक्तिशाली होते हुए भी उन्होंने पहले सान्त्वनापूर्ण शब्दों में ही उनसे हमें छोड़ने के लिये प्रार्थना की। पर जब समझाने पर भी गन्धर्वों ने हमें नहीं छोड़ा तब अर्जुन, भीम और उत्कट बलशाली नकुल तथा सहदेव ने उन गन्धर्वों पर अनेक बार

बाणों की वर्षा की। तब अर्जुन के द्वारा तीखे बाणों से सारी दिशाओं को भरा हुआ देखकर अर्जुन के मित्र चित्रसेन गन्धर्व ने अपने आपको अर्जुन के आगे प्रकट कर दिया। चित्रसेन और अर्जुन ने एक दूसरे को छाती से लगा परस्पर कुशलता और स्वास्थ्य का समाचार पूछा।

कुशलं परिपप्रच्छ तैः पृष्टश्चाप्यनामयम्।
ते समेत्य तथान्योन्यं सन्नाहान् विप्रमुच्य च॥ २१॥
एकीभूतास्ते वीरा गन्धर्वाः सह पाण्डवैः।
अपूजयेतामन्योन्यं चित्रसेनधनंजयौ॥ २२॥
चित्रसेनं समागम्य प्रहसन्नर्जुनस्तदा।
इदं वचनमक्लीबमब्रवीत् परवीरहा॥ २३॥
भ्रातॄनर्हसि मे वीर मोक्तुं गन्धर्वसत्तम।
अनर्हधर्षणा ह्यमे जीवमानेषु पाण्डुषु॥ २४॥

तब एक दूसरे से मिलकर उन्होंने अपने कवच उतार दिये और वीर गन्धर्व तथा पाण्डव मिलकर एक ही हो गये। चित्रसेन और अर्जुन ने एक दूसरे का सत्कार किया। हे कर्ण! तब शत्रु के वीरों को नष्ट करने वाले अर्जुन ने चित्रसेन से मिलकर हँसते हुए यह शूरोचित वचन कहा कि हे वीर गन्धर्व श्रेष्ठ! तुम मेरे इन भाइयों को छोड़ दो। पाण्डवों के जीते हुए ये इस प्रकार के अपमान के योग्य नहीं हैं।

एवमुक्तस्तु गन्धर्वः पाण्डवेन महात्मना।
उवाच यत् कर्ण वयं मन्त्रयन्तो विनिर्गताः॥ २५॥
द्रष्टारः स्म सुखाद्धीनान् सदारान् पाण्डवानिति।
तस्मिन्नुच्चार्यमाणे तु गन्धर्वेण वचस्तथा॥ २६॥
भूमेर्विवरमन्वैच्छं प्रवेष्टुं व्रीडयान्वितः।

हे कर्ण! महात्मा पाण्डव के यह कहने पर उस गन्धर्व ने उन्हें वह बात कह दी, जिसके लिये हम योजना बना कर घर से चले थे। उसने उन्हें बता दिया कि ये लोग सुख वंचित हुए पाण्डवों और द्रौपदी की दुर्दशा को देखने के लिये आये थे। जब वह गन्धर्व यह बातें कह रहा था, तब मैं लज्जा से भरा हुआ यह चाह रहा था कि भूमि फटे और मैं उसमें समा जाऊँ।

युधिष्ठिरमथागम्य गन्धर्वाः सह पाण्डवैः॥ २७॥
अस्मद्दुर्मन्त्रितं तस्मै बद्धांश्चास्मान् न्यवेदयन्।
स्त्रीसमक्षमहं दीनो बद्धः शत्रुवशं गतः॥ २८॥
युधिष्ठिरस्योपहृतः किं नु दुःखमतः परम्।
ये मे निराकृता नित्यं रिपुर्येषामहं सदा।
तैर्मोक्षितोऽहं दुर्बुद्धिर्दत्तं तैरेव जीवितम्॥ २९॥

तब वे गन्धर्व पाण्डवों के साथ युधिष्ठिर के पास आये और हमारी कुचेष्टाओं के बारे में उन्हें बताकर हमें बाँधी हुई अवस्था में ही उन्हें सौंप दिया। स्त्रियों के सामने बँधा हुआ और दीनअवस्था में पहुँचा हुआ मैं शत्रु के आधीन हो गया था। उसी अवस्था में मुझे युधिष्ठिर को सौंपा गया। इससे अधिक दुख की बात और क्या हो सकती है? जो मेरे द्वारा सदा शत्रु बना रहा, मुझ दुर्बुद्धि को उन्होंने ही छुड़वाया और उन्होंने ही मुझे जीवन दान दिया।

इकतालीसवाँ अध्याय : दुर्योधन की आत्मग्लानि। कर्ण का समझाना।

प्राप्तः स्यां यद्यहं वीर वधं तस्मिन् महारणे।
श्रेयस्तद् भविता मह्यं नैवंभूतस्य जीवितम्॥ १॥
यत् त्वद्य मे व्यवसितं तच्छृणुध्वं नरर्षभाः।
इह प्रायमुपासिष्ये यूयं व्रजत वै गृहान्॥ २॥
कर्णप्रभृतयश्चैव सुहृदो बान्धवाश्च ये।
दुःशासनं पुरस्कृत्य प्रयान्त्वद्य पुरं प्रति॥ ३॥
न ह्यहं सम्प्रयास्यामि पुरं शत्रुनिराकृतः।
शत्रुमानापहो भूत्वा सुहृदां मानकृत् तथा॥ ४॥

दुर्योधन ने कहा कि हे वीर! यदि मैं उस महान् युद्ध में मर जाता तो यह मेरे लिये अच्छा होता, पर ऐसी अवस्था में मेरे लिये जीवित रहना ठीक नहीं है। इसलिये हे नरश्रेष्ठों! अब मेरा जो भावी कार्यक्रम है उसे सुनो। मैं यहाँ आमरण उपवास के लिये बैठूँगा और तुम सब घर लौट जाओ। कर्ण आदि मेरे मित्र और सारे भाई दुश्शासन को आगे करके नगर को चले जायें। शत्रुओं द्वारा अपमानित होकर मैं अब नगर में नहीं जाऊँगा। मैंने पहले सदा शत्रुओं का मानमर्दन किया है और सुहृदों को सम्मान दिया है।

स सुहृच्छोकदो जातः शत्रूणां हर्षवर्धनः।
वारणाह्वयमासाद्य किं वक्ष्यामि जनाधिपम्॥ ५॥
भीष्मद्रोणौ कृपद्रौणी विदुरः संजयस्तथा।
बाह्लीकः सौमदत्तिश्च ये चान्ये वृद्धसम्मताः॥ ६॥
ब्राह्मणाः श्रेणिमुख्याश्च तथोदासीनवृत्तयः।
किं मा वक्ष्यन्ति किं चापि प्रतिवक्ष्यामि तानहम्॥ ७॥

रिपूणां शिरसि स्थित्वां तथा विक्रम्य चोरसि।
आत्मदोषात् परिभ्रष्टः कथं वक्ष्यामि तानहम्॥ ८॥

अब मैं मित्रों को शोक देने वाला और शत्रुओं के हर्ष को बढ़ाने वाला बन गया हूँ। मैं अब हस्तिनापुर में जाकर राजा धृतराष्ट्र से क्या कहूँगा? भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विदुर, संजय, बाह्लीक, भूरिश्रवा और जो भी सम्मानित वृद्ध लोग हैं, ब्राह्मण, प्रमुख वैश्य लोग और उदासीन वृत्तिवाले लोग मुझसे क्या कहेंगे और मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा। शत्रुओं के सिर पर खड़ा होकर और उनकी छाती पर पराक्रम करके मैं अपने ही दोष से नीचे गिर गया हूँ। मैं अब उन लोगों से क्या कहूँगा?

दुर्विनीताः श्रियं प्राप्य विद्यामैश्वर्यमेव च।
तिष्ठन्ति न चिरं भद्रे यथाहं मदगर्वितः॥ ९॥
अहो नार्हमिदं कर्म कष्टं दुश्चरितं कृतम्।
स्वयं दुर्बुद्धिना मोहाद् येन प्राप्तोऽस्मि संशयम्॥ १०॥
तस्मात् प्रायमुपासिष्ये न हि शक्ष्यामि जीवितुम्।
चेतयानो हि को जीवेत् कृच्छ्राच्छत्रुभिरुद्धृतः॥ ११॥
शत्रुभिश्चावहसितो मानी पौरुषवर्जितः।
पाण्डवैर्विक्रमाढ्यैश्च सावमानमवेक्षितः॥ १२॥

उद्दण्ड लोग लक्ष्मी को, विद्या को, और ऐश्वर्य को पाकर देर तक उस कल्याणकारी पद पर नहीं रहते। जैसे मैं घमण्ड से चूर होकर कर बैठा हूँ। अरे वह दुष्कर्म और दुष्ट आचरण मेरे योग्य नहीं था। मुझ दुर्बुद्धि ने मोह से स्वयं वह कार्य कर दिया, जिससे अब संशय में पड़ गया हूँ। इसलिये मैं अब आमरण उपवास करूँगा। मैं जीवित नहीं रह सकता। जिसका शत्रुओं ने संकट से उद्धार किया हो, वह विचारशील मनुष्य कौन जीना चाहेगा? मुझे अपने पौरुष पर अभिमान था, पर मैं पौरुष से रहित हो गया। शत्रुओं ने मेरी हँसी उड़ाई, पराक्रमी पाण्डवों ने मुझे अवहेलना की दृष्टि से देखा है।

एवं चिन्तापरिगतो दुःशासनमथाब्रवीत्।
दुःशासन निबोधेदं वचनं मम भारत॥ १३॥
प्रतीच्छ त्वं मया दत्तमभिषेकं नृपो भव।
प्रशाधि पृथिवीं स्फीतां कर्णसौबलपालिताम्॥ १४॥
ब्राह्मणेषु सदा वृत्तिं कुर्वीथाश्चाप्रमादतः।
बन्धूनां सुहृदां चैव भवेथास्त्वं गतिः सदा॥ १५॥
गुरवः पालनीयास्ते गच्छ पालय मेदिनीम्।
नन्दयन् सुहृदः सर्वान् शात्रवांश्चावभर्त्सयन्॥ १६॥

इस प्रकार चिन्ता में पड़े हुए दुर्योधन ने तब दुश्शासन से कहा कि हे भारत दुश्शासन! तुम मेरी बात सुनो। मैं तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। तुम मेरे दिये इस राज्य को स्वीकार करो और राजा बन जाओ। कर्ण और शकुनि की सहायता से सुरक्षित इस समृद्ध पृथिवी पर शासन करो। तुम बिना प्रमाद किये ब्राह्मणों की आजीविका की व्यवस्था करते रहना और अपने भाइयों और मित्रों को सहारा देते रहना। मित्रों को आनन्द देते हुए और सारे शत्रुओं की भर्त्सना करते हुए तुम्हें गुरुओं का पालन करना है। अब तुम जाओ और पृथिवी का पालन करो।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा दीनो दुःशासनोऽब्रवीत्।
अश्रुकण्ठः सुदुःखार्तः प्राञ्जलिः प्रणिपत्य च॥ १७॥
सगद्गदमिदं वाक्यं भ्रातरं ज्येष्ठमात्मनः।
प्रसीदेत्यपतद् भूमौ दूयमानेन चेतसा॥ १८॥
दुःखितः पादयोस्तस्य नेत्रजं जलमुत्सृजन्।
उक्तवांश्च नर व्याघ्रो नैतदेवं भविष्यति॥ १९॥

उसकी इन बातों को सुनकर गले में आँसुओं को भरे हुए, बहुत दुःख से पीड़ित और हाथ जोड़कर, उसके पैरों में गिरकर दीन बना हुआ दुश्शासन गद् गद् स्वर से अपने बड़े भाई दुर्योधन से यह बोला कि आप प्रसन्न होइये। वह नरव्याघ्र व्याकुल हृदय से भूमि पर गिर पड़ा और दुःखी होते हुए, उसके पैरों पर आँखों से आँसू बहाते हुए बोला कि ऐसा नहीं होगा।

विदीर्येत् सकला भूमिर्द्यौश्चापि शकलीभवेत्।
रविरात्मप्रभां जह्यात् सोमः शीतांशुतां त्यजेत्॥ २०॥
वायुः शैघ्र्यमथो जह्याद्धिमवांश्च परिव्रजेत्।
शुष्येत् तोयं समुद्रेषु वह्निरप्युष्णतां त्यजेत्॥ २१॥
न चाहं त्वदृते राजन् प्रशासेयं वसुन्धराम्।
पुनः पुनः प्रसीदेति वाक्यं चेदमुवाच ह॥ २२॥
त्वमेव नः कुले राजा भविष्यसि शतं समाः।
एवमुक्त्वा स राजानं सुस्वरं प्ररुरोद ह॥ २३॥
पादौ संस्पृश्य मानार्हौ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भारतः।
तथा तौ दुःखितौ दृष्ट्वा दुःशासनसुयोधनौ॥ २४॥
अधिगम्य व्यथाविष्टः कर्णस्तौ प्रत्यभाषत।

चाहे सारी भूमि फट जाये, आकाश के भी टुकड़े हो जायें, सूर्य अपने तेज को छोड़ दे, चन्द्रमा शीतलता का त्याग कर दे, वायु तीव्र गति को छोड़ दे, हिमालय घूमने लगे, समुद्रों में पानी सूख जाये,

आग भी अपनी गर्मी को छोड़ दे, पर हे राजन्! मैं तुम्हारे बिना पृथिवी पर शासन नहीं करूँगा। उसने बार बार दुर्योधन से यह कहा कि प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये। आप ही हमारे कुल में सौ वर्षों तक राजा बने रहेंगे। ऐसा राजा से कहकर, बड़े भाई के पूज्य पैरों को पकड़ कर वह भरतवंशी दुश्शासन जोर जोर से रोने लगा। तब दुश्शासन और दुर्योधन को दुःखी देख कर दुःख से भरा हुआ कर्ण उनके पास जाकर उनसे बोला कि–

विषीदथः किं कौरव्यौ बालिश्यात् प्राकृताविव॥ २५॥
न शोकः शोचमानस्य विनिवर्तेत कर्हिचित्।
कर्तव्यं हि कृतं राजन् पाण्डवैस्तव मोक्षणम्॥ २६॥
नित्यमेव प्रियं कार्यं राज्ञो विषयवासिभिः।
पाल्यमानास्त्वया ते हि निवसन्ति गतज्वराः॥ २७॥
नार्हस्येवंगते मन्युं कर्तुं प्राकृतवद् यथा।
विषण्णास्तव सोदर्यास्त्वयि प्रायं समास्थिते॥ २८॥
उत्तिष्ठ व्रज भद्रं ते समाश्वासय सोदरान्।

हे कुरुनन्दनों! क्यों अपनी नादानी से सामान्य मनुष्यों की तरह से दुःखी हो रहे हो। शोक करने से शोक किसी प्रकार भी दूर नहीं होता। हे राजन्! पाण्डवों ने तुम्हें छुटकारा दिलाकर अपने कर्तव्य का ही पालन किया है। राजा के राज्य में रहने वालों को सदा उसका प्रिय करना चाहिये। तुम्हारे द्वारा पाले जाते हुए वे निश्चिन्त होकर रह रहे हैं। इसलिये ऐसी अवस्था में तुम्हें सामान्य मनुष्यों की तरह खेद नहीं करना चाहिये। तुम्हारे आमरण अनशन पर बैठने से तुम्हारे सगे भाई दुःखी हो रहे हैं। इसलिये तुम्हारा कल्याण हो। तुम उठो, भाइयों को सान्त्वना दो और चलो।

बयालीसवाँ अध्याय : कर्ण का आग्रह, दुर्योधन का हस्तिनापुर जाना।

कर्ण उवाच

राजन्नाद्यावगच्छामि तवेह लघुसत्त्वताम्।
किमत्र चित्रं यद् वीर मोक्षितः पाण्डवैरसि॥ १॥
सद्यो वशं समापन्नः शत्रूणां शत्रुकर्शन।
प्रायः प्रधानाः पुरुषाः क्षोभयन्त्यरिवाहिनीम्॥ २॥
निगृह्यन्ते च युद्धेषु मोक्ष्यन्ते चैव सैनिकैः।
यद्येवं पाण्डवै राजन् भवद्विषयवासिभिः॥ ३॥
यदृच्छया मोक्षितोऽसि तत्र का परिदेवना।
न चैतत् साधु यद् राजन् पाण्डवास्त्वां नृपोत्तमम्॥ ४॥
स्वसेनया सम्प्रयान्तं नानुयान्ति स्म पृष्ठतः।

कर्ण बोला कि हे राजन्! तुम जो इतना छोटा दिखा रहे हो। इसका कारण मेरी समझ में नहीं आता। हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले वीर। यदि एक बार शत्रुओं के वश में पड़ने पर तुम्हें पाण्डवों ने मुक्त करवा दिया तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? सेनापति लोग जो प्रायः शत्रु सेना को व्याकुल करते रहते हैं, कभी शत्रुओं के द्वारा पकड़े भी जाते हैं और उनके सैनिकों के द्वारा छुड़ा लिये जाते हैं। इसी प्रकार हे राजन्! तुम्हारे राज्य में रहने वाले पाण्डवों ने यदि अपनी इच्छा से तुम्हें बन्धन मुक्त करवा दिया तो इसमें दुःख की क्या बात है? यदि आप जैसे उत्तम नरेश के, जो सेना के साथ वहाँ पधारे थे, पीछे पाण्डव लोग नहीं जाते अर्थात् आपकी सहायता नहीं करते तो यह उनके लिये अच्छी बात नहीं होती।

शूराश्च बलवन्तश्च संयुगेष्वपलायिनः॥ ५॥
भवतस्ते सहाया वै प्रेष्यतां पूर्वमागताः।
पाण्डवेयानि रत्नानि त्वमद्याप्युपभुञ्जसे॥ ६॥
सत्त्वस्थान् पाण्डवान् पश्य न ते प्रायमुपाविशन्।
उत्तिष्ठ राजन् भद्रं ते न चिरं कर्तुमर्हसि॥ ७॥
अवश्यमेव नृपते राज्ञो विषयासिभिः।
प्रियाण्याचरितव्यानि तत्र का परिदेवना॥ ८॥

वे पाण्डव लोग बलवान् और युद्धों में पीछे हटने वाले नहीं हैं। वे आपके दास पहले ही बन चुके हैं। इसलिये उन्हें आपकी सहायता करनी ही चाहिये। पाण्डवों के रत्नों का तुम आज भी उपभोग कर रहे हो। पर पाण्डवों का धैर्य देखो। उन्होंने आमरण अनशन नहीं किया। इसलिये हे राजन्! उठो। तुम्हारा कल्याण हो। देर मत करो। राजा के राज्य में रहने वालों को उसके प्रिय कार्य अवश्य ही करने चाहिये। इसमें दुःख की बात भी क्या है।

मद्वाक्यमेतद् राजेन्द्र यद्येवं न करिष्यसि।
स्थास्यामीह भवत्पादौ शुश्रूषन्नरिमर्दन॥ ९॥
नोत्सहे जीवितुमहं त्वद्विहीनो नरर्षभ।
प्रायोपविष्टस्तु नृप राज्ञां हास्यो भविष्यसि॥ १०॥

शकुनिरुवाच

सम्यगुक्तं हि कर्णेन तच्छ्रुतं कौरव त्वया।
मया हृतां श्रियं स्फीतां तां मोहादपहाय किम्॥ ११॥

त्वमल्पबुद्ध्या नृपते प्राणानुत्स्रष्टुमर्हसि।
अथवाप्यवगच्छामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया॥ १२॥

हे शत्रुमर्दन राजेन्द्र! यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो मैं भी तुम्हारे चरणों की सेवा करते हुए मर जाऊँगा। हे नरश्रेष्ठ! मैं आपके बिना जीना नहीं चाहता। हे राजन्! तुम अनशन पर बैठकर राजाओं की हँसी के पात्र बन जाओगे। तब शकुनि ने कहा कि हे कौरव! कर्ण ने ठीक कहा है। तुमने उसे सुन लिया। मैंने जिस समृद्ध राज्यलक्ष्मी का हरण किया है, उसे तुम मोह से क्यों गवाँ रहे हो? हे राजन्! तुम अपनी अल्प बुद्धि से प्राणों को छोड़ रहे हो। अथवा मैं समझता हूँ कि तुमने कभी वृद्धों की सेवा नहीं की है।

यः समुत्पतितं हर्षं दैन्यं वा न नियच्छति।
स नश्यति श्रियं प्राप्य पात्रमाममिवाम्भसि॥ १३॥
अतिभीरुमतिक्लीबं दीर्घसूत्रं प्रमादिनम्।
व्यसनाद् विषयाक्रान्तं न भजन्ति नृपं प्रजाः॥ १४॥
सत्कृतस्य हि ते शोको विपरीते कथं भवेत्।
मा कृतं शोभनं पार्थैः शोकमालम्ब्य नाशय॥ १५॥
यत्र हर्षस्त्वया कार्यः सत्कर्तव्यश्चा पाण्डवाः।
तत्र शोचसि राजेन्द्र विपरीतमिदं तव॥ १६॥

जो व्यक्ति सहसा उठे हुए हर्ष और शोक पर नियंत्रण नहीं कर सकता, वह ऐश्वर्य को पाकर जल में कच्चे मिट्टी के पात्र की तरह नष्ट हो जाता है। जो राजा बहुत डरपोक, कायर, सुस्त, प्रमादी, और बुरी आदतों के कारण विषयों में फँसा हुआ होता है, प्रजा उसे अपना राजा नहीं मानती। पाण्डवों ने तुम्हारा सत्कार किया तो तुम्हें शोक हो रहा है, यदि वे उलटा करते तो क्या होता? कुन्तीपुत्रों द्वारा किये गये सद्व्यवहार को शोक का आश्रय लेकर नष्ट मत करो। हे राजेन्द्र! जहाँ तुम्हें प्रसन्नता होनी चाहिये थी और तुम्हें पाण्डवों का सत्कार करना चाहिये था, वहाँ तुम शोक कर रहे हो। यह तुम्हारा उलटा आचरण है।

प्रसीद मा त्यजात्मानं तुष्टश्च सुकृतं स्मर।
प्रयच्छ राज्यं पार्थानां यशो धर्ममवाप्नुहि॥ १७॥
क्रियामेतां समाज्ञाय कृतज्ञस्त्वं भविष्यसि।
सौभ्रात्रं पाण्डवैः कृत्वा समवस्थाप्य चैव तान्॥ १८॥
पित्र्यं राज्यं प्रयच्छैषां ततः सुखमवाप्स्यसि।

कर्ण उवाच

न मृतो जयते शत्रूञ्जीवन् भद्राणि पश्यति॥ १९॥
मृतस्य भद्राणि कुतः कौरवेय कुतो जयः।
न कालोऽद्य विषादस्य भयस्य मरणस्य वा॥ २०॥

तुम प्रसन्न हो जाओ। अपने प्राणों का त्याग मत करो। पाण्डवों के अच्छे कर्म को स्मरण रखते हुए सन्तुष्ट होकर उनका राज्य उन्हें लौटा दो और यश तथा धर्म को प्राप्त करो। मेरी इस सलाह को मानकर इसके अनुसार कार्य करो। इससे तुम कृतज्ञ माने जाओगे। पाण्डवों के साथ भाईचारा बनाकर उन्हें राज्य गद्दी पर बैठाकर, उनका पैतृक राज्य उन्हें लौटा दो। इससे तुम सुख को प्राप्त करोगे। तब कर्ण ने कहा कि मरकर कोई भी अपने शत्रुओं को नहीं जीत सकता। मनुष्य यदि जीवित रहता है तो कभी सुख को भी प्राप्त करता है। मरे हुए को हे कौरव! कहाँ सुख और कहाँ विजय? इसलिये यह समय विषाद करने, भयभीत होने या मरने का नहीं है।

शत्रुन् प्रताप्य वीर्येण स कथं मृत्युमिच्छसि।
अथवा ते भयं जातं दृष्ट्वार्जुनपराक्रमम्॥ २१॥
सत्यं ते प्रतिजानामि वधिष्यामि रणेऽर्जुनम्।
गते त्रयोदशे वर्षे सत्येनायुधमालभे॥ २२॥
आनयिष्याम्यहं पार्थान् वशं तव जनाधिप।
एवमुक्तस्तु कर्णेन, उदतिष्ठत् सुयोधनः॥ २३॥
ततो मनुजशार्दूलो योजयामास वाहिनीम्।
रथनागाश्वकलिलां पदातिजनसंकुलाम्॥ २४॥

तुम्हें यदि अर्जुन के पराक्रम को देखकर भय हो रहा है, तो मैं तुमसे यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि युद्ध में मैं अर्जुन का वध करूँगा। हे जनाधिप! मैं अपने आयुध को स्पर्श कर सचाई के साथ शपथ ले रहा हूँ कि तेरहवाँ वर्ष व्यतीत होने पर मैं पाण्डवों को तुम्हारे वश में ला दूँगा। कर्ण के ऐसा कहने पर दुर्योधन उठकर खड़ा हो गया और उस नरसिंह ने अपनी रथों, हाथियों, घोड़ों तथा पैदल सैनिकों से युक्त सेना को चलने के लिये तैयार किया।

तेतालीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण का पाण्डवों से मिलना।

तमिस्राभ्युदये तस्मिन्, धौम्येन सह पाण्डवाः।
सूतैः पौरोगवैश्चैव, काम्यकं प्रययुर्वनम्॥ १॥
ततस्तान् परिविश्वस्तान्, वसतः पाण्डुनन्दनान्।
शैब्यसुग्रीवयुक्तेन रथेन रथिनां वरः॥ २॥
उपायाद् देवकीपुत्रो दिदृक्षुः कुरुसत्तमान्।
अवतीर्य रथात् कृष्णो धर्मराजं यथाविधि॥ ३॥
ववन्दे मुदितो धीमान् भीमं च बलिनां वरम्।

उसके पश्चात् जब कृष्णपक्ष का आरम्भ हुआ, तब पाण्डव, धौम्यमुनि, सारथियों और रसोइयों के साथ द्वैतवन से काम्यक वन में चले गये। वहाँ काम्यक वन में जब वे विश्वस्त भाव से रह रहे थे, तब शैव्य और सुग्रीव नाम के घोड़ों से जुते हुए रथ पर बैठकर रथियों में श्रेष्ठ देवकीपुत्र श्रीकृष्ण कुरुश्रेष्ठ पाण्डवों से मिलने के लिये वहाँ आये। उन धीमान् श्रीकृष्ण ने आते ही रथ से उतर कर प्रसन्नता के साथ विधिपूर्वक धर्मराज युधिष्ठिर और बलवानों में श्रेष्ठ भीम की वन्दना की।

पूजयामास धौम्यं च यमाभ्यामभिवादितः॥ ४॥
परिष्वज्य गुडाकेशं द्रौपदीं पर्यसान्त्वयत्।
स दृष्ट्वा फाल्गुनं वीरं चिरस्य प्रियमागतम्।
पर्यष्वजत दाशार्हः पुनः पुनररिंदमः॥ ५॥

फिर उन्होंने धौम्य का सत्कार किया। नकुल और सहदेव ने उनका अभिवादन किया और उन्होंने अर्जुन को छाती से लगाया। तथा द्रौपदी को सान्त्वना दी। प्रिय वीर अर्जुन को बहुत दिनों के पश्चात् देखकर शत्रुओं को नष्ट करने वाले उन श्रीकृष्ण ने उन्हें बार बार छाती से लगाया।

ततः समस्तानि किरीटमाली
वनेषु वृत्तानि गदाग्रजाय।
उक्त्वा यथावत् पुनरन्वपृच्छत्
कथं सुभद्रा च स चाभिमन्युः॥ ६॥
स पूजयित्वा मधुहा यथावत्
पार्थं च कृष्णां च पुरोहितं च
उवाच राजानमभिप्रशंसन्
युधिष्ठिरं तत्र सहोपविश्य॥ ७॥

तब किरीटधारी अर्जुन ने गद के बड़े भाई श्रीकृष्ण को वन में रहते हुए घटित हुईं सारी घटनाएँ यथावत् बतायीं और उनसे सुभद्रा तथा अभिमन्यु का हाल पूछा। तब मधुसूदन श्रीकृष्ण ने अर्जुन, द्रौपदी और पुरोहित का यथायोग्य सत्कार कर उन सबके साथ बैठकर राजा युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए उनसे कहा कि–

धर्मः परः पाण्डव राज्यलाभात्
तस्यार्थमाहुस्तप एव राजन्।
सत्यार्जवाभ्यां चरता स्वधर्मं
जितस्त्वयायं च परश्च लोकः॥ ८॥
अधीतमग्रे चरता व्रतानि
सम्यग् धनुर्वेदमवाप्य कृत्स्नम्।
क्षात्रेण धर्मेण वसूनि लब्ध्वा
सर्वे ह्यवाप्ताः क्रतवः पुराणाः॥ ९॥
न ग्राम्यधर्मेषु रतिस्तवास्ति
कामान्न किंचित् कुरुषे नरेन्द्र।
न चार्थलोभात् प्रजहासि धर्मं
तस्मात् प्रभावादसि धर्मराजः॥ १०॥

हे राजन्! पाण्डुपुत्र! राज्यप्राप्ति से धर्मपालन महान् है। धर्म के पालन के लिये तपस्या का विधान किया गया है! आपने सत्य और सरलता के साथ अपने धर्म का पालन करते हुए अध्ययन किया। सारे धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त कर क्षत्रिय धर्म के द्वारा सम्पत्तियों को प्राप्त कर सारे प्राचीन यज्ञों का पारायण किया। हे नरेन्द्र! निम्न कोटि के कार्यों में आपका प्रेम नहीं है। आप कामनाओं के वश में होकर कुछ नहीं करते। आप धन के लोभ में अपने धर्म का त्याग भी नहीं करते। इसलिये आपको धर्मराज कहा जाता है।

दानं च सत्यं च तपश्च राजन्
श्रद्धा च बुद्धिश्च क्षमा धृतिश्च।
अवाप्य राष्ट्राणि वसूनि भोगा-
नेषा परा पार्थ सदा रतिस्ते॥ ११॥
यदा जनौघः कुरुजाङ्गलानां
कृष्णां सभायामवशामपश्यत्।
अपेतधर्मं व्यवहारवृत्तं
सहेत तत् पाण्डव कस्त्वदन्यः॥ १२॥
असंशयं सर्वसमृद्धकामः
क्षिप्रं प्रजाः पालयितासि सम्यक्।
इमे वयं निग्रहणे कुरूणां
यदि प्रतिज्ञा भवतः समाप्ता॥ १३॥

हे राजन्! हे कुन्तीपुत्र! राज्य, धन और भोगों को प्राप्त करके भी आपका प्रेम दान, सत्य, तप, श्रद्धा, बुद्धि, क्षमा और धैर्य इन गुणों से ही है। हे पांडुपुत्र! जब कौरवों की सभा में द्रौपदी को लोगों ने विवश अवस्था में देखा और उस समय उसके साथ जो पापपूर्ण व्यवहार किया गया, उसे आपके सिवाय और कौन सहन कर सकता है? आप अब निश्चितरूप से जल्दी ही सारी कामनाओं से समृद्ध होकर प्रजाओं का भलीभाँति पालन करेंगे। यदि आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो जाये, तो हम सब कौरवों को दण्ड देने के लिये तैयार हैं।

धौम्यं च भीमं च युधिष्ठिरं च
यमौ च कृष्णां च दशार्हसिंहः।
उवाच दिष्ट्या भवतां शिवेन
प्राप्तः किरीटी मुदितः कृतास्त्रः॥ १४॥

फिर यदुकुल श्रीकृष्ण ने धौम्य, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और द्रौपदी की तरफ देखते हुए कहा कि बड़े सौभाग्य की बात है कि आप लोगों की शुभकामनाओं से अर्जुन अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त कर प्रसन्नता सहित लौट आये हैं।

प्रोवाच कृष्णामपि याज्ञसेनीं
दशार्हभर्ता सहितः सुहृद्भिः।
कृष्णे धनुर्वेदरतिप्रधाना-
स्तवात्मजास्ते शिशवः सुशीलाः॥ १५॥
सद्भिः सदैवाचरितं सुहृद्धि-
श्चरन्ति पुत्रास्तव याज्ञसेनि॥
राज्येन राष्ट्रैश्च निमन्त्र्यमाणाः
पित्रा च कृष्णे तव सोदरैश्च॥ १६॥
न यज्ञसेनस्य च मातुलानां
गृहेषु बाला रतिमाप्नुवन्ति।

फिर यदुकुल के स्वामी, जो उस समय अपने मित्रों से घिरे बैठे थे, द्रौपदी से भी कहने लगे कि हे द्रौपदी! तुम्हारे पुत्र बड़े सुशील हैं, उन्हें धनुर्विद्या से ही प्रेम है। तुम्हारे पुत्र सज्जनमित्रों के द्वारा आचरित आचार का ही पालन करते हैं। द्रौपदी! तुम्हारे पिता और भाइयों ने राज्य और देश के सुखों को बताकर उन्हें आमंत्रित किया! पर नाना द्रुपद और मामा जी के घर में उनका मन नहीं लगता।

आनर्तमेवाभिमुखाः शिवेन
गत्वा धनुर्वेदरतिप्रधानाः॥ १७॥
तवात्मजा वृष्णिपुरं प्रविश्य
न दैवतेभ्यः स्पृहयन्ति कृष्णे।
यथा त्वमेवार्हसि तेषु वृत्तं
प्रयोक्तुमार्या यथैव कुन्ती॥ १८॥
तेष्वप्रमादेन तथा करोति
तथैव भूयश्च तथा सुभद्रा।

तुम्हारे पुत्र आनर्त देश में ही आकर द्वारिका में कुशल पूर्वक रहते हैं। वे देवलोक में भी जाने की इच्छा नहीं करते और उनकी रुचि धनुर्विद्या में ही है। जैसे तुम उन्हें आचार विचार सिखा सकती हो, आर्या कुन्ती उन्हें जैसा सदाचार सिखा सकती हैं, वैसी ही शिक्षा बिना प्रमाद के सुभद्रा भी उन्हें बराबर देती है।

यथानिरुद्धस्य यथाभिमन्यो-
र्यथा सुनीथस्य यथैव भानोः॥ १९॥
तथा विनेता च गतिश्च कृष्णे
तवात्मजानामपि रौक्मिणेयः।
गदासिचर्मग्रहणेषु शूरा-
नस्त्रेषु शिक्षासु रथाश्वयाने॥ २०॥
सम्यग् विनेता विनयत्यतन्द्र-
स्तांश्चाभिमन्युः सततं कुमारः।

हे द्रौपदी! रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न, जैसे अभिमन्यु को, जैसे सुनीथ को और जैसे भानु को शिक्षा देते हैं, उसी प्रकार वे तुम्हारे पुत्रों की भी शिक्षा और संरक्षा करते हैं। कुमार अभिमन्यु सदा बिना प्रमाद के तुम्हारे शूरवीर पुत्रों को गदा, तलवार, ढाल, तथा अन्य अस्त्रों की शिक्षा, रथ संचालन और घुड़सवारी की विद्या सिखाते हैं।

स चापि सम्यक् प्रणिधाय शिक्षां
शस्त्राणि चैषां विधिवत् प्रदाय॥ २१॥
तवात्मजानां च तथाभिमन्योः
पराक्रमैस्तुष्यति रौक्मिणेयः
यदा विहारं प्रसमीक्षमाणाः
प्रयान्ति पुत्रास्तव याज्ञसेनि॥ २२॥
एकैकमेषामनुयान्ति तत्र
रथाश्च यानानि च दन्तिनश्च।

रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न भी उन्हें विभिन्न शस्त्रास्त्रों की विधिपूर्वक शिक्षा देकर, तुम्हारे पुत्रों और अभिमन्यु के पराक्रमों से सन्तुष्ट रहते हैं। हे द्रौपदी! जब

तुम्हारे पुत्र नगर भ्रमण के लिये निकलते हैं, तब एक एक के पीछे रथ, पालकियाँ और हाथी चलते हैं।

अथाब्रवीद् धर्मराजं तु कृष्णो
दशार्हयोधाः कुकुरान्धकाश्च॥ २३॥
एते निदेशं तव पालयन्त-
स्तिष्ठन्तु यत्रेच्छसि तत्र राजन्।
आवर्ततां कार्मुकवेगवातो
हलायुधप्रग्रहणा मधूनाम्॥ २४॥
सेना तवार्थेषु नरेन्द्र यत्ता
ससादिपत्त्यश्वरथा सनागा।
प्रस्थाप्यतां पाण्डव धार्तराष्ट्रः
सुयोधनः पापकृतां वरिष्ठः॥ २५॥
स सानुबन्धः ससुहृद्गणश्च
भौमस्य सौभाधिपतेश्च मार्गम्।

फिर श्रीकृष्ण जी ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा कि दशार्ह, कुकुर और अन्धकवंश के योद्धा हे राजन्! आपकी आज्ञा का पालन करते हुए जहाँ आप चाहें, वहाँ खड़े रह सकते हैं। जिनके धनुष का वेग वायु के समान है, हल को आयुध के रूप में धारण करने वाले बलराम जी जिसके सेनापति हैं, वह सवारों सहित हाथी, रथ, घोड़ों और पैदल सैनिकों वाली मथुरा निवासी गोपों की सेना हे राजन्! आपके कार्यों को पूरा करने के लिये तैयार रहती है। हे पाण्डुपुत्र! आप पापियों के शिरोमणि धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन को उसके मित्रों और भाइयों के साथ उसी रास्ते पर भेज दीजिये, जिस पर भौमासुर और सौभराजा शाल्व गये हैं।

कामं तथा तिष्ठ नरेन्द्र तस्मिन्
यथा कृतस्ते समयः सभायाम्॥ २६॥
दाशार्हयोधैस्तु हतारियोधं
प्रतीक्षतां नागपुरं भवन्तम्।
व्यपेतमन्यु र्व्यपनीतपाप्मा
विहृत्य यत्रेच्छसि तत्र कामम्॥ २७॥
ततः प्रसिद्धं प्रथमं विशोकः
प्रपत्स्यसे नागपुरं सुराष्ट्रम्।

हे राजन्! भले ही आप उस प्रतिज्ञा पर स्थिर रहिये, जो आपने सभा में की थी, यदुवंशी योद्धाओं के द्वारा शत्रुओं के मारे जाने पर हस्तिनापुर आपकी प्रतीक्षा करता रहेगा। आप क्रोध दीनता और दुःख को हटाकर जहाँ आपकी इच्छा हो वहाँ भ्रमण कीजिये। फिर शोक रहित होकर अपनी प्रसिद्ध राजधानी हस्तिनापुर में प्रवेश कीजिये।

ततस्तदाज्ञाय मतं महात्मा
यथावदुक्तं पुरुषोत्तमेन॥ २८॥
प्रशस्य विप्रेक्ष्य च धर्मराजः
कृताञ्जलिः केशवमित्युवाच।
असंशयं केशव पाण्डवानां
भवान् गतिस्त्वच्छरणा हि पार्थाः॥ २९॥
कालोदये तच्च ततश्च भूयः
कर्ता भवान् कर्म न संशयोऽस्ति।

तब पुरुषोतम श्रीकृष्ण जी ने जो कुछ कहा उसे यथावत् समझकर, उनके विचारों को जानकर और उनकी प्रशंसाकर, धर्मराज महात्मा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर उनसे कहा कि हे केशव! निस्सन्देह पाण्डवों के आप ही सहारे हैं। पाण्डव आपकी ही शरण में हैं। इसमें सन्देह नहीं जब समय आयेगा तब आप ही सारा कार्य करेंगे।

यथाप्रतिज्ञं विहृतश्च कालः
सर्वाः समा द्वादश निर्जनेषु॥ ३०॥
अज्ञातचर्यां विधिवत् समाप्य
भवद्गताः केशव पाण्डवेयाः।
एषैव बुद्धिर्जुषतां सदा त्वां
सत्ये स्थिताः केशव पाण्डवेयाः।
सदानधर्माः सजनाः सदाराः
सबान्धवास्त्वच्छरणा हि पार्थाः॥ ३१॥

हमने बारह वर्षों का सारा समय प्रतिज्ञा के अनुसार वनों में घूमकर बिता दिया। अब अज्ञातवास को भी नियम पूर्वक समाप्त कर हे केशव! पाण्डव आपकी आज्ञा के अधीन हो जायेंगे। हे केशव! आपकी सदा ऐसी ही बुद्धि रहे और पाण्डव सत्य के पालन में स्थिर रहें। दान धर्म से युक्त हम सारे कुन्ती पुत्र अपने मित्रों, बान्धवों, और पत्नियों सहित आपकी ही शरण में हैं।

स्मयित्वा तु यदुश्रेष्ठो, द्रौपदीं परिसान्त्व्य च।
उपावर्त्य ततः शीघ्रैः, हयैःप्रायात् पुरं स्वकम्॥ ३२॥

तब युद्धश्रेष्ठ श्रीकृष्ण जी ने मुस्कराकर द्रौपदी को सान्त्वना दी और उसे लौटाकर, तीव्रगामी घोड़ों के द्वारा अपने नगर को वापिस चले गये।

चवालीसवाँ अध्याय : अज्ञातवास की तैयारी।

प्रत्याजग्मुः सरथाः सानुयात्राः
सर्वैः सार्धं सूतपौरोगवैस्ते।
ततो ययुर्द्वैतवने नृवीरा
निस्तीर्यैवं वनवासं समग्रम्॥ १॥

इस प्रकार अपने वनवास की पूरी अवधि बिताकर वे नरवीर पाण्डव अपने रथों, सेवकों, सारथियों और रसोइयों के साथ काम्यक वन से द्वैतवन में लौट आये।

धर्मेण तेऽभ्यनुज्ञाताः पाण्डवाः सत्यविक्रमाः।
अज्ञातवासं वत्स्यन्तश्छन्ना वर्षं त्रयोदशम्॥ २॥
उपोपविष्टा विद्वांसः सहिताः संशितव्रताः।
ये तद्भक्ता वसन्ति स्म वनवासे तपस्विनः॥ ३॥
तानब्रुवन् महात्मानः स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा।
अभ्यनुज्ञापयिष्यन्तस्तं निवासं धृतव्रताः॥ ४॥

तब धर्मराज की आज्ञा से वे सत्यविक्रमी, विद्वान् व्रतों का पालन करने वाले पाण्डव तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास के रूप में छिपकर रहने की इच्छा से विचार विमर्श के लिये मिलकर बैठे। उनके जो भक्त, तपस्वी लोग, वनवास में उनके साथ रहते थे, उनसे व्रत को धारण करने वाले महात्मा पाण्डव अज्ञातवास की आज्ञा लेने के लिये हाथ जोड़कर और खड़े हो कर बोले कि–

विदितं भवतां सर्वं धार्तराष्ट्रैर्यथा वयम्।
छद्मना हृतराज्याश्चानयाश्च बहुशः कृताः॥ ५॥
उषिताश्च वने कृच्छ्रे वयं द्वादश वत्सरान्।
अज्ञातवाससमयं शेषं वर्षं त्रयोदशम्॥ ६॥
तद् वसामो वयं छन्नास्तदनुज्ञातुमर्हथ।
सुयोधनश्च दुष्टात्मा कर्णश्च सहसौबलः॥ ७॥
जानन्तो विषमं कुर्युरस्मास्वत्यन्तवैरिणः।
युक्तचाराश्च युक्ताश्च पौरस्य स्वजनस्य च॥ ८॥

आप सब लोगों को सब कुछ पता ही है कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने किस प्रकार कपट से हमारा राज्य हरण कर लिया और हमारे साथ अनेक बार अन्याय पूर्वक व्यवहार किया। हम कष्टों के साथ बारह वर्ष तक वन में रहे। अब हमारा तेरहवाँ अज्ञातवास का वर्ष शेष है। इस वर्ष में इसलिये हम छिपकर रहेंगे। आप लोग इसके लिये हमें आज्ञा दीजिये। दुर्योधन और शकुनि के साथ दुष्टात्मा कर्ण हमारे अत्यन्त बैरी हैं। वे स्वयं भी हमें जानने का प्रयत्न करेंगे और उन्होंने गुप्तचर भी लगाये हुए होंगे। यदि उन्हें हमारा पता लग गया तो वे हमारे साथ संबंध रखने वाले नगरवासियों और स्वजनों के साथ बुरा व्यवहार कर सकते हैं।

सर्वे वेदविदो मुख्या यतयो मुनयस्तथा।
आसेदुस्ते यथान्यायं पुनर्दर्शनकाङ्क्षया॥ ९॥
सह धौम्येन विद्वांसस्तथा पञ्च च पाण्डवाः।
उत्थाय प्रययुर्वीराः कृष्णामादाय धन्विनः॥ १०॥
क्रोशमात्रमुपागम्य तस्माद् देशान्निमित्ततः।
श्वोभूते मनुजव्याघ्राश्छन्नवासार्थमुद्यताः॥ ११॥
पृथक्शास्त्रविदः सर्वे सर्वे मन्त्रविशारदाः।
संधिविग्रहकालज्ञा मन्त्राय समुपाविशन्॥ १२॥

तब वेदो के विद्वान् सारे प्रमुख सन्यासी और मुनि लोग उनके पुनः दर्शनों की इच्छा के लिये अपने लिये यथोचित स्थानों पर रहने के लिये चले गये। तब धौम्य के साथ वे पाँचों वीर, धनुर्धर और विद्वान् पाण्डव द्रौपदी को लेकर वहाँ से उठकर चल दिये। उस स्थान से एक कोस की दूरी पर जाकर वे नरव्याघ्र किसी कारण वश ठहर गये और अगले दिन से अज्ञातवास की तैयारी के लिये पृथक् शास्त्रों को जानने वाले, मन्त्रणा करने में कुशल, संधि और विग्रह के समय को पहचानने वाले मन्त्रणा करने के लिये बैठ गये।

विराटपर्व

पहला अध्याय : अज्ञातवास के लिये गुप्त मन्त्रणा।

युधिष्ठिर उवाच

द्वादशेमानि वर्षाणि राज्यविप्रोषिता वयम्।
त्रयोदशोऽयं सम्प्राप्तः कृच्छ्रात् परमदुर्वसः॥ १॥
स साधु कौन्तेय इतो वासमर्जुन रोचय।
संवत्सरमिमं यत्र वसेमाविदिताः परैः॥ २॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि अपने राज्य से बाहर रहते हुए हमने ये बारह वर्ष बिता दिये। अब यह तेरहवाँ वर्ष आ गया। यह बड़े कष्ट और कठिनाई से व्यतीत होगा। हे कौन्तेय अर्जुन! तुम्हारी रुचि का कौनसा ऐसा स्थान है, जहाँ हम यहाँ से जाकर शत्रुओं से न जाने जाते हुए इस वर्ष रहें।

अर्जुन उवाच

सन्ति रम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरून्।
पाञ्चालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः॥ ३॥
दशार्णा नवराष्ट्राश्च मल्लाः शाल्वा युगन्धराः।
कुन्तिराष्ट्रं च विपुलं सुराष्ट्रावन्तयस्तथा॥ ४॥
एतेषां कतमो राजन् निवासस्तव रोचते।
यत्र वत्स्यामहे राजन् संवत्सरमिमं वयम्॥ ५॥

तब अर्जुन ने कहा कि कुरु देश के चारों तरफ बहुत से रमणीय जनपद हैं, जिनमें बहुत अन्न है। वे जनपद हैं, पंचाल, चेदि, मत्स्यदेश, शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगन्धर, विशाल कुन्तीराष्ट्र, सौराष्ट्र, और अवन्ती। हे राजन्! इनमें से कौन सा राज्य आपको रहने के लिये उपयुक्त लगता है, जहाँ हे राजन्! हम इस वर्ष रह सकें।

युधिष्ठिर उवाच

मत्स्यो विराटो बलवानभिरक्तोऽथ पाण्डवान्।
धर्मशीलो वदान्यश्च वृद्धश्च सततं प्रियः॥ ६॥
विराटनगरे तात संवत्सरमिमं वयम्।
कुर्वन्तस्तस्य कर्माणि विहरिष्याम भारत॥ ७॥
यानि यानि च कर्माणि तस्य वक्ष्यामहे वयम्।
आसाद्य मत्स्यं तत् कर्म प्रब्रूत कुरुनन्दनाः॥ ८॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि मत्स्यदेश के राजा बलवान् हैं और पाण्डवों के प्रेमी भी हैं। वे धर्मशील, उदार, वृद्ध, और हमारे सदा से प्रिय हैं। हे भारत! विराट नगर में हम उस राजा के कार्यों को करते हुए इस वर्ष रहें। हे कुरुनन्दनो! हम राजा विराट के पास जाकर जिन जिन कार्यों को करने के लिये कहेंगे, उन उन कार्यों के बारे में बताओ।

अर्जुन उवाच

नरदेव कथं तस्य राष्ट्रे कर्म करिष्यसि।
विराटनगरे साधो रंस्यसे केन कर्मणा॥ ९॥
मृदुर्वदान्यो ह्रीमांश्च धार्मिकः सत्यविक्रमः।
राजंस्त्वमापदाऽऽकृष्टः किं करिष्यसि पाण्डव॥ १०॥
न दुःखमुचितं किञ्चिद् राजन् वेद यथा जनः।
स इमामापदं प्राप्य कथं घोरां तरिष्यसि॥ ११॥

तब अर्जुन ने कहा कि हे नरदेव! आप उसके राज्य में क्या कार्य करेंगे? जिसके द्वारा आप विराट नगर में अच्छी तरह आराम प्राप्त करेंगे। आप कोमल स्वभाव के उदार, लज्जाशील, धार्मिक, सत्यविक्रमी हैं। पर हे राजन्! आप मुसीबत में पड़ गये हैं। आप वहाँ क्या करेंगे? जैसे सामान्य मनुष्य दुःख उठाते हैं, वैसे आपको दुःख उठाना ठीक नहीं है, पर इस भयानक आपत्ति में पड़कर आप कैसे इससे पार होंगे।

युधिष्ठिर उवाच

सभास्तारो भविष्यामि तस्य राज्ञो महात्मनः।
कङ्को नाम द्विजो भूत्वा मताक्षः प्रियदेवनः॥ १२॥
वैदूर्यान् काञ्चनान् दान्तान् फलैर्ज्योतीरसैः सह।
कृष्णाँल्लोहितवर्णांश्च निर्वर्त्स्यामि मनोरमान्॥ १३॥
विराटराजं रमयन् सामात्यं सहबान्धवम्।
न च मां वेत्स्यते कश्चित् तोषयिष्ये च तं नृपम्॥ १४॥
आसं युधिष्ठिरस्याहं पुरा प्राणसमः सखा।
इति वक्ष्यामि राजानं यदि मां सोऽनुयोक्ष्यते॥ १५॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि मैं द्यूतविद्या कुशल और द्यूतप्रिय कंक नाम का ब्राह्मण बनकर उस महात्मा राजा की सभा का सभासद बन जाऊँगा। वहाँ वैदूर्य मणि की, सोने की और हाथी दाँत की काली और लाल गोटियों को चमकीले बिन्दुओं वाले पासे के साथ चलाता रहूँगा। इस प्रकार मैं पासे के खेल से विराटराज को उसके मंत्रियों और बान्धवों के साथ प्रसन्न करता रहूँगा। इस रूप में मुझे कोई नहीं जान सकेगा और मैं राजा को सन्तुष्ट रखुँगा। यदि वे मुझसे पूछेंगे तो कह दूँगा कि मैं पहले महाराज युधिष्ठिर का प्राणों के समान प्यारा सखा था।

मत्स्यराजान्तिके तात वीर्यपूर्णोऽत्यमर्षणः।
वृकोदर विराटे त्वं रंस्यसे केन हेतुना॥ १६॥

भीमसेन उवाच

पौरोगवो ब्रुवाणोऽहं बल्लवो नाम भारत।
उपस्थास्यामि राजानं विराटमिति मे मतिः॥ १७॥
सूपानस्य करिष्यामि कुशलोऽस्मि महानसे।
कृतपूर्वाणि यान्यस्य व्यञ्जनानि सुशिक्षितैः॥ १८॥
तान्यप्यभिभविष्यामि प्रीतिं संजनयन्नहम्।

फिर युधिष्ठिर ने भीम से पूछा कि हे वृकोदर! तुम पराक्रमी और अमर्षशील हो। तुम विराटनगर किस साधन के द्वारा प्रसन्न रहोगे? तब भीम ने कहा कि हे भारत! मेरा विचार है कि मैं बल्लव नाम का रसोइया कहकर राजा विराट के सामने उपस्थित होऊँगा। मैं उसके लिये तरह तरह के सूप अर्थात् दाल, साग, कढ़ी आदि तैयार करूँगा। उनके सुशिक्षित रसोइयों ने उनके लिये जो व्यंजन बनाये होंगे, मैं उनसे भी बढ़कर बनाऊँगा और राजा के हृदय में अपने लिये प्रेम उत्पन्न कर दूँगा।

राज्ञस्तस्य परे प्रेष्या मंस्यन्ते मां यथा नृपम्॥ १९॥
भक्ष्यान्नरसपानानां भविष्यामि तथेश्वरः।
आरालिको गोविकर्ता सूपकर्ता नियोधकः॥ २०॥
आसं युधिष्ठिरस्याहमिति वक्ष्यामि पृच्छतः।
आत्मानमात्मना रंक्षश्चरिष्यामि विशाम्पते॥ २१॥
इत्येतत् प्रतिजानामि विहरिष्याम्यहं यथा।

तब राजा के दूसरे सेवक मुझे राजा जैसा ही सम्मान देंगे। मैं वहाँ भक्ष्य, भोज्य, रस और पेय पदार्थों का स्वामी हो जाऊँगा। यदि राजा मुझसे पूछेंगे तो मैं उन्हें बताऊँगा कि मैं पहले महाराज युधिष्ठिर का हाथियों को बस में करने वाला, वृषभों को नाथने वाला, रसोइया और पहलवान रहा हूँ। हे राजन्! इस प्रकार मैं अपनी रक्षा स्वयं करते हुए रहूँगा। मुझे विश्वास है कि इस रीति से मैं सुखी रहुँगा।

युधिष्ठिर उवाच

मृगाणामिव शार्दूलो गरुडः पततामिवः।
वरः संनह्यमानानां सोऽर्जुनः किं करिष्यति॥ २२॥

अर्जुन उवाच

प्रतिज्ञां षण्ढकोऽस्मीति करिष्यामि महीपते॥ २३॥
ज्याघातौ हि महान्तौ मे संवर्तुं नृप दुष्करौ।
वलयैश्छादयिष्यामि बाहू किणकृताविमौ॥ २४॥
कर्णयोः प्रतिमुच्याहं कुण्डले ज्वलनप्रभे।
पिनद्धकम्बुः पाणिभ्यां तृतीयां प्रकृतिं गतः॥ २५॥
वेणीकृतशिरा राजन् नाम्ना चैव बृहन्नला।

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि जो मृगों में सिंह और पक्षियों में गरुड़ के समान कवचधारियों में श्रेष्ठ है, वह अर्जुन क्या करेगा। तब अर्जुन ने कहा कि हे राजन्! मैं राजा की सभा में यह प्रतिज्ञा करूँगा कि मैं षण्ढक अर्थात् नपुंसक हूँ। मेरे हाथों में पड़े हुए प्रत्यंचा के बड़े बड़े निशान छिपाना कठिन है, पर रगड़ के इन चिह्नों को मैं कंगनों को पहन कर छिपाऊँगा। कानों में जगमगाते हुए कुण्डल पहन कर, हाथों में शंख की चूड़ियाँ पहनकर मैं तृतीय प्रकृति अर्थात् नपुंसक भाव को धारण कर लूँगा। हे राजन्! मैं सिर पर चोटी गूँथ कर अपना नाम बृहन्नला रखूँगा।

पठन्नाख्यायिकाश्चैव स्त्रीभावेन पुनः पुनः॥ २६॥
रमयिष्ये महीपालमन्यांश्चान्तः पुरे जनान्।
गीतं नृत्यं विचित्रं च वादित्रं विविधं तथा॥ २७॥
शिक्षयिष्याम्यहं राजन् विराटस्य पुरस्त्रियः।

मैं स्त्रियों जैसा रहता हुआ, पुराने राजाओं की कहानियों को गाते हुए, राजा का तथा अन्तःपुर की स्त्रियों का मनोरंजन करता रहूँगा। मैं विराट नगर की स्त्रियों को हे राजन्! गीत, नृत्य तथा विभिन्न प्रकार के वाद्ययन्त्रों की शिक्षा दूँगा।

प्रजानां समुदाचारं बहु कर्म कृतं वदन्॥ २८॥
छादयिष्यामि कौन्तेय माययाऽऽत्मानमात्मना।
युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका॥ २९॥

उषितास्मीति वक्ष्यामि पृष्टा राज्ञा च पाण्डव।
एतेन विधिना छन्नः कृतकेन यथानलः॥ ३०॥
विहरिष्यामि राजेन्द्र विराटभवने सुखम्।

मैं लोगों के अच्छे आचरण और उनके द्वारा किये गये बहुत से सत्कर्मों का वर्णन करते हुए हे कौन्तेय! अपने आपको माया से छिपाये रखूँगा। हे पाण्डव पूछे जाने पर मैं बता दूँगा कि मैं युधिष्ठिर के घर में द्रौपदी की सेविका थी। हे राजेन्द्र! इस प्रकार राख में छिपी हुई अग्नि के समान मैं अपने आपको छिपाकर राजा विराट के भवन में सुख से रहूँगा।

युधिष्ठिर उवाच

किं त्वं नकुल कुर्वाणस्तत्र तात चरिष्यसि॥ ३१॥
कर्म तत् त्वं समाचक्ष्व राज्ये तस्य महीपतेः।
सुकुमारश्च शूरश्च दर्शनीयः सुखोचितः॥ ३२॥

नकुल उवाच

अश्वबन्धो भविष्यामि विराटनृपतेरहम्।
सर्वथा ज्ञानसम्पन्नः कुशलः परिरक्षणे॥ ३३॥

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि नकुल! तुम उस राजा के राज्य में कौन सा कार्य करते हुए रहोगे? यह बताओ। तुम सुकुमार हो, शूर हो, सुन्दर हो, और सुख में रहने के योग्य हो तब नकुल ने कहा कि मैं राजा विराट के यहाँ घोड़ों का प्रशिक्षक बन कर रहूँगा। मैं घोड़ों के ज्ञान से युक्त हूँ और उन्हें प्रशिक्षण देने में कुशल हूँ।

ग्रन्थिको नाम नाम्नाहं कर्मैतत् सुप्रियं मम।
कुशलोऽस्म्यश्वशिक्षायां तथैवाश्वचिकित्सने॥ ३४॥
प्रियाश्च सततं मेऽश्वाः कुरुराज यथा तव
ये मामामन्त्र यिष्यन्ति विराटनगरे जनाः॥ ३५॥
तेभ्य एवं प्रवक्ष्यामि विहरिष्याम्यहं यथा।
पाण्डवेन पुरा तात अश्वेष्वधिकृतः पुरा॥ ३६॥
विराटनगरे छन्नश्चरिष्यामि महीपते।

मैं ग्रन्थिक नाम से रहूँगा। घोड़ों का कार्य मेरा प्रिय कार्य है। मैं घोड़ों की शिक्षा और चिकित्सा में कुशल हूँ। हे कुरुराज! मैं भी आपके ही समान घोड़ों से बहुत प्यार करता हूँ। विराट नगर में यदि लोग मुझसे पूछेंगे तो मैं उन्हें बताऊँगा कि पहले पाण्डव राजा युधिष्ठिर ने मुझे अपने यहाँ घोड़ों का अध्यक्ष बनाकर रखा हुआ था। इस प्रकार हे तात! मैं विराट नगर में छिपकर रहूँगा।

युधिष्ठिर उवाच

सहदेव कथं तस्य समीपे विहरिष्यसि॥ ३७॥
किं वा त्वं कर्म कुर्वाणः प्रच्छन्नो विहरिष्यसि।

सहदेव उवाच

गोसंख्याता भविष्यामि विराटस्य महीपतेः॥ ३८॥
प्रतिषेद्धा च दोग्धा च संख्याने कुशलो गवाम्।
तन्तिपाल इति ख्यातो नाम्नाहं विदितस्त्वथ॥ ३९॥
निपुणं च चरिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः।
अहं हि सततं गोषु भवता प्रहितः पुरा॥ ४०॥
तत्र मे कौशलं सर्वमवबुद्धं विशाम्पते।

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि हे सहदेव! तुम कैसे राजा विराट के समीप रहोगे? क्या काम करते हुए छिपे हुए जीवन बिताओगे? तब सहदेव ने कहा कि मैं राजा विराट का गायों की जाँच पड़ताल करने वाला बनूँगा। मैं गायों को नियन्त्रण में रखने और उन्हें दुहने का कार्य अच्छी तरह से जानता हूँ। तन्तिपाल नाम से प्रसिद्ध होकर मैं चतुराई से रहूँगा, इसलिये आप अपनी मानसिक चिन्ता को दूर कर दीजिये। मुझे आपने भी पहले सदा गायों के कार्य पर नियुक्त किया है, इसलिये मेरी गायों के विषय में जो योग्यता है राजन्! आपको पता है।

लक्षणं चरितं चापि गवां यच्चापि मङ्गलम्॥ ४१॥
तत् सर्वं मे सुविदितमन्यच्चापि महीपते।
वृषभानपि जानामि राजन् पूजितलक्षणान्॥ ४२॥
येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते।
सोऽहमेवं चरिष्यामि प्रीतिरत्र हि मे सदा॥ ४३॥
न च मां वेत्स्यते कश्चित् तोषयिष्ये च पार्थिवम्।

हे राजन्! गायों के जो भी लक्षण और आचरण मंगलकारी होते हैं, वे सब मुझे अच्छी तरह से पता हैं। और भी बहुत सी बातें मैं जानता हूँ। मैं ऐसे अच्छे लक्षणों वाले साँड़ों को पहचानता हूँ, जिनके मूत्र को सूँघकर बन्ध्या भी सन्तान वाली हो जाती है। मेरी इस कार्य में रुचि रही है। इसलिये मैं इसी प्रकार वहाँ रहूँगा। मुझे कोई नहीं जान सकेगा और मैं राजा को प्रसन्न कर दूँगा।

युधिष्ठिर उवाच

केन स्म द्रौपदी कृष्णा कर्मणा विचरिष्यति॥ ४४॥
न हि किञ्चिद् विजानाति कर्म कर्तुं यथा स्त्रियः।
सुकुमारी च बाला च राजपुत्री यशस्विनी॥ ४५॥

पतिव्रता महाभागा कथं नु विचरिष्यति।
माल्यगन्धानलङ्कारान् वस्त्राणि विविधानि च॥ ४६॥
एतान्येवाभिजानाति यतो जाता हि भामिनी।

तब युधिष्ठिर ने पूछा कि यह कृष्णा द्रौपदी क्या कार्य करके रहेगी? यह तो दूसरी स्त्रियों के समान किसी कार्य को जानती ही नहीं है। यह यशस्विनी राजपुत्री सुकुमार है, बाला है। यह महाभाग्यशाली पतिव्रता विराट नगर में कैसे रहेगी? यह भामिनी जब से पैदा हुई हैं, तब से माला, गन्ध आभूषण, और तरह तरह के वस्त्रों के ही विषय में जानती है।

द्रौपद्युवाच

सैरन्ध्र्यो रक्षिता लोके भुजिष्याः सन्ति भारत॥ ४७॥
नैवमन्याः स्त्रियो यान्ति इति लोकस्य निश्चयः।
साहं ब्रुवाणा सैरन्ध्री कुशला केशकर्मणि॥ ४८॥
युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका।
उषितास्मीति वक्ष्यामि पृष्टा राज्ञा च भारत॥ ४९॥

तब द्रौपदी ने कहा हे भारत! सैरन्ध्री नाम की संसार में स्त्रियाँ होती हैं, जिनका दूसरों के घरों में पालन होता है। लोग जानते है कि सैरन्ध्री के अतिरिक्त दूसरी स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं जातीं। इसलिये मैं अपने आपको बाल सजाने में कुशल सैरन्ध्री बताती हुई और यह कहती हुई कि मैं पहले युधिष्ठिर के घर में द्रौपदी की सेविका थी, वहाँ रहूँगी।

आत्मगुप्ता चरिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
सुदेष्णां प्रत्युपस्थास्ये राजभार्यां यशस्विनीम्॥ ५०॥
सा रक्षिष्यति मां प्राप्तां मा भूत् ते दुःखमीदृशम्।

युधिष्ठिर उवाच

कल्याणं भाषसे कृष्ण कुले जातासि भामिनि॥ ५१॥
न पापमभिजानासि साध्वी साधुव्रते स्थिता।
यथा न दुर्हृदः पापा भवन्ति सुखिनः पुनः।
कुर्यास्तत् त्वं हि कल्याणि लक्षयेयुर्न ते तथा॥ ५२॥

तुम जो मुझसे पूछ रहे हो मैं राजरानी यशस्विनी सुदेष्णा के पास जाऊँगी। वह मेरे जाने पर मुझे अपने पास रखेगी। आप चिन्तित मत होइये। मैं अपने आपको छिपाकर रखूँगी। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे द्रौपदी! तुमने सुख देने वाली बात कही है। तुमने ऊँचे कुल में जन्म लिया है, तुम पाप को जानती भी नहीं हो। तुम साध्वी हो और अच्छे व्रत में स्थित हो। हे कल्याणि! तुम वहाँ ऐसे रहना, जिससे पापी दुष्ट लोग सुखी न हो, वे तुम्हें पहचान न सकें।

दूसरा अध्याय : धौम्य का पाण्डवों को उपदेश और बिदा करना।

युधिष्ठिर उवाच

पुरोहितोऽयमस्माकमग्निहोत्राणि रक्षतु।
सूदपौरोगवैः सार्द्धं द्रुपदस्य निवेशने॥ १॥
इन्द्रसेनमुखाश्चेमे रथानादाय केवलान्।
यान्तु द्वारवतीं शीघ्रमिति मे वर्तते मतिः॥ २॥
इमाश्च नार्यो द्रौपद्याः सर्वाश्च परिचारिकाः।
पाञ्चालानेव गच्छन्तु सूदपौरोगवैः सह॥ ३॥
सर्वैरपि च वक्तव्यं न प्राज्ञायन्त पाण्डवाः।
गता ह्यस्मानपाहाय सर्वे द्वैतवनादिति॥ ४॥

इसके पश्चात् युधिष्ठिर ने कहा कि मेरा विचार है कि ये हमारे पुरोहित जी हमारे अग्निहोत्रों की रक्षा करते हुए रसोइयों के साथ द्रुपद के घर में रहें और इन्द्रसेन आदि सेवक केवल रथों को लेकर शीघ्र यहाँ से द्वारिका को चले जायें। ये द्रौपदी की जो सेविकाएँ हैं, ये भी रसोइयों के साथ पांचाल देश को ही चली जायें। इन्हें सबको यही कहना चाहिये कि पाण्डव लोग द्वैतवन में से हमें छोड़कर पता नहीं कहाँ चले गये।

धौम्य उवाच

त्वया रक्षा विधातव्या कृष्णायाः फाल्गुनेन च।
विदितं वो यथा सर्वं लोकवृत्तमिदं तव॥ ५॥
विदिते चापि वक्तव्यं सुहृद्भिरनुरागतः।
एष धर्मश्च कामश्च अर्थश्चैव सनातनः॥ ६॥
अतोऽहमपि वक्ष्यापि हेतुमत्र निबोधत।
हन्तेमां राजवसतिं राजपुत्रा ब्रवीम्यहम्॥ ७॥
यथा राजकुलं प्राप्य सर्वान् दोषांस्तरिष्यथ।
दुर्वसं चैव कौरव्य जानता राजवेश्मनि॥ ८॥

तब धौम्य जी बोले कि हे राजन्! आपको और अर्जुन को द्रौपदी की रक्षा करनी चाहिये। यद्यपि आपको लोकाचार की बातें सारी मालूम हैं फिर भी प्रेम के कारण हितैषियों को वे बातें बतानी चाहिये। इससे धर्म अर्थ और काम की प्राप्ति होती है। यही

सनातन धर्म है। इसलिये मैं भी तुम्हें कुछ कहूँगा। उसे समझो! हे राजपुत्रों! मैं यह बात बताऊँगा कि राजा के घर में रहते हुए कैसे रहना चाहिये। इससे तुम राजकुल में से आयी हुई आपदाओं से तर जाओगे। समझदार व्यक्ति को भी राजकुल में रहना कठिन होता है।

अमानितैर्मानितैर्वा अज्ञातैः परिवत्सरम्।
ततश्च तुर्दशे वर्षे चरिष्यथ यथासुखम्॥ ९॥
दृष्टद्वारो लभेद् द्रष्टुं राजस्वेषु न विश्वसेत्।
तदेवासनमन्विच्छेद् यत्र नाभिपतेत् परः॥ १०॥
यो न यानं न पर्यङ्कं न पीठं न गजं रथम्।
आरोहेत् सम्मतोऽस्मीति स राजवसतिं वसेत्॥ ११॥
यत्र यत्रैनमासीनं शङ्केरन् दुष्टचारिणः।
न तत्रोपविशेद् यो वै स राजवसतिं वसेत्॥ १२॥

चाहे तुम्हारा मान हो या मान न हो, तुम्हें एक वर्ष तक अज्ञातभाव से ही रहना है। फिर तुम चौदहवें वर्ष में सुख पूर्वक रहोगे। राजा से मिलने के लिये पहले द्वारपाल से मिलकर सूचना भिजवानी चाहिये। उसकी अनुमति पर ही उससे मिलना चाहिये। राजाओं पर पूरा विश्वास कभी नहीं करना चाहिये। उसी आसन पर बैठना चाहिये जिसपर कोई दूसरा बैठने वाला न हो। जो व्यक्ति यह मानकर भी कि मैं राजा का प्रिय हूँ राजा की सवारी, पलंग, आसन, हाथी, रथ आदि का प्रयोग नहीं करता, वही राजा के घर में सकुशल रह सकता है। राजभवन में रहने वाले को उन उन स्थानों पर नहीं बैठना चाहिये, जहाँ बैठने पर दुष्ट आचरण वाले लोग उस पर शंका कर सकें।

न चानुशिष्याद् राजानमपृच्छन्तं कदाचन।
तूष्णीं त्वेनमुपासीत काले समभिपूजयेत्॥ १३॥
असूयन्ति हि राजानो जनाननृतवादिनः।
तथैव चावमन्यन्ते मन्त्रिणं वादिनं मृषा॥ १४॥
नैषां दारेषु कुर्वीत मैत्रीं प्राज्ञः कदाचन।
अन्तः पुरचरा ये च द्वेष्टि यानहिताश्च ये॥ १५॥
विदिते चास्य कुर्वीत कार्याणि सुलघून्यपि।
एव विचरतो राज्ञि न क्षतिर्जायते क्वचित्॥ १६॥

बिना पूछे राजा को कभी उपदेश न दे। चुप रहकर ही राजा की सेवा करनी चाहिये। पर उचित समय पर उसकी प्रशंसा भी करनी चाहिये। राजा लोग झूठ बोलने वाले से द्वेष रखते हैं। झूठ बोलने वाले मन्त्री का भी वे अपमान कर देते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति को राजा की स्त्रियों से कभी मित्रता नहीं करनी चाहिये। जो अन्तःपुर में आते जाते हों, जो राजा से द्वेष करते हों या राजा का अहित चाहते हों, उनसे भी मित्रता नहीं करनी चाहिये। अत्यन्त छोटे कार्य को भी राजा को बता कर करना चाहिये। इस प्रकार आचरण करने वाले को कभी हानि नहीं उठानी पड़ती।

गच्छन्नपि परां भूमिमपृष्टो ह्यनियोजितः।
जात्यन्ध इव मन्येत मर्यादामनुचिन्तयन्॥ १७॥
न हि पुत्रं न नप्तारं न भ्रातरमरिंदमाः।
समतिक्रान्तमर्यादं पूजयन्ति नराधिपाः॥ १८॥
यत्नाच्चोपचरेदेनमग्निवद् देववत् त्विह।
अनृतेनोपचीर्णो हि हन्यादेव न संशयः॥ १९॥
यद् यद् भर्तानुयुञ्जीत तत् तदेवानुवर्तयेत्।
प्रमादमवलेपं च कोपं च परिवर्जयेत्॥ २०॥

बैठने के लिये ऊँचा आसन मिलने पर भी, राजा जब तक पूछे नहीं अर्थात् बैठने के लिये नहीं कहे, मर्यादा का विचार करते हुए अपने को जन्मान्ध सा समझे अर्थात् उस आसन को देखे भी नहीं। शत्रुओं को नष्ट करने वाले राजा लोग मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, अपने पुत्र, नाती, पोते, और भाई का भी आदर नहीं करते। राजा की अग्नि और देवता के समान यत्नपूर्वक अर्थात् सावधानी से सेवा करनी चाहिये। जो मिथ्या उपचार से उसकी सेवा करता है, वह किसी दिन उसके द्वारा मारा जाता है। इसमें संशय नहीं है। जिस जिस कार्य के लिये स्वामी आज्ञा दे, वही वही कार्य करना चाहिये। लापरवाही, घमण्ड और क्रोध नहीं करना चाहिये।

समर्थनासु सर्वासु हितं च प्रियमेव च।
संवर्णयेत् तदेवास्य प्रियादपि हितं भवेत्॥ २१॥
अनुकूलो भवेच्चास्य सर्वार्थेषु कथासु च।
अप्रियं चाहितं यत् स्यात् तदस्मै नानुवर्णयेत्॥ २२॥
नाहमस्य प्रियोऽस्मीति मत्वा सेवेत पण्डितः।
अप्रमत्तश्च सततं हितं कुर्यात् प्रियं च यत्॥ २३॥
नास्यानिष्टानि सेवेत नाहितैः सह संवदेत्।
स्वस्थानान्न विकम्पेत स राजवसतिं वसेत्॥ २४॥

सारे उन अवसरों पर, जब किसी बात का समर्थन करना हो, हितकारी बात का प्रिय भाषा में समर्थन करना चाहिये। जहाँ हितकर और प्रिय भाषा

दोनों का प्रयोग असम्भव हो, वहाँ हितकारी बात को ही कहना चाहिये। सारी बातों और सारे विषयों में राजा के अनुकूल ही रहना चाहिये। उसे अप्रिय और अहितकर प्रतीत होने वाली बातों का उसके सामने वर्णन नहीं करना चाहिये। चतुर व्यक्ति राजा की सेवा यह मानते हुए करता है कि मैं इसका प्रिय व्यक्ति नहीं हूँ। सदा सावधान रहते हुए जो उसके लिये कल्याणकर हो और उसको प्रिय हो वह कार्य करना चाहिये। राजा को पसन्द न आने वाली चीज़ों का सेवन कभी नहीं करना चाहिये। उसके शत्रुओं से कभी बोलना नहीं चाहिये। अपने कर्त्तव्य से कभी विचलित नहीं होना चाहिये। ऐसा व्यक्ति ही राजा के पास रह सकता है।

दक्षिणं वाथ वामं वा पार्श्वमासीत पण्डितः।
रक्षिणां ह्यात्तशस्त्राणां स्थानं पश्चाद् विधीयते॥ २५॥
नित्यं हि प्रतिषिद्धं तु पुरस्तादासनं महत्।
न मृषाभिहितं राज्ञां मनुष्येषु प्रकाशयेत्॥ २६॥
तथैव चावमन्यन्ते नरान् पण्डितमानिनः।
शूरोऽस्मीति न दृप्तः स्याद् बुद्धिमानिति वा पुनः॥ २७॥
प्रियमेवाचरन् राज्ञः प्रियो भवति भोगवान्।

विद्वान् व्यक्ति को राजा के दायीं या बायीं तरफ ही बैठना चाहिये। राजा के पीछे शस्त्रधारी अंगरक्षक सैनिकों का स्थान होता है। राजा के सामने ऊँचा आसन लगाना सदा मना है। राजाओं की किसी असत्य कही हुई बात को दूसरों के आगे प्रकट नहीं करना चाहिये। राजा लोग अपने आपको पण्डित समझने वाले का तिरस्कार करते हैं। मैं शूरवीर हूँ, मैं बुद्धिमान् हूँ, ऐसा मानकर अभिमान नहीं करना चाहिये। राजा का प्रिय कार्य करता हुआ ही व्यक्ति उसका प्रिय बनता है और भोगों को प्राप्त करता है।

ऐश्वर्यं प्राप्य दुष्प्रापं प्रियं प्राप्य च राजतः॥ २८॥
अप्रमत्तो भवेद् राज्ञः प्रियेषु च हितेषु च।
यस्य कोपो महाबाधः प्रसादश्च महाफलः॥ २९॥
कस्तस्य मनसापीच्छेदनर्थं प्राज्ञसम्मतः।
न चोष्ठौ न भुजौ जानू न च वाक्यं समाक्षिपेत्॥ ३०॥
सदा वातं च वाचं च ष्ठीवनं चाचरेच्छनैः।

राजा से दुर्लभ ऐश्वर्य और भोगों को प्राप्त करके भी सावधानी पूर्वक राजा के प्रिय और हितकारी कार्यों में लगे रहना चाहिये। जिसका क्रोध बड़ा भारी संकट और प्रसन्नता बड़े ऐश्वर्य को देने वाली है, कौन बुद्धिमान् व्यक्ति उस राजा का मन से भी अनर्थ करना चाहेगा? राजा के सामने अपने होठों, हाथों और घुटनों को नहीं हिलाना चाहिये। सदा धीरे बोलना चाहिये, धीरे से थूकना चाहिये और धीरे से अधोवायु को छोड़ना चाहिये।

हास्यवस्तुषु चान्यस्य वर्तमानेषु केषुचित्॥ ३१॥
नातिगाढं प्रहृष्येत न चाप्युन्मत्तवद्धसेत्।
न चातिधैर्येण चरेद् गुरुतां हि व्रजेत् ततः॥ ३२॥
स्मितं तु मृदुपूर्वेण दर्शयेत प्रसादजम्।
लाभे न हर्षयेद् यस्तु न व्यथेद् योऽवमानितः॥ ३३॥
असम्मूढश्च यो नित्यं स राजवसतिं वसेत्।
राजानं राजपुत्रं वा संवर्णयति यः सदा॥ ३४॥
अमात्यः पण्डितो भूत्वा स चिरं तिष्ठते प्रियः।

किसी दूसरे व्यक्ति के विषय में कोई हँसी का अवसर हो तो न तो अत्यधिक हर्ष प्रकट करना चाहिये और न पागलों की तरह से अट्टहास करना चाहिये। अधिक धैर्य दिखाते हुए बिल्कुल जड़ जैसा भी नहीं रहना चाहिये। अपनी प्रसन्नता को मधुर मुस्कराहट से ही प्रकट करना चाहिये। इससे बड़प्पन को प्राप्त होता है। जो लाभ होने पर अत्यधिक हर्षित नहीं होता और अपमान होने पर दुखी नहीं होता, जो सदा मूढ़ता से अलग रहता है, वही राजा के पास सुख से रह सकता है। जो मन्त्री बुद्धिमता के साथ सदा राजा और राजपुत्र की प्रशंसा करता रहता है, वह उसका प्रिय बनकर बहुत दिनों तक उसके पास रहता है।

प्रगृहीतश्च योऽमात्यो निगृहीतस्त्वकारणैः॥ ३५॥
न निर्वदति राजानं लभते सम्पदं पुनः।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च गुणवादी विचक्षणः॥ ३६॥
उपजीवी भवेद् राज्ञो विषये योऽपि वा भवेत्।
श्रेयः सदाऽऽत्मनो दृष्ट्वा परं राज्ञा न संवदेत्॥ ३७॥
विशेषयेच्च राजानं योग्यभूमिषु सर्वदा।
अम्लानो बलवाञ्छूरश्छायेवानुगतः सदा॥ ३८॥
सत्यवादी मृदुर्दान्तः स राजवसतिं वसेत्।

जो मंत्री पहले राजा का कृपापात्र रहा हो और बिना कारण ही राजा का कोपपात्र बन गया हो, ऐसी अवस्था में भी जो राजा की निन्दा नहीं करता, वह अपनी सम्पत्ति को पुनः प्राप्त कर लेता है। जो चतुर व्यक्ति होता है, वह चाहे राजा के सहारे अपनी

जीविका चलाने वाला हो, या उसके राज्य में रहता हो, उसे राजा के सामने और पीछे भी उसके गुणों का ही बखान करना चाहिये। अपनी भलाई को देखते हुए दूसरे व्यक्ति को सदा राजा से नहीं मिलाना चाहिये। उचित अवसरों पर सदा राजा की विशेषताओं को प्रकट करना चाहिये। जो बिना उदासीनता के, बुद्धिबल से युक्त, शूर, सत्यवादी, कोमल स्वभाव, और जितेन्द्रिय होकर छाया के समान राजा का अनुसरण करता है, वही राजदरबार में रह सकता है।

अन्यस्मिन् प्रेष्यमाणे तु पुरस्ताद् यः समुत्पतेत्॥ ३९॥
अहं किं करवाणीति स राजवसतिं वसेत्।
आन्तरे चैव बाह्ये च राज्ञा यश्चाथ सर्वदा॥ ४०॥
आदिष्टो नैव कम्पेत, स राज वसतिं वसेत्।
यो वै गृहेभ्यः प्रवसन्, प्रियाणां नानुसंस्मरेत्॥ ४१॥
दुःखेन सुखमन्विच्छेत्, स राज वसतिं वसेत्।
समवेषं नं कुर्वीत, नोच्चैः सन्निहितो वसेत्॥ ४२॥
न मन्त्रं बहुधा कुर्यादेवं राज्ञः प्रियो भवेत्।

जो दूसरे को किसी कार्य के लिये भेजे जाने के समय स्वयं आगे आकर अपने लिये पूछता है कि मुझे क्या करना है? वही राजदरबार में रह सकता है। जो आन्तरिक कार्यों के लिये या बाहरी कार्यों के लिंये आदेश मिलने पर काँपता नहीं है, वही राजदरबार में रह सकता है। जो घर से बाहर परदेस में रहने पर भी अपने प्रिय लोगों का स्मरण नहीं करता और दुःख पाकर सुख की इच्छा करता है, वही राजदरबार में रह सकता है। राजा के समान वेशभूषा धारण नहीं करनी चाहिये। उसके सामने ऊँचे आसन पर नहीं बैठना चाहिये। गुप्त मन्त्रणा को दूसरों पर प्रकट नहीं करना चाहिये। तभी राजा का प्रिय बना जा सकता है।

न कर्मणि नियुक्तः सन् धनं किञ्चि दपि स्पृशेत्॥ ४३॥
प्राप्नोति हि हरन् द्रव्यं बन्धनं यदि वा वधम्।
यानं वस्त्रमलङ्कारं यच्चान्यत् सम्प्रयच्छति॥ ४४॥
तदेव धारयेन्नित्यमेवं प्रियतरो भवेत्।
एवं संयम्य चित्तानि यत्नतः पाण्डुनन्दनाः॥ ४५॥
संवत्सरमिमं तात तथाशीला बुभूषत।

किसी कार्य में नियुक्त किये जाने पर उसमें थोड़ी सी भी रिश्वत नहीं लेनी चाहिये। इस प्रकार चोरी से धन को लेने वाला कभी बन्धन में पड़ता है या कभी वध को प्राप्त होता है। राजा जिस सवारी, वस्त्र, आभूषण या किसी अन्य पदार्थ को देता है, उसी को सदा धारण करना या प्रयोग में लाना चाहिये। ऐसा करने वाला राजा का अधिक प्रिय होता है। हे पाण्डुपुत्रों! हे तात! इस प्रकार अपने मन को बस में रखते हुए, इसी प्रकार अपने आचरण को बनाते हुए, इस वर्ष को व्यतीत करो।

युधिष्ठिर उवाच

अनुशिष्टाः स्म भद्रं ते नैतद् वक्तास्ति कश्चन॥ ४६॥
कुन्तीमृते मातरं नो, विदुरं वा महामतिम्।
गतेषु तेषु वीरेषु धौम्योऽथ जपतां वरः॥ ४७॥
अग्निहोत्राण्युपादाय पाञ्चालानभ्यगच्छत।
इन्द्रसेनाद्रयश्चैव यथोक्ताः प्राप्य यादवान्।
रथानश्वांश्च रक्षन्तः सुखमूषुः सुसंवृताः॥ ४८॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि आपका कल्याण हो। आपने हमें अच्छी शिक्षा दी। सिवाय माता कुन्ती के और महामति विदुर के कोई और हमें ऐसी शिक्षा नहीं दे सकता। इसके पश्चात् उन वीर पाण्डवों के वहाँ से चले जाने पर, जप करने वालों में श्रेष्ठ धौम्य अग्निहोत्र की सामग्री को लेकर पाँचाल देश में चले गये। इन्द्रसेन आदि सेवक भी जैसे उनसे कहा था, यादवों के पास जाकर रथों और घोड़ों की सेवा करते हुए, वहाँ सुरक्षित रहते हुए सुखपूर्वक रहने लगे।

तीसरा अध्याय : शमीवृक्ष पर शस्त्रास्त्र छिपाकर रखना।

ते वीरा बद्धनिस्त्रिंशास्तथा बद्धकलापिनः।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणाः कालिन्दीमभितो ययुः॥ १॥
ततस्ते दक्षिणं तीरमन्वगच्छन् पदातयः।
उत्तरेण दशार्णांस्ते पञ्चालान् दक्षिणेन च॥ २॥
अन्तरेण यकृल्लोमान् शूरसेनांश्च पाण्डवाः।
ततो जनपदं प्राप्य कृष्णा राजानमब्रवीत्॥ ३॥

उसके पश्चात् वे वीर पाण्डव तलवार बाँधे, तरकसों को कसे हुए, गोह के चमड़े के दस्ताने पहने हुए यमुना नदी के पास पहुँचे। उसके पश्चात् वे यमुना के दक्षिणी किनारे पर पैदल चलते हुए दशार्ण देश से उत्तर और पाँचाल देश के दक्षिण तथा यकृल्लोम और शूरसेन देशों के बीच में से

होकर यात्रा करने लगे। इसके उपरान्त जनपद में आने पर द्रौपदी ने राजा से कहा कि-।

पश्यैकपद्यो दृश्यन्ते क्षेत्राणि विविधानि च।
व्यक्तं दूरे विराटस्य राजधानी भविष्यति॥ ४॥
वसामेहापरां रात्रिं बलवान् मे परिश्रमः।

युधिष्ठिर उवाच

धनंजय समुद्यम्य पाञ्चालीं वह भारत॥ ५॥
राजधान्यां निवत्स्यामो विमुक्ताश्च वनादितः।
तामादायार्जुनस्तूर्णं द्रौपदीं गजराडिव॥ ६॥
सम्प्राप्य नगराभ्याशमवतारयदर्जुनः।

देखिये यहाँ अनेक प्रकार के खेत और पगडंडियाँ दिखाई दे रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विराट की राजधानी अभी दूर होगी। हम यहाँ एक रात और टिक जायें। मुझे थकावट ज्यादा हो रही है। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे अर्जुन! तुम द्रौपदी को कन्धे पर उठाकर ले चलो। यहाँ वन से बाहर आकर हम राजधानी में ही निवास करेंगे। तब हाथी के समान बलवान् अर्जुन ने शीघ्रता से द्रौपदी को उठा लिया और फिर नगर के समीप पहुँचकर ही उसने उसे कन्धे से उतारा।

स राजधानीं सम्प्राप्य कौन्तेयोऽर्जुनमब्रवीत्॥ ७॥
क्वायुधानि समासज्ज्य प्रवेक्ष्यामः पुरं वयम्।
गाण्डीवं च महद् गाढं लोके च विदितं नृणाम्॥ ८॥
तच्चेदायुधमादाय गच्छामो नगरं वयम्।
क्षिप्रमस्मान् विजानीयुर्मनुष्या नात्र संशयः॥ ९॥

राजधानी के समीप आकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि हम अपने आयुधों को कहाँ रखकर नगर में प्रवेश करें? यह गाण्डीव धनुष तो बहुत बड़ा है और सब लोगों में इसकी प्रसिद्धि है। यदि हम आयुधों को लेकर नगर में जाते है।, तो जल्दी ही लोग हमें पहचान जायेंगे, इसमें संशय नहीं है।

अर्जुन उवाच

इयं कूटे मनुष्येन्द्र गहना महती शमी।
भीमशाखा दुराहोहा श्मशानस्य समीपतः॥ १०॥
न चापि विद्यते कश्चिन्मनुष्य इति मे मतिः।
योऽस्मान् निदधतो द्रष्टाभवेच्छस्त्राणि पाण्डवाः॥ ११॥
उत्पथे हि वने जाता मृगव्यालनिषेविते।
समीपे च श्मशानस्य गहनस्य विशेषतः॥ १२॥
समाधायायुधं शम्यां गच्छामो नगरं प्रति।
एवमत्र यथायोगं विहरिष्याम भारत॥ १३॥

तब अर्जुन ने कहा कि हे राजन्! यह शमशान भूमि के समीप टीले पर बड़ा शमी का पेड़ है। इसकी शाखाएँ विशाल हैं। इस पर चढ़ना कठिन है। हे पाण्डवों! मेरा विचार है कि यहाँ कोई मनुष्य भी नहीं है, जो हमें शस्त्रों को इस पर रखता हुआ देख ले। यह वृक्ष रास्ते से दूर जंगल में है, जहाँ हिंसक पशु और साँप आदि रहते हैं और यह शमशान भूमि के निकट है। इस शमी वृक्ष पर अपने हथियारों को रखकर नगर में चलते हैं। हे भारत! इस प्रकार करके फिर जैसे उचित होगा विचरण करेंगे।

येन देवान् मनुष्यांश्च सर्वांश्चैकरथोऽजयत्।
स्फीताञ्जनपदांश्चान्यानजयत् कुरुपुङ्गवः॥ १४॥
तदुदारं महाघोषं सम्पन्नबलसूदनम्।
अपज्यमकरोत् पार्थो गाण्डीवं सुभयंकरम्॥ १५॥
येन वीरः कुरुक्षेत्रमभ्यरक्षत् परंतपः।
अमुञ्चद् धनुषस्तस्य ज्यामक्षय्यां युधिष्ठिरः॥ १६॥

इसके पश्चात् कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ने जिससे एक रथ के द्वारा ही सारे देवताओं और मनुष्यों पर विजय पायी थी, और दूसरे समृद्धिशाली जनपदों को जीता था, जो बल से सम्पन्न और विनाशक था, जिसकी टंकार ध्वनि बहुत दूर तक फैलती थी, उस विशाल और अत्यन्त भयंकर गांडीव धनुष की प्रत्यंचा को उतार दिया। इसी प्रकार परंतप वीर युधिष्ठिर ने जिसके द्वारा कुरुक्षेत्र अर्थात् कुरुराज्य की रक्षा की थी, उस अपने धनुष की अक्षय डोर को भी उतार दिया।

पाञ्चालान् येन संग्रामे भीमसेनोऽजयत् प्रभुः।
प्रत्यषेधद् बहूनेकः सपत्नांश्चैव दिग्जये॥ १७॥
निशम्य यस्य विस्फारं व्यद्रवन्त रणात् परे।
पर्वतस्येव दीर्णस्य विस्फोटमशनेरिव॥ १८॥
ज्यापाशं धनुषस्तस्य भीमसेनोऽवतारयत्।

जिसकी सहायता से शक्तिशाली भीमने संग्राम में पांचाल वीरों पर विजय पायी थी। दिग्विजय के समय जिसकी सहायता से उन्होंने अकेले ही बहुत से शत्रुओं को जीता था, पर्वतों के फटने और बिजली के गिरने जैसी जिसकी टंकार को सुनकर शत्रु

युद्धक्षेत्र से भाग जाते थे, उस धनुष की प्रत्यंचा को भीम ने भी तब उतार दिया।

अजयत् पश्चिमामाशां धनुषा येन पाण्डवः॥ १९॥
माद्रीपुत्रो महाबाहुस्ताम्रास्यो मितभाषिता।
तस्य मौर्वीमपाकर्षच्छूरः संक्रन्दनो युधि॥ २०॥
कुले नास्ति समो रूपे यस्येति नकुलः स्मृतः।
दक्षिणां दक्षिणाचारो दिशं येनाजयत् प्रभुः॥ २१॥
अपज्यमकरोद् वीरः सहदेवस्तदायुधम्।
खड्गांश्च दीप्तान् दीर्घांश्च कलापांश्च महाधनान्॥ २२॥
विपाठान् क्षुरधारांश्च धनुर्भिर्निदधुः सह।

जो मितभाषी, ताम्ररंग के मुखवाला, महाबाहु, शूरवीर युद्ध में शत्रुओं को रुलाने वाला, जिसके समान रूपवान कुल में कोई न होने के कारण जिसे नकुल कहा जाता था, उस माद्रीपुत्र पाण्डव नकुल ने जिसकी सहायता से पश्चिम दिशा को जीता था, अपने उस धनुष की डोरी को उतार दिया। अनुकूल आचार विचार वाले वीर सहदेव ने जिसकी सहायता से दक्षिण दिशा को जीता था, उस अपने धनुष की डोर को उतार दिया। धनुषों के साथ उन्होंने अपने चमकीले विशाल खड्गों को, बहुमूल्य तरकसों को तथा विपाठ क्षुरधार आदि नाम वाले बाणों को भी धनुषों के साथ रख दिया।

अथान्वशासन्नकुलं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २३॥
आरुह्येमां शमीं वीर धनूंष्येतानि निक्षिप।
तामुपारुह्य नकुलो धनूंषि निदधे स्वयम्॥ २४॥
तत्र तानि दृढैः पाशैः सुगाढं पर्यबन्धत।

इसके पश्चात् कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने नकुल को आदेश दिया कि हे वीर! तुम इस शमीवृक्ष पर चढ़कर इन धनुषादि शस्त्रास्त्रों को रख दो। तब नकुल ने उस वृक्ष पर चढ़कर वहाँ अपने हाथ से शस्त्रास्त्रों को रखा। उसने उन्हें वहाँ मजबूत रस्सियों ने चारों तरफ से बाँध दिया।

शरीरं च मृतस्यैकं समबध्नन्त पाण्डवाः॥ २५॥
विवर्जयिष्यन्ति नरा दूरादेव शमीमिमाम्।
आबद्धं शवमत्रेति गन्धमाघ्राय पूतिकम्॥ २६॥
अशीतिशतवर्षेयं माता न इति वादिनः।
कुलधर्मोऽयमस्माकं पूर्वैराचरितोऽपि वा॥ २७॥
समासज्ज्याथ वृक्षेऽस्मिन्निति वै व्याहरन्ति ते।
आगोपालाविपालेभ्य आचक्षाणाः परंतपाः॥ २८॥

पाण्डवों ने एक मृत व्यक्ति के शरीर को भी वहाँ बाँध कर लटका दिया। जिससे उस लटके हुए शव की दुर्गन्ध से लोग उस शमी वृक्ष से दूर दूर ही रहें। उसके पास न आयें। गायों और भेड़ों को चराने वाले ग्वालों और गडरियों ने उनसे जब लाश को लटकाने के बारे में पूछा तो उन परंतपों ने उनसे यह कहा कि यह हमारी एक सौ अस्सी वर्ष की माता है। यह हमारा कुलधर्म है। हमारे पूर्वज भी ऐसा ही करते आये हैं।

आजग्मुर्नगराभ्याशं पार्थाः शत्रुनिबर्हणाः।
जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः॥ २९॥
इति गुह्यानि नामानि चक्रे तेषां युधिष्ठिरः।
ततो यथाप्रतिज्ञाभिः प्राविशन् नगरं महत्।
अज्ञातचर्यां वत्स्यन्तो राष्ट्रे वर्षं त्रयोदशम्॥ ३०॥

फिर शत्रुओं को नष्ट करने वाले वे कुन्तीपुत्र नगर के समीप आये। तब युधिष्ठिर ने सारे पाँचों भाइयों के ये गुप्त नाम क्रमशः रखे जैसे-जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन, और जयद्बल। इसके पश्चात् अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तेरहवें वर्ष को अज्ञातवास में रहने के लिये उन्होंने उस विशाल नगर में अर्थात् राजा विराट की राजधानी में प्रवेश किया।

चौथा अध्याय : युधिष्ठिर, भीम की राजा विराट से भेंट और नौकरी पाना।

ततो विराटं प्रथमं युधिष्ठिरो
राजा सभायामुपविष्टमाव्रजत्।
वैदूर्यरूपान् प्रतिमुच्य काञ्चना-
नक्षान् स कक्षेपरिगृह्य वाससा॥ १॥

तब सबसे पहले राजा युधिष्ठिर वैदूर्य के रंग की हरी और स्वर्ण के रंग की सुनहली गोटियों को कपड़े में बाँधकर, और उन्हें बगल में दबाकर, जब राजा विराट सभा में बैठे हुए थे, तब उनकी सभा में गये।

तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य पाण्डवं
विराटराडिन्दुमिवाभ्रसंवृतम्।
समागतं पूर्णशशिप्रभाननं
महानुभावं न चिरेण दृष्टवान्॥ २॥
मन्त्रिद्विजान् सूतमुखान् विशस्तथा

ये चापि केचित् परितः समासते।
पप्रच्छ कोऽयं प्रथमं समेयिवान्
नृपोपमोऽयं समवेक्षते सभाम्॥ ३॥
न तु द्विजोऽयं भविता नरोत्तमः
पतिः पृथिव्या इति मे मनोगतम्।
समीपमायाति च मे गतव्यथो
यथा गजस्तामरसीं मदोत्कटः॥ ४॥

पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा के समान तेजस्वी मुख वाले उन महानुभाव पाण्डुपुत्र को, जो बादलों से ढके हुए चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहे थे, आते हुए देखकर राजा विराट की दृष्टि तुरन्त उन पर गयी। तब ब्राह्मणों, मन्त्रियों, प्रमुखसूतों, वैश्यों तथा जो भी उनके आसपास बैठे थे, उनसे उन्होंने पूछा कि ये पहली बार यहाँ आने वाले कौन हैं? ये सभा को इस प्रकार देख रहे हैं, जैसे राजा लोग देखा करते हैं। यह ब्राह्मण तो नहीं है। मेरे विचार से यह कहीं का राजा है। जैसे मस्त हाथी किसी कमलिनी के पास जाता है वैसे ही ये बिना किसी भय के मेरे पास चले आ रहे हैं।

वितर्कयन्तं तु नरर्षभस्तथा
युधिष्ठिरोऽभ्येत्य विराटमब्रवीत्।
सम्राड् विजानात्विह जीवनार्थिनं
विनष्टसर्वस्वमुपागतं द्विजम्॥ ५॥
इहाहमिच्छामि तवानघान्तिके
वस्तुं यथा कामचरस्तथा विभो।
तमब्रवीत् स्वागतमित्यनन्तरं
राजा प्रहृष्टः प्रतिसंगृहाण च॥ ६॥
तं राजसिंहं प्रतिगृह्य राजा
प्रीत्याऽऽत्मना चैनमिदं बभाषे।
कामेन ताताभिवदाम्यहं त्वां
कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतः॥ ७॥
गोत्रं च नामापि च शंस तत्त्वतः
किं चापि शिल्पं तव विद्यते कृतम्।

इस प्रकार सोच विचार करते हुए राजा विराट के पास नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने आकर कहा कि महाराज! मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया है। मैं आजीविका के लिये आपके समीप आया हूँ। हे निष्पाप प्रभु! मैं जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा काम करते हुए आपके समीप रहना चाहता हूँ। तब राजा ने प्रसन्न होकर उनसे कहा कि आपका स्वागत है और उन्हें बैठने को आसन दिया। फिर उन राजसिंह को बैठाने पर प्रेमपूर्वक उनसे कहा कि हे तात! मैं कामनापूर्वक आपसे पूछता हूँ कि आप किस राजा के देश से आये हैं? आप अपने गोत्र और नाम को भी यथार्थ में बतायें और यह भी बताओ कि आपके द्वारा किस कार्य में प्रवीणता प्राप्त की हुई है?

युधिष्ठिर उवाच– युधिष्ठिरस्यासमहं पुरा सखा
वैयाघ्रपद्यः पुनरस्मि विप्रः॥ ८॥
अक्षान् प्रयोक्तुं कुशलोऽस्मि देविनां
कङ्केति नाम्नास्मि विराट विश्रुतः।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि मैं व्याघ्रपद गोत्र में उत्पन्न ब्राह्मण हूँ। द्यूतक्रीड़ा के प्रेमियों में पासा फेंकने की कला में निपुण हूँ। हे महाराजा विराट! मैं कंक नाम से प्रसिद्ध हूँ। पहले मैं युधिष्ठिर का मित्र था।

विराट उवाच– समानयानो भवितासि मे सखा
प्रभूतवस्त्रो बहुपानभोजनः॥ ९॥
पश्येस्त्वमन्तश्च बहिश्च सर्वदा
कृतं च ते द्वारमपावृतं मया।
ये त्वानुवादेऽयुरवृत्तिकर्शिता
ब्रूयाश्च तेषां वचनेन मां सदा॥ १०॥
दास्यामि सर्वं तदहं न संशयो
न ते भयं विद्यति संनिधौ मम।
एवं स लब्ध्वा तु वरं समागमं
विराटराजेन नरर्षभस्तदा॥ ११॥
उवास धीरः परमार्चितः सुखी
न चापि कश्चिच्चरितं बुबोध तत्।

तब राजा विराट ने कहा कि आज से तुम मेरे मित्र हुए। तुम्हें बहुत वस्त्र और भोजनपान मिलेगा। तुम मेरे समान सवारी पर बैठोगे। तुम मेरे आन्तरिक और बाह्य कार्यों को देखोगे। मेरे द्वार तुम्हारे लिये सदा खुले रहेंगे। राज्य के जो व्यक्ति आजीविका न होने से दुःखी होते हुए आयें, या किसी पुरानी आज्ञा के पुनः समर्थन के लिये आयें, तो तुम उनकी प्रार्थना मुझ तक पहुँचा देना। मैं बिना किसी संशय के उनकी इच्छा पूरी करूँगा। मेरे पास रहते हुए तुम्हें कोई भय नहीं होगा। इस प्रकार वे नरश्रेष्ठ, धैर्यवान् युधिष्ठिर विराट राजा से, उत्तम रीति से मिल कर, उनसे अत्यन्त सम्मानित होकर सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे। कोई भी उनके बारे में जान न पाया।

अथापरो भीमबलः श्रिया ज्वल-
न्नुपाययौ सिंहविलासविक्रमः॥ १२॥
खजां च दर्वीं च करेण धारय-
न्नसिं च कालाङ्गमकोशमव्रणम्।
तं प्रेक्ष्य राजा रमयन्नुपागतं
ततोऽब्रवीज्जानपदान् समागतान्॥ १३॥
सिंहोन्नतांसोऽयमतीव रूपवान्
प्रदृश्यते को नु नरर्षभो युवा।
अदृष्टपूर्वः पुरुषो रविर्यथा
वितर्कयन् नास्य लभामि निश्चयम्॥ १४॥
तथास्य चित्तं ह्यपि संवितर्कयन्
नरर्षभस्यास्य न यामि तत्त्वतः।

इसके बाद दूसरे भयानक बलवाले भीम, अपने तेज से प्रज्वलित से होते हुए, सिंह के समान विक्रमी, राजा के समीप आये। उनके हाथ में मथानी, कलछी, साग काटने का काले रंग का नया और बिना आवरण के खुला चाकू था। समीप आते हुए उनको देखकर, प्रसन्न होते हुए राजा विराट ने जनपद के दूसरे आये हुए लोगों से कहा कि सिंह के समान ऊँचे कन्धे वाला, अत्यन्त रूपवान यह जो नरश्रेष्ठ युवा दिखाई दे रहा है, यह कौन है? सूर्य के समान तेजस्वी इस पुरुष को पहले कभी नहीं देखा। सोचने पर भी मुझे इसके विषय में याद नहीं आता। इस नरश्रेष्ठ के यहाँ आने के उद्देश्य के विषय में भी सोचने पर मैं किसी यथार्थ बात का निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ।

विराटवाक्येन च तेन चोदिता
नरा विराटस्य सुशीघ्रगामिनः॥ १५॥
उपेत्य कौन्तेयमथाब्रुवंस्तदा
यथा स राजावदताच्युतानुजम्।
ततो विराटं समुपेत्य पाण्डव-
स्त्वदीनरूपं वचनं महामनाः॥ १६॥
उवाच सूदोऽस्मि नरेन्द्र बल्लवो
भजस्व मां व्यञ्जनकारमुत्तमम्।

विराट उवाच– **न सूदतां बल्लव श्रद्दधामि ते**
सहस्रनेत्रप्रतिमो विराजसे॥ १७॥

विराट की इन बातों से प्रेरित होकर, विराट के मनुष्य तेजी से युधिष्ठिर के छोटे भाई कुन्तीपुत्र भीम के पास पहुँचे और उन्होंने राजा के कथन के अनुसार उनका परिचय पूछा। तब राजा विराट के समीप आकर उस महामना पाण्डुपुत्र ने बिना अपने रूप और वचनों में दीनता लाये कहा कि हे राजन्! मैं बल्लव नाम का रसोइया हूँ। मैं बड़े उत्तम व्यंजन बनाता हूँ। आप मुझे अपने पास रख लीजिये। तब विराट ने कहा कि मुझे तुम्हारे रसोइया होने पर विश्वास नहीं होता। तुम तो इन्द्र के समान प्रतीत होते हो।

भीम उवाच– **नरेन्द्र सूदः परिचारकोऽस्मि ते**
जानामि सूपान् प्रथमं च केवलान्।
आस्वादिता ये नृपते पुराभवन्
युधिष्ठिरेणापि नृपेण सर्वशः॥ १८॥

विराट उवाच– **तथा हि कामो भवतस्तथा कृतं**
महानसे त्वं भव मे पुरस्कृतः॥ १९॥
नराश्च ये तत्र समाहिताः पुरा
भवांश्च तेषामधिपो मया कृतः।
तथा स भीमो विहितो महानसे
विराटराज्ञो दयितोऽभवद् दृढम्।
उवाच राज्ये न च तं पृथग् जनो
बुबोध तत्रानुचराश्च केचन॥ २०॥

तब भीम ने कहा कि हे राजन्! मैं रसोई बनाने वाला आपका सेवक हूँ, मैं तरह तरह के सागों आदि को बनाना इस प्रकार से जानता हूँ, जिसे और कोई नहीं जानता। मेरे बनाये व्यंजनों को पहले महाराज युधिष्ठिर ने भी खाया था। तब विराट ने कहा कि जिस रसोई के कार्य में तुम अपने आपको कुशल बताते हो, वही करो, पर मैं वह कार्य तुम्हारे योग्य नहीं मानता। फिर भी मैंने तुम्हारी कामना के अनुसार कर दिया है। तुम मेरे रसोई घर में सम्मानित होकर रहो। जो व्यक्ति वहाँ पहले से विद्यमान हैं, मैंने तुम्हें उन सबका स्वामी बना दिया है। इस प्रकार भीमसेन राजा के अत्यन्त प्रिय होकर उनके रसोईघर में रहने लगे। वहाँ उन्हें कोई दूसरा व्यक्ति और राजा विराट के सेवक कोई भी नहीं पहचान सका।

पाँचवाँ अध्याय : द्रौपदी की रानी से भेंट और निवास पाना।

ततः केशान् समुत्क्षिप्य वेल्लिताग्राननिन्दितान्।
कृष्णान् सूक्ष्मान् मृदून् दीर्घान् समुद्ग्रथ्य शुचिस्मिता॥ १॥
जुगूहे दक्षिणे पार्श्वे मृदूनसितलोचना।
वासश्च परिधायैकं कृष्णा सुमलिनं महत्॥ २॥
कृत्वा वेषं च सैरन्ध्र्यास्ततो व्यचरदार्तवत्।
तां नरा परिधावन्तीं स्त्रियश्च समुपाद्रवन्॥ ३॥
अपृच्छंश्चैव तां दृष्ट्वा का त्वं किं च चिकीर्षसि।

फिर मन्द मुस्कान और श्याम नेत्रों वाली द्रौपदी ने अपने घुँघराले काले, पतले, मुलायम और लम्बे बालों को गूँथ कर उन्हें अपनी दायीं बगल में छिपाकर एक अत्यन्त मैले वस्त्र को धारण कर सैरन्ध्री का वेश बनाकर वह एक दुखिया स्त्री के समान वहाँ अर्थात् रानी के महल के पास घूमने लगी। वहाँ उसे भटकते हुए देखकर पुरुष और स्त्रियाँ उसके पास दौड़कर आये और पूछने लगे कि तू कौन है? और क्या करना चाहती है?

द्रौपदी उवाच

कर्म चेच्छामि वै कर्तुं, सैरन्ध्र्यहमिहागता॥ ४॥
तस्या रूपेण वेषेण श्लक्ष्णया च तथा गिरा।
न श्रद्दधत तां दासीमन्नहेतोरुपस्थिताम्॥ ५॥
विराटस्य तु कैकेयी भार्या परमसम्मता।
आलोकयन्ती ददृशे प्रासादाद् द्रुपदात्मजाम्॥ ६॥
सा समीक्ष्य तथारूपामनाथामेकवाससम्।
समाहूयाब्रवीद् भद्रे का त्वं किं च चिकीर्षसि॥ ७॥

तब द्रौपदी ने कहा कि मैं सैरन्ध्री यहाँ आई हूँ और कुछ काम करना चाहती हूँ। पर उसके रूप, वेश और मधुर वाणी से किसी को भी यह विश्वास नहीं हुआ कि यह दासी है और अन्न की प्राप्ति के लिये यहाँ उपस्थित है। तभी विराटराजा की अत्यन्त प्यारी रानी जो कैकेय देश की थी, और अपने महल से नगर को देख रही थी, ने द्रुपद कुमारी को देखा। उसने ऐसे सुन्दर रूपवाली को एक वस्त्र तथा अनाथ वेश में देखकर उसे अपने पास बुलाया और पूछा कि हे भद्रे! तुम कौन हो? और क्या करना चाहती हो?

द्रौपदी उवाच

कर्म चेच्छामि वै कर्तुं, सैरन्ध्र्यहमुपागता।

सुदेष्णोवाच

नैवंरूपा भवन्त्येव यथा वदसि भामिनि॥ ८॥
प्रेषयन्तीव वै दासीर्दासांश्च विविधान् बहून्।
का त्वं ब्रूहि यथा भद्रे नासि दासी कथंचन॥ ९॥

द्रौपद्युवाच

सैरन्ध्री तु भुजिष्यास्मि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
केशाञ्जानाम्यहं कर्तुं पिंषे साधु विलेपनम्॥ १०॥
मल्लिकोत्पलपद्मानां चम्पकानां तथा शुभे।
ग्रथयिष्ये विचित्राश्च स्रजः परमशोभनाः॥ ११॥
तत्र तत्र चराम्येवं लभमाना सुभोजनम्।
वासांसि यावन्ति लभे तावत् तावद् रमे तथा॥ १२॥

तब द्रौपदी ने उत्तर दिया कि मैं सैरन्ध्री आपके पास आयी हूँ और काम करना चाहती हूँ। तब राजा विराट की रानी सुदेष्णा ने कहा कि हे भामिनी! जैसा तुम अपने बारे में बता रही हो, तुम जैसी स्त्रियाँ वैसी नहीं होतीं। तुम तो अनेक तरह के बहुत से दासों और दासियों को आदेश देने वाली सी प्रतीत होती हो। हे भद्रे! तुम कौन हो? बताओ। तुम किसी प्रकार भी दासी नहीं हो। तब द्रौपदी ने कहा मैं सैरन्ध्री का काम करने वाली दासी हूँ। यह मैं सत्य कहती हूँ, उबटन और अंगराग अच्छा पीस लेती हूँ। मैं मल्लिका, उत्पल, कमल और चम्पा के फूलों के हार बहुत सुन्दर और विचित्र प्रकार से गूँथ सकती हूँ। मैं सेवा करती हुई और भोजन प्राप्त करती हुई जहाँ तहाँ घूमती हूँ। जितने कपड़े मिल जाते हैं उतने में ही प्रसन्न रहती हूँ।

सुदेष्णोवाच

मूर्ध्नि त्वां वासयेयं वै संशयो मे न विद्यते।
न चेदिच्छति राजा त्वां गच्छेत् सर्वेण चेतसा॥ १३॥
स्त्रियो राजकुले याश्च याश्चेमा मम वेश्मनि।
प्रसक्तास्त्वां निरीक्षन्ते पुमांसं कं न मोहयेः॥ १४॥
राजा विराटः सुश्रोणि दृष्ट्वा वपुरमानुषम्।
विहाय मां वरारोहे गच्छेत् सर्वेण चेतसा॥ १५॥
यं हि त्वमनवद्याङ्गि तरलायतलोचने।
प्रसक्तमभिवीक्षेथाः स कामवशगो भवेत्॥ १६॥

तब सुदेष्णा रानी ने कहा कि मुझे तुम्हारे ऊपर कोई संशय नहीं है। मैं तुम्हें अपने सिर पर बैठाने के लिये तैयार हूँ, यदि राजा तुम्हें देखकर चाहने न लग जायें। मेरे घर में इस समय तथा राजकुल में

जितनी भी स्त्रियाँ हैं, वे सब एक तुम्हारी तरफ ही देख रहीं हैं। फिर ऐसा कौन पुरुष होगा, जिसे तुम मोहित न कर लो। हे सुन्दरी, हे सुश्रोणी। राजा विराट तुम्हारे अद्वितीय रूप को देखकर मुझे छोड़कर तुम्हारे प्रति ही आसक्त हो जायेंगे। हे निर्दोष अंगों तथा चंचल तथा विशाल नेत्रों वाली! तुम जिस पुरुष को भी ध्यान से देख लोगी, वह काम के वश में हो जायेगा।

यश्च त्वां सततं पश्येत् पुरुषश्चारुहासिनि।
एवं सर्वानवद्याङ्गि स चानङ्गवशो भवेत्॥ १७॥
अध्यारोहेद् यथा वृक्षान् वधायैवात्मनो नरः।
राजवेश्मनि ते सुभ्रु गृहे तु स्यात् तथा मम॥ १८॥
यथा च कर्कटी गर्भमाधत्ते मृत्युमात्मनः।
तथाविधमहं मन्ये वासं तव शुचिस्मिते॥ १९॥

हे सुन्दर हँसीवाली और शुभांगी! जो व्यक्ति तुम्हें प्रतिदिन देखेगा, वह भी काम के वश हो जायेगा। हे सुन्दर भौहों वाली! जैसे कोई आत्महत्या के लिये ही वृक्ष पर चढ़े, वैसे ही तुम्हें राजमहल या अपने घर में रखना मेरे लिये हो जायेगा। हे पवित्र मुस्कानवाली! जैसे केकड़े की पत्नी अपनी मृत्यु के लिये गर्भ धारण करती है, वैसे ही तुम्हारा यहाँ रहना मैं समझती हूँ।

द्रौपद्युवाच

नास्मि लभ्या विराटेन न चान्येन कदाचन।
पुत्रा गन्धर्वराजस्य महासत्त्वस्य कस्यचित्॥ २०॥
रक्षन्ति ते च मां नित्यं दुःखाचारा तथा ह्यहम्।
यो हि मां पुरुषो गृद्ध्येद् यथान्याः प्राकृताः स्त्रियः॥ २१॥
तामेव निवसेद् रात्रिं प्रविश्य च परां तनुम्।
न चाप्यहं चालयितुं शक्या केनचिदङ्गने॥ २२॥
प्रच्छन्नाश्चापि रक्षन्ति ते मां नित्यं शुचिस्मते।

सुदेष्णोवाच

एवं त्वां वासयिष्यामि यथा त्वं नन्दिनीच्छसि॥ २३॥
एवं कृष्णा विराटस्य भार्यया परिसान्त्विता।
उवास नगरे तस्मिन् पतिधर्मवती सती॥ २४॥

तब द्रौपदी ने कहा कि न तो मुझे राजा विराट प्राप्त कर सकते हैं और नहीं दूसरा कोई और व्यक्ति। किसी महान् शक्तिशाली गन्धर्वराज के पुत्र मेरी नित्य रक्षा करते हैं और मैं भी स्वयं दुर्धर्ष हूँ। जो कोई मनुष्य सामान्य स्त्रियों की तरह मेरे लिये ललचाता है, उसी रात को उसका परलोकवास हो जाता है। हे कल्याणी! मैं भी किसी के द्वारा अपने सतीत्व से भ्रष्ट नहीं की जा सकती। हे पवित्र मुस्कराहट वाली! वे लोग गुप्तरूप से सदा मेरी रक्षा करते रहते हैं। तब सुदेष्णा ने कहा कि हे आनन्ददायिनी! यदि ऐसा है तो जैसे तू चाहती है वैसे ही मैं तुझे अपने घर में ठहरा लूँगी। इस प्रकार विराट की रानी के द्वारा सान्त्वना दिये जाने पर द्रौपदी वहाँ नगर में अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई रहने लगी।

छठा अध्याय : सहदेव की राजा से भेंट और नियुक्ति।

सहदेवोऽपि गोपानां कृत्वा वेषमनुत्तमम्।
भाषां चैषां समास्थाय विराटमुपयादथ॥ १॥
गोष्ठमासाद्य तिष्ठन्तं भवनस्य समीपतः।
राजाथ दृष्ट्वा पुरुषान् प्राहिणोज्जातविस्मयः॥ २॥

राजा उवाच

कस्य वा त्वं कुतो वा त्वं किं वा त्वं तु चिकीर्षसि।
न हि मे दृष्टपूर्वस्त्वं तत्त्वं ब्रूहि नरर्षभ॥ ३॥

तब सहदेव भी ग्वालों के सुन्दर वेष को बनाकर, ग्वालों की भाषा ही बोलता हुआ विराट के यहाँ आया। राजभवन के समीप ही राजा की गौशाला थी, उसके समीप पहुँचकर वह वहाँ खड़ा हो गया। राजा ने तब उसे देख कर विस्मित होते हुए अपने आदमियों को उसे बुलाने के लिये भेजा। तब राजा ने उससे पूछा कि हे नरश्रेष्ठ! तुम किसके पुत्र हो? और कहाँ से आये हो? और क्या करना चाहते हो? मैंने तुम्हें पहले कभी नहीं देखा। ठीक बताओ।

सम्प्राप्य राजानममित्रतापनं
ततोऽब्रवीन्मेघ महौघनिःस्वनः।
वैश्योऽस्मि नाम्नाहमरिष्टनेमि-
वस्तुं त्वयीच्छामि विशां वरिष्ठ॥ ४॥
न शक्यते जीवितुमप्यकर्मणा
न च त्वदन्यो मम रोचते नृपः।

विराट उवाच- **त्वं ब्राह्मणो यदि वा क्षत्रियोऽसि**
न वैश्यकर्म त्वयि विद्यते क्षमम्॥ ५॥
कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतः
किं वापि शिल्पं तव विद्यते कृतम्।

कथं त्वमस्मासु निवत्स्यसे सदा
वदस्व किं चापि तवेह वेतनम्॥ ६॥

तब शत्रुओं को संतप्त करने वाले राजा विराट के समीप पहुँच कर सहदेव ने मेघों की महान् घटा के समान गम्भीर स्वर में कहा कि मैं अरिष्टनेमि नाम का वैश्य हूँ। हे प्रजाओं में श्रेष्ठ! मैं आपके समीप रहना चाहता हूँ। क्योंकि बिना काम किये जीविका नहीं चल सकती और मुझे आपके अतिरिक्त दूसरा राजा अच्छा नहीं लगता। तब विराटराज ने कहा कि तुम या तो ब्राह्मण हो या क्षत्रिय हो। वैश्य का कार्य तुम्हारे लिये उचित नहीं जान पड़ता। तुम किस राजा के देश से यहाँ आए हो? तुमने कौन सी विद्या सीखी है? तुम हमारे यहाँ सदा कैसे रह सकोगे? तुम्हारा वेतन क्या होगा? यह बताओ।

सहदेव उवाच

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः।
गुणाः सुविदिता ह्यासन् मम तस्य महात्मनः॥ ७॥
ऋषभांश्चापि जानामि, राजन् पूजित लक्षणान्।
येषां मूत्रमुपाघ्राय, अपि वन्ध्या प्रसूयते॥ ८॥

तब सहदेव ने उत्तर दिया कि पाँचों पाण्डुपुत्रों में सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर थे। वे महात्मा मेरे गुणों को जानते थे। हे राजन्! मुझे उत्तम लक्षण वाले ऐसे साँडों की पहचान है, जिनके मूत्र को सूँघते ही वन्ध्या स्त्री भी सन्तानवाली हो जाती है।

क्षिप्रं च गावो बहुला भवन्ति
न तासु रोगो भवतीह कश्चन।
तैस्तैरुपायैर्विदितं ममैत-
देतानि शिल्पानि मयि स्थितानि॥ ९॥

विराट उवाच- शतं सहस्त्राणि समाहितानि
सवर्णवर्णस्य विमिश्रितान् गुणैः।
पशून् सपालान् भवते ददाम्यहं
त्वदाश्रया मे पशवो भवन्त्विह॥ १०॥
तथा स राज्ञोऽविदितो विशाम्पते-
रुवास तत्रैव सुखं नरोत्तमः।
न चैनमन्येऽपि विदुः कथंचन
प्रादाच्च तस्मै भरणंयथेप्सितम्॥ ११॥

मुझे ऐसे उपायों का पता है, जिनसे गायों की संख्या जल्दी बढ़ती है और उनमें कोई रोग नहीं होता। मेरे अन्दर यही विद्या विद्यमान है। तब राजा विराट ने कहा कि मेरे यहाँ एक लाख पशु, एकत्र किये हुए हैं। इनमें से कुछ एक ही रंग के हैं और कुछ मिश्रित रंगों के हैं। उन सबके अलग अलग गुण हैं, मैं उन पशुओं को उनके पालकों के साथ तुम्हें सौंपता हूँ। मेरे सारे पशु अब तुम्हारे ही आधीन रहेंगे। इस प्रकार प्रजाओं के पालक राजा विराट से अविदित रहते हुए वह नरश्रेष्ठ सहदेव वहीं सुख से रहने लगे। राजा ने उन्हें यथेच्छ भरण-पोषण दिया। दूसरे लोग भी उन्हें किसी प्रकार भी न पहचान सके।

सातवाँ अध्याय : अर्जुन का राजा से मिलना और नियुक्ति।

अथापरोऽदृश्यत रूपसम्पदा
स्त्रीणामलङ्कारधरो बृहत्पुमान्।
प्राकारवप्रे प्रतिमुच्य कुण्डले
दीर्घे च कम्बूपरि हाटके शुभे॥ १॥
तं प्रेक्ष्य राजोपगतं सभातले
व्याजात् प्रतिच्छन्नमरिप्रमाथिनम्।
सर्वानपृच्छच्च सभानुचारिणः
कुतोऽयमायाति पुरा न मे श्रुतः॥ २॥
न चैनमूचुर्विदितं तदा नराः
सविस्मयं वाक्यमिदं नृपोऽब्रवीत्।

इसके पश्चात् नगर की चार दीवारी के पीछे, जो मिट्टी का ऊँचा टीला था, उसके पास एक अन्य आकार वाला पुरुष दिखाई दिया। जो सौन्दर्यशाली था, जिसने स्त्रियों की वेषभूषा धारण की हुई थी। कानों में बड़े बड़े कुण्डल और हाथों में शंख की चूड़ियाँ पहनकर सोने के सुन्दर कंगन धारण किये हुए थे। शत्रुविजयी अर्जुन को इस प्रकार छिपे हुए रूप में सभा भवन में अपने समीप आया हुआ देखकर राजा विराट ने सारे सभासदों से पूछा कि यह कहाँ से आया है? पहले मैंने कभी इसके बारे में नहीं सुना। पर जब किसी ने यह नहीं कहा कि मैं इसे जानता हूँ, तब विस्मय के साथ राजा ने उससे पूछा कि।

आमुच्य कम्बूपरि हाटके शुभे
विमुच्य वेणीमपिनह्य कुण्डले॥ ३॥
स्त्रग्वी सुकेशः परिधाय चान्यथा
शुशोभ धन्वी कवची शरीयथा।

हे तात! हाथों में शंख की चूड़ियाँ पहन कर उसके ऊपर तुमने सोने के कंगन पहन रखे हैं। बालों को खोलकर छितराया हुआ है। कुंडल पहन कर गजरा धारण किया हुआ है। तुम्हारे बाल सुन्दर हैं। स्त्रियों जैसे वस्त्र धारण करके भी तुम धनुष बाण और कवच को धारण करने वाले के समान प्रतीत होते हो।

अर्जुन उवाच क्लीबेषु बालेषु जनेषु नर्तने
शिक्षाप्रदानेषु च योग्यता मम॥ ४॥
गायामि नृत्याम्यथ वादयामि
भद्रोऽस्मि नृत्ये कुशलोऽस्मि गीते।
इदं तु रूपं मम येन किं तव
प्रकीर्तयित्वा भृशशोकवर्धनम्॥ ५॥
बृहन्नलां मां नरदेव विद्धि
सुतं सुतां वा पितृमातृवर्जिताम्।

तब अर्जुन ने कहा कि नपुंसकों, बच्चों, तथा दूसरे लोगों को नृत्य की शिक्षा देना मेरी विशेषता है। मैं गाता हूँ, नाचता हूँ और बजाता हूँ। मैं नृत्यकला में और गान विद्या में कुशल हूँ। यह मेरा रूप कैसे हुआ? यह आपके सामने बताने से क्या लाभ? वह तो मेरे शोक को बढ़ाने वाली है। हे नरदेव! आप मेरा नाम बृहन्नला समझिये और माता पिता से त्यागी हुई बेटी या बेटा मान लें।

विराट उवाच ददामि ते हन्त वरं बृहन्नले
सुतां च मे नर्तय याश्च तादृशीः॥ ६॥
इदं तु ते कर्म समं न मे मतं
समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि।
बृहन्नलां तामभिवीक्ष्य मत्स्यराट्
कलासु नृत्येषु तथैव वादिते॥ ७॥
सम्मन्त्र्य राजा विविधैः स्वमन्त्रिभिः
परीक्ष्य चैनं प्रमदाभिराशु वै।
अपुंस्त्वमप्यस्य निशम्य च स्थिरं
ततः कुमारीपुरमुत्ससर्ज तम्॥ ८॥

तब विराट राज ने दयालुता दिखाते हुए कहा कि मैं तुम्हें तुम्हारा अभीष्ट कार्य देता हूँ। तुम मेरी पुत्री और उस जैसी दूसरी राजकुमारियों को नृत्य की शिक्षा दो। पर मेरा विचार यही है कि यह कार्य तुम्हारे लायक नहीं है। तुम तो समुद्र, पर्वत और पृथिवी के राजा होने योग्य हो। इसके पश्चात् मत्स्य देश के राजा विराट ने उस बृहन्नला की नृत्य और वादन कला में परीक्षा लेकर, अपने मंत्रियों से अनेक प्रकार से सलाह कर, तरुणी स्त्रियों से शीघ्र ही उसके नपुंसकत्व की जाँच कराकर, सब तरफ से उसका नपुंसकत्व प्रमाणित होने पर उसे कन्या के अन्तः पुर में जाने की आज्ञा दे दी।

स शिक्षयामास च गीतवादितं
सुतां विराटस्य धनंजयः प्रभुः।
सखीश्च तस्याः परिचारिकास्तथा
प्रियश्च तासां स बभूव पाण्डवः॥ ९॥
तथा स सत्रेण धनंजयो वसन्
प्रियाणि कुर्वन् सह ताभिरात्मवान्।
तथा च तं तत्र न जज्ञिरे जना
बहिश्चरा वाप्यथ चान्तरेचराः॥ १०॥

तब वे शक्तिशाली अर्जुन विराट की पुत्री को गाने और बजाने की शिक्षा देने लगे। उसकी सखियों और सेविकाओं को भी सिखाने लगे। इससे वे सबके प्रिय बन गये। इस प्रकार छिपे वेश में रहते हुए और अपने मन पर संयम रखते हुए, उनके प्रिय कार्य करते हुए अर्जुन वहाँ रहने लगे। वहाँ उन्हें न तो बाहर के लोग और न राजमहल में रहने वाले लोग पहचान सके।

आठवाँ अध्याय : नकुल का विराट से मिलना और नियुक्ति पाना।

अथापरोऽदृश्यत पाण्डवः प्रभु-
र्विराटराजं तरसा समेयिवान्।
तमापतन्तं ददृशे पृथग्जनो
विमुक्तमभ्रादिव सूर्यमण्डलम्॥ १॥
स वै हयानैक्षत तांस्ततस्ततः
समीक्षमाणं स ददर्श मत्स्यराट्।
ततोऽब्रवीत्ताननुगान् नरेश्वरः
स्वयं हयानीक्षति मामकान् दृढं॥ २॥
ध्रुवं हयज्ञो भविता विचक्षणः।
प्रवेश्यतामेष समीपमाशु मे

इसके पश्चात् एक अन्य शक्तिशाली पाण्डुपुत्र दिखाई दिया। वह तेजगति से विराटराज के पास

पहुँचा। आते हुए वे बादलों के बीच में से निकलते हुए सूर्य मण्डल की तरह प्रतीत हो रहे थे। वे इधर उधर घूमकर घोड़ों को देखने लगे। राजा ने भी उन्हें इस प्रकार देखा। तब उस मत्स्य देश के राजा ने अपने साथ विद्यमान लोगों से पूछा कि यह अपने आप ही मेरे घोड़ों को ध्यान से देख रहा है। निश्चय ही यह चतुर घोड़ों का विशेषज्ञ है। इसे जल्दी ही मेरे पास लाओ।

अभ्येत्य राजानममित्रहाब्रवी-
ज्जयोऽस्तु ते पार्थिव भद्रमस्तु वः॥ ३॥
हयेषु युक्तो नृप सम्मतः सदा
तवाश्वसूतो निपुणो भवाम्यहम्।

तब शत्रुओं को नष्ट करने वाले नकुल ने राजा के सामने जाकर उनसे कहा कि हे राजन्! आप की जय हो। आपका कल्याण हो। हे राजन्! मैं घोड़ों का कार्य करता हुआ सर्वदा सम्मानित रहा हूँ। मैं आपके घोड़ों का चतुर संचालक बन सकता हूँ।

विराट उवाच **ददामि यानानि धनं निवेशनं**
ममाश्वसूतो भवितुं त्वमर्हसि।
कुतोऽसि कस्यासि कथं त्वमागतः
प्रब्रूहि शिल्पं तव विद्यते च यत्॥ ४॥

तब राजा विराट ने कहा कि मैं तुम्हें सवारियाँ, धन, और रहने के लिये स्थान दूँगा। तुम मेरे घोड़ों के संचालक हो सकते हो। पर यह बताओ कि तुम कहाँ से आये हो? किसके पुत्र हो? किसलिये आये हो? और तुम्हारी विद्या क्या है?

नकुल उवाच

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः।
तेनाहमश्वेषु पुरा नियुक्तः शत्रुकर्शन॥ ५॥
अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयं चापि सर्वशः।
दुष्टानां प्रतिपत्तिं च कृत्स्नं चैव चिकित्सितम्॥ ६॥

तब नकुल ने कहा कि पाँचों पाण्डुपुत्रों में जो सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर थे, उन्होंने हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! मुझे पहले घोड़ों पर रखा था। मैं घोड़ों के स्वभाव, जाति को पहचानता हूँ। उन्हें सब तरह की शिक्षा दे सकता हूँ दुष्ट घोड़ों की दुष्टता भी मुझे ठीक करना आता है। मैं उनकी चिकित्सा भी कर सकता हूँ।

न कातरं स्यान्मम जातु वाहनं
न मेऽस्ति दुष्टा वडवा कुतो हयाः।
जनस्तु मामाह स चापि पाण्डवो
युधिष्ठिरो ग्रन्थिकमेव नामतः॥ ७॥

मेरा सिखाया हुआ घोड़ा कभी कायर नहीं हो सकता। मेरी सिखाई हुई घोड़ी भी दोष रहित होती है। घोड़ों की तो बात क्या है? वे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और दूसरे लोग भी मुझे ग्रन्थिक नाम से पुकारा करते थे।

विराट उवाच **यदस्ति किंचिन्मम वाजिवाहनं**
तदस्तुसर्वं त्वदधीनमद्य वै।
ये चापि केचिन्मम वाजियोजका-
स्त्वदाश्रयाः सारथयश्च सन्तु मे॥ ८॥
युधिष्ठिरस्येव हि दर्शनेन मे
समं तवेदं प्रियमत्र दर्शनम्।
कथं नु भृत्यैः स विनाकृतो वने
वसत्यनिन्द्यो रमते च पाण्डवः॥ ९॥

तब विराट ने कहा कि मेरे पास जितने भी सवारी के घोड़े हैं, वे सारे तुम्हारे आधीन होंगे। जितने भी मेरे घोड़ों को चलाने वाले सारथि लोग हैं। वे भी तुम्हारी अध्यक्षता में ही काम करेंगे। तुम्हें आज देखना मुझे ऐसा अच्छा लग रहा है जैसे मानो युधिष्ठिर को ही देख लिया हो। पता नहीं वे निन्दा के अयोग्य पाण्डव बिना सेवकों के वन में कैसे रहते होंगे।

तथा स गन्धर्ववरोपमो युवा
विराटराज्ञा मुदितेन पूजितः।
न चैनमन्येऽपि विदुः कथंचन
प्रियाभिरामं विचरन्तमन्तरा॥ १०॥
एवं हि मत्स्ये न्यवसन्त पाण्डवा
यथाप्रतिज्ञा भिरमोघदर्शनाः।
अज्ञातचर्यां व्यचरन् समाहिताः
समुद्रनेमीपत योऽतिदुःखिताः॥ ११॥

इस प्रकार वह गन्धर्वराज के समान युवा नकुल प्रसन्न हुए राजा विराट के द्वारा सत्कृत होकर नगर में सुन्दर रूप से आनन्दपूर्वक विचरण करने लगे। दूसरे लोगों ने उन्हें किसी प्रकार भी नहीं पहचाना। इस प्रकार जिनका दर्शन अमोघ है, वे पाण्डव प्रतिज्ञा के अनुसार विराट नगर में सावधानी से अज्ञातवास बिताने लगे। सागर पर्यन्त पृथिवी के स्वामी होकर भी वे उस समय अत्यन्त दुःखी थे।

नवाँ अध्याय : भीम के द्वारा जीमूत नाम के मल्ल का वध।

अथ मासे चतुर्थे तु ब्रह्मणः सुमहोत्सवः।
आसीत् समृद्धो मत्स्येषु पुरुषाणां सुसम्मतः॥ १॥
तत्र मल्लाः तमापेतुः राज्ञा समभिपूजिताः।
सिंहस्कन्धकटिग्रीवाः स्ववदाता मनस्विनः॥ २॥
असकृल्लब्धलक्षास्ते रङ्गे पार्थिवसंनिधौ।
तेषामेको महानासीत् सर्वमल्लानथाह्वयत्॥ ३॥
आवल्गमानं तं रङ्गे नोपतिष्ठति कश्चन।
यदा सर्वे विमनसस्ते मल्ला हतचेतसः॥ ४॥
अथ सूदेन तं मल्लं योधयामास मत्स्यराट्।

विराट नगर में पाण्डवों के रहते हुए चौथे मास में वहाँ ब्रह्मा का अर्थात् भगवान् की आराधना के नाम पर एक बड़ा मेला लगा। वह उत्सव वहाँ बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था और पुरुषों में विशेष प्रसिद्ध था। उस मेले में बहुत सारे पहलवान कुश्ती लड़ने आये। राजा ने उनका खूब स्वागत सत्कार किया। वे पहलवान सिंह के समान कन्धे, कमर, और गर्दन वाले थे। उन्होंने राजा के सामने पहले अनेक बार अखाड़े में विजय प्राप्त की थी। उन पहलवानों में एक बहुत बड़ा पहलवान था। उसने सारे पहलवानों को कुश्ती के लिये ललकारा। अखाड़े में उछलते हुए उसके सामने कोई भी पहलवान नहीं जा सका। जब सारे पहलवान उदास हो कर हिम्मत हार गये, तब मत्स्यराज ने अपने रसोइये अर्थात् बल्लव से उसे लड़ाने के लिये सोचा।

नोद्यमानस्तदा भीमो दुःखेनैवाकरोन्मतिम्॥ ५॥
न हि शक्नोति विवृते प्रत्याख्यातुं नराधिपम्।
ततः स पुरुषव्याघ्रः शार्दूलशिथिलश्चरन्॥ ६॥
प्रविवेश महारङ्गं विराटमभिपूजयन्।
बबन्ध कक्षां कौन्तेयस्ततः संहर्षयञ्जनम्॥ ७॥
जीमूतं नाम तं तत्र, भीमो मल्लं समाह्वयत्।
तावुभौ सुमहोत्साहावुभौ भीमपराक्रमौ॥ ८॥
मत्ताविव महाकायौ वारणौ षष्टिहायनौ।

यद्यपि भीम स्वयं उससे कुश्ती नहीं लड़ना चाहते थे, पर जब राजा ने कहा तो उन्होंने दुःख के साथ लड़ने का विचार किया, क्योंकि वे प्रकटरूप से राजा को मना नहीं कर सकते थे। तब विराटराज का सम्मान करने के लिये उस पुरुषव्याघ्र ने सिंह के समान धीरे धीरे चलते हुए उस विशाल अखाड़े में प्रवेश किया। फिर उसके बाद उन्होंने लोगों को हर्षित करते हुए लंगोट बाँधा और फिर भीम ने जीमूत नामक के मल्ल को कुश्ती के लिये ललकारा। वे दोनों ही पहलवान बड़े उत्साह से भरे हुए थे। दोनों ही भयानक पराक्रम वाले थे। दोनों ही विशाल शरीर वाले थे और ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे साठ साठ वर्ष के दो विशालकाय मत्तगजराज हों।

ततस्तौ नरशार्दूलौ बाहुयुद्धं समीयतुः॥ ९॥
वीरौ परमसंहृष्टावन्योन्यजयकाङ्क्षिणौ।
अन्योन्यस्यान्तरं प्रेप्सू, बलेनाति बला वुभौ॥ १०॥
तद् युद्धमभवद्, घोरमशस्त्रं बाहुतेजसा।
बलप्राणेन शूराणां समाजोत्सवसंनिधौ॥ ११॥
अरज्यत जनः सर्वः सोत्क्रुष्टनिनदोत्थितः।

फिर वे दोनों नरसिंह परस्पर हाथों से युद्ध करने लगे। वे दोनों ही वीर थे, एक दूसरे को जीतने की इच्छा रखते थे, अत्यन्त प्रसन्न अवस्था में थे। दोनों ही बल में बढ़ चढ़कर थे। वे दोनों एक दूसरे पर चोट करने का अवसर देख रहे थे। बिना शस्त्रों के उन दोनों में केवल हाथों की शक्ति से ही भयानक युद्ध हो रहा था। शूरवीरों और जनसमुदाय के उत्सव में हो रही उस कुश्ती ने सारे लोगों के मन का मनोरंजन किया। लोग उनका उत्साह बढ़ाने के लिये हर्षनाद कर रहे थे।

प्रकर्षणाकर्षणयोरभ्या कर्षविकर्षणैः॥ १२॥
आकर्षतुरथान्योन्यं जानुभिश्चापि जघ्नतुः।
ततः शब्देन महता भर्त्सयन्तौ परस्परम्॥ १३॥
व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव॥ १४॥
चकर्ष दोर्भ्यामुत्पात्य भीमो मल्लममित्रहा।
निनदन्तमभिक्रोशन् शार्दूल इव वारणम्॥ १५॥
समुद्यम्य महाबाहुर्भ्रामयामास वीर्यवान्।
ततो मल्लाश्च मत्स्याश्च विस्मयं चक्रिरे परम्॥ १६॥

वे दोनों कभी एक दूसरे को अपनी तरफ खींचते तो कभी परे को धकेलते थे। कभी वे दाईं बायीं तरफ पैंतरे बदलते हुए अपने प्रतिद्वन्दी को पटक देते थे। कभी अपनी तरफ खींचते हुए घुटनों से प्रहार करते थे। फिर महान् गर्जना के साथ एक दूसरे को डपटते हुए, चौड़ी छाती और लम्बी भुजाओं

वाले, दाँव पेचों में कुशल, वे दोनों लोहे की परिघों जैसी अपनी बाहों से एक दूसरे से गुथ गये। उसके पश्चात् जैसे चिंघाड़ते हुए हाथी पर गर्जना करता हुआ सिंह झपटे, वैसे ही शत्रुओं को नष्ट करने वाले महाबाहु पराक्रमी भीम ने आक्रमण कर दोनों हाथों से उस पहलवान को खींचा और ऊपर उठाकर घुमाना आरम्भ किया। तब सारे पहलवानों और मत्स्यदेश के वासियों को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ।

भ्रामयित्वा शतगुणं गतसत्त्वमचेतनम्।
प्रत्यपिंषन्महाबाहुर्मल्लं भुवि वृकोदरः॥ १७॥
तस्मिन् विनिहते वीरे जीमूते लोकविश्रुते।
विराटः परमं हर्षमगच्छद् बान्धवैः सह॥ १८॥
प्रहर्षात् प्रददौ वित्तं बहु राजा महामनाः।
बल्लवाय महारङ्गे यथा वैश्रवणस्तथा॥ १९॥

सौ बार घुमाने पर जब वह अपनी हिम्मत छोड़कर चेतना से रहित हो गया, तब महाबाहु भीम ने उस पहलवान को भूमि पर पटक कर मसल दिया। लोकविख्यात उस वीर जीमूत पहलवान के मारे जाने पर, राजा विराट अपने बन्धु और बान्धवों के साथ बहुत प्रसन्न हुआ। तब उस महामना राजा ने अपने अत्यन्त हर्ष के कारण कुबेर की तरह अखाड़े में ही उस बल्लव को बहुत धन दिया।

यदास्य तुल्यः पुरुषो न कश्चित् तत्र विद्यते।
ततो व्याघ्रैश्च सिंहैश्च द्विरदैश्चाप्ययोधयत्॥ २०॥
पुनरन्तःपुरगतः स्त्रीणां मध्ये वृकोदरः।
योध्यते स विराटेन सिंहैर्मत्तैर्महाबलैः॥ २१॥
बीभत्सुरपि गीतेन स्वनृत्येन च पाण्डवः।
विराटं तोषयामास सर्वाश्चान्तः पुरस्त्रियः॥ २२॥

इसके पश्चात् जब भीम के जोड़ का कोई पहलवान नहीं रहा, तब राजा विराट उन्हें बाघों, सिंहों और हाथियों से लड़ाने लगे। कभी विराट के कहने से भीम अन्तःपुर में जाकर स्त्रियों को दिखाने के लिये वहाँ मत्त और महाबलवान् सिंहों से लड़ा करते थे। इसी प्रकार अर्जुन भी अपने गाने और नाचने से विराट राज की सारी अन्तःपुर की स्त्रियों को सन्तुष्ट किया करते थे।

अश्वैर्विनीतैर्जवनैस्तत्र तत्र समागतैः।
तोषयामास राजानं नकुलो नृपसत्तमम्॥ २३॥
तस्मै प्रदेयं प्रायच्छत् प्रीतो राजा धनं बहु।
विनीतान् वृषभान् दृष्ट्वा सहदेवस्य चाभितः॥ २४॥
धनं ददौ बहुविधं विराटः पुरुषर्षभः।
एवं ते न्यवसंस्तत्र प्रच्छन्नाः पुरुषर्षभाः।
कर्माणि तस्य कुर्वाणा विराटनृपतेस्तदा॥ २५॥

नकुल भी वहाँ जहाँ तहाँ से आये हुए वेगशाली घोड़ों को विनम्र बनाकर राजाओं में श्रेष्ठ विराटराज को प्रसन्न किया करते थे और राजा भी प्रसन्न होकर उन्हें बहुत धन दिया करते थे। इसी प्रकार सहदेव के द्वारा प्रशिक्षित किये हुए बैलों को देखकर उन्हें पुरुषश्रेष्ठ विराट बहुत धन दिया करते थे। इस प्रकार वे पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव, गुप्तवेश में राजा विराट के कार्यों को करते हुए वहाँ रहते थे।

दसवाँ अध्याय : कीचक की द्रौपदी के प्रति आसक्ति

वसमानेषु पार्थेषु मत्स्यस्य नगरे तदा।
महारथेषु छन्नेषु मासा दश समाययुः॥ १॥
तथा चरन्ती पाञ्चाली सुदेष्णाया निवेशने।
तां देवीं तोषयामास तथा चान्तःपुरस्त्रियः॥ २॥
तस्मिन् वर्षे गतप्राये कीचकस्तु महाबलः।
सेनापतिर्विराटस्य ददर्श द्रुपदात्मजाम्॥ ३॥
तां दृष्ट्वा देवगर्भाभां चरन्तीं देवतामिव।
कीचकः कामयामास कामबाणप्रपीडितः॥ ४॥
स तु कामाग्निसंतप्तः सुदेष्णामभिगम्य वै।
प्रहसन्निव सेनानीरिदं वचनमब्रवीत्॥ ५॥

कुन्तीपुत्र महारथियों के छिपकर मत्स्यदेश में रहते हुए दस मास व्यतीत हो गये। सैरन्ध्री के वेश में सुदेष्णा के महल में रहते हुए द्रौपदी ने उस देवी को तथा अन्तपुर की सारी स्त्रियों को प्रसन्न किया हुआ था। जब वर्ष समाप्त होने वाला था, तभी विराटराज के महाबली सेनापति कीचक ने द्रौपदी को देख लिया। उसे देवांगना के समान विचरण करते हुए तथा देवकन्या के समान उसके सौन्दर्य को देखकर कीचक कामनाओं के प्रहार से पीड़ित होता हुआ उसे चाहने लगा। तब कामाग्नि

से संतप्त हुआ वह सेनापति सुदेष्णा के समीप जाकर हँसता हुआ सा उससे बोला कि–

नेयं मया जातु पुरेह दृष्टा
राज्ञो विराटस्य निवेशने शुभा।
रूपेण चोन्मादयतीव मां भृशं
गन्धेन जाता मदिरेव भामिनी॥ ६॥
का देवरूपा हृदयङ्गमा शुभे
ह्याचक्ष्व मे कस्य कुतोऽत्र शोभने।
चित्तं हि निर्मथ्य करोति मां वशे
न चान्यदत्रौषधमस्ति मे मतम्॥ ७॥

हे भामिनी! राजा विराट के घर में यहाँ इस सुन्दरी को मैनें पहले कभी नहीं देखा। यह अपने सौन्दर्य से मुझे अत्यन्त पागल सा बना रही है और अपनी गन्ध से यह मेरे लिये मदिरा सी अत्यन्त मादक हो रही है। हे शुभे! यह देवांगना के समान मेरे हृदय में समा गयी है। यह कौन है? और किसकी कन्या है? और कहाँ से आयी है? हे शोभने! यह मेरे चित्त को मथ कर मुझे अपने वश में किये लेती है। मेरे विचार से मेरे इस रोग की औषधि, इसकी प्राप्ति के आतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अहो तवेयं परिचारिका शुभा
प्रत्यग्ररूपाप्रतिभाति मामियम्।
अयुक्तरूपं हि करोति कर्म ते
प्रशास्तु मां यच्च ममास्ति किंचन॥ ८॥
प्रभूतनागाश्वरथं महाजनं
समृद्धियुक्तं बहुपानभोजनम्।
मनोहरं काञ्चनचित्रभूषणं
गृहं महच्छोभयतामियं मम॥ ९॥

अरे! यह सुन्दरी! तुम्हारे यहाँ दासी का काम करती है? मुझे इसका रूप नित्य नवीन प्रतीत हो रहा है। जो काम यह कर रही है, वह इसके योग्य नहीं है। यह मेरे ऊपर और जो कुछ भी मेरे पास है, उस सब पर शासन करे। मेरे घर में बहुत से हाथी, रथ और घोड़े हैं, बहुत सारे सेवक हैं, मेरा घर समृद्धि से भरा हुआ है, जिसमें पीने और खाने की बहुत सी सामग्रियाँ हैं। वह बहुत विशाल और सुन्दर है। सुनहरे चित्रों से उसे सजाया हुआ है। यह उसे सुशोभित करे।

ततः सुदेष्णामनुमन्त्र्य कीचक–
स्ततः समभ्येत्यनराधिपात्मजाम्।
उवाच कृष्णामभिसान्त्वयंस्तदा
मृगेन्दकन्यामिव जम्बुको वने॥ १०॥

तब सुदेष्णा से सलाह कर कीचक वहाँ से उस राजपुत्री द्रौपदी के पास जाकर उसे सान्त्वना देता हुआ उससे इस प्रकार बोला जैसे वन में कोई गीदड़ किसी शेरनी को फुसलाने के लिये उससे बात करे।

का त्वं कस्यासि कल्याणि कुतो वा त्वं वरानने।
प्राप्ता विराटनगरं तत् त्वमाचक्ष्व शोभने॥ ११॥
रूपमग्र्यं तथा कान्तिः सौकुमार्यमनुत्तमम्।
कान्त्या विभाति वक्त्रं ते शशाङ्क इवनिर्मलम्॥ १२॥
नेत्रे सुविपुले सुभ्रु पद्मपत्रनिभे शुभे।
वाक्य ते चारुसर्वाङ्गि परपुष्टरुतो पमम्॥ १३॥
एवं रूपा मया नारी काचिदन्या महीतले।
न दृष्टपूर्वा सुश्रोणि यादृशी त्वमनिन्दिते॥ १४॥

हे कल्याणि! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? हे सुन्दरी! तुम इस विराट नगर में कहाँ से आई हो? हे शोभने! तुम मुझे यह सब बताओ। तुम्हारा सौन्दर्य श्रेष्ठ है, कान्ति दिव्य है और सुकुमारता उत्तम है। तुम्हारा मुख अपनी छवि से निर्मल चन्द्रमा के समान प्रतीत होता है। हे सुन्दर भौहों वाली, सर्वांगसुन्दरी! तुम्हारे विशाल नेत्र कमल के समान सुन्दर हैं। तुम्हारी वाणी कोयल की कूक के समान है। हे सुश्रोणी! हे अनिन्दिते! जैसी तुम हो वैसी कोई भी दूसरी स्त्री इस भूतल पर पहले कभी नहीं देखी।

अपि चेक्षणपक्ष्माणां स्मितं ज्योत्स्नोपमं शुभम्।
दिव्यांशुरश्मिभिर्वृत्तं दिव्यकान्तिमनोरमम्॥ १५॥
निरीक्ष्य वक्त्रचन्द्रं ते लक्ष्म्यानुपमया युतम्।
कृत्स्ने जगति को नेह कामस्य वशगो भवेत्॥ १६॥

तुम्हारी पलकों की मुस्कराहट चाँदनी के समान आनन्ददायक है। अलौकिक किरणों से आवृत्त चन्द्रमा के समान, अद्वितीय सौन्दर्य से युक्त और अलौकिक कान्ति से मन को हरण करने वाले तुम्हारे मुख को देख कर इस सारे संसार में कौन काम के वश में नहीं हो जायेगा?

चित्रमाल्याम्बरधरा सर्वाभरणभूषिता।
कामं प्रकामं सेव त्वं मया सह विलासिनि॥ १७॥
नार्हसीहासुखं वस्तुं सुखार्हा सुखवर्जिता।
प्राप्नुह्यनुत्तमं सौख्यं मत्तस्त्वं मत्तगामिनि॥ १८॥

स्वादून्यमृतकल्पानि पेयानि विविधानि च।
पिबमाना मनोज्ञानि रममाणा यथासुखम्॥ १९॥

हे विलासिनी! तुम विचित्र हारों और वस्त्रों को धारण करो। सब प्रकार के आभूषणों से भूषित होकर मेरे साथ अतिशय कामनाओं की पूर्ति करो। तुम सुख भोगने योग्य हो, पर यहाँ सुखों से रहित होकर दुःखों के साथ रहती हो। तुम इसके योग्य नहीं हो। हे मस्ती से भरी चालवाली! तुम मुझसे उत्तम सुखों को प्राप्त करो। तुम अमृत के समान स्वादिष्ट, मन को अच्छे लगने वाले अनेक प्रकार के पेय पदार्थों को पीती हुई मेरे साथ जैसे सुख मिले वैसे ही रमण करो।

इदं हि रूपं प्रथमं तवानघे
निरर्थकं केवलमद्य भामिनि।
अधार्यमाणा स्त्रगिवोत्तमा शुभा
नशोभसे सुन्दरि शोभना सती॥ २०॥
त्यजामि दारान् मम ये पुरातना
भवन्तु दास्यस्तव चारुहासिनि।
अहं च ते सुन्दरि दासवत् स्थितः
सदा भविष्ये वशगो वरानने॥ २१॥

हे पाप रहित भामिनी! तुम्हारा यह सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य इस समय व्यर्थ हो रहा है। जैसे किसी सुन्दर हार को यदि कोई धारण न करे, तो उसकी सुन्दरता सार्थक नहीं होती, वैसे ही हे सुन्दरी! शोभामयी होकर भी किसी के गले का हार न होने के कारण तुम्हारी सुन्दरता व्यर्थ हो रही है। हे सुन्दर हँसी वाली, हे सुन्दर मुखवाली सुन्दरी! मैं तुम्हारे लिये अपनी सारी पुरानी स्त्रियों को छोड़ दूँगा। या वे तुम्हारी दासियाँ बन जाएँगी। मैं भी दास के समान सदा तुम्हारे आधीन रहूँगा।

द्रौपद्युवाच

अप्रार्थनीयामिह मां सूतपुत्राभिमन्यसे।
निहीनवर्णां सैरन्ध्रीं वीभत्सां केशकारिणीम्॥ २२॥
स्वेषु दारेषु मेधावी कुरुते यत्नमुत्तमम्।
स्वदारनिरतो ह्याशु नरो भद्राणि पश्यति॥ २३॥
न चाधर्मेण लिप्येत न चाकीर्तिमवाप्नुयात्।
स्वदारेषु रतिर्धर्मो मृतस्यापि न संशयः॥ २४॥

तब द्रौपदी ने कहा कि हे सूतपुत्र! तुम मुझ न चाहने योग्य को चाहते हो। मैं नीची जाति की हूँ, बाल सँवारने वाली सैरन्ध्री हूँ, मैले वेश में रहती हूँ। बुद्धिमान् व्यक्ति अपनी ही पत्नी के लिये यत्न करता है। अपनी ही पत्नी से प्रेम करने वाला व्यक्ति शीघ्र ही कल्याण को प्राप्त करता है। मनुष्य को चाहिये कि वह अधर्म में लिप्त न हो और अपयश का भागी न हो। अपनी पत्नी में प्रेम ही धर्म है और यह मृत व्यक्ति के लिये भी कल्याणकारी है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

परदारास्मि भद्रं ते न युक्तं तव साम्प्रतम्।
दयिताः प्राणिनां दारा धर्मं समनुचिन्तय॥ २५॥
परदारे न ते बुद्धिर्जातु कार्या कथंचन।
विवर्जनं ह्यकार्याणामेतत् सुपुरुषव्रतम्॥ २६॥
मिथ्याभिगृध्नो हि नरः पापात्मा मोहमास्थितः।
अयशः प्राप्नुयाद् घोरं महद् वा प्राप्नुयाद् भयम्॥ २७॥

मैं दूसरे की पत्नी हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे लिये मुझसे ऐसी बातें करना ठीक नहीं है। सारे प्राणियों को अपनी स्त्रियाँ प्यारी होती हैं। इसलिये तुम धर्म का विचार करो। तुम्हें किसी प्रकार भी परायी स्त्री से मन नहीं लगाना चाहिये। उत्तम पुरुषों का यही व्रत है कि अनुचित कार्यों का त्याग कर दिया जाये। झूठे विषयों में आसक्त पापी मनुष्य मोह में पड़कर या तो महान् अपयश को प्राप्त करता है, या भयानक भय अर्थात् मृत्यु को प्राप्त करता है।

एवमुक्तस्तु सैरन्ध्या कीचकः काममोहितः।
जानन्नपि सुदुर्बुद्धिः परदाराभिमर्शने॥ २८॥
दोषान् बहून् प्राणहरान् सर्वलोकविगर्हितान्।
प्रोवाचेदं सुदुर्बुद्धिर्द्रौपदीमजितेन्द्रियः॥ २९॥

सैरन्ध्री के इस प्रकार कहने पर भी, काम से मोहित वह दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय कीचक, यह जानते हुए भी कि परायी स्त्रियों को स्पर्श करने में सारे लोगों में निन्दा तथा प्राण हरण होने का भी दोष है, द्रौपदी से यह बोला कि—

नार्हस्येवं वरारोहे प्रत्याख्यातुं वरानने।
मां मन्मथसमाविष्टं त्वत्कृते चारुहासिनि॥ ३०॥
प्रत्याख्याय च मां भीरु वशगं प्रियवादिनम्।
नूनं त्वमसितापाङ्गि पश्चात्तापं करिष्यसि॥ ३१॥
अहं हि सुभ्रु राज्यस्य कृत्स्नस्यास्य सुमध्यमे।
प्रभुर्वासयिता चैव वीर्ये चाप्रतिमः क्षितौ॥ ३२॥

हे सुन्दर मुखवाली! तुम्हें मेरी प्रार्थना इस प्रकार नहीं ठुकरानी चाहिये। हे सुन्दर हँसी वाली! मैं तुम्हारे

लिये काम के वेग से पीड़ित हूँ, हे श्याम नेत्रों वाली! भीरु! तुम अपने वश में पड़े हुए प्रियवादी मुझे ठुकराकर निश्चय ही पश्चाताप करोगी। हे अच्छी भौंहों वाली सुमध्यमे! मैं इस सारे राज्य का स्वामी और इसे बसाने वाला हूँ। मैं पराक्रम में इस भूमि पर अद्वितीय हूँ।

पृथिव्यां मत्समो नास्ति कश्चिदन्यः पुमानिह।
रूपयौवनसौभाग्यैर्भोगैश्चानुत्तमैः शुभैः॥ ३३॥
सर्वकामसमृद्धेषु भोगेष्वनुपमेष्विह।
भोक्तव्येषु च कल्याणि कस्माद् दास्ये रता ह्यसि॥ ३४॥
मया दत्तमिदं राज्यं स्वामिन्यसि शुभानने।
भजस्व मां वरारोहे भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान्॥ ३५॥
एवमुक्ता तु सा साध्वी कीचकेनाशुभं वचः।
कीचकं प्रत्युवाचेदं गर्हयन्त्यस्य तद् वचः॥ ३६॥

इस भूमि पर सर्वोत्तम और शुभ रूप, यौवन, सौभाग्य और भोग में मेरी तुलना करने वाला कोई दूसरा पुरुष नहीं है। तुम्हें सारी कामनाओं से समृद्ध सर्वोत्तम भोग भोगने के लिये प्राप्त हो रहे हैं। फिर भी हे कल्याणी! तुम दासीपने में क्यों लगी हुई हो? हे सुन्दर मुखवाली! मैंने यह राज्य तुम्हें दे दिया। तुम इसकी स्वामिनी हो। हे सुन्दरी! तुम मुझे अपनाओ और सर्वोत्तम भोगों को भोगो।

मा सूतपुत्र मुह्यस्व माद्य त्यक्ष्यस्व जीवितम्।
जानीहि पञ्चभिर्घोरैर्नित्यं मामभिरक्षिताम्॥ ३७॥
अशक्यरूपं पुरुषैरध्वानं गन्तुमिच्छसि।
यथा निश्चेतनो बालः कूलस्थः कूलमुत्तरम्।
तर्तुमिच्छति मन्दात्मा तथा त्वं कर्तुमिच्छसि॥ ३८॥
दुर्लभामभिमन्वानो मां वीरैरभिरक्षिताम्।
पतिष्यस्यवशस्तूर्णं वृन्तात् तालफलं यथा॥ ३९॥

हे सूतपुत्र! तुम मोह में मत पड़ो। अपने प्राणों से हाथ मत धो बैठना। यह जान लो कि पाँच भयानक व्यक्ति सदा मेरी रक्षा करते हैं। तुम उस रास्ते पर जाना चाहते हो, जिस पर दूसरे पुरुष नहीं चल सकते। जैसे कोई नादान और मन्दबुद्धि बालक नदी के इस किनारे से उस किनारे तक तैरकर जाना चाहता है, वैसे ही तुम करना चाहते हो। मैं वीर पुरुषों के द्वारा सुरक्षित हूँ और तुम्हारे लिये दुर्लभ हूँ, फिर भी मेरा अपमान करने से तुम्हारा जल्दी ही विवशतापूर्वक इस प्रकार पतन होगा, जैसे ताड़ का फल अपनी डाल से टूटकर नीचे की तरफ गिरता है।

मोघं तवेदं वचनं भविष्यति
प्रतोलनं वा तुलया महागिरेः।
त्वं कालरात्रीमिव कश्चिदातुरः
किं मां दृढं प्रार्थयसेऽद्य कीचक॥ ४०॥

हे कीचक! तुम्हारे ये वचन बेकार सिद्ध होंगे। मुझे पाना तराजू से महान् पर्वत को तोलने के समान असम्भव है। जैसे कोई बीमार अपने लिये स्वयं काल रात्रि को बुलाये, वैसे ही तू क्यों मेरे लिये दुराग्रहयुक्त प्रार्थना कर रहा है।

ग्यारहवाँ अध्याय : रानी सुदेष्णा का द्रौपदी को कीचक के घर भेजना।

प्रत्याख्यातो राजपुत्र्या सुदेष्णां कीचकोऽब्रवीत्।
अमर्यादेन कामेन घोरेणाभिपरिप्लुतः॥ १॥
यथा कैकेयी सैरन्ध्री समेयात् तद् विधीयताम्।
येनोपायेन सैरन्ध्री भजेन्मां गजगामिनी॥ २॥
तं सुदेष्णे परीप्सस्व प्राणान् मोहात् प्रहासिषम्।
तस्य सा बहुशः श्रुत्वा वाचं विलपतस्तदा॥ ३॥
विराटमहिषी देवी कृपां चक्रे मनस्विनी।
स्वमन्त्रमभिसंधाय तस्यार्थमनुचिन्त्य च॥ ४॥
उद्योगं चैव कृष्णायाः सुदेष्णा सूतमब्रवीत्।

राजपुत्री द्रौपदी के द्वारा ठुकराये जाने पर, अमर्यादित घोर कामवासना से परिपूर्ण वह कीचक रानी सुदेष्णा से बोला कि कैकेयराजपुत्री! यह गजगामिनी सैरन्ध्री जिस उपाय के द्वारा मोह से प्राण का त्याग करने के लिये उद्यत मुझे स्वीकार कर ले, वह उपाय करो। तुम भी उस उपाय को ढूँढो। तब बारबार विलाप करते हुए कीचक की बातें सुन कर विराटरानी मनस्वी, देवी सुदेष्णा के मन में उसके प्रति दया आ गयी। तब कीचक के मनोभावों पर ध्यान करके और उसके लिये द्रौपदी की प्राप्ति के कार्य पर विचार करके सुदेष्णा ने उस सूत से कहा कि–

पर्वणि त्वं समुद्दिश्य सुरामन्नं च कारय॥ ५॥
तत्रैनां प्रेषयिष्यामि सुराहारीं तवान्तिकम्।
तत्र सम्प्रेषितामेनां विजने निरवग्रहे॥ ६॥
सान्त्वयेथा यथाकामं सान्त्व्यमाना रमेद् यदि।

इत्युक्तः स विनिष्क्रम्य भगिन्या वचनात् तदा॥ ७॥
सुरामाहारयामास राजार्हां सुपरिष्कृताम्।
भक्ष्यांश्च विविधाकारान् बहूंश्चोच्चावचांस्तदा॥ ८॥
कारयामास कुशलैरन्नं पानं सुशोभनम्।

तुम किसी विशेष पर्व पर अपने घर पर अच्छा भोजन और मद्य आदि तैयार कराओ। तब मैं सुरा लाने के बहाने इसे तुम्हारे घर भेज दूँगी। वहाँ भेजी हुई इसे तुम एकान्त में, जहाँ कोई विघ्न बाधा न हो, इच्छानुसार समझाना। शायद समझाये जाने पर यह तैयार हो जाये। ऐसा कहे जाने पर कीचक ने बहन के कहने के अनुसार अपने घर जाकर राजाओं के योग्य बढ़िया शराब मँगवाई और अनेक प्रकार के विशिष्ट और साधारण खाद्य पदार्थों को चतुर रसोइयों के द्वारा तैयार कराया तथा उत्तम अन्नपान की व्यवस्था करायी।

तस्मिन् कृते तदा देवी कीचकेनोपमन्त्रिता॥ ९॥

सुदेष्णोवाच

उत्तिष्ठ गच्छ सैरन्ध्रि कीचकस्य निवेशनम्।
पानमानय कल्याणि पिपासा मां प्रबाधते॥ १०॥

सैरन्ध्र्युवाच

न गच्छेयमहं तस्य राजपुत्रि निवेशनम्।
त्वमेव राज्ञि जानासि यथा स निरपत्रपः॥ ११॥

इस प्रकार सारी तैयारी होने पर कीचक ने सुदेष्णा को भोजन के लिये निमन्त्रित किया। तब सुदेष्णा ने सैरन्ध्री से कहा कि हे सैरन्ध्री! उठो कीचक के घर जाओ और मेरे लिये रस ले आओ। हे कल्याणी! मुझे प्यास लग रही है। तब सैरन्ध्री ने कहा कि हे राजकुमारी! मैं उसके घर नहीं जाऊँगी। महारानी! आप जानती हैं कि वह कितना निर्लज्ज है।

कीचकस्तु सुकेशान्ते मूढो मदनदर्पितः।
सोऽवमंस्यति मां दृष्ट्वा न यास्ये तत्र शोभने॥ १२॥
सन्ति बह्व्यस्तव प्रेष्या राजपुत्रि वशानुगाः।
अन्यां प्रेषय भद्रं ते स हि मामवमंस्यते॥ १३॥

सुदेष्णोवाच

नैव त्वां जातु हिंस्यात् स इतः सम्प्रेषितां मया।
इत्युक्त्वा प्रददौ पात्रं सपिधानं हिरण्मयम्॥ १४॥
सा शङ्कमाना रुदती दैवं शरणमीयुषी।
प्रातिष्ठत सुराहारी कीचकस्य निवेशनम्॥ १५॥
तां मृगीमिव संत्रस्तां दृष्ट्वा कृष्णां समीपगाम्।
उदतिष्ठन्मुदा सूतो नावं लब्ध्वेव पारगः॥ १६॥

हे सुन्दर केशों वाली सुन्दरी! कीचक तो मूर्ख है और काम भावना से पागल हो रहा है। वह मुझे देखते ही मेरा अपमान कर देगा। इसलिये मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। हे राजपुत्री! आपके पास और बहुत सी सेविकाएँ हैं। आपका कल्याण हो! आप किसी दूसरी को वहाँ भेज दीजिये। वह मेरा अपमान कर देगा। तब सुदेष्णा ने उससे कहा कि मैं जब यहाँ से भेजूँगी, तो वह तुम्हें कभी कष्ट नहीं देगा। ऐसा कह कर उसने सुरा लाने के लिये ढकने वाला सोने का पात्र उसे दे दिया। तब शंका से भरी हुई और रोती हुई तथा भगवान् से प्रार्थना करती हुई वह द्रौपदी सुरा लेने के लिये कीचक के घर गयी। हिरणी के समान डरी हुई उस द्रौपदी को अपने समीप आया हुआ देख कर वह सारथी का पुत्र आनन्द में भर कर इस प्रकार खड़ा हो गया, जैसे पार जाने वाला नाव को देख कर हो जाता है।

बारहवाँ अध्याय : कीचक द्वारा द्रौपदी का अपमान।

कीचक उवाच

स्वागतं ते सुकेशान्ते सुव्युष्टा रजनी मम।
स्वामिनी त्वमनुप्राप्ता प्रकुरुष्व मम प्रियम्॥ १॥
सुवर्णमालाः कम्बूश्च कुण्डले परिहाटके।
नानापत्तनजे शुभ्रे मणिरत्नं च शोभनम्॥ २॥
आहरन्तु च वस्त्राणि कौशिकान्यजिनानि च।
अस्ति मे शयनं दिव्यं त्वदर्थमुपकल्पितम्॥ ३॥
एहि तत्र मया सार्द्धं पिबस्व मधुमाधवीम्।

द्रौपदी उवाच

अप्रैषीद् राजपुत्री मां सुराहारीं तवान्तिकम्।
पानमाहर मे क्षिप्रं पिपासा मेऽति चाब्रवीत्॥ ४॥

तब कीचक ने सैरन्ध्री से कहा कि हे अच्छे केशों वाली सैरन्ध्री! तुम्हारा स्वागत है। आज की रात्रि का प्रभात मेरे लिये बहुत अच्छा है। हे स्वामिनी! तुम आ गयी हो, अब मेरा प्रिय कार्य करो। मैं आज्ञा देता हूँ। मेरी दासियाँ तुम्हारे लिये

सोने के हार, शंख की चूड़ियाँ, अनेक नगरों में बने हुए सुन्दर सोने के कुण्डल, सुन्दर मणिरत्न, रेशमी साड़ियाँ और मृगचर्म लायें। तुम्हारे लिये मैंने यह शैया दिव्य रूप से सजाई हुई है। तुम मेरे साथ इस पर आओ और मधुर माध्वी सुरा का पान करो। तब द्रौपदी ने कहा कि राजकुमारी सुदेष्णा ने मुझे सुरा लाने के लिये आपके पास भेजा है और कहा है कि मुझे प्यास लग रही है। जल्दी मेरे लिये पेय लेकर आओ।

स तामभिप्रेक्ष्य विशालनेत्रां
जिघृक्षमाणः परिभर्त्सयन्तीम्।
जग्राह तामुत्तरवस्त्रदेशे
स कीचकस्तां सहसाऽऽक्षिपन्तीम्॥ ५॥
प्रगृह्यमाणा तु महाजवेन
मुहुर्विनिःश्वस्य च राजपुत्री।
तया समाक्षिप्ततनुः स पापः
पपात शाखीव निकृत्तमूलः॥ ६॥

तब कीचक ने उस विशाल नेत्रों वाली द्रौपदी को पकड़ने की इच्छा की, पर उसे फटकारते हुए और पीछे हटते हुए देख कर उसने झपट कर उत्तरीय पकड़ लिया और बड़े ज़ोर से उसे अपने बस में करने का प्रयत्न करने लगा। तब उस राजपुत्री ने बार-बार लम्बी साँसें भरते हुए उसे जोर से धक्का दिया, जिससे वह जड़कटे वृक्ष की तरह भूमि पर गिर पड़ा।

सा गृहीता विधुन्वाना भूमावाक्षिप्य कीचकम्।
सभां शरणमागच्छद् यत्र राजा युधिष्ठिरः॥ ७॥
तां कीचकः प्रधावन्तीं केशपाशे परामृशत्।
अथैनां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदावधीत्॥ ८॥

कीचक के द्वारा पकड़ी हुई और फिर उसे भूमि पर गिराकर काँपती हुई द्रौपदी ने तब दौड़कर उस राजसभा की शरण ली, जहाँ राजा युधिष्ठिर विद्यमान थे। तब कीचक ने उस भागती हुई द्रौपदी का पीछा किया और विराट राजा के देखते हुए ही उनके सामने बाल पकड़कर, उसे भूमि पर गिरा दिया और लात मारी।

तां चासीनौ ददृशतुर्भीमसेनयुधिष्ठिरौ।
अमृष्यमाणौ कृष्णायाः कीचकेन पराभवम्॥ ९॥
तस्य भीमो वधं प्रेप्सुः कीचकस्य दुरात्मनः।
दन्तैर्दन्तांस्तदा रोषान्निष्पिपेष महामनाः॥ १०॥
धूमच्छायां ह्यभजतां नेत्रे चोच्छ्रितपक्ष्मणी।
सस्वेदा भृकुटी चोग्रा ललाटे समवर्तत॥ ११॥
हस्तेन ममृजे चैव ललाटं परवीरहा।
भूयश्च त्वरितः क्रुद्धः सहसोत्थातुमैच्छत॥ १२॥

वहाँ बैठे हुए भीम और युधिष्ठिर दोनों ने उसे इस अवस्था में देखा। कीचक के द्वारा द्रौपदी का अपमान वे सहन न कर सके। महामना भीम तब उस दुष्ट कीचक का वध करने की इच्छा से रोष में भर कर दाँतों से दाँतों को पीसने लगे। उनकी आँखों में धूआँ सा छा गया और पलकें ऊपर को चढ़ गयीं। ललाट में विद्यमान उनकी दोनों भौंहें पसीने से भर गयीं और भयानक प्रतीत होने लगीं। शत्रुवीरहन्ता भीम माथे से अपने हाथ का पसीना पोंछने लगे और एक दम उठने का प्रयत्न करने लगे।

अथावमृद्नादंगुष्ठमङ्गुष्ठेन युधिष्ठिरः।
प्रबोधनभयाद् राजा भीमं तं प्रत्यषेधयत्॥ १३॥
इङ्गितज्ञः स तु भ्रातुस्तूष्णीमासीद् वृकोदरः।
भीमस्य तु समारम्भं दृष्ट्वा राज्ञश्च चेष्टितम्॥ १४॥
द्रौपद्यभ्यधिकं क्रुद्धा प्रारुदत् सा पुनः पुनः।
सा सभाद्वारमासाद्य रुदती मत्स्यमब्रवीत्॥ १५॥
आकारमभिरक्षन्ती प्रतिज्ञाधर्मसंहिता।
दह्यमानेव रौद्रेण चक्षुषा द्रुपदात्मजा॥ १६॥

तब राजा युधिष्ठिर ने अज्ञातवास के रहस्य की जानकारी हो जाने के भय से भीम के अँगूठे को अपने अँगूठे से दबाया और उसे उत्तेजित होने से रोका। भाई के संकेत को समझ कर तब वृकोदर भीम चुप होकर बैठ गये। भीम के उस क्रोध और राजा युधिष्ठिर की उस शान्ति के लिये चेष्टा को देख कर द्रौपदी और अधिक क्रुद्ध हो गयी और बार-बार रोने लगी। सभा के द्वार पर आकर रोती हुई, अज्ञातवास की प्रतिज्ञा से बँधी हुई, अपने असली रूप को छिपाती हुई, जलती हुई भयानक आँखों के साथ वह द्रुपद की पुत्री मत्स्यराज से बोली कि–

राजन् धर्मासनस्थोऽपि रक्ष मां त्वमनागसीम्।
अहं त्वनपराध्यन्ती कीचकेन दुरात्मना॥ १७॥
पश्यतस्ते महाराज हता पादेन दासवत्।
अतस्त्वाहमभिक्रन्दे शरणार्थं नराधिप॥ १८॥
त्राहि मामद्य राजेन्द्र कीचकात् पापपूरुषात्।
दस्यूनामिव धर्मस्ते नहि संसदि शोभते॥ १९॥

नाहमेतेन युक्तं वै हन्तुं मत्स्य तवान्तिके।
सभासदोऽत्र पश्यन्तु कीचकस्य व्यतिक्रमम्॥ २०॥

हे राजन्! आप धर्मासन पर बैठे हुए हैं। आपके यहाँ बैठे हुए भी मुझ निष्पाप और निरपराधिनी को इस दुष्ट कीचक ने पैर से मारा है और मेरे साथ गुलामों जैसा बर्ताव किया है इसलिये हे नराधिप! मैं शरण पाने के लिये आपके सम्मुख रो रही हूँ। हे राजेन्द्र! आप मुझे इस पापी कीचक से बचाइये। आपके सामने ही इसने मुझे मारा, यह उचित नहीं है। इस राजसभा में लुटेरों का सा यह आचरण शोभा नहीं देता। सारे सभासद भी कीचक के इस अत्याचार को ध्यान से देखें।

इत्युक्त्वा प्राद्रवत् कृष्णा सुदेष्णाया निवेशनम्।
केशान् मुक्त्वा च सुश्रोणी संरम्भाल्लोहितेक्षणा॥ २१॥

सुदेष्णोवाच

कस्त्वावधीद् वरारोहे कस्माद् रोदिषि शोभने।
कस्याद्य न सुखं भद्रे केन ते विप्रियं कृतम्॥ २२॥

द्रौपद्युवाच

कीचको मावधीत् तत्र सुराहारीं गतां तव।
सभायां पश्यतो राज्ञो यथैव विजने वने॥ २३॥

सुदेष्णोवाच

घातयामि सुकेशान्ते कीचकं यदि मन्यसे।
योऽसौ त्वां कामसम्मत्तो दुर्लभामवमन्यते॥ २४॥

सैरन्ध्र्युवाच

अन्ये चैनं वधिष्यन्ति येषामागः करोति सः।
मन्ये चैवाद्य सुव्यक्तं यमलोकं गमिष्यति॥ २५॥

ऐसा कह कर खुले केशों वाली और क्रोध से लाल आँखें किये द्रौपदी तेजी से सुदेष्णा के महल में चली गयी। तब सुदेष्णा ने उससे पूछा कि हे सुन्दरी! हे शोभने! तू क्यों रो रही है? मुझे किसने मारा है? हे भद्रे! किसने तेरा अपराध किया है? आज किसका सुख समाप्त हो गया है? तब द्रौपदी ने कहा कि मैं जब आपके लिये सुरा को लेने गयी, तब कीचक ने राज सभा में राजा के सामने ही मुझे ऐसे मारा जैसे सुनसान वन में मार रहा हो। तब सुदेष्णा ने कहा कि हे कमनीय केशों वाली! जो यह कीचक काम के बस होकर तुझ जैसी दुर्लभ स्त्री का अपमान करता हे, तो यदि तेरी सलाह हो तो इसे मरवा दूँ। तब द्रौपदी ने उत्तर दिया कि जिन लोगों का यह अपराध कर रहा है, वे दूसरे लोग ही इसे मार डालेंगे।

तेरहवाँ अध्याय : द्रौपदी का भीम को जाकर अपना दुख बताना।

जगामावासमेवाथ सा तदा द्रुपदात्मजा।
कृत्वा शौचं यथान्यायं कृष्णा सा तनुमध्यमा॥ १॥
गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा।
चिन्तयामास रुदती तस्य दुःखस्य निर्णयम्॥ २॥
किं करोमि क्व गच्छामि कथं कार्यं भवेन्मम।
इत्येवं चिन्तयित्वा सा भीमं वै मनसागमत्॥ ३॥
नान्यः कर्ता ऋते भीमान्ममाद्य मनसः प्रियम्।

उसके पश्चात् वह द्रुपद पुत्री अपने निवास स्थान पर गयी और उस सूक्ष्म कटिवाली ने जल से अपने शरीरांगों तथा वस्त्रों को धोकर यथोचित रीति से सफाई की। वह रोती हुई अपने दुःख के निवारण का उपाय सोचने लगी। मैं क्या करूँ? इस कीचक से बचने के लिये कहाँ जाऊँ? कैसे मेरा कार्य पूरा हो? इस प्रकार विचार करते हुए उसने भीमसेन को याद किया। वह कहने लगी कि मेरे मन का प्रिय कार्य भीम के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।

तत उत्थाय रात्रौ सा विहाय शयनं स्वकम्॥ ४॥
भवनं भीमसेनस्य प्रविवेश मनस्विनी।
यस्मिन् भीमस्तथा शेते मृगराज इव श्वसन्॥ ५॥

सैरन्ध्र्युवाच

तस्मिञ्जीवति पापिष्ठे सेनावाहे मम द्विषि।
तत् कर्म कृतवानद्य कथं निद्रां निषेवसे॥ ६॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे भीमसेन यथा मृतः।
स सम्प्रहाय शयनं राजपुत्र्या प्रबोधितः॥ ७॥
उपातिष्ठत मेघाभः पर्यंके सोपसंग्रहे।

फिर वह रात में अपना सोना छोड़ कर उठी और भीमसेन के घर में उस मनस्विनी ने प्रवेश किया, जहाँ भीम सिंह के समान साँसें खींचते हुए सो रहे थे। उसने भीम से कहा कि मेरे शत्रु पापी उस सेनापति के जीवित रहते हुए, जिसने आज मेरे अपमान का कार्य किया, तुम कैसे नींद ले रहे हो? राजकुमारी के द्वारा जगाये जाने पर बादलों के समान

वह भीम सोने का कार्य छोड़ कर, बिस्तरा बिछे हुए उस पलंग पर उठ कर बैठ गये।

अथाब्रवीद् राजपुत्रीं कौरव्यो महिषीं प्रियाम्॥ ८॥
केनास्यर्थेन सम्प्राप्ता त्वरितेव ममान्तिकम्।
न ते प्रकृतिमान् वर्णः कृशा पाण्डुश्च लक्ष्यसे॥ ९॥
आचक्ष्व परिशेषेण सर्वं विद्यामहं यथा।
सुखं वा यदि वा दुःखं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्॥ १०॥
यथावत् सर्वमाचक्ष्व श्रुत्वा ज्ञास्यामि यत् क्षमम्।
शीघ्रमुक्त्वा यथाकामं यत् ते कार्यं विवक्षितम्॥ ११॥
गच्छ वै शयनायैव पुरा नान्येन बुध्यते।

फिर वह कुरुवंशी प्रिय महारानी राजपुत्री द्रौपदी से बोले कि तुम मेरे पास उतावली के साथ किस काम से आयी हो? तुम्हारे शरीर की कान्ति स्वाभाविक नहीं है। तुम कमजोर और पीली दिखाई दे रही हो। तुम सारी बात बताओ, जिससे मैं सब कुछ जान सकूँ। तुम्हें सुख हो या दुःख, तुम्हारा बुरा हुआ या भला, सब कुछ ठीक-ठीक बताओ। सुन कर जो उचित कार्य करने योग्य होगा उसे सोचूँगा। तुम अपनी इच्छा के अनुसार जिस कार्य के लिये कहना चाहती हो, उसे जल्दी कहकर, इससे पहले कि किसी को मालूम हो जाये, सोने के लिये चली जाओ।

द्रौपद्युवाच

अशोच्यत्वं कुतस्तस्य यस्या भर्ता युधिष्ठिरः॥ १२॥
जानन् सर्वाणि दुःखानि किं मां त्वं परिपृच्छसि।
मत्स्यराजसमक्षं तु तस्य धूर्तस्य पश्यतः॥ १३॥
कीचकेन परामृष्टा का नु जीवति मादृशी।
योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम भारत॥ १४॥
सेनानीः पुरुषव्याघ्र श्यालः परमदुर्मतिः।
स मां सैरन्ध्रिवेषेण वसन्तीं राजवेश्मनि॥ १५॥
नित्यमेवाह दुष्टात्मा भार्या मम भवेति वै।
तेनोपमन्त्र्यमाणाया वधार्हेण सपत्नहन्॥ १६॥
कालेनेव फलं पक्वं हृदयं मे विदीर्यते।

तब द्रौपदी ने कहा कि जिसका पति युधिष्ठिर है, वह शोक रहित कैसे रह सकती है? मेरे सारे दुःखों को जानते हुए भी तुम मुझ से क्यों पूछ रहे हो? मत्स्यराज के सामने ही उस धूर्त राजा के देखते हुए कीचक के द्वारा अपमान की हुई मेरी जैसी कौन स्त्री जीवित रह सकती है? हे भारत, हे पुरुषव्याघ्र! राजा विराट का जो यह कीचक नाम का साला सेनापति है, वह अत्यन्त दुष्ट बुद्धि है। राजमहल में सैरन्ध्री के वेश में रहती हुई मुझसे वह दुष्टात्मा रोज यह कहता है तू मेरी पत्नी बन जा। हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले उस मार देने योग्य के द्वारा परेशान होते हुए मेरा हृदय समय पर पकने वाले फल की तरह फटने को हो रहा है।

इदं तु दुःखं कौन्तेय ममासह्यं निबोध तत्॥ १७॥
या न जातु स्वयं पिंषे गात्रोद्वर्तनमात्मनः।
अन्यत्र कुन्त्या भद्रं ते सा पिनष्म्यद्य चन्दनम्॥ १८॥
पश्य कौन्तेय पाणी मे नैवाभूतां हि यौ पुरा।
इत्यस्य दर्शयामास किणवन्तौ करावुभौ॥ १९॥

इसके अतिरिक्त हे कौन्तेय! यह मेरा दूसरा दुःख भी तो देखो। यह भी तो असह्य है। जो मैं पहले अपने लिये भी कभी उबटन नहीं पीसती थी, केवल माता कुन्ती के लिये पीसती थी, वही आज दूसरों के लिये चन्दन घिसती हूँ। हे कौन्तेय! देखो तुम्हारा कल्याण हो। ये हाथ आज जैसे हो रहे हैं, पहिले कभी ऐसे नहीं हुए। ऐसा कह कर द्रौपदी ने अपने दोनों हाथ, जिनमें घट्टे पड़ गये थे, दिखाये।

बिभेमि कुन्त्या या नाहं युष्माकं वा कदाचन।
साद्याग्रतो विराटस्य भीता तिष्ठामि किंकरी॥ २०॥
किं नु वक्ष्यति सम्राण्मां वर्णकः सुकृतो न वा।
नान्यपिष्टं हि मत्स्यस्य चन्दनं किल रोचते॥ २१॥
सा कीर्तयन्ती दुःखानि भीमसेनस्य भामिनी।
रुरोद शनकैः कृष्णा भीमसेनमुदीक्षती॥ २२॥

जो मैं पहले माता कुन्ती से और तुम लोगों से भी कभी नहीं डरती थी, वही मैं दासी बन कर विराटराज के आगे डरती हुई खड़ी रहती हूँ। मैं उस समय सोचती रहती हूँ कि पता नहीं सम्राट मुझे क्या कहेंगे? यह उबटन अच्छा बना या नहीं? मत्स्यराज को किसी दूसरे का घिसा हुआ चन्दन अच्छा ही नहीं लगता। इस प्रकार वह भामिनी द्रौपदी भीमसेन को अपना दुःख बखान करती हुई, और उसकी तरफ देखती हुई धीरे-धीरे रोने लगी।

भीमसेन उवाच

धिगस्तु मे बाहुबलं गाण्डीवं फाल्गुनस्य च।
यत् ते रक्तौ पुरा भूत्वा पाणी कृतकिणाविमौ॥ २३॥
सभायां तु विराटस्य करोमि कदनं महत्।
तत्र मे कारणं भाति कौन्तेयो यत् प्रतीक्षते॥ २४॥

अथवा कीचकस्याहं पोथयामि पदा शिरः।
ऐश्वर्यमदमत्तस्य क्रीडन्निव महाद्विपः॥ २५॥
तत्र मां धर्मराजस्तु कटाक्षेण न्यवारयत्।
तदहं तस्य विज्ञाय स्थित एवास्मि भामिनि॥ २६॥

तब भीमसेन ने द्रौपदी से कहा कि हे देवी! मेरे बाहुबल और अर्जुन के गाण्डीव धनुष को धिक्कार है, जो तुम्हारे इन हाथों में जो पहले लाल रंग के होते थे, अब गद्डे पड़े हुए हैं। मैं तो विराट की सभा में ही महान् विनाश कर देता, पर ऐसा न करने में युधिष्ठिर कारण बन गये। वे समय सीमा समाप्त होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐश्वर्य के मद से पागल उस कीचक का सिर पैरों से ऐसे कुचल देता, जैसे महान् गजराज बाँस को कुचल देता है पर धर्मराज ने आँख के इशारे से मुझे रोक दिया। हे भामिनी! मैं उसे समझ कर फिर चुपचाप ही बैठा रह गया।

यच्च राष्ट्रात् प्रच्यवनं कुरूणामवधश्च चः।
सुयोधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च॥ २७॥
दुःशासनस्य पापस्य यन्मया नाहृतं शिरः।
तन्मे दहति गात्राणि हृदि शल्यमिवार्पितम्॥ २८॥
मा धर्मं जहि सुश्रोणि क्रोधं जहि महामते।
इमं तु समुपालम्भं त्वत्तो राजा युधिष्ठिरः॥ २९॥
शृणुयाद् वापि कल्याणि कृत्स्नं जह्यात् स जीवितम्।
धनंजयो वा सुश्रोणि यमौ वा तनुमध्यमे॥ ३०॥
लोकान्तरगतेष्वेषु नाहं शक्ष्यामि जीवितुम्।

जब हमें राज्य से च्युत किया गया, तभी कौरवों का जो वध नहीं हुआ, मैंने पापी दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, और दुश्शासन के सिरों को नहीं काटा, वही बातें आज भी मेरे दिल में काँटे के समान चुभती रहती हैं और मेरे शरीर के अंगों को जलाती रहती हैं। हे सुश्रोणी! हे महान् बुद्धिमती! तुम धर्म का त्याग मत करो। क्रोध को छोड़ दो। हे कल्याणी! राजा युधिष्ठिर यदि तुम्हारे मुख से यह उलाहना सुन लेंगे तो वे अपने प्राणों को छोड़ देंगे। हे सुश्रोणी! हे तनु मध्यमे! अर्जुन नकुल और सहदेव भी इसे सुन कर जीवित नहीं रह सकेंगे और उनके दिवंगत हो जाने पर मैं भी जीवित नहीं रह सकूँगा।

पुरा सुकन्या भार्या च भार्गवं च्यवनं वने॥ ३१॥
वल्मीकभूतं शाम्यन्तमन्वपद्यत भामिनी।
दुहिता जनकस्यापि वैदेही यदि ते श्रुता॥ ३२॥
पतिमन्वचरत् सीता महारण्यनिवासिनम्।
रक्षसा निग्रहं प्राप्य रामस्य महिषी प्रिया॥ ३३॥
क्लिश्यमानापि सुश्रोणि राममेवान्वपद्यत।
लोपामुद्रा तथा भीरु वयोरूपसमन्विता॥ ३४॥
अगस्तिमन्वयाद्धित्वा कामान् सर्वानमानुषान्।

प्राचीन काल में हे भामिनी! भृगुपुत्र च्यवन ऋषि तपस्या करते हुए मरणासन्न हो गये थे। उनके शरीर पर बाँबी जम गयी थी, पर फिर भी उनकी पत्नी सुकन्या उनकी सेवा करती रही। यदि तुमने सुना हो, जनक की पुत्री जो विदेह कुमारी थी, महान् वन में रहने वाले अपने पति के ही साथ ही रही। राम की वह प्यारी महारानी राक्षस की कैद में पड़ कर भी, वहाँ कष्ट उठाते हुए भी वह राम से ही अपना मन लगाये रही। हे सुश्रोणी! हे भीरु! इसी प्रकार नयी अवस्था और सौन्दर्य से युक्त लोपामुद्रा भी सारे अलौकिक सुखों और इच्छाओं को त्यागकर अपने पति अगस्त्य का अनुकरण करती रही।

यथैताः कीर्तिता नार्यो रूपवत्यः पतिव्रताः॥ ३५॥
तथा त्वमपि कल्याणि सर्वैः समुदिता गुणैः।

द्रौपद्युवाच

आर्तयैतन्मया भीम कृतं बाष्पप्रमोचनम्॥ ३६॥
अपारयन्त्या दुःखानि न राजानमुपालभे।
किमुक्तेन व्यतीतेन भीमसेन महाबल॥ ३७॥
प्रत्युपस्थितकालस्य कार्यस्यानन्तरो भव।

जैसे गुणों और सौन्दर्य को इन पतिव्रता नारियों का आदर्श कहा गया है, वैसे ही हे कल्याणी! तुम भी इन सारे गुणों से युक्त हो। तब द्रौपदी ने कहा कि हे भीम! मैंने बहुत दुखी और दुखों को सहने में असमर्थ होकर ये आँसू बहाये हैं पर मैं राजा को उलाहना नहीं दूँगी। हे महाबली भीम! बीती हुई बातों को कहने में क्या लाभ? अब तुम जो कार्य उपस्थित है, उसे करने के लिये तैयार हो जाओ।

ममेह भीम कैकेयी रूपाभिभवशंकया॥ ३८॥
नित्यमुद्विजते राजा कथं नेयादिमामिति।
तस्या विदित्वा तं भावं स्वयं चानृतदर्शनः॥ ३९॥
कीचकोऽयं सुदुष्टात्मा सदा प्रार्थयते हि माम्।
तमहं कुपिता भीम पुनः कोपं नियम्य च॥ ४०॥
अब्रुवं कामसम्मूढमात्मानं रक्ष कीचक।

धर्मे स्थितास्मि सततं कुलशीलसमन्विता॥ ४१॥
नेच्छामि कंचिद् वध्यन्तं तेन जीवसि कीचक।

हे भीम! यहाँ यह कैकेयराज पुत्री सुदेष्णा मेरे रूप से अपने पराजित होने की शंका से कि कहीं राजा इस पर आसक्त न हो जाये, सदा उद्विग्न रहती है। उसके इस भाव को समझकर, जिसको देखना भी पाप है, वह दुष्टात्मा कीचक रोज मुझसे स्वयं प्रार्थना किया करता है। हे भीम! पहले मैं उस पर कुपित हुई फिर अपने क्रोध को बस में कर इस काम से मूढ बने हुए कीचक से मैंने कहा कि अरे कीचक! तू अपनी रक्षा कर। मैं अपने पतिव्रत धर्म में दृढ़ हूँ और अपने उत्तम कुल तथा सदाचार से युक्त हूँ। मैं किसी को मरता हुआ नहीं देखना चाहती इसीलिये तू जीवित है।

एवमुक्तः स दुष्टात्मा प्राहसत् स्वनवत् तदा॥ ४२॥
अथ मां तत्र कैकेयी प्रैषयत् प्रणयेन तु।
तेनैव देशिता पूर्वं भ्रातृप्रियचिकीर्षया॥ ४३॥
सुरामानय कल्याणि कीचकस्य निवेशनात्।
सूतपुत्रस्तु मां दृष्ट्वा महत् सान्त्वमवर्तयत्॥ ४४॥
सान्त्वे प्रतिहते क्रुद्धः परामर्शमनाभवत्।
विदित्वा तस्य संकल्पं कीचकस्य दुरात्मनः॥ ४५॥
तथाहं राजशरणं जवेनैव प्रधाविता।

मेरे ऐसा कहने पर वह दुष्ट ठहाका मार कर हँसने लगा। इसके बाद इसके द्वारा सिखायी हुई सुदेष्णा ने भाई के प्यार से, उसका प्रिय करने की इच्छा से, मुझसे हे कल्याणी! कीचक के घर से मेरे लिये सुरा ले आओ, यह कह कर जाने को कहा। वहाँ वह सूतपुत्र मुझे देखते ही बड़े आश्वासनों से समझाने लगा। पर जब मैंने उसकी प्रार्थना ठुकरा दी तो उसने क्रुद्ध होकर मुझसे बलात्कार करने का विचार किया। उस दुष्ट के विचार को समझ कर मैं राजा की शरण में जाने के लिये तेजी से भागी।

संदर्शने तु मां राज्ञः सूतपुत्रः परामृशत्॥ ४६॥
पातयित्वा तु दुष्टात्मा पदाहं तेन ताडिता।
प्रेक्षते स्म विराटस्तु कंकस्तु बहवो जनाः।
रथिनः पीठमर्दाश्च हस्त्यारोहाश्च नैगमाः।
उपालब्धो मया राजा कंकश्चापि पुनः पुनः॥ ४८॥
ततो न वारितो राज्ञा न तस्याविनयः कृतः।

किन्तु वहाँ राजदरबार में राजा के सामने ही इस सूतपुत्र ने मुझे पकड़ लिया और भूमि पर गिरा कर पैर से मारा। उस समय राजा देखते रह गये। कंक, रथी, पीठमर्द, महावत, वैदिक विद्वान् तथा और बहुत लोगों ने यह सब देखा। मैंने राजा और कंक को बार-बार उलाहना दिया, पर राजा ने न तो उसे मना किया और न उसे धमकाया।

शूरोऽभिमानी पापात्मा सर्वार्थेषु च मुग्धवान्॥ ४९॥
दारामर्शी महाभाग लभतेऽर्थान् बहूनपि।
आहरेदपि वित्तानि परेषां क्रोशतामपि॥ ५०॥
न तिष्ठति स्म सन्मार्गे न च धर्मं बुभूषति।
पापात्मा पापभावश्च कामबाणवशानुगः॥ ५१॥
अविनीतश्च दुष्टात्मा प्रत्याख्यातः पुनः पुनः।
दर्शने दर्शने हन्याद् यदि जह्यां च जीवितम्॥ ५२॥
तद् धर्मे यतमानानां महान् धर्मो नशिष्यति।

इसे अपनी शूर वीरता का अभिमान है। यह पापी सारी बातों में मूर्ख है। हे महाभाग! यह दूसरों की स्त्रियों से बलात्कार करता है और उनसे बहुत धन भी हड़पता रहता है। यह लोगों के रोने चिल्लाने पर भी उनका धन छीन लेता है। यह न तो सदाचार का पालन करता है और न धर्म को अपनाना चाहता है। पाप की भावना रखने वाला यह पापी इस समय काम की भावना के बस में हो रहा है। यह बड़ा दुष्ट और उद्दण्ड है। मैंने इसे बार-बार ठुकराया है, अब यह जब भी मुझे देखेगा, मारेगा। यदि मुझे जान से हाथ धोना पड़ा तो धर्म की रक्षा करने के लिये प्रयत्न करते हुए आप लोगों का महान् धर्म नष्ट हो जायेगा।

क्षत्रियस्य सदा धर्मो नान्यः शत्रुनिबर्हणात्॥ ५३॥
पश्यतो धर्मराजस्य कीचको मां पदावधीत्।
तव चैव समक्षे वै भीमसेन महाबल॥ ५४॥
कीचको राजवाल्लभ्याच्छोककृन्मम भारत॥ ५५॥
तमेवं कामसम्मत्तं भिन्धि कुम्भमिवाश्मनि।
यो निमित्तमनर्थानां बहूनां मम भारत॥ ५६॥
तं चेज्जीवन्तमादित्यः प्रातरभ्युदयिष्यति।
विषमालोड्य पास्यामि मा कीचकवशं गमम्।
श्रेयो हि मरणं मह्यं भीमसेन तवाग्रतः॥ ५७॥

क्षत्रिय के लिये शत्रु को नष्ट करने से बढ़ कर दूसरा नित्यधर्म नहीं है। हे महाबली भीमसेन! धर्म राज के देखते हुए और तुम्हारे सामने कीचक ने मुझे पैर से मारा। हे भारत! राजा का प्यारा होने के कारण ही कीचक मेरे लिये दुखदायी हो रहा

है। तुम इस काम से उन्मत्त को ऐसे नष्ट कर दो, जैसे घड़े को पत्थर पर पटक कर फोड़ दिया जाता है। हे भारत जो मेरे बहुत से अनर्थों का कारण बना हुआ है, उसके जीवित रहते हुए यदि प्रातः सूर्य उदय हो जायेगा तो मैं विष को घोलकर पी लूँगी। कीचक के वश में होने की अपेक्षा, हे भीम! तुम्हारे सामने मर जाना मेरे लिए कल्याणकारी है।

चौदहवाँ अध्याय : भीम और कीचक का युद्ध और कीचक का वध।

भीमसेन उवाच

अस्याः प्रदोषे शर्वर्याः कुरुष्वानेन संगतम्।
दुःखं शोकं च निर्धूय याज्ञसेनि शुचिस्मिते॥ १॥
यैषा नर्तनशालेह मत्स्यराजेन कारिता।
दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम्॥ २॥
तत्रास्ति शयनं दिव्यं दृढाङ्गं सुप्रतिष्ठितम्।
तत्रास्य दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान् पितामहान्॥ ३॥
यथा च त्वां न पश्येयुः कुर्वाणां तेन संविदम्।
कुर्यास्तथा त्वं कल्याणि यथा संनिहितो भवेत्॥ ४॥

तब भीमसेन ने द्रौपदी से कहा कि हे पवित्र मुस्कान वाली यज्ञसेनपुत्री। तुम इस अगली रात के साँय काल को दुःख और शोक को हटाकार उस कीचक से मिलो। मत्स्यराज के द्वारा बनवाई हुई जो यह नृत्यशाला है, यहाँ दिन में लड़कियाँ नृत्य करती हैं और रात को अपने घर चली जाती हैं। वहाँ एक सुन्दर और मजबूत पलंग बिछा हुआ है। वहीं मैं कीचक को उसके मृत बापदादों से मिलवाऊँगा। हे कल्याणी तुम उसके साथ बात करते हुए यह प्रकट करना कि कोई तुम्हें उसके साथ बात करते हुए देख न ले और इस प्रकार बात करना कि जिससे वह मेरे पास अवश्य ही आ जाये।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय कीचकः।
गत्वा राजकुलायैव द्रौपदीमिदमब्रवीत्॥ ५॥
सभायां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदाहनम्।
न चैवालभसे त्राणमभिपन्ना बलीयसा॥ ६॥
प्रवादेनेह मत्स्यानां राजा नाम्नायमुच्यते।
अहमेव हि मत्स्यानां राजा वै वाहिनीपतिः॥ ७॥
मां सुखं प्रतिपद्यस्व दासो भीरु भवामि ते।
अह्नाय तव सुश्रोणि शतं निष्कान् ददाम्यहम्॥ ८॥
दासीशतं च ते दद्यां दासानामपि चापरम्।
रथं चाश्वतरीयुक्तमस्तु नौ भीरु संगमः॥ ९॥

उस रात्रि के बीत जाने पर प्रातः कीचक उठा और राज महल में आकर द्रौपदी से बोला कि मैंने सभा में राजा के सामने ही तुम्हें गिराकर पैर से मारा था। तुम अब बलवान् व्यक्ति के पाले पड़ी हो, तुम्हें कोई बचा नहीं सकता। यह विराट तो केवल नाममात्र के लिये मत्स्य देश का राजा है। मैं सेनापति हूँ और मैं ही मत्स्य देश का असली राजा हूँ। हे भीरु! तुम मुझे आराम से स्वीकार कर लो। मैं तुम्हारा दास बन जाऊँगा। हे सुश्रोणी! मैं तुम्हें प्रतिदिन सौ मोहरें देता रहूँगा। मैं तुम्हें सौ दासियाँ और उतने दास दूँगा। तुम्हारे लिये खच्चरियों से जुता हुआ रथ होगा। पर हे भीरु! तुम्हारा और मेरा समागम होना चाहिये।

द्रौपद्युवाच

एवं मे समयं त्वद्य प्रतिपद्यस्व कीचक।
न त्वां सखा वा भ्राता वा जानीयात् संगतं मया॥ १०॥
एवं मे प्रतिजानीहि ततोऽहं वशगा तव।

कीचक उवाच

एवमेतत् करिष्यामि यथा सुश्रोणि भाषसे॥ ११॥
एको भद्रे गमिष्यामि शून्यमावसथं तव।

द्रौपद्युवाच

यदेतन्नर्तनागारं मत्स्यराजेन कारितम्॥ १२॥
दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम्।
तत्र दोषः परिहृतो भविष्यति न संशयः॥ १३॥

तब द्रौपदी ने कहा कि हे कीचक! यदि ऐसी बात है तो आज आ जाना। पर मेरी एक शर्त है कि तुम्हारा कोई मित्र या भाई मेरे पास आने के बारे में जाने नहीं। तुम मुझसे यह प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हारे आधीन हो सकती हूँ। कीचक ने उत्तर दिया कि हे सुश्रोणी! जैसा तुम कहती हो वैसा ही करूँगा। हे भद्रे! मैं अकेला ही तुम्हारे सूने घर में आजाऊँगा। तब द्रौपदी ने कहा कि यह जो मत्स्यराज के द्वारा बनवाया हुआ नृत्य भवन है, यहाँ दिन में लड़कियाँ नाचती है, पर रात में वे अपने घर चली जाती हैं, वहाँ दोष दूर हो जायेगा और संशय भी न होगा।

कीचकोऽथ गृहं गत्वा भृशं हर्षपरिप्लुतः।
सैरन्ध्रारूपिणं मूढो मृत्युं तं नावबुद्धवान्॥ १४॥
गन्धाभरणमाल्येषु व्यासक्तः सविशेषतः।
अलंचक्रे तदाऽऽत्मानं सत्वरः काममोहितः॥ १५॥
तस्य तत् कुर्वतः कर्म कालो दीर्घ इवाभवत्।
अनुचिन्तयतश्चापि तामेवायतलोचनाम्॥ १६॥

तब कीचक हर्ष में भरा हुआ अपने घर गया। वह मूर्ख सैरन्ध्री के रूप में अपनी आने वाली मृत्यु को नहीं समझ पाया। वह शीघ्रता के साथ सुगन्ध, आभूषण और मालाओं को तैयार करने में लग गया। काम से मोहित होकर उसने अपने आपको विशेषरूप से सजाया। अपने आपको सुसज्जित करते हुए और उस विशाल नेत्रों वाली सौरन्ध्री को स्मरण करते हुए उसे थोड़ा सा भी समय बहुत बड़ा प्रतीत हुआ।

ततस्तु द्रौपदी गत्वा तदा भीमं महानसे।
तमुवाच सुकेशान्ता कीचकस्य मया कृतः॥ १७॥
संगमो नर्तनागारे यथावोचः परंतप।
शून्यं स नर्तनागारमागमिष्यति कीचकः॥ १८॥
एको निशि महाबाहो कीचकं तं निषूदय।
अश्रु दुःखाभिभूताया मम मार्जस्व भारत॥ १९॥
आत्मनश्चैव भद्रं ते कुरु मानं कुलस्य च।

तब इसके बाद सुन्दर केशों वाली द्रौपदी ने रसोईघर में जाकर भीम से कहा कि हे परंतप! जैसा तुमने कहा था मैंने कीचक से नृत्यागार में मिलने के लिये तय कर दिया है। वह कीचक अकेला ही सूने नृत्यागार में आयेगा। हे महाबाहु! फिर तुम उसे मार देना। हे भारत! तुम्हारा कल्याण हो! तुम दुःख से भरे हुए मेरे आँसुओं को पूँछना और अपने तथा कुल के मान को बढ़ाना।

भीमसेन उवाच

स्वागतं ते वरारोहे यन्मां वेदयसे प्रियम्॥ २०॥
न ह्यन्यं कञ्चिदिच्छामि सहायं वरवर्णिनि।
या मे प्रीतिस्त्वयाऽऽख्याता कीचकस्य समागमे॥ २१॥
हत्वा हिडिम्बं सा प्रीतिर्ममासीद् वरवर्णिनि।
अदृश्यमानस्तस्याथ तमस्विन्यामनिन्दिते॥ २२॥
नागो बिल्वमिवाक्रम्य पोथयिष्याम्यहं शिरः।
अलभ्यामिच्छतस्तस्य कीचकस्य दुरात्मनः॥ २३॥
भीमोऽथ प्रथमं गत्वा रात्रौ छन्न उपाविशत्।
मृगं हरिरिवादृश्यः प्रत्याकांक्षत कीचकम्॥ २४॥

तब भीम ने कहा कि हे वरारोहे! तुमने मुझे प्रिय समाचार सुनाया है। तुम्हारा स्वागत है। हे सुन्दरी! मैं इस कार्य में किसी और की सहायता नहीं लेना चाहता। हे सुन्दरी! कीचक से मिलने के अच्छे समाचार को सुनकर मुझे जो प्रसन्नता हो रही है, वही प्रसन्नता पहले हिडिम्बासुर को मारकर हुई थी। हे अनिन्दिते! अन्धेरी रात में उससे छिपा हुआ रहकर मैं तुम जैसी अलभ्य स्त्री को चाहने वाले उस दुष्ट कीचक के सिर को ऐसे ही कुचल दूँगा, जैसे हाथी बेल के फल को कुचल देता है। इसके बाद भीम रात में पहले ही वहाँ जाकर छिपकर कीचक की राह देखते हुए बैठ गये, जैसे सिंह मृग की घात में बैठा रहता है।

कीचकश्चाप्यलंकृत्य यथाकाममुपागमत्।
तां वेलां नर्तनागारं पाञ्चालीसंगमाशया॥ २५॥
प्रविश्य च स तद् वेश्म तमसा संवृतं महत्।
पूर्वागतं ततस्तत्र भीममप्रतिमौजसम्॥ २६॥
एकान्तावस्थितं चैनमाससाद स दुर्मतिः।
शयानं शयने तत्र सूतपुत्रः परामृशत्॥ २७॥
जाज्वल्यमानं कोपेन कृष्णाधर्षणजेन ह।

कीचक भी इच्छा के अनुसार अपने को सजाकर द्रौपदी से मिलने की इच्छा से उस समय नृत्यशाला में पहुँचा। महान् अँधेरे से घिरे हुए उस घर में प्रवेश कर वह दुर्मति पहले ही वहाँ आए हुए अप्रतिम पराक्रमी भीम के पास, जो एकान्त में विद्यमान थे, जा पहुँचा। द्रौपदी के अपमान के क्रोध से जलते हुए और उस पलंग पर सोये हुए भीम को वह सूतपुत्र हाथ से टटोलने लगा।

उपसंगम्य चैवैनं कीचकः काममोहितः॥ २८॥
हर्षोन्मथितचित्तात्मा स्मयमानोऽभ्यभाषत।
प्रापितं ते मया वित्तं बहुरूपमनन्तकम्॥ २९॥
यत् कृतं धनरत्नाढ्यं दासीशतपरिच्छदम्।
रूपलावण्ययुक्ताभिर्युवतीभिरलंकृतम्॥ ३०॥
गृहं चान्तःपुरं सुभ्रु क्रीडारतिविराजितम्।
तत् सर्वं त्वां समुद्दिश्य सहसाहमुपागतः॥ ३१॥

काम से मोहित कीचक उसके पास जाते ही प्रसन्नता से उन्मत्त होकर मुस्कराते हुए बोला कि मैंने बहुत सारा अनन्त धन तुम्हारे लिये कर दिया है। हे अच्छी भौंहों वाली! मेरा जो घर धन और रत्नों से भरपूर है, सैकड़ों दासियों से भरा हुआ है

सौन्दर्य से युक्त युवतियों से सजा हुआ है और क्रीड़ा विलास से सुशोभित है, वह सब तुम्हारे लिये ही निश्चित करके मैं यहाँ आया हूँ।

भीमसेन उवाच

ईदृशस्तु त्वया स्पर्शः स्पृष्टपूर्वो न कर्हिचित्।
स्पर्शं वेत्सि विदग्धस्त्वं कामधर्मविचक्षणः॥ ३२॥
स्त्रीणां प्रीतिकरो नान्यस्त्वत्समः पुरुषस्त्विह।
इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः॥ ३३॥
सहसोत्पत्य कौन्तेयः प्रहस्येदमुवाच ह।
अद्य त्वां भगिनी पापं कृष्यमाणं मया भुवि॥ ३४॥
द्रक्ष्यतेऽद्रिप्रतीकाशं सिंहेनेव महागजम्।

तब भीम बोले कि ऐसा कोमल स्पर्श भी पहले तुम्हें कभी नहीं मिला होगा। तुम तो चतुर हो। स्पर्श को तो पहचानते हो न? तुम काम के धर्म में बहुत विचक्षण जान पड़ते हो। स्त्रियों से प्रेम करने वाला तुम्हारे समान कोई दूसरा पुरुष नहीं है। ऐसा कह कर भयंकर पराक्रम वाले वे महाबाहु भीम एकदम उछल कर खड़े हो गए और हँस कर कहने लगे कि तू पर्वत के समान विशाल है, पर तुझ पापी को जैसे सिंह विशाल हाथी को पकड़ कर खींचता है वैसे ही भूमि पर पटक कर मेरे द्वारा घसीटते हुए तेरी बहन देखेगी।

ततो जग्राह केशेषु माल्यवत्सु महाबलः॥ ३५॥
स केशेषु परामृष्टो बलेन बलिनां वरः।
आक्षिप्य केशान् वेगेन बाह्वोर्जग्राह पाण्डवम्॥ ३६॥
बाहुयुद्धं तयोरासीत् क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः।
वसन्ते वासिताहेतोर्बलवद्‌गजयोरिव॥ ३७॥
बालिसुग्रीवयोर्भ्रात्रोः पुरेव कपिसिंहयोः।
अन्योन्यमपि संरब्धौ परस्परजयैषिणौ॥ ३८॥

तब महाबली भीम ने कीचक के मालाओं से सुसज्जित बालों को पकड़ लिया, पर बलवानों में श्रेष्ठ कीचक ने भी बाल पकड़ लिये जाने पर जोर से झटका देकर उन्हें छुड़ा लिया और पाण्डुपुत्र को दोनों बाहों में भर लिया। फिर उन दोनों क्रुद्ध नरसिंहों में उसी प्रकार मल्लयुद्ध होने लगा, जैसे वसन्त ऋतु में हथिनी के लिये दो हाथी लड़ रहे हों। जैसे पहले बाली और सुग्रीव नाम के दो वानर सिंह भाइयों में युद्ध हुआ था वैसे ही क्रोध में भर कर एक दूसरे को जीतने की इच्छा से उन दोनों में युद्ध हो रहा था।

वेगेनाभिहतो भीमः कीचकेन बलीयसा।
स्थिरप्रतिज्ञः स रणे पदान्न चलितः पदम्॥ ३९॥
तावन्योन्यं समाश्लिष्य प्रकर्षन्तौ परस्परम्।
उभावपि प्रकाशेते प्रवृद्धौ वृषभाविव॥ ४०॥
तयोर्ह्यासीत् सुतुमुलः सम्प्रहारः सुदारुणः।
नखदन्तायुधवतोर्व्याघ्रयोरिव दृप्तयोः॥ ४१॥
भीमेन च परामृष्टो दुर्बलो बलिना रणे।
प्रास्पन्दत यथाप्राणं विचकर्ष च पाण्डवम्॥ ४२॥

फिर बलवान् कीचक ने भीम पर जोर से प्रहार किया, पर दृढ़प्रतिज्ञ भीम उस युद्ध में एक कदम भी विचलित नहीं हुए। एक दूसरे से गुथ कर एक दूसरे को खींचते हुए वे दोनों हृष्ट पुष्ट साँडों की तरह सुशोभित हो रहे थे। जैसे नख और दाँतों से हथियार का काम लेने वाले दो अभिमानी बाघ परस्पर लड़ रहे हों, उसी प्रकार एक दूसरे पर प्रहार करते हुए उन दोनों में बहुत भयंकर और महान् युद्ध हो रहा था। उस समय बलवान् भीम की पकड़ में आया हुआ कीचक उस युद्ध में दुर्बल हो रहा था, पर फिर भी वह यथाशक्ति जोर लगाता हुआ पाण्डुपुत्र को अपनी ओर खींचने लगा।

स्पर्धया च बलोन्मत्तौ तावुभौ सूतपाण्डवौ।
निशीथे पर्यकर्षेतां बलिनौ निर्जने स्थले॥ ४३॥
तलाभ्यां स तु भीमेन वक्षस्यभिहतो बली।
कीचको रोषसंतप्तः पदान्न चलितः पदम्॥ ४४॥
मुहूर्तं तु स तं वेगं सहित्वा भुवि दुःसहम्।
बलादहीयत तदा सूतो भीमबलार्दितः॥ ४५॥

वे दोनों बलवान् कीचक और भीम अपने बल में उन्मत्त बने हुए रात्रि के उस निर्जन स्थान में स्पर्धापूर्वक एक दूसरे को खींच रहे थे। तब भीम ने अपनी दोनों हथेलियों से कीचक की छाती पर प्रहार किया, पर वह क्रोध में भरा हुआ बलवान् कीचक एक कदम भी विचलित नहीं हुआ। किन्तु भीम के उस दुस्सह वेग को सह लेने पर एक मुहूर्त तक भूमि पर खड़ा रहने पर पश्चात् कीचक भीम से पीड़ित होकर अपनी शक्ति को खोने लगा।

तं हीयमानं विज्ञाय भीमसेनो महाबलः।
वक्षस्यानीय वेगेन ममर्दैनं विचेतसम्॥ ४६॥
क्रोधाविष्टो विनिःश्वस्य पुनश्चैनं वृकोदरः।
जग्राह जयतां श्रेष्ठः केशेष्वेव तदा भृशम्॥ ४७॥

तत एनं परिश्रान्तमुपलभ्य वृकोदरः।
योक्त्रयामास बाहुभ्यां पशुं रशनया यथा॥ ४८॥
भ्रामयामास सुचिरं विस्फुरन्तमचेतसम्।
प्रगृह्य तरसा दोर्भ्यां कण्ठं तस्य वृकोदरः॥ ४९॥
अपीडयत कृष्णायास्तदा कोपोपशान्तये।

उसे कमजोर होता हुआ देख कर महाबली भीम ने उस अचेत होते हुए की छाती पर चढ़ कर उसे जोर से रौंदना आरम्भ किया। विजयी वीरों में श्रेष्ठ भीम ने अत्यन्त क्रोध में भर कर लम्बी साँस लेकर उसके फिर बाल पकड़ लिये। उसे अत्यन्त थका हुआ समझकर भीम ने कीचक को बाहों में ऐसे बाँध लिया जैसे पशु को रस्सियों से बाँध लिया हो। वह छूटने के लिये छटपटा रहा था। उसकी चेतना लुप्त हो रही थी, उसी दशा में भीम ने उसे देर तक घुमाया। द्रौपदी के क्रोध को शान्त करने के लिये भीम ने उसके गले को दोनों हाथों से पकड़ का जोर से दबाया।

अथ तं भग्नसर्वाङ्गं व्याविद्धनयनाम्बरम्॥ ५०॥
आक्रम्य च कटीदेशे जानुना कीचकाधमम्।
अपीडयत बाहुभ्यां पशुमारममारयत्॥ ५१॥
तं विषीदन्तमाज्ञाय कीचकं पाण्डुनन्दनः।
भूतले भ्रामयामास वाक्यं चेदमुवाच ह॥ ५२॥
अद्याहमनृणो भूत्वा भ्रातुर्भार्यापहारिणम्।
शान्तिं लब्धास्मि परमां हत्वा सैरन्ध्रिकण्टकम्॥ ५३॥

इस प्रकार जब उसके सारे अंग टूट गये और आँखों की पुतलियाँ बाहर निकल आयीं। तब उस दुष्ट कीचक की कमर को अपने घुटनों से दबाकर उन्होंने दोनों हाथों से उसे पशुओं की तरह मारना आरम्भ कर दिया। कराहते हुए कीचक को पाण्डु पुत्र ने भूमि पर घसीटा और कहा कि भाई की पत्नी का अपहरण करने वाले, सैरन्ध्री के काँटा बने हुए इसको मारकर मैं उऋण होकर अत्यन्त शान्ति को प्राप्त कर रहा हूँ।

इत्येवमुक्त्वा पुरुषप्रवीर-
स्तं कीचकं क्रोधसरागनेत्रः।
आस्रस्तवस्त्राभरणं स्फुरन्त-
मुद्भ्रान्तनेत्रं व्यसुमुत्ससर्ज॥ ५४॥

क्रोध से लाल नेत्रों वाले उस पुरुषश्रेष्ठ ने ऐसा कह कर उस कीचक को, जिसके वस्त्र और आभूषण इधर-उधर बिखर गये थे, आँखें ऊपर चढ़ गयीं थीं, जो छटपटा रहा था और जिसके प्राण निकल रहे थे, नीचे डाल दिया।

निष्पिष्य पाणिना पाणिं संदष्टौष्ठपुटं बली।
समाक्रम्य च संक्रुद्धो बलेन बलिनां वरः॥ ५५॥
तं सम्मथितसर्वाङ्गं मांसपिण्डोपमं कृतम्।
कृष्णाया दर्शयामास भीमसेनो महाबलः॥ ५६॥
उवाच च महातेजा द्रौपदीं योषितां वराम्।
पश्यैनमेहि पाञ्चालि कामुकोऽयं यथा कृतः॥ ५७॥
एवमुक्त्वा महाराज भीमो भीमपराक्रमः।
पादेन पीडयामास तस्य कायं दुरात्मनः॥ ५८॥

बलवानों में श्रेष्ठ भीम उस समय अत्यन्त क्रोध में भरे हुए थे। अपने हाथों को मलते हुए और दाँतों से होठों को दबाते हुए उस बलवान् ने उसके ऊपर फिर आक्रमण किया और उसके सारे शरीर को मथ कर मांस के लोथड़े जैसा बना दिया। महाबली भीम ने उसे द्रौपदी को दिखाया और उस महातेजस्वी ने युवतियों में श्रेष्ठ द्रौपदी से कहा कि पांचाली! इस कामी को देखो। इसका क्या हाल हो गया है। ऐसा कह कर भयानक पराक्रम वाले भीम ने उसे दुष्ट की लाश को पैर से दबाया।

ततोऽग्निं तत्र प्रज्वाल्य दर्शयित्वा तु कीचकम्।
पाञ्चालीं स तदा वीर इदं वचनमब्रवीत्॥ ५९॥
प्रार्थयन्ति सुकेशान्ते ये त्वां शीलगुणान्विताम्।
एवं ते भीरु वध्यन्ते कीचकः शोभते यथा॥ ६०॥
तत् कृत्वा दुष्करं कर्म कृष्णायाः प्रियमुत्तमम्।
तथा स कीचकं हत्वा गत्वा रोषस्य वै शमम्॥ ६१॥
आमन्त्र्य द्रौपदीं कृष्णां क्षिप्रमायान्महानसम्।
कीचकं घातयित्वा तु द्रौपदी योषितां वरा॥ ६२॥
प्रहृष्टा गतसंतापा सभापालानुवाच ह।

फिर आग जला कर उसके प्रकाश में द्रौपदी को कीचक को दिखा कर उस वीर ने यह कहा हे सुन्दर केशों वाली भीरु! शील और गुणों से युक्त तुझ से जो भी कामभावना से प्रार्थना करेंगे, वे कीचक जैसी दशा को प्राप्त होंगे। इस प्रकार द्रौपदी के प्रिय उस दुष्कर उत्तम कर्म को कर कीचक को मार कर, और अपने क्रोध को शान्त करके, भीम द्रौपदी से पूछ कर जल्दी से रसोईघर में चले गये। स्त्रियों में श्रेष्ठ द्रौपदी ने कीचक को मरवा कर प्रसन्न होते हुए सुखपूर्वक सभाभवन के रक्षकों को कीचक के विषय में जाकर कह दिया।

पन्द्रहवाँ अध्याय : भीम का उपकीचकों को मार कर सैरन्ध्री को छुड़ाना।

तस्मिन् काले समागम्य सर्वे तत्रास्य बान्धवाः।
रुरुदुः कीचकं दृष्ट्वा परिवार्य समन्ततः॥ १॥
सर्वे संहृष्टरोमाणः संत्रस्ताः प्रेक्ष्य कीचकम्।
संस्कारयितुमिच्छन्तो बहिर्नेतुं प्रचक्रमुः॥ २॥
ददृशुस्ते ततः कृष्णां सूतपुत्राः समागताः।
अदूराद्यानवद्याङ्गीं स्तम्भमालिङ्‌ग्य तिष्ठतीम्॥ ३॥
समवेतेषु सर्वेषु तामूचुरुपकीचकाः।
हन्यतां शीघ्रमसती यत्कृते कीचको हतः॥ ४॥

उसके पश्चात् कीचक के सारे भाइयों ने वहाँ आकर कीचक को देखा और उसके चारों तरफ बैठ कर वे रोने लगे। कीचक की दुर्दशा देख कर उन सबके रोंगटे खड़े हो रहे थे। फिर वे उसका दाह संस्कार करने के लिये उसे बाहर ले जाने की तैयारी करने लगे। तभी वहाँ आये हुए सूतपुत्रों ने उस निर्दोष अंगों वाली द्रौपदी को देखा जो समीप ही खम्बे का सहारा लेकर खड़ी हुई थी। तब सब लोगों के एकत्र होने पर उन उपकीचकों ने अर्थात् कीचक के भाइयों ने कहा कि इस दुष्टा को शीघ्र ही मार दो, जिसके कारण कीचक मारा गया।

अथवा नैव हन्तव्या दह्यतां कामिना सह।
मृतस्यापि प्रियं कार्यं सूतपुत्रस्य सर्वथा॥ ५॥
ततो विराटमूचुस्ते कीचकोऽस्याः कृते हतः।
सहानेनाद्य दह्येम तदनुज्ञातुमर्हसि॥ ६॥
पराक्रमं तु सूतानां मत्वा राजान्वमोदत।
सैरन्ध्र्याः सूतपुत्रेण सह दाहं विशाम्पतिः॥ ७॥
तां समासाद्य वित्रस्तां कृष्णां कमललोचनाम्।
मोमुह्यमानां ते तत्र जगृहुः कीचका भृशम्॥ ८॥

अथवा इसे मारो मत। इसकी इच्छा करने वाले कीचक के साथ इसे भी जला दो। जिससे उस मृत सूतपुत्र की कामना पूरी हो जाये। तब उन्होंने विराटराज से कहा कि कीचक इस सैरन्ध्री के कारण मारा गया। इसलिये उसके साथ आज इसे भी जला देते हैं। आप हमें इसकी आज्ञा दीजिये। तब उन सूतपुत्रों के पराक्रम पर विचार कर राजा ने कीचक के साथ सैरन्ध्री को जलाने की अनुमति दे दी। तब उस डरी हुई और मूर्च्छित सी हो रही कमललोचना द्रौपदी के पास जाकर उन्होंने उसे बलपूर्वक पकड़ लिया।

ततस्तु तां समारोप्य निबध्य च सुमध्यमाम्।
जग्मुरुद्यम्य ते सर्वे श्मशानाभिमुखास्तदा॥ ९॥
प्राक्रोशन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती।

द्रौपद्युवाच

जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः॥ १०॥
ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम्।
येषां ज्यातलनिर्घोषो विस्फूर्जितमिवाशनेः॥ ११॥
व्यश्रूयत महायुद्धे भीमघोषस्तरस्विनाम्।
ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम्॥ १२॥

फिर उस सुमध्यमा को उन्होंने टिकटी पर डाल कर लाश के साथ ही बाँध दिया तथा उठा कर श्मशान भूमि की तरफ चल दिये। उस समय सनाथा होकर भी वह द्रौपदी अपने रक्षक के लिये चिल्लाने लगी। वह चिल्लाने लगी कि हे जय, हे जयन्त, हे विजय, हे जयत्सेन, हे जयद्बल! आप जहाँ भी हो मेरी बात को सुनो। ये सूतपुत्र मुझे श्मशान की तरफ ले जा रहे हैं। जिन वेगशाली वीरों के धनुषों की प्रत्यंचा की भयानक ध्वनि महायुद्धों में बिजली की गड़गड़ाहट के समान सुनायी देती है, वे सारे मेरी बात को सुनें कि ये सूतपुत्र मुझे श्मशान भूमि पर ले जा रहे हैं।

तस्यास्ताः कृपणा वाचः कृष्णायाः परिदेवितम्।
श्रुत्वैवाभ्यापतद् भीमः शयनादविचारयन्॥ १३॥

भीमसेन उवाच

अहं शृणोमि ते वाचं त्वया सैरन्ध्रि भाषिताम्।
तस्मात् ते सूतपूत्रेभ्यो भयं भीरु न विद्यते॥ १४॥
इत्युक्त्वा स महाबाहुः वेषं विपरिवर्त्य च।
अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य निर्जगाम बहिस्तदा॥ १५॥
स भीमसेनः प्रकारादारुह्य तरसा द्रुमम्।
श्मशानाभिमुखः प्रायाद् यत्र ते कीचका गताः॥ १६॥
जवेन पतितो भीमः सूतानामग्रतस्तदा।

द्रौपदी के उस दीनतापूर्ण विलाप और चिल्लाने की आवाज को सुनते ही भीम बिना कुछ विचारे अपने बिस्तरे से कूद कर उतर गये। वे बोले कि हे सैरन्ध्री! मैं तुम्हारी बात को सुन रहा हूँ। इसलिये हे भीरु! अब तुम्हें इन सूतपुत्रों से कोई भय नहीं है। ऐसा कहते हुए उस महाबाहु ने अपने वेश को बदला और बिना दरवाजे के ही पाकशाला की

दीवार फाँद कर वे बाहर निकल आये। फिर भीमसेन ने तेजी से एक पेड़ पर चढ़ कर परकोटे को लाँघ लिया और जहाँ वे कीचक लोग गये थे, उस श्मशान की तरफ चल दिये। तेज़ी से दौड़ते हुए वे उन सूतों से पहले पहुँच गये।

चितासमीपे गत्वा स तत्रापश्यद् वनस्पतिम्॥ १७॥
तं नागवदुपक्रम्य बाहुभ्यां परिरभ्य च।
प्रगृह्याभ्यद्रवत् सूतान् सस्कन्धविटपं बली॥ १८॥
तं सिंहमिव संक्रुद्धं दृष्ट्वा गन्धर्वमागतम्।
वित्रेसुः सर्वशः सूता विषादभयकम्पिताः॥ १९॥
गन्धर्वो बलवानेति क्रुद्ध उद्यम्य पादपम्।
सैरन्ध्री मुच्यतां शीघ्रं यतो नो भयमागतम्॥ २०॥
विमुच्य द्रौपदीं तत्र प्राद्रवन्नगरं प्रति।

चितास्थान के समीप उन्होंने वहाँ एक वृक्ष को देखा। उसे उन्होंने अपनी बाहों में भर कर और हाथी के समान जोर लगाकर उखाड़ लिया। फिर वह बलवान् उस वृक्ष को स्कन्ध सहित उठाकर उन सूतपुत्रों की तरफ दौड़े। गन्धर्व के वेश में उन्हें सिंह के समान क्रोध में भरा आता हुआ देख कर सारे सूतपुत्र भय और शोक में भर कर काँपने लगे। वे कहने लगे कि यह बलवान् गन्धर्व क्रोध में भरा हुआ है। इसने पेड़ को उखाड़ लिया है और आ रहा है। शीघ्र इस सैरन्ध्री को छोड़ दो, जिसके कारण हमें भय प्राप्त हुआ है। फिर वे द्रौपदी को बन्धन रहित कर नगर की तरफ भागने लगे।

द्रवतस्तांस्तु सम्प्रेक्ष्य स वज्री दानवानिव॥ २१॥
शतं पञ्चाधिकं भीमः प्राहिणोद् यमसादनम्।
तत आश्वासयत् कृष्णां पांचाली तत्र द्रौपदीम्॥ २२॥
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां दुर्धर्षः स वृकोदरः।
एवं ते भीरु वध्यन्ते ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसम्॥ २३॥
प्रैहि त्वं नगरं कृष्णे न भयं विद्यते तव।
अन्येनाहं गमिष्यामि विराटस्य महानसम्॥ २४॥

तब उन्हें भागते हुए देख कर भीम ने उन एक सौ पाँच सूतपुत्रों को उसी प्रकार मृत्यु के घर पहुँचा दिया, जैसे वज्रधारी इन्द्र ने दानवों का संहार किया था। फिर उस दुर्धर्ष भीम ने आसुँओं से भरे मुख वाली, दीन बनी हुई, पांचालकुमारी, द्रुपदपुत्री कृष्णा को आश्वासन देते हुए कहा कि हे भीरु! जो तुझ निरपराधा को सतायेंगे, वे इसी तरह मारे जायेंगे। हे कृष्णे! अब तू नगर में जा। तुझे कोई डर नहीं है। मैं दूसरे रास्ते से विराट की रसोई में जाऊँगा।

सोलहवाँ अध्याय : द्रौपदी का बृहन्नला तथा सुदेष्णा से वार्तालाप।

ते दृष्ट्वा निहतान् सूतान् राज्ञे गत्वा न्यवेदयन्।
गन्धर्वैर्निहता राजन् सूतपुत्रा महाबलाः॥ १॥
सैरन्ध्री च विमुक्तासौ पुनरायाति ते गृहम्।
सर्वं संशयितं राजन् नगरं ते भविष्यति॥ २॥
सुदेष्णामब्रवीद् राजा महिषीं जातसाध्वसः।
सैरन्ध्रीमागतां ब्रूया ममैव वचनादिदम्॥ ३॥
गच्छ सैरन्ध्रि भद्रं ते यथाकामं वरानने।
बिभेति राजा सुश्रोणि गन्धर्वेभ्यः पराभवात्॥ ४॥
न हि त्वामुत्सहे वक्तुं स्वयं गन्धर्वरक्षिताम्।
स्त्रियास्त्वदोषस्तां वक्तुमतस्त्वां प्रब्रवीम्यहम्॥ ५॥

फिर नगर के लोगों ने सूतपुत्रों को मारा हुआ देख कर राजा के पास जाकर निवेदन किया कि हे राजन्! वे महाबली सूतपुत्र गन्धर्वों के द्वारा मार दिये गये। सैरन्ध्री भी छूट कर आपके घर में आ रही है। उसके रहने से नगर में सबकी जान खतरे में पड़ जाएगी। तब भयभीत होकर राजा ने महारानी सुदेष्णा से कहा कि सैरन्ध्री के तुम्हारे पास आने पर तुम मेरी तरफ से उसे कह देना कि हे सुन्दर मुखवाली सैरन्ध्री! तेरा कल्याण हो। तू अपनी इच्छा के अनुसार कहीं और चली जा। हे सुश्रोणी! राजा गन्धर्वों के तिरस्कारों से डरते हैं। तुम गन्धर्वों से रक्षित हो, इसलिये मैं स्वयं कोई बात नहीं कह सकता। पर स्त्रियों से कहलाने में कोई दोष नहीं है इसलिये अपनी पत्नी के द्वारा मैं स्वयं ही यह बात तुमसे कह रहा हूँ।

अथ मुक्ता भयात् कृष्णा जगाम नगरं प्रति।
गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा॥ ६॥
ततः सा नर्तनागारे धनंजयमपश्यत।
राज्ञः कन्या विराटस्य नर्तयानं महाभुजम्॥ ७॥
ततस्ता नर्तनागाराद् विनिष्क्रम्य सहार्जुनाः।
कन्या ददृशुरायान्तीं क्लिष्टां कृष्णामनागसम्॥ ८॥

उधर द्रौपदी भय से मुक्त होकर नगर में (अपने निवास स्थान पर) आयी और जल से अपने शरीर

तथा वस्त्रों को धोकर उसने नृत्यशाला में पहुँच कर महाबाहु अर्जुन को देखा, जो विराटराज की कन्याओं को नृत्य सिखा रहे थे। तब अर्जुन के साथ उन कन्याओं ने भी नृत्यशाला से निकल कर उस निरपराध सतायी हुई और वहाँ आती हुई द्रौपदी को देखा।

कन्या ऊचुः

दिष्ट्या सैरन्ध्रि मुक्तासि दिष्ट्यासि पुनरागता।
दिष्ट्या विनिहताः सूता ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसम्॥ ९॥

बृहन्नलोवाच

कथं सैरन्ध्रि मुक्तासि कथं पापाश्च ते हताः।
इच्छामि वै तव श्रोतुं सर्वमेव यथातथम्॥ १०॥

सैरन्ध्र्युवाच

बृहन्नले किं नु तव सैरन्ध्र्या कार्यमद्य वै।
या त्वं वससि कल्याणि सदा कन्यापुरे सुखम्॥ ११॥
न हि दुःखं समाप्नोषि सैरन्ध्री यदुपाश्नुते।
तेन मां दुःखितामेवं पृच्छसे प्रहसन्निव॥ १२॥

उन कन्याओं ने कहा कि हे सैरन्ध्री! बड़े सौभाग्य की बात है कि तू छूट गयी और बड़े सौभाग्य की बात है कि वे सूतपुत्र मारे गये जो तुझ निरपराधा को क्लेश दे रहे थे। तब बृहन्नला ने पूछा कि सैरन्ध्री! तू कैसे छूटी? वे पापी कैसे मारे गये? मैं तेरी सारी कहानी जैसी की तैसी सुनना चाहती हूँ। तब सैरन्ध्री ने उससे कहा कि अरी बृहन्नला! तुझे अब सैरन्ध्री से क्या काम? अरी कल्याणी! तू तो इन कन्याओं के अन्तःपुर में सदा मौज से रहती है। सैरन्ध्री को जो दुख हो रहा है, उसे तो तुम समझती नहीं हो इसलिये मुझ दुखिया से ऐसे हँसती हुई पूछ रही हो।

बृहन्नलोवाच

बृहन्नलापि कल्याणि दुःखमाप्नोत्यनुत्तमम्।
तिर्यग्योनिगता बाले न चैनामवबुध्यसे॥ १३॥
त्वया सहोषिता चास्मि त्वं च सर्वैः सहोषिता।
क्लिश्यन्त्यां त्वयि सुश्रोणि को नु दुःखं न चिन्तयेत्॥ १४॥
न तु केनचिदत्यन्तं कस्यचिद्धृदयं कचित्।
वेदितुं शक्यते नूनं तेन मां नावबुध्यसे॥ १५॥
ततः सहैव कन्याभिर्द्रौपदी राजवेश्म तत्।
प्रविवेश सुदेष्णायाः समीपमुपगामिनी॥ १६॥

तब बृहन्नला ने उत्तर दिया कि हे कल्याणी! बृहन्नला भी इस नपुंसक योनि में पड़ कर बड़ा दुःख उठा रही है। तू अभी बच्ची है, इसलिये इस बात को नहीं समझती है। हे सुश्रोणी! तेरे साथ तो मैं रह चुकी हूँ, तू भी हम सबके साथ रही है। फिर तुझे क्लेश उठाते देख कर कौन दुखी नहीं होगा? वास्तव में कोई दूसरा आदमी दूसरे के दिल को पूरी तरह से नहीं समझ सकता। इसलिये तू मेरे कष्ट को नहीं समझ रही है। फिर उन कन्याओं के साथ ही राजभवन में प्रविष्ट होकर द्रौपदी सुदेष्णा के समीप पहुँची।

तामब्रवीद् राजपुत्री विराटवचनादिदम्।
सैरन्ध्रि गम्यतां शीघ्रं यत्र कामयसे गतिम्॥ १७॥
राजा बिभेति ते भद्रे गन्धर्वेभ्यः पराभवात्।
त्वं चापि तरुणी सुभ्रु रूपेणाप्रतिमा भुवि॥ १८॥
पुंसामिष्टश्च विषयो गन्धर्वाश्चातिकोपनाः।

सैरन्ध्र्युवाच

त्रयोदशाहमात्रं मे राजा क्षाम्यतु भामिनि॥ १९॥
कृतकृत्या भविष्यन्ति गन्धर्वास्ते न संशयः।
ततो मामुपनेष्यन्ति करिष्यन्ति च ते प्रियम्।
ध्रुवं च श्रेयसा राजा योक्ष्यते सह बान्धवैः॥ २०॥

तब उस राजपुत्री सुदेष्णा ने विराटराज के वचन के अनुसार सैरन्ध्री से कहा कि हे सैरन्ध्री! तुम जहाँ जाना चाहो, वहाँ जल्दी ही यहाँ से चली जाओ। हे भद्रे! तेरे गन्धर्वों से अपना तिरस्कार होने के भय से राजा डरते हैं। हे सुन्दर भौहों वाली! तुम जवान हो और सौन्दर्य में पृथिवी पर अद्वितीय हो। पुरुष लोग विषयप्रेमी होते हैं, पर तुम्हारे गन्धर्व बहुत क्रोधी स्वभाव के हैं। तब सैरन्ध्री ने कहा कि हे भामिनी! राजा तेरह दिन के लिये मुझे और क्षमा कर दें। उसके पश्चात् वे गन्धर्व कृतकृत्य हो जायेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है। फिर वे गन्धर्व मुझे ले जायेंगे और वे आपका भी प्रिय कार्य करेंगे। तब निश्चित रूप से राजा भी अपने बन्धुओं के साथ कल्याण को प्राप्त होंगे।

सत्रहवाँ अध्याय : गुप्तचरों का दुर्योधन को कीचक वध का समाचार देना।

अथ वै धार्तराष्ट्रेण प्रयुक्ता ये बहिश्चराः।
मृगयित्वा बहून् ग्रामान् राष्ट्राणि नगराणि च॥ १॥
संविधाय यथादृष्टं यथादेशप्रदर्शनम्।
कृतकृत्या न्यवर्तन्त ते चरा नगरं प्रति॥ २॥
दुर्योधनं सभामध्ये आसीनमिदब्रुवन्।

धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने पाण्डवों को अज्ञातवास के समय ढूँढने के लिये जो गुप्तचर लगाये थे, वे बहुत से देशों नगरों और ग्रामों में घूम फिर कर, उनको प्राप्त करने के लिये जितना प्रयत्न वे कर सकते थे, करके, अपना कार्य पूरा कर नगर में वापिस लौट आये और सभा में विद्यमान दुर्योधन से बोले कि–

कृतोऽस्माभिः परो यत्नस्तेषामन्वेषणे सदा॥ ३॥
पाण्डवानां मनुष्येन्द्र तस्मिन् महति कानने।
निर्जने मृगसंकीर्णे नानाद्रुमलताकुले॥ ४॥
न च विद्मो गता येन पार्थाः सुदृढविक्रमाः।
मार्गमाणाः पदन्यासं तेषु तेषु तथा तथा॥ ५॥
गिरिकूटेषु तुङ्गेषु नानाजनपदेषु च।
जनाकीर्णेषु देशेषु खर्वटेषु पुरेषु च॥ ६॥
नरेन्द्र बहुशोऽन्विष्टा नैव विद्मश्च पाण्डवान्।

हे राजेन्द्र! हमने पाण्डवों को ढूँढने के लिये उस विशाल वन में बड़ा प्रयत्न किया। पशुओं से भरे हुए, तरह-तरह के वृक्षों और लताओं से युक्त उन स्थानों में बहुत ढूँढा। विभिन्न स्थानों पर हम उनके पैरों के निशानों से भी ढूँढ़ते रहे, पर वे दृढ़ पराक्रमी पाण्डव कहाँ गये इसका पता नहीं लगा। हे नरेन्द्र! हमने ऊँचे पर्वतों की चोटियों पर, अनेक जनपदों में, लोगों से भरे हुए नगरों में, पर्वतों की तराइयों में, देशों में, हमने बहुत प्रकार से खोज का कार्य किया, पर पाण्डवों के बारे में नहीं जान सके।

किंचित्काले मनुष्येन्द्र सूतानामनुगा वयम्॥ ७॥
मृगयित्वा यथान्यायं वेदितार्थाः स्म तत्त्वतः।
प्राप्ता द्वारवतीं सूता विना पार्थैः परंतप॥ ८॥
न तत्र कृष्णा राजेन्द्र पाण्डवाश्च महाव्रताः।
अन्वेषणे पाण्डवानां भूयः किं करवामहे॥ ९॥
इमां च नः प्रियां वीर वाचं भद्रवतीं शृणु।

हे मनुष्येन्द्र! हम कुछ समय उनके सारथियों के पीछे लगे रहे। उनके बारे में तो हमने ढूँढ कर सही बात का पता लगा लिया है कि हे परंतप! वे सारथी लोग द्वारिका में पहुँच गये हैं। पर वे वहाँ कुन्ती पुत्रों के बिना हैं। हे राजेन्द्र! न तो वहाँ द्रौपदी है और न वहाँ महाव्रती पाण्डव हैं। अब आगे पाण्डवों के ढूँढने के लिये हमें क्या करना है? यह बताइये। पर हे वीर! आप इस प्रिय और मंगलदायक बात को भी सुनिये कि–।

येन त्रिगर्ता निहता बलेन महता नृप॥ १०॥
सूतेन राज्ञो मत्स्यस्य कीचकेन बलीयसा।
स हतः पतितः शेते गन्धर्वैर्निशि भारत॥ ११॥
अदृश्यमानैर्दुष्टात्मा भ्रातृभिः सह सोदरैः।
स हतो निशि गन्धर्वैः स्त्रीनिमित्तं नराधिप॥ १२॥

मत्स्यराज के जिस बलवान् सूतपुत्र कीचक ने बड़ी सेना के साथ त्रिगर्तों को मारा था, हे भारत! वह दुष्टात्मा कीचक अपने सगे भाइयों के साथ गुप्त गन्धर्वों के द्वारा रात में मारा हुआ श्मशान में सो रहा है। हे नराधिप! वह एक स्त्री के कारण रात में गन्धर्वो के द्वारा मारा गया।

अठारहवाँ अध्याय : पाण्डवों का पता लगाने के लिये दुर्योधन का परामर्श।

ततो दुर्योधनो राजा ज्ञात्वा तेषां वचस्तदा।
चिरमन्तर्मना भूत्वा प्रत्युवाच सभासदः॥ १॥
अल्पावशिष्टं कालस्य गतभूयिष्ठमन्ततः।
तेषामज्ञातचर्यायामस्मिन् वर्षे त्रयोदशे॥ २॥
अस्य वर्षस्य शेषं चेद् व्यतीयुरिह पाण्डवाः।
निवृत्तसमयास्ते हि सत्यव्रतपरायणाः॥ ३॥
क्षरन्त इव नागेन्द्राः सर्वे ह्याशीविषोपमाः।
दुःखा भवेयुः संरब्धाः कौरवान् प्रति ते ध्रुवम्॥ ४॥

तब दुर्योधन गुप्तचरों की बातें सुनकर देर तक मन ही मन सोचता रहा और फिर सभासदों से बोला कि इस तेरहवें वर्ष का अधिकांश भाग व्यतीत हो गया, अब थोड़ा सा ही बचा है। यदि पाण्डवों ने

शेष बचे हुए समय को भी व्यतीत कर लिया, तो वे सत्यव्रत परायण पाण्डव लोग समझौते की शर्त से मुक्त हो जायेंगे। तब मद बहाते हुए गजराजों के समान वे सारे जहरीले सर्पों के समान क्रोध में भरे हुए, कौरवों के लिये दुःखदायी हो जायेंगे। इसमें कोई शक नहीं है।

सर्वे कालस्य वेत्तारः कृच्छ्ररूपधराः स्थिताः।
प्रविशेयुर्जितक्रोधास्तावदेव पुनर्वनम्॥ ५॥
तस्मात् क्षिप्रं बुभूषध्वं यथा तेऽत्यन्तमव्ययम्।
राज्यं निर्द्वन्द्वमव्यग्रं निःसपत्नं चिरं भवेत्॥ ६॥

वे सारे समय को पहचानते हैं और कठिनाई से पहचाना जा सकने वाला रूप धारण करके छिपे हुए हैं। इसलिये उन्हें शीघ्रता से पहचानने का प्रयत्न करो। जिससे वे अपने क्रोध को दबाकर फिर बारह वर्ष के लिए वन में चले जायें और हमारा राज्य लम्बे समय के लिये निर्द्वन्द्व, चिन्तारहित और निष्कण्टक हो जाये।

अथाब्रवीत् ततः कर्णः क्षिप्रं गच्छन्तु भारत।
अन्ये धूर्ता नरा दक्षा निभृताः साधुकारिणः॥ ७॥
विविधैस्तत्परैः सम्यक् तज्ज्ञैर्निपुणसंवृतैः।
अन्वेष्टव्याः सुनिपुणैः पाण्डवाश्छन्नवासिनः॥ ८॥
नदीकुञ्जेषु तीर्थेषु ग्रामेषु नगरेषु च।
आश्रमेषु च रम्येषु पर्वतेषु गुहासु च॥ ९॥

तब कर्ण ने कहा कि हे भारत! अब शीघ्र ही और दूसरे चतुर, पूरी तरह से कार्य को अच्छी रीति से करने वाले, कुशल और धूर्त गुप्तचर भेजे जायें। वे चतुर गुप्तचर स्वयं भी छिपे रहकर कार्य साधन में तत्पर रहते हुए, उन छिपे स्थानों पर रहने वाले पाण्डवों की खोज करें। वे नदियों के तटवर्ती कुंजों में, तीर्थों में, ग्रामों में, नगरों में, सुन्दर आश्रमों में, पर्वतों में और उनकी कन्दराओं में खोज करें।

अथाग्रजानन्तरजः पापभावानुरागवान्।
ज्येष्ठं दुःशासनस्तत्र भ्राता भ्रातरमब्रवीत्॥ १०॥
येषु नः प्रत्ययो राजंश्चारेषु मनुजाधिप।
ते यान्तु दत्तदेया वै भूयस्तान् परिमार्गितुम्॥ ११॥
एतच्च कर्णो यत् प्राह सर्वमीहामहे तथा।
यथोद्दिष्टं चराः सर्वे मृगयन्तु यतस्ततः॥ १२॥
एते चान्ये च भूयांसो देशाद् देशं यथाविधि।
न तु तेषां गतिर्वासः प्रवृत्तिश्चोपलभ्यते॥ १३॥

तब पापपूर्ण भावनाओं में अनुराग रखने वाला दुर्योधन से छोटा भाई दुश्शासन अपने बड़े भाई से बोला कि राजन्। हे मनुष्यों के स्वामी! जिन गुप्तचरों पर हमारा विश्वास है, उन्हें सारे साधन प्रदान किये जायें और वे फिर खोज करने के लिये जायें। जो कर्ण ने कहा है, हम सब वैसा ही चाहते हैं। जो जो स्थान इन्होंने बताये हैं, सारे दूत जहाँ तहाँ उन्हीं स्थानों पर जाकर ढूँढें। ये गुप्तचर तथा और भी बहुत से लोग एक देश से दूसरे देश में विधि पूर्वक खोज का कार्य करें। अभी तक तो पाण्डवों की गति अर्थात् आने जाने, उनके रहने तथा दूसरे क्रिया कलापों के बारे में कुछ पता नहीं लगा है।

उन्नीसवाँ अध्याय : पाण्डवों के विषय में द्रोणाचार्य और भीष्म की सम्मति।

अथाब्रवीन्महावीर्यो द्रोणस्तत्त्वार्थदर्शिवान्।
न तादृशा विनश्यन्ति न प्रयान्ति पराभवम्॥ १॥
शूराश्च कृतविद्याश्च बुद्धिमन्तो जितेन्द्रियाः।
धर्मज्ञाश्च कृतज्ञाश्च धर्मराजमनुव्रताः॥ २॥
तस्माद् यत्नात् प्रतीक्षन्ते कालस्योदयमागतम्।
न हि ते नाशमृच्छेयुरिति पश्याम्यहं धिया॥ ३॥
साम्प्रतं चैव यत् कार्यं तच्च क्षिप्रम कालिकम्।
क्रियतां साधुसंचिन्त्य वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम्॥ ४॥
यथावत् पाण्डुपुत्राणां सर्वार्थेषु धृतात्मनाम्।

तब तत्वार्थदर्शी, महापराक्रमी द्रोणाचार्य बोले कि पाण्डवों जैसे मनुष्य न तो नष्ट हो सकते हैं और न किसी से पराजय को प्राप्त हो सकते हैं। वे शूरवीर, विद्वान्, बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय हैं, धर्म को जानने वाले, कृतज्ञ और धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा को मानने वाले हैं इसलिये वे बड़े यत्न से उचित समय के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं अपनी बुद्धि से यह समझता हूँ कि वे नष्ट नहीं हो सकते। इसलिये इस समय थोड़े समय में जल्दी से जो कुछ हो सके, वही अच्छी तरह से विचार करके करना चाहिये। सारे कार्यों में अपनी आत्मा को वश में रखने वाले पाण्डवों के निवास स्थान के विषय में पूरी तरह से पता लगाना चाहिये।

ततः शान्तनवो भीष्मो भरतानां पितामहः॥ ५॥
श्रुतवान् देशकालज्ञस्तत्त्वज्ञः सर्वधर्मवित्।
आचार्यवाक्योपरमे तद्वाक्यमभिसंदधत्॥ ६॥
हितार्थे समुवाचैनां भारतीं भारतान् प्रति।
भीष्मः समवदत् तत्र गिरं साधुभिरर्चिताम्॥ ७॥
यथैष ब्राह्मणः प्राह द्रोणः सर्वार्थतत्त्ववित्।
सर्वलक्षणसम्पन्नाः साधुव्रतसमन्विताः॥ ८॥
श्रुतव्रतोपपन्नाश्च नानाश्रुतिसमन्विताः।

तब भरतवंशियों के पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म, जो कि देश और काल को समझने वाले, तत्व ज्ञानी और सारे धर्मों को जानने वाले थे आचार्य द्रोण की बात पूरी होने पर उन्हीं की बातों का समर्थन करते हुए, उन भरतवंशियों से यह हितकारी बात बोले कि सारे विषयों के तत्वों को जानने वाले इन ब्राह्मण द्रोण ने जो कुछ कहा है, वह सज्जनों से सम्मानित बात है। वास्तव में पाण्डव लोग सारे अच्छे लक्षणों से सम्पन्न और अच्छे व्रतों से युक्त हैं। वे वेदोक्त व्रतों का पालन करने वाले और श्रुतियों के ज्ञाता हैं।

वृद्धानुशासने युक्ताः सत्यव्रतपरायणाः॥ ९॥
समयं समयज्ञास्ते पालयन्तः शुचिव्रताः।
क्षत्रधर्मरता नित्यं केशवानुगताः सदा॥ १०॥
प्रवीरपुरुषास्ते वै महात्मानो महाबलाः।
नावसीदितुमर्हन्ति उद्वहन्तः सतां धुरम्॥ ११॥
धर्मतश्चैव गुप्तास्ते सुवीर्येण च पाण्डवाः।
न नाशमधिगच्छेयुरिति मे धीयते मतिः॥ १२॥

वे सत्यव्रत परायण और वृद्धों के आदेशों का पालन करने वाले हैं। वे अज्ञातवास के समझौते और समय को जानते हैं इसलिये पवित्र व्रत में स्थित होकर उसका पालन कर रहे हैं। पाण्डव लोग सदा कृष्ण की सलाह के अनुसार कार्य करने वाले हैं और क्षत्रिय धर्म में लगे हुए हैं। वे उत्तम वीर पुरुष, महात्मा और महाबलवान् हैं। सज्जनों के योग्य उचित कर्तव्य का पालन करते हुए वे नष्ट नहीं हो सकते। वे अपने धर्म और पराक्रम से सुरक्षित है।

बीसवाँ अध्याय : कृपाचार्य की सम्मति और दुर्योधन का निश्चय।

ततः शारद्वतो वाक्यमित्युवाच कृपस्तदा।
युक्तं प्राप्तं च वृद्धेन पाण्डवान् प्रति भाषितम्॥ १॥
धर्मार्थसहितं श्लक्ष्णं तत्त्वतश्च सहेतुकम्।
तत्रानुरूपं भीष्मेण ममाप्यत्र गिरं शृणु॥ २॥
तेषां चैव गतिस्तीर्थैर्वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम्।
नीतिर्विधीयतां चापि साम्प्रतं या हिता भवेत्॥ ३॥

तब शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य ने कहा कि वृद्ध पितामह भीष्म नै पाण्डवों के लिये ठीक कहा है। उनकी बात धर्म और अर्थ से युक्त है। वह मधुर, तात्विक और सकारण है। आप लोग भीष्म के कथन के अनुसार ही मेरे कथन को भी समझें। विभिन्न उपायों से पाण्डवों की गति और निवास का पता लगाइये। इस समय उसी नीति का पालन करो, जो उचित हो।

ततो दुर्योधनो वाक्यं श्रुत्वा तेषां महात्मनाम्।
मुहूर्तमिव संचिन्त्य सचिवानिदमब्रवीत्॥ ४॥
श्रुतं ह्येतन्मया पूर्वं कथासु जनसंसदि।
वीराणां शास्त्रविदुषां प्राज्ञानां मतिनिश्चये॥ ५॥
कृतिनां सारफल्गुत्वं जानामि नयचक्षुषा।

तब उन सब महात्माओं की बातें सुनकर और एक मुहूर्त तक विचार करने के पश्चात् दुर्योधन अपने मन्त्रियों से बोला कि वीरों, शास्त्रों के विद्वानों की निश्चय पर पहुँचने के लिये जो बुद्धि होती है, उसके विषय में मैंने पहले लोगों की सभाओं में, आपस के वार्तालापों में जो कुछ सुना है, उसके आधार पर मैं प्रसिद्ध लोगों के बलाबल के विषय में नीति की दृष्टि के अनुसार जानकारी रखता हूँ।

चत्वारस्तु नरव्याघ्रा बले शारीर सम्भवे॥ ६॥
उत्तमाः प्राणिनां तेषां नास्ति कश्चिद् बले समः।
समप्राणबला नित्यं सम्पूर्णबलपौरुषाः॥ ७॥
बलदेवश्च भीमश्च मद्रराजश्च वीर्यवान्।
चतुर्थः कीचकस्तेषां पञ्चमं नानुशुश्रुमः॥ ८॥
अन्योन्यानन्तरबलाः परस्परजयैषिणः।
तेनाहमवगच्छामि प्रत्ययेन वृकोदरम्॥ ९॥
मनस्यभिनिविष्टं मे व्यक्तं जीवन्ति पाण्डवाः।

शारीरिक शक्ति में चार नरव्याघ्र इस समय सारे प्राणियों में श्रेष्ठ हैं। उनके समान कोई शक्तिशाली नहीं है। बलराम, भीम, प्रतापी मद्रराज शल्य और चौथा कीचक इनके अतिरिक्त किसी पाँचवे का नाम

हमने नहीं सुना। ये सारे परस्पर समान बलशाली और एक दूसरे को जीतने की इच्छा रखते हैं। इसी आधार पर मैं भीम का पता जान सकता हूँ। मेरे मन में यह निश्चित विचार विद्यमान है कि पाण्डव जीवित हैं।

तत्राहं कीचकं मन्ये भीमसेनेन मारितम्॥ १०॥
सैरन्ध्रीं द्रौपदीं मन्ये नात्र कार्या विचारणा।
शङ्के कृष्णानिमित्तं तु भीमसेनेन कीचकः॥ ११॥
गन्धर्वव्यपदेशेन हतो निशि महाबलः।
को हि शक्तः परो भीमात् कीचकं हन्तुमोजसा॥ १२॥
शस्त्रं विना बाहुवीर्यात् तथा सर्वाङ्गचूर्णने।
रूपमन्यत् समास्थाय भीमस्यैतद् विचेष्टितम्॥ १३॥
ध्रुवं कृष्णानिमित्तं तु भीमसेनेन सूतजाः।
गन्धर्वव्यपदेशेन हता युधि न संशयः॥ १४॥

मैं यहाँ कीचक को भीम के द्वारा मारा हुआ समझता हूँ और सैरन्ध्री को द्रौपदी मानता हूँ। इसमें अधिक विचार नहीं करना चाहिये। मुझे शंका है कि द्रौपदी के कारण से उस महाबली कीचक को गन्धर्व के रूप में रात में भीमसेन ने ही मारा है। सिवाय भीम के कौन दूसरा व्यक्ति अपने तेज से कीचक को मार सकता है? कौन बिना शस्त्रों के केवल हाथों की शक्ति से उसके सारे शरीर के अंगों का चूरा कर सकता है? यह निश्चित है कि दूसरा रूप धारण करके भीम ने ही यह कार्य किया है। भीमसेन ने द्रौपदी के लिये गन्धर्व के वेश में सूतपुत्रों को युद्ध में मारा है इसमें कोई संशय नहीं है।

मत्स्यराष्ट्रं हनिष्यामो ग्रहीष्यामश्च गोधनम्।
गृहीते गोधने नूनं तेऽपि योत्स्यन्ति पाण्डवाः॥ १५॥
अपूर्णे समये चापि यदि पश्येम पाण्डवान्।
द्वादशान्यानि वर्षाणि प्रवेक्ष्यन्ति पुनर्वनम्॥ १६॥
तस्मादन्यतरेणापि लाभोऽस्माकं भविष्यति।
कोषवृद्धिरिहास्माकं शत्रूणां निधनं भवेत्॥ १७॥
कथं सुयोधनं गच्छेत् युधिष्ठिरभृतः पुरा।
एतच्चापि वदत्येष मात्स्यः परिभवान्मयि॥ १८॥
तस्मात् कर्तव्यमेतद् वै तत्र यात्रा विधीयताम्।
एतत् सुनीतं मन्येऽहं सर्वेषां यदि रोचते॥ १९॥

इसलिये अब ऐसा करते हैं कि हम मत्स्य देश पर आक्रमण कर उसका विनाश करेंगे और उनकी गायों का अपहरण कर लेंगे। गायों का अपहरण कर लेने पर वे पाण्डव लोग निश्चित रूप से युद्ध करेंगे। समय पूरा होने से पहले यदि हम पाण्डवों को देख लेंगे तो उन्हें फिर दूसरे बारह वर्षों के लिये वन में प्रवेश करना पड़ेगा। इस प्रकार किसी एक अवस्था में भी हमें लाभ ही होगा। अर्थात् पाण्डव नहीं मिले तो भी हमारे कोष की वृद्धि होगी और शत्रुओं का विनाश होगा क्योंकि मत्स्य देश का राजा मेरे प्रति तिरस्कार रखते हुए यह कहता है कि पहले युधिष्ठिर के द्वारा संरक्षित अब दुर्योधन के अधिकार में कैसे जा सकता है? इसलिये यही हमारा कर्त्तव्य है कि मत्स्य देश की यात्रा की जाये। यदि आप लोगों को अच्छा लगे तो मैं यही कार्य नीति के योग्य समझता हूँ।

इक्कीसवाँ अध्याय : त्रिगर्तों, कौरवों की मत्स्यदेश पर आक्रमण योजना।

अथ राजा त्रिगर्तानां सुशर्मा रथयूथपः।
प्राप्तकालमिदं वाक्यमुवाच त्वरितो बली॥ १॥
असकृन्निकृताः पूर्वं मत्स्यशाल्वेयकैः प्रभो।
सूतेनैव च मत्स्यस्य कीचकेन पुनः पुनः॥ २॥
बाधितो बन्धुभिः सार्धं बलाद् बलवता विभो।
स कर्णमभ्युदीक्ष्याथ दुर्योधनमभाषत॥ ३॥
क्रूरोऽमर्षी स दुष्टात्मा भुवि प्रख्यातविक्रमः।
निहतः स तु गन्धर्वैः पापकर्मा नृशंसवान्॥ ४॥

तब उचित समय देखकर त्रिगर्त देश का बलवान् राजा सुशर्मा, जो रथियों के समूह का स्वामी था कर्ण की तरफ देख कर दुर्योधन से बोला कि हे प्रभो! पहले मत्स्य देश के तथा शाल्व देश के सैनिकों ने हमें अनेक बार नीचा दिखाया है। हे विभो! मत्स्यदेश के सूतपुत्र बलवान् कीचक ने ही अपने भाइयों के साथ बार-बार आक्रमण कर हमें बलपूर्वक कष्ट दिया है। वह संसार में प्रख्यात विक्रम वाला, क्रूर, अमर्षी, दुष्टात्मा, पापकर्मा और नृशंस कीचक गन्धर्वों के द्वारा मारा गया।

तस्मिन् विनिहते राजा हतदर्पो निराश्रयः।
भविष्यति निरुत्साहो विराट इति मे मतिः॥ ५॥
तत्र यात्रा मम मता यदि ते रोचतेऽनघ।
कौरवाणां च सर्वेषां कर्णस्य च महात्मनः॥ ६॥

एतत् प्राप्तमहं मन्ये कार्यमात्ययिकं हि नः।
राष्ट्रं तस्याभियास्यामो बहुधान्यसमाकुलम्॥ ७॥

उस कीचक के मारे जाने पर मेरा विचार है कि विराटराज का अभिमान समाप्त हो गया होगा और वे आश्रयरहित निरुत्साही हो गये होंगे। हे अनघ! यदि आपको रुचे तो मेरी सलाह है कि सारे कौरवों की और महात्मा कर्ण की भी उस देश पर आक्रमण के लिये यात्रा हो। मैं समझता हूँ कि यह अत्यन्त आवश्यक कार्य है कि हम उसके प्रचुर धन धान्य से युक्त राज्य पर आक्रमण करें और इसे करने का यह उपयुक्त अवसर हमें प्राप्त हुआ है।

आददामोऽस्य रत्नानि विविधानि वसूनि च।
ग्रामान् राष्ट्राणि वा तस्य हरिष्यामो विभागशः॥ ८॥
कौरवैः सह संगत्य त्रिगर्तैश्च विशाम्पते।
गास्तस्यापहरामोऽद्य सर्वैश्चैव सुसंहताः॥ ९॥
तं वशे न्यायतः कृत्वा सुखं वत्स्यामहे वयम्।
भवतां बलवृद्धिश्च भविष्यति न संशयः॥ १०॥

हम उसके अनेक प्रकार के रत्नों और सम्पत्तियों को छीन लेंगे। उसके ग्रामों को तथा सारे देश को जीतकर आपस में बाँट लेंगे। हे राजन्! हम कौरवों और त्रिगर्तों की मिली हुई सेना के द्वारा सब अच्छी तरह से संगठित होकर उसकी गायों का अपहरण कर लेंगे। इस प्रकार उसे विधिपूर्वक अपने आधीन करके हम सुख से रहेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इससे आपके बल की वृद्धि होगी।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कर्णो राजानमब्रवीत्।
सूक्तं सुशर्मणा वाक्यं प्राप्तकालं हितं च नः॥ ११॥
तस्मात् क्षिप्रं विनिर्यामो योजयित्वा वरूथिनीम्।
विभज्य चाप्यनीकानि यथा वा मन्यसेऽनघ॥ १२॥
प्राज्ञो वा कुरुवृद्धोऽयं सर्वेषां नः पितामहः।
आचार्यश्च यथा द्रोणः कृपः शारद्वतस्तथा॥ १३॥
मन्यन्ते ते यथा सर्वे तथा यात्रा विधीयताम्।

उसकी इस बात को सुन कर कर्ण ने राजा दुर्योधन से कहा कि सुशर्मा ने अच्छी बात कही है। यह समय के अनुसार और हमारे हित की है। इसलिये हम सेना को तैयार कर और उसे अनेक भागों में बाँट कर जल्दी ही कूच कर देते हैं। या हे निष्पाप! जैसे आपको ठीक लगे वैसे करिये। या कौरवों में वृद्ध और बुद्धिमान् जो हम सबके पितामह हैं वे भीष्म, आचार्य द्रोण और शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य जैसे उचित समझें वैसे यात्रा करिये।

सम्मन्त्र्य चाशु गच्छामः साधनार्थं महीपतेः॥ १४॥
किं च नः पाण्डवैः कार्यं हीनार्थबलपौरुषैः।
अत्यन्तं वा प्रणष्टास्ते प्राप्ता वापि यमक्षयम्॥ १५॥
यामो राजन् निरुद्विग्ना विराटनगरं वयम्।
आदास्यामो हि गास्तस्य विविधानि वसूनि च॥ १६॥

हम सब आपस में सलाह करके राजा विराट को वश में करने के लिये जल्दी चलते हैं। हमें पाण्डवों से क्या मतलब? वे तो अब धन, शक्ति और पौरुष से हीन हैं। चाहे वे बहुत गुप्त रूप से छिपे हुए हों या मृत्यु के घर पहुँच गये हों, हे राजन्! हम तो निर्भय होकर विराट नगर को जाते हैं। हम उसकी गायों को और विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों को उससे छीन लेंगे।

ततो दुर्योधनो राजा वाक्यमादाय तस्य तत्।
वैकर्तनस्य कर्णस्य क्षिप्रमाज्ञापयत् स्वयम्॥ १७॥
शासने नित्यसंयुक्तं दुःशासनमनन्तरम्।
सह वृद्धैस्तु सम्मन्त्र्य क्षिप्रं योजय वाहिनीम्॥ १८॥
यथोद्देशं च गच्छामः सहितास्तत्र कौरवैः।
सुशर्मा च यथोद्दिष्टं देशं यातु महारथः॥ १९॥
त्रिगर्तैः सहितो राजा समग्रबलवाहनः।

तब राजा दुर्योधन ने उस सूर्यपुत्र की बात को ग्रहण कर शीघ्र ही स्वयं दुश्शासन को, जो आदेश पालन करने के लिये सदा तैयार रहता था, आज्ञा दी कि वृद्धों की सम्मति लेकर जल्दी सेना को तैयार करो। जिधर से निश्चित हो, हम कौरव सेना के साथ उसी तरफ से चलते हैं और त्रिगर्तों की अपनी सारी सेना तथा सवारियों के साथ राजा सुशर्मा महारथी अपने लिये निश्चित दिशा की तरफ से जाये।

प्रागेव हि सुसंवीतो मत्स्यस्य विषयं प्रति॥ २०॥
जघन्यतो वयं तत्र यास्यामो दिवसान्तरे।
विषयं मत्स्यराजस्य सुसमृद्धं सुसंहताः॥ २१॥
ते यान्तु सहितास्तत्र विराटनगरं प्रति।
क्षिप्रं गोपान् समासाद्य गृह्णन्तु विपुलं धनम्॥ २२॥
गवां शतसहस्राणि श्रीमन्ति गुणवन्ति च।
वयमप्यनुगृह्णीमो द्विधा कृत्वा वरूथिनीम्॥ २३॥

सुशर्मा पहले सब साधनों से तैयार होकर मत्स्य देश पर आक्रमण करे। फिर हम दूसरे दिन अच्छी तरह से संगठित होकर उस सुसम्पन्न मत्स्य देश पर

आक्रमण करेंगे। वे त्रिगर्त सैनिक जल्दी से इकट्ठे होकर विराट नगर में जाकर वहाँ की गायों को अपने अधिकार में कर वहाँ के विपुल धन को ग्रहण कर लें। फिर हम भी अपनी सेना को दो भागों में बाँट कर उनकी लाखों शोभावाली और गुणवान् गायों का अपहरण कर लेंगे।

बाईसवाँ अध्याय : चारों पाण्डवों सहित राजा विराट का युद्ध हेतु प्रस्थान।

छद्मलिङ्गप्रविष्टानां पाण्डवानां महात्मनाम्।
व्यतीतः समयः सम्यग् वसतां वै पुरोत्तमे॥ १॥
कुर्वतां तस्य कर्माणि विराटस्य महीपतेः।
ततस्त्रयोदशस्यान्ते तत्रैवामिततेजसाम्॥ २॥
सुशर्मणा गृहीतं तद् गोधनं तरसा बहु।
ततो जवेन महता गोपः पुरमथाव्रजत्॥ ३॥
शूरैः परिवृतं योधैः कुण्डलाङ्गदधारिभिः।
संवृतं मन्त्रिभिः सार्धं पाण्डवैश्च महात्मभिः॥ ४॥
तं सभायां महाराजमासीनं राष्ट्रवर्धनम्।

इस प्रकार बनावटी वेश धारण कर विराट नगर में प्रविष्ट हुए पाण्डवों का उस उत्तम नगर में अच्छी तरह से रहते हुए और राजा विराट के कार्य करते हुए समय व्यतीत हो रहा था। तब उन अमित तेजस्वी पाण्डवों के वहाँ रहते हुए ही तेरहवें वर्ष के अन्त में सुशर्मा ने राजा विराट के बहुत सारे गोधन का अचानक आक्रमण कर शीघ्रता से अपहरण कर लिया। तब गायों का अधिपति गोप जल्दी से नगर में आया और राष्ट्र को उन्नत करने वाले महाराज मत्स्यराज के, जो कि कुण्डल और बाजूबन्द धारण किये हुए शूरवीरों से घिरे हुए, मन्त्रियों के बीच में, महात्मा पाण्डवों के साथ सभा में बैठे थे, समीप पहुँचा।

सोऽब्रवीदुपसंगम्य विराटं प्रणतस्तदा॥ ५॥
अस्मान् युधि विनिर्जित्य परिभूय सबान्धवान्।
गवां शतसहस्राणि त्रिगर्ताः कालयन्ति ते॥ ६॥
तान् परीप्सस्व राजेन्द्र मा नेशुः पशवस्तव।
तच्छ्रुत्वा नृपतिः सेनां मत्स्यानां समयोजयत्॥ ७॥
रथनागाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम्।
राजानो राजपुत्राश्च तनुत्राण्यथ भेजिरे॥ ८॥

उसने राजा विराट के समीप जाकर और उन्हें प्रणाम करके कहा कि त्रिगर्त देश की सेनाएँ, हम सबका तिरस्कार कर बन्धुओं सहित हमें युद्ध में जीतकर, आपकी एक लाख गायों को हाँक कर ले जा रहे हैं। हे राजेन्द्र! आप उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न कीजिये, कहीं आपके पशु नष्ट न हो जायें। यह सुनकर राजा ने अपनी सेना को तैयार किया। उस सेना में रथ, हाथी, घोड़े और पैदल थे। वह ध्वजाओं से सुशोभित हो रही थी। फिर राजा और राजकुमारों ने कवच धारण किये।

सवज्रायसगर्भं तु कवचं तत्र काञ्चनम्।
विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीकोऽभ्यहारयत्॥ ९॥
सर्वपारशवं वर्म कल्याणपटलं दृढम्।
शतानीकादवरजो मदिराक्षोऽभ्यहारयत्॥ १०॥
शतसूर्यं शतावर्तं शतबिन्दु शताक्षिमत्।
अभेद्यकल्पं मत्स्यानां राजा कवचमाहरत्॥ ११॥
उत्सेधे यस्य पद्मानि शतं सौगन्धिकानि च।
सुवर्णपृष्ठं सूर्याभं सूर्यदत्तोऽभ्यहारयत्॥ १२॥

विराट के प्रिय भाई शतानीक ने लोहे से बने हुए कवच को धारण किया, जिसमें हीरे लगे हुए थे। शतानीक के छोटे भाई मदिराक्ष ने सारे लोहे से बने हुए कल्याणकारी कवच को धारण किया। मत्स्य देश के राजा विराट ने अभेद्यकल्प नामके उस कवच को धारण किया, जिसमें सूर्य के समान सौ चमकीली फूलियाँ, सौ भँवर, सौ सूक्ष्मचक्र, और नेत्र के आकार वाले चक्र बने हुए थे। जिसमें नीचे से लेकर ऊपर तक सौ सौगन्धिक जाति के कमल बने हुए थे। सेनापति सूर्यदत्त ने सूर्य के समान चमकीले कवच को धारण किया। जिसके पृष्ठ भाग में सोना लगा हुआ था।

दृढमायसगर्भं च श्वेतं वर्म शताक्षिमत्।
विराटस्य सुतो ज्येष्ठो वीरः शङ्खोऽभ्यहारयत्॥ १३॥
सूपस्करेषु शुभ्रेषु महत्सु च महारथाः।
पृथक् काञ्चनसंनाहान् रथेष्वश्वानयोजयन्॥ १४॥
सूर्यचन्द्रप्रतीकाशे रथे दिव्ये हिरण्मये।
महानुभावो मत्स्यस्य ध्वज उच्छिश्रिये तदा॥ १५॥
अथान्यान् विविधाकारान् ध्वजान् हेमपरिष्कृतान्।
यथास्वं क्षत्रियाः शूरा रथेषु समयोजयन्॥ १६॥

विराट के बड़े पुत्र वीर शंख ने, जिसके भीतरी भाग में सोना लगा हुआ था और ऊपर नेत्र के समान

सौ चिह्न बने हुए थे, ऐसे श्वेत रंग के दृढ़ कवच को धारण किया। फिर अच्छी प्रकार से सामग्री युक्त किये हुए विशाल रथों में महारथियों ने सुनहरे कवच पहनाए हुए घोड़ों को जोता। सूर्य और चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे दिव्य सुनहले महानुभाव मत्स्यराज के रथ में ऊँचा ध्वज लहराने लगा। इसके पश्चात् दूसरे शूरवीर क्षत्रियों ने भी अपने-अपने रथों में यथाशक्ति विविध आकार वाली सुनहली ध्वजाएँ लगायीं।

रथेषु युज्यमानेषु कंको राजानमब्रवीत्।
मयाप्यस्त्रं चतुर्मार्गमवाप्तमृषिसत्तमात्॥ १७॥
दंशितो रथमास्थाय पदं निर्याम्यहं गवाम्।
अयं च बलवाञ्छूरो बल्लवो दृश्यतेऽनघ॥ १८॥
गोसंख्यमश्ववन्धं च रथेषु समयोजय।
नैते न जातु युध्येयुर्गवार्थमिति मे मतिः॥ १९॥
अथ मत्स्योऽब्रवीद् राजा शतानीकं जघन्यजम्।

जब रथ जोते जा रहे थे, तब कंक ने राजा से कहा कि मैंने भी एक श्रेष्ठ ऋषि से चारों अंगों वाली अस्त्र विद्या को सीखा है। मैं कवच पहन कर रथ में बैठकर गायों के पद चिह्नों के पीछे युद्ध के लिये जाऊँगा। यह बलवान बल्लव भी शूरवीर मालूम पड़ता है। हे अनघ! गौशाला के अध्यक्ष और अश्वों के प्रशिक्षक को भी रथों में बैठा लीजिये। मेरा विचार है कि गायों के लिये युद्ध करने से ये मना नहीं करेंगे। तब राजा ने अपने छोटे भाई शतानीक से कहा कि—

कंकबल्लवगोपाला दामग्रन्थिश्च वीर्यवान्॥ २०॥
युद्ध्येयुरिति मे बुद्धिर्वर्तते नात्र संशयः।
एतेषामपि दीयन्तां रथा ध्वजपताकिनः॥ २१॥
कवचानि च चित्राणि दृढानि च मृदूनि च।
प्रतिमुञ्चन्तु गात्रेषु दीयन्तामायुधानि च॥ २२॥
वीराङ्गरूपाः पुरुषा नागराजकरोपमाः।
नेमे जातु न युध्येरन्निति मे धीयते मतिः॥ २३॥
सहदेवाय राज्ञे च भीमाय नकुलाय च।
तान् प्रहृष्टांस्ततः सूता राजभक्तिपुरस्कृताः॥ २४॥
निर्दिष्टा नरदेवेन रथाञ्छीघ्रमयोजयन्।

मेरा विचार है कि ये कंक, बल्लव, तन्तिपाल और ग्रन्थिक भी युद्ध कर सकते हैं इसमें शक नहीं है। इन्हें भी इसलिये ध्वज और पताकाओं वाले रथ दो और सुन्दर, अन्दर से मुलायम तथा ऊपर से दृढ़ कवच दो, जिन्हें ये अपने गात्रों पर धारण करें। इन्हें हथियार भी दो। इसके अंग वीरों जैसे हैं और बाहें हाथी की सूँड के समान हैं। मेरा विचार है कि ये कभी युद्ध न करते हो ऐसा नहीं हो सकता। तब राजभक्ति से युक्त सारथियों ने राजा की आज्ञा से प्रसन्न होकर सहदेव, राजा युधिष्ठिर, भीम और नकुल के लिये शीघ्र ही रथों को जोत दिया।

कवचानि विचित्राणि मृदूनि च दृढानि च॥ २५॥
विराटः प्रादिशद् यानि तेषामक्लिष्टकर्मणाम्।
तान्यामुच्य शरीरेषु दंशितास्ते परंतपाः॥ २६॥
रथान् हयैः सुसम्पन्नानास्थाय च नरोत्तमाः।
निर्ययुर्मुदिताः पार्थाः शत्रुसंघावमर्दिनः॥ २७॥

उन अनायास ही महान् कर्म करने वालों के लिये विराटराज ने जिन अन्दर से मुलायम और ऊपर से कठोर विचित्र कवचों को दिया, उन्हें शरीरों पर पहन कर, वे शत्रुओं को संतप्त करने वाले पाण्डव कवचधारी बन गये। शत्रुओं के समूहों को कुचलने वाले वे नरश्रेष्ठ पाण्डव, घोड़ों से अच्छी तरह से सुसज्जित रथों पर बैठकर बाहर निकले।

तरस्विनश्छन्नरूपाः सर्वे युद्धविशारदाः।
रथान् हेमपरिच्छन्नानास्थाय च महारथाः॥ २८॥
विराटमन्वयुः पार्थाः सहिताः कुरुपुङ्गवाः।
चत्वारो भ्रातरः शूराः पाण्डवाः सत्यविक्रमाः॥ २९॥
विशारदानां मुख्यानां हृष्टानां चारुजीविनाम्।
अष्टौ रथसहस्राणि दश नागशतानि च॥ ३०॥
षष्टिश्चाश्वसहस्राणि मत्स्यानामभिनिर्ययुः।

वे सत्य पराक्रमी, शूरवीर, चारों भाई पाण्डव जो कुरुश्रेष्ठ, युद्धविशारद, महारथी और वेगवान् थे तथा उस समय अपने गुप्तरूप में थे, सुनहले रथों पर बैठकर, एक साथ विराटराज के पीछे-पीछे गये। उस समय मत्स्यदेशी वीरों की वह सेना तैयार होकर, निकली, जिसमें सारे वीर युद्धकला में विशारद, प्रसन्नचित्त और उत्तम जीविका वाले थे। उस सेना में आठ हजार रथ, दस हजार हाथी और आठ हजार घोड़े थे।

तेईसवाँ अध्याय : मत्स्य और त्रिगर्त देशीय सेनाओं का युद्ध।

निर्याय नगराच्छूरा व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
त्रिगर्तानस्पृशन् मत्स्याः सूर्ये परिणते सति॥ १॥
ते त्रिगर्ताश्च मत्स्याश्च संरब्धा युद्धदुर्मदाः।
अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः॥ २॥
भीमाश्च मत्तमातङ्गास्तोमराङ्कुशनोदिताः।
ग्रामणीयैः समारूढाः कुशलैर्हस्तिसादिभिः॥ ३॥
अन्योन्यमभ्यापततां निघ्नतां चेतरेतरम्।
उदतिष्ठद् रजो भौमं न प्राज्ञायत किंचन॥ ४॥

प्रहार करने वाले मत्स्य देश के वे शूरवीर मोर्चा बाँधकर बाहर निकले और उन्होने साँयकाल के समय त्रिगर्त देश की सेना को जाकर पकड़ लिया। तब गायों की प्राप्ति के लिये इच्छुक वे महाबली त्रिगर्त और मत्स्य देश के सैनिक, जो युद्ध के मद में उन्मत्त हो रहे थे क्रोध में भर कर एक दूसरे के प्रति गर्जना करने लगे। विशाल आकार वाले मदोन्मत्त हाथी, जिन पर सेनापति लोग बैठे हुए थे, कुशल महावतों के द्वारा तोमरों और अंकुशों की मार से प्रेरित होकर आगे बढ़ कर एक दूसरे पर आक्रमण करने और उन्हें मारने लगे। उनके एक दूसरे पर आक्रमण करने से पृथिवी से इतनी धूल उड़ी कि कुछ भी दिखाई नहीं देने लगा।

पक्षिणश्चापतन् भूमौ सैन्येन रजसाऽऽवृताः।
रुक्मपृष्ठानि चापानि व्यतिषिक्तानि धन्विनाम्॥ ५॥
पततां लोकवीराणां सव्यदक्षिणमस्यताम्।
रथा रथैः समाजग्मुः पादातैश्च पदातयः॥ ६॥
सादिनः सादिभिश्चैव गजैश्चापि महागजाः।
असिभिः पट्टिशैः प्रासैः शक्तिभिस्तोमरैरपि॥ ७॥
निघ्नन्तः समरेऽन्योन्यं शूराः परिघबाहवः।
न शेकुरभिसंरब्धाः शूरान् कर्तुं पराङ्मुखान्॥ ८॥

सेना की धूल से भरकर उस समय ऊपर उड़ने वाले पक्षी भी नीचे गिर जाते थे। उस समय लोगों में प्रसिद्ध धनुर्धर, जो कि दायें बायें दोनों हाथों से बाण फैंकते थे, जब शत्रु की मार से नीचे गिर जाते थे, तब उनके पीठ पर सोना लगे हुए धनुष दूसरों के हाथ में चले जाते थे। उस समय रथ रथों से और पैदल पैदल सैनिकों से भिड़ रहे थे। घुड़सवार घुड़सवारों से और हाथीसवार हाथीसवारों से लड़ रहे थे। तलवारों, पट्टिशों, प्रासों, शक्तियों, तोमरों से एक दूसरे को मारते हुए वे परिघ के समान भुजाओं वाले शूरवीर, क्रोध में भर कर भी शत्रुपक्ष के वीरों को पीछे हटाने में समर्थ न हो सके।

कृत्तोत्तरोष्ठं सुनसं कृत्तकेशमलंकृतम्।
अदृश्यत शिरश्छिन्नं रजोध्वस्तं सकुण्डलम्॥ ९॥
अदृश्यंस्तत्र गात्राणि शरैश्छिन्नानि भागशः।
शालस्कन्धनिकाशानि क्षत्रियाणां महामृधे॥ १०॥
रथिनां रथिभिश्चात्र सम्प्रहारोऽभ्यवर्तत।
सादिभिः सादिनां चापि पदातीनां पदातिभिः॥ ११॥
उपाशाम्यद् रजो भौमं रुधिरेण प्रसर्पता।

उस समय कितने ही सिर, जिन्होंने कुण्डल पहने हुए थे, कट कट कर धूल में लुढ़कते हुए दिखाई दे रहे थे। किसी मस्तक में नाक बहुत सुन्दर थी, पर उसका ऊपरी ओठ कट गया था। कोई मस्तक आभूषणों से सुशोभित था, पर उसके बालों का भाग कट गया था। उस महान् युद्ध में क्षत्रियों के शालवृक्ष की शाखाओं के समान लम्बे चौड़े शरीर के अंग बाणों के द्वारा टुकड़ों के अन्दर कटे हुए दिखाई दे रहे थे। उस समय रथियों का रथियों से, घुड़सवारों का घुड़सवारों से, और पैदलों का पैदलों से घमासान युद्ध हो रहा था। उनके बहते हुए खून से भूमि की उड़ी हुई धूल भी गीली होकर उड़ने से शान्त हो गयी।

शतानीकः शतं हत्वा विशालाक्षश्चतुःशतम्॥ १२॥
प्रविष्टौ महतीं सेनां त्रिगर्तानां महारथौ।
लक्षयित्वा त्रिगर्तानां तौ प्रविष्टौ रथव्रजम्॥ १३॥
अग्रतः सूर्यदत्तश्च मदिराक्षश्च पृष्ठतः।
विराटस्तत्र संग्रामे हत्वा पञ्चशतान् रथान्॥ १४॥
हयानां च शतान्यष्टौ हत्वा पञ्च महारथान्।
चरन् स विविधान् मार्गान् रथेन रथसत्तमः॥ १५॥
त्रिगर्तानां सुशर्माणमार्च्छद् रुक्मरथं रणे।
तौ व्यवाहरतां तत्र महात्मानौ महाबलौ॥ १६॥
अन्योन्यमभिगर्जन्तौ गोष्ठेषु वृषभाविव।

तब शतानीक ने सौ योद्धाओं को मारा और विशालाक्ष ने चार सौ योद्धाओं को मारा। वे दोनों महारथी त्रिगर्तों की उस विशाल सेना में घुस गये। सूर्यदत्त ने आगे से और मदिराक्ष ने पीछे से निशाना बना कर त्रिगर्तों की रथ सेना में प्रवेश किया। विराट

ने तब संग्राम में पाँचसौ रथों को, आठ सौ घुड़सवारों को, और पाँच महारथियों को मार दिया। उस श्रेष्ठ रथी ने रथ के विविध पैंतरों को अपनाते हुए उस युद्ध में सुनहले रथ पर बैठे हुए त्रिगर्तों के राजा सुशर्मा पर आक्रमण किया। गौशाला में विद्यमान दो साँडों के समान एक दूसरे पर गर्जते हुए, वे दोनों महाबली, मनस्वी, एक दूसरे पर शस्त्रास्त्रों का आदान प्रदान करने लगे।

ततो रथाभ्यां रथिनौ व्यतीयतुरमर्षणौ॥ १७॥
शरान् व्यसृजतां शीघ्रं तोयधारा घना इव।
अन्योन्यं चापि संरब्धौ विचेरतुरमर्षणौ॥ १८॥
कृतास्त्रौ निशितैर्बाणैरसिशक्तिगदाभृतौ।
ततो राजा सुशर्माणं विव्याध दशभिः शरैः॥ १९॥
पञ्चभिः पञ्चभिश्चास्य, विव्याध चतुरो हयान्।
तथैव मत्स्यराजानं, सुशर्मा युद्धदुर्मदः।
पञ्चाशता शितैर्बाणैर्विव्याध परमास्त्रवित्॥ २०॥

फिर अमर्षशील वे दोनों महारथी रथों के द्वारा एक दूसरे के समीप गये और बादलों के द्वारा बरसाई जा रही जलधारा के समान वे शीघ्रता से एक दूसरे के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। क्रोध में भरे हुए अमर्षशील, तलवार, शक्ति और गदाओं से सुसज्जित वे अस्त्रविद्या में निपुण वीर एक दूसरे पर तीखे बाणों की वर्षा करने लगे। फिर विराटराज ने सुशर्मा को दस बाणों से बींधा। पाँच-पाँच बाणों से उन्होंने उसके चारों घोड़ों को भी घायल कर दिया। युद्ध में दुर्मद महान अस्त्रवेत्ता सुशर्मा ने भी पचास तीखे बाणों मत्स्यराज विराट को बींध दिया।

चौबीसवाँ अध्याय : विराट का पकड़ा जाना, पाण्डवों द्वारा छुड़ाना। सुशर्मा को भीम का पकड़ना, युधिष्ठिर का छुड़ाना।

तमसाभिप्लुते लोके, व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
अतिष्ठन् वै मुहूर्तं तु, उदतिष्ठत् चन्द्रमा॥ १॥
ततोऽन्धकारं प्रणुदन्, नन्दयन् क्षत्रियान् युधि।
ततः प्रकाशमासाद्य पुनर्युद्धमवर्तत॥ २॥
ततः सुशर्मा त्रैगर्तः सह भ्रात्रा यवीयसा।
अभ्यद्रवन्मत्स्यराजं रथव्रातेन सर्वशः॥ ३॥
ततो रथाभ्यां प्रस्कन्द्य भ्रातरौ क्षत्रियर्षभौ।
गदापाणी सुसंरब्धौ समभ्यद्रवतां रथान्॥ ४॥

युद्ध करते हुए जब रात हो गयी और संसार अँधेरे से घिर गया, तब मोर्चा बाँधे प्रहार करने वाले सैनिक एक मुहूर्त के लिये युद्ध छोड़ कर चुपचाप खड़े रहे। उसके पश्चात् जब चन्द्रमा उदय हुआ, तब अँधेरा नष्ट हो गया और क्षत्रिय लोग युद्धक्षेत्र में प्रसन्न हो गये। प्रकाश के हो जाने से युद्ध पुनः प्रारम्भ हो गया। तब त्रिगर्तराज सुशर्मा ने अपने छोटे भाई के साथ रथियों के समूह को लेकर मत्स्यराज के ऊपर सब तरफ से आक्रमण कर दिया। उसके पश्चात् क्रोध में भरे हुए वे दोनों क्षत्रिय श्रेष्ठ हाथ में गदा लेकर, रथ से कूद पड़े और शत्रु के रथों की तरफ दौड़े।

तौ निहत्य पृथग् धुर्यावुभौ तौ पार्ष्णिसारथी।
विरथं मत्स्यराजानं जीवग्राहमगृह्णताम्॥ ५॥
तस्मिन् गृहीते विरथे विराटे बलवत्तरे।
प्राद्रवन्त भयान्मत्स्यास्त्रिगर्तैरर्दिता भृशम्॥ ६॥
तेषु संत्रस्यमानेषु कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
प्रत्यभाषन्महाबाहुं भीमसेनमरिंदमम्॥ ७॥
मत्स्यराजः परामृष्टस्त्रिगर्तेन सुशर्मणा।
तं मोचय महाबाहो न गच्छेद् द्विषतां वशम्॥ ८॥

उन दोनों ने अलग-अलग विराट राजा के दोनों घोड़ों को मार दिया और फिर उनके सारथि तथा अगल बगल रक्षा करने वाले सैनिकों को भी मार दिया। फिर मत्स्यराज को रथविहीन कर उन्होंने उन्हें जीवित ही पकड़ लिया। अतिशय बलवान् विराटराज को जब रथ से हीन कर पकड़ लिया गया तब त्रिगर्तदेश की सेना से पीड़ित होकर अत्यधिक भयभीत होते हुए मत्स्य देश के सैनिक इधर उधर भागने लगे। सैनिकों के भयभीत होने पर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने शत्रुओं को नष्ट करने वाले महाबाहु भीम से कहा कि मत्स्यराज को त्रिगर्तदेशीय सुशर्मा ने पकड़ लिया है। हे महाबाहु! तुम उन्हें छुड़ाओ। वे शत्रुओं के बस में न हो जायें।

तं भीमो भीमकर्माणं सुशर्माणमथाद्रवत्।
विराटं समवीक्ष्यैनं तिष्ठ तिष्ठेति चावदत्॥ ९॥
सुशर्मा चिन्तयामास कालान्तकयमोपमम्।

तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तं पृष्ठतो रथपुङ्गवः॥ १०॥
पश्यत सुमहत् कर्म महद् युद्धमुपस्थितम्।
परावृत्तो धनुर्गृह्य सुशर्मा भ्रातृभिः सह॥ ११॥

तब भयानक कर्म करने वाले भीम उस सुशर्मा के पीछे दौड़े और राजा विराट की तरफ देखते हुए उन्होंने सुशर्मा को ठहर जा, ठहर जा, कहते हुए ललकारा। तब श्रेष्ठ रथी सुशर्मा ने उन्हें अपने पीछे आते हुए और सबका अन्त कर देने वाले काल और मृत्यु के समान ठहर-ठहर कहकर ललकारते हुए देख कर अपने साथियों से कहा कि इनके अत्यन्त महान् कार्य को देखो। अब फिर महान् युद्ध उपस्थित हो गया है। फिर सुशर्मा अपने भाइयों के साथ धनुष लेकर युद्ध करने के लिये वापिस लौट पड़ा।

आकर्णपूर्णेन तदा धनुषा प्रत्यदृश्यत।
सुशर्मा सायकांस्तीक्ष्णान् क्षिपते च पुनः पुनः॥ १२॥
ततः समस्तास्ते सर्वे तुरगानभ्यचोदयन्।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणास्त्रिगर्तान् प्रत्यमर्षणाः॥ १३॥
तान् निवृत्तरथान् दृष्ट्वा पाण्डवान् सा महाचमूः।
वैराटिः परमक्रुद्धो युयुधे परमाद्भुतम्॥ १४॥
सहस्रमवधीत् तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
भीमः सप्त सहस्राणि यमलोकमदर्शयत्॥ १५॥
नकुलश्चापि सप्तैव शतानि प्राहिणोच्छरैः।
शतानि त्रीणि शूराणां सहदेवः प्रतापवान्॥ १६॥
युधिष्ठिरसमादिष्टो निजघ्ने पुरुषर्षभः।

तब सुशर्मा अपने कानतक खींचे गये धनुष के द्वारा तीक्ष्ण बाणों को बार-बार छोड़ता हुआ दिखाई देने लगा। तब त्रिगर्तों के प्रति अमर्षशील उन सारे पाण्डवों ने अपने रथों के घोड़ों, को दिव्यास्त्रों का प्रयोग करते हुए उनकी तरफ बढ़ाया। पाण्डवों को अपने रथ त्रिगर्तों की तरफ लौटाते हुए देखकर वह सारी मत्स्य देश की विशाल सेना भी लौट पड़ी और विराट पुत्र श्वेत ने अत्यन्त क्रोध में भरकर परम अद्भुत युद्ध को आरम्भ कर दिया। तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने हजार सैनिकों को और भीम ने सात हजार सैनिकों को मार दिया। नकुल ने भी सात सौ सैनिक मार दिये और युधिष्ठिर के आदेश से प्रतापी पुरुष श्रेष्ठ सहदेव ने तीन सौ वीरों को समाप्त कर दिया।

ततोऽभ्यपतदत्युग्रः सुशर्माणमुदायुधः॥ १७॥
हत्वा तां महतीं सेनां त्रिगर्तानां महारथः।
ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः॥ १८॥
अभिपत्य सुशर्माणं शरैरभ्याहनद् भृशम्।
सुशर्मापि सुसंरब्धस्त्वरमाणो युधिष्ठिरम्॥ १९॥
अविध्यन्नवभिर्बाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्।

फिर महारथी सहदेव ने उस महती त्रिगर्तों की सेना का संहार कर, अत्यन्त उग्ररूप धारण किये हुए हथियार उठाकर सुशर्मा पर आक्रमण कर दिया। फिर महारथी राजा युधिष्ठिर ने शीघ्रता से सुशर्मा पर आक्रमण कर उसे अपने बाणों से अत्यन्त घायल कर दिया। सुशर्मा ने भी क्रोध में भरकर शीघ्रता से युधिष्ठिर को नौ बाणों से तथा उनके घोड़ों को चार बाणों से बींध दिया।

समासाद्य सुशर्माणं, कुन्तीपुत्रो वृकोदरः॥ २०॥
पृष्ठगोपांश्च तस्याथ, अश्वानस्य व्यपोथयत्।
हत्वास्य सारथिं क्रुद्धो, रथोपस्थादपातयत्॥ २१॥
चक्ररक्षश्च शूरो वै मदिराक्षोऽतिविश्रुतः।
समायाद् विरथं दृष्ट्वा त्रिगर्तं प्राहरत् तदा॥ २२॥
ततो विराटः प्रस्कन्द्य रथादथ सुशर्मणः।
गदां तस्य परामृश्य तमेवाभ्यद्रवद् बली॥ २३॥
स चचार गदापाणिर्वृद्धोऽपि तरुणो यथा।

तब कुन्तीपुत्र भीम ने सुशर्मा के पास पहुँच कर उसके घोड़ों को मार दिया और उसके पृष्ठरक्षकों को भी मारकर, क्रुद्ध होकर, उन्होंने उसके सारथि को रथ के नीचे गिरा दिया। तब त्रिगर्तराज को बिना रथ के देख कर विराटराज के चक्ररक्षक प्रसिद्ध शूरवीर मदिराक्ष ने भी वहाँ आकर उस पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया। तभी राजा विराट सुशर्मा के रथ से कूद पड़े और उसकी गदा लेकर वे बलवान् उसी की तरफ दौड़े। वृद्ध होने पर भी वे गदा को हाथ में लिये युवकों के समान उस समय युद्धक्षेत्र में विचरण कर रहे थे।

पलायमानं त्रैगर्तं दृष्ट्वा भीमोऽभ्यभाषत॥ २४॥
राजपुत्र निवर्तस्व न ते युक्तं पलायनम्।
अनेन वीर्येण कथं गास्त्वं प्रार्थयसे बलात्॥ २५॥
कथं चानुचरांस्त्यक्त्वा शत्रुमध्ये विषीदसि।
इत्युक्तः स तु पार्थेन सुशर्मा रथयूथपः॥ २६॥
तिष्ठ तिष्ठेति भीमं स सहसाऽभ्यद्रवद् बली।
भीमस्तु भीमसंकाशो रथात् प्रस्कन्द्य पाण्डवः॥ २७॥
प्राद्रवत् तूर्णमव्यग्रो जीवितेप्सुः सुशर्मणः।
तं भीमसेनो धावन्तमभ्यधावत वीर्यवान्॥ २८॥
त्रिगर्तराजमादातुं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा।

तब त्रिगर्तराज को भागते हुए देख कर भीम ने उससे कहा कि हे राजपुत्र! लौट आओ। युद्ध से तुम्हारा भागना ठीक नहीं है। ऐसे पराक्रम से तुम गायों को जबर्दस्ती क्यों ले जा रहे हो? अपने सेवकों को शत्रुओं के हाथों में छोड़ कर अब क्यों विषाद कर रहे हो? कुन्तीपुत्र के द्वारा ऐसा कहे जाने पर रथियों के समूह का स्वामी बलवान् सुशर्मा ठहर-ठहर ऐसा कहता हुआ भीमसेन पर अचानक टूट पड़ा। किन्तु भीम के समान ही भयानक पाण्डव भीम, रथ से कूद कर, बिना घबराये, सुशर्मा को जीवित पकड़ लेने के लिये तेजी से उसकी तरफ दौड़े। उस भागते हुए त्रिगर्तराज सुशर्मा को पकड़ने के लिये पराक्रमी भीमसेन ऐसे दौड़े जैसे सिंह छोटे हिरण के पीछे दौड़ता है।

अभिद्रुत्य सुशर्माणं केशपक्षे परामृशत्॥ २९॥
समुद्यम्य तु रोषात् तं निष्पिपेष महीतले।
पदा मूर्ध्नि महाबाहुः प्राहरद् विलपिष्यतः॥ ३०॥
तस्य जानुं ददौ भीमो जघ्ने चैनमरत्निना।
स मोहमगमद् राजा प्रहारवरपीडितः॥ ३१॥
तस्मिन् गृहीते विरथे त्रिगर्तानां महारथे।
अभज्यत बलं सर्वं त्रैगर्तं तद् भयातुरम्॥ ३२॥

उन्होंने दौड़ कर सुशर्मा को बालों से पकड़ लिया और क्रोध पूर्वक उसे उठाकर भूमि पर पटक कर रगड़ दिया। सुशर्मा उस समय रो रहा था। महाबाहु भीम ने उसके सिर पर लात मारी। घुटने से दबाकर उन्होंने उसे ऐसा घूँसा मारा कि उसके भारी प्रहार से वह राजा मूर्च्छित हो गया। महारथी सुशर्मा के रथहीन होकर पकड़े जाने पर त्रिगर्तों की सारी सेना भयभीत होकर इधर उधर भाग गयी।

गले गृहीत्वा राजानमानीय विवशं वशम्।
तत एनं विचेष्टन्तं बद्ध्वा पार्थो वृकोदरः॥ ३३॥
रथमारोपयामास विसंज्ञं पांसुगुण्ठितम्।
दर्शयामास भीमस्तु सुशर्माणं नराधिपम्॥ ३४॥
प्रोवाच पुरुषव्याघ्रो भीममाहवशोभिनम्।
तं राजा प्राहसद् दृष्ट्वा मुच्यतां वै नराधमः॥ ३५॥
एवमुक्तोऽब्रवीद् भीमः सुशर्माणं महाबलम्।

कुन्तीपुत्र भीम तब बस में आये हुए बेबस सुशर्मा को गले से पकड़ कर राजा युधिष्ठिर के पास लाये। उसे उस समय रस्सियों से बाँध कर रथ में डाला हुआ था धूल में लिपटा हुआ, चेतना रहित सा हुआ वह छूटने के लिये छटपटा रहा था। पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर उसे देख कर हँसे और युद्ध में सुशोभित होने वाले भीम से बोले कि इस नराधम को छोड़ दो। तब महाबली सुशर्मा से भीम ने कहा कि—

जीवितुं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु॥ ३६॥
दासोऽस्मीति त्वया वाच्यं संसत्सु च सभासु च।
एवं ते जीवितं दद्यामेष युद्धजितो विधिः॥ ३७॥
तमुवाच ततो ज्येष्ठो भ्राता सप्रणयं वचः।
मुञ्च मुञ्चाधमाचारं प्रमाणं यदि ते वयम्॥ ३८॥
दासभावं गतो ह्येष विराटस्य महीपतेः।
अदासो गच्छ मुक्तोऽसि मैवं कार्षीः कदाचन॥ ३९॥

अरे मूर्ख यदि तू जीवित रहना चाहता है तो मैं उपाय बताता हूँ सुन! तुझे संसदों में और सभाओं में यही कहना होगा कि मैं विराट का दास हूँ। यदि ऐसा हो तो मैं तुझे जीवन दे सकता हूँ। युद्ध में जीतने वालों का यही नियम है। तब बड़े भाई ने प्रेमपूर्वक उनसे कहा कि हे भाई! यदि मेरी बात मानते हो तो इस अधम आचरण वाले को छोड़ दो। यह राजा विराट का दास तो हो ही गया और फिर सुशर्मा से बोले कि तुम अब दास नहीं रहे, तुम्हें छोड़ दिया गया। फिर कभी ऐसा मत करना।

पच्चीसवाँ अध्याय : राजा विराट के द्वारा पाण्डवों का सम्मान।

एवमुक्ते तु सव्रीडः सुशर्माऽऽसीदधोमुखः।
स मुक्तोऽभ्येत्य राजानमभिवाद्य प्रतस्थिवान्॥ १॥
विसृज्य तु सुशर्माणं पाण्डवास्ते हतद्विषः।
स्वबाहुबलसम्पन्ना ह्रीनिषेवा यतव्रताः॥ २॥
संग्रामशिरसो मध्ये तां रात्रिं सुखिनोऽवसन्।
ततो विराटः कौन्तेयानतिमानुषविक्रमान्॥ ३॥
अर्चयामास वित्तेन मानेन च महारथान्।

युधिष्ठिर के द्वारा ऐसा कहे जाने पर सुशर्मा ने लज्जित होकर अपना मुख नीचे कर लिया और बन्धन से मुक्त होकर राजा विराट को प्रणाम कर वह चला

गया। सुशर्मा को छोड़ कर शत्रुओं को नष्ट करने वाले, अपने बाहुबल से सम्पन्न, लज्जायुक्त और व्रतों का पालन करने वाले पाण्डव उस रात उस संग्राम भूमि में ही सुखपूर्वक रहे। तब राजा विराट ने उस अमानवीय विक्रम दिखाने वाले महारथी पाण्डवों को धन तथा सम्मान के द्वारा सत्कृत किया।

विराट उवाच

यथैव मम रत्नानि युष्माकं तानि वै तथा॥ ४॥
कार्यं कुरुत वै सर्वे यथाकामं यथासुखम्।
युष्माकं विक्रमादद्य मुक्तोऽहं स्वस्तिमानिह॥ ५॥
तस्माद् भवन्तो मत्स्यानामीश्वराः सर्व एव हि।
तथेतिवादिनं मत्स्यं कौरवेयाः पृथक् पृथक्॥ ६॥
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः।
प्रतिनन्दाम ते वाक्यं सर्वे चैव विशाम्पते॥ ७॥
एतेनैव प्रतीताः स्म यत् त्वं मुक्तोऽद्य शत्रुभिः।
गच्छन्तु दूतास्त्वरितं नगरं तव पार्थिव॥ ८॥
सुहृदां प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम्।

राजा विराट ने उनसे कहा कि ये धन और रत्न जैसे मेरे हैं, वैसे ही तुम्हारे भी हैं। आप लोग अपनी इच्छा के अनुसार सुख पूर्वक यहाँ रहो और जो इच्छा हो वह कार्य करो। मैं तुम्हारे ही पराक्रम से आज मुक्त हुआ हूँ और सकुशल हूँ, इसलिये आप लोग मत्स्य देश के स्वामी ही हो। इस प्रकार कहने वाले मत्स्यराज से युधिष्ठिर आदि सारे कुरुवंशियों ने हाथ जोड़ कर पृथक् पृथक् यह कहा कि हे महाराज! हम आपकी सारी बातों का स्वागत करते हैं। पर हम इसी से संतुष्ट हैं कि आप शत्रुओं से मुक्त हो गये। अब हे राजन्! आप दूतों को शीघ्रता से नगर में भेजिये! वे आपके सुहृदों को यह शुभ समाचार सुनायें और आपकी विजय की घोषणा करायें।

ततस्तद्वचनान्मत्स्यो दूतान् राजा समादिशत्॥ ९॥
आचक्षध्वं पुरं गत्वा संग्रामविजयं मम।
कुमार्यः समलंकृत्य पर्यागच्छन्तु मे पुरात्॥ १०॥
वादित्राणि च सर्वाणि गणिकाश्च स्वलंकृताः।
एतां चाज्ञां ततः श्रुत्वा राज्ञा मत्स्येन नोदिताः।
तामाज्ञां शिरसा कृत्वा प्रस्थिता हृष्टमानसाः॥ ११॥
ते गत्वा तत्र तां रात्रिमथ सूर्योदयं प्रति।
विराटस्य पुराभ्याशे दूता जयमघोषयन्॥ १२॥

तब उनके कहने से मत्स्यराज ने दूतों को आदेश दिया कि तुम लोग नगर में जाकर मेरी युद्ध में विजय का समाचार सुनाओ और वहाँ कहो कि कुमारी कन्याएँ शृंगार करके स्वागत करने के लिये नगर से बाहर आयें, इसी प्रकार गणिकाएँ भी सजकर स्वागत के लिये आयें और सभी प्रकार के बाजे बजवाये जायें। राजा के द्वारा कही गयी इस आज्ञा को सुन कर, उसे शिरोधार्य करके उन दूतों ने प्रसन्नता के साथ वहाँ से प्रस्थान किया। सारी रात चलकर वे दूत प्रातःकाल सूर्योदय के समय नगर में पहुँचे और उन्होंने वहाँ राजा विराट की विजय की घोषणा की।

छब्बीसवाँ अध्याय : कौरवों द्वारा विराट की गायों का अपहरण।

याते त्रिगर्तान् मत्स्ये तु पशूंस्तान् वै परीप्सति।
दुर्योधनः सहामात्यो विराटमुपयादथ॥ १॥
षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति च।
महता रथवंशेन परिवार्य समन्ततः॥ २॥
गोपाध्यक्षो भयत्रस्तो रथमास्थाय सत्वरः।
जगाम नगरायैव परिक्रोशंस्तदाऽऽर्तवत्॥ ३॥

जब मत्स्यराज अपने पशुओं को छुड़ाने के लिये, त्रिगर्तराज के पीछे गये हुए थे, तभी दुर्योधन ने अपने मंत्रियों के साथ विराटराज के राज्य पर आक्रमण कर दिया। उन कौरवों ने अपनी विशाल रथ सेना के द्वारा विराट की साठ हजार गायें घेर लीं और उन्हें हाँक कर ले चले। तब उन गायों का गोपाध्यक्ष भयभीत होकर, दुखियों के समान रोता चिल्लाता हुआ, रथ पर बैठकर नगर की ओर दौड़ा।

दृष्ट्वा भूमिंजयं नाम पुत्रं मत्स्यस्य मानिनम्।
तस्मै तत् सर्वमाचष्ट राष्ट्रस्य पशुकर्षणम्॥ ४॥
षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति ते।
तद् विजेतुं समुत्तिष्ठ गोधनं राष्ट्रवर्धन॥ ५॥
राजपुत्र हितप्रेप्सुः क्षिप्रं निर्याहि च स्वयम्।
त्वां हि मत्स्यो महीपालः शून्यपालमिहाकरोत्॥ ६॥

वहाँ मत्स्यराज के मानी पुत्र भूमिंजय से मिल कर उससे उसने देश के पशुओं के अपहरण की सारी बात बतायी कि वे कौरव लोग हमारी साठ हजार गायों को हाँक कर ले जा रहे हैं। इसलिये

हे राष्ट्र की उन्नति करने वाले। आप उस गोधन को पुनः जीतने के लिये खड़े हो जाइये। उसने कहा कि हे राजपुत्र! आप राज्य के शुभचिन्तक हैं, इसलिये स्वयं तैयार होकर निकलिये। राजा मत्स्यराज ने अपनी अनुपस्थिति में आपको ही यहाँ का रक्षक नियुक्त किया है।

सत्ताईसवाँ अध्याय : उत्तर कुमार की युद्ध के लिये तैयारी। अर्जुन के संकेत से सैरन्ध्री द्वारा बृहन्नला को उसका सारथी बनाने की सलाह।

उत्तर उवाच

अद्याहमनुगच्छेयं दृढधन्वा गवां पदम्।
यदि मे सारथिः कश्चिद् भवेदश्वेषु कोविदः॥ १॥
तं त्वहं नावगच्छामि यो मे यन्ता भवेन्नरः।
पश्यध्वं सारथिं क्षिप्रं मम युक्तं प्रयास्यतः॥ २॥
अष्टाविंशतिरात्रं वा मासं वा नूनमन्ततः।
यत् तदासीन्महद् युद्धं तत्र मे सारथिर्हतः॥ ३॥
स लभेयं यदा त्वन्यं हययानविदं नरम्।
त्वरावानद्य यात्वाहं समुच्छ्रितमहाध्वजम्॥ ४॥
विगाह्य तत् परानीकं गजवाजिरथाकुलम्।
शस्त्रप्रतापनिर्वीर्यान् कुरूञ्जित्वाऽऽनये पशून्॥ ५॥

तब उत्तरकुमार ने कहा कि मेरे पास धनुष तो बहुत मजबूत है, पर यदि मेरे घोड़ों को हाँकने वाला चतुर सारथि मुझे मिल जाता तो मैं आज ही गायों के पीछे चला जाता। मैं किसी ऐसे होशियार सारथि को जानता नहीं। तुम लोग जल्दी से मेरे लिये योग्य सारथि को देखो, जिससे मैं युद्ध के लिये जाऊँ। पहले जब अट्ठाईस रात तक अथवा निश्चित रूप से एक मास तक महान् युद्ध हुआ था, उसमें मेरा सारथि मारा गया था। अब यदि किसी दूसरे रथ संचालक को प्राप्त कर लूँ, तो मैं आज जल्दी से विशाल ऊँचे ध्वजों वाली, हाथी, घोड़े, और रथों से भरी हुई शत्रु सेना में जाकर घुस जाऊँ और उसे आलोडित करके तथा शस्त्रों के प्रताप से पराक्रमहीन किये हुए कौरवों को जीतकर पशुओं को वापिस ले जाऊँ।

दुर्योधनं शान्तनवं कर्णं वैकर्तनं कृपम्।
द्रोणं च सह पुत्रेण महेष्वासान् समागतान्॥ ६॥
वित्रासयित्वा संग्रामे दानवानिव वज्रभृत्।
अनेनैव मुहूर्तेन पुनः प्रत्यानये पशून्॥ ७॥
शून्यमासाद्य कुरवः प्रयान्त्यादाय गोधनम्।
किं नु शक्यं मया कर्तुं यदहं तत्र नाभवम्॥ ८॥
पश्येयुरद्य मे वीर्यं कुरवस्ते समागताः।
किं नु पार्थोऽर्जुनः साक्षादयमस्मान् प्रबाधते॥ ९॥

मैं दुर्योधन, शान्तनुपुत्र भीष्म, सूर्यपुत्र कर्ण, कृपाचार्य, पुत्र सहित द्रोणाचार्य तथा और दूसरे आये हुए धनुर्धारियों को उसी प्रकार डराकर जैसे इन्द्र ने दानवों को किया था, इसी मुहूर्त में अपने पशुओं को वापिस ले आऊँ। गायों को रक्षकहीन सूना देख कर कौरव लोग उन्हें लेकर जा रहे हैं। जब मैं वहाँ उस समय था ही नहीं तो अब क्या कर सकता हूँ? कौरव लोग यदि यहाँ आ ही गये हैं तो वे आज मेरे पराक्रम को देखेंगे। तब वे यही कहेंगे कि क्या यह साक्षात् कुन्तीपुत्र अर्जुन हमें पीड़ा दे रहा है?

श्रुत्वा तदर्जुनो वाक्यं राज्ञः पुत्रस्य भाषतः।
द्रुपदस्य सुतां तन्वीं पाञ्चालीं मनिन्दिताम्॥ १०॥
उवाच रहसि प्रीतः कृष्णां सर्वार्थकोविदः।
उत्तरं ब्रूहि कल्याणि क्षिप्रं मद्वचनादिदम्॥ ११॥
अयं वै पाण्डवस्यासीत् सारथिः सम्मतो दृढः।
महायुद्धेषु संसिद्धः स ते यन्ता भविष्यति॥ १२॥
अथैनमुपसंगम्य स्त्रीमध्यात् सा तपस्विनी।
व्रीडमानेव शनकैरिदं वचनमब्रवीत्॥ १३॥

इस प्रकार कहते हुए राजकुमार की उन बातों को सुन कर सब बातों में कुशल अर्जुन ने द्रुपद की पुत्री, तन्वंगी, अनिन्दिता, पांचाल कुमारी द्रौपदी से एकान्त में प्रेमपूर्वक यह कहा कि हे कल्याणी! तुम मेरी बात मान कर उत्तर कुमार से जल्दी ही यह कहो कि यह बृहन्नला अर्जुन का सम्मानित और दृढ़ सारथि रह चुका है। इसने बड़े-बड़े महायुद्धों में सफलता प्राप्त की हुई है। यह तेरा सारथि बन जायेगा। तब वह तपस्विनी सैरन्ध्री स्त्रियों के बीच में से उठकर उत्तरकुमार के पास आयी और लज्जित सी होती हुई, धीरे से उससे बोली कि—

योऽसौ बृहद्वारणाभो युवा सुप्रियदर्शनः।
बृहन्नलेति विख्यातः पार्थस्यासीत् स सारथिः॥ १४॥
धनुष्यनवरश्चासीत् तस्य शिष्यो महात्मनः।

दृष्टपूर्वो मया वीर चरन्त्या पाण्डवान् प्रति॥ १५॥
तेन सारथिना पार्थः सर्वभूतानि सर्वशः।
अजयत् खाण्डवप्रस्थे न हि यन्तास्ति तादृशः॥ १६॥

यह जो विशाल हाथी के समान हृष्ट-पुष्ट जवान और सुन्दर दिखाई देने वाला बृहन्नला प्रसिद्ध नाचने वाला है, यह पहले अर्जुन का सारथि था। यह उन्हीं महात्मा का शिष्य और धनुष चलाने में उन जैसा था। पाण्डवों के यहाँ रहते हुए, पहले मैंने इसे देखा है। इसे सारथि बनाकर ही अर्जुन ने खाण्डवप्रस्थ में सारे प्राणियों पर विजय पायी थी। इसके जैसा सारथि कोई नहीं है।

उत्तर उवाच— **सैरन्ध्रि जानासि तथा युवानं**
नपुंसको नैव भवेद् यथासौ।
अहं न शक्नोमि बृहन्नलां शुभे
वक्तुं स्वयं यच्छ हयान् ममेति वै॥ १७॥

तब उत्तर कुमार ने कहा कि हे सैरन्ध्री! तुम इस नौजवान को इस प्रकार जानती हो। मुझे भी जैसा यह है, उसके अनुसार नपुंसक नहीं लगता। पर हे शुभे! मैं बृहन्नला से स्वयं नहीं कह सकता कि तुम मेरे घोड़ों का संचालन करो।

द्रौपद्युवाच
येयं कुमारी सुश्रोणी भगिनी ते यवीयसी।
अस्याः स वीर वचनं करिष्यति न संशयः॥ १८॥
यदि वै सारथिः स स्यात् कुरून् सर्वान् न संशयः।
जित्वा गाश्च समादाय ध्रुवमागमनं भवेत्॥ १९॥
एवमुक्तः स सैरन्ध्र्या भगिनीं प्रत्यभाषत।
गच्छ त्वमनवद्याङ्गि तामानय बृहन्नलाम्॥ २०॥
सा भ्रात्रा प्रेषिता शीघ्रमगच्छन्नर्तनागृहम्।
यत्रास्ते स महाबाहुश्छन्नः सत्रेण पाण्डवः॥ २१॥

तब सैरन्ध्री ने कहा कि यह जो कुमारी सुन्दरी तुम्हारी छोटी बहिन है, हे वीर! वह इसकी बात को जरूर मानेगी। इसमें कोई संशय नहीं है। यदि यह सारथि बन जाये, तो सारे कौरवों को हरा कर और गायों को लेकर, तुम्हारा निश्चित रूप से वापिस लौटना हो सकता है। सैरन्ध्री के ऐसा कहने पर उत्तर ने अपनी बहिन से कहा कि हे निर्दोष अंगों वाली! तुम जाकर बृहन्नला को लेकर आओ। तब भाई के द्वारा भेजे जाने पर वह उत्तरा शीघ्रता से नृत्यशाला में गयी, जहाँ वे महाबाहु पाण्डुपुत्र कपटवेश में छिपकर विद्यमान थे।

अट्ठाईसवाँ अध्याय : बृहन्नला के साथ उत्तर कुमार का युद्ध हेतु प्रस्थान।

तमब्रवीद् राजपुत्री समुपेत्य नरर्षभम्।
प्रणयं भावयन्ती सा सखीमध्य इदं वचः॥ १॥
गावो राष्ट्रस्य कुरुभिः काल्यन्ते नो बृहन्नले।
ता विजेतुं मम भ्राता प्रयास्यति धनुर्धरः॥ २॥
नाचिरं निहतस्तस्य संग्रामे रथसारथिः।
तेन नास्ति समः सूतो योऽस्य सारथ्यमाचरेत्॥ ३॥
तस्मै प्रयतमानाय सारथ्यर्थं बृहन्नले।
आचचक्षे हयज्ञाने सैरन्ध्री कौशलं तव॥ ४॥

नरश्रेष्ठ अर्जुन के पास जाकर तब राजपुत्री उत्तरा ने अपनी सखियों के साथ उसके प्रति प्रेम प्रकट करते हुए यह कहा कि हे बृहन्नले! हमारे देश की गायों को कौरव लोग हाँक कर ले जा रहे हैं। मेरा धनुर्धर भाई उन्हें जीतने के लिये प्रस्थान करेगा। थोड़े दिन पहले उसका सारथि संग्राम में मारा गया था। इसलिये अब कोई योग्य सारथि नहीं है, जो उसके घोड़ों को नियन्त्रित कर सके। हे बृहन्नले! जब वे सारथि के लिये प्रयत्न कर रहे थे, तब सैरन्ध्री ने घोड़ों की जानकारी के विषय में तुम्हारे कौशल के बारे में बताया।

अर्जुनस्य किलासीस्त्वं सारथिर्दयितः पुरा।
त्वयाजयत् सहायेन पृथिवीं पाण्डवर्षभः॥ ५॥
सा सारथ्यं मम भ्रातुः कुरु साधु बृहन्नले।
पुरा दूरतरं गावो ह्रियन्ते कुरुभिर्हि नः॥ ६॥
एवमुक्तस्तु सुश्रोण्या तया सख्या परंतपः।
जगाम राजपुत्रस्य सकाशममितौजसः॥ ७॥
तमाव्रजन्तं त्वरितं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम्।
अन्वगच्छद् विशालाक्षी गजं गजवधूरिव॥ ८॥

उसने बताया कि पहले तुम अर्जुन की प्यारी सारथि रह चुकी हो। उस पाण्डव श्रेष्ठ ने पहले तुम्हारी सहायता से ही पृथिवी को जीता था। इसलिये हे बृहन्नले! इससे पहले कि कौरव हमारी गायों को लेकर दूर न चले जायें, तुम मेरे भाई के सारथि पने के कार्य को अच्छी तरह से कर दो। उस सुन्दरी सखी के द्वारा ऐसा कहने पर वह परंतप अर्जुन उस

अमित तेजस्वी राजपुत्र उत्तर कुमार के पास गये। तब मद टपकाने वाले गजराज की भाँति शीघ्रता से जाते हुए बृहन्नला के पीछे विशाल आँखों वाली उत्तरा भी इस प्रकार गयी जैसे हाथी के पीछे हथिनी जा रही हो।

दूरादेव तु तां प्रेक्ष्य राजपुत्रोऽभ्यभाषत।
त्वया सारथिना पार्थः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत्॥ ९॥
पृथिवीमजयत् कृत्स्नां कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
सैरन्ध्री त्वां समाचष्टे सा हि जानाति पाण्डवान्॥ १०॥
संयच्छ मामकानश्वांस्तथैव त्वं बृहन्नले।
कुरुभिर्योत्स्यमानस्य गोधनानि परीप्सतः॥ ११॥

तब दूर से ही उसे देख कर राजपुत्र ने उससे कहा कि तुम्हें सारथि बना कर अर्जुन ने खाण्डव वन में अग्नि नाम के ब्राह्मण को सन्तुष्ट किया था और उस कुन्तीपुत्र ने सारी पृथिवी को जीता था, ऐसा सैरन्ध्री ने तुम्हारे बारे में कहा है। वह पाण्डवों को जानती है। हे बृहन्नले! तुम मेरे घोड़ों का भी उसी प्रकार से संचालन करो। मुझे आज कौरवों से युद्ध करने के लिये और गायों को लौटाने के लिये जाना है।

एवमुक्ता प्रत्युवाच राजपुत्रं बृहन्नला।
का शक्तिर्मम सारथ्यं कर्तुं संग्राममूर्धनि॥ १२॥
गीतं वा यदि वा नृत्यं वादित्रं वा पृथग्विधम्।
तत् करिष्यामि भद्रं ते सारथ्यं तु कुतो मम॥ १३॥

उत्तर उवाच

बृहन्नले गायनो वा नर्तनो वा पुनर्भव।
क्षिप्रं मे रथमास्थाय निगृह्णीष्व हयोत्तमान्॥ १४॥

ऐसा कहे जाने पर बृहन्नला ने राजपुत्र से कहा कि युद्ध के मुहाने पर सारथिपने का काम करने की मुझमें क्या शक्ति है? आपका कल्याण हो। यदि गाना हो, नाचना हो या अलग-अलग तरह के बाजे बजाने हो, तो मैं उन कामों को कर सकती हूँ। सारथि का काम मैं कैसे कर सकती हूँ? तब उत्तर कुमार ने कहा कि हे बृहन्नले! तुम गाने और नाचने का काम फिर कर लेना इस समय तो मेरे रथ पर बैठ कर मेरे उत्तम घोड़ों का संचालन करो।

स तत्र नर्मसंयुक्तमकरोत् पाण्डवो बहु।
उत्तरायाः प्रमुखतः सर्वं जानन्नरिंदमः॥ १५॥
ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य कवचं शरीरे प्रत्यमुञ्चत।
कुमार्यस्तत्र तं दृष्ट्वा प्राहसन् पृथुलोचनाः॥ १६॥
स तु दृष्ट्वा विमुह्यन्तं स्वयमेवोत्तरस्ततः।
कवचेन महार्हेण समनह्यद् बृहन्नलाम्॥ १७॥
स बिभ्रत् कवचं चाग्र्यं स्वयमप्यंशुमत्प्रभम्।
ध्वजं च सिंहमुच्छ्रित्य सारथ्ये समकल्पयत्॥ १८॥

तब शत्रुओं का दमन करने वाले पाण्डु पुत्र ने सब कुछ जानते हुए भी उत्तरा के सामने हँसी करने के लिये बहुत से अनजान जैसे काम किये। उन्होंने कवच को ऊपर उठा कर अपने सिर पर या कन्धे पर रख लिया। यह देख कर विशाल नेत्रों वाली राजकुमारियाँ हँसने लगीं। तब उसे भूल करते हुए देख कर उत्तरकुमार ने स्वयं ही बृहन्नला को बहुमूल्य कवच पहनाया, फिर उसने स्वयं भी सूर्य के समान चमकीले श्रेष्ठ कवच को धारण किया और सिंह की ध्वजा को लगा कर, बृहन्नला को सारथि के काम पर नियुक्त कर दिया।

धनूंषि च महार्हाणि बाणांश्च रुचिरान् बहून्।
आदाय प्रययौ वीरः स बृहन्नलसारथिः॥ १९॥
अथोत्तरा च कन्याश्च सख्यस्तामब्रुवंस्तदा।
बृहन्नले आनयेथा वासांसि रुचिराणि च॥ २०॥
पाञ्चालिकार्थं चित्राणि सूक्ष्माणि च मृदूनि च।
विजित्य संग्रामगतान् भीष्मद्रोणमुखान् कुरून्॥ २१॥

फिर बहुत से बहुमूल्य धनुषों और सुन्दर बाणों को लेकर उस वीर ने बृहन्नला सारथि के साथ प्रस्थान किया। तब उत्तरा और उसकी सहेली कन्याओं ने बृहन्नला से कहा कि हे बृहन्नला! युद्ध में आये हुए भीष्म द्रोण आदि कौरवों को जीतकर उनके सुन्दर, बारीक, मुलायम और विचित्र वस्त्रों को हमारी गुड़ियों के लिये ले आना।

एवं ता ब्रुवतीः कन्याः सहिताः पाण्डुनन्दनः।
प्रत्युवाच हसन् पार्थो मेघदुन्दुभिनिःस्वनः॥ २२॥
यद्युत्तरोऽयं संग्रामे विजेष्यति महारथान्।
अथाहरिष्ये वासांसि दिव्यानि रुचिराणि च॥ २३॥
एवमुक्त्वा तु बीभत्सुस्ततः प्राचोदयद्धयान्।
कुरूनभिमुखः शूरो नानाध्वजपताकिनः॥ २४॥

तब ऐसा कहती हुई उन सारी कन्याओं से पाण्डुपुत्र अर्जुन ने हँसते हुए बादल और दुन्दुभि के समान गम्भीर वाणी में कहा कि यदि ये उत्तर कुमार युद्ध में उन महारथियों को जीत लेंगे तो मैं

उनके दिव्य और सुन्दर वस्त्रों को ले आऊँगी। ऐसा कहकर उन शूरवीर अर्जुन ने अनेक प्रकार की ध्वजाओं और पताकाओं वाले कौरवों के सामने जाने के लिये घोड़ों को हाँक दिया।

उनत्तीसवाँ अध्याय : उत्तर कुमार का घबराना, अर्जुन का ढाढस देना।

स राजधान्या निर्याय वैराटिरकुतोभयः।
प्रयाहीत्यब्रवीत् सूतं यत्र ते कुरवो गताः॥ १॥
समवेतान् कुरून् सर्वाञ्जिगीषूनवजित्य वै।
गास्तेषां क्षिप्रमादाय पुनरेष्याम्यहं पुरम्॥ २॥
ततस्तांश्चोदयामास सदश्वान् पाण्डुनन्दनः।
ते हया नरसिंहेन नोदिता वातरंहसः॥ ३॥
आलिखन्त इवाकाशमूहुः काञ्चनमालिनः।
श्मशानमभितो गत्वा आससाद कुरूनथ॥ ४॥
तां शमीमन्ववीक्षैतां व्यूढानीकांश्च सर्वशः।

राजधानी से बाहर निकल कर विराट पुत्र ने निर्भयतापूर्वक सारथि से कहा कि रथ को उधर ही ले चलो जिधर वे कौरव लोग गये हैं। विजय की इच्छा से एकत्र हुए उन सारे कौरवों को जीतकर और अपनी गायें शीघ्रता से लेकर मैं आज ही नगर में वापिस लौट जाऊँगा। तब पाण्डुपुत्र ने उन उत्तम घोड़ों को प्रेरित किया। उस नरसिंह के द्वारा प्रेरित किये गये, सुनहली मालाएँ धारण किये हुए घोड़े वायु की गति के समान मानो आकाश में अपनी टाप बढ़ाते हुए रथ को ले उड़े। उन्होंने श्मशान भूमि के पास जाकर कौरवों को पा लिया। शमी वृक्ष के पास उन्होंने सब तरफ व्यूह बना कर खड़े हुए कौरव सैनिकों को देखा।

तदनीकं महत् तेषां विबभौ सागरोपमम्॥ ५॥
सर्पमाणमिवाकाशे वनं बहुलपादपम्।
तदनीकं महद् दृष्ट्वा गजाश्वरथसंकुलम्॥ ६॥
कर्णदुर्योधनकृपैर्गुप्तं शान्तनवेन च।
द्रोणेन च सपुत्रेण महेष्वासेन धीमता॥ ७॥
हृष्टरोमा भयोद्विग्नः पार्थं वैराटिरब्रवीत्।

उनकी वह सेना सागर के समान सुशोभित हो रही थी। जब वह चलती तो ऐसा प्रतीत होता था जैसे आकाश में वृक्षों से भरा हुआ कोई वन चल रहा हो। रथ, हाथी और घोड़ों से भरी हुई उस विशाल सेना को देखकर, जो कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, शान्तनुपुत्र भीष्म और पुत्र सहित महाधनुर्धर धीमान् द्रोणाचार्य से सुरक्षित थी, विराटपुत्र उत्तर कुमार भय से उद्विग्न हो गया, उसके रोंगटे खड़े हो गये और वह अर्जुन से बोला कि–

नोत्सहे कुरुभिर्योद्धुं रोमहर्षं हि पश्य मे॥ ८॥
प्रतियोद्धुं न शक्ष्यामि कुरुसैन्यमनन्तकम्।
नाशंसे भारतीं सेनां प्रवेष्टुं भीमकार्मुकाम्॥ ९॥
रथनागाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम्।
दृष्ट्वैव हि परानाजौ मनः प्रव्यथतीव मे॥ १०॥
यत्र द्रोणश्च भीष्मश्च कृपः कर्णो विविंशतिः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च बाह्लिकः॥ ११॥
दुर्योधनस्तथा वीरो राजा च रथिनां वरः।
द्युतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः॥ १२॥

मैं कौरवों के साथ युद्ध नहीं कर सकता। तुम मेरे भय से खड़े हुए रोओं को देखो। मैं कौरवों की इस अनन्त सेना का सामना नहीं कर सकता। भयानक धनुषों वाली भरतवंशियों की इस सेना में प्रवेश करने की बात तो मैं कर भी नहीं सकता। यह तो रथ, हाथी, घोड़ों, पैदल सिपाहियों और ध्वजाओं से खचाखच भरी हुई है। युद्धक्षेत्र में इन शत्रुओं को देख कर तो मेरा मन व्यथित सा हो रहा है, जहाँ द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, बाह्लीक, सोमदत्त और रथियों में श्रेष्ठ वीर राजा दुर्योधन हैं। ये सब तेजस्वी, महाधनुर्धर, और युद्धविशारद हैं।

दृष्ट्वैव हि कुरूनेतान् व्यूढानीकान् प्रहारिणः।
हृषितानि च रोमाणि कश्मलं चागतं मम॥ १३॥
त्रिगर्तान् मे पिता यातः शून्ये सम्प्रणिधाय माम्।
सर्वां सेनामुपादाय न मे सन्तीह सैनिकाः॥ १४॥
सोऽहमेको बहून् बालः कृतास्त्रानकृतश्रमः।
प्रतियोद्धुं न शक्ष्यामि निवर्तस्व बृहन्नले॥ १५॥

प्रहार करने वाले और सेना की व्यूह रचना करके खड़े हुए इन कौरवों को देखकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये हैं और मुझे मूर्च्छा आ रही है। मेरे पिता जी सारी सेना लेकर त्रिगर्तों से युद्ध करने चले गये हैं, वे सूने नगर में रक्षा के लिये मुझे लगा कर गये हैं पर मेरे पास सैनिक भी नहीं हैं। मैं

अकेला बच्चा हूँ, मैंने अस्त्र विद्या का भी अधिक अभ्यास नहीं किया है। ये अस्त्रविद्या में कुशल और बहुत सारे हैं। मैं इनसे नहीं लड़ सकता। इसलिये हे बृहन्नला लौट चलो।

बृहन्नलोवाच

भयेन दीनरूपोऽसि द्विषतां हर्षवर्धनः।
न च तावत् कृतं कर्म परैः किंचिद् रणाजिरे॥ १६॥
स्वयमेव च मामात्थ वह मां कौरवान् प्रति।
सोऽहं त्वां तत्र नेष्यामि यत्रैते बहुला ध्वजाः॥ १७॥
तथा स्त्रीषु प्रतिश्रुत्य पौरुषं पुरुषेषु च।
कत्थमानोऽभिनिर्याय किमर्थं न युयुत्ससे॥ १८॥
न चेद् विजित्य गास्तास्त्वं गृहान् वै प्रतियास्यसि।
प्रहसिष्यन्तिवीरास्त्वां नरा नार्यश्च संगताः॥ १९॥

तब बृहन्नलता ने कहा कि तुम भय से दीन बने हुए हो और इससे शत्रुओं के हर्ष को बढ़ा रहे हो। अभी तो शत्रुओं ने युद्ध क्षेत्र में कुछ पराक्रम भी नहीं किया है। आपने स्वयं कहा था कि मुझे उधर ले चलो जहाँ ये बहुत सारे झंडे लहरा रहे हैं। इसलिये मैं आपको कौरवों के सामने ले जाऊँगी। आप स्त्रियों में प्रतिज्ञा करके और पुरुषों में अपने पौरुष का बखान करके निकले थे। अब युद्ध क्यों नहीं करते? यदि तुम गायों को बिना जीते ही घर को लौट जाओगे तो वीर नर और नारियाँ एकत्र होकर तुम्हारी हँसी करेंगे।

अहमप्यत्र सैरन्ध्र्या ख्याता सारथ्यकर्मणि।
न च शक्ष्याम्यनिर्जित्य गाः प्रयातुं पुरं प्रति॥ २०॥
स्तोत्रेण चैव सैरन्ध्र्यास्तव वाक्येन तेन च।
कथं न युध्येयमहं कुरून् सर्वान् स्थिरो भव॥ २१॥

उत्तर उवाच

कामं हरन्तु मत्स्यानां भूयांसः कुरवो धनम्।
प्रहसन्तु च मां नार्यो नरा वापि बृहन्नले॥ २२॥
संग्रामे न च कार्यं मे गावो गच्छन्तु चापि मे।
इत्युक्त्वा प्राद्रवद् भीतो रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली॥ २३॥
त्यक्त्वा मानं च दर्पं च विसृज्य सशरं धनुः।

मेरे बारे में सैरन्ध्री ने मैं सारथि के कार्य में कुशल हूँ यह बताया है। अब बिना गायें जीते नगर में मैं तो वापिस नहीं जा सकती। सैरन्ध्री ने और तुमने भी मेरी बड़ी-बड़ी बातों से खूब प्रशंसा की है, इसलिये अब मैं क्यों न कौरवों से युद्ध करूँ? आप स्थिर होकर बैठे रहिये। तब उत्तर कुमार ने कहा कि कौरव लोग मत्स्य देशवासियों का भले ही बहुत सा धन ले जायें। हे बृहन्नले! भले ही नर और नारियाँ मेरी हँसी उड़ायें। भले ही हमारी गायें चली जायें। मुझे युद्ध से कोई कार्य नहीं है। ऐसा कहकर अपने अभिमान को, सम्मान को और धनुषबाण को वही छोड़कर, कुण्डल धारण किये वह भयभीत राजकुमार रथ से कूद कर भागने लगा।

बृहन्नलोवाच

नैष शूरैः स्मृतो धर्मः क्षत्रियस्य पलायनम्॥ २४॥
श्रेयस्तु मरणं युद्धे न भीतस्य पलायनम्।
एवमुक्त्वा तु कौन्तेयः सोऽवप्लुत्य रथोत्तमात्॥ २५॥
तमन्वधावद् धावन्तं राजपुत्रं धनंजयः।
दीर्घां वेणीं विधुन्वानः साधु रक्ते च वाससी॥ २६॥
सैनिकाः प्राहसन् केचित् तथारूपमवेक्ष्य तम्।
तं शीघ्रमभिधावन्तं सम्प्रेक्ष्य कुरवोऽब्रुवन्॥ २७॥

तब बृहन्नला ने कहा कि शूरवीरों ने क्षत्रिय का धर्म भागना नहीं बताया है। युद्ध में मर जाना अच्छा है डरकर भागना अच्छा नहीं है। ऐसा कहकर वे कुन्तीपुत्र अर्जुन भी उस उत्तम रथ से कूद कर भागते हुए राजकुमार के पीछे दौड़े। उस समय उनकी लम्बी चोटी और लाल रंग की साड़ी और दुपट्टा हवा में लहरा रहे थे। उन्हें इस रूप में देखकर कुछ सैनिक ठहाका मारकर हँसने लगे। तेजी से दौड़ते हुए उन्हें देख कर कौरव लोग आपस में कहने लगे कि—

क एष वेषसंच्छन्नो भस्मन्येव हुताशनः।
किंचिदस्य यथा पुंसः किंचिदस्य यथा स्त्रियः॥ २८॥
सारूप्यमर्जुनस्येव क्लीबरूपं बिभर्ति च।
एकः पुत्रो विराटस्य शून्ये संनिहितः पुरे॥ २९॥
स एष किल निर्यातो बालभावान्न पौरुषात्।
सत्रेण नूनं छन्नं हि चरन्तं पार्थमर्जुनम्॥ ३०॥
उत्तरः सारथिं कृत्वा निर्यातो नगराद् बहिः।
स नो मन्यामहे दृष्ट्वा भीत एष पलायते॥ ३१॥
तं नूनमेष धावन्तं जिघृक्षति धनंजयः।

यह राख में छिपी हुई अग्नि की तरह इस वेश में छिपा हुआ कौन है? इसकी कुछ बातें पुरुषों जैसी हैं और कुछ स्त्रियों जैसी हैं। आकृति इसकी अर्जुन जैसी है, पर वेशभूषा इसकी नपुंसकों जैसी है। सूने नगर में विराटराज का एक अकेला पुत्र ही बचा था।

यह निश्चित रूप से अपने बचपने के कारण ही हमसे लड़ने के लिये आ गया है, अपने पौरुष के कारण नहीं आया है। निश्चय ही उत्तरकुमार कपट वेश में विचरण करते हुए कुन्तीपुत्र अर्जुन को सारथि बनाकर नगर से बाहर आया है। हमारे विचार से यह हमें देख कर डरा हुआ भाग रहा है और अर्जुन वास्तव में इस भागते हुए को पकड़ना चाहते हैं।

उत्तरं तु प्रधावन्तमभिद्रुत्य धनंजयः॥ ३२॥
गत्वा पदशतं तूर्णं केशपक्षे परामृशत्।
सोऽर्जुनेन परामृष्टः पर्यदेवयदार्तवत्॥ ३३॥
बहुलं कृपणं चैव विराटस्य सुतस्तदा।

उत्तर उवाच

शृणुयास्त्वं हि कल्याणि बृहन्नले सुमध्यमे॥ ३४॥
निवर्तय रथं क्षिप्रं जीवन् भद्राणि पश्यति।
शातकुम्भस्य शुद्धस्य शतं निष्कान् ददामि ते॥ ३५॥
मणीनष्टौ च वैदूर्यान् हेमबद्धान् महाप्रभान्।
हेमदण्डप्रतिच्छन्नं रथं युक्तं च सुव्रतैः॥ ३६॥
मत्तांश्च दश मातङ्गान् मुञ्च मां त्वं बृहन्नले।

उधर भागते हुए उत्तर कुमार को अर्जुन ने उसके पीछे भागकर सौ कदम पर बालों से पकड़ लिया। अर्जुन के द्वारा पकड़े जाने पर विराट का पुत्र उत्तर बहुत दीन और दुखी की तरह विलाप करने लगा। वह कहने लगा कि हे सुन्दर कमर वाली कल्याणी बृहन्नला! तू मेरी बात सुन! तू जल्दी से रथ को लौटा ले चल। मनुष्य जीवित रहे तो अनेक मंगलमय कार्यों को देखता है। मैं तुझे सोने की सौ मोहरें दूँगा। अत्यन्त प्रभावशाली स्वर्णजटित आठ वैदूर्य मणि भेंट करूँगा। उत्तम घोड़ों से जुता हुआ, स्वर्णमय दण्ड से युक्त रथ दूँगा, और दस मतवाले हाथी दूँगा पर हे बृहन्नला! तुम मुझे छोड़ दो।

एवमादीनि वाक्यानि विलपन्तमचेतसम्॥ ३७॥
प्रहस्य पुरुषव्याघ्रो रथस्यान्तिकमानयत्।
अथैनमब्रवीत् पार्थो भयार्तं नष्टचेतसम्॥ ३८॥
यदि नोत्सहसे योद्धुं शत्रुभिः शत्रुकर्षण।
एहि मे त्वं हयान् यच्छ युध्यमानस्य शत्रुभिः॥ ३९॥

इस प्रकार के वाक्य कहते हुए, रोते हुए और मूर्च्छित से हो रहे उस कुमार को वे पुरुषव्याघ्र अर्जुन हँसते हुए रथ के समीप ले आये। भय से आतुर और होश-हवास खोये हुए उससे कुन्तीपुत्र ने कहा कि हे शत्रुनाशन! यदि तुम शत्रुओं से युद्ध नहीं करना चाहते तो मैं उनसे युद्ध करूँगा। तुम मेरे घोड़ों की बागडोर सँभालो।

मा भैस्त्वं राजपुत्राग्र्य क्षत्रियोऽसि परंतप।
कथं पुरुषशार्दूल शत्रुमध्ये विषीदसि॥ ४०॥
अहं वै कुरुभिर्योत्स्ये विजेष्यामि च ते पशून्।
प्रविश्यैतद् रथानीकमप्रधृष्यं दुरासदम्॥ ४१॥
तत एनं विचेष्टन्तमकामं भयपीडितम्।
रथमारोपयामास पार्थः प्रहरतां वरः॥ ४२॥

हे परंतप! हे राजपुत्रों में श्रेष्ठ! तुम क्षत्रिय हो। डरो मत! हे पुरुषसिंह! शत्रुओं के बीच में क्यों दुखी हो रहे हो। मैं इस अत्यन्त दुर्धर्ष और दुर्गम रथ सेना में घुसकर कौरवों से युद्ध करूँगा और तुम्हारे पशुओं को जीत कर लाऊँगा। तब उस युद्ध की कामना से रहित, भय से पीड़ित और छटपटाते हुए उत्तरकुमार को प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ अर्जुन ने रथ पर लाकर बैठा दिया।

तीसवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य के द्वारा अर्जुन के पराक्रम की प्रशंसा।

तं दृष्ट्वा क्लीववेषेण रथस्थं नरपुङ्गवम्।
शमीमभिमुखं यान्तं रथमारोप्य चोत्तरम्॥ १॥
गुरुः शस्त्रभृतां श्रेष्ठो, भारद्वाजोऽभ्यभाषत।
रक्षध्वमपि चात्मानं व्यूहध्वं वाहिनीमपि॥ २॥
वैशसं च प्रतीक्षध्वं रक्षध्वं चापि गोधनम्।
एष वीरो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः॥ ३॥
आगतः क्लीबवेषेण पार्थो नास्त्यत्र संशयः।

रथ में उत्तर कुमार को बैठा कर, शमी वृक्ष की तरफ जाते हुए उस नपुंसक वेश में श्रेष्ठ अर्जुन को देख कर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और शस्त्रधारियों के गुरु भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य बोले कि अब आप लोग अपनी रक्षा करें, सेना का भी व्यूह बना लें, गायों की भी रक्षा करें और भयंकर विनाश की प्रतीक्षा करें क्योंकि यह महाधनुर्धर, सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ वीर कुन्तीपुत्र ही नपुंसक के वेश में आये हुए हैं, इसमें संशय नहीं है।

क्लेशितश्च वने शूरो वासवेनापि शिक्षितः॥ ४॥
अमर्षवशमापन्नो वासवप्रतिमो युधि।

नेहास्य प्रतियोद्धारमहं पश्यामि कौरवाः॥ ५॥
महादेवोऽपि पार्थेन श्रूयते युधि तोषितः।
किरातवेषप्रच्छन्नो गिरौ हिमवति प्रभुः॥ ६॥

इस शूरवीर ने वन में कष्ट पाया है और इन्द्र ने भी इसे शिक्षा दी है। युद्ध में इन्द्र के समान पराक्रमी यह इस समय क्रोध के वश में है। हे कौरवो! मैं यहाँ किसी भी योद्धा को इसका सामना करने वाला नहीं देखता। सुना जाता है कि अर्जुन ने हिमालय पर्वत पर किरातवेश में छिपे हुए शक्तिशाली महादेव को भी युद्ध में सन्तुष्ट किया था।

कर्ण उवाच

सदा भवान् फाल्गुनस्य गुणैरस्मान् विकत्थसे।
न चार्जुनः कलापूर्णो मम दुर्योधनस्य च॥ ७॥

दुर्योधन उवाच

यद्येष पार्थो राधेय कृतं कार्यं भवेन्मम।
ज्ञाताः पुनश्चरिष्यन्ति द्वादशाब्दान् विशाम्पते॥ ८॥
अथैष कश्चिदेवान्यः क्लीबवेषेण मानवः।
शरैरेनं सुनिशितैः पातयिष्यामि भूतले॥ ९॥

तब कर्ण ने कहा कि आप सदा अर्जुन के गुणों का बखान करके हमें नीचा दिखाते हैं। अर्जुन मेरी और दुर्योधन की कला अर्थात् सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है। तब दुर्योधन बोला कि हे कर्ण! यदि यह अर्जुन है तो मेरा कार्य पूरा हो गया। हे राजन्! पाण्डवों को पहचान लिया गया और ये फिर बारह वर्षों के लिये वनों में भटकेंगे। यदि यह नंपुसक के वेष में कोई दूसरा मनुष्य है तो मैं इसे अपने तीखे बाणों से भूमि पर गिरा दूँगा।

इकत्तीसवाँ अध्याय : उत्तर का शमी वृक्ष से शस्त्रास्त्र उतारना।

तां शमीमुपसंगम्य पार्थो वैराटिमब्रवीत्।
सुकुमारं समाज्ञाय संग्रामे नातिकोविदम्॥ १॥
समादिष्टो मया क्षिप्रं धनूंष्यवहरोत्तर।
नेमानि हि त्वदीयानि सोढुं शक्ष्यन्ति मे बलम्॥ २॥
तस्माद् भूमिंजयारोह शमीमेतां पलाशिनीम्।

उस शमी वृक्ष के पास पहुँच कर विराटपुत्र को सुकुमार और युद्ध में पूरी तरह से कुशल न जानकर अर्जुन ने उससे कहा कि हे भूमिंजय! उत्तरकुमार! मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम जल्दी से इस पत्तों से भरे शमी वृक्ष पर चढ़ जाओ और वहाँ से धनुषों को उतार लाओ, क्योंकि तुम्हारे ये धनुष मेरी शक्ति को सहन नहीं कर सकते।

अस्यां हि पाण्डुपुत्राणां धनूंषि निहितान्युत॥ ३॥
युधिष्ठिरस्य भीमस्य बीभत्सोर्यमयोस्तथा।
ध्वजाः शराश्च शूराणां दिव्यानि कवचानि च॥ ४॥
अत्र चैतन्महावीर्यं धनुः पार्थस्य गाण्डिवम्।
एकं शतसहस्रेण सम्मितं राष्ट्रवर्धनम्॥ ५॥
व्यायामसहमत्यर्थं तृणराजसमं महत्।
सर्वायुधमहामात्रं शत्रुसम्बाधकारकम्॥ ६॥

इस शमी वृक्ष पर पाण्डवों के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, और सहदेव के धनुष रखे हुए हैं। उनकी ध्वजाएँ, बाण, दिव्य कवच भी यहीं हैं। यहीं अर्जुन का महापराक्रमी गाण्डीव धनुष भी है, जो अकेला ही हजारों धनुषों के समान सम्मानित, राष्ट्र की उन्नति करने वाला, अत्यन्त परिश्रम को सहन करने वाला और ताड़ के समान विशाल है। वह सारे हथियारों से बड़ा है और शत्रुओं को पीड़ा देने वाला है।

एवमुक्तः स पार्थेन रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली।
आरुरोह शमीवृक्षं वैराटिरवशस्तदा॥ ७॥
तमन्वशासच्छत्रुघ्नो रथे तिष्ठन् धनंजयः।
अवरोपय वृक्षाग्राद् धनूंष्येतानि मा चिरम्॥ ८॥
परिवेष्टनमेतेषां क्षिप्रं चैव व्यपानुद।
सोऽपहृत्य महार्हाणि धनूंषि पृथुवक्षसाम्॥ ९॥
परिवेष्टनपत्राणि विमुच्य समुपानयत्।
तथा संनहनान्येषां परिमुच्य समन्ततः।
अपश्यद् गाण्डिवं तत्र चतुर्भिरपरैः सह॥ १०॥

अर्जुन के द्वारा यह कहने पर उस कुण्डलों को धारण करने वाले विराट पुत्र ने लाचार होकर रथ पर से छलाँग लगायी और शमी वृक्ष पर चढ़ गया। तब रथ पर बैठे हुए शत्रुदमन अर्जुन ने उसे आदेश दिया कि वृक्ष के ऊपर से इन धनुषों को उतार लाओ। देर मत करो। जल्दी से इनके आवरण को हटा दो। तत्पश्चात् उत्तरकुमार विशाल वक्षस्थल वाले पाण्डवों के धनुषों को उतार कर और उनके आवरण

को हटा कर ले आया। उसी प्रकार धनुष की डोरियों को भी उसने सब तरफ से खोला। तब उसने चार दूसरे धनुषों के साथ गाण्डीव धनुष को भी रखे हुए देखा।

बत्तीसवाँ अध्याय : अर्जुन का उत्तर को पाण्डवों का परिचय देना।

उत्तर उवाच

बिन्दवो जातरूपस्य शतं यस्मिन् निपातिताः।
सहस्त्रकोटि सौवर्णाः कस्यैतद् धनुरुत्तमम्॥ १॥

बृहन्नलोवाच

गाण्डीवमेतत् पार्थस्य लोकेषु विदितं धनुः।
सर्वायुधमहामात्रं शातकुम्भपरिष्कृतम्॥ २॥
यत् तच्छतसहस्त्रेण सम्मितं राष्ट्रवर्द्धनम्।
येन देवान् मनुष्यांश्च पार्थो विजयते मृधे॥ ३॥
चित्रमुच्चावचैर्वर्णैः श्लक्ष्णमायतमव्रणम्।
महावीर्यं महादिव्यमेतत् तद् धनुरुत्तमम्॥ ४॥

तब उत्तर कुमार ने पूछा कि जिस पर सोने की सौ चमकीली बिन्दु बनी हुई हैं तथा जिसमें बहुत सारे विभाग हैं अर्थात् अलग-अलग कार्य करने के बहुत सारे कलपुर्जे लगे हुए हैं, यह धनुष किसका है? बृहन्नता ने कहा कि यह अर्जुन का संसार प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष है। यह सारे आयुधों से विशाल है और इस पर सोना मँढा हुआ है। यह हजारों धनुषों के बराबर, सम्मानित और राष्ट्र के मान को बढ़ाने वाला है। इसी की सहायता से अर्जुन युद्ध में देवताओं और मनुष्यों पर विजय पाते रहे हैं। यह अनेक तरह के रंगों से चित्रित, विस्तृत और चोट के चिन्हों से रहित है। यह गुणों में अलौकिक है। इस उत्तम धनुष के द्वारा महान् पराक्रम प्रकट किया जाता है।

उत्तर उवाच

क्व नु स्विदर्जुनः पार्थः कौरव्यो वा युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः॥ ५॥
सर्व एव महात्मानः सर्वामित्र विनाशनाः।
राज्यमक्षैः पराकीर्य न श्रुयन्ते कथंचन॥ ६॥
द्रौपदी क्व च पाञ्चाली स्त्रीरत्नमिति विश्रुता।
जितानक्षैस्तदा कृष्णा तानेवान्वगमद् वनम्॥ ७॥

अर्जुन उवाच

अहमस्म्यर्जुनः पार्थः सभास्तारो युधिष्ठिरः।
बल्लवो भीमसेनस्तु पितुस्ते रसपाचकः॥ ८॥
अश्वबन्धोऽथ नकुलः सहदेवस्तु गोकुले।
सैरन्ध्रीं द्रौपदीं विद्धि यत्कृते कीचका हताः॥ ९॥

तब उत्तर ने पूछा कुन्तीपुत्र अर्जुन, कुरुनन्दन युधिष्ठिर तथा पाण्डुपुत्र नकुल, सहदेव और भीम अब कहाँ है? शत्रुओं को नष्ट करने वाले वे सारे महात्मा लोग जूए में राज्य को हार कर कहाँ चले गये? इसके विषय में कुछ भी सुनाई नहीं देता। वह प्रसिद्ध स्त्रीरत्न पांचालकुमारी द्रौपदी कहाँ है? जूए में हार जाने के बाद वह पाण्डवों के साथ ही वन में चली गयी थी। तब अर्जुन ने कहा मैं ही कुन्तीपुत्र अर्जुन हूँ। सभासद कंक युधिष्ठिर हैं। तुम्हारे पिता के लिये रसोई बनाने वाले बल्लव भीम हैं। घोड़ों के अध्यक्ष नकुल हैं और गायों के अध्यक्ष सहदेव हैं। सैरन्ध्री को तुम द्रौपदी समझो जिसके कारण कीचक मारे गये।

ततः स पार्थं वैराटिरभ्यवादयदन्तिकात्।
दिष्ट्या त्वां पार्थ पश्यामि स्वागतं ते धनंजय॥ १०॥
लोहिताक्ष महाबाहो नागराजकरोपम।
यदज्ञानादवोचं त्वां क्षन्तुमर्हसि तन्मम॥ ११॥
यतस्त्वया कृतं पूर्वं चित्रं कर्म सुदुष्करम्।
अतो भयं व्यतीतं मे प्रीतिश्च परमा त्वयि॥ १२॥

तब विराटपुत्र ने अर्जुन के समीप जाकर उसे प्रणाम किया और कहने लगा कि हे कुन्तीपुत्र! लाल नेत्रों वाले, हाथी की सूँड के समान विशाल भुजाओं वाले अर्जुन! बड़े सौभाग्य की बात है कि मैं आपको देख रहा हूँ। आपका स्वागत है। मैंने आपसे अज्ञातवास में जो कुछ भी कहा, उसे आप क्षमा करें। आपने पहले बड़े विचित्र और दुष्कर कार्य किये हुए हैं, इसलिये मेरा भय समाप्त हो गया है और आपके प्रति अत्यन्त प्रेम बढ़ गया है।

तेतीसवाँ अध्याय : अर्जुन के द्वारा युद्ध की तैयारी।

उत्तर उवाच

आस्थाय रुचिरं वीर रथं सारथिना मया।
कतमं यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया॥ १॥

अर्जुन उवाच

प्रीतोऽस्मि पुरुषव्याघ्र न भयं विद्यते तव।
सर्वान् नुदामि ते शत्रून् रणे रणविशारद॥ २॥
स्वस्थो भव महाबाहो पश्य मां शत्रुभिः सह।
युध्यमानं विमर्देऽस्मिन् कुर्वाणं भैरवं महत्॥ ३॥
एतान् सर्वानुपासङ्गान् क्षिप्रं बध्नीहि मे रथे।
एकं चाहर निस्त्रिंशं जातरूपपरिष्कृतम्॥ ४॥

तब उत्तर कुमार ने कहा कि हे वीर! अब आप इस सुन्दर रथ में मुझ सारथि के साथ बैठकर जिस सेना की तरफ जाना चाहेंगे, उधर ही मैं आपके साथ चलूँगा। अर्जुन ने उत्तर दिया कि हे पुरुषव्याघ्र! मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि अब तुम्हें भय नहीं रहा है। हे युद्ध विशारद! मैं अभी तुम्हारे सारे शत्रुओं को मार भगाता हूँ। हे महाबाहु! अब तुम स्वस्थ हो जाओ और इस युद्ध में मुझे शत्रुओं के साथ युद्ध करते हुए और महान् पराक्रम दिखाते हुए देखो। मेरे इन सारे तरकसों को जल्दी मेरे रथ में बाँध दो और एक स्वर्ण भूषित खड्ग को भी ले लो।

अधिष्ठितो मया संख्ये रथो गाण्डीवधन्वना।
अजेयः शत्रुसैन्यानां वैराटे व्येतु ते भयम्॥ ५॥

उत्तर उवाच

बिभेमि नाहमेतेषां जानामि त्वां स्थिरं युधि।
केशवेनापि संग्रामे साक्षादिन्द्रेण वा समम्॥ ६॥
साध्वसं हि प्रणष्टं मे किं करोमि ब्रवीहि मे।
अहं ते संग्रहीष्यामि हयान् शत्रुरथारुजान्॥ ७॥
शिक्षितो ह्यस्मि सारथ्ये तीर्थतः पुरुषर्षभ।
दारुको वासुदेवस्य यथा शक्रस्य मातलिः॥ ८॥
तथा मां विद्धि सारथ्ये शिक्षितं नरपुङ्गव।

हे विराटपुत्र! जब मैं गाण्डीव धनुष के साथ रथ पर बैठा हुआ होऊँगा, तब युद्ध में शत्रुसेना के लिये अजेय रहूँगा, इसलिये अब तुम्हारा भय दूर हो जाना चाहिये। तब उत्तर कुमार बोला कि अब मैं इनसे नहीं डरता। मैं जानता हूँ कि आप युद्ध में श्रीकृष्ण और इन्द्र के समान स्थिर रहते हैं। मेरा भय नष्ट हो गया है। आप बताइये कि मैं क्या करूँ। मैं शत्रु के रथों को नष्ट करने वाले आपके इन घोड़ों को वश में रखूँगा। हे पुरुषश्रेष्ठ! मैंने सारथि की विद्या गुरु से प्राप्त की है। जैसे श्रीकृष्ण का सारथि दारुक है और इन्द्र का मातलि है, हे नरश्रेष्ठ! वैसे ही आप मुझे भी सारथि के कार्य में शिक्षित समझिये।

ततो विमुच्य बाहुभ्यां वलयानि स वीर्यवान्॥ ९॥
चित्रे काञ्चनसंनाहे प्रत्यमुञ्चत् तदा तले।
कृष्णान् भङ्गिमतः केशान् श्वेतेनोद्ग्रथ्य वाससा॥ १०॥
प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनोऽभवत्।
अधिज्यं तरसा कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद् धनुः॥ ११॥

तब उस पराक्रमी अर्जुन ने हाथों से कड़े उतार दिये और हथेलियों में सोने के सुन्दर कवच पहन लिये। उन्होंने अपने काले घुँघराले बालों को सफेद कपड़े से बाँध लिया। फिर अस्त्र शस्त्रों को धारण कर उनका मुख प्रसन्नता से खिल गया। उन्होंने शीघ्रता से गाण्डीव धनुष पर प्रत्यंचा चढाकर उसे टंकारा।

तस्य विक्षिप्यमाणस्य धनुषोऽभून्महाध्वनिः।
यथा शैलस्य महतः शैलेनैवावजघ्नतः॥ १२॥
तं शब्दं कुरवोऽजानन् विस्फोटमशनेरिव।
यदर्जुनो धनुःश्रेष्ठं बाहुभ्यामाक्षिपद् रथे॥ १३॥
स्वनवन्तं महाशङ्खं बलवानरिमर्दनः।
प्राधमद् बलमास्थाय द्विषतां लोमहर्षणम्॥ १४॥
ततस्ते जवना धुर्या जानुभ्यामगमन्महीम्।
उत्तरश्चापि संत्रस्तो रथोपस्थ उपाविशत्॥ १५॥
संस्थाप्यचाश्वान् कौन्तेयः समुद्यम्य च रश्मिभिः।
उत्तरं च परिष्वज्य समाश्वासयदर्जुनः॥ १६॥

उस धनुष को टंकारने से उसमें से ऐसी जोर से आवाज निकली, जैसे एक बड़े पहाड़ से दूसरा पहाड़ टकरा गया हो। रथ में बैठे हुए अर्जुन ने अपने दोनों हाथों से जो धनुष को खींचा तो उसकी ध्वनि से कौरवों ने यह समझा मानों कहीं बिजली गिरी है। फिर शत्रुओं का मर्दन करने वाले बलवान् अर्जुन ने अपने भयानक शब्द वाले महान् शंख को, जो शत्रुओं के रोंगटे खड़े करने वाला है, जोर लगाकर उच्च स्वर में बजाया। शंख की भयानक ध्वनि से घबराकर

वेगवान् घोड़ों ने भी भूमि पर घुटने टेक दिये और उत्तरकुमार भी भयभीत होकर रथ के ऊपर के भाग में आकर बैठ गया। तब कुन्ती पुत्र अर्जुन ने स्वयं लगाम खींचकर घोड़ों को उठाया और उत्तर कुमार को छाती से लगाकर उसे धीरज बँधाया।

अर्जुन उवाच

एकान्तं रथमास्थाय पद्भ्यां त्वमवपीडयन्।
दृढं च रश्मीन् संयच्छ शङ्खं ध्मास्याम्यहं पुनः॥ १७॥
ततः शङ्खमुपाध्मासीद् दारयन्निव पर्वतान्।
गुहा गिरीणां च तदा दिशः शैलांस्तथैव च॥ १८॥
उत्तरश्चापि संलीनो रथोपस्थ उपाविशत्।
तं समाश्वासयामास, पुनरेव धनंजयः॥ १९॥

फिर अर्जुन ने कहा कि तुम पैरों से बैठने की जगह को मजबूती से पकड़कर बैठो और घोड़ों की लगाम को दृढ़ता से पकड़ो। मैं शंख को फिर बजाऊँगा। फिर अर्जुन ने शंख को इतनी ज़ोर से बजाया मानो पर्वतों को, पर्वतों की गुफाओं को, दिशाओं को और चट्टानों को फाड़ दिया हो। उत्तर कुमार इस बार भी रथ में छिपकर बैठ गया तथा अर्जुन ने उसे पुनः धीरज बँधाया।

चौंतीसवाँ अध्याय : दुर्योधन का युद्धार्थ निश्चय, कर्ण की गर्वोक्ति।

अथ दुर्योधनो राजा समरे भीष्ममब्रवीत्।
द्रोणं च रथशार्दूलं कृपं च सुमहारथम्॥ १॥
पराभूतैर्हि वस्तव्यं तैश्च द्वादश वत्सरान्।
वने जनपदे ज्ञातैरेष एव पणो हि नः॥ २॥
तेषां न तावन्निर्वृत्तं वर्तते तु त्रयोदशम्।
अज्ञातवासी बीभत्सुरथास्माभिः समागतः॥ ३॥
अनिवृत्ते तु निर्वासे यदि बीभत्सुरागतः।
पुनर्द्वादश वर्षाणि वने वत्स्यन्ति पाण्डवाः॥ ४॥
लोभाद् वा ते न जानीयुरस्मान् वा मोह आविशत्।
हीनातिरिक्तमेतेषां भीष्मो वेदितुमर्हति॥ ५॥

तब दुर्योधन बोला कि जूए में हमारी यह शर्त थी कि पराजित पक्ष को बारह वर्ष वन में तथा एक वर्ष जनपद में अज्ञातरूप में रहना होगा। उन पाण्डवों का अभी तेरहवाँ वर्ष समाप्त नहीं हुआ है, पर अज्ञातवासी अर्जुन हमसे लड़ने के लिये आ गया है। यदि अज्ञातवास पूरा होने से पहले अर्जुन आ रहा है, तो पाण्डव फिर बारह वर्ष तक वन में रहेंगे। या तो लोभ के कारण उन्हें समय का पता नहीं पड़ा है या हमें मोह आया हुआ है। तेरह वर्षों में अभी कुछ कमी है या अधिक दिन हो गये हैं, यह बात भीष्म जी जान सकते हैं।

अथ कस्मात् स्थिता ह्येते रथेषु रथसत्तमाः।
भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव विकर्णो द्रौणिरेव च॥ ६॥
सम्भ्रान्तमनसः सर्वे काले ह्यस्मिन् महारथाः।
नान्यत्र युद्धाच्छ्रेयोऽस्ति तथाऽऽत्मा प्रणिधीयताम्॥ ७॥

पर ये महारथियों में श्रेष्ठ भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विकर्ण, अश्वत्थामा, आदि सारे महारथी इस समय भ्रान्तचित्त होकर रथों में चुपचाप क्यों बैठे हैं? यहाँ युद्ध से अधिक और किसी चीज़ में कल्याण नहीं है, इसलिये युद्ध के लिये अपने आपको तैयार कीजिये।

दुर्योधनवचः श्रुत्वा राधेयस्त्वब्रवीद् वचः।
आचार्यं पृष्ठतः कृत्वा तथा नीतिर्विधीयताम्॥ ८॥
जानाति हि मतं तेषामतस्त्रासयतीह नः।
अर्जुने चास्य सम्प्रीतिमधिकामुपलक्षये॥ ९॥
तथा हि दृष्ट्वा बीभत्सुमुपायान्तं प्रशंसति।
यथा सेना न भज्येत तथा नीतिर्विधीयताम्॥ १०॥
ह्रेषितं ह्युपशृण्वाने द्रोणे सर्वं विघट्टितम्।
अदेशिका महारण्ये ग्रीष्मे शत्रुवशं गताः॥ ११॥
यथा न विभ्रमेत् सेना तथा नीतिर्विधीयताम्।

दुर्योधन की बात सुनकर राधापुत्र कर्ण बोला कि आचार्य को पीछे रखकर अपनी नीतियाँ बनाइये। ये पाण्डवों की बात जानते हैं इसलिये हमें डरा रहे हैं। मैं इनका अर्जुन में अधिक प्रेम देख रहा हूँ। तभी अर्जुन को समीप आता देख ये उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। आप लोग ऐसी नीति बनाओ कि इनकी बातों से सेना भागे नहीं। ये द्रोणाचार्य अर्जुन के घोड़ों की हिनहिनाहट सुनते ही घबरा जायेंगे और सब लोग विचलित हो जायेंगे। हम इस समय विदेश में हैं, ग्रीष्म ऋतु है और शत्रु के बस में आ गये हैं। इसलिये ऐसी नीति बनाओ जिससे सैनिकों के मन में भ्रम न फैले।

इष्टा हि पाण्डवा नित्यमाचार्यस्य विशेषतः॥ १२॥
आसयन्नपरार्थांश्च कथ्यते स्म स्वयं तथा।
समाहितो हि बीभत्सुर्वर्षाण्यष्टौ च पञ्च च॥ १३॥

जातस्नेहश्च युद्धेऽस्मिन् मयि सम्प्रहरिष्यति।
पात्रीभूतश्च कौन्तेयो ब्राह्मणो गुणवानिव॥ १४॥
शरौघान् प्रतिगृह्णातु मया मुक्तान् सहस्रशः।
एष चैव महेष्वासस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ १५॥
अहं चापि नरश्रेष्ठादर्जुनान्नावरः क्वचित्।
अद्याहमृणमक्षय्यं पुरा वाचा प्रतिश्रुतम्॥ १६॥
धार्तराष्ट्राय दास्यामि निहत्य समरेऽर्जुनम्।

आचार्य को पाण्डवों से सदा ही विशेष प्रेम रहा है। उन स्वार्थियों ने इन्हें अपना काम बनाने के लिये आपके पास रखा हुआ है। ये स्वयं भी इसी प्रकार की ही बातें कहते हैं। अर्जुन ने तेरह वर्ष तक समाधि लगायी है। उसे इस युद्ध से प्रेम है। वह मेरे ऊपर प्रहार अवश्य करेगा। वह कुन्तीपुत्र गुणवान् ब्राह्मण के समान मेरे लिये युद्ध का पात्र है। वह मेरे द्वारा छोड़े गये हजारों बाणों का दान स्वीकार करे। वह तीनों लोकों में महान् धनुर्धर के रूप में प्रसिद्ध है तो मैं भी उस नरश्रेष्ठ अर्जुन से किसी प्रकार कम नहीं हूँ। मैंने पहले अपनी वाणी से जो प्रतिज्ञा की हुई है, आज युद्ध में अर्जुन को मारकर दुर्योधन के अक्षय ऋण से उऋण हो जाऊँगा।

इन्द्राशनिसमस्पर्शं महेन्द्रसमतेजसम्॥ १७॥
अर्दयिष्याम्यहं पार्थमुल्काभिरिव कुञ्जरम्।
रथादतिरथं शूरं सर्वशस्त्रभृतां वरम्॥ १८॥
विवशं पार्थमादास्ये गरुत्मानिव पन्नगम्।
तमग्निमिव दुर्धर्षमसिशक्तिशरेन्धनम्॥ १९॥
पाण्डवाग्निमहं दीप्तं प्रदहन्तमिवाहितम्।
अश्ववेगपुरोवातो रथौघस्तनयित्नुमान्॥ २०॥
शरधारो महामेघः शमयिष्यामि पाण्डवम्।

इन्द्र के समान तेजस्वी अर्जुन को मैं अपने इन्द्र के वज्र के समान स्पर्श वाले बाणों से इस प्रकार पीड़ित करूँगा जैसे हाथी को जलती हुई मशालों से किया जाता है। मैं सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, रथियों से बढ़कर अतिरथी कुन्तीपुत्र को सर्प को गरुड़ के समान विवश करके दबोच लूँगा। जो तलवार,शक्ति, और बाणों के इन्धन से जलने वाली अग्नि के समान दुर्धर्ष है, उस प्रदीप्त होती हुई और शत्रुओं को भस्म करती हुई अर्जुन रूपी अग्नि को मैं उस महान् मेघ के समान् शान्त कर दूँगा, जिसके लिये घोड़ों का वेग ही पुरवैया वायु, रथों की घर्घराहट ही गर्जना और बाणों की धारा ही जलधारा है।

मत्कार्मुकविनिर्मुक्ताः पार्थमाशीविषोपमाः॥ २१॥
शराः समभिसर्पन्तु वल्मीकमिव पन्नगाः।
सुतेजनै रुक्मपुङ्खे सुधौतैर्नतपर्वभिः॥ २२॥
आचितं पश्य कौन्तेयं कर्णिकारैरिवाचलम्।

विषैले सर्पों के समान, मेरे धनुष से छूटे हुए बाण अर्जुन के शरीर में उसी प्रकार प्रवेश करेंगे, जैसे साँप अपनी बाँबी में घुसते हैं। कनेर के वृक्षों से भरे हुए पर्वत के समान मेरे अच्छे तेज, सुनहरे पंख वाले, उज्ज्वल, झुकी हुई गाँठ वाले बाणों से भरे हुए अर्जुन के शरीर को देखना।

अद्य दुर्योधनस्याहं शल्यं हृदि चिरस्थितम्॥ २३॥
समूलमुद्धरिष्यामि बीभत्सुं पातयन् रथात्।
हताश्वं विरथं पार्थं पौरुषे पर्यवस्थितम्॥ २४॥
निःश्वसन्तं यथा नागमद्य पश्यन्तु कौरवाः।
कामं गच्छन्तु कुरवो धनमादाय केवलम्।
रथेषु वापि तिष्ठन्तो युद्धं पश्यन्तु मामकम्॥ २५॥

आज मैं दुर्योधन के हृदय में बहुत दिनों से गड़े हुए काँटे को, अर्जुन को रथ से गिरा कर जड़ सहित उखाड़ दूँगा। आज कौरव लोग देखेंगे कि अपने पौरुष में अवस्थित अर्जुन के घोड़े मार दिये गये हैं। उसे रथहीन कर दिया गया है और वह साँप के समान लम्बी साँसें ले रहा है। कौरव लोग भले ही चाहे केवल गायों को लेकर चले जायें या खड़े होकर उसके साथ मेरा युद्ध देखें।

पैंतीसवाँ अध्याय : कृपाचार्य की कर्ण को फटकार, अश्वत्थामा के विचार

कृप उवाच

सदैव तव राधेय युद्धे क्रूरतरा मतिः।
नार्थानां प्रकृतिं वेत्सि नानुबन्धमवेक्षसे॥ १॥
देश कालेन संयुक्तं युद्धं विजयदं भवेत्।
हीनकालं तदेवेह फलं न लभते पुनः॥ २॥
देशे काले च विक्रान्तं कल्याणाय विधीयते।
भारं हि रथकारस्य न व्यवस्यन्ति पण्डिताः॥ ३॥

तब कृपाचार्य ने कहा कि हे कर्ण! तुम्हारी बुद्धि युद्ध के विषय में सदा क्रूरतापूर्ण रही है। तुम न तो कार्य के स्वरूप को जानते हो और न उसके

परिणाम को देखते हो। देश और काल को देखकर जो युद्ध किया जाता है, वही विजय दिलाता है। किन्तु जो अनुपयुक्त समय में किया जाता है, वह फल को प्रदान नहीं करता। देश और काल के अनुसार प्रकट किया हुआ पराक्रम ही कल्याणकारी होता है। पण्डित लोग रथ बनाने वाले की बात पर ही अपने युद्ध आदि का निश्चय नहीं करते हैं।

एकः सुभद्रामारोप्य द्वैरथे कृष्णमाह्वयत्।
एकः किरातरूपेण स्थितं रुद्रमयोधयत्॥ ४॥
एकश्च पञ्च वर्षाणि शक्रादस्त्राण्यशिक्षत।
एकः सोऽयमरिं जित्वा कुरूणामकरोद् यशः॥ ५॥
एको गन्धर्वराजानं चित्रसेनमरिंदमः।
विजिग्ये तरसा संख्ये सेनां प्राप्य सुदुर्जयाम्॥ ६॥
एकेन हि त्वया कर्ण किं नामेह कृतं पुरा।
एकैकेन यथा तेषां भूमिपाला वशे कृताः॥ ७॥

अर्जुन ने अकेले ही सुभद्रा का अपहरण करके श्रीकृष्ण को द्वैरथ युद्ध के लिये ललकारा था। अर्जुन ने अकेले ही किरातवेश में आये शिव के साथ युद्ध किया है। उसने अकेले ही पाँच वर्षों तक इन्द्र से अस्त्रों की शिक्षा पायी है। उसने अकेले ही शत्रुओं को जीतकर कौरवों के यश को बढ़ाया है। गन्धर्वों की अत्यन्त दुर्जय सेना को प्राप्त कर उस शत्रुओं को दमन करने वाले ने अकेले ही उसे तथा गन्धर्व राज को वेगपूर्वक जीता है। जैसे पाण्डवों ने अकेले ही एक एक दिशा में जाकर वहाँ के सारे राजाओं को जीता है, वैसे ही हे कर्ण! तुमने अकेले ही कौन सा पहले काम करके दिखाया है?

इन्द्रोऽपि हि न पार्थेन संयुगे योद्धुमर्हति।
यस्तेनाशंसते योद्धुं कर्तव्यं तस्य भेषजम्॥ ८॥
आशीविषस्य क्रुद्धस्य पाणिमुद्यम्य दक्षिणम्।
अवमुच्य प्रदेशिन्या दंष्ट्रामादातुमिच्छसि॥ ९॥
अथवा कुञ्जरं मत्तमेक एव चरन् वने।
अनङ्कुशं समारुह्य नगरं गन्तुमिच्छसि॥ १०॥
समिद्धं पावकं चैव घृतमेदोवसाहुतम्।
घृताक्तश्चीरवासास्त्वं मध्येनोत्तर्तुमिच्छसि॥ ११॥

अर्जुन के साथ इन्द्र भी युद्ध में नहीं लड़ सकता। जो व्यक्ति उसके साथ युद्ध करना चाहता है, उसका इलाज कराना चाहिये। हे कर्ण! तुम क्रुद्ध विषधर सर्प के मुख में अपना दाहिना हाथ डालकर, तर्जनी अंगुली से उसकी दाढ़ को उखाड़कर लाना चाहते हो। या तुम वन में विचरते हुए मस्त हाथी पर बिना अंकुश के ही चढ़ कर उसे नगर में लाना चाहते हो। या तुम घी में डूबे हुए चीर वस्त्र पहन कर, घी मेदा और चर्बी आदि से प्रदीप्त की हुई आग के बीच में से निकलना चाहते हो।

आत्मानं कः समुद्बध्य कण्ठे बद्ध्वा महाशिलाम्।
समुद्रं तरते दोर्भ्यां तत्र किं नाम पौरुषम्॥ १२॥
अकृतास्त्रः कृतास्त्रं वै बलवन्तं सुदुर्बलः।
तादृशं कर्ण यः पार्थं योद्धुमिच्छेत् स दुर्मतिः॥ १३॥
अस्माभिर्ह्येष निकृतो वर्षाणीह त्रयोदश।
सिंहः पाशविनिर्मुक्तो न नः शेषं करिष्यति॥ १४॥
एकान्ते पार्थमासीनं कूपेऽग्निमिव संवृतम्।
अज्ञानादभ्यवस्कन्द्य प्राप्ताः स्मो भयमुत्तमम्॥ १५॥

कौन अपने आपको बन्धन से जकड़ कर और गले में बड़ा पत्थर बाँधकर, दोनों हाथों से तैरकर समुद्र को पार कर सकता है? और ऐसा प्रयत्न करने में कौन सा पुरुषार्थ है? हे कर्ण! जो स्वयं अत्यन्त दुर्बल है और जिसने अस्त्र विद्या की पूरी शिक्षा नहीं पायी है, वह यदि बलवान् और अस्त्र विद्या की पूर्ण शिक्षा पाये हुए अर्जुन से लड़ना चाहता है, तो वह मूर्ख है। हमने इन तेरह वर्षों तक उसके साथ अन्याय किया है। अब वह बन्धन से छूटे हुए सिंह की तरह से क्या हमें समाप्त नहीं कर देगा? कूएँ में छिपी अग्नि के समान यहाँ एकान्त में अर्जुन के पास पहुँच कर हम बड़े भय को प्राप्त हो गये हैं।

सह युध्यामहे पार्थमागतं युद्धदुर्मदम्।
सैन्यास्तिष्ठन्तु संनद्धा व्यूढानीकाः प्रहारिणः॥ १६॥
द्रोणो दुर्योधनो भीष्मो भवान् द्रौणिस्तथा वयम्।
सर्वे युध्यामहे पार्थं कर्ण मा साहसं कृथाः॥ १७॥
वयं व्यवसितं पार्थं वज्रपाणिमिवोद्यतम्।
षड्रथाः प्रतियुध्येम तिष्ठेम यदि संहताः॥ १८॥

युद्ध के लिये उन्मत्त अर्जुन के आने पर हम उससे एक साथ युद्ध करेंगे। सेनाएँ व्यूहबद्ध होकर तैयार हो जायें और प्रहार करने के लिये उद्यत हों। द्रोणाचार्य, दुर्योधन, भीष्म, तुम, अश्वत्थामा और मैं सब मिलकर अर्जुन से युद्ध करेंगे। हे कर्ण! दुस्साहस मत करो। हम छः महारथी यदि मिलकर इन्द्र के समान तैयार और दृढ़ निश्चयी अर्जुन का सामना करें, तभी ठहर सकेंगे।

अश्वत्थामोवाच

न च तावज्जिता गावो न च सीमान्तरं गताः।
न हास्तिनपुरं प्राप्तास्त्वं च कर्ण विकत्थसे॥ १९॥
संग्रामाश्च बहूञ्जित्वा लब्ध्वा च विपुलं धनम्।
विजित्य च परां सेनां नाहुः किंचन पौरुषम्॥ २०॥
दहत्यग्निरवाक्यस्तु तूष्णीं भाति दिवाकरः।
तूष्णीं धारयते लोकान् वसुधा सचराचरान्॥ २१॥

तब अश्वत्थामा ने कहा कि न तो अभी हमने गायों को जीता है, न मत्स्यदेश की सीमा पार की है, न हस्तिनापुर में पहुँचे, पर हे कर्ण! तुम झूठी डींग मार रहे हो। बहुत सारे संग्रामों को जीतकर, विपुल धन को प्राप्त करके भी समझदार लोग अपने पौरुष का बखान नहीं करते। अग्नि चुपचाप सबको जला देती है, सूर्य चुपचाप ही प्रकाशित होता है, भूमि भी सारे चराचर प्राणियों को चुपचाप ही धारण कर रही है।

प्राप्य द्यूतेन को राज्यं क्षत्रियस्तोष्टुमर्हति।
तथा नृशंसरूपोऽयं धार्तराष्ट्रश्च निर्घृणः॥ २२॥
तथाधिगम्य वित्तानि को विकत्थेद् विचक्षणः।
निकृत्या वञ्चनायोगैश्चरन् वैतंसिको यथा॥ २३॥
कतमद् द्वैरथं युद्धं यत्राजैषीर्धनंजयम्।
नकुलं सहदेवं वा धनं येषां त्वया हृतम्॥ २४॥
युधिष्ठिरो जितः कस्मिन् भीमश्च बलिनां वरः।
इन्द्रप्रस्थं त्वया कस्मिन् संग्रामे निर्जितं पुरा॥ २५॥

जैसे इस निर्दयी, क्रूर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन को सन्तोष है, वैसे कौन क्षत्रिय जूए से राज्य को पाकर सन्तुष्ट हो सकता है? जैसे शिकारी धोखा धड़ी से अपने जीवन का निर्वाह करता है, इस प्रकार कपटपूर्ण उपायों से धन को प्राप्त कर कौन बुद्धिमान् पुरुष अपनी बड़ाई स्वयं करेगा? हे दुर्योधन! जिन पाण्डवों का तुमने जूए में धन जीता, उनमें से नकुल, सहदेव, या अर्जुन किसके साथ तुम्हारा द्वैरथ युद्ध हुआ है? धर्मराज युधिष्ठिर और बलवानों में श्रेष्ठ भीम को किस युद्ध में जीता गया है? इन्द्रप्रस्थ, जो तुम्हारे अधिकार में है, उसे भी पहले किस युद्ध में तुमने प्राप्त किया है?

तथैव कतमद् युद्धं यस्मिन् कृष्णा जिता त्वया।
एकवस्त्रा सभां नीता दुष्टकर्मन् रजस्वला॥ २६॥
मूलमेषां महत् कृत्तं सारार्थी चन्दनं यथा।
कर्म कारयिथाः सूत तत्र किं विदुरोऽब्रवीत्॥ २७॥
यथाशक्ति मनुष्याणां शममालक्षयामहे।
अन्येषामपि सत्त्वानामपि कीटपिपीलिकैः॥ २८॥
द्रौपद्याः सम्परिक्लेशं न क्षन्तुं पाण्डवोऽर्हति।
क्षयाय धार्तराष्ट्राणां प्रादुर्भूतो धनंजयः॥ २९॥
त्वं पुनः पण्डितो भूत्वा वाचं वक्तुमिहेच्छसि।

हे दुष्टकर्मी! इसी प्रकार द्रौपदी को किस युद्ध में तुमने जीता था? जो उस एकवस्त्रा और रजस्वला को सभा में लाया गया? जैसे चन्दन को काटने वाला धन प्राप्त करने की इच्छा से उसे जड़ से काट डालता है, वैसे ही तुमने उपर्युक्त कार्यों से पाण्डवों की जड़ काटी है। हे सूतपुत्र कर्ण! जब तुमने पाण्डवों को दास बनाया था, तब विदुर ने क्या कहा था? हम देखते हैं कि मनुष्यों की, तथा कीड़े, चींटी आदि दूसरे प्राणियों की भी सहन करने की शक्ति एक सीमा तक होती है। द्रौपदी को दिये गये क्लेशों को पाण्डुपुत्र अर्जुन कभी क्षमा नहीं करेंगे। अर्जुन धृतराष्ट्र के पुत्रों को नष्ट करने के लिये प्रकट हुए हैं और तुम यहाँ पण्डित बनकर बड़ी बड़ी बातें बनाना चाहते हो।

वैरान्तकरणो जिष्णुर्न नः शेषं करिष्यति॥ ३०॥
नैष देवान् न गन्धर्वान् नासुरान् न च राक्षसान्।
भयादिह न युध्येत कुन्तीपुत्रो धनंजयः॥ ३१॥
त्वत्तो विशिष्टं वीर्येण धनुष्यमरराट्समम्।
वासुदेवसमं युद्धे तं पार्थं को न पूजयेत्॥ ३२॥
देवं दैवेन युध्येत मानुषेण च मानुषम्।
अस्त्रं ह्यस्त्रेण यो हन्यात् कोऽर्जुनेन समः पुमान्॥ ३३॥

बैर का बदला चुकाने वाले अर्जुन अब हम सब का अन्त कर देंगे। ऐसा नहीं हो सकता है कि ये कुन्तीपुत्र अर्जुन भय के कारण गन्धर्वों से, असुरों से और राक्षसों से भी युद्ध करना छोड़ दें। हे कर्ण! जो अर्जुन तुमसे पराक्रम में बढ़कर हैं, धनुर्विद्या में इन्द्र के समान हैं, युद्धकला में श्रीकृष्ण के समान हैं, उनकी कौन प्रशंसा नहीं करेगा? वे देवताओं से उनकी विधि से युद्ध करते हैं। मनुष्यों से मनुष्यों की विधि में लड़ते हैं, विरोधी के अस्त्र की काट अस्त्र से ही करते हैं, उनके समान कौन पुरुष है?

पुत्रादनन्तरं शिष्य इति धर्मविदो विदुः।
एतेनापि निमित्तेन प्रियो द्रोणस्य पाण्डवः॥ ३४॥
यथा त्वमकरोर्द्यूतमिन्द्रप्रस्थं यथाऽऽहरः।

यथाऽऽनैषीः सभां कृष्णां तथा युध्यस्व पाण्डवम्॥ ३५॥
अयं ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्मस्य कोविदः।
दुर्द्यूतदेवी गान्धारः शकुनिर्युध्यतामिह॥ ३६॥

धर्मज्ञ लोग जानते हैं कि गुरु को पुत्र के पश्चात् शिष्य ही प्यारा होता है। इसलिये भी द्रोणाचार्य को अर्जुन प्रिय है। हे दुर्योधन! जैसे तुमने जूए के द्वारा इन्द्रप्रस्थ का हरण कर लिया और द्रौपदी को सभा में घसीटा, वैसे ही अब अर्जुन के साथ युद्ध भी तुम करो। यह तुम्हारा मामा, गान्धारवासी, जूए का खिलाड़ी, शकुनि बुद्धिमान् और क्षत्रियधर्म का पण्डित है, यही अब यहाँ युद्ध करे।

नाक्षान् क्षिपति गाण्डीवं न कृतं द्वापरं न च।
ज्वलतोनिशितान् बाणांस्तांस्तान् क्षिपति गाण्डिवम्॥ ३७॥
न हि गाण्डीवनिर्मुक्ता गार्ध्रपक्षाः सुतेजनाः।
नान्तरेष्ववतिष्ठन्ते गिरीणामपि दारणाः॥ ३८॥
युध्यन्तां कामतो योधा नाहं योत्स्ये धनंजयम्।
मत्स्यो ह्यस्माभिरायोध्यो यद्यागच्छेद् गवां पदम्॥ ३९॥

गाण्डीव धनुष कृत और द्वापर आदि नाम के पासों को नहीं फैंकता, वह तो लगातार जलते हुए तीखे बाणों को फैंकता है। पर्वतों को भी फाड़ने वाले, अत्यन्त तीखे गिद्ध पंख लगे हुए गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाण बीच में नहीं रुकते, वे शत्रु पर प्रहार ही करते हैं। इसलिये योद्धा लोग अपनी इच्छा से अर्जुन के साथ युद्ध करें, मैं नहीं करूँगा। यदि गायों की रक्षा के लिये मत्स्यराज आजायें तो उनके साथ युद्ध करूँगा।

छत्तीसवाँ अध्याय : भीष्म पितामह की सम्मति।

भीष्म उवाच

साधु पश्यति वै द्रौणिः कृपः साध्वनुपश्यति।
कर्णस्तु क्षत्रधर्मेण केवलं योद्धुमिच्छति॥ १॥
आचार्यो नाभिवक्तव्यः पुरुषेण विजानता।
देशकालौ तु सम्प्रेक्ष्य योद्धव्यमिति मे मतिः॥ २॥
यस्य सूर्यसमाः पञ्च सपत्नाः स्युः प्रहारिणः।
कथमभ्युदये तेषां न प्रमुह्येत पण्डितः॥ ३॥
स्वार्थे सर्वे विमुह्यन्ति येऽपि धर्मविदो जनाः।
तस्माद् राजन् ब्रवीम्येष वाक्यं ते यदि रोचते॥ ४॥

तब भीष्म पितामह ने कहा कि द्रोणपुत्र अश्वत्थामा का विचार बहुत अच्छा है, कृपाचार्य का विचार भी बहुत अच्छा है। कर्ण तो केवल क्षत्रियधर्म के अनुसार ही युद्ध करना चाहता है। विद्वान् पुरुष को अपने आचार्य की निन्दा नहीं करनी चाहिये। मेरे विचार से देश काल के अनुसार ही युद्ध करना चाहिये। जिसके सूर्य के समान तेजस्वी और प्रहार करने वाले पाँच शत्रु हों, उनके अभ्युदय होने पर, पण्डित व्यक्ति भी कैसे मोहित न हो जाये? अपने स्वार्थ के विषय में विचार करते हुए धर्मज्ञ लोग भी मोह में पड़ जाते हैं। इसलिये हे राजन्! यदि तुम्हें अच्छा लगे तो मैं अपनी सलाह देता हूँ।

नायं कालो विरोधस्य कौन्तेये समुपस्थिते।
क्षन्तव्यं भवता सर्वमाचार्येण कृपेण च॥ ५॥
भवतां हि कृतास्त्रत्वं यथाऽऽदित्येप्रभातथा।
यथा चन्द्रमसो लक्ष्मीः सर्वथा नापकृष्यते॥ ६॥
एवं भवत्सु ब्राह्मण्यं ब्रह्मास्त्रं च प्रतिष्ठितम्।
चत्वार एकतो वेदाः क्षात्रमेकत्र दृश्यते॥ ७॥
नैतत् समस्तमुभयं कस्मिंश्चिदनुशुश्रुम।
अन्यत्र भारताचार्यात् सपुत्रादिति मे मतिः॥ ८॥

अर्जुन के युद्ध के लिये उपस्थित होने पर यह आपस में विरोध करने का समय नहीं है, इसलिये तुम्हें, आचार्य द्रोण को और कृपाचार्य को सब कुछ क्षमा कर देना चाहिये। आप लोगों में अस्त्र विद्या का ज्ञान उसी प्रकार का है, जैसे सूर्य में प्रभा और चन्द्रमा में शोभा है। जैसे उनके ये गुण कम नहीं होते वैसे ही आपकी विद्या भी कम नहीं हो सकती। आप लोगों में ब्राह्मणत्व और ब्रह्मास्त्र दोनों प्रतिष्ठित हैं, जबकि देखा यह जाता है कि किसी में केवल वेदों का ज्ञान होता है, तो दूसरे में केवल क्षत्रियत्व होता है। हमने दोनों गुण पूर्णरूप से एक ही व्यक्ति में सिवाय भरतवंशियों के आचार्य कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा के और कहीं नहीं सुने। ऐसा मेरा विचार है।

वेदान्ताश्च पुराणानि इतिहासं पुरातनम्।
जामदग्न्यमृते राजन् को द्रोणादधिको भवेत्॥ ९॥
आचार्यपुत्रः क्षमतां नायं कालो विभेदने।
सर्वे संहत्य युध्यामः पाकशासनिमागतम्॥ १०॥
बलस्य व्यसनानीह यान्युक्तानि मनीषिभिः।
मुख्यो भेदो हि तेषां तु पापिष्ठो विदुषां मतः॥ ११॥

हे राजन्! वेदान्त पुराण और प्राचीन इतिहास, परशुराम जी के सिवाय किसमें द्रोणाचार्य से बढ़कर हो सकते हैं? आचार्यपुत्र क्षमा करें। यह समय फूट पैदा करने का नहीं है। हम आते हुए अर्जुन का सारे मिलकर सामना करेंगे। मनीषियों ने सेना का नाश करने वाले जो भी कारण बताये हैं, उनमें सबसे अधिक पापपूर्ण और विनाशक फूट का पड़ना ही है।

अश्वत्थामोवाच

नैव न्याय्यमिदं वाच्यमस्माकं पुरुषर्षभ।
किं तु रोषपरीतेन गुरुणा भाषिता गुणाः॥ १२॥
शत्रोरपि गुणा ग्राह्या दोषा वाच्या गुरोरपि।
सर्वथा सर्वयत्नेन पुत्रे शिष्ये हितं वदेत्॥ १३॥

दुर्योधन उवाच

आचार्य एव क्षमतां शान्ति रत्र विधीयताम्।
अभिद्यमाने तु गुरौ तद् वृत्तं रोषकारितम्॥ १४॥

तब अश्वत्थामा ने कहा कि हे पुरुषश्रेष्ठ! हमारी न्याय से युक्त बातों की निन्दा नहीं करनी चाहिये। गुरु द्रोणाचार्य ने पाण्डवों पर हुए अन्यायों की स्मृति के कारण उत्पन्न हुए रोष के कारण ही अर्जुन के गुणों का वर्णन किया है। शत्रु के भी गुणों को और गुरु के भी दोषों को बताना चाहिये। गुरु को अपने पुत्र और शिष्य के लिये पूरी तरह से, सारे प्रयत्नों से जो हितकारी बात हो उसे ही कहना चाहिये। फिर दुर्योधन बोला कि आचार्य ही क्षमा करें। यहाँ शान्ति करनी चाहिये। यदि गुरु के मन में भेद नहीं है तो यही समझना चाहिये कि क्रोध वश पहले की बातें कही गयीं हैं।

द्रोण उवाच

यदेतत् प्रथमं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत्।
तेनैवाहं प्रसन्नो वै नीतिरत्र विधीयताम्॥ १५॥
यथा दुर्योधनं पार्थो नोपसर्पति संगरे।
धनं चालभमानोऽत्र नाद्य तत् क्षन्तुमर्हति॥ १६॥
यथा नायं समायुञ्ज्याद् धार्तराष्ट्रान् कथंचन।
न च सेनाः पराजय्यात् तथा नीतिर्विधीयताम्॥ १७॥
उक्तं दुर्योधनेनापि पुरस्ताद् वाक्यमीदृशम्।
तदनुस्मृत्य गाङ्गेय यथावद् वक्तुमर्हसि॥ १८॥

तब द्रोणाचार्य ने कहा कि शान्तनुपुत्र भीष्म ने जो पहले कहा है, मैं उसी से प्रसन्न हूँ। अब ऐसी नीति बताओ, जिससे अर्जुन युद्ध में दुर्योधन के पास न पहुँच सके। यदि अर्जुन को अपना गोधन प्राप्त न हुआ तो वह हमें क्षमा नहीं कर सकते। ऐसी नीति बनाओ जिससे अर्जुन धृतराष्ट्र के पुत्रों पर आक्रमण न कर सके और सेना की पराजय भी न हो। दुर्योधन ने जो पहली बात पाण्डवों की अवधि पूरी होने के विषय में कही थी, उस बारे में गंगा पुत्र भीष्म ही याद करके ठीक ठीक बता सकते हैं।

भीष्म उवाच

कलाः काष्ठाश्च युज्यन्ते मुहूर्ताश्च दिनानि च।
अर्धमासाश्च मासाश्च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा॥ १९॥
ऋतवश्चापि युज्यन्ते तथा संवत्सरा अपि।
एवं कालविभागेन कालचक्रं प्रवर्तते॥ २०॥
तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात्।
पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः॥ २१॥
एषामभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः॥ २२॥

तब भीष्म ने कहा कि कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन, अर्धमास, मास, नक्षत्र, ग्रह, ऋतु और वर्ष ये सभी आपस में जुड़ते हैं, इस प्रकार इन छोटे विभागों के जुड़ने से यह काल चक्र चल रहा है। समय के इन भागों के बढ़ने से तथा ग्रह, नक्षत्रों की गति में उलट फेर होने से, हर पाँचवे वर्ष में दो अतिरिक्त मास बढ़ जाते हैं, इसलिये पाण्डवों के तेरह वर्षों में पाँच मास और बारह दिन अधिक हो गये हैं, ऐसा मेरा विचार है।

सर्वं यथावच्चरितं यद् यदेभिः प्रतिश्रुतम्।
एवमेतद् ध्रुवं ज्ञात्वा ततो बीभत्सुरागतः॥ २३॥
सर्वे चैव महात्मानः सर्वे धर्मार्थकोविदाः।
येषां युधिष्ठिरो राजा कस्माद् धर्मेऽपराध्नुयुः॥ २४॥
अलुब्धाश्चैव कौन्तेयाः कृतवन्तश्च दुष्करम्।
न चापि केवलं राज्यमिच्छेयुस्तेऽनुपायतः॥ २५॥

उन्होंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसका पूरा पूरा पालन किया है। इस बात को अच्छी तरह से जानकर ही अर्जुन यहाँ आये हैं। पाण्डव लोग सारे महात्मा हैं और सारे धर्म को जानने वाले हैं। जिनका नेता युधिष्ठिर है, वे धर्म का कैसे उल्लंघन कर सकते हैं? कुन्ती के पुत्र लोभ से रहित हैं, उन्होंने दुष्कर कार्य किये हुए हैं। वे केवल राज्य लेने के लिये अनुचित उपाय नहीं अपना सकते।

तदैव ते हि विक्रान्तुमीषुः कौरवनन्दनाः।
धर्मपाशनिबद्धास्तु न चेलुः क्षत्रियव्रतात्॥ २६॥
यच्चानृत इति ख्यायाद् यः स गच्छेत् पराभवम्।
वृणुयुर्मरणं पार्था नानृतत्वं कथंचन॥ २७॥
प्राप्तकाले तु प्राप्तव्यं नोत्सृजेयुर्नरर्षभाः।
अपि वज्रभृता गुप्तं तथावीर्या हि पाण्डवाः॥ २८॥

वे कुरुकुलनन्दन पाण्डव, उसी समय पराक्रम कर सकते थे, पर धर्म के बन्धन में बँधे होने के कारण वे अपने क्षत्रिय धर्म से विचलित नहीं हुए। जो उन्हें झूठा कहेगा, वह पराजय को प्राप्त होगा। पाण्डव लोग मृत्यु को स्वीकार कर सकते हैं, पर असत्य को नहीं। वे नरश्रेष्ठ पाण्डव समय आने पर अपने अधिकार को नहीं छोड़ सकते, चाहे इन्द्र ही उसका रक्षक क्यों न हो। पाण्डव इस प्रकार के पराक्रमी हैं।

प्रतियुधयेम समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
तस्माद् यदत्र कल्याणं लोके सद्‌भिरनुष्ठितम्॥ २९॥
तत् संविधीयतां शीघ्रं।
मावो ह्यर्थोऽभ्यगात् परम्॥ ३०॥
न हि पश्यामि संग्रामे कदाचिदपि कौरव।
एकान्तसिद्धिं राजेन्द्र सम्प्राप्तश्च धनंजय॥ ३१॥
सम्प्रवृत्ते तु संग्रामे भावाभावौ जयाजयौ।
अवश्यमेकं स्पृशतो दृष्टमेतदसंशयम्॥ ३२॥

हमें युद्ध में सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ व्यक्ति का सामना करना है, इसलिये संसार में सज्जन लोगों के द्वारा जो कार्य किया गया है और जिसमें हमारा कल्याण हो, वही करना चाहिये। इसलिये जल्दी करो। तुम्हारा गोधन शत्रु के हाथ में नहीं चला जाये। हे कौरव, हे राजेन्द्र! मैं युद्ध में कभी भी एक ही तरफ की सफलता नहीं मानता। लो अर्जुन आ गये हैं। युद्ध होने पर हानि लाभ, जय पराजय में एक की प्राप्ति अवश्य होती है। यह निश्चितरूप से देखा गया है।

क्षिप्रं बलचतुर्भागं गृह्य गच्छ पुरं प्रति।
ततोऽपरश्चतुर्भागो गाः समादाय गच्छतु॥ ३३॥
वयं चार्धेन सैन्यस्य प्रतियोत्स्याम पाण्डवम्।
अहं द्रोणश्च कर्णश्च अश्वत्थामा कृपस्तथा॥ ३४॥
प्रतियोत्स्याम बीभत्सुमागतं कृतनिश्चयम्।
तद् वाक्यं रुरुचे तेषां भीष्मेणोक्तं महात्मना॥ ३५॥
भीष्मः प्रस्थाप्य राजानं गोधनं तदनन्तरम्।
सेनामुख्यान् व्यवस्थाप्य व्यूहितुं सम्प्रचक्रमे॥ ३६॥

हे दुर्योधन! तुम चौथाई सेना को लेकर जल्दी से अपने नगर की तरफ चले जाओ। फिर दूसरा चौथा भाग गायों को लेकर चला जाये। हम शेष आधी सेना के साथ अर्जुन का सामना करेंगे। मैं, द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, और कृपाचार्य युद्ध का निश्चय करके आये हुए अर्जुन का मुकाबला करेंगे। महात्मा भीष्म के द्वारा कहे गये इस वाक्य को सबने पसन्द किया। भीष्म ने पहले दुर्योधन को भेजकर, फिर गायों को भेजकर, फिर सेनापतियों को व्यवस्थित करके व्यूह बनाना आरम्भ कर दिया।

भीष्म उवाच

आचार्य मध्ये तिष्ठ त्वमश्वत्थामा तु सव्यतः।
कृपः शारद्वतो धीमान् पार्श्वरक्षतु दक्षिणम्॥ ३७॥
अग्रतः सूतपुत्रस्तु कर्णस्तिष्ठ तु दंशितः।
अहं सर्वस्य सैन्यस्य पश्चात् स्था स्यामि पालयन्॥ ३८॥

भीष्म ने कहा कि आचार्य आप बीच में खड़े हो जाओ और अश्वत्थामा बायीं तरफ खड़ा हो, शरद्वान् पुत्र धीमान् कृपाचार्य सेना के दायें भाग की रक्षा करें। कर्ण कवच पहन कर सबसे आगे ठहरे और मैं सेना के पिछले भाग की रक्षा करता हुआ रहूँगा।

सैंतीसवाँ अध्याय : अर्जुन का आक्रमण, गायों का लौटाना।

ततस्तु सर्वमालोक्य द्रोणो वचनमब्रवीत्।
एष तिष्ठन् रथश्रेष्ठे रथे च रथिनां वरः॥ १॥
उत्कर्षति धनुःश्रेष्ठं गाण्डीवमशनिस्वनम्।
इमौ च बाणौ सहितौ पादयोर्मे व्यवस्थितौ॥ २॥
अपरौ चाप्यतिक्रान्तौ कर्णौ संस्पृश्य मे शरौ।
निरुष्य हि वने वासं कृत्वा कर्मातिमानुषम्॥ ३॥
अभिवादयते पार्थः श्रोत्रे च परिपृच्छति।
चिरदृष्टोऽयमस्माभिः प्रज्ञावान् बान्धवप्रियः।
अतीव ज्वलितो लक्ष्म्या पाण्डुपुत्रो धनंजयः॥ ४॥

तब सब कुछ देखकर द्रोणाचार्य बोले कि देखो ये श्रेष्ठरथ में रथियों में श्रेष्ठ अर्जुन बैठे हुए हैं और वज्र के समान ध्वनि करने वाले श्रेष्ठ गाण्डीव की डोरी को खींच रहे हैं। ये उनके दो बाण एक साथ मेरे पैरों के पास आकर गिर पड़े और ये दो

बाण मेरे कानों को छूते हुए निकल गये। अर्जुन वन में रह कर, वहाँ अमानुष कर्म करके, अब मुझे प्रणाम कर युद्ध के लिये मुझसे आज्ञा माँग रहे हैं। इन पाण्डुपुत्र बुद्धिमान्, बन्धुओं के प्रिय अर्जुन को हमने बहुत दिनों के पश्चात् देखा है। ये अपनी कान्ति से अतीव प्रकाशित हो रहे हैं।

रथी शरी चारुतली निषङ्गी
शङ्खी पताकी कवची किरीटी।
खड्गी च धन्वी च विभाति पार्थः
शिखी वृतः स्रुग्भिरिवाज्यसिक्तः॥ ५॥

बाण, सुन्दर दस्ताने, तरकस, शंख, कवच, किरीट, खड्ग और धनुष धारण किये हुए, तथा पताका वाले रथ पर बैठे हुए ये कुन्तीपुत्र अर्जुन ऐसे सुशोमित हो रहे हैं जैसे घी से सींची हुई और स्रुवा आदि यज्ञ के उपकरणों से घिरी हुई यज्ञ की अग्नि सुशोभित होती है।

अर्जुन उवाच

इषुपाते च सेनाया हयान् संयच्छ सारथे।
यावत् समीक्षे सैन्येऽस्मिन् क्वासौ कुरुकुलाधमः॥ ६॥
सर्वानेताननादृत्य दृष्ट्वा तमतिमानिनम्।
तस्य मूर्ध्नि पतिष्यामि तत एते पराजिताः॥ ७॥
एष व्यवस्थितो द्रोणो द्रौणिश्च तदनन्तरम्।
भीष्मः कृपश्च कर्णश्च महेष्वासाः समागताः॥ ८॥
राजानं नात्र पश्यामि गाः समादाय गच्छति।
दक्षिणं मार्गमास्थाय शङ्के जीवपरायणः॥ ९॥

तब अर्जुन ने कहा कि हे सारथि! जितनी दूर पर बाण जाकर गिरता है, सेना से उतनी दूर घोड़ों को रोक दो। मैं पहले यह देखता हूँ कि वह कुरुकुलाधम कहाँ है? मैं इन सबको छोड़कर पहले उस अति अभिमानी के सिर पर गिरूँगा। फिर ये अपने आप पराजित हो जायेंगे। ये द्रोणाचार्य खड़े हैं। उनके बाद उनके पुत्र हैं। भीष्म, कृपाचार्य, और कर्ण ये सारे महाधनुर्धर आये हुए हैं। पर मैं यहाँ इनके राजा को नहीं देख रहा हूँ। मुझे शंका है कि वह गायों को लेकर, दायीं तरफ के रास्ते को पकड़ कर, अपनी जान बचाने के लिये भागा जा रहा है।

उत्सृजैतद् रथानीकं गच्छ यत्र सुयोधनः।
तत्रैव योत्स्ये वैराटे नास्ति युद्धं निरामिषम्॥ १०॥
तं जित्वा विनिवर्तिष्ये गाः समादाय वै पुनः।
एवमुक्तः स वैराटिर्हयान् संयम्य यत्नतः॥ ११॥
अचोदयत् ततो वाहान् यत्र दुर्योधनो गतः।
उत्सृज्य रथवंशं तु प्रयाते श्वेतवाहने॥ १२॥
अभिप्रायं विदित्वा च कृपो वचनमब्रवीत्।

तुम इस रथों की सेना को छोड़ दो। उसी तरफ चलो, जहाँ दुर्योधन है। हे विराट पुत्र! मैं वहीं युद्ध करूँगा। यहाँ व्यर्थ में युद्ध नहीं करना। उसे जीत कर और गायों को लेकर वापिस लौट चलेंगे। ऐसा कहे जाने पर उस विराटपुत्र ने घोड़ों को प्रयत्नपूर्वक रोककर उन्हें उसी तरफ मोड़ दिया, जिधर दुर्योधन गया हुआ था। रथों के समूह को छोड़कर अर्जुन के दूसरी तरफ चल देने पर, उसका अभिप्राय समझकर कृपाचार्य ने कहा कि—

नैषोऽन्तरेण राजानं बीभत्सुः स्थातुमिच्छति॥ १३॥
तस्य पार्ष्णिं ग्रहीष्यामो जवेनाभिप्रयास्यतः।
न ह्येनमतिसंक्रुद्धमेको युध्येत संयुगे॥ १४॥
आचार्याच्च सपुत्राद् वा भारद्वाजान्महारथात्।
किं नो गावः करिष्यन्ति धनं वा विपुलं तथा॥ १५॥
दुर्योधनः पार्थजले पुरा नौरिव मज्जति।

ये अर्जुन राजा दुर्योधन के बिना यहाँ ठहरना नहीं चाहते, इसलिये उसके पीछे तेजी से जाते हुए के पीछे हम लोग तेजी से चलें। अत्यन्त क्रोध में भरे हुए अर्जुन से पुत्र सहित भरद्वाजपुत्र महारथी द्रोणाचार्य के अतिरिक्त और कोई युद्ध नहीं कर सकता। हमें गायें और विपुलधन क्या लाभ देंगे? दुर्योधन अर्जुन रूपी जल में पुरानी नाव की तरह डूबने वाला है।

तथैव गत्वा बीभत्सुर्नाम विश्राव्य चात्मनः॥ १६॥
शलभैरिव तां सेनां शरैः शीघ्रमवाकिरत्।
ततः शङ्खं प्रदध्मौ स द्विषतां लोमहर्षणम्॥ १७॥
तस्य शङ्खस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च।
गाण्डीवस्य च घोषेण पृथिवी समकम्पत॥ १८॥
ऊर्ध्वं पुच्छान् विधुन्वाना रेभमाणाः समन्ततः।
गावः प्रतिन्यवर्तन्त दिशमास्थाय दक्षिणाम्॥ १९॥

उधर अर्जुन ने भी उसी प्रकार दुर्योधन की सेना के पास पहुँचकर और अपना नाम सुनाकर शीघ्र ही उस सेना पर टिड्डीदल के समान बाणों की बौछार कर दी। उसके पश्चात् उन्होंने शत्रुओं के

रोंगटे खड़े कर देने वाले अपने शंख को बजाया। उस शंख की आवाज से, रथ की घरघराहट से, और गांडीव धनुष की टंकार से भूमि काँपने लगी और गायें अपनी पूँछ ऊपर को उठाकर हिलाती हुई और रंभाती हुई सब तरफ से लौट पड़ी तथा दक्षिण दिशा की तरफ भाग चलीं।

अड़तीसवाँ अध्याय : अर्जुन से विकर्ण, कर्ण की हार, शत्रुंतप, संग्रामजित वध।

गोषु प्रयातासु जवेन मत्स्यान्
किरीटिनं कृतकार्यं च मत्वा।
दुर्योधनायाभिमुखं प्रयातं
कुरुप्रवीराः सहसा निपेतुः॥ १॥
तेषामनीकानि बहूनि गाढं
व्यूढानि दृष्ट्वा बहुलध्वजानि।
मत्स्यस्य पुत्रं द्विषतां निहन्ता
वैराटिमामन्त्र्य ततोऽभ्युवाच॥ २॥

गायों के मत्स्य देश की तरफ भाग जाने पर, अर्जुन को अपने उद्देश्य में सफल जानकर और उसे दुर्योधन की तरफ आक्रमण के लिये जाता हुआ देखकर कौरव एकदम वहाँ पहुँचे। तब बहुत सी पताकाओं वाली तथा अच्छी तरह से व्यूहबद्ध उनकी विशाल सेना को देखकर शत्रुओं को नष्ट करने वाले अर्जुन ने विराट पुत्र उत्तर कुमार को सम्बोधन करके कहा कि—

गतो गजेनेव मया दुरात्मा
योद्धुं समाकाङ्क्षति सूतपुत्रः।
तमेव मां प्रापय राजपुत्र
दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम्॥ ३॥
स तैर्हयैर्वातजवैर्बृहद्भिः
पुत्रो विराटस्य सुवर्णकक्षैः।
व्यध्वंसयत् तद् रथिनामनीकं
ततोऽवहत् पाण्डवमाजिमध्ये॥ ४॥

हे राजपुत्र! जो सारथी का पुत्र दुर्योधन का सहारा पाकर बड़ा घमंडी हो गया है, जैसे हाथी हाथी के साथ लड़ना चाहता है, वैसे ही जो दुरात्मा मेरे साथ युद्ध करना चाहता है, उसी कर्ण के पास मुझे पहुँचाओ। तब विराटपुत्र ने जिनके दोनों तरफ बगल में सुनहरे वस्त्र लटक रहे थे, उन विशाल और वायु के समान वेगशाली घोड़ों के द्वारा, रथियों की उस सेना को छितराते हुए अर्जुन को सेना के मध्य भाग में पहुँचा दिया।

तं चित्रसेनो विशिखैर्विपाठैः
संग्रामजिच्छत्रुसहो जयश्च।
प्रत्युद्ययुर्भारत मापतन्तं
महारथाः कर्णमभीप्समानाः॥ ५॥
तस्मिंस्तु युद्धे तुमुले प्रवृत्ते
पार्थं विकर्णोऽतिरथं रथेन।
विपाठवर्षेण कुरुप्रवीरो
भीमेन भीमानुजमाससाद॥ ६॥

तब चित्रसेन, संग्रामजित्, शत्रुसह, और जय नाम के महारथी कर्ण को बचाने की इच्छा से आक्रमण करते हुए, अर्जुन पर विपाठ नाम बाणों की वर्षा करते हुए उनके सामने आ डटे। तब उस भयानक युद्ध के आरम्भ हो जाने पर कुरुश्रेष्ठ वीर विकर्ण अपने रथ से भीम के छोटे भाई महारथी अर्जुन पर भयानक विपाठ नाम के बाणों की वर्षा करता हुआ आ गया।

ततो विकर्णस्य धनुर्विकृष्य
जाम्बूनदाग्र्योपचितं दृढज्यम्।
अपातयत् तं ध्वजमस्य मथ्य
च्छिन्नध्वजः सोऽप्यपयाज्जवेन॥ ७॥
तं शात्रवाणां गणबाधितारं
कर्माणि कुर्वन्तममानुषाणि।
शत्रुंतपः पार्थममृष्यमाणः
समार्दयच्छरवर्षेण पार्थम्॥ ८॥

तब अर्जुन ने विकर्ण के सोना मँढे हुए और मजबूत प्रत्यंचावाले धनुष को काटकर उसके ध्वज को भी टुकड़े टुकड़े करके गिरा दिया। तब अपनी ध्वजा के कट जाने पर विकर्ण तेजी से वहाँ से भाग गया। तब शत्रुओं के सेनासमूहों को नष्ट करने वाले, वीरता के अमानुष कर्म करने वाले, कुन्तीपुत्र अर्जुन को सहन न कर शत्रुंतप नाम का योद्धा अपनी बाणवर्षा से उसे पीड़ित करने लगा।

स तेन राज्ञातिरथेन विद्धो
विगाहमानो ध्वजिनीं कुरूणाम्।
शत्रुंतपं पञ्चभिराशु विद्धा
ततोऽस्य सूतं दशभिर्जघान॥ ९॥
ततः स विद्धो भरतर्षभेण
बाणेन गात्रावरणातिगेन।
गतासुराज्ञो निपपात भूमौ
नगो नागाग्रादिव वातरुग्णः॥ १०॥

कौरवों की सेना को विलोडित करने वाले अर्जुन ने उस अतिरथी राजा शत्रुंतप के बाणों से बिंधकर शीघ्रता से उसे पाँच बाणों से बींध दिया और फिर उसके सारथि को दस बाणों से मार दिया। तब उस भरतश्रेष्ठ के कवच को छेद कर शरीर में घुसने वाले बाण से बींधा हुआ शत्रुंतप प्राणहीन होकर युद्धक्षेत्र में भूमि पर ऐसे गिर गया जैसे पर्वत से आँधी में उखड़ा हुआ पेड़ गिर पड़ता है।

शोणाश्ववाहस्य हयान् निहत्य
वैकर्तनभ्रातुर- दीनसत्त्वः।
एकेन संग्रामजितः शरेण
शिरो जहाराथ किरीटमाली॥ ११॥
तस्मिन् हते भ्रातरि सूतपुत्रो
वैकर्तनो वीर्यमथाददानः।
प्रगृह्य दन्ताविव नागराजो
महर्षभं व्याघ्र इवाभ्यधावत्॥ १२॥

फिर जिसके हृदय में दीनता का भाव नहीं था, उस अर्जुन ने लाल घोड़ों वाले रथ पर बैठे हुए कर्ण के भाई संग्रामजित के घोड़ों को मारकर एक बाण से उसके सिर को भी उड़ा दिया। अपने भाई के मारे जाने पर सारथि का पुत्र कर्ण अपने पराक्रम को दिखाने की इच्छा से अर्जुन की तरफ इस प्रकार दौड़ा जैसे गजराज अपने दाँतों के साथ या व्याघ्र आक्रमण के लिये महाबली साँड की तरफ दौड़े।

स पाण्डवं द्वादशभिः पृषत्कै-
र्वैकर्तनः शीघ्रमथो जघान।
विव्याध गात्रेषु हयांश्च सर्वान्
विराटपुत्रं च करे निजघ्ने॥ १३॥
तमापतन्तं सहसा किरीटी
वैकर्तनं वै तरसाभिपत्य।
प्रगृह्य वेगं न्यपतज्जवेन
नागं गरुत्मानिव चित्रपक्षः॥ १४॥

उसने शीघ्रता से अर्जुन के शरीर को बारह बाणों से छेदा, उसके घोड़ों को घायल किया और विराटपुत्र के हाथ में चोट पहुँचायी। तब अचानक आक्रमण करते हुए उस कर्ण पर अर्जुन ने भी तेजी से आगे बढ़कर इस प्रकार आक्रमण किया जैसे विचित्र पंखवाला गरुड़ किसी साँप पर टूट पड़े।

तावुत्तमौ सर्वधनुर्धराणां
महाबलौ सर्वसपत्नसाहौ।
कर्णस्य पार्थस्य निशम्य युद्धं
दिदृक्षमाणाः कुरवोऽभितस्थुः॥ १५॥
स पाण्डवस्तूर्णमुदीर्णकोपः
कृतागसं कर्णमुदीक्ष्य हर्षात्।
क्षणेन साश्वं सरथं ससारथि-
मन्तर्दधे घोरशरौघवृष्ट्या॥ १६॥

सारे धनुर्धारियों में उत्तम, महाबली, सारे शत्रुओं के वेगों को सहन करने वाले उन दोनों अर्जुन और कर्ण के युद्ध के विषय में सुनकर उसे देखने की इच्छा से सारे कौरव वीर चुपचाप वहाँ खड़े हो गये। बढ़े हुए क्रोध वाले उस पाण्डुपुत्र ने अपराधी कर्ण को देखकर हर्ष से अपनी भयानक बाणवर्षा के द्वारा उसे क्षणभर में घोड़ों, रथ, और सारथि सहित ढक दिया।

स चापि तानर्जुनबाहुमुक्ता-
ञ्छराञ्छरौघैः प्रतिहत्य वीरः।
तस्थौ महात्मा सधनुः सबाणः
सविस्फुलिङ्गोऽग्निरिवाशु कर्णः॥ १७॥
ततस्त्वभूद् वै तलतालशब्दः
सशङ्खभेरीपणव प्रणादः।
प्रक्ष्वेडितज्यातलनिस्वनं तं
वैकर्तनं पूजयतां कुरूणाम्॥ १८॥

कर्ण ने भी अर्जुन की भुजाओं से छोड़ी हुई बाण वर्षा को शीघ्रता से अपनी बाण वर्षा से निवारण कर दिया और वह मनस्वी वीर अपने धनुष बाण सहित ऐसे सुशोभित होने लगा जैसे चिनगारियों से युक्त अग्नि हो। तब कर्ण की बड़ाई करते हुए कौरवों की तालियों की, हथेलियों की, शंख, नगाड़े,

और ढोलों की, तथा धनुष की टंकारों की ध्वनि चारों तरफ गूँजने लगी।

स चापि वैकर्तनमर्दयित्वा
साश्वं ससूतं सरथं पृषत्कैः।
तमाववर्ष प्रसभं किरीटी
पितामहं द्रोणकृपौ च दृष्ट्वा॥ १९॥
स चापि पार्थं बहुभिः पृषत्कै-
र्वैकर्तनो मेघ इवाभ्यवर्षत्।
तथैव कर्णं च किरीटमाली
संछादयामास शितैः पृषत्कैः॥ २०॥

तब अर्जुन ने भी अपने बाणों से घोड़ों, रथ, तथा सारथि सहित कर्ण को पीड़ित करके, भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य की तरफ देखकर उसके ऊपर भयानक बाणवर्षा आरम्भ कर दी। तब कर्ण ने भी अर्जुन के ऊपर बादलों के समान बहुत सारे बाणों की वर्षा की और वैसे ही अर्जुन ने कर्ण को अपने तीखे बाणों से ढक दिया।

अथाशुकारी चतुरो हयांश्च
विव्याध कर्णो निशितैः किरीटिनः।
त्रिभिश्च यन्तारममृष्यमाणो
विव्याध तूर्णं त्रिभिरस्य केतुम्॥ २१॥

तब अमर्षशील और शीघ्रता से बाण चलाने वाले कर्ण ने तीखे बाणों से अर्जुन के चारों घोड़ों को बींधा, तीन बाणों से उसके सारथि को घायल किया तथा तीन बाणों से उसके ध्वज को छेद दिया।

शरास्त्रवृष्ट्या निहतो महात्मा
प्रादुश्चकाराति मनुष्यकर्म।
प्राच्छादयत् कर्णरथं पृषत्कै-
र्लोकानिमान् सूर्य इवांशुजालैः॥ २२॥
स हस्तिनेवाभिहतो गजेन्द्रः
प्रगृह्य भल्लान् निशितान् निषङ्गात्।
आकर्णपूर्णं च धनुर्विकृष्य
विव्याध गात्रेष्वथ सूतपुत्रम्॥ २३॥
अथास्य बाहूरुशिरोललाटं
ग्रीवां वरांगानि परावमर्दी।
शितैश्च बाणैर्युधि निर्बिभेद
गाण्डीवमुक्तैरशनिप्रकाशैः॥ २४॥

तब कर्ण की बाण वर्षा से घायल हुए महात्मा अर्जुन ने अमानुष कर्म करते हुए, जैसे सूर्य लोकों को अपने किरण जाल से ढक देता है, वैसे ही कर्ण के रथ को बाण वर्षा से ढक दिया। अपने प्रतिद्वन्द्वी हाथी के द्वारा घायल किये गये हाथी के समान अर्जुन ने अपने तरकस से भल्ल नाम के तीखे बाणों को निकाल कर उनसे धनुष को कानतक खींच कर कर्ण के शरीर को बींध दिया। शत्रु का मर्दन करने वाले अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष से निकले हुए वज्र के समान तीखे बाणों से उस युद्ध में कर्ण के हाथों, जाँघों, सिर, माथा, गर्दन आदि उत्तम अंगों को बींध दिया।

स पार्थमुक्तैरिषुभिः प्रणुन्नो
गजो गजेनेव जितस्तरस्वी।
विहाय संग्रामशिरः प्रयातो
वैकर्तनः पाण्डवबाणतप्तः॥ २५॥

तब अर्जुन के द्वारा छोड़े हुए बाणों से पीड़ित होकर, जैसे एक वेगवान् हाथी दूसरे हाथी से पराजित हो जाये, वैसे ही पाण्डुपुत्र के बाणों से सन्तप्त हुआ कर्ण युद्ध के मुहाने को छोड़कर वहाँ से भाग गया।

उन्तालीसवाँ अध्याय : कृपाचार्य और अर्जुन का युद्ध।

अर्जुन उवाच

जाम्बूनदमयी वेदी ध्वजे यस्य प्रदृश्यते।
तस्य दक्षिणतो याहि कृपः शारद्वतो यतः॥ १॥
धनंजयवचः श्रुत्वा वैराटिस्त्वरितस्ततः।
हयान् रजतसंकाशान् हेमभाण्डानचोदयत्॥ २॥
आनुपूर्व्यात् तु तत् सर्वमास्थाय जवमुत्तमम्।
प्राहिणोच्चन्द्रसंकाशान् कुपितानिव तान् हयान्॥ ३॥
स गत्वा कुरुसेनायाः समीपं हयकोविदः।
पुनरावर्तयामास तान् हयान् वातरंहसः॥ ४॥
प्रदक्षिणमुपावृत्य मण्डलं सव्यमेव च।
कुरून् सम्मोहयामास मत्स्यो यानेन तत्त्ववित्॥ ५॥
कृपस्य रथमास्थाय वैराटिरकुतोभयः।
प्रदक्षिणमुपावृत्य तस्थौ तस्याग्रतो बली॥ ६॥

तब अर्जुन ने उत्तरकुमार से कहा कि जिनकी ध्वजा पर सुनहरी वेदी बनी हुई है, उनके रथ के दाहिनी तरफ रथ को ले चलो। शरद्वान्पुत्र कृपाचार्य

वे ही हैं। अर्जुन की बात सुनकर विराटपुत्र ने चाँदी के समान श्वेत घोड़ों को, जिन्होंने सुनहरे साज को धारण किया हुआ था, उसी तरफ हाँक दिया। घोड़ों को वेगपूर्वक चलाने के जितने तरीके हैं, उन्हें क्रमशः अपनाते हुए उसने इतनी तेजी से चलाया, मानो वे कुपित होकर दौड़ रहे हों। घोड़ों के विद्वान् उत्तरकुमार ने कौरव सेना के समीप जाकर वायु के समान वेगशाली उन घोड़ों को पुनः लौटाया, फिर दायीं तरफ घुमाकर बायीं तरफ बढ़ा दिया। निर्भय और बलवान् विराटपुत्र ने इस प्रकार कौरवों को मोहित कर दिया अर्थात् वे यह नहीं जान सके कि किस महारथी के पास यह जाना चाहता है? फिर कृपाचार्य के रथ की प्रदक्षिणा कर उसने अपने रथ को उनके रथ के सामने जाकर खड़ा कर दिया।

ततोऽर्जुनः शङ्खवरं देवदत्तं महारवम्।
प्रदध्मौ बलमास्थाय नाम विश्राव्य चात्मनः॥ ७॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरो बलवीर्यसमन्वितः।
अमृष्यमाणस्तं शब्दं कृपः शारद्वतस्तदा॥ ८॥
अर्जुनं प्रति संरब्धो युद्धार्थी स महारथः।
महोदधिजमादाय दध्मौ वेगेन वीर्यवान्॥ ९॥
स तु शब्देन लोकांस्त्रीनावृत्य रथिनां वरः।
धनुरादाय सुमहज्ज्याशब्दमकरोत् तदा॥ १०॥

तब अर्जुन ने अपना नाम सुनाकर महान् ध्वनि वाले उस उत्तम देवदत्त शंख को जोर लगाकर फूँका। तब बल और वीर्य से युक्त, युद्ध के इच्छुक वीर शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने अर्जुन के प्रति क्रुद्ध होकर, उसके शंख घोष को न सहन करके हुए अपने शंख को जोर से बजाया। रथियों में श्रेष्ठ उन्होंने उसकी ध्वनि से तीनों लोकों को भरकर, अपने विशाल धनुष को उठाकर उसकी प्रत्यंचा को टंकारा।

तौ रथौ सूर्यसंकाशौ योत्स्यमानौ महाबलौ।
शारदाविव जीमूतौ व्यरोचेतां व्यवस्थितौ॥ ११॥
ततः शारद्वतस्तूर्णं पार्थं दशभिराशुगैः।
विव्याध परवीरघ्नं निशितैर्मर्मभेदिभिः॥ १२॥
पार्थोऽपि विश्रुतं लोके गाण्डीवं परमायुधम्।
विकृष्य चिक्षेप बहून् नाराचान् मर्मभेदिनः॥ १३॥
तान् प्राप्ताञ्छितैर्बाणैर्नाराचान् रक्तभोजनान्।
कृपश्चिच्छेद पार्थस्य शतशोऽथ सहस्रशः॥ १४॥

वे दोनों महारथी सूर्य के समान महाबली थे। युद्ध के लिये तैयार होकर खड़े हुए वे शरद् ऋतु के दो बादलों के समान प्रतीत हो रहे थे। तब कृपाचार्य ने शीघ्रता से दस तीखे बाणों से उन शत्रुवीरों को नष्ट करने वाले अर्जुन को बींध दिया। तब अर्जुन ने भी अपने प्रसिद्ध उत्तम आयुध गाण्डीव को खींचकर बहुत से मर्मभेदी नाराच उनकी तरफ फैंके। अर्जुन के उन खून पीने वाले नाराचों को कृपाचार्य ने अपने तीखे बाणों से टुकड़े कर दिया।

प्राच्छादयदमेयात्मा पार्थः शरशतैः कृपम्।
स शरैरर्दितः क्रुद्धः शितैरग्निशिखोपमैः॥ १५॥
तूर्णं दशसहस्रेण पार्थमप्रतिमौजसम्।
अर्दयित्वा महात्मानं ननर्द समरे कृपः॥ १६॥
ततः कनकपर्वाग्रैर्वीरः संनतपर्वभिः।
त्वरन् गाण्डीवनिर्मुक्तैरर्जुनस्तस्य वाजिनः॥ १७॥
चतुर्भिश्चतुरस्तीक्ष्णैरविध्यत् परमेषुभिः।
ते हया निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः॥ १८॥
उत्पेतुः सहसा सर्वे कृपः स्थानादथाच्यवत्।

तब अचिन्त्य आत्मा वाले अर्जुन ने असंख्य बाणों से कृपाचार्य को ढक दिया। अग्निशिखा के समान तीखे उन बाणों से पीड़ित होकर कृपाचार्य को बहुत क्रोध आया। तव उन्होंने अप्रतिम, तेजस्वी महात्मा अर्जुन को शीघ्रता से बहुत सारे दस अर्थात् दसियों बाणों के द्वारा पीड़ित कर उस युद्धक्षेत्र में गर्जना की। तब वीर अर्जुन ने झुकी हुई गाँठ और सुनहरे फलवाले गाण्डीव धनुष से छूटे हुए चार उत्तम तीक्ष्ण बाणों से उनके चारों घोड़ों को बींध दिया। विषाग्नि से जलते हुए साँपों के समान उन तीखे बाणों की मार खाकर वे घोड़े सहसा उछल पड़े, जिससे कृपाचार्य अपने स्थान से गिर पड़े।

च्युतं तु गौतमं स्थानात् समीक्ष्य कुरुनन्दनः॥ १९॥
नाविध्यत् परवीरघ्नो रक्षमाणोऽस्य गौरवम्।
स तु लब्ध्वा पुनः स्थानं गौतमः सव्यसाचिनम्॥ २०॥
विव्याध दशभिर्बाणैस्त्वरितः कङ्कपत्रिभिः।
ततः पार्थो धनुस्तस्य भल्लेन निशितेन ह॥ २१॥
चिच्छेदैकेन भूयश्च हस्तावापमथाहरत्।
अथास्य कवचं बाणैर्निशितैर्मर्मभेदिभिः॥ २२॥
व्यधमन्न च पार्थोऽस्य शरीरमवपीडयत्।

शत्रुओं के वीरों को मारने वाले कुरुनन्दन अर्जुन ने कृपाचार्य को गिरा हुआ देखकर उनके गौरव की रक्षा करते हुए उस समय उन पर प्रहार नहीं किया। किन्तु कृपाचार्य ने अपने स्थान पर बैठकर, तेजी से अर्जुन को दस कंकपत्र वाले बाणों से बींध दिया। तब अर्जुन ने तीखे भल्ल नामक बाण से उनके धनुष को काट दिया और फिर उनके हाथ के दस्ताने को नष्ट कर दिया। फिर उन्होंने तीखे मर्मभेदी बाणों के द्वारा उनके कवच को भी छिन्न भिन्न कर दिया, पर उनके शरीर को चोट नहीं पहुँचायी।

तस्य निर्मुच्यमानस्य कवचात् काय आबभौ॥ २३॥
समये मुच्यमानस्य सर्पस्येव तनुर्यथा।
छिन्ने धनुषि पार्थेन सोऽन्यदादाय कार्मुकम्॥ २४॥
चकार गौतमः सज्यं तदद्भुतमिवाभवत्।
स तदप्यस्य कौन्तेयश्चिच्छेद नतपर्वणा॥ २५॥
एवमन्यानि चापानि बहूनि कृतहस्तवत्।
शारद्वतस्य चिच्छेद पाण्डवः परवीरहा॥ २६॥

कवच से अलग हो जाने पर कृपाचार्य का शरीर इस प्रकार लग रहा था, जैसे कैंचुली का त्याग करने के बाद साँप का शरीर। धनुष के कट जाने पर कृपाचार्य ने दूसरे धनुष को लेकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ा ली। यह एक अद्भुत बात थी। शत्रुओं के वीरों को मार देने वाले कुन्तीपुत्र ने झुकी हुई गाँठ वाले बाण से कृपाचार्य के उस धनुष को भी काट दिया। इसी प्रकार उनके और दूसरे बहुत से धनुष भी उन्होंने सिद्धहस्त के समान छिन्न–भिन्न कर दिये।

सच्छिन्नधनुरादाय रथशक्तिं प्रतापवान्।
प्राहिणोत् पाण्डुपुत्राय प्रदीप्तामशनीमिव॥ २७॥
तामर्जुनस्तदाऽऽयान्तीं शक्तिं हेमविभूषिताम्।
वियद्गतां महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः॥ २८॥
युगपच्चैव भल्लैस्तु ततः सज्यधनुः कृपः।
तमाशु निशितैः पार्थं बिभेद दशभिः शरैः॥ २९॥
ततः पार्थो महातेजा विशिखानग्नितेजसः।
चिक्षेप समरे क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान्॥ ३०॥

तब उन प्रतापी कृपाचार्य ने धनुषों के कट जाने पर एक वज्र के समान प्रज्वलित रथशक्ति को लेकर उसे अर्जुन पर फैंका। उस स्वर्णविभूषित शक्ति को आकाश की जलती हुई उल्का के समान आता हुआ देखकर अर्जुन ने उसे दस बाणों से काट दिया। पर तभी कृपाचार्य ने धनुष तैयार कर जल्दी से दस तीखे भल्ल नाम के बाणों से अर्जुन को बींध दिया। महातेजस्वी अर्जुन ने क्रुद्ध होकर तब उस युद्ध में शिला पर घिसकर तेज किये गये, अग्नि के समान तेजस्वी तेरह बाणों को कृपाचार्य के ऊपर फेंका।

अथास्य युगमेकेन चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
षष्ठेन च शिरः कायाच्छरेण रथसारथेः॥ ३१॥
त्रिभिस्त्रिवेणुं समरे द्वाभ्यामक्षं महारथः।
द्वादशेन तु भल्लेन चकर्तास्य ध्वजं तदा॥ ३२॥
ततो वज्रनिकाशेन फाल्गुनः प्रहसन्निव।
त्रयोदशेनेन्द्रसमः कृपं वक्षस्यविध्यत॥ ३३॥
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गदापाणिरवप्लुत्य तूर्णं चिक्षेप तां गदाम्॥ ३४॥

उन्होंने एक बाण से उनके रथ के जूए को काटकर चार बाणों से उनके चारों घोड़े मार दिये। छठे बाण से उन्होंने हँसते हुए तीन बाणों से रथ के तीनों वेणु, दो बाणों से रथ का धुरा और बारहवें भल्ल से उन्होंने उनके रथ की ध्वजा काट गिरायी। फिर इन्द्र के समान पराक्रमी उन्होंने तेरहवें बाण से उनकी छाती को बींधा। धनुष के कट जाने पर रथ से रहित हो जाने पर, घोड़ों और सारथि के मरने पर उन्होंने गदा हाथ में लेकर शीघ्रता से उस गदा को अर्जुन पर फैंका।

सा च मुक्ता गदा गुर्वी कृपेण सुपरिष्कृता।
अर्जुनेन शरैर्नुन्ना प्रतिमार्गमथागमत्॥ ३५॥
तं तु योधा परीप्सन्तः शारद्वतममर्षणम्।
सर्वतः समरे पार्थं शरवर्षैरवाकिरन्॥ ३६॥
ततो विराटस्य सुतः सव्यमावृत्य वाजिनः।
यमकंमण्डलं कृत्वा तान् योधान् प्रत्यवारयत्॥ ३७॥
ततः कृपमुपादाय विरथं ते नरर्षभाः।
अपजह्रुर्महावेगा कुन्तीपुत्राद् धनंजयात्॥ ३८॥

अच्छी से परिष्कार की हुई और कृपाचार्य द्वारा छोड़ी हुई उस भारी गदा को अर्जुन ने बाणों से पीड़ित कर वापिस कर दिया। तब अमर्ष में भरे हुए उस कृपाचार्य को बचाने की इच्छा से कौरवपक्ष के योद्धा लोग उस युद्ध में अर्जुन पर सब तरफ से बाणों की वर्षा करने लगे। तब विराट के पुत्र उत्तरकुमार ने घोड़ों को बायीं तरफ घुमाते हुए घोड़ों

के संचालन की यमकमण्डल क्रिया को अपनाते हुए उन योद्धाओं की बाण वर्षा को निवारित कर दिया। फिर वे नरश्रेष्ठ योद्धा तेजी से रथहीन कृपाचार्य को उठा कर कुन्तीपुत्र अर्जुन से दूर ले गये।

चालीसवाँ अध्याय : अर्जुन का द्रोणाचार्य को हराना।

कृपेऽपनीते द्रोणस्तु प्रगृह्य सशरं धनुः।
अभ्यद्रवदनाधृष्यः शोणाश्वः श्वेतवाहनम्॥ १॥
ततः प्राध्मापयच्छङ्खं भेरीशतनिनादिनम्।
प्रचुक्षुभे बलं सर्वमुद्धूत इव सागरः॥ २॥
हर्षयुक्तस्ततः पार्थः प्रहसन्निव वीर्यवान्।
रथं रथेन द्रोणस्य समासाद्य महारथः॥ ३॥
अभिवाद्य महाबाहुः सामपूर्वमिदं वचः।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा कौन्तेयः परवीरहा॥ ४॥

कृपाचार्य के युद्धक्षेत्र से हटा दिये जाने पर, लाल घोड़ों वाले दुर्धर्ष द्रोणाचार्य ने धनुषबाण को उठा कर श्वेतघोड़ों वाले अर्जुन पर आक्रमण किया। उन्होंने असंख्य नगाड़ों की ध्वनि के समान शब्द करने वाले अपने शंख को बजाया, जिससे सारी सेना में ऐसी हलचल मच गयी, जैसे समुद्र में ज्वार आ गया हो। तब पराक्रमी शत्रुवीरों को मारने वाले, महारथी, महाबाहु कुन्तीपुत्र अर्जुन अपने रथ को द्रोणाचार्य के रथ से भिड़ाकर उन्हें प्रणाम कर शान्तिपूर्ण मधुर वाणी में हँसते हुए से हर्ष युक्त होकर यह बोले कि–

उषिताः स्मो वने वासं प्रतिकर्म चिकीर्षवः।
कोपं नार्हसि नः कर्तुं सदा समरदुर्जय॥ ५॥
अहं तु प्रहृते पूर्वं प्रहरिष्यामि तेऽनघ।
इति मे वर्तते बुद्धिस्तद् भवान् कर्तुमर्हति॥ ६॥
ततोऽस्मै प्राहिणोद् द्रोणः शरानधिकविंशतिम्।
अप्राप्तांश्चैव तान् पार्थश्चिच्छेद कृतहस्तवत्॥ ७॥
ततः शरसहस्रेण रथं पार्थस्य वीर्यवान्।
अवाकिरत् ततो द्रोणः शीघ्रमस्त्रं विदर्शयन्॥ ८॥

हे आचार्य! आप समर में दुर्जय हैं। हम वनों में कष्ट उठाते हुए रहे हैं और अब बदला लेने के लिये आये हैं। इसलिये आप हमारे ऊपर क्रोध न करें। हे निष्पाप! मेरा यही निश्चय है कि पहले आपके प्रहार करने पर ही मैं आप पर प्रहार करूँगा, इसलिये आप प्रहार कीजिये। तब द्रोणाचार्य ने अर्जुन पर इक्कीस बाण फैंके, किन्तु अपने समीप आने से पहले ही अर्जुन ने सिद्धहस्त के समान उन्हें काट दिया। तब पराक्रमी द्रोणाचार्य ने अपनी अस्त्र चलाने की फुर्ती दिखाते हुए अर्जुन के रथपर बहुत सारे बाणों की वर्षा की।

हयांश्च रजतप्रख्यान् कङ्कपत्रैः शिलाशितैः।
अवाकिरदमेयात्मा पार्थं संकोपयन्निव॥ ९॥
एवं प्रववृते युद्धं भारद्वाजकिरीटिनोः।
समं विमुञ्चतो संख्ये विशिखान् दीप्ततेजसः॥ १०॥
तावुभौ ख्यातकर्माणावुभौ वायुसमौ जवे।
उभौ दिव्यास्त्रविदुषावुभावुत्तमतेजसौ॥ ११॥
क्षिपन्तौ शरजालानि मोहयामासतुर्नृपान्।
व्यस्मयन्त ततो योधा ये तत्रासन् समागताः॥ १२॥
शरान् विसृजतोस्तूर्णं साधु साध्वित्यपूजयन्।

उन अचिन्त्य आत्मा ने अर्जुन को मानो क्रोध सा दिलाते हुए उसके चाँदी के समान घोड़ों पर शिलापर तेज किये हुए कंकपत्र युक्त बाणों से प्रहार किया। इस प्रकार उस युद्धक्षेत्र में एक साथ एक दूसरे पर तेजस्वी बाणों को छोड़ते हुए उन दोनों द्रोणाचार्य और अर्जुन में भयानक युद्ध होने लगा। वे दोनों ही अपने कार्यों के कारण प्रसिद्ध थे। दोनों ही वेग में वायु के समान थे। दोनों ही दिव्यास्त्रों के विद्वान् थे। दोनों उत्तम तेजस्वी थे। बाण समूहों की वर्षा करते हुए उन्होंने राजाओं को मोह में डाल दिया। वहाँ उपस्थित योद्धा लोग शीघ्रता से बाणों को छोड़ते हुए दोनों की साधु साधु कहकर प्रशंसा करने लगे।

द्रोणं हि समरे कोऽन्यो योद्धुमर्हति फाल्गुनात्॥ १३॥
रौद्रः क्षत्रियधर्मोऽयं गुरुणा यदयुध्यत।
इत्यब्रुवञ्जनास्तत्र संग्रामशिरसि स्थिताः॥ १४॥
वीरौ तावभिसंरब्धौ संनिकृष्टौ महाभुजौ।
छादयेतां शरव्रातैरन्योन्यमपराजितौ॥ १५॥
पार्थं च सुमहाबाहुर्महावेगैर्महारथः।
विव्याध निशितैर्बाणैर्मेघो वृष्ट्येव पर्वतम्॥ १६॥

वे कहने लगे कि सिवाय अर्जुन के द्रोणाचार्य से युद्ध कौन कर सकता है? यह क्षत्रिय धर्म बड़ा भयानक है, जो शिष्य को गुरु से युद्ध करना पड़

रहा है। युद्ध के मुहाने पर खड़े हुए लोग इस प्रकार बातें कर रहे थे। तब किसी से भी पराजित न होने वाले वे दोनों विशाल भुजाओं वाले वीर क्रोध में भरे हुए एक दूसरे के निकट आ गये और एक दूसरे को बाण समूहों से ढकने लगे। जैसे बादल पर्वत पर पानी की वर्षा करता है, वैसे ही विशाल भुजाओं वाले महारथी द्रोणाचार्य अत्यन्त वेगवाले, तीखे बाणों से अर्जुन को बींध रहे थे।

तथैव दिव्यं गाण्डीवं धनुरादाय पाण्डवः।
शत्रुघ्नं वेगवान् हृष्टो भारसाधनमुत्तमम्॥ १७॥
विससर्ज शरांश्चित्रान् सुवर्णविकृतान् बहून्।
नाशयन् शरवर्षाणि भारद्वाजस्य वीर्यवान्॥ १८॥
तूर्णं चापविनिर्मुक्तैस्तदद्भुतमिवाभवत्।
स रथेन चरन् पार्थः प्रेक्षणीयो धनंजयः॥ १९॥
युगपद् दिक्षु सर्वासु सर्वतोऽस्त्राण्यदर्शयत्।
नादृश्यत तदा द्रोणो नीहारेणेव संवृतः॥ २०॥

उसी प्रकार वेगवान् पाण्डुपुत्र प्रसन्नता के साथ शत्रुओं को नष्ट करने वाले अपने दिव्य गाण्डीव धनुष को, जो शत्रुओं के आक्रमण के बोझ को उठाने में समर्थ था, उठाकर बहुत से सुनहले और विचित्र बाणों को छोड़ रहे थे। उस पराक्रमी ने अपने धनुष से छोड़े हुए बाणों से द्रोणाचार्य की उस बाण वर्षा को शीघ्र ही नष्ट कर दिया। यह एक अद्भुत बात थी। अपने रथ के द्वारा उस समय अर्जुन विचरण करते हुए सबके लिये दर्शनीय हो रहे थे। उन्होंने एक साथ सारी दिशाओं से अस्त्रों की वर्षा करके दिखायी। उनकी बाणवर्षा से उस समय द्रोणाचार्य कोहरे से ढके हुए के समान दिखाई नहीं दे रहे थे।

तस्याभवत् तदा रूपं संवृतस्य शरोत्तमैः।
जाज्वल्यमानस्य तदा पर्वतस्येव सर्वतः॥ २१॥
दृष्ट्वा तु पार्थस्य रणे शरैः स्वरथमावृतम्।
स विस्फार्य धनुः श्रेष्ठं मेघस्तनितनिस्वनम्॥ २२॥
अग्निचक्रोपमं घोरं व्यकर्षत् परमायुधम्।
व्यशातयच्छरांस्तांस्तु द्रोणः समितिशोभनः॥ २३॥
महानभूत् ततः शब्दो वंशानामिव दह्यताम्।

अर्जुन के उन बाणों से ढके हुए द्रोणाचार्य उस समय ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे सब तरफ आग से घिरा हुआ कोई पर्वत हो। तब संग्राम भूमि में शोभित होने वाले द्रोणाचार्य ने युद्ध में अर्जुन के बाणों से अपने रथ को ढका हुआ देखकर अपने उत्तम आयुध, अग्निचक्र के समान भयानक तथा मेघ गर्जना के समान शब्द करने वाले श्रेष्ठ धनुष को खींचकर उससे छोड़े गये बाणों के द्वारा उन बाणों को छिन्न भिन्न कर दिया। उस समय जलते हुए बाँसों जैसा महान शब्द हो रहा था।

तौ गजाविव चासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम्॥ २४॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः।
तौ व्यवाहरतां युद्धे संरब्धौ रणशोभिनौ॥ २५॥
उदीरयन्तौ समरे दिव्यान्यस्त्राणि भागशः।
अथ त्वाचार्यमुख्येन शरान् सृष्टाञ्छिलाशितान्॥ २६॥
न्यवारयच्छितैर्बाणैरर्जुनो जयतां वरः।
दिव्यान्यस्त्राणि वर्षन्तं तस्मिन् वै तुमुले रणे॥ २७॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य फाल्गुनं समयोधयन्।

जैसे दो हाथी एक दूसरे से भिड़कर दाँतों की नोकों से परस्पर प्रहार करें वैसे ही पूरी तरह से धनुष को खींचकर छोड़े हुए बाणों के द्वारा वे दोनों एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। रण में सुशोभित होने वाले वे दोनों उस युद्ध भूमि में अलग अलग दिव्यास्त्रों का प्रयोग करते हुए, क्रुद्ध होकर युद्ध कर रहे थे। उसके पश्चात् आचार्यप्रवर द्रोण के शिला पर घिसे हुए छोड़े हुए बाणों को, विजयी वीरों में श्रेष्ठ अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से निवारित कर दिया। अपने दिव्यास्त्रों से अर्जुन के दिव्यास्त्रों का निवारण करते हुए आचार्य उस भयानक युद्ध में बाण वर्षा करते हुए अर्जुन को मानो युद्ध का खेल करवा रहे थे।

ऐन्द्रं वायव्यमाग्नेयमस्त्रमस्त्रेण पाण्डवः॥ २८॥
द्रोणेन मुक्तमात्रं तु ग्रसति स्म पुनः पुनः।
बाहुभिश्च सकेयूरैर्विचित्रैश्च महारथैः॥ २९॥
सुवर्णचित्रैः कवचैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः।
योधैश्च निहतैस्तत्र पार्थबाणप्रपीडितैः॥ ३०॥
बलमासीत् समुद्भ्रान्तं द्रोणार्जुनसमागमे।
अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः संनतपर्वभिः॥ ३१॥
व्यदारयेतामन्योन्यं प्राणद्यूते प्रवर्तिते।

अर्जुन द्रोणाचार्य के द्वारा छोड़े हुए ऐन्द्र, वायव्य और आग्नेय आदि अस्त्रों को बार बार अपने दिव्यास्त्रों से नष्ट कर देते थे। अर्जुन और द्रोणाचार्य के उस युद्ध में अर्जुन के द्वारा छोड़े हुए बाणों से पीड़ित होती हुई सेना उद्भ्रान्त हो

रही थी। कितने ही महारथियों की बाजूबन्दों से सुशोभित बाहें कट कर गिर पड़ीं थीं। किन्हीं के स्वर्णजटित कवच और ध्वजाएँ गिरी हुई थीं। कितने ही योद्धा वहाँ मर गये थे। वह युद्ध रूपी जूआ प्राणों की बाजी लगाकर खेला जा रहा था। दोनों ही पूरी तरह से धनुष को खींचकर छोड़े हुए झुकी हुई गाँठ वाले बाणों से एक दूसरे को घायल कर रहे थे।

अविभ्रमं च शिक्षां च लाघवं दूरपातिताम्॥ ३२॥
पार्थस्य समरे दृष्ट्वा द्रोणस्याभूच्च विस्मयः।
अथ गाण्डीवमुद्यम्य दिव्यं धनुरमर्षणः॥ ३३॥
विचकर्ष रणे पार्थो बाहुभ्यां भरतर्षभः।
तस्य बाणमयं वर्षं शलभानामिवायतिम॥ ३४॥
दृष्ट्वा ते विस्मिताः सर्वे साधु साध्वित्यपूजयन्।
अनिशं संदधानस्य शरानुत्सृजतस्तथा॥ ३५॥
ददर्श नान्तरं कश्चित् पार्थस्याददतोऽपि च।
तथा शीघ्रास्त्रयुद्धे तु वर्तमाने सुदारुणे॥ ३६॥
शीघ्रं शीघ्रतरं पार्थः शरानन्यानुदीरयत्।

आचार्य द्रोण को उस युद्ध में अर्जुन की कभी न चूकने वाली कुशलता, अस्त्रों की शिक्षा, हाथों की फुर्ती और बाणों को दूर तक फैंकने की शक्ति देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद अमर्षशील भरतश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र ने अपने दिव्य गाण्डीव धनुष को उठाकर दोनों हाथों से उसे खींचना आरम्भ कर दिया। तब उसकी टिड्डियों के झुण्ड के समान बाण वर्षा को देखकर सारे सैनिक विस्मित होकर साधु साधु कहते हुए उसका सत्कार करने लगे। इस प्रकार शीघ्रता से अस्त्रों को चलाने जाने वाले उस भयानक युद्ध में अर्जुन शीघ्र से शीघ्र और दूसरे दूसरे बाणों को प्रकट करे लगे।

ततो वृन्देन महता रथानां रथयूथपः॥ ३७॥
आचार्यपुत्रः सहसा पाण्डवं पर्यवारयत्।
स मन्युवशमापन्नः पार्थमभ्यद्रवद् रणे॥ ३८॥
किरञ्छरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान्।
आवृत्य तु महाबाहुर्यतो द्रौणिस्ततो हयान्॥ ३९॥
अन्तरं प्रददौ पार्थो द्रोणस्य व्यपसर्पितुम्।
स तु लब्ध्वान्तरं तूर्णमपायाज्जवनैर्हयैः।
छिन्नवर्मध्वजः शूरो निकृत्तः परमेषुभिः॥ ४०॥

तब रथियों के यूथपति द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने बहुत से रथों के समूहों के साथ सहसा आकर अर्जुन को घेर लिया। क्रोध में भरे हुए उसने वर्षा करते हुए बादल के समान बाणों की वर्षा करते हुए उस युद्धक्षेत्र में अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। तब उस महाबाहु अर्जुन ने अपने घोड़ों को उस तरफ घुमाकर, जिस तरफ अश्वत्थामा था, द्रोणाचार्य को वहाँ से हटने का अवसर दे दिया। उस अवसर को प्राप्त कर वे शूरवीर द्रोणाचार्य भी, जिनके कवच और ध्वज कट गये थे, और भयानक बाणों से जो घायल हो गए थे, वेगशाली घोड़ों से जल्दी ही वहाँ से चले गये।

इकतालीसवाँ अध्याय : अश्वत्थामा और अर्जुन का युद्ध।

तयोर्देवासुरसमः संनिपातो महानभूत्।
हयानस्यार्जुनः सर्वान् कृतवानल्पजीवितान्॥ १॥
ततो द्रौणिर्महावीर्यः पार्थस्य विचरिष्यतः।
विवरं सूक्ष्ममालोक्य ज्यां चिच्छेद क्षुरेण ह॥ २॥
द्रोणो भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्चैव महारथाः।
साधु साध्विति भाषन्तोऽपूजयन् कर्म तस्य तत्॥ ३॥
ततो द्रौणिर्धनुः श्रेष्ठमपकृष्य रथर्षभम्।
पुनरेवाहनत् पार्थं हृदये कङ्कपत्रिभिः॥ ४॥

तब अर्जुन और अश्वत्थामा में देवासुर संग्राम की तरह महान् युद्ध होने लगा। अर्जुन ने अश्वत्थामा के घोड़ों को मृतप्राय कर दिया। तब महापराक्रमी अश्वत्थामा ने विचरण करते हुए अर्जुन का छोटा सा दोष देखकर क्षुर नाम के बाण से उनकी धनुष की प्रत्यंचा काट दी। द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण और कृपाचार्य महारथियों ने साधु साधु कहते हुए अश्वत्थामा के उस कार्य की प्रशंसा की। तब अश्वत्थामा ने अपने श्रेष्ठ धनुष को खींचकर रथियों में श्रेष्ठ अर्जुन के हृदय पर कंकपत्र वाले बाण से प्रहार किया।

ततः पार्थो महाबाहुः प्रहस्य स्वनवत् तदा।
योजयामास नवया मौर्व्या गाण्डीवमोजसा॥ ५॥
ततोऽर्धचन्द्रमावृत्य तेन पार्थः समागमत्।
वारणेनेव मत्तेन मत्तो वारणयूथपः॥ ६॥
ततः प्रववृते युद्धं पृथिव्यामेकवीरयोः।
रणमध्ये द्वयोरेवं सुमहल्लोमहर्षणम्॥ ७॥

तौ वीरौ ददृशुः सर्वे कुरवो विस्मयान्विताः।
युध्यमानौ महावीर्यौ यूथपाविव संगतौ॥ ८॥

तब महाबाहु अर्जुन ने हँसी का ठहाका मारकर गाण्डीव धनुष पर नयी प्रत्यंचा लगा दी। फिर अपने धनुष को अर्धचन्द्र की आकृति का बनाते हुए वे अश्वत्थामा से उसी प्रकार भिड़ गये जैसे एक मस्त गजयूथपति दूसरे मस्त हाथी से लड़ रहा हो। इसके पश्चात् संसार के अद्वितीय उन दोनों वीरों में उस रणक्षेत्र में परस्पर ऐसा भयानक युद्ध हुआ, जो देखने वालों के रोंगटे खड़े कर देने वाला था। हाथियों के समान लड़ते हुए महापराक्रमी उन दोनों वीरों के युद्ध को सारे कौरव विस्मय से युक्त होकर देखने लगे।

तौ समाजघ्नतुर्वीरान्योन्यं पुरुषर्षभौ।
शरैराशीविषाकारैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः॥ ९॥
अश्वत्थाम्नः पुनर्बाणाः क्षिप्रमभ्यस्यतो रणे।
जग्मुः परिक्षयं तूर्णमभूत् तेनाधिकोऽर्जुनः॥ १०॥
ततः कर्णो महाचापं विकृष्याभ्यधिकं तदा।
अवाक्षिपत् ततः शब्दो हाहाकारो महानभूत्॥ ११॥
ततश्चक्षुर्दधे पार्थो यत्र विस्फार्यते धनुः।
ददर्श तत्र राधेयं तस्य कोपो व्यवर्धत॥ १२॥
उत्सृज्य च महाबाहुर्द्रोणपुत्रं धनंजयः।
अभिदुद्राव सहसा कर्णमेव सपत्नजित्॥ १३॥

वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर विषैले सर्पों के समान जगमगाते हुए बाणों से एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। किन्तु शीघ्रता से बाण चलाते हुए अश्वत्थामा के बाण जल्दी ही समाप्त हो गये और अर्जुन उससे अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुए। तभी कर्ण ने अपने विशाल धनुष को जोर से खींचकर उसे टंकार दी, जिससे वहाँ महान् कोलाहल होने लगा, तब अर्जुन ने जिस तरफ धनुष की टंकार हो रही थी, उस तरफ आँख उठाकर देखा और कर्ण को वहाँ देखकर उसका क्रोध अधिक बढ़ गया। तब महाबाहु और शत्रुजयी अर्जुन ने अश्वत्थामा को छोड़कर तुरन्त कर्ण पर ही आक्रमण किया।

बयालीसवाँ अध्याय : कर्ण, अर्जुन युद्ध। कर्ण का हारना।

अर्जुन उवाच

इदानीमेव तावत् त्वमपयातो रणान्मम।
तेन जीवसि राधेय निहतस्त्वनुजस्तव॥ १॥
भ्रातरं घातयित्वा कस्त्यक्त्वा रणशिरश्च कः।
त्वदन्यः कः पुमान् सत्सु ब्रूयादेवं व्यवस्थितः॥ २॥
इति कर्णं ब्रुवन्नेव बीभत्सुरपराजितः।
अभ्ययाद् विसृजन् बाणान् कायावरणभेदिनः॥ ३॥
प्रतिजग्राह तं कर्णः प्रीयमाणो महारथः।
महता शरवर्षेण वर्षमाणमिवाम्बुदम्॥ ४॥

तब अर्जुन ने कहा कि अरे राधापुत्र! अभी तो तू मुझसे लड़ते हुए पीठ दिखाकर भागा था और इसलिये तू बच गया है, जब कि तेरा छोटा भाई मारा गया है। अपने भाई को मरवा कर, स्वयं युद्ध के मुहाने से भागकर तेरे सिवाय कौन पुरुष सज्जन लोगों के बीच में ऐसी डींग मार सकता है? कर्ण से ऐसा कहते हुए, किसी से पराजित न होने वाले अर्जुन ने शरीर और कवच को भेदने वाले बाणों को छोड़ते हुए कर्ण पर आक्रमण कर दिया। महारथी कर्ण ने भी प्रसन्नता के साथ वर्षा करते हुए बादल के समान भयानक बाण वर्षा के द्वारा अर्जुन को रोका।

उत्पेतुः शरजालानि घोररूपाणि सर्वशः।
अविध्यदश्वान् बाह्वोश्च हस्तावापंपृथक् पृथक्॥ ५॥
सोऽमृष्यमाणः कर्णस्य निषङ्गस्यावलम्बनम्।
चिच्छेद निशिताग्रेण शरेण नतपर्वणा॥ ६॥
उपासङ्गादुपादाय कर्णो बाणानथापरान्।
विव्याध पाण्डवं हस्ते तस्य मुष्टिरशीर्यत॥ ७॥
ततः पार्थो महाबाहुः कर्णस्य धनुरच्छिनत्।
स शक्तिं प्राहिणोत् तस्मै तां पार्थो व्यधमच्छरैः॥ ८॥

फिर सब तरफ भयंकर बाणों के समूह उड़ने लगे। अमर्षशील अर्जुन ने झुकी गाँठ वाले तीखे बाणों से कर्ण के घोड़ों को, दोनों हाथों को, हाथों के अलग अलग दस्तानों को और तरकस लटकाने की रस्सी को काट दिया। तब कर्ण ने दूसरे समीपवर्ती तरकस से बाण लेकर अर्जुन के हाथ में चोट पहुँचाई। जिससे उसकी मुट्ठी ढीली पड़ गयी। तब महाबाहु अर्जुन ने कर्ण के धनुष को काट दिया। तब कर्ण ने उसके ऊपर शक्ति चलाई, पर अर्जुन ने उसे बाणों से नष्ट कर दिया।

ततोऽस्याश्वाञ्छरैस्तीक्ष्णैर्बीभत्सु र्भारसाधनैः।
आकर्णमुक्तैरवधीत् ते हताः प्रापतन् भुवि॥ ९॥

अथापरेण बाणेन ज्वलितेन महौजसा।
विव्याध कर्णं कौन्तेयस्तीक्ष्णेनोरसि वीर्यवान्॥ १०॥
तस्य भित्त्वा तनुत्राणं कायमभ्यगमच्छरः।
ततः स तमसाऽऽविष्टोन स्म किंचित् प्रजज्ञिवान्॥ ११॥
स गाढवेदनो हित्वा रणं प्रायादुङ्मुखः।
ततोऽर्जुन उदक्रोशदुत्तरश्च महारथः॥ १२॥

तब अर्जुन ने युद्ध की प्रचण्डता को सहन करने में समर्थ तथा धनुष को कान तक खींचकर छोड़े गये तीक्ष्ण बाणों से कर्ण के घोड़ों को मार दिया। वे मरकर भूमि पर गिर पड़े। फिर पराक्रमी अर्जुन ने दूसरे महातेजस्वी, मानो प्रज्वलित होते हुए तीखे बाण से कर्ण की छाती में प्रहार किया। वह बाण उसके कवच को भेद कर उसके शरीर में घुस गया। तब कर्ण को मूर्च्छा आ गयी और उसे किसी भी बात का ज्ञान न रहा। अत्यन्त पीड़ा से बेचैन होकर वह रणभूमि को छोड़कर उत्तर की तरफ भाग गया। तब महारथी अर्जुन और उत्तर कुमार जोर से सिंह नाद करने लगे।

तेतालीसवाँ अध्याय : अर्जुन से दुश्शासन आदि की पराजय।

ततो वैकर्तनं जित्वा पार्थो वैराटिमब्रवीत्।
एतन्मां प्रापयानीकं यत्र तालो हिरण्मयः॥ १॥
अत्र शान्तनवो भीष्मो रथेऽस्माकं पितामहः।
काङ्क्षमाणो मया युद्धं तिष्ठत्यमरदर्शनः॥ २॥
अब्रवीदुत्तरः पार्थमपविद्धः शरैर्भृशम्।
नाहं शक्ष्यामि वीरेह नियन्तुं ते हयोत्तमान्॥ ३॥
विषीदन्ति मम प्राणा मनो विह्वलतीव मे।
अस्त्राणामिव दिव्यानां प्रभावः सम्प्रयुज्यताम्॥ ४॥
त्वया च कुरुभिश्चैव द्रवन्तीव दिशो दश।

फिर कर्ण को जीतकर अर्जुन ने विराटपुत्र से कहा कि मुझे उस सेना की तरफ ले चलो जहाँ ध्वजा पर सुनहरा ताड़ का वृक्ष अंकित है। वहाँ रथ में हमारे पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म मुझसे युद्ध करने की इच्छा से विद्यमान हैं। उनका दर्शन देवताओं के दर्शन के समान है। तब बाणों से बहुत घायल हुआ उत्तरकुमार अर्जुन से बोला कि हे वीर। मैं अब यहाँ आपके घोड़ों का नियन्त्रण नहीं कर सकता। मेरे प्राण बड़ी व्यथा में हैं और मन व्याकुल हो रहा है। आपके और कौरवों के द्वारा प्रयोग किये गये दिव्यास्त्रों के प्रभाव से मुझे सारी दिशाएँ भागती हुई प्रतीत हो रही हैं।

गन्धेन मूर्च्छितश्चाहं वसारुधिरमेदसाम्॥ ५॥
गदापातेन महता शङ्खानां निस्वनेन च।
सिंहनादैश्च शूराणां गजानां बृंहितैस्तथा॥ ६॥
गाण्डीवशब्देन भृशमशनिप्रतिमेन च।
श्रुति स्मृतिश्च मे वीर प्रणष्टा मूढचेतसः॥ ७॥
अवसीदन्ति मे प्राणा भूरियं चलतीव च।
न च प्रतोदं रश्मींश्च संयन्तुं शक्तिरस्ति मे॥ ८॥

वसा, रुधिर और मेद की दुर्गन्ध से मैं मूर्च्छित सा हो रहा हूँ। गदाओं के भारी आघात, शंखों के महान घोष, शूरवीरों के सिंहनाद, हाथियों की चिंघाड़ और भयानक विद्युत्पात के समान गाण्डीव की टंकार के शब्द से हे वीर! मेरे कान बहरे हो रहे हैं, स्मृति नष्ट हो रही है और चित्त मोहित हो रहा है। मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं, भूमि चलती हुई सी दिखाई दे रही है। मुझमें चाबुक और लगाम को पकड़ने की शक्ति नहीं बची है।

अर्जुन उवाच

मा भैषीः स्तम्भयात्मानं त्वयापि नरपुङ्गव।
अत्यद्भुतानि कर्माणि कृतानि रणमूर्धनि॥ ९॥
राजपुत्रोऽसि भद्रं ते कुले मत्स्यस्य विश्रुते।
जातस्त्वं शत्रुदमने नावसीदितुमर्हसि॥ १०॥
धृतिं कृत्वा सुविपुलां राजपुत्र रथे मम।
युध्यमानस्य समरे हयान् संयच्छ शत्रुहन्॥ ११॥
एवमाश्वासितस्तेन वैराटिः सव्यसाचिना।
व्यवागाहद् रथानीकं भीमं भीष्माभिरक्षितम्॥ १२॥

तब अर्जुन ने उससे कहा कि हे नरश्रेष्ठ! डरो मत। अपने आपको वश में रखो। तुमने भी पहले युद्ध के मुहाने पर बड़े अद्भुत कार्य किये हैं। तुम्हारा कल्याण हो। तुम राजपुत्र हो। तुमने मत्स्यराज के प्रसिद्ध कुल में जो शत्रुओं को दमन करने वाला है, जन्म लिया है। तुम्हें इस समय शिथिल नहीं होना चाहिये। हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले राजपुत्र! इसलिये तुम महान् धैर्य को धारण कर, इस रणक्षेत्र में मेरे युद्ध करते हुए, मेरे घोड़ों को नियन्त्रण में रखो। अर्जुन के द्वारा इस प्रकार ढाढस बँधाने पर

विराटपुत्र ने भीष्म के द्वारा सुरक्षित भयानक रथियों की सेना में प्रवेश किया।

तं चित्रमाल्याभरणाः कृतविद्या मनस्विनः।
आगच्छन् भीमधन्वानं चत्वारश्च महाबलाः॥ १३॥
दुःशासनो विकर्णश्च दुःसहोऽथ विविंशतिः।
आगत्य भीमधन्वानं बीभत्सुं पर्यवारयन्॥ १४॥
दुःशासनस्तु भल्लेन विद्ध्वा वैराटमुत्तरम्।
द्वितीयेनार्जुनं वीरः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे॥ १५॥
तस्य जिष्णुरुपावृत्य पृथुधारेण कार्मुकम्।
चकर्त गार्ध्रपत्रेण जातरूपपरिष्कृतम्॥ १६॥

तभी वहाँ विचित्र मालाओं और आभूषणों से विभूषित, अस्त्रविद्या में निपुण, महाबली मनस्वी दुश्शासन, विकर्ण, दुःसह और विविंशति ये चार वीर आ पहुँचे और आकर उन्होंने भयानक धनुष वाले अर्जुन को घेर लिया। वीर दुश्शासन ने एक भल्ल नाम के बाण से उत्तरकुमार को घायल कर दूसरे से अर्जुन की छाती बींध दी। तब अर्जुन ने उसकी तरफ घूमकर गिद्ध पंख से युक्त मोटी धार वाले बाण से उसके स्वर्ण जटित धनुष को काट दिया।

अथैनं पञ्चभिः पश्चात् प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे।
सोऽपयातो रणं हित्वा पार्थबाणप्रपीडितः॥ १७॥
तं, विकर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्गृध्रपत्रैरजिह्मगैः।
विव्याध परवीरघ्नमर्जुनं धृतराष्ट्रजः॥ १८॥
ततस्तमपि कौन्तेयः शरेणानतपर्वणा।
ललाटेऽभ्यहनत् तूर्णं स विद्धः प्रापतद् रथात्॥ १९॥
ततः पार्थमभिद्रुत्य दुःसहः सविविंशतिः।
अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णैः परीप्सुर्भ्रातरं रणे॥ २०॥

उसके पश्चात् उन्होंने उसकी छाती में पाँच बाण मारे। अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर दुश्शासन युद्ध को छोड़कर भाग गया। तब धृतराष्ट्र के पुत्र विकर्ण ने सीधे जाने वाले, गिद्धपंख से युक्त तीखे बाणों से शत्रुओं के वीरों को मारने वाले अर्जुन को बींध दिया। तब कुन्तीपुत्र ने झुकी हुई गाँठ वाले बाण से उसे भी शीघ्रता से ललाट में बींध दिया। जिससे वह रथ से नीचे गिर पड़ा। तब दुःसह और विविंशति ने युद्ध में भाई को बचाने की इच्छा से अर्जुन की तरफ दौड़कर उसपर तीखे बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

तावुभौ गार्ध्रपत्राभ्यां निशिताभ्यां धनंजयः।
विद्ध्वा युगपदव्यग्रस्तयोर्वाहानसूदयत्॥ २१॥
तौ हताश्चौ विभिन्नाङ्गौ धृतराष्ट्रात्मजावुभौ।
अभिपत्य रथैरन्यैरपनीतौ पदानुगैः॥ २२॥

उन दोनों को अर्जुन ने बिना किसी बेचैनी के गिद्ध पंख वाले दो तीखे बाणों से बींध कर एक साथ ही दोनों के घोड़ों को मार दिया। तब उनके सेवकों ने आकर उन दोनों धृतराष्ट्रपुत्रों को, जिनके घोड़े मारे गये थे और शरीर बिंध गये थे, दूसरे रथ में डाला और वहाँ से दूर ले गये।

चवालीसवाँ अध्याय : अर्जुन, भीष्म युद्ध। भीष्म की मूर्च्छा।

ततः शान्तनवो भीष्मो भरतानां पितामहः।
वध्यमानेषु योधेषु धनंजयमुपाद्रवत्॥ १॥
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि।
शुशुभे स नरव्याघ्रो गिरिः सूर्योदये यथा॥ २॥
प्रध्माय शङ्खं गाङ्गेयो धार्तराष्ट्रान् प्रहर्षयन्।
प्रदक्षिणमुपावृत्य बीभत्सुं समवारयत्॥ ३॥
तमुदीक्ष्य समायान्तं कौन्तेयः परवीरहा।
प्रत्यगृह्णात् प्रहृष्टात्मा धाराधरमिवाचलः॥ ४॥

तब भरतवंश के पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म अपने पक्ष के योद्धाओं को मारा जाता हुआ देखकर अर्जुन की तरफ दौड़े। उनके सिर पर श्वेत छत्र तना हुआ था। उससे वे नरश्रेष्ठ सूर्योदय के समय पर्वत के समान सुशोभित हो रहे थे। गंगापुत्र भीष्म ने धृतराष्ट्र पुत्रों को हर्षित करते हुए अपने शंख को बजाकर, दाँयी तरफ घूमकर अर्जुन को आगे बढ़ने से रोका। शत्रुवीरों को मारने वाले कुन्तीपुत्र ने उन्हें आते देखकर प्रसन्न होकर उनका ऐसे सामना किया जैसे पर्वत वर्षा की धाराओं का सामना करता है।

ततो भीष्मः शरानष्टौ ध्वजे पार्थस्य वीर्यवान्।
समार्पयन्महावेगाञ्छ्वसमानानिवोरगान्॥ ५॥
ततो भल्लेन महता पृथुधारेण पाण्डवः।
छत्रं चिच्छेद भीष्मस्य तूर्णं तदपतद् भुवि॥ ६॥
ध्वजं चैवास्य कौन्तेयः शरैरभ्यहनद् भृशम्।
शीघ्रकृद् रथवाहांश्च तथोभौ पार्ष्णिसारथी॥ ७॥
अमृष्यमाणस्तद् भीष्मो जानन्नपि स पाण्डवम्।
दिव्येनास्त्रेण महता धनंजयमवाकिरत्॥ ८॥

तब पराक्रमी भीष्म ने अर्जुन की ध्वजा पर महान् वेगवान् फुँकारते हुए साँपों के समान आठ बाणों से प्रहार किया। फिर अर्जुन ने मोटी धार वाले महान् भल्ल नाम के बाण के द्वारा भीष्म के छत्र को शीघ्रता से काटकर भूमि पर गिरा दिया। कुन्तीपुत्र ने उनके ध्वज को भी अपने बाणों से अत्यन्त छेद दिया और शीघ्रता करते हुए उनके रथ के घोड़ों और दोनों पार्श्व रक्षक तथा सारथि को घायल कर दिया। तब यह सब सहन न करते हुए, यह जानते हुए भी यह पाण्डुपुत्र है, वे अर्जुन पर महान् दिव्यास्त्र छोड़ने लगे।

तथैव पाण्डवो भीष्मे दिव्यमस्त्रमुदीरयन्।
प्रत्यगृह्णादमेयात्मा महामेघमिवाचलः॥ ९॥
तयोस्तदभवद् युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
भीष्मस्य सह पार्थेन बलिवासवयोरिव॥ १०॥
प्रैक्षन्त कुरवः सर्वे योधाश्च सहसैनिकाः।
भल्लैर्भल्लाः समागम्य भीष्मपाण्डवयोर्युधि॥ ११॥
अन्तरिक्षे व्यराजन्त खद्योताः प्रावृषीव हि।
ततः संछादयामास भीष्मं शरशतैः शितैः॥ १२॥
पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः।

असीम आत्मबल वाले अर्जुन भी उसी प्रकार दिव्यास्त्रों का प्रयोग करते हुए, जैसे पर्वत महान् मेघ का सामना करता है, वैसे ही भीष्म पितामह का सामना करने लगे। फिर उसके पश्चात् भीष्म का अर्जुन के साथ इन्द्र और बलि के समान युद्ध होने लगा। तब सारे कौरव और योद्धा लोग सैनिकों के साथ उस युद्ध को देखने लगे। उस समय भीष्म और पाण्डुपुत्र के द्वारा छोड़े गये भल्ल बाण एक दूसरे से टकरा कर ऐसे चमकते थे, जैसे वर्षाऋतु में आकाश में जुगनू चमकते हैं। फिर अर्जुन ने भीष्म को अपने तीखे बाणों से उसी प्रकार ढक दिया जैसे बादल वर्षा की धाराओं से पर्वत को ढक देता है।

तां स वेलामिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम्॥ १३॥
व्यधमत् सायकैर्भीष्मः पाण्डवं समवारयत्।
ततः कनकपुङ्खानां शरवृष्टिं समुत्थिताम्॥ १४॥
पाण्डवस्य रथात् तूर्णं शलभानामिवायतिम्।
व्यधमत् तां पुनस्तस्य भीष्मः शरशतैः शितैः॥ १५॥
ततस्ते कुरवः सर्वे साधु साध्विति चाब्रुवन्।
दुष्करं कृतवान् भीष्मो यदर्जुनमयोधयत्॥ १६॥

समुद्र में उमड़ते हुए ज्वार के समान उमड़ती हुई उस बाणवर्षा को भीष्म ने अपने बाणों से शान्त कर अर्जुन के आक्रमण को निरस्त कर दिया। उसके पश्चात् अर्जुन के रथ से फिर शीघ्र ही सुनहले पंख वाले बाणों की टिड्डी दल के समान वर्षा आरम्भ हुई, पर भीष्म ने अपने तीखे बाणों से उसे पुनः शान्त कर दिया। तब सारे कौरव साधु साधु कहते हुए भीष्म की प्रशंसा करने लगे कि इन्होंने यह दुष्कर कार्य किया है, जो अर्जुन से युद्ध किया है।

बलवांस्तरुणो दक्षः क्षिप्रकारी धनंजयः।
कोऽन्यः समर्थः पार्थस्य वेगं धारयितुं रणे॥ १७॥
ऋते शान्तनवाद् भीष्मात् कृष्णाद् वा देवकीसुतात्।
आचार्यप्रवराद् वापि भारद्वाजान्महाबलात्॥ १८॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य क्रीडन्तौ भरतर्षभौ।
चक्षूंषि सर्वभूतानां मोहयन्तौ महाबलौ॥ १९॥
प्राजापत्यं तथैवैन्द्रमाग्नेयं रौद्रदारुणम्।
कौबेरं वारुणं चैव याम्यं वायव्यमेव च॥ २०॥
प्रयुञ्जानौ महात्मानौ समरे तौ विचेरतुः।

अर्जुन बलवान् हैं, जवान कुशल और शीघ्रता से कार्य करने वाले हैं। युद्ध में इनके वेग को धारण करने में सिवाय शान्तनुपुत्र भीष्म के, देवकीपुत्र श्रीकृष्ण के या महाबली भरद्वाजपुत्र आचार्यश्रेष्ठ द्रोणाचार्य के और कौन समर्थ हो सकता है? वे दोनों महाबलशाली भरतश्रेष्ठ अपने अस्त्रों से दूसरे के अस्त्रों का निवारण करते हुए और सारे लोगों की आँखों को मोह में डालते हुए खेल सा कर रहे थे। वे दोनों महापुरुष प्राजापत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, भयानक रौद्र, कौबेर, वरुण, याम्य और वायव्य अस्त्रों का प्रयोग करते हुए युद्ध क्षेत्र में विचर रहे थे।

एवं सर्वास्त्रविदुषोरस्त्रयुद्धमवर्तत॥ २१॥
अस्त्रयुद्धे तु निर्वृत्ते शरयुद्धमवर्तत।
अथ जिष्णुरुपावृत्य क्षुरधारेण कार्मुकम्॥ २२॥
चकर्त भीष्मस्य तदा जातरूपपरिष्कृतम्।
निमेषान्तरमात्रेण भीष्मोऽन्यत् कार्मुकं रणे॥ २३॥
समादाय महाबाहुः सज्यं चक्रे महारथः।
शरांश्च सुबहून् क्रुद्धो मुमोचाशु धनंजये॥ २४॥

इस प्रकार सारे दिव्यास्त्रों को जानने वाले उन दोनों में दिव्यास्त्र युद्ध चलता रहा। दिव्यास्त्र युद्ध के पश्चात् पुनः बाणयुद्ध आरम्भ हो गया। फिर

अर्जुन ने भीष्म के समीप आकर क्षुर नाम के बाण से उनके स्वर्ण विभूषित धनुष को काट दिया। भीष्म ने तब पलक मारते ही दूसरे धनुष को उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ा ली और फिर उन्होंने क्रुद्ध होकर अर्जुन पर बहुत सारे बाणों को छोड़ा।

अर्जुनोऽपि शरांस्तीक्ष्णान् भीष्माय निशितान् बहून्।
चिक्षेप सुमहातेजास्तथा भीष्मश्च पाण्डवे॥ २५॥
ततः शान्तनवो भीष्मो वामं पार्श्वमताडयत्।
पश्यतः प्रतिसंधाय विध्यतः सव्यसाचिनः॥ २६॥
ततः प्रहस्य बीभत्सुः पृथुधारेण कार्मुकम्।
चिच्छेद गार्ध्रपत्रेण भीष्मस्यादित्यतेजसः॥ २७॥
अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे।
यतमानं पराक्रान्तं कुन्तीपुत्रो धनंजयः॥ २८॥

तब महातेजस्वी अर्जुन ने भी भीष्म पर बहुत सारे तीखे बाण फैंके और वैसे ही भीष्म ने भी अर्जुन के ऊपर चलाये। तब शत्रुसेना को बींधने वाले अर्जुन के देखते हुए शान्तनुपुत्र भीष्म ने बाण सन्धान कर उनकी बायीं तरफ आघात किया। तब अर्जुन ने हँसकर गिद्धपंख और मोटी धार वाले बाण से सूर्य के समान तेजस्वी भीष्म का धनुष काट दिया। फिर कुन्तीपुत्र धनंजय ने पराक्रम के लिये यत्न करते हुए उनकी छाती में दस बाणों से चोट पहुँचाई।

स पीडितो महाबाहुर्गृहीत्वा रथकूबरम्।
गाङ्गेयो युद्धदुर्धर्षस्तस्थौ दीर्घमिवान्तरम्॥ २९॥
तं विसंज्ञमपोवाह संयन्ता रथवाजिनाम्।
उपदेशमनुस्मृत्य रक्षमाणो महारथम्॥ ३०॥

युद्ध में दुर्धर्ष, विशाल बाहों वाले गंगापुत्र भीष्म उन बाणों से पीड़ित होकर रथ का कूबर पकड़ कर देर तक निश्चेष्ट बैठे रहे। तब मूर्च्छित अवस्था में विद्यमान उन महारथी को उनका सारथि अपने कर्तव्य को स्मरण करता हुआ, वहाँ से दूर हटा कर ले गया।

पैंतालीसवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा सब की पराजय। कौरवों का जाना।

भीष्मे तु संग्रामशिरो विहाय
पलायमाने धृतराष्ट्रपुत्रः।
उत्सृत्य केतुं विनदन् महात्मा
धनुर्विगृह्यार्जुनमाससाद ॥ १॥
स भीमधन्वानमुदग्रवीर्यं
धनंजयं शत्रुगणे चरन्तम्।
आकर्णपूर्णायत- चोदितेन
विव्याध भल्लेन ललाटमध्ये॥ २॥

भीष्म के युद्ध का मुहाना छोड़कर दूर हट जाने पर धृतराष्ट्रपुत्र मनस्वी दुर्योधन झण्डा लहराता और गर्जना करता हुआ धनुष लेकर अर्जुन के ऊपर चढ़ आया। उसने शत्रुओं के मध्य में विचरण करते हुए, भयानक धनुष वाले प्रचण्ड पराक्रमी अर्जुन के कान तक खींचे हुए धनुष द्वारा प्रेरित भल्ल बाण से ललाट में प्रहार किया।

दुर्योधनश्चापि तमुग्रतेजाः
पार्थश्च दुर्योधनमेकवीरः।
अन्योन्यमाजौ पुरुषप्रवीरौ
समौ समाजग्मतुराजमीढौ॥ ३॥
ततः प्रभिन्नेन महागजेन
महीधराभेन पुनर्विकर्णः।
रथैश्चतुर्भिर्ग जपादरक्षैः
कुन्तीसुतं जिष्णुमथाभ्यधावत्॥ ४॥

तब उग्र तेजस्वी दुर्योधन और अद्वितीय वीर अर्जुन, अजमीढ वंश के दोनों समान पुरुषप्रवीरों ने एक दूसरे पर आक्रमण किया। तब विकर्ण पर्वत के समान महाकाय, मद बहाते हुए हाथी पर चढ़कर चार रक्षक रथियों के साथ पुनः अर्जुन पर आक्रमण करने के लिये आया।

तमापतन्तं त्वरितं गजेन्द्रं
धनंजयः कुम्भविभागमध्ये।
आकर्णपूर्णेन महायसेन
बाणेन विव्याध महाजवेन॥ ५॥
शरप्रतप्तः स तु नागराजः
प्रवेपिताङ्गो व्यथितान्तरात्मा।
संसीदमानो निपपात मह्यां
वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य॥ ६॥
निपातिते दन्तिवरे पृथिव्यां
त्रासाद् विकर्णः सहसावतीर्य।
तूर्णं पदान्यष्टशतानि गत्वा
विविंशतेः स्यन्दनमारुरोह॥ ७॥

उस हाथी को तेजी से अपनी तरफ आते हुए देखकर अर्जुन ने लोहे के एक विशाल बाण को, धनुष को कान तक खींचकर बड़े वेग से छोड़ा और उससे हाथी के कुम्भ स्थल को बीच में से बींध दिया। उस बाण की मार से संतप्त हुआ वह गजराज व्यथित आत्मा और काँपते हुए शरीर के साथ शिथिल होकर भूमि पर ऐसे गिर पड़ा, जैसे विद्युत् के प्रहार से पर्वत का शिखर गिर पड़ता है। उस उत्तम हाथी के पृथिवी पर गिरने पर विकर्ण तुरन्त कूदकर भयभीत होकर भागा और आठ सौ कदम पर जाकर विविंशति के रथ पर चढ़ गया।

निहत्य नागं तु शरेण तेन
वज्रोपमेनाद्रिव- राम्बुदाभम्।
तथाविधेनैव शरेण पार्थो
दुर्योधनं वक्षसि निर्बिभेद॥ ८॥
ततो गजे राजनि चैव भिन्ने
भग्ने विकर्णे च सपादरक्षे।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैः प्रणुन्ना-
स्ते योधमुख्याः सहसापजग्मुः॥ ९॥

वज्र के समान उस बाण से पर्वत और बादल के समान विशाल हाथी को मारकर उसी प्रकार दूसरे बाण से अर्जुन ने दुर्योधन की छाती पर प्रहार किया। तब गजराज और कुरुराज दोनों के घायल होने, रक्षकों सहित विकर्ण के भाग जाने पर गाण्डीव धनुष से छोड़े हुए बाणों से पीड़ित हो मुख्य मुख्य योद्धा तुरन्त वहाँ से भागने लगे।

दृष्ट्वैव पार्थेन हतं च नागं
योधांश्च सर्वान् द्रवतो निशम्य।
रथं समावृत्य कुरुप्रवीरो
रणात् प्रदुद्राव यतो न पार्थः॥ १०॥
तं भीमरूपं त्वरितं द्रवन्तं
दुर्योधनं शत्रुसहोऽभिषङ्गात्।
प्रास्फोटयद् योद्धुमनाः किरीटी
बाणेन विद्धं रुधिरं वमन्तम्॥ ११॥

अर्जुन के द्वारा हाथी को मारा हुआ और योद्धाओं को युद्धभूमि से भागता हुआ देखकर, वह कुरुवंश का मुख्य वीर दुर्योधन अपने रथ को घुमाकर अर्जुन से उलटी दिशा की तरफ भागने लगा। बाण से घायल दुर्योधन को भयानक अवस्था में खून की उलटी करते हुए और तेजी से भागते हुए देखकर शत्रु के वेग को सहन करने वाले और युद्ध के इच्छुक अर्जुन ने ताल ठोकते हुए उसे ललकारा और कहा कि–

अर्जुन उवाच- **विहाय कीर्तिं विपुलं यशश्च**
युद्धात् परावृत्य पलायसे किम्।
न तेऽद्य तूर्याणि समाहतानि
तथैव राज्यादवरोपितस्य॥ १२॥
युधिष्ठिरस्यास्मि निदेशकारी
पार्थस्तृतीयो युधि संस्थितोऽस्मि।
तदर्थमावृत्य मुखं प्रयच्छ
नरेन्द्रवृत्तं स्मर धार्तराष्ट्र॥ १३॥

अरे धृतराष्ट्र के पुत्र! राजाओं के आचरण को याद कर। अपनी कीर्ति और विशाल यश को छोड़कर तू युद्ध क्षेत्र से पीठ दिखाकर क्यों भागा जा रहा है? आज तेरे विजय के बाजे नहीं बज रहे हैं। राज्यगद्दी से उतारे हुए युधिष्ठिर की आज्ञा मानने वाला मैं तीसरा कुन्तीपुत्र रणक्षेत्र में खड़ा हूँ। तू मेरा सामना करने के लिये लौटकर अपना मुख तो दिखा।

मोघं तवेदं भुवि नामधेयं
दुर्योधनेतीह कृतं पुरस्तात्।
न हीह दुर्योधनता तवास्ति
पलायमानस्य रणं विहाय॥ १४॥
न ते पुरस्तादथ पृष्ठतो वा
पश्यामि दुर्योधन रक्षितारम्।
अपेहि युद्धात् पुरुषप्रवीर
प्राणान् प्रियान् पाण्डवतोऽद्य रक्ष॥ १५॥

इस दुनिया में पहले तेरा नाम दुर्योधन व्यर्थ ही रखा गया। अब युद्ध छोड़कर भागते हुए तुझमें दुर्योधन का गुण कहाँ है? अरे दुर्योधन! तेरे आगे पीछे तेरा कोई रक्षक मुझे दिखाई नहीं दे रहा है। इसलिये हे वीर पुरुष! लड़ाई से भागजा और अपने प्यारे प्राणों की आज अर्जुन से रक्षा कर ले।

आहूयमानश्च स तेन संख्ये
महात्मना वै धृतराष्ट्रपुत्रः।
निवर्तितस्तस्य गिराङ्कुशेन
महागजो मत्त इवाङ्कुशेन॥ १६॥
तं प्रेक्ष्य कर्णः परिवर्तमानं

निवर्त्य संस्तभ्य च विद्धगात्रम्।
दुर्योधनस्योत्तर- तोऽभ्यगच्छत्
पार्थं नृवीरो युधि हेममाली॥ १७॥

उस महात्मा अर्जुन के द्वारा जब इस प्रकार ललकारा गया, तब वह धृतराष्ट्र का पुत्र अंकुश की चोट से व्याकुल मस्त विशाल हाथी के समान वाक्य रूपी अंकुश से पीड़ित होकर वापिस लौट आया। उसे लौटता हुआ देखकर कर्ण भी अपने घायल शरीर को किसी तरह सम्भाल कर, स्वर्ण माला धारण किये हुए लौटा और दुर्योधन के बायीं तरफ रह कर अर्जुन का सामना करने के लिये चला।

भीष्मस्ततः शन्तनवो विवृत्य
हिरण्यकक्षस्त्वर- याभिषड्गी।
दुर्योधनं पश्चिमतोऽभ्यरक्षत्
पार्थान्महाबाहुर धिज्यधन्वा॥ १८॥
द्रोणः कृपश्चैव विविंशतिश्च
दुःशासनश्चैव विवृत्य शीघ्रम्।
सर्वे पुरस्ताद् विततोरुचापा
दुर्योधनार्थं त्वरिताऽभ्युपेयुः॥ १९॥

पराजित करने वाले शान्तनु पुत्र भीष्म भी सुनहली चादर ओढे हुए लौट पड़े। वे विशाल बाहु धनुष लेकर दुर्योधन के पीछे के भाग की रक्षा करने लगे। फिर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विविंशति और दुश्शासन भी शीघ्रता से लौटकर आये और धनुष ताने हुए दुर्योधन के आगे उसकी रक्षा के लिये खड़े हो गये।

ते सर्वतः सम्परिवार्य पार्थ-
मस्त्राणि दिव्यानि समाददानाः।
ववर्षुरभ्येत्य शरैः समन्ता-
न्मेघा यथा भूधरमम्बुवर्गैः॥ २०॥
ततोऽस्त्रमस्त्रेण निवार्य तेषां
गाण्डीवधन्वा कुरुपुङ्गवानाम्।
सम्मोहनं शत्रुसहोऽन्यदस्त्रं
प्रादुश्चकारैन्द्रिर पारणीयम्॥ २१॥

दिव्यास्त्रों से युक्त वे सब तरफ से अर्जुन को घेर कर उस पर बाणों की वर्षा इस प्रकार करने लगे, जैसे बादल पर्वत के ऊपर जल बरसाते हैं। तब गाण्डीव धनुष को धारण करने तथा शत्रुओं के वेग को सहन करने वाले इन्द्रपुत्र अर्जुन ने कुरुश्रेष्ठों के उन अस्त्रों को अस्त्रों से निवारित करके एक दूसरे सम्मोहन अस्त्र को छोड़ा। जिसे कोई भी निवारण नहीं कर सकता था।

ततः पुनर्भीमरवं प्रगृह्य
दोर्भ्यां महाशङ्खमुदारघोषम्।
व्यनादयत् स प्रदिशो दिशः खं
भुवं च पार्थो द्विषतां निहन्ता॥ २२॥
ते शङ्खनादेन कुरुप्रवीराः
सम्मोहिताः पार्थसमीरितेन।
उत्सृज्य चापानि दुरासदानि
सर्वे तदा शान्तिपरा बभूवुः॥ २३॥

फिर शत्रुओं को मारने वाले अर्जुन ने भयानक शब्द करने वाले, दूर दूर तक अपनी ध्वनि फैलाने वाले महान् शंख को दोनों हाथों से पकड़कर बजाया और दिशाओं, उपदिशाओं, भूमि तथा आकाश को गुंजायमान कर दिया। तब अर्जुन के द्वारा प्रेरित सम्मोहनास्त्र और शंखनाद से वे सारे कौरव वीर अपने दुर्लभ धनुषों को छोड़कर मूर्च्छित और शान्ति से युक्त हो गये।

तथा विसंज्ञेषु च तेषु पार्थः
स्मृत्वा च वाक्यानि तथोत्तरायाः।
निर्याहि मध्यादिति मत्स्यपुत्र
मुवाच यावत् कुरवो विसंज्ञाः॥ २४॥
आचार्यशारद्वतयोः सुशुक्ले
कर्णस्य पीतं रुचिरं च वस्त्रम्।
द्रौणेश्च राज्ञश्च तथैव नीले
वस्त्रे समादत्स्व नरप्रवीर॥ २५॥

उनके इस प्रकार मूर्च्छित हो जाने पर उत्तरा के वचनों को स्मरण कर अर्जुन मत्स्यराज के पुत्र से बोले कि हे नरवीर! तुम सेना के बीच में से चले जाओ और जब तक ये कौरव बेहोश हैं, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के श्वेत, और कर्ण के सुन्दर पीले अश्वत्थामा तथा दुर्योधन के नीले वस्त्रों अर्थात् उत्तरीयों को उतार लाओ।

भीष्मस्य संज्ञां तु तथैव मन्ये
जानाति सोऽस्त्रप्रतिघातमेषः।
एतस्य वाहान् कुरु सव्यतस्त्व-
मेवं हि यातव्यममूढसंज्ञैः॥ २६॥
रश्मीन् समुत्सृज्य ततो महात्मा
रथादवप्लुत्य विराटपुत्रः।

वस्त्राण्युपादाय महारथानां
तूर्णं पुनः स्वं रथमारुरोह॥ २७॥

मैं समझता हूँ कि भीष्म इस अस्त्र का निवारण जानते हैं, इसलिये वे होश में हैं, इसलिये इनके घोड़ों को बायीं तरफ छोड़कर जाना, क्योंकि जो मूर्च्छित न हो उनके निकट से ऐसे ही जाना चाहिये। तब वह महात्मा विराटपुत्र घोड़ों की रास छोड़कर, रथ से कूदकर, जल्दी से उन महारथियों के वस्त्रों को लेकर पुनः अपने रथ पर आ गया।

ततोऽन्वशासच्चतुरः सदश्वान्
पुत्रो विराटस्य हिरण्यकक्षान्।
ते तद् व्यतीयुर्ध्वजिनामनीकं
श्वेता वहन्तोऽर्जुनमाजिमध्यात्॥ २८॥
तथानुयान्तं पुरुषप्रवीरं
भीष्मः शरैरभ्यहनत् तरस्वी।
स चापि भीष्मस्य हयान् निहत्य
विव्याध पार्थो दशभिः पृषत्कैः॥ २९॥

फिर विराटपुत्र ने सुनहरे साज से सजे चारों उत्तम घोड़ों को हाँक दिया। तब वे श्वेत घोड़े अर्जुन को रथ में ले जाते हुए, उस युद्धक्षेत्र के बीच में से ध्वजों वाली रथ सेना का घेरा पार कर बाहर आ गये। उन्हें इस प्रकार जाते हुए देखकर वेगवान् भीष्म ने उन पुरुषों में प्रधानवीर अर्जुन पर बाणों का प्रहार किया। तब उन्होंने भी भीष्म के घोड़ों को मारकर उन्हें दस बाणों से घायल कर दिया।

ततोऽर्जुनो भीष्ममपास्य युद्धे
विद्ध्वास्य यन्तारमरिष्टधन्वा।
तस्थौ विमुक्तो रथवृन्दमध्या-
न्मेघं विदार्येव सहस्त्ररश्मिः॥ ३०॥
लब्ध्वा हि संज्ञां तु कुरुप्रवीराः
पार्थं निरीक्ष्याथ सुरेन्द्रकल्पम्।
रणे विमुक्तं स्थितमेकमाजौ
स धार्तराष्ट्रस्त्वरितं बभाषे॥ ३१॥

फिर दुर्भेद्य धनुष वाले अर्जुन भीष्म के सारथि को बींधकर, भीष्म को युद्ध भूमि में छोड़कर, रथ समूहों के बीच में से निकलकर ऐसे खड़े हो गये जैसे बादलों को छिन्न भिन्न कर सूर्यदेव प्रकाशित हो रहे हों। तब होश में आकर कौरव वीरों ने जब देखा कि इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन सेना के घेरे से मुक्त होकर युद्ध क्षेत्र में खड़े हैं, तब दुर्योधन जल्दी से बोला कि–

अयं कथं वै भवतो विमुक्त-
स्तथा प्रमथ्नीत यथा न मुच्येत्।
तमब्रवीच्छान्तनवः प्रहस्य
क्व ते गता बुद्धिरभूत् क्व वीर्यम्॥ ३२॥
शान्तिं परां प्राप्य यदा स्थितोऽभू-
रुत्सृज्य बाणांश्च धनुर्विचित्रम्।

हे पितामह! यह आपके हाथ से कैसे बच गया? इसे इस प्रकार मथ डालिये, जिससे यह छूट न सके। तब शान्तनुपुत्र भीष्म उससे हँसकर बोले कि तुम्हारी बुद्धि और पराक्रम कहाँ चला गया था? जब तुम अपने विचित्र बाणों को छोड़कर मूर्च्छित पड़े हुए थे।

न त्वेष बीभत्सुरलं नृशंसं
कर्तुं न पापेऽस्य मनोविशिष्टम्॥ ३३॥
त्रैलोक्यहेतोर्न जहेत् स्वधर्मं
सर्वे न तस्मान्निहता रणेऽस्मिन्।
क्षिप्रं कुरून् याहि कुरुप्रवीर
विजित्य गाश्च प्रतियातु पार्थः॥ ३४॥
मा ते स्वकोऽर्थो निपतेत मोहात्
तत् संविधातव्यमरिष्टबन्धम्।
दुर्योधनस्तस्य तु तन्निशम्य
पितामहस्यात्महितं वचोऽथ॥ ३५॥
अतीतकामो युधि सोऽत्यमर्षी
राजा विनिःश्वस्य बभूव तूष्णीम्।

यह अर्जुन निर्दय नहीं है। पाप करने में भी इसका मन नहीं है। त्रैलोक्य का राज्य प्राप्त करने के लिये भी यह अपने धर्म को नहीं छोड़ सकता। इसलिये इसने इस युद्ध में सबको मार नहीं दिया। इसलिये हे कुरुप्रवीर! अब जल्दी अपने कुरुदेश को चलो और अर्जुन गायों को जीतकर लौट जायें। ऐसा न हो कि मोह के कारण तुम्हारी अपनी सम्पत्ति भी नष्ट हो जाये। इसलिये वही कार्य करना चाहिये, जिसमें कल्याण हो। तब अत्यन्त अमर्षी राजा दुर्योधन, जिसकी युद्ध के प्रति कामना नहीं रही थी, पितामह के अपनी भलाई के वचन सुनकर लम्बी साँस लेकर चुप रह गया।

तद् भीष्मवाक्यं हितमीक्ष्य सर्वे
निवर्तनायैव मनो निदध्युः॥ ३६॥

तान् प्रस्थितान् प्रीतमनाः स पार्थो
धनंजयः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीरान्।
अभाषमाणोऽनुनयं मुहूर्तं
वचोऽब्रवीत् सम्परिहृत्य भूयः॥ ३७॥
पितामहं शान्तनवं च वृद्धं
द्रोणं गुरुं च प्रणिपत्य मूर्ध्ना।
द्रौणिं कृपं चैव कुरूंश्च मान्या-
ञ्छरैर्विचित्रैरभिवाद्य चैव॥ ३८॥

फिर भीष्म की बात को हितकारी समझकर सबने लौटने का मन बना लिया। तब उन कौरव वीरों को प्रस्थान करने की तैयारी करते हुए देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुन प्रसन्न होकर एक मुहूर्त्त तक चुपचाप खड़े रहे। फिर लौटकर वृद्ध पितामह भीष्म और गुरु द्रोण को सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनसे अनुनय विनय पूर्वक बातें कीं। उन्होंने अश्वत्थामा, कृपाचार्य, और दूसरे आदरणीय कौरवों को धनुष के विचित्र तरीकों से अभिवादन किया।

दृष्ट्वा प्रयातांस्तु कुरून् किरीटी
हृष्टोऽब्रवीत् तत्र स मत्स्यपुत्रम्।
आवर्तयाश्वान् पशवो जितास्ते
याताः परे याहि पुरं प्रहृष्टः॥ ३९॥

फिर कौरवों को गया हुआ देखकर, अर्जुन प्रसन्न होकर मत्स्यराज के पुत्र से बोले कि घोड़ों को लौटाओ। तुम्हारे पशु जीत लिये गये हैं। अब आनन्दपूर्वक नगर की तरफ चलो।

छियालीसवाँ अध्याय : अर्जुन और उत्तर का वापिस आना।

मत्स्य पुत्रं द्विषतां निहन्ता
वचोऽब्रवीत् सम्परिरभ्य भूयः।
पितुः सकाशे तव तात सर्वे
वसन्ति पार्था विदितं तवैव॥ १॥
मया जिता सा ध्वजिनी कुरूणां
मया च गावो विजिता द्विषद्भ्यः।
पितुः सकाशं नगरं प्रविश्य
त्वमात्मनः कर्म कृतं ब्रवीहि॥ २॥

फिर शत्रुओं को नष्ट करने वाले अर्जुन ने उत्तर कुमार को छाती से लगाकर यह कहा कि हे तात! तुम्हारे पिता के समीप सारे पाण्डव रहते हैं। यह बात केवल तुम्ही को मालूम है। इसलिये नगर में प्रवेश कर अपने पिता से यही कहना कि मैंने कौरवों की सेना को जीता है, मैंने ही शत्रुओं से गायें छीनी हैं। सब कुछ अपना ही किया हुआ कार्य बताना।

उत्तर उवाच- **यत् ते कृतं कर्म न पारणीयं**
तत् ते कर्म कर्तुं मम नास्ति शक्तिः।
न त्वां प्रवक्ष्यामि पितुः सकाशे
यावन्न मां वक्ष्यसि सव्यसाचिन्॥ ३॥
श्मशानमागत्य पुनः शमीं ता-
मभ्येत्य तस्थौ शरविक्षताङ्गः।
विधाय तच्चायुधमाजिवर्धनं
कुरूत्तमानामिषुधीः शरांस्तथा॥ ४॥
प्रायात् स मत्स्यो नगरं प्रहृष्टः
किरीटिना सारथिना महात्मनाः।

तब उत्तरकुमार ने कहा कि हे सव्यसाची! आपने जो कार्य किया, उसे दूसरा कोई नहीं कर सकता और मेरी तो शक्ति ही नहीं है। फिर भी जब तक आप नहीं कहेंगे मैं पिता जी से इस विषय में नहीं कहूँगा। फिर वे बाणों से घायल शरीर वाले श्मशान भूमि में आकर शमी वृक्ष के समीप गये। वहाँ कुरुश्रेष्ठों के सम्मान को युद्ध में बढ़ाने वाले उन धनुषबाणों को रखकर मत्स्यराजपुत्र उत्तरकुमार प्रसन्नता के साथ महात्मा अर्जुन को सारथि बनाकर नगर की तरफ चला।

पार्थस्तु कृत्वा परमार्यकर्म
निहत्य शत्रून् द्विषतां निहन्ता॥ ५॥
चकार वेणीं च तथैव भूयो
जग्राह रश्मीन् पुनरुत्तरस्य।
विवेश हृष्टो नगरं महामना
बृहन्नलारूपमुपेत्य सारथिः॥ ६॥

शत्रुओं को नष्ट करने वाले अर्जुन ने भी शत्रुओं को मारकर, अत्यन्त उत्तम कार्य कर, फिर वैसी ही अपनी वेणी बना ली और उत्तर के घोड़ों की रास सँभाल ली। फिर वे महामना प्रसन्नता पूर्वक बृहन्नला के रूप में सारथि बने हुए, नगर में प्रविष्ट हुए।

अर्जुन उवाच

राजपुत्र प्रत्यवेक्ष समानीतानि सर्वशः।
गोकुलानि महाबाहो वीर गोपालकैः सह॥ ७॥
गच्छन्तु त्वरिताश्चेमे गोपालाः प्रेषितास्त्वया।
नगरे प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम्॥ ८॥

तब अर्जुन ने कहा कि हे राजपुत्र! देख लो। हे वीर महाबाहु! तुम्हारी सारी गायें अपने ग्वालों के साथ यहाँ आयी हुई हैं। अब तुम इन ग्वालों को भेजो। ये ग्वाले नगर में शीघ्रता से प्रिय समाचार सुनाने के लिये जायें और तुम्हारे विजयी होने की घोषणा करा दें।

अथोत्तरस्त्वरमाणः स दूता-
नाज्ञापयद् वचनात् फाल्गुनस्य।
आचक्षध्वं विजयं पार्थिवस्य
भग्नाः परे विजिताश्चापि गावः॥ ९॥

तब अर्जुन के कहने से उत्तर ने शीघ्रता से उन दूतों को आज्ञा दी कि जाकर कहो कि महाराज की विजय हुई है, शत्रु भाग गये और गायों को छुड़ा लिया गया है।

सैंतालीसवाँ अध्याय : विराट द्वारा युधिष्ठिर की अवज्ञा, उत्तर का आना, विराट की उससे जिज्ञासा।

धनं चापि विजित्याशु विराटो वाहिनीपतिः।
विवेश नगरं हृष्टश्चतुर्भिः पाण्डवैः सह॥ १॥
उपतस्थुः प्रकृतयः समस्ता ब्राह्मणैः सह।
सभाजितः ससैन्यस्तु प्रतिनन्द्याथ मत्स्यराट्॥ २॥
विसर्जयामास तदा द्विजांश्च प्रकृतीस्तथा।
तथा स राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः॥ ३॥

सेनाओं के स्वामी राजा विराट ने अपने गायों के धन को जीतकर प्रसन्नता सहित चारों पाण्डवों के साथ जल्दी ही नगर में प्रवेश किया। फिर प्रजा के सारे लोग ब्राह्मणों के साथ उनकी सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने सेना सहित राजा का अभिवादन और स्वागत किया। इसके बाद सेनाओं के स्वामी मत्स्यराज विराट ने प्रजा के लोगों और ब्राह्मणों को विदा किया।

उत्तरं परिपप्रच्छ क्व यात इति चाब्रवीत्।
आचख्युस्तस्य तत् सर्वं स्त्रियः कन्याश्च वेश्मनि॥ ४॥
अन्तःपुरचराश्चैव कुरुभिर्गोधनं हृतम्।
विजेतुमभिसंरब्ध एक एवातिसाहसात्॥ ५॥
बृहन्नलासहायश्च निर्गतः पृथिवीञ्जयः।
उपयातानतिरथान् भीष्मं शान्तनवं कृपम्।
कर्णं दुर्योधनं द्रोणं द्रोणपुत्रं च षड् रथान्॥ ६॥

फिर उन्होंने उत्तर कुमार के विषय में घर में पूछा कि वह कहाँ गया है। तब वहाँ सारी स्त्रियों और कन्याओं ने सारी बात उन्हें बतायी। उन्होंने बताया कि कौरवों ने पीछे से आक्रमण कर हमारी गायों को हर लिया। तब वह क्रोध में भर कर बड़े साहस के साथ उन्हें जीतने के लिये अकेले ही बृहन्नला के साथ निकले थे। वे आये हुए शान्तनुपुत्र भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणाचार्य, और अश्वत्थामा इन छै महारथियों से लड़ने गए हैं।

राजा विराटोऽथ भृशाभितप्तः
श्रुत्वा सुतं त्वेकरथेन यातम्।
बृहन्नलासारथि माजिवर्धनं
प्रोवाच सर्वानथ मन्त्रिमुख्यान्॥ ७॥

तब राजा विराट यह सुनकर कि युद्ध में आगे बढ़ने वाला उनका पुत्र अकेला ही बृहन्नला को सारथि बनाकर गया है बहुत अधिक संतप्त हुए और अपने प्रमुख मंत्रियों से बोले कि—

सर्वथा कुरवस्ते हि ये चान्ये वसुधाधिपाः।
त्रिगर्तान् निःसृताञ्छ्रुत्वा न स्थास्यन्ति कदाचन॥ ८॥
तस्माद् गच्छन्तु मे योधा बलेन महता वृताः।
उत्तरस्य परीप्सार्थं ये त्रिगर्तैरविक्षताः॥ ९॥
कुमारमाशु जानीत यदि जीवति वा न वा।
यस्य यन्ता गतः षण्ढो मन्येऽहं स न जीवति॥ १०॥

यह सुनकर कि त्रिगर्त के लोग युद्ध में पीठ दिखा कर भाग गए हैं, चाहे कौरव हों या कोई और राजा वे युद्ध में नहीं ठहर सकेंगे। इसलिये मेरे वे योद्धा, जो त्रिगर्तों के द्वारा घायल नहीं हुए हैं, विशाल सेना के साथ उत्तर कुमार की रक्षा के लिये जायें। जल्दी कुमार का पता लगाओ। वह जीवित है या नहीं। जिसका सारथि एक नपुंसक है, मैं समझता हूँ कि वह अब जीवित नहीं है।

तमब्रवीद् धर्मराजो विहस्य
विराटराजं तु भृशाभितप्तम्।
बृहन्नला सारथिश्चेन्नरेन्द्र
परे न नेष्यन्ति तवाद्य गास्ताः॥ ११॥

तब धर्मराज युधिष्ठिर ने अत्यन्त सन्तप्त विराट राज से हँसकर कहा कि हे नरेन्द्र! यदि बृहन्नला उसका सारथि है तो शत्रु आज आपकी गायों को नहीं ले जायेंगे।

अथोत्तरेण प्रहिता दूतास्ते शीघ्रगामिनः।
विराटनगरं प्राप्य विजयं समवेदयन्॥ १२॥
राज्ञस्तत् सर्वमाचख्यौ मन्त्री विजयमुत्तमम्।
पराजयं कुरूणां चाप्युपायान्तं तथोत्तरम्॥ १३॥
सर्वा विनिर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः।
उत्तरः सह सूतेन कुशली च परंतपः॥ १४॥

युधिष्ठिर उवाच

दिष्ट्या विनिर्जिता गावः कुरवश्च पलायिताः।
नाद्भुतं त्वेव मन्येऽहं यत् ते पुत्रोऽजयत् कुरून्॥ १५॥
ध्रुव एव जयस्तस्य यस्य यन्ता बृहन्नला।

तभी उत्तर के द्वारा भेजे गए शीघ्रगामी दूतों ने आकर उत्तरकुमार की विजय के बारे में समाचार दिया। तब मन्त्री ने राजा को उत्तर की विजय और कौरवों की पराजय, तथा उत्तरकुमार नगर में आने वाले हैं, ये सारी बातें बतायीं और कहा कि सारी गायें जीत ली गयी हैं, कौरव पराजित हो गये हैं और परंतप उत्तरकुमार सकुशल हैं। तब युधिष्ठिर ने कहा कि सौभाग्य से गायें जीत ली गयीं हैं और कौरव भाग गये हैं। आपके पुत्र ने जो कौरवों को जीत लिया है, इसे मैं अद्‌भुत नहीं मानता। जिसका सारथि बृहन्नला हो, उसकी जय निश्चित है।

ततो विराटो नृपतिः सम्प्रहृष्टनतनूरुहः॥ १६॥
श्रुत्वा स विजयं तस्य कुमारस्यामितौजसः।
आच्छादयित्वा दूतांस्तान् मन्त्रिणं सोऽभ्यचोदयत्॥ १७॥
राजमार्गाः क्रियन्तां मे पताकाभिरलंकृताः।
कुमारा योधमुख्याश्च गणिकाश्च स्वलंकृताः॥ १८॥
वादित्राणि च सर्वाणि प्रत्युद्यान्तु सुतं मम।
घण्टावान् मानवः शीघ्रं मत्तमारुह्य वारणम्॥ १९॥
शृङ्गाटकेषु सर्वेषु आख्यातु विजयं मम।
उत्तरा च कुमारीभिर्बह्वीभिः परिवारिता।
शृङ्गारवेषाभरणा प्रत्युद्यातु सुतं मम॥ २०॥

तब अमित ओजस्वी उत्तर की विजय के बारे में सुनकर हर्ष से रोमांचित हुए विराटराज ने दूतों को सत्कृत करके मन्त्रियों को आदेश दिया कि मेरे नगर के राजमार्गों को पताकाओं से सजा दो। कुमार, प्रमुख योद्धा और सुसज्जित गणिकाएँ तथा सब प्रकार के बाजे मेरे पुत्र का स्वागत करने के लिये जायें। घंटे वाला मनुष्य जल्दी से मस्त हाथी पर चढ़कर सारे चौराहों पर मेरी विजय की घोषणा करे। उत्तरा बहुत सी कुमारियों के साथ श्रृंगार करके मेरे पुत्र का स्वागत करने के लिये जाये।

श्रुत्वा चेदं वचनं पार्थिवस्य
सर्वं पुरं स्वस्तिकपाणिभूतम्।
भेर्यश्च तूर्याणि च वारिजाश्च
वेषैः परार्ध्यैः प्रमदाः शुभाश्च॥ २१॥
तथैव सूतैः सह मागधैश्च
नान्दीवाद्याः पणवास्तूर्यवाद्याः।
पुराद् विराटस्य महाबलस्य
प्रत्युद्ययुः पुत्रमनन्तवीर्यम्॥ २२॥

राजा के इन वचनों को सुनकर सारे पुरवासी माँगलिक वस्तुएँ हाथ में लेकर तथा भेरी, तुरही, शंख के साथ सुन्दरी स्त्रियाँ बहुमूल्य वेषभूषा से सुसज्जित होकर, सूत, मागध और वंदीजन, माँगलिक बाजों, पणव, तूर्य आदि के साथ महाबली विराट के अनन्त पराक्रमी पुत्र का स्वागत करने नगर से बाहर आये।

प्रस्थाप्य सेनां कन्याश्च गणिकाश्च स्वलङ्कृताः।
मत्स्यराजो महाप्राज्ञः प्रहृष्ट इदमब्रवीत्॥ २३॥
अक्षानाहर सैरन्ध्रि कङ्क द्यूतं प्रवर्तताम्।
प्रवर्तमाने द्यूते तु मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत्॥ २४॥
पश्य पुत्रेण मे युद्धे तादृशाः कुरवो जिताः।
ततोऽब्रवीन्महात्मा स एनं राजा युधिष्ठिरः॥ २५॥
बृहन्नला यस्य यन्ता कथं स न जयेद् युधि।

इस प्रकार सुसज्जित कन्याओं और गणिकाओं और सेना को भेजकर महाप्राज्ञ मत्स्यराज अत्यन्त प्रसन्नता के साथ बोले कि सैरन्ध्री! पासों को लाओ। कंक! जूए का खेल आरम्भ करो। जूआ आरम्भ होने पर खेलते हुए विराटराज पाण्डुपुत्र से बोले कि देखो मेरे पुत्र ने इतने पराक्रमी कौरवों को जीत लिया। तब महात्मा राजा युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि जिसका सारथि बृहन्नला हो, वह युद्ध में कैसे नहीं जीतेगा?

इत्युक्तः कुपितो राजा मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत्॥ २६॥
समं पुत्रेण मे षण्ढं ब्रह्मबन्धो प्रशंससि।
वाच्यावाच्यं न जानीषे नूनं मामवमन्यसे॥ २७॥
भीष्मद्रोणमुखान् सर्वान् कस्मान्न स विजेष्यति।
वयस्यत्वात् तु ते ब्रह्मन्नपराधमिमं क्षमे॥ २८॥
नेदृशं तु पुनर्वाच्यं यदि जीवितुमिच्छसि।

ऐसा कहे जाने पर मत्स्यराज क्रुद्ध होकर पाण्डुपुत्र से बोले कि अरे नीच ब्राह्मण! तू मेरे पुत्र के समान एक हिजड़े की बड़ाई करता है। तू यह नहीं जानता कि क्या क़हना चाहिये। तू निश्चय ही मेरा अपमान कर रहा है। वह भीष्म, द्रोणाचार्य आदि सारे वीरों को क्यों नहीं जीत लेगा? हे ब्राह्मण! तू मेरा मित्र है इसलिये मैं तेरे इस अपराध को क्षमा करता हूँ। यदि तू जीवित रहना चाहता है तो इस प्रकार फिर मत कहना।

युधिष्ठिर उवाच

यत्र द्रोणस्तथा भीष्मो द्रौणिर्वैकर्तनः कृपः॥ २९॥
दुर्योधनश्च राजेन्द्रस्तथान्ये च महारथाः।
कोऽन्योबृहन्नलायास्तान् प्रतियुध्येत सङ्गतान्॥ ३०॥
यस्य बाहुबले तुल्यो न भूतो न भविष्यति।
अतीव समरं दृष्ट्वा हर्षो यस्योपजायते॥ ३१॥
योऽजयत् सङ्गतान् सर्वान् ससुरासुरमानवान्।
तादृशेन सहायेन कस्मात् स न विजेष्यते॥ ३२॥

विराट उवाच

बहुशः प्रतिषिद्धोऽसि न च वाचं नियच्छसि।
नियन्ता चेन्न विद्येत न कश्चिद् धर्ममाचरेत्॥ ३३॥

तब युधिष्ठिर ने फिर कहा कि जहाँ द्रोणाचार्य, भीष्म, अश्वत्थामा, कर्ण, कृपाचार्य और दुर्योधन हों, तथा दूसरे महारथी हों, उन एकत्र हुओं से सिवाय बृहन्नला के और कौन लड़ सकता है? जिसकी भुजाओं की शक्ति के समान न तो कोई हुआ है, और न कोई होगा। युद्धक्षेत्र को देखकर जिसके हृदय में अत्यन्त हर्ष उत्पन्न होता है, जिसने एकत्र हुए सारे मानवों, देवों और दानवों को जीत लिया, उसकी सहायता मिलने पर उत्तरकुमार क्यों नहीं विजयी होते? तब विराटराज बोले कि हे कंक! मैंने तुम्हें बहुत बार मना किया है, पर तुम अपनी वाणी को अपने वश में नहीं रखते हो। यदि कोई नियन्त्रण करने वाला न हो तो कोई भी धर्म का आचरण नहीं करता।

ततः प्रकुपितो राजा तमक्षेणाहनद् भृशम्।
मुखे युधिष्ठिरं कोपान्नैवमित्येव भर्त्सयन्॥ ३४॥
बलवत् प्रतिविद्धस्य नस्तः शोणितमावहत्।
तदप्राप्तं महीं पार्थः पाणिभ्यां प्रत्यगृह्णत॥ ३५॥
अवैक्षत स धर्मात्मा द्रौपदीं पार्श्वतः स्थिताम्।
सा ज्ञात्वा तमभिप्रायं भर्तुश्चित्तवशानुगा॥ ३६॥
पात्रं गृहीत्वा सौवर्णं जलपूर्णमनिन्दिता।
तच्छोणितं प्रत्यगृह्णाद् यत् प्रसुस्राव नस्ततः॥ ३७॥

तब राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर युधिष्ठिर के मुख पर जोर से पासे से प्रहार किया और डाँटते हुए कहा कि फिर कभी ऐसी बात मत कहना। तब वेग से प्रहार किये हुए युधिष्ठिर की नाक से खून बहने लगा। किन्तु वह भूमि पर नहीं गिर पाया। कुन्तीपुत्र ने उसे अपने हाथ में ले लिया। फिर उस धर्मात्मा ने पास में खड़ी द्रौपदी की तरफ देखा। पति के हृदय के अनुसार कार्य करने वाली वह अनिन्दिता तब जल से भरे स्वर्णपात्र को लायी और उसने नाक से बहने वाले खून को उसमें ले लिया।

अथोत्तरः शुभैर्गन्धैर्माल्यैश्च विविधैस्तथा।
अवकीर्यमाणः संहृष्टो नगरं स्वैरमागतः॥ ३८॥
सभाज्यमानः पौरैश्च स्त्रीभिर्जानपदैस्तथा।
आसाद्य भवनद्वारं पित्रे सम्प्रत्यवेदयत्॥ ३९॥
ततो द्वाःस्थः प्रविश्यैव विराटमिदमब्रवीत्।
बृहन्नलासहायश्च पुत्रो द्वार्युत्तरः स्थितः॥ ४०॥
ततो हृष्टो मत्स्यराजः क्षत्तारमिदमब्रवीत्।
प्रवेश्यतामुभौ तूर्णं दर्शनेप्सुरहं तयोः॥ ४१॥

इसके पश्चात् अपने ऊपर उत्तम गन्धयुक्त पदार्थों तथा अनेक प्रकार की मालाओं की वर्षा किये जाते हुए उत्तरकुमार अत्यन्त हर्षित अवस्था में स्वच्छन्दतापूर्वक नगर में आया। पुरवासियों, जनपदवासियों और स्त्रियों के द्वारा सत्कृत होते हुए, भवन के द्वार पर आकर उसने पिता को अपने आने की सूचना भिजवाई। तब प्रसन्न हुए मत्स्यराज ने सेवक से यह कहा कि उन दोनों को जल्दी प्रवेश कराओ। मैं उनके दर्शन का इच्छुक हूँ।

क्षत्तारं कुरुराजस्तु शनैः कर्ण उपाजपत्।
उत्तरः प्रविशत्वेको न प्रवेश्या बृहन्नला॥ ४२॥
ततो राज्ञः सुतो ज्येष्ठः प्राविशत् पृथिवीञ्जयः।
सोऽभिवाद्य पितुः पादौ कङ्कं चाप्युपतिष्ठत॥ ४३॥

ततो रुधिरसंयुक्तमनेकाग्रमनागसम्।
भूमावासीनमेकान्ते सैरन्ध्या प्रत्युपस्थितम्॥ ४४॥
ततः पप्रच्छ पितरं त्वरमाण इवोत्तरः।
केनायं ताडितो राजन् केन पापमिदं कृतम्॥ ४५॥

तब कुरुराज युधिष्ठिर ने सेवक के कान में धीरे से यह कहा कि केवल उत्तरकुमार को ही लाना। बृहन्नला को मत लाना। फिर राजा के ज्येष्ठपुत्र उत्तरकुमार ने प्रवेश किया और पिता के चरणों में प्रणाम कर उसने कंक को भी मस्तक झुकाया। तब रक्त से युक्त, अस्थिर चित्त, निरपराध, सैरन्ध्री के साथ भूमि पर बैठे हुए उन्हें देखकर उसने उतावली के साथ पिता से पूछा कि हे राजन्! किसने इन्हें मारा? यह पाप किसने किया?

विराट उवाच

मयायं ताडितो जिह्मो न चाप्येतावदर्हति।
प्रशस्यमाने यच्छूरे त्वयि षण्ढं प्रशंसति॥ ४६॥

उत्तर उवाच

अकार्यं ते कृतं राजन् क्षिप्रमेव प्रसाद्यताम्।
स पुत्रस्य वचः श्रुत्वा विराटो राष्ट्रवर्धनः॥ ४७॥
क्षमयामास कौन्तेयं भस्मच्छन्नमिवानलम्।
क्षमयन्तं तु राजानं पाण्डवः प्रत्यभाषत॥ ४८॥
चिरं क्षान्तमिदं राजन् न मन्युर्विद्यते मम।

तब विराट ने उत्तर दिया कि मैंने इस कुटिल को मारा है। यह इतने सम्मान के योग्य नहीं है। यह तुम्हारी शूरवीरता की प्रशंसा करने पर उस हिजड़े की प्रशंसा करने लगता है। तब उत्तरकुमार ने कहा कि हे राजन्! आपने न करने योग्य कार्य कर दिया। आप इन्हें जल्दी से प्रसन्न कीजिये। देश की उन्नति करने वाले विराटराज ने तब पुत्र की बात सुनकर राख में छिपी हुई अग्नि के समान कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से क्षमा माँगी। तब राजा को क्षमा करते हुए पाण्डुपुत्र ने कहा कि हे राजन्! मैं बहुत दिनों से क्षमा ही करता रहा हूँ। अब मेरे अन्दर क्रोध नहीं है।

शोणिते तु व्यतिक्रान्ते प्रविवेश बृहन्नला॥ ४९॥
अभिवाद्य विराटं तु कङ्कं चाप्युपतिष्ठत।
क्षामयित्वा तु कौरव्यं रणादुत्तरमागतम्॥ ५०॥
प्रशशंस ततो मत्स्यः शृण्वतः सव्यसाचिनः।
त्वया दायादवानस्मि कैकेयीनन्दिवर्धन॥ ५१॥
त्वया मे सदृशः पुत्रो न भूतो न भविष्यति।

रक्त के रुक जाने पर बृहन्नला ने वहाँ प्रवेश किया और राजा का अभिवादन कर कंक को भी प्रणाम किया। फिर कुरुनन्दन युधिष्ठिर से क्षमा माँगकर मत्स्यराज अर्जुन के सुनते ही युद्धक्षेत्र से आये हुए उत्तरकुमार की प्रशंसा करने लगे। वे कहने लगे कि हे कैकेयी के आनन्द को बढ़ाने वाले! मैं तुम्हारे से वास्तव में पुत्रवान् हो गया हूँ। तुम्हारे समान मेरा पुत्र न दूसरा हुआ है और न होगा।

पदं पदसहस्रेण यश्चरन् नापराध्नुयात्॥ ५२॥
तेन कर्णेन ते तात कथमासीत् समागमः।
मनुष्यलोके सकले यस्य तुल्यो न विद्यते॥ ५३॥
तेन भीष्मेण ते तात कथमासीत् समागमः।
आचार्यो वृष्णिवीराणां कौरवाणां च यो द्विजः॥ ५४॥
सर्वक्षत्रस्य चाचार्यः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
तेन द्रोणेन ते तात कथमासीत् समागमः॥ ५५॥
आचार्यपुत्रो यः शूरः सर्वशस्त्रभृतामपि।
अश्वत्थामेति विख्यातस्तेनासीत् संगरः कथम्॥ ५६॥

जो एक लक्ष्य पर निशाना लगाते समय दूसरे बहुत से लक्ष्यों पर भी निशाना लगाता है और गलती नहीं करता, उस कर्ण के साथ तुम्हारा युद्ध कैसे हुआ? सारे मनुष्यलोक में जिसके समान कोई नहीं है, उस भीष्म के साथ तुम्हारा युद्ध किस प्रकार हुआ? जो ब्राह्मण वृष्णिवीरों और कौरववीरों के आचार्य हैं, जो सारे ही क्षत्रियों के आचार्य हैं और सारे ही शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ हैं, उन द्रोणाचार्य के साथ हे तात! तुम्हारा युद्ध किस प्रकार हुआ? आचार्य का पुत्र, जो अश्वत्थामा नाम से प्रसिद्ध है और सारे शस्त्रधारियों में वीर है, उसके साथ तुम्हारा युद्ध कैसे हुआ?

रणे यं प्रेक्ष्य सीदन्ति हृतस्वा वणिजो यथा।
कृपेण तेन ते तात कथमासीत् समागमः॥ ५७॥
पर्वतं योऽभिविध्येत राजपुत्रो महेषुभिः।
दुर्योधनेन ते तात कथमासीत् समागमः॥ ५८॥
अवगाढा द्विषन्तो मे सुखो वातोऽभिवाति माम्।
यस्त्वं धनमथाजैषीः कुरुभिर्ग्रस्तमाहवे॥ ५९॥

युद्ध में जिसे देखकर धन लुटे व्यापरियों के समान शूरवीर दुःखी हो जाते हैं, उस कृपाचार्य के साथ हे पुत्र! तुम्हारा युद्ध कैसे हुआ? जो राजपुत्र अपने महान् बाणों के द्वारा पर्वतों को भी बींध सकता

है, उस दुर्योधन के साथ तुम्हारा युद्ध कैसे हुआ? हमारे शत्रु शान्त हो गये। वायु बड़ी सुखदायी बह रही है। कुरुओं द्वारा छीने हुए हमारे धन को तुमने युद्ध में जीत लिया है।

अड़तालीसवाँ अध्याय : विराटराज और उत्तरकुमार संवाद।

उत्तर उवाच

न मया निर्जिता गावो न मया निर्जिताः परे।
कृतं तत् सकलं तेन देवपुत्रेण केनचित्॥ १॥
स हि भीतं द्रवन्तं मा देवपुत्रो न्यवर्तयत्।
स चातिष्ठद् रथोपस्थे वज्रसंहननो युवा॥ २॥
तेन ता निर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः।
तस्य तत् कर्म वीरस्य न मया तात तत् कृतम्॥ ३॥

तब उत्तरकुमार ने कहा कि न मैंने गायों को जीता है और न मैंने शत्रुओं को जीता है। यह सारा कार्य तो किसी देवपुत्र ने किया है। उस देवपुत्र ने डरकर भागे जा रहे मुझे लौटाया। वह वज्र के समान सुदृढ़ शरीर वाला युवक स्वयं रथ में रथी बनकर बैठ गया। उसी ने इन गायों को जीता है और कौरवों को पराजित किया है। पिता जी! यह सारा कार्य उसी ने किया है, मैंने कुछ नहीं किया।

स हि शारद्वतं द्रोणं द्रोणपुत्रं च षड् रथान्।
सूतपुत्रं च भीष्मं च चकार विमुखाञ्छरैः॥ ४॥
दुर्योधनं विकर्णं च सनागमिव यूथपम्।
प्रभग्नब्रमवीद् भीतं राजपुत्रं महाबलः॥ ५॥
न मोक्ष्यसे पलायंस्त्वं राजन् युद्धे मनः कुरु।
पृथिवीं भोक्ष्यसे जित्वा हतो वा स्वर्गमाप्स्यसि॥ ६॥
स निवृत्तो नरव्याघ्रो मुञ्चन् वज्रनिभाञ्छरान्।
सचिवैः संवृतो राजा रथे नाग इव श्वसन्॥ ७॥

उसने ही कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, भीष्म और दुर्योधन इन छः महारथियों को अपने बाणों से युद्ध से विमुख कर दिया। उस महाबली ने अपने हाथियों सहित डरकर भागते हुए यूथपति के समान भागते हुए राजपुत्र दुर्योधन और विकर्ण से यह कहा कि हे राजन्! तू भागकर नहीं बच सकता। इसलिये युद्ध में मन लगा। जीत गया तो भूमि का भोग करेगा, मारा गया तो स्वर्ग को प्राप्त करेगा। तब वह नरश्रेष्ठ राजा रथ में साँप के समान साँस लेता हुआ, मंत्रियों से घिरा हुआ, वज्र के समान बाणों को छोड़ता हुआ वापिस लौटा।

तं दृष्ट्वा रोमहर्षोऽभूदूरुकम्पश्च मारिष।
स तत्र सिंहसंकाशमनीकं व्यधमच्छरैः॥ ८॥
तत् प्रणुद्य रथानीकं सिंहसंहननो युवा।
कुरूंस्तान् प्रहसन् राजन् संस्थितान् हृतवाससः॥ ९॥
एकेन तेन वीरेण षड् रथाः परिनिर्जिताः।
शार्दूलेनेव मत्तेन यथा वनचरा मृगाः॥ १०॥

विराट उवाच

क्व स वीरो महाबाहुर्देवपुत्रो महायशाः।
यो मे धनमथाजैषीत् कुरुभिर्ग्रस्तमाहवे॥ ११॥
इच्छामि तमहं द्रष्टुमर्चितुं च महाबलम्।
येन मे त्वं च गावश्च रक्षिता देवसूनुना॥ १२॥

उस युद्ध को देखकर हे मान्यवर। मुझे रोमांच होने लगा तथा जाँघें काँपने लगी। उस देवपुत्र ने अपने बाणों से सिंह के समान सेना को संतप्त कर दिया। उस सिंह के समान सुदृढ़ शरीर वाले युवा देवपुत्र ने रथों की सेना को पीड़ित कर हे राजन्! उन कौरवों को हँसते हुए भूमि पर लिटा दिया और उनके कपड़े उतार लिये। जैसे मदोन्मत्त सिंह वन में वन के पशुओं को जीत लेता है, वैसे ही उस अकेले ने ही छै महारथियों को पराजित कर दिया। तब विराटराज ने पूछा कि वह वीर महाबाहु, महायशस्वी, महाबली देवपुत्र कहाँ है? जिसने युद्ध में कौरवों द्वारा अपहृत मेरे धन को जीता और जिसने मेरी गायों और तुम्हारी रक्षा की। मैं उसे देखना और उसका सत्कार करना चाहता हूँ।

उत्तर उवाच

अन्तर्धानं गतस्तत्र देवपुत्रो महाबलः।
स तु श्वो वा परश्वो वा मन्ये प्रादुर्भविष्यति॥ १३॥
ततः पार्थोऽभ्यनुज्ञातो विराटेन महात्मना।
प्रददौ तानि वासांसि विराटदुहितुः स्वयम्॥ १४॥
उत्तरा तु महार्हाणि विविधानि नवानि च।
प्रतिगृह्याभवत् प्रीता तानि वासांसि भामिनी॥ १५॥

उत्तरकुमार ने उत्तर दिया कि वह महाबली देवपुत्र वहाँ से अन्तर्हित हो गया। मेरा विचार है कि वह कल या परसों प्रकट होगा। फिर महात्मा

विराट की आज्ञा से अर्जुन ने उन वस्त्रों को स्वयं विराटपुत्री उत्तरा को दिया। भामिनी उत्तरा उन बहुमूल्य नये और विविध प्रकार के वस्त्रों को लेकर बहुत प्रसन्न हुई।

उनंचासवाँ अध्याय : पाण्डवों का परिचय, विराट द्वारा अर्जुन से उत्तरा के विवाह का प्रस्ताव।

ततस्तृतीये दिवसे भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः।
स्नाताः शुक्लाम्बरधराः समये चरितव्रताः॥ १॥
युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य सर्वाभरणभूषिताः।
द्वारि मत्ता यथा नागा भ्राजमाना महारथाः॥ २॥
विराटस्य सभां गत्वां भूमिपालासनेष्वथ।
निषेदुः पावकप्रख्याः सर्वे धिष्ण्येष्विवाग्नयः॥ ३॥
तेषु तत्रोपविष्टेषु विराटः पृथिवीपतिः।
आजगाम सभां कर्तुं राजकार्याणि सर्वशः॥ ४॥

इसके पश्चात् तीसरे दिन पाँचों महारथी पाण्डव भाई, जिन्होंने नियत समय तक व्रत का पालन किया था, स्नान करके श्वेतवस्त्र धारण करके, सारे आभूषणों से भूषित होकर, युधिष्ठिर को आगे कर राज्यसभा के द्वार पर ऐसे सुशोभित हुए जैसे पाँच मदमस्त हाथी हों। फिर वे राजसभा में जाकर राजाओं के लिये रखे हुए आसनों पर बैठ गये। उस समय वे अलग अलग यज्ञवेदियों में प्रज्वलित होती हुई अग्नि के समान सुशोभित हो रहे थे। उनके वहाँ बैठ जाने पर राजा विराट अपने राज्यकार्यों को करने के लिये वहाँ आये।

श्रीमतः पाण्डवान् दृष्ट्वा ज्वलतः पावकानिव।
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा सरोषः पृथिवीपतिः॥ ५॥
अथ मत्स्योऽब्रवीत् कङ्कं देवरूपमिव स्थितम्।
स किलाक्षातिवापस्त्वं सभास्तारो मया वृतः॥ ६॥
अथ राजासने कस्मादुपविष्टस्त्वलंकृतः।

वे जलती हुई अग्नि के समान उन तेजस्वी पाण्डवों को देखकर थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे। फिर राजा विराट ने क्रोध के साथ देवताओं की तरह बैठे हुए कंक से कहा कि हे कंक! मैंने तो तुम्हें पासे फैंकने वाला अपना सभासद बनाया था, फिर आज सजधजकर राजाओं के आसन पर क्यों बैठ गये?

अर्जुन उवाच

इन्द्रस्यार्धासनं राजन्नयमारोढुमर्हति॥ ७॥
ब्रह्मण्यः श्रुतवांस्त्यागी यज्ञशीलो दृढव्रतः।
एष विग्रहवान् धर्म एष वीर्यवतां वरः॥ ८॥
एष बुद्ध्याधिको लोके तपसां च परायणम्।
दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः॥ ९॥
महर्षिकल्पो राजर्षिः सर्वलोकेषु विश्रुतः।
बलवान् धृतिमान् दक्षः सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ १०॥
यथा मनुर्महातेजा लोकानां परिरक्षिता।
एवमेष महातेजाः प्रजानुग्रहकारकः॥ ११॥
अयं कुरूणामृषभो धर्मराजो युधिष्ठिरः।

तब अर्जुन ने उत्तर दिया कि हे राजन्! ये तो इन्द्र के भी आधे आसन पर बैठ सकते हैं। ये ब्राह्मणों के भक्त, विद्वान्, त्यागी, यज्ञशील और व्रत का दृढ़ता से पालन करने वाले हैं। ये साक्षात् धर्म हैं। ये पराक्रमियों में श्रेष्ठ, बुद्धिमान् और तपस्वी हैं। ये दीर्घदर्शी, महातेजस्वी, तथा पुरवासियों और जनपदवासियों के प्रेमी हैं। ये महर्षियों के समान राजर्षि सारे विश्व में प्रसिद्ध हैं। ये बलवान् धैर्यवान्, दक्ष, सत्यवादी, और जितेन्द्रिय हैं। जैसे महातेजस्वी मनु ने लोगों का रक्षण किया था, वैसे ही ये महातेजस्वी भी प्रजा पर अनुग्रह करने वाले हैं। ये कौरवों में श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर हैं।

विराट उवाच

यद्येष राजा कौरव्यः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १२॥
कतमोऽस्यार्जुनो भ्राता भीमश्च कतमो बली।
नकुलः सहदेवो वा द्रौपदी वा यशस्विनी॥ १३॥
यदा द्यूतजिताः पार्था न प्राज्ञायन्त ते क्वचित्।

अर्जुन उवाच

य एष बल्लवो ब्रूते सूदस्तव नराधिप॥ १४॥
एष भीमो महाराज भीमवेगपराक्रमः।
गन्धर्वा एष वै हन्ता कीचकानां दुरात्मनाम्॥ १५॥
व्याघ्रानृक्षान् वराहांश्च हतवान् स्त्रीपुरे तव।

तब विराटराज ने पूछा कि यदि ये कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर हैं तो इनके भाई अर्जुन और बलवान् भीम कौन हैं? नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदी कौन हैं? जूए में जीत लिये जाने के बाद तो उनका पता

ही नहीं लगा कि वे कहाँ चले गये? तब अर्जुन ने कहा कि हे राजन्! ये जो आपके रसोइये बल्लव नाम से कहे जाते हैं, ये ही हे महाराज! भयानक वेग और पराक्रम वाले भीम हैं। दुष्ट कीचकों को मारने वाले गन्धर्व भी यही हैं। इन्होंने ही आपके अन्तःपुर में व्याघ्रों, रीछों और सूअरों को मारा है।

यश्चासीदश्वबन्धस्ते नकुलोऽयं परंतपः॥ १६॥
गोसङ्ख्यः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ महारथौ।
महारथसहस्राणां समर्थौ भरतर्षभौ॥ १७॥
एषा पद्मपलाशाक्षी सुमध्या चारुहासिनी।
सैरन्ध्री द्रौपदी राजन् यस्यार्थे कीचकाहताः॥ १८॥
अर्जुनोऽहं महाराज व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः।
भीमादवरजः पार्थो यमाभ्यां चापि पूर्वजः॥ १९॥
उषिताः स्मो महाराज सुखं तव निवेशने।
अज्ञातवासमुषिता गर्भवास इव प्रजाः॥ २०॥

जो आपके घोड़ों के अध्यक्ष थे, वे ये नकुल हैं, गायों की सँभाल करने वाले सहदेव हैं। माद्री के ये दोनों पुत्र भरतश्रेष्ठ, महारथी और महारथियों का सामना करने में समर्थ हैं। हे राजन्! यह पद्म और पलाश के समान नेत्रों वाली, सुन्दर मुस्कान वाली सुन्दरी सैरन्ध्री द्रौपदी है, जिसके कारण कीचक मारे गये हैं। हे महाराज! मैं अर्जुन हूँ। मेरा नाम आपने अवश्य सुना होगा। मैं भीम से छोटा और इन दोनों जुड़वाँ भाइयों से बड़ा हूँ। हे महाराज! हमने आपके यहाँ अपना अज्ञातवास इस प्रकार व्यतीत किया जैसे बच्चा माता के गर्भ में रहता है।

यदार्जुनेन ते वीराः कथिताः पञ्च पाण्डवाः।
तदार्जुनस्य वैराटिः कथयामास विक्रमम्॥ २१॥
अयं स द्विषतां हन्ता मृगाणामिव केसरी।
अचरद् रथवृन्देषु निघ्नंस्तांस्तान् वरान् रथान्॥ २२॥
अनेन विद्धो मातङ्गो महानेकेषुणा हतः।
सुवर्णकक्षः संग्रामे दन्ताभ्यामगन्महीम्॥ २३॥
अनेन विजिता गावो जिताश्च कुरवो युधि।
अस्य शङ्खप्रणादेन कर्णौ मे बधिरीकृतौ॥ २४॥

जब अर्जुन पाँचों वीर पाण्डवों का परिचय दे चुके, तब विराटपुत्र उत्तर ने अर्जुन के पराक्रम का वर्णन किया। उसने कहा कि पिता जी! इन्होंने ही शत्रुओं का वध किया था। वन्य पशुओं के बीच में सिंह के समान ये ही रथियों के समूह में उन श्रेष्ठ रथियों को मारते हुए विचरण कर रहे थे। सोने की साँकल से सुशोभित महान् हाथी युद्धक्षेत्र में इनके एक बाण से ही मारा हुआ, भूमि पर अपने दाँतों को टिका कर गिर पड़ा। इन्होंने ही गायों को और कौरवों को युद्ध में जीता। इनके शंख की महान् ध्वनि से मेरे तो कान बहरे हो गये थे।

विराट उवाच

अहं खल्वपि संग्रामे शत्रूणां वशमागतः।
मोक्षितो भीमसेनेन गावश्चापि जितास्तथा॥ २५॥
एतेषां बाहुवीर्येण अस्माकं विजयो मृधे।
यदस्माभिरजानद्भिः किंचिदुक्तो नराधिपः॥ २६॥
क्षन्तुमर्हति तत् सर्वं धर्मात्मा ह्येष पाण्डवः।
पाण्डवांश्च ततः सर्वान् मत्स्यराजः प्रतापवान्॥ २७॥
धनंजयं पुरस्कृत्य दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रवीत्।
समुपाघ्राय मूर्धानं संश्लिष्य च पुनः पुनः॥ २८॥
युधिष्ठिरं च भीमं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।

तब विराटराज ने कहा कि मैं भी संग्राम में शत्रु के बस में हो गया था। तब भीम ने ही मुझे छुड़ाया और गायों को भी जीता। इन पाण्डवों की भुजाओं के पराक्रम से ही हमारी युद्ध में विजय हुई। हमने अनजान में जो कुछ भी अनुचित कह दिया है, उसे यह धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर क्षमा करें। फिर प्रतापी मत्स्यराज अर्जुन को आगे कर सारे पाण्डवों से मिले और हमारा बड़ा सौभाग्य है, यह कहने लगे। उन्होंने युधिष्ठिर, भीम आदि सारे पाण्डवों का सिर सूँघ कर उन्हें बार बार हृदय से लगाया।

नातृप्यद् दर्शने तेषां विराटो वाहिनीपतिः॥ २९॥
स प्रीयमाणो राजानं युधिष्ठिरमथाब्रवीत्।
दिष्ट्याभवन्तः सम्प्राप्ताः सर्वे कुशलिनो वनात्॥ ३०॥
दिष्ट्या सम्पालितं कृच्छ्रमज्ञातं वै दुरात्मभिः।
इदं च राज्यं पार्थाय यच्चान्यदपि किञ्चन॥ ३१॥
प्रतिगृह्णन्तु तत् सर्वं पाण्डवा अविशङ्कया।
उत्तरां प्रतिगृह्णातु सव्यसाची धनंजयः॥ ३२॥
अयं ह्यौपयिको भर्ता तस्याः पुरुषसत्तमः।

सेनाओं के स्वामी विराटराज उस समय पाण्डवों को देख देख कर तृप्त नहीं हो रहे थे। वे प्रसन्नता के साथ राजा युधिष्ठिर से बोले कि बड़े सौभाग्य की बात है कि आप लोग वन से सकुशल लौट आये और आपने अपना अज्ञातवास उन दुष्टों से अज्ञात रह कर व्यतीत कर लिया। मेरा राज्य और जो कुछ भी मेरे पास है, वह कुन्तीपुत्रों के लिये

है। पाण्डुपुत्र बिना किसी शंका के उसे ग्रहण करें। सव्यसाची अर्जुन मेरी पुत्री उत्तरा को पत्नी के रूप में स्वीकार करें। ये पुरुषश्रेष्ठ उसके योग्य पति होंगे।

एवमुक्तो धर्मराजः पार्थमैक्षद् धनंजयम्॥ ३३॥
ईक्षितश्चार्जुनो भ्रात्रा मत्स्यं वचनमब्रवीत्।
प्रतिगृह्णाम्यहं राजन् स्नुषां दुहितरं तव॥ ३४॥
युक्तश्चावां हि सम्बन्धो मत्स्यभारतयोरपि।

ऐसा कहने पर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने अर्जुन की तरफ देखा। भाई के द्वारा देखे जाने पर अर्जुन ने मत्स्यराज से कहा कि मैं आपकी पुत्री को अपनी पुत्रवधु के रूप में स्वीकार करता हूँ। मत्स्य देश और भरतवंशी हम दोनों के बीच में यही सम्बन्ध उचित है।

विराट उवाच

किमर्थं पाण्डवश्रेष्ठ भार्यां दुहितरं मम॥ ३५॥
प्रतिग्रहीतुं नेमां त्वं मया दत्तमिहेच्छसि।

अर्जुन उवाच

अन्तः पुरेऽहमुषितः सदा पश्यन् सुतां तव॥ ३६॥
रहस्यं च प्रकाशं च विश्वस्ता पितृवन्मयि।
प्रियो बहुतमश्चासं नर्तको गीतकोविदः॥ ३७॥
आचार्यवच्च मां नित्यं मन्यते दुहिता तव।
वयः स्थया तया राजन् सह संवत्सरोषितः॥ ३८॥
अतिशङ्का भवेत् स्थाने तव लोकस्य वा विभो।

तब विराटराज ने पूछा कि हे पाण्डव श्रेष्ठ! जब मैं स्वयं तुम्हें अपनी पुत्री पत्नी के रूप में दे रहा हूँ, तब आप क्यों नहीं स्वीकार करना चाहते? अर्जुन ने उत्तर दिया कि आपके अन्त:पुर में रहते हुए मैंने आपकी कन्या को एकान्त में भी और सबके सामने भी देखा है। वह मेरे ऊपर पिता के समान विश्वास करती आयी है। नर्तक और चतुर गायक के रूप में मैं उसका बहुत प्यारा रहा हूँ। आपकी पुत्री मुझे सदा गुरु के समान मानती रही है। हे राजन्! जब मैं एक वर्ष तक उसके साथ रहा तब वह युवावस्था को प्राप्त हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में आपके लोगों को हमारे विषय में सन्देह होगा और उनका वह सन्देह उचित आधार पर होगा।

तस्मान्निमन्त्रयेऽहं ते दुहितां मनुजाधिप॥ ३९॥
शुद्धो जितेन्द्रियो दान्तस्तस्याः शुद्धिः कृता मया।
अभिशापादहं भीतो मिथ्यावादात् परंतप॥ ४०॥
स्वस्रीयो वासुदेवस्य साक्षाद् देवशिशुर्यथा।
दयितश्चक्रहस्तस्य सर्वास्त्रेषु च कोविदः॥ ४१॥
अभिमन्युर्महाबाहुः पुत्रो मम विशाम्पते।
जामाता तव युक्तो वै भर्ता च दुहितुस्तव॥ ४२॥

इस कारण से ही राजन्! मैं आपकी कन्या को पुत्रवधु के रूप में निमन्त्रण दे रहा हूँ। मेरे इस कार्य से उसके चरित्र की शुद्धि स्पष्ट हो जायेगी और मैं भी शुद्धचरित्र, जितेन्द्रिय और दमनशील समझा जाऊँगा। हे परंतप! मैं अभिशाप और मिथ्यावाद से डरता हूँ। मेरा पुत्र साक्षात् देवपुत्र के समान है। सब प्रकार की अस्त्र विद्या में कुशल वह चक्रधारी वासुदेव का बहुत प्यारा भानजा है। हे प्रजा के स्वामी! विशाल बाहों वाले मेरे उस पुत्र का नाम अभिमन्यु है। वह आपकी पुत्री का उपयुक्त पति और आपका सुयोग्य जमाई सिद्ध होगा।

विराट उवाच

उपपन्नं कुरुश्रेष्ठे कुन्तीपुत्र धनंजये।
य एवं धर्मनित्यश्च जातज्ञानश्च पाण्डवः॥ ४३॥
यत् कृत्यं मन्यसे पार्थ क्रियतां तदनन्तरम्।
सर्वे कामाः समृद्धा मे सम्बन्धी तस्य मेऽर्जुनः॥ ४४॥
एवं ब्रुवति राजेन्द्रे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
अन्वशासत् स संयोगं समये मत्स्यपार्थयोः॥ ४५॥

तब राजा विराट ने कहा कि हे कुन्तीपुत्र! कुरुश्रेष्ठ! अर्जुन में यह भावना सर्वथा उचित है, जो ये पाण्डुपुत्र इस प्रकार धर्म में स्थिर और ज्ञानवान् हैं। हे कुन्ती पुत्र! अब इसके पश्चात् आप जो उचित समझें वह करिये। अर्जुन का सम्बन्धी होने पर तो मेरी सारी कामनाएँ पूरी हो गयीं। राजा विराट के यह कहने पर तब युधिष्ठिर ने भी मत्स्यराज और अर्जुन के उस सम्बन्ध का समर्थन किया।

पचासवाँ अध्याय : अर्जुन का अभिमन्यु से उत्तरा का विवाह कराना।

ततस्त्रयोदशे वर्षे निवृत्ते पञ्च पाण्डवाः।
उपप्लव्यं विराटस्य समपद्यन्त सर्वशः॥ १॥
अभिमन्युं च बीभत्सुरानिनाय जनार्दनम्।
आनर्तेभ्योऽपि दाशार्हानानयास पाण्डवः॥ २॥
काशिराजश्च शैव्यश्च प्रीयमाणौ युधिष्ठिरे।
अक्षौहिणीभ्यां सहितावागतौ पृथिवीपती॥ ३॥
अक्षौहिण्या च सहितो यज्ञसेनो महाबलः।
द्रौपद्याश्च सुता वीराः शिखण्डी चापराजितः॥ ४॥
धृष्टाद्युम्नश्च दुर्धर्षः सर्वशस्त्रभृतां वरः।

अब तेरहवाँ वर्ष व्यतीत हो जाने पर सारे पाँचों पाण्डव राजा विराट के उपप्लव्य नगर में आकर रहने लगे। अर्जुन ने अभिमन्यु को, श्रीकृष्ण को और आनर्त देश से अपने सम्बन्धियों को भी वहाँ बुलवा लिया। काशीराज और शैव्य ये दोनों राजा युधिष्ठिर के बड़े प्रेमी थे। ये एक एक अक्षौहिणी सेना के साथ वहाँ आये। अक्षौहिणी सेना के साथ ही महाबली द्रुपद, द्रौपदी के वीर पुत्र, किसी से पराजित न होने वाला शिखण्डी और सारे शस्त्र धारियों में उत्तम धृष्टद्युम्न भी वहाँ आये।

तानागतानभिप्रेक्ष्य मत्स्यो धर्मभृतां वरः॥ ५॥
पूजयामास विधिवत् सभृत्यबलवाहनान्।
तत्रागमद् वासुदेवो वनमाली हलायुधः॥ ६॥
कृतवर्मा च हार्दिक्यो युयुधानश्च सात्यकिः।
अनाधृष्टिस्तथाक्रूरः साम्बो निशठ एव च॥ ७॥
अभिमन्युमुपादाय सह मात्रा परंतपाः।
ततो विवाहो विधिवद् ववृधे मत्स्यपार्थयोः॥ ८॥

उन्हें वहाँ आया हुआ देखकर धर्मधारियों में श्रेष्ठ, मत्स्यराज ने सेवकों, सवारियों और सेना सहित उनका विधिवत् स्वागत सत्कार किया। वहाँ वनमाला धारण करने वाले श्रीकृष्ण, बलराम, हृदीकपुत्र कृतवर्मा, युयुधान नाम से प्रसिद्ध सात्यकि, अनाधृष्टि, अक्रूर, साम्ब और निशठ ये सारे परंतप अभिमन्यु को उसकी माता सुभद्रा को साथ लेकर आये थे। फिर मत्स्यराज और कुन्तीपुत्रों के मध्य विवाह का कार्य विधिपूर्वक प्रारम्भ हो गया।

परिवार्योत्तरां तास्तु राजपुत्रीमलंकृताम्।
सुतामिव महेन्द्रस्य पुरस्कृत्योपतस्थिरे॥ ९॥
तां प्रत्यगृह्णात् कौन्तेयः सुतस्यार्थे धनंजयः।
सौभद्रस्यानवद्याङ्गीं विराटतनयां तदा॥ १०॥
तत्रातिष्ठन्महाराज़ो रूपमिन्द्रस्य धारयन्।
स्नुषां तां प्रतिजग्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिर॥ ११॥
प्रतिगृह्य च तां पार्थः पुरस्कृत्य जनार्दनम्।
विवाहं कारयामास सौभद्रस्य महात्मनः॥ १२॥

फिर वस्त्राभूषणों से अलंकृत, इन्द्र की पुत्री के समान सुशोभित राजकुमारी उत्तरा को परिवार की स्त्रियाँ अपने साथ लेकर वहाँ उपस्थित हुईं। तब कुन्तीपुत्र अर्जुन ने अपने और सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु के लिये उस निर्दोष अंगों वाली विराटपुत्री उत्तरा को ग्रहण किया। इन्द्र के समान रूप धारण किये वहाँ उपस्थित महाराज युधिष्ठिर ने भी उसे अपनी पुत्रवधु के रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार उसे स्वीकार कर अर्जुन ने श्रीकृष्ण के सम्मुख मनस्वी अभिमन्यु का उसके साथ विवाह संस्कार सम्पन्न कराया।

उद्योग पर्व

पहला अध्याय : पाण्डवों का विराटराज की सभा में भविष्य के लिये विचार।

कृत्वा विवाहं तु कुरुप्रवीरा-
स्तदाभिमन्योर्मुदिताः स्वपक्षाः।
विश्रम्य रात्रावुषसि प्रतीताः
सभां विराटस्य ततोऽभिजग्मुः॥ १॥
अथासनान्याविशतां पुरस्ता-
दुभौ विराटद्रुपदौ नरेन्द्रौ।
वृद्धौ च मान्यौ पृथिवीपतीनां
पित्रा समं रामजनार्दनौ च॥ २॥
पाञ्चालराजस्य समीपतस्तु
शिनिप्रवीरः सहरौहिणेयः।
मत्स्यस्य राज्ञस्तु सुसंनिकृष्टे
जनार्दनश्चैव युधिष्ठिरश्च॥ ३॥
सुताश्च सर्वे द्रुपदस्य राज्ञो
भीमार्जुनौ माद्रवतीसुतौ च।
प्रद्युम्नसाम्बौ च युधि प्रवीरौ
विराटपुत्रैश्च सहाभिमन्युः॥ ४॥
उपाविशन् द्रौपदेयाः कुमाराः
सुवर्णचित्रेषु वरासनेषु।

अभिमन्यु का विवाह करने के उपरान्त पाण्डव तथा उनके पक्ष के सारे लोग बड़े प्रसन्न थे। उस रात्रि को विश्राम कर वे प्रातःकाल राजा विराट की सभा में उपस्थित हुए। वहाँ सबसे पहले जो सारे राजाओं में वृद्ध और मान्य थे, राजा द्रुपद और विराटराज आसनों पर बैठे। उसके पश्चात् बलराम और श्रीकृष्ण अपने पिता वसुदेव जी के साथ बैठे। पांचालराज के समीप शिनि वंश के श्रेष्ठ वीर सात्यकि बलराम जी के साथ बैठे हुए थे तथा मत्स्यराज के समीप श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के साथ विराजमान थे। राजा द्रुपद के सारे पुत्र, भीम, अर्जुन, माद्री के दोनों पुत्र, युद्ध में श्रेष्ठ प्रद्युम्न, और साम्ब तथा अभिमन्यु विराट पुत्रों के साथ और द्रौपदी के पाँचों पुत्र सब स्वर्ण जटित सुन्दर आसनों पर विद्यमान थे।

तथोपविष्टेषु महारथेषु
विराजमाना भरणाम्बरेषु॥ ५॥
रराज सा राजवती समृद्धा
ग्रहैरिव द्यौर्विमलैरुपेता।

श्रीकृष्ण उवाच- सर्वैर्भवद्भिर्विदितं यथायं
युधिष्ठिरः सौबलेनाक्षवत्याम्॥ ६॥
जितो निकृत्यापहृतं च राज्यं
वनप्रवासे समयः कृतश्च।
शक्तैर्विजेतुं तरसा महीं च
सत्ये स्थितैः सत्यरथैर्यथावत्॥ ७॥
पाण्डोः सुतैस्तद् व्रतमुग्ररूपं
वर्षाणि षट् सप्त च चीर्णमग्र्यैः।

वस्त्रआभूषणों से सुसज्जित उन महारथियों के बैठ जाने पर राजाओं से भरी हुई वह सभा इस प्रकार सुशोभित हो रही थी, जैसे उज्ज्वल तारों से भरा हुआ आकाश हो। तब श्रीकृष्ण ने सबसे कहना आरम्भ किया कि आप सब लोग इस बात को जानते हैं कि युधिष्ठिर को सुबलपुत्र शकुनि ने द्यूतसभा में किस प्रकार धोखे से पराजित किया, उनका राज्य छीन लिया और उनसे वन में रहने की शर्त स्वीकार कराई। ये वीरों में अग्रणी पाण्डव यद्यपि अपने वेग से सारे भूमण्डल को जीत सकते हैं, पर फिर भी सत्य का पालन करने में स्थित इन पाण्डुपुत्रों ने सत्य का ही आश्रय लेते हुए उस तेरह वर्ष तक वन तथा अज्ञातवास में रहने के उग्रव्रत का यथावत् पालन किया।

एतैः परप्रेष्यनियोगयुक्तै-
रिच्छद्भिराप्तं स्वकुलेन राज्यम्॥ ८॥
एवंगते धर्मसुतस्य राज्ञो
दुर्योधनस्यापि च यद्धितं स्यात्।
तच्चिन्तयध्वं कुरुपुङ्गवानां
धर्म्यं च युक्तं च यशस्करं च॥ ९॥

अधर्मयुक्तं न च कामयेत
राज्यं सुराणामपि धर्मराजः।
धर्मार्थयुक्तं तु महीपतित्वं
ग्रामेऽपि कस्मिंश्चिदयं बुभूषेत्॥ १०॥

अपनी कुलपरम्परा से प्राप्त राज्य को चाहते हुए इन्होंने तेरहवाँ वर्ष दूसरों की सेवा में रहकर बिताया। अब इस समय वर्तमान स्थिति में राजा युधिष्ठिर और दुर्योधन का भी जैसे हित हो, वह उपाय आप लोग विचार करें। ऐसा मार्ग हो, जो कुरुश्रेष्ठों के लिये धर्मयुक्त और यशकारी हो। धर्मराज युधिष्ठिर अधर्म से युक्त तो देवताओं के राज्य की भी इच्छा नहीं रखते किन्तु धर्म तथा अर्थ से युक्त यदि किसी ग्राम का भी राज्य मिलता हो तो ये उसे स्वीकार कर सकते हैं।

मिथ्योपचारेण यथा ह्यनेन
कृच्छ्रं महत् प्राप्तमसह्यरूपम्।
न चापि पार्थो विजितो रणे तैः
स्वतेजसा धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः॥ ११॥
तथापि राजा सहितः सुहृद्भि-
रभीप्सतेऽनामयमेव तेषाम्।
यत् तु स्वयं पाण्डुसुतैर्विजित्य
समाहृतं भूमिपतीन् प्रपीड्य॥ १२॥
तत् प्रार्थयन्ते पुरुषप्रवीराः
कुन्तीसुता माद्रवतीसुतौ च।
बालास्त्विमे तैर्विविधैरुपायैः
सम्प्रार्थिता हन्तुममित्रसंघैः॥ १३॥
राज्यं जिहीर्षद्भिरसद्भिरुग्रैः
सर्वं च तद् वो विदितं यथावत्।

धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अपनी शक्ति से युद्ध में कुन्ती पुत्र को नहीं जीता, मिथ्या व्यवहार से इनका राज्य छीना है। उनके इस मिथ्या व्यवहार से इन्हें कितना महान् और असह्य कष्ट उठाना पड़ा यह आप जानते हैं। पर फिर भी ये राजा युधिष्ठिर अपने मित्रों के साथ उनकी कुशलता ही चाहते हैं। इन पाण्डुपुत्रों ने स्वयं दूसरे राजाओं को जीतकर उनसे सम्पत्ति प्राप्त की थी। ये पुरुषश्रेष्ठ कुन्ती और माद्री के पुत्र अपनी उसी सम्पत्ति को उनसे माँग रहे हैं। ये लोग जब बाल्यावस्था में थे, तब से ही इनके उन उग्रस्वभाव के, असत्-आचरण करने वाले शत्रुओं ने संघ बनाकर इन्हें मारने के लिये तथा इनके राज्य को हड़प लेने के लिये चेष्टाएँ कीं। उन्हें आप लोग पूरी तरह से जानते ही हैं।

तेषां च लोभं प्रसमीक्ष्य वृद्धं
धर्मज्ञतां चापि युधिष्ठिरस्य॥ १४॥
सम्बन्धितां चापि समीक्ष्य तेषां
मतिं कुरुध्वं सहिताः पृथक् च।
इमे च सत्येऽभिरताः सदैव
तं पालयित्वा समयं यथावत्॥ १५॥

उनके बढ़ते हुए लोभ तथा युधिष्ठिर की धर्म परायणता को देख कर तथा उनके इनके साथ संबंध को भी देख कर आप लोग अलग-अलग भी और मिल कर भी कोई निश्चय कीजिये। ये सत्य में विद्यमान रहते हुए समझौते की शर्त का यथावत् पालन कर हमारे सामने उपस्थित हैं।

अतोऽन्यथा तैरुपचर्यमाणा
हन्युः समेतान् धृतराष्ट्रपुत्रान्।
तैर्विप्रकारं च निशम्य कार्ये
सुहृज्जनास्तान् परिवारयेयुः॥ १६॥
युद्धेन बाधेयुरिमांस्तथैव
तैर्बाध्यमाना युधि तांश्च हन्युः।
तथापि नेमेऽल्पतया समर्था-
स्तेषां जयायेति भवेन्मतं वः॥ १७॥
समेत्य सर्वे सहिताः सुहृद्भि-
स्तेषां विनाशाय यतेयुरेव।

यदि अब भी वे लोग इनके साथ विपरीत व्यवहार करेंगे तो ये सारे धृतराष्ट्रपुत्रों को मार सकते हैं। इसलिये उनके विपरीतव्यवहार को देख कर मित्र लोगों का यह कर्त्तव्य है कि वे उन्हें उस विपरीतकार्य से रोकें। यदि इन्हें उनके द्वारा युद्ध छेड़कर पीड़ित किया गया तो ये भी उन्हें युद्ध में मार सकते हैं। आप लोगों में से कुछ यह सोचते होंगे कि ये अल्पसंख्यक होने के कारण उन्हें जीत नहीं सकते। तो भी ये सब अपने मित्रों के साथ एकत्र होकर उनके विनाश के लिये युद्ध करेंगे ही।

दुर्योधनस्यापि मतं यथाव-
न्न ज्ञायते किं नु करिष्यतीति॥ १८॥
अज्ञायमाने च मते परस्य
किं स्यात् समारभ्यतमं मतं वः।

तस्मादितो गच्छतु धर्मशीलः
शुचिः कुलीनः पुरुषोऽप्रमत्तः॥ १९॥
दूतः समर्थः प्रशमाय तेषां
राज्यार्धदानाय युधिष्ठिरस्य।

अभी दुर्योधन के मत का भी पता नहीं है कि वह क्या करेगा। शत्रु के मत को जाने बिना, आप लोग क्या निश्चय कर सकते हैं? इसलिये यहाँ से एक ऐसा धर्मशील, पवित्र, कुलीन और प्रमादरहित पुरुष जाना चाहिये जो दूत के कार्य में उन्हें शान्त करने में तथा युधिष्ठिर को उनका आधा राज्य दिलाने में समर्थ हो।

बलदेव उवाच– श्रुतं भवद्भिर्गदपूर्वजस्य
वाक्यं यथा धर्मवदर्थवच्च॥ २०॥
अजातशत्रोश्च हितं हितं च
दुर्योधनस्यापि तथैव राज्ञः।
अर्धं हि राज्यस्य विसृज्य वीराः।
कुन्तीसुतास्तस्य कृते यतन्ते॥ २१॥
प्रदाय चार्धं धृतराष्ट्रपुत्रः
सुखी सहास्माभिरतीव मोदेत्।
लब्ध्वा हि राज्यं पुरुषप्रवीराः
सम्यक्प्रवृत्तेषु परेषु चैव॥ २२॥
ध्रुवं प्रशान्ताः सुखमाविशेयु-
स्तेषां प्रशान्तिश्च हितं प्रजानाम्।

तब बलराम जी बोले कि आप लोगों ने गद के बड़े भाई श्रीकृष्ण के धर्म और अर्थ से युक्त वाक्यों को सुना है। इनकी बात अजातशत्रु युधिष्ठिर की भी तथा राजा दुर्योधन की भी हितकारी है। कुन्ती के पुत्र आधेराज्य को छोड़कर केवल अपने आधेराज्य के लिये प्रयत्न कर रहे हैं। धृतराष्ट्रपुत्र भी आधाराज्य इन्हें देकर हमारे साथ प्रसन्नता और सुख के साथ रहेगा। ये पुरुषश्रेष्ठ राज्य को प्राप्त कर और परपक्ष की तरफ से ठीक व्यवहार होने पर निश्चित रूप से शान्त होकर सुख के साथ रहेंगे। इससे उन कौरवों को भी शान्ति प्राप्त होगी और प्रजाओं को सुख मिलेगा।

दुर्योधनस्यापि मतं च वेत्तुं
वक्तुं च वाक्यानि युधिष्ठिरस्य॥ २३॥
प्रियं च मे स्याद् यदि तत्र कश्चिद्
व्रजेच्छमार्थे कुरुपाण्डवानाम्।
स भीष्ममामन्त्र्य कुरुप्रवीरं
वैचित्रवीर्यं च महानुभावम्॥ २४॥
द्रोणं सपुत्रं विदुरं कृपं च
गान्धारराजं च ससूतपुत्रम्।
सर्वे च येऽन्ये धृतराष्ट्रपुत्रा
बलप्रधाना निगमप्रधानाः॥ २५॥
स्थिताश्च धर्मेषु तथा स्वकेषु
लोकप्रवीराः श्रुतकालवृद्धाः।
एतेषु सर्वेषु समागतेषु
पौरेषु वृद्धेषु च संगतेषु॥ २६॥
व्रवीतु वाक्यं प्रणिपातयुक्तं
कुन्तीसुतस्यार्थकरं यथा स्यात्।

यदि कोई दूत युधिष्ठिर का सन्देश कहने के लिये, दुर्योधन के विचार जानने के लिये तथा कौरवों और पाण्डवों में शान्ति की स्थापना के लिये वहाँ जाये तो यह मेरे लिये बड़ी प्रिय बात होगी। वह भेजा जाने वाला व्यक्ति वहाँ कुरुवंश के श्रेष्ठ वीर भीष्म को, विचित्रवीर्यपुत्र महानुभाव धृतराष्ट्र को, पुत्रसहित द्रोणाचार्य को, विदुर को, कृपाचार्य को, शकुनि तथा कर्ण को, धृतराष्ट्र के दूसरे सारे पुत्रों को एवं प्रजा के दूसरे लोगों को, जो शक्तिशाली, वेदज्ञ, धर्म का पालन करने वाले, लोक प्रसिद्ध वीर, विद्यावृद्ध, और वयोवृद्ध हों, उन सबको बुला कर उनके आ जाने पर विनय पूर्वक इस प्रकार से अपनी बात कहे कि जिससे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर का प्रयोजन पूरा हो जाये।

सर्वास्ववस्थासु च ते न कोप्या
ग्रस्तो हि सोऽर्थो बलमाश्रितैस्तैः॥ २७॥
प्रियाभ्युपेतस्य युधिष्ठिरस्य
द्यूते प्रसक्तस्य हृतं स राज्यम्।
निवार्यमाणश्च कुरुप्रवीरः
सर्वैः सुहृद्भिर्ह्ययमप्यतज्ज्ञः॥ २८॥
स दीव्यमानः प्रतिदीव्य चैनं
गान्धारराजस्य सुतं मताक्षम्।
हित्वा हि कर्णं च सुयोधनं च
समाह्वयद् देवितुमाजमीढः॥ २९॥
दुरोदरास्तत्र सहस्रशोऽन्ये
युधिष्ठिरो यान् विषहेत जेतुम्।
उत्सृज्य तान् सौबलमेव चायं
समाह्वयत् तेन जितोऽक्षवत्याम्॥ ३०॥

स दीव्यमानः प्रतिदेवनेन
अक्षेषु नित्यं तु पराङ्मुखेषु।
संरम्भमाणो विजितः प्रसह्य
तत्रापराधः शकुनेर्न कश्चित्॥ ३१॥

पर किसी भी अवस्था में कौरवों को कुपित नहीं करना चाहिये क्योंकि उन्होंने बल का आश्रय लेकर ही इनके धन को अधिकार में किया है। युधिष्ठिर द्यूत को प्रिय मान कर, वहाँ जाकर उसमें प्रवृत्त हुए थे, तब उन्होंने इनका राज्य लिया था। इन कुरुश्रेष्ठ को सारे मित्रों ने मना किया, तो भी ये उस तरफ से अनजान होकर जूआ खेलते रहे। अजामीढ़वंशी इन्होंने कर्ण और दुर्योधन को छोड़कर द्यूतक्रीड़ा में कुशल शकुनि को ही खेलने के लिये ललकारा। वहाँ सभा में बहुत सारे दूसरे खिलाड़ी थे, जिन्हें ये जीत सकते थे पर इन्होंने शकुनि को ही खेल के लिये बुलाया और इसलिये उसके साथ हार गये। खेलते हुए प्रतिपक्षी के पासे जब लगातार इनके विरुद्ध पड़ने लगे, तो भी ये क्रोध में आकर जबर्दस्ती खेलते ही रहे। इसी से हार गये। इसमें शकुनि का कोई अपराध नहीं है।

तस्मात् प्रणम्यैव वचो ब्रवीतु
वैचित्रवीर्यं बहुसामयुक्तम्।
तथा हि शक्यो धृतराष्ट्रपुत्रः
स्वार्थे नियोक्तुं पुरुषेण तेन॥ ३२॥
अयुद्धमाकाङ्क्षत कौरवाणां
साम्नैव दुर्योधनमाह्वयध्वम्।
साम्ना जितोऽर्थोऽर्थकरो भवेत
युद्धेऽनयो भविता नेह सोऽर्थः॥ ३३॥
एवं ब्रुवत्येव मधुप्रवीरे
शिनिप्रवीरः सहसोत्पपात।
तच्चापि वाक्यं परिनिन्द्य तस्य
समाददे वाक्यमिदं समन्युः॥ ३४॥

इसलिये वह दूत धृतराष्ट्र को प्रणाम करके ही बहुत सामनीति का आश्रय लेता हुआ बातें करे। इसी प्रकार से उस दूत द्वारा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन से अपने प्रयोजन की पूर्ति करायी जा सकती है। कौरवों के साथ युद्ध की इच्छा मत करो। समझौते की भावना से ही दुर्योधन को वार्ता के लिये आमन्त्रित करो। समझाकर प्राप्त किया हुआ प्रयोजन हितकारी होता है। युद्ध में अन्याय होता है और उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। मधुवंश के प्रमुख वीर बलराम जब ऐसा कह रहे थे, तब शिनिवंश के श्रेष्ठ वीर सात्यकि एक दम उछल कर खड़े हो गये। उन्होंने बलराम के वाक्य की कड़ी निन्दा करते हुए क्रोध सहित यह कहना आरम्भ किया।

यादृशः पुरुषस्यात्मा तादृशं सम्प्रभाषते।
यथारूपोऽन्तरात्मा ते तथारूपं प्रभाषसे॥ ३५॥
सन्ति वै पुरुषाः शूराः सन्ति कापुरुषास्तथा।
उभावेतौ दृढौ पक्षौ दृश्येते पुरुषान् प्रति॥ ३६॥
एकस्मिन्नेव जायेते कुले क्लीबमहाबलौ।
फलाफलवती शाखे यथैकस्मिन् वनस्पतौ॥ ३७॥
नाभ्यसूयामि ते वाक्यं ब्रुवतो लाङ्गलध्वज।
ये तु शृण्वन्ति ते वाक्यं तानसूयामि माधव॥ ३८॥

सात्यकि ने कहा कि जैसी मनुष्य की आत्मा होती है, वैसी ही बातें उसके मुख से निकलती हैं। हे बलरामजी! जैसी आपकी अन्तरात्मा है, आप वैसी ही बात कह रहे हैं। संसार में शूरवीर पुरुष भी हैं और कायर पुरुष भी हैं। दोनों तरह के पुरुष निश्चित रूप से दिखाई देते हैं। एक ही परिवार में महाबली और नपुंसक दोनों तरह के पुरुष जन्म ले लेते हैं। एक ही वृक्ष में एक शाखा फलवाली, तो दूसरी फलहीन होती है। हे हल से चिह्नित ध्वजा वाले! मैं आपकी बातों की निन्दा नहीं कर रहा। मैं तो उन लोगों भी निन्दा कर रहा हूँ, जो आपकी बातें सुन रहे हैं।

कथं हि धर्मराजस्य दोषमल्पमपि ब्रुवन्।
लभते परिषन्मध्ये व्याहर्तुमकुतोभयः॥ ३९॥
समाहूय महात्मानं जितवन्तोऽक्षकोविदाः।
अनक्षज्ञं यथाश्रद्धं तेषु धर्मजयः कुतः॥ ४०॥
यदि कुन्तीसुतं गेहे क्रीडन्तं भ्रातृभिः सह।
अभिगम्य जयेयुस्ते तत् तेषां धर्मतो भवेत्॥ ४१॥
समाहूय तु राजानं क्षत्रधर्मरतं सदा।
निकृत्या जितवन्तस्ते किं नु तेषां परं शुभम्॥ ४२॥
कथं प्रणिपतेच्चायमिह कृत्वा पणं परम्।

धर्मराज युधिष्ठिर के थोड़े से भी दोष के बारे में कहनेवाला, सभा में निर्भयता के साथ कहने का अवसर कैसे पा सकता है? उन्होंने जो कि जूए में चालाक थे, इन महात्मा को जो जूए का खेल

नहीं जानते थे, अपने घर बुलाकर अपनी योजना के अनुसार जीता है, फिर उन्होंने धर्मपूर्वक विजय कैसे प्राप्त की? यदि कुन्तीपुत्र अपने घर में भाइयों के साथ खेल रहे होते, फिर ये कौरव लोग वहाँ जाकर उन्हें जीतते, तो वह उनकी धर्मानुसार जय होती। उन राजा को जो सदा क्षत्रिय धर्म में लगे रहते थे, बुला कर छलपूर्वक इन्हें उन्होंने जीता है, फिर उनका यह कर्म परमपवित्र कैसे माना जा सकता है? इन्होंने तो प्रतिज्ञा को पूरा कर दिया है, फिर ये उनके आगे मस्तक क्यों झुकाएँ?

वनवासाद् विमुक्तस्तु प्राप्तः पैतामहं पदम्॥ ४३॥
अथ ते न व्यवस्यन्ति प्रणिपाताय धीमतः।
गमिष्यन्ति सहामात्या यमस्य सदनं प्रति॥ ४४॥
को हि गाण्डीवधन्वानं कश्च चक्रायुधं युधि।
मां चापि विषहेत् क्रुद्धं कश्च भीमं दुरासदम्॥ ४५॥
यमौ च दृढधन्वानौ धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्।
सौभद्रं च महेष्वासममरैरपि दुःसहम्॥ ४६॥

वनवास से मुक्त होकर अब ये अपने बाप दादों के राज्य के अधिकारी हो गये हैं। इसलिये यदि वे इन धीमान् युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम नहीं करेंगे, तो अपने मंत्रियों सहित मृत्यु के घर में जायेंगे। युद्ध में गाण्डीव धनुषवाले अर्जुन को, चक्रधारी श्रीकृष्ण को, मुझे और दुर्धर्ष भीम को, दृढ़ धनुषवाले नकुल, सहदेव को और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न को, तथा देवताओं के लिये भी दुःसह महाधनुर्धर अभिमन्यु को कौन सहन कर सकता है?

ते वयं धृतराष्ट्रस्य पुत्रं शकुनिना सह।
कर्णं चैव निहत्याजावभिषेक्ष्याम पाण्डवम्॥ ४७॥
नाधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून् हत्वाऽऽततायिनः।
अधर्म्यमयशस्यं च शात्रवाणां प्रयाचनम्॥ ४८॥
हृद्गतस्तस्य यः कामस्तं कुरुध्वमतन्द्रिताः।
निसृष्टं धृतराष्ट्रेण राज्यं प्राप्नोतु पाण्डवः।
निहता वा रणे सर्वे स्वप्स्यन्ति वसुधातले॥ ४९॥

हम धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन को शकुनि के साथ तथा कर्ण को भी युद्ध में मार कर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर का अभिषेक करेंगे। आततायी शत्रुओं को मारने में कोई अधर्म नहीं है। शत्रुओं से याचना करना ही अधर्म और अपयश की बात है। युधिष्ठिर के हृदय में जो इच्छा है, उसे आप लोग आलस्य छोड़ कर पूरा करें। धृतराष्ट्र के द्वारा छोड़े हुए राज्य को युधिष्ठिर प्राप्त करें। नहीं तो वे सारे कौरव युद्ध में मारे जाकर भूमि पर सोयेंगे।

दूसरा अध्याय : पाण्डवों द्वारा भविष्य के लिये विचार।

द्रुपद उवाच

एवमेतन्महाबाहो भविष्यति न संशयः।
न हि दुर्योधनो राज्यं मधुरेण प्रदास्यति॥ १॥
अनुवर्त्स्यति तं चापि धृतराष्ट्रः सुतप्रियः।
भीष्मद्रोणौ च कार्पण्यान्मौर्ख्याद् राधेयसौबलौ॥ २॥
बलदेवस्य वाक्यं तु मम ज्ञाने न युज्यते।
न तु वाच्यो मृदुवचो धार्तराष्ट्रः कथंचन॥ ३॥
न हि मार्दवसाध्योऽसौ पापबुद्धिर्मतो मम।
गर्दभे मार्दवं कुर्याद् गोषु तीक्ष्णं समाचरेत्॥ ४॥
मृदु दुर्योधने वाक्यं यो ब्रूयात् पापचेतसि।

तब द्रुपद ने कहा कि हे महाबाहु! ऐसा ही होगा, इसमें संशय नहीं है। क्योंकि दुर्योधन मधुरता से राज्य नहीं देगा। पुत्र से प्रेम करने वाला धृतराष्ट्र भी उसी का अनुकरण करेगा। भीष्म और द्रोणाचार्य दीनता के कारण, कर्ण और शकुनि मूर्खता के कारण उसका समर्थन करेंगे। बलदेव जी की बात मेरी समझ में ठीक नहीं है। मेरे विचार से दुर्योधन से मधुरता से बात करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। क्योंकि वह पापबुद्धि मधुरता से बस में आने वाला नहीं है। उस पापीहृदय से मधुरतापूर्वक बात कहना ऐसे ही है जैसे गधे को पुचकारा जाये और गायों को डाँटा जाये।

मृदुं वै मन्यते पापो भाषमाणमशक्तिकम्॥ ५॥
जितमर्थं विजानीयादबुधो मार्दवे सति।
एतच्चैव करिष्यामो यत्नश्च क्रियतामिह॥ ६॥
प्रख्यापयाम मित्रेभ्यो बलान्युद्योजयन्तु नः।
स च दुर्योधनो नूनं प्रेषयिष्यति सर्वशः॥ ७॥
पूर्वाभिपन्नाः सन्तश्च भजन्ते पूर्वचोदनम्।
तत् त्वरध्वं नरेन्द्राणां पूर्वमेव प्रचोदने॥ ८॥
महद्धि कार्यं वोढव्यमिति मे वर्तते मतिः।

वह पापी मधुर बात कहने वाले को कमजोर समझता है। नम्रता का व्यवहार करने पर वह मूर्ख उसके धन को जीता हुआ समझने लगता है। इसलिये अब यही अर्थात् युद्ध के लिये ही तैयारी करेंगे। आप लोग इसके लिये प्रयत्न कीजिये। हमें अपने मित्रों के पास सन्देश भिजवाने चाहियें कि वे हमारे लिये सेनाओं को तैयार करें। वह दुर्योधन भी अवश्य ही सब जगह अपने सन्देश भेजेगा। प्रायः लोग पहले जिस तरफ से निमंत्रित हो जाते हैं, फिर उसी पक्ष की सहायता करते हैं। इसलिये राजाओं को पहले ही निमन्त्रण भेजने के लिये प्रयत्न करो। मेरा विचार है कि यह बहुत बड़ा कार्य है, जिसका भार हमें वहन करना है।

अयं च ब्राह्मणो विद्वान् मम राजन् पुरोहितः॥ ९॥
प्रेष्यतां धृतराष्ट्राय वाक्यमस्मै प्रदीयताम्।
यथा दुर्योधनो वाच्यो यथा शान्तनवो नृपः॥ १०॥
धृतराष्ट्रे यथा वाच्यो द्रोणश्च रथिनां वरः।

हे राजन्! ये मेरे पुरोहित विद्वान् ब्राह्मण हैं। इन्हें धृतराष्ट्र के पास सन्देश देकर भेजिये। इन्हें समझा दीजिये कि इन्हें क्या दुर्योधन से कहना है? क्या शान्तनुपुत्र भीष्म से कहना है? क्या राजा धृतराष्ट्र से कहना है? और क्या रथियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य से कहना है?

वासुदेव उवाच

उपपन्नमिदं वाक्यं सोमकानां धुरंधरे॥ ११॥
अर्थसिद्धिकरं राज्ञः पाण्डवस्यामितौजसः।
एतच्च पूर्वं कार्यं नः सुनीतमभिकाङ्क्षताम्॥ १२॥
अन्यथा ह्याचरन् कर्म पुरुषः स्यात् सुबालिशः।
किं तु सम्बन्धकं तुल्यमस्माकं कुरुपाण्डुषु॥ १३॥
यथेष्टं वर्तमानेषु पाण्डवेषु च तेषु च।
ते विवाहार्थमानीता वयं सर्वे तथा भवान्॥ १४॥
कृते विवाहे मुदिता गमिष्यामो गृहान् प्रति।

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि सोमकवंश के धुरंधरवीर द्रुपद ने जो बात कही है वह उन्हीं के उपयुक्त है। वह अमिततेजस्वी राजा युधिष्ठिर के अर्थ की सिद्धि कराने वाली है। सुनीति को चाहने वाले हमारे द्वारा पहले यही कार्य करने चाहियें। इससे विपरीत कार्य करने वाला अत्यन्त मूर्ख माना जाता है। किन्तु हमारा अर्थात् यादवों का कौरवों और पाण्डवों के साथ समान संबंध है। हम पाण्डवों और उनके साथ यथायोग्य व्यवहार करते हैं। हम सब और आप लोग यहाँ विवाह में सम्मिलित होने के लिये आये हैं। अब विवाह कार्य हो जाने पर हम प्रसन्न होकर अपने घरों को जायेंगे।

भवान् वृद्धतमो राज्ञां वयसा च श्रुतेन च॥ १५॥
शिष्यवत् ते वयं सर्वे भवामेह न संशयः।
भवन्तं धृतराष्ट्रश्च सततं बहु मन्यते॥ १६॥
आचार्ययोः सखा चासि द्रोणस्य च कृपस्य च।
स भवान् प्रेषयत्वद्य पाण्डवार्थकरं वचः॥ १७॥
सर्वेषां निश्चितं तन्नः प्रेषयिष्यति यद् भवान्।
यदि तावच्छमं कुर्यान्न्यायेन कुरुपुङ्गवः॥ १८॥
नभवेत् कुरुपाण्डूनां सौभ्रात्रेण महान् क्षयः।

आप सारे राजाओं में विद्वत्ता और आयु दोनों में बड़े हैं। हम सब आपके शिष्यों के समान हैं। इसमें संशय नहीं है। आपको धृतराष्ट्र भी सदा बड़ा सम्मान देते हैं। आप दोनों आचार्यों और कृपाचार्य के मित्र हैं। आप पाण्डवों के लिये जो हितकारी सन्देश है, उसे भेजिये। जो भी सन्देश आप भेजेंगे, वह निश्चित रूप से हमारा भी मान्य होगा। यदि वह कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन भाईचारे से न्याय के अनुसार शान्तियुक्त मार्ग स्वीकार कर ले तो, कौरवों और पाण्डवों के बीच होने वाला विनाश रुक जायेगा।

अथ दर्पान्वितो मोहान्न कुर्याद् धृतराष्ट्रजः॥ १९॥
अन्येषां प्रेषयित्वा च पश्चादस्मान् समाह्वये।
ततो दुर्योधनो मन्दः सहामात्यः सबान्धवः॥ २०॥
निष्ठामापत्स्यते मूढः क्रुद्धे गाण्डीवधन्वनि।

यदि दर्प से युक्त और मोहवश होकर धृतराष्ट्र पुत्र हमारी बात नहीं माने तो दूसरों को युद्ध का निमन्त्रण भेजकर अन्त में हमें बुलाना। फिर मन्दबुद्धि मूढ दुर्योधन गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन के क्रुद्ध हो जाने पर अपने बान्धवों और मन्त्रियों के साथ अवश्य ही नष्ट हो जायेगा।

ततः सत्कृत्य वार्ष्णेयं विराटः पृथिवीपतिः॥ २१॥
गृहान् प्रस्थापयामास सगणं सहबाधवम्।
द्वारकां तु गते कृष्णे युधिष्ठिरपुरोगमाः॥ २२॥
चक्रुः सांग्रामिकं सर्वं विराटश्च महीपतिः।
ततः प्रज्ञावयोवृद्धं पाञ्चाल्यः स्वपुरोहितम्।
कुरुभ्यः प्रेषयामास युधिष्ठिरमते स्थितः॥ २३॥

तब राजा विराट ने श्रीकृष्ण जी को सत्कार के साथ अपने सेवकों और बान्धवों सहित अपने घरों को जाने के लिये विदा कर दिया। श्रीकृष्ण जी के द्वारिका को चले जाने युधिष्ठिर आदि पाण्डव और राजा विराट युद्ध की सारी तैयारियाँ करने लगे। फिर बुद्धि और आयु में वृद्ध पांचालनरेश द्रुपद ने युधिष्ठिर की सम्मति के अनुसार अपने पुरोहित को कौरवों के पास भेजा।

तीसरा अध्याय : द्रुपद के पुरोहित को हस्तिनापुर भेजा जाना।

स भवान् कृतबुद्धीनां प्रधान इति मे मतिः।
कुलेन च विशिष्टोऽसि वयसा च श्रुतेन च॥ १॥
प्रज्ञया सदृशश्चासि शुक्रेणाङ्गिरसेन च।
विदितं चापि ते सर्वं यथावृत्तः स कौरवः॥ २॥
पाण्डवश्च यथावृत्तः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
धृतराष्ट्रस्य विदिते वञ्चिताः पाण्डवाः परैः॥ ३॥
विदुरेणानुनीतोऽपि पुत्रमेवानुवर्तते।
शकुनिर्बुद्धिपूर्वं हि कुन्तीपुत्रं समाह्वयत्॥ ४॥
अनक्षज्ञं मताक्षः सन् क्षत्रवृत्ते स्थितं शुचिम्।

द्रुपदराज ने अपने पुरोहित को बुलाकर उनसे कहा कि आप मेरे विचार से बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं, आप कुल से भी श्रेष्ठ हैं और आयु तथा ज्ञान में भी बढ़चढ़कर हैं। आप बुद्धिमत्ता में शुक्राचार्य और बृहस्पति के समान हैं। आप जानते हैं कि वह कौरव दुर्योधन किस प्रकार के आचारविचार का है और ये कुन्तीपुत्र पाण्डव युधिष्ठिर किस प्रकार के आचारविचार के हैं? धृतराष्ट्र की जानकारी में होते हुए ही शत्रुओं ने पाण्डवों को ठगा था। विदुर के द्वारा समझाने पर भी धृतराष्ट्र अपने पुत्र का ही पक्ष लेता था। शकुनि ने जो जूए के खेल में निपुण है, सोचसमझकर युधिष्ठिर को जो जूआ खेलना नहीं जानते और पवित्र बुद्धि से क्षत्रिय धर्म में विद्यमान हैं, जूआ खेलने के लिये बुलाया।

ते तथा वञ्चयित्वा तु धर्मराजं युधिष्ठिरम्॥ ५॥
न कस्याञ्चिदवस्थायां राज्यं दास्यन्ति वै स्वयम्।
भवांस्तु धर्मसंयुक्तं धृतराष्ट्रं ब्रुवन् वचः॥ ६॥
मनांसि तस्य योधानां ध्रुवमावर्तयिष्यति।
विदुरश्चापि तद् वाक्यं साधयिष्यति तावकम्॥ ७॥
भीष्मद्रोणकृपादीनां भेदं संजनयिष्यति।
अमात्येषु च भिन्नेषु योधेषु विमुखेषु च॥ ८॥
पुनरेकत्रकरणं तेषां कर्म भविष्यति।

उन्होंने इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर को ठगा। अब ठगने पर वे किसीप्रकार भी अपनेआप राज्य को नहीं लौटायेंगे। आप धर्म से युक्त बातें धृतराष्ट्र से कहकर उसके योद्धाओं का मन निश्चित रूप से उसकी तरफ से फेर देंगे। विदुर भी आपकी बात का समर्थन करेंगे। आप भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि में भेद उत्पन्न कर देंगे। मन्त्रियों में भेद उत्पन्न हो जाने पर और योद्धाओं के विमुख हो जाने पर उन्हें पुनः एकत्र करने का कार्य उनके सामने उपस्थित हो जायेगा।

एतस्मिन्नन्तरे पार्थाः सुखमेकाग्रबुद्धयः॥ ९॥
सेनाकर्म करिष्यन्ति द्रव्याणां चैव संचयम्।
विद्यमानेषु च स्वेषु लम्बमाने तथा त्वयि॥ १०॥
न तथा ते करिष्यन्ति सेनाकर्म न संशयः।
एतत् प्रयोजनं चात्र प्राधान्येनोपलभ्यते॥ ११॥
संगत्या धृतराष्ट्रश्च कुर्याद् धर्म्यं वचस्तव।
स भवान् धर्मयुक्तश्च धर्म्यं तेषु समाचरन्॥ १२॥
कृपालुषु परिक्लेशान् पाण्डवीयान् प्रकीर्तयन्।
वृद्धेषु कुलधर्मं च ब्रुवन् पूर्वैरनुष्ठितम्॥ १३॥
विभेत्स्यति मनांस्येषामिति मे नात्र संशयः।

इसी बीच में कुन्तीपुत्र एकाग्रचित्त होकर आराम से सेनाएँ इकट्ठी करने तथा आवश्यक सामग्री को एकत्र करने का कार्य कर लेंगे। वहाँ हमारे अपने लोगों के विद्यमान रहने और आपके वहाँ विलम्ब करने पर वे सेना एकत्र करने का कार्य उतने अच्छे तरीके से नहीं कर सकेंगे, इसमें कोई शक नहीं हैं। आपको भेजने का प्रधान प्रयोजन यही है। हो सकता है कि आपकी संगति से धृतराष्ट्र आपकी धर्मानुकूल बातों को स्वीकार कर ले। आप धर्मपरायण हैं। उनके साथ धर्मानुकूल व्यवहार करते हुए, पाण्डवों पर कृपाबुद्धि रखने वाले वृद्धों से पूर्वजों के द्वारा अनुष्ठित कुलधर्म का बखान करते हुए, पाण्डवों द्वारा अनुभव किये गये क्लेशों का वर्णन करते हुए आप उनके मनों को उनकी तरफ से भेद लेंगे, इसमें कोई संशय मुझे नहीं है।

न च तेभ्यो भयं तेऽस्ति ब्राह्मणो ह्यसि वेदवित्॥ १४॥
दूतकर्मणि युक्तश्च स्थविरश्च विशेषतः।
स भवान् पुष्ययोगेन मुहूर्तेन जयेन च॥ १५॥
कौरवेयान् प्रयात्वाशु कौन्तेयस्यार्थसिद्धये।
तथानुशिष्टः प्रययौ द्रुपदेन महात्मना।
पुरोधा वृत्तसम्पन्नो नगरं नागसाह्वयम्॥ १६॥

आपको उनसे कोई भय भी नहीं है क्योंकि आप ब्राह्मण है, वेद के विद्वान् हैं, दूतकार्य में नियुक्त हैं और विशेषरूप से आप वृद्ध हैं। इसलिये आप पुष्य नक्षत्र में जय नाम के मुहूर्त में, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के कार्य की सिद्धि के लिये कौरवों के पास जल्दी जाइये। तब महात्मा द्रुपद के द्वारा इस प्रकार समझाए जाने पर सदाचार से युक्त पुरोहित ने हस्तिनापुर की तरफ प्रस्थान किया।

चौथा अध्याय : श्रीकृष्ण जी का अर्जुन, दुर्योधन दोनों को सहायता का वचन।

पुरोहितं ते प्रस्थाप्य नगरं नागसाह्वयम्।
दूतान् प्रस्थापयामासुः पार्थिवेभ्यस्ततस्ततः॥ १॥
प्रस्थाप्य दूतानन्यत्र द्वारकां पुरुषर्षभः।
स्वयं जगाम कौरव्यः कुन्तीपुत्रो धनंजयः॥ २॥
गते द्वारवतीं कृष्णे बलदेवे च माधवे।
सह वृष्ण्यन्धकैः सर्वैर्भोजैश्च शतशस्तदा॥ ३॥
सर्वमागमयामास पाण्डवानां विचेष्टितम्।
धृतराष्ट्रात्मजो राजा गूढैः प्रणिहितैश्चरैः॥ ४॥

पुरोहित जी को हस्तिनापुर भेजकर पाण्डवों ने मित्र राजाओं के पास अलग-अलग दूतों को भेजना आरम्भ कर दिया। दूसरे स्थानों पर दूतों को भेजकर द्वारिका के लिये कुरुनन्दन, कुन्तीपुत्र पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन स्वयं वहाँ गये। मधुवंशी कृष्ण और बलराम के अपने वृष्णि, अन्धक और भोजवंशीय सैकड़ों साथियों के साथ द्वारिका की तरफ प्रस्थान करने पर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन ने अपने भेजे हुए गुप्तचरों के द्वारा पाण्डवों के सारे क्रियाकलापों का पता लगा लिया।

स श्रुत्वा माधवं यान्तं सदश्वैरनिलोपमैः।
बलेन नातिमहता द्वारकामभ्ययात् पुरीम्॥ ५॥
तमेव दिवसं चापि कौन्तेयः पाण्डुनन्दनः।
आनर्तनगरीं रम्यां जगामाशु धनंजयः॥ ६॥
तौ यात्वा पुरुषव्याघ्रौ द्वारकां कुरुनन्दनौ।
सुप्तं ददृशतुः कृष्णं शयानं चाभिजग्मतुः॥ ७॥
ततः शयाने गोविन्दे प्रविवेश सुयोधनः।
उच्छीर्षतश्च कृष्णस्य निषसाद वरासने॥ ८॥
ततः किरीटी तस्यानुप्रविवेश महामनाः।
पश्चाश्चैव स कृष्णस्य प्रह्वोऽतिष्ठत् कृताञ्जलिः॥ ९॥

श्री कृष्ण जी को द्वारिका की तरफ गया हुआ सुन कर दुर्योधन थोड़ी सी सेना के साथ, वायु के समान उत्तम घोड़ों के द्वारा द्वारिकापुरी की तरफ चल दिया। उसी दिन पाण्डुनन्दन, कुन्तीपुत्र अर्जुन ने भी रमणीय द्वारिका नगरी की तरफ शीघ्रता से प्रस्थान किया। वे दोनों कुरुनन्दन पुरुषश्रेष्ठ जब द्वारिका में पहुँचे तब श्रीकृष्ण जी सोये हुए थे। वे दोनों सोये हुए के पास ही पहुँचे। दुर्योधन ने सोये हुए श्रीकृष्ण के पास पहले प्रवेश किया और वह उनके सिरहाने की तरफ रखे हुए श्रेष्ठआसन पर बैठ गया। उसके पश्चात् महामना अर्जुन ने वहाँ प्रवेश किया और वे उनके चरणों की तरफ हाथ जोड़े हुए नम्रता से खड़े रहे।

प्रतिबुद्धः स वार्ष्णेयो, ददर्शाग्रे किरीटिनम्।
स तयोः स्वागतं कृत्वा, यथावत् प्रतिपूज्य तौ॥ १०॥
तदागमनजं हेतुं पप्रच्छ मधुसूदनः।
ततो दुर्योधनः कृष्णमुवाच प्रहसन्निव॥ ११॥
विग्रहेऽस्मिन् भवान् साह्यं मम दातुमिहार्हति।
समं हि भवतः सख्यं मम चैवार्जुनेऽपि च॥ १२॥
तथा सम्बन्धकं तुल्यमस्माकं त्वयि माधव।
अहं चाभिगतः पूर्वं त्वामद्य मधुसूदन॥ १३॥
पूर्वं चाभिगतं सन्तो भजन्ते पूर्वसारिणः।
त्वं च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन॥ १४॥
सततं सम्मतश्चैव सद्वृत्तमनुपालय।

जागने पर श्रीकृष्ण जी ने पहले अर्जुन को देखा। उन्होंने उन दोनों का स्वागत तथा यथोचित सत्कार किया और फिर उनसे आने का कारण पूछा। तब दुर्योधन ने श्रीकृष्ण जी से मुस्कराते हुए कहा कि हे माधव! कौरवों और पाण्डवों के इस युद्ध में आपको मेरी सहायता करनी चाहिये। क्योंकि आपकी अर्जुन और मेरे साथ समान रूप से मित्रता है। हमारा सम्बन्ध भी आपके साथ पाण्डवों जैसा ही है। हे

मधुसूदन! मैं आपके पास पहले आया हूँ। पूर्वपुरुषों के आचरण का अनुसरण करनेवाले सदाचारी लोग पहले आये हुए व्यक्ति की ही सहायता करते हैं। हे जनार्दन! आप आजकल के सत्पुरुषों में श्रेष्ठ और मान्य व्यक्ति हैं इसलिये सज्जनों का जो आचरण है आप उसी का पालन कीजिये।

कृष्ण उवाच

भवानभिगतः पूर्वमत्र मे नास्ति संशयः॥ १५॥
दृष्टस्तु प्रथमं राजन् मया पार्थो धनंजयः।
तव पूर्वाभिगमनात् पूर्वं चाप्यस्य दर्शनात्॥ १६॥
साहाय्यमुभयोरेव करिष्यामि सुयोधन।
प्रवारणं तु बालानां पूर्वं कार्यमिति श्रुतिः॥ १७॥
तस्मात् प्रवारणं पूर्वमर्हः पार्थो धनंजयः।
नारायणा इति ख्याताः सर्वे संग्रामयोधिनः॥ १८॥
ते वा युधि दुराधर्षा भवन्त्वेकस्य सैनिकाः।
अयुध्यमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः॥ १९॥
आभ्यामन्यतरं पार्थ यत् ते हृद्यतरं मतम्।
तद् वृणीतां भवानग्रे प्रवार्यस्त्वं हि धर्मतः॥ २०॥

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि आप पहले आये हैं, इसमें कोई संशय नहीं है, पर हे राजन्! मैंने कुन्तीपुत्र अर्जुन को पहले देखा है। हे दुर्योधन! तुम्हारे पहले आने के कारण और इन्हें पहले देखने के कारण मैं दोनों की ही सहायता करूँगा। वेद कहते हैं कि बच्चों की इच्छापूर्ति पहले करनी चाहिये, इसलिये कुन्तीपुत्र अर्जुन पहले अपनी इच्छापूर्ति के अधिकारी हैं। एक तरफ ये मेरे नारायण नाम से प्रसिद्ध सैनिक हैं, जो सारे युद्ध में डटकर लोहा लेने वाले हैं और दुर्धर्ष हैं तथा एक तरफ हथियारों का त्याग किये हुए और युद्ध न करते हुए मैं अकेला रहूँगा। हे कुन्तीपुत्र! इन दोनों में से एक जो तुम्हें अधिक प्रिय हो, उसे पहले तुम वरण करो, क्योंकि धर्म के अनुसार पहले तुम्हारी इच्छापूर्ति होनी चाहिये।

एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
अयुध्यमानं संग्रामे वरयामास केशवम्॥ २१॥
दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमादाय पार्थिवः।
ततोऽभ्ययाद् भीमबलो रौहिणेयं महाबलं॥ २२॥
सर्वं चागमने हेतुं स तस्मै संन्यवेदयत्।
प्रत्युवाच ततः शौरिर्धार्तराष्ट्रमिदं वचः॥ २३॥

श्रीकृष्ण के द्वारा ऐसा कहने पर कुन्तीपुत्र अर्जुन ने युद्ध न करने वाले श्रीकृष्ण को वरण किया। राजादुर्योधन ने श्रीकृष्ण की उस सारीसेना को स्वीकार किया और फिर वह भयानक बल वाला महाबलवान् बलराम जी के पास गया। उनसे-उसने अपने वहाँ आने का सारा कारण बताया। तब शूरसेन वंशी बलराम जी ने धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन को उत्तर दिया कि-

विदितं ते नरव्याघ्र सर्वं भवितुमर्हति।
यन्मयोक्तं विराटस्य पुरा वैवाहिके तदा॥ २४॥
निगृह्योक्तो हृषीकेशस्त्वदर्थं कुरुनन्दन।
मया सम्बन्धकं तुल्यमिति राजन् पुनः पुनः॥ २५॥
न च तद् वाक्यमुक्तं वै केशवं प्रत्यपद्यत।
न चाहमुत्सहे कृष्णं विना स्थातुमपि क्षणम्॥ २६॥
नाहं सहायः पार्थस्य नापि दुर्योधनस्य वै।
इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्य ह॥ २७॥
जातोऽसि भारते वंशे सर्वपार्थिवपूजिते।
गच्छ युध्यस्व धर्मेण क्षात्रेण पुरुषर्षभ॥ २८॥

हे नरव्याघ्र! मैंने पहले विवाह के अवसर पर जो कुछ कहा था, वह तुम्हें मालूम हो गया होगा। हे राजन् कुरुनन्दन! मैंने तुम्हारे लिये श्रीकृष्ण को बाध्य करके बार-बार कहा कि हमारा कौरवों और पाण्डवों के साथ समान सम्बन्ध है, किन्तु कृष्ण को मेरी बात जँची नहीं। मैं श्रीकृष्ण को छोड़ कर एक क्षण भी नहीं रह सकता। इसलिये श्रीकृष्ण को देखकर मैंने यह निश्चय किया कि मैं न तो कुन्तीपुत्र की सहायता करूँगा और ना ही दुर्योधन की सहायता करूँगा। हे पुरुष श्रेष्ठ! तुमने सारे राजाओं मे सम्मानित भरतवंश में जन्म लिया है इसलिये जाओ और क्षात्रधर्म के अनुसार युद्ध करो।

इत्येवमुक्तस्तु तदा परिष्वज्य हलायुधम्।
कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा युद्धान्मेने जितं जयम्॥ २९॥
सोऽभ्ययात् कृतवर्माणं धृतराष्ट्रसुतो नृपः।
कृतवर्मा ददौ तस्य सेनामक्षौहिणीं तदा॥ ३०॥
स तेन सर्वसैन्येन भीमेन कुरुनन्दनः।
वृतः परिययौ हृष्टः सुहृदः सम्प्रहर्षयन्॥ ३१॥
गते दुर्योधने कृष्णः किरीटिनमथाब्रवीत्।
अयुध्यमानः कां बुद्धिमास्थायाहं वृतस्त्वया॥ ३२॥

ऐसा बलराम जी के कहने पर दुर्योधन ने उन्हें छाती से लगाया और कृष्ण को ठगा गया समझ

कर युद्ध में अपनी विजय का निश्चय कर लिया। फिर वह धृतराष्ट्र का पुत्र कृतवर्मा के पास गया। कृतवर्मा ने उसे अपनी एक अक्षौहिणी सेना दी। तब वह कुरुनन्दन उस सारी भयानक सेना से घिरा हुआ, अपने मित्रों के हर्ष को बढ़ाता हुआ, प्रसन्नता के साथ वहाँ से चला गया। दुर्योधन के चले जाने पर श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कहा कि तुमने किस विचार से मुझ न लड़ने वाले का वरण किया है।

अर्जुन उवाच

भवान् समर्थस्तान् सर्वान् निहन्तुं नात्र संशयः।
निहन्तुमहमप्येकः समर्थः पुरुषर्षभ॥ ३३॥
भवांस्तु कीर्तिमाँल्लोके तद् यशस्त्वां गमिष्यति।
यशसां चाहमप्यर्थी तस्मादसि मया वृतः॥ ३४॥
सारथ्यं तु त्वया कार्यमिति मे मानसं सदा।
चिररात्रेप्सितं कामं तद् भवान् कर्तुमर्हति॥ ३५॥

वासुदेव उवाच

उपपन्नमिदं पार्थ यत् स्पर्धसि मया सह।
सारथ्यं ते करिष्यामि कामः सम्पद्यतां तव॥ ३६॥
एवं प्रमुदितः पार्थः कृष्णेन सहितस्तदा।
वृतो दशार्हप्रवरैः पुनरायाद् युधिष्ठिरम्॥ ३७॥

तब अर्जुन ने कहा कि हे पुरुषश्रेष्ठ! इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप उन सबको मारने में समर्थ हैं, पर उन सबको मैं भी अकेला मार सकता हूँ। आप संसार में यशस्वी हैं, इसलिये आप जिधर भी रहेंगे, कीर्ति आपके साथ रहेगी। मुझे यश को प्राप्त करने की इच्छा है इसलिये मैंने आपको वरण किया है। मैं आपको अपना सारथि बनाऊँ, यह मेरे मन में बहुत दिनों से इच्छा थी, इसलिये आप मेरे सारथि बनें। तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे कुन्तीपुत्र! तुम जो युद्ध करने में मेरे साथ स्पर्धा रखते हो, वह उचित ही है। तुम्हारी इच्छा पूरी हो, मैं तुम्हारा सारथि बनूँगा। फिर अर्जुन प्रसन्न होकर दूसरे श्रेष्ठ यदुवंशियों से घिरे हुए श्रीकृष्ण के साथ युधिष्ठिर के समीप आ गये।

पाँचवाँ अध्याय : शल्य का धोखे से विपक्ष में किया जाना। शल्य युधिष्ठिर भेंट।

शल्यः श्रुत्वा तु दूतानां सैन्येन महता वृतः।
शनैर्विश्रामयन् सेनां स ययौ येन पाण्डवः॥ १॥
उपायान्तभिद्रुत्य महात्मानं महारथम्।
कारयामास पूजार्थं तस्य दुर्योधनः सभाः॥ २॥
स ताः सभाः समासाद्य पून्यमानो यथामरः।
दुर्योधनस्य सचिवैर्देशे देशे समन्ततः॥ ३॥
मेनेऽभ्यधिकमात्मानमवमेने पुरंदरम्।
पप्रच्छ स ततः प्रेष्यान् प्रहृष्टः क्षत्रियर्षभः॥ ४॥

दूतों के मुख से पाण्डवों का सन्देश सुन कर राजा शल्य एक विशाल सेना लेकर उनसे मिलने के लिये धीरे-धीरे रास्ते में पड़ाव डालता हुआ चल दिया। तब उस आते हुए मनस्वी महारथी शल्य के मार्ग पर दुर्योधन ने शीघ्रता से जाकर उसके स्वागत सत्कार के लिये जगह-जगह अनेक सभाभवन बनवा दिये। दुर्योधन के मंत्रियों ने उन सभाभवनों में स्थान-स्थान पर शल्य को ठहरा कर उसका देवताओं के समान स्वागत सत्कार किया। तब उस क्षत्रियश्रेष्ठ ने अत्यधिक प्राप्त सत्कार से अपनेआप को इन्द्र के समान सौभाग्यशाली समझते हुए प्रसन्न होकर सेवा करने वालों से पूछा कि-

युधिष्ठिरस्य पुरुषाः केऽत्र चक्रुः सभा इमाः।
आनीयन्तां सभाकाराः प्रदेयार्हा हि मे मताः॥ ५॥
प्रसादमेषां दास्यामि कुन्तीपुत्रोऽनुमन्यताम्।
सम्प्रहृष्टो यदा शल्यो दिदित्सुरपि जीवितम्॥ ६॥
गूढो दुर्योधनस्तत्र दर्शयामास मातुलम्।
तं दृष्ट्वा मद्रराजश्च ज्ञात्वा यत्नं च तस्य तम्॥ ७॥
परिष्वज्याब्रवीत् प्रीत इष्टोऽर्थो गृह्यतामिति।

दुर्योधन उवाच

सत्यवाग् भव कल्याण वरो वै मम दीयताम्॥ ८॥
सर्वसेनाप्रणेता वै भवान् भवितुमर्हति।

युधिष्ठिर के वे कौन सेवक हैं, जिन्होंने ये सभाभवन बनवाये और मेरे स्वागत का प्रबन्ध किया है। उन्हें बुलवाओ। मैं उन्हें पुरस्कार देने योग्य समझता हूँ। इस प्रकार जब अत्यधिक प्रसन्न हुए राजा शल्य अपने प्राणों तक का भी पुरस्कार देने को तैयार हो गये। तब छिपा हुआ दुर्योधन अपने उन मामा के सामने उपस्थित हो गया। उसे देख कर और यह

समझ कर कि इसी ने यह सारा प्रबन्ध किया है, उसे अपने हृदय से लगाकर प्रसन्न हुए राजा शल्य ने अपनी अभीष्ट वस्तु माँगने के लिये कहा। तब दुर्योधन ने कहा कि हे कल्याण स्वरूप! आप सत्यवादी बनिये और मुझे यह वर दीजिये कि आप मेरी सेना के अधिनायक बन जायें।

शल्य उवाच

एवं ददामि ते प्रीत एवमेतद् भविष्यति।। ९।।
गच्छ दुर्योधन पुरं स्वकमेव नरर्षभ।
अहं गमिष्ये द्रष्टुं वै युधिष्ठिरमरिंदमम्।। १०।।
दृष्ट्वा युधिष्ठिरं राजन् क्षिप्रमेष्ये नराधिप।
अवश्यं चापि द्रष्टव्यः पाण्डवः पुरुषर्षभः।। ११।।

दुर्योधन उवाच

क्षिप्रमागम्यतां राजन् पाण्डवं वीक्ष्य पार्थिव।
त्वय्यधीनाः स्म राजेन्द्र वरदानं स्मरस्व नः।। १२।।

तब शल्य ने कहा कि मैं तुम्हें प्रसन्न होकर यह वर देता हूँ। ऐसा ही होगा। हे नरश्रेष्ठ दुर्योधन! तुम अपने नगर में जाओ। मैं अब शत्रुदमन युधिष्ठिर से मिलने जाता हूँ। हे राजन्! मैं युधिष्ठिर से मिलकर जल्दी ही आऊँगा। मुझे पुरुषश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र से भी अवश्य मिलना चाहिये। तब दुर्योधन ने कहा कि हे राजन्! पाण्डुपुत्र से मिलकर जल्दी आइये। हे राजेन्द्र! हम आपके आधीन हैं। आपने जो वरदान दिया है, उसे याद रखिये।

शल्य उवाच

क्षिप्रमेष्यामि भद्रं ते गच्छस्व स्वपुरं नृप।
स तथा शल्यमामन्त्र्य पुनरायात् स्वकं पुरम्।। १३।।
शल्यो जगाम कौन्तेयानाख्यातुं कर्म तस्य तत्।
उलप्लव्यं स गत्वा तु स्कन्धावारं प्रविश्य च।। १४।।
पाण्डवानथ तान् सर्वान् शल्यस्तत्र ददर्श ह।
समेत्य च महाबाहुः शल्यः पाण्डुसुतैस्तदा।। १५।।
पाद्यमर्घ्यं च गां चैव प्रत्यगृह्णाद् यथाविधि।

तब शल्य ने कहा कि हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपने नगर को जाओ। मैं जल्दी आऊँगा। इस प्रकार शल्य से बातें कर वह दुर्योधन अपने नगर में वापिस आ गया और शल्य उसकी करतूत को बताने के लिये कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के पास पहुँचे। उपप्लव्य नगर में पाण्डवों की छावनी में प्रवेश कर उन्होंने सारे पाण्डवों से भेंट की। उनसे मिलकर, उनसे स्वागत में यथाविधि पाद्य, अर्घ्य और गौ को ग्रहण किया।

ततः कुशलपूर्वं हि मद्रराजोऽरिसूदनः।। १६।।
प्रीत्या परमया युक्तः समाश्लिष्यद् युधिष्ठिरम्।
तथा भीमार्जुनौ हृष्टौ स्वस्त्रीयौ च यमावुभौ।। १७।।
आसने चोपविष्टस्तु शल्यः पार्थमुवाच ह।
कुशलं राजशार्दूल कच्चित् ते कुरुनन्दन।। १८।।
अरण्यवासाद् दिष्ट्यासि विमुक्तो जयतां वर।
सुदुष्करं कृतं राजन् निर्जने वसता त्वया।। १९।।
भ्रातृभिः सह राजेन्द्र कृष्णया चानया सह।
अज्ञातवासं घोरं च वसता दुष्करं कृतम्।। २०।।
दुःखमेव कुतः सौख्यं भ्रष्टराज्यस्य भारत।

फिर कुशलप्रश्न के पश्चात् शत्रुसूदन मद्रराज ने अत्यन्त प्रेम से युधिष्ठिर को, भीम, अर्जुन को और प्रसन्नतायुक्त अपने दोनों भानजों नकुल तथा सहदेव को गले से लगाया। आसन पर बैठकर शल्य ने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से कहा कि कुरुनन्दन राजसिंह क्या आप सकुशल हैं? हे विजयी वीरों में श्रेष्ठ! बड़े सौभाग्य की बात है कि आप वनवास के बन्धन से मुक्त हो गये हैं! हे राजेन्द्र! आपने भाइयों तथा इस द्रौपदी के साथ वन में रहकर अत्यन्त कठिन कार्य किया है। हे भरतवंशी! अज्ञातवास में रहने का कार्य तो और भी अत्यन्त कठिन था, जिसे तुमने पूरा किया। जो राज्य से भ्रष्ट हो जाये, उसे तो दुःख ही उठाना पड़ता है सुख उसे कहाँ मिल सकता है?

दुःखस्यैतस्य महतो धार्तराष्ट्रकृतस्य वै।। २१।।
अवाप्स्यसि सुखं राजन् हत्वाशत्रून् परंतप।
दिष्ट्या पश्यामि राजेन्द्र धर्मात्मानं सहानुगम्।। २२।।
निस्तीर्णं दुष्करं राजंस्त्वां धर्मनिचयं प्रभो।
ततोऽस्याकथयद् राजा दुर्योधनसमागमम्।। २३।।

हे शत्रुओं को संतप्त करने वाले राजन्! दुर्योधन के द्वारा दिये गये इस दुःख के अन्त में अब तुम शत्रुओं को मार कर सुख को प्राप्त करोगे। बड़े सौभाग्य की बात है कि मैं हे राजेन्द्र! तुम जैसे धर्मात्मा और धर्म की निधि को अपने भाइयों सहित उस कठिन प्रतिज्ञा से पार हुआ देख रहा हूँ। उसके पश्चात् राजा शल्य ने दुर्योधन से अपनी भेंट की बात कह सुनाई।

युधिष्ठिर उवाच

एकं त्विच्छामि भद्रं ते क्रियमाणं महीपते।
ममत्ववेक्षया वीर शृणु विज्ञापयामि ते॥ २४॥
तत्र पाल्योऽर्जुनो राजन् यदि मत्प्रियमिच्छसि।
तेजोवधश्च ते कार्यः सौतेरस्मज्जयावहः॥ २५॥
अकर्तव्यमपि ह्येतत् कर्तुमर्हसि मातुल।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे वीर राजा! आपका कल्याण हो! मैं एक कार्य आपके द्वारा किया हुआ चाहता हूँ। मैं उसे बताता हूँ। आप मेरी ओर देखते हुए अर्थात् मेरा ध्यान रखते हुए उसे सुनिये। यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो वहाँ रहते हुए अर्जुन की रक्षा कीजिये। हे राजन्! आप हमारी विजय के लिये कर्ण के उत्साह को भंग करते रहें। यद्यपि यह कार्य करने योग्य नहीं है, फिर भी, हे मामा! आप इसे कीजिये।

शल्य उवाच

शृणु पाण्डव ते भद्रं यद् ब्रवीषि महात्मनः॥ २६॥
तेजोवधनिमित्तं मां सूतपुत्रस्य सङ्गमे।
तस्याहं कुरुशार्दूल प्रतीपमहितं वचः॥ २७॥
ध्रुवं संकथयिष्यामि योद्धुकामस्य संयुगे।
यथा स हृतदर्पश्च हृततेजाश्च पाण्डव॥ २८॥
भविष्यति सुखं हन्तु सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
यच्चान्यदपि शक्ष्यामि तत् करिष्यामि ते प्रियम्॥ २९॥

तब शल्य ने कहा कि हे पाण्डुपुत्र! सुनो, तुम्हारा कल्याण हो। तुम मनस्वी कर्ण के उत्साह को युद्ध में भंग करने के लिये जो कहते हो, उसके लिये मैं जब वह युद्ध के लिये इच्छुक होगा तब हे कुरुशार्दूल! उसे निश्चित रूप से उलटी और अहितकारी बातें कहूँगा। जिससे वह हे पाण्डुपुत्र! तेज और अभिमान से रहित होकर सुखपूर्वक मारने योग्य हो जाएगा। यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ और दूसरी तरह से भी जैसे मुझसे हो सकेगा, मैं तुम्हारा प्रियकार्य करूँगा।

यच्च दुःखं त्वया प्राप्तं द्यूते वै कृष्णया सह।
परुषाणि च वाक्यानि सूतपुत्रकृतानि वै॥ ३०॥
सर्वं दुःखमिदं वीर सुखोदर्कं भविष्यति।
दुःखानि हि महात्मानः प्राप्नुवन्ति युधिष्ठिर॥ ३१॥

तुमने द्यूतक्रीड़ा में द्रौपदी के साथ जो दुःख प्राप्त किया और सारथि के पुत्र कर्ण के कठोर वाक्य सुने, हे वीर! तुम्हारा सारा वह दुःख अब सुख के रूप में परिवर्तित हो जायेगा। हे युधिष्ठिर! महात्मा लोग दुःख ही प्राप्त करते हैं।

छठा अध्याय : द्रुपद के पुरोहित का कौरवों को समझाने का प्रयत्न।

स च कौरव्यमासाद्य द्रुपदस्य पुरोहितः।
सत्कृतो धृतराष्ट्रेण भीष्मेण विदुरेण च॥ १॥
सर्वं कौशल्यमुक्त्वाऽऽदौ पृष्ट्वा चैवमनामयम्।
सर्वसेनाप्रणेतॄणां मध्ये वाक्यमुवाच ह॥ २॥

द्रुपद के पुरोहित जब कौरवनरेश के पास पहुँचे, तब धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुर ने उनका सत्कार किया। पहले अपने पक्षवालों की कुशलता के विषय में बताकर और फिर उनकी कुशलता के विषय में पूछकर, सारे सेनानायकों के बीच में उन्होंने यह बात कही कि—

सर्वैर्भवद्भिर्विदितो राजधर्मः सनातनः।
वाक्योपादानहेतोस्तु वक्ष्यामि विदिते सति॥ ३॥
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च सुतावेकस्य विश्रुतौ।
तयोः समानं द्रविणं पैतृकं नात्र संशयः॥ ४॥
धृतराष्ट्रस्य ये पुत्राः प्राप्तं तैः पैतृकं वसु।
पाण्डुपुत्राः कथं नाम न प्राप्ताः पैतृकं वसु॥ ५॥

आप सब लोग सनातन राजधर्म को जानते हैं, किन्तु आपके जानने पर भी, आपके द्वारा प्रत्युत्तर सुनने के लिये मैं आपसे कुछ कह रहा हूँ। धृतराष्ट्र और पाण्डु एक ही पिता के प्रसिद्ध पुत्र हैं। इसमें संशय नहीं है कि दोनों का पैतृकसम्पत्ति पर समान अधिकार है। धृतराष्ट्र के जो पुत्र हैं, उन्होंने तो अपना पैतृकधन प्राप्त कर लिया है, फिर पाण्डु के पुत्र अपनी पैतृकसम्पत्ति को क्यों न प्राप्त करें?

प्राणान्तिकैरप्युपायैः प्रयतद्भिरनेकशः।
शेषवन्तो न शकिता नेतुं वै यमसादनम्॥ ६॥
पुनश्च वर्धितं राज्यं स्वबलेन महात्मभिः।
छद्मनापहृतं क्षुद्रैर्धार्तराष्ट्रैः ससौबलैः॥ ७॥

सभायां क्लेशितैर्वीरैः सहभार्यैस्तथा भृशम्।
अरण्ये विविधाः क्लेशाः सम्प्राप्तास्तैः सुदारुणाः॥ ८॥
तथा विराटनगरे योन्यन्तरगतैरिव।
प्राप्तः परमसंक्लेशो यथा पापैर्महात्मभिः॥ ९॥

उनके लिये प्राणों का अन्त करने वाले अनेक बार उपाय किये गये, पर उनकी आयु शेष थी, इसलिये वे मृत्यु के घर नहीं भेजे जा सके। फिर उन महात्माओं ने जिस राज्य को अपनी शक्ति से बढ़ाया, उसे भी शकुनि सहित धृतराष्ट्र के क्षुद्रपुत्रों ने धोखे से अपहृत कर लिया। सभा में पत्नी सहित उन वीरों को अत्यन्त कष्ट पहुँचाया गया। वन में उन्होंने अनेक प्रकार के अत्यन्त दारुण कष्ट सहे। उसके पश्चात् भी विराट नगर में उन महात्माओं को दूसरी योनि में पड़े हुए पापियों के समान रहते हुए अत्यन्त क्लेश को सहन करना पड़ा।

ते सर्वं पृष्ठतः कृत्वा तत् सर्वं पूर्वकिल्बिषम्।
सामैव कुरुभिः सार्धमिच्छन्ति कुरुपुङ्गवाः॥ १०॥
तेषां च वृत्तमाज्ञाय वृत्तं दुर्योधनस्य च।
अनुनेतुमिहार्हन्ति धार्तराष्ट्रं सुहृज्जनाः॥ ११॥
न हि ते विग्रहं वीराः कुर्वन्ति कुरुभिः सह।
अविनाशेन लोकस्य काङ्क्षन्ते पाण्डवाः स्वकम्॥ १२॥
यश्चापि धार्तराष्ट्रस्य हेतुः स्याद् विग्रहं प्रति।
स च हेतुर्न मन्तव्यो बलीयांसस्तथा हि ते॥ १३॥
ते भवन्तो यथाधर्मं यथासमयमेव च।
प्रयच्छन्तु प्रदातव्यं मा वः कालोऽत्यगादयम्॥ १४॥

इन सारे पहले के कष्टों को पीछे करके वे सारे कुरुश्रेष्ठ इन कौरवों के साथ शान्ति ही रखना चाहते हैं। उनके इस व्यवहार को और दुर्योधन के आचरण को समझकर शुभचिन्तकों को इस विषय में धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन को समझाना चाहिये। पाण्डुपुत्र कौरवों के साथ युद्ध नहीं करना चाहते। वे प्रजा के विनाश के बिना अपना भाग चाहते हैं। दुर्योधन जिस कारण से पाण्डवों के साथ युद्ध चाहता है, उसे वास्तविक नहीं समझना चाहिये, क्योंकि पाण्डव लोग इनसे अधिक बलवान् हैं। इसलिये आप लोग धर्म के अनुसार और समझौते के अनुसार उन्हें उनका देय भाग दे दीजिये। कहीं ऐसा न हो कि समय आपके हाथ से निकल जाये।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा प्रज्ञावृद्धो महाद्युतिः।
सम्पूज्यैनं यथाकालं भीष्मो वचनमब्रवीत्॥ १५॥
दिष्ट्या कुशलिनः सर्वे सह दामोदरेण ते।
दिष्ट्या सहायवन्तश्चदिष्ट्या धर्मे च ते रताः॥ १६॥
दिष्ट्या च संधिकामास्तेभ्रातरः कुरुनन्दनाः।
दिष्ट्या न युद्धमनसः पाण्डवाः सह बान्धवैः॥ १७॥

पुरोहित जी के उन वचनों को सुनकर महातेजस्वी और बुद्धि में सबसे अधिक भीष्म जी ने उनका सम्मान कर यह समयोचित बात कही कि बड़े सौभाग्य की बात है कि वे सारे पाण्डव श्रीकृष्ण जी के साथ कुशल पूर्वक हैं। यह भी सौभाग्य की बात है कि उनके बहुत से सहायक हैं और यह भी सौभाग्य की बात है कि वे सब धर्म के मार्ग पर विद्यमान हैं। यह सौभाग्य की बात है कि वे कुरुनन्दन सारे भाई संधि के इच्छुक हैं और यह भी सौभाग्य की बात है कि पाण्डव अपने बन्धुओं के साथ युद्ध नहीं चाहते।

भवता सत्यमुक्तं तु, सर्वमेतन्न संशयः।
अति तीक्ष्णं तु ते वाक्यं, ब्राह्मण्यादिति मे मतिः॥ १८॥
असंशयं क्लेशितास्ते वने चेह च पाण्डवाः।
प्राप्ताश्च धर्मतः सर्वं पितुर्धनमसंशयम्॥ १९॥
किरीटी बलवान् पार्थः कृतास्त्रश्च महारथः।
को हि पाण्डुसुतं युद्धे विषहेत धनंजयम्॥ २०॥
भीष्मे ब्रुवति तद् वाक्यं धृष्टमाक्षिप्य मन्युना।
दुर्योधनं समालोक्य कर्णो वचनमब्रवीत्॥ २१॥

आपने सारी बातें सत्य कही हैं, इसमें संशय नहीं है, पर आपके कहने का ढंग तीखा है। मेरा विचार है कि यह आपके ब्राह्मण होने के कारण से है। इसमें सन्देह नहीं कि पाण्डवों को वन में तथा यहाँ भी बहुत क्लेश मिला। इसमें सन्देह नहीं है कि पाण्डव धर्म के अनुसार अपने पिता के सारे धन को प्राप्त करने के अधिकारी हैं। कुन्तीपुत्र अर्जुन अस्त्रविद्या में पूराज्ञानप्राप्त, महारथी और बलवान् हैं। पाण्डुपुत्र अर्जुन का युद्ध में सामना कौन कर सकता है? भीष्म के इस प्रकार कहते हुए ही कर्ण ने बीच में दुर्योधन की तरफ देखते हुए धृष्टतापूर्वक क्रोध सहित आक्षेप कर यह कहना आरम्भ कर दिया कि–

न तत्राविदितं ब्रह्मँल्लोके भूतेन केनचित्।
पुनरुक्तेन किं तेन भाषितेन पुनः पुनः॥ २२॥
दुर्योधनार्थे शकुनिर्द्यूते निर्जितवान् पुरा।
समयेन गतोऽरण्यं पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २३॥

स तं समयमाश्रित्य राज्यं नेच्छति पैतृकम्।
बलमाश्रित्य मत्स्यानां पञ्चालानां च मूर्खवत्॥ २४॥
दुर्योधनो भयाद् विद्वन् न दद्यात् पादमन्ततः।
धर्मतस्तु महीं कृत्स्नां प्रदद्याच्छत्रवेऽपि च॥ २५॥
अथ ते धर्ममुत्सृज्य युद्धमिच्छन्ति पाण्डवाः।
आसाद्येमान् कुरुश्रेष्ठान् स्मरिष्यन्ति वचो मम॥ २६॥

हे ब्रह्मन्! जो बातें पहले हो चुकी हैं, वे संसार में सारे प्राणियों में से किसी को अज्ञात नहीं हैं, इसलिये उन्हें बार-बार दुहराने से क्या लाभ? दुर्योधन के लिये शकुनि ने पहले जिन्हें जूए में जीता था, वे युधिष्ठिर समझौते के अनुसार वन में गये थे। वे उस समझौते का पालन करके, अपने पैतृक राज्य को नहीं चाहते, बल्कि मूर्खों के समान मत्स्य देश और पांचाल देश की सेना का सहारा लेकर राज्य चाहते हैं। हे विद्वान्! दुर्योधन भय से तो चौथाई भाग भी नहीं देंगे पर धर्म के अनुसार वे अपने शत्रु को भी सारा राज्य दे सकते हैं। यदि पाण्डव धर्म को त्यागकर युद्ध को चाहते हैं तो युद्धक्षेत्र में इन कुरुश्रेष्ठों का सामना करते हुए उन्हें मेरी बात याद आएगी।

भीष्म उवाच

किं नु राधेय वाचा ते कर्म तत् स्मर्तुमर्हसि।
एक एव यदा पार्थः षड्रथाञ्जितवान् युधि॥ २७॥
बहुशो जीयमानस्य कर्म दृष्टं तदैव ते।
न चेदेवं करिष्यामो यदयं ब्राह्मणोऽब्रवीत्।
ध्रुवं युधि हतास्तेन भक्षयिष्याम पांसुकान्॥ २८॥

धृतराष्ट्रस्ततो भीष्ममनुमान्य प्रसाद्य च।
अवभर्त्स्य च राधेयमिदं वचनमब्रवीत्॥ २९॥

तब भीष्म पितामह ने कहा कि अरे कर्ण! तेरी इन बातों से क्या लाभ? अर्जुन के उस कार्य को याद कर जब विराटनगर में उसने अकेले ही छह रथियों को युद्ध में जीत लिया था। तेरा तो यही काम देखा हुआ है कि तू अनेकबार उसके द्वारा परास्त हुआ है। जो कुछ इन ब्राह्मणदेवता ने कहा है, यदि हम वह नहीं करेंगे, तो यह निश्चित है कि युद्ध में उनके द्वारा मारे जाकर धूल चाटेंगे। तब धृतराष्ट्र ने भीष्म की विनती कर उन्हें प्रसन्न किया और कर्ण को डाँटकर यह कहा कि–

अस्मद्धितं वाक्यमिदं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत्।
पाण्डवानां हितं चैव सर्वस्य जगतस्तथा॥ ३०॥
चिन्तयित्वा तु पार्थेभ्यः प्रेषयिष्यामि संजयम्।
स भवान् प्रति यात्वद्य पाण्डवानेव मा चिरम्॥ ३१॥
स तं सत्कृत्य कौरव्यः प्रेषयामास पाण्डवान्।
सभामध्ये समाहूय संजयं वाक्यमब्रवीत्॥ ३२॥

शान्तनुपुत्र भीष्म ने हमारी भलाई की बात कही है, इसी में पाण्डवों की भलाई है और सारे संसार की भी भलाई है। मैं विचार कर पाण्डवों के पास संजय को भेजूँगा। इसलिये हे ब्रह्मन्! आप पाण्डवों के पास ही जल्दी जाइये। इस प्रकार धृतराष्ट्र ने उनका सत्कार कर उन्हें पाण्डवों के पास वापिस भेज दिया और संजय को सभा में बुलाकर उससे यह कहा कि–

सातवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र का संजय को पाण्डवों के पास भेजना।

धृतराष्ट्र उवाच - **प्राप्तानाहुः संजय पाण्डुपुत्रा-**
नुपप्लव्ये तान् विजानीहि गत्वा।
अजातशत्रुं च सभाजयेथा
दिष्ट्याऽऽनह्य स्थानमुपस्थितस्त्वम्॥ १॥
सर्वान् वदेः संजय स्वस्तिमन्तः
कृच्छ्रं वासमतदर्हान् निरुष्य।
तेषां शान्तिर्विद्यतेऽस्मासु शीघ्रं
मिथ्यापेतानामुपकारिणां सताम्॥ २॥

धृतराष्ट्र ने कहा कि हे संजय! ऐसा कहते हैं कि पाण्डव लोग उपप्लव्य नगर में रहते हैं। तुम वहाँ जाकर उनका समाचार जानो। तुम अजातशत्रु युधिष्ठिर से मिलकर उनका सम्मान करना और उनसे कहना कि बड़े सौभाग्य की बात है कि आप सन्नद्ध होकर अपने योग्य स्थान पर आ गये हैं। हे संजय! तुम सबसे हमारी कुशलता बताना। पाण्डव लोग सज्जन, उपकार करने वाले और असत्य से दूर रहने वाले हैं। जिस कष्टपूर्ण निवास के वे योग्य नहीं थे, उसे पूरा करके उनके हृदय में शीघ्र ही हमारे प्रति शान्ति की भावना उपस्थित हो गयी है।

अजातशत्रुं कुशलं स्म पृच्छेः
पुनः पुनः प्रीतियुक्तं वदेस्त्वम्।

जनार्दनं चापि समेत्य तात
महामात्रं वीर्यवतामुदारम्॥ ३॥
अनामयं मद्वचनेन पृच्छे-
धृतराष्ट्रः पाण्डवैः शान्तिमीप्सुः।
न तस्य किंचिद् वचनं न कुर्यात्
कुन्तीपुत्रो वासुदेवस्य सूत॥ ४॥

तुम अजातशत्रु से उनका कुशलसमाचार पूछना और उनसे बार-बार प्रेमपूर्वक वार्तालाप करना। हे तात! तुम महामानव, पराक्रमियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण से भी मिलकर मेरी तरफ से उनका कुशलसमाचार पूछना और कहना कि धृतराष्ट्र पाण्डवों के साथ शान्ति चाहता है। हे सूत! ऐसा नहीं हो सकता कि कुन्तीपुत्र उसकी किसी बात को न माने।

प्रियश्चैषामात्मसमश्च कृष्णो
विद्वांश्चैषां कर्मणि नित्ययुक्तः।
समानीतान् पाण्डवान् सृंजयांश्च
जनार्दनं युयुधानं विराटम्॥ ५॥
अनामयं मद्वचनेन पृच्छेः
सर्वांस्तथा द्रौपदेयांश्च पञ्च।
यद् यत् तत्र प्राप्तकालं परेभ्य-
स्त्वं मन्येथा भारतानां हितं च।
तद् भाषेथाः संजय राजमध्ये
न मूर्च्छयेद् यन्न च युद्धहेतुः॥ ६॥

श्री कृष्ण पाण्डवों को अपनी आत्मा के समान प्यारे हैं। वे विद्वान् हैं और सदा उनकी भलाई के कार्य में लगे रहते हैं। तुम वहाँ एकत्र हुए पाण्डवों, सृंजयवंशी क्षत्रियों, श्री कृष्ण, सात्यकि, राजा विराट, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों आदि सबसे उनका कुशल समाचार पूछना। तुम समय के अनुसार ऐसी ही बातें करना जिन्हें तुम शत्रुओं से भरतवंशियों का कल्याण करने वाली समझो। हे संजय! तुम राजाओं के बीच में ऐसी बात मत कह देना, जो उन्हें क्रोध से उत्तेजित करे और युद्ध का कारण बने।

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा धृतराष्ट्रस्य संजयः।
उपप्लव्यं ययौ द्रष्टुं पाण्डवानमितौजसः॥ ७॥
स तु राजानमासाद्य कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
अभिवाद्य ततः पूर्वं सूतपुत्रोऽभ्यभाषत॥ ८॥

तब राजा धृतराष्ट्र के वचन सुनकर संजय उन अमित तेजस्वी पाण्डवों से मिलने के लिये उपप्लव्य नगर में गया। वहाँ कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर से मिलकर और उनका अभिवादन कर सूतपुत्र ने उनसे वार्तालाप आरम्भ किया।

आठवाँ अध्याय : संजय का पाण्डवों को धृतराष्ट्र का सन्देश देना।

गावल्गणिः संजयः सूतसूनु-
रजातशत्रुमवदत् प्रतीतः।
दिष्ट्या राजंस्त्वामरोगं प्रपश्ये
सहायवन्तं च महेन्द्रकल्पम्॥ १॥
अनामयं पृच्छति त्वाऽऽम्बिकेयो
वृद्धो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी।
कच्चिद् भीमः कुशली पाण्डवाग्र्यो
धनंजयस्तौ च माद्रीतनूजौ॥ २॥
कच्चित् कृष्णा द्रौपदी राजपुत्री
सत्यव्रता वीरपत्नी सपुत्रा।
मनस्विनी यत्र च वाञ्छसि त्व-
मिष्टान् कामान् भारत स्वस्तिकामः॥ ३॥

गवल्गणपुत्र और सूतपुत्र संजय ने प्रसन्न होकर अजातशत्रु युधिष्ठिर से कहा कि बड़े सौभाग्य की बात है कि हे राजन्! मैं आपको सकुशल देख रहा हूँ और आप इन्द्र के समान अपने सहायकों से युक्त हैं। अम्बिकापुत्र बूढ़े राजा विद्वान् धृतराष्ट्र आपकी कुशलता के विषय में पूछ रहे हैं। क्या पाण्डवों के अग्रगण्य भीम तथा अर्जुन एवं माद्री के दोनों पुत्र सकुशल हैं? क्या मनस्विनी पुत्रवती, वीरपत्नी सत्यव्रता राजकुमारी द्रौपदी सकुशल है? हे भारत! जिनके अन्दर आप इष्ट भोगों को अर्थात् कुशलता को बनाये रखना चाहते हैं, वे सब सकुशल हैं?

युधिष्ठिर उवाच- गावल्गणे संजय स्वागतं ते
प्रीयामहे ते वयं दर्शनेन।
अनामयं प्रतिजाने तवाहं
सहानुजैः कुशली चास्मि विद्वन्॥ ४॥
चिरादिदं कुशलं भारतस्य
श्रुत्वा राज्ञः कुरुवृद्धस्य सूत।
मन्ये साक्षाद् दृष्टमहं नरेन्द्रं

दृष्ट्वैव त्वां संजय प्रीतियोगात्॥ ५॥
पितामहो नः स्थविरो मनस्वी
महाप्राज्ञः सर्वधर्मोपपन्नः।
स कौरव्यः कुशली तात भीष्मो
यथापूर्वं वृत्तिरस्त्यस्य कच्चित्॥ ६॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि गवल्गणपुत्र संजय! तुम्हारा स्वागत है। तुम्हें देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं तुम्हें अपने स्वास्थ्य की सूचना दे रहा हूँ। हे विद्वन्! मैं अपने छोटे भाइयों के साथ सकुशल हूँ। हे सूत! बहुत दिनों के पश्चात् भरतवंशी, कुरुनन्दन, वृद्ध राजा धृतराष्ट्र की कुशलता को सुनकर और प्रेमपूर्वक तुम्हें देखकर मैं यह समझ रहा हूँ कि जैसे मुझे साक्षात् राजा के दर्शन हो गये। हे तात! हमारे बूढ़े पितामह, मनस्वी, महाप्राज्ञ, सारे धर्मों से युक्त, कुरुनन्दन भीष्म भी क्या सकुशल हैं? उनका हमारे प्रति प्रेम भी क्या वैसा ही है?

कच्चिद् राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो
वैचित्रवीर्यः कुशली महात्मा।
महाराजो बाह्लिकः प्रातिपेयः
कच्चिद् विद्वान् कुशली सूतपुत्र॥ ७॥
स सोमदत्तः कुशली तात कच्चिद्
भूरिश्रवाः सत्यसंधः शलश्च।
द्रोणः सपुत्रश्च कृपश्च विप्रो
महेष्वासाः कच्चिदेतेऽप्यरोगाः॥ ८॥

क्या विचित्रवीर्यपुत्र, महात्मा राजा धृतराष्ट्र पुत्रों सहित सकुशल हैं? हे सूतपुत्र! प्रतीप के विद्वान् पुत्र महाराज बाह्लीक क्या सकुशल हैं? हे तात! क्या सोमदत्त, भूरिश्रवा और सत्यप्रतिज्ञ शल सकुशल हैं? पुत्रसहित द्रोणाचार्य, ब्राह्मण कृपाचार्य ये सारे महाधनुर्धर क्या नीरोग हैं?

वैश्यापुत्रः कुशली तात कच्चि-
न्महाप्राज्ञो राजपुत्रो युयुत्सुः।
कर्णोऽमात्यः कुशली तात कच्चित्
सुयोधनो यस्य मन्दो विधेयः॥ ९॥
स्त्रियो वृद्धा भारतानां जनन्यो
महानस्यो दासभार्याश्च सूत।
वध्वः पुत्रा भागिनेया भगिन्यो
दौहित्रा वा कच्चिदप्यव्यलीकाः॥ १०॥

हे तात! क्या धृतराष्ट्र की वैश्याजातीय पत्नी के पुत्र महाप्राज्ञ, राजपुत्र युयुत्सु सकुशल हैं? हे तात! मूर्ख दुर्योधन, जिसकी आज्ञा में रहता है, उसका मन्त्री वह कर्ण क्या सकुशल है? भरतवंशियों की बूढ़ी माताएँ, स्त्रियाँ, रसोई बनाने वाली सेविकाएँ, बहुएँ, पुत्र, भानजे, बहिनें और पुत्रियों के पुत्र ये सारे हे सूत! क्या निष्कपट भाव से हैं?

संजय उवाच- यथाऽऽत्थ मे पाण्डव तत् तथैव
कुरून् कुरुश्रेष्ठ जनं च पृच्छसि।
अनामयास्तात मनस्विनस्ते
कुरुश्रेष्ठान् पृच्छसि पार्थ यांस्त्वम्॥ ११॥
न चानुजानाति भृशं च तप्यते
शोचत्यन्तः स्थविरोऽजातशत्रो।
शृणोति हि ब्राह्मणानां समेत्य
मित्रद्रोहः पातकेभ्यो गरीयान्॥ १२॥

तब संजय ने कहा कि हे पाण्डुपुत्र! आपने जैसे कहा है वैसे ही सब कुछ है। हे कुरुश्रेष्ठ! हे कुन्तीपुत्र तात! आप कौरवों तथा प्रजा के लोगों के विषय में तथा अन्य जिन कुरुश्रेष्ठों के विषय में जो पूछ रहे हैं, वे सारे मनस्वी लोग नीरोग हैं? हे अजातशत्रु! वे बूढ़े धृतराष्ट्र अपने पुत्रों को आपसे द्रोह करने की आज्ञा नहीं देते। उनके मुख से आपके प्रति द्रोह की बात सुनकर वे अत्यन्त सन्तप्त होते हैं और मन में दुखी होते रहते हैं। अपने यहाँ आये हुए ब्राह्मणों से वे यही सुनते हैं कि मित्रद्रोह सारे पापों से बढ़कर है।

स्मरन्ति तुभ्यं नरदेव संयुगे
युद्धे च जिष्णोश्च युधां प्रणेतुः।
समुत्क्रुष्टे दुन्दुभिशङ्खशब्दे
गदापाणिं भीमसेनं स्मरन्ति॥ १३॥
माद्रीसुतौ चापि रणाजिमध्ये
सर्वा दिशः सम्पतन्तौ स्मरन्ति।
सेनां वर्षन्तौ शरवर्षैरजस्त्रं
महारथौ समरे दुष्प्रकम्प्यौ॥ १४॥

हे नरदेव! आपको और युद्ध में योद्धाओं के अग्रणी अर्जुन को वहाँ याद किया जाता है। युद्ध में जब दुन्दुभि और शंख की आवाज गूँजती है, तब गदाधारी भीम को याद किया जाता है। माद्री के उन दोनों पुत्रों को भी याद किया जाता है, जो युद्धक्षेत्र में सब तरफ से शत्रु पर आक्रमण करते

हैं जो शत्रुसेना पर लगातार बाणों की वर्षा करते हैं और जिन महारथियों को युद्ध में कम्पित करना कठिन है।

न त्वेव मन्ये पुरुषस्य राज-
न्नतागतं ज्ञायते यद् भविष्यम्।
त्वं चेत् तथा सर्वधर्मोपपन्नः
प्राप्तः क्लेशं पाण्डव कृच्छ्ररूपम्॥ १५॥
त्वमेवैतत् कृच्छ्रगतश्च भूयः
समीकुर्याः प्रज्ञयाजातशत्रो।
न कामार्थं संत्यजेयुर्हि धर्मं
पाण्डोः सुताः सर्व एवेन्द्रकल्पाः॥ १६॥
त्वमेवैतत् प्रज्ञयाजातशत्रो
समीकुर्या येन शर्माप्नुयुस्ते।
धार्तराष्ट्राः पाण्डवाः सृंजयाश्च
ये चाप्यन्ये संनिविष्टा नरेन्द्राः॥ १७॥

मैं समझता हूँ कि हे राजन्! मनुष्य का भविष्य जब कि वह सामने न आ जाये, किसी को पता नहीं लगता। इसीलिये हे पाण्डुपुत्र! आप भी सारे धर्मों से युक्त होने पर ऐसे कष्टदायक क्लेश को प्राप्त हुए। हे अजातशत्रु! इस संकट में पड़ने पर भी आप ही अपनी बुद्धि से समाधान का कोई मार्ग निकालिये। पाण्डु के पुत्र सारे इन्द्र के समान हैं। वे अपनी कामनापूर्ति के लिये धर्म का त्याग नहीं कर सकते। इसलिये हे अजातशत्रु! आप ही अपनी बुद्धि से समाधान का कोई मार्ग निकालिये, जिससे धृतराष्ट्र के पुत्र, पाण्डुपुत्र, सृंजयवंशी क्षत्रिय और दूसरे आये हुए राजा लोग शान्ति को प्राप्त करें।

यन्माब्रवीद धृतराष्ट्रो निशाया-
मजातशत्रो वचनं पिता ते।
सहामात्यः सहपुत्रश्च राजन्
समेत्य तां वाचमिमां निबोध॥ १८॥

युधिष्ठिर उवाच- समागताः पाण्डवाः सृंजयाश्च
जनार्दनो युयुधानो विराटः।
यत् ते वाक्यं धृतराष्ट्रानुशिष्टं
गावल्गणे ब्रूहि तत् सूतपुत्र॥ १९॥

हे अजातशत्रु! आपके पितातुल्य धृतराष्ट्र ने रात्रि के समय मुझसे जो कुछ कहा है, उसे आप हे राजन्! मंत्रियों और पुत्रों के साथ सुनकर समझिये। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे गवल्गणकुमार, सूतपुत्र! यहाँ पाण्डव, सृंजयवंशी क्षत्रिय, श्रीकृष्ण, सात्यकि, और विराटराज सब आये हुए हैं। धृतराष्ट्र के द्वारा कही गयी तुम्हारी जो बात है, उसे सुनाओ।

संजय उवाच- अजातशत्रुं च वृकोदरं च
धनंजयं माद्रवतीसुतौ च।
आमन्त्रये वासुदेवं च शौरिं
युयुधानं चेकितानं विराटम्॥ २०॥
पञ्चालानामधिपं चैव वृद्धं
धृष्टद्युम्नं पार्षतं याज्ञसेनिम्।
सर्वे वाचं शृणुतेमां मदीयां
वक्ष्यामि यां भूतिमिच्छन् कुरूणाम्॥ २१॥

तब संजय ने कहा कि मैं अजातशत्रु युधिष्ठिर को, वृकोदर भीम को, धनंजय अर्जुन को, माद्री के दोनों पुत्रों को, शूरसेनवंशी श्रीकृष्ण को, युयुधान चेकितान को, बूढ़े विराट तथा पांचाल नरेश को, वृषत्वंशी और यज्ञसेनपुत्र धृष्टद्युम्न को सबको आमन्त्रित करता हूँ। मैं कुरुवंशियों के कल्याण को चाहता हुआ, जो कुछ कहूँगा, उसे आप लोग सुनें।

शमं राजा धृतराष्ट्रोऽभिनन्द-
न्नयोजयत् त्वरमाणो रथं मे।
सभ्रातृपुत्रस्वजनस्य राज्ञ-
स्तद् रोचतां पाण्डवानां शमोऽस्तु॥ २२॥
सर्वैर्धर्मैः समुपेतास्तु पार्थाः
संस्थानेन मार्दवेनार्जवेन।
जाताः कुले ह्यनृशंसा वदान्या
ह्रीनिषेवाः कर्मणां निश्चयज्ञाः॥ २३॥

राजा धृतराष्ट्र शान्ति को चाहते हैं, इसलिये उन्होंने जल्दी से मेरे लिये रथ को तैयार कराया। भाइयों, पुत्रों और सम्बन्धियों सहित राजा धृतराष्ट्र का यह सन्देश पाण्डवों को अच्छा लगना चाहिये, जिससे शान्ति की स्थापना हो जाये। हे कुन्तीपुत्रों! आप लोग सारे धर्मों से युक्त हैं। आप विशिष्ट अस्तित्व, मृदुता तथा कोमलता से युक्त हैं। आप उत्तमकुल में उत्पन्न हुए हैं। आप अक्रूर, उदार, लज्जायुक्त और कार्यों के परिणामों को जानने वाले हैं।

न युज्यते कर्म युष्मासु हीनं
सत्त्वं हि वस्तादृशं भीमसेनाः।
उद्भासते ह्यञ्जनबिन्दुवत् त-
च्छुभ्रे वस्त्रे यद् भवेत् किल्बिषं वः॥ २४॥

सर्वक्षयो दृश्यते यत्र कृत्स्नः
पापोदयो निरयोऽभावसंस्थः।
कस्तत् कुर्याज्जातु कर्म प्रजानन्
पराजयो यत्र समो जयश्च॥ २५॥

हे भयानक सेनावालों! आप लोग ऐसे सत्वगुण से युक्त हैं, कि आप लोगों के द्वारा कोई नीचकर्म हो नहीं सकता। यदि आप लोगों में कोई अवगुण होता तो वह श्वेतवस्त्र में छोटी सी काजल की बूँद के समान सबको दिखाई देता। युद्ध जैसे कार्य को, जिसमें पूरी तरह से सबका विनाश हो, पापकर्मों का उदय हो, जो नरक का द्वार है, जिसके पश्चात् अभाव ही शेष रहता है,जिसमें जय और पराजय दोनों की सम्भावना है, उसे कौन व्यक्ति अच्छी तरह से जानते हुए भी करेगा?

ते चेत् कुरूननुशिष्याथ पार्था
निर्णीय सर्वान् द्विषतो निगृह्य।
समं वस्तज्जीवितं मृत्युना स्याद्
यज्जीवध्वं ज्ञातिवधे न साधु॥ २६॥
को ह्येव युष्मान् सह केशवेन
सचेकितानान् पार्षतबाहुगुप्तान्।
ससात्यकीन् विषहेत प्रजेतुं
लब्ध्वापि देवान् सचिवान् सहेन्द्रान्॥ २७॥

हे कुन्तीपुत्रों! यदि आप लोगों के द्वारा अपने से द्वेष करने वाले कौरवों को पकड़ कर उन्हें दण्ड दिया जायेगा, या कैद किया जायेगा या मार दिया जायेगा, तब आपका अपना जीवन भी मृत्यु के समान ही होगा, क्योंकि जातिभाइयों को मारने पर जो जीवन मिलेगा, वह प्रशंसनीय नहीं होगा। श्रीकृष्ण के, चेकितान के और सात्यकि के सहायक होने पर द्रुपद के बाहुबल से सुरक्षित आप लोगों को युद्ध में कौन शत्रु चाहे उसे इन्द्रसहित देवता लोग भी सहायक के रूप में प्राप्त हों, सामना कर सकता है।

को वा कुरून् द्रोणभीष्माभिगुप्ता-
नश्वत्थाम्ना शल्यकृपादिभिश्च।
रणे विजेतुं विषहेत राजन्
राधेयगुप्तान् सह भूमिपालैः॥ २८॥
महद् बलं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञः
को वै शक्तो हन्तुमक्षीयमाणः।
सोऽहं जये चैव पराजये च
निःश्रेयसं नाधिगच्छामि किञ्चित्॥ २९॥

इसी प्रकार हे राजन्! उन कौरवों को जो भीष्म, द्रोणाचार्य से सुरक्षित हैं तथा जिनके अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य, कर्ण आदि राजा लोग सहायक हैं, युद्ध में कौन जीत सकता है? राजा दुर्योधन के पास विशाल सेना एकत्र हो गयी है। कौन ऐसा है? जो स्वयं क्षीण न होते हुए उस सेना का विनाश कर दे। इसलिये मैं तो इस युद्ध में चाहे जय हो चाहे पराजय किसी भी अवस्था में कल्याण की बात नहीं समझ रहा हूँ।

कथं हि नीचा इव दौष्कुलेया
निर्धर्मार्थं कर्म कुर्युश्च पार्थाः।
सोऽहं प्रसाद्य प्रणतो वासुदेवं
पञ्चालानामधिपं चैव वृद्धम्॥ ३०॥
कृताञ्जलिः शरणं वः प्रपद्ये
कथं स्वस्ति स्यात् कुरुसृंजयानाम्।
न ह्येवमेवं वचनं वासुदेवो
धनंजयो वा जातु किंचिन्न कुर्यात्॥ ३१॥
प्राणान् दद्याद् याचमानः कुतोऽन्य-
देतद् विद्वन् साधनार्थं ब्रवीमि।
एतद् राज्ञो भीष्मपुरोगमस्य
मतं यद् वः शान्तिरिहोत्तमा स्यात्॥ ३२॥

कुन्ती के पुत्र नीचकुल में उत्पन्न नीचमनुष्यों के समान ऐसा कार्य कैसे कर सकते है? जिसमें न तो धर्म की सिद्धि होती है और न अर्थ की। इसलिये मैं पांचालों के राजा वृद्ध द्रुपद और श्रीकृष्ण जी का सम्मान करता हुआ इनके चरणों में प्रणाम करता हूँ। मैं हाथ जोड़कर आपकी शरण में आया हूँ और निवेदन करता हूँ कि कोई ऐसा रास्ता निकालिये, जिससे कौरवों और सृंजयों दोनों का कल्याण हो। निश्चय ही मेरी इस प्रार्थना को श्रीकृष्ण और अर्जुन किसी प्रकार भी ठुकरायेंगे नहीं। माँगने पर वे प्राणों को भी दे सकते है, अन्य पदार्थ की तो बात ही क्या है? हे विद्वान् युधिष्ठिर! मैं यह सन्धि की सिद्धि के लिये कह रहा हूँ। राजा धृतराष्ट्र और भीष्म आदि का भी यही मत है कि इस स्थिति में युद्ध की अपेक्षा शान्ति का होना ही उत्तम है।

नवाँ अध्याय : युधिष्ठिर और संजय का वार्तालाप।

युधिष्ठिर उवाच- कां नु वाचं संजय मे शृणोषि
युद्धैषिणीं येन युद्धाद् बिभेषि।
अयुद्धं वै तात युद्धाद् गरीयः
कस्तल्लब्ध्वा जातु युद्ध्येत सूत॥ १॥
अकुर्वतश्चेत् पुरुषस्य संजय
सिद्ध्येत् संकल्पो मनसा यं यमिच्छेत्।
न कर्म कुर्याद् विदितं ममैत-
दन्यत्र युद्धाद् बहु यल्लघीयः॥ २॥
कुतो युद्धं जातु नरोऽवगच्छेत्
सुखैषिणः कर्म कुर्वन्ति पार्थाः
धर्मादहीनं यच्च लोकस्य पथ्यम्।
धर्मोदयं सुखमाशंसमानाः॥ ३॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे संजय! तुमने मेरी कौनसी ऐसी बात सुनी है, जो मेरी युद्ध की इच्छा को प्रकट करती हो और जिसके कारण तुम युद्ध से डर रहे हो। हे तात सूत! शान्ति युद्ध से निश्चित ही अधिक महिमावाली है। यदि शान्ति का अवसर मिल जाये तो कौन युद्ध करेगा? यह मैं अच्छी तरह से समझता हूँ कि हे संजय! मनुष्य मन में जिन-जिन संकल्पों को करता है, वे यदि बिना काम किये ही पूरे हो जायें तो कोई भी कर्म न करे। इसलिये बिना युद्ध किये यदि थोड़ी वस्तु भी मिल जाती है, तो वह युद्ध करके प्राप्त होने वाली अधिक वस्तु से अधिक महान् है, फिर मनुष्य युद्ध का विचार क्यों करे? कुन्तीपुत्र उसी सुख को चाहते हैं जो धर्म की उन्नति करने वाला हो। ऐसे सुख की प्राप्ति के लिये वे कार्य भी उसी प्रकार से करते हैं, जो धर्म से रहित न हो और संसार के लिये कल्याणकारी हों।

स्वयं राजा विषमस्थः परेषु
सामस्थ्यमन्विच्छति तन्न साधु।
यथाऽऽत्मनः पश्यति वृत्तमेव
तथा परेषामपि सोऽभ्युपैतु॥ ४॥
आसन्नमग्निं तु निदाघकाले
गम्भीरकक्षे गहने विसृज्य।
यथा विवृद्धं वायुवशेन शोचेत्
क्षेमं मुमुक्षुः शिशिरव्यपाये॥ ५॥
प्राप्तैश्वर्यो धृतराष्ट्रोरद्य राजा
लालप्यते संजय कस्य हेतोः।
प्रगृह्य दुर्बुद्धिमनार्जवे रतं
पुत्रं मन्दं मूढममन्त्रिणं तु॥ ६॥

राजा धृतराष्ट्र स्वयं तो पक्षपातपूर्ण मार्ग पर विद्यमान हैं, पर वे दूसरों में समता का व्यवहार देखना चाहते हैं। यह उचित नहीं है। वे जैसा अपना व्यवहार समझते हैं, वैसा ही उन्हें दूसरों से भी प्राप्त करना चाहिये। हे संजय! जैसे कोई शिशिर ऋतु के व्यतीत होने पर गर्मी के मौसम में, घास फूस से भरे घने जंगल में आग लगा दे और जब वायु के वेग से वह अग्नि बढ़कर समीप आ जाये, तब वह उससे मुक्ति पाने के लिये, कल्याणयुक्त होने के लिये शोक करे, उसी प्रकार सारे ऐश्वर्य को प्राप्त करके मूर्ख मंत्रियों वाले अपने कुटिलमार्गगामी दुर्बुद्धि पुत्र का पक्ष लेकर राजा धृतराष्ट्र आज किस लिये विलाप कर रहे हैं।

मेधाविनं ह्यर्थकामं कुरूणां
बहुश्रुतं वाग्मिनं शीलवन्तम्।
स तं राजा धृतराष्ट्रः कुरुभ्यो
न सस्मार विदुरं पुत्रकाम्यात्॥ ७॥
मानघ्नस्य मानकामस्य चेर्षोः
संरम्भिणश्चार्थ- धर्मातिगस्य।
दुर्भाषिणो मन्युवशानुगस्य
कामात्मनो दौर्हृदैर्भावितस्य॥ ८॥
अनेयस्याश्रेयसो दीर्घमन्यो-
र्मित्रद्रुहः संजय पापबुद्धेः।
सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी
प्रपश्यमानः प्राजहाद् धर्मकामौ॥ ९॥

जो मेधावी हैं, कौरवों की सम्पत्ति की वृद्धि चाहते हैं, बहुत विद्वान् हैं, विचारशील हैं, उन विदुर की कौरवों की भलाई के लिये दी गयी सलाह को धृतराष्ट्र ने पुत्रस्नेह के कारण स्मरण नहीं किया। राजा धृतराष्ट्र ने अपने उस पुत्र का जो दूसरों का मान नष्ट कर अपने मान को चाहता है, ईर्ष्यालु और क्रोधी है, अर्थ और धर्म का उल्लंघन करनेवाला है, कटु बोलने वाला तथा क्रोधियों का अनुसरण करने वाला है, भोगों को चाहने वाला, दुर्भावनावालों का प्रिय, शिक्षा देने के अयोग्य और कल्याण से रहित है, लम्बे समय तक क्रोध को धारण करनेवाला, मित्र

द्रोही और पापबुद्धि है, प्रिय करने की इच्छा से अच्छी तरह से देखते हुए भी धर्म और काम का परित्याग किया है।

तदैव मे संजय दीव्यतोऽभू-
न्मतिः कुरूणामागतः स्यादभावः।
काव्यां वाचं विदुरो भाषमाणो
न विन्दते यद् धार्तराष्ट्रात् प्रशंसाम्॥ १०॥
सोऽहं न पश्यामि परीक्षमाणः
कथं स्वस्ति स्यात् कुरुसंजयानाम्।
आत्तैश्वर्यो धृतराष्ट्रः परेभ्यः
प्रव्राजिते विदुरे दीर्घदृष्टौ॥ ११॥
आशंसते वै धृतराष्ट्रः सपुत्रो
महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम्।
तस्मिञ्छमः केवलं नोपलभ्यः
सर्वं स्वकं मद्गते मन्यतेऽर्थम्॥ १२॥

हे संजय! जूआ खेलते हुए जब बुद्धिमत्ता की बात कहते हुए विदुर जी को दुर्योधन से प्रशंसा नहीं मिली, तभी मेरे मन में विचार आया था कि शायद कौरवों के विनाश का समय समीप आ गया है। मुझे अब बहुत सोचने पर भी कोई ऐसा मार्ग नहीं दिखाई देता, जिससे किसी प्रकार कुरु और सृंजय वंशियों का कल्याण हो। दूसरों के ऐश्वर्य को प्राप्त कर, दूरदर्शी विदुर को निर्वासित कर, धृतराष्ट्र अपने पुत्रों सहित भूमण्डल के साम्राज्य को निष्कण्टक प्राप्त कर लेना चाहते हैं। जो हमारे वन में चले जाने पर सारी सम्पत्ति को अपना ही मानने लगे, ऐसे के साथ केवल शान्ति ही बनी रहेगी, यह सम्भव नहीं प्रतीत होता।

यत् तत् कर्णो मन्यते पारणीयं
युद्धे गृहीतायुधमर्जुनं वै।
आसंश्च युद्धानि पुरा महान्ति
कथं कर्णो नाभवद् द्वीप एषाम्॥ १३॥
कर्णश्च जानाति सुयोधनश्च
द्रोणश्च जानाति पितामहश्च।
अन्ये च ये कुरवस्तत्र सन्ति
यथार्जुनान्नास्त्यपरो धनुर्धरः॥ १४॥

कर्ण जो यह समझता है कि हथियार हाथ में लिये हुए अर्जुन को मैं युद्ध में जीत सकता हूँ तो पहले भी अनेक बड़े युद्ध हुए हैं, तब कर्ण उन कौरवों का आश्रयदाता क्यों नहीं बना? इस बात को कर्ण जानता है, दुर्योधन भी जानता है, द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह भी जानते हैं और दूसरे जो कौरव वहाँ हैं, वे भी जानते हैं कि अर्जुन से बढ़कर कोई दूसरा धनुर्धर नहीं है।

जानन्त्येतत् कुरवः सर्व एव
ये चाप्यन्ये भूमिपालाः समेताः।
दुर्योधने राज्यमिहाभवद् यथा
अरिंदमे फाल्गुने विद्यमाने॥ १५॥
तेनानुबन्धं मन्यते धार्तराष्ट्रः
शक्यं हर्तुं पाण्डवानां ममत्वम्।
किरीटिना तालमात्रायुधेन
तद्वेदिना संयुगं तत्र गत्वा॥ १६॥

सारे कौरव इस बात को जानते हैं, जो दूसरे राजा लोग वहाँ एकत्र हुए हैं, वे भी जानते हैं कि शत्रुदमन अर्जुन के विद्यमान होते हुए दुर्योधन ने किस प्रकार से पाण्डवों का राज्य प्राप्त किया है। पाण्डवों का अपने राज्य पर जो अधिकार है, उसे हर लेना धृतराष्ट्र का पुत्र क्या सरल समझता है? उसके लिये उसे धनुर्वेद के विद्वान् अर्जुन के साथ, जो चार हाथ लम्बा धनुष धारण करते हैं, युद्ध करना होगा।

गाण्डीवविस्फारित- शब्दमाजा-
वशृण्वाना धार्तराष्ट्रा ध्रियन्ते।
क्रुद्धं न चेदीक्षते भीमसेनं
सुयोधनो मन्यते सिद्धमर्थम्॥ १७॥
इन्द्रोऽप्येतन्नोत्सहेत् तात हर्तु-
मैश्वर्यं नो जीवति भीमसेने।
धनंजये नकुले चैव सूत
तथा वीरे सहदेवे सहिष्णौ॥ १८॥

धृतराष्ट्र के पुत्र तभी तक विद्यमान हैं, जब तक वे युद्ध में गाण्डीवधनुष की टंकार नहीं सुनते हैं। दुर्योधन जब तक क्रोध में भरे हुए भीम को नहीं देख रहा है, तभी तक अपने प्रयोजन को सिद्ध हुआ समझ रहा है। हे तात सूत! भीमसेन, अर्जुन, नकुल, और सहनशील वीर सहदेव के जीवित रहते हुए इन्द्र भी हमारे ऐश्वर्य का हरण नहीं कर सकता।

स चेदेतां प्रतिपद्येत बुद्धिं
वृद्धो राजा सह पुत्रेण सूत।

एवं रणे पाण्डवकोपदग्धा
न नश्येयुः संजय धार्तराष्ट्राः॥ १९॥
जानासि त्वं क्लेशमस्मासु वृत्तं
त्वां पूजयन् संजयाहं क्षमेयम्।
यच्चास्माकं कौरवैर्भूतपूर्वं
या नो वृत्तिर्धार्तराष्ट्रे तदाऽऽसीत्॥ २०॥
अद्यापि तत् तत्र तथैव वर्ततां
शान्तिं गमिष्यामि यथात्वमात्थ।
इन्द्रप्रस्थे भवतु ममैव राज्यं
सुयोधनो यच्छतु भारताग्र्यः॥ २१॥

हे सूत संजय! यदि बूढ़े राजा अपने पुत्रों के साथ इस बात को समझ जायें, तो धृतराष्ट्र के पुत्र युद्ध में पाण्डवों के क्रोध में भस्म होने से बच जायेंगे। हे संजय तुम जानते हो कि कौरवों ने पहले हमारे साथ कैसा व्यवहार किया था और हमारा उनके साथ कैसा बर्ताव रहा था तथा हमें उनके कारण कितना कष्ट उठाना पड़ा? फिर भी मैं तुम्हारा सम्मान करता हुआ, उनके उन अपराधों को क्षमा कर सकता हूँ। आज भी पहले जैसा ही सब कुछ हो सकता है और जैसे तुमने कहा है, मैं शान्ति को ग्रहण कर लूँगा, पर भरतवंशियों में अग्रणी दुर्योधन मेरा राज्य लौटा दे और इन्द्रप्रस्थ में मेरा पहले जैसा ही राज्य हो।

संजय उवाच- धर्मनित्या पाण्डव ते विचेष्टा
लोके श्रुता दृश्यते चापि पार्थ।
महाश्रावं जीवितं चाप्यनित्यं
सम्पश्य त्वं पाण्डव मा व्यनीनशः॥ २२॥
न चेद् भागं कुरवोऽन्यत्र युद्धात्
प्रयच्छेरंस्तुभ्य मजातशत्रो।
भैक्षचर्यामन्धक वृष्णिराज्ये
श्रेयो मन्ये न तु युद्धेन राज्यम्॥ २३॥

तब संजय ने कहा कि हे पाण्डुपुत्र! तुम्हारे तो सारे कार्य सदा धर्म के ही अनुसार रहे हैं। हे कुन्तीपुत्र! संसार में तुम्हारी इसके लिये प्रसिद्धि भी है। हे पाण्डव! तुम अस्थिर जीवन की अनित्यता को देखो और अपनी इस महान् कीर्ति को नष्ट मत करो। हे अजातशत्रु! यदि कौरवलोग बिना युद्ध किये तुम्हारा भाग तुम्हें न दें, तो मैं युद्ध करके राज्य लेने की अपेक्षा अंधक और वृष्णिवंशियों के राज्य में भिक्षाचर्या के द्वारा आपका जीवन बिताना अच्छा समझता हूँ।

अल्पकालं जीवितं यन्मनुष्ये
महास्त्रावं नित्यदुःखं चलं च।
भूयश्च तद् यशसो नानुरूपं
तस्मात् पापं पाण्डव मा कृथास्त्वम्॥ २४॥
वेदोऽधीतश्चरितं ब्रह्मचर्यं
यज्ञैरिष्टं ब्राह्मणेभ्यश्च दत्तम्।

मनुष्य का जीवन थोड़े समय का, अस्थिर, सदा दुःखों से युक्त, और चंचल है। इसलिये हे पाण्डुपुत्र! आप युद्धरूपी पाप मत करो। यह आपकी प्रसिद्धि के अनुरूप नहीं है। आपने वेदों का अध्ययन किया है, ब्रह्मचर्य का पालन किया है, यज्ञों का अनुष्ठान किया है और ब्राह्मणों को दान दिया है।

इह क्षेत्रे क्रियते पार्थ कार्यं
न वै किञ्चित् क्रियते प्रेत्य कार्यम्॥ २५॥
कृतं त्वया पारलौक्यं च कर्म
पुण्यं महत् सद्भिरतिप्रशस्तम्।
तच्चेदेवं द्वेषरूपेण पार्थाः
करिष्यध्वं कर्म पापं चिराय॥ २६॥
निवसध्वं वर्षपूगान् वनेषु
दुःखं वासं पाण्डवा धर्म एव।

हे कुन्तीपुत्र! इस शरीर के द्वारा ही सत्कर्म किये जा सकते हैं। मृत्यु के पश्चात् नहीं किये जा सकते। आपने परलोक को उत्तम बनानेवाले महान् पुण्य कर्म किये हैं, जिनकी सज्जनों ने बड़ी प्रशंसा की है। हे कुन्तीपुत्रों! यदि आपको चिरस्थायी द्वेष से युक्त युद्ध रूपी पापकर्म को करना ही पड़े तो उसकी अपेक्षा आप अनेक वर्षों तक वनों में ही कष्टपूर्ण निवास करते रहें। यही आपके लिये धर्म होगा।

अप्रव्रज्येमा स्म हित्वाऽऽपुरस्ता-
दात्माधीनं यद् बलं ह्येतदासीत्॥ २७॥
नित्यं च वश्याः सचिवास्तवेमे
जनार्दनो युयुधानश्च वीरः।
मत्स्यो राजा रुक्मरथः सपुत्रः
प्रहारिभिः सह वीरैर्विराटः॥ २८॥
राजानश्च ये विजिताः पुरस्तात्
त्वामेव ते संश्रयेयुः समस्ताः।
महासहायः प्रतपन् बलस्थः
पुरस्कृतो वासुदेवार्जुनाभ्याम्॥ २९॥

वरान् हनिष्यन् द्विषतो रङ्गमध्ये
व्यनेष्यथा धार्तराष्ट्रस्य दर्पम्।

पहले अर्थात् द्यूतक्रीड़ा के समय ही हम लोग (अर्थात् आप लोग) वन में जाये बिना इन्हें मारकर रह सकते थे। क्योंकि तब सेना भी अपने आधीन थी। आपके सलाहकार श्रीकृष्ण, सात्यकि भी सदा प्रेमवश आपके आधीन रहे हैं। मत्स्यराज विराट, जो सुनहले रथ से सुशोभित हैं, अपने प्रहार करने में कुशल वीरों तथा पुत्रों के साथ, तथा दूसरे राजालोग, जिन्हें आपने जीता था, सारे आपका ही पक्ष लेते। उस समय आप महान् सहायकों से युक्त, प्रतापी और सेना वाले थे। अर्जुन और श्रीकृष्ण की सहायतायुक्त होकर आप अपने महान् शत्रुओं को युद्धक्षेत्र में मारते हुए दुर्योधन के अभिमान को चूर कर सकते थे।

बलं कस्माद् वर्धयित्वा परस्य
निजान् कस्मात् कर्शयित्वा सहायान्॥ ३०॥
निरुष्य कस्मात् वर्षपूगान् वनेषु
युयुत्ससे पाण्डव हीनकालम्।
नाधर्मे ते धीयते पार्थ बुद्धि-
र्न संरम्भात् कर्म चकर्थ पापम्॥ ३१॥
आत्थ किं तत् कारणं यस्य हेतोः
प्रज्ञाविरुद्धं कर्म चिकीर्षसीदम्।

पर अब शत्रुओं की शक्ति को बढ़ने का अवसर देकर, अपने सहायकों को दुर्बल बनाकर, बहुत सारे वर्ष वनों में रहकर, जब उपयुक्त समय व्यतीत हो गया, तब आप क्यों युद्ध की इच्छा कर रहे हैं? हे कुन्तीपुत्र! आपकी अधर्म में बुद्धि नहीं है। आपने क्रोध में भी पापकर्म नहीं किया, फिर अब यह बताइये कि कौन सा वह कारण है कि जिसके लिये आप यह अपनी बुद्धि के विपरीत युद्धरूपी कार्य करना चाहते हैं।

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि
यशोमुखं पापफलोदयं वा॥ ३२॥
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य।
पापानुबन्धं को नु तं कामयेत
क्षमैव ते ज्यायसी नोत भोगाः॥ ३३॥
यत्र भीष्मः शान्तनवो हतः स्याद्

जो बिना बीमारी के ही उत्पन्न हो जाता है, दुःखदायी है, सिर में दर्द पैदा कर देता है, यश को चुराने वाला है, पापरूपी फल को जन्म देने वाला है, जिसे सत्पुरुष ही पीते हैं, असत्पुरुष नहीं, उस क्रोध को महाराज! आप शान्त करके पी लीजिये। पाप की जड़ इस क्रोध को कौन चाहेगा? आपके लिये तो क्षमा ही महान् है। वे भोग नहीं, जिनके लिये शान्तनुपुत्र भीष्म और द्रोणाचार्य अपने पुत्र सहित मारे जायें।

यत्र द्रोणः सहपुत्रो हतः स्यात्।
कृपः शल्यः सौमदत्तिर्विकर्णो
विविंशतिः कर्णदुर्योधनौ च॥ ३४॥
एतान् हत्वा कीदृशं तत् सुखं स्याद्
यद् विन्देथास्तदनु ब्रूहि पार्थ।
लब्ध्वापीमां पृथिवीं सागरान्तां
जरामृत्यू नैव हि त्वं प्रजह्याः॥ ३५॥
प्रियाप्रिये सुखदुःखे च राज-
न्नेवं विद्वान् नैव युद्धं कुरु त्वम्।

कृपाचार्य, राजा शल्य, सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, विकर्ण, विविंशति, कर्ण, दुर्योधन इन सबको मारकर हे कुन्तीपुत्र! जिसे आप प्राप्त करेंगे, वह सुख कैसा होगा? यह बताइये। इस सागरपर्यन्त भूमि को प्राप्त करके भी आप बुढ़ापे और मृत्यु से नहीं बच सकते। प्रिय, अप्रिय, दुःख और सुख सब आपको प्राप्त होंगे, यह जानते हुए हे राजन् आप युद्ध मत कीजिये।

युधिष्ठिर उवाच- असंशयं संजय सत्यमेतद्
धर्मो वरः कर्मणां यत् त्वमात्थ॥ ३६॥
ज्ञात्वा तु मां संजय गर्हयेस्त्वं
यदि धर्मं यद्यधर्मं चरेयम्।
यत्राधर्मो धर्मरूपाणि धत्ते
धर्मः कृत्स्नो दृश्यतेऽधर्मरूपः॥ ३७॥
बिभ्रद् धर्मो धर्मरूपं तथा च
विद्वांसस्तं सम्प्रपश्यन्ति बुद्ध्या।

तब युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि हे संजय! इसमें कोई संशय नहीं है, यह सत्य है कि जैसा तुमने कहा है, धर्म ही सारे कार्यों में श्रेष्ठ है। पर हे संजय! यह जानकर ही कि मैं धर्म का पालन कर रहा हूँ या अधर्म का, तुम्हें मेरी निन्दा करनी चाहिये। अनेक स्थान ऐसे होते हैं, जहाँ अधर्म धर्म का रूप धारण कर लेता है, कहीं धर्म ही पूरी तरह से अधर्म

सा प्रतीत होने लगता है। कहीं धर्म अपने शुद्ध रूप में दिखाई देता है। विद्वान् लोग इन सभी स्थानों पर धर्म को अपनी बुद्धि से पहचानते हैं।

सम्पश्येथाः कर्मसु वर्तमानान्
विकर्मस्थान् संजय गर्हयेस्त्वम्॥ ३८॥
तद्ध्वानः पितरो ये च पूर्वे
पितामहा ये च तेभ्यः परेऽन्ये।
यज्ञैषिणो ये च हि कर्म कुर्यु-
र्नान्यं ततो नास्तिकोऽस्मीति मन्ये॥ ३९॥

तुम यह देख रहे हो कि हम अपने क्षत्रियोचित धर्म में विद्यमान हैं, फिर तुम हमारी निन्दा कैसे कर सकते हो? हे संजय! यदि हम अपने क्षत्रिय वर्ण के विपरीत कर्म को करने लगें, तब तुम हमारी निन्दा करना। यज्ञ की इच्छा रखने वाले मेरे पिता और पितामह जिस मार्ग पर चलते रहे और उनके भी पूर्वजों का जो मार्ग था, मैं उसी मार्ग पर चल रहा हूँ, दूसरे पर नहीं। इसलिये मैं समभता हूँ कि मैं नास्तिक नहीं हूँ।

धर्मेश्वरः कुशलो नीतिमांश्चा-
प्युपासिता ब्राह्मणानां मनीषी।
नानाविधांश्चैव महाबलांश्च
राजन्यभोजाननुशास्ति कृष्णः॥ ४०॥
यदि ह्यहं विसृजन् साम गर्ह्यो
नियुध्यमानो यदि जह्यां स्वधर्मम्।
महायशाः केशवस्तद् ब्रवीतु
वासुदेवस्तू भयोरर्थकामः॥ ४१॥

ये श्रीकृष्ण जी धर्म के स्वामी, कुशल नीतिज्ञ, ब्राह्मणों की सेवा करने वाले, मनीषी तथा अनेक प्रकार के महाबलवान् क्षत्रियों और भोजवंशियों पर शासन करते हैं। ये महायशस्वी केशव दोनों पक्षों का हित चाहने वाले हैं। ये बतायें कि यदि मैंने सामनीति का त्याग किया है तो मैं निन्दनीय हूँ। यदि युद्ध करते हुए मैं अपने धर्म को छोड़ूँ, तो निन्दा के योग्य हूँ।

दसवाँ अध्याय : श्री कृष्ण द्वारा संजय को उत्तर, धृतराष्ट्र को चेतावनी।

वासुदेव उवाच-अविनाशं संजय पाण्डवाना-
मिच्छाम्यहं भूतिमेषां प्रियं च।
तथा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य सूत
समाशंसे बहुपुत्रस्य वृद्धिम्॥ १॥
कामो हि मे संजय नित्यमेव
नान्यद् ब्रूयां तान् प्रति शाम्यतेति।
राज्ञश्च हि प्रियमेतच्छृणोमि
मन्ये चैतत् पाण्डवानां समक्षम्॥ २॥

तब श्रीकृष्ण ने कहा कि हे संजय मैं यह चाहता हूँ कि पाण्डवों का विनाश न हो, इनका ऐश्वर्य बढ़े और इनके प्रिय कार्य सम्पन्न होते रहें, पर हे सूत! मैं उसी प्रकार बहुत सारे पुत्रों वाले राजा धृतराष्ट्र की भी वृद्धि को चाहता हूँ। हे संजय! यह मेरी कामना है मैं सदा पाण्डवों से, सिवाय इसके कि शान्ति को अपनाओ और कुछ नहीं कहता। राजा युधिष्ठिर से भी मैं यही प्रिय बात सुनता हूँ, जिसे मैं भी मानता हूँ।

सुदुष्करस्तत्र शमो हि नूनं
प्रदर्शितः संजय पाण्डवेन।
यस्मिन् गृद्धो धृतराष्ट्रः सपुत्रः
कस्मादेषां कलहो नावमूर्च्छेत्॥ ३॥
न त्वं धर्मं विचरं संजयेह
मत्तश्च जानासि युधिष्ठिराच्च।
अथो कस्मात् संजय पाण्डवस्य
उत्साहिनः पूरयतः स्वकर्म॥ ४॥
यथाऽऽख्यातमावसतः कुटुम्बे
पुरा कस्मात् साधुविलोपमात्थ।
स कस्मात् त्वं जानतां ज्ञानवान् सन्
व्यायच्छसे संजय कौरवार्थे॥ ५॥

हे संजय! पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ने वास्तव में उस शान्ति का प्रदर्शन किया है, जो अत्यन्त दुष्कर है। फिर भी इनके जिस राज्य पर धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के साथ ललचा रहे हैं, उसके लिये इन दोनों पक्षों में कलह क्यों नहीं बढ़ेगा? हे संजय! तुम जानते हो कि मेरे द्वारा और युधिष्ठिर के द्वारा धर्म को विचलित नहीं किया जा सकता। ये पाण्डव उत्साह पूर्वक अपने कर्तव्यों को धर्म के अनुसार पूरा करते हैं। जैसे शास्त्रों में कहा गया है, वैसे ही ये परिवार

में रहते हैं, फिर तुमने इनके द्वारा धर्म के लोप की आशंका की बात क्यों कही? हे संजय! तुम ज्ञानियों में भी ज्ञानी हो, फिर कौरवों के स्वार्थ को पूरा करने के लिये यह वाग्जाल क्यों फैला रहे हो?

ते चेदिमे कौरवाणामुपाय-
मवगच्छेयुरवधेनैव पार्थाः।
धर्मत्राणं पुण्यमेषां कृतं स्या-
दार्ये वृत्ते भीमसेनं निगृह्य॥ ६॥
ते चेत् पित्र्ये कर्मणि वर्तमाना
आपद्येरन् दिष्टवशेन मृत्युम्।
यथाशक्त्या पूरयन्तः स्वकर्म
तदप्येषां निधनं स्यात् प्रशस्तम्॥ ७॥
उताहो त्वं मन्यसे शाम्यमेव
राज्ञां युद्धे वर्तते धर्मतन्त्रम्।
अयुद्धे वा वर्तते धर्मतन्त्रं
तथैव ते वाचमिमां शृणोमि॥ ८॥

ये पाण्डव यदि अपने राज्य को प्राप्त करने का कोई दूसरा उपाय जान जायें, जिसमें कौरवों का वध न करना पड़े तो ये भीमसेन को भी शान्ति के श्रेष्ठ मार्ग पर आग्रहपूर्वक लगा लेंगे और धर्म की रक्षा के पवित्र कार्य को सम्पन्न करेंगे। किन्तु अपने पितरों के कर्म क्षत्रियधर्म का सम्पादन करते हुए, यथाशक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए, परमात्मा की इच्छा से मृत्यु को भी प्राप्त हो जायें, तो इनकी वह मृत्यु प्रशंसनीय समझी जाएगी। यदि तुम प्रत्येक परिस्थिति में शान्ति को ही ठीक समझते हो तो यह बताओ कि राजाओं के द्वारा युद्ध करने से धर्म की रक्षा होती है या उनके द्वारा युद्ध को छोड़कर भाग जाने से धर्म की रक्षा होती है? मैं इस विषय में तुम्हारी बात सुनना चाहता हूँ।

यदा गृध्येत् परभूतौ नृशंसो
विधिप्रकोपाद् बलमाददानः।
तत्र पुण्यं दस्युवधेन लभ्यते
सोऽयं दोषः कुरुभिस्तीव्ररूपः॥ ९॥
अधर्मज्ञैर्धर्म मबुध्यमानैः
प्रादुर्भूतः संजय साधु तन्न।
तत्र राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो
धर्म्यं हरेत् पाण्डवानामकस्मात्॥ १०॥
नावेक्षन्ते राजधर्मं पुराणं
तदन्वयाः कुरवः सर्व एव।

जब विधाता के प्रकोप से कोई क्रूर मनुष्य शक्ति का संग्रह करते हुए दूसरे की सम्पत्ति को लेने की इच्छा करने लगे, वहाँ राजा को उस लुटेरे के वध से पुण्य प्राप्त होता है। कौरवों में भी यही दोष तीव्र रूप से उत्पन्न हो गया है। ये लोग अधर्म को ही मानते हैं, धर्म को नहीं समझते। हे संजय! यह ठीक नहीं है। राजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों के साथ, पाण्डवों के उस राज्य को, जो उन्हें धर्मपूर्वक प्राप्त हुआ था, अकस्मात् हर लिया है। वे प्राचीन राजधर्म को नहीं देख रहे हैं। सारे कौरव भी उन्हीं का अनुसरण कर रहे हैं।

स्तेनो हरेद् यत्र धनं ह्यदृष्टः
प्रसह्य वा यत्र हरेत दृष्टः॥ ११॥
उभौ गर्ह्यौ भवतः संजयैतौ
किं वै पृथक्त्वं धृतराष्ट्रस्य पुत्रे।
सोऽयं लोभान्मन्यते धर्ममेतं
यमिच्छति क्रोधवशानुगामी॥ १२॥
भागः पुनः पाण्डवानां निविष्ट-
स्तं नः कस्मादाददीरन् परे वै।

चाहे चोर छिपकर धन को चुरा ले, या डाकू बलपूर्वक धन को छीन ले, हे संजय! ये दोनों निन्दा के योग्य हैं। धृतराष्ट्र के पुत्रों तथा चोर और डाकुओं में क्या अन्तर है? क्रोध के वश में रहनेवाला यह दुर्योधन, लोभ से जिस राज्य को लेना चाहता है और इस कार्य को धर्म मान रहा है, पाण्डवों के हिस्से का वह राज्य, उनके पास धरोहर के रूप में रखा हुआ है। हमारे शत्रु, वे कौरव उसे कैसे ले सकते है?

अस्मिन् पदे युध्यतां नो वधोऽपि
श्लाघ्यः पित्र्यं परराज्याद् विशिष्टम्॥ १३॥
एतान् धर्मान् कौरवाणां पुराणा-
नाचक्षीथाः संजय राजमध्ये।
एते मदान्मृत्युवशाभिपन्नाः
समानीता धार्तराष्ट्रेण मूढाः॥ १४॥
इदं पुनः कर्म पापीय एव
सभामध्ये पश्य वृत्तं कुरूणाम्।

इस अपने राज्यभाग की प्राप्ति के लिये युद्ध करते हुए यदि हमारा वध भी हो जाये तो वह प्रशंसनीय होगा। बाप दादों का राज्य दूसरों के राज्य से बढ़ कर होता है। इसलिये हे संजय! तुम इन

पुराने धर्मों का, वहाँ राजाओं के बीच में वर्णन करना। दुर्योधन ने जिन मूर्ख राजाओं को युद्ध के लिये बुलाया है, वे अभिमान के नशे में पड़कर मृत्यु के वश में हो गये हैं। तुम कौरवों के उस पापपूर्ण कृत्य पर निगाह डालो, जो उन्होंने सभा के बीच में किया।

दुःशासनः प्रातिलोम्यान्निनाय
सभामध्ये श्वशुराणां च कृष्णाम्॥ १५॥
सा तत्र नीता करुणं व्यपेक्ष्य
नान्यं क्षत्तुर्नाथमवाप किंचित्।
कार्पण्यादेव सहितास्तत्र भूपा
नाशक्नुवन् प्रतिवक्तुं सभायाम्॥ १६॥
एकः क्षत्ता धर्म्यमर्थं ब्रुवाणो
धर्मबुद्ध्या प्रत्युवाचाल्पबुद्धिम्।

दुश्शासन मर्यादा का उल्लंघन कर द्रौपदी को घसीटता हुआ, उनके श्वसुरों के सामने ही सभा में ले गया। द्रौपदी ने वहाँ कातरभाव से, सब तरफ अपनी करुणदृष्टि डाली, पर सिवाय विदुर के और किसी को अपना रक्षक नहीं पाया। वहाँ एकत्र सारे राजालोग अपनी कायरता के कारण विरोध नहीं कर सके। एक विदुर ने ही धर्म के अनुसार बातें कहकर, अपने धर्म का पालन करते हुए उस मूर्ख दुर्योधन का विरोध किया।

अबुद्ध्वा त्वं धर्ममेतं सभाया-
मथेच्छसे पाण्डवस्योपदेष्टुम्॥ १७॥
कृष्णा त्वेतत् कर्म चकार शुद्धं
सुदुष्करं तत्र सभां समेत्य।
येन कृच्छ्रात् पाण्डवानुज्जहार
तथाऽऽत्मानं नौरिव सागरौघात्॥ १८॥
यत्राब्रवीत् सूतपुत्रः सभायां
कृष्णां स्थितां श्वशुराणां समीपे।
न ते गतिर्विद्यते याज्ञसेनि
प्रपद्य दासी धार्तराष्ट्रस्य वेश्म॥ १९॥
पराजितास्ते पतयो न सन्ति
पतिं चान्यं भाविनि त्वं वृणीष्व।

उस समय सभा में जो अधर्म हुआ, उससे अनजान बन कर तुम पाण्डुपुत्र को धर्म का उपदेश देना चाहते हो। द्रौपदी ने उस दिन सभा में जाकर बड़े पवित्र और अत्यन्त कठिन कार्य को किया कि उसने अपने को भी और पाण्डवों को भी संकट से ऐसे निकाला जैसे नाव सागर से पार लगाती है। वहाँ उस सभा में अपने श्वसुरों के समीप ही विद्यमान द्रौपदी से सारथि के बच्चे कर्ण ने कहा था कि हे द्रौपदी! अब तेरे लिये कोई रास्ता नहीं है। तू अब दुर्योधन के घर में दासी बन कर जा। तेरी रक्षा करनेवाले पाण्डव हार गये। वे अब तेरे रक्षक नहीं हैं। हे स्वेच्छाचारिणी! अब तू किसी और को अपना रखवाला बना ले।

नोटः- यहाँ पति शब्द का अर्थ विवाहित व्यक्ति नहीं, अपितु उसका वास्तविक अर्थ रक्षक है। पति शब्द रक्षा अर्थवाली पा धातु से बना है। क्योंकि विवाहित व्यक्ति एक ही होता है, एक से अधिक नहीं, पाण्डव द्रौपदी के रक्षक थे, विवाहित व्यक्ति तो केवल युधिष्ठिर था।

यो बीभत्सोर्हृदये प्रोत आसी-
दस्थिच्छिन्दन् मर्मघाती सुघोरः॥ २०॥
कर्णाच्छरो वाङ्मयस्तिग्मतेजाः
प्रतिष्ठितो हृदये फाल्गुनस्य।
कृष्णाजिनानि परिधित्समानान्
दुःशासनः कटुकान्यभ्यभाषत्॥ २१॥
एते सर्वे षण्ढतिलाः विनष्टाः,
क्षयं गताः नरकं दीर्घकालम्।
गान्धारराजः शकुनिर्निकृत्या
यदब्रवीद् द्यूतकाले स पार्थम्॥ २२॥
पराजितो नन्दनः किं तवास्ति
कृष्णया त्वं दीव्य वै याज्ञसेन्या।

कर्ण के द्वारा कही ये भयानक बातें अत्यन्त तीखे, मर्मस्थल को छेदनेवाले बाण के समान अर्जुन के कानों के मार्ग से हड्डियों को भेदती हुई उसके हृदय में घुस गयी थीं और वे आज भी उसके हृदय में घुसी हुई हैं। वन में जाने के लिये कृष्ण मृगचर्म को धारण करते हुए पाण्डवों को दुश्शासन ने यह कड़वी बात कही थी कि ये सब हीजड़े नष्ट हो गये और ये अब लम्बे समय के लिये नरक में पड़ेंगे। गान्धारराज शकुनि ने जूआ खेलते हुए शठतापूर्वक कुन्तीपुत्र से यह कहा कि अब तो तुम छोटे भाई को भी हार गये। अब तुम्हारे पास क्या है? अब तुम द्रौपदी को दाँव पर रखकर जूआ खेलो।

जानासि त्वं संजय सर्वमेतद्
द्यूते वाक्यं गर्ह्यमेवं यथोक्तम्॥ २३॥

स्वयं त्वहं प्रार्थये तत्र गन्तुं
समाधातुं कार्यमेतद् विपन्नम्।
अहापयित्वा यदि पाण्डवार्थं
शमं कुरूणामपि चेच्छकेयम्॥ २४॥
पुण्यं च मे स्याच्चरितं महोदयं
मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात्।

हे संजय! तुम सारी उन गलत बातों को जानते हो, जिन्हें पाण्डवों से जूए के समय कहा गया था। किन्तु फिर भी इस बिगड़े हुए कार्य को बनाने के लिये मैं स्वयं वहाँ हस्तिनापुर में जाना चाहता हूँ। यदि मैं पाण्डवों के प्रयोजन को नष्ट किये बिना कौरवों के साथ संधि स्थापित करा सका, तो मेरे द्वारा यह एक पुण्य और महान् उन्नति का कार्य हो जायेगा तथा कौरव लोग भी मृत्यु के बन्धन से छूट जायेंगे।

अपि मे वाचं भाषमाणस्य काव्यां
धर्मारामामर्थवती महिंस्राम्॥ २५॥
अवेक्षेरन् धार्तराष्ट्राः समक्षं
मां च प्राप्तं कुरवः पूजयेयुः।
अतोऽन्यथा रथिना फाल्गुनेन
भीमेन चैवाहवदंशितेन॥ २६॥
परासिक्तान् धार्तराष्ट्रांश्च विद्धि
प्रदह्यमानान् कर्मणा स्वेन पापान्।
पराजितान् पाण्डवेयांस्तु वाचो
रौद्रा रूक्षा भाषते धार्तराष्ट्रः॥ २७॥
गदाहस्तो भीमसेनोऽप्रमत्तो
दुर्योधनं स्मारयिता हि काले।

क्या धृतराष्ट्र के पुत्र मेरी उन बातों को जो बुद्धिमत्तायुक्त, धर्म और अर्थवाली तथा हिंसा को रोकनेवाली होंगी, ध्यान से सुनेंगे? क्या वे मेरे वहाँ जाने पर मेरा सम्मान करेंगे? यदि ऐसा नहीं हुआ तो रथ पर बैठे हुए अर्जुन तथा कवच पहने हुए भीम के द्वारा पराजित हुए पापी कौरवों को अपने ही कर्मदोष से नष्ट हुआ समझना। दुर्योधन ने जूए में हारे हुए पाण्डवों को जो भयानक कठोर बातें सुनाईं थीं, युद्ध में सदा सावधान रहने वाले भीम गदा हाथ में लेकर उसे उनकी याद दिलायेंगे।

सुयोधनो मन्युमयो महाद्रुमः
स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः॥ २८॥
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे
मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी।
युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः
स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः॥ २९॥
माद्रीपुत्रौ पुष्पफले समृद्धे
मूलं त्वहं ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च।
वनं राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो
व्याघ्रास्ते वै संजय पाण्डुपुत्राः।
सिंहाभिगुप्तं न वनं विनश्येत्
सिंहो न नश्येत वनाभिगुप्तः॥ ३०॥

दुर्योधन यदि क्रोध से भरा हुआ विशाल वृक्ष है तो कर्ण उसका तना और शकुनि शाखा है। दुश्शासन उसके समृद्ध फल और फूल हैं और अविद्वान् राजा धृतराष्ट्र उसकी जड़ है। युधिष्ठिर यदि धर्मयुक्त विशाल वृक्ष है, तो अर्जुन उसका तना और भीमसेन उसकी शाखा है। माद्री के दोनों पुत्र उसके समृद्ध फल और फूल हैं। उसकी जड़ मैं परमात्मा तथा ब्राह्मण लोग हैं। पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र राजा यदि वन है तो हे संजय! पाण्डु के पुत्र उसमें रहनेवाले सिंह हैं। जिस वन की सिंह रक्षा करता है, वह वन नष्ट नहीं होता तथा सिंह को भी यदि वन में सुरक्षा प्राप्त होती रहे तो सिंह का नाश नहीं होता।

निर्वनो वध्यते व्याघ्रो निर्व्याघ्रं छिद्यते वनम्।
तस्माद् व्याघ्रो वनं रक्षेद् वनं व्याघ्रं च पालयेत्॥ ३१॥
लताधर्मा धार्तराष्ट्राः शालाः संजय पाण्डवाः।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता॥ ३२॥
स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिंदमाः।
यत् कृत्यं धृतराष्ट्रस्य तत् करोतु नराधिपः॥ ३३॥
स्थिताः शमे महात्मानः पाण्डवा धर्मचारिणः।
योधाः समर्थास्तद् विद्वन्नाचक्षीथा यथातथम्॥ ३४॥

वन से बाहर निकलाहुआ सिंह मारा जाता है। बिना सिंहवाला वन काट लिया जाता है। इसलिये सिंह के द्वारा वन की रक्षा होनी चाहिये और वन के द्वारा सिंह का पालन होना चाहिये। हे संजय! पाण्डुपुत्र शालवृक्ष के समान हैं, तो धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव लताओं के समान हैं। बिना बड़े वृक्ष का सहारा लिये लताओं की बढ़ोतरी नहीं होती। ये शत्रुओं का दमन करने वाले कुन्तीपुत्र सेवा करने और युद्ध करने दोनों के लिये तैयार हैं, अब राजा धृतराष्ट्र जो करना चाहें वह कर लें। युद्ध करने में

समर्थ, धर्म का आचरण करनेवाले महात्मा पाण्डव शान्ति के मार्ग पर भी खड़े हुए हैं। इसलिये हे विद्वान् संजय! तुम ये सारी बातें ज्यों की त्यों वहाँ जाकर कह देना।

ग्यारहवाँ अध्याय : युधिष्ठिर का संजय को संदेश देकर विदा करना।

संजय उवाच- आमन्त्रये त्वां नरदेवदेव
गच्छाम्यहं पाण्डव स्वस्ति तेऽस्तु।
कच्चिन्न वाचा वृजिनं हि किंचि-
दुच्चारितं मे मनसोऽभिषङ्गात्॥ १॥
जनार्दनं भीमसेनार्जुनौ च
माद्रीसुतौ सात्यकिं चेकितानम्।
आमन्त्र्य गच्छामि शिवं सुखं वः
सौम्येन मां पश्यत चक्षुषा नृपाः॥ २॥

तब संजय ने कहा कि हे राजाओं में श्रेष्ठ, पाण्डुपुत्र! मैं अब आपसे विदा लेता हूँ और यहाँ से जाता हूँ। आपका कल्याण हो। मैंने मन के आवेग के कारण कोई कष्ट देने वाली बात तो नहीं कह दी? मैं श्रीकृष्ण जी, भीम और अर्जुन, माद्री के दोनों पुत्र, सात्यकि और चेकितान से भी विदा लेकर जा रहा हूँ। आप सबका कल्याण हो और आपको सुख प्राप्त हो। हे राजाओं! आप लोग मुझे स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखिये।

युधिष्ठिर उवाच- अनुज्ञातः संजय स्वस्ति गच्छ
न नः स्मरस्यप्रियं जातु विद्वन्।
विद्मश्च त्वां ते च वयं च सर्वे
शुद्धात्मानं मध्यगतं सभास्थम्॥ ३॥
आप्तो दूतः संजय सुप्रियोऽसि
कल्याणवाक् शीलवांस्तृप्तिमांश्च।
न मुह्येस्त्वं संजय जातु मत्या
न च क्रुद्ध्येरुच्यमानो दुरुक्तैः॥ ४॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे संजय! तुम्हें जाने की अनुमति दी गयी। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम जाओ। हे विद्वन्! तुम हमारा अप्रिय कभी नहीं सोचते हो। हम सब तुम्हें शुद्ध आत्मावाला और सभा के अन्दर मध्यस्थ रहने वाला समझते हैं। हे संजय! तुम उत्तम कोटि के दूत हो। तुम कल्याण की बातें कहने वाले, शीलवान्, सन्तोषी और अत्यन्त प्रिय व्यक्ति हो। तुम्हारी बुद्धि कभी मोहित नहीं होती। कटु वचन कहे जाने पर भी तुम क्रुद्ध नहीं होते।

न मर्मगां जातु वक्तासि रूक्षां
नोपश्रुतिं कटुकां नोत मुक्ताम्
धर्मारामामर्थ- वतीमहिंस्रा-
मेतां वाचं तव जानीम सूत॥ ५॥
त्वमेव नः प्रियतमोऽसि दूत
इहागच्छेद् विदुरो वा द्वितीयः।
अभीक्ष्णदृष्टोऽसि पुरा हि नस्त्वं
धनंजयस्यात्मसमः सखासि॥ ६॥

तुम ऐसी बात कभी नहीं कहते जो मर्म स्थल पर चोट करने वाली और रूखी हो। तुम नीरस, कड़वी और प्रसंगरहित बातें भी कभी नहीं करते। हे सूत! हम जानते हैं कि तुम्हारी बातें धर्म और अर्थ से युक्त तथा हिंसा को हटानेवाली हैं। हे दूत! तुम ही हमारे सबसे प्रिय हो। तुम्हारे यहाँ आने से हम समझते हैं कि मानों दूसरे विदुर जी ही आ गये हैं। पहले भी तुम हमसे मिलते रहे हो। अर्जुन के तो तुम आत्मा के समान प्रिय मित्र हो।

इतो गत्वा संजय क्षिप्रमेव
उपातिष्ठेथा ब्राह्मणान् ये तदर्हाः।
विशुद्धवीर्या श्चरणोपपन्नाः
कुले जाताः सर्वधर्मोपपन्नाः॥ ७॥
स्वाध्यायिनो ब्राह्मणा भिक्षवश्च
तपस्विनो ये च नित्या वनेषु।
अभिवाद्या वै मद्वचनेन वृद्धा-
स्तथेतरेषां कुशलं वदेथाः॥ ८॥
पुरोहितं धृतराष्ट्रस्य राज्ञ-
स्तथाऽऽचार्यानृत्विजो ये च तस्य।
तैश्च त्वं तात सहितैर्यथार्हं
संगच्छेथाः कुशलेनैव सूत॥ ९॥

हे संजय! यहाँ से जाकर शीघ्र ही उन ब्राह्मणों को जो विशुद्ध तेजस्वी, सदाचारसम्पन्न, कुलीन, सर्व धर्मसंयुक्त और उसके योग्य हों, हमारा प्रणाम कहना। स्वाध्यायशील ब्राह्मणों, भिक्षुओं, वनवासी तपस्वियों, बड़े बूढ़ों तथा दूसरों लोगों से हमारा प्रणाम तथा

कुशलता कहना। राजा धृतराष्ट्र के पुरोहित आचार्य तथा ऋत्विजों से हे तात! जब तुम मिलो तब हमारी कुशलता कहना।

आचार्य इष्टो नयगो विधेयो
वेदानभीप्सन् ब्रह्मचर्यं चचार।
योऽस्त्रं चतुष्पात् पुनरेव चक्रे
द्रोणः प्रसन्नोऽभिवाद्यस्त्वयासौ॥ १०॥
अधीतविद्य श्चरणोपपन्नो
योऽस्त्रं चतुष्पात् पुनरेव चक्रे।
गन्धर्वपुत्रप्रतिमं तरस्विनं
तमश्वत्थामानं कुशलं स्म पृच्छेः॥ ११॥

जिन्होंने वेदों का अध्ययन करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन किया और तत्पश्चात् चारों चरणों सहित धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। जो सबसे प्रिय, नीतिज्ञ, विनयी और प्रसन्न रहने वाले आचार्य द्रोण हैं, उन्हें अभिवादन कर हमारा कुशलसमाचार कहना। जो सदाचारयुक्त, वेदाध्ययन से युक्त तथा चारों चरणों सहित अस्त्रविद्या से शिक्षित हैं, जो गन्धर्वपुत्र के समान वेगशाली हैं, उन अश्वत्थामा से तुम हमारा कुशलसमाचार कहना।

शारद्वतस्यावसथं स्म गत्वा
महारथस्यात्मविदां वरस्य।
त्वं मामभीक्ष्णं परिकीर्तयन् वै
कृपस्य पादौ संजय पाणिना स्पृशेः॥ १२॥
यस्मिञ्शौर्यमानृशंस्यं तपश्च
प्रज्ञा शीलं श्रुतिसत्त्वे धृतिश्च।
पादौ गृहीत्वा कुरुसत्तमस्य
भीष्मस्य मां तत्र निवेदयेथाः॥ १३॥

हे संजय! तुम आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ महारथी कृपाचार्य के घर जाकर उन्हें मेरा नाम बार-बार बताते हुए उनके चरणों को मेरी तरफ से स्पर्श करना। जिनमें शौर्य, दयालुता, तप, बुद्धि, शील, वेद, शक्ति तथा धैर्य विद्यमान हैं, उन कुरुश्रेष्ठ भीष्म जी के चरण छूकर उन्हें मेरा प्रणाम कहना।

यस्य कामो वर्तते नित्यमेव
नान्यः शमाद् भारतानामिति स्म।
स बाह्लिकानामृषभो मनीषी
त्वयाभिवाद्यः संजय साधुशीलः॥ १४॥
गुणैरनेकैः प्रवरैश्च युक्तो
विज्ञानवान् नैव च निष्ठुरो यः।
स्नेहादमर्षं सहते सदैव
स सोमदत्तः पूजनीयो मतो मे॥ १५॥
अर्हत्तमः कुरुषु सौमदत्तिः
स नो भ्राता संजय मत्सखा च।
महेष्वासो रथिनामुत्तमोऽर्हः
सहामात्यः कुशलं तस्य पृच्छेः॥ १६॥

जिनकी सदा यही इच्छा रहती है, और दूसरी नहीं कि भरतवंशियों में शान्ति बनी रहे, उन बाह्लीक वंशियों में श्रेष्ठ, मनीषी, साधु स्वभाव वाले बाह्लीक को भी तुम मेरी तरफ से अभिवादन करना। जो अनेक श्रेष्ठ गुणों से युक्त, विज्ञानी और निष्ठुरता से रहित हैं, जो स्नेह के कारण दूसरों के क्रोध को सदा सह लेते हैं, वे सोमदत्त भी मेरे पूज्य हैं। सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा कौरवों में पूज्यतम हैं। वे मेरे भाई और मित्र हैं। वे महाधनुर्धर तथा रथियों में श्रेष्ठ हैं। उनसे मंत्रियों सहित मेरा कुशलसमाचार कहना।

स एव भक्तः स गुरुः स भर्ता
स वै पिता स च माता सुहृच्च।
अगाधबुद्धिर्विदुरो दीर्घदर्शी
स नो मन्त्री कुशलं तं स्म पृच्छेः॥ १७॥
वृद्धाः स्त्रियो याश्च गुणोपपन्ना
ज्ञायन्ते नः संजय मातरस्ताः।
ताभिः सर्वाभिः सहिताभिः समेत्य
स्त्रीभिर्वृद्धाभिरभिवादं वदेथाः॥ १८॥

जिनकी बुद्धि अगाध है, जो दूरदर्शी हैं, वे विदुर, जो हमारे प्रेमी, गुरु, पालक, माता, पिता, मित्र और मन्त्री हैं, उनसे हमारी कुशलता के विषय में बताना। जो राजकुल में गुणवान् बूढ़ी स्त्रियाँ हैं, हे संजय! जो हमारी माताएँ लगती हैं, उन सबसे एक साथ मिलकर उन्हें हमारा प्रणाम कहना।

न हीदृशाः सन्त्यपरे पृथिव्यां
ये योधका धार्तराष्ट्रेण लब्धाः।
धर्मस्तु नित्यो मम धर्म एव
महाबलः शत्रुनिबर्हणाय॥ १९॥
इदं पुनर्वचनं धार्तराष्ट्रं
सुयोधनं संजय श्रावयेथाः।
यस्ते शरीरे हृदयं दुनोति
कामः कुरूनसपत्नोऽनुशिष्याम्॥ २०॥

न विद्यते युक्तिरेतस्य काचि-
न्नैवंविधाः स्याम यथा प्रियं ते।
ददस्व वा शक्रपुरीं ममैव
युध्यस्व वा भारतमुख्य वीर॥ २१॥

दुर्योधन ने जो योद्धालोग एकत्र किये हैं, वैसे योद्धा पृथिवी पर दूसरे नहीं हैं, पर धर्म ही नित्य रहनेवाला है और शत्रु के नाश के लिये मेरे पास धर्म की ही महान् शक्ति है। हे संजय! तुम धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन को मेरी यह बात फिर सुना देना कि तुम्हारे शरीर में जो हृदय है, उसे तुम्हारी यह कामना पीड़ित कर रही है कि मैं कुरुवंशियों पर निष्कंटक राज्य करूँ। पर इसे पूरी करने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि हम ऐसे नहीं हैं, जो इसे पूरी होने दें। हे भरतवंश के मुख्यवीर! या तो इन्द्रप्रस्थ का राज्य मुझे ही लौटा दो, या फिर युद्ध करो।

बलं जिज्ञासमानस्य आचक्षीथा यथातथम्।
अथ मन्त्रं मन्त्रयित्वा याथातथ्येन हृष्टवत्॥ २२॥
गावल्गणे कुरून् गत्वा धृतराष्ट्रं महाबलम्।
अभिवाद्योपसंगृह्य ततः पृच्छेरनामयम्॥ २३॥
ब्रूयाश्चैनं त्वमासीनं कुरुभिः परिवारितम्।
तवैव राजन् वीर्येण सुखं जीवन्ति पाण्डवाः॥ २४॥
तव प्रसादाद् बालास्ते प्राप्ता राज्यमरिंदम।
राज्ये तान् स्थापयित्वाग्रे नोपेक्षस्व विनश्यतः॥ २५॥
सर्वमप्येतदेकस्य नालं संजय कस्यचित्।
तात संहत्य जीवामो द्विषतां मा वशं गमः॥ २६॥

यदि वे तुमसे मेरी शक्ति के विषय में पूछें तो उन्हें ठीक-ठीक बता देना, जिससे वे प्रसन्न होकर आपस में मन्त्रणा कर यथार्थ का सामना करने को तैयार हो जायें। हे गवल्गण पुत्र! तुम कुरुदेश में जाकर महाबली धृतराष्ट्र से प्रणामकर, उनके दोनों पैर पकड़कर हमारी नीरोगता को बताना। कौरवों से घिरकर बैठे हुए उनसे तुम कहना कि हे राजन्! आपके पराक्रम से ही पाण्डव लोग सुखपूर्वक जी रहे हैं। हे शत्रुओं का दमन करनेवाले! आपके ही प्रसाद से हमें उस समय राज्य मिला, जब हम बालक थे। पहले उन्हें राज्य पर बिठाकर अब उन्हें नष्ट होतेहुए देख उनकी उपेक्षा मत कीजिये। यह सारा राज्य केवल एक व्यक्ति के लिये ही पर्याप्त हो, ऐसी बात नहीं है। हे तात! हम सब मिलकर जीवन बितायें और आप शत्रुओं के वश में न पड़ें।

तथा भीष्मं शान्तनवं भारतानां पितामहम्।
शिरसाभिवदेथास्त्वं मम नाम प्रकीर्तयन्॥ २७॥
अभिवाद्य च वक्तव्यस्ततोऽस्माकं पितामहः।
भवता शन्तनोर्वंशो निमग्नः पुनरुद्धृतः॥ २८॥
स त्वं कुरु तथा तात स्वमतेन पितामह।
यथा जीवन्ति ते पौत्राः प्रीतिमन्तः परस्परम्॥ २९॥

इसी प्रकार तुम भरतवंशियों के पितामह भीष्म को भी, सिर झुकाकर, मेरा नाम लेते हुए प्रणाम करना। उन्हें प्रणाम कर हमारे उन पितामह से कहना कि आपने शान्तनु के डूबतेहुए वंश का पुनः उद्धार किया, हे पितामह! आप अब भी अपनी बुद्धि से सोचकर ऐसा उपाय कीजिये, जिससे आपके पौत्र जीवित रहें और उनमें परस्पर प्यार हो।

तथैव विदुरं ब्रूयाः कुरूणां मन्त्रधारिणम्।
अयुद्धं सौम्य भाषस्व हितकामो युधिष्ठिरे॥ ३०॥
अथ दुर्योधनं ब्रूया राजपुत्रममर्षणम्।
मध्ये कुरूणामासीनमनुनीय पुनः पुनः॥ ३१॥

इसी प्रकार तुम कौरवों के मन्त्री विदुर जी से कहना कि हे सौम्य! आप युधिष्ठिर का हित चाहने वाले हैं, इसलिये युद्ध न करने की ही सलाह दीजिये। इसके पश्चात् कौरवों के बीच में बैठे हुए, सदा अमर्ष में भरे रहनेवाले राजपुत्र दुर्योधन से बार-बार अनुनय करके कहना कि-

अपापां यदुपैक्षस्त्वं कृष्णामेतां सभागताम्।
तद् दुःखमतितिक्षाम मा वधिष्म कुरूनिति॥ ३२॥
एवं पूर्वापरान् क्लेशानतितिक्षन्त पाण्डवाः।
बलीयांसोऽपि सन्तो यत् तत् सर्वं कुरवो विदुः॥ ३३॥
यन्नः प्राव्राजयः सौम्य अजिनैः प्रतिवासितान्।
तद् दुःखमतितिक्षाम मा वधिष्म कुरूनिति॥ ३४॥
यत् कुन्तीं समतिक्रम्य कृष्णां केशेष्वधर्षयत्।
दुःशासनस्तेऽनुमते तच्चास्माभिरुपेक्षितम्॥ ३५॥

तुमने निष्पाप द्रौपदी को सभा में लाकर उसका जो तिरस्कार किया, उस दुःख को हमने इसलिये सहन कर लिया, जिससे हमें कौरवों का वध न करना पड़े। इसीलिये तुम्हारे द्वारा दियेगये पहले और पिछले सारे क्लेशों को भी पाण्डवों ने अधिक बलवान् होतेहुए भी सहन कर लिया। इसे सारे कौरव जानते हैं। हे सौम्य! तुमने हमें मृगछाला पहनाकर जो वन में भिजवाया, उस दुःख को भी हमने

इसीलिये सहन किया कि हमें कौरवों का वध न करना पड़े। तुम्हारी अनुमति से दुश्शासन ने कुन्ती की उपेक्षाकर द्रौपदी को बाल पकड़कर खींचा। उस अपराध की भी हमने इसीलिये उपेक्षा कर दी है।

अथोचितं स्वकं भागं लभेमहि परंतप।
निवर्तय परद्रव्याद् बुद्धिं गृद्धां नरर्षभ॥ ३६॥
भ्राता भ्रातरमन्वेतु पिता पुत्रेण युज्यताम्।
स्मयमानाः समायान्तु पञ्चालाः कुरुभिः सह॥ ३७॥
अक्षतान् कुरुपाञ्चालान् पश्येयमिति कामये।
सर्वे सुमनसस्तात शाम्याम भरतर्षभ॥ ३८॥
अलमेव शमायास्मि तथा युद्धाय संजय।
धर्मार्थयोरलं चाहं मृदवे दारुणाय च॥ ३९॥

पर हे परंतप! हम अपने उचित भाग को अब अवश्य प्राप्त करेंगे। नरश्रेष्ठ! दूसरों के धन पर से अपनी लालचवाली बुद्धि को हटा लो। भाई-भाई से मिले, पिता पुत्र से मिले, मुस्कारतेहुए पांचालवासी, कौरवों से मिलें। मैं तो यह चाहता हूँ कि कौरव और पांचाल दोनों को ही अक्षतरूप में देखूँ। हे भरतश्रेष्ठ! हम सारे ही प्रसन्नचित्त होकर शान्त हो जायें। हे संजय! मैं शान्ति के लिये भी तैयार हूँ और युद्ध भी कर सकता हूँ। मुझे धर्म और अर्थ का ज्ञान है। मैं कोमल भी हो सकता हूँ और कठोर भी।

बारहवाँ अध्याय : संजय का धृतराष्ट्र को पाण्डवों की कुशलता बताना।

अनुज्ञातः पाण्डवेन प्रययौ संजयस्तदा।
शासनं धृतराष्ट्रस्य सर्वं कृत्वा महात्मनः॥ १॥
सम्प्राप्य हास्तिनपुरं शीघ्रमेव प्रविश्य च।
अन्तःपुरं समास्थाय द्वाःस्थं वचनमब्रवीत्॥ २॥

तब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर से अनुमति पाकर मनस्वी धृतराष्ट्र के आदेश को पूरा कर संजय ने वहाँ से प्रस्थान किया। हस्तिनापुर में प्रवेश कर उन्होंने शीघ्र ही अन्तःपुर के पास जाकर द्वारपाल से कहा कि—

जागर्ति चेदभिवदेस्त्वं द्वाःस्थ
प्रविशेयं विदितो भूमिपस्य।
निवेद्यमत्रात्ययिकं हि मेऽस्ति
द्वाः स्थोऽथश्रुत्वा नृपतिं जगाम॥ ३॥
संजयोऽथ भूमिपते नमस्ते
दिदृक्षया द्वारमुपागतस्ते।
प्राप्तो दूतः पाण्डवानां सकाशात्
प्रशाधि राजन् किमयं करोतु॥ ४॥

हे द्वारपाल! यदि राजा जागते हों तो उन्हें मेरा प्रणाम कहो। उनकी इच्छा जानने पर ही मैं प्रवेश करूँगा। मुझे उनसे आवश्यक निवेदन करना है। तब द्वारपाल यह सुनकर राजा के पास जाकर बोला कि हे राजन्! आपको नमस्कार है। दूत संजय आपके दर्शन की इच्छा से द्वार पर विद्यमान् है। वह पाण्डवों के पास से आये हैं। आप आदेश दीजिये, कि वे क्या करें?

धृतराष्ट्र उवाच **आचक्ष्व मां कुशलिनं कल्पमस्मै**
प्रवेश्यतां स्वागतं संजयाय।
न चाहमेतस्य भवाम्यकल्पः।
स मे कस्माद् द्वारि तिष्ठेच्च सक्तः॥ ५॥
ततः प्रविश्यानुमते नृपस्य
महद् वेश्म प्राज्ञशूरार्यगुप्तम्।
सिंहासनस्थं पार्थिवमाससाद
वैचित्रवीर्यं प्राञ्जलिः सूतपुत्रः॥ ६॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि संजय का स्वागत है। उन्हें मेरी कुशलता के विषय में बताओ और अन्दर प्रवेश कराओ। मैं उनसे मिलने के लिये कभी मना नहीं करता, फिर वे दरवाजे से चिपटे हुए क्यों खड़े हैं? तब राजा की अनुमति से सूतपुत्र संजय ने विद्वान्, शूरवीर तथा श्रेष्ठ पुरुषों से सुरक्षित उस विशाल राजमहल में प्रवेश किया और वह हाथ जोड़े हुए सिंहासन पर विराजमान, विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र के सामने उपस्थित हुए।

धृतराष्ट्र उवाच **अभिनन्द्य त्वां तात वदामि संजय**
अजातशत्रुं च सुखेन पार्थम्
कच्चित् स राजा कुशली सपुत्रः।
सहामात्यः सानुजः कौरवाणाम्॥ ७॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे तात संजय! मैं तुम्हारा स्वागत करके अजातशत्रु कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के सुखी होने के बारे में पूछता हूँ। क्या वह कौरवों

के राजा अपने पुत्रों, मन्त्रियों और छोटे भाइयों के साथ सकुशल हैं।

संजय उवाच सहामात्यः कुशली पाण्डपुत्रो
बुभूषते यच्चतेऽग्रेऽऽत्मनोऽभूत्।
निर्णिक्तधर्मार्थकरो मनस्वी
बहुश्रुतो दृष्टिमाञ्छीलवांश्च॥ ८॥
परो धर्मात् पाण्डवस्यानृशंस्यं
धर्मः परोवित्तचयान्मतोऽस्य।
सुखप्रिये धर्महीनेऽनपार्थेऽ-
नुरुध्यते भारत तस्य बुद्धिः॥ ९॥

तब संजय ने कहा कि वे पाण्डुपुत्र अपने मंत्रियों सहित सकुशल हैं। विशुद्ध भाव से धैर्य और अर्थ का सेवन करते हैं। वे मनस्वी, विद्वान्, दूरदर्शी और शीलवान् अपनी उस सम्पत्ति को जो पहले आपके सामने उन्हें प्राप्त थी, वापिस लेना चाहते हैं। वे पाण्डुपुत्र दूसरे धर्मों की अपेक्षा दया को ही उत्तम धर्म मानते हैं। उनके विचार से धनसंग्रह की अपेक्षा धर्म का पालन श्रेष्ठ है। हे भारत! उनकी बुद्धि प्रयोजनरहित ऐसे सुख तथा प्रिय पदार्थों में नहीं लगती जो धर्म से रहित हों।

अनुज्ञातो रथवेगावधूतः
श्रान्तोऽभिपद्ये शयनं नृसिंह।
प्रातः श्रोतारः कुरवः सभाया-
मजातशत्रोर्वचनं समेताः॥ १०॥

धृतराष्ट्र उवाच अनुज्ञातोऽस्यावसथं परेहि
प्रपद्यस्व शयनं सूतपुत्र।
प्रातः श्रोतारः कुरवः सभाया-
मजातशत्रोर्वचनं त्वयोक्तम्॥ ११॥

रथ के वेग से हिलने डुलने के कारण मैं थका हुआ हूँ। हे नरसिंह! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं सोने के लिये चला जाऊँ? प्रातः सभा में एकत्र हुए कौरवलोग युधिष्ठिर के सन्देश को सुनेंगे। तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे सूतपुत्र! तुम्हें आज्ञा है। तुम अपने घर जाओ और शयन करो। प्रातः कौरवलोग तुम्हारे द्वारा कहे हुए युधिष्ठिर के सन्देश को सुनेंगे।

तेरहवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र और विदुर संवाद।

द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः।
विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहानय मा चिरम्॥ १॥
प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूतः क्षत्तारमब्रवीत्।
ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षति॥ २॥
एवमुक्तस्तु विदुरः प्राप्य राजनिवेशनम्।
अब्रवीद् धृतराष्ट्राय द्वाःस्थ मां प्रतिवेदय॥ ३॥

द्वाःस्थ उवाच

विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र तव शासनात्।
द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम्॥ ४॥

उसके पश्चात् महाप्राज्ञ महाराज धृतराष्ट्र ने द्वारपाल से कहा कि मैं विदुर से मिलना चाहता हूँ। उसे यहाँ लाओ। देर मत करो। तब धृतराष्ट्र के द्वारा भेजे गये दूत ने विदुर के पास जाकर यह निवेदन किया कि महाप्राज्ञ महाराज स्वामी आपसे मिलना चाहते हैं। ऐसा कहे जाने पर विदुर ने राजमहल में आकर द्वारपाल से कहा कि धृतराष्ट्र को मेरे आने की सूचना दो। द्वारपाल ने धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजेन्द्र! आपके आदेश से विदुर जी आ गये हैं और आपसे मिलना चाहते हैं। आप आज्ञा दीजिये कि वे क्या करें?

धृतराष्ट्र उवाच

प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुरं दीर्घदर्शिनम्।
अहं हि विदुरस्यास्य नाकल्पो जातु दर्शने॥ ५॥
ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम्।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं चिन्तयानं नराधिपम्॥ ६॥
विदुरोऽहं महाप्राज्ञ सम्प्राप्तस्तव शासनात्।
यदि किंचन कर्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम्॥ ७॥

धृतराष्ट्र उवाच

जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि।
तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि॥ ८॥

धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया कि मैंने कभी विदुर से मिलने में रुकावट प्रस्तुत नहीं की। उन महाप्राज्ञ और दूरदर्शी विदुर को प्रवेश कराओ। तब विदुर ने धृतराष्ट्र के घर में प्रवेश कर चिन्ता करतेहुए राजा से हाथ जोड़कर कहा कि हे महाप्राज्ञ! मैं विदुर हूँ। आपके आदेश से आपके पास आया हूँ। यदि मुझे कुछ करना हो तो आप मुझे आज्ञा दीजिये। धृतराष्ट्र ने कहा चिन्ता

में जलता हुआ मैं अभी तक जाग रहा हूँ। हे तात! हमारे लिये जो बात तुम कल्याणकारी समझते हो वह बताओ क्योंकि तुम धर्म और अर्थ में कुशल हो।

यतः प्राप्तः संजयः पाण्डवेभ्यो
न मे यथावन्मनसः प्रशान्तिः।
सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि
किं वक्ष्यतीत्येव मेऽद्य प्रचिन्ता॥ ९॥

जब से संजय पाण्डवों के पास से लौटकर आया है, मेरे मन में पूरी शान्ति नहीं है। मेरी सारी इन्द्रियाँ बेचैन हो रही हैं। मुझे बड़ी भारी चिन्ता है कि न जाने वह कल क्या कहेगा?

विदुर उवाच

अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम्।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः॥ १०॥
कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप।
कच्चिच्च परवित्तेषु गृध्यन् न परितप्यसे॥ ११॥

धृतराष्ट्र उवाच

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः।
अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः॥ १२॥

विदुर उवाच

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम्॥ १३॥

तब विदुर ने उत्तर दिया कि हे राजन्! उस कमजोर और साधनहीन व्यक्ति को जिसका बलवान् के साथ विरोध हो गया हो, जिसका सर्वस्व हर लिया गया हो, कामी व्यक्ति को तथा चोर को रात में नींद नहीं आती। हे राजन्! क्या आपको इन महादोषों में से किसी ने स्पर्श कर लिया है? कहीं आप दूसरे के धन पर लालच करते हुए तो सन्तप्त नहीं हो रहे हैं? तब धृतराष्ट्र ने कहा कि मैं तुमसे धर्म से युक्त अत्यन्त कल्याण की बातें सुनना चाहता हूँ। इस राजर्षियों के वंश में तुम ही एक विद्वानों के मान्य हो। विदुर बोले कि जो अच्छी बातों का सेवन करता है, बुरी बातें नहीं अपनाता, जो नास्तिक नहीं है और श्रद्धावान् है, वह पण्डित कहलाता है।

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीः स्तम्भो मान्यमानिता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥ १४॥
यस्य कृत्यं न जानन्ति, मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।
कृतमेवास्य जानन्ति, स वै पण्डित उच्यते॥ १५॥
यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते॥ १६॥
यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते॥ १७॥
यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते।
न किंचिदवमन्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः॥ १८॥

जिसको अपने प्रयोजन से क्रोध, हर्ष, अभिमान, लज्जा, जड़ता और अपने को मान्य मानना, ये बातें नहीं हटा पाती हैं, वह पण्डित कहलाता है। दूसरे लोग जिसके कार्य को, मन्त्रणा को और पहले किये हुए विचार को नहीं जान पाते हैं और कार्य पूरा होने पर ही जानते हैं, वह पण्डित कहलाता है। जिसके कार्य में सर्दी, गर्मी, भय, प्रेम, समृद्धि या निर्धनता रुकावट नहीं डालते वह पण्डित कहलाता है। जिसकी सांसारिक बुद्धि धर्म और अर्थ के अनुसार चलती है, जो कामनाओं का त्याग कर पुरुषार्थ का वरण करता है, उसे पण्डित कहते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति जितनी शक्ति होती है, उतना ही कार्य करने की इच्छा करते हैं और शक्ति के अनुसार ही उसे करते हैं, वे किसी भी वस्तु की अवहेलना नहीं करते हैं।

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति
विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टो व्युपयुङ्क्ते परार्थे
तत् प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य॥ १९॥

जो जल्दी समझ जाता है, पर देर तक सुनता है, समझकर उसी के अनुसार कार्य करता है, अपनी कामना के अनुसार नहीं करता, बिना पूछे दूसरे के कार्य में बोलता नहीं है, उसकी ये बातें उसके पंडित होने की पहचान हैं।

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः॥ २०॥
निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते॥ २१॥
आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ॥ २२॥
न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तृप्यते।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते॥ २३॥

विद्वान् व्यक्ति उस वस्तु की कामना नहीं करते,

जो प्राप्त होने योग्य नहीं है। नष्ट हुई वस्तु के लिये शोक नहीं करते, वे विपत्ति आने पर अपनी सुधबुध नहीं खोते हैं। जो पहले निश्चय करके फिर कार्य को आरम्भ करता है, कार्य के बीच में रुकता नहीं है, अपने समय को नष्ट नहीं करता तथा मन को वश में रखता है, उसे पण्डित कहते हैं। हे भरत श्रेष्ठ! पण्डित लोग अच्छे कार्यों में रुचि रखते हैं, उन्नति के कार्य करते हैं और भलाई के कार्यों में दोष नहीं निकालते। जो अपना सम्मान होने पर अत्यन्त प्रसन्न नहीं होता तथा अपमान होने पर सन्तप्त नहीं होता, गंगा में विद्यमान गहरे गर्त के समान जिसके हृदय में क्षोभ नहीं होता, वह पण्डित कहलाता है।

तत्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम्।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते॥ २४॥
प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते॥ २५॥
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः॥ २६॥

सारे पदार्थों के रहस्य को जानने वाला, सारे कार्यों के करने के तरीकों को जानने वाला तथा मनुष्यों में सबसे अधिक उपायों को जानने वाला व्यक्ति पण्डित कहलाता है। जिसकी वाणी कहीं रुकती नहीं है, जिसका कहने का ढंग विलक्षण है, जो तर्क और प्रतिभाशाली है, जो ग्रन्थ के विषय में शीघ्र ही समझा सकता है, उसे पण्डित कहते हैं। जिसकी विद्या बुद्धि के अनुसार है, और बुद्धि विद्या के अनुसार है, जो श्रेष्ठ मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करता, वह पण्डित कहलाता है।

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः॥ २७॥
स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते॥ २८॥
आकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत्।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम्॥ २९॥
अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम्॥ ३०॥

जो अनपढ़ होने पर भी गर्व करता है, दरिद्र होने पर बड़ी इच्छाएँ करता है, बिना कार्य किये ही धन पाने की इच्छा करता है, उसे विद्वान् लोग मूर्ख कहते हैं। जो अपने कार्य को छोड़कर दूसरों के कार्य में दखल देता है, मित्र के साथ मिथ्या आचरण करता है, वह मूर्ख कहलाता है। जो न चाहनेवालों को चाहता है और चाहनेवालों को त्याग देता है, बलवान् के साथ द्वेष करता है, उसे मूर्ख कहते हैं। जो शत्रु से मित्रता करता और मित्र से द्वेष करता और उसे हानि पहुँचाता है तथा बुरे कार्यों को आरम्भ करता है, उसे मूढबुद्धिवाला कहते हैं।

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ॥ ३१॥
अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः॥ ३२॥
परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः॥ ३३॥
आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम्।
अलभ्यमिच्छन् नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते॥ ३४॥

जो कार्यों का व्यर्थ ही विस्तार करता है, प्रत्येक स्थान पर सन्देह करता है, शीघ्रता करने के स्थान पर विलम्ब करता है उसे हे भरतश्रेष्ठ! मूर्ख कहते हैं। मूर्खबुद्धिवाला दुष्ट मनुष्य बिना बुलाये ही अन्दर आ जाता है, बिना पूछे ही बहुत बोलता है और विश्वास न करने योग्य पर विश्वास कर लेता है। जो स्वयं दोषयुक्त होते हुए भी दूसरे पर दोषारोपण करता है, असमर्थ होते हुए भी क्रोध करता है, वह महामूर्ख है। जो अपनी शक्ति को न जानकर, बिना कार्य किये ही, प्राप्त न हो सकने योग्य तथा धर्म एवं अर्थ से रहित पदार्थ की कामना करता है, वह संसार में मूर्खबुद्धिवाला कहलाता है।

अशिष्यं शास्ति यो राजन् यश्च शून्यमुपासते।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम्॥ ३५॥
अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा।
विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते॥ ३६॥
एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः॥ ३७॥
एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते॥ ३८॥

हे राजन्! जो उपदेश देने योग्य नहीं है, उसे उपदेश देता है, जो शून्य की उपासना करता है, जो कंजूस का सहारा लेता है, उसे मूढबुद्धिवाला कहते हैं। जो महान् सम्पत्ति, विद्या और ऐश्वर्य को

प्राप्त करके भी गर्व नहीं करता उसे पंडित कहते हैं। जो अपने सेवकों को बाँटे बिना ही अकेला उत्तम भोजन करता है, और अच्छे वस्त्र पहनता है, उससे अधिक क्रूर कौन होगा? एक व्यक्ति पापकर्म करके धन एकत्र करता है, उसका सुख दूसरे लोग उठाते हैं, पर भोगनेवाले तो छूट जाते हैं, दोष का भागी पापकर्म को करने वाला ही होता है।

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं सराजकम्॥ ३९॥
एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव॥ ४०॥
एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते।
सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः॥ ४१॥
एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान् न चिन्तयेत्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात्॥ ४२॥

धनुष से छूटा हुआ बाण भले ही किसी एक को मारे या न मारे, किन्तु बुद्धिमान् के द्वारा प्रयुक्त की हुई बुद्धि राजा सहित सारे देश का नाश कर देती है। एक बुद्धि से दो (कर्तव्य और अकर्त्तव्य) का निश्चय कर तीन (शत्रु, मित्र और उदासीन) को चार (साम, दाम, दण्ड, भेद) के द्वारा वश में कीजिये। फिर पाँचों इन्द्रियों को जीतकर, छः गुणों (किन्ही भी छः) को जानकर और सात अवगुणों (किन्हीं भी सात) को छोड़कर आप सुखी हो जाइये। विषैला रस एक पीने वाले को ही मारता है, शस्त्र जिसे मारा जाता है उस एक का ही वध करता है, पर दी हुई उलटी सलाह राजा का उसके देश और प्रजा सहित विनाश कर देती है। किसी स्वादिष्ट पदार्थ को अकेले ही नहीं खाना चाहिये, अपने प्रयोजनों पर अकेले ही विचार नहीं करना चाहिये, मार्ग पर अकेले नहीं चलना चाहिये और सबके सोने पर अकेले जागना नहीं चाहिये।

एकमेवाद्वितीयं तद् यद् राजन् नावबुध्यसे।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव॥ ४३॥
एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः॥ ४४॥
सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम्।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा॥ ४५॥
क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते।
शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः॥ ४६॥

समुद्रपार जाने के लिये जैसे एक नाव ही सहारा होती है, वैसे स्वर्ग में जाने के लिये अर्थात् परलोक में उत्तम गति को पाने के लिये सत्य का आचरण ही अकेली सीढ़ी है, हे राजन्! जिसे आप समझ नहीं रहे हैं। क्षमा करनेवालों को एक ही दोष की प्राप्ति होती है, दूसरे की नहीं, कि उन्हें लोग शक्तिहीन समझ लेते हैं। पर इस दोष पर ध्यान नहीं देना चाहिये, क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा कमजोरों के लिये गुण है तो बलवानों के लिये आभूषण। क्षमा ही संसार में दूसरों को बस में करने वाली है। क्षमा से क्या सिद्ध नहीं होता? जिसके हाथ में शान्तिरूप तलवार है, दुष्ट व्यक्ति उसका क्या कर सकता है?

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।
अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत॥ ४७॥
एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा॥ ४८॥

बिना तिनकों वाले स्थान पर गिरी हुई आग स्वयं ही शान्त हो जाती है किन्तु क्षमा न करने वाला व्यक्ति अपने को और दूसरे को भी दोष से युक्त कर देता है। अकेला धर्म ही परमकल्याण अर्थात् मोक्ष को देने वाला है। अकेली क्षमा ही शान्ति का उत्तम उपाय है। अकेली विद्या ही परम सन्तोष को प्रदान करती है और अकेली अहिंसा ही सुख देने वाली है।

द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्॥ ४९॥
द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिँल्लोके विरोचते।
अब्रुवन् परुषं किंचिदसतोऽनर्चयंस्तथा॥ ५०॥
द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ।
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः॥ ५१॥
द्वावेव न विराजेते विपरीतेन कर्मणा।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव भिक्षुकः॥ ५२॥
न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम्॥ ५३॥

बिल में रहनेवाले साँप के समान यह भूमि शत्रु से विरोध न करनेवाले राजा को और विदेश भ्रमण न करनेवाले ब्राह्मण को खा जाती है। दो कार्यों को करनेवाला मनुष्य संसार में शोभा को प्राप्त करता है। पहला कठोर वचन कभी न बोलने वाला और

दूसरा दुष्ट मनुष्यों का आदर न करने वाला। शरीर को सुखाने वाले ये दो काँटे बहुत तीखे हैं। पहला निर्धन होते हुए बहुमूल्य पदार्थों की कामना करना और दूसरा असमर्थ होते हुए भी क्रोध करना। अकर्मण्य गृहस्थ और सांसारिक कार्यों में फँसाहुआ सन्यासी ये दोनों अपने विपरीत कार्यों के कारण सुशोभित नहीं होते। न्याय से प्राप्त धन के दो ही दुरुपयोग जानने चाहिये। पहला कुपात्र को देना और दूसरा सुपात्र को न देना।

त्रयो न्याया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ।
कनीयान् मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः॥ ५४॥
त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः।
नियोजयेद् यथावत् तांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु॥ ५५॥
हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम्।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः॥ ५६॥

हे भरतश्रेष्ठ! वेदों के विद्वान् कहते हैं कि मनुष्यों की कार्य सिद्धि के लिये तीन प्रकार के उपाय सुने जाते हैं, निम्न, मध्यम और श्रेष्ठ! हे राजन्! इसी प्रकार मनुष्य भी तीन प्रकार के उत्तम, मध्यम और अधम होते हैं। उन्हें उनके अनुसार ही कर्मों में लगाना चाहिये। दूसरे का धन हरण करना, दूसरे की स्त्री से संसर्ग करना और मित्रों का त्याग करना, ये तीनों दोष क्षय करने वाले होते हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥ ५७॥
वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च भारत।
शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात् त्रीणि चैकं च तत्समम्॥ ५८॥
भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम्।
त्रीनेतांश्छरणं प्राप्तान् विषमेऽपि न संत्यजेत्॥ ५९॥

आत्मा का नाश करनेवाले ये नरक के तीन द्वार हैं, काम, क्रोध और लोभ। इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये। हे भारत! वर देना, राज्य मिलना और पुत्र का जन्म, ये तीनों एक तरफ और शत्रु के कष्ट से छूटना यह एक तरफ, ये दोनों पक्ष बराबर हैं। अपने प्रेमी, अपनी सेवा करनेवाले, और मैं तो आपका ही हूँ ऐसा कहनेवाले, शरण में आये हुए इन तीन व्यक्तियों को संकट के समय में भी नहीं छोड़ना चाहिये।

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन
वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात्।
अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्या-
न्न दीर्घसूत्रै रभसैश्चारणैश्च॥ ६०॥

चार कार्य महाबली राजाओं के लिये त्याज्य बताये गये हैं, वे हैं थोड़ी बुद्धिवालों, विलम्ब से कार्य करनेवालों, बहुत जल्दी करनेवालों और स्तुति करनेवालों के साथ मन्त्रणा करना। विद्वान् पुरुष को इन्हें जान लेना चाहिये।

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः।
पिता मातागिरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ॥ ६१॥
पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि।
मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः॥ ६२॥
पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्यच्छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम्।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम्॥ ६३॥

हे भरतश्रेष्ठ! ये पाँच अग्नियाँ हैं। माता, पिता, अग्नि, अपनी आत्मा तथा गुरु। इनकी बड़े यत्न से सेवा करनी चाहिये। आप जहाँ-जहाँ जायेंगे, पाँच प्रकार के लोग मित्र, शत्रु, उदासीन, आश्रय देने वाले और आश्रय पाने वाले आपके साथ लगे रहेंगे। पाँच ज्ञानेन्द्रिय वाले मनुष्य की यदि एक भी इन्द्रिय दोष युक्त हो जाये तो उसकी बुद्धि उसमें से इस प्रकार निकल जाती है, जैसे मशक के छिद्र में से पानी।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥ ६४॥
षडिमान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम्॥ ६५॥
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्॥ ६६॥
षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः॥ ६७॥

ऐश्वर्य को चाहनेवाले मनुष्यों को ये छह दोष त्याग देने चाहिये। नींद, आलस्य, भय, क्रोध, ऊँघना और विलम्ब से कार्य करना। जैसे समुद्र में नाव के टूटजाने पर उसे छोड़ दिया जाता है, वैसे ही उपदेश न करनेवाले आचार्य, अध्ययन न करनेवाले ऋत्विज, रक्षा न करनेवाले राजा, प्रिय न बोलनेवाली पत्नी, ग्राम में रहनेवाले ग्वाले, और वन में रहनेवाले नाई इन छह व्यक्तियों को त्याग देना चाहिये। मनुष्य को ये छह गुण कभी नहीं छोड़ने चाहिये। सत्य, दान, अनालस्य, निन्दा न करना, क्षमा और धैर्य।

अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥ ६८॥

हे राजन्! ये छह जीवलोक के सुख हैं। धन की प्राप्ति, सदा आरोग्य, स्त्री का प्रेम करनेवाली तथा प्रियवादिनी होना, पुत्र का आज्ञा के आधीन होना तथा विद्या का सार्थक होना।

नोट:– यहाँ पुरुष पाठक के लिये ही स्त्री अर्थ है, स्त्री पाठिका के लिये पुरुष अर्थ समझना चाहिये। इसी प्रकार पुत्र का अर्थ पुत्र और पुत्री दोनों हैं।

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः॥ ६९॥
षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते।
चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः॥ ७०॥
प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः॥ ७१॥
षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसंगतिः॥ ७२॥

जो मनुष्य अपने अन्दर सदा रहनेवाली छह बातों को (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य) वश में कर लेता है, वह जितेन्द्रिय पापों से लिप्त नहीं होता। अनर्थों की तो बात ही क्या है? ये छह प्रकार के लोग इन छह प्रकार के लोगों से अपनी जीविका चलाते हैं। यहाँ सातवें की प्राप्ति नहीं है। जैसे चोर असावधान लोगों से, वैद्य बीमार लोगों से, कामिनी कामियों से या कामी कामिनियों से, याचक यजमानों से, राजा झगड़ा करनेवालों से तथा विद्वान् मूर्खों से। थोड़े समय भी ध्यान न रखने से ये छह चीजें बिगड़ जाती हैं, जैसे गाय, सेवा, खेती, पत्नी (पत्नी के लिये पति) विद्या और शूद्र से मेल।

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम्।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम्॥ ७३॥
नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम्॥ ७४॥

ये छह लोग सदा अपने उपकार करने वाले को भुला देते हैं जैसे शिक्षित विद्यार्थी आचार्य को, विवाहित पुत्र माता-पिता को, कामना की शान्ति हो जाने पर पुरुष स्त्री को, कार्य पूरा हो जाने पर सहायक को, नदी की दुर्गम धारा को पार कर लेने वाले व्यक्ति नाव को और स्वस्थ हो जाने पर बीमार चिकित्सक को।

आरोग्यमानृण्यम- विप्रवासः
सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः
षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥ ७५॥

हे राजन्! ये छह जीवलोक के सुख हैं, आरोग्य, ऋण का न होना, परदेस में न रहना, सज्जनों की संगति, अपनी वृत्ति से जीविका का चलना और निर्भय होकर रहना।

ईर्ष्यी घृणी नसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः॥ ७६॥
सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयाः।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः॥ ७७॥
स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम्।
महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च॥ ७८॥

ये छः व्यक्ति सदा दुःखी रहते हैं। ईर्ष्यालु, घृणा करनेवाला, असन्तुष्ट, क्रोधी, शंकालु और दूसरे के भाग्य पर जीवननिर्वाह करनेवाला। राजा को मुसीबत को लानेवाले ये सात दोष सदा छोड़ने चाहिये, इनके कारण दृढ़मूल राजा भी प्रायः नष्ट हो जाते हैं। स्त्रियों में आसक्ति, मृगया, मद्यपान, वाणी का कड़वापन, अत्यन्त कठोर दण्ड देना और धन का दुरुपयोग।

अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत।
वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव स्वसुखान्यपि॥ ७९॥
समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः।
पुत्रेण च परिष्वङ्गः संनिपातश्च मैथुने॥ ८०॥
समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः।
अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि॥ ८१॥

हे भारत! ये आठ कार्य हर्ष के परिणाम हैं और जीवन में सुख को प्राप्त कराते हैं। मित्रों से मेल, अधिक धन का मिलना, पुत्र को छाती से लगाना, मैथुन में लगना, समय पर प्रिय बोलना, अपने वर्ग के लोगों में उन्नति, मनचाही वस्तु की प्राप्ति, और जनसमुदाय में सम्मान।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।

पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥ ८२॥

ये आठ गुण पुरुष की ख्याति को बढ़ा देते हैं। बुद्धि, कुलीनता, जितेन्द्रियता, विद्वत्ता, पराक्रम, अधिक न बोलना, शक्ति के अनुसार दान और कृतज्ञता।

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम्।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः॥ ८३॥

नौ द्वार वाले (आँख आदि) इस घर को (शरीर) जिसमें तीन खम्बे (सत, रज, तम) और पाँच साक्षी (पंच प्राण) हैं, जो आत्मा का निवास स्थान है, जो विद्वान् वास्तविकता से जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है।

यः काममन्यू प्रजहाति राजा
पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च।
विशेषविच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी
सं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम्॥ ८४॥
जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्
विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्।
जानाति मात्रां च तथा क्षमां च
तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा॥ ८५॥

जो राजा काम और क्रोध को छोड़ देता है, सुपात्र को दान देता है, विशेषज्ञ है, विद्वान् है, अपने कर्तव्य को शीघ्र पूरा करने वाला है, उसे सारे लोग प्रमाण के रूप में समझते हैं। जो लोगों में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करना जानता है, जो दोष के प्रमाणित होने पर ही दण्ड देता है, जो क्षमा के उपयोग को भी जानता है उसकी सारी समृद्धियाँ सेवा करती हैं।

सुदुर्बलं नावजानाति कंचिद्
युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम्।
न विग्रहं रोचयते बलस्थैः
काले च यो विक्रमते स धीरः॥ ८६॥
प्राप्यापदं न व्यथते कदाचि-
दुद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः।
दुःखं च काले सहते महात्मा
धुरन्धरस्तस्य जिताः सपत्नाः॥ ८७॥

जो किसी अत्यन्त दुर्बल का भी अपमान नहीं करता, जो सावधान रहकर शत्रु के साथ बुद्धिमत्तापूर्वक व्यवहार करता है, जो बलवानों के साथ युद्ध पसन्द नहीं करता और उचित समय आने पर जो पराक्रम को प्रकट करता है, वह धीर है। जो आपत्ति को प्राप्त कर कभी दुःखी नहीं होता। सावधानी के साथ उद्योग करने के समय को देखता रहता है, जो मनस्वी समय आने पर दुःख को भी सहन करता है, उस धुरन्धर के सारे शत्रु उससे पराजित रहते हैं।

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः
पापैः सन्धिं परदाराभिमर्शम्।
दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं
न सेवते यश्च सुखी सदैव॥ ८८॥
न संरम्भेणारभते त्रिवर्ग-
माकारितः शंसति तत्त्वमेव।
न मित्रार्थे रोचयते विवादं
नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः॥ ८९॥
न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च
न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति।
नात्याह किंचित् क्षमते विवादं
सर्वत्र तादृग् लभते प्रशंसाम्॥ ९०॥

व्यर्थ ही घर से बाहर रहना, पापियों के साथ मेल, पर स्त्रीगमन, अभिमान, चोरी, चुगलखोरी, मद्यपान, इन दुर्गुणों से जो दूर रहता है, वह सदा सुखी रहता है। जो उतावलेपन से धर्म अर्थ और काम का प्रारम्भ नहीं करता, पूछने पर ही यथार्थ बात कहता है, मित्र के लिये झगड़ा पसन्द नहीं करता, सम्मान न मिलने पर क्रुद्ध नहीं होता और अपने विवेक को नहीं खो बैठता, दूसरों की निन्दा नहीं करता, दया करता है, असमर्थ होने पर जमानत नहीं देता, अधिक नहीं बोलता, विवाद को सह लेता है, वह सब जगह प्रशंसा को प्राप्त करता है।

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं
न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान्।
न मूर्च्छितः कटुकान्याह किंचित्
प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि॥ ९१॥
न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं
न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं
तमार्यशीलं परमाहुरार्याः॥ ९२॥

जो ऊटपटांग तरह के वेष को धारण नहीं करता है, अपने पौरुष का गान नहीं करता है, क्रोध से

मूर्च्छित होने पर भी जो कड़वीबात नहीं बोलता, लोग सदा उसके प्रिय काम करते हैं। जो शान्त हुए वैर को उद्दीप्त नहीं करता, जो अभिमान भी नहीं करता और हीनता भी नहीं दिखाता, मैं विपत्ति में हूँ, यह सोचकर जो अनुचित कार्य नहीं करता, उस उत्तमआचरणवाले को सज्जन लोग श्रेष्ठव्यक्ति कहते हैं।

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं,
नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं,
स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः॥ १३॥
देशाचारान् समयाञ्जातिधर्मान्
बुभूषते यः स परावरज्ञः।
स यत्र तत्राभिगतः सदैव
महाजनस्याधिपत्यं करोति॥ १४॥

जो अपने सुख में हर्षित नहीं होता, दूसरे के दुःख में भी हर्षित नहीं होता, देकर दुःख नहीं होता, वह सज्जनों में अच्छेआचरणवाला समझा जाता है। जो देश के व्यवहार, विभिन्न प्रकार के अवसरों को तथा जातियों के धर्मों को जानने की इच्छा करता है, उसे ऊँचनीच का ज्ञान हो जाता है। वह जहाँ कहीं भी जाता है, महान् जन समुदाय पर अपनी प्रभुता स्थापित कर देता है।

दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं
राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम्।
मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं
यः प्रज्ञावान् वर्जयेत् स प्रधानः॥ १५॥
समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः
समैः सख्यं व्यवहारं कथां च।
गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति
विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः॥ १६॥

जो दम्भ, मोह, ईर्ष्या, पापकर्म, राजद्रोह, चुगलखोरी, समूह से बैर, मतवाले, पागल और दुर्जनों से विवाद नहीं करता, वही बुद्धिमान् है, वही श्रेष्ठ है। जो अपने बराबर वालों से ही विवाह, मित्रता, व्यवहार और वार्तालाप करता है, गुणों में श्रेष्ठ लोगों को अपने आगे रखता है, उस विद्वान् की नीति ही श्रेष्ठनीति है।

मितं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो
मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः सं-
स्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः॥ १७॥
चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य
नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किंचित्।
मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च
नाल्पोऽप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः॥ १८॥

जो अपने आश्रितों को बाँटकर स्वयं थोड़ा खाता है, अत्यधिक काम करके भी जो थोड़ा सोता है, माँगने पर जो मित्र नहीं हैं, उन्हें भी देता है, उस मनस्वी को अनर्थ दूर से ही छोड़ देते हैं। जिसके अपने चाहे हुए या दूसरे की इच्छा के विपरीत किये जाने वाले कार्य को दूसरे लोग नहीं जान पाते हैं। उसकी मन्त्रणा के गुप्त रहने पर तथा कार्य का ठीक अनुष्ठान होने पर कोई भी काम बिगड़ने नहीं पाता।

यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः
सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः।
अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये
महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः॥ १९॥

जो प्राणियों को शान्त करने में लगा रहता है, जो सत्यवादी, मृदु, मान करने वाला, शुद्ध विचारों वाला होता है, वह अपने जातिवालों में खान से निकली महान् मणि के समान प्रसिद्धि को पाता है।

चौदहवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र से विदुर जी के नीति वचन।

विदुर उवाच

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद् यस्य नेच्छेत् पराभवम्॥ १॥
तस्माद् वक्ष्यामि ते राजन् हितं यत् स्यात् कुरून् प्रति।
वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे॥ २॥
मिथ्योपेतानि कर्माणि सिध्येयुर्यानि भारत।
अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः॥ ३॥
तथैव योगविहितं यत् तु कर्म न सिध्यति।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः॥ ४॥

हे राजन्! यदि मनुष्य किसी की अवनति को

नहीं चाहता तो उसे उसके लिये जो भी बात हो, चाहे वह शुभ हो या अशुभ हो, अच्छी लगने वाली हो या बुरी लगने वाली हो, उसके बिना पूछे ही बता देनी चाहिये। हे राजन्! मैं इसीलिये कौरवों के लिये जो भलाई की बात है, वह मैं तुम्हें कहता हूँ। मेरी बात जो आपके लिये कल्याणकारी, धर्मयुक्त है, उसे आप सुनिये। हे राजन्! जो कार्य असत्य से युक्त हैं और गलत उपायों के द्वारा सिद्ध किये गए हैं, उनमें आप मन को मत लगाइये। इसी प्रकार अच्छे उपायों से सावधानी पूर्वक किया गया कोई कार्य यदि सिद्ध नहीं हो पाता है तो मेधावी व्यक्ति को ग्लानि नहीं करनी चाहिये।

अनुबन्धानपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु।
सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत्॥ ५॥
अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम्।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा॥ ६॥
यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये।
कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते॥ ७॥
यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति।
युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति॥ ८॥

प्रयोजन के लिये किये जाने वाले कार्यों से पहले प्रयोजन को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये। फिर अच्छी तरह से सोचविचारकर कार्यों को करना चाहिये। जल्दी नहीं करनी चाहिये। धैर्यवान् व्यक्ति को चाहिये कि वह पहले कार्य के प्रयोजन को, कार्य के परिणाम को और उससे अपने उत्थान के विषय में सोच ले। फिर उसकी इच्छा है कि वह कार्य को आरम्भ करे या नहीं। जो राजा स्थिति, उन्नति अवनति, खजाना, देश तथा दण्ड के विषय में प्रमाणों की जानकारी नहीं रखता, वह अपने राज्य पर स्थिर नहीं रहता। जो इनके प्रमाणों को उपर्युक्त प्रकार से ठीक तरह से जानता है, धर्म और अर्थ के ज्ञान में लगा रहता है, वह राज्य को प्राप्त करता है।

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम्।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम्॥ ९॥
यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत्।
हितं च परिणामे यत् तदाद्यं भूतिमिच्छता॥ १०॥
वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोत यः।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति॥ ११॥
यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्।
फलाद् रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः॥ १२॥

अब तो मुझे राज्य मिल गया, ऐसा समझकर अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिये। उदण्डता समृद्धि को उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जैसे बुढ़ापा सुन्दर रूप को नष्ट कर देता है। जो पदार्थ खानेयोग्य हो तथा खाने पर हजम हो सके, हजम होने पर जो शरीर को लाभ पहुँचाये, वही पदार्थ ऐश्वर्य के इच्छुक व्यक्ति को खाना चाहिये। जो व्यक्ति पेड़ के कच्चे फल को तोड़ लेता है, वह फल के रस को तो प्राप्त करता ही नहीं, पेड़ के बीज को भी नष्ट कर देता है। इसके विपरीत जो समय पर पके हुए फल को लेता है, वह फल के रस को भी प्राप्त करता है और बीज से पुनः फल की प्राप्ति भी कर सकता है।

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।
दद्वदर्थान् मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया॥ १३॥
पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः॥ १४॥
प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः॥ १५॥
कांश्चिदर्थान् नरः प्राज्ञो लघुमूलान् महाफलान्।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान्॥ १६॥

जैसे भौंरा फूल की रक्षा करते हुए उसमें से रस को ग्रहण करता है, उसी प्रकार राजा को भी प्रजा को बिना कष्ट दिये, उससे धन को ग्रहण करना चाहिये। जैसे माली एक-एक फूल को चुनता है, सारे पौधे को जड़ से नहीं उखाड़ता, उसी प्रकार राजा को भी प्रजा की रक्षा करते हुए उससे कर ग्रहण करना चाहिये। कोयला बनाने वाले की तरह उसे जड़ से नहीं काटना चाहिये। जिसकी प्रसन्नता निरर्थक है और जिसका क्रोध भी निरर्थक है, ऐसे राजा को प्रजा अपना स्वामी नहीं बनाना चाहती जैसे स्त्री नपुंसक व्यक्ति को अपना पति नहीं बनाना चाहती। कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिनका मूल अर्थात् साधन छोटा होता है, और फल महान् होता है। बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसे कार्यों को जल्दी आरम्भ करते हैं और उनकी पूर्ति में विघ्न नहीं आते देते।

ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः॥ १७॥
चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति॥ १८॥
यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव।
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते॥ १९॥
पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः॥ २०॥

जो सबको इतनी मधुरता से देखता है, मानों आँखों से उन्हें पी जाएगा, वह राजा चाहे चुपचाप बैठा रहे, पर सारी प्रजा उससे प्रेम करती है। जो राजा मन, वाणी और कर्म तथा नेत्रों से प्रजा को प्रसन्न रखता है, प्रजा उसी से प्रसन्न रहती है। जिससे सारे प्राणी ऐसे डरते हैं जैसे बाघ से हिरण, वह राजा सागरपर्यन्त राज्य का स्वामी होने पर भी प्रजा के द्वारा त्याग दिया जाता है। अन्याय में स्थित राजा बाप, दादों से प्राप्त राज्य को अपने कर्मों से इस प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे वायु बादलों को छिन्न भिन्न कर देती है।

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः।
वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतिवर्धिनी॥ २१॥
अथ संत्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः।
प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा॥ २२॥
य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने।
स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने॥ २३॥
धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते॥ २४॥

परम्परा से सत्पुरुषों द्वारा आचरण किये गये धर्म का आचरण करने वाले राजा के राज्य में भूमि धन धान्य से समृद्ध होकर उन्नति को प्राप्त होती है और उसके ऐश्वर्य को बढ़ाती है। पर इसके विपरीत जो राजा धर्म के मार्ग को छोड़कर, अधर्म का आचरण करता है, उसकी राज्यभूमि आग पर रखे हुए चमड़े के समान सिकुड़ जाती है। जैसा यत्न दूसरों के देश को विनष्ट करने के लिये किया जाता है, वैसा ही यत्न अपने देश की परिपालना के लिये करना चाहिये। धर्ग से ही राज्य को प्राप्त करना चाहिये और धर्म से ही उसका पालन करना चाहिये। धर्म से ही समृद्धि को प्राप्त करे, न तो राजा उसे छोड़ता है और न वह समृद्धि उसे छोड़ती है।

अप्युन्मत्तात् प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः।
सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम्॥ २५॥
सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।
संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा॥ २६॥
गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः॥ २७॥
भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा।
अथ या सुदुहा राजन् नैव तां वितुदन्त्यपि॥ २८॥

पागल, व्यर्थ बोलनेवाले और बकवास करने वाले बच्चे से भी सार की बातें उसी प्रकार एकत्र कर लेनी चाहिये जैसे पत्थरों में से सोने को प्राप्त किया जाता है। धीर व्यक्तियों को जहाँतहाँ से अच्छी कही गयी बातों और अच्छे किये गये कार्यों का उसी प्रकार संग्रह करते रहना चाहिये जैसे शिलोंच्छ वृत्ति से जीविका चलाने वाला खेत में से एक-एक दाने को चुनता रहता है। गायें गन्ध के द्वारा देखती हैं, ब्राह्मण वेद की सहायता से देखते हैं, राजा अपने गुप्तचरों की सहायता से देखता है तथा सामान्य व्यक्ति सामान्य आँखों की सहायता से देखते हैं। जो गाय कठिनता से दूध देती है, वह अनेक कष्ट प्राप्त करती है, पर जो आराम से दूध देती है, उसे लोग कष्ट नहीं देते।

पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः॥ २९॥
सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते॥ ३०॥
मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः।
अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचैलतः॥ ३१॥
न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः।
अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते॥ ३२॥

पशुओं के सहायक बादल होते हैं, राजाओं के सहायक उनके मन्त्री होते हैं, स्त्रियों के सहायक उनके पति होते हैं और ब्राह्मणों के सहायक वेद शास्त्र हैं। सत्य से धर्म की रक्षा होती है, योग से विद्या की रक्षा होती है, स्वच्छता से सौन्दर्य की रक्षा होती है और सदाचार से कुल की रक्षा होती है। सँभाल कर रखने से अन्न की रक्षा होती है, चलाते रहने से घोड़ों की रक्षा होती है। लगातार देखभाल करने से गायों की रक्षा होती है और मैले वस्त्रों से अर्थात् शृंगार रहित रहने से स्त्रियों की रक्षा

होती है। मेरा विचार है कि बुरे आचार वाले मनुष्य के लिये ऊँचे कुल में जन्म लेना उसे प्रतिष्ठा के योग्य नहीं बनाता। इसके विपरीत नीचे कुल में जन्म लेने पर भी अच्छे आचरण का होना व्यक्तियों को प्रशंसनीय बनाता है।

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः॥ ३३॥
अकार्यकरणाद् भीतः कार्याणां च विवर्जनात्।
अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत् पिबेत्॥ ३४॥
विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः॥ ३५॥
गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः।
असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः॥ ३६॥

जो व्यक्ति दूसरों के धन, रूप, शक्ति, कुलीनता, सुखसौभाग्य और सम्मान पर ईर्ष्या करता है, उसकी बीमारी का कोई इलाज नहीं है। व्यक्ति को न करनेयोग्य काम करने से, करनेयोग्य कार्यों को छोड़ देने से और मन्त्रणा के प्रकट होने से डरना चाहिये और जिससे नशा चढ़े ऐसे पदार्थों को नहीं पीना चाहिये। विद्या का मद, धन का मद, और कुल का मद, ये तीनों अभिमानी व्यक्तियों के तो अभिमान के साधन हैं, पर सज्जन व्यक्तियों के लिये दम के साधन होते हैं। मनस्वी लोगों को सन्तों का सहारा होता है। सन्तों को भी सन्तों से ही सहारा मिलता है। सन्त लोग दुष्टों को भी सहारा देते हैं पर दुष्ट लोग सन्तों को सहारा नहीं देते।

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम्॥ ३७॥
शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः॥ ३८॥
सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत् स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा॥ ३९॥
प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते॥ ४०॥

अच्छे वस्त्रवाला सभी को जीत लेता है अर्थात् सभा में सभी को प्रभावित कर लेता है, जिसके पास गाय है वह मिष्टान्नखाने की इच्छा को जीत लेता है, सवारीवाला मार्ग को जीत लेता है, किन्तु जिसके पास चरित्र है, वह सबको जीत लेता है। मनुष्य में चरित्र ही प्रधान गुण होता है। जिसका चरित्र नष्ट हो गया, उसके लिये जीवन, धन, बन्धु, बान्धव सारे व्यर्थ हैं। निर्धन व्यक्ति सदा स्वादिष्ट भोजन ही करते हैं, क्योंकि वे भूख लगने पर भोजन करते हैं। भूख भोजन को ऐसा स्वादिष्ट बना देती है जो धनवानों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है। हे राजन्! धनवानों के पास प्रायः अच्छी तरह से खाना खाने की शक्ति भी नहीं होती, पर निर्धनों के पेट में लकड़ी भी हजम हो जाती है।

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद् भयम्।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात् परं भयम्॥ ४१॥
ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि नापतित्वा विबुध्यते॥ ४२॥
यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा।
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट्॥ ४३॥
अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते।
अमित्रान् वाजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते॥ ४४॥

अधम श्रेणी के लोगों को जीविका न होने से भय लगता है, मध्यम श्रेणी के लोगों को मृत्यु से भय लगता है, किन्तु उत्तम श्रेणी के लोगों को केवल अपमान से भय लगता है। वैसे तो मद्यपान आदि में भी नशा होता है, पर ऐश्वर्य का मद सबसे बुरा मद है, क्योंकि ऐश्वर्य का मद चढ़ने पर बिना पतन हुए होश नहीं आता। जो मनुष्य सरलता से मन को वश में करने वाली पाँच इन्द्रियों के द्वारा जीत लिया जाता है, उसकी मुसीबतें इस प्रकार बढ़ती हैं जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा। जो बिना अपने आपको वश में किये, अपने मंत्रियों को अपने वश में रखना चाहता है, या अपने मन्त्रियों को बिना अपने वश में किये अपने शत्रुओं को जीत लेना चाहता है, ऐसे अजितेन्द्रिय राजा को सब लोग छोड़ देते हैं।

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण यो जयेत्।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते॥ ४५॥
वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते॥ ४६॥

जो पहले अपने मन और इन्द्रियों को शत्रु समझ कर उन्हें जीत लेता है, पुनः अपने मन्त्रियों और शत्रुओं को जीतने की इच्छा करता है, तो उसकी वह इच्छा व्यर्थ नहीं होती। जिसने अपने मन इन्द्रियों को जीत लिया है, जो अपराधियों के लिये दण्ड का प्रयोग उचित रीति से करता है, जो जाँचपरख

कर कार्य करता है, ऐसे राजा की लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती है।

रथः शरीरं पुरुषस्य राज-
न्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-
र्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः॥ ४७॥

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम्।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम्॥ ४८॥

हे राजन्! मनुष्य का शरीर मानो उसका रथ है, उसकी इन्द्रियाँ रथ के घोड़े हैं। उसकी आत्मा घोड़ों को वश में रखने वाला रथ का स्वामी है। नियन्त्रण में रखे हुए उत्तम घोड़ों के द्वारा सावधान सारथि के समान मनुष्य भी सावधानी से इन्द्रियों को वश में रखकर जीवनरूपी मार्ग को कुशलतापूर्वक सुख से पार कर लेता है। किन्तु अशिक्षित और उच्छृंखल घोड़े जैसे मूर्ख सारथि को मार गिराते हैं, वैसे ही अनियंत्रित इन्द्रियाँ भी मनुष्य को मार सकती हैं।

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम्॥ ४९॥
धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥ ५०॥
अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद् भ्रश्यते हि सः॥ ५१॥
आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनो बुद्धीन्द्रियैर्यतैः।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ ५२॥

इन्द्रियों के न जीते जाने पर मूर्ख व्यक्ति अर्थ में अनर्थ और अनर्थ में अर्थ समझने लगता है। वह अत्यन्त दुःख को भी सुख मान लेता है। जो व्यक्ति धर्म और अर्थ का परित्याग करके इन्द्रियों के वश में हो जाता है, वह जल्दी ही लक्ष्मी, प्राण, धन और स्त्री से भी हाथ धो बैठता है। धन सम्पत्तियों का स्वामी होने पर भी यदि इन्द्रियों का स्वामी नहीं है, तो इन्द्रियों का स्वामी न होने के कारण वह ऐश्वर्य से भी हीन हो जाता है। इसलिये मन बुद्धि और इन्द्रियों को वश में करके अपने से ही अपनी आत्मा को जानने का प्रयत्न करना चाहिये। अपनी आत्मा ही अपना मित्र है और आत्मा ही अपना शत्रु है।

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः॥ ५३॥
समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान् योऽधिगच्छति।
स वै सम्भृतसम्भारः सततं सुखमेधते॥ ५४॥
दृश्यन्ते हि महात्मानो बध्यमानाः स्वकर्मभिः।
इन्द्रियाणामनीशत्वाद् राजानो राज्यविभ्रमैः॥ ५५॥

हे राजन्! बारीक सुराखों वाले जाल में फँसकर भी दो बड़ी मछलियाँ जिस प्रकार मिलकर उसे काट देती हैं, उसी प्रकार काम और क्रोध दोनों मिलकर बुद्धि को नष्ट कर देते हैं। जो धर्म और अर्थ पर विचार कर अपनी सामग्री को एकत्र करता है। वह उस सामग्री से युक्त हुआ सर्वदा सुख को बढ़ाता रहता है। इन्द्रियों को वश में न करने के कारण महात्मालोग भी कर्मबन्धन में फँसे हुए तथा राजालोग राज्य के भोगविलासों में डूबे हुए दिखाई देते हैं।

असंत्यागात् पापकृतामपापां-
स्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात्।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात्
तस्मात् पापैः सह सन्धिं न कुर्यात्॥ ५६॥

अपराधियों का त्याग न करने से निरपराधियों को भी उनके साथ रहने के कारण उनके समान ही दण्ड भोगना पड़ता है, जैसे सूखी लकड़ी के साथ होने से गीली लकड़ी भी जल जाती है। इसलिये दुष्ट लोगों के साथ मेल नहीं करना चाहिये।

निजानुत्पततः शत्रून् पञ्च पञ्चप्रयोजनान्।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद् ग्रसते नरम्॥ ५७॥
अनसूयाऽऽर्जवं शौचं संतोषः प्रियवादिता।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम्॥ ५८॥
आत्मज्ञानमसंरम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
वाक् चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत॥ ५९॥
आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान्।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते॥ ६०॥

जो व्यक्ति मोह के कारण पाँच विषयों की तरफ दौड़नेवाली अपनी पाँच इन्द्रियों रूपी शत्रुओं को अपने बस में नहीं करता, उसे विपत्तियाँ ग्रस लेती हैं। ईर्ष्या न करना, मन की पवित्रता, सन्तोष, प्रिय बोलना, इन्द्रियदमन, सत्यवादिता और सरलता, ये गुण दुष्ट व्यक्तियों में नहीं होते। हे भारत! इसी प्रकार आत्मा का ज्ञान, अक्रोध, सहनशीलता, और

सरलता, धर्म का पालन करना, वचन की रक्षा, और दान ये गुण भी अधम पुरुषों में नहीं होते। मूर्ख लोग अपशब्दों और निन्दा के द्वारा विद्वानों को कष्ट पहुँचाते हैं, किन्तु गाली देनेवाला पाप का भागी होता है और क्षमा करनेवाला पाप से मुक्त हो जाता है।

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम्।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम्॥ ६१॥
वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम्॥ ६२॥
अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते॥ ६३॥

दुष्ट पुरुषों का बल हिंसा है, राजाओं का बल दण्ड देने की विधि है, स्त्रियों का बल सेवा है और गुणवानों का बल क्षमा है। हे राजन्! वाणी का संयम अत्यन्त दुष्कर माना गया है, किन्तु अर्थ वाली विलक्षणवाणी भी बहुत नहीं बोली जा सकती। उत्तम रीति से कहीहुई वाणी अनेक प्रकार से कल्याण करती है। हे राजन्! वही वाणी यदि कटु शब्दों में कही जाये तो अनर्थ का कारण बन जाती है।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्॥ ६४॥
कर्णिनालीकनाराचान् निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः॥ ६५॥
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य नाममर्मसु ते पतन्ति
तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः॥ ६६॥

वाणीरूपी बाण मुख से निकलते हैं और दूसरे के मर्म स्थान पर ही चोट करते हैं, जिससे मारा हुआ वह दिन रात घुलता रहता है, इसलिये समझदार व्यक्ति को दूसरों पर उसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति॥ ६७॥
सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ।
पाण्डवानां विरोधेन न चैनामवबुध्यसे॥ ६८॥

विनाश का समय उपस्थित होने पर बुद्धि कलुषित हो जाती है। फिर न्याय के समान प्रतीत होने वाला अन्याय हृदय से बाहर नहीं निकलता। हे पुरुषश्रेष्ठ! आपके पुत्रों की यही बुद्धि पाण्डवों के विरोध से व्याप्त हो गयी है। इसे आप नहीं समझ रहे हैं।

पन्द्रहवाँ अध्याय : विदुर का धृतराष्ट्र को धर्मोपदेश।

धृतराष्ट्र उवाच

ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे॥ १॥

विदुर उवाच

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः॥ २॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे महाबुद्धिमान् विदुर! तुम पुनः धर्म और अर्थ से युक्त बातों को कहो। तुम बड़ी विलक्षण बातें कह रहे हो। इन्हें सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं हो रही है। तब विदुर ने कहा कि मनुष्य जैसे जैसे अपने मन को कल्याणमार्ग में लगाता है, वैसे वैसे उसके सारे अभीष्ट सिद्ध होते जाते हैं। इसमें संशय नहीं है।

मद्यपानं कलहं पूगवैरं
भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम्।
राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं
वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः॥ ३॥

मद्य पीना, कलह करना, समूह के साथ बैर करना, पतिपत्नी में भेद पैदा करना, कुटुम्बवालों में भेद पैदा करना, राजा के साथ द्वेष, स्त्री पुरुष में विवाद, और दुष्ट मार्ग, इन सब अवगुणों को छोड़नेयोग्य बताया गया है।

अंगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी।
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः॥ ४॥
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात् पानपो द्विजः।
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः।
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात् सर्वे ब्रह्महभिः समाः॥ ५॥

आग लगानेवाला, विष देनेवाला, अवैध सन्तान की कमाई खानेवाला, मद्य बेचनेवाला, अपने स्वार्थ के लिये पर्व को मनाने की रीति में व्यतिक्रम करनेवाला,

मुखबिर, मित्रद्रोही, परस्त्रीगामी, गर्भ की हत्या करनेवाला, गुरु के बिस्तरे पर बैठनेवाला, शराब पीनेवाला द्विज, अधिक तीखे स्वभाववाला, कौए की तरह बोलनेवाला, नास्तिक, वेदों की निन्दा करनेवाला, मेरी रक्षा करो, यह कहनेवाले की भी हिंसा करनेवाला, ये सब ब्रह्म हत्यारे के समान हैं।

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं
वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः।
शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः
कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च॥ ६॥
जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा
ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः॥ ७॥

जलती हुई आग से सुवर्ण की, चारित्र से सज्जनता की, व्यवहार से अच्छेपन की, भयप्राप्त होने पर शूरवीरता की, निर्धनता में धैर्य की, और कठोर आपत्ति में मित्र तथा शत्रु की पहचान होती है। बढ़ापा सौन्दर्य को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, ईर्ष्या धर्माचरण को, क्रोध लक्ष्मी को, दुष्टों की सेवा चरित्र को, काम लज्जा को और अभिमान सर्वस्व को नष्ट कर देता है।

श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् सम्प्रवर्धते।
दाक्ष्यात् तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति॥ ८॥

धन सम्पत्ति अच्छे कार्यों से जन्म लेती है, प्रगल्भता से अर्थात् उत्साह से वह बढ़ती है, चतुराई से जड़ जमाती है और संयम से सुरक्षित रहती है।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥ ९॥
एतान् गुणांस्तात महानुभावा-
नेको गुणः संश्रयते प्रसह्य।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं
सर्वान् गुणानेष गुणो विभाति॥ १०॥

बुद्धि कुलीनता, दम, शिक्षा, पराक्रम, बहुत न बोलना, शक्ति के अनुसार दान और कृतज्ञता ये आठ गुण मनुष्य की शोभा को बढ़ाते हैं। हे राजन्! पर एक गुण ऐसा है, जो इन सारे महान् गुणों पर जबर्दस्ती अधिकार कर लेता है, वह है राजसम्मान। राजा जब किसी का सम्मान करता है तो उसकी शोभा सबसे बढ़कर होती है।

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके
स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि।
चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भि-
श्चत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः॥ ११॥
यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च
चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः।
दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं
चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः॥ १२॥

हे राजन्! ये आठ गुण मनुष्य लोक में स्वर्ग लोक अर्थात् सुख का दर्शन कराते हैं। इनमें से चार का सन्त लोग अनुसरण करते हैं और चार सन्तों का अनुसरण करते हैं। यज्ञ, दान, तप और अध्ययन ये चार सन्तों के साथ रहते हैं तथा दम, सत्य, कोमलता और दयालुता इनको सन्त अपने पास रखते हैं।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥ १३॥
तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति॥ १४॥

यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और निर्लोभ ये धर्म के आठ मार्ग हैं। इनमें से पहले चार तो ढोंग के लिये भी कर लिये जाते हैं, पर अन्तिम चार को जो महात्मा नहीं हैं, वे नहीं अपना सकते।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्॥ १५॥

वह सभा सभा नहीं है जहाँ वृद्ध लोग न हों। वे वृद्ध वृद्ध नहीं हैं। जो धर्म के अनुसार बात न कहें, वह धर्म धर्म नहीं है। जिसमें सत्य न हो, वह सत्य सत्य नहीं है, जो छल से युक्त हो।

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम्।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः॥ १६॥
पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम्।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते॥ १७॥

तस्मात् पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः॥ १८॥
नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः॥ १९॥

सत्य, सौन्दर्य, ज्ञान, विद्या, कुलीनता, चरित्र, बल, धन, शूरता और विलक्षण बात कहना, ये दस बातें सुख दिलानेवाली हैं। पापकीर्ति, निन्दित मनुष्य बुरे कार्य करता हुआ, उन बुरे कार्यों के ही फल को प्राप्त करता है। किन्तु उत्तम कर्म करनेवाला प्रशंसित व्यक्ति पुण्य फलों का उपभोग करता है। इसलिये प्रशंसनीय व्रतों का पालन करने वाला पापकर्मों को न करे। बारबार किया हुआ पापकर्म करने वाले की बुद्धि को नष्ट कर देता है। बुद्धि के नष्ट हो जाने पर वह फिर पापों को ही करता रहता है। इसके विपरीत पुण्य कर्म बार बार किये जाने पर पुण्यबुद्धि को बढ़ाते हैं।

वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति॥ २०॥
तस्मात् पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः।
असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः॥ २१॥
स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात् पापमाचरन्।
अनसूयुः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन् सदा॥ २२॥
नकृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते।
प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः॥ २३॥
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम्।

पुण्यबुद्धि के बढ़ने पर मनुष्य सदा पुण्यकर्मों को ही करता है। प्रशंसित कीर्त्तिवाला वह मनुष्य उत्तम कार्यों को करताहुआ परलोक में उत्तम गति को प्राप्त करता है, इसलिये मनुष्य को अत्यन्त सावधानी से अच्छे कार्य ही करने चाहियें। ईर्ष्या करनेवाला, दूसरों के लिये जहर उगलनेवाला, निष्ठुर, बैर करनेवाला, दुष्ट, ये मनुष्य पापकर्मों को करतेहुए शीघ्र ही महान् कष्टों को प्राप्त होते हैं। किन्तु ईर्ष्या न करने वाला शुद्ध बुद्धिवाला, दूसरों के लिये उत्तम कर्म करने वाला महान् सुख को प्राप्त होता है और सब जगह सम्मानित होता है। जो बुद्धिमान् पुरुषों से सद्‌बुद्धि को प्राप्त करता है, वह पण्डित है। बुद्धिमान् व्यक्ति ही धर्म और अर्थ को प्राप्त कर अपने सुख की वृद्धि कर सकता है।

दिवसेनैव तत् कुर्याद् येन रात्रौ सुखं वसेत्॥ २४॥
अष्टमासेन तत् कुर्याद् येन वर्षाः सुखं वसेत्।
पूर्वे वयसि तत् कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत्॥ २५॥
यावज्जीवेन तत् कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत्।
जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम्॥ २६॥
शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम्।
धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते॥ २७॥
असंवृतं तद् भवति ततोऽन्यदवदीर्यते।

जिस कार्य से रात में सुख से रह सके वह कार्य दिन में ही कर लेना चाहिये। जिससे वर्षा के चार मास सुख से व्यतीत हों, वे कार्य आठ मासों में ही कर लेने चाहियें। पहली अवस्था में वह कार्य कर लेने चाहियें, जिनसे बुढ़ापा सुख से व्यतीत हो और सारे जीवन वे कार्य करने चाहियें, जिनसे मृत्यु के पश्चाद् परलोक में सुख मिले। सज्जन जोग हजम हो जाने पर अन्न की, युवावस्था व्यतीत हो जाने पर पत्नी की, संग्राम को जीत लेने पर शूरवीर की, और संसार सागर से पार हो जाने पर तपस्वी की प्रशंसा करते हैं। अधर्म से प्राप्त धन के द्वारा जो दोष छिपाने का प्रयत्न किया जाता है, उससे वह दोष तो छिपता नहीं है, अपितु दूसरे और दोष प्रकट हो जाते हैं।

द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी॥ २८॥
क्षत्रियः शीलभाग् राजंश्चिरं पालयते महीम्।
सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः॥ २९॥
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्।
दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा॥ ३०॥
कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि।
सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षभ।
पितृवत् त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत्॥ ३१॥

ब्राह्मणों के सम्मान में लगाहुआ, दानी, परिवार वालों के साथ कोमल व्यवहार करनेवाला और चरित्रवान् राजा, हे राजन्! देरतक पृथिवी का पालन करता है। तीन प्रकार के मनुष्य पृथिवी रूपी लता से सुनहरे पुष्पों को प्राप्त करते हैं। शूरवीर, विद्वान् और सेवाधर्म को जाननेवाला। हे राजन्! आपने दुर्योधन, शकुनि, मूर्ख दुश्शासन और कर्ण पर अपने ऐश्वर्य को समर्पित कर दिया है। अब आप उन्नति को कैसे चाहते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! पाण्डव लोग सारे

गुणों से युक्त हैं। वे आपसे पिता के समान व्यवहार करते हैं। आप भी उनकेसाथ पुत्रों जैसा व्यवहार कीजिये।

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य
मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो
रूक्षां वाचं रुषतीं वर्जयीत॥ ३२॥
अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम्।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं
धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम्॥ ३३॥

न तो दूसरों को गाली देनी चाहिये और न अपमान करना चाहिये। मित्रों से द्रोह न करे और नीच पुरुषों की सेवा न करे, अभिमान न करे तथा सदाचार का त्याग न करे। रूखी और रोषयुक्त वाणी को छोड़ देना चाहिये। न बोलना बोलने से अच्छा बताया गया है। वाणी की दूसरी विशेषता यह है कि जो कुछ भी बोले वह सत्य बोले, वाणी की तीसरी विशेषता यह है कि वाणी सत्य के साथ प्रिय भी हो, चौथी विशेषता यह है कि वह धर्म के अनुसार हो।

यादृशैः संनिविशते यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः॥ ३४॥
यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि॥ ३५॥

मनुष्य जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे लोगों की सेवा करता है, और जैसा होना चाहता है, वैसा ही बन जाता है। मनुष्य जिस जिस विषय से मन को हटाता जाता है, उस उस विषय से उसका छुटकारा हो जाता है। यदि सारे विषयों से उसका मन हट जाये, तो उसे लेशमात्र भी दुःख नहीं रहता।

न जीयते चानुजिगीषतेऽन्यान्
न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च।
निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो
न शोचते हृष्यति नैव चायम्॥ ३६॥

जो न तो किसी से जीता जाता है और न किसी को जीतने की इच्छा करता है, न किसी से बैर करता है और न किसी को चोट पहुँचाता है, जो निन्दा और प्रशंसा दोनों में समान भाव से रहता है, वह हर्ष और शोक से परे हो जाता है।

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः॥ ३७॥
नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च।
रन्ध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपूरुषः॥ ३८॥

जो सबकी भलाई चाहता है, बुराई में मन नहीं लगाता, सत्यवादी है, मधुर है और दमनशील है, वह उत्तम कोटि का मनुष्य है। जो किसी को व्यर्थ ही सान्त्वना नहीं देता, देने की प्रतिज्ञा करके उसे देता है, दूसरे के दोषों को जानता है, वह मध्यम कोटि का पुरुष है।

दुःशासनस्तूपह तोऽभिशस्तो
नावर्तते मन्युवशात् कृतघ्नः।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा
कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः॥ ३९॥

जिसका शासन कठोर है, जो दोषों से दूषित है, कलंकित है, जो क्रोध में भरकर दूसरों की बुराई करने से पीछे नहीं हटता, जो कृतघ्न है, जो किसी का मित्र नहीं है और जो दुरात्मा है, ये अधम पुरुषों के भेद हैं।

न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशङ्कितः।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः॥ ४०॥
उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान्।
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद् भूतिमात्मनः॥ ४१॥

जो अपने ऊपर ही शंका करता रहता है, दूसरों से होने वाले अपने कल्याण पर भी विश्वास नहीं करता, मित्रों को दूर भगा देता है, वह अधम पुरुष है। ऐश्वर्य को चाहने वाले को चाहिये कि वह उत्तम पुरुषों की ही सेवा करे, समय आने पर मध्यम पुरुषों की भी सेवा कर ले, पर अधम पुरुषों की सेवा कभी नहीं करे।

प्राप्नोति वै वित्तमसद्बलेन
नित्योत्थानात् प्रज्ञया पौरुषेण।
न त्वेव सम्यग् लभते प्रशंसां
न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम्॥ ४२॥

धृतराष्ट्र उवाच– **महाकुलेभ्यः स्पृहयन्ति देवा**
धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च।
पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं
भवन्ति वै कानि महाकुलानि॥ ४३॥

चाहे कोई मनुष्य बुरे उपायों की शक्ति से, नित्य प्रयत्न करने से, बुद्धि से और पुरुषार्थ से, धन को भले ही प्राप्त कर ले, पर वह उच्च कुलवालों जैसी न तो प्रशंसा को प्राप्त करता है और न सदाचार को। तब धृतराष्ट्र ने पूछा कि हे विदुर! सदा धर्म और अर्थ का पालन करने वाले, बहुत पढ़े लिखे देवता अर्थात् विद्वान् लोग भी महान् कुलवालों को चाहते हैं। इसलिये मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि महान् कुलवाले कौन होते हैं।

विदुर उवाच- **तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः**
पुण्या विवाहाः सततान्नदानम्।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति
सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि॥ ४४॥
येषां हि वृत्तं व्यथते न योनि-
श्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्।
ते कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां
त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि॥ ४५॥

विदुर जी ने कहा कि जिसमें तप, इन्द्रियदमन, वेदों का ज्ञान, यज्ञ, पवित्र विवाह, निरन्तर अन्न का दान और सदाचार ये सात बातें विद्यमान होती हैं, उन्हें महान् कुलवाला कहते हैं। जिनका आचरण अपने मातापिता को दुःखी नहीं करता, जो धर्म का पालन मन की प्रसन्नता के साथ करते हैं, जिन्होंने असत्य को छोड़ा हुआ है, जो कुल की विशेष कीर्ति को चाहते हैं, उन्हें ही महान् कुल वाला कहते हैं।

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च॥ ४६॥
ब्राह्मणानां परिभवात् परिवादाच्च भारत।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च॥ ४७॥
कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥ ४८॥
वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद् यशः॥ ४९॥

इन कार्यों से उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं। यज्ञ न होने से, निन्दितकुल में विवाह करने से, वेदों का त्याग करने से, निन्दा करने से, धर्म का उल्लंघन करने से ब्राह्मणों का निरादर करने से, धरोहर की वस्तु का अपहरण करने से हे भारत! उत्तम कुल भी निन्दनीय हो जाते हैं। गायों से, पुरुषों से और धनधान्य से युक्त परिवार भी सदाचार से रहित होने के कारण कुलीनता की गिनती में नहीं आते। थोड़े धनवाले भी यदि सदाचार से रहित नहीं हैं, तो वे कुलीन समझे जाते हैं और महान् यश को प्राप्त करते हैं।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥ ५०॥
गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥ ५१॥
तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥ ५२॥

सदाचार की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। धन का क्या है? धन तो आता जाता रहता है। धनहीन मनुष्य का विनाश नहीं होता, पर सदाचार से हीन मनुष्य का विनाश हो जाता है। गायों, पशुओं, घोड़ों, और हरी भरी खेती से अच्छी तरह समृद्ध होने पर भी, सदाचार से हीन कुल उन्नति नहीं कर सकते। तृण का आसन, भूमि, जल, और मधुर वाणी, इन चार चीज़ों का सज्जनों के घर में कभी अभाव नहीं होता।

सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो वै
शक्तो वोढुं न तथान्ये महीजाः।
एवं युक्ता भारसहा भवन्ति
महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः॥ ५३॥
न तन्मित्रं यस्य कोपाद् बिभेति
यद् वा मित्रं शङ्कितेनोपचर्यम्।
यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत
तद् वै मित्रं सङ्गतानीतराणि॥ ५४॥

हे राजन्! रथ छोटा होने पर भी बोझा ले जाता है, किन्तु दूसरे बड़े लकड़ी के टुकड़े ऐसा नहीं कर सकते। इसी प्रकार महान् कुल में जन्मे उत्साही व्यक्ति बड़ा भार सह सकते हैं, दूसरे व्यक्ति नहीं। वह मित्र नहीं है जिसके क्रोध से भय प्राप्त हो तथा जिसकी सेवा शंका के साथ की जाये। मित्र वही है, जिस पर पिता के समान विश्वास किया जाये, दूसरे तो केवल साथी हैं।

यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत् परायणम्॥ ५५॥
चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः।

पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः॥ ५६॥
चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम्।
अर्थाः समभिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा॥ ५७॥
अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा॥ ५८॥

जो व्यक्ति, चाहे उससे किसी प्रकार भी संबंधन हो, पर अपने साथ मित्र की तरह व्यवहार करता है, वही वास्तव में मित्र और बन्धु है। वही सहारा और वही आश्रय है। जिस मनुष्य का चित्त चंचल है, जो वृद्धों की सेवा नहीं करता, ऐसे अस्थिर मति वाले के मित्रों का साथ स्थायी नहीं होता। जिसका चित्त चंचल है, जो मनस्वी नहीं है, जो इन्द्रियों के वश में है, उसे अर्थ उसी प्रकार त्याग देते हैं जैसे हंस सूखे सरोवर को। दुर्जन मनुष्यों का स्वभाव बादलों के समान होता है, वे अचानक ही क्रोध करने लगते हैं, और बिना कारण ही प्रसन्न हो जाते हैं।

अर्चयेदेव मित्राणि सति वासति वा धने।
नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम्॥ ५९॥
संतापाद् भ्रश्यते रूपं संतापाद् भ्रश्यते बलम्।
संतापाद् भ्रश्यते ज्ञानं संतापाद् व्याधिमृच्छति॥ ६०॥
अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः॥ ६१॥

धन रहे या न रहे, मित्रों से धन की याचना न करते हुए उनका सम्मान करना ही चाहिये। उनकी सारता और असारता की परीक्षा भी नहीं करनी चाहिये। शोक से रूप नष्ट होता है, शोक से फल नष्ट होता है। शोक से ज्ञान नष्ट होता है और शोक से रोग को प्राप्त होता है। शोक करने से प्राप्त न हुई वस्तु प्राप्त नहीं होती, बल्कि शरीर दुःखी होता है। शोक करने से शत्रु प्रसन्न होते हैं इसलिये मन में शोक नहीं करना चाहिये।

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च
लाभालाभौ मरणं जीवितं च।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति
तस्माद् धीरो न च हृष्येन्न शोचेत्॥ ६२॥

सुख, दुःख, उत्पत्ति, विनाश, लाभ-हानि, मृत्यु-जीवन ये सारी बातें मनुष्य के पास बारी बारी से आती रहती हैं इसलिये धैर्यवान् मनुष्य को न तो इनके लिये हर्षित होना चाहिये और न शोक करना चाहिये।

धृतराष्ट्र उवाच

तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति॥ ६३॥
नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः।
यत् तत् पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते॥ ६४॥

धृतराष्ट्र ने कहा कि हे विदुर! सूक्ष्म धर्म से बँधे हुए, शिखा वाले राजा युधिष्ठिर के साथ मैंने मिथ्या व्यवहार किया है, इसलिये वे युद्ध के द्वारा मेरे मूर्ख पुत्रों का विनाश कर देंगे। अब मुझे सब कुछ भय से बेचैन लग रहा है। मेरा मन भी भय से बेचैन है। हे महामते! जो शान्ति का मार्ग है, उसे मुझे बताओ।

विदुर उवाच

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।
नान्यत्र लोभसंत्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ॥ ६५॥
बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत्।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति॥ ६६॥
स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते॥ ६७॥

तब विदुर जी ने कहा कि हे अनघ! विद्या, तप, इन्द्रियनिग्रह और लोभ का त्याग, इनके अतिरिक्त और कोई शान्ति का उपाय मैं आपके लिये नहीं देखता हूँ। बुद्धि से मनुष्य भय को दूर करता है। तपस्या से महानता को प्राप्त करता है। गुरु की सेवा से ज्ञान तथा योगाभ्यास से शान्ति को प्राप्त करता है। अच्छी तरह से किये हुए अध्ययन, अच्छी तरह से किये हुए युद्ध, पुण्य कर्म तथा अच्छी तरह से की हुई तपस्या के पश्चात् मनुष्य सुख को प्राप्त करता है।

स्वास्तीर्णानि शयानानि प्रपन्ना
न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते।
न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति
न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः॥ ६८॥
न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं
न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति
न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति॥ ६९॥

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं
योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम्।
भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं
न विद्यते किंचिदन्यद् विनाशात्॥ ७०॥

हे राजन्! आपस में फूट रखनेवालों को अच्छी तरह से बिछे हुए बिछौनों पर भी नींद नहीं आती, स्त्रियों के बीच में भी उन्हें सुख नहीं मिलता, सूतों और मागधों के द्वारा स्तुति किये जाने पर भी उन्हें प्रसन्नता नहीं होती। परस्पर भेद रखनेवाले कभी धर्म का आचरण नहीं करते, वे इस संसार में कभी सुखी नहीं होते। भेद भाव रखनेवालों को गौरव भी नहीं मिलता और उन्हें शान्ति की बातें भी नहीं सुहातीं। उन्हें कही गयी भलाई की बात अच्छी नहीं लगती, उन्हें योग और क्षेम की भी सिद्धि नहीं हो पाती। हे राजेन्द्र! भेदभाववाले मनुष्यों की सिवाय विनाश के और कोई गति नहीं है।

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ॥ ७१॥

हे भरतश्रेष्ठ धृतराष्ट्र! जैसे जलतीहुई लकड़ियाँ अलग अलग होनेपर धूँआ फेंकती हैं, पर एकसाथ होने पर तेजी से जलती हैं, इसी प्रकार परिवार के व्यक्ति अलग अलग होने पर दुःखी और मिलकर रहने पर सुखी होते हैं।

महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात्॥ ७२॥
अथ ये सहिता वृक्षाः सङ्घशः सुप्रतिष्ठिताः।
तेहि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात्॥ ७३॥
एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम्।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम्॥ ७४॥
अन्योन्यसमुपष्टम्भादन्योन्यापाश्रयेण च।
ज्ञातयः सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत॥ ७५॥

अकेला वृक्ष, चाहे वह कितना भी बड़ा हो, मजबूत जड़ वाला हो, शक्तिशाली हो, आँधी के द्वारा एक क्षण में ही शाखाओं सहित बलपूर्वक गिरा दिया जाता है, पर जो वृक्ष बहुत सारे एक दूसरे के साथ खड़े हुए होते हैं, वे एक दूसरे के सहारे से ही बड़ी से बड़ी आँधी को भी सहन कर लेते हैं। इसी प्रकार वायु और वृक्ष के उदाहरण के अनुसार अकेला व्यक्ति चाहे गुणों से युक्त हो, फिर भी शत्रु उसे पराजित करने में सम्भव समझते हैं। एक दूसरे के प्रति मेल होने से एक दूसरे के सहारे से परिवारवाले इस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं जैसे तालाब में कमल।

पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं वचो मे
द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन्।
दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां
कितवत्वं पण्डिता वर्जयन्ति॥ ७६॥

हे राजन्! पहले द्यूतक्रीड़ा में द्रौपदी को जीता हुआ देखकर मैंने आपने कहा था कि आप दुर्योधन को रोकिये। जूए में धोखेबाजी को पण्डित लोग मना करते हैं, पर आपने मेरा कहना नहीं माना।

न तद् बलं यन्मृदुना विरुध्यते
सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्री-
र्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान्॥ ७७॥

वह शक्ति शक्ति नहीं हैं, जिसका कोमल स्वभाव वालों के साथ विरोध हो। सूक्ष्म धर्म का पालन शीघ्रता से करना चाहिये। क्रूरतापूर्वक प्राप्त की हुई लक्ष्मी विनष्ट होनेवाली होती है, पर यदि वह कोमलता से प्राप्त की गयी हो तो पुत्र और पौत्रों तक स्थिर रहती है।

धार्तराष्ट्राः पाण्डवान् पालयन्तु
पाण्डोः सुतास्तव पुत्रांश्च पान्तु।
एकारिमित्राः कुरवो ह्येककार्या
जीवन्तु राजन् सुखिनः समृद्धाः॥ ७८॥
मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य
त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ।
पार्थान् बालान् वनवासप्रतप्तान्
गोपायस्व स्वं यशस्तात रक्षन्॥ ७९॥
संधत्स्व त्वं कौरव पाण्डुपुत्रै-
र्मा तेऽन्तरं रिपवः प्रार्थयन्तु।
सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे
दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेन्द्र॥ ८०॥

धृतराष्ट्र के पुत्र पाण्डुपुत्रों का पालन करें। पाण्डु के पुत्र तुम्हारे पुत्रों की रक्षा करें। सारे कौरव एक दूसरे के शत्रु को शत्रु और मित्र को मित्र समझें। हे राजन्! इस प्रकार सारे सुखी और समृद्धिशाली होकर जीवन बितायें। हे अजामीढनन्दन! कुरुवंश

आपके आधीन है, आप कौरवों के आधारस्तम्भ हैं। कुन्तीपुत्र आपके बालक हैं और वनवास के दुःख से दुःखी हैं। हे तात! आप उनका पालन कीजिये और अपने यश की रक्षा कीजिये। हे कौरव! आप पाण्डुपुत्रों के साथ सन्धि कर लीजिये, जिससे शत्रुओं को आपकी कमी देखने का अवसर न मिले। हे राजन्! वे सारे पाण्डव इस समय सत्य पर विद्यमान हैं, आप दुर्योधन को भी सत्य पर स्थापित कीजिये।

सोलहवाँ अध्याय : विदुर का धृतराष्ट्र को हितोपदेश।

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य-
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः
साध्वाचारः साधुना, प्रत्युपेयः॥ १॥
जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
कामो ह्रियं वृत्तमनार्यसेवा
क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः॥ २॥

जो मनुष्य जिस प्रकार का व्यवहार करनेवाला हो, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये, यही नीतिधर्म है। मायाचारी के साथ मायामय व्यवहार करना चाहिये और साधु व्यक्तियों के साथ साधुभाव से व्यवहार करना चाहिये। बुढ़ापा रूप को, आशा धीरज को, मृत्यु प्राणों को, ईर्ष्या धर्माचरण को, काम लज्जा को, दुर्जनों की सेवा सदाचार को, क्रोध लक्ष्मी को और अभिमान सर्वस्व को नष्ट कर देता है।

धृतराष्ट्र उवाच

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्यथ च तत् सर्वमायुः केनेह हेतुना॥ ३॥

विदुर उवाच

अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्॥ ४॥
एत एवासयस्तीक्ष्णा कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते॥ ५॥

धृतराष्ट्र ने पूछा जब वेदों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष की बताई गयी है, तो वह किस कारण से अपनी पूरीआयु को प्राप्त नहीं कर पाता है। तब विदुर ने कहा कि अत्यन्त अभिमान, बहुत बोलना, त्याग न करना, और हे राजन्! आपका कल्याण हो, क्रोध, अपना ही मतलब पूरा करने की इच्छा और मित्र से द्रोह ये ही छह तीखी तलवारें हैं, जो लोगों की आयु को काटती हैं। ये ही मनुष्यों को मारती हैं, मृत्यु नहीं मारती।

गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः
शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च।
नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः
सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान्॥ ६॥

बड़ों की बातों को ग्रहण करनेवाला, नीतिनिपुण, उदारहृदय, दूसरों को देकर शेष अन्न का भोजन करनेवाला, हिंसा से रहित, अनर्थवाले कार्यों से दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी, मृदुस्वभाव, और विद्वान् व्यक्ति स्वर्ग अर्थात् सुख को प्राप्त करता है।

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ ७॥
यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान्॥ ८॥
त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥ ९॥
द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम्।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्॥ १०॥

हे राजन्! सदा प्रिय बात कहनेवाले व्यक्ति तो सरलता से मिल जाते हैं, पर हितकारी और कड़वी बात के कहनेवाले और सुननेवाले बड़ी कठिनता से मिलते हैं। जो व्यक्ति स्वामी को अच्छा लगेगा या नहीं लगेगा इस बात का विचार न कर, धर्म का आश्रय लेकर हितकारी पर कड़वी बात भी कह देता है, वही राजा का सच्चा सहायक होता है। कुल की रक्षा के लिये एक पुरुष का त्याग कर देना चाहिये। ग्राम को बचाने के लिये कुल का त्याग कर देना चाहिये। देश को बचाने के लिये ग्राम का त्याग कर देना चाहिये, पर आत्मा के कल्याण के लिये पृथिवी को भी छोड़ देना चाहिये। पुराने समय से ही जूए को मनुष्यों में बैर डालनेवाला देखा गया है इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति हो हँसी में भी जूआ नहीं खेलना चाहिये।

उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राजन्
नेदं युक्तं वचनं प्रातिपेय।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य
न रोचते तव वैचित्रवीर्य॥ ११॥

हे प्रतीपनन्दन। हे विचित्रवीर्य कुमार, हे राजन्! मैंने जूआ खेला जाते हुए भी यह कहा था कि यह ठीक नहीं है पर जैसे बीमार को लाभदायक दवाई अच्छी नहीं लगती, वैसे ही तब मेरी बात आपको अच्छी नहीं लगी।

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं
भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य।
तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति
न चैनमापत्सु परित्यजन्ति॥ १२॥
न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन
राज्यं धनं संजिघृक्षेदपूर्वम्।
त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः।
स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः॥ १३॥

हे तात्! जो स्वामी, अपने उन मृत्यों पर जो सारे समय उसकी सेवा करते हैं, उससे प्रेम करते हैं और उसके कल्याण में लगे रहते हैं, कभी क्रोध नहीं करता, उस स्वामी पर वे सेवक विश्वास करते हैं और मुसीबत में भी उसे नहीं छोड़ते हैं। अपने सेवकों की जीविका बन्द करके दूसरों के राज्य और धन को ग्रहण करने की इच्छा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सुख भोगो से रहित हो जाने पर वे ठगे हुए उसके प्रिय मन्त्री भी उसके विरुद्ध हो जाते हैं और उसका त्याग कर देते हैं।

कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वा-
ण्यायव्यये चानुरूपां च वृत्तिम्।
संगृह्णीयादनुरूपान् सहायान्
सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि॥ १४॥

पहले अपने कर्त्तव्यों का निश्चय करना चाहिये, फिर आय-व्यय तथा उचित वेतन आदि का निश्चय करना चाहिये, फिर योग्य सहायकों का संग्रह करना चाहिये। सहायकों के द्वारा ही दुष्कर कार्यों को पूरा किया जा सकता है।

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः
सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री।
वक्ता हितानामनुक्त आर्यः
शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः॥ १५॥
वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः
प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी
त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः॥ १६॥

जो स्वामी के अभिप्राय को समझ कर बिना आलस्य के सारे कार्य करता है, हित की बात कहता है, स्वामीभक्त है सज्जन है, ऐसे सेवक को अपने समान समझ कर उस पर कृपा करनी चाहिये। पर जो आज्ञा देने पर स्वामी की बात का आदर नहीं करना, जिस काम में लगाओ, उसी को मना कर देता है, अपनी बुद्धि पर अभिमान करता है और प्रतिकूल बोलता है, ऐसे सेवक का तुरन्त त्याग देना चाहिये।

अस्तब्धमक्ली- बमदीर्घसूत्रं
सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः।
अरोगजातीयमुदार- वाक्यं
दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम्॥ १७॥
न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे
गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो
न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत॥ १८॥

जो अंहकाररहित हो, कायर न हो, विलम्ब से काम करनेवाला न हो, दयालु हो, मधुर स्वभाव का हो, दूसरों के बहकाये में न आनेवाला हो, नीरोग और उदार वाणीवाला हो, ऐसे आठ गुणों से युक्त व्यक्ति को दूत बनानेयोग्य कहा गया है। सावधान मनुष्य को विश्वास करके असमय में दूसरे के घर नहीं जाना चाहिये, रात में चौराहे पर छिप कर खड़े नहीं होना चाहिये और राजा के द्वारा चाही हुई स्त्री को नहीं चाहना चाहिये।

न निह्नवं मन्त्रगतस्य गच्छेत्
संसृष्टमन्त्रस्य कुसङ्गतस्य।
न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीति
सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात्॥ १९॥
घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः
पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा।
सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव
व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते॥ २०॥

कुसंगति में पड़ा हुआ राजा जब मन्त्रणा में लगा हुआ हो, तब उसका खंडन नहीं करना चाहिये। न उससे यह कहना चाहिये कि मैं तुम पर विश्वास नहीं करता, युक्तियुक्त बहाना बना कर वहाँ से हट जाना चाहिये। अधिक दयालु राजा, व्यभिचारिणी स्त्री, राजा का सेवक, पुत्र, भाई, बच्चे वाली विधवा, सैनिक और जिसका अधिकार छीन लिया गया हो, इनसे लेनदेन का व्यवहार नहीं करना चाहिये।

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते
आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं
न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति॥ २१॥
अकर्मशीलं च महाशनं च
लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम्।
अदेशकालज्ञम- निष्टवेष-
मेतान् गृहे न प्रतिवासयेत॥ २२॥

कम खानेवाले को छह गुण प्राप्त होते हैं। आरोग्य, आयु, बल और सुख, तथा उसकी सन्तान उत्तम होती है, और वह बहुत खानेवाला है, ऐसा कहकर लोग उस पर आक्षेप भी नहीं करते। अकर्मण्य, बहुत खानेवाले, लोगों से द्वेष करनेवाले, अधिक मायावी, निर्दय, देश और काल को न जाननेवाले एवं निन्दित वेशवाले मनुष्य को अपने घर में नहीं ठहराना चाहिये।

कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च
वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम्।
निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्न-
मेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत्॥ २३॥
संक्लिष्टकर्माणमति- प्रमादं
नित्यानृतं चादृढभक्तिकं च।
विसृष्टरागं पटुमानिनं चा-
प्येतान् न सेवेत नराधमान् षट्॥ २४॥

कंजूस, गाली देनेवाले, मूर्ख, वनवासी, धूर्त, निम्न लोगों की सेवा करनेवाले निष्ठुर, बैर बाँधने वाले और कृतघ्न इनसे बहुत दुःखी होने पर भी कभी सहायता की याचना नहीं करनी चाहिये। क्लेशप्रद कार्यों को करनेवाले, अत्यन्त प्रमादी, सदा असत्य भाषण करनेवाले, अस्थिर भक्तिवाले, स्नेह से रहित, और अपने को चतुर समझनेवाले इन छह प्रकार के अधम पुरुषों की सेवा नहीं करनी चाहिये।

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धनाः।
अन्योन्यबन्धनावेतौ विनान्योन्यं न सिद्ध्यतः॥ २५॥
उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा
वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय कांचित्।
स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा
अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत्॥ २६॥

धन की प्राप्ति सहायकों से होती है और सहायक धन चाहते हैं इसलिये ये दोनों एक दूसरे के आश्रित हैं और एक दूसरे के सहयोग के बिना इनकी सिद्धि नहीं होती। पुत्रों को जन्म देकर, उन्हें ऋण के भार से मुक्त कर, उनके लिये जीविका का प्रबन्ध करके, पुत्रियों का उचित वरों के साथ विवाह करके, उसके पश्चात् वन में मुनिवृत्ति से रहने की इच्छा करनी चाहिये।

हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम्।
तत् कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये॥ २७॥
वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च।
व्यवसायश्च यस्य स्यात् तस्यावृत्तिभयं कुतः॥ २८॥

जो कार्य सारे प्राणियों के लिये कल्याणकारी और अपने लिये भी सुखदायी है, उसे ईश्वरार्पण बुद्धि से करना चाहिये। यही सारे प्रयोजनों की सिद्धि का मूलमन्त्र है। जिसमें बढ़ने की शक्ति हो, प्रभाव, तेज, शक्ति, उत्थान की भावना तथा कर्तव्य का निश्चय है, उसे अपनी जीविका के नष्ट होने का भय कैसे हो सकता है?

तव पुत्रशतं चैव कर्णः पञ्च च पाण्डवाः।
पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम्॥ २९॥

आपके सौ पुत्र, कर्ण और पाँचों पाण्डव ये सब मिलकर सारी समुद्रपर्यन्त पृथिवी का पालन कर सकते हैं।

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान्।
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः॥ ३०॥
यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या॥ ३१॥
यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते।
धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति॥ ३२॥

संनियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति॥ ३३॥

जिनके हृदय में पाप की भावना रहती है, वे दूसरों के कल्याणकारी गुणों को जानने की वैसी इच्छा नहीं करते जैसी उनकी बुराइयों को जानने की करते हैं। जिसकी आत्मा बुरे कार्यों से हटकर अच्छे कार्यों में लग गयी है, वह संसार में जो कुछ भी प्रकृति और विकृति है, उसे जान लेता है। जो क्रोध और हर्ष के उठते हुए वेग को अपने वश में कर लेता है और जो विपत्ति में मोह का प्राप्त नहीं होता, वह हे राजन्! ऐश्वर्य को प्राप्त होता है।

बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे।
यत् तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते॥ ३४॥
अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः॥ ३५॥
यत् त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम्।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम्॥ ३६॥
येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत।
यद् बलानां बलं श्रेष्ठं तत् प्रज्ञाबलमुच्यते॥ ३७॥

आप मुझसे सुनिये, मनुष्य के पास सदा पाँच प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। उनमें जो वाहुबल है, वह सबसे निम्नकोटि की शक्ति है। आपका कल्याण हो, सलाह देनेवाले मन्त्रियों का बल दूसरी कोटि की शक्ति है। विद्वानों ने धन की शक्ति को तीसरे दर्जे का बल बताया है। हे राजन्! बाप दादों से प्राप्त जो स्वाभाविक परिवार का बल है, उसे अभिजात शक्ति कहते हैं। वह चतुर्थ कोटि का बल है। हे भारत! जिसमें इन सारी शक्तियों का समावेश हो जाता है, वह सारी शक्तियों से श्रेष्ठ पाँचवी बुद्धि की शक्ति कहलाती है।

महते योऽपकारय नरस्य प्रभवेन्नरः।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्॥ ३८॥
सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारतः।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः॥ ३९॥

जो मनुष्य महान अपकार कर सकता है, उसके साथ बैर बाँधकर, यह सोचकर निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिये कि मैं उससे बहुत दूर हूँ। हे भारत! साँप, अग्नि, सिंह और परिवार के व्यक्ति की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ये सारे बड़े तेजस्वी होते हैं।

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु।
न चोपयुङ्क्ते तद् दारु यावन्नोद्दीप्यते परैः॥ ४०॥
स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते।
तद् दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा॥ ४१॥
एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते॥ ४२॥

संसार में अग्नि बहुत तेजस्वी है। वह लकड़ी में छिपी हुई रहती है। वह उसे तब तक नहीं जलाती, जब तक लोग उसे प्रदीप्त नहीं करें। पर उसी अग्नि को जब लकड़ियों को मथकर प्रदीप्त कर दिया जाता है, तो वह अपने तेज से उस लकड़ी को, वन को और दूसरे पदार्थों को भी जल्दी ही जला देती है। इसी प्रकार अपने कुल में उत्पन्न, अग्नि के समान तेजवाले पाण्डव, क्षमा से युक्त हो निर्विकार भाव से काठ में छिपी अग्नि के समान सोये हुए हैं।

सत्रहवाँ अध्याय : विदुर जी का नीति उपदेश।

विदुर उवाच **पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय**
आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां
ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः॥ १॥
यस्योदकं मधुपर्कं च गां च
न मन्त्रवित् प्रतिगृह्णाति गेहे।
लोभाद् भयादथ कार्पण्यतो वा
तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः॥ २॥

अपने घर आये हुए साधु पुरुषों को पहले धैर्यवान् पुरुष आसन दे, फिर जल लाकर उसके पैर धोये, फिर उसकी कुशलता के विषय में पूछकर उसे अपनी स्थिति के विषय में बताये, फिर आवश्यक समझकर उसे भोजन कराये। जिसके घर दिये हुए जल, मधुपर्क और गाय को वेदवेत्ता ब्राह्मण लोभ, भय, या कंजूसी के कारण स्वीकार नहीं करता, श्रेष्ठ व्यक्तियों ने उसके जीवन को व्यर्थ बताया है।

अरोषणो यः समलोष्टाश्मकाञ्चनः
प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः।
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये
त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः॥ ३॥
नीवारमूलेङ्गुदशाक- वृत्तिः
सुसंयतात्माग्निकार्येषु चोद्यः।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो
धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः॥ ४॥

जो क्रोध नहीं करता, मिट्टी के ढेले, पत्थर और सोने को एक जैसा समझता है, जो शोक से रहित है, संधि और विग्रह से भी रहित है, निन्दा और प्रशंसा से शून्य है, जिसने प्रिय और अप्रिय का त्याग कर दिया है और जो उदासीन है, वही भिक्षुक अर्थात् सन्यासी है। जो नीवार, कन्दमूल, इंगुदीफल और साग खाकर, निर्वाह करता है, जिसने अपनी आत्मा को अच्छी तरह से वश में कर लिया है, जो अग्निहोत्र करता है और वन में रहकर भी अतिथिसेवा में सावधान रहता है, वह पुण्यात्मा ही श्रेष्ठ तपस्वी है।

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतोबाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः॥ ५॥
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति॥ ६॥
अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत्॥ ७॥
पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः॥ ८॥

बुद्धिमान् मनुष्य का अपकार करके मैं उससे बहुत दूर हूँ, यह सोचकर निश्चिन्त नहीं रहना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्ति के हाथ लम्बे होते हैं, जिनके द्वारा वह सताया जाने पर बदला ले लेता है। जो विश्वास करने योग्य नहीं है, उस पर विश्वास नहीं करना चाहिये। जो विश्वास करने योग्य है उस पर भी अधिक विश्वास नहीं करना चाहिये। विश्वास करने से जो भय उत्पन्न होता है, वह जड़ भी उखाड़ देता है। मनुष्य को ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये, सम्पत्ति का बँटवारा कर देना चाहिये, प्रिय बोलना चाहिये। ईमानदार होना चाहिये, स्त्रियों से मधुर वाणी में बात करनी चाहिये पर उनके वश में नहीं होना चाहिये। स्त्रियाँ महासौभाग्यशाली होती हैं, वे पवित्र, घर की शोभा, तथा आदर के योगय हैं। उन्हें घर की लक्ष्मी कहा गया है, इसलिये उनकी रक्षा विशेष रूप से करनी चाहिये।

पितुरन्तःपुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम्।
गोषु चात्मसमं दद्यात् स्वयमेव कृषिं व्रजेत्॥ ९॥
भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान्।
नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः॥ १०॥
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते।
यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये॥ ११॥
स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते।
करिष्यन् न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत्॥ १२॥
धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते।

पिता को अन्तःपुर की देखभाल के लिये नियुक्त करे, माता को रसोई की देखभाल सौंप दे, गायों की देखभाल में अपने समान व्यक्ति को नियुक्त करे, स्वयं खेती करे, सेवकों से व्यापार का काम कराये और पुत्रों के द्वारा ब्राह्मणों की सेवा कराये। अच्छे कुल में जन्मे हुए सज्जनलोग, अग्नि के समान तेजस्वी होते हैं, वे क्षमा से युक्त, निराकारभाव से लकड़ी में छिपी हुई अग्नि के समान शान्तभाव से रहते हैं। जिस राजा की मन्त्रणा को उसके बाहरी और अन्तरंग व्यक्ति नहीं जान पाते हैं, सब तरफ दृष्टि रखने वाला वह देर तक ऐश्वर्य का भोग करता है। धर्म, अर्थ और काम के कार्यों को करते हुए उन्हें प्रकट नहीं करना चाहिये, करने पर ही प्रकट करना चाहिये इस प्रकार मन्त्रणा प्रकट नहीं होती है।

गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः॥ १३॥
अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रोऽभिधीयते।
नासुहृत् परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम्॥ १४॥
अपण्डितो वापि सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान्।
नापरीक्ष्य महीपालः कुर्यात् सचिवमात्मनः॥ १५॥
अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च।
कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदुः॥ १६॥
धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः।
गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम्॥ १७॥

पर्वत की चोटी पर जाकर, या महल की छत पर चढ़कर, एकान्त में, या घास फूस से रहित वन में जाकर मन्त्रणा करनी चाहिये। हे भारत! जो मित्र न हो, मित्र हो पर विद्वान् न हो, विद्वान् होने पर

भी जिसका मन वश में न हो, उसे मन्त्रणा जानने का अधिकार नहीं है। राजा को चाहिये कि बिना परीक्षा किये किसी को अपना मन्त्री न बनाये क्योंकि मन्त्री पर ही अर्थ की तथा मन्त्रणा की रक्षा का भार रहता है। जिसके धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी सारे कार्यों को उसके सभासद कार्य के पूरा होने पर ही जान पाते हैं, वह राजा श्रेष्ठ राजा है। मन्त्रणा के गुप्त रहने पर राजा को सफलता बिना सन्देह के प्राप्त होती है।

अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति।
स तेषां विपरिभ्रंशाद् भ्रंश्यते जीवितादपि॥ १८॥
कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम्।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम्॥ १९॥
स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप॥ २०॥
अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्यान्ववेक्षिणः।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा॥ २१॥

जो मोह के कारण निन्दित कार्यों को करता है, वह उसके विपरीत परिणाम के होने से जीवन से भी हाथ धो बैठता है। प्रशंसनीय कार्यों का करना ही सुख को देने वाला होता है। उनका अनुष्ठान न करने से पीछे पश्चात्ताप होता है। हे राजन्! जो छः गुणों तथा स्थिति, वृद्धि और क्षय को जानता है, जिसके स्वभाव की सब लोग प्रशंसा करते हैं, उस राजा के आधीन यह भूमि रहती है। जिसका क्रोध और हर्ष व्यर्थ नहीं होते, जो अपने कार्यों की स्वयं जाँच करता है, जो अपने खजाने की भी स्वयं जाँच करता है, उसे भूमि धन ही प्रदान करती है।

नाममात्रेण तुष्येत छत्रेण च महीपतिः।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान् नैकः सर्वहरो भवेत्॥ २२॥
ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं तथा।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च॥ २३॥
न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः।
न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद् बले सति॥ २४॥
अहताद्धि भयं तस्माज्जायते नचिरादिव।
दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च॥ २५॥
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च।

राजा को केवल राजा नाम और राजच्छत्र से ही सन्तुष्ट रहना चाहिये। अपना धन अपने सेवकों को देते रहना चाहिये। अकेले ही सारा हड़प नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण को ब्राह्मण जानते हैं। पति पत्नी को समझता है, राजा मन्त्री को समझता है और राजा को भी राजा ही जानता है। वश में आये हुए शत्रु को छोड़ना नहीं चाहिये, वह वध होने योग्य है। शक्ति कम हो तो विनम्र होकर सेवा करनी चाहिये और बल प्राप्त होने पर मार देना चाहिये। शत्रु को न मारने से जल्दी ही उससे भय की प्राप्ति हो जाती है। विद्वानों, राजा, ब्राह्मण, वृद्ध, बालक और बीमार इनके प्रति क्रोध को प्रयत्नपूर्वक अपने वश में रखना चाहिये।

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम्॥ २६॥
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते।
न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये॥ २७॥
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः।
विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारतः॥ २८॥
धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते।
अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ॥ २९॥
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा।

बुद्धिमान् व्यक्ति को उन व्यर्थ के कलहों को त्याग देना चाहिये, जिन्हें मूर्ख लोग किया करते हैं, इससे वह संसार में कीर्ति को प्राप्त करता है और अनर्थ से बच जाता है। यह निश्चित नहीं है कि बुद्धि से धन की प्राप्ति हो ही जाये और मूर्खता से निर्धनता आ ही जाये। संसार चक्र के इस रहस्य को समझदार ही जानते हैं, दूसरे नहीं। हे भारत! मूर्ख व्यक्ति विद्या, शील, आयु, बुद्धि, धन और कुल में बड़े व्यक्तियों का सदा अनादर किया करता है। बुरे चरित्र वाले, मूर्ख, ईर्ष्यालु, अधार्मिक, कड़वी बात कहने वाले, और क्रोधी व्यक्ति के पास विपत्तियाँ जल्दी ही आ जाती हैं।

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः॥ ३०॥
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक्प्रणिहिता च वाक्।
अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः॥ ३१॥
अपि संक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम्।
धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुराः॥ ३२॥
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः।
असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः॥ ३३॥
तादृङ्नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप।

धोखा न देना, दान, प्रतिज्ञा को न तोड़ना, वाणी का ठीक तरह से प्रयोग करना, ये गुण सारे प्राणियों को अपना बना देते हैं। धोखा न देने वाला, चतुर, कृतज्ञ, मतिमान् और कोमल स्वभाव का राजा खजाने के नष्ट हो जाने पर भी सहायकों की प्राप्ति कर लेता है। धैर्य, क्षमा, दम, शौच, करुणा, कोमलवाणी, मित्रों से द्रोह न करना, ये सात गुण वृद्धि करने वाले हैं। जो धन का बँटवारा न करने वाला, दुष्ट, कृतघ्न, और निर्लज्ज है, हे राजन्! ऐसे राजा को इस संसार में त्याग देना चाहिये।

न च रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि॥ ३४॥
यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यन्तरं जनम्।
येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च॥ ३५॥
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः।
यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता॥ ३६॥
मज्जन्ति तेऽवशा राजन् नद्यामश्मप्लवा इव।
प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत॥ ३७॥
तानहं पण्डितान् मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गिनः।
यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणः।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः॥ ३८॥

जो स्वयं दोष वाला होकर भी, घर में रहने वाले निर्दोष आत्मीय व्यक्ति को कुपित करता है, वह साँप वाले घर में रहने वाले व्यक्ति के समान रात में सुख से नहीं सो सकता। जो धन स्त्रियों, प्रमादी, पतित और दुष्ट लोगों को सौंप दिया जाता है वह सारा संशय में पड़ जाता है। जहाँ स्त्री, जुआरी और बच्चे शासन करते हैं, हे राजन्! वहाँ के लोग पत्थर की नाव में बैठने वालों के समान विवश होकर विपत्तिसागर में डूब जाते हैं। जो केवल मतलब का कार्य ही करते हैं और अधिक कार्यों में हाथ नहीं डालते, उन्हें मैं पण्डित मानता हूँ क्योंकि फालतू कामों में पड़ना झगड़े की जड़ है। जुआरी जिसकी प्रशंसा करते हैं, भाट लोग जिसकी प्रशंसा करते हैं, वेश्याएँ जिसकी प्रशंसा करती हैं, वह मनुष्य जीवित होने पर भी मुर्दे के समान है।

अठारहवाँ अध्याय : विदुर जी का नीति उपदेश।

विदुर उवाच

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत॥ १॥
द्वेष्यो न साधुर्भवति मेधावी न पण्डितः।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह॥ २॥
न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत्।
क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत्॥ ३॥
न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत्।
क्षयः सत्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत्॥ ४॥

विदुर जी ने कहा हे भारत! उचित समय पर ही बोलना चाहिये। यदि बिना समय के बृहस्पति भी बोले, तो उनका भी अपमान होगा और उनकी बुद्धि की अवज्ञा होगी। जिससे द्वेष होता है, वह न तो साधु होता है, न मेधावी और न पण्डित। प्रिय लगने वाले व्यक्ति के सारे कार्य अच्छे प्रतीत होते हैं और शत्रु के सारे कार्य पापमय लगते हैं। जिस वृद्धि के कारण भविष्य में विनाश हो, वह वृद्धि ठीक नहीं है, जिस विनाश के कारण भविष्य में वृद्धि हो, वह विनाश अच्छा है। हे महाराज! उसे नाश नहीं समझना चाहिये जिसके कारण भविष्य में वृद्धि हो। विनाश उस वृद्धि को समझना चाहिये, जिसे प्राप्त करके भविष्य में बहुत सा विनाश हो।

समृद्धा गुणतः केचिद् भवन्ति धनतोऽपरे।
धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय॥ ५॥

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम्।
न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः॥ ६॥

कुछ लोग गुणों से समृद्ध होते हैं तो कुछ धन से समृद्ध होते हैं। हे धृतराष्ट्र! जो केवल धन में अधिक हो, पर गुणों में हीन हो, उसे छोड़ दो। धृतराष्ट्र ने कहा कि हे विदुर! तुम जो कुछ भी कहते हो, वह सब परिणाम में हितकर और बुद्धिमानों द्वारा अनुमोदित है और यह भी ठीक है कि जिस तरफ धर्म होता है उस तरफ ही विजय होती है, पर फिर भी मैं अपने पुत्र का त्याग नहीं कर सकता।

विदुर उवाच

अतीवगुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते॥ ७॥
परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः॥ ८॥
सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद् भयम्।
अर्थादाने महान् दोषः प्रदाने च महद् भयम्॥ ९॥
ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः॥ १०॥

तब विदुर ने कहा जो गुणों से अधिक सम्पन्न है और विनय से युक्त है, वह प्राणियों के थोड़े से भी संहार को देखकर उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। जो दूसरों की निन्दा में लगे रहते हैं, जो दूसरों को दुःख देने तथा उनमें परस्पर फूट डालने में सदा उत्साह के साथ यत्न करते रहते हैं, उनका दर्शन दोषयुक्त है और उनके साथ रहना भी महान् भयकारी है। उनसे धन लेने में महान् दोष है तथा देने में महान् भय होता है। जिसका स्वभाव दूसरों में फूट डालने का है, जो कामी, निर्लज्ज और दुष्ट है, जो प्रसिद्ध पापी है, उनके साथ रहनी निन्दनीय है।

युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत्।
निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति॥ ११॥
या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत् सुखम्।
यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये॥ १२॥
अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमधिगच्छति।
तादृशैः संगतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः॥ १३॥
निशम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान् दूराद् विवर्जयेत्।

जो मनुष्य उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त और भी महान् दोषों से युक्त हों, उन्हें भी मनुष्य को छोड़ देना चाहिये। जब उनके साथ मित्रता समाप्त हो जाती है, तो उनके हृदय में प्रेम भी नष्ट हो जाता है। तब मित्रता के समय उनसे जो लाभ और जो सुख मिला था, वह सब नष्ट हो जाता है। फिर वह नीच मनुष्य निन्दा करने के लिये यत्न करता है तथा थोड़ा सा भी अपकार हो जाने पर मोहवश विनाश के लिये प्रयत्न आरम्भ कर देता है, उसे शान्ति नहीं मिलती है। इस प्रकार के नीच, निर्दय, अजितेन्द्रिय व्यक्ति की संगति पर बुद्धि द्वारा गहराई से विचार कर विद्वान् पुरुष को उसे दूर से ही त्याग देना चाहिये।

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम्॥ १४॥
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते।
ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम्॥ १५॥
कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात् साधु समाचर।
श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कु र्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम्॥ १६॥
विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ।
किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणः॥ १७॥

जो व्यक्ति अपने परिवार वालों पर अनुग्रह करता है, चाहे वे दरिद्र, दीन और बीमार हों, वह पुत्र और पशुओं की वृद्धि और सीमा रहित कल्याण को प्राप्त करता है। हे राजेन्द्र! अपने कल्याण की इच्छावाले को परिवार वालों की उन्नति करनी चाहिये। हे राजेन्द्र! इसलिये आप अपने परिवार वालों की उन्नति कर अपने कुल की वृद्धि कीजिये। हे राजन्! अपने परिवारवालों का सत्कार करने वाला कल्याण का भागी होता है। हे भरतश्रेष्ठ! अपने परिवार वाले गुणहीन हों तो भी उनकी रक्षा करनी चाहिये। फिर जो गुणवान् हैं और आपकी कृपा के इच्छुक हैं, उनकी तो बात ही क्या है।

प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशाम्पते।
एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप॥ १८॥
वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम्।
मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्धितैषिणम्॥ १९॥
ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभार्थिना।
सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ॥ २०॥
सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन॥ २१॥

हे प्रजापालक! आप वीर पाण्डवों पर कृपा कीजिये। हे नराधिप! इससे आपको संसार में यश प्राप्त होगा। आप वृद्ध हैं, आपको अपने पुत्रों पर शासन करना चाहिये। हे तात! कल्याण के इच्छुक व्यक्ति को परिवार वालों के साथ झगड़ा नहीं करना चाहिये। आप मुझे भी अपना हितैषी समझिये। मुझे भी आपके हित की ही बातें कहनी चाहिये। हे भरतश्रेष्ठ! सुखों का उपभोग परिवार वालों के साथ मिलकर ही करना चाहिये, परिवार वालों के साथ मिलकर भोजन, वार्तालाप, और परस्पर प्रेम करना

चाहिये। उनके साथ विरोध कभी नहीं करना चाहिये।

ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च॥ २२॥
सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान् प्रति मानद।
अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यसि॥ २३॥
पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति।
तान् वा हतान् सुतान् वापि श्रुत्वा तदनुचिन्तय॥ २४॥

परिवार वाले ही मनुष्य को विपत्ति से छुड़ाते हैं और परिवार वाले ही विपत्ति में डुबा देते हैं। सदाचारी उद्धार करते हैं और दुराचारी डुबाते हैं। इसलिये हे सम्मान के योग्य राजन्! आप पाण्डवों के प्रति अच्छा आचरण कीजिये। उनसे घिरे हुए आप शत्रुओं के लिये दुर्धर्ष हो जायेंगे। युद्ध में चाहे वे मारे गये, या आपके पुत्र मारे गये, दोनों अवस्थाओं में आपको सुनकर पीछे सन्ताप होगा, इस बात पर विचार कर लीजिये।

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा।
आदावेव न तत् कुर्यादध्रुवे जीविते सति॥ २५॥
दुर्योधनेन यद्येतत् पापं तेषु पुराकृतम्।
त्वया तत् कुलवृद्धेन प्रत्यानेयं नरेश्वर॥ २६॥
तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः।
भविष्यसि नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम्॥ २७॥
सुव्याहृतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः।
अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति॥ २८॥

जिस कार्य को करके बाद में खाट पर बैठकर सन्तप्त होना पड़े, उसे पहले ही नहीं करना चाहियें क्योंकि जीवन का निश्चय नहीं है। हे नरेश्वर! दुर्योधन ने पाण्डवों के प्रति पहले जो पाप किया है, आप कुल में बड़े हैं, आपको उसका परिमार्जन करना चाहिये। आप उन पाण्डवों को राज्यपद पर स्थापित कर दीजिये। उससे हे नरश्रेष्ठ! आप संसार में पाप से रहित हो जायेंगे और विद्वानों में पूजनीय बन जायेंगे। जो व्यक्ति धीर पुरुषों के द्वारा अच्छी तरह से कही हुई बातों के फल पर विचार कर उन्हें अपने कार्यों में उतारता है, वह लम्बे समय तक यश का भागी बना रहता है।

असम्यगुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि।
उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम्॥ २९॥
मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत्।
अर्थसंततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः॥ ३०॥
मदं स्वप्नमाविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम्।
दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि॥ ३१॥
द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप।
त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति॥ ३२॥

अत्यन्त कुशल व्यक्तियों के द्वारा दिया हुआ उपयुक्त ज्ञान भी व्यर्थ ही है, यदि उससे कर्त्तव्य का ज्ञान न हो और यदि कर्त्तव्य का ज्ञान हो तो उसका पालन न किया जाये। मन्त्रणा को प्रकट करने वाले छः द्वार होते है। धन की वृद्धि चाहने वालों को इन्हें सदा बन्द करके रखना चाहिये। ये है अभिमान, निद्रा, अज्ञानता, अपने मुखादि की आकृति, दुष्ट सलाहकार, और अकुशल दूत। हे राजन्! जो इन द्वारों की जानकारी कर इन्हें बन्द रखता है, वह धर्म, अर्थ और काम के सेवन में लगा हुआ अपने शत्रुओं को वश में कर लेता है।

न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा।
धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि॥ ३३॥
नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति।
अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम्॥ ३४॥
मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या सम्पाद्य चासकृत्।
श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत्॥ ३५॥
अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥ ३६॥

पढ़ी हुई विद्या को न समझ कर और वृद्धों की सेवा को न करके बृहस्पति के समान चतुर व्यक्ति भी धर्म और अर्थ के रहस्य को नहीं जान सकता। जैसे समुद्र में गिरी वस्तु नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार न सुने जाने पर कही हुई बात भी नष्ट हो जाती है। अजितेन्द्रिय पुरुष की विद्या नष्ट हो जाती है और राख में किया हुआ हवन भी नष्ट हो जाता है। बुद्धिमान् व्यक्ति को पहले बुद्धि से जाँचना चाहिये, फिर अपने अनुभव से उसकी योग्यता का निश्चय करना चाहिये, फिर दूसरों से सुनकर, देखकर और जानकर विद्वानों से मित्रता को करना चाहिये। विनय अपयश को नष्ट कर देता है। पराक्रम अनर्थ का नाश करता है, क्षमा क्रोध का नाश करती है और सदाचार कुलक्षणता को नष्ट करता है।

प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम्।
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत्॥ ३७॥
दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां योन लङ्घयेत्।
धर्मापेक्षी मृदुर्ह्रीमान् स कुलीनशताद् वरः॥ ३८॥
ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा।
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति॥ ३९॥
दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव।
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन् मैत्री प्रणश्यति॥ ४०॥

विद्वानों की सेवा करने वाले, वैद्य, धार्मिक, देखने में सुन्दर, मित्रों से युक्त, मधुरभाषी, इस प्रकार के मित्र का सदा पालन करना चाहिये। चाहे उत्तम कुल में जन्म हो या अधम कुलमें, मनुष्य को मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिये। जो धर्म का पालन करता है और लज्जावान् है, वह सैकड़ों कुलीनों से बढ़कर है। जिन दो व्यक्तियों का हृदय, गुप्त रहस्य, तथा बुद्धि परस्पर एक दूसरे से मिली होती है, उनकी मित्रता नष्ट नहीं होती। मेधावी व्यक्ति को दुर्बुद्धि और मूर्ख व्यक्ति का तिनकों से ढके हुए कूएँ की तरह त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि उसकी मित्रता नष्ट हो जाती है।

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च।
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद् बुधः॥ ४१॥
कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते॥ ४२॥
मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना॥ ४३॥
अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते।
मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम्॥ ४४॥

बुद्धिमान् व्यक्ति को अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, साहसिक और धर्महीन व्यक्ति के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये। मित्र को कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, विशालहृदय, दृढ़ अनुरागवाला, जितेन्द्रिय, मर्यादा के अन्दर रहने वाला, और मैत्री का त्याग न करने वाला होना चाहिये। सब प्राणियों के प्रति मृदुता का व्यवहार, ईर्ष्या न करना, क्षमा, धैर्य, और मित्रों का अपमान न करना, इन गुणों को विद्वान् लोग आयु को बढ़ाने वाला कहते हैं। जो अपने नष्ट हुए धन को अच्छी नीति से, दृढ़ निश्चय करके पुनः प्राप्त करने की इच्छा करता है, वह वीर पुरुष है।

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते॥ ४५॥
कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते।
तदेवापहरत्येनं तस्मात् कल्याणमाचरेत्॥ ४६॥
अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्त्यमश्नुते॥ ४७॥
नातः श्रीमत्तरं किंचिदन्यत् पथ्यतमं मतम्।
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा॥ ४८॥

आगामी दुःख के प्रतिकार को जानने वाला, वर्तमान कर्त्तव्य के पालन में दृढ़ निश्चय वाला और भूतकाल के शेष कार्य को याद रखने वाला कभी धन से हीन नहीं होता। मनुष्य जिस कार्य को अपने मन, वाणी और कर्म से लगातार सेवन करता है, वह कार्य उसे अपनी तरफ खींच लेता है, इसलिये कल्याणकारी कार्यों को ही करना चाहिये। उद्योग में लगे रहना ही धन, लाभ और कल्याण का मूल है। उद्योग को न छोड़ने वाला ही महान् होता है और अनन्त सुखों को प्राप्त करता है। हे तात! शक्तिशाली मनुष्य के लिये सदा और सब जगह क्षमा से बढ़कर कोई दूसरा उपाय हितकारी और श्रीसम्पन्न बनाने वाला नहीं कहा गया है।

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात्।
अर्थानर्थौ समौ यस्य नित्यं नित्यं क्षमा हिता॥ ४९॥
यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत्॥ ५०॥
दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः॥ ५१॥
आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात् सव्यपत्रपम्।
अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः॥ ५२॥

निर्बल व्यक्ति को तो सदा क्षमा ही करना चाहिये। शक्तिशाली को भी धर्म का पालन करने के लिये क्षमा करना चाहिये। जिस व्यक्ति की दृष्टि में अर्थ और अनर्थ सदा समान हैं, उसके लिये भी क्षमा सदा कल्याणकारी है। जिस सुख का सेवन करता हुआ भी मनुष्य धर्म और अर्थ से वंचित नहीं होता, उसका खूब सेवन करना चाहिये। किन्तु मूढ़ता वाले व्रतों निद्रा प्रमादादि का सेवन नहीं करना चाहिये। दुःख से पीड़ित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साह रहित लोगों के यहाँ लक्ष्मी

का वास नहीं होता। जो व्यक्ति सरलता से युक्त होते हैं और सरलता के ही कारण लज्जाशील होते हैं, उन्हें दुष्ट लोग कमजोर समझते हुए उनका अपमान कर देते हैं।

अत्यार्यमतिदातारमति- शूरमतिव्रतम्।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति॥ ५३॥
न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च।
नैषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते॥ ५४॥
उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते।
अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम्॥ ५५॥
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम्।
कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे॥ ५६॥
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम्।

अत्यन्त श्रेष्ठ, अत्यन्त दानी, अत्यन्त शूर और अत्यन्त व्रतों का पालन करने वाले तथा अपनी बुद्धि के अभिमानी व्यक्ति के पास लक्ष्मी भय के कारण नहीं जाती। लक्ष्मी न तो अत्यन्त गुणवानों के, और न अत्यन्त निर्गुणों के पास रहती है, क्योंकि न तो अत्यन्त गुणों को चाहती है और न गुणहीनता को पसन्द करती है। यह पागल गाय की तरह कहीं कहीं ही टिकती है। वेदाध्ययन का फल है अग्निहोत्र, विद्वत्ता का फल है शील और सदाचार, स्त्री का फल है रति सुख और पुत्र की प्राप्ति तथा धन का फल है दान और भोग। भयानक जंगली मार्गों में, कठिन विपत्ति में, घबराहट में, शस्त्र के प्रहार करने के लिये उठे हुए होने पर भी जो आत्मबल से युक्त होते हैं, उन्हें भय नहीं होता।

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः॥ ५७॥
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु।
तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्॥ ५८॥
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम्।
अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः॥ ५९॥
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्।
न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः॥ ६०॥
संग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते।

उद्योग करना, संयम रखना, कुशलता, सावधानी का प्रयोग, धैर्य और स्मृति, तथा सोचविचार कर कार्य को आरम्भ करना इन गुणों को उन्नति का मूल समझो। तपस्या तपस्वियों की शक्ति है, वेद वेद के विद्वानों की शक्ति है, दुष्ट लोगों की शक्ति हिंसा है और गुणवानों की शक्ति क्षमा है। ये आठ व्रत के नाशक नहीं माने जाते। जल, जड़, फल, दूध, यज्ञाहुति के पदार्थ, ब्राह्मण की इच्छा, गुरु का वचन और औषधि। जो अपनी आत्मा के प्रतिकूल हो, उस कार्य को दूसरों के लिये भी नहीं करना चाहिये यह संक्षेप में धर्म का लक्षण है। इसके अतिरिक्त और दूसरे जो कार्य हैं, उनमें तो कामना से ही प्रवृत्ति होती है और वे अधर्म हैं।

अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्॥ ६१॥
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम्।
स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि॥ ६२॥
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके।
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः॥ ६३॥
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम्।
अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा॥ ६४॥
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः।

क्रोध को क्रोध न करने से जीतना चाहिये। असाधु मनुष्य को साधु व्यवहार से जीतना चाहिये, कन्जूस को दान से जीतना चाहिये और असत्य को सत्य से जीतना चाहिये। स्त्रियों के प्रति लम्पट, आलसी, कायर, क्रोधी, पौरुष के अभिमानी, चोर, कृतघ्न, और नास्तिक व्यक्ति पर विश्वास नहीं करना चाहिये। जो व्यक्ति स्वभाव से ही बड़ों का सम्मान करता है और उनकी सेवा करता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और शक्ति ये चार चीजें बढ़ती हैं। जो सम्पत्ति अत्यन्त क्लेश से, धर्म का उल्लंघन करने से, या शत्रु के सम्मुख झुकने से प्राप्त होती है, उसके लिये अपने मन को मत ललचाओ।

राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर।
समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा॥ ६५॥

हे राजन्! मैं फिर कहता हूँ कि यदि आपमें समान भाव है तो पाण्डु के पुत्रों में और अपने पुत्रों में सबमें एक जैसा बर्ताव कीजिये।

उन्नीसवाँ अध्याय :विदुर द्वारा धर्म की महत्ता का प्रतिपादन।

विदुर उवाच **सोऽभ्यर्चितः सद्भिरसज्जमानः**
करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा।
क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्त-
मलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः॥ १॥
महान्तमप्यर्थम- धर्मयुक्तं
यः संत्यजत्यनपाकृष्ट एव।
सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते
जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य॥ २॥

जो व्यक्ति सज्जनों से सत्कार प्राप्त करता हुआ, अनासक्ति भाव से, अपनी शक्ति के अनुसार ही अर्थोपार्जन करता रहता है, उस सज्जन पुरुष को यश की प्राप्ति जल्दी ही होती है क्योंकि सन्तों की प्रसन्नता सुख देने वाली ही होती है। अधर्म से प्राप्त हुए महान् धन का भी जो त्याग कर देता है, उसकी तरफ आकृष्ट नहीं होता, वह दुःखों का त्याग कर इस प्रकार सुख से रहता है जैसे पुरानी कैंचुली को उतारकर सर्प।

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया॥ ३॥
असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः॥ ४॥
आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः॥ ५॥
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्। ६।
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना॥ ७॥

असत्य के द्वारा उन्नति, राजा के समीप चुगली, गुरु पर भी झूठा दोषारोपण, ये कार्य ब्रह्महत्या के समान हैं। ईर्ष्या मृत्यु के समान है, निन्दा करना ऐश्वर्य के वध के समान है तथा सेवा न करना, शीघ्रता, और आत्मप्रशंसा ये विद्या के शत्रु हैं। आलस्य, मद, मोह, चपलता, जनसमुदाय में रहना, जड़ता, अभिमान, और त्याग न करना, ये सात विद्यार्थियों के दोष हैं। सुख के इच्छुक को विद्या कैसे प्राप्त हो सकती है और विद्या के इच्छुक को सुख कैसे मिल सकता है। यदि सुख से रहना हो तो विद्या का त्याग कर देना चाहिये और यदि विद्या प्राप्त करनी हो तो सुख को छोड़ देना चाहिये। अग्नि की ईंधन से, सागर की नदियों से, मृत्यु की सारे प्राणियों से, और कुलटा स्त्रियों की सारे पुरुषों से भी तृप्ति नहीं हो सकती।

नोट- यहाँ पुरुषों के बारे में स्त्रियों से यह अर्थ समझना चाहिये। अर्थात् दुश्चरित्र पुरुषों की सारी स्त्रियों से भी तृप्ति नहीं होती।

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि
पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः॥ ८॥
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।
त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये
संतुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः॥ ९॥

हे तात! मैं यह तुमसे सबसे अच्छी, पुण्य से युक्त और महाविशिष्ट बात कह रहा हूँ कि कभी भी काम, भय, लोभ और प्राणों की सुरक्षा के कारण से भी धर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। धर्म ही सदा रहने वाला है, सांसारिक सुख और दुःख तो आते जाते रहते हैं। जीवात्मा नित्य है, पर इसके सांसारिक सुख दुःखों के कारण अनित्य हैं। आप अनित्य को छोड़कर नित्य में अपने आपको स्थित करो तथा सन्तोष को धारण करो। सन्तोष सबसे बढ़कर लाभ है।

महाबलान् पश्य महानुभावान्
प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम्।
राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान्
गतान् नरेन्द्रान् वशमन्तकस्य॥ १०॥
मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या
उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति।
तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति
चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति॥ ११॥
अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते
वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्।

द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र
पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः॥ १२॥

उन महाबली महानुभावों की तरफ देखिये, जिन्होंने धनधान्य से पूर्ण भूमि का शासन किया। फिर अपने राज्यों को तथा विपुल भागों को छोड़कर मृत्यु के वश में हो गये। हे राजन्! पुत्र को बड़े दुःख से पाला जाता है, पर उसके मृत हो जाने पर उसे भी लोग उठाकर घर से बाहर कर देते हैं। पहले उसके लिये बालों को बिखेर कर विलाप करते हैं फिर उसे चिता में लकड़ी की तरह से डाल देते हैं। जब व्यक्ति मर जाता है, तब उसके एकत्र किये हुए धन को दूसरे लोग भोगते हैं। उसके शरीर को या तो पक्षी नोचकर खाते हैं या अग्नि जलाती है। वह पुण्य या पाप कर्मों से लिपटा हुआ ही परलोक में जाता है।

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः।
अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः॥ १३॥
अग्नौ प्राप्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयंकृतम्।
तस्मात् तु पुरुषो यत्नाद् धर्मं संचिनुयाच्छनैः॥ १४॥

जैसे बिना फल और फूल वाले वृक्ष को पक्षी त्याग देते हैं, वैसे ही परिवार के लोग, मित्र और पुत्र उस मृत व्यक्ति को चिता में छोड़कर लौट आते हैं। अग्नि में डाले हुए व्यक्ति के साथ तो केवल उसके किये हुए कार्य ही जाते हैं। इसलिये व्यक्ति को यत्नपूर्वक धीरे धीरे धर्म का संचय करना चाहिये।

इदं वचः शक्ष्यसि चेद् यथाव-
न्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव।
यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके
भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति॥ १५॥
आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था
सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा
पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव॥ १६॥

यदि आप मेरी इस बात को सुनकर उसे ठीक ठीक तरह से समझ सकेंगे तो आप इस संसार में अत्यन्त यश को प्राप्त करेंगे तथा आपको यहाँ और परलोक में भी कोई भय नहीं रहेगा। हे भारत! आत्मा एक नदी है, जिसके शुभ कर्म ही घाट हैं, इसमें सत्यरूपी जल विद्यमान है, धैर्य इसके किनारे हैं और दया इसकी लहरें। पुण्यकर्मा मनुष्य इसमें स्नान करके पवित्र ही रहता है।

कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि संतर॥ १७॥

इस संसार रूपी नदी में काम और क्रोध ही मानो मगरमच्छ हैं, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय इसमें जल है, जन्म मरण इसके दुर्गम प्रवाह हैं। इस नदी को आप धैर्य रूपी नाव के द्वारा पार कीजिये।

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं
विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम्।
कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य
यः सम्पृच्छेन्न स मुह्येत् कदाचित्॥ १८॥

जो व्यक्ति अपने से अधिक प्रज्ञावृद्धों, धर्मवृद्धों, आयु से वृद्ध अपने बन्धुओं, और विद्या में वृद्धों का सम्मान कर, उन्हें प्रसन्न कर उनसे अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के विषय में परामर्श लेता रहता है, वह कभी मोहित नहीं होता।

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा॥ १९॥

धृतराष्ट्र उवाच

एवमेतद् यथा त्वं मामनुशाससि नित्यदा।
ममापि च मतिः सौम्य भवत्येवं यथाऽऽत्थ माम्॥ २०॥
सा तु बुद्धिः कृताप्येवं पाण्डवान् प्रति मे सदा।
दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते॥ २१॥

शिश्न और पेट की धैर्य से रक्षा करनी चाहिये अर्थात् काम के वेग और भूख को धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिये। हाथ और पैरों की आँखों से रक्षा करनी चाहिये। आँख और कानों की मन से रक्षा करनी चाहिये और मन तथा वाणी की अच्छे कार्यों से रक्षा करनी चाहिये। तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे विदुर! तुम जैसे मुझे नित्य उपदेश किया करते हो, वह सब ठीक है। मेरी बुद्धि भी जैसा तुम कहते हो वैसा ही करने की होती है। पाण्डवों के प्रति न्याययुक्त कार्य का निश्चय करने पर भी, दुर्योधन के मिलने पर मेरी बुद्धि पलट जाती है।

बीसवाँ अध्याय : संजय का कौरव सभा में अर्जुन का सन्देश सुनाना।

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां राजानः सर्वं एव ते।
सभामाविविशुर्हृष्टाः सूतस्योपदिदृक्षया॥ १॥

वह रात बीत जाने पर सारे राजा लोग, सूतपुत्र संजय को देखने की इच्छा से प्रसन्नता के साथ सभा में आये।

भीष्मो द्रोणः कृपः शल्यः कृतवर्मा जयद्रथः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च बाह्लिकः॥ २॥
विदुरश्च महाप्राज्ञो युयुत्सुश्च महारथः।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविशुस्तां सभां शुभाम्॥ ३॥
दुःशासनश्चित्रसेनः शकुनिश्चापि सौबलः।
दुर्मुखो दुःसहः कर्ण उलूकोऽथ विविंशतिः॥ ४॥
कुरुराजं पुरस्कृत्य दुर्योधनममर्षणम्।
ते प्रविश्य महेष्वासाः सभां सर्वे महौजसः॥ ५॥
आसनानि विचित्राणि भेजिरे सूर्यवर्चसः।

भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, जयद्रथ, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लीक, महाप्राज्ञ विदुर, महारथी युयुत्सु, ये महाराज धृतराष्ट्र को आगे करके उस सुन्दर सभा में प्रविष्ट हुए। दुश्शासन, चित्रसेन, सुबलपुत्र शकुनि, दुःर्मुख, दुस्सह, कर्ण, उलूक, विविंशति, ये अमर्षशील कुरुराज दुर्योधन को आगे करके प्रविष्ट हुए। उन सारे महा धनुर्धारी, महातेजस्वी, सूर्य के समान कान्तिवाले राजाओं ने वहाँ प्रवेश कर अपने विचित्र विचित्र आसनों को ग्रहण किया।

द्वाःस्थो निवेदयामास सूतपुत्रमुपस्थितम्॥ ६॥
प्रविवेश सभां पूर्णां महीपालैर्महात्मभिः।

तब द्वारपाल ने सूतपुत्र संजय के आने की सूचना दी और तत्पश्चात् मनस्वी राजाओं से भरी उस सभा में उसने प्रवेश किया।

संजय उवाच

प्राप्तोऽस्मि पाण्डवान् गत्वा तं विजानीत कौरवा॥ ७॥
यथावयः कुरून् सर्वान् प्रतिनन्दन्ति पाण्डवाः।
अभिवादयन्ति वृद्धांश्च वयस्यांश्च वयस्यवत्॥ ८॥
यूनश्चाभ्यवदन् पार्थाः प्रतिपूज्य यथावयः।
यथाहं धृतराष्ट्रेण शिष्टः पूर्वमितो गतः॥ ९॥
अब्रुवं पाण्डवान् गत्वा तन्निबोधत पार्थिवाः।
अब्रूतां तत्र धर्मेण वासुदेवधनंजयौ॥ १०॥

संजय ने तब कहा कि सारे कौरव इस बात को जानें कि मैं पाण्डवों के पास जाकर वहाँ से वापिस आ गया हूँ। वे पाण्डव सारे कौरवों का आयु के अनुसार अभिनन्दन करते हैं। वे वृद्धों को प्रणाम करते हैं और मित्रों का मित्रोचित रीति से सत्कार करते हुए युवकों से उनकी अवस्था के अनुसार प्रेमालाप करना चाहते हैं। मुझे जैसे महाराज धृतराष्ट्र ने आदेश दिया था, वैसे ही मैंने यहाँ से जाकर पाण्डवों से कहा। तब श्रीकृष्ण और अर्जुन ने धर्म के अनुसार जो उत्तर दिया है, उसे आप राजा लोग सुनें।

दुर्योधनो वाचमिमां शृणोतु
यदब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानः।
युधिष्ठिरस्यानुमते महात्मा
धनंजयः शृण्वतः केशवस्य॥ ११॥

युद्ध के लिये तैयार अर्जुन ने महात्मा युधिष्ठिर की अनुमति से श्रीकृष्ण जी के सुनते हुए जो कुछ कहा है, दुर्योधन उनके उस सन्देश को सुनें।

अन्वत्रस्तो बाहुवीर्यं विदान
उपह्वरे वासुदेवस्य धीरः।
अवोचन्मां योत्स्यमानः किरीटी
मध्ये ब्रूया धार्तराष्ट्रं कुरूणाम्॥ १२॥
संशृण्वतस्तस्य दुर्भाषिणो वै
दुरात्मनः सूतपुत्रस्य सूत।
यो योद्धुमाशंसति मां सदैव
मन्दप्रज्ञः कालपक्वोऽतिमूढः॥ १३॥
ये वै राजानः पाण्डवायोधनाय
समानीताः शृण्वतां चापि तेषाम्।
यथा समग्रं वचनं मयोक्तं
सहामात्यं श्रावयेथा नृपं तत्॥ १४॥

अपनी भुजाओं के पराक्रम को जानते हुए निडर और धैर्यशाली, एवं युद्ध के लिये तैयार अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी के समीप मुझ से कहा कि हे सूत! तुम दुर्योधन को कौरवों के बीच में, उस दुर्भाषी दुष्ट सारथि के पुत्र कर्ण को जो मुझसे सदा युद्ध करने की इच्छा रखता है, जो मन्दबुद्धि, अत्यन्त मूर्ख और काल के गाल में जाने वाला है सुनाते हुए और जो राजा लोग पाण्डवों से युद्ध करने को बुलाये गये

हैं, उनके भी सुनते हुए, मेरी सारी बातें, जैसी की तैसी सुना देना।

यथा नूनं देवराजस्य देवाः
शुश्रूषन्ते वज्रहस्तस्य सर्वे।
तथाशृण्वन् पाण्डवाः सृंजयाश्च
किरीटिना वाचमुक्तां समर्थाम्॥ १५॥
इत्यब्रवीदर्जुनो योत्स्यमानो
गाण्डीवधन्वा लोहितपद्मनेत्रः।
न चेद् राज्यं मुञ्चति धार्तराष्ट्रो
युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः॥ १६॥
अस्ति नूनं कर्म कृतं पुरस्ता-
दनिर्विष्टं पापकं धार्तराष्ट्रैः।

जैसे वज्रधारण करने वाले देवराज इन्द्र की बातों को सारे देवता लोग सुना करते हैं, उसी प्रकार अर्जुन की कही हुई ओज भरी बातों को उस समय सारे पाण्डव और सृंजयवंशी ध्यान से सुन रहे थे। युद्ध के लिये तैयार, लाल कमल के समान नेत्र वाले, गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन ने यह कहा कि यदि दुर्योधन अजामीढवंशी राजा युधिष्ठिर के राज्य को नहीं छोड़ता है, तो समझना चाहिये कि वास्तव में धृतराष्ट्र के पुत्रों के पहले किये हुए किसी पापकर्म का उदय हो गया है, जिसका फल वे भोगने जा रहे हैं।

यां तां वने दुःखशय्यामवात्सीत्
प्रव्राजितः पाण्डवो धर्मचारी॥ १७॥
आप्नोतु तां दुःखतरामनर्था-
मन्त्यां शय्यां धार्तराष्ट्रः परासुः।
ह्रिया ज्ञानेन तपसा दमेन
शौर्येणाथो धर्मगुप्त्या धनेन॥ १८॥
अन्यायवृत्तिः कुरुपाण्डवेया-
नध्यातिष्ठेद् धार्तराष्ट्रो दुरात्मा।

धर्म का पालन करने वाले पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ने वन में निर्वासित होकर जिस दुःख रूपी शैया पर शयन किया था, अब दुर्योधन अपने प्राणों का त्याग कर उससे भी अधिक दुःखभरी और अनर्थमयी शय्या पर शयन करे। अन्यायपूर्ण बर्ताव करने वाले, धृतराष्ट्रपुत्र, दुष्ट दुर्योधन को चाहिये कि वह पाण्डवों को, ज्ञान, तप, दम, शौर्य, और धर्म से सुरक्षित धन के द्वारा अपने वश में करे।

मायोपधः प्रणिपातार्जवाभ्यां
तपोदमाभ्यां धर्मगुप्त्या बलेन॥ १९॥
सत्यं ब्रुवन् प्रतिपन्नो नृपो न-
स्तितिक्षमाणः क्लिश्यमानोऽतिवेलम्।
यदा ज्येष्ठः पाण्डवः संशितात्मा
क्रोधं यत्तं वर्षपूगान् सुघोरम्॥ २०॥
अवस्रष्टा कुरुषूद्धृत्तचेता-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्।

नम्रता, सरलता, तप, इन्द्रियसंयम, धर्मरक्षा, और बल इन गुणों के युक्त हमारे महाराज युधिष्ठिर, यद्यपि बहुत दिनों से अनेक प्रकार के कष्ट उठा रहे हैं, फिर भी वे सदा सत्य ही बोलते हैं और कौरवों के कपटपूर्ण व्यवहारों और वचनों को सहन कर रहे हैं। पर जब ये ज्येष्ठ पाण्डव, जो सदा अपने आपको संयम में रखते हैं, वर्षों से वश में रखे अपने अत्यन्त भयानक क्रोध को उत्तेजित होकर कौरवों पर छोड़ेंगे, तो भयानक युद्ध होगा और तब दुर्योधन पछतायेगा।

यदा द्रष्टा भीमसेनं रथस्थं
गदाहस्तं क्रोधविषं वमन्तम्॥ २१॥
अमर्षणं पाण्डवं भीमवेगं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्।
सेनाग्रगं दंशितं भीमसेनं
स्वालक्षणं वीरहणं परेषाम्॥ २२॥
घ्नन्तं चमूमन्तकसंनिकाशं
तदा स्मर्ता वचनस्यातिमानी।
यदा द्रष्टा भीमसेनेन नागान्
निपातितान् गिरिकूटप्रकाशान्॥ २३॥
कुम्भैरिवासृग्वमतो भिन्नकुम्भा-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्।

जब दुर्योधन यह देखेगा कि भीमसेन रथ पर बैठकर, गदा हाथ में लेकर, अपने क्रोध रूपी विष को उगल रहे हैं, तब उस अमर्षशील भयानक वेग वाले पाण्डुपुत्र को देखकर उसे पछताना पड़ेगा। जब कवच पहने हुए, शत्रु के वीरों को मारने वाले भीम अपने पक्ष के लोगों से भी अलक्षित रहकर, सेना के आगे आगे चलकर शत्रु सेना का मृत्यु के समान विनाश करने लगेंगे, तब अत्यन्त अभिमानी दुर्योधन को मेरी बातें याद आयेंगी। जब दुर्योधन पर्वतशिखरों

के समान हाथियों को भीमसेन के द्वारा गिराया हुआ और मस्तक फोड़े जाने के कारण उन्हें अपने माथों से घड़ों के समान खून उँडेलते हुए देखेगा, तब वह युद्ध आरम्भ करने के लिये पछतायेगा।

महासिंहो गाव इव प्रविश्य
गदापाणिर्धार्तराष्ट्रानुपेत्य ॥ २४॥
यदा भीमो भीमरूपो निहन्ता
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्।
महाभये वीतभयः कृतास्त्रः
समागमे शत्रुबलावमर्दी॥ २५॥
सकृद् रथेनाप्रतिमान् रथौघान्
पदातिसंघान् गदयाभिनिघ्नन्।
छिन्दन् वनं परशुनेव शूर-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ २६॥

जैसे महान् सिंह गायों में घुसकर उन्हें मार देता है, वैसे ही जब गदा हाथ में लेकर भयानक रूप धारी भीमसेन धृतराष्ट्र के पुत्रों के बीच में जाकर उनका संहार करने लगेंगे तब दुर्योधन को पछताना पड़ेगा। जो महान् भय के उपस्थित होने पर भी निर्भय रहते हैं, जिन्होंने शस्त्रास्त्रों की पूरी शिक्षा प्राप्त की है, जो युद्ध में शत्रु की सेना को कुचल डालते हैं, वे भीमसेन जब अकेले रथ पर बैठकर अपनी गदा से असंख्य रथ समूहों तथा पैदल समूहों को नष्ट करते हुए इस प्रकार दिखाई देंगे जैसे कोई फरसे से वन को काट रहा हो, तब दुर्योधन को युद्ध आरम्भ करने के लिये पछताना पड़ेगा।

तृणप्रशयं ज्वलनेनेव दग्धं
ग्रामं यथा धार्तराष्ट्रान् समीक्ष्य।
पक्वं सस्यं वैद्युतेनेव दग्धं
परासिक्तं विपुलं स्वं बलौघम्॥ २७॥
हतप्रवीरं विमुखं भयार्तं
पराङ्मुखं प्रायशोऽधृष्टयोधम्।
शस्त्रार्चिषा भीमसेनेन दग्धं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ २८॥

जब दुर्योधन यह देखेगा कि जैसे घास की झोंपड़ियों वाला गाँव आग से जल कर नष्ट हो जाता है, वैसे ही सारे धृतराष्ट्र के पुत्र भीमसेन की क्रोधाग्नि में जलकर भस्म हो गये हैं, पकी हुई फसल जैसे बिजली के प्रहार से जल जाती है, वैसे ही मेरी विशाल सेना नष्ट हो गयी है, उसके वीर योद्धा मार दिये गये हैं और शेष भय से पीड़ित होकर भाग गये हैं, युद्ध के लिये उनका उत्साह समाप्त हो गया है तथा भीमसेन की शस्त्ररूपी अग्नि में सब कुछ भस्म हो गया है, तब उसे युद्ध के लिये पछताना पड़ेगा।

उपासंग्रानाचरेद् दक्षिणेन
वराङ्गानां नकुलश्चित्रयोधी।
यदा रथाग्र्यो रथिनः प्रणेता
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ २९॥
सुखोचितो दुःखशय्यां वनेषु
दीर्घं कालं नकुलो यामशेत।
आशीविषः क्रुद्ध इवोद्वमन् विषं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ३०॥

जब विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाले, रथियों में श्रेष्ठ नकुल दाँये हाथ में खड्ग लेकर विभिन्न प्रकार के पैंतरे दिखाकर सैनिकों के सिरों को काट काट कर गिराने लगेंगे और रथियों को मृत्युलोक में भेजने लगेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिये पछताना पड़ेगा। सुख भोगने के योग्य नकुल ने वन में रहते हुए जिस दुःख रूपी शैया पर लम्बे समय तक शयन किया है, उसे स्मरण करते हुए क्रोध में भरकर वे जब विषैले क्रुद्ध सर्प के समान अपने क्रोध को छोड़ने लगेंगे तब दुर्योधन युद्ध का आरम्भ करके पछतायेगा।

त्यक्तात्मानः पार्थिवा योधनाय
समादिष्टा धर्मराजेन सूत।
रथैः शुभ्रैः सैन्यमभिद्रवन्तो
दृष्ट्वा पश्चात् तप्स्यते धार्तराष्ट्रः॥ ३१॥
शिशून् कृतास्त्रानशिशुप्रकाशान्
यदा द्रष्टा कौरवः पञ्च शूरान्।
त्यक्त्वा प्राणान् कौरवानाद्रवन्त-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ३२॥

हे सूत! जब धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा युद्ध के लिये आदेश मिलने पर राजा लोग अपने प्राणों का मोह छोड़कर अपने जगमगाते हुए रथों के द्वारा तुम्हारी सेना पर आक्रमण करेंगे, तब दुर्योधन को पछताना पड़ेगा। जो अभी बालक हैं, फिर भी शस्त्रास्त्रों की पूर्ण शिक्षा को प्राप्त हैं और नौजवानों

के समान पराक्रम को प्रदर्शित करते हैं, वे द्रौपदी के पाँचों पुत्र जब कौरवसेना को देखकर अपने प्राणों का मोह छोड़कर उस पर आक्रमण करेंगे तब दुर्योधन को अपने युद्ध छेड़ने के कार्य पर पछतावा होगा।

यदा गतोद्वाहमकूजनाक्षं
सुवर्णतारं रथमुत्तमाश्वैः।
दान्तैर्युक्तं सहदेवोऽधिरूढः।
शिरांसि राज्ञां क्षेप्स्यते मार्गणौघैः॥ ३३॥
महाभये सम्प्रवृत्ते रथस्थं
विवर्तमानं समरे कृतास्त्रम्।
सर्वा दिशः सम्पतन्तं समीक्ष्य
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ३४॥

जब सहदेव अपने उस रथ पर आरूढ़ होकर, जो अलातचक्र की भाँति घूमने के कारण सोने के गोलाकार तार के समान प्रतीत होता है, जिसके पहियों की धुरी तनिक भी आवाज नहीं करती, जो अपनी इच्छा के अनुकूल चलने वाला है, जिसमें उत्तम जाति के घोड़े जुते हुए हैं, अपने बाणसमूहों से राजाओं के सिरों को काट काटकर गिराने लगेंगे, जब युद्धक्षेत्र में महान् भय उपस्थित हो जायेगा, जब दुर्योधन शस्त्रास्त्रों की पूर्ण विद्या प्राप्त और रथ में बैठे हुए सहदेव को युद्धक्षेत्र में चारों तरफ घूमते हुए और सारी दिशाओं से आक्रमण करते हुए देखेगा तब वह युद्ध आरम्भ करने के लिये पछतायेगा।

ह्रीनिषेवो निपुणः सत्यवादी
महाबलः सर्वधर्मोपपन्नः।
गान्धारिमार्च्छंस्तुमुले क्षिप्रकारी
क्षेप्ता जनान् सहदेवस्तरस्वी॥ ३५॥
यदा द्रष्टा द्रौपदेयान् महेषून्
शूरान् कृतास्त्रान् रथयुद्धकोविदान्।
आशीविषान् घोरविषानिवायत-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ३६॥

लज्जाशील, कुशल, सत्यवादी, महाबली, सारे धर्मों से युक्त, शीघ्रता करने वाले, वेगवान् सहदेव जब तुमुल युद्ध में शकुनि पर आक्रमण करके शत्रु सैनिकों का संहार करने लगेंगे, जब दुर्योधन देखेगा कि महाधनुर्धर, शूरवीर, अस्त्रविद्यासम्पन्न, रथयुद्ध में कोविद द्रौपदी के पाँचों पुत्र विषैले सर्पों के समान भयानक जहरीले बाणों की वर्षा कर रहे हैं तो वह (दुर्योधन) युद्ध आरम्भ करने के लिये पछताएगा।

यदाभिमन्युः परवीरघाती
शरैः परान् मेघ इवाभिवर्षन्।
विगाहिता कृष्णसमः कृतास्त्र-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ३७॥
यदा द्रष्टा बालमबालवीर्यं
द्विषच्चमूं मृत्युमिवोत्पतन्तम्।
सौभद्रमिन्द्रप्रतिमं कृतास्त्रं
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ३८॥

जब शत्रुवीरों को नष्ट करने वाला अभिमन्यु, जो अस्त्र विद्या में श्रीकृष्ण जी के समान निपुण है, शत्रुओं पर बादलों के समान बाणों की वर्षा करता हुआ उनकी सेना में घुस जाएगा, तब दुर्योधन युद्ध के लिये पछतायेगा। जब वह देखेगा कि अभिमन्यु यद्यपि बालक है, पर उसका पराक्रम बालकों जैसा नहीं है, इन्द्र के समान पराक्रमी, अस्त्रविद्या में कुशल वह सुभद्रा का पुत्र मृत्यु के समान आक्रमण कर शत्रु पर प्रतिघात कर रहा है, तब उसे युद्ध के लिये पछताना पड़ेगा।

प्रभद्रकाः शीघ्रतरा युवानो
विशारदाः सिंहसमानवीर्याः
यदा क्षेप्तारो धार्तराष्ट्रान् ससैन्यां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ३९॥
वृद्धौ विराटद्रुपदौ महारथौ
पृथक् चमूभ्यामभिवर्तमानौ।
यदा द्रष्टारौ धार्तराष्ट्रान् ससैन्यां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ४०॥

जब सिंह के समास पराक्रमी, कुशल और शीघ्रता से युद्ध करने वाले प्रभद्रकदेश के नवयुवक, धृतराष्ट्र के पुत्रों को सेनासहित भगा देंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिये पश्चाताप होगा। बूढ़े महारथी विराट और द्रुपद जब अपनी अपनी सेना के साथ, सेना सहित धृतराष्ट्र के पुत्रों की तरफ देखेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिये पछताना पड़ेगा।

यदा कृतास्त्रो द्रुपदः प्रचिन्वन्
शिरांसि यूनां समरे रथस्थः।
क्रुद्धः शरैश्छेत्स्यति चापमुक्तै-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ४१॥

यदा विराटः परवीरघाती
रणान्तरे शत्रुचमूं प्रवेष्टा।
मत्स्यैः सार्धमनृशंसरूपै-
स्तदायुद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ४२॥

जब अस्त्र विद्या में कुशल राजा द्रुपद युद्ध में रथ में बैठकर, क्रोध सहित अपने धनुष से छोड़े हुए बाणों से नवयुवकों के सिरों को काटना आरम्भ कर देंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिये पछताना पड़ेगा। जब शत्रु के वीरों को नष्ट करने वाले राजा विराट कोमल आकृति वाले मत्स्यदेशी सैनिकों के साथ, युद्धक्षेत्र में शत्रु की सेना में प्रवेश करेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिये पश्चाताप होगा।

ज्येष्ठं मात्स्यमनृशंसार्यरूपं
विराटपुत्रं रथिनं पुरस्तात्।
यदा द्रष्टा दंशितं पाण्डवार्थे
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ४३॥
यदा द्रष्टा सृंजयानामनीके
धृष्टद्युम्नं प्रमुखे रोचमानम्।
अस्त्रं यस्मै गुह्यमुवाच धीमान्
द्रोणस्तदा तप्स्यति धार्तराष्ट्रः॥ ४४॥

जब दुर्योधन विराटराज के ज्येष्ठपुत्र मत्स्यदेश वासी, सौम्य और श्रेष्ठ रूप वाले श्वेत को पाण्डवों के लिये कवच पहने हुए और रथ में बैठे हुए अपने सामने देखेगा, तब उसे युद्ध आरम्भ करने के लिये पछतावा होगा। जब दुर्योधन उस धृष्टद्युम्न को, जिसे धीमान् द्रोणचार्य ने अस्त्रविद्या के गूढ़ रहस्य समझाये हैं, सृंजयों की सेना के अग्रभाग पर प्रकाशित होते हुए देखेगा, तब वह युद्ध के लिये पछतायेगा।

यदा स सेनापतिरप्रमेयः
परामृद्नन्निषु- भिर्धार्तराष्ट्रान्।
द्रोणं रणे शत्रुसहोऽभियाता
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ४५॥

जब अपरिमित शक्ति वाला वह सेनापति धृष्टद्युम्न, अपने बाणों से धृतराष्ट्र के पुत्रों को कुचलता हुआ, युद्ध में शत्रुओं को सहन करता हुआ द्रोणाचार्य पर आक्रमण करेगा, तब उसे युद्ध के लिये पश्चाताप होगा।

इदं च ब्रूया मा वृणीष्वेति लोके
युद्धेऽद्वितीयं सचिवं रथस्थम्।
शिनेर्नप्तारं प्रवृणीम सात्यकिं
महाबलं वीतभयं कृतास्त्रम्॥ ४६॥
महोरस्को दीर्घबाहुः प्रमाथी
युद्धेऽद्वितीयः परमास्त्रवेदी।
शिनेर्नप्ता तालमात्रायुधोऽयं
महारथो वीतभयः कृतास्त्रः॥ ४७॥
यदा शिनीनामधिपो मयोक्तः
शरैः परान् मेघ इव प्रवर्षन्।
प्रच्छादयिष्यत्यरिहा योधमुख्यां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ४८॥

तुम दुर्योधन से यह कह देना कि अब तुम संसार में रहने की इच्छा का वरण मत करो। क्योंकि हमने युद्ध में अद्वितीय, महाबली, अस्त्रविद्या के निष्णात, निर्भय, रथ पर विद्यमान, शिनि के पौत्र सात्यकि को अपना मन्त्री बना लिया है। शिनि का वह पौत्र विशाल छाती तथा लम्बी भुजाओं वाला, शत्रुसेना को मथने वाला एवं दिव्यास्त्रों को जानने वाला, युद्ध में अद्वितीय है। अस्त्रविद्या में निष्णात, वह निर्भय महारथी, ताड़ के बराबर लम्बा धनुष धारण करता है। शिनिवंशियों का स्वामी शत्रुहन्ता सात्यकि जब मेरे कहने से शत्रुओं के ऊपर मेघों के समान बाणों की वर्षा करते हुए उनके प्रमुख वीरों को आच्छादित कर देगा, तब दुर्योधन युद्ध के लिये सन्ताप करेगा।

यदा धृतिं कुरुते योत्स्यमानः
स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा।
सिंहस्येव गन्धमाघ्राय गावः
संचेष्टन्ते शत्रवोऽस्माद् रणाग्रे॥ ४९॥
चित्रः सूक्ष्मः सुकृतो यादवस्य
अस्त्रे योगो वृष्णिसिंहस्य भूयान्।
यथाविधं योगमाहुः प्रशस्तं
सर्वैर्गुणैः सात्यकिस्तैरुपेतः॥ ५०॥
हिरणमयं श्वेतहयैश्चतुर्भि-
र्यदा युक्तं स्यन्दनं माधवस्य।
द्रष्टा युद्धे सात्यकेर्धार्तराष्ट्र-
स्तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मन्दः॥ ५१॥

लम्बी भुजाओं और दृढ़ धनुष वाले वे मनस्वी

सात्यकि जब युद्ध करते हुए धैर्य के साथ डट जाते हैं, तब जैसे सिंह की गन्ध पाकर गायें भागने लगती हैं, वैसे ही युद्ध में उनके आगे से शत्रु भागने लग जाते हैं। उस यदुवंशी, वृष्णि सिंह का अस्त्रज्ञान विचित्र, सूक्ष्म, और अच्छी तरह से अभ्यास किया हुआ है। जिस जिस प्रकार के अस्त्रों का ज्ञान प्रशंसनीय माना गया है, वे सारे उन्हें प्राप्त हैं। सात्यकि सारे गुणों से युक्त है। जब वह पापात्मा, मन्दबुद्धि दुर्योधन मधुवंशी सात्यकि के चार सफेद घोड़ों से जुते हुए सुनहले रथ को युद्धक्षेत्र में देखेगा, तब उसे पछताना पड़ेगा।

यदा रथं हेममणिप्रकाशं
श्वेताश्वयुक्तं वानरकेतुमुग्रम्।
द्रष्टा ममाप्यास्थितं केशवेन
तदा तप्स्यत्यकृतात्मा स मन्दः॥ ५२॥
यदा मौर्व्यास्तलनिष्पेषमुग्रं
महाशब्दं वज्रनिष्पेषतुल्यम्।
विधूयमानस्य महारणे मया
स गाण्डिवस्य श्रोष्यति मन्दबुद्धिः॥ ५३॥
तदा मूढो धृतराष्ट्रस्य पुत्र-
स्तप्ता युद्धे दुर्मतिर्दुःसहायः।
दृष्ट्वा सैन्यं बाणवर्षान्धकारे
प्रभज्यन्तं गोकुलवद् रणाग्रे॥ ५४॥

वह अकृतात्मा मंदबुद्धि दुर्योधन जब मेरा स्वर्ण और मणियों से प्रकाशित, श्वेत घोड़ों से जुता हुआ, वानर की ध्वजा वाला, भयानक रथ देखेगा, जिस पर श्रीकृष्ण बैठे हुए होंगे, तब उसे पछताना पड़ेगा। जब उस महायुद्ध में मेरे द्वारा गाण्डीव धनुष को टंकारते हुए, विद्युत् के गिरने जैसे प्रत्यञ्चा के और हथेली की रगड़ के महाभयानक शब्द को वह मन्दबुद्धि सुनेगा और दुष्ट सहायकों वाला वह दुर्मति, धृतराष्ट्र का पुत्र बाणवर्षा के अन्धेरे में सेना को गायों के समान भागते हुए देखेगा तब उसे सन्ताप करना पड़ेगा।

बलाहकादुच्चरतः सुभीमान्
विद्युत्स्फुलिङ्गानिव घोररूपान्।
सहस्रघ्नान् द्विषतां सङ्गरेषु
अस्थिच्छिदो मर्मभिदः सुपुङ्खान्॥ ५५॥
यदा द्रष्टा ज्यामुखाद् बाणसंघान्
गाण्डीवमुक्तानापततः शिताग्रान्।
हयान् गजान् वर्मिणश्चाददानां-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ५६॥

बादलों से गिरने वाली भयानक विद्युत् की चिनगारियों के समान भयानक, युद्धों में हजारों शत्रुओं को मारने वाले, हड्डियों को छेदने वाले तथा मर्मस्थलों को भेदने वाले, अच्छे पंखों वाले, गाण्डीव धनुष की प्रत्यञ्चा से छोड़े हुए, तीखी नोक वाले बाणों के समूहों को जब वह दुर्योधन हाथियों, घोड़ों, और कवचधारी सैनिकों के प्राण लेते हुए देखेगा, तब उसे युद्ध के लिये संतप्त होना पड़ेगा।

यदा मन्दः परबाणान् विमुक्तान्
ममेषुभिर्ह्रियमाणान् प्रतीपम्।
तिर्यग्विध्याच्छिद्यमानान् पृषत्कै-
स्तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ५७॥
यदा विपाठा मद्भुजविप्रमुक्ता
द्विजाः फलानीव महीरुहाग्रात्।
प्रचेतार उत्तमाङ्गानि यूनां
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ५८॥

जब वह मन्दबुद्धि यह देखेगा कि दूसरे के द्वारा छोड़े हुए बाणों को मेरे बाणों द्वारा टकराकर वापिस लौटाया जा रहा है और टेढ़े आ रहे मेरे बाणों से उनका छेदन किया जा रहा है, तब दुर्योधन युद्ध के लिये पछतायेगा। जब मेरी भुजाओं से छोड़े गये विपाठ नाम के बाण, जैसे पक्षी वृक्षों की शिखाओं से फलों को गिराते हैं, उसी प्रकार जवानों के सिरों को काट काट कर गिराने लगेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिये पश्चाताप होगा।

यदा द्रष्टा पततः स्यन्दनेभ्यो
महागजेभ्योऽश्वगतान् सुयोधनान्।
शरैर्हतान् पातितांश्चैव रङ्गे
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ५९॥
असम्प्राप्तानस्त्रपथं परस्य
तदा द्रष्टा नश्यतो धार्तराष्ट्रान्।
अकुर्वतः कर्म युद्धे समन्तात्
तदा युद्धं धार्तराष्ट्रोऽन्वतप्स्यत्॥ ६०॥

जब रथों से, हाथियों से, घोड़ों से योद्धाओं को मेरे बाणों से मारे जाकर गिरते हुए देखेगा, तब उसे युद्ध के लिये पछताना पड़ेगा। जब दुर्योधन यह देखेगा,

युद्धक्षेत्र में बिना कुछ कार्य किये ही, बिना बाण वर्षा के सामने जाये ही, उनके भाई चारों तरफ नष्ट होते जा रहे हैं, तब उसे युद्ध के लिये पछताना पड़ेगा।

सर्वा दिशः सम्पतता रथेन
रजोध्वस्तं गाण्डिवेन प्रकृत्तम्।
यदा द्रष्टा स्वबलं सम्प्रमूढं
तदा पश्चात् तप्स्यति मन्दबुद्धिः॥ ६१॥

जब वह मन्दबुद्धि यह देखेगा कि मेरे दौड़ते हुए रथ से उड़ाई हुई धूल से सारी दिशायें भर गयी हैं और अपनी सेना को उस धूल से आच्छादित होकर मूढ़ बने हुए तथा गाण्डीव धनुष से काटे जाते हुए देखेगा, तब उसे बड़ा पश्चाताप होगा।

कान्दिग्भूतं छिन्नगात्रं विसंज्ञं
दुर्योधनो द्रक्ष्यति सर्वसैन्यम्।
हताश्ववीराग्र्य- नरेन्द्रनागं
पिपासितं श्रान्तपत्रं भयार्तम्॥ ६२॥
आर्तस्वरं हन्यमानं हतं च
विकीर्णकेशास्थिकपालसंघम् ।
प्रजापतेः कर्म यथार्थनिश्चितं
तदा दृष्ट्वा तप्स्यति मन्दबुद्धिः॥ ६३॥

जब दुर्योधन यह देखेगा कि उसकी सारी सेना के गात्र छिन्न हो रहे हैं, वह अचेतन सी हो रही है, उसे यह सूझ नहीं रहा कि वह भागकर किस दिशा में जाये, उसके घोड़े, अग्रणी वीर, राजा और हाथी मारे जा रहे हैं, वह प्यासी, थकी हुई और भय से पीड़ित है, उसके बहुत से वीर मारे जा चुके हैं, बहुत से मारे जा रहे हैं और रो रहे हैं, उनके बाल, हड्डियाँ और खोपड़ियाँ चारों तरफ फैले हुए हैं, तब विधाता के निश्चित विधान के अनुसार उस दृश्य को देखकर वह मन्दबुद्धि पछतायेगा।

उद्वर्तयन् दस्युसङ्घान् समेतान्
प्रवर्तयन् युगमन्यद् युगान्ते।
यदा धक्ष्याम्यग्निवत् कौरवेयां-
स्तदा तप्ता धृतराष्ट्रः सपुत्रः॥ ६४॥
सभ्राता वै सहसैन्यः सभृत्यो
भ्रष्टैश्वर्यः क्रोधवशोऽल्पचेताः।
दर्पस्यान्ते निहतो वेपमानः।
पश्चान्मन्दस्तप्स्यति धार्तराष्ट्रः॥ ६५॥

जब एकत्र हुए उन डाकुओं के समूहों को मारता हुआ, एक युगान्त के पश्चात् दूसरे युग के आरम्भ होने जैसा दृश्य प्रस्तुत करता हुआ, मैं अग्नि के समान कौरवों को भस्म करने लगूँगा, तब धृतराष्ट्र अपने पुत्र सहित सन्ताप करेंगे। जब सदा क्रोध के वश में रहने वाला वह मन्दबुद्धि ऐश्वर्य से भ्रष्ट और घायल हो जाने पर अपने भाइयों, सेवकों और सेना के साथ, अभिमान नष्ट होने के कारण काँपने लगेगा, तब उसे युद्ध के लिये पछताना पड़ेगा।

पर्यागतं मम कृष्णस्य चैव
यो मन्यते कलहं सम्प्रसह्य।
शक्यं हर्तुं पाण्डवानां ममत्वं
तद् वेदिता संयुगं तत्र गत्वा॥ ६६॥
नमस्कृत्वा शान्तनवाय राज्ञे
द्रोणायाथो सहपुत्राय चैव।
शारद्वतायाप्रतिद्वन्द्विने च
योत्स्याम्यहं राज्यमभीप्समानः॥ ६७॥

दुर्योधन जो यह समझता है कि मेरे और श्रीकृष्ण के बीच में बलपूर्वक कलह उत्पन्न कराया जा सकता है और पाण्डवों के प्रति उनके हृदय में जो प्यार है, उसे समाप्त कराया जा सकता है, इस बात के विषय में उसे युद्धक्षेत्र में जाने पर पता लगेगा। शान्तनुपुत्र महाराजा भीष्म को, पुत्रसहित द्रोणाचार्य को और जिनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है उन शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य को प्रणाम करके मैं राज्य को पाने की इच्छा से युद्ध अवश्य करूँगा।

धर्मेणाप्तं निधनं तस्य मन्ये
यो योत्स्यते पाण्डवैः पापबुद्धिः।
मिथ्या ग्लहे निर्जिता वै नृशंसैः
संवत्सरान् वै द्वादश राजपुत्राः॥ ६८॥
वासः कृच्छ्रो विहितश्चाप्यरण्ये
दीर्घं कालं चैकमज्ञातवर्षम्।
ते हि कस्माज्जीवतां पाण्डवानां
नन्दिष्यन्ते धार्तराष्ट्राः पदस्थाः॥ ६९॥

जो पापबुद्धि पाण्डवों के साथ युद्ध करेगा, मैं समझता हूँ कि धर्म के अनुसार उसकी मृत्यु आ गयी है, क्योंकि इन क्रूर लोगों ने कपटयुक्त जूए में हराकर हमें बारह वर्ष के लिये वन में भेज दिया,

यद्यपि हम भी राजपुत्र थे। हमने कष्टपूर्ण वन में लम्बे समय तक वास किया। फिर एक वर्ष अज्ञातवास भी बिताया। फिर वे धृतराष्ट्र के पुत्र पाण्डवों के जीवित रहते हुए ही उनके राज्य् पर आसीन होते हुए आनन्द कैसे भोगते रहेंगे।

न चेदिमं पुरुषं कर्मबद्धं
न चेदस्मान् मन्यतेऽसौविशिष्टान्।
आशंसेऽहं वासुदेवद्वितीयो
दुर्योधनं सानुबन्धं निहन्तुम्॥ ७०॥
न चेदिदं कर्म नरेन्द्र वन्ध्यं
न चेद् भवेत् सुकृतं निष्फलं वा।
इदं च तच्चाभिसमीक्ष्य नूनं
पराजयो धार्तराष्ट्रस्य साधुः॥ ७१॥

यदि दुर्योधन मनुष्य को कर्मों के बन्धन में बँधा हुआ नहीं मानता है और हमें भी अपने से विशिष्ट नहीं समझता है, तो मैं भी श्रीकृष्ण जी की सहायता से दुर्योधन को उसके सहायकों सहित मारने की आशा करता हूँ। हे राजन्! यदि मनुष्य का किया हुआ पापकर्म निष्फल नहीं होता और अच्छे कर्म का भी फल मिले बिना नहीं रहता तो दुर्योधन के पिछले और वर्तमान कर्मों को देखकर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि दुर्योधन की पराजय अवश्य होगी और इसी में जगत की भलाई है।

प्रत्यक्षं वः कुरवो यद् ब्रवीमि
युध्यमाना धार्तराष्ट्रा न सन्ति।
अन्यत्र युद्धात् कुरवो यदि स्यु-
र्न युद्धे वै शेष इहास्ति कश्चित्॥ ७२॥
हत्वा त्वहं धार्तराष्ट्रान् सकर्णान्
राज्यं कुरूणामवजेता समग्रम्।
यद् वः कार्यं तत् कुरुध्वं यथास्व-
मिष्टान् दारानात्मभोगान् भजध्वम्॥ ७३॥

हे कौरवों! मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से बता रहा हूँ कि युद्ध करने पर धृतराष्ट्र के पुत्रों में से कोई भी नहीं बचेगा। यदि वे युद्ध से दूर रहें तभी बच सकते हैं। युद्ध में भाग लेने पर उनमें से कोई नहीं बचेगा। मैं कर्ण सहित सारे धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर कौरवों के सारे राज्य को जीत लूँगा। तुम्हें जो कुछ अपने कार्य करने हों, उन्हें पूरा कर लो। अपनी प्रिय पत्नियों को और प्रिय भोगों को भोग लो।

समाददानः पृथगस्त्रमार्गान्
यथाग्निरिद्धो गहनं निदाघे।
स्थूणाकर्णं पाशुपतं महास्त्रं
ब्राह्मं चास्त्रं यच्च शक्रोऽप्यदान्मे॥ ७४॥
वधे धृतो वेगवतः प्रमुञ्चन्
नाहं प्रजाः किंचिदिहावशिष्ये।
शान्तिं लप्स्ये परमो ह्येष भावः
स्थिरो मम ब्रूहि गावल्गणे तान्॥ ७५॥

जैसे ग्रीष्म ऋतु में भयानक अग्नि प्रज्वलित होकर सारे वन को जला देती है, वैसे ही वध करने के लिये तैयार होकर अस्त्रसंचालन की अलग अलग रीतियों का आश्रय लेता हुआ, स्थूणाकर्ण, पाशुपत महास्त्र, ब्रह्मास्त्र और जो मुझे इन्द्र ने प्रदान किये हैं उन सब वेगवान् अस्त्रों का प्रयोग करता हुआ मैं किसी को भी जीवित नहीं छोड़ूँगा। मेरी यह परम भावना है कि ऐसा करने पर ही मुझे शान्ति प्राप्त होगी। हे गवल्गणपुत्र संजय। स्थिरतापूर्वक कही हुई मेरी यह बात उनसे कह देना।

वृद्धो भीष्मः शान्तनवः कृपश्च
द्रोणः सपुत्रो विदुरश्च धीमान्
एते सर्वे यद् वदन्ते तदस्तु
आयुष्मन्तः कुरवः सन्तु सर्वे॥ ७६॥

शान्तनुपुत्र वृद्ध भीष्म पितामह, कृपाचार्य, पुत्र सहित द्रोणाचार्य और बुद्धिमान् विदुर ये जो कुछ कहें, वही कार्य होना चाहिये जिससे सारे कौरव आयुष्मान् बने रहें।

इक्कीसवाँ अध्याय : भीष्म और द्रोणाचार्य का दुर्योधन को समझाना। कर्ण की गर्वोक्ति।

भीष्म उवाच—

नोचेदयमभावः स्यात् कुरूणां प्रत्युपस्थितः।
अर्थाच्च तात धर्माच्च तव बुद्धिरुपप्लुता॥ १॥
नचेद् ग्रहीष्यसे वाक्यं श्रोतासि सुबहून् हतान्।
तवैव हि मतं सर्वे कुरवः पुर्यपासते॥ २॥
त्रयाणामेव च मतं तत् त्वमेकोऽनुमन्यसे।
दुर्जातेः सूतपुत्रस्य शकुनेः सौबलस्य च॥ ३॥
तथा क्षुद्रस्य पापस्य भ्रातुर्दुःशासनस्य च।

तब भीष्म पितामह दुर्योधन से बोले कि यदि तुम हमारी बात नहीं मानोगे तो कौरवों का विनाश अवश्य ही उपस्थित हो जायेगा और तुम सुनोगे कि हमारे बहुत सारे सहायक मारे गये। सारे कौरव तुम्हारे ही मत के अनुसार चलते हैं और हे तात! तुम्हारी बुद्धि धर्म तथा अर्थ से भटक गयी है। खोटी जाति वाले सारथि के पुत्र कर्ण की, सुबलपुत्र शकुनि की और अपने नीच पापी भाई दुश्शासन की सलाह पर ही तुम चलते हो।

कर्ण उवाच

नैवमायुष्मता वाच्यं यन्मामात्थ पितामह॥ ४॥
क्षत्रधर्मे स्थितो ह्यस्मि स्वधर्मादनपेयिवान्।
किं चान्यन्मयि दुर्वृत्तं येन मां परिगर्हसे॥ ५॥
न हि मे वृजिनं किंचिद् धार्तराष्ट्रा विदुः क्वचित्।
नाचरं वृजिनं किंचिद् धार्तराष्ट्रस्य नित्यशः॥ ६॥
अहं हि पाण्डवान् सर्वान् हनिष्यामि रणे स्थितान्।
प्राग्विरुद्धैः शमं सद्भिः कथं वा क्रियते पुनः॥ ७॥
राज्ञो हि धृतराष्ट्रस्य सर्वं कार्यं प्रियं मया।
तथा दुर्योधनस्यापि स हि राज्ये समाहितः॥ ८॥

तब कर्ण ने कहा कि हे पितामह! आप जैसे आयुष्मान् व्यक्ति को ऐसे नहीं कहना चाहिये, जो आपने मेरे विषय में कहा है। मैं अपने क्षत्रिय धर्म में स्थित हूँ, मैंने अपने धर्म का त्याग नहीं किया है। मेरे अन्दर और कौन सी बुरी बात है, जो आप मेरी निन्दा कर रहे हैं। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मेरा कोई पापाचार नहीं देखा है, मैंने कभी भी दुर्योधन का बुरा नहीं किया है। मैं युद्ध में स्थित सारे पाण्डवों को मार दूँगा, जो पाण्डव पहले से हमारे विरुद्ध रहे उनके साथ पुन संधि कैसे की जा सकती है? मुझे जैसे राजा धृतराष्ट्र के सारे प्रिय कार्य करने चाहियें, वैसे ही दुर्योधन के भी करने चाहियें, क्योंकि इस समय राज्य पर वही विद्यमान है।

भीष्म उवाच

यदयं कत्थते नित्यं हन्ताहं पाण्डवानिति।
नायं कलापि सम्पूर्णा पाण्डवानां महात्मनाम्॥ ९॥
अनयो योऽयमागन्ता पुत्राणां ते दुरात्मनाम्।
तदस्य कर्म जानीहि सूतपुत्रस्य दुर्मतेः॥ १०॥
एतमाश्रित्य पुत्रस्ते मन्दबुद्धिः सुयोधनः।
अवामन्यत तान् वीरान् देवपुत्रानरिंदमान्॥ ११॥
किं चाप्येतेन तत्कर्म कृतपूर्वं सुदुष्करम्।
तैर्यथा पाण्डवैः सर्वैरेकैकेन कृतं पुरा॥ १२॥

तब भीष्म ने कहा कि जो यह कर्ण सदा यह कहता है कि मैं पाण्डवों को मार दूँगा, यह महात्मा पाण्डवों के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है। तुम्हारे दुष्ट पुत्रों का अन्याय जो अब विनाश के रूप में आने वाला है, उसे इस दुष्ट बुद्धि सारथि के पुत्र कर्ण की ही करतूत समझो। इसी का सहारा लेकर तुम्हारा मंदबुद्धि पुत्र दुर्योधन उन शत्रुओं का दमन करने वाले, देवपुत्रों के समान पाण्डवों का तिरस्कार करता रहा है। जैसे उन पाण्डवों ने पहले इकट्ठे तथा अकेले अकेले भी महान् कर्म करके दिखाये हैं, क्या इसने भी कभी वैसे ही अत्यन्त दुष्कर कर्म करके दिखाये हैं?

दृष्ट्वा विराटनगरे भ्रातरं निहतं प्रियम्।
धनंजयेन विक्रम्य किमनेन तदा कृतम्॥ १३॥
सहितान् हि कुरून् सर्वानभियातो धनंजयः।
प्रमथ्य चाच्छिनद् वासः किमयं प्रोषितस्तदा॥ १४॥
गन्धर्वैर्घोषयात्रायां ह्रियते यत् सुतस्तव।
क्व तदा सूतपुत्रोऽभूद् य इदानीं वृषायते॥ १५॥
ननु तत्रापि भीमेन पार्थेन च महात्मना।
यमाभ्यामेव संगम्य गन्धर्वास्ते पराजिताः॥ १६॥

विराट नगर में अर्जुन ने पराक्रम करके इसके प्रिय भाई को मार दिया। तब उसे देखकर भी इसने क्या कर लिया था? वहाँ एकत्र हुए सारे कौरवों पर अर्जुन ने अकेले ही आक्रमण किया और सबको

मूर्च्छित कर सबके कपड़े छीन लिये, तब क्या यह परदेश में गया हुआ था? घोषयात्रा में गन्धर्वों ने तुम्हारे पुत्र को जब बन्दी बनाकर उसका अपहरण कर लिया, तब यह कर्ण कहाँ था? जो अब साँड की तरह से डकार रहा है। वहाँ भी महात्मा भीम, अर्जुन, और माद्री के जुड़वा पुत्रों के द्वारा ही वे गन्धर्व पराजित किये गये थे।

एतान्यस्य मृषोक्तानि बहूनि भरतर्षभ।
विकत्थनस्य भद्रं ते सदा धर्मार्थलोपिनः॥ १७॥
भीष्मस्य तु वचः श्रुत्वा भारद्वाजो महामनाः।
धृतराष्ट्रमुवाचेदं राजमध्येऽभिपूजयन्॥ १८॥

हे भरतश्रेष्ठ! आपका कल्याण हो। धर्म और अर्थ का लोप करने वाले तथा डींग मारने वाले इस कर्ण के द्वारा और भी बहुत सी असत्य बातें कही गयीं हैं। भीष्म जी की बातें सुनकर महामना भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य ने भीष्म पितामह की प्रशंसा करते हुए राजाओं के बीच में धृतराष्ट्र से कहा कि–

यदाह भरतश्रेष्ठो भीष्मस्तत् क्रियतां नृप।
न काममर्थलिप्सूनां वचनं कर्तुमर्हसि॥ १९॥
पुरा युद्धात् साधु मन्ये पाण्डवैः सह संगतम्।
यद् वाक्यमर्जुनेनोक्तं संजयेन निवेदितम्॥ २०॥
सर्वं तदपि जानामि करिष्यति च पाण्डवः।
न ह्यस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्ति धनुर्धरः॥ २१॥
अनादृत्य तु तद् वाक्यमर्थवद् द्रोणभीष्मयोः।
अतः स संजयं राजा पर्यपृच्छत पाण्डवान्॥ २२॥

हे राजन्! भरतश्रेष्ठ भीष्म जी ने जो कुछ कहा है, आप वही कीजिये। जो धन के लोभी हैं, उनकी मन चाही बातें आपको पूरी नहीं करनी चाहियें। मैं तो युद्ध से पहले ही पाण्डवों के साथ सन्धि करना अच्छा समझता हूँ। अर्जुन के द्वारा कही हुई जिन बातों को संजय ने यहाँ सुनाया है, मैं सारी बातों को समझता हूँ। अर्जुन वैसा ही करके रहेगा क्योंकि तीनों लोकों में उसके जैसा धनुर्धर कोई नहीं है। किन्तु भीष्म और द्रोणाचार्य की उन अर्थभरी बातों की तरफ भी ध्यान न देकर धृतराष्ट्र तब संजय से पाण्डवों के बारे में दूसरी बातें पूछने लगे।

बाईसवाँ अध्याय : संजय द्वारा पाण्डवों के प्रधान सहायकों का वर्णन।

धृतराष्ट्र उवाच

किमसौ पाण्डवो राजा धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत।
श्रुत्वेह बहुलाः सेनाः प्रीत्यर्थं नः समागताः॥ १॥
किमसौ चेष्टते सूत योत्स्यमानो युधिष्ठिरः।
के स्विदेनं वारयन्ति युद्धाच्छाम्येति वा पुनः॥ २॥
निकृत्या कोपितं मन्दैर्धर्मज्ञं धर्मचारिणम्।

तब धृतराष्ट्र ने पूछा कि हे संजय! यह सुनकर कि यहाँ हमारी प्रसन्नता के लिये बहुत सारी सेनाएँ आकर एकत्र हो गयीं हैं, धर्मपुत्र पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर ने क्या कहा? युधिष्ठिर भविष्य में युद्ध करने के लिये कौन सी तैयारी कर रहे हैं? अपने कपटपूर्ण बर्ताव के द्वारा मेरे मन्दबुद्धि पुत्रों द्वारा कुपित किये हुए धर्मज्ञ और धर्मचारी युधिष्ठिर को कौन कौन युद्ध से निवृत्त करते हुए शान्त रहने के लिये कहते हैं।

संजय उवाच

राज्ञो मुखमुदीक्षन्ते पञ्चालाः पाण्डवैः सह॥ ३॥
युधिष्ठिरस्य भद्रं ते स सर्वाननुशास्ति च।
नभः सूर्यमिवोद्यन्तं कौन्तेय दीप्ततेजसम्॥ ४॥
पञ्चालाः केकया मत्स्याः प्रतिनन्दन्ति पाण्डवम्।

तब संजय ने उत्तर दिया कि हे महाराज! आपका कल्याण हो। पांचाल लोग पाण्डवों के साथ राजा युधिष्ठिर का मुख उनका आदेश पाने की इच्छा से देखते रहते हैं और वे उनपर शासन करते हैं। जैसे उदयकाल में उद्‌दीप्त तेजवाले सूर्य का आकाश अभिनन्दन करता है, वैसे ही उद्‌दीप्त तेज वाले कुन्तीपुत्र पाण्डव युधिष्ठिर का पांचाल, केकय, मत्स्य देश के राजा लोग सम्मान करते हैं।

धृतराष्ट्र उवाच

संजयाचक्ष्व येनास्मान् पाण्डवा अभ्ययुञ्जत॥ ५॥
धृष्टद्युम्नस्य सैन्येन सोमकानां बलेन च।

संजय उवाच

शृणु यैर्हि महाराज पाण्डवा अभ्ययुञ्जत॥ ६॥
धृष्टद्युम्नेन वीरेण युद्धे वस्तेऽभ्ययुञ्जत।
यः कलिङ्गान् समापेदे पाञ्चाल्यो युद्धदुर्मदः॥ ७॥
शिखण्डिना वः कुरवः कृतास्त्रेणाभ्ययुञ्जत।

महेष्वासा राजपुत्रा भ्रातरः पञ्च केकयाः॥ ८॥
आमुक्तकवचाः शूरास्तैश्च वस्तेऽभ्ययुञ्जत।

तब धृतराष्ट्र ने पूछा कि हे संजय! बताओ कि धृष्टद्युम्न और सोमकों की सेना के साथ और कौन हैं, जिनकी सहायता से पाण्डव हमारे साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो रहे हैं। तब संजय ने कहा कि महाराज! सुनिये जिनके साथ मिलकर पाण्डव युद्ध के लिये तैयार हो रहे हैं। वे वीर धृष्टद्युम्न के साथ मिलकर आपके साथ युद्ध के लिये तैयार हो रहे हैं। अस्त्र विद्या में निष्णात, युद्ध में दुर्मद, जिस पाञ्चाल निवासी शिखण्डी ने कलिंग देश को जीता था, उसकी सहायता से पाण्डवों ने आपके साथ युद्ध करने की तैयारी की है। कैकेय देश के पाँच राजपुत्र भाई, जो महाधनुर्धर हैं और शूरवीर हैं तथा कवच बाँधे सदा युद्ध के लिये उद्यत रहते हैं, उनकी सहायता से पाण्डवों ने आपसे युद्ध के लिये तैयारी की है।

यो दीर्घबाहुः क्षिप्रास्त्रो धृतिमान् सत्यविक्रमः॥ ९॥
तेन वो वृष्णिवीरेण युयुधानेन संगरः।
य आसीच्छरणं काले पाण्डवानां महात्मनाम्॥ १०॥
रणे तेन विराटेन भविता वः समागमः।
यः स काशिपती राजा वाराणस्यां महारथः॥ ११॥
स तेषामभवद् योद्धा तेन वस्तेऽभ्ययुञ्जत।
शिशुभिर्दुर्जयैः संख्ये द्रौपदेयैर्महात्मभिः॥ १२॥
आशीविषसमस्पर्शैः पाण्डवा अभ्ययुञ्जत।

जिसकी लम्बी भुजाएँ हैं, जो शीघ्रता से अस्त्रों को फैंकता है, जो धैर्यवान् और सत्यपराक्रमी है उस वृष्णि वीर सात्यकि के साथ आपका युद्ध होगा। जो अज्ञातवास के समय पाण्डवों को शरण देने वाले थे, उन राजा विराट के साथ आपका युद्ध होगा। वाराणसी के जो महारथी राजा काशिपति हैं, वे उन पाण्डवों के योद्धा हो गये हैं। उनकी सहायता से पाण्डव आपके साथ युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। द्रौपदी के मनस्वी पुत्र, जो भले ही अभी बालक हैं, पर जो युद्ध में दुर्जय हैं, और जिन्हें छेड़ना विषैले सर्प को छेड़ने के समान है, उनकी सहायता से पाण्डवों ने आपसे युद्ध की तैयारी की है।

यः कृष्णसदृशो वीर्ये युधिष्ठिरसमो दमे॥ १३॥
तेनाभिमन्युना संख्ये पाण्डवा अभ्ययुञ्जत।
यश्चैवाप्रतिमो वीर्ये धृष्टकेतुर्महायशाः॥ १४॥
दुःसहः समरे क्रुद्धः शैशुपालिर्महारथः।
तेन वश्चेदिराजेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत॥ १५॥
अक्षौहिण्या परिवृतः पाण्डवान् योऽभिसंश्रितः।
यः संश्रयः पाण्डवानां देवानामिव वासवः॥ १६॥
तेन वो वासुदेवेन पाण्डवा अभ्ययुञ्जत।

जो पराक्रम में श्रीकृष्ण के समान है, और इन्द्रियदमन में युधिष्ठिर के समान है, उस अभिमन्यु की सहायता से पाण्डवों ने युद्ध करने की तैयारी की है। जो पराक्रम में अद्वितीय है, क्रुद्ध होने पर जो युद्ध में दुःसह हो जाता है, उस महायशस्वी, महारथी, शिशुपाल के पुत्र चेदिराज धृष्टकेतु की सहायता से पाण्डवों ने युद्ध के लिये तैयारी की है। उसने अक्षौहिणी सेना के साथ पाण्डवों का पक्ष लिया है। जैसे देवताओं को इन्द्र का सहारा है, वैसे ही जो पाण्डव के आश्रय हैं उन वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण जी की सहायता से पाण्डवों ने युद्ध की तैयारी की है।

तथा चेदिपतेर्भ्राता शरभो भरतर्षभ॥ १७॥
करकर्षेण सहितस्ताभ्यां वस्तेऽभ्ययुञ्जत।
जारासंधिः सहदेवो जयत्सेनश्च तावुभौ॥ १८॥
युद्धेऽप्रतिरथौ वीरौ पाण्डवार्थे व्यवस्थितौ।
द्रुपदश्च महातेजा बलेन महता वृतः॥ १९॥
त्यक्तात्मा पाण्डवार्थाय योत्स्यमानो व्यवस्थितः।
एते चान्ये च बहवः प्राच्योदीच्या महीक्षितः।
शतशो यानुपाश्रित्य धर्मराजो व्यवस्थितः॥ २०॥

हे भरतश्रेष्ठ! उसी प्रकार चेदिराज का भाई शरभ करकर्ष के साथ उनके पक्ष में है। उन दोनों की सहायता से पाण्डवों ने आपके साथ युद्ध की तैयारी की है। जरासन्ध के पुत्र सहदेव और जयत्सेन हैं। वे दोनों युद्ध में अपना साथी नहीं रखते, वे भी पाण्डवों के लिये युद्ध करने को तैयार हैं। महातेजस्वी द्रुपद जो महान् सेना से युक्त हैं, जो पाण्डवों के लिये अपने प्राणों को छोड़ने और युद्ध करने के लिये तैयार हैं। ये और दूसरे बहुत से सैकड़ों राजा पूर्व और उत्तर दिशाओं से आकर वहाँ एकत्र हो गये हैं, जिनका सहारा लेकर धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध के लिये उद्यत हैं।

तेईसवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र का विलाप भीम, अर्जुन के पराक्रम की प्रशंसा।

धृतराष्ट्र उवाच

सर्व एते महोत्साहा ये त्वया परिकीर्तिताः।
एकतस्त्वेव ते सर्वे समेता भीम एकतः॥ १॥
भीमसेनाद्धि मे भूयो भयं संजायते महत्।
क्रुद्धादमर्षणात् तात व्याघ्रादिव महारुरोः॥ २॥
जागर्मि रात्रयः सर्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वसन्।
भीतो वृकोदरात् तात सिंहात् पशुरिवापरः॥ ३॥
न हि तस्य महाबाहोः शक्रप्रतिमतेजसः।
सैन्येऽस्मिन् प्रतिपश्यामि य एनं विषहेद् युधि॥ ४॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे संजय! तुमने जिनका वर्णन किया है, वे सभी बड़े उत्साही हैं। पर ये सारे एक तरफ और भीम एक तरफ है। मुझे वास्तव में क्रोध में भरे हुए अमर्षशील भीमसेन से इतना अधिक डर लगता है, जैसे किसी महान् रुरु मृग को बाघ से लगा रहता है। जैसे सिंह से दूसरे पशु डरे रहते हैं, वैसे ही मैं भी भीम से डरा हुआ सारी रात गर्म और लम्बी साँसें लेता हुआ जागता रहता हूँ। विशाल भुजाओं वाले और इन्द्र के समान तेजस्वी भीम के वेग को युद्ध में सहन करने वाले मैं किसी को भी अपनी सेना में नहीं देखता हूँ।

अमर्षणश्च कौन्तेयो दृढवैरश्च पाण्डवः।
अनर्महासी सोन्मादस्तिर्यक्प्रेक्षी महास्वनः॥ ५॥
महावेगो महोत्साहो महाबाहुर्महाबलः।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति॥ ६॥
यथा मृगाणां यूथेषु सिंहो जातबलश्चरेत्।
मामकेषु तथा भीमो बलेषु विचरिष्यति॥ ७॥
सर्वेषां मम पुत्राणां स एकः क्रूरविक्रमः।
बह्वाशी विप्रतीपश्च बाल्येऽपि रभसः सदा॥ ८॥

वह कुन्तीपुत्र पाण्डव अमर्षशील है और बैर को दृढ़ करके अपने हृदय में रखने वाला है। उसकी हँसी भी हँसी के लिये नहीं होती। वह उद्धत स्वभाव का, टेढ़ा देखने वाला और जोर से गर्जना करने वाला है। उसका वेग बहुत अधिक है, उसका उत्साह और बल महान् है, उसकी भुजाएँ लम्बी हैं, वह मेरे मूर्खपुत्रों का युद्ध के द्वारा अन्त करेगा। जैसे मृगों के झुण्ड में बलवान् सिंह विचरण करता है, वैसे ही भीम मेरी सेनाओं में विचरण करेगा। मेरे सारे पुत्रों में अकेला वही क्रूर पराक्रमवाला, बहुत खाने वाला, विशेषरूप से उलटा चलने वाला और बचपन में भी सदा वेगवान् था।

उद्वेपते मे हृदयं ये मे दुर्योधनादयः।
बाल्येऽपि तेन युध्यन्तो वारणेनेव मर्दिताः॥ ९॥
तस्य वीर्येण संक्लिष्टा नित्यमेव सुता मम।
स एव हेतुर्भेदस्य भीमो भीमपराक्रमः॥ १०॥
ग्रसमानमनीकानि नरवारणवाजिनाम्।
पश्यामीवाग्रतो भीमं क्रोधमूर्च्छितमाहवे॥ ११॥
संजयाचक्ष्व मे शूरं भीमसेनममर्षणम्।
अतिलाभं तु मन्येऽहं यत् तेन रिपुघातिना॥ १२॥
तदैव न हताः सर्वे पुत्रा मम मनस्विना।

मेरे दुर्योधन आदि पुत्र बचपन में भी, जब उससे लड़ते थे, तब हाथी के समान उसके द्वारा वे मसले जाते थे। उसकी याद आते ही मेरा हृदय काँप उठता है। उसके पराक्रम से मेरे पुत्र सदा क्लेश में पड़े रहते हैं। भयानक पराक्रम वाला भीम ही फूट का कारण है। मुझे ऐसा दिखाई दे रहा है, मानो क्रोध से मूर्च्छित हुआ भीम युद्ध में मनुष्य हाथी और घोड़ों की सेना को काल का ग्रास बनाता हुआ मेरे सामने खड़ा है। हे संजय! तुम मुझे उस शूर और अमर्षशील भीम का समाचार सुनाओ। मैं तो इसे बड़े लाभ की बात समझता हूँ कि उस शत्रुओं को मारने वाले मनस्वी ने तभी द्यूतक्रीड़ा के समय मेरे सारे पुत्र मार नहीं दिये।

न स जातु वशे तस्थौ मम बाल्येऽपि संजय॥ १३॥
किं पुनर्मम दुष्पुत्रैः क्लिष्टः सम्प्रति पाण्डवः।
निष्ठुरो रोषणोऽत्यर्थं भज्येतापि न संनमेत्॥ १४॥
तिर्यक्प्रेक्षी संहतभ्रूः कथं शाम्येद् वृकोदरः।
शूरस्तथाप्रतिबलो गौरस्ताल इवोन्नतः॥ १५॥
प्रमाणतो भीमसेनः प्रादेशेनाधिकोऽर्जुनात्।
जवेन वाजिनोऽत्येति बलेनात्येति कुञ्जरान्॥ १६॥
अव्यक्तजल्पी मध्वक्षो मध्यमः पाण्डवो बली।

हे संजय! वह बचपन में भी कभी मेरे वश में नहीं रहा, अब जब मेरे दुष्ट पुत्रों ने उसे बार बार कष्ट दिया है तो वह मेरे वश में कैसे हो सकता है? वह निष्ठुर अत्यन्त रोष करने वाला है। वह

टूट सकता है, पर झुकेगा नहीं, वह टेढ़ी निगाह से देखता है। क्रोध के कारण उसकी भौहें परस्पर मिली रहती हैं। वह वृकोदर कैसे शान्त हो सकता है? वह शूरवीर, अद्वितीय बलवाला, गोरे रंग का तथा ताड़ के बराबर, लम्बाई में अर्जुन में एक बालिशत अधिक है। वह अपने वेग में घोड़ों से भी तथा बल में हाथियों से भी अधिक है। वह स्पष्ट नहीं बोलता, उसकी आँखें मधु के रंग की हैं। वह मध्यम पाण्डव बहुत बलवान् है।

इति बाल्ये श्रुतः पूर्वं मया व्यासमुखात् पुरा॥ १७॥
रूपतो वीर्यतश्चैव याथातथ्येन पाण्डवः।
आयसेन स दण्डेन रथान् नागान् नरान् हयान्॥ १८॥
हनिष्यति रणे क्रुद्धो रौद्रः क्रूरपराक्रमः।
अमर्षी नित्यसंरब्धो भीमः प्रहरतां वरः॥ १९॥
मया तात प्रतीपानि कुर्वन् पूर्वं विमानितः।
निष्कर्णामायासीं स्थूलां सुपार्श्वां काञ्चनीं गदाम्॥ २०॥
शतघ्नीं शतनिर्ह्रादां कथं शक्ष्यन्ति मे सुताः।

मैंने पहले इसके बचपन में व्यास जी के मुख से इसके रूप और पराक्रम का वास्तविक वर्णन सुना था। क्रूर, पराक्रमी, भयानक यह भीम क्रुद्ध होकर युद्ध में लोहे के दण्ड से रथों, हाथियों, सैनिकों, और घोड़ों का संहार कर डालेगा। प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, अमर्षशील तथा नित्य क्रोध में भरा रहने वाला यह भीम, हे तात! पुत्रों के विपरीत आचरण करता हुआ पहले कई बार मेरे द्वारा अपमानित हुआ है। इसकी सीधी, लोहे की मोटी, अच्छे पार्श्वों वाली, सुवर्ण विभूषित गदा को, जो एक ही बार में सैंकड़ों को मारती है, सैंकड़ों बिजलियों के समान जो शब्द करती है, मेरे पुत्र कैसे सहन करेंगे?

अपारमप्लवागाधं समुद्रं शरवेगिनम्॥ २१॥
भीमसेनमयं दुर्गं तात मन्दास्तितीर्षवः।
क्रोशतो मे न शृण्वन्ति बालाः पण्डितमानिनः॥ २२॥
विषमं न हि मन्यन्ते प्रपातं मधुदर्शिनः।
संयुगं ये गमिष्यन्ति नररूपेण मृत्युना॥ २३॥
नियतं चोदिता धात्रा सिंहेनेव महामृगाः।
शैक्यां तात चतुष्किष्कुं षडस्रिममितौजसम्॥ २४॥
प्रहितां दुःखसंस्पर्शां कथं शक्ष्यन्ति मे सुताः।

भीमसेन रूपी समुद्र बहुत गहरा और अपार है। बाण ही इसका वेग है। इस दुर्गम समुद्र को पार करने के लिये कोई नाव भी नहीं है। फिर भी मेरे मन्दबुद्धि पुत्र इसे तैरना चाहते हैं। मैं चिल्लाता रहता हूँ, पर ये अपने को पण्डित समझने वाले कुछ सुनते ही नहीं हैं। इनकी निगाह केवल लटकते हुए शहद के छत्ते पर ही है, वहाँ से भयानक रूप से गिर पड़ने की तरफ इनका ध्यान ही नहीं है। जैसे सिंह से लड़ने के लिये बहुत सारे हिरण उसके सामने चले जाँयें वैसे मनुष्य के रूप में मृत्यु उस भीम से लड़ने के लिये जो जायेंगे, निश्चय ही भगवान् ने ही उन्हें मरने के लिये प्रेरित किया हुआ है। उसकी अत्यन्त तेजस्वी वह गदा, जो छः कोण वाली है और चार हाथ लम्बी है, जिसका स्पर्श दुःखदायी है और जो छींके पर रखने योग्य है, चलाये जाने पर मेरे पुत्रों द्वारा कैसे सहन की जायेगी?

गदां भ्रामयतस्तस्य भिन्दतो हस्तिमस्तकान्॥ २५॥
सृक्किणी लेलिहानस्य बाष्पमुत्सृजतो मुहुः।
उद्दिश्य नागान् पततः कुर्वतो भैरवान् रवान्॥ २६॥
प्रतीपं पततो मत्तान् कुञ्जरान् प्रतिगर्जतः।
विगाह्य रथमार्गेषु वरानुद्दिश्य निघ्नतः॥ २७॥
अग्नेः प्रज्वलितस्येव अपि मुच्येत मे प्रजा।
वीथीं कुर्वन् महाबाहुर्द्रावयन् मम वाहिनीम्॥ २८॥
नृत्यन्निव गदापाणिर्युगान्तं दर्शयिष्यति।

युद्ध में जब भीमसेन गदा को घुमाता हुआ हाथियों के मस्तकों को तोड़ेगा, क्रोध के कारण आँसुओं को बहाता हुआ बार बार अपने होठों को चाटेगा, जब हाथियों की तरफ दौड़ता हुआ भयानक गर्जना करेगा, उलट कर भागते हुए मस्त हाथियों के पीछे जब वह भी उनकी गर्जना के प्रत्युत्तर में गर्जेगा, रथसेना को आलोडित करके उसमें से श्रेष्ठ वीरों को चुन चुन कर मारेगा, तब प्रज्वलित अग्नि के समान उससे मेरे पुत्र क्या बच सकेंगे? वह महाबाहु भीम मेरी सेना में घुसकर, उसमें अपने लिये मार्ग बनाता हुआ, उसे भगाता हुआ, और गदा को हाथ में लिये नाचता हुआ प्रलय के दृश्य को दिखायेगा।

प्रभिन्न इव मातङ्गः प्रभञ्जन् पुष्पितान् द्रुमान्॥ २९॥
प्रवेक्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मे वृकोदरः।
कुर्वन् रथान् विपुरुषान् विसारथिहयध्वजान्॥ ३०॥

आरुजन् पुरुषव्याघ्रो रथिनः सादिनस्तथा।
गङ्गावेग इवानूपांस्तीरजान् विविधान् द्रुमान्॥ ३१॥
प्रभङ्क्ष्यति रणे सेनां पुत्राणां मम संजय।
दिशो नूनं गमिष्यन्ति भीमसेनभयार्दिताः॥ ३२॥
मम पुत्राश्च भृत्याश्च राजानश्चैव संजय।

जैसे मत्त हाथी फूलों वाले वृक्षों को तोड़ता हुआ आगे बढ़ता है, उसी तरह युद्ध में भीमसेन मेरे पुत्रों की सेना में विनाश करता हुआ प्रवेश करेगा। हे संजय! वह पुरुषव्याघ्र रथों को रथियों, सारथियों, घोड़ों और ध्वजों से रहित बनाता हुआ, रथियों और घुड़सवारों के अंगभंग करता हुआ, जैसे गंगा का प्रवाह अपने किनारे के जलमय प्रदेश में विद्यमान वृक्षों को धराशायी कर देता है, वैसे ही वह मेरे पुत्रों की सेना को विनष्ट कर देगा। निश्चय ही भीम के भय से काँपते हुए मेरे पुत्र, सेवक और राजा लोग विभिन्न दिशाओं में भाग जायेंगे।

येन राजा महावीर्यः प्रविश्यान्तःपुरं पुरा॥ ३३॥
वासुदेवसहायेन जरासंधो निपातितः।
कृत्स्नेयं पृथिवी देवी जरासंधेन धीमता॥ ३४॥
मागधेन्द्रेण बलिना वशे कृत्वा प्रतापिता।
भीष्मप्रतापात् कुरवो नयेनान्धकवृष्णयः॥ ३५॥
यन्न तस्य वशे जग्मुः केवलं दैवमेव तत्।
स गत्वा पाण्डुपुत्रेण तरसा बाहुशालिना॥ ३६॥
अनायुधेन वीरेण निहतः किं ततोऽधिकम्।

जिसने पहले श्रीकृष्ण की सहायता से महापराक्रमी राजा जरासन्ध को उसके अन्तःपुर में जाकर मार दिया। यह जरासंध वही बलवान् धीमान् मगध का स्वामी था, जिसने यह सारी निर्दोष भूमि अपने बस में करके इसे पीड़ित करना आरम्भ कर दिया था। भीष्म के प्रताप से जो कौरवलोग तथा नीति के सहारे जो अन्धक और वृष्णिलोग उसके आधीन नहीं हो जाये, वह केवल दैवयोग था। उसी जरासंध को विशाल भुजाओंवाले, वीर पाण्डुपुत्र भीम ने उसके यहाँ जाकर बिना आयुध के ही वेगपूर्वक मार गिराया, इससे अधिक पराक्रम और क्या हो सकता है?

दीर्घकालसमासक्तं विषमाशीविषो यथा॥ ३७॥
स मोक्ष्यति रणे तेजः पुत्रेषु मम संजय।
महेन्द्र इव वज्रेण दानवान् देवसत्तमः॥ ३८॥
भीमसेनो गदापाणिः सूदयिष्यति मे सुतान्।
अविषह्यमनावार्यं तीव्रवेगपराक्रमम्॥ ३९॥
पश्यामीवातिताम्राक्षमापतन्तं वृकोदरम्।
अगदस्याप्यधनुषो विरथस्य विवर्मणः॥ ४०॥
बाहुभ्यां युद्ध्यमानस्य कस्तिष्ठेदग्रतः पुमान्।

लम्बे समय से एकत्र किये हुए अपने विष को जैसे विषैला सर्प किसी पर छोड़ता है, वैसे ही वह भीम अपने पुराने एकत्र किये हुए पराक्रम को हे संजय! युद्ध में मेरे पुत्रों पर छोड़ेगा। देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र ने जैसे वज्र से दानवों का संहार किया था, वैसे ही गदा हाथ में लिये हुए भीमसेन मेरे पुत्रों का विनाश कर देगा। उसका वेग और पराक्रम किसी के द्वारा निवारण किया या सहन किया नहीं जा सकता। अत्यन्त लाल आँखों वाले आक्रमण करते हुए भीम को मानो मैं अपनी आँखों के सामने ही देख रहा हूँ। यदि वह बिना गदा के, बिना धनुष के, बिना रथ के और बिना कवच के भी हो और केवल हाथों से ही युद्ध कर रहा हो, तो भी कौन पुरुष उसके आगे ठहर सकता है?

भीष्मो द्रोणश्च विप्रोऽयं कृपः शारद्वतस्तथा॥ ४१॥
जानन्त्येते तथैवाहं वीर्यज्ञस्तस्य धीमतः।
आर्यव्रतं तु जानन्तः संगरान्तं विधित्सवः॥ ४२॥
सेनामुखेषु स्थास्यन्ति मामकानां नरर्षभाः।
यथैषां मामकास्तात तथैषां पाण्डवा अपि॥ ४३॥
पौत्रा भीष्मस्य शिष्याश्च द्रोणस्य च कृपस्य च।
यदस्मदाश्रयं किंचिद् दत्तमिष्टं च संजय॥ ४४॥
तस्यापचितिमार्यत्वात् कर्तारः स्थविरास्त्रयः।

जैसे मैं उस धीमान् भीम के पराक्रम को जानता हूँ, वैसे ही ये भीष्म, विप्रवर द्रोण और शरद्वानपुत्र कृपाचार्य भी जानते हैं। ये तीनों नरश्रेष्ठ आर्यों के व्रत को जानते हैं और युद्ध में अपना अन्त करने की इच्छा से मेरे पुत्रों की सेना के अग्रभाग में खड़े होंगे। इनके लिये जैसे मेरे पुत्र हैं, वैसे ही पाण्डव भी हैं। भीष्म के दोनों पौत्र हैं और द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के शिष्य हैं। हे संजय! इन तीनों ने हमारे आश्रय में रहकर जो कुछ भी यज्ञादि किये हैं तथा दान दिये हैं, ये वृद्ध पुरुष आर्य होने के कारण उसका बदला अवश्य चुकायेंगे।

स वै शोचामि सर्वान् वै ये युयुत्सन्ति पाण्डवैः॥ ४५॥
विक्रुष्टं विदुरेणादौ तदेतद् भयमागतम्।

संशये तु महत्यस्मिन् किं नु मे क्षममुत्तरम्॥ ४६॥
विनाशं ह्येव पश्यामि कुरूणामनुचिन्तयन्।
मन्ये पर्यायधर्मोऽयं कालस्यात्यन्तगामिनः॥ ४७॥
चक्रे प्रधिरिवासक्तो नास्य शक्यं पलायितुम्।
किंनु कुर्यां कथं कुर्यां क्व नु गच्छामि संजय॥ ४८॥
एते नश्यन्ति कुरवो, मन्दाः कालवशं गताः।
अवशोऽहं तदा तात पुत्राणां निहते शते।
श्रोष्यामि निनदं स्त्रीणां कथं मां मरणं स्पृशेत्॥ ४९॥

मैं उन सबके लिये शोक कर रहा हूँ, जो पाण्डवों से युद्ध करना चाहते हैं। विदुर ने जिस संकट की पहले ही घोषणा कर दी थी, वह संकट अब आ गया है। इस महान् भय के समय मैं अब क्या कर सकता हूँ? बार-बार विचार करने पर भी मुझे तो कौरवों का विनाश ही दिखाई देता है। मैं समझता हूँ कि अत्यन्त तेजी से चलने वाले कालचक्र की यह बारी बारी से प्राप्त होने वाली अवस्था है। मैं इस कालचक्र में नेमी के समान जुड़ा हुआ हूँ, इसलिये मुझे भी इसके साथ ही चलना होगा। मैं इससे दूर नहीं भाग सकता। हे संजय! मैं क्या करूँ? कैसे करूँ? कहाँ जाऊँ? ये मूर्ख कौरव काल के वश में होकर नष्ट होना चाहते हैं। हे तात! पुत्रों के मारे जाने पर मैं लाचार होकर इनकी स्त्रियों का दुःखभरा विलाप सुनता रहूँगा। हाय मेरी मृत्यु किस प्रकार हो सकती है?

यथा निदाघे ज्वलनः समिद्धो
दहेत् कक्षं वायुना चोद्यमानः।
गदाहस्तः पाण्डवो वै तथैव
हन्ता मदीयान् सहितोऽर्जुनेन॥ ५०॥

जैसे ग्रीष्मऋतु में लगी हुई आग वायु के द्वारा प्रेरित होकर अत्यधिक प्रदीप्त होती हुई सारे वन को जला देती है वैसे ही गदा हाथ में लेकर भीमसेन अर्जुन के साथ मेरे सारे पुत्रों को मार डालेगा।

यस्य वै नानृता वाचः कदाचिदनुशुश्रुम।
त्रैलोक्यमपि तस्य स्याद् योद्धा यस्य धनंजयः॥ ५१॥
तस्यैव च न पश्यामि युधि गाण्डीवधन्वनः।
अनिशं चिन्तयानोऽपि यः प्रतीयाद् रथेन तम्॥ ५२॥
अस्यतः कर्णिनालीकान् मार्गणान् हृदयच्छिदः।
प्रत्येता न समः कश्चिद्युधि गाण्डीवधन्वनः॥ ५३॥

जिसको हमने कभी असत्य बोलते हुए नहीं सुना है, जिसका सहायक अर्जुन जैसा योद्धा है, वह युधिष्ठिर तीनों लोकों पर शासन कर सकता है। सारी रात सोचने पर भी मैं किसी ऐसे वीर को नहीं देखता जो गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन का रथ के द्वारा युद्ध में मुकाबला कर सके। युद्ध में कर्णि और नालीक नाम के हृदय को छेदने वाले बाणों को फैंकते हुए गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन के समान और उसका सामना करने वाला कोई नहीं है।

द्रोणकर्णौ प्रतीयातां यदि वीरौ नरर्षभौ।
कृतास्त्रौ बलिनां श्रेष्ठौ समरेष्वपराजितौ॥ ५४॥
महान् स्यात् संशयो लोके न त्वस्ति विजयो मम।
घृणी कर्णः प्रमादी च आचार्यः स्थविरो गुरुः॥ ५५॥
समर्थो बलवान् पार्थो दृढधन्वा जितक्लमः।
भवेत् सुतुमुलं युद्धं सर्वशोऽप्यपराजयः॥ ५६॥
वधे नूनं भवेच्छान्तिस्तयोर्वा फाल्गुनस्य च।
न तु हन्तार्जुनस्यास्ति जेता चास्य न विद्यते॥ ५७॥
मन्युस्तस्य कथं शाम्येन्मन्दान् प्रति य उत्थितः।

यदि अस्त्रविद्या में निष्णात, बलवानों में श्रेष्ठ और युद्धों में पराजित न होने वाले, मनुष्यों में अग्रगण्य वीर द्रोणाचार्य तथा कर्ण भी अर्जुन का सामना करने के लिये आयें तो भी महान् संशय ही रहेगा, विजय तो मेरे विचार से होगी ही नहीं क्योंकि कर्ण घमण्डी और प्रमादी है, द्रोणाचार्य बूढ़े और अर्जुन के गुरु हैं। कुन्तीपुत्र अर्जुन शक्तिशाली, बलवान् और दृढ़ धनुष वाले हैं। उन्होंने थकावट को जीत लिया है। जो भी उनके साथ युद्ध करेगा उसके साथ भयानक युद्ध होगा और विजय अर्जुन की ही होगी। द्रोणाचार्य और कर्ण का वध हो जाये, या अर्जुन का वध हो जाये, तभी युद्ध की निश्चितरूप से शान्ति होगी। किन्तु अर्जुन को मारने वाला या जीतने वाला कोई नहीं है। अर्जुन के हृदय में मेरे मन्दबुद्धि पुत्रों के प्रति जो क्रोध जागृत हुआ है, उसकी शान्ति कैसे हो?

अन्येऽप्यस्त्राणि जानन्ति जीयन्ते च जयन्ति च॥ ५८॥
एकान्तविजयस्त्वेव श्रुयते फाल्गुनस्य ह।
कृष्णावेकरथे यत्तावधिज्यं गाण्डिवं धनुः॥ ५९॥
युगपत् त्रीणि तेजांसि समेतान्यनुशुश्रुम।
नैवास्ति नो धनुस्तादृक न योद्धा न च सारथिः॥ ६०॥
तच्च मन्दा न जानन्ति दुर्योधनवशानुगाः।

दूसरे वीर भी अस्त्रविद्या के जानकार हैं। पर वे कभी जीतते है और कभी जीते जाते हैं, किन्तु अर्जुन की तो अब तक केवल विजय ही सुनी गयी है। यह मैंने सुना है कि कृष्ण और अर्जुन एक ही रथ पर विद्यमान होंगे तथा गांडीव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ी हुई होगी। इस प्रकार तीन तेज एक साथ ही एकत्र होंगे। हम लोगों के पास न तो वैसा धनुष है, न वैसा योद्धा है और न वैसा सारथि है। दुर्योधन के आधीन रहने वाले मेरे मन्दबुद्धि पुत्र इस बात को नहीं जानते हैं।

अपि चास्यन्निवाभाति निघ्नन्निव धनंजयः॥ ६१॥
उद्धरन्निव कायेभ्यः शिरांसि शरवृष्टिभिः।
अपि बाणमयं तेजः प्रदीप्तमिव सर्वतः॥ ६२॥
गाण्डीवोत्थं दहेताजौ पुत्राणां मम वाहिनीम्।
अपि सारथ्यघोषेण भयार्ता सव्यसाचिनः।
वित्रस्ता बहुधा सेना भारती प्रतिभाति मे॥ ६३॥

मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे मानो अर्जुन युद्ध में बाणों को चलाकर शत्रुओं के प्राण ले रहे हैं और बाणवर्षा के द्वारा उनके शिरों को शरीरों से अलग करते जा रहे हैं। गाण्डीव धनुष से उठी हुई बाणों के तेज रूपी अग्नि प्रदीप्त होकर, सब ओर फैलकर क्या युद्ध में मेरे पुत्रों की सेना को भस्म कर देगी? श्रीकृष्ण के सारथिपन को सुनकर अर्जुन के भय से पीड़ित मेरी सेना अनेक प्रकार से आतंकित हो जायेगी, यह मुझे प्रतीत हो रहा है।

यदोद्वमन् निशितान् बाणसंघां-
स्तानाततायी समरे किरीटी।
सृष्टोऽन्तकः सर्वहरो विधात्रा
यथा भवेत् तद्वदपारणीयः॥ ६४॥
तदा ह्यभीक्ष्णं सुबहून् प्रकारान्
श्रोतास्मि तानावसथे कुरूणाम्।
तेषां समन्ताच्च तथा रणाग्रे
क्षयः किलायं भरतानुपैति॥ ६५॥

जब युद्ध में किरीट धारण करने वाले अर्जुन अस्त्रों को संहार के लिये तैयार किये हुए, तीखे बाणों की वर्षा करेंगे, तब भगवान के द्वारा निर्मित सबका अन्त करने वाले काल से पार जाना जैसे असम्भव होता है, वैसे ही उनसे पार पाना असम्भव हो जायेगा। तब महल में बैठा हुआ मैं कौरवों की लगातार बदलती हुई अलग अलग अवस्थाओं के बारे में सुनूँगा। अरे अब भरतवंशियों का सब तरफ से विनाश निश्चित रूप से युद्ध के मैदान में उपस्थित हो रहा है।

चौबीसवाँ अध्याय : दुर्योधन का धृतराष्ट्र से निज उत्कर्ष और पाण्डवों के अपकर्ष का वर्णन।

दुर्योधन उवाच

न भेतव्यं महाराज न शोच्या भवता वयम्।
समर्थाः स्म पराञ्जेतुं बलिनः समरे विभो॥ १॥
पुरा परेषां पृथिवी कृत्स्नाऽऽसीद् वशवर्तिनी।
अस्मान् पुनरमी नाद्य समर्था जेतुमाहवे॥ २॥
छिन्नपक्षाः परे ह्यद्य वीर्यहीनाश्च पाण्डवाः।
एकार्थाः सुखदुःखेषु समानीताश्च पार्थिवाः॥ ३॥
अप्यग्निं प्रविशेयुस्ते समुद्रं वा परंतप।
मदर्थं पार्थिवाः सर्वे तद् विद्धि कुरुसत्तम॥ ४॥

तब दुर्योधन ने कहा कि हे महाराज! आप डरें नहीं। आप हमारे लिये शोक न करें। हे विभो! हम युद्ध में बलवान् हैं और शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ हैं। पहले सारी भूमि हमारे शत्रुओं के वश में थी, अब वह हमारे अधिकार में है, इसलिये ये अब हमें युद्ध में नहीं जीत सकते। पाण्डव इस समय अपनी शक्ति से हीन और पर कटे पक्षी के समान हैं। जिन राजाओं को हमने यहाँ बुलाया है, वे सुख और दुःख दोनों में हमारे जैसा ही प्रयोजन रखते हैं। हे परंतप! मेरे लिये ये राजा लोग सारे अग्नि में या समुद्र में प्रवेश कर सकते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! आप यह निश्चित मानिये।

उन्मत्तमिव चापि त्वां प्रहसन्तीह दुःखितम्।
विलपन्तं बहुविधं भीतं परविकत्थने॥ ५॥
एषां ह्येकैकशो राज्ञां समर्थः पाण्डवान् प्रति।
आत्मानं मन्यते सर्वो व्येतु ते भयमागतम्॥ ६॥

शत्रुओं की प्रशंसा सुनकर आप दुःखी होकर

पागल के समान डरे हुए अनेक प्रकार से विलाप कर रहे हैं, यह देखकर ये लोग हँस रहे हैं। इनमें से एक एक राजा अपने को पाण्डवों के साथ युद्ध करने में समर्थ समझता है, इसलिये आपके मन में आया हुआ यह सारा भय निकल जाना चाहिये।

समर्थं मन्यसे यच्च कुन्तीपुत्रं वृकोदरम्।
तन्मिथ्या न हि मे कृत्स्नं प्रभावं वेत्सि भारत॥ ७॥
मत्समो हि गदायुद्धे पृथिव्यां नास्ति कश्चन।
नासीत् कश्चिदतिक्रान्तो भविता न च कश्चन॥ ८॥
युक्तो दुःखोषितश्चाहं विद्यापारगतस्तथा।
तस्मान्न भीमान्नान्येभ्यो भयं मे विद्यते क्वचित्॥ ९॥
दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः।
संकर्षणस्य भद्रं ते यत् तदैनमुपावसम्॥ १०॥

आप जो कुन्तीपुत्र भीम को बहुत शक्तिशाली समझते हैं, वह असत्य है। हे भारत! आप मेरी सारी शक्तियों को नहीं जानते हैं। गदायुद्ध में मेरे समान इस पृथिवी पर कोई नहीं है। न पहले कोई था और न भविष्य में कोई होगा। मैंने गुरु के पास रहकर कष्टपूर्वक इसे सीखा है और मैं इस गदा युद्ध की विद्या के पार पहुँच गया हूँ, इसलिये भीम से और किसी दूसरे योद्धा से मुझे कोई भय नहीं है। आपका कल्याण हो। जब मैं बलराम जी के पास रह रहा था, तब उनका मेरे विषय में यही निश्चय था कि दुर्योधन के समान गदायुद्ध में कोई नहीं है।

युद्धे संकर्षणसमो बलेनाभ्यधिको भुवि।
गदाप्रहारं भीमो मे न जातु विषहेद् युधि॥ ११॥
एकं प्रहारं यं दद्यां भीमाय रुषितो नृप।
स एवैनं नयेद् घोरः क्षिप्रं वैवस्वतक्षयम्॥ १२॥
इच्छेयं च गदाहस्तं राजन् द्रष्टुं वृकोदरम्।
सुचिरं प्रार्थितो ह्येष मम नित्यं मनोरथः॥ १३॥
गदया निहतो ह्याजौ मया पार्थो वृकोदरः।
विशीर्णगात्रः पृथिवीं परासुः प्रपतिष्यति॥ १४॥

मैं युद्ध में बलराम जी के समान हूँ और सेना की शक्तियों में संसार में सबसे अधिक हूँ। युद्ध में भीम मेरी गदा के प्रहार को कभी सहन नहीं कर सकता। हे राजन्! यदि मैं क्रोध में भरकर भीम पर गदा का एक ही प्रहार कर दूँ, तो वह भयानक प्रहार ही उसे मृत्यु के घर पहुँचा देगा। हे राजन्! मैं चाहता हूँ कि एक बार मैं गदा हाथ में लिये हुए भीम को अपने सामने देखूँ। यह मेरा बहुत दिनों से चाहा हुआ और सदा विद्यमान रहने वाला मनोरथ है। युद्ध में मेरी गदा की चोट खाया हुआ कुन्तीपुत्र भीम छिन्न भिन्न अंग वाला प्राणहीन होकर पृथिवी पर गिर पड़ेगा।

स चाप्येतद् विजानाति वासुदेवार्जुनौ तथा।
दुर्योधनसमो नास्ति गदायामिति निश्चयः॥ १५॥
तत् ते वृकोदरमयं भयं व्येतु महाहवे।
व्यपनेष्याम्यहं ह्येनं मा राजन् विमना भव॥ १६॥

इस बात को भीमसेन, श्रीकृष्ण और अर्जुन भी जानते हैं। यह निश्चित है कि दुर्योधन के समान गदायुद्ध में कोई नहीं है। इसलिये आपका महायुद्ध में भीम से प्राप्त भय दूर हो जाना चाहिये। हे राजन्! मैं उसे मार गिराऊँगा। आप दुःखी मत होइये।

तस्मिन् मया हते क्षिप्रमर्जुनं बहवो रथाः।
तुल्यरूपा विशिष्टाश्च क्षेप्स्यन्ति भरतर्षभ॥ १७॥
भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः कर्णो भूरिश्रवास्तथा।
प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्यः सिन्धुराजो जयद्रथः॥ १८॥
एकैक एषां शक्तस्तु हन्तुं भारत पाण्डवान्।
समेतास्तु क्षणेनैतान् नेष्यन्ति यमसादनम्॥ १९॥
समग्रा पार्थिवी सेना पार्थमेकं धनंजयम्।
कस्मादशक्ता निर्जेतुमिति हेतुर्न विद्यते॥ २०॥

हे भरतश्रेष्ठ! भीम को मेरे द्वारा मार दिये जाने पर अर्जुन पर बहुत सारे महारथी जो उसके समान हैं और उससे बढ़कर भी हैं, घेरकर बाणवर्षा करने लगेंगे। भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, प्राग्ज्योतिष्पुर का राजा, शल्य और सिन्धुराज जयद्रथ इनमें से एक एक हे भारत! पाण्डवों को मारने में समर्थ है। यदि ये सारे मिल जायें तो क्षण भर में सबको मृत्यु के घर पहुँचा देंगे। राजाओं की यह सारी सेना मिलकर एक कुन्तीपुत्र अर्जुन को कैसे नहीं जीत सकती। इसमें कोई कारण नहीं है।

शरव्रातैस्तु भीष्मेण शतशो निचितोऽवशः।
द्रोणद्रौणिकृपैश्चैव गन्ता पार्थो यमक्षयम्॥ २१॥
भीष्मद्रोणकृपाणां च तुल्यः कर्णो मतो मम।
अनुज्ञातश्च रामेण मत्समोऽसीति भारत॥ २२॥
भीमसेने च निहते कोऽन्यो युध्येत भारत।
परेषां तन्ममाचक्ष्व यदि वेत्थ परंतप॥ २३॥

भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, और कृपाचार्य के द्वारा सैकड़ों बार छोड़े हुए बाणसमूहों से अर्जुन को विद्ध होकर और लाचार होकर मृत्यु के घर जाना ही पड़ेगा। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य, इन तीनों के समान कर्ण है, यह मेरा विचार है, क्योंकि हे भारत! परशुराम जी ने अस्त्रविद्या की शिक्षा देने के पश्चात् विदा करते हुए कर्ण से यह कहा था कि तुम मेरे समान हो। हे परंतप भारत! अर्जुन के साथ भीमसेन के भी मारे जाने पर पाण्डवपक्ष में कौन दूसरा ऐसा है, जो युद्ध करने योग्य है? यदि आप जानते हैं तो बताओ।

पञ्च ते भ्रातरः सर्वे धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः।
परेषां सप्त ये राजन् योधाः सारं बलं मतम्॥ २४॥
अस्माकं तु विशिष्टा ये भीष्मद्रोणकृपादयः।
द्रौणिर्वैकर्तनः कर्णः सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः॥ २५॥
प्राग्ज्योतिषाधिपः शल्य आवन्त्यौ च जयद्रथः।
दुःशासनो दुर्मुखश्च दुःसहश्च विशाम्पते॥ २६॥
श्रुतायुश्चित्रसेनश्च पुरुमित्रो विविंशतिः।
शलो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च तवात्मजः॥ २७॥

वे पाँचों भाई, धृष्टद्युम्न और सात्यकि ये सात योद्धा ही हे राजन्! शत्रुओं के बल के सार माने जाते हैं, जैसे भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि। अश्वत्थामा, कर्ण, सोमदत्त, बाह्लीक, प्राग्ज्योतिष पुर का राजा, शल्य, अवन्ति देश का राजा कुमार जयद्रथ, दुश्शासन, दुर्मुख, दुस्सह, श्रुतायु, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल, भूरिश्रवा और आपका पुत्र विकर्ण ये सारे हैं।

अक्षौहिण्यो हि मे राजन् दशैका च समाहृताः।
न्यूनाःपरेषां सप्तैव कस्मान्मे स्यात् पराजयः॥ २८॥
बलं त्रिगुणतो हीनं योध्यं प्राह बृहस्पतिः।
परेभ्यस्त्रिगुणा चेयं मम राजन्ननीकिनी॥ २९॥
गुणहीनं परेषां च बहु पश्यामि भारत।
गुणोदयं बहुगुणमात्मनश्च विशाम्पते॥ ३०॥
एतत् सर्वं समाज्ञाय बलाग्र्यं मम भारत।
न्यूनतां पाण्डवानां च न मोहं गन्तुमर्हसि॥ ३१॥

हे राजन्! सेनाएँ भी मेरे पास ग्यारह अक्षौहिणी एकत्र हो गयी हैं। शत्रुओं के पास इससे कम सात अक्षौहिणी ही इकट्ठी हुई है। फिर मेरी पराजय कैसे हो सकती है? बृहस्पति ने कहा है कि शत्रु की सेना अपने से एक तिहाई कम हो तो उसके साथ अवश्य युद्ध करना चाहिये, पर हे राजन्! मेरी सेना तो उनसे अपने एक तिहाई से अधिक है। हे प्रजानाथ भारत! मैं देख रहा हूँ कि शत्रुओं की सेना हमारी सेना से अनेक गुणों से हीन है पर मेरी सेना उनसे बहुत प्रकार से अधिक और गुणों वाली है। इस प्रकार यह सब समझकर कि मेरी शक्ति अधिक है और पाण्डवों की कम है, आप मोह में मत पड़िये।

पच्चीसवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र का विलाप, दुर्योधन का निज शक्ति वर्णन।

धृतराष्ट्र उवाच

न सन्ति सर्वे पुत्रा मे मूढा दुर्द्यूतदेविनः।
येषां युद्धं बलवता भीमेन रणमूर्धनि॥ १॥
राजानः पार्थिवाः सर्वे प्रोक्षिताः कालधर्मणा।
गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्यन्ति पतंगा इव पावकम्॥ २॥
सर्वे ह्यतिरथाः शूराः कीर्तिमन्तः प्रतापिनः।
सूर्यपावकयोस्तुल्यास्तेजसा समितिञ्जयाः॥ ३॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि कपटपूर्ण जूआ खेलने वाले मेरे उन सारे मूर्खपुत्रों का, जिनका युद्ध के मुहाने पर बलवान् भीम के साथ युद्ध होने वाला है, जीवन अब नहीं है। काल धर्म के द्वारा प्रेरित किये हुए ये सारे राजा लोग गाण्डीव धनुष रूपी अग्नि में पतंगे के समान गिरेंगे। वे सारे ही पाण्डव अतिरथी, शूरवीर, कीर्तिमान्, प्रतापी, तेज में सूर्य और अग्नि के समान और युद्ध विजयी हैं।

येषां युधिष्ठिरो नेता गोप्ता च मधुसूदनः।
योधौ च पाण्डवौ वीरौ सव्यसाचिवृकोदरौ॥ ४॥
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
सात्यकिर्द्रुपदश्चैव धृष्टकेतुश्च सानुजः॥ ५॥
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः।
शिखण्डी क्षत्रदेवश्च तथा वैराटिरुत्तरः॥ ६॥
काशयश्चेदयश्चैव मत्स्याः सर्वे च सृंजयाः।
विराटपुत्रो बभ्रुश्च पञ्चालाश्च प्रभद्रकाः॥ ७॥
तान् सर्वगुणसम्पन्नानमनुष्यप्रतापिनः।
क्रोशतो मम दुष्पुत्रो योद्धुमिच्छति संजय॥ ८॥

जिनके युधिष्ठिर नेता और रक्षक श्रीकृष्ण हैं, जिनके प्रमुख योद्धा अर्जुन और भीम जैसे दो पाण्डव वीर हैं, उन नकुल, सहदेव, पृषत्वंशी धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रुपद, अनुज सहित धृष्टकेतु, पांचालदेशी उत्तमौजा, दुर्जय युधामन्यु, शिखंडी, क्षत्रदेव, विराट पुत्र उत्तर, काशिदेश के, चेदिदेश के, मत्स्यदेश के और सृंजयवंशी वीर, विराटपुत्र बभ्रु तथा पाञ्चाल देश के प्रभद्रक वीर, सबके साथ, जो सर्वगुणसम्पन्न तथा अमानवीय प्रताप वाले हैं, मेरे चिल्लाने पर भी मेरा दुष्ट पुत्र दुर्योधन, हे संजय! युद्ध करना चाहता है।

दुर्योधन उवाच

उभौ स्व एकजातीयौ तथोभौ भूमिगोचरौ।
अथ कस्मात् पाण्डवानामेकतो मन्यसे जयम्॥ ९॥
पितामहं च द्रोणं च कृपं कर्णं च दुर्जयम्।
जयद्रथं सोमदत्तमश्वत्थामानमेव च॥ १०॥
सुतेजसो महेष्वासानिन्द्रोऽपि सहितोऽमरैः।
अशक्तः समरे जेतुं किं पुनस्तात पाण्डवाः॥ ११॥
सर्वे च पृथिवीपाला मदर्थे तात पाण्डवान्।
आर्याः शस्त्रभृतः शूराः समर्थाःप्रतिबाधितुम्॥ १२॥

तब दुर्योधन ने उत्तर दिया हम पाण्डव और कौरव दोनों एक ही जाति के हैं और इसी भूमि पर रहते हैं। फिर आपने केवल अकेले पाण्डवों की ही विजय होगी, यह धारणा कैसे बना ली? पितामह भीष्म को, द्रोणाचार्य को, कृपाचार्य को और दुर्जय कर्ण को, जयद्रथ को, सोमदत्त को और अश्वत्थामा को, इन सारे अत्यन्त तेजस्वी धनुर्धरों को इन्द्र भी देवताओं के साथ युद्ध में जीतने में असमर्थ हैं, फिर हे तात! पाण्डवों की तो बात ही क्या है? हे तात! ये सारे मेरे लिये एकत्र हुए राजा लोग श्रेष्ठ शस्त्रधारी और शूरवीर हैं। ये पाण्डवों को पीड़ित करने में समर्थ हैं।

न मामकान् पाण्डवास्ते समर्थाः प्रतिवीक्षितुम्।
पराक्रान्तो ह्यहं पाण्डून् सपुत्रान् योद्धुमाहवे॥ १३॥
मत्प्रियं पार्थिवाः सर्वे, ये चिकर्षन्ति भारत।
ते तानावारयिष्यन्ति, ऐणेयानिव तन्तुना॥ १४॥
महता रथवंशेन शरजालैश्च मामकैः।
अभिद्रुता भविष्यन्ति पञ्चालाः पाण्डवैः सह॥ १५॥

मेरे इन वीरों की तरफ पाण्डव लोग आँख उठाकर भी नहीं देख सकते। मैं स्वयं ही पुत्रों सहित पाण्डवों से युद्धक्षेत्र में लड़ने में समर्थ हूँ। ये सारे राजा लोग जो मेरा प्रिय करना चाहते हैं, हे भारत! उन पाण्डवों को इस प्रकार रोक देंगे, जैसे हिरण के बच्चों को जाल के द्वारा रोक दिया जाता है। मेरे विशाल संख्या में विद्यमान रथियों के द्वारा छोड़े हुए बाणों से पांचाल लोग पाण्डवों के साथ युद्धक्षेत्र से भाग जायेंगे।

धृतराष्ट्र उवाच

उन्मत्त इव मे पुत्रो विलपत्येष संजय।
न हि शक्तो रणे जेतुं धर्मराजं युधिष्ठिरम्॥ १६॥
जानाति हि यथा भीष्मः पाण्डवानां यशस्विनाम्।
बलवत्तां सपुत्राणां धर्मज्ञानां महात्मनाम्॥ १७॥
यतो नारोचयदयं विग्रहं तैर्महात्मभिः।
किं तु संजय मे ब्रूहि पुनस्तेषां विचेष्टितम्॥ १८॥
कस्तांस्तरस्विनो भूयः संदीपयति पाण्डवान्।
अर्चिष्मतो महेष्वासान् हविषा पावकानिव॥ १९॥

तब धृतराष्ट्र बोले कि हे संजय! यह मेरा पुत्र पागल के समान प्रलाप कर रहा है। यह युद्ध में धर्मराज युधिष्ठिर को जीतने में समर्थ नहीं है। उन बलवान्, धर्मज्ञ, मनस्वी और यशस्वी पुत्रसहित पाण्डवों के बारे में भीष्म जी अच्छी तरह से जानते हैं। इसीलिये ये उन महात्माओं के साथ युद्ध करना अच्छा नहीं समझते। पर संजय! तुम मुझे पाण्डवों की चेष्टाओं के विषय में फिर बताओ। उन वेगशाली, तेजस्वी, महाधनुर्धर पाण्डवों को कौन वीर बार बार इस प्रकार उत्तेजित करता है, जैसे घी की आहुति से अग्नि को उत्तेजित किया जाता है।

संजय उवाच

धृष्टद्युम्नः सदैवैतान् संदीपयति भारत।
युद्ध्यध्वमिति मा भैष्ट युद्धाद् भरतसत्तमाः॥ २०॥
ये केचित् पार्थिवास्तत्र धार्तराष्ट्रेण संवृताः।
युद्धे समागमिष्यन्ति तुमुले शस्त्रसंकुलेः॥ २१॥
तान् सर्वानाहवे क्रुद्धान् सानुबन्धान् समागतान्।
अहमेकः समादास्ये तिमिर्मत्स्यानिवौदकान्॥ २२॥
भीष्मं द्रोणं कृपं कर्णं द्रौणिं शल्यं सुयोधनम्।
एतांश्चापि निरोत्स्यामि वेलेव मकरालयम्॥ २३॥

तब संजय ने उत्तर दिया कि हे भारत! धृष्टद्युम्न सदा ही उन्हें उत्तेजित करता रहता है। वह कहता

है कि हे भरश्रेष्ठों! युद्ध से डरो मत! युद्ध अवश्य करो। दुर्योधन के द्वारा एकत्र किये हुए जो कोई भी राजा उस भयानक शस्त्रास्त्रों वाले युद्ध में आयेंगे, उन सब क्रोध में भरकर आये हुओं को मैं अकेला इस प्रकार वश में कर लूँगा जैसे तिमि नाम का विशाल मत्स्य जल की दूसरी छोटी मछलियों को निगल जाता है। मैं भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य और दुर्योधन इनको भी ऐसे रोक दूँगा, जैसे किनारा सागर की लहरों को रोक देता है।

तथा ब्रुवन्तं धर्मात्मा प्राह राजा युधिष्ठिरः।
तव धैर्यं च वीर्यं च पञ्चालाः पाण्डवैः सह॥ २४॥
सर्वे समधिरूढाः स्म संग्रामान्नः समुद्धर।
जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम्॥ २५॥
समर्थमेकं पर्याप्तं कौरवाणां विनिग्रहे।
पुरस्तादुपयातानां कौरवाणां युयुत्सताम्॥ २६॥

इस प्रकार कहते हुए धृष्टद्युम्न को धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर ने कहा कि पांचाल लोगों ने पाण्डवों के साथ आपके ही धैर्य और पराक्रम का आश्रय लिया हुआ है। इस संग्राम से आप ही हम लोगों का उद्धार करो। हे महाबाहु! मैं जानता हूँ कि तुम क्षत्रियधर्म में विद्यमान हो। तुम युद्ध करने की इच्छा से सामने आये हुए कौरवों को बस में करने में अकेले ही पर्याप्त समर्थ हो।

भवता यद् विधातव्यं तन्नः श्रेयः परंतप।
संग्रामादपयातानां भग्नानां शरणैषिणाम्॥ २७॥
पौरुषं दर्शयञ्शूरो यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान्।
क्रीणीयात् तं सहस्रेण इति नीतिमतां मतम्॥ २८॥
स त्वं शूरश्च वीरश्च विक्रान्तश्च नरर्षभ।
भयार्तानां परित्राता संयुगेषु न संशयः॥ २९॥

हे परंतप! आप जो कुछ भी करेंगे, वह हमारे लिये कल्याणकारी होगा। युद्ध से हटे हुए, निराश और शरण को चाहने वाले लोगों के आगे खड़ा होकर जो पुरुष अपने पौरुष को दिखाता है, उसे सहस्रों की सम्पत्ति देकर भी खरीद लेना चाहिये, ऐसा नीतिवान लोगों का मत है। हे नरश्रेष्ठ! तुम ऐसे ही शूरवीर, पराक्रमी हो और युद्ध में निस्सन्देह भय से पीड़ित लोगों की रक्षा कर सकते हो।

एवं ब्रुवति कौन्तेये धर्मात्मनि युधिष्ठिरे।
धृष्टद्युम्न उवाचेदं मां वचो गतसाध्वसम्।
सर्वाञ्जनपदान् सूत योधा दुर्योधनस्य ये॥ ३०॥
सबाह्लिकान् कुरून् ब्रूयाः प्रातिपेयाञ्शरद्वतः।
सूतपुत्रं तथा द्रोणं सहपुत्रं जयद्रथम्॥ ३१॥
दुःशासनं विकर्णं च तथा दुर्योधनं नृपम्।
भीष्मं च ब्रूहि गत्वा त्वमाशु गच्छ च मा चिरम्॥ ३२॥

कुन्तीपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिर के इस प्रकार कहते हुए धृष्टद्युम्न ने मुझसे निडरता से युक्त यह वचन कहा कि हे सूत! तुम सारे जनपद के लोगों को, दुर्योधन के जो योद्धा हैं उन्हें, प्रतीप के पुत्र बाह्लीक सहित कौरवों से, कर्ण और पुत्रसहित द्रोणाचार्य से, जयद्रथ से, दुश्शासन, विकर्ण और राजा दुर्योधन तथा भीष्म से तुम जल्दी जाकर यह कहो, देर मत करो कि—

युधिष्ठिरः साधुनैवाभ्युपेयो
मा वो वधीदर्जुनो देवगुप्तः।
राज्यं दद्ध्वं धर्मराजस्य तूर्णं
याचध्वं वै पाण्डवं लोकवीरम्॥ ३३॥
नैतादृशो हि योधोऽस्ति पृथिव्यामिह कश्चन।
यथाविधः सव्यसाची पाण्डवः सत्यविक्रमः॥ ३४॥

युधिष्ठिर केवल उत्तम व्यवहार से ही वश में किये जा सकते हैं। ऐसा न हो कि देवों से सुरक्षित अर्जुन तुम लोगों का वध कर दें। इसलिये धर्मराज को उनके हिस्से का राज्य जल्दी दे दो और विश्वविख्यात वीर अर्जुन से क्षमायाचना करो। सत्य पराक्रमी पाण्डुपुत्र अर्जुन जैसे योद्धा पृथिवी पर कहीं नहीं हैं।

छब्बीसवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र का दुर्योधन को समझाना, पर दुर्योधन का युद्ध निश्चय।

दुर्योधन निवर्तस्व युद्धाद् भरतसत्तम।
न हि युद्धं प्रशंसन्ति सर्वावस्थमरिंदम॥ १॥
अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम्।
प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिंदम॥ २॥
एतद्धि कुरवः सर्वे मन्यन्ते धर्मसंहितम्।
यत् त्वं प्रशान्तिं मन्येथाः पाण्डुपुत्रैर्महात्मभिः॥ ३॥
अङ्गेमां समवेक्षस्व पुत्र स्वामेव वाहिनीम्।
जात एष तवाभावस्त्वं तु मोहान्न बुध्यसे॥ ४॥

तब धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा कि हे भरतश्रेष्ठ! हे शत्रुओं का दमन करने वाले दुर्योधन! तुम युद्ध का त्याग कर दो। लोग युद्ध की किसी भी अवस्था में प्रशंसा नहीं करते हैं। मन्त्रियों सहित जीवन बिताने के लिये तुम्हारे लिये आधा राज्य ही पर्याप्त है। हे शत्रुओं का दमन करने वाले! तुम पाण्डवों को उनका उचित भाग दे दो। सारे कौरव लोग इस ही बात को धर्म के अनुसार मानते हैं कि तुम महात्मा पाण्डवों के साथ शान्ति की स्थापना कर लो। हे वत्स! तुम अपनी सेना की ही तरफ देखो। यह तुम्हारे विनाश का समय उपस्थित हुआ है, पर तुम मोह के कारण समझ नहीं रहे हो।

न त्वहं युद्धमिच्छामि नैतदिच्छति बाह्लिकः।
न च भीष्मो न च द्रोणो नाश्वत्थामा न संजयः॥ ५॥
न सोमदत्तो न शलो न कृपो युद्धमिच्छति।
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवास्तथा॥ ६॥
येषु सम्प्रतितिष्ठेयुः कुरवः पीडिताः परैः।
ये युद्धं नाभिनन्दन्ति तत् तुभ्यं तात रोचताम्॥ ७॥
न त्वं करोषि कामेन कर्णः कारयिता तव।
दुःशासनश्च पापात्मा शकुनिश्चापि सौबलः॥ ८॥

न तो मैं युद्ध को चाहता हूँ और न ही बाह्लीक युद्ध को चाहते हैं। भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, संजय, सोमदत्त, शल, कृपाचार्य, सत्यव्रत, पुरुमित्र, जय और भूरिश्रवा भी युद्ध को नहीं चाहते हैं। शत्रुओं से पीड़ित होने पर कौरव जिनका आश्रय ले सकते हैं, वे युद्ध को नहीं चाहते हैं। यह बात तुम्हें भी पसन्द होनी चाहिये। तुम अपनी इच्छा से युद्ध की कामना नहीं कर रहे हो, कर्ण तुमसे युद्ध करवा रहा है। पापी दुश्शासन और सुबलपुत्र शकुनि भी इसमें सहयोग दे रहे हैं।

दुर्योधन उवाच

नाहं भवति न द्रोणे नाश्वत्थाम्नि न संजये।
न भीष्मे न च काम्बोजे न कृपे न च बाह्लिके॥ ९॥
सत्यव्रते पुरुमित्रे भूरिश्रवसि वा पुनः।
अन्येषु वा तावकेषु भारं कृत्वा समाह्वयम्॥ १०॥
अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे।
एते वयं हनिष्यामः पाण्डवान् समरे त्रयः॥ ११॥
अहं हि पाण्डवान् हत्वा प्रशास्ता पृथिवीमिमाम्।
मां वा हत्वा पाण्डुपुत्रा भोक्तारः पृथिवीमिमाम्॥ १२॥

तब दुर्योधन ने कहा कि आप, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, संजय, भीष्म, काम्बोज नरेश, कृपाचार्य, बाह्लीक, सत्यव्रत, पुरुमित्र और भूरिश्रवा तथा आपके दूसरे योद्धाओं पर भार रखकर मैंने पाण्डवों को युद्ध के लिये नहीं ललकारा है। हे तात! मैं, कर्ण और भाई दुश्शासन, ये हम तीनों युद्ध में पाण्डवों को मार देंगे। इस सारी भूमि को या तो मैं पाण्डवों को मारकर भोगूँगा, या पाण्डव मुझे मारकर भोगेंगे।

त्यक्तं मे जीवितं राज्यं धनं सर्वं च पार्थिव।
न जातु पाण्डवैः सार्धं वसेयमहमच्युत॥ १३॥
यावद्धि सूच्यास्तीक्ष्णाया विध्येदग्रेण मारिष।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति॥ १४॥

हे राजन्! हे अच्युत! मैं अपने प्राण, राज्य और धन सब कुछ छोड़ सकता हूँ, पर मैं पाण्डवों के साथ मिलकर नहीं रह सकता। हे पूज्य पिताजी! एक सूई की बारीक नोक से जितनी भूमि बिंध सकती है, उतनी भी मैं पाण्डवों को नहीं दे सकता।

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वान् वस्तात शोचामि त्यक्तो दुर्योधनो मया।
ये मन्दमनुयास्यध्वं यान्तं वैवस्वतक्षयम्॥ १५॥
रुरूणामिव यूथेषु व्याघ्राः प्रहरतां वराः।
वरान् वरान् हनिष्यन्ति समेता युधि पाण्डवाः॥ १६॥
सम्पूर्णं पूरयन् भूयो धनं पार्थस्य माधवः।
शैनेयः समरे स्थाता बीजवत् प्रवपञ्शरान्॥ १७॥

सेनामुखे प्रयुद्धानां भीमसेनो भविष्यति।
तं सर्वे संश्रयिष्यन्ति प्राकारमकुतोभयम्॥ १८॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि दुर्योधन को तो मैंने छोड़ दिया, पर हे तात कौरवों! मैं उन आप सबके लिये शोक कर रहा हूँ जो मृत्युलोक को जाते हुए इस मूर्ख का अनुकरण करेंगे। जैसे व्याघ्र रुरु नामके हिरणों के समूहों पर आक्रमण करते हैं, वैसे ही प्रहार करने में श्रेष्ठ पाण्डव एक साथ युद्ध में चुन चुन कर श्रेष्ठ योद्धाओं का संहार करेंगे। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर के वैभव की वृद्धि करते हुए, मधुवंशी शिनिपौत्र सात्यकि खेत में बीजों के समान युद्धक्षेत्र में बाणों को बिखेरते हुए वहाँ विद्यमान होंगे। सेना के अगले भाग में योद्धाओं के आगे भीमसेन खड़े होंगे। सारे योद्धा लोग निर्भय होकर उन्हीं का किले की चारदिवारी के समान आश्रय लेंगे।

यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरान् विनिपातितान्।
विशीर्णदन्तान् गिर्याभान् भिन्नकुम्भान् सशोणितान्॥ १९॥
तानभिप्रेक्ष्य संग्रामे विशीर्णानिव पर्वतान्।
भीतो भीमस्य संस्पर्शात् स्मर्तासि वचनस्य मे॥ २०॥
निर्दग्धं भीमसेनेन सैन्यं रथहयद्विपम्।
गतिमग्नेरिव प्रेक्ष्य स्मर्तासि वचनस्य मे॥ २१॥
महद्वो भयमागामि न चेच्छाम्यथ पाण्डवैः।
गदया भीमसेनेन हताः शममुपैष्यथ॥ २२॥
महावनमिवच्छिन्नं यदा द्रक्ष्यसि पातितम्।
बलं कुरूणां भीमेन तदा स्मर्तासि मे वचः॥ २३॥

जब तुम पर्वतों के समान विशाल हाथियों को भीम के द्वारा दाँत तोड़े हुए, मस्तक फोड़े हुए, खून बहाते हुए और भूमि पर पड़े हुए देखोगे। मानो पर्वत गिरे हुए पड़े हों, जब तुम भीमसेन के स्पर्श से भी डरोगे, तब तुम्हें मेरी बातें याद आयेंगी। जब भीमसेन तुम्हारी रथ, घोड़े और हाथियों वाली सेना को अपनी क्रोध की अग्नि में जला देंगे, तब उनकी उस क्रोधाग्नि के बढ़ते हुए वेग को देखकर तुम्हें मेरी बातें याद आयेंगी। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारा पाण्डवों से युद्ध हो। तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा भय आने वाला है। यदि युद्ध हो गया तो तुम भीम की गदा के आगे जाकर शान्त हो जाओगे। जैसे विशाल वन को काटकर गिरा दिया जाता है, वैसे ही जब तुम अपनी सेना को भीम के द्वारा नष्ट किया हुआ देखोगे, तो तुम्हें मेरी बातें याद आयेंगी।

सत्ताईसवाँ अध्याय : कर्ण की गर्वोक्ति भीष्म का आक्षेप। कर्ण का सभा से जाना।

उवाच कर्णो धृतराष्ट्रपुत्रं
प्रहर्षयन् संसदि कौरवाणाम्।
पितामहस्तिष्ठतु ते समीपे
द्रोणश्च सर्वे च नरेन्द्रमुख्याः॥ १॥
यथा प्रधानेन बलेन गत्वा
पार्थान् हनिष्यामि ममैष भारः।

तब कौरवों की उस सभा में, कर्ण दुर्योधन के हर्ष को बढ़ाता हुआ बोला कि पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य और सारे प्रमुख राजा लोग, हे दुर्योधन! तुम्हारे ही पास विद्यमान रहें, मैं स्वयं ही प्रधान सेना के साथ जाकर सारे कुन्तीपुत्रों को मार दूँगा। इसका उत्तरदायित्व मुझ पर रहा।

एवं ब्रुवन्तं तमुवाच भीष्मः
किं कत्थसे कालपरीतबुद्धे॥ २॥
न कर्ण जानासि तथा प्रधाने।
हते हताः स्युर्धृतराष्ट्रपुत्राः।
बाणस्य भौमस्य च कर्ण हन्ता
किरीटिनं रक्षति वासुदेवः॥ ३॥
यस्त्वादृशानां च वरीयसां च
हन्ता रिपूणां तुमुलं प्रगाढे।

इस प्रकार कहते हुए उस कर्ण से तब भीष्म ने कहा कि तेरी बुद्धि को काल ने नष्ट कर दिया है, अपनी डींग क्यों मार रहा है? तू यह नहीं जानता कि युद्ध में तुझ प्रधानवीर के मारे जाने पर सारे धृतराष्ट्र के पुत्र मृतप्रायः हो जायेंगे। वे वासुदेव श्रीकृष्ण जिन्होंने भौमासुर और बाणासुर का संहार किया है, जो भयानक युद्ध में तुझ जैसे और तुझ से भी प्रबल शत्रुओं को नष्ट कर सकते हैं, अर्जुन की रक्षा करते हैं।

कर्ण उवाच असंशयं वृष्णिपतिर्यथोक्त-
स्तथा च भूयांश्च ततो महात्मा॥ ४॥
अहं यदुक्तः परुषं तु किञ्चित्
पितामहस्तस्य फलं शृणोतु।
न्यस्यामि शस्त्राणि न जातु संख्ये
पितामहो द्रक्ष्यति मां सभायाम्॥ ५॥
त्वयि प्रशान्ते तु मम प्रभावं
द्रक्ष्यन्ति सर्वे भुवि भूमिपालाः।
इत्येवमुक्त्वा स महाधनुष्मान्
हित्वा सभां स्वं भवनं जगाम॥ ६॥

तब कर्ण ने उत्तर दिया कि निस्सन्देह वृष्णिपति श्रीकृष्ण के विषय में जैसा कहा गया है, वह महात्मा वैसे ही हैं और उससे भी बढ़कर हैं, किन्तु मेरे बारे में जो कटु शब्द कहे गये हैं, पितामह उसके परिणाम को सुन लें। मैं अपने शस्त्रास्त्रों को रख देता हूँ। अब पितामह न तो मुझे इस सभा में और न युद्ध में देखेंगे। आपके शान्त हो जाने पर ही सारे राजा लोग इस भूमि पर मेरे प्रभाव को देखेंगे। ऐसा कहकर वह महाधनुर्धर सभा को छोड़कर अपने घर चला गया।

भीष्म उवाच- सत्यप्रतिज्ञः किल सूतपुत्र-
स्तथा स भारं विषहेत कस्मात्।
व्यूहं प्रतिव्यूह्य शिरांसि भित्त्वा
लोकक्षयं पश्यत भीमसेनात्॥ ७॥
यदैव रामे भगवत्यनिन्द्ये
ब्रह्म ब्रुवाणः कृतवांस्तदस्त्रम्।
तदैव धर्मश्च तपश्च नष्टं
वैकर्तनस्याधम पूरुषस्य॥ ८॥

तब भीष्म ने कहा कि यह सूतपुत्र कर्ण कैसा सत्यप्रतिज्ञ है? इतना बड़ा बोझ यह कैसे सँभाल सकता है? अब आप लोग पाण्डवों की सेना के व्यूह के मुकाबले अपनी सेना का व्यूह बनाकर एक दूसरे के सिरों को काटो और भीमसेन के द्वारा किये जाने वाले लोगों के संहार को देखो। जब ही इस कर्ण ने अनिन्दनीय भगवान् परशुराम जी को अपने आपको ब्राह्मण बताकर उनसे विद्या सीखी, तभी इस अधमपुरुष कर्ण का धर्म और तप नष्ट हो गया था।

दुर्योधन उवाच
सदृशानां मनुष्येषु सर्वेषां तुल्यजन्मनाम्।
कथमेकान्ततस्तेषां पार्थानां मन्यसे जयम्॥ ९॥
वयं च तेऽपि तुल्या वै वीर्येण च पराक्रमैः।
समेन वयसा चैव प्रातिभेन श्रुतेन च॥ १०॥
अस्त्रेण योधयुग्या च शीघ्रत्वे कौशले तथा।
सर्वे स्म समजातीयाः सर्वे मानुषयोनयः॥ ११॥
पितामह विजानीषे पार्थेषु विजयं कथम्।
नाहं भवति न द्रोणे न कृपे न च बाह्लिके॥ १२॥
अन्येषु च नरेन्द्रेषु पराक्रम्य समारभे।

तब दुर्योधन ने कहा कि हे पितामह! शिक्षा की दृष्टि से हम और पाण्डव समान है।, हमारा जन्म भी एक कुल में हुआ है, फिर आप अकेले पाण्डवों की ही विजय क्यों समझते हैं? हम और वे शक्ति, पराक्रम, आयु, प्रतिभा और विद्या इन सभी में एक समान हैं। हम सब मनुष्य जाति के हैं। इस प्रकार हमारी जाति समान है, अस्त्रविद्या, योद्धाओं के संग्रह, हाथ की फुर्ती और कौशल इन सभी में हम और वे समान हैं। फिर हे पितामह! आप कैसे जानते हैं कि विजय कुन्तीपुत्रों की ही होगी? मैं आप, द्रोणाचार्य, बाह्लीक तथा दूसरे राजाओं के पराक्रम के आधार पर युद्ध का आरम्भ नहीं कर रहा हूँ।

अहं वैकर्तनः कर्णो भ्राता दुःशासनश्च मे॥ १३॥
पाण्डवान् समरे पञ्च हनिष्यामः शितैः शरैः।
ततो राजन् महायज्ञैर्विविधैर्भूरिदक्षिणैः॥ १४॥
ब्राह्मणांस्तर्पयिष्यामि गोभिरश्वैर्धनेन च।
यदा परिकरिष्यन्ति ऐणेयानिव तन्तुना।
अतरित्रानिव जले बाहुभिर्मामका रणे॥ १५॥
पश्यन्तस्ते परांस्तत्र रथनागसमाकुलान्।
तदा दर्पं विमोक्ष्यन्ति पाण्डवाः स च केशवः॥ १६॥

मैं सूर्यपुत्र कर्ण और भाई दुश्शासन, युद्ध में पाँचों पाण्डवों को अपने तीखे बाणों से मार देंगे। हे राजन्! फिर मैं बहुत दक्षिणावाले अनेक प्रकार के महायज्ञों का अनुष्ठान करूँगा और गायों घोड़ों तथा धन का दान कर ब्राह्मणों को तृप्त करूँगा। जैसे फन्दे में हरिण के बच्चे को फँसाकर खींचा जाता है, जैसे तैरना न जाननेवालों को पानी में डुबो दिया जाता है, वैसे ही जब मेरे सैनिक युद्ध में अपने बाहुबल से पाण्डवों को पीड़ित करेंगे, तब रथ और हाथियों से भरी हुई शत्रुओं की सेनाओं को देखते हुए पाण्डव और श्रीकृष्ण अपने अभिमान को छोड़ देंगे।

अठ्ठाईसवाँ अध्याय : विदुर का धृतराष्ट्र को संधि की सलाह देना।

विदुर उवाच

शकुनीनामिहार्थाय पाशं भूमावयोजयत्।
कश्चिच्छाकुनिकस्तात पूर्वेषामिति शुश्रुम॥ १॥
तस्मिन् द्वौ शकुनौ बद्धौ युगपत् सहचारिणौ।
तावुपादाय तं पाशं जग्मतुः खचरावुभौ॥ २॥
तौ विहायसमाक्रान्तौ दृष्ट्वा शाकुनिकस्तदा।
अन्वधावदनिर्विण्णो येन येन स्म गच्छतः॥ ३॥
तथा तमनुधावन्तं मृगयुं शकुनार्थिनम्।
आश्रमस्थो मुनिः कश्चिद् ददर्शाथ कृताह्निकः॥ ४॥

तब विदुर जी कहने लगे कि हे तात! हमने पूर्व पुरुषों से सुना है कि किसी व्याध ने एक बार पक्षियों के लिये भूमि पर जाल फैलाया। उस जाल में एक साथ ही विचरनेवाले दो पक्षी फँस गये। वे दोनों पक्षी तब उस जाल को लेकर आकाश में उड़ गये। उन दोनों पक्षियों को आकाश में उड़ता हुआ देखकर भी वह व्याध बिना उदास हुए जिस जिस मार्ग से वे उड़ रहे थे, उसी उसी मार्ग से उनके पीछे दौड़ने लगा। उस जाल के पीछे दौड़ते हुए उस पक्षियों के लोभी व्याध को अपने आश्रम में नित्यकर्म करके बैठे हुए एक मुनि ने देखा।

तावन्तरिक्षगौ शीघ्रमनुयान्तं महीचरम्।
श्लोकेनानेन कौरव्य पप्रच्छ स मुनिस्तदा॥ ५॥
विचित्रमिदमाश्चर्यं मृगहन् प्रतिभाति मे।
प्लवमानौ हि खचरौ पदातिरनुधावसि॥ ६॥

हे कुरुनन्दन! उन आकाश में जाते हुए पक्षियों के पीछे भूमि पर दौड़ते हुए व्याध से मुनि ने निम्नलिखित इस श्लोक के अनुसार पूछा कि हे व्याध! यह तो बड़ी विचित्र बात मुझे प्रतीत हो रही है कि तू आकाश में उड़ते हुए इन पक्षियों के पीछे पैदल ही भूमि पर दौड़ रहा है।

शाकुनिक उवाच

पाशमेकमुभावेतौ सहितौ हरतो मम।
यत्र वै विवदिष्येते तत्र मे वशमेष्यतः॥ ७॥
तौ विवादमनुप्राप्तौ शकुनौ मृत्युसंधितौ।
विगृह्य च सुदुर्बुद्धी पृथिव्यां संनिपेततु॥ ८॥
तौ युध्यमानौ संरब्धौ मृत्युपाशवशानुगौ।
उपसृत्यापरिज्ञातो जग्राह मृगहा तदा॥ ९॥
एवं ये ज्ञातयोऽर्थेषु मिथो गच्छन्ति विग्रहम्।
तेऽमित्रवशमायान्ति शकुनाविव विग्रहात्॥ १०॥

तब व्याध ने कहा कि ये दोनों पक्षी मिलकर मेरे जाल को लिये जा रहे हैं, जब ये आपस में लड़ेंगे तब मेरे बस में आ जायेंगे। विदुर जी ने कहा कि कुछ समय पश्चात् मृत्यु के बस में पड़कर वे पक्षी आपस में विवाद करने लगे और फिर वे मूर्ख लड़ते हुए पृथिवी पर गिर पड़े। मौत के फन्दे में फँसे हुए, अत्यन्त क्रुद्ध हुए हुए वे दोनों पक्षी परस्पर लड़ रहे थे। तभी शिकारी ने चुपचाप वहाँ आकर उन्हें पकड़ लिया। इसी प्रकार परिवार के जो व्यक्ति धनसम्पत्ति के लोभ से आपस में लड़ते हैं, वे इन पक्षियों की तरह से शत्रुओं के आधीन हो जाते हैं।

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रश्नोऽथ समागमः।
एतानि ज्ञातिकार्याणि न विरोधः कदाचन॥ ११॥
ये स्म काले सुमनसः सर्वे वृद्धानुपासते।
सिंहगुप्तमिवारण्यमप्रधृष्या भवन्ति ते॥ १२॥
येऽर्थं संततमासाद्य दीना इव समासते।
श्रियं ते सम्प्रयच्छन्ति द्विषद्भ्यो भरतर्षभ॥ १३॥
धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ॥ १४॥

साथ मिलकर भोजन करना, परस्पर वार्तालाप करना, एक दूसरे के सुखदुःख को पूछना, और आपस में मिलते रहना, यही परिवारवालों के परस्पर किये जाने वाले कार्य हैं। उन्हें एक दूसरे से विरोध कभी नहीं करना चाहिये। जो परिवारवाले शुद्ध हृदय रखते हैं और वृद्धों की सेवा करते हैं, वे सिंह से सुरक्षित वन की तरह दूसरे से अनाक्रमणीय हो जाते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! इसके विपरीत जो परिवार के लोग धन को प्राप्त करके भी गरीबों के समान एक दूसरे पर ललचाते हैं, वे अपने ऐश्वर्य को अपने शत्रुओं को दे डालते हैं। हे भरतश्रेष्ठ धृतराष्ट्र! जलती हुई लकड़ियाँ अलग अलग करने पर धूआँ देती हैं, पर एकत्र करने पर तेजी से जलती हैं, यही अवस्था परिवार वालों की होती है।

दुर्योधनो योद्धुमनाः समरे सव्यसाचिना।
न च पश्यामि तेजोऽस्य विक्रमं वा तथाविधम्॥ १५॥
एकेन रथमास्थाय पृथिवी येन निर्जिता।
भीष्मद्रोणप्रभृतयः संत्रस्ताः साधुयायिनः॥ १६॥
विराटनगरे भग्नाः किं तत्र तव दृश्यताम्।
प्रतीक्षमाणो यो वीरः क्षमते वीक्षितं तव॥ १७॥

दुर्योधन युद्ध में अर्जुन से भिड़ने की इच्छा रखता है। पर मैं तो उसके अन्दर उसके समान पराक्रम और तेज को नहीं देखता हूँ। जिस अर्जुन ने एक रथ पर बैठकर सारी भूमि को जीत लिया। जिसने विराट नगर में भीष्म द्रोण जैसे योद्धाओं को भी भयभीत करके भगा दिया, वहाँ आपके पुत्र ने क्या पराक्रम दिखाया? वह वीर आज भी आपकी कृपादृष्टि की प्रतीक्षा कर रहा है और वह आपके कहने से कौरवों को क्षमा कर सकता है।

द्रुपदो मत्स्यराजश्च संक्रुद्धश्च धनंजयः।
न शेषयेयुः समरे वायुयुक्ता इवाग्नयः॥ १८॥

द्रुपद, मत्स्यराज विराट और क्रोध में भरे हुए अर्जुन, ये तीनों वायु से बढ़ी हुई अग्नि के समान युद्ध में किसी को भी शेष नहीं छोड़ेंगे।

उनतीसवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र के द्वारा दुर्योधन को समझाना।

धृतराष्ट्र उवाच

दुर्योधन विजानीहि यत् त्वां वक्ष्यामि पुत्रक।
उत्पथं मन्यसे मार्गमनभिज्ञ इवाध्वगः॥ १॥
पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां यत् तेजः प्रजिहीर्षसि।
पञ्चानामिव भूतानां महतां लोकधारिणाम्॥ २॥
युधिष्ठिरं हि कौन्तेयं परं धर्ममिहास्थितम्।
परां गतिमसम्प्रेत्य न त्वं जेतुमिहार्हसि॥ ३॥
भीमसेनं च कौन्तेयं यस्य नास्ति समो बले।
रणान्तकं तर्जयसे महावातमिव द्रुमः॥ ४॥

तब धृतराष्ट्र दुर्योधन से बोले कि हे बेटा दुर्योधन! मैं तुमसे जो कह रहा हूँ, तुम उसको अच्छी तरह से समझो। तुम इस समय अनजान यात्री के समान कुमार्ग को भी सुमार्ग समझ रहे हो। पाँचों पाण्डव इस प्रकार तेजस्वी हैं, जैसे सारे संसार को धारण करने वाले पाँच महाभूत। तुम उन पाण्डवों के तेज को अपहरण करने की इच्छा कर रहे हो। संसार में धर्म का अत्यन्त पालन करने वाले युधिष्ठिर को तुम बिना मृत्यु को प्राप्त हुए नहीं जीत सकते। कुन्तीपुत्र भीमसेन के बराबर बल में कोई नहीं है। तुम उस रणक्षेत्र में मृत्यु के समान विचरण करने वाले को उसी प्रकार धमकाना चाहते हो, जैसे वृक्ष प्रचण्ड आँधी को धमकाये।

सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं मेरुं शिखरिणामिव।
युधि गाण्डीवधन्वानं को नु युध्येत बुद्धिमान्॥ ५॥
सात्यकिश्चापि दुर्धर्षः सम्मतोऽन्धकवृष्णिषु।
ध्वंसयिष्यति ते सेनां पाण्डवेयहिते रतः॥ ६॥
वासुदेवोऽपि दुर्धर्षो यतात्मा यत्र पाण्डवः।
अविषह्यं पृथिव्यापि तद् बलं यत्र केशवः॥ ७॥
एकतो ह्यस्य दाराश्च, ज्ञातयश्च सबान्धवाः।
आत्मा च पृथिवी चेयम्, एकतश्च धनंजयः॥ ८॥

जैसे पर्वतों में हिमालयपर्वत श्रेष्ठ है, वैसे ही जो सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ है, जो युद्ध में गाण्डीवधनुष को धारण करता है, उस अर्जुन से कौन बुद्धिमान् युद्ध करना चाहेगा? सात्यकि भी दुर्धर्ष वीर है। वह अन्धकों और वृष्णियों में प्रतिष्ठावान् है, वह पाण्डवों की भलाई में लगा हुआ तेरी सेना को नष्ट कर देगा। अपनी आत्मा को वश में रखने वाले दुर्धर्ष वीर अर्जुन जहाँ होते हैं, श्रीकृष्ण भी वहीं रहते हैं और जिस सेना में श्रीकृष्ण विद्यमान हों, वह सेना सारे भूमण्डल के लिये असह्य हो जाती है। श्रीकृष्ण के लिये पत्नी परिवार वाले, बन्धु बान्धव, अपने प्राण और सारी पृथिवी एक तरफ है, तो दूसरी तरफ अकेला अर्जुन है।

तिष्ठ तात सतां वाक्ये सुहृदामर्थवादिनाम्।
वृद्धं शान्तनवं भीष्मं तितिक्षस्व पितामहम्॥ ९॥
मां च ब्रुवाणं शुश्रूष कुरूणामर्थदर्शिनम्।
द्रोणं कृपं विकर्णं च महाराजं च बाह्लिकम्॥ १०॥
एते ह्यपि यथैवाहं मन्तुमर्हसि तांस्तथा।
सर्वे धर्मविदो ह्येते तुल्यस्नेहाश्च भारत॥ ११॥

हे भारत! हे तात! तुम अर्थसिद्धि की बात कहने वाले अपने हितैषियों और सत्पुरुषों की बातों को

मानो। वृद्ध शान्तनुपुत्र पितामह भीष्म की बातें सहन करो। कौरवों के हित की बात कहने वाले मेरी बातों को भी सुनो। द्रोण, कृपाचार्य, विकर्ण, महाराज बाह्लीक, ये भी धर्म के ज्ञाता तथा समान स्नेह रखने वाले हैं, इनको भी वैसा ही मानो जैसा मैं हूँ।

यत् तद् विराटनगरे सह भ्रातृभिरग्रतः।
उत्सृज्य गाः सुसंत्रस्तं बलं ते तमशीर्यत॥ १२॥
यच्चैव नगरे तस्मिञ्छ्रूयते महदद्भुतम्।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥ १३॥
अर्जुनस्तत् तथाकार्षीत् किं पुनः सर्व एव ते।
स भ्रातृनभिजानीहि वृत्त्या तं प्रतिपादय॥ १४॥

विराट नगर में जब तुम अपने भाइयों के साथ गये थे तब तुम्हारी सेना गायों को छोड़कर अत्यन्त डरी हुई इधर उधर बिखर गयी थी। उस नगर में तब जो महान् आश्चर्य की बात सुनी गयी कि एक अर्जुन के साथ बहुत सारों का युद्ध हुआ, वह एक उदाहरण ही उनकी शक्ति को बताने के लिये पर्याप्त है। जब अर्जुन ने अकेले ही वहाँ वैसा पराक्रम कर दिखाया तो अब तो वे सारे मिले हुए होंगे, फिर क्या नहीं कर देंगे? इसलिये तुम उनको अपना भाई ही समझो और उन्हें उनका भाग देकर उनसे प्रेम बढ़ाओ।

तीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण जी की हस्तिनापुर जाने की तैयारी।

संजये प्रतियाते तु धर्मराजो युधिष्ठिरः।
अभ्यभाषत दाशार्हमृषभं सर्वसात्वताम्॥ १॥
श्रुतं ते धृतराष्ट्रस्य सपुत्रस्य चिकीर्षितम्।
एतद्धि सकलं कृष्ण संजयो मां यदब्रवीत्॥ २॥
तन्मतं धृतराष्ट्रस्य सोऽस्यात्मा विवृतान्तरः।
यथोक्तं दूत आचष्टे वध्यः स्यादन्यथा ब्रुवन्॥ ३॥
अप्रदानेन राज्यस्य शान्तिमस्मासु मार्गति।
लुब्धः पापेन मनसा चरन्नसममात्मनः॥ ४॥

संजय के वापिस जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने यदुवंशियों में श्रेष्ठ दाशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे कृष्ण! आपने पुत्रसहित धृतराष्ट्र क्या करना चाहते हैं, वह सुन लिया। संजय ने जो कुछ भी मुझसे कहा है, वह सब वास्तव में धृतराष्ट्र का ही विचार है, उन्हीं की आत्मा संजय के माध्यम से मेरे समक्ष प्रकाशित हुई है, क्योंकि दूत वही कहता है जो उससे कहने के लिये कहा जाता है जो दूत उससे अलग बात करता है वह वध को प्राप्त होने योग्य माना जाता है। धृतराष्ट्र बिना हमें राज्य लौटाये, हमें शान्त करने का मार्ग ढूँढ रहे हैं। उन्हें राज्य का बड़ा लोभ है, इसलिये अपने मन में पाप रखकर वे हमारे साथ असमान बर्ताव कर रहे हैं।

यत् तद् द्वादश वर्षाणि वनेषु ह्युषिता वयम्।
छद्मना शरदं चैकां धृतराष्ट्रस्य शासनात्॥ ५॥
स्थाता नः समये तस्मिन् धृतराष्ट्र इति प्रभो।
गृद्धो राजा धृतराष्ट्रः स्वधर्मं नानुपश्यति॥ ६॥
वश्यत्वात् पुत्रगृद्धित्वान्मन्दस्यान्वेति शासनम्।
सुयोधनमते तिष्ठन् राजास्मासु जनार्दन॥ ७॥
मिथ्याचरति लुब्धः सन् चरन् हि प्रियमात्मनः।

हे प्रभो! हम जो बारहवर्षों तक वन में रहे और एक वर्ष छिपकर व्यतीत किया, वह धृतराष्ट्र के आदेश का पालन करते हुए किया। वह हमने यह सोचकर किया कि धृतराष्ट्र हमारे साथ समझौते का पालन करेंगे। किन्तु लालच में भरे हुए धृतराष्ट्र अपने धर्म की तरफ नहीं देख रहे हैं। वे अपने लोभ और अपने मूर्ख पुत्र के वश में होने के कारण उसी के आदेश का वर्णन करते हैं। हे जनार्दन! वे दुर्योधन की ही हाँ में हाँ मिलाते हुए लोभ के कारण अपने ही प्रिय कार्य को करते हुए हमारे साथ असत्य का बर्ताव कर रहे हैं।

इतो दुःखतरं किं नु यदहं मातरं ततः॥ ८॥
संविधातुं न शक्नोमि मित्राणां वा जनार्दन।
ते वयं न श्रियं हातुमलं न्यायेन केनचित्॥ ९॥
अत्र नो यतमानानां वधश्चेदपि साधु तत्।
तत्र नः प्रथमः कल्पो यद् वयं ते च माधव॥ १०॥
प्रशान्ताः समभूताश्च श्रियं तामश्नुवीमहि।
तत्रैषा परमा काष्ठा रौद्रकर्मक्षयोदया॥ ११॥
यद् वयं कौरवान् हत्वा तानि राष्ट्राण्यवाप्नुमः।

हे जनार्दन! इससे अधिक दुःख की बात मेरे लिये क्या हो सकती है? कि मैं अपनी माता और

मित्रों का भी भरणपोषण नहीं कर सकता। ऐसी दुरवस्था में विद्यमान हम लोगों के लिये किसी भी न्यायव्यवस्था से अपनी सम्पत्ति को छोड़ना उचित नहीं है। अपने इस अधिकार को प्राप्त करने के लिये यत्न करते हुए यदि हमारा वध हो जाये तो वह भी अच्छा ही होगा। हे माधव! इस विषय में हमारा पहला ध्येय तो यही है कि हम और वे दोनों शान्त होकर समान रूप से उस सम्पत्ति का उपभोग करें। पर यदि यह सफल नहीं हुआ तो दूसरा कार्य फिर यही होगा कि युद्ध के रौद्र कर्म के द्वारा विनाश हो और हम कौरवों को मारकर, उनके सारे प्रदेशों पर अधिकार कर लें। पर यह अत्यन्त पराकाष्ठा का कार्य होगा।

ज्ञातयश्चैव भूयिष्ठाः सहाया गुरवश्च नः॥ १२॥
तेषां वधोऽतिपापीयान् किं नो युद्धेऽस्ति शोभनम्।
पापः क्षत्रियधर्मोऽयं वयं च क्षत्रबन्धवः॥ १३॥
स नः स्वधर्मोऽधर्मो वा वृत्तिरन्या विगर्हिता।
न च त्यक्तुं तदिच्छामो न चेच्छामः कुलक्षयम्॥ १४॥
अत्र या प्रणिपातेन शान्तिः सैव गरीयसी।
सर्वथा यतमानानामयुद्धमभिकाङ्क्षताम्॥ १५॥
सान्त्वे प्रतिहते युद्धं प्रसिद्धं नापराक्रमः।

हमारे विरोधियों में अधिकतर हमारे परिवारवाले, सहायक और गुरुलोग हैं। उनका वध करना बहुत पापकर्म है। युद्ध में अच्छी बात क्या है? किन्तु हम क्षत्रिय हैं। यह पापपूर्ण कर्म ही क्षत्रियों का धर्म है। अपने धर्म का पालन न करना अधर्म है और दूसरी वृत्ति अर्थात् दूसरे वर्णों के धर्म को अपनाना निन्दनीय है। हम अपने धर्म को भी नहीं छोड़ना चाहते और अपने कुल का विनाश भी नहीं चाहते। यदि नम्रता दिखाने से शान्ति प्राप्त हो जाये तो वही उत्तम होगी। पूरी तरह से शान्ति के लिये प्रयत्न करते हुए और युद्ध को न चाहते हुए भी यदि शान्ति के उपाय सफल नहीं हुए तो युद्ध करना ही हमारा कर्त्तव्य होगा, पराक्रम न दिखाना नहीं।

तत्र किं मन्यसे कृष्ण प्राप्तकालमनन्तरम्॥ १६॥
कथमर्थाच्च धर्माच्च न हीयेमहि माधव।
ईदृशेऽत्यर्थकृच्छ्रेऽस्मिन् कमन्यं मधुसूदन॥ १७॥
उपसम्प्रष्टुमर्हामि त्वामृते पुरुषोत्तम।
प्रियश्च प्रियकामश्च गतिज्ञः सर्वकर्मणाम्॥ १८॥
को हि कृष्णास्ति नस्त्वादृक् सर्वनिश्चयवित् सुहृत्।

हे कृष्ण! ऐसी परिस्थिति प्राप्त होने पर आप क्या उचित समझते हैं? हे माधव! हम क्या करने से धर्म और अर्थ से वंचित नहीं होंगे? हे मधुसूदन! हे पुरुषोत्तम! इस प्रकार के प्रयोजनपूर्ति के लिये अत्यन्त संकट के समय में मैं आपको छोड़कर किस दूसरे से सलाह ले सकता हूँ। आप ही हमारे प्रिय, प्रिय करने की कामनावाले और सारे कार्यों के परिणाम को समझनेवाले हैं। हे कृष्ण! हमारे सारे कार्यों के विषय में निश्चित सिद्धान्त को समझने वाला आप जैसा हमारा और कौन है?

एवमुक्तः प्रत्युवाच धर्मराजं जनार्दनः॥ १९॥
उभयोरेव वामर्थे यास्यामि कुरुसंसदम्।
शमं तत्र लभेयं चेद् युष्मदर्थमहापयन्॥ २०॥
पुण्यं मे सुमहद् राजंश्चरितं स्यान्महाफलम्।
मोचयेयं मृत्युपाशात् संरब्धान् कुरुसृंजयान्॥ २१॥
पाण्डवान् धार्तराष्ट्रांश्च सर्वां च पृथिवीमिमाम्।

ऐसा कहे जाने पर श्रीकृष्ण जी ने धर्मराज से कहा कि मैं आप दोनों के लिये कौरवों की सभा में जाऊँगा। आपके प्रयोजन को क्षति न पहुँचाते हुए यदि मैं वहाँ शान्ति की स्थापना करा सका तो यह मेरे लिये एक महान् पुण्ययुक्त और महान् फल को देने वाला कार्य होगा। मैं तब क्रोध में भरे हुए कौरवों, सृंजयों, पाण्डवों और धृतराष्ट्र पुत्रों और सारी पृथिवी को मृत्यु के फन्दे से छुड़ा लूँगा।

युधिष्ठिर उवाच

न ममैतन्मतं कृष्ण यत् त्वं यायाः कुरून् प्रति॥ २२॥
सुयोधनः सूक्तमपि न करिष्यति ते वचः।
समेतं पार्थिवं क्षत्रं दुर्योधनवशानुगम्॥ २३॥
तेषां मध्यावतरणं तव कृष्ण न रोचये।
न हि नः प्रीणयेद् द्रव्यं न देवत्वं कुतः सुखम्॥ २४॥
न च सर्वामरैश्वर्यं तव द्रोहेण माधव।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे माधव! मेरा यह मत नहीं है कि आप कौरवों के पास जाओ। क्योंकि अच्छी तरह से समझाने पर भी दुर्योधन आपकी बात नहीं मानेगा। वहाँ दुर्योधन के वश में हुए तथा उसके अनुसार कार्य करनेवाले राजालोग एकत्र हो गये हैं। उनके बीच में आपका जाना हे कृष्ण! मुझे अच्छा नहीं लगता। हे माधव! उसने यदि आपके साथ द्रोह किया तो हमें न तो यह धन, न देवत्व, दूसरे सुख

की तो बात क्या है? सारे देवताओं का ऐश्वर्य भी प्रसन्नता प्रदान नहीं कर सकेगा।

श्रीकृष्ण उवाच

जानाम्येतां महाराज धार्तराष्ट्रस्य पापताम्॥ २५॥
अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्वलोके महीक्षिताम्।
न जातु गमनं पार्थ भवेत् तत्र निरर्थकम्॥ २६॥
अर्थप्राप्तिः कदाचित् स्यादन्ततो वाप्यवाच्यता।

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे महाराज! मैं दुर्योधन की पापबुद्धि को जानता हूँ, पर ऐसा करने पर हम सारे राजाओं के संसार में निन्दनीय नहीं होंगे। हे कुन्तीपुत्र! मेरा वहाँ जाना बिल्कुल निरर्थक किसी प्रकार भी नहीं होगा। शायद वहाँ जाने से प्रयोजन की प्राप्ति हो जाये नहीं तो निन्दा से तो बच ही जायेंगे।

युधिष्ठिर उवाच

यत् तुभ्यं रोचते कृष्ण स्वस्ति प्राप्नुहि कौरवान्॥ २७॥
कृतार्थं स्वस्तिमन्तं त्वां द्रक्ष्यामि पुनरागतम्।
विष्वक्सेन कुरून् गत्वा भरताञ्छमय प्रभो॥ २८॥
यथा सर्वे सुमनसः सह स्याम सुचेतसः।
भ्राता चासि सखा चासि बीभत्सोर्मम च प्रियः॥ २९॥
सौहृदेनाविशङ्क्योऽसि स्वस्ति प्राप्नुहि भूतये।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे कृष्ण! जो आपको अच्छा लगता है, वह कीजिये। आपका कल्याण हो। आप कौरवों के पास जाइये। मैं आपको कार्य पूरा करके कुशलपूर्वक लौटा हुआ देखूँ। हे विष्वक्सेन! प्रभो! आप कुरुदेश में जाकर भरतवंशियों को शान्त कीजिये, जिससे हम सब अच्छे मन और हृदय के साथ एकसाथ रह सकें। आप अर्जुन के भाई और मित्र हैं, मेरे प्यारे हैं। आपके सौहार्द के विषय में हमें कोई शंका नहीं है। आपका कल्याण हो। आप भलाई के लिये वहाँ जाइये।

अस्मान् वेत्थ परान् वेत्थ वेत्थार्थान् वेत्थ भाषितुम्॥ ३०॥
यद् यदस्मद्धितं कृष्ण तत् तद् वाच्यः सुयोधनः।
यद् यद् धर्मेण संयुक्तमुपपद्येद्धितं वचः।
तत् तत् केशव भाषेथाः सान्त्वं वा यदि वेतरत्॥ ३१॥

आप हमें भी जानते हैं, उन लोगों को भी जानते हैं, दोनों पक्षों के प्रयोजनों को भी जानते हैं। हे कृष्ण! जो जो हमारी भलाई की बातें हैं, उन्हें आप दुर्योधन को बतायें। धर्म से युक्त, युक्तिसंगत और हितकारी जो बातें हों, उन्हें हे केशव! चाहे वे सान्त्वनायुक्त हों या कठोरतायुक्त हों, आप अवश्य कहें।

इकत्तीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर को युद्ध के लिये प्रोत्साहन।

श्रीकृष्ण उवाच

संजयस्य श्रुतं वाक्यं भवतश्च श्रुतं मया।
सर्वं जानाम्यभिप्रायं तेषां च भवतश्च यः॥ १॥
तव धर्माश्रिता बुद्धिस्तेषां वैराश्रया मतिः।
यदयुद्धेन लभ्येत तत् ते बहुमतं भवेत्॥ २॥
न चैवं नैष्ठिकं कर्म क्षत्रियस्य विशाम्पते।
आहुराश्रमिणः सर्वे न भैक्षं क्षत्रियश्चरेत्॥ ३॥
न हि कार्पण्यमास्थाय शक्या वृत्तिर्युधिष्ठिर।
विक्रमस्व महाबाहो जहि शत्रून् परंतप॥ ४॥

तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि मैंने संजय की बातें सुनी हैं और आपकी भी सुनी हैं। मैं आपके और उन लोगों के अभिप्रायों को भी जानता हूँ। आपकी बुद्धि धर्म के सहारे है और उनकी मति ने बैर का सहारा लिया हुआ है। आप तो बिना युद्ध के जो मिल जाये, उसी को बहुत समझेंगे। पर हे प्रजा का पालन करने वाले! यह क्षत्रिय का स्वाभाविक कर्म नहीं है कि क्षत्रिय भीख माँगे, यह सभी आश्रमधर्मों के जानने वालों ने कहा है। दीनता का आश्रय लेकर क्षत्रियवृत्ति नहीं चल सकती। इसलिये हे शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले युधिष्ठिर! हे महाबाहु! आप शत्रुओं को नष्ट कीजिये।

अतिगृद्धाः कृतस्नेहा दीर्घकालं सहोषिताः।
कृतमित्राः कृतबला धार्तराष्ट्राः परंतप॥ ५॥
न पर्यायोऽस्ति यत् साम्यं त्वयि कुर्युर्विशाम्पते।
बलवत्तां हि मन्यन्ते भीष्मद्रोणकृपादिभिः॥ ६॥
यावच्च मार्दवेनैतान् राजन्नुपचरिष्यसि।
तावदेते हरिष्यन्ति तव राज्यमरिंदम॥ ७॥
नानुक्रोशान्न कार्पण्यान्न च धर्मार्थकारणात्।
अलं कर्तुं धार्तराष्ट्रास्तव काममरिंदम॥ ८॥

हे परंतप! धृतराष्ट्र के पुत्र अत्यन्त लालची हैं। उन्होंने बहुत से मित्र बना लिये हैं। लम्बे समय तक उनके साथ रहकर उनसे स्नेह बढ़ा लिया है। उन्होंने सेना भी बहुत एकत्र कर ली है। हे प्रजापालक! भीष्म, द्रोण और कृप आदि की सहायता से वे अपने आपको अधिक बलशाली समझते हैं, इसलिये ऐसा कोई मार्ग नहीं है, जिससे वे आपके साथ समता का व्यवहार करें। हे शत्रुओं का दमन करनेवाले राजन्! जब तक आप उनके साथ कोमलता से व्यवहार करेंगे, तब तक वे आपके राज्य का अपहरण करेंगे ही। धृतराष्ट्र के पुत्र न तो दया के कारण, न भय के कारण, और न धर्म तथा अर्थ का विचार करने के कारण आपकी इच्छा को पूरा करेंगे।

एतदेव निमित्तं ते पाण्डवास्तु यथा त्वयि।
नान्वतप्यन्त कौपीनं तावत् कृत्वापि दुष्करम्॥ ९॥
पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य च धीमतः।
ब्राह्मणानां च साधूनां राज्ञश्च नगरस्य च॥ १०॥
पश्यतां कुरुमुख्यानां सर्वेषामेव तत्त्वतः।
दानशीलं मृदुं दान्तं धर्मशीलमनुव्रतम्॥ ११॥
यत् त्वामुपधिना राजन् द्यूते वञ्चितवांस्तदा।
न चापत्रपते तेन नृशंसः स्वेन कर्मणा॥ १२॥

हे पाण्डुपुत्र! इसका यही प्रमाण है कि उन्होंने आपके साथ इतना दुष्कर कार्य करके भी अर्थात् आपको कौपीन धारण करा वन में भेज कर भी उसके लिये अभीतक पश्चाताप नहीं किया। पितामह भीष्म, द्रोण, धीमान् विदुर, ब्राह्मणों, साधुओं, धृतराष्ट्र, नगर के निवासियों के देखते हुए भी आप जैसे वास्तविक दानशील, कोमल स्वाभाव, मन और इन्द्रियों को वश में रखनेवाले, धर्मशील, व्रतों का पालन करनेवाले को जूए में छल से ठग लिया और हे राजन्! वह निर्दय अपने उस कर्म पर लज्जा भी अनुभव नहीं कर रहा है।

तथाशीलसमाचारे राजन् मा प्रणयं कृथाः।
वध्यास्ते सर्वलोकस्य किं पुनस्तव भारत॥ १३॥
वाग्भिस्त्वप्रतिरूपाभिरतुदत् त्वां सहानुजम्।
श्लाघमानः प्रहृष्टः सन् भ्रातृभिः सह भाषते॥ १४॥
एतावत् पाण्डवानां हि नास्ति किंचिदिह स्वकम्।
नामधेयं च गोत्रं च तदप्येषां न शिष्यते॥ १५॥
कालेन महता चैषां भविष्यति पराभवः।
प्रकृतिं ते भजिष्यन्ति नष्टप्रकृतयो मयि॥ १६॥

हे राजन्! इस प्रकार का स्वभाव और आचरण वाले लोगों पर आप प्रेम मत दिखाओ। हे भारत! वे तो सारे ही लोगों के लिये मार देने योग्य हैं, फिर यदि आप उन्हें मार दें तो क्या बात होगी। उस दुर्योधन ने अनुचित वाक्यों के द्वारा पहले भाइयों सहित आपको पीड़ा पहुँचाई थी। उसने प्रसन्नता पूर्वक अपनी बड़ाई करते हुए भाइयों के साथ यह कहा था कि अब पाण्डवों के पास अपनी कहने के लिये इतनी सी भी कोई वस्तु नहीं रही है। केवल अपना नाम और गोत्र ही इनके पास है, पर थोड़े दिनों में यह भी नहीं रहेगा। लम्बे समय के बाद इनकी पराजय होगी, इनकी स्वाभाविक शूरवीरता आदि बातें नष्ट हो जायेंगी और ये मेरे समीप ही प्राण त्याग करेंगे।

दुःशासनेन पापेन तदा द्यूते प्रवर्तिते।
अनाथवत् तदा देवी द्रौपदी सुदुरात्मना॥ १७॥
आकृष्य केशे रुदती सभायां राजसंसदि।
भीष्मद्रोणप्रमुखतो गौरिति व्याहृता मुहुः॥ १८॥
भवता वारिताः सर्वे भ्रातरो भीमविक्रमाः।
धर्मपाशनिबद्धाश्च न किंचित् प्रतिपेदिरे॥ १९॥
एताश्चान्याश्च परुषा वाचः स समुदीरयन्।
श्लाघते ज्ञातिमध्ये स्म त्वयि प्रव्रजिते वनम्॥ २०॥

जब जूए का खेल चल रहा था, तब उस अत्यन्त दुष्ट पापी दुश्शासन ने देवी द्रौपदी को, जो अनाथों के समान रो रही थी, बालों से पकड़ कर राजसभा में घसीटते हुए लाकर भीष्म और द्रोणाचार्य आदि के सामने बार बार गाय कहकर पुकारा। भयानक विक्रमवाले आपके सारे भाई आपके द्वारा मना किये जाने के और धर्म के बन्धन से बँधे हुए होने के कारण कुछ भी न कर सके। आपके वन को जाते समय इस प्रकार की तथा और भी बहुत सी कठोर बातें कहते हुए उसने अपने परिवारवालों के सामने अपनी डींग मारी।

ये तत्रासन् समानीतास्ते दृष्ट्वा त्वामनागसम्।
अश्रुकण्ठा रुदन्तश्च सभायामासते तदा॥ २१॥
न चैनमभ्यनन्दंस्ते राजानो ब्राह्मणैः सह।
सर्वे दुर्योधनं तत्र निन्दन्ति स्म सभासदः॥ २२॥

तदैव निहतो राजन् यदैव निरपत्रपः।
निन्दितश्च महाराज पृथिव्यां सर्वराजभिः॥ २३॥
सर्वथा त्वत्क्षमं चैतद् रोचते च ममानघ।
यत् त्वं पितरि भीष्मे च प्रणिपातं समाचरेः॥ २४॥

उस समय जो लोग वहाँ आमन्त्रित किये हुए बैठे थे, वे आपको निरपराध देखकर रुँधे हुए गले से आँसू बहाते हुए, रोते हुए ही चुपचाप बैठे रहे। उन राजाओं ने तथा ब्राह्मणों ने दुर्योधन की प्रशंसा नहीं की। उस समय सारे सभासद दुर्योधन की ही निन्दा कर रहे थे। हे महाराज! जब उस निर्लज्ज दुर्योधन की पृथिवी के सारे राजाओं ने निन्दा की, उसकी मृत्यु तो तभी हो गयी थी। हे निष्पाप! यह पूरी तरह से आपके योग्य है और मैं भी इसे पसन्द करता हूँ, जो आप पितृतुल्य धृतराष्ट्र और पितामह भीष्म के प्रति प्रणामयुक्त व्यवहार करते हैं।

अहं तु सर्वलोकस्य गत्वा छेत्स्यामि संशयम्।
येषामस्ति द्विधाभावो राजन् दुर्योधनं प्रति॥ २५॥
मध्ये राज्ञामहं तत्र प्रातिपौरुषिकान् गुणान्।
तव संकीर्तयिष्यामि ये च तस्य व्यतिक्रमाः॥ २६॥
ब्रुवतस्तत्र मे वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम्।
निशम्य पार्थिवाः सर्वे नानाजनपदेश्वराः॥ २७॥
त्वयि सत्प्रतिपत्स्यन्ते धर्मात्मा सत्यवागिति।
तस्मिंश्चाधिगमिष्यन्ति यथा लोभादवर्तत॥ २८॥

हे राजन्! मैं वहाँ जाकर जिन लोगों के हृदय में दुर्योधन के प्रति दुविधा का भाव है, उन सबके संशय को दूर कर दूँगा। मैं वहाँ राजाओं के बीच मैं आपके सर्वसाधारण गुणों और उसके अपराधों का वर्णन करूँगा। मेरे धर्म और अर्थ से युक्त हितकारी वचनों को सुनकर अलग अलग जनपदों के स्वामी राजालोग आपके विषय में समझ जाएँगे कि यह धर्मात्मा और सत्यवादी है। वे दुर्योधन के विषय में जान जाएँगे कि इसने लोभ के कारण अनुचित कार्य किये हैं।

शमं वै याचमानस्त्वं नाधर्मं तत्र लप्स्यसे।
कुरून् विगर्हयिष्यन्ति धृतराष्ट्रं च पार्थिवाः॥ २९॥
यात्वा चाहं कुरून् सर्वान् युष्मदर्थमहापयन्।
यतिष्ये प्रशमं कर्तुं लक्षयिष्ये च चेष्टितम्॥ ३०॥
कौरवाणां प्रवृत्तिं च गत्वा युद्धाधिकारिकाम्।
निशम्य विनिवर्तिष्ये जयाय तव भारत॥ ३१॥

वहाँ शान्ति की याचना करने से आपके ऊपर अधर्म का दोष नहीं आयेगा। राजालोग कौरवों की और धृतराष्ट्र की ही निन्दा करेंगे। मैं वहाँ जाकर, आपके प्रयोजन को क्षति न पहुँचाते हुए उन सारे कौरवों के साथ सन्धि के लिये प्रयत्न करूँगा और उनकी चेष्टाओं को भी अपने ध्यान में रखूँगा। कौरवों की युद्धसम्बन्धी तैयारियों की बातों को सुनकर हे भारत! मैं आपकी विजय के लिये लौट आऊँगा।

दुर्योधनो न ह्यलमद्य दातुं
जीवंस्तवैतन्नृपते कथंचित्
यत् ते पुरस्तादभवत् समृद्धं
द्यूते हृतं पाण्डवमुख्य राज्यम्॥ ३२॥

हे पाण्डवों के प्रमुख राजन्! जो समृद्धराज्य पहले आपके पास था, जिसे उसने जूए में अपहृत कर लिया, उसे दुयोधन जीते जी कभी भी वापिस नहीं करेगा यह निश्चित बात है।

बत्तीसवाँ अध्याय : द्रौपदी का श्रीकृष्ण जी से दौत्यकर्म संबंधी निवेदन।

कृष्णा दाशार्हमासीनमब्रवीच्छोककर्शिता।
सुता द्रुपदराजस्य स्वसितायतमूर्धजा॥ १॥
विदितं ते महाबाहो धर्मज्ञ मधुसूदन।
यथा निकृतिमास्थाय भ्रंशिताः पाण्डवाः सुखात्॥ २॥
धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सामात्येन जनार्दन।
यथा च संजयो राज्ञा मन्त्रं रहसि श्रावितः॥ ३॥
युधिष्ठिरस्य दाशार्ह तच्चापि विदितं तव।
यथोक्तः संजयश्चैव तच्च सर्वं श्रुतं त्वया॥ ४॥

तब वहाँ बैठे हुए दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्ण जी से शोक से दुर्बल हुई, लम्बे और काले बालोंवाली, द्रुपदराज की पुत्री द्रौपदी बोली कि हे विशाल हाथों वाले, धर्मज्ञ, श्रीकृष्ण, जनार्दन! आपको पता ही है कि मन्त्रियोंसहित धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने किस प्रकार धोखे का सहारा लेकर पाण्डवों को सुख से वंचित कर दिया, किस प्रकार धृतराष्ट्र ने संजय को एकान्त में अपना विचार समझाकर भेजा और

युधिष्ठिर ने संजय से जो बातें कहीं, वे भी आपने सुन ली हैं।

अप्रदानेन राज्यस्य यदि कृष्ण सुयोधनः।
संधिमिच्छेन्न कर्तव्यं तत्र गत्वा कथञ्चन॥ ५॥
शक्ष्यन्ति हि महाबाहो पाण्डवाः सृंजयैः सह।
धार्तराष्ट्रबलं घोरं क्रुद्धं प्रतिसमासितुम्॥ ६॥
न हि साम्ना न दानेन शक्योऽर्थस्तेषु कश्चन।
तस्मात् तेषु न कर्तव्या कृपा ते मधुसूदन॥ ७॥
साम्ना दानेन वा कृष्ण ये न शाम्यन्ति शत्रवः।
योक्तव्यस्तेषु दण्डः स्याज्जीवितं परिरक्षता॥ ८॥

हे कृष्ण! यदि दुर्योधन राज्य न दिये सन्धि करना चाहे तो आप वहाँ जाकर उसे किसी तरह भी स्वीकार न करें। हे महाबाहु! पाण्डव सृंजयों के साथ दुर्योधन की क्रोध से भरी भयानक सेना का सामना कर सकते हैं। उन लोगों के प्रति सामनीति या दाननीति का प्रयोग करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये हे मधुसूदन! उन पर आपको कोई कृपा नहीं करनी चाहिये। हे श्रीकृष्ण! जो शत्रु साम और दान नीति से शान्त नहीं होते, उनके साथ अपने जीवन की रक्षा करनेवालों को दण्ड का ही प्रयोग करना चाहिये।

तस्मात् तेषु महादण्डः क्षेप्तव्यः क्षिप्रमच्युत।
त्वया चैव महाबाहो पाण्डवैः सह सृंजयैः॥ ९॥
एतत् समर्थं पार्थानां तव चैव यशस्करम्।
क्रियमाणं भवेत् कृष्ण क्षत्रस्य च सुखावहम्॥ १०॥
क्षत्रियेण हि हन्तव्यः क्षत्रियो लोभमास्थितः।
अक्षत्रियो वा दाशार्ह स्वधर्ममनुतिष्ठता॥ ११॥
यथावध्ये वध्यमाने भवेद् दोषो जनार्दन।
स वध्यस्यावधे दृष्ट इति धर्मविदो विदुः॥ १२॥

इसलिये हे महाबाहु अच्युत! आपको पाण्डवों और सृंजयों के साथ उन पर जल्दी ही महान् दण्ड का प्रयोग करना चाहिये। हे श्रीकृष्ण! कुन्तीपुत्र इस कार्य को करने में समर्थ हैं। यदि यह किया गया तो यह आपके भी यश को बढ़ाने वाला और क्षत्रियों को भी सुख देने वाला होगा। हे दाशार्ह कुलनन्दन! अपने धर्म का पालन करने वाले क्षत्रिय को चाहिये कि वह लोभ का आश्रय लेने वाले क्षत्रिय या अक्षत्रिय को मार दे। हे जनार्दन! धर्मज्ञ पुरुष जानते हैं कि जो दोष वध के अयोग्य पुरुष का वध करने में होता है, वही दोष वध के योग्य पुरुष का वध न करने में भी होता है।

यथा त्वां न स्पृशेदेष दोषः कृष्ण तथा कुरु।
पाण्डवैः सह दाशार्हैः सृंजयैश्च ससैनिकैः॥ १३॥
पुनरुक्तं च वक्ष्यामि विश्रम्भेण जनार्दन।
का तु सीमन्तिनी मादृक् पृथिव्यामस्ति केशव॥ १४॥
धृष्टद्युम्नस्य भगिनी तव कृष्ण प्रिया सखी।
आजमीढकुलं प्राप्ता स्नुषा पाण्डोर्महात्मनः॥ १५॥
साहं केशग्रहं प्राप्ता परिक्लिष्टा सभां गता।
पश्यतां पाण्डुपुत्राणां त्वयि जीवति केशव॥ १६॥

हे कृष्ण! आप सैनिकोंसहित पाण्डवों, यादवों, और सृंजयों के साथ वैसा ही प्रयत्न कीजिये, जिससे आपको दोष प्राप्त न हो। हे जनार्दन! आप पर विश्वास होने के कारण मैं अपनी पहले दुहरायी हुई बात को फिर कहती हूँ कि पृथिवी पर मेरे समान स्त्री कौन होगी? मैं वैसे तो धृष्टद्युम्न की बहन और आपकी प्यारी सखी हूँ, अजामीढ़कुल में विवाहित होकर आयी और महात्मा पाण्डु की पुत्रवधु हूँ, पर हे केशव उसी मुझको पाण्डुपुत्रों के देखते हुए और आपके जीवित रहते हुए बाल पकड़ कर सभा में ले जाया गया और क्लेश दिया गया।

जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु पञ्चालेष्वथ वृष्णिषु।
दासीभूतास्मि पापानां सभामध्ये व्यवस्थिता॥ १७॥
नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः।
स्नुषा भवामि धर्मेण साहं दासीकृता बलात्॥ १८॥
धिक्पार्थस्य धनुष्मत्तां भीमसेनस्य धिग् बलम्।
यत्र दुर्योधनः कृष्ण मुहूर्तमपि जीवति॥ १९॥
यदि तेऽहमनुग्राह्या यदि तेऽस्ति कृपा मयि।
धार्तराष्ट्रेषु वै कोपः सर्वः कृष्ण विधीयताम्॥ २०॥

पाण्डुपुत्रों, पांचालों और वृष्णिवंशियों के जीवित रहते हुए मुझे उन पापियों की दासी बनना पड़ा। हे कृष्ण! मैं धृतराष्ट्र और भीष्म दोनों की धर्म के अनुसार पुत्रवधु हूँ, फिर भी उनके सामने ही मुझे बलपूर्वक दासी बनाया गया। अर्जुन के धनुर्धरपने को धिक्कार है, भीम के बल को धिक्कार है यदि हे कृष्ण! दुर्योधन अब एक मुहूर्त के लिये भी जीवित रहता है। हे कृष्ण! यदि मैं आपके द्वारा अनुग्रह करने के योग्य हूँ, यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो आप अपना सारा क्रोध धृतराष्ट्र के पुत्रों के प्रति कीजिये।

इत्युक्त्वा मृदुसंहारं वृजिनाग्रं सुदर्शनम्।
सुनीलमसितापाङ्गी सर्वगन्धाधिवासितम्॥ २१॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं महाभुजगवर्चसम्।
केशपक्षं वरारोहा गृह्य वामेन पाणिना॥ २२॥
पद्माक्षी पुण्डरीकाक्षमुपेत्य गजगामिनी।
अश्रुपूर्णेक्षणा कृष्णा कृष्णं वचनमब्रवीत्॥ २३॥

ऐसा कहकर वह श्यामलोचना, कमलनयनी, गजगामिनी सुन्दरी द्रौपदी आँसूभरी आँखों के साथ श्रीकृष्ण जी के समीप जाकर और अपने अत्यन्त मुलायम, घुँघराले, सुन्दर, काले, सब प्रकार की सुगन्धों से सुवासित, सारे अच्छे लक्षणों से युक्त, विशाल सर्प के समान कान्तिमान् बालों को बायें हाथ से उठा कर उनसे यह बोली कि–

अयं ते पुण्डरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृतः।
स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां संधिमिच्छता॥ २४॥
दुःशासनभुजं श्यामं संछिन्नं पांसुगुण्ठितम्।
यद्यहं तु न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे॥ २५॥
त्रयोदश हि वर्षाणि प्रतीक्षन्त्या गतानि मे।
विधाय हृदये मन्युं प्रदीप्तमिव पावकम्॥ २६॥
इत्युक्त्वा बाष्परुद्धेन कण्ठेनायतलोचना।
रुरोद कृष्णा सोत्कम्पं सस्वरं बाष्पगद्गदम्॥ २७॥

हे कमललोचन श्रीकृष्ण! शत्रुओं के साथ संधि को चाहते हुए आप जो जो कार्य करें, उन सबमें दुश्शासन के हाथ से पकड़ कर खींचे हुए इन बालों को याद रखें। यदि मैं दुश्शासन की उस काली बाँह को कटी हुई और धूल में लोटती हुई न देखूँ तो मेरे हृदय को क्या शान्ति हो सकती है? मुझे प्रतीक्षा करते हुए तेरह वर्ष बीत गये। तब से मेरे हृदय में प्रज्वलित आग के समान क्रोध धधक रहा है। ऐसा कहकर विशाल नेत्रोंवाली वह द्रौपदी आँसुओं से भरे गले के साथ काँपती हुई, अश्रुगद्गद् वाणी में फूट फूट कर रोने लगी।

तामुवाच महाबाहुः केशवः परिसान्त्वयन्।
अचिराद् द्रक्ष्यसे कृष्णे रुदतीर्भरतस्त्रियः॥ २८॥
एवं ता भीरु रोत्स्यन्ति निहतज्ञातिबान्धवाः।
हतमित्रा हतबला येषां क्रुद्धासि भामिनि॥ २९॥
धार्तराष्ट्राः कालपक्वा न चेच्छृण्वन्ति मे वचः।
शेष्यन्ते निहता भूमौ श्वशृगालादनीकृताः॥ ३०॥

तब महाबाहु श्रीकृष्ण ती ने उसे ढाढस बँधाते हुए कहा कि हे द्रौपदी तुम जल्दी ही भरतवंश की स्त्रियों को भी इसी प्रकार रोते हुए देखोगी। हे भामिनी! तुम जिन पर क्रोध कर रही हो, उनकी वे भीरु स्त्रियाँ भी अपने परिवारवालों, बन्धुबान्ध वों, मित्रों और सेनाओं के मारे जाने पर इसी प्रकार रोयेंगी। धृतराष्ट्र के पुत्र यदि मेरी बात नहीं मानेंगे तो समझो उन्हें मृत्यु ने पका दिया है। वे मारे जाकर भूमि पर सोयेंगे और कुत्तों तथा गीदड़ों का भोजन बनेंगे।

तेतीसवाँ अध्याय : युधिष्ठिर का माता कुन्ती को सन्देश, श्रीकृष्ण का वृकस्थल पहुँचना।

ततो व्यपेततमसि सूर्ये विमलवद्गते।
मैत्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते मृद्वर्चिषि दिवाकरे॥ १॥
कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे।
स्फीतसस्यसुखे काले कल्पः सत्त्ववतां वरः॥ २॥
मङ्गल्याः पुण्यनिर्घोषा वाचः शृण्वंश्च सूनृताः।
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कृत्यं स्नातः शुचिरलंकृतः॥ ३॥
तत् प्रतिज्ञाय वचनं पाण्डवस्य जनार्दनः।
शिनेर्नप्तारमासीनमभ्यभाषत सात्यकिम्॥ ४॥

फिर उसके पश्चात् रात्रि के अँधेरे के दूर होने पर, सूर्य के निर्मल आकाश में उदय होने पर, उसकी कोमल किरणों के सब तरफ फैलने पर, कार्तिक मास में शरदऋतु के अन्त तथा हेमन्त ऋतु के प्रारम्भ में, रेवती नक्षत्र में, मैत्रनाम के मुहूर्त में, जब खेतों में सुखदायी हरियाली लहलहा रही थी, तब शक्तिशाली पुरुषों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने प्रस्थान का निश्चय किया। तब मंगलकारी, पवित्र और सुखदायी वाणियों को सुनते हुए उन्होंने अपने प्रातः काल के नित्य कर्मों को किया, स्नान के द्वारा पवित्र होकर आभूषण धारण किये। फिर श्रीकृष्ण जी ने पाण्डवों की बातों पर विचार करते हुए अपने पास विद्यमान शिनि के पौत्र सात्यकि से कहा कि–

रथ आरोप्यतां शङ्खश्चक्रं च गदया सह।
उपासंगाश्च शक्त्यश्च सर्वप्रहरणानि च॥ ५॥
दुर्योधनश्च दुष्टात्मा कर्णश्च सहसौबलः।
न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा॥ ६॥
ततस्तन्मतमाज्ञाय केशवस्य पुरःसराः।
प्रसस्तुर्योजयिष्यन्तो रथं चक्रगदाभृतः॥ ७॥
तं दीप्तमिव कालाग्निमाकाशगमिवाशुगम्।
सूर्यचन्द्रप्रकाशाभ्यां चक्राभ्यां समलंकृतम्॥ ८॥

मेरे रथ पर शंख, चक्र, गदा, तूणीर, शक्ति और सब प्रकार के शस्त्रास्त्र लाकर रख दो। बलवान् व्यक्ति को दुर्बल शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। फिर दुर्योधन, शकुनि और कर्ण ये तो दुष्टात्मा हैं। तब गदा और चक्र को धारण करने वाले श्रीकृष्ण के अभिप्राय को जानकर उनके सेवक रथ को तैयार करने के लिये दौड़ पड़े। वह रथ प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रकाशित, विमान के समान शीघ्रगामी और सूर्य तथा चन्द्रमा के समान पहियों से अलंकृत था।

अर्धचन्द्रैश्च चन्द्रैश्च मत्स्यैः समृगपक्षिभिः।
पुष्पैश्च विविधैश्चित्रं मणिरत्नैश्च सर्वशः॥ ९॥
सूपस्करमनाधृष्यं वैयाघ्रपरिवारणम्।
यशोघ्नं प्रत्यमित्राणां यदूनां नन्दिवर्धनम्॥ १०॥
वाजिभिः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः।
स्नातैः सम्पादयामासुः सम्पन्नैः सर्वसम्पदा॥ ११॥
महिमानं तु कृष्णस्य भूय एवाभिवर्धयन्।
सुघोषः पतगेन्द्रेण ध्वजेन युयुजे रथः॥ १२॥

अर्धचन्द्र, पूर्णचन्द्र, मत्स्य, मृग, पक्षी, और नाना प्रकार के पुष्पों के चित्रों तथा मणियों, रत्नों से सब तरफ जटित होने के कारण उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। वह सब प्रकार की सामग्री से युक्त, व्याघ्रचर्म के आवरणवाला, शत्रुओं के लिये दुर्धर्ष तथा उनकी कीर्ति को नष्ट करनेवाला और यदुवंशियों के आनन्द को बढ़ानेवाला था। शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम के चार घोड़ों को स्नान कराकर तथा सब प्रकार से सुसज्जित कर, श्रीकृष्ण जी के सेवकों ने उन्हें रथ में जोत दिया। श्रीकृष्ण जी की महिमा को और अधिक बढ़ाने वाले, सुन्दरध्वनिवाले उस रथ में गरुड़ के चिह्न से चिह्नित ध्वजा को लगा दिया गया।

तं मेरुशिखरप्रख्यं मेघदुन्दुभिनिस्वनम्।
आरुरोह रथं शौरिर्विमानमिव कामगम्॥ १३॥
ततः सात्यकिमारोप्य प्रययौ पुरुषोत्तमः।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च रथघोषेण नादयन्॥ १४॥

मेघों और दुंदुभि के समान ध्वनिवाले, मेरुपर्वत के समान ऊँचे और इच्छानुसार चलनेवाले विमान की भाँति प्रतीत होनेवाले उस रथ पर श्रीकृष्ण जी आरूढ़ हुए। फिर उस पुरुषोतम ने सात्यकि को भी अपने साथ बिठाकर, रथ की ध्वनि से पृथिवी और आकाश को गुंजाते हुए वहाँ से प्रस्थान किया।

तं प्रयान्तमनुप्रायात् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ १५॥
चेकितानश्च विक्रान्तो धृष्टकेतुश्च चेदिपः।
द्रुपदः काशिराजश्च शिखण्डी च महारथः॥ १६॥
धृष्टद्युम्नः सपुत्रश्च विराटः केकयैः सह।
ततोऽनुव्रज्य गोविन्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ १७॥
राज्ञां सकाशे द्युतिमानुवाचेदं वचस्तदा।

उनके प्रस्थान करते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, माद्री के दोनों पुत्र पाण्डव, पराक्रमी चेकितान, चेदिनरेश धृष्टकेतु, द्रुपद, काशिराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, पुत्रों और केकयों सहित राजा विराट सारे उनके पीछे चल दिये, तब थोड़ी दूर जाकर धर्मराज तेजस्वी युधिष्ठिर ने राजाओं के समीप श्रीकृष्ण जी से यह कहा कि—

या सा बाल्यात् प्रभृत्यस्मान् पर्यवर्धयताबला॥ १८॥
उपवासतपःशीला सदा स्वस्त्ययने रता।
देवतातिथिपूजासु गुरुशुश्रूषणे रता॥ १९॥
वत्सला प्रियपुत्रा च प्रियास्माकं जनार्दन।
सुयोधनभयाद् या नोऽत्रायतामित्रकर्शन॥ २०॥
महतो मृत्युसम्बाधादुद्धे नौरिवार्णवात्।
अस्मत्कृते च सततं यया दुःखानि माधव॥ २१॥
अनुभूतान्यदुःखार्हा तां स्म पृच्छेरनामयम्।

हे जनार्दन! जिस अबला ने हमें बचपन से ही पालपोषकर बड़ा किया, उपवास और तपस्या करना ही जिसका स्वभाव बन गया है, जो सदा कल्याण में लगी रहती है, जो विद्वानों, अतिथियों की पूजा और गुरुओं की सेवा में रत है, हे शत्रुओं का दमन करनेवाले, जिसने हमें दुर्योधन के भय से बचाये रखा, जो वत्सलभाव से युक्त, पुत्रों से प्यार करने

वाली और हमारी बहुत प्यारी है, जिसने सागर से नौका के समान हमारा मृत्यु के महान् संकट से उद्धार किया है, जो दुःख सहने के योग्य नहीं है, पर जिसने हमारे लिये हे माधव! लगातार दुःखों को सहा है, हमारी उस माता कुन्ती से मिलकर आप उसका कुशलसमाचार पूछना।

भृशमाश्वासयेश्चैनां पुत्रशोकपरिप्लुताम्॥ २२॥
अभिवाद्य स्वजेथास्त्वं पाण्डवान् परिकीर्तयन्।
ऊढात् प्रभृति दुःखानि श्वशुराणामरिंदम॥ २३॥
निकारानतदर्हा च पश्यन्ती दुःखमश्नुते।
अपि जातु स कालः स्यात् कृष्ण दुःखविपर्ययः॥ २४॥
यदहं मातरं क्लिष्टां सुखं दद्यामरिंदम।
प्रव्रजन्तोऽनुधावन्तीं कृपणां पुत्रगृद्धिनीम्॥ २५॥
रुदतीमपहायैनामगच्छाम वयं वनम्।

पुत्रों के शोक से भरी हुई उसे हमारा कुशल समाचार बताते हुए बहुत बहुत आश्वासन देना। आप उसे प्रणाम कर गले से लगाना। हे अरिन्दम! उसने विवाह से लेकर ही श्वसुर के घर में दुःखों और अपमान को ही देखा है। यद्यपि वह उनके योग्य नहीं थी। अब भी वह वहाँ दुःख ही उठा रही है। हे कृष्ण! हे अरिन्दम! क्या वह समय आयेगा जब हमारे दुःख समाप्त हो जाएँगे और हम दुःख में पड़ी हुई माता को सुख देंगे। जब हम वन को जा रहे थे, तब वह दीनता के साथ पुत्रों के प्रेम में भरी हुई, और रोती हुई हमारे पीछे भाग रही थी। हम उसे रोता हुआ ही छोड़कर वन में आ गये थे।

अभिवाद्याथ सा कृष्ण त्वया मद्वचनाद् विभो॥ २६॥
धृतराष्ट्रश्च कौरव्यो राजानश्च वयोऽधिकाः।
भीष्मं द्रोणं कृपं चैव महाराजं च बाह्लिकम्॥ २७॥
द्रौणिं च सोमदत्तं च सर्वांश्च भरतान् प्रति।
विदुरं च महाप्राज्ञं कुरूणां मन्त्रधारिणम्॥ २८॥
अगाधबुद्धिं मर्मज्ञं स्वजेथा मधुसूदन।
इत्युक्त्वा केशवं तत्र राजमध्ये युधिष्ठिरः॥ २९॥
अनुज्ञातो निववृते कृष्णं कृत्वा प्रदक्षिणम्।

हे प्रभो! हे कृष्ण! आप हमारी तरफ से उसे तथा कुरुवंशी धृतराष्ट्र, आयु में अधिक राजाओं, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, और महाराज बाह्लीक को प्रणामकर द्रोणाचार्य, सोमदत्त, सारे भरतवंशियों, कुरुओं के मन्त्र की रक्षा करने वाले, महाप्रज्ञ, अगाध बुद्धि और मर्मज्ञ विदुर को हे मधुसूदन। आप गले से लगायें। राजाओं के बीच में श्रीकृष्ण से ऐसा कहकर, उनसे आज्ञा लेकर और उनकी प्रदक्षिणा कर युधिष्ठिर तब लौट आये।

व्रजन्नेव तु बीभत्सुः सखायं पुरुषर्षभम्॥ ३०॥
अब्रवीत् परवीरघ्नं दाशार्हमपराजितम्।
तच्चेद् दद्यादसंगेन सत्कृत्यानवमन्य च॥ ३१॥
प्रियं मे स्यान्महाबाहो मुच्येरन् महतो भयात्।
अतश्चेदन्यथा कर्ता धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित्॥ ३२॥
अन्तं नूनं करिष्यामि क्षत्रियाणां जनार्दन।

तब अर्जुन अपने मित्र, पुरुषश्रेष्ठ, शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले, अपराजित, दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्ण जी के पीछे जाते हुए उनसे बोले कि हे महाबाहो। यदि वह लोभ को छोड़कर, अनादर न कर, सत्कारपूर्वक हमारा भाग हमें दे दे, तो मेरा प्रियकार्य हो जाये और सारे कौरव महान् भय से छूट जायें। पर यदि उपाय न जाननेवाला दुर्योधन इससे विपरीत कार्य करेगा तो हे जनार्दन! मैं निश्चय ही क्षत्रियों का अन्त कर दूँगा।

एवमुक्ते पाण्डवेन समहृष्यद् वृकोदरः॥ ३३॥
मुहुर्मुहुः क्रोधवशात् प्रावेपत च पाण्डवः।
वेपमानश्च कौन्तेयः प्राक्रोशन्महतो रवान्॥ ३४॥
धनंजयवचः श्रुत्वा हर्षोत्सिक्तमना भृशम्।
इत्युक्त्वा केशवं तत्र तथा चोक्त्वा विनिश्चयम्॥ ३५॥
अनुज्ञातो निववृते परिष्वज्य जनार्दनम्।
तेषु राजसु सर्वेषु निवृत्तेषु जनार्दनः॥ ३६॥
तूर्णमभ्यगमद्धृष्टः शैब्यसुग्रीववाहनः।

पाण्डुपुत्र अर्जुन के यह कहने पर भीम अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वे क्रोध के कारण बार बार काँपने लगे। अर्जुन की बात सुनकर मन में अत्यन्त हर्षित होकर वे कुन्तीपुत्र काँपते हुए जोरजोर से सिंहनाद करने लगे। इस प्रकार कृष्ण से बात कर और अपना निश्चय उन्हें बताकर, उनसे आज्ञा लेकर तथा उन्हें गले से लगाकर वे वहाँ से लौट गये। तब सारे राजाओं के लौट जाने पर शैव्य और सुग्रीव के रथ में बैठे हुए श्रीकृष्ण प्रसन्नता के साथ तेजी से आगे बढ़े।

वृकस्थलं समासाद्य केशवः परवीरहा॥ ३७॥
प्रकीर्णरश्मावादित्ये व्योम्नि वै लोहितायति।

अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि॥ ३८॥
रथमोचनमादिश्य संध्यामुपविवेश ह।
दारुकोऽपि हयान् मुक्त्वा परिचर्य च शास्त्रतः॥ ३९॥
मुमोच सर्वयोक्त्रादि मुक्त्वा चैतानवासृजत्।
अभ्यतीत्य तु तत् सर्वमुवाच मधुसूदनः॥ ४०॥
युधिष्ठिरस्य कार्यार्थमिह वत्स्यामहे क्षपाम्।

सूर्य की किरणों के छितराजाने पर, आकाश के सन्ध्या की लाली से लाल होजाने पर, वृकस्थल नाम के स्थान पर पहुँचकर, शत्रु वीरों को नष्ट करने वाले केशव, तुरन्त रथ से उतर पड़े और विधिपूर्वक शौचादि कर रथ को खोलने का आदेश देकर सन्ध्योपासना करने लगे। दारुक ने भी घोड़ों को खोलकर शास्त्रविधि से उनकी सेवा की और उनका सारा साज खोलकर उन्हें स्वतन्त्र छोड़ दिया। अपने सारे कार्य समाप्त कर श्रीकृष्ण जी ने कहा कि युधिष्ठिर के कार्य के लिये हम रात्रि में यहीं रहेंगे।

तस्य तन्मतमाज्ञाय चक्रुरावसथं नराः॥ ४१॥
क्षणेन चान्नपानानि गुणवन्ति समार्जयन्।
सुमृष्टं भोजयित्वा च ब्राह्मणांस्तत्र केशवः।
भुक्त्वा च सह तैः सर्वैरवसत् तां क्षपां सुखम्॥ ४२॥

उनके उस विचार को जानकर उनके सेवकों ने वहीं डेरे डाल दिये और थोड़ी देर में ही खाने के लिये उत्तमउत्तम गुणवान् पदार्थ प्रस्तुत कर दिये। फिर श्रीकृष्ण जी ने ब्राह्मणों को वह स्वादिष्ट भोजन कराकर उनके साथ स्वयं भी खाया और वह रात्रि वहीं सुख से व्यतीत की।

चौंतीसवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र का श्रीकृष्ण के महान् स्वागत हेतु कहना।

तथा दूतैः समाज्ञाय प्रयान्तं मधुसूदनम्।
धृतराष्ट्रोऽब्रवीद् भीष्ममर्चयित्वा महाभुजम्॥ १॥
द्रोणं च संजयं चैव विदुरं च महामतिम्।
दुर्योधनं सहामात्यं हृष्टरोमाब्रवीदिदम्॥ २॥

दूतों के द्वारा यह जानकर कि श्रीकृष्ण हस्तिनापुर प्रस्थान करनेवाले हैं, हर्ष से रोमांचित होकर धृतराष्ट्र ने विशाल बाहोंवाले भीष्म का सत्कार कर, द्रोणाचार्य, संजय और महामति विदुर तथा मन्त्रियों सहित दुर्योधन से कहा कि–

उपायास्यति दाशार्हः पाण्डवार्थे पराक्रमी।
स नो मान्यश्च पूज्यश्च सर्वथा मधुसूदनः॥ ३॥
तस्य पूजार्थमद्यैव संविधत्स्व परंतप।
सभाः पथि विधियन्तां सर्वकामसमन्विताः॥ ४॥
यथा प्रीतिर्महाबाहो त्वयि जायेत तस्य वै।
तथा कुरुष्व गान्धारे कथं वा भीष्म मन्यसे॥ ५॥
ततो भीष्मादयः सर्वे धृतराष्ट्रं जनाधिपम्।
ऊचुः परममित्येवं पूजयन्तोऽस्य तद् वचः॥ ६॥

पराक्रमी दशार्हकुलनन्दन मधुसूदन पाण्डवों के लिये यहाँ आयेंगे। वे हमारे सब प्रकार से मान्य और पूजनीय हैं। हे परंतप! तुम उनके स्वागत के लिये आज से ही तैयारी आरम्भ कर दो। उनके मार्ग में सब प्रकार की मनोनुकूल सामग्रियों से युक्त विश्रामस्थलों को बनवायें। हे गान्धारीपुत्र महाबाहु! तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे उनके हृदय में तुम्हारे प्रति प्रेम हो जाये। अथवा हे भीष्म जी! आप इस विषय में क्या समझते हैं? तब भीष्मादि सबने इन बातों की प्रशंसा करते हुए राजा धृतराष्ट्र से कहा कि बहुत उत्तम विचार है।

तेषामनुमतं ज्ञात्वा राजा दुर्योधनस्तदा।
सभावास्तूनि रम्याणि प्रदेष्टुमुपचक्रमे॥ ७॥
ततो देशेषु देशेषु रमणीयेषु भागशः।
सर्वरत्नसमाकीर्णाः सभाश्चक्रुरनेकशः॥ ८॥
विशेषतश्च वासार्थं सभां ग्रामे वृकस्थले।
विदधे कौरवो राजा बहुरत्नां मनोरमाम्॥ ९॥
ताः सभाः केशवः सर्वा रत्नानि विविधानि च।
असमीक्ष्यैव दाशार्ह उपायात् कुरुसद्म तत्॥ १०॥

उनकी अनुमति जानकर तब राजा दुर्योधन ने मार्ग में सुन्दर विश्रामगृह बनवाने के लिये आदेश देने आरम्भ कर दिये। उसके पश्चात् कारीगरों ने जगहजगह रमणीय स्थानों पर अलगअलग अनेक विश्रामघर बनाये, जो कि सब प्रकार से रत्न आदि ऐश्वर्यों से सम्पन्न थे। वृकस्थल ग्राम में तो विशेष रूप से बहुत ही सुन्दर विश्रामगृह बनवाया गया था। जो बहुत रत्नसम्पत्ति से भरपूर था। किन्तु दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्ण उन सारे विश्रामगृहों और अनेक तरह के रत्नों की तरफ न देखते हुए हस्तिनापुर की तरफ ही चलते चले गये।

धृतराष्ट्र उवाच

उपप्लव्यादिह क्षत्तरुपायातो जनार्दनः।
वृकस्थले निवसति स च प्रातरिहैष्यति॥ ११॥
आहुकानामधिपतिः पुरोगः सर्वसात्वताम्।
महामना महावीर्यो महासत्त्वो जनार्दनः॥ १२॥
तस्मै पूजां प्रयोक्ष्यामि दाशार्हाय महात्मने।
प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तां मे कथयतः शृणु॥ १३॥
एकवर्णैः सुक्लृप्ताङ्गैर्बाह्लिजातैर्हयोत्तमैः।
चतुर्युक्तान् रथांस्तस्मै रौक्मान् दास्यामि षोडश॥ १४॥

उसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा कि हे विदुर! श्रीकृष्ण उपप्लव्य नगर से चल दिये हैं और आज वृकस्थल में ठहरे हैं। वहाँ से वे प्रातः यहाँ के लिये चल देंगे। वे आहुकवंशी क्षत्रियों के स्वामी और सारे यादवों के अग्रणी हैं। वे श्रीकृष्ण विशाल हृदयवाले, महान् पराक्रमी और महाशक्तिशाली हैं। हे धर्मज्ञ! मैं उन महात्मा श्रीकृष्ण को सत्कार में तुम्हारे सामने ही जो भेंट दूँगा, उसे सुनो। मैं एक ही रंग के सुदृढ़ अंगों वाले, बाह्लीक देश में उत्पन्न उत्तम चारचार घोड़ों से जुते हुए, सोलह, सुनहले रथ उन्हें दूँगा।

नित्यप्रभिन्नान् मातङ्गानीषादन्तान् प्रहारिणः।
अष्टानुचरमेकैकमष्टौ दास्यामि कौरव॥ १५॥
आविकं च सुसखस्पर्शं पार्वतीयैरुपाहृतम्।
तदप्यस्मै प्रदास्यामि सहस्राणि दशाष्ट च॥ १६॥
अजिनानां सहस्राणि चीनदेशोद्भवानि च।
तान्यप्यस्मै प्रदास्यामि यावदर्हति केशवः॥ १७॥
दिवा रात्रौ च भात्येष सुतेजा विमलो मणिः।
तमप्यस्मै प्रदास्यामि तमर्हति हि केशवः॥ १८॥

सदा मद बहानेवाले, ईख के समान लम्बे दाँतों वाले, प्रहार करने में कुशल, आठआठ सेवकोंवाले, आठ मतवाले हाथी, हे कौरव! मैं उन्हें दूँगा। पर्वतीय लोगों के द्वारा भेंट में दिये हुए, भेड़ की ऊन से बने हुए अठारह हजार कम्बल मेरे पास हैं, मैं उन्हें भी श्रीकृष्ण जी को भेंट दूँगा। चीन देश में उत्पन्न सहस्रों मृगचर्म मेरे पास हैं, श्रीकृष्ण उनमें से जितने लेने चाहेंगे, वे सारे उन्हें दे दूँगा। मेरे पास एक अत्यन्त तेजस्वी मणि है, जो दिनरात जगमगाती रहती है, उसे भी मैं श्रीकृष्ण जी को दूँगा। क्योंकि वे ही उसके योग्य हैं।

एकेनाभिपतत्यह्ना योजनानि चतुर्दश।
यानमश्वतरीयुक्तं दास्ये तस्मै तदप्यहम्॥ १९॥
यावन्ति वाहनान्यस्य यावन्तः पुरुषाश्च ते।
ततोऽष्टगुणमप्यस्मै भोज्यं दास्याम्यहं सदा॥ २०॥
मम पुत्राश्च पौत्राश्च सर्वे दुर्योधनादृते।
प्रत्युद्यास्यन्ति दाशार्हं रथैर्मृष्टैः स्वलंकृताः॥ २१॥
स्वलंकृताश्च कल्याण्यः पादैरेव सहस्रशः।
वारमुख्या महाभागं प्रत्युद्यास्यन्ति केशवम्॥ २२॥

मेरे पास खच्चरियों से युक्त एक रथ है, जो एक दिन में चौदह योजन तक यात्रा कर लेता है। उसे भी मैं उन्हें भेंट करूँगा। श्रीकृष्ण के साथ जितने वाहन और सेवक होंगे, मैं उन्हें उनकी आवश्यकता से आठगुणा अधिक भोजन सदा देता रहूँगा। दुर्योधन के सिवाय मेरे जितने भी पुत्र और पौत्र हैं, वे सारे वस्त्राभूषण पहन कर सुन्दर रथों पर बैठकर उनकी अगवानी के लिये जायेंगे। उन महाभाग श्रीकृष्ण का स्वागत करने के लिये बहुत बड़ी संख्या में सुन्दरी वारांगनाएँ सुन्दर वेषभूषा और अलंकारों से सुसज्जित होकर पैदल ही जायेंगी।

सस्त्रीपुरुषबालं च नगरं मधुसूदनम्।
उदीक्षतां महात्मानं भानुमन्तमिव प्रजाः॥ २३॥
महाध्वजपताकाश्च क्रियन्तां सर्वतो दिशः।
जलावसिक्तो विरजाः पन्थास्तस्येति चान्वशात्॥ २४॥
दुःशासनस्य च गृहं दुर्योधनगृहाद् वरम्।
तदद्य क्रियतां क्षिप्रं सुसम्मृष्टमलंकृतम्॥ २५॥
सर्वमस्मिन् गृहे रत्नं मम दुर्योधनस्य च।
यद् यदर्हति वार्ष्णेय स्तत् तद् देयमसंशयम्॥ २६॥

जैसे उदय होते सूर्य का सारी प्रजा दर्शन करती है, वैसे ही स्त्री, पुरुष, और बच्चों सहित सारा नगर उन महात्मा श्रीकृष्ण का दर्शन करे। धृतराष्ट्र ने तब आदेश दिया कि सब तरफ बड़ी बड़ी पताकाएँ और ध्वज लहरा दिये जायें और उनके मार्ग पर पानी छिड़ककर उसे धूल रहित बना दिया जाये। दुश्शासन का महल दुर्योधन के महल से भी सुन्दर है, उसे आज जल्दी से झाड़ पौंछकर सजा दिया जाये। मेरे और दुर्योधन के सारे रत्न उसी महल में रखे हुए हैं, श्रीकृष्ण उनमें से जिनजिन को लेना चाहें, वे उन्हें बिना संशय के दे दिये जायें।

पैंतीसवाँ अध्याय : विदुर का धृतराष्ट्र को समझाना। श्रीकृष्ण सम्बन्धी दुर्योधन के उलटे विचारों से भीष्म का वहाँ से जाना।

विदुर उवाच

आर्जवं प्रतिपद्यस्व मा बाल्याद् बहु नीनशः।
राजन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च सुहृदश्चैव सुप्रियान्॥ १॥
यत् त्वमिच्छसि कृष्णाय राजन्नतिथये बहु।
एतदन्यच्च दाशार्हः पृथिवीमपि चार्हति॥ २॥
न तु त्वं धर्म मुद्दिश्य तस्य वा प्रियकारणात्।
एतद् दित्ससि कृष्णाय सत्येनात्मानमालभे॥ ३॥
मायैषा सत्यमेवैतच्छद्मैतद् भूरिदक्षिण।
जानामि त्वन्मतं राजन् गूढं बाह्येन कर्मणा॥ ४॥

तब विदुर जी ने कहा कि हे राजन्! आप सरलता का सहारा लीजिये। अज्ञानवश अपने अत्यन्त प्रिय पुत्रों, पौत्रों, मित्रों का नाश मत कराइये। आप अतिथि रूप में आये श्रीकृष्ण को जोकुछ भी देना चाहते हैं, वे दशार्हनन्दन इस सबकुछ और सारी पृथिवी को भी पानेयोग्य हैं, पर मैं सत्य की शपथ खाकर और अपने शरीर को छूकर कहता हूँ कि आप जो कुछ भी श्रीकृष्ण को देना चाहते हैं, वह धर्म का पालन करने के लिये या उनका प्रिय करने के लिये नहीं देना चाहते। हे बहुत दक्षिणा देनेवाले राजन्! आपके बाहरी कार्यों में छिपा हुआ आपका जो विचार है, उसे मैं जानता हूँ। मैं सत्य कहता हूँ कि यह सब आपकी माया और छल प्रपंच है।

अर्थेन तु महाबाहुं वार्ष्णेयं त्वं जिहीर्षसि।
अनेन चाप्युपायेन पाण्डवेभ्यो बिभेत्स्यसि॥ ५॥
न च वित्तेन शक्योऽसौ नोद्यमेन न गर्हया।
अन्यो धनंजयात् कर्तुमेतत् तत्त्वं ब्रवीमि ते॥ ६॥
वेद कृष्णस्य माहात्म्यं वेदास्य दृढभक्तिताम्।
अत्याज्यमस्य जानामि प्राणैस्तुल्यं धनंजयम्॥ ७॥
अन्यत् कुम्भादपां पूर्णादन्यत् पादावसेचनात्।
अन्यत् कुशलसम्प्रश्नान्नैषिष्यति जनार्दनः॥ ८॥

आप धन की सहायता से उस महाबाहु वार्ष्णेय का मन हरण करना चाहते हैं। आप समझते हैं कि इस उपाय से आप उन्हें पाण्डवों की तरफ से फोड़ लेंगे। इस विषय में मैं आपको सत्य बताता हूँ कि आप धन से, किसी और यत्न से या निन्दा से, उन्हें अर्जुन से अलग नहीं कर सकते। मैं श्रीकृष्ण की महानता को जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि प्राणों के समान प्रिय अर्जुन उनके लिये किसी अवस्था में त्यागने योग्य नहीं हैं। मैं उनके अर्जुन के प्रति दृढ़प्रेम को जानता हूँ। पानी से भरे हुए कलश, पैरों को जल से धुलवाना, और कुशल प्रश्नों के अतिरिक्त वे श्रीकृष्ण आपकी किसी भी वस्तु को लेना नहीं चाहेंगे।

यत् त्वस्य प्रियमातिथ्यं मानार्हस्य महात्मनः।
तदस्मै क्रियतां राजन् मानार्होऽसौ जनार्दनः॥ ९॥
आशंसमानः कल्याणं कुरूनभ्येति केशवः।
येनैव राजन्नर्थेन तदेवास्मा उपाकुरु॥ १०॥
शममिच्छति दाशार्हस्तव दुर्योधनस्य च।
पाण्डवानां च राजेन्द्र तदस्य वचनं कुरु॥ ११॥
पितासि राजन् पुत्रास्ते वृद्धस्त्वं शिशवः परे।
वर्तस्व पितृवत् तेषु वर्तन्ते ते हि पुत्रवत्॥ १२॥

हे राजन्! उस मान के योग्य महात्मा के लिये उसका जो प्रिय आतिथ्यकार्य है, वह तो आप कीजिये ही, क्योंकि वे श्रीकृष्ण मान के योग्य हैं। हे राजन्! सबके कल्याण की कामना से श्रीकृष्ण जिस प्रयोजन के लिये कुरुप्रदेश में आ रहे हैं, आप उन्हें वही उपहार में दीजिये। हे राजेन्द्र दशार्ह कुलनन्दन श्रीकृष्ण आप, दुर्योधन और पाण्डवों में शान्ति को चाहते हैं। आप उनकी बात को पूरा कीजिये। हे राजन्! आप उनके पिता हैं। वे आपके पुत्र हैं। आप बूढ़े हैं, वे बच्चे हैं। आप उन पाण्डवों के साथ पिता के समान व्यवहार कीजिये। वे भी आपके साथ पुत्रों के समान ही बर्ताव करते हैं।

दुर्योधन उवाच

यदाह विदुरः कृष्णे सर्वं तत् सत्यमच्युते।
अनुरक्तो ह्यसंहार्यः पार्थान् प्रति जनार्दनः॥ १३॥
यत् तत् सत्कारसंयुक्तं देयं वसु जनार्दने।
अनेकरूपं राजेन्द्र न तद् देयं कदाचन॥ १४॥
देशः कालस्तथायुक्तो न हि नार्हति केशवः।
मंस्यत्यधोक्षजो राजन् भयादर्चति मामिति॥ १५॥
अवमानश्च यत्र स्यात् क्षत्रियस्य विशाम्पते।
न तत् कुर्याद् बुधः कार्यमिति मे निश्चिता मतिः॥ १६॥

तब दुर्योधन ने कहा कि विदुर ने अच्युत श्रीकृष्ण के लिये जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है। श्रीकृष्ण कुन्तीपुत्रों के प्रति प्रेम रखते हैं और उनकी तरफ से उन्हें फोड़ा नहीं जा सकता। हे राजेन्द्र! आप जो उन्हें सत्कार में बहुत सा धन अनेक प्रकार से देना चाहते हैं, वह उन्हें कभी नहीं देना चाहिये। श्रीकृष्ण उनके योग्य नहीं हैं ऐसी बात नहीं है, पर इस समय देश और काल इस कार्य के लिये उचित नहीं है, श्रीकृष्ण इस समय यही समझेंगे कि ये भय के कारण मेरा सम्मान कर रहे हैं। हे प्रजा के स्वामी! जिस कार्य में क्षत्रिय का अपमान होता हो, बुद्धिमान् व्यक्ति को वह कार्य नहीं करना चाहिये। यह मेरा निश्चित विचार है।

न तु तस्मै प्रदेयं स्यात् तथा कार्यगतिः प्रभो।
विग्रहः समुपारब्धो न हि शाम्यत्यविग्रहात्॥ १७॥
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भीष्मः कुरुपितामहः।
वैचित्रवीर्यं राजानमिदं वचनमब्रवीत्॥ १८॥

हे प्रभो! उन्हें इस समय कुछ भी नहीं देना चाहिये। क्योंकि जब युद्ध आरम्भ हो गया है, तब शान्ति की बातें करने से उसकी शान्ति नहीं होगी। दुर्योधन की यह बात सुनकर कौरवों के पितामह भीष्म विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र से यह बोले कि–

सत्कृतोऽसत्कृतो वापि न क्रुद्ध्येत जनार्दनः।
नालमेनमवज्ञातुं नावज्ञेयो हि केशवः॥ १९॥
यत् तु कार्यं महाबाहो मनसा कार्यतां गतम्।
सर्वोपायैर्न तच्छक्यं केनचित् कर्तुमन्यथा॥ २०॥
स यद् ब्रूयान्महाबाहुस्तत् कार्यमविशङ्कया।
वासुदेवेन तीर्थेन क्षिप्रं संशाम्य पाण्डवैः॥ २१॥
धर्म्यमर्थ्यं च धर्मात्मा ध्रुवं वक्ता जनार्दनः।
तस्मिन् वाच्याः प्रिया वाचो भवता बान्धवैः सह॥ २२॥

चाहे सत्कार किया जाये या न किया जाये, श्रीकृष्ण इसके लिये क्रुद्ध नहीं होंगे, पर उनकी अवहेलना या अपमान न किया जाये, वे इसके योग्य नहीं हैं। हे महाबाहु! श्रीकृष्ण जिस कार्य को अपने मन में करने के लिये निश्चय कर लेते हैं, उसे कोई सारे उपाय करने पर भी उलट नहीं सकता। इसलिये महाबाहु श्रीकृष्ण जो कुछ कहें, उसे बिना किसी शंका के करना चाहिये। आप लोग श्रीकृष्ण के माध्यम से पाण्डवों से सन्धि कर लो। श्रीकृष्ण धर्मात्मा हैं। वे जो कुछ भी कहेंगे, वह धर्म और अर्थ से युक्त होगा, इसलिये आप अपने बन्धु बान्धवों के साथ उनसे मधुर भाषा में बात करें।

दुर्योधन उवाच

न पर्यायोऽस्ति यद् राजञ्श्रियं निष्केवलामहम्।
तैः सहेमामुपाश्नीयां यावज्जीवं पितामह॥ २३॥
इदं तु सुमहत् कार्यं शृणु मे यत् समर्थितम्।
परायणं पाण्डवानां नियच्छामि जनार्दनम्॥ २४॥
तस्मिन् बद्धे भविष्यन्ति वृष्णयः पृथिवी तथा।
पाण्डवाश्च विधेया मे स च प्रातरिहैष्यति॥ २५॥
अत्रोपायान् यथा सम्यङ् न बुद्ध्येत जनार्दनः।
न चापायो भवेत् कश्चित् तद् भवान् प्रब्रवीतु मे॥ २६॥

तब दुर्योधन ने कहा कि हे पितामह। हे राजन्! अब इस बात की कोई सम्भावना नहीं है कि मैं ऐसी राज्यश्री को जो निष्कंटक नहीं हो, जब तक जीऊँ उन पाण्डवों के साथ मिलकर भोगूँ। आप सुनिये। यह एक महान् कार्य है जिसे मैं करना चाहता हूँ। वह यह है कि पाण्डवों के सहारे श्रीकृष्ण को मैं कैद कर लूँगा। उनके बन्धन में पड़जाने पर वृष्णिलोग, सारी पृथिवी और पाण्डव मेरे बस में हो जायेंगे। वे कल प्रातःकाल वहाँ से यहाँ के लिये चल देंगे। इस विषय में और दूसरे उपायों को जिन्हें श्रीकृष्ण न जान पायें और मेरे उद्देश्य में विघ्न न पड़े आप मुझे बतायें।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा घोरं कृष्णाभिसंहितम्।
धृतराष्ट्रः सहामात्यो व्यथितो विमनाभवत्॥ २७॥
ततो दुर्योधनमिदं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद् वचः।
मैवं वोचः प्रजापाल नैष धर्मः सनातनः॥ २८॥
दूतश्च हि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्च नः।
अपापः कौरवेयेषु स कथं बन्धमर्हति॥ २९॥

भीष्म उवाच

परीतस्तव पुत्रोऽयं धृतराष्ट्र सुमन्दधीः।
वृणोत्यनर्थं नैवार्थं याच्यमानः सुहृज्जनैः॥ ३०॥

दुर्योधन की श्रीकृष्ण के प्रति षड्यन्त्रवाली इस बात को सुनकर धृतराष्ट्र अपने मन्त्रियों के साथ उदास और दुःखी हो गये। तब धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से यह कहा कि हे प्रजा का पालन करनेवाले। ऐसा मत कहो। यह सनातन धर्म नहीं है। श्रीकृष्ण इस समय दूत हैं। फिर वह हमारे संबंधी और प्रिय हैं।

उन्होंने कौरवों का कोई अपराध नहीं किया है, फिर वे क्यों कैद करनेयोग्य है? तब भीष्म ने कहा कि हे धृतराष्ट्र! तुम्हारा यह मूर्ख पुत्र मृत्यु के बस में हो गया है। यह शुभचिन्तकों के समझाने पर भी अनर्थ की बातों को ही अपना रहा है, सार्थक बातों को नहीं।

इममुत्पथि वर्तन्तं पापं पापानुबन्धिनम्।
वाक्यानि सुहृदां हित्वा त्वमप्यस्यानुवर्तसे॥ ३१॥
कृष्णमक्लिष्टकर्माणमासाद्यायं सुदुर्मतिः।
तव पुत्रः सहामात्यः क्षणेन न भविष्यति॥ ३२॥
पापस्यास्य नृशंसस्य त्यक्तधर्मस्य दुर्मतेः।
नोत्सहेऽनर्थसंयुक्ताः श्रोतुं वाचः कथंचन॥ ३३॥
इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो वृद्धः परममन्युमान्।
उत्थाय तस्मात् प्रातिष्ठद् भीष्मः सत्यपराक्रमः॥ ३४॥

तुम भी शुभचिन्तकों के वाक्यों पर ध्यान न देकर इस कुमार्ग पर चलने वाले, पापासक्त पापकर्मा का ही अनुसरण करते हो। अनायास ही महान् कर्म करने वाले श्रीकृष्ण से भिड़कर यह अत्यन्त दुर्मति तुम्हारा पुत्र अपने मन्त्रियों के साथ क्षण भर में नष्ट हो जायेगा। इस पापी निर्दय धर्म को छोड़नेवाले, दुष्टमति की अनर्थ से युक्त बातों को मैं किसी प्रकार भी सुनना नहीं चाहता। ऐसा कहकर वे सत्यपराक्रमी, बूढ़े भरतश्रेष्ठ भीष्म अत्यन्त क्रोध में भरकर, वहाँ से उठकर चले गये।

छत्तीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण जी का स्वागत। धृतराष्ट्र और विदुर के घर आतिथ्य।

धार्तराष्ट्रास्तमायान्तं प्रत्युज्जग्मुः स्वलंकृताः।
दुर्योधनादृते सर्वे भीष्मद्रोणकृपादयः॥ १॥
स वै पथि समागम्य भीष्मेणाक्लिष्टकर्मणा।
द्रोणेन धार्तराष्ट्रैश्च तैर्वृतो नगरं ययौ॥ २॥
कृष्णसम्माननार्थं च नगरं समलंकृतम्।
तथा च गतिमन्तस्ते वासुदेवस्य वाजिनः॥ ३॥
प्रणष्टगतयोऽभूवन् राजमार्गे नरैर्वृते।

उन आते हुए श्रीकृष्ण जी की अगवानी के लिये, दुर्योधन के सिवाय धृतराष्ट्र के सारे पुत्र अच्छी तरह से वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर, भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि के साथ गये। श्रीकृष्ण जी अनायास ही क्लिष्टकर्मों को करने वाले भीष्म से तथा द्रोणाचार्य से और धृतराष्ट्र के पुत्रों से मार्ग में ही मिलकर उनसे घिरे हुए नगर में प्रविष्ट हुए। श्रीकृष्ण जी के स्वागत के लिये नगर को सजाया हुआ था, सारा राजमार्ग लोगों से ऐसे भरा हुआ था कि तेजी से चलनेवाले श्रीकृष्ण जी के घोड़ों की गति रुक गयी।

स गृहं धृतराष्ट्रस्य प्राविशच्छत्रुकर्शनः॥ ४॥
पाण्डुरं पुण्डरीकाक्षः प्रासादैरुपशोभितम्।
तिस्रः कक्ष्या व्यतिक्रम्य केशवो राजवेश्मनः॥ ५॥
वैचित्रवीर्यं राजानमभ्यगच्छदरिंदमः।
अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः॥ ६॥
सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः।
कृपश्च सोमदत्तश्च महाराजश्च बाह्लिकः॥ ७॥
आसनेभ्योऽचलन् सर्वे पूजयन्तो जनार्दनम्।

फिर शत्रु को क्षीण करनेवाले कमलनयन श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र के अट्टालिकाओं से सुशोभित श्वेतभवन में प्रवेश किया। शत्रुदमन श्रीकृष्ण तीन ड्यौढ़ियाँ पार कर विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र के समीप पहुँचे। श्रीकृष्ण के आने पर महायशस्वी प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र भीष्म और द्रोणाचार्य के साथ अपने आसनों से उठ खड़े हुए। कृपाचार्य, सोमदत्त, महाराज बाह्लीक भी श्रीकृष्ण का सम्मान करते हुए अपने आसनों से खड़े हो गये।

ततो राजानमासाद्य धृतराष्ट्रं यशस्विनम्॥ ८॥
स भीष्मं पूजयामास वार्ष्णेयो वाग्भिरञ्जसा।
तेषु धर्मानुपूर्वीं तां प्रयुज्य मधुसूदनः॥ ९॥
यथावयः समीयाय राजभिः सह माधवः।
अथ द्रोणं सबाह्लीकं सपुत्रं च यशस्विनम्॥ १०॥
कृपं च सोमदत्तं च समीयाय जनार्दनः।
तत्रासीदूर्जितं मृष्टं काञ्चनं महदासनम्॥ ११॥
शासनाद् धृतराष्ट्रस्य तत्रोपाविशदच्युतः।

फिर यशस्वी राजा धृतराष्ट्र से मिलकर श्रीकृष्ण जी ने शीघ्रता से भीष्म जी का उत्तमवचनों से आदर किया। मधुवंशी मधुसूदन ने उन सबका धर्म के अनुसार सत्कार करके सब राजाओं से आयु के

अनुसार भेंट की। वे पुत्रसहित द्रोणाचार्य से, यशस्वी राजा बाह्लीक से, कृपाचार्य से, और सोमदत्त से भी मिले। वहाँ एक स्वच्छ, जगमगाता हुआ, सुनहला विशाल आसन था। धृतराष्ट्र के आदेश से वे अच्युत उस पर बैठ गये।

कृतातिथ्यस्तु गोविन्दः सर्वान् परिहसन् कुरून्॥ १२॥
आस्ते साम्बन्धिकं कुर्वन् कुरुभिः परिवारितः।
सोऽर्चितो धृतराष्ट्रेण पूजितश्च महायशाः॥ १३॥
राजानं समनुज्ञाप्य निरक्रामदरिंदमः।
विदुरावसथं रम्यमुपातिष्ठत माधवः॥ १४॥

आतिथ्य क्रिया पूरी हो जाने पर श्रीकृष्ण हँसते हुए, कौरवों से घिरे हुए, उनसे सम्बन्ध के अनुसार परिहास आदि करते हुए उनके साथ कुछ देर बैठे रहे। उसके पश्चात् धृतराष्ट्र से सम्मानित और पूजित होकर उनकी अनुमति प्राप्तकर वे महायशस्वी और अरिन्दम माधव वहाँ से बाहर निकले और विदुर के सुन्दर निवास स्थान पर पहुँचे।

कृतातिथ्यं तु गोविन्दं विदुरः सर्वधर्मवित्।
कुशलं पाण्डुपुत्राणामपृच्छन्मधुसूदनम्॥ १५॥
प्रीयमाणस्य सुहृदो विदुरो बुद्धिसत्तमः।
धर्मार्थनित्यस्य सतो गतरोषस्य धीमतः॥ १६॥
तस्य सर्वं सविस्तारं पाण्डवानां विचेष्टितम्।
क्षत्तुराचष्ट दाशार्हः सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्॥ १७॥

सारे धर्मों को जाननेवाले विदुर जी ने श्रीकृष्ण जी का आतिथ्यसत्कार किया और फिर उन मधुसूदन से उन्होंने पाण्डवों की कुशलता पूछी। विदुर जी बुद्धिमानों में श्रेष्ठ थे। सदा धर्म में लगे रहनेवाले, रोष से रहित, प्रेमी, शुभचिन्तक, धीमान् विदुर जी से सबकुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले श्रीकृष्ण जी ने तब पाण्डवों की सारी चेष्टाएँ विस्तार से कहीं।

सैंतीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण जी की कुन्ती से भेंट।

अथोपगम्य विदुरमपराह्णे जनार्दनः।
पितृष्वसारं स पृथामभ्यगच्छदरिंदमः॥ १॥
सा दृष्ट्वा कृष्णमायान्तं प्रसन्नादित्यवर्चसम्।
कण्ठे गृहीत्वा प्राक्रोशत् स्मरन्ती तनयान् पृथा॥ २॥
तेषां सत्त्ववतां मध्ये गोविन्दं सहचारिणम्।
चिरस्य दृष्ट्वा वार्ष्णेयं वाष्पमाहारयत् पृथा॥ ३॥
साब्रवीत् कृष्णमासीनं कृतातिथ्यं युधां पतिम्।
बाष्पगद्गदपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता॥ ४॥

विदुर जी से मिलने के पश्चात् शत्रुओं को नष्ट करनेवाले श्रीकृष्ण जी तीसरे पहर अपनी बूआ कुन्ती के पास गये। देदीप्यमान सूर्य के समान कान्तिवाले श्रीकृष्ण को आता हुआ देखकर, अपने पुत्रों को याद करती हुई कुन्ती उन्हें गले से लगाकर जोरजोर से रोने लगी। अपने उन शक्तिशाली पुत्रों के बीच में उनके साथ विचरण करनेवाले वृष्णिकुलनन्दन गोविन्द को बहुत दिनों के पश्चात् देखकर कुन्ती आँसुओं को बहाने लगी। योद्धाओं के स्वामी श्रीकृष्ण का उन्होंने पहले आतिथ्य किया, फिर उनके बैठजाने पर सूखे हुए मुख से और आँसुओं से भरे हुए गले से उनसे यह बोली कि—

ये ते बाल्यात् प्रभृत्येव गुरुशुश्रूषणे रताः।
परस्परस्य सुहृदः सम्मताः समचेतसः॥ ५॥
निकृत्या भ्रंशिता राज्याज्जनार्हा निर्जनं गताः।
विनीतक्रोधहर्षाश्च ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः॥ ६॥
त्यक्त्वा प्रियसुखे पार्था रुदतीमपहाय माम्।
अहार्षुश्च वनं यान्तः समूलं हृदयं मम॥ ७॥
अतदर्हा महात्मानः कथं केशव पाण्डवाः।

वे मेरे पुत्र पाण्डव जो बचपन से ही गुरुओं की सेवा में लगे रहते थे, आपस में स्नेह से बर्ताव करते थे, सबसे सम्मानित होते और सबसे समान व्यवहार करते थे, उन्हें धोखे से राज्य से भ्रष्ट कर दिया गया। यद्यपि वे जनसमुदाय में रहने के योग्य थे, पर उन्हें निर्जन वन में जाना पड़ा। उन्होंने क्रोध और हर्ष को वश में किया हुआ था, वे सत्यवादी थे और ब्राह्मणों का सम्मान करते थे, वे अपने प्रिय लोगों और सुख का त्याग कर और रोती हुई मुझे भी छोड़कर वन में चले गये। वन में जाते हुए वे मेरे हृदय को जड़सहित उखाड़कर ले गये। वे महात्मा इस कष्ट के योग्य नहीं थे, फिर हे केशव उन्हें यह कष्ट क्यों प्राप्त हुआ?

ऊषुर्महावने तात सिंहव्याघ्रगजाकुले॥ ८॥
बाला विहीनाः पित्रा ते मया सततलालिताः।
अपश्यन्तश्च पितरौ कथमूषुर्महावने॥ ९॥

हे तात! सिंह, व्याघ्र और हाथियों से भरे हुए वन में उन्हें रहना पड़ा। वे बचपन से ही पिता से विहीन हो गये थे, मैंने उनका सदा पालन किया। अपने माता पिता दोनों को न देखते हुए महान् वन में वे कैसे रहे होंगे?

ये स्म वारणशब्देन हयानां ह्रेषितेन च।
रथनेमिनिनादैश्च व्यबोध्यन्त तदा गृहे॥ १०॥
शङ्खभेरीनिनादेन वेणुवीणानुनादिना।
पुण्याहघोषमिश्रेण पूज्यमाना द्विजातिभिः॥ ११॥
वस्त्रै रत्नैरलंकारैः पूजयन्तो द्विजन्मनः।
अर्चितैरर्चनार्हैश्च स्तुवद्भिरभिनन्दिताः॥ १२॥
प्रासादाग्रेष्वबोध्यन्त राङ्कवाजिनशायिनः।
क्रूरं च निनदं श्रुत्वा श्वापदानां महावने॥ १३॥
न स्मोपयान्ति निद्रां ते न तदर्हा जनार्दन।

पहले घर में ऊँची अट्टालिकाओं, रंकुमृग के मुलायम चर्म के बिछौनों पर सोनेवाले पाण्डवलोग हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट और रथ के पहियों की घर्घराहट सुनकर जागते थे, जिन्हें पहले शंख और नगाड़े की ध्वनि और वीणा तथा बाँसुरी के संगीत से उठाया जाता था। उनके उठते हुए ब्राह्मण लोग पवित्र वाणी के द्वारा उनका आदर करते थे, पूजा के योग्य पूज्यपुरुष भी उनके गुणों का गानकर प्रशंसा किया करते थे और वे भी वस्त्राभूषणों और रत्नों के दान से ब्राह्मणों का सत्कार किया करते थे। वे ही पाण्डव हे श्रीकृष्ण! भयानक वनों में, जिनके योग्य वे बिल्कुल नहीं थे, क्रूर पशुओं के शब्दों को सुनकर अच्छी तरह से सो भी नहीं पाते होंगे।

ह्रीमान् सत्यधृतिर्दान्तो भूतानामनुकम्पिता॥ १४॥
कामद्वेषौ वशे कृत्वा सतां वर्त्मानुवर्तते।
अम्बरीषस्य मान्धातुर्ययातेर्नहुषस्य च॥ १५॥
भरतस्य दिलीपस्य शिबेरौशीनरस्य च।
राजर्षीणां पुराणानां धुरं धत्ते दुरुद्वहाम्॥ १६॥
शीलवृत्तोपसम्पन्नो धर्मज्ञः सत्यसंगरः।
राजा सर्वगुणोपेतस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत्॥ १७॥
अजातशत्रुर्धर्मात्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः।
श्रेष्ठः कुरुषु सर्वेषु धर्मतः श्रुतवृत्ततः॥ १८॥
प्रियदर्शो दीर्घभुजः कथं कृष्ण युधिष्ठिरः।

जो लज्जाशील, सत्य को धारण करनेवाला, जितेन्द्रिय, प्राणियों पर दया करनेवाला और द्वेष को अपने वश में कर सज्जनों के मार्ग पर चलता है, जो अम्बरीष, मान्धाता, ययाति, नहुष, भरत, दिलीप, उशीनरपुत्र शिबि आदि प्राचीन महापुरुषों द्वारा धारण की गयी कठिन मर्यादाओं द्वारा धारण करता है, जो शील और सदाचार से युक्त, धर्मज्ञ और सत्यवादी एवं सारे गुणों से युक्त है, जो अपने गुणों के कारण तीनों लोकों का भी राजा बन सकता है, जो अजातशत्रु है, धर्मात्मा है, शुद्ध सोने के समान कान्तिवाला है, जो अपने धर्मपालन, विद्या और आचरण से सारे कौरवों में श्रेष्ठ है, हे कृष्ण! वह प्रियदर्शी और लम्बी भुजाओंवाला युधिष्ठिर किस अवस्था में है?

यः स नागायुतप्राणो वातरंहा महाबलः॥ १९॥
क्रोधं बलममर्षं च यो निधाय परंतपः।
जितात्मा पाण्डवोऽमर्षी भ्रातुस्तिष्ठति शासने॥ २०॥
तेजोराशिं महात्मानं वरिष्ठममितौजसम्।
भीमं प्रदर्शनेनापि भीमसेनं जनार्दन॥ २१॥
तं ममाचक्ष्व वार्ष्णेय कथमद्य वृकोदरः।
आस्ते परिघबाहुः स मध्यमः पाण्डवो बली॥ २२॥

जो अनेक हाथियों के बराबर शक्तिवाला, वायु के समान वेगवाला और महान् बलशाली है, जो अपने क्रोध, बल और अमर्ष को अपने मन में ही रखकर भाई की आज्ञा के आधीन रहता है, जो परंतप, तेज का भंडार, अमिततेजस्वी, महात्मा, वरिष्ठ और केवल नाम से ही नहीं, देखने में भी भयानक है, हे कृष्ण! तुम मुझे उस परिघ के समान भुजाओंवाले, बलवान्, मध्यम पाण्डव वृकोदर के बारे में बताओ, कि वह किस अवस्था में है?

क्षिपत्येकेन वेगेन पञ्च बाणशतानि यः।
इष्वस्त्रे सदृशो राज्ञः कार्तवीर्यस्य पाण्डवः॥ २३॥
तेजसाऽऽदित्यसदृशो महर्षिसदृशो दमे।
क्षमया पृथिवीतुल्यो महेन्द्रसमविक्रमः॥ २४॥
आधिराज्यं महद् दीप्तं प्रथितं मधुसूदन।
आहृतं येन वीर्येण कुरूणां सर्वराजसु॥ २५॥
यस्य बाहुबलं सर्वे पाण्डवाः पर्युपासते।

स सर्वरथिनां श्रेष्ठः पाण्डवः सत्यविक्रमः॥ २६॥
यं गत्वाभिमुखः संख्ये न जीवन् कश्चिदाव्रजेत्।
यो जेता सर्वभूतानामजेयो जिष्णुरच्युत॥ २७॥
स ते भ्राता सखा चैव कथमद्य धनंजयः।

जो एक ही वेग में पाँच सौ बाणों को फैंकता है, जो धनुर्विद्या में राजा कार्तवीर्य के समान है, जो तेज में सूर्य के समान, इन्द्रियदमन में महर्षियों के समान, क्षमा में पृथिवी के समान, पराक्रम में इन्द्र के समान है। हे मधुसूदन! कौरवों का यह विशाल साम्राज्य जो सारे राजाओं में प्रख्यात और प्रकाशित हो रहा है, यह अर्जुन के ही पराक्रम से बढ़ाया हुआ है। जिसके बाहुबल पर सारे पाण्डव भरोसा रखते हैं, जो पाण्डव सत्यविक्रमी और सारे रथियों में श्रेष्ठ है, युद्धक्षेत्र में जिसके सामने जाकर कोई जीवित वापिस नहीं लौट सकता, जो सारे प्राणियों को जीत लेने वाला, अजेय, और जिष्णु है, हे अच्युत! वह तुम्हारा भाई और मित्र अर्जुन इस समय कैसा है?

दयावान् सर्वभूतेषु ह्रीनिषेवो महास्त्रवित्॥ २८॥
मृदुश्च सुकुमारश्च धार्मिकश्च प्रियश्च मे।
सहदेवो महेष्वासः शूरः समितिशोभनः॥ २९॥
भ्रातृणां कृष्ण शुश्रूषुर्धर्मार्थकुशलो युवा।
सदैव सहदेवस्य भ्रातरो मधुसूदन॥ ३०॥
वृत्तं कल्याणवृत्तस्य पूजयन्ति महात्मनः।
ज्येष्ठोपचायिनं वीरं सहदेवं युधां पतिम्॥ ३१॥
शुश्रूषुं मम वार्ष्णेय माद्रीपुत्रं प्रचक्ष्व मे।

जो सारे प्राणियों पर दया करनेवाला, लज्जा को धारण करनेवाला, महान अस्त्रवेत्ता, मधुर, सुकुमार, धार्मिक और मेरा प्यारा है, वह महाधनुर्धर, युद्धक्षेत्र में शोभा पानेवाला, भाइयों की सेवा करनेवाला, धर्म अर्थ में कुशल और युवा है। हे श्रीकृष्ण! जिस महात्मा सहदेव के आचरण तथा कल्याणकारी कार्यों की उसके भाई पाण्डव सदैव प्रशंसा करते हैं, बड़े भाई के प्रति अनुरक्त, वीर, योद्धाओं का मुखिया, मेरी सेवा करनेवाला, माद्री का पुत्र सहदेव कैसा है? हे वार्ष्णेय! तुम मुझे बताओ।

सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः॥ ३२॥
भ्रातृणां चैव सर्वेषां प्रियः प्राणो बहिश्चरः।
चित्रयोधी च नकुलो महेष्वासो महाबलः॥ ३३॥
कश्चित् सकुशली कृष्ण वत्सो मम सुखैधितः।
सुखोचितमदुःखार्हं सुकुमारं महारथम्॥ ३४॥
अपि जातु महाबाहो पश्येयं नकुलं पुनः।
पक्ष्मसम्पातजे काले नकुलेन विनाकृता॥ ३५॥
न लभामि धृतिं वीर साद्य जीवामि पश्य माम्।

जो पाण्डव सुकुमार है, युवा है, दर्शनीय और वीर है, जो सारे पाण्डवों का मानों बाहर विचरण करता हुआ प्राण है, जो विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाला, महाधनुर्धर और महाबलवान् है, हे श्रीकृष्ण! वह मेरा पुत्र नकुल, सुख से पलाहुआ, क्या कुशल पूर्वक है? वह सुकुमार और महारथी नकुल सुख ही पानेयोग्य है, दुःखपाने योग्य नहीं है। क्या कभी हे महाबाहु! मैं उसे फिर देख पाऊँगी? जो पहले पलभर के लिये भी मैं नकुल के बिना धैर्य को धारण नहीं कर पाती थी, आज वही उसके बिना जीवित हूँ। मेरी निर्दयता को देखो।

महाभिजनसम्पन्ना सर्वकामैः सुपूजिता॥ ३६॥
ईश्वरी सर्वकल्याणी द्रौपदी कथमच्युत।
चतुर्दशमिदं वर्षं यन्नापश्यमरिंदम॥ ३७॥
पुत्रादिभिः परिद्यूनां द्रौपदीं सत्यवादिनीम्।
न नूनं कर्मभिः पुण्यैरश्नुते पुरुषः सुखम्॥ ३८॥
द्रौपदी चेत् तथावृत्ता नाश्नुते सुखमव्ययम्।
न प्रियो मम कृष्णाया बीभत्सुर्न युधिष्ठिरः॥ ३९॥
भीमसेनो यमौ वापि यदपश्यं सभागताम्।
न मे दुःखतरं किंचिद् भूतपूर्वं ततोऽधिकम्॥ ४०॥

जो महान्कुल से युक्त है, जिसका मैंने सारी कामनाओं की वस्तुएँ देकर अच्छा सम्मान किया था, जो सबका कल्याण करनेवाली महारानी है, हे अच्युत! वह द्रौपदी अब किस अवस्था में है? उस सत्यवादी द्रौपदी को, जो अपने पुत्रादियों के वियोग में दुबली हो रही होगी, बिना देखे हे शत्रुदमन! यह चौदहवाँ वर्ष चल रहा है। इस प्रकार के श्रेष्ठ आचरणवाली द्रौपदी भी यदि स्थायी सुख को प्राप्त नहीं कर रही है तो यही कहना चाहिये कि वास्तव में मनुष्य को पुण्यकर्मों से भी सुख नहीं मिलता है। मुझे द्रौपदी के बराबर अर्जुन, युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव भी प्यारे नहीं हैं। उसी द्रौपदी को जब मैंने सभा में लाया हुआ देखा, तो मुझे जितना दुःख हुआ, वैसा और उससे अधिक दुःख पहले कभी नहीं हुआ था।

स्त्रीधर्मिणीं द्रौपदीं यच्छ्वशुराणां समीपगाम्।
आनायितामनार्येण क्रोधलोभानुवर्तिना॥ ४१॥
सर्वे प्रैक्षन्त कुरव एकवस्त्रां सभागताम्।
तत्रैव धृतराष्ट्रश्च महाराजश्च बाह्लिकः॥ ४२॥
कृपश्च सोमदत्तश्च निर्विण्णाः कुरवस्तथा।
तस्यां संसदि सर्वेषां क्षत्तारं पूजयाम्यहम्॥ ४३॥
वृत्तेन हि भवत्यार्यो, न धनेन न विद्यया।
तस्य कृष्ण महाबुद्धेर्गम्भीरस्य महात्मनः॥ ४४॥
क्षत्तुः शीलमलंकारो लोकान् विष्टभ्य तिष्ठति।

स्त्री धर्म में विद्यमान, एकवस्त्रवाली द्रौपदी को जो क्रोधी, लोभी और अनार्य दुर्योधन के द्वारा सभा में बुलवाया गया और अपने श्वसुरों के समीप खड़ा कर दिया गया तब सारे कौरवों ने उसे देखा था। वहीं धृतराष्ट्र, महाराजा बाह्लीक, कृपाचार्य, सोमदत्त सारे उदास हुए बैठे थे। उस सारी सभा में मैं तो विदुर की प्रशंसा करती हूँ, जिन्होंने उस अन्याय का विरोध किया। वास्तव में मनुष्य अपने आचरण से आर्य बनता है, धन और विद्या ने नहीं। हे कृष्ण! उन महाबुद्धिमान्, गम्भीरस्वभाव महात्मा विदुर का शीलस्वभाव ही आभूषण है जो सारे संसार में प्रसिद्ध है।

तन्मां दहति यत् कृष्णा सभायां कुरुसंनिधौ॥ ४५॥
धार्तराष्ट्रैः परिक्लिष्टा यथा न कुशलं तथा।
अज्ञातचर्या बालानामवरोधश्च माधव॥ ४६॥
न मे क्लेशतमं तत् स्यात् पुत्रैः सह परंतप।
दुर्योधनेन निकृता वर्षमद्य चतुर्दशम्॥ ४७॥
न मे विशेषो जात्वासीद् धार्तराष्ट्रेषु पाण्डवैः।
तेन सत्येन कृष्ण त्वां हतामित्रं श्रिया वृतम्॥ ४८॥
अस्माद् विमुक्तं संग्रामात् पश्येयं पाण्डवैः सह।
नैव शक्याः पराजेतुं सर्वं ह्येषां तथाविधम्॥ ४९॥

द्रौपदी को सभा में सारे कौरवों के सामने जो क्लेश धृतराष्ट्र के पुत्रों के द्वारा पहुँचाया गया, जो किसी के लिये भी कल्याणकारी नहीं था, वह मुझे सदा जलाता रहता है। हे माधव परंतप! पहले अज्ञातवास में रहे, अब राज्य न मिलने से आजीविका भी समाप्त हो गयी। मेरे पुत्रों को इतना महान् क्लेश नहीं प्राप्त होना चाहिये। दुर्योधन के द्वारा कपट किये हुए अब चौदहवाँ वर्ष चल रहा है। मैंने धृतराष्ट्र के पुत्रों और पाण्डवों में कोई भेद नहीं रखा। इसी सत्य के प्रभाव से हे कृष्ण! मैं तुम्हें पाण्डवों के साथ शत्रुओं का संहार किये हुए, राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किये हुए और संग्राम के द्वारा इस कष्ट से छूटा हुआ देखूँगी। पाण्डवों में ऐसे गुण हैं, जिनके कारण वे शत्रुओं से पराजित होने के योग्य नहीं हैं।

न मां माधव वैधव्यं नार्थनाशो न वैरता।
तथा शोकाय दहति यथा पुत्रैर्विनाभवः॥ ५०॥
इत्तश्चतुर्दशं वर्षं यन्नापश्यं युधिष्ठिरम्।
धनंजयं च गोविन्द यमौ तं च वृकोदरम्॥ ५१॥
ब्रूया माधव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः॥ ५२॥
अथो धनंजयं ब्रूया नित्योद्युक्तं वृकोदरम्।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः॥ ५३॥

हे माधव! मुझे अपना विधवापन, धन का नाश, परिवारवालों के साथ वैरभाव इतना दुःख नहीं देते, जितना पुत्रों के बिना रहना दुःख दे रहा है। चौदह वर्ष से मैंने हे कृष्ण! युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को नहीं देखा है। हे माधव! तुम धर्मात्मा युधिष्ठिर राजा से कहना कि हे पुत्र! तुम्हारे धर्म का बहुत नाश हो रहा है। तुम इसे नष्ट न होने देना। तुम नित्य युद्ध के लिये तैयार रहनेवाले भीम और अर्जुन से कहना कि क्षत्रियाणी जिस दिन के लिये अपनी सन्तान को जन्म देती है, वह दिन अब आनेवाला है।

अस्मिंश्चेदागते काले मिथ्या चातिक्रमिष्यति।
लोकसम्भाविताः सन्तः सुनृशंसं करिष्यथ॥ ५४॥
नृशंसेन च वो युक्तांस्त्यजेयं शाश्वतीः समाः।
काले हि समनुप्राप्ते त्यक्तव्यमपि जीवनम्॥ ५५॥
माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतौ सदा।
विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि॥ ५६॥
विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः।
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम॥ ५७॥

इस समय यदि तुम युद्ध नहीं करोगे, तो यह अवसर व्यर्थ होकर बीत जायेगा। तुम लोग संसार में प्रसिद्ध पुरुष हो, यदि तुम अधिक बुरा काम करोगे, तो तुम्हारे उस कार्य के कारण मैं तुम्हारा सदा के लिये त्याग कर दूँगी। उचित अवसर आने पर अपने जीवन का भी त्याग करने के लिये उद्यत रहना चाहिये। तुम माद्री के दोनों पुत्रों नकुल और सहदेव से, जो कि सदा क्षत्रिय धर्म में लगे रहते हैं, कहना कि तुम प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने

पराक्रम से प्राप्त भोगों को ही वरण करना। हे पुरुषोत्तम! क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए जीवित रहनेवाले मनुष्य के मन को पराक्रम से प्राप्त समृद्धि ही प्रसन्न रखती है।

गत्वा ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
अर्जुनं पाण्डवं वीरं द्रौपद्याः पदवीं चर॥ ५८॥
तयोश्चैतदवज्ञानं यत् सा कृष्णा सभां गता।
दुःशासनश्च कर्णश्च परुषाण्यभ्यभाषताम्॥ ५९॥
दुर्योधनो भीमसेनमभ्यगच्छन्मनस्विनम्।
पश्यतां कुरुमुख्यानां तस्य द्रक्ष्यति यत् फलम्॥ ६०॥
न हि वैरं समासाद्य प्रशाम्यति वृकोदरः।
सुचिरादपि भीमस्य न हि वैरं प्रशाम्यति॥ ६१॥
यावदन्तं न नयति शात्रवाञ्छत्रुकर्शनः।

हे महाबाहु! तुम जाकर सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ वीर पाण्डव अर्जुन से कहना कि तुम द्रौपदी की सलाह के अनुसार कार्य करो। द्रौपदी को जो सभा में जाना पड़ा, दुश्शासन और कर्ण ने उसे कठोर वचन सुनाये, दुर्योधन ने प्रमुख कौरवों के देखते हुए भीम का अपमान किया, यह भीम और अर्जुन दोनों का अपमान है। इसके फल को वह अवश्य देखेगा। भीम बैर होने पर शान्त नहीं होता है। जब तक वह शत्रु का मर्दन करनेवाला शत्रु का अन्त नहीं कर देता है, उस भीम का बैर बहुत दिनों तक शान्त नहीं होता है।

न दुःखं राज्यहरणं न च द्यूते पराजयः॥ ६२॥
प्रव्राजनं तु पुत्राणां न मे तद् दुःखकारणम्।
यत् तु सा बृहती श्यामा एकवस्त्रा सभां गता॥ ६३॥
अशृणोत् परुषा वाचः किं नु दुःखतरं ततः।
स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा॥ ६४॥
नाभ्यगच्छत् तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती।

मुझे जूए में हार का तथा राज्य छिनने का, और पुत्रों के वन में भेज दिये जाने का भी इतना दुःख नहीं हुआ जितना इससे हुआ कि मेरी बहुत सुन्दरी वधु को एक वस्त्र में ही सभा में जाना पड़ा और वहाँ कठोर वाक्य सुनने पड़े। इससे अधिक और दुःख की क्या बात हो सकती है? सदा क्षत्रियधर्म में अनुरक्त मेरी वह सुन्दर द्रौपदी उस समय स्त्रीधर्म में विद्यमान थी, सनाथा होते हुए भी उसको कोई नाथ अर्थात् रक्षक उस समय नहीं मिल पाया।

यस्या मम सपुत्रायास्त्वं नाथो मधुसूदन॥ ६५॥
रामश्च बलिनां श्रेष्ठः प्रद्युम्नश्च महारथः।
साहमेवंविधं दुःखं सहेऽद्य पुरुषोत्तम॥ ६६॥
भीमे जीवति दुर्धर्षे विजये चापलायिनि।
तत आश्वासयामास पुत्राधिभिरभिप्लुताम्॥ ६७॥
पितृष्वसारं शोचन्तीं शौरिः पार्थसखः पृथाम्।

हे पुरुषों में श्रेष्ठ! जिस पुत्रोंवाली कुन्ती के रक्षक कृष्ण, बलवानों में श्रेष्ठ बलराम, महारथी प्रद्युम्न हैं, वह मैं दुर्धर्ष भीम और पलायन न करनेवाले अर्जुन के जीवित रहते हुए इस प्रकार के दुःख सहन कर रही हूँ। तब पुत्रों के दुःख से भरी हुई, शोक करती हुई अपनी बूआ कुन्ती को अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण ने इस प्रकार आश्वासन दिया।

का तु सीमन्तिनी त्वादृक् लोकेष्वस्ति पितृष्वसः॥ ६८॥
शूरस्य राज्ञो दुहिता आजमीढकुलं गता।
महाकुलीना भवती ह्रदाद्ध्रदमिवागता॥ ६९॥
ईश्वरी सर्वकल्याणी भर्त्रा परमपूजिता।
वीरसूर्वीरपत्नी त्वं सर्वैः समुदिता गुणैः॥ ७०॥
सुखदुःखे महाप्राज्ञे त्वादृशी सोढुमर्हति।
निद्रातन्द्रे क्रोधहर्षौ क्षुत्पिपासे हिमातपौ॥ ७१॥
एतानि पार्था निर्जित्य नित्यं वीरसुखे रताः।

वे बोले कि हे बूआ! संसार में तुम्हारे समान कौन स्त्री है? तुम राजा शूरसेन की पुत्री अजामीढ़ कुल में विवाहित हो। इस प्रकार एक महानकुल में तुमने जन्म लिया और दूसरे महानकुल में विवाह होकर गयीं जैसे कमलिनी एक तालाब से दूसरे तालाब में गयी हो। उस समय तुम सबका कल्याण करनेवाली महारानी थीं। पति के द्वारा तुम अत्यन्त पूजित थीं। तुम वीर पुरुष की पत्नी और वीर पुरुषों को जन्म देने वाली हो। सारे गुण तुममें विद्यमान हैं। हे महाप्राज्ञे! तुम जैसी स्त्रियाँ ही सुख और दुःख को सहन कर सकती हैं। तुम्हारे पुत्रों ने निद्रा और तन्द्रा, क्रोध तथा हर्ष, भूख एवं प्यास, और गर्मी, सर्दी सबको जीत लिया है। वे सदा वीरों के योग्य सुख का भोग करते हैं।

त्यक्तग्राम्यसुखाः पार्था नित्यं वीर सुखप्रियाः॥ ७२॥
न तु स्वल्पेन तुष्येयुर्महोत्साहा महाबलाः।
अभिवादयन्ति भवतीं पाण्डवाः सह कृष्णया॥ ७३॥
आत्मानं च कुशलिनं निवेद्याहुरनामयम्।

अरोगान् सर्वसिद्धार्थान् क्षिप्रं द्रक्ष्यसि पाण्डवान्॥ ७४॥
ईश्वरान् सर्वलोकस्य हतामित्राञ्श्रिया वृतान्।
एवमाश्वासिता कुन्ती प्रत्युवाच जनार्दनम्॥ ७५॥
पुत्रादिभिरभिध्वस्ता निगृह्याबुद्धिजं तमः।

तुम्हारे पुत्रों ने गँवार लोगों के योग्य सुखों को त्याग दिया है। वे सदा वीर पुरुषों के योग्य सुखों को ही चाहते हैं। वे महान् उत्साहवाले और महाबली हैं, वे थोड़े से सुख से सन्तुष्ट नहीं हो सकते। सारे पाण्डव द्रौपदी के साथ आपको प्रणाम करते हैं। उन्होंने अपनी कुशलता और अपने आरोग्य के विषय में बताया है। तुम जल्दी ही देखोगी कि पाण्डव स्वस्थ हैं और उनके सारे प्रयोजन सिद्ध हो गये हैं, उन्होंने शत्रुओं का संहार कर दिया है, वे सारे संसार के अधिपति हो गये हैं तथा समृद्धि ने उनका वरण कर लिया है। श्रीकृष्ण जी से इस प्रकार आश्वासन पाकर कुन्ती जो अपने पुत्र आदियों से दूर थी, अपने अज्ञानजनित मोह को वश में करके उनसे बोली कि–

यद् यत् तेषां महाबाहो पथ्यं स्यान्मधुसूदन॥ ७६॥
यथा यथा त्वं मन्येथाः कुर्याः कृष्ण तथा तथा।
अविलोपेन धर्मस्य अनिकृत्या परंतप।
प्रभावज्ञास्मि ते कृष्ण सत्यस्याभिजनस्य च॥ ७७॥

हे महाबाहु! उनके लिये जो जो कार्य लाभदायक हों तथा जिन जिन कार्यों को तुम उनके लिये हितकर समझो, वैसे वैसे ही करना। हे शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले! तुम्हें धर्म का लोप न करते हुए और छल तथा कपट से दूर रहकर कार्य करने चाहियें। मैं तुम्हारे कुलमर्यादा और सत्यपरायणता के प्रभाव को जानती हूँ।

अड़तीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण का दुर्योधन के घर जाना, उसके निमन्त्रण को अस्वीकार कर विदुर के घर भोजन।

पृथामामन्त्र्य गोविन्दःकृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्।
दुर्योधनगृहं शौरिरभ्यगच्छदरिंदमः॥ १॥
तत्र राजसहस्रैश्च कुरुभिश्चाभिसंवृतम्।
धार्तराष्ट्रं महाबाहुं ददर्शासीनमासने॥ २॥
दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि सौबलम्।
दुर्योधनसमीपे तानासनस्थान् ददर्श सः॥ ३॥
अभ्यागच्छति दाशार्हे धार्तराष्ट्रो महायशाः।
उदतिष्ठत् सहामात्यः पूजयन् मधुसूदनम्॥ ४॥

उसके पश्चात् कुन्ती की आज्ञा लेकर और उसकी परिक्रमा कर शत्रुओं का दमन करनेवाले, शूरसेनवंशी श्रीकृष्ण दुर्योधन के घर गये। वहाँ उन्होंने बहुत सारे राजाओं और कुरुवंशियों से घिरे हुए, महाबाहु दुर्योधन को सिंहासन पर बैठे हुए देखा। वहाँ उन्होंने दुर्योधन के समीप दुश्शासन, कर्ण और शकुनि को भी आसनों पर बैठे देखा। दशार्हनन्दन श्रीकृष्ण के आते ही महायशस्वी दुर्योधन श्रीकृष्ण जी का सत्कार करते हुए अपने मन्त्रियों सहित उठ कर खड़ा हो गया।

समेत्य धार्तराष्ट्रेण सहामात्येन केशवः।
राजभिस्तत्र वार्ष्णेयः समागच्छद् यथावयः॥ ५॥
तत्र जाम्बूनदमयं पर्यङ्कं सुपरिष्कृतम्।
विविधास्तरणास्तीर्णमभ्युपाविशदच्युतः ॥ ६॥
तत्र गोविन्दमासीनं प्रसन्नादित्यवर्चसम्।
उपासांचक्रिरे सर्वे कुरवो राजभिः सह॥ ७॥
ततो दुर्योधनो राजा वार्ष्णेयं जयतां वरम्।
न्यमन्त्रयद् भोजनेन नाभ्यनन्दच्च केशवः॥ ८॥

मन्त्रियों सहित दुर्योधन से मिलकर वृष्णिवंशी श्रीकृष्ण ने वहाँ विद्यमान सारे राजाओं से आयु के अनुसार भेंट की। उसके पश्चात् अपनी मर्यादा से च्युत न होनेवाले श्रीकृष्ण वहाँ रखे हुए सुनहले और सुसज्जित पलंग पर, जिस पर तरहतरह के बिछौने बिछे हुए थे, बैठ गये। फिर विजय प्राप्त करने वालों में श्रेष्ठ उन वृष्णीवंशी को राजा दुर्योधन ने भोजन का निमंत्रण दिया, जिसे श्रीकृष्ण ने स्वीकार नहीं किया।

ततो दुर्योधनः कृष्णमब्रवीत् कुरुसंसदि।
मृदुपूर्वं शठोदर्कं कर्णमाभाष्य कौरवः॥ ९॥
कस्मादन्नानि पानानि वासांसि शयनानि च।
त्वदर्थमुपनीतानि नाग्रहीस्त्वं जनार्दन॥ १०॥
उभयोश्चाददाः साह्यमुभयोश्च हिते रतः।

सम्बन्धी दयितश्चासि धृतराष्ट्रस्य माधव॥ ११॥
त्वं हि गोविन्द धर्मार्थौ वेत्थ तत्त्वेन सर्वशः।
तत्र कारणमिच्छामि श्रोतुं चक्रगदाधर॥ १२॥

तब कर्ण से सलाह कर दुर्योधन उस कौरवसभा में श्रीकृष्ण जी से आरम्भ में कोमलतापूर्वक पर अन्त में, शठतायुक्त यह बोला कि हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे लिये हमने जो अन्नपान, वस्त्र, शय्याएँ आदि जो प्रस्तुत कीं, उन्हें तुमने क्यों स्वीकार नहीं किया? आपने दोनों पक्षों को सहायता दी है, आप दोनों पक्षों की भलाई में लगे हुए हैं। हे माधव! आप धृतराष्ट्र के संबंधी और प्रिय हैं। हे गोविन्द! आप धर्म अर्थ को भी वास्तविक रूप से जानते हैं। हे चक्र और गदा को धारण करनेवाले! मैं इस विषय में कारण को सुनना चाहता हूँ।

स एवमुक्तो गोविन्दः प्रत्युवाच महामनाः।
उद्यन्मेघस्वनः काले प्रगृह्य विपुलं भुजम्॥ १३॥
अलघूकृतमग्रस्तम- निरस्तमसंकुलम्।
राजीवनेत्रो राजानं हेतुमद् वाक्यमुत्तमम्॥ १४॥
कृतार्था भुञ्जते दूताः पूजां गृह्णन्ति चैव ह।
कृतार्थं मां सहामात्यं समर्चिष्यसि भारत॥ १५॥

ऐसा कहे जाने पर कमलनयन महामना श्रीकृष्ण ने अपनी विशाल भुजा को ऊपर उठाकर मेघ के समान गम्भीर वाणी में उत्तर देना आरम्भ किया, उनके वाक्यों में दीनता नहीं थी, उनमें दोष नहीं थे, वे गुणों से हीन नहीं थे, उनमें संकीर्णता नहीं थी, उनमें उत्तमता और युक्तियुक्तता थी। वे बोले कि हे भारत! दूत लोग तभी पूजा को ग्रहण करते हैं और भोजन करते हैं, जब उनका प्रयोजन पूरा हो जाता है। इसलिये जब मेरा प्रयोजन पूरा हो जायेगा तब ही तुम मेरा और मेरे मन्त्रियों का सत्कार करना।

एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रो जनार्दनम्।
न युक्तं भवतास्मासु प्रतिपत्तुमसाम्प्रतम्॥ १६॥
कृतार्थं वाकृतार्थं च त्वां वयं मधुसूदन।
यतामहे पूजयितुं दाशार्ह न च शक्नुमः॥ १७॥
न च तत् कारणं विद्मो यस्मिन् नो मधुसूदन।
पूजां कृतां प्रीयमाणैर्नामंस्थाः पुरुषोत्तम॥ १८॥
वैरं नो नास्ति भवता गोविन्द न च विग्रहः।
स भवान् प्रसमीक्ष्यैतन्नेदृशं वक्तुमर्हति॥ १९॥

ऐसा कहे जाने पर दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को उत्तर दिया कि आपको हमारे साथ ऐसा अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिये। हे मधुसूदन! चाहे आपका उद्देश्य सफल हो या नहीं हो, हम तो आपका सत्कार करने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर हमें उसमें सफलता नहीं मिल रही है। हे मधुसूदन! हे पुरुषोत्तम! हमें तो कोई ऐसा कारण मालूम नहीं हो रहा कि जो हमारे द्वारा प्रसन्न होकर किये हुए सत्कार को आप स्वीकार नहीं कर रहे हैं। हे गोविन्द! आपका हमारे साथ कोई बैर या झगड़ा नहीं है। इन बातों पर विचार कर आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये।

एवमुक्तः प्रत्युवाच धार्तराष्ट्रं जनार्दनः।
अभिवीक्ष्य सहामात्यं दाशार्हः प्रहसन्निव॥ २०॥
नाहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नार्थकारणात्।
न हेतुवादाल्लोभाद् वा धर्मं जह्यां कथंचन॥ २१॥
सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्‌गता वयम्॥ २२॥
अकस्माद् द्वेष्टि वै राजन् जन्मप्रभृति पाण्डवान्।
प्रियानुवर्तिनो भ्रातॄन् सर्वैः समुदितान् गुणैः॥ २३॥

ऐसा कहे जाने पर श्रीकृष्ण ने दुर्योधन और उसके मन्त्रियों की तरफ देख कर मुस्कराते हुए उत्तर दिया कि मैं किसी कामना से, क्रोध से, द्वेष से, प्रयोजन से, बहाने बाजी से या लोभ से, किसी भी कारण से, धर्म का किसी भी प्रकार त्याग नहीं कर सकता। किसी के घर भोजन या तो प्रेम के कारण किया जाता है या मुसीबत में पड़ने पर किया जाता है। हे राजन्! न तो तुम्हारा हमारे प्रति प्रेम है और न हमारे ऊपर कोई संकट है। हे राजन्! तुम अपने भाई पाण्डवों से, जो अपने प्रेमियों का साथ देने वाले और सारे गुणों से युक्त हैं, बिना कारण ही जन्म से लेकर द्वेष करते आये हो।

अकस्माच्चैव पार्थानां द्वेषणं नोपपद्यते।
धर्मे स्थिताः पाण्डवेयाः कस्तान् किं वक्तुमर्हति॥ २४॥
यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः॥ २५॥
कामक्रोधानुवर्ती हि यो मोहाद् विरुरुत्सति।
गुणवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुः पुरुषाधमम्॥ २६॥
यः कल्याणगुणाञ्ज्ञातीन् मोहाल्लोभाद् दिदृक्षते।
सोऽजितात्माजितक्रोधो न चिरं तिष्ठति श्रियम्॥ २७॥

बिना कारण ही पाण्डवों से द्वेष रखना उचित नहीं है। वे धर्म का पालन करते हैं। उनके विरुद्ध कौन क्या कह सकता है? जो उनसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है, जो उनके अनुकूल है, वह मेरे अनुकूल है। धर्म का पालन करनेवाले उन पाण्डवों के साथ तुम मुझे एकरूप हुआ समझो। जो व्यक्ति काम और क्रोध के वश में होकर या मोह के कारण ही विरोध करना चाहता है, जो गुणवान् व्यक्ति के साथ द्वेष करता है, उसे अधम पुरुष कहते हैं। जो कल्याणकारी गुणों से युक्त अपने परिवारवालों को मोह और लोभ की दृष्टि से देखना चाहता है, वह अपने मन और क्रोध को न जीतने वाला बहुत देर तक समृद्धि से युक्त नहीं रहता।

अथ यो गुणसम्पन्नान् हृदयस्याप्रियानपि।
प्रियेण कुरुते वश्यांश्चिरं यशसि तिष्ठति॥ २८॥
सर्वमेतन्न भोक्तव्यमन्नं दुष्टाभिसंहितम्।
क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मतिः॥ २९॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्दुर्योधनममर्षणम्।
निश्चक्राम ततः शुभ्राद् धार्तराष्ट्रनिवेशनात्॥ ३०॥
निर्याय च महाबाहुर्वासुदेवो महामनाः।
निवेशाय ययौ वेश्म विदुरस्य महात्मनः॥ ३१॥

पर जो गुणों से सम्पन्न व्यक्तियों को, चाहे वे हृदय को प्रिय न हों, अपने प्रिय व्यवहार से अपने वश में कर लेता है, वह बहुत समय तक यशस्वी बना रहता है। तुम्हारा सारा यह अन्न मेरे भोजन करने के योग्य नहीं है क्योंकि यह दुर्भावना से युक्त है। यहाँ केवल एक विदूर का अन्न ही मेरे खाने योग्य है, ऐसा मेरी बुद्धि का विचार है। उस अमर्षशील दुर्योधन से ऐसा कहकर वे महाबाहु श्रीकृष्ण दुर्योधन के उस उज्ज्वल भवन से बाहर निकल आये। महामना, महाबाहु वासुदेव वहाँ से निकलकर महात्मा विदुर के घर ठहरने के लिये गये।

तमभ्यगच्छद् द्रोणश्च कृपो भीष्मोऽथ बाह्लिकः।
कुरवश्च महाबाहुं विदुरस्य गृहे स्थितम्॥ ३२॥
त ऊचुर्माधवं वीरं कुरवो मधुसूदनम्।
निवेदयामो वार्ष्णेय सरत्नांस्ते गृहान् वयम्॥ ३३॥
तानुवाच महातेजाः कौरवान् मधुसूदनः।
सर्वे भवन्तो गच्छन्तु सर्वा मेऽपचितिः कृता॥ ३४॥
ततः क्षत्तान्नपानानि शुचीनि गुणवन्ति च।
उपाहरदनेकानि केशवाय महात्मने॥ ३५॥

विदुर के घर में ठहरे हुए उन महाबाहु श्रीकृष्ण के पास द्रोणाचार्य, भीष्म, बाह्लीक और दूसरे कौरव लोग गये। वे वीर माधव श्रीकृष्ण से बोले कि हे वार्ष्णेय! हम अपने रत्नोंसहित घरों को आपके ठहरने के लिये अर्पित करते हैं। तब महातेजस्वी श्रीकृष्ण ने उन कौरवों से कहा कि आपके द्वारा किया हुआ मेरा सम्मान सम्पन्न हो गया। आप अपने घरों को जायें। तब विदुर ने गुणवान् और पवित्र अन्नपान आदि अनेक प्रकार का भोजन महात्मा श्रीकृष्ण को भेंट किया।

उन्तालीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण का विदुर को संधि प्रयत्न का औचित्य बताना।

तं भुक्तवन्तमाश्वस्तं निशायां विदुरोऽब्रवीत्।
नेदं सम्यग् व्यवसितं केशवागमनं तव॥ १॥
अर्थधर्मातिगो मन्दः संरम्भी च जनार्दन।
मानघ्नो मानकामश्च वृद्धानां शासनातिगः॥ २॥
धर्मशास्त्रातिगो मूढो दुरात्मा प्रग्रहं गतः।
अनेयः श्रेयसां मन्दो धार्तराष्ट्रो जनार्दन॥ ३॥
कामात्मा प्राज्ञमानी च मित्रध्रुक् सर्वशङ्कितः।
अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तधर्मा प्रियानृतः॥ ४॥

खाना खाने के पश्चात् जब श्रीकृष्ण जी रात में आराम कर रहे थे, तब विदुर जी ने उनसे कहा कि हे कृष्ण! तुम्हारा यहाँ आना मेरे विचार में ठीक नहीं हुआ। हे कृष्ण! यह दुर्योधन अर्थ और धर्म दोनों का उल्लंघन कर चुका है। यह मन्दबुद्धि, क्रोधी, दूसरों के सम्मान को नष्ट करनेवाला, स्वयं मान को चाहने वाला और वृद्धों के आदेश को ठुकरानेवाला है। यह मूर्ख दुरात्मा, धर्मशास्त्रों की भी बात नहीं मानता, अपना ही हठ रखता है। हे जनार्दन! धृतराष्ट्र का यह मन्दबुद्धि पुत्र सन्मार्ग पर लानेयोग्य नहीं है। यह अपनी ही कामनाओं की पूर्ति पर ध्यान देनेवाला, अपने को बुद्धिमान् समझनेवाला, मित्रों से द्रोह करने वाला, और सबके प्रति शंका करनेवाला

है। यह स्वयं किसी का कार्य नहीं करता और दूसरों के किये का उपकार मानता नहीं है। धर्म को त्यागकर यह असत्य से प्रेम करता है।

मूढश्चाकृतबुद्धिश्च इन्द्रियाणामनीश्वरः।
कामानुसारी कृत्येषु सर्वेष्वकृतनिश्चयः॥ ५॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्दोषैरेव समन्वितः।
त्वयोच्यमानः श्रेयोऽपि संरम्भान्न ग्रहीष्यति॥ ६॥
निश्चितं धार्तराष्ट्राणां सकर्णानां जनार्दन।
भीष्मद्रोणमुखान् पार्था न शक्ताः प्रतिवीक्षितुम्॥ ७॥
सेनासमुदयं कृत्वा पार्थिवं मधुसूदन।
कृतार्थं मन्यते बाल आत्मानमविचक्षणः॥ ८॥

यह मूर्ख है, इसकी बुद्धि एक निश्चय पर नहीं रहती है, इसकी इन्द्रियाँ इसके वश में नहीं हैं, यह अपनी कामना के अनुसार ही कार्य करता है और सारे कार्यों में इसका विचार निश्चित नहीं होता है। यह इन तथा दूसरे बहुतसे दोषों से युक्त है। तुम्हारे द्वारा कही गयी कल्याण की बातों को यह क्रोध के कारण ग्रहण नहीं करेगा। हे जनार्दन! कर्णसहित धृतराष्ट्र के पुत्रों का यह निश्चय है कि भीष्म और द्रोणाचार्य आदि वीरों की तरफ कुन्तीपुत्र देख भी नहीं सकेंगे। हे मधुसूदन! बच्चों के समान बुद्धिहीन यह राजाओं के सेनाबल को एकत्र कर अपनेआपको कृतकृत्य समझता है।

एकः कर्णः पराञ्जेतुं समर्थ इति निश्चितम्।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः स शर्म नोपयास्यति॥ ९॥
संविच्च धार्तराष्ट्राणां सर्वेषामेव केशव।
शमे प्रयतमानस्य तव सौभ्रात्रकाङ्क्षिणः॥ १०॥
न पाण्डवानामस्माभिः प्रतिदेयं यथोचितम्।
इति व्यवसितास्तेषु वचनं स्यान्निरर्थकम्॥ ११॥
यत्र सूक्तं दुरुक्तं च समं स्यान्मधुसूदन।
न तत्र प्रलपेत् प्राज्ञो बधिरेष्विव गायनः॥ १२॥

दुर्बुद्धि दुर्योधन को यह विश्वास है कि एक कर्ण ही सबको जीत सकता है, इसलिये वह कभी सन्धि को नहीं करेगा। हे केशव! सारे धृतराष्ट्र के पुत्रों का यही विचार है कि हमें पाण्डवों को उनका भाग नहीं देना है। वे इस बात पर दृढ़ हैं। ऐसे उन लोगों के प्रति भाईचारा स्थापित करने की इच्छा से प्रयत्न करनेवाले आपके वचन व्यर्थ ही सिद्ध होंगे। हे मधुसूदन! जहाँ अच्छी बात कहने और बुरी बात कहने से एक ही परिणाम हो, वहाँ बुद्धिमान् व्यक्ति को बोलना नहीं चाहिये। उसका बोलना बहरे के आगे गाने के समान है।

तेषां समुपविष्टानां सर्वेषां पापचेतसाम्।
तव मध्यावतरणं मम कृष्ण न रोचते॥ १३॥
दुर्बुद्धीनामशिष्टानां बहूनां दुष्टचेतसाम्।
प्रतीपं वचनं मध्ये तव कृष्ण न रोचते॥ १४॥
अनुपासितवृद्धत्वाच्छ्रियो दर्पाच्च मोहितः।
वयोदर्पादमर्षाच्च न ते श्रेयो ग्रहीष्यति॥ १५॥
बलं बलवदप्यस्य यदि वक्ष्यसि माधव।
त्वय्यस्य महती शङ्का न करिष्यति ते वचः॥ १६॥

हे कृष्ण! वे सारे हृदय में पाप रखनेवाले हैं, दुर्बुद्धि, अशिष्ट तथा दुष्टचित्त हैं। उनकी संख्या भी बहुत है। ऐसे उनसारे बैठे हुओं के बीच तुम्हारा जाना और उनके प्रतिकूल बोलना, मुझे ठीक नहीं लगता। दुर्योधन ने वृद्धों की सेवा नहीं की है, वह ऐश्वर्य के अभिमान में मोहित हो रहा है, उसे युवावस्था का भी घमण्ड है और वह क्रोध में भरा रहता है। वह आपकी कल्याणकारी बातों को ग्रहण नहीं करेगा। उसके पास प्रबल सेनाबल है, उसे आपके ऊपर भी महान् शंका है, इसलिये जो कुछ भी आप कहेंगे, उसे वह मानेगा नहीं।

मध्ये तिष्ठन् हस्त्यनीकस्य मन्दो
रथाश्वयुक्तस्य बलस्य मूढः।
दुर्योधनो मन्यते वीतभीतिः
कृत्स्ना मयेयं पृथिवी जितेति॥ १७॥

जब वह मन्दबुद्धि मूढ़ दुर्योधन हाथियों की उस सेना में, जो रथियों और घुड़सवारों से युक्त है, खड़ा होता है, तब वह भय से रहित होकर यह समझता है कि मैंने सारी पृथिवी जीत ली।

आशंसते वै धृतराष्ट्रस्य पुत्रो
महाराज्यमसपत्नं पृथिव्याम्।
तस्मिञ्छमः केवलो नोपलभ्यो
बद्धं सन्तं मन्यते लब्धमर्थम्॥ १८॥

धृतराष्ट्र का वह पुत्र यह चाहता है कि मैं सारी पृथिवी का निष्कंटक महाराजा हो जाऊँ। जूए की शर्तों में बँधे हुए, धन को प्राप्तकर वह समझता है कि यह सदा के लिये मेरा हो गया। ऐसे उसके प्रति शान्ति की बातें कहना लाभदायक नहीं होगा।

पर्यस्तेयं पृथिवी कालपक्वा
दुर्योधनार्थे पाण्डवान् योद्धुकामाः।
समागताः सर्वयोधाः पृथिव्यां
राजानश्च क्षितिपालैः समेताः॥ १९॥
सर्वे चैते कृतवैराः पुरस्तात्
त्वया राजानो हृतसाराश्च कृष्ण।
तवोद्वेगात् संश्रिता धार्तराष्ट्रान्
सुसंहताः सह कर्णेन वीराः॥ २०॥
त्यक्तात्मानः सह दुर्योधनेन
हृष्टा योद्धुं पाण्डवान् सर्वयोधाः।
तेषां मध्ये प्रविशेथा यदि त्वं
न तन्मतं मम दाशार्ह वीर॥ २१॥

यह विस्तृत पृथिवी काल से पककर नष्ट होने वाली है। क्योंकि दुर्योधन के लिये पाण्डवों से युद्ध की इच्छा रखनेवाले पृथिवी के सारेयोद्धा राजा लोग भूमिपालों के साथ यहाँ एकत्र हो गये हैं। हे कृष्ण! ये वही लोग हैं, जिन्होंने तुमसे पहले से ही बैर बाँधा हुआ है, जिनका सर्वस्व तुम्हारे द्वारा हरा गया है। तुम्हारे भय से कर्ण के साथ एकत्र होकर इन वीरों ने धृतराष्ट्र के पुत्रों का आश्रय लेलिया है। ये सारे योद्धा लोग दुर्योधन के साथ मिलकर, अपने प्राणों का मोह छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक पाण्डवों से युद्ध करनेको तैयार है। हे दशार्हनन्दन वीर! तुम इन लोगों के बीच में यदि जाओगे, यह मुझे ठीक नहीं जान पड़ता।

श्रीकृष्ण उवाच

**यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयाद् विचक्षणः।
यथा वाच्यस्त्वद्विधेन भवता मद्विधः सुहृत्॥ २२॥
धर्मार्थयुक्तं तथ्यं च यथा त्वय्युपपद्यते।
तथा वचनमुक्तोऽस्मि त्वयैतत् पितृमातृवत्॥ २३॥
सत्यं प्राप्तं च युक्तं चाप्येवमेव यथाऽऽत्थ माम्।
शृणुष्वागमने हेतुं विदुरावहितो भव॥ २४॥**

तब श्रीकृष्ण बोले कि जैसे एक महाबुद्धिमान् और चतुर व्यक्ति कह सकता है, जैसी बात आप जैसा व्यक्ति मुझजैसे अपने मित्र से कह सकता है, जैसी धर्म और अर्थ से युक्त वास्तविकता आपके अन्दर विद्यमान है, वैसी ही ये बातें आपने मुझसे उसीप्रकार कहीं हैं जैसे मातापिता अपनी सन्तान से कहते हैं। आपने जोकुछ मुझसे कहा है, वह सत्य है, समयोचित है और युक्तियुक्त है, फिर भी हे विदुर जी, आप सावधान होकर मेरे यहाँ आने का प्रयोजन सुनिये।

**दौरात्म्यं धार्तराष्ट्रस्य क्षत्रियाणां च वैरताम्।
सर्वमेतदहं जानन् क्षत्तः प्राप्तोऽद्य कौरवान्॥ २५॥
पर्यस्तां पृथिवीं सर्वां साश्वां सरथकुञ्जराम्।
यो मोचयेन्मृत्युपाशात् प्राप्नुयाद् धर्ममुत्तमम्॥ २६॥
धर्मकार्यं यतञ्छक्त्या नो चेत् प्राप्नोति मानवः।
प्राप्तो भवति तत् पुण्यमत्र मे नास्ति संशयः॥ २७॥
मनसा चिन्तयन् पापं कर्मणा नातिरोचयन्।
न प्राप्नोति फलं तस्येत्येवं धर्मविदो विदुः॥ २८॥**

हे विदुर जी! दुर्योधन की दुष्टता और क्षत्रियों के बैर, इन सबको जानता हुआ ही मैं आज इन कौरवों के पास आया हूँ। इस सारी विस्तृत घोड़ों, रथों, और हाथियों सहित पृथिवी को जो मनुष्य मृत्यु के फन्दे से छुड़ा देगा, वह उत्तमधर्म को प्राप्त होगा। जो मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार धर्म के कार्य में पूरा प्रयत्न करते हुए भी यदि उसमें सफल नहीं हो पाता है, तो भी उसे धर्म के कार्य का पुण्य फल अवश्य मिल जाता है इसमें मुझे संशय नहीं है। इसी प्रकार जो मनुष्य मन से पाप का विचार करते हुए भी, रुचि न होने के कारण कार्य उसके अनुसार नहीं करता, उसे उस पाप का फल नहीं मिलता, ऐसा धर्म के जानने वाले कहते हैं।

**सोऽहं यतिष्ये प्रशमं क्षत्तः कर्तुममायया।
कुरूणां सृञ्जयानां च संग्रामे विनशिष्यताम्॥ २९॥
सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता।
कर्णदुर्योधनकृता सर्वे ह्येते तदन्वयाः॥ ३०॥
व्यसने क्लिश्यमानं हि यो मित्रं नाभिपद्यते।
अनुनीय यथाशक्ति तं नृशंसं विदुर्बुधाः॥ ३१॥
आकेशग्रहणान्मित्रमकार्यात् संनिवर्तयन्।
अवाच्यः कस्यचिद् भवति कृतयत्नो यथाबलम्॥ ३२॥**

इसलिये मैं, हे विदुर जी! युद्ध में अपने विनाश के लिये उद्यत कुरुओं और सृंजयों में निश्छलभाव से संधि कराने के लिये यत्न करूँगा। यह विपत्ति कर्ण और दुर्योधन के द्वारा प्रारम्भ की हुई और कौरवों की तरफ से ही बढ़ी है, शेषसारे उसी का अनुसरण कर रहे हैं। जो व्यक्ति विपत्ति में क्लेश पाते हुए मित्र को यशाशक्ति समझाबुझाकर उसका

उद्धार नहीं करते, उन्हें बुद्धिमान् लोग क्रूर कहते हैं। जो व्यक्ति अपने मित्र को बाल पकड़कर भी बुरेकार्य से हटाने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करता है, वह किसी की निन्दा का पात्र नहीं होता।

हितं हि धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां तथैव च।
पृथिव्यां क्षत्रियाणां च यतिष्येऽहममायया॥ ३३॥
हिते प्रयतमानं मां शङ्केद् दुर्योधनो यदि।
हृदयस्य च मे प्रीतिरानृण्यं च भविष्यति॥ ३४॥
ज्ञातीनां हि मिथो भेदे यन्मित्रं नाभिपद्यते।
सर्वयत्नेन माध्यस्थ्यं न तन्मित्रं विदुर्बुधाः॥ ३५॥

मैं निष्कपटभाव से धृतराष्ट्र के पुत्रों, पाण्डवों और पृथिवी के क्षत्रियों के हित केलिये प्रयत्न करूँगा। मेरे भलाई केलिये प्रयत्न करने परभी यदि दुर्योधन मुझ पर शंका करेगा, तो मुझेतो प्रसन्नताही होगी और मैं कर्त्तव्यपालन के ऋण से मुक्त हो जाऊँगा। परिवारवालों में परस्पर भेद होने पर जो मित्र पूरे प्रयत्न से उनमें मध्यस्थता नहीं करता, उसे बुद्धिमान् लोग मित्र नहीं समझते।

न मां ब्रूयुरधर्मिष्ठा मूढा ह्यसुहृदस्तथा।
शक्तो नावारयत् कृष्णः संरब्धान् कुरुपाण्डवान्॥ ३६॥
उभयोः साधयन्नर्थमहमागत इत्युत।
तत्र यत्नमहं कृत्वा गच्छेयं नृष्ववाच्यताम्॥ ३७॥
मम धर्मार्थयुक्तं हि श्रुत्वा वाक्यमनामयम्।
न चेदादास्यते बालो दिष्टस्य वशमेष्यति॥ ३८॥

अधर्मी, मूर्ख और मेरे शत्रु मेरे बारे में यह न कहें कि समर्थ होते हुएभी कृष्ण ने क्रोध में भरे हुए पाण्डवों और कौरवों को रोका नहीं, इसलिये इनदोनों के प्रयोजन को पूरा करने के लिये मैं यहाँ आया हूँ। मैं यहाँ प्रयत्न करके लोगों की निन्दा का पात्र नहीं बनूँगा। यदि मूर्ख दुर्योधन मेरे धर्म और अर्थ से युक्त स्वस्थ वचनों को सुनकर उन्हें ग्रहण नहीं करेगा, तो दुर्भाग्य के वश में चला जायेगा।

अहापयन् पाण्डवार्थं यथाव-
च्छमं कुरूणां यदि चाचरेयम्।
पुण्यं च मे स्याच्चरितं महात्मन्
मुच्येरंश्च कुरवो मृत्युपाशात्॥ ३९॥

यदि मैं पाण्डवों के प्रयोजन को हानि न पहुँचाते हुए कौरवों में शान्ति करा सका तो हे महात्मन्! यह मेरेद्वारा एक महान् पुण्यकर्म बन जायेगा और कौरव मृत्यु के फन्दे से मुक्त हो जायेंगे।

चालीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण जी का कौरव सभा में प्रवेश।

तथा कथयतोरेव तयोर्बुद्धिमतोस्तदा।
शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी॥ १॥
तत उत्थाय दाशार्ह ऋषभः सर्वसात्वताम्।
सर्वमावश्यकं चक्रे प्रातःकार्यं जनार्दनः॥ २॥
अथ दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः।
संध्यां तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हमपराजितम्॥ ३॥
आचक्षेतां तु कृष्णस्य धृतराष्ट्रं सभागतम्।
कुरूंश्च भीष्मप्रमुखान् राज्ञः सर्वांश्च पार्थिवान्॥ ४॥
तावभ्यनन्दद् गोविन्दः साम्ना परमवल्गुना।

इस प्रकार उन दोनों बुद्धिमानों के परस्पर वार्तालाप करते हुए नक्षत्रों से युक्त वह पवित्र रात्रि व्यतीत हो गयी। तब सारे यदुवंशियों में श्रेष्ठ दशार्ह कुलनन्दन श्रीकृष्ण ने उठकर सारे प्रातःकालीन आवश्यक कार्य किये। जिससमय वे अपराजित दशार्हवंशी कृष्ण सन्ध्योपासना में लगे हुए थे, तभी दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनि ने वहाँ आकर उनसे कहा कि धृतराष्ट्र, भीष्म और कौरवराजा तथा दूसरे राजालोग सभा में उपस्थित हो गये हैं। तब श्रीकृष्ण जी ने उन दोनों का सान्त्वनापूर्ण मधुर वचनों से अभिनन्दन किया।

ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना॥ ५॥
हयोत्तमयुजा शीघ्रमुपातिष्ठत दारुकः।
तमुपस्थितमाज्ञाय रथं दिव्यं महामनाः॥ ६॥
कुरुभिः संवृतः कृष्णो वृष्णिभिश्चाभिरक्षितः।
आतिष्ठत रथं शौरिः सर्वयादवनन्दनः॥ ७॥
अन्वारुरोह दाशार्हं विदुरः सर्वधर्मवित्।
सर्वप्राणभृतां श्रेष्ठं सर्वबुद्धिमतां वरम्॥ ८॥

तब उत्तम घोड़ों से युक्त, छोटी घण्टियों से सुशोभित, उज्ज्वल और विशाल रथ के साथ उनका सारथि दारुक शीघ्र ही उनकी सेवा में उपस्थित हुआ, उस दिव्य रथ को उपस्थित जानकर शूरसेनवंशी, सारे यादवों को प्रयत्न करनेवाले, महामना श्रीकृष्ण

कौरवों से घिरे हुए वृष्णिवंशियों से सुरक्षित उस रथ में बैठ गये। सारे धर्मों के ज्ञाता विदुर जी भी सारे प्राणियों में श्रेष्ठ और सारे बुद्धिमानों में उत्तम श्रीकृष्ण जी के पीछे बैठ गये।

ततो दुर्योधनः कृष्णं शकुनिश्चापि सौबलः।
द्वितीयेन रथेनैनमन्वयातां परंतपम्॥ ९॥
सात्यकिः कृतवर्मा च वृष्णीनां चापरे रथाः।
पृष्ठतोऽनुययुः कृष्णं गजैरश्वैः रथैरपि॥ १०॥
सम्पृष्टसंसिक्तरजः प्रतिपेदे महापथम्।
राजर्षिचरितं काले कृष्णो धीमाञ्छ्रिया ज्वलन्॥ ११॥
ततः प्रयाते दाशार्हे प्रावाद्यन्तैकपुष्कराः।
शङ्खाश्च दध्मिरे तत्र वाद्यान्यन्यानि यानि च॥ १२॥

उसके पश्चात् परन्तप कृष्ण के पीछे दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनि भी दूसरे रथ से चले। सात्यकि, कृतवर्मा, तथा वृष्णिवंशियों के दूसरे रथी भी हाथियों, घोड़ों और रथों के द्वारा श्रीकृष्णजी के पीछेपीछे चले। अपनी उज्ज्वल कान्ति से प्रकाशित होते हुए धीमान् श्रीकृष्ण तब उस राजमार्ग पर आ गये, जिस पर पहले समय के राजर्षि लोग जाया करते थे और जिसे अब झाड़बुहार कर छिड़काव कर दिया गया था। श्रीकृष्ण जी के वहाँ से प्रस्थान करने पर शंख, ढोल तथा दूसरेप्रकार के बाजे एकसाथ बजने लगे।

प्रवीराः सर्वलोकस्य युवानः सिंहविक्रमाः।
परिवार्य रथं शौरेरगच्छन्त परंतपाः॥ १३॥
ततः सभां समासाद्य केशवस्यानुयायिनः।
सशङ्खवेणुनिर्घोषैर्दिशः सर्वा व्यनादयन्॥ १४॥
आसाद्य तु सभाद्वारमृषभः सर्वसात्वताम्।
अवतीर्य रथाच्छौरिः कैलासशिखरोपमात्॥ १५॥
नवमेघप्रतीकाशां ज्वलन्तीमिव तेजसा।
महेन्द्रसदनप्रख्यां प्रविवेश सभां ततः॥ १६॥
पाणौ गृहीत्वा विदुरं सात्यकिं च महायशाः।

सारे संसार में विख्यात, सिंह के समान पराक्रमी, शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले नवयुवकवीर उस समय श्रीकृष्ण के रथ को घेर चल रहे थे। तब सभा के समीप पहुँचने पर श्रीकृष्ण जी के पीछे चलनेवाले सेवकों ने शंख, बाँसुरी आदि वाद्यों के निर्घोष से सारीदिशाओं को गुंजा दिया। सभा के द्वार पर पहुँचकर सारे यदुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण कैलाश पर्वत के समान ऊँचे रथ से उतरकर नूतन मेघों के समान अपने तेज से मानों प्रकाशित होती हुई इन्द्रसभा के समान उस सभा में प्रविष्ट हुए। उस समय उन महायशस्वी ने विदुर और सात्यकि के हाथ पकड़े हुए थे।

अग्रतो वासुदेवस्य कर्णदुर्योधनावुभौ॥ १७॥
वृष्णयः कृतवर्मा चाप्यासन् कृष्णस्य पृष्ठतः।
अभ्यागच्छति दाशार्हे प्रज्ञाचक्षुर्नरेश्वरः॥ १८॥
सहैव द्रोणभीष्माभ्यामुदतिष्ठन्महायशाः।
उत्तिष्ठति महाराजे धृतराष्ट्रे जनेश्वरे॥ १९॥
तानि राजसहस्राणि समुत्तस्थुः समन्ततः।
आसनं सर्वतोभद्रं जाम्बूनदपरिष्कृतम्॥ २०॥
कृष्णार्थे कल्पितं तत्र धृतराष्ट्रस्य शासनात्।

कर्ण और दुर्योधन दोनों श्रीकृष्ण के और कृतवर्मा तथा दूसरे वृष्णिवीर उनके पीछे चल रहे थे। श्रीकृष्ण जी के आने पर प्रज्ञाचक्षु महायशस्वी धृतराष्ट्र भीष्म और द्रोणाचार्य के साथ उठकर खड़े हो गये। जनता के स्वामी महाराज धृतराष्ट्र के खड़े होते ही चारों तरफ बैठे हुए, वे बहुत सारे राजा लोग भी उठकर खड़े हो गये। वहाँ धृतराष्ट्र की आज्ञा से श्रीकृष्ण जी के लिये स्वर्णविभूषित सर्वतोभद्र नाम का सिंहासन रखा हुआ था।

स्मयमानस्तु राजानं भीष्मद्रोणौ च माधवः॥ २१॥
अभ्यभाषत धर्मात्मा राज्ञश्चान्यान् यथावयः।
दुःशासनः सात्यकये ददावासनमुत्तमम्॥ २२॥
विविंशतिर्ददौ पीठं काञ्चनं कृतवर्मणे।
अविदूरे तु कृष्णस्य कर्णदुर्योधनावुभौ॥ २३॥
एकासने महात्मानौ निषीदतुरमर्षणौ।
विदुरो मणिपीठे तु शुक्लस्पर्ध्याजिनोत्तरे॥ २४॥
संस्पृशन्नासनं शौरेर्महामतिरुपाविशत्।
अतसीपुष्पसंकाशः पीतवासा जनार्दनः।
व्यभ्राजत सभामध्ये हेम्नीवोपहितो मणिः॥ २५॥

धर्मात्मा श्रीकृष्ण जी ने तब मुस्कराते हुए राजा धृतराष्ट्र से, भीष्म और द्रोणाचार्य से तथा और दूसरे राजाओं से आयु के अनुसार वार्तालाप किया। दुश्शासन ने सात्यकि को एक उत्तम आसन दिया और विविंशति ने कृतवर्मा को एक सुनहले आसन पर बैठाया। मनस्वी और अमर्षयुक्त कर्ण और दुर्योधन श्रीकृष्ण जी के समीप ही एक आसन पर बैठ गये। महामति

विदुर श्रीकृष्ण जी के आसन का स्पर्श करती हुई एक मणिमय चौकी पर, जिसपर श्वेतरंग का प्रशंसनीय मृगचर्म बिछा हुआ था, बैठ गये। अलसी के फूल के समान कान्तिवाले पीतवस्त्रधारी श्रीकृष्ण उस समय सभा में ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे स्वर्णपात्र में रखी हुई नीलमणि हो।

इकतालीसवाँ अध्याय : कौरवसभा में श्रीकृष्ण जी का भाषण।

तेष्वासीनेषु सर्वेषु तूष्णीम्भूतेषु राजसु।
वाक्यमभ्याददे कृष्णः सुदंष्ट्रो दुन्दुभिस्वनः॥ १॥
जीमूत इव धर्मान्ते सर्वां संश्रावयन् सभाम्।
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य समभाषत माधवः॥ २॥

तब उन सबके बैठजानेपर और राजाओं के मौन होजानेपर, सुन्दर दाँतोंवाले, माधव श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र की तरफ देखते हुए, दुन्दुभि के समान स्वर में, ग्रीष्म ऋतु के अन्त में मेघों की गर्जना के समान सारी सभा को सुनाते हुए बोले कि–

कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत।
अप्रणाशेन वीराणामेतद् याचितुमागतः॥ ३॥
राजन् नान्यत् प्रवक्तव्यं तव नैःश्रेयसं वचः।
विदितं ह्येव ते सर्वं वेदितव्यमरिंदम॥ ४॥
इदं ह्यद्य कुलं श्रेष्ठं सर्वराजसु पार्थिव।
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं, सर्वैः समुदितं गुणैः॥ ५॥
कृपानुकम्पा कारुण्यमानृशंस्यं च भारत।
तथाऽऽर्जवं क्षमा सत्यं कुरुष्वेतद् विशिष्यते॥ ६॥

हे भारत! वीरों का विनाश हुए बिना ही कौरवों और पाण्डवों में शान्ति की स्थापना हो जाये मैं यही आपसे माँगने आया हूँ। हे शत्रुदमन, राजन्! इसके अतिरिक्त और कोई कल्याणकारी बात आपसे कहने की नहीं है, क्योंकि जो भी जाननेयोग्य बातें हैं, वेसब आप जानते ही हैं। हे राजन्! आज सारे राजाओं में यही कुल सबसे श्रेष्ठ है। यही कुल विद्या सदाचार से युक्त और सारे गुणों से समृद्ध है। हे भारत! कुरुवंशियों में कृपा, अनुकम्पा, करुणा, क्रूरता का न होना, मृदुता, क्षमा और सत्य ये गुण विशेष रूप से हैं।

तस्मिन्नेवंविधे राजन् कुले महति तिष्ठति।
त्वन्निमित्तं विशेषेण नेह युक्तमसाम्प्रतम्॥ ७॥
त्वं हि धारयिता श्रेष्ठः कुरूणां कुरुसत्तम।
मिथ्या प्रचरतां तात बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च॥ ८॥
ते पुत्रास्तव कौरव्य दुर्योधनपुरोगमाः।
धर्मार्थौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरन्ति नृशंसवत्॥ ९॥
अशिष्टा गतमर्यादा लोभेन हृतचेतसः।
स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु तद् वेत्थ पुरुषर्षभ॥ १०॥

हे राजन्! इस प्रकार के महान् कुल के होते हुए भी इसमें आपकेकारण यदि कोई विशेष अनुचित बात हो तो यह ठीक नहीं है। हे कुरुश्रेष्ठ! तात! यदि कौरव प्रकट या गुप्तरूप से मिथ्या आचरण करने लगें तो आप ही उन्हें रोककर श्रेष्ठ मार्ग में चलानेवाले हैं। हे कुरुनन्दन! आपके दुर्योधन आदि पुत्र धर्म और अर्थ को पीछे छोड़कर निर्दयों के समान आचरण करते हैं। लोभ ने इनके हृदय को अपने बस में करलिया है, ये मर्यादा का उल्लंघन करनेलगे हैं, अपने प्रमुख बन्धुओं के साथ ही ये अशिष्टतापूर्वक व्यवहार करते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! आप इन सारी बातों को जानते हैं।

सेयमापन्महाघोरा कुरुष्वेव समुत्थिता।
उपेक्ष्यमाणा कौरव्य पृथिवीं घातयिष्यति॥ ११॥
शक्या चेयं शमयितुं त्वं चेदिच्छसि भारत।
न दुष्करो ह्यत्र शमो मतो मे भरतर्षभ॥ १२॥
त्वय्यधीनः शमो राजन् मयि चैव विशाम्पते।
पुत्रान् स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान्॥ १३॥
आज्ञा तव हि राजेन्द्र कार्या पुत्रैः सहान्वयैः।
हितं बलवदप्येषां तिष्ठतां तव शासने॥ १४॥

यह महाभयानक विपत्ति कौरवपक्ष में ही प्रकट हुई है। हे कौरव्य! यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह सारी पृथिवी का नाश कर देगी। हे भरतश्रेष्ठ भारत! यदि आप चाहें तो इस विपत्ति को शान्त किया जा सकता है। मेरा विचार है कि शान्ति की स्थापना कठिन कार्य नहीं है। हे प्रजा का पालन करनेवाले राजन्! शान्ति की स्थापना करना इस समय आपके और मेरे आधीन है। हे कौरव्य! आप अपने पुत्रों को वश में रखिये। मैं पाण्डवों को वश में रखूँगा। हे राजेन्द्र! आपके पुत्रों को अपने साथियों

सहित आपकी आज्ञा माननी चाहिये। आपके शासन में रहने से ही उनका महान् कल्याण है।

तव चैव हितं राजन् पाण्डवानामथो हितम्।
शमे प्रयतमानस्य तव शासनकाङ्क्षिणः॥ १५॥
स्वयं निष्फलमालक्ष्य संविधत्स्व विशाम्पते।
सहायभूता भरतास्तवैव स्युर्जनेश्वर॥ १६॥
धर्मार्थयोस्तिष्ठ राजन् पाण्डवैरभिरक्षितः।
न हि शक्यास्तथाभूता यत्नादपि नराधिप॥ १७॥

हे राजन्! यदि आप अपने पुत्रों पर शासन करना चाहें, और शान्ति के लिये प्रयत्न करें, तो इसमें आपका भी कल्याण है और पाण्डवों का भी भला है। हे प्रजापालक! यह समझकर कि पाण्डवों के साथ बैर निष्फल रहेगा, आप स्वयं संधि के लिये प्रयत्न कीजिये। हे जनेश्वर! तब ये पाण्डव आपके ही सहायक बन कर रहेंगे। हे राजन्! आप पाण्डवों से सुरक्षित रहकर धर्म और अर्थ का पालन कीजिये। हे नराधिप! उनके समान संरक्षक आपको प्रयत्न करने पर भी नहीं मिल सकते।

यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णो विविंशतिः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः॥ १८॥
सैन्धवश्च कलिङ्गश्च काम्बोजश्च सुदक्षिणः।
युधिष्ठिरो भीमसेनः सव्यसाची यमौ तथा॥ १९॥
सात्यकिश्च महातेजा युयुत्सुश्च महारथः।
को नु तान् विपरीतात्मा युद्ध्येत भरतर्षभ॥ २०॥
लोकस्येश्वरतां भूयः शत्रुभिश्चाप्यधृष्यताम्।
प्राप्स्यसि त्वममित्रघ्न सहितः कुरुपाण्डवैः॥ २१॥

जिस तरफ भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, बाह्लीक, सोमदत्त, सिन्धुराज, कलिंगराज, काम्बोजनरेश सुदक्षिण, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, महातेजस्वी सात्यकि, महारथी युयुत्सु, ये सारे होंगे हे भरतश्रेष्ठ! फिर कौन विपरीत बुद्धिवाला उनसे युद्ध करसकता है? हे शत्रुओं को नष्ट करनेवाले! कौरवों और पाण्डवों के मिलकर रहने पर आप सारे संसार के सम्राट और शत्रुओं के लिये अजय हो जायेंगे।

तस्य ते पृथिवीपालास्त्वत्समाः पृथिवीपते।
श्रेयांसश्चैव राजानः संधास्यन्ते परंतप॥ २२॥
स त्वं पुत्रैश्च पौत्रैश्च पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा।
सुहृद्भिः सर्वतो गुप्तः सुखं शक्ष्यसि जीवितुम्॥ २३॥

एतानेव पुरोधाय सत्कृत्य च यथा पुरा।
अखिलां भोक्ष्यसे सर्वां पृथिवीं पृथिवीपते॥ २४॥
एतैर्हि सहितः सर्वैः पाण्डवैः स्वैश्च भारत।
अन्यान् विजेष्यसे शत्रूनेष स्वार्थस्तवाखिलः॥ २५॥

हे शत्रुओं को संतप्त करनेवाले, पृथिवीपति! इस समय जो राजा आपके समान हैं, और जो आपसे महान् हैं, वे भी आपके साथ संधि कर लेंगे। आप तब अपने पुत्रों, पौत्रों, पिता, भाई और मित्रों द्वारा पूरी तरह से सुरक्षित रहकर सुखपूर्वक अपना जीवन बिता सकेंगे। हे पृथिवीपति! जैसे आप पहले करते थे इन पाण्डवों का सत्कारकर और इन्हें आगे कर सारी पृथिवी का भोग करेंगे। हे भारत! आप इन सारे पाण्डवों और अपने पुत्रों के साथ अपने दूसरे शत्रुओं को भी जीत लेंगे। इस प्रकार आपके सारे स्वार्थ सिद्ध हो जायेंगे।

तैरेवोपार्जितां भूमिं भोक्ष्यसे च परंतप।
यदि सम्पत्स्यसे पुत्रैः सहामात्यैर्नराधिप॥ २६॥
संयुगे वै महाराज दृश्यते सुमहान् क्षयः।
क्षये चोभयतो राजन् कं धर्ममनुपश्यसि॥ २७॥
पाण्डवैर्निहतैः संख्ये पुत्रैर्वापि महाबलैः।
यद् विन्देथाः सुखं राजंस्तद् ब्रूहि भरतर्षभ॥ २८॥
शूराश्च हि कृतास्त्राश्च सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः।
पाण्डवास्तावकाश्चैव तान् रक्ष महतो भयात्॥ २९॥

हे परंतप! हे नराधिप! यदि आप अपने मंत्रियों सहित अपने सारेपुत्रों से मिलकर रहेंगे, तो उनके द्वारा ही जीतीहुई भूमि का भोग करेंगे। युद्ध छिड़ने पर तो हे महाराज! अत्यन्त महान् विनाश होगा। दोनों तरफ से विनाश होने में आप किस धर्म को देखते हैं? हे भरतश्रेष्ठ राजन्! आप यह बताइये कि युद्ध में मारे गये पाण्डवों से या मारे गये आपके महाबली पुत्रों से आपको क्या सुख मिलेगा? युद्ध की इच्छा वाले ये सारे आपके पुत्र और पाण्डव शूरवीर भी हैं और अस्त्रविद्या में निष्णात भी हैं। आप इन सबकी महान् भय से रक्षा कीजिये।

न पश्येम कुरून् सर्वान् पाण्डवांश्चैव संयुगे।
क्षीणानुभयतः शूरान् रथिनो रथिभिर्हतान्॥ ३०॥
समवेताः पृथिव्यां हि राजानो राजसत्तम।
अमर्षवशमापन्ना नाशयेयुरिमाः प्रजाः॥ ३१॥
त्राहि राजन्निमं लोकं न नश्येयुरिमाः प्रजा।

त्वयि प्रकृतिमापन्ने शेषः स्यात् कुरुनन्दन॥ ३२॥
शुक्ला वदान्या ह्रीमन्त आर्याः पुण्याभिजातयः।
अन्योन्यसचिवा राजंस्तान् पाहि महतो भयात्॥ ३३॥

युद्ध में मैं न तो सारे कौरवों को बचा हुआ देख रहा हूँ और न पाण्डवों को। दोनों तरफ के महारथी महारथियों के द्वारा मारे जाकर नष्ट हो जायेंगे। हे राजश्रेष्ठ! यहाँ पृथिवी के सारेराजा क्रोध में भरे हुए एकत्र हो गये हैं। ये इस सारीप्रजा का नाश कर देंगे। हे कुरुनन्दन राजन्! आप इस संसार को बचाइये, जिससे यह प्रजा नष्ट न हो। आपके सही मार्ग पर चलने पर ये सारे शेष रह जायेंगे। हे राजन्! ये राजालोग शुद्धचरित्र, उदार, लज्जाशील, श्रेष्ठ, पवित्र परिवारों में उत्पन्न और एक दूसरे के सहायक हैं, आप इनकी महान् भय से रक्षा कीजिये।

शिवेनेमे भूमिपालाः समागम्य परस्परम्।
सहभुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथागृहम्॥ ३४॥
सुवाससः स्त्रग्विणश्च सत्कृता भरतर्षभ।
अमर्षं च निराकृत्य वैराणि च परंतप॥ ३५॥
हार्दं यत् पाण्डवेष्वासीत्, प्राप्तेऽस्मिन्नायुषः क्षये।
तदेव ते भवत्वद्य, संधत्स्व भरतर्षभ॥ ३६॥
बाला विहीनाः पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिताः।
तान् पालय यथान्यायं पुत्रांश्च भरतर्षभ॥ ३७॥

ये राजालोग कुशलता के साथ आपस में मिलकर, साथ खापीकर अपनेअपने घरों को लौट जायें। भरतश्रेष्ठ! ये लोग वस्त्रों और मालाओं को धारण किये, अमर्ष और बैर को छोड़कर, सत्कृत होकर लौटें। हे भरतश्रेष्ठ! पहले आपका पाण्डवों के प्रति जैसा प्रेम था, वैसा ही आपका बुढ़ापे में भी बनारहे।, इसलिये आप उनसे संधि कर लीजिये। वे पाण्डव बचपन में ही पिता से रहित हो गये थे। आपने ही उन्हें पाल पोषकर बड़ा किया है। हे भरतश्रेष्ठ! आप उनका और अपने पुत्रों का न्याय के अनुसार पालन कीजिये।

भवतैव हि रक्ष्यास्ते व्यसनेषु विशेषतः।
मा ते धर्मस्तथैवार्थो नश्येत भरतर्षभ॥ ३८॥
आहुस्त्वां पाण्डवा राजन्नभिवाद्य प्रसाद्य च।
भवतः शासनाद् दुःखमनुभूतं सहानुगैः॥ ३९॥
द्वादशेमानि वर्षाभि वने निर्व्युषितानि नः।
त्रयोदशं तथाज्ञातैः सजने परिवत्सरम्॥ ४०॥
स्थाता नः समये तस्मिन् पितेति कृतनिश्चयाः।
नाहास्म समयं तात तच्च नो ब्राह्मणा विदुः॥ ४१॥

हे भरतश्रेष्ठ! आपको ही पाण्डवों की रक्षा करनी चाहिये। संकट के समय तो विशेषरूप से करनी चाहिये। उनके प्रति बैर रखने से कहीं आपके धर्म और अर्थ दोनों नष्ट न हो जायें। हे राजन्! पाण्डवों ने आपको प्रणाम कर, प्रसन्न करते हुए यह कहलवाया है कि आपकी आज्ञा से हमने अपने सेवकों सहित दुःख सहन किया है। हमने बारह वर्ष निर्जन वन में रहकर बिताये हैं और तेरहवाँ वर्ष जनसमुदायवाले स्थान पर अज्ञात रहकर बिताया है। हे तात! आप हमारे पिता हैं, और उस समझौते पर स्थिर रहेंगे ऐसा सोचते हुए हमने समझौते का उल्लंघन नहीं किया, इस बात को हमारे साथ रहने वाले ब्राह्मणलोग जानते हैं।

तस्मिन् नः समये तिष्ठ स्थितानां भरतर्षभ।
नित्यं संक्लेशिता राजन् स्वराज्यांशं लभेमहि॥ ४२॥
त्वं धर्ममर्थं संजानन् सम्यङ्नस्त्रातुमर्हसि।
गुरुत्वं भवति प्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्ष्महे॥ ४३॥
स भवान् मातृपितृवदस्मासु प्रतिपद्यताम्।
गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत॥ ४४॥
वर्तामहे त्वयि च तां त्वं च वर्तस्व नस्तथा।
पित्रा स्थापयितव्या हि वयमुत्पथमास्थिताः॥ ४५॥
संस्थापय पथिष्वस्मांस्तिष्ठ धर्मे सुवर्त्मनि।

हे भरतश्रेष्ठ! हम उस समझौते पर स्थिर रहे और उसके अनुसार हमने सदा क्लेश उठाया। अब आप भी हमारे साथ किये गये उस समझौते का पालन कीजिये। हमें अपने हिस्से का राज्य मिलना चाहिये। धर्म और अर्थ को जानते हुए आप हमारी रक्षा कीजिये। आपमें गुरुत्व को देखकर ही हमने अब तक बहुत कष्ट सहन किये हैं। आप हमारे साथ माता पिता का व्यवहार कीजिये। हे भारत! शिष्य का गुरु के प्रति जो व्यवहार होना चाहिये, हम उस व्यवहार पर आचरण करते आये हैं। आप भी गुरु का शिष्य के प्रति जो गरिमामय व्यवहार होता है, वैसा ही व्यवहार हमारे साथ कीजिये। यदि हम गलत मार्ग पर चलें तो पिता के समान हमें सही मार्ग पर स्थापित करें। इसलिये आप भी स्वयं धर्म के अनुसार सुन्दर मार्ग पर चलें और हमें भी उस पर चलायें।

आहुश्चेमां परिषदं पुत्रास्ते भरतर्षभ॥ ४६॥
धर्मज्ञेषु सभासत्सु नेह युक्तमसाम्प्रतम्।
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च॥ ४७॥
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः।
विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्र प्रपद्यते॥ ४८॥
न चास्य शल्यं कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः।
धर्म एतानारुजति यथा नद्यनुकूलजान्॥ ४९॥

हे भरतश्रेष्ठ! आपके पुत्रों ने इस सभा से भी यह कहलाया है कि यहाँ सारे सभासद धर्मज्ञ हैं। उनके होते हुए यदि यहाँ कोई अनुचित कार्य हो तो यह ठीक नहीं है। जिस सभा में सभासदों के देखते हुए ही अधर्म के द्वारा धर्म की तथा असत्य के द्वारा सत्य की हत्या होती है, वहाँ वे सभासद मरे हुए के समान माने जाते हैं। जिस सभा में धर्म अधर्म रूपी काँटे से बिँधा हुआ प्रवेश करता है और वहाँ के सभासद धर्म के उस अधर्म रूपी काँटे को निकालकर बाहर नहीं करते, वे सभासद उस धर्म के द्वारा उसी प्रकार नष्ट कर दिये जाते हैं, जैसे नदी अपने किनारे के वृक्षों को उखाड़ देती है।

ये धर्ममनुपश्यन्तस्तूष्णीं ध्यायन्त आसते।
ते सत्यमाहुर्धर्म्यं च न्याय्यं च भरतर्षभ॥ ५०॥
शक्यं किमन्यद् वक्तुं ते दानादन्यज्जनेश्वर।
ब्रुवन्तु ते महीपालाः सभायां ये समासते॥ ५१॥
धर्मार्थौ सम्प्रधार्यैव यदि सत्यं ब्रवीम्यहम्।
प्रमुञ्चेमान् मृत्युपाशात् क्षत्रियान् पुरुषर्षभ॥ ५२॥
अजातशत्रुं जानीषे स्थितं धर्मे सतां सदा।
सपुत्रे त्वयि वृत्तिं च वर्तते यां नराधिप॥ ५३॥

जो पाण्डव सदा धर्म की तरफ देखते हैं और धर्म का ही ध्यान करते हुए चुपचाप रहते हैं, वे अब जो कुछ माँग रहे हैं, हे भरतश्रेष्ठ! वह सत्य है, धर्म के अनुसार है और न्याय के अनुकूल है। हे जनेश्वर! मैं आपसे सिवाय पाण्डवों को राज्य लौटा देने के और क्या कह सकता हूँ। इस सभा में जो राजालोग विद्यमान हैं, वे भी धर्म और अर्थ का ध्यान कर बतायें कि क्या मैं सत्य कह रहा हूँ? हे पुरुषश्रेष्ठ! आप इन क्षत्रियों को मौत के फन्दे से बचा लीजिये। हे नराधिप! अजातशत्रु युधिष्ठिर सदा सत्पुरुषों के धर्म में स्थित रहते हैं, यह आप जानते हैं। आप यह भी जानते हैं कि उनका पुत्रों सहित आपके प्रति कैसा व्यवहार है।

इन्द्रप्रस्थं त्वयैवासौ सपुत्रेण विवासितः।
स तत्र विवसन् सर्वान् वशमानीय पार्थिवान्॥ ५४॥
त्वन्मुखानकरोद् राजन् न च त्वामत्यवर्तत।
तस्यैवं वर्तमानस्य सौबलेन जिहीर्षता॥ ५५॥
राष्ट्राणि धनधान्यं च प्रयुक्तः परमोपधिः।
स तामवस्थां सम्प्राप्य कृष्णां प्रेक्ष्य सभागताम्॥ ५६॥
क्षत्रधर्मादमेयात्मा नाकम्पत युधिष्ठिरः।

पुत्रसहित आपने ही युधिष्ठिर को यहाँ से निकाल कर इन्द्रप्रस्थ में भेजा। उन्होंने वहाँ रहते हुए सारे राजाओं को बस में कर उन्हें आपका मुखापेक्षी बना दिया। हे राजन्! उन्होंने फिर भी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। इस प्रकार के उत्तम व्यवहारवाले उनका भी, शकुनि ने राज्य और धनधान्य हरण करने की इच्छा से जूए का कपटजाल फैलाया और राज्य हरण कर लिया। उस दयनीय अवस्था में पहुँचकर भी, द्रौपदी को सभा में तिरस्कारपूर्वक लाया हुआ देखकर भी वे महान्‌आत्मावाले युधिष्ठिर अपने क्षत्रियधर्म से विचलित नहीं हुए।

अहं तु तव तेषां च श्रेय इच्छामि भारत॥ ५७॥
धर्मादर्थात् सुखाच्चैव मा राजन् नीनशः प्रजाः।
लोभेऽतिप्रसृतान् पुत्रान् निगृह्णीष्व विशाम्पते॥ ५८॥
स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिंदमाः।
यत् ते पथ्यतमं राजंस्तस्मिंस्तिष्ठ परंतप॥ ५९॥

हे भारत! मैं तो आपका और युधिष्ठिर का दोनों का कल्याण चाहता हूँ। हे राजन्! आप अपनी प्रजा को धर्म, अर्थ और सुख से वंचित मत कीजिये। हे प्रजा का पालन करने वाले! आप लोभ में अत्यन्त आगे बढ़ेहुए अपने पुत्रों को अपने बस में रखिये। हे परंतप! शत्रुओं का दमन करनेवाले! कुन्तीपुत्र आपकी सेवा करने के लिये भी तैयार हैं और युद्ध करने के लिये भी तैयार हैं। हे राजन्! आपको जो मार्ग कल्याणकर प्रतीत हो, उसी को अपनाइये।

बयालीसवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र के अनुरोध से श्रीकृष्ण का दुर्योधन को समझाना।

धृतराष्ट्र उवाच

**न त्वहं स्ववशस्तात क्रियमाणं न मे प्रियम्।
अङ्ग दुर्योधनं कृष्ण मन्दं शास्त्रातिगं मम॥ १॥
अनुनेतुं महाबाहो यतस्व पुरुषोत्तम।
न शृणोति महाबाहो वचनं साधुभाषितम्॥ २॥
गान्धार्याश्च हृषीकेश विदुरस्य च धीमतः।
अन्येषां चैव सुहृदां भीष्मादीनां हितैषिणाम्॥ ३॥
स त्वं पापमतिं क्रूरं पापचित्तमचेतनम्।
अनुशाधि दुरात्मानं स्वयं दुर्योधनं नृपम्॥ ४॥
सुहृत्कार्यं तु सुमहत् कृतं ते स्याज्जनार्दन।**

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे तात जनार्दन! मैं इस समय अपने बस में नहीं हूँ। जो कुछ किया जा रहा है, वह मुझे प्रिय नहीं है। हे प्रिय कृष्ण! मेरा यह पुत्र दुर्योधन मूर्ख है। इसने शास्त्रों के आदेश को भंग किया है। हे महाबाहु पुरुषोतम! आप इसे ठीक रास्ते पर लाने के लिये प्रयत्न कीजिये। हे महाबाहु! यह सज्जनों की बातों को सुनता नहीं है। हे हृषिकेश! यह गान्धारी, धीमान् विदुर, तथा दूसरे कल्याणकारी भीष्मआदि हितैषियों एवं मित्रों की बातों को भी नहीं मानता है। आप ही इस पापबुद्धि, क्रूर, पापहृदय, विवेकशून्य और दुरात्मा राजादुर्योधन को समझाइये। हे जनार्दन! यदि ऐसा हो गया तो मित्रों का यह एक बहुतबड़ा कार्य होजायेगा।

**ततोऽभ्यावृत्य वार्ष्णेयो दुर्योधनममर्षणम्॥ ५॥
अब्रवीन्मधुरां वाचं सर्वधर्मार्थतत्त्ववित्।
दुर्योधन निबोधेदं मद्वाक्यं कुरुसत्तम॥ ६॥
शर्मार्थं ते विशेषेण सानुबन्धस्य भारत।
महाप्राज्ञकुले जातः साध्वेतत् कर्तुमर्हसि॥ ७॥
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नः सर्वैः समुदितो गुणैः।
दौष्कुलेया दुरात्मानो नृशंसा निरपत्रपाः॥ ८॥
त एतदीदृशं कुर्युर्यथा त्वं तात मन्यसे।**

तब सब धर्म और अर्थ के तत्वों को जाननेवाले श्रीकृष्ण अमर्षशील दुर्योधन की तरफ घूमकर मधुर वाणी में उससे बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ! भरतवंशी दुर्योधन! तुम मेरी बातों को सुनो और समझो। मैं सम्बन्धियोंसहित तुम्हारे कल्याण के लिये विशेष रूप से कह रहा हूँ। तुम महान् बुद्धिमान् कुल में उत्पन्न हुए हो, तुममें विद्या, सदाचार और सारे गुण विद्यमान हैं। तुम्हें मेरी इन अच्छी बातों का पालन अवश्य करना चाहिये। हे तात! जो हीनकुल में उत्पन्न हुए हैं, जो दुरात्मा, नृशंस और निर्लज्ज हैं, वे ही उन कार्यों को कर सकते हैं, जिन्हें तुम उचित समझते हो।

**धर्मार्थयुक्ता लोकेऽस्मिन् प्रवृत्तिर्लक्ष्यते सताम्॥ ९॥
असतां विपरीता तु लक्ष्यते भरतर्षभ।
विपरीता त्वियं वृत्तिरसकृल्लक्ष्यते त्वयि॥ १०॥
अधर्मश्चानुबन्धोऽत्र घोरः प्राणहरो महान्।
अनिष्टश्चानिमित्तश्च न च शक्यश्च भारत॥ ११॥
तमनर्थं परिहरन्नात्मश्रेयः करिष्यसि।
भ्रातृणामथ भृत्यानां मित्राणां च परंतप॥ १२॥**

हे भरतश्रेष्ठ! इस संसार में सत्पुरुषों का व्यवहार धर्म और अर्थ से युक्त और असत्पुरुषों का व्यवहार इसके विपरीत देखा जाता है। तुम्हारे अन्दर यह विपरीत व्यवहार बारबार देखा गया है। तुम्हारा जो दुराग्रह है, वह अधर्म से युक्त है और प्राणों का भयानक विनाश करनेवाला है। बिना कारण के तुम्हारे इस अनिष्टकारी हठ का कोई कारण भी नहीं है और यह पूरा भी नहीं किया जा सकता। हे परंतप! इस अनर्थकारी दुराग्रह को छोड़कर तुम अपना और अपने भाइयों सेंवकों, और मित्रों का बहुत कल्याण करोगे।

**अधर्म्यादयशस्याच्च कर्मणस्त्वं प्रमोक्ष्यसे।
प्राज्ञैः शूरैर्महोत्साहैरात्मवद्भिर्बहुश्रुतैः॥ १३॥
संधत्स्व पुरुषव्याघ्र पाण्डवैर्भरतर्षभ।
तद्धितं च प्रियं चैव धृतराष्ट्रस्य धीमतः॥ १४॥
पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य महामतेः।
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः॥ १५॥
अश्वत्थाम्नो विकर्णस्य संजयस्य विविंशतेः।
ज्ञातीनां चैव भूयिष्ठं मित्राणां च परंतप॥ १६॥**

हे परंतप! हे भरतश्रेष्ठ! तुम ऐसा करने पर अधर्मयुक्त और अपयशकारी कर्म से छूट जाओगे। इसलिये हे पुरुषव्याघ्र! तुम विद्वान्, शूर, महान्

उत्साही, आत्मवान् और बहुत विद्यावान् पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो। यह कार्य धीमान् धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, महामति विदुर, कृपाचार्य, सोमदत्त, धीमान् बाह्लीक, अश्वत्थामा, विकर्ण, संजय, विविंशति, तुम्हारे परिवारवाले और मित्रों को भी प्रिय तथा हितकर जानपड़ता है।

शमे शर्म भवेत् तात सर्वस्य जगतस्तथा।
ह्रीमानसि कुले जातः श्रुतवाननृशंसवान्॥ १७॥
तिष्ठ तात पितुः शास्त्रे मातुश्च भरतर्षभ।
एतच्छ्रेयो हि मन्यन्ते पिता यच्छास्ति भारत॥ १८॥
उत्तमापद्गतः सर्वः पितुः स्मरति शासनम्।
रोचते ते पितुस्तात पाण्डवैः सह संगमः॥ १९॥
सामात्यस्य कुरुश्रेष्ठ तत् तुभ्यं तात रोचताम्।
श्रुत्वा यः सुहृदां शास्त्रं मर्त्यो न प्रतिपद्यते॥ २०॥
विपाकान्ते दहत्येनं किम्पाकमिव भक्षितम्।

हे तात! संधि करने में ही सारे जगत का भला है। तुम लज्जाशील हो, उत्तम कुल में जन्मे हो, पढ़े लिखे हो, क्रूरता से रहित हो इसलिये हे तात भरतश्रेष्ठ! तुम अपने पिता और माता की आज्ञा के आधीन रहो। हे भरतवंशी! उत्तमपुरुष उसी को कल्याण कारी मानते हैं, जो पिता आज्ञा देते हैं। आपत्ति में फँसने पर भी सबको पिता का उपदेश ही याद आता है। हे तात! तुम्हारे पिता को पाण्डवों के साथ संधि करना अच्छा लगता है। यही बात तुम्हें भी अपने मन्त्रियों सहित पसन्द होनी चाहिये। जो व्यक्ति अपने हितैषियों की बात को सुनकर भी उसे मानता नहीं है, उसका परिणाम उसके लिये इस प्रकार शोककारी होता है, जैसे इन्द्रायण का फल खाने पर पाचन के अन्त में दाह को उत्पन्न करता है।

यस्तु निःश्रेयसं वाक्यं मोहान्न प्रतिद्यते॥ २१॥
स दीर्घसूत्रो हीनार्थः पश्चात्तापेन युज्यते।
यस्तु निःश्रेयसं श्रुत्वा प्राक् तदेवाभिपद्यते॥ २२॥
आत्मनो मतमुत्सृज्य स लोके सुखमेधते।
योऽर्थकामस्य वचनं प्रातिकूल्यान्न मृष्यते॥ २३॥
शृणोति प्रतिकूलानि द्विषतां वशमेति सः।
सतां मतमतिक्रम्य योऽसतां वर्तते मते॥ २४॥
शोचन्ते व्यसने तस्य सुहृदो नचिरादिव।

जो व्यक्ति मोह के कारण अपने कल्याण की बात सुनकर भी उस पर आचरण नहीं करता है, वह दीर्घसूत्री अपने प्रयोजन से रहित होकर अन्त में पश्चाताप ही करता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपने कल्याण की बात सुनकर अपने निजी विचारों को छोड़कर उसी बात पर आचरण करता है, वह संसार में सुखपूर्वक उन्नति करता है। जो व्यक्ति अपनी भलाई चाहनेवालों की बातों को अपने प्रतिकूल होने के कारण सहन नहीं करता है और उससे विपरीतबातों को सुनता है, वह शत्रुओं के आधीन हो जाता है। जो सत्पुरुषों के विचारों का उल्लंघन कर असत्पुरुषों के विचारों को अपनाता है, उसके हितैषीलोग जल्दी ही उसके ऊपर विपत्ति आने पर उसके लिये शोक करते हैं।

मुख्यानमात्यानुत्सृज्य योनिहीनात् निषेवते॥ २५॥
स घोरामापदं प्राप्य, नोत्तारमधिगच्छति।
योऽसत्सेवी वृथाचारो न श्रोता सुहृदां सताम्॥ २६॥
परान् वृणीते स्वान् द्वेष्टितं गौस्त्यजतिभारत।
स त्वं विरुध्य तैर्वीरैरन्येभ्यस्त्राणमिच्छसि॥ २७॥
अशिष्टेभ्योऽसमर्थेभ्यो मूढेभ्यो भरतर्षभ।
को हि शक्रसमान् ज्ञातीनतिक्रम्य महारथान्॥ २८॥
अन्येभ्यस्त्राणमाशंसेत् त्वदन्यो भुवि मानवः।

जो व्यक्ति अपने प्रमुख सलाहकारों को छोड़कर निम्नकोटि के मनुष्यों के साथ रहता है, वह भयानक विपत्ति में फँसकर अपने किसी उद्धार करनेवाले की प्राप्ति नहीं कर पाता है। जो व्यक्ति असत्पुरुषों का सेवन तथा मिथ्याचरण करता है, जो सज्जन हितैषियों की बातें नहीं सुनता, जो दूसरों से मित्रता तथा अपनों से द्वेष करता है, हे भारत! उसे यह भूमि त्याग देती है। तुम उन पाण्डववीरों से विरोध कर हे भरतश्रेष्ठ! दूसरों से अपनी रक्षा करना चाहते हो, जो कि अशिष्ट, असमर्थ और मूर्ख हैं। तुम्हारे सिवाय इस संसार में और दूसरा कौन मनुष्य है, जो इन्द्र के समान महारथी अपने उन परिवारवालों को छोड़कर दूसरों से अपनी सुरक्षा को चाहे।

जन्मप्रभृति कौन्तेया नित्यं विनिकृतास्त्वया॥ २९॥
न च ते जातु कुप्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः।
त्वयापि प्रतिपत्तव्यं तथैव भरतर्षभ॥ ३०॥
स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु मा मन्युवशमन्वगाः।
उपायं धर्ममेवाहुस्त्रिवर्गस्य विशाम्पते॥ ३१॥
लिप्समानो हि तेनाशु कक्षेऽग्निरिव वर्धते।

स त्वं तातानुपायेन लिप्ससे भरतर्षभ॥ ३२॥
आधिराज्यं महद् दीप्तं प्रथितं सर्वराजसु।

तुमने कुन्तीपुत्रों के साथ उनके जन्म से ही दुष्टतापूर्वक व्यवहार किया है, पर फिर भी वे धर्मात्मा पाण्डव तुम्हारे इन आचरणों पर तुमसे क्रोध नहीं करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हें भी अपने उन प्रमुख बन्धुओं के साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये। तुम क्रोध के बस में मत होओ। हे प्रजा के स्वामी! त्रिवर्ग की प्राप्ति के लिये धर्म को ही श्रेष्ठसाधन माना जाता है, धर्म का आचरण करनेवाला सूखे तिनके में लगी हुई आग की तरह उन्नति करता है, पर तुम हे तात भरतश्रेष्ठ! इस विशाल तथा सारे राजाओं में प्रसिद्ध और उज्ज्वल साम्राज्य को अनुचित उपाय से प्राप्त करना चाहते हो।

आत्मानां तक्षति ह्येष वनं परशुना यथा॥ ३३॥
यः सम्यग्वर्तमानेषु मिथ्या राजन् प्रवर्तते।
आत्मवान् नावमन्येत त्रिषु लोकेषु भारत॥ ३४॥
अप्यन्यं प्राकृतं किंचित् किमु तान् पाण्डवर्षभान्।
श्रेयस्ते दुर्जनात् तात पाण्डवैः सह संगतम्॥ ३५॥
तैर्हि सम्प्रीयमाणस्त्वं सर्वान् कामानवाप्स्यसि।
पाण्डवैर्निर्मितां भूमिं भुञ्जानो राजसत्तम॥ ३६॥
पाण्डवान् पृष्ठतः कृत्वा त्राणमाशंससेऽन्यतः।

हे राजन्! जो व्यक्ति अपने साथ सद्व्यवहार करनेवालों से भी दुर्व्यवहार करता है, वह कुल्हाड़ी से वन को काटने के समान अपने दुर्व्यवहार से अपने आपको ही काटता है। हे भारत! मनस्वी व्यक्ति को चाहिये कि वह तीनों लोकों में सामान्यव्यक्ति का भी अपमान न करे, फिर उन पाण्डवश्रेष्ठों की तो बात ही क्या है? हे तात! किसी दुष्ट मनुष्य की अपेक्षा तुम्हें पाण्डवों के साथ मित्रता रखना अधिक कल्याणकारी है। उनसे प्रेम कर तुम सारी कामनाओं को प्राप्त कर सकते हो। हे राजश्रेष्ठ! तुम पाण्डवों से जीती हुई भूमि का भोग करते हुए भी पाण्डवों को पीछे रखकर अपनी रक्षा दूसरों से करवाना चाहते हो।

दुःशासने दुर्विषहे कर्णे चापि ससौबले॥ ३७॥
एतेष्वैश्वर्यमाधाय भूतिमिच्छसि भारत।
न चैते तव पर्याप्ता ज्ञाने धर्मार्थयोस्तथा॥ ३८॥
विक्रमे चाप्यपर्याप्ताः पाण्डवान् प्रति भारत।
न हीमे सर्वराजानः पर्याप्ताः सहितास्त्वया॥ ३९॥
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य प्रेक्षितुं मुखमाहवे।

हे भारत! तुम दुश्शासन, दुर्विषह, कर्ण और शकुनि के सहारे अपने ऐश्वर्य को रखकर उन्नति करना चाहते हो। हे भारत! ये तुम्हें ज्ञान, धर्म और अर्थ की प्राप्ति कराने में समर्थ नहीं हैं। ये अपने पराक्रम से पाण्डवों का सामना भी नहीं कर सकते। येसारे राजालोग तुम्हारेसहित युद्ध में क्रुद्ध हुए भीम के मुख की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देख सकते।

इदं संनिहितं तात समग्रं पार्थिवं बलम्॥ ४०॥
अयं भीष्मस्तथा द्रोणः कर्णश्चायं तथा कृपः।
भूरिश्रवाः सौमदत्तिरश्वत्थामा जयद्रथः॥ ४१॥
अशक्ताः सर्व एवैते प्रतियोद्धुं धनंजयम्।
दृश्यतां वा पुमान् कश्चित् समग्रे पार्थिवे बले॥ ४२॥
योऽर्जुनं समरे प्राप्य स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहान्।
किं ते जनक्षयेणेह कृतेन भरतर्षभ॥ ४३॥
यस्मिञ्जिते जितं तत् स्यात् पुमानेकः स दृश्यताम्।
तथा विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम्॥ ४४॥
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम्।

हे तात! यह निश्चित है कि इन सारे राजाओं की सेना, ये भीष्म तथा द्रोणाचार्य, यह कर्ण और कृपाचार्य, सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, अश्वत्थामा और जयद्रथ येसारे अर्जुन का सामना करने में असमर्थ हैं। इनसारे राजाओं की सेना में किसीऐसे पुरुष को देखकर बताओ जो युद्ध में अर्जुन का सामना कर कुशलपूर्वक अपने घर आ जाये। हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हें इससारे जनसमुदाय का विनाश कराने से क्या मिलेगा? तुम किसी एकऐसे पुरुष को देखकर बताओ, जिसके द्वारा अर्जुन को जीत लिये जाने पर तुम्हारी विजय मान लीजाये। इसीप्रकार विराटनगर में घटित हुई जो महान् अद्भुत बात सुनी जाती है, जिसमें अकेले अर्जुन का बहुतसारे महारथियों के साथ युद्ध हुआ, वही इसका पर्याप्त उदाहरण है।

पश्य पुत्रांस्तथा भ्रातृञ्ज्ञातीन् सम्बन्धिनस्तथा॥ ४५॥
त्वत्कृते न विनश्येयुरिमे भरतसत्तमाः।
अस्तु शेषं कौरवाणां मा पराभूदिदं कुलम्॥ ४६॥
कुलघ्न इति नोच्येथा नष्टकीर्तिर्नराधिप।

तुम अपनेपुत्रों, भाइयों, परिवारवालों और सम्बन्धियों

की तरफ देखो। तुम्हारे कारण ये भरतश्रेष्ठ नष्ट न हो जायें! हे नराधिप! कौरव लोग बचे रहें, इस कुल का विनाश न हो, तुम अपनी कीर्ति को नष्ट करवा कर कुलघाती न कहे जाओ।

मा तात श्रियमायान्तीमवमंस्थाः समुद्यताम्॥ ४७॥
अर्थं प्रदाय पार्थेभ्यो महतीं श्रियमाप्नुहि।
पाण्डवैः संशमं कृत्वा कृत्वा च सुहृदां वचः।
सम्प्रीयमाणो मित्रैश्च चिरं भद्राण्यवाप्स्यसि॥ ४८॥

हे तात! तुम आनेकेलिये उद्यत होतीहुई राज्य लक्ष्मी का अपमान मत करो। कुन्तीपुत्रों को आधा भाग देकर इस महान् ऐश्वर्य का भोग करो। हितैषियों की बातें मानकर पाण्डवों के साथ सन्धि कर, तुम मित्रों के साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हुएबहुतदिनों तक कल्याण को प्राप्त करते रहोगे।

तेतालीसवाँ अध्याय : भीष्म, द्रोण, विदुर और धृतराष्ट्र का दुर्योधन को समझाना।

भीष्म उवाच

कृष्णेन वाक्यमुक्तोऽसि सुहृदां शममिच्छता।
अन्वपद्यस्व तत् तात मा मन्युवशमन्वगाः॥ १॥
अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः।
श्रेयो न जातु न सुखं न कल्याणमवाप्स्यसि॥ २॥
धर्म्यमर्थ्यं महाबाहुराह त्वां तात केशवः।
तदर्थमभिपद्यस्व मा राजन् नीनशः प्रजाः॥ ३॥
ज्वलितां त्वमिमां लक्ष्मीं भारतीं सर्वराजसु।
जीवतो धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्याद् भ्रंशयिष्यसि॥ ४॥

तब भीष्म जी ने कहा कि हे तात! तुम क्रोध के बस में मत होओ और श्रीकृष्ण ने सुहृदों में शान्ति बनाये रखने की इच्छा से जो बातें कही हैं, उन्हें स्वीकार करो। हे तात! महात्मा श्रीकृष्ण के वचनों को न मानकर तुम कभी श्रेयसुख और कल्याण को प्राप्त नहीं कर सकते। हे राजन्! महाबाहु श्रीकृष्ण ने तुम्हें धर्म और अर्थ से युक्त बातें कहीं हैं, इसलिये इन्हें स्वीकार करो और प्रजा का नाश मत कराओ। भरतवंश की इस राज्यलक्ष्मी को जो सारे राजाओं में प्रकाशित हो रही है, तुम अपनी दुष्टभावना से धृतराष्ट्र के जीते जी ही नष्ट कर दोगे।

आत्मानं च सहामात्यं सपुत्रभ्रातृबान्धवम्।
अहमित्यनया बुद्ध्या जीविताद् भ्रंशयिष्यसि॥ ५॥
अतिक्रामन् केशवस्य तथ्यं वचनमर्थवत्।
पितुश्च भरतश्रेष्ठ विदुरस्य च धीमतः॥ ६॥
मा कुलघ्नः कुपुरुषो दुर्मतिः कापथं गमः।
मातरं पितरं चैव मा मज्जीः शोकसागरे॥ ७॥

तुम अपने मन्त्रियों, पुत्रों, भाइयों और बान्धवों सहित अपनेआपको भी इस अपनी अहंकारवाली बुद्धि के द्वारा प्राणों से अलग कर लोगे। हे भरतश्रेष्ठ! तुम श्रीकृष्ण के, अपने पिता के और धीमान् विदुर के सार्थक और तथ्य युक्त वचनों का उल्लंघन करते हुए कुमार्ग पर मत चलो और कुलघाती, कुपुरुष, तथा दुर्मति मत कहलवाओ तथा अपने मातापिता को शोक के समुद्र में मत डुबाओ।

अथ द्रोणोऽब्रवीत् तत्र दुर्योधनमिदं वचः।
अमर्षवशमापन्नं निःश्वसन्तं पुनः पुनः॥ ८॥
धर्मार्थयुक्तं वचनमाह त्वां तात केशवः।
तथा भीष्मः शान्तनवस्तज्जुषस्व नराधिप॥ ९॥
प्राज्ञौ मेधाविनौ दान्तावर्थकामौ बहुश्रुतौ।
आहतुस्त्वां हितं वाक्यं तज्जुषस्व नराधिप॥ १०॥

फिर क्रोध में भरे हुए और बारबार लम्बी साँसें खींचते हुए दुर्योधन से द्रोणाचार्य ने कहा कि हे तात! श्रीकृष्ण ने तुमसे धर्म और अर्थ से युक्त वचन कहे हैं, इसी प्रकार हे नराधिप! भीष्म ने भी कहे हैं। तुम इनका पालन करो। हे नराधिप! ये दोनों बुद्धिमान्, मेधावी, जितेन्द्रिय, तुम्हारे प्रयोजन को चाहने वाले और बहुत पढ़े लिखे हैं। इन्होंने तुम्हारी भलाई की बातें कही हैं। तुम उनका पालन करो।

माधवं बुद्धिमोहेन मावमंस्थाः परंतप।
ये त्वां प्रोत्साहयन्त्येते नैते कृत्याय कर्हिचित्॥ ११॥
वैरं परेषां ग्रीवायां प्रतिमोक्ष्यन्ति संयुगे।
मा जीघनः प्रजाः सर्वाः पुत्रान् भ्रातृंस्तथैव च॥ १२॥
वासुदेवार्जुनौ यत्र विद्ध्यजेयानलं हि तान्।
एतच्चैव मतं सत्यं सुहृदोः कृष्णभीष्मयोः॥ १३॥
यदि नादास्यसे तात पश्चात् तप्स्यसि भारत।

हे परंतप! तुम अपनी बुद्धि के मोह से श्रीकृष्ण का अपमान मत करो। जो तुम्हें युद्ध के लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं, वे तुम्हारे काम नहीं आयेंगे। ये युद्ध आरम्भ होने पर शत्रुता का भार दूसरों के कन्धों पर डाल देंगे। तुम सारी प्रजाओं की, पुत्रों की और भाइयों की हत्या मत कराओ। श्रीकृष्ण और अर्जुन जिनकी तरफ हैं, उन्हें तुम अजेय ही समझो। हे भारत! तुम्हारे हितैषी श्रीकृष्ण और भीष्म का भी यही सत्य से युक्त मत है। यदि तुम इसे ग्रहण नहीं करोगे तो पीछे पछताओगे।

तस्मिन् वाक्यान्तरे वाक्यं क्षत्तापि विदुरोऽब्रवीत्॥ १४॥
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रममर्षणम्।
दुर्योधन न शोचामि त्वामहं भरतर्षभ॥ १५॥
इमौ तु वृद्धौ शोचामि गान्धारीं पितरं च ते।
यावनाथौ चरिष्येते त्वया नाथेन दुर्हृदा॥ १६॥
हतमित्रौ हतामात्यौ लूनपक्षाविवाण्डजौ।
भिक्षुकौ विचरिष्येते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम्॥ १७॥
कुलघ्नमीदृशं पापं जनयित्वा कुपूरुषम्।

द्रोणाचार्य की बातों के बीच में विदुर जी भी धृतराष्ट्र के पुत्र क्रोधी दुर्योधन की तरफ देखकर कहने लगे कि हे भरतश्रेष्ठ दुर्योधन! मैं तुम्हारे लिये शोक नहीं करता, मैं तो तुम्हारे इन दोनों बूढ़े पिता और माता गान्धारी के लिये शोक कर रहा हूँ, जो तुम जैसे दुर्मति सहायक के कारण, मित्रों और मन्त्रियों के मारे जाने पर अनाथ होकर पर कटे पक्षियों के समान विचरण करेंगे। ये तुम जैसे पापी, कुलघाती कुपुरुष को जन्म देने के कारण तब भिखारियों की तरह से शोक करते हुए इस भूमि पर भटकते फिरेंगे।

अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत॥ १८॥
आसीनं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम्।
दुर्योधन निबोधेदं शौरिणोक्तं महात्मना॥ १९॥
आदत्स्व शिवमत्यन्तं योगक्षेमवदव्ययम्।
अनेन हि सहायेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥ २०॥
इष्टान् सर्वानभिप्रायान् प्राप्स्यामः सर्वराजसु।

इसके पश्चात् भाइयों के साथ, राजाओं से घिरकर बैठे हुए दुर्योधन से राजा धृतराष्ट्र ने कहा कि हे दुर्योधन! तुम इस बात को समझो, जो महात्मा श्रीकृष्ण ने कही है, जो अत्यन्त कल्याणकारी है, योक्ष और क्षेमवाली है तथा चिरकाल तक स्थिर रहने वाली है। तुम इसे ग्रहण करो। हम अनायास ही महान् कर्म करने वाले इन श्रीकृष्ण की सहायता से सब राजाओं के बीच में अपने इष्ट सारे प्रयोजनों को प्राप्त कर लेंगे।

सुसंहतः केशवेन तात गच्छ युधिष्ठिरम्॥ २१॥
चर स्वस्त्ययनं कृत्स्नं भरतानामनामयम्।
वासुदेवेन तीर्थेन तात गच्छस्व संशमम्॥ २२॥
कालप्राप्तमिदं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः।
शमं चेद् याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम्।
त्वदर्थमभिजल्पन्तं न तवास्त्यपराभवः॥ २३॥

तुम श्रीकृष्ण से मिलकर हे तात! युधिष्ठिर के पास जाओ। पूरी तरह से मंगलमय आचरण करो, जिससे भरतवंशियों पर कोई विपत्ति न आये। हे दुर्योधन! तुम श्रीकृष्ण को मध्यस्थ बनाकर संधि की स्थापना करो। मैं तुम्हारे लिये यही समयोचित कर्त्तव्य समझता हूँ। तुम मेरी बात का उल्लंघन मत करो। यदि तुम अपने लिये भलाई की बात कहते हुए और शान्ति की याचना करते हुए श्रीकृष्ण की बात का विरोध करोगे तो निश्चित रूप से तुम्हारी हार होगी।

चवालीसवाँ अध्याय : दुर्योधन का नकारात्मक उत्तर।

श्रुत्वा दुर्योधनो वाक्यमप्रियं कुरुसंसदि।
प्रत्युवाच महाबाहुं वासुदेवं यशस्विनम्॥ १॥
प्रसमीक्ष्य भवानेतद् वक्तुमर्हति केशव।
मामेव हि विशेषेण विभाष्य परिगर्हसे॥ २॥
भक्तिवादेन पार्थानामकस्मान्मधुसूदन।
भवान् गर्हयते नित्यं किं समीक्ष्य बलाबलम्॥ ३॥
भवान् क्षत्ता च राजा वाप्याचार्यो वा पितामहः।
मामेव परिगर्हन्ते नान्यं कंचन पार्थिवम्॥ ४॥

कौरवों की उस सभा में तब अपने को प्रिय न लगनेवाली बातों को सुनकर दुर्योधन ने महाबाहु यशस्वी श्रीकृष्ण को उत्तर दिया कि हे कृष्ण! आपको अच्छीतरह से विचार करके ही ये बातें

कहनी चाहिये थीं। आप तो मुझे ही विशेषरूप से दोषी ठहराकर मेरी निन्दा कर रहे हैं। हे श्रीकृष्ण! आप कुन्तीपुत्रों के प्रति स्नेह होने के कारण, जो अकारण ही सदा हमारी निन्दा करते रहते हैं, क्या यह हमारे बलाबल का विचार करके ऐसा कहते है? आप, विदुर, राजा धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म सब मेरी ही निन्दा करते हैं। किसी और राजा की नहीं करते।

न चाहं लक्षये कंचिद् व्यभिचारमिहात्मनः।
अथ सर्वे भवन्तो मा विद्विषन्ति सराजकाः॥ ५॥
न चाहं कंचिदत्यर्थमपराधमरिंदम।
विचिन्तयन् प्रपश्यामि सुसूक्ष्ममपि केशव॥ ६॥
प्रियाभ्युपगते द्यूते पाण्डवा मधुसूदन।
जिताः शकुनिना राज्यं तत्र किं मम दुष्कृतम्॥ ७॥
यत् पुनर्द्रविणं किंचित् तत्राजीयन्त पाण्डवाः।
तेभ्य एवाभ्यनुज्ञातं तत् तदा मधुसूदन॥ ८॥

मैं यहाँ अपना कोई भी दोष नहीं देखता, पर राजा सहित आपलोग मुझसे द्वेष करते हैं। हे शत्रुदमन केशव! मैं अत्यन्त सोचविचार करता हुआ भी अपने किसी अत्यन्त सूक्ष्म अपराध को भी नहीं देख रहा हूँ। हे मधुसूदन! पाण्डवों को जूए का खेल बहुत प्रिय था, इसलिये वे उसमें प्रवृत्त हुए। तब यदि शकुनि ने उनका राज्य जीत लिया तो इसमें मेरा क्या अपराध है? हे मधुसूदन! पाण्डवों ने जूए में जो कुछ भी हारा था, वह उन्हें तभी लौटा दिया गया था।

अपराधो न चास्माकं यत् ते द्यूते पराजिताः।
अजेया जयतां श्रेष्ठ पार्थाः प्रव्राजिता वनम्॥ ९॥
किमस्माभिः कृतं तेषां कस्मिन् वा पुनरागसि।
धार्तराष्ट्रान् जिघांसन्ति पाण्डवाः सृंजयैः सह॥ १०॥
न चापि वयमुग्रेण कर्मणा वचनेन वा।
प्रभ्रष्टाः प्रणमामेह भयादपि शतक्रतुम्॥ ११॥
न च तं कृष्ण पश्यामि क्षत्रधर्ममनुष्ठितम्।
उत्सहेत युधा जेतुं यो नः शत्रुनिबर्हण॥ १२॥

जो वे जूए में हार गये थे और हे विजय प्राप्त करनेवालों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण! यदि वे अजेय कुन्तीपुत्र वन में जाने को विवश हुए, तो इसमें हमारा कोई अपराध नहीं था। हमने उनका क्या किया है? हमारे किस अपराध पर पाण्डव सृंजयों के साथ मिलकर हमारा, धृतराष्ट्र पुत्रों का वध करना चाहते हैं? हम किसी के भयानक कर्म से या उग्रवचनों से या इन्द्र के भी भय से अपने मार्ग से भ्रष्ट होकर नतमस्तक नहीं हो सकते। हे शत्रुओं को नष्ट करनेवाले श्रीकृष्ण! मैं किसी भी ऐसे क्षत्रियधर्म का पालन करनेवाले व्यक्ति को नहीं देखता जो युद्ध में हमें जीतने की हिम्मत कर सके।

मुख्यश्चैवैष नो धर्मः क्षत्रियाणां जनार्दन।
यच्छयीमहि संग्रामे शरतल्पगता वयम्॥ १३॥
ते वयं वीरशयनं प्राप्स्यामो यदि संयुगे।
अप्रणम्यैव शत्रूणां न नस्तप्स्यन्ति माधव॥ १४॥
कश्च जातु कुले जातः क्षत्रधर्मेण वर्तयन्।
भयाद् वृत्तिं समीक्ष्यैवं प्रणमेदिह कर्हिचित्॥ १५॥
उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो ह्येव पौरुषम्।
अप्यपर्वणि भज्येत न नमेदिह कर्हिचित्॥ १६॥

हे श्रीकृष्ण! हम क्षत्रियों का यही धर्म है कि हम संग्राम में बाणों की शय्या पर शयन करें। हे माधव! यदि हम युद्धक्षेत्र में वीरशय्या को प्राप्त करेंगे, पर शत्रु के आगे सिर नहीं झुकायेंगे, तो हमारे बान्धवों को सन्ताप नहीं होगा। कौन ऐसा व्यक्ति है, जो उत्तमकुल में उत्पन्न होकर, क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए और क्षत्रियोचित आचरण पर विचार करते हुए भय के कारण शत्रुओं को कभी प्रणाम करेगा? उसे प्रयत्न ही करते रहना चाहिये। शत्रु के आगे झुकना नहीं चाहिये। प्रयत्न करते रहना ही पुरुषार्थ है। भले ही वह असमय में ही नष्ट हो जाये, पर उसे शत्रु के समक्ष कभी झुकना नहीं चाहिये।

राज्यांशश्चाभ्यनुज्ञातो यो मे पित्रा पुराभवत्।
न स लभ्यः पुनर्जातु मयि जीवति केशव॥ १७॥
यावच्च राजा ध्रियते धृतराष्ट्रो जनार्दन।
न्यस्तशस्त्रा वयं ते वाप्युपजीवाम माधव॥ १८॥
अप्रदेयं पुरा दत्तं राज्यं परवतो मम।
अज्ञानाद् वा भयाद् वापि मयि बाले जनार्दन॥ १९॥
न तदद्य पुनर्लभ्यं पाण्डवैर्वृष्णिनन्दन।
ध्रियमाणे महाबाहौ मयि सम्प्रति केशव॥ २०॥
यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति॥ २१॥

हे केशव! मेरे पिता ने पहले राज्य का जो भाग मुझे दे दिया, उसे मेरे जीतेजी कोई पुनः प्राप्त नहीं

कर सकता। हे जनार्दन! जब तक राजा धृतराष्ट्र जीवित हैं, तब तक हथियारों को रखकर हम और वे अपना जीवन शान्ति से बितायें। मेरे पराधीन होने के कारण, या बालक होने के कारण, अज्ञान के कारण या भय के कारण, जो राज्य उन्हें पहले दे दिया गया था, उसे हे वृष्णिनन्दन! पाण्डव पुनः प्राप्त नहीं कर सकते। हे केशव! मुझ महाबाहु दुर्योधन के जीवित रहते हुए इस समय, तीक्ष्ण सूई की नोक से जितनी भूमि छिद सकती है, उतनी भूमि भी पाण्डवों के लिये नहीं छोड़ी जा सकती।

पैंतालीसवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण की दुर्योधन को फटकार और उसे कैद करने की सलाह।

ततः प्रशम्य दाशार्हः क्रोधपर्याकुलेक्षणः।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि॥ १॥
लप्स्यसे वीरशयनं काममेतदवाप्स्यसि।
स्थिरो भव सहामात्यो विमर्दो भविता महान्॥ २॥
यच्चैवं मन्यसे मूढ न मे कश्चिद् व्यतिक्रमः।
पाण्डवेष्विति तत् सर्वं निबोधत नराधिपाः॥ ३॥
श्रिया संतप्यमानेन पाण्डवानां महात्मनाम्।
त्वया दुर्मन्त्रितं द्यूतं सौबलेन च भारत॥ ४॥

तब उन बातों को सुनकर क्रोधभरी आँखोंवाले श्रीकृष्ण कौरवों की सभा में दुर्योधन से यह बोले कि तू वीरशय्या को प्राप्त होगा। तेरी यह कामना पूरी हो जायेगी। तू अपने मन्त्रियों के साथ धैर्य से स्थिर रह। अब बहुत बड़ा संहार होने वाला है। हे मूर्ख! जो तू यह समझता है कि पाण्डवों के प्रति मेरा कोई अपराध नहीं है, इस बात को सारे राजा लोग समझें। हे भारत! महात्मा पाण्डवों की लक्ष्मी से सन्तप्त होकर तूने और शकुनि ने जूआ खेलने की दुर्मन्त्रणा की।

कथं च ज्ञातयस्तात श्रेयांसः साधुसम्मताः।
अथान्याय्यमुपस्थातुं जिह्मेनाजिह्मचारिणः॥ ५॥
अक्षद्यूतं महाप्राज्ञ सतां मतिविनाशनम्।
असतां तत्र जायन्ते भेदाश्च व्यसनानि च॥ ६॥
कश्चान्यो भ्रातृभार्यां वै विप्रकर्तुं तथार्हति।
आनीय च सभां व्यक्तं यथोक्ता द्रौपदी त्वया॥ ७॥
कुलीना शीलसम्पन्ना प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
महिषी पाण्डुपुत्राणां तथा विनिकृता त्वया॥ ८॥

नहीं तो हे तात! वे तुम्हारे श्रेष्ठ बन्धुबान्धव, सरलतापूर्वक जीवन बितानेवाले और सत्पुरुषों द्वारा सम्मानित, तुम जैसे कपटी के साथ अन्यायपूर्वक जूआ खेलने के लिये कैसे आ सकते थे? हे महामति! पासों से खेला जानेवाला जूआ तो भले लोगों की बुद्धि को नष्ट कर देता है, जहाँ असज्जन पुरुष भी विद्यमान हों, वहाँ तो झगड़े होते हैं और संकट आ जाते हैं। तुम्हारे सिवाय कौन दूसरा व्यक्ति अपने भाई की पत्नी का इतना तिरस्कार कर सकता है, जैसा तूने द्रौपदी को सभा में लाकर, स्पष्ट रूप से अनुचित बातें कहकर उसके साथ दुर्व्यवहार किया। वह पाण्डुपुत्रों के लिये प्राणों से भी अधिक आदरणीय, महारानी, उच्चकुल में उत्पन्न और सदाचार से सम्पन्न थी, जिसके साथ तू ने ऐसा अत्याचार किया।

जानन्ति कुरवः सर्वे यथोक्ताः कुरुसंसदि।
दुःशासनेन कौन्तेयाः प्रव्रजन्तः परंतपाः॥ ९॥
सम्यग्वृत्तेष्वलुब्धेषु सततं धर्मचारिषु।
स्वेषु बन्धुषु कः साधुश्चरेदेवमसाम्प्रतम्॥ १०॥
नृशंसानामनार्याणां पुरुषाणां च भाषणम्।
कर्णदुःशासनाभ्यां च त्वया च बहुशः कृतम्॥ ११॥
सह मात्रा प्रदग्धुं तान् बालकान् वारणावते।
आस्थितः परमं यत्नं न समृद्धं च तत् तव॥ १२॥

शत्रुओं को संतप्त करनेवाले कुन्तीपुत्र जब वन में जा रहे थे, तब दुश्शासन ने कौरवसभा में उनके प्रति जो कठोर बातें कहीं थीं, उन्हें सारे कौरव जानते हैं। जिनके बन्धु अच्छे आचरणवाले हों, लोभी न हों, सदा धर्म का पालन करते हों, उनके साथ भी इस प्रकार का अनुचित बर्ताव कौन भला आदमी करेगा? निर्दय अनार्य पुरुषों जैसी बातें तुमने और दुश्शासन तथा कर्ण ने अनेकबार उनसे कहीं हैं। बाल्यावस्था में ही तुमने उनको वारणावत में अपनी माता के साथ जलाने का पूरा प्रयत्न किया था, पर तुम्हारा वह प्रयत्न सफल नहीं हो सका।

ऊषुश्च सुचिरं कालं प्रच्छन्नाः पाण्डवास्तदा।
मात्रा सहैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने॥ १३॥
एवंबुद्धिः पाण्डवेषु मिथ्यावृत्तिः सदा भवान्।
कथं ते नापराधोऽस्ति पाण्डवेषु महात्मसु॥ १४॥
यच्चैभ्यो याचमानेभ्यः पित्र्यमंशं न दित्ससि।
तच्च पाप प्रदातासि भ्रष्टैश्वर्यो निपातितः॥ १५॥
कृत्वा बहून्यकार्याणि पाण्डवेषु नृशंसवत्।
मिथ्यावृत्तिरनार्यः सन्नद्य विप्रतिपद्यसे॥ १६॥

तब पाण्डव काफी लम्बे समयतक एकचक्रा नगरी में ब्राह्मण के घर में अपनी माता के साथ छिपकर रहे थे। तूने पाण्डवों के प्रति इसी प्रकार के विचार रखते हुए सदा उनके साथ कपटपूर्ण व्यवहार किया है। फिर यह कैसे मान लिया जाये कि तू ने महात्मा पाण्डवों का कोई अपराध नहीं किया है। हे पापी! जो इस समय माँगने पर भी उन्हें उनके पैतृक अधिकार को नहीं देना चाहता है, तो युद्धक्षेत्र में जब तुझे गिरा दिया जायेगा और तू ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जायेगा, तब तुझे वह देना पड़ेगा। पाण्डवों के साथ क्रूर व्यक्तियों के समान बहुत से अनुचित कार्य कर अब असत्याचरण करने वाला अनार्य बना हुआ तू उनके प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर रहा है।

मातापितृभ्यां भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च।
शाम्येति मुहुरुक्तोऽसि न च शाम्यसि पार्थिव॥ १७॥
शमे हि सुमहाँल्लाभस्तव पार्थस्य चोभयोः।
न च रोचयसे राजन् किमन्यद् बुद्धिलाघवात्॥ १८॥
न शर्म प्राप्स्यसे राजन्नुत्क्रम्य सुहृदां वचः।
अधर्म्यमयशस्यं च क्रियते पार्थिव त्वया॥ १९॥
एवं ब्रुवति दाशार्हे दुर्योधनममर्षणम्।
दुःशासन इदं वाक्यमब्रवीत् कुरुसंसदि॥ २०॥

तेरे मातापिता ने, भीष्म ने, द्रोणाचार्य ने, विदुर ने सबने तुझे बारबार शान्ति के लिये कहा, पर अरे राजा! तू शान्त ही नहीं हो रहा है। शान्ति में तुम्हारा और कुन्तीपुत्र दोनों का अत्यन्त महान् लाभ है, पर अरे राजन्! यदि तुम्हें वह अच्छी नहीं लगती तो यह बुद्धि के छोटेपन के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? हे राजन्! सुहृदों की बात का उल्लंघन कर तुम सुख को प्राप्त नहीं करोगे। हे भूपाल! तुम्हारे द्वारा यह अधर्म से युक्त और अपयशकारी कार्य किया जा रहा है। जब श्रीकृष्ण कौरवसभा में इस प्रकार कह रहे थे, तब दुश्शासन ने अमर्षशील दुर्योध न से यह बात कही कि—

न चेत् संधास्यसे राजन् स्वेन कामेन पाण्डवैः।
बद्ध्वा किल त्वां दास्यन्ति कुन्तीपुत्राय कौरवाः॥ २१॥
वैकर्तनं त्वां च मां च त्रीनेतान् मनुजर्षभ।
पाण्डवेभ्यः प्रदास्यन्ति भीष्मो द्रोणः पिता च ते॥ २२॥

हे राजन्! यदि अपनी इच्छा से आप पाण्डवों के साथ सन्धि नहीं करेंगे तो कौरवलोग निश्चितरूप से आपको बाँधकर कर कुन्तीपुत्र के हाथ में सौंप देंगे। हे नरश्रेष्ठ! भीष्म, द्रोणाचार्य और आपके पिता कर्ण को, आपको और मुझे इन तीनों को पाण्डवों को सौंप देंगे।

भ्रातुरेतद् वचः श्रुत्वा धार्तराष्ट्रः सुयोधनः।
क्रुद्धः प्रातिष्ठतोत्थाय महानाग इव श्वसन्॥ २३॥
विदुरं धृतराष्ट्रं च महाराजं च बाह्लिकम्।
कृपं च सोमदत्तं च भीष्मं द्रोणं जनार्दनम्॥ २४॥
सर्वानेताननादृत्य दुर्मतिर्निरपत्रपः।
अशिष्टवदमर्यादो मानी मान्यावमानिता॥ २५॥
तं प्रस्थितमभिप्रेक्ष्य भ्रातरो मनुजर्षभम्।
अनुजग्मुः सहामात्या राजानश्चापि सर्वशः॥ २६॥

भाई की बात सुनकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन क्रोध में भरे हुए महान् सर्प के समान लम्बी साँसें लेता हुआ वहाँ से उठकर चल दिया। मान्य पुरुषों का अपमान करनेवाला, अभिमानी, अशिष्ट व्यक्तियों के समान मर्यादा से रहित, निर्लज्ज और दुर्मति, वह विदुर, धृतराष्ट्र, बाह्लीक, कृपाचार्य, सोमदत्त, भीष्म, द्रोणाचार्य, और श्रीकृष्ण इन सबका अनादर कर वहाँ से चला गया। उस नरश्रेष्ठ दुर्योधन को वहाँ से प्रस्थान करते हुए देखकर उसके भाई अपने मन्त्रियों के साथ और सारेराजा भी उसके पीछे चल दिये।

सभायामुत्थितं क्रुद्धं प्रस्थितं भ्रातृभिः सह।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत्॥ २७॥
दुरात्मा राजपुत्रोऽयं धार्तराष्ट्रोऽनुपायकृत्।
मिथ्याभिमानी राज्यस्य क्रोधलोभवशानुगः॥ २८॥
कालपक्वमिदं मन्ये सर्वं क्षत्रं जनार्दन।
सर्वे ह्यनुसृता मोहात् पार्थिवाः सह मन्त्रिभिः॥ २९॥

भीष्मस्याथ वचः श्रुत्वा दाशार्हः पुष्करेक्षणः।
भीष्मद्रोणमुखान् सर्वानभ्यभाषत वीर्यवान्॥ ३०॥

क्रोध में भरकर भाइयों के साथ उठकर सभा से जाते हुए दुर्योधन को देखकर शान्तनुपुत्र भीष्म ने कहा कि धृतराष्ट्र का यह दुरात्मा राजपुत्र क्रोध और लोभ के वश में हो रहा है। यह बिना उपाय के कार्य कर रहा है। इसे राज्य का मिथ्या अभिमान है। हे जनार्दन! मैं समझता हूँ कि इन सारे क्षत्रियों को समय ने मरने के लिये पका दिया है, तभी तो ये सारे मोह के वश में होकर अपने मन्त्रियों सहित इसके पीछे जा रहे हैं। भीष्म के वचनों को सुनकर कमलनयन प्रतापी श्रीकृष्ण भीष्म द्रोण आदि सबसे कहने लगे कि–

सर्वेषां कुरुवृद्धानां महानयमतिक्रमः।
प्रसह्य मन्दमैश्वर्ये न नियच्छत यन्नृपम्॥ ३१॥
तत्र कार्यमहं मन्ये कालप्राप्तमरिंदमाः।
क्रियमाणे भवेच्छ्रेयस्तत् सर्वं शृणुतानघाः॥ ३२॥
प्रत्यक्षमेतद् भवतां यद् वक्ष्यामि हितं वचः।
भवतामानुकूल्येन यदि रोचेत भारताः॥ ३३॥

सारे वृद्ध कौरवों का यह महान् अन्याय है कि आप लोग एक मूर्ख व्यक्ति को ऐश्वर्य के पद पर बिठाकर अब उस राजा पर बलपूर्वक नियन्त्रण नहीं कर पा रहे हैं। हे शत्रुओं का दमन करने वालों, निष्पाप लोगों! इस विषय में क्या करना चाहिये, जिसे मैं उचित समझता हूँ, जिस समयोचित कार्य को करने से ही कल्याण हो सकता है, उसे आप लोग सुनें। जिस हितकारी बात को मैं कह रहा हूँ, उसे आपने भी प्रत्यक्ष देखा है। हे भरतवंशियों! यदि आपको अनुकूल जान पड़े तो आप भी उस पर आचरण कर सकते हैं।

भोजराजस्य वृद्धस्य दुराचारो ह्यनात्मवान्।
जीवतः पितुरैश्वर्यं हृत्वा मृत्युवशं गतः॥ ३४॥
उग्रसेनसुतः कंसः परित्यक्तः स बान्धवैः।
ज्ञातीनां हितकामेन मया शस्तो महामृधे॥ ३५॥
आहुकः पुनरस्माभिर्ज्ञातिभिश्चापि सत्कृतः।
उग्रसेनः कृतो राजा भोजराजन्यवर्धनः॥ ३६॥
कंसमेकं परित्यज्य कुलार्थे सर्वयादवाः।
सम्भूय सुखमेधन्ते भारतान्धकवृष्णयः॥ ३७॥

बूढ़े भोजराज उग्रसेन का पुत्र कंस बड़ा दुराचारी और अजितेन्द्रिय था। उसने पिता के जीते जी उनसे उनके ऐश्वर्य का हरण कर लिया, जिसके कारण वह मृत्यु के आधीन हो गया। उग्रसेन के पुत्र कंस का तब उसके बान्धवों ने त्याग कर दिया। फिर परिवारवालों की भलाई के लिये मैंने उसे महान् युद्ध में मार दिया। तत्पश्चात् हम लोगों ने और परिवारवालों ने भी भोजवंशी क्षत्रियों की उन्नति करनेवाले उग्रसेन को ही सत्कारपूर्वक पुनः राजा बना दिया। हे भारत। कुल के लिये एक कंस का त्याग कर सारे अन्धक और वृष्णिवंशी यादवलोग मिलकर सुखपूर्वक उन्नति कर रहे हैं।

तथा दुर्योधनं कर्णं शकुनिं चापि सौबलम्।
बद्ध्वा दुःशासनं चापि पाण्डवेभ्यः प्रयच्छथ॥ ३८॥
त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥ ३९॥
राजन् दुर्योधनं बद्ध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः।
त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ॥ ४०॥

उसी प्रकार आप भी दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और दुश्शासन को बाँधकर पाण्डवों को दे दीजिये। कुल की रक्षा केलिये, एक व्यक्ति का त्याग कर देना चाहिये, ग्राम की रक्षा केलिये एक कुल का त्याग कर देना चाहिये और अपनी अर्थात् आत्मा की रक्षा केलिये सारी भूमि का त्याग कर देना चाहिये। इसलिये हे क्षत्रियश्रेष्ठ! हे राजन्! आप दुर्योधन को बाँधकर पाण्डवों से सन्धि कर लें कहीं ऐसा न हो कि आपके कारण से सारे क्षत्रियों का विनाश हो जाये।

छियालीसवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र का गान्धारी को बुलाना, उसका दुर्योधन को समझाना।

कृष्णस्य तु वचः श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।
विदुरं सर्वधर्मज्ञं त्वरमाणोऽभ्यभाषत॥ १॥
गच्छ तात महाप्राज्ञां गान्धारीं दीर्घदर्शिनीम्।
आनयेह तया सार्धमनुनेष्यामि दुर्मतिम्॥ २॥
यदि सापि दुरात्मानं शमयेद् दुष्टचेतसम्।
अपि कृष्णस्य सुहृदस्तिष्ठेम वचने वयम्॥ ३॥
अपि लोभाभिभूतस्य पन्थानमनुदर्शयेत्।
दुर्बुद्धेर्दुःसहायस्य शमार्थं ब्रुवती वचः॥ ४॥

कृष्ण की बात को सुनकर राजा धृतराष्ट्र जल्दी से सारे धर्मों के जाननेवाले विदुर जी से बोले कि हे तात! तुम जाओ और बहुत बुद्धिमती तथा दीर्घ दर्शिनी गान्धारी को बुला लाओ। मैं यहाँ उसके साथ उस दुर्मति को समझाऊँगा। यदि वह भी इस दुष्ट हृदयवाले दुरात्मा को शान्त कर सके, तो हम अपने मित्र कृष्ण के वचनों का पालन करें। शायद शान्ति के लिये बातें कहती हुई वह लोभ से भरे हुए, दुर्बुद्धि और दुष्ट सहायकोंवाले दुर्योधन को रास्ता दिखा सके।

अपि नो व्यसनं घोरं दुर्योधनकृतं महत्।
शमयेच्चिररात्राय योगक्षेमवदव्ययम्॥ ५॥
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिनीम्।
आनयामास गान्धारीं धृतराष्ट्रस्य शासनात्॥ ६॥
धृतराष्ट्र उवाच
एष गान्धारि पुत्रस्ते दुरात्मा शासनातिगः।
ऐश्वर्यलोभादैश्वर्यं जीवितं च प्रहास्यति॥ ७॥
अशिष्टवदमर्यादः पापैः सह दुरात्मवान्।
सभाया निर्गतो मूढो व्यतिक्रम्य सुहृद्वचः॥ ८॥

शायद दुर्योधन के द्वारा उपस्थित किया हुआ यह हमारा महान् भयानक संकट लम्बे समय के लिये शान्त हो जाये और हम स्थायी योग और क्षेम को प्राप्त कर लें। तब विदुर जी राजा के वचनों को सुनकर धृतराष्ट्र की आज्ञा से, दीर्घदर्शिनी गान्धारी को लेकर आये। धृतराष्ट्र ने उससे कहा कि हे गान्धारी! तेरा यह दुरात्मा पुत्र गुरुजनों के आदेश का उल्लंघन कर रहा है। यह ऐश्वर्य के लोभ में अपने ऐश्वर्य और प्राणों को भी गँवा बैठेगा। अशिष्ट लोगों की तरह मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला, मूढ और दुरात्मा वह अपने पापी साथियों के साथ, अपने हितैषियों की बात का उल्लंघन कर सभा के बाहर चला गया है।

सा भर्तृवचनं श्रुत्वा राजपुत्री यशस्विनी।
अन्विच्छन्ती महच्छ्रेयो गान्धारी वाक्यब्रवीत्॥ ९॥
आनायय सुतं क्षिप्रं राज्यकामुकमातुरम्।
न हि राज्यमशिष्टेन शक्यं धर्मार्थलोपिना॥ १०॥
आप्तुमाप्तं तथापीदमविनीतेन सर्वथा।
त्वं ह्येवात्र भृशं गर्ह्यो धृतराष्ट्र सुतप्रियः॥ ११॥
यो जानन् पापतामस्य तत्प्रज्ञामनुवर्तसे।
स एष काममन्युभ्यां प्रलब्धो लोभमास्थितः॥ १२॥
अशक्योऽद्य त्वया राजन् विनिवर्तयितुं बलात्।

पति के वचनों को सुनकर वह यशस्विनी राजपुत्री गान्धारी, महान् कल्याण को चाहती हुई यह बोली कि आप राज्य की इच्छा से आतुर हुए अपने पुत्र को जल्दी बुलाइये। धर्म और अर्थ का लोप करने वाले अशिष्ट व्यक्ति को राज्य नहीं मिल सकता। यद्यपि सर्वथा अविनीत उसने राज्य को प्राप्त कर लिया है। हे महाराज धृतराष्ट्र! आप ही अपने पुत्र से प्यार करने के कारण, यहाँ अत्यन्त निन्दनीय हैं, जो उसके पाप कर्मों को जानते हुए उसकी बुद्धि के अनुसार काम करते हैं। काम और क्रोध के बस में हुआ अब वह लोभ में फँस गया है। हे राजन्! अब आप उसे बलपूर्वक वापिस नहीं लौटा सकते।

राष्ट्रप्रदाने मूढस्य बालिशस्य दुरात्मनः॥ १३॥
दुःसहायस्य लुब्धस्य धृतराष्ट्रोऽश्नुते फलम्।
शासनाद् धृतराष्ट्रस्य दुर्योधनममर्षणम्॥ १४॥
मातुश्च वचनात् क्षत्ता सभां प्रावेशयत् पुनः।
स मातुर्वचनाकाङ्क्षी प्रविवेश पुनःसभाम्॥ १५॥
अभिताम्रेक्षणः कोधान्निःश्वसन्निव पन्नगः।
तं प्रविष्टमभिप्रेक्ष्य पुत्रमुत्पथमास्थितम्॥ १६॥
विगर्हमाणा गान्धारी शमार्थं वाक्यमब्रवीत्।

हे महाराज धृतराष्ट्र! आप अब उस मूर्ख, बच्चों जैसे अज्ञानी, दुरात्मा, दुष्ट सहायकोंवाले, लोभी को, अपना राज्य सौंप देने का फल भोग रहे हैं। उसके

पश्चात् विदुर धृतराष्ट्र के आदेश से और उसकी माता के कहने से अमर्षशील दुर्योधन को पुनः सभा में बुलाकर लाये। क्रोध के कारण लाल आँखों वाला और साँप के समान साँस लेता हुआ वह दुर्योधन माता के वचन सुनने की इच्छा से सभा में पुनः प्रविष्ट हुआ। उल्टे रास्ते पर जाते हुए उस पुत्र को आया हुआ देखकर गान्धारी उसकी निन्दा करती हुई, शान्ति स्थापना के लिये यह बोली कि—

दुयोधन निबोधेदं वचनं मम पुत्रक॥ १७॥
हितं ते सानुबन्धस्य तथाऽऽयत्यां सुखोदयम्।
दुर्योधन यदाह त्वां पिता भरतसत्तम॥ १८॥
भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता सुहृदां कुरु तद् वचः।
भीष्मस्य तु पितुश्चैव मम चापचितिः कृता॥ १९॥
भवेद् द्रोणमुखानां च सुहृदां शाम्यता त्वया।
न हि राज्यं महाप्राज्ञ स्वेन कामेन शक्यते॥ २०॥
अवाप्तुं रक्षितुं वापि भोक्तुं भरतसत्तम।

पुत्र दुर्योधन! मेरी इन बातों को समझो। ये संबंधियों सहित तुम्हारे लिये हितकारी हैं और भविष्य में भी सुख को लानेवाली हैं। हे दुर्योधन! हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे पिता, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, और विदुर ने जो कुछ कहा है, तुम अपने इन हितैषियों की बात मान लो। यदि तुम शान्त हो जाओगे तो तुम्हारे द्वारा भीष्म, अपने पिता, मेरा और द्रोणाचार्य आदि हितैषियों का सम्मान हो जायेगा। हे भरतश्रेष्ठ! महाप्राज्ञ! राज्य को प्राप्त करना, उसकी रक्षा करना और उसे भोगना अपनी इच्छा से ही नहीं हो सकता।

एकीभूतैर्महाप्राज्ञैः शूरैररिनिबर्हणैः॥ २१॥
पाण्डवैः पृथिवीं तात भोक्ष्यसे सहितः सुखी।
यथा भीष्मः शान्तनवो द्रोणश्चापि महारथः॥ २२॥
आहतुस्तात तत् सत्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ।
प्रपद्यस्व महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम्॥ २३॥
प्रसन्नो हि सुखाय स्यादुभयोरेव केशवः।
सुहृदामर्थकामानां यो न तिष्ठति शासने॥ २४॥
प्राज्ञानां कृतविद्यानां स नरः शत्रुनन्दनः।

हे तात! जो परस्पर एक हैं, महाप्राज्ञ और शूरवीर तथा शत्रुओं का संहार करने वाले हैं, उन पाण्डवों के साथ मिलकर तुम सुखपूर्वक पृथिवी का भोग कर सकते हो। हे तात! जैसा शान्तनुपुत्र भीष्म और महारथी द्रोणाचार्य ने भी कहा है, वह सत्य है। कृष्ण और पाण्डव अजेय हैं। तुम अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्ण का सहारा लो, क्योंकि ये केशव प्रसन्न होकर दोनों पक्षों को सुखी बना सकते हैं। जो व्यक्ति अपनी भलाई चाहनेवाले बुद्धिमान् और विद्वान् हितैषियों की बात को नहीं मानता है, वह अपने शत्रुओं को ही प्रसन्न करता है।

न युद्धे तात कल्याणं न धर्मार्थौ कुतः सुखम्॥ २५॥
न चापि विजयो नित्यं मा युद्धे चेत आधिथाः।
भीष्मेण हि महाप्राज्ञ पित्रा ते बाह्लिकेन च॥ २६॥
दत्तोंऽशः पाण्डुपुत्राणां भेदाद् भीतैररिंदम।
तस्य चैतत्प्रदानस्य फलमद्यानुपश्यसि॥ २७॥
यद् भुङ्क्षे पृथिवीं कृत्स्नां शूरैर्निहतकण्टकाम्।
प्रयच्छ पाण्डुपुत्राणां यथोचितमरिंदम॥ २८॥
यदीच्छसि सहामात्यो भोक्तुमर्धं प्रदीयताम्।

हे तात! युद्ध करने में न तो कल्याण है न धर्म एवं अर्थ का पालन, फिर सुख तो कैसे मिल सकता हे। फिर युद्ध में सदा विजय भी नहीं मिलती। अतः तुम युद्ध में मन मत लगाओ। हे शत्रुओं का दमन करने वाले, महाप्राज्ञ! भीष्म ने, तेरे पिता ने, बाह्लीक ने परस्पर फूट के डर से ही, पाण्डुपुत्रों को राज्य का भाग दिया था, उसी देने का फल तुम आज देख रहे हो, जो शूरवीर पाण्डवों के द्वारा निष्कण्टक बनाई हुई भूमि का तुम भोग कर रहे हो। हे अरिंदम! यदि तुम अपने मंत्रियों के साथ आधाराज्य भोगना चाहते हो पाण्डुपुत्रों को उनका यथोचित भाग आधा राज्य दे दो।

अलमर्धं पृथिव्यास्ते सहामात्यस्य जीवितुम्॥ २९॥
सुहृदां वचने तिष्ठन् यशः प्राप्स्यसि भारत।
श्रीमद्भिरात्मवद्भिस्तैर्बुद्धिमद्भिर्जितेन्द्रियैः ॥ ३०॥
पाण्डवैर्विग्रहस्तात भ्रंशयेन्महतः सुखात्।
निगृह्य सुहृदां मन्युं शाधि राज्यं यथोचितम्॥ ३१॥
स्वमंशं पाण्डुपुत्रेभ्यः प्रदाय भरतर्षभ।
अलमङ्ग निकारोऽयं त्रयोदश समाः कृतः॥ ३२॥
शमयैनं महाप्राज्ञ कामक्रोधसमेधितम्।

इस पृथिवी का आधाभाग तुम्हें अपने मन्त्रियों के साथ जीवन बिताने के लिये पर्याप्त है। हे भारत! इस प्रकार तुम अपने हितैषियों की बातों का पालन करते हुए यश को भी प्राप्त करोगे। हे तात! उन

श्रीमान् मनस्वी, बुद्धिमान् और जितेन्द्रिय पाण्डवों के साथ किया हुआ युद्ध तुम्हें महान् सुख से भ्रष्ट कर सकता है। हे भरतश्रेष्ठ! पाण्डुपुत्रों को उनका भाग देकर और अपने मित्रों के क्रोध को शान्त कर उचित रीति से अपने राज्य पर शासन करो। हे पुत्र! तुमने तेरह वर्षों के लिये पाण्डवों का जो निर्वासन किया, यह उनका बड़ा अपकार हुआ है। तुम्हारे काम और क्रोध ने इसमें और वृद्धि की है। हे महाप्राज्ञ! अब तुम सन्धि के द्वारा इसे शान्त कर दो।

न चैष शक्तः पार्थानां यस्त्वमर्थमभीप्ससि॥ ३३॥
सूतपुत्रो दृढक्रोधो भ्राता दुःशासनश्च ते।
भीष्मे द्रोणे कृपे कर्णे भीमसेने धनंजये॥ ३४॥
धृष्टद्युम्ने च संक्रुद्धे न स्युः सर्वाः प्रजा ध्रुवम्।
अमर्षवशमापन्नो मा कुरूंस्तात जीघनः॥ ३५॥
एषा हि पृथिवी कृत्स्ना मा गमत् त्वत्कृते वधम्।

तुम जो कुन्तीपुत्रों के धन को हड़पना चाहते हो, यह तुम्हारे लिये, तथा अत्यन्त क्रोधी सारथिपुत्र कर्ण और तुम्हारे भाई शकुनि के लिये भी सम्भव नहीं है। जब भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, भीम, अर्जुन, और धृष्टद्युम्न क्रुद्ध होकर परस्पर लड़ेंगे तो निश्चित रूप से सारी प्रजा नष्ट हो जायेगी। हे तात! क्रोध के बस में होकर सारे कौरवों का विनाश मत कराओ। तुम्हारे कारण से इस सारी पृथ्वी का विनाश न हो जाये।

यच्च त्वं मन्यसे मूढ भीष्मद्रोणकृपादयः॥ ३६॥
योत्स्यन्ते सर्वशक्त्येति नैतदद्योपपद्यते।
समं हि राज्यं प्रीतिश्च स्थानं हि विदितात्मनाम्॥ ३७॥
पाण्डवेष्वथ युष्मासु धर्मस्त्वभ्यधिकस्ततः।
राजपिण्डभयादेते यदि हास्यन्ति जीवितम्॥ ३८॥
न हि शक्ष्यन्ति राजानं युधिष्ठिरमुदीक्षितुम्।
न लोभादर्थसम्पत्तिर्नराणामिह दृश्यते।
तदलं तात लोभेन प्रशाम्य भरतर्षभ॥ ३९॥

हे मूर्ख! जो तुम यह समझते हो कि भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदि पूरीशक्ति से तुम्हारे लिये लड़ेंगे, यह नहीं हो सकता। इन आत्मज्ञानी पुरुषों की दृष्टि में राज्य का तुम्हारे या उनके पास रहना एक जैसा ही है। इनका तुम्हारे और उनके प्रति प्रेम तथा हृदय में स्थान भी समान है। इनके लिये राज्य से धर्म अधिक बढ़कर है। इन्होंने राज्य का जो अन्न खाया है, उसके भय से ये तुम्हारी तरफ से लड़कर अपने जीवन का त्याग कर देंगे, पर फिर भी ये राजा युधिष्ठिर की तरफ नहीं देख सकेंगे। हे भरतश्रेष्ठ! संसार में केवल लोभ करने से किसी मनुष्य को अर्थ की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये लोभ को छोड़ दो और शान्त हो जाओ।

सैंतालीसवाँ अध्याय : दुर्योधन का श्रीकृष्ण कें बन्धन हेतु षड्यन्त्र। श्रीकृष्ण का सिंहगर्जन, सभा से प्रस्थान।

तत् तु वाक्यमनादृत्य सोऽर्थवन्मातृभाषितम्।
पुनः प्रतस्थे संरम्भात् सकाशमकृतात्मनाम्॥ १॥
ततः सभाया निर्गम्य मन्त्रयामास कौरवः।
सौबलेन मताक्षेण राज्ञा शकुनिना सह॥ २॥
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च।
दुःशासनचतुर्थनामिदमासीद् विचेष्टितम्॥ ३॥

माता के द्वारा कही गयी उन सार्थक बातों का भी अनादर कर वह दुर्योधन क्रोध में भरा हुआ पुनः वहाँ से अपने अजितेन्द्रिय साथियों के पास चला गया। सभा से निकल कर उसने जूए के खिलाड़ी सुबलपुत्र राजा शकुनि के साथ मन्त्रणा की। तब दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि और दुश्शासन इन चारों का यह निश्चय हुआ कि—

पुरायमस्मान् गृह्णाति क्षिप्रकारी जनार्दनः।
सहितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च॥ ४॥
वयमेव हृषीकेशं निगृह्णीम बलादिव।
श्रुत्वा गृहीतं वार्ष्णेयं पाण्डवा हतचेतसः॥ ५॥
निरुत्साहा भविष्यन्ति भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः।
अयं ह्येषां महाबाहुः सर्वेषां शर्म वर्म च॥ ६॥
अस्मिन् गृहीते वरदे ऋषभे सर्वसात्वताम्।
निरुद्यमा भविष्यन्ति पाण्डवाः सोमकैः सह॥ ७॥
तस्माद् वयमिहैवैनं केशवं क्षिप्रकारिणम्।
क्रोशतो धृतराष्ट्रस्य बद्ध्वा योत्स्यामहे रिपून्॥ ८॥

शीघ्रता से कार्य करनेवाले कृष्ण, राजा धृतराष्ट्र और शान्तनुपुत्र भीष्म के साथ हमें कैद करवायें,

इससे पहले हम ही श्रीकृष्ण को बलपूर्वक कैद कर लेते हैं। श्रीकृष्ण को कैद किया हुआ सुनकर पाण्डवलोग दाँत टूटेहुए सर्प के समान उत्साह और चेतना से रहित हो जायेंगे। ये महाबाहु! उन सारे पाण्डवों के लिये कल्याणकारी तथा कवच की तरह से उनके रक्षक हैं। सारे यदुवंशियों में श्रेष्ठ वरदायक इनके पकड़े जाने पर पाण्डव सोमकों के सहित उद्योग से रहित हो जायेंगे। इसलिये हम शीघ्रता से कार्य करनेवाले इन केशव को धृतराष्ट्र चीखने चिल्लाने पर भी बाँध लेते हैं और फिर शत्रुओं से युद्ध करेंगे।

तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम्।
इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुद्ध्यत सात्यकिः॥ ९॥
तदर्थमभिनिष्क्रम्य हार्दिक्येन सहास्थितः।
अब्रवीत् कृतवर्माणं क्षिप्रं योजय वाहिनीम्॥ १०॥
व्यूढानीकः सभाद्वारमुपतिष्ठस्व दंशितः।
यावदाख्याम्यहं चैतत् कृष्णायाक्लिष्टकारिणे॥ ११॥

तब उन पापी दुष्ट हृदयवालों के पापपूर्ण अभिप्राय को संकेतों से ही बात को समझ लेनें वाले विद्वान् सात्यकि ने शीघ्र ही समझ लिया। उसके प्रतिकार के लिये वे वहाँ से निकल कर कृतवर्मा से मिले और कृतवर्मा से उन्होंने कहा कि जल्दी से सेना को तैयार करो तथा कवच धारण कर, मोर्चा लगाकर सभा के द्वार पर जमे रहो। तब तक मैं अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्ण जी को इन सारी बातों की सूचना देता हूँ।

स प्रविश्य सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव।
आचष्ट तमभिप्रायं केशवाय महात्मने॥ १२॥
धृतराष्ट्रं ततश्चैव विदुरं चान्वभाषत।
तेषामेतमभिप्रायमाचचक्षे स्मयन्निव॥ १३॥
धर्मादर्थाच्च कामाच्च कर्म साधुविगर्हितम्।
मन्दाः कर्तुमिहेच्छन्ति न चावाप्यं कथंचन॥ १४॥
इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः।
पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला यथा जडाः॥ १५॥

तब जैसे सिंह पर्वत की गुफा में प्रवेश करे, वैसे ही उस वीर ने सभा में प्रवेश कर, महात्मा केशव से कौरवों की इच्छा को बताया और फिर धृतराष्ट्र तथा विदुर से भी इस विषय में उन्होंने कहा। कौरवों के इस अभिप्राय को उन्होंने मुस्कराते हुए इस प्रकार वर्णन किया कि जो कर्म, धर्म, अर्थ और काम की दृष्टि से साधुओं के द्वारा निन्दित है, कुछ मूर्खलोग उस काम को यहाँ करना चाहते हैं, यद्यपि उन्हें इसमें सफलता बिल्कुल नहीं मिलेगी। जैसे जड़बुद्धि बालक अग्नि को कपड़े में बाँधना चाहें, वैसे ही मन्दबुद्धि कौरवलोग कमलनयन श्रीकृष्ण को कैद कर लेना चाहते हैं।

सात्यकेस्तद् वचः श्रुत्वा विदुरो दीर्घदर्शिवान्।
धृतराष्ट्रं महाबाहुमब्रवीत् कुरुसंसदि॥ १६॥
राजन् परीतकालास्ते पुत्राः सर्वे परंतप।
अशक्यमयशस्यं च कर्तुं कर्म समुद्यताः॥ १७॥
अयमिच्छन् हि तान् सर्वान् युध्यमानाञ्जनार्दनः।
सिंहो नागानिव क्रुद्धो गमयेद् यमसादनम्॥ १८॥

सात्यकि के ये वचन सुनकर दूरदर्शी विदुर ने महाबाहु धृतराष्ट्र से कौरव सभा में यह कहा कि हे परंतप राजन्! आपके सारेपुत्र मृत्यु के आधीन हो गये हैं, जो ये अपयश फैलाने वाले और असम्भव कार्य को करने के लिये तैयार हो रहे हैं। ये श्रीकृष्ण यदि चाहें तो उन सबसे युद्ध करते हुए, क्रुद्ध सिंह के द्वारा हाथियों के समान उन्हें मृत्युलोक में पहुँचा सकते हैं।

विदुरेणैवमुक्ते तु केशवो वाक्यमब्रवीत्।
धृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य सुहृदां शृण्वतां मिथः॥ १९॥
राजन्नेते यदि क्रुद्धा मां निगृह्णीयुरोजसा।
एते वा मामहं वैनाननुजानीहि पार्थिव॥ २०॥
पाण्डवार्थे हि लुभ्यन्तः स्वार्थान् हास्यन्ति ते सुताः।
एते चेदेवमिच्छन्ति कृतकार्यो युधिष्ठिरः॥ २१॥
अद्यैव ह्यहमेनांश्च ये चैनाननु भारत।
निगृह्य राजन् पार्थेभ्यो दद्यां किं दुष्कृतं भवेत्॥ २२॥

विदुर के ऐसा कहने पर श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र की तरफ देखकर सारे हितैषियों के सुनते हुए यह कहा कि हे राजन्! ये लोग क्रोध में भरकर मुझे अपने पराक्रम से पकड़ते हैं, या मैं इन्हें पकड़ता हूँ, आप आज्ञा दीजिये, फिर देखिये। आपके पुत्र जो पाण्डवों के धन पर ललचा रहे हैं, अपने धन से भी हाथ धो बैठेंगे। यदि ये लोग ऐसा ही चाहते हैं, फिर तो युधिष्ठिर का काम बन गया। हे भरतवंशी राजन्! यदि मैं आज ही इन्हें और इनके साथियों को कैद कर कुन्तीपुत्रों को सौंप दूँ तो क्या बुरा होगा?

एष दुर्योधनो राजन् यथेच्छति तथास्तु तत्।
अहं तु सर्वांस्तनयाननुजानामि ते नृप॥ २३॥
एतच्छ्रुत्वा तु विदुरं धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत।
क्षिप्रमानय तं पापं राज्यलुब्धं सुयोधनम्॥ २४॥
सहमित्रं सहामात्यं ससोदर्यं सहानुगम्।
ततो दुर्योधनं क्षत्ता पुनः प्रावेशयत् सभाम्॥ २५॥
अकामं भ्रातृभिः सार्धं राजभिः परिवारितम्।

हे राजन्! यह दुर्योधन जैसा चाहता है, वैसा ही हो। हे राजन्! मैं आपके सारे पुत्रों को इसके लिये आज्ञा देता हूँ। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा कि तुम उस राज्यलोभी दुर्योधन को उसके मित्रों, मन्त्रियों, भाइयों और सेवकों के साथ जल्दी बुलाकर लाओ। तब विदुर जी राजाओं से घिरे हुए दुर्योधन को उसके भाइयों के साथ, जो आने के इच्छुक नहीं थे, पुनः सभा में बुलाकर लाये।

अथ दुर्योधनं राजा धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत॥ २६॥
नृशंस पापभूयिष्ठ क्षुद्रकर्मसहायवान्।
पापैः सहायैः संहत्य पापं कर्म चिकीर्षसि॥ २७॥
अशक्यमयशस्यं च सद्भिश्चापि विगर्हितम्।
यथा त्वादृशको मूढो व्यवस्येत् कुलपांसनः॥ २८॥
त्वमिमं पुण्डरीकाक्षमप्रधृष्यं दुरासदम्।
पापैः सहायैः संहत्य निग्रहीतुं किलेच्छसि॥ २९॥

तब राजा धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा कि अरे निर्दय, महापापी, तेरे सहायक छोटे काम करनेवाले हैं। तू उन पापी सहायकों के साथ मिलकर पापकर्म को करना चाहता है। तुम जैसा मूर्ख कुलकलंकी जिस कार्य को करने की चेष्टा कर रहा है, वह असम्भव है, अपयशकारी है और सत्पुरुषों द्वारा निन्दित है। तू इन कमलनयन को जो दुर्धर्ष और दुर्जय हैं, अपने पापी सहायकों के साथ मिलकर कैद करना चाहता है।

दुर्ग्राह्यः पाणिना वायुर्दुःस्पर्शः पाणिना शशी।
दुर्धरा पृथिवी मूर्ध्ना दुर्ग्राह्यः केशवो बलात्॥ ३०॥
इत्युक्ते धृतराष्ट्रेण क्षत्तापि विदुरोऽब्रवीत्।
दुर्योधनमभिप्रेत्य धार्तराष्ट्रममर्षणम्॥ ३१॥
अरिष्टो धेनुकश्चैव चाणूरश्च महाबलः।
अश्वराजश्च निहतः कंसश्चारिष्टमाचरन्॥ ३२॥
जरासंधश्च वक्रश्च शिशुपालश्च वीर्यवान्।
बाणश्च निहतः संख्ये राजानश्च निषूदिताः॥ ३३॥

जैसे हाथ से हवा को नहीं पकड़ा जा सकता, चन्द्रमा को हाथ से स्पर्श नहीं किया जा सकता, पृथिवी को सिर पर नहीं उठाया जा सकता, वैसे ही श्रीकृष्ण को बलपूर्वक पकड़ना दुष्कर है। धृतराष्ट्र के यह कहने पर विदुर ने भी धृतराष्ट्र के पुत्र अमर्षशील दुर्योधन के समीप जाकर उससे कहा कि इन्होंने अरिष्ट, धेनुक, महाबली चाणूर, अश्वराज और कंस को, जो प्रजा के अहित का कार्य कर रहे थे, मार दिया था। जरासन्ध, दन्तवक्र, पराक्रमी, शिशुपाल, और बाणासुर ये राजालोग भी युद्ध में इनके द्वारा मारे गये थे।

तं न बुद्ध्यसि गोविन्दं घोरविक्रममच्युतम्।
आशीविषमिव क्रुद्धं तेजोराशिमनिन्दितम्॥ ३४॥
प्रधर्षयन् महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम्।
पतङ्गोऽग्निमिवासाद्य सामात्यो न भविष्यसि॥ ३५॥
उपस्थितरथं शौरिं प्रयास्यन्तमरिंदमम्।
धृतराष्ट्रो महाराजः पुनरेवाभ्यभाषत॥ ३६॥

तुम भयानक पराक्रमवाले और अपने लक्ष्य से च्युत न होनेवाले श्रीकृष्ण को नहीं जान रहे हो। जब ये क्रोध में भरते हैं, तो विषैले सर्प के समान भयानक होते हैं। ये तेज के भंडार हैं और निन्दा से रहित हैं। तुम अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्ण का तिरस्कार करने पर अग्नि में गिरे पतंगे के समान अपने मन्त्रियोंसहित नष्ट हो जाओगे। तत्पश्चात् रथ के उपस्थित होने पर, जाने के लिये इच्छुक अरिमर्दन श्रीकृष्ण जी से महाराज धृतराष्ट्र ने पुनः यह कहा कि–

यावद् बलं मे पुत्रेषु पश्यस्येतज्जनार्दन।
प्रत्यक्षं ते न ते किंचित् परोक्षं शत्रुकर्शन॥ ३७॥
कुरूणां शममिच्छन्तं यतमानं च केशव।
विदित्वैतामवस्थां मे नाभिशङ्कितुमर्हसि॥ ३८॥
न मे पापोऽस्त्यभिप्रायः पाण्डवान् प्रति केशव।
ज्ञातमेव हितं वाक्यं यन्मयोक्तः सुयोधनः॥ ३९॥
जानन्ति कुरवः सर्वे राजानश्चैव पार्थिवाः।
शमे प्रयतमानं मां सर्वयत्नेन माधव॥ ४०॥

हे जनार्दन! आप देख रहे हैं कि पुत्रों पर मेरा कितना बल है? हे शत्रुओं को नष्ट करनेवाले! सबकुछ आपके सामने प्रत्यक्ष है, कुछ भी आपसे छिपा हुआ नहीं है। हे केशव! मैं कौरवों में शान्ति

चाहता हूँ और इसके लिये प्रयत्न भी करता हूँ, पर मेरी यह हालत देखकर आप मेरे प्रति शंका न करें। हे केशव! पाण्डवों के प्रति मेरा भाव पाप से युक्त नहीं है। मैंने आपके सामने दुर्योधन से जो हितकारी बातें कहीं हैं, उन्हें आप जानते ही हैं। हे श्रीकृष्ण! सारे कौरव और सारे राजा लोग यह जानते हैं कि मैं सब तरह के उपायों से शान्ति करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्धृतराष्ट्रं जनार्दनः।
द्रोणं पितामहं भीष्मं क्षत्तारं बाह्लिकं कृपम्॥ ४१॥
प्रत्यक्षमेतद् भवतां यद् वृत्तं कुरुसंसदि।
यथा चाशिष्टवन्मन्दो रोषादद्य समुत्थितः॥ ४२॥
वदत्यनीशमात्मानं धृतराष्ट्रो महीपतिः।
आपृच्छे भवतः सर्वान् गमिष्यामि युधिष्ठिरम्॥ ४३॥
ततो रथेन शुभ्रेण महता किङ्किणीकिना।
कुरूणां पश्यतां द्रष्टुं स्वसारं स पितुर्ययौ॥ ४४॥

तब महाबाहु जनार्दन ने धृतराष्ट्र से, पितामह भीष्म से, द्रोणाचार्य से, विदुर से, बाह्लीक से, और कृपाचार्य से यह कहा कि कौरवसभा में जो कुछ हुआ है, वह सब आपके सामने प्रत्यक्ष है। किस प्रकार से यह मूर्ख दुर्योधन आज असभ्य लोगों की तरह क्रोध में उठकर चला गया। महाराज धृतराष्ट्र भी अपने आपको असमर्थ बता रहे हैं। अब मैं आप सबसे आज्ञा चाहता हूँ। मैं अब युधिष्ठिर के पास जाऊँगा। तत्पश्चात् किंकिणियों से विभूषित उस विशाल उज्ज्वल रथ के द्वारा वे कौरवों को देखते-देखते अपनी बुआ कुन्ती से मिलने चले गये।

अड़तालीसवाँ अध्याय : कुन्ती का पाण्डवों के लिये सन्देश देना।

प्रविश्याथ गृहं तस्याश्चरणावभिवाद्य च।
आचख्यौ तत् समासेन यद् वृत्तं कुरुसंसदि॥ १॥
कालपक्वमिदं सर्वं सुयोधनवशानुगम्।
आपृच्छे भवतीं शीघ्रं प्रयास्ये पाण्डवान् प्रति॥ २॥
किं वाच्याः पाण्डवेयास्ते भवत्या वचनान्मया।
तद् ब्रूहि त्वं महाप्राज्ञे शुश्रूषे वचनं तव॥ ३॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने कुन्ती के घर में प्रवेश कर उसके चरणों में प्रणाम किया और जो कुछ कौरवों की सभा में हुआ था, उसे संक्षेप में बताया। उन्होंने कहा कि दुर्योधन के बस में होकर उसके पीछे चलनेवाले इन सबको समय ने मृत्यु के मुख में जाने केलिये पका दिया है। अब मैं आपसे आज्ञा लेकर जल्दी ही पाण्डवों के समीप जाऊँगा। हे महाप्राज्ञी! मैं पाण्डवों को आपका क्या सन्देश दूँ। उसे आप कहिये। मैं आपकी बात सुनना चाहता हूँ।

कुन्त्युवाच

ब्रूयाः केशव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
भूयांस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः॥ ४॥
ओत्रियस्येव ते राजन् मन्दकस्याविपश्चितः।
अनुवाकहता बुद्धिर्धर्ममेवैकमीक्षते॥ ५॥
अङ्गावेक्षस्व धर्मं त्वं यथा सृष्टः स्वयम्भुवा।
बाहुभ्यां क्षत्रियाः सृष्टा बाहुवीर्योपजीविनः॥ ६॥
क्रूराय कर्मणे नित्यं प्रजानां परिपालने।
राजा चरति चेद् धर्मं देवत्यायैव कल्पते॥ ७॥
स चेदधर्मं चरति नरकायैव गच्छति।

तब कुन्ती ने कहा कि हे कृष्ण! तुम धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर से कहना कि हे पुत्र! तुम्हारा धर्म बहुत नष्ट हो रहा है, तुम उस धर्म को नष्ट मत करो। जैसे बेसमझ, मन्दबुद्धि, वेदपाठी की बुद्धि केवल मन्त्रपाठ पर ही लगी रहती है, उसके अर्थ पर विचार नहीं करती, उसी प्रकार हे राजन्! तुम्हारी बुद्धि भी केवल शान्तिधर्म को ही देखती है। हे पुत्र! तुम उस धर्म पर विचार करो, जिसे परमात्मा ने तुम्हारे लिये निश्चित किया है। क्षत्रियों का निर्माण परमात्मा के हाथों से हुआ है, जिनकी जीविका अपनी भुजाओं का पराक्रम ही है। उनका कर्त्तव्य सदा क्रूरकर्म करना और प्रजा का पालन करना है। राजा यदि अपने धर्म का पालन करता है, तो उसे देवता कहा जाता है, पर यदि वह अधर्म का आचरण करता है, तो उसे नरक अर्थात् दुःखपूर्ण स्थिति प्राप्त होती है।

दण्डनीतिः स्वधर्मेण चातुर्वर्ण्यं नियच्छति॥ ८॥
प्रयुक्ता स्वामिना सम्यगधर्मेभ्यश्च यच्छति।

राजधर्मानवेक्षस्व पितृपैतामहोचितान्॥ ९॥
नैतद् राजर्षिवृत्तं हि यत्र त्वं स्थातुमिच्छसि।
न हि वैक्लव्यसंसृष्ट आनृशंस्ये व्यवस्थितः॥ १०॥
प्रजापालनसम्भूतं फलं किंचन लब्धवान्।
न ह्येतामाशिषं पाण्डुर्न चाहं न पितामहः॥ ११॥
प्रयुक्तवन्तः पूर्वं ते यया चरसि मेधया।

दण्डनीति यदि उसके स्वामी के द्वारा उसके धर्म के अनुसार ठीक प्रकार से प्रयोग की जाये, तो वह चारों वर्णों को नियन्त्रण में रखती है और उन्हें अधर्म से निवृत्त करती है। तुम राजर्षियों के उस धर्म को मत देखो, जिसे तुम अपनाना चाहते हो, तुम अपने बापदादों के उन राजधर्मों को देखो, जिनका उन्होंने पालन किया था। जो सदा दयाभाव में ही रहता हुआ विह्वल बना रहे, ऐसे किसी भी पुरुष ने प्रजाओं के पालन के पुण्यफल को प्राप्त नहीं किया है। तुम जिस बुद्धि के सहारे चलते हो, उसके लिये पहले न तो पाण्डु ने, न मैंने, और तुम्हारे पितामह ने आशीर्वाद दिया था।

यज्ञो दानं तपः शौर्यं प्रज्ञा संतानमेव च॥ १२॥
माहात्म्यं बलमोजश्च नित्यमाशंसितं मया।
एतद् धर्म्यमधर्म्यं वा जन्मनैवाभ्यजायथाः॥ १३॥
ते तु वैद्याः कुले जाता अवृत्त्या तात पीडिताः।
भैक्षं विप्रतिषिद्धं ते कृषिर्नैवोपपद्यते॥ १४॥
क्षत्रियोऽसि क्षतात् त्राता बाहुवीर्योपजीविता।

मैं सदा इसी बात की कामना करती रही हूँ कि तुम्हें यज्ञ, दान, तपस्या, शौर्य, बुद्धि, सन्तान, महानता, बल और तेज की प्राप्ति हो। हे तात कृष्ण! मेरा कथन धर्म के अनुसार है, या अधर्म के अनुसार है, यह तुम अपने जन्म से अर्थात् स्वभाव से ही जानते हो। वे मेरे पुत्र उत्तमकुल में उत्पन्न हुए हैं और विद्वान् हैं, फिर भी जीविका न होने से दुःखी हैं। हे युधिष्ठिर! तुम्हारे लिये भिक्षा माँगकर खाना मना है, खेती करना भी तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम तो दूसरों को क्षति अर्थात् हानि से बचाने वाले क्षत्रिय हो, इसलिये तुम तो अपनी भुजाओं के पराक्रम से ही जीविका को चलाने वाले हो।

पित्र्यमंशं महाबाहो निमग्नं पुनरुद्धर॥ १५॥
साम्ना भेदेन दानेन दण्डेनाथ नयेन वा।
इतो दुःखतरं किं नु यदहं हीनबान्धवा॥ १६॥
परपिण्डमुदीक्षे वै त्वां सूत्वामित्रनन्दन।
युद्ध्यस्व राजधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान्।
मा गमः क्षीणपुण्यस्त्वं सानुजः पापिकां गतिम्॥ १७॥

हे महाबाहु! जो तुम्हारा पैतृक अधिकार शत्रु के हाथ में जाकर डूब गया है, उसे तुम साम, दाम, दण्ड, भेद या नीति के द्वारा पुनः प्राप्त करो। हे शत्रुओं के आनन्द को बढ़ाने वाले! मेरे लिये इससे बढ़कर दुःख की कौन सी बात होगी कि मैं तुम्हें जन्म देकर भी, बान्धवों से रहित होकर अर्थात् दूर रहकर, दूसरों के दिये हुए भोजन की तरफ देखती हूँ। इसलिये तुम राजधर्म के अनुसार युद्ध करो, पितामहों के नाम को डुबाओ मत। पुण्यों से रहित होकर अपने भाइयों सहित पापवाली गति को मत प्राप्त करो।

उनंचासवाँ अध्याय : कुन्ती का सन्देश और श्रीकृष्ण जी का वापिस आना।

एतद् धनंजयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः॥ १॥
न हि वैरं समासाद्य सीदन्ति पुरुषर्षभाः।
विदिता ते सदा बुद्धिर्भीमस्य न स शाम्यति॥ २॥
यावदन्तं न कुरुते शत्रूणां शत्रुकर्शन।
सर्वधर्मविशेषज्ञां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः॥ ३॥
ब्रूया माधव कल्याणीं कृष्ण कृष्णां यशस्विनीम्।
युक्तमेतन्महाभागे कुले जाते यशस्विनि॥ ४॥
यन्मे पुत्रेषु सर्वेषु यथावत् त्वमवर्तिथाः।

तुम युद्ध के लिये सदा उद्यत रहनेवाले भीम से और अर्जुन से कहना कि जिस कार्य के लिये क्षत्राणी जन्म देती है, उसके करने का समय आ गया है। जो श्रेष्ठ पुरुष होते हैं, वे किसी से बैर हो जाने पर घबराते नहीं हैं। हे शत्रुओं का दमन करनेवाले कृष्ण! तुम्हें भीम की आदत के बारे में तो पता है ही कि जब तक वह शत्रुओं का अन्त नहीं कर लेता तब तक शान्त नहीं होता है। महात्मा पाण्डु की उस पुत्रवधु कल्याणी, यशस्विनी द्रौपदी

से, जो सारे धर्मों की जानकार है, हे मधुवंशी कृष्ण! कहना कि हे महाभागे यशस्विनी! तुमने उत्तम कुल में जन्म लिया है। तुमने मेरे सारे पुत्रों के साथ जो यथायोग्य व्यवहार किया है, वह तुम्हारे ही योग्य है।

माद्रीपुत्रौ च वक्तव्यौ क्षत्रधर्मरतावुभौ।। ५।।
विक्रमेणार्जितान् भोगान् वृणीतं जीवितादपि।
विक्रमाधिगता ह्यर्थाः क्षत्रधर्मेण जीवतः।। ६।।
मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम।

हे पुरुषोत्तम! तुम माद्री के दोनों पुत्रों नकुल और सहदेव से, जो कि सदा क्षत्रियधर्म में लगें रहते हैं, कहना कि तुम जीवन की परवाह न कर, पराक्रम से प्राप्त हुए भोगों को स्वीकार करो। जो मनुष्य क्षत्रियधर्म के अनुसार जीवन बिताता है, उसके मन को सदा पराक्रम से प्राप्त हुआ धन ही सन्तुष्ट करता है।

यच्च वः प्रेक्षमाणानां सर्वधर्मोपचायिनाम्।। ७।।
पाञ्चाली परुषाण्युक्ता को नु तत् क्षन्तुमर्हति।
न राज्यहरणं दुःखं द्यूते चापि पराजयः।। ८।।
प्रवाजनं सुतानां वा न मे तद् दुःखकारणम्।
यत्र सा बृहती श्यामा सभायां रुदती तदा।। ९।।
अश्रौषीत् परुषा वाचस्तन्मे दुःखतरं महत्।
स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा।। १०।।
नाध्यगच्छत् तदा नाथं कृष्णा नाथवती सती।

हे पाण्डवों! सब तरफ से धर्म की वृद्धि करने वाले तुम लोगों के देखते हुए ही जो उसदिन द्रौपदी को कठोर वचन सुनाए गए, उन्हें कौन क्षमा कर सकता है? मुझे राज्य के छिन जाने का उतना दुःख नहीं है, नाही जूए में हार जाने का इतना दुःख है, पुत्रों के वन में निर्वासित किये जाने का भी इतना दुःख नहीं है, पर मेरी अत्यन्त सुन्दरी पुत्रवधु को सभा में रोते हुए जो कटुवचन सुनने पड़े यह मेरे लिये अत्यन्त दुःख की बात है। सदा क्षत्रियधर्म का पालन करनेवाली मेरी सर्वांगसुन्दरी पुत्रवधु उस समय स्त्रीधर्म में विद्यमान थी, वह द्रौपदी उस समय अपने रक्षकों के होते हुए भी किसी रक्षक को प्राप्त न कर सकी।

तं वै ब्रूहि महाबाहो सर्वशस्त्रभृतां वरम्।। ११।।
अर्जुनं पुरुषव्याघ्रं द्रौपद्याः पदवीं चर।
तयोश्चैतदवज्ञानं यत् सा कृष्णा सभागता।। १२।।
दुःशासनश्च यद् भीमं कटुकान्यभ्यभाषत।
पश्यतां कुरुवीराणां तच्च संस्मारयेः पुनः।। १३।।
पाण्डवान् कुशलं पृच्छेः सपुत्रान् कृष्णया सह।
मां च कुशलिनीं ब्रूयास्तेषु भूयो जनार्दन।। १४।।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं पुत्रान् मे प्रतिपालय।

हे महाबाहु! तुम सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, पुरुषव्याघ्र अर्जुन से कहना कि तुम द्रौपदी की इच्छा के अनुसार काम करो। यह भीम और अर्जुन का ही अपमान था, जो द्रौपदी को सभा में जाना पड़ा और सारे कौरव वीरों के सामने ही दुश्शासन ने भीम को कटुवचन सुनाये। तुम ये सारीबातें उन्हें फिर से याद दिलाना। हे जनार्दन! तुम पुत्रोंसहित द्रौपदी के साथ पाण्डवों की कुशलता को पूछना और फिर मेरी भी कुशलता उन्हें बताना। अब तुम जाओ। तुम्हारा मार्ग विघ्नों से रहित हो। तुम मेरे पुत्रों की रक्षा करना।

अभिवाद्याथ तां कृष्णः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।। १५।।
निश्चक्राम महाबाहुः सिंहखेलगतिस्ततः।
ततो विसर्जयामास भीष्मादीन् कुरुपुङ्गवान्।। १६।।
ततो जवेन महता तूर्णमश्वानचोदयत्।
ते पिबन्त इवाकाशं दारुकेण प्रचोदिताः।। १७।।
हया जग्मुर्महावेगा मनोमारुतरंहसः।
ते व्यतीत्य महाध्वानं क्षिप्रं श्येना इवाशुगाः।
उच्चैर्जग्मुरुपप्लव्यं शार्ङ्गधन्वानमावहन्।। १८।।

श्रीकृष्ण जी ने कुन्ती को प्रणाम कर, उनकी प्रदक्षिणा की और फिर सिंह के समान चालवाले वे महाबाहु वहाँ से बाहर निकले। फिर उन्होंने भीष्म आदि कौरवश्रेष्ठों को विदा किया और शीघ्रता से अपने घोड़ों को महान् तीव्रगति से हँकवाया। सारथि दारुक के द्वारा हाँकने पर वे मन और वायु के समान महान् वेगवाले, घोड़े मानों आकाश को पीते हुए तेजी से दौड़े। तीव्रगामी बाजपक्षी के समान उन्होंने उस लम्बे मार्ग को जल्दी ही पार कर लिया, और शार्ङ्ग धनुष को धारण करनेवाले श्रीकृष्ण को ले जाते हुए वे उपप्लव्य नगर में पहुँच गये।

पचासवाँ अध्याय : भीष्म और द्रोण का दुर्योधन को समझाना।

कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा भीष्मद्रोणौ महारथौ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमूचतुः शासनातिगम्॥ १॥
श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र कुन्त्याः कृष्णस्य संनिधौ।
वाक्यमर्थवदत्युग्रमुक्तं धर्म्यमनुत्तमम्॥ २॥
तत् करिष्यन्ति कौन्तेया वासुदेवस्य सम्मतम्।
न हि ते जातु शाम्येरन्नृते राज्येन कौरव॥ ३॥
क्लेशिता हि त्वया पार्था धर्मपाशसितास्तदा।
सभायां द्रौपदी चैव तैश्च तन्मर्षितं तव॥ ४॥

कुन्ती के वचनों को सुनकर महारथी भीष्म और द्रोण ने अपने आदेश का उल्लंघन करनेवाले दुर्योधन से यह कहा कि हे पुरुषव्याघ्र! तुमने कुन्ती की उस सार्थक, धर्मानुकूल, परम उत्तम पर अत्यन्त भयंकर बातों को सुना है जो कृष्ण को कही गयी हैं। कुन्तीपुत्र श्रीकृष्ण की सलाह के अनुसार वैसा ही कार्य करेंगे। अब हे कौरव! वे बिना राज्य लिये कभी शान्त नहीं होंगे। तुमने सभा में जो द्रौपदी का अपमान किया, धर्मपाश में बँधे हुए कुन्तीपुत्रों ने तब तुम्हारा वह अपराध सहन कर लिया था।

कृतास्त्रं ह्यर्जुनं प्राप्य भीमं च कृतनिश्चयम्।
नकुलं सहदेवं च बलवीर्यसमन्वितौ॥ ५॥
सहायं वासुदेवं च न क्षंस्यति युधिष्ठिरः।
प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा पार्थेन धीमता॥ ६॥
विराटनगरे पूर्वं सर्वे स्म युधि निर्जिताः।
कर्णप्रभृतयश्चेमे त्वं चापि कवची रथी॥ ७॥
मोक्षितो घोषयात्रायां पर्याप्तं तन्निदर्शनम्।
प्रशाम्य भरतश्रेष्ठ भ्रातृभिः सह पाण्डवैः॥ ८॥

पर अब अस्त्रविद्या सीखे हुए अर्जुन को, दृढ़ निश्चयवाले भीम को, बल और वीर्य से युक्त नकुल और सहदेव को तथा कृष्ण को सहायक पाकर युधिष्ठिर तुम्हारे उन अपराधों को क्षमा नहीं करेंगे। यह तुम्हारे समक्ष प्रत्यक्ष है कि हे महाबाहु! विराटनगर में धीमान् अर्जुन के द्वारा हम सबको जीत लिया गया। घोषयात्रा में कर्ण सहित ये सारे योद्धा और तुम भी रथ और कवच के साथ थे, पर फिर भी अर्जुन ने ही तुम्हें छुड़वाया था, यही प्रमाण उसकी शक्ति को समझने के लिये पर्याप्त है। इसलिये हे भरतश्रेष्ठ! तुम अपने भाई पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो।

रक्षेमां पृथिवीं सर्वां मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गताम्।
ज्येष्ठो भ्राता धर्मशीलो वत्सलः श्लक्ष्णवाक् कविः॥ ९॥
तं गच्छ पुरुषव्याघ्रं व्यपनीयेह किल्बिषम्।
दृष्टश्च त्वं पाण्डवेन व्यपनीतशरासनः॥ १०॥
प्रशान्तभृकुटिः श्रीमान् कृता शान्तिः कुलस्य नः।
तमभ्येत्य सहामात्यः परिष्वज्य नृपात्मजम्॥ ११॥
अभिवादय राजानं यथापूर्वमरिंदम।
अभिवादयमानं त्वां पाणिभ्यां भीमपूर्वजः॥ १२॥
प्रतिगृह्णातु सौहार्दात् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।

यह सारी भूमि मृत्यु के मुख में गयी हुई है। तुम इसकी रक्षा करो। युधिष्ठिर तुम्हारे बड़े भाई हैं, धर्म का आचरण करनेवाले हैं, मधुरभाषी और विद्वान् हैं। तुम अपनी कलुषता यहीं दूरकर उस पुरुषव्याघ्र के समीप जाओ। जब वह श्रीमान् पाण्डव यह देखेगा कि तुमने धनुष को उतार दिया है, तुम्हारी भौंहें सीधी हो गयीं हैं, तो उसे विश्वास हो जायेगा कि तुमने हमारे कुल में शान्ति स्थापित कर दी है। हे शत्रुओं का दमन करनेवाले! तुम अपने मंत्रियों सहित उस राजकुमार राजा के पास जाओ और उन्हें छाती से लगाकर पहले की तरह उन्हें प्रणाम करो। तुम्हें अभिवादन करता हुआ देखकर भीम के बड़े भाई कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर तुम्हें प्रेमपूर्वक दोनों हाथों से हृदय से लगा लें।

सिंहस्कन्धोरुबाहुस्त्वां वृत्तायतमहाभुजः॥ १३॥
परिष्वजतु बाहुभ्यां भीमः प्रहरतां वरः।
कम्बुग्रीवो गुडाकेशस्ततस्त्वां पुष्करेक्षणः॥ १४॥
अभिवादयतां पार्थः कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
आश्विनेयौ नरव्याघ्रौ रूपेणाप्रतिमौ भुवि॥ १५॥
तौ च त्वां गुरुवत् प्रेम्णा पूजया प्रत्युदीयताम्।
मुञ्चन्त्वानन्दजाश्रूणि दाशार्हप्रमुखा नृपाः॥ १६॥
संगच्छ भ्रातृभिः सार्धं मानं संत्यज्य पार्थिव।

सिंह के समान कन्धे, छाती और भुजाओंवाले तथा मोटी, गोल और विशाल भुजाओंवाले, प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ भीम भी तुम्हें अपनी भुजाओं से उठाकर छाती से लगा लें। तब शंख के समान गर्दनवाले, निद्राजयी, कमलनेत्र कुन्तीपुत्र अर्जुन भी तुम्हें अभिवादन करें। अपने सौन्दर्य से विश्व में अप्रतिम, अश्विनीकुमार के पुत्र नरश्रेष्ठ नकुल और

सहदेव भी प्रेमपूर्वक तुम्हारा सम्मान कर तुम्हारी सेवा में उपस्थित हों। तब कृष्ण आदि सारे राजालोग प्रसन्नता से आँसू बहाएँ। हे राजन्! तुम अपने अभिमान को छोड़कर अपने भाइयों के साथ मेल कर लो।

प्रशाधि पृथिवीं कृत्स्नां ततस्त्वं भ्रातृभिः सह॥ १७॥
समालिङ्‌ग्य च हर्षेण नृपा यान्तु परस्परम्।
अलं युद्धेन राजेन्द्र सुहृदां शृणु वारणम्॥ १८॥
ध्रुवं विनाशो युद्धे हि क्षत्रियाणां प्रदृश्यते।
कुरु वाक्यं पितुर्मातुरस्माकं च हितैषिणाम्॥ १९॥
त्वय्यायत्तो महाबाहो शमो व्यायाम एव च।
भीमस्य च महानादं नदतः शुष्मिणो रणे॥ २०॥
श्रुत्वा स्मर्तासि मे वाक्यं गाण्डीवस्य च निःस्वनम्।
यद्येतदपसव्यं ते वचो मम भविष्यति॥ २१॥

फिर तुम भाइयों के साथ मिलकर सारी भूमि का शासन करो और ये राजालोग परस्पर मिलजुल कर हर्ष के साथ यहाँ से जायें। हे राजेन्द्र! युद्ध मत करो। अपने हितैषियों की चेतावनियों को सुनो। युद्ध होने पर क्षत्रियों का विनाश निश्चित रूप से दिखाई दे रहा है। तुम अपने मातापिता तथा हम हितैषियों की बात मानो। हे महाबाहु! अब शान्ति और युद्ध दोनों तुम्हारे ही आधीन हैं। यदि हमारी बातें तुम्हें उलटी लगती हैं, तो युद्ध में गर्जते हुए पराक्रमी भीम की महान् गर्जना को जब तुम सुनोगे और गाण्डीवधनुष की टंकार को सुनोगे, तब तुम्हें मेरी बातें याद आयेंगी।

एवमुक्तस्तु विमनास्तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः।
संहत्य च भ्रुवोर्मध्यं न किंचिद् व्याजहार ह॥ २२॥
तं वै विमनसं दृष्ट्वा सम्प्रेक्ष्यान्योन्यमन्तिकात्।
पुनरेवोत्तरं वाक्यमुक्तवन्तौ नरर्षभौ॥ २३॥

भीष्म उवाच

शुश्रूषुमनसूयं च ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम्।
प्रतियोत्स्यामहे पार्थमतो दुःखतरं नु किम्॥ २४॥

ऐसा कहे जाने पर दुर्योधन ने टेढ़ी निगाहें, तथा भौहों को सिकोड़ कर उदास मन से मुख को नीचे कर लिया और कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसे उदास देखकर वे दोनों नरश्रेष्ठ उसके समीप ही एक दूसरे की तरफ देखते हुए पुनः इस प्रकार बातें करने लगे। भीष्म कहने लगे कि अरे जो सेवा करने का इच्छुक है, जो द्वेष नहीं करता, ब्राह्मणभक्त और सत्यवादी है, उसी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर से हमें युद्ध करना पड़ेगा, इससे अधिक दुःख की बात क्या होगी?

द्रोण उवाच

अश्वत्थाम्नि यथा पुत्रे भूयो मम धनंजये।
बहुमानः परो राजन् संनतिश्च कपिध्वजे॥ २५॥
तं च पुत्रात् प्रियतमं प्रतियोत्स्ये धनंजयम्।
क्षात्रं धर्ममनुष्ठाय धिगस्तु क्षत्रजीविकाम्॥ २६॥
यस्य लोके समो नास्ति कश्चिदन्यो धनुर्धरः।
मत्प्रसादात् स बीभत्सुः श्रेयानन्यैर्धनुर्धरैः॥ २७॥

द्रोणाचार्य बोले कि हे राजन्! अपने पुत्र अश्वत्थामा में जो प्रेम है, उससे भी अधिक मेरा प्रेम अर्जुन में है। अर्जुन में भी मेरे प्रति बहुत प्रणामभाव है। उस पुत्र से भी अधिक प्रिय अर्जुन से मुझे क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए युद्ध करना पड़ेगा। क्षत्रियों की जीविका को धिक्कार है। जिसके समान संसार में कोई दूसरा धनुर्धर नहीं है, वह अर्जुन मेरी ही कृपा से दूसरे धनुर्धरों से श्रेष्ठ हुए हैं।

मिथ्योपचरिता ह्येते वर्तमाना ह्यनु प्रिये।
अहितत्वाय कल्पन्ते दोषा भरतसत्तम॥ २८॥
त्वमुक्तः कुरुवृद्धेन मया च विदुरेण च।
वासुदेवेन च तथा श्रेयो नैवाभिमन्यसे॥ २९॥
अस्ति मे बलमित्येव सहसा त्वं तितीर्षसि।
सग्राहनक्रमकरं गङ्‌गावेगमिवोष्णगे॥ ३०॥
वास एव यथा त्यक्तं प्रावृण्वानोऽभिमन्यसे।
स्रजं त्यक्तामिव प्राप्य लोभाद् यौधिष्ठिरीं श्रियम्॥ ३१॥

हे भरतश्रेष्ठ! तुमने इन पाण्डवों के साथ सदा मिथ्या व्यवहार ही किया है, पर फिर भी ये तुमसे प्रेम करते रहे हैं। तुम्हारे ये दोष तुम्हारा ही अकल्याण करेंगे। तुम्हें कुरुवृद्ध भीष्म, मैंने, विदुर ने और कृष्ण ने कल्याण की बातें बताई हैं, पर तुम उन्हें मान नहीं रहे हो। वर्षाऋतु में ग्राह, नक्र और मकर आदि जन्तुओं भरी हुई गंगा के समान पाण्डवसेना के वेग को तुम यह समझ कर कि मेरे पास भी सेना है पार करना चाहते हो। जैसे कोई दूसरे के द्वारा छोड़े हुए कपड़े को पहन ले, उसी प्रकार तुम युधिष्ठिर के द्वारा पहन कर छोड़ी हुई माला के समान राज्यलक्ष्मी को लोभ के कारण लेकर अपनी समझने लगे हो।

द्रौपदीसहितं पार्थं सायुधैर्भ्रातृभिर्वृतम्।
वनस्थमपि राज्यस्थः पाण्डवं को विजेष्यति॥ ३२॥

दत्तं हुतमधीतं च ब्राह्मणास्तर्पिता धनैः।
आयोर्गतमायुश्च कृतकृत्यौ च विद्धि नौ॥ ३३॥
त्वं तु हित्वा सुखं राज्यं मित्राणि च धनानि च।
विग्रहं पाण्डवैः कृत्वा महद् व्यसनमाप्स्यसि॥ ३४॥

द्रौपदी सहित कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर यदि शस्त्रास्त्रों सहित अपने भाइयों से घिरे हुए वन में भी विद्यमान हों, तो भी उस पाण्डव को कौन राज्यसिंहासन पर बैठा हुआ राजा जीत सकता है? हम दोनों ने तो खूब दान कर लिया, यज्ञ कर लिये, अध्ययन कर लिये, और धन के द्वारा ब्राह्मणों को तृप्त कर लिया। हम दोनों की आयु भी समाप्त हो चली है, इसलिये हमें तो तुम कृतकृत्य ही समझो, किन्तु तुम पाण्डवों से युद्ध करके अपने सुख, राज्य, मित्रों और धन का नाश कराकर महान् संकट को प्राप्त कर लोगे।

मन्त्री जनार्दनो यस्य भ्राता यस्य धनंजयः।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठः कथं जेष्यसि पाण्डवम्॥ ३५॥
पुनरुक्तं च वक्ष्यामि यत् कार्यं भूतिमिच्छता।
सुहृदा मज्जमानेषु सुहृत्सु व्यसनार्णवे॥ ३६॥
अलं युद्धेन तैर्वीरैः शाम्य त्वं कुरुवृद्धये।
मा गमः ससुतामात्यः सबलश्च यमक्षयम्॥ ३७॥

जिसके मन्त्री श्रीकृष्ण हैं और भाई सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन है, उस पाण्डव युधिष्ठिर को तुम कैसे जीत सकोगे? अपने मित्रों को विपत्ति के सागर में डूबते हुए देखकर कल्याण के इच्छुक मित्र को जो बात कहनी चाहिये, मैं उसी को यद्यपि वह पहले कही जा चुकी है, तुमसे पुनः कहता हूँ कि तुम उन वीरों के साथ युद्ध मत करो। कुरुवंश की वृद्धि के लिये तुम उनके साथ सन्धि कर लो। तुम अपने पुत्रों, मन्त्रियों और सेना के साथ मृत्युलोक की तरफ जाने की तैयारी मत करो।

इक्यावनवाँ अध्याय : श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर को भीष्म के वचन सुनाना।

आगम्य हास्तिनपुरादुपप्लव्यमरिंदमः।
पाण्डवानां यथावृत्तं केशवः सर्वमुक्तवान्॥ १॥

युधिष्ठिर उवाच

तस्मिन्नुत्पथमापन्ने कुरुवृद्धः पितामहः।
किमुक्तवान् हृषीकेश दुर्योधनममर्षणम्॥ २॥
आचार्यो वा महाभाग भारद्वाजः किमब्रवीत्।
पिता वा धृतराष्ट्रस्तं गान्धारी वा किमब्रवीत्॥ ३॥

शत्रुओं का दमन करनेवाले श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर से लौटकर उपप्लव्य नगर में पाण्डवों से सारी बातें ज्यों की त्यों सुनाईं। तब युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि हे श्रीकृष्ण! दुर्योधन के कुमार्ग का आश्रय लेने पर कुरुओं के वृद्ध भीष्मपितामह ने अमर्षशील दुर्योधन से क्या कहा? भरद्वाजपुत्र, महाभाग आचार्यद्रोण ने तथा पिता धृतराष्ट्र ने और गान्धारी ने क्या कहा?

पिता यवीयानस्माकं क्षत्ता धर्मविदां वरः।
पुत्रशोकाभिसंतप्तः किमाह धृतराष्ट्रजम्॥ ४॥
किं च सर्वे नृपतयः सभायां ये समासते।
उक्तवन्तो यथातत्त्वं तद् ब्रूहि त्वं जनार्दन॥ ५॥

वासुदेव उवाच

मया विश्राविते वाक्ये जहास धृतराष्ट्रजः।
अथ भीष्मः सुसंक्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत्॥ ६॥

हमारे चाचा धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ विदुर जी ने जो हम पुत्रों के शोक से सन्तप्त रहते हैं, धृतराष्ट्रपुत्र से क्या कहा? और सभा में जो राजालोग विद्यमान् थे, उन्होंने क्या कहा? हे जनार्दन! आप यह हमें सब ठीक ठीक बताइये। तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि मेरे अपनी बात कह देने पर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन हँसने लगा। तब भीष्म ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह कहा कि—

दुर्योधन निबोधेदं कुलार्थे यद् ब्रवीमि ते।
तच्छ्रुत्वा राजशार्दूल स्वकुलस्य हितं कुरु॥ ७॥
अन्धः करणहीनत्वान्न वै राजा पिता तव।
राजा तु पाण्डुरभवन्महात्मा लोकविश्रुतः॥ ८॥
स राजा तस्य ते पुत्राः पितुर्दायाद्यहारिणः।
मा तात कलहं कार्षी राज्यस्यार्धं प्रदीयताम्॥ ९॥

हे दुर्योधन! मैं कुल की भलाई के लिये जो कुछ तुम्हें कह रहा हूँ, उसे समझो और हे राजसिंह! उसे सुनकर अपने कुल की भलाई का काम करो। तुम्हारे पिता अन्धे हैं। नेत्रेन्द्रिय से हीन होने के कारण ये राजा नहीं हो सके। तब लोकप्रसिद्ध महात्मा पाण्डु राजा हुए। पाण्डु राजा थे। उनके वे पुत्र पाण्डव अपने पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हैं। इसलिये हे तात! तुम कलह मत करो और आधा राज्य उन्हें दे दो।

मयि जीवति राज्यं कः सम्प्रशासेत् पुमानिह।
मावमंस्था वचो मह्यं शममिच्छामि वः सदा॥ १०॥
न विशेषोऽस्ति मे पुत्र त्वयि तेषु च पार्थिव।
मतमेतत् पितुस्तुभ्यं गान्धार्या विदुरस्य च॥ ११॥
श्रोतव्यं खलु वृद्धानां नाभिशङ्कीर्वचो मम।
नाशयिष्यसि मा सर्वमात्मानं पृथिवीं तथा॥ १२॥

मेरे जीवित रहते हुए कौन दूसरा व्यक्ति इस राज्य पर शासन कर सकता है? इसलिये मेरे कथन की अवहेलना मत करो। मैं सदा तुम लोगों में शान्ति चाहता हूँ। हे राजन्! मेरे लिये तुम्हारे और उन पाण्डवों में कोई अन्तर नहीं है। तुम्हारे लिये तुम्हारे पिता का, गान्धारी का और विदुर का भी यही मत है। वृद्धों की बातें सुननी चाहियें, तुम मेरी बात पर शंका मत करो। इससे तुम अपना, सबका और पृथिवी का विनाश नहीं कराओगे।

बावनवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य, विदुर तथा गान्धारी के वचनों को बताना।

भीष्मेणोक्ते ततो द्रोणो दुर्योधनमभाषत।
मध्ये नृपाणां भद्रं ते वचनं वचनक्षमः॥ १॥
प्रातीपः शान्तनुस्तात कुलस्यार्थे यथा स्थितः।
यथा देवव्रतो भीष्मः कुलस्यार्थे स्थितोऽभवत्॥ २॥
तथा पाण्डुर्नरपतिः सत्यसंधो जितेन्द्रियः।
राजा कुरूणां धर्मात्मा सुव्रतः सुसमाहितः॥ ३॥
ज्येष्ठाय राज्यमददाद् धृतराष्ट्राय धीमते।
यवीयसे तथा क्षत्त्रे कुरूणां वंशवर्धनः॥ ४॥

हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। भीष्म के द्वारा अपनी बात कहने पर बात कहने में समर्थ द्रोणाचार्य ने राजाओं के बीच में दुर्योधन से कहा कि हे तात! जैसे प्रतीप के पुत्र शान्तनु कुल की भलाई के लिये लगे रहे, वैसे ही देवव्रत भीष्म कुल की भलाई के लिये लगे रहे हैं। उसी प्रकार कौरवों के राजा पाण्डु भी जो सत्यसन्ध, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, अच्छे व्रतों का पालन करने वाले तथा चित्त को एकाग्र रखने वाले थे, रहे थे। कुरुओं के वंश की वृद्धि करने वाले राजा पाण्डु ने अपने बड़े भाई धीमान् धृतराष्ट्र को तथा छोटे भाई विदुर को राज्य दिया।

ततः सिंहासने राजन् स्थापयित्वैनमच्युतम्।
वनं जगाम कौरव्यो भार्याभ्यां सहितो नृपः॥ ५॥
नीचैः स्थित्वा तु विदुर उपास्ते स्म विनीतवत्।
प्रेष्यवत् पुरुषव्यांघ्रो वालव्यजनमुत्क्षिपन्॥ ६॥
ततः सर्वाः प्रजास्तात धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्।
अन्वपद्यन्त विधिवद् यथा पाण्डुं जनाधिपम्॥ ७॥

हे राजन्! तब मर्यादा से कभी च्युत न होनेवाले इन धृतराष्ट्र को राज्यसिंहासन पर बैठाकर वे कुरुराज पाण्डव अपनी दोनो पत्नियों के साथ वन में चले गये। तब पुरुषव्याघ्र विदुर, सेवक के समान नीचे खड़े होकर, विनीतभाव से धृतराष्ट्र की सेवा करते हुए, उन पर चँवर डुलाते हुए रहने लगे। हे तात! तब सारी प्रजा राजा धृतराष्ट्र के शासन में भी उसी प्रकार रहने लगी, जैसे वह पहले राजा पाण्डु के शासन में रहती थी।

कथं तस्य कुले जातः कुलभेदं व्यवस्यसि।
सम्भूय भ्रातृभिः सार्धं भुङ्क्ष्व भोगान् जनाधिप॥ ८॥
ब्रवीम्यहं न कार्पण्यान्नार्थहेतोः कथंचन।
भीष्मेण दत्तमिच्छामि न त्वया राजसत्तम॥ ९॥
नाहं त्वत्तोऽभिकाङ्क्षिष्ये वृत्त्युपायं जनाधिप।
यतो भीष्मस्ततो द्रोणो यद् भीष्मस्त्वाह तत् कुरु॥ १०॥
दीयतां पाण्डुपुत्रेभ्यो राज्यार्धमरिकर्शन।
सममाचार्यकं तात तव तेषां च मे सदा॥ ११॥

हे राजन्! तुम उन्हीं के कुल में जन्म लेकर कुल में फूट क्यों डाल रहे हो? तुम अपने उन भाइयों के साथ मिलकर उनके साथ भोगों को भोगो। मैं तुम्हें ये बातें किसी प्रकार भी दीनता के कारण या धन प्राप्ति के लिये नहीं कह रहा हूँ। हे राजश्रेष्ठ! मैं भीष्म के द्वारा दिये हुए पदार्थ ही चाहता हूँ। तुम्हारे द्वारा दिये हुए नहीं। हे राजन्! मैं तुमसे अपनी आजीविका को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करता। द्रोण तो वहीं रहेंगे, जहाँ भीष्म रहेंगे। इसलिये जो भीष्म ने कहा है, तुम वही करो। हे शत्रुओं को नष्ट करनेवाले! तुम पाण्डुपुत्रों को आधा राज्य दे दो। मेरा आचार्यत्व तो तुम्हारे और पाण्डुपुत्रों दोनों के लिये समान है।

अश्वत्थामा यथा मह्यं तथा श्वेतहयो मम।
बहुना किं प्रलापेन यतो धर्मस्ततो जयः॥ १२॥
एवमुक्ते महाराज द्रोणेनामिततेजसा।
व्याजहार ततो वाक्यं विदुरः सत्यसङ्गरः॥ १३॥
पितुर्वदनमन्वीक्ष्य परिवृत्य च धर्मवित्।

मेरे लिये जैसे अश्वत्थामा है, वैसे ही श्वेत घोड़ों वाला अर्जुन है। बहुत प्रलाप करने से क्या लाभ? जिस तरफ धर्म हैं, उसी तरफ की विजय होगी। हे महाराज! अमित तेजस्वी द्रोणाचार्य के यह कहने पर फिर सत्यभाषी, धर्मवेत्ता विदुर अपने बड़े पिता भीष्म की तरफ घूमकर उनके सुख की तरफ देखते हुए बोले कि–

देवव्रत निबोधेदं वचनं मम भाषतः॥ १४॥
प्रणष्टः कौरवो वंशस्त्वयायं पुनरुद्धृतः।
तन्मे विलपमानस्य वचनं समुपेक्षसे॥ १५॥
कोऽयं दुर्योधनोनाम कुलेऽस्मिन् कुलपांसनः।
यस्य लोभाभिभूतस्य मतिं समनुवर्तसे॥ १६॥
अनार्यस्याकृतज्ञस्य लोभेन हृतचेतसः।
अतिक्रामति यः शास्त्रं पितुर्धर्मार्थदर्शिनः॥ १७॥
एते नश्यन्ति कुरवो दुर्योधनकृतेन वै।
यथा ते न प्रणश्येयुर्महाराज तथा कुरु॥ १८॥

हे देवव्रत जी, मैं जो कह रहा हूँ, आप उसे सुनिये। आपने नष्ट होते हुए कुरुवंश का उद्धार किया था। मैं भी इसी वंश की रक्षा के लिये विलाप कर रहा हूँ, पर आप उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। कुल को नष्ट करनेवाला यह दुर्योधन इस कुल में कौन है? जिसके लोभ के वश में होने पर भी आप उसी की बुद्धि का अनुसरण कर रहे हैं। यह अनार्य है, अकृतज्ञ है और लोभ ने इसकी चेतना को हर लिया है। यह शास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है, तथा धर्म और अर्थ को देखनेवाले पिता की बात भी नहीं मान रहा है। दुर्योधन के कारण निश्चय ही सारे कौरव नष्ट हो जायेंगे। हे महाराज! इसलिये आप ऐसा कीजिये, जिससे इनका विनाश न हो।

प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा यथा संहरते तथा।
नोपेक्षस्व महाबाहो पश्यमानः कुलक्षयम्॥ १९॥
अथ तेऽद्य मतिर्नष्टा विनाशे प्रत्युपस्थिते।
वनं गच्छ मया सार्धं धृतराष्ट्रेण चैव ह॥ २०॥
बद्ध्वा वा निकृतिप्रज्ञं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम्।
शाधीदं राज्यमद्याशु पाण्डवैरभिरक्षितम्॥ २१॥
प्रसीद राजशार्दूल विनाशो दृश्यते महान्।
पाण्डवानां कुरूणां च राज्ञाममिततेजसाम्॥ २२॥
विररामैवमुक्त्वा तु विदुरो दीनमानसः।
प्रध्यायमानः स तदा निःश्वसंश्च पुनः पुनः॥ २३॥

जैसे परमात्मा प्रजाओं का निर्माण कर पुनः उनका विनाश भी करते है, हे महाबाहु! वैसे ही आप भी इस कुल के विनाश को देखकर इसकी उपेक्षा मत कीजिये। यदि विनाश को उपस्थित देखकर आपकी बुद्धि काम नहीं कर रही है तो आप मेरे और धृतराष्ट्र के साथ वन में चलिये या छल कपट में लगी रहनेवाली बुद्धिवाले इस धृतराष्ट्र के दुर्मति पुत्र को शीघ्र ही बाँधकर पाण्डवों से सुरक्षित इस राज्य पर शासन कीजिये। हे राजसिंह! आप प्रसन्न होइये। पाण्डवों का, कौरवों का और अमित तेजस्वी राजाओं का महान् विनाश दिखाई दे रहा है। ऐसा कहकर दीन मनवाले विदुर जी चुप हो गये। वे उस समय चिन्ता में मग्न थे और बार बार लम्बी साँसें ले रहे थे।

ततोऽथ राज्ञः सुबलस्य पुत्री
धर्मार्थयुक्तं कुलनाशभीता।
दुर्योधनं पापमतिं नृशंसं
राज्ञां समक्षं सुतमाह कोपात्॥ २४॥
ये पार्थिवा राजसभां प्रविष्टा
ब्रह्मर्षयो ये च सभासदोऽन्ये।
शृण्वन्तु वक्ष्यामि तवापराधं
पापस्य सामात्यपरिच्छदस्य॥ २५॥
राज्यं कुरूणामनुपूर्वभोज्यं
क्रमागतो नः कुलधर्म एषः।
त्वं पापबुद्धेऽतिनृशंसकर्मन्
राज्यं कुरूणामनयाद्. विहंसि॥ २६॥

इसके पश्चात् राजा सुबल की पुत्री गान्धारी, कुल के नाश से भयभीत होकर अपने पुत्र पापमति, क्रूर दुर्योधन से, क्रोधपूर्वक राजाओं के सामने धर्म और अर्थ से युक्त यह वचन बोली कि– जो भी ब्रह्मर्षि, राजालोग तथा दूसरे सभासद इस सभा में प्रविष्ट हुए हैं, वे सारे मंत्रियों और सेवकों सहित तेरे अपराध को सुनें, जिसे मैं वर्णन करती हूँ। हम कौरवों का कुलक्रम से चलाआनेवाला धर्म यही है

कि राज्य का भोग पूर्वपूर्व अधिकारी के क्रम से किया जाये। पर हे पापबुद्धि और अत्यन्त क्रूर कर्म करनेवाले! तू कौरवों के राज्य को अपने अन्याय से नष्ट कर रहा है।

राज्ये स्थितो धृतराष्ट्रो मनीषी
तस्यानुजो विदुरो दीर्घदर्शी।
एतावतिक्रम्य कथं नृपत्वं
दुर्योधन प्रार्थयसेऽद्य मोहात्॥ २७॥
राजा च क्षत्ता च महानुभावौ
भीष्मे स्थिते परवन्तौ भवेताम्।
अयं तु धर्मज्ञतया महात्मा
न कामयेद् यो नृवरो हि भीष्मः॥ २८॥

राज्य पर तो मनीषी धृतराष्ट्र और उनके छोटे भाई दीर्घदर्शी विदुर विद्यमान है। तू इन दोनों का उल्लंघन कर अरे दुर्योधन! मोह में पड़कर कैसे राज्य की इच्छा कर रहा है? राजा धृतराष्ट्र और विदुर ये दोनों महानुभाव भी भीष्म के होते हुए इनके आधीन ही रहेंगे। किन्तु ये महात्मा और नरश्रेष्ठ भीष्म अपने धर्मात्मा होने के कारण राज्य की इच्छा ही नहीं करते।

राज्यं तु पाण्डोरिदमप्रधृष्यं
तस्याद्य पुत्राः प्रभवन्ति नान्ये।
राज्यं तदेतन्निखिलं पाण्डवानां
पैतामहं पुत्रपौत्रानुगामि॥ २९॥
यद् वै ब्रूते कुरुमुख्यो महात्मा
देवव्रतः सत्यसंधो मनीषी।
सर्वं तदस्माभिरहत्य कार्यं
राज्यं स्वधर्मान् परिपालयद्भिः॥ ३०॥

यह दुर्धर्ष राज्य तो पाण्डु का है। आज उसके पुत्र ही राज्य के अधिकारी हो सकते हैं, दूसरे नहीं। बापदादों का पुत्र और पौत्रों तक जानेवाला यह सारा राज्य इसलिये पाण्डवों का ही है। कौरवों के मुखिया, सत्यसंध, मनीषी और महात्मा देवव्रत जो कुछ कहते हैं, उसे बिना काट छाँट किये समग्ररूप से, राज्य और अपने धर्म का पालन करनेवाले हमारे द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिये।

अनुज्ञया चाथ महाव्रतस्य
ब्रूयान्नृपोऽयं विदुरस्तथैव।
कार्यं भवेत् तत् सुहृद्भिर्नियोज्यं
धर्मं पुरस्कृत्य सुदीर्घकालम्॥ ३१॥
न्यायागतं राज्यमिदं कुरूणां
युधिष्ठिरः शास्तु वै धर्मपुत्रः
प्रचोदितो धृतराष्ट्रेण राज्ञा
पुरस्कृतः शान्तनवेन चैव॥ ३२॥

अथवा इन महाव्रतवाले भीष्म की आज्ञा से राजा धृतराष्ट्र और विदुर भी यदि कुछ कहें, तो दूसरे सुहृदों को धर्म को सामने रख कर उसका लम्बे समय तक पालन करना चाहिये। कौरवों के न्याय से प्राप्त इस राज्य का शासन धर्मपुत्र युधिष्ठिर को ही शान्तनुपुत्र भीष्म से सम्मानित होते हुए तथा धृतराष्ट्र से प्रेरणा प्राप्त करते हुए करना चाहिये।

तिरेपनवाँ अध्याय : धृतराष्ट्र के दुर्योधन के प्रति वचनों को बताना।

वासुदेव उवाच

एवमुक्ते तु गान्धार्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।
दुर्योधनमुवाचेदं राजमध्ये जनाधिप॥ १॥
दुर्योधन निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि पुत्रक।
तथा तत् कुरु भद्रं ते यद्यस्ति पितृगौरवम्॥ २॥
मय्यभागिनि राज्याय कथं त्वं राज्यमिच्छसि।
अराजपुत्रो ह्यस्वामी परस्वं हर्तुमिच्छसि॥ ३॥

गान्धारी के ऐसा कहने पर जनता के स्वामी राजा धृतराष्ट्र राजाओं के बीच में दुर्योधन से कहने लगे कि हे पत्र दुर्योधन! तेरा कल्याण हो! जो कुछ मैं तुझे कहूँगा, उसे समझ और यदि तुममें पिता के प्रति सम्मान है तो वैसा ही कर। जब मैं राज्य का अधिकारी था ही नहीं, तब तू राज्य कैसे लेना चाहता है। जो राजा का पुत्र नहीं है, वह राज्य का अधि कारी नहीं बन सकता। फिर तू पराये धन का अपहरण करना चाहता है।

युधिष्ठिरो राजपुत्रो महात्मा
न्यायागतं राज्यमिदं च तस्य।
स कैरवस्यास्य कुलस्य भर्ता
प्रशासिता चैव महानुभावः॥ ४॥

स सत्यसंधः स तथाप्रमत्तः
शास्त्रे स्थितो बन्धुजनस्य साधुः।
प्रियः प्रजानां सुहृदानुकम्पी
जितेन्द्रियः साधुजनस्य भर्ता॥ ५॥
क्षमा तितिक्षा दम आर्जवं च
सत्यव्रतत्वं श्रुतमप्रमादः।
भूतानुकम्पा ह्यनुशासनं च
युधिष्ठिरे राजगुणाः समस्ताः॥ ६॥

युधिष्ठिर राजपुत्र और महात्मा हैं। न्याय से प्राप्त यह राज्य उनका ही है। वह महानुभाव ही इस कौरवकुल के भर्ता और शासन करनेवाले हैं। वह सत्यसंध, प्रमाद से रहित, शास्त्र की आज्ञा का पालन करनेवाला, बन्धुजनों के प्रति सद्भाव रखनेवाला, प्रजा से प्रेम करनेवाला, हितैषियों पर कृपा करनेवाला, जितेन्द्रिय और सत्पुरुषों का पालनपोषण करनेवाला है। क्षमा, सहनशीलता, इन्द्रियदमन, कोमलता, सत्य का पालन करना, विद्या, प्रमाद का अभाव, प्राणियों पर कृपा करना और अनुशासन का पालन करना ये सारे राजाओं के गुण युधिष्ठिर में विद्यमान हैं।

अराजपुत्रस्त्वमनार्यवृत्तो
लुब्धः सदा बन्धुषु पापबुद्धिः।
क्रमागतं राज्यमिदं परेषां
हर्तुं कथं शक्ष्यसि दुर्विनीत॥ ७॥
प्रयच्छ राज्यार्धमपेतमोहः
सवाहनं त्वं सपरिच्छदं च।
ततोऽवशेषं तव जीवितस्य
सहानुजस्यैव भवेन्नरेन्द्र॥ ८॥

तू न तो राजा का पुत्र है। तेरा आचरण अनार्यों का सा है। तू लोभी और बन्धुओं के प्रति पापबुद्धि रखता है। हे दुर्विनीत! तू परम्परा से आये हुए इस दूसरों के राज्य का अपहरण कैसे कर सकता है? तू मोह का त्याग कर वाहनों तथा दूसरी सामग्रियों सहित आधा राज्य तो उन्हें दे। शेष बचा हुआ राज्य अपने भाइयों सहित तेरे जीवन के लिये हो जायेगा।

वासुदेव उवाच

एवमुक्ते तु भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च।
गान्धार्या धृतराष्ट्रेण न वै मन्दोऽन्वबुद्ध्यत॥ ९॥
अवधूयोत्थितो मन्दः क्रोधसंरक्तलोचनः।
अन्वद्रवन्त तं पश्चाद् राजानस्त्यक्तजीविताः॥ १०॥
यदत्र युक्तं प्राप्तं च तद् विधत्स्व विशाम्पते।
उक्तं भीष्मेण यद् वाक्यं द्रोणेन विदुरेण च॥ ११॥
गान्धार्या धृतराष्ट्रेण समक्षं मम भारत।
एतत् ते कथितं राजन् यद् वृत्तं कुरुसंसदि॥ १२॥

भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर, गान्धारी और धृतराष्ट्र के ऐसा कहने पर भी उस मन्दबुद्धि दुर्योधन को समझ में नहीं आया। क्रोध से लाल आँखें किये हुए वह मन्दबुद्धि सबकी अवहेलना कर तब उठकर वहाँ से चला गया और दूसरे राजालोग भी जीवन का मोह छोड़कर उसके पीछे वहाँ से चल दिये। हे प्रजापालक! इस प्रकार जो बातें भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी, और धृतराष्ट्र ने मेरे सामने दुर्योधन से कहीं, वह सारा कौरवों की सभा का वृत्तान्त मैंने सुना दिया। अब हे भरतवंशी राजन्! आप इस विषय में जो उचित समझें वह करें।

न ते राज्यं प्रयच्छन्ति विना युद्धेन पाण्डव।
विनाशहेतवः सर्वे प्रत्युपस्थितमृत्यवः॥ १३॥

हे पाण्डुपुत्र! बिना युद्ध के वे राज्य को नहीं देंगे। उनके विनाश के कारण जुट गये हैं और उन सबका मृत्युकाल भी उपस्थित हो गया है।

चौवनवाँ अध्याय : पाण्डवपक्ष के सेनापति का चुनाव, सेना का कुरुक्षेत्र में पड़ाव।

जनार्दनवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
भ्रातॄनुवाच धर्मात्मा समक्षं केशवस्य ह॥ १॥
श्रुतं भवद्भिर्यद् वृत्तं सभायां कुरुसंसदि।
केशवस्यापि यद् वाक्यं तत् सर्वमवधारितम्॥ २॥
तस्मात् सेनाविभागं मे कुरुध्वं नरसत्तमाः।
अक्षौहिण्यश्च सप्तैताः समेता विजयाय वै॥ ३॥

श्रीकृष्ण जी के वचन सुनकर धर्म में ही जिन्होंने अपनी आत्मा को समर्पित किया हुआ था, वे धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्ण जी के सामने ही अपने भाईयों से बोले कि कौरव सभा में जो कुछ हुआ

वह आपने सुन लिया और श्रीकृष्ण जी ने भी जो कुछ अपनी बात कही वह भी सब आपने समझ ली, इसलिये हे नरश्रेष्ठ वीरों! अब मेरी सेना का विभाग करो। ये सात अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हुई हैं। ये निश्चय ही हमारी विजय करायेंगी।

तासां ये पतयः सप्त विख्यातास्तान् निबोधत।
द्रुपदश्च विराटश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ॥ ४॥
सात्यकिश्चेकितानश्च भीमसेनश्च वीर्यवान्।
एते सेनाप्रणेतारो वीराः सर्वे तनुत्यजः॥ ५॥
सप्तानामपि यो नेता सेनानां प्रविभागवित्।
तं तावत् सहदेवात्र प्रब्रूहि कुरुनन्दन॥ ६॥
स्वमतं पुरुषव्याघ्र को नः सेनापतिः क्षमः।

इन सेनाओं के जो सात प्रसिद्ध सेनापति हैं, उनके नाम सुनिये। द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और प्रतापी भीमसेन, सेनाओं का नेतृत्व करनेवाने ये सारे वीर अपने शरीरों का त्याग करने वाले हैं। इन सातों नेताओं का भी जो नेता हो, जो सेनाओं के विभागों को जानता हो, उसके विषय में पहले कुरुनन्दन सहदेव अपना मत बताये। हे सहदेव! हमारा प्रधान सेनापति कौन बनने योग्य है?

सहदेव उवाच

संयुक्त एकदुःखश्च वीर्यवांश्च महीपतिः॥ ७॥
यं समाश्रित्य धर्मज्ञं स्वमंशमनुयुञ्ज्महे।
मत्स्यो विराटो बलवान् कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः॥ ८॥
तथोक्ते सहदेवेन वाक्ये वाक्यविशारदः।
नकुलोऽनन्तरं तस्मादिदं वचनमाददे॥ ९॥

तब सहदेव ने कहा कि जो हमारे संबंधी हैं, हमारे दुःख में हमारे साथ हैं, पराक्रमी राजा हैं, जिन धर्मात्मा का आश्रय लेकर हम अपने राज्यभाग को प्राप्त कर सकते हैं, जो अस्त्रविद्यानिष्णात और युद्ध में दुर्मद हैं, वे बलवान् मत्स्यनरेश विराट हमारी सेना के सेनापति हो सकते हैं। सहदेव के ऐसा कहने पर वाक्यविशारद नकुल ने उसके पश्चात् यह बात कही कि—

वयसा शास्त्रतो धैर्यात् कुलेनाभिजनेन च।
ह्रीमान् बलान्वितः श्रीमान् सर्वशास्त्रविशारदः॥ १०॥
वेद चास्त्रं भरद्वाजाद् दुर्धर्षः सत्यसङ्गरः।
श्लाघ्यः पार्थिववंशस्य प्रमुखो वाहिनीपतिः॥ ११॥
पुत्रपौत्रैः परिवृतः शतशाख इव द्रुमः।
पितेवास्मान् समाधत्ते यः सदा पार्थिवर्षभः॥ १२॥
श्वशुरो द्रुपदोऽस्माकं सेनाग्रं स प्रकर्षतु।
स हि दिव्यास्त्रविद् राजा सखा चाङ्गिरसो नृपः॥ १३॥

जो आयु, शास्त्रज्ञान, धैर्य, कुल और पारिवारिक बन्धु, सबमें बड़े हैं, जो लज्जावान, बलवान्, श्रीमान् और सारे शास्त्रों में विशारद हैं। जिन दुर्धर्ष और सत्यवादी ने अस्त्रविद्या को भरद्वाज मुनि से सीखा है, जो राजवंशों में आदरणीय हैं और सेनापतियों में प्रमुख हैं, जो सैकडों शाखाओंवाले वृक्ष के समान पुत्रों और पौत्रों से घिरे हुए हैं, राजाओं में श्रेष्ठ जो सदा हमारे साथ पिता के समान व्यवहार करते हैं, जो हमारे श्वसुर द्रुपद हैं वे हमारी सेना के प्रमुख भाग का संचालन करें। दिव्यास्त्रों के जाननेवाले ये राजा द्रोणाचार्य के सखा हैं।

माद्रीसुताभ्यामुक्ते तु स्वमते कुरुनन्दनः।
वासविर्वासवसमः सव्यसाच्यब्रवीद् वचः॥ १४॥
गर्जन्निव महामेघो रथघोषेण वीर्यवान्।
सिंहसंहननो वीरः सिंहतुल्यपराक्रमः॥ १५॥
सिंहोरस्कः सिंहभुजः सिंहवक्षा महाबलः।
सिंहप्रगर्जनो वीरः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः॥ १६॥
धृष्टद्युम्नमहं मन्ये, मतः सेनापतिमर्म।
क्षिप्र हस्तश्चित्रयोधी, मातङ्ग इव यूथपः॥ १७॥

माद्री के दोनों पुत्रों द्वारा अपना मत प्रकट किये जाने पर कुरुनन्दन, इन्द्रपुत्र, इन्द्र के समान पराक्रमी, सव्यसाची अर्जुन ने कहा कि जो अपने रथ के घोष से गर्जते हुए महान् मेघ के समान प्रतीत होता है, जो वीर पराक्रमी, सिंह के समान शरीरवाला, सिंह के समान पराक्रमी है, जिसके हृदय, भुजाएँ, वक्षस्थल, गर्जना और कन्धे सब सिंह के समान हैं, जो वीर महान् बलवाला और महान् कान्तिवाला है, उस धृष्टद्युम्न को मैं इस योग्य समझता हूँ कि यह हमारा सेनापति हो सकता है। यह जल्दी हाथ चलानेवाला, विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाला और यूथपति गजराज के समान है।

अर्जुनेनैवमुक्ते तु भीमो वाक्यं समाददे।
यस्य संग्राममध्ये तु दिव्यमस्त्रं प्रकुर्वतः॥ १८॥
रूपं द्रक्ष्यन्ति पुरुषा रामस्येव महात्मनः।
न तं युद्धे प्रपश्यामि यो भिन्द्यात् तु शिखण्डिनम्॥ १९॥
शस्त्रेण समरे राजन् संनद्धं स्यन्दने स्थितम्।

द्वैरथे समरे नान्यो स मे सेनापतिर्मतः॥ २०॥

युधिष्ठिर उवाच

सर्वस्य जगतस्तात सारासारं बलाबलम्।
सर्वं जानाति धर्मात्मा मतमेषां च केशवः॥ २१॥

अर्जुन के यह कहने पर भीमसेन कहने लगे कि जिसके युद्धक्षेत्र में दिव्यास्त्रों का प्रयोग करते हुए लोग उसमें परशुराम का रूप देखते हैं, हे राजन्! युद्ध में शस्त्रों से सुसज्जित और रथ में बैठे हुए उस शिखण्डी को जो मार सके, मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं देखता। द्वैरथ युद्ध में जिसके समान कोई और नहीं है इसलिये मेरे मत से वह शिखण्डी ही सेनापति बनना चाहिये। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे तात! धर्मात्मा श्रीकृष्ण सारे लोगों के सार और असार, शक्ति तथा अशक्ति को जानते हैं। ये यह भी जानते हैं कि सारे राजाओं का क्या मत है?

यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु सेनापतिर्मम।
कृतास्त्रोऽप्यकृतास्त्रो वा वृद्धो वा यदि वा युवा॥ २२॥
एष नो विजये मूलमेष तात विपर्यये।
अत्र प्राणाश्च राज्यं च भावाभावौ सुखासुखे॥ २३॥
एष धाता विधाता च सिद्धिरत्र प्रतिष्ठिता।
यमाह कृष्णो दाशार्हः सोऽस्तु नो वाहिनीपतिः॥ २४॥

इसलिये दशार्हवंशी श्रीकृष्ण जिसके विषय में कहेंगे, वही मेरा सेनापति होगा। चाहे वह अस्त्रविद्या निष्णात हो या नहीं हो, बूढ़ा हो या जवान हो। हे तात! ये ही हमारी विजय और पराजय के मूल आधार हैं। इन्हीं के ऊपर हमारे प्राण, राज्य, भाव और अभाव, सुख और दुःख निर्भर हैं। ये ही हमारे कार्यों के कर्ताधर्ता हैं। इन्हीं में हमारे कार्यों की सिद्धि विद्यमान है। इसलिये दशार्हवंशी श्रीकृष्ण जिसके विषय में कहेंगे, वही हमारा सेना पति होगा।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः।
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षो धनंजयमवेक्ष्य ह॥ २५॥
ममाप्येते महाराज भवद्भिर्य उदाहृताः।
नेतारस्तव सेनाया मता विक्रान्तयोधिनः॥ २६॥
सर्व एव समर्था हि तव शत्रुं प्रबाधितुम्।
सारवद् बलमस्माकं दुष्प्रधर्षं दुरासदम्॥ २७॥
धार्तराष्ट्रबलं संख्ये हनिष्यति न संशयः।
धृष्टद्युम्नमहं मन्ये सेनापतिमरिंदम॥ २८॥

धीमान् धर्मराज के ये वचन सुनकर कमलनयन श्रीकृष्ण अर्जुन की तरफ देखकर बोले कि हे महाराज! आपने जिनजिन लोगों के नाम लिये, मेरे विचार से भी ये सारे पराक्रमी योद्धा हैं और आपकी सेना के योद्धा हो सकते हैं सारे ही शत्रु का सामना करने में समर्थ हैं। इसमें संशय नहीं है कि हमारी सेना शक्तिशाली, दुर्धर्ष और दुर्गम है और यह युद्ध में दुर्योधन की सेना को मार देगी। हे शत्रु का दमन करनेवाले! मैं इस सेना का सेनापति होने के योग्य धृष्टद्युम्न को मानता हूँ।

एवमुक्ते तु कृष्णेन सम्प्राहृष्यन्नरोत्तमाः।
तेषां प्रहृष्टमनसां नादः समभवन्महान्॥ २९॥
योग इत्यथ सैन्यानां त्वरतां सम्प्रधावताम्।
हयवारणशब्दाश्च नेमिघोषाश्च सर्वतः॥ ३०॥
शङ्खदुन्दुभिघोषाश्च तुमुलाः सर्वतोऽभवन्।
तदुग्रं सागरनिभं क्षुब्धं बलसमागमम्॥ ३१॥
रथपत्तिगजोदग्रं महोर्मिभिरिवाकुलम्।

श्रीकृष्ण जी के ऐसा कहते ही नरश्रेष्ठ पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। तब उन प्रसन्न चित्तवालों का तथा युद्ध की तैयारी के लिये शीघ्रतापूर्वक दौड़ते हुए सैनिकों का महान् हर्षनाद होने लगा। सब तरफ घोड़े, हाथी और रथों का कोलाहल होने लगा। शंख और नगाड़ों की भयानक ध्वनि गूँजने लगी। रथ, पैदल और हाथियों से भरी हुई वह उग्रसेना ऊँची ऊँची लहरों से भरे हुए महासागर के समान चंचल हो उठी।

धावतामाह्वयानानां तनुत्राणि च बध्नताम्॥ ३२॥
प्रयास्यतां पाण्डवानां ससैन्यानां समन्ततः।
गङ्गेव पूर्णा दुर्धर्षा समदृशत वाहिनी॥ ३३॥
अग्रानीके भीमसेनो माद्रीपुत्रौ च दंशितौ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ ३४॥
प्रभद्रकाश्च पञ्चाला भीमसेनमुखा ययुः।
ततः शब्दः समभवत् समुद्रस्येव पर्वणि॥ ३५॥
हृष्टानां सम्प्रयातानां घोषो दिवमिवास्पृशत्।

दौड़ते हुए, एक दूसरे को बुलाते हुए, कवचों को बाँधते हुए सैनिक रणयात्रा के लिये प्रस्थान करने को तैयार हो रहे थे। पाण्डवों की वह दुर्धर्ष सेना जल से परिपूर्ण गंगा के समान दिखाई दे रही थी। सेना के आगे भीम, कवचधारी माद्री के दोनों पुत्र, अभिमन्यु, द्रौपदी के पुत्र, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, प्रभद्रकगण

और पांचालदेशीय क्षत्रिँय भीम को आगे करके चले। जैसे समुद्र में पूर्णिमा के दिन उसके बढ़ते हुए कोलाहल होता है, वैसे ही प्रसन्न हुए और प्रस्थान करते हुए सैनिकों का जयघोष मानो द्युलोक को उस समय स्पर्श कर रहा था।

प्रहृष्टा दंशिता योधाः परानीकविदारणाः॥ ३६॥
तेषां मध्ये ययौ राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
शकटापणवेशाश्च यानयुग्यं च सर्वशः॥ ३७॥
कोशं यन्त्रायुधं चैव ये च वैद्याश्चिकित्सकाः।
उपप्लव्ये तु पाञ्चाली द्रौपदी सत्यवादिनी॥ ३८॥
सह • स्त्रीभिर्निववृते दासीदासमावृता।
कृत्वा मूलप्रतीकारं गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः॥ ३९॥
स्कन्धावारेण महता प्रययुः पाण्डुनन्दनाः।

शत्रुसेना को नष्ट करनेवाले योद्धालोग हर्ष से भरे हुए और कवच पहने हुए थे। उनके बीच में कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर चल रहे थे, छकड़े, व्यापारी, सवारियाँ, डेरे, तम्बू आदि उपयोगी सामान, खजाना, यन्त्रों से चलायेजानेवाले हथियार और चिकित्साकुशल वैद्य, ये सब साथ साथ जा रहे थे। सत्यवादिनी द्रौपदी, स्त्रियों और दास दासियों से घिरी हुई, कुछ दूर तक साथ चलकर फिर वापिस उपप्लव्य नगर में लौट आयी। पाण्डवलोग दुर्ग की रक्षा का उपाय स्थावर और जंगम सैनिकसमूहों के द्वारा कर, पड़ाव डालने की सारी आवश्यक सामग्री के साथ वहाँ से प्रास्थित हो गये।

राजानमन्वयुः सर्वे, पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः॥ ४०॥
श्रेणिमान् वसुदानश्च, शिखण्डी चापराजितः।
हृष्टास्तुष्टाः कवचिनः सशस्त्राः समलंकृताः॥ ४१॥
जघनार्धे विराटश्च याज्ञसेनिश्च सौमकिः।
सुधर्मा कुन्तिभोजश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः॥ ४२॥
रथायुतानि चत्वारि हयाः पञ्चगुणास्तथा।
पत्तिसैन्यं दशगुणं गजानामयुतानि षट्॥ ४३॥

काशिराज का पुत्र अभिभू, श्रेणिमान्, वसुदान और अपराजित शिखण्डी ये सब प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर, कवच और शस्त्रोंसहित सुसज्जित होकर राजा युधिष्ठिर के साथ जा रहे थे। सेना के पिछले आधे भाग में विराट, सोमकवंशी द्रुपदपुत्र, सुधर्मा, कुन्तीभोज और धृष्टद्युम्न के पुत्र, चालीस हजार रथ, दो लाख घोड़ों, चार लाख पैदल सैनिकों तथा साठ हजार हाथियों के साथ चल रहे थे।

अनाधृष्टिश्चेकितानो धृष्टकेतुश्च सात्यकिः।
परिवार्य ययुः सर्वे वासुदेवधनंजयौ॥ ४४॥
आसाद्य तु कुरुक्षेत्रं व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
पाण्डवाः समदृश्यन्त नर्दन्तो वृषभा इव॥ ४५॥
तेऽवगाह्य कुरुक्षेत्रं शंखान् दध्मुररिंदमाः।
तथैव दध्मतुः शङ्खं वासुदेवधनंजयौ॥ ४६॥
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः।
निशम्य सर्वसैन्यानि समहृष्यन्त सर्वशः॥ ४७॥

अनाधृष्टि, चेकितान, धृष्टकेतु, सात्यकि ये सारे श्रीकृष्ण और अर्जुन को घेरकर चल रहे थे। कुरुक्षेत्र में पहुँच कर व्यूहबद्ध सेना के साथ प्रहार करने में कुशल पाण्डवलोग गर्जते हुए साँडों के समान प्रतीत हो रहे थे। उन शत्रुओं को दमन करनेवालों ने कुरुक्षेत्र में पहुँचकर अपने अपने शंखों को बजाया। उसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भी शंख बजाये। बिजली के कड़कने के समान पांचजन्य के घोष को सुनकर सारे सैनिक हर्षित हो उठे।

ततो देशे समे स्निग्धे प्रभूतयवसेन्धने।
निवेशयामास तदा सेनां राजा युधिष्ठिरः॥ ४८॥
पर्यक्रामत् समन्ताच्च पार्थेन सह केशवः।
शिबिरं मापयामास धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ ४९॥
सात्यकिश्च रथोदारो युयुधानः प्रतापवान्।
आसाद्य सरितं पुण्यां कुरुक्षेत्रे हिरण्वतीम्॥ ५०॥
सूपतीर्थां शुचिजलां शर्करापङ्कवर्जिताम्।
विधिर्यः शिबिरस्यासीत् पाण्डवानां महात्मनाम्॥ ५१॥
तद्विधानि नरेन्द्राणां कारयामास केशवः।

उसके पश्चात् युधिष्ठिर ने एक चिकने और समतल स्थान पर जहाँ घास और ईंधन की अधिकता थी, अपनी सेना का पड़ाव डाला। फिर अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण ने सब तरफ के स्थान को घूमफिर कर देखा। द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने तथा उदाररथी सत्यकपुत्र प्रतापी युयुधान ने शिविरों के लिये भूमि को नपवाया। कुरुक्षेत्र में जिसके जल में कंकड़ और कीचड़ नहीं था, जिसमें स्वच्छ जल था तथा जिसके किनारे सुन्दर थे, उस हिरण्वती नदी के समीप पहुँच कर, श्रीकृष्ण जी ने जिस प्रकार के पाण्डवों के शिविर बनवाये, उसी प्रकार दूसरे राजाओं के भी शिविर बनवाये।

प्रभूततरकाष्ठानि दुराधर्षतराणि च॥ ५२॥
भक्ष्यभोज्यान्नपानानि शतशोऽथ सहस्रशः।

तत्रासञ्शिल्पिनः प्राज्ञाः शतशो दत्तवेतनाः॥ ५३॥
सर्वोपकरणैर्युक्ता वैद्याः शास्त्रविशारदाः।
ज्याधनुर्वर्मशस्त्राणां तथैव मधुसर्पिषोः॥ ५४॥
ससर्जरसपांसूनां राशयः पर्वतोपमाः।
बहूदकं सुयवसं तुषाङ्गारसमन्वितम्॥ ५५॥
शिबिरे शिबिरे राजा संचकार युधिष्ठिरः।

वहाँ विशालमात्रा में लकड़ियों, भक्ष्य, भोज्य, तथा पानसामग्री का संग्रह किया गया था। वहाँ सैंकड़ों विद्वान् कारीगर और सारे उपकरणों से युक्त, शास्त्रविशारद वैद्य वेतन देकर रखे गये थे। वहाँ प्रत्यंचा, धनुष, कवच, शस्त्रास्त्रों, मधु, घी और राल का चूरा इनके ढेर पहाड़ों के समान लगे हुए थे। राजा युधिष्ठिर ने प्रत्येक शिविर में पर्याप्त जल, सुन्दर घास, भूसी और अग्नि का प्रबन्ध करा रखा था।

महायन्त्राणि नाराचास्तोमराणि परश्वधाः॥ ५६॥
धनूंषि कवचादीनि ऋष्टयस्तूणसंयुताः।
गजाः कण्टकसंनाहा लोहवर्मोत्तरच्छदाः।
दृश्यन्ते तत्र गिर्याभाः सहस्रशतयोधिनः॥ ५७॥

बड़े बड़े यन्त्र, नाराच, तोमर, फरसे, धनुष, कवच, ऋष्टि और तरकस, वहाँ एकत्र किये गये थे। सैकड़ों और हजारों योद्धाओं से युद्ध करने में समर्थ, पर्वत के समान ऊँचे, लोहे के कवच तथा झूल पहने, काँटेदार साजसामान से युक्त हाथी वहाँ विद्यमान थे।

पचपनवाँ अध्याय : दुर्योधन के द्वारा भी अपनी सेना की तैयारी।

प्रतियाते तु दाशार्हे राजा दुर्योधनस्तदा।
कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चाब्रवीदिदम्॥ १॥
अकृतेनैव कार्येण गतः पार्थानधोक्षजः।
स एनान्मन्युनाऽऽविष्टो ध्रुवं धक्ष्यत्यसंशयम्॥ २॥
इष्टो हि वासुदेवस्य पाण्डवैर्मम विग्रहः।
भीमसेनार्जुनौ चैव दाशार्हस्य मते स्थितौ॥ ३॥
अजातशत्रुरत्यर्थं भीमसेनवशानुगः।
निकृतश्च मया पूर्वं सह सर्वैः सहोदरैः॥ ४॥

श्रीकृष्ण जी के हस्तिनापुर से लौट जाने पर राजा दुर्योधन ने कर्ण, दुश्शासन और शकुनि से यह कहा कि श्रीकृष्ण अपने उद्देश्य में असफल होकर यहाँ से गये हैं। अब वे निश्चितरूप से क्रोध में भरकर पाण्डवों को युद्ध के लिये उत्तेजित करेंगे। श्रीकृष्ण स्वयं यही चाहते हैं कि पाण्डवों का मेरे साथ युद्ध हो। भीम और अर्जुन दोनों ही श्रीकृष्ण के मत के अनुसार चलनेवाले हैं। युधिष्ठिर भी अधिकतर भीम के वश में रहते हैं। मैंने पहले उनका छोटे भाइयों के साथ अपमान भी किया है।

विराटद्रुपदौ चैव कृतवैरौ मया सह।
तौ च सेनाप्रणेतारौ वासुदेववशानुगौ॥ ५॥
भविता विग्रहः सोऽयं तुमुलो लोमहर्षणः।
तस्मात् सांग्रामिकं सर्वं कारयध्वमतन्द्रिताः॥ ६॥
प्रयाणं घुष्यतामद्य श्वोभूत इति मा चिरम्।

विराट और द्रुपद पहले ही मेरे साथ बैर रखते हैं। वे दोनों श्रीकृष्ण के आधीन और पाण्डवों की सेना के संचालक हैं। इसलिये हमारा अब पाण्डवों के साथ भयानक और रोंगटे खड़े कर देने वाला संग्राम होगा। तुम लोग भी अतः तन्द्रारहित होकर युद्ध की तैयारी कराओ। कल युद्ध के लिये प्रस्थान होगा, यह घोषणा करा दो, इसमें विलम्ब मत करो।

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तच्छ्रुत्वा राजशासनम्॥ ७॥
आसनेभ्यो महार्हेभ्य उदतिष्ठन्नमर्षिताः।
बाहून् परिघसंकाशान् संस्पृशन्तः शनैः शनैः॥ ८॥
काञ्चनाङ्गददीप्तांश्च चन्दनागुरुभूषितान्।
उष्णीषाणि नियच्छन्तः पुण्डरीकनिभैः करैः॥ ९॥
ते रथान् रथिनः श्रेष्ठा हयांश्च हयकोविदाः।
सज्जयन्ति स्म नागांश्च नागशिक्षास्वनुष्ठिताः॥ १०॥

राजा के आदेश को सुनकर वहाँ आये हुए सारे राजालोग, सोने के बाजूबन्दों से जगमगाती हुई और चन्दन तथा अगर के लेप से भूषित अपनी परिघ के समान भुजाओं को धीरे धीरे स्पर्श करते हुए, अपने कमल समान हाथों से पगड़ियों को बाँधते हुए, क्रोध में भरकर, अपने बहुमूल्य आसनों से उठकर खड़े हो गये। फिर रथी लोग अपने रथों को, कुशल घुड़सवार अपने श्रेष्ठ घोड़ों को, और हाथियों की शिक्षा में निपुणलोग अपने हाथियों को सजाने लगे।

व्युष्टायां वै रजन्यां हि राजा दुर्योधनस्ततः।
नरहस्तिरथाश्वानां सारं मध्यं च फल्गु च॥ ११॥
सर्वेष्वेतेष्वनीकेषु संदिदेश नराधिपः।

उस रात के बीत जाने पर राजा दुर्योधन ने अपनी सेना के पैदल, रथ हाथी और घोड़ों को उत्तम, मध्यम और निम्न इन तीन श्रेणियों में अलग अलग बाँट दिया।

सानुकर्षाः सतूणीराः सवरूथाः सतोमराः॥ १२॥
सोपासङ्गाः सशक्तीकाः सनिषङ्गाः सहर्ष्टयः।
सध्वजाः सपताकाश्च सशरासनतोमराः॥ १३॥
रज्जुभिश्च विचित्राभिः सपाशाः सपरिच्छदाः।
सकचग्रहविक्षेपाः सतैलगुडवालुकाः॥ १४॥
साशीविषघटाः सर्वे ससर्जरसपांसवः।
सघण्टफलकाः सर्वे सायोगुडजलोपलाः॥ १५॥
सशालभिन्दिपालाश्च समधूच्छिष्टमुद्गराः।
सकाण्डदण्डकाः सर्वे ससीरविषतोमराः॥ १६॥
सशूर्पपिटकाः सर्वे सदात्राङ्कुशतोमराः।
सकीलकवचाः सर्वे वासीवृक्षादनान्विताः॥ १७॥
व्याघ्रचर्मपरीवारा द्वीपिचर्मावृताश्च ते।
सहर्ष्टयः सशृङ्गाश्च सप्रासविविधायुधाः॥ १८॥
सकुठाराः सकुद्दालाः सतैलक्षौमसर्पिषः।

दुर्योधन की सेना के वे वीर अनुकर्ष, तरकस, रथ को ढकने के लिये चमड़ा, बड़े बड़े तरकस, तोमर, शक्ति, छोटे तरकस, लोहे की लाठी, ध्वजा, पताका, धनुष, तरह तरह की रस्सियाँ, पाश, बिस्तरे, बाल पकड़कर गिरानेवाले यन्त्र, तेल, गुड़, बालू, विषैले साँपों के घड़े, राल का चूरा, घुंघुरुओंवाली ढालें, लोहे के शस्त्र, गुड़ का पानी, पत्थर, साल, भिन्दीपाल, मोम चुपड़े हुए मुद्गर, काँटेदार लाठियाँ, हल, विष लगे बाण, सूप, टोकरियाँ, दराँत, अंकुश, तोमर, काँटेदार कवच, बसूले, आरे आदि बाघ और गेंडे के चमड़े से मढ़े हुए रथ, ऋष्टि, सींग, प्रास, भाँति भाँति के आयुध, कुठार, कुदाल, तेल में भीगे रेशमी वस्त्र और घी लिये हुए थे।

आमुक्तकवचैर्युक्तैः सपताकैः स्वलङ्कृतैः॥ १९॥
सादिभिश्चोपपन्नास्तु तथा चायुतशो हयाः।
असंग्राहाः सुसम्पन्ना हेमभाण्डपरिच्छदाः॥ २०॥
अनेकशतसाहस्राः सर्वे सादिवशे स्थिताः।

उस सेना में कवचधारी, युद्ध के लिये तैयार, सुसज्जित पताकाधारी घुड़सवारों से युक्त लाखों घोड़े विद्यमान थे, वे घुड़सवारों के वश में रहने वाले, सुनहरे साजों से सुसज्जित, सुशिक्षित और दोषों से रहित थे।

तत्र दुर्योधनो राजा शूरान् बुद्धिमतो नरान्॥ २१॥
प्रसमीक्ष्य महाबाहुश्चक्रे सेनापतींस्तदा।
पृथगक्षौहिणीनां च प्रणेतॄन् नरसत्तमान्॥ २२॥
विधिवत् पूर्वमानीय पार्थिवानभ्यषेचयत्।
कृपं द्रोणं च शल्यं च सैन्धवं च जयद्रथम्॥ २३॥
सुदक्षिणं च काम्बोजं कृतवर्माणमेव च।
द्रोणपुत्रं च कर्णं च भूरिश्रवसमेव च।
शकुनिं सौबलं चैव बाह्लीकं च महाबलम्॥ २४॥

फिर महाबाहु राजा दुर्योधन ने सोचविचारकर शूरवीर और बुद्धिमान् लोगों को सेनापति बनाया। उसने कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य, सिन्धुदेश के राजा जयद्रथ, काम्बोजनरेश सुदक्षिण, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, सुबलपुत्र शकुनि और महाबली बाह्लीक, इन ग्यारह नरश्रेष्ठों को विधिपूर्वक अपने सामने बुलाकर उनका अभिषेक किया और फिर उन्हें एक एक अक्षौहिणी सेना का नेता बनाया।

छप्पनवाँ अध्याय : दुर्योधन का भीष्म को प्रधान सेनापति बनाना। सेना का कुरुक्षेत्र में पड़ाव।

ततः शान्तनवं भीष्मं प्राञ्जलिधृतराष्ट्रजः।
सह सर्वैर्महीपालैरिदं वचनमब्रवीत्॥ १॥
ऋते सेनाप्रणेतारं पृतना सुमहत्यपि।
दीर्यते युद्धमासाद्य पिपीलिकपुटं यथा॥ २॥
भवानुशनसा तुल्यो हितैषी च सदा मम।
असंहार्यः स्थितो धर्मे स नः सेनापतिर्भव॥ ३॥

तब दुर्योधन ने सब राजाओं के साथ शान्तनुपुत्र भीष्म के पास जाकर और हाथ जोड़कर उनसे कहा कि बिना योग्य सेनापति के युद्धक्षेत्र में जाकर अत्यन्त महान् सेना भी चींटियों के झुंड की तरह बिखर जाती है। आप नीति में शुक्राचार्य के समान तथा सदा धर्म में विद्यमान रहनेवाले और मेरे हितैषी

हैं। आपको कोई भी मार नहीं सकता, इसलिये आप मेरे सेनापति हो जाइये।

भीष्म उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत।
यथैव हि भवन्तो मे तथैव मम पाण्डवाः॥ ४॥
अपि चैव मया श्रेयो वाच्यं तेषां नराधिप।
संयोद्धव्यं तवार्थाय यथा मे समयः कृतः॥ ५॥
न तु पश्यामि योद्धारमात्मनः सदृशं भुवि।
ऋते तस्मान्नरव्याघ्रात् कुन्तीपुत्राद् धनंजयात्॥ ६॥
स हि वेद महाबुद्धिर्दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः।
न तु मां विवृतो युद्धे जातु युध्येत पाण्डवः॥ ७॥

तब भीष्म ने उत्तर दिया कि हे भारत महाबाहु! ऐसा ही होगा जैसा तुम कहते हो। पर मेरे लिये जैसे तुम हो, वैसे ही पाण्डव हैं। हे नराधिप! मैं उन्हें उनके कल्याण की ही बात बताऊँगा, पर युद्ध तुम्हारे लिये करूँगा। ऐसा ही मैंने निश्चय किया है। मैं संसार में सिवाय नरश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र अर्जुन के और किसी को अपने समान योद्धा नहीं समझता। वह बुद्धिमान् अनेकों दिव्यास्त्रों को जानते हैं, पर वे पाण्डुपुत्र कभी प्रकटरूप में मेरे सामने आकर नहीं लड़ेंगे।

अहं चैव क्षणेनैव निर्मनुष्यमिदं जगत्।
कुर्यां शस्त्रबलेनैव ससुरासुरराक्षसम्॥ ८॥
न त्वेवोत्सादनीया मे पाण्डोः पुत्रा जनाधिप।
तस्माद् योधान् हनिष्यामि प्रयोगेणायुतं सदा॥ ९॥
एवमेषां करिष्यामि निधनं कुरुनन्दन।
न चेत् ते मां हनिष्यन्ति पूर्वमेव समागमे॥ १०॥
सेनापतिस्त्वहं राजन् समये नापरेण ते।
भविष्यामि यथाकामं तन्मे श्रोतुमिहार्हसि॥ ११॥

मैं भी अपने हथियारों की शक्ति से इस संसार को सुर असुर और राक्षसों सहित बिना मनुष्योंवाला थोड़ी देर में कर सकता हूँ। पर हे जनाधिप! मैं पाण्डुपुत्रों को किसी प्रकार भी नहीं मारूँगा। इसलिये यदि पाण्डव मुझे युद्ध में पहले नहीं मार देंगे तो मैं प्रतिदिन अस्त्रों के प्रयोग से उनके दस हजार योद्धाओं को मारूँगा। इस प्रकार उनकी सेना का संहार करूँगा। हे राजन्! मैं तुम्हारा सेनापति अपनी इच्छानुसार केवल एक ही शर्त पर होऊँगा, उसके बदले दूसरी शर्त नहीं होगी, उसे तुम यहाँ मुझसे सुनलो—

कर्णो वा युध्यतां पूर्वमहं वा पृथिवीपते।
स्पर्धते हि सदात्यर्थं सूतपुत्रो मया रणे॥ १२॥

कर्ण उवाच

नाहं जीवति गाङ्गेये राजन् योत्स्ये कथंचन।
हते भीष्मे तु योत्स्यामि सह गाण्डीवधन्वना॥ १३॥

हे राजन्! या तो पहले कर्ण युद्ध कर ले, या पहले मैं युद्ध करूँ। क्योंकि यह सारथि का पुत्र युद्ध में मुझसे बहुत स्पर्द्धा करता है। तब कर्ण ने कहा कि हे राजन्! मैं गंगापुत्र के जीवित रहते हुए किसी प्रकार भी युद्ध नहीं करूँगा। इनके मारे जाने पर मैं गाण्डीवधारी अर्जुन से युद्ध करूँगा।

ततः सेनापतिं कृत्वा भीष्मं परबलार्दनम्।
वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठान् गोभिर्निष्कैश्च भूरिशः॥ १४॥
वर्धमानो जयाशीर्भिर्निर्ययौ सैनिकैर्वृतः।
गंगापुत्रं पुरस्कृत्य भ्रातृभिः सहितस्तदा॥ १५॥
स्कन्धावारेण महता कुरुक्षेत्रं जगाम ह।
परिक्रम्य कुरुक्षेत्रं कर्णेन सह कौरवः॥ १६॥
शिबिरं मापयामास समे देशे जनाधिपः।
मधुरानूषरे देशे प्रभूतयवसेन्धने।
यथेव हास्तिनपुरं तद्वच्छिबिरमाबभौ॥ १७॥

तब दुर्योधन शत्रुसेना को पीड़ित करनेवाले भीष्म को सेनापति बनाकर, श्रेष्ठ ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर, गायों और स्वर्णमुद्राओं के प्रचुर दानकर, जय जयकारों और आशीर्वादों से अत्यन्त उत्साहित होता हुआ, सैनिकों से घिरा हुआ, भीष्मपितामह को आगेकर अपने भाइयों के साथ विशाल साजसामान को लेकर कुरुक्षेत्र में पहुँच गया। उस राजा ने कुरुक्षेत्र में कर्ण के साथ घूमफिरकर एक समतल प्रदेश में शिविरों के लिये भूमि की नाप करवायी। वह स्थान ऊसररहित और मनोहर था। वहाँ घास और ईंधन की बहुतायत थी। वहाँ लगाया हुआ शिविर एक दूसरे हस्तिनापुर नगर की तरह से सुशोभित हो रहा था।

सत्तावनवाँ अध्याय : दुर्योधन का उलूक द्वारा पाण्डवों को सन्देश।

धृतराष्ट्र उवाच

एहि संजय सर्वं मे आचक्ष्वानवशेषतः।
सेनानिवेशे यद् वृत्तं कुरुपाण्डवसेनयोः॥ १॥
दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषं चाप्यनर्थकम्।
यदहं बुद्ध्यमानोऽपि युद्धदोषान् क्षयोदयान्॥ २॥
तथापि निकृतिप्रज्ञं पुत्रं दुर्द्यूतदेविनम्।
न शक्नोमि नियन्तुं वा कर्तुं वा हितमात्मनः॥ ३॥
भवत्येव हि मे सूत बुद्धिर्दोषानुदर्शिनी।
दुर्योधनं समासाद्य पुनः सा परिवर्तते॥ ४॥
एवं गते वै यद् भावि तद् भविष्यति संजय।
क्षत्रधर्मः किल रणे तनुत्यागो हि पूजितः॥ ५॥

इसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने संजय से कहा कि हे संजय! तुम यहाँ आओ और मुझे वह सब सम्पूर्ण रूप से बताओ कि कुरुक्षेत्र में कौरवों तथा पाण्डवों की सेनाओं के द्वारा पड़ाव डालने पर फिर वहाँ क्या हुआ? मैं तो परमात्मा की इच्छा को ही बलवती मानता हूँ, पुरुषार्थ व्यर्थ है, जो मैं युद्ध के दोषों को जानता हुआ भी कि ये दोष विनाश को प्रस्तुत करते हैं, फिर भी धोखाधड़ी में चतुर और कपटद्यूत को खेलनेवाले अपने पुत्र को न तो रोक पाता हूँ और न अपने हित का साधन कर रहा हूँ। हे सूत! मेरी बुद्धि इन दोषों को समझती है, पर दुर्योधन से मिलने पर वह बदल जाती है। ऐसी अवस्था में हे संजय! जो कुछ होना होगा वह अवश्य ही होगा। क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध में शरीर का त्याग करना निश्चितरूप से आदरणीय है।

संजय उवाच

हयानां च गजानां च राज्ञां चामिततेजसाम्।
वैशसं समरे वृत्तं यत् तन्मे शृणु सर्वशः॥ ६॥
हिरण्वत्यां निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु।
न्यविशन्त महाराज कौरवेया यथाविधि॥ ७॥
आरक्षस्य विधिं कृत्वा योधानां तत्र भारत।
कर्णं दुःशासनं चैव शकुनिं चापि सौबलम्॥ ८॥
आनाय्य नृपतिस्तत्र मन्त्रयामास भारत।
सम्भाषित्वा च कर्णेन भ्रात्रा दुःशासनेन च॥ ९॥
सौबलेन च राजेन्द्र मन्त्रयित्वा नरर्षभ।
आहूयोपह्वरे राजन्नुलूकमिदमब्रवीत्॥ १०॥

तब संजय ने कहा कि युद्ध के कारण, घोड़ों, हाथियों और अमित तेजस्वी राजाओं का जो विनाश प्राप्त हुआ है, उस सबका समाचार आप मुझसे सुनिये। हिरण्वती नदी के किनारे महात्मा पाण्डवों के अपना पड़ाव डालने पर कौरवों ने भी अपनी सेना को दूसरे स्थान पर यथाविधि ठहरा दिया। वहाँ अपने योद्धाओं की सुरक्षा का प्रबन्ध कर हे भारत! राजा दुर्योधन ने कर्ण, दुश्शासन और सुबलपुत्र शकुनि को बुलाकर उनके साथ मन्त्रणा की। उनके साथ मन्त्रणा कर हे नरश्रेष्ठ, राजेन्द्र! उसने एकान्त में उलूक को बुलाकर उससे यह कहा कि–

उलूक गच्छ कैतव्य पाण्डवान् सहसोमकान्।
गत्वा मम वचो ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः॥ ११॥
इदं तत् समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम्।
पाण्डवानां कुरूणां च युद्धं लोकभयंकरम्॥ १२॥
यदेतत् कत्थनावाक्यं संजयो महदब्रवीत्।
वासुदेवसहायस्य गर्जतः सानुजस्य ते॥ १३॥
मध्ये कुरूणां कौन्तेय तस्य कालोऽयमागतः।
यथा वः सम्प्रतिज्ञातं तत् सर्वं क्रियतामिति॥ १४॥

हे द्यूतकुशल उलूक! तुम सोमकों सहित पाण्डवों के पास जाओ और जाकर श्रीकृष्ण के सुनते हुए मेरी बात उन्हें कहो कि– अनेक वर्षों से जिसके बारे में सोचा जा रहा था, वह कौरव और पाण्डवों का भयानक युद्ध अब सामने आ गया है। हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! श्रीकृष्ण की सहायता पाकर छोटे भाइयों सहित तुमने जो महान् आत्मश्लाघा की बातें गर्जना करते हुए संजय से कही थीं, जिन्हें उसने कौरवों की सभा में बताया था, उन सबका समय आ गया है। तुमने जो प्रतिज्ञाएँ की थी, उन्हें अब पूरी कर लो।

भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सोमकैश्च सकेकयैः।
कथं वा धार्मिको भूत्वा त्वमधर्मे मनः कृथाः॥ १५॥
य इच्छसि जगत् सर्वं नश्यमानं नृशंसवत्।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दाता त्वमिति मे मतिः॥ १६॥
अन्यथा किल ते वाक्यमन्यथा कर्म दृश्यते।
दम्भनार्थाय लोकस्य वेदाश्चोपशमश्च ते॥ १७॥
त्यक्त्वाछद्म त्रिदं राजन् क्षत्रधर्मं समाश्रितः।
कुरु कार्याणि सर्वाणि धर्मिष्ठोऽसि नरर्षभ॥ १८॥

अथवा तुम तो बड़े धार्मिक बनते थे, अब अपने सारे भाइयों, सोमकों और केकयों के साथ अधर्म में मन क्यों लगा रहे हो? मेरा तो यह विचार था कि तुमने सारे प्राणियों को अभयदान दे दिया है। पर अब एक क्रूर मनुष्य के समान सारे संसार का विनाश कैसे देखना चाहते हो? तुम्हारी बातें कुछ और हैं और कर्म कुछ और दिखाई देते हैं। तुम्हारा वेद का अध्ययन और शान्त स्वभाव केवल लोगों को दिखाने के लिये पाखण्डमात्र है। हे नरश्रेष्ठ और भरतश्रेष्ठ राजन्! अब तुम इस छलकपट को छोड़कर यदि तुम धर्मिष्ठ हो तो क्षत्रियधर्म का आश्रय लेकर उसी के अनुसार सारे कार्य करो।

क्लिष्टाया वर्षपूगांश्च मातुर्मातृहिते स्थितः।
प्रमार्जाश्रु रणे जित्वा सम्मानं परमावह॥ १९॥
त्वत्कृते दुष्टभावस्य संत्यागो विदुरस्य च।
जातुषे च गृहे दाहं स्मर तं पुरुषो भव॥ २०॥
यच्च कृष्णमवोचस्त्वमायान्तं कुरुसंसदि।
अयमस्मि स्थितो राजन् शमाय समराय च॥ २१॥
तस्यायमागतः कालः समरस्य नराधिप।
एतदर्थं मया सर्वं कृतमेतद् युधिष्ठिर॥ २२॥

तुम माता के हित का काम करते हुए, रण में जीतकर अनेक वर्षों से दुःख भोग रही अपनी माता के आँसुओं को पूछो और परम सम्मान को प्राप्त करो। तुम्हारे लिये ही मैंने दुष्टात्मा विदुर का त्याग कर दिया है। तुम लाक्षागृह के अपने दाह को याद करो और मर्द बन जाओ। कौरवसभा में आते हुए कृष्ण के द्वारा तुमने जो कहलवाया था कि हे राजन्! मैं युद्ध और शान्ति दोनों के लिये तैयार हूँ। हे राजन्! उस युद्ध का यह समय आ गया है। हे युधिष्ठिर! इसी के लिये मैंने यह सब कुछ किया है।

किं नु युद्धात् परं लाभं क्षत्रियो बहु मन्यते।
किं च त्वं क्षत्रियकुले जातः सम्प्रथितो भुवि॥ २३॥
द्रोणादस्त्राणि संप्राप्य कृपाच्च भरतर्षभ।
तुल्ययोनौ समबले वासुदेवं समाश्रितः॥ २४॥
ब्रूयास्त्वं वासुदेवं च पाण्डवानां समीपतः।
यद् ब्रवीषि च वार्ष्णेय धार्तराष्ट्रानहं रणे॥ २५॥
घातयित्वा प्रदास्यामि पार्थेभ्यो राज्यमुत्तमम्।
आचचक्षे च मे सर्वं संजयस्तव भाषितम्॥ २६॥
मद्द्वितीयेन पार्थेन वैरं वः सव्यसाचिना।
स सत्यसंगरो भूत्वा पाण्डवार्थे पराक्रमी॥ २७॥
अकस्माच्चैव ते कृष्ण ख्यातं लोके महद् यशः।
अद्येदानीं विजानीमः सन्ति षण्ढाः सशृङ्गकाः॥ २८॥

क्षत्रिय युद्ध से बढ़कर लाभ और कहाँ देखता है? तुम भी क्षत्रियकुल में जन्मे हो और संसार में प्रसिद्ध हो। हे भरतश्रेष्ठ! तुमने द्रोणाचार्य से और कृपाचार्य से अस्त्रविद्या का ज्ञान लिया है। तुम जाति और बल में हमारे समान हो। तुमने श्रीकृष्ण का आश्रय लिया हुआ है। पाण्डवों के ही समीप तुम श्रीकृष्ण से भी कहना कि हे वार्ष्णेय! तुम जो यह कहते हो कि मैं युद्ध में धृतराष्ट्र के पुत्रों को मरवाकर उनका उत्तम राज्य कुन्तीपुत्रों को ही दिलवा दूँगा। तुम्हारी ये सारी बातें संजय ने मुझे सुना दी हैं। तुमने यह भी कहा था कि मैं जिसका सहायक हूँ, उस अर्जुन के साथ तुम्हारा बैर बढ़ रहा है। अब तुम सत्यवादी बनकर पाण्डवों के लिये पराक्रमी बनो। हे कृष्ण! तुम्हारा महान् यश संसार में अकस्मात् फैल गया है। अब हमें मालूम हुआ है कि तुम्हारी प्रशंसा करनेवाले पुरुषत्व के चिह्न धारण किये हुए हिजड़े ही हैं।

तं च तूबरकं बालं बह्वाशिनमविद्यकम्।
उलूक मद्वचो ब्रूहि असकृद्भीमसेनकम्॥ २९॥
विराटनगरे पार्थ यस्त्वं सूदो ह्यभूः पुरा।
बल्लवो नाम विख्यातस्तन्ममैव हि पौरुषम्॥ ३०॥
प्रतिज्ञातं सभामध्ये न तन्मिथ्या त्वया पुरा।
दुःशासनस्य रुधिरं पीयतां यदि शक्यते॥ ३१॥
यद् ब्रवीषि च कौन्तेय धार्तराष्ट्रानहं रणे।
निहनिष्यामि तरसा तस्य कालोऽयमागतः॥ ३२॥

उस बिना मूछों के बालक, बहुत खानेवाले मूर्ख भीमसेन से हे उलूक! मेरी तरफ से बार बार कहना कि पहले विराट नगर में तुमने जो रसोइये का काम किया था, और तुम बल्लव नाम से विख्यात हुए थे, वह मेरा ही पुरुषार्थ था। तुमने सभा के बीच में पहले जो प्रतिज्ञा की थी, वह असत्य नहीं होनी चाहिये। अब यदि तुम समर्थ हो तो दुश्शासन का खून पीना। हे कुन्तीपुत्र! तुम जो यह कहते हो कि मैं युद्ध में धृतराष्ट्र के पुत्रों को वेगपूर्वक मार दूँगा, अब उसका समय आ गया है।

त्वं हि भोज्ये पुरस्कार्यो भक्ष्ये पेये च भारत।
क्व युद्धं क्व च भोक्तव्यं युध्यस्व पुरुषो भव॥ ३३॥
शयिष्यसे हतो भूमौ गदामालिङ्ग्य भारत।
तद् वृथा च सभामध्ये वल्गितं ते वृकोदर॥ ३४॥
उलूक नकुलं ब्रूहि वचनान्मम भारत।
युध्यस्वाद्य स्थिरो भूत्वा पश्यामस्तव पौरुषम्॥ ३५॥
युधिष्ठिरानुरागं च द्वेषं च मयि भारत।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं स्मरेदानीं यथातथम्॥ ३६॥

हे भारत! तुम तो अधिक खाने और पीने में ही पुरस्कार पानेयोग्य हो। कहाँ युद्ध? और कहाँ भोजन? पर अब तुम मर्द बनो और युद्ध करो। हे भारत! तुम मारे जाकर गदा को छाती से लगाये भूमि पर सो जाओगे। हे वृकोदर! तुमने सभा में जो उछल कूद मचायी थी, वह सब बेकार थी। हे उलूक! तुम मेरी तरफ से नकुल से कहना कि हे भारत! तुम अब स्थिर होकर युद्ध करना, हम तुम्हारे पौरुष को देखेंगे। तुम युधिष्ठिर के प्रति अपने प्रेम को, मेरे प्रति द्वेष को और द्रौपदी के कष्ट को अच्छी तरह से याद कर लो।

ब्रूयास्त्वं सहदेवं च राजमध्ये वचो मम।
युद्ध्येदानीं रणे यत्तः क्लेशान् स्मर च पाण्डव॥ ३७॥
धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं ब्रूयास्त्वं वचनान्मम।
एष ते समयः प्राप्तो लब्धव्यश्च त्वयापि सः॥ ३८॥
द्रोणमासाद्य समरे ज्ञास्यसे हितमुत्तमम्।
युध्यस्व ससुहृत् पापं कुरु कर्म सुदुष्करम्॥ ३९॥

तुम सहदेव से राजाओं के बीच में मेरा यह सन्देश कहना कि हे पाण्डव! पहले के क्लेशों को याद करो और अब तत्पर होकर युद्ध करो। पांचाल धृष्टद्युम्न से तुम मेरी तरफ से कहना कि यह तुम्हें उचित समय प्राप्त हुआ है और आचार्य द्रोण तुम्हें मिल भी जायेंगे। तुम द्रोणाचार्य को युद्ध में प्राप्त कर जान जाओगे कि तुम्हारा उत्तम हित किस बात में है? तुम अपने हितैषियों के साथ युद्ध करो और गुरु के वध का अत्यन्त दुष्कर पाप कर डालो।

एवमुक्त्वा ततो राजा प्रहस्योलूकमब्रवीत्।
धनंजयं पुनर्ब्रूहि वासुदेवस्य शृण्वतः॥ ४०॥

ऐसा कहकर फिर हँसकर राजा दुर्योधन ने उलूक से कहा कि फिर तुम श्रीकृष्ण के सुनते हुए अर्जुन से कहना कि—

अस्मान् वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्।
अथवा निर्जितोऽस्माभी रणे वीर शयिष्यसि॥ ४१॥
राष्ट्रान्निर्वासनक्लेशं वनवासं च पाण्डव।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं संस्मरन् पुरुषो भव॥ ४२॥
यदर्थं क्षत्रिया सूते सर्वं तदिदमागतम्।
बलं वीर्यं च शौर्यं च परं चाप्यस्त्रलाघवम्॥ ४३॥
पौरुषं दर्शयन् युद्धे कोपस्य कुरु निष्कृतिम्।
परिक्लिष्टस्य दीनस्य दीर्घकालोषितस्य च॥ ४४॥
हृदयं कस्य न स्फोटेदैश्वर्याद् भ्रंशितस्य च।

हे वीर! या तो तुम हमें हराकर इस पृथिवी पर शासन करो या तुम हमारे द्वारा जीते जाकर युद्ध भूमि में शयन करोगे। हे पाण्डव! तुम देश से निकाला जाना, वन में रहना और द्रौपदी के कष्टों को याद करो और मर्द बनो। जिस प्रयोजन के लिये क्षत्राणी जन्म देती है, उसे पूरा करने का समय आ गया है। अब तुम अपने बल, पराक्रम, शौर्य, अत्यन्त अस्त्र कौशल और पौरुष को दिखाते हुए युद्ध में अपने क्रोध की शान्ति कर लो। जिसे लम्बे समय के लिये निर्वासितकर अनेक तरह के क्लेश दिये गये हों, जिसे ऐश्वर्य से भ्रष्टकर दीन बना दिया गया हो ऐसे किस व्यक्ति की छाती नहीं फटेगी?

कुले जातस्य शूरस्य परवित्तेष्वगृध्यतः॥ ४५॥
आस्थितं राजमाक्रम्य कोपं कस्य न दीपयेत्।
यत् तदुक्तं महद् वाक्यं कर्मणा तद् विभाव्यताम्॥ ४६॥
अकर्मणा कत्थितेन सन्तः कुपुरुषं विदुः।
अमित्राणां वशे स्थानं राज्यं च पुनरुद्धर॥ ४७॥
द्वावर्थौ युद्धकामस्य तस्मात् तत् कुरु पौरुषम्।
द्वादशैव तु वर्षाणि वने धिष्ण्याद् विवासितः॥ ४८॥
संवत्सरं विराटस्य दास्यमास्थाय चोषितः।

जो शूरवीरों के कुल में पैदा हुआ हो, और दूसरों के धन के प्रति लालची न हो, उसके राज्य को कोई दबाकर बैठ जाये, तो किसका क्रोध जागृत नहीं होगा? तुमने जो बड़ी बड़ी बातें कहीं हैं, उन्हें अपने कार्यों के द्वारा पूरा करो। जो केवल डींग मारे, पर कार्य न करे, उसे सत्पुरुष कायर कहते हैं। तुम्हारा स्थान और राज्य शत्रुओं के वश में है। तुम उसका उद्धार करो। युद्ध के चाहने वाले के ये दो ही प्रयोजन होते हैं इसलिये तुम पुरुषार्थ करो। तुमने राज्य से निर्वासित होकर बारह वर्ष वन में बिताये हैं और एक वर्ष विराट के यहाँ दास बनकर बिताया है।

अप्रियाणां च वचनं प्रब्रुवत्सु पुनः पुनः॥ ४९॥
अमर्षं दर्शयस्व त्वममर्षो ह्येव पौरुषम्।
क्रोधो बलं तथा वीर्यं ज्ञानयोगोऽस्त्रलाघवम्॥ ५०॥
इह ते दृश्यतां पार्थ युद्ध्यस्व पुरुषो भव।
लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम्॥ ५१॥
पुष्टास्तेऽश्वा भृता योधाः श्वो युद्ध्यस्व सकेशवः।
असमागम्य भीष्मेण संयुगे किं विकत्थसे॥ ५२॥
आरुरुक्षुर्यथा मन्दः पर्वतं गन्धमादनम्।
एवं कत्थसि कौन्तेय अकत्थन् पुरुषो भव॥ ५३॥

हम तुम्हें बार बार अप्रिय वचन कहते रहे। अब हमारे ऊपर क्रोध करके दिखाओ। क्रोध ही पौरुष की निशानी है। हे कुन्तीपुत्र! हम यहाँ युद्धक्षेत्र में तुम्हारे क्रोध, बल, वीर्य, ज्ञानयोग और अस्त्रलाघव को देखें। अब तुम मर्द बनो और युद्ध करो। अब लोहे के हथियारों को बाहर निकालकर तैयार करने का कार्य पूरा हो गया है, कुरुक्षेत्र की कीचड़ भी सूख गयी है, तुम्हारे घोड़े भी हृष्टपुष्ट हो गये हैं, योद्धाओं का तुमने भरणपोषण कर लिया है, इसलिये कल सवेरे कृष्ण के साथ आकर युद्ध करो। तुम भीष्म का युद्ध में सामना किये बिना कैसे अपनी डींग मारते हो। जैसे कोई शक्तिहीन पुरुष गन्धमादनपर्वत पर चढ़ना चाहे, वैसे ही तुम अपनी डींग मारते हो। हे कुन्तीपुत्र! डींग मत मारो और पुरुषार्थ करो।

सूतपुत्रं सुदुर्धर्षं शल्यं च बलिनां वरम्।
द्रोणं च बलिनां श्रेष्ठं शचीपतिसमं युधि॥ ५४॥
अजित्वा संयुगे पार्थ राज्यं कथमिहेच्छसि।
ब्राह्मे धनुषि चाचार्यं वेदयोरन्तगं द्वयोः॥ ५५॥
युधि धुर्यमविक्षोभ्यमनीकचरमच्युतम्।
द्रोणं महाद्युतिं पार्थ जेतुमिच्छसि तन्मृषा॥ ५६॥

अत्यन्त दुर्धर्ष सूतपुत्र कर्ण, बलियों में श्रेष्ठ शल्य, युद्ध में इन्द्र के समान तथा बलवानों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य को युद्ध में बिना जीते हे कुन्तीपुत्र! तुम राज्य की इच्छा कैसे करते हो? जिन्होंने ब्रह्मविद्या और धनुर्विद्या दोनों का अन्त देखा हुआ है, जो युद्ध का भार वहन करने में समर्थ हैं, जिन्हें क्षुब्ध नहीं किया जा सकता, जो सेना में विचरण करते है, जो युद्धक्षेत्र का त्याग नहीं करते हैं, उन महातेजस्वी आचार्य द्रोण को हे कुन्तीपुत्र! तुम जो जीतना चाहते हो, वह असत्य है।

किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां
न बुध्यसे राजचमूं समेताम्।
प्राच्यैः प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यै-
रुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च।
म्लेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्ध्रकाञ्च्यैः॥ ५७॥
नानाजनौघं युधि सम्प्रवृद्धं
गाङ्गं यथा वेगमपारणीयम्।
मां च स्थितं नागबलस्य मध्ये
युयुत्ससे मन्द किमल्पबुद्धे॥ ५८॥

मेरी सेना पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के राजाओं तथा काम्बोज, शक, खश, म्लेच्छ, पुलिन्द, द्रविड़, आन्ध्र तथा काञ्ची प्रदेशीय योद्धाओं की सेनाओं से मिली हुई है। क्या तुम कूएँ के मेंढ़क की तरह हो? जो इसकी शक्ति को समझ नहीं पा रहे हो। बढ़े हुए गंगा के पार न कर सकने योग्य प्रवाह की भाँति, जो अनेक प्रकार के लोगों का समुदाय है, मेरी उस सेना के साथ तथा हाथियों की सेना के बीच में खड़े हुए मुझ से हे अल्पबुद्धि मूर्ख! तुम कैसे युद्ध करना चाहते हो।

अकत्थमानो युद्ध्यस्व कत्थसेऽर्जुन किं बहु।
पर्यायात् सिद्धिरेतस्य नैतत् सिध्यति कत्थनात्॥ ५९॥
यदीदं कत्थनाल्लोके सिध्येत् कर्म धनंजय।
सर्वे भवेयुः सिद्धार्थाः कत्थने को हि दुर्गतः॥ ६०॥

हे अर्जुन तुम इतनी डींग क्यों मारते हो? बोलो मत, युद्ध करो। डींग मारने से सफलता नहीं मिलती युद्ध करने से मिलती है। हे अर्जुन! यदि डींग मारने से ही काम बन जायें, तो सबके ही काम बन जाया करें क्योंकि डींग मारने से कोई कमजोर थोड़े होता है।

जानामि ते वासुदेवं सहायं
जानामि ते गाण्डिवं तालमात्रम्।
जानाम्यहं त्वादृशो नास्ति योद्धा
जानानस्ते राज्यमेतद्धरामि॥ ६१॥

मैं जानता हूँ कि कृष्ण तुम्हारे सहायक हैं। मैं जानता हूँ कि तुम्हारा गाण्डीवधनुष चार हाथ लम्बा है। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे समान कोई योद्धा नहीं है। यह सब जानते हुए भी मैं तुम्हारे राज्य का हरण कर रहा हूँ।

त्रयोदश समा भुक्तं राज्यं विलपतस्तव।
भूयश्चैव प्रशासिष्ये त्वां निहत्य सबान्धवम्॥ ६२॥

क्व तदा गाण्डिवं तेऽभूद् यत् त्वं दासपणैर्जितः।
क्व तदा भीमसेनस्य बलमासीच्च फाल्गुन॥ ६३॥
सा वो दास्ये समापन्नान् मोचयामास पार्षती।
अमानुष्यं समापन्नान् दासकर्मण्यवस्थितान्॥ ६४॥
अवोचं यत् षण्ढतिलानहं वस्तथ्यमेव तत्।
धृता हि वेणी पार्थेन विराटनगरे तदा॥ ६५॥

तुम विलाप करते रहे और मैंने तेरह वर्ष तक तुम्हारा राज्य भोगा। अब तुम्हें बन्धुओंसमेत मारकर भविष्य में भी भोगूँगा। हे दास अर्जुन! जब तुम्हें जूए के दाँव पर जीत लिया गया था, तब तुम्हारा गाण्डीव और भीमसेन का बल कहाँ चला गया था? तुम सब दासना को पहुँच गये थे। तुम अमानवोचित अवस्था में थे। दासकर्म में विद्यमान थे, तुम्हें द्रौपदी ने ही छुड़वाया था। मैंने जो तुम्हें हिजड़ा और थोथा तिल कहा था, वह ठीक ही था, क्योंकि विराटनगर में अर्जुन ने ही स्त्रियों की चोटी सिर पर लगाई थी।

न भयाद् वासुदेवस्य न चापि तव फाल्गुन।
राज्यं प्रतिपदास्यामि युद्ध्यस्व सहकेशवः॥ ६६॥
संयुगं गच्छ भीष्मेण भिन्धि वा शिरसा गिरिम्।
तरस्व वा महागाधं बाहुभ्यां पुरुषोदधिम्॥ ६७॥
शारद्वतमहामीनं विविंशतिमहोरगम्।
बृहद्बलमहोद्वेलं सौमदत्तितिमिङ्गिलम्॥ ६८॥
भीष्मवेगमपर्यन्तं द्रोणग्राहदुरासदम्।
कर्णशल्यझषावर्तं काम्बोजवडवामुखम्॥ ६९॥

हमारी सेनारूपी महासागर में शरद्वान् पुत्र महान् मत्स्य हैं, विविंशति महान् सर्प है, बृहद्बल महान ज्वार के समान है, सोमदत्तपुत्र तिमिंगल नामका मत्स्य है, भीष्म उसका असीम वेग है, द्रोणाचार्य दुर्धर्ष ग्राह है, कर्ण और शल्य मछली और भँवर हैं तथा काम्बोजराज इसमें वडवानल हैं।

दुःशासनौघं शलशल्यमत्स्यं
सुषेणचित्रायुध- नागनक्रम्।
जयद्रथाद्रिं पुरुमित्रगाधं
दुर्मर्षणोदं शकुनिप्रपातम्॥ ७०॥
शस्त्रौधमक्षय्यमभि- प्रवृद्धं
यदावगाह्य श्रमनष्टचेताः।
भविष्यसि त्वं हतसर्वबान्धव-
स्तदा मनस्ते परितापमेष्यति॥ ७१॥

दुश्शासन उसका बहाव है, शल और शल्य मछली हैं, सुषेण और चित्रायुध नाग और नक्र के समान हैं, जयद्रथ उसमें विद्यमान पर्वत है, पुरुमित्र उसकी गहराई है, दुर्मर्षण उसका जल और शकुनि उसमें झरना है। अक्षय शस्त्रास्त्रसमूह इसका बढ़ा हुआ जलभंडार है। इसमें प्रवेश करने पर जब श्रम के कारण तुम्हारी चेतना नष्ट हो जायेगी और तुम्हारे सारे बान्धव मार दिये जायेंगे, तब तुम्हारे मन को बड़ा सन्ताप होगा।

अट्ठावनवाँ अध्याय : उलूक का सन्देश सुनाना, पाण्डवों का उत्तर देना।

सेनानिवेशं सम्प्राप्तः कैतव्यः पाण्डवस्य ह।
समागतः पाण्डवेयैर्युधिष्ठिरमभाषत॥ १॥
अभिज्ञो दूतवाक्यानां यथोक्तं ब्रुवतो मम।
दुर्योधनसमादेशं श्रुत्वा न क्रोद्धुमर्हसि॥ २॥

युधिष्ठिर उवाच

उलूक न भयं तेऽस्ति ब्रूहि त्वं विगतज्वरः।
यन्मतं धार्तराष्ट्रस्य लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः॥ ३॥

तब जुआरी शकुनि का पुत्र उलूक पाण्डवों की सेना की छावनी में गया। वहाँ पाण्डवों से मिलकर वह युधिष्ठिर से बोला कि आप दूतों के द्वारा कहे गये वाक्यों का अभिप्राय समझते हैं कि वे उनके अपने विचार नहीं होते, इसलिये दुर्योधन के द्वारा आदेश की हुई बात को मुझसे सुनकर आप मुझ पर क्रोध नहीं करेंगे। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे उलूक! तुझे कोई भय नहीं है। तू निर्भय होकर बता कि उस लोभी और अदूरदर्शी धृतराष्ट्र के पुत्र के क्या विचार हैं।

ततो द्युतिमतां मध्ये पाण्डवानां महात्मनाम्।
सृञ्जयानां च मत्स्यानां कृष्णस्य च यशस्विनः॥ ४॥
द्रुपदस्य सपुत्रस्य विराटस्य च संनिधौ।
भूमिपानां च सर्वेषां मध्ये वाक्यं जगाद ह॥ ५॥
इदं त्वामब्रवीद् राजा धार्तराष्ट्रो महामनाः।
शृण्वतां कुरुवीराणां तन्निबोध युधिष्ठिर॥ ६॥

उलूकस्त्वर्जुनं भूयो यथोक्तं वाक्यमब्रवीत्।
आशीविषमिव क्रुद्धं तुदन् वाक्यशलाकया॥ ७॥

तब उन तेजस्वी महात्मा पाण्डवों के, सृंजयों के, मत्स्यों के, यशस्वी श्रीकृष्ण के, पुत्रोंसहित द्रुपद के, विराट के और सारे राजाओ के समीप उनके बीच में उलूक ने यह कहा कि हे युधिष्ठिर! महामना राजा दुर्योधन ने सारे कौरववीरों के सुनते हुए आपको यह कहा है, इसे आप सुनिये। फिर उलूक ने विषैले सर्प के समान पहले से ही क्रुद्ध अर्जुन को अपने वाग्बाणों से और भी पीड़ित करते हुए, दुयोधन के सन्देश को जैसे का तैसा सुना दिया।

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रुषिताः पाण्डवा भृशम्।
प्रागेव भृशसंक्रुद्धाः कैतव्येनापि धर्षिताः॥ ८॥
अवाक्शिरा भीमसेनः समुदैक्षत केशवम्।
नेत्राभ्यां लोहितान्ताभ्यामाशीविष इव श्वसन्॥ ९॥
आर्तं वातात्मजं दृष्ट्वा क्रोधेनाभिहतं भृशम्।
उत्स्मयन्निव दाशार्हः कैतव्यं प्रत्यभाषत॥ १०॥
प्रयाहि शीघ्रं कैतव्य ब्रूयाश्चैव सुयोधनम्।
श्रुतं वाक्यं गृहीतोऽर्थो मतं यत् ते तथास्तु तत्॥ ११॥

उसके उन वचनों को सुनकर पाण्डवलोग, जो पहले ही अत्यधिक क्रुद्ध थे, जुआरी के पुत्र की बातों से अपमानित होकर और भी अधिक क्रोध में भर गये। नीचा मुख किये हुए, और विषैले सर्प के समान साँसें भरते हुए, भीमसेन ने अपनी लाल आँखों से श्रीकृष्ण की तरफ देखा। तब वायुपुत्र भीम को अत्यन्त पीड़ित और क्रोध में भरा हुआ देखकर श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए जुआरी के पुत्र से कहा कि हे जुआरी के पुत्र! तुम शीघ्र जाओ और दुर्योधन से कहो कि हमने तुम्हारी बात सुन ली है और उसका मतलब समझ लिया। तुम्हारा जैसा विचार है वैसा ही हो।

उलूकस्य तु तद् वाक्यं पापं दारुणमीरितम्।
श्रुत्वा विचुक्षुभे पार्थो ललाटं चाप्यमार्जयत्॥ १२॥
तदवस्थं तदा दृष्ट्वा पार्थं सा समितिर्नृप।
नामृष्यन्त महाराज पाण्डवानां महारथाः॥ १३॥
अधिक्षेपेण कृष्णस्य पार्थस्य च महात्मनः।
श्रुत्वा ते पुरुषव्याघ्राः क्रोधाज्जज्वलुरच्युताः॥ १४॥

उलूक के कहे हुए उन पापपूर्ण और दारुण वाक्यों को सुनकर अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। उसने क्रोध के कारण अपने माथे पर आये पसीने को पोंछा। हे महाराज! अर्जुन की वह अवस्था देखकर राजाओं की वह सभा तथा पाण्डवों के महारथी सहन नहीं कर सके। क्योंकि उस सन्देश में श्रीकृष्ण और अर्जुन के प्रति आक्षेप किया गया था इसलिये वे अच्युत पुरुषसिंह क्रोध से जलने लगे।

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः।
केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः॥ १५॥
द्रौपदेयाभिमन्युश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः।
भीमसेनश्च विक्रान्तो यमजौ च महारथौ॥ १६॥
उत्पेतुरासनात् सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः।
बाहून् प्रगृह्य रुचिरान् रक्तचन्दनरूषितान्॥ १७॥
अङ्गदैः पारिहार्यैश्च केयूरैश्च विभूषितान्।
दन्तान् दन्तेषु निष्पिष्य सृक्किणीपरिलेलिहन्॥ १८॥
तेषामाकारभावज्ञः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः।
उदतिष्ठत् स वेगेन क्रोधेन प्रज्वलन्निव॥ १९॥
उद्वृत्य सहसा नेत्रे दन्तान् कटकटाय्य च।
हस्तं हस्तेन निष्पिष्य उलूकं वाक्यमब्रवीत्॥ २०॥

महारथी धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, पाँच केकयभाई, राक्षस घटोत्कच, द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु, राजा धृष्टकेतु, वीर पराक्रमी भीमसेन, महारथी नकुल और सहदेव, सारे आँखें लाल किये हुए, अपने आसनों से उठकर खड़े हो गये। लाल चन्दन से लेप की हुई और बाजूबन्द आदि आभूषणों से सुसज्जित अपनी बाहों को उठाकर, दाँतों को दाँतों से रगड़ते हुए, वे अपने होठों के किनारों को चाटने लगे। उनकी आकृतियों से उनके भावों को जानकर कुन्तीपुत्र वृकोदर क्रोध से जलते हुए वेगपूर्वक अपने स्थान से उठे और अचानक आँखें फाड़कर देखते हुए, दाँतों को कटकटाते हुए, हाथों को परस्पर मसलते हुए उलूक से बोले कि–

अशक्तानामिवास्माकं प्रोत्साहननिमित्तकम्।
श्रुतं ते वचनं मूर्ख यत् त्वां दुर्योधनोऽब्रवीत्॥ २१॥
तन्मे कथयतो मन्द शृणु वाक्यं दुरासदम्।
सर्वक्षत्रस्य मध्ये तं यद् वक्ष्यसि सुयोधनम्॥ २२॥
शृण्वतः सूतपुत्रस्य पितुश्च त्वं दुरात्मनः।
अस्माभिः प्रीतिकामैस्तु भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः॥ २३॥
मर्षितं ते दुराचार तत् त्वं न बहु मन्यसे।
प्रेषितश्च हृषीकेशः शमाकाङ्क्षी कुरून् प्रति॥ २४॥
कुलस्य हितकामेन धर्मराजेन धीमता।

अरे मूर्ख! तेरी बात हमने सुन ली, जो तुझसे दुर्योधन ने कही है। ऐसा लगता है जैसे हम कमजोर हों और हमें प्रोत्साहित करने के लिये यह सन्देश भिजवाया है। हे मूर्ख! अब तू मेरी कही हुई दुःसह बातों को सुन। तू मेरी बात सारे क्षत्रियों के बीच में, सारथि के पुत्र कर्ण और अपने दुष्ट पिता शकुनि के सुनते हुए दुर्योधन को सुना देना। हमने अपने बड़े भाई को प्रसन्न करने की इच्छा से सदा तेरे अत्याचारों को सहन किया, इसलिये तू हमें कमजोर समझ रहा है। धर्मराज धीमान् युधिष्ठिर ने कुल की भलाई की इच्छा से शान्ति के इच्छुक श्रीकृष्ण को कौरवों के पास भेजा था।

त्वं कालचोदितो नूनं गन्तुकामो यमक्षयम्॥ २५॥
गच्छस्वाहवमस्माभिस्तच्च श्वो भविता ध्रुवम्।
मयापि च प्रतिज्ञातो वधः सभ्रातृकस्य ते॥ २६॥
स तथा भविता पाप नात्र कार्या विचारणा।
वेलामतिक्रमेत् सद्यः सागरो वरुणालयः॥ २७॥
पर्वताश्च विशीर्येयुर्मयोक्तं न मृषा भवेत्।
यथाप्रतिज्ञं दुर्बुद्धे प्रकरिष्यन्ति पाण्डवाः॥ २८॥
दुःशासनस्य रुधिरं पाता चास्मि यथेप्सितम्।

पर तू तो काल के द्वारा प्रेरित किया हुआ मृत्यु के घर अवश्य ही जाना चाहता है। तो तू हमारे साथ युद्ध में आजा जो कल अवश्य होगा। हे पापी! मैंने भी तेरे भाईयों सहित वध की जो प्रतिज्ञा हुई है, वह उसी रूप में अवश्य पूरी होगी। इस विषय में कोई सोच विचार मत कर। चाहे सागर शीघ्र ही अपने तट का उल्लंघन कर दे, पर्वत फट जाये, पर मेरी बात असत्य नहीं होगी। हे मूर्ख! पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य करेंगे और मैं दुश्शासन का जीभर कर खून पीऊँगा।

यश्चेह प्रतिसंरब्धः क्षत्रियो माभियास्यति॥ २९॥
अपि भीष्मं पुरस्कृत्य तं नेष्यामि यमक्षयम्।
यच्चैतदुक्तं वचनं मया क्षत्रस्य संसदि॥ ३०॥
यथैतद् भविता सत्यं तथैवात्मानमालभे।
भीमसेनवचः श्रुत्वा सहदेवोऽप्यमर्षणः॥ ३१॥
क्रोधसंरक्तनयनस्ततो वाक्यमुवाच ह।
शौटीरशूरसदृशमनीकजनसंसदि ॥ ३२॥
शृणु पाप वचो मह्यं यद्वाच्यो हि पिता त्वया।

उस समय जो भी क्षत्रिय क्रोध में भरकर, चाहे भीष्म को आगेकर मुझपर आक्रमण करेगा, मैं उसे भी मृत्यु के घर भेज दूँगा। क्षत्रियों की सभा में मैंने जो बात कही है, वह उसी रूप में पूरी होगी। इसके लिये मैं अपनी सौगन्ध खाकर कहता हूँ। भीमसेन की बात सुनकर अत्यन्त अमर्षशील सहदेव भी क्रोध से आँखें लाल करके तब बोले कि अरे पापी! इस सैनिकसभा में, चतुर शूरवीरों के समान मैं जो बातें कह रहा हूँ, उन्हें हे पापी! तू सुन। उन्हें तुझे अपने पिता शकुनि को सुनाना है।

नास्माकं भविता भेदः कदाचित् कुरुभिः सह॥ ३३॥
धृतराष्ट्रस्य सम्बन्धो यदि न स्यात् त्वया सह।
त्वं तु लोकविनाशाय धृतराष्ट्रकुलस्य च॥ ३४॥
उत्पन्नो वैरपुरुषः स्वकुलघ्नश्च पापकृत्।
जन्मप्रभृति चास्माकं पिता ते पापपूरुषः॥ ३५॥
अहितानि नृशंसानि नित्यशः कर्तुमिच्छति।
तस्य वैरानुषङ्गस्य गन्तास्म्यन्तं सुदुर्गमम्॥ ३६॥
अहमादौ निहत्य त्वां शकुनेः सम्प्रपश्यतः।
ततोऽस्मि शकुनिं हन्तामिषतां सर्वधन्विनाम्॥ ३७॥

यदि तेरा सम्बन्ध धृतराष्ट्र से नहीं होता तो हमारा कौरवों के साथ मनमुटाव कभी नहीं होता। तू तो संसार के विनाश के लिये, धृतराष्ट्र के कुल के विनाश के लिये और अपने भी कुल के विनाश के लिये पापी बैरपुरुष के रूप में पैदा हुआ है। हे उलूक! तेरे पापी पिता ने जन्म से ही हमारेप्रति क्रूर और अकल्याणकारी कार्यों को सदा करने की इच्छा की है। अब मैं पहले शकुनि के देखते हुए तुझे मारूँगा और फिर सारे शत्रु धनुर्धारियों के सामने शकुनि को मारूँगा और इस प्रकार इस बैरप्रकरण के अत्यन्त दुर्गभ अन्त को प्राप्त करूँगा।

भीमस्य वचनं श्रुत्वा सहदेवस्य चोभयोः।
उवाच फाल्गुनो वाक्यं भीमसेनं स्मयन्निव॥ ३८॥
भीमसेन न ते सन्ति येषां वैरं त्वया सह।
मन्दा गृहेषु सुखिनो मृत्युपाशवशं गताः॥ ३९॥
उलूकश्च न ते वाच्यः परुषं पुरुषोत्तम।
दूताः किमपराध्यन्ते यथोक्तस्यानुभाषिणः॥ ४०॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्भीमं भीमपराक्रमम्।
धृष्टद्युम्नमुखान् वीरान् सुहृदः समभाषत॥ ४१॥

भीम और सहदेव के वचनों को सुनकर अर्जुन ने मुस्कराते हुए भीम से यह कहा कि हे भीम!

जिनके साथ तुम्हारा बैर हो गया, वे जीवित नहीं रह सकते। घर में बैठकर सुख भोगनेवाले वे अब मृत्यु के बन्धन में बँध गये हैं। हे पुरुषोत्तम! तुम्हें उलूक से कठोर वचन नहीं कहने चाहियें। दूत को जैसा कहा गया है उसे वैसा ही कहना होता है, इसलिये उसका क्या अपराध? भयानक पराक्रमी भीम से यह कहकर, वे धृष्टद्युम्न आदि वीर मित्रों से यह बोले कि—

श्रुतं वस्तस्य पापस्य धार्तराष्ट्रस्य भाषितम्।
कुत्सनं वासुदेवस्य मम चैव विशेषतः॥ ४२॥
श्रुत्वा भवन्तः संरब्धा अस्माकं हितकाम्यया।
प्रभावाद् वासुदेवस्य भवतां च प्रयत्नतः॥ ४३॥
समग्रं पार्थिवं क्षत्रं सर्वं न गणयाम्यहम्।
भवद्भिः समनुज्ञातो वाक्यमस्य यदुत्तरम्॥ ४४॥
उलूके प्रापयिष्यामि यद् वक्ष्यति सुयोधनम्।
श्वोभूते कथितस्यास्य प्रतिवाक्यं चमूमुखे॥ ४५॥
गाण्डीवेनाभिधास्यामि क्लीबा हि वचनोत्तराः।

आप लोगों ने उस पापी दुर्योधन का सन्देश सुना। उसमें विशेषरूप से श्रीकृष्ण जी की और मेरी निन्दा की गयी है। उसे सुनकर हमारे कल्याण की कामना से आप लोग क्रुद्ध हो उठे हैं। किन्तु आप लोगों के प्रयत्न और श्रीकृष्ण जी के प्रभाव के द्वारा मैं सारे राजाओं और क्षत्रियों को कुछ भी नहीं समझता हूँ। आप लोगों की आज्ञा से इस सन्देश का जो उत्तर है, वह मैं उलूक को दे देता हूँ, जिसे यह दुर्योधन को सुना देगा। अथवा इसका उत्तर मैं कल सेना के मुहाने पर गाण्डीवधनुष के द्वारा दे दूँगा। केवल बातों से उत्तर देनेवाले तो नपुंसक होते हैं।

धर्मराजस्तदा वाक्यं तत्प्राप्य प्रत्यभाषत॥ ४६॥
दुर्योधनस्य तद् वाक्यं निशम्य भरतर्षभः।
अतिलोहितनेत्राभ्यामाशीविष इव श्वसन्॥ ४७॥
स्मयमान इव क्रोधात् सृक्किणी परिसंलिहन्।
जनार्दनमभिप्रेक्ष्य भ्रातॄंश्चैवेदमब्रवीत्॥ ४८॥
अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम्।
उलूक गच्छ कैतव्य ब्रूहि तात सुयोधनम्॥ ४९॥
कृतघ्नं वैरपुरुषं दुर्मतिं कुलपांसनम्।

दुर्योधन के उन वाक्यों को सुनकर, अत्यन्त लाल आँखों के साथ विषैले सर्प के समान श्वास लेते हुए, क्रोध से मुस्कराते हुए, अपने होठों के किनारों को चाटते हुए, धर्मराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण और अपने भाइयों की तरफ देखते हुए समयोचित उत्तर दिया। वे अपनी विशाल भुजा को उठाकर जुआरी के पुत्र उलूक से बोले कि हे जुआरी के पुत्र तात उलूक! तुम जाओ और उस कुलकलंक, दुर्मति, बैरपुरुष और कृतघ्न दुर्योधन से कहना कि—

पाण्डवेषु सदा पाप नित्यं जिह्मं प्रवर्तसे॥ ५०॥
स्ववीर्याद् यः पराक्रम्य पाप आह्वयते परान्।
अभीतः पूरयन् वाक्यमेष वै क्षत्रियः पुमान्॥ ५१॥
स पापः क्षत्रियो भूत्वा अस्मानाहूय संयुगे।
मान्यामान्यान् पुरस्कृत्य युद्धं मा गाः कुलाधम॥ ५२॥
आत्मवीर्यं समाश्रित्य भृत्यवीर्यं च कौरव।
आह्वयस्व रणे पार्थान् सर्वथा क्षत्रियो भव॥ ५३॥
परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान्।
अशक्तः स्वयमादातुमेतदेव नपुंसकम्॥ ५४॥
स त्वं परेषां वीर्येण आत्मानं बहु मन्यसे।
कथमेवमशक्तस्त्वमस्मान् समभिगर्जसि॥ ५५॥

हे पापी! तूने पाण्डवों के साथ सदा कुटिलता का बर्ताव किया है। अरे पापात्मन्! जो व्यक्ति अपनी शक्ति से पराक्रम दिखाता हुआ शत्रुओं को ललकारता है और निडर होकर अपने वाक्यों को पूरा करता है, वही सच्चा क्षत्रिय होता है। हे पापी, कुलाधम! तुम क्षत्रिय होकर हमें रणभूमि के लिये निमंत्रित करके, हमारे मान्यवृद्ध और हमारे स्नेहास्पद बच्चों को आगे करके युद्धभूमि में मत आना। हे कौरव! तुम अपने पराक्रम और अपने सेवकों के पराक्रम को लेकर युद्ध में कुन्तीपुत्रों को ललकारो और पूरी तरह से क्षत्रियत्व का परिचय दो। जो दूसरों के पराक्रम का सहारा लेकर शत्रुओं को ललकारता है और स्वयं सामना करने में असमर्थ होता है, वह नपुंसक है। तू दूसरों के पराक्रम के सहारे ही अपने आपको बहुत समझ रहा है। इस प्रकार असमर्थ होकर भी तू हमारे सामने कैसे गर्ज रहा है?

श्रीकृष्ण उवाच

मद्वचश्चापि भूयस्ते वक्तव्यः स सुयोधनः।
श्व इदानीं प्रपद्येथाः पुरुषो भव दुर्मते॥ ५६॥
मन्यसे यच्च मूढ त्वं न योत्स्यति जनार्दनः।
सारथ्येन वृतः पार्थैरिति त्वं न बिभेषि च॥ ५७॥
जघन्यकालमप्येतन्न भवेत् सर्वपार्थिवान्।
निर्दहेयमहं क्रोधात् तृणानीव हुताशनः॥ ५७॥

तब श्रीकृष्णजी ने कहा कि हे उलूक! तू मेरी यह बात भी दुर्योधन से कह देना कि हे दुर्मति! अब तू कल युद्धभूमि में आ और अपने पुरुषार्थ को दिखा। हे मूर्ख! तू जो यह मानता है कि कृष्ण को पाण्डवों ने सारथि बनाया है, इसलिये वह युद्ध नहीं करेगा, इसलिये मुझसे डर नहीं रहा है। पर मैं क्रोध से इन सारे राजाओं को अग्नि द्वारा तिनकों की तरह नष्ट कर सकता हूँ किन्तु यही चाहता हूँ कि ऐसा निकृष्ट समय न आये।

युधिष्ठिरनियोगात् तु फाल्गुस्य महात्मनः।
करिष्ये युध्यमानस्य सारथ्यं विजितात्मनः॥ ५९॥
यद्युत्पतसि लोकांस्त्रीन् यद्याविशसि भूतलम्।
तत्र तत्रार्जुनरथं प्रभाते द्रक्ष्यसे पुनः॥ ६०॥
यच्चापि भीमसेनस्य मन्यसे मोघभाषितम्।
दुःशासनस्य रुधिरं पीतमद्यावधारय॥ ६१॥
न त्वां समीक्षते पार्थो नापि राजा युधिष्ठिरः।
न भीमसेनो न यमौ प्रतिकूलप्रभाषिणम्॥ ६२॥

युधिष्ठिर के आदेश से मैं युद्ध करते हुए जितेन्द्रिय महात्मा अर्जुन का सारथि अवश्य बनूँगा। अब तू यदि तीनों लोकों से भी ऊपर उड़ जाये, यदि पृथिवी में भी समा जाये, प्रातः होने पर तू वहीं वहीं अर्जुन के रथ को देखेगा। तू जो भीमसेन की बात को व्यर्थ समझता है, तो यह निश्चितरूप से जान ले कि भीम ने दुश्शासन का खून पी लिया। उलटा बोलने वाले तुझे, न तो अर्जुन कुछ समझता है और न राजा युधिष्ठिर, न भीमसेन और न नकुल तथा सहदेव कुछ समझते हैं।

उनसठवाँ अध्याय : पाण्डवों का उलूक को उत्तर। दुर्योधन का युद्ध हेतु तैयारी का आदेश।

संजय उवाच

स केशवमभिप्रेक्ष्य गुडाकेशो महायशाः।
अभ्यभाषत कैतव्यं प्रगृह्य विपुलं भुजम्॥ १॥
यस्त्वं वृद्धं सर्वराज्ञां हितबुद्धिं जितेन्द्रियम्।
मरणाय महाप्रज्ञं दीक्षयित्वा विकत्थसे॥ २॥
भावस्ते विदितोऽस्माभिर्दुर्बुद्धे कुलपांसन।
न हनिष्यन्ति गाङ्गेयं पाण्डवा घृणयेति हि॥ ३॥
यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्र विकत्थसे।
हन्तास्मि प्रथमं भीष्मं मिषतां सर्वधन्विनाम्॥ ४॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण जी की तरफ देखते हुए महायशस्वी अर्जुन ने अपनी विशाल भुजा को उठा कर जुआरी के पुत्र से कहा कि हे दुर्योधन! जो सारे राजाओं में बूढ़े हैं, सबके कल्याण की बुद्धि रखने वाले हैं, जितेन्द्रिय हैं, उन्ही महाबुद्धिमान् भीष्म को युद्ध की दीक्षा दिलाकर तू जो अपनी डींग मार रहा है, हे दुर्बुद्धि! कुलकलंक! तेरा भाव हमने समझ लिया है। तू समझता है कि पाण्डव लोग दया के कारण भीष्म का वध नहीं करेंगे। तो हे धृतराष्ट्र के पुत्र! तू जिनके बल के आधार पर डींग मार रहा है, उन्हीं भीष्म को मैं सबसे पहले सारे धनुर्धरों के समक्ष मार दूँगा।

कैतव्य गत्वा भरतान् समेत्य
सुयोधनं धार्तराष्ट्रं वदस्व।
तथेत्युवाचार्जुनः सव्यसाची
निशाव्यपाये भविता विमर्दः॥ ५॥
सूर्योदये युक्तसेनः प्रतीक्ष्य
ध्वजी रथी रक्ष तं सत्यसंधम्।
अहं हि वः पश्यतां द्वीपमेनं
भीष्मं रथात् पातयिष्यामि बाणैः॥ ६॥

हे जुआरी के पुत्र! तू भरतवंशियों के पास जाकर दुर्योधन से कह दे कि अर्जुन ने बहुत अच्छा कहकर तेरी चुनौती स्वीकार कर ली है। रात्रि के व्यतीत होते ही विनाश आरम्भ हो जायेगा। सूर्योदय के समय तू सेना के साथ, ध्वजों और रथों के साथ, सब तरफ देखते हुए उन सत्यप्रतिज्ञ भीष्म की रक्षा कर। मैं तेरे आश्रय बने हुए उन भीष्म को तुम्हारे देखते हुए, बाणों द्वारा रथ से गिरा दूँगा।

श्वोभूते कत्थनावाक्यं विज्ञास्यति सुयोधनः।
आचितं शरजालेन मया दृष्ट्वा पितामहम्॥ ७॥
यदुक्तश्च सभामध्ये पुरुषो ह्रस्वदर्शनः।
क्रुद्धेन भीमसेनेन भ्राता दुःशासनस्तव॥ ८॥

अधर्मज्ञो नित्यवैरी पापबुद्धिर्नृशंसकृत्।
सत्यां प्रतिज्ञामचिराद् द्रक्ष्यसे तां सुयोधन॥ ९॥

कल होने पर भीष्म पितामह को मेरे बाणों के जाल से घिरा हुआ देखकर दुर्योधन अपने डींग मारने के परिणाम को जान जायेगा। हे दुर्योधन! सभा के बीच में क्रुद्ध भीमसेन ने तेरे नीच विचारोंवाले व्यक्ति, अधर्मज्ञ, सदा वैर भाव रखनेवाले, पापबुद्धि, क्रूरकर्मा, तेरे भाई दुश्शासन के बारे में जो कुछ कहा है, तू उसकी प्रतिज्ञा को जल्दी ही सत्य हुआ देखेगा।

अभिमानस्य दर्पस्य क्रोधपारुष्ययोस्तथा।
नैष्ठुर्यस्यावलेपस्य आत्मसम्भावनस्य च॥ १०॥
नृशंसतायास्तैक्ष्ण्यस्य धर्मविद्वेषणस्य च।
अधर्मस्यातिवादस्य वृद्धातिक्रमणस्य च॥ ११॥
दर्शनस्य च वक्रस्य कृत्स्नस्यापनयस्य च।
द्रक्ष्यसि त्वं फलं तीव्रमचिरेण सुयोधन॥ १२॥
वासुदेवद्वितीये हि मयि क्रुद्धे नराधम।
आशा ते जीविते मूढ राज्ये वा केन हेतुना॥ १३॥

हे दुर्योधन! तू अपने अभिमान, दर्प, क्रोध, कठोरता, निष्ठुरता, अहंकार, आत्मप्रशंसा, क्रूरता, तीक्ष्णता, धर्म के प्रति द्वेष, अधर्म, बहुत बोलना, वृद्धों के अपमान, टेढ़ी निगाहों से देखना और अपने सम्पूर्ण अन्यायों का फल शीघ्र ही देखेगा। हे नराधम, हे मूर्ख! श्रीकृष्ण के साथ मेरे क्रुद्ध होने पर तू किस आधार पर अपने जीवन और राज्य की आशा कर रहा है?

शान्ते भीष्मे तथा द्रोणे सूतपुत्रे च पातिते।
निराशो जीविते राज्ये पुत्रेषु च भविष्यसि॥ १४॥
भ्रातृणां निधनं श्रुत्वा पुत्राणां च सुयोधन।
भीमसेनेन निहतो दुष्कृतानि स्मरिष्यसि॥ १५॥
न द्वितीयां प्रतिज्ञां हि प्रतिजानामि कैतव।
सत्यं ब्रवीम्यहं ह्येतत् सर्वं सत्यं भविष्यति॥ १६॥
भीमसेनस्ततो वाक्यं भूय आह नृपात्मजम्।
उलूक मद्वचो ब्रूहि दुर्मतिं पापपूरुषम्॥ १७॥
शठं नैकृतिकं पापं दुराचारं सुयोधनम्।

जब भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य शान्त हो जायेंगे और सारथी के पुत्र कर्ण को गिरा दिया जायेगा तब तू अपने जीवन, राज्य और पुत्रों के लिये निराश हो जायेगा। अरे दुर्योधन! तू अपने भाइयों और पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर और स्वयं भी भीम के द्वारा मारा जाकर अपने दुष्कर्मों को याद करेगा। हे जुआरी! मैं दूसरी बार प्रतिज्ञा करना नहीं जानता। मैं सत्य कहता हूँ कि सब सत्य होकर रहेगा। तब भीम ने पुनः उस राजपुत्र से यह बात कही कि हे उलूक। उस पापी, दुर्मति, शठ, कपटी, पापात्मा, दुराचारी दुर्योधन से मेरी यह बात कह देना कि–

गृध्रोदरे वा वस्तव्यं पुरे वा नागसाह्वये॥ १८॥
प्रतिज्ञातं मया तच्च सभामध्ये नराधम।
कर्ताहं तद् वचः सत्यं सत्येनैव शपामि ते॥ १९॥
दुःशासनस्य रुधिरं हत्वा पास्याम्यहं मृधे।
सक्थिनी तव भङ्क्त्वैव हत्वा हि तव सोदरान्॥ २०॥
सर्वेषां धार्तराष्ट्राणामहं मृत्युः सुयोधन।
सर्वेषां राजपुत्राणामभिमन्युरसंशयम्॥ २१॥
कर्मणा तोषयिष्यामि भूयश्चैव वचः शृणु।
हत्वा सुयोधन त्वां वै सहितं सर्वसोदरैः॥ २२॥
आक्रमिष्ये पदा मूर्ध्नि धर्मराजस्य पश्यतः।

हे नराधम! तुझे मरकर या तो गिद्धों के पेट में जाना चाहिये या भागकर हस्तिनापुर में छिप जाना चाहिये। मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि सभा के बीच में मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे मैं अवश्य सत्य करूँगा। मैं दुश्शासन को युद्ध में मारकर उसका खून पीऊँगा। मैं तेरे सारे भाइयों को मारकर तेरी जाँघें तोडूँगा। हे दुर्योधन! मैं धृतराष्ट्र के सारे पुत्रों की मृत्यु हूँ। इसी प्रकार सारे राजकुमारों की मृत्यु निश्चितरूप से अभिमन्यु है। मैं अपने कर्मों से तुझे सन्तुष्ट कर दूँगा और एक बात और सुनले कि हे दुर्योधन! तुझे तेरे सारे भाइयों के साथ मारकर धर्मराज युधिष्ठिर के सामने ही तेरे सिर में ठोकर मारूँगा।

नकुलस्तु ततो वाक्यमिदमाह महीपते॥ २३॥
उलूक ब्रूहि कौरव्यं धार्तराष्ट्रं सुयोधनम्।
श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेव यथातथम्॥ २४॥
तथा कर्तास्मि कौरव्य यथा त्वमनुशास्सि माम्।
सहदेवोऽपि नृपते इदमाह वचोऽर्थवत्॥ २५॥
सुयोधन मतिर्या ते वृथैषा ते भविष्यति।
शोचिष्यसे महाराज सपुत्रज्ञातिबान्धवः॥ २६॥
इमं च क्लेशमस्माकं हृष्टो यत् त्वं विकत्थसे।

हे राजन्! फिर नकुल ने भी यह कहा कि हे उलूक! तू कुरुवंशी धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन से कहना कि मैंने तेरी सारी बातें जैसी की तैसी सुन लीं। अब तू जैसा मुझसे कह रहा है, मैं वैसा ही करूँगा। हे राजन्! तब सहदेव ने भी यह सार्थक वचन कहा कि– हे महाराज दुर्योधन! तेरी इस समय जो बुद्धि है, वह व्यर्थ हो जायेगी। तू जो हमारे कष्टों के बारे में डींग मार रहा है, फिर तू अपने पुत्रों, परिवारवालों और बन्धुओंसहित शोक करेगा।

धृष्टद्युम्नोऽपि कैतव्यमुलूकमिदमब्रवीत्॥ २७॥
सुयोधनो मम वचो वक्तव्यो नृपतेः सुतः।
अहं द्रोणं हनिष्यामि सगणं सहबान्धवम्॥ २८॥
अवश्यं च मया कार्यं पूर्वेषां चरितं महत्।
कर्ता चाहं तथा कर्म यथा नान्यः करिष्यति॥ २९॥

तब धृष्टद्युम्न ने भी जुआरी के पुत्र उलूक से यह कहा कि उस राजा के लड़के दुर्योधन से मेरी यह बात कह देना कि मैं द्रोण को उनके गणों और बन्धुबान्धवों सहित मार दूँगा। मुझे अपने पूर्वजों के आचरण का अनुकरण अवश्य करना चाहिये। मैं ऐसा कर्म करके दिखाऊँगा, जिसे कोई दूसरा नहीं करेगा।

उलूकस्तत आगम्य दुर्योधनममर्षणम्।
अर्जुनस्य समादेशं यथोक्तं सर्वमब्रवीत्॥ ३०॥
वासुदेवस्य भीमस्य धर्मराजस्य पौरुषम्।
कैतव्यस्य तु तद् वाक्यं निशम्य भरतर्षभः॥ ३१॥
दुःशासनं च कर्णं च शकुनिं चापि भारत।

तब उलूक ने अमर्षशील दुर्योधन के पास आकर अर्जुन के सन्देश को, श्रीकृष्ण, भीम और युधिष्ठिर की पौरुष भरी बातों को जैसे का तैसा समग्र रूप में सुनाया। हे भारत! जुहारी के पुत्र के उन वाक्यों को सुनकर उस भरतश्रेष्ठ दुर्योधन ने दुश्शासन, कर्ण और शकुनि से यह कहा कि–

आज्ञापयत राज्ञश्च बलं मित्रबलं तथा॥ ३२॥
यथा प्रागुदयात् सर्वे युक्तास्तिष्ठन्त्वनीकिनः।
ततः कर्णसमादिष्टा दूताः संत्वरिता रथैः॥ ३३॥
उष्ट्रवामीभिरप्यन्ये सदश्वैश्च महाजवैः।
तूर्णं परिययुः सेनां कृत्स्नां कर्णस्य शासनात्।
आज्ञापयन्तो राज्ञश्च योगः प्रागुदयादिति॥ ३४॥

सब राजाओं की सेना और मित्रों की सेना को यह आज्ञा दे दो कि कल सूर्योदय से पहले ही सब सेना के साथ तैयार होकर डट जायें। तब कर्ण के द्वारा भेजे हुए दूतों ने शीघ्रता से रथों के द्वारा, ऊँट ऊँटनियों द्वारा तथा शीघ्रगामी उत्तम घोड़ों के द्वारा सारी सेना में घूम फिरकर राजा का यह आदेश सुना दिया कि सूर्योदय से पहले ही युद्ध के लिये तैयार होना है।

साठवाँ अध्याय : दुर्योधन को भीष्म का कौरवपक्ष के वीरों का परिचय देना।

संजय उवाच

सैनापत्यमनुप्राप्य भीष्मः शान्तनवो नृप।
दुर्योधनमुवाचेदं वचनं हर्षयन्निव॥ १॥
सेनाकर्मण्यभिज्ञोऽस्मि व्यूहेषु विविधेषु च।
कर्म कारयितुं चैव भृतानप्यभृतांस्तथा॥ २॥
यात्रायाने च युद्धे च तथा प्रशमनेषु च।
भृशं वेद महाराज यथा वेद बृहस्पतिः॥ ३॥
सोऽहं योत्स्यामि तत्त्वेन पालयंस्तव वाहिनीम्।
यथावच्छास्त्रतो राजन् व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ ४॥

तब संजय ने धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजन्! सेनापति के पद को प्राप्त कर शान्तनुपुत्र भीष्म ने दुर्योधन को उसे हर्षित करते हुए यह कहा कि मैं सेनासंचालन के कार्य को जानता हूँ। अनेक प्रकार के व्यूहों की रचना भी जानता हूँ। तुम्हारी सेना के जो वेतनभोगी तथा तुम्हारे मित्रों की सेना के जो वेतन न लेनेवाले सैनिक हैं, उनसे भी कार्य कराने में मैं कुशल हूँ। हे महाराज! युद्ध के लिये यात्रा पर प्रस्थान करने, युद्ध करने और युद्ध को शान्त करने आदि इन कार्यों को जैसा बृहस्पति जानते थे, वैसे ही मैं भी जानता हूँ। अब मैं हे राजन्! तुम्हारी सेना की रक्षा करता हुआ, शास्त्रीयविधि के अनुसार पाण्डवों से यथार्थरूप में युद्ध करूँगा। इसलिये तुम्हारी मानसिक चिन्ता समाप्त हो जानी चाहिये।

दुर्योधन उवाच

किं पुनस्त्वयि दुर्धर्षे सैनापत्ये व्यवस्थिते।
द्रोणे च पुरुषव्याघ्रे स्थिते युद्धाभिनन्दिनि॥ ५॥

भवद्भ्यां पुरुषाग्र्याभ्यां स्थिताभ्यां विजये मम।
न दुर्लभं कुरुश्रेष्ठ देवराज्यमपि ध्रुवम्॥ ६॥
रथ संख्यां तु कात्स्न्येंन परेषामात्मनस्तथा।
तथैवातिरथानां च वेत्तुमिच्छामि कौरव॥ ७॥
पितामहो हि कुशलः परेषामात्मनस्तथा।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वैः सहैभिर्वसुधाधिपैः॥ ८॥

तब दुर्योधन ने कहा कि आप जैसे दुर्धर्ष वीर के मेरे सेनापति बनने पर तथा युद्ध का अभिनन्दन करनेवाले द्रोणाचार्य के मेरे सहायक होने पर मुझे कैसे भय हो सकता है? आप दोनों पुरुषश्रेष्ठों के मेरी विजय के लिये स्थित होने पर हे कुरुश्रेष्ठ! मेरे लिये देवताओं का राज्य भी प्राप्त करना कठिन नहीं है। हे कौरव! मैं अपने तथा शत्रुओं के रथियों तथा अतिरथियों के बारे में जानना चाहता हूँ। हे पितामह! आप दोनों पक्षों के वीरों के विषय में जानकारी रखने में कुशल हैं, इसलिये मैं इन सब राजाओं के सम्मुख आपसे इस विषय में सुनना चाहता हूँ।

भीष्म उवाच

गान्धारे शृणु राजेन्द्र रथसंख्यां स्वके बले।
ये रथाः पृथिवीपाल तथैवातिरथाश्च ये॥ ९॥
भवानग्रे रथोदारः सह सर्वैः सहोदरैः।
दुःशासनप्रभृतिभिर्भ्रातृभिः शतसम्मितैः॥ १०॥
सर्वे कृतप्रहरणाश्छेदभेदविशारदाः।
रथोपस्थे गजस्कन्धे गदाप्रासासिचर्मणि॥ ११॥
संयन्तारः प्रहर्तारः कृतास्त्रा भारसाधनाः।
इष्वस्त्रे द्रोणशिष्याश्च कृपस्य च शरद्वतः॥ १२॥

तब भीष्म ने कहा कि हे गान्धारी के पुत्र राजेन्द्र! पृथिवीपाल! तुम अपनी सेना में जो रथी और अतिरथी हैं, उनके बारे में सुनो। सबसे पहले दुश्शासन आदि अपने सौ भाइयों के साथ तुम एक उदाररथी हो। तुम सबलोग प्रहारविद्या में चतुर और छेदन तथा भेदन में कुशल हो। रथ पर और हाथी की पीठ पर बैठकर युद्ध कर सकते हो, गदा, प्रास, ढाल, तलवार के प्रयोग में भी कुशल हो। तुम लोग रथसंचालन करनेवाले, प्रहार करनेवाले, अस्त्रविद्या में कुशल और भार उठाने में समर्थ हो। धनुर्विद्या में तुमलोग शरद्वान्‌पुत्र कृपाचार्य और द्रोणाचार्य के शिष्य हो।

एते हनिष्यन्ति रणे पञ्चालान् युद्धदुर्मदान्।
कृतकिल्बिषाः पाण्डवेयैर्धार्तराष्ट्रा मनस्विनः॥ १३॥
तथाहं भरतश्रेष्ठ सर्वसेनापतिस्तव।
शत्रून् विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान्॥ १४॥
न त्वात्मनो गुणान् वक्तुमर्हामि विदितोऽस्मि ते।
कृतवर्मा त्वतिरथो भोजः शस्त्रभृतां वरः॥ १५॥
अर्थसिद्धिं तव रणे करिष्यति न संशयः।
शस्त्रविद्भिरनाधृष्यो दूरपाती दृढायुधः॥ १६॥

धृतराष्ट्र के ये सारे मनस्वीपुत्र पाण्डवों के साथ बैर बाँधे हुए हैं, इसलिये ये युद्ध में उन्मत होकर लड़नेवाले पाँचाल योद्धाओं को युद्धक्षेत्र में मार देंगे। हे भरतश्रेष्ठ! मैं तुम्हारी सारी सेना का सेनापति हूँ। मैं भी इसीप्रकार पाण्डवों को कष्ट देकर शत्रुओं का विनाश करूँगा। तुम्हें पता ही है कि मैं अपने गुणों का बखान नहीं कर सकता। भोजवंशी कृतवर्मा शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अतिरथी है। इसमें संशय नहीं है कि ये तुम्हारे प्रयोजन को युद्धक्षेत्र में पूरा करेंगे क्योंकि ये शस्त्रधारियों के द्वारा मार देनेयोग्य नहीं हैं, इनके आयुध दृढ़ हैं और दूरतक मार करते हैं।

मद्रराजो महेष्वासः शल्यो मेऽतिरथो मतः।
स्पर्धते वासुदेवेन नित्यं यो वै रणे रणे॥ १७॥
भागिनेयान् निजांस्त्यक्त्वा शल्यस्तेऽतिरथो मतः।
एष योत्स्यति संग्रामे पाण्डवांश्च महारथान्॥ १८॥
सागरोर्मिसमैर्बाणैः प्लावयन्निव शात्रवान्।
भूरिश्रवाः कृतास्त्रश्च तव चापि हितः सुहृत्॥ १९॥
सौमदत्तिर्महेष्वासो रथयूथपयूथपः।
बलक्षयममित्राणां सुमहान्तं करिष्यति॥ २०॥

महाधनुर्धर शल्य मेरे विचार से अतिरथी हैं, ये प्रत्येक युद्ध में श्रीकृष्ण के साथ स्पर्द्धा करते हैं। मेरे द्वारा अतिरथी मानेजानेवाले ये शल्य अपने सगे भानजों नकुल और सहदेव को छोड़कर, संग्राम में पाण्डव महारथियों से समुद्र की लहरों के समान अपनी बाणवर्षा में शत्रुओं को डुबाते हुए से युद्ध करेंगे। सोमदत्त के पुत्र महाधनुर्धर भूरिश्रवा तुम्हारे हितैषी मित्र हैं। ये अस्त्रविद्याकुशल, रथियों के यूथपतियों के भी यूथपति हैं। ये शत्रुओं की सेना का महान् संहार करेंगे।

सिन्धुराजो महाराज मतो मे द्विगुणो रथः।
योत्स्यते समरे राजन् विक्रान्तो रथसत्तमः॥ २१॥

सुदक्षिणस्तु काम्बोजो रथ एकगुणो मतः।
तवार्थसिद्धिमाकाङ्क्षन् योत्स्यते समरे परैः॥ २२॥
एतस्य रथसिंहस्य तवार्थे राजसत्तम।
पराक्रमं यथेन्द्रस्य द्रक्ष्यन्ति कुरवो युधि॥ २३॥
एतस्य रथवंशे हि तिग्मवेगप्रहारिणः।
काम्बोजानां महाराज शलभानामिवायतिः॥ २४॥

हे महाराज! सिन्धुराज जयद्रथ मेरे मत से दो रथियों के बराबर हैं। हे राजन्! रथियों में श्रेष्ठ ये पराक्रमी पाण्डवों के साथ युद्ध करेंगे। कम्बोज नरेश सुदक्षिण एक रथी माने गये हैं। ये तुम्हारे कार्य की सिद्धि की आकाँक्षा लिये युद्धभूमि में शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे। हे राजश्रेष्ठ! रथियों में सिंह के समान इनके तुम्हारे लिये प्रकट किये इन्द्र के समान पराक्रम को कौरव लोग युद्ध में देखेंगे। हे महाराज! प्रचंड वेग से प्रहार करनेवाले इनके काम्बोजदेशीय सैनिकों की स्थिति रथियों के समुदाय में टिड्डी दल जैसी होती है।

नीलो माहिष्मतीवासी नीलवर्मा रथस्तव।
रथवंशेन कदनं शत्रूणां वै करिष्यति॥ २५॥
कृतवैरः पुरा चैव सहदेवेन मारिष।
योत्स्यते सततं राजंस्तवार्थे कुरुनन्दन॥ २६॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ संमतौ रथसत्तमौ।
कृतिनौ समरे तात दृढवीर्यपराक्रमौ॥ २७॥
एतौ तौ पुरुषव्याघ्रौ रिपुसैन्यं प्रधक्ष्यतः।
गदाप्रासासिनाराचैस्तोमरैश्च करच्युतैः॥ २८॥
युद्धाभिकामौ समरे क्रीडन्ताविव यूथपौ।
यूथमध्ये महाराज विचरन्तौ कृतान्तवत्॥ २९॥

माहिष्मतीनिवासी नीला कवच पहने राजा नील एक रथी हैं। ये अपने रथसमुदाय के द्वारा शत्रुओं का विनाश करेंगे। हे राजन्! कुरुनन्दन! पहले इनका सहदेव के साथ वैर हो गया था, इसलिये ये लगातार तुम्हारे लिये युद्ध करेंगे। अवन्तीदेश के विन्द और अनुविन्द श्रेष्ठ रथी माने गये हैं। हे तात! ये युद्ध में कार्य करनेवाले, और दृढ़ बल तथा पराक्रम से युक्त हैं। ये दोनों पुरुषश्रेष्ठ अपने हाथों से छोड़े हुए गदा, प्रास, तलवार, नाराच और तोमरों से शत्रुसेना को भस्म करेंगे। हे महाराज! हाथियों के झुंड में खेल सा करते हुए, विचरते हुए दो यूथपति गजराजों के समान ये भी युद्ध की अभिलाषा से युद्धक्षेत्र में मृत्यु के समान विचरण करते हैं।

त्रिगर्ता भ्रातरः पञ्च रथोदारा मता मम।
कृतवैराश्च पार्थैस्ते विराटनगरे तदा॥ ३०॥
मकरा इव राजेन्द्र समुद्धततरङ्गिणीम्।
गङ्गां विक्षोभयिष्यन्ति पार्थानां युधि वाहिनीम्॥ ३१॥
ते रथाः पञ्च राजेन्द्र येषां सत्यरथो मुखम्।
एते योत्स्यन्ति संग्रामे संस्मरन्तः पुराकृतम्॥ ३२॥
व्यलीकं पाण्डवेयेन भीमसेनानुजेन ह।
दिशो विजयता राजन् श्वेतवाहेन भारत॥ ३३॥
ते हनिष्यन्ति पार्थानां तानासाद्य महारथान्।
वरान् वरान् महेष्वासान् क्षत्रियाणां धुरन्धरान्॥ ३४॥

त्रिगर्तदेश के पाँच भाई मेरे मत से उदाररथी हैं। इनका तब विराटनगर में कुन्तीपुत्रों से बैर बढ़ गया था। हे राजेन्द्र! जैसे मगरमच्छ उत्तालतरंगोंवाली गंगा को मथ देते हैं, वैसे ही ये युद्ध में कुन्तीपुत्रों की सेना को क्षुब्ध कर देंगे। हे राजेन्द्र! इन पाँचों रथियों में सत्यरथ प्रमुख है। हे राजन्! हे भारत दिग्विजय के समय पाण्डव भीमसेन के छोटे भाई श्वेतवाहन अर्जुन के द्वारा इनका जो अप्रिय हुआ था, उस पुरानी बात को याद करते हुए ये संग्राम में युद्ध करेंगे। ये कुन्तीपुत्रों के श्रेष्ठ, महाधनुर्धर महारथी, क्षत्रियों में धुरन्धर, वीरों के पास जाकर उनका संहार करेंगे।

लक्ष्मणस्तव पुत्रश्च तथा दुःशासनस्य च।
उभौ तौ पुरुषव्याघ्रौ संग्रामेष्वपलायिनौ॥ ३५॥
तरुणौ सुकुमारौ च राजपुत्रौ तरस्विनौ।
युद्धानां च विशेषज्ञौ प्रणेतारौ च सर्वशः॥ ३६॥
रथौ तौ कुरुशार्दूल मतौ मे रथसत्तमौ।
क्षत्रधर्मरतौ वीरौ महत् कर्म करिष्यतः॥ ३७॥
दण्डधारो महाराज रथ एको नरर्षभ।
योत्स्यते तव संग्रामे स्वेन सैन्येन पालितः॥ ३८॥

तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण और दुश्शासन का पुत्र दोनों पुरुषव्याघ्र हैं और युद्ध में से भागनेवाले नहीं हैं। ये वेगशाली तरुण सुकुमार, राजकुमार, युद्धों के विशेषज्ञ और सब तरह से सेनानायक होनेयोग्य हैं। हे कुरुशार्दूल! ये रथी तो हैं, पर रथियों में भी श्रेष्ठ हैं। क्षात्रधर्म में लगे हुए ये दोनों वीर महान् कर्म करेंगे। हे नरश्रेष्ठ, महाराज। दण्डधार एक रथी है, जो आपके युद्ध में अपनी सेना से सुरक्षित होकर युद्ध करेगा।

बृहद्बलस्तथा राजा कौसल्यो रथसत्तमः।
रथो मम मतस्तात महावेगपराक्रमः॥ ३९॥

एष योत्स्यति संग्रामे स्वान् बन्धून् सम्प्रहर्षयन्।
उग्रायुधो महेष्वासो धार्तराष्ट्रहिते रतः॥ ४०॥
कृपः शारद्वतो राजन् रथयूथपयूथपः।
प्रियान् प्राणान् परित्यज्य प्रधक्ष्यति रिपूंस्तव॥ ४१॥
एष सेनाः सुबहुला विविधायुधकार्मुकाः।
अग्निवत् समरे तात चरिष्यति विनिर्दहन्॥ ४२॥

कौशलदेश का राजा बृहद्बल, मेरे विचार से एक रथी है। हे तात! रथियों में इसका स्थान ऊँचा है। इसका वेग और पराक्रम महान् है। धृतराष्ट्र के पुत्रों के हित में लगे हुए भयंकर आयुधोंवाले महा धनुर्धर ये अपने बन्धुओं के हर्ष को बढ़ाते हुए युद्ध करेंगे। हे राजन्! शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य रथियों के यूथपतियों भी यूथपति हैं। ये अपने प्यारे प्राणों का मोह छोड़कर आपके शत्रुओं को भस्म करेंगे। हे तात! ये विविध प्रकार के आयुध और धनुषबाण धारण करनेवाली अत्यन्त विशाल सेनाओं को अग्नि के समान जलाते हुए युद्धक्षेत्र में विचरण करेंगे।

इकसठवाँ अध्याय : भीष्म पितामह द्वारा कौरवपक्ष के वीरों का वर्णन।

भीष्म उवाच

शकुनिर्मातुलस्तेऽसौ रथ एको नराधिप।
प्रयुज्य पाण्डवैर्वैरं योत्स्यते नात्र संशयः॥ १॥
एतस्य सेना दुर्धर्षा समरे प्रतियायिनः।
विकृतायुधभूयिष्ठा वायुवेगसमा जवे॥ २॥
द्रोणपुत्रो महेष्वासः सर्वानेवाति धन्विनः।
समरे चित्रयोधी च दृढास्त्रश्च महारथः॥ ३॥
एतस्य हि महाराज यथा गाण्डीवधन्वनः।
शरासनविनिर्मुक्ताः संसक्ता यान्ति सायकाः॥ ४॥

हे नराधिप! तुम्हारा मामा शकुनि एक रथी है। यह पाण्डवों के प्रति बैर धारण करता हुआ उनसे युद्ध करेगा। इसमें संशय नहीं है। युद्ध में मुकाबला करनेवाली इसकी सेना दुर्धर्ष है, यह वेग में आयुधों से युक्त है। द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा महाधनुर्धर और सारे धनुर्धरों से बढ़कर है। सुदृढ़ अस्त्रोंवाला यह महारथी युद्ध में विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाला है। हे महाराज! गाण्डीवधनुर्धारी अर्जुन के समान इसके बाण भी धनुष से छूटे हुए परस्पर सटे हुए ही चलते हैं।

नैष शक्यो मया वीरः संख्यातुं रथसत्तमः।
निर्दहेदपि लोकांस्त्रीनिच्छन्नेष महारथः॥ ५॥
क्रोधस्तेजश्च तपसा सम्भृतोऽऽश्रमवासिनाम्।
द्रोणेनानुगृहीतश्च दिव्यैरस्त्रैरुदारधीः॥ ६॥
दोषस्त्वस्य महानेको येनैव भरतर्षभ।
न मे रथी नातिरथो मतः पार्थिवसत्तम॥ ७॥
जीवितं प्रियमत्यर्थमायुष्कामः सदा द्विजः।
न ह्यस्य सदृशः कश्चिदुभयोः सेनयोरपि॥ ८॥

रथियों में श्रेष्ठ इस महारथी के गुणों की मैं गणना नहीं कर सकता। यह चाहे तो तीनों लोकों को भी भस्म कर सकता है। यह क्रोध, तेज और आश्रमवासियों के तप से युक्त है। इस उदारबुद्धि को द्रोणाचार्य ने दिव्यास्त्रों का ज्ञान देकर अनुगृहीत किया है। हे भरतश्रेष्ठ और राजश्रेष्ठ! पर इसमें एक महान् दोष है जिससे मैं इसे न रथी मानता हूँ और न अतिरथी। इस ब्राह्मण को अपना जीवन बहुत प्रिय है, यह लम्बी आयु तक जीना चाहता है। वैसे इसके समान दोनों सेनाओं में कोई नहीं है।

असंसख्येयगुणो वीरः प्रहर्ता दारुणद्युतिः।
पिता त्वस्य महातेजा वृद्धोऽपि युवभिर्वरः॥ ९॥
रणे कर्म महत् कर्ता अत्र मे नास्ति संशयः।
अस्त्रवेगानिलोद्धूतः सेनाकक्षेन्धनोत्थितः॥ १०॥
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि प्रधक्ष्यति रणे धृतः।
रथयूथपयूथानां यूथपोऽयं नरर्षभः॥ ११॥
भारद्वाजात्मजः कर्ता कर्म तीव्रं हितं तव।
सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यः स्थविरो गुरुः॥ १२॥
गच्छेदन्तं सृंजयानां प्रियस्त्वस्य धनंजयः।

असंख्य गुणोंवाला यह वीर प्रहार करनेवाला और भयंकर तेजवाला है। इसके पिता द्रोणाचार्य महातेजस्वी हैं। ये बूढ़े हैं पर जवानों से श्रेष्ठ हैं। ये युद्ध में महान कर्म करेंगे, मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है। ये अस्त्रों के वेगरूपी वायु से उद्दीप्त हुई अग्नि के समान हैं, सेनारूपी घासफूस और ईंधन को पाकर ये प्रज्वलित होंगे और युद्ध में डटे हुए युधिष्ठिर की सेनाओं को भस्म करेंगे। भरद्वाज के

पुत्र ये नरश्रेष्ठ, रथियों के यूथपतियों के समुदायों के भी यूथपति हैं। ये तुम्हारे हित में तीव्र कर्म करेंगे। ये वृद्ध सारे मूर्धाभिषिक्त राजाओं के आचार्य और गुरु हैं। ये सृंजयों का विनाश करेंगे, पर इन्हें अर्जुन बहुत प्रिय है।

नैष जातु महेष्वासः पार्थमक्लिष्टकारिणम्॥ १३॥
हन्यादाचार्यकं दीप्तं संस्मृत्य गुणनिर्जितम्।
श्लाघतेऽयं सदा वीर पार्थस्य गुणविस्तरैः॥ १४॥
पुत्रादभ्यधिकं चैनं भारद्वाजोऽनुपश्यति।
पौरवो राजशार्दूलस्तव राजन् महारथः॥ १५॥
मतो मम रथोदारः परवीररथारुजः।
स्वेन सैन्येन महता प्रतपन् शत्रुवाहिनीम्॥ १६॥
प्रधक्ष्यति स पञ्चालान् कक्षमग्निगतिर्यथा।

महाधनुर्धर द्रोणाचार्य का समुज्ज्वल आचार्यभाव अर्जुन ने अपने गुणों से जीत लिया है। उन्हें याद करके ये अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अर्जुन को कभी नहीं मारेंगे। ये भरद्वाजवंशी आचार्य, वीर सदा अर्जुन के गुणों का विस्तार से वर्णन करते हुए उसकी प्रशंसा करते हैं। ये उसे पुत्र से भी अधिक समझते हैं। हे राजन्! राजसिंह पौरव, तुम्हारी सेना में मेरे मत से उदार महारथी है। वह शत्रुओं के वीर रथियों को पीड़ा देनेवाला है। ये राजा पौरव अपनी विशाल सेना से शत्रु की सेना को सन्तप्त करते हुए पांचालों को ऐसे भस्म कर देंगे, जैसे अग्नि घासफूस को।

वृषसेनो रथस्तेऽग्र्यः कर्णपुत्रो महारथः॥ १७॥
प्रधक्ष्यति रिपूणां ते बलं तु बलिनां वरः।
जलसंधो महातेजा राजन् रथवरस्तव॥ १८॥
एष योत्स्यति संग्रामे गजस्कन्धविशारदः।
रथेन वा महाबाहुः क्षपयन् शत्रुवाहिनीम्॥ १९॥
बाह्लीकोऽतिरथश्चैव समरे चानिवर्तनः।
यथा सततगो राजन् स हि हन्यात् परान् रणे॥ २०॥

कर्ण का पुत्र वृषसेन तुम्हारी सेना में एक श्रेष्ठ रथी है, यह महारथी भी है। बलियों में श्रेष्ठ यह शत्रुओं की सेना को दग्ध करेगा। हे राजन्! तुम्हारी सेना में महातेजस्वी, मधुवंशी, जलसंध, शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाला रथियों में श्रेष्ठ है। यह महाबाहु, जो हाथी के कन्धे या रथ पर बैठकर युद्ध करने में चतुर है, शत्रुसेना का संहार करते हुए युद्ध करेगा। युद्ध में पीछे न हटनेवाले बाह्लीक अतिरथी वीर हैं। हे राजन्! ये युद्ध में वायु के समान वेग से शत्रुओं को मारेंगे।

सेनापतिर्महाराज सत्यवांस्ते महारथः।
रणेष्वद्भुतकर्मा च रथी पररथारुजः॥ २१॥
एतस्य समरं दृष्ट्वा न व्यथास्ति कथञ्चन।
उत्स्मयन्नुत्पतत्येष परान् रथपथे स्थितान्॥ २२॥
अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः क्रूरकर्मा महारथः।
हनिष्यति परान् राजन् पूर्ववैरमनुस्मरन्॥ २३॥
एष राक्षससैन्यानां सर्वेषां रथसत्तमः।
मायावी दृढवैरश्च समरे विचरिष्यति॥ २४॥

हे महाराज! तुम्हारे सेनापति सत्यवान् भी वीर हैं। ये रण में अद्भुत कर्म करनेवाले और शत्रुओं के रथियों को पीड़ित करनेवाले हैं। इन्हें युद्ध को देखकर किसी प्रकार की व्यथा नहीं होती है। रथ के मार्ग में खड़े हुए शत्रुओं पर ये हँसते हँसते आक्रमण कर देते हैं। राक्षसराज क्रूरकर्मा अलम्बुष भी महारथी है। हे राजन्! यह पिछले बैर को याद करता हुआ शत्रुओं का संहार करेगा। यह अपने राक्षससैनिकों में सबसे श्रेष्ठ रथी है। छलकपट से युद्ध करनेवाला और बैर को दृढ़ रखनेवाला यह युद्धक्षेत्र में विचरण करेगा।

प्राग्ज्योतिषाधिपो वीरो भगदत्तः प्रतापवान्।
गजाङ्कुशधरश्रेष्ठो रथे चैव विशारदः॥ २५॥
एतेन युद्धमभवत् पुरा गाण्डीवधन्वनः।
दिवसान् सुबहून् राजन्नुभयोर्जयगृद्धिनोः॥ २६॥
ततः सखायं गान्धारे मानयन् पाकशासनम्।
अकरोत् संविदं तेन पाण्डवेन महात्मना॥ २७॥
अचलो वृषकश्चैव सहितौ भ्रातरावुभौ।
रथौ तव दुराधर्षौ शत्रून् विध्वंसयिष्यतः॥ २८॥
बलवन्तौ नरव्याघ्रौ दृढक्रोधौ प्रहारिणौ।
गान्धारमुख्यौ तरुणौ दर्शनीयौ महाबलौ॥ २९॥

प्राग्ज्योतिष्पुर का राजा, प्रतापी वीर भगदत्त हाथ में हाथी के अंकुश को लेकर हाथियों को वश में करता है। यह रथयुद्ध में भी कुशल है। इसके साथ पहले गांडीवधनुर्धारी अर्जुन का युद्ध हुआ था। हे राजन्! अपनी अपनी विजय को चाहनेवाले दोनों में बहुत दिनों तक युद्ध चला था। हे गान्धारीपुत्र! फिर इन्द्र के साथ अपनी मित्रता का सम्मान करते हुए

इसने उस महात्मा पाण्डव के साथ संधि कर ली थी। अचल और वृषक नाम के ये दोनों साथ रहनेवाले भाई तुम्हारे दुर्धर्ष रथी हैं। ये शत्रुओं का विनाश करेंगे। गान्धारदेश के ये प्रधान नरव्याघ्र अत्यन्त क्रोधी, प्रहार करनेवाले, बलवान्, और दर्शनीय महाबली हैं।

सखा ते दयितो नित्यं य एष रणकर्कशः।
उत्साहयति राजंस्त्वां विग्रहे पाण्डवैः सह॥ ३०॥
परुषः कत्थनो नीचः कर्णो वैकर्तनस्तव।
मन्त्री नेता च बन्धुश्च मानी चात्यन्तमुच्छ्रितः॥ ३१॥
एष नैव रथः कर्णो, न चाप्यतिरथो रणे।
नैष फाल्गुनमासाद्य पुनर्जीवन् विमोक्ष्यते॥ ३२॥

तुम्हारा यह प्रिय मित्र वैकर्तन कर्ण, जो हे राजन्! सदा तुम्हें पाण्डवों के साथ युद्ध के लिये उकसाता रहता है रणकर्कश, कटुभाषी, डींग मारनेवाला, नीच और अभिमानी है। यह तुम्हारा मन्त्री, नेता और बन्धु है और तुम्हारा सहारा पाकर बहुत ऊँचा चढ़ गया है। यह युद्ध में न तो रथी है और न अतिरथी है। यह अर्जुन को प्राप्त करके जीवित नहीं बचेगा।

ततोऽब्रवीत् पुनर्द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
एवमेतद् यथाऽऽत्थ त्वं न मिथ्यास्ति कदाचन॥ ३३॥
रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते।
घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः॥ ३४॥

तब सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने कहा कि जैसा आपने कहा वैसा ही है। आपका विचार मिथ्या नहीं है। यह प्रत्येक युद्ध में अभिमान तो बहुत करता है, पर फिर वहाँ से भागता है। यह घृणा करनेवाला और प्रमादी है। इसलिये मेरे मत में अर्धरथी ही है।

एतच्छ्रुत्वा तु राधेयः क्रोधादुत्फाल्य लोचने।
उवाच भीष्मं राधेयस्तुदन् वाग्भिः प्रतोदवत्॥ ३५॥
पितामह यथेष्टं मां वाक्शरैरुपकृन्तसि।
अनागसं सदा द्वेषादेवमेव पदे पदे॥ ३६॥
मर्षयामि च तत् सर्वं दुर्योधनकृतेन वै।
त्वं तु मां मन्यसे मन्दं यथा कापुरुषं तथा॥ ३७॥
भवानर्धरथो मह्यं मतो वै नात्र संशयः।
सर्वस्य जगतश्चैव गाङ्गेयो न मृषा वदेत्॥ ३८॥

यह सुनकर राधापुत्र कर्ण क्रोध से आँखें फाड़कर देखता हुआ और भीष्म को अपनी वाणी रूपी चाबुक से पीडित करता हुआ बोला कि हे पितामह! मैं निरपराध हूँ, पर फिर भी तुम द्वेष के कारण मुझे कदम कदम पर अपने वचनरूपी बाणों से काटते रहते हो। मैं दुर्योधन के कारण ही यह सब सहन कर लेता हूँ, पर तुम मुझे मूर्ख और कायर समझते हो। आप मेरे विषय में जो अर्धरथी होने का मत प्रकट कर रहे हैं, उससे सारा संसार मुझे ऐसा ही समझेगा। क्योंकि वे समझते हैं कि गंगापुत्र झूठ नहीं बोलते।

कुरूणामहितो नित्यं न च राजावबुध्यते।
को हि नाम समानेषु राजसूदारकर्मसु॥ ३९॥
तेजोवधमिमं कुर्याद् विभेदयिषुराहवे।
यथा त्वं गुणविद्वेषादपरागं चिकीर्षसि॥ ४०॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः।
महारथत्वं संख्यातुं शक्यं क्षत्रस्य कौरव॥ ४१॥
बलज्येष्ठं स्मृतं क्षत्रं मन्त्रज्येष्ठा द्विजातयः।
धनज्येष्ठाः स्मृता वैश्याः शूद्रास्तु वयसाधिकाः॥ ४२॥

तुम सदा कौरवों का अहित करते हो पर राजा दुर्योधन इस बात को समझते नहीं हैं। समान श्रेणी के उदारचरित्र राजाओं के एकत्र होने पर युद्ध के समय, फूट डालने की इच्छा से कौन व्यक्ति अपने ही पक्ष के योद्धा का तेज नष्ट करेगा? जैसे तुम मेरे गुणों के प्रति द्वेष रखने के कारण राजाओं की मेरे प्रति विरक्ति कराना चाहते हो। हे कौरव! केवल बड़ी आयु, बात पक जाने, धन अधिक होने या अधिक संख्या में बन्धुओं के होने से ही क्षत्रिय को महारथी नहीं माना जा सकता। क्षत्रियों में तो बल को ही प्रधान माना जाता है, ब्राह्मणों को वेदमन्त्रों के ज्ञान से, वैश्यों को धन के कारण से और शूद्रों को आयु के कारण श्रेष्ठ माना जाता है।

यथेच्छकं स्वयं ब्रूया रथानतिरथांस्तथा।
कामद्वेषसमायुक्तो मोहात् प्रकुरुते भवान्॥ ४३॥
दुर्योधन महाबाहो साधु सम्यगवेक्ष्यताम्।
त्यज्यतां दुष्टभावोऽयं भीष्मः किल्बिषकृत् तव॥ ४४॥
भिन्ना हि सेना नृपते दुःसंधेया भवत्युत।
मौला हि पुरुषव्याघ्र किमु नानासमुत्थिताः॥ ४५॥
एषां द्वैधं समुत्पन्नं योधानां युधि भारत।
तेजोवधो नः क्रियते प्रत्यक्षेण विशेषतः॥ ४६॥

तुम काम द्वेष और मोह से भरे हुए अपनी इच्छा के अनुसार ही रथियों और अतिरथियों का विभाग कर रहे हो। हे महाबाहु दुर्योधन! तुम खूब अच्छी तरह से देखलो और इस दुष्ट विचारोंवाले भीष्म को त्याग दो। यह तुम्हारा अपकार कर रहा है। हे राजन्! सेना में भेद होने पर उनमें फिर मेल कराना कठिन होता है। हे पुरुषव्याघ्र! तब पुराने सैनिक भी हाथ से निकल जाते हैं। इधरउधर से एकत्र हुए लोगों की तो बात क्या है? हे भारत! युद्ध के अवसर पर इन योद्धाओं के हृदय में दुविधा उत्पन्न हो गयी है, प्रत्यक्षरूप से विशेषकर हमारा तेज नष्ट किया जा रहा है।

रथानां क्व च विज्ञानं क्व च भीष्मोऽल्पचेतनः।
अहमावारयिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम्॥ ४७॥
आसाद्य माममोघेषुं गमिष्यन्ति दिशो दश।
पाण्डवाः सहपञ्चालाः शार्दूलं वृषभा इव॥ ४८॥
क्व च युद्धं विमर्दो वा मन्त्रे सुव्याहृतानि च।
क्व च भीष्मो गतवया मन्दात्मा कालचोदितः॥ ४९॥
एकाकी स्पर्धते नित्यं सर्वेण जगता सह।
न चान्यं पुरुषं कंचिन्मन्यते मोघदर्शनः॥ ५०॥

कहाँ रथियों की जानकारी और कहाँ अल्पबुद्धि भीष्म। मैं अकेला ही पाण्डवों की सेना को रोकं दूँगा। अमोघ बाणोंवाले मुझे प्राप्त कर पाण्डव पांचालों के साथ दसों दिशाओं में ऐसे भाग जायेंगे जैसे सिंह को देखकर बैल भाग जाते हैं। कहाँ युद्ध, मारकाट और गुप्त मन्त्रणा में अच्छी बातें बताना और कहाँ काल से प्रेरित मन्दबुद्धि भीष्म, जिसकी आयु समाप्त हो चली है। ये अकेले ही सारे जगत के साथ स्पर्धा करते हैं और अपनी व्यर्थ की दृष्टि के कारण किसी दूसरे व्यक्ति को कुछ समझते ही नहीं हैं।

श्रोतव्यं खलु वृद्धानामिति शास्त्रनिदर्शनम्।
न त्वेव ह्यतिवृद्धानां पुनर्बाला हि ते मताः॥ ५१॥
अहमेको हनिष्यामि पाण्डवानामनीकिनीम्।
सुयुद्धे राजशार्दूल यशो भीष्मं गमिष्यति॥ ५२॥
कृतः सेनापतिस्त्वेष त्वया भीष्मो नराधिप।
सेनापतौ यशो गन्ता न तु योधान् कथंचन॥ ५३॥
नाहं जीवति गाङ्गेये योत्स्ये राजन् कथंचन।
हते भीष्मे तु योद्धास्मि सर्वैरेव महारथैः॥ ५४॥

शास्त्रों में बताया गया है कि वृद्धों की बातें सुननी चाहिये, पर बहुत अधिक बूढ़ों की नहीं। वे तो फिर बच्चों में ही गिने जाते हैं। हे राजसिंह! युद्ध में पाण्डवों की सेना को मैं अकेला ही नष्ट कर दूँगा। पर उसका यश भीष्म को चला जायेगा। क्योंकि हे राजन्! आपने इसे सेनापति बना रखा है। सेनापति को ही यश प्राप्त होता है, योद्धाओं को नहीं मिलता। इसलिये गंगापुत्र के जीतेजी, मैं किसी प्रकार भी युद्ध नहीं करूँगा। इनके मारे जाने पर सारे महारथियों के साथ युद्ध करूँगा।

भीष्म उवाच

समुद्यतोऽयं भारो मे सुमहान् सागरोपमः।
मिथो भेदो न मे कार्यस्तेन जीवसि सूतज॥ ५५॥
न ह्यहं त्वद्य विक्रम्य स्थविरोऽपि शिशोस्तव।
युद्धश्रद्धामहं छिन्द्यां जीवितस्य च सूतज॥ ५६॥
जामदग्न्येन रामेण महास्त्राणि विमुञ्चता।
न मे व्यथा कृता काचित् त्वं तु मे किं करिष्यसि॥ ५७॥
कामं नैतत् प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम्।
वक्ष्यामि तु त्वां संतप्तो निहीनकुलपांसन॥ ५८॥
समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिराजस्वयंवरे।
निर्जित्यैकरथेनैव याः कन्यास्तरसा हृताः॥ ५९॥

तब भीष्म ने कहा कि मेरे ऊपर यह सेनापतित्व का सागर के समान महान् उत्तरदायित्व का बोझा रखा हुआ है, ऐसी अवस्था में मुझे परस्पर भेद नहीं उत्पन्न करना चाहिये। इसीलिये हे सारथि के पुत्र! तू अभी तक जीवित है। मैं बूढ़ा होने पर भी पराक्रम कर तुझ बालक की युद्धविषयक श्रद्धा और जीवन की आशा को एक साथ छिन्न कर देता। परशुराम जी मेरे ऊपर बड़े बड़े महान् अस्त्रों का प्रयोग करके भी मुझे कष्ट नहीं पहुँचा सके, फिर तू मेरा क्या कर लेगा? भले आदमी अपनी स्वयं की बड़ाई करने को अच्छा नहीं समझते, पर हे नीच कुलकलंक! तेरे व्यवहार से सन्तप्त होकर मुझे कहना पड़ता है कि काशिराज के यहाँ स्वयंवर में एकत्र सारे क्षत्रिय राजाओं को एक रथ के द्वारा ही जीतकर उसकी जो कन्याएँ थीं, उन्हें मैंने वेगपूर्वक हरण कर लिया था।

ईदृशानां सहस्राणि विशिष्टानामथो पुनः।
मयैकेन निरस्तानि ससैन्यानि रणाजिरे॥ ६०॥
त्वां प्राप्य वैरपुरुषं कुरूणामनयो महान्।

उपस्थितो विनाशाय यतस्व पुरुषो भव॥ ६१॥
युद्ध्यस्व समरे पार्थं येन विस्पर्धसे सह।
द्रक्ष्यामि त्वां विनिर्मुक्तमस्माद् युद्धात् सुदुर्मते॥ ६२॥

इन जैसे या इनसे भी बढ़कर हजारों राजा वहाँ एकत्र थे, उस सबको सेनासहित मैंने युद्धक्षेत्र में हरा दिया था। तुझ जैसे बैरपुरुष को प्राप्त करके ही कौरवों के विनाश के लिये महान् अन्याय का अवसर उपस्थित हुआ है। अब तू मर्द बनकर अपनी रक्षा का प्रयत्न कर। तू जिसके साथ स्पर्धा करता है, उस अर्जुन के साथ युद्ध कर। मैं देखूँगा कि हे दुर्मति! तू इस संग्राम में कैसे बच पाता है?

तमुवाच ततो राजा धार्तराष्ट्रः प्रतापवान्।
मां समीक्षस्व गाङ्गेय कार्यं हि महदुद्यतम्॥ ६३॥
चिन्त्यतामिदमेकाग्रं मम निःश्रेयसं परम्।
उभावपि भवन्तौ मे महत् कर्म करिष्यतः॥ ६४॥
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि परेषां रथसत्तमान्।
ये चैवातिरथास्तत्र ये चैव रथयूथपाः॥ ६५॥

तब प्रतापी राजा दुर्योधन ने भीष्म जी से कहा कि हे गंगानन्दन! आप मेरी तरफ देखिये। क्योंकि इस समय महान् कार्य उपस्थित है। आप एकाग्र होकर मेरे कल्याण की बात सोचिये। आप दोनों ही मेरा महान् कार्य पूरा करेंगे। अब मैं शत्रुओं के भी श्रेष्ठ रथियों के बारे में सुनना चाहता हूँ कि वहाँ कौन अतिरथी और कौन रथ यूथपति हैं?

बासठवाँ अध्याय : भीष्म द्वारा पाण्डवों के वीरों का परिचय और पाण्डवों को न मारने का कथन।

भीष्म उवाच

स्वयं राजा रथोदारः पाण्डवः कुन्तिनन्दनः।
अग्निवत् समरे तात चरिष्यति न संशयः॥ १॥
भीमसेनस्तु राजेन्द्र रथोऽष्टगुणसम्मितः।
न तस्यास्ति समो युद्धे गदया सायकैरपि॥ २॥
नागायुतबलो मानी तेजसा न स मानुषः।
माद्रीपुत्रौ च रथिनौ द्वावेव पुरुषर्षभौ॥ ३॥
अश्विनाविव रूपेण तेजसा च समन्वितौ।

तब भीष्म जी ने कहा कि कुन्तीनन्दन! पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर स्वयं एक उदाररथी हैं। हे तात! इसमें संशय नहीं है कि वे अग्नि के समान समरभूमि में विचरण करेंगे। हे राजेन्द्र! भीमसेन तो अकेले आठ रथियों के बराबर हैं। गदा और बाणों द्वारा युद्ध में उसके समान कोई नहीं है। उसमें अनेक हाथियों का बल है, वह स्वाभिमानी और अलौकिक तेजवाला है। भाद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव रूप और तेजमें अश्विनीकुमार के समान हैं और दोनों ही पुरुष श्रेष्ठरथी हैं।

सर्वं एव महात्मानः शालस्तम्भा इवोद्गताः॥ ४॥
प्रादेशेनाधिकाः पुम्भिरन्यैस्ते च प्रमाणतः।
सिंहसंहननाः सर्वे पाण्डुपुत्रा महाबलाः॥ ५॥
चरितब्रह्मचर्याश्च सर्वे तात तपस्विनः।
ह्रीमन्तः पुरुषव्याघ्रा व्याघ्रा इव बलोत्कटाः॥ ६॥
जवे प्रहारे सम्मर्दे सर्व एवातिमानुषाः।
सर्वैर्जिता महीपाला दिग्जये भरतर्षभ॥ ७॥

ये सारे ही महात्मा पाण्डव शालवृक्ष के खम्बों के समान ऊँचे हैं। उनकी लम्बाई दूसरे पुरुषों से एक बित्ता अधिक है। सारे पाण्डुपुत्र सिंह के समान शरीरवाले और महाबली हैं। हे तात! सबने ब्रह्मचर्य का पालन किया हुआ है और तपस्वी हैं। वे पुरुष व्याघ्र लज्जावान् और व्याघ्र के समान उत्कट बलशाली हैं। हे भरतश्रेष्ठ! वेग, प्रहार करने और संघर्ष में वे अमानुषिक शक्ति से युक्त हैं। दिग्विजय के समय सबने ही राजाओं पर विजय पायी थी।

जवे लक्ष्यस्य हरणे भोज्ये पांसुविकर्षणे।
बालैरपि भवन्तस्तैः सर्व एव विशेषिताः॥ ८॥
एतत् सैन्यं समासाद्य सर्व एव बलोत्कटाः।
विध्वंसयिष्यन्ति रणे मा स्म तैः सह सङ्गमः॥ ९॥
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं द्यूते च परुषा गिरः।
ते स्मरन्तश्च संग्रामे चरिष्यन्ति च रुद्रवत्॥ १०॥

वेग से चलने, लक्ष्य भेद करने, खानेपीने, धूल फैंकने आदि में वे बचपन में ही तुम सबको पराजित कर देते थे। सेना में आकर वे सारे ही उत्कट बलशाली हो गये हैं। वे युद्ध में विनाश करेंगे। तुम्हारी उनसे मुठभेड़ नहीं होनी चाहिये। द्रौपदी को

दिये गये अत्यन्त क्लेशों को तथा द्यूतक्रीडा के समय कहे गये कटु वचनों को याद करते हुए वे युद्ध में मृत्यु के समान विचरण करेंगे।

उभयोः सेनयोर्वीरो रथो नास्तीति तादृशः।
समायुक्तो महाराज रथः पार्थस्य धीमतः॥ ११॥
वासुदेवश्च संयन्ता योद्धा चैव धनंजयः।
गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं ते चाश्वा वातरंहसः॥ १२॥
अस्त्रग्रामश्च माहेन्द्रो रौद्रः कौबेर एव च।
याम्यश्च वारुणश्चैव गदाश्चोग्रप्रदर्शनाः॥ १३॥
वज्रादीनि च मुख्यानि नानाप्रहरणानि च।

दोनों सेनाओं में उसके समान वीर और महारथी काई नहीं है। हे महाराज! धीमान् कुन्तीपुत्र का रथ जुता हुआ है। श्रीकृष्ण उसके सारथि हैं और योद्धा अर्जुन है, गाण्डीव नाम का दिव्य धनुष है, घोड़े वायु के समान वेगशाली हैं। रथ में अस्त्रों का समूह महेन्द्र, रुद्र, कुबेर, यम और वरुण नाम के दिव्यास्त्र तथा भयंकर दिखाई देनेवाली गदाएँ हैं, वज्र आदि दूसरे तरह तरह के प्रमुख हथियार भी रखे हुए हैं।

एष हन्याद्धि संरम्भी बलवान् सत्यविक्रमः॥ १४॥
तव सेनां महाबाहुः स्वां चैव परिपालयन्।
अहं चैनं प्रत्युदियामाचार्यो वा धनंजयम्॥ १५॥
न तृतीयोऽस्ति राजेन्द्र सेनयोरुभयोरपि।
य एनं शरवर्षाणि वर्षन्तमुदियाद् रथी॥ १६॥
जीमूत इव घर्मान्ते महावातसमीरितः।
समायुक्तस्तु कौन्तेयो वासुदेवसहायवान्॥ १७॥
तरुणश्च कृती चैव जीर्णावावामुभावपि।

इस प्रकार से सुसज्जित होकर वह बलवान्, सत्यविक्रमी, महाबाहु अर्जुन क्रोध में भरकर अपनी सेना की रक्षा करते हुए तुम्हारी सेना का विनाश करेंगे। मैं या द्रोणाचार्य ही अर्जुन का सामना कर सकते हैं। हे राजेन्द्र! दोनों सेनाओं में तीसरा ऐसा कोई नहीं है, जो बाणों की वर्षा करते हुए अर्जुन के सामने जा सके। ग्रीष्मऋतु के अन्त में प्रचण्ड वायु से प्रेरित उमड़ते हुए बादलों के समान, श्रीकृष्ण की सहायता से युक्त अर्जुन युद्ध के लिये तैयार है। वह जवान है और अस्त्र विद्या का विद्वान् है, उधर हम दोनों बूढ़े हो गये हैं।

द्रौपदेया महाराज सर्वे पञ्च महारथाः॥ १८॥
वैराटिरुत्तरश्चैव रथोदारो मतो मम।
अभिमन्युर्महाबाहू रथयूथपयूथपः॥ १९॥
समः पार्थेन समरे वासुदेवेन चारिहा।
लब्धास्त्रश्चित्रयोधी च मनस्वी च दृढव्रतः॥ २०॥
संस्मरन् वै परिक्लेशं स्वपितुर्विक्रमिष्यति।
सात्यकिर्माधवः शूरो रथयूथपयूथपः॥ २१॥
एष वृष्णिप्रवीराणाममर्षी जितसाध्वसः।

हे महाराज! द्रौपदी के पाँचों पुत्र महारथी हैं। विराट का पुत्र उत्तर मेरे विचार से उदाररथी है। महाबाहु अभिमन्यु रथियों के यूथपतियों का भी यूथपति है। शत्रुओं को नष्ट करनेवाला वह युद्ध में अर्जुन और श्रीकृष्ण के समान है। उसने अस्त्र विद्या को प्राप्त किया हुआ है, वह विचित्र प्रकार से युद्ध करता है। मनस्वी है और व्रत का दृढ़ता से पालन करनेवाला है। वह अपने पिता के क्लेशों को याद करता हुआ अपना पराक्रम दिखायेगा। मधुवंशी सात्यकि शूरवीर और रथियों के यूथपतियों के भी यूचपति हैं। वृष्णिवीरों में यह अमर्षशील है और इसने भय को जीत लिया है।

उत्तमौजास्तथा राजन् रथोदारो मतो मम॥ २२॥
युधामन्युश्च विक्रान्तो रथोदारो मतो मम।
एतेषां बहुसाहस्रा रथा नागा हयास्तथा॥ २३॥
योत्स्यन्ते ते तनूंस्त्यक्त्वा कुन्तीपुत्रप्रियेप्सया।
पाण्डवैः सह राजेन्द्र तव सेनासु भारत॥ २४॥
अग्निमारुतवद् राजन्नाह्वयन्तः परस्परम्।
अजेयौ समरे वृद्धौ विराटद्रुपदौ तथा॥ २५॥
महारथौ महावीर्यौ मतौ मे पुरुषर्षभौ।
वयोवृद्धावपि हि तौ क्षत्रधर्मपरायणौ॥ २६॥
यतिष्येते परं शक्त्या स्थितौ वीरगते पथि।
सम्बन्धकेन राजेन्द्र तौ तु वीर्यबलान्वयात्॥ २७॥
आर्यवृत्तौ महेष्वासौ स्नेहपाशसितावुभौ।

हे राजन्! मेरे विचार में उत्तमौजा, और पराक्रमी युधामन्यु दोनों उदाररथी हैं, इनके कई हजार रथ, हाथी और घोड़े हैं। ये कुन्तीपुत्र का प्रिय करने की इच्छा से अपने शरीर को न्यौछावर करके युद्ध करेंगे। हे भरतश्रेष्ठ राजेन्द्र! ये पाण्डवों के साथ तुम्हारी सेना में अग्नि और वायु के समान परस्पर प्रेरणा देते हुए विचरण करेंगे। वृद्ध विराट और द्रुपद, ये दोनों महापराक्रमी पुरुषश्रेष्ठ, मेरे मत में महारथी हैं। ये युद्ध में अजेय हैं। यद्यपि ये दोनों आयु में वृद्ध हैं, पर

फिर भी क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए, वीरों के मार्गपर स्थित होकर अपनी पूरी शक्ति से विचरण करेंगे। हे राजेन्द्र! ये दोनों बल और वीर्य से युक्त, सदाचारी और महाधनुर्धर हैं। पाण्डवों के साथ सम्बन्ध होने के कारण ये दोनों उनके स्नेहबन्धन में बँधे हुए हैं।

एकायनगतावेतौ पार्थिवौ दृढधन्विनौ॥ २८॥
प्राणांस्त्यक्त्वा परं शक्त्या घट्टितारौ परंतप।
पृथगक्षौहिणीभ्यां तावुभौ संयति दारुणौ॥ २९॥
सम्बन्धिभावं रक्षन्तौ महत् कर्म करिष्यतः।

हे परंतप! ये दोनों राजा अपने प्राणों का त्याग करके भी पूरी शक्ति से तुम्हारी सेना का सामना करेंगे, क्योंकि दृढ़ता से धनुष धारण करनेवाले इन्होंने एकमात्र वीरपथ का आश्रय ले लिया है। युद्ध में भयंकर ये दोनों अपने सम्बन्ध की रक्षा करते हुए, अपनी अलग-अलग अक्षौहिणी सेनाओं के साथ महान् कर्मों को करेंगे।

पञ्चालराजस्य सुतो राजन् परपुरंजयः॥ ३०॥
शिखण्डी रथमुख्यो मे मतः पार्थस्य भारत।
एष योत्स्यति संग्रामे नाशयन् पूर्वसंस्थितम्॥ ३१॥
परं यशो विप्रथयंस्तव सेनासु भारत।
एतस्य बहुलाः सेनाः पञ्चालाश्च प्रभद्रकाः॥ ३२॥
तेनासौ रथवंशेन महत् कर्म करिष्यति।

हे राजन्! शत्रुओं के नगर को विजय करनेवाला, पांचालराज का पुत्र शिखण्डी, मेरे विचार में युधिष्ठिर की सेना का एक प्रमुख रथी है। यह संग्रामस्थल में अपने पूर्व अपयश का नाश करते हुए और यश का विस्तार करते हुए हे भारत! तुम्हारी सेना में युद्ध करेगा। इसके साथ पांचालों और प्रभद्रकों की एक बहुत बड़ी सेना है। उसके तथा रथियों के समूह के द्वारा यह महान् कार्य करेगा।

धृष्टद्युम्नश्च सेनानीः सर्वसेनासु भारत॥ ३३॥
मतो मेऽतिरथो राजन् द्रोणशिष्यो महारथः।
एतस्य तद् रथानीकं कथयन्ति रणप्रियाः॥ ३४॥
बहुत्वात् सागरप्रख्यं देवानामिव संयुगे।
क्षत्रधर्मा तु राजेन्द्र मतो मेऽर्धरथो नृप॥ ३५॥
धृष्टद्युम्नस्य तनयो बाल्यान्नातिकृतश्रमः।

हे भारत! धृष्टद्युम्न सारी सेना का सेनापति है। हे राजन्! द्रोणाचार्य का यह महारथी शिष्य मेरे विचार से अतिरथी है। देवसेना के समान इसके पास रथियों की जो विशाल सेना है, उसे युद्धप्रिय लोग युद्धक्षेत्र में सागर के समान बताते हैं। हे राजन्! धृष्टद्युम्न का पुत्र क्षत्रधर्मा मेरे विचार से अर्धरथी है। बचपन के कारण उसने अभी अधिक परिश्रम नहीं किया है।

शिशुपालसुतो वीरश्चेदिराजो महारथः॥ ३६॥
धृष्टकेतुर्महेष्वासः सम्बन्धी पाण्डवस्य ह।
एष चेदिपतिः शूरः सह पुत्रेण भारत॥ ३७॥
महारथानां सुकरं महत् कर्म करिष्यति।
क्षत्रधर्मरतो मह्यं मतः परपुरंजयः॥ ३८॥
क्षत्रदेवस्तु राजेन्द्र पाण्डवेषु रथोत्तमः।
जयन्तश्चामितौजाश्च सत्यजिच्च महारथः॥ ३९॥
महारथा महात्मानः सर्वे पाञ्चालसत्तमाः।
योत्स्यन्ते समरे तात संरब्धा इव कुञ्जराः॥ ४०॥

शिशुपाल का पुत्र धृष्टकेतु, वीर चेदिराज, महारथी और महाधनुर्धर पाण्डवों का संबंधी है। हे भारत! यह चेदिपति शूर, अपने पुत्र के साथ, महारथियों के योग्य महान् कर्म करेगा। क्षत्रियों के धर्म में परायण, शत्रु के नगर को जीतनेवाला क्षत्रदेव हे राजन्! मेरे मत से पाण्डवसेना में एक उत्तम रथी है। जयन्त, अमितौजा और महारथी सत्यजित् ये पांचालश्रेष्ठ सारे महात्मा महारथी हैं। हे तात! ये समरभूमि में क्रुद्ध हाथी के समान युद्ध करेंगे।

अजो भोजश्च विक्रान्तौ पाण्डवार्थे महारथौ।
योत्स्येते बलिनौ शूरौ परं शक्त्या क्षयिष्यतः॥ ४१॥
शीघ्रास्त्राश्चित्रयोद्धारः कृतिनो दृढविक्रमाः।
केकयाः पञ्च राजेन्द्र भ्रातरो दृढविक्रमाः॥ ४२॥
सर्वे चैव रथोदाराः सर्वे लोहितकध्वजाः।
काशिकः सुकुमारश्च नीलो यश्चापरो नृप॥ ४३॥
सूर्यदत्तश्च शङ्खश्च मदिराश्वश्च नामतः।
सर्व एव रथोदाराः सर्वे चाहवलक्षणाः॥ ४४॥
सर्वास्त्रविदुषः सर्वे महात्मानो मता मम।

अज और भोज ये दोनों पराक्रमी, महारथी बलवान् और शूरवीर हैं। ये पाण्डवों के लिये पूरी शक्ति से विनाश करेंगे और लड़ेंगे। हे राजेन्द्र! केकय देश के पाँचों भाई शीघ्रता से अस्त्र चलानेवाले, विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाले, युद्धविद्या में निपुण और दृढ़पराक्रमी हैं। इन सबकी ध्वजा लाल है और

ये सारे उदाररथी हैं। सुकुमार, काशिक, दूसरा नील, सूर्यदत्त, शंख, मदिराश्व नाम के ये सारे योद्धा उदार रथी हैं। मेरे विचार से ये सारे मनस्वी, सारे अस्त्रों को जाननेवाले और युद्ध का चिह्न धारण करनेवाले हैं।

वार्धक्षेमिर्महाराज मतो मम महारथः॥ ४५॥
चित्रायुधश्च नृपतिर्मतो मे रथसत्तमः।
स हि संग्रामशोभी च भक्तश्चापि किरीटिनः॥ ४६॥
चेकितानः सत्यधृतिः पाण्डवानां महारथौ।
द्वाविमौ पुरुषव्याघ्रौ रथोदारौ मतौ मम॥ ४७॥
व्याघ्रदत्तश्च राजेन्द्र चन्द्रसेनश्च भारत।
मतौ मम रथोदारौ पाण्डवानां न संशयः॥ ४८॥

हे महाराज! वार्धक्षेमि मेरे मत में महारथी है और राजा चित्रायुध मेरे मत से श्रेष्ठरथी है। वह युद्धक्षेत्र में शोभा पानेवाला और अर्जुन का भक्त है। पाण्डव सेना के चेकितान और सत्यधृति दो महारथी हैं। ये दोनों ही पुरुषव्याघ्र मेरे मत से उदाररथी हैं। हे राजेन्द्र, भारत! व्याघ्रदत्त और चन्द्रसेन ये दोनों ही पाण्डव सेना के उदाररथी हैं, इसमें संशय नहीं है।

सेनाबिन्दुश्च राजेन्द्र क्रोधहन्ता च नामतः।
यः समो वासुदेवेन भीमसेनेन वा विभो॥ ४९॥
स योत्स्यति हि विक्रम्य समरे तव सैनिकैः।
मां च द्रोणं कृपं चैव यथा सम्मन्यते भवान्॥ ५०॥
तथा स समरश्लाघी मन्तव्यो रथसत्तमः।
काश्यः परमशीघ्रास्त्रः श्लाघनीयो नरोत्तमः॥ ५१॥
रथ एकगुणो मह्यं ज्ञेयः परपुरंजयः।
अयं च युधि विक्रान्तो मन्तव्योऽष्टगुणो रथः॥ ५२॥

हे राजेन्द्र! सेनाबिन्दु का दूसरा नाम क्रोधहन्ता है। हे विभो! वह समरभूमि में श्रीकृष्ण या भीमसेन के समान तुम्हारे सैनिकों के साथ युद्ध करेगा। तुम मुझे, द्रोणाचार्य को या कृपाचार्य को जैसा समझते हो, उसी प्रकार का उस प्रशंसनीय नरश्रेष्ठ, अत्यन्त शीघ्र अस्त्र चलानेवाले, समर की इच्छा करनेवाले रथियों में श्रेष्ठ काशीराज को समझना चाहिये। शत्रु के नगर को जीतनेवाला यह काशीराज मेरे विचार से सामान्य अवस्था में एकरथी मानना चाहिये, पर जब ये पराक्रम प्रकट करने लगते हैं, तब इन्हें आठ रथियों के बराबर समझना चाहिये।

सत्यजित् समरश्लाघी द्रुपदस्यात्मजो युवा।
गतः सोऽतिरथत्वं हि धृष्टद्युम्नेन सम्मितः॥ ५३॥
पाण्डवानां यशस्कामः परं कर्म करिष्यति।
अनुरक्तश्च शूरश्च रथोऽयमपरो महान्॥ ५४॥
पाण्ड्यराजो महावीर्यः पाण्डवानां धुरंधरः।
दृढधन्वा महेष्वासः पाण्डवानां महारथः॥ ५५॥
श्रेणिमान् कौरवश्रेष्ठ वसुदानश्च पार्थिवः।
उभावेतावतिरथौ मतौ परपुरंजयौ॥ ५६॥

युद्ध की कामना करनेवाला द्रुपद का युवापुत्र सत्यजित भी धृष्टद्युम्न के समान अतिरथी का पद प्राप्त कर चुका है। पाण्डवों के यश को चाहनेवाला वह महान् कर्म को करेगा। पाण्डवों में अनुरुक्त और शूरवीर, महापराक्रमी धुरन्धर पाण्ड्यराज भी, दूसरे महारथी हैं। इनका धनुष दृढ़ है और महाधनुर्धर हैं। हे कौरवश्रेष्ठ! राजा श्रेणिमान् और वसुदान, शत्रुओं के नगर को विजय करनेवाले ये दोनों अतिरथी माने गये हैं।

रोचमानो महाराज पाण्डवानां महारथः।
योत्स्यतेऽमरवत् संख्ये परसैन्येषु भारत॥ ५७॥
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च महेष्वासो महाबलः।
मातुलो भीमसेनस्य स च मेऽतिरथो मतः॥ ५८॥
एष वीरो महेष्वासः कृती च निपुणश्च ह।
चित्रयोधी च शक्तश्च मतो मे रथपुङ्गवः॥ ५९॥
भागिनेयकृते वीरः स करिष्यति संगरे।
सुमहत् कर्म पाण्डूनां स्थितः प्रियहिते रतः॥ ६०॥

हे महाराज भारत! पाण्डवों की सेना के महारथी रोचमान युद्धक्षेत्र में देवताओं के समान पराक्रम दिखाते हुए शत्रुसेना से युद्ध करेंगे। कुन्तीभोज के पुत्र पुरुजित, जो महाधनुर्धर और महाबली हैं और भीमसेन के मामा हैं, वे मेरे विचार से अतिरथी हैं। ये वीर महाधनुर्धर, अस्त्रविद्या में निपुण और युद्ध कुशल हैं, विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाले, शक्तिशाली, रथियों में श्रेष्ठ हैं। ये वीर पाण्डवों के प्रिय और हित में तत्पर हो, अपने भानजों के लिये युद्ध में अत्यन्त महान् कर्म करेंगे।

भैमसेनिर्महाराज हैडिम्बो राक्षसेश्वरः।
मतो मे बहुमायावी रथयूथपयूथपः॥ ६१॥
योत्स्यते समरे तात मायावी समरप्रियः।
ये चास्य राक्षसा वीराः सचिवा वशवर्तिनः॥ ६२॥
एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः।
समेताः पाण्डवस्यार्थे वासुदेवपुरोगमाः॥ ६३॥

नेष्यन्ति समरे सेनां भीमां यौधिष्ठिरीं नृप।
महेन्द्रेणेव वीरेण पाल्यमानां किरीटिना॥ ६४॥

हे महाराज! भीमसेन और हिडिम्बा का पुत्र राक्षसराज घटोत्कच मेरे विचार में बड़ा मायावी और रथियों के यूथपतियों का भी यूथपति है। हे तात! युद्ध से प्रेम करनेवाला वह मायावी उत्साह से युद्ध करेगा। उसके साथी वीर राक्षस जो उसके सचिव हैं, वे उसके वश में रहने वाले हैं। वे तथा दूसरे बहुत से अनेक देशों के स्वामी, जिनमें श्रीकृष्ण का नाम मुख्य है, पाण्डवों के लिये एकत्र हुए हैं। हे राजन्! ये राजालोग युधिष्ठिर की भयंकर सेना का जो इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन के द्वारा सुरक्षित है, युद्ध में संचालन करेंगे।

तैरहं समरे वीर मायाविद्भिर्जयैषिभिः।
योत्स्यामि जयमाकाङ्क्षन्नथवा निधनं रणे॥ ६५॥
सर्वांस्त्वन्यान् हनिष्यामि, पार्थिवान् भरतर्षभ।
यान् समेष्यामि समरे, न तु कुन्तीसुतान् नृप॥ ६६॥

हे वीर! मैं इन सब माया को जाननेवाले और विजय के इच्छुक पाण्डववीरों के साथ रणक्षेत्र में विजय की या मृत्यु की इच्छा रखते हुए युद्ध करूँगा। हे भरतश्रेष्ठ! मैं युद्धक्षेत्र में जिनको अपने सामने पाऊँगा मार दूँगा, पर कुन्तीपुत्रों को नहीं मारूँगा।

तिरेसठवाँ अध्याय : दुर्योधन के पूछने पर भीष्म आदि का अपनी शक्ति को बताना।

दुर्योधन उवाच

केन कालेन गाङ्गेय क्षपयेथा महाद्युते।
आचार्यो वा महेष्वासः कृपो वा सुमहाबलः॥ १॥
कर्णो वा समरश्लाघी द्रौणिर्वा द्विजसत्तमः।
दिव्यास्त्रविदुषः सर्वे भवन्तो हि बले मम॥ २॥
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं परं कौतूहलं हि मे।
हृदि नित्यं महाबाहो वक्तुमर्हसि तन्मम॥ ३॥

तब दुर्योधन ने भीष्म पितामह से पूछा कि हे महातेजस्वी गंगापुत्र! आप कितने समय में इस सारी सेना का विनाश कर सकते हैं? महाधनुर्धर द्रोणाचार्य या महाबलशाली कृपाचार्य, या युद्ध की आकाँक्षा वाला कर्ण या ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा कितने समय में शत्रुसेना का संहार कर सकते हैं? मेरी सेना में विद्यमान आप सब लोग ही दिव्यास्त्रों का ज्ञान रखनेवाले हैं। हे महाबाहु! मैं यह जानना चाहता हूँ। मेरे हृदय में यह जानने की बड़ी इच्छा है, इसलिये आप मुझे यह बताइये।

भीष्म उवाच

अनुरूपं कुरुश्रेष्ठ त्वय्येतत् पृथिवीपते।
आर्जवेनैव युद्धेन योद्धव्य इतरो जनः॥ ४॥
मायायुद्धेन मायावी इत्येतद् धर्मनिश्चयः।
हन्यामहं महाभाग पाण्डवानामनीकिनीम्॥ ५॥
दिवसे दिवसे कृत्वा भागं प्रागाह्निकं मम।
योधानां दशसाहस्त्रं कृत्वा भागं महाद्युते॥ ६॥
सहस्त्रं रथिनामेकमेष भागो मतो मम।
अनेनाहं विधानेन संनद्धः सततोत्थितः॥ ७॥
क्षपयेयं महत् सैन्यं कालेनानेन भारत।
मुञ्चेयं यदि वास्त्राणि महान्ति समरे स्थितः॥ ८॥
शतसाहस्त्रघातीनि हन्यां मासेन भारत।

तब भीष्म ने कहा कि हे कुरुश्रेष्ठ राजन्! यह प्रश्न तुम्हारे अनुरूप है। साधारण लोगों के साथ सरल भाव से ही युद्ध करना चाहिये और मायावी लोगों के साथ माया से युद्ध करना चाहिये, यह धर्मशास्त्रों का निश्चय है। हे महाभाग! मैं पाण्डवों की सेना को प्रतिदिन अपने पहले दैनिकभाग में बाँटकर उसे मारूँगा। हे महातेजस्वी! मेरे विचार से योद्धाओं का दस हजार और रथियों का एक हजार मेरा भाग है। हे भारत। इस हिसाब से मैं तैयार होकर सदा प्रयत्न करता हुआ इस महान् सेना को इतने ही समय में नष्ट कर सकता हैं। पर यदि मैं युद्ध क्षेत्र में खड़ा होकर अपने उन महान् अस्त्रों का प्रयोग करूँ, जो एक साथ सैकड़ों और हजारों सैनिकों का वध कर सकते हैं तो मैं एक मास में इस सेना को समाप्त कर सकता हूँ।

संजय उवाच

श्रुत्वा भीष्मस्य तद् वाक्यं राजा दुर्योधनस्ततः॥ ९॥
पर्यपृच्छत राजेन्द्र द्रोणमङ्गिरसां वरम्।
आचार्य केन कालेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान्॥ १०॥

निहन्या इति तं द्रोणः प्रत्युवाच हसन्निव।
स्थविरोऽस्मि महाबाहो मन्दप्राणविचेष्टितः॥ ११॥
शस्त्राग्निना निर्दहेयं पाण्डवानामनीकिनीम्।
यथा भीष्मः शान्तनवो मासेनेति मतिर्मम॥ १२॥
एषा मे परमा शक्तिरेतन्मे परमं बलम्।

तब संजय ने कहा कि हे राजेन्द्र! भीष्म के उन वचनों को सुनकर दुर्योधन ने अंगिरस ब्राह्मणों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य से पूछा कि हे आचार्य! आप कितने समय में युधिष्ठिर की सेना को मार सकते हैं? तब द्रोणाचार्य ने हँसते हुए से यह उत्तर दिया कि हे महाबाहु! अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मेरी प्राणशक्ति और चेष्टाएँ कम हो गयी हैं। जैसे शान्तनुपुत्र भीष्म ने एक मास का समय बताया है, मेरे विचार से मैं भी इतने ही समय में अपने शस्त्रों की अग्नि से पाण्डवों की सेना को भस्म कर सकता हूँ। यही मेरी परम शक्ति है और यही मेरा अधिकाधिक बल है।

द्वाभ्यामेव तु मासाभ्यां कृपः शारद्वतोऽब्रवीत्॥ १३॥
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे बलक्षयम्।
कर्णस्तु पञ्चरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित्॥ १४॥
तच्छ्रुत्वा सूतपुत्रस्य वाक्यं गंगासुतः तदा।
जहास सस्वनं हासं वाक्यं चेदमुवाच ह॥ १५॥
न हि यावद् रणे पार्थं बाणशङ्खधनुर्धरम्।
वासुदेवसमायुक्तं रथेनायान्तमाहवे॥ १६॥
समागच्छसि राधेय तेनैवमभिमन्यसे।
शक्यमेवं च भूयश्च त्वया वक्तुं यथेष्टतः॥ १७॥

तब शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने दो मास में पाण्डव सेना के विनाश को कर सकने की बात कही और द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने दस दिनों में ही शत्रुसेना के संहार की प्रतिज्ञा की। महान् अस्त्रों के ज्ञाता कर्ण ने पाँच दिनों में ही पाण्डवसेना को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की। सूतपुत्र की उस बात को सुनकर गंगापुत्र भीष्म जोर से हँसे और उन्होंने उससे यह कहा कि जब तक तुम युद्धक्षेत्र में शंख, बाण और धनुष धारण करनेवाले तथा श्रीकृष्ण के साथ रथ पर विद्यमान अर्जुन को आते हुए नहीं देख लेते और तुम्हारा उनसे मुकाबला नहीं हो जाता, तभी तक तुम इसप्रकार का अभिमान कर सकते हो तथा और भी इसीप्रकार की बहुत सी बातें अपनी इच्छानुसार कह सकते हो।

चौंसठवाँ अध्याय : अर्जुन का युधिष्ठिर को अपनी शक्ति बताना।

युधिष्ठिर उवाच

धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु ये चारपुरुषा मम।
ते प्रवृत्तिं प्रयच्छन्ति ममेमां व्युषितां निशाम्॥ १॥
दुर्योधनः किलापृच्छद्गंगापुत्रं महाव्रतम्।
केन कालेन पाण्डूनां हन्याः सैन्यमिति प्रभो॥ २॥
मासेनेति च तेनोक्तो धार्तराष्ट्रः सुदुर्मतिः।
तावता चापि कालेन द्रोणोऽपि प्रतिजज्ञिवान्॥ ३॥
गौतमो द्विगुणं कालमुक्तवानिति नः श्रुतम्।
द्रौणिस्तु दशरात्रेण प्रतिजज्ञे महास्त्रवित्॥ ४॥
तथा दिव्यास्त्रवित् कर्णः सम्पृष्टः कुरुसंसदि।
पञ्चभिर्दिवसैर्हन्तुं ससैन्यं प्रतिजज्ञिवान्॥ ५॥

तब युधिष्ठिर ने कहा कि दुर्योधन की सेना में मेरे जो गुप्तचर हैं, उन्होंने मुझे समाचार दिया है कि इस गतरात्रि में दुर्योधन ने महान् व्रतधारी गंगापुत्र भीष्म से यह पूछा कि हे प्रभो! आप कितने समय में पाण्डवों की सेना का विनाश कर सकते हैं? तब उन्होंने दुर्मति दुर्योधन को एक मास का समय बताया और द्रोणाचार्य ने भी इतने ही समय में वैसा कर सकने की प्रतिज्ञा की। हमने सुना है कि कृपाचार्य ने इससे दुगने समय में ऐसा कर सकने को कहा है और महान् अस्त्रों के ज्ञाता द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने दस दिनों में पाण्डवसेना के विनाश की प्रतिज्ञा की है। इसी प्रकार दिव्यास्त्रों के ज्ञाता कर्ण ने पूछे जाने पर कौरवसभा में हमारी सेना को पाँच दिनों में ही नष्ट करने की प्रतिज्ञा की है।

तस्मादहमपीच्छामि श्रोतुमर्जुन ते वचः।
कालेन कियता शत्रून् क्षपयेरिति फाल्गुन॥ ६॥
एवमुक्तो गुडाकेशः पार्थिवेन धनंजयः।
वासुदेवं समीक्ष्येदं वचनं प्रत्यभाषत॥ ७॥
सर्व एते महात्मानः कृतास्त्राश्चित्रयोधिनः।
असंशयं महाराज हन्युरेव न संशयः॥ ८॥
अपैतु ते मनस्तापो यथा सत्यं ब्रवीम्यहम्।
यत् तद् घोरं पशुपतिः प्रादादस्त्रं महन्मम॥ ९॥
कैराते द्वन्द्वयुद्धे तु तदिदं मयि वर्तते।

इसलिये हे अर्जुन! हे फाल्गुन! मैं तुम्हारी बात भी सुनना चाहता हूँ कि तुम कितने समय में शत्रुसेना को नष्ट कर सकते हो? राजा युधिष्ठिर के इस प्रकार पूछने पर निद्राजयी अर्जुन ने श्रीकृष्ण की तरफ देखकर, यह वचन कहा कि हे महाराज! ये सारे मनस्वीलोग अस्त्रविद्या के पण्डित हैं और विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाले हैं। निस्सन्देह ये इतने दिनों में शत्रुसेना को मार सकते हैं पर आपके मन का सन्ताप दूर हो जाना चाहिये। मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि पशुपति शिव ने किरातवेश में द्वन्द्वयुद्ध के पश्चात् मुझे जो अपना भयानक महान् अस्त्र दिया था, वह मेरे पास विद्यमान है।

तन्न जानाति गाङ्गेयो न द्रोणो न च गौतमः॥ १०॥
न च द्रोणसुतो राजन् कुत एव तु सूतजः।
न तु युक्तं रणे हन्तुं दिव्यैरस्त्रैः पृथग् जनम्॥ ११॥
आर्जवेनैव युद्धेन विजेष्यामो वयं परान्।
तथेमे पुरुषव्याघ्राः सहायास्तत्र पार्थिव॥ १२॥
सर्वे दिव्यास्त्रविद्वांसः सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः।

उसके बारे में न तो गंगापुत्र भीष्म को पता है न द्रोणाचार्य को और न कृपाचार्य को ज्ञात है। हे राजन्! न तो अश्वत्थामा उसके विषय में जानता है और सारथि का पुत्र कर्ण तो जान ही कैसे सकता है? परन्तु सामान्य सैनिकों को दिव्यास्त्रों से मारना ठीक नहीं है, इसलिये हम सरलता से ही युद्ध करते हुए शत्रुओं को जीतेंगे। हे राजन्! आपके ये सहायक सारे दिव्यास्त्रों के विद्वान् हैं, ये पुरुषव्याघ्र युद्ध के अभिलाषी हैं।

वेदान्तावभृथस्नाताः सर्व एतेऽपराजिताः॥ १३॥
निहन्युः समरे सेनां देवानामपि पाण्डव।
शिखण्डी युयुधानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ १४॥
भीमसेनो यमौ चोभौ युधामन्यूत्तमौजसौ।
विराटद्रुपदौ चोभौ भीष्मद्रोणसमौ युधि॥ १५॥
शङ्खश्चैव महाबाहुर्हैडिम्बश्च महाबलः।
पुत्रोऽस्याञ्जनपर्वा तु महाबलपराक्रमः॥ १६॥
शैनेयश्च महाबाहुः सहायो रणकोविदः।
अभिमन्युश्च बलवान् द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः॥ १७॥

इन सबने वेद का अध्ययन कर यज्ञान्त स्नान किया है। ये सारे ही युद्ध में पराजित नहीं होनेवाले हैं। हे पाण्डव! ये युद्ध में देवताओं की सेना को भी नष्ट कर सकते हैं। शिखण्डी, सात्यकि, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, भीमसेन, नकुल, सहदेव, उत्तमौजा, राजा विराट और द्रुपद ये दोनों ही युद्ध में भीष्म और द्रोणाचार्य के समान हैं। महाबाहु शंख, हिडिम्बापुत्र महाबली घटोत्कच, महाबल और पराक्रम से युक्त उसका पुत्र अंजनपर्वा, शिनिपुत्र, रणकोविद महाबाहु सात्यकि, बलवान् अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँच पुत्र, ये सारे आपके सहायक हैं।

भीष्मपर्व

पहला अध्याय : कुरु क्षेत्र में उभय पक्ष के सैनिकों की स्थिति तथा युद्ध के नियमों का निर्माण।

संजय उवाच

तेऽवतीर्य कुरुक्षेत्रं पाण्डवाः सहसोमकाः।
कौरवाः समवर्तन्त जिगीषन्तो महाबलाः॥ १॥
अभियाय च दुर्धर्षां धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम्।
प्राङ्मुखाः पश्चिमे भागेन्यविशन्त ससैनिकाः॥ २॥
समन्तपञ्चकाद् बाह्यं शिबिराणि सहस्रशः।
कारयामास विधिवत् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ३॥
एकस्थाः सर्ववर्णास्ते मण्डलं बहुयोजनम्।
पर्याक्रामन्त देशांश्च नदीः शैलान् वनानि च॥ ४॥

संजय ने कहा कि सोमकों के साथ महाबली पाण्डव और कौरव दोनों ही कुरुश्रेत्र के मैदान में उतर कर एक दूसरे के प्रति विजय की कामना कर रहे थे। पाण्डव अपने सैनिकों के साथ दुर्योधन की दुर्घर्ष सेना के सामने, कुरुश्रेत्र के पश्चिमी भाग में पूर्व की तरफ मुख करके ठहरे हुए थे। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने समन्तकक्षेत्र से बाहर, विधिपूर्वक हजारों शिविर बनवाये थे। वहाँ सारे ही वर्णों के लोग एकत्र थे। सेनाओं का घेरा कई योजनों तक फैला हुआ था। उसने अनेक प्रदेशों, नदियों, पर्वतों और वनों को घेरा हुआ था।

तेषां युधिष्ठिरो राजा सर्वेषां पुरुषर्षभ।
व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम्॥ ५॥
शय्याश्च विविधास्तात तेषां रात्रौ युधिष्ठिरः।
एवंवेदी वेदितव्यः पाण्डवेयोऽयमित्युत॥ ६॥
अभिज्ञानानि सर्वेषां संज्ञाश्चाभरणानि च।
योजयामास कौरव्यो युद्धकाल उपस्थिते॥ ७॥
तयोस्तु सेनयोरासीदद्भुतः स तु संगमः।
युगान्ते समनुप्राप्ते द्वयोः सागरयोरिव॥ ८॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! राजा युधिष्ठिर ने अपनी सेना के सारे सैनिकों और सवारियों के लिये उत्तम भोजन और खाद्यपदार्थों के प्रबन्ध का आदेश दिया हुआ था। उन्होंने रात में सोने के लिये विविध शय्याओं का भी प्रबन्ध किया हुआ था। युद्ध का समय होने पर पहचान के लिये, कि यह पाण्डव सेना का है, उन्होंने अनेक प्रकार के पहचानचिह्न, नाम तथा अभूषण दे दिये थे। उन दोनों सेनाओं का वह अनोखा मेल, प्रलयकाल उपस्थित होने पर परस्पर टकरानेवाले दो सागरों के समान प्रतीत हो रहा था।

ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपाण्डवसोमकाः।
धर्मान् संस्थापयामासुर्युद्धानां भरतर्षभ॥ ९॥
निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात् प्रीतिर्नः परस्परम्।
यथापरं यथायोगं न च स्यात् कस्यचित् पुनः॥ १०॥
वाचा युद्धप्रवृत्तानां वाचैव प्रतियोधनम्।
निष्क्रान्ताः पृतनामध्यान्न हन्तव्याः कदाचन॥ ११॥
रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः।
अश्वेनाश्वी पदातिश्च पादातेनैव भारत॥ १२॥
यथायोगं यथाकामं यथोत्साहं यथाबलम्।
समाभाष्य प्रहर्तव्यं न विश्वस्ते न विह्वले॥ १३॥

हे भरतश्रेष्ठ! तब उसके पश्चात् पाण्डवों, सोमकों और कौरवों ने मिल कर युद्ध के कुछ नियम बनाये और युद्धधर्म की स्थापना की। वे नियम इस प्रकार थे। जैसे– चालू युद्ध के बन्द होने पर, हम लोगों में परस्पर प्रेम रहेगा। उस समय किसी का किसी के साथ शत्रुतापूर्वक बर्ताव नहीं होगा। जो वाग्युद्ध में प्रवृत्त हो उसके साथ वाणी से ही युद्ध करना है। सेना से बाहर निकले हुए का वध कदापि न किया जाये। रथी के साथ रथी को और हाथीसवार के साथ हाथीसवार को ही युद्ध करना चाहिये। इसीप्रकार हे भारत! घुड़सवार के साथ घुड़सवार और पैदल के साथ पैदल ही युद्ध करेगा। जिसमें जैसी योग्यता, इच्छा, उत्साह और बल हो, उसके अनुसार ही शत्रु को सावधान कर उस पर प्रहार किया जाये। जो परेशान हो या विश्वास के कारण असावधान हो, उस पर प्रहार न किया जाये।

एकेन सह संयुक्तः प्रपन्नो विमुखस्तथा।
क्षीणशस्त्रो विवर्मा च न हन्तव्यः कदाचन॥ १४॥
न सूतेषु न धुर्येषु न च शस्त्रोपनायिषु।
न भेरीशङ्खवादेषु प्रहर्तव्यं कथंचन॥ १५॥

जो एक व्यक्ति के साथ युद्ध कर रहा हो या शरण में आया हुआ हो या युद्ध से अलग हो गया हो, जिसके शस्त्रास्त्र और कवच कट गये हों, ऐसे व्यक्ति को कभी न मारा जाये। घोड़ों की सेवा में लगे हुए सूतों, बोझा ढोनेवाले, शस्त्र पहुँचानेवालों और भेरी तथा शंख बजानेवालों पर किसीप्रकार भी प्रहार नहीं किया जाये।

दूसरा अध्याय : संजय का धृतराष्ट्र को भीष्म के गिराये जाने का समाचार देना। धृतराष्ट्र का विलाप, विस्तार से सुनाने को कहना।

अथ गावल्गणिर्विद्वान्, संयुगादेत्य ध्यायते।
आचष्टे धृतराष्ट्राय, सहसोत्पत्य दुःखितः॥ १॥
संजयोऽहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ।
ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मताम्॥ २॥
शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः।

इसके पश्चात् एकदिन गवल्गणपुत्र विद्वान् संजय ने रणक्षेत्र से लौटकर चिन्तामग्न धृतराष्ट्र के सामने सहसा जा कर, दुःखी होकर कहा कि– हे महाराज! भरतश्रेष्ठ! मैं संजय हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ। जो सारे योद्धाओं में श्रेष्ठ और दूसरे धनुर्धरों के आश्रयस्थान थे, वे कौरवों के पितामह भीष्म आज बाणों के बिस्तरे पर सो रहे हैं।

यः सर्वान् पृथिवीपालान् समवेतान् महामृधे॥ ३॥
जिगायैकरथेनैव काशिपुर्यां महारथः।
महेन्द्रसदृशः शौर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव॥ ४॥
समुद्र इव गाम्भीर्ये सहिष्णुत्वे धरासमः।
शरदंष्ट्रो धनुर्वक्त्रः खड्गजिह्वो दुरासदः॥ ५॥
नरसिंहः पिता तेऽद्य पाञ्चाल्येन निपातितः।
पाण्डवानां महासैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे॥ ६॥
प्रावेपत भयोद्विग्नं सिंहं दृष्ट्वेव गोगणः।
परिरक्ष्य: स सेनां ते दशरात्रमनीकहा॥ ७॥
जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।

जिस महारथी ने काशीनगरी में एकत्र हुए सारे राजाओं को महान् संग्राम में अकेले एक रथ के द्वारा ही जीत लिया था, जो शूरवीरता में इन्द्र के समान, स्थिरता में हिमालयपर्वत के समान, गम्भीरता में सागर के समान और सहनशीलता में भूमि के समान थे, जो पुरुषों में ऐसे सिंह थे, जिनके बाण ही दाढ़ें थीं, धनुष मुख था, तलवार ही जिनकी जिह्वा थी, जिनके समीप पहुँचना बड़ा कठिन था, ऐसे वे आपके पिता आज पांचाल राजकुमार शिखण्डी के द्वारा गिरा दिये गये। जिनको युद्ध में तैयार देख कर, पाण्डवों की महान् सेना ऐसे काँपने लगती थी, जैसे सिंह को देखकर गायों के झुण्ड भय से उद्विग्न हो जाते हैं, वे शत्रुसेना को नष्ट करनेवाले, दस दिन तक आपकी सेना की रक्षा करके, अत्यन्त कठिन कार्य करते हुए सूर्य के समान अस्ताचल को चले गये।

धृतराष्ट्र उवाच

कथं रथात् स न्यपतत् पिता मे वासवोपमः॥ ८॥
कथमाचक्ष्व मे योधा हीना भीष्मेण संजय।
बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा॥ ९॥
के तं यान्तमनुप्राप्ताः के वास्यासन् पुरोगमाः।
केऽतिष्ठन् के न्यवर्तन्त केऽन्ववर्तन्त संजय॥ १०॥
यस्तमोऽर्क इवापोहन् परसैन्यममित्रहा।
सहस्ररश्मिप्रतिमः परेषां भयमादधत्॥ ११॥

तब धृतराष्ट्र ने पूछा कि इन्द्र के समान पराक्रमी मेरे पिता कैसे रथ से नीचे गिर पड़े? हे संजय! भीष्म के बिना अब मेरे योद्धा किस अवस्था में हैं? भीष्म देवताओं के समान बलवान् थे। वे पिता के लिये ब्रह्मचारी रहे थे। उनके युद्ध के लिये जाते समय कौन उनके पीछे थे और कौन आगे थे? कौन उनके साथ युद्ध में डटे रहे? कौन युद्ध छोड़कर लौट गये? और कौन उनके पीछे ही विद्यमान रहे? जैसे सूर्य अँधेरे को दूर करता है, वैसे ही शत्रुसूदन भीष्म शत्रुओं की सेना को नष्ट किया करते थे। उनका तेज सूर्य के समान था। उन्होंने शत्रुओं को भयभीत किया हुआ था।

कृतिनं तं दुराधर्षं संजयास्य त्वमन्तिके।
कथं शान्तनवं युद्धे पाण्डवाः प्रत्यवारयन्॥ १२।
अनर्हं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम्।
पातयामास कौन्तेयः कथं तमजितं युधि॥ १३॥
कथं शान्तनवं दृष्ट्वा पाण्डवानामनीकिनी।
प्रहर्तुमशकत् तत्र भीष्मं भीमपराक्रमम्॥ १४॥
कथं भीष्मेण संग्रामं प्राकुर्वन् पाण्डुनन्दनाः।
कथं च नाजयद् भीष्मो द्रोणे जीवति संजय॥ १५॥

हे संजय! तुम तो उनके समीप ही थे। उन कर्त्तव्यकुशल, दुर्धर्ष, शान्तनुपुत्र, भीष्म को पाण्डवों ने कैसे आगे बढ़ने से रोका? न पराजित होनेवाले, वे लज्जाशील, पुरुषव्याघ्र, पहले कभी किसी से जीते नहीं गये थे। वे इस अवस्था के योग्य नहीं थे। फिर उन्हें कुन्तीपुत्र ने युद्ध में कैसे गिराया? उन भयानक पराक्रम वाले, शान्तनुपुत्र, भीष्म को देखकर, पाण्डवों की सेना कैसे उन पर प्रहार कर सकी? पाण्डुपुत्रों ने भीष्म के साथ संग्राम कैसे किया? हे संजय! द्रोणाचार्य के जीवित रहते हुए भीष्म जीत क्यों नही सके?

यस्मिन् द्वीपे समाश्वस्य युध्यन्ते कुरवः परैः।
तं निमग्नं नरव्याघ्रं भीष्मं शंससि संजय॥ १६॥
शंस मे तद् तथा चासीद् युद्धं भीष्मस्य पाण्डवैः।
योषेव हतवीरा मे सेना पुत्रस्य संजय॥ १७॥
न चास्त्रेण न शौर्येण तपसा मेधया न च।
न धृत्या न पुनस्त्यागान्मृत्योः कश्चिद् विमुच्यते॥ १८॥

जिस भीष्मरूपी द्वीप का आश्रय लेकर, कौरव लोग शत्रुओं के साथ युद्ध करते थे, हे संजय। तुम उन्हीं को डूबा हुआ बता रहे हो। हे संजय! मुझे बताओ कि भीष्म का पाण्डवों के साथ युद्ध किस प्रकार हुआ? अब तो मेरी सेना विधवा के समान हो गयी होगी? वास्तव में अस्त्रों, शूरवीरता, तप, मेधा, धृति, त्याग किसी के भी द्वारा कोई मृत्यु से छुटकारा नहीं पा सकता।

पुत्रशोकाभिसंतप्तो महद् दुःखमचिन्तयम्।
आशंसेऽहं परं त्राणं भीष्माच्छान्तनुनन्दनात्॥ १९॥
यदाऽऽदित्यमिवापश्यत् पतितं भुवि संजय।
दुर्योधनः शान्तनवं किं तदा प्रत्यपद्यत॥ २०॥
एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु संजय।
पराक्रमः परं शक्त्या तत् तु तस्मिन् प्रतिष्ठितम्॥ २१॥

मुझे शान्तनुपुत्र भीष्म से अपने पक्ष की सुरक्षा की बड़ी आशा थी, पर अब मैं पुत्र के शोक से सन्तप्त हो कर बहुत चिन्तित हो रहा हूँ। हे संजय। जिन भीष्म को दुर्योधन सूर्य के समान समझता था, उन्हें भूमि पर गिरा हुआ देखकर वह क्या सोच रहा है? हे संजय! भयानक आपत्ति के समय एक श्रेष्ठ व्यक्ति को यही करना चाहिये कि वह पूरी शक्ति से पराक्रम करे। भीष्म जी में यह गुण पूरी तरह से प्रतिष्ठित था।

यच्छरीरैरुपास्तीर्णां नरवारणवाजिनाम्।
शरशक्तिमहाखड्गतोमराक्षां महाभयाम्॥ २२॥
प्राविशन् कितवा मन्दाः सभां युद्धदुरासदाम्।
प्राणद्यूते प्रतिभये केऽदीव्यन्त नरर्षभाः॥ २३॥
के जीयन्ते जितास्तत्र कृतलक्ष्या निपातिताः।
अन्ये भीष्माच्छान्तनवात् तन्ममाचक्ष्व संजय॥ २४॥
यत् कृतं तत्र संग्रामे भीष्मेण जयमिच्छता।
तेजोयुक्तं कृतास्त्रेण शंस तच्चाप्यशेषतः॥ २५॥

जहाँ मनुष्य, हाथी और घोड़ों के शरीर बिछे हुए थे, जहाँ बाण, शक्ति, महान् खड्ग और तोमर रूपी पासे फैंके जाते हैं, जो महान् भय से परिपूर्ण है, जो युद्ध के कारण दुर्गम है, उस युद्ध क्षेत्र रूपी द्यूतसभा में किन किन मन्दबुद्धि जुआरियों ने प्रवेश किया था? और जहाँ प्राणों की बाजी लगायी जाती है, जहाँ प्रत्येक कदम पर भय है, उस जूए के खेल को किन किन नरश्रेष्ठों ने खेला था? हे संजय। तुम मुझे बताओ कि शान्तनुपुत्र भीष्म के अतिरिक्त और कौन कौन वहाँ जीत रहे हैं? कौन जीते जा चुके हैं? और बाणों का लक्ष्य बना कर गिराये जा चुके हैं। अस्त्रविद्या के विद्धान् और विजय को चाहने वाले भीष्म ने उस संग्राम में अपने तेज से युक्त कौन कौन से कार्य किये? यह सब तुम मुझे पूरी तरह से बताओ।

तीसरा अध्याय : संजय के द्वारा दुर्योधन की सेना का वर्णन।

संजय उवाच

शृणु मे विस्तरेणेदं विचित्रं परमाद्भुतम्।
भरतानामभूद् युद्धं यथा तल्लोमहर्षणम्॥ १॥
ततो रजन्यां व्युष्टायां शब्दः समभवन्महान्।
क्रोशतां भूमिपालानां युज्यतां युज्यतामिति॥ २॥
शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च सिंहनादैश्च भारत।
हयहेषितनादैश्च रथनेमिस्वनैस्तथा॥ ३॥
गजानां बृंहतां चैव योधानां चापि गर्जताम्।
क्ष्वेलितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत्॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे राजन्! भरतवंशियों में वह अद्भुत और रोमांचकारी युद्ध किस प्रकार हुआ, उसका विस्तार से वृत्तान्त मुझसे सुनो। तब रात्रि के बीत जाने पर रथों को जोतो, युद्ध के लिये तैयार हो जाओ, इस प्रकार से सेनाओं को पुकारते हुए राजाओं का महान् शब्द होने लगा। हे भारत! शंखों, नगाड़ों का शब्द, वीरों के सिंहनाद, घोड़ों के हिनहिनाने की आवाजें, रथों के पहियों की घर्घराहट, हाथियों की चिंघाड़ें, योद्धाओं की गर्जनाएँ उनके सिंहनाद, ताल ठोकना और जोर जोर से बोलना आदि की ध्वनियाँ सब तरफ फैल गयीं।

उदतिष्ठन्महाराज सर्वं युक्तमशेषतः।
सूर्योदये महत् सैन्यं कुरुपाण्डवसेनयोः॥ ५॥
ततः प्रकाशे सैन्यानि समदृश्यन्त भारत।
त्वदीयानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च॥ ६॥
तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदपरिष्कृताः।
विभ्राजमाना दृश्यन्ते मेघा इव सविद्युतः॥ ७॥
रथानीकान्यदृश्यन्त नगराणीव भूरिशः।
अतीव शुशुभे तत्र पिता ते पूर्णचन्द्रवत्॥ ८॥

हे महाराज! सूर्योदय के समय कौरवों और पाण्डवों की वह विशाल सेना पूरी तरह तैयार हो कर युद्ध के लिये खड़ी हो गयी। हे भारत! उस समय सूर्य के प्रकाश में आपकी तथा शत्रुओं की सेनाएँ, शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर, विशालरूप में दिखाई दे रहीं थीं। वहाँ रथ और हाथी जाम्बूनद नाम के सुवर्ण से विभूषित होकर, विद्युत के साथ सुशोभित होनेवाले बादलों के समान प्रतीत हो रहे थे। बहुसंख्यक रथों की सेनाएँ नगरों के समान दिखाई दे रही थीं। उनके बीच में तुम्हारे पिता पूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे।

धनुर्भिर्ऋष्टिभिः खड्गैर्गदाभिः शक्तितोमरैः।
योधाः प्रहरणैः शुभ्रैस्तेष्वनीकेष्ववस्थिताः॥ ९॥
गजाः पदाता रथिनस्तुरगाश्च विशाम्पते।
व्यतिष्ठन् वागुराकाराः शतशोऽथ सहस्रशः॥ १०॥
ध्वजा बहुविधाकारा व्यदृश्यन्त समुच्छ्रिताः।
स्वेषां चैव परेषां च द्युतिमन्तः सहस्रशः॥ ११॥
उद्यतैरायुधैश्चित्रास्तलबद्धाः कलापिनः।
ऋषभाक्षा मनुष्येन्द्राश्चमूमुखगता बभुः॥ १२॥

उन सेनाओं में योद्धालोग धनुष, ऋष्टि, खड्ग, गदा, शक्ति, तोमर आदि जगमगाते हुए हथियारों के साथ खड़े हुए थे। हाथी, रथ, पैदल और घोड़े, हे राजन्! जाल के आकार में सैकड़ों और हजारों की संख्या में खड़े हुए थे। वहाँ अपनी और शत्रुओं की बहुत प्रकार की चमकीली पताकाएँ ऊपर को लहराती हुई दिखाई दे रही थीं। प्रहार करने के लिये उद्यत हथियारों के साथ, हाथ में दस्ताने और पीठ पर तरकस बाँधे हुए, बैल के समान आँखोंवाले राजा लोग सेना के मुख पर खड़े हुए विचित्र प्रकार से सुशोभित हो रहे थे।

श्वेतोष्णीषं श्वेतहयं श्वेतवर्माणमच्युतम्।
अपश्याम महाराज भीष्मं चन्द्रमिवोदितम्॥ १३॥
हेमतालध्वजं भीष्मं राजते स्यन्दने स्थितम्।
श्वेताभ्र इव तीक्ष्णांशुं ददृशुः कुरुपाण्डवाः॥ १४॥
सृंजयाश्च महेष्वासा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
जृम्भमाणं महासिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा यथा॥ १५॥
धृष्टद्युम्नमुखाः सर्वे समुद्विविजिरे मुहुः।

हे महाराज! अपने उद्देश्य से च्युत न होनेवाले, श्वेत पगड़ीवाले, श्वेत घोड़ोंवाले और श्वेत कवच धारण किये हुए भीष्म को हमने उस समय उदय होते हुए चन्द्रमा के समान देखा। चान्दी के रंग के रथ पर विद्यमान, ताल के चिन्ह से चिह्नित सुनहरी ध्वजावाले भीष्म को कौरवों पाण्डवों तथा धृष्टद्युम्न आदि महाधनुर्धर संजयों ने श्वेत बादलों से युक्त सूर्य के समान देखा। जैसे जँभाई लेते हुए महान् सिंह को देख कर छोटे पशु हो जाते हैं, वैसे ही

उन्हें देख कर धृष्टद्युम्न आदि सारेलोग बारबार उद्विग्न हो रहे थे।

**नैव नस्तादृशो राजन् दृष्टपूर्वो न च श्रुतः॥ १६॥
अनीकानां समेतानां कौरवाणां तथाविधः।
मघाविषयगः सोमस्तद् दिनं प्रत्यपद्यत॥ १७॥
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः।
सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव॥ १८॥
समानीय महीपालानिदं वचनमब्रवीत्।**

हे राजन्! कौरवों की एकत्र की हुई इतनी विशाल सेनाओं का संगठन हमने पहले कभी न तो देखा था और न सुना था। उस दिन चन्द्रमा मघा नक्षत्र में था और आकाश में सातों महान् ग्रह जगमगा रहे थे। तब सारे धर्मो के ज्ञाता आपके पिता देवव्रत ने राजाओं को बुला कर उनसे यह कहा कि--

**एष वः शाश्वतः पन्थाः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः॥ १९॥
सम्भावयध्वमात्मानमव्यग्रमनसो युधि।
नाभागोऽथ ययातिश्च मान्धाता नहुषो नृगः॥ २०॥
संसिद्धाः परमं स्थानं गताः कर्मभिरीदृशैः।
अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद् व्याधिमरणं गृहे॥ २१॥
यदयोनिधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः।
एवमुक्ता महीपाला भीष्मेण भरतर्षभ॥ २२॥
निर्ययुः स्वान्यनीकानि शोभयन्तो रथोत्तमैः।**

यह तुम्हारा पूर्ववर्ती पूर्वजों के द्वारा स्वीकार किया हुआ सनातन धर्म है, इसलिये आप लोग बिना किसी व्यग्रता के अपने आपको युद्ध में लगाओ। नाभाग, ययाति, मान्धाता, नहुष, नृग, इन सबने इसी प्रकार के कर्मों के द्वारा, परलोक में उत्तम स्थानों को प्राप्त किया है। क्षत्रिय के लिये यह अधर्म है कि वह बीमार हो कर घर में मरे। लोहे के शस्त्रों के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हो यही क्षत्रिय का सनातन धर्म है। हे भरतश्रेष्ठ! भीष्म जी के द्वारा यह कहने पर उन राजाओं ने उत्तम रथों के द्वारा सुशोभित होते हुए अपनी सेनाओं को युद्ध के लिये बाहर निकाला।

**स तु गोवासनः शैव्यः सहितः सर्वराजभिः॥ २३॥
ययौ मातङ्गराजेन राजार्हेण पताकिना।
पद्मवर्णस्त्वनीकानां सर्वेषामग्रतः स्थितः॥ २४॥
अश्वत्थामा ययौ यत्तः सिंहलाङ्गूलकेतुना।
श्रुतायुधश्चित्रसेनः पुरुमित्रो विविंशतिः॥ २५॥
शल्यो भूरिश्रवाश्चैव विकर्णश्च महारथः।
एते सप्त महेष्वासा द्रोणपुत्रपुरोगमाः॥ २६॥
स्यन्दनैर्वरवर्माणो भीष्मस्यासन् पुरोगमाः।**

तब गोवासन देश के राजा शैव्य अपने आधीन सारे राजाओं के साथ, ध्वज से युक्त राजोचित गजराज पर चढ़ कर चले। कमल के समान कान्तिमान् अश्वत्थामा, सिंह की पूँछ के चिह्नवाले ध्वज से युक्त रथ पर चढ़कर, सारी सेनाओं के आगे यत्नपूर्वक स्थित होकर चलने लगे। श्रुतायुध, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल्य, भूरिश्रवा और महारथी विकर्ण ये सात महाधनुर्धर द्रोणपुत्र को आगे रखकर, कवच धारणकर उत्तम रथों के द्वारा भीष्म के पीछे चल रहे थे।

**जाम्बूनदमयी वेदी कमण्डलुविभूषिता॥ २७॥
केतुराचार्यमुख्यस्य द्रोणस्य धनुषा सह।
अनेकशतसाहस्रमनीकमनुकर्षतः ॥ २८॥
महान् दुर्योधनस्यासीन्नागो मणिमयो ध्वजः।
तस्य पौरवकालिङ्गौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः॥ २९॥
क्षेमधन्वा सुमित्रश्च तस्थुः प्रमुखतो रथाः।
स्यन्दनेन महार्हेण केतुना वृषभेण च॥ ३०॥
प्रकर्षन्नेव सेनाग्रं मागधस्य कृपो ययौ।
तदङ्गपतिना गुप्तं कृपेण च मनस्विना॥ ३१॥
शारदाम्बुधरप्रख्यं प्राच्यानां सुमहद् बलम्।**

आचार्यप्रवर द्रोण की पताका पर कमण्डलु विभूषित स्वर्णमयी वेदी और धनुष के चिह्न बने हुए थे। लाखों सैनिकों की सेना को अपने साथ लेकर जानेवाला दुर्योधन का महान् मणिमय ध्वज, नाग के चिन्ह से सुशोभित था। उसके आगे पौरव, कलिंगराज काम्बोजराज सुदक्षिण, क्षेत्रधन्वा और सुमित्र ये प्रधान रथी चल रहे थे। वृषभ के चिह्न से अंकित ध्वज से सुशोभित बहुमूल्य रथ पर बैठ कर कृपाचार्य मगधदेश की सेना को अपने साथ लेकर चल रहे थे। अंगराज और मनस्वी कृपाचार्य से सुरक्षित पूर्व देशवासियों की वह विशालसेना शरद्ऋतु के बादलों के समान सुशोभित हो रही थी।

**अनीकप्रमुखे तिष्ठन् वराहेण महायशाः॥ ३२॥
शुशुभे केतुमुख्येन राजतेन जयद्रथः।
शतं रथसहस्राणां तस्यासन् वशवर्तिनः॥ ३३॥
अष्टौ नागसहस्राणि सादिनामयुतानि षट्।
षष्ट्या रथसहस्रैस्तु नागानामयुतेन च॥ ३४॥**

पतिः सर्वकलिङ्गानां ययौ केतुमता सह।
तस्य पर्वतसंकाशा व्यरोचन्त महागजाः॥ ३५॥
यन्त्रतोमरतूणीरैः पताकाभिः सुशोभिताः।
शुशुभे केतुमुख्येन पावकेन कलिङ्गकः॥ ३६॥
श्वेतच्छत्रेण निष्केण चामरव्यजनेन च।

महायशस्वी जयद्रथ वराहचिह्न से चिह्नित चाँदी के ध्वज से युक्त अपने रथ पर बैठे हुए सेना के अग्रभाग में सुशोभित हो रहे थे। उनके आधीन एक लाख रथ, आठ हजार हाथी और साठ हजार घुड़सवार थे। कलिंगदेश का राजा अपने मित्र केतुमान के साथ साठ हजार रथ और दस हजार हाथियों को लेकर चल रहा था। पर्वत के समान ऊँचे उसके विशाल हाथी, यन्त्रों, तोमरों, तूणीरों और पताकाओं के सुसज्जित थे। कलिंगदेश का राजा अपनी अग्नि के चिह्नवाली पताका, श्वेत छत्र, स्वर्णहार और चँवररूपी पंखे से सुशोभित हो रहा था।

केतुमानपि मातङ्गं विचित्रपरमाङ्कुशम्॥ ३७॥
आस्थितः समरे राजन् मेघस्थ इव भानुमान्।
तेजसा दीप्यमानस्तु वारणोत्तममास्थितः॥ ३८॥
भगदत्तो ययौ राजा यथा वज्रधरस्तथा।
गजस्कन्धगतावास्तां भगदत्तेन सम्मितौ॥ ३९॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केतुमन्तमनुव्रतौ।

हे राजन्! अपने विशाल और विचित्र अंकुश वाले हाथी पर बैठा हुआ केतुमान राजा भी युद्धभूमि में बादलों के ऊपर विद्यमान सूर्य की तरह प्रतीत हो रहा था। इन्द्र के समान अपने तेज से प्रकाशित होता हुआ राजा भगदत्त, एक श्रेष्ठ हाथी पर बैठा हुआ आगे बढ़ गया था। भगदत्त के ही समान प्रतापी और हाथी की पीठ पर बैठे हुए अवन्तीदेश के राजकुमार विन्द और अनुविन्द भी केतुमान के पीछे चल रहे थे।

स रथानीकवान् व्यूहो हस्त्यङ्गो नृपशीर्षवान्॥ ४०॥
वाजिपक्षः पतत्युग्रः प्रहसन् सर्वतोमुखः।
द्रोणेन विहितो राजन् राज्ञा शान्तनवेन च॥ ४१॥
तथैवाचार्यपुत्रेण बाह्लीकेन कृपेन च।

रथों की सेनाओं से युक्त उस सेना के व्यूह का नाम सर्वतोमुख था। हाथी उसके अंग थे, राजालोग उसके मस्तक थे, घोड़े उसके पंख थे। वह मानो हँसता हुआ सा उग्ररूप से आक्रमण कर रहा था। हे राजन। उस व्यूह का निर्माण द्रोणाचार्य, शान्तनुपुत्र भीष्म, आचार्यपुत्र अश्वत्थामा, राजा बाह्लीक और कृपाचार्य ने किया था।

पृष्ठगोपास्तु भीष्मस्य पुत्रास्तव नराधिप॥ ४२॥
दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुःसहस्तथा।
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः॥ ४३॥
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवाः शलः।
रथा विंशतिसाहस्रास्तथैषामनुयायिनः॥ ४४॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः।
शाल्वा मत्स्यास्तथाम्बष्ठास्त्रैगर्ताः केकयास्तथा॥ ४५॥
सौवीराः कैतवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यवासिनः।
द्वादशैते जनपदाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः॥ ४६॥
महता रथवंशेन ते ररक्षुः पितामहम्।

हे राजन्! आपके पुत्र दुश्शासन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुस्सह, विविंशति, चित्रसेन और महारथी विकर्ण, सत्यव्रत, पुरुमित्र, जय, भूरिश्रवा और शल तथा उनके अनुयायी बीस हजार रथी भीष्म जी के पृष्ठभाग की रक्षा कर रहे थे। अभीषाह, शूरसेन, शिवि, वसाति, शाल्व, मत्स्य, अम्बष्ठ, त्रिगर्त, केकय, सौवीर, कैतव, पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर के निवासी, इन बारह जनपदों के शूरवीर, जो सारे प्राणों को न्यौछावर करनेवाले थे, विशाल रथसमुदाय के साथ पितामह की रक्षा कर रहे थे।

अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम्॥ ४७॥
मागधो यत्र नृपतिस्तद् रथानीकमन्वयात्।
पादाताश्चाग्रतोऽगच्छन् धनुश्चर्मासिपाणयः॥ ४८॥
अनेकशतसाहस्रा नखरप्रासयोधिनः।
अक्षौहिण्यो दशैका च तव पुत्रस्य भारत।
अदृश्यन्त महाराज गङ्गेव यमुनान्तरा॥ ४९॥

मगध के राजा दस हजार वेगवान् हाथियों की सेना के साथ रथों की सेना के पीछे चल रहे थे। लाखों पैदल सैनिक धनुष, ढाल, तलवार हाथ में लिये, जो बघनखे और प्रास के द्वारा भी युद्ध करते थे, आगे आगे जा रहे थे। हे भारत! इस प्रकार आपके पुत्र की वह ग्यारह अक्षौहिणी सेना यमुना में मिली हुई गंगा के समान दिखाई दे रही थी।

चौथा अध्याय : अर्जुन के द्वारा वज्रव्यूह की रचना, भीमसेन की अध्यक्षता में सेना का प्रस्थान।

अभ्यभाषत धर्मात्मा धर्मराजो धनंजयम्।
महर्षेर्वचनात् तात वेदयन्ति बृहस्पतेः॥ १॥
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून्।
एतद् वचनमाज्ञाय महर्षेर्व्यूह पाण्डव॥ २॥
एतच्छ्रुत्वा धर्मराजं प्रत्यभाषत पाण्डवः।

संजय ने कहा कि तब धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि हे तात! महर्षि बृहस्पति के वचन से ऐसा जाना जाता है कि यदि शत्रुओं की सेना अपने से थोड़ी हो तो अपनी सेना को छोटे आकार में संगठित करके और यदि अपने से अधिक हो तो इच्छानुसार फैलाकर के युद्ध करना चाहिये। हे पाण्डव! महर्षि के इस वचन को समझ कर तुम भी अपनी सेना का व्यूह बनाओ। युधिष्ठिर की यह बात सुनकर पाण्डुपुत्र अर्जुन ने यह उत्तर दिया कि–

एष व्यूहामि ते व्यूहं राजसत्तम दुर्जयम्॥ ३॥
अचलं नाम वज्राख्यं विहितं वज्रपाणिना।
यः स वात इवोद्धूतः समरे दुःसहः परैः॥ ४॥
स नः पुरो योत्स्यते वै भीमः प्रहरतां वरः।
तेजांसि रिपुसैन्यानां मृद्नन् पुरुषसत्तमः॥ ५॥
अग्रेऽग्रणीर्योत्स्यति नो युद्धोपायविचक्षणः।
यं दृष्ट्वा कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः॥ ६॥
निवर्तिष्यन्ति संत्रस्ताः सिंहं क्षुद्रमृगा यथा।
तं सर्वे संश्रयिष्यामः प्राकारमकुतोभयाः॥ ७॥
न हि सोऽस्ति पुमाँल्लोके यः संक्रुद्धं वृकोदरम्।
द्रष्टुमत्युग्रकर्माणं विषहेत नरर्षभम्॥ ८॥

हे राजश्रेष्ठ! यह मैं आपके लिये दुर्जय और अचल वज्रनाम के व्यूह का निर्माण करता हूँ, जिसका विधान वज्रधारी इन्द्र ने किया था। प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ भीम, जो समरभूमि में प्रचण्ड वायु के समान उठकर शत्रुओं के लिये दुस्सह हो जाते हैं, वे हमारे आगे रहकर युद्ध करेंगे। युद्ध के उपायों में विचक्षण ये पुरुषश्रेष्ठ हमारे अगुआ बन कर आगे रहते हुए और शत्रु के तेज को नष्ट करते हुए युद्ध करेंगे। सिंह को देखकर छोटे पशुओं के समान उन्हें देखकर दुर्योधन आदि सारे कौरव भयभीत होकर पीछे लौट जायेंगे। परकोटे के समान इनका आश्रय लेकर हम सब निर्भय हो जायेंगे। क्योंकि संसार में कोई ऐसा पुरुष नहीं है जो उग्र कर्म करनेवाले नरश्रेष्ठ वृकोदर के अत्यन्त क्रुद्ध होने पर इनकी तरफ आँख उठाकर भी देख सके।

एवमुक्त्वा महाबाहुस्तथा चक्रे धनंजयः।
व्यूह्य तानि बलान्याशु प्रययौ फाल्गुनस्तथा॥ ९॥
सम्प्रयातान् कुरून् दृष्ट्वा पाण्डवानां महाचमूः।
गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्यन्दमाना व्यदृश्यत॥ १०॥
भीमसेनोऽग्रणीस्तेषां धृष्टद्युम्नश्च वीर्यवान्।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः॥ ११॥
विराटश्च ततः पश्चाद् राजाथाक्षौहिणीवृतः।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षत पृष्ठतः॥ १२॥

ऐसा कहकर उस महाबाहु ने वैसा ही किया और जल्दी ही अपनी सेना का व्यूह बनाकर अर्जुन ने युद्ध के लिये प्रस्थान किया। कौरवों की सेना को अपनी तरफ आते देखकर पाण्डवों की विशाल सेना, जो पहले भरी हुई गंगा के समान थी, हलचल से युक्त दिखाई देने लगी। भीमसेन उसके अग्रणी थे, प्रतापी धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और राजा धृष्टकेतु उनके साथ थे। उनके पीछे राजा विराट अक्षौहिणी सेना के साथ थे, जो अपने भाइयों और पुत्रों के साथ उनके पृष्ठभाग की रक्षा कर रहे थे।

चक्ररक्षौ तु भीमस्य माद्रीपुत्रौ महाद्युतौ।
द्रौपदेयाः ससौभद्राः पृष्ठगोपास्तरस्विनः॥ १३॥
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथः।
सहितः पृतनाशूरै रथमुख्यैः प्रभद्रकैः॥ १४॥
शिखण्डी तु ततः पश्चादर्जुनेनाभि रक्षितः।
पृष्ठतोऽप्यर्जुनस्यासीद् युयुधानो महाबलः॥ १५॥
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ।

महान् तेजस्वी माद्री के दोनों पुत्र नकुल, सहदेव भीम के पहियों की रक्षा कर रहे थे। वेगवान् द्रौपदी के पुत्र अभिमन्यु के साथ भीम के पिछले भाग के रक्षक थे। पांचाल राजकुमार धृष्टद्युम्न महारथी अपनी सेना के वीर सैनिकों तथा प्रभद्रक प्रमुख रथियों के साथ उन सब की रक्षा कर रहे थे। इन सबके पश्चात् अर्जुन के द्वारा सुरक्षित शिखण्डी था। अर्जुन के पीछे

महाबलवान् सात्यकि थे। पाँचालवीर युधामन्यु और उत्तमौजा दोनों अर्जुन के पहियों की रक्षा कर रहे थे।

राजा तु मध्यमानीके कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १६॥
बृहद्भिः कुञ्जरैर्मत्तैश्चलद्भिरचलैरिव।
अक्षौहिण्याथ पाञ्चाल्यो यज्ञसेनो महामनाः॥ १७॥
विराटमन्वयात् पश्चात् पाण्डवार्थं पराक्रमी।
तेषामादित्यचन्द्राभाः कनकोत्तमभूषणाः॥ १८॥
नानाचित्रधरा राजन् रथेष्वासन् महाध्वजाः।
समुत्सार्थ ततः पश्चाद् धृष्टद्युम्नो महारथः॥ १९॥
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्य रक्षद् युधिष्ठिरम्।

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर, चलते फिरते पर्वतों के समान, विशाल और मतवाले गजराजों की सेना के साथ सेना के मध्यभाग में विद्यमान थे। महामना, पराक्रमी पाँचालराज द्रुपद अक्षौहिणी सेना के साथ पाण्डवों के लिये विराट के पीछे चल रहे थे। तरह तरह के बेलबूटों से विभूषित, स्वर्णमण्डित, विशाल ध्वज, उनके रथों पर सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहे थे। उसके पश्चात् महारथी धृष्टद्युम्न सबको हटाकर स्वयं भाइयों, और पुत्रों के साथ युधिष्ठिर की रक्षा में लग गये।

त्वदीयानां परेषां च रथेषु विपुलान् ध्वजान्॥ २०॥
अभिभूयार्जुनस्यैको रथे तस्थौ महाकपिः।
पादातास्त्वग्रतोऽगच्छन्नसिशक्त्यृष्टिपाणयः॥ २१॥
अनेकशतसाहस्रा भीमसेनस्य रक्षिणः।
वारणा दशसाहस्राः प्रभिन्नकरटामुखाः॥ २२॥
शूरा हेममयैर्जालैर्दीप्यमाना इवाचलाः।
क्षरन्त इव जीमूता महार्हाः पद्मगन्धिनः॥ २३॥
राजानमन्वयुः पश्चाज्जीमूता इव वार्षिकाः।

आपकी सेना के और शत्रुओं की सेना के रथों पर लहराते हुए विशाल ध्वजों को तिरस्कृत करता हुआ अकेले अर्जुन के रथ पर महान् वानर के चिह्न से चिह्नित ध्वज लहरा रहा था। भीमसेन की रक्षा के लिये कई लाख पैदल सैनिक तलवार, शक्ति तथा ऋष्टि हाथ में लिये हुए उसके आगे आगे चल रहे थे। वर्षाऋतु के बादलों के समान, मद बहानेवाले, शूरवीर, सुनहरी झूलों से जगमगाते हुए, पर्वतों के समान विशाल, बहुमूल्य, कमल के समान सुगन्धवाले, दस हजार हाथी, राजा दुधिष्ठिर के पीछे जा रहे थे।

भीमसेनो गदां भीमां प्रकर्षन् परिघोपमाम्॥ २४॥
प्रचकर्ष: महासैन्यं दुराधर्षो महामनाः।
तमर्कमिव दुष्प्रेक्ष्यं तपन्तमिव वाहिनीम्॥ २५॥
न शेकु सर्वयोधास्ते प्रतिवीक्षितुमन्तिके।
यं प्रतिव्यूह्य तिष्ठन्ति पाण्डवास्तव वाहिनीम्।
अजेयो मानुषे लोके पाण्डवैरभिरक्षितः॥ २६॥

महामनस्वी और दुर्धर्ष वीर भीमसेन, परिघ के समान मोटी, भयानक गदा को लिये हुए विशाल सेना को अपने साथ खींचे लिये हुए जा रहे थे। आपकी सेना को सन्तप्त सा करते हुए, और सूर्य के समान दुर्दर्शनीय उन भीमसेन के समीप आने पर सारे योद्धा उनकी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देख सकते थे। पाण्डव लोग आपकी सेना का सामना करने के लिये, जिस व्यूह का निर्माण करके खड़े हुए थे, वह उनके द्वारा सुरक्षित होने के कारण मनुष्यलोक में अजेय था।

गीता परिशिष्ट : संशोधित गीता

गीता महाभारत का भाग नहीं है। अध्यात्म का वर्णन करनेवाली यह पुस्तक किसी अन्य रचनाकार के द्वारा रचित होकर महाभारत में प्रक्षेप की गयी है, यह बात विचारणीय विषय नाम की विस्तृत भूमिका में युक्ति और प्रमाणों के साथ अच्छी तरह से समझायी गयी है। वहाँ यह भी समझाया गया है कि गीता अपने प्रक्षेप के समय कर्मयोग और अध्यात्म को समझानेवाली सुन्दर पुस्तक थी, पर प्रक्षेप होने के पश्चात् महाभारत के दूसरे भागों के समान इसमें भी अनेक प्रक्षेप किये गये, जिनके कारण यह इस समय किसी निश्चित सिद्धान्त की पोषक न होकर विभिन्न परस्पर विपरीत विचारों का संग्रहमात्र है।

गीता को महाभारत का भाग न मानते हुए भी, इसकी लोकप्रियता को देखकर सम्पादक के द्वारा महाभारत के समान इसके भी प्रक्षेपांश को दूर कर, इसे विशुद्ध रूप देने का प्रयास किया गया है। पाठकों को इसे महाभारत का अंग न मानकर एक स्वतन्त्र पुस्तक समझकर पढ़ना चाहिये। गीता का यह संशोध न स्वामी आत्मानन्द जी की वैदिक गीता के आधार पर किया गया है।

प्रथम अध्याय : अर्जुन विषाद
सार और संगति

अर्जुन युद्ध के लिये पूरी तरह से तैयार था। एक दिन पहले ही उसने दुर्योधन के द्वारा भेजे हुए शकुनि के पुत्र उलूक को बड़े उत्साहपूर्ण कड़े शब्दों में उन सबका विनाश कर देने की चेतावनी दी थी। पर अब युद्ध आरम्भ होने से पहले युद्ध के लिये सामने खड़े हुए अपने सम्बन्धियों को देखकर उसके हृदय में छिपा हुआ तमोगुण मोह का रूप धारण कर उसके सामने आ खड़ा हुआ और उसने अर्जुन को धनुषबाण दूर रख देने के लिये विवश कर दिया। इसके परिणामस्वरूप उसने श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे महाराज! क्या इस तुच्छ से राज्य और ऐश्वर्य के लिये मैं अपने गुरुओं, बन्धुओं और सम्बन्धियों के रक्त से अपने हाथ रंगूँ? क्या इनकी बची हुई कुलदेवियों के शीलपतन, वर्णसंकरता के भाव को मैं अपने हाथों से जन्म दूँ? क्या इस तुच्छ से राज्य के लिये मैं अपने वंश का और अपनी सभ्यता का सर्वनाश कर दूँ? नहीं महाराज! यह मुझसे नहीं होगा। इसकी अपेक्षा तो यदि ये लोग मुझ निहत्थे का ही इस रणभूमि में शस्त्रों से अन्त कर दें, तो मेरा परम कल्याण हो। ऐसा कहकर अर्जुन धनुषबाण हाथ से दूर रखकर बैठ गया।

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय॥ १॥

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत्॥ २॥
पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥ ३॥

तब धृतराष्ट्र ने संजय से कहा कि हे संजय! कुरुक्षेत्र नाम की धर्मभूमि पर अर्थात् जहाँ धर्म की रक्षा के लिये युद्ध किया जा रहा है, उस भूमि पर एकत्र हुए मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया? तब संजय ने कहा कि वहाँ पाण्डवों की सेना को युद्ध के लिये व्यूहबद्ध हुआ देखकर राजा दुर्योधन द्रोणाचार्य के समीप जाकर उनसे बोला कि हे आचार्य! पाण्डु के पुत्रों की इस विशाल सेना को

देखो, जिसे आपके शिष्य धीमान् द्रुपदपुत्र के द्वारा व्यूहबद्ध किया गया है।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः॥ ४॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः॥ ५॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥ ६॥

इस सेना में युद्ध के लिये भीम और अर्जुन जैसे महाधनुर्धर, युयुधान, विराट, महारथी द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान, प्रतापी काशीराज, पुरुजित्, कुन्तीभोज और नरश्रेष्ठ शिविदेश का राजा, पराक्रमी युधामन्यु, तेजस्वी उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्र ये सारे महारथी हैं।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान् निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते॥ ७॥
भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च॥ ८॥
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः॥ ९॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! हमारे जो विशेष वीर हैं और मेरी सेना के नायक हैं, उन्हें भी आप जानिये। आपकी जानकारी के लिये मैं उनका परिचय दे रहा हूँ। आप और भीष्म तथा युद्ध को जीतनेवाला कर्ण और कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण तथा सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा ये तथा दूसरे बहुत से शूरवीर हैं, जो मेरे लिये प्राणों को न्यौछावर करनेवाले हैं। ये सारे नाना प्रकार के शस्त्रों के द्वारा प्रहार करनेवाले और युद्ध में विशारद हैं।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्॥ १०॥
अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि॥ ११॥

भीष्म के द्वारा रक्षा की गई हमारी सेना तो अपरिमेय अर्थात् असंख्य हैं, किन्तु भीम के द्वारा रक्षा की हुई पाण्डवों की सेना परिमेय अर्थात् नपी तुली है। आपलोगसारे जिसको सेना का जो जो भाग मिला है, सेना के उन उन स्थानों पर खड़े हुए भीष्म की ही रक्षा करें।

तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्॥ १२॥
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥ १३॥

तब कुरुओं के बूढ़े पितामह प्रतापी भीष्म ने दुर्योधन के हर्ष को बढ़ाते हुए, जोर से सिंहनाद करके अपने शंख को बजाया। तब दोनों तरफ से शंख, भेरी, पणव आनक और गोमुख नाम के बाजे अचानक ही बजाये जाने लगे। उनकी ध्वनि तब बहुत महान् हो रही थी।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः॥ १४॥
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः॥ १५॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ॥ १६॥
काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥ १७॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान् दध्मुः पृथक् पृथक्॥ १८॥

तब जिसमें सफेद घोड़े जुते हुए थे ऐसे विशाल रथ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुन ने अपने अलौकिक शंखों को बजाया। श्रीकृष्ण जी ने अपने पांचजन्य तथा अर्जुन ने देवदत्त नाम के शंखों को बजाया। इनके साथ ही भयानक कर्म करनेवाले भीमसेन ने पौंड्र नाम के महान् शंख को बजाया। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर अपने अनन्तविजय नाम के शंख को तथा नकुल और सहदेव अपने सुघोष एवं मणिपुष्पक नाम के शंखों को बजाने लगे। इसी प्रकार महाधनुर्धर काशीराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट और किसी से न हारने वाला सात्यकि, द्रुपद, द्रौपदी के पुत्र और बड़ी भुजाओं वाला सुभद्रापुत्र अभिमन्यु ये सारे हे राजन्! अपने अपने शंखों को अलग अलग बजाने लगे।

अर्जुन उवाच

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।
यावदेतान् निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्॥ १९॥
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः॥ २०॥

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्॥ २१॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति॥ २२॥

तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे अच्युत! आप मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कीजिये, जिससे मैं इन विपक्षी वीरों को जो युद्ध की इच्छा से यहाँ विद्यमान हैं, देख लूँ। धृतराष्ट्र के दुर्बुद्धि पुत्र दुर्योधन का प्रिय करने के इच्छुक जो जो वीर यहाँ युद्ध करने के लिये आये हुए हैं, मैं इन सबको देखूँगा। हे भारत! अर्जुन के द्वारा ऐसा कहे जाने पर श्रीकृष्ण जी ने अपने उत्तम रथ को दोनों सेनाओं के बीच में, प्रमुख रूप से भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने तथा सारे राजाओं के सामने खड़ा करके कहा कि हे कुन्तीपुत्र! तुम इन सारे युद्ध के लिये एकत्र हुए कौरवों को देखो।

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान्।
आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा॥ २३॥
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।
तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान्॥ २४॥
कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।

तब अर्जुन ने वहाँ युद्ध के लिये खड़े हुए दोनों ही सेनाओं में अपने ताऊचाचों, दादा, परदादों को, गुरुओं को, मामाओं को, भाइयों को, पुत्रों को, पौत्रों को तथा मित्रों को, ससुरों को और सुहृदों को भी देखा। तब उन सारे अपने बन्धुओं को युद्ध के लिये उपस्थित देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुन अत्यन्त करुणा से भरकर दुःखी होते हुए यह बोले कि–

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्॥ २५॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥ २६॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक् चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥ २७॥
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे।
न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च॥ २८॥
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।

हे कृष्ण! युद्ध के लिये इच्छुक होकर उपस्थित हुए इन अपने बन्धुओं को देखकर मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है, मेरे शरीर में कंपकँपी और रोमांच हो रहा है। गाण्डीव धनुष मेरे हाथ से खिसक रहा है, मेरी त्वचा भी जल रही है। मेरा मन भ्रमित सा हो रहा है। मैं यहाँ ठहर नहीं सकता। मैं युद्ध में अपने बन्धुओं को मारकर कल्याण नहीं देख रहा हूँ। हे कृष्ण! मैं अब न तो विजय को चाहता हूँ, न राज्य चाहता हूँ और न सुखों को प्राप्त करना चाहता हूँ। हे कृष्ण! हमें ऐसे राज्य, भोगों और जीवन को प्राप्त करने से क्या लाभ है?

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च॥ २९॥
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः॥ ३०॥
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा।
एतान् न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन॥ ३१॥
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते।
निहत्य धार्तराष्ट्रान् नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन॥ ३२॥
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः।

जिनके लिये हम राज्य को, भोगों को और सुखों को प्राप्त करना चाहते हैं, वे ही अपने प्राणों की तथा धन की आशा त्यागकर यहाँ युद्ध के लिये खड़े हुए हैं। ये मेरे आचार्य, ताऊचाचे, पुत्र, दादे, मामे, ससुर, पौत्र, साले और सम्बन्धी लोग हैं। मैं तीनों लोकों के राज्य के लिये तथा मुझे मारने पर भी, इन सबको मारना नहीं चाहता, फिर भूमि के लिये तो मार ही कैसे सकता हूँ? हे जनार्दन! धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर हमें क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियों को मारने पर तो हमें पाप ही लगेगा।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्॥ ३३॥
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव।
यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः॥ ३४॥
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्।
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्॥ ३५॥
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन।
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः॥ ३६॥
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत।

हे माधव! इसलिये हम अपने बन्धु धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने के योग्य नहीं हैं। हम अपने ही लोगों को मारकर कैसे सुखी हो सकते हैं। यद्यपि लोभ के कारण भ्रष्ट हुए चित्तवाले ये लोग, परिवार के विनाश से होनेवाले दोष तथा मित्रद्रोह से होनेवाले

पाप को नहीं देख रहे हैं पर हे कृष्ण! परिवार के विनाश से होनेवाले दोष को देखनेवाले हमें, इस पापकर्म से पीछे हटने के लिये क्यों नहीं विचार करना चाहिये? कुल के नष्ट हो जाने पर सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं। कुलधर्म के नष्ट हो जाने पर सारा कुल अधर्म से युक्त हो जाता है।

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः॥ ३७॥
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः।
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः॥ ३८॥
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।
अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्॥ ३९॥
यद् राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः।
यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः॥ ४०॥
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्।

हे कृष्ण! अधर्म के बढ़ जाने पर कुल की स्त्रियाँ अत्यन्त दूषित हो जाती हैं। स्त्रियों के दुष्टा हो जाने पर वर्णसंकर सन्तान जन्म लेने लगती है। वर्णसंकरता को जन्म देनेवाले इन दोषों से कुलघातियों के सनातन कुलधर्म और जातिधर्म नष्ट हो जाते हैं। अरे! वास्तव में हम बहुत बड़ा पापकर्म करने के लिये चल पड़े हैं, जो राज्यसुख के लोभ से अपने बन्धुओं को मारने के लिये तैयार हो गये। ऐसी अवस्था में तो यदि शस्त्र हाथ में न लिये हुए और सामना न करते हुए मुझे धृतराष्ट्र के पुत्र यदि शस्त्र हाथ में लेकर युद्धक्षेत्र में मार भी डालें, तो वह भी मेरे लिये अधिक कल्याणकारी होगा।

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्॥ ४१॥
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः।
तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्॥ ४२॥
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः।
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्युपपद्यते॥ ४३॥
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥ ४४॥

ऐसा कहकर युद्ध के मैदान में अर्जुन शोक से युक्त मनवाला होकर और अपने धनुषबाण को छोड़कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया। तब उसे इस प्रकार करुणा से युक्त, शोक से भरे हुए, व्याकुल आँखोंवाला और शिथिल होता हुआ देखकर श्रीकृष्णजी ने यह कहा कि हे अर्जुन! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, तुम्हारे लिये यह उचित नहीं है। हे शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले! इस तुच्छ हृदय की दुर्बलता को छोड़कर खड़े हो जाओ। तब अर्जुन ने कहा कि हे मधुसूदन! हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले! मैं युद्धक्षेत्र में भीष्म के तथा द्रोणाचार्य के विरुद्ध बाणों से कैसे युद्ध करूँगा? ये तो मेरे पूजनीय हैं।

गुरूनहत्वा हि महानुभावा-
ञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्॥ ४५॥
न चैतद् विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद् वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥ ४६॥

इन महानुभाव गुरुओं को न मारकर यदि मैं संसार में भीख माँगकर भी जीवननिर्वाह करूँ, तो वह भी मेरे लिये कल्याणकर होगा, क्योंकि यहाँ युद्धक्षेत्र में गुरुओं को मारकर तो मैं इनके खून से सने हुए धन और कामरूप भोगों को ही भोगूँगा। हम यह भी नहीं जानते कि युद्ध करनेवाले हम लोगों से कौन सा पक्ष अधिक बलवान् है? हम जीतेंगे या वे हमें जीतेंगे। जिन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही युद्ध के लिये हमारे सम्मुख खड़े हुए हैं।

कार्पण्यदोषोपहत- स्वभावः-
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ ४७॥
न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषण- मिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥ ४८॥

इस समय दया के दोष से दबे हुए स्वभाववाला और क्षत्रियधर्म के विषय में मोहित बुद्धिवाला मैं आपसे पूछता हूँ कि कौन सा कार्य मेरे लिये निश्चितरूप से कल्याणकर है? मैं आपका शिष्य हूँ और आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझे इस

बारे में समझाइये। क्योंकि इस भूमि पर निष्कण्टक समृद्धिशाली राज्य को तथा देवताओं के भी आधिपत्य को प्राप्त कर मैं किसी ऐसे उपाय को नहीं देख रहा हूँ, जो मेरे इन्द्रियों को सुखानेवाले इस शोक को दूर कर सके।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥ ४९॥

जितेन्द्रिय श्रीकृष्ण जी से ऐसा कहकर शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाला और निद्राविजयी अर्जुन, मैं युद्ध नहीं करूँगा, यह कहकर चुप हो गया।

दूसरा अध्याय : सांख्य योग

सार और संगति

तब अर्जुन की दीनताभरी प्रार्थना और युद्धनिषेध को सुनकर, उसे धर्मसंकट में फँसा हुआ जानकर श्री कृष्णजी ने उसे समझाना आरम्भ किया। अर्जुन में उस समय तीन समस्याएँ थी:–

1. अर्जुन अपने कुलपुरुषों की निकट भविष्य में होनेवाली मृत्यु के शोक से चिन्तित था।
2. वह अपने गुरुजनों और बन्धु-बान्धवों को मारने में अधर्म समझ रहा था।
3. उसका झुकाव अपने क्षत्रियकर्म युद्ध को छोड़कर कर्महीनता की तरफ हो गया था।

अर्जुन की इन्हीं तीन समस्याओं का समाधान गीता में किया गया है। इस अध्याय में पहले सांख्य योग अर्थात् जड़ और चेतन के ज्ञान के द्वारा अर्जुन के शोक को दूर करने का यत्न किया गया है। उन्होंने उससे कहा कि जन्म और मृत्यु तो शरीर के आवश्यक धर्म हैं। तुम शस्त्र उठाओगे तब भी और नहीं उठाओगे तब भी शरीर का नाश तो अवश्य होगा, अतः इसके लिये शोक किसलिये?

शरीर में रहनेवाला जो आत्मा है वह अमर है, उसके लिये एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाना ऐसे ही है जैसे पुराना वस्त्र त्यागकर नया वस्त्र पहन लेना। यदि तुम आत्मा को भी उत्पन्न और नष्ट होनेवाला मानो तो जो उत्पन्न होता है उसका नाश अवश्य होता है, इसलिये उसका भी नाश अवश्यम्भावी है। इस प्रकार जब सारा जगत मृत्यु के बन्धन में है तो तुम शोक किसलिये करते हो?

अर्जुन की दूसरी समस्या का हल श्रीकृष्ण जी ने यह कहकर किया कि तुम क्षत्रिय हो, युद्ध करना तुम्हारा धर्म है और यह संग्राम वैसे भी धर्म की स्थापना के लिये किया जा रहा है। यदि यह युद्ध न किया गया तो संसार में अधर्म की स्थापना और धर्म का उच्छेद हो जाएगा।

अर्जुन की तीसरी समस्या का निर्णय आगे तीसरे अध्याय से आरम्भ होगा।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः॥ १॥
अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥ २॥
न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥ ३॥
देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥ ४॥

तब संजय ने कहा कि हे भरतवंशी महाराज धृतराष्ट्र! इस प्रकार दोनों सेनाओं के बीच में शिथिल होते हुए अर्जुन से जितेन्द्रिय श्रीकृष्ण जी ने मुस्कराते हुए यह कहा कि हे अर्जुन! तू शोक न करनेयोग्य व्यक्तियों के लिये शोक कर रहा है और पंडितों जैसी बातें कर रहा है, पर पण्डितलोग जिनके प्राण चले गये हैं और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये शोक नहीं करते हैं। ऐसा नहीं है कि पहले मैं, तुम और ये राजा लोग नहीं थे। ऐसा भी नहीं है कि भविष्य में हम सारे नहीं होंगे। अर्थात् हम सबकी आत्माएँ हमारे वर्तमान शरीरों के जन्म से पहले भी थीं और इन शरीरों के नष्ट होने के पश्चात्

भविष्य में भी रहेंगी। जैसे शरीर को धारण करते हुए आत्मा शरीर की कुमारावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था आदि को अनुभव करता है, वैसे ही उसके लिये एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को प्राप्त करना है। इसलिये धैर्यवान् व्यक्ति शरीर के नष्ट होने पर शोक से मोहित नहीं होते हैं।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥ ५॥
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ ६॥
नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ७॥
अविनाशि तु तद् विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति॥ ८॥

हे कुन्तीपुत्र! सर्दी, गर्मी, सुख और दुःख का अनुभव करानेवाले इन्द्रियों और विषयों के सम्बन्ध तो आने और जानेवाले, अनित्य हैं, इसलिये हे भारत! उन्हें तुम सहन करो। हे पुरुषश्रेष्ठ! जिस पुरुष को ये इन्द्रियं और विषयों के संबंध व्यथित नहीं करते हैं, जो धैर्यवान् सुख और दुःख में समान रूप से रहता है, वह मोक्ष को प्राप्त करने के योग्य होता है। संसार में जो वस्तु है नहीं, उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती और जो है उसका विनाश नहीं हो सकता। तत्व को जाननेवालों ने इन दोनों के ही परिणाम को देखा हुआ है। जिस आत्मा के कार्य व्यवहार इस सारे संसार में व्याप्त हो रहे हैं, उस आत्मा को तू अविनाशी समझ। उस अविनाशी आत्मा का कोई भी विनाश नहीं कर सकता।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत॥ ९॥
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥ १०॥

हे भारत! यह आत्मा जो शरीरों को धारण करता रहता है, अविनाशी और इन्द्रियों के ज्ञान से दूर है। इसके द्वारा धारण किये जाने वाले ये सारे शरीर विनाशी हैं, इसलिये तुम इन शरीरों के विनाश की चिन्ता न करो, क्योंकि इनका तो कभी न कभी विनाश होना ही है। तुम युद्ध करो। जो यह समझता है कि आत्मा किसी को मारता है और आत्मा किसी के द्वारा मारा जाता है, ये दोनों प्रकार के मनुष्य ज्ञानवान् नहीं हैं। यह आत्मा न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ ११॥

यह आत्मा न तो कभी उत्पन्न होता है, और न कभी मरता है। यह न तो एक बार होकर पुनः भविष्य में होने वाला है। यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह मारा नहीं जाता।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥ १२॥

जो इस आत्मा को अविनाशी, नित्य रहनेवाला, अजन्मा और अविकारी समझता है, हे अर्जुन! वह व्यक्ति किसे मरवाता है? और किसे मारता है? अर्थात् जो आत्मा को नित्य मानता है, उसके हृदय में मरने और मारने का भाव उठ ही नहीं सकता। वह तो सारे कर्म अपना कर्त्तव्य समझ कर करता है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ १३॥

जिस प्रकार से एक व्यक्ति फटे हुए पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये दूसरे वस्त्रों को धारण कर लेता है, उसी प्रकार से यह आत्मा भी बुढ़ापे के कारण कमजोर हुए या कटे, टूटे शरीरों को त्याग कर नये दूसरे शरीरों को धारण करता रहता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ १४॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥ १५॥
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि॥ १६॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ १७॥
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥ १८॥

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं और न अग्नि जला सकती है। इसे जल भी गीला नहीं कर सकता और वायु सुखा नहीं सकता। यह आत्मा अव्यक्त और अचिन्त्य है अर्थात् इसे प्रत्येक व्यक्ति नहीं समझ सकता और न इसके विषय में विचार कर सकता है। इसे अविकारी कहा जाता है। इस लिये आत्मा को इस प्रकार का समझ कर तुझे इसके लिये शोक नहीं करना चाहिये। हे महाबाहु! यदि तुम इस आत्मा को सदा जन्म लेनेवाला और मरनेवाला समझते हो, तो भी तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि जन्म लेनेवाले की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का पुनर्जन्म भी अवश्यम्भावी है। इसलिये जिस कार्य को बदला नहीं जा सकता, उसके लिये भी तुम्हे शोक नहीं करना चाहिये। हे भारत! ये सारे प्राणी जन्म से पहले प्रकट नहीं थे, जन्म लेने पर प्रकट हो गये हैं, किन्तु मृत्यु के पश्चात् पुन अप्रकट हो जायेंगे। यह नियम सभी के लिये है, फिर ऐसी स्थिति में शोक क्या करना है?

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥ १९॥

यह आत्मा दूसरे प्राणियों के समान नहीं है, अपितु उनसे विलक्षण है। इसके अनुभव करनेवालों में से कोई इसे आश्चर्य से युक्त होकर देखता है, कोई इसे आश्चर्यों से युक्त बताता है, कोई इसके विषय में आश्चर्य से युक्त होकर सुनता है और कोई सुनकर भी इसे नहीं जान पाता है।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥ २०॥

हे भारत! शरीरों को धारण करने वाली यह आत्मा सर्वदा किसी के द्वारा भी मारी नहीं जा सकती। इसलिये तुझे इन सारे प्राणियों के विषय में शोक नहीं करना चाहिये।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते॥ २१॥
यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृम्॥ २२॥

अथ चेत् त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥ २३॥
अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥ २४॥
भयाद् रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥ २५॥

अपने क्षत्रियधर्म का विचार करके भी तुम्हें भय नहीं करना चाहिये, क्योंकि क्षत्रिय के लिये धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर कोई और कल्याणकारी कार्य नहीं है। हे अर्जुन! उत्तम गति को प्राप्त करानेवाले खुले हुए द्वार के समान यह युद्धरूपी कर्तव्य कर्म तेरे सम्मुख अपनेआप उपस्थित हुआ है। इसे सौभाग्यशाली क्षत्रिय ही प्राप्त करते हैं। यदि तू इस धर्म से युक्त संग्राम को नहीं करेगा तो अपने धर्म और अपनी कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा। सारे प्राणी तेरी उस अपकीर्ति का कथन किया करेंगे जो कभी नष्ट नहीं होगी। सम्मानित व्यक्ति के लिये अपयश मृत्यु से भी बढ़कर दुखदायी होता है। जिन महारथियों की दृष्टि में तुम बहुत सम्मानित हो उन्हीं की दृष्टि में तुम फिर बहुत छोटे बन जाओगे क्योंकि वे यही मानेंगे कि तुम भय के कारण युद्ध से हट गये हो।

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्॥ २६॥
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥ २७॥
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ २८॥

तुम्हारे शत्रु तब तुम्हारे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए तुम्हारे लिये न करने योग्य बहुत से वचनों का प्रयोग करेंगे। इससे अधिक दुःख की और क्या बात होगी? हे अर्जुन! यदि तुम युद्ध में मर जाओगे तो परलोक में उत्तम गति को प्राप्त करोगे, यदि जीत गये तो पृथिवी के राज्य को भोगोगे। इसलिये युद्ध के लिये निश्चय करके खड़े हो जाओ। तुम सुख, दुःख, लाभ, हानि, विजय और पराजय सबको समानरूप से समझते हुए केवल अपने कर्तव्य की भावना से युद्ध में लग जाओ। तब तुम्हें पाप नहीं लगेगा।

तीसरा अध्याय : कर्म योग

सार और संगति

अर्जुन की दो समस्याओं का समाधान तो श्रीकृष्ण जी ने दूसरे अध्याय में कर दिया है। उसकी तीसरी समस्या थी कर्मसन्यास अर्थात् अपने वर्णधर्म वर्तमान युद्ध को त्यागकर, भीख माँगकर खा लेने का विचार। कर्म को छोड़ देना चाहिये या नहीं, यही एक समस्या है और इसी का निर्णय महाराज ने इस अध्याय में किया है। बल्कि यह समझना चाहिये कि यह अध्याय एक सूत्र है और आगे की शेष सम्पूर्ण गीता इसका भाष्य है।

श्रीकृष्ण जी ने पूछा कि हे अर्जुन! तुम कर्म का त्याग किसलिये करना चाहते हो? क्या इसलिये चाहते हो कि एक छोटे से भूमि के टुकड़े के लिये बन्धुबान्धुवों की हत्या एक बुरा कार्य है? निश्चय ही यह एक बुरा कार्य है, पर यह तभी तक बुरा है जब तक इस कर्म के साथ भूमि के टुकड़े को प्राप्त करने की भावना जुड़ी हुई है। तुम्हारे इसी संग्राम के लिये ही नहीं, अपितु फल की कामना करना तो किसी भी कर्म के लिये प्रशंसनीय नहीं है, क्योंकि फल की कामना कर्म के सुन्दर भाग कर्त्तव्यबुद्धि का नाश कर देती है। फल की कामना इसलिये भी निन्दित है कि फल अनेक प्रकार के होते हैं और उन फलों के चक्र पर चढ़ी हुई बुद्धि स्थिर नहीं रह सकती। इसलिये कर्म के इस अंश अर्थात् फल की कामना का त्याग अत्यन्त आवश्यक है।

अब कर्म के दूसरे भाग को देखो। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध शस्त्र उठाना क्षत्रिय का परम कर्त्तव्य है। यह ही तुम्हारे वर्तमान संग्रामरूपी कर्म का दूसरा भाग है। इसी का नाम कर्त्तव्य है और इसी का नाम अभिक्रम अर्थात् कर्त्तव्यपालनरूप कर्म है। कर्म का यह ही अंश मनुष्य के अधिकार की चीज़ है। हे अर्जुन! क्या कर्म के इस अंश को भी छोड़ देना चाहिये? मेरे विचार से कदापि नहीं। कर्त्तव्य का त्याग किसी भी शास्त्र का सिद्धान्त नहीं है।

कर्म करने में यही चतुराई है कि मनुष्य कर्म के केवल कर्त्तव्यभाग को ग्रहण कर उस कर्म से होनेवाले पाप और पुण्य दोनों से अपने आपको छुड़ा ले। इसलिये हे अर्जुन! तू फल की कामना को छोड़कर फल मिलने या न मिलने पर भी समानभाव से रहते हुए कर्त्तव्यबुद्धि से कर्म करता चल। यह मार्ग साधारण मार्ग नहीं, राजमार्ग है। इस पर चल कर मनुष्य संसार को पार करता हुआ मोक्ष के द्वार तक पहुँच जाता है।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥ १॥
नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ २॥
व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥ ३॥
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ ४॥

श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे कुन्तीपुत्र! यह मैंने तुम्हें सांख्य अर्थात् ज्ञानयोग के विषय में बताया। अब तू कर्मयोग के विषय में सुन। इस कर्मयोग की बुद्धि से युक्त होकर तू कर्मों के बन्धन को पूरी तरह से त्याग देगा। इस कर्मयोग में कर्त्तव्य का त्याग नहीं है और पाप भी नहीं है। इस कर्मयोग का थोड़ा साधन जन्म-मृत्यु रूपी महान् भय से रक्षा कर देता है। हे कुरुनन्दन! इस कर्मयोग में एक ही निश्चयात्मिका बुद्धि रहती है, किन्तु जो कर्मयोग को नहीं अपनाते हैं वे अनिश्चित मतिवाले होते हैं, उनकी बुद्धि अनेक फलों की कामना से युक्त होने के कारण अलगअलग फलों की अलग अलग शाखाओं में बँट कर अनेक प्रकार की हो जाती है। हे अर्जुन! तुम्हारा कर्म करने में ही अधिकार है, उसका फल भोगने में नहीं है अर्थात् तुम कर्म करने में स्वतन्त्र हो, उसका फल भोगने में नहीं हो। फल देना तो परमात्मा के अधिकार में है। इसलिये तुम न तो फल को प्राप्त करने के

हेतु से कर्म करो और न किसी प्राप्त होनेवाले फल के लिये अपने कर्म को हेतु मानो। पर इसका मतलब यह भी नहीं है कि तुम कर्महीनता को अपना लो। तुम्हें कर्म करते रहना है पर केवल कर्तव्यबुद्धि से कर्म करना है, फलबुद्धि से नहीं करना है।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ ५॥
दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद् धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥ ६॥
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥ ७॥

हे अर्जुन! तू आसक्ति को त्यागकर सफलता और असफलता में समानभाव रखकर, कर्मयोग में स्थित होकर कर्त्तव्यकर्मों को कर। समत्वबुद्धि से कर्तव्यकर्म करना ही कर्मयोग है। हे धनंजय! सकामकर्म इस समत्वबुद्धि नाम के योग से बहुत ही छोटा है। इसलिये तुम इस समत्व में ही अपने आश्रय को ढूँढो। फल को निमित मान कर कर्म करनेवाले लोग दया के पात्र अर्थात् छोटी श्रेणी के लोग हैं। जो व्यक्ति समत्वबुद्धि से युक्त होता है वह इस संसार में कर्मजनित पुण्य और पाप दोनों से दूर हो जाता है। समत्वबुद्धि से युक्त होकर कर्त्तव्यभावना से कर्म करने की कुशलता ही कर्मयोग है। तू इस कर्मयोग से अपने को जोड़।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥ ८॥
यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य॥ ९॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
सभाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥ १०॥

समत्वबुद्धि से युक्त विद्वान् लोग वास्तव में कर्म से होनेवाले पापपुण्यरूपी फल को छोड़कर जन्मलेने के बन्धन से छूट जाते हैं और रोगों से रहित पद को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। जब तेरी बुद्धि मोह के कीचड़ से पार हो जायेगी, तब तू पहले सुने हुए और भविष्य में सुने जाने वाले सकाम कर्मों के प्रति वैराग्य को प्राप्त हो जाएगा। वेदों अर्थात् वैदिक सिद्धान्तों से विपरीत हुई तेरी यह बुद्धि जब कर्त्तव्य और समत्वभाव की समाधि में अचल होकर ठहर जायेगी, तब तू कर्मयोग को प्राप्त करेगा।

चौथा अध्याय : कर्मयोग (स्थित प्रज्ञ का लक्षण)
सार और संगति

तृतीय अध्याय में श्रीकृष्ण जी ने स्थिर बुद्धि की प्रशंसा की थी। उसे कर्मयोग का सहायक बताया था। तब उसकी विशेषताओं को जानने के लिये अर्जुन को उत्सुकता हुई और उसने प्रश्न किया कि महाराज जिसकी बुद्धि स्थिर हो गयी हो, उसका बोलना, उठना, बैठना, और चलना, फिरना किस प्रकार का होता है?

इसका उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण जी ने कामनाओं का त्याग, सन्ताप, दुःख और सुख में एक रहना, राग, भय और क्रोध का त्याग, शुभ और अशुभ किसी में भी लिप्त न होना, इन्द्रियों का दमन, प्रेम और द्वेष का त्याग, ये सब स्थिर बुद्धिवाले पुरुष के विशेष गुण बताये और आगे चलकर इस अवस्था को प्राप्त करने के साधनों का वर्णन किया है। इन साधनों को यहाँ पर दो भागों में बाँटा गया है, उनमें से एक है विषयों का सर्वथा त्याग और दूसरा है रागद्वेषरहित इन्द्रियों से विषयों का सेवन।

इनमें से पहला साधन प्रथम तो है ही बड़ा कठिन और फिर किसी तरह से उसका अनुष्ठान किया भी जाये तो अन्तःकरण का धर्म राग फिर भी शेष रह जाता है। क्योंकि राग को दूर करने की अभी तक कोई चेष्टा की नहीं गयी है। इस राग की निवृत्ति भगवान् का दर्शन होने पर ही होगी। पर भगवान् का दर्शन राग के होते हुए होना कठिन है। इसलिये भगवान् का दर्शन करने के लिये विषयों का त्याग करने पर विषयों के राग को मिटाने के लिये यत्न करना ही पड़ेगा।

पर दूसरा साधन सरल है और इसका क्रम भी ठीक है, इसलिये महाराज ने भी इसे अन्त में लिखा है। राग और द्वेष को त्याग कर विषयों का सेवन करने से विषयों के प्रति उपेक्षा होनी आरम्भ हो

जाती है और रागद्वेष के साथ विषयों का संग भी छूट जता है। श्रीकृष्ण जी ने कहा कि इस साधन से चित्त निर्मल होता है, दु:ख छूटते और बुद्धि स्थिर होती है। बुद्धि की स्थिरता केवल रागद्वेष छोड़कर विषयों के सेवन से ही नहीं हो जाती। इसके लिये योग की, योग के लिये चित्त की शान्ति की और शान्ति के लिये कामनाओं के त्याग की भी आवश्यकता है। इसके बाद जो स्थिति प्राप्त होती है, उसी का नाम स्थिर बुद्धि और ब्राह्मी स्थिति है। इस स्थिति में पहुँचे हुए मनुष्य को ही स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

इसी अध्याय में राग और द्वेष के साथ विषयों के सेवन की तीसरी अवस्था भी लिखी है और इस अवस्था को मनुष्य के सर्वनाश का कारण बताया है।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥ १॥

तब अर्जुन ने पूछा कि हे केशव! जिस व्यक्ति की बुद्धि स्थिर हो गयी है जो समाधि में स्थिर हो गया है, उसका क्या लक्षण है? स्थिरबुद्धि वाला पुरुष कैसे बोलता, कैसे बैठता और कैसे चलता है?

श्रीकृष्ण उवाच

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥ २॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥ ३॥
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत् तत् प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ ४॥
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ ५॥
विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥ ६॥

तब श्रीकृष्ण जी ने उत्तर दिया कि हे अर्जुन! जब व्यक्ति मन में आयी हुई सारी कामनाओं का त्याग कर देता है और अपनी आत्मा से आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है, तब उसे स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। जो स्थितप्रज्ञ होता है वह दु:ख में उद्विग्न मन वाला नहीं होता और सुखों में इच्छारहित वाला होता है। उसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो जाते हैं, उस मुनि को स्थिरबुद्धि कहते हैं। जो सब स्थानों पर स्नेह से रहित होकर उन उन शुभ और अशुभ वस्तुओं को प्राप्तकर न तो प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है। जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही जब व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से सब तरफ से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है, यह समझना चाहिये। जो व्यक्ति इन्द्रियों को विषयों से परे रखता है, उसके विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, किन्तु उन विषयों के प्रति राग भी परमात्मा के दर्शन होने पर निवृत्त हो जाता है।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥ ७॥
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥ ८॥

जो व्यक्ति विषयों का ध्यान करता रहता है, उसकी उन विषयों के साथ संगति भी हो जाती है। विषयों का साथ होने से उनके प्रति कामना उत्पन्न हो जाती है, फिर उस कामना में विघ्न होने से क्रोध उत्पन्न हो जाता है। क्रोध उत्पन्न होने पर मन में मूढता आ जाती है। मूढता को प्राप्त व्यक्ति की स्मृति में भ्रम हो जाता है। स्मृति का नाश होने पर बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट होने पर व्यक्ति अपनी स्थिति से गिर जाता है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यै र्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥ ९॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ १०॥
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥ ११॥

किन्तु अपने आधीन किये हुए अन्त:करणवाला जो साधक, अपने वश में की हुई और रागद्वेष से अलग की हुई इन्द्रियों के द्वारा विषयों में विचरण करता है वह अन्तः करण की निर्मलता को प्राप्त करता है। अन्त:करण के निर्मल होने पर उस व्यक्ति के सारे दु:खों का नाश हो जाता है और उस प्रसन्नचित्त की बुद्धि जल्दी ही स्थिर हो जाती है। जो इस प्रकार के योग से युक्त नहीं है, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती और उस योग से युक्त न

होनेवाले की साम्यभावना भी नहीं होती। समता का भाव न रखनेवाले को शान्ति नहीं प्राप्त होती तथा अशान्त व्यक्ति को सुख कैसे मिल सकता है?

आपूर्यमाणमचल- प्रतिष्ठं-
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥ १२॥

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥ १३॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥ १४॥

पूरी तरह से भरे हुए, निश्चल स्थितिवाले सागर में जिस प्रकार सारे संसार के जल प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार जिसके हृदय में सारी कामनाएँ प्रवेश कर विलीन हो जाती हैं, वही शान्ति को प्राप्त होता है, कामनाओं को चाहने वाला नहीं होता। जो व्यक्ति सारी कामनाओं को छोड़कर बिना इच्छा के, बिना ममता के और बिना अहंकार के विचरण करता है, वह शान्ति को प्राप्त करता है। हे कुन्तीपुत्र! इसी स्थिति का नाम ब्राह्मी स्थिति है। इसे प्राप्त करके साधक मोहित नहीं होता। वह मृत्यु के समय भी इसी स्थिति में रहता हुआ ब्रह्मप्राप्ति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

पाँचवाँ अध्याय : कर्मयोग (कर्मसन्यास की अशक्यता)
सार और संगति

तृतीय अध्याय के छठे श्लोक में श्रीकृष्ण जी ने साम्यबुद्धि को सकाम कर्म से श्रेष्ठ कहा था। उनके इस वचन में अर्जुन को अपने विचार के लिये कुछ आश्रय मिलता दिखाई दिया और इसलिये उसने कहा कि महाराज! आप कर्म से बुद्धि को श्रेष्ठ मानते हैं, तो मुझे भी इस संग्राम के घोरकर्म को छोड़कर बुद्धि की शरण में आने दीजिये और यदि ऐसा नहीं है तो निश्चय करके एक बात बताइये।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे अर्जुन! सांख्यों के ज्ञानयोग और योगियों के कर्मयोग का वर्णन हमने पहले किया है। उनके इस कथन का अभिप्राय यह था कि इन दोनों ही निष्ठाओं के आधार पर हम पहले कर्म करने का उपदेश दे आये हैं, हमारा उपदेश कर्म के त्याग का नहीं था। जिसने साम्यबुद्धि को प्राप्त कर लिया है, उस ज्ञानी को भी कर्म करने ही पड़ते हैं। मनुष्य एक क्षण भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। क्योंकि उसके मानसिक भाव उससे डंडे के बल पर काम कराते रहते हैं। यह हो सकता है कि कोई बाहरी इन्द्रियों को हठपूर्वक कर्म करने से रोक दे, पर फिर भी वह मन से उन कर्मों का चिन्तन अवश्य करता रहेगा।

यह इस प्रकार का दुरंगाकर्म लोकदिखावा है और मिथ्याचार है। बिना कर्म किये तो शरीर का निर्वाह चलना भी कठिन है, इसलिये शरीर के रहते हुए कर्म का त्याग असम्भव है। इसकी अपेक्षा तो यह अच्छा है कि मन से ज्ञानेन्द्रियों को रोकता हुआ, आसक्ति को छोड़कर कर्मेन्द्रियों से वर्ण और आश्रम के अनुकूल कर्म को करता चल।

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत् किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥ १॥
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ २॥

तब अर्जुन ने कहा कि हे जनार्दन! यदि आपके लिये कर्म से बुद्धि अधिक श्रेष्ठ है तो हे केशव! आप मुझे इस संग्रामरूपी भयंकर कार्य में क्यों लगा रहे हो? आप इन मिले हुए दुरंगे वाक्यों से मेरी बुद्धि को मोहित सा कर रहे हो। इसलिये आप एक बात को निश्चय करके कहो, जिससे मैं कल्याण को प्राप्त करूँ।

श्रीकृष्ण उवाच

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ ३॥

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति॥ ४॥
न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ ५॥
कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥ ६॥

तब श्रीकृष्ण जी ने उत्तर दिया कि हे निष्पाप! पहले मैंने इस संसार में सांख्यों की ज्ञानयोग से और योगियों की कर्मयोग से, दो प्रकार की निष्ठाएँ कहीं हैं। मनुष्य कर्मों के आरम्भ को बन्द करके कर्म के अभाव को प्राप्त नहीं कर सकता और न कर्मों के त्याग से सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। कोई भी व्यक्ति एक क्षण के लिये भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। स्वभाव के गुणों के द्वारा सबको विवश करके उनसे कर्म कराये जाते हैं। जो व्यक्ति अपनी कर्मेन्द्रियों को रोककर बाहर से तो कर्म नहीं करता, पर मन से इन्द्रियों के अर्थों को स्मरण करता रहता है वह विमूढबुद्धि व्यक्ति मिथ्याचारी कहलाता है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥ ७॥
नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ ८॥

किन्तु जो व्यक्ति मन से अपनी इन्द्रियों को रोक कर हे अर्जुन! आसक्तिरहित होकर, कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग को आरम्भ करता है, वह दूसरों से आगे बढ़ जाता है। तू वर्ण और आश्रम के अनुसार निश्चित कर्मों को कर, क्योंकि कर्महीनता से कर्मशीलता श्रेष्ठ है। बिना कर्म किये तो तेरे शरीर की जीवनयात्रा भी नहीं चलेगी।

छठा अध्याय : कर्मयोग (यज्ञ के लिये कर्म की आवश्यकता)
सार और संगति

पाँचवे अध्याय में कर्म के त्याग को असम्भव बताते हुए आसक्ति छोड़कर निष्कामभाव से कर्म करने की प्रेरणा की गयी थी। इस पक्ष के विरोध में यह प्रश्न किया जा सकता है कि कर्म के फल का त्याग भी तो सहसा होना कठिन है, इसके लिये भी तो कोई क्रम होना चाहिये। फल के सर्वथा त्याग से पहले किसी ऐसे त्याग का सूत्रपात होना चाहिये, जिसमें फल की कोई मात्रा मिली हुई हो। इसी सम्भावित प्रश्न के उत्तर में महाराज ने कहा कि ऐसी अवस्था में यज्ञ के लिये अर्थात् परोपकार की भावना से कर्म करने चाहियें। भगवान् ने प्रजा को उत्पन्न करते हुए सृष्टि के आरम्भ में ही इस परोपकार रूपी यज्ञ को जन्म दिया है। भगवान् की रचना में पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा सूर्य आदि सारे जड़ देवता, दूसरों का उपकार करते हुए संसार की रचना में भाग ले रहे हैं। भगवान् के इस व्यावहारिक वेद के वाचिक उपदेश के अनुसार, मनुष्य भी यदि इन देवताओं की सहायता से मिली हुई अन्न आदि सामग्री से दूसरे प्राणियों की सहायता करे, तब तो ठीक है। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो नियम का भंग करने वाला है, पापी है चोर है। यज्ञकर्म से ही मेघ और मेघ से अन्न आदि की उत्पत्ति होती है। यज्ञ बिना कर्म के होता नहीं है। इसलिये सर्वथा फल के त्याग में असमर्थ पुरुष को यज्ञ के लिये कर्म करना चाहिये। इस कर्म से फलकामना की कुछ गन्ध तो अवश्य आ रही है, परन्तु मनुष्य को कर्म में लगाने का प्रधान कारण यह लोकहित की भावना ही है। यह भावना ही उसे एक दिन सर्वथा फल के त्याग का अधिकारी बना देगी। यह भावना भी कर्मबन्धन से छुड़ाने का साधन है।

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥ १॥
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥ २॥
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ ३॥

जो व्यक्ति यज्ञ अर्थात् परोपकार की भावना से किये जानेवाले कर्मों के बिना दूसरे कर्मों में लगे रहते हैं, वे कर्म के बन्धन में बँध जाते हैं, इसलिये हे कुन्तीपुत्र! तुम आसक्ति को छोड़कर यज्ञ अर्थात् परोपकार के लिये कर्म को करो। सृष्टि के आरम्भ में पहले परमात्मा ने परोपकार की भावना के साथ

सृष्टि को उत्पन्न किया और वेदों के माध्यम से यह कहा कि तुम इस यज्ञरूपी परोपकार के कर्म द्वारा उन्नति को प्राप्त करो। यह तुम्हारी इच्छिता कामनाओं की पूर्ति करने वाला हो। तुम यज्ञ से अर्थात् अग्नि होत्र से जल, अग्नि, वायु आदि देवताओं का संस्कार करो और फिर वे शुद्ध हुए देवता तुम्हारी उन्नति करें। इसप्रकार एकदूसरे की शुद्धि और उन्नति करते हुए तुम उत्तम कल्याण को प्राप्त करोगे।

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥ ४॥
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ ५॥

यज्ञ से शुद्ध किये गये वे देवता तुम्हें प्रिय भोगों को प्रदान करेंगे। जो व्यक्ति उन देवताओं अर्थात् अग्नि आदि जड़ देवताओं के द्वारा दिये हुए भोगों को उन्हें अग्निहोत्र के द्वारा न देकर स्वयं ही उपभोग कर लेता है वह चोर ही है। यज्ञ से बचे हुए भोगों को भोगनेवाले व्यक्ति सारे पापों से छूट जाते हैं। जो यज्ञ भावना अर्थात् परोपकार की भावना के बिना केवल अपने लिये ही प्रयत्न करते हैं और स्वयं ही भोग करते हैं, वे पापी तो पाप को ही खाते हैं।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥ ६॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥ ७॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥ ८॥

अन्न से प्राणियों की उत्पत्ति होती है और मेघ से अन्न उत्पन्न होता है। अग्निहोत्र से मेघ उत्पन्न होते हैं और अग्निहोत्र परोपकार की भावना से युक्त कर्म के द्वारा सम्पन्न होता है। परोपकारयुक्त कर्म को तू वेद से उत्पन्न हुआ समझ अर्थात् इसका उपदेश सृष्टि के आदि में वेदों के ही द्वारा दिया गया था। वेद अविनाशी परमात्मा से प्रकट हुए। इसलिये सर्वत्र विद्यमान वेदों का ज्ञान सदा यज्ञ में विद्यमान होता है अर्थात् वेद के विधान के अनुसार ही यज्ञ सम्पन्न होता है और सम्पन्न किया जाना चाहिये। हे कुन्तीपुत्र! इस प्रकार चलाये हुए इस चक्र को जो व्यक्ति नहीं चलाता है, वह पाप से युक्त जीवन को धारण करनेवाला, इन्द्रियों के सुख में लगा हुआ व्यर्थ ही जीवन को बिताता है।

सातवाँ अध्याय : कर्मयोग (ज्ञानी के लिये भी कर्म की आवश्यकता।)

सार और संगति

जो व्यक्ति फल का त्याग पूर्णतया नहीं कर सकता, जो ज्ञानी नहीं, उसके लिये लोग हित की भावना से कर्म करने का उपदेश छठे अध्याय में किया गया। किन्तु जिसने आत्मा के स्वरूप को जान लिया, भगवान् के दर्शन कर लिये, अपनेआप में प्रसन्न है, न उसका कोई कर्त्तव्य शेष रहा और न किसी वस्तु के ग्रहण करने की उसे आवश्यकता है क्या उस ज्ञानी को भी कर्म करने चाहियें?

इस प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि हाँ अवश्य। उसे भी आसक्ति छोड़कर कर्म अवश्य ही करने चाहिये। आसक्ति छोड़कर किया हुआ कार्य बन्धन का कारण नहीं होता। जनक जैसे ज्ञानियों ने जीवन्मुक्त होने के बाद भी कर्म को नहीं छोड़ा और उनके मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न नही हुई।

ज्ञानी को अज्ञानियों को कर्म में लगाये रखने के लिये भी कर्म करने चाहिये। निष्कामकर्म करने से ज्ञानी की कोई हानि नहीं होती, पर यदि वह कर्म को छोड़ दे, तो अज्ञानी भी उसे देखकर कर्म छोड़ देंगे और वे कहीं भी नहीं रहेंगे, क्योंकि ज्ञान के न होने से सुमार्ग की ओर जाने का उनके लिये कर्म के बिना कोई और उपाय ही नहीं है। यह अवश्य है कि वे लोग अपने गुणों के अनुसार आसक्त होकर ही कर्म करेंगे, पर करेंगे तो सही, कुकर्म या अकर्म में तो नहीं फँसेंगे। शनैः शनैः उनके स्वभाव में कर्मों के द्वारा परिवर्तन लाने की आवश्यकता है, उनसे कर्म छुड़ाने की नहीं। ज्ञानी भी तो स्वभाव बदलने के बाद ही कर्म से आसक्ति को दूर कर सका है।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ १॥
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥ २॥
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥ ३॥
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि॥ ४॥

पहले फल की कामना न छोड़ सकनेवाले व्यक्तियों के लिये लोकहित की कामना से यज्ञ रूप कर्मों को करने का विधान किया गया था, पर जो व्यक्ति अपनी आत्मा में ही आसक्त है, आत्मा में ही तृप्त रहता है, अपने आपमें सन्तुष्ट है, उसके लिये कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता। इस संसार में उसका न तो कार्य करने से कुछ प्रयोजन होता है और न कुछ कार्य न करने से प्रयोजन होता है, सारे प्राणियों में उसके किसी प्रयोजन का कोई आधार भी नहीं होता, पर फिर भी प्रयोजन न होते हुए भी ज्ञानी को नियत कर्म करने ही चाहियें। इसलिये तुम आसक्ति को छोड़कर लगातार करने योग्य कार्यों को करते रहो। क्योंकि आसक्तिरहित भाव से कर्म को करनेवाला व्यक्ति भी परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। जनक आदि आसक्तिरहित महापुरुष भी कर्म के द्वारा ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। फिर लोगों को अपने साथ में लेने के कार्य को ध्यान में रखते हुए भी तुम्हारे लिये कर्म को करना उचित है।

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत् तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ ५॥
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद् विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥ ६॥
न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्॥ ७॥

श्रेष्ठ व्यक्ति जो जो आचरण करता है, दूसरे लोग भी वही वही आचरण करते हैं। जितना जितना वह कुछ करता है, संसार के लोग भी उसका अनुकरण करते हुए उतना उतना ही करते हैं। इसलिये हे भारत! अज्ञानीलोग जिसप्रकार कर्मों में आसक्ति के साथ उन्हें करते हैं, उसीप्रकार ज्ञानी व्यक्ति को भी लोकसंग्रह को चाहते हुए कर्म करने चाहियें। विद्वान् व्यक्ति को आसक्तिभाव से कर्म में लगे हुए अज्ञानियों में संशय को उत्पन्न नहीं करना चाहिये, अपितु वह स्वयं कर्म में लगा हुआ उनसे भी सारे कार्य प्रीतिपूर्वक, कराये।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥ ८॥
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ ९॥

इन्द्रिय इन्द्रिय के अर्थ में अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में राग और द्वेष छिपे हुए हैं। मनुष्य को उन दोनों के वश में नहीं होना चाहिये। क्योंकि दोनों ही उसके कल्याणमार्ग में विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं। अपूर्णरूप से पालन किया जा रहा अपना कर्त्तव्यकर्म दूसरे के कर्त्तव्यकर्म से अच्छा है। अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मर जाना भी श्रेयस्कर है, पर दूसरे के कर्त्तव्यकर्म को स्वीकार करना उचित नहीं है।

आठवाँ अध्याय : कर्मयोग (प्रवृत्ति का प्रधान कारण)

सार और संगति

इस अध्याय में अर्जुन ने उस गुण का नाम जानने की अभिलाषा प्रकट की है, जो न चाहने पर भी बलपूर्वक मनुष्य को पापकर्म में लगा देता है, वह गुण कौन है? श्रीकृष्णजी ने उत्तर में उस गुण का नाम रजोगुण बताया है और उसके भी काम और क्रोध नाम के दो अंग, प्रवृत्ति में प्रधान साधक बताये हैं। इन दोनों में से भी उन्होंने काम को प्रधानता दी है। उसे उन्होंने कभी तृप्त न होनेवाली अग्नि का नाम दिया है और अन्त में उसे छोड़ने का उपदेश दिया है।

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥ १॥

तब अर्जुन ने पूछा कि हे वार्ष्णेय! अच्छा यह व्यक्ति न चाहता हुआ भी, किससे प्रेरित होकर बलपूर्वक लगाये हुए के समान सकाम कर्म में लग जाता है।

श्रीकृष्ण उवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ २॥
धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥ ३॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥ ४॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥ ५॥

तब श्रीकृष्ण जी ने उत्तर दिया कि रजोगुण से उत्पन्न होनेवाला यह काम और यह क्रोध है, जो बहुत खानेवाला और बहुत पापी है। इसे अर्थात् इन दोनों को तुम अपना शत्रु समझो। जैसे धूएँ से अग्नि को ढक दिया जाता है और मैलमिट्टी से दर्पण धुँधला हो जाता है तथा जेर से गर्भ ढका रहता है, उसी प्रकार इस काम और क्रोध से ज्ञान को ढक दिया जाता है। हे कुन्तीपुत्र! यह काम कभी तृप्त न होनेवाली अग्नि के समान है, यह ज्ञानी व्यक्ति का सदा का शत्रु है। यह ज्ञान को आवृत्त कर देता है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इस कामभावना के आधार हैं। इनकी सहायता से यह ज्ञान को आच्छादित कर शरीरधारी आत्मा को मोहित कर देता है।

तस्मात् त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥ ६॥
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥ ७॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥ ८॥

इसलिये हे भरतश्रेष्ठ! तुम पहले इन्द्रियों को बस में करके ज्ञान और विज्ञान का नाश करनेवाले इस पापी काम को मार दो। इन्द्रियों को स्थूल शरीर से पर अर्थात् बलवान् और सूक्ष्म कहा गया है। इन्द्रियों से भी सूक्ष्म और बलवान् मन है। मन से भी सूक्ष्म और बलवान् बुद्धि है और बुद्धि से भी बलवान् और सूक्ष्म जो है वह आत्मा है। इस प्रकार हे महा बाहु! तुम बुद्धि से आत्मा को जानकर, आत्मा को अपनी आत्मा से ही वश में कर के इस पराजित न होने वाले कामरूपी शत्रु को मार डालो।

नवाँ अध्याय : कर्मयोग (कर्मसन्यास का साधन कर्म)

सार और संगति

पाँचवे अध्याय में श्रीकृष्ण जी ने कर्म के सन्यास को अशक्य बताया था और इससे आगे के तीन अध्यायों में कर्म की आवश्यकता पर बल देते हुए, अर्जुन के प्रश्न करने पर कर्म में प्रवृत्ति के प्रधान कारण का निर्देश किया था। अब प्रश्न यह उपस्थित है कि यदि कर्म के त्याग की विधि से कर्मसन्यास नहीं हो सकता तो क्या इसका कोई और उपाय है? इसी प्रश्न का उत्तर इस अध्याय में दिया गया है।

महाराज ने कहा कि कर्म और कर्मसन्यास का विषय इतना एक दूसरे से मिला हुआ है कि इसके भेद को समझना कठिन है। सच तो यह है कि कर्म स्वयं ही कर्मसन्यास का रूप धारण कर लेता है, पर तब करता है, जब उससे फल की कामना और उसके संकल्प तक को पृथक् कर दिया गया हो। कर्म की यह विधि ही कर्मसन्यास का उत्तम उपाय है। इस विधि का अनुष्ठान कर्म के बीज को जला देता है, उसे फल देने के अयोग्य बना देता है। इसलिये वह कर्म विद्यमान होता हुआ भी अकर्म बन जाता है। इस विधि में लाभ यह है कि शारीरिक कर्म को छोड़कर, उसी प्रकार के भावों को मन से चिन्तन करते रहने का पाप नहीं करना पड़ता। इसके अतिरिक्त यज्ञ अर्थात् लोकहित की कामना से लिया हुआ कर्म भी अकर्म बन जाता है, क्योंकि वहाँ भी कर्ता उससे अपने लिये किसी फल की कामना नहीं करता।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत् ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥ १॥
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥ २॥
कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥ ३॥
यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणां तमाहुः पण्डितं बुधाः॥ ४॥

कर्मयोग क्या है? और कर्मसन्यास क्या है? इस विषय में विद्वान् लोग भी भ्रम में पड़े हुए हैं। मैं तुम्हे इसके विषय में बताऊँगा, जिसे जानकर तुम पाप से छूट जाओगे। निस्सन्देह कर्मयोग के विषय में भी जानना चाहिये, विकर्म अर्थात् विरुद्ध कर्म के विषय में भी जानना चाहिये और कर्मसन्यास के विषय में जानना चाहिये। कर्म का ज्ञान गम्भीर है। जो साधक कर्मयोग में कर्मसन्यास को अनुभव करता है और कर्मसन्यास में कर्मयोग को अनुभव करता है, मनुष्यों में वह बुद्धिमान् है, वह योगी है और सारे कर्म करनेवाला है। जिसके सारे कार्य बिना कामना और संकल्प के होते हैं, उसके सभी कार्य ज्ञान की अग्नि में भस्म हो जाते हैं, उसे बुद्धिमान् लोग पण्डित कहते हैं।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः॥ ५॥
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन् नाप्नोति किल्बिषम्॥ ६॥
यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥ ७॥
गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥ ८॥

जो कर्मफल में आसक्ति को छोड़कर सदा प्रसन्न और कामना के आश्रय से रहित रहता है, वह कर्म में सदा लगा हुआ भी कुछ नहीं करता है। उसका कर्म भी कर्मसन्यास है। जिसने फल की कामना को छोड़ दिया है, जिसने अपने हृदय और आत्मा को अपने वश में किया हुआ है, जिसने सारे संबंधों का त्याग कर दिया है, वह मनुष्य केवल शरीर से कर्म को करता हुआ पाप को नहीं प्राप्त होता। जो व्यक्ति जैसी प्राप्ति हो जाये, उसी में सन्तुष्ट रहता है, हर्ष, शोक, धूप तथा शीत आदि द्वन्द्वों से पार हो गया है, जो डाह से अलग है, जो सफलता और असफलता दोनों में समान रहता है, वह व्यक्ति कार्य को करके भी उसके द्वारा बाँधा नहीं जाता। जो आसक्ति से रहित है, जिसका चित्त ज्ञान में स्थिर हो गया है, जो लोकहित के लिये ही कर्म का अनुष्ठान करता है, उस व्यक्ति के सारे कर्म विलीन हो जाते हैं अर्थात् फल देने योग्य नहीं रहते।

दसवाँ अध्याय : कर्मयोग (यज्ञ और ज्ञानयज्ञ की श्रेष्ठता)

सार और संगति

छठे अध्याय में यज्ञ के लिये कर्म की आवश्यकता बतायी गयी थी। इस अध्याय में यज्ञों के भेद बताते हुए उन सबसे ज्ञानयज्ञ को श्रेष्ठ कहा गया है। द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ, और ज्ञानयज्ञ, इन चार भागों में यहाँ यज्ञ को विभक्त किया गया है। कर्मकाण्ड द्रव्ययज्ञ में आ गया है, ब्रह्म की उपासना तथा इन्द्रियों के संयम को तपयज्ञ का नाम दिया गया है। प्राणायाम, नियत आहार आदि योग की क्रियाओं को योगयज्ञ कहा गया है। सब संशयों को मिटाकर बुद्धि को किसी एक निर्णय पर स्थिर करना ज्ञानयज्ञ है। यह ज्ञान यदि श्रद्धा देवी के गर्भ से उत्पन्न हो तो मनुष्य तत्काल ही अपने ध्येय तक पहुँच जाता है। ज्ञान के बिना यह लोक और परलोक, कोई भी सिद्ध नहीं होता। यदि कर्मयोग के साथ संशय को काटने वाला ज्ञान भी मिल जाये तो सोने में सुगन्ध समझो। इस प्रकार ज्ञान की महिमा का गानकर, संशय का संहारकर श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को संग्रामरूपी कर्मयोग में लग जाने की प्रेरणा दी है।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति॥ १॥
श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन् विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥ २॥
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥ ३॥

कोई योगीलोग अग्नि, वायु आदि देवताओं के निमित्त द्रव्ययज्ञ की उपासना करते हैं अर्थात् अनुष्ठान करते हैं। दूसरे योगीलोग ब्रह्मरूप अग्नि में अपने आत्मा, मन, बुद्धि आदि ज्ञानयज्ञ की सामग्री का, यज्ञ से ही अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि आदि क्रियाओं से होम करते हैं। कोई श्रोत्र आदि इन्द्रियों को संयमरूपी अग्नियों में होम करते हैं। दूसरे शब्द आदि विषयवासनाओं की इन्द्रियरूपी अग्नियों में आहुति डालते हैं। दूसरेलोग सारी इन्द्रियों के कर्मों की और प्राण की क्रियाओं की ज्ञान से प्रकाशित हुए आत्मा के संयमरूपी योग की अग्नि में आहुति देते हैं।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥ ४॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥ ५॥

कई योगीलोग प्राण और अपान की गतियों को रोककर, प्राणायाम में तत्पर होकर अपानवायु में प्राण की और प्राणवायु में अपान की भी आहुति डालते हैं। दूसरे योगीलोग नियमित भोजन करने वाले प्राणों में प्राणों की आहुति डालते हैं। ये सारे यज्ञ को जाननेवाले यज्ञ से पाप को दूर करनेवाले हैं।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥ ६॥
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥ ७॥

ऊपर कहे गये प्रशंसनीय व्रतवाले यतिलोग जो देवयज्ञ करनेवाले हैं, वे द्रव्य से यज्ञ करते हैं। जो ब्रह्म की अग्नि में आत्मा की और संयम की अग्नि में इन्द्रियों की आहुति डालते हैं, वे तपयज्ञ करते हैं। जो प्राण की अपान में, अपान की प्राण में, तथा प्राण की प्राण में आहुति डालते हैं, वे इन्द्रियों की वृत्ति तथा प्राण के निरोधरूप योगयज्ञ करने वाले हैं। जो सब इन्द्रियों और प्राण के कर्मों की ज्ञान में आहुति डालते हैं, अर्थात् अनासक्ति और निष्काम कर्म के तत्त्व को भलीभाँति जानकर इन्द्रियों की और प्राण की क्रिया करते हैं, वे स्वाध्याय अर्थात् ज्ञानयज्ञ को करनेवाले हैं। यज्ञ के शेषरूप अमृत को भोगने वाले अनादि ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! यज्ञ न करने वाले का यह लोक भी नहीं बनता, परलोक तो कहाँ से बनेगा।

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान् विद्धि तान् सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥ ८॥
श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥ ९॥
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥ १०॥

इस प्रकार वेदों के वचनानुसार अनेक प्रकार के यज्ञ संसार में फैले हुए हैं। उन सबको तुम कर्म से ही होने वाले जानो। तुम यह जानकर छूट जाओगे। हे शत्रुओं को तपानेवाले अर्जुन! द्रव्य से होनेवाले यज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है। हे कुन्तीपुत्र! यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं। ज्ञान के समान पवित्र इस संसार में कोई नहीं है। उस ज्ञान को योग से सिद्ध हुआ पुरुष, आप ही समय पाकर आत्मा में प्राप्त कर लेता है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ ११॥
अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥ १२॥
योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय॥ १३॥
तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनाऽऽत्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥ १४॥

जो श्रद्धा से युक्त होता है, जिसने अपनी इन्द्रियों को बस में कर लिया है, जो ज्ञानमार्ग में तत्पर है, वह व्यक्ति ही ज्ञान को प्राप्त करता है। ज्ञान को प्राप्त कर वह शीघ्र ही श्रेष्ठ शान्ति को प्राप्त कर लेता है। किन्तु जो अज्ञानी, श्रद्धा न करने वाला और संशय की मूर्ति होता है, वह नष्ट हो जाता है। संशय से युक्त आत्मावाले व्यक्ति का न तो

यह लोक होता है और न परलोक होता है। उसे सुख की प्राप्ति भी नहीं होती। हे अर्जुन! जिसने योग से अर्थात् कर्मफल के त्याग से कर्म का त्याग कर दिया है, ज्ञान से संशय को काट दिया है, और जो आत्मज्ञानी है, उसे कर्म नहीं बाँधते हैं। इसलिये हे भारत! अज्ञान से उत्पन्न हुए, हृदय में विद्यमान इस संशय को, ज्ञान की तलवार से काटकर योग का आश्रय लो और उठो।

ग्यारहवाँ अध्याय : कर्मयोग (कर्म सन्यास से कर्मयोग की श्रेष्ठता)

सार और संगति

दसवें अध्याय में श्रीकृष्ण जी ने योग अर्थात् कर्मफल के सन्यास को ही कर्मसन्यास का रूप दिया है। इसलिये इस अध्याय के आरम्भ में ही अर्जुन ने प्रश्न कर दिया कि आप कर्मसन्यास और कर्मयोग को मिलाकर उपदेश कर रहे हैं, परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि इन दोनों में से श्रेष्ठ कौन है? जिससे मैं जो श्रेष्ठ है, उसका अनुष्ठान कर सकूँ।

तब महाराज ने कहा कि हे अर्जुन! ये दोनों ही कल्याणकारक हैं, पर दोनों में श्रेष्ठ है कर्मयोग। यद्यपि फल की दृष्टि से सांख्य अर्थात् कर्मसन्यास और कर्मयोग समान हैं। इनमें से एक को ही सिद्ध कर लेनेवाला दोनों का फल प्राप्त कर लेता है, पर अनुष्ठान की दृष्टि से कर्मयोग ही श्रेष्ठ है। कारण यह है कि फल की कामना को छोड़े बिना कर्म छूट नहीं सकते। योगी के अनुष्ठान का आरम्भ इसी विधि से होता है। पर इसके विपरीत सन्यासी को पहले ही कर्म का त्याग आरम्भ करना होगा। ऐसी अवस्था में कर्म को छोड़ने पर भी उसके मन में फल की कामना और संकल्प बने रहेंगे, और ये ही बन्धन के कारण हैं। यदि सन्यासी भी पहले फल की कामना और संकल्प का त्याग कर फिर कर्म का त्याग करेगा, तो पहले कर्मयोग का आरम्भ उसे भी करना पड़ा और जब कि कर्मयोग ही कर्मों को फल देने योग्य नहीं छोड़ता, उन्हें नपुंसक बना देता है तो फिर कर्म के त्याग की आवश्यकता ही क्या रही? इसलिये जो फल की कामना और संकल्प को छोड़कर कर्म करता है, वही सन्यासी है और वही योगी है, कर्म छोड़नेवाला नहीं।

अर्जुन उवाच

सन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥ १॥

श्रीकृष्ण उवाच

सन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥ २॥

तब अर्जुन ने पूछा कि आप कर्म के सन्यास और कर्म के योग दोनों का उपदेश कर रहे हो। उनमें जो एक कल्याणकारी है, उसे अच्छी तरह निश्चय करके मुझे कहो। तब श्री कृष्ण जी ने उत्तर दिया कि कर्मसन्यास और कर्मयोग दोनों ही कल्याणकारक हैं, पर इन दोनों में कर्मसन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है।

ज्ञेयः स नित्यसन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात् प्रमुच्यते॥ ३॥
सांख्ययोगौ पृथग् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥ ४॥
यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद् योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥ ५॥

हे महाबाहु! जो व्यक्ति न तो किसी से द्वेष करता है और न किसी की कामना करता है, उसे सर्वदा सन्यासी समझना चाहिये। राग और द्वेष आदि द्वन्द्वों से रहित वह पुरुष सुखपूर्वक बन्धनों से छूट जाता है। जो बच्चे अर्थात् अज्ञानी हैं, वे ही सांख्य और योग को अलग अलग समझते हैं, पण्डितलोग नहीं समझते। दोनों में से किसी एक का भी ठीक प्रकार से पालन करनेवाला मनुष्य दोनों के फल को प्राप्त करता है। जो स्थान सांख्ययोगवालों को अर्थात् कर्म सन्यासियों को

मिलता है, वही स्थान कर्मयोगवालों को भी प्राप्त होता है। इसलिये जो सांख्य और योग दोनों को एकरूप में देखता है, वह विद्वान् है।

सन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥ ६॥
योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥ ७॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ ८॥

हे महाबाहु! कर्मयोग के बिना कर्मसन्यास को प्राप्त करना कठिन है। कर्मयोग में लगा हुआ मुनि परमात्मा को जल्दी ही प्राप्त कर लेता है। जिसकी आत्मा विशुद्ध है, जिसने अपनी इन्द्रियों और अपने आपको जीत लिया है, जो सारे प्राणियों की आत्मा को अपनी आत्मा के समान समझता है, जो कर्मयोग में लगा हुआ है, वह कार्यों को करता हुआ भी उनमें लिप्त नहीं होता है। जो कर्मयोगी आसक्ति को छोड़कर ब्रह्म को अर्पित करके कर्मों को करता है, वह जल से कमल के पत्ते की तरह से पापों से लिप्त नहीं होता।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये॥ ९॥
युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥ १०॥
अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥ ११॥

योगी लोग आसक्ति को छोड़कर, आत्मा की शुद्धि के लिये केवल शरीर से, मन से, बुद्धि से, और केवल इन्द्रियों से ही कर्तव्यकर्मों को करते हैं। योगी व्यक्ति कर्म के फल की इच्छा को त्याग कर स्थिर शान्ति को प्राप्त करता है। किन्तु कर्मसन्यासी कामनाओं के करने से, फल में आसक्त हुआ बन्धन में पड़ जाता है। जो व्यक्ति कर्मफल की कामना का आश्रय न लेता हुआ कर्त्तव्यकर्म को करता है, वह सन्यासी और योगी है। अग्निहोत्र और दूसरे कर्मों का त्याग करनेवाला कर्मसन्यासी योगी नहीं है।

यं सन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन॥ १२॥
आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥ १३॥
यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥ १४॥

हे पाण्डुपुत्र! जिसे सन्यास इस नाम से कहते हैं, उसे कर्मयोग समझो, क्योंकि संकल्प का त्याग न करनेवाला कोई भी योगी नहीं होता। इसलिये फलसन्यास के कारण वह योगी भी सन्यासी हुआ। योग में आरूढ़ होने की इच्छावाले, मननशील पुरुष के लिये, योग की प्राप्ति में निष्कामभाव से कर्म करना ही हेतु माना गया है और योगारूढ़ हो जाने पर उस योगारूढ़ व्यक्ति में सारे संकल्पों का जो अभाव है वही उसके कल्याण का हेतु कहा जाता है। जब सारे संकल्पों का त्याग करनेवाला सन्यासी न तो इन्द्रियों के विषयों में और न कर्मों में आसक्त होता है, तब उसे कर्मयोग में स्थित कहा जाता है।

बारहवाँ अध्याय : ध्यानयोग (साम्यबुद्धि और उसका साधन ध्यानयोग)

सार और संगति

ग्यारहवें अध्याय में कर्मयोग को कर्मसन्यास से श्रेष्ठ इसलिये बतलाया गया है कि कर्मयोग का अनुष्ठान किये बिना कर्मसन्यास नहीं हो सकता और कर्मयोग की सिद्धि होने पर कर्मसन्यास की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु कर्मयोग का अनुष्ठान भी तो टेढ़ी खीर है। बिना किसी फल की कामना के मनुष्य कार्य को आरम्भ ही कैसे कर सकेगा? बिना किसी प्रयोजन को सामने रखे तो उसका आगे बढ़ना ही असम्भव है। बस इसी प्रश्न का उत्तर इस अध्याय में दिया गया है। निष्काम कर्म के अनुष्ठान की योग्यता प्राप्त करने के लिये मनुष्य को अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहिये। उसे कामना के कीचड़ से ऊपर उठाने के लिये बुद्धि में समता के बल का विकास करना चाहिये। जो अपनेआपको अपने अधिकार में रखने का यत्न नहीं करता है, वह अपना शत्रु आप है। अपनी आत्मा को वश में करने

के उपाय हैं ज्ञान, विज्ञान और ध्यान योग से आत्मा में साम्यबुद्धि को उत्पन्न करना। ज्ञान और विज्ञान का निरूपण आगे चलकर किया जायेगा। ध्यानयोग की विधि इस अध्याय में बतायी गयी है। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि योगी इस प्रकार अपने ऊपर अधिकार कर, ध्यानयोग का अनुष्ठान करता हुआ साम्यबुद्धि को तो प्राप्त कर ही लेता है, ब्रह्मानन्द की प्राप्ति भी उसे इसी साधन से हो जाती है। इस प्रकार फल की कामना के बिना कर्म में प्रवृत्ति का उपाय बताया गया है। साम्यबुद्धि की प्राप्ति और उसका भी साधन बताया गया है ध्यानयोग के द्वारा मन का निरोध।

यह सुनकर अर्जुन ने फिर प्रश्न किया कि महाराज! श्रद्धा रखते हुए भी ध्यानयोग के द्वारा साम्यबुद्धि को सम्पादन करता हुआ, जो मनुष्य कर्मयोग के क्षेत्र में सफल हो गया उसके तो आपके कथन के अनुसार यह लोक और परलोक दोनों ही उज्ज्वल हो जायेंगे। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सारे ही वहाँ तक पहुँच सकेंगे। ऐसी अवस्था में कृपया बताइये कि उन मध्यस्थ पुरुषों की क्या गति होगी? वे गरीब तो न इधर के रहे और न उधर के। अर्जुन ने अपनी निर्बलता को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न किया था। श्रीकृष्ण जी ने भी उसे उसका उत्साहजनक और यथार्थ उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि संयम के मार्ग में जिसने खड़ा होकर पचास कोस की यात्रा में एक कोस भी पार कर लिया है, वह दूसरे जन्म में पहले कोस से नहीं दूसरे कोस से ही चलना आरम्भ करेगा। उसका वह परिश्रम कभी भी निष्फल नहीं जा सकता। उसे दूसरे जन्म में साधन भी उसके इस भाव के अनुसार श्रेष्ठ ही मिलेंगे और इसी क्रम से चलता हुआ, आने वाले किसी जन्म में वह अवश्य सफल होगा। अन्त में महाराज ने ध्यानयोगी की प्रशंसा करते हुए इस उत्तर को समाप्त किया है।

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ १॥

मनुष्य को अपने द्वारा ही अपना उद्धार करना चाहिये। उसे अपनी आत्मा को नीचे नहीं गिराना चाहिये। संसार में आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है।

विशेष– यहाँ आत्मा से आत्मा का उद्धार करना लिखा है। उद्धार करने का साधन अलग होता है और जिसका उद्धार किया जाये वह वस्तु पृथक होती है, पर यहाँ दोनों की जगह आत्मा का नाम लिया गया है।

यद्यपि शब्द एक है, पर यहाँ भी उद्धार का साधन भिन्न वस्तु ही है। उद्धार जीवात्मा का किया जाता है और उद्धार का साधन आत्मा, अन्तःकरण और ज्ञानेन्द्रिय इन सबका मिला हुआ समुदाय है। अन्तःकरण के दूषित होने पर ही आत्मा में दोष आते हैं और उन दोषों को दूर करना ही आत्मा का उद्धार है। जब तक इन्द्रियों की क्रियाएँ धर्म के अनुकूल न हों और अन्तःकरण के मल दूर न हों, आत्मा ऊँचा उठ नहीं सकता, इसलिये आत्मा के उद्धार में यह सारा समुदाय ही कारण है। इन सबके सुधार में भी आत्मा की सावधानता विशेष उपकारक है। इसलिये इस सारे उद्धारकों के समुदाय में भी आत्मा ही प्रधान है। प्रधान होने के कारण यहाँ साधनपक्ष में भी आत्मा का ही नाम लिया गया है। इस समुदाय के दोषों से दूषित होकर आत्मा अपना आप ही शत्रु और उन दोषों से बचकर अपना आप ही मित्र हो जाता है।

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥ २॥
जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥ ३॥
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥ ४॥
सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थ- द्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥ ५॥

जिसने आत्मा को आत्मा से अर्थात् आत्मिक बल से ही जीता है। उस आत्मा का आत्मा मित्र है। मन, इन्द्रिय आदि अनात्माओं के शत्रु होने पर वे नहीं अपितु आत्मा ही शत्रु के समान बरत रहा होता है।

आत्मा को जीतनेवाले शक्तिशाली पुरुष की श्रेष्ठ आत्मा, सर्दी, गर्मी, सुख और दुःख में तथा मान और अपमान में समदर्शी रहती है। इस प्रकार आत्मा के उद्धार से साम्यबुद्धि की प्राप्ति हो जाती है। जिसने ज्ञान और विज्ञान से आत्मा को तृप्त कर लिया है, जो विकार से रहित और इन्द्रियों को जीतने वाला है, ऐसा मिट्टी के ढेले, पत्थर और सोने को

समान समझने वाला योगी पुरुष योग से सम्पन्न कहा जाता है। सुहृत्, मित्र, बैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य, और बन्धुगणों में, धर्मात्माओं में और पापियों में भी समानभाव रखनेवाला वह अत्यन्त श्रेष्ठ है।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥ ६॥
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥ ७॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये॥ ८॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ ९॥

अकेला एकान्त में बैठा हुआ, चित्त और आत्मा का संयम करता हुआ, आशाओं से रहित और ममता को छोड़कर योगी निरन्तर आत्मा को ध्यान में लगाता रहे अर्थात् उसे लगाना चाहिये। वह न बहुत ऊँचे, न बहुत नीचे, कपड़े, मृगचर्म और कुशाओं से ढके हुए अपने आसन को पवित्र स्थान में स्थिर करके, चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को रोकता हुआ, सिर, धड़ और गर्दन को निश्चल सीधे रखता हुआ और अपने नासिका के अग्रभाग को देखकर, दिशाओं को न देखता हुआ योगी आत्मा की शुद्धि के लिये योग का अनुष्ठान करे।

संकल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥ १०॥
शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥ ११॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥ १२॥

संकल्प से उत्पन्न होनेवाली सारी कामनाओं को, पूरीतरह से त्यागकर, इन्द्रियों के झुंड को मन से ही सबओर से रोककर, धैर्य से स्थिर की हुई बुद्धि के द्वारा, मन को आत्मा में स्थिर करके, धीरे धीरे शान्त होकर कुछ भी चिन्तन न करे। वह योगी चंचल और अस्थिर मन जिधर जिधर से निकलता हो, उधर उधर से ही उसे रोककर, आत्मा में ही वश में लाये।

युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ १३॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ १४॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ १५॥

ध्यानयोग का पहला फल :– पाप से रहित योगी इस प्रकार आत्मा को योग में लगाता हुआ, आसानी से ब्रह्म के सम्बन्ध से होनेवाले अत्यन्त सुख अर्थात् मोक्ष को भोग लेता है।

ध्यान योग का दूसरा फल :– योग से सम्पन्न आत्मा वाला पुरुष, सब से समदर्शी होता हुआ अपने आपको सारे भूतों में और सबको अपने अन्दर देखता है। हे अर्जुन! जो अपने समान सब जगह सुख या दुःख को बराबर देखता है, वह उत्तम योगी माना गया है।

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात् स्थितिं स्थिराम्॥ १६॥
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ १७॥

तब अर्जुन ने पूछा कि हे मधुसूदन! तुमने साम्यबुद्धि के लिये जो यह योग कहा है, मैं मन की चंचल स्थिति के कारण इस योग की अवस्था को ठहरनेवाली नहीं समझता। हे कृष्ण! मन चंचल, सताने वाला, बलवान् और दृढ़ है। उसको बस में करना मैं वायु से भी अधिक कठिन समझता हूँ।

श्रीकृष्ण उवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ १८॥
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥ १९॥

तब श्रीकृष्ण जी ने उत्तर दिया कि हे महाबाहु कुन्तीपुत्र! निश्चय ही मन कठिनता से बस में आने वाला और चंचल है, पर यह अभ्यास और वैराग्य से बस में आता है। मेरा विचार है कि संयम से रहित आत्मावाले को योग कठिनता से प्राप्त होता है, परन्तु यत्न करनेवाले संयमी आत्मा को उपायों के द्वारा प्राप्त हो सकता है।

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥ २०॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि॥ २१॥
एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते॥ २२॥

तब अर्जुन ने पूछा कि हे कृष्ण! आत्मा का संयम न करनेवाला, योग से डिगे हुए चित्तवाला, पर श्रद्धा से युक्त पुरुष किस गति को प्राप्त करता है? हे महाबाहु! वह भ्रान्त, ब्रह्म के मार्ग में स्थिर न हुआ, संसार और परलोक दोनों तरफ से पतित हुआ, छितराये हुए बादल की तरह से नष्ट तो नहीं हो जाता? हे कृष्ण! तुम मेरे इस संशय को पूर्णरूप से दूर करने में योग्य हो। आपके अतिरिक्त कोई दूसरा इस संशय को दूर करने वाला सम्भव नहीं है।

श्रीकृष्ण उवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति॥ २३॥
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्॥ २४॥
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्॥ २५॥
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः॥ २६॥
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।
प्रयत्नाद् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः॥ २७॥
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।

तब श्रीकृष्ण जी ने उत्तर दिया कि हे कुन्तीपुत्र! उसका न तो इस संसार में और न परलोक में विनाश होता है। हे प्रियबन्धु! कोई शुभ कार्य को करनेवाला बुरी गति को प्राप्त नहीं होता। योग में अपूर्ण वह पवित्र धनवानों के घर में जन्म लेता है अथवा वह बुद्धिमान् योगियों के ही घर में जन्म लेता है। इस प्रकार का जो जन्म है, वह निश्चय ही इस संसार में अत्यन्त दुर्लभ है। वह परवश हुआ उस पूर्वजन्म के अभ्यास से ही योग की तरफ ले जाया जाता है और योग की जिज्ञासावाला वह व्यक्ति शब्दज्ञान को भी पार कर जाता है अर्थात् योग के विषय में वह जो कुछ भी पढ़ता है और सुनता है, उसके आगे का विषय अपने आप उसके अनुभव में आने लगता है। इस प्रकार उपायों से यत्न करता हुआ और पाप से शुद्ध हुआ वह अनेक जन्मों में शुद्ध होकर उसके पश्चात् मोक्ष की गति को प्राप्त करता है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन॥ २८॥

हे अर्जुन! यह कर्मयोगी, सर्दी-गर्मी, सुख दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करनेवाले तपस्वियों से, सदाचार और संयम के नियमों का पालन करनेवाले ज्ञानियों से और सकामकर्म करनेवाले कर्मकाण्डियों से भी श्रेष्ठ माना गया है, इसलिये तू कर्मयोगी बन।

तेरहवाँ अध्याय : भक्तियोग (भक्ति निरूपण)

सार और संगति

साम्य बुद्धि और आनन्द के प्राप्त करानेवाले ध्यानयोग का वर्णन पहले किया गया है। इस अध्याय में बतलाया गया है कि उसी ध्यानयोग से मनुष्य परमात्मा के भी दर्शन कर सकता है। परन्तु यह तब होगा जब ध्यानयोग के साथ भक्ति के रस का भी मेल कर दिया जायेगा। किसका ध्यान करें? किसकी भक्ति करें? इन प्रश्नों के उत्तरों में यहाँ भगवान् के स्वरूप का उपनिषदों की भाषा में व्याख्यान किया गया है। कहा है भगवान् वेदों की रचना करनेवाले, कवि, अनादि, सारे संसार पर शासन करने वाले हैं। वे सूक्ष्म से सूक्ष्म सबको धारण करनेवाले हैं। यद्यपि उनका स्वरूप इन्द्रियों की पहुँच से दूर है, पर फिर भी तमोगुण के पर्दे से निकल जाने पर आत्मा उस प्रकाश के पुञ्ज परमात्मा का दर्शन कर लेता है। घर से चलने के बाद वानप्रस्थ और सन्यास काल में भृकुटि में प्राणों का निरोध कर, मन को एकाग्र करते हुए, उस प्रकाशरूप परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। वेदवक्तालोग इसी का ध्यान करते हैं। संयमीलोग इसी में प्रवेश करते हैं और ब्रह्मचारीलोग इसी की इच्छा करते हैं। परन्तु वह मिलता है, अनन्यभक्ति से।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥ १॥

हे कुन्तीपुत्र! भक्तियोगी अन्यत्र न जानेवाले, ध्यानयोग के अभ्यास में लगे हुए चित्त से भगवान् का ध्यान करता हुआ उस प्रकाशवान् परम पुरुष भगवान् को प्राप्त कर लेता है।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद् यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ २॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥ ३॥

वेदों की रचना करनेवाले अनादि, वेदों का उपदेश करनेवाले, सूक्ष्म से अति सूक्ष्म, सबको धारण करनेवाले, अन्धकार से परे, प्रकाशरूप परमात्मा को जो भक्ति और ध्यानयोग के बल से युक्त, प्राणों को भृकुटि के मध्य में भली प्रकार प्रवेश कराके, परलोक गमन के समय निश्चल मन से भगवान् का स्मरण करता है, वह उस प्रकाशरूप परमपुरुष को प्राप्त करता है।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ ४॥

वेद के जाननेवाले जिस अविनाशी का व्याख्यान करते हैं, वैराग्यसम्पन्न संयमीलोग जिसमें प्रवेश करते हैं और जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं उस प्राप्त करनेयोग्य परमात्मा का मैं तुझे संक्षेप में उपदेश करता हूँ।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥ ५॥

हे कुन्तीपुत्र! वह परमपुरुष परमात्मा अनन्य भक्ति से प्राप्त होता है। सारे प्राणी उसी के अन्दर विद्यमान हैं। उसी ने इस सारे संसार को फैलाया अर्थात् रचा है।

चौदहवाँ अध्याय : ज्ञानयोग (ज्ञान और ज्ञेय का निरूपण)
सार और संगति

तेरहवें अध्याय में श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन के पूछने पर कर्मयोग में अधूरा रहनेवाले मनुष्य की गति का वर्णन किया था। अब इस बात की आवश्यकता थी कि उन साधनों को बताया जाये, जिनके सहारे से मनुष्य कर्मयोग की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचने में सफल हो सके। इस अध्याय में उन्हीं साधनों का उल्लेख किया गया है। महाराज ने उन साधनों का नाम रखा है 'ज्ञान'।

गीता का यह ज्ञान दार्शनिक लोगों के ढंग का ज्ञान नहीं है। वे लोग ज्ञान उसे कहते हैं, जिसके द्वारा वस्तु के स्वरूप को जाना जाता है अथवा सत्य और असत्य का विवेक किया जाता है। उसका नाम गीताकार ने विज्ञान रखा है और उसका वर्णन पन्द्रहवें अध्याय से आरम्भ होगा। दार्शनिक उसे तत्त्व ज्ञान कहते हैं। ज्ञान के नाम से गीता में सदाचार के कुछ नियम बताये गये हैं। ऐसे ही नियमों को योगदर्शन में यम और नियम के नाम से और मनुस्मृति में धर्म के नाम से पुकारा गया है। योगदर्शन के यम नियम तत्वज्ञान के साधन हैं और गीता का ज्ञान विज्ञान का साधन है। यही कारण है कि सदाचार के इन नियमों का विज्ञान से पहले वर्णन किया गया है और विज्ञान का साधन होने के कारण ही इन नियमों को ज्ञान का नाम दिया गया है। इसके साथ ही यह भी जान लेना आवश्यक है कि यह ज्ञान जहाँ विज्ञान का साधन है, ज्ञान और विज्ञान दोनों ही कर्मयोग के भी साधन हैं। ज्ञान के इन नियमों में अन्त का नियम है "तत्वज्ञानार्थ दर्शनम्" अर्थात् यथार्थ ज्ञान से पदार्थ को जानना। यद्यपि तत्वज्ञान से और पदार्थों का भी ज्ञान किया जाता है, परन्तु तत्वज्ञान का मुख्य लक्ष्य परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान ही है। इसीलिये जगदीश्वर को ही इस अध्याय में ज्ञेय का नाम दिया गया है।

इस अन्तिम नियम का विषय समझने के लिये, उस ज्ञेय का निरूपण भी इस अध्याय में करना ही चाहिये था और इसीलिये यहाँ भगवान के स्वरूप का कुछ वर्णन भक्तियोग के प्रकरण में किया गया था और कुछ यहाँ किया गया है। वह सत्ता संसार की वस्तुओं की तरह से इन्द्रियों का विषय नहीं है, पर वह अभावरूप भी नहीं है। यह कैसे? देखो और समझो। देखो, भगवान के हाथ, पैर, आँख,

सिर, मुख और कान कहीं दिखाई नहीं देंगे, पर उन इन्द्रियों से होनेवाले कार्य सृष्टि में सर्वत्र हो रहे हैं। क्या बिना चले, बिना पकड़े, बिना देखे, बिना समझे, बिना आज्ञा के वचनों का उच्चारण किये और बिना सुने कोई मनुष्य किसी छोटे से परिवार का भी प्रबन्ध कर सकता है? यदि नहीं तो इतने बड़े संसारचक्र का संचालन इन शक्तियों के बिना कभी किया जा सकता है? नहीं कभी नहीं। अतः विवश होकर हमें यह कहना ही होगा कि यद्यपि उस सूक्ष्म सत्ता का शरीर न होने से उसकी इन्द्रियाँ नहीं हैं, परन्तु वह ऐसी शक्तियों का स्वामी है, जिससे इन्द्रियों जैसे कार्य किये जा सकते हैं। वह असंग होता हुआ सबको धारण करता है, निर्गुण होता हुआ गुणों का संचालन करता है और सर्वत्र पहुँचा हुआ है, परन्तु अचल है। वह व्यापक होने से दूर और समीप भी है। सबकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का विधाता है। यद्यपि सूक्ष्म होने से उसका जानना कठिन है, पर तमोगुण का पर्दा हटते ही, ज्ञान के द्वारा उसके प्रकाशस्वरूप का दर्शन कर ज्ञानी उसे हृदय में ही प्राप्त कर लेता है।

श्रीकृष्ण उवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥ १॥
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥ २॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधि- दुःखदोषानुदर्शनम्॥ ३॥
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥ ४॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥ ५॥

श्रीकृष्ण जी ने फिर कहा कि हे अर्जुन! मैं तुझ निन्दा न करनेवाले को अब इस अत्यन्त गुप्त विज्ञान के साथ ज्ञान के विषय में कहूँगा, जिसे जानकर तू अमंगल से अर्थात् कर्मयोग भ्रष्ट होने से बच जायेगा। अभिमान का त्याग, कपट का त्याग, हिंसा का त्याग, सहनशीलता, सरलता, आचार्य के गुणों का अनुसरण, शरीर, आत्मा और मन की शुद्धि, दृढ़ता, आत्मा का संयम, इन्द्रियों के विषयों में वैराग्य, अहंकार का त्याग, उत्पत्ति, मरण, बुढ़ापा, और रोग इनके दुखों और दोषों को देखना, विषयों का त्याग, पुत्र, स्त्री, घर आदि से विशेष सम्बन्ध न रखना तथा इच्छा के अनुकूल और इच्छा के विरुद्ध वस्तु की प्राप्ति में सदा चित्त को एकरस रखना, अन्तरात्मा के ज्ञान में तत्पर रहना, यथार्थ ज्ञान से विषयों को जानना, यह ज्ञान कहा गया है और जो इसके विपरीत है, वह अज्ञान है।

ज्ञेयं यत् तत् प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत् परं ब्रह्म न सत् तन्नासदुच्यते॥ ६॥
सर्वतःपाणिपादं तत् सर्वतोक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ ७॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥ ८॥

ज्ञेय का निरूपण :– अब मैं उस जानने योग्य, जिसे जानकर व्यक्ति मोक्ष के अमृत को प्राप्त हो जाता है, उसके विषय में बताऊँगा। वह अनादि परब्रह्म है। वह न तो सत् अर्थात् विद्यमान् स्थूल संसार के समान दिखाई देने वाला है और न ही असत् अर्थात् अभावरूप कहा जा सकता है। वह सब तरफ हाथ और पैरों वाला है, सब ओर आँख, सिर और मुखवाला है, सब तरफ कानों वाला और संसार में सबको व्याप्त करके ठहरा हुआ है। अर्थात् उसके पैरों, हाथों, आँख, सिर, मुँह और कानों से होने वाले कार्य सर्वत्र उसकी व्यापक शक्ति से स्वयं हो रहे हैं। वह सारी इन्द्रियों के गुणों की झलक से युक्त है, पर सारी इन्द्रियों से रहित है, संग रहित है, पर सबको धारण करनेवाला है, गुणों से रहित है पर गुणों का पालन करनेवाला है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात् तद विज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ ९॥
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥ १०॥
ज्योतिषामपि तज्जयोतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ ११॥

वह सारे प्राणियों के अन्दर भी है और बाहर भी है। गति से रहित है, पर सबको गति देने वाला है, वह सूक्ष्म होने से ज्ञान से गम्य नहीं है, पर सर्व व्यापक होने से दूर भी और समीप भी है।

वह प्राणियों से संयुक्त है, पर सूक्ष्म होने से संयुक्त न होने की तरह वर्तमान है। उसे प्राणियों को उत्पन्न करने वाला, पालन करने वाला और विनष्ट करने वाला समझना चाहिये। वह प्रकाशों का भी प्रकाश, तमोगुण से परे, ज्ञान का विषय, ज्ञान से प्राप्त होने वाला और सबके हृदय में विद्यमान कहा जाता है।

पन्द्रहवाँ अध्याय : विज्ञान योग (गुण कार्य विवेक और गुणातीत लक्षण)

सार और संगति

चौदहवें अध्याय में ज्ञान का निरूपण किया गया है। सदाचार के मुख्य नियमों का नाम है ज्ञान। उन नियमों का पालन करने के बाद ही मनुष्य कर्मयोग का अधिकारी बनता है। कर्मयोग की अन्तिम सीमा तक पहुँचने के लिये तीनों गुणों को पार करना पड़ता है। गुणों से ऊँचा उठने के लिये गुणों की विशेषता और उनके कार्यों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। इसी का नाम विज्ञान है। श्रीकृष्ण जी ने इस अध्याय में इसी विषय का व्याख्यान किया है। सत्, रज और तम, सुख, प्रवृत्ति और प्रमाद आदि अपने कार्यों से, मनुष्य को संसार के बन्धन में बाँधते हैं। सत्वगुण प्रकाश, रजोगुण राग और तमोगुण मोह स्वरूप है। ज्ञान के बढ़ने पर सत्वगुण, लोभ के बढ़ने पर रजोगुण और आलस्य के बढ़ने पर तमोगुण को बढ़ा हुआ समझना चाहिये। गुणों के प्रभाव में आया हुआ मनुष्य किसी न किसी कामना से ग्रस्त हो ही जाता है, इसलिये कर्मयोगी को गुणों से ऊपर उठना पड़ता है।

गुणातीत मनुष्य को गुण विचलित नहीं कर सकते। गुणों के काम में लगे रहने पर उसे द्वेष नहीं होगा और कार्य से हट जाने पर उसकी अभिलाषा नहीं होती। वह उदासीन की तरह रहता है। सुख और दुःख भी मिलने पर उसे हर्ष या शोक नहीं होता। सुवर्ण और मिट्टी को वह एक समान समझता है। मित्र और शत्रु में उसे भेद प्रतीत नहीं होता। कोई प्रवृत्ति उसे खींचती नहीं। ऐसे ही पुरुष को गुणातीत कहा जाता है। गुणातीत ही कर्मयोग की अन्तिम सीमा तक पहुँचने में सफल होता है।

श्रीकृष्ण उवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः॥ १॥
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥ २॥
तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ॥ ३॥
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्॥ ४॥
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत॥ ५॥

गुण कार्य विवेक :– श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे अर्जुन! अब मैं तुम्हें ज्ञानों में श्रेष्ठ और उत्तम जो ज्ञान है, उसे पुनः कहूँगा। जिसे जानकर सारे मुनि यहाँ से उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। हे महाबाहु! प्रकृति से प्राप्त होने वाले सत्त्व, रज और तम ये गुण शरीर को धारण करनेवाले अविकारीआत्मा को शरीर में बाँधते हैं। हे पापरहित अर्जुन! सत्वगुण निर्मल होने के कारण प्रकाश करनेवाला है और रोग रहित है। यह प्रकाश वाला होने के कारण ज्ञान के सम्बन्ध से और रोगरहित होने के कारण सुख के सम्बन्ध से आत्मा को बाँधता है। हे कुन्तीपुत्र! तुम रजोगुण को राग से संबंधवाला समझो। यह तृष्णा और आसक्ति को उत्पन्न करनेवाला है। यह देहधारी को प्रवृत्ति के द्वारा बाँधता है। हे भारत! तुम तमोगुण को अज्ञान उत्पन्न करनेवाला और सारे देहधारियों को मोहनेवाला जानो। यह प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा प्राणियों को बाँधता है।

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत॥ ६॥
रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥ ७॥
सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद् विवृद्धं सत्त्वमित्युत॥ ८॥

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥ ९॥
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन॥ १०॥

हे भरतवंशी! सत्वगुण सुख में, और रजोगुण प्रवृत्ति में आसक्त करता है, पर तमोगुण ज्ञान को आच्छादित कर प्रमाद अर्थात् कर्त्तव्य की भूल में लगाता है। हे भारत! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण होता है। रजोगुण और सत्वगुण को दबाकर तमोगुण और सत्त्वगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण प्रबल होता है। जब इस शरीर के सारे छिद्रों में ज्योति प्रकट होती है और ज्ञान बढ़ने लगता है, तब यह समझना चाहिये कि सत्वगुण की वृद्धि हो रही है। हे भरतश्रेष्ठ! लोभ और प्रवृत्ति वाले कार्यों का आरम्भ, अशान्ति, प्रबल इच्छा ये रजोगुण के बढ़ने पर होते हैं। हे कुरुनन्दन! अज्ञानरूप अन्धकार, कर्म में न लगना, प्रमाद और मोह ये तमोगुण बढ़ने पर होते हैं।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते॥ ११॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते॥ १२॥
कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥ १३॥

जब सत्त्वगुण के बढ़ने पर शरीरधारी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तब उत्तम ज्ञानवालों के निर्मल लोकों को अर्थात् योनियों को प्राप्त होता है। रजोगुण की वृद्धि अवस्था में मृत्यु को प्राप्त होकर आत्मा कर्मशील व्यक्तियों में जन्म लेता है और तमोगुण की वृद्धि अवस्था में मृत्यु को प्राप्त होकर आत्मा ज्ञानरहित योनियों में जन्म लेता है। सात्विक कर्म का फल सत्वगुणी और निर्मलता से युक्त, रजोगुणी कर्म का फल दुःख से युक्त और तमोगुणी का फल अज्ञान से युक्त कहा गया है।

सत्त्वात् संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥ १४॥
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ १५॥
गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्वि- मुक्तोऽमृतमश्नुते॥ १६॥

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन् गुणानतिवर्तते॥ १७॥

सत्व गुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से लोभ और तमोगुण से प्रमाद, मोह और अज्ञान उत्पन्न होते हैं। सत्वगुण वाले उर्ध्व लोक अर्थात् उत्तमगति को, रजोगुणी मध्यम गति को तथा तमोगुणी, जो नीच गुणों की वृत्ति वाले होते हैं, वे निम्नगति को प्राप्त होते हैं। शरीरधारी आत्मा, शरीर में होनेवाले इन तीनों गुणों को पार करके, जन्म, मृत्यु और बुढ़ापे के दुःखों से छूटकर मोक्ष के अमृत को भोगता है। तब अर्जुन ने पूछा कि हे प्रभो! आत्मा किन चिह्नों से इन तीनों गुणों से पार हो जाता है? कैसे आचारवाला किस प्रकार से इन तीनों गुणों को नीचे छोड़ जाता है।

श्रीकृष्ण उवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥ १८॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ १९॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दाऽऽत्मसंस्तुतिः॥ २०॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥ २१॥

गुणातीत लक्षण :– तब श्रीकृष्ण जी ने कहा, हे पाण्डुपुत्र! जो व्यक्ति सत्त्वगुण, रजोगुण, और तमोगुण में लगे हुए व्यक्तियों से न तो द्वेष करता है और न उनसे निवृत्त हुओं की अभिलाषा करता है, जो उदासीन की तरह से रहता हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जाता और गुण अपना कार्य कर रहे हैं, ऐसा समझता हुआ ही स्थिर रहता है, विचलित नहीं होता, जो सुख और दुःख में समान रूप से स्वस्थ रहता है, जो मिट्टी के ढेले, पत्थर और सोने को समान भाव से देखता है, जो शत्रु, मित्र दोनों के समक्ष तथा अपनी निन्दा और प्रशंसा में समान भाव से धैर्यवान् बना रहता है, जो मान और अपमान में समान, मित्र और शत्रु में समान तथा सारी प्रवृत्तियों का त्याग करनेवाला होता है, वह गुणातीत कहा जाता है।

सोलहवाँ अध्याय : विज्ञानयोग (दैव-असुर भाव विवेक)

सार और संगति

पन्द्रहवें अध्याय में गुणों का विवेचन कर गुणातीत का स्वरूप बताया गया है। अर्जुन अभी गुणातीत पद का अधिकारी नहीं था, इसलिये श्रीकृष्ण जी उसे सत्त्वगुण की महिमा को प्राप्त होनेवाली दैवी सम्पत्ति की ओर चलने की प्रेरणा करते हुए और उसका उसे यथार्थ अधिकारी बताते हुए इस अध्याय में दैवी और आसुरी दोनों सम्पत्तियों की व्याख्या करते हैं। निर्भयता, दम, यज्ञ, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, भूतों पर दया, लोभ का त्याग, तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्धि, अभिमान का त्याग आदि ज्ञानयोग में वर्णन किये हुए गुण ही दैवी सम्पत्ति वाले मनुष्य की सम्पत्ति होते हैं। इसके विपरीत कपट, अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान आदि दुर्गुण आसुरी सम्पत्ति के चिह्न हैं। इन दोनों सम्पत्तियों का वर्णन कर महाराज ने कहा कि हे अर्जुन! तुम चिन्ता न करो। तुम दैवी सम्पत्ति के अधिकारी हो। कर्मयोग के मार्ग में चलना तुम्हारे लिये कुछ भी कठिन नहीं है।

इसके आगे चलकर अर्जुन को विपरीत मार्ग से बचाने के लिये महाराज ने आसुरीभूत सृष्टि का विस्तार से वर्णन किया है और कहा है असुरलोग प्रवृत्ति और निवृत्ति को नहीं जानते, शौच, आचार, सत्य, उनके समीप नहीं आते। न वे ईश्वर को मानते हैं और न जगत की सत्यता को। वे संसार की उत्पत्ति कामवासना से मानते हैं और कामवासना से ही सारे कार्य करते हैं। अपनी इस निकृष्ट भावना से वे संसार को हानि ही पहुँचाते हैं, लाभ नहीं। उनकी कामना कभी पूरी नहीं होती और इसी के कारण वे अनेक चिन्ताओं के ग्रास बन जाते हैं। अपनी कामना की पूर्ति के लिये वे अभ्यास से धन का संग्रह करते हैं। वे अपनेआपको ही सबसे बड़ा और सबकुछ समझते हैं। वे यदि कभी कोई यज्ञ भी करते हैं, तो कपट से, विधि का उल्लंघन करते हुए। हे अर्जुन! तमोगुण की सृष्टि काम, क्रोध और लोभ ही उनसे ये सब दुष्कर्म कराते हैं। इसलिये इनका त्याग कर और कर्मयोग शास्त्र की विधि से कर्म कर। कर्मयोगशास्त्र की विधि को छोड़कर फल की कामना से कर्म करने वाला मनुष्य सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता।

श्रीकृष्ण उवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥ १॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥ २॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥ ३॥

हे भारत! निडर होना, अन्तःकरण की शुद्धि, ज्ञानयोग में दृढ़ता, दान देना, इन्द्रियों का दमन, लोकहित की भावना से कर्म करना, धर्मग्रन्थों का पढ़ना, सुखदुःख आदि द्वन्द्वों को सहना। सरलता, मन, वाणी और कर्म से किसी को कष्ट न देना, सत्य बोलना, क्रोध न करना, त्याग और शान्ति, चुगली न करना, प्राणियों पर दया, लोभी न होना, नम्रता, लज्जा, चंचल न होना, प्रताप, क्षमा करना, धैर्य, अन्दर और बाहर की पवित्रता, वैर का त्याग, और अधिक मान न होना, ये दैवी सम्पत्ति के साथ उत्पन्न हुए व्यक्ति के लक्षण हैं।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥ ४॥
दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव॥ ५॥
द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु॥ ६॥

हे कुन्तीपुत्र! अपनी प्रशंसा, गर्व और अहंकार, क्रोध और कठोरता, तथा अज्ञान ये आसुरी सम्पत्ति के साथ उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं। दैवी सम्पत्ति को मोक्ष देनेवाली और आसुरी सम्पत्ति को संसार के बन्धन में बाँधनेवाली कहा गया है। हे पाण्डुपुत्र! तुम शोक मत करो। तुम दैवी सम्पत्ति के साथ उत्पन्न हुए हो। हे कुन्तीपुत्र! इस संसार में दो प्रकार के प्राणी हैं। एक दैव और दूसरे आसुर। दैव सृष्टि का विस्तार से वर्णन कर दिया है, अब तुम मुझसे आसुर सृष्टि के विषय में सुनो।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥ ७॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् कामहैतुकम्॥ ८॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥ ९॥

आसुर सम्पत्ति वाले लोग कर्त्तव्य को और अकर्त्तव्य को नहीं जानते। उनमें न तो शुद्धि होती है, नाहीं सदाचार होता है। वे संसार को मिथ्या, निराधार, ईश्वर के बिना, और बिना अणु परमाणुओं के परस्पर मेल से बना हुआ मानते हैं। उनके अनुसार कामवासना ही इसका कारण है और क्या कहें? इस विचार को अपनाकर ये भ्रान्त आत्मा वाले, अल्पबुद्धि और क्रूरकर्मा तथा संसार का अहित करनेवाले लोग संसार के विनाश के लिये ही उत्पन्न होते हैं।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः॥ १०॥
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥ ११॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्॥ १२॥

दम्भ, मान और मद से युक्त ये मनुष्य जिन्हें पूर्ण करना कठिन है, उन कामनाओं का आश्रय लेकर, अज्ञान से झूठे विचारों को ग्रहण कर, अपवित्र आचरण को करते हुए संसार में विचरते हैं। ये लोग मृत्युपर्यन्त रहनेवाली, असीम चिन्ता से घिरे हुए, वासनाओं की पूर्ति को ही उत्कृष्ट समझते हुए, वासनाओं का उपभोग ही जीवन का अन्तिम ध्येय है, यह निश्चय किये हुए, आशाओं के सैकड़ों बन्धनों से बँधे हुए, काम और क्रोध में लगे हुए, विषयों के भोग के लिये अन्यायपूर्वक धनों को प्राप्त करना चाहते हैं।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥ १३॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी॥ १४॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥ १५॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥ १६॥

इस मनोरथ को आज मैंने प्राप्त कर लिया, इस मनोरथ को भविष्य में प्राप्त करूँगा, यह धन मेरे पास है और यह भविष्य में मेरा हो जाएगा, यह शत्रु मैंने मार दिया है, दूसरे शत्रुओं को भी भविष्य में मार दूँगा। मैं ऐश्वर्यशाली हूँ, मैं भोगों से युक्त हूँ, मैं सिद्ध बलवान् और सुखी हूँ। मैं बड़ा धनी और बड़े परिवारवाला हूँ, मेरे जैसा दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, मैं आनन्द लूटूँगा, इस प्रकार के अज्ञान से मोहित हुए, अनेक प्रकार के विकारों से भ्रान्त हुए, मोह जाल में घिरे हुए, काम भोगों में फँसे हुए ये लोग अपवित्र और दुःखमय योनियों को प्राप्त होते हैं।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥ १७॥

ये अपनी बड़ाई करनेवाले, अकड़ में भरे हुए, धन के अभिमान और नशे से युक्त ये लोग दम्भ में भरकर बिना उचित विधि के नाममात्रके ही यज्ञों को करते हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥ १८॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥ १९॥
यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ २०॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ २१॥

आत्मा का नाश करनेवाले, नरक अर्थात् अधम योनि में धकेलनेवाले ये तीन दरवाजे काम, क्रोध और लोभ हैं। इसलिये इन तीनों को छोड़ देना चाहिये। हे कुन्तीपुत्र! इन तीन तमोगुण की तरफ लेजानेवाले द्वारों से मुक्त होकर मनुष्य जब अपना कल्याण करनेवाले कार्यों को करता है, तब वह परमगति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है। किन्तु जो व्यक्ति शास्त्रविधि को छोड़कर अपनी इच्छा के अनुसार ही कार्य करता है, वह सफलता को, सुख को और परमगति अर्थात् मोक्ष को भी नहीं प्राप्त करता। इसलिये क्या करना चाहिये? क्या नहीं करना चाहिये? इस विषय में तुम्हारे लिये शास्त्र ही प्रमाण हैं। तुम्हें शास्त्रविधि को जानकर ही इस संसार में कर्म करने चाहियें।

सत्रहवाँ अध्याय : विज्ञान योग (गुणनिष्ठा)

सार और संगति

सोलहवें अध्याय में श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को सत्वगुणप्रधान दैवीसम्पत्ति का अधिकारी बताते हुए दैवी और आसुरी सम्पत्ति का वर्णन किया था। यद्यपि अर्जुन क्षत्रिय था, इसीलिये उसमें रजोगुण प्रधान होना चाहिये था। पर महाराज अर्जुन की अवस्था को जान चुके थे। राजपाट को तृण के समान समझ कर फेंक देने का भाव प्रकट करते ही श्रीकृष्ण जी अर्जुन के हृदय को ताड़ गये थे। उन्हें उसके अन्दर सत्वगुण की चमकती हुई ज्योति स्पष्ट दीख रही थी। वह यह भलीभाँति जान चुके थे कि जो राज्यलक्ष्मी को लात मार सकता है, उसके लिये कर्मफल का त्याग कोई कठिन बात नहीं है और इसीलिये उन्होंने उसे दैवीसम्पत्ति का या सत्वनिष्ठा का अधिकारी कहा।

इस अध्याय में अर्जुन ने प्रश्न कर दिया कि महाराज जो शास्त्रविधि के बिना ही श्रद्धा से यज्ञ करते हैं, उनकी सात्विक, रजोगुणी या तमोगुणी कौन सी निष्ठा होती है? अर्जुन के इस प्रश्न के उत्तर में, महाराज ने सत्वनिष्ठा के सारे ही व्यवहारों का दिग्दर्शन करा दिया, जिससे कि उसे उस मार्ग में चलने के लिये सुभीता हो। श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे अर्जुन! श्रद्धा मनुष्य के अन्तःकरण के गुणों पर अवलम्बित है। सात्विक श्रद्धा की पहचान आहार, यज्ञ, तप, और दान के आचरण को देखकर सुगमता से हो जाती है। जैसेः–

आयु, बल, आरोग्यसुख को बढ़ानेवाले, रसीले, स्निग्ध और हृदय के लिये हितकारक, बलिष्ठ भोजन सात्विक लोगों के लिये प्रिय होते हैं। चटपटे, खट्टे, नमकीन, बहुत गर्म, तेज, रूखे, और दाह पैदा करनेवाले, दुःख, शोक और रोगजनक भोजन रजोगुणी लोगों को प्रिय होते हैं। तमोगुणी लोगों को देर से बने हुए, नीरस, बासी, जूठे और बुद्धिनाशक भोजन प्रिय होते हैं।

जो यज्ञ फल की कामना को छोड़कर विधि के अनुसार किया गया हो, वह सत्त्वगुणी, जो पाखण्ड से, बिना विधि के ही किया गया, वह रजोगुणी, जो विधि, दक्षिणा तथा श्रद्धा के बिना ही किया गया हो, वह तमोगुणी यज्ञ कहलाता है।

देवों, ब्राह्मणों, गुरुओं, और विद्वानों का सत्कार, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप हैं। न भड़काने वाले, सत्य, प्यारे और हितकारक वचन तथा स्वाध्याय का अभ्यास वाणी का तप है। मन की प्रसन्नता, शान्ति, कम बोलना, आत्मा का संयम और भाव की शुद्धि मानसिक तप हैं। ये तीनों ही तप फल की कामना के बिना, श्रद्धा से किये गये सात्विक, सत्कार, मान और पूजा के लिये पाखण्ड से किये गये रजोगुणी, और दूसरों को कष्ट देनें के लिये अथवा मूर्खता से अपने आपको ही कष्ट पहुँचाने वाले, विधि के बिना किये गये तप तमोगुणी कहलाते हैं।

जो दान अपना उपकार न करने वालों को, श्रद्धा भक्ति से अच्छा स्थान, अच्छा काल और श्रेष्ठ पात्र को देखकर दिया जाता है, वह सात्विक दान है। जो किसी फल की कामना से, अपना भला करने वालों को, दुःख मान कर दिया जाता है, वह रजोगुणी दान है। बुरे स्थान तथा समय में कुपात्र को अपमान करते हुए जो दान दिया जाता है, वह तमोगुणी दान है।

ओं तत् सत् ये तीनों ही ब्रह्म के नाम हैं, इसलिये प्रत्येक शुभकर्म के आरम्भ में ओं का उच्चारण करते हुए, तत् पद के वाच्य भगवान की निर्दिष्ट विधि के अनुसार, श्रद्धा से फल की कामना को छोड़कर सद्बुद्धि से यज्ञ तप, दान आदि शुभ कर्मों को करना चाहिये।

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः॥ १॥

श्रीकृष्ण उवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥ २॥
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ ३॥
आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु॥ ४॥

तब अर्जुन ने पूछा, जो लोग शास्त्र की विधि का त्याग कर केवल श्रद्धा से युक्त होकर यज्ञ करते हैं, उनकी निष्ठा कौनसी मानी जाएगी? सत्त्वगुणी, रजोगुणी, या तमोगुणी होगी? तब श्रीकृष्ण जी ने उत्तर दिया कि शरीरधारियों की उनके स्वभाव के अनुसार बननेवाली तीन प्रकार की श्रद्धा सात्त्विकी, रजोगुणी और तामसी होती है। तू उनके विषय में सुन। हे भारत! सबकी श्रद्धा उनके अन्तःकरण की स्थिति के अनुसार होती है। यह मनुष्य श्रद्धा का पुतला है। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसी ही निष्ठावाला होता है। सब लोगों को आहार, यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकार का प्रिय होता है। उनके इस भेद को तू सुन।

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ ५॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्ष- विदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥ ६॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ ७॥

आयु, सत्वगुण, बल, नीरोगता, सुख, और प्रेम को बढ़ानेवाले, रसीले, चिकने, दृढ़, हृदय के लिये हितकारी भोजन सत्वगुणी लोगों को प्रिय होते हैं। कड़वे, खट्टे, नमकीन, बहुत गर्म, तीखे, रूखे, जलन पैदा करने वाले, दुःख, शोक और रोग को पैदा करनेवाले भोजन रजोगुणी लोगों को प्रिय होते हैं। देर से बने हुए, स्वाद से रहित, दुर्गन्धवाले, बासी, जूठे और बुद्धि को बिगाड़नेवाले भोजन तमोगुणी लोगों को प्रिय होते हैं।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः॥ ८॥
अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥ ९॥
विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते॥ १०॥

जो यज्ञ फल को न चाहने वाले पुरुषों के द्वारा फल की इच्छा नहीं करनी, पर यज्ञ करना ही है, ऐसा मन में एकाग्र करके, विधि के अनुसार किया जाता है, वह सत्वगुणी है। जो यज्ञ फल को ध्यान में रखकर और ढोंग के लिये भी किया जाता है, हे भरतश्रेष्ठ! उस यज्ञ को तू रजोगुणी जान। जो यज्ञ विधि से रहित, अन्न दान से रहित, वेदमंत्रों से रहित, दक्षिणा से रहित और श्रद्धा से भी रहित होता है, वह तमोगुणी यज्ञ कहलाता है।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥ ११॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ १२॥
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते॥ १३॥

सदाचारी विद्वानों, ब्राह्मणों, गुरु और बुद्धिमानों का सत्कार, शुद्धि, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप कहलाता है। दूसरे के मन में उद्वेग को न पैदा करने वाली, सत्य से युक्त, प्रिय लगनेवाली तथा हितकारी वाणी और स्वाध्याय का अभ्यास यह वाणी का तप है। मन की निर्मलता और शान्ति, कम बोलना, आत्मा का संयम, विचारों की पवित्रता यह मन की तपस्या है।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥ १४॥
सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्॥ १५॥
मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत् तामसमुदाहृतम्॥ १६॥

फल की इच्छा न करनेवाले, योग में लगे हुए मनुष्यों से उत्कृष्ट श्रद्धा के द्वारा तपाया गया, यह तीन प्रकार का तप जब किया जाता है, तो यह सत्वगुणी तप कहलाता है। जो तप आदर, बड़ाई, और पूजा के लिये दम्भ से युक्त होकर किया जाता है। वह तप इस संसार में चंचलता से युक्त, स्थिर

न रहनेवाला और रजोगुणी कहा जाता है। जो मूर्खता के आग्रह से आत्मा को कष्ट देकर, अथवा दूसरे को उखाड़ने के लिये किया जाता है, उस तप को तामस तप कहते है।

दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ १७॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद् दानं राजसं स्मृतम्॥ १८॥
अदेशकाले यद् दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत् तामसमुदाहृतम्॥ १९॥

जो दान यह निश्चय करके कि दान देना है, अपना उपकार न करनेवाले को भी अच्छे समय, स्थान में सुपात्र को दिया जाता है, वह दान सत्वगुणी कहा जाता है। पर जो दान बदला उतारने के लिये, फल को निमित्त बनाकर और दुखी होकर दिया जाता है, उस दान को राजस कहा जाता है। जो दान निषिद्ध स्थान और काल में और कुपात्र को, बिना सत्कार के तिरस्कार के साथ दिया जाता है, उसे तमोगुणी दान कहते हैं।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥ २०॥
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥ २१॥

ओम, तत्, सत् ये परमात्मा के तीन प्रतीक माने जाते हैं। प्राचीनकाल में इनके द्वारा ब्राह्मण, वेद, और यज्ञों का विधान किया गया था। इसलिये ब्रह्मवादी लोगों के द्वारा शास्त्रोक्त यज्ञ, दान, तप की क्रियाएँ ओम शब्द का उच्चारण करके की जाती हैं।

विशेष– ओम् परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम है "तस्य वाचकः प्रणवः" इस योगदर्शन के सूत्र में इसे परमात्मा का वाचक शब्द कहा गया है। "सर्वे वेदाः यत्पद्मामनन्ति।" आदि उपनिषद वाक्यों में परमात्मा के ओम् नाम को ही वेद का मुख्य प्रतिपाद्य कहा गया है। वैदिक धर्म में सभी धार्मिक क्रियाएँ करने से पूर्व ओम का उच्चारण करने की परिपाटी है। यज्ञ के समय मन्त्रोच्चारण से पूर्व ओम का उच्चारण आवश्यक माना गया है।

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपः क्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाःक्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः॥ २२॥
सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत् प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥ २३॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥ २४॥
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत् प्रेत्य नो इह॥ २५॥

तत् शब्द का उच्चारण करके यज्ञ, तप और दान की विविध क्रियाएँ प्रतिफल की इच्छा रखे बिना, मोक्ष की इच्छा रखनेवाले के द्वारा की जाती हैं। सत् शब्द का प्रयोग वास्तविकता और अच्छाई के अर्थ में किया जाता है तथा हे कुन्तीपुत्र! अच्छे कर्म के लिये भी सत् शब्द का प्रयोग किया जाता है। यज्ञ, तप और दान में दृढ़ता से स्थित रहना भी सत् कहलाता है और इसी प्रकार इन प्रयोजनों के लिये किया हुआ कोई भी काम सत् कहलाता है। बिना श्रम के जो यज्ञ किया जाता है, जो दान दिया जाता है, जो तप किया जाता है, हे कुन्तीपुत्र! वह असत् कहलाता है। उसका न तो इस लोक में और न परलोक में कोई लाभ होता है।

अठारहवाँ अध्याय : विज्ञान योग (गुणनिष्ठा)

सार और संगति

सन्यास और त्याग (कर्मयोग) का वर्णन यद्यपि पहले आ चुका है। यह बात अर्जुन को भलीभाँति समझाई जा चुकी है कि कर्म के त्याग का नाम सन्यास और कर्मफल के त्याग का नाम त्याग (कर्मयोग) है, परन्तु यह सब जानते हुए भी यहाँ अर्जुन ने उसी विषय को फिर छेड़ दिया है। यद्यपि वह पुनरुक्त प्रतीत होता है, परन्तु ऐसा है नहीं। अर्जुन के इस प्रश्न का भाव और है। उसका यह भाव उसके "तत्वमिच्छामि वेदितुम्" (तत्त्व जानना चाहता हूँ) इस वाक्य से स्पष्ट झलक रहा है। यह गुणनिष्ठा का प्रकरण है। इसलिये वह गुणों की दृष्टि से भी इन दोनों के स्वरूप को जानना चाहता था और फिर यह भी कि इस बात को जानने के लिये मैं कर्मयोग के किस अंश का अधिकारी हूँ। श्रीकृष्ण

जी भी उसके इस भाव को समझ गये और उन्होंने इस दृष्टि से उसके इस प्रश्न का उत्तर इस अध्याय में आगे चल कर दिया है। सन्यास और त्याग का लक्षण करने के बाद उन्होंने यज्ञ, दान और तप के बारे में दूसरे महात्माओं का मत दिखाते हुए अपना मत प्रकट किया है।

इस विषय को उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया है कि यज्ञ, दान और तप आत्मा को पवित्र करने वाले कर्म हैं। इन्हें कभी न छोड़ना, पर इन्हें भी आसक्ति और फल की कामना को छोड़कर ही करना चाहिये। नियत कर्मों के त्याग का भी उन्होंने सर्वथा निषेध किया है। वर्णाश्रम के धर्म नियत हैं।

इसके बाद महाराज ने गुण की दृष्टि से तीन भाग कर अर्जुन को त्याग का रहस्य समझाया है। उन्होंने कहा कि हे अर्जुन! जो मनुष्य भ्रान्ति से नियत कर्मों को छोड़ता है, उसका त्याग तमोगुणी त्याग है। जो दुःख समझ कर शरीर के क्लेश के भय से कर्मों को छोड़ता है, उसका त्याग रजोगुणी है, और जो कर्त्तव्य समझ कर नियत कर्म को तो करता चला जाता है, परन्तु आसक्ति तथा उसके फल की कामना का त्याग कर देता है, उसका त्याग सत्वगुणी त्याग है। सारे कर्मों को देहधारी छोड़ भी कैसे सकता है? इसलिये यह तीसरा त्याग ही सच्चा त्याग है।

इसलिये भी मनुष्य कर्मों को नहीं छोड़ सकता क्योंकि वह अकेला उनका कारण नहीं है। प्रत्येक कर्म के पाँच कारण तो अवश्य होते हैं। जैसे रणक्षेत्र में कोई वीर यदि किसी की छाती पर शस्त्र का प्रहार करता है तो उसके इस कर्म का एक कारण वह मनुष्य है, जिसके ऊपर उसने प्रहार किया है। यदि उस मनुष्य के उस वीर के हृदय को क्षुब्ध करनेवाले व्यवहार न होते तो उससे वह कर्म कभी हो ही नहीं सकता था। इसी कारण का नाम अधिष्ठान है। दूसरा कारण प्रहार करनेवाला वीर है, उसे कर्त्ता कहते हैं। तीसरा कारण मारनेवाले वीर की अनेक चेष्टाएँ हैं। इन सबकी उत्पत्ति संस्कारों से होती है। जब तक संस्कार हैं, इन्हें दूर नहीं किया जा सकता। धनुष, बाण आदि मारने के साधन चौथा कारण हैं। इन्हें करण कहते हैं और पाँचवाँ कारण दैव, भाग्य, अर्थात् परमात्मा की इच्छा व्यवस्था है। यह हमारे कर्मों के फलों के अनुसार हमें परमात्मा की तरफ से मिलता है। इन सारे कारणों के होते हुए अकेले कर्त्ता की क्या शक्ति है कि वह कर्म को छोड़ दे।

अपने इस वक्तव्य से श्रीकृष्ण जी अर्जुन को यह समझाना चाहते थे कि तुम्हारे इस संग्राम में अधिष्ठान कारण दुर्योधन है, वह अधिष्ठान बना है, तुम्हारे ऊपर किये हुए अपने अत्याचारों से। इसलिये उन अत्याचारों का चित्र सामने आते ही तुम विवश होकर संग्राम में कूद पड़ोगे, उसे छोड़ न सकोगे। आगे चलकर महाराज ने अर्जुन को उसकी योग्यता, अधिकार और लक्ष्य को समझाने के लिये ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता, कर्म, करण, कर्त्ता, बुद्धि और सुख का गुणों की दृष्टि से विवेचन किया है। इस सारे विवेचन से यह भी प्रकट किया गया है कि संसार का कोई भी पदार्थ इन तीन गुणों के पंजों से छूट नहीं सकता, इस लिये संसार के किसी भी कार्य को मनुष्य अपने अन्तःकरण में विद्यमान प्रधान गुण की सहायता से ही कर सकता है। इस लिये किसी भी कार्य का आरम्भ करते समय उसे अपने अन्तःकरण के प्रधान गुण अथवा स्वभाव को अवश्य देख लेना चाहिये। यदि वह अपने स्वभाव के विपरीत कर्म को आरम्भ कर देगा तो कदापि सफल नहीं हो सकेगा।

इसी विषय को और अधिक स्पष्ट करने के लिये आगे चलकर महाराज ने वर्णव्यवस्था का दिग्दर्शन कराया है। चारों वर्णों और उनके कार्यों की व्यवस्था उन्होंने स्वभाव के आधार पर मानी है। यह गुणनिष्ठा का प्रकरण है। इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कार्य स्वभाव के गुणों से विभक्त किये गये हैं। मनुष्य अपने परिश्रम से इन तीनों गुणों में से किसी को भी प्रबल बना सकता है, इसलिये इसी जन्म में उसका स्वभाव बदल सकता है और स्वभाव के बदल जाने से उसका वर्ण भी बदल सकता है। इस प्रकरण से श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को भलीभाँति समझा दिया है कि मनुष्य नियत कर्मों को कभी छोड़ ही नहीं सकता, क्योंकि उसकी व्यवस्था स्वभाव के आधार पर की गयी है। जब तक स्वभाव उस प्रकार का विद्यमान है, तब तक वह उन कार्यों को कैसे छोड़ सकता है?

मनुष्य जीवन का प्रधान लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति रूप सिद्धि है और वह मिलती है भगवान् की उपासना से। परन्तु उसकी उपासना का भी स्वभाव के अनुकूल कर्मों का अनुष्ठान एक उत्तम उपाय है। हे अर्जुन! तेरा स्वभाव क्षत्रिय वर्ण के अनुकूल है। इस समय मोह का आवरण तुझसे न लड़ने का पाठ करा रहा है, किन्तु इसके हटते ही तुझे विवश होकर अपने स्वभाव के अनुसार लड़ना ही पड़ेगा। अन्त में फिर मैं तुम्हारा ध्यान जीवन के उसी महान् उद्देश्य की ओर आकर्षित करता हूँ। सारे संसारचक्र को चलाते हुए परमात्मा प्रत्येक प्राणी के हृदय में विद्यमान हैं। अपने स्वभावानुकूल कर्म करते हुए पूर्णरूप से उन्हीं की शरण में जाओ। उन्हीं की कृपा से तुम उत्तम शान्ति और ऊँचे पद को प्राप्त करोगे।

यह मैंने गूढ से गूढ ज्ञान (विज्ञान) तुझे सुनाया है। इसे विचार कर जैसे समझ में आये वैसा बर्ताव करो। मैं पूछना चाहता हूँ कि हे अर्जुन! क्या तुमने एकाग्र चित्त से मेरा कथन सुना है? और क्या तुम्हारा भ्रम दूर हो गया?

अर्जुन ने कहा कि महाराज! आपकी कृपा से मेरा मोह दूर हो गया, अपने क्षात्रधर्म की याद आ गयी। अब कोई संशय शेष नहीं है। आज्ञा का पालन करूँगा।

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक् केशिनिषूदन॥ १॥

तब अर्जुन ने पूछा कि हे महाबाहु! हे केशी के मारनेवाले जितेन्द्रिय कृष्ण! मैं सन्यास के और त्याग के अर्थात् कर्मसन्यास के तथा कर्मफलत्याग के अलग अलग तत्व को अर्थात् गुणों की दृष्टि से सार को जानना चाहता हूँ।

श्रीकृष्ण उवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणः॥ २॥
त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे॥ ३॥
निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः॥ ४॥

तब श्रीकृष्ण जी ने उत्तर दिया कि बुद्धिमान् और विद्वान् लोगों ने कामनायुक्त कर्मों के त्याग को कर्म सन्यास समझा है तथा सारे कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहा है। दोषयुक्त अर्थात् कामना से युक्त कर्म को छोड़ देना चाहिये। ऐसा कोई विद्वान् कहते हैं और दूसरे कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप कर्मों को नहीं छोड़ना चाहिये। हे भरतश्रेष्ठ! तुम इस त्याग के विषय में मेरे निश्चय को सुनो। हे पुरुषव्याघ्र! त्याग निश्चय ही तीन प्रकार का कहा गया है।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ ५॥
एतान्यापि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥ ६॥
नियतस्य तु सन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात् तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः॥ ७॥
दुःखमित्येव यत् कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत॥ ८॥
कार्यमित्येव यत् कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥ ९॥

यज्ञ, दान और तप इन्हें नहीं छोड़ना चाहिये। इन्हें तो करना ही चाहिये। यज्ञ, दान और तप बुद्धिमानों को पवित्र करनेवाले हैं। हे कुन्तीपुत्र! इन कर्मों को भी आसक्ति और फलों को छोड़कर करना चाहिये। यह मेरा निश्चित श्रेष्ठमत है। वर्ण और आश्रम के अनुसार जो नियत कर्म हैं, उनका त्याग उपयुक्त नहीं है। उनका भ्रम के कारण त्याग करना तमोगुणी त्याग कहा जाता है। इसे करना कठिन है, यह मानकर शरीर के दुःख के भय से जिस कर्म का त्याग किया जाता है, वह त्याग राजसी त्याग है, उस त्याग को करनेवाला फल को नहीं प्राप्त करता है। हे अर्जुन! जो व्यक्ति आसक्ति और फल की इच्छा को त्यागकर अपने नियत कर्म को यह मेरा कर्त्तव्य है, यह समझकर करता है, उसका वह त्याग सत्वगुणी त्याग माना जाता है।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥ १०॥
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥ ११॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्॥ १२॥

सत्वगुण से पूर्ण, संशय से रहित, बुद्धिमान्, त्यागी व्यक्ति दुःखदायक कर्म के साथ द्वेष नहीं करता और सुखदायक कर्म में आसक्त नहीं होता। देहधारी मनुष्य के द्वारा सारे कर्मों का त्याग संभव नहीं है, किन्तु जो व्यक्ति कर्मफलों का त्याग करने वाला है उसे त्यागी इस नाम से कहा जाता है। कर्म का बुरा, भला और मिला हुआ अर्थात् मध्यम अवस्था का तीन प्रकार का फल होता है। यह तीन प्रकार का फल कर्मफल का त्याग न करनेवालों को मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होता है, पर जिन्होंने कर्म फल का त्याग कर दिया है, उन्हें यह फल कहीं नहीं मिलता।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्॥ १३॥
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥ १४॥
शरीरवाङ्मनोभिर्यत् कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः॥ १५॥
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥ १६॥
यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥ १७॥

हे महाबाहु! सारे कर्मों की सिद्धि के ये पाँच हेतु कर्मों का अन्त करने के उपाय बतानेवाले सांख्य शास्त्र में बताये गये हैं। उनको तू मुझसे भली भाँति जान। ये पाँच कारण हैं, अधिष्ठान अर्थात् स्थान, कर्ता, भिन्न-भिन्न प्रकार के साधन और अनेक प्रकार की भिन्न-भिन्न चेष्टाएँ और पाँचवाँ इस विषय में परमात्मा की व्यवस्था। मनुष्य शरीर, मन और वाणी से जो न्याय के अनुसार या न्याय के विपरीत कर्म आरम्भ करता है, ये पाँच उस कर्म के कारण हैं। किन्तु इन पाँच कारणों के होते हुए भी जो व्यक्ति मन्दबुद्धि होने के कारण केवल अपने आपको ही कर्ता समझता है, वह बुरी बुद्धिवाला व्यक्ति कुछ भी नहीं जानता। किन्तु जिसमें अहंकार की भावना नहीं है और जिसकी बुद्धि फल की कामना से लिप्त नहीं है, वह इन सारे लोकों को मार कर भी बन्धन में नहीं आता।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः॥ १८॥
ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि॥ १९॥
सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥ २०॥
पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्॥ २१॥
यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत् तामसमुदाहृतम्॥ २२॥

ज्ञान, जानने की वस्तु और जानने वाला ये तीन कर्म के प्रवर्तक हैं। साधन, कर्म और कर्त्ता ये तीन कर्म का अनुष्ठान करानेवाले हैं। गुणों का विवेचन करानेवाले शास्त्र में गुणों के भेद से ज्ञान कर्म और कर्त्ता तीन प्रकार के ही कहे जाते हैं, तुम उनको भी ठीक ठीक तरह से सुनो। जिस ज्ञान के द्वारा सब प्राणियों या पदार्थों में एक ही अनश्वर सत्ता अर्थात् ईश्वरीय सत्ता दिखाई देती है, जो विभक्तों में भी अविभक्त रूप से विद्यमान है, उस ज्ञान को तू सात्विक ज्ञान समझ। जिस ज्ञान के द्वारा विभिन्न प्राणियों या पदार्थों में उनकी पृथकता के कारण अस्तित्व की विविधता दिखाई पड़ती है, उस ज्ञान को राजस समझना चाहिये। किन्तु जो ज्ञान युक्ति से रहित, एक कार्य में समस्त कार्यों के झुण्ड की तरह सम्बद्ध है, जो थोड़े को बहुत और एक को अनेक जानता है, जो मिथ्या विषयवाला और थोड़ा है, उसे तमोगुणी कहा गया है।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत् सात्त्विकमुच्यते॥ २३॥
यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद् राजसमुदाहृतम्॥ २४॥
अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत् तामसमुच्यते॥ २५॥

जो कर्म अपने वर्ण और आश्रम के लिये नियत हैं, जो आसक्ति से रहित, राग और द्वेष के बिना फल की इच्छा न रखनेवाले के द्वारा किया जाता है, उस कर्म को सत्वगुणी कहा जाता है। किन्तु जो कर्म अहंकारी अथवा फल की कामना के अभिलाषी के द्वारा बड़े परिश्रम से किया जाता है,

उसे रजोगुणी कर्म कहते हैं। जो कार्य परिणाम, धन और बल का व्यर्थ नाश, दूसरे की पीड़ा और कार्य करने की शक्ति की परवाह न कर मोह से प्रारम्भ किया जाता है, वह तमोगुणी कहा जाता है।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते॥ २६॥
रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः॥ २७॥
अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते॥ २८॥

जो आसक्ति से छूटा हुआ, अहंकार की बात न करनेवाला, धैर्य और उत्साह से युक्त फल की सिद्धि और असिद्धि दोनों अवस्थाओं में विकार से रहित होता है, उस कर्त्ता को सत्वगुणी कहते हैं। जो आसक्ति से युक्त, कर्म के फल को चाहने वाला, लोभी, हिंसा की भावनावाला, अपवित्र, हर्ष और शोक से युक्त कर्त्ता होता है, उसे रजोगुणी माना जाता है। जो तत्पर होकर न लगनेवाला, अज्ञानी, अकड़ा हुआ, धूर्त्त, बदला लेने का अभ्यासी, आलसी, शोक करनेवाला और देर से काम करने वाला कर्त्ता होता है, उसे तमोगुणी कर्त्ता कहते हैं।

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय॥ २९॥
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थसात्त्विकी॥ ३०॥
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥ ३१॥
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥ ३२॥

हे धनंजय अर्जुन! अब बुद्धि और धारणा के गुणों के आधार पर पूर्णरूप से कहे जाते हुए तीन प्रकार के भेद अलग अलग सुनो। हे कुन्तीपुत्र! जो बुद्धि कार्य के आरम्भ और त्याग, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य, भय और निर्भयता, बन्धन और मोक्ष को जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है। हे कुन्तीपुत्र! धर्म और अधर्म को, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को जिस बुद्धि से कर्त्ता यथावत् नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है। हे कुन्तीपुत्र! जो बुद्धि तमोगुण से ढकी हुई है, अधर्म को धर्म इस नाम से तथा सारे विषयों को उलटे ही जानती है, वह तमोगुणी बुद्धि है।

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी॥ ३३॥
यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी॥ ३४॥
यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी॥ ३५॥

हे कुन्तीपुत्र! जिस न बदलनेवाली धारणा से ध्यान योग द्वारा, मनुष्य मन, प्राण तथा इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखता है, वह धारणा सात्विकी है। हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! जिस धारणा से फल की इच्छावाला मनुष्य अत्यन्त आसक्ति से धर्म, अर्थ और काम को धारण करता है, वह धारणाशक्ति राजसी है। हे कुन्तीपुत्र! जिस धारणाशक्ति से दुर्बुद्धि मनुष्य नींद, भय, शोक, दुःख और अभिमान का त्याग नहीं करता, वह धारणा तमोगुणी है।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद् रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति॥ ३६॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥ ३७॥
विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतम्॥ ३८॥
यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्॥ ३९॥

हे भरतश्रेष्ठ! अब तुम मुझसे तीन प्रकार के सुखों के विषय में सुनो। जिनमें मनुष्य अभ्यास से रम जाता है और दुःख के नाश का अनुभव करता है, जो सुख आरम्भ में साधन कठिन होने के कारण विष की तरह और अन्त में अमृत के समान प्रतीत होता है, वह आत्मा और बुद्धि की निर्मलता से उत्पन्न होनेवाला सुख सात्विक कहा गया है। जो सुख विषयों और इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न होनेवाला है, जो आरम्भ में अमृत के समान लगता है, पर अन्त में विष के समान अनुभव होता है वह सुख रजोगुणी माना जाता है। जो सुख आरम्भ में और अन्त में भी आत्मा को मोह से फँसाने वाला है तथा नींद, आलस्य एवं कर्त्तव्य की भूल से उत्पन्न होने वाला है, वह तमोगुणी कहा गया है।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥ ४०॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥ ४१॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ ४२॥
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥ ४३॥

हे शत्रुओं को संतप्त करनेवाले अर्जुन! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के भी कर्म स्वभाव से उत्पन्न होनेवाले गुणों से बाँटे गये हैं। शान्ति, इन्द्रियों का निरोध, सुखदुःख आदि द्वन्द्वों को सहने की शक्ति, शुद्धि, क्षमा, सरलता, यम और नियमों का पालन, सत्व आदि गुणों का विवेक कर सात्विक भावों का धारण, ईश्वर की सत्ता में श्रद्धा, ये ब्राह्मण के स्वभाव के अनुसार कर्म हैं। शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध में न भागना, दान और प्रभुता, ये क्षत्रियों के उनके स्वभाव के अनुसार कर्म हैं। खेती, गोपालन, व्यापार, ये स्वभाव के अनुसार वैश्य के कर्म हैं। शूद्र का भी उसके स्वभाव के अनुसार सेवा करना कर्म है।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥ ४४॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ ४५॥
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन् नाप्नोति किल्बिषम्॥ ४६॥
सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥ ४७॥

मनुष्य अपने अपने कर्म में लगा हुआ सिद्धि को प्राप्त करता है। अपने स्वाभाविक कर्म को करता हुआ मनुष्य जिसप्रकार से सिद्धि को प्राप्त करता है, तू उसे सुन। जिसके कारण सारे प्राणियों की उत्पत्ति हुई है, जिससे सारा संसार व्याप्त है, उस परमात्मा की अपने स्वाभाविक कर्मों से पूजा करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है। भली प्रकार अनुष्ठान किये गये दूसरे के धर्म से, पूरी तरह से अनुष्ठित न हुआ भी अपना धर्म श्रेष्ठ है। स्वभाव के अनुसार निश्चित किये गये कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप का भागी नहीं बनता है। हे कुन्तीपुत्र! विघ्नोंवाले भी, पर स्वभाव के अनुसार नियत किये गये कर्म को नहीं छोड़ना चाहिये। धूएँ से ढकी अग्नि के समान सारे कार्य विघ्नों से घिरे हुए हैं।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्यासेनाधिगच्छति॥ ४८॥
यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥ ४९॥
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥ ५०॥

जिसकी बुद्धि सर्वत्र फल में आसक्त नहीं है, जिसकी इच्छाएँ फल की तरफ नहीं झुकती हैं, जिसने अपने अन्तःकरण को वश में कर लिया है, वह व्यक्ति कर्मफल के त्याग से कर्मसन्यास की उत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। जो अहंकार का आश्रय लेकर तू नहीं लड़ूँगा, यह समझता है, यह तेरा व्यापार मिथ्या है। तेरा स्वभाव तुझे युद्ध में लगा देगा। हे कुन्तीपुत्र! मोह के कारण, तू जिस कार्य को करना नहीं चाहता, उसको भी तू अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कार्य से बँधा हुआ परवश होकर करेगा।

ईश्वरः सर्वभूतानां, हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि मायया॥ ५१॥

हे अर्जुन! ईश्वर संसार के सभी जड़ चेतन पदार्थो के अन्दर विद्यमान है। वे सारे पदार्थ ईश्वर द्वारा निर्मित नियमों रूपी यन्त्र पर आरूढ हैं अर्थात् उससे बँधे हुए हैं। इस यन्त्र को ईश्वर अपनी शक्ति से चला रहा है और इसके द्वारा उसने पदार्थों को गतिमान् किया हुआ है।

तमेव शरणं गच्छ, सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसात् परां शान्तिं, स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ ५२॥

तू अपनी समग्र भावनाओं द्वारा उसकी ही शरण में जा। उस प्रभु की कृपा से इन आततायियों को मारने पर तुझे अशान्ति नहीं होगी, अपितु मैं प्रभु के कार्य का निमित्त बना हूँ, यह समझ कर तुझे परम शान्ति प्राप्त होगी और कभी नष्ट न होनेवाला प्रभुभक्त का पद प्राप्त होगा।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥ ५३॥
कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनंजय॥ ५४॥

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥ ५५॥

यह मैंने तुझे गूढ़ से गूढ़ विज्ञान बताया है। इस पर पूर्ण रूप से विचार कर, फिर जैसा चाहता है वैसा कर। हे कुन्तीपुत्र! क्या तुमने मेरे द्वारा कही गयीं ये सारी बातें एकाग्रचित्त से सुनी हैं? हे धनंजय! क्या तेरी अज्ञान से हुई भ्रान्ति नष्ट होगयी है? तब अर्जुन ने कहा कि हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट होगया है, अपने कर्त्तव्य की याद आ गयी है। अब मैं सन्देहरहित होकर खड़ा हुआ हूँ। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

पाँचवाँ अध्याय : युधिष्ठिर का भीष्म, द्रोण, कृप तथा शल्य से युद्ध की अनुमति लेना।

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा युद्धाय समवस्थिते।
ते सेने सागरप्रख्ये मुहुः प्रचलिते नृप॥ १॥
विमुच्य कवचं वीरो निक्षिप्य च वरायुधम्।
अवरुह्य रथात् क्षिप्रं पद्भ्यामेव कृताञ्जलिः॥ २॥
पितामहमभिप्रेक्ष्य धर्मराजो युधिष्ठिरः।
वाग्यतः प्रययौ येन प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम्॥ ३॥
तं प्रयान्तमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
अवतीर्य रथात् तूर्णं भ्रातृभिः सहितोऽन्वयात्॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे राजन्! तब धर्मराज युधिष्ठिर ने यह देखकर कि लहराते हुए सागर के समान दोनों सेनाएँ युद्ध के लिये तैयार हैं और चंचल हो रही हैं, वह वीर अपने कवच को खोलकर तथा शस्त्रास्त्रों को नीचे डालकर, रथ से नीचे उतर कर पैदल ही हाथ जोड़े हुए, पितामह को लक्ष्य करके चुपचाप पूर्व दिशा की तरफ शत्रुसेना की तरफ चल दिये। उन्हें उस तरफ जाता हुआ देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुन भी शीघ्रता से रथ से उतर कर अपने भाइयों के साथ उनके पीछे चल दिये।

अर्जुन उवाच

किं ते व्यवसितं राजन् यदस्मानपहाय वै।
पद्भ्यामेव प्रयातोऽसि प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम्॥ ५॥

भीमसेन उवाच

क्व गमिष्यसि राजेन्द्र निक्षिप्तकवचायुधः।
दंशितेष्वरिसैन्येषु भ्रातृनुत्सृज्य पार्थिव॥ ६॥

नकुल उवाच

एवं गते त्वयि ज्येष्ठे मम भ्रातरि भारत।
भीर्मे दुनोति हृदयं ब्रूहि गन्ता भवान् क्व नु॥ ७॥

सहदेव उवाच

अस्मिन् रणसमूहे वै वर्तमाने महाभये।
उत्सृज्य क्व नु गन्तासि शत्रूनभिमुखो नृप॥ ८॥

अर्जुन ने उनसे पूछा कि हे राजन्! आपने क्या सोचा हुआ है? जो हमें छोड़कर पैदल ही पूर्वदिशा की तरफ शत्रुसेना की ओर जा रहे हैं? भीम ने पूछा कि हे राजेन्द्र! आप कवच और हथियारों को छोड़कर कवच आदि से सुसज्जित शत्रुसेना में भाइयों को छोड़कर कहाँ जा रहे हैं? नकुल ने कहा कि हे भारत! मेरे सबसे बड़े भाई! आपके इस प्रकार चलने पर भय मेरे हृदय को पीड़ित कर रहा है। आप बताइये कि कहाँ जा रहे हैं? सहदेव ने कहा कि इस युद्धक्षेत्र में महान् भय के विद्यमान होने पर हे राजन्! आप हमें छोड़कर शत्रुओं की तरफ कहाँ जायेंगे?

संजय उवाच

एवमाभाष्यमाणोऽपि भ्रातृभिः कुरुनन्दनः।
नोवाच वाग्यतः किंचिद् गच्छत्येव युधिष्ठिरः॥ ९॥
तानुवाच महाप्राज्ञो वासुदेवो महामनाः।
अभिप्रायोऽस्य विज्ञातो मयेति प्रहसन्निव॥ १०॥
एष भीष्मं तथा द्रोणं गौतमं शल्यमेव च।
अनुमान्य गुरून् सर्वान् योत्स्यते पार्थिवोऽरिभिः॥ ११॥

संजय ने कहा कि भाइयों के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर भी कुरुनन्दन युधिष्ठिर कुछ नहीं बोले और चुपचाप चलते ही चले गये। तब महाप्राज्ञ, महामनस्वी श्रीकृष्ण ने उनसे मुस्कराते हुए कहा कि इनका अभिप्राय मैंने समझ लिया। ये राजा अपने गुरुओं भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और शल्य से आज्ञा लेकर शत्रुओं से युद्ध करेंगे।

नेत्रैरनिमिषैः सर्वे प्रेक्षन्ते स्म युधिष्ठिरम्।
हाहाकारो महानासीन्निःशब्दास्त्वपरेऽभवन्॥ १२॥
मिथः संकथयाञ्चक्रुरेषो हि कुलपांसनः।
व्यक्तं भीत इवाभ्येति राजासौ भीष्ममन्तिकम्॥ १३॥
युधिष्ठिरः ससोदर्यः शरणार्थं प्रयाचकः।
धनंजये कथं नाथे पाण्डवे च वृकोदरे॥ १४॥
नकुले सहदेवे च भीतिरभ्येति पाण्डवम्।

तब सारे लोग एकटक निगाहों से युधिष्ठिर को देख रहे थे। कहीं महान् हाहाकार हो रहा था और कहीं लोग बिल्कुल मौन हो कर देख रहे थे। लोग आपस में कहने लगे कि यह तो कुल का कलंक ही है। यह स्पष्ट है कि यह राजा युधिष्ठिर डरा हुआ, शरण के लिये, याचना करने के लिये भीष्म के पास आ रहा है। अर्जुन जैसे रक्षक, पाण्डव भीम, नकुल और सहदेव के होते हुए इस पाण्डव को डर क्यों लग रहा है?

न नूनं क्षत्रियकुले जातः सम्प्रथिते भुवि॥ १५॥
यथास्य हृदयं भीतमल्पसत्त्वस्य संयुगे।
विवक्षितं किमस्येति संशयः सुमहानभूत्॥ १६॥
उभयोः सेनयो राजन् युधिष्ठिरकृते तदा।
सोऽवगाह्य चमूं शत्रोः शरशक्तिसमाकुलाम्॥ १७॥
भीष्ममेवाभ्ययात् तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः।
तमुवाच ततः पादौ कराभ्यां पीड्य पाण्डवः॥ १८॥
भीष्मं शान्तनवं राजा युद्धाय समुपस्थितम्।

वास्तव में यह संसार में विख्यात क्षत्रियकुल में जन्मा हुआ नहीं है। इसीलिये इस कमजोर व्यक्ति का हृदय युद्ध के उपस्थित होने पर इतना डर रहा है। हे राजन्! इसप्रकार युधिष्ठिर के विषय में दोनों ही सेनाओं में महान् संशय हो रहा था? कि पता नहीं राजा युधिष्ठिर क्या कहना चाहते हैं? भाइयों से घिरे हुए युधिष्ठिर बाण और शक्ति से भरी हुई शत्रुसेना में घुसकर शीघ्रता से भीष्म जी के ही समीप जा पहुँचे। फिर उन पाण्डुपुत्र ने उनके पैरों को हाथों से दबाकर, युद्ध के लिये उपस्थित उन शान्तनुपुत्र भीष्म से कहा कि—

युधिष्ठिर उवाच

आमन्त्रये त्वां दुर्धर्ष त्वया योत्स्यामहे सह॥ १९॥
अनुजानीहि मां तात आशिषश्च प्रयोजय।

भीष्म उवाच

प्रीतोऽहं पुत्र युध्यस्व जयमाप्नुहि पाण्डव॥ २०॥
यत् तेऽभिलषितं चान्यत् तदवाप्नुहि संयुगे।
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्॥ २१॥
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः।
अतस्त्वां क्लीबवद् वाक्यं ब्रवीमि कुरुनन्दन॥ २२॥
भृतोऽस्म्यर्थेन कौरव्य युद्धादन्यत् किमिच्छसि।

हे तात! हे दुर्धर्षवीर! मैं आपके साथ युद्ध करूँगा, मैं इसके लिये आपसे आज्ञा चाहता हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये और अशीर्वाद दीजिये। तब भीष्म ने कहा कि हे पुत्र! हे पाण्डव! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम युद्ध में विजय को प्राप्त करो। तुम युद्ध करो। इसके अतिरिक्त और भी जो तुम्हारी आकांक्षा हो वह पूरी हो। मनुष्य धन का दास है। धन किसी का दास नहीं है। हे महाराज! यह सत्य है। मैं कौरवों के साथ धन के कारण बँधा हुआ हूँ। हे कुरुनन्दन! इसीलिये मैं आज तुम्हारे सामने नपुंसकों जैसे वाक्य बोल रहा हूँ क्योंकि इन्होंने मेरा धन से पालन किया है। हे कौरव्य! युद्ध के अतिरिक्त तुम और क्या चाहते हो?

युधिष्ठिर उवाच

मन्त्रयस्व महाबाहो हितैषी मम नित्यशः॥ २३॥
युध्यस्व कौरवस्यार्थे ममैष सततं वरः।

भीष्म उवाच

राजन् किमत्र साह्यं ते करोमि कुरुनन्दन॥ २४॥
कामं योत्स्ये परस्यार्थे ब्रूहि यत् ते विवक्षितम्।

युधिष्ठिर उवाच

कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम्॥ २५॥
एतन्मे मन्त्रय हितं यदि श्रेयः प्रपश्यसि।

भीष्म उवाच

न स्म तं तात पश्यामि समरे यो जयेत माम्॥ २६॥
न तावन्मृत्युकालोऽपि पुनरागमनं कुरु।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे महाबाहु! आप मेरे हितैषी होते हुए सदा मुझे अच्छी सलाह दें। भले ही युद्ध दुर्योधन के लिये करते रहें। मेरा यही सदा के लिये वर है। तब भीष्म ने कहा कि हे राजन्! मैं यहाँ तुम्हारी क्या सहायता करूँ? युद्ध तो मैं इच्छानुसार शत्रु की तरफ से ही करूँगा। अब तुम और क्या कहना चाहते हो? तब युधिष्ठिर ने कहा कि आप तो संग्राम में अपराजेय हैं। फिर मैं आपके ऊपर कैसे विजय प्राप्त करूँ? यदि आप मेरा कल्याण चाहते हैं तो इस विषय में मुझे हितकारी सलाह दीजिये। तब भीष्म ने कहा कि हे तात! मैं किसी ऐसे वीर को नहीं देखता जो युद्धभूमि में मुझे जीत सके। मेरा अभी मरने का समय भी नहीं है। इसलिये इस विषय में पूछने के लिये फिर कभी आना।

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो वाक्यं भीष्मस्य कुरुनन्दन॥ २७॥
शिरसा प्रतिजग्राह भूयस्तमभिवाद्य च।
प्रायात् पुनर्महाबाहुराचार्यस्य रथं प्रति॥ २८॥
पश्यतां सर्वसैन्यानां मध्येन भ्रातृभिः सह।
स द्रोणमभिवाद्याथ कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्॥ २९॥
उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः।
आमन्त्रये त्वां भगवन् योत्स्ये विगतकल्मषः॥ ३०॥
कथं जये रिपून् सर्वाननुज्ञातस्त्वया द्विज

संजय ने कहा कि फिर युधिष्ठिर ने भीष्म की बात को शिरोधार्य करके उन्हें प्रणाम किया और फिर वे महाबाहु अपने भाइयों के साथ सारी सेनाओं के

देखते हुए, उनके बीच में से द्रोणाचार्य के रथ की तरफ चल दिये। उन्होंने वहाँ उन दुर्धर्षवीर की प्रदक्षिणा की और उन्हें प्रणाम कर उनसे अपने कल्याण की बात पूछी। उन्होंने कहा कि हे भगवन्! मैं आपसे युद्ध करूँगा। इसके लिये आपसे आज्ञा चाहता हूँ और पापरहित होना चाहता हूँ। हे ब्राह्मण! मैं आपकी आज्ञा से अपने सारे शत्रुओं को कैसे जीत सकता हूँ?

द्रोण उवाच

तद् युधिष्ठिर तुष्टोऽस्मि पूजितश्च त्वयानघ॥ ३१॥
अनुजानामि युध्यस्व विजयं समवाप्नुहि।
करवाणि च ते कामं ब्रूहि त्वमभिकाङ्क्षितम्॥ ३२॥
एवंगते महाराज युद्धादन्यत् किमिच्छसि।
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्॥ ३३॥
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः।
ब्रवीम्येतत् क्लीबवत् त्वां युद्धादन्यत् किमिच्छसि॥ ३४॥
योत्स्येऽहं कौरवस्यार्थे तवाशास्यो जयो मया।

तब द्रोणाचार्य ने कहा कि हे निष्पाप, युधिष्ठिर! तुमने मेरा सम्मान किया है। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम युद्ध करो और विजय प्राप्त करो। मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगा। बताओ तुम क्या चाहते हो? इस परिस्थिति में तुम युद्ध के अतिरिक्त और क्या चाहते हो? मनुष्य धन का दास है। धन किसी का दास नहीं है। हे महाराज! यह सत्य है। मैं कौरवों के साथ धन के कारण बँधा हुआ हूँ। इसलिये आज नपुंसकों जैसी बात कर रहा हूँ। तुम युद्ध के अतिरिक्त और क्या चाहते हो? मैं युद्ध तो कौरवों के लिये ही करूँगा पर विजय तुम्हारी चाहूँगा।

युधिष्ठिर उवाच

जयमाशास्व मे ब्रह्मन् मन्त्रयस्व च मद्धितम्॥ ३५॥
युद्ध्यस्व कौरवस्यार्थे वर एष वृतो मया।

द्रोण उवाच

ध्रुवस्ते विजयो राजन् यस्य मन्त्री हरिस्तव॥ ३६॥
अहं त्वामभिजानामि रणे शत्रून् विमोक्ष्यसे।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः॥ ३७॥
युद्ध्यस्व गच्छ कौन्तेय पृच्छ मां किं ब्रवीमि ते।

युधिष्ठिर उवाच

पृच्छामि त्वां द्विजश्रेष्ठ शृणु यन्मेऽभि काङ्क्षितम्॥ ३८॥
कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम्।

तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे ब्रह्मन्! आप मेरी विजय की कामना कीजिये और मुझे हितकारी सलाह देते रहिये, युद्ध कौरवों के लिये कीजिये, यही मेरा वर है। तब द्रोणाचार्य ने कहा कि हे राजन्! तुम्हारी विजय तो निश्चित है, क्योंकि तुम्हारे मन्त्री कृष्ण हैं। मैं तुम्हे आज्ञा देता हूँ। तुम युद्ध में शत्रुओं को उनके प्राणों से मुक्त कर दोगे। कृष्ण वहीं होते हैं जहाँ धर्म होता है और जहाँ धर्म होता है, वहीं विजय होती है। इसलिये हे कुन्तीपुत्र! जाओ। युद्ध करो और पूछो मैं तुम्हें क्या बताऊँ? तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! आप मेरी चाही हुई बात को सुनिये। मैं आपसे पूछता हूँ कि आप अपराजेय हैं, फिर मैं आपको संग्राम में कैसे जीत सकता हूँ?

द्रोण उवाच

न तेऽस्ति विजयस्तावद् यावद् युद्ध्याम्यहं रणे॥ ३९॥
ममाशु निधने राजन् यतस्व सह सोदरैः।

युधिष्ठिर उवाच

हन्त तस्मान्महाबाहो वधोपायं वदात्मनः॥ ४०॥
आचार्य प्रणिपत्यैष पृच्छामि त्वां नमोऽस्तु ते।

द्रोण उवाच

न शत्रुं तात पश्यामि यो मां हन्याद् रथे स्थितम्॥ ४१॥
युध्यमानं सुसंरब्धं शरवर्षौघवर्षिणम्।
शस्त्रं चाहं रणे जह्यां श्रुत्वा तु महदप्रियम्॥ ४२॥
श्रद्धेयवाक्यात् पुरुषादेतत् सत्यं ब्रवीमि ते।

तब द्रोणाचार्य ने कहा कि हे राजन्! जब तक मैं युद्धक्षेत्र में युद्ध करूँगा, तुम्हारी विजय नहीं हो सकती। इसलिये तुम अपने भाइयों के साथ मेरी जल्दी मृत्यु के लिये प्रयत्न करो। तब युधिष्ठिर ने पूछा कि हे महाबाहु आचार्य! आपको नमस्कार है। मैं आपके चरणों में प्रणाम करके आपसे यह पूछता हूँ कि आप अपने वध का उपाय बताइये। द्रोणाचार्य ने तब कहा कि हे तात! मैं अपने किसी ऐसे शत्रु को नहीं देख रहा हूँ, जो मुझे उस अवस्था में, जब मैं रथ में बैठा हुआ, अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ, बाणों की वर्षा करते हुए युद्ध कर रहा होऊँ, मार सके। किसी विश्वासयोग्य व्यक्ति से अत्यन्त अप्रिय बात को सुनकर मैं युद्धक्षेत्र में हथियारों को त्याग दूँगा। यह मैं तुमसे सत्य कह रहा हूँ।

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाराज भारद्वाजस्य धीमतः॥ ४३॥
अनुमान्य तमाचार्यं प्रायाच्छारद्वतं प्रति।
सोऽभिवाद्य कृपं राजा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्॥ ४४॥
उवाच दुर्धर्षतमं वाक्यं वाक्यविदां वरः।
अनुमानये त्वां योत्स्येऽहं गुरो विगतकल्मषः॥ ४५॥
जयेयं च रिपून् सर्वाननुज्ञातस्त्वयानघ।

कृप उवाच

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्॥ ४६॥
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः।
तेषामर्थे महाराज योद्धव्यमिति मे मतिः॥ ४७॥
अतस्त्वां क्लीबवद् ब्रूयां युद्धादन्यत् किमिच्छसि।

तब संजय ने कहा कि हे महाराज! धीमान्, भरद्वाजपुत्र की यह बात सुनकर और उन आचार्य का सम्मान कर वे युधिष्ठिर कृपाचार्य की तरफ गये। उनकी प्रदक्षिणा कर तथा उन्हें प्रणाम कर उन दुर्धर्षतम वीर से वक्ताओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने उनसे यह कहा कि हे निष्पाप गुरुदेव! मैं आपसे पापरहित होकर युद्ध करूँ, और अपने सारे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करूँ, इसके लिये मैं आपसे आज्ञा चाहता हूँ। तब कृपाचार्य ने कहा कि मनुष्य धन का दास होता है। धन किसी का दास नहीं होता हे महाराज! यह सत्य है। मैं कौरवों के साथ धन के कारण बँधा हुआ हूँ। हे महाराज! मेरा यह मत है कि मुझे इसलिये उन्हीं के लिये युद्ध करना चाहिये। इसीलिये आपसे नपुंसकों जैसी बात कर रहा हूँ। तुम युद्ध के अतिरिक्त और क्या चाहते हो?

प्रीतस्तेऽभिगमेनाहं जयं तव नराधिप॥ ४८॥
आशासिष्ये सदोत्थाय सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
एतच्छ्रुत्वा महाराज गौतमस्य विशाम्पते॥ ४९॥
अनुमान्य कृपं राजा प्रययौ येन मद्रराट्।
स शल्यमभिवाद्याथ कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्॥ ५०॥
उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः।
अनुमानये त्वां दुर्धर्ष योत्स्ये विगतकल्मषः॥ ५१॥
जयेयं नु परान् राजन्ननुज्ञातस्त्वया रिपून्।

हे राजन्! मैं तुम्हारे आने से तुमसे प्रसन्न हूँ। सदा उठकर तुम्हारी विजय के लिये कामना करूँगा यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। हे महाराज! प्रजापालक! कृपाचार्य की यह बात सुनकर उनकी अनुमति लेकर राजा युधिष्ठिर वहाँ गये, जहाँ मद्रराज शल्य विद्यमान थे। उन्होंने शल्य की प्रदक्षिणा की और उन्हें प्रणाम कर उन दुर्धर्ष वीर से अपने कल्याण की बात कही। उन्होंने कहा कि हे दुर्धर्षवीर! मैं आपके साथ पापरहित होकर युद्ध करूँगा। मैं शत्रुओं पर विजय प्राप्त करूँ, इसके लिये आपसे आज्ञा चाहता हूँ।

शल्य उवाच

तुष्टोऽस्मि पूजितश्चास्मि यत् काङ्क्षसि तदस्तु ते॥ ५२॥
अनुजानामि चैव त्वां युध्यस्व जयमाप्नुहि।
ब्रूहि चैव परं वीर केनार्थः किं ददामि ते॥ ५३॥
एवंगते महाराज युद्धादन्यत् किमिच्छसि।

युधिष्ठिर उवाच

स एव मे वरः शल्य उद्योगे यस्त्वया कृतः॥ ५४॥

शल्य उवाच

सम्पत्स्यत्येष ते कामः कुन्तीपुत्र यथेप्सितम्।
गच्छ युध्यस्व विश्रब्धः प्रतिजाने वचस्तव॥ ५५॥

संजय उवाच

अनुमान्याथ कौन्तेयो मातुलं मद्रकेश्वरम्।
निर्जगाम महासैन्याद् भ्रातृभिः परिवारितः॥ ५६॥

तब शल्य ने कहा कि तुमने मेरा सम्मान किया है। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहते हो वह पूरा होगा। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम युद्ध करो और विजयी होओ। हे वीर! बताओ। तुम्हारा और क्या प्रयोजन है? मैं तुम्हें क्या दूँ? तुम हे महाराज! युद्ध के अतिरिक्त और क्या चाहते हो? तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे शल्य मामाजी! जब युद्ध के लिये प्रयत्न चल रहा था तब आपने जो वर मुझे दिया था, वही वर मैं आज भी चाहता हूँ। यही मेरा वर है। तब शल्य ने कहा कि हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारी मनचाही कामना पूरी होगी। तुम जाओ और निश्चिन्त हो कर युद्ध करो। मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। तब अपने मामा मद्रराज से अनुमति लेकर कुन्तीपुत्र अपने भाइयों से घिरे हुए उस महान् सेना से बाहर निकल आये।

अथ सैन्यस्य मध्ये तु प्राक्रोशत् पाण्डवाग्रजः।
योऽस्मान् वृणोति तमहं वरये साह्यकारणात्॥ ५७॥
अथ तान् समभिप्रेक्ष्य युयुत्सुरिदमब्रवीत्।

प्रीतात्मा धर्मराजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ ५८॥
अहं योत्स्यामि भवतः संयुगे धृतराष्ट्रजान्।
युष्मदर्थं महाराज यदि मां वृणुषेऽनघ॥ ५९॥

युधिष्ठिर उवाच

एह्येहि सर्वे योत्स्यामस्तव भ्रातॄनपण्डितान्।
युयुत्सो वासुदेवश्च वयं च ब्रूम सर्वशः॥ ६०॥
वृणोमि त्वां महाबाहो युद्धयस्व मम कारणात्।
भजस्वास्मान् राजपुत्र भजमानान् महाद्युते॥ ६१॥

तब पाण्डवों के बड़े भाई युधिष्ठिर ने सेनाओं के बीच में पुकार कर कहा कि जो हमारी सहायता करने के लिये हमारे पक्ष में आना चाहे उसे मैं स्वीकार करूँगा। तब पाण्डवों की तरफ देखकर युयुत्सु ने प्रसन्न होकर कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर से यह कहा कि मैं आपके लिये धृतराष्ट्र के पुत्रों से युद्ध करूँगा यदि हे महाराज, निष्पाप! आप मुझे स्वीकार करें। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे युयुत्सु! आओ, आओ। हमसब तुम्हारे मूर्ख भाइयों के साथ युद्ध करेंगे। यह बात हमसब और श्रीकृष्ण भी कह रहे हैं। हे महाबाहु! मैं तुम्हारा वरण करता हूँ। तुम हमारे लिये युद्ध करो। हे महातेजस्वी राजकुमार! हम तुम्हें अपनाते हैं। तुम भी हमें स्वीकार करो।

संजय उवाच

ततो युयुत्सुः कौरव्यान् परित्यज्य सुतांस्तव।
जगाम पाण्डुपुत्राणां सेनां विश्राव्य दुन्दुभिम्॥ ६२॥
ततो युधिष्ठिरो राजा सम्प्रहृष्टः सहानुजः।
जग्राह कवचं भूयो दीप्तिमत् कनकोज्ज्वलम्॥ ६३॥
प्रत्यपद्यन्त ते सर्वे स्वरथान् पुरुषर्षभाः।

संजय ने कहा कि तब युयुत्सु आपके पुत्रों को छोड़कर, डंके की चोट से पाण्डवों की सेना में चला गया। तब युधिष्ठिर ने प्रसन्न होकर अपने भाइयों के साथ अपने सोने के समान उज्वल और जगमगाते हुए कवच को फिर धारण कर लिया और वे सारे पुरुषश्रेष्ठ अपने अपने रथों पर बैठ गये।

रथस्थान् पुरुषव्याघ्रान् पाण्डवान् प्रेक्ष्य पार्थिवाः॥ ६४॥
धृष्टद्युम्नादयः सर्वे पुनर्जहृषिरे तदा।
गौरवं पाण्डुपुत्राणां मान्यान् मानयतां च तान्॥ ६५॥
दृष्ट्वा महीक्षितास्तत्र पूजयाञ्चक्रिरे भृशम्।
सौहृदं च कृपां चैव प्राप्तकालं महात्मनाम्॥ ६६॥
दयां च ज्ञातिषु परां कथयाञ्चक्रिरे नृपाः।
म्लेच्छाश्चार्याश्च ये तत्र ददृशुः शुश्रुवुस्तथा।
वृत्तं तत् पाण्डुपुत्राणां रुरुदुस्ते सगद्गदाः॥ ६७॥

उन पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवों को रथ में पुनः बैठा हुआ देखकर धृष्टद्युम्न आदि सारे राजालोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। मान्यपुरुषों का मान करनेवाले पाण्डवों के उस गौरव को देखकर राजाओं ने उनका बड़ा सम्मान किया। वे परस्पर उन महात्माओं के सौहार्द, कृपाभाव, समयोचित कर्त्तव्य का पालन और परिवारवालों के प्रति परम दयाभाव की चर्चा करने लगे। जितने भी वहाँ आर्य और म्लेच्छलोग उपस्थित थे, उन सबने पाण्डवों का वह बर्ताव देखा और सुना तो वे गद्गद् होकर रोने लगे।

छठा अध्याय : प्रथम दिन के युद्ध का आरम्भ।

संजय उवाच

भ्रातृभिः सहितो राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया॥ १॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे भीमसेनपुरोगमाः।
भीष्मेण युद्धमिच्छन्तः प्रययुर्हृष्टमानसाः॥ २॥
क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दाः क्रकचा गोविषाणिकाः।
भेरीमृदङ्गमुरजा हयकुञ्जरनिःस्वनाः॥ ३॥

संजय ने कहा कि हे राजन्! तब आपका पुत्र दुर्योधन अपने भाइयों के साथ भीष्म के नेतृत्व में सेना के साथ आगे बढ़ा। उसीप्रकार सारे पाण्डव भीम को आगेकर प्रसन्न हृदय से भीष्म से युद्ध करने की इच्छा से आगे बढ़े। तब दोनों सेनाओं में सिंहनाद किलकारी के शब्द, क्रकच, नरसिंह, नगाड़े, मृदंग और ढोल आदि की ध्वनियाँ तथा हाथी और घोड़ों की आवाजें गूँजने लगीं।

तस्मिन् समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे।
भीमसेनो महाबाहुः प्राणदद् गोवृषो यथा॥ ४॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वारणानां च बृंहितम्।
सिंहनादं च सैन्यानां भीमसेनरवोऽभ्यभूत्॥ ५॥
हयानां ह्रेषमाणानामनीकेषु सहस्रशः।

सर्वानभ्यभवच्छब्दान् भीमस्य नदतः स्वनः॥ ६॥
दर्शयन् घोरमात्मानं महाभ्रमिव नादयन्।
बिभीषयंस्तव सुतान् भीमसेनः समभ्ययात्॥ ७॥

उस रोमांचक भयानक शब्द के उठने पर महाबाहु भीमसेन सांड की तरह से गर्जने लगे। भीम के उस गर्जन ने शंख और नगाड़ों की आवाज को, हाथियों की चिघाड़ को और सैनिकों के सिंहनाद को दबा दिया। हजारों की संख्या में घोड़े वहाँ सेनाओं में हिनहिना रहे थे, पर गर्जते हुए भीम की आवाज ने उन सबकी ध्वनियों को दबा दिया था। महान् मेघ के समान् गर्जते हुए, अपने भयानक रूप को प्रकट करते हुए और आपके पुत्रों को डराते हुए भीम ने कौरवसेना पर आक्रमण कर दिया।

तमायान्तं महेष्वासं सोदर्याः पर्यवारयन्।
छादयन्तः शरव्रातैर्मेघा इव दिवाकरम्॥ ८॥
दुर्योधनश्च पुत्रस्ते दुर्मुखो दुःशलः शलः।
दुःशासनश्चातिरथस्तथा दुर्मर्षणो नृप॥ ९॥
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः।
पुरुमित्रो जयो भोजः सौमदत्तिश्च वीर्यवान्॥ १०॥
महाचापानि धुन्वन्तो मेघा इव सविद्युतः।
आददानाश्च नाराचान् निर्मुक्ताशीविषोपमान्॥ ११॥
अग्रतः पाण्डुसेनाया ह्यतिष्ठन् पृथिवीक्षितः।

उन महाधनुर्धर भीम को आते हुए देखकर, दुर्योधन के भाइयों ने अपनी बाणवर्षा से उन्हें आच्छादित करते हुए, बादलों के द्वारा सूर्य के समान सब तरफ से घेर लिया। हे राजन्! आपके पुत्र दुर्योधन, दुर्मुख, दुःशल, शल, अतिरथी दुश्शासन, दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, महारथी विकर्ण, पुरुमित्र, जय, भोज, प्रतापी भूरिश्रवा, ये सब अपने विशाल धनुषों को हिलाते हुए, छोड़े हुए विषैले सर्पों के समान नाराचों को लिये हुए, विद्युतसहित मेघों जैसे प्रतीत होनेवाले राजालोग पाण्डवों की सेना के आगे खड़े हो गये।

तस्मिन् प्रथमसंग्रामे भीमज्यातलनिःस्वने॥ १२॥
तावकानां परेषां च नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः।
लाघवं द्रोणशिष्याणामपश्यं भरतर्षभ॥ १३॥
निमित्तवेधिनां चैव, शरानुत्सृजतां भृशम्।

इस पहले संग्राम में जब भयानकरूप से प्रत्यंचाओं की और ताल ठोकने की आवाजें हो रहीं थी, आपके और शत्रुओं के दल में से कोई भी युद्ध से विमुख नहीं हुआ। हे भरतश्रेष्ठ! तब मैने द्रोणाचार्य के शिष्यों का कौशल देखा, जो अत्यधिक गति से बाणों को छोड़ रहे थे और लक्ष्यों को बींध रहे थे।

नोपशाम्यति निर्घोषो धनुषां कूजतां तथा॥ १४॥
विनिश्चेरुःशरा दीप्ता ज्योतींषीव नभस्तलात्।
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रगृहीतशरासनाः॥ १५॥
सहसैन्याः समापेतुः पुत्रस्य तव शासनात्।
युधिष्ठिरेण चादिष्टाः पार्थिवास्ते सहस्रशः॥ १६॥
विनदन्तः समापेतुः पुत्रस्य तव वाहिनीम्।

उस समय धनुषों की टंकारों का शब्द कभी शान्त नहीं होता था। चमकते हुए बाण उसी प्रकार विचरण कर रहे थे, जैसे आकाश से गिरती हुई उल्कायें हों। तब दूसरे सारे राजा भी आपके पुत्र की आज्ञा से धनुषबाण लेकर, वहाँ सेनाओंसहित आ पहुँचे। युधिष्ठिर का आदेश पाकर उधर भी बहुत सारे राजालोग गर्जना करते हुए वहाँ आ गये और आपके पुत्र की सेना पर टूट पड़े।

उभयोः सेनयोस्तीव्रः सैन्यानां स समागमः॥ १७॥
अन्तर्धीयत चादित्यः सैन्येन रजसाऽऽवृतः।
प्रयुद्धानां प्रभग्नानां पुनरावर्तिनामपि॥ १८॥
नात्र स्वेषां परेषां वा विशेषः समदृश्यत।
तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये।
अतिसर्वाण्यनीकानि पिता तेऽभिव्यरोचत॥ १९॥

उस समय दोनों सेनाओं के बीच वह युद्ध तीव्रता से चल रहा था। सेनाओं के द्वारा उठी हुई धूल से घिरकर सूर्य भी दिखाई देना बन्द हो गया। लोग युद्ध करते थे, फिर भागने लगते थे, और फिर वापिस लौटकर युद्ध करने लगते थे। यह दृश्य अपनी और शत्रुओं की दोनोंतरफ की सेनाओं में दिखाई दे रहा था, इसमें कोई विशेषता नहीं थी। उस भयानक युद्ध में जब महान् भय विद्यमान था, आपके पिता भीष्म जी अपने तेज से सबसे ऊपर सुशोभित हो रहे थे।

सातवाँ अध्याय : सैनिकों का द्वन्द्व युद्ध।

संजय उवाच

पूर्वाह्ने तस्य रौद्रस्य युद्धमह्नो विशाम्पते।
प्रावर्तत महाघोरं राज्ञां देहावकर्तनम्॥ १॥
कुरूणां सृञ्जयानां च जिगीषूणां परस्परम्।
सिंहानामिव संह्रादो दिवमुर्वीं च नादयन्॥ २॥
आसीत् किलकिलाशब्दस्तलशङ्खरवैः सह।
जज्ञिरे सिंहनादाश्च शूराणां प्रतिगर्जताम्॥ ३॥

संजय ने कहा कि हे प्रजानाथ! उस भयानक दिन के प्रथम भाग में राजाओं के शरीरों को काटने वाला घोर युद्ध आरम्भ हो गया। परस्पर विजय के इच्छुक कौरवों और सृंजयों के वीर सिंहों के समान दहाड़ रहे थे। उनकी वह दहाड़ पृथिवी और आकाश में गूँज रही थी। उस समय ताल ठोकने और शंखों की ध्वनि के साथ सैनिकों की किलकारी के शब्द और प्रतिपक्ष के प्रति गर्जते हुए शूरवीरों के सिंहनाद हो रहे थे।

तलत्राभिहताश्चैव ज्याशब्दा भरतर्षभ।
पत्तीनां पादशब्दश्च वाजिनां च महास्वनः॥ ४॥
तोत्राङ्कुशनिपातश्च आयुधानां च निःस्वनः।
घण्टाशब्दश्च नागानामन्योन्यमभिधावताम्॥ ५॥
तस्मिन् समुदिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे।
बभूव रथनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः॥ ६॥

हे भरतश्रेष्ठ! तलत्राण से टकराकर होनेवाले प्रत्यंचाओं के शब्द, पैदल सैनिकों के पैरों की धमक, घोड़ों की महान् हिनहिनाहटें, हाथियों के चाबुक और अंकुशों के प्रहारों के शब्द, हथियारों की झनझनाहटें, एक दूसरे पर दौड़कर आक्रमण करते हुए हाथियों के घण्टानाद, इन सबके रोंगटे खड़े करदेनेवाले तुमुल शब्द में रथों के पहियों की घर्घराहट बादलों की गड़गड़ाहट के समान प्रतीत हो रही थी।

ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्व ऐवोच्छ्रितध्वजाः॥ ७॥
अथ शान्तनवो राजन्नभ्यधावद् धनंजयम्।
प्रगृह्य कार्मुकं घोरं कालदण्डोपमं रणे॥ ८॥
अर्जुनोऽपि धनुर्गृह्य गाण्डीवं लोकविश्रुतम्।
अभ्यधावत तेजस्वी गाङ्गेयं रणमूर्धनि॥ ९॥
तावुभौ कुरुशार्दूलौ परस्परवधैषिणौ।
गाङ्गेयस्तु रणे पार्थं विद्ध्वा नाकम्पयत् बली॥ १०॥

वे सारे कौरव सैनिक, प्राणों का मोह छोड़कर, मन को कठोर बनाकर, अपनी पताकाओं को ऊपर उठाये हुए, पाण्डवों की तरफ आक्रमण के लिये दौड़े। हे राजन्! तब शान्तनुपुत्र भीष्म उस युद्धक्षेत्र में मृत्यु के प्रहार के समान भयानक अपने धनुष को लेकर अर्जुन की तरफ दौड़े। तेजस्वी अर्जुन भी अपने संसारप्रसिद्ध गाण्डीवधनुष को लेकर, उस युद्ध के मुहाने पर गंगापुत्र की तरफ दौड़े। वे दोनों ही कौरवकुल के सिंह एक दूसरे के वध की इच्छा रखते थे, पर बलवान् गंगापुत्र उस युद्ध में अर्जुन को घायल करके भी कम्पित नहीं कर सके।

तथैव पाण्डवोराजन् भीष्मं नाकम्पयद् युधि।
सात्यकिस्तु महेष्वासः कृतवर्माणमभ्ययात्॥ ११॥
तयोः समभवद् युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
सात्यकिः कृतवर्माणं कृतवर्मा च सात्यकिम्॥ १२॥
आनर्च्छतुः शरैर्घोरैस्तक्षमाणौ परस्परम्।
तौ शरार्चितसर्वाङ्गौ शुशुभाते महाबलौ॥ १३॥
वसन्ते पुष्पशबलौ पुष्पिताविव किंशुकौ।

उसी प्रकार हे राजन्! पाण्डुपुत्र भी भीष्म को युद्ध में विचलित नहीं कर सके। उधर महाधनुर्धर सात्यकि ने कृतवर्मा पर आक्रमण किया। उन दोनों में रोंगटे खड़े करनेवाला तुमुल युद्ध हुआ। सात्यकि ने कृतवर्मा को और कृतवर्मा ने सात्यकि को घोर बाणों से काटते हुए, परस्पर बड़ी पीड़ा पहुँचाई। वे दोनों महाबली बाणों से सारे अंग छिदे होने के कारण वसन्तऋतु में खिले हुए फूलों से भरे हुए दो पलाश के वृक्षों के समान लग रहे थे।

अभिमन्युर्महेष्वासं बृहद्बलमयोधयत्॥ १४॥
ततः कोसलराजासावभिमन्योर्विशाम्पते।
ध्वजं चिच्छेद समरे सारथिं च न्यपातयत्॥ १५॥
सौभद्रस्तु ततः क्रुद्धः पातिते रथसारथौ।
बृहद्बलं महाराज विव्याध नवभिः शरैः॥ १६॥
अथापराभ्यां भल्लाभ्यां शिताभ्यामरिमर्दनः।
ध्वजमेकेन चिच्छेद पार्ष्णिमेकेन सारथिम्॥ १७॥
अन्योन्यं च शरैः क्रुद्धौ ततक्षाते परस्परम्।

अभिमन्यु महाधनुर्धर बृहद्बल के साथ युद्ध कर रहा था। हे प्रजापालक! तब उस कोसलराज ने अभिमन्यु की ध्वजा को काट दिया और युद्धस्थल में सारथि को गिरा दिया। अपने रथ के सारथि के गिराये जाने पर अभिमन्यु ने अत्यन्त क्रोध में भरकर हे महाराज! बृहद्बल को नौ बाणों से बींध दिया। फिर उस अरिमर्दन अभिमन्यु ने दो तीखे बाणों से उसके ध्वज को, एक बाण से उसके पृष्ठ रक्षक को और एक बाण से उसके सारथि को काट दिया। वे दोनों तब क्रुद्ध होकर एक दूसरे को बाणों से बींधने लगे।

मानिनं समरे दृप्तं कृतवैरं महारथम्॥ १८॥
भीमसेनस्तव सुतं दुर्योधनमयोधयत्।
तावुभौ नरशार्दूलौ कुरुमुख्यौ महाबलौ॥ १९॥
अन्योन्यं शरवर्षाभ्यां ववृषाते रणाजिरे।
दुःशासनस्तु नकुलं प्रत्युद्याय महाबलम्॥ २०॥
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्बहुभिर्मर्मभेदिभिः।
तस्य माद्रीसुतः केतुं सशरं च शरासनम्॥ २१॥
चिच्छेद निशितैर्बाणैः प्रहसन्निव भारत।

आपके युद्ध में अभिमानी, घमण्डी, पहले के बैरी, महारथी पुत्र दुर्योधन के साथ भीमसेन युद्ध करने लगे। कौरवकुल के प्रमुख महाबली उन दोनों नरसिंहों ने युद्धक्षेत्र में एकदूसरे पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। दुश्शासन ने आगे बढ़कर महाबली नकुल को मर्मभेदी बहुत से तीखे बाणों से बींध दिया। हे भारत! माद्रीपुत्र नकुल ने तब हँसते हुए उसके ध्वज को और धनुष बाण को तीखे बाणों से काट दिया।

पुत्रस्तु तव दुर्धर्षो नकुलस्य महाहवे॥ २२॥
तुरङ्गांश्चिच्छिदे बाणैर्ध्वजं चैवाभ्यपातयत्।
दुर्मुखः सहदेवं च प्रत्युद्याय महाबलम्॥ २३॥
विव्याध शरवर्षेण यतमानं महाहवे।
सहदेवस्ततो वीरो दुर्मुखस्य महारणे॥ २४॥
शरेण भृशतीक्ष्णेन पातयामास सारथिम्।
तावन्योन्यं समासाद्य समरे युद्धदुर्मदौ॥ २५॥
त्रासयेतां शरैर्घोरैः कृतप्रतिकृतैषिणौ।

तब आपके दुर्धर्ष पुत्र ने उस महायुद्ध में अपने बाणों से नकुल के घोड़ों को मार दिया और ध्वज को गिरा दिया। उधर दुर्मुख ने महाबली सहदेव पर आक्रमण किया और विजय के लिये यत्न करते हुए उन्हें अपनी बाणवर्षा से बींध दिया। तब वीर सहदेव ने उस महान् युद्ध में अपने अत्यन्त तीखे बाण से दुर्मुख के सारथि को मार गिराया। इस प्रकार युद्ध में दुर्मद वे दोनों एक दूसरे का सामना करते हुए, पिछले किये अपराधों का बदला लेने की इच्छा से भयानक बाणों द्वारा एक दूसरे को भयभीत करने लगे।

युधिष्ठिरः स्वयं राजा मद्रराजानमभ्ययात्॥ २६॥
तस्य मद्राधिपश्चापं द्विधा चिच्छेद मारिष।
तदपास्य धनुश्छिन्नं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २७॥
अन्यत् कार्मुकमादाय वेगवद् बलवत्तरम्।
ततो मद्रेश्वरं राजा शरैः संनतपर्वभिः॥ २८॥
छादयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणमभ्यद्रवत भारत॥ २९॥
तस्य द्रोणः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम्।
त्रिधा चिच्छेद समरे पाञ्चाल्यस्य तु कार्मुकम्॥ ३०॥

राजा युधिष्ठिर स्वयं मद्रराज शल्य की तरफ दौड़े। हे राजन्! तब मद्रराज ने उनके धनुष के दो टुकड़े कर दिये। तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने उस कटे हुए धनुष को फैंककर एक दूसरे अधिक वेगवाले और अधिक सुदृढ़ धनुष को लेकर मद्रराज को झुकी हुई गाँठवाले बाणों से ढक दिया और क्रोध में भर कर कहा कि खड़े रहो, खड़े रहो। तब धृष्टद्युम्न ने हे भारत! द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। द्रोणाचार्य ने अति क्रोध में भरकर शत्रुओं के प्राण निकालनेवाले उस पांचालराजकुमार के धनुष के तीन टुकड़े कर दिये।

शरं चैव महाघोरं कालदण्डमिवापरम्।
प्रेषयामास समरे सोऽस्य काये न्यमज्जत॥ ३१॥
अथान्यद् धनुरादाय सायकांश्च चतुर्दश।
द्रोणं द्रुपदपुत्रस्तु प्रतिविव्याध संयुगे॥ ३२॥
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ चक्रतुः सुभृशं रणम्।
सौमदत्तिं रणे शङ्खो रभसं रभसो युधि॥ ३३॥
प्रत्युद्ययौ महाराज तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
तस्य वै दक्षिणं वीरो निर्बिभेद रणे भुजम्॥ ३४॥
सौमदत्तिस्तथा शङ्खं जत्रुदेशे समाहनत्।

फिर उन्होंने दूसरे मृत्यु के प्रहार के समान अत्यन्त भयानक बाण को छोड़ा जो उसके शरीर में धँस गया। तब द्रुपद के पुत्र ने एक दूसरा धनुष

लेकर द्रोणाचार्य को युद्ध में चौदह बाणों से बींध दिया। फिर वे दोनों अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक दूसरे के प्रति भयानक युद्ध करने लगे सोमदत्तपुत्र, वेगवान् भूरिश्रवा पर वेगवान् शंख ने उस युद्ध में आक्रमण किया और हे महाराज! उससे खड़े रहो, खड़े रहो, यह कहा। उस वीर ने युद्ध में उसकी दायीं भुजा को छेद दिया। तब भूरिश्रवा ने शंख की हँसली पर प्रहार किया।

बाह्लीकं तु रणे क्रुद्धं क्रुद्धरूपो विशाम्पते॥ ३५॥
अभ्यद्रवदमेयात्मा धृष्टकेतुर्महारथः।
बाह्लीकस्तु रणे राजन् धृष्टकेतुममर्षणः॥ ३६॥
शरैर्बहुभिरानर्च्छत् सिंहनादमथानदत्।
चेदिराजस्तु संक्रुद्धो बाह्लीकं नवभिः शरैः॥ ३७॥
विव्याध समरे तूर्णं मत्तो मत्तमिव द्विपम्।
राक्षसं रौद्रकर्माणं क्रूरकर्मा घटोत्कचः॥ ३८॥
अलम्बुषं प्रत्युदियाद् बलं शक्र इवाहवे।

हे प्रजानाथ! युद्ध में अमित आत्मावाले, महारथी धृष्टकेतु ने क्रुद्ध होकर बाह्लीक पर आक्रमण किया। हे राजन्! अमर्षशील बाह्लीक ने युद्ध में धृष्टकेतु को बहुत से बाणों से पीड़ा दी और सिंहनाद किया। तब जैसे एक मस्तहाथी दूसरे मस्तहाथी पर आक्रमण करता है वैसे ही अत्यन्त क्रुद्ध हुए चेदिराज ने शीघ्रता से उस युद्ध में नौ बाणों से बाह्लीक को बींध दिया। जैसे इन्द्र ने बल नाम के दैत्य पर आक्रमण किया था उसी प्रकार भयानककर्म करने वाले राक्षस अलम्बुष पर क्रूरकर्म करनेवाले घटोत्कच ने आक्रमण किया।

अलम्बुषस्तु समरे भैमसेनिं महाबलम्॥ ३९॥
बहुधा दारयामास शरैः संनतपर्वभिः।
शिखण्डी समरे राजन् द्रौणिमभ्युद्ययौ बली॥ ४०॥
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धः शिखण्डिनमुपस्थितम्।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं विद्ध्वा ह्यकम्पयत्॥ ४१॥
शिखण्ड्यपि ततो राजन् द्रोणपुत्रमताडयत्।
सायकेन सुपीतेन तीक्ष्णेन निशितेन च॥ ४२॥
तौ जघ्नतुस्तदान्योन्यं शरैर्बहुविधैर्मृधे।

अलम्बुष ने भी उस युद्ध में महाबली भीमसेन के पुत्र को झुकी हुई गाँठवाले बहुत से बाणों से घायल कर दिया। हे राजन्! उस युद्ध में बलवान् शिखण्डी ने अश्वत्थामा पर आक्रमण किया। तब अश्वत्थामा ने अपने सामने उपस्थित शिखण्डी को क्रुद्ध होकर अत्यन्त तीखे नाराच से घायल कर कम्पित कर दिया। हे राजन्! तब शिखण्डी ने भी पीले, तेजधार वाले तीखे बाण से द्रोणपुत्र को चोट पहुँचायी। इस तरह युद्ध में वे दोनों एक दूसरे पर बहुत प्रकार के बाणों से प्रहार करने लगे।

भगदत्तं रणे शूरं विराटो वाहिनीपतिः॥ ४३॥
अभ्ययात् त्वरितो राजंस्ततो युद्धमवर्तत।
विराटो भगदत्तं तु शरवर्षेण भारत॥ ४४॥
अभ्यवर्षत् सुसंक्रुद्धो मेघो वृष्ट्या इवाचलम्।
भगदत्तस्ततस्तूर्णं विराटं पृथिवीपतिम्॥ ४५॥
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम्।

हे राजन्! सेनापति विराट ने युद्ध में शूरवीर भगदत्त पर शीघ्रता से आक्रमण किया और उन दोनों में युद्ध होने लगा! हे भारत! विराटराज ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर भगदत्त पर इसप्रकार बाणों की वर्षा की, जैसे बादल पर्वत पर वर्षा करते हैं। भगदत्त ने भी राजा विराट को शीघ्रता से बाणों से ऐसे ढक दिया जैसे बादल सूर्य को ढक देते हैं।

बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं कृपः शारद्वतो ययौ॥ ४६॥
तं कृपः शरवर्षेण छादयामास भारत।
गौतमं कैकयः क्रुद्धः शरवृष्ट्याभ्यपूरयत्॥ ४७॥
तावन्योन्यं हयान् हत्वा धनुश्छित्त्वा च भारत।
विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ॥ ४८॥
तयोस्तदभवद् युद्धं घोररूपं सुदारुणम्।
द्रुपदस्तु ततो राजन् सैन्धवं वै जयद्रथम्॥ ४९॥
अभ्युद्ययौ हृष्टरूपो हृष्टरूपं परंतपः।
ततः सैन्धवको राजा द्रुपदं विशिखैस्त्रिभिः॥ ५०॥
ताडयामास समरे स च तं प्रत्यविध्यत।

हे भारत! केकयराज बृहत्क्षत्र पर शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने आक्रमण किया। कृपाचार्य ने उसे बाणवर्षा से ढक दिया। तब केकयराज ने भी क्रुद्ध होकर कृपाचार्य को बाणवर्षा से ढक दिया। हे भारत! उन दोनों ने एक दूसरे के घोड़ों को मार दिया और धनुष काट दिये। फिर रथहीन होकर वे दोनों अमर्षशील तलवारें लेकर एक दूसरे के सामने खड़े हो गये। उन दोनों में तब बहुत भयानक और दारुण युद्ध होने लगा। हे राजन्! तब प्रसन्नता से भरे सिन्धुराज जयद्रथ पर परंतप द्रुपद ने प्रसन्न होकर आक्रमण किया। सिन्धुराज

ने द्रुपद को युद्ध में तीन बाणों से बींधा और द्रुपद ने भी बदले में उसे बींध दिया।

विकर्णस्तु सुतस्तुभ्यं सुतसोमं महाबलम्॥ ५१॥
अभ्ययाज्जवनैरश्वैस्ततो युद्धमवर्तत।
विकर्णः सुतसोमं तु विद्ध्वा नाकम्पयच्छरैः॥ ५२॥
सुतसोमो विकर्णं च तदद्भुतमिवाभवत्।
सुशर्माणं नरव्याघ्रश्चेकितानो महारथः॥ ५३॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धः पाण्डवार्थे पराक्रमी।
सुशर्मा तु महाराज चेकितानं महारथम्॥ ५४॥
महता शरवर्षेण वारयामास संयुगे।

आपके पुत्र विकर्ण ने तीव्रगामी घोड़ों के द्वारा महाबली सुतसोम पर आक्रमण किया। फिर उन दोनों में युद्ध होने लगा। विकर्ण ने सुतसोम को बाणों से घायल कर दिया पर फिर भी वह सुतसोम को कम्पित नहीं कर सका। इसी प्रकार सुतसोम भी विकर्ण को विचलित नहीं कर सका, यह एक अद्‌भुत बात थी। पराक्रमी महारथी चेकितान ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पाण्डवों के लिये सुशर्मा पर आक्रमण किया। हे महाराज! सुशर्मा ने महान् शरवृष्टि के द्वारा युद्ध में चेकितान को रोका।

चेकितानोऽपि संरब्धः सुशर्माणं महाहवे॥ ५५॥
प्राच्छादयत् तमिषुभिर्महामेघ इवाचलम्।
शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु पराक्रान्तं पराक्रमी॥ ५६॥
अभ्यद्रवत राजेन्द्र मत्तः सिंह इव द्विपम्।
यौधिष्ठिरस्तु संक्रुद्धः सौबलं निशितैः शरैः॥ ५७॥
व्यदारयत संग्रामे मघवानिव दानवम्।
शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु प्रतिविध्यन्तमाहवे॥ ५८॥
व्यदारयन्महाप्राज्ञः शरैः संनतपर्वभिः।

चेकितान ने भी क्रोध में भरकर उस महान् युद्ध में सुशर्मा को बाणों से ऐसे ढक दिया, जैसे विशाल बादल पर्वत को ढक देता है। हे राजेन्द्र! जैसे मस्त सिंह हाथी की तरफ दौड़ता है वैसे ही पराक्रमी शकुनि ने पराक्रमयुक्त प्रतिविन्ध्य पर आक्रमण किया। तब युधिष्ठिर पुत्र ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सुबलपुत्र को तीखे बाणों से वैसे ही घायल कर दिया जैसे इन्द्र ने संग्राम में एक दानव को बींधा था। तब युद्ध में अपने को बींधनेवाले प्रतिविन्ध्य को भी महाप्राज्ञ शकुनि ने झुकी गाँठ वाले बाणों के द्वारा घायल कर दिया।

सुदक्षिणं तु राजेन्द्र काम्बोजानां महारथम्॥ ५९॥
श्रुतकर्मा पराक्रान्तमभ्यद्रवत संयुगे।
श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धः काम्बोजानां महारथम्॥ ६०॥
शरैर्बहुभिरानर्च्छद् दारयन्निव सर्वशः।
इरावानथ संक्रुद्धः श्रुतायुषमरिंदमम्॥ ६१॥
प्रत्युद्ययौ रणे यत्तो यत्तरूपं परंतपः।
आर्जुनिस्तस्य समरे हयान् हत्वा महारथः॥ ६२॥
ननाद बलवन्नादं तत् सैन्यं प्रत्यपूरयत्।
श्रुतायुस्तु ततः क्रुद्धः फाल्गुनेः समरे हयान्॥ ६३॥
निजघान गदाग्रेण ततो युद्धमवर्तत।

हे राजेन्द्र! काम्बोज देश के पराक्रमी महारथी सुदक्षिण पर श्रुतकर्मा ने उस युद्ध में आक्रमण किया। श्रुतकर्मा ने तब क्रुद्ध होकर काम्बोजदेश के उस महारथी को सब तरफ से घायल करते हुए बहुत से बाणों से पीड़ित कर दिया। परंतप इरावान् ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर यत्नपूर्वक, शत्रुदमन श्रुतायुष पर युद्धक्षेत्र में आक्रमण किया। श्रुतायुष भी प्रयत्नपूर्वक उसका सामना कर रहा था। अर्जुन के उस महारथी पुत्र ने उसके घोड़ों को मारकर युद्धक्षेत्र में बड़े जोर से गर्जना की जो उसकी सेना में गूँज उठी। तब श्रुतायुष ने भी क्रुद्ध होकर उस युद्ध में अर्जुन के पुत्र के घोड़ों को गदा के प्रहार से मार दिया। फिर दोनों में जमकर युद्ध होने लगा।

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ कुन्तिभोजं महारथम्॥ ६४॥
ससेनं ससुतं वीरं संससज्जतुराहवे।
तत्राद्भुतमपश्याम तयोर्घोरं पराक्रमम्॥ ६५॥
अयुध्येतां स्थिरौ भूत्वा महत्या सेनया सह।
अनुविन्दस्तु गदया कुन्तिभोजमताडयत्॥ ६६॥
कुन्तिभोजश्च तं तूर्णं शरव्रातैरवाकिरत्।
कुन्तिभोजसुतश्चापि विन्दं विव्याध सायकैः॥ ६७॥
स च तं प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाभवत्।
केकया भ्रातरः पञ्च गान्धारान् पञ्च मारिष॥ ६८॥
ससैन्यास्ते ससैन्यांश्च योधयामासुराहवे।

अवन्तिदेश के विन्द और अनुविन्द उसके पुत्र और सेनासहित महारथी कुन्तीभोज के साथ युद्ध करने लगे। वहाँ मैंने उन दोनों का घोर पराक्रम देखा। वे दोनों अपनी महान् सेना के साथ स्थिर होकर युद्ध कर रहे थे। अनुविन्द ने कुन्तीभोज पर गदा से प्रहार किया तो कुन्तीभोज ने शीघ्रता से उसे अपने

बाणसमूह से ढक दिया। कुन्तीभोज के पुत्र ने विन्द को बाणों से बींध दिया। तब विन्द ने भी उसे बदले में बींध दिया। यह एक अद्भुत बात थी। हे राजन्! केकय देश के पाँच भाई राज कुमारों ने सेनासहित गान्धार देश के पाँच सेना सहित वीरों के साथ रणक्षेत्र में युद्ध किया।

वीरबाहुश्च ते पुत्रो वैराटिं रथसत्तमम्॥ ६९॥
उत्तरं योधयामास विव्याध निशितैः शरैः।
उत्तरश्चापि तं वीरं विव्याध निशितैः शरैः॥ ७०॥
चेदिराट् समरे राजन्नुलूकं समभिद्रवत्।
तथैव शरवर्षेण उलूकं समविद्ध्यत॥ ७१॥
उलूकश्चापि तं बाणैर्निशितैर्लोमवाहिभिः।
तयोर्युद्धं समभवद् घोररूपं विशाम्पते॥ ७२॥
दारयेतां सुसंक्रुद्धावन्योन्यमपराजितौ।

आपके पुत्र वीरबाहु ने श्रेष्ठ रथी विराटपुत्र उत्तर के साथ युद्ध किया और उसे तीखे बाणों से बींध दिया। उत्तर ने भी उस वीर को तीक्ष्ण बाणों से घायल कर दिया। हे राजन्। उस युद्ध में चेदिराज ने उलूक पर आक्रमण किया और उसे बाणवर्षा से बींध दिया। उलूक ने भी पंखयुक्त तीखे बाणों से उसे बींधा। हे प्रजानाथ! उन दोनों का बड़ा भयानक युद्ध चला। पराजित न होनेवाले और अत्यन्त क्रुद्ध उन दोनों ने एक दूसरे को घायल कर दिया।

एवं द्वन्द्वसहस्राणि रथवारणवाजिनाम्॥ ७३॥
पदातीनां च समरे तव तेषां च संकुले।
मुहूर्तमिव तद् युद्धमासीन्मधुरदर्शनम्॥ ७४॥
तत उन्मत्तवद् राजन् न प्राज्ञायत किंचन।
गजो गजेन समरे रथिनं च रथी ययौ॥ ७५॥
अश्वोऽश्वं समभिप्रायात् पदातिश्च पदातिनम्।
तत्र तत्र प्रदृश्यन्ते रथवारणपत्तयः।
सादिनश्च नरव्याघ्र युध्यमाना मुहुर्मुहुः॥ ७६॥

इस प्रकार उस घमासान युद्ध में रथी, हाथी सवार, घुड़सवार और पैदल सैनिकों के मध्य उस समय हजारों द्वन्द्व युद्ध आपकी और पाण्डवसेना के बीच चल रहे थे। हे राजन्! एक मूहूर्त तक तो वह युद्ध देखने में मधुर प्रतीत हुआ, तत्पश्चात्, वह पागलों के समान होने लगा। उस समय किसी को कुछ भी नहीं सूझ रहा था। उस युद्ध में हाथी के साथ हाथी, रथी के साथ रथी, घुड़सवार के साथ घुड़सवार और पैदल के साथ पैदल भिड़ गया। हे नरश्रेष्ठ! उस समय जिधर भी देखें उधर ही रथी, हाथी सवार, पैदल और घुड़सवार बार बार युद्ध करते दिखाई देते थे।

आठवाँ अध्याय : दोनों पक्षों का घमासान युद्ध।

संजय उवाच

राजन् शतसहस्राणि तत्र तत्र पदातिनाम्।
निर्मर्यादं प्रयुद्धानि तत् ते वक्ष्यामि भारत॥ १॥
न पुत्रः पितरं जज्ञे पिता वा पुत्रमौरसम्।
न भ्राता भ्रातरं तत्र स्वस्रीयं न च मातुलः॥ २॥
न मातुलं च स्वस्रीयो न सखायं सखा तथा।
आविष्टा इव युध्यन्ते पाण्डवाः कुरुभिः सह॥ ३॥
रथानीकं नरव्याघ्राः केचिदभ्यपतन् रथैः।
अभज्यन्त युगैरेव युगानि भरतर्षभ॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे भरतवंशी राजन्! उस रणभूमि में लाखों पैदल सैनिकों का मर्यादारहित होकर जो युद्ध हो रहा था, मैं उसका आपसे वर्णन कर रहा हूँ। उस समय वहाँ न तो पुत्र अपने पिता को जान रहा था और न पिता अपने सगे पुत्र को पहचान रहा था, न भाई भाई को और न मामा अपने भानजे को जान रहा था। भानजा अपने मामा को और मित्र अपने मित्र को नहीं जान रहा था। सारे पाण्डव सैनिक पागल से होकर कौरवों के साथ युद्ध कर रहे थे। हे भरतश्रेष्ठ! कुछ नरव्याघ्र अपने रथों के द्वारा शत्रुओं की रथसेना पर टूट पड़े। कुछ रथों के जूए शत्रुरथों के जूओं से टकरा कर टूट गये।

रथेषाश्च रथेषाभिः कूबरा रथकूबरैः।
संगतैः सहिताः केचित् परस्परजिघांसवः॥ ५॥
न शेकुश्चलितुं केचित् संनिपत्य रथा रथैः।
प्रभिन्नास्तु महाकायाः संनिपत्य गजा गजैः॥ ६॥
बहुधादारयन् क्रुद्धा विषाणैरितरेतरम्।
अभिनीताश्च शिक्षाभिस्तोत्रांकुशसमाहताः॥ ७॥
अप्रभिन्नाः प्रभिन्नानां सम्मुखाभिमुखा ययुः।

रथों के ईषादण्ड ईषादण्डों से और कूबर कूबरों से टकराकर टूट गये। एक दूसरे को मारने की इच्छा से कुछ रथ सामने आये रथों से भिड़कर वहीं खड़े रह गये और चल न सके। मद बहानेवाले विशाल काय हाथी क्रोध में भरकर दूसरे हाथियों को टक्कर मारते हुए अपने दाँतों से एक दूसरे को और अनेकों को अनेक प्रकार से विदीर्ण कर रहे थे। जो युद्ध करने की शिक्षा से शिक्षित थे तथा जिनके अभी मद प्रकट नहीं हुआ था, ऐसे हाथी चाबुक और अंकुश की चोट खाकर मद बहानेवाले हाथियों का सामना करने के लिये उनके सामने जाकर डट गये।

सम्यक् प्रणीता नागाश्च प्रभिन्नकरटामुखाः॥ ८॥
ऋष्टितोमरनाराचैर्निर्विद्धा वरवारणाः।
प्रणेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः॥ ९॥
प्राद्रवन्त दिशः केचिन्नदन्तो भैरवान् रवान्।

जिनके मस्तकों से मद बह रहा था, और जिन्होंने अच्छी तरह से शिक्षा प्राप्त की हुई थी, ऐसे उत्तम हाथी, ऋष्टि, तोमर और नाराचों से बिंधकर, मर्मस्थलों के छिन्न हो जाने के कारण प्राणहीन होकर गिर पड़ते थे और कितने ही भयानक ध्वनि से चिंघाड़ते हुए सब तरफ भाग रहे थे।

गजानां पादरक्षास्तु व्यूढोरस्काः प्रहारिणः॥ १०॥
ऋष्टिभिश्च धनुर्भिश्च विमलैश्च परश्वधैः।
गदाभिर्मुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सतोमरैः॥ ११॥
आयसैः परिघैश्चैव निस्त्रिंशैर्विमलैः शितैः।
प्रगृहीतैः सुसंरब्धा द्रवमाणास्ततस्ततः॥ १२॥
व्यदृश्यन्त महाराज परस्परजिघांसवः।
राजमानाश्च निस्त्रिंशाः संसिक्ता नरशोणितैः॥ १३॥
प्रत्यदृश्यन्त शूराणामन्योन्यमभिधावताम्।
अवक्षिप्तावधूतानामसीनां वीरबाहुभिः॥ १४॥
संजज्ञे तुमुलः शब्दः पततां परमर्मसु।

हे महाराज! हाथियों के पैरों की रक्षा करनेवाले योद्धा, जिनके वक्षस्थल विशाल थे, जो अच्छे प्रहार करने वाले थे, वे ऋष्टि, धनुष, चमकीले फरसे, गदा, मूसल, भिन्दीपाल, तोमर, लोहे के परिघ, जगमगाती हुई तीखी तलवारें लेकर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए एक दूसरे को मारने की इच्छा से इधर उधर दौड़ रहे थे। एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए शूरवीरों के जगमगाते हुए खड्ग अब मनुष्य के रक्त से रंगे हुए दिखाई दे रहे थे। वीरों के हाथों से घुमाकर प्रहार करते हुए खड्ग जब शत्रुओं के मर्मस्थानों पर पड़ते थे तब भयानक शब्द सुनाई देता था।

गदामुसलरुग्णानां भिन्नानां च वरासिभिः॥ १५॥
दन्तिदन्तावभिन्नानां मृदितानां च दन्तिभिः।
तत्र तत्र नरौघाणां क्रोशतामितरेतरम्॥ १६॥
हयैरपि हयारोहाश्चामरापीडधारिभिः।
हंसैरिव महावेगैरन्योन्यमभिविद्रुताः॥ १७॥
तैर्विमुक्ता महाप्रासा जाम्बूनदविभूषणाः।
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः सम्पेतुर्भुजगोपमाः॥ १८॥

वहाँ कितने ही लोग गदा और मूसलों की चोट खाये हुए पड़े थे। कितनों के शरीर तलवारों से काट दिये गये थे, अनेक लोग हाथियों के दाँतों द्वारा विदीर्ण कर दिये गये थे, तो अनेकों को हाथियों ने कुचल दिया था। जहाँ तहाँ अधमरे होकर पड़े हुए लोग एकदूसरे को पुकार रहे थे। चँवर और कलगी वाले सफेद और महान् वेगवाले घोड़ों पर बैठे हुए घुड़सवार एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे थे। उनके द्वारा छोड़े गये जाम्बूनद से विभूषित जगमगाते हुए तीखे और तेजी से जानेवाले विशाल प्रास सर्प के समान प्रहार कर रहे थे।

अश्वैरग्र्यजवैः केचिदाप्लुत्य महतो रथान्।
शिरांस्याददिरे वीरा रथिनामश्वसादिनः॥ १९॥
बहूनपि हयारोहान् भल्लैः संनतपर्वभिः।
रथी जघान सम्प्राप्य बाणगोचरमागतान्॥ २०॥
नवमेघप्रतीकाशाश्चाक्षिप्य तुरगान् गजाः।
पादैरेव विमृद्नन्ति मत्ताः कनकभूषणाः॥ २१॥
पात्यमानेषु कुम्भेषु पार्श्वेष्वपि च वारणाः।
प्रासैर्विनिहताः केचिद् विनेदुः परमातुराः॥ २२॥

कुछ घुड़सवार शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा विशाल रथों पर आक्रमण कर, उन पर कूदकर रथियों के सिरों को काट लेते थे। इसीप्रकार रथी भी बहुत से घुड़सवारों को, जो उनके बाणों के निशानों में आ जाते थे अपने झुकी हुई गाँठवाले तथा अपने भल्ल नामके बाणों से मार देते थे। नये बादलों के समान प्रतीत होनेवाले, सुनहले साज़ों से विभूषित मतवाले हाथी, घुड़सवारों पर आक्रमण कर उन्हें पैरों से ही कुचल देते थे। प्रासों की चोट खाकर अपने

कुम्भस्थलों के तथा बगल के हिस्सों के विदीर्ण हो जाने पर बहुत से हाथी अत्यन्त बेचैन होकर चिंघाड़ रहे थे।

अश्वारोहैश्च समरे हस्तिसादिभिरेव च।
प्रतिमानेषु गात्रेषु पार्श्वेष्वभि च वारणान्॥ २३॥
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः सम्पेतुर्भुजगोपमाः।
नराश्वकायान् निर्भिद्य लौहानि कवचानि च॥ २४॥
निपेतुर्विमलाः शक्त्यो वीरबाहुभिरर्पिताः।
महोल्काप्रतिमा घोरास्तत्र तत्र विशाम्पते॥ २५॥
द्वीपिचर्मावनद्धैश्च व्याघ्रचर्मच्छदैरपि।
विकोशैर्विमलैः खड्गैरभिजग्मुः परान् रणे॥ २६॥

युद्ध में घुड़सवारों और गजारोहियों के द्वारा चलाये हुए तीव्रगामी, निर्मल तीखे बाण साँपों के समान हाथियों के मस्तकों, दूसरे अंगों और पसलियों पर गिर रहे थे। हे प्रजानाथ! वहाँ वीरों की भुजाओं द्वारा फैंकी हुई जगमगाती हुई भयंकर शक्तियाँ जो विशाल उल्काओं के समान प्रतीत होती थीं, सैनिकों, घोड़ों के शरीरों, लोहे के कवचों को छेद कर गिर रहीं थीं। वीरलोग अपनी उन जगमगाती हुई तलवारों के द्वारा, जो पहले व्याघ्र के और चीते के चमड़े से बनी हुई म्यानों में बन्द रहती थीं, पर जिन्हें अब बाहर निकाल लिया गया था अपने शत्रुओं पर युद्ध क्षेत्र में आक्रमण कर रहे थे।

अभिप्लुतमभिक्रुद्धमेकपार्श्वावदारितम् ।
विदर्शयन्तः सम्पेतुः खड्गचर्मपरश्वधैः॥ २७॥
केचिदाक्षिप्य करिणः साश्वानपिरथान् करैः।
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः सर्वशब्दगाः॥ २८॥
शङ्कुभिर्दारिताः केचित् सम्भिन्नाश्च परश्वधैः।
हस्तिभिर्मृदिताः केचित् क्षुण्णाश्चान्ये तुरंगमैः॥ २९॥
रथनेमिनिकृत्ताश्च निकृत्ताश्च परश्वधैः।

कितने ही योद्धा तलवार, ढाल और फरसों से निर्भय होकर शत्रु के सम्मुख जाने, क्रोधसहित दाँतों से होठ दबाते हुए आक्रमण करने, तथा एक तरफ की बगल पर चोट करके उसे फाड़ देने आदि कार्यों को दिखाते हुए शत्रुओं पर टूट पड़ते थे। कितने ही हाथी, जो प्रत्येक शब्द को सुनकर उसकी तरफ दौड़ते थे, घोड़ों सहित रथ को अपनी सूँड से पकड़ कर खींचते हुए सबतरफ दौड़ रहे थे। कुछ सैनिक बाणों से विदीर्ण होकर, कुछ फरसों से काटे जाकर कुछ हाथियों से कुचले जाकर, कुछ घोड़ों की टापों के नीचे आकर और कुछ रथ के पहियों से कुचले जाकर वहाँ पड़े हुए थे।

व्याक्रोशन्त नरा राजंस्तत्र तत्र स्म बान्धवान्॥ ३०॥
पुत्रानन्ये पितृनन्ये भ्रातृंश्च सह बन्धुभिः।
मातुलान् भागिनेयांश्च परानपि च संयुगे॥ ३१॥
विकीर्णान्त्राः सुबहवो भग्नसक्थाश्च भारत।
बाहुभिश्चापरे छिन्नैः पार्श्वेषु च विदारिताः॥ ३२॥
क्रन्दन्तः समदृश्यन्त तृषिता जीवितेप्सवः।

हे राजन्! वहाँ जहाँ तहाँ पड़े हुए लोग अपने बन्धुओं को पुकार रहे थे। कोई अपने पुत्रों को, कोई अपने पिता को, कोई भाई बन्धुओं को, कुछ मामाओं को तो कुछ भानजों को और कुछ अन्य दूसरे लोगों को बुला रहे थे। हे भारत! किन्हीं की आँतें बाहर निकली हुई थीं, किन्हीं की जाँघें टूट गयीं थीं, किन्ही के हाथ कट गये थे और किन्हीं की पसलियाँ फट गयीं थी। कुछ लोग घायल अवस्था में, जीवन की आशा में, प्यास से पीड़ित होकर रोते हुए दिखाई दे रहे थे।

रुधिरौघपरिक्लिन्नाः क्लिश्यमानाश्च भारत॥ ३३॥
व्यनिन्दन् भृशमात्मानं तव पुत्रांश्च संगतान्।
अपरे क्षत्रियाः शूराः कृतवैराः परस्परम्॥ ३४॥
नैव शस्त्रं विमुञ्चन्ति नैव क्रन्दन्ति मारिष।
तर्जयन्ति च संहृष्टास्तत्र तत्र परस्परम्॥ ३५॥
आदश्य दशनैश्चापि क्रोधात् सरदनच्छदम्।
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षन्ति च परस्परम्॥ ३६॥

हे भारत! खून से लथपथ क्लेश पाते हुए घायल सैनिक अपनी और युद्ध में लगे हुए आपके पुत्रों की अत्यन्त निन्दा कर रहे थे। हे मान्यवर! दूसरे शूरवीर, जिन्होंने आपस में बैर बाँधा हुआ था, घायल होकर भी न तो विलाप कर रहे थे और न शस्त्रों को छोड़ रहे थे। वे उत्साहित होकर एक दूसरे को धमकाते हुए, क्रोधपूर्वक दाँतों से होठों को दबाते हुए अपनी भौहें टेढ़ी और कुटिल कर एकदूसरे की तरफ घूर रहे थे।

अपरे क्लिश्यमानास्तु शरार्ता व्रणपीडिताः।
निष्कूजाः समपद्यन्त दृढसत्त्वा महाबलाः॥ ३७॥
अन्ये च विरथाः शूरा रथमन्यस्य संयुगे।
प्रार्थयाना निपतिताः संक्षुण्णा वरवारणैः॥ ३८॥

सम्बभूवुरनीकेषु बहवो भैरवस्वनाः।
वर्तमाने महाभीमे तस्मिन् वीरवरक्षये॥ ३९॥
निजघान पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं रणे।
स्वस्त्रीयो मातुलं चापि स्वस्त्रीयं चापि मातुलः।
सखा सखायं च तथा सम्बन्धी बान्धवं तथा॥ ४०॥

दूसरे दृढ़ धैर्यवाले महाबलवान् वीर, बाणों से घायल होकर, घावों से पीड़ित होकर क्लेश पाते हुए भी, चुपचाप पड़े हुए थे। कुछ वीर रथ से रहित होने के कारण, दूसरों से रथ माँगते हुए, बड़े हाथियों से कुचले जाकर युद्धक्षेत्र में पड़े हुए थे। वीरों का विनाश करनेवाले उस महाभयंकर युद्ध में सेनाओं के अन्दर अनेक तरह की भयानक आवाजें आ रहीं थीं। उस युद्ध में पिता ने पुत्र को, पुत्र ने पिता को, भानजे ने मामा को, मामा ने भानजे को, मित्र ने मित्र को, औंर सम्बन्धी ने अपने सम्बन्धी को मार दिया।

नवाँ अध्याय : भीष्म, अभिमन्यु युद्ध। शल्य से उत्तरकुमार वध। श्वेत का पराक्रम।

संजय उवाच

गतपूर्वाह्नभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे।
वर्तमाने तथा रौद्रे महावीरवरक्षये॥ १॥
दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विविंशतिः।
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण चोदिताः॥ २॥
एतैरतिरथैर्गुप्तः पञ्चभिर्भरतर्षभः।
पाण्डवानामनीकानि विजगाहे महारथः॥ ३॥
चेदिकाशिकरूषेषु पञ्चालेषु च भारत।
भीष्मस्य बहुधा तालश्चलत्केतुरदृश्यत॥ ४॥

संजय ने कहा उस भयानक दिन का जब अधिकांश पूर्वभाग व्यतीत हो गया और महावीरों का विनाश करनेवाला वह घोर संग्राम चल रहा था, तब आपके पुत्र द्वारा प्रेरित होकर दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य, और विविंशति वहाँ आकर भीष्म की रक्षा करने लगे। इन पाँच अतिरथियों से सुरक्षित होकर उस भरतश्रेष्ठ महारथी ने पाण्डवों की सेना में प्रवेश किया। हे भारत! चेदि, काशी, करुष और पांचालों की सेनाओं में विचरते हुए भीष्म की ताल के चिह्न से चिह्नित चंचल ध्वजा अनेक प्रकार की दिखाई दे रही थी।

स शिरांसि रणेऽरीणां रथांश्च सयुगध्वजान्।
निचकर्त महावेगैर्भल्लैः संनतपर्वभिः॥ ५॥
नृत्यतो रथमार्गेषु भीष्मस्य भरतर्षभ।
भृशमार्तस्वरं चक्रुर्नागा मर्मणि ताडिताः॥ ६॥
अभिमन्युः सुसंक्रुद्धः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः।
संयुक्तं रथमास्थाय प्रायाद् भीष्मरथं प्रति॥ ७॥
जाम्बूनदविचित्रेण कर्णिकारेण केतुना।
अभ्यवर्तत भीष्मं च तांश्चैव रथसत्तमान्॥ ८॥

वे शत्रुओं के सिरों, रथों, जूआ और ध्वजों को उस युद्ध में झुकी हुई गाँठवाले वेगवान् भल्ल नाम के बाणों से काट काट कर गिरा रहे थे। हे भरतश्रेष्ठ! रथ के मार्गों पर नृत्य सा करते हुए भीष्म के बाणों से मर्मस्थलों पर चोट खाये हुए हाथी अत्यन्त आर्तनाद करने लगे। तब अभिमन्यु अत्यन्त क्रुद्ध होकर पिंगल वर्ण के अपने घोड़ों से जुड़े रथ पर बैठकर भीष्म के रथ की तरफ दौड़कर आये। उनके रथ पर कनेर के चिह्न से चिह्नित विचित्र स्वर्णमयी पताका लहरा रही थी। उन्होंने भीष्म पर तथा उन श्रेष्ठ रथियों पर भी आक्रमण कर दिया।

कृतवर्माणमेकेन शल्यं पञ्चभिराशुगैः।
विद्ध्वा नवभिरानर्च्छच्छिताग्रैः प्रपितामहम्॥ ९॥
दुर्मुखस्य तु भल्लेन सर्वावरणभेदिना।
जहार सारथेः कायाच्छिरः संनतपर्वणा॥ १०॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन कार्तस्वरविभूषितम्।
कृपस्य निशिताग्रेण तांश्च तीक्ष्णमुखैः शरैः॥ ११॥
जघान परमक्रुद्धो नृत्यन्निव महारथः।
लब्धलक्षतया कार्ष्णेः सर्वे भीष्ममुखा रथाः॥ १२॥
सत्त्ववन्तममन्यन्त साक्षादिव धनंजयम्।

उन्होंने अपने तीव्रगामी और तीखी नोकवाले पाँच बाणों से शल्य को, एक बाण से कृतवर्मा को, और नौ बाणों से भीष्म पितामह को बींध कर पीड़ित किया। उन्होंने झुकी हुई गाँठवाले, सारे आवरणों को भेदनेवाले भल्ल बाण से दुर्मुख के सारथि का सिर

काट दिया। उन्होंने तीखे भल्ल बाण से ही कृपाचार्य के स्वर्ण भूषित धनुष को काट दिया। फिर उस महारथी ने मानों नृत्य सा करते हुए, अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन सारे महारथियों को भी तीखे बाणों से पीड़ित किया। अर्जुन के पुत्र की इस लक्ष्यवेध की सफलता से प्रभावित होकर भीष्म आदि सारे रथियों ने उसे साक्षात् अर्जुन के समान ही शक्तिशाली समझा।

तमासाद्य महावेगैर्भीष्मो नवभिराशुगैः॥ १३॥
विव्याध समरे तूर्णमार्जुनिं परवीरहा।
ततस्तेषां महास्त्राणि संवार्य शरवृष्टिभिः॥ १४॥
ननाद बलवान् कार्ष्णिर्भीष्माय विसृजञ्शरान्।
तत्रास्य सुमहद् राजन् बाह्वोर्बलमदृश्यत॥ १५॥
यतमानस्य समरे भीष्ममर्दयतः शरैः।
पराक्रान्तस्य तस्यैव भीष्मोऽभि प्राहिणोच्छरान्॥ १६॥
स तांश्चिच्छेद समरे भीष्मचापच्युताञ्शरान्।

युद्ध में शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले भीष्म ने अर्जुन के पुत्र को प्राप्त कर, महावेगशाली, तीव्रगामी नौ बाणों से शीघ्रतापूर्वक उसे बींध दिया। तब भीष्म के महान् अस्त्रोंका अपनी बाणवर्षा से निवारण कर अर्जुन के पुत्र बलवान् अभिमन्यु ने भीष्म के ऊपर अपने बाणों को छोड़ते हुए जोर से गर्जना की। हे राजन्! उस युद्ध में प्रयत्नपूर्वक अपने बाणों से भीष्म को पीड़ा देते हुए अभिमन्यु की भुजाओं का अत्यन्त महान् बल दिखाई दे रहा था। भीष्म ने भी पराक्रम दिखाते हुए अभिमन्यु के ऊपर बाणों को छोड़ा, पर भीष्म के धनुष से छूटे हुए उन बाणों को उसने युद्ध में छिन्न कर दिया।

ततो ध्वजममोघेषुर्भीष्मस्य नवभिः शरैः॥ १७॥
चिच्छेद समरे वीरस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः।
स राजतो महास्कन्धस्तालो हेमविभूषितः॥ १८॥
सौभद्रविशिखैश्छिन्नः पपात भुवि भारत।
तं तु सौभद्रविशिखैः पातितं भरतर्षभ॥ १९॥
दृष्ट्वा भीमो ननादोच्चैः सौभद्रमभिहर्षयन्।
अथ भीष्मो महास्त्राणि दिव्यानि सुबहूनि च॥ २०॥
प्रादुश्चक्रे महारौद्रे रणे तस्मिन् महाबलः।

तब अमोघ बाणोंवाले उस वीर ने युद्ध में नौ बाणों से भीष्म के ध्वज को काट दिया। उस समय सारे लोग जोर से कोलाहल करने लगे। हे भारत! वह चान्दी से बना हुआ, ताल के चिह्न से चिह्नित, स्वर्ण से विभूषित, विशाल डंडेवाला ध्वज अभिमन्यु के बाणों से कटकर भूमि पर गिर पड़ा। हे भरतश्रेष्ठ! उसे अभिमन्यु के बाणों से कटा हुआ देखकर अभिमन्यु को हर्षित करते हुए भीम ने जोर से गर्जना की। तब महाबली भीष्म ने उस महाभयानक युद्ध में अनेक दिव्य महान् अस्त्रों का प्रयोग किया।

ततो दश महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः॥ २१॥
रक्षार्थमभ्यधावन्त सौभद्रं त्वरिता रथैः।
विराटः सह पुत्रेण धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ २२॥
भीमश्च केकयाश्चैव सात्यकिश्च विशाम्पते।
तेषां जवेनापततां भीष्मः शान्तनवो रणे॥ २३॥
पाञ्चाल्यं त्रिभिरानर्च्छत् सात्यकिं नवभिः शरैः।
पूर्णायतविसृष्टेन क्षुरेण निशितेन च॥ २४॥
ध्वजमेकेन चिच्छेद भीमसेनस्य पत्रिणा।

तब पाण्डवों के दस महाधनुर्धर महारथी अभिमन्यु की रक्षा के लिये रथों के द्वारा शीघ्रतापूर्वक दौड़े। हे प्रजानाथ! ये महारथी थे पुत्र सहित विराट, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, भीम, पाँच केकयकुमार और सात्यकि। तेजी से आक्रमण करते हुए उनमें से शान्तनुपुत्र भीष्म ने पांचालकुमार को तीन तथा सात्यकि को नौ बाणों से पीड़ित किया। धनुष को पूरी तरह से खींचकर छोड़े हुए पंखयुक्त तीखे क्षुर नाम के एक बाण से उन्होंने भीम के ध्वज को काट दिया।

जाम्बूनदमयः श्रीमान् केसरी स नरोत्तम॥ २५॥
पपात भीमसेनस्य भीष्मेण मथितो रथात्।
ततो भीमस्त्रिभिर्विद्ध्वा भीष्मं शान्तनवं रणे॥ २६॥
कृपमेकेन विव्याघ कृतवर्माणमष्टभिः।
प्रगृहीताग्रहस्तेन वैराटिरपि दन्तिना॥ २७॥
अभ्यद्रवत राजानं मद्राधिपतिमुत्तरः।
तस्य वारणराजस्य जवेनापततो रथे॥ २८॥
शल्यो निवारयामास वेगमप्रतिमं शरैः।
तस्य क्रुद्धः स नागेन्द्रो बृहतः साधुवाहिनः॥ २९॥
पदा युगमधिष्ठाय जघान चतुरो हयान्।

हे नरश्रेष्ठ! भीमसेन का वह स्वर्णमय ध्वज सिंह के चिह्न से युक्त और बड़ा सुन्दर था। भीष्म के द्वारा काट दिये जाने पर वह रथ से नीचे गिर पड़ा। तब भीम ने तीन बाणों से शान्तनुपुत्र भीष्म

को उस रणक्षेत्र में बींधा, कृपाचार्य को एक बाण से और कृतवर्मा को आठ बाणों से बींध दिया। जिसने अपनी सूँड को अपने मुख में रखा हुआ था, उस हाथी पर सवार हुए विराटपुत्र उत्तरकुमार ने भी मद्रराज शल्य पर आक्रमण किया। तेजी से रथ पर आक्रमण करते हुए उस गजराज के अद्वितीय वेग को शल्य ने अपने बाणों से रोका। तब उस गजराज ने क्रुद्ध होकर अपने पैर को रथ के जूए पर रखकर शल्य के रथ को अच्छी तरह से खींचनेवाले चारों विशाल घोड़ों को मार दिया।

स हताश्वे रथे तिष्ठन् मद्राधिपतिरायसीम्॥ ३०॥
उत्तरान्तकरीं शक्तिं चिक्षेप भुजगोपमाम्।
तया भिन्नतनुत्राणः प्रविश्य विपुलं तमः॥ ३१॥
स पपात गजस्कन्धात् प्रमुक्ताङ्कुशतोमरः।
असिमादाय शल्योऽपि अवप्लुत्य रथोत्तमात्॥ ३२॥
तस्य वारणराजस्य चिच्छेदाथ महाकरम्।
भिन्नमर्मा शरशतैश्छिन्नहस्तः स वारणः॥ ३३॥
भीममार्तस्वरं कृत्वा पपात च ममार च।

घोड़ों के मरजाने पर भी उसी रथ में बैठे हुए मद्रराज ने लोहे की, सर्प के समान भयंकर तथा उत्तर कुमार का अन्त कर देनेवाली शक्ति को फैंका। उसकी चोट से उत्तरकुमार का कवच टूट गया, वह अत्यन्त मूर्च्छा में प्रविष्ट हो गया, उसके हाथ से अंकुश और तोमर छूट गये और वह हाथी की पीठ पर से गिर पड़ा। फिर शल्य ने भी तलवार लेकर उस उत्तम रथ से कूदकर उस गजराज की विशाल सूँड को काट दिया। उस हाथी के मर्मस्थल बाणों से छिद गये थे और सूँड कट गयी थी, इसलिये वह भी भयानक आर्तस्वर करता हुआ गिर पड़ा और मर गया।

एतदीदृशकं कृत्वा मद्रराजो नराधिप॥ ३४॥
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः।
उत्तरं वै हतं दृष्ट्वा वैराटिर्भ्रातरं तदा॥ ३५॥
कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम्।
श्वेतः क्रोधात् प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव॥ ३६॥
स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली।
अभ्यधावज्जिघांसन् वै शल्यं मद्राधिपं बली॥ ३७॥

हे राजन्! इस प्रकार का पराक्रम करके मद्रराज शल्य शीघ्रता से कृतवर्मा के जगमगाते हुए रथ पर चढ़ गये। अपने भाई उत्तरकुमार को मारा हुआ देखकर और शल्य तथा कृतवर्मा को एक ही रथ पर बैठा हुआ देखकर विराटपुत्र श्वेत इसप्रकार क्रोध से जल उठा जैसे अग्नि में घी की आहुति पड़ गयी हो। वह बलवान् मद्रराज शल्य को मारने की इच्छा से अपने इन्द्रधनुष के समान विशाल धनुष को खींचकर उसकी तरफ दौड़ा।

महता रथवंशेन समन्तात् परिवारितः।
मुञ्चन् बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति॥ ३८॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम्।
तावकानां रथाः सप्त समन्तात् पर्यवारयन्॥ ३९॥
मद्रराजमभीप्सन्तो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम्।
नानावर्णविचित्राणि धनूंषि च महात्मनाम्॥ ४०॥
विस्फारितानि दृश्यन्ते तोयदेष्विव विद्युतः।

विशाल रथसेना से सब तरफ से घिरा हुआ, बाणों की वर्षा करता हुआ, वह शल्य के रथ पर चढ़ आया। मतवाले हाथी के समान पराक्रमी उसे आक्रमण करते हुए देखकर आपके सात महारथियों ने मौत की दाढ़ों के बीच में फँसे हुए मद्रराज को बचाने की इच्छा से उन्हें चारों ओर से घेर लिया। इन मनस्वियों के अलग अलग रंगोंवाले, खींचे हुए धनुष, बादलों में चमकती हुई बिजलियों के समान प्रतीत हो रहे थे।

ते तु बाणमयं वर्षं श्वेतमूर्धन्यपापतयन्॥ ४१॥
निदाधान्तेऽनिलोद्धूता मेघा इव नगे जलम्।
ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्तभल्लैः सुतेजनैः॥ ४२॥
धनूंषि तेषामाच्छिद्य ममर्द पृतनापतिः।
निकृत्तान्येव तानि स्म समदृश्यन्त भारत॥ ४३॥
ततस्ते तु निमेषार्धात् प्रत्यपद्यन् धनूंषि च।
सप्त चैव पृषत्कांश्च श्वेतस्योपर्यपातयन्॥ ४४॥
ततः पुनरमेयात्मा भल्लैः सप्तभिराशुगैः।
निचकर्त महाबाहुस्तेषां चापानि धन्विनाम्॥ ४५॥

उन वीरों ने श्वेत के सिर पर इस प्रकार बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी जैसे ग्रीष्म के अन्त में वायु से प्रेरित बादल पर्वत पर जल बरसा रहे हों। तब उस महाधनुर्धर सेनापति ने सात तीखे भल्लों से उन सातों रथियों के धनुषों को काट गिराया। हे भारत! वे उनके धनुष कट जाने पर ही दिखायी दिये। तब उन्होंने आधे पल में ही दूसरे धनुष ले

लिये और श्वेत के ऊपर सात बाण छोड़े। तब अमित आत्मा महाबाहु श्वेत ने सात तीव्रगामी भल्लों से उन धनुर्धरों के धनुषों को फिर काट दिया।

ते निकृत्तमहाचापास्त्वरमाणा महारथाः।
रथशक्तीः परामृश्य विनेदुर्भैरवान् रवान्॥ ४६॥
अन्वयुर्भरतश्रेष्ठ सप्त श्वेतरथं प्रति।
ततस्ता ज्वलिताः सप्त महेन्द्राशनिनिःस्वनाः॥ ४७॥
अप्राप्ताः सप्तभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमास्त्रवित्।
ततः समादाय शरं सर्वकायविदारणम्॥ ४८॥
प्राहिणोद् भरतश्रेष्ठ श्वेतो रुक्मरथं प्रति।

अपने विशाल धनुष के कट जाने पर उन महारथियों ने शीघ्रता से रथशक्तियाँ उठा लीं और भयंकर गर्जना की। हे भरतश्रेष्ठ! फैंके जाने पर वे सातों रथशक्तियाँ प्रज्वलित होकर इन्द्र के वज्र के समान शब्द करती हुई श्वेत के रथ की तरफ चलीं। पर अस्त्रविद्या के परमज्ञाता श्वेत ने सात भल्लों से उन सातों को भेद दिया। हे भरतश्रेष्ठ! उसके पश्चात् उसने सबकी काया को विदीर्ण करनेवाले एक बाण को रुक्मरथ की तरफ चलाया।

तस्य देहे निपतितो बाणो वज्रातिगो महान्॥ ४९॥
ततो रुक्मरथो राजन् सायकेन दृढाहतः।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाविशन्महत्॥ ५०॥
तं विसंज्ञं विमनसं त्वरमाणस्तु सारथिः।
अपोवाह न सम्भ्रान्तः सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ५१॥
ततोऽन्यान् षट् समादाय श्वेतो हेमविभूषितान्।
तेषां षण्णां महाबाहुर्ध्वजशीर्षाण्यपातयत्॥ ५२॥

हे राजन्! वज्र से भी अधिक प्रभावशाली वह महान् बाण उसके शरीर पर गिरा। उस बाण से अत्यन्त चोट खाकर रुक्मरथ रथ के पिछले भाग में बैठ कर अत्यन्त मूर्च्छित हो गया। उसे अचेत और उदास देखकर उसका सारथि घबराया नहीं और सब लोगों के देखते हुए ही शीघ्रता के साथ उसे वहाँ से दूर ले गया। फिर महाबाहु श्वेत ने दूसरे छह स्वर्णभूषित बाणों को लेकर उनके द्वारा उन छह रथियों के ध्वज काट गिराये।

हयांश्च तेषां निर्भिद्य सारथींश्च परंतप।
शरैश्चैतान् समाकीर्य प्रायाच्छल्यरथं प्रति॥ ५३॥
ततो हलहलाशब्दस्तव सैन्येषु भारत।
दृष्ट्वा सेनापतिं तूर्णं यान्तं शल्यरथं प्रति॥ ५४॥
ततो भीष्मं पुरस्कृत्य तव पुत्रो महाबलः।
वृतस्तु सर्वसैन्येन प्रायाच्छ्वेतरथं प्रति॥ ५५॥
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मद्रराजममोचयत्।

हे परंतप! उसके पश्चात् उनके घोड़ों और सारथियों को बींधकर और उन्हें भी बाणों से भरकर श्वेत ने शल्य के रथ पर आक्रमण किया। हे भारत! तब सेनापति श्वेत को शीघ्रता से शल्य के रथ की तरफ जाता देखकर आपकी सेना में हाहाकार मच गया। तब आपके महाबली पुत्र ने भीष्म को आगे कर सारी सेना के साथ घिरे हुए होकर श्वेत के रथ पर आक्रमण किया और मृत्यु के मुख में पहुँचे हुए शल्य को छुड़ा लिया।

ततो युद्धं समभवत् तुमुलं लोमहर्षणम्॥ ५६॥
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम्।
सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे॥ ५७॥
कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते।
एतेषु नरसिंहेषु चेदिमत्स्येषु चैव ह।
ववर्ष शरवर्षाणि कुरुवृद्धः पितामहः॥ ५८॥

तब आपकी और शत्रु की सेना में भयानक, रोंगटे खड़े करदेनेवाला युद्ध आरम्भ हो गया। जिसमें रथ से रथ और हाथी से हाथी गुँथ गये। कुरुकुल के वृद्ध पितामह भीष्म ने तब अभिमन्यु, भीमसेन, सात्यकि, केकयराजकुमार, विराट, द्रुपदपुत्र, धृष्टद्युम्न इन नरसिंहों पर तथा चेदि और मत्स्य देश के क्षत्रियों पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

दसवाँ अध्याय : श्वेत का पराक्रम, भीष्म द्वारा श्वेत का वध।

तत्राकरोद् रथोपस्थाञ्शून्याञ्शान्तनवो बहून्।
तत्राद्भुतं महच्चक्रे शरैरार्च्छद् रथोत्तमान्॥ १॥
नुदन् समन्तात् समरे रविरुद्यन् यथा तमः।
तेनाजौ प्रेषिता राजन् शराः शतसहस्रशः॥ २॥
क्षत्रियान्तकराः संख्ये महावेगा महाबलाः।
शिरांसि पातयामासुर्वीराणां शतशो रणे॥ ३॥
गजान् कण्टकसन्नाहान् वज्रेणेव शिलोच्चयान्।
रथा रथेषु संसक्ता व्यदृश्यन्त विशाम्पते॥ ४॥

उस युद्ध में शान्तनुपुत्र भीष्म ने बहुत अद्‌भुत कार्य किया। उन्होंने अपने बाणों से उत्तम रथियों को बहुत पीड़ा दी। उन्होंने बहुत से रथों की बैठकों को रथियों से सूना कर दिया। जैसे उदय होता हुआ सूर्य अन्धेरे का नाश करता है वैसे ही हे राजन्! भीष्म के द्वारा छोड़े गये, क्षत्रियों का अन्त करने वाले, महावेगशाली, महाबलवान्, सैकड़ों, हजारों बाणों ने उस युद्ध में सैकड़ों सिरों को काट कर गिरा दिया। उन बाणों ने विद्युत के द्वारा मारे गये पर्वतों के समान काँटेदार कवचों से सुसज्जित हाथियों को भी गिरा दिया। हे प्रजानाथ! उस समय रथ भी रथों से सटे हुए दिखाई देते थे।

एके रथं पर्यवहंस्तुरगाः सतुरङ्गमम्।
युवानं निहतं वीरं लम्बमानं सकार्मुकम्॥ ५॥
बद्धखड्गनिषङ्गाश्च विध्वस्तशिरसो हताः।
शतशः पतिता भूमौ वीरशय्यासु शेरते॥ ६॥
परस्परेण धावन्तः पतिताः पुनरुत्थिताः।
उत्थाय च प्रधावन्तो द्वन्द्वयुद्धमवाप्नुवन्॥ ७॥
पीडिताः पुनरन्योन्यं लुठन्तो रणमूर्धनि।

कहीं घोड़े खाली रथ को ही खींचकर ले जा रहे थे। जिस पर मरा हुआ नवयुवक वीर रथी धनुष के साथ ही लटक रहा था। कमर में तलवार और पीठ पर तरकस बाँधे ऐसे मृत वीर जिनके सिर कट गये थे, सैकड़ों की संख्या में भूमि पर पड़े हुए वीर शय्या पर सो रहे थे। एक दूसरे पर आक्रमण करने वाले वीर गिर पड़ते थे। फिर उठकर वे खड़े हो जाते थे। उठकर वे दौड़ते और फिर द्वन्द्व युद्ध में लग जाते थे। फिर एक दूसरे के प्रहारों से पीड़ित होकर युद्ध के मुहाने पर ही लुढ़क जाते थे।

सचापाः सनिषङ्गाश्च जातरूपपरिष्कृताः॥ ८॥
विस्रब्धहतवीराश्च शतशः परिपीडिताः।
तेन तेनाभ्यधावन्त विसृजन्तश्च भारत॥ ९॥
स्यन्दनादपतत् कश्चिन्निहतोऽन्येन सायकैः।
हतसारथिरप्युच्चैः पपात काष्ठवद् रथः॥ १०॥
युध्यमानस्य संग्रामे व्यूढे रजसि चोत्थिते।
धनुःकूजितविज्ञानं तत्रासीत् प्रतियुद्ध्यतः॥ ११॥

स्वर्णआभूषणों से विभूषित, धनुषबाण लिये हुए सैंकड़ों वीर विश्वस्तभाव से शत्रुवीरों को मारकर स्वयं भी उनके प्रहारों से पीड़ित होते हुए हथियारों का प्रयोग करते हुए, हे भारत! विभिन्न मार्गों से इधरउधर दौड़ रहे थे। कोई वीर दूसरे के बाण से मारा जाकर अपने रथ से गिर जाता था। कहीं सारथि के मारे जाने पर रथ भी लकड़ी के समान ऊँची जगह से नीचे गिर जाता था। उस घोर युद्ध में इतनी धूल उड़ी कि कुछ भी दिखाई नहीं देता था। युद्ध करनेवाले को धनुष की टंकार से ही पता चलता था कि शत्रु युद्ध कर रहा है।

शब्दायमाने संग्रामे पटहे कर्णदारिणि।
युद्ध्यमानस्य संग्रामे कुर्वतः पौरुषं स्वकम्॥ १२॥
नाश्रौषं नामगोत्राणि, कीर्तनं च परस्परम्।
तस्मिन्नत्याकुले युद्धे दारुणे लोमहर्षणे॥ १३॥
पिता पुत्रं च समरे नाभिजानाति कश्चन।
चक्रे भग्ने युगे छिन्ने एकधुर्ये हये हतः॥ १४॥
आक्षिप्तः स्यन्दनाद् वीरः ससारथिरजिह्मगैः।
गजो हतः शिरश्छिन्नं मर्म भिन्नं हयो हतः॥ १५॥
अहतः कोऽपिनैवासीद् भीष्मे निघ्नति शात्रवान्।

वहाँ कानों को फाड़नेवाले नगाड़े बज रहे थे, जिसके कारण अपना पौरुष दिखाते हुए, युद्ध करते हुए वीरों के द्वारा अपने नाम और गोत्र के बारे में परिचय देने को मैं सुन नहीं पाता था। उस अत्यन्त भयंकर रोंगटे खड़े करदेनेवाले युद्ध में पिता अपने पुत्र को भी नहीं जान पाता था। भीष्म के बाणों से रथ का पहिया टूट गया, जूआ कट गया और एकमात्र बचा हुआ घोड़ा भी मारा गया फिर उनके सीधे जानेवाले बाणों से सारथि सहित वीर भी मर कर रथ से गिर पड़ा। किसी का हाथी मारा गया, किसी का सिर कट गया। किसी का मर्मस्थल

विदीर्ण हो गया और किसी का घोड़ा मारा गया। इस प्रकार भीष्म जब शत्रुओं का संहार कर रहे थे, तब कोई भी घायल होने से नहीं बचा।

श्वेतः कुरूणामकरोत् क्षयं तस्मिन् महाहवे॥ १६॥
राजपुत्रान् रथोदारानवधीच्छतसंघशः।
चिच्छेद रथिनां बाणैः शिरांसि भरतर्षभ॥ १७॥
साङ्गदा बाहवश्चैव धनूंषि च समन्ततः।
रथेषां रथचक्राणि तूणीराणि युगानि च॥ १८॥
छत्राणि च महार्हाणि पताकाश्च विशाम्पते।
हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्चैव भारत॥ १९॥
वारणाः शतशश्चैव हताः श्वेतेन भारत।

इसी प्रकार श्वेत भी उस महान् युद्ध में कौरवों का विनाश कर रहा था। उसने सैकड़ों की संख्या में श्रेष्ठ रथी, राजपुत्रों को मार दिया। हे भारत! हे प्रजानाथ! श्वेत ने कितने ही योद्धाओं के धनुष और बाजूबन्द सहित हाथों को काट दिया। उसने रथों के ईषादण्ड, पहिये, तरकस, और जूए, बहुमूल्य छत्र तथा पताकाएँ काट दीं। उसने सैकड़ों की संख्या में घोड़ों के समूहों, रथों के समूहों, मनुष्यों के समूहों तथा सैकड़ों हाथियों का वध कर दिया।

वयं श्वेतभयाद् भीता विहाय रथसत्तमम्॥ २०॥
अपयातास्तथा पश्चाद् विभुं पश्याम धृष्णवः।
शरपातमतिक्रम्य कुरवः कुरुनन्दन॥ २१॥
भीष्मं शान्तनवं युद्धे स्थिताः पश्याम सर्वशः।
अदीनो दीनसमये भीष्मोऽस्माकं महाहवे॥ २२॥
एकस्तस्थौ नरव्याघ्रो गिरिर्मेरुरिवाचलः।

हम श्वेत के भय से डर कर उन श्रेष्ठ रथी भीष्म को छोड़कर वहाँ से भाग खड़े हुए। इसलिये इस समय जीवित रहते हुए महाराज के दर्शन कर रहे हैं। हे कुरुनन्दन! हम सारे कौरव श्वेत के बाण के गिरने की सीमा को पाकर वहाँ खड़े हुए युद्ध में लगे हुए शान्तनुपुत्र भीष्म को देख रहे थे। उस महान् युद्ध में हमारे कातर हो जाने पर नरव्याघ्र भीष्म अकेले ही दीनता से रहित अवस्था में मेरुपर्वत के समान स्थिरता के साथ खड़े रहे।

आददान इव प्राणान् सविता शिशिरात्यये॥ २३॥
गभस्तिभिरिवादित्यस्तस्थौ शरमरीचिमान्।
ते वध्यमाना भीष्मेण प्रजहुस्तं महाबलम्॥ २४॥
स्वयूथादिव ते यूथान्मुक्तं भूमिषु दारुणम्।
पातयामास सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते॥ २५॥
प्रहरन्तमनीकानि पिता देवव्रतस्तव।
दृष्ट्वा सेनापतिं भीष्मस्त्वरितः श्वेतमभ्ययात्॥ २६॥
स भीष्मं शरजालेन महता समवाकिरत्।
श्वेतं चापि तथा भीष्मः शरौघैः समवाकिरत्॥ २७॥

जैसे शिशिर ऋतु की समाप्ति पर सूर्य पृथिवी का जल सोखने लगता है, वैसे ही अपने बाणरूपी किरणों से भीष्म भी वहाँ वीरों के प्राणों को खींचते हुए विद्यमान थे। जैसे अपने झुण्ड से बिछुड़कर हाथी भयंकर हो जाता है। वैसे ही भीष्म भी आपकी सेना से अलग होकर उस समय अत्यन्त दारुण बने हुए थे। उनकी मार खाकर उनके शत्रु उन महाबली को छोड़कर भाग गये। हे प्रजानाथ! उन्होंने पाण्डवों के बहुत से सैनिकों को मार गिराया। आपके पिता देवव्रत ने जब देखा कि सेनापति श्वेत हमारी सेना पर प्रहार कर रहे हैं तब उन्होंने शीघ्रता से उस पर आक्रमण किया। श्वेत ने तब भीष्म को अपनी महान् बाणवर्षा से आच्छादित कर दिया। भीष्म ने भी श्वेत को उसीप्रकार अपने बाणसमूहों से भर दिया।

तौ वृषाविव नर्दन्तौ मत्ताविव महाद्विपौ।
व्याघ्राविव सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः॥ २८॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य ततस्तौ पुरुषर्षभौ।
भीष्मः श्वेतश्च युयुधे परस्परवधैषिणौ॥ २९॥
पितामहं ततो दृष्ट्वा श्वेतेन विमुखीकृतम्।
प्रहर्षं पाण्डवा जग्मुः पुत्रस्ते विमनाऽभवत्॥ ३०॥
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः पार्थिवैः परिवारितः।
ससैन्यः पाण्डवानीकमभ्यद्रवत संयुगे॥ ३१॥

साँडों के समान गर्जते हुए वे दोनों मतवाले गजराजों और अत्यन्त क्रोध में भरे हुए बाघों के समान एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। भीष्म और श्वेत वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ एक दूसरे के अस्त्रों का अपने अस्त्रों से निवारण कर एक दूसरे के वध की इच्छा से युद्ध कर रहे थे। तब पितामह को युद्ध से विमुख किया हुआ देखकर पाण्डव प्रसन्नता को प्राप्त हुए और आपका पुत्र उदास हो गया। तब दुर्योधन ने क्रोध में भरकर, राजाओं से घिरकर, सेनासहित उस युद्धभूमि में पाण्डवों की सेना पर आक्रमण किया।

दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विशाम्पतिः।
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण नोदिताः॥ ३२॥

दृष्ट्वा तु पार्थिवैः सर्वैर्दुर्योधनपुरोगमैः।
पाण्डवानामनीकानि वध्यमानानि संयुगे॥ ३३॥
श्वेतो गाङ्गेयमुत्सृज्य तव पुत्रस्य वाहिनीम्।
नाशयामास वेगेन वायुर्वृक्षानिवौजसा॥ ३४॥
द्रावयित्वा चमूं राजन् वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः।
आपतत् सहसा भूयो यत्र भीष्मो व्यवस्थितः॥ ३५॥

दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, राजा शल्य, इन्होंने आपके पुत्र द्वारा प्रेरित होकर और वहाँ आकर भीष्म की रक्षा की। तब दुर्योधन आदि सारे राजाओं के द्वारा पाण्डवों की सेना को युद्ध में मारा जाता हुआ देखकर श्वेत ने गंगापुत्र भीष्म को छोड़ दिया और आपके पुत्र की सेना को इस प्रकार नष्ट करने लगा जैसे वायु अपने वेग से वृक्षों को नष्ट कर देती है। हे राजन्! क्रोध से मूर्च्छित सा हुआ हुआ वह विराटपुत्र उस सेना को दूर भगाकर फिर अचानक वहीं आ पहुँचा जहाँ भीष्म विद्यमान थे।

तौ तत्रोपगतौ राजन् शरदीप्तौ महाबलौ।
अन्योन्यं तु महाराज परस्परवधैषिणौ॥ ३६॥
निगृह्य कार्मुकं श्वेतो भीष्मं विव्याध सप्तभिः।
पराक्रमं ततस्तस्य पराक्रम्य पराक्रमी॥ ३७॥
तरसा वारयामास मत्तो मत्तमिव द्विपम्।
श्वेतः शान्तनवं भूयः शरैः संनतपर्वभिः॥ ३८॥
विव्याध पञ्चविंशत्या तदद्भुतमिवाभवत्।
तं प्रत्यविध्यद् दशभिर्भीष्मः शान्तनवस्तदा॥ ३९॥
स विद्धस्तेन बलवान् नाकम्पत यथाचलः।

हे महाराज! तब बाणों के द्वारा उद्दीप्त हुए हुए, एक दूसरे के वध के इच्छुक वे महाबली परस्पर समीप पहुँच गये। श्वेत ने धनुष को उठाकर तब सात बाणों से भीष्म को बींध दिया। पराक्रमी भीष्म ने भी उसके पराक्रम को तुरन्त अपने पराक्रम से ऐसे ही रोक दिया जैसे मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथी को रोक दे। श्वेत ने फिर शान्तनुपुत्र भीष्म को झुकी गाँठवाले पच्चीस बाणों से बींध दिया। यह एक अद्भुत बात थी। तब भीष्म ने उसे दस बाणों से प्रत्युत्तर में बींधा, पर उन बाणों से बिंध कर भी वह पर्वत के समान अविचल रहा।

वैराटिः समरे क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम्॥ ४०॥
आजघान ततो भीष्मं श्वेतः क्षत्रियनन्दनः।
सम्प्रहस्य ततः श्वेतः सृक्किणी परिसंलिहन्॥ ४१॥
धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य नवभिर्दशधा शरैः।
संधाय विशिखं चैव शरं लोमप्रवाहिनम्॥ ४२॥
उन्ममाथ ततस्तालं ध्वजशीर्षं महात्मनः।
केतुं निपतितं दृष्ट्वा भीष्मस्य तनयास्तव॥ ४३॥
हतं भीष्ममन्यन्त श्वेतस्य वशमागतम्।
पाण्डवाश्चापि संहृष्टा दध्मुः शङ्खान् मुदायुताः॥ ४४॥

तब क्षत्रियनन्दन, विराटपुत्र श्वेत ने युद्ध में क्रुद्ध होकर और अपने धनुष को जोर से खींचकर भीष्म पर बाणों से प्रहार किया। उसके पश्चात अपने होठों के किनारों को चाटते हुए श्वेत ने हँसकर भीष्म के धनुष के नौ बाणों से दस टुकड़े कर दिये। फिर उसने रोवेंवाले सरकण्डे के बाण का सन्धान कर उन महात्मा भीष्म के तालचिह्न से चिह्नित ध्वज के ऊपरी भाग को काट दिया। भीष्म के ध्वज को गिरा हुआ देखकर आपके पुत्रों ने भीष्म को श्वेत के वश में आकर मारा हुआ समझा और पाण्डव भी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने खुश होकर अपने शंखों को बजाया।

ततो दुर्योधनः क्रोधात् स्वमनीकमनोदयत्।
यत्ता भीष्मं परीप्सध्वं रक्षमाणाः समन्ततः॥ ४५॥
मा नः प्रपश्यमानानां श्वेतान्मृत्युमवाप्स्यति।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः॥ ४६॥
बलेन चतुरङ्गेण गाङ्गेयमन्वपालयन्।
बाह्लीकः कृतवर्मा च शलः शल्यश्च भारत॥ ४७॥
जलसंधो विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः।
त्वरमाणास्त्वराकाले परिवार्य समन्ततः॥ ४८॥
शस्त्रवृष्टिं सुतुमुलां श्वेतस्योपर्यपातयन्।

तब दुर्योधन ने क्रोधपूर्वक अपनी सेना को आदेश दिया कि सावधान होकर भीष्म की सब तरफ से रक्षा करते हुए उन्हें घेरकर खड़े हो जाओ। ऐसा न हो कि हमारे देखते हुए ही ये श्वेत के हाथों मृत्यु को प्राप्त हो जायें। राजा की आज्ञा सुनकर महारथीलोग चतुरंगिणी सेना से भीष्म की रक्षा करने लगे। बाह्लीक, कृतवर्मा, शल और शल्य, जलसंध, तथा विकर्ण, चित्रसेन एवं विविंशति, इन्होंने उस शीघ्रता के अवसर पर शीघ्रता करते हुए भीष्म को सब तरफ से घेरकर श्वेत के ऊपर भयानक बाण वर्षा आरम्भ कर दी।

तान् क्रुद्धो निशितैर्बाणैस्त्वरमाणो महारथः॥ ४९॥
आवरयदमेयात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम्।

स निवार्य तु तान् सर्वान् केसरी कुञ्जरानिव॥ ५०॥
महता शरवर्षेण भीष्मस्य धनुराच्छिनत्।
ततोऽन्यद् धनुरादाय भीष्मः शान्तनवो युधि॥ ५१॥
श्वेतं विव्याध राजेन्द्र कङ्कपत्रैः शितैः शरैः।
ततः सेनापतिः क्रुद्धो भीष्मं बहुभिरायसैः॥ ५२॥
विव्याध समरे राजन् सर्वलोकस्य पश्यतः।

तब उस अमितआत्मा महारथी ने क्रोध में भरकर शीघ्रता करते हुए, अपना हस्तकौशल दिखाते हुए, तीखे बाणों से उन सबको रोक दिया। जैसे सिंह हाथियों को रोक दे, उसी प्रकार उन सबको रोक कर उसने महान् शरवर्षा से भीष्म के धनुष को काट दिया। हे राजेन्द्र! तब उस युद्ध में शान्तनु पुत्र भीष्म ने दूसरा धनुष लेकर श्वेत को कंकपत्र वाले तीखे बाणों से बींध दिया। हे राजन्! तब उस सेनापति श्वेत ने क्रोध में भरकर सारे लोगों के देखते हुए उस युद्ध में, भीष्म को बहुत से लोहे के बाणों से बींध दिया।

ततः प्रव्यथितो राजा भीष्मं दृष्ट्वा निवारितम्॥ ५३॥
प्रवीरं सर्वलोकस्य श्वेतेन युधि वै तदा।
निष्ठानकश्च सुमहांस्तव सैन्यस्य चाभवत्॥ ५४॥
तं वीरं वारितं दृष्ट्वा श्वेतेन शरविक्षतम्।
हतं श्वेतेन मन्यन्ते श्वेतस्य वशमागतम्॥ ५५॥
ततः क्रोधवशं प्राप्तः पिता देवव्रतस्तव।
ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा तां च सेनां निवारिताम्॥ ५६॥
श्वेतं प्रति महाराज व्यसृजत् सायकान् बहून्।
तानावार्य रणे श्वेतो भीष्मस्य रथिनां वरः॥ ५७॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पुनरेव पितुस्तव।

सारे संसार के श्रेष्ठवीर भीष्म को श्वेत के द्वारा निवारित किया हुआ देखकर उस युद्ध में आपकी सेना पर महान् भय छा गया और राजा दुर्योधन के मन में बड़ी व्यथा हुई। वे उस वीर को श्वेत के द्वारा निवारित किया हुआ और घायल अवस्था में देखकर, उन्हें श्वेत के वश में आया हुआ और मारा हुआ समझने लगे। तब आपके पिता देवव्रत अपने ध्वज को कटा हुआ और अपनी सेना को निवारित किया हुआ देखकर क्रोध के वश में हो गये। हे महाराज! उन्होंने श्वेत की तरफ बहुत से बाणों को छोड़ा, पर उस रणक्षेत्र में रथियों में श्रेष्ठ श्वेत ने भीष्म के उन बाणों का निवारण कर भल्ल से आपके पिता का धनुष पुनः काट दिया।

उत्सृज्य कार्मुकं राजन् गाङ्गेयः क्रोधमूर्च्छितः॥ ५८॥
अन्यत् कार्मुकमादाय विपुलं बलवत्तरम्।
तत्र संधाय विपुलान् भल्लान् सप्त शिलाशितान्॥ ५९॥
चतुर्भिश्च जघानाश्वाञ्छ्वेतस्य पृतनापतेः।
ध्वजं द्वाभ्यां तु चिच्छेद सप्तमेन च सारथेः॥ ६०॥
शिरश्चिच्छेद भल्लेन संक्रुद्धो लघुविक्रमः।
हताश्वसूतात् स रथादवप्लुत्य महाबलः॥ ६१॥
अमर्षवशमापन्नो व्याकुलः समपद्यतः।

हे राजन्! तब क्रोध में मूर्च्छित होकर गंगापुत्र ने उस धनुष को छोड़कर दूसरे विशाल और अधिक बलवान् धनुष को लेकर उस पर सात शिला पर तेज किये हुए भल्लों का सन्धानकर उन्होने चार बाणों से सेनापति श्वेत के चार घोड़ों को मार दिया, दो से उसके ध्वज को काट दिया तथा एक से सारथि के सिर को अपनी फुर्ती दिखाते हुए काट दिया। सारथि और घोड़ों के मारे जाने पर वह महाबली रथ से कूद कर, अमर्ष को प्राप्त कर बहुत बेचैन को गया।

विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पितामहः॥ ६२॥
ताडयामास निशितैः शरसंघैः समन्ततः।
स ताड्यमानः समरे भीष्मचापच्युतैः शरैः॥ ६३॥
स्वरथे धनुरुत्सृज्य शक्तिं जग्राह काञ्चनीम्।
अब्रवीच्च तदा श्वेतो भीष्मं शान्तनवं रणे॥ ६४॥
तिष्ठेदानीं सुसंरब्धः पश्य मां पुरुषो भव।
एवमुक्त्वा महेष्वासो भीष्मं युधि पराक्रमी॥ ६५॥
ततः शक्तिममेयात्मा चिक्षेप भुजगोपमाम्।
पाडवार्थे पराक्रान्तस्तवानर्थं चिकीर्षुकः॥ ६६॥

रथियों में श्रेष्ठ श्वेत को रथहीन देखकर पितामह ने तीखे बाण समूह से उसे सब तरफ से पीड़ा देनी आरम्भ कर दी। युद्धक्षेत्र में भीष्म के धनुष से छूटे हुए बाणों से पीड़ित होते हुए उसने धनुष को रथ में ही छोड़कर सुनहरे रंग की एक शक्ति को उठाया और फिर शान्तनुपुत्र भीष्म से बोला कि अब तुम साहसपूर्वक खड़े रहो, मुझे देखो और मर्द बनो। ऐसा कहकर युद्ध में पराक्रम दिखानेवाले, अमितआत्मा, महाधनुर्धर, पाण्डवों के लिये पराक्रम करनेवाले और आपका अनर्थ करने के इच्छुक ने उस साँप के समान भयानक शक्ति को भीष्म पर छोड़ दिया।

अपतत् सहसा राजन् महोल्केव नभस्तलात्।
असम्भ्रान्तस्तदा राजन् पिता देवव्रतस्तव॥ ६७॥
अष्टभिर्नवभिर्भीष्मः शक्तिं चिच्छेद पत्रिभिः।
उत्कृष्टहेमविकृतां निकृतां निशितैः शरैः॥ ६८॥
उच्चुक्रुशुस्ततः सर्वे तावका भरतर्षभ।
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः॥ ६९॥
गदां जग्राह संहृष्टो भीष्मस्य निधनं प्रति।
भीष्मं समभिदुद्राव, भ्रामयित्वा तु तां गदां॥ ७०॥
रथे भीष्मस्य चिक्षेप, स रथो भस्मसात्कृतः।
तस्य वेगं असंवार्यं, मत्वा भीष्मः प्रतापवान्॥ ७१॥
प्रहार विप्रमोक्षार्थः, सहसा धरणिं गतः।

हे राजन्! आकाश से गिरनेवाली महान् उल्का के समान वह शक्ति सहसा भीष्म पर गिरी। पर आपके पिता देवव्रत ने तब बिना घबराये हुए, आठ नौ बाणों से उस शक्ति को छिन्न कर दिया। हे भरतश्रेष्ठ! उत्तम सोने से बनी हुई उस शक्ति को तीखे बाणों से काटा हुआ देखकर आपके सारे पुत्र जोर जोर से कोलाहल करने लगे। शक्ति को नष्ट हुआ देखकर क्रोध से मूर्च्छित विराटपुत्र ने हर्षित होकर भीष्म की मृत्यु के लिये गदा को उठा दिया। फिर वह भीष्म की तरफ दौड़ा और गदा को घुमाकर उसने उसे भीष्म के रथ पर फैंक दिया। उस गदा ने भीष्म के रथ को नष्ट कर दिया। तब गदा के वेग को अनिवार्य समझकर प्रतापी भीष्म उनके प्रहार से बचने के लिये तुरन्त कूदकर पृथिवी पर आ गये।

विरथं रथिनां श्रेष्ठं भीष्मं दृष्ट्वा रथोत्तमाः॥ ७२॥
अभ्यधावन्त सहिताः शल्यप्रभृतयो रथाः।
ततोऽन्यं रथमास्थाय धनुर्विस्फार्य दुर्मनाः॥ ७३॥
शनकैरभ्ययाच्छ्वेतं गाङ्गेयः प्रहसन्निव।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पदातिनम्॥ ७४॥
सहितास्त्वभ्यवर्तन्त परीप्सन्तो महारथाः।
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ ७५॥
कैकेयो धृष्टकेतुश्च अभिमन्युश्च वीर्यवान्।
एतानापततः सर्वान् द्रोणशल्यकृपैः सह॥ ७६॥
अवारयदमेयात्मा वारिवेगानिवाचलः।

रथियों में श्रेष्ठ भीष्म को रथ से रहित देखकर शल्य आदि दूसरे उत्तम रथी एकसाथ उनकी तरफ दौड़े। तब दूसरे रथ पर बैठकर, धनुष की टंकार करते हुए भीष्म उदास मन से और हँसते हुए से धीरे धीरे श्वेत की तरफ चले। उधर रथियों में श्रेष्ठ श्वेत को भी रथ से रहित पैदल देखकर बहुत से महारथी उसकी रक्षा के लिये एकसाथ दौड़ते हुए आये। ये महारथी थे– सात्यकि, भीमसेन, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, केकयराजकुमार, धृष्टकेतु और पराक्रमी अभिमन्यु। उन सबको आताहुआ देखकर अमितआत्मा भीष्म ने द्रोणाचार्य, शल्य और कृपाचार्य के साथ ऐसे रोक दिया जैसे पर्वत जल के प्रवाह को रोक देता है।

स निरुद्धेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु॥ ७७॥
श्वेतः खड्गमथाकृष्य, भीष्मस्य धनुराच्छिनत्।
ततः प्रचरमाणस्तु पिता देवव्रतस्तव॥ ७८॥
अन्यत् कार्मुकमादाय त्वरमाणो महारथः।
क्षणेन सज्यमकरोच्छक्रचापसमप्रभम्॥ ७९॥
पिता ते भरतश्रेष्ठ श्वेतं दृष्ट्वा महारथैः।
वृतं तं मनुजव्याघ्रैर्भीमसेनपुरोगमैः॥ ८०॥
अभ्यवर्तत गाङ्गेयः श्वेतं सेनापतिं द्रुतम्।

सारे मनस्वी पाण्डवों के रोके जाने पर श्वेत ने तलवार लेकर भीष्म के धनुष को काट दिया। तब वहाँ विचरण करते हुए आपके महारथी पिता देवव्रत ने शीघ्रता करते हुए दूसरे इन्द्रधनुष के समान जगमगाते हुए धनुष को लेकर क्षणभर में ही उस पर प्रत्यंचा चढ़ा ली। हे भरतश्रेष्ठ! फिर गंगापुत्र आपके पिता ने श्वेत को भीमसेन आदि पुरुषव्याघ्र महारथियों से घिरा हुआ देखकर उस पर तुरन्त आक्रमण कर दिया।

अभिमन्युं च समरे पिता देवव्रतस्तव॥ ८१॥
आजघ्ने भरतश्रेष्ठस्त्रिभिः संनतपर्वभिः।
सात्यकिं च शतेनाजौ कैकेयं चापि पञ्चभिः॥ ८२॥
तांश्च सर्वान् महेष्वासान् पिता देवव्रतस्तव।
वारयित्वा शरैर्घोरैः श्वेतमेवाभिदुद्रुवे॥ ८३॥
ततः शरं मृत्युसमं भारसाधनमुत्तमम्।
विकृष्य बलवान् भीष्मः समाधत्त दुरासदम्॥ ८४॥
अस्तं गच्छन् यथाऽऽदित्यः प्रभामादाय सत्वरः।
एवं जीवितमादाय श्वेतदेहाज्जगाम ह॥ ८५॥

भरतश्रेष्ठ तुम्हारे पिता देवव्रत ने अभिमन्यु को युद्ध में तीन झुकी हुई गाँठवाले बाणों से चोट पहुँचायी। युद्धभूमि में सात्यकि को बहुत से बाणों से और केकयकुमार को पाँच बाणों से पीड़ित करके किया। आपके पिता देवव्रत उन सारे महाधनुर्धरों को

भयंकर बाणों, से रोककर, फिर श्वेत की तरफ ही दौड़े। फिर बलवान् भीष्म ने मृत्यु के समान, उत्तम और दुर्धर्ष बाण को धनुष पर रखकर और धनुष को खींचकर छोड़ दिया। जैसे अस्त होता हुआ सूर्य शीघ्रता से अपनी प्रभा को भी साथ ले जाता है, वैसे ही वह बाण भी श्वेत के शरीर से उसके प्राणों को लेकर चला गया।

अशोचन् पाण्डवास्तत्र क्षत्रियाश्च महारथाः।
प्रहृष्टाश्च सुतास्तुभ्यं कुरवश्चापि सर्वशः॥ ८६॥

तब महारथी पांडव और उनके पक्ष के दूसरे क्षत्रियलोग शोक करने लगे और आपके पुत्र तथा सारे कौरवपक्ष के लोग हर्ष से उल्लासित हो उठे।

ग्यारहवाँ अध्याय : शंख का युद्ध। भीष्म पराक्रम। प्रथम दिन की समाप्ति।

श्वेतं तु निहतं दृष्ट्वा विराटस्य चमूपतिम्।
कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम्॥ १॥
शङ्खः क्रोधात् प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव।
महता रथसंघेन समन्तात् परिरक्षितः॥ २॥
सृजन् बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति।
ततो भीष्मो महाबाहुर्विनद्य जलदो यथा॥ ३॥
तालमात्रं धनुर्गृह्य शङ्खमभ्यद्रवद् रणे।
ततोऽर्जुनः संत्वरितः शङ्खस्यासीत् पुरःसरः॥ ४॥
भीष्माद् रक्ष्योऽयमद्येति ततो युद्धमवर्तत।

विराट के सेनापति श्वेत को मारा गया और शल्य को कृतवर्मा के साथ रथ पर बैठा हुआ देखकर शंख क्रोध से ऐसे जल उठा जैसे घी की आहुति से अग्नि। विशाल रथसमुदाय के द्वारा सब तरफ से सुरक्षित और बाणों की वर्षा करते हुए वह शल्य के रथ की तरफ दौड़ा। तब महाबाहु भीष्म ने बादलों के समान गर्जना करते हुए चार हाथ लम्बा धनुष लेकर युद्धक्षेत्र में शंख पर आक्रमण किया। तब भीष्म से इसे बचाना चाहिये, यह सोचकर अर्जुन शीघ्रता से शंख के आगे आ गये। फिर तो महान् युद्ध आरम्भ हो गया।

अथ शल्यो गदापाणिरवतीर्य महारथात्॥ ५॥
शङ्खस्य चतुरो वाहानहनद् भरतर्षभ।
स हताश्वाद् रथात् तूर्णं खड्गमादाय विद्रुतः॥ ६॥
बीभत्सोश्च रथं प्राप्य पुनः शान्तिमविन्दत।
पञ्चालानथ मत्स्यांश्च केकयांश्च प्रभद्रकान्॥ ७॥
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः पातयामास पत्रिभिः।
उत्सृज्य समरे राजन् पाण्डवं सव्यसाचिनम्॥ ८॥
अभ्यद्रवत पाञ्चाल्यं द्रुपदं सेनया वृतम्।
प्रियं सम्बन्धिनं राजञ्शरानवकिरन् बहून्॥ ९॥

हे भरतश्रेष्ठ! तब शल्य ने गदा हाथ में लेकर अपने विशाल रथ से उतरकर शंख के चारों घोड़ों को मार दिया। तब वह मरे हुए घोड़ोंवाले रथ से तुरन्त तलवार हाथ में लेकर कूद पड़ा और अर्जुन के रथ पर चढ़कर उसने शान्ति को प्राप्त किया। तत्पश्चात् प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ भीष्म पाञ्चाल, मत्स्य, केकय और प्रभद्रक सैनिकों को अपने बाणों से गिराने लगे। हे राजन्! तब भीष्म ने युद्धक्षेत्र में पाण्डुपुत्र अर्जुन को छोड़कर, सेना से घिरे हुए, पांचालराज द्रुपद पर आक्रमण किया और अपने उस प्रिय सम्बन्धी को बहुत से बाणों से भर दिया

अग्निनेव प्रदग्धानि वनानि शिशिरात्यये।
शरदग्धान्यदृश्यन्त सैन्यानि द्रुपदस्य ह॥ १०॥
सा तु यौधिष्ठिरी सेना गाङ्गेयशरपीडिता।
सिंहेनेव विनिर्भिन्ना शुक्ला गौरिव गोपते॥ ११॥

जैसे सर्दी के समाप्त होने पर ग्रीष्मऋतु में आग से सारे वन भस्म हो जाते हैं, वैसे ही द्रुपद की सारी सेना मानो भीष्म के बाणों से जलती हुई दिखाई देने लगी। उस समय युधिष्ठिर की सेना गंगापुत्र के बाणों से पीड़ित होकर सिंह के द्वारा सतायी हुई सफेद गाय के समान प्रतीत हो रही थी।

हते विप्रद्रुते सैन्ये निरुत्साहे विमर्दिते।
हाहाकारो महानासीत् पाण्डुसैन्येषु भारत॥ १२॥
ततो भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः।
मुमोच बाणान् दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव॥ १३॥
ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः।
प्राप्ते चास्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किंचन॥ १४॥

भीष्मं च समुदीर्यन्तं दृष्ट्वा पार्थां महाहवे।
अवहारमकुर्वन्त सैन्यानां भरतर्षभ॥ १५॥

हे भारत! उस समय अनेक सैनिकों के मारे जाने अनेकों के भाग जाने, अनेकों के कुचले जाने और अनेकों के उत्साहशून्य हो जाने पर पाण्डवों की सेनाओं में हाहाकार मच गया था। उस समय शान्तनुपुत्र भीष्म, जिनका धनुष लगातार बाणों को छोड़ने के कारण सदा गोलाकार ही दिखाई देता था, तीखी नोकवाले और विषैले सर्पों के समान भयंकर बाणों की वर्षा कर रहे थे। तब सेनाएँ मथित हो गयीं थीं, उनके व्यूह भग्न-हो गये थे। सूर्य के छिप जाने के कारण कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। हे भरतश्रेष्ठ! तब उस महान् युद्ध में भीष्म को उमड़ते हुए देखकर कुन्तीपुत्रों ने अपनी सेनाओं को पीछे लौटा लिया।

बारहवाँ अध्याय : युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण का ढाढस, धृष्टद्युम्न का उत्साह।

संजय उवाच

कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रथमे भरतर्षभ।
भीष्मे च युद्धसंरब्धे हृष्टे दुर्योधने तथा॥ १॥
धर्मराजस्ततस्तूर्णमभिगम्य जनार्दनम्।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सर्वैश्चैव जनेश्वरैः॥ २॥
शुचा परमया युक्तश्चिन्तयानः पराजयम्।
वार्ष्णेयमब्रवीद् राजन् दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम्॥ ३॥

संजय ने कहा कि हे भरतश्रेष्ठ! पहले दिन सैनिकों को वापिस लाने पर उस दिन भीष्म के युद्ध विषयक उत्साह और दुर्योधन की प्रसन्नता को देखकर, धर्मराज युधिष्ठिर तब अपने भाइयों और सारे राजाओं के साथ शीघ्रता से श्रीकृष्ण जी के पास गये और भीष्म के पराक्रम को देखकर अपनी पराजय पर शोक करते हुए और चिन्तित होते हुए श्रीकृष्ण जी से बोले कि–

कृष्ण पश्य महेष्वासं भीष्मं भीमपराक्रमम्।
शरैर्दहन्तं सैन्यं मे ग्रीष्मे कक्षमिवानलम्॥ ४॥
कथमेनं महात्मानं शक्ष्यामः प्रतिवीक्षितुम्।
लेलिह्यमानं सैन्यं मे हविष्मन्तमिवानलम्॥ ५॥
एतं हि पुरुषव्याघ्रं धनुष्मन्तं महाबलम्।
दृष्ट्वा विप्रद्रुतं सैन्यं समरे मार्गणाहतम्॥ ६॥
सोऽहमेवंगते मग्नो भीष्मागाधजलेऽप्लवे।
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद् भीष्ममासाद्य केशव॥ ७॥

हे कृष्ण! भयानक पराक्रमवाले महाधनुर्धर भीष्म को देखो। जैसे ग्रीष्मऋतु में अग्नि घास फूस को जलाती है, वैसे ही वे मेरी सेना को अपने बाणों से जला रहे हैं। जैसे अग्नि हविष्य की आहुति को ग्रहण करती है, वैसे ही ये अपने बाणों से मेरी सेना को चाटते चले जा रहे हैं। हम इन महात्मा का प्रतिरोध कैसे कर सकेंगे? इन महाबली धनुर्धर और पुरुषव्याघ्र को देखकर युद्धक्षेत्र में इनके बाणों से आहत होती हुई मेरी सेना भागने लगती है। हे केशव! मैं अपनी बुद्धि की कमजोरी के कारण भीष्म से टकराकर, भीष्मरूपी नौकारहित अगाध जल में डूबा जा रहा हूँ।

क्षपयिष्यति सेनां मे कृष्ण भीष्मो महास्त्रवित्।
यथानलं प्रज्वलितं पतङ्गाः समभिद्रुताः॥ ८॥
विनाशायोपगच्छन्ति तथा मे सैनिकाः जनाः।
क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी॥ ९॥
भ्रातरश्चैव मे वीराः कर्शिताः शरपीडिताः।
मत्कृते भ्रातृहार्देन राज्याद् भ्रष्टास्तथा सुखात्॥ १०॥
जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम्।
जीवितस्य च शेषेण तपस्तप्स्यामि दुश्चरम्॥ ११॥
न घातयिष्यामि रणे मित्राणीमानि केशव।

हे कृष्ण! महान् अस्त्रों के ज्ञाता भीष्म मेरी सेना का संहार कर देंगे। जैसे पतंगे जलती हुई आग की तरफ भस्म होने के लिये ही जाते हैं, वैसे ही मेरे सैनिक उनकी तरफ अपने विनाश के लिये ही जाते हैं। हे कृष्ण! राज्य के लिये पराक्रम करनेवाला मैं क्षीणता को प्राप्त हो रहा हूँ। मेरे वीर भाई भी बाणों से पीड़ित होकर दुर्बल होते जा रहे हैं। ये भाई के प्रति प्रेम के कारण मेरे लिये राज्य से भी और सुख से भी वंचित हो गये। अब तो मैं जीवित रहने को ही बहुत समझ रहा हूँ, क्योंकि जीवित रहना ही दुर्लभ होता जा रहा है। हे केशव! यदि जीवन बच गया तो शेष जीवन से कठोर तपस्या करूँगा पर युद्धक्षेत्र में अपने इन मित्रों का विनाश नहीं कराऊँगा।

किं नु कृत्वा हितं मे स्याद् ब्रूहि माधव माचिरम्॥ १२॥
मध्यस्थमिव पश्यामि समरे सव्यसाचिनम्।
एको भीमः परं शक्त्या युध्यत्येव महाभुजः॥ १३॥
केवलं बाहुवीर्येण क्षत्रधर्ममनुस्मरन्।
गदया वीरघातिन्या यथोत्साहं महामनाः॥ १४॥
करोत्यसुकरं कर्म रथाश्वनरदन्तिषु।
नालमेष क्षयं कर्तुं परसैन्यस्य मारिष॥ १५॥
आर्जवेनैव युद्धेन वीर वर्षशतैरपि।

हे माधव! आप देर मत कीजिये। मुझे बताइये कि क्या कार्य करके मेरा हित होगा? अर्जुन को तो मैं इस युद्ध में मध्यस्थ के समान देख रहा हूँ। ये महाबाहु अकेले भीम ही क्षत्रियधर्म को स्मरण करते हुए बाहुबल के सहारे पूरी शक्ति से युद्ध कर रहे हैं। ये महामना, उत्साहपूर्वक वीरों का घात करने वाली गदा से रथ, मनुष्य, घोड़ों और हाथियों पर अपना दुष्कर कर्म कर रहे हैं। हे मान्यवीर! इस प्रकार के सरलतापूर्वक युद्ध से तो यह भीम सौ वर्ष में भी शत्रुसेना को नष्ट नहीं कर सकते।

एकोऽस्त्रवित् सखा तेऽयं सोऽप्यस्मान् समुपेक्षते॥ १६॥
निर्दह्यमानान् भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना।
दिव्यान्यस्त्राणि भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः॥ १७॥
धक्ष्यन्ति क्षत्रियान् सर्वान् प्रयुक्तानि पुनः पुनः।
कृष्ण भीष्मः सुसंरब्धः सहितः सर्वपार्थिवैः॥ १८॥
क्षपयिष्यति नो नूनं यादृशोऽस्य पराक्रमः।
स त्वं पश्य महाभाग योगेश्वर महारथम्॥ १९॥
भीष्मं यः शमयेत् संख्ये दावाग्निं जलदो यथा।

आपका मित्र यह अर्जुन ही दिव्यास्त्रों का ज्ञाता है। यह भी महात्मा भीष्म और द्रोण के द्वारा जलाये जाते हुए हमारी उपेक्षा कर रहा है। उधर महात्मा भीष्म और द्रोण के द्वारा बार बार प्रयोग किये जा रहे दिव्यास्त्र सारे क्षत्रियों को भस्म कर देंगे। हे कृष्ण! भीष्म जैसा पराक्रम दिखा रहे हैं, उसके अनुसार ये सारे राजाओं के साथ क्रोध में भरकर निश्चय ही हम सबको नष्ट कर देंगे। हे महाभाग योगेश्वर! आप किसी ऐसे महारथी को देखो जो युद्ध में भीष्म को ऐसे शान्त कर दे जैसे बादल दावाग्नि को शान्त कर देते हैं।

तव प्रसादाद् गोविन्द पाण्डवा निहतद्विषः॥ २०॥
स्वराज्यमनुसम्प्राप्ता मोदिष्यन्ते सबान्धवाः।
एवमुक्त्वा ततः पार्थो ध्यायन्नास्ते महामनाः॥ २१॥
चिरमन्तर्मना भूत्वा शोकोपहतचेतनः।
शोकार्तं तमथो ज्ञात्वा दुःखोपहतचेतसम्॥ २२॥
अब्रवीत् तत्र गोविन्दो हर्षयन् सर्वपाण्डवान्।

हे गोविन्द! आपकी कृपा से ही पाण्डव अपने शत्रुओं को मारकर, अपने राज्य को प्राप्त कर, बन्धु बान्धवों के साथ प्रसन्न होंगे। ऐसा कहकर वे महामना कुन्तीपुत्र शोक से व्याकुल हुए, अन्तर्मुख होकर देर तक ध्यानमग्न बैठे रहे। उन्हें शोक से पीड़ित और दुःख से व्यथित जानकर श्रीकृष्ण सारे पाण्डवों को हर्षित करते हुए बोले कि—

मा शुचो भरतश्रेष्ठ न त्वं शोचितुमर्हसि॥ २३॥
यस्य ते भ्रातरः शूराः सर्वलोकेषु धन्विनः।
अहं च प्रियकृद् राजन् सात्यकिश्च महायशाः॥ २४॥
विराटद्रुपदौ चेमौ धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
तथैव सबलाश्चेमे राजानो राजसत्तम॥ २५॥
त्वत्प्रसादं प्रतीक्षन्ते त्वद्भक्ताश्च विशाम्पते।
एष ते पार्षतो नित्यं हितकामः प्रिये रतः॥ २६॥
सैनापत्यमनुप्राप्तो धृष्टद्युम्नो महाबलः।

हे भरतश्रेष्ठ! शोक मत करो। आप शोक करने योग्य नहीं हैं। आपके शूरवीर भाई सारे लोकों में प्रसिद्ध धनुर्धर हैं। मैं भी आपका प्रिय करनेवाला हूँ। ये दोनों विराट और द्रुपद तथा द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न हैं। हे राजश्रेष्ठ! प्रजापालक! ये सारे सेनासहित राजा लोग आपके अनुग्रह की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ये सब आपके भक्त हैं। ये महाबली, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, सदा आपके कल्याण की कामना करते हुए, आपका प्रिय करने में लगे रहते हैं। इन्होंने आपके सेनापतित्व का भार ग्रहण किया है।

एतच्छ्रुत्वा ततो राजा धृष्टद्युम्नं महारथम्॥ २७॥
अब्रवीत् समितौ तस्यां वासुदेवस्य शृण्वतः।
धृष्टद्युम्न निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि मारिष॥ २८॥
नातिक्रम्यं भवेत् तच्च वचनं मम भाषितम्।
स त्वं पुरुषशार्दूल विक्रम्य जहि कौरवान्॥ २९॥
अहं च तेऽनुयास्यामि भीमः कृष्णश्च मारिष।
माद्रीपुत्रौ च सहितौ द्रौपदेयाश्च दंशिताः॥ ३०॥
ये चान्ये पृथिवीपालाः प्रधानाः पुरुषर्षभ।

यह सुनकर तब राजा युधिष्ठिर ने उस सभा में श्रीकृष्ण के सुनते ही महारथी धृष्टद्युम्न से कहा कि

हे मान्य धृष्टद्युम्न! मैं जो तुम्हें कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो! मेरी कही बात का उल्लंघन नहीं होना चाहिये। हे मान्य पुरुषसिंह! तुम पराक्रम करके कौरवों का विनाश करो। मैं, भीम और कृष्ण, नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पुत्र तथा और जो दूसरे प्रमुख राजालोग हैं, कवच पहन कर तुम्हारे पीछे चलेंगे।

तत उद्धर्षयन् सर्वान् धृष्टद्युम्नोऽभ्यभाषत॥ ३१॥
रणे भीष्मं कृपं द्रोणं तथा शल्यं जयद्रथम्।
सर्वानद्य रणे दृप्तान् प्रतियोत्स्यामि पार्थिव॥ ३२॥
अथोत्क्रुष्टं महेष्वासैः पाण्डवैर्युद्धदुर्मदैः।
समुद्यते पार्थिवेन्द्रे पार्षते शत्रुसूदने॥ ३३॥
तमब्रवीत् ततः पार्थः पार्षतं पृतनापतिम्।
व्यूहः क्रौञ्चारुणो नाम सर्वशत्रुनिबर्हणः॥ ३४॥
तं यथावत् प्रतिव्यूह परानीकविनाशनम्।
अदृष्टपूर्वं राजानः पश्यन्तु कुरुभिः सह॥ ३५॥

उस समय सबको प्रसन्न करते हुए धृष्टद्युम्न बोला कि हे राजन्! मैं युद्ध में भीष्म, कृपाचार्य, द्रोण, शल्य और जयद्रथ सबका आज मुकाबला करूँगा। तब युद्ध में दुर्मद महाधनुर्धर पाण्डवों ने जोर से सिंह नाद किया। फिर शत्रुसूदन, द्रुपदपुत्र, राजा धृष्टद्युम्न के युद्ध के लिये तैयार होने पर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने उस द्रुपदपुत्र सेनापति से यह कहा कि कि सारे शत्रुओं का नाश करने वाला क्रौंचारुण व्यूह है। तुम शत्रुसेना का विनाश करनेवाले उस व्यूह का निर्माण करो। सारे राजालोग कौरवों के साथ उस अदृष्टपूर्व व्यूह को देखेंगे।

यथोक्तः स नृदेवेन व्यूहमार्गं विचक्षणः।
प्रभाते सर्वसैन्यानामग्रे चक्रे धनंजयम्॥ ३६॥
शिरोऽभूद् द्रुपदो राजन् महत्या सेनया वृतः।
कुन्तिभोजश्च चैद्यश्च चक्षुर्भ्यां तौ जनेश्वरौ॥ ३७॥
दाशार्णकाः प्रभद्राश्च दाशेरकगणैः सह।
अनूपकाः किराताश्च ग्रीवायां भरतर्षभ॥ ३८॥

तब जैसे नरदेव युधिष्ठिर ने कहा था, व्यूहों के निर्माण में कुशल धृष्टद्युम्न ने प्रातःकाल वैसे ही व्यूह का निर्माण किया और सारी सेनाओं के आगे अर्जुन को रखा। हे राजन्! महान् सेना से घिरे हुए द्रुपद को उसके सिर के स्थान पर खड़ा किया। चेदिराज और कुन्तीभोज ये दोनों राजा उसके नेत्रों के स्थान पर हुए। दाशार्णक, दाशेरकगणों के साथ प्रभद्रकलोग, अनूपक और किरातलोग हे भरतश्रेष्ठ! उसकी गर्दन के स्थान पर विद्यमान थे।

पटच्चरैश्च पौण्ड्रैश्च राजन् पौरवकैस्तथा।
निषादैः सहितश्चापि पृष्ठमासीद् युधिष्ठिरः॥ ३९॥
पक्षौ तु भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
द्रौपदेयाभिमन्युश्च सात्यकिश्च महारथः॥ ४०॥
पिशाचा दारदाश्चैव पुण्ड्राः कुण्डीविषैः सह।
मारुता धेनुकाश्चैव तङ्गणाः परतङ्गणाः॥ ४१॥
बाह्लिकास्तित्तिराश्चैव चोलाः पाण्ड्याश्च भारत।
एते जनपदा राजन् दक्षिणं पक्षमाश्रिताः॥ ४२॥

हे राजन्! पटच्चरों, पौण्ड्रों, तथा पौरवकों और निषादों के साथ युधिष्ठिर उसके पृष्ठभाग में स्थित हुए। भीमसेन और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न पंखों की जगह पर थे। द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु, महारथी सात्यकि के साथ पिशाच, दारद, पुण्ड्र कुण्डीविष, मारुत, धेनुक, तंगण, परतंगण, बाह्लीक, तित्तिर, चोल, और पाण्ड्य जनपदों के सैनिक दाहिने पक्ष की तरफ खड़े हुए।

अग्निवेश्यास्तु हुण्डाश्च मालवा दानभारयः।
शबरा उद्धसाश्चैव वत्साश्च सह नाकुलैः॥ ४३॥
नकुलः सहदेवश्च वामं पक्षं समाश्रिताः।
पक्षकोटिप्रपक्षेषु पक्षान्तेषु च वारणाः॥ ४४॥
जग्मुः परिवृता राजंश्चलन्त इव पर्वताः।
जघनं पालयामास विराटः सह केकयैः॥ ४५॥
काशिराजश्च शैब्यश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः।
एवमेनं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः।
सूर्योदयं त इच्छन्तः स्थिता युद्धाय दंशिताः॥ ४६॥

अग्निवेश्य, हुण्ड, मालव, दानभारि, शबर, उद्धस, वत्स और नाकुल जनपदों के सैनिकों के साथ नकुल और सहदेव बायें पक्ष की तरफ खड़े हुए। हे राजन्! उसके पंख, अग्रभाग, पंख के भीतर छोटे पंख और पंखों के किनारों पर सेनाओं से घिरे हुए, चलते हुए पर्वतों के समान हाथियों के झुंड चले। राजा विराट, केकय राजकुमारों के साथ उसके जघन अर्थात् कमर के अग्रभाग की रक्षा कर रहे थे। काशिराज और शैब्य भी तीस हजार हाथियों के साथ उसी की रक्षा में लगे हुए थे। हे भारत! इस प्रकार उस विशाल व्यूह की रचना कर पाण्डवलोग युद्ध के लिये सुसज्जित होकर सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगे।

तेरहवाँ अध्याय : कौरव सेना की व्यूह रचना।

संजय उवाच

क्रौञ्चं दृष्ट्वा ततो व्यूहमभेद्यं तनयस्तव।
रक्ष्यमाणं महाघोरं पार्थेनामिततेजसा॥ १॥
आचार्यमुपसंगम्य कृपं शल्यं च पार्थिव।
सौमदत्तिं विकर्णं च सोऽश्वत्थामानमेव च॥ २॥
दुःशासनादीन् भ्रातृंश्च सर्वानेव च भारत।
अन्यांश्च सुबहूञ्शूरान् युद्धाय समुपागतान्॥ ३॥
प्राहेदं वचनं काले हर्षयंस्तनयस्तव।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे भारत! हे राजन्! अमित तेजस्वी अर्जुन के द्वारा सुरक्षित उस महान् घोर और अभेद्य क्रौंचव्यूह को देखकर आपका पुत्र दुर्योधन, आचार्यद्रोण, कृप, शल्य, भूरिश्रवा, विकर्ण, अश्वत्थामा, और दुश्शासन आदि सारे भाइयों और युद्ध के लिये आये हुए दूसरे बहुत से शूरवीरों के पास जाकर उनका हर्ष बढ़ाता हुआ यह वचन बोला कि आप सब अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रहार करनेवाले और युद्धकुशल हैं।

एकैकशः समर्था हि यूयं सर्वे महारथाः।
पाण्डुपुत्रान् रणे हन्तुं ससैन्यान् किमु संहताः॥ ५॥
संस्थानाः शूरसेनाश्च वेत्रिकाः कुकुरास्तथा।
आरोचकास्त्रिगर्ताश्च मद्रका यवनास्तथा॥ ६॥
शत्रुंजयेन सहितास्तथा दुःशासनेन च।
विकर्णेन च वीरेण तथा नन्दोपनन्दकैः॥ ७॥
चित्रसेनेन सहिताः सहिताः पारिभद्रकैः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु सहसैन्यपुरस्कृताः॥ ८॥

आप अकेले भी सेनासहित पाण्डुपुत्रों का वध करने में समर्थ हैं, फिर अब तो आपसारे महारथी मिले हुए हैं। इसलिये संस्थान, शूरसेन, वेत्रिक, कुकुर, आरोचक, त्रिगर्त, भद्रक और यवन देशों के सैनिक, शत्रुंजय, दुश्शासन, वीर विकर्ण, नन्द, उपनन्द, चित्रसेन, पारिभद्रक वीरों के साथ, सेना को साथ रखते हुए भीष्म की ही रक्षा करें।

ततो भीष्मश्च द्रोणश्च तव पुत्राश्च मारिष।
अव्यूहन्त महाव्यूहं पाण्डूनां प्रतिबाधनम्॥ ९॥
भीष्मः सैन्येन महता समन्तात् परिवारितः।
ययौ प्रकर्षन् महतीं वाहिनीं सुरराडिव॥ १०॥
तमन्वयान्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान्।
कुन्तलैश्च दशार्णैश्च मागधैश्च विशाम्पते॥ ११॥
विदर्भैर्मेकलैश्चैव कर्णप्रावरणैरपि।
सहिताः सर्वसैन्येन भीष्ममाहवशोभिनम्॥ १२॥
गान्धाराः सिन्धुसौवीराः शिबयोऽथ वसातयः।

हे मान्यवर! तब भीष्म, द्रोण और आपके पुत्रों ने पाण्डवों को बाधा पहुँचानेवाले एक महान् व्यूह की रचना की। विशाल सेना के द्वारा सबतरफ से घिरे हुए भीष्म, इन्द्र के समान उस महान् सेना को खींचते हुए आगेआगे चले। उनके पीछेपीछे महाधनुर्धर प्रतापी द्रोणाचार्य। हे प्रजानाथ! कुन्तल, दशार्ण, मागध, विदर्भ, मेकल, कर्णप्रावरण, देशों के सैनिकों के साथ गान्धार, सिन्धु, सौवीर, शिवि और वसाति देशों के वीर क्षत्रिय युद्ध में शोभा पानेवाले भीष्म की रक्षा करने लगे।

शकुनिश्च स्वसैन्येन भारद्वाजमपालयत्॥ १३॥
ततो दुर्योधनो राजा सहितः सर्वसोदरैः।
अश्वातकैर्विकर्णैश्च तथा चाम्बष्ठकोसलैः॥ १४॥
दरदैश्च शकैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः।
अभ्यरक्षत संहृष्टः सौबलेयस्य वाहिनीम्॥ १५॥
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिषः।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वामं पार्श्वमपालयन्॥ १६॥
सौमदत्तिः सुशर्मा च काम्बोजश्च सुदक्षिणः।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च दक्षिणं पक्षमास्थिताः॥ १७॥

शकुनि अपनी सेना के साथ द्रोणाचार्य की रक्षा करने लगा। उसके पश्चात् राजा दुर्योधन अपने सारे भाइयों के साथ अश्वातक, विकर्ण, अम्बष्ठ, कोसल, दरद, शक, क्षुद्रक, और मालवदेश के योद्धाओं के साथ प्रसन्नतापूर्वक शकुनि की सेना की रक्षा करने लगा। भूरिश्रवा, शल, शल्य, और भगदत्त, अवन्ती के विन्द, अनुविन्द सेना के बायें भाग की रक्षा कर रहे थे। भूरिश्रवा, सुशर्मा, काम्बोजराज सुदक्षिण, श्रुतायु और अच्युतायु सेना के दायें भाग की रक्षा कर रहे थे।

अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः।
महत्या सेनया सार्धं सेनापृष्ठे व्यवस्थिताः॥ १८॥
पृष्ठगोपास्तु तस्यासन् नानादेश्या जनेश्वराः।

केतुमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः॥ १९॥
ततस्ते तावकाः सर्वे हृष्टा युद्धाय भारत।
दध्मुः शङ्खान् मुदा युक्ताः सिंहनादांस्तथोन्नदन्॥ २०॥
तेषां श्रुत्वा तु हृष्टानां वृद्धः कुरुपितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्॥ २१॥

अश्वत्थामा, कृपाचार्य, और सात्वतवंशी कृतवर्मा विशाल सेना के साथ पिछले भाग में अवस्थित थे। अनेक देशों के राजा जैसे केतुमान, वसुदान, काशिराज का पुत्र अभिभूः ये भी सेना के पृष्ठभाग की रक्षा कर रहे थे। हे भारत! उसके बाद युद्ध के लिये उत्साहित आपके सारे सैनिक अपने अपने शंखों को बजाने लगे और सिंहनाद करने लगे। उनके हर्षनाद को सुनकर कुरुओं के पितामह, प्रतापी, बूढ़े भीष्म ने भी जोर से सिंहनाद करके अपने शंख को बजाया।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवा विविधाः परे।
आनकाश्चाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥ २२॥
ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
प्रदध्मतुः शङ्खवरौ हेमरत्नपरिष्कृतौ॥ २३॥
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः॥ २४॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ॥ २५॥

फिर अनेक प्रकार के दूसरे बाजे भी जैसे शंख, भेरी, पणव और आनक आदि बजने लगे और बड़ा शोर होने लगा। तब सफेद घोड़ों से जुते हुए विशाल रथ पर बैठे हुए अर्जुन और श्रीकृष्ण ने भी अपने स्वर्ण और रत्नों से विभूषित उत्तम शंखों को बजाया। श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य को, अर्जुन ने देवदत्त को और भयानक कर्म करनेवाले भीम ने पौंड्र नामके शंख को बजाया। कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने अनन्तविजय को और नकुल तथा सहदेव ने सुघोष एवं मणिपुष्पक नाम के शंखों को बजाया।

काशिराजश्च शैब्यश्च शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः॥ २६॥
पाञ्चाल्याश्च महेष्वासा द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खान् सिंहनादांश्च नेदिरे॥ २७॥
स घोषः सुमहांस्तत्र वीरैस्तैः समुदीरितः।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयत्॥ २८॥
एवमेते महाराज प्रहृष्टाः कुरुपाण्डवाः।
पुनर्युद्धाय संजग्मुस्तापयानाः परस्परम्॥ २९॥

काशिराज, शैव्य, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट और महारथी सात्यकि, दौपदी के पाँचों महा धनुर्धर पुत्र इन सबने अपने विशाल शंखों को बजाया और सिंहनाद किये। उन वीरों के द्वारा प्रकट किया हुआ वह महान् शब्द आकाश और पृथिवी में जोर से गूँजने लगा। इसप्रकार हे महाराज! उत्साह में भरे हुए कौरव और पाण्डव परस्पर संतप्त करते हुए, पुनः युद्ध के लिये युद्धभूमि में जा पहुँचे।

चौदहवाँ अध्याय : दूसरे दिन – भीष्म और अर्जुन का युद्ध

संजय उवाच

समं व्यूढेष्वनीकेषु संनद्धरुचिरध्वजम्।
अपारमिव संदृश्य सागरप्रतिमं बलम्॥ १॥
तेषां मध्ये स्थितो राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव।
अब्रवीत् तावकान् सर्वान् युद्ध्यध्वमिति दंशिताः॥ २॥
ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्व एवोच्छ्रितध्वजाः॥ ३॥
ततो युद्धं समभवत् तुमुलं लोमहर्षणम्।
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे राजन्! सुन्दर पताकाओं वाली सारी सेनाएँ जब व्यूह में बद्ध होकर युद्ध के लिये खड़ी हो गयीं, तब वे एक अपार सागर के समान प्रतीत हो रहीं थीं। उस समय उनके बीच में खड़े होकर आपके पुत्र दुर्योधन ने आपकी सेनाओं से कहा कि कवचधारी वीरों! युद्ध करो। तब उन सेनाओं ने अपने मन को कठोर बनाकर, प्राणों का मोह छोड़कर, पताकाओं को ऊँचा उठाये हुए, पाण्डवों की सेनाओं पर आक्रमण कर दिया। तब आपके और शत्रुओं के वीरों के बीच रोंगटे खड़े करदेनेवाला घोर युद्ध छिड़ गया और रथी तथा हाथीसवार एक दूसरे से भिड़ गये।

मुक्तास्तु रथिभिर्बाणा रुक्मपुङ्खाः सुतेजसः।
संनिपेतुरकुण्ठाग्रा नागेषु च हयेषु च॥ ५॥
तथा प्रवृत्ते संग्रामे धनुरुद्यम्य दंशितः।

अभिपत्य महाबाहुर्भीष्मो भीमपराक्रमः॥ ६॥
सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे।
कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते॥ ७॥
एतेषु नरवीरेषु चेदिमत्स्येषु चाभिभूः।
ववर्ष शरवर्षाणि वृद्धः कुरुपितामहः॥ ८॥

सुनहरे पंखों और तीखी नोकवाले अत्यन्त तेजस्वी बाण, जो रथियों के द्वारा छोड़े जा रहे थे, हाथियों और घोड़ों पर पड़ने लगे। जब इसप्रकार युद्ध आरम्भ हो गया, तब कौरवों के प्रभावशाली, महाबाहु, कवचधारी, भयानक पराक्रमवाले वृद्ध पितामह भीष्म, धनुष को खींचकर और अभिमन्यु, भीमसेन तथा महारथी सात्यकि, केकय कुमार, विराट, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न इन नरवीरों पर तथा चेदि एवं मत्स्य देश के सैनिकों पर आक्रमण करके उनपर बाणों की वर्षा करने लगे।

अभिद्यत ततो व्यूहस्तस्मिन् वीरसमागमे।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद् व्यतिकरो महान्॥ ९॥
सादिनो ध्वजिनश्चैव हताः प्रवरवाजिनः।
विप्रद्रुतरथानीकाः समपद्यन्त पाण्डवाः॥ १०॥
अर्जुनस्तु नरव्याघ्रो दृष्ट्वा भीष्मं महारथम्।
वार्ष्णेयमब्रवीत् क्रुद्धो याहि यत्र पितामहः॥ ११॥
एष भीष्मः सुसंक्रुद्धो वार्ष्णेय मम वाहिनीम्।
नाशयिष्यति सुव्यक्तं दुर्योधनहिते रतः॥ १२॥

वीरों के उस संघर्ष में सेनाओं का वह व्यूह टूट गया और सारी सेनाओं का आपस में महान् सम्मिश्रण हो गया। घुड़सवार, ध्वजा उठानेवाले सैनिक और उत्तम घोड़े मारे गये। पाण्डवों की रथसेना पलायन करने लगी। तब नरव्याघ्र अर्जुन ने महारथी भीष्म को देखकर क्रोध में भरकर श्रीकृष्ण जी से कहा कि जहाँ पितामह हैं, वहीं चलो। हे श्रीकृष्ण! यह स्पष्ट है कि ये भीष्म दुर्योधन के कल्याण में लगे हुए अत्यन्त क्रुद्ध होकर मेरी सेना को नष्ट कर देंगे।

एष द्रोणः कृपः शल्यो विकर्णश्च जनार्दन।
धार्तराष्ट्राश्च सहिता दुर्योधनपुरोगमाः॥ १३॥
पञ्चालान् निहनिष्यन्ति रक्षिता दृढधन्वना।
सोऽहं भीष्मं वधिष्यामि सैन्यहेतोर्जनार्दन॥ १४॥
तमब्रवीद् वासुदेवो यत्तो भव धनंजय।
एष त्वां प्रापयिष्यामि पितामहरथं प्रति॥ १५॥
एवमुक्त्वा ततः शौरी रथं तं लोकविश्रुतम्।
प्रापयामास भीष्मस्य रथं प्रति जनेश्वर॥ १६॥

हे जनार्दन! ये द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, विकर्ण और दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र दृढ़ धनुष धारी भीष्म के द्वारा सुरक्षित होकर पाँचालों को मार देंगे। इसलिये मैं सेना की रक्षा के लिये भीष्म को मार दूँगा। तब श्रीकृष्ण जी ने उससे कहा कि हे अर्जुन! सावधान हो जाओ। यह मैं तुम्हें पितामह के रथ के समीप पहुँचाता हूँ। हे जनेश्वर! ऐसा कहकर श्रीकृष्ण जी ने उस संसार प्रसिद्ध रथ को भीष्म के रथ के समीप पहुँचा दिया।

तमापतन्तं वेगेन प्रभिन्नमिव वारणम्।
त्रासयन्तं रणे शूरान् मर्दयन्तं च सायकैः॥ १७॥
सैन्धवप्रमुखैर्गुप्तः प्राच्यसौवीरकेकयैः।
सहसा प्रत्युदीयाय भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम्॥ १८॥
को हि गाण्डीवधन्वानमन्यः कुरुपितामहात्।
द्रोणवैकर्तनाभ्यां वा रथी संयातुमर्हति॥ १९॥

तब पूर्वदेश, सौवीर और केकयदेश के योद्धाओं से सुरक्षित शान्तनुपुत्र भीष्म, मत्त हाथी के समान तेजी से आक्रमण करते हुए, अपने बाणों से वीरों का मर्दन करते हुए और उन्हें भयभीत करते हुए, अर्जुन की तरफ तुरन्त बढ़ चले। गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन के सामने कुरुओं के पितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण के सिवाय और कौन जा सकता है।

ततो भीष्मो महाराज सर्वलोकमहारथः।
अर्जुनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समाचिनोत्॥ २०॥
द्रोणश्च पञ्चविंशत्या कृपः पञ्चाशता शरैः।
दुर्योधनश्चतुःषष्ट्या शल्यश्च नवभिः शरैः॥ २१॥
सैन्धवो नवभिश्चैव शकुनिश्चापि पञ्चभिः।
विकर्णो दशभिर्भल्लैराजन् विव्याध पाण्डवम्॥ २२॥
स तैर्विद्धो महेष्वासः समन्तान्निशितैः शरैः।
न विव्यथे महाबाहुर्भिद्यमान इवाचलः॥ २३॥

हे महाराज! तब सारे लोकों के महारथी भीष्म ने सतत्तर नाराचों से, द्रोणाचार्य ने पच्चीस बाणों से, कृपाचार्य ने पचास, दुर्योधन ने चौंसठ, शल्य ने नौ, जयद्रथ ने नौ, शकुनि ने और विकर्ण ने दस भल्लों से हे राजन्! पाण्डव अर्जुन को बींधा। पर वह महाधनुर्धर, महाबाहु उन तीखे बाणों से सब तरफ से बिंध जाने पर भी व्यथित नहीं हुआ और पर्वत के समान स्थिर रहा।

स भीष्मं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः।
द्रोणं षष्ट्या नरव्याघ्रो विकर्णं च त्रिभिः शरैः॥ २४॥
शल्यं चैव त्रिभिर्बाणै राजानं चैव पञ्चभिः।
प्रत्यविध्यदमेयात्मा किरीटी भरतर्षभ॥ २५॥
तं सात्यकिर्विराटश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
द्रौपदेयाऽभिमन्युश्च परिवव्रुर्धनंजयम्॥ २६॥
ततो द्रोणं महेष्वासं गाङ्गेयस्य प्रिये रतम्।
अभ्यवर्तत पाञ्चाल्यः संयुक्तः सह सोमकैः॥ २७॥
भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो राजन् विव्याध पाण्डवम्।
अशीत्या निशितैर्बाणैस्ततोऽक्रोशन्त तावकाः॥ २८॥

हे भरतश्रेष्ठ! उस अमितात्मा पुरुषव्याघ्र किरीटी अर्जुन ने भीष्म को पच्चीस, कृपाचार्य को नौ, द्रोणाचार्य को साठ, विकर्ण को तीन, शल्य को तीन और राजा दुर्योधन को पाँच बाणों से बींध दिया। तब सात्यकि, विराट, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पुत्रों और अभिमन्यु ने अर्जुन को चारों तरफ से घेर लिया। तब गंगापुत्र का प्रिय करने में लगे हुए महाधनुर्धर द्रोणाचार्य पर धृष्टद्युम्न ने सोमकों सहित आक्रमण किया। हे राजन्! तब रथियों में श्रेष्ठ भीष्म ने अर्जुन को अस्सी बाणों से बींध दिया। यह देखकर आपके सैनिक हर्ष से कोलाहल करने लगे।

तेषां तु निनदं श्रुत्वा सहितानां प्रहृष्टवत्।
प्रविवेश ततो मध्यं नरसिंहः प्रतापवान्॥ २९॥
तेषां महारथानां स मध्यं प्राप्य धनंजयः।
चिक्रीड धनुषा राजँल्लक्ष्यं कृत्वा महारथान्॥ ३०॥
ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममाह जनेश्वरः।
पीड्यमानं स्वकं सैन्यं दृष्ट्वा पार्थेन संयुगे॥ ३१॥
एष पाण्डुसुतस्तात कृष्णेन सहितो बली।
यततां सर्वसैन्यानां मूलं नः परिकृन्तति॥ ३२॥
त्वयि जीवति गाङ्गेय द्रोणे च रथिनां वरे।

उनके प्रसन्नता से युक्त जयनादों को सुनकर वह प्रतापी नरसिंह अर्जुन उन महारथियों के बीच में घुस गये और हे राजन्! उन्हें निशाना बनाकर अपने धनुष के साथ खेल सा करने लगे। तब अपनी सेना को युद्धक्षेत्र में अर्जुन के द्वारा पीड़ित होता हुआ देखकर राजा दुर्योधन ने भीष्म से कहा कि हे तात! ये कृष्ण के साथ बलवान् पाण्डुपुत्र सारी सेनाओं के प्रयत्न करने पर भी आपके और रथियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य के जीते जी हमारा मूलोच्छेद करते जा रहे हैं।

त्वत्कृते चैव कर्णोऽपि न्यस्तशस्त्रो विशाम्पते॥ ३३॥
न युध्यति रणे पार्थं हितकामः सदा मम।
स तथा कुरु गाङ्गेय यथा हन्येत फाल्गुनः॥ ३४॥
एवमुक्तस्ततो राजन् पिता देवव्रतस्तव।
धिक् क्षात्रं धर्ममित्युक्त्वा प्रायात् पार्थरथं प्रति॥ ३५॥
उभौ श्वेतहयौ राजन् संसक्तौ प्रेक्ष्य पार्थिवाः।
सिंहनादान् भृशं चक्रुः शङ्खान् दध्मुश्च मारिष॥ ३६॥
द्रौणिर्दुर्योधनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजः।
परिवार्य रणे भीष्मं स्थिता युद्धाय मारिष॥ ३७॥

हे प्रजापालक! आपके कारण ही सदा मेरा भला चाहनेवाले कर्ण ने भी शस्त्र रख दिये हैं। वह अर्जुन से युद्ध नहीं कर रहा है। इसलिये हे गंगापुत्र! आप ऐसा करें जिससे अर्जुन मारा जाये। हे राजन्! ऐसा कहे जाने पर आपके पिता देवव्रत क्षत्रियधर्म को धिक्कार है, ऐसा कहकर अर्जुन के रथ की तरफ चले। हे मान्य! तब सफेद घोड़ेवाले दोनों को युद्ध करता हुआ देखकर राजालोग जोरजोर से सिंह नाद करने और शंख बजाने लगे। हे मान्यवर! अश्वत्थामा, दुर्योधन और आपका पुत्र विकर्ण ये युद्धस्थल में भीष्म को घेरकर युद्ध के लिये खड़े हो गये।

तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य धनंजयम्।
स्थिता युद्धाय महते ततो युद्धमवर्तत॥ ३८॥
गाङ्गेयस्तु रणे पार्थमानर्च्छन्नवभिः शरैः।
तमर्जुनः प्रत्यविध्यद् दशभिर्मर्मभेदिभिः॥ ३९॥
ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः।
अर्जुनः समरश्लाघी भीष्मस्यावारयद् दिशः॥ ४०॥
शरजालं ततस्तत् तु शरजालेन मारिष।
वारयामास पार्थस्य भीष्मः शान्तनवस्तदा॥ ४१॥

उसी प्रकार सारे पाण्डव अर्जुन को घेरकर युद्ध के लिये खड़े हुए थे। फिर उनमें भारी युद्ध छिड़ गया। भीष्म ने अर्जुन को युद्ध में नौ बाणों से पीड़ित किया और अर्जुन ने उन्हें दस मर्मभेदी बाणों से बींधा। फिर पाण्डुपुत्र अर्जुन ने अच्छी तरह से प्रयोग किये हुए एक हजार बाणों से भीष्म की सारी दिशाएँ रोक दीं। हे मान्यवर! तब उस बाणवर्षा को शान्तनुपुत्र भीष्म ने अपनी बाणवर्षा से निवारित कर दिया।

उभौ परमसंहृष्टावुभौ युद्धाभिनन्दिनौ।
निर्विशेषमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ॥ ४२॥
भीष्मचापविमुक्तानि शरजालानि संघशः।

शीर्यमाणान्यदृश्यन्त भिन्नान्यर्जुनसायकैः॥ ४३॥
तथैवार्जुनमुक्तानि शरजालानि सर्वशः।
गाङ्गेयशरनुन्नानि प्रापतन्त महीतले॥ ४४॥

युद्ध का अभिनन्दन करनेवाले दोनों वीर उस समय अत्यन्त हर्ष में भरे हुए थे। किये हुए प्रहार का प्रतिकार करते हुए वे दोनों ही उस समय समान भाव से युद्ध कर रहे थे। भीष्म के धनुष से छूटे हुए बाणों के समूह, अर्जुन के बाणों से बिखरते हुए दिखाई दे रहे थे। उसी प्रकार अर्जुन द्वारा छोड़े हुए बाणसमूह पूरीतरह से भीष्म के बाणों से छिन्नभिन्न होकर भूमि पर गिर जाते थे।

अर्जुनः पञ्चविंशत्या भीष्ममार्च्छेच्छितैः शरैः।
भीष्मोऽपि समरे पार्थं विव्याध निशितैः शरैः॥ ४५॥
अन्योन्यस्य हयान् विद्ध्वा ध्वजौ च सुमहाबलौ।
रथेषां रथचक्रे च चिक्रीडतुररिंदमौ॥ ४६॥
ततः क्रुद्धो महाराज भीष्मः प्रहरतां वरः।
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे॥ ४७॥
ततोऽर्जुनो भृशं क्रुद्धो निर्विद्धं प्रेक्ष्य माधवम्।
सारथिं कुरुवृद्धस्य निर्बिभेद शितैः शरैः॥ ४८॥

अर्जुन ने पच्चीस तीखे बाणों से भीष्म को पीड़ित किया तो भीष्म ने भी उस युद्ध में अर्जुन को तीखे बाणों से बींध दिया। वे दोनों महाबली अरिन्दम! एक दूसरे के घोड़ों, ध्वजों, रथ की ईषा, और पहिये को बींधकर खेल सा कर रहे थे। हे महाराज! तब प्रहार करनेवालों में श्रेष्ठ भीष्म ने श्रीकृष्ण की छाती में तीन बाणों से प्रहार किया। तब श्रीकृष्ण को घायल हुआ देखकर, अर्जुन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कुरुकुलवृद्ध भीष्म के सारथि को तीखे बाणों से बींध दिया।

यतमानौ तु तौ वीरावन्योन्यस्य वधं प्रति।
न शक्नुतां तदान्योन्यमभिसंधातुमाहवे॥ ४९॥
तौ मण्डलानि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च।
अदर्शयेतां बहुधा सूतसामर्थ्यलाघवात्॥ ५०॥
अन्तरं च प्रहारेषु तर्कयन्तौ परस्परम्।
राजन्नन्तरमार्गस्थौ स्थितावास्तां मुहुर्मुहुः॥ ५१॥
उभौ सिंहरवोन्मिश्रं शङ्खशब्दं च चक्रतुः।
तथैव चापनिर्घोषं चक्रतुस्तौ महारथौ॥ ५२॥

इस प्रकार एक दूसरे के वध के लिये प्रयत्न करते हुए वे दोनों वीर युद्ध में एकदूसरे पर घातक प्रहार करने में सफल न हो सके। वे दोनों अपने सारथियों के सामर्थ्य और कौशल के द्वारा रथों के अनेक प्रकार के विचित्र मण्डल और आगे बढ़ना तथा पीछे हटना आदि पैंतरे दिखा रहे थे। वे दोनों एक दूसरे के प्रहारों में दोष देखने के लिये प्रयत्नशील थे और बारबार इसके लिये उद्यम करते थे। दोनों ही महारथी सम्मिलित रूप से सिंहनाद करते थे, शंख बजाते थे, और धनुषों को टंकारते थे।

नोभयोरन्तरं कश्चिद् ददृशे भरतर्षभ।
बलिनौ युद्धदुर्धर्षावन्योन्यसदृशावुभौ॥ ५३॥
चिह्नमात्रेण भीष्मं तु प्रजज्ञुस्तत्र कौरवाः।
तथा पाण्डुसुताः पार्थं चिह्नमात्रेण जज्ञिरे॥ ५४॥
न तयोर्विवरं कश्चिद् रणे पश्यति भारत।
धर्मे स्थितस्य हि यथा न कश्चिद् वृजिनं क्वचित्॥ ५५॥
उभौ च शरजालेन तावदृश्यौ बभूवतुः।
प्रकाशौ च पुनस्तूर्णं बभूवतुरुभौ रणे॥ ५६॥

हे भरतश्रेष्ठ! पर क्योंकि युद्ध में दुर्धर्ष और बलवान् वे दोनों एकदूसरे के समान थे, इसलिये उन दोनों में से कोई भी एकदूसरे के दोष को नहीं पा सका। उस समय कौरव और पाण्डुपुत्र केवल ध्वजा के चिह्न से ही भीष्म और अर्जुन को पहचान रहे थे। हे भारत! जैसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति के चरित्र में कोई भी व्यक्ति कोई दोष नहीं देख पाता है, वैसे ही उस युद्ध में भी उन दोनों के दोष को कोई भी नहीं देख पा रहा था। वे दोनों ही बाणों के समूह में कभी घिरकर अदृश्य हो जाते थे फिर शीघ्रता के साथ प्रकट हो जाते थे।

त्वदीयास्तु तदा योधाः पाण्डवेयाश्च भारत।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तयोस्तत्र पराक्रमे॥ ५७॥
वर्तमाने तथा घोरे तस्मिन् युद्धे सुदारुणे।
द्रोणपाञ्चाल्ययो राजन् महानासीत् समागमः॥ ५८॥

हे भारत! उस समय आपके और पाण्डवों के योद्धा भी पराक्रम करते हुए एक दूसरे को युद्ध स्थल में मार रहे थे। उस प्रकार उस भयानक और अत्यन्त दारुण युद्ध के चलते हुए द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न में भी हे राजन्! महान् युद्ध हो रहा था।

पन्द्रहवाँ अध्याय : धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य का युद्ध।

द्रोणस्तु निशितैर्बाणैर्धृष्टद्युम्नमविध्यत।
तथास्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः॥ १॥
पीडयामास संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य मारिष।
धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणं नवत्या निशितैः शरैः॥ २॥
विव्याध प्रहसन् वीरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
ततः पुनरमेयात्मा भारद्वाजः प्रतापवान्॥ ३॥
शरैः प्रच्छादयामास धृष्टद्युम्नममर्षणम्।
आददे च शरं घोरं पार्षतान्तचिकीर्षया॥ ४॥
शक्राशनिसमस्पर्शं कालदण्डमिवापरम्।

संजय ने कहा कि तब द्रोणाचार्य ने अपने तीखे बाणों से धृष्टद्युम्न को बींध दिया। उन्होंने क्रोध में भरकर अपने चार उत्तम बाणों से हे मान्यवर! धृष्टद्युम्न के घोड़ों को पीड़ित किया। तब वीर धृष्टद्युम्न ने नब्बे पैने बाणों से द्रोणाचार्य को बींध दिया और हँसते हुए उनसे कहा कि खड़े रहो, खड़े रहो। तब अमितआत्मा प्रतापी द्रोणाचार्य ने अपने बाणों से पुनः अमर्षशील धृष्टद्युम्न को आच्छादित कर दिया और फिर द्रुपदपुत्र के अन्त की इच्छा से एक इन्द्र के वज्र के समान स्पर्श में भयानक दूसरे मृत्यु के प्रहार के समान बाण को हाथ में लिया।

तत्राद्भुतमपश्याम धृष्टद्युम्नस्य पौरुषम्॥ ५॥
यदेकः समरे वीरस्तस्थौ गिरिरिवाचलः।
तं च दीप्तं शरं घोरमायान्तं मृत्युमात्मनः॥ ६॥
चिच्छेद शरवृष्टिं च भारद्वाजे मुमोच ह।
तत उच्चुक्रुशुः सर्वे पञ्चालाः पाण्डवैः सह॥ ७॥
धृष्टद्युम्नेन तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम्।
ततः शक्तिं महावेगां स्वर्णवैदूर्यभूषिताम्॥ ८॥
द्रोणस्य निधनाकाङ्क्षी चिक्षेप स पराक्रमी।

वहाँ हमने धृष्टद्युम्न के अद्भुत पुरुषार्थ को देखा कि वह वीर युद्ध में अकेला पर्वत के समान अविचलभाव से खड़ा रहा। उसने अपनी मृत्यु के समान भयानक तेजस्वी उस बाण को आते देखकर, उसे काट दिया और द्रोणाचार्य के ऊपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी। तब धृष्टद्युम्न के उस दुष्कर कर्म को देखकर सारे पांचाल पाण्डवों के साथ हर्षित होकर कोलाहल करने लगे। फिर उस पराक्रमी ने द्रोणाचार्य के निधन की इच्छा से एक महान् वेगवाली स्वर्ण और वैदूर्य से विभूषित शक्ति को उनके ऊपर फैंका।

तामापतन्तीं सहसा शक्तिं कनकभूषिताम्॥ ९॥
त्रिधा चिच्छेद समरे भारद्वाजो हसन्निव।
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्॥ १०॥
ववर्ष शरवर्षाणि द्रोणं प्रति जनेश्वर।
शरवर्षं ततस्तत् तु संनिवार्य महायशाः॥ ११॥
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य मध्ये चिच्छेद कार्मुकम्।
स च्छिन्नधन्वा समरे गदां गुर्वीं महायशाः॥ १२॥
द्रोणाय प्रेषयामास गिरिसारमयीं बली।
सा गदा वेगवन्मुक्ता प्रायाद् द्रोणजिघांसया॥ १३॥
तत्राद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य विक्रमम्।

स्वर्णभूषित उस आती हुई शक्ति को तुरन्त द्रोणाचार्य ने युद्ध में हँसते हुए तीन टुकड़ों में काट दिया। हे जनेश्वर! उस शक्ति को काटा हुआ देखकर प्रतापी धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य पर बाणों की वर्षा करने लगा। तब महायशस्वी द्रोणाचार्य ने उस बाण वर्षा का निवारण कर द्रुपदपुत्र के धनुष को बीच में से काट दिया। तब उस बलवान् और महायशस्वी धृष्टद्युम्न ने धनुष के छिन्न हो जाने पर एक लोहे की बनी हुई भारी गदा को द्रोणाचार्य पर फैंका। तेजी से फैंकी हुई वह गदा द्रोणाचार्य को मारने के लिये चली पर हमने वहाँ द्रोणाचार्य का अद्भुत पराक्रम देखा।

लाघवाद् व्यंसयामास गदां हेमविभूषिताम्॥ १४॥
व्यंसयित्वा गदां तां च प्रेषयामास पार्षतम्।
भल्लान् सुनिशितान् पीतान् रुक्मपुंखान् सुदारुणान्॥ १५॥
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे।
अथान्यद् धनुरादाय धृष्टद्युम्नो महारथः॥ १६॥
द्रोणं युधि पराक्रम्य शरैर्विव्याध पञ्चभिः।
अमर्षितस्ततो राजन् पराक्रम्य चमूमुखे॥ १७॥
द्रोणो द्रुपदपत्रस्य पुनश्चिच्छेद कार्मुकम्।
अथैनं छिन्नधन्वानं शरैः संनतपर्वभिः॥ १८॥
अभ्यवर्षदमेयात्मा वृष्ट्या मेघ इवाचलम्।

उन्होंने बड़े कौशल से उस स्वर्णभूषित गदा को व्यर्थ कर दिया। गदा को व्यर्थ कर उन्होंने सुनहरे

पंखवाले अत्यन्त दारुण और तीखे भल्लनाम के बाण धृष्टद्युम्न पर चलाये जो युद्धक्षेत्र में उसके कवच को छेदकर उसका रक्त पीने लगे। तब महारथी धृष्टद्युम्न ने दूसरा धनुष लेकर युद्ध में पराक्रम करते हुए द्रोणाचार्य को पाँच बाणों से बींध दिया। हे राजन्! तब अमर्ष से भरे हुए द्रोणाचार्य ने युद्ध के मुहाने पर पराक्रम करते हुए द्रुपदपुत्र के धनुष को फिर काट दिया। फिर जिसका धनुष टूट गया था, उस धृष्टद्युम्न पर उन अमितआत्मा ने झुकी हुई गाँठ वाले बाणों की इसप्रकार से वृष्टि कर दी जैसे बादल पर्वत पर जल की वर्षा करते हैं।

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्॥ १९॥
अथास्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः।
पातयामास समरे सिंहनादं ननाद च॥ २०॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गदापाणिरवारोहत् ख्यापयन् पौरुषं महत्॥ २१॥
तामस्य विशिखैस्तूर्णं पातयामास भारत।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत्॥ २२॥

फिर उन्होंने भल्ल के प्रहार से उसके सारथि को रथ की बैठक से गिरा दिया और उसके चारों घोड़ों को भी तीखे बाणों से मारकर गिरा दिया और फिर उन्होंने बड़े जोर से गर्जना की। तब धनुष के छिन्न हो जाने पर, घोड़ों और सारथि के मारे जाने पर रथहीन हुआ धृष्टद्युम्न अपने महान् पौरुष का परिचय देते हुए गदा हाथ में लेकर नीचे उतर गया। पर तभी द्रोणाचार्य ने तीखे बाणों से गदा को भी गिरा दिया। यह एक अद्‌भुत बात थी।

ततः स विपुलं चर्म शतचन्द्रं च भानुमत्।
खड्गं च विपुलं दिव्यं प्रगृह्य सुभुजो बली॥ २३॥
अभिदुद्राव वेगेन द्रोणस्य वधकाङ्क्षया।
आमिषार्थी यथा सिंहो वने मत्तमिव द्विपम्॥ २४॥
तत्राद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम्।
लाघवं चास्त्रयोगं च बलं बाह्वोश्च भारत॥ २५॥
यदेनं शरवर्षेण वारयामास पार्षतम्।
न शशाक ततो गन्तुं बलवानपि संयुगे॥ २६॥
निवारितस्तु द्रोणेन धृष्टद्युम्नो महारथः।
न्यवारयच्छरौघांस्तांश्चर्मणा कृतहस्तवत्॥ २७॥

तब उस सुन्दर बाहोंवाले बलवान् धृष्टद्युम्न ने एकसौ चन्द्रिकाओंवाली विशाल ढाल और एक जगमगाती हुई विशाल और दिव्य तलवार को लेकर, द्रोणाचार्य के वध की इच्छा से बड़े वेग से उनपर आक्रमण किया। जैसे वन में माँस को चाहनेवाला सिंह मत्त हाथी पर हमला करता है। हे भारत! तब हमने द्रोणाचार्य के अद्भुत कौशल अस्त्रप्रयोग और बाहों के बल को देखा। उन्होंने अपने बाणों की वर्षा से धृष्टद्युम्न को वहीं रोक दिया और वे बलवान् होने पर भी उनके समीप न पहुँच सके। तब महारथी धृष्टद्युम्न एक सिद्धहस्त पुरुष की तरह से उनके बाणों को अपनी ढाल पर ही रोकने लगे।

ततो भीमो महाबाहुः सहसाभ्यपतद् बली।
साहाय्यकरी समरे पार्षतस्य महात्मनः॥ २८॥
स द्रोणं निशितैर्बाणै राजन् विव्याध सप्तभिः।
पार्षतं च रथं तूर्णं स्वकमारोहयत् तदा॥ २९॥
ततो दुर्योधनो राजन् भानुमन्तमचोदयत्।
सैन्येन महता युक्तं भारद्वाजस्य रक्षणे॥ ३०॥
ततः सा महती सेना कलिङ्गानां जनेश्वर।
भीममभ्युद्ययौ तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात्॥ ३१॥
पाञ्चाल्यमथ संत्यज्य द्रोणोऽपि रथिनां वरः।
विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयामास संयुगे।
धृष्टद्युम्नोऽपि समरे धर्मराजानमभ्ययात्॥ ३२॥

तभी मनस्वी धृष्टद्युम्न की युद्ध में सहायता करने के लिये सहसा बलवान् महाबाहु भीम वहाँ पहुँच गये। हे राजन्! उन्होंने धृष्टद्युम्न को जल्दी से अपने रथ पर बैठा लिया और द्रोणाचार्य को सात तीखे बाणों से बींध दिया। हे राजन्! तब दुर्योधन ने विशाल सेना के साथ राजा भानुमान् को द्रोणाचार्य की रक्षा के लिये कहा। हे जनेश्वर! तब कलिंग देश के सैनिकों की वह विशाल सेना, आपके पुत्र के आदेश से शीघ्रता से भीम के सामने जा पहुँची। तब रथियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी धृष्टद्युम्न को छोड़कर वृद्ध विराट और द्रुपद को युद्ध में आगे बढ़ने से रोकने लगे और धृष्टद्युम्न भी उस युद्धस्थल में युधिष्ठिर के समीप चले गये।

सोलहवाँ अध्याय : भीम द्वारा शक्रदेव, भानुमान्, सत्यदेव, सत्य और केतुमान् का वध।

संजय उवाच

तामापतन्तीं महतीं कलिङ्गानां महाचमूम्।
रथाश्वनागकलिलां प्रगृहीतमहायुधाम्॥ १॥
भीमसेनः कलिङ्गानामार्च्छद् भारत वाहिनीम्।
केतुमन्तं च नैषादिमायान्तं सह चेदिभिः॥ २॥
ततः श्रुतायुः संक्रुद्धो राज्ञा केतुमता सह।
आससाद रणे भीमं व्यूढानीकेषु चेदिषु॥ ३॥
रथैरनेकसाहस्रैः कलिङ्गानां नराधिप।
अयुतेन गजानां च निषादैः सह केतुमान्॥ ४॥
भीमसेनं रणे राजन् समन्तात् पर्यवारयन्।

संजय ने कहा कि हे भारत! उस आती हुई कलिंगों की विशाल सेना को, जो रथ, घोड़ों और हाथियों से भरी हुई थी और जिसने महान् हथियारों को धारण किया हुआ था, भीमसेन ने पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने चेदिदेश के सैनिकों के साथ, निषादराज के पुत्र केतुमान् पर भी जो भीम की तरफ आ रहे थे, प्रहार किया। तब श्रुतायु भी अत्यन्त क्रोध में भरकर राजा केतुमान् के साथ युद्धस्थल में भीम के सामने आ गया। उस समय चेदिदेश की सेनाएँ व्यूह बाँधकर खड़ी हुई थीं। हे राजन्! तब कलिंगों के कई हजार रथ, दस हजार हाथियों और निषादों के साथ केतुमान् ने युद्ध में भीमसेन को सब तरफ से रोक दिया।

चेदिमत्स्यकरूषाश्च भीमसेनपदानुगाः॥ ५॥
अभ्यधावन्त समरे निषादान् सह राजभिः।
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम्॥ ६॥
विमर्दः सुमहानासीदल्पानां बहुभिः सह।
कलिङ्गैः सह चेदीनां निषादैश्च विशाम्पते॥ ७॥
कृत्वा पुरुषकारं तु यथाशक्ति महाबलाः।
भीमसेनं परित्यज्य संन्यवर्तन्त चेदयः॥ ८॥

तब भीम के पीछे चलने वाले चेदि, मत्स्य और करूष देश के सैनिकों ने युद्धस्थल में निषादों और उनके राजाओं पर आक्रमण किया। तब दोनों पक्षों में भयोत्पादक घोर युद्ध होने लगा। हे प्रजापालक! कलिंग और निषादसैनिक संख्या में अधिक थे और चेदि देश के सैनिक कम थे पर फिर भी उन अल्पसंख्यकों का बहुसंख्यकों के साथ महान् युद्ध हो रहा था। फिर यथाशक्ति पुरुषार्थ करके भी वे महाबली चेदिसैनिक थोड़ी देर में भीमसेन को छोड़कर युद्ध से विमुख हो गये।

सर्वैः कलिङ्गैरासन्नः संनिवृत्तेषु चेदिषु।
स्वबाहुबलमास्थाय न न्यवर्तत पाण्डवः॥ ९॥
न चचाल रथोपस्थाद् भीमसेनो महाबलः।
शितैरवाकिरद् बाणैः कलिङ्गानां वरूथिनीम्॥ १०॥
कालिङ्गस्तु महेष्वासः पुत्रश्चास्य महारथः।
शक्रदेव इति ख्यातो जघ्नतुः पाण्डवं शरैः॥ ११॥
ततो भीमो महाबाहुर्विधुन्वन् रुचिरं धनुः।
योधयामास कालिङ्गं स्वबाहुबलमाश्रितः॥ १२॥

चेदिदेश के सैनिकों के युद्ध से हट जाने पर और कलिंगदेशीय सैनिकों के अपने समीप आ जाने पर भी महाबली पाण्डुपुत्र भीम अपने बाहुबल का ही सहारा लेकर न तो युद्ध से लौटे और न अपने रथ की बैठक से ही विचलित हुए। वे कलिंगों की सेना पर अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। उधर महाधनुर्धर कलिंगराज तथा उसका महारथी पुत्र शक्रदेव पाण्डव पर बाणों से प्रहार करने लगे। तब महाबाहु भीम ने अपने बाहुबल का आश्रय लेकर, अपने सुन्दर धनुष को टंकारते हुए कलिंगराज से युद्ध आरम्भ किया।

शक्रदेवस्तु समरे विसृजन् सायकान् बहून्।
अश्वाञ्जघान समरे भीमसेनस्य सायकैः॥ १३॥
तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भीमसेनमरिंदमम्।
शक्रदेवोऽभिदुद्राव शरैरवकिरञ्शितैः॥ १४॥
भीमस्योपरि राजेन्द्र शक्रदेवो महाबलः।
ववर्ष शरवर्षाणि तपान्ते जलदो यथा॥ १५॥
हताश्वे तु रथे तिष्ठन् भीमसेनो महाबलः।
शक्रदेवाय चिक्षेप सर्वशैक्यायसीं गदाम्॥ १६॥

शक्रदेव ने युद्धक्षेत्र में बहुत से बाणों को छोड़ते हुए भीम के घोड़ों को मार दिया। तब शत्रुओं का दमन करनेवाले भीम को रथहीन देखकर शक्रदेव अपने तीखे बाणों की वर्षा करता हुआ उनकी तरफ दौड़ा। हे राजेन्द्र! महाबली शक्रदेव ने भीम के ऊपर

इस प्रकार बाणों की वर्षा की जैसे ग्रीष्मऋतु की समाप्ति पर बादल पानी बरसाते हैं। तब महाबली भीम ने मरे हुए घोड़ोंवाले रथ पर ही बैठे हुए शक्रदेव पर सम्पूर्ण लोहे से बनी हुई गदा को फैंका।

स तया निहतो राजन् कालिङ्गतनयो रथात्।
सध्वजः सह सूतेन जगाम धरणीतलम्॥ १७॥
हतमात्मसुतं दृष्ट्वा कलिङ्गानां जनाधिपः।
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्यावारयद् दिशः॥ १८॥
ततो भीमो महावेगां त्यक्त्वा गुर्वीं महागदाम्।
निस्त्रिंशमाददे घोरं चिकीर्षुः कर्म दारुणम्॥ १९॥
चर्म चाप्रतिमं राजन्नार्षभं पुरुषर्षभ।
नक्षत्रैरर्धचन्द्रैश्च शातकुम्भमयैश्चितम्॥ २०॥

हे राजन्! तब उस गदा की चोट से मारा हुआ वह कलिंगराज का पुत्र अपने सारथि तथा ध्वज के साथ रथ के नीचे गिर पड़ा। अपने पुत्र को मारा हुआ देखकर कलिंगराज ने कई हजार रथों के साथ भीम की सारी दिशाओं का रोक दिया। तब भीम ने महान् वेगवाली भारी और विशाल गदा को छोड़कर, दारुणकर्म करने की इच्छा से एक भयंकर तलवार को निकाल लिया और हे पुरुषश्रेष्ठ राजन्! साँड के चमड़े से बनी एक अनुपम ढाल को ले लिया, जिसमें नक्षत्रों और अर्धचन्द्र के आकार की स्वर्ण की फूलियाँ जड़ी हुई थीं।

कालिङ्गस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्ज्यामवमृज्य च।
प्रगृह्य च शरं घोरमेकं सर्पविषोपमम्॥ २१॥
प्राहिणोद् भीमसेनाय वधाकाङ्क्षी जनेश्वरः।
तमापतन्तं वेगेन प्रेरितं निशितं शरम्॥ २२॥
भीमसेनो द्विधा राजंश्चिच्छेद विपुलासिना।
उदक्रोशच्च संहृष्टस्त्रासयानो वरूथिनीम्॥ २३॥
कालिङ्गोऽथ ततः क्रुद्धो भीमसेनाय संयुगे।
तोमरान् प्राहिणोच्छीघ्रं चतुर्दश शिलाशितान्॥ २४॥
निकृत्य तु रणे भीमस्तोमरान् वै चतुर्दश।
भानुमन्तं ततो भीमः प्राद्रवत् पुरुषर्षभः॥ २५॥

तब कलिंगराज ने क्रुद्ध होकर, धनुष की प्रत्यंचा को पौंछकर एक विषैले सर्प के समान भयंकर बाण को ले लिया और भीमसेन के वध की इच्छा से उस पर छोड़ दिया। तब भीमसेन ने तेजी से चलाये हुए और अपनी तरफ आते हुए उस तीखे बाण के अपनी विशाल तलवार से दो टुकड़े कर दिये और सेना को भयभीत करते हुए हर्षित होकर जोर से सिंहनाद किया। तब कलिंगराज ने क्रुद्ध होकर भीमसेन पर, शिला पर तेज किये हुए चौदह तोमरों को शीघ्रतापूर्वक फैंका। किन्तु पुरुषश्रेष्ठ भीम ने रणक्षेत्र में उन चौदह तोमरों को काटकर भानुमान् पर आक्रमण किया।

भानुमांस्तु ततो भीमं शरवर्षेण च्छादयन्।
ननाद बलवन्नादं नादयानो नभस्तलम्॥ २६॥
न च तं ममृषे भीमः सिंहनादं महाहवे।
ततः शब्देन महता विननाद महास्वनः॥ २७॥
तेन नादेन वित्रस्ता कलिङ्गानां वरूथिनी।
न भीमं समरे मेने मानुषं भरतर्षभ॥ २८॥
ततो भीमो महाबाहुर्नर्दित्वा विपुलं स्वनम्।
सासिर्वेगवदाप्लुत्य दन्ताभ्यां वारणोत्तमम्॥ २९॥
आरुरोह ततो मध्यं नागराजस्य मारिष।

भानुमान ने तब भीम को बाणवर्षा से ढकते हुए, आकाश को गुंजाते हुए जोर से गर्जना की, भीमसेन ने महान् युद्ध में उस सिंहनाद को सहन नहीं किया और उन्होंने उससे भी अधिक ऊँची आवाज से गर्जना की, जिससे कलिंगों की सेना भयभीत हो उठी। हे भरतश्रेष्ठ! उन सैनिकों ने भीम को युद्धस्थल में मनुष्य नहीं अपितु कोई अमानवीय प्राणी समझा। हे मान्यवर! तब महाबाहु भीम जोर जोर से गर्जना कर तलवार लिये हुए जोर से उछलकर गजराज के दोनों दाँतों के सहारे उस उत्तम हाथी पर चढ़ गये।

ततो मुमोच कालिङ्गः शक्तिं तामकरोद् द्विधा॥ ३०॥
खड्गेन पृथुना मध्ये भानुमन्तमथाच्छिनत्।
सोऽन्तरायुधिनं हत्वा राजपुत्रमरिंदमः॥ ३१॥
गुरुं भारसहं स्कन्धे नागस्यासिमपातयत्।
छिन्नस्कन्धः स विनदन् पपात गजयूथपः॥ ३२॥
आरुग्णः सिन्धुवेगेन सानुमानिव पर्वतः।
ततस्तस्मादवप्लुत्य गजाद् भारत भारतः॥ ३३॥
खड्गपाणिरदीनात्मा तस्थौ भूमौ सुदंशितः।

तब कलिंगराज ने उनके ऊपर शक्ति चलायी पर भीम ने उसके दो टुकड़े कर दिये और अपने विशाल खड्ग से भानुमान् के शरीर को बीच से काट दिया। इसप्रकार सबतरह के हथियारों से युक्त उस राजपुत्र को मारकर शत्रु का दमन करने वाले

भीम ने भार को सहन करनेवाली अपनी भारी तलवार को हाथी के कन्धे पर दे मारा। तब कन्धे के कट जाने पर समुद्र के वेग से भग्न होकर गिर पड़नेवाले, शिखरवाले पर्वत के समान, वह गजयूथपति चिंघाड़ता हुआ गिर पड़ा। हे भारत! तब वह भरतवंशी, कवचधारी भीम, हाथ में तलवार लिये बिना किसी दीनता के हाथी से कूदकर भूमि पर खड़े हो गये।

स चचार बहून् मार्गानभितः पातयन् गजान्॥ ३४॥
अग्निचक्रमिवाविद्धं पर्वतः प्रत्यदृश्यत।
अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाभिभूः॥ ३५॥
पदातीनां च संघेषु विनिघ्नञ्शोणितोक्षितः।
श्येनवद् व्यचरद् भीमो रणेऽरिषु बलोत्कटः॥ ३६॥
छिन्दंस्तेषां शरीराणि शिरांसि च महाबलः।

इसके पश्चात् वह दोनों तरफ अनेक मार्गों पर विचरण करते हुए हाथियों को मारकर गिराने लगे। उस समय वे अग्निचक्र के समान सब तरफ घूमते हुए दिखाई देते थे। सबको अपने वश में करनेवाले भीम तब घुड़सवारों, हाथीसवारों, रथियों और पैदलों की सेनाओं में घुसकर उनका संहार करते हुए, खून से लथपथ हो गये। बल में उत्कट महाबली भीम उनके शरीरों को काटते हुए, युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के बीच में बाज पक्षी के समान विचरण कर रहे थे।

भ्रान्तमाविद्धमुद्भ्रान्तमाप्लुतं प्रसृतं प्लुतम्॥ ३७॥
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास पाण्डवः।
केचिदग्रासिना छिन्नाः पाण्डवेन महात्मना॥ ३८॥
विनेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः।
छिन्नदन्ताग्रहस्ताश्च भिन्नकुम्भास्तथा परे॥ ३९॥
वियोधाः स्वान्यनीकानि जघ्नुर्भारत वारणाः।
निपेतुरुर्व्यां च तथा विनदन्तो महारवान्॥ ४०॥

पाण्डुपुत्र भीम ने उस समय खड्गविद्या के अनेक पैंतरों जैसे भ्रान्त, आविद्ध, उद्भ्रान्त, आप्लुत, प्रसृत, प्लुत, सम्पात और समुदीर्ण को दिखाया। मनस्वी पाण्डुपुत्र की श्रेष्ठ तलवार से छिन्न हुए अनेक हाथी मर्मस्थलों के भिन्न हो जाने पर प्राणहीन होकर गिर पड़े। किन्ही हाथियों के दाँत, किन्हीं की सूँड और किन्ही के मस्तक कट गये। हे भारत! उन्होंने तब युद्ध से विमुख होकर भागते हुए अपनी ही सेना को कुचल डाला और जोरजोर से चिंघाड़ते हुए भूमि पर गिरकर मर गये।

छिन्नगात्रावरकरैर्निहतैश्चापि वारणैः।
आसीद् भूमिः समास्तीर्णा पतितैर्भूधरैरिव॥ ४१॥
विमृद्यैवं महानागान् ममर्दान्यान् महाबलः।
अश्वारोहवरांश्चैव पातयामास संयुगे॥ ४२॥
तद् घोरमभवद् युद्धं तस्य तेषां च भारत।
आप्लुत्य रथिनः कांश्चित् परामृश्य महाबलः॥ ४३॥
पातयामास खड्गेन सध्वजानपि पाण्डवः।
मुहुरुत्पततो दिक्षु धावतश्च यशस्विनः॥ ४४॥
मार्गांश्च चरतश्चित्रं व्यस्मयन्त रणे जनाः।

जिनके शरीरों के ऊपरी भाग कट गये थे, सूँड कट गयी थी, ऐसे मरे हुए हाथियों से भरी हुई वह भूमि गिरे हुए पर्वतों से ढकी हुई प्रतीत हो रही थी। उस महाबली ने इसप्रकार विशाल हाथियों का संहार कर और दूसरे प्राणियों का भी विनाश आरम्भ कर दिया। उन्होंने युद्ध में बहुत से उत्तम घुड़सवारों को गिरा दिया। इस प्रकार हे भारत! वह युद्ध बड़ा भयानक चल रहा था। वे महाबली भीम उछलकर कितने ही रथियों के समीप पहुँच जाते थे और उन्हें पकड़कर ध्वजाओं सहित तलवार से काट गिराते थे। बार बार उछलते हुए, चारों तरफ दौड़ते हुए और विचित्र पैंतरों को अपनाते हुए यशस्वी भीम के पराक्रम को देखकर उस युद्ध में लोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था।

ततः कालिङ्गसैन्यानां प्रमुखे भरतर्षभ॥ ४५॥
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य भीमसेनः समभ्ययात्।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कालिङ्गो नवभिः शरैः॥ ४६॥
भीमसेनममेयात्मा प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे।
कालिङ्गबाणाभिहतस्तोत्रार्दित इव द्विपः॥ ४७॥
भीमसेनः प्रजज्वाल क्रोधेनाग्निरिवैधितः।
अथाशोकः समादाय रथं हेमपरिष्कृतम्॥ ४८॥
भीमं सम्पादयामास रथेन रथसारथिः।
तमारुह्य रथं तूर्णं कौन्तेयः शत्रुसूदनः॥ ४९॥
कालिङ्गमभिदुद्राव तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।

तब कलिंगों की सेना के अगले भाग में श्रुतायु को देखकर हे भरतश्रेष्ठ! भीमसेन उसकी तरफ बढ़े। उन्हें आता हुआ देखकर उस अमितआत्मा कलिंग वीर ने भीम को नौ बाणों से छाती के बीच

में बाँध दिया। अंकुश मारे हुए हाथी के समान कलिंग वीर के बाणों की चोट खाये हुए भीम प्रज्वलित अग्नि के समान क्रोध से जलने लगे। तभी भीम के रथ का सारथि अशोक स्वर्णभूषित दूसरे रथ को लेकर आया और उसने भीम को उसमें बिठा दिया। शीघ्रता से उस रथ में बैठकर शत्रुसूदन, कुन्तीपुत्र उस कलिंगवीर की तरफ दौड़े और बोले, खड़ा रह, खड़ा रह।

ततः श्रुतायुर्बलवान् भीमाय निशिताञ्शरान्॥ ५०॥
प्रेषयामास संक्रुद्धो दर्शयन् पाणिलाघवम्।
क्रुद्धश्च चापमायम्य बलवद् बलिनां वरः॥ ५१॥
कालिङ्गमवधीत् पार्थो भीमः सप्तभिरायसैः।
क्षुराभ्यां चक्ररक्षौ च कालिङ्गस्य महाबलौ॥ ५२॥
सत्यदेवं च सत्यं च प्राहिणोद् यमसादनम्।
ततः पुनरमेयात्मा नाराचैर्निशितैस्त्रिभिः॥ ५३॥
केतुमन्तं रणे भीमोऽगमयद् यमसादनम्।

तब बलवान् श्रुतायु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, अपना हस्तकौशल दिखाते हुए भीम के प्रति तीखे बाण चलाये। तब कुन्तीपुत्र, बलवानों में श्रेष्ठ भीम ने क्रुद्ध होकर अपने बलवान् धनुष को खींचकर सात लोहे के बाणों से उस कलिंगवीर का वध कर दिया। उसके पश्चात् उन्होंने दो क्षुर नाम के बाणों से उसके महाबली चक्ररक्षकों सत्यदेव और सत्य को मृत्युलोक में भेज दिया। उसके पश्चात उस अमितआत्मा भीम ने तीन तीखे नाराचों से युद्धस्थल में केतुमान् को मृत्यु के घर भेज दिया।

ततः कलिङ्गा संनद्धा भीमसेनममर्षणम्॥ ५४॥
अनीकैर्बहुसाहस्त्रैः क्षत्रियाः समवारयन्।
गदामादाय तरसा संनिपत्य महाबलः॥ ५५॥
भीमः सप्त शतान् वीराननयद् यमसादनम्।
पुनश्चैव द्विसाहस्त्रान् कलिङ्गानरिमर्दनः॥ ५६॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय तदद्भुतमिवाभवत्।
भीमसेनभयत्रस्तं सैन्यं च समकम्पत॥ ५७॥
क्षोभ्यमाणमसम्बाधं ग्राहेणेव महत् सरः।

तत्पश्चात् युद्ध के लिये तैयार कलिंगदेशीय क्षत्रियों ने कई हजार सैनिकों के साथ आकर उस अमर्षशील भीम को सब तरफ से रोक दिया। तब उस महाबली भीम ने गदा को लेकर और रथ से कूदकर सातसौ वीरों को मृत्युलोक में पहुँचा दिया और शत्रुओं का मर्दन करनेवाले उसने फिर दो हजार वीरों को मार दिया। यह एक अद्भुत बात हुई। जैसे किसी बड़े मगरमच्छ के द्वारा तालाब को मथ दिया जाता है, वैसे ही तब भीमसेन के भय से त्रस्त होकर वह सारीसेना काँपने लगी।

त्रासितेषु च सर्वेषु भीमेनाद्भुतकर्मणा॥ ५८॥
पुनरावर्तमानेषु विद्रवत्सु च सङ्घशः।
सर्वकालिङ्गयोधेषु पाण्डूनां ध्वजिनीपतिः॥ ५९॥
अब्रवीत् स्वान्यनीकानि युध्यध्वमिति पार्षतः।
सेनापतिवचः श्रुत्वा शिखण्डिप्रमुखा गणाः॥ ६०॥
भीममेवाभ्यवर्तन्त रथानीकैः प्रहारिभिः।
धर्मराजश्च तान् सर्वानुपजग्राह पाण्डवः॥ ६१॥
महता मेघवर्णेन नागानीकेन पृष्ठतः।

अद्भुत कर्म करनेवाले भीम के द्वारा सबके भयभीत किये जाने पर सारे कलिंगदेशीय योद्धा झुण्ड बनाकर बार बार भागने और लौटने लगे। तब पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपनी सेनाओं से कहा कि तुम लोग उत्साहपूर्वक युद्ध करो। सेनापति के वचन सुनकर शिखण्डी आदिलोग प्रहार करने में कुशल रथसेनाओं के साथ भीम का ही अनुसरण करने लगे। तब पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर भी विशाल मेघों के समान वर्णवाली गजसेना के साथ आकर उन सबकी सहायता करने लगे।

एवं संनोद्य सर्वाणि स्वान्यनीकानि पार्षतः॥ ६२॥
भीमसेनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः।
सोऽपश्यच्च कलिङ्गेषु चरन्तमरिसूदनः॥ ६३॥
भीमसेनं महाबाहुं पार्षतः परवीरहा।
ननर्द बहुधा राजन् हृष्टश्चासीत् परंतपः॥ ६४॥
शङ्खं दध्मौ च समरे सिंहनादं ननाद च।
स च पारावताश्वस्य रथे हेमपरिष्कृते॥ ६५॥
कोविदारध्वजं दृष्ट्वा भीमसेनः समाश्वसत्।

इस प्रकार अपनी सारी सेनाओं के उत्साह को बढ़ाकर, सत्पुरुषों से घिरे हुए धृष्टद्युम्न ने भीमसेन की पृष्ठरक्षा का कार्य सँभाल लिया। भीम की रक्षा के लिये जाते हुए, शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले, शत्रुदमन धृष्टद्युम्न ने महाबाहु भीम को कलिंग देशीय सैनिकों में विचरते हुए देखा। हे राजन्! उन्हें देखकर वे परंतप बहुत प्रसन्न हुए। वे बारबार गर्जने

लगे। उन्होंने शंख को बजाया और सिंहनाद किया। कबूतर के रंग के घोड़े जिसमें जुते हुए थे और कोविदार के चिह्न से चिह्नित पताका जिसमें लहरा रही थी, ऐसे सुनहले रथ में बैठे हुए धृष्टद्युम्न को देखकर भीम को बड़ा ढाढस मिला।

तौ दूरात् सात्यकिं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवृकोदरौ॥ ६६॥
कलिङ्गान् समरे वीरौ योधयेतां मनस्विनौ।
स तत्र गत्वा शैनेयो जवेन जयतां वरः॥ ६७॥
पार्थपार्षतयोः पार्ष्णिं जग्राह पुरुषर्षभः।
भीमसेनं तथा दृष्ट्वा प्राक्रोशंस्तावका नृप॥ ६८॥
कालोऽयं भीमरूपेण कलिङ्गैः सह युध्यते।
ततः शान्तनवो भीष्मः श्रुत्वा तं निनदं रणे॥ ६९॥
अभ्ययात् त्वरितो भीमं व्यूढानीकः समन्ततः।

तभी धृष्टद्युम्न और भीमसेन ने दूर से सात्यकि को आते हुए देखा। फिर तो वे दोनों मनस्वी युद्धस्थल में और अधिक उत्साह से कलिंगदेशी योद्धाओं से युद्ध करने लगे। पुरुषश्रेष्ठ और विजयी वीरों में अग्रणी सात्यकि ने वहाँ आकर कुन्तीपुत्र और द्रुपदपुत्र की पृष्ठरक्षा का कार्य सँभाल लिया। हे राजन्! भीमसेन को इस प्रकार विनाश करते हुए रूप में देखकर आपकी सेना के सैनिक चिल्लाकर कहने लगे कि यह तो साक्षात् मृत्यु ही कलिंग के सैनिकों के साथ लड़ रही है। तब शान्तनुपुत्र भीष्म युद्धस्थल में उस कोलाहल को सुनकर, सेनाओं को सबतरफ से व्यूहबद्धकर, शीघ्रता से भीम के पास पहुँचे।

तं सात्यकिर्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ ७०॥
अभ्यद्रवन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम्।
परिवार्य तु ते सर्वे गाङ्गेयं तरसा रणे॥ ७१॥
त्रिभिस्त्रिभिः शरैर्घोरैर्भीष्ममानर्च्छुरोजसा।
प्रत्यविध्यत तान् सर्वान् पिता देवव्रतस्तव॥ ७२॥
यतमानान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः।
ततः शरसहस्रेण संनिवार्य महारथान्॥ ७३॥
हयान् काञ्चनसंनाहान् भीमस्य न्यहनच्छरैः।
हताश्वे स रथे तिष्ठन् भीमसेनः प्रतापवान्॥ ७४॥
शक्तिं चिक्षेप तरसा गाङ्गेयस्य रथं प्रति।

तब भीष्म के उस स्वर्णभूषित रथपर सात्यकि, भीमसेन और धृष्टद्युम्न तीनों ने आक्रमण कर दिया। उन सब ने भीष्म को शीघ्रता से घेरकर उस युद्ध में तीनतीन भयानक बाणों से उन्हें यथाशक्ति पीड़ित किया। तब आपके पिता महाधनुर्धर देवव्रत ने भी प्रयत्न करते हुए उन तीनों को तीनतीन सीधे जानेवाले बाणों से बींधा। उसके पश्चात् उन तीनों को अपने हजारों बाणों से रोक कर उन्होंने भीम के सुनहरे साजवाले घोड़ों को अपने बाणों से मार दिया। मरे घोड़ोंवाले रथ पर ही बैठे हुए बहुत प्रतापी भीम ने तब भीष्म के रथ पर शीघ्रता से एक शक्ति को फैंका।

अप्राप्तामथ तां शक्तिं पिता देवव्रतस्तव॥ ७५॥
त्रिधा चिच्छेद समरे सा पृथिव्यामशीर्यत।
ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य बलवान् गदाम्॥ ७६॥
भीमसेनस्ततस्तूर्णं पुप्लुवे मनुजर्षभ।
सात्यकोऽपि ततस्तूर्णं भीमस्य प्रियकाम्यया॥ ७७॥
गाङ्गेय सारथिं तूर्णं, पातयामास सायकैः।
भीष्मस्तु निहते तस्मिन् सारथौ रथिनां वरः॥ ७८॥
वातायमानैस्तैरश्वैरपनीतो रणाजिरात्।

किन्तु आपके पिता देवव्रत ने उस शक्ति के अपने पास पहुँचने से पहले ही तीन टुकड़े कर उसे भूमि पर गिरा दिया। तब हे नरश्रेष्ठ! बलवान् भीमसेन तुरन्त एक सम्पूर्ण लोहे की बनी हुई भारी गदा को लेकर रथ से कूद पड़े। तब सात्यकि ने भी भीम का प्रिय करने की इच्छा से गंगापुत्र भीष्म के सारथि को तुरन्त अपने बाणों से मारकर गिरा दिया। सारथि के मर जाने पर वह वायु के समान तेजी से भागनेवाले भीष्म के घोड़े उन्हें युद्धक्षेत्र से बाहर ले गये।

भीमसेनस्ततो राजन्नपयाते महाव्रते॥ ७९॥
प्रजज्वाल यथा वह्निर्दहन् कक्षमिवेधितः।
स हत्वा सर्वकालिङ्गान् सेनामध्ये व्यतिष्ठत॥ ८०॥
नैनमभ्युत्सहन् केचित् तावका भरतर्षभ।
धृष्टद्युम्नस्तमारोप्य स्वरथे रथिनां वरः॥ ८१॥
पश्यतां सर्वसैन्यानामपोवाह यशस्विनम्।
सम्पूज्यमानः पाञ्चाल्यैर्मत्स्यैश्च भरतर्षभ॥ ८२॥
धृष्टद्युम्नं परिष्वज्य समेयादथ सात्यकिम्।

हे राजन्! उन महाव्रती भीष्म के चले जाने पर भीमसेन, घासफूस में लगी हुई आग के समान क्रोध से प्रज्वलित हो गये। कलिंग सेनिकों का संहार कर वे सेना के बीच में ही खड़े हुए थे। पर हे भरतश्रेष्ठ!

आपके कोई भी सैनिक उनके पास जाने का साहस न कर सके। तब रथियों में श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न उन यशस्वी को सारे सैनिकों के देखते हुए ही अपने रथ पर बैठाकर वहाँ से ले गये। हे भरतश्रेष्ठ! वहाँ पांचाल और मत्स्य देश के वीरों के द्वारा सम्मानित होते हुए भीम, धृष्टद्युम्न और सात्यकि से उन्हें छाती से लगाकर मिले।

अथाब्रवीद् भीमसेनं सात्यकिः सत्यविक्रमः॥ ८३॥
प्रहर्षयन् यदुव्याघ्रो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः।
दिष्ट्या कलिङ्गराजश्च राजपुत्रश्च केतुमान्॥ ८४॥
शक्रदेवश्च कालिङ्गः कलिङ्गाश्च मृधे हताः।
स्वबाहुबलवीर्येण नागाश्वरथसंकुलः॥ ८५॥
महापुरुषभूयिष्ठो धीरयोधनिषेवितः।
महाव्यूहः कलिङ्गानामेकेन मृदितस्त्वया॥ ८६॥

तब सत्यविक्रमी यदुश्रेष्ठ सात्यकि, धृष्टद्युम्न के समक्ष भीम को हर्षित करते हुए उनसे बोले कि बड़े सौभाग्य की बात है कि आपने युद्ध में कलिंगराज और राजपुत्र केतुमान् तथा शक्रदेव और दूसरे कलिंगदेश के वीरों को मार गिराया। आपने अकेले ही अपनी भुजाओं के पराक्रम से हाथी, रथ और घोड़ों से भरी हुई, जिसमें बहुत सारे महान पुरुष और धीर योद्धा थे, ऐसी कलिंग सेना के महान् व्यूह को रौंदकर मिट्टी में मिला दिया।

एवमुक्त्वा शिनेर्नप्ता दीर्घबाहुररिंदम।
रथाद् रथमभिद्रुत्य पर्यष्वजत पाण्डवम्॥ ८७॥
ततः स्वरथमास्थाय पुनरेव महारथः।
तावकानवधीत् क्रुद्धो भीमस्य बलमादधत्॥ ८८॥

ऐसा कहकर हे शत्रुओं को नष्ट करनेवाले! लम्बी भुजाओंवाले शिनि के पौत्र सात्यकि ने अपने रथ से भीम के रथ पर कूद कर भीम को छाती से लगा लिया। उसके पश्चात् वह महारथी सात्यकि फिर अपने रथ पर आकर भीम के बल को बढ़ाते हुए, क्रोध में भरकर आपकी सेना का संहार करने लगे।

सत्रहवाँ अध्याय : अभिमन्यु और अर्जुन का पराक्रम। दूसरे दिन की समाप्ति।

संजय उवाच

गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत।
रथनागाश्वपत्तीनां सादिनां च महाक्षये॥ १॥
द्रोणपुत्रेण शल्येन कृपेण च महात्मना।
समसज्जत पाञ्चाल्यस्त्रिभिरेतैर्महारथैः॥ २॥
स लोकविदितानश्वान् निजघान महाबलः।
द्रौणेः पाञ्चालदायादः शितैर्दशभिराशुगैः॥ ३॥
ततः शल्यरथं तूर्णमास्थाय हतवाहनः।
द्रौणिः पाञ्चालदायादमभ्यवर्षदथेषुभिः॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे भारत! उस दिन जब पूर्वाह्ण का अधिकांश भाग व्यतीत हो गया, रथ, हाथी, घोड़े और पैदलों का महान् विनाश होने लगा, अकेला धृष्टद्युम्न, अश्वत्थामा, शल्य और मनस्वी कृपाचार्य के साथ युद्ध करने लगा। तब उस महाबली ने दस तीखे और तीव्रगामी बाणों से अश्वत्थामा के लोक प्रसिद्ध घोड़ों को मार दिया। घोड़ों के मारे जाने पर अश्वत्थामा ने शीघ्रता से शल्य के रथ पर बैठकर धृष्टद्युम्न पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

धृष्टद्युम्नं तु संयुक्तं द्रौणिना वीक्ष्य भारत।
सौभद्रोऽभ्यपतत् तूर्णं विकिरन् निशिताञ्शरान्॥ ५॥
स शल्यं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः।
अश्वत्थामानमष्टाभिर्विव्याध पुरुषर्षभः॥ ६॥
आर्जुनिं तु ततस्तूर्णं द्रौणिर्विव्याध पत्रिणा।
शल्योऽथ दशभिश्चैव कृपश्च निशितैस्त्रिभिः॥ ७॥
लक्ष्मणस्तव पौत्रस्तु सौभद्रं समवस्थितम्।
अभ्यवर्तत संहृष्टस्ततो युद्धमवर्तत॥ ८॥

हे भारत! फिर धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा के साथ युद्ध करता हुआ देखकर सुभद्रापुत्र अभिमन्यु तीखे बाणों की वर्षा करते हुए तेजी से उस तरफ दौड़ा। उस पुरुषश्रेष्ठ ने शल्य को पच्चीस, कृपाचार्य को नौ और अश्वत्थामा को आठ बाणों से बींध दिया। तब द्रोणाचार्य के पुत्र ने शीघ्रता से अर्जुन के पुत्र को एक बाण से, शल्य ने दस और कृपाचार्य ने तीन तीखे बाणों से बींधा। तब आपके पौत्र लक्ष्मण ने सुभद्रापुत्र को सामने विद्यमान देखकर प्रसन्न होकर उस पर आक्रमण कर दिया। फिर दोनों में युद्ध होने लगा।

दौर्योधनिः सुसंक्रुद्धः सौभद्रं परवीरहा।
विव्याध समरे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ ९॥
अभिमन्युः सुसंक्रुद्धो भ्रातरं भरतर्षभ।
शरैःपञ्चाशता राजन् क्षिप्रहस्तोऽभ्यविध्यत॥ १०॥
लक्ष्मणोऽपि पुनस्तस्य धनुश्चिच्छेद पत्रिणा।
मुष्टिदेशे महाराज ततस्ते चुक्रुशुर्जनाः॥ ११॥
तद् विहाय धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा।
अन्यदादत्तवांश्चित्रं कार्मुकं वेगवत्तरम्॥ १२॥

शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले दुर्योधन के पुत्र ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हे राजन्! अभिमन्यु को युद्ध में बाणों से बींध दिया। यह एक अद्भुत बात हुई। हे भरतश्रेष्ठ! तब शीघ्रता से हाथ चलानेवाले अभिमन्यु ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने भाई को पचास बाणों से बींध दिया। हे महाराज! तब लक्ष्मण ने भी एक बाण से उसके धनुष को मुट्ठी के स्थान से काट दिया। यह देखकर आपके सैनिक हर्ष से कोलाहल करने लगे। तब शत्रु के वीरों को नष्ट करनेवाले सुभद्रापुत्र ने उस टूटे धनुष को छोड़कर एक दूसरा उससे अधिक वेगवाला विचित्र धनुष उठाया।

तौ तत्र समरे युक्तौ कृतप्रतिकृतैषिणौ।
अन्योन्यं विशिखैस्तीक्ष्णैर्जघ्नतुः पुरुषर्षभौ॥ १३॥
ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा पुत्रं महारथम्।
पीडितं तव पौत्रेण प्रायात् तत्र प्रजेश्वरः॥ १४॥
संनिवृत्ते तव सुते सर्व एव जनाधिपाः।
आर्जुनिं रथवंशेन समन्तात् पर्यवारयन्॥ १५॥
स तैः परिवृतः शूरैः शूरो युधि सुदुर्जयैः।
न स्म प्रव्यथते राजन् कृष्णतुल्यपराक्रमः॥ १६॥

इस प्रकार वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ युद्ध में लगे हुए एक दूसरे के कार्य का प्रतिकार करने के इच्छुक, तीखे बाणों से एक दूसरे को बींधने लगे। तब प्रजा का स्वामी राजा दुर्योधन अपने महारथी पुत्र को आपके पौत्र के द्वारा पीड़ित देखकर वहाँ स्वयं आ गया। आपके पुत्र के वहाँ जाने पर सारे ही राजाओं ने रथियों की सेना के द्वारा अर्जुन पुत्र को सब तरफ से घेर लिया पर हे राजन्! कृष्ण के समान पराक्रमी शूरवीर वह अभिमन्यु युद्ध में अत्यन्त दुर्जय शूरवीरों से घिरा हुआ होने पर भी व्यथित नहीं हुआ।

सौभद्रमथ संसक्तं दृष्ट्वा तत्र धनंजयः।
अभिदुद्राव वेगेन त्रातुकामः स्वमात्मजम्॥ १७॥
ततः सरथनागाश्वा भीष्मद्रोणपुरोगमाः।
अभ्यवर्तन्त राजानः सहिताः सव्यसाचिनम्॥ १८॥
तानि नागसहस्राणि भूमिपालशतानि च।
तस्य बाणपथं प्राप्य नाभ्यवर्तन्त सर्वशः॥ १९॥
हयारोहा हयांस्त्यक्त्वा गजारोहाश्च दन्तिनः।
अर्जुनस्य भयाद् राजन् समन्ताद् विप्रदुद्रुवुः॥ २०॥

जब अर्जुन ने सुभद्रापुत्र को युद्ध में वहाँ लगा हुआ देखा, तब अपने पुत्र को बचाने की इच्छा से वे उस तरफ जोर से दौड़े। तब रथ, हाथी, और घोड़ों की सेना के साथ भीष्म और द्रोणाचार्य को आगेकर दूसरे और राजालोग भी एकत्र होकर अर्जुन पर चढ़ आये। किन्तु अर्जुन के बाणों के मार्ग में आकर वे हजारों हाथी और सैकड़ों राजा लोग किसी प्रकार भी आगे नहीं बढ़ सके। हे राजन्! अर्जुन के भय से घुड़सवार घोड़ों को और हाथीसवार हाथियों को छोड़कर चारों तरफ भागने लगे।

रथेभ्यश्च गजेभ्यश्च हयेभ्यश्च नराधिपाः।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुनसायकैः॥ २१॥
सगदानुद्यतान् बाहून् सखड्गांश्च विशाम्पते।
सप्रासांश्च सतूणीरान् सशरान् सशरासनान्॥ २२॥
साङ्कुशान् सपताकांश्च तत्र तत्रार्जुनो नृणाम्।
निचकर्त शरैरुग्रै रौद्रं वपुरधारयत्॥ २३॥
नासीत् तत्र पुमान् कश्चित् तव सैन्यस्य भारत।
योऽर्जुनं समरे शूरं प्रत्युद्यायात् कथंचन॥ २४॥
यो यो हि समरे पार्थं प्रत्युद्याति विशाम्पते।
स संख्ये विशिखैस्तीक्ष्णैः परलोकाय नीयते॥ २५॥

अर्जुन के बाणों से राजालोग रथों से, हाथियों से और घोड़ों से गिरते हुए और गिराये जाते हुए दिखायी दे रहे थे। हे प्रजानाथ! वहाँ अर्जुन ने लोगों के उठे हुए हाथों को जिनमें गदा, खड्ग, प्रास, तूणीर, धनुषबाण, अंकुश और पताका उठाये हुए थे, अपने भयानक बाणों से काट दिया। इस प्रकार अर्जुन ने युद्ध में भयंकररूप धारण किया हुआ था। हे भारत! आपकी सेना में उस समय ऐसा कोई पुरुष नहीं था, जो किसी प्रकार से शूरवीर अर्जुन के सामने जा पाता। हे प्रजानाथ! उस युद्ध

क्षेत्र में जो जो भी अर्जुन की तरफ जाता था, वही उसके तीक्ष्ण बाणों के द्वारा परलोक में भेज दिया जाता था।

तेषु विद्रवमाणेषु तव योधेषु सर्वशः।
अर्जुनो वासुदेवश्च दध्मतुर्वारिजोत्तमौ॥ २६॥
तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पिता देवव्रतस्तव।
अब्रवीत् समरे शूरं भारद्वाजं स्मयन्निव॥ २७॥
एष पाण्डुसुतो वीरः कृष्णेन सहितो बली।
तथा करोति सैन्यानि यथा कुर्याद् धनंजयः॥ २८॥
न ह्येष समरे शक्यो विजेतुं हि कथंचन।
यथास्य दृश्यते रूपं कालान्तकयमोपमम्॥ २९॥

तब आपके योद्धाओं के सबतरफ भागना आरम्भ कर देने पर अर्जुन और श्रीकृष्ण ने अपने उत्तम शंखों को बजाया। तब उस सेना को छिन्न-भिन्न हुआ देखकर आपके पिता देवव्रत उस युद्धक्षेत्र में मुस्कराते हुए, शूरवीर द्रोणाचार्य से बोले कि कृष्ण के साथ यह बलवान् वीर पाण्डुपुत्र अर्जुन सेनाओं का ऐसा ही विनाश कर रहा है, जैसा इसे करना चाहिये। इस समय इसका रूप सबका अन्त करनेवाले काल और मृत्यु के समान प्रकट हो रहा है, इसे युद्ध में किसीप्रकार भी जीता नहीं जा सकता।

न निवर्तयितुं चापि शक्येयं महती चमूः।
अन्योन्यप्रेक्ष्या पश्य द्रवतीयं वरूथिनी॥ ३०॥
एष चास्तं गिरिश्रेष्ठं भानुमान् प्रतिपद्यते।
चक्षूंषि सर्वलोकस्य संहरन्निव सर्वथा॥ ३१॥
तत्रावहारं सम्प्राप्तं मन्येऽहं पुरुषर्षभ।
श्रान्ता भीताश्च नो योधा न योत्स्यन्ति कथंचन॥ ३२॥
एवमुक्त्वा ततो भीष्मो द्रोणमाचार्यसत्तमम्।
अवहारमथो चक्रे तावकानां महारथः॥ ३३॥

देखो एक दूसरे को देखकर यह सारी सेना भागी जा रही है। इस विशाल सेना को इस समय लौटाया नहीं जा सकता। उधर ये सूर्य भी सबकी आँखों की ज्योति को समेटते हुए अस्ताचलकी तरफ जा रहे हैं। इसलिये हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं अब सेनाओं को लौटा लेना ही ठीक समझता हूँ, क्योंकि ये थके हुए और डरे हुए योद्धालोग अब किसीतरह भी युद्ध नहीं कर सकेंगे। आचार्यप्रवर द्रोण से ऐसा कहकर महारथी भीष्म ने तब आपकी सेनाओं को युद्धभूमि से लौटा लिया।

अठारहवाँ अध्याय : तीसरे दिन - व्यूहरचना और घमासान युद्ध।

संजय उवाच

प्रभातायां च शर्वर्यां भीष्मः शान्तनवस्तदा।
अनीकान्यनुसंयाने व्यादिदेशाथ भारत॥ १॥
गारुडं च महाव्यूहं चक्रे शान्तनवस्तदा।
पुत्राणां ते जयाकाङ्क्षी भीष्मः कुरुपितामहः॥ २॥
गरुडस्य स्वयं तुण्डे पिता देवव्रतस्तव।
चक्षुषी च भरद्वाजः कृतवर्मा च सात्वतः॥ ३॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव शीर्षमास्तां यशस्विनौ।
त्रैगर्तैरथ कैकेयैर्वाटधानैश्च संयुगे॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे भारत! रात के बीतने और सवेरा होने पर शान्तनुपुत्र भीष्म ने सेनाओं को युद्ध भूमि में चलने का आदेश दिया। कुरुओं के पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म ने तब आपके पुत्रों की विजय की इच्छा से गरुड़ नामके महान् व्यूह की रचना की। वहाँ गरुड़ की चोंच के स्थान पर स्वयं आपके पिता देवव्रत खड़े हुए और दोनों नेत्रों के स्थान पर द्रोणाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा को खड़ा किया। यशस्वी अश्वत्थामा और कृपाचार्य को उन्होंने सिर के भाग में खड़ा किया। उनके साथ त्रिगर्त, केकय और वाटधान भी युद्धभूमि में उपस्थित थे।

भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष।
मद्रकाः सिन्धुसौवीरास्तथा पाञ्चनदाश्च ये॥ ५॥
जयद्रथेन सहिता ग्रीवायां संनिवेशिताः।
पृष्ठे दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः॥ ६॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजाश्च शकैः सह।
पुच्छमासन् महाराज शूरसेनाश्च सर्वशः॥ ७॥
मागधाश्च कलिङ्गाश्च दासेरकगणैः सह।
दक्षिणं पक्षमासाद्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः॥ ८॥

हे मान्यवर! भूरिश्रवा, शल, शल्य और भगदत्त, मद्रदेश के सैनिक जयद्रथ के साथ गर्दन के स्थान पर खड़े किये गये। अपने भाइयों और सेवकों से घिरा हुआ दुर्योधन उसकी पीठ के स्थान पर खड़ा

हुआ। अवन्ती कुमार विन्द और अनुविन्द कम्बोज देश के योद्धा शकों के साथ और शूरसेन देश के सैनिक पूँछ के स्थान पर खड़े किये गये। मगध और कलिंग देश के योद्धा दासेरकगणों के साथ कवच धारणकर व्यूह के दायें पंख की जगह स्थित किये गये।

कारूषाश्च विकुञ्जाश्च मुण्डाः कुण्डीवृषास्तथा।
बृहद्बलेन सहिता वामं पार्श्वमवस्थिताः॥ ९॥
व्यूढं दृष्ट्वा तु तत् सैन्यं सव्यसाची परंतपः।
धृष्टद्युम्नेन सहितः प्रत्यव्यूहत संयुगे॥ १०॥
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन व्यूहं तमतिदारुणम्।
दक्षिणं शृङ्गमास्थाय भीमसेनो व्यरोचत॥ ११॥
नानाशस्त्रौघसम्पन्नैर्नाना- देश्यैर्नृपैर्वृतः।
तदन्वेव विराटश्च द्रुपदश्च महारथः॥ १२॥

कारूष, विकुंज, मुण्ड और कुण्डीवृष देशों के योद्धा बृहद्बल के साथ बायींतरफ खड़े हो गये। तब उस सेना को व्यूहबद्ध देखकर परंतप अर्जुन ने धृष्टद्युम्न के साथ युद्धक्षेत्र में अपनी सेना का व्यूह बनाया। उसने अत्यन्त दारुण अर्धचन्द्राकार व्यूह की रचना की, जिसके दायें कोने पर भीमसेन सुशोभित हुए। उनके साथ अनेक प्रकार के शस्त्रों से सम्पन्न अनेक देशों के क्षत्रियलोग थे। महारथी द्रुपद और विराट उनके पीछे खड़े हुए।

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पञ्चालाश्च प्रभद्रकाः।
मध्ये सैन्यस्य महतः स्थिता युद्धाय भारत॥ १३॥
तत्रैव धर्मराजोऽपि गजानीकेन संवृतः।
ततस्तु सात्यकी राजन् द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः॥ १४॥
अभिमन्युस्ततः शूर इरावांश्च ततः परम्।
भैमसेनिस्तो राजन् केकयाश्च महारथाः॥ १५॥
ततोऽभूद् द्विपदां श्रेष्ठो वामं पार्श्वमुपाश्रितः।
एवमेतं महाव्यूहं प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः॥ १६॥
वधार्थं तव पुत्राणां तत्पक्षं ये च सङ्गताः।

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, पांचाल और प्रभद्रकलोग हे भारत! उस महान् सेना के मध्यभाग में युद्ध के लिये स्थित हुए। हाथियों की सेना से घिरे हुए धर्मराज युधिष्ठिर भी वहीं थे। उसके पश्चात् हे राजन्! सात्यकि और द्रौपदी के पाँचों पुत्र थे और उनके बाद अभिमन्यु तथा अभिमन्यु के बाद इरावान् थे। हे राजन्! उसके पश्चात् भीमसेनपुत्र घटोत्कच और महारथी केकयकुमार खड़े हुए थे। उसके पश्चात् बायें किनारे पर सारे मनुष्यों में श्रेष्ठ अर्जुन स्वयं विद्यमान थे। इस प्रकार पाण्डवों ने आपके पुत्रों के और उनके पक्ष में लड़नेवालों के वध के लिये इस महान् व्यूह की रचना की।

ततो व्यूढेष्वनीकेषु तावकेषु परेषु च॥ १७॥
धनंजयो रथानीकमवधीत् तव भारत।
शरैरतिरथो युद्धे दारयन् रथयूथपान्॥ १८॥
प्रार्थयाना यशो दीप्तं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्।
एकाग्रमनसो भूत्वा पाण्डवानां वरूथिनीम्॥ १९॥
बभञ्जुर्बहुशो राजंस्ते चासज्जन्त संयुगे।
द्रवद्भिरथ भग्नैश्च परिवर्तद्भिरेव च॥ २०॥
पाण्डवैः कौरवेयैश्च न प्राज्ञायत किंचन।

तब आपकी और शत्रुओं की सेना के व्यूहबद्ध हो जाने पर हे भारत! अर्जुन ने रथियों की सेना का संहार करना आरम्भ कर दिया। उसने अनेक रथ यूथपतियों को अपने बाणों से विदीर्ण कर दिया। किन्तु हे राजन्! वे रथयूथपति भी उज्ज्वल यश की कामना करते हुए, यह सोचकर कि मृत्यु ही हमें युद्ध से निवृत्त कर सकती है, एकाग्रचित्त होकर युद्ध में डटे रहे और उन्होंने पाण्डवों की सेना को अनेकप्रकार से छिन्नभिन्न किया। उस समय क्षत विक्षत होकर भागते हुए और पुनः युद्ध के लिये वापिस लौटते हुए पाण्डवों और कौरवों के सैनिकों को कुछ भी नहीं सूझ रहा था।

उदतिष्ठद् रजो भौमं छादयानं दिवाकरम्॥ २१॥
न दिशः प्रदिशो वापि तत्र हन्युः कथं नराः।
अनुमानेन संज्ञाभिर्नामगोत्रैश्च संयुगे॥ २२॥
वर्तते च तथा युद्धं तत्र तत्र विशाम्पते।
सेनाग्रादपि निष्पत्य प्रायुध्यंस्तत्र मानवाः॥ २३॥
उभयोः सेनयो राजन् व्यतिषक्तरथद्विपाः।
हयारोहैर्हयारोहाः पात्यन्ते स्म महाहवे॥ २४॥
ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च प्रासैरपि च संयुगे।

उस समय वहाँ भूमि पर से इतनी धूल उड़ी कि उसने सूर्य को भी ढक दिया, जिसके कारण दिशाओं और उपदिशाओं का पता लगना बन्द हो गया। लोगों को यह नहीं सूझ रहा था कि शत्रु पर प्रहार कैसे किया जाये? हे प्रजानाथ! वहाँ, जहाँ, तहाँ, अनुमान, संकेतों या नाम और गोत्र के उच्चारण से

ही युद्ध हो रहा था। हे राजन्! वहाँ मनुष्य अपनी सेना के अग्रभाग से भी बाहर निकलकर युद्ध करने लगते थे। दोनों सेनाओं के रथ और हाथी परस्पर भिड़े हुए थे। उस महान् युद्ध में घुड़सवार घुड़सवारों के द्वारा चमकीली ऋष्टियों और प्रासों के द्वारा गिरा दिये जाते थे।

गजारोहा गजारोहान् नाराचशरतोमरैः॥ २५॥
संसक्तान् पातयामासुस्तव तेषां च सर्वशः।
पत्तिसङ्घा रणे पत्तीन् भिन्दिपालपरश्वधैः॥ २६॥
न्यपातयन्त संहृष्टाः परस्परकृतागसः।
रथी च समरे राजन्नासाद्य गजयूथपम्॥ २७॥
सगजं पातयामास गजी च रथिनां वरम्।
रथिनं च हयारोहः प्रासेन भरतर्षभ॥ २८॥
पातयामास समरे रथी च हयसादिनम्।

आपके और उनके पक्ष के हाथीसवार लड़ते हुए हाथीसवारों के द्वारा नाराच, बाण और तोमरों की मार से गिरा दिये जाते थे। एक दूसरे का अपराध करनेवाले पैदलसैनिक उल्लास में भरकर भिन्दीपाल और फरसे से मारकर शत्रुओं के पैदल समूहों को गिरा रहे थे। हे राजन्! उस युद्धक्षेत्र में रथी हाथीसवार से भिड़ जाता और उसे उसके हाथी सहित गिरा देता था। इसीप्रकार हाथी सवार भी श्रेष्ठरथी को मार देता था। हे भरतश्रेष्ठ! अश्वारोही रथी को युद्ध में गिरा देता था और रथी अश्वारोही को मार देता था।

पदाती रथिनं संख्ये रथी चापि पदातिनम्॥ २९॥
न्यपातयच्छितैः शस्त्रैः सेनयोरुभयोरपि।
गजारोहा हयारोहान् पातयाञ्चक्रिरे तदा॥ ३०॥
हयारोहा गजस्थांश्च तदद्भुतमिवाभवत्।
पत्तिसङ्घा हयारोहैः सादिसङ्घाश्च पत्तिभिः॥ ३१॥
पात्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः।
नराश्वकायैः पतितैर्दन्तिभिश्च महाहवे॥ ३२॥
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा।

युद्ध में दोनों सेनाओं के पैदलसैनिक रथी को और रथी पैदलसैनिकों को अपने तीखे आयुधों के द्वारा गिरा रहे थे। कहीं हाथीसवार, घुड़सवारों को मार रहे थे तो कहीं घुड़सवार हाथीसवारों का वध कर देते थे। ये सारी घटनाएँ अद्भुत सी प्रतीत होती थीं। पैदलसैनिकों के समूह घुड़सवारों के द्वारा और घुड़सवारों के समूह पैदलसैनिकों के द्वारा सैंकड़ों और हजारों की संख्या में मारे जा रहे थे। उस महान् युद्ध में गिरे हुए हाथियों, मनुष्यों और घोड़ों की लाशों से भूमि पर माँस और रक्त की कीचड़ हो गयी थी और भूमि पर चलना कठिन हो गया था।

प्रशशाम रजो भौमं व्युक्षितं रणशोणितैः॥ ३३॥
दिशश्च विमलाः सर्वाः सम्बभूवुर्जनेश्वर।
ततो भीष्मश्च द्रोणश्च सैन्धवश्च जयद्रथः॥ ३४॥
पुरुमित्रो जयो भोजः शल्यश्चापि ससौबलः।
एते समरदुर्धर्षाः सिंहतुल्यपराक्रमाः॥ ३५॥
पाण्डवानामनीकानि बभञ्जुः स्म पुनः पुनः।
तथैव भीमसेनोऽपि राक्षसश्च घटोत्कचः॥ ३६॥
सात्यकिश्चेकितानश्च द्रौपदेयाश्च भारत।
तावकांस्तव पुत्रांश्च सहितान् सर्वराजभिः॥ ३७॥
द्रावयामासुराजौ ते त्रिदशा दानवानिव।

हे जनेश्वर! फिर बहनेवाले रक्त से भींगकर उड़ती हुई धूल शान्त हो गयी और सारी दिशाएँ निर्मल हो गयीं। तब भीष्म, द्रोणाचार्य, सिन्धुराज जयद्रथ, पुरुमित्र, जय, भोज, शल्य और शकुनि ये समर में दुर्धर्ष और सिंह के समान पराक्रमी वीर पाण्डवों की सेना का बारबार संहार करने लगे। उसीप्रकार भीमसेन, घटोत्कच राक्षस, सात्यकि, चेकितान और द्रौपदी के पुत्र हे भारत! सारे राजाओं के साथ आपके सैनिकों और पुत्रों को युद्धक्षेत्र में ऐसे खदेड़ने लगे जैसे देवताओं ने दानवों को भगाया था।

ततो रथसहस्रेण पुत्रो दुर्योधनस्तव॥ ३८॥
अभ्ययात् पाण्डवं युद्धे राक्षसं च घटोत्कचम्।
तथैव पाण्डवाः सर्वे महत्या सेनया सह॥ ३९॥
द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ प्रत्युद्ययुररिंदमौ।
किरीटी च ययौ क्रुद्धः समन्तात् पार्थिवोत्तमान्।
आर्जुनिः सात्यकिश्चैव ययतुः सौबलं बलम्॥ ४०॥

तब आपका पुत्र दुर्योधन एक हजार रथियों के साथ पांडववंशी राक्षस घटोत्कच का युद्ध में सामना करने के लिये आया। इसीप्रकार सारे पाण्डव भी महान् सेना के साथ युद्ध के लिये तैयार खड़े हुए शत्रुदमन भीष्म और द्रोणाचार्य से भिड़ने के लिये आगे बढ़े। क्रोध में भरे हुए अर्जुन अपने सामने खड़े हुए श्रेष्ठ राजाओं से युद्ध करने के लिये चले। अभिमन्यु और सात्यकि ने शकुनि की सेना पर आक्रमण किया।

उन्नीसवाँ अध्याय : पाण्डवों द्वारा कौरवसेना में भगदड़, भीष्म, दुर्योधन संवाद।

संजय उवाच

ततस्ते पार्थिवाः क्रुद्धाः फाल्गुनं वीक्ष्य संयुगे।
रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात् पर्यवारयन्॥ १॥
शरैः सुबहुसाहस्रैः, समन्तादभ्यवारयन्।
शस्त्राणामथ तां वृष्टिं शलभानामिवायतिम्॥ २॥
रुरोध सर्वतः पार्थः शरैः कनकभूषणैः।

तब उन राजाओं ने अर्जुन को रणक्षेत्र में देखकर, क्रुद्ध होकर अनेक सहस्र रथियों के साथ उन्हें चारों तरफ से घेर लिया और उनके ऊपर हजारों बाणों की वर्षा आरम्भ करदी। कुन्तीपुत्र अर्जुन ने शस्त्रों की उस वर्षा को पतंगों के समान समझते हुए, अपने स्वर्णभूषित अर्थात् सुनहले बाणों के द्वारा सबतरफ से रोक दिया।

सात्यकिश्चाभिमन्युश्च महत्या सेनया वृतौ॥ ३॥
गान्धारान् समरे शूराञ्जग्मतुः सहसौबलान्।
तत्र सौबलकाः क्रुद्धा वार्ष्णेयस्य रथोत्तमम्॥ ४॥
तिलशश्चिच्छिदुः क्रोधाच्छस्त्रैर्नानाविधैर्युधि।
सात्यकिस्तु रथं त्यक्त्वा वर्तमाने भयावहे॥ ५॥
अभिमन्यो रथं तूर्णमारुरोह परंतपः।
तावेकरथसंयुक्तौ सौबलेयस्य वाहिनीम्॥ ६॥
व्यधमेतां शितैस्तूर्णं शरैः संनतपर्वभिः।

उधर सात्यकि और अभिमन्यु ने महान् सेना के साथ सुबल के पुत्रोंसहित गान्धारों की सेना पर आक्रमण किया। तब सुबल के पुत्रों ने क्रुद्ध होकर उस युद्ध में सात्यकि के उत्तम रथ को अनेक प्रकार के आयुधों द्वारा तिल तिल कर के काट दिया। हे परंतप! तब सात्यकि उस भयानक संग्राम में अपने रथ को छोड़कर शीघ्रता से अभिमन्यु के रथ पर जा बैठे। फिर एक ही रथ पर बैठे हुए वे दोनों झुकी हुई गांठोंवाले तीखे बाणों के द्वारा शीघ्रता से शकुनि की सेना का संहार करने लगे।

द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ धर्मराजस्य वाहिनीम्॥ ७॥
नाशयेतां शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः।
ततो धर्मसुतो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ ८॥
मिषतां सर्वसैन्यानां द्रोणानीकमुपाद्रवन्।
कुर्वाणौ सुमहत् कर्म भीमसेनघटोत्कचौ॥ ९॥
दुर्योधनस्ततोऽभ्येत्य तावुभावप्यवारयत्।
तत्राद्भुतमपश्याम हैडिम्बस्य पराक्रमम्॥ १०॥
अतीत्य पितरं युद्धे यदयुध्यत भारत।

उधर युद्ध के लिये उद्यत द्रोणाचार्य और भीष्म धर्मराज युधिष्ठिर की सेना का कंकपत्र से युक्त तीखे बाणों के द्वारा विनाश करने लगे। तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर और माद्री के दोनों पुत्रों नकुल तथा सहदेव ने सारी सेनाओं के देखते हुए ही द्रोणाचार्य की सेना पर आक्रमण कर दिया। भीमसेन और घटोत्कच युद्ध में महान् कर्म कर रहे थे, तभी दुर्योधन ने उनके सामने आकर उन्हें रोक दिया। हे भारत! उस समय वहाँ हमने घटोत्कच का महान् पराक्रम देखा। वह अपने पिता से भी बढ़कर युद्ध कर रहा था।

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो दुर्योधनममर्षणम्॥ ११॥
हृद्यविध्यत् पृषत्केन, प्रहसन्निव पाण्डवः।
ततो दुर्योधनो राजा प्रहारवरपीडितः॥ १२॥
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह।
तं विसंज्ञं विदित्वा तु त्वरमाणोऽस्य सारथिः॥ १३॥
अपोवाह रणाद् राजंस्ततः सैन्यमभज्यत।
ततस्तां कौरवीं सेनां द्रवमाणां समन्ततः॥ १४॥
निघ्नन् भीमः शरैस्तीक्ष्णैरनुवव्राज पृष्ठतः।

तब भीमसेन ने अत्यन्त क्रोध में भरकर, मुस्कराते हुए अमर्षशील दुर्योधन की छाती को बाण से विद्ध करदिया। राजा दुर्योधन उस उत्तम प्रहार से पीड़ित होकर रथ की बैठक में बैठ गया और मूर्च्छित हो गया। हे राजन्! उसे मूर्च्छित देख कर उसका सारथी शीघ्रता से उसे वहाँ से ले गया। फिर उसकी सेना भागने लगी। तब सबतरफ भागती हुई उस कौरवसेना को भीम पीछे से तीखे बाणों के द्वारा खदेड़ने लगे।

पार्षतश्च रथश्रेष्ठो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः॥ १५॥
द्रोणस्य पश्यतः सैन्यं गाङ्गेयस्य च पश्यतः।
जघ्नतुर्विशिखैस्तीक्ष्णैः परानीकविनाशनैः॥ १६॥
द्रवमाणं तु तत् सैन्यं तव पुत्रस्य संयुगे।
नाशक्नुतां वारयितुं भीष्मद्रोणौ महारथौ॥ १७॥

ततो रथसहस्रेषु विद्रवत्सु ततस्ततः।
तावास्थितावेकरथं सौभद्रशिनिपुङ्गवौ॥ १८॥
सौबलीं समरे सेनां शातयेतां समन्ततः।
शुशुभाते तदा तौ तु शैनेयकुरुपुङ्गवौ॥ १९॥
अमावास्यां गतौ यद्वत् सोमसूर्यौ नभस्तले।

दुर्धर श्रेष्ठरथी धृष्टद्युम्न और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर भी द्रोणाचार्य और गंगापुत्र भीष्म के देखते हुए, उनकी सेना को शत्रुसेना का विनाश करनेवाले तीखे बाणों से मारने लगे। उस युद्धस्थल में आपके पुत्र की भागती हुई सेना को महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य भी नहीं रोक सके। जब हजारों रथी जहाँ तहाँ भाग रहे थे तब एक रथ पर बैठे हुए शिनिश्रेष्ठ सात्यकि और सुभद्रापुत्र अभिमन्यु सब तरफ से शकुनि की सेना का संहार करने लगे। एक ही रथ पर बैठे हुए वे दोनों सात्यकि और अभिमन्यु ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे अमावस्या के दिन आकाश में सूर्य और चन्द्रमा एक ही स्थान पर विद्यमान होकर होते हैं।

अर्जुनस्तु ततः क्रुद्धस्तव सैन्यं विशाम्पते॥ २०॥
ववर्ष शरवर्षेण धाराभिरिव तोयदः।
वध्यमानं ततस्तत्र शरैः पार्थस्य संयुगे॥ २१॥
दुद्राव कौरवं सैन्यं विषादभयकम्पितम्।
द्रवतस्तान् समालक्ष्य भीष्मद्रोणौ महारथौ॥ २२॥
न्यवारयेतां संरब्धौ दुर्योधनहितैषिणौ।

हे प्रजानाथ! तब अर्जुन ने भी क्रुद्ध होकर आपकी सेना पर पानी बरसानेवाले बादलों के समान बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। उस युद्ध में अर्जुन के बाणों से मारी जाती हुई कौरवसेना विषाद और भय से काँपती हुई भागने लगी। तब महारथी भीष्म और द्रोण उसे भागता हुआ देख कर क्रोध में भरकर, दुर्योधन के हित की इच्छा से उसे रोकने लगे।

ततो दुर्योधनो राजा समाश्वस्य विशाम्पते॥ २३॥
न्यवर्तयत तत् सैन्यं द्रवमाणं समन्ततः।
यत्र यत्र सुतस्तुभ्यं यं यं पश्यति भारत॥ २४॥
तत्र तत्र न्यवर्तन्त क्षत्रियाणां महारथाः।
तान् निवृत्तान् समीक्ष्यैव ततोऽन्येऽपीतरेजनाः॥ २५॥
अन्योन्यस्पर्धया राजल्लँज्जया चावतस्थिरे।
पुनरावर्ततां तेषां वेग आसीद् विशाम्पते॥ २६॥
पूर्यतः सागरस्येव चन्द्रस्योदयनं प्रति।

हे प्रजानाथ! दुर्योधन ने होश में आकर, उस भागती हुई सेना को सबतरफ से वापिस लौटाया। हे भारत! आपका पुत्र जिसजिस तरफ देखता था, उसउस तरफ के महारथी क्षत्रिय वापिस लौट आते थे। हे राजन्! उन्हें लौटा हुआ देखकर दूसरेलोग भी एकदूसरे की स्पर्धा से लज्जित होकर लौट आते थे। हे महाराज! वापिस लौटते हुए उन योद्धाओं का वेग चन्द्रमा के उदय होने पर बढ़ते हुए सागर के समान प्रतीत हो रहा था।

संनिवृत्तांस्ततस्तांस्तु दृष्ट्वा राजा सुयोधनः॥ २७॥
अब्रवीत् त्वरितो गत्वा भीष्मं शान्तनवं वचः।
पितामह निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि भारत॥ २८॥
नानुरूपमहं मन्ये त्वयि जीवति कौरव।
द्रोणे चास्त्रविदां श्रेष्ठे सपुत्रे ससुहृज्जने॥ २९॥
कृपे चैव महेष्वासे द्रवते यद् वरूथिनी।
न पाण्डवान् प्रतिबलांस्तव मन्ये कथंचन॥ ३०॥
तथा द्रोणस्य संग्रामे द्रौणेश्चैव कृपस्य च।

उन सब को वापिस लौटा हुआ देखकर राजा दुर्योधन शीघ्रता से शान्तनुपुत्र भीष्म के पास जाकर बोला कि हे पितामह! हे भारत! मैं जो आपसे कह रहा हूँ, उसे सुनिये। मैं इसे आपलोगों के अनुरूप नहीं समझता कि हे कौरव। आपके जीवित रहते अस्त्रविद्या में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य के अपने तथा अपने पुत्र और मित्रों के जीवित रहते और महाधनुर्धर कृपाचार्य के जीवित रहते हुए सेना भाग रही है। मैं किसीप्रकार भी युद्ध में पाण्डवों को आपके, द्रोणाचार्य के, अश्वत्थामा के और कृपाचार्य के समान नहीं मान सकता।

अनुग्राह्याः पाण्डुसुतास्तव नूनं पितामह॥ ३१॥
यथेमां क्षमसे वीर वध्यमानां वरूथिनीम्।
सोऽस्मि वाच्यस्त्वया राजन् पूर्वमेव समागमे॥ ३२॥
न योत्स्ये पाण्डवान् संख्ये नापि पार्षतसात्यकी।
श्रुत्वा तु वचनं तुभ्यमाचार्यस्य कृपस्य च॥ ३३॥
कर्णेन सहितः कृत्यं चिन्तयानस्तदैव हि।
यदि नाहं परित्याज्यो युवाभ्यामिह संयुगे॥ ३४॥
विक्रमेणानुरूपेण युध्येतां पुरुषर्षभौ।

हे पितामह वीर! निश्चय ही पाण्डुपुत्र आपके कृपापात्र हैं, इसलिये आप मारी जाती हुई सेना को सहन कर रहे हैं। हे महाराज! आपको युद्ध से पहले

ही कह देना चाहिये था कि मैं युद्धस्थल में पाण्डवों, धृष्टद्युम्न और सात्यकि से युद्ध नहीं करूँगा उस समय आपके, आचार्य के और कृपाचार्य के वचनों को सुनकर मैं तभी कर्ण के साथ अपने कर्त्तव्य को सोच लेता। हे पुरुषश्रेष्ठों! यदि मैं आप लोगों के द्वारा त्यागने के योग्य नहीं हूँ तो आपदोनों अपने पराक्रम के अनुसार युद्ध कीजिये।

एतच्छ्रुत्वा वचो भीष्मः प्रहसन् वै मुहुर्मुहुः॥ ३५॥
अब्रवीत् तनयं तुभ्यं क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी।
बहुशोऽसि मया राजंस्तथ्यमुक्तो हितं वचः॥ ३६॥
अजेयाः पाण्डवा युद्धे देवैरपि सवासवैः।
यत् तु शक्यं मया कर्तुं वृद्धेनाद्य नृपोत्तम॥ ३७॥
करिष्यामि यथाशक्ति प्रेक्षेदानीं सबान्धवः।
अद्य पाण्डुसुतानेकः ससैन्यान् सह बन्धुभिः।
सोऽहं निवारयिष्यामि सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ३८॥

ये बातें सुनकर भीष्म बारबार हँसते हुए और क्रोध से आँखें तरेरते हुए आपके पुत्र से बोले कि हे राजन्! मैने बहुतबार यह सत्य और हित की बात बतायी थी कि पाण्डव युद्ध में इन्द्रसहित देवताओं से भी नहीं जीते जा सकते। फिर भी हे राजश्रेष्ठ! मैं बूढ़ा व्यक्ति जोकुछ कर सकता हूँ, वह आज अपनी शक्ति के अनुसार करूँगा। अब तुम अपने बान्धवों के साथ देखना। आज मैं सारेलोगों के देखते हुए, सेना और बन्धुओंसहित पाण्डवों को आगे बढ़ने से रोक दूँगा।

बीसवाँ अध्याय : भीष्म पराक्रम। श्रीकृष्ण की भीष्म के वध हेतु तैयारी। अर्जुन द्वारा कौरव सेना की हार। तीसरे दिन की समाप्ति।

संजय उवाच– गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत।
पश्चिमां दिशमास्थाय स्थिते चापि दिवाकरे॥ १॥
जयं प्राप्तेषु हृष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु।
सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव॥ २॥
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः पाण्डवानामनीकिनीम्।
महत्या सेनया गुप्तस्तव पुत्रैश्च सर्वशः॥ ३॥
धनुषां कूजतां तत्र तलानां चाभिहन्यताम्।
महान् समभवच्छब्दो गिरीणामिव दीर्यताम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे भारत। उस दिन जब दिन का पूर्वाह्ण अधिकांश रूप में व्यतीत हो गया, सूर्य पश्चिम दिशा की तरफ जाकर स्थित हो गया और महात्मा पाण्डवलोग जय को प्राप्तकर प्रसन्न हो रहे थे तब सारे धर्मों के विशेषज्ञ आपके पिता देवव्रत ने, विशाल सेना और आपके पुत्रों के द्वारा सर्वथा सुरक्षित होकर, शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा पाण्डवों की सेना पर आक्रमण किया। उस समय वहाँ धनुषों की टंकार तथा हथेलियों के आघात से पर्वतों के फटने जैसी आवाज हो रही थी।

तिष्ठ स्थितोऽस्मि विद्ध्येनं निवर्तस्व स्थिरो भव।
स्थिरोऽस्मि प्रहरस्वेति शब्दोऽश्रूयत सर्वशः॥ ५॥
काञ्चनेषु तनुत्रेषु किरीटेषु ध्वजेषु च।
शिलानामिव शैलेषु पतितानामभूद् ध्वनिः॥ ६॥
न दृष्टं न श्रुतं वापि युद्धमेतादृशं नृप।
यथा तव सुतानां च पाण्डवानां च भारत॥ ७॥
नासीद् रथपथस्तत्र योधैर्युधि निपातितैः।
गजैश्च पतितैर्नीलैर्गिरिशृङ्गैरिवावृतः॥ ८॥

उस समय, खड़े रहो, मैं खड़ा हूँ, इसे बींध डालो, लौटो, स्थिरभाव से खड़े रहो, स्थिरभाव से खड़ा हूँ, तुम प्रहार करो, इसप्रकार के शब्द सबतरफ सुनाई दे रहे थे। सुनहले कवचों, किरीटों और ध्वजों से जब शस्त्रास्त्र टकराते थे, तब पर्वतों पर शिलाओं के गिरने जैसी ध्वनि होती थी, हे भरतवंशी राजन्! उस समय आपके पुत्रों और पाण्डवों में जैसा युद्ध चल रहा था, वैसा न हमने पहले कभी देखा था और न उसके बारे में सुना था। योद्धाओं के द्वारा युद्ध में गिराये हुए नीले गिरि शिखरों के समान हाथियों के कारण वहाँ रथों के चलने का मार्ग नहीं रहा था।

विनिर्भिन्नाः शरैः केचिदन्त्रापीडप्रकर्षिणः।
अभीताः समरे शत्रूनभ्यधावन्त दर्पिताः॥ ९॥
तात भ्रातः सखे बन्धो वयस्य मम मातुल।
मा मां परित्यजेत्यन्ये चुक्रुशुः पतिता रणे॥ १०॥
अथाभ्येहि त्वमागच्छ किं भीतोऽसि क्व यास्यसि।
स्थितोऽहं समरे मा भैरिति चान्ये विचुक्रुशुः॥ ११॥
तत्र भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः।
मुमोच बाणान् दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव॥ १२॥

कुछलोग वहाँ बाणों से घायल हो आँतों में होने वाले दर्द से अत्यन्त बेचैन होने पर भी अभिमान के कारण निर्भयभाव से शत्रुओं की तरफ दौड़ रहे थे। दूसरेलोग वहाँ युद्ध भूमि में पड़े हुए हे तात! हे भाई, हे मित्र! हे मेरे मामा, मुझे छोड़कर मत जाओ, इस प्रकार चिल्ला रहे थे। कुछ दूसरे सैनिक चिल्लाकर कह रहे थे कि अरे आओ, मेरे पास आओ, क्यों डरे हुए हो? कहाँ जाओगे? मैं युद्ध में डटा हुआ हूँ। डरो मत आदि। वहाँ भीष्म अपने धनुष से जो सदा गोलाकार ही दिखाई देता था, विषैले सर्पों के समान भयंकर प्रज्वलित नोकों वाले बाणों को छोड़ रहे थे।

स नृत्यन् वै रथोपस्थे दर्शयन् पाणिलाघवम्।
अलातचक्रवद् राजंस्तत्र तत्र स्म दृश्यते॥ १३॥
मायाकृतात्मानमिव भीष्मं तत्र स्म मेनिरे।
पूर्वस्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्रतीच्यां ददृशुर्जनाः॥ १४॥
उदीच्यां चैवमालोक्य दक्षिणस्यां पुनः प्रभो।
एवं स समरे शूरो गाङ्गेयः प्रत्यदृश्यत॥ १५॥
न चैवं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति वीक्षितुम्।
विशिखानेव पश्यन्ति भीष्मचापच्युतान् बहून्॥ १६॥

हे राजन! वे रथ की बैठक पर अपने हस्त कौशल को दिखाते हुए मानो नृत्य सा कर रहे थे और घूमते हुए अलातचक्र के समान जहाँतहाँ दिखाई देते थे। उस समय वहाँ लोग यह समझ रहे थे कि भीष्म ने शायद माया के द्वारा अपने अनेक रूप बना लिये हैं, क्योंकि जिन्होंने उन्हें अभी पूर्वदिशा में देखा था, वे ही अब उन्हें पश्चिमदिशा में देख रहे थे, जिन्होंने उन्हें अभी उत्तरदिशा में देखा था, वे ही अब उन्हें दक्षिणदिशा में देख रहे थे। हे प्रभो! वे शूरवीर गंगापुत्र इसप्रकार सबतरफ दिखाई दे रहे थे। पाण्डवों में से तो कोई उन्हें देख ही नहीं पाता था। उन्हें तो भीष्म के धनुष से निकलते हुए बहुतसारे बाण ही दिखाई देते थे।

कुर्वाणं समरे कर्म सूदयानं च वाहिनीम्।
व्याक्रोशन्त रणे तत्र नरा बहुविधा बहु॥ १७॥
अमानुषेण रूपेण चरन्तं पितरं तव।
शलभा इव राजानः पतन्ति विधिचोदिताः॥ १८॥
भीष्माग्निमभिसंक्रुद्धं विनाशाय सहस्रशः।
न हि मोघः शरः कश्चिदासीद् भीष्मस्य संयुगे॥ १९॥
नरनागाश्वकायेषु बहुत्वाल्लघुयोधिनः।
प्रच्छादयञ्शरान् भीष्मो निशितान् कङ्कपत्रिणः॥ २०॥

वहाँ युद्धक्षेत्र में महान् कर्मों को करते हुए, शत्रुसेना को पीडित करते हुए और अमानुष रूप में विचरते हुए आपके पिता भीष्म के बारे में लोग तरहतरह की बहुतसारी बातें कर रहे थे। अत्यन्त क्रुद्ध भीष्मरूपी अग्नि में उस समय हजारों क्षत्रिय लोग मानो अपने विनाश के लिये परमात्मा से प्रेरित होकर पतंगों के समान गिर रहे थे। उस युद्ध में भीष्म के द्वारा चलाया हुआ कोई भी बाण व्यर्थ नहीं जाता था, वह मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के शरीरों पर पड़ता ही था, क्योंकि एक तो वह बड़ी फुर्ती से चलाते थे, दूसरे उनके पास बाण बहुत थे। वे कंकपत्र से युक्त तीखे बाणों की वर्षा कर रहे थे।

भिनत्त्येकेन बाणेन सुमुखेन पतत्रिणः।
गजकण्टकसंनद्धं वज्रेणेव शिलोच्चयम्॥ २१॥
द्वौ त्रीनपि गजारोहान् पिण्डितान् वर्मितानपि।
नाराचेन सुमुक्तेन निजघान पिता तव॥ २२॥
यो यो भीष्मं नरव्याघ्रमभ्येति युधि कश्चन।
मुहूर्तदृष्टः स मया पतितो भुवि दृश्यते॥ २३॥
एवं सा धर्मराजस्य वध्यमाना महाचमूः।
भीष्मेणातुलवीर्येण व्यशीर्यत सहस्रधा॥ २४॥

वे एक ही तीखी नोक और पंखवाले बाण से काँटोंवाले कवच से युक्त हाथी को इसप्रकार बींध देते थे, जैसे विद्युत् पर्वत को विदीर्ण कर देती है। हाथी पर इकट्ठे बैठे हुए और कवच पहने हुए दो या तीन सवारों को अच्छीतरह से छोड़े हुए एक ही नाराच से आपके पिता छेद देते थे। युद्ध स्थल में नरव्याघ्र भीष्म के समीप जो कोई भी जाता था, वह एक ही क्षण के लिये खड़ा हुआ दिखाई देकर, दूसरे, क्षण भूमि पर गिरा हुआ दिखाई देता था। इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर की वह महान् सेना अद्वितीय पराक्रमी भीष्म के द्वारा हजारों भागों में बिखेर दी गयी।

प्राकम्पत महासेना शरवर्षेण तापिता।
आविद्धनरनागाश्वं पतितध्वजकूबरम्॥ २५॥
अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम्।
प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः॥ २६॥
उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम्।

उनकी बाणवर्षा से सन्तप्त होकर वह महान सेना काँपने लगी। उस सेना के सैनिक, हाथी, घोड़े बाणों से छिद गये थे, ध्वजाएँ और कूबर टूट कर गिर पड़े थे। इसप्रकार पाण्डवों की सेना अचेतन सी होकर हाहाकार कर रही थी। तब सेना को इसप्रकार भागते हुए देखकर यादवनन्दन श्रीकृष्ण ने कुन्तीपुत्र अर्जुन से अपने उत्तम रथ को खड़ा करके कहा कि—

अयं स कालः सम्प्राप्तः पार्थ यस्तेऽभिकाङ्क्षितः॥ २७॥
प्रहरस्व नरव्याघ्र न चेन्मोहाद् विमुह्यसे।
यत् त्वया कथितं वीर पुरा राज्ञां समागमे॥ २८॥
भीष्मद्रोणमुखान् सर्वान् धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान्।
सानुबन्धान् हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति संयुगे॥ २९॥
इति तत् कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिंदम।
बीभत्सो पश्य सैन्यं स्वं भज्यमानं ततस्ततः॥ ३०॥

हे कुन्तीपुत्र! जिसकी तुम कामना कर रहे थे, वही समय यह आ गया है। हे नरश्रेष्ठ! यदि तुम मोह से कर्त्तव्यविमूढ़ नहीं हो गये हो तो पूरीशक्ति से युद्ध करो। हे वीर! पहले राजाओं की सभा में तुमने जो कहा था कि जो युद्ध में मेरा सामना करेंगे, उन भीष्म, द्रोणादि, दुर्योधन के सैनिकों को उनके सेवकोंसहित मार दूँगा। हे शत्रुओं को दमन करने वाले उस वाक्य को सत्य करो। हे अर्जुन! तुम अपनी सेना को इधरउधर भागते हुए देखो।

दृष्ट्वा हि भीष्मं समरे व्यात्ताननमिवान्तकम्।
भयार्ताः प्रपलायन्ते सिंहात् क्षुद्रमृगा इव॥ ३१॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच वासुदेवं धनंजयः।
नोदयाश्वान् यतो भीष्मो विगाह्यैतद् बलार्णवम्॥ ३२॥
पातयिष्यामि दुर्धर्षं वृद्धं कुरुपितामहम्।
ततोऽश्वान् रजतप्रख्यान् नोदयामास माधवः॥ ३३॥
यतो भीष्मरथो राजन् दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव।
ततस्तत् पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत्॥ ३४॥
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे।

मुँह फाड़े हुए मृत्यु के समान भीष्म को युद्ध में देखकर ये सेना के लोग ऐसे भाग रहे हैं, जैसे सिंह को देखकर छोटे पशु भागते हैं। ऐसा कहे जाने पर अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से कहा कि आप इस विशाल सेनारूपी सागर में प्रवेश कीजिये और रथ वहीं ले चलिये, जहाँ भीष्म हैं। मैं दुर्धर्षवीर, बूढ़े कुरुओं के पितामह को मारकर गिरा दूँगा! हे राजन्! तब श्रीकृष्णजी ने चाँदी के समान सफेद घोड़ों को उसतरफ ही हाँका जिधर सूर्य के समान दुर्दर्शनीय भीष्म का रथ विद्यमान था तब महाबाहु अर्जुन को भीष्म के साथ युद्ध करने के लिये तैयार देखकर युधिष्ठिर की विशाल सेना फिर वापिस लौट आयी।

ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठ सिंहवद् विनदन् मुहुः॥ ३५॥
धनंजयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत्।
क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः॥ ३६॥
शरवर्षेण महता संछन्नो न प्रकाशते।
वासुदेवस्त्वसम्भ्रान्तोधैर्यमास्थाय सत्त्ववान्॥ ३७॥
चोदयामास तानश्वान् विचितान् भीष्मसायकैः।
ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम्॥ ३८॥
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्त्वा त्रिभिःशरैः।

हे कुरुश्रेष्ठ! फिर भीष्म ने सिंह के समान बार बार गर्जना करते हुए अर्जुन के ऊपर शीघ्रता से बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। थोड़ीदेर के लिये उनका वह रथ, घोड़ों और सारथिसहित महान् बाण वर्षा से ढक गया और दिखाई देना बन्द हो गया। शक्तिशाली श्रीकृष्ण तब धैर्य को धारणकर बिना घबराये, भीष्म के बाणों से भरे हुए घोड़ों को ही हाँकते रहे। तब अर्जुन ने अपने बादलों के समान ध्वनिवाले दिव्यधनुष को लेकर तीन बाणों से भीष्म के धनुष को काट दिया।

स च्छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद् धनुः॥ ३९॥
निमिषान्तरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव।
विचकर्ष ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम्॥ ४०॥
अथास्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः।
तस्य तत् पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः॥ ४१॥
साधु पार्थ महाबाहो साधु भोः पाण्डुनन्दन।
त्वय्येवैतद् युक्तरूपं महत् कर्म धनंजय॥ ४२॥
प्रीतोऽस्मि सुभृशं पुत्र कुरु युद्धं मया सह।

धनुष के कटजाने पर आपके पिता कुरुवंशी भीष्म ने एकही क्षण में दूसरे विशालधनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। फिर मेघ के समान ध्वनि वाले उस धनुष को उन्होंने दोनों हाथों से खींचा, पर क्रुद्ध हुए अर्जुन ने उस दूसरे धनुष को भी काट दिया। शान्तनुपुत्र भीष्म ने अर्जुन की इस फुर्ती की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि हे महाबाहु कुन्तीपुत्र! हे

पाण्डुनन्दन! तुम्हें साधुवाद! हे अर्जुन! यह महान् कर्म तुम्हारे ही योग्य है। हे पुत्र! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे युद्ध करो।

इति पार्थं प्रशस्याथ प्रगृह्यान्यन्महद् धनुः॥ ४३॥
मुमोच समरे वीरः शरान् पार्थरथं प्रति।
अदर्शयद् वासुदेवो हययाने परं बलम्॥ ४४॥
मोघान् कुर्वञ्शरांस्तस्य मण्डलान्याचरल्लघु।
तथा भीष्मस्तु सुदृढं वासुदेवधनंजयौ॥ ४५॥
विव्याध निशितैर्बाणैः सर्वगात्रेषु भारत।
शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ॥ ४६॥
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणैर्लिखिताङ्कितौ।

अर्जुन की इस प्रकार प्रशंसा कर और एक दूसरे विशालधनुष को लेकर उस वीर ने फिर अर्जुन पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। उस समय श्रीकृष्ण ने फुर्ती से घोड़ों को हाँकते हुए रथ को गोलाकृति में चलाते हुए, और भीष्म के बाणों को निष्फल बनाते हुए बड़ा कौशल दिखाया। हे भारत! फिर भी भीष्म ने श्रीकृष्ण और अर्जुन के सारे शरीर को तीखे बाणों से अच्छीतरह से घायल कर दिया। भीष्म के बाणों से घायल हुए वेदोनों नरव्याघ्र क्रोध में भरे हुए उन दो साँडो के समान दिखाई दे रहे थे, जिनके शरीरों में सींगों की मार से घाव हो गये थे।

पुनश्चापि सुसंरब्धः शरैः शतसहस्रशः॥ ४७॥
कृष्णयोर्युधि संरब्धो भीष्मोऽथावारयद् दिशः।
वार्ष्णेयं च शरैस्तीक्ष्णैः कम्पयामास रोषितः॥ ४८॥
मुहुरभ्यर्दयन् भीष्मः प्रहस्य स्वनवत् तदा।
ततस्तु कृष्णः समरे दृष्ट्वा भीष्मपराक्रमम्॥ ४९॥
सम्प्रेक्ष्य च महाबाहुः पार्थस्य मृदुयुद्धताम्।
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि॥ ५०॥
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः।
वरान् वरान् विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान्॥ ५१॥
युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले।

उसके पश्चात् अत्यन्त क्रोध में भरे हुए भीष्म ने सैकड़ों हजारों बाणों की वर्षा कर अर्जुन और कृष्ण की दिशाओं को अवरुद्ध कर दिया। रोष में भरे हुए भीष्म ने जोर जोर से हँसते हुए अपने तीखे बाणों से श्रीकृष्ण को बार बार पीड़ित करते हुए कम्पित कर दिया। तब युद्ध में भीष्म के पराक्रम को तथा अर्जुन के कोमलता से युद्ध करने को देखकर महाबाहु श्रीकृष्ण ने विचार किया कि भीष्म दोनों सेनाओं के बीच में खड़े होकर तपते हुए सूर्य के समान लगातार बाणों की वर्षा कर रहे हैं। ये पाण्डुपुत्र के अच्छे अच्छे सैनिकों को मार रहे हैं और युधिष्ठिर की सेना में इन्होंने प्रलय का सा दृश्य प्रस्तुत कर दिया है।

द्रवते च महासैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः॥ ५२॥
एते च कौरवास्तूर्णं प्रभग्नान् वीक्ष्य सोमकान्।
प्राद्रवन्ति रणे दृष्ट्वा हर्षयन्तः पितामहम्॥ ५३॥
सोऽहं भीष्मं निहन्म्यद्य पाण्डवार्थाय दंशितः।
भारमेतं विनेष्यामि पाण्डवानां महात्मनाम्॥ ५४॥
अर्जुनो हि शरैस्तीक्ष्णैर्वध्यमानोऽपि संयुगे।
कर्तव्यं नाभिजानाति रणे भीष्मस्य गौरवात्॥ ५५॥
तथा चिन्तयतस्तस्य भूय एव पितामहः।
प्रेषयामास संक्रुद्धः शरान् पार्थरथं प्रति॥ ५६॥

महात्मा पाण्डव की विशालसेना भाग रही है। ये कौरवसैनिक सोमकों को शीघ्रतापूर्वक भागते हुए देखकर पितामह को हर्षित करते हुए, युद्धस्थल में उन्हें खदेड़ रहे हैं। इसलिये अब मैं ही पाण्डवों के लिये कवच पहने हुए आज भीष्म को मार देता हूँ। मैं महात्मा पाण्डवों के इस बोझ को दूर कर देता हूँ। अर्जुन तो तीखे बाणों से घायल होने पर भी भीष्म के प्रति बड़प्पन की भावना रखने के कारण युद्ध में अपने कर्त्तव्य को नहीं समझ रहा है। इसप्रकार उनके विचार करते हुए भी क्रोध में भरे हुए भीष्म ने अर्जुन के रथ पर पुनः बाणों को छोड़ा।

द्रोणो विकर्णोऽथ जयद्रथश्च
भूरिश्रवाः कृतवर्मा कृपश्च।
श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा
विन्दानुविन्दौ च सुदक्षिणश्च॥ ५७॥
प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे
वसातयः क्षुद्रकमालवाश्च।
किरीटिनं त्वरमाणाऽभिसस्त्र-
र्निदेशगाः शान्तनवस्य राज्ञः॥ ५८॥

तब राजा शान्तनुनन्दन भीष्म के आदेश का पालन करते हुए किरीटधारी अर्जुन का सामना करने के लिये द्रोणाचार्य, विकर्ण, जयद्रथ, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, कृपाचार्य, श्रुतायु, अम्बष्ठपति, विन्द, अनुविन्द,

सुदक्षिण, पूर्वदेश के राजालोग, सौवीरदेश के क्षत्रियगण, वसाति, क्षुद्रक और मालवगण ये सभी तुरन्त वहाँ आ गये।

तं वाजिपादातरथौघजालै-
रनेकसाहस्त्र- शतैर्ददर्श।
किरीटिनं सम्परिवार्यमाणं
शिनेर्नप्ता वारणयूथपैश्च॥ ५९॥
ततस्तु दृष्ट्वार्जुनवासुदेवौ
पदातिनागाश्वरथैः समन्तात्।
अभिद्रुतौ शस्त्रभृतां वरिष्ठौ
शिनिप्रवीरोऽभिससार तूर्णम्॥ ६०॥

जब शिनिपौत्र सात्यकि ने देखा कि अर्जुन कई लाख घोड़े, पैदल, रथ और हाथीसवारों से घिर गये हैं, तब शास्त्रधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन और श्रीकृष्ण को पैदल, रथ, हाथी और घोड़ों से सबतरफ से आक्रान्त देखकर, शिनिवंश के प्रमुखवीर शीघ्रता से वहाँ पहुँचे।

विशीर्णनागाश्वरथ- ध्वजौघं
भीष्मेण वित्रासितसर्वयोधम्।
युधिष्ठिरानीकम- भिद्रवन्तं
प्रोवाच संदृश्य शिनिप्रवीरः॥ ६१॥
क्व क्षत्रिया यास्यथ नैष धर्मः
सतां पुरस्तात् कथितः पुराणैः।
मा स्वां प्रतिज्ञां त्यजत प्रवीराः
स्वं वीरधर्मं परिपालयध्वम्॥ ६२॥

जिसमें हाथी, घोड़े, रथ, और ध्वजाओं के समूह इधरउधर बिखर गये थे, जिसके सारे योद्धा भीष्म से भयभीत हो रहे थे, ऐसी युधिष्ठिर की सेना को भागते हुए देखकर शिनिवंश के प्रमुख सात्यकि ने उनसे कहा कि हे क्षत्रियों! तुम कहाँ भागे जा रहे हो? सत्पुरुषों का जो धर्म पुराने लोगों ने पहले बताया है, वह यह नहीं है। वे वीरों! अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ो मत और अपने वीरधर्म का पालन करो।

अमृष्यमाणः स ततो महात्मा
यशस्विनं सर्वदशार्हभर्ता।
उवाच शैनेयमभिप्रशंसन्
दृष्ट्वा कुरूनापततः समग्रान्॥ ६३॥
ये यान्ति ते यान्तु शिनिप्रवीर
येऽपि स्थिताः सात्वत तेऽपि यान्तु।
भीष्मं रथात् पश्य निपात्यमानं
द्रोणं च संख्ये सगणं मयाद्य॥ ६४॥
न मे रथी सात्वत कौरवाणां
क्रुद्धस्य मुच्येत रणेऽद्य कश्चित्।
तस्मादहं गृह्य रथाङ्गमुग्रं
प्राणं हरिष्यामि महाव्रतस्य॥ ६५॥

सारे यदुवंश का भरण करनेवाले महात्मा श्रीकृष्ण तब सेना के भागने को सहन न करते हुए और सारे कौरवों को आक्रमण करते हुए देखकर, सात्यकि की प्रशंसा करते हुए बोले कि हे शिनिवंश के प्रमुख वीर सात्वत! जो जा रहे हैं, वे चले जायें और जो खड़े हुए हैं वे भी चले जायें। तुम देखना कि मैं आज भीष्म को और द्रोणाचार्य को उनके सहायकों सहित रथ से गिराता हूँ। हे सात्वत! आज क्रोध में भरे हुए मुझसे कौरवसेना का कोई भी रथी छूट नहीं सकता। इसलिये मैं अपने भयंकर चक्र को लेकर महाव्रती भीष्म के प्राणों को हर लूँगा।

निहत्य भीष्मं सगणं तथाऽऽजौ
द्रोणं च शैनेय रथप्रवीरौ।
प्रीतिं करिष्यामि धनंजयस्य
राज्ञश्च भीमस्य तथाश्विनोश्च॥ ६६॥
निहत्य सर्वान् धृतराष्ट्रपुत्रां
स्तत्पक्षिणो ये च नरेन्द्रमुख्याः।
राज्येन राजानमजातशत्रुं
सम्पादयिष्याम्यहमद्य हृष्टः॥ ६७॥

हे सात्यकि! मैं इस युद्ध में श्रेष्ठरथी भीष्म और द्रोण को उनके सहायकोंसहित मारकर अर्जुन राजा युधिष्ठिर, भीम, तथा नकुल और सहदेव के प्रिय कार्य को करूँगा। आज मैं सारे धृतराष्ट्र के पुत्रों और उसके सहायक राजाओं को मारकर राजा अजातशत्रु को प्रसन्नतापूर्वक राज्यसिंहासन पर बैठाऊँगा।

ततः सुनाभं वसुदेवपुत्रः
सूर्यप्रभं वज्रसमप्रभावम्।
क्षुरान्तमुद्यम्य भुजेन चक्रं
रथादवप्लुत्य विसृज्य वाहान्॥ ६८॥
संकम्पयन् गां चरणैर्महात्मा
वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मम्।

मदान्धमाजौ समुदीर्णदर्पं
सिंहो जिघांसन्निव वारणेन्द्रम्॥ ६९॥
तमाद्रवन्तं प्रगृहीतचक्रं
दृष्ट्वा देवं शान्तनवस्तदानीम्।
असम्भ्रमं तद् विचकर्ष दोर्भ्यां
महाधनुर्गाण्डिवतुल्य- घोषम्॥ ७०॥

तब वासुदेव महात्मा श्रीकृष्ण, घोड़ों की लगाम छोड़कर, जिसकी नाभि बड़ी सुन्दर थी, जो सूर्य के समान तेजस्वी और विद्युत् के समान प्रभावशाली था, जिसके किनारे उस्तरे के समान तीखे थे, उस चक्र को हाथ में उठाकर, रथ से कूदकर, अपने पैरों की धमक से भूमि को कँपाते हुए, उस युद्धक्षेत्र में भीष्म की तरफ इसप्रकार से दौड़े, जैसे सिंह मस्तहाथी की तरफ उसे मारने की इच्छा से झपटे। तब चक्र लेकर उस महापुरुष को अपनी तरफ आक्रमण के लिये आते देखकर भीष्म बिना घबराये, दोनों हाथों से अपने गाण्डीवधनुष के समान टंकार वाले धनुष को खींचने लगे।

रथादवप्लुत्य ततस्त्वरावान्
पार्थोऽप्यनुद्रुत्य यदुप्रवीरम्।
जग्राह पीनोत्तमलम्बबाहुं
बाह्वोर्हरिं व्यायतपीनबाहुः॥ ७१॥
अवस्थितं च प्रणिपत्य कृष्णं
प्रीतोऽर्जुनः काञ्चनचित्रमाली।
उवाच कोपं प्रतिसंहरेति
गतिर्भवान् केशव पाण्डवानाम्॥ ७२॥
न हास्यते कर्म यथाप्रतिज्ञं
पुत्रैः शपे केशव सोदरैश्च।
ततः प्रतिज्ञां समयं च तस्य
जनार्दनः प्रीतमना निशम्य॥ ७३॥
स्थितः प्रिये कौरवसत्तमस्य।
रथं सचक्रः पुनरारुरोह
निनादयामास ततो दिशश्च
स पाञ्च जन्यस्य रवेण शौरिः॥ ७४॥

तब कुन्तीपुत्र अर्जुन भी रथ से कूदकर शीघ्रता से उन यदुकुलश्रेष्ठ वीर के पीछे दौड़े और उन विशाल तथा मोटी बाहोंवाले अर्जुन ने मोटी, उत्तम और लम्बी भुजाओंवाले श्रीकृष्ण को बाहों से पकड़ लिया। तब जब श्रीकृष्ण जी खड़े हो गये, तब सोने की विचित्र माला पहने हुए अर्जुन ने प्रसन्न होकर उनसे कहा कि आप अपने क्रोध को रोकिये। हे केशव! आप ही तो पाण्डवों के आश्रय हैं। हे केशव! मैं अपने पुत्रों और भाइयों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैंने जैसी प्रतिज्ञा की है, उसके अनुसार ही कर्म करूँगा। उसे छोड़ूँगा नहीं। तब उसकी प्रतिज्ञा और निश्चय को सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर पुनः कुरुश्रेष्ठ अर्जुन का प्रिय करने के लिये चक्र लेकर रथ में जा बैठे। उन्होंने फिर अपने पांचजन्य शंख की ध्वनि से सारी दिशाओं को गुंजा दिया।

गाण्डीवघोषः स्तनयित्नुकल्पो
जगाम पार्थस्य नभो दिशश्च।
जग्मुश्च बाणा विमलाः प्रसन्नाः
सर्वा दिशः पाण्डवचापमुक्ताः॥ ७५॥
तं कौरवाणामधिपो जवेन
भीष्मेण भूरिश्रवसा च सार्धम्।
अभ्युद्ययावुद्यत- बाणपाणिः
कक्षं दिधक्षन्निव धूमकेतुः॥ ७६॥

तब मेघ की गर्जना के समान गाण्डीवधनुष की टंकारध्वनि आकाश में सारी दिशाओं में गूँज उठी और अर्जुन के धनुष से छूटे हुए तीखे तथा जगमगाते हुए बाण सब तरफ जाने लगे। उस समय कौरवों का अधिपति दुर्योधन शीघ्रता से भीष्म और भूरिश्रवा के साथ हाथ में धनुषबाण लेकर अर्जुन के सामने उसीप्रकार आया जैसे घासफूस को जलाने के लिये आग बढ़ती चली आ रही हो।

अथार्जुनाय प्रजिघाय भल्लान्
भूरिश्रवाः सप्त सुवर्णपुङ्खान्।
दुर्योधनस्तो- मरमुग्रवेगं
शल्यो गदां शान्तनवश्च शक्तिम्॥ ७७॥
स सप्तभिः सप्त शरप्रवेकान्
संवार्य भूरिश्रवसा विसृष्टान्
शितेन दुर्योधनबाहुमुक्तं
क्षुरेण तत् तोमरमुन्ममाथ॥ ७८॥
ततः शुभामापततीं स शक्तिं
विद्युत्प्रभां शान्तनवेन मुक्ताम्।
गदां च मद्राधिपबाहुमुक्तां
द्वाभ्यां शराभ्यां निचकर्त वीरः॥ ७९॥

फिर भूरिश्रवा ने अर्जुन पर सात भल्ल चलाये जिनमें सुनहरे पंख लगे हुए थे। दुर्योधन ने तीव्र वेगवाले तोमर का प्रहार किया, शल्य ने गदा और भीष्म ने शक्ति चलाई। तब अर्जुन ने सात बाणों से भूरिश्रवा के छोड़े हुए भल्लों को काटकर एक तीखे क्षुर नाम के बाण से दुर्योधन के हाथ से छूटे हुए तोमर को नष्ट कर दिया। फिर उस वीर ने भीष्म के द्वारा छोड़ी हुई, विद्युत् के समान चमकीली शक्ति को और मद्रराज शल्य की बाहों से फैंकी हुई गदा को भी दो बाणों से काट दिया।

शिलीमुखाः पार्थधनुः प्रमुक्ता
रथान् ध्वजाग्राणि धनूंषि बाहून्।
निकृत्य देहान् विविशुः परेषां
नरेन्द्रनागेन्द्रतुरङ्ग- माणाम्॥ ८०॥

ततो दिशः सोऽनुदिशश्च पार्थः
शरैः सुधारैः समरे वितत्य।
गाण्डीवशब्देन मनांसि तेषां
किरीटमाली व्यथयाञ्चकार॥ ८१॥

तस्मिंस्तथा घोरतमे प्रवृत्ते
शङ्खस्वना दुन्दुभिनिःस्वनाश्च।
अन्तर्हिता गाण्डिवनिःस्वनेन
बभूवुरुग्राश्वरथ- प्रणादाः॥ ८२॥

इसके पश्चात् अर्जुन के धनुष से छूटे हुए बाण शत्रुओं के रथों, ध्वजों धनुषों और बाहों को काटकर राजाओं, हाथियों और घोड़ों के शरीरों में घुसने लगे। किरीट को धारण करनेवाले अर्जुन ने उस युद्ध में दिशाओं, उपदिशाओं को तीखी धारवाले बाणों से भरकर, गांडीवधनुष की ध्वनि से शत्रुओं के मनों को व्यथित कर दिया। उस समय जब घोर युद्ध हो रहा था, शत्रुओं के शंख और भेरियों की ध्वनियाँ, घोड़ों तथा रथों के भयंकर शब्द भी गाण्डीवधनुष की टंकार में दब गये।

गाण्डीवशब्दं तमथो विदित्वा
विराटराजप्रमुखाः प्रवीराः।
पाञ्चालराजो द्रुपदश्च वीर
स्तं देशमाजग्मुरदीनसत्त्वाः॥ ८३॥

तस्मिन् सुघोरे नृपसम्प्रहारे
हताः प्रवीराः सरथाश्वसूताः।
गजाश्च नाराचनिपाततप्ता
महापताकाः शुभरुक्मकक्ष्याः॥ ८४॥

परीतसत्त्वाः सहसा निपेतुः
किरीटिना भिन्नतनुत्रकायाः।
दृढं हताः पत्रिभिरुग्रवेगैः
पार्थेन भल्लैर्विमलैः शिताग्रैः॥ ८५॥

तब गाण्डीवधनुष की टंकार को सुनकर विराटराज आदि श्रेष्ठ वीर और पांचालराज वीरद्रुपद ये उदार चित्तवाले लोग उस स्थान पर आ गये। हे राजन्! उस अत्यन्त घोर संग्राम में रथ, घोड़ों और सारथियों सहित श्रेष्ठवीरों का विनाश हुआ। बड़ी पताकाओंवाले, सुनहरे रस्सों से बँधे हुए हाथी नाराचों की मार से पीड़ित होकर, चेतनाहीन होकर, सहसा गिर पड़े। किरीटधारी कुन्तीपुत्र के तीखी नोक वाले और जगमगाते हुए भल्लों से तथा भयंकर वेगवाले पंखयुक्त बाणों से गहरी चोट खाये हुए, सैनिक कवच और शरीर के कट जाने के कारण निर्जीव होकर तुरन्त गिर जाते थे।

निकृत्तयन्त्रा निहतेन्द्रकीला
ध्वजा महान्तो ध्वजिनीमुखेषु।
पदातिसङ्घाश्च रथाश्च संख्ये।
हयाश्च नागाश्च धनंजयेन॥ ८६॥

बाणाहतास्तूर्णमपेत- सत्त्वा
विष्टभ्य गात्राणि निपेतुरुर्व्याम्।
हतप्रवीराणि बलानि दृष्ट्वा
किरीटिना शत्रुभयावहेन॥ ८७॥

वित्रास्य सेनां ध्वजिनीपतीनां
सिंहो मृगाणामिव यूथसङ्घान्।
विनेदतुस्तावति- हर्षयुक्तौ
गाण्डीवधन्वाच जनार्दनश्च॥ ८८॥

जिनके यन्त्र कट गये थे, तथा इन्द्रकील नष्ट हो गये थे, ऐसी विशाल पताकाएँ युद्ध के मुहाने पर वहाँ गिर रहीं थीं, पैदलों के समूह, रथ, घोड़े, हाथी उस युद्ध में तुरन्त अर्जुन के बाणों से घायल, तथा निर्जीव होकर अपने अंगों को पकड़े हुए भूमि पर गिर रहे थे। तब शत्रुओं को भयभीत करनेवाले अर्जुन के द्वारा श्रेष्ठवीरों और सेनाओं को मारा हुआ देखकर, मृगों के समूहों को भयभीत करनेवाले सिंह के समान गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन और श्रीकृष्ण शत्रुसेनापतियों

की उस सेना को भयभीत करते हुए, हर्षित होकर जोरजोर से गर्जना करने लगे।

ततो रविं संवृतरश्मिजालं
दृष्ट्वा भृशं शस्त्रपरिक्षताङ्गाः।
अथापयानं कुरवः सभीष्माः
सद्रोणदुर्योधन- बाह्लिकाश्च॥ ८९॥
चक्रुर्निशां संधिगतां समीक्ष्य
विभावसोर्लोहितराग- युक्ताम्।
अवाप्य कीर्तिं च यशश्च लोके
विजित्य शत्रूंश्च धनंजयोऽपि।
ययौ नरेन्द्रैः सह सोदरैश्च
समाप्तकर्मा शिबिरं निशायाम्॥ ९०॥

तब सूर्य को अपनी किरणें समेटता हुआ देखकर शस्त्रों की मार से अत्यन्त घायल हुए भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, वाह्लीकसहित कौरवों ने सूर्य की लाली से युक्त संध्या और रात्रि के आरम्भ को विचार कर सेना को युद्धभूमि से वापिस लौटा लिया। तब अर्जुन भी संसार में कीर्ति और यश को प्राप्तकर, शत्रुओं को जीतकर, युद्ध को समाप्तकर, राजाओं और अपने भाइयों के साथ रात्रि के आरम्भ में अपने शिविर में लौट आये।

इक्कीसवाँ अध्याय : चौथा दिन - भीष्म और अर्जुन का युद्ध

संजय उवाच– व्युष्टां निशां भारत भारताना-
मनीकिनीनां प्रमुखे महात्मा।
ययौ सपत्नान् प्रति जातकोपो
वृतः समग्रेण बलेन भीष्मः॥ १॥
तं द्रोणदुर्योधनबाह्लिकाश्च
तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ।
जयद्रथश्चातिबलो बलौघै-
र्नृपास्तथान्ये प्रययुः समन्तात्॥ २॥

तब संजय ने कहा कि हे भारत! रात्रि के बीतने पर, भरतवंशियों की सेना के आगे खड़े हुए महात्मा भीष्म, जो उस समय शत्रुओं के प्रति क्रोध से भरे हुए थे, सारी सेना से घिरे हुए शत्रुओं की तरफ चले। उनके साथ द्रोण, दुर्योधन, बाह्लीक दुर्मर्षण, चित्रसेन, अत्यन्त बलवान् जयद्रथ तथा दूसरे राजा लोग विशाल सेनाओं से घिर कर चले।

तं व्यालनानाविधगूढसारं
गजाश्वपादातरथौघ- पक्षम्।
व्यूहं महामेघसमं महात्मा
ददर्श दूरात् कपिराजकेतुः॥ ३॥
विनिर्ययौ केतुमता रथेन
नरर्षभः श्वेतहयेन वीरः।
वरूथिना सैन्यमुखे महात्मा
वधे धृतः सर्वसपत्नयूनाम्॥ ४॥

तब वानरध्वजावाले मनस्वी अर्जुन ने दूर से देखा कि शत्रु सेना व्याल नाम व्यूह में बद्ध होने के कारण अनेकप्रकार की दिखाई दे रही है। उसकी शक्ति छिपी हुई है, उसमें हाथी, घोड़ों पैदल और रथियों का समुदाय है और वह विशाल बादल के समान प्रतीत हो रही है। तब नरश्रेष्ठ, वीर और महात्मा अर्जुन भी अपने श्वेत घोड़ों से युक्त, ध्वज और आवरणवाले रथ के द्वारा, सारे शत्रुओं के वध का निश्चय कर शत्रुसेना की तरफ चले।

प्रकर्षता गुप्तमुदायुधेन
किरीटिना लोकमहारथेन।
तं व्यूहराजं ददृशुस्त्वदीया-
श्चतुश्चतुर्व्याल- सहस्रकर्णम्॥ ५॥
यथा हि पूर्वेऽहनि धर्मराज्ञा
व्यूहः कृतः कौरवसत्तमेन।
तथा न भूतो भुवि मानुषेषु
न दृष्टपूर्वो न च संश्रुतश्च॥ ६॥

तब आपके सैनिकों ने पाण्डवसेना के उस व्यूहराज को देखा, जिसमें चारचार हजार हाथी प्रत्येक कोने पर विद्यमान थे, जो विश्वविख्यात महारथी, आयुधों से युक्त अर्जुन के द्वारा सुरक्षित तथा अपने साथ लाया जा रहा था। उस जैसा व्यूह संसार में पहले नहीं बना था। मनुष्यों ने न तो उसे पहले देखा था और न उसके विषय में सुना था। पहलेदिन कुरुश्रेष्ठ धर्मराज ने जैसा व्यूह बनाया था, वह वैसा ही था।

ततो यथादेशमुपेत्य तस्थुः
पाञ्चालमुख्याः सह चेदिमुख्यैः।
ततः समादेशसमाहतानि
भेरीसहस्राणि विनेदुराजौ॥ ७॥

शङ्खस्वनास्तूर्यरथ- स्वनाश्च
सर्वेष्वनीकेषु ससिंहनादाः।
ततः सबाणानि महास्वनानि
विस्फार्यमाणानि धनूंषि वीरैः॥ ८॥
क्षणेन भेरीपणवप्रणादा-
नन्तर्दधुः शङ्खमहास्वनाश्च।
तच्छङ्खशब्दावृत- मन्तरिक्ष-
मुद्धूतभीमाद्भुतरेणु- जालम्॥ ९॥

तब पांचालदेशीय प्रमुख, चेदिदेशीय प्रमुखों के साथ आदेशानुसार यथास्थान खड़े हुए। फिर आदेशानुसार युद्धक्षेत्र में हजारों नगाड़े बजने लगे। सारी सेनाओं में सिंहनादों के साथ, शंखनाद, बाजों की ध्वनियाँ और रथों की घर्घराहट होने लगी। वीरों के द्वारा खींचे जानेवाले बाणसहित धनुषों की टंकारों के शब्द गूँजने लगे। भेरी और पणव आदि के शब्दों को क्षणभर में शंखनादों ने दबा दिया। शंख नादों से भरे हुए आकाश में भूमि से उठी हुई धूल का भयंकर और अद्भुत जाल फैल गया।

महानुभावाश्च ततः प्रकाश-
मालोक्य वीराः सहसाभिपेतुः।
रथी रथेनाभिहतः ससूतः
पपात साश्वः सरथः सकेतुः॥ १०॥
गजो गजेनाभिहतः पपात
पदातिना चाभिहतः पदातिः।
प्रासैश्च खड्गैश्च समाहतानि
सदश्ववृन्दानि सदश्ववृन्दैः॥ ११॥
सुवर्णतारागण- भूषितानि
सूर्यप्रभाभानि शरावराणि।
विदार्यमाणानि परश्वधैश्च
प्रासैश्च खड्गैश्च निपेतुरुर्व्याम्॥ १२॥

तब महानुभाव वीर सूर्य के प्रकाश को देख कर सहसा शत्रुओं पर टूट पड़े और रथी रथी से भिड़ कर अपने सारथी, रथ, घोड़ों और ध्वजा के साथ गिरने लगा। हाथी हाथी के द्वारा और पैदल पैदल के द्वारा मारे जाकर गिरने लगे। उत्तम घुड़सवार उत्तम घुड़सवारों से लड़तेहुए प्रासों और खड्गों के प्रहारों से मारे जा रहे थे। सुनहरे तारों से विभूषित, सूर्य के समान जगमगाते हुए कवच, फरसों, प्रासों, और खड्गों की मार से कटकर भूमि पर गिररहे थे।

गजैर्विषाणैर्वर- हस्तरुग्णाः
केचित् ससूता रथिनः प्रपेतुः।
गजर्षभाश्चापि रथर्षभेण
निपातिता बाणहताः पृथिव्याम्॥ १३॥
गजौघवेगोद्धत- सादितानां
श्रुत्वा विषेदुः सहसा मनुष्याः।
आर्तस्वनं सादिपदातियूनां
विषाणगात्रावरताडि- तानाम्॥ १४॥

कितने ही घुड़सवार और पैदल युवक उस समय हाथियों के वेग से कुचलकर मारे गये। वे उनके दाँतों और पैरों से कुचले जाकर घायल हो रहे थे। उनकी आर्त चीत्कारों को सहसा सुन कर लोगों को बड़ा खेद होता था। कितने ही रथी दान्तार हाथियों के दाँतों और सूँड़ों के आघात से सारथियों सहित गिरपड़ते थे। इसी प्रकार श्रेष्ठ रथियों ने भी बड़ेबड़े हाथियों को बाणों मे मारकर भूमि पर गिरादिया था।

सम्भ्रान्तनागाश्वरथे मुहूर्ते
महाक्षये सादिपदातियूनाम्।
महारथैः सम्परिवार्यमाणो
ददर्श भीष्मः कपिराजकेतुम्॥ १५॥
तं पञ्चतालोच्छ्रिततालकेतुः
सदश्ववेगाद्भुत- वीर्ययानः।
महास्त्रबाणाशनि- दीप्तिमन्तं
किरीटिनं शान्तनवोऽभ्यधावत्॥ १६॥

उस समय जब कि घुड़सवारों और पैदलों का महान विनाश होरहा था, हाथी, घोड़े और रथियों में घबराहट होरही थी, तब महारथियों से घिरेहुए भीष्म ने वानरराज की ध्वजावाले अर्जुन को देखा। तब पाँच ताड़ के वृक्षों से चिंहित और ताड़ के वृक्ष के समान ही ऊँची ध्वजावाले शान्तनुपुत्र भीष्म ने, जिनके रथ में अद्भुत वेग और पराक्रमवाले उत्तम घोड़े जुते हुए थे, उन किरीटधारी अर्जुन पर जो महान् दिव्यास्त्रों और वज्र के समान बाणों की कान्ति से जगमगा रहे थे, आक्रमण किया।

तथैव शक्रप्रतिमप्रभाव-
मिन्द्रात्मजं द्रोणमुखा विसस्रुः।
कृपश्च शल्यश्च विविंशतिश्च
दुर्योधनः सौमदत्तिश्च राजन्॥ १७॥

ततो रथानां प्रमुखादुपेत्य
सर्वास्त्रवित् काञ्चनचित्रवर्मा।
जवेन शूरोऽभिससार सर्वा-
स्तानर्जुनस्यात्म- सुतोऽभिमन्युः॥ १८॥

हे राजन्! इसी प्रकार इन्द्र के समान प्रभाववाले इन्द्रपुत्र अर्जुन पर द्रोणाचार्य आदि तथा कृपाचार्य, शल्य, विविंशति, दुर्योधन और भूरिश्रवा ने भी आक्रमण किया। तब सब अस्त्रों के ज्ञाता, सुनहले विचित्र कवच को धारण करनेवाले शूरवीर अर्जुन के अपने पुत्र अभिमन्यु ने एक श्रेष्ठ रथ के द्वारा शीघ्रता से वहाँ पहुँचकर, उन सब पर आक्रमण कर दिया।

तेषां महास्त्राणि महारथाना-
मसह्यकर्मा विनिहत्य कार्ष्णिः।
बभौ महामन्त्रहुतार्चिमाली
सदोगतः सन् भगवानिवाग्निः॥ १९॥
ततः प्रहस्याद्भुतविक्रमेण
गाण्डीवमुक्तेन शिलाशितेन।
विपाठजालेन महास्त्रजालं
विनाशयामास किरीटमाली॥ २०॥

उन महारथियों के महान् अस्त्रों को असह्य कर्म करनेवाला वह अभिमन्यु नष्ट करके इस प्रकार सुशोभित होनेलगा, जैसे यज्ञमण्डप में महान् मन्त्रों द्वारा दी हुई आहुतियों से प्रदीप्त हुई ऐश्वर्य युक्त अग्नि सुशोभित होती है। तब अर्जुन ने भी हँसकर अद्भुत पराक्रम के साथ, गाण्डीव धनुष से छोड़े हुए, शिला पर तेज किये हुए, विपाठ नामक बाणों के समूह से शत्रुओं के महान् अस्त्रों के जाल को विनष्ट कर दिया।

तमुत्तमं सर्वधनुर्धराणा-
मसक्तकर्मा कपिराजकेतुः।
भीष्मं महात्माभिववर्ष तूर्णं
शरौघजालैर्विमलैश्च भल्लैः॥ २१॥
तथैव भीष्माहतमन्तरिक्षे
महास्त्रजालं कपिराजकेतोः।
विशीर्यमाणं ददृशुस्त्वदीया
दिवाकरेणेव तमोऽभिभूतम्॥ २२॥

असक्त भाव से कर्म करनेवाले, वानराज की ध्वजावाले, महात्मा अर्जुन ने सारे धनुर्धरों में उत्तम भीष्म के ऊपर शीघ्रता के साथ उज्वल बाण समूहों और भल्लों की वर्षा आरम्भ कर दी। उसीप्रकार आपके सैनिकों ने भी देखा कि अर्जुन के द्वारा फैलाये हुए महान् अस्त्रों के जाल को, भीष्म ने अपने बाणों से आकाश में ही आहतकर ऐसे छिन्न भिन्न करदिया, जैसे सूर्य के द्वारा अन्धकार दूर करदिया जाता है।

एवंविधं कार्मुकभीमनाद-
मदीनवत् सत्पुरुषोत्तमाभ्याम्।
ददर्श लोकः कुरुसृंजयाश्च
तद् द्वैरथं भीष्मधनंजयाभ्याम्॥ २३॥

इस प्रकार से दीनतारहित और सत्पुरुषों में उत्तम भीष्म और अर्जुन का वह द्वैरथ युद्ध, जिसमें धनुष की टंकारों की भयानक ध्वनि हो रही थी, कौरवों, सृंजयों और दूसरे लोगों ने भी देखा।

बाईसवाँ अध्याय : अभिमन्यु पराक्रम। धृष्टद्युम्न द्वारा शल के पुत्र और दमन का वध।

संजय उवाच

द्रौणिर्भूरिश्रवाः शल्यश्चित्रसेनश्च मारिष।
पुत्रः सांयमनेश्चैव सौभद्रं पर्यवारयन्॥ १॥
संसक्तमतितेजोभिस्तमेकं ददृशुर्जनाः।
पञ्चभिर्मनुजव्याघ्रैर्गजैः सिंहशिशुं यथा॥ २॥
नातिलक्ष्यतया कश्चिन्न शौर्ये न पराक्रमे।
बभूव सदृशः कार्ष्णेर्नास्त्रे नापि च लाघवे॥ ३॥
तथा तमात्मजं युद्धे विक्रमन्तमरिंदमम्।
दृष्ट्वा पार्थः सुसंयत्तं सिंहनादमथानदत्॥ ४॥

संजय ने कहा कि मान्यवर! तब द्रोणाचार्य के पुत्र, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन और सांयमनि के पुत्र ने सुभद्रा के पुत्र का प्रतिरोध किया। उस समय लोगों ने देखा कि जैसे सिंह का बच्चा पाँच हाथियों से युद्ध कर रहा हो, उसी प्रकार अकेला

अभिमन्यु उन पाँच अति तेजस्वी पुरुषव्याघ्रों से भिड़रहा था। उस समय लक्ष्यवेध करने, शूरवीरता, पराक्रम और हस्तकौशल, किसी में भी कोई भी अभिमन्यु की बराबरी नहीं करसका। तब शत्रुओं का दमन करनेवाले अपने पुत्र को पराक्रम के साथ उत्तम प्रयत्न करते हुए देखकर अर्जुन ने जोर से सिंहनाद किया।

पीडयानं तु तत् सैन्यं पौत्रं तव विशाम्पते।
दृष्ट्वा त्वदीया राजेन्द्र समन्तात् पर्यवारयन्॥ ५॥
तस्य लाघवमार्गस्थमादित्यसदृशप्रभम्।
व्यदृश्यत महच्चापं समरे युध्यतः परैः॥ ६॥
स द्रौणिमिषुणैकेन विद्ध्वा शल्यं च पञ्चभिः।
ध्वजं सांयमनेश्चैव सोऽष्टाभिश्चिच्छिदे ततः॥ ७॥
रुक्मदण्डां महाशक्तिं प्रेषितां सौमदत्तिना।
शितेनोरगसंकाशां पत्रिणापजहार ताम्॥ ८॥

हे प्रजापालक! तब आपके पौत्र अभिमन्यु को कौरवों की सेना को पीड़ित करता हुआ देखकर, हे राजेन्द्र! आपके सैनिकों ने उसे सब तरफ से घेर लिया। उस समय शत्रुओं से युद्ध करते हुए अभिमन्यु का अस्त्रलाघव के मार्ग पर स्थित हुआ विशाल धनुष, सूर्य की प्रभा के समान प्रकाशित होरहा था। उसने तब द्रोणाचार्य के पुत्र को एक बाण से और शल्य को पाँच बाणों से बींधकर सांयमनि के पुत्र के ध्वज को आठ बाणों में छिन्न कर दिया। फिर सुनहरे दण्डवाली, सर्प के समान महान् शक्ति को जिसे भूरिश्रवा ने फैंका था, उसने एक तीखे बाण से काट दिया।

शल्यस्य च महावेगानस्यतः समरे शरान्।
निवार्यार्जुनदायादो जघान चतुरो हयान्॥ ९॥
भूरिश्रवाश्च शल्यश्च द्रौणिः सांयमनिः शलः।
नाभ्यवर्तन्त संरब्धाः कार्ष्णेर्बाहुबलोदयम्॥ १०॥
ततस्त्रिगर्ता राजेन्द्र मद्राश्च सह केकयैः।
पञ्चविंशतिसाहस्रास्तव पुत्रेण चोदिताः॥ ११॥
धनुर्वेदविदो मुख्या अजेयाः शत्रुभिर्युधि।
सहपुत्रं जिघांसन्तं परिवव्रुः किरीटिनम्॥ १२॥

अभिमन्यु ने युद्ध में शल्य के द्वारा फैंके हुए महावेगशाली बाणों का निवारण करके उसके चारों घोड़ों को मार दिया। तब क्रोध में भरे हुए भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा और संयमनपुत्र शल भी अभिमन्यु के बाहुबल की वृद्धि को नहीं रोक सके। हे राजेन्द्र! तब आपके पुत्र के द्वारा भेजे हुए त्रिगर्त, केकय और मद्रदेश के पच्चीस हजार योद्धाओं ने, जो सब के सब धनुर्वेद के प्रमुख ज्ञाता और युद्धस्थल में शत्रुओं के लिये अजेय थे, शत्रुवध की इच्छा रखनेवाले, पुत्रसहित अर्जुन को घेर लिया।

तौ तु तत्र पितापुत्रौ परिक्षिप्तौ महारथौ।
ददर्श राजन् पाञ्चाल्यः सेनापतिररिंदम॥ १३॥
स वारणरथौघानां सहस्रैर्बहुभिर्वृतः।
वाजिभिः पत्तिभिश्चैव वृतः शतसहस्रशः॥ १४॥
धनुर्विस्फार्य संक्रुद्धो नोदयित्वा च वाहिनीम्।
ययौ तं मद्रकानीकं केकयांश्च परंतप॥ १५॥

हे शत्रुओं का दमन करनेवाले राजन्! जब उन दोनों पिता और पुत्र महारथियों को शत्रुओं से घिरा हुआ देखा, तब पंचालपुत्र सेनापति धृष्टद्युम्न हजारों रथियों, हाथियों घुड़सवारों और पैदलों के साथ क्रोध में भरकर अपने धनुष को टंकराते हुए मद्रों और केकयों की सेना पर चढ़ आया।

सोऽर्जुनप्रमुखे यान्तं पाञ्चालकुलवर्धनः।
त्रिभिः शारद्वतं बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत्॥ १६॥
ततः स मद्रकान् हत्वा दशैव दशभिः शरैः।
पृष्ठरक्षं जघानाशु भल्लेन कृतवर्मणः॥ १७॥
दमनं चापि दायादं पौरवस्य महात्मनः।
जघान विमलाग्रेण नाराचेन परंतपः॥ १८॥
ततः सांयमनेः पुत्रः पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम्।
अविध्यत् त्रिंशता बाणैर्दशभिश्चास्य सारथिम्॥ १९॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणी परिसंलिहन्।
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन निचकर्तास्य कार्मुकम्॥ २०॥

पाँचालकुल की वृद्धि करनेवाले धृष्टद्युम्न ने अर्जुन के सामने जातेहुए कृपाचार्य की हँसली में तीन बाण मारे। फिर उसने दस बाणों से दस मद्रदेशी सैनिकों को मारकर शीघ्रता से कृतवर्मा के पृष्ठरक्षक को भल्ल मारकर गिरा दिया। फिर उस परंतप ने मनस्वी पौरव के पुत्र दमन को भी तीखी धारवाले नाराच से मार गिराया। तब सांयमनि के पुत्र ने युद्ध में दुर्मद, पाँचालराजकुमार को तीस बाणों से और उसके सारथी को दस बाणों से बींध दिया। तब अत्यन्त घायल हुए उस महा धनुर्धर ने अपने होठों को चाटते हुए, अत्यन्त तीखे भल्ल से उसके धनुष को काट दिया।

अथैनं पञ्चविंशत्या क्षिप्रमेव समार्पयत्।
अश्वांश्चास्यावधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णि सारथी॥ २१॥
स हताश्वे रथे तिष्ठन् ददर्श भरतर्षभ।
पुत्रः सांयमनेः पुत्रं पाञ्चाल्यस्य महात्मनः॥ २२॥
स प्रगृह्य महाघोरं निस्त्रिंशवरमायसम्।
पदातिस्तूर्णमानर्च्छद् रथस्थं पुरुषर्षभः॥ २३॥

हे राजन्! फिर उन्होंने शल के पुत्र को शीघ्रता मे पच्चीस बाण मारे। उन्होंने उसके घोड़ों और दोनों पृष्ठ रक्षकों को मार दिया। हे भरतश्रेष्ठ! मरे घोड़ोंवाले रथ पर बैठे हुए शल के पुत्र ने मनस्वी पांचालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न की तरफ देखा और लोहेकी विशाल और भयानक उत्तम तलवार को लेकर वह पुरुषश्रेष्ठ, शीघ्रता से रथ में बैठे हुए धृष्टद्युम्न की तरफ चला।

तं महौघमिवायान्तं खात् पतन्तमिवोरगम्।
भ्रान्तावरणनिस्त्रिंशं कालोत्सृष्टमिवान्तकम्॥ २४॥
दीप्यमानमिवादित्यं मत्तवारणविक्रमम्।
अपश्यन् पाण्डवास्तत्र धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ २५॥
तस्य पाञ्चालदायादः प्रतीपमभिधावतः।
शितनिस्त्रिंशहस्तस्य शरावरणधारिणः॥ २६॥
बाणवेगमतीतस्य तथाभ्याशमुपेयुषः।
त्वरन् सेनापतिः क्रुद्धो बिभेद गदया शिरः॥ २७॥

उस युद्ध में शलपुत्र मतवाले गजराज के समान पराक्रमी, और सूर्य के समान देदीप्यमान था। वह महान् वेगशाली जलप्रवाह, आकाश से गिरते हुए सर्प तथा काल के द्वारा भेजी गयी मृत्यु के समान जान पड़ता था। उसे पाण्डवों और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने नंगी तलवार लिये आतेहुए देखा। तलवार हाथ में लिये और कवच धारण किये तथा आक्रमण के लिये आतेहुए शलपुत्र पर, जो बाणों की मार को पार कर समीप ही आ गया था, क्रुद्ध पांचालपुत्र सेनापति ने गदा से प्रहारकर, उसके सिर को विदीर्ण कर दिया।

तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महारथे।
हाहाकारो महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष॥ २८॥
ततः सांयमनिः क्रुद्धो दृष्ट्वा निहतमात्मजम्।
अभिदुद्राव वेगेन पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम्॥ २९॥
तौ तत्र समरे शूरौ समेतौ युद्धदुर्मदौ।
ददृशुः सर्वराजानः कुरवः पाण्डवास्तथा॥ ३०॥

हे मान्यवर! उस महाधनुर्धर, महारथी राजपुत्र के मारे जाने पर आपकी सेना में महान् हाहाकार मच गया। तब अपने पुत्र को मारा हुआ देखकर शल क्रोध में भरकर युद्धदुर्मद, धृष्टद्युम्न की तरफ वेग से दौड़ा। तब युद्ध में दुर्मद वे दोनों वीर परस्पर युद्ध में लग गये। उनके युद्ध को कौरवों, पाण्डवों और सारे राज़ाओं ने देखा।

ततः सांयमनिः क्रुद्धः पार्षतं परवीरहा।
आजघान त्रिभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम्॥ ३१॥
तथैव पार्षतं शूरं शल्यः समितिशोभनः।
आजघानोरसि क्रुद्धस्ततो युद्धमवर्तत॥ ३२॥

फिर शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले शल ने क्रोध में भरकर भर कर धृष्टद्युम्न पर तीन बाणों से ऐसे प्रहार किया, जैसे हाथी को अंकुशों से मारा जाये। उसीप्रकार युद्ध में सुशोभित होनेवाले शल्य ने भी क्रुद्ध होकर द्रुपदवीर धृष्टद्युम्न की छाती पर प्रहार किया। फिर वहाँ भयंकर युद्ध छिड़ गया।

तेईसवाँ अध्याय : धृष्टद्युम्न, शल्य का युद्ध। भीम द्वारा गज सेना संहार।

तत्राद्भुतमपश्याम पार्षतस्य पराक्रमम्।
न्यवारयत यस्तूर्णं शल्यं समितिशोभनम्॥ १॥
नान्तरं दृश्यते तत्र तयोश्च रथिनोस्तदा।
मुहूर्तमिव तद् युद्धं तयोः सममिवाभवत्॥ २॥
ततः शल्यो महाराज धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च॥ ३॥
अथैनं शरवर्षेण च्छादयामास संयुगे।
गिरिं जलागमे यद्वज्जलदो जलवृष्टिभिः॥ ४॥

संजय ने कहा कि वहाँ हमने धृष्टद्युम्न का अद्भुत पराक्रम देखा, जिसने युद्ध में विजय पाने वाले शल्य को आगे बढ़ने से रोका। उन दोनों महारथियों में उस समय कुछ भी अन्तर प्रतीत नहीं हो रहा था। एक मुहूर्त तक उन दोनों में समान सा युद्ध होता रहा। तत्पश्चात् हे महाराज! शल्य ने एक पीले रंग के तीखे भल्ल से संग्राम में धृष्टद्युम्न का धनुष छिन्न कर दिया। उसके पश्चात् उस युद्धक्षेत्र

में उन्होंने धृष्टद्युम्न को बाणवर्षा से ऐसे अच्छादित करदिया, जैसे वर्षाऋतु में बादल जलवर्षा से पर्वत को भरदेते हैं।

अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो धृष्टद्युम्ने च पीडिते।
अभिदुद्राव वेगेन मद्रराजरथं प्रति॥ ५॥
ततो मद्राधिपरथं कार्ष्णिः प्राप्यातिकोपनः।
आर्तायनिममेयात्मा विव्याध निशितैः शरैः॥ ६॥
ततस्तु तावका राजन् परीप्सन्तोऽर्जुनिं रणे।
मद्रराजरथं तूर्णं परिवार्यावतस्थिरे॥ ७॥
दुर्योधनो विकर्णश्च दुःशासनविविंशती।
दुर्मर्षणो दुःसहश्च चित्रसेनोऽथ दुर्मुखः॥ ८॥
सत्यव्रतश्च भद्रं ते पुरुमित्रश्च भारत।
एते मद्राधिपरथं पालयन्तः स्थिता रणे॥ ९॥

तब धृष्टद्युम्न के पीड़ित होने पर अभिमन्यु क्रुद्ध होकर वेगपूर्वक मद्रराज के रथ की तरफ दौड़ा। फिर अत्यन्त क्रुद्ध अमितआत्मा अभिमन्यु ने मद्र देश के राजा ऋतायनपुत्र शल्य को तीखे बाणों से बींध दिया। हे राजन्! तब युद्ध में अर्जुन के पुत्र के पराभव के इच्छुक आपके पुत्र शीघ्रता से भद्रराज को घेरकर खड़े हो गये। हे भारत! आपका भला हो। दुर्योधन, विकर्ण, दुश्शासन, विविंशति, दुर्मर्षण, दुःसह, चित्रसेन, दुर्मुख, सत्यव्रत और पुरुमित्र ये मद्रराज की रक्षा के लिये रण में उटे हुए थे।

तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
द्रौपदेयाऽभिमन्युश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ १०॥
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो विशाम्पते।
अभ्यवर्तन्त संहृष्टाः परस्परवधैषिणः॥ ११॥
ते तदा जातसंरम्भाः सर्वेऽन्योन्यं जिघांसवः।
अन्योन्यमभिमर्दन्तः स्पर्धमानाः परस्परम्॥ १२॥
अन्योन्यस्पर्धया राजञ्ज्ञातयः सङ्गता मिथः।
महास्त्राणि विमुञ्चन्तः समापेतुरमर्षिणः॥ १३॥

हे प्रजापालक! उनका क्रोध में भरे हुए भीमसेन द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु और माद्री के दोनों पुत्र नकुल तथा सहदेव हर्ष में भरे हुए परस्पर वध की इच्छा से, अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों की वर्षा करते हुए सामना कर रहे थे। वे सब क्रोध में भरे हुए एक दूसरे को मारने के इच्छुक थे और परस्पर स्पर्धा करते हुए एकदूसरे को कुचलने का प्रयत्न कर रहे थे। हे राजन्! एक ही परिवार के होते हुए भी वे एकदूसरे की स्पर्धा से महान् अस्त्रों को छोड़ते हुए, अमर्ष में भरे हुए, परस्पर युद्ध करते हुए आक्रमण प्रत्याक्रमण कर रहे थे।

दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं महारणे।
विव्याध निशितैर्बाणैश्चतुर्भिः समरे द्रुतम्॥ १४॥
दुर्मर्षणश्च विंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैर्दुःसहश्चापि सप्तभिः॥ १५॥
विविंशतिः पञ्चभिश्च त्रिभिर्दुःशासनस्तथा।
तान् प्रत्यविध्यद् राजेन्द्र पार्षतः शत्रुतापनः॥ १६॥
एकैकं पञ्चविंशत्या दर्शयन् पाणिलाघवम्।
सत्यव्रतं च समरे पुरुमित्रं च भारत॥ १७॥
अभिमन्युरविध्यत् तु दशभिर्दशभिः शरैः।

तब उस महान् संग्राम में दुर्योधन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्रता से धृष्टद्युम्न को चार तीखे बाणों से युद्धस्थल में विद्ध कर दिया। दुर्मर्षण ने बीस चित्रसेन ने पाँच, दुर्मुख ने नौ, दुःसह ने सात, विविंशति ने पाँच और दुश्शासन ने तीन बाणों से, हे राजेन्द्र! उन सबको बींध दिया। तब शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले धृष्टद्युम्न ने अपने हस्तकौशल को दिखाते हुए एकएक को पच्चीस बाणों से बींधा। हे भारत! उस युद्ध में अभिमन्यु ने सत्यव्रत को और पुरुमित्र को दसदस बाणों सें बींधा।

माद्रीपुत्रौ तु समरे मातुलं मातृनन्दनौ॥ १८॥
अविध्येतां शरैस्तीक्ष्णैस्तदद्भुतमिवाभवत्।
ततः शल्यो महाराज स्वस्रीयौ रथिनां वरौ॥ १९॥
शरैर्बहुभिरानर्च्छत् कृतप्रतिकृतैषिणौ।
छाद्यमानौ ततस्तौ तु माद्रीपुत्रौ न चेलतुः॥ २०॥
अथ दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः।
विधित्सुः कलहस्यान्तं गदां जग्राह पाण्डवः॥ २१॥

माता को आनन्द देनेवाले माद्री के दोनों पुत्रों ने अपने मामा शल्य को तीखे बाणों से घायल कर दिया। यह एक अद्भुत बात थी। हे महाराज्! तब शल्य ने अपने रथियों में श्रेष्ठ और किये हुए प्रहार का बदला चुकाने के इच्छुक दोनों भानजों को बहुत से बाणों से पीड़ित किया। पर उनके बाणों से आच्छादित होते हुए भी माद्री के दोनों पुत्र विचलित नहीं हुए। तब दुर्योधन को देखकर महाबली पाण्डव भीमसेन ने कलह का अन्त करदेने की इच्छा से गदा को उठा लिया।

दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो मागधं समचोदयत्।
अनीकं दशसाहस्त्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम्॥ २२॥
गजानीकेन सहितस्तेन राजा सुयोधनः।
मागधं पुरतः कृत्वा भीमसेनं समभ्ययात्॥ २३॥
आपतन्तं च तं दृष्ट्वा गजानीकं वृकोदरः।
गदापाणिरवारोहद् रथात् सिंह इवोन्नदन्॥ २४॥
स गजान् गदया निघ्नन् व्यचरत् समरे बली।
भीमसेनो महाबाहुः सवज्र इव वासवः॥ २५॥

तब दुर्योधन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मगधदेश के दस हजार वेगवान् हाथियों की सेना को युद्ध के लिये प्रेरित किया। राजा दुर्योधन ने हाथियों की उस सेना के साथ मगधराज को आगेकर भीमसेन पर आक्रमण किया। तब हाथियों की उस सेना को आक्रमण करते हुए देखकर भीमसेन सिंह के समान गर्जते हुए, गदा हाथ में लेकर रथ से उतर पड़े और वे महाबाहु बलवान् भीम वज्रधारी इन्द्र के समान, युद्धस्थल में गदा से हाथियों का संहार करते हुए विचरने लगे।

ततस्तु द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ २६॥
पृष्ठं भीमस्य रक्षन्तः शरवर्षेण वारणान्।
अभ्यवर्षन्त धावन्तो मेघा इव गिरीन् यथा॥ २७॥
क्षुरैः क्षुरप्रैर्भल्लैश्च पीतैश्चाञ्जलिकैः शितैः।
व्यहरन्नुत्तमाङ्गानि पाण्डवा गजयोधिनाम्॥ २८॥
शिरोभिः प्रपतद्भिश्च बाहुभिश्च विभूषितैः।
अश्मवृष्टिरिवाभाति पाणिभिश्च सहाङ्कुशैः॥ २९॥

तब द्रौपदी के पुत्र, महारथी अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, भीम के पृष्ठ भाग की रक्षा करते हुए, दौड़ दौड़कर, हाथियों पर इस प्रकार बाणवर्षा करने लगे जैसे बादल पर्वतों पर पानी बरसाते हैं। वे पाण्डवलोग क्षुर, क्षुरप्र,पीतवर्ण भल्ल, और तीखे अंजलिक बाणों से हाथीसवारों के सिरों को काटकर गिराने लगे। उनके कटे हुए सिरों, आभूषणों से भूषित भुजाओं और अंकुशोंसहित हाथों के गिरने से ऐसा प्रतीत होरहा था, जैसे आकाश से पत्थरों की वर्षा होरही हो।

धृष्टद्युम्नहतानन्यानपश्याम महागजान्।
पततः पात्यमानांश्च पार्षतेन महात्मना॥ ३०॥

हमने धृष्टद्युम्न के द्वारा मारे गये बहुत से हाथियों को देखा। उस मनस्वी द्रुपदपुत्र के द्वारा बहुत से हाथी गिरे और गिराये जा रहे थे।

एकप्रहारनिहतान् भीमसेनेन दन्तिनः।
अपश्याम रणे तस्मिन् गिरीन् वज्रहतानिव॥ ३१॥
भग्नदन्तान् भग्नकरान् भग्नसक्थांश्च वारणान्।
भग्नपृष्ठत्रिकानन्यान् निहतान् पर्वतोपमान्॥ ३२॥
नदतःसीदतश्चान्यान् विमुखान् समरे गतान्।
विद्रुतान् भयसंविग्नांस्तथा विशकृतोऽपरान्॥ ३३॥
अपश्यं निहतान् नागान् राजन् निष्ठीवतोऽपरान्।
वमन्तो रुधिरं चान्ये भिन्नकुम्भा महागजाः॥ ३४॥

हमने उस युद्धस्थल में विद्युत् प्रहार से धराशायी पर्वतों के समान भीम के एक ही प्रहार से गिराये हुए दान्तार हाथियों को देखा। वहाँ किसी के दाँत टूट गये थे, किन्ही की सूँड कट गयी थी, किन्ही की जाँघें टूट गयी थीं, किन्ही की पीठ टूट गयी थी और कितने ही पर्वतों के समान विशालकाय गजराज मरे हुए पड़े थे। कुछ चिंघाड़ रहे थे, कुछ कराह रहे थे, कुछ युद्ध से विमुख हो कर भाग रहे थे और कुछ भय से व्याकुल होकर मलमूत्र कर रहे थे। हे राजन्। मैंने बहुत से हाथियों को मरणासन्न अवस्था में मुँह से फेन फेंकते हुए देखा और बहुत से विशाल हाथी, जिनके कुम्भस्थल फट गये थे, खून की उलटी कर रहे थे।

सम्मथ्यमानाः क्रुद्धेन भीमसेनेन दन्तिनः।
सहसा प्राद्रवन् क्लिष्टा मृद्नन्तस्तव वाहिनीम्॥ ३५॥
तं हि वीरं महेष्वासं सौभद्रप्रमुखा रथाः।
पर्यरक्षन्त युध्यन्तं वज्रायुधमिवामराः॥ ३६॥
शोणिताक्तां गदां बिभ्रदुक्षितां गजशोणितैः।
कृतान्त इव रौद्रात्मा भीमसेनो व्यदृश्यत॥ ३७॥
यथा पशूनां संघातं यष्ट्या पालः प्रकालयेत्।
तथा भीमो गजानीकं गदया समकालयत्॥ ३८॥
गदया वध्यमानास्ते मार्गणैश्च समन्ततः।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तः प्राद्रवन् कुञ्जरास्तव॥ ३९॥

क्रोध में भरे हुए भीमसेन के द्वारा मथित किये जाते हुए हाथी क्लेश पाकर, सहसा आपकी ही सेना को कुचलते हुए भागने लगे। उन वीर महाधनुर्धर भीम की अभिमन्यु आदि योद्धा युद्ध करते हुए उसीप्रकार रक्षा कररहे थे, जैसे देवता इन्द्र की करते हैं। खून में सनी और हाथियों के रक्त से भीगी

हुई गदा को धारण किये हुए भीम रौद्ररूपधारी मृत्यु के समान दिखाई दे रहे थे। जैसे पशुओं का पालक पशुओं को लाठी से हाँकता है, वैसे ही भीम हाथियों की सेना को अपनी गदा से खदेड़ रहे थे। आपके वे हाथी सबतरफ से बाणों और गदा से मारे जाते हुए अपनी ही सेना को कुचलते हुए भागने लगे।

चौबीसवाँ अध्याय : भीम का भीष्म से युद्ध। सात्यकि और भूरिश्रवा की मुठभेड़।

तदाश्चर्यमपश्याम पाण्डवस्य महात्मनः।
भीमसेनस्य समरे राजन् कर्मातिमानुषम्॥ १॥
उदीर्णान् पार्थिवान् सर्वान् साश्वान् सरथकुञ्जरान्।
असम्भ्रमं भीमसेनो गदया समवारयत्॥ २॥
स संवार्य बलौघांस्तान् गदया रथिनां वरः।
अतिष्ठत् तुमुले भीमो गिरिर्मेरुरिवाचलः॥ ३॥

संजय ने कहा कि हे राजन्! उस युद्ध में हमने मनस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेन का आश्चर्य से युक्त अमानुषिक कर्म देखा। घोड़ों, रथों और हाथियों सहित आगे बढ़ रहे सारे राजाओं को भीमसेन ने बिना घबराहट के अपनी गदा के सहारे रोक दिया। रथियों में श्रेष्ठ भीमसेन अपनी गदा से सेनाओं के समूह का निवारणकर उस तुमुल युद्ध में मेरुपर्वत के समान अविचलभाव से खड़े रहे।

तस्मिन् सुतुमुले घोरे काले परमदारुणे।
भ्रातरश्चैव पुत्राश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ ४॥
द्रौपदेयाऽभिमन्युश्च शिखण्डी चापराजितः।
न प्राजहन् भीमसेनं भये जाते महाबलम्॥ ५॥
पोथयन् रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि चाभिभूः।
कर्षयन् रथवृन्दानि बाहुवेगेन पाण्डवः॥ ६॥
विनिघ्नन् व्यचरत् संख्ये युगान्ते कालवद् विभुः।

उस महान् भयंकर, घोर और अत्यन्त दारुण समय में उनके भाई, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु और अपराजित शिखण्डी भय के उत्पन्न होने पर महाबली भीमसेन को छोड़कर नहीं गये। वे प्रभावशाली और शक्तिशाली पाण्डुपुत्र रथियों और घुड़सवारों के समूहों को नष्ट करते हुए, रथों के समूहों को अपनी भुजाओं के बल से खींचते और तोड़ते हुए युद्धक्षेत्र में प्रलयकालीन मृत्यु के समान विचरण कररहे थे।

मृद्गन् रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः॥ ७॥
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातिनः।
गदया व्यधमत् सर्वान् वातो वृक्षानिवौजसा॥ ८॥
भीमसेनो महाबाहुस्तव पुत्रस्य वै बले।
तत्र तत्र हतैश्चापि मनुष्यगजवाजिभिः॥ ९॥
रणाङ्गणं समभवन्मृत्योरावाससंनिभम्।
तं तथा महतीं सेनां द्रावयन्तं पुनः पुनः॥ १०॥
दृष्ट्वा मृत्युमिवायान्तं सर्वे विमनसोऽभवन्।

महाबाहु भीमसेन आपके पुत्र की सेना में रथों से रथियों को, हाथियों से हाथीसवारों को, घोड़ों की पीठ से घुड़सवारों को और भूमि पर पैदल सैनिकों को कुचलते हुए, उन्हें गदा से उसीप्रकार नष्ट कर रहे थे, जैसे वायु अपने वेग से वृक्षों को उखाड़ देती है। जहाँ तहाँ मरकर पड़े हुए मनुष्य, हाथी और घोड़ों के कारण, वह युद्धक्षेत्र मृत्यु के निवासस्थान के समान प्रतीत होता था। उस महान् सेना को बार बार भगाते हुए भीमसेन को मृत्यु के समान अपने सामने आते हुए देखकर, उस समय सब उदास हो जाते थे।

यतो यतः प्रेक्षते स्म गदामुद्यम्य पाण्डवः॥ ११॥
तेन तेन स्म दीर्यन्ते सर्वसैन्यानि भारत।
प्रदारयन्तं सैन्यानि बलेनामितविक्रमम्॥ १२॥
ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवान्तकम्।
तं तथा भीमकर्माणं प्रगृहीतमहागदम्॥ १३॥
दृष्ट्वा वृकोदरं भीष्मः सहसैव समभ्ययात्।

हे भारत! पाण्डुपुत्र भीम अपनी गदा को उठाकर जिसतरफ देखते थे, उसीतरफ की सेना में दरार पड़ जाती थी। अर्थात् वहाँ से सैनिक भागकर स्थान खाली करदेते थे। इसप्रकार महान् गदा को लिये हुए, भयानक कर्म करते हुए, मुँह फैलाये मृत्यु के समान सेनाओं को नष्ट करते हुए, अपनी शक्ति से सेनाओं को विदीर्ण करते हुए, अमित पराक्रमी भीमसेन को देखकर भीष्म सहसा वहाँ आ पहुँचे।

महता रथघोषेण रथेनादित्यवर्चसा॥ १४॥
छादयञ्शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान्।
तमायान्तं तथा दृष्ट्वा व्यात्ताननमिवान्तकम्।
भीष्मं भीमो महाबाहुः प्रत्युदीयादमर्षितः॥ १५॥

महान् रथघोष से युक्त और सूर्य के समान तेजस्वी रथ पर बैठे हुए, वर्षावाले बादलों के समान बाणों की वर्षा करते हुए और मुँह फैलाये मृत्यु के समान आते हुए उन भीष्म को देख कर महाबाहु भीम अमर्ष में भर कर, उनका सामना करने के लिये आगे बढ़े।

तस्मिन् क्षणे सात्यकिः सत्यसंधः
शिनिप्रवीरोऽभ्यपतत् पितामहम्।
निघ्नन्नमित्रान् धनुषा दृढेन।
संकम्पयंस्तव पुत्रस्य सैन्यम्॥ १६॥
तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशैः
शरान् वपन्तं निशितान् सुपुङ्खान्।
नाशक्नुवन् धारयितुं तदानीं
सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः॥ १७॥

तभी शिनिवंश के प्रमुख वीर, सत्यसंध सात्यकि ने अपने दृढ़ धनुष से शत्रुओं का विनाश करते हुए और आपके पुत्र की सेना को कम्पित करते हुए, पितामह भीष्म पर आक्रमण कर दिया। अपने चान्दी के समान श्वेत घोड़ों के द्वारा जाते हुए, सुन्दर पंखों वाले तीखे बाणों की वर्षा करते हुए, उनको हे भारत! आपके जो सैनिक थे, वे उस समय रोक नहीं सके।

अविध्यदेनं दशभिः पृषत्कै-
रलम्बुषो राक्षसोऽसौ तदानीम्।
शरैश्चतुर्भिः प्रतिविद्ध्य तं च
नप्ता शिनेरभ्यपतद् रथेन॥ १८॥

केवल राक्षस अलम्बुष ने उन्हें तब दस बाणों से बींधा। तब चार बाणों से उत्तर में उन्हें बींधकर शिनि के पौत्र ने रथ के द्वारा भीष्म पर आक्रमण किया।

अन्वागतं वृष्णिवरं निशम्य
तं शत्रुमध्ये परिवर्तमानम्।
प्रद्रावयन्तं कुरुपुङ्गवांश्च
पुनः पुनश्च प्रणदन्तमाजौ॥ १९॥
योधास्त्वदीयाः शरवर्षैरवर्षन्
मेघा यथा भूधरमम्बुवेगैः।
तथापि तं धारयितुं न शेकु-
र्मध्यन्दिने सूर्यमिवातपन्तम्॥ २०॥

यह सुनकर कि वृष्णिवंश के श्रेष्ठ व्यक्ति सात्यकि शत्रुओं के बीच में विचर रहे हैं और कुरुसेना के प्रमुख वीरों को भगा रहे हैं तथा युद्धस्थल में बारबार गर्ज रहे हैं, आपके योद्धाओं ने उनके ऊपर बाणों की उसीप्रकार वर्षा आरम्भ कर दी, जैसे बादल पर्वत पर जल बरसाते हैं पर फिर भी वे दोपहर के तपते हुए सूर्य के समान उन्हें रोक न सके।

न तत्र कश्चिन्नविषण्ण आसी-
दृते राजन् सोमदत्तस्य पुत्रात्।
स वै समादाय धनुर्महात्मा
भूरिश्रवा भारत सौमदत्तिः।
दृष्ट्वा रथान् स्वान् व्यपनीयमानान्
प्रत्युद्ययौ सात्यकिं योद्धुमिच्छन्॥ २१॥

हे राजन्! उस समय सिवाय भूरिश्रवा के कोई भी ऐसा योद्धा नहीं था, जो उदास न हो। हे भारत! सोमदत्त के पुत्र मनस्वी भूरिश्रवा ने धनुष को लेकर, अपने रथियों को भगाये जाते हुए देख कर, युद्ध की इच्छा करते हुए सात्यकि पर चढाई की।

पच्चीसवाँ अध्याय : भीम द्वारा धृतराष्ट्र के आठ पुत्रों का वध। घटोत्कच पराक्रम। कौरवों की पराजय।

संजय उवाच

ततो भूरिश्रवा राजन् सात्यकिं नवभिः शरैः।
प्राविध्यद् भृशसंक्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम्॥ १॥
कौरवं सात्यकिश्चैव शरैः संनतपर्वभिः।
अवारयदमेयात्मा सर्वलोकस्य पश्यतः॥ २॥
ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः।
सौमदत्तिं रणे यत्तः समन्तात् पर्यवारयत्॥ ३॥
तं चैव पाण्डवाः सर्वे सात्यकिं रभसं रणे।
परिवार्य स्थिताः संख्ये समन्तात् सुमहौजसः॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे राजन्! तब भूरिश्रवा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सत्यकि को नौ बाणों से इस प्रकार बींधा जैसे अंकुशों से गजराज को पीड़ित

किया जाता है। तब अमितआत्मा सात्यकि ने भी सब लोगों के देखते हुए झुकी गाँठवाले बाणों से कुरुवंशी भूरिश्रवा को रोक दिया। तब सगे भाइयों से घिरे हुए राजा दुर्योधन ने युद्ध के लिये तैयार होकर सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा को चारोंतरफ से उसकी रक्षा के लिये घेर लिया। उधर महान् तेजस्वी सारे पाण्डव भी उस युद्धक्षेत्र में वेगवान् सात्यकि को सबतरफ से घेरकर खड़े हो गये।

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामुद्यम्य भारत।
दुर्योधनमुखान् सर्वान् पुत्रांस्ते पर्यवारयत्॥ ५॥
रथैरनेकसाहस्रैः क्रोधामर्षसमन्वितः।
नन्दकस्तव पुत्रस्तु भीमसेनं महाबलम्॥ ६॥
विव्याध विशिखैः षड्भिःकङ्कपत्रैः शिलाशितैः।
दुर्योधनश्च समरे भीमसेनं महारथम्॥ ४॥
आजघानोरसि क्रुद्धो मार्गणैर्नवभिः शितैः।
ततो भीमो महाबाहुः स्वरथं सुमहाबलः॥ ८॥
आरुरोह रथश्रेष्ठं विशोकं चेदमब्रवीत्।

हे भारत! भीमसेन ने तो अत्यन्त क्रोध में भरकर, अपनी गदा उठाकर, आपके दुर्योधन आदि सारे पुत्रों को रोक दिया। तब क्रोध और असहनशीलता से भरे हुए आपके पुत्र नन्दक ने कई हजार रथियों के साथ आकर, महाबली भीमसेन को शिला पर तेज किये हुए छै कंकपत्रयुक्त बाणों से बींध दिया। दुर्योधन ने भी युद्ध में क्रुद्ध होकर महारथी भीमसेन की छाती पर नौ तीखे बाणों से प्रहार किया। तब अत्यन्त महाबली, महाबाहु भीमसेन अपने श्रेष्ठ रथ पर चढ़ गये और अपने सारथी विशोक से यह बोले कि–

एते महारथाः शूरा धार्तराष्ट्राः समागताः॥ ९॥
मामेव भृशसंक्रुद्धा हन्तुमभ्युद्यता युधि।
मनोरथद्रुमोऽस्माकं चिन्तितो बहुवार्षिकः॥ १०॥
सफलःसूत चाद्येह योऽहं पश्यामि सोदरान्।
यत्राशोक समुत्क्षिप्ता रेणवो रथनेमिभिः॥ ११॥
प्रयास्यत्यन्तरिक्षं हि शरवृन्दैर्दिगन्तरे।
तत्र तिष्ठति संनद्धः स्वयं राजा सुयोधनः॥ १२॥

ये धृतराष्ट्र के शूरवीर महारथी पुत्र आकर एकत्र हो गये हैं। ये अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुझे ही मारने के लिये युद्ध में तैयार होकर आये हैं। मेरा बहुत वर्षों से जो मनोरथरूपी वृक्ष था, जिसके बारे में मैं सोचता रहता था, आज हे सूत। सफल होनेवाला है। क्योंकि मैं इन भाइयों को एकत्र हुआ देखरहा हूँ। हे अशोक। देखो जिधर रथ के पहियों की धूल उड़कर बाणसमूहों के साथ, अन्तरिक्ष और दिगन्त में फैलरही है वहीं राजा दुर्योधन कवच आदि से सुसज्जित होकर विद्यमान है।

भ्रातरश्चास्य संनद्धाः कुलपुत्रा मदोत्कटाः।
एतानद्य हनिष्यामि पश्यतस्ते न संशयः॥ १३॥
तस्मान्ममाश्वान् संग्रामे यत्तः संयच्छ सारथे।
एवमुक्त्वा ततः पार्थस्तव पुत्रं विशाम्पते॥ १४॥
विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैः कनकभूषणैः।
नन्दकं च त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत् स्तनान्तरे॥ १५॥
तं तु दुर्योधनः षष्ट्या विद्ध्वा भीमं महाबलम्।
त्रिभिरन्यैः सुनिशितैर्विशोकं प्रत्यविध्यत॥ १६॥

उसके कुलीन और मदोन्मत्त भाई भी वहीं तैयार हुए विद्यमान हैं। इनको आज मैं तुम्हारे देखते हुए ही मार दूँगा, इसमें संशय नहीं है। इसलिये हे सारथी! तुम मेरे घोड़ों को सावधान होकर संग्राम में वश में रखो। हे प्रजा के स्वामी! यह कहकर उस कुन्तीपुत्र ने आपके पुत्र दुर्योधन को दस तीखे सुनहले बाणों से बींध दिया। नन्दक की छाती में उन्होंने तीन बाणों से चोट पहुँचायी। तब दुर्योधन ने महाबली भीम को साठ बाणों से और विशोक को तीन अन्य पैने बाणों से बींध दिया।

भीमस्य च रणे राजन् धनुश्चिच्छेद भासुरम्।
मुष्टिदेशे भृशं तीक्ष्णैस्त्रिभिर्भल्लैर्हसन्निव॥ १७॥
समरे प्रेक्ष्य यन्तारं विशोकं तु वृकोदरः।
पीडितं विशिखैस्तीक्ष्णैस्तव पुत्रेण धन्विना॥ १८॥
अमृष्यमाणः संरब्धो धनुर्दिव्यं परामृशत्।
पुत्रस्य ते महाराज वधार्थं भरतर्षभ॥ १९॥
समाधत्त सुसंक्रुद्धः क्षुरप्रं लोमवाहिनम्।
तेन चिच्छेद नृपतेर्भीमः कार्मुकमुत्तमम्॥ २०॥

हे राजन्! तब दुर्योधन ने मुस्कराते हुए भीम के तेजस्वी धनुष को अत्यन्त तीखे तीन भल्ल बाणों से मुट्ठी के स्थान से काट दिया। तब युद्ध में अपने सारथी विशोक को आपके धनुर्धर पुत्र के तीखे बाणों से पीड़ित देखकर, उसे सहन न करते हुए, भीम ने क्रोध में भरकर, अपने दिव्य धनुष को, हे भरत

श्रेष्ठ, महाराज! आपके पुत्र के वध के लिये उठाया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस पर पंखवाले क्षुरप्र बाण का सन्धान किया। उसके द्वारा भीम ने दुर्योधन के उत्तम धनुष को काट दिया।

सोऽपविद्ध्य धनुश्छिन्नं पुत्रस्ते क्रोधमूर्च्छितः।
अन्यत् कार्मुकमादत्त सत्वरं वेगवत्तरम्॥ २१॥
संदधे विशिखं घोरं कालमृत्युसमप्रभम्।
तेनाजघान संक्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे॥ २२॥
स गाढविद्धो व्यथितः स्यन्दनोपस्थ आविशत्।
स निषण्णो रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह॥ २३॥
तं दृष्ट्वा व्यथितं भीममभिमन्युपुरोगमाः।
नामृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः॥ २४॥
ततस्तु तुमुलां वृष्टिं शस्त्राणां तिग्मतेजसाम्।
पातयामासुरव्यग्राः पुत्रस्य तव मूर्धनि॥ २५॥

तब क्रोध से मूर्च्छित होकर आपके पुत्र ने उस कटे हुए धनुष को फेंककर शीघ्रता से एक दूसरे अधिक वेगवाले धनुष को लिया। फिर उसने एक भयानक काल और मृत्यु के समान घोर बाण का सन्धान किया और उससे उसने भीम की छाती में चोट पहुँचायी। उस बाण से गहरे घायल होकर भीम रथ की बैठक में बैठ गये और बैठते ही उन्हें मूर्च्छा आ गयी। तब भीम को व्यथित हुआ देखकर, अभिमन्यु आदि पाण्डवों के महाधनुर्धर महारथी सहन नहीं कर सके। तब वे बिना व्यग्र हुए, आपके पुत्र के सिर पर तीखे शस्त्रास्त्रों की घोर वर्षा करने लगे।

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः।
दुर्योधनं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः॥ २६॥
शल्यं च पञ्चविंशत्या शरैर्विव्याध पाण्डवः।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासः स विद्धो व्यपयाद् रणात्॥ २७॥

फिर महाबली भीमसेन ने होश में आकर दुर्योधन को तीन बाणों से और फिर पाँच बाणों से घायल किया। उस महाधनुर्धर पाण्डुपुत्र ने फिर सुनहरे पंखवाले पच्चीस बाणों से शल्य को बींध दिया। वे तब घायल होकर युद्धभूमि से बाहर चले गये।

प्रत्युद्ययुस्ततो भीमं तव पुत्राश्चतुर्दश।
सेनापतिः सुषेणश्च जलसंधः सुलोचनः॥ २८॥
उग्रो भीमरथो भीमो वीरबाहुरलोलुपः।
दुर्मुखो दुष्प्रधर्षश्च विवित्सुर्विकटः समः॥ २९॥
विसृजन्तो बहून् बाणान् क्रोधसंरक्तलोचनाः।
भीमसेनमभिद्रुत्य विव्यधुः सहिता भृशम्॥ ३०॥
पुत्रांस्तु तव सम्प्रेक्ष्य भीमसेनो महाबलः।
सृक्किणी विलिहन् वीरः पशुमध्ये यथा वृकः॥ ३१॥
अभिपत्य महाबाहुर्गरुत्मानिव वेगितः।
सेनापतेः क्षुरप्रेण शिरश्चिच्छेद पाण्डवः॥ ३२॥

तब आपके चौदह पुत्रों ने भीमसेनपर आक्रमण कर दिया। उनके नाम हैं— सेनापति, सुषेण, जलसंध, सुलोचन, उग्र, भीमरथ, भीम, वीरबाहु,, अलोलुप, दुर्मुख, दुष्प्रधर्ष, विवित्सु, विकट और सम। ये क्रोध से लाल आँखें किये, एकसाथ एकत्र होकर, भीमसेन पर आक्रमण कर उसे अत्यन्त घायल करने लगे। तब आपके पुत्रों को देखकर महाबली भीमसेन, पशुओं के बीच में खड़े भेड़िये के समान अपने ओठों के किनारों को चाटने लगे। फिर उस महाबाहु पाण्डुपुत्र ने गरुड़ के समान वेगसहित आक्रमण कर, क्षुरप्रबाण से सेनापति का सिर काट लिया।

सम्प्रहस्य च हृष्टात्मा त्रिभिर्बाणैर्महाभुजः।
जलसंधं विनिर्भिद्य सोऽनयद् यमसादनम्॥ ३३॥
सुषेणं च ततो हत्वा प्रेषयामास मृत्यवे।
उग्रस्य सशिरस्त्राणं शिरश्चन्द्रोपमं भुवि॥ ३४॥
पातयामास भल्लेन कुण्डलाभ्यां विभूषितम्।
वीरबाहुं च सप्तत्या साश्वकेतुं ससारथिम्॥ ३५॥
निनाय समरे वीरः परलोकाय पाण्डवः।
भीमभीमरथौ चोभौ भीमसेनो हसन्निव॥ ३६॥
पुत्रौ ते दुर्मदौ राजन्ननयद् यमसादनम्।
ततः सुलोचनं भीमः क्षुरप्रेण महामृधे॥ ३७॥
मिषतां सर्वसैन्यानामनयद् यमसादनम्।

फिर प्रसन्न होकर हँसते हुए उस महाबाहु ने तीन बाणों से जलसंध को बींध कर उसे यमलोक में पहुँचा दिया। फिर उन्होंने सुषेण को मारकर मृत्यु के मुख में भेज दिया और फिर भल्लनाम के बाण से उग्र के चन्द्र के समान, कुण्डलों से सुशोभित मस्तक को उसके शिरस्त्राणसहित काट कर भूमि पर गिरा दिया। फिर उस वीर पाण्डु पुत्र ने समरभूमि में वीरबाहु को सत्तर बाणों के द्वारा घोड़ों, ध्वज और सारथी सहित परलोक में भेज दिया। हे राजन्! फिर भीमसेन ने मुस्कराते हुए, युद्ध में दुर्मद होकर

लड़नेवाले आपके भीम और भीमरथ नाम के पुत्रों को भी यमलोक में भेज दिया। फिर उस महान् युद्ध में भीम ने सुलोचन को भी सारी सेनाओं के देखते हुए यमलोक में भेज दिया।

पुत्रास्तु तव तं दृष्ट्वा भीमसेनपराक्रमम्॥ ३८॥
शेषा येऽन्येऽभवंस्तत्र ते भीमस्य भयार्दिताः।
विप्रद्रुता दिशो राजन् वध्यमाना महात्मना॥ ३९॥
ततोऽब्रवीच्छान्तनवः सर्वानेव महारथान्।
एष भीमो रणे क्रुद्धो धार्तराष्ट्रान् महारथान्॥ ४०॥
यथा प्राग्र्यान् यथा ज्येष्ठान् यथा शूरांश्च संगतान्।
निपातयत्युग्रधन्वा तं प्रगृह्णीत माचिरम्॥ ४१॥

तब आपके शेष बचे हुए पुत्र भीमसेन के पराक्रम को देखकर भीम के भय से पीड़ित होकर, मनस्वी पाण्डुपुत्र के द्वारा प्रहार किये जाते हुए, सारी दिशाओं में भाग गये। तब भीष्म ने सारे ही महारथियों से कहा कि ये भयंकर धनुर्धर भीम युद्ध में क्रुद्ध होकर धृतराष्ट्र के महारथी और शूर पुत्रों को, जो जो उनके सामने जाते हैं, उन श्रेष्ठों और ज्येष्ठों सभी को मार गिरा रहे हैं। तुमलोग उन्हें वश में करो। देर मत करो।

एवमुक्तास्ततः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनं महाबलम्॥ ४२॥
भगदत्तः प्रभिन्नेन कुञ्जरेण विशाम्पते।
अभ्ययात् सहसा तत्र यत्र भीमो व्यवस्थितः॥ ४३॥
आपतन्नेव च रणे भीमसेनं शिलीमुखैः।
अदृश्यं समरे चक्रे जीमूत इव भास्करम्॥ ४४॥
अभिमन्युमुखास्तत् तु नामृष्यन्त महारथा।
भीमस्याच्छादनं संख्ये स्वबाहुबलमाश्रिताः॥ ४५॥

यह कहे जाने पर सारे दुर्योधन के सैनिक क्रोध में भरकर महाबली भीमसेन की तरफ दौड़े। हे प्रजानाथ! भगदत्त मद बहानेवाले हाथी के द्वारा तुरन्त वहाँ पहुँचे, जहाँ भीमसेन विद्यमान थे। युद्ध क्षेत्र में आते ही उन्होंने अपने बाणों से भीमसेन को इसप्रकार ढक दिया जैसे बादल सूर्य को ढक लेते हैं। तब अपनी भुजाओं के बल पर आश्रित अभिमन्यु आदि महारथी भीमसेन के इसप्रकार बाणों से आच्छादित होने को सहन न कर सके।

त एनं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयन्।
गजं च शरवृष्ट्या तु बिभिदुस्ते समन्ततः॥ ४६॥
स शस्त्रवृष्ट्याभिहतः समस्तैस्तैर्महारथैः।
प्राग्ज्योतिषगजो राजन् नानालिङ्गैः सुतेजनैः॥ ४७॥
संजातरुधिरोत्पीडः प्रेक्षणीयोऽभवद् रणे।
गभस्तिभिरिवार्कस्य संस्यूतो जलदो महान्॥ ४८॥
संचोदितो मदस्रावी भगदत्तेन वारणः।
अभ्यधावत तान् सर्वान् कालोत्सृष्ट इवान्तकः॥ ४९॥
द्विगुणं जवमास्थाय कम्पयंश्चरणैर्महीम्।

उन्होंने भी सबतरफ बाणवर्षाकर भगदत्त को रोका। उन्होंने उसके हाथी को बाणवर्षा द्वारा सब तरफ से घायल करदिया। हे राजन्! अनेक प्रकार के चिह्न धारण किये हुए अति तेजस्वी उन सारे महारथियों की बाणवर्षा से घायल और खून से लथपथ हुआ प्राग्ज्योतिषराज का वह हाथी उस युद्ध में इस प्रकार प्रतीत हो रहा था, जैसे सूर्य की लाल किरणों से रंगा हुआ कोई विशाल बादल हो। तब भगदत्त के द्वारा प्रेरित किया हुआ, वह मद बहानेवाला हाथी, दुगने वेग को धारणकर, भूमि को कँपाता हुआ, काल के द्वारा प्रेरित मृत्यु के समान, उन सब महारथियों की तरफ दौड़ा।

तस्य तत् सुमहद् रूपं दृष्ट्वा सर्वे महारथाः॥ ५०॥
असह्यं मन्यमानाश्च नातिप्रमनसोऽभवन्।
ततस्तु नृपतिः क्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे॥ ५१॥
आजघान महाराज शरेणानतपर्वणा।
सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तेन राज्ञा महारथः॥ ५२॥
मूर्च्छयाभिपरीतात्मा ध्वजयष्टिं समाश्रयत्।
तांस्तु भीतान् समालक्ष्य भीमसेनं च मूर्च्छितम्॥ ५३॥
ननाद बलवन्नादं भगदत्तः प्रतापवान्।

उस हाथी के अत्यन्त महान् रूप को देखकर वे सारे महारथी उसे अपने लिये असह्य मानते हुए हतोत्साहित हो गये। हे महाराज! तब राजा भगदत्त ने क्रुद्ध होकर एक झुकी हुई गाँठवाले बाण से भीमसेन की छाती के बीच में प्रहार किया। तब उस महाधनुर्धर महारथी ने उस राजा के द्वारा अत्यन्त घायल होकर, मूर्च्छा से आविष्ट होकर ध्वजा के डंडे को थाम लिया। उन महारथियों को भयभीत और भीमसेन को मूर्च्छित देखकर प्रतापी और बलवान् भगदत्त ने जोर से गर्जना की।

घटोत्कचस्तु स्वं नागं चोदयामास तं तदा॥ ५४॥
सगजं भगदत्तं तु हन्तुकामः परंतपः।
ते चान्ये चोदिता नागा राक्षसैस्तैर्महाबलैः॥ ५५॥

परिपेतुः सुसंरब्धाश्चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्दिशम्।
भगदत्तस्य तं नागं विषाणैरभ्यपीडयन्॥ ५६॥
स पीड्यमानस्तैर्नागैर्वेदनार्तः शराहतः।
अनदत् सुमहानादमिन्द्राशनिसमस्वनम्॥ ५७॥
तस्य तं नदतो नादं सुघोरं भीमनिःस्वनम्।
श्रुत्वा भीष्मोऽब्रवीद् द्रोणं राजानं च सुयोधनम्॥ ५८॥

तब मनुष्यों को संतप्त करनेवाले घटोत्कच ने भगदत्त को उसके हाथीसहित मार देने की इच्छा से अपने हाथी को उसकी तरफ प्रेरित किया। उसके साथी महाबली राक्षसों के द्वारा भी अपनेअपने हाथी, जो चारचार दाँतोंवाले थे और अत्यन्त क्रोध में भरे हुए थे, भगदत्त की तरफ बढ़ा दिये गये। वे चारों दिशाओं से उस पर टूट पड़े। उन्होंने अपने दाँतों से भगदत्त के हाथी को पीड़ित कर दिया। उन हाथियों के दाँतों से पीड़ित होता हुआ और बाणों के प्रहार से घायल, भगदत्त का वह हाथी पीड़ा से व्याकुल होकर इन्द्र के वज्र के समान ऊँची आवाज में चिंघाड़ने लगा। चिंघाड़ते हुए उस हाथी की अत्यन्त घोर और भयंकर आवाज को सुनकर भीष्म ने द्रोणाचार्य और राजा दुर्योधन से कहा कि—

एष युध्यति संग्रामे हैडिम्बेन दुरात्मना।
भगदत्तो महेष्वासः कृच्छ्रे च परिवर्तते॥ ५९॥
राक्षसश्च महाकायः स च राजातिकोपनः।
एतौ समेतौ समरे कालमृत्युसमावुभौ॥ ६०॥
श्रुयते चैव हृष्टानां पाण्डवानां महास्वनः।
हस्तिनश्चैव सुमहान् भीतस्य रुदितध्वनिः॥ ६१॥
तत्र गच्छाम भद्रं वो राजानं परिरक्षितुम्।
अरक्ष्यमाणः समरे क्षिप्रं प्राणान् विमोक्ष्यति॥ ६२॥

यह महाधनुर्धर भगदत्त युद्धस्थल में दुष्ट हिडिम्बापुत्र से युद्ध कर रहे हैं और संकट में पड़े हुए हैं। वह राक्षस विशालकाय है और ये राजा भी अत्यन्त क्रोध में हैं। ये दोनों काल और मृत्यु के समान परस्पर युद्ध कर रहे हैं। देखो हर्षित पाण्डवों के महान् सिंहनाद की ध्वनि सुनाई दे रही है तथा डरे हुए हाथी की अत्यन्त महान् रोने की आवाज सुनाई दे रही है। इसलिये आपका कल्याण हो। हम राजा की रक्षा के लिये वहाँ चलें। नहीं तो रक्षा न होने पर वे युद्धस्थल में अपने प्राणों का त्याग कर देंगे।

ते त्वरध्वं महावीर्याः किं चिरेण प्रयामहे।
महान् हि वर्तते रौद्रः संग्रामो लोमहर्षणः॥ ६३॥
भक्तश्च कुलपुत्रश्च शूरश्च पृतनापतिः।
युक्तं तस्य परित्राणं कर्तुमस्माभिरच्युत॥ ६४॥
भीष्मस्य तद् वचः श्रुत्वा सर्व एव महारथाः।
द्रोणभीष्मौ पुरस्कृत्य भगदत्तपरीप्सया॥ ६५॥
उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र सोऽभवत्।
तान् प्रयातान् समालोक्य युधिष्ठिरपुरोगमाः॥ ६६॥
पञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं पृष्ठतोऽनुययुः परान्।

हे महापराक्रमी वीरों! जल्दी करो। देर करके जाने से क्या लाभ? यह संग्राम महाभयंकर और रोंगटे खड़े करदेनेवाला है। हे अच्युत! भगदत्त हमारी सेना के सेनापति, हमसे प्रेम करनेवाले, कुलीन और शूरवीर हैं। हमारे द्वारा उनका बचाव करना सर्वथा उचित है। भीष्म की उस बात को सुनकर सारे ही महारथी द्रोण और भीष्म को आगे कर भगदत्त को बचाने की इच्छा से, अत्यन्त शीघ्रता का आश्रय लेकर उस स्थान पर गये जहाँ भगदत्त विद्यमान थे। उन्हें वहाँ जाते हुए देखकर युधिष्ठिर आदि पाण्डव पांचालों के साथ उनके पीछेपीछे गये।

तान्यनीकान्यथालोक्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्॥ ६७॥
ननाद सुमहानादं विस्फोटमशनेरिव।
तस्य तं निनदं श्रुत्वा दृष्ट्वा नागांश्च युध्यतः॥ ६८॥
भीष्मः शान्तनवो भूयो भारद्वाजमभाषत।
न रोचते मे संग्रामो हैडिम्बेन दुरात्मना॥ ६९॥
बलवीर्यसमाविष्टः ससहायश्च साम्प्रतम्।
लब्धलक्ष्यः प्रहारी च वयं च श्रान्तवाहनाः॥ ७०॥
पाञ्चालैः पाण्डवेयैश्च दिवसं क्षतविक्षताः।

तब उन सेनाओं को देखकर उस प्रतापी राक्षस राज ने इतनी जोर से महान् सिंहनाद किया, मानों विद्युत् का विस्फोट हुआ हो। उसके उस सिंहनाद को सुनकर, तथा उसके हाथियों को युद्ध करते हुए देखकर शान्तनुपुत्र भीष्म ने द्रोणाचार्य से पुनः यह कहा कि मुझे इस समय दुष्ट हिडिम्बापुत्र के साथ युद्ध करना अच्छा नहीं लग रहा है। यह बल और वीर्य से युक्त है और इसके सहायक साथ हैं। यह प्रहार करने वाला और लक्ष्य भेदने में कुशल है, पर हमारे वाहन थक गये हैं। वे दिन में पाँचालों और पाण्डव सेनाओं से घायल होते रहे हैं।

तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकाशिभिः॥ ७१॥
घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह।
पितामहवचः श्रुत्वा तथा चक्रुः स्म कौरवाः॥ ७२॥
उपायेनापयानं ते घटोत्कचभयार्दिताः।
दुर्योधनस्तु नृपतिर्दीनो भ्रातृवधेन च।
मूहूर्तं चिन्तयामास वाष्पशोकसमाकुलः॥ ७३॥

इस लिये मुझे विजय के इच्छुक पाण्डवों के साथ इस समय युद्ध करना अच्छा नहीं लग रहा है। तुम आज युद्ध विराम की घोषणा कर दो। कल शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे। तब पितामह के वचनों को सुनकर कौरवों ने वैसा ही किया। वे भी घटोत्कच के भय से पीड़ित थे। इसलिये उन्होंने उपाय से अपनी सेनाओं को वापिस बुला लिया। राजा दुर्योधन उस समय भाइयों के वध के कारण दीन हो रहा था। शोक से व्याकुल होकर और आँसू बहाते हुए वह दो घड़ी तक चिन्ता में पड़ा रहा।

छब्बीसवाँ अध्याय : पाँचवें दिन का आरम्भ। व्यूह निर्माण।

संजय उवाच

व्युषितायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे।
उभे सेने महाराज युद्धायैव समीयतुः॥ १॥
अरक्षन्मकरव्यूहं भीष्मो राजन् समन्ततः।
स निर्ययौ महाराज पिता देवव्रतस्तव॥ २॥
महता रथवंशेन संवृतो रथिनां वरः।
इतरेतरमन्वीयुर्यथाभागम- वस्थिताः॥ ३॥
रथिनः पत्तयश्चैव दन्तिनः सादिनस्तथा।

संजय ने कहा कि हे महाराज! रात्रि के व्यतीत होने और सूर्य के निकलने पर दोनों सेनाएँ युद्ध के लिये तैयार हो गयीं। हे राजन्! भीष्म ने मकरव्यूह बनाकर अपनी सेना की सबतरफ से रक्षा की। हे महाराज! तब आपके पिता, महारथियों में श्रेष्ठ देवव्रत विशाल रथसेना के साथ युद्ध के लिये निकले। उनके पीछे निश्चित स्थानों पर विद्यमान रथी, पैदल, हाथीसवारों और घुड़सवारों ने भी एक दूसरे का अनुकरण किया।

तान् दृष्ट्वाभ्युद्यतान् संख्ये पाण्डवा हि यशस्विनः॥ ४॥
श्येनेन व्यूहराजेन तेनाजय्येन संयुगे।
अशोभत मुखे तस्य भीमसेनो महाबलः॥ ५॥
नेत्रे शिखण्डी दुर्धर्षो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
शीर्षे तस्याभवद् वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः॥ ६॥
विधुन्वन् गाण्डिवं पार्थो ग्रीवायामभवत् तदा।
अक्षौहिण्या समं तत्र वामपक्षोऽभवत् तदा॥ ७॥
महात्मा द्रुपदः श्रीमान् सह पुत्रेण संयुगे।
दक्षिणश्चाभवत् पक्षः कैकेयोऽक्षौहिणीपतिः॥ ८॥
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चापि वीर्यवान्।

उन्हें युद्ध के लिये तैयार देखकर यशस्वी पाण्डव भी श्येन नाम के अजेय व्यूहराज के रूप में अपनी सेना को अवस्थित कर युद्ध के लिये तैयार हुए। उस श्येन के मुखभाग पर महाबलवान् भीमसेन सुशोभित हुए और नेत्रों के स्थान पर दुर्धर्ष शिखण्डी और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न अवस्थित थे। सत्यविक्रमी वीर सात्यकि उसके सिर के स्थान पर विद्यमान थे और अपने गाण्डीव धनुष को टंकारते हुए अर्जुन उसकी गर्दन के स्थान पर खड़े हुए थे। श्रीमान् महात्मा द्रुपद अपने पुत्र तथा अक्षौहिणी सेना के साथ उसके बाँयें पंख पर विद्यमान थे और दायें पंख पर केकयराज, अक्षौहिणी सेना के स्वामी युद्ध में विराजमान थे, द्रौपदी के पुत्र और पराक्रमी अभिमन्यु उसके पिछले भाग में खड़े हुए।

पृष्ठे समभवच्छ्रीमान् स्वयं राजा युधिष्ठिरः॥ ९॥
भ्रातृभ्यां सहितो वीरो यमाभ्यां चारुविक्रमः।
प्रविश्य तु रणे भीमो मकरं मुखतस्तदा॥ १०॥
भीष्ममासाद्य संग्रामे छादयामास सायकैः।
ततो भीष्मो महास्त्राणि पातयामास भारत॥ ११॥
मोहयन् पाण्डुपुत्राणां व्यूढं सैन्यं महाहवे।
सम्मुह्यति तदा सैन्ये त्वरमाणो धनंजयः॥ १२॥
भीष्मं शरसहस्रेण विव्याध रणमूर्धनि।

उत्तम पराक्रम से युक्त श्रीमान् वीरराजा युधिष्ठिर दोनों जुड़वाँ भाइयों नकुल और सहदेव के साथ स्वयं पृष्ठ भाग में ही सुशोभित हुए। तब युद्ध में प्रवेश कर भीम ने मकरव्यूह के मुख पर खड़े हुए भीष्म को अपने बाणों से ढक दिया। हे भारत! उस महान् युद्ध में भीष्म पाण्डुपुत्रों की व्यूहबद्ध सेना को मोहित करते हुए महान् अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। तब

जब भीष्म सेना को सम्मोहित कर रहे थे, अर्जुन ने शीघ्रता से युद्ध के मुहाने पर भीष्म को हजार बाणों से बींध दिया अर्थात् हजार बाणों की वर्षा की।

ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजमभाषत॥ १३॥
पूर्वं दृष्ट्वा वधं घोरं बलस्य बलिनां वरः।
भ्रातृणां च वधं युद्धे स्मरमाणो महारथः॥ १४॥
आचार्य सततं हि त्वं हितकामो ममानघ।
वयं हि त्वां समाश्रित्य भीष्मं चैव पितामहम्॥ १५॥
देवानपि रणे जेतुं प्रार्थयामो न संशयः।
किमु पाण्डुसुतान् युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान्॥ १६॥
स तथा कुरु भद्रं ते यथा वध्यन्ति पाण्डवाः।

तब बलवानों में उत्तम महारथी राजा दुर्योधन, पहले हुए सेना के घोर संहार को दृष्टि में रखकर और अपने भाइयों के वध को स्मरण करता हुआ, भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य से बोला कि हे निष्पाप आचार्य! आप सदा मेरा भला चाहनेवाले हैं। हम आपको और पितामह भीष्म को आश्रयके रूप में पाकर, देवताओं को भी युद्ध में जीतने की इच्छा रखते हैं, इसमें संशय नहीं है। फिर बल और पराक्रम में कम पाण्डवों को जीतना कौन सी बड़ी बात है। इसलिये आपका कल्याण हो, आप ऐसा कीजिये, जिससे पाण्डव मारे जायें।

एवमुक्तस्ततो द्रोणस्तव पुत्रेण मारिष॥ १७॥
अभिनत् पाण्डवानीकं प्रेक्षमाणस्य सात्यकेः।
सात्यकिस्तु ततो द्रोणं वारयामास भारत॥ १८॥
तयोः प्रववृते युद्धं घोररूप भयावहम्।
शैनेयं तु रणे क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान्॥ १९॥
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्जत्रुदेशे हसन्निव।
भीमसेनस्ततः क्रुद्धो भारद्वाजमविध्यत॥ २०॥
संरक्षन् सात्यकिं राजन् द्रोणाच्छस्त्रभृतां वरात्।

हे मान्यवर! तब आपके पुत्र के ऐसा कहने पर द्रोणाचार्य ने सात्यकि के देखते हुए ही पाण्डव सेना को मारना आरम्भ कर दिया। हे भारत! तब सात्यकि ने द्रोणाचार्य को आगे बढ़कर रोका और उन दोनों में भय उत्पन्न करनेवाला भयंकर युद्ध होने लगा। प्रतापी द्रोणाचार्य ने युद्ध में क्रुद्ध होकर सात्यकि को मुस्काराते हुए पसली के स्थान पर तीखे बाणों से बींध दिया। हे राजन्! तब क्रोध में भरकर भीमसेन ने शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य से सात्यकि की रक्षा करते हुए उन्हें बाणों से विद्ध कर दिया।

ततो द्रोणश्च भीष्मश्च तथा शल्यश्च मारिष॥ २१॥
भीमसेनं रणे क्रुद्धाश्छादयांचक्रिरे शरैः।
तत्राभिमन्युः संक्रुद्धो द्रौपदेयाश्च मारिष॥ २२॥
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः सर्वांस्तानुद्यतायुधान्।

हे मान्यवर! फिर द्रोणाचार्य, भीष्म और शल्य ने क्रोध में भरकर युद्धक्षेत्र में भीमसेन को बाणों से आच्छादित कर दिया। हे मान्यवर! तब क्रोध में भरे हुए अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्रों ने हथियार लेकर तैयार उन सबको तीखे बाणों से घायल कर दिया।

ततो बलेन महता पुत्रस्तव विशाम्पते॥ २३॥
जुगोप भीष्ममासाद्य प्रार्थयानो महद् यशः।
तथैव पाण्डवा राजन् पुरस्कृत्य धनंजयम्।
भीष्ममेवाभ्यवर्तन्त जये कृत्वा दृढां मतिम्॥ २४॥

हे प्रजा के स्वामी! तब आपका पुत्र महान् यश की इच्छा रखता हुआ विशाल सेना के साथ वहाँ आकर भीष्म की रक्षा करने लगा। हे राजन्! उसी प्रकार पाण्डव भी विजय के लिये दृढ निश्चय कर और अर्जुन को आगे रखकर, भीष्म पर ही आक्रमण करने लगे।

सत्ताईसवाँ अध्याय : भीष्म और अर्जुन आदि योद्धाओं का घमासान युद्ध।

संजय उवाच

अकरोत् तुमुलं युद्धं भीष्मः शान्तनवस्तदा।
भीमसेनभयादिच्छन् पुत्रांस्तारयितुं तव॥ १॥
पूर्वाह्णे तन्महारौद्रं राज्ञां युद्धमवर्तत।
कुरूणां पाण्डवानां च मुख्यशूरविनाशनम्॥ २॥
ततो दुर्योधनो राजा कलिङ्गैर्बहुभिर्वृतः।
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं पाण्डवानभ्यवर्तत॥ ३॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य वृकोदरम्।
भीष्ममभ्यद्रवन् क्रुद्धास्ततो युद्धमवर्तत॥ ४॥
दृष्ट्वा भीष्मेण संसक्तान् भ्रातॄनन्यांश्च पार्थिवान्।
समभ्यधावद् गाङ्गेयमुद्यतास्त्रो धनंजयः॥ ५॥

संजय ने कहा कि उस दिन आपके पुत्रों को भीमसेन के भय से छुड़ाने की इच्छा से शान्तनु पुत्र भीष्म ने भयंकर युद्ध किया। दिन के पूर्वाह्न काल में प्रमुख शूरवीरों का विनाश करनेवाला वह युद्ध कौरवों और पाण्डवराजाओं के बीच में छिड़ गया। तब राजा दुर्योधन ने बहुतसारे कलिंगदेशीय योद्धाओं के साथ भीष्म को आगे रखकर पाण्डवों पर आक्रमण कर दिया। उसीप्रकार सारे पाण्डव भी भीम को घेरकर भीष्म पर आक्रमण करने लगे। इसप्रकार भयंकर युद्ध होने लगा। अपने भाइयों और दूसरे राजाओं को भीष्म के साथ युद्ध करते हुए देखकर अर्जुन ने भी हथियार उठाये हुए गंगापुत्र पर आक्रमण कर दिया।

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं धनुषो गाण्डिवस्य च।
ध्वजं च दृष्ट्वा पार्थस्य सर्वान् नो भयमाविशत्॥ ६॥
विद्युतं मेघमध्यस्थां भ्राजमानामिवाम्बरे।
ददृशुर्गाण्डिवं योधा रुक्मपृष्ठं महामृधे॥ ७॥
अशुश्रुम भृशं चास्य शक्रस्येवाभिगर्जतः।
सुघोरं तलयोः शब्दं निघ्नतस्तव वाहिनीम्॥ ८॥

उस समय पाँचजन्यशंख की ध्वनि तथा गाण्डीवधनुष की टंकार सुनकर हमारे सैनिकों में भय का संचार होने लगा। जैसे आकाश में बादलों के बीच में बिजली सुशोभित होती है, वैसे ही उस महान् युद्ध में सुनहरी पीठवाले गाण्डीव को योद्धाओं ने देखा। आपकी सेना का संहार करते हुए अर्जुन उस समय इन्द्र के समान गर्जना कर रहे थे। उस समय हमने बाण चलाते हुए उनकी हथेलियों का अत्यन्त महान् और भयानक शब्द सुना।

दिशं प्राचीं प्रतीचीं च न जानीमोऽस्त्रमोहिताः।
कांदिग्भूताः श्रान्तपत्रा हताश्वा हतचेतसः॥ ९॥
अन्योन्यमभिसंश्लिष्य योधास्ते भरतर्षभ।
भीष्ममेवाभ्यलीयन्त सह सर्वैस्तवात्मजैः॥ १०॥
तेषामार्तायनमभूद् भीष्मः शान्तनवो रणे।
समुत्पतन्ति वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तथा॥ ११॥
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातयः।

अर्जुन के अस्त्रों की मार से हम इतने भ्रमित हो गये थे कि हमें यह पता नहीं लगता था कि किधर पूर्वदिशा है और किधर पश्चिमदिशा? हमें किस दिशा की तरफ भागना चाहिये? हमारे वाहन थक गये थे, घोड़े मारे गये थे और चेतना नष्ट हो रही थी। हे भरतश्रेष्ठ! आपके योद्धा एकदूसरे से लिपट कर, आपके पुत्रों के साथ भीष्म का ही सहारा ले रहे थे। उन दुःखी सैनिकों के उस युद्धक्षेत्र में शान्तनुपुत्र भीष्म ही आश्रयस्थल बने। भय से त्रस्त रथी उस समय अपने रथों से, घुड़सवार घोड़ों की पीठ से गिरने लगे। पैदल सैनिक भी भूमि पर लेट रहे थे।

अथ काम्बोजजैरश्वैर्महद्भिः शीघ्रगामिभिः॥ १२॥
गोपानां बहुसाहस्रैर्बलैर्गोपायनैर्वृतः।
नानानरगणौघैश्च दुःशासनपुरः सरः॥ १३॥
जयद्रथश्च नृपतिः सहितः सर्वराजभिः।
हयारोहवराश्चैव तव पुत्रेण चोदिताः॥ १४॥
चतुर्दश सहस्राणि सौबलं पर्यवारयन्।
ततस्ते सहिताः सर्वे विभक्तरथवाहनाः॥ १५॥
अर्जुनं समरे जघ्नुस्तावका भरतर्षभ।

इसके बाद काम्बेनजदेश के विशाल और शीघ्रगामी घोड़ों के साथ और गोपायन नाम के कई हजार गोप सैनिकों से घिरा हुआ, सारे राजाओं के साथ राजा जयद्रथ, अनेक देशों के सैनिकोंसहित दुश्शासन को आगेकर युद्ध के लिये चला। इसके साथ ही आपके पुत्र की आज्ञा से उत्तम घोड़ों के साथ चौदह हजार घुड़सवार शकुनि को घेरकर खड़े हुए। हे भरतश्रेष्ठ! उसके पश्चात् आपके पक्ष के सारे महारथी पृथक्

पृथक् रथों और वाहनों को लिये हुए एकत्र होकर युद्ध में अर्जुन पर आयुधों का प्रहार करने लगे।

रथिभिर्वारणैरश्वैः पादातेश्च समीरितम्॥ १६॥
घोरमायोधनं चक्रे महाभ्रसदृशं रजः।
तोमरप्रासनाराचगजाश्व- रथयोधिनाम्॥ १७॥
बलेन महता भीष्मः समसज्जत् किरीटिना।
आवन्त्यः काशिराजेन भीमसेनेन सैन्धवः॥ १८॥
अजातशत्रुर्मद्राणामृषभेण यशस्विना।
सहपुत्रः सहामात्यः शल्येन समसज्जत॥ १९॥

उस समय रथ, हाथी, घोड़ों और पैदलों के द्वारा उड़ायी हुई धूल ने आकाश में विशाल बादल के समान फैलकर उस युद्ध को भयानक बना दिया। तोमर प्रास नाराच आदि धारण करनेवाले गजारोही अश्वारोही और रथियों की विशाल सेना से घिरे हुए भीष्म ने अर्जुन के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। फिर अवन्तीनरेश काशिराज के साथ, जयद्रथ भीमसेन के साथ और अजातशत्रु युधिष्ठिर अपने पुत्रों और मन्त्रियों के साथ मद्रदेश के यशस्वी राजा शल्य के साथ युद्ध करने लगे।

विकर्णः सहदेवेन चित्रसेनः शिखण्डिना।
मत्स्या दुर्योधनं जग्मुः शकुनिं च विशाम्पते॥ २०॥
द्रुपदश्चेकितानश्च सात्यकिश्च महारथः।
द्रोणेन समसज्जन्त सपुत्रेण महात्मना॥ २१॥
कृपश्च कृतवर्मा च धृष्टद्युम्नमभिद्रुतौ।
एवं प्रव्रजिताश्वानि भ्रान्तनागरथानि च॥ २२॥
सैन्यानि समसज्जन्त प्रयुद्धानि समन्ततः।
नभस्यन्तर्दधे सूर्यः सैन्येन रजसाऽऽवृतः॥ २३॥
प्रमोहः सर्वसत्त्वानामतीव समपद्यत।
रजसा चाभिभूतानामस्त्रजालैश्च तुद्यताम्॥ २४॥

विकर्ण सहदेव के साथ, चित्रसेन शिखण्डी के साथ और हे प्रजानाथ! मत्स्यदेश के योद्धाओं ने दुर्योधन और शकुनि के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। द्रुपद, चेकितान और महारथी सात्यकि पुत्रसहित द्रोणाचार्य से लड़ने लगे। कृपाचार्य और कृतवर्मा धृष्टद्युम्न की तरफ दौड़े। इसप्रकार अपने घोड़ों को आगे बढ़ाकर और अपने हाथियों तथा रथों को घुमाकर योद्धा लोग सबतरफ युद्ध में संलग्न हो गये। सैनिकों के द्वारा उड़ायी गयी धूल के कारण, सूर्य का आकाश में दिखाई देना बन्द हो गया। उस समय धूल से भरे हुए और अस्त्रों की मार से पीड़ित होते हुए सारे प्राणियों पर भारी मोह छा गया।

वीरबाहुविसृष्टानां सर्वावरणभेदिनाम्।
संघातः शरजालानां तुमुलः समपद्यत॥ २५॥
सूर्यवर्णैश्च निस्त्रिंशैः पात्यमानानि सर्वशः।
दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त शरीराणि शिरांसि च॥ २६॥
भग्नचक्राक्षनीडाश्च निपातितमहाध्वजाः।
हताश्वाः पृथिवीं जग्मुस्तत्र तत्र महारथाः॥ २७॥
परिपेतुर्हयाश्चात्र केचिच्छस्त्रकृतव्रणाः।
रथान् विपरिकर्षन्तो हतेषु रथयोधिषु॥ २८॥

उस समय वीरों की भुजाओं द्वारा छोड़े हुए, सारे आवरणों को भेदनेवाले बाणसमूहों के भयानक आघात होरहे थे। सूर्य के समान जगमगाती हुई तलवारों के द्वारा काट कर गिराये जाते हुए सिर और शरीर सारी दिशाओं में दिखाई दे रहे थे। महारथियों के रथों के पहिये, धुरे, बैठकें, टूट गयीं। विशाल पताकाएँ भूमि पर गिर पड़ीं, घोड़े मारे गये और वे स्वयं भी मारे जा कर जहाँ-तहाँ भूमि पर गिर पड़े। वहाँ रथ पर बैठ कर युद्ध करने वाले योद्धा के मारे जाने पर, कितने ही शस्त्रों से घायल किये हुए घोड़े उस रथ को खींचते हुए दिखायी देते थे और फिर वे भी गिर पड़ते थे।

अदृश्यन्त ससूताश्च साश्वाः सरथयोधिनः।
एकेन बलिना राजन् वारणेन विमर्दिताः॥ २९॥
गन्धहस्तिमदस्रावमाघ्राय बहवो रणे।
संनिपाते बलौधानां वीतमाददिरे गजाः॥ ३०॥
सतोमरैर्महामात्रैर्निपतद्भिर्ग- तासुभिः।
बभूवायोधनं छन्नं नाराचाभिहतैर्गजैः॥ ३१॥

हे राजन्! वहाँ कितने ही रथी अपने सारथी और घोड़ों के साथ एक बलवान् हाथी के द्वारा ही कुचलते हुए पड़े थे। सेनाओं की मारकाट करनेवाले उस युद्ध में बहुत से हाथी गन्धयुक्त हाथी के बहते हुए मद की गन्ध को सूँघ कर उसी के भ्रम में कमजोर हाथी को भी मार गिराने के लिये पकड़ लेते थे। वह युद्धक्षेत्र नाराचों की मार से मारे गये हाथियों और प्राणहीन होकर भूमि पर पड़े हुए महावतों, जिन्होंने अभी हाथ में तोमर पकड़ा हुआ था की लाशों से भरा हुआ था।

संनिपाते बलौघानां प्रेषितैर्वरवारणैः।
निपेतुर्युधि सम्भग्नाः सयोधाः सध्वजा गजाः॥ ३२॥
नागराजोपमैर्हस्तैर्नागैराक्षिप्य संयुगे।
व्यदृश्यन्त महाराज सम्भग्ना रथकूबराः॥ ३३॥
रथेषु च रथान् युद्धे संसक्तान् वरवारणाः।
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः सर्वशब्दगाः॥ ३४॥
एवं संछादितं तत्र बभूवायोधनं महत्।
सादिभिश्च पदातैश्च सध्वजैश्च महारथैः॥ ३५॥

सेनासमूहों के उस संग्राम में प्रेरित किये हुए उत्तम हाथियों के द्वारा टक्कर मारने से, जिनके अंग भंग होगये थे ऐसे निर्बल हाथी अपने योद्धाओं और पताकाओं सहित गिर पड़ते थे। हे महाराज! वहाँ युद्धस्थल में हाथियों के द्वारा सर्पराज के समान अपनी विशाल सूँड से खींचकर फैंके हुए और टूटे हुए रथ के कूबर दिखाई पड़ते थे। वहाँ श्रेष्ठ हाथी परस्पर युद्ध में लगे हुए रथों को पकड़ लेते थे और सब तरह के शब्दों का अनुकरण करते हुए उन्हें खींचते हुए सारी दिशाओं में घूमते हुए फिरते थे। इसप्रकार वह महान् युद्धस्थल मरेहुए घुड़सवारों, पैदलों, और ध्वजाओं सहित महारथियों से भरगया था।

अठ्ठाईसवाँ अध्याय : दोनों सेनाओं का परस्पर घोर युद्ध।

संजय उवाच

द्रोणं कृपं विकर्णं च महेष्वासं महाबलम्।
राज्ञश्चान्यान् रणे शूरान् बहूनार्च्छद् धनंजयः॥ १॥
सैन्धवं च महेष्वासं सामात्यं सह बन्धुभिः।
प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च भूमिपान् भूमिपर्षभ॥ २॥
पुत्रं च ते महेष्वासं दुर्योधनममर्षणम्।
दुःसहं चैव समरे भीमसेनोऽभ्यवर्तत॥ ३॥

संजय ने कहा कि हे प्रजानाथ! अर्जुन ने उस युद्ध में द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विकर्ण इन महाधनुर्धर और महाबलवान् वीरों को और दूसरे बहुत से शूरवीर राजाओं को पीड़ित किया। हे राजश्रेष्ठ! इसीप्रकार भीमसेन ने उस युद्धस्थल में महा धनुर्धर सिन्धुराज पर उसके मन्त्रियों और बन्धुओं सहित पूर्व दिशा और दक्षिण दिशा के राजाओं पर और आपके अमर्षशील महाधनुर्धर पुत्र दुर्योधन तथा दुःसह पर आक्रमण किया।

सहदेवस्तु शकुनिमुलूकं च महारथम्।
पितापुत्रौ महेष्वासावभ्यवर्तत दुर्जयौ॥ ४॥
युधिष्ठिरो महाराज गजानीकं महारथः।
समवर्तत संग्रामे पुत्रेण निकृतस्तव॥ ५॥
माद्रीपुत्रस्तु नकुलः शूरसंक्रन्दनो युधि।
त्रिगर्तानां बलैः सार्धं समसज्जत पाण्डवः॥ ६॥
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः समरे शाल्वकेकयान्।
सात्यकिश्चेकितानश्च सौभद्रश्च महारथाः॥ ७॥

सहदेव ने शकुनि और महारथी उलूक, इन दोनों पितापुत्रों पर, जो महाधनुर्धर और दुर्जय थे, आक्रमण किया। हे महाराज! आपके पुत्र द्वारा ठगे गये महारथी युधिष्ठिर ने संग्राम में हाथीसेना पर आक्रमण किया। युद्ध में शूरवीरों को रुलानेवाले माद्रीपुत्र पाण्डव नकुल ने त्रिगर्तों की सेना के साथ युद्ध आरम्भ किया। सात्यकि, चेकितान तथा महारथी अभिमन्यु ने क्रोध में भरकर युद्धभूमि में शाल्व और केकयदेशी सैनिकों पर आक्रमण किया।

धृष्टकेतुश्च समरे राक्षसश्च घटोत्कचः।
पुत्राणां ते रथानीकं प्रत्युद्याताः सुदुर्जयाः॥ ८॥
सेनापति रमेयात्मा धृष्टद्युम्नो महाबलः।
द्रोणेन समरे राजन् समियायोग्रकर्मणा॥ ९॥
एवमेते महेष्वासास्तावकाः पाण्डवैः सह।
समेत्य समरे शूराः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे॥ १०॥
मध्यंदिनगते सूर्ये नभस्याकुलतां गते।
कुरवः पाण्डवेयाश्च निजघ्नुरितरेतरम्॥ ११॥

उस युद्ध में अत्यन्त दुर्जय धृष्टकेतु और घटोत्कच ने आपके पुत्रों की रथसेना पर आक्रमण किया। हे राजन्! अमितआत्मा और महाबली धृष्टद्युम्न युद्ध में उग्रकर्म करनेवाले द्रोणाचार्य से लोहा ले रहे थे। इस प्रकार युद्धस्थल में आपके ये शूरवीर महाधनुर्धर पाण्डवों के सामने जाकर उनसे युद्ध कररहे थे। जब सूर्य दिन के मध्यभाग में चलागया, आकाश व्याकुल होने लगा, तब भी कौरव पाण्डव एक दूसरे को मार रहे थे।

समेतानां च समरे जिगीषूणां परस्परम्।
बभूव तुमुलः शब्दः सिंहानामिव नर्दताम्॥ १२॥

शक्तीनां विमलाग्राणां तोमराणां तथास्यताम्।
निस्त्रिंशानां च पीतानां नीलोत्पलनिभाः प्रभाः॥ १३॥
वपुभिश्च नरेन्द्राणां चन्द्रसूर्यसमप्रभैः।
विरराज तदा राजंस्तत्र तत्र रणाङ्गणम्॥ १४॥
रथसङ्घा नरव्याघ्राः समायान्तश्च संयुगे।
विरेजुः समरे राजन् ग्रहा इव नभस्तले॥ १५॥

युद्धस्थल में एकदूसरे से भिड़ते हुए, एकदूसरे को जीतलेने की इच्छा कर सिंह के समान गर्जते हुए वीरों का तुमुलनाद सब तरफ गूँज रहा था। निर्मल नोकवाली शक्तियों, फेंके जाते हुए तोमरों और पानीदार तलवारों की शोभा नील कमलों के समान हो रही थी। हे राजन्! राजाओं के सूर्य और चन्द्रमा के समान जगमगाते हुए शरीरों से वह युद्धक्षेत्र भी जहाँ तहाँ जगमगा रहा था। हे राजन्! उस युद्धक्षेत्र में रथों के समूह और नरश्रेष्ठ क्षत्रिय आते जाते ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे आकाश में नक्षत्रगण हों।

भीष्मस्तु रथिनां श्रेष्ठो भीमसेनं महाबलम्।
अवारयत संक्रुद्धः सर्वसैन्यस्य पश्यतः॥ १६॥
ततो भीष्मविनिर्मुक्ता रुक्मपुङ्खा शिलाशिताः।
अभ्यघ्नन् समरे भीमं तैलधौताः सुतेजनाः॥ १७॥
तस्य शक्तिं महावेगां भीमसेनो महाबलः।
क्रुद्धाशीविषसंकाशां प्रेषयामास भारत॥ १८॥
तामापतन्तीं सहसा रुक्मदण्डां दुरासदाम्।
चिच्छेद समरे भीष्मः शरैः संनतपर्वभिः॥ १९॥

तब रथियों में श्रेष्ठ भीष्म ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर महाबली भीम को सारी सेना के देखते हुए रोक दिया। तब भीष्म के द्वारा छोड़े गये शिला पर तेज किये हुए, सुनहले पंखवाले, तेल से धोये हुए, अत्यन्त तीक्ष्ण बाण उस युद्ध में भीम को चोट पहुँचाने लगे। हे भारत! तब महाबली भीमसेन ने भीष्म के ऊपर क्रुद्ध विषैले सर्प के समान भयानक और महान् वेगवाली शक्ति को फेंका। सोने के डण्डे वाली उस शक्ति को सहसा अपने ऊपर आते हुए देखकर भीष्म ने झुकी गांठवाले बाणों से उसे युद्ध में काट गिराया।

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च।
कार्मुकं भीमसेनस्य द्विधा चिच्छेद भारत॥ २०॥
अपास्य तु धनुश्छिन्नं भीमसेनो महाबलः।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद् भीष्मं शान्तनवं युधि॥ २१॥
सात्यकिस्तु ततस्तूर्णं भीष्ममासाद्य संयुगे।
आकर्णप्रहितैस्तीक्ष्णैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ॥ २२॥
शरैर्बहुभिरानर्च्छत् पितरं ते जनेश्वर।
ततः संधाय वै तीक्ष्णं शरं परमदारुणम्॥ २३॥
वार्ष्णेयस्य रथाद् भीष्मः पातयामास सारथिम्।

हे भारत! फिर एक दूसरे तीखे पानीदार भल्ल से उन्होंने भीम के धनुष को काट दिया। तब महाबली भीमसेन ने कटे हुए धनुष को फेंककर, एक दूसरा धनुष ले बहुत से बाणों से युद्ध में शान्तनुपुत्र भीष्म को पीड़ित किया। हे जनेश्वर! तब सत्यकि ने भी शीघ्रता से आकर उस युद्ध में कानतक धनुष को खींचकर छोड़े हुए तीखे, सान पर चढ़े हुए, अत्यन्त जगमगाते हुए बहुत से बाणों से आपके पिता भीष्म को पीड़ित किया। तब भीष्म ने एक तीखे अत्यन्त दारुण बाण का सन्धानकर, सात्यकि के सारथि को रथ से मारकर गिरा दिया।

तस्याश्वाः प्रद्रुता राजन् निहते रथसारथौ॥ २४॥
ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह।
स्थिरां युद्धे मतिं कृत्वा भीष्ममेवाभिदुद्रुवुः॥ २५॥
धृष्टद्युम्नमुखाश्चापि पार्थाः शान्तनवं रणे।
अभ्यधावञ्जिगीषन्तस्तव पुत्रस्य वाहिनीम्॥ २६॥
तथैव कौरवा राजन् भीष्मद्रोणपुरोगमाः।
अभ्यधावन्त वेगेन ततो युद्धमवर्तत॥ २७॥

हे राजन्! तब रथ सारथी के मरजाने पर सात्यकि के रथ के घोड़े वहाँ से भाग चले। तब भीष्म के द्वारा मारे जाते हुए पाँचाल सैनिक, सोमकों के साथ युद्ध का दृढ़ निश्चय कर भीष्म की तरफ ही दौड़े। धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवपक्ष के योद्धा भी आपके पुत्र की सेना को जीतने की इच्छा करते हुए युद्ध में भीष्म के ऊपर चढ़ आये। हे राजन्! उसीप्रकार कौरव भी भीष्म को आगेकर वेग से पाण्डवसेना की तरफ दौड़े और फिर भयानक युद्ध होने लगा।

उनत्तीसवाँ अध्याय : विराट-भीष्म, अश्वत्थामा-अर्जुन, दुर्योधन-भीमसेन अभिमन्यु लक्ष्मण के युद्ध।

संजय उवाच

विराटोऽथ त्रिभिर्बाणैर्भीष्ममार्च्छन्महारथम्।
विव्याध तुरगांश्चास्य त्रिभिर्बाणैर्महारथः॥ १॥
तं प्रत्यविध्यद् दशभिर्भीष्मः शान्तनवः शरैः।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासः कृतहस्तो महाबलः॥ २॥
द्रौणिर्गाण्डीवधन्वानं भीमधन्वा महारथः।
अविध्यदिषुभिः षड्भिर्दृढहस्तः स्तनान्तरे॥ ३॥
कार्मुकं तस्य चिच्छेद फाल्गुनः परवीरहा।
अविध्यच्च भृशं तीक्ष्णैः पत्रिभिः शत्रुकर्शनः॥ ४॥

संजय ने कहा कि तब महारथी राजा विराट ने तीन बाण मारकर महारथी भीष्म को पीड़ित किया और उन्होंने तीन बाणों से उसके घोड़ों को भी बींधा। तब प्रत्युत्तर में शान्तनुपुत्र महाधनुर्धर, महाबली, सिद्धहस्त भीष्म ने सुनहले पंखवाले दस बाणों से उन्हें बींध दिया। दृढता से भयंकर धनुष को धारण किये हुए महारथी द्रोणपुत्र ने गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन की छाती में छै बाणों से प्रहार किया। तब शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले शत्रुसूदन अर्जुन ने उसके धनुष को काट दिया और अत्यन्त तीखे बाणों से उसको बींध दिया।

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय वेगवान् क्रोधमूर्च्छितः।
अमृष्यमाणः पार्थेन कार्मुकच्छेदमाहवे॥ ५॥
अविध्यत् फाल्गुनं राजन् नवत्या निशितैः शरैः।
वासुदेवं च सप्तत्या विव्याध परमेषुभिः॥ ६॥
ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कृष्णेन सह फाल्गुनः।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य चिन्तयित्वा पुनःपुनः॥ ७॥
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः।
गाण्डीवधन्वा संक्रुद्धः शितान् संनतपर्वणः॥ ८॥
जीवितान्तकरान् घोरान् समादत्त शिलीमुखान्।
तैस्तूर्णं समरेऽविध्यद् द्रौणिं बलवतां वरः॥ ९॥

तब उस युद्ध में अर्जुन के द्वारा अपने धनुष के काटे जाने को सहन न करते हुए, क्रोध से मूर्च्छित होकर उसने एक दूसरे वेगवान् धनुष को लेकर, हे राजन्! नब्बै तीखे बाणों की वर्षा कर अर्जुन को घायल कर दिया और श्रीकृष्ण पर सत्तर श्रेष्ठ बाणों की वर्षा कर उन्हें बींध दिया। तब श्रीकृष्ण के साथ क्रोध से लाल आँखें कर, लम्बी और गर्म साँसें लेकर और बारबार विचार कर, बायें हाथ से धनुष को दबाकर, शत्रुसूदन गाण्डीव धारी अर्जुन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, तीखे, प्राणों का अन्त करनेवाले, झुकी हुई गाँठवाले भयानक बाणों को लिया। बलवानों में श्रेष्ठ उसने उन बाणों से युद्ध में अश्वत्थामा को शीघ्रता से बींध दिया।

तस्य ते कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे।
न विव्यथे च निर्भिन्नो द्रौणिर्गाण्डीवधन्वना॥ १०॥
तथैव च शरान् द्रौणिः प्रविमुञ्चन्नविह्वलः।
तस्थौ स समरे राजंस्त्रातुमिच्छन् महाव्रतम्॥ ११॥
ममैष आचार्यसुतो द्रोणस्यापि प्रियः सुतः।
ब्राह्मणश्च विशेषेण माननीयो ममेति च॥ १२॥
समास्थाय मतिं वीरो बीभत्सुः शत्रुतापनः।
कृपां चक्रे रथश्रेष्ठो भारद्वाजसुतं प्रति॥ १३॥

उन बाणों ने उस युद्ध में उसके कवच को छेदकर उसके खून को पीया, पर गाण्डीव धनुर्धारी अर्जुन के द्वारा घायल किये जाने पर भी द्रोणपुत्र व्यथित नहीं हुआ। वह अश्वत्थामा, अपने महान् व्रत की रक्षा करने की इच्छा करता हुआ बिना बेचैन हुए, युद्धस्थल में वैसे ही बाणों की वर्षा करते हुए डटा रहा। तब रथियों में श्रेष्ठ, शत्रुओं को संतप्त करनेवाले वीर अर्जुन ने यह विचार कर कि यह मेरे आचार्य का पुत्र है, द्रोणाचार्य का प्यारा बेटा है, ब्राह्मण होने के कारण मेरे लिये विशेषरूप से मान्य है, द्रोणाचार्य के पुत्र पर कृपा कर दी।

द्रौणिं त्यक्त्वा ततो युद्धे कौन्तेयः श्वेतवाहनः।
युयुधे तावकान् निघ्नंस्त्वरमाणः पराक्रमी॥ १४॥
दुर्योधनस्तु दशभिर्गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः।
भीमसेनं महेष्वासं रुक्मपुङ्खैः समार्पयत्॥ १५॥
भीमसेनः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम्।
चित्रं कार्मुकमादत्त शरांश्च निशितान् दश॥ १६॥
आकर्णप्रहितैस्तीक्ष्णैर्वेग- वद्भिरजिह्मगैः।
अविध्यत् तूर्णमव्यग्रः कुरुराजं महोरसि॥ १७॥

श्वेत घोड़ोंवाले पराक्रमी अर्जुन तब युद्ध में अश्वत्थामा को छोड़कर शीघ्रता से आपके दूसरे

सैनिकों का संहार करने लगे। उधर दुर्योधन ने शिला पर तेज किये हुये और सुनहले गृध्रपंखों से युक्त दस बाणों से महाधनुर्धर भीमसेन को चोट पहुँचायी। तब भीम ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर शत्रु को समाप्त करनेवाले दृढ़ और विचित्र धनुष तथा दस तीखे बाणों को उठाया। उन्होंने बिना किसी व्यग्रता के कानतक धनुष को खींचकर छोड़े हुए उन तीखे, वेगवान् और सीधे जानेवाले बाणों से शीघ्रतापूर्वक कुरुराज की विशाल छाती में प्रहार किया।

पुत्रस्तु तव तेजस्वी भीमसेनेन ताडितः।
नामृष्यत यथा नागस्तलशब्दं मदोत्कटः॥ १८॥
ततः शरैर्महाराज रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।
भीमं विव्याध संक्रुद्धस्त्रासयानो वरूथिनीम्॥ १९॥
चित्रसेनं नरव्याघ्रं सौभद्रः परवीरहा।
अविध्यद् दशभिर्बाणैः पुरुमित्रं च सप्तभिः॥ २०॥
सत्यव्रतं च सप्तत्या विद्ध्वा शक्रसमो युधि।
नृत्यन्निव रणे वीर आर्तिं नः समजीजनत्॥ २१॥

भीम के द्वारा किये गये आघात को आपके तेजस्वी पुत्र ने उसीप्रकार सहन नहीं किया, जैसे मद बहानेवाला हाथी ताली की आवाज को सहन नहीं करता है। हे महाराज! फिर पाण्डवसेना को संत्रस्त करते हुए, अत्यन्त रोष में भरकर उसने शिला पर तेज किये हुए, सुनहरे पंखवाले बाणों से भीम को बींध दिया। उधर शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले अभिमन्यु ने नरव्याघ्र चित्रसेन को दस बाणों से और पुरुमित्र को सात बाणों से बींध दिया। फिर युद्ध में इन्द्र के समान पराक्रमी उस वीर ने युद्धस्थल में नृत्य सा करते हुए सत्यव्रत को सत्तर बाणों की वर्षा कर घायल कर दिया और हम सबको अत्यन्त पीड़ित किया।

तं प्रत्यविध्यद् दशभिश्चित्रसेनः शिलीमुखैः।
सत्यव्रतश्च नवभिः पुरुमित्रश्च सप्तभिः॥ २२॥
स विद्धो विक्षरन् रक्तं शत्रुसंवारणं महत्।
चिच्छेद चित्रसेनस्य चित्रं कार्मुकमार्जुनिः॥ २३॥
भित्त्वा चास्य तनुत्राणं शरेणोरस्यताडयत्।
ततस्ते तावका वीरा राजपुत्रा महारथाः॥ २४॥
समेत्य युधि संरब्धा विव्यधुर्निशितैः शरैः।
तांश्च सर्वाञ्शरैस्तीक्ष्णैर्जघान परमास्त्रवित्॥ २५॥

तब चित्रसेन ने दस, सत्यव्रत ने नौ और पुरुमित्र ने सात बाणों से अभिमन्यु को घायल कर दिया। घायल होकर रक्त बहाते हुए अर्जुनपुत्र ने चित्रसेन के शत्रुनिवारक, विशाल और विचित्र धनुष को काट दिया। फिर उसके कवच को काट कर उसकी छाती में एक बाण मारा। तब आपके वीर और महारथी राजकुमार युद्ध में एकत्र होकर और क्रोध में भरकर, उसे तीखे बाणों से बींधने लगे। पर श्रेष्ठ अस्त्रज्ञाता अभिमन्यु ने उस सब को तीखे बाणों से बींध दिया।

अपेतशिशिरे काले समिद्धमिव पावकम्।
अत्यरोचत सौभद्रस्तव सैन्यानि नाशयन्॥ २६॥
तत् तस्य चरितं दृष्ट्वा पौत्रस्तव विशाम्पते।
लक्ष्मणोऽभ्यपतत् तूर्णं सात्वतीपुत्रमाहवे॥ २७॥
अभिमन्युस्तु संक्रुद्धो लक्ष्मणं शुभलक्षणम्।
विव्याध निशितैः षड्भिः सारथिं च त्रिभिः शरैः॥ २८॥
तथैव लक्ष्मणो राजन् सौभद्रं निशितैः शरैः।
अविध्यत महाराज तदद्भुतमिवाभवत्॥ २९॥

उस समय अभिमन्यु सर्दी के अन्त में ग्रीष्म ऋतु में प्रचंड हुई अग्नि के समान आपकी सेना को नष्ट करता हुआ सुशोभित हो रहा था। उसके उस कार्य को देखकर हे प्रजानाथ! आपका पौत्र लक्ष्मण शीघ्रता से सुभद्रापुत्र का सामना करने के लिये उसके पास जा पहुँचा। तब अभिमन्यु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उत्तम लक्ष्मण वाले लक्ष्मण को तीखे छै बाणों से और उसके सारथी को तीन बाणों से बींध दिया। हे राजन्! तब लक्ष्मण ने भी उसीप्रकार अभिमन्यु को तीखे बाणों से घायल कर दिया। यह एक अद्भुत बात थी।

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सारथिं च महाबलः।
अभ्यद्रवत सौभद्रो लक्ष्मणं निशितैः शरैः॥ ३०॥
हताश्वे तु रथे तिष्ठँल्लक्ष्मणः परवीरहा।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धः सौभद्रस्य रथं प्रति॥ ३१॥
तामापतन्तीं सहसा घोररूपां दुरासदाम्।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भुजगोपमाम्॥ ३२॥
ततः स्वरथमारोप्य लक्ष्मणं गौतमस्तदा।
अपोवाह रथेनाजौ सर्वसैन्यस्य पश्यतः॥ ३३॥

तब उस महाबली सुभद्रापुत्र ने उसके चारों घोड़ों और सारथी को मार कर, लक्ष्मण पर भी तीखे बाणों से आक्रमण किया। शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले लक्ष्मण ने तब मरे हुए घोड़ोंवाले रथ पर खड़े हुए

अत्यन्त क्रोध में भरकर, अभिमन्यु के रथ की तरफ एक शक्ति को फेंका, पर अपने ऊपर आती हुई उस भयानक, सर्पिणी के समान दुःसह शक्ति को अभिमन्यु ने तुरन्त ही तीखे बाणों से काट दिया। तब कृपाचार्य सारी सेना के देखते हुए लक्ष्मण को अपने रथ पर बैठाकर युद्धस्थल से दूर ले गये।

तीसवाँ अध्याय : भूरिश्रवा द्वारा सात्यकि के दस पुत्रों का वध। अर्जुन का पराक्रम।

संजय उवाच

अथ राजन् महाबाहुः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः।
विकृष्य चापं समरे भारसाहमनुत्तमम्॥ १॥
प्रामुञ्चन् पुङ्खसंयुक्ताञ्शरानाशीविषोपमान्।
प्रगाढं लघु चित्रं च दर्शयन् हस्तलाघवम्॥ २॥
यत् तत् सख्युस्तु पूर्वेण अर्जुनादुपशिक्षितम्।
तस्य विक्षिपतश्चापं शरानन्यांश्च मुञ्चतः॥ ३॥
आददानस्य भूयश्च संदधानस्य चापरान्।
क्षिपतश्च परांस्तस्य रणे शत्रून् विनिघ्नतः॥ ४॥
ददृशे रूपमत्यर्थं मेघस्येव प्रवर्षतः।

संजय ने कहा कि हे राजन! युद्ध में दुर्मद, महाबाहु सात्यकि ने तब अपने भार को सहन करने वाले उत्तम धनुष को खींचकर युद्धस्थल में विषैले सर्पों के समान् पंखयुक्त बाणों की वर्षा की और अपने महान् शीघ्रकारी तथा विचित्र हस्तकौशल को दिखाया, जिसे उसने पहले अपने मित्र अर्जुन से सीखा था। उनके धनुष को खींचते हुए, दूसरेदूसरे बाणें को छोड़ते हुए, फिर नये बाण हाथ में लेते हुए उन्हें धनुष पर रखते और शत्रुओं पर चलाते तथा उनका संहार करते हुए, उनका रूप वर्षा करते हुए बादल के समान दिखाई दे रहा था।

तमुदीर्यन्तमालोक्य राजा दुर्योधनस्ततः॥ ५॥
रथानामयुतं तस्य प्रेषयामास भारत।
तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् सात्यकिः सत्यविक्रमः॥ ६॥
जघान परमेष्वासो दिव्येनास्त्रेण वीर्यवान्।
स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः॥ ७॥
आससाद ततो वीरो भूरिश्रवसमाहवे।
स हि संदृश्य सेनां ते युयुधानेन पातिताम्॥ ८॥
अभ्यधावत संक्रुद्धः कुरूणां कीर्तिवर्धनः।

हे भारत! तब उन्हें युद्ध में आगे बढ़ता हुआ देखकर राजा दुर्योधन ने दस हजार हाथियों को उनका सामना करने के लिये भेजा। पराक्रमी, सत्यविक्रमी और महाधनुर्धर सात्यकि ने उन सब महाधनुर्धरों को अपने दिव्यास्त्र का प्रयोग कर नष्ट करदिया। उस अत्यन्त दारुण कर्म को कर, फिर धनुष को हाथ में लिये हुए उस वीर ने युद्धस्थल में भूरिश्रवा पर आक्रमण किया। तब सात्यकि के द्वारा आपकी सेना को मार दिया गया है, यह देखकर कौरवों की कीर्ति बढ़ानेवाला भूरिश्रवा भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर सात्यकि की तरफ दौड़ा।

इन्द्रायुधसवर्णं तु विस्फार्य सुमहद् धनुः॥ ९॥
सृष्टवान् वज्रसंकाशाञ्शरानाशीविषोपमान्।
सहस्रशो महाराज दर्शयन् पाणिलाघवम्।
शरांस्तान् मृत्यु संस्पर्शान् सात्यकेश्च पदानुगाः॥ १०॥
न विषेहुस्तदा राजन् दुद्रुवुस्ते समन्ततः।
विहाय सात्यकिं राजन् समरे युद्धदुर्मदम्॥ ११॥
तं दृष्ट्वा युयुधानस्य सुता दश महाबलाः।
महारथाः समाख्याताश्चित्रवर्मायुधध्वजाः॥ १२॥
समासाद्य महेष्वासं भूरिश्रवसमाहवे।
ऊचुः सर्वे सुसंरब्धा यूपकेतुं महारणे॥ १३॥

उसने हे महाराज! अपने हस्तकौशल को दिखाते हुए, इन्द्रधनुष के समान अपने रंगबिरंगे विशाल धनुष को खींचकर विषैले सर्प तथा वज्र के समान हजारों बाणों की वर्षा की। हे राजन्! मृत्यु के समान स्पर्शवाले उन बाणों को सात्यकि के सहायक सैनिक सहन नहीं कर सके और वे हे राजन्। युद्ध में दुर्मद सात्यकि को वहीं युद्धस्थल में छोड़कर सबतरफ भाग गये। यह देखकर सात्यकि के दस पुत्र, जो महाबली, महारथी, प्रसिद्ध और विचित्र कवच, आयुध तथा ध्वजोंवाले थे, अत्यन्त क्रोध में भरकर, यूप के चिह्नवाली ध्वजा वाले महाधनुर्धर भूरिश्रवा के पास आकर, युद्धस्थल में उससे बोले कि—

भो भोः कौरवदायाद सहास्माभिर्महाबल।
एहि युध्यस्व संग्रामे समस्तैः पृथगेव वा॥ १४॥

अस्मान् वात्वं पराजित्य यशः प्राप्नुहि संयुगे।
वयं वा त्वां पराजित्य प्रीतिं धास्यामहे पितुः॥ १५॥
एवमुक्तस्तदा शूरैस्तानुवाच महाबलः।
वीर्यश्लाघी नरश्रेष्ठस्तान् दृष्ट्वा समवस्थितान्॥ १६॥
साध्विदं कथ्यते वीरा यद्येवं मतिरद्य वः।
युध्यध्वं सहिता यत्ता निहनिष्यामि वो रणे॥ १७॥

हे महाबली कौरवपुत्र! आओ! इस युद्धस्थल में हमारे साथ इकट्ठे या अलगअलग युद्ध करो। युद्ध में या तो हमें पराजित करके प्रसिद्धि को प्राप्त करो, या हम तुम्हें पराजित करके अपने पिता की प्रसन्नता को बढ़ायेंगे। उन वीरों के द्वारा यह कहे जाने पर तथा उन्हें युद्ध के लिये तैयार देखकर, वह महाबली, पराक्रम की श्लाघा करनेवाला नरश्रेष्ठ उनसे बोला कि हे वीरों। यदि तुम्हारी आज ऐसी मति है, तो तुमने अच्छी बात कही है। तुम इकट्ठे मेरेसाथ युद्ध करो। मैं इस युद्धक्षेत्र में तुम्हे मार गिराऊँगा।

एवमुक्ता महेष्वासास्ते वीराः क्षिप्रकारिणः।
महता शरवर्षेण अभ्यधावन्नरिंदमम्॥ १८॥
सोऽपराह्णे महाराज संग्रामस्तुमुलोऽभवत्।
एकस्य च बहूनां च समेतानां रणाजिरे॥ १९॥
तमेकं रथिनां श्रेष्ठं शरैस्ते समवाकिरन्।
प्रावृषीव यथा मेरुं सिषिचुर्जलदो नृप॥ २०॥
तत्राद्भुतमपश्याम सौमदत्तेः पराक्रमम्।
यदेको बहुभिर्युद्धे समसज्जदभीतवत्॥ २१॥

ऐसा कहे जाने पर शीघ्रता करनेवाले उन वीर महाधनुर्धरों ने महान् बाणवर्षा के साथ, उस शत्रुओं का दमन करनेवाले भूरिश्रवा पर आक्रमण कर दिया। हे महाराज! युद्धस्थल में एक का बहुतों के साथ वह तुमुल संग्राम अपरान्हकाल में हुआ। हे राजन्! उस अकेले रथियों में श्रेष्ठ भूरिश्रवा को उन्होंने बाणवर्षा से ऐसे ढक दिया जैसे बादल वर्षाकाल में मेरु पर्वत को पानी से सींचते हैं। वहाँ हमने सोमदत्त के पुत्र का अद्भुत पराक्रम देखा कि वह अकेला होने पर भी बहुतों के साथ निर्भय हो कर युद्ध कररहा था।

विसृज्य शरवृष्टिं तां दश राजन् महारथाः।
परिवार्य महाबाहुं निहन्तुमुपचक्रमुः॥ २२॥
सौमदत्तिस्ततः क्रुद्धस्तेषां चापानि भारत।
चिच्छेद समरे राजन् युध्यमानो महारथैः॥ २३॥
अथैषां छिन्नधनुषां शरैः संनतपर्वभिः।
चिच्छेद समरे राजञ्छिरांसि भरतर्षभ॥ २४॥
ते हता न्यपतन् राजन् वज्रभग्ना इव द्रुमाः।
तान् दृष्ट्वा निहतान् वीरो रणे पुत्रान् महाबलान्॥ २५॥
वार्ष्णेयो विनदन् राजन् भूरिश्रवसमभ्ययात्।

हे राजन्! उन महारथियों ने बाणों की वर्षा को कर के तथा उस महाबाहु को घेरकर मार डालने की तैयारी की। तब हे भारत! सोमदत्तपुत्र ने क्रुद्ध होकर उन महारथियों के युद्ध करते हुए युद्धस्थल में उनके धनुषों को काट दिया। हे भरतश्रेष्ठ राजन्!! फिर झुकी गाँठवाले बाणों से, उनके सिरों को भी युद्धस्थल में काट कर गिरा दिया। हे राजन्। वे सारे विद्युत् से मारे गये वृक्षों के समान मरकर गिर पड़े। तब उन महाबली पुत्रों को युद्ध में मारा हुआ देखकर, सात्यकि ने गर्जना करते हुए भूरिश्रवा पर आक्रमण किया।

तावन्योन्यं हि समरे निहत्य रथवाजिनः॥ २६॥
विरथावभिवल्गन्तौ समेयातां महारथौ।
प्रगृहीतमहाखड्गौ तौ चर्मवरधारिणौ॥ २७॥
ततः सात्यकिमभ्येत्य निस्त्रिंशवरधारिणम्।
भीमसेनस्त्वरन् राजन् रथमारोपयत् तदा॥ २८॥
तवापि तनयो राजन् भूरिश्रवसमाहवे।
आरोपयद् रथं तूर्णं पश्यतां सर्वधन्विनाम्॥ २९॥

उन दोनों महारथियों ने एक दूसरे के रथ और घोड़ों को नष्ट कर दिया और रथहीन होकर विशाल तलवारों और उत्तम ढालों को लेकर वे दोनों नर श्रेष्ठ उछलते कूदते हुए एक दूसरे से युद्ध करने लगे। हे राजन्! तब उत्तम तलवार को धारण किये सात्यकि के समीप जाकर भीमसेन ने शीघ्रता के साथ उसे अपने रथ में बैठा लिया। हे राजन्! तब आपके पुत्र ने भी शीघ्रता से भूरिश्रवा को सारे धनुर्धरों के देखते हुए, युद्धस्थल में अपने रथ पर बैठा लिया।

तस्मिंस्तथा वर्तमाने रणे भीष्मं महारथम्।
अयोधयन्त संरब्धाः पाण्डवा भरतर्षभ॥ ३०॥
लोहितायति चादित्ये त्वरमाणो धनंजयः।
पञ्चविंशतिसाहस्रान् निजघान महारथान्॥ ३१॥
ते हि दुर्योधनादिष्टास्तदा पार्थनिबर्हणे।
सम्प्राप्यैव गता नाशं शलभा इव पावकम्॥ ३२॥

ततो मत्स्याः केकयाश्च धनुर्वेदविशारदाः।
परिवव्रुस्तदा पार्थं सहपुत्रं महारथम्॥ ३३॥

हे भरतश्रेष्ठ! जब इसप्रकार युद्ध चल रहा था, तब उधर क्रोध में भरे हुए पाण्डव महारथी भीष्म के साथ युद्ध कर रहे थे। जब सूर्य लाल रंग का होने लगा, तब अर्जुन ने शीघ्रता कर पच्चीस हजार महारथियों का वध करदिया। वे दुर्योधन के आदेश से कुन्तीपुत्र का दमन करने के लिये आये थे, पर वे उन्हें प्राप्तकर अग्नि में पड़े हुए पतंगों की तरह विनाश को प्राप्त हो गये। तब मत्स्य और केकय देश के धनुर्वेदविशारद सैनिक महारथी अर्जुन को, उनके पुत्र अभिमन्युसहित उनकी सुरक्षा के लिये घेरकर खड़े हो गये।

एतस्मिन्नेव काले तु सूर्येऽस्तमुपगच्छति॥ ३४॥
सर्वेषां चैव सैन्यानां प्रमोहः समजायत।
अवहारं ततश्चक्रे पिता देवव्रतस्तत्र।
संध्याकाले महाराज सैन्यानां श्रान्तवाहनः॥ ३५॥

इसी समय सूर्य के अस्त हो जाने पर सारे सैनिकों पर मोह छा गया। तब थके हुए वाहनवाले आपके पिता देवव्रत ने, हे महाराज! सन्ध्या के समय सेना को वापिस लौटा लिया।

इकत्तीसवाँ अध्याय : व्यूह रचना और छठे दिन के युद्ध का आरम्भ।

संजय उवाच

ते विश्रम्य ततो राजन् सहिताः कुरुपाण्डवाः।
व्यतीतायां तु शर्वर्यां पुनर्युद्धाय निर्ययुः॥ १॥
ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नमभाषत।
व्यूहं व्यूह महाबाहो मकरं शत्रुनाशनम्॥ २॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन धृष्टद्युम्नो महारथः।
व्यादिदेश महाराज रथिनो रथिनां वरः॥ ३॥

संजय ने कहा कि हे राजन्! वे कौरव और पाण्डव फिर विश्राम करने के पश्चात्, रात्रि के व्यतीत होने पर, पुनः युद्ध के लिये साथसाथ निकले। तब राजा युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न से कहा कि हे महाबाहु! तुम शत्रु को नष्ट करनेवाला मकर नाम का व्यूह बनाओ। हे महाराज! तब कुन्तीपुत्र के द्वारा ऐसा कहे जाने पर रथियों में श्रेष्ठ महारथी धृष्टद्युम्न ने मकरव्यूह बनाने के लिये आज्ञा दी।

शिरोऽभूद् द्रुपदस्तस्य पाण्डवश्च धनंजयः।
चक्षुषी सहदेवश्च नकुलश्च महारथः॥ ४॥
तुण्डमासीन्महाराज भीमसेनो महाबलः।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः॥ ५॥
सात्यकिर्धर्मराजश्च व्यूहग्रीवां समास्थिताः।
पृष्ठमासीन्महाराज विराटो वाहिनीपतिः॥ ६॥
धृष्टद्युम्नेन सहितो महत्या सेनयावृतः।
केकया भ्रातरः पञ्च वामपार्श्वं समाश्रिताः॥ ७॥
धृष्टकेतुर्नरव्याघ्रश्चेकितानश्च वीर्यवान्।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थितौ व्यूहस्य रक्षणे॥ ८॥

उसके सिर के स्थान पर द्रुपद और पाण्डुपुत्र अर्जुन खड़े हुए। नेत्रों के स्थान पर महारथी नकुल और सहदेव स्थित किये गये। हे महाराज! उसके मुख पर महाबली भीमसेन खड़े हुए। ग्रीवा के स्थान पर अभिमन्यु, द्रौपदी के पुत्र, राक्षस घटोत्कच, सात्यकि और धर्मराज युधिष्ठिर स्थित हुए। हे महाराज! उसके पृष्ठभाग पर सेनापति विराट धृष्टद्युम्न के साथ विशाल सेना से घिरे हुए खड़े हुए। पाँच केकयकुमार भाई उसके बाँये भाग पर थे तो नरश्रेष्ठ! धृष्टकेतु और प्रतापी चेकितान व्यूह की रक्षा करते हुए उसके दायें भाग पर स्थित हुए।

पादयोस्तु महाराज स्थितः श्रीमान् महारथः।
कुन्तिभोजः शतानीको महत्या सेनया वृतः॥ ९॥
शिखण्डी तु महेष्वासः सोमकैः संवृतो बली।
इरावांश्च ततः पुच्छे मकरस्य व्यवस्थितौ॥ १०॥
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः।
सूर्योदये महाराज पुनर्युद्धाय दंशिताः॥ ११॥
व्यूढं दृष्ट्वा तु तत् सैन्यं पिता देवव्रतस्तव।
क्रौञ्चेन महता राजन् प्रत्यव्यूहत वाहिनीम्॥ १२॥

हे महाराज! उसके दोनों पैरों पर विशाल सेना से घिरे हुए श्रीमान् महारथी कुन्तीभोज और शतानीक खड़े हुए थे। महाधनुर्धर और बलवान् शिखण्डी सोमकों से घिरा हुआ और इरावान् तब उस मकरव्यूह के पूँछ के भाग में खड़े हुए थे। हे महाराज! पाण्डवलोग इसप्रकार उस व्यूह का

निर्माण कर, सूर्योदय के समय कवच बाँधकर पुनः युद्ध के लिये तैयार हो गये। पाण्डवों की सेना को व्यूह में बद्ध देखकर, आपके पिता देवव्रत ने तब अपनी सेना को विशाल क्रौंचव्यूह के रूप में बद्ध किया।

तस्य तुण्डे महेष्वासो भारद्वाजो व्यरोचत।
अश्वत्थामा कृपश्चैव चक्षुरासीन्नरेश्वर॥ १३॥
कृतवर्मा तु सहितः काम्बोजवरबाह्निकैः।
शिरस्यासीन्नरश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्॥ १४॥
ग्रीवायां शूरसेनश्च तव पुत्रश्च मारिष।
दुर्योधनो महाराज राजभिर्बहुभिर्वृतः॥ १५॥
प्राग्ज्योतिषस्तु सहितो मद्रसौवीरकेकयैः।
उरस्यभून्नरश्रेष्ठ महत्या सेनया वृतः॥ १६॥

उसके मुख पर द्रोणाचार्य सुशोभित हुए। हे नरेश्वर! अश्वत्थामा और कृपाचार्य उसके नेत्रों के स्थान पर थे। सब धनुर्धरों में श्रेष्ठ, नरश्रेष्ठ कृतवर्मा, काम्बोज और बाल्हीक देश के उत्तम सैनिकों के साथ उसके सिर के स्थान पर खड़े हुए। हे मान्यवर! उसकी गर्दन पर शूरसेन और आपका पुत्र दुर्योधन बहुत से राजाओं से घिरा हुआ खड़ा था। प्राग्ज्योतिषपुर का राजा, मद्र, सौवीर और केकयदेशी विशाल सेना से घिरा हुआ उसके पेट के स्थान पर हुआ।

स्वसेनया च सहितः सुशर्मा प्रस्थलाधिपः।
वामपक्षं समाश्रित्य दंशितः समवस्थितः॥ १७॥
तुषारा यवनाश्चैव शकाश्च सह चूचुपैः।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य भारत॥ १८॥
श्रुतायुश्च शतायुश्च सौमदत्तिश्च मारिष।
व्यूहस्य जघने तस्थू रक्षमाणाः परस्परम्॥ १९॥
ततो युद्धाय संजग्मुः पाण्डवाः कौरवैः सह।
सूर्योदये महाराज ततो युद्धमभून्महत्॥ २०॥

त्रिगर्त का राजा सुशर्मा, कवच धारणकर, अपनी सेना के साथ बायें पंख की तरफ खड़ा हुआ। हे भारत! तुषार, यवन, शक और चूचुप देश के सैनिक उस व्यूह के दायें पंख का सहारा लेकर खड़े हुए। हे मान्यवर! श्रुतायु, शतायु और भूरिश्रवा एकदूसरे की रक्षा करते हुए व्यूह की जांघ पर अवस्थित हुए। हे महाराज! सूर्योदय होने पर पाण्डव कौरवों के साथ युद्ध के लिये आगे बढ़े और फिर महान् युद्ध आरम्भ हो गया।

प्रतीयू रथिनो नागा नागांश्च रथिनो ययुः।
हयारोहान् रथारोहा रथिनश्चापि सादिनः॥ २१॥
सादिनश्च हयान् राजन् रथिनश्च महारणे।
हस्त्यारोहान् हयारोहा रथिनः सादिनस्तथा॥ २२॥
रथिनः पत्तिभिः सार्धं सादिनश्चापि पत्तिभिः।
अन्योन्यं समरे राजन् प्रत्यधावन्नमर्षिताः॥ २३॥

रथियों की तरफ हाथीसवार और हाथी सवारों की तरफ रथी बढ़े। रथारोही घुड़सवारों पर और घुड़सवार रथारोहियों पर चढ़ आये। हे राजन्! उस महान् युद्ध में घुड़सवारों पर घुड़सवारों ने और उन्होंने रथियों पर भी आक्रमण किया। घुड़सवारों ने हाथीसवारों पर और रथियों ने घुड़सवारों पर हमला किया। रथी पैदलों के साथ भी लड़ रहे थे। घुड़सवार भी पैदलों के साथ लड़ रहे थे। हे राजन्! इस प्रकार अमर्ष में भरे हुए वे एकदूसरे पर आक्रमण करने लगे।

भीमसेनस्तु कौन्तेयो द्रोणं दृष्ट्वा पराक्रमी।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्भारद्वाजस्य वाहिनीम्॥ २४॥
द्रोणस्तु समरे क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः।
विव्याध समरश्लाघी मर्माण्युद्दिश्य वीर्यवान्॥ २५॥
दृढाहतस्ततो भीमो भारद्वाजस्य संयुगे।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति॥ २६॥
स संगृह्य स्वयं वाहान् भारद्वाजः प्रतापवान्।
व्यधमत् पाण्डवीं सेनां तूलराशिमिवानलः॥ २७॥

कुन्तीपुत्र पराक्रमी भीमसेन ने द्रोणाचार्य को देखकर शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा उनकी सेना पर आक्रमण किया। तब युद्ध की श्लाघा करनेवाले पराक्रमी द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध होकर युद्ध में भीम को नौ लोहे के बाणों से उसके मर्मस्थानों को लक्ष्य कर घायल कर दिया। उस युद्ध में अत्यन्त घायल होकर भीम ने द्रोणाचार्य के सारथी को यमलोक में भेज दिया। तब प्रतापी द्रोणाचार्य ने स्वयं घोड़ों को बस में करते हुए, अग्नि के द्वारा रुई के समान, पाण्डवों की सेना का संहार करना आरम्भ करदिया।

ते वध्यमाना द्रोणेन भीष्मेण च नरोत्तमाः।
सृञ्जयाः केकयैः सार्धं पलायनपराऽभवन्॥ २८॥
तथैव तावकं सैन्यं भीमार्जुनपरिक्षतम्।
मुह्यते तत्र तत्रैव समदेव वराङ्गना॥ २९॥
अभिद्येतां ततो व्यूहौ तस्मिन् वीरवरक्षये।

आसीद् व्यतिकरो घोरस्तव तेषां च भारत॥ ३०॥
तदद्भुतमपश्याम तावकानां परैः सह।
एकायनगताः सर्वे यदयुध्यन्त भारत॥ ३१॥

वे नरश्रेष्ठ सृंजयसैनिक द्रोणाचार्य और भीष्म के द्वारा मारे जाते हुए केकयसैनिकों के साथ भागने लगे। उसीप्रकार आपकी सेना भी भीम और अर्जुन के द्वारा घायल होकर मतवाली स्त्री की तरह जहाँ तहाँ मूर्च्छित होने लगी। हे भारत! वीरों का विनाश करनेवाले उस युद्ध में दोनों सेनाओं के व्यूह टूट गये और दोनों सेनाएँ परस्पर भयानकरूप से मिल गयीं। हे भारत! वहाँ हमने आपके पुत्रों का शत्रुओं के साथ अद्भुत युद्ध देखा कि वे सब एक ही पंक्ति में खड़े होकर युद्ध कररहे थे।

बत्तीसवाँ अध्याय : भीम, धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य का पराक्रम।

भीमसेनः सुनिशितैर्बाणैर्भित्त्वा महाचमूम्।
आससाद ततो वीरः सर्वान् दुर्योधनानुजान्॥ १॥
दुःशासनं दुर्विषहं दुःसहं दुर्मदं जयम्।
जयत्सेनं विकर्णं च चित्रसेनं सुदर्शनम्॥ २॥
चारुचित्रं सुवर्माणं दुष्कर्णं कर्णमेव च।
एतांश्चान्यांश्च सुबहून् समीपस्थान् महारथान्॥ ३॥
भीष्मेण समरे गुप्तां प्रविवेश महाचमूम्।

वीर भीमसेन ने तब अत्यन्त तीखे बाणों से विशाल सेना का भेदन कर दुर्योधन के सारे भाइयों पर आक्रमण किया। ये भाई थे दुश्शासन, दुर्विषह, दुःसह, दुर्मद, जय, जयत्सेन, विकर्ण, चित्रसेन, सुदर्शन, चारुमित्र, सुवर्मा, दुष्कर्ण और कर्ण ये तथा इनके समीप विद्यमान और बहुत से महारथी। भीम भीष्म के द्वारा सुरक्षित उस महान् सेना में युद्ध करते हुए घुस गये।

अथालोक्य प्रविष्टं तमूचुस्ते सर्व एव तु॥ ४॥
जीवग्राहं निगृह्णीमो वयमेनं नराधिपाः।
तेषां व्यवसितं ज्ञात्वा भीमसेनो जिघृक्षताम्॥ ५॥
समस्तानां वधे राजन् मतिं चक्रे महामनाः।
ततो रथं समुत्सृज्य गदामादाय पाण्डवः॥ ६॥
तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम्।
यदेकः समरे राजन् बहुभिः समयोधयत्॥ ७॥

उन्हें सेना में प्रविष्ट हुआ देखकर वेसब कहने लगे कि हमसब राजालोग इन्हें जीवित ही पकड़ कर बन्दी बनालें। हे राजन्! बन्दी बनाने की उनकी इच्छा को जानकर महामना भीमसेन ने उनसब के वध के लिये विचार किया। तब उस पाण्डुपुत्र ने रथ को छोड़कर गदा हाथ में ले ली। वहाँ हमने युद्धस्थल में हे राजन्! भीमसेन का अद्भुत पराक्रम देखा कि वह अकेला ही बहुतों के साथ युद्ध कररहा था।

भीमसेने प्रविष्टे तु धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः।
द्रोणमुत्सृज्य तरसा प्रययौ यत्र सौबलः॥ ८॥
निवार्य महतीं सेनां तावकानां नरर्षभः।
आससाद रथं शून्यं भीमसेनस्य संयुगे॥ ९॥
दृष्ट्वा विशोकं समरे भीमसेनस्य सारथिम्।
धृष्टद्युम्नो महाराज दुर्मना गतचेतनः॥ १०॥
अपृच्छद् वाष्पसंरुद्धो निःश्वसन् वाचमीरयन्।
मम प्राणैः प्रियतमः क्व भीम इति दुःखितः॥ ११॥

भीमसेन के सेना में घुस जाने पर द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न भी द्रोणाचार्य को छोड़कर तेजी से उस स्थान पर गये, जहाँ शकुनि युद्ध कररहा था। फिर वे नरश्रेष्ठ आपके पुत्रों की महान् सेना को आगे बढ़ने से रोककर, युद्धस्थल में खड़े हुए भीम के सूने रथ के पास पहुँचे। वहाँ भीम के सारथी विशोक को समरभूमि में अकेला खड़े देख कर हे महाराज! धृष्टद्युम्न उदास और अचेत से हो गये। तब लम्बी साँसें लेते हुए, बहुत दुःखी होकर गद्गद्कण्ठ से उन्होंने पूछा कि मेरे प्राणों से भी प्यारे भीम कहाँ हैं?

विशोकस्तमुवाचेदं धृष्टद्युम्नं कृताञ्जलिः।
संस्थाप्य मामिह बली पाण्डवेयः पराक्रमी॥ १२॥
प्रविष्टो धार्तराष्ट्राणामेतद् बलमहार्णवम्।
मामुक्त्वा पुरुषव्याघ्रः प्रीतियुक्तमिदं वचः॥ १३॥
प्रतिपालय मां सूत नियम्याश्वान् मुहूर्तकम्।
यावदेतान् निहन्म्यद्य य इमे मद्वधोद्यताः॥ १४॥
विशोकस्य वचः श्रुत्वा धृष्टद्युम्नोऽथ पार्षतः।
प्रत्युवाच ततः सूतं रणमध्ये महाबलः॥ १५॥

तब विशोकने हाथ जोड़कर धृष्टद्युम्न से कहा कि मुझे यहाँ खड़ाकर वे बली, पराक्रमी, पाण्डु पुत्र धृतराष्ट्र के पुत्रों की इस सेनारूपी महासागर में प्रवेश कर गये हैं। वे पुरुष व्याघ्र प्रेम पूर्वक

मुझसे यह कहकर गये हैं कि तुम एक मूहूर्त तक इन घोड़ों को बस में करते हुए मेरी प्रतीक्षा करो। जब तक मैं मेरे वध के लिये तैयार इन्हें मार गिराता हूँ। विशोक की यह बांत सुनकर द्रुपदपुत्र महाबली, धृष्टद्युम्न ने युद्धस्थल में सारथी से यह कहा कि–

न हि मे जीवितेनापि विद्यतेऽद्य प्रयोजनम्।
भीमसेनं रणे हित्वा स्नेहमुत्सृज्य पाण्डवैः॥ १६॥
यदि यामि विना भीमं किं मां क्षत्रं वदिष्यति।
एकायनगते भीमे मयि चावस्थिते युधि॥ १७॥
मम भीमः सखा चैव सम्बन्धी च महाबलः।
भक्तोऽस्मान् भक्तिमांश्चाहं तमप्यरिनिषूदनम्॥ १८॥
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र यातो वृकोदरः।
निघ्नन्तं मां रिपून् पश्य दानवानिव वासवम्॥ १९॥

भीमसेन को युद्ध में छोड़कर और पाण्डवों के साथ स्नेह को तोड़कर, मेरा जीवित रहने से कोई लाभ नहीं है। यदि मैं भीम को यहाँ छोड़कर चला जाऊँगा, तो क्षत्रियलोग मुझे क्या कहेंगे? मेरे यहाँ विद्यमान रहते हुए भीम अकेले युद्ध लिये गये हैं। महाबली भीम मेरे मित्र और सम्बन्धी हैं। वे मेरे भक्त हैं और मैं भी उन शत्रुसूदन का भक्त हूँ। इसलिये मैं भी वहीं जाऊंगा, जहाँ भीम गये हैं। तुम मुझे, जैसे इन्द्र ने दैत्यों का विनाश किया था, वैसे ही शत्रुओं का विनाश करते हुए देखो।

एवमुक्त्वा ततो वीरो ययौ मध्येन भारत।
भीमसेनस्य मार्गेषु गदाप्रमथितैर्गजैः॥ २०॥
स ददर्श तदा भीमं दहन्तं रिपुवाहिनीम्।
वातो वृक्षानिव बलात् प्रभञ्जन्तं रणे रिपून्॥ २१॥
ते वध्यमानाः समरे रथिनः सादिनस्तथा।
पादाता दन्तिनश्चैव चक्रुरार्तस्वरं महत्॥ २२॥
हाहाकारश्च संजज्ञे तव सैन्यस्य मारिष।
वध्यतो भीमसेनेन कृतिना चित्रयोधिना॥ २३॥
ततः कृतास्त्रास्ते सर्वे परिवार्य वृकोदरम्।
अभीताः समवर्तन्त शस्त्रवृष्ट्या परंतप॥ २४॥

हे भारत! ऐसा कह कर वह वीर भी भीम के द्वारा गदा से मारकर गिराये गये हाथियों से बने हुए मार्ग से कौरव सेना के भीतर घुस गये। आगे जाकर उन्होंने शत्रुसेना को दग्ध करते हुए भीम को देखा। जैसे आँधी वृक्षों को उखाड़ फैंकती है, वैसे ही वे युद्ध में शत्रुओं का विनाश कररहे थे। भीम के द्वारा मारे जा रहे हाथी, घुड़सवार, पैदल और हाथीसवार जोरजोर से अर्तनाद कररहे थे। हे मान्यवर! कर्म कुशल और विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाले भीम के द्वारा मारी जाती हुई आपकी सेना में उससमय हाहाकार मचा हुआ था। तब हे परंतप! अस्त्रविद्या के निष्णात उन सारे कौरवसैनिकों ने भीम को घेर कर, निडरता के साथ, उन पर शस्त्रास्त्रों की वर्षा आरम्भ करदी।

अभिद्रुतं शस्त्रभृतां वरिष्ठं
समन्ततः पाण्डवं लोकवीरः।
सैन्येन घोरेण सुसंहितेन
दृष्ट्वा बली पार्षतो भीमसेनम्॥ २५॥
अथोपगच्छच्छर- विक्षताङ्गं
पदातिनं क्रोधविषं वमन्तम्।
आश्वासयन् पार्षतो भीमसेनं
गदाहस्तं कालमिवान्तकाले॥ २६॥

तब लोक में प्रसिद्धवीर, बलवान्, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने देखा कि शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ पाण्डुपुत्र, भीम पर अत्यन्त संगठित हुई भयंकर सेना के द्वारा सब तरफ से आक्रमण हो रहा है। तब बाणों से घायल शरीरवाले, पैदल ही अपने क्रोधरूपी विष को उगलते हुए, प्रलयकाल में मृत्यु के समान भयंकर गदा को हाथ में लिये हुए भीमसेन के पास जाकर, उन्होंने उन्हें आश्वासन दिया।

विशल्यमेनं च चकार तूर्ण-
मारोपयच्चात्मरथे महात्मा।
भृशं परिष्वज्य च भीमसेन-
माश्वासयामास स शत्रुमध्ये॥ २७॥
भ्रातृनथोपेत्य तवापि पुत्र-
स्तस्मिन् विमर्दे महति प्रवृत्ते।
अयं दुरात्मा द्रुपदस्य पुत्रः
समागतो भीमसेनेन सार्धम्॥ २८॥
तं याम सर्वे महता बलेन
मा वो रिपुः प्रार्थयतामनीकम्।

उस मनस्वी ने शीघ्रता से उनके शरीर में से बाण निकाले और उन्हें अपने रथ पर बैठाया। फिर शत्रुओं के बीच में ही उन्हें छाती से लगाकर अत्यन्त धीर बँधाया। तब उस महान् युद्ध के होने पर

आपका पुत्र दुर्योधन अपने भाइयों के पास जाकर बोला कि यह दुष्ट द्रुपद का पुत्र भीमसेन के साथ आ गया है। हम इस पर विशाल सेना के साथ आक्रमण करते हैं, जिससे तुम्हारा यह शत्रु सेना को नुकसान न पहुँचा सके।

श्रुत्वा तु वाक्यं तममृष्यमाणा
वधाय निष्पेतुरुदायुधास्ते॥ २९॥
प्रगृह्य चास्त्राणि धनूंषि वीरा
ज्यां नेमिघोषैः प्रविकम्पयन्तः।
शरैरवर्षन् द्रुपदस्य पुत्रं
यथाम्बुदो भूधरं वारिजालैः।
निहत्य तांश्चापि शरैः सुतीक्ष्णै-
र्न विव्यथे समरे चित्रयोधी॥ ३०॥

यह बात सुनकर धृष्टद्युम्न को न सहन करने वाले वे वीर, अपने हथियारों को उठाकर, अपने धनुषों, अस्त्रों को लेकर, धनुष की टंकार और रथों की घर्घराहट के साथ, उनके वध के लिये, उन पर चढ़ आये। जैसे बादल पर्वत पर बूँदों के समूह को बरसाते हैं, वैसे ही उन्होंने द्रुपद के पुत्र पर बाणों की वर्षा आरम्भ करदी। पर विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाला धृष्टद्युम्न अपने अत्यन्त तीखे बाणों के द्वारा उन सबको घायल कर, उस युद्ध में व्यथित नहीं हुआ।

एतस्मिन्नेव काले तु द्रोणः शस्त्रभृतां वरः।
द्रुपदं त्रिभिरासाद्य शरैर्विव्याध दारुणैः॥ ३१॥
सोऽतिविद्धस्ततो राजन् रणे द्रोणेन पार्थिवः।
अपायाद् द्रुपदो राजन् पूर्ववैरमनुस्मरन्॥ ३२॥
जित्वा तु द्रुपदं द्रोणः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्।
तस्य शङ्खस्वनं श्रुत्वा वित्रेसुः सर्वसोमकाः॥ ३३॥

इसीसमय दूसरीतरफ शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने द्रुपद को अपने सामने पाकर तीन दारुण बाणों से उसे बींध दिया। हे राजन्! तब राजा द्रुपद अत्यन्त घायल होकर, पिछले बैर को याद करते हुए युद्धक्षेत्र में वहाँ से हट गये। द्रुपद पर विजय पाकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ प्रतापी द्रोणाचार्य ने अपने शंख को बजाया, जिसे सुनकर सारे सोमक सैनिक भयभीत हो गये।

ततो युधिष्ठिरः प्राह समाहूय स्वसैनिकान्।
गच्छन्तु पदवीं शक्त्या भीमपार्षतयोर्युधि॥ ३४॥
सौभद्रप्रमुखा वीरा रथा द्वादश दंशिताः।
प्रवृत्तिमधिगच्छन्तु न हि शुद्ध्यति मे मनः॥ ३५॥
त एवं समनुज्ञाताः शूरा विक्रान्तयोधिनः।
बाढमित्येवमुक्त्वा तु सर्वे पुरुषमानिनः॥ ३६॥
मध्यन्दिनगते सूर्ये प्रययुः सर्व एव हि।

तब युधिष्ठिर ने अपने सैनिकों को बुलाकर कहा कि तुम जाकर अपनी पूरी शक्ति से भीम और द्रुपदपुत्र की युद्ध में रक्षा करो। अभिमन्यु आदि बारह वीर कवच धारणकर भीम और धृष्टद्युम्न का समाचार ज्ञात करें। उनकी तरफ से मेरा मन निश्चिन्त नहीं हो रहा है। इसप्रकार आज्ञा दिये जाने पर वे सारे अपने पौरुष के अभिमानी और पराक्रम के साथ युद्ध करनेवाले शूरवीर बहुत अच्छा यह कहकर दोपहर होतेहोते उसतरफ चल दिये।

केकया द्रौपदेयाश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान्॥ ३७॥
अभिमन्युं पुरस्कृत्य महत्या सेनया वृताः।
तान् प्रयातान् महेष्वासानभिमन्युपुरोगमान्॥ ३८॥
भीमसेनभयाविष्टा धृष्टद्युम्नविमोहिता।
न संवारयितुं शक्ता तव सेना जनाधिप॥ ३९॥
तौ च दृष्ट्वा महेष्वासावभिमन्युपुरोगमान्।
बभूवतुर्मुदा युक्तौ निघ्नन्तौ तव वाहिनीम्॥ ४०॥

अभिमन्यु को आगेकर चलनेवाले और विशाल सेना से घिरे हुए ये वीर थे। केकयकुमार, द्रौपदी के पुत्र और प्रतापी धृष्टकेतु! हे प्रजाके स्वामी! इन महाधनुर्धरों को अभिमन्यु की अध्यक्षता में जाता हुआ देखकर धृष्टद्युम्न के द्वारा मोहित हुई और भीम के भय से भरी हुई आपकी सेना उन्हें रोक नहीं सकी। वे दोनों महाधनुर्धर भीम और धृष्टद्युम्न अभिमन्यु आदि वीरों को आते हुए देखकर प्रसन्नता से भर आपकी सेना का और संहार करने लगे।

ततो रथं समारोप्य कैकेयस्य वृकोदरम्।
अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो द्रोणमिष्वस्त्रपारगम्॥ ४१॥
तस्याभिपततस्तूर्णं भारद्वाजः प्रतापवान्।
क्रुद्धश्चिच्छेद बाणेन धनुः शत्रुनिबर्हणः॥ ४२॥
अन्यांश्च शतशो बाणान् प्रेषयामास पार्षते।
दुर्योधनहितार्थाय भर्तृपिण्डमनुस्मरन्॥ ४३॥
अथान्यद् धनुरादाय पार्षतः परवीरहा।
द्रोणं विव्याध विंशत्या रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः॥ ४४॥

तब केकयकुमार के रथ पर भीम को बैठा कर

धृष्टद्युम्न अत्यन्त क्रुद्ध होकर धनुर्विद्या के पारंगत द्रोणाचार्य के ऊपर दौड़े। तब शत्रुओं को नष्ट करनेवाले, प्रतापी द्रोणाचार्य ने अपने ऊपर आक्रमण करते हुए उस धृष्टद्युम्न का धनुष क्रुद्ध होकर तुरन्त बाण से काट दिया। फिर स्वामी के अन्न का विचार करते हुए उन्होंने द्रुपदपुत्र पर और भी सैकड़ों बाण चलाये। तब शत्रु के वीरों को नष्ट करने वाले द्रुपदपुत्र ने दूसरा धनुष लेकर द्रोणाचार्य को शिला पर तेज किये हुए, सुनहरे पंख वाले बीस बाणों से बींध दिया।

तस्य द्रोणः पुनश्चापं चिच्छेदामित्रकर्शनः।
हयांश्च चतुरस्तूर्णं चतुर्भिः सायकोत्तमैः॥ ४५॥
वैवस्वतक्षयं घोरं प्रेषयामास भारत।
सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे॥ ४६॥
हताश्वात् स रथात् तूर्णमवप्लुत्य महारथः।
आरुरोह महाबाहुरभिमन्योर्महारथम्॥ ४७॥

शत्रु को दुख देनेवाले द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न के धनुष को पुनः काट दिया और चार उत्तम बाणों से उसके चारों घोड़ों को भी शीघ्रता से मारकर भयानक मृत्युलोक में भेज दिया। हे भारत! उन्होंने उसके सारथी को भी भल्ल नाम के बाण से मार दिया। तब मरे घोड़ोंवाले रथ से तुरन्त कूदकर वह महारथी, महाबाहु अभिमन्यु के विशाल रथ पर जा बैठा।

तेतीसवाँ अध्याय : उभय पक्ष की सेनाओं का युद्ध।

संजय उवाच

एकीभूतास्ततश्चैव तव पुत्रा महारथाः।
समेत्य समरे भीमं योधयामासुरुद्यताः॥ १॥
भीमसेनोऽपि समरे सम्प्राप्य स्वरथं पुनः।
प्रगृह्य च महावेगं परासुकरणं दृढम्॥ २॥
सज्जं शरासनं संख्ये शरैर्विव्याध ते सुतम्।
ततो दुर्योधनो राजा भीमसेनं महाबलम्॥ ३॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं मर्मण्यताडयत्।

फिर आपके महारथी पुत्र एकसाथ इकट्ठे होकर और तैयार होकर भीम के साथ युद्ध करने लगे। भीमसेन ने भी युद्धस्थल में अपने रथ को पुनः प्राप्त करके और महावेगशाली, मृत्यु को प्राप्त करानेवाले, दृढ, धनुष को उठाकर, उसे तैयार करके आपके पुत्र को नौ बाणों से बींध दिया। तब राजा दुर्योधन ने महाबली भीमसेन को अत्यन्त तीखे नाराच के द्वारा मर्मस्थल में गहरी चोट पहुँचायी।

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तव पुत्रेण धन्विना॥ ४॥
क्रोधसंरक्तनयनो वेगेनाक्षिप्य कार्मुकम्।
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ ५॥
तौ दृष्ट्वा समरे क्रुद्धौ विनिघ्नन्तौ परस्परम्।
दुर्योधनानुजाः सर्वे शूराः संत्यक्तजीविताः॥ ६॥
संस्मृत्य मन्त्रितं पूर्वं निग्रहे भीमकर्मणः।
निश्चयं परमं कृत्वा निग्रहीतुं प्रचक्रमुः॥ ७॥

आपके धनुर्धर पुत्र के द्वारा अत्यन्त पीड़ित होकर, क्रोध से लाल आँखें करके, धनुष को तेजी से खींचकर, भीम ने तीन बाणों से दुर्योधन की दोनों बाहों और छाती के बीच में चोट पहुँचायी। युद्ध में क्रुद्ध होकर उनदोनों को एक दूसरे पर प्रहार करते देखकर दुर्योधन के सारे छोटे शूरवीर भाई, अपने जीवन का मोह छोड़कर, भीम को पकड़ने के विषय में पहले की हुई मन्त्रणा को स्मरण कर और दृढ़ निश्चय कर भीम को पकड़ने का प्रयत्न करने लगे।

तानापतत एवाजौ भीमसेनो महाबलः।
प्रत्युद्ययौ महाराज गजः प्रतिगजानिव॥ ८॥
भृशं क्रुद्धश्च तेजस्वी नाराचेन समार्पयत्।
चित्रसेनं महाराज तव पुत्रं महायशाः॥ ९॥
तथेतरांस्तव सुतांस्ताडयामास भारत।
शरैर्बहुविधैः संख्ये रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः॥ १०॥

तब महाबली भीमसेन उन्हें युद्धस्थल में आते हुए देखकर, हे महाराज! उनकी तरफ ऐसे दौड़ा, जैसे एक हाथी अपने प्रतिद्वन्द्वी हाथियों की तरफ दौड़ता है। हे महाराज! अत्यन्त क्रुद्ध, तेजस्वी और महायशस्वी उन्होंने आपके पुत्र चित्रसेन पर एक नाराच का प्रहार किया। इसीप्रकार हे भारत! उन्होंने आपके दूसरे पुत्रों को भी युद्ध में अनेकप्रकार के सुनहरे पंखवाले, अत्यन्त तीखे बाणों से मारा।

ततः संस्थाप्य समरे तान्यनीकानि सर्वशः।
अभिमन्युप्रभृतयस्ते द्वादश महारथाः॥ ११॥
प्रेषिता धर्मराजेन भीमसेनपदानुगाः।
प्रतिजग्मुर्महाराज तव पुत्रान् महाबलान्॥ १२॥
दृष्ट्वा रथस्थांस्ताञ्शूरान् सूर्याग्निसमतेजसः।
तत्यजुः समरे भीमं तव पुत्रा महाबलाः॥ १३॥
तान् नामृष्यत कौन्तेयो जीवमाना गता इति।
अन्वीय च पुनः सर्वांस्तव पुत्रानपीडयत्॥ १४॥

फिर अपनी उन सेनाओं को समरभूमि में ठीक तरह से स्थापित करके, अभिमन्यु आदि बारह महारथी, जिन्हें धर्मराज युधिष्ठिर ने भीमसेन की रक्षा के लिये भेजा था, हे महाराज! आपके महाबली पुत्रों पर आक्रमण करने लगे। सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, रथों में बैठे हुए उन शूरवीरों को देखकर, आपके महाबली पुत्रों ने भीम को छोड़ दिया। तब कुन्तीपुत्र भीम से यह सहन नहीं हुआ कि वे जीवित ही चले गये, इसलिये उन्होंने पीछा करके आपके सारेपुत्रों को पुनः पीड़ित किया।

अपराह्णे महाराज प्रावर्तत महारणः।
तावकानां च बलिनां परेषां चैव भारत॥ १५॥
अभिमन्युर्विकर्णस्य हयान् हत्वा महाहवे।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्॥ १६॥
हताश्वं रथमुत्सृज्यं विकर्णस्तु महारथः।
आरुरोह रथं राजंश्चित्रसेनस्य भारत॥ १७॥
स्थितावेकरथे तौ तु भ्रातरौ कुलवर्धनौ।
आर्जुनिः शरजालेन च्छादयामास भारत॥ १८॥
चित्रसेनो विकर्णश्च कार्ष्णिं पञ्चभिरायसैः।
विव्याध तेन चाकम्पत् कार्ष्णिर्मेरुरिव स्थितः॥ १९॥

हे महाराज! तब आपके और पाण्डवों के बलवान् योद्धओं में अपरान्ह में महान् युद्ध आरम्भ हो गया। अभिमन्यु ने उस महान् युद्ध में विकर्ण के घोड़ों को मारकर उसके पच्चीस क्षुद्रक नाम के बाण मारे। हे भरतवंशी राजन्! तब अपने मरे घोड़ोंवाले रथ को छोड़कर विकर्ण चित्रसेन के रथ पर जा बैठा। हे भारत! तब अपने कुल को बढ़ाने वाले दोनों भाइयों को जो एक ही रथ पर बैठे हुए थे, अर्जुनपुत्र ने बाणवर्षा से आच्छादित कर दिया। तब चित्रसेन और विकर्ण ने अभिमन्यु को पाँच लोहे के बाणों से बींध दिया, पर अभिमन्यु उससे कम्पित नहीं हुआ और मेरुपर्वत की तरह स्थिर रहा।

दुःशासनस्तु समरे केकयान् पञ्च मारिष।
योधयामास राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत्॥ २०॥
द्रौपदेया रणे क्रुद्धा दुर्योधनमवारयन्।
शरैराशीविषाकारैः पुत्रं तव विशाम्पते॥ २१॥
पुत्रोऽपि तव दुर्धर्षो द्रौपद्यास्तनयान् रणे।
सायकैर्निशितै राजन्नाजघान पृथक् पृथक्॥ २२॥
तैश्चापि विद्धः शुशुभे रुधिरेण समुक्षितः।
गिरिः प्रस्रवणैर्यद्वद् गैरिकादिविमिश्रितैः॥ २३॥

हे मान्यवर! दुश्शासन ने युद्ध में पाँच केकय कुमारों के साथ युद्ध किया। हे राजेन्द्र! यह एक अद्भुत बात थी। हे प्रजानाथ! द्रौपदी के पुत्रों ने क्रुद्ध होकर युद्ध में विषैले सर्पों के समान बाणों से आपके पुत्र दुर्योधन को रोका। हे राजन्! आपके दुर्धर्ष पुत्र ने भी द्रौपदी के उन पुत्रों को युद्ध में तीखे बाणों से अलगअलग घायल किया। फिर उनके द्वारा भी घायल किया हुआ, खून से लथपथ होकर वह ऐसे प्रतीत होने लगा जैसे गेरू आदि धातुओं से मिश्रित जलवाले झरनों से युक्त पर्वत हो।

भीष्मोऽपि समरे राजन् पाण्डवानामनीकिनीम्।
कालयामास बलवान् पालः पशुगणानिव॥ २४॥
ततो गाण्डीवनिर्घोषः प्रादुरासीद् विशाम्पते।
दक्षिणेन वरूथिन्याः पार्थस्यारीन् विनिघ्नतः॥ २५॥

हे राजन्! उधर बलवान् भीष्म भी युद्धस्थल में पाण्डवों की सेना को ऐसे खदेड़ रहे थे, जैसे पशुपालक पशुओं को हाँकता है। तभी हे प्रजा पालक! सेना के दायेंभाग से शत्रुओं का संहार करते हुए अर्जुन के गाण्डीवधनुष की टंकार सुनाई देने लगी।

निहतैर्मत्तमातङ्गैः शोणितौघपरिप्लुतैः।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ पर्वतैराचिता यथा॥ २६॥
तत्राद्भुतमपश्याम तव तेषां च भारत।
न तत्रासीत् पुमान् कश्चिद् यो युद्धं नाभिकाङ्क्षति॥ २७॥
एवं युयुधिरे वीराः प्रार्थयाना महद् यशः।
तावकाः पाण्डवैः सार्धमाकाङ्क्षन्तो जयं युधि॥ २८॥

हे भरतश्रेष्ठ! खून से भरे हुए और मरकर पड़ेहुए, मस्त हाथियों से ढकीहुई वह भूमि ऐसे जान पड़ती थी, जैसे पर्वतों से व्याप्त हो। हे भारत! वहाँ हमने यह अद्भुत बात देखी कि आपके और शत्रुपक्ष में

कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था, जो युद्ध को न चाहता हो। इसप्रकार आपके वीरसैनिक महान् यश की इच्छा रखते हुए और विजय को चाहते हुए पाण्डवों के साथ युद्ध कररहे थे।

चौंतीसवाँ अध्याय : भीम द्वारा दुर्योधन की हार। अभिमन्यु और द्रौपदी पुत्रों का धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ युद्ध।

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे।
संग्रामरभसो भीमं हन्तुकामोऽभ्यधावत॥ १॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य नृवीरं दृढवैरिणम्।
भीमसेनः सुसंक्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत्॥ २॥
अयं स काल सम्प्राप्तो वर्षपूगाभिवाञ्छितः।
अद्य त्वां निहनिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम्॥ ३॥
अद्य कुन्त्याः परिक्लेशं वनवासं च कृत्स्नशः।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं प्रणेष्यासि हते त्वयि॥ ४॥

संजय ने कहा कि जब सूर्य लालिमा को प्राप्त होने लगा, तब युद्ध के लिये उत्साह रखनेवाला राजा दुर्योधन भीम को मारडालने की इच्छा से उसकी तरफ दौड़ा। तब अपने पक्के बैरी उस नरवीर को आते देखकर भीमसेन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह कहा कि बहुत वर्षों से मैं जिस समय की इच्छा कररहा था, वह समय अब आगया है। आज यदि तू युद्ध भूमि को छोड़कर भाग नहीं जायेगा, तो तुझे मारूँगा। आज कुन्ती के क्लेश का, वनवास के सारे कष्टों का और द्रौपदी के अत्यन्त सन्ताप का, सबका बदला मैं तुझे मारकर चुकाऊँगा।

यत् पुरा मत्सरी भूत्वा पाण्डवानवमन्यसे।
तस्य पापस्य गान्धारे पश्य व्यसनमागतम्॥ ५॥
कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च यत् पुरा।
अचिन्त्य पाण्डवान् कामाद् यथेष्टं कृतवानसि॥ ६॥
याचमानं च यन्मोहाद् दाशार्हमवमन्यसे।
उलूकस्य समादेशं यद् ददासि च हृष्टवत्॥ ७॥
तेन त्वां निहनिष्यामि सानुबन्धं सबान्धवम्।
समीकरिष्ये तत् पापं यत् पुरा कृतवानसि॥ ८॥

तूने पहले ईर्ष्यालु होकर पाण्डवों का जो तिरस्कार किया है, हे गान्धारी के बेटे! उसी के कारण तेरे ऊपर यह संकट आया है। तू उसे अब देखना। तूने कर्ण और शकुनि की सलाह मानकर, पाण्डवों की कुछ भी चिन्ता न करते हुए पहले उनके साथ जो मनमाना बर्ताव किया है, श्रीकृष्ण जी ने तुझसे सन्धि की प्रार्थना की, पर तूने मोह के कारण उनका भी तिरस्कार किया और तूने हर्षित होकर उलूक के द्वारा जो संदेश दिया था, इन सब कारणों से मैं तुझे तेरे भाइयों और बान्धवों के साथ मारूँगा और जोजो पाप तूने पहले किये हैं, उन सबका बदला चुकाकर बराबर करूँगा।

एवमुक्त्वा धनुर्घोरं विकृष्योद्भ्राम्य चासकृत्।
समाधत्त शरान् घोरान् महाशनिसमप्रभान्॥ ९॥
षड्विंशतिमथ क्रुद्धो मुमोचाशु सुयोधने।
ज्वलिताग्निशिखाकारान् वज्रकल्पानजिह्मगान्॥ १०॥
ततोऽस्य कार्मुकं द्वाभ्यां सूतं द्वाभ्यां च विव्यधे।
चतुर्भिरश्वाञ्जवनाननयद् यमसादनम्॥ ११॥
द्वाभ्यां च सुविकृष्टाभ्यां शराभ्यामरिमर्दनः।
छत्रं चिच्छेद समरे राज्ञस्तस्य नरोत्तम॥ १२॥

ऐसा कहकर उसने अपने भयंकर धनुष को बार बार घुमाकर और खींचकर, महान् विद्युत् के समान तेजस्वी भयंकर बाणों का संधान किया। उसने क्रुद्ध होकर शीघ्रता के साथ, जलती हुई आग की लपट और विद्युत् के समान, सीधे जानेवाले छब्बीस बाणों को दुर्योधन पर छोड़ा। फिर उसने दो बाणों से उसके धनुष को तथा दो बाणों से सारथी को बींध दिया और चार बाणों से उसके चारों वेगवान् घोड़ों को–

षड्भिश्च तस्य चिच्छेद ज्वलन्तं ध्वजमुत्तमम्।
छित्त्वा तं च ननादोच्चैस्तव पुत्रस्य पश्यतः॥ १३॥
अथैनं दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम्।
आजघान रणे वीरं स्मयन्निव महारथः॥ १४॥
ततः स राजा सिन्धूनां रथश्रेष्ठो महारथः।
दुर्योधनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः॥ १५॥
कृपश्च रथिनां श्रेष्ठः कौरव्यममितौजसम्।
आरोपयद् रथं राजन् दुर्योधनममर्षणम्॥ १६॥

छै बाणों से उसने उसकी उत्तम ध्वजा को काट दिया। ध्वजा को काटकर आपके पुत्र के देखते हुए ही उसने जोर से गर्जना की। फिर मुस्कराते हुए उस महारथी भीम ने दस बाणों से वीर दुर्योधन को ऐसे पीड़ित किया, जैसे हाथी को अंकुशों के द्वारा किया जाता है। तब रथियों में श्रेष्ठ महारथी सिन्धुराज जयद्रथ ने कुछ सत्पुरुषों के साथ आकर दुर्योधन की पृष्ठरक्षा का काम सँभाला। हे राजन्! रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य ने अमिततेजस्वी और अमर्षशील कौरव्य दुर्योधन को अपने रथ में बैठाया।

स गाढविद्धो व्यथितो भीमसेनेन संयुगे।
निषसाद रथोपस्थे राजन् दुर्योधनस्तदा॥ १७॥
धृष्टकेतुस्ततो राजन्नभिमन्युश्च वीर्यवान्।
केकया द्रौपदेयाश्च तव पुत्रानयोधयन्॥ १८॥
चित्रसेनः सुचित्रश्च चित्राङ्गश्चित्रदर्शनः।
चारुचित्रः सुचारुश्च तथा नन्दोपनन्दकौ॥ १९॥

हे राजन्! तब युद्ध में भीमसेन के द्वारा अत्यन्त घायल और व्यथित किया हुआ वह दुर्योधन रथ के पिछलेभाग में जाकर बैठ गया। हे राजन्! तब धृष्टकेतु और पराक्रमी अभिमन्यु, केकय राजकुमार और द्रौपदी के पुत्र आपके पुत्रों के साथ युद्ध करने लगे। हे राजन्! चित्रसेन, सुचित्र, चित्रांग, चित्रदर्शन, चारुचित्र, सुचारु, नन्द और उपनन्दक इन आठ सुकुमार और यशस्वी महाधनुर्धरों ने अभिमन्यु के रथ को चारोंतरफ से घेर लिया।

अष्टावेते महेष्वासाः सुकुमारा यशस्विनः।
अभिमन्युरथं राजन् समन्तात् पर्यवारयन्॥ २०॥
आजघान ततस्तूर्णमभिमन्युर्महा मनाः।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः, शितैः संनतपर्वभिः॥ २१॥
अमृष्यमाणास्ते सर्वे सौभद्रं रथसत्तमम्।
ववृषुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेरुमिवाम्बुदाः॥ २२॥
विकर्णस्य ततो भल्लान् प्रेषयामास भारत।
चतुर्दश रथश्रेष्ठो घोरानाशीविषोपमान्॥ २३॥
स तैर्विकर्णस्य रथात् पातयामास वीर्यवान्।
ध्वजं सूतं हयांश्चैव नृत्यमान इवाहवे॥ २४॥

तब महामना अभिमन्यु ने शीघ्रता से एकएक को पाँचपाँच तीखे और झुकी गाँठवाले बाणों से बींध दिया। उन सबंने इसे सहन न करते हुए, रथियों में श्रेष्ठ सुभद्रा के पुत्र पर तीखे बाणों की उसी प्रकार वर्षा आरम्भ कर दी, जैसे बादल मेरु पर्वत पर जल की बूँदें बरसाते हैं। हे भारत! तब रथियों में श्रेष्ठ अभिमन्यु ने विषैले सर्पों के समान भयंकर चौदह भल्लों को विकर्ण के ऊपर चलाया। उस तेजस्वी ने युद्ध में नृत्य सा करते हुए, उन बाणों से विकर्ण के सारथी, घोड़ों और ध्वज को उसके रथ से गिरा दिया।

पुनश्चान्याञ्शरान् पीतानकुण्ठाग्राञ्शिलाशितान्।
प्रेषयामास संक्रुद्धो विकर्णाय महाबलः॥ २५॥
विकर्णं वीक्ष्य निर्भिन्नं तस्यैवान्ये सहोदराः।
अभ्यद्रवन्त समरे सौभद्रप्रमुखान् रथान्॥ २६॥
अभियात्वा तथैवान्यान् रथांस्तान् सूर्यवर्चसः।
अविध्यन् समरेऽन्योन्यं संरम्भाद् युद्धदुर्मदाः॥ २७॥
दुर्मुखः श्रुतकर्माणं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः।
ध्वजमेकेन चिच्छेद सारथिं चास्य सप्तभिः॥ २८॥

उसके बाद फिर दूसरे शिला पर तेज किये हुए, तीखे और पानीदार बाणों को उस महाबली ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर विकर्ण के ऊपर चलाया। विकर्ण को घायल हुआ देखकर, उसके दूसरे भाइयों ने उस युद्धस्थल में अभिमन्यु आदि रथियों पर आक्रमण किया। युद्ध में दुर्मद उन्होंने सूर्य के समान तेजस्वी दूसरे रथियों पर भी आक्रमण किया। तब क्रोध में भरकर वेसब एकदूसरे को बाणों से बींधने लगे। दुर्मुख ने सात तीव्रगामी बाणों से श्रुतकर्मा को बींधकर, एक बाण से उसके ध्वज को काट दिया और सात बाणों से सारथी को घायल करदिया।

अश्वाञ्जाम्बूनदैर्जालैः प्रच्छन्नान् वातरंहसः।
जघान षड्भिरासाद्य सारथिं चाभ्यपातयत्॥ २९॥
स हताश्वे रथे तिष्ठञ्श्रुतकर्मा महारथः।
शक्तिं चिक्षेप संक्रुद्धो महोल्कां ज्वलितामिव॥ ३०॥
सा दुर्मुखस्य विमलं वर्म भित्त्वा यशस्विनः।
विदार्य प्राविशद् भूमिं दीप्यमाना स्वतेजसा॥ ३१॥
तं दृष्ट्वा विरथं तत्र सुतसोमो महारथः।
पश्यतां सर्वसैन्यानां रथमारोपयत् स्वकम्॥ ३२॥

दुर्मुख ने छै बाणों से उसके घोड़ों को, जो वायु के समान वेगशाली और सुनहरी जाली से आच्छादित थे, तथा उसके सारथी को गिरा दिया। मरे हुए घोड़ोंवाले रथ पर ही बैठे हुए महारथी श्रुतकर्मा ने

तब अत्यन्त क्रोध में आकर महान् उल्का के समान जलती हुई एक शक्ति को उसके ऊपर फेंका। अपने तेज से प्रकाशित उस शक्ति ने यशस्वी दुर्मुख के जगमगाते हुए कवच को फाड़ दिया और भूमि में धँस गयी। तब महारथी सुतसोम ने अपने भाई श्रुतकर्मा को रथहीन देखकर, उसे सारे सैनिकों के देखते हुए अपने रथ पर चढ़ा लिया।

श्रुतकीर्तिस्तथा वीरो जयत्सेनं सुतं तव।
अभ्ययात् समरे राजन् हन्तुकामो यशस्विनम्॥ ३३॥
तस्य विक्षिपतश्चापं श्रुतकीर्तेर्महास्वनम्।
चिच्छेद समरे तूर्णं जयत्सेनः सुतस्तव॥ ३४॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन प्रहसन्निव भारत।
तं दृष्ट्वा छिन्नधन्वानं शतानीकः सहोदरम्॥ ३५॥
अभ्यपद्यत तेजस्वी सिंहवन्निनदन् मुहुः।
शतानीकस्तु समरे दृढं विस्फार्य कार्मुकम्॥ ३६॥
विव्याध दशभिस्तूर्णं जयत्सेनं शिलीमुखैः।
ननाद सुमहानादं प्रभिन्न इव वारणः॥ ३७॥

हे राजन्! वीर श्रुतकीर्ति तब आपके पुत्र यशस्वी जयत्सेन को मारने की इच्छा से युद्ध में उसके ऊपर चढ़ आया। हे भारत! आपके पुत्र जयत्सेन ने, मुस्कराते हुए, अत्यन्त तीक्ष्ण क्षुरप्र नामके बाण से श्रुतकीर्ति के गम्भीरटंकार की ध्वनि करते हुए और जोर से खींचे जाते हुए धनुष को युद्ध से शीघ्रता पूर्वक काट दिया। तब अपने भाई को कटे धनुष वाला देखकर, तेजस्वी शतानीक सिंह के समान बार बार गर्जना करता हुआ, वहाँ आ पहुँचा। शतानीक ने उस युद्ध में दृढ़ता के साथ अपने धनुष को खींचकर, जयंत्सेन को दस बाणों से तुरन्त बींध दिया और मद बहानेवाले हाथी के समान अत्यन्त महान् स्वर में गर्जना की।

अथान्येन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना।
शतानीको जयत्सेनं विव्याध हृदये भृशम्॥ ३८॥
तिष्ठ तिष्ठेति चामन्त्र्य दुष्कर्णं भ्रातुरग्रतः।
मुमोचास्मै शितान् बाणाञ्ज्वलितान् पन्नगानिव॥ ३९॥
ततोऽस्य धनुरेकेन द्वाभ्यां सूतं च मारिष।
चिच्छेद समरे तूर्णं तं च विव्याध सप्तभिः॥ ४०॥
अश्वान् मनोजवांस्तस्य कर्बुरान् वातरंहसः।
जघान निशितैस्तूर्णं सर्वान् द्वादशभिः शरैः॥ ४१॥

फिर दूसरे एक अत्यन्त तीखे, सारे आवरणों को भेदनेवाले बाण से शतानीक ने जयत्सेन के हृदय में गहरी चोट पहुँचाई। फिर भाई के सामने ही उसने दुष्कर्ण से ठहरठहर यह कहकर, उस पर जलते हुए सर्पों के समान तीखे बाण छोड़े। हे मान्यवर! फिर उसने एक बाण से दुष्कर्ण के धनुष को काट कर, दो बाणों से उसके सारथी को मार दिया और शीघ्रता से सात बाणों से उसे घायल कर दिया। चितकबरे रंग के दुष्कर्ण के घोड़े मन और वायु के समान वेगवान् थे। शतानीक ने शीघ्रता से उन्हें भी तीखे बारह बाणों से मार दिया।

अथापरेण भल्लेन सुयुक्तेनाशुपातिना।
दुष्कर्णं सुदृढं क्रुद्धो विव्याध हृदये भृशम्॥ ४२॥
स पपात ततो भूमौ वज्राहत इव द्रुमः।
दुष्कर्णं व्यथितं दृष्ट्वा पञ्च राजन् महारथाः॥ ४३॥
जिघांसन्तः शतानीकं सर्वतः पर्यवारयन्।
छाद्यमानं शरव्रातैः शतानीकं यशस्विनम्॥ ४४॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः केकयाः पञ्च सोदराः।
तानभ्यापततः प्रेक्ष्य तव पुत्रा महारथाः॥ ४५॥
प्रत्युद्ययुर्महाराज गजानिव महागजाः।

फिर शतानीक ने शीघ्रता से प्रहार करनेवाले, अच्छीतरह से संधान कियेहुए भल्ल से अत्यन्त क्रुद्ध होकर दुष्कर्ण के हृदय में गहरी चोट पहुँचायी, जिससे विद्युत् से मारेगये वृक्ष के समान वह भूमि पर गिरपड़ा। हे राजन्! तब दुष्कर्ण को व्यथित देखकर, पाँच महारथियों ने शतानीक को मारने की इच्छा से उसे सबतरफ से घेर लिया। उस यशस्वी शतानीक को उनके बाणों से आच्छादित देखकर, पाँचों केकय भाइयों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, उन पर आक्रमण किया। उन्हें आते हुए देखकर, हे महाराज! आपके महारथी पुत्र उनका सामना करने के लिये उसी प्रकार आगे बढ़े जैसे हाथी दूसरे हाथियों पर आक्रमण के लिये बढ़ते हैं।

दुर्मुखो दुर्जयश्चैव तथा दुर्मर्षणो युवा॥ ४६॥
शत्रुंजयः शत्रुसहः सर्वे क्रुद्धा यशस्विनः।
प्रत्युद्याता महाराज केकयान् भ्रातरः समम्॥ ४७॥
तेषां सुतुमुलं युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम्।
अवर्तत महारौद्रं निघ्नतामितरेतरम्॥ ४८॥
अन्योन्यागस्कृतां राजन् यमराष्ट्रविवर्धनम्।
मुहूर्तास्तमिते सूर्ये चक्रुर्युद्धं सुदारुणम्॥ ४९॥

हे महाराज! दुर्मुख, दुर्जय और युवा दुर्मर्षण, शत्रुंजय और शत्रुसह ये सारे यशस्वी वीर क्रोध में भरकर पाँचों केकय भाइयों पर एक साथ टूटपड़े। फिर तो उनमें अत्यन्त रौद्र और तुमुल युद्ध होने लगा। उस युद्ध में रथियों से रथी और हाथीसवारों से हाथी सवार परस्पर भिड़ गये। हे राजन्! एक दूसरे पर प्रहार करनेवाले महारथियों का वह युद्ध मृत्युलोक की जनसंख्या को बढ़ानेवाला था। उस दिन सूर्य छिपने के पश्चात् भी, एक मुहुर्त्त तक वे लोग अत्यन्त दारुण युद्ध को करते रहे और पुनः युद्ध की समाप्ति की।

पैंतीसवाँ अध्याय : भीष्म द्वारा दुर्योधन को ढाढस। सातवें दिन का युद्ध आरम्भ।

संजय उवाच

ततस्तव सुतो राजंश्चिन्तयाभिपरिप्लुतः।
विस्त्रवच्छोणिताक्ताङ्गः पप्रच्छेदं पितामहम्॥ १॥

सैन्यानि रौद्राणि भयानकानि
व्यूढानि सम्यग् बहुलध्वजानि।
विदार्य हत्वा च निपीड्य शूरां-
स्ते पाण्डवानां त्वरिता महारथाः
सम्मोह्य सर्वान् युधि कीर्तिमन्तो॥ २॥

हे राजन्! फिर आपके पुत्र दुर्योधन ने, जिसके अंगों से रक्त बहरहा था, चिन्ता में भरकर पितामह भीष्म से यह पूछा कि हमारी सेनाएँ अत्यन्त भयानक हैं, हमारी व्यूहरचना भी ठीक है, हमारी सेनाओं में पताकाएँ भी बहुत लहराती हैं, पर फिर भी पाण्डवों के शूर वीर महारथी उसे विदीर्ण करके, मारकर और पीड़ितकर शीघ्रता से चले जाते हैं तथा युद्ध में सब को मोहित कर अपनी कीर्ति का विस्तार करते हैं।

प्रविश्य भीमेन रणे हतोऽस्मि
घोरैः शरैर्मृत्युदण्डप्रकाशैः।
क्रुद्धं तमुद्वीक्ष्य भयेन राजन्
सम्मूर्च्छितो न लभे शान्तिमद्य।
इच्छे प्रसादात् तव सत्यसंध
प्राप्तुं जयं पाण्डवेयांश्च हन्तुम्॥ ३॥

सेना में प्रवेश कर भीम ने अपने मृत्यु के प्रहार के समान भयानक बाणों से मुझे घायल कर दिया। हे राजन्! उसे क्रोध में भरा हुआ देखकर मैं भय से आकुल हो उठता हूँ और मुझे शान्ति नहीं मिलती है। हे सत्यप्रतिज्ञ! मैं आपकी कृपा से पाण्डवों को जीतना और मारना चाहता हूँ।

तेनैवमुक्तः प्रहसन् महात्मा
दुर्योधनं मन्युगतं विदित्वा।
तं प्रत्युवाचाविमना मनस्वी
गङ्गासुतः शस्त्रभृतां वरिष्ठः॥ ४॥
परेण यत्नेन विगाह्य सेनां
सर्वात्मनाहं तव राजपुत्र।
इच्छामि दातुं विजयं सुखं च
न चात्मानं छादयेऽहं त्वदर्थे॥ ५॥

उसके द्वारा इसप्रकार कहे जाने पर, महात्मा और मनस्वी, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ गंगापुत्र ने दुर्योधन को क्रोध में भराहुआ जानकर, उदास होकर हँसते हुए उत्तर दिया कि हे राजपुत्र! मैं पूरे प्रयत्न से शत्रुसेना को आलोडित कर, पूरी आत्मा से तुम्हें विजय और सुख दिलाना चाहता हूँ। मैं तुम्हारे लिये अपनेआपको छिपाता नहीं हूँ।

एते तु रौद्रा बहवो महारथा
यशस्विनः शूरतमाः कृतास्त्राः।
ये पाण्डवानां समरे सहाया
जितक्लमा रोषविषं वमन्ति॥ ६॥
ते नैव शक्याः सहसा विजेतुं
वीर्योद्धताः कृतवैरास्त्वया च।
अहं सेनां प्रतियोत्स्यामि राजन्
सर्वात्मना जीवितं त्यज्य वीर॥ ७॥

किन्तु पाण्डवों की युद्ध में सहायता करनेवाले, ये बहुतसे महारथी, बहुत भयानक, यशस्वी, अत्यन्त शूर, अस्त्रविद्या में अत्यन्त निष्णात और थकावट को जीतने वाले हैं। ये अपने क्रोधरूपी विष को उगलरहे हैं। इन प्रचण्ड पराक्रमवालों ने तुम्हारे साथ वैर बाँधा हुआ है। इन्हें एक दम पराजित नहीं किया जा सकता। हे वीर! मैं अपना जीवन भी न्यौछावरकर, पूरी आत्मा से सेना का प्रतिरोध करूँगा।

अथात्मजं तव पुनर्गाङ्गेयो ध्यानमास्थितम्।
अब्रवीद् भरतश्रेष्ठः सम्प्रहर्षकरं वचः॥ ८॥
सर्वथाहं तु राजेन्द्र करिष्ये वचनं तव।
पाण्डवांश्च रणे जेष्ये मां वा जेष्यन्ति पाण्डवाः॥ ९॥
एवमुक्त्वा ददावस्मै विशल्यकरणीं शुभाम्।
ओषधीं वीर्यसम्पन्नां विशल्यश्चाभवत् तदा॥ १०॥
ततः प्रभाते विमले स्वेन सैन्येन वीर्यवान्।
अव्यूहत स्वयं व्यूहं भीष्मो व्यूहविशारदः॥ ११॥

फिर चिन्ता में पड़े हुए आपके पुत्र से भरतश्रेष्ठ गंगापुत्र भीष्म ने पुनः उसके हर्ष को बढ़ानेवाली यह बात कही कि मैं हे राजेन्द्र! तुम्हारी बात का पूरीतरह से पालन करूँगा। या तो मैं युद्ध में पाण्डवों को जीत लूँगा, या पाण्डव मुझे जीत लेंगे। ऐसा कहकर उन्होंने शक्तिशालिनी और उत्तम विशल्य करणी नाम की ओषधि उसे दी। जिसके प्रभाव से उसके घाव ठीक हो गये। फिर उसके पश्चात् स्वच्छ सवेरा होने पर, पराक्रमी और व्यूहनिर्माण में कुशल भीष्म ने अपनी सेना का स्वयं ही व्यूह बनाया।

नागे नागे रथाः सप्त सप्त चाश्वा रथे रथे।
अन्वश्वं दश धानुष्का धानुष्के दश चर्मिणः॥ १२॥
एवं व्यूढं महाराज तव सैन्यं महारथैः।
स्थितं रणाय महते भीष्मेण युधि पालितम्॥ १३॥
दशाश्वानां सहस्राणि दन्तिनां च तथैव च।
रथानामयुतं चापि पुत्राश्च तव दंशिताः॥ १४॥
चित्रसेनादयः शूरा अभ्यरक्षन् पितामहम्।
रक्ष्यमाणः स तैःशूरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते॥ १५॥

उस व्यूह में एकएक हाथी के पीछे सात रथ, और एकएक रथ के पीछे सात घोड़े, प्रत्येक घुड़सवार के पीछे दस धनुर्धर और प्रत्येक धनुर्धर के पीछे दस ढाल और तलवारवाले वीर खड़े किये गये थे। हे महाराज! इसप्रकार भीष्म के द्वारा सुरक्षित और महारथियों के द्वारा व्यूहबद्ध आपकी सेना महान् युद्ध के लिये खड़ी थी। दस हजार हाथी और दस हजार घोड़े तथा दस हजार रथ तथा कवच पहने आपके चित्रसेन आदि शूरवीर पुत्र पितामह की रक्षा कररहे थे। वे शूरवीर जहाँ भीष्म की रक्षा कररहे थे, वहाँ भीष्म के द्वारा उनकी भी रक्षा होरही थी।

ततः शब्दो महानासीत् पुत्राणां तव भारत।
रथघोषश्च विपुलो वादित्राणां च निस्वनः॥ १६॥
मण्डलः स महाव्यूहो दुर्भेद्योऽमित्रघातनः।
सर्वतः शुशुभे राजन् रणेऽरीणां दुरासदः॥ १७॥
मण्डलं तु समालोक्य व्यूहं परमदुर्जयम्।
स्वयं युधिष्ठिरो राजा वज्रं व्यूहमथाकरोत्॥ १८॥
तथा व्यूढेष्वनीकेषु यथास्थानमवस्थिताः।
रथिनः सादिनः सर्वे सिंहनादमथानदन्॥ १९॥

इसके पश्चात् हे भारत! आपके पुत्रों का उच्च स्वर में सिंहनाद सुनायी देनेलगा। रथों की घर्घराहट और वाद्ययन्त्रों की महान् ध्वनि भी सुनाई देने लगी। कौरव सेना का वह महान् मंडल नाम का व्यूह दुर्भेद्य और शत्रुओं को नष्ट करनेवाला था। हे राजन्! शत्रुओं के लिये दुर्गम, वह व्यूह युद्धस्थल में सबतरफ से सुशोभित होरहा था। उस परम दुर्जय मण्डल व्यूह को देखकर, राजा युधिष्ठिर ने स्वयं वज्र नाम के व्यूह की रचना की। इसप्रकार सेनाओं के व्यूहबद्ध हो जाने पर, सैनिकों के यथास्थान खड़े होजाने पर, सारे रथी और घुड़सवार आदि सिंहनाद करने लगे।

बिभित्सवस्ततो व्यूहं निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणः।
इतरेतरतः शूराः सहसैन्याः प्रहारिणः॥ २०॥
भारद्वाजो ययौ मत्स्यं द्रौणिश्चापि शिखण्डिनम्।
स्वयं दुर्योधनो राजा पार्षतं समुपाद्रवत्॥ २१॥
नकुलः सहदेवश्च मद्रराजानमीयतुः।
विन्दानुविन्दावावन्त्याविरावन्त- मभिद्रुतौ ॥ २२॥
सर्वे नृपास्तु समरे धनंजयमयोधयन्।
भीमसेनो रणे यान्तं हार्दिक्यं समवारयत्॥ २३॥

फिर युद्ध के इच्छुक, प्रहार करनेवाले शूरवीर, एकदूसरे के व्यूह को तोड़ने की कामना से, सेना के साथ आगे बढ़े। द्रोणाचार्य ने विराटराज पर और अश्वत्थामा ने शिखण्डी पर चढ़ाई की। स्वयं राजा दुर्योधन ने द्रुपद पर आक्रमण किया। नकुल और सहदेव ने मद्रराज शल्य पर धावा किया। अवन्ती के राजा विन्द और अनुविन्द इरावान् की तरफ दौड़े। सारे राजाओं ने युद्धस्थल में अर्जुन के साथ युद्ध किया और भीमसेन ने युद्धस्थल में विचरते हुए कृतवर्मा को रोका।

चित्रसेनं विकर्णं च तथा दुर्मर्षणं विभुः।
आर्जुनिः समरे राजंस्तव पुत्रानयोधयत्॥ २४॥
प्राग्ज्योतिषो महेष्वासो हैडिम्बं राक्षसोत्तमम्।

अभिदुद्राव वेगेन मत्तो मत्तमिव द्विपम्॥ २५॥
अलम्बुषस्तदा राजन् सात्यकिं युद्धदुर्मदम्।
ससैन्यं समरे क्रुद्धो राक्षसः समुपाद्रवत्॥ २६॥
भूरिश्रवा रणे यत्तो धृष्टकेतुमयोधयत्।
श्रुतायुषं च राजानं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २७॥
चेकितानश्च समरे कृपमेवान्वयोधयत्।
शेषाः प्रतिययुर्यत्ता भीष्ममेव महारथम्॥ २८॥
ततो राजसमूहास्ते परिवव्रुर्धनंजयम्।

हे राजन्! आपके पुत्र चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षणके साथ शक्तिशाली अर्जुनपुत्र अभिमन्यु ने युद्ध आरम्भ किया। प्राग्ज्योतिषपुर का राजा, महाधनुर्धर, भगदत्त, राक्षसश्रेष्ठ, हिडिम्बापुत्र घटोत्कच की तरफ इसप्रकार वेग से दौड़ा, जैसे एक मस्त हाथी दूसरे मस्त हाथी की तरफ दौड़ता है। हे राजन्! युद्धक्षेत्र में तब राक्षस अलम्बुष ने क्रुद्ध होकर सेना के साथ युद्ध में दुर्मद सात्यकि पर आक्रमण किया। भूरिश्रवा यत्नपूर्वक धृष्टकेतु के साथ युद्ध करने लगा और धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने राजा श्रुतायु पर आक्रमण किया। चेकितान कृपाचार्य के साथ युद्ध करने लगा और शेष महारथी प्रयत्नपूर्वक भीष्म से लड़ने लगे। उधर आपकी तरफ के राजाओं ने अर्जुन को घेर लिया।

अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धो वार्ष्णेयमिदमब्रवीत्॥ २९॥
पश्य माधव सैन्यानि धार्तराष्ट्रस्य संयुगे।
व्यूढानि व्यूहविदुषा गाङ्गेयेन महात्मना॥ ३०॥
युद्धाभिकामाञ्शूरांश्च पश्य माधव दंशितान्।
त्रिगर्तराजं सहितं भ्रातृभिः पश्य केशव॥ ३१॥
अद्यैतान् नाशयिष्यामि पश्यतस्ते जनार्दन।
य इमे मां यदुश्रेष्ठ योद्धुकामा रणाजिरे॥ ३२॥
एतदुक्त्वा तु कौन्तेयो धनुर्ज्यामवमृज्य च।
ववर्ष शरवर्षाणि नराधिपगणान् प्रति॥ ३३॥

तब अर्जुन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण से कहा कि हे कृष्ण! दुर्योधन की इन सेनाओं को युद्धस्थल में देखो। महाविद्वान् महात्मा गंगापुत्र ने इनका व्यूह बनाया है। हे कृष्ण! युद्ध की कामना करनेवाले, कवच पहने हुए इन शूर वीरों को देखो और केशव अपने भाइयों के साथ खड़े हुए त्रिगर्तराज को देखो। हे जनार्दन! मैं तुम्हारे देखते हुए आज इन्हें नष्ट कर दूँगा। हे यदुश्रेष्ठ! ये इस रणक्षेत्र में मुझसे युद्ध करने की कामना कररहे हैं। ऐसा कहकर उस कुन्तीपुत्र ने धनुष की प्रत्यंचा को सहलाया और उन राजाओं पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

तेऽपि तं परमेष्वासाः शरवर्षैरपूरयन्।
तडागं वारिधाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः॥ ३४॥
हाहाकारो महानासीत् तव सैन्ये विशाम्पते।
छाद्यमानौ रणे कृष्णौ शरैर्दृष्ट्वा महारणे॥ ३५॥
ततः क्रुद्धोऽर्जुनो राजन्नैन्द्रमस्त्रमुदैरयत्।
तत्राद्भुतमपश्याम विजयस्य पराक्रमम्॥ ३६॥

उन महाधनुर्धरों ने भी अर्जुन को बाणों की वर्षा से ऐसे भर दिया, जैसे वर्षाऋतु में बादल तालाब को जलधाराओं से भर देते हैं। हे प्रजानाथ। तब अर्जुन और कृष्ण को बाणों से आच्छादित देखकर आपकी सेना में महान् कोलाहल होने लगा। हे राजन्! तब अर्जुन ने क्रुद्ध होकर ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया। हमने वहाँ अर्जुन के अद्भुत पराक्रम को देखा।

अस्त्रवृष्टिं परैर्मुक्तां शरौघैर्यदवारयत्।
न च तत्राप्यनिर्भिन्नः कश्चिदासीद् विशाम्पते॥ ३७॥
तेषां राजसहस्राणां हयानां दन्तिनां तथा।
द्वाभ्यां त्रिभिः शरैश्चान्यान् पार्थो विव्याध मारिष॥ ३८॥
आपतद्भिस्तु तैस्तत्र प्रभग्नं तावकं बलम्।
संचुक्षुभे महाराज वातैरिव महार्णवः॥ ३९॥

उन्होंने अपने बाणसमूहों से शत्रु की बाणवर्षा को रोक दिया। हे प्रजानाथ! उस समय वहाँ कोई भी योद्धा ऐसा नहीं था, जो अर्जुन के बाणों से घायल नहीं हुआ हो। हे मान्यवर! वहाँ हजारों क्षत्रियों के घोड़ों और हाथियों को कुन्तीपुत्र ने दो या तीन बाणों से बींध दिया। हे महाराज! आक्रमण करते हुए पाण्डवों के द्वारा आपकी सेना का व्यूह टूट गया और वह सेना झंझावात के द्वारा आलोडित किये गये महासागर के समान क्षुब्ध हो उठी।

छत्तीसवाँ अध्याय : अर्जुन द्वारा कौरवसेना में भगदड़। द्रोणाचार्य से विराटपुत्र शंख का वध। सात्यकि से अलम्बुष, धृष्टद्युम्न से दुर्योधन की हार, भीम कृतवर्मा, शिखण्डी-अश्वत्थामा के युद्ध।

संजय उवाच

तथा प्रवृत्ते संग्रामे निवृत्ते च सुशर्मणि।
भग्नेषु चापि वीरेषु पाण्डवेन महात्मना॥ १॥
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा रणे पार्थस्य विक्रमम्।
त्वरमाणः समभ्येत्य सर्वांस्तानब्रवीन्नृपान्॥ २॥
एष भीष्मः शान्तनवो योद्धुकामो धनंजयम्।
सर्वात्मना कुरुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः॥ ३॥
तं प्रयान्तं रणे वीरं सर्वसैन्येन भारतम्।
संयत्ताः समरे सर्वे पालयध्वं पितामहम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि युद्ध के चलने पर सुशर्मा युद्धक्षेत्र से बाहर चलागया और दूसरेवीर भी मनस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुन के द्वारा भगा दिये गये। तब युद्ध में अर्जुन के पराक्रम को देखकर, दुर्योधन ने शीघ्रता से उन सारे राजाओं से कहा कि ये शान्तनु पुत्र, कुरुश्रेष्ठ भीष्म पूरे दिल से, अपने प्राणों को भी न्यौछावर कर अर्जुन से युद्ध करना चाहते हैं। युद्ध को जातेहुए इन वीर पितामह की आपसब सारी सेना के साथ प्रयत्नपूर्वक युद्धस्थल में रक्षा करें।

बाढमित्येवमुक्त्वा तु तान्यनीकानि सर्वशः।
नरेन्द्राणां महाराज समाजग्मुः पितामहम्॥ ५॥
ततः प्रयातः सहसा भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम्।
रणे भारतमायान्तमाससाद महाबलः॥ ६॥
स सर्वतः परिवृतस्त्रिगर्तैः सुमहात्मभिः।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च तथान्यैश्च महारथैः॥ ७॥
भारद्वाजस्तु समरे मत्स्यं विव्याध पत्रिणा।
ध्वजं चास्य शरेणाजौ धनुश्चैकेन चिच्छिदे॥ ८॥

हे महाराज! तब बहुत अच्छा यह कहकर, राजाओं की सारी सेनाएँ पितामह के समीप स्थित हो गयीं। शान्तनुपुत्र भीष्म सहसा अर्जुन के पास पहुँचे। भरतवंशी भीष्म को आते देखकर महाबली अर्जुन भी भीष्म के पास आगये। उस समय मनस्वी त्रिगर्तों ने अपने भाइयों, पुत्रों तथा दूसरे महारथियों के साथ भीष्म को घेर रखा था। उधर द्रोणाचार्य ने युद्ध में विराटराज को एक बाण से बींधा, एक बाण से उनके ध्वज को काटा और एक बाण से धनुष को काटदिया।

तदपास्य धनुश्छिन्नं विराटो वाहिनीपतिः।
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं दृढम्॥ ९॥
शरांश्चाशीविषाकाराञ्ज्वलितान् पन्नगानिव।
द्रोणं त्रिभिश्च विव्याध चतुर्भिश्चास्य वाजिनः॥ १०॥
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य पञ्चभिः।
धनुरेकेषुणाविध्यत् तत्राक्रुध्यद् द्विजर्षभः॥ ११॥
तस्य द्रोणोऽवधीदश्वाञ्शरैः संनतपर्वभिः।
अष्टाभिर्भरतश्रेष्ठ सूतमेकेन पत्रिणा॥ १२॥

तब सेनापति विराट ने जल्दी से उस कटे हुए धनुष को फेंककर एक दूसरे भार को सहन करने वाले दृढ़ धनुष को उठा लिया। उन्होंने फिर प्रज्वलित सर्पों की तरह, विषैले नागों कीसी आकृतिवाले तीन बाणों से द्रोणाचार्य को और चार बाणों से उनके घोड़ों को बींध दिया। इससे द्विजश्रेष्ठ द्रोण को बड़ा क्रोध आया। हे भरतश्रेष्ठ! तब द्रोणाचार्य ने झुकी गाँठोंवाले आठ बाणों से उनके घोड़ों को तथा एक बाण से सारथी को मार दिया।

स हताश्वादवप्लुत्य स्यन्दनाद्धतसारथिः।
आरुरोह रथं तूर्णं पुत्रस्य रथिनां वरः॥ १३॥
ततस्तु तौ पितापुत्रौ भारद्वाजं रथे स्थितौ।
महता शरवर्षेण वारयामासतुर्बलात्॥ १४॥
भारद्वाजस्ततः क्रुद्धः शरमाशीविषोपमम्।
चिक्षेप समरे तूर्णं शङ्खं प्रति जनेश्वर॥ १५॥
स पपात रणे तूर्णं भारद्वाजशराहतः।
धनुस्त्यक्त्वा शरांश्चैव पितुरेव समीपतः॥ १६॥
हतं तमात्मजं दृष्ट्वा विराटः प्राद्रवद् भयात्।
उत्सृज्य समरे द्रोणं व्यात्ताननमिवान्तकम्॥ १७॥

तब सारथी के मारेजाने पर, रथियों में श्रेष्ठ विराट मरे हुए घोड़ोंवाले रथ से कूदकर, तुरन्त अपने पुत्र के रथ पर चढ़ गये। तब एक ही रथ पर बैठे हुए उन पितापुत्र ने महान् बाणवर्षा से द्रोणाचार्य को बलपूर्वक रोका। हे जनेश्वर! तब द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध

होकर, शीघ्रता से विषैले सर्पों के समान एक बाण को उस युद्ध में शंख की तरफ छोड़ा। उस बाण की चोट से, वह तुरन्त धनुषबाण को छोड़कर पिता के समीप ही युद्धस्थल में गिर पड़ा। अपने पुत्र को मराहुआ देखकर, तब राजा विराट, भय के कारण, युद्ध में मुँह फैलाये हुए मृत्यु के समान द्रोणाचार्य को छोड़कर वहाँ से भाग गये।

भारद्वाजस्ततस्तूर्णं पाण्डवानां महाचमूम्।
दारयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः॥ १८॥
शिखण्डी तु महाराज द्रौणिमासाद्य संयुगे।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचैस्त्रिभिराशुगैः॥ १९॥
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो निमेषार्धाच्छिखण्डिनः।
ध्वजं सूतमथो राजंस्तुरगानायुधानि च॥ २०॥
शरैर्बहुभिराच्छिद्य पातयामास संयुगे।

द्रोणाचार्य ने तब शीघ्रता से पाण्डवों की विशाल सेना के सैकड़ों और हजारों सैनिकों को विदीर्ण कर दिया। हे महाराज! उधर शिखण्डी ने अश्वत्थामा को युद्ध में प्राप्तकर, उसकी भौहों के बीच में तीन तीव्रगामी नाराचों से प्रहार किया। तब अश्वत्थामा ने क्रुद्ध होकर आधेपल में ही शिखण्डी के ध्वज, सारथी, घोड़ों और आयुधों को, हे राजन्! उस युद्ध में बहुत से बाणों से आच्छादित करके काट गिराया।

स हताश्वादवप्लुत्य रथाद् वै रथिनां वरः॥ २१॥
खड्गमादाय सुशितं विमलं च शरावरम्।
श्येनवद् व्यचरत् क्रुद्धः शिखण्डी शत्रुतापनः॥ २२॥
सखड्गस्य महाराज चरतस्तस्य संयुगे।
नान्तरं ददृशे द्रौणिस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ २३॥
ततः शरसहस्राणि बहूनि भरतर्षभ।
प्रेषयामास समरे द्रौणिः परमकोपनः॥ २४॥
तामापतन्तीं समरे शरवृष्टिं सुदारुणाम्।
असिना तीक्ष्णधारेण चिच्छेद बलिनां वरः॥ २५॥

तब रथियों में श्रेष्ठ शिखण्डी मरे घोड़ोंवाले रथ से कूद कर अत्यन्त तीखी और जगमगाती हुई तलवार और ढाल को लेकर, शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाला वह क्रुद्ध होकर बाज के समान विचरण करने लगा। हे महाराज! खड्ग लेकर विचरते हुए उसमें अश्वत्थामा ने युद्धस्थल में कोई भी दोष नहीं देखा। यह एक आश्चर्य की बात थी। हे भरतश्रेष्ठ! तब अश्वत्थामा ने उस युद्ध में अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर हजारों बाणों की वर्षा की। पर आती हुई उस अत्यन्त दारुण बाणवर्षा को, बलवानों में श्रेष्ठ शिखण्डी ने तीखी धारवाली तलवार से काट गिराया।

ततोऽस्य विमलं द्रौणिः शतचन्द्रं मनोरमम्।
चर्माच्छिनदसिं चास्य खण्डयामास संयुगे॥ २६॥
शिखण्डी तु ततः खड्गं खण्डितं तेन सायकैः।
आविध्य व्यसृजत् तूर्णं ज्वलन्तमिव पन्नगम्॥ २७॥
तमापतन्तं सहसा कालानलसमप्रभम्।
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ २८॥
शिखण्डिनं च विव्याध शरैर्बहुभिरायसैः।
शिखण्डी तु भृशं राजंस्ताड्यमानः शितैः शरैः॥ २९॥
आरुरोह रथं तूर्णं माधवस्य महात्मनः।

तब अश्वत्थामा ने उसकी सौ चांदवाली सुन्दर ढाल और तलवार के युद्ध में टुकड़े कर दिये। तब शिखण्डी ने बाणों द्वारा काटी हुई उस तलवार को जलते हुए सर्प के समान घुमाकर तुरन्त उसके ऊपर फेंक दिया। प्रलयकाल की अग्नि ने समान चमकीली उस आती हुई तलवार को अश्वत्थामा ने अपना हस्तकौशल दिखाते हुए तुरन्त काट दिया और शिखण्डी को भी अनेक लोहे के बाणों से बींध दिया। हे राजन्! तब शिखण्डी उन तीखे बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर शीघ्रता से महामना सात्यकि के रथ पर चढ़ गया।

सात्यकिश्चापि संक्रुद्धो राक्षसं क्रूरमाहवे॥ ३०॥
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैर्विव्याध बलिनां वरः।
राक्षसेन्द्रस्ततस्तस्य धनुश्चिच्छेद भारत॥ ३१॥
अर्धचन्द्रेण समरे तं च विव्याध सायकैः।
असम्भ्रमस्तु समरे वध्यमानः शितैः शरैः॥ ३२॥
ऐन्द्रमस्त्रं च वार्ष्णेयो योजयामास भारत।
विजयाद् यदनुप्राप्तं माधवेन यशस्विना॥ ३३॥
तत् तथा पीडितं तेन माधवेन यशस्विना।
प्रदुद्राव भयाद् रक्षस्त्यक्त्वा सात्यकिमाहवे॥ ३४॥

बलवानों में श्रेष्ठ सात्यकि ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस युद्ध में क्रूर राक्षस अलम्बुष को तीखे बाणों से घायल कर दिया। हे भारत! तब राक्षसराज ने अर्धचन्द्राकार बाण से उसके धनुष को काट दिया और बाणों से उसे भी युद्ध में घायल कर दिया। हे भारत! तीखे बाणों से बिंधकर भी सात्यकि

घबराये नहीं और उन्होंने युद्ध में ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया, जिसकी शिक्षा उन्होंने यशस्वी अर्जुन से प्राप्त की थी। तब इसप्रकार सात्यकि से भी पीड़ित होकर, वह राक्षस भयभीत होकर युद्ध स्थल में सात्यकि को छोड़कर भाग गया।

तमजेयं राक्षसेन्द्रं संख्ये मघवता अपि।
शैनेयः प्राणदज्जित्वा योधानां तव पश्यताम्॥ ३५॥
न्यहनत् तावकांश्चापि सात्यकिः सत्यविक्रमः।
निशितैर्बहुभिर्बाणैस्तेऽद्रवन्त भयार्दिताः॥ ३६॥
एतस्मिन्नेव काले तु द्रुपदस्यात्मजो बली।
धृष्टद्युम्नो महाराज पुत्रं तव जनेश्वरम्॥ ३७॥
छादयामास समरे शरैः संनतपर्वभिः।

युद्ध में इन्द्र के द्वारा भी अजेय उस राक्षसराज को आपके योद्धाओं के सामने ही परास्तकर सात्यकि ने सिंहनाद किया। तब सत्यविक्रमी सात्यकि ने आपके दूसरे योद्धाओं को भी बहुत से तीखे बाणों से मारा। जिससे वे भय से पीड़ित हो कर वहाँ से भागने लगे। इसीसमय हे महाराज! द्रुपद के बलवान् पुत्र धृष्टद्युम्न ने आपके पुत्र राजा दुर्योधन को युद्ध में झुकी हुई गाँठोंवाले बाणों से आच्छादित कर दिया।

स च्छाद्यमानो विशिखैर्धृष्टद्युम्नेन भारत॥ ३८॥
विव्यथे न च राजेन्द्र तव पुत्रो जनेश्वर।
धृष्टद्युम्नं च समरे तूर्णं विव्याध पत्रिभिः॥ ३९॥
षष्ट्या च त्रिंशता चैव तदद्भुतमिवाभवत्।
तस्य सेनापतिः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष॥ ४०॥
हयांश्च चतुरः शीघ्रं निजघान महाबलः।
शरैश्चैनं सुनिशितैः क्षिप्रं विव्याध सप्तभिः॥ ४१॥

हे भारत! धृष्टद्युम्न के द्वारा बाणों में ढके जाने पर भी, हे राजेन्द्र! जनेश्वर! आपका पुत्र व्यथित नहीं हुआ और उसने युद्ध में शीघ्रता से धृष्टद्युम्न को नब्बे बाणों की वर्षा कर घायल कर दिया। यह एक अद्भुत बात थी। हे मान्यवर! तब उस मनस्वी सेनापति ने क्रोध में भरकर, उसके धनुष को काट दिया और चारों घोड़ों को शीघ्रता से मार दिया तथा अत्यन्त तीखे सात बाणों से उसे भी घायल कर दिया।

स हताश्वान्महाबाहुरवप्लुत्य रथाद् बली।
पदातिरसिमुद्यम्य प्राद्रवत् पार्षतं प्रति॥ ४२॥
शकुनिस्तं समभ्येत्य राजगृद्धी महाबलः।
राजानं सर्वलोकस्य रथमारोपयत् स्वकम्॥ ४३॥
ततो नृपं पराजित्य पार्षतः परवीरहा।
न्यहनत् तावकं सैन्यं वज्रपाणिरिवासुरान्॥ ४४॥

तव वह बलवान् महाबाहु, मरे घोड़ोंवाले रथ से कूदकर तलवार उठाकर पैदल ही द्रुपदपुत्र की तरफ दौड़ा। तब राजा से प्रेम करनेवाले महाबली शकुनि ने वहाँ आकर सारी प्रजा के उस राजा को अपने रथ पर बैठा लिया। तब राजा दुर्योधन को पराजित कर, शत्रुवीरों को मारनेवाले द्रुपदपुत्र ने आपकी सेना का ऐसे संहार करना आरम्भ कर दिया, जैसे इन्द्र ने असुरों का किया था।

कृतवर्मा रणे भीमं शरैरार्च्छन्महारथः।
प्रच्छादयामास च तं महामेघो रविं यथा॥ ४५॥
ततः प्रहस्य समरे भीमसेनः परंतपः।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान् कृतवर्मणे॥ ४६॥
तैरर्द्यमानोऽतिरथः सात्वतः सत्यकोविदः।
नाकम्पत महाराज भीमं चार्च्छच्छितैः शरैः॥ ४७॥

उधर महारथी कृतवर्मा ने युद्ध में भीम को पीड़ित किया। जैसे विशाल बादल सूर्य को ढक देते हैं, वैसे ही उसने उन्हें बाणों से आच्छादित कर दिया। तब परंतप भीमसेन ने हँसकर, उस युद्ध में क्रोधपूर्वक कृतवर्मा के ऊपर अनेक बाणों को छोड़ा। हे महाराज! उन बाणों से पीड़ित होने पर भी, यदुवंशी, सत्यकोविद, अतिरथी कृतवर्मा कम्पित नहीं हुआ और उसने भीम को तीखे बाणों से पीड़ित किया।

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा भीमसेनो महारथः।
सारथिं पातयामास सध्वजं सुपरिष्कृतम्॥ ४८॥
शरैर्बहुविधैश्चैनमाचिनोत् परवीरहा।
हताश्वश्च ततस्तूर्णं वृषकस्य रथं ययौ॥ ४९॥
श्यालस्य ते महाराज तव पुत्रस्य पश्यतः।
भीमसेनोऽपि संक्रुद्धस्तव सैन्यमुपाद्रवत्॥ ५०॥

तब महारथी भीमसेन ने उसके चारों घोड़ों को मारकर, ध्वजसहित सुसज्जित सारथी को भी मार गिराया। फिर शत्रुवीरों को मारनेवाले भीम ने उसे बहुत से बाणों से भर दिया। हे महाराज! तब घोड़ों के मारे जाने पर, वह शीघ्रता से आपके पुत्र के देखते हुए, आपके साले वृषक के रथ पर चढ़ गया। तब भीमसेन भी अत्यन्त क्रुद्ध कर आपकी सेना का विनाश करने लगे।

सैंतीसवाँ अध्याय : इरावान् से विन्द और अनुविन्द की हार। भगदत्त का घटोत्कच को हराना। शल्य पर नकुल और सहदेव की विजय।

संजय उवाच

पूर्वाह्णे तु महाराज प्रावर्तत जनक्षयः।
तं त्वमेकमना भूत्वा शृणु देवासुरोपमम्॥ १॥
आवन्त्यौ तु महेष्वासौ महासेनौ महाबलौ।
इरावन्तमभिप्रेक्ष्य समेयातां रणोत्कटौ॥ २॥
तेषां प्रववृते युद्धं सुमहल्लोमहर्षणम्।
इरावांस्तु सुसंक्रुद्धो भ्रातरौ देवरूपिणौ॥ ३॥
विव्याध निशितैस्तूर्णं शरैः संनतपर्वभिः।
तावेनं प्रत्यविध्येतां समरे चित्रयोधिनौ॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे महाराज! उस दिन पूर्वाह्ण काल में भारी जनसंहार हुआ। आप भूतकाल में हुए देवासुर अर्थात् आर्यों और अनार्यों या धर्मियों अधर्मियों के बीच हुए संग्रामों के समान उस युद्ध का वर्णन एकाग्रचित्त होकर सुनिये। अवन्ती के दोनों महाधनुर्धर, रणोत्कट, महाबली राजकुमार विन्द और अनुविन्द विशाल सेना के साथ, इरावान् को देखकर उस पर चढ़ आये। तब उनमें अत्यन्त लोमहर्षक युद्ध होने लगा। इरावान् ने तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर, देवताओं के समान सुन्दर दोनों भाइयों को, शीघ्रता से झुकी गाँठोंवाले तीखे बाणों से बींध दिया। विचित्रता से युद्ध करनेवाले उन दोनों ने भी उत्तर में इरावान् को बींध दिया।

इरावांस्तु ततो राजन्ननुविन्दस्य सायकैः।
चतुर्भिश्चतुरो वाहाननयद् यमसादनम्॥ ५॥
भल्लाभ्यां च सुतीक्ष्णाभ्यां धनुः केतुं च मारिष।
चिच्छेद समरे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ ६॥
त्यक्त्वानुविन्दोऽथ रथं विन्दस्य रथमास्थितः।
धनुर्गृहीत्वा परमं भारसाधनमुत्तमम्॥ ७॥
तावेकस्थौ रणे वीरावावन्त्यौ रथिनां वरौ।
शरान् मुमुचतुस्तूर्णमिरावति महात्मनि॥ ८॥

हे राजन्! तब इरावान् ने चार बाणों से अनुविन्द के चारों घोड़ों को मृत्युलोक में पहुँचा दिया। हे मान्यवर राजन्! फिर उसने दो तीखे भल्लों से उसके धनुष और ध्वज को युद्धस्थल में काट दिया। यह एक अद्भुत बात थी। तब अनुविन्द एक दूसरे भार को सहन करनेवाले, परम उत्तम, धनुष को लेकर और उस रथ को छोड़कर, विन्द के रथ पर बैठ गया। तब रथियों में श्रेष्ठ अवन्ती के वे दोनों वीर युद्धस्थल में एक ही रथ पर बैठे हुए शीघ्रता के साथ, मनस्वी इरावान् पर बाणों की वर्षा करने लगे।

इरावांस्तु रणे क्रुद्धो भ्रातरौ तौ महारथौ।
ववर्ष शरवर्षेण सारथिं चाप्यपातयत्॥ ९॥
तस्मिंस्तु पतिते भूमौ गतसत्त्वे तु सारथौ।
रथः प्रदुद्राव दिशः समुद्भ्रान्तहयस्ततः॥ १०॥
तौ स जित्वा महाराज नागराजसुतासुतः।
पौरुषं ख्यापयंस्तूर्णं व्यधमत् तव वाहिनीम्॥ ११॥

इरावान् ने भी क्रुद्ध होकर, उस युद्ध में, उन दोनों महारथी भाइयों पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी और उनके सारथी को मार गिराया। तब सारथी के निष्प्राण होकर भूमि पर गिरने पर घोड़े घबरा कर रथ को लेकर सब तरफ भागने लगे। हे महाराज! नागराज की पुत्री उलूपी के पुत्र इरावान् ने उन दोनों भाइयों को जीतकर, अपने पौरुष का परिचय देते हुए, तुरन्त आपकी सेना का संहार करना आरम्भ कर दिया।

हैडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भगदत्तं समाद्रवत्।
रथेनादित्यवर्णेन सध्वजेन महाबलः॥ १२॥
घटोत्कचस्ततो राजन् भगदत्तं महारणे।
शरैः प्रच्छादयामास मेरुं गिरिमिवाम्बुदः॥ १३॥
निहत्य ताञ्शरान् राजा राक्षसस्य धनुश्च्युतान्।
भैमसेनिं रणे तूर्णं सर्वमर्मस्वताडयत्॥ १४॥
स ताड्यमानो बहुभिः शरैः संनतपर्वभिः।
न विव्यथे राक्षसेन्द्रो भिद्यमान इवाचलः॥ १५॥

दूसरी तरफ हिडिम्बापुत्र, महाबली घटोत्कच, अपने ध्वजावाले सूर्य के समान प्रकाशित रथ पर चढ़कर भगदत्त पर आक्रमण करने के लिये आया। हे राजन्। उससमय, महान् युद्ध में घटोत्कच ने भगदत्त को बाणों से उसीप्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे बादल मेरु पर्वत को ढक लेता है। तब उस राजा ने राक्षस के धनुष से छूटे सारे बाणों को काट कर, शीघ्रता से, भीमसेन के पुत्र के सारे मर्म स्थानों पर प्रहार किया। झुकी हुई गाँठोंवाले बहुत

से बाणों से पीड़ित होने पर भी, वह राक्षसराज पर्वत के समान अडिग रहा।

तस्य प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरांश्च चतुर्दश।
प्रेषयामास समरे तांश्चिच्छेद स राक्षसः॥ १६॥
स तांश्छित्वा महाबाहुस्तोमरान् निशितैःशरैः।
भगदत्तं च विव्याध सप्तत्या कङ्कपत्रिभिः॥ १७॥
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा प्रहसन्निव भारत।
तस्याश्वांश्चतुरः संख्ये पातयामास सायकैः॥ १८॥
स हताश्वे रथे तिष्ठन् राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।
शक्तिं चिक्षेप वेगेन प्राग्ज्योतिषगजं प्रति॥ १९॥

तब प्राग्ज्योतिषपुर के उस राजा ने क्रुद्ध होकर युद्ध में चौदह तोमर उसके ऊपर फेंके, पर उस राक्षस ने उन्हें काट दिया। उस महाबाहु ने तीखे बाणों से उन तोमरों को काटकर, भगदत्त को सात कंकपत्रधारी बाणों से बींध दिया। हे भारत! तब मुस्कराते हुए प्राग्ज्योतिषपुर के राजा ने उसके चारों घोड़ों को बाणों से मारकर गिरा दिया। घोड़ों के मारे जाने पर प्रतापी राक्षसेन्द्र ने रथ में बैठे हुए ही प्राग्ज्योतिषराज की तरफ एक शक्ति को जोर से फेंका।

तामापतन्तीं सहसा हेमदण्डां सुवेगिनीम्।
त्रिधा चिच्छेद नृपतिः सा व्यकीर्यत मेदिनीम्॥ २०॥
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा हैडिम्बः प्राद्रवद् भयात्।
तं विजित्य रणे शूरं विक्रान्तं ख्यातपौरुषम्॥ २१॥
पाण्डवीं समरे सेनां सम्ममर्द स कुञ्जरः।
यथा वनगजो राजन् मृद्गंश्चरति पद्मिनीम्॥ २२॥

सोने के डण्डेवाली, अत्यन्त वेगवाली और अपनी तरफ आती हुई, उस शक्ति को राजा भगदत्त ने तीन टुकड़ों में काटकर भूमि पर गिरा दिया। शक्ति को गिराया हुआ देखकर, हिडिम्बापुत्र भयभीत होकर वहाँ से भाग गया। इसप्रकार विख्यात पौरुषवाले, पराक्रमी शूरवीर घटोत्कच को युद्ध में हराकर भगदत्त का हाथी पाण्डवों की सेना को युद्धस्थल में इसप्रकार मसलने लगा, जैसे जँगली हाथी सरोवर में कमलिनी को रौंदता हुआ चलता है।

मद्रेश्वरस्तु समरे यमाभ्यां समसज्जत।
स्वस्रीयौ छादयांचक्रे शरौघैः पाण्डुनन्दनौ॥ २३॥
सहदेवस्तु समरे मातुलं दृश्य संगतम्।
अवारयच्छरौघेण मेघो यद्वद् दिवाकरम्॥ २४॥
छाद्यमानः शरौघेण हृष्टरूपतरोऽभवत्।
तयोश्चाप्यभवत् प्रीतिरतुला मातृकारणात्॥ २५॥
ततः प्रहस्य समरे नकुलस्य महारथः।
अश्वांश्च चतुरो राजंश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः॥ २६॥
प्रेषयामास समरे यमस्य सदनं प्रति।
हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य महारथः॥ २७॥
आरुरोह ततो यानं भ्रातुरेव यशस्विनः।

दूसरी तरफ मद्रराज शल्य अपने भानजों, नकुल और सहदेव के साथ युद्ध कर रहे थे, उन्होंने उन पाण्डुपुत्रों को अपनी बाणवर्षा से ढक दिया। सहदेव ने भी अपने मामा को युद्ध में आसक्त देखकर, बाणसमूहों से उन्हें इसप्रकार ढक दिया, जैसे बादल सूर्य को ढक देते हैं। बाणवर्षा से आच्छादित होने पर शल्य और अधिक प्रसन्न हुए, क्योंकि उनकी माता के कारण उनका उन दोनों पर अनुपम प्रेम था। तब उस महारथी ने हँसकर उस युद्ध में नकुल के चारों घोड़ों को उत्तम बाणों से मृत्युलोक में भेज दिया। तब मरेघोड़ोंवाले रथ से तुरन्त कूदकर, वह महारथी अपने यशस्वी भाई के रथ पर चढ़ गया।

एकस्थौ तु रणे शूरौ दृढे विक्षिप्य कार्मुकौ॥ २८॥
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामासतुः क्षणात्।
स छाद्यमानो बहुभिः शरैः संनतपर्वभिः॥ २९॥
स्वस्त्रीयाभ्यां नरव्याघ्रो नाकम्पत यथाचलः।
प्रहसन्निव तां चापि शस्त्रवृष्टिं जघान ह॥ ३०॥
सहदेवस्ततः क्रुद्धः शरमुद्गृह्य वीर्यवान्।
मद्रराजमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास भारत॥ ३१॥

तब एक रथ में बैठे हुए उन दोनों शूरवीरों ने अपने दृढ़ धनुषों को खींचकर, मद्रराज को तुरन्त ही एक क्षण में बाणों से आच्छादित कर दिया। वह नरश्रेष्ठ शल्य अपने भानजों द्वारा झुकी गाँठोंवाले बाणों द्वारा आच्छादित होकर भी कम्पित नहीं हुआ और पर्वत के समान अडिग रहा। उसने हँसते हुए उस बाणवर्षा को भी काट दिया। हे भारत! तब सहदेव ने क्रुद्ध होकर एक बाण लिया और उस पराक्रमी महाराज को लक्ष्य करके उसे चला दिया।

य शरः प्रेषितस्तेन गरुडानिलवेगवान्।
मद्रराजं विनिर्भिद्य निपपात महीतले॥ ३२॥
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थे महारथः।
निषसाद महाराज कश्मलं च जगाम ह॥ ३३॥

तं विसंज्ञं निपतितं सूतः सम्प्रेक्ष्य संयुगे।
अपोवाह रथेनाजौ यमाभ्यामभिपीडितम्॥ ३४॥
निर्जित्य मातुलं संख्ये माद्रीपुत्रौ महारथौ।
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ सिंहनादं च नेदतुः॥ ३५॥

गरुड़पक्षी और वायु के समान वेगवान् वह फेंका हुआ बाण मद्रराज को भेदकर भूमि पर गिर पड़ा। हे महराजा! उस बाण से गहरी चोट खाकर, व्यथित होकर वह महारथी रथ के पिछले भाग में जाबैठे और मूर्च्छित होगये। तब नकुल और सहदेव के द्वारा शल्य को युद्ध में पीड़ित होकर गिरा हुआ और चेतनारहित देखकर, उनका सारथी उन्हें रथ के द्वारा युद्धस्थल से बाहर लेगया। युद्ध में अपने मामा को जीतकर तब महारथी नकुल और सहदेव प्रसन्नता से शंख बजाने और सिंहनाद करने लगे।

अड़तीसवाँ अध्याय : चेकितान, कृपाचार्य की मूर्च्छा। भूरिश्रवा से धृष्टकेतु, युधिष्ठिर से श्रुतायु, अभिमन्यु से चित्रसेन आदि की हार। सुशर्मा से अर्जुन का युद्ध।

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा मध्यं प्राप्ते दिवाकरे।
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास वाजिनः॥ १॥
अभ्यधावत् ततो राजा श्रुतायुषमरिंदमम्।
विनिघ्नन् सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः॥ २॥
स संवार्य रणे राजा प्रेषितान् धर्मसूनुना।
शरान् सप्त महेष्वासः कौन्तेयाय समार्पयत्॥ ३॥
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे।
असूनिव विचिन्वन्तो देहे तस्य महात्मनः॥ ४॥

संजय ने कहा कि फिर सूर्य के दिन के मध्यभाग में आजाने पर, राजा युधिष्ठिर ने श्रुतायु को देखकर, अपने घोड़ों को उसतरफ ही बढ़ाया। उन्होंने शत्रुदमन श्रुतायु पर नब्बे झुकी गाँठवाले, तीखे बाणों की वर्षा करते हुए उस पर आक्रमण किया। उस राजाने धर्मपुत्र के द्वारा छोड़े हुए बाणों का निवारण कर उस युद्ध में कुन्तीपुत्र को सात बाण मारे। वे बाण उस मनस्वी के कवच को भेद कर, शरीर में मानों प्राणों को ढूँढते हुए उनका खून पीने लगे।

पाण्डवस्तु भृशं क्रुद्धो विद्धस्तेन महात्मना।
रणे वराहकर्णेन राजानं हृद्यविध्यत॥ ५॥
अथापरेण भल्लेन केतुं तस्य महात्मनः।
रथश्रेष्ठो रथात् तूर्णं भूमौ पार्थो न्यपातयत्॥ ६॥
केतुं निपतितं दृष्ट्वा श्रुतायुः स तु पार्थिवः।
पाण्डवं विशिखैस्तीक्ष्णै राजन् विव्याध सप्तभिः॥ ७॥
ततः क्रोधात् प्रजज्वाल धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
श्रुतायुषः प्रचिच्छेद मुष्टिदेशे महाधनुः॥ ८॥

तब उस मनस्वी के द्वारा घायल होकर, पाण्डुपुत्र ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस युद्ध में वाराहकर्ण नामके बाण से श्रुतायु के हृदय पर प्रहार किया। फिर रथियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने एक दूसरे भल्ल से उस मनस्वी के ध्वज को शीघ्रता से काटकर भूमि पर गिरा दिया। ध्वज को गिरा हुआ देखकर, राजा श्रुतायु ने हे राजन! सात तीखे बाणों से पाण्डुपुत्र को बींध दिया। तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर क्रोध से जलने लगे और उन्होंने श्रुतायु के विशाल धनुष को मुट्ठी के स्थान से काट दिया।

अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचेन स्तनान्तरे।
निर्बिभेद रणे राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः॥ ९॥
सत्वरं च रणे राजंस्तस्य वाहान् महात्मनः।
निजघान शरैः क्षिप्रं सूतं च सुमहाबलः॥ १०॥
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दृष्ट्वा राज्ञोऽस्य पौरुषम्।
विप्रदुद्राव वेगेन श्रुतायुः समरे तदा॥ ११॥

धनुष को काटकर सारी सेना के देखते हुए अत्यन्त महाबली राजा युधिष्ठिर ने श्रुतायु की छाती के बीच में नाराच से प्रहार किया और हे राजन्! शीघ्रता से युद्ध में उस मनस्वी के घोड़ों और सारथी को बाणों से मार दिया। तब राजा युधिष्ठिर के पौरुष को देखकर, मरे घोड़ोंवाले रथ को छोड़कर, श्रुतायु तेजी से युद्धस्थल से भाग गया।

चेकितानस्तु वार्ष्णेयो गौतमं रथिनां वरम्।
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां छादयामास सायकैः॥ १२॥
संनिवार्य शरांस्तांस्तु कृपः शारद्वतो युधि।
चेकितानं रणे यत्तं राजन् विव्याध पत्रिभिः॥ १३॥
अथापरेण भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष।
सारथिं चास्य समरे क्षिप्रहस्तो न्यपातयत्॥ १४॥
अश्वांश्चास्यावधीद् राजन्नुभौ तौ पार्ष्णि सारथी।
सोऽवप्लुत्य रथात् तूर्णं गदां जग्राह सात्वतः॥ १५॥

उधर वृष्णिवंशी चेकितान ने रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य को सारी सेनाओं के देखते हुए बाणों से आच्छादित कर दिया। हे राजन्! तब शरद्वान्पुत्र कृपाचार्य ने युद्ध में उन बाणों को निवारण कर, युद्ध में प्रयत्न करते हुए चेकितान को बाणों से बींध दिया। हे मान्यवर! फिर दूसरे भल्ल से उसने धनुष को काट दिया तथा शीघ्रता से हाथ चलाते हुए उसके सारथी को भी युद्धस्थल में गिरा दिया। हे राजन्! उसने उसके घोड़ों को और दोनों पृष्ठरक्षकों को भी मार गिराया। तब चेकितान ने तुरन्त रथ से कूदकर गदा हाथ में ले ली।

स तया वीरघातिन्या गदया गदिनां वरः।
गौतमस्य हयान् हत्वा सारथिं च न्यपातयत्॥ १६॥
भूमिष्ठो गौतमस्तस्य शरांश्चिक्षेप षोडश।
चेकितानस्ततः क्रुद्धः पुनश्चिक्षेप तां गदाम्॥ १७॥
तामापतन्तीं विमलामश्मगर्भां महागदाम्।
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास गौतमः॥ १८॥

गदाधारियों में श्रेष्ठ चेकितान ने, उस वीरों का घात करनेवाली गदा से कृपाचार्य के घोड़ों को मार कर सारथी को भी मार गिराया। तब भूमि पर खड़े हुए कृपाचार्य ने उसके सोलह बाण मारे। तब चेकितान ने क्रुद्ध होकर गदा को फेंका। चमकती हुई और लोहेकी विशाल गदा को अपनी तरफ आते देखकर कृपाचार्य ने बहुत सारे बाणों से उसका निवारण कर दिया। हे भारत! तब चेकितान ने क्रोध से तलवार को निकालकर अत्यन्त कौशल के साथ कृपाचार्य पर आक्रमण किया।

चेकितानस्ततः खड्गं क्रोधादुद्धृत्य भारत।
लाघवं परमास्थाय गौतमं समुपाद्रवत्॥ १९॥
गौतमोऽपि धनुस्त्यक्त्वा प्रगृह्यासिं सुसंयतः।
वेगेन महता राजंश्चेकितानमुपाद्रवत्॥ २०॥
तावुभौ बलसम्पन्नौ निस्त्रिंशवरधारिणौ।
निस्त्रिंशाभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यामन्योन्यं संततक्षतुः॥ २१॥
निस्त्रिंशवेगाभिहतौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ।
धरणीं समनुप्राप्तौ सर्वभूतनिषेविताम्॥ २२॥
मूर्छयाभिपरीताङ्गौ व्यायामेन तु मोहितौ।
ततोऽभ्यधावद् वेगेन करकर्षः सुहृत्तया॥ २३॥
चेकितानं तथाभूतं दृष्ट्वा समरदुर्मदः।
रथमारोपयच्चैनं सर्वसैन्यस्य पश्यतः॥ २४॥

हे राजन्! तब कृपाचार्य ने भी धनुष को छोड़कर, अत्यन्त सावधानी से तलवार को पकड़कर, महान् वेग के साथ चेकितान पर आक्रमण किया। तब वे दोनों उत्तम तलवारों को लिये हुए, बलसम्पन्न वीर, अपनी तीखी तलवारों से एक दूसरे को घायल करने लगे। तलवारों के प्रहारों से घायल हुए, तब वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ, सारे प्राणियों की निवासस्थान भूमि पर गिर पड़े। मूर्च्छा ने उनके सारे अंगों को व्याप्त कर लिया था। परिश्रम के कारण वे दोनों अचेत हो गये। तब युद्ध में दुमर्द करकर्ष मित्रता के कारण, चेकितान को उस अवस्था में देखकर तेजी से दौड़ा और सारी सेना के सामने उसने उसे अपने रथ पर चढ़ा लिया।

तथैव शकुनिः शूरः श्यालस्तव विशाम्पते।
आरोपयद् रथं तूर्णं गौतमं रथिनां वरम्॥ २५॥
सौमदत्तिं तथा क्रुद्धो धृष्टकेतुर्महाबलः।
नवत्या सायकैः क्षिप्रं राजन् विव्याध वक्षसि॥ २६॥
भूरिश्रवास्तु समरे धृष्टकेतुं महारथम्।
हतसूतहयं चक्रे विरथं सायकोत्तमैः॥ २७॥
महता शरवर्षेण च्छादयामास संयुगे।
स तु तं रथमुत्सृज्य धृष्टकेतुर्महामनाः॥ २८॥
आरुरोह ततो यानं शतानीकस्य मारिष।

हे प्रजानाथ! उसी प्रकार आपके साले शूरवीर शकुनि ने भी शीघ्रता के साथ रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य को अपने रथ पर बैठा लिया। दूसरी तरफ हे राजन्! महाबली धृष्टकेतु ने क्रुद्ध होकर सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा पर शीघ्रता से नब्बे बाणों की वर्षा कर, उसकी छाती में चोट पहुँचायी। तब भूरिश्रवा ने महारथी धृष्टकेतु के सारथी और घोड़ों को अपने उत्तम बाणों से मार कर उसे रथहीन बना दिया। फिर उसे युद्धस्थल में भारी बाणवर्षा से आच्छादित

कर दिया। हे मान्यवर! तब महामना धृष्टकेतु उस रथ को छोड़कर शतानीक के रथ पर चढ़ गया।

चित्रसेनो विकर्णश्च राजन् दुर्मर्षणस्तथा॥ २९॥
रथिनो हेमसंनाहाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः।
अभिमन्योस्ततस्तैस्तु घोरं युद्धमवर्तत॥ ३०॥
शरीरस्य यथा राजन् वातपित्तकफैस्त्रिभिः।
विरथांस्तव पुत्रांस्तु कृत्वा राजन् महाहवे॥ ३१॥
न जघान नरव्याघ्रः स्मरन् भीमवचस्तदा।

हे राजन्! चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण इन तीनों रथियों ने सुनहले कवच पहने हुए सुभद्रापुत्र पर आक्रमण किया। हे राजन्! तब अभिमन्यु का उनके साथ इसप्रकार भयानक युद्ध हुआ, जैसे शरीर का वात पित्त और कफ के साथ होता रहता है। हे राजन्! उस महान् युद्ध में उस नरव्याघ्र ने आपके पुत्रों को रथहीन करके, भीम की प्रतिज्ञा को याद करते हुए उन्हें जान से नहीं मारा।

ततो राज्ञां बहुशतैर्गजाश्वरथयायिभिः॥ ३२॥
संवृतं समरे भीष्मं देवैरपि दुरासदम्।
प्रयान्तं शीघ्रमुद्वीक्ष्य परित्रातुं सुतांस्तव॥ ३३॥
अभिमन्युं समुद्दिश्य बालमेकं महारथम्।
वासुदेवमुवाचेदं कौन्तेयः श्वेतवाहनः॥ ३४॥
चोदयाश्वान् हृषीकेश यत्रैते बहुला रथाः।
एते हि बहवः शूराः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः॥ ३५॥
यथा हन्युर्न नः सेनां तथा माधव चोदय।

फिर आपके पुत्रों को बचाने के लिये हाथी, रथ और घोड़ों पर जानेवाले सैकड़ों क्षत्रियों से युद्धस्थल में घिरे हुए, देवों के लिये भी दुर्जय भीष्म को अकेले बालक महारथी अभिमन्यु को लक्ष्य करके शीघ्रता से जाते हुए देखकर, श्वेत घोड़ोंवाले, कुन्तीपुत्र अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे हृषिकेश! आप उस तरफ ही घोड़ों को हाँकिये, जिस तरफ ये बहुत सारे रथ जा रहे हैं। हे माधव! उसी तरह से रथ को ले चलो, जिस तरह से ये अस्त्रविद्या में निष्णात युद्धाभिमानी बहुत से शूरवीर हमारी सेना का विनाश न करें।

एवमुक्तः स वार्ष्णेयः कौन्तेयेनामितौजसा॥ ३६॥
रथं श्वेतहयैर्युक्तं प्रेषयामास संयुगे।
समासाद्य तु कौन्तेयो राज्ञस्तान् भीष्मरक्षिणः॥ ३७॥
सुशर्माणमथो राजन्निदं वचनमब्रवीत्।
जानामि त्वां युधां श्रेष्ठमत्यन्तं पूर्ववैरिणम्॥ ३८॥
अनयस्याद्य सम्प्राप्तं फलं पश्य सुदारुणम्।
अद्य ते दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान् पितामहान्॥ ३९॥

अमिततेजस्वी कुन्तीपुत्र के द्वारा यह कहे जाने पर, श्रीकृष्ण जी ने श्वेत घोड़ों से जुते हुए रथ को युद्धस्थल में आगे बढ़ाया। हे राजन्! तब भीष्म की रक्षा करने वाले उन राजाओं के पास पहुँचकर अर्जुन ने सुशर्मा से यह कहा कि मैं जानता हूँ कि तुम योद्धाओं में श्रेष्ठ हो और पाण्डवों के पहले से अत्यन्त वैरी हो। अब तुम अपने अन्याय के प्राप्त हुए अत्यन्त दारुण फल को देखो। आज मैं तुम्हें अपने दिवंगत पितामहों के दर्शन कराऊँगा।

एवं संजल्पतस्तस्य बीभत्सोः शत्रुघातिनः।
श्रुत्वापि परुषं वाक्यं सुशर्मा रथयूथपः॥ ४०॥
न चैनमब्रवीत् किंचिच्छुभं वा यदि वाशुभम्।
अभिगम्यार्जुनं वीरं राजभिर्बहुभिर्वृतः॥ ४१॥
पुरस्तात् पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्चैव सर्वतः।
परिवार्यार्जुनं संख्ये तव पुत्रैर्महारथः॥ ४२॥
शरैः संछादयामास मेघैरिव दिवाकरम्।
ततः प्रवृत्तः सुमहान् संग्रामः शोणितोदकः।
तावकानां च समरे पाण्डवानां च भारत॥ ४३॥

शत्रु को नष्ट करनेवाले अर्जुन के इन परुष वचनों को सुनकर रथियों का यूथपति सुशर्मा उनसे कुछ भी भला या बुरा नहीं बोला। बहुत से क्षत्रियवीरों से घिरा हुआ वह महारथी अर्जुन के सामने जाकर खड़ा हो गया और युद्धस्थल में आपके पुत्रों के द्वारा उसने अर्जुन को आगे पीछे, बगल से सब ओर घेरकर बाणों की वर्षा से उसे इसप्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे बादलों के द्वारा सूर्य को ढक दिया जाता है। हे भारत! फिर उस युद्धस्थल में आपके पुत्रों और पाण्डवों के बीच में खून को पानी की तरह से बहानेवाला, अत्यन्त घोर युद्ध आरम्भ होगया।

उन्तालीसवाँ अध्याय : अर्जुन और भीम की वीरता। पाण्डवों का भीष्म से युद्ध।

संजय उवाच--स ताड्यमानस्तु शरैर्धनंजयः
पदाहतोनाग इव श्वसन् बली।
बाणेन बाणेन महारथानां
चिच्छेद चापानि रणे प्रसह्य॥ १॥
संछिद्य चापानि च तानि राज्ञां
तेषां रणे वीर्यवतां क्षणेन।
विव्याध बाणैर्युगपन्महात्मा
निःशेषतां तेष्वथ मन्यमानः॥ २॥

संजय ने कहा कि तब उन शत्रुओं के बाणों से पीड़ित होकर बलवान् अर्जुन ने पैर से कुचले हुए साँप की तरह से लम्बी साँस लेते हुए एक एक बाण से उन महारथियों के धनुष बलपूर्वक काट दिये। उन पराक्रमी क्षत्रियों के धनुष एक क्षण में काटकर, उस मनस्वी ने उनकी समाप्ति की इच्छा करते हुए, युद्ध में एक साथ ही उन्हें बाणों से बींध दिया।

निपेतुराजौ रुधिरप्रदिग्धा-
स्ते ताडिताः शक्रसुतेन राजन्।
विभिन्नगात्राः पतितोत्तमाङ्गा
गतासवश्छिन्न- तनुत्रकायाः॥ ३॥
तेषां रथानामथ पृष्ठगोपा
द्वात्रिं शदन्येऽभ्यपतन्त पार्थम्।
तथैव ते तं परिवार्य पार्थं
विकृष्य चापानि महारवाणि॥ ४॥
अवीवृषन् बाणमहौघवृष्ट्या,
यथा गिरिं तोयधरा जलौघैः।
सम्पीड्यमानस्तु शरौघवृष्ट्या
धनंजयस्तान् युधि जातरोषः॥ ५॥

हे राजन्! उस इन्द्रपुत्र के द्वारा मारे हुए वे क्षत्रिय खून से लथपथ होकर युद्धक्षेत्र में गिर पड़े। उनके कवच टूट गये, अंग विदीर्ण होगये, सिर कट गये और वे प्राणहीन हो गये थे। तब उन रथियों के पृष्ठरक्षक, बत्तीस क्षत्रियों ने अर्जुन पर आक्रमण किया। उन्होंने अर्जुन को घेरकर भयानक ध्वनि करनेवाले अपने धनुषों को खींचकर, उनके ऊपर बाणों की इसप्रकार से महान् वर्षा की जैसे बादल पर्वत पर जल की बूंदे बरसाते हैं। उस बाण वर्षा से पीड़ित होकर, अर्जुन के हृदय में बहुत रोष उत्पन्न हुआ।

षष्ट्या शरैः संयति तैलधौतै-
र्जघान तानप्यथ पृष्ठगोपान्।
रथांश्च तांस्तानवजित्य संख्ये
धनंजयः प्रीतमना यशस्वी॥ ६॥
अथात्वरद् भीष्मवधाय जिष्णु-
त्रिगर्तराजो निहतान् समीक्ष्य।
महात्मना तानथ बन्धुवर्गान्
रणे पुरस्कृत्य नराधिपांस्तान्॥ ७॥
जगाम पार्थं त्वरितो वधाय
अभिद्रुतं चास्त्रभृतां वरिष्ठं।
धनंजयं वीक्ष्य शिखण्डिमुख्याः
अभ्युद्ययुस्ते शितशस्त्रहस्ता॥ ८॥
रिरक्षिषन्तो रथमर्जुनस्य

उसने युद्धक्षेत्र में साठ तेल से धोये हुए बाणों के द्वारा उन पृष्ठरक्षकों को भी मार गिराया। युद्ध में उन रथियों को जीतकर, यशस्वी, विजयी और प्रसन्नचित्त अर्जुन ने भीष्म के वध के लिये शीघ्रता की। तब त्रिगर्तराज सुशर्मा उस मनस्वी के द्वारा अपने बन्धुओं को मारा हुआ देखकर, प्रसिद्ध राजाओं को आगेकर, अर्जुन के वध के लिये शीघ्रता से उनके सामने आया। तब अस्त्रधारियों में वरिष्ठ अर्जुन पर आक्रमण होता हुआ देखकर, शिखण्डी आदि महारथी, तीखे आयुधों को हाथ में लिये हुए, अर्जुन के रथ की रक्षा करने की इच्छा से आगे बढ़े।

पार्थोऽपि तानापततः समीक्ष्य।
त्रिगर्तराज्ञा सहितान् नृवीरान्
विध्वंसयित्वा समरे धनुष्मान्॥ ९॥
गाण्डीवमुक्तैर्निशितैः पृषत्कैः
भीष्मं यियासुर्युधि संददर्श।
दुर्योधनं सैन्धवादींश्च राज्ञः
संवारयिष्णूनभि- वारयित्वा॥ १०॥
मुहूर्तमायोध्य बलेन वीरः
उत्सृज्य राजानमनन्तवीर्यो।

जयद्रथादींश्च नृपान् महौजाः
ययौ ततो भीमबलो मनस्वी॥ ११॥
गाङ्गेयमाजौ शरचापपाणिः

धनुर्धर अर्जुन ने भी, त्रिगर्तराज के साथ उन नरवीरों को आक्रमण करते हुए देखकर, उन्हें गाण्डीवधनुष से छोड़े हुए तीखे बाणों द्वारा युद्ध में नष्ट करके, भीष्म की तरफ जाने की इच्छा करते हुए युद्धस्थल में दुर्योधन और जयद्रथ आदि राजाओं को देखा। तब उन्हें रोकने के प्रयत्न में लगे हुए जयद्रथ आदि राजाओं और राजा दुर्योधन से, एक मूहूर्त तक युद्ध कर, उन्हें रोककर और वहीं छोड़कर, अनन्त पराक्रमी, महातेजस्वी, मनस्वी, भयानक बलवाला, वीर, अर्जुन युद्धक्षेत्र में धनुषबाण हाथ में लेकर भीष्म की तरफ चल दिया।

युधिष्ठिरश्च प्रबलो महात्मा।
समाययौ त्वरितो जातकोपः
सार्धं स माद्रीसुतभीमसेनैः॥ १२॥
भीष्मं ययौ शान्तनवं रणाय
तैः सम्प्रयुक्तैः स महारथाग्र्यै-
र्गङ्गासुतः समरे चित्रयोधी
न विव्यथे शान्तनवो महात्मा॥ १३॥
समागतैः पाण्डुसुतैः समस्तैः

तब प्रबल मनस्वी युधिष्ठिर भी, क्रोध में भरकर, नकुल, सहदेव और भीम के साथ, शीघ्रता से शान्तनुपुत्र भीष्म के साथ युद्ध करने के लिये पहुँचे। महारथियों में श्रेष्ठ सारे पाण्डवों से, जो संगठित होकर वहाँ आये थे, विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाले मनस्वी, गंगापुत्र भीष्म, जरा भी व्यथित नहीं हुए।

अथैत्य राजा युधि सत्यसंधो।
जयद्रथोऽत्युग्रबलो मनस्वी
चिच्छेद चापानि महारथानां॥ १४॥
प्रसह्य तेषां धनुषा वरेण
युधिष्ठिरं भीमसेनं यमौ च।
पार्थं कृष्णं युधि संजातकोपः
दुर्योधनः क्रोधविषो महात्मा॥ १५॥
जघान बाणैरनलप्रकाशैः
कृपेण शल्येन शलेन चैव।
तथा विभो चित्रसेनेन चाजौ
विद्धाः शरैस्तेऽतिविवृद्धकोपैः॥ १६॥
देवा यथा दैत्यगणैः समेतैः

तब उस युद्ध में सत्यसंध, भयंकरबलवान्, मनस्वी राजा जयद्रथ ने आकर अपने उत्तम धनुष से, अनेक महारथियों के धनुष बलपूर्वक काट दिये। क्रोधरूपी विष से भरे हुए, मनस्वी दुर्योधन ने कुपित होकर, अपने अग्नि के समान बाणों से, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और श्रीकृष्ण पर प्रहार किया। एकत्र हुए दानवों के द्वारा देवताओं के समान, हे प्रभो! अत्यन्त बढ़े हुए क्रोधवाले कृपाचार्य, शल्य और चित्रसेन के द्वारा पाण्डवलोग युद्धक्षेत्र में बाणों से बींध दिये गये।

भीष्मस्तु राजन् समरे महात्मा।
धनुश्च चित्रं ध्वजमेव चापि
छित्त्वानदत् पाण्डुसुतस्य वीरो॥ १७॥
युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः
ततः समुत्सृज्य धनुः सबाणं।
गदां प्रगृह्याभिपपात संख्ये
जयद्रथं भीमसेनः पदातिः॥ १८॥
तमापतन्तं सहसा जवेन
जयद्रथः सगदं भीमसेनम्।
विव्याध घोरैर्यमदण्डकल्पैः
शितैःशरैः पञ्चशतैः समन्तात्॥ १९॥
अचिन्तयित्वा स शरांस्तरस्वी
वृकोदरः क्रोधपरीतचेताः।
जघान वाहान् समरे समन्तात्
पारावतान् सिन्धुराजस्य संख्ये॥ २०॥

हे राजन्! मनस्वी वीर भीष्म ने तो युद्ध में अजामीढ़वंशी पाण्डुपुत्र, राजा युधिष्ठिर के विचित्र धनुष और ध्वजा को भी काटकर सिंहनाद किया। तब अपने धनुषबाण को छोड़कर, गदा लेकर पैदल ही भीम युद्धस्थल में जयद्रथ की तरफ दौड़े। तब गदासहित भीम को तेजी से आते हुए देखकर, जयद्रथ ने तुरन्त मृत्यु के प्रहार के समान तीखे, भयंकर पाँच सौ बाणों की सब तरफ से वर्षा कर उन्हें घायल कर दिया। किन्तु वेगवान् और क्रोध से भरे हुए भीमसेन ने उसके बाणों की परवाह न करते हुए, युद्ध में सिन्धुराज के कबूतर के रंगवाले घोड़ों को मार दिया।

ततोऽभिवीक्ष्या- प्रतिमप्रभाव-
स्तवात्मजस्त्वरमाणो रथेन।
अभ्याययौ भीमसेनं निहन्तुं
समुद्यतास्त्रः सुरराजकल्पः॥ २१॥
जयद्रथो भग्नवाहो रथं तं
त्यक्त्वा ययौ यत्र राजा कुरूणाम्।
ससौबलः सानुगः सानुजश्च
दृष्ट्वा भीमं मूढचेता भयार्तः॥ २२॥
भीमोऽप्यथैनं सहसा विनद्य
प्रत्युद्ययौ गदया हन्तुकामः।
स सौबलं तव पुत्रं निरीक्ष्य
दुर्योधनं सानुजं रोषयुक्तः॥ २३॥

तब यह देखकर अद्वितीय प्रभाववाला, इन्द्र के समान आपका पुत्र दुर्योधन, रथ के द्वारा शीघ्रता से हथियार उठाये हुए भीमसेन को मारने के लिये उसके सामने आ गया। जयद्रथ तब भीमसेन को देखकर, भय से पीड़ित और किंकर्त्तव्यविमूढ होकर, मरे घोड़ोंवाले उस रथ को छोड़कर, वहाँ चला गया, जहाँ कुरुओं का राजादुर्योधन, शकुनि, सेवकों और छोटे भाइयों के साथ विद्यमान था। भीम भी तब, शकुनि और अपने छोटे भाइयों के साथ आपके पुत्र दुर्योधन को देखकर क्रोध में भर गये और गदा से उसे मारने की इच्छा से सहसा सिंहनाद कर आगे बढ़े।

समुद्यतां तां यमदण्डकल्पां
दृष्ट्वा गदां ते कुरवः समन्तात्।
विहाय सर्वे तव पुत्रमुग्रं
पातं गदायाः परिहर्तुकामाः॥ २४॥
अपक्रान्तास्तुमुले सम्प्रमर्दे
सुदारुणे भारत मोहनीये।
अमूढचेतास्त्वथ चित्रसेनो
महागदामापतन्तीं निरीक्ष्य॥ २५॥
रथं स्वमुत्सृज्य पदातिराजौ
प्रगृह्य खड्गं विपुलं च चर्म।
अवप्लुतः सिंह इवाचलाग्रा-
ज्जगामान्यं भूमिप भूमिदेशम्॥ २६॥

मृत्यु के प्रहार के समान भयंकर उस उठी हुई गदा को देखकर, उसके प्रहार से बचने की इच्छा से वे सारे कौरव, आपके पुत्र को छोड़कर सबतरफ भाग गये। हे भारत! पर उस, अत्यन्त दारुण, मोहित करनेवाले, घोर युद्ध में केवल चित्रसेन उस आती हुई विशाल गदा को देखकर भी विमूढ नहीं हुआ। उस युद्धक्षेत्र में विशाल खड्ग और ढाल को लेकर, जैसे पर्वत से सिंह छँलाग लगाये, वैसे ही अपने रथ से कूदकर, वह पैदल ही, हे राजन! दूसरे स्थल पर चला गया।

चालीसवाँ अध्याय : भीष्म युधिष्ठिर युद्ध। धृष्टद्युम्न और सात्यकि का विन्द और अनुविन्द से युद्ध।

संजय उवाच

विरथं तं समासाद्य चित्रसेनं यशस्विनम्।
रथमारोपयामास विकर्णस्तनयस्तव॥ १॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने तुमुले संकुले भृशम्।
भीष्मः शान्तनवस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत्॥ २॥
युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो यमाभ्यां सहितः प्रभुः।
महेष्वासं नरव्याघ्रं भीष्मं शान्तनवं ययौ॥ ३॥
ततः शरसहस्राणि प्रमुञ्चन् पाण्डवो युधि।
भीष्मं संछादयामास यथा मेघो दिवाकरम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि यशस्वी चित्रसेन को रथहीन देखकर, आपके पुत्र विकर्ण ने तब उसे अपने रथ पर चढ़ा लिया। उस अत्यन्त घोर घमासान युद्ध के होने पर, शान्तनुपुत्र भीष्म ने शीघ्रता से युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। कुरुनन्दन युधिष्ठिर भी नकुल और सहदेव के साथ महाधनुर्धर नरव्याघ्र शान्तनुपुत्र भीष्म की तरफ गये। तब उस युद्ध में पाण्डुपुत्र ने बहुत सारे बाणों की वर्षा कर, जैसे बादल सूर्य को ढक लेते हैं, वैसे ही भीष्म को अच्छादित कर दिया।

तेन सम्यक् प्रणीतानि शरजालानि मारिष।
प्रतिजग्राह गाङ्गेयः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ५॥
निमेषार्धेन कौन्तेयं भीष्मः शान्तनवो युधि।
अदृश्यं समरे चक्रे शरजालेन भागशः॥ ६॥
ततो युधिष्ठिरो राजा कौरव्यस्य महात्मनः।

नाराचं प्रेषयामास क्रुद्ध आशीविषोपमम्॥ ७॥
असम्प्राप्तं ततस्तं तु क्षुरप्रेण महारथः।
चिच्छेद समरे राजन् भीष्मस्तस्य धनुश्च्युतम्॥ ८॥

हे मान्यवर! तब युधिष्ठिर के द्वारा चलाये हुए सैकड़ों और हजारों बाणों के समूह को गंगापुत्र ने व्यर्थ कर दिया और फिर शान्तनुपुत्र भीष्म ने आधे पल में ही पृथक् पृथक् अपने बाणों का जाल बिछाकर, कुन्तीपुत्र को अदृश्य कर दिया। तब कुरुवंशी मनस्वी राजा युधिष्ठिर ने क्रोध में भरकर एक विषैले सर्प के समान भयानक नाराचको भीष्म की तरफ फेंका, पर हे राजन्! उस युद्ध में उनके धनुष से छूटे हुए उस नाराच को महारथी भीष्मने अपने पास पहुँचने से पहले ही क्षुरप्रबाण से काट दिया।

तं तु छित्वा रणे भीष्मो नाराचं कालसम्मितम्।
निजघ्ने कौरवेन्द्रस्य हयान् काञ्चनभूषणान्॥ ९॥
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
आरुरोह रथं तूर्णं नकुलस्य महात्मनः॥ १०॥
यमावपि हि संक्रुद्धः समासाद्य रणे तदा।
शरैः संछादयामास भीष्मः परपुरंजयः॥ ११॥
तौ तु दृष्ट्वा महाराज भीष्मबाणप्रपीडितौ।
जगाम परमां चिन्तां भीष्मस्य वधकाङ्क्षया॥ १२॥

काल के समान भयंकर उस नाराच को छिन्नकर युद्धस्थल में भीष्म ने कौरवेन्द्र युधिष्ठिर के सुनहरा साज पहने हुए घोड़ों को मार दिया। तब मरे हुए घोड़ोंवाले रथ को छोड़कर, धर्मपुत्र, युधिष्ठिर तुरन्त मनस्वी नकुल के रथ पर जाबैठे। तब युद्ध में उन दोनों जुड़वें भाइयों, नकुल और सहदेव को भी प्राप्त कर, शत्रु के नगर को जीतनेवाले भीष्म ने अत्यन्त क्रोध में भरकर उन्हें बाणों से आच्छादित कर दिया। हे महाराज! तब भीष्म के बाणों से पीड़ित उन दोनों को देखकर युधिष्ठिर भीष्म के वध की इच्छा से गम्भीर विचार करने लगे।

ततो युधिष्ठिरो वश्यान् राज्ञस्तान् समचोदयत्।
भीष्मं शान्तनवं सर्वे निहतेति सुहृद्गणान्॥ १३॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वेश्रुत्वा पार्थस्य भाषितम्।
महता रथवंशेन परिवव्रुः पितामहम्॥ १४॥
स समन्तात् परिवृतः पिता देवव्रतस्तव।
चिक्रीड धनुषा राजन् पातयानो महारथान्॥ १५॥
रणे भारतसिंहस्य ददृशुः क्षत्रिया गतिम्।
अग्नेर्वायुसहायस्य यथा कक्षं दिधक्षतः॥ १६॥

युधिष्ठिर ने अपने आधीन राजाओं और मित्रों से कहा कि तुमलोग मिलकर भीष्म को मार दो। तब उन राजाओं ने कुन्तीपुत्र की बात सुनकर विशाल रथसमूह के साथ भीष्म को घेर लिया। हे राजन्! चारोंतरफ से घिरकर आपके पिता देवव्रत, उन महारथियों को गिराते हुए धनुष के द्वारा खेल करने लगे। जैसे घास फूस को जलाती हुई अग्नि का वायु वेग से भयानक रूप हो जाता है वैसे ही भरतवंश के सिंह भीष्म का स्वरूप वहाँ क्षत्रियों ने देखा।

शिरांसि रथिनां भीष्मः पातयामास संयुगे।
तालेभ्यः परिपक्वानि फलानि कुशलो नरः॥ १७॥
ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम्।
पश्चिमां दिशमासाद्य स्थिते सवितरि प्रभो॥ १८॥
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः।
पीडयन्तौ भृशं सैन्यं शक्तितोमरवृष्टिभिः॥ १९॥

उस युद्धक्षेत्र में भीष्म सिरों को ऐसे काटकाट कर गिरा रहे थे, जैसे एक कुशल व्यक्ति ताड़ के वृक्ष से पके हुए फलों को गिरा रहा हो। तब जब युद्ध चल रहा था, रथ से रथ और हाथी से हाथी भिड़े हुए थे, सूर्य पश्चिम दिशा में चले गये थे, पाँचाल राजकुमार धृष्टद्युम्न और महारथी सात्यकि शक्ति और तोमरों की वर्षा से, शत्रुसेना को अत्यन्तपीड़ा देने लगे।

तत्राक्रन्दो महानासीत् तावकानां महात्मनाम्।
वध्यतां समरे राजन् पार्षतेन महात्मना॥ २०॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां महारथौ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पार्षतं प्रत्युपस्थितौ॥ २१॥
तौ तस्य तुरगान् हत्वा त्वरमाणौ महारथौ।
छादयामासतुरुभौ शरवर्षेण पार्षतम्॥ २२॥
अवप्लुत्याथ पाञ्चाल्यो रथात् तूर्णं महाबलः।
आरुरोह रथं तूर्णं सात्यकेस्तु महात्मनः॥ २३॥
ततो युधिष्ठिरो राजा महत्या सेनया वृतः।
आवन्त्यौ समरे क्रुद्धावभ्ययात् स परंतपौ॥ २४॥

हे राजन्! तब युद्धस्थल में मनस्वी द्रुपदपुत्र के द्वारा मारे जाते हुए आपके मनस्वियों का महान् आर्तनाद हो रहा था। आपके सैनिकों के घोर

आर्तनाद को सुनकर अवन्ती देश के महारथी विन्द और अनुविन्द द्रुपदपुत्र के सामने उपस्थित हुए। उन महारथियों ने शीघ्रता से उसके घोड़ों को मारकर, उसे बाण वर्षा से अच्छादित कर दिया। महाबली पाँचाल राजकुमार तुरन्त रथ से कूदकर शीघ्रता से मनस्वी सात्यकि के रथ पर बैठ गया। तब महान् सेना से घिरे हुए राजा युधिष्ठिर ने क्रुद्ध होकर युद्धस्थल में उन परंतप अवन्तीकुमारों पर आक्रमण किया।

युध्यतां तु तथा तेषां कुर्वतां कर्म दुष्करम्।
अस्तं गिरिमथारूढे अप्रकाशति भास्करे॥ २५॥
ततः स्वशिविरं गत्वा, पाण्डवाः कुरवस्तथा।
न्यवसन्त महाराज, पूजयन्तः परस्परम्॥ २६॥

इस प्रकार वे योद्धालोग जब दुष्कर कर्म करते हुए युद्ध कर रहे थे, सूर्य अस्ताचल को चला गया और उसका प्रकाश लुप्त हो गया। तब हे महाराज! पाण्डव और कौरव अपने शिविर में जाकर एक दूसरे की प्रशंसा करते हुए विश्राम करने लगे।

इकतालीसवाँ अध्याय : व्यूह रचना। आठवें दिन के युद्ध का आरम्भ।

संजय उवाच

परिणाम्य निशां तां तु सुखं प्राप्ता जनेश्वराः।
कुरवः पाण्डवाश्चैव पुनर्युद्धाय निर्ययुः॥ १॥
भीष्मः कृत्वा महाव्यूहं पिता तव विशाम्पते।
सागरप्रतिमं घोरं वाहनोर्मितरङ्गिणम्॥ २॥
अग्रतः सर्वसैन्यानां भीष्मः शान्तनवो ययौ।
मालवैर्दाक्षिणात्यैश्च आवन्त्यैश्च समन्वितः॥ ३॥
ततोऽनन्तरमेवासीद् भारद्वाजः प्रतापवान्।
पुलिन्दैः पारदैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः॥ ४॥
द्रोणादनन्तरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान्।
मगधैश्च कलिङ्गैश्च पिशाचैश्च विशाम्पते॥ ५॥

संजय ने कहा कि फिर कौरव और पाण्डवपक्ष के राजा लोग, निद्रासुख को अनुभव कर, उस रात को व्यतीत कर पुनः युद्ध के लिये बाहर निकले। हे प्रजानाथ। आपके पिता भीष्म पितामह ने सागर के समान प्रतीत होनेवाले महाव्यूह की रचना की, जिसमें हाथी घोड़े आदि वाहन उत्ताल तरंगों के समान प्रतीत हो रहे थे। सारी सेनाओं के आगे शान्तनु पुत्र भीष्म चले। उनके साथ मालव देश के, दाक्षिणात्य और अवन्तीदेश के योद्धा थे। उनके पीछे प्रतापी द्रोणाचार्य, पुलिन्द, क्षुद्रक, पारद और मालवदेशी वीरों के साथ थे। हे प्रजानाथ! द्रोणाचार्य के पीछे सावधानी सहित प्रतापी भगदत्त, मगध, कालिंग और पिशाच वीरों के साथ थे।

प्राग्ज्योतिषादनु नृपः कौसल्योऽथ बृहद्बलः।
मेकलैः कुरुविन्दैश्च त्रैपुरैश्च समन्वितः॥ ६॥
बृहद्बलात् ततः शूरस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः।
काम्बोजैर्बहुभिः सार्धं यवनैश्च सहस्रशः॥ ७॥
द्रौणिस्तु रभसः शूरस्त्रैगर्तादनु भारत।
प्रययौ सिंहनादेन नादयानो धरातलम्॥ ८॥
तथा सर्वेण सैन्येन राजा दुर्योधनस्तदा।
द्रौणेरनन्तरं प्रयात् सौदर्यैः परिवारितः॥ ९॥
दुर्योधनादनु ततः कृपः शारद्वतो ययौ।
एवमेष महाव्यूहः प्रययौ सागरोपमः॥ १०॥

भगदत्त के पीछे राजा बृहद्बल, मेकल, कुरुविन्द और त्रिपुरा के सैनिकों के साथ था। फिर बृहद्बल के पीछे शूरवीर त्रिगर्त और प्रस्थल देश का राजा, कई हजार काम्बोज देश के और यवन योद्धाओं के साथ था। हे भारत! त्रिगर्तो के पीछे शूरवीर और वेगशाली अश्वत्थामा अपने सिंहनाद से भूमि को कँपाता हुआ चल रहा था। अश्वत्थामा के पश्चात् अपने भाइयों और सारी सेना से घिरा हुआ राजा दुर्योधन चल रहा था। दुर्योधन के पीछे शरद्वान्पुत्र कृपाचार्य चल रहे थे। इसप्रकार वह सागर के समान प्रतीत होनेवाला महाव्यूह प्रस्थान कर रहा था।

तं तु दृष्ट्वा महाव्यूहं तावकानां महारथः।
युधिष्ठिरोऽब्रवीत् तूर्णं पार्षतं पृतनापतिम्॥ ११॥
पश्य व्यूहं महेष्वास निर्मितं सागरोपमम्।
प्रतिव्यूहं त्वमपि हि कुरु पार्षत सत्वरम्॥ १२॥
ततः स पार्षतः क्रूरो व्यूहं चक्रे सुदारुणम्।
शृङ्गाटकं महाराज परव्यूहविनाशनम्॥ १३॥
शृङ्गाभ्यां भीमसेनश्च सात्यकिश्च महारथः।
रथैरनेकसाहस्रैस्तथा हयपदातिभिः॥ १४॥

आपके सैनिकों के उस महाव्यूह को देखकर महारथी युधिष्ठिर तुरन्त सेनापति द्रुपदपुत्र से बोले कि हे महाधनुर्धर, द्रुपदपुत्र! सागर के समान निर्मित इस व्यूह को देखो। तुम भी शीघ्रता से अपना मुकाबलेवाला व्यूह बना लो। हे महाराज! तब उस क्रूर द्रुपदपुत्र ने शत्रु के व्यूह को नष्ट करनेवाला, अत्यन्त दारुण सिंघाड़े के आकार का व्यूह बनाया। उसके दोनों सींगों पर महारथी भीम और सात्यकि हजारों रथों, घोड़ों और पैदल सैनिकों के साथ थे।

ताभ्यां बभौ नरश्रेष्ठः श्वेताश्वः कृष्णसारथि।
मध्ये युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ १५॥
अथोत्तरे महेष्वासाः सहसैन्या नराधिपाः।
व्यूहं तं पूरयामासुर्व्यूहशास्त्रविशारदाः॥ १६॥
अभिमन्युस्ततः पश्चाद् विराटश्च महारथः।
द्रौपदेयाश्च संहृष्टा राक्षसश्च घटोत्कचः॥ १७॥
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः।
अतिष्ठन् समरे शूरा योद्धुकामा जयैषिणः॥ १८॥

उन दोनों के बीच में, जिसके सारथी कृष्ण थे, वह श्वेत घोड़ोंवाला नरश्रेष्ठ अर्जुन सुशोभित हो रहा था। सेना के मध्य में युधिष्ठिर और माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव थे। उसके पश्चात् सेनासहित अनेक महाधनुर्धर राजालोग थे, जो व्यूहशास्त्र में विशारद थे। उन्होंने व्यूह के प्रत्येकअंग को पूरा किया। उस व्यूह के पिछले भाग में अभिमन्यु, महारथी विराट, प्रसन्नता से युक्त द्रौपदी के पुत्र और राक्षस घटोत्कच थे। हे भारत! इस प्रकार उस महान् व्यूह की रचना कर, युद्ध और विजय के इच्छुक शूरवीर पाण्डवलोग युद्धस्थल में खड़े हो गये।

भेरीशब्दैश्च विमलैर्विमिश्रैः शङ्खनिःस्वनैः।
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैर्नादिताः सर्वतो दिशः॥ १९॥
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम्।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम्॥ २०॥
नाराचा निशिताः संख्ये सम्पतन्ति स्म भारत।
व्यात्तानना भयकरा उरगा इव संघशः॥ २१॥
निष्पेतुर्विमलाः शक्त्यस्तैलधौताः सुतेजनाः।
अम्बुदेभ्यो यथा राजन् भ्राजमानाः शतह्रदाः॥ २२॥

फिर भेरी का शब्द होने लगा। उसके निर्मल स्वर से मिली हुई शंखों की ध्वनियों, गर्जने, तालठोकने और उच्चस्वर में सिंहनादों से सारी दिशाएँ गूंज उठीं। फिर आपके और शत्रुओं के वीरों का परस्पर मारते हुए, भय उत्पन्न करनेवाला घोर युद्ध आरम्भ हो गया। हे भारत! युद्धस्थल में तीखे नाराच इस प्रकार गिर रहे थे, जैसे मुँह फैलाये भयंकर सर्पों के समूह हों। अत्यन्त तीक्ष्ण, तेल में धोयी हुई, जगमगाती हुई शक्तियाँ ऐसे गिर रही थीं, जैसे बादलों से चमकती हुई बिजलियाँ गिर रही हों।

गदाश्च विमलैः पट्टैः पिनद्धाः स्वर्णभूषितैः।
पतन्त्यस्तत्र दृश्यन्ते गिरिशृङ्गोपमाः शुभाः॥ २३॥
निस्त्रिंशाश्च व्यदृश्यन्त विमलाम्बरसंनिभाः।
आर्षभाणि विचित्राणि शतचन्द्राणि भारत॥ २४॥
अशोभन्त रणे राजन् पात्यमानानि सर्वशः।
प्रासैरभिहताः केचिद् गजयोधाः समन्ततः॥ २५॥
पतमानाः स्म दृश्यन्ते गिरिशृङ्गान्नगा इव।
पादाताश्चाप्यदृश्यन्त निघ्नन्तोऽथ परस्परम्॥ २६॥
चित्ररूपधराः शूरा नखरप्रासयोधिनः।

निर्मल लोहपत्रों से जड़ी हुई, स्वर्णभूषित, सुन्दर गदाएँ गिरती हुई पर्वत के शिखरों के समान प्रतीत हो रही थीं। स्वच्छ आकाश के समान तलवारें, सौ चन्द्रों की आकृतियों से चित्रित, ऋषभ के चमड़े की सुन्दर ढालें, हे भरतवंशी राजन्! युद्ध में गिरायी जाती हुई सब तरफ शोभा पा रही थीं। अनेक हाथीसवार प्रासों के प्रहार से मारे हुए, हाथी की पीठ से गिरते हुए सब तरफ ऐसे दिखाई दे रहे थे, जैसे पर्वतशिखरों से वृक्ष टूटकर गिर रहे हों। बघनखों और प्रासों से एकदूसरे को मारते हुए शूर वीर पैदलसैनिक भी विचित्ररूप में दिखाई दे रहे थे।

अन्योन्यं ते समासाद्य कुरुपाण्डवसैनिकाः।
अस्त्रैर्नानाविधैर्घोरै रणे निन्युर्यमक्षयम्॥ २७॥
ततः शान्तनवो भीष्मो रथघोषेण नादयन्।
अभ्यागमद् रणे पार्थान् धनुःशब्देन मोहयन्॥ २८॥
पाण्डवानां रथाश्चापि नदन्तो भैरवं स्वनम्।
अभ्यद्रवन्त संयत्ता धृष्टद्युम्नपुरोगमाः॥ २९॥
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत।
नराश्वरथनागानां व्यतिषक्तं परस्परम्॥ ३०॥

वे कौरव और पाण्डव सैनिक उस युद्धस्थल में अनेकप्रकार के भयानक हथियारों से एक दूसरे को मारते हुए, उन्हें मृत्यु के मुँह में पहुँचा रहे थे। तब शान्तनुपुत्र भीष्म रथ की घर्घराहट से दिशाओं को

गुँजाते हुए, और धनुष की टंकार से मोहित करते हुए, पाण्डवसैनिकों पर चढ़ आये। पाण्डवों में धृष्टद्युम्न आदि महारथी भी भयंकर नाद करते हुए, युद्ध के लिये तैयार होकर दौड़े। फिर तो हे भारत! भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। जिसमें मनुष्य, रथ, हाथी और घोड़े एक दूसरे से गुथ गये।

बयालीसवाँ अध्याय : भीष्म की वीरता। भीम द्वारा धृतराष्ट्र के आठ पुत्रों का वध। दुर्योधन, भीष्म संवाद।

संजय उवाच

भीष्मं तु समरे क्रुद्धं प्रतपन्तं समन्ततः।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं तपन्तमिव भास्करम्॥ १॥
ततः सर्वाणि सैन्याणि धर्मपुत्रस्य शासनात्।
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं मर्दयन्तं शितैः शरैः॥ २॥
स तु भीष्मो रणश्लाघी सोमकान् सहसृंजयान्।
पञ्चालांश्च महेष्वासान् पातयामास सायकैः॥ ३॥
ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह।
भीष्ममेवाभ्ययुस्तूर्णं त्यक्त्वा मृत्युकृतं भयम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि उससमय युद्ध में क्रुद्ध होकर, अपना प्रताप सबतरफ प्रकट करते हुए, भीष्म की तरफ पाण्डव उसी तरह दृष्टिपात नहीं कर सके, जैसे तपते हुए सूर्य की तरफ देखना कठिन होता है। तब तीखे बाणों से सेना का मर्दन करते हुए भीष्म पर, धर्मपुत्र युधिष्ठिर के आदेश से सारी सेनाएँ टूट पड़ीं। तब युद्ध की श्लाघावाले भीष्म अपने बाणों से सृंजयोंसहित सोमक और पांचाल धनुर्धरों को अपने बाणों से गिराने लगे। तब सोमकों के साथ मारे जाते हुए पाँचाल मृत्यु के भय को छोड़कर भीष्मपर ही टूट पड़े।

स तेषां रथिनां वीरो भीष्मः शान्तनवो युधि।
चिच्छेद सहसा राजन् बाहूनथ शिरांसि च॥ ५॥
विरथान् रथिनश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव।
पतितान्युत्तमाङ्गानि हयेभ्यो हयसादिनाम्॥ ६॥
निर्मनुष्यांश्च मातङ्गाञ्शयानान् पर्वतोपमान्।
अपश्याम महाराज भीष्मास्त्रेण प्रमोहितान्॥ ७॥
न तत्रासीत् पुमान् कश्चित् पाण्डवानां विशाम्पते।
अन्यत्र रथिनां श्रेष्ठाद् भीमसेनान्महाबलात्॥ ८॥

हे राजन्! वे शान्तनुपुत्र वीर भीष्म युद्धस्थल में उन रथियों के सिरों और भुजाओं को सहसा काटने लगे। आपके पिता देवव्रत ने, रथियों को रथों से रहित कर दिया और घुड़सवारों के सिर घोड़ों के ऊपर से काटकर गिराने लगे। हे महाराज! हमने वहाँ पर्वतों के समान विशालकाय हाथियों को भीष्म के अस्त्रों से मूर्च्छित होकर अकेले पड़े हुए देखा। कोई मनुष्य उनके समीप नहीं था। हे प्रजानाथ! उस समय पाण्डवों के रथियों में श्रेष्ठ महाबली भीमसेन के सिवाय कोई ऐसा पुरुष नहीं था, जो भीष्म के सामने ठहर सकता।

स हि भीष्मं समासाद्य ताडयामास संयुगे।
ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः॥ ९॥
भीष्मं जुगोप समरे वर्तमाने जनक्षये।
भीमस्तु सारथिं हत्वा भीष्मस्य रथिनां वरः॥ १०॥
प्रद्रुताश्वे रथे तस्मिन् द्रवमाणे समन्ततः।
सुनाभस्य शरेणाशु शिरश्चिच्छेद भारत॥ ११॥
हते तस्मिन् महाराज तव पुत्रे महारथे।
नामृष्यन्त रणे शूराः सोदराः सप्त संयुगे॥ २०॥

वे भीम ही युद्धस्थल में भीष्म के सामने जाकर उन पर प्रहार कररहे थे। तब उस महान् जनसंहार में राजा दुर्योधन अपने भाइयों से घिरा हुआ वहाँ आकर भीष्म की रक्षा करने लगा। फिर रथियों में श्रेष्ठ भीम ने भीष्म के सारथी को मारकर भीष्म के घोड़ों द्वारा रथ को लेकर चारोंतरफ भागना शुरु करने पर हे भरत! शीघ्रता से आपके पुत्र सुनाम् का सिर बाणद्वारा काट लिया। हे महाराज! युद्धस्थल में आपके उस महारथी पुत्र के मारे जाने पर उसे उसके सात युद्ध में शूरवीर सगेभाई सहन न कर सके।

आदित्यकेतुर्बह्वाशी कुण्डधारो महोदरः।
अपराजितः पण्डितको विशालाक्षः सुदुर्जयः॥ १३॥
पाण्डवं चित्रसंनाहा विचित्रकवचध्वजाः।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे योद्धुकामारिमर्दनाः॥ १४॥
महोदरस्तु समरे भीमं विव्याध पत्रिभिः।
आदित्यकेतुः सप्तत्या बह्वाशी चापि पञ्चभिः॥ १५॥
नवत्या कुण्डधारश्च विशालाक्षश्च पञ्चभिः।

अपराजितो महाराज पराजिष्णुर्महारथम्॥ १६॥
शरैर्बहुभिरानर्च्छद् भीमसेनं महाबलम्।

आदित्यकेतु, बह्वाशी, कुण्डधार, महोदर, अपराजित, पण्डितक और अत्यन्त दुर्जय विशालाक्ष, ये सातों विचित्र वेशभूषा, विचित्र कवच और ध्वजों से युक्त शत्रुमर्दन भाई युद्ध की इच्छा से युद्धस्थल में पाण्डुपुत्र भीम पर टूट पड़े। महोदर ने भीम को बाणों से बींध दिया। आदित्यकेतु ने सत्तर, बह्वाशी ने पाँच, कुण्डधार ने नब्बे, विशालाक्ष ने पाँच और अपराजित ने हे महाराज! उस महाबली भीमसेन को पराजित करने की इच्छा से बहुत से बाणों से पीड़ित कर दिया।

रणे पण्डितकश्चैनं त्रिभिर्बाणैः समार्पयत्॥ १७॥
स तन्न ममृषे भीमः शत्रुभिर्वधमाहवे।
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः॥ १८॥
शिरश्चिच्छेद समरे शरेणानतपर्वणा।
अपराजितस्य सुनसं तव पुत्रस्य संयुगे॥ १९॥
अथापरेण भल्लेन कुण्डधारं महारथम्।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय सर्वलोकस्य पश्यतः॥ २०॥

युद्ध में पण्डितक ने उन्हें तीन बाण मारे। भीम युद्ध में शत्रुओं के द्वारा प्राप्त इन प्रहारों को सहन न कर सके। तब शत्रुओं को पीडित करनेवाले उसने अपने धनुष को बायें हाथ से दृढ़तापूर्वक पकड़कर, झुकी हुई गांठोंवाले बाण से आपके पुत्र अपराजित का सुन्दर नाकवाला सिर समरभूमि में काट दिया। फिर दूसरे भल्ल से उसने सारे लोगों के देखते हुए ही, महारथी कुण्डधार को मृत्युलोक में भेज दिया।

ततः पुनरमेयात्मा प्रसंधाय शिलीमुखम्।
प्रेषयामास समरे पण्डितं प्रति भारत॥ २१॥
स शरः पण्डितं हत्वा विवेश धरणीतलम्।
विशालाक्षशिरश्छित्त्वा पातयामास भूतले॥ २२॥
त्रिभिः शरैरदीनात्मा स्मरन् क्लेशं पुरातनम्।
महोदरं महेष्वासं नाराचेन स्तनान्तरे॥ २३॥
विव्याध समरे राजन् स हतो न्यपतद् भुवि।
आदित्यकेतोः केतुं च छित्वा बाणेन संयुगे॥ २४॥
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन शिरश्चिच्छेद भारत।

हे भारत! फिर उस अमित आत्मा ने एक बाणका सन्धानकर उसे युद्ध में पण्डितक की तरफ फेंका। वह बाण पण्डितक को मारकर भूमि में धँस गया। फिर दीनता से रहित हृदयवाले भीम ने पुराने क्लेशों को याद करते हुए, विशालाक्ष का भी सिर काटकर भूमि पर गिरा दिया। उन्होंने हे राजन्! महाधनुर्धर महोदर की छाती में नाराच का प्रहार किया, जिससे वह मरकर भूमि पर गिर पड़ा। हे भारत! फिर उस युद्धक्षेत्र में उन्होंने एक बाण से आदित्य का ध्वज काटकर, अत्यन्त तीखे भल्ल से उसका सिर काट दिया।

बह्वाशिनं ततो भीमः शरेणानतपर्वणा॥ २५॥
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति।
ततो दुर्योधनो राजा भ्रातृव्यसनकर्शितः॥ २६॥
अब्रवीत् तावकान् योधान् भीमोऽयं युधिवध्यताम्।
ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममासाद्य संयुगे॥ २७॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो विललाप सुदुःखितः।
निहता भ्रातरः शूरा भीमसेनेन मे युधि॥ २८॥
यतामानास्तथान्येऽपि हन्यन्ते सर्वसैनिकाः।
भवांश्च मध्यस्थतया नित्यमस्मानुपेक्षते॥ २९॥
सोऽहं कुपथमारूढः पश्य दैवमिदं मम।

फिर अत्यन्त क्रुद्ध होकर भीम ने झुकीगाँठ वाले बाण से बह्वाशी को भी मृत्यु के घर भेज दिया। तब भाइयों के वध से दुःखी राजा दुर्योधन ने आपके योद्धाओं को आदेश दिया कि इस भीम को युद्ध में मार दो। उसके पश्चात्, राजा दुर्योधन, महान् दुःख से भरा हुआ, अत्यन्त शोकमग्न होकर, युद्धक्षेत्र में भीष्म के समीप जाकर विलाप करने लगा। वह कहने लगा कि युद्ध में भीमसेन के द्वारा मेरे शूरवीर भाई मारे गये, दूसरे भी सारे सैनिक विजय के लिये प्रयत्न करते हुए उसके द्वारा मारे जा रहे हैं। आप आप मध्यस्थ होने के कारण नित्य हमारी उपेक्षा कर रहे हैं। मैं तो बुरे मार्ग पर चल दिया। आप मेरे दुर्भाग्य को देखिये।

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं पिता देवव्रतस्तव॥ ३०॥
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत् साश्रुलोचनः।
उक्तमेतन्मया पूर्वं द्रोणेन विदुरेण च॥ ३१॥
गान्धार्या च यशस्विन्या तत् त्वं तात न बुद्धवान्।
समयश्च मया पूर्वं कृतो वै शत्रुकर्शन॥ ३२॥
नाहं युधि नियोक्तव्यो नाप्याचार्यः कथंचन।
यं यं हि धार्तराष्ट्राणां भीमो द्रक्ष्यति संयुगे।
हनिष्यति रणे नित्यं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ३३॥

उस क्रूर वचन को सुनकर आपके पिता देवव्रत नेत्रों से आँसू बहाते हुए यह बोले कि मैने, द्रोणाचार्य ने और विदुर ने तथा यशस्विनी गान्धारी ने हे तात! पहले ही कहा था, पर तुमने समझा नहीं। हे शत्रुदमन! मैने पहले ही अपना निश्चय तुम्हें बता दिया था कि तुम्हें मुझे और आचार्य को किसी प्रकार भी युद्ध में नहीं लगाना चाहिये। भीम जिस जिस भी धृतराष्ट्र के पुत्र को युद्धस्थल में देखेगा वह नित्य उसका वध करेगा, यह मैं तुम्हें सत्य कहता हूँ।

तेतालीसवाँ अध्याय : दोनों सेनाओं का भयानक युद्ध।

संजय उवाच

ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात्।
संरब्धान्यभ्यवर्तन्त भीष्ममेव जिघांसया॥ १॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः॥ २॥
विराटो द्रुपदश्चैव सहिताः सर्वसोमकैः।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीष्ममेव महारथम्॥ ३॥

तब संजय ने कहा कि तब सारी सेनाएँ धर्मपुत्र युधिष्ठिर के आदेश से भीष्म को ही मारने की इच्छा से अत्यन्त क्रोध में भरकर उन पर टूटपड़ीं। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और महारथी सात्यकि, हे महाराज! अपनी सेनाओं के साथ भीष्म पर ही आक्रमण करने लगे। विराट और द्रुपद ने सारे सोमकों के साथ उस युद्धस्थल में महारथी भीष्म पर ही आक्रमण किया।

केकया धृष्टकेतुश्च कुन्तिभोजश्च दंशितः।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः॥ ४॥
अर्जुनो द्रौपदेयाश्च चेकितानश्च वीर्यवान्।
दुर्योधनसमादिष्टान् राज्ञः सर्वान् समभ्ययुः॥ ५॥
अभिमन्युस्तथा शूरो हैडिम्बश्च महारथः।
भीमसेनश्च संक्रुद्धस्तेऽभ्यधावन्त कौरवान्॥ ६॥
त्रिधाभूतैरवध्यन्त पाण्डवैः कौरवा युधि।
तथैव कौरवै राजन्नवध्यन्त परे रणे॥ ७॥

हे महाराज! केकय राजकुमार, धृष्टकेतु और कुन्तीभोज कवच पहनकर अपनी सेनाओं के साथ भीष्म पर ही धावा करने लगे। अर्जुन, द्रौपदी के पुत्र, पराक्रमी चेकितान, ये दुर्योधन के द्वारा भेजे हुए सारे राजाओं का सामना करने लगे। शूरवीर अभिमन्यु, महारथी हिडिम्बापुत्र घटोत्कच और अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ भीमसेन इन्होंने कौरवों पर आक्रमण किया। हे राजन्! पाण्डव तीन दलों में बँटकर कौरवों का समरभूमि में विनाश करने लगे। इसीप्रकार कौरव भी युद्ध में शत्रुओं को मारने लगे।

द्रोणस्तु रथिनः श्रेष्ठान् सोमकान् सृंजयैः सह।
अभ्यधावत संक्रुद्धः प्रेषयिष्यन् यमक्षयम्॥ ८॥
तत्राक्रन्दो महानासीत् सृंजयानां महात्मनाम्।
वध्यतां समरे राजन् भारद्वाजेन धन्विना॥ ९॥
तथैव कौरवेयाणां भीमसेनो महाबलः।
चकार कदनं घोरं क्रुद्धः काल इवापरः॥ १०॥
ततो भीमो रणे क्रुद्धो रभसश्च विशेषतः।
गजानीकं समासाद्य प्रेषयामास मृत्यवे॥ ११॥

द्रोणाचार्य तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर श्रेष्ठरथी सोमकों को सृंजयों के साथ मृत्युलोक में भेजते हुए उनकीतरफ दौड़े। हे राजन्! वहाँ धनुर्धारी द्रोणाचार्य के द्वारा युद्धस्थल में मारे जाते हुए मनस्वी सृंजयों का महान् आर्तनाद हो रहा था। उसीप्रकार महाबली भीमसेन दूसरी मृत्यु के समान क्रुद्ध होकर कौरवपक्षवालों का महान् विनाश कर रहे थे। फिर क्रोध में भरे हुए विशेष बलशाली भीम ने युद्धक्षेत्र में हाथियों की सेना में घुसकर उन्हें मृत्युलोक में भेजना आरम्भ कर दिया।

तत्र भारत भीमेन नाराचाभिहता गजाः।
पेतुर्नेदुश्च सेदुश्च दिशश्च परिबभ्रमुः॥ १२॥
छिन्नहस्ता महानागाश्छिन्नगात्राश्च मारिष।
क्रौञ्चवद् व्यनदन् भीताः पृथिवीमधिशेरते॥ १३॥
नकुलः सहदेवश्च हयानीकमभिद्रुतौ।
वध्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः॥ १४॥
पतद्भिस्तुरगै राजन् समास्तीर्यत मेदिनी।
निर्जिह्वैश्च श्वसद्भिश्च कूजद्भिश्च गतासुभिः॥ १५॥

हे भारत! वहाँ भीमसेन के नाराचों से मारे हुए हाथी पहले व्याकुल होते, फिर चिंघाड़ते, फिर चारों तरफ चक्कर लगाते और गिर जाते थे। हे मान्यवर!

जिन हाथियों की सूँड कटजाती थी, या जिनके शरीर के दूसरे अंग कटजाते थे, वे क्रौंचपक्षी के समान आर्तनाद करते हुए भूमि पर सो जाते थे। उधर नकुल और सहदेव ने घुड़सवारों की सेना पर आक्रमण कर दिया। उनके द्वारा सैकड़ों और हजारों घोड़े मारे जाते हुए दिखाई देरहे थे। हे राजन्! वहाँ गिरते हुए घोड़ों से भूमि पटी पड़ी थी। कुछ की जीभ बाहर निकली हुई थी, कुछ लम्बी साँसे खींच रहे थे, कुछ मुँह से आवाज निकाल रहे थे और किन्ही के प्राण बिल्कुल निकल गये थे।

अर्जुनेन हतैः संख्ये तथा भारत राजभिः।
प्रबभौ वसुधा घोरा तत्र तत्र विशाम्पते॥ १६॥
एवमेष क्षयो वृत्तःपाण्डूनामपि भारत।
क्रुद्धे शान्तनवे भीष्मे द्रोणे च रथसत्तमे॥ १७॥
अश्वत्थाम्नि कृपे चैव तथैव कृतवर्मणि।
तथेतरेषु क्रुद्धेषु तावकानामपि क्षयः॥ १८॥

हे भारत! इसीतरह युद्ध में अर्जुन के द्वारा मारे गये क्षत्रियों से, हे प्रजानाथ! जहाँतहाँ भरी हुई भूमि भयानक लग रही थी। इसप्रकार हे भारत! शान्तनुपुत्र भीष्म, श्रेष्ठरथी द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा के कुद्ध होने पर पाण्डुपुत्रों की सेना का भी और उनके क्रुद्ध होने पर आपके योद्धाओं का विनाश होरहा था।

चवालीसवाँ अध्याय : इरावान् द्वारा शकुनि के छै भाइयों तथा राक्षस अलम्बुष द्वारा इरावान् का वध।

संजय उवाच

वर्तमाने तथा रौद्रे राजन् वीरवरक्षये।
सौबलस्यानुजाः शूरा निर्गता रणमूर्धनि॥ १॥
वायुवेगसमस्पर्शाञ्जवे वायुसमांश्च ते।
आरुह्य बलसम्पन्नान् वयःस्थांस्तुरगोत्तमान्॥ २॥
गजो गवाक्षो वृषभश्चर्मवानार्जवः शुकः।
षडेते बलसम्पन्ना निर्ययुर्महतो बलात्॥ ३॥
तदनीकं महाबाहो भित्त्वा परमदुर्जयम्।
बलेन महता युक्ताः स्वर्गाय विजयैषिणः॥ ४॥
विविशुस्ते तदा हृष्टा गान्धारा युद्धदुर्मदाः।

संजय ने कहा कि हे राजन्! जब इसप्रकार श्रेष्ठ, उत्तमयोद्धाओं का विनाश करनेवाला भयंकर युद्ध चल रहा था, तब शकुनि के वीर छोटे भाई, युद्ध के मुहाने पर निकलकर आये। जिनका स्पर्श वायु के समान था, और जो वेग में भी वायु के ही समान थे, ऐसे बलवान् और नयीअवस्था के जवान उत्तमघोड़ों पर चढ़कर, गज, गवाक्ष, वृषभ, चर्मवान्, आर्जव और शुक नाम के ये छै बलवान् भाई विशाल सेना के साथ बाहर निकले। हे महाबाहु! गान्धार देश के वे युद्धदुर्मद विजय को चाहनेवाले वीर प्रसन्नता के साथ स्वर्ग की अभिलाषा लेकर, विशालसेना के साथ पाण्डवों की उस परमदुर्जय सेना को भेदकर उसमें घुस गये।

तान् प्रविष्टांस्तदा दृष्ट्वा इरावानपि वीर्यवान्॥ ५॥
अब्रवीत् समरे योधान् विचित्रान् दारुणायुधान्।
यथैते धार्तराष्ट्रस्य योधाः सानुगवाहनाः॥ ६॥
हन्यन्ते समरे सर्वे तथा नीतिर्विधीयताम्।
बाढमित्येवमुक्त्वा ते सर्वे योधा इरावतः॥ ७॥
जघ्नुस्तेषां बलानीकं दुर्जयं समरे परैः।
तदनीकमनीकेन समरे वीक्ष्य पातितम्॥ ८॥
अमृष्यमाणास्ते सर्वे सुबलस्यात्मजा रणे।
इरावन्तमभिद्रुत्य सर्वतः पर्यवारयन्॥ ९॥

उन्हें सेना के अन्दर प्रविष्ट हुआ देखकर पराक्रमी इरावान् ने युद्धस्थल में अपने विचित्रकर्म करनेवाले और दारुण हथियारों को लिये हुए, योद्धाओं से कहा कि ये दुर्योधन के योद्धा अपने सेवकों और सवारियों सहित, जिसप्रकार मारे जायें तुम उसीप्रकार की नीति बनाकर युद्ध करो। तब बहुत अच्छा यह कहकर इरावान् के उन योद्धाओं ने, उस बलवान् सेना का, जो शत्रुओं के लिये दुर्जय थी, विनाश कर दिया। तब युद्ध में अपनी सेना को शत्रुसेना के द्वारा मार गिराया हुआ देखकर, उसे सहन न करते हुए सुबल के सारेपुत्रों ने युद्ध में दौड़कर, इरावान् को चारों तरफ से घेर लिया।

ताडयन्तः शितै प्रासैः , चोदयन्तः परस्परम्।
ते शूराः पर्यधावन्त, कुर्वन्तो महदाकुलम्॥ १०॥

इरावानथ निर्भिन्नः प्रासैस्तीक्ष्णैर्महात्मभिः।
स्रवता रुधिरेणाक्तस्तोत्रैर्विद्ध इव द्विपः॥ ११॥
पुरतोऽपि च पृष्ठे च पार्श्वयोश्च भृशाहतः।
एको बहुभिरत्यर्थं धैर्याद् राजन् न विव्यथे॥ १२॥

तीखे प्रासों से प्रहार करते हुए और एक दूसरे को बढ़ावा देते हुए, तथा इरावान् को अत्यन्त व्याकुल करते हुए उन वीरों ने चारोंतरफ से उनपर आक्रमण कर दिया। अंकुश के द्वारा पीडित किये गये हाथी के समान, इरावान् उन मनस्वियों के तीखे प्रासों से घायल होकर, बहते हुए खून से लथपथ हो गया। हे राजन्! वह अकेला उन बहुतों के द्वारा सामने, पीछे, अगल, बगल के भागों में अत्यन्त घायल होने पर भी अपने धैर्य के कारण विचलित नहीं हुआ।

इरावानपि संक्रुद्धः सर्वांस्तान् निशितैः शरैः।
मोहयामास समरे विद्ध्वा परपुरंजयः॥ १३॥
विकृष्य च शितं खड्गं गृहीत्वा च शरावरम्।
पदातिर्द्रुतमागच्छज्जिघांसुः सौबलान् युधि॥ १४॥
ततः प्रत्यागतप्राणाः सर्वे ते सुबलात्मजाः।
भूयः क्रोधसमाविष्टा इरावन्तमभिद्रुताः॥ १५॥
इरावानपि खड्गेन दर्शयन् पाणिलाघवम्।
अभ्यवर्तत तान् सर्वान् सौबलान् बलदर्पितः॥ १६॥

तब शत्रु के नगर को जीतनेवाला इरावान् भी अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और युद्ध में अपने तीखे बाणों से बींधकर उसने उन सबको मूर्च्छित कर दिया। फिर उन सुबलपुत्रों को मारने की इच्छा से तीखी तलवार और ढाल को निकालकर पैदल ही उनकी तरफ तेजी से दौड़ा। तभी उन सारे सुबलपुत्रों को होश आ गया और उन्होंने पुनः क्रोध में भरकर इरावान् पर आक्रमण किया। इरावान् भी अपने बल के अभिमान में तलवार के द्वारा अपने हस्तकौशल को दिखाता हुआ, उन सारे सुबलपुत्रों का सामना करने लगा।

लाघवेनाथ चरतः सर्वे ते सुबलात्मजाः।
अन्तरं नाभ्यगच्छन्त चरन्तः शीघ्रगैर्हयैः॥ १७॥
भूमिष्ठमथ तं संख्ये सम्प्रदृश्य ततः पुनः।
परिवार्य भृशं सर्वे ग्रहीतुमुपचक्रमुः॥ १८॥
अथाभ्याशगतानां स खड्गेनामित्रकर्शनः।
असिहस्तापहस्ताभ्यां तेषां गात्राण्यकृन्तत॥ १९॥
आयुधानि च सर्वेषां बाहूनपि विभूषितान्।
अपतन्त निकृत्ताङ्गा मृता भूमौ गतासवः॥ २०॥

शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा विचरण करते हुए भी वे सारे सुबलपुत्र, कुशलता के साथ पैंतरे बदलते हुए इरावान् में कोई दोष नहीं देख सके। उसे भूमि पर पैदल देखकर, वे सारे उसे फिर अत्यन्त घेर कर पकड़ने का प्रयत्न करने लगे। तब शत्रुसूदन इरावान् ने उनके समीप आने पर कभी दायें हाथ से और कभी बायें हाथ से तलवार घुमाते हुए उनके शरीर के अंगों को काट दिया। उनके हथियार और विभूषित भुजाएँ कटकर गिर पड़ीं। इस प्रकार गात्रों के कट जाने पर, वे सारे प्राणहीन होकर भूमि पर गिर पड़े।

तान् सर्वान् पतितान् दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनस्ततः।
अभ्यधावत संक्रुद्धो राक्षसं घोरदर्शनम्॥ २१॥
आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं मायाविनमरिंदमम्।
वैरिणं भीमसेनस्य पूर्वं बकवधेन वै॥ २२॥
पश्य वीर यथा ह्येष फाल्गुनस्य सुतो बली।
मायावी विप्रियं कर्तुमकार्षीन्मे बलक्षयम्॥ २३॥
कृतवैरश्च पार्थेन तस्मादेनं रणे जहि।
बाढमित्येवमुक्त्वा तु राक्षसो घोरदर्शनः॥ २४॥
प्रययौ सिंहनादेन यत्रार्जुनसुतो युवा।

उन सब को गिरा हुआ देखकर तब भयभीत और क्रोध से युक्त होकर दुर्योधन दौड़कर वहाँ गया, जहाँ भयंकर दिखाई देनेवाला, शृष्यशृंग का पुत्र, महाधनुर्धर, मायावी, शत्रु का दमन करनेवाला राक्षस अलंबुष था। पहले बक राक्षस का वध करने के कारण, वह भीम का बैरी था। वह उससे बोला कि हे वीर देखो! यह अर्जुन का पुत्र बलवान् और मायावी है। इसने मुझे हानि पहुँचाने के लिये, मेरी सेना का विनाश कर दिया है। तुम्हारा कुन्तीपुत्र भीम के साथ बैर है, इसलिये इसे युद्ध में मार डालो। तब बहुत अच्छा यह कहकर वह भयानक आकृति वाला राक्षस सिंहनाद करता हुआ उस जगह आ गया, जहाँ अर्जुन का वह युवापुत्र था।

आरूढैर्युद्धकुशलैर्विमल- प्रासयोधिभिः॥ २५॥
वीरैः प्रहारिभिर्युक्तैः स्वैरनीकैः समावृतः।
निहन्तुकामः समरे इरावन्तं महाबलम्॥ २६॥

आद्रवन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसं युद्धदुर्मदम्।
इरावानथ संरब्धः प्रत्यधावन्महाबलः॥ २७॥
समभ्याशगतस्याजौ तस्य खड्गेन दुर्मतेः।
चिच्छेद कार्मुकं दीप्तं शरावापं च सत्वरम्॥ २८॥

वाहनों पर आरूढ, युद्ध में कुशल, जगमगाते हुए प्रासों से युद्ध करनेवाले, प्रहार करनेवाले, समर्थ, वीरों की सेना से घिरा हुआ, वह युद्ध में महाबली इरावान् को मारना चाहता था। युद्ध में दुर्मद उस राक्षस को आता हुआ देखकर महाबली इरावान् भी क्रोध में भरकर उसके ऊपर टूटपड़ा। उसने अपने समीप आया हुआ देखकर, उस दुष्ट के देदीप्यमान धनुष और तरकस को अपने खड्ग से युद्धस्थल में शीघ्रता से काट दिया।

सकुण्डलं समुकुटं पद्मेन्दुसदृशप्रभम्।
इरावतः शिरो रक्षः पातयामास भूतले॥ २९॥
अजानन् अर्जुनश्चापि निहतं पुत्रमौरसम्।
जघान समरे शूरान्, राज्ञस्तान् भीष्मरक्षिणः॥ ३०॥
तथा मर्मातिगैर्भीष्मो निजधान महारथान्।
कम्पयन् समरे सेनां पाण्डवानां परंतपः॥ ३१॥
तेन यौधिष्ठिरे सैन्ये बहवो मानवा हताः।
दन्तिनः सादिनश्चैव रथिनोऽथ हयास्तथा॥ ३२॥

तब उस राक्षस ने चन्द्रमा और कमल के समान कान्तिमान्, मुकुट और कुण्डलसहित इरावान् के सिर को काटकर भूमि पर गिरा दिया। उस समय अर्जुन अपने पुत्र की मृत्यु के बारे में न जानते हुए, युद्धस्थल में भीष्म की रक्षा करनेवाले शूरवीर राजाओं का संहार कर रहे थे। शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले भीष्म, युद्ध में पाण्डवों के महारथियों की सेना को कम्पित करते हुए, अपने मर्मभेदी बाणों के द्वारा महारथियों को मार रहे थे। उन्होंने युधिष्ठिर की सेना के बहुतसारे मनुष्य, हाथी, घुड़सवार, घोड़े और रथी मार दिये।

तथैव भीमसेनस्य पार्षतस्य च भारत।
रौद्रमासीद् रणे युद्धं सात्यकस्य च धन्विनः॥ ३३॥
दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रान्तं पाण्डवान् भयमाविशत्।
एक एव रणे शक्तो निहन्तुं सर्वसैनिकान्॥ ३४॥
किं पुनः पृथिवीशूरैर्योधव्रातैः समावृतः।
इत्यब्रुवन् महाराज रणे द्रोणेन पीडिताः॥ ३५॥

हे भारत! उसीप्रकार भीमसेन, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न और धनुर्धर सात्यकि भी युद्धक्षेत्र में भयानक युद्ध कर रहे थे। द्रोणाचार्य के पराक्रम को देखकर पाण्डवपक्ष के लोग भयभीत हो गये थे और वे हे महाराज! द्रोणाचार्य से पीड़ित होते हुए यह कह रहे थे कि ये तो अकेले ही युद्ध में सारे सैनिकों को मार सकते हैं, फिर अब तो ये संसार के शूरवीर योद्धाओं के समूह से घिरे हुए हैं।

पैंतालीसवाँ अध्याय : घटोत्कच की वीरता।

संजय उवाच

इरावन्तं तु निहतं संग्रामे वीक्ष्य राक्षसः।
व्यनदत् सुमहानादं भैमसेनिर्घटोत्कचः॥ १॥
नर्दित्वा सुमहानादं निर्घातमिव राक्षसः।
नानारूपप्रहरणैर्वृतो राक्षसपुङ्गवैः॥ २॥
आजघान सुसंक्रुद्धः कालान्तकयमोपमः।
ततो दुर्योधनो राजा घटोत्कचमुपाद्रवत्॥ ३॥
प्रगृह्य विपुलं चापं सिंहवद् विनदन् मुहुः।

संजय ने कहा कि संग्राम में तब इरावान् को मारा गया देखकर भीमसेन के पुत्र राक्षस घटोत्कच ने बड़े जोर से गर्जना की। अत्यन्त क्रुद्ध होकर काल और सबका अन्त करदेनेवाली मृत्यु के समान उसने अनेक प्रकार के हथियारों से युक्त श्रेष्ठराक्षसों के साथ आक्रमण कर दिया। तब राजा दुर्योधन ने एक विशाल धनुष को उठाकर सिंह के समान बार बार गर्जना करते हुए घटोत्कच पर आक्रमण किया।

पृष्ठतोऽनुययौ चैनं स्त्रवद्भिः पर्वतोपमैः॥ ४॥
कुञ्जरैर्दशसाहस्त्रैर्वङ्गानामधिपः स्वयम्।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य गजानीकेन संवृतम्॥ ५॥
पुत्रं तव महाराज चुकोप स निशाचरः।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्॥ ६॥
राक्षसानां च राजेन्द्र दुर्योधनबलस्य च।
गजानीकं च सम्प्रेक्ष्य मेघवृन्दमिवोदितम्॥ ७॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा राक्षसाः शस्त्रपाणयः।

दुर्योधन के पीछे उसकी रक्षा करता हुआ स्वयं बंगदेश का राजा भी दस हजार पर्वतों के समान ऊँचे और मद बहाते हुए हाथियों के साथ गया। हे महाराज! हाथीसेना के द्वारा घिरे हुए और आक्रमण के लिये आते हुए आपके पुत्र को देखकर वह राक्षस क्रोध में भर गया। हे राजन्! फिर राक्षसों का और दुर्योधन की सेना का रोंगटे खड़े करदेनेवाला तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। बादलों के समान उमड़ती हुई हाथियों की सेना को देखकर हथियार हाथ में लिये हुए राक्षसलोग अत्यन्तक्रुद्ध होकर उनकीतरफ दौड़े।

शरशक्त्यृष्टिनाराचैर्निघ्नन्तो गजयोधिनः॥ ८॥
भिन्दिपालैस्तथा शूलैर्मुद्गरैः सपरश्वधैः।
नदन्तो विविधान् नादान् निजघ्नुस्ते महागजान्॥ ९॥
भिन्नकुम्भान् विरुधिरान् भिन्नगात्रांश्च वारणान्।
अपश्याम महाराज वध्यमानान् निशाचरैः॥ १०॥

अनेक प्रकार के जयनाद और गर्जनाओं को करते हुए, हाथी सवारों को बाण, शक्ति, ऋष्टि, तथा नाराचों के द्वारा मारते हुए वे भिन्दीपाल, शूल, मुद्गर, फरसे, के द्वारा विशालहाथियों का संहार करने लगे। हे महाराज! वहाँ हमने राक्षसों के द्वारा मारे जा रहे, उन हाथियों को देखा, जिनके मस्तक फट गये थे, जो रक्त बहा रहे थे और जिनके शरीर के अंग भी कट गये थे।

दुर्योधनो महाराज राक्षसान् समुपाद्रवत्।
अमर्षवशमापन्नस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः॥ ११॥
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव।
वेगवन्तं महारौद्रं विद्युज्जिह्वं प्रमाथिनम्॥ १२॥
शरैश्चतुर्भिश्चतुरो निजघान महाबलः।
तत् तु दृष्ट्वा महत् कर्म पुत्रस्य तव मारिष॥ १३॥
क्रोधेनाभिप्रजज्वाल भैमसेनिर्महाबलः।
स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम्॥ १४॥
अभिदुद्राव वेगेन दुर्योधनमरिंदमम्।
तमापतन्तमुद्वीक्ष्य कालसृष्टमिवान्तकम्॥ १५॥
न विव्यथे महाराज पुत्रो दुर्योधनस्तव।

हे महाराज! तब दुर्योधन अमर्ष के वश में होकर, अपने प्राणों का मोह छोड़कर, राक्षसों की तरफ दौड़ा। हे भरतश्रेष्ठ! आपके महाबली पुत्र दुर्योधन ने तब अत्यन्त क्रोध में भरकर चार बाणों से वेगवान्, महारौद्र, विद्युज्जिह्व, और प्रमाथी इन राक्षसों को मार दिया। हे मान्यवर! आपके पुत्र के उस महान् कार्य को देखकर, महाबली भीमसेन का पुत्र, क्रोध से जलने लगा। उसने अपने इन्द्र के वज्र के समान विशालधनुष को खींचकर, वेगपूर्वक शत्रुओं को नष्ट करनेवाले दुर्योधन पर आक्रमण किया। काल से प्रेरित मृत्यु के समान उसे आते देखकर भी हे महाराज! आपका पुत्र दुर्योधन व्यथित नहीं हुआ।

अथैनमब्रवीत् क्रुद्धः क्रूरः संरक्तलोचनः॥ १६॥
अद्यानृण्यं गमिष्यामि पितॄणां मातुरेव च।
ये त्वया सुनृशंसेन दीर्घकालं प्रवासिताः॥ १७॥
यच्च ते पाण्डवा राजंश्छलद्यूते पराजिताः।
एतेषामपमानानामन्येषां च कुलाधम॥ १८॥
अन्तमद्य गमिष्यामि यदि नोत्सृजसे रणम्।

तब वह क्रूर राक्षस, क्रोध में भरकर और लाल आँखें कर उससे बोला कि मैं आज अपने पिता और माता दोनों के ऋण से उऋण हो जाऊँगा। हे राजन्! तूने जो पाण्डवों को छल से जूए में हराया और तुझ निर्दय ने उन्हें लम्बे समय के लिये वनवास में भिजवाया। हे कुलाधम! यदि युद्धक्षेत्र को छोड़कर भाग नहीं जायेगा, तो इन सारे अपमानों और दूसरे ऐसे ही कार्यो का आज मैं बदला चुका दूँगा।

एवमुक्त्वा तु हैडिम्बो महद् विस्फार्य कार्मुकम्॥ १९॥
संदश्य दशनैरोष्ठं सृक्किणी परिसंलिहन्।
शरवर्षेण महता दुर्योधनमवाकिरत्॥ २०॥
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः।
ततस्तद् बाणवर्षं तु दुःसहं दानवैरपि॥ २१॥
दधार युधि राजेन्द्रो यथा वर्षं महाद्विपः।
मुमोच निशितांस्तीक्ष्णान् नाराचान् पञ्चविंशतिम्॥ २२॥
तेऽपतन् सहसा राजंस्तस्मिन् राक्षसपुङ्गवे।
आशीविषा इव क्रुद्धाः पर्वते गन्धमादने॥ २३॥

ऐसा कहकर हिडिम्बापुत्र ने अपने विशाल धनुष को खींचकर दाँतों से ओठों को काटते हुए और मुँह के दोनों कोनों को जिह्वा से चाटते हुए, महान् बाणवर्षा से दुयोधन को ऐसे भर दिया, जैसे बादल वर्षाऋतु में पर्वत को पानी की धाराओं से भर देते हैं। दानवों के लिये भी दुस्सह उस बाणवर्षा को उस राजेन्द्र ने युद्ध में ऐसे सहन कर लिया, जैसे विशालगजराज वर्षा को अपने ऊपर धारण करता

है। उसने तब अत्यन्त तीखे पच्चीस नाराचों को छोड़ा। हे राजन्! वे अचानक उस राक्षसश्रेष्ठ पर ऐसे गिरे जैसे क्रोध में भरे हुए विषैलेसर्प गन्धमादन पर्वत पर कहीं से आकर गिरे हों।

स तैर्विद्धः स्रवन् रक्तं प्रभिन्न इव कुञ्जरः।
दध्रे मतिं विनाशाय राज्ञः स पिशिताशनः॥ २४॥
जग्राह च महाशक्तिं गिरीणामपि दारिणीम्।
सम्प्रदीप्तां महोल्काभामशनिं ज्वलितामिव॥ २५॥
समुद्यच्छन् महाबाहुर्जिघांसुस्तनयं तव।
तामुद्यतामभिप्रेक्ष्य वङ्गानामधिपस्त्वरन्॥ २६॥
कुञ्जरं गिरिसंकाशं राक्षसं प्रत्यचोदयत्।

उनसे घायल होकर, मद बहाते हुए हाथी के समान रक्त बहाते हुए राक्षस ने तब उस राजा के वध के लिये निश्चय किया। तब उसने पर्वतों को भी विदीर्ण करनेवाली, एक महान् शक्ति को हाथ में लिया, जो विद्युत् और जलती हुई महान् उल्का के समान प्रदीप्त हो रही थी। आपके पुत्र को मारने की इच्छा कर वह महाबाहु शक्ति को ऊपर उठा ही रहा था कि उसे उठी हुई देखकर बंगदेश के राजा ने शीघ्रता से अपने पर्वत के समान विशाल हाथी को राक्षस की तरफ बढ़ाया।

रथं च वारयामास कुञ्जरेण सुतस्य ते॥ २७॥
मार्गमावारितं दृष्ट्वा राज्ञा वङ्गेन धीमता।
घटोत्कचो महाराज क्रोधसंरक्तलोचनः॥ २८॥
उद्यतां तां महाशक्तिं तस्मिंश्चिक्षेप वारणे।
स तयाभिहतो राजंस्तेन बाहुप्रमुक्तया॥ २९॥
संजातरुधिरोत्पीडः पपात च ममार च।
पतत्यथ गजे चापि वङ्गानामीश्वरो बली॥ ३०॥
जवेन समभिद्रुत्य जगाम धरणीतलम्।
दुर्योधनोऽपि सम्प्रेक्ष्य पतितं वरवारणम्॥ ३१॥
प्रभग्नं च बलं दृष्ट्वा जगाम परमां व्यथाम्।

उसने अपने हाथी से आपके पुत्र के रथ का रास्ता रोक दिया। तब धीमान् बंगराज के द्वारा उसके मार्ग को रोका हुआ देखकर, हे महाराज! क्रोध से लाल आँखें किये घटोत्कच ने अपनी उठी हुई उस शक्ति को उस हाथी के ऊपर फेंक दिया। तब हे राजन्! उसके हाथ से छोड़ी हुई उस शक्ति से मारा हुआ वह हाथी खून बहाता हुआ गिर पड़ा और मर गया। हाथी के गिरने पर बंगदेश का बलवान् राजा शीघ्रता से कूदकर भूमि पर आ गया। दुर्योधन भी उस उत्तम हाथी को गिरा हुआ और सेना को छिन्नभिन्न देखकर बड़ा व्यथित हुआ।

संधाय च शितं बाणं कालाग्निसमतेजसम्॥ ३२॥
मुमोच परमक्रुद्धः, तस्मिन् घोरे निशाचरे।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य बाणमिन्द्राशनिप्रभम्॥ ३३॥
लाघवान्मोचयामास महात्मा वै घटोत्कचः।
भूयश्च विननादोग्रं क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ३४॥
त्रासयामास सैन्यानि युगान्ते जलदो यथा।
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तस्य भीमस्य रक्षसः॥ ३५॥
आचार्यमुपसङ्गम्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत्।

तब काल और अग्नि के समान तेजस्वी, एक तीखे बाण को धनुष पर चढ़ाकर, अत्यन्त क्रोध में भरकर, उसने उसे उस भयंकर निशाचर पर छोड़ दिया। इन्द्र के वज्र के समान उस बाण को आते हुए देखकर मनस्वी घटोत्कच ने फुर्ती से अपने को बचा लिया और फिर क्रोध से लाल आँखें कर, उसने सेना को भयभीत करते हुए पुनः जोर से गर्जना की, जैसे प्रलय के समय बादल करते हैं। उस भयंकर राक्षस की भयानक गर्जना को सुनकर शान्तनुपुत्र भीष्म ने द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा कि—

यथैष निनदो घोरः श्रूयते राक्षसेरितः॥ ३६॥
हैडिम्बो युध्यते नूनं राज्ञा दुर्योधनेन ह।
तत्र गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत॥ ३७॥
पितामहवचः श्रुत्वा त्वरामाणा महारथाः।
उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र कौरवः॥ ३८॥

राक्षस के द्वारा की हुई जो यह गर्जना सुनाई दे रही है, उससे जान पड़ता है कि निश्चय ही हिडिम्बा का पुत्र राजा दुर्योधन के साथ युद्ध कर रहा है। इसलिये आप वहाँ जाइये और राजा की रक्षा कीजिये। आपका कल्याण हो। पितामह की बात सुनकर बहुत सारे महारथीलोग तेजी से उस स्थान पर गये, जहाँ वह कुरुवंशी दुर्योधन विद्यमान था।

द्रोणश्च सोमदत्तश्च बाह्लीकोऽथ जयद्रथः।
कृपो भूरिश्रवाः शल्य आवन्त्यः सबृहद्बलः॥ ३९॥
अश्वत्थामा विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः।
रथाश्चानेकसाहस्रा ये तेषामनुयायिनः॥ ४०॥

अभिद्रुतं परीप्सन्तः पुत्रं दुर्योधनं तव।
ततः समभवद् युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्॥ ४१॥
राक्षसानां च मुख्यस्य दुर्योधनबलस्य च।

द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाह्लीक, जयद्रथ, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य, अवन्तीदेश के राजकुमार, बृहद्बल, अश्वत्थामा, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति और कई हजार उनके पीछे चलने वाले रथी, आपके पुत्र दुर्योधन को बचाने की इच्छा से वहाँ दौड़े। तब राक्षसों के मुखिया और दुर्योधन की सेना में तुमुल और लोमहर्षक युद्ध होने लगा।

धनुषां कूजतां शब्दः सर्वतस्तुमुलो रणे॥ ४२॥
अश्रूयत महाराज वंशानां दह्यतामिव।
अस्त्राणां पात्यमानानां कवचेषु शरीरिणाम्॥ ४३॥
शब्दः समभवद् राजन् गिरीणामिव भिद्यताम्।
वीरबाहुविसृष्टानां तोमराणां विशाम्पते॥ ४४॥
रूपमासीद् वियत्स्थानां सर्पाणामिव सर्पताम्।
ततः परमसंक्रुद्धो विस्फार्य सुमहद् धनुः॥ ४५॥
राक्षसेन्द्रो महाबाहुर्विनदन् भैरवं रवम्।
आचार्यस्यार्धचन्द्रेण क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम्॥ ४६॥
सोमदत्तस्य भल्लेन ध्वजं चोन्मथ्य चानदत्।

हे महाराज! उस समय युद्धस्थल में धनुषों की टंकारों का भयंकर शब्द, जलते हुए बाँसों के समान सबतरफ सुनाई देरहा था। शरीरधारियों के कवचों पर गिरते हुए अस्त्रों का शब्द, हे राजन्! ऐसे लग रहा था जैसे पहाड़ फट रहे हों। हे प्रजानाथ! वीरों के हाथों से छोड़े हुए और आकाशमार्ग से जाते हुए तोमरों का रूप उड़ते हुए सर्पो जैसा लगता था। तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर तथा अपने विशालधनुष को खींचकर, महाबाहु राक्षसराज ने भयानक आवाज में गर्जना करते हुए अर्धचन्द्र बाण से आचार्य के धनुष को काट दिया। फिर भल्ल से सोमदत्त के ध्वज को काटकर उसने गर्जना की।

बाह्लीकं च त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे॥ ४७॥
कृपमेकेन विव्याध चित्रसेनं त्रिभिः शरैः।
पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक् प्रणिहितेन च॥ ४८॥
जत्रुदेशे समासाद्य विकर्णं समताडयत्।
न्यषीदत् स्वरथोपस्थे शोहितेन परिप्लुतः॥ ४९॥
ततः पुनरमेयात्मा नाराचान् दश पञ्च च।
भूरिश्रवसि संक्रुद्धः प्राहिणोद् भरतर्षभ॥ ५०॥
ते वर्म भित्त्वा तस्याशु विविशुर्धरणीतलम्।
विविंशतेश्च द्रौणेश्च यन्तारौ समताडयत्॥ ५१॥
तौ पेततू रथोपस्थे रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम्।

उसने बाह्लीक की छाती को तीन बाणों से बींधा, कृपाचार्य को एक बाण से, चित्रसेन को तीन बाणों से बींध दिया। फिर उसने पूरीतरह से खींचे हुए धनुष से ठीकप्रकार से निशाना लगाकर विकर्ण की हँसली में प्रहार किया। इससे विकर्ण खून में भरकर रथ की बैठक में बैठ गया। फिर उस अमित आत्मा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हे भरत श्रेष्ठ! भूरिश्रवा पर पन्द्रह नाराच छोड़े। वे तुरन्त उनके कवच को छिन्नकर भूमि में धँस गये। फिर उसने अश्वत्थामा और विविंशति के सारथियों पर प्रहार किया, जिससे वे घोड़ों की लगाम छोड़कर रथ में ही गिर पड़े।

सिंधुराज्ञोऽर्धचन्द्रेण वाराहं स्वर्णभूषितम्॥ ५२॥
उन्ममाथ महाराज द्वितीयेनाच्छिनद् धनुः।
चतुर्भिरथ नाराचैरावन्त्यस्य महात्मनः॥ ५३॥
जघान चतुरो वाहान् क्रोधसंरक्तलोचनः।

हे राजन्! उसने सिन्धुराज जयद्रथ की वाराह के चिन्ह तो चिन्हित, स्वर्णभूषित ध्वजा अर्धचन्द्र बाणसे काट डाली और दूसरे बाण से उसके धनुष को छिन्न कर दिया। फिर क्रोध से लाल आँखें करके उसने चार नाराचों से मनस्वी अवन्तीकुमार के चारों घोड़ों को मार दिया।

पूर्णायतविसृष्टेन पीतेन निशितेन च॥ ५४॥
निर्बिभेद महाराज राजपुत्रं बृहद्बलम्।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्॥ ५५॥
भृशं क्रोधेन चाविष्टो रथस्थो राक्षसाधिपः।
चिक्षेप निशितांस्तीक्ष्णाञ्छरानाशीविषोपमान्।
बिभिदुस्ते महाराज शल्यं युद्धविशारदम्॥ ५६॥

हे महाराज! फिर उसने धनुष को पूरीतरह से खींचकर छोड़े हुए, पानीदार तीखे बाण से राजपुत्र बृहद्बल को बींध दिया। उस बाण से बहुत गहरायी तक चोट खाकर, व्यथित होकर वह रथ की बैठक में जा बैठा। हे महाराज! उधर वह राक्षसराज भी अत्यन्त क्रोध में भरकर रथ में बैठा था। रथ की बैठक में बैठे बैठे ही उसने बहुत से विषैले सर्पों के समान तीखे बाणों को छोड़ा, जिन्होंने युद्धविद्या के विशारद शल्य को घायल कर दिया।

छियालीसवाँ अध्याय : भीम आदि के द्वारा घटोत्कच की रक्षा।

संजय उवाच

विमुखीकृत्य सर्वांस्तु तान् तावकान् युधि राक्षसः।
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ दुर्योधनमुपाद्रवत्॥ १॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राजानं प्रति वेगितम्।
अभ्यधावज्जिघांसन्तस्तावका युद्धदुर्मदाः॥ २॥
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः।
तमेकमभ्यधावन्त नदन्तः सिंहसंघवत्॥ ३॥
अथैनं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवाकिरन्।
पर्वतं वारिधाराभिः शरदीव बलाहकाः॥ ४॥

हे भरतश्रेष्ठ! इसप्रकार वह राक्षस युद्ध में आपके सारे योद्धाओं को विमुख कर, मारने की इच्छा से दुर्योधन की तरफ दौड़ा। तब उसे तेजी से दुर्योधन की तरफ आते देखकर आपके भी युद्ध में दुर्मद्वीर उसे मारने की इच्छा से उसकी तरफ दौड़े। अपने चारहाथ के धनुषों को खींचते हुए और सिंहों के समान गर्जते हुए महान् रथियों ने उस अकेले पर आक्रमण किया। जैसे शरद् ऋतु में बादल पर्वत के ऊपर पानी की धाराएँ गिराते हैं, वैसे ही उन्होंने उसके ऊपर चारोंतरफ से बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

राक्षसस्य तु तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः॥ ५॥
उवाच भरतश्रेष्ठ भीमसेनमरिंदमम्।
युध्यते राक्षसो नूनं धार्तराष्ट्रैर्महारथैः॥ ६॥
यथास्य श्रूयते शब्दो नदतो भैरवं स्वनम्।
अतिभारं च पश्यामि तस्मिन् राक्षसपुङ्गवे॥ ७॥
पितामहश्च संक्रुद्धः पञ्चालान् हन्तुमुद्यतः।
तेषां च रक्षणार्थाय युध्यते फाल्गुनः परैः॥ ८॥
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कार्यद्वयमुपस्थितम्।
गच्छ रक्षस्व हैडिम्बं संशयं परमं गतम्॥ ९॥

तब राक्षस की गर्जना की उस ध्वनि को सुनकर, हे भरतश्रेष्ठ! राजा युधिष्ठिर ने शत्रुदमन भीम से यह कहा कि निश्चय ही राक्षस घटोत्कच दुर्योधन के महारथियों से युद्ध कर रहा है। जिस प्रकार की उसकी भयंकर आवाज सुनाई दे रही है, उससे यही जान पड़ता है। मैं उस राक्षसश्रेष्ठ पर बहुत बड़ा भार देख रहा हूँ। इधर पितामह भी अत्यन्त क्रोध में भरकर पांचालों का संहार करने के लिये तैयार हैं। उनकी रक्षा के लिये अर्जुन शत्रुओं से युद्ध कर रहे हैं। हे महाबाहु! यह जानकर कि हमारे ऊपर दो कार्य उपस्थित हैं, तुम अत्यन्त संशय में पड़े हुए हिडिम्बापुत्र की रक्षा करो।

भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणो वृकोदरः।
प्रययौ सिंहनादेन त्रासयन् सर्वपार्थिवान्॥ १०॥
वेगेन महता राजन् पर्वकाले यथोदधिः।
तमन्वगात् सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः॥ ११॥
अभिमन्युमुखाश्चैव द्रौपदेया महारथाः।
क्षत्रदेवश्च विक्रान्तः क्षत्रधर्मा तथैव च॥ १२॥
अनूपाधिपतिश्चैव नीलः स्वबलमास्थितः।
महता रथवंशेन हैडिम्बं पर्यवारयन्॥ १३॥

तब भाई की आज्ञा मानकर भीम अपने सिंहनाद से सारे राजाओं को भयभीत करते हुए शीघ्रता से उस तरफ चले। हे राजन्! जैसे समुद्र पूर्णिमा के दिन उमड़ता है, उसीप्रकार उनके साथ युद्धदुर्मद सत्यधृति सौचित्ति, अभिमन्यु, द्रौपदी के महारथी पुत्र, पराक्रमी क्षत्रदेव और क्षत्रवर्मा, अपनी सेना के साथ अनूपदेश के राजा नील इनसबने भी विशाल रथसेना के साथ हिडिम्बापुत्र को रक्षा के लिये घेर लिया।

कुञ्जरैश्च सदा मत्तैः षट्सहस्त्रैः प्रहारिभिः।
अभ्यरक्षन्त सहिता राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम्॥ १४॥
परिवृत्तं महाराज परित्यज्य घटोत्कचम्।
ततः प्रववृते युद्धं तत्र तेषां महात्मनाम्॥ १५॥
तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्तिनाम्।
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः॥ १६॥
अन्योन्यमभिधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे।
व्यतिषक्तं महारौद्रं युद्धं भीरुभयावहम्॥ १७॥
हया गजैः समाजग्मुः पादाता रथिभिः सह।

उन्होंने सदा मस्त रहनेवाले और प्रहार करनेवाले छैहजार हाथियों के साथ राक्षसराज घटोत्कच की रक्षा की। हे महाराज! तब सबतरफ से घिरे हुए घटोत्कच को छोड़कर, उन संग्राम में पीछे न हटनेवाले आपके और शत्रुओं के मनस्वी वीरों में परस्पर युद्ध होने लगा। तरह तरह के हथियारों का प्रयोग करते हुए वे महारथी एकदूसरे की तरफ दौड़ते हुए आक्रमण करने लगे। कायरों को भयभीत करनेवाला वह बड़ा

भयानक युद्ध चलने लगा। घुड़सवार हाथीसवारों के साथ और पैदल रथियों के साथ भिड़गये।

अन्योन्यं समरे राजन् प्रार्थयानाः समभ्ययुः॥ १८॥
सहसा चाभवत् तीव्रं संनिपातान्महद् रजः।
गजाश्वरथपत्तीनां पदनेमिसमुद्धतम्॥ १९॥
धूम्रारुणं रजस्तीव्रं रणभूमिं समावृणोत्।
नैव स्वे न परे राजन् समजानन् परस्परम्॥ २०॥

हे राजन्! वे एकदूसरे को चुनौती देते हुए लड़ रहे थे। उनके दौड़ने फिरने से, हाथी, घोड़े, पैदल और रथों के पहियों तथा पैरों की ठोकरों से अचानक ही बड़ेजोर से धूल उड़ने लगी। काले और लाल रंग की धूल तेजी से उस युद्धक्षेत्र में भर गयी। हे राजन्! उससमय युद्ध करते हुए अपने और शत्रुपक्ष के योद्धा एकदूसरे को पहचान नहीं पाते थे।

सैंतालीसवाँ अध्याय : दुर्योधन-भीम, अश्वत्थामा-राजानील के द्वन्द्वयुद्ध।

संजय उवाच

स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम्।
अभ्यधावत संक्रुद्धो भीमसेनमरिंदमम्॥ १॥
प्रगृह्य सुमहच्चापमिन्द्राशनिसमस्वनम्।
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत्॥ २॥
अर्धचन्द्रं च संधाय सुतीक्ष्णं लोमवाहिनम्।
भीमसेनस्य चिच्छेद चापं क्रोधसमन्वितः॥ ३॥
तदनन्तरं च सम्प्रेक्ष्य त्वरमाणो महारथः।
प्रसंदधे शितं बाणं गिरीणामपि दारणम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे राजन्! अपनी सेना के विनाश को देखकर अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ राजा दुर्योधन स्वयं शत्रुदमन भीम पर आक्रमण करने के लिये दौड़ा। उसने इन्द्र के वज्र के समान ध्वनि करनेवाले अत्यन्त विशाल धनुष को लेकर, महान् बाणवर्षा के द्वारा पाण्डुपुत्र को भर दिया। उसने अत्यन्त तीखें, पंखयुक्त अर्धचन्द्राकार बाण का सन्धान कर, उसके द्वारा, क्रोध में भरकर भीम के धनुष को काट दिया। फिर वही उचित समय समझ कर उस महारथी ने शीघ्रता करते हुए, पर्वत को भी विदीर्ण करनेवाले तीखे बाण का सन्धान किया।

तेनोरसि महाराज भीमसेनमताडयत्।
स गाढविद्धो व्यथितः सृक्किणी परिसंलिहन्॥ ५॥
समालम्बे तेजस्वी ध्वजं हेमपरिष्कृतम्।
तथा विमनसं दृष्ट्वा भीमसेनं घटोत्कचः॥ ६॥
क्रोधेनाभिप्रजज्वाल दिधक्षन्निव पावकः।
अभिमन्युमुखाश्चापि पाण्डवानां महारथाः॥ ७॥
समभ्यधावन् क्रोशन्तो राजानं जातसम्भ्रमाः।

हे महाराज! उस बाण से उसने भीम की छाती में प्रहार किया। उससे गहरी चोट खाकर, व्यथित होकर, अपने मुख के दोनों किनारों को चाटते हुए, उस तेजस्वी ने स्वर्णभूषित ध्वज का सहारा ले लिया। भीमसेन को इसप्रकार व्यथित देखकर घटोत्कच भस्म करती हुई अग्नि के समान क्रोध से जलने लगा। अभिमन्यु आदि पाण्डवों के महारथी भी क्रोध में भरकर राजा दुर्योधन को ललकारते हुए उसकीतरफ दौड़े।

सम्प्रेक्ष्यैतान् सम्पततः संक्रुद्धाञ्जातसम्भ्रमान्॥ ८॥
भारद्वाजोऽब्रवीद् वाक्यं तावकानां महारथान्।
क्षिप्रं गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत॥ ९॥
संशयं परमं प्राप्तं मज्जन्तं व्यसनार्णवे।
एते क्रुद्धा महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः॥ १०॥
भीमसेनं पुरस्कृत्य दुर्योधनमुपाद्रवन्।
नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो जये धृताः॥ ११॥
नदन्तो भैरवान् नादांस्त्रासयन्तश्च भूमिपान्।

तब उनसारे योद्धाओं को क्रोध में भरकर वेग पूर्वक आक्रमण करते हुए देखकर द्रोणाचार्य ने आपके महारथियों से कहा कि तुम्हारा कल्याण हो। तुम जल्दी जाओ और संकट के सागर में डूबते हुए तथा अत्यन्त संशय को प्राप्त राजा की रक्षा करो। पाण्डवों के महाधनुर्धर महारथी, क्रोध में भरकर, विजय का निश्चय कर, अनेकप्रकार के शस्त्रास्त्रों की वर्षा करते हुए, भयानक गर्जनाओं को करते हुए और राजाओं को डराते हुए, भीमसेन को आगेकर दुर्योधन पर आक्रमण कर रहे हैं।

तदाचार्यवचः श्रुत्वा सौमदत्तिपुरोगमाः॥ १२॥
तावकाः समवर्तन्त, पाण्डवानामनीकिनीम्।

कृपो भूरिश्रवाः शल्यो द्रोणपुत्रो विविंशतिः॥ १३॥
चित्रसेनो विकर्णश्च सैन्धवोऽथ बृहद्बलः।
आवन्त्यौ च महेष्वासौ कौरवं पर्यवारयन्॥ १४॥

अचार्य के उन वचनों को सुनकर भूरिश्रवा आदि आपके योद्धाओं ने पाण्डवों की सेना पर आक्रमण किया। कृपाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य, अश्वत्थामा, विविंशति, चित्रसेन और विकर्ण, जयद्रथ तथा बृहद्बल एवं महाधनुर्धर अवन्तीराजकुमार, उन्होंने दुर्योधन को सबतरफ से घेर लिया।

भारद्वाजस्ततो भीमं षड्विंशत्या समार्पयत्।
भूयश्चैनं महाबाहुः शरैः शीघ्रमवाकिरत्॥ १५॥
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः।
तं प्रत्यविध्यद् दशभिर्भीमसेनः शिलीमुखैः॥ १६॥
त्वरमाणो महेष्वासः सव्ये पार्श्वे महाबलः।
स गाढविद्धो व्यथितो वयोवृद्धश्च भारत॥ १७॥
प्रणष्टसंज्ञः सहसा रथोपस्थ उपाविशत्।
गुरुं प्रव्यथितं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम्॥ १८॥
द्रौणायनिश्च संक्रुद्धौ भीमसेनमभिद्रुतौ।

फिर द्रोणाचार्य ने भीम के छब्बीस बाण मारे और उस महाबाहु ने पर्वत पर वर्षाऋतु में बादलों के द्वारा जलधारा के समान शीघ्रता से उनके ऊपर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब महाबली, महाधनुर्धर भीम ने भी शीघ्रता करते हुए द्रोणाचार्य की बायीं पसली को दसबाणों से बींध दिया। हे भारत! उन बाणों की गहरी चोट खाकर वयोवृद्ध द्रोणाचार्य अचानक अचेत होकर रथ के पिछलेभाग में बैठ गये। गुरु को व्यथित देखकर, दुर्योधन स्वयं और अश्वत्थामा अत्यन्त क्रोध में भरकर भीमसेन की तरफ दौड़े।

तावापतन्तौ सम्प्रेक्ष्य कालान्तकयमोपमौ॥ १९॥
भीमसेनो महाबाहुर्गदामादाय सत्वरम्।
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं तस्थौ गिरिरिवाचलः॥ २०॥
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम्।
कौरवो द्रोणपुत्रश्च सहितावभ्यधावताम्॥ २१॥
तावापतन्तौ सहितौ त्वरितौ बलिनां वरौ।
अभ्यधावत वेगेन त्वरमाणो वृकोदरः॥ २२॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीमदर्शनम्।
समभ्यधावंस्त्वरिताः कौरवाणां महारथाः॥ २३॥

काल और सबका अन्त कर देनेवाली मृत्यु के समान उन दोनों को आक्रमण करता हुआ देखकर, महाबाहु भीम ने तुरन्त गदा उठाली और शीघ्रता से रथ से कूदकर पर्वत के समान अविचल भाव से खड़े हो गये। उन्हें शिखरवाले कैलाशपर्वत के समान गदा लेकर खड़े हुए देखकर दुर्योधन और अश्वत्थामा ने एकसाथ उन पर आक्रमण किया। तब बलवानों में उत्तम उन दोनों को शीघ्रता से आक्रमण करते हुए देखकर, भीमसेन भी वेगपूर्वक शीघ्रता करते हुए उनकीतरफ दौड़े। अत्यन्त क्रोध में भरे हुए और भयानक दिखाई देनेवाले तथा आक्रमण करनेवाले भीम को देखकर कौरवों के दूसरे महारथी भी तेजी से उसतरफ दौड़े।

सहिताः पाण्डवं सर्वे पीडयन्तः समन्ततः।
तं दृष्ट्वा संशयं प्राप्तं पीड्यमानं महारथम्॥ २४॥
अभिमन्युप्रभृतयः पाण्डवानां महारथाः।
अभ्यधावन् परीप्सन्तः प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान्॥ २५॥
अनूपाधिपतिः शूरो भीमस्य दयितः सखा।
नीलो नीलाम्बुदप्रख्यः संक्रुद्धो द्रौणिमभ्ययात्॥ २६॥
स्पर्धते हि महेष्वासो नित्यं द्रोणसुतेन सः।
स विस्फार्य महच्चापं द्रौणिं विव्याध पत्रिणा॥ २७॥

वेसारे एकसाथ चारोंतरफ से पाण्डुपुत्र को पीड़ित करने लगे। तब प्राणसंकट में पड़े हुए और पीड़ित होते हुए उस महारथी को देखकर अभिमन्यु आदि पाण्डवों के महारथी अपने सुदुस्त्यज प्राणों का मोह छोड़कर, उन्हें बचाने की इच्छा से दौड़कर आये। अनूपदेश के राजा शूरवीर नील ने, जो भीम का प्रिय मित्र और नीले बादलों के समान रूपवाला था, अत्यन्त क्रोध में भरकर अश्वत्थामा पर आक्रमण किया। वह महाधनुर्धर सदा द्रोणपुत्र के साथ स्पर्धा रखता था। उसने अपने विशाल धनुष को खींचकर अश्वत्थामा को एक पंखयुक्त बाण से बींध दिया।

तथा नीलेन निर्भिन्नः सुमुक्तेन पतत्त्रिणा।
संजातरुधिरोत्पीडो द्रौणिः क्रोधसमन्वितः॥ २८॥
स विस्फार्य धनुश्चित्रमिन्द्राशनिसमस्वनम्।
दध्रे नीलविनाशाय मतिं मतिमतां वरः॥ २९॥
ततः संधाय विमलान् भल्लान् कर्मारमार्जितान्।
जघान चतुरो वाहान् सारथिं ध्वजमेव च॥ ३०॥
सप्तमेन च भल्लेन नीलं विव्याध वक्षसि।

नीलद्वारा इसप्रकार अच्छीतरह से छोड़े हुए बाण से बिंधकर, क्रोध में भरा हुआ अश्वत्थामा खून की धारा बहाने लगा। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ उसने तब नील के विनाश का विचार किया और अपने इन्द्र के वज्र के समान ध्वनि करनेवाले विचित्र धनुष को खींचकर, उस पर लोहार के मांजे, जगमगाते हुए भल्लों को सन्धान कर उसके चारों घोड़ों और सारथी को मार दिया तथा उसके ध्वज को काट दिया और सातवें भल्ल से नील की छाती में प्रहार किया।

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्॥ ३१॥
मोहितं वीक्ष्य राजानं नीलमभ्रचयोपमम्।
घटोत्कचोऽभिसंक्रुद्धो ज्ञातिभिः परिवारितः॥ ३२॥
अभिदुद्राव वेगेन द्रौणिमाहवशोभिनम्।
तथेतरे चाभ्यधावन् राक्षसा युद्धदुर्मदाः॥ ३३॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसं घोरदर्शनम्।
अभ्यधावत तेजस्वी भारद्वाजात्मजस्त्वरन्॥ ३४॥

उससे अधिक घायल होकर राजानील रथ की बैठक में बैठ गया। तब नीले बादल के समान उस राजानील को अचेत हुआ देखकर, घटोत्कच ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, अपने साथियों से घिरे हुए, युद्ध में शोभित होनेवाले अश्वत्थामा पर आक्रमण किया और दूसरे युद्ध में दुर्मद राक्षस भी उसतरफ दौड़े। तब उस भयानक दिखाई देनेवाले राक्षस घटोत्कच को आक्रमण करते हुए देखकर तेजस्वी अश्वत्थामा ने भी शीघ्रता करते हुए उस पर आक्रमण कर दिया।

अड़तालीसवाँ अध्याय : भगदत्त का घटोत्कच, भीम और पाण्डवसेना के साथ भीषण युद्ध।

संजय उवाच

तस्मिन् महति संक्रन्दे राजा दुर्योधनस्तदा।
पराजयं राक्षसेन नामृष्यत परंतपः॥ १॥
गाङ्गेयमुपसंगम्य विनयेनाभिवाद्य च।
तस्य सर्वं यथावृत्तमाख्यातुमुपचक्रमे॥ २॥
घटोत्कचस्य विजयमात्मनश्च पराजयम्।
कथयामास दुर्धर्षो विनिःश्वस्य पुनः पुनः॥ ३॥

संजय ने कहा कि उस महान् युद्ध में शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाला राजा दुर्योधन राक्षस घटोत्कच से अपनी पराजय को सहन नहीं कर सका और गंगापुत्र भीष्म के पास जाकर, उन्हें विनयपूर्वक अभिवादन कर उसने घटोत्कच की विजय और अपनी पराजय का सारा वृत्तान्त क्रमपूर्वक सुनाया और फिर बार बार लम्बी साँस लेकर उस दुर्धर्ष ने कहा कि–

भवन्तं समुपाश्रित्य वासुदेवं यथा परैः।
पाण्डवैर्विग्रहो घोरः समारब्धो मया प्रभो॥ ४॥
एकादश समाख्याता अक्षौहिण्यश्च या मम।
निदेशे तव तिष्ठन्ति मया सार्धं परंतप॥ ५॥
सोऽहं भरतशार्दूल भीमसेनपुरोगमैः।
घटोत्कचं समाश्रित्य पाण्डवैर्युधि निर्जितः॥ ६॥
तन्मे दहति गात्राणि शुष्कवृक्षमिवानलः।
यदिच्छामि महाभाग त्वत्प्रसादात् परंतप॥ ७॥
राक्षसापसदं हन्तुं स्वयमेव पितामह।
त्वां समाश्रित्य दुर्धर्षं तन्मे कर्तुं त्वमर्हसि॥ ८॥

जैसे हमारे शत्रु पाण्डवों ने श्रीकृष्णा का सहारा लेकर घोर युद्ध आरम्भ किया हुआ है, वैसे ही हे प्रभो! मैंने भी आपका सहारा लिया हुआ है। हे परंतप! ये मेरी प्रसिद्ध ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ, मेरे साथ आपकी आज्ञा के आधीन विद्यमान हैं, फिर भी हे भरतवंशी सिंह! भीमसेन आदि पाण्डवों के द्वारा घटोत्कच का सहारा लेकर, युद्ध में मुझे जीत लिया गया। यह बात मेरे गात्रों को ऐसे जला रही है, जैसे सूखे वृक्ष को आग जलाती है। हे महाभाग! हे परंतप! मैं आपकी कृपा से, आपका सहारा लेकर, इस दुर्धर्ष और दुष्ट राक्षस को स्वयं मारना चाहता हूँ। आप मेरी इस इच्छा को पूरा कीजिये।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राज्ञो भरतसत्तम।
दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तवोऽब्रवीत्॥ ९॥
शृणु राजन् मम वचो यत् त्वां वक्ष्यामि कौरव।
यथा त्वया महाराज वर्तितव्यं परंतप॥ १०॥
आत्मा रक्ष्यो रणे तात सर्वावस्थास्वरिंदम।
धर्मराजेन संग्रामस्त्वया कार्यः सदानघ॥ ११॥

अर्जुनेन यमाभ्यां वा भीमसेनेन वा पुनः।
राजधर्मं पुरस्कृत्य राजा राजानमार्च्छति॥ १२॥

हे भरतश्रेष्ठ! यह सुनकर शान्तनुपुत्र भीष्म यह बोले कि हे परंतप, महाराज! जैसे तुम्हें व्यवहार करना चाहिये, उसके विषय में मैं जो तुमसे कहूँ, उसे हे कुरुवंशी राजन्! सुनो! हे शत्रुदमन तात! तुम्हें सभी अवस्थाओं में अपनी रक्षा करनी चाहिये। हे निष्पाप! तुम्हें युद्धस्थल में सदा युधिष्ठिर से ही युद्ध करना चाहिये! या फिर अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव से भी युद्ध करलेना चाहिये। राजधर्म का पालन करते हुए राजा राजा के साथ ही युद्ध करता है।

न तु कार्यस्त्वया राजन् हैडिम्बेन दुरात्मना।
अहं द्रोणः कृपो द्रौणिः कृतवर्मा च सात्वतः॥ १३॥
शल्यश्च सौमदत्तिश्च विकर्णश्च महारथः।
तव च भ्रातरः श्रेष्ठा दुःशासनपुरोगमाः॥ १४॥
त्वदर्थे प्रतियोत्स्यामो राक्षसं तं महाबलम्।
रौद्रे तस्मिन् राक्षसेन्द्रे यदि तेऽनुशयो महान्॥ १५॥
अयं वा गच्छतु रणे तस्य युद्धाय दुर्मतेः।
भगदत्तो महीपालः पुरन्दरसमो युधि॥ १६॥

हे राजन्! तुम्हें दुष्ट हिडिम्बापुत्र के साथ युद्ध नहीं करना चाहिये। मैं, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, यदुवंशी कृतवर्मा, शल्य, भूरिश्रवा, महारथी विकर्ण, दुश्शासन आदि तुम्हारे श्रेष्ठ भाई, तुम्हारे लिये उस महाबली राक्षस से युद्ध करेंगे। यदि उस भयंकर राक्षस पर तुम्हें बहुत क्रोध है तो युद्ध में इन्द्र के समान पराक्रमी यह राजा भगदत्त, उस दुर्मति से युद्ध करने के लिये युद्धक्षेत्र में जायें।

एतावदुक्त्वा राजानं भगदत्तमथाब्रवीत्।
समक्षं पार्थिवेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः॥ १७॥
गच्छ शीघ्रं महाराज हैडिम्बं युद्धदुर्मदम्।
वारयस्व रणे यत्तो मिषतां सर्वधन्विनाम्॥ १८॥
त्वं तस्य नृपशार्दूल प्रतियोद्धा महाहवे।
स्वबलेनोच्छ्रितो राजञ्जहि राक्षसपुङ्गवम्॥ १९॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भीष्मस्य पृतनापतेः।
प्रययौ सिंहनादेन परानभिमुखो द्रुतम्॥ २०॥

राजा दुर्योधन से यह कहकर वाक्यविशारद भीष्म ने राजा के सामने ही भगदत्त से यह कहा कि हे महाराज! आप जल्दी जाइये और सावधान होकर युद्ध में दुर्मद उस हिडिम्बापुत्र को सारे धनुर्धरों के सामने रोकिये। हे राजाओं में सिंह! राजन्! अपने बल से उत्कर्ष को प्राप्त केवल आपही इस महान् युद्ध में उसके प्रतियोद्धा हैं। आप उस राक्षसश्रेष्ठ को मार दीजिये। सेनापति भीष्म के ये वचन सुनकर भगदत्त सिंहनाद करते हुए शत्रुओं की तरफ शीघ्रता से चल दिये।

तमाद्रवन्तं सम्प्रेक्ष्य गर्जन्तमिव तोयदम्।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पाण्डवानां महारथाः॥ २१॥
भीमसेनोऽभिमन्युश्च राक्षसश्च घटोत्कचः।
द्रौपदेयाः सत्यधृतिः क्षत्रदेवश्च भारत॥ २२॥
चेदिपो वसुदानश्च दशार्णाधिपतिस्तथा।
सुप्रतीकेन तांश्चापि भगदत्तोऽप्युपाद्रवत्॥ २३॥
ततः समभवद् युद्धं घोररूपं भयानकम्।
पाण्डूनां भगदत्तेन यमराष्ट्रविवर्धनम्॥ २४॥

हे भारत! बादलों के समान गर्जते हुए भगदत्त को आक्रमण के लिये आते हुए, देखकर, अत्यन्त क्रोध में भरकर, पाण्डवों के महारथी भी भीमसेन, अभिमन्यु, राक्षस घटोत्कच, द्रौपदी के पुत्र, सत्यधृति, क्षत्रदेव, चेदिपति, वसुदान और दशार्णाधिपति उसका सामना करने के लिये आये। भगदत्त भी अपने सुप्रतीक नाम के हाथी पर चढ़कर उनके ऊपर टूट पड़ा और फिर पाण्डुपुत्रों का भगदत्त के साथ मृत्युलोक की वृद्धि करनेवाला घोर और भयंकर युद्ध होने लगा।

प्रयुक्ता रथिभिर्बाणा भीमवेगाः सुतेजनाः।
ते निपेतुर्महाराज नागेषु च रथेषु च॥ २५॥
प्रभिन्नाश्च महानागा विनीता हस्तिसादिभिः।
परस्परं समासाद्य संनिपेतुरभीतवत्॥ २६॥
मदान्धा रोषसंरब्धा विषाणाग्रैर्महाहवे।
बिभिदुर्दन्तमुसलैः समासाद्य परस्परम्॥ २७॥
हयाश्च चामरापीडाः प्रासपाणिभिरास्थिताः।
चोदिताः सादिभिः क्षिप्रं निपेतुरितरेतरम्॥ २८॥

हे महाराज! उस समय रथियों के द्वारा भयानक वेगवाले अत्यन्ततीखे बाणों का प्रयोग किया जा रहा था, जो हाथियों और रथों पर गिर रहे थे। विशाल गजराज, जो मद बहा रहे थे, हाथीसवारों के द्वारा प्रेरित होकर, निर्भयता के साथ एकदूसरे के पास पहुँचकर, उनसे भिड़ जाते थे। क्रोध में भरे हुए,

मदमें अन्धे वे हाथी अपने दाँतरूपी मूसलों से एक दूसरे से भिड़कर, उन्हें विदीर्ण करने लगे। इसी प्रकार चँवरयुक्त घोड़े, हाथ में प्रास लिये हुए घुड़सवारों के द्वारा संचालित होकर, उनकी प्रेरणा से तुरन्त ही एकदूसरे पर टूट पड़ते थे।

पादाताश्च पदात्योघैस्ताडिताः शक्तितोमरैः।
न्यपतन्त तदा भूमौ शतशोऽथ सहस्रशः॥ २९॥
रथिनश्च रथै राजन् कर्णिनालीकसायकैः।
निहत्य समरे वीरान् सिंहनादान् विनेदिरे॥ ३०॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे।
भगदत्तो महेष्वासो भीमसेनमथाद्रवत्॥ ३१॥
कुञ्जरेण प्रभिन्नेन सप्तधा स्रवता मदम्।
पर्वतेन यथा तोयं स्रवमाणेन सर्वशः॥ ३२॥

पैदलसैनिक, पैदलसैनिकसमूहों के द्वारा शक्ति और तोमरों की चोट खाकर, सैकड़ों और हजारों की संख्या में भूमि पर गिर रहे थे। रथीलोग रथों पर आरूढ होकर कर्णि और नालीक नाम के बाणों से युद्ध में वीरों को मारकर सिंह के समान गर्ज रहे थे। इसप्रकार उस लोमहर्षक संग्राम के चलते हुए, महाधनुर्धर भगदत्त ने भीमसेन पर आक्रमण किया। जैसे पर्वत से सबतरफ से झरने गिरते हैं, उसीप्रकार उससमय भगदत्त का हाथी अपने मस्तक से मद की सात धाराएँ गिरा रहा था।

स भीमं शरधाराभिस्ताडयामास पार्थिवः।
पर्वतं वारिधाराभिस्तपान्ते जलदो यथा॥ ३३॥
भीमसेनस्तु संक्रुद्धः पादरक्षान् परःशतान्।
निजघान महेष्वासः संरब्धः शरवृष्टिभिः॥ ३४॥
तान् दृष्ट्वा निहतान् क्रुद्धो भगदत्तः प्रतापवान्।
चोदयामास नागेन्द्रं भीमसेनरथं प्रति॥ ३५॥
स नागः प्रेषितस्तेन बाणो ज्याचोदितो यथा।
अभ्यधावत वेगेन भीमसेनमरिंदमम्॥ ३६॥

जैसे ग्रीष्मऋतु के अन्त में बादल पर्वत पर जल की बूँदें बरसाते हैं, वैसे ही उस राजा ने अपनी बाणवर्षा से भीम को आच्छादित कर दिया। तब अत्यन्तक्रुद्ध होकर, बाणवर्षा के द्वारा, महाधनुर्धर भीम ने भगदत्त के हाथी के पादरक्षक सैकड़ों सैनिकों को मार गिराया। उन्हें मारा हुआ देख प्रतापी भगदत्त ने क्रोध में भरकर अपने गजराज को भीमसेन के रथ की तरफ बढ़ाया। जैसे प्रत्यंचा से छूटकर बाण जाता है, वैसे ही प्रेरणा पाकर, वह हाथी भी तेजी से शत्रुदमन भीम की तरफ दौड़ा।

तमापतन्तं संप्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथाः।
अभ्यवर्तन्त वेगेन भीमसेनपुरोगमाः॥ ३७॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्व्यरोचत महाद्विपः।
संजातरुधिरोत्पीडो धातुचित्र इवाद्रिराट्॥ ३८॥
दशार्णाधिपतिश्चापि गजं भूमिधरोपमम्।
समास्थितोऽभिदुद्राव भगदत्तस्य वारणम्॥ ३९॥
तमापतन्तं समरे गजं गजपतिः स च।
दधार सुप्रतीकोऽपि वेलेव मकरालयम्॥ ४०॥

उसे आता हुआ देखकर, भीमसेन आदि पाण्डवों के महारथी शीघ्रता से उसे घेरकर खड़े हो गये। तब बहुतसारे बाणों से घायल होकर, वह महान् हाथी, खून से लथपथ होकर, विभिन्न धातुओं के रंग से रँगे हुए पर्वतराज के समान दिखाई देने लगा। दशार्णदेश का राजा भी एक विशाल पर्वतकार हाथी पर सवार होकर भगदत्त के हाथी की तरफ दौड़ा। तब युद्धस्थल में आते हुए उस हाथी को गजराज सुप्रतीक ने ऐसे रोक दिया, जैसे किनारा सागर की लहरों को रोक देता है।

ततः प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरान् वै चतुर्दश।
प्राहिणोत् तस्य नागस्य प्रमुखे नृपसत्तम॥ ४१॥
वर्म मुख्यं तनुत्राणं शातकुम्भपरिष्कृतम्।
विदार्य प्राविशन् क्षिप्रं वल्मीकमिव पन्नगाः॥ ४२॥
स गाढविद्धो व्यथितो नागो भरतसत्तम।
उपावृत्तमदः क्षिप्रमभ्यवर्तत वेगितः॥ ४३॥
स प्रदुद्राव वेगेन प्रणदन् भैरवं रवम्।
सम्मर्दयानः स्वबलं वायुर्वृक्षानिवौजसा॥ ४४॥

हे नृपश्रेष्ठ! तब प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त ने उस हाथी को सामने से चौदह तोमर मारे। हे भरतश्रेष्ठ! उनके द्वारा गहरी चोट खाकर और व्यथित होकर, दशार्णनरेश के हाथी का मद उतर गया और वह तेजी से पीछे मुड़कर लौट पड़ा। जैसे वायु अपने जोर से वृक्षों को उखाड़ देती है, वैसे ही वह भयानकरूप से चिंघाड़ता हुआ, और अपने ही सैनिकों को कुचलता हुआ तेजी से भाग निकला।

तस्मिन् पराजिते नागे पाण्डवानां महारथाः।
ततो भीमं पुरस्कृत्य भगदत्तमुपाद्रवन्॥ ४५॥
किरन्तो विविधान् बाणाञ्शस्त्राणि विविधानि च।

तेषामापततां राजन् संक्रुद्धानाममर्षिणाम्॥ ४६॥
श्रुत्वा स निनदं घोरममर्षाद् गतसाध्वसः।
भगदत्तो महेष्वासः स्वनागं प्रत्यचोदयत्॥ ४७॥
रथसंघांस्तथा नागान् हयांश्च हयसादिभिः।
पादातांश्च सुसंक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४८॥
अमृद्गात् समरे नागः सम्प्रधावंस्ततस्ततः।

तब उस हाथी के पराजित हो जाने पर, पाण्डवों के महारथी भीम को आगेकर, विविधप्रकार के शस्त्रास्त्रों और बाणों की वर्षा करते हुए भगदत्त पर टूट पड़े। हे राजन्! आक्रमण करते हुए, अमर्षशील तथा अत्यन्तक्रोध में भरे हुए उनके घोर गर्जन को सुनकर, महाधनुर्धर भगदत्त ने अमर्ष में भरकर निर्भयता के साथ अपने हाथी को उनकी तरफ बढ़ा दिया। तब उस अत्यन्तक्रुद्ध हाथी ने युद्धस्थल में पाण्डव सेना के रथों, हाथियों, घुड़सवारोंसहित घोड़ों और सैकड़ों हजारों पैदलों को इधरउधर दौड़ते हुए कुचल दिया।

भग्नं तु स्वबलं दृष्ट्वा भगदत्तेन धीमता॥ ४९॥
घटोत्कचोऽथ संक्रुद्धो भगदत्तमुपाद्रवत्।
जग्राह विमलं शूलं गिरीणामपि दारणम्॥ ५०॥
नागं जिघांसुः सहसा चिक्षेप च महाबलः।
तमापतन्तं सहसा दृष्ट्वा प्राग्ज्योतिषो नृपः॥ ५१॥
चिक्षेप रुचिरं तीक्ष्णमर्धचन्द्रं सुदारुणम्।
चिच्छेद तन्महच्छूलं तेन बाणेन वेगवान्॥ ५२॥

धीमान् भगदत्त के द्वारा अपनी सेनाओं को भागता हुआ देखकर घटोत्कच ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर भगदत्त पर आक्रमण किया। उस महाबली ने पर्वत को भी विदीर्ण करनेवाला एक जगमगाता हुआ शूल उठाया और उस हाथी को मारने की इच्छा से उसके ऊपर फेंक दिया। उसे आते हुए देखकर प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त ने एक सुन्दर, तीखे और अत्यन्त दारुण अर्धचन्द्राकार बाण को चलाया और उस बाण से वेगवान् राजा ने उस महान् शूल को काट दिया।

रुक्मदण्डां महाशक्तिं जग्राहाग्निशिखोपमाम्।
चिक्षेप तां राक्षसस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ५३॥
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य वियत्स्थामशनीमिव।
उत्पत्य राक्षसस्तूर्णं जग्राह च ननाद च॥ ५४॥
बभञ्ज चैनां त्वरितो जानुन्यारोप्य भारत।
पश्यतः पार्थिवेन्द्रस्य तदद्भुतमिवाभवत्॥ ५५॥
पाण्डवाश्च महाराज भीमसेनपुरोगमाः।
साधु साध्विति नादेन पृथिवीमन्वनादयन्॥ ५६॥

फिर उसने सुनहरे डण्डेवाली, अग्निशिखा के समान एक विशाल शक्ति को लिया और ठहर, ठहर ऐसा कहते हुए उसे राक्षस पर चला दिया। आकाश में विद्युत् के समान उसे आते हुए देखकर, राक्षस घटोत्कच ने शीघ्रता से उसे पकड़ लिया और जोर से सिंहनाद किया। हे भारत! फिर उसने राजा भगदत्त के देखते हुए उसे घुटनों से लगाकर तोड़ दिया। यह एक आश्चर्य जनक बात थी। तब हे महाराज! भीम आदि पाण्डवों ने साधु, साधु कहते हुए पृथिवी को गुंजा दिया।

तं तु श्रुत्वा महानादं प्रहृष्टानां महात्मनाम्।
नामृष्यत महेष्वासो भगदत्तः प्रतापवान्॥ ५७॥
स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम्।
तर्जयामास वेगेन पाण्डवानां महारथान्॥ ५८॥
विसृजन् विमलांस्तीक्ष्णान् नाराचाञ्ज्वलनप्रभान्।
भीममेकेन विव्याध राक्षसं नवभिः शरैः॥ ५९॥
अभिमन्युं त्रिभिश्चैव केकयान् पञ्चभिस्तथा।
द्रौपदेयांस्ततः पञ्च पञ्चभिः समताडयत्॥ ६०॥
भीमसेनस्य च क्रोधान्निजघान तुरङ्गमान्।

प्रसन्न हुए मनस्वी पाण्डवों के उस महान् सिंहनाद को महाधनुर्धर और प्रतापी भगदत्त सहन नहीं कर सका। फिर इन्द्र के वज्र के समान जगमगाते हुए अपने विशाल धनुष को खींचकर, पाण्डवों के महारथियों को जोर से धमकाते हुए, अग्नि के समान प्रभावाले, निर्मल, तीखे नाराचों को छोड़ते हुए उसने एक बाण से भीम को और नौ बाणों से राक्षस घटोत्कच को बींध दिया। उसने अभिमन्यु को तीन बाणों से, पाँच केकयकुमारों को पाँच पाँच बाणों से और द्रौपदी के पुत्रों को भी पाँच पाँच बाणों से बींध दिया तथा क्रोधपूर्वक भीम के घोड़ों को मार दिया।

ध्वजं केसरिणं चास्य चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः॥ ६१॥
निर्बिभेद त्रिभिश्चान्यैः सारथिं चास्य पत्रिभिः।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्॥ ६२॥
विशोको भरतश्रेष्ठ भगदत्तेन संयुगे।
ततो भीमो महाबाहुर्विरथो रथिनां वरः॥ ६३॥
गदां प्रगृह्य वेगेन प्रचस्कन्द रथोत्तमात्।

फिर उसने भीम के सिंह से चिन्हित ध्वज को तीन बाणों से काट दिया और तीन दूसरे पंखवाले बाणों से सारथी को घायल कर दिया। हे भरत श्रेष्ठ! उसका सारथी विशोक तब गहरी चोट खाकर और व्यथित होकर रथ की बैठक में बैठ गया। तब रथियों में श्रेष्ठ, महाबाहु भीम रथरहित हो जाने पर गदा को लेकर फुर्ती से उस उत्तम रथ मे कूद पड़ा।

एतस्मिन्नेव काले तु पाण्डवः कृष्णसारथिः॥ ६४॥
आजगाम महाराज निघ्नञ्शत्रून् समन्ततः।
यत्र तौ पुरुषव्याघ्रौ पितापुत्रौ महाबलौ॥ ६५॥
प्राग्ज्योतिषेण संयुक्तौ भीमसेनघटोत्कचौ।
दृष्ट्वा च पाण्डवो भ्रातॄन् युध्यमानान् महारथान्॥ ६६॥
त्वरितो भरतश्रेष्ठ तत्रायुध्यत् किरञ्छरान्।

इसीसमय हे महाराज! कृष्ण जिनके सारथी थे, वे अर्जुन शत्रुओं को सबतरफ से मारते हुए, वहाँ आ पहुँचे, जहाँ वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ, पितापुत्र भीमसेन और घटोत्कच प्राग्ज्योतिषपुर के राजा के साथ युद्ध कर रहे थे। हे भरतश्रेष्ठ! वहाँ अपने महारथी भाइयों को युद्ध करते हुए देखकर, वे पाण्डुपुत्र भी शीघ्रता से बाणों को छोड़ते हुए युद्ध करने लगे।

ततो दुर्योधनो राजा त्वरमाणो महारथः॥ ६७॥
सेनामचोदयत् क्षिप्रं रथनागाश्वसंकुलाम्।
तामापतन्तीं सहसा कौरवाणां महाचमूम्॥ ६८॥
अभिदुद्राव वेगेन पाण्डवः श्वेतवाहनः।
भीमसेनोऽपि समरे तावुभौ केशवार्जुनौ।
अश्रावयद् यथावृत्तमिरावद्वधमुत्तमम्॥ ६९॥

तब महारथी राजा दुर्योधन ने शीघ्रता करते हुए हाथी, रथ और घोड़ों मे भरी हुई सेना को जल्दी से वहाँ जाने का आदेश दिया। तब उस सहसा आक्रमण करती हुई कौरवों की विशाल सेना को देखकर, श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुन तेजी से उसकीतरफ दौड़े। तब भीमसेन ने भी युद्धस्थल में श्रीकृष्ण और अर्जुन को इरावान् के वध का सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

उनंचासवाँ अध्याय : इरावान् के वध से अर्जुन का शोक। भीम द्वारा धृतराष्ट्र के नौ पुत्रों का वध। अभिमन्यु अम्बष्ठ युद्ध।

संजय उवाच
पुत्रं विनिहतं श्रुत्वा इरावन्तं धनंजयः।
दुःखेन महताऽऽविष्टो निःश्वसन् पन्नगो यथा॥ १॥
अब्रवीत् समरे राजन् वासुदेवमिदं वचः।
इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान् पुरा॥ २॥
कुरूणां पाण्डवानां च क्षयं घोरं महामतिः।
स ततो निवारितवान् धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्॥ ३॥
अन्ये च बहवो वीराः संग्रामे मधुसूदन।
निहताः कौरवैः संख्ये तथास्माभिश्च कौरवाः॥ ४॥

संजय ने कहा कि अपने पुत्र इरावान् को मारा गया सुनकर अर्जुन बहुत दुख में भरकर, साँप के समान लम्बी साँस लेते हुए, हे राजन्! श्रीकृष्ण जी से यह बोले कि वास्तव में महाप्राज्ञ विदुर ने यह बात पहले ही समझ ली थी। उन्होंने कौरवों और पाण्डवों के महान् विनाश को जान लिया था और इसलिये राजा धृतराष्ट्र को मना किया था। हे श्रीकृष्ण! कौरवों ने दूसरे भी बहुत से वीरों को संग्राम में मारा है और हमने भी कौरवों का संहार किया है।

अर्थहेतोर्नरश्रेष्ठ क्रियते कर्म कुत्सितम्।
धिगर्थान् यत्कृते ह्येवं क्रियते ज्ञातिसंक्षयः॥ ५॥
अधनस्य मृतं श्रेयो न च ज्ञातिवधाद् धनम्।
किं नु प्राप्स्यामहे कृष्ण हत्वा ज्ञातीन् समागतान्॥ ६॥
दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च।
क्षत्रिया निधनं यान्ति कर्णदुर्मन्त्रितेन च॥ ७॥
इदानीं च विजानामि सुकृतं मधुसूदन।
कृतं राज्ञा महाबाहो याचता च सुयोधनम्॥ ८॥

हे नरश्रेष्ठ! यह धन के लिये महान् निन्दनीय कार्य किया जा रहा है। इस धन को धिक्कार है, जिसके लिये इन जातिभाइयों का विनाश हो रहा है। निर्धन रहते हुए मर जाना अच्छा है, पर जातिभाइयों का वध करके धन प्राप्त करना अच्छा नहीं है। हे कृष्ण! हम जातिभाइयों को मार कर क्या प्राप्त कर लेंगे? दुर्योधन के अपराध से और सुबलपुत्र, शकुनि तथा कर्ण की दुर्मन्त्रणा से ये क्षत्रिय मारे जा रहे हैं। हे महाबाहु! मधुसूदन! अब मैं समझ रहा हूँ कि राजा युधिष्ठिर ने दुर्योधन से जो याचना की थी, वह उत्तम कार्य था।

दृष्ट्वा हि क्षत्रियाञ्शूराञ्शयानान् धरणीतले।
निन्दामि भृशमात्मानं धिगस्तु क्षत्रजीविकाम्॥ ९॥
अशक्तमिति माममेते ज्ञास्यन्ते क्षत्रिया रणे।
युद्धं तु मे न रुचितं ज्ञातिभिर्मधुसूदन॥ १०॥
संचोदय हयाञ्शीघ्रं धार्तराष्ट्रचमूं प्रति।
प्रतरिष्ये महापारं भुजाभ्यां समरोदधिम्॥ ११॥
नायं यापयितुं कालो विद्यते माधव क्वचित्।
एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः परवीरहा॥ १२॥
चोदयामास तानश्वान् पाण्डुरान् वातरंहसः।

इन क्षत्रिय शूरवीरों को भूमि पर सोते हुए देखकर मैं अपने आपकी अत्यन्त निन्दा करता हूँ। क्षत्रियों की जीविका को धिक्कार है। हे मधुसूदन! मुझे जाति भाइयों के साथ युद्ध करना अच्छा नहीं लगता, पर युद्ध न करने पर ये क्षत्रिय मुझे शक्तिहीन समझेंगे। अब आप दुर्योधन की सेना की तरफ रथ को जल्दी से ले चलिये। मैं इस अपार समररूपी सागर को अपनी भुजाओं के द्वारा पार करूँगा। यह समय को नष्ट करने का अवसर नहीं है। अर्जुन के द्वारा ऐसा कहे जाने पर, शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले श्रीकृष्ण! ने वायु के समान वेगवान् उन श्वेत घोड़ों को आगे बढ़ाया।

अथ शब्दो महानासीत् तव सैन्यस्य भारत॥ १३॥
मारुतोद्धतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि।
अपराह्ले महाराज संग्रामः समपद्यत॥ १४॥
पर्जन्यसमनिर्घोषो भीष्मस्य सह पाण्डवैः।
ततः शान्तनवो भीष्मः कृपश्च रथिनां वरः॥ १५॥
भगदत्तः सुशर्मा च धनंजयमुपाद्रवन्।
हार्दिक्यो बाह्लिकश्चैव सात्यकिं समभिद्रुतौ॥ १६॥
अम्बष्ठकस्तु नृपतिरभिमन्युमवस्थितः।
शेषास्त्वन्ये महाराज शेषानेव महारथान्॥ १७॥
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम्।

हे भारत! जैसे पूर्णिमा के दिन वायु के वेग से उमड़ते हुए सागर में ध्वनि होती है, वैसे ही अपनी सेना में भी तब महान् कोलाहल सुनाई देने लगा। हे महाराज! अपरान्हकाल में भीष्म का पाण्डवों के साथ संग्राम होने लगा, जिसमें बादलों की गर्जना के समान गम्भीर घोष हो रहा था। फिर शान्तनुपुत्र भीष्म, रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य, भगदत्त और सुशर्मा ने अर्जुन पर आक्रमण किया। कृतवर्मा और बाल्हीक ने सात्यकि पर आक्रमण किया। राजा अम्बष्ठ ने अभिमन्यु का सामना किया। हे महाराज! शेष दूसरे महारथियों ने शत्रुपक्ष के दूसरे शेष महारथियों पर आक्रमण किया और फिर भय को उत्पन्न करने वाला घोर युद्ध आरम्भ हो गया।

भीमसेनस्तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रांस्तव जनेश्वर॥ १८॥
प्रजज्वाल रणे क्रुद्धो हविषा हव्यवाडिव।
पुत्रास्तु तव कौन्तेयं छादयाञ्चक्रिरे शरैः॥ १९॥
प्रावृषीव महाराज जलदा इव पर्वतम्।
स च्छाद्यमानो बहुधा पुत्रैस्तव विशाम्पते॥ २०॥
सृक्किणी संलिहन् वीरः शार्दूल इव दर्पितः।
व्यूढोरस्कं ततो भीमः पातयामास भारत॥ २१॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन सोऽभवद् गतजीवितः।
अपरेण तु भल्लेन पीतेन निशितेन तु॥ २२॥
अपातयत् कुण्डलिनं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा।

हे जनेश्वर! भीमसेन तब आपके पुत्रों को युद्धक्षेत्र में देखकर आहुति पड़ने पर अग्नि के समान क्रोध से भड़क उठे। हे महाराज! आपके पुत्रों ने कुन्तीपुत्र को बाणवर्षा से ऐसे ढक दिया, जैसे वर्षाऋतु में बादल पर्वत को ढक लेते हैं। हे प्रजानाथ! सिंह के समान दर्प से युक्त वीर भीम ने तब बार बार बाणों से आच्छादित होने पर अपने मुख के दोनों कोनों को चाटते हुए एक अत्यन्त तीखे क्षुरप्र से व्यूढोरस्क को गिरा दिया। वह निष्प्राण हो गया। फिर जैसे सिंह छोटे से मृग को गिरा दे, वैसे ही दूसरे पानीदार तीखे भल्ल से उसने कुण्डली को मार गिराया।

ततः सुनिशितान् पीतान् समादत्त शिलीमुखान्॥ २३॥
ससर्ज त्वरया युक्तः पुत्रांस्ते प्राप्य मारिष।
प्रेषिता भीमसेनेन शरास्ते दृढधन्वना॥ २४॥
अपातयन्त पुत्रांस्ते रथेभ्यः सुमहारथान्।
अनाधृष्टिं कुण्डभेदिं वैराटं दीर्घलोचनम्॥ २५॥
दीर्घबाहुं सुबाहुं च तथैव कनकध्वजम्।
ततः प्रदुद्रुवुः शेषास्तव पुत्रा महाहवे॥ २६॥
तं कालमिव मन्यन्तो भीमसेनं महाबलम्।

हे मान्यवर! इसके पश्चात् उसने अत्यन्ततीखे और पानीदार बहुत से बाणों को लेकर शीघ्रता से उन्हें आपके पुत्रों को निशाना बनाकर छोड़ दिया। उस दृढ़ धनुर्धर भीम के द्वारा छोड़े हुए उन बाणों ने आपके बहुत से अच्छे महारथी पुत्रों को रथों से

मारकर गिरा दिया। उन पुत्रों के नाम हैं– अनाधृष्टि, कुण्डभेदि, वैराट, दीर्घ लोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु और कनकध्वज। तब महाबलीभीमसेन को उस महान् युद्ध में मृत्यु के समान मानते हुए आपके शेषपुत्र वहाँ से भाग गये।

द्रोणस्तु समरे वीरं निर्दहन्तं सुतांस्तव॥ २७॥
यथाद्रिं वारिधाराभिः समन्ताद् व्यकिरच्छरैः।
यथा गोवृषभो वर्षं संधारयति खात् पतत्॥ २८॥
भीमस्तथा द्रोणमुक्तं शरवर्षमदीधरत्।
गाङ्गेयो भगदत्तश्च गौतमश्च महारथाः॥ २९॥
पाण्डवं रभसं युद्धे वारयामासुरर्जुनम्।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां सोऽतिरथो रणे॥ ३०॥
प्रवीरांस्तव सैन्येषु प्रेषयामास मृत्यवे।
अभिमन्युस्तु राजानमम्बष्ठं लोकविश्रुतम्॥ ३१॥
विरथं रथिनां श्रेष्ठं, वारयामास सायकैः।

तब द्रोणाचार्य ने युद्ध में आपके पुत्रों को दग्ध करते हुए उस वीर को पर्वत को जलधाराओं के समान सबतरफ से बाणवर्षा द्वारा आच्छादित कर दिया। पर जैसे साँड आकाश से गिरती हुई वर्षा की बूँदों को धारण करता है, उसीप्रकार भीम ने भी द्रोणाचार्य की बाणवर्षा को अपने ऊपर धारण किया। उधर गंगापुत्र, भगदत्त और कृपाचार्य ये महारथी, वेग से आगे बढ़नेवाले अर्जुन को युद्ध में रोक रहे थे। किन्तु उस अतिरथी अर्जुन ने सबके अस्त्रों का निवारण कर, युद्ध में आपकी सेना के प्रमुख वीरों को मृत्युलोक में भेज दिया। अभिमन्यु ने लोकप्रसिद्ध, रथियों में श्रेष्ठ, राजा अम्बष्ठ को अपने बाणों से रथहीन करके आगे बढ़ने से रोक दिया।

विरथो वध्यमानस्तु सौभद्रेण यशस्विना॥ ३२॥
अवप्लुत्य रथात् तूर्णमम्बष्ठो वसुधाधिपः।
असिं चिक्षेप समरे सौभद्रस्य महात्मनः॥ ३३॥
आरुरोह रथं चैव हार्दिक्यस्य महाबलः।
आपतन्तं तु निस्त्रिंशं युद्धमार्गविशारदः॥ ३४॥
लाघवाद् व्यंसयामास सौभद्रः परवीरहा।
धृष्टद्युम्नमुखास्त्वन्ये तव सैन्यमयोधयन्॥ ३५॥
तथैव तावकाः सर्वे पाण्डुसैन्यमयोधयन्।

यशस्वी सुभद्रापुत्र के द्वारा रथहीन तथा पीड़ित किया हुआ महाबलवान् राजा अम्बष्ठ तुरन्त रथ से कूदकर कृतवर्मा के रथ पर जा चढ़ा और उसने युद्धस्थल में मनस्वी अभिमन्यु के ऊपर एक तलवार को फेंका। तब उस अपनीतरफ आती हुई तलवार को युद्ध की रीतियों में चतुर, शत्रु के वीरों को नष्ट करनेवाले अभिमन्यु ने फुर्ती से निष्फल कर दिया। फिर धृष्टद्युम्न आदि दूसरे महारथी आपकी सेना से युद्ध करने लगे और इसीप्रकार आपके सारे महारथी भी पाण्डवों के साथ युद्ध करने लगे।

तत्राक्रन्दो महानासीत् तव तेषां च भारत॥ ३६॥
निघ्नतां दृढमन्योन्यं, कुर्वतां कर्म दुष्करम्।
रणे चारूणि चापानि हेमपृष्ठानि मारिष॥ ३७॥
हतानामपविद्धानि कलापाश्च महाधनाः।
जातरूपमयैः पुङ्खै राजतैर्निशिताः शराः॥ ३८॥
तैलधौता व्यराजन्त निर्मुक्तभुजगोपमाः।
हस्तिदन्तत्सरून् खड्गाञ्जातरूपपरिष्कृतान्॥ ३९॥
चर्माणि चापविद्धानि रुक्मचित्राणि धन्विनाम्।

हे भारत! उससमय दृढ़ता के साथ एकदूसरे को मारते हुए और दुष्कर कर्म करते हुए आपके और उनके सैनिकों में भयंकर मारकाट मची हुई थी। हे मान्यवर! उस युद्धक्षेत्र में मारे हुए वीरों के सुन्दर धनुष, जिनकी पीठ पर सोना लगा हुआ था और बहुमूल्य तरकस जहाँतहाँ पड़े हुए थे। वहाँ पड़े हुए सोने और चान्दी के रंगवाले पंखों से भूषित, तीखे, तेल से धोये बाण ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों केंचुली छोड़कर निकले हुए साँप हों। हमने वहाँ धनुर्धरवीरों की पड़ी हुई, हाथीदाँत की मूठवाली और यथास्थान स्वर्णभूषित तलवारें और ढालें जो स्वर्णजटित होने के कारण चित्र विचित्र थीं, पड़ी हुई देखीं।

सुवर्णविकृतप्रासान् पट्टिशान् हेमभूषितान्॥ ४०॥
जातरूपमयाश्चर्ष्टीः शक्तीश्च कनकोज्ज्वलाः।
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य पतिता नराः॥ ४१॥
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वा महारथाः।
गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलै- र्भिन्नमस्तकाः॥ ४२॥
गजवाजिरथक्षुण्णाः शेरते स्म नराः क्षितौ।
तथैवाश्वनृनागानां शरीरैर्विबभौ तदा॥ ४३॥
संछन्ना वसुधा राजन् पर्वतैरिव सर्वशः।

वहाँ स्वर्णभूषित प्रास, पट्टिश और जगमगाती हुई शक्तियाँ, जहाँतहाँ पड़े हुए थे। अनेकप्रकार

के शस्त्रों को हाथ में पकड़े हुए और भूमि पर गिरे हुए प्राणहीन महारथी ऐसे दिखाई दे रहे थे, मानों अभी जीवित हों। किन्ही के गात्र गदा से तोड़ दिये गये थे, किन्ही के सिर मूसलों से फोड़ दिये गये थे। कितने ही मनुष्य हाथी, रथ और घोड़ों से कुचल दिये गये थे। ये सब वहाँ प्राणहीन होकर सो रहे थे। हे राजन्! इसप्रकार घोड़ों, मनुष्यों और हाथियों के शरीरों से ढकी हुई भूमि ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानों उसे पर्वतों से ढक दिया गया हो।

विशब्दैरल्पशब्दैश्च शोणितौघपरिप्लुतैः॥ ४४॥
गतासुभिरमित्रघ्न विबभौ निचिता मही।
रथैश्च सर्वतो भग्नैः किङ्किणीजालभूषितैः॥ ४५॥
वाजिभिश्च हतैर्बाणैः स्रस्तजिह्वैः सशोणितैः।
अनुकर्षैः पताकाभिरुपासङ्गैर्ध्वजैरपि॥ ४६॥
प्रवीराणां महाशङ्खैर्विप्रकीर्णैश्च पाण्डुरैः।

हे शत्रुओं का नाश करनेवाले! वहाँ पड़े हुए कुछ लोग ऐसे थे, जो बिल्कुल शब्दरहित थे, कुछ से बहुत कम बोला जारहा था और कुछ बिल्कुल निष्प्राण हो गये थे। ये सारे खून में लथपथ थे। इनसे सारी भूमि अटी पड़ी थी। वहाँ सबतरफ छोटी घंटियों की जालियों से सुशोभित रथ टूटे हुए पड़े थे। बाणों से मारे गये घोड़े, जो खून से लथपथ थे, जीभ निकाले हुए पड़े थे। अनुकर्ष, पताका उपासंग, ध्वज तथा बड़े बड़े वीरों के श्वेत रंग के विशाल शंख वहाँ बिखरे हुए पड़े थे।

उष्णीषैश्च तथा चित्रैर्विप्रविद्धैस्ततस्ततः॥ ४७॥
विचित्रैर्बाणवर्षैश्च जातरूपपरिष्कृतैः।
अश्वास्तरपरिस्तोमै राङ्कवैर्मृदितैस्तथा॥ ४८॥
नरेन्द्रचूडामणिभिर्विचित्रैश्च महाधनैः।
छत्रैस्तथापविद्धैश्च चामरैर्व्यजनैरपि॥ ४९॥
पद्मेन्दुद्युतिभिश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः।
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः॥ ५०॥
ग्रहनक्षत्रशबला द्यौरिवासीद् वसुन्धरा।

वहाँ जगह जगह विभिन्न पगड़ियाँ, स्वर्णभूषित तरह तरह के बाण, जिन्हें पानी के समान बरसाया गया था, घोड़ों की जीनें, झूल, पीठ पर बिछाये जाने वाले रंकुमृग के चमड़े के मुलायम आसन, जो इससमय पैरों से कुचलकर धूल में सन गये थे और राजाओं की बहुमूल्य तथा विचित्र चूड़ामणियाँ बिखरी हुई पड़ी थीं। इधरउधर गिरे हुए राजाओं के छत्रों, चामर, व्यजनों, सुन्दर कुण्डलों से विभूषित कमल और चन्द्रमा के समान सुन्दर, मूछोंवाले अलंकृत, कटे हुए मस्तकों से भूमि ग्रह नक्षत्रों से युक्त आकाश के समान प्रतीत हो रही थी।

एवमेते महासेने मृदिते तत्र भारत॥ ५१॥
परस्परं समासाद्य तव तेषां च संयुगे।
तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत॥ ५२॥
रात्रिः समभवत् तत्र नापश्याम ततोऽनुगान्।
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः॥ ५३॥

इस प्रकार हे भारत! वे दोनों विशाल सेनाएँ, युद्ध स्थल में एकदूसरे से लड़ती हुई रौंदी जा रही थीं। हे भारत! जब वे सैनिक थक गये थे, कुछ भागने लगे थे और कुछ कुचले जा रहे थे, तब रात हो गयी और हमें अपने सेवक दिखाई नहीं देने लगे। तब कौरवों और पाण्डवों ने अपनी सेनाओं को वापिस लौटा लिया।

पचासवाँ अध्याय : दुर्योधन की मंत्रियों से सलाह, भीष्म से पाण्डवों को मारने या कर्ण को युद्ध में बुलाने का आग्रह।

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौबलः।
दुःशासनश्च पुत्रस्ते सूतपुत्रश्च दुर्जयः॥ १॥
समागम्य महाराज मन्त्रं चक्रुर्विवक्षितम्।
कथं पाण्डुसुताः संख्ये जेतव्याः सगणा इति॥ २॥
ततो दुर्योधनो राजा सर्वांस्तानाह मन्त्रिणः।
सूतपुत्रं समाभाष्य सौबलं च महाबलम्॥ ३॥
द्रोणो भीष्मः कृपः शल्यः सौमदत्तिश्च संयुगे।
न पार्थान् प्रतिबाधन्ते न जाने तच्च कारणम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे महाराज! फिर राजा दुर्योधन, सुबलपुत्र शकुनि, आपका पुत्र दुश्शासन और दुर्जय सूतपुत्र कर्ण, ये एकत्र होकर मन्त्रणा

करने लगे। उनके विचार का विषय यह था कि पाण्डुपुत्रों को उनके दलबलसहित युद्ध में कैसे जीता जाये। फिर दुर्योधन ने सूतपुत्र कर्ण और महाबली सुबलपुत्र शकुनि को सम्बोधित करके अपने सारे मन्त्रियों से कहा कि द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, शल्य और भूरिश्रवा पाण्डवों को कोई कष्ट नहीं पहुँचाते हैं। मैं इसके कारण को नहीं जानता।

अवध्यमानास्ते चापि क्षपयन्ति बलं मम।
सोऽस्मि क्षीणबलः कर्ण क्षीणशस्त्रश्च संयुगे॥ ५॥
त्वयि युद्धविमुखे चापि जितश्चास्मि हि पाण्डवैः।
द्रोणस्य प्रमुखे वीरा हतास्ते भ्रातरो मम॥ ६॥
भीमसेनेन राधेय मम चैवानुपश्यतः।
सोऽहं संशयमापन्नः प्रहरिष्ये कथं रणे॥ ७॥
एवमुक्तस्तु राधेयो दुर्योधनमरिंदमम्।
तमब्रवीन्महाराजं सूतपुत्रो नराधिपम्॥ ८॥

वे पाण्डव स्वयं उनसे अवध्य रहकर मेरी सेना को नष्ट कर रहे हैं। हे कर्ण! मेरी सेना और शस्त्रास्त्र युद्ध में विनष्ट होते जा रहे हैं। तुम्हारे युद्ध से अलग होकर बैठने से मैं पाण्डवों के द्वारा जीता जा रहा हूँ। हे राधापुत्र! द्रोणाचार्य और मेरे देखते हुए ही भीम ने मेरे वीर भाइयों को मार दिया। इसप्रकार मैं संशय में पड़ गया हूँ कि मैं युद्ध में उन पर प्रहार कैसे कर सकूँगा? ऐसा कहे जाने पर राधापुत्र कर्ण ने शत्रुदमन, नरनाथ महाराज दुर्योधन से यह कहा कि-

मा शोच भरतश्रेष्ठ करिष्येऽहं प्रियं तव।
भीष्मः शान्तनवस्तूर्णमपयातु महारणात्॥ ९॥
निवृत्ते युधि गाङ्गेये न्यस्तशस्त्रे च भारत।
अहं पार्थान् हनिष्यामि सहितान् सर्वसोमकैः॥ १०॥
पश्यतो युधि भीष्मस्य शपे सत्येन ते नृप।
पाण्डवेषु दयां नित्यं स हि भीष्मः करोति वै॥ ११॥
अशक्तश्च रणे भीष्मो जेतुमेतान् महारथान्।
स त्वं शीघ्रमितो गत्वा भीष्मस्य शिबिरं प्रति॥ १२॥
अनुमान्य गुरुं वृद्धं शस्त्रं न्यासय भारत।

हे भरतश्रेष्ठ! तुम शोक मत करो। मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा। पर पहले शान्तनुपुत्र भीष्म शीघ्र ही महान् युद्ध से हट जायें। हे भारत! भीष्म के युद्ध से हट जाने और हथियार रख देने पर, मैं सारे सोमकोंसमेत कुन्तीपुत्रों को भीष्म के देखते हुए मार दूँगा। यह मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ। भीष्म सदा ही पाण्डवों पर दया करते हैं। इसलिये वे उन महारथियों को युद्ध में जीतने में असमर्थ हैं। इसलिये हे भारत! तुम ही यहाँ से भीष्म के शिविर में जाकर उन गुरु की प्रार्थना कर उनसे हथियार रखवा लो।

न्यस्तशस्त्रे ततो भीष्मे निहतान् पश्यपाण्डवान्॥ १३॥
मयैकेन रणे राजन् ससुहृद्गणबान्धवान्।
एवमुक्तस्तु कर्णेन कर्णमाह जनेश्वरः॥ १४॥
अनुमान्य रणे भीष्ममेषोऽहं द्विपदां वरम्।
आगमिष्ये ततः क्षिप्रं त्वत्सकाशमरिंदम॥ १५॥
अपक्रान्ते ततो भीष्मे प्रहरिष्यसि संयुगे।
निष्पपात ततस्तूर्णं पुत्रस्तव विशाम्पते॥ १६॥

हे राजन! भीष्म के हथियार रखदेने पर तुम मुझ अकेले के द्वारा ही पाण्डवों को अपने दलबल और बन्धुओं के साथ युद्ध में मारा हुआ देख लेना। कर्ण के ऐसा कहने पर वह राजा कर्ण से बोला कि मैं मनुष्यों में श्रेष्ठ भीष्म को राजी कर हे शत्रुदमन! जल्दी ही तुम्हारे पास आता हूँ। फिर भीष्म के रण से हट जाने पर तुम शत्रुओं पर युद्ध में प्रहार करना। हे प्रजानाथ! फिर आपका वह पुत्र तुरन्त वहाँ से बाहर निकला।

प्रययौ सदनं राजा गाङ्गेयस्य यशस्विनः।
अन्वीयमानः सततं सोदरैः परिवारितः॥ १७॥
सम्प्राप्य तु ततो राजा भीष्मस्य सदनं शुभम्।
अभिवाद्य ततो भीष्मं निषण्णः परमासने॥ १८॥
उवाच प्राञ्जलिर्भीष्मं वाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः।
त्वां वयं हि समाश्रित्य संयुगे शत्रुसूदन॥ १९॥
उत्सहेम रणे जेतुं सेन्द्रानपि सुरासुरान्।
किमु पाण्डुसुतान् वीरान् ससुहृद्गणबान्धवान्॥ २०॥
तस्मादर्हसि गाङ्गेय कृपां कर्तुं मयि प्रभो।
जहि पाण्डुसुतान् वीरान् महेन्द्र इव दानवान्॥ २१॥

फिर वह राजा यशस्वी गंगापुत्र के शिविर की तरफ गया। उसके भाई उसे घेरकर उसके पीछे चल रहे थे। भीष्म के पवित्र शिविर में पहुँच कर, भीष्म को प्रणाम कर, वह एक सुन्दर आसन पर बैठ गया और हाथ जोड़कर, आँखों में आँसू भरकर गद्गद् कंठ से भीष्म से बोला कि हे शत्रुसूदन! हम आपका सहारा लेकर युद्ध में इन्द्रसहित

देवताओं और असुरों को भी जीतने का उत्साह रखते हैं। फिर पाण्डवों को उनके मित्र और बन्धुओंसमेत जीतना कौनसी बड़ी बात है? इसलिये हे गंगापुत्र प्रभो! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। आप जैसे इन्द्र ने दानवों को मारा था वैसे ही वीर पाण्डुपुत्रों को मार दीजिये।,

अहं सर्वान् महाराज निहनिष्यामि सोमकान्।
पञ्चालान् केकयैः सार्धं करूषांश्चेति भारत॥ २२॥
त्वद्वचः सत्यमेवास्तु जहि पार्थान् समागतान्।
सोमकांश्च महेष्वासान् सत्यवाग् भव भारत॥ २३॥
दयया यदि वा राजन् द्वेष्यभावान्मम प्रभो।
मन्दभाग्यतया वापि मम रक्षसि पाण्डवान्॥ २४॥
अनुजानीहि समरे कर्णमाहवशोभिनम्।
स जेष्यति रणे पार्थान् ससुहृद्गणबान्धवान्॥ २५॥

हे भरतवंशी महाराज! फिर मैं सारे सोमकों, पांचालों और केकयों के साथ करूष देशवासियों को मार दूँगा। आपकी बात सत्य हो। आप युद्ध में आये हुए महाधनुर्धर पाण्डवों और सोमकों को मार दीजिये। हे भारत! आप सत्यवादी बनिये। हे राजन्! हे प्रभो! यदि आप दया के कारण, या मेरे प्रति द्वेष के कारण, या मेरे दुर्भाग्य के कारण पाण्डवों की रक्षा करते हैं तो आप युद्ध में सुशोभित होने वाले कर्ण को युद्धस्थल में आने की आज्ञा दीजिये। वह मित्रों और बान्धवोंसहित पाण्डवों को युद्ध में जीत लेगा।

इक्यावनवाँ अध्याय : भीष्म की भयानक युद्ध की प्रतिज्ञा। नवें दिन घोर युद्ध का आरम्भ।

संजय उवाच

वाक्शल्यैस्तव पुत्रेण सोऽतिविद्धो महामनाः।
दुःखेन महताऽऽविष्टो नोवाचाप्रियमण्वपि॥ १॥
स ध्यात्वा सुचिरं कालं दुःखरोषसमन्वितः।
श्वसमानो यथा नागः प्रणुन्नो वाक्शलाकया॥ २॥
अब्रवीत् तव पुत्रं स सामपूर्णमिदं वचः।
किं त्वं दुर्योधनैवं मां वाक्शल्यैरपकृन्तसि॥ ३॥
घटमानं यथाशक्ति कुर्वाणं च तव प्रियम्।
जुह्वानं समरे प्राणांस्तव वै प्रियकाम्यया॥ ४॥

संजय ने कहा कि इसप्रकार आपके पुत्र के द्वारा वाणीरूपी बाणों से अत्यन्त विद्ध होने पर वे महात्मा भीष्म अत्यन्त दुःख से भर गये, किन्तु उन्होंने उत्तर में कोई भी अप्रिय बात नहीं कही। दुःख और क्रोध से युक्त होकर वाणीरूपी अंकुश से पीड़ित हाथी के समान लम्बी साँस लेते हुए उन्होंने देर तक विचार किया। फिर आपके पुत्र से सान्त्वनापूर्वक यह वचन कहने लगे कि हे दुर्योधन! तुम मुझे वाणीरूपी काँटों से क्यों छेद रहे हो? तुम्हारा प्रिय करने की इच्छा से तुम्हारा प्रिय करता हुआ, यथाशक्ति प्रयत्न करता हुआ मैं अपने प्राणों को भी युद्ध में देने के लिये तैयार हूँ।

यदा च त्वां महाबाहो गन्धर्वैर्हृतमोजसा।
अमोचयत् पाण्डुसुतः पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥ ५॥
द्रवमाणेषु शूरेषु सोदरेषु तव प्रभो।
सूतपुत्रे च राधेये पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥ ६॥
यच्च नः सहितान् सर्वान् विराटनगरे तदा।
एक एव समुद्यातः पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥ ७॥
द्रोणं च युधि संरब्धं मां च निर्जित्य संयुगे।
वासांसि समादत्त पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥ ८॥

जब तुम्हें हे महाबाहु! गन्धर्वों ने बलपूर्वक पकड़ लिया था, तब अर्जुन ने ही तुम्हें छुड़ाया था। उसकी शक्ति को समझने के लिये यह उदाहरण पर्याप्त है। उस समय हे प्रभो! तुम्हारे शूरवीर भाई और राधापुत्र कर्ण भी भाग गया था। विराटनगर में हम सारे एकत्र थे, तब हम सबसे लड़ने के लिये अकेले अर्जुन ने ही हम पर आक्रमण किया था। यही उसकी शक्ति को समझने के लिये पर्याप्त है। उसने क्रोध में भरे हुए द्रोणाचार्य और मुझे युद्ध में जीतकर हमारे कपड़े छीन लिये थे। यही उदाहरण उसकी शक्ति को समझने के लिये पर्याप्त है।

तथा द्रौणिं महेष्वासं शारद्वतमथापि च।
गोग्रहे जितवान् पूर्वं पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥ ९॥
विजित्य च यदा कर्णं सदा पुरुषमानिनम्।
उत्तरायै ददौ वस्त्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम्॥ १०॥
मुमूर्षुर्हि नरः सर्वान् वृक्षान् पश्यति काञ्चनान्।
तथा त्वमपि गान्धारे विपरीतानि पश्यति॥ ११॥

स्वयं वैरं महत् कृत्वा पाण्डवैः सह सृंजयैः।
युद्ध्यस्व तानद्य रणे पश्यामः पुरुषो भव॥ १२॥

उस समय गायों के हरण के समय महाधनुर्धर अश्वत्थामा और कृपाचार्य को भी जीत लिया था। यह उसकी शक्ति को समझने के लिये पर्याप्त है। तब अपने पौरुष के अभिमानी कर्ण को भी जीतकर उसने उसके वस्त्रों को छीन कर उन्हें उत्तरा को दिया, यही घटना उसकी शक्ति को समझने के लिये पर्याप्त है। हे गान्धारीपुत्र! जैसे मृत्यु के समीप आने पर व्यक्ति को सारे वृक्ष सुनहरे रंग के दिखाई देते हैं, वैसे ही तुम भी सब कुछ उलटा ही समझ रहे हो। तुमने पाण्डवों और सृंजयों से स्वयं वैर किया। अब तुम युद्धस्थल में उनसे लड़ो और मर्द बनो। हम देखते हैं।

अहं तु सोमकान् सर्वान् पञ्चालांश्च समागतान्।
निहनिष्ये नरव्याघ्र प्रीतिं दास्याम्यहं तव॥ १३॥
तैर्वाहं निहतः संख्ये गमिष्ये यमसादनम्।
सुखं स्वपिहि गान्धारे श्वोऽपि कर्ता महारणम्॥ १४॥
यं जनाः कथयिष्यन्ति यावत् स्थास्यति मेदिनी।
एवमुक्तस्तव सुतो निर्जगाम जनेश्वर॥ १५॥
अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना प्रययौ स्वं निवेशनम्।

मैं तो हे नरव्याघ्र! अपने सामने आये हुए सारे सोमकों और पांचालों को मार दूँगा। या तो मैं उनके द्वारा मारा जाकर मृत्युलोक में जाऊँगा या उन्हें मारकर तुम्हें प्रसन्न करूँगा। हे गान्धारी के पुत्र! जाओ। सुख से सो जाओ। कल मैं ऐसा भयानक युद्ध करूँगा, जिसकी चर्चा लोग तब तक करते रहेंगे, जब तक यह भूमि है। हे जनेश्वर! ऐसा कहने पर आपका पुत्र उन गुरु की सिर से प्रणाम करके, वहाँ से निकलकर अपने शिविर में चला गया।

प्रभातायां च शर्वर्यां प्रातरुत्थाय तान् नृपः॥ १६॥
राज्ञः समाज्ञापयत सेनां योजयेतेति ह।
अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यति सोमकान्॥ १७॥
दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा रात्रौ विलपितं बहु।
मन्यमानः स तं राजन् प्रत्यादेशमिवात्मनः॥ १८॥
निर्वेदं परमं गत्वा विनिन्द्य परवश्यताम्।
दीर्घं दध्यौ शान्तनवो योद्धुकामोऽर्जुनं रणे॥ १९॥
इङ्गितेन तु तज्ज्ञात्वा गाङ्गेयेन विचिन्तितम्।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमचोदयत्॥ २०॥
दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः।
द्वाविंशतिमनीकानि सर्वाण्येवाभिचोदय॥ २१॥

रात बीतने पर, सबेरा होने पर उसने सारे राजाओं को आज्ञा दी कि सेनाओं को तैयार करो, आज भीष्म क्रुद्ध होकर सोमकों का संहार करेंगे। हे राजन्! रात में दुर्योधन के उस अनेकप्रकार के विलाप को सुनकर भीष्म ने समझ लिया था कि दुर्योधन मुझे युद्ध से हटाना चाहता है। तब अत्यन्त खेद को प्राप्त होकर, पराधीनता की निन्दा कर भीष्म ने अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा से देर तक विचार किया। भीष्म के द्वारा सोची हुई बातों को संकेत से समझकर हे महाराज! दुर्योधन ने दुश्शासन से कहा कि हे दुश्शासन! भीष्म की रक्षा करनेवाले रथों को शीघ्रता से तैयार कराओ। हमारे पास बाईस सेनाएँ हैं। उन सबको भीष्म की रक्षा में लगा दो।

इदं हि समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम्।
पाण्डवानां ससैन्यानां वधो राज्यस्य चागमः॥ २२॥
तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाभिरक्षणम्।
स नो गुप्तः सहायः स्याद्धन्यात् पार्थांश्च संयुगे॥ २३॥

जिसकी हम अनेक वर्षों से चिन्ता करते आ रहे हैं, आज वह अवसर प्राप्त हुआ है। आज सेना सहित पाण्डवों का वध और राज्य की प्राप्ति होगी। यहाँ मैं भीष्म की रक्षा को ही सबसे मुख्य कार्य समझता हूँ। वे सुरक्षित रहने पर हमारे सहायक होंगे और युद्ध में कुन्तीकुमारों का वध कर देंगे।

युद्धे हि क्षत्रियांस्तात पाण्डवानां जयैषिणः।
सर्वानन्यान् हनिष्यामि सम्प्राप्तान् रणमूर्धनि॥ २४॥
एवं मां भरतश्रेष्ठ गाङ्गेयः प्राह शास्त्रवित्।
तत्र सर्वात्मना मन्ये गाङ्गेयस्यैव पालनम्॥ २५॥
अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात् सिंहं महाहवे।
मातुलः शकुनिः शल्यः कृपो द्रोणो विविंशतिः॥ २६॥
यत्ता रक्षन्तु गाङ्गेयं तस्मिन् गुप्ते ध्रुवो जयः।

युद्ध में पाण्डवों की विजय के इच्छुक जो जो भी क्षत्रिय युद्ध के मुहाने पर मेरे सामने आयेंगे, मैं उन सबको मार दूँगा। हे भरतश्रेष्ठ! शास्त्रों के ज्ञाता गंगापुत्र ने मुझ से ऐसा कहा है। इसलिये मैं पूरी शक्ति से गंगापुत्र की रक्षा करना प्रमुख कार्य समझता हूँ। रक्षा न करने पर महान् युद्ध में भेड़िया भी सिंह को मार सकता है। मामा शकुनि, शल्य,

द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विविंशति सावधान होकर भीष्म की रक्षा करें। उनकी रक्षा में ही हमारी जीत निश्चित है।

ततः शान्तनवो भीष्मो निर्ययौ सह सेनया॥ २७॥
व्यूहं चाव्यूहत महत् सर्वतोभद्रमात्मनः।
कृपश्च कृतवर्मा च शैब्यश्चैव महारथः॥ २८॥
शकुनिः सैन्धवश्चैव काम्बोजश्च सुदक्षिणः।
भीष्मेण सहिताः सर्वे पुत्रैश्च तव भारत॥ २९॥
अग्रतः सर्वसैन्यानां व्यूहस्य प्रमुखे स्थिताः।
द्रोणो भूरिश्रवाः शल्यो भगदत्तश्च मारिष॥ ३०॥
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः।

तब शान्तनुपुत्र भीष्म सेना के साथ बाहर निकले। उन्होंने अपनी सेना का विशाल सर्वतोभद्र नाम का व्यूह बनाया। हे भारत! कृपाचार्य, कृतवर्मा, महारथी शैव्य, शकुनि, जयद्रथ और काम्बोजराज सुदक्षिण ये भीष्म, और आपके सारे पुत्रों के साथ सारीसेना के आगे और व्यूह के प्रमुखभाग में खड़े हुए। द्रोणाचार्य, भूरिश्रवा, शल्य और भगदत्त हे मान्यवर! कवच बाँध कर व्यूह के दायेंभाग में खड़े हुए।

अश्वत्थामा सोमदत्तश्चावन्त्यौ च महारथौ॥ ३१॥
महत्या सेनया युक्ता वामं पक्षमपालयन्।
दुर्योधनो महाराज त्रिगर्तैः सर्वतो वृतः॥ ३२॥
व्यूहमध्ये स्थितो राजन् पाण्डवान् प्रति भारत।
अलम्बुषो रथश्रेष्ठः श्रुतायुश्च महारथः॥ ३३॥
पृष्ठतः सर्वसैन्यानां स्थितौ व्यूहस्य दंशितौ।
एवं च तं तदा व्यूहं कृत्वा भारत तावकाः॥ ३४॥
संनद्धाः समदृश्यन्त प्रतपन्त इवाग्नयः।

हे भरतवंशी राजन्! अश्वत्थामा, सोमदत्त, अवन्ती देश के दोनों महारथी राजकुमार, विशाल सेना के साथ बायींतरफ खड़े हुए। हे महाराज! दुर्योधन, त्रिगर्तदेशीय सैनिकों से घिरा हुआ, पाण्डवों के मुकाबले में व्यूह के मध्यभाग में खड़ा हुआ। रथियों में श्रेष्ठ अलम्बुष और महारथी श्रुतायु कवच बाँधकर सारी सेना के पीछे खड़े हुए। हे भारत! इस प्रकार आपके पुत्र तब उस व्यूह की रचना कर, कवच आदि से तैयार होकर प्रज्वलित होती हुई अग्नि के समान दिखाई दे रहे थे।

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः॥ ३५॥
नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रावुभावपि।
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थिता व्यूहस्य दंशिताः॥ ३६॥
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः।
स्थिताः सैन्येन महता परानीकविनाशनाः॥ ३७॥
शिखण्डी विजयश्चैव राक्षसश्च घटोत्कचः।
चेकितानो महाबाहुः कुन्तिभोजश्च वीर्यवान्॥ ३८॥
स्थिता रणे महाराज महत्या सेनया वृताः।

तब राजा युधिष्ठिर, पाण्डुपुत्र भीमसेन, माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव कवच बाँधकर सारी सेनाओं के आगे खड़े हुए। धृष्टद्युम्न, विराट और महारथी सात्यकि ये शत्रुसेना का विनाश करनेवाले वीर विशाल सेना के साथ यथास्थान पर अवस्थित थे। हे महाराज! शिखण्डी, अर्जुन, राक्षस घटोत्कच, महाबाहु चेकितान और तेजस्वी कुन्तीभोज भी विशाल सेना से घिरे हुए यथास्थान खड़े हुए थे।

अभिमन्युर्महेष्वासो द्रुपदश्च महाबलः॥ ३९॥
युयुधानो महेष्वासो युधामन्युश्च वीर्यवान्।
केकया भ्रातरश्चैव स्थिता युद्धाय दंशिताः॥ ४०॥
भीष्मं योद्धुमभीप्सन्तः संग्रामे विजयैषिणः।
पाण्डवा अभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान् रवान्॥ ४१॥
वयं प्रतिनदन्तस्तानगच्छाम त्वरान्विताः।
सहसैवाभिसंक्रुद्धास्तदाऽऽसीत् तुमुलं महत्॥ ४२॥

महाधनुर्धर अभिमन्यु, महाबली द्रुपद, महाधनुर्धर युयुधान, तेजस्वी युधामन्यु और केकयकुमार भाई कवच बाँधकर युद्ध के लिये यथास्थान खड़े हुए थे। इसके पश्चात् भीष्म के साथ युद्ध को चाहते हुए विजय की इच्छा से भयंकर आवाज से जयघोष करते हुए पाण्डव कौरवसेना पर चढ़ आये। हमने भी तब अत्यन्तक्रुद्ध होकर उनके जयघोष के प्रत्युत्तर में गर्जना करते हुए शीघ्रता के साथ उन पर आक्रमण कर दिया। फिर महान् युद्ध होने लगा।

बावनवाँ अध्याय : अभिमन्यु की वीरता। राक्षस अलम्बुष और द्रौपदी के पुत्रों का युद्ध।

संजय उवाच

अभिमन्यू रथोदारः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः।
अभिदुद्राव तेजस्वी दुर्योधनबलं महत्॥ १॥
विकिरञ्शरवर्षाणि वारिधारा इवाम्बुदः।
न शेकुः समरे क्रुद्धं सौभद्रमरिसूदनम्॥ २॥
शस्त्रौघिणं गाहमानं सेनासागरमक्षयम्।
निवारयितुमप्याजौ त्वदीयाः कुरुनन्दन॥ ३॥
तेन मुक्ता रणे राजञ्शराः शत्रुनिबर्हणाः।
क्षत्रियाननयञ्शूरान् प्रेतराजनिवेशनम्॥ ४॥

संजय ने कहा कि रथियों में श्रेष्ठ तेजस्वी अभिमन्यु तब अपने पिंगलवर्ण के उत्तम घोड़ों से जुते हुए रथपर सवार होकर दुर्योधन की विशाल सेना पर टूट पड़ा। जल की धारा बरसाते हुए बादलों के समान बाणों की वर्षा करते हुए शत्रुसूदन और क्रोध में भरे हुए सुभद्रापुत्र को, जो शस्त्रास्त्रों से भरे हुए सेनारूपी अक्षय सागर में प्रवेश कर रहा था, हे कुरुनन्दन! आपके वीर युद्धक्षेत्र में रोक नहीं सके। हे राजन्! शत्रुओं को समाप्त करनेवाले, उसके द्वारा छोड़े गये, बाणों ने युद्धस्थल में अनेक क्षत्रियवीरों को मृत्युलोक में पहुँचा दिया।

यमदण्डोपमान् घोराञ्ज्वलिताशीविषोपमान्।
सौभद्रः समरे क्रुद्धः प्रेषयामाससायकान्॥ ५॥
सरथान् रथिनस्तूर्णं हयांश्चैव ससादिनः।
गजारोहांश्च सगजान् दारयामास फाल्गुनिः॥ ६॥
न चैनं तावका राजन् विषेहुररिघातिनम्।
प्रदीप्तं पावकं यद्वत् पतङ्गाः कालचोदिताः॥ ७॥
शराश्च निशिताः पीता निश्चरन्ति स्म संयुगे।
वनात् फुल्लद्रुमाद् राजन् भ्रमराणामिव व्रजाः॥ ८॥

सुभद्रापुत्र उससमय युद्ध में क्रुद्ध होकर मृत्यु के प्रहार के समान भयानक, जलते हुए विषैले सर्पों के समान बाणों को छोड़ रहा था। उस अर्जुन के पुत्र ने शीघ्रता से रथोंसहित रथियों, घुड़सवारोंसहित घोड़ों और हाथीसवारों को हाथियोंसहित विदीर्ण कर दिया। जैसे हे राजन्! जलती हुई आग को काल से प्रेरित पतंगे सहन नहीं कर पाते, वैसे ही उस शत्रुघाती वीर को आपके वीर सहन नहीं कर सके। उससमय हे राजन्! युद्धस्थल में उसके धनुष से तीखे और पानीदार बाण इसप्रकार छूट रहे थे, जैसे खिले हुए वृक्षों के वन में से भौरों के समूह निकल रहे हों।

तथैव चरतस्तस्य सौभद्रस्य महात्मनः।
रथेन काञ्चनाङ्गेन ददृशुर्नान्तरं जनाः॥ ९॥
मोहयित्वा कृपं द्रोणं द्रौणिं च सबृहद्बलम्।
सैन्धवं च महेष्वासो व्यचरल्लघु सुष्ठु च॥ १०॥
माण्डलीकृतमेवास्य धनुः पश्याम भारत।
सूर्यमण्डलसंकाशं दहतस्तव वाहिनीम्॥ ११॥
तं दृष्ट्वा क्षत्रियाः शूराः प्रतपन्तं तरस्विनम्।
द्विफाल्गुनमिमं लोकं मेनिरे तस्य कर्मभिः॥ १२॥

सुनहले रथ के द्वारा विचरण करते हुए उस मनस्वी सुभद्रापुत्र की गति में लोगों ने कोई रुकावट नहीं देखी। वह महाधनुर्धर, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और बृहद्बल तथा जयद्रथ को मोहित करता हुआ अपनी सुन्दर और शीघ्रगति से सब तरफ विचरण करता रहा। हे भारत! उससमय आपकी सेना को भस्म करते हुए उसके धनुष को हमने सूर्य के समान गोलाकार रूप में ही देखा। शत्रुओं को सन्ताप देते हुए, उस वेगशाली वीर के कर्म को देखकर शूरवीर क्षत्रिय उससमय यही मानने लगे थे कि संसार में दो अर्जुन हो गये हैं।

तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि संयुगे।
चक्रुरार्तस्वनं घोरं पर्जन्यनिनदोपपम्॥ १३॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य भारत।
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि॥ १४॥
दुर्योधनस्तदा राजन्नार्ष्यशृङ्गिमभाषत।
एष कार्ष्णिर्महाबाहो द्वितीय इव फाल्गुनः॥ १५॥
तस्य चान्यन्न पश्यामि संयुगे भेषजं महत्।
ऋते त्वां राक्षसश्रेष्ठं सर्वविद्यासु पारगम्॥ १६॥

उसके द्वारा भगाये जाते हुए आपके सैनिक युद्धस्थल में इसप्रकार चीत्कार कर रहे थे, जैसे बादल गर्ज रहे हों। हे भारत! पूर्णिमा के दिन वायुवेग से उमड़ते हुए सागर की ध्वनि के समान आपकी सेना के उस घोरआर्तनाद को सुनकर हे राजन्! तब दुर्योधन ने ऋष्यश्रृंग के पुत्र अलम्बुष से कहा कि

हे महाबाहु! यह अभिमन्यु दूसरे अर्जुन के समान है। मैं सारीविद्या में पारंगत तुम जैसे राक्षसश्रेष्ठ के सिवाय और किसी को नहीं देखता जो युद्ध में इसकी उत्तम दवाई हो सके।

स गत्वा त्वरितं वीरं जहि सौभद्रमाहवे।
वयं पार्थं हनिष्यामो भीष्मद्रोणपुरोगमाः॥ १७॥
स एवमुक्तो बलवान् राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्।
प्रययौ समरे तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात्।
नर्दमानो महानादं प्रावृषीव बलाहकः॥ १८॥

इसलिये तुम जल्दी जाकर सुभद्रापुत्र को युद्ध में मार दो। हम भीष्म और द्रोणाचार्य के साथ अर्जुन को मार देंगे। ऐसा कहे जाने पर वह प्रतापी बलवान् राक्षसेन्द्र, आपके पुत्र के आदेश से वर्षाऋतु में बादलों के समान जोर से गरजते हुए, शीघ्रता से युद्धस्थल में पहुँचा।

प्रमृद्य च रणे सेनां
पद्मिनीं वारणो यथा।
ततोऽभिदुद्राव रणे
द्रौपदेयान् महाबलान्॥ १९॥

जैसे हाथी पद्मिनी को रौंद देता है, वैसे ही सेना को रौंदते हुए उसने युद्धस्थल में महाबली द्रौपदी पुत्रों पर आक्रमण किया।

ते तु क्रुद्धा महेष्वासा द्रौपदेयाः प्रहारिणः।
राक्षसं दुद्रुवुः संख्ये ग्रहाः पञ्च रविं यथा॥ २०॥
वीर्यवद्भिस्ततस्तैस्तु पीडितो राक्षसोत्तमः।
यथा युगक्षये घोरे चन्द्रमाः पञ्चभिर्ग्रहैः॥ २१॥
प्रतिविन्ध्यस्ततो रक्षो विभेद निशितैः शरैः।
सर्वपारशवैस्तूर्णैरकुण्ठा- ग्रैर्महाबलः॥ २२॥
ततस्ते भ्रातरः पञ्च राक्षसेन्द्रं महाहवे।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैस्तपनीय- विभूषितैः॥ २३॥

तब द्रौपदी के पाँचों महाधनुर्धर और प्रहार करने वाले पुत्रों ने भी युद्धस्थल में राक्षस पर इसप्रकार आक्रमण किया, जैसे पाँच ग्रह सूर्य पर आक्रमण कर रहे हों। उन तेजस्वी भाइयों के द्वारा वह राक्षस श्रेष्ठ वैसे ही पीड़ित होने लगा जैसे प्रलय के समय चन्द्रमा पाँच ग्रहों से पीड़ित होते हैं। महाबली प्रतिविन्ध्य ने सारे लोहे के बने हुए, तीखे, अप्रतिहत धारवाले शीघ्रगामी बाणों से राक्षस को बींध दिया। उसके पश्चात् उस महान् युद्ध में, पाँचों भाइयों ने स्वर्णभूषित तीखे बाणों से उस राक्षसेन्द्र को और घायल कर दिया।

स निर्भिन्नः शरैर्घोरैर्भुजगैः कोपितैरिव।
अलम्बुषो भृशं राजन् नागेन्द्र इव चुक्रुधे॥ २४॥
सोऽतिविद्धो महाराज मुहूर्तमथ मारिष।
प्रविवेश तमो दीर्घं पीडितस्तैर्महारथैः॥ २५॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां क्रोधेन द्विगुणीकृतः।
चिच्छेद सायकांस्तेषां ध्वजांश्चैव धनूंषि च॥ २६॥
एकैकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्मयन्निव।
अलम्बुषो रथोपस्थे नृत्यन्निव महारथः॥ २७॥

क्रुद्ध सर्पों के समान भयंकर बाणों से बिंधकर हे राजन्! अलम्बुष को गजराज के समान अत्यधिक क्रोध आया। हे महाराज, मान्यवर! उन महारथियों से पीड़ित होकर वह एक मुहूर्त तक गहरे मोह में डूबा रहा। फिर होश में आकर, उसने दुगने क्रोध से उनके बाणों, धनुषों और ध्वजों को काट दिया। इसके बाद रथ की बैठक में नृत्य सा करते हुए और मुस्कराते हुए उस महारथी अलम्बुष ने एक एक को पाँच पाँच बाणों से बींध दिया।

त्वरमाणः सुसंरब्धो हयांस्तेषां महात्मनाम्।
जघान राक्षसः क्रुद्धः सारथींश्च महाबलः॥ २८॥
बिभेद च सुसंरब्धः पुनश्चैनान् सुसंशितैः।
शरैर्बहुविधाकारैः शतशोऽथ सहस्रशः॥ २९॥
विरथांश्च महेष्वासान् कृत्वा तत्र स राक्षसः।
अभिदुद्राव वेगेन हन्तुकामो निशाचरः॥ ३०॥
तानर्दितान् रणे तेन राक्षसेन दुरात्मना।
दृष्ट्वार्जुनसुतः संख्ये राक्षसं समुपाद्रवत्॥ ३१॥

फिर उस महाबली राक्षस ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्रता करते हुए उन मनस्वियों के घोड़ों और सारथियों को भी मार दिया और पुनः अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने अच्छीतरह से छोड़े हुए तीखे और बहुतप्रकार के बहुत सारे बाणों के द्वारा उन्हें घायल कर दिया। महाधनुर्धरों को रथरहित कर, उन्हें मारने की इच्छा से राक्षस ने उनपर जोर से आक्रमण किया। तब युद्ध में उन्हें उस दुष्ट राक्षस से पीड़ित देखकर अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु युद्धस्थल में राक्षस की तरफ दौड़ा।

तिरेपनवाँ अध्याय : अभिमन्यु से अलम्बुष की हार। अर्जुन से भीष्म का तथा सात्यकि का कृपाचार्य, द्रोण और अश्वत्थामा से युद्ध।

अलम्बुषस्तु समरे अभिमन्युं महारथम्।
विनद्य सुमहानादं तर्जयित्वा मुहुर्मुहुः॥ १॥
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
अभिमन्युश्च वेगेन सिंहवद् विनदन् मुहुः॥ २॥
आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं पितुरत्यन्तवैरिणम्।
ततः समीयतुः संख्ये त्वरितौ नरराक्षसौः॥ ३॥
रथाभ्यां रथिनौ श्रेष्ठौ यथा वै देवदानवौ।
ततः कार्ष्णिर्महाराज निशितैः सायकैस्त्रिभिः॥ ४॥
आर्ष्यशृङ्गिं रणे विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः।

अलम्बुष ने तब उस युद्ध में बड़े जोर से गर्जना कर और महारथी अभिमन्यु को धमकाते हुए बार बार ठहर, ठहर यह कहते हुए वेग से उस पर आक्रमण कर दिया। अभिमन्यु ने भी उसी प्रकार अपने ताऊ के अत्यन्त बैरी महाधनुर्धर अलम्बुष पर सिंह के समान गर्जना करते हुए; वेगपूर्वक आक्रमण किया। तब रथियों में श्रेष्ठ वे दोनों नर और राक्षस देवता और दानव के समान शीघ्रतापूर्वक परस्पर युद्ध करने लगे। हे महाराज! अभिमन्यु ने अलम्बुष को तीखे तीन बाणों से बींधकर फिर पाँच बाणों से बींध दिया।

अलम्बुषोऽपि संक्रुद्धः कार्ष्णिं नवभिराशुगैः॥ ५॥
हृदि विव्याध वेगेन तोत्रैरिव महाद्विपम्।
अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः॥ ६॥
बिभेद निशितैर्बाणै राक्षसेन्द्रं महोरसि।
विमुखं च ततो रक्षो वध्यमानं रणेऽरिणा॥ ७॥
रथं तत्रैव संत्यज्य प्राद्रवन्महतो भयात्।
तस्मिन् विनिर्जिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे॥ ८॥
आर्जुनिः समरे सैन्यं तावकं सम्ममर्द ह।
मदान्धो गन्धनागेन्द्रः सपद्मां पद्मिनीमिव॥ ९॥

अलम्बुष ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्रगामी नौ बाणों से अभिमन्यु के हृदय पर ऐसे प्रहार किया जैसे गजराज को अंकुशों से पीड़ित किया जाये। तब अभिमन्यु ने क्रुद्ध होकर झुकी हुई गाँठवाले नौ तीखे बाणों से राक्षसेन्द्र के विशाल वक्षस्थल को बींध दिया। तब युद्ध में शत्रु के द्वारा मारा जाता हुआ वह राक्षस रथ को वहीं छोड़कर भयभीत होकर भाग गया। छलकपट का सहारा लेनेवाले उस राक्षस को पराजितकर अर्जुन का वह पुत्र शीघ्रता से आपकी सेना को युद्ध में इस प्रकार मर्दन करने लगा जैसे गन्धयुक्त मदान्ध हाथी कमलों से भरे हुए तालाब को मथ डालता है।

ततः शान्तनवो भीष्मः सैन्यं दृष्ट्वाभिविद्रुतम्।
महता शरवर्षेण सौभद्रं पर्यवारयत्॥ १०॥
ततो धनंजयो वीरो विनिघ्नंस्तव सैनिकान्।
आससाद रणे भीष्मं पुत्रप्रेप्सुरमर्षणः॥ ११॥
तथैव समरे राजन् पिता देवव्रतस्तव।
आससाद रणे पार्थं स्वर्भानुरिव भास्करम्॥ १२॥

तब शान्तनुपुत्र भीष्म ने अपनी सेना को भागते हुए देखकर सुभद्रापुत्र को विशाल बाणवर्षा के द्वारा रोका। तभी आपके सैनिकों का विनाश करते हुए वीर अर्जुन, अमर्ष में भरकर अपने पुत्र को बचाने की इच्छा से युद्धस्थल में भीष्म के पास आ गये। हे राजन्! आपके पिता देवव्रत ने भी अर्जुन पर ऐसे ही आक्रमण किया जैसे राहु सूर्य पर आक्रमण करता है।

ततः सरथनागाश्वाः पुत्रास्तव जनेश्वर।
परिवव्रू रणे भीष्मं जुगुपुश्च समन्ततः॥ १३॥
तथैव पाण्डवा राजन् परिवार्य धनंजयम्।
रणाय महते युक्ता दंशिता भरतर्षभ॥ १४॥
शारद्वतस्ततो राजन् भीष्मस्य प्रमुखे स्थितम्।
अर्जुनं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत्॥ १५॥
प्रत्युद्गम्याथ विव्याध सात्यकिस्तं शितैः शरैः।
पाण्डवप्रियकामार्थं शार्दूल इव कुञ्जरम्॥ १६॥

हे जनेश्वर! तब रथियों हाथीसवारों और घुड़सवारों के साथ आपके पुत्रों ने भीष्म को सबतरफ से घेरकर उनकी रक्षा करनी आरम्भ कर दी। हे भरतश्रेष्ठ राजन्! उसीप्रकार महान् युद्ध के लिये कवच बाँधकर तैयार पाण्डवों ने भी अर्जुन को सुरक्षा के लिये घेर लिया। हे राजन्! तब भीष्म के आगे खड़े हुए अर्जुन को कृपाचार्य ने पच्चीस बाणों से मारा। तब सात्यकि ने भी पाण्डुपुत्र का प्रिय करने की इच्छा से आगे बढ़कर कृपाचार्य को तीखे बाणों

से ऐसे बींध दिया जैसे सिंह हाथी पर आक्रमण करता है।

गौतमोऽपि त्वरायुक्तो माधवं नवभिः शरैः।
हृदि विव्याध संक्रुद्धः कङ्कपत्रपरिच्छदैः॥ १७॥
शैनेयोऽपि ततः क्रुद्धश्चापमानम्य वेगवान्।
गौतमान्तकरं तूर्णं समाधत्त शिलीमुखम्॥ १८॥
तमापतन्तं वेगेन शक्राशनिसमद्युतिम्।
द्विधा चिच्छेद संक्रुद्धो द्रौणिः परमकोपनः॥ १९॥
समुत्सृज्याथ शैनेयो गौतमं रथिनां वरः।
अभ्यद्रवद् रणे द्रौणिं राहुः खे शशिनं यथा॥ २०॥

तब कृपाचार्य ने भी शीघ्रता करते हुए, अत्यन्त क्रोद्ध में भरकर कंकपत्र से युक्त नौ बाणों से सात्यकि के हृदय पर प्रहार किया। तब वेगवान् सात्यकि ने भी क्रुद्ध होकर शीघ्रता के साथ कृपाचार्य का अन्त करनेवाले बाण का सन्धान किया। पर इन्द्र के वज्र के समान जगमगाते हुए और तेजी से आते हुए बाण को अत्यन्तक्रोधी अश्वत्थामा ने अत्यन्तक्रोध में भरकर दो टुकड़ों में काट दिया। तब जैसे आकाश में राहु चन्द्रमा पर आक्रमण करता है, वैसे ही रथियों में श्रेष्ठ सात्यकि ने कृपाचार्य को छोड़कर युद्धस्थल में अश्वत्थामा पर आक्रमण कर दिया।

तस्य द्रोणसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद भारत।
अथैनं छिन्नधन्वानं ताडयामास सायकैः॥ २१॥
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय शत्रुघ्नं भारसाधनम्।
द्रौणिं षष्ट्या महाराज बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ २२॥
स विद्धो व्यथितश्चैव मुहूर्तं कश्मलायुतः।
निषसाद रथोपस्थे ध्वजयष्टिं समाश्रितः॥ २३॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
वार्ष्णेयं समरे क्रुद्धो नाराचेन समार्पयत्॥ २४॥

हे भारत! उस द्रोणपुत्र ने सात्यकि के धनुष के दो टुकड़े कर दिये और धनुष तोड़ने के पश्चात् उसे बाणों से पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। तब सात्यकि ने दूसरे, शत्रुओं को नष्ट करनेवाले और भार को सहन करनेवाले धनुष को लेकर हे महाराज! अश्वत्थामा के हाथों और छाती पर साठबाणों से प्रहार किया। उन बाणों से बिंधकर, व्यथित होकर, एक मूहूर्त के लिये मूर्च्छा को प्राप्त होकर अश्वत्थामा रथ की बैठक में ध्वज के डण्डे का सहारा लेकर बैठ गया। फिर होश में आकर और क्रुद्ध होकर प्रतापी अश्वत्थामा ने उस युद्ध में सात्यकि पर एक नाराच से प्रहार किया।

अथापरेण भल्लेन माधवस्य ध्वजोत्तमम्।
चिच्छेद समरे द्रौणिः सिंहनादं मुमोच ह॥ २५॥
पुनश्चैनं शरैर्घोरैश्छादयामास भारत।
निदाघान्ते महाराज यथा मेघो दिवाकरम्॥ २६॥
सात्यकोऽपि महाराज शरजालं निहत्य तत्।
द्रौणिमभ्यकिरत् तूर्णं शरजालैरनेकधा॥ २७॥
तापयामास च द्रौणिं शैनेयः परवीरहा।
विमुक्तो मेघजालेन यथैव तपनस्तथा॥ २८॥

उसके पश्चात अश्वत्थामा ने दूसरे भल्ल से उसके ध्वज को काट दिया तथा जोर से सिंहनाद किया। हे भारत! फिर जैसे ग्रीष्मऋतु के अन्त में बादल सूर्य को ढक लेते हैं, वैसे ही उसने घोर बाणवर्षा से सात्यकि को आच्छादित कर दिया। हे महाराज! फिर सात्यकि ने भी शीघ्रता से उसके बाणों के जाल को निवारणकर अनेकप्रकार के बाणों के समूह से अश्वत्थामा को भर दिया। शत्रुवीरों का विनाश करनेवाले सात्यकि ने मेघों से मुक्त हुए सूर्य के समान अश्वत्थामा को सन्तप्त करना आरम्भ कर दिया।

दृष्ट्वा पुत्रं च तं ग्रस्तं राहुणेव निशाकरम्।
अभ्यद्रवत शैनेयं भारद्वाजः प्रतापवान्॥ २९॥
विव्याध च सुतीक्ष्णेन पृषत्केन महामृधे।
परीप्सन् स्वसुतं राजन् वार्ष्णेयेनाभिपीडितम्॥ ३०॥
सात्यकिस्तु रणे हित्वा गुरुपुत्रं महारथम्।
द्रोणं विव्याध विंशत्या सर्वपारशवैः शरैः॥ ३१॥
तदन्तरममेयात्मा कौन्तेयः शत्रुतापनः।
अभ्यद्रवद् रणे क्रुद्धो द्रोणं प्रति महारथः॥ ३२॥

राहु जैसे चन्द्रमा को ग्रस्त करता है, वैसे ही अपने पुत्र को सात्यकि के द्वारा ग्रस्त देखकर तब प्रतापी द्रोणाचार्य ने सात्यकि पर आक्रमण किया। अपने पीड़ित पुत्र को बचाने की इच्छा से उन्होंने उस महान् युद्ध में सात्यकि को एक अत्यन्ततीखे बाण से घायल कर दिया। सात्यकि ने तब उस युद्ध में महारथी गुरुपुत्र अश्वत्थामा को छोड़कर सारे लोहे के बने हुए बीस बाणों से द्रोणाचार्य को बींध दिया। तभी शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले अमितआत्मा महारथी अर्जुन क्रुद्ध होकर रणस्थल में द्रोणाचार्य की तरफ दौड़े।

चौवनवाँ अध्याय : अर्जुन का सुशर्मा, द्रोणाचार्य से युद्ध। भीम द्वारा गज सेना संहार। सेनाओं का घोर युद्ध।

संजय उवाच

रणे भारत पार्थेन द्रोणो विद्धस्त्रिभिः शरैः।
नाचिन्तयच्च तान् बाणान् पार्थचापच्युतान् युधि॥ १॥
शरवृष्ट्या पुनः पार्थश्छादयामास तं रणे।
स प्रजज्वाल रोषेण गहने ऽग्निरिवोर्जितः॥ २॥
ततोऽर्जुनं रणे द्रोणः शरैः संनतपर्वभिः।
छादयामास राजेन्द्र नचिरादेव भारत॥ ३॥
ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदत्।
द्रोणस्य समरे राजन् पार्ष्णिग्रहणकारणात्॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे भारत! तब अर्जुन ने द्रोणाचार्य को तीन बाणों से बींधा। पर कुन्तीपुत्र के धनुष से छूटे हुए उन बाणों की द्रोणाचार्य ने कुछ भी परवाह नहीं की। अर्जुन ने उन्हें युद्ध में फिर बाणवर्षा से आच्छादित कर दिया। तब द्रोणाचार्य वन में प्रज्वलित दावानल के समान क्रोध से जल उठे। हे भरतवंशी राजेन्द्र! तब द्रोणाचार्य ने झुकी हुई गाँठवाले बाणों से तुरन्त ही अर्जुन को ढक दिया। हे राजन्! तब दुर्योधन ने राजा सुशर्मा को युद्ध में द्रोणाचार्य की पृष्ठरक्षा के लिये प्रेरित किया।

त्रिगर्तराडपि क्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम्।
छादयामास समरे पार्थं बाणैरयोमुखैः॥ ५॥
ते शराः प्राप्य कौन्तेयं समन्ताद् विविशुः प्रभो।
फलभारनतं यद्वत् स्वादुवृक्षं विहङ्गमाः॥ ६॥
अर्जुनस्तु रणे नादं विनद्य रथिनां वरः।
त्रिगर्तराजं समरे सपुत्रं विव्यधे शरैः॥ ७॥
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये।
पार्थमेवाभ्यवर्तन्त मरणे कृतनिश्चयाः॥ ८॥

तब त्रिगर्तराज ने भी क्रुद्ध होकर उस समरभूमि में अपने धनुष को अत्यन्त खींचकर अर्जुन को लोहे के बाणों से आच्छादित कर दिया। हे प्रभो! वे बाण कुन्तीपुत्र के शरीर में सब तरफ से आकर ऐसे ही घुसने लगे जैसे फलों से झुके हुए स्वादिष्ट वृक्ष पर पक्षी आकर टूटते हैं। तब रथियों में श्रेष्ठ अर्जुन ने युद्ध में जोर से गर्जनाकर त्रिगर्तराज को उसके पुत्रसहित बाणों से बींध दिया। तब जैसे प्रलय के समय मृत्यु सबको मार देती है, वैसे ही अर्जुन के द्वारा मारे जाते हुए भी वे त्रिगर्तराज के सैनिक मृत्यु के लिये ही निश्चय कर अर्जुन पर टूट पड़े।

मुमुचुः शरवृष्टिं च पाण्डवस्य रथं प्रति।
तत्राद्भुतमपश्याम बीभत्सोर्हस्तलाघवम्॥ ९॥
विमुक्तां बहुभिर्योधैः शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम्।
यदेको वारयामास मारुतोऽभ्रगणानिव॥ १०॥
ततः पाण्डुसुतो वीरस्त्रिगर्तस्य रथव्रजान्।
निरुत्साहान् रणे चक्रे विमुखान् विपराक्रमान्॥ ११॥
ततो दुर्योधनश्चैव कृपश्च रथिनां वरः।
अश्वत्थामा तथा शल्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः॥ १२॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लिकः सह बाह्लिकैः।
महता रथवंशेन पार्थस्यावारयन् दिशः॥ १३॥

तब वीर पाण्डुपुत्र ने त्रिगर्तराज के रथियों को उत्साह तथा पराक्रम से रहित कर युद्ध से विमुख कर दिया। तब दुर्योधन ने रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, काम्बोजराज, सुदक्षिण, अवन्ती देश के विन्द और अनुविन्द, बाह्लीकदेश के सैनिकों के साथ बाह्लीक, इन सबने रथियों के विशाल समूह के साथ अर्जुन की सारी दिशाओं अर्थात् मार्गों को रोक दिया।

तथैव भगदत्तश्च श्रुतायुश्च महाबलः।
गजानीकेन भीमस्य तावावारयतां दिशः॥ १४॥
भूरिश्रवाः शलश्चैव सौबलश्च विशाम्पते।
शरौघैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्माद्री- पुत्राववारयन्॥ १५॥
आपतन्तं गजानीकं दृष्ट्वा पार्थो वृकोदरः।
लेलिहन् सृक्किणी वीरो मृगराडिव कानने॥ १६॥
भीमस्तु रथिनां श्रेष्ठो गदां गृह्य महाहवे।
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं तव सैन्यान्यभीषयत्॥ १७॥

इसीप्रकार भगदत्त और महाबली श्रुतायु ने हाथियों की सेना के द्वारा भीम की दिशाओं को रोक दिया। हे प्रजानाथ! भूरिश्रवा, शल और शकुनि इन्होंने चमकीले और तीखे बाणों की वर्षा से माद्री के दोनों पुत्रों नकुल और सहदेव को रोका। तब हाथियों की सेना को आक्रमण करते देख कुन्तीपुत्र वीर भीम वन में सिंह के समान अपने मुख के दोनों कोनों

को चाटने लगे। रथियों में श्रेष्ठ भीम, उस महायुद्ध में गदा को लेकर शीघ्रता से रथ से कूदकर आपकी सेनाओं को भयभीत करने लगे।

तमुद्वीक्ष्य गदाहस्तं ततस्ते गजसादिनः।
परिवव्रू रणे यत्ता भीमसेनं समन्ततः॥ १८॥
व्यधमत् स गजानीकं गदया पाण्डवर्षभः।
महाभ्रजालमतुलं मातरिश्वेव संततम्॥ १९॥
ते वध्यमाना बलिना भीमसेनेन दन्तिनः।
आर्तनादं रणे चक्रुर्गर्जन्तो जलदा इव॥ २०॥
एवं ते वध्यमानाश्च हतशेषा महागजाः।
प्राद्रवन्त दिशो राजन् विमृद्गन्तः स्वकं बलम्॥ २१॥

उन्हें गदा हाथ में लिये हुए देखकर उन हाथी सवारों ने प्रयत्नपूर्वक भीम को चारोंतरफ से घेर लिया। तब जैसे महान् मेघों की सबतरफ फैली हुई अनुपम घटा को वायु छिन्नभिन्न कर देती है, वैसे ही उस पाण्डवश्रेष्ठ ने गदा से उस हाथीसेना को तित्तर-बित्तर कर दिया। भीम के द्वारा मारे जाते हुए वे हाथी युद्धक्षेत्र में गर्जते हुए बादलों के समान आर्तनाद करने लगे। हे राजन्! इसप्रकार भीमसेन के द्वारा मारे जाते हुए हाथियों में से जो बच गये वे गजराज अपनी ही सेना को कुचलते हुए सबतरफ भागने लगे।

मध्यन्दिने महाराज संग्रामः समपद्यत।
लोकक्षयकरो रौद्रौ भीष्मस्य सह सोमकैः॥ २२॥
गाङ्गेयो रथिनां श्रेष्ठः पाण्डवानामनीकिनीम्।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः॥ २३॥
सम्ममर्द च तत् सैन्यं पिता देवव्रतस्तव।
धान्यानामिव लूनानां प्रकरं गोगणा इव॥ २४॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च विराटो द्रुपदस्तथा।
भीष्ममासाद्य समरे शरैर्जघ्नुर्महारथम्॥ २५॥

हे महाराज! जब दोपहर हो गयी, तब भीष्म का सोमकों के साथ लोगों का विनाश करनेवाला भयंकर युद्ध होने लगा। रथियों में श्रेष्ठ गंगापुत्र सैकड़ों और हजारों की संख्या में तीखे बाणों की वर्षा कर पाण्डवों की सेना को विलोडित करने लगे। आपके पिता देवव्रत ने उस सेना को इसप्रकार रौंद डाला जैसे बैल कटे हुए अन्न के ढेरों को कुचलते हैं। तब धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, विराट और द्रुपद ने महारथी भीष्म के पास जाकर उन्हें बाणों से पीड़ित करना आरम्भ किया।

धृष्टद्युम्नं ततो विद्ध्वा विराटं च शरैस्त्रिभिः।
द्रुपदस्य च नाराचं प्रेषयामास भारत॥ २६॥
तेन विद्धा महेष्वासा भीष्मेणामित्रकर्षिणा।
चुक्रुधुः समरे राजन् पादस्पृष्टा इवोरगाः॥ २७॥
शिखण्डी तं च विव्याध भरतानां पितामहम्।
धृष्टद्युम्नस्तु समरे क्रोधेनाग्निरिव ज्वलन्॥ २८॥
पितामहं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्।

तब भीष्म ने धृष्टद्युम्न और विराट को तीन बाणों से बींधकर हे भारत! द्रुपद पर एक नाराच का प्रहार किया। हे राजन्! शत्रुसूदन भीष्म के द्वारा घायल किये गये वे महाधनुर्धर युद्ध में पैरों से कुचले गये साँप के समान क्रोध में भर गये। शिखण्डी ने भी भीष्म को बाणों से बींधा, धृष्टद्युम्न ने क्रोध से अग्नि की तरह जलते हुए पितामह की दोनों भुजाओं और छाती पर तीन बाणों से प्रहार किया।

द्रुपदः पञ्चविंशत्या विराटो दशभिः शरैः॥ २९॥
शिखण्डी पञ्चविंशत्या भीष्मं विव्याध सायकैः।
तान् प्रत्यविध्यद् गाङ्गेयस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः॥ ३०॥
द्रुपदस्य च भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष।
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय भीष्मं विव्याध पञ्चभिः॥ ३१॥
सारथिं च त्रिभिर्बाणैः सुशितै रणमूर्धनि।

द्रुपद और शिखण्डी ने तब पच्चीस पच्चीस और विराट ने दस बाणों से भीष्म को बींध दिया। हे मान्यवर! फिर गंगापुत्र ने तीन तीन सीधे जानेवाले बाणों से उन्हें बींधा और द्रुपद का धनुष भल्ल के द्वारा काट दिया। तब उन्होंने दूसरा धनुष लेकर भीष्म को पाँच बाणों से बींध दिया और युद्ध के मुहाने पर अत्यन्ततीखे तीन बाणों से उनके सारथि को भी घायल कर दिया।

तथा भीमो महाराज द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः॥ ३२॥
केकया भ्रातरः पञ्च सात्यकिश्चैव सात्वतः।
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं युधिष्ठिरपुरोगमाः॥ ३३॥
रिरक्षिषन्तः पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
तथैव तावकाः सर्वे भीष्मरक्षार्थमुद्यताः॥ ३४॥
प्रत्युद्ययुः पाण्डुसेनां सहसैन्या नराधिप।
तत्रासीत् सुमहद् युद्धं तव तेषां च संकुलम्॥ ३५॥
नराश्वरथनागानां यमराष्ट्रविवर्धनम्।

तब हे महाराज! युधिष्ठिर, भीम, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, पाँचों केकय भाई, यदुवंशी सात्यकि तथा

धृष्टद्युम्न आदि पांचालसैनिक द्रुपद की रक्षा करने के विचार से भीष्म पर टूट पड़े। हे राजन्! उसी प्रकार आपके सारे वीर भीष्म की रक्षा के लिये तैयार होकर अपनी सेना के साथ पाण्डवों की सेना पर आक्रमण करने लगे। तब आपके और उनके सैनिकों, घोड़ों, रथों और हाथियों में मृत्युलोक की वृद्धि करनेवाला, परस्पर गुत्थम गुत्था होकर अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा।

रथी रथिनमासाद्य प्राहिणोद् यमसादनम्॥ ३६॥
तथेतरान् समासाद्य नरनागाश्वसादिनः।
अनयन् परलोकाय शरैः संनतपर्वभिः॥ ३७॥
शरैश्च विविधैर्घोरैस्तत्र तत्र विशाम्पते।
रथास्तु रथिभिर्हीना हतसारथयस्तथा॥ ३८॥
विप्रद्रुताश्वाः समरे दिशो जग्मुः समन्ततः।
दन्तिनश्च नरश्रेष्ठ हीनाः परमसादिभिः॥ ३९॥
मृद्गन्तः स्वान्यनीकानि निपेतुः सर्वशब्दगाः।

रथियों ने रथियों से भिड़कर उन्हें मृत्युलोक में भेज दिया। इसीप्रकार पैदल, हाथीसवार, और घुड़सवार भी कर रहे थे। हे प्रजानाथ! वहाँ, जहाँतहाँ योद्धालोग झुकी हुई गाँठवाले अनेकप्रकार के भयंकर बाणों से अपने प्रतिपक्षियों को परलोक में भेज रहे थे। वहाँ कितने ही रथ रथियों से रहित होकर सारथि के मारे जाने पर युद्धस्थल में दौड़ते फिर रहे थे। इसीप्रकार हे नरश्रेष्ठ! हाथी अपने श्रेष्ठ हाथीसवारों से रहित होकर प्रत्येक शब्द के पीछे दौड़ते हुए अपनी ही सेना को कुचल रहे थे।

चर्मभिश्चामरैश्चित्रैः पताकाभिश्च मारिष॥ ४०॥
छत्रैः सितैर्हेमदण्डैश्चामरैश्च समन्ततः।
विशीर्णैर्विप्रधावन्तो दृश्यन्ते स्म दिशो दश॥ ४१॥
नवमेघप्रतीकाशा जलदोपमनिःस्वनाः।
नानादेशसमुत्थांश्च तुरगान् हेमभूषितान्॥ ४२॥
वातायमानानद्राक्षं शतशोऽथ सहस्रशः।
व्यमृद्गन् समरे राजंस्तुरगाश्च नरान् रणे॥ ४३॥
एवं ते बहुधा राजन् प्रत्यमृद्गन् परस्परम्।

हे मान्यवर! वहाँ भूमि पर सबतरफ विचित्र प्रकार की ढाल, चँवर, पताकाएँ, श्वेतछत्र सुनहरे डण्डेवाले चामर बिखरे पड़े थे। उनके ऊपर नये बादलों के समान हाथी मेघों की गर्जना के समान चिंघाड़ते हुए सब दिशाओं में दौड़ते हुए दिखाई दे रहे थे। हमने अलग अलग देशों में उत्पन्न, सुनहले साजों से भूषित, वायु के समान वेगशाली, सैकड़ों और हजारों घोड़ों को वहाँ भागते हुए देखा। हे राजन्! युद्धस्थल में घोड़ों ने पैदलसैनिकों को कुचल दिया। इसी प्रकार पैदलसैनिक भी दूसरे पैदलसैनिकों को अनेकबार कुचल देते थे।

पचपनवाँ अध्याय : अर्जुन से त्रिगर्तों की, अभिमन्यु से चित्रसेन की, द्रोण से द्रुपद की और भीम से बाल्हीक की हार, सात्यकि-भीष्म युद्ध।

संजय उवाच

अर्जुनस्तान् नरव्याघ्रः सुशर्मानुचरान् नृपान्।
अनयत् प्रेतराजस्य सदनं सायकैः शितैः॥ १॥
सुशर्मापि ततो बाणैः पार्थं विव्याध संयुगे।
वासुदेवं च सप्तत्या पार्थं च नवभिः पुनः॥ २॥
तं निवार्य शरौघेण शक्रसूनुर्महारथः।
सशर्मणो रणे योद्धान् प्राहिणोद् यमसादनम्॥ ३॥
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये।
व्यद्रवन्त रणे राजन् भये जाते महारथाः॥ ४॥

तब संजय ने कहा कि हे नरव्याघ्र! अर्जुन सुशर्मा के पीछे चलनेवाले राजाओं को अपने तीखे बाणों से मृत्यु के लोक में भेजने लगे। सुशर्मा ने भी नौ और सत्तर तथा और बहुत से बाणों की वर्षा कर कुन्तीपुत्र अर्जुन और श्रीकृष्ण को घायल किया। तब इन्द्रपुत्र महारथी अर्जुन ने अपने बाणसमूहों से उसकी बाणवर्षा को निवारणकर सुशर्मा के योद्धाओं को युद्ध में मृत्युलोक की तरफ भेज दिया। हे राजन्! जैसे प्रलयकाल में मृत्यु सबको मारती है, वैसे ही अर्जुन के द्वारा मारे जाते हुए वे सब महारथी भयभीत होकर युद्धक्षेत्र से भाग निकले।

वार्यमाणाः सुबहुशस्त्रैगर्तेन सुशर्मणा।
तथान्यैः पार्थिवश्रेष्ठैर्न व्यतिष्ठन्त संयुगे॥ ५॥
तद् बलं प्रद्रुतं दृष्ट्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव।
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं सर्वसैन्यपुरस्कृतः॥ ६॥

सर्वोद्योगेन महता धनंजयमुपाद्रवत्।
त्रिगर्ताधिपतेरर्थे जीवितस्य विशाम्पते॥ ७॥
तथैव पाण्डवा राजन् सर्वोद्योगेन दंशिताः।
प्रययुः फाल्गुनार्थाय यत्र भीष्मो व्यतिष्ठत॥ ८॥

त्रिगर्तराज सुशर्मा और दूसरे श्रेष्ठ राजाओं के द्वारा बहुत अधिक रोके जाने पर भी वे सैनिक युद्धस्थल में न ठहर सके। हे प्रजानाथ! तब उस सेना को भागते हुए देखकर आपके पुत्र दुर्योधन ने त्रिगर्तराज के जीवन के लिये भीष्म को आगेकर, सारी सेनाओं के सहित अपने पूरे महान् प्रयत्न के साथ अर्जुन पर आक्रमण किया। हे राजन्! उसी प्रकार पाण्डव भी कवच बाँधकर अर्जुन के लिये अपने पूरे प्रयत्न के साथ वहीं पहुँच गये जहाँ भीष्म विद्यमान थे।

ज्ञायमाना रणे वीर्यं घोरं गाण्डीवधन्वनः।
हाहाकारकृतोत्साहा भीष्मं जग्मुः समन्ततः॥ ९॥
ततस्तालध्वजः शूरः पाण्डवानां वरूथिनीम्।
छादयामास समरे शरैः संनतपर्वभिः॥ १०॥
एकीभूतास्ततः सर्वे कुरवः सह पाण्डवैः।
अयुध्यन्त महाराज मध्यं प्राप्ते दिवाकरे॥ ११॥
सात्यकिः कृतवर्माणं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः।
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन् बाणान् सहस्रशः॥ १२॥

गाण्डीवधनुर्धारी अर्जुन के युद्ध में घोर पराक्रम को जानते हुए, उन्होंने कोलाहल करते हुए, उत्साह सहित भीष्म को चारोंतरफ से घेर लिया। तब ताड़ के वृक्ष की ध्वजावाले शूरवीर भीष्म युद्ध में झुकी हुई गाँठवाले बाणों से पाण्डवों की सेना को आच्छादित करने लगे। हे महाराज! इसतरह दोपहर होते होते सारे कौरव इकट्ठे होकर पाण्डवों के साथ लड़ने लगे। शूरवीर सात्यकि कृतवर्मा को पाँच शीघ्रगामी बाणों से बींधकर और बाणों की वर्षा करते हुए युद्ध स्थल में खड़े रहे।

तथैव द्रुपदो राजा द्रोणं विद्ध्वा शितैः शरैः।
पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिं चास्य पञ्चभिः॥ १३॥
भीमसेनस्तु राजानं बाह्लीकं प्रपितामहम्।
विद्ध्वा नदन्महानादं शार्दूल इव कानने॥ १४॥
आर्जुनिश्चित्रसेनेन विद्धो बहुभिराशुगैः।
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन् बाणान् सहस्रशः॥ १५॥
चित्रसेनं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध समरे भृशम्।
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं च नवभिः शरैः॥ १६॥
ननाद बलवन्नादं सौभद्रः परवीरहा।

उसीप्रकार राजा द्रुपद ने द्रोणाचार्य को तीखे बाणों से बींधकर फिर उनपर सत्तर बाणों की वर्षा की और सारथि को पाँच बाणों से घायल कर दिया। भीमसेन ने अपने प्रपितामह राजा बाह्लीक को बींधकर वन में सिंह के समान जोर से गर्जना की। अर्जुनपुत्र अभिमन्यु चित्रसेन के द्वारा बहुत से शीघ्रगामी बाणों के द्वारा बींध दिया गया, पर फिर भी वह शूर हजारों बाणों की वर्षा करता हुआ युद्धक्षेत्र में खड़ा रहा। उसने तीव्र बाणों से युद्ध में चित्रसेन को अत्यधिक घायल कर दिया। फिर उसके चारों घोड़ों को मारकर नौ बाणों से उसके सारथि को मारकर शत्रु के वीरों को नष्ट करनेवाले सुभद्रापुत्र ने बड़ेजोर से सिंहनाद किया।

हताश्वात् तु रथात् तूर्णं सोऽवप्लुत्य महारथः॥ १७॥
आरुरोह रथं तूर्णं दुर्मुखस्य विशाम्पते।
द्रोणश्च द्रुपदं भित्त्वा शरैः संनतपर्वभिः॥ १८॥
सारथिं चास्य विव्याध त्वरमाणः पराक्रमी।
पीड्यमानस्ततो राजा द्रुपदो वाहिनीमुखे॥ १९॥
अपायाज्जवनैरश्वैः पूर्ववैरमनुस्मरन्।
भीमसेनस्तु राजानं मुहूर्तादिव बाह्लिकम्॥ २०॥
व्यश्वसूतरथं चक्रे सर्वसैन्यस्य पश्यतः।

हे प्रजानाथ! मरे हुए घोड़ोंवाले रथ से तुरन्त कूदकर वह महारथी शीघ्रता से दुर्मुख के रथ पर चढ़ गया। तब द्रोणाचार्य ने झुकी गाँठवाले बाणों से द्रुपद को घायल कर दिया और उस पराक्रमी ने शीघ्रता करते हुए उसके सारथि को बींध डाला। तब सेना के मुहाने पर द्रोणाचार्य से पीड़ित होते हुए राजा द्रुपद उसके साथ अपने पहले बैर को याद करते हुए, शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा वहाँ से भाग गये। भीमसेन ने सारी सेनाओं के देखते हुए एक मुहूर्त में ही बाह्लीक को सारथि, घोड़ों और रथ के बिना कर दिया।

ससम्भ्रमो महाराज संशयं परमं गतः॥ २१॥
अवप्लुत्य ततो वाहाद् बाह्लीकः पुरुषोत्तमः।
आरुरोह रथं तूर्णं लक्ष्मणस्य महारणे॥ २२॥
सात्यकिः कृतवर्माणं वारयित्वा महारणे।
शरैर्बहुविधै राजन्नाससाद पितामहम्॥ २३॥

हे महाराज! उससमय घबराहट से युक्त राजा बाह्लीक का जीवन अत्यन्त संशय में पड़ गया। तब पुरुषों में श्रेष्ठ बाह्लीक रथ से कूदकर उस महान् युद्धस्थल में शीघ्रता से लक्ष्मण के रथ पर चढ़ गये। हे राजन्! उधर सात्यकि ने महान् युद्ध में कृतवर्मा को रोककर बहुतप्रकार के बाणों की वर्षा करते हुए पितामह पर आक्रमण कर दिया।

स विद्ध्वा भारतं षष्ट्या निशितैर्लोमवाहिभिः।
नृत्यन्निव रथोपस्थे विधुन्वानो महद् धनुः॥ २४॥
तस्यायसीं महाशक्तिं चिक्षेपाथ पितामहः।
हेमचित्रां महावेगां नागकन्योपमां शुभाम्॥ २५॥
तामापतन्तीं सहसा मृत्युकल्पां सुदुर्जयाम्।
व्यंसयामास वार्ष्णेयो लाघवेन महायशाः॥ २६॥

उन्होंने रथ की बैठक में नृत्य सा करते हुए और धनुष को अत्यन्त टंकारते हुए भरतवंशी भीष्म को साठ तीखे पंखयुक्त बाणों की वर्षा कर घायल कर दिया। तब भीष्म ने साँपिनी के समान आकारवाली सुवर्ण भूषित, महान् वेगवाली सुन्दर लोहे की महान् शक्ति को सात्यकि के ऊपर फैंका। किन्तु मृत्यु के समान अत्यन्तदुर्जय उस आती हुई शक्ति को महायशस्वी यदुवंशी सात्यकि ने अपनी फुर्ती से व्यर्थ कर दिया।

वार्ष्णेयस्तु ततो राजन् स्वां शक्तिं कनकप्रभाम्।
वेगवद् गृह्य चिक्षेप पितामहरथं प्रति॥ २७॥

हे राजन्! तब सात्यकि ने भी अपनी सुनहरी प्रभावाली शक्ति को लेकर, उसे पितामह के रथ की तरफ वेग के साथ फैंका।

तामापतन्तीं सहसा द्विधा चिच्छेद भारतः।
क्षुरप्राभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यां सा व्यशीर्यत मेदिनीम्॥ २८॥
छित्त्वा शक्तिं तु गाङ्गेयः सात्यकिं नवभिः शरैः।
आजघानोरसि क्रुद्धः प्रहसञ्छत्रुकर्शनः॥ २९॥
ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज।
परिवव्रू रणे भीष्मं माधवत्राणकारणात्॥ ३०॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
पाण्डवानां कुरूणां च समरे विजयैषिणाम्॥ ३१॥

तब उस भरतवंशी ने आती हुई शक्ति को दो अत्यन्ततीखे क्षुरप्रों के द्वारा दो जगह से काट दिया और वह टुकड़े होकर भूमि पर गिर पड़ी। उस शक्ति को छिन्नकर शत्रुदमन गंगापुत्र ने क्रोध में भरकर हँसते हुए, नौ बाणों से सात्यकि की छाती पर प्रहार किया। तब हे पाण्डु के बड़े भाई! सात्यकि को बचाने के लिये पाण्डवों ने रथों, हाथियों और घोड़ों के सहित युद्धस्थल में भीष्म को घेर लिया। तब युद्धस्थल में विजय के इच्छुक पाण्डवों और कौरवों का रोंगटे खड़े कर देनेवाला घोर युद्ध आरम्भ हो गया।

छप्पनवाँ अध्याय : दुर्योधन का दुश्शासन को भीष्म की रक्षा में लगाना युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव का घोड़ों की सेना को हराना, शल्य से युद्ध।

संजय उवाच

दृष्ट्वा भीष्मं रणे क्रुद्धं पाण्डवैरभिसंवृतम्।
यथा मेघैर्महाराज तपान्ते दिवि भास्करम्॥ १॥
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमभाषत।
एष शूरो महेष्वासो भीष्मः शूरनिषूदनः॥ २॥
छादितः पाण्डवैः शूरैः समन्ताद् भरतर्षभ।
तस्य कार्यं त्वया वीर रक्षणं सुमहात्मनः॥ ३॥
रक्ष्यमाणो हि समरे भीष्मोऽस्माकं पितामहः।
निहन्यात् समरे यत्तान् पञ्चालान् पाण्डवैः सह॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे महाराज! जैसे ग्रीष्मऋतु के समाप्त होने पर बादल सूर्य को ढक लेते हैं, वैसे ही युद्धस्थल में क्रुद्ध हुए भीष्म को पाण्डवों से घिरा हुआ देखकर दुर्योधन ने दुश्शासन से कहा कि हे भरतश्रेष्ठ! इन शत्रुसूदन, महाधनुर्धर शूरवीर भीष्म को पाण्डवशूरों ने सबतरफ से घेर लिया है। हे वीर तुम्हें इन अत्यन्तमनस्वी की रक्षा करनी चाहिये। यदि हमारे पितामह, भीष्म की युद्ध में रक्षा की गयी तो ये युद्धस्थल में प्रयत्न करनेवाले पांचालों को पाण्डवों के साथ मार देंगे।

तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाभिरक्षणम्।
गोप्ता ह्येष महेष्वासो भीष्मोऽस्माकं महाव्रतः॥ ५॥
स भवान् सर्ववसैन्येन परिवार्य पितामहम्।

समरे कर्म कुर्वाणं दुष्करं परिरक्षतु॥ ६॥
स एवमुक्तः समरे पुत्रो दुःशासनस्तव।
परिवार्य स्थितो भीष्मं सैन्येन महता वृतः॥ ७॥

इसलिये मैं यहाँ भीष्म की रक्षा करना अपना प्रमुख कर्त्तव्य मानता हूँ। महान् व्रत का पालन करने वाले, महाधनुर्धर ये भीष्म हमारे रक्षक हैं, इसलिये तुम सारी सेना के साथ भीष्म को घेरकर, युद्ध में दुष्कर कार्य करनेवाले उनकी रक्षा करो। ऐसा कहे जाने पर आपका पुत्र दुश्शासन तब विशाल सेना से घिरा हुआ, भीष्म को घेरकर युद्धस्थल में स्थित हो गया।

ततो दुर्योधनो राजा शूराणां हयसादिनाम्।
अयुतं प्रेषयामास पाण्डवानां निवारणे॥ ८॥
नकुलं सहदेवं च धर्मराजं च पाण्डवम्।

तब राजा दुर्योधन ने दस हजार शूरवीर घुड़सवार पाण्डुपुत्र नकुल सहदेव तथा धर्मराज युधिष्ठिर को रोकने के लिये भेजे।

खुरशब्दश्च सुमहान् वाजिनां शुश्रुवे तदा॥ ९॥
महावंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते।
वेगवद्भिर्हयैस्तैस्तु क्षोभिता पाण्डवी चमूः॥ १०॥
निपतद्भिर्महावेगैर्हंसैरिव महत् सरः।
हेषतां चैव शब्देन न प्राज्ञायत किञ्चन॥ ११॥
ततो युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रो च पाण्डवौ।
प्रत्यघ्नंस्तरसा वेगं समरे हयसादिनाम्॥ १२॥
उद्‌वृत्तस्य महाराज प्रावृट्‌कालेऽतिपूर्यतः।
पौर्णमास्यामम्बुवेगं यथा वेला महोदधेः॥ १३॥

उस समय उन घोड़ों के खुरों की अत्यन्तमहान् ध्वनि ऐसे सुनायी दे रही थी जैसे पर्वत पर बाँसों के विशाल वन में आग लगने पर बाँस फट रहे हों। उन वेगवान् घुड़सवारों ने पाण्डवों की सेना को ऐसे क्षुब्ध कर दिया, जैसे महान् वेगवाले हंस किसी विशाल तालाब में उतरकर उसे मथ डालते हैं। उनके हिनहिनाने की आवाज से उससमय कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। तब राजा युधिष्ठिर और माद्री के दोनों पुत्र पाण्डव नकुल और सहदेव ने घुड़सवारों के वेग को युद्ध में हे महाराज! इसप्रकार नष्ट करना आरम्भ कर दिया, जैसे वर्षाऋतु में अधिक जल से परिपूर्ण होकर पूर्णिमा के दिन मर्यादा को तोड़ने वाले समुद्र के वेग को तट की भूमि रोक देती है।

ततस्ते रथिनो राजञ्छरैः संनतपर्वभिः।
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि कायेभ्यो हयसादिनाम्॥ १४॥
तेऽपि प्रासैः सुनिशितैः शरैः संनतपर्वभिः।
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि विचरन्तो दिशो दश॥ १५॥
वध्यमाना हयाश्चैव प्राद्रवन्त भयार्दिताः।
यथा सिंहं समासाद्य मृगाः प्राणपरायणाः॥ १६॥
पाण्डवाश्च महाराज जित्वा शत्रून् महामृधे।
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च ताडयामासुराहवे॥ १७॥

तब वे रथी हे राजन्! झुकी हुई गाँठवाले बाणों से घुड़सवारों के शरीरों से उनके सिरों को काटने लगे। वे घुड़सवार भी दसों दिशाओं में विचरण करते हुए, झुकी हुई गाँठवाले अत्यन्ततीखे बाणों से और प्रासों से शत्रुसैनिकों के मस्तक काट रहे थे। फिर जैसे सिंह को प्राप्तकर प्राण बचाने के लिये मृग भागते हैं, वैसे ही मारे जाते हुए वे घुड़सवार भी भय से पीड़ित होकर भागने लगे। इसप्रकार हे महाराज! पाण्डवों ने उस महान् युद्ध में शत्रुओं को जीतकर युद्धस्थल में शंखों को बजाया और नगाड़ों को पिटवाना आरम्भ कर दिया।

ततो दुर्योधनो दीनो दृष्ट्वा सैन्यं पराजितम्।
अब्रवीद् भरतश्रेष्ठ मद्रराजमिदं वचः॥ १८॥
एष पाण्डुसुतो ज्येष्ठो यमाभ्यां सहितो रणे।
पश्यतां वो महाबाहो सेनां द्रावयति प्रभो॥ १९॥
तं वारय महाबाहो वेलेव मकरालयम्।
त्वं हि संश्रूयसेऽत्यर्थमसह्यबलविक्रमः॥ २०॥
पुत्रस्य तव तद् वाक्यं श्रुत्वा शल्यः प्रतापवान्।
स ययौ रथवंशेन यत्र राजा युधिष्ठिरः॥ २१॥

तब अपनी सेना को पराजित देखकर दुर्योधन ने दीनता के साथ हे भरतश्रेष्ठ! मद्रराज शल्य से कहा कि हे प्रभो! ये ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र नकुल और सहदेव के साथ हे महाबाहु! आपके देखते हुए युद्ध में हमारी सेना को भगा रहे हैं। हे महाबाहु! आप इन्हें ऐसे रोकिये जैसे किनारा सागर को रोक देता है। आपका बल और पराक्रम अत्यधिक और असह्य सुना जाता है। तब आपके पुत्र की बात सुनकर प्रतापी शल्य रथियों के समूह के साथ वहाँ आ गये, जहाँ राजा युधिष्ठिर थे।

तदापतद् वै सहसा शल्यस्य सुमहद् बलम्।
महौघवेगं समरे वारयामास पाण्डवः॥ २२॥

मद्रराजं च समरे धर्मराजो महारथः।
दशभिः सायकैस्तूर्णमाजघान स्तनान्तरे॥ २३॥
नकुलः सहदेवश्च तं सप्तभिरजिह्मगैः।
मद्रराजोऽपि तान् सर्वानाजघान त्रिभिस्त्रिभिः॥ २४॥
युधिष्ठिरं पुनः षष्ट्या विव्याध निशितैः शरैः।
माद्रीपुत्रौ च सम्भ्रान्तौ द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत्॥ २५॥

तब अचानक आती हुई शल्य की अत्यन्तमहान् सेना को, जिसका वेग बहुतअधिक था, महारथी धर्मराज युधिष्ठिर ने युद्धस्थल में मद्रराज के सहित रोक दिया। उन्होंने शीघ्रता से उनकी छाती में दस बाणों से प्रहार किया नकुल और सहदेव ने भी सात सीधे जानेवाले बाणों से उन्हें घायल किया। मद्रराज ने भी उन सबको तीन तीन बाणों से बींधा और फिर युधिष्ठिर पर साठ तीखे बाणों की वर्षा की और उत्तमकुल में जन्मे माद्री के पुत्रों को भी दो दो बाणों से पीड़ित किया।

ततो भीमो महाबाहुर्दृष्ट्वा राजानमाहवे।
मद्रराजरथं प्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा॥ २६॥
अभ्यपद्यत संग्रामे युधिष्ठिरममित्रजित्।
ततो युद्धं महाघोरं प्रावर्तत सुदारुणम्।
अपरां दिशमास्थाय पतमाने दिवाकरे॥ २७॥

तब शत्रुओं को जीतनेवाले, महाबाहु भीम राजा युधिष्ठिर को युद्धस्थल में मृत्यु के मुख के समान मद्रराज के रथ के समीप पहुँचा हुआ देखकर युद्ध के लिये युधिष्ठिर के समीप आ गये। तब जब सूर्य पश्चिमदिशा की तरफ जा रहे थे, तब दोनों सेनाओं में अत्यन्तघोर और अत्यन्तदारुण युद्ध होने लगा।

सत्तावनवाँ अध्याय : भीष्म से पाण्डव सेना की हार। भीष्म से युद्ध के इच्छुक श्रीकृष्ण को अर्जुन द्वारा रोका जाना।

संजय उवाच

ततः पिता तव क्रुद्धो निशितैः सायकोत्तमैः।
आजघान रणे पार्थान् सहसेनान् समन्ततः॥ १॥
भीमं द्वादशभिर्विद्ध्वा सात्यकिं नवभिः शरैः।
नकुलं च त्रिभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः॥ २॥
युधिष्ठिरं द्वादशभिर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्।
धृष्टद्युम्नं ततो विद्ध्वा ननाद सुमहाबलः॥ ३॥
तं द्वादशाख्यैर्नकुलो माधवश्च त्रिभिः शरैः।
धृष्टद्युम्नश्च सप्तत्या भीमसेनश्च सप्तभिः॥ ४॥
युधिष्ठिरो द्वादशभिः प्रत्यविध्यत् पितामहम्।

संजय ने कहा कि उसके पश्चात् आपके पिता क्रोध में भरकर कुन्तीपुत्रों को उनकी सेनासहित सबतरफ से घायल करने लगे। उन्होंने भीम को बारह बाणों से, सात्यकि को नौ से, नकुल को तीन से, सहदेव को सात से बींधकर युधिष्ठिर की बारह बाणों से बाहों और छाती में प्रहार किया। वे अत्यन्त महाबलशाली फिर धृष्टद्युम्न को भी बींधकर जोर से गर्जना करने लगे। फिर पितामह पर नकुल ने बारह, सात्यकि ने तीन, धृष्टद्युम्न ने सत्तर, भीमसेन ने सात और युधिष्ठिर ने बारह बाणों की वर्षा कर उन्हें बींधा।

द्रोणस्तु सात्यकिं विद्ध्वा भीमसेनमविध्यत॥ ५॥
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्यमदण्डोपमैः शितैः।
तौ च तं प्रत्यविध्येतां त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः॥ ६॥
तोत्रैरिव महानागं द्रोणं ब्राह्मणपुङ्गवम्।
सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः॥ ७॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः।
संग्रामे नाजहुर्भीष्मं वध्यमानाः शितैः शरैः॥ ८॥

द्रोणाचार्य ने तब सात्यकि और भीमसेन दोनों को मृत्यु के प्रहार के समान तीखे पाँच पाँच बाणों से बींधा। उन दोनों ने भी जैसे अंकुशों से विशाल हाथी को पीड़ित किया जाये, वैसे उन ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य को तीन तीन सीधे जानेवाले बाणों से बींधा। उससमय सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रचीत्य, उदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिवि और वसाति देश के वीर, तीखे बाणों से मारे जाते हुए भी भीष्म को संग्रामभूमि में छोड़कर भागे नहीं।

तथैवान्ये महीपाला नानादेशसमागताः।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त विविधायुधपाणयः॥ ९॥
तथैव पाण्डवा राजन् परिवव्रुः पितामहम्।
स समन्तात् परिवृतो रथौघैरपराजितः॥ १०॥

गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः प्रजज्वाल दहन् परान्।
रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसि- शक्तिगदेन्धनः॥ ११॥
शरस्फुलिङ्गो भीष्माग्निः ददाह क्षत्रियर्षभान्।

उसीप्रकार अनेक देशों से आये हुए राजालोग भी विविधप्रकार के आयुधों को हाथ में लेकर पाण्डवों पर आक्रमण करने लगे। हे राजन्! उसी प्रकार पाण्डवों ने भी पितामह को घेर लिया। वे अपराजित भीष्म रथियों के समूहों से सबतरफ से घिरे हुए होने पर भी वन में लगाई हुई आग के समान शत्रुओं को जलाते हुए प्रज्वलित हो उठे। उस समय रथ उनकी अग्निशाला थी, धनुष ज्वालाओं के समान था, खड्ग, शक्ति और गदा समिधा थे, बाण चिनगारियाँ थीं। इसप्रकार भीष्मरूपी अग्नि क्षत्रियश्रेष्ठों को दग्ध कर रही थी।

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्गार्ध्रपक्षैः सुतेजनैः॥ १२॥
कर्णिनालीकनाराचैश्छादयामास तद् बलम्।
अपातयद् ध्वजांश्चैव रथिनश्च शितैः शरैः॥ १३॥
मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान्।
निर्मनुष्यान् रथान् राजन् गजानश्वांश्च संयुगे॥ १४॥
अकरोत् स महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः॥ १५॥
निशम्य सर्वभूतानि समकम्पन्त भारत।
अमोघा ह्यपतन् बाणाः पितुस्ते भरतर्षभ॥ १६॥

उन्होंने सुनहले तथा गृध्रपंखों से युक्त अत्यन्त तीखे, कर्णि, नालीक और नाराचों से उस सेना को ढक दिया। उन्होंने तीखे बाणों से ध्वजों को और रथियों को गिरा दिया। ध्वज काटकर उन्होंने रथों को मुण्डित तालवन के समान बना दिया। हे राजन् सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ उन महाबाहु ने युद्धक्षेत्र में रथों, हाथियों और घोड़ों को मनुष्यरहित कर दिया। हे भारत! बिजली की गड़गड़ाहट के समान उनके धनुष की टंकार को सुनकर सारे प्राणी काँपने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! आपके पिता के बाण खाली नहीं जाते थे।

नासज्जन्त तनुत्रेषु भीष्मचापच्युताः शराः।
हतवीरान् रथान् राजन् संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः॥ १७॥
अपश्याम महाराज ह्रियमाणान् रणाजिरे।
चेदिकाशिकरूषाणां सहस्राणि चतुर्दश॥ १८॥
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः।
अपरावर्तिनः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः॥ १९॥
संग्रामे भीष्ममासाद्य व्यादितास्यमिवान्तकम्।
निमग्नाः परलोकाय सवाजिरथकुञ्जराः॥ २०॥

भीष्म के धनुष से छूटे हुए बाण कवचों में अटकते नहीं थे। हे राजन्, हे महाराज! हमने युद्धस्थल में देखा कि तीव्रगामी घोड़ों से जुते हुए रथों को, उनके वीरों के मारे जाने पर, घोड़े खींचे हुए ले जाते थे। चेदि, काशी, करूष, देशों के चौदह हजार महारथी, जो उत्तमकुल में उत्पन्न तथा पाण्डवों के लिये प्राणों को न्यौछावर करनेवाले थे, वे सारे युद्ध में पीठ न दिखाने वाले और सुनहरे ध्वजों से युक्त मुँह फाड़े हुए मृत्यु के समान भीष्म को युद्ध में प्राप्तकर अपने रथों, घोड़ों, और हाथियोंसहित परलोक जाने के लिये युद्धरूपी समुद्र में डूब गये।

भग्नाक्षोपस्करान् कांश्चिद् भग्नचक्रांश्च भारत।
अपश्याम महाराज शतशोऽथ सहस्रशः॥ २१॥
सवरूथै रथैर्भग्नै रथिभिश्च निपातितैः।
शरैः सुकवचैश्छिन्नैः पट्टिशैश्च विशाम्पते॥ २२॥
गदाभिर्भिन्दिपालैश्च निशितैश्च शिलीमुखैः।
अनुकर्षैरुपासङ्गैश्चक्रैर्भग्नैश्च मारिष॥ २३॥
बाहुभिः कार्मुकैः खड्गैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः।
तलत्रैरङ्गुलित्रैश्च ध्वजैश्च विनिपातितैः॥ २४॥
चापैश्च बहुधाच्छिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी।

हे भारत! हमने वहाँ सैकड़ों और हजारों ऐसे रथ देखे, जिनके धुरे आदि सामान तथा पहिये टूट गये थे। हे प्रजानाथ! वरूथों के सहित टूटे हुए रथ, गिराये हुए रथी, बाणों, कटे हुए सुन्दर कवच, छिन्न हुए पट्टिश, गदा, भिन्दिपाल और तीखे बाण, टूटे हुए अनुकर्ष उपासंग और पहिये, हे मान्यवर! भुजाओं, धनुषों, तलवारों, कुण्डलसहित सिरों, तलत्राणों, अंगुलित्राणों, गिरायी हुई पताकाओं तथा अनेकप्रकार के चापों से भूमि भरी हुई थी।

हतारोहा गजा राजन् हयाश्च हतसादिनः॥ २५॥
न्यपतन्त गतप्राणाः शतशोऽथ सहस्रशः।
यतमानाश्च ते वीरा द्रवमाणान् महारथान्॥ २६॥
नाशक्नुवन् वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान्।
अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम्॥ २७॥
विमुच्य कवचानन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः।
प्रकीर्य केशान् धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः॥ २८॥

हे राजन्! जिनके सवार मार दिये गये थे, ऐसे हाथी और घोड़े सैकड़ों और हजारों की संख्या में निष्प्राण होकर पड़े हुए थे। भीष्म के बाणों से पीड़ित होकर भागते हुए महारथियों को पाण्डववीर प्रयत्न करके भी रोक नहीं पा रहे थे। पाण्डुपुत्रों की सेना उससमय अचेतन ही होकर हाहाकार कर रही थी। युधिष्ठिर के दूसरे सैनिक कवचों को उतारकर, बालों को बिखेरे सबतरफ भागते हुए दिखाई दे रहे थे।

प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः।
उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम्॥ २९॥
अयं स कालः सम्प्राप्तः पार्थ यः काङ्क्षितस्तव।
प्रहरास्मिन् नरव्याघ्र न चेन्मोहाद् विमुह्यसे॥ ३०॥
यत् पुरा कथितं वीर राज्ञां तेषां समागमे।
विराटनगरे तात संजयस्य समीपतः॥ ३१॥
भीष्मद्रोणमुखान् सर्वान् धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान्।
सानुबन्धान् हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति संगरे॥ ३२॥
इति तत् कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिंदम।
क्षत्रधर्ममनुस्मृत्य युध्यस्व विगतज्वरः॥ ३३॥

सेना को भागता हुआ देखकर यादवनन्दन श्रीकृष्ण ने अपने उत्तम रथ को रोककर कुन्तीपुत्र अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन! यह वहीसमय आ गया है, जिसकी तुम इच्छा करते रहे हो। यदि तुम मोह में नहीं हो तो हे नरव्याघ्र! इन भीष्म पर प्रहार करो। हे वीर, हे तात! तुमने पहले विराटनगर में, राजाओं के समूह में, संजय के सामने जो कहा था कि भीष्म, द्रोण आदि सारे धृतराष्ट्र के सैनिकों को, उनके सारथियों सहित, जो मुझसे युद्धक्षेत्र में लड़ने आयेगा, मार दूँगा। हे शत्रुदमन! कुन्तीपुत्र! अपने उस वाक्य को सत्य करो और चिन्ताएँ छोड़कर क्षत्रियधर्म का ध्यान कर युद्ध करो।

इत्युक्तो वासुदेवेन तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः।
अकाम इव बीभत्सुरिदं वचनमब्रवीत्॥ ३४॥
अवध्यानां वधं कृत्वा राज्यं वा नरकोत्तरम्।
दुःखानि वनवासे वा किं नु मे सुकृतं भवेत्॥ ३५॥
चोदयाश्वान् यतो भीष्मः करिष्ये वचनं तव।
पातयिष्यामि दुर्धर्षं भीष्मं कुरुपितामहम्॥ ३६॥
स चाश्वान् राजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः।
यतो भीष्मस्ततो राजन् दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव॥ ३७॥

श्रीकृष्ण के द्वारा यह कहे जाने पर, नीचा मुख कर टेढ़ी निगाह से देखते हुए अनिच्छुक की सी अवस्था में अर्जुन ने यह कहा कि वध करने के अयोग्य महापुरुषों का वध करके नरक से भी निम्नकोटि का राज्य लूँ या वन में वास करते हुए दुःख भोगूँ? इनमें से कौन मेरे लिये पुण्यदायक होगा? आप घोड़ों को, जिधर भीष्म हैं, उधर ही हाँकिये। मैं आपके कहने के अनुसार काम करूँगा और कुरुओं के पितामह दुर्धर्ष भीष्म को गिरा दूँगा। हे राजन्! तब श्रीकृष्ण जी ने चाँदी के समान श्वेत घोड़ों को उसीतरफ हाँका, जिसतरफ किरणोंवाले सूर्य के समान दुष्प्रेक्ष्य भीष्म युद्ध कर रहे थे।

ततस्तत् पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत्।
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे॥ ३८॥
ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठः सिंहवद् विनदन् मुहुः।
धनंजयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत्॥ ३९॥
क्षणेनं स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः।
शरवर्षेण महता न प्राज्ञायत भारत॥ ४०॥

तब महाबाहु अर्जुन को भीष्म के साथ युद्ध के लिये तैयार देखकर युधिष्ठिर की वह विशाल सेना युद्धस्थल में पुनः लौट आयी। तब कुरुश्रेष्ठ भीष्म ने सिंह के समान बार बार गर्जना कर अर्जुन के रथ को शीघ्र ही बाणवर्षा से भर दिया। हे भारत! उनका वह रथ घोड़ों और सारथि सहित उस महान् बाणवर्षा से एक क्षण में ही ऐसा ढक गया कि उसका कहीं पता ही नहीं पड़ता था।

वासुदेवस्त्वसम्भ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्वरः।
चोदयामास तानश्वान् विनुन्नान् भीष्मसायकैः॥ ४१॥
ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम्।
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्त्वा शितैः शरैः॥ ४२॥
स च्छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद् धनुः।
निमेषान्तरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव॥ ४३॥
चकर्ष च ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिः स्वनम्।
अथास्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः॥ ४४॥

श्रीकृष्ण जी उससमय बिना घबराये, धैर्य धारण कर शीघ्रता के साथ भीष्म के बाणों से घायल हुए घोड़ों को हाँक रहे थे। तब बादल की सी ध्वनिवाले अपने दिव्य धनुष को उठाकर अर्जुन ने तीखे बाणों से भीष्म के धनुष को काटकर गिरा दिया। धनुष

के कट जाने पर उन कुरुवंशी आपके पिता ने पलभर में ही एक दूसरे विशाल धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा ली। बादलों के समान ध्वनिवाले उस धनुष को उन्होंने दोनों हाथों से खींचा पर तभी क्रुद्ध अर्जुन ने उसे भी काट दिया।

तस्य तत् पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः।
गाङ्गेयस्त्वब्रवीत् पार्थं धन्विश्रेष्ठमरिंदम॥ ४५॥
साधु साधु महाबाहो साधु कुन्तीसुतेति च।
समाभाष्यैवमपरं प्रगृह्य रुचिरं धनुः॥ ४६॥
मुमोच समरे भीष्मः शरान् पार्थरथं प्रति।
अदर्शयद् वासुदेवो हययाने परं बलम्॥ ४७॥
मोघान् कुर्वञ्शरांस्तस्य मण्डलानि निदर्शयन्।

अर्जुन की इस फुर्ती की शान्तनुपुत्र भीष्म ने प्रशंसा की और हे शत्रुसूदन! फिर उस गंगापुत्र ने कुन्तीपुत्र से कहा कि हे महाबाहु कुन्तीपुत्र! साधु, साधु। ऐसा कहकर और फिर एक दूसरे सुन्दर धनुष को लेकर भीष्म ने अर्जुन की तरफ बाणों को छोड़ना आरम्भ कर दिया। उससमय श्रीकृष्ण घोड़ों के संचालन की अपनी सम्पूर्ण कला का प्रदर्शन कर रहे थे। वे तरह तरह के पैंतरे दिखाते हुए उनके बाणों को व्यर्थ कर रहे थे।

शुशुभाते न व्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ॥ ४८॥
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ।
वासुदेवस्तु सम्प्रेक्ष्य पार्थस्य मृदुयुद्धताम्॥ ४९॥
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः॥ ५०॥
वरान् वरान् विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान्।
युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले॥ ५१॥

भीष्म के बाणों से घायल हुए वे दोनों नरव्याघ्र ऐसे लग रहे थे, जैसे सींगों के आघात से घायल दो क्रोध में भरे हुए साँड हों। तब श्रीकृष्ण जी ने देखा कि अर्जुन कोमलता से युद्ध कर रहे हैं, उधर भीष्म युद्ध में लगातार बाणों की वर्षा करते हुए, दोनों सेनाओं के बीच में खड़े होकर सूर्य के समान सन्तप्त कर रहे हैं। वे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर की सेना में से उत्तम उत्तम सैनिकों को मारते हुए वहाँ प्रलय का सा दृश्य उपस्थित कर रहे हैं।

नामृष्यत महाबाहुर्माधवः परवीरहा॥
उत्सृज्य रजतप्रख्यान् हयान् पार्थस्य मारिष॥ ५२॥
वासुदेवस्ततो योगी प्रचस्कन्द महारथात्।
अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली॥ ५३॥
प्रतोदपाणिस्तेजस्वी सिंहवद् विनदन् मुहुः।
पीतकौशेयसंवीतो मणिश्यामो जनार्दनः॥ ५४॥
शुशुभे विद्रवन् भीष्मं विद्युन्माली यथाम्बुदः।

तब शत्रुवीरों को मारनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण हे मान्यवर! इसे सहन न कर सके और अर्जुन के चाँदी जैसे श्वेत घोड़ों को छोड़कर, योगीराज श्रीकृष्ण उस विशाल रथ से कूद पड़े। वे बलवान् और तेजस्वी अपनी भुजाओं को ही प्रहार करने का हथियार बनाये, चाबुक हाथ में लेकर सिंह के समान बार बार गर्जते हुए भीष्म की तरफ दौड़े। उस समय इन्द्रनीलमणि के समान साँवले रंग के श्रीकृष्ण, जिन्होंने पीला रेशमीवस्त्र धारण किया हुआ था, भीष्म की तरफ दौड़ते हुए इसप्रकार लग रहे थे, जैसे विद्युत् से अलंकृत बादल जा रहा हो।

अन्वगेव ततः पार्थः समभिद्रुत्य केशवम्॥ ५५॥
निजग्राह महाबाहुर्बाहुभ्यां परिगृह्य वै।
निगृह्यमाणः पार्थेन कृष्णो राजीवलोचनः॥ ५६॥
जगामैवैनमादाय वेगेन पुरुषोत्तमः।
पार्थस्तु विष्टभ्य बलाच्चरणौ परवीरहा॥ ५७॥
निजग्राह हृषीकेशं कथंचिद् दशमे पदे।
तत एवमुवाचार्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणम्॥ ५८॥
निःश्वसन्तं यथा नागमर्जुनः प्रणयात् सखा।
निवर्तस्व महाबाहो नानृतं कर्तुमर्हसि॥ ५९॥

तब महाबाहु अर्जुन ने श्रीकृष्ण के पीछे पीछे दौड़कर उन्हें अपनी दोनों भुजाओं से पकड़ लिया। कमल के समान नेत्रवाले, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, अर्जुन के द्वारा पकड़े जाने पर भी बलपूर्वक, उन्हें लेकर ही आगे बढ़ने लगे। तब शत्रु के वीरों को मारने वाले अर्जुन अपने चरणों को बलपूर्वक भूमि पर स्थिर करके, श्रीकृष्ण को किसी तरह दसवें कदम पर रोक पाये। उससमय श्रीकृष्ण जी की आँखें क्रोध से भरी हुई थीं, वे सर्प के समान लम्बी साँसें खींच रहे थे। उनके सखा अर्जुन ने तब आर्तभाव से प्रेमपूर्वक उनसे कहा कि हे महाबाहु! आप लौटिये। अपनी बात को असत्य मत कीजिये।

यत् त्वया कथितं पूर्वं न योत्स्यामीति केशव।
मिथ्यावादीति लोकास्त्वां कथयिष्यन्ति माधव॥ ६०॥

ममैष भारः सर्वो हि हनिष्यामि पितामहम्।
शपे केशव शस्त्रेण सत्येन सुकृतेन च॥ ६१॥
अन्तं यथा गमिष्यामि शत्रूणां शत्रुसूदन।
अद्यैव पश्य दुर्धर्षं पात्यमानं महारथम्॥ ६२॥
तारापतिमिवापूर्णमन्तकाले यदृच्छया।
माधवस्तु वचः श्रुत्वा फाल्गुनस्य महात्मनः॥ ६३॥
न किंचिदुक्त्वा सक्रोध आरुरोह रथं पुनः।

हे माधव, हे केशव! आपने जो पहले कहा था कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, इसकारण लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे! हे केशव! यह सारा भार मुझ पर है। मैं पितामह को मार दूँगा। यह मैं अपने शस्त्रास्त्रों, सत्य और पुण्य की शपथ खाकर कहता हूँ। हे शत्रुसूदन! मैं शत्रुओं का विनाश कर दूँगा। आज ही देखिये, मैं दुर्धर्ष महारथी पूर्ण चन्द्रमा के समान भीष्म को उनके अन्तिम समय में इच्छा के अनुसार मार गिराता हूँ। महात्मा अर्जुन के इन वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण कुछ भी न कहकर क्रोध के साथ ही रथ पर फिर बैठ गये।

तौ रथस्थौ नर व्याघ्रौ भीष्मः शान्तनवः पुनः॥ ६४॥
ववर्ष शरवर्षेण मेघो वृष्ट्या यथाचलौ।
प्राणानादत्त योधानां पिता देवव्रतस्तव।
गभस्तिभिरिवादित्यस्तेजांसि शिशिरात्यये॥ ६५॥

उन दोनों नरव्याघ्रों के रथ में बैठ जाने पर शान्तनुपुत्र भीष्म उनपर फिर बाणों की इसप्रकार वर्षा करने लगे जैसे बादल दो पर्वतों पर जल की वर्षा कर रहे हों। हे राजन्! आपके पिता देवव्रत योद्धाओं के प्राणों को उसीप्रकार लेने लगे जैसे ग्रीष्म में सूर्य अपनी किरणों से सबके तेज हर लेते हैं।

अठ्ठावनवाँ अध्याय : नवें दिन की समाप्ति। रात में पाण्डवों की मन्त्रणा और भीष्म के पास जाकर उनसे उनके वध का उपाय पूछना।

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा संध्यां संदृश्य भारत।
वध्यमानं च भीष्मेण त्यक्तास्त्रं भयविह्वलम्॥ १॥
स्वसैन्यं च परावृत्तं पलायनपरायणम्।
भीष्मं च युधि संरब्धं पीडयन्तं महारथम्॥ २॥
सोमकांश्च जितान् दृष्ट्वा निरुत्साहान् महारथान्।
चिन्तयित्वा ततो राजा अवहारमरोचयत्॥ ३॥
ततोऽवहारं सैन्यानां चक्रे राजा युधिष्ठिरः।
तथैव तव सैन्यानामवहारो ह्यभूत् तदा॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे भारत! तब राजा युधिष्ठिर ने संध्या को देखकर, अपनी सेना को भीष्म के द्वारा मारा जाता हुआ, भय से विह्वल होकर, हथियार छोड़कर, युद्ध से विमुख होकर, भागते हुए देखकर और महारथी भीष्म को अत्यन्तक्रुद्ध होकर युद्ध में पीड़ा देते हुए तथा महारथी सोमकों को उनके द्वारा जीता हुआ एवं निरुत्साहित किया हुआ समझकर अपनी सेना को वापिस लौटाना ही अच्छा समझा। तब राजा युधिष्ठिर ने सेना को लौटा लिया, फिर आपकी सेना भी उसीप्रकार वापिस लौट गयी।

भीष्मस्य समरे कर्म चिन्तयानास्तु पाण्डवाः।
नालभन्त तदा शान्तिं भीष्मबाणप्रपीडिताः॥ ५॥
भीष्मोऽपि समरे जित्वा पाण्डवान् सहसृंजयान्।
पूज्यमानस्तव सुतैर्वन्द्यमानश्च भारत॥ ६॥
न्यविशत् कुरुभिः सार्धं हृष्टरूपैः समन्ततः।
ततो रात्रिः समभवत् सर्वभूतप्रमोहिनी॥ ७॥
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे पाण्डवा वृष्णिभिः सह।
सृंजयाश्च दुराधर्षा मन्त्राय समुपाविशन्॥ ८॥
ततो युधिष्ठिरो राजा मन्त्रयित्वा चिरं नृप।
वासुदेवं समुद्वीक्ष्य वचनं चेदमाददे॥ ९॥

उससमय भीष्म के बाणों से पीड़ित हुए पाण्डव, उनके युद्ध के लिये किये हुए महान् कर्म को सोचते हुए शान्ति को नहीं प्राप्त कर रहे थे। हे भारत! भीष्म भी तब युद्ध में सृंजयों के साथ पाण्डवों को जीतकर, आपके पुत्रों द्वारा सत्कृत और वन्दित होते हुए प्रसन्नता के साथ कौरवों से घिरे हुए अपने शिविर में प्रविष्ट हुए। फिर सारे प्राणियों को मोहित करती हुई रात्रि आरम्भ हो गयी। रात्रि के उस भयानक प्रारम्भ में पाण्डव और दुर्धर्ष सृंजय वृष्णिवंशियों के साथ मन्त्रणा करने के लिये बैठे। हे राजन्! फिर राजा युधिष्ठिर देरतक विचार कर, श्रीकृष्ण जी की तरफ देखकर यह बोले कि-

कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम्।
गजं नलवनानीव विमृद्‌नन्तं बलं मम॥ १०॥
न चैवैनं महात्मानमुत्सहामो निरीक्षितुम्।
लेलिह्यमानं सैन्येषु प्रवृद्धमिव पावकम्॥ ११॥
यथा घोरो महानागस्तक्षको वै विषोल्बणः।
तथा भीष्मो रणे क्रुद्धस्तीक्ष्णशस्त्रः प्रतापवान्॥ १२॥
गृहीतचापः समरे प्रमुञ्चन् निशिताञ्छरान्।

हे कृष्ण! भयंकर पराक्रमी, मनस्वी भीष्म की तरफ देखो। वे मेरी सेना को ऐसे रौंद रहे हैं, जैसे हाथी सरकंडों के वनों को रौंद डालता है। बढ़ी हुई अग्नि के समान वे हमारी सेना को चाटते चले जा रहे हैं पर हम उन मनस्वी की तरफ देखने की भी हिम्मत नहीं कर पाते हैं। जैसे प्रचंड विषवाला तक्षकजाति का महानाग भयंकर होता है, वैसे ही हाथ में धनुष लिये, तीखे बाणों को छोड़ते हुए प्रतापी भीष्म क्रोध में भरकर युद्धस्थल में दिखाई देते हैं।

सोऽहमेवंगते कृष्ण निमग्नः शोकसागरे॥ १३॥
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद् भीष्ममासाद्य संयुगे।
वनं यास्यामि दुर्धर्ष श्रेयो वै तत्र मे गतम्॥ १४॥
न युद्धं रोचते कृष्ण हन्ति भीष्मो हि नः सदा।
यथा प्रज्वलितं वह्निं पतङ्गः समभिद्रवन्॥ १५॥
एकतो मृत्युमभ्येति तथाहं भीष्ममीयिवान्।
क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी॥ १६॥
भ्रातरश्चैव मे शूराः सायकैर्भृशपीडिताः।

हे कृष्ण! भीष्म को युद्धस्थल में देखकर, इस अवस्था को प्राप्त हुआ मैं, अपनी दुर्बल बुद्धि के कारण शोक में डूबता जा रहा हूँ। हे दुर्धर्ष! अब मैं वन में चला जाऊँगा। मेरे लिये वहीं जाना श्रेयस्कर होगा। भीष्म सदा से हमारे सैनिकों का विनाश करते आरहे हैं। ऐसी अवस्था में मुझे युद्ध करना अच्छा नहीं लगता। जैसे पतंगा जलती हुई अग्नि की तरफ दौड़कर एकमात्र मृत्यु को ही प्राप्त होता है, वैसे ही मैं भी भीष्म को प्राप्त करके हो रहा हूँ। हे वार्ष्णेय! राज्य के लिये पराक्रम करने वाला मैं क्षीण होता जा रहा हूँ। मेरे शूरवीर भाई भी बाणों से अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं।

मत्कृते भ्रातृसौहार्दाद् राज्यभ्रष्टा वनं गताः॥ १७॥
परिक्लिष्टा तथा कृष्णा मत्कृते मधुसूदन।
जीवितं बहुमन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम्॥ १८॥
जीवितस्याद्य शेषेण चरिष्ये धर्ममुत्तमम्।
यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सह केशवः॥ १९॥
स्वधर्मस्याविरोधेन हितं व्याहर केशव।
एवं श्रुत्वा वचस्तस्य कारुण्याद् बहुविस्तरम्॥ २०॥
प्रत्युवाच ततः कृष्णः सान्त्वयानो युधिष्ठिरम्।

हे मधुसूदन! मेरे ये भाई भाई के प्रति स्नेह के कारण राज्य से भी वञ्चित हुए और वन में भी गये। मेरे ही कारण द्रौपदी को भी अत्यन्त क्लेश उठाना पड़ा। अब तो मेरे लिये जीवित रहना ही दुर्लभ हो रहा है, इसलिये जीवित रहने को ही बहुत समझता हूँ। शेष बचे हुए जीवन से मैं उत्तम धर्म का पालन करूँगा। हे केशव! यदि आपका मुझ पर मेरे भाइयों सहित अनुग्रह है, तो जो मेरे धर्म के विरुद्ध न हो, ऐसी कल्याणकारी सलाह मुझे दीजिये। इसप्रकार करुणा से भरे हुए बहुतविस्तृत वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुए कहा कि–

धर्मपुत्र विषादं त्वं मा कृथाः सत्यसङ्गर॥ २१॥
यस्य ते भ्रातरः शूरा दुर्जयाः शत्रुसूदनाः।
अर्जुनो भीमसेनश्च वाय्वग्निसमतेजसौ॥ २२॥
माद्रीपुत्रौ च विक्रान्तौ त्रिदशानामिवेश्वरौ।
मां वा नियुङ्क्ष्व सौहार्दाद् योत्स्ये भीष्मेण पाण्डव॥ २३॥
त्वत्प्रयुक्तो महाराज किं न कुर्यां महाहवे।
हनिष्यामि रणे भीष्ममाहूय पुरुषर्षभम्॥ २४॥
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फाल्गुनः।

हे सत्यवादी धर्मपुत्र युधिष्ठिर! आप विषाद मत करो। आपके भाई बहुत शूरवीर, दुर्जय और शत्रुसूदन हैं। अर्जुन तथा भीम वायु तथा अग्नि के समान तेजस्वी हैं, पराक्रमी नकुल और सहदेव भी दो इन्द्रों के समान हैं। हे पाण्डुपुत्र या आप सौहार्दवश मुझे भी युद्ध में लगा दीजिये। मैं भीष्म के साथ युद्ध करूँगा। हे महाराज! आपकी आज्ञा से मैं महासमर में क्या नहीं कर सकता? यदि अर्जुन उन्हें नहीं मारना चाहते, तो मैं उन पुरुषश्रेष्ठ भीष्म को युद्ध में ललकारकर धृतराष्ट्र के पुत्रों के देखते हुए ही मार दूँगा।

यदि भीष्मे हते वीरे जयं पश्यसि पाण्डव॥ २५॥
हन्तास्म्येकरथेनाद्य कुरुवृद्धं पितामहम्।
पश्य मे विक्रमं राजन् महेन्द्रस्येव संयुगे॥ २६॥

विमुञ्चन्तं महास्त्राणि पातयिष्यामि तं रथात्।
यः शत्रुः पाण्डुपुत्राणां मच्छत्रुः स न संशयः॥ २७॥
मदर्था भवदीया ये ये मदीयास्तवैव ते।
तव भ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च॥ २८॥
मांसान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते।

हे पाण्डुपुत्र! यदि आप भीष्म के मारे जाने पर ही विजय को समझते हैं तो मैं अकेला ही उन कुरुओं के वृद्ध पितामह को मार दूँगा। हे राजन्! आप युद्धस्थल में इन्द्र के समान मेरे पराक्रम को देखिये। महान् अस्त्रों का प्रयोग करते हुए उन्हें मैं रथ से गिरा दूँगा। इसमें कोई संशय नहीं है कि जो पाण्डुपुत्रों का शत्रु है वह मेरा शत्रु है। जो आपके मित्र हैं, वे मेरे हैं और जो मेरे मित्र हैं, वे आपके ही हैं। हे राजन्! आपके भाई अर्जुन, मेरे भाई, मित्र, सम्बधी और शिष्य हैं। मैं अर्जुन के लिये अपना माँस काटकर भी दे सकता हूँ।

एष चापि नरव्याघ्रो मत्कृते जीवितं त्यजेत्॥ २९॥
एष नः समयस्तात तारयेम परस्परम्।
स मां नियुङ्क्ष्व राजेन्द्र यथा योद्धा भवाम्यहम्॥ ३०॥
प्रतिज्ञातमुपप्लव्ये यत् तत् पार्थेन पूर्वतः।
घातयिष्यामि गाङ्गेयमिति लोकस्य संनिधौ॥ ३१॥
परिरक्ष्यमिदं तावद् वचः पार्थस्य धीमतः।
अनुज्ञातं तु पार्थेन मया कार्यं न संशयः॥ ३२॥
अथवा फाल्गुनस्यैष भारः परिमितो रणे।

यह नरश्रेष्ठ भी मेरे लिये अपने जीवन को छोड़ सकते हैं। यह हमारा समझौता है कि हम एक दूसरे को विपत्ति में बचायेंगे। हे राजेन्द्र! आप मुझे नियुक्त कीजिये। मैं आपका योद्धा बनूँगा। उपप्लव्य नगर में अर्जुन ने पहले लोगों के सामने जो प्रतिज्ञा की थी, कि मैं गंगापुत्र का वध करूँगा, मुझे धीमान् अर्जुन के उस वचन की रक्षा करनी है। अर्जुन ने जिस कार्य की पूर्ति के लिये कहा है, उसे पूरा करना मेरा कर्तव्य है, इसमें कोई संशय नहीं है अथवा अर्जुन के लिये ही यह युद्ध में बहुत कम बोझेवाला कार्य है।

स हनिष्यति संग्रामे भीष्मं परपुरञ्जयम्॥ ३३॥
अशक्यमपि कुर्याद्धि रणे पार्थः समुद्यतः।
विपरीतो महावीर्यो गतसत्त्वोऽल्पजीवनः॥ ३४॥
भीष्मः शान्तनवो नूनं कर्तव्यं नावबुध्यते।

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव॥ ३५॥
सर्वे ह्येते न पर्याप्तास्तव वेगविधारणे।
नियतं समवाप्स्यामि सर्वमेतद् यथेप्सितम्॥ ३६॥
यस्य मे पुरुषव्याघ्र भवान् पक्षे व्यवस्थितः।

शत्रुओं के नगर को जीतनेवाले भीष्म को ये अर्जुन युद्ध में मार सकते हैं। अर्जुन यदि तैयार हो जाये तो असम्भव कार्य को भी सम्भव कर सकते हैं। हमारे विपरीत पक्ष को ग्रहण करनेवाले महापराक्रमी भीष्म अब बलहीन हैं, उनका जीवन थोड़ा रह गया है। वे शान्तनुपुत्र वास्तव में अपने कर्त्तव्य को नहीं जान रहे हैं। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे महाबाहु श्रीकृष्ण! आप जैसा कह रहे हैं, वह सत्य है। ये सारे कौरव भी आपका वेग सहन नहीं कर सकते। जिसके पक्ष में आप विद्यमान हैं, वह मैं अपने इच्छित मनोरथों को अवश्य प्राप्त कर लूँगा।

न तु त्वामनृतं कर्तुमुत्सहे स्वात्मगौरवात्॥ ३७॥
अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं कुरु माधव।
समयस्तु कृतः कश्चिन्मम भीष्मेण संयुगे॥ ३८॥
मन्त्रयिष्ये तवार्थाय न तु योत्स्ये कथञ्चन।
दुर्योधनार्थं योत्स्यामि सत्यमेतदिति प्रभो॥ ३९॥
स हि राज्यस्य मे दाता मन्त्रस्यैव च माधव।
तस्माद् देवव्रतं भूयो वधोपायार्थमात्मनः॥ ४०॥
भवता सहिताः सर्वे प्रयाम मधुसूदन।

पर मैं अपने बड़प्पन के प्रभाव से आपको असत्यवादी सिद्ध नहीं करना चाहता। इसलिये हे कृष्ण! आप युद्ध न करते हुए ही हमारी सहायता कीजिये। हे प्रभो! भीष्म ने मुझे एक वचन दिया हुआ है कि मैं युद्धस्थल में सलाह तुम्हारे हित की दूँगा, पर युद्ध किसीप्रकार नहीं करूँगा। युद्ध तो दुर्योधन के लिये ही करूँगा। यह मैं आपको सत्य कहता हूँ। इसलिये हे माधव! वे मुझे राज्य के लिये हितकारी सलाह देंगे। अतः हे मधुसूदन! हमसब आपके साथ देवव्रत के पास चलते हैं। फिर उनसे उनके वध के उपाय को पूछते हैं।

स वक्ष्यति हितं वाक्यं सत्यमस्माञ्जनार्दन॥ ४१॥
यथा च वक्ष्यते कृष्ण तथा कर्तास्मि संयुगे।
स नो जयस्य दाता स्यान्मन्त्रस्य च दृढव्रतः॥ ४२॥
बाला: पित्रा विहीनाश्च तेन संवर्धिता वयम्।

तं चेत् पितामहं वृद्धं हन्तुमिच्छामि माधव॥ ४३॥
पितुः पितरमिष्टं च धिगस्तु क्षत्रजीविकाम्।

हे जनार्दन, हे कृष्ण! वे हितकारी और सत्य बात बतायेंगे। वे जैसा कहेंगे, फिर युद्ध में हम वैसा ही करेंगे। व्रत का दृढ़ता से पालन करनेवाले, वे हमें विजय और अच्छी मन्त्रणा दे सकते हैं। जब हम बच्चे पिता से रहित हो गये थे, तब उन्होंने ही हमारा पालन किया था। हे माधव! उन्हीं बूढ़े पितामह को, जो हमारे प्रिय और हमारे पिता के भी प्रिय हैं, मैं मारना चाहता हूँ। क्षत्रियों की इस जीविका को धिक्कार है।

ततोऽब्रवीन्महाराज वार्ष्णेयः कुरुनन्दनम्॥ ४४॥
रोचते मे महाप्राज्ञ राजेन्द्र तव भाषितम्।
वक्तुमर्हति सत्यं स त्वया पृष्टो विशेषतः॥ ४५॥
ते वयं तत्र गच्छामः प्रष्टुं कुरुपितामहम्।
गत्वा शान्तनवं वृद्धं मन्त्रं पृच्छाम भारत॥ ४६॥
स वो दास्यति मन्त्रं यं तेन योत्स्यामहे परान्।
एवमामन्त्र्य ते वीराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजम्॥ ४७॥
जग्मुस्ते सहिताः सर्वे वासुदेवश्च वीर्यवान्।

हे महाराज! तब श्रीकृष्ण ने कुरुनन्दन युधिष्ठिर से कहा कि हे महाप्राज्ञ, राजेन्द्र! मुझे आपकी बात ठीक लगती है। वे सत्य ही कहेंगे और आपके पूछने पर तो विशेषरूप से कहेंगे। इसलिये हम कुरुओं के उन पितामह से पूछने के लिये वहाँ चलते हैं। हे भारत! हम जाकर उन बूढ़े शान्तनुपुत्र से सलाह पूछते हैं, हमें वे जो सलाह देंगे, उसी के अनुसार हम शत्रुओं से युद्ध करेंगे। इसप्रकार सलाह कर वे वीर पाण्डव एकत्र होकर और तेजस्वी श्रीकृष्ण पाण्डु के पूर्वज भीष्म के पास गये।

विमुक्तशस्त्रकवचा भीष्मस्य सदनं प्रति॥ ४८॥
प्रविश्य च तदा भीष्मं शिरोभिः प्रणिपेदिरे।
तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः॥ ४९॥
स्वागतं तव वार्ष्णेय स्वागतं ते धनंजय।
स्वागतं धर्मपुत्राय भीमाय यमयोस्तथा॥ ५०॥
किं वा कार्यं करोम्यद्य युष्माकं प्रीतिवर्धनम्।
युद्धादन्यत्र हे वत्साः व्रियन्तां मा विशङ्कथ॥ ५१॥
सर्वात्मनापि कर्तास्मि यदपि स्यात् सुदुष्करम्।

भीष्म के शिविर की तरफ जाते हुए उन्होंने अपने कवच और शस्त्रास्त्र रख दिये थे। वहाँ शिविर में प्रवेश कर उन्होंने भीष्म को सिर झुकाकर प्रणाम किया। तब महाबाहु कुरुओं के पितामह भीष्म ने उनसे कहा कि हे श्रीकृष्ण! तुम्हारा स्वागत है। हे अर्जुन! तुम्हारा स्वागत है। युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव इन सबका स्वागत है। आज मैं आपकी प्रीति को बढ़ानेवाला कौनसा कार्य करूँ? हे पुत्रों! युद्ध के अतिरिक्त जो चाहे माँगलो, शंका मत करो। चाहे वह कितना भी दुष्कर हो, मैं अपने पूरे प्रयत्न से उसे पूरा करूँगा।

तथा ब्रुवाणं गाङ्गेयं प्रीतियुक्तं पुनः पुनः॥ ५२॥
उवाच राजा दीनात्मा प्रीतियुक्तमिदं वचः।
कथं जयेम सर्वज्ञ कथं राज्यं लभेमहि॥ ५३॥
प्रजानां संशयो न स्यात् कथं तन्मे वद प्रभो।
भवान् हि नो वधोपायं ब्रवीतु स्वयमात्मनः॥ ५४॥
भवन्तं समरे वीर विषहेम कथं वयम्।
न हि ते सूक्ष्ममप्यस्ति रन्ध्रं कुरुपितामह॥ ५५॥

जब गंगापुत्र प्रेम से बार बार ऐसा कहने लगे, तब राजा युधिष्ठिर ने दीनता के साथ प्रेम सहित यह बात कही कि हे सर्वज्ञ! हम कैसे विजय को प्राप्त करें, कैसे हमें राज्य मिले? हे प्रभो! आप बताइये कि कैसे मेरी प्रजा का जीवन संकट में न पड़े? आप ही हमें स्वयं अपने वध के उपाय को बताइये। हे वीर! हम युद्धस्थल में आपके वेग को कैसे सहन करें? आपमें तो हे कौरवों के पितामह! छोटा सा भी छिद्र नहीं है।

मण्डलेनैव धनुषा दृश्यसे संयुगे सदा।
आददानं संदधानं विकर्षन्तं धनुर्न च॥ ५६॥
पश्यामस्त्वां महाबाहो रथे सूर्यमिवापरम्।
रथाश्वनरनागानां हन्तारं परवीरहन्॥ ५७॥
कोऽथ वोत्सहते जेतुं त्वां पुमान् भरतर्षभ।
वर्षता शरवर्षाणि संयुगे वैशसं कृतम्॥ ५८॥
क्षयं नीता हि पृतना संयुगे महती मम।
यथा युधि जयेम त्वां यथा राज्यं भृशं मम॥ ५९॥
मम सैन्यस्य च क्षेमं तन्मे ब्रूहि पितामह।

हे महाबाहु! रथ में दूसरे सूर्य के समान विद्यमान आपको हम गोलाकार धनुष के साथ ही देखते हैं। हम इस बात को देख ही नहीं पाते कि आप कब बाण लेते हैं, कब उसे धनुष पर रखते हैं और कब धनुष को खींचते हैं? हे शत्रुवीरों का नाश करने

वाले! रथ, घोड़ों, पैदलों और हाथियों के हन्ता! हे भरतश्रेष्ठ! कौन पुरुष आपको युद्ध में सहन कर सकता है? आपने युद्ध में बाणों की वर्षा के द्वारा भारी विनाश किया है। मेरी विशाल सेना आपके द्वारा नष्ट हो चुकी है। हे पितामह! आप हमें बताइये, जिससे हमें विपुल राज्य की प्राप्ति हो और जिससे मेरी सेना की कुशलता हो?

ततोऽब्रवीच्छान्तनवः पाण्डवान् पाण्डुपूर्वजः॥ ६०॥
न कथञ्चन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे।
जयो भवति सर्वज्ञ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ६१॥
निर्जिते मयि युद्धेन रणे जेष्यथ पाण्डवाः।
क्षिप्रं मयि प्रहरध्वं यदीच्छथ रणे जयम्॥ ६२॥
अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथासुखम्।
एवं हि सुकृतं मन्ये भवतां विदितो ह्यहम्॥ ६३॥
हते मयि हतं सर्वं तस्मादेवं विधीयताम्।

तब पाण्डु के पितृतुल्य शान्तनुपुत्र ने पाण्डवों से कहा कि हे कुन्तीपुत्र! मेरे युद्धस्थल में जीवित रहते हुए किसीप्रकार की भी विजय नहीं हो सकती। हे सर्वज्ञ! मैं यह तुमसे सत्य कहता हूँ। मुझे युद्ध के द्वारा जीतकर हे पाण्डुपुत्रों! तुम युद्ध में विजय को प्राप्त कर सकोगे। इसलिये यदि युद्ध में जय को चाहते हो तो शीघ्रता से मुझ पर प्रहार करो। हे कुन्तीपुत्रों! मैं तुम्हें इसके लिये आज्ञा देता हूँ, तुम जैसे सुख मिले, वैसे प्रहार करो। यह मैं अपना पुण्य समझता हूँ कि तुम्हें यह ज्ञात हो गया है, कि मेरे मरने पर सारी कौरवसेना मर जायेगी। इसलिये ऐसा ही करो अर्थात् मुझे मार दो।

युधिष्ठिर उवाच

ब्रूहि तस्मादुपायं नो यथा युद्धे जयेमहि॥ ६४॥

भीष्म उवाच

निक्षिप्तशस्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे।
द्रवमाणे च भीते च तवास्मीति च वादिनि॥ ६५॥
स्त्रियां स्त्रीनामधेये च विकले चैकपुत्रके।
अप्रशस्ते नरे चैव न युद्धं रोचते मम॥ ६६॥

तब युधिष्ठिर ने कहा फिर आप हमें उपाय बताइये, जिससे हम आपको युद्ध में जीत सकें। तब भीष्म ने कहा कि जिसने शस्त्र डाल दिये हों, जो गिर पड़ा हो, जिसके कवच और ध्वजा टूट गये हों, जो भाग रहा हो, जो डरा हुआ हो, जो यह कह रहा हो कि मैं आपका हूँ, जो स्त्री हो या स्त्री जैसे नाम वाला हो, जो व्याकुल हो, जो अपने पिता का अकेला पुत्र हो, जो शूद्र हो उनसे युद्ध करना मुझे अच्छा नहीं लगता।

य एष द्रौपदो राजंस्तव सैन्ये महारथः।
शिखण्डी समरामर्षी शूरश्च समितिञ्जयः॥ ६७॥
यथाभवच्च स्त्री पूर्वं पश्चात् पुंस्त्वं समागतः।
न प्रहर्तुमभीप्सामि गृहीतेषुः कथञ्चन॥ ६८॥
तदन्तरं समासाद्य पाण्डवो मां धनंजयः।
शरैर्घातयतु क्षिप्रं समन्ताद् भरतर्षभ॥ ६९॥
न तं पश्यामि लोकेषु मां हन्याद् यःसमुद्यतम्।
ऋते कृष्णान्महाभागात् पाण्डवाद् वा धनञ्जयात्॥ ७०॥

हे राजन्! तुम्हारी सेना में द्रुपद का पुत्र जो महारथी शिखण्डी है, यह युद्ध में अमर्षशील, शूर और विजय प्राप्त करनेवाला है। यह पहले स्त्री था, फिर पुरुषत्व को प्राप्त हो गया। मैं हाथ में धनुष बाण होने पर भी उस पर किसीप्रकार भी प्रहार करना नहीं चाहता। हे भरतश्रेष्ठ! इसी अवसर को प्राप्तकर पाण्डुपुत्र अर्जुन शीघ्रता से मेरे ऊपर चारों तरफ बाणों की वर्षा कर मुझे मार दें। सिवाय महाभाग श्रीकृष्ण के और पाण्डुपुत्र अर्जुन के मैं किसी और को नहीं देखता जो युद्ध के लिये तैयार मुझे मार सके।

एष तस्मात् पुरोधाय कञ्चिदन्यं ममाग्रतः।
आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः॥ ७१॥
मां पातयतु बीभत्सुरेवं तव जयो ध्रुवम्।
एतत् कुरुष्व कौन्तेय यथोक्तं मम सुव्रत॥ ७२॥
संग्रामे धार्तराष्ट्रांश्च हन्याः सर्वान् समागतान्।
ते तु ज्ञात्वा ततः पार्था जग्मुः स्वशिबिरं प्रति॥ ७३॥
अभिवाद्य महात्मानं भीष्मं कुरुपितामहम्।
तथोक्तवति गाङ्गेये परलोकाय दीक्षिते॥ ७४॥
अर्जुनो दुःखसंतप्तः सव्रीडमिदमब्रवीत्।

इसलिये यह अर्जुन उपर्युक्त लक्षणवाले किसी दूसरे पुरुष को आगे मेरे सामने कर, यत्नपूर्वक शस्त्रों और श्रेष्ठ धनुष को लेकर युद्ध में मुझे गिरा दे, तो तुम्हारी निश्चितरूप से विजय होगी। हे अच्छे व्रत का पालन करनेवाले कुन्तीपुत्र! जैसे मैने कहा है वैसे करो। फिर सामने आये हुए सारे धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार दो। तब वे कुन्तीपुत्र यह सब समझकर कुरुओं

के पितामह महात्मा भीष्म को प्रणाम कर अपने शिविर को चले गये। परलोक के लिये दीक्षा लिये हुए गंगापुत्र के इसप्रकार कहने पर दुःख से संतप्त अर्जुन ने लज्जासहित यह कहा कि—

गुरुणा कुरुवृद्धेन कृतप्रज्ञेन धीमता॥ ७५॥
पितामहेन संग्रामे कथं योद्धास्मि माधव।
कामं वध्यतु सैन्यं मे नाहं योत्स्ये महात्मना॥ ७६॥
जयो वास्तु वधो वा मे कथं वा कृष्ण मन्यसे।

वासुदेव उवाच

प्रतिज्ञाय वधं जिष्णो पुरा भीष्मस्य संयुगे॥ ७७॥
क्षत्रधर्मे स्थितः पार्थ कथं नैनं हनिष्यसि।
पातयैनं रथात् पार्थ क्षत्रियं युद्धदुर्मदम्॥ ७८॥
नाहत्वा युधि गाङ्गेयं विजयस्ते भविष्यति।
ज्यायांसमपि चेद् वृद्धं गुणैरपि समन्वितम्॥ ७९॥
आततायिनमायान्तं हन्याद् घातकमात्मनः।
शाश्वतोऽयं स्थितो धर्मः क्षत्रियाणां धनंजय॥ ८०॥
योद्धव्यं रक्षितव्यं च यष्टव्यं चानसूयुभिः।

कुरुओं के वृद्ध, गुरु, प्रज्ञावान्, धीमान् पितामह के साथ मैं हे माघव! कैसे युद्ध करूँगा? भले ही वे मेरी सारी सेना को मार दें। मैं उन महात्मा के साथ युद्ध नहीं करूँगा। चाहे मेरी विजय हो या मृत्यु। हे कृष्ण! आप कैसा ठीक समझते हैं? तब श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे अर्जुन! पहले युद्ध में भीष्म के वध की प्रतिज्ञा कर, क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए हे कुन्तीपुत्र! उन्हें कैसे नहीं मारोगे? हे कुन्तीपुत्र! युद्ध में दुर्मद, उन क्षत्रिय को रथ से नीचे गिराओ। युद्ध में गंगापुत्र को मारे बिना तुम्हारी विजय नहीं हो सकती। गुणों से युक्त बड़े से बड़े वृद्ध को भी यदि वे शस्त्र उठाये अपना वध करने के लिये आ रहे हों, तो उस आततायी का वध अवश्य कर देना चाहिये। हे अर्जुन! यह क्षत्रियों का शाश्वत धर्म है, कि उन्हें किसी के प्रति दोषदृष्टि न रखकर, सदा युद्ध करना चाहिये, रक्षा करनी चाहिये और यज्ञ करना चाहिये।

अर्जुन उवाच

शिखण्डी निधनं कृष्ण भीष्मस्य भविता ध्रुवम्॥ ८१॥
दृष्ट्वैव हि सदा भीष्मः पाञ्चाल्यं विनिवर्तते।
ते वयं प्रमुखे तस्य पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्॥ ८२॥
गाङ्गेयं पातयिष्याम उपायेनेति मे मतिः।
अहमन्यान् महेष्वासान् वारयिष्यामि सायकैः।
शिखण्ड्यपि युधां श्रेष्ठं भीष्ममेवाभियोधयेत्॥ ८३॥

तब अर्जुन ने कहा कि हे कृष्ण! शिखण्डी निश्चय ही भीष्म की मृत्यु होगा। क्योंकि भीष्म उस पाञ्चाल को देखते ही युद्ध से निवृत्त हो जाते हैं। इसलिये हम शिखण्डी को उनके आगे करके, गंगापुत्र को उपाय के द्वारा गिरायेंगे, यह मेरा विचार है। मैं दूसरे महाधनुर्धरों को बाणों से रोकूँगा और शिखण्डी भी योद्धाओं में श्रेष्ठ भीष्म से ही युद्ध करे।

उनसठवाँ अध्याय : दसवें दिन का आरम्भ। भीष्म और दुर्योधन संवाद। भीष्म द्वारा भयानक संहार।

संजय उवाच

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सूर्यस्योदयनं प्रति।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेष्वानकेषु च॥ १॥
ध्मायत्सु दधिवर्णेषु जलजेषु समन्ततः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य निर्याताः पाण्डवा युधि॥ २॥
कृत्वा व्यूहं महाराज सर्वशत्रुनिबर्हणम्।
शिखण्डी सर्वसैन्यानामग्र आसीद् विशाम्पते॥ ३॥
चक्ररक्षौ ततस्तस्य भीमसेनधनंजयौ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चैव वीर्यवान्॥ ४॥
सत्यकिश्चेकितानश्च तेषां गोप्ता महारथः।
धृष्टद्युम्नस्ततः पश्चात् पञ्चालैरभिरक्षितः॥ ५॥

संजय ने कहा कि फिर वेसारे पाण्डव सूर्योदय होने पर, जब भेरी, मृदंग और ढोल पीटे जाने लगे, सब तरफ दही के रंग के श्वेत शंख फूँके जाने लगे, शिखण्डी को आगे कर युद्ध के लिये बाहर निकले। हे प्रजानाथ! हे महाराज! उस दिन सारे शत्रुओं का संहार करनेवाला व्यूह बनाकर, शिखण्डी सारी सेना के आगे विद्यमान था। भीम और अर्जुन उसके पहियों के रक्षक थे और उसके पीछे द्रौपदी के पुत्र और पराक्रमी सुभद्रा का पुत्र था। उन्हीं के साथ सात्यकि और चेकितान भी थे। महारथी धृष्टद्युम्न उनके पीछे पांचालवीरों से सुरक्षित रहकर उनकी रक्षा कर रहा था।

ततो युधिष्ठिरो राजा यमाभ्यां सहितः प्रभुः।
प्रययौ सिंहनादेन नादयन् भरतर्षभ॥ ६॥
विराटस्तु ततः पश्चात् स्वेन सैन्येन संवृतः।
द्रुपदश्च महाबाहो ततः पश्चादुपाद्रवत्॥ ७॥
केकयाः भ्रातरः पञ्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान्।
जघनं पालयामासुः पाण्डुसैन्यस्य भारत॥ ८॥
एवं व्यूह्य महासैन्यं पाण्डवास्तव वाहिनीम्।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा जीवितमात्मनः॥ ९॥

हे भरतश्रेष्ठ! फिर प्रभावशाली राजा युधिष्ठिर नकुल और सहदेव के साथ सिंहनाद से दिशाओं को गुँजाते हुए युद्ध के लिये चले। उनके पीछे राजा विराट अपनी सेना से घिरे हुए थे। हे महाबाहु! उसके पीछे द्रुपद आक्रमण के लिये थे। हे भारत! पाँचों केकय भाई और पराक्रमी धृष्टकेतु पाण्डव सेना के जघनप्रदेश की रक्षा कर रहे थे। इसप्रकार अपनी विशाल सेना का व्यूह बनाकर पाण्डवों ने युद्धभूमि में अपने प्राणों का मोह छोड़कर आपकी सेना पर आक्रमण किया।

तथैव कुरवो राजन् भीष्मं कृत्वा महारथम्।
अग्रतः सर्वसैन्यानां प्रययुः पाण्डवान् प्रति॥ १०॥
पुत्रैस्तव दुराधर्षो रक्षितः सुमहाबलैः।
प्रययौ पाण्डवानीकं भीष्मः शान्तनुनन्दनः
ततो द्रोणो महेष्वासः पुत्रश्चास्य महाबल॥ ११॥
भगदत्तस्ततः पश्चाद् गजानीकेन संवृतः।
कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तमनुव्रतौ॥ १२॥
काम्बोजराजो बलवांस्ततः पश्चात् सुदक्षिणः।

हे राजन्! उसी प्रकार कौरव भी महारथी भीष्म को सारी सेनाओं के आगे कर पाण्डवों की तरफ चले। दुर्धर्ष शान्तनुपुत्र भीष्म आपके महाबली पुत्रों से रक्षित होकर पाण्डवसेना की तरफ जा रहे थे। उनके पीछे महाधनुर्धर द्रोणाचार्य और उनका महाबली पुत्र अश्वत्थामा था। उनके पश्चात् हाथीसेना से घिरा हुआ भगदत्त था। कृपाचार्य और कृतवर्मा भगदत्त के पीछे थे। उसके पश्चात् बलवान् काम्बोजराज सुदक्षिण था।

तथैवान्ये महेष्वासाः सुशर्मप्रमुखा नृपाः॥ १३॥
जघनं पालयामासुस्तव सैन्यस्य भारत।
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत॥ १४॥
अन्योन्यं निघ्नतां राजन् यमराष्ट्रविवर्धनम्।
अर्जुनप्रमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्॥ १५॥
भीष्मं युद्धेऽभ्यवर्तन्त किरन्तो विविधाञ्छरान्।

हे भारत! इसीप्रकार सुशर्मा आदि दूसरे प्रमुख महाधनुर्धर राजाओं ने आपकी सेना के जघनस्थान की रक्षा की। हे भारत! हे राजन्! फिर मृत्युलोक की वृद्धि करनेवाला युद्ध, जिसमें दोनोंतरफ के योद्धा एकदूसरे को मार रहे थे, प्रारम्भ हो गया। अर्जुन आदि कुन्तीपुत्रों ने शिखण्डी को आगेकर, विविधप्रकार के बाणों की वर्षा करते हुए भीष्म पर युद्धस्थल में चढ़ाई की।

अथोपायान्महाराज सव्यसाची धनंजयः॥ १६॥
त्रासयन् रथिनः सर्वान् बीभत्सुरपराजितः।
सिंहवद् विनदन्नुच्चैर्धनुर्ज्यां विक्षिपन् मुहुः॥ १७॥
शरौघान् विसृजन् पार्थो व्यचरन् कालवद् रणे।
तस्य शब्देन वित्रस्तास्तावका भरतर्षभ॥ १८॥
सिंहस्येव मृगा राजन् व्यद्रवन्त महाभयात्।
जयन्तं पाण्डवं दृष्ट्वा त्वत्सैन्यं चाभिपीडितम्॥ १९॥
दुर्योधनस्ततो भीष्ममब्रवीद् भृशपीडितः।

हे महाराज! फिर बायें हाथ से भी बाण चलाने वाले धनंजय अर्जुन, सारे साथियों को भयभीत करते हुए उनके पास आये। सिंह के समान जोर से गर्जते हुए और बार बार धनुष की प्रत्यंचा को खींचते हुए, बाणों के समूहों को छोड़ते हुए कुन्तीपुत्र उससमय मृत्यु के समान युद्धस्थल में विचर रहे थे। हे भरतश्रेष्ठ! जैसे सिंह के शब्द से मृग भयभीत होकर भाग जाते हैं, वैसे ही अर्जुन के सिंहनाद से आपके सैनिक महान् भय से भागने लगे। तब पाण्डुपुत्र को विजय प्राप्त करते और आपकी सेना को पीड़ित होते हुए देख कर दुर्योधन अत्यन्त पीड़ित होकर भीष्म से बोला। कि–

एषः पाण्डुसुतस्तात श्वेताश्वः कृष्णसारथिः॥ २०॥
दहते मामकान् सर्वान् कृष्णवर्त्मेव काननम्।
पश्य सैन्यानि गाङ्गेय द्रवमाणानि सर्वशः॥ २१॥
पाण्डवेन युधां श्रेष्ठ काल्यमानानि संयुगे।
यथा पशुगणान् पालः संकालयति कानने॥ २२॥
तथेदं मामकं सैन्यं काल्यते शत्रुतापन।
धनंजयशरैर्भग्नं द्रवमाणं ततस्ततः॥ २३॥
भीमोऽप्येवं दुराधर्षो विद्रावयति मे बलम्।

हे तात! जिनके कृष्ण सारथि हैं, वे श्वेत घोड़ों वाले पाण्डुपुत्र मेरे सारे वीरों को ऐसे जला रहे

हैं, जैसे अग्नि वन को भस्म करती है। हे योद्धाओं में श्रेष्ठ गंगापुत्र! देखिये। युद्धस्थल में पाण्डुपुत्र के द्वारा खदेड़ी जाती हुई मेरी सेनाएँ सबतरफ भाग रही हैं। जैसे वन में चरवाहा पशुओं को हाँकता है हे शत्रुओं को तपानेवाले! उसीप्रकार मेरी यह सेना हाँकी जा रही है। अर्जुन के बाणों से घायल होकर जहाँतहाँ भागती हुई मेरी सेना को दुर्धर्ष भीम भी खदेड़ रहे हैं।

सात्यकिश्चेकितानश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ २४॥
अभिमन्युः सुविक्रान्तो वाहिनीं द्रवते मम।
धृष्टद्युम्नस्तथा शूरो राक्षसश्च घटोत्कचः॥ २५॥
व्यद्रावयेतां सहसा सैन्यं मम महारणे।
वध्यमानस्य सैन्यस्य सर्वैरेतैर्महारथैः॥ २६॥
नान्यां गतिं प्रपश्यामि स्थाने युद्धे च भारत।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र देवतुल्यपराक्रम॥ २७॥
पर्याप्तस्तु भवाञ्शीघ्रं पीडितानां गतिर्भव।

सात्यकि, चेकितान, माद्री के दोनों पाण्डवपुत्र, और अत्यन्तपराक्रमी अभिमन्यु भी मेरी सेना को खदेड़ रहे हैं। शूरवीर धृष्टद्युम्न और राक्षस घटोत्कच भी इस महान् युद्ध में मेरी सेना को सहसा भगा रहे हैं। इनसारे महारथियों से भारी जाती हुई सेना को स्थिर करने और युद्ध कराने में हे देवतुल्य, पराक्रमी, पुरुषव्याघ्र, भारत! आपके सिवाय मैं किसी और सहारे को नहीं देखता। आप ही इन्हें रोकने में समर्थ हैं, इसलिये शीघ्र ही इन पीड़ितों का सहारा बनिये।

एवमुक्तो महाराज पिता देवव्रतस्तव॥ २८॥
चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु कृत्वा निश्चयमात्मनः।
तव संधारयन् पुत्रमब्रवीच्छान्तनोः सुतः॥ २९॥
दुर्योधन विजानीहि स्थिरो भूत्वा विशाम्पते।
पूर्वकालं तव मया प्रतिज्ञातं महाबल॥ ३०॥
हत्वा दशसहस्राणि क्षत्रियाणां महात्मनाम्।
संग्रामाद् व्यपयातव्यमेतत् कर्म ममाह्निकम्॥ ३१॥
इति तत् कृतवांश्चाहं यथोक्तं भरतर्षभ।

हे महाराज! ऐसा कहेजाने पर आपके पिता शान्तनुपुत्र देवव्रत ने एक मुहूर्त तक सोचकर और अपना निश्चय कर आपके पुत्र को सान्त्वना देते हुए कहा कि हे प्रजानाथ! दुर्योधन! स्थिर होकर मेरी बात को समझो। मैंने पहले तुमसे यह प्रतिज्ञा की थी कि हे महाबली! दस हजार मनस्वी क्षत्रियों को मारकर मैं युद्धभूमि से हटूँगा। यह मेरा दैनिक कार्य होगा। हे भरतश्रेष्ठ! जैसे मैंने कहा था, वैसे ही मैं अबतक करता आया हूँ।

अद्य चापि महत् कर्म प्रकरिष्ये महाबल॥ ३२॥
अहं वाद्य हतः शेष्ये हनिष्ये वाद्य पाण्डवान्।
अद्य ते पुरुषव्याघ्र प्रतिमोक्ष्ये ऋणं तव॥ ३३॥
भर्तृपिण्डकृतं राजन् निहतः पृतनामुखे।
इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ क्षत्रियान् प्रवपञ्छरैः॥ ३४॥
आससाद दुराधर्षः पाण्डवानामनीकिनीम्।
अनीकमध्ये तिष्ठन्तं गाङ्गेयं भरतर्षभ॥ ३५॥
आशीविषमिव क्रुद्धं पाण्डवाः प्रत्यवारयन्।

हे महाबली! आज भी मैं महान् कर्म करूँगा। या तो मैं आज मारा जाकर युद्धभूमि में सो जाऊँगा या आज पाण्डवों का संहार करूँगा। हे पुरुषव्याघ्र! भरण करनेवाले के रूप में तुम्हारा मेरे ऊपर जो ऋण है, हे राजन्! आज युद्ध के मुहाने पर मरकर मैं उस ऋण को चुका दूँगा। हे भरतश्रेष्ठ! ऐसा कहकर उन दुर्धर्ष ने बाणों से क्षत्रियों को काटते हुए पाण्डवों की सेना पर आक्रमण किया। तब सेना के बीच में खड़े हुए विषैले सर्प के समान क्रुद्ध गंगापुत्र को हे भरतश्रेष्ठ! पाण्डवसैनिक रोकने लगे।

दशमेऽहनि भीष्मस्तु दर्शयञ्शक्तिमात्मनः॥ ३६॥
पञ्चालानां च ये श्रेष्ठा राजपुत्रा महारथाः।
तेषामादत्त तेजांसि जलं सूर्य इवांशुभिः॥ ३७॥
न चैनं पाण्डवेयानां केचिच्छेकुर्निरीक्षितुम्।
उत्तरं मार्गमास्थाय तपन्तमिव भास्करम्॥ ३८॥
संयुद्ध्यमानो बहुभिर्भीष्मः शान्तनवस्तथाः।
अवकीर्णो महामेरुः शैलो मेघैरिवावृतः॥ ३९॥

किन्तु दसवें दिन भीष्म ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए पांचालों के जो श्रेष्ठमहारथी राजपुत्र थे, उनके तेज को ऐसे हर लिया, जैसे सूर्य अपनी किरणों से जल को सोख लेते हैं। भीष्म उस समय उत्तरायण को प्राप्त सूर्य की तरह अपने पराक्रम तप रहे थे। पाण्डवों में से कोई भी उनकी तरफ देखने की भी हिम्मत नहीं कर सका। शान्तनु पुत्र भीष्म तब अकेले ही बहुतों के साथ युद्ध करते हुए, मेघों से घिरे हुए महान् मेरुपर्वत के समान लग रहे थे।

साठवाँ अध्याय : अर्जुन का प्रोत्साहन, शिखण्डी का भीष्म पर आक्रमण। अर्जुन, दुश्शासन घोर युद्ध।

संजय उवाच

अर्जुनस्तु रणे राजन् दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम्।
शिखण्डिनमथोवाच समभ्येहि पितामहम्॥ १॥
न चापि भीस्त्वया कार्या भीष्मादद्य कथंचन।
अहमेनं शरैस्तीक्ष्णैः पातयिष्ये रथोत्तमात्॥ २॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषित्॥ ३॥
धृष्टद्युम्नस्तथा राजन् सौभद्रश्च महारथः।
हृष्टावाद्रवतां भीष्मं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम्॥ ४॥

हे राजन्! तब युद्ध में भीष्म के विक्रम को देखकर अर्जुन शिखण्डी से बोले कि तुम भीष्म पर आक्रमण करो। तुम्हें आज भीष्म से किसीप्रकार का भी भय नहीं करना चाहिये। मैं इनको तीखे बाणों से उत्तमरथ से गिरा दूँगा। हे भरतश्रेष्ठ! कुन्तीपुत्र के द्वारा ऐसा कहेजाने पर उनके वचनों को सुनकर शिखण्डी ने भीष्म पर आक्रमण कर दिया। हे राजन्! तब अर्जुन की बात सुनकर धृष्टद्युम्न और महारथी सुभद्रापुत्र भी प्रसन्न होकर भीष्म की तरफ दौड़े।

विराटद्रुपदौ वृद्धौ कुन्तिभोजश्च दंशितः।
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं पुत्रस्य तव पश्यतः॥ ५॥
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च वीर्यवान्।
तथेतराणि सैन्यानि सर्वाण्येव विशाम्पते॥ ६॥
समाद्रवन्त गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम्।
प्रत्युद्ययुस्तावकाश्च समेतांस्तान् महारथान्॥ ७॥
चित्रसेनो महाराज चेकितानं समभ्ययात्।
भीष्मप्रेप्सुं रणे यान्तं वृषं व्याघ्रशिशुर्यथा॥ ८॥

दोनों बूढ़े विराट द्रुपद तथा कुन्तीभोज कवच बाँध कर, तुम्हारे पुत्र के देखते हुए ही गंगापुत्र की तरफ दौड़े। अर्जुन की बात सुनकर हे प्रजानाथ! नकुल, सहदेव और वीर्यवान् युधिष्ठिर और दूसरी सारी सेनाएँ गंगापुत्र की तरफ दौड़ीं। तब एकत्र हुए उन पाण्डव महारथियों का आपके पुत्रों ने सामना किया। हे महाराज! युद्धक्षेत्र में भीष्म की तरफ जाने के इच्छुक चेकितान का चित्रसेन ने ऐसे सामना किया जैसे बाघ का बच्चा बैल का सामना कर रहा हो।

धृष्टद्युम्नं महाराज भीष्मान्तिकमुपागतम्।
त्वरमाणं रणे यत्तं कृतवर्मा न्यवारयत्॥ ९॥
भीमसेनं सुसंक्रुद्धं गाङ्गेयस्य वधैषिणम्।
त्वरमाणो महाराज सौमदत्तिर्न्यवारयत्॥ १०॥
तथैव नकुलं शूरं किरन्तं सायकान् बहून्।
विकर्णो वारयामास इच्छन् भीष्मस्य जीवितम्॥ ११॥
सहदेवं तथा राजन् यान्तं भीष्मरथं प्रति।
वारयामास संक्रुद्धः कृपः शारद्वतो युधि॥ १२॥

हे महाराज! भीष्म के समीप आये हुए और शीघ्रता के साथ युद्ध के लिये प्रयत्न करते हुए धृष्टद्युम्न को कृतवर्मा ने रोका। गंगापुत्र के वध के इच्छुक, अत्यन्तकुद्ध भीमसेन को भूरिश्रवा ने रोका। उसीप्रकार बहुत से बाणों की वर्षा करते हुए, शूरवीर नकुल को, भीष्म के जीवन की इच्छा करते हुए विकर्ण ने आकर रोका। हे राजन्! भीष्म के रथ की तरफ जाते हुए सहदेव को अत्यन्तक्रुद्ध कृपाचार्य ने युद्धस्थल में रोका।

राक्षसं क्रूरकर्माणं भैमसेनिं महाबलम्।
भीष्मस्य निधनं प्रेप्सुं दुर्मुखोऽभ्यद्रवद् बली॥ १३॥
सात्यकिं समरे यान्तं तव पुत्रो न्यवारयत्।
अभिमन्युं महाराज यान्तं भीष्मरथं प्रति॥ १४॥
सुदक्षिणो महाराज काम्बोजः प्रत्यवारयत्।
विराटद्रुपदौ वृद्धौ समेतावरिमर्दनौ॥ १५॥
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धौ वारयामास भारत।

भीष्म के मरण को चाहनेवाले, क्रूरकर्मा, महाबली भीमसेन के पुत्र राक्षस घटोत्कच पर बलवान् दुर्मुख ने आक्रमण किया। युद्ध के लिये जाते हुए सात्यकि को आपके पुत्र ने रोका। हे महाराज! भीष्म के रथ की तरफ जाते हुए अभिमन्यु को काम्बोजराज सुदक्षिण ने रोका। हे भारत! शत्रुमर्दन विराट और द्रुपद दोनों बूढ़ों को तब अश्वत्थामा ने क्रोध में भरकर रोका।

तथा पाण्डुसुतं ज्येष्ठं भीष्मस्य वधकाङ्क्षिणम्॥ १६॥
भारद्वाजो रणे यत्तो धर्मपुत्रमवारयत्।
अर्जुनं रभसं युद्धे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्॥ १७॥
भीष्मप्रेप्सुं महाराज भासयन्तं दिशो दश।
दुःशासनो महेष्वासो वारयामास संयुगे॥ १८॥

अन्ये च तावका योधाः पाण्डवानां महारथान्।
भीष्मस्याभिमुखान् यातान् वारयामासुराहवे॥ १९॥

इसीप्रकार भीष्म के वध की इच्छा करनेवाले सबसेबड़े पाण्डुपुत्र को द्रोणाचार्य ने यत्नपूर्वक रोका। युद्ध में शिखण्डी को आगेकर, दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए भीष्म को मारने के इच्छुक वेगशाली अर्जुन को हे महाराज! महाधनुर्धर दुश्शासन ने युद्धस्थल में रोका। इसीप्रकार आपके दूसरे योद्धाओं ने भीष्म के सामने जाते हुए पाण्डवों के महारथियों को युद्धस्थल में रोका।

दुःशासनो महाराज भयं त्यक्त्वा महारथः।
भीष्मस्य जीविताकाङ्क्षी धनंजयमुपाद्रवत्॥ २०॥
तत्राद्भुतमपश्याम चित्ररूपं विशाम्पते।
दुःशासनरथं प्राप्य यत् पार्थो नात्यवर्तत॥ २१॥
यथा वारयते वेला क्षुब्धतोयं महार्णवम्।
तथैव पाण्डवं क्रुद्धं तव पुत्रो न्यवारयत्॥ २२॥
दुःशासनो महाराज पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः।
वासुदेवं च विंशत्या ताडयामास संयुगे॥ २३॥

हे महाराज! भीष्म का जीवन चाहनेवाले महारथी दुश्शासन ने भय को छोड़कर अर्जुन पर आक्रमण किया। हे प्रजानाथ! वहाँ हमने यह अद्भुत और विचित्र बात देखी कि अर्जुन दुश्शासन के रथ के समीप जाकर वहाँ से आगे न बढ़ सके। जैसे विक्षुब्ध जलराशिवाले विशाल सागर को तटभूमि रोक देती है, वैसे ही उन क्रोध में भरे हुए पाण्डुपुत्र को आपके पुत्र ने रोक दिया। हे महाराज! दुश्शासन ने युद्ध में पाण्डुपुत्र पर तीन और श्रीकृष्ण जी पर बीस बाणों से प्रहार किया।

ततोऽर्जुनो जातमन्युर्वार्ष्णेयं वीक्ष्य पीडितम्।
दुःशासनं शतेनाजौ नाराचानां समार्पयत्॥ २४॥
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे।
दुःशासनस्त्रिभिः क्रुद्धः पार्थं विव्याध पत्रिभिः॥ २५॥
ललाटे भरतश्रेष्ठ शरैः संनतपर्वभिः।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा रथं चास्य त्रिभिः शरैः॥ २६॥
आजधान ततः पश्चात् पुत्रं ते निशितैः शरैः।

तब श्रीकृष्ण को पीड़ित देखकर, क्रोध में भरकर अर्जुन ने युद्धस्थल में दुश्शासन पर बहुतसारे नाराच छोड़े। अर्जुन के नाराच दुश्शासन का कवच छेदकर उसका खून पीने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! तब दुश्शासन ने क्रुद्ध होकर झुकी गाँठोंवाले और पंखयुक्त तीन बाणों से अर्जुन के मस्तक को बींधा। तब अर्जुन ने तीन बाणों से उसके धनुष और रथ को तोड़कर दूसरे और तीखे बाणों से आपके पुत्र को घायल किया।

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय भीष्मस्य प्रमुखे स्थितः॥ २७॥
अर्जुनं पञ्चविंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत्।
तस्य क्रुद्धो महाराज पाण्डवः शत्रुतापनः॥ २८॥
अप्रैषीद् विशिखान् घोरान् यमदण्डोपमान् बहून्।
अप्राप्तानेव तान् बाणांश्चिच्छेद तनयस्तव॥ २९॥
यतमानस्य पार्थस्य तदद्भुतमिवाभवत्।
पार्थं च निशितैर्बाणैरविध्यत् तनयस्तव॥ ३०॥
ततः क्रुद्धो रणे पार्थः शरान् संधाय कार्मुके।
प्रेषयामास समरे स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान्॥ ३१॥

तब उसने दूसरा धनुष लेकर भीष्म के आगे खड़े होकर अर्जुन की बाहों और छाती पर पच्चीस बाणों की वर्षा की। हे महाराज! तब शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले पाण्डुपुत्र ने क्रुद्ध होकर मृत्यु के प्रहार के समान भयंकर बहुतसे बाणों को दुश्शासन पर छोड़ा। तब प्रयत्न करते हुए कुन्तीपुत्र के उन बाणों को आपके पुत्र ने अपने पास आने से पहले ही काट दिया। यह एक अद्भुत बात हुई। फिर आपके पुत्र ने कुन्तीपुत्र को तीखेबाणों से बींध दिया। तब क्रुद्ध होकर अर्जुन ने युद्धस्थल में शिला पर तेज किये हुए और सुनहरे पंखवाले बाणों को धनुष पर सन्धान करके छोड़ा।

न्यमज्जंस्ते महाराज तस्य काये महात्मनः।
यथा हंसा महाराज तडागं प्राप्य भारत॥ ३२॥
पीडितश्चैव पुत्रस्ते पाण्डवेन महात्मना।
हित्वा पार्थं रणे तूर्णं भीष्मस्य रथमाव्रजत्॥ ३३॥
अगाधे मज्जतस्तस्य द्वीपो भीष्मोऽभवत् तदा।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां पुत्रस्तव विशाम्पते।
अवारयत् ततः शूरो भूय एव पराक्रमी॥ ३४॥

हे भरतवंशी महाराज! वे बाण उस मनस्वी के शरीर में ऐसे घुस गये, जैसे हंस तालाब को प्राप्त कर उसमें गोते लगाते हैं। तब मनस्वी पाण्डुपुत्र से पीड़ित होकर आपका पुत्र, अर्जुन को युद्ध में छोड़कर शीघ्रता से भीष्म के रथ पर जाचढ़ा। उस समय मानो गहरे समुद्र में डूबते हुए दुश्शासन के लिये भीष्म जी द्वीप बन गये। हे प्रजानाथ! फिर होशहवास ठीक होने पर आपके पराक्रमी और शूर, महाकाय पुत्र दुश्शासन ने पुनः अर्जुन को रोका और घायल किया, पर अर्जुन भी उससे व्यथित नहीं हुए।

इकसठवाँ अध्याय : दोनों तरफ के महारथियों के द्वन्द्व युद्ध।

संजय उवाच

सत्यकिं दंशितं युद्धे भीष्मायाभ्युद्यतं रणे।
आर्ष्यशृङ्गिर्महेष्वासो वारयामास संयुगे॥ १॥
माधवस्तु सुसंक्रुद्धो राक्षसं नवभिः शरैः।
आजधान रणे राजन् प्रहसन्निव भारत॥ २॥
तथैव राक्षसो राजन् माधवं नवभिः शरैः।
अर्दयामास राजेन्द्र संक्रुद्धः शिनिपुङ्गवम्॥ ३॥
शैनेयः शरसंघं तु प्रेषयामास संयुगे।
राक्षसाय सुसंक्रुद्धो माधवः परवीरहा॥ ४॥

संजय ने कहा कि युद्धस्थल में कवच बाँधे सात्यकि को भीष्म से युद्ध के लिये तैयार देखकर, महाधनुर्धर ऋष्यश्रृंग के पुत्र अलम्बुष ने उन्हें युद्ध के द्वारा रोका। हे भरतवंशी राजन्! तब मधुवंशी सात्यकि ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर उस राक्षस को हँसते हुए से नौ बाणों से युद्ध में चोट पहुँचायी। हे राजन्! उसीप्रकार उस राक्षस ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर शिनिश्रेष्ठ, सात्यकि को नौ बाणों से पीड़ित किया। तब शिनिवंशी शत्रुदमन सात्यकि ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर युद्धस्थल में उस राक्षस पर बाण समूहों की वर्षा की।

ततो रक्षो महाबाहुं सात्यकिं सत्यविक्रमम्।
विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैः सिंहनादं ननाद च॥ ५॥
माधवस्तु भृशं विद्धो राक्षसेन रणे तदा।
वार्यमाणश्च तेजस्वी जहास च ननाद च॥ ६॥
भगदत्तस्ततः क्रुद्धो माधवं निशितैः शरैः।
ताडयामास समरे तोत्रैरिव महागजम्॥ ७॥
विहाय राक्षसं युद्धे शैनेयो रथिनां वरः।
प्राग्ज्योतिषाय चिक्षेप शरान् संनतपर्वणः॥ ८॥

तब उस राक्षस ने सत्यविक्रमी, महाबाहु, सात्यकि को तीखेबाणों से बींध दिया और जोर से सिंहनाद किया। तब युद्ध में राक्षस के द्वारा अत्यन्त घायल होने तथा रोकेजाने पर भी तेजस्वी सात्यकि ने जोर से हँसकर गर्जना की। तब जैसे अंकुशों के द्वारा विशाल हाथी को पीड़ित किया जाता है, वैसे ही भगदत्त ने क्रुद्ध होकर युद्धस्थल में सात्यकि को तीखेबाणों से ताड़ना दी। तब रथियों में श्रेष्ठ सात्यकि ने उस राक्षस को छोड़कर युद्धस्थल में प्राग्ज्योतिषपुर के राजा पर झुकी हुई गाँठवाले बाणों को छोड़ा।

तस्य प्राग्ज्योतिषो राजा माधवस्य महद्धनुः।
चिच्छेद शतधारेण भल्लेन कृतहस्तवत्॥ ९॥
अथान्यद् धनुरादाय वेगवत् परवीरहा।
भगदत्तं रणे क्रुद्धं विव्याध निशितैः शरैः॥ १०॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणीपरिसंलिहन्।
शक्तिं कनकवैदूर्यभूषितामायसीं दृढाम्॥ ११॥
यमदण्डोमां घोरां चिक्षेप परमाहवे।
तामापतन्तीं सहसा तस्य बाहुबलेरिताम्॥ १२॥
सात्यकिः समरे राजन् द्विधा चिच्छेद सायकैः।

राजा भगदत्त ने एक सिद्धहस्त योद्धा के समान सात्यकि के विशाल धनुष को अनेक धारोंवाले भल्ल के द्वारा काट दिया। तब शत्रुदमन सात्यकि ने दूसरा वेगवाला धनुष लेकर क्रोध में भरे हुए भगदत्त को युद्ध में तीखेबाणों से बींध दिया। अत्यन्त घायल होकर तब उस महाधनुर्धर ने अपने मुख के दोनों भागों को चाटते हुए स्वर्ण और वैदूर्य से भूषित, लोहे की दृढ़, मृत्यु के प्रहार के समान अत्यन्त भयंकर शक्ति को युद्ध में उसके ऊपर फैंका। उसके बाहुबल से प्रेरित उस अपनीतरफ आती हुई शक्ति के सात्यकि ने हे राजन्! युद्धस्थल में ही बाणों से दो टुकड़े कर दिये।

शक्तिं विनिहितां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते॥ १३॥
महता रथवंशेन वारयामास माधवम्।
तथा परिवृतं दृष्ट्वा वार्ष्णेयानां महारथम्॥ १४॥
दुर्योधनो भृशं क्रुद्धो भ्रातॄन् सर्वानुवाच ह।
तथा कुरुत कौरव्या यथा वः सात्यको युधि॥ १५॥
न जीवन् प्रतिनिर्याति महतोऽस्माद् रथव्रजात्।
तस्मिन् हते हतं मन्ये पाण्डवानां महद् बलम्॥ १६॥
तथेति च वचस्तस्य परिगृह्य महारथाः।
शैनेयं योधयामासुर्भीष्मायाभ्युद्यतं रणे॥ १७॥

हे प्रजानाथ! उस शक्ति को नष्ट हुआ देखकर आपके पुत्र ने विशाल रथसेना के द्वारा सात्यकि को रोका। वृष्णिवंशियों के महारथी सात्यकि को रथसेना के द्वारा घिरा हुआ देखकर, अत्यन्त क्रोध में भर कर दुर्योधन ने अपने भाइयों से कहा कि हे कौरवों! ऐसा प्रयत्न करो, जिससे यह सात्यकि तुम्हारी रथसेना से छूटकर जीता हुआ न निकल सके। इसके मारेजाने पर मैं पाण्डवों की महान् सेना को मारा

हुआ ही समझता हूँ। तब उन महारथियों ने दुर्योधन की बात को स्वीकारकर भीष्म के साथ युद्ध के लिये तैयार सात्यकि से युद्ध आरम्भ कर दिया।

अभिमन्युं तथाऽऽयान्तं भीष्मस्याभ्युद्यतं वधे।
काम्बोजराजो बलवान् वारयामास संयुगे॥ १८॥
आर्जुनिं नृपतिर्विद्ध्वा शरैः संनपर्वभिः।
पुनरेव चतुःषष्ट्या राजन् विव्याध तं नृप॥ १९॥
सुदक्षिणस्तु समरे पुनर्विव्याध पञ्चभिः।
सारथिं चास्य नवभिरिच्छन् भीष्मस्य जीवितम्॥ २०॥
तद् युद्धमासीत् सुमहत् तयोस्तत्र समागमे।

उधर अभिमन्यु को, भीष्म के वध के लिये उद्यत होकर आते हुए को बलवान् काम्बोजराज ने युद्धक्षेत्र में रोका। उस राजा ने झुकी हुई गाँठ वाले बाणों से अर्जुनपुत्र को बींधकर, हे राजन्! फिर चौंसठ बाणों की उस पर वर्षा की। भीष्म के जीवन को चाहनेवाले सुदक्षिण ने पुन: अभिमन्यु को पाँच और उसके सारथि को नौ बाणों से घायल कर दिया। तब उनदोनों में भारीयुद्ध आरम्भ हो गया।

विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयन्तौ महाचमूम्॥ २१॥
भीष्मं च युधि संरब्धावाद्रवन्तौ महारथौ।
अश्वत्थामा रणे क्रुद्धः समायाद्रथसत्तमः॥ २२॥
ततः प्रववृते युद्धं तयोस्तस्य च भारत।
विराटो दशभिर्भल्लैराजघान परंतप॥ २३॥
यतमानं महेष्वासं द्रौणिमाहवशोभिनम्।
द्रुपदश्च त्रिभिर्बाणैर्विव्याध निशितैस्तदा॥ २४॥
गुरुपुत्रं समासाद्य प्रहरन्तौ महाबलौः।
अश्वत्थामा ततस्तौ तु विव्याध बहुभिः शरैः॥ २५॥
तत्राद्भुतमपश्याम वृद्धयोश्चरितं महत्।
यद् द्रौणिसायकान् घोरान् प्रत्यवारयतां युधि॥ २६॥

विशाल सेना को रोकते हुए, और भीष्म से युद्ध के लिये क्रोध में भरकर आते हुए बूढ़े महारथी विराट और द्रुपद पर युद्धश्रेष्ठ अश्वत्थामा ने क्रोध में भरकर युद्धस्थल में आक्रमण किया। तब हे भारत! उनमें युद्ध आरम्भ हो गया। हे परंतप! तब विराट ने दस भल्लों से युद्ध में शोभा पानेवाले, प्रयत्न करनेवाले, महाधनुर्धर द्रोणपुत्र पर प्रहार किया। द्रुपद ने भी उस गुरुपुत्र को युद्ध में प्राप्त कर उसे तीन तीखेबाणों से बींधा। अश्वत्थामा ने तब प्रहार करते हुए उन दोनों महाबलवानों को बहुत से बाणों से बींधा। वहाँ हमने दोनों बूढ़ों का वह महान् अदभुत कर्म देखा कि वे युद्ध में द्रोणपुत्र के भयंकर बाणों का निवारण कर रहे थे।

सहदेवं तथा यान्तं कृपः शारद्वतोऽभ्ययात्।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमुपाद्रवत्॥ २७॥
कृपश्च समरे शूरो माद्रीपुत्रं महारथम्।
आजधान शरैस्तूर्णं सप्तत्या रुक्मभूषणैः॥ २८॥
तस्य माद्रीसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद सायकैः।
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध नवभिः शरैः॥ २९॥
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय समरे भारसाधनम्।
माद्रीपुत्रं सुसंहृष्टो दशभिर्निशितैः शरैः॥ ३०॥
आजधानोरसि क्रुद्ध इच्छन् भीष्मस्य जीवितम्।

जैसे वन में एक मस्त हाथी पर दूसरा मस्त हाथी आक्रमण करे, वैसे ही भीष्म की तरफ जाते हुए सहदेव पर शरद्वान्पुत्र कृपाचार्य ने आक्रमण किया। समर में शूरवीर कृपाचार्य ने शीघ्रता से सत्तर बाणों की वर्षाकर माद्री के उस महारथी पुत्र को चोट पहुँचायी। तब माद्रीपुत्र सहदेव ने बाणों से उनके धनुष के दो टुकड़े कर दिये और उन्हें नौ बाणों से बींध दिया। फिर भीष्म का जीवन चाहनेवाले कृपाचार्य ने अत्यन्त हर्ष के साथ दूसरे भार को सहन करनेवाले धनुष को लेकर, माद्रीपुत्र सहदेव की छाती में क्रोधसहित तीखे दस बाणों से आक्रमण किया।

तथैव पाण्डवो राजञ्छारद्वतममर्षणम्॥ ३१॥
आजघानोरसि क्रुद्धो भीष्मस्य वधकाङ्क्षया।
तयोर्युद्धं समभवद् घोररूपं भयावहम्॥ ३२॥
नकुलं तु रणे क्रुद्धो विकर्णः शत्रुतापनः।
विव्याध सायकैः षष्ट्या रक्षन् भीष्मं महाबलम्॥ ३३॥
नकुलोऽपि भृशं विद्धस्तव पुत्रेण धीमता।
विकर्णं सप्तसप्तत्या निर्बिभेद शिलीमुखैः॥ ३४॥
तत्र तौ नरशार्दूलौ भीष्महेतोः परंतपौ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ गोष्ठे गोवृषभाविव॥ ३५॥

हे राजन्! पाण्डुपुत्र ने भी तब वैसे ही भीष्म के वध की आकांक्षा से क्रुद्ध होकर अमर्षशील कृपाचार्य की छाती में बाणों से प्रहार किया। तब उन दोनों में भय उत्पन्न करनेवाला घोर युद्ध होने लगा। उधर शत्रुओं को तपानेवाले विकर्ण ने महाबली भीष्म की रक्षा करते हुए क्रोध में भरकर नकुल

पर युद्धस्थल में साठ बाणों की वर्षाकर उसे घायल किया। नकुल ने भी आपके धीमान् पुत्र के द्वारा अत्यन्त घायल होकर विकर्ण पर सतत्तर बाणों की वर्षा की और उसे घायल कर दिया। इस प्रकार भीष्म के लिये वे दोनों परंतप नरसिंह वीर गौशाला में परस्पर लड़ते हुए दो सांडों के समान एकदूसरे पर प्रहार करने लगे।

घटोत्कचं रणे यान्तं निघ्नन्तं तव वाहिनीम्।
दुर्मुखः समरे प्रायाद् भीष्महेतोः पराक्रमी॥ ३६॥
हैडिम्बस्तु रणे राजन् दुर्मुखं शत्रुतापनम्।
आजधानोरसि क्रुद्धः शरेणानतपर्वणा॥ ३७॥
भीमसेनसुतं चापि दुर्मुखः सुमुखैः शरैः।
षष्ट्या वीरो नदन् हृष्टो विव्याध रणमूर्धनि॥ ३८॥

आपकी सेना को मारते हुए और युद्धक्षेत्र में आगे बढ़ते हुए घटोत्कच पर पराक्रमी दुर्मुख ने भीष्म के लिये आक्रमण किया। हे राजन्! तब हिडिम्बापुत्र ने क्रोध में भरकर झुकी गाँठवाले बाण से शत्रु को तपानेवाले दुर्मुख की छाती पर युद्ध में प्रहार किया। तब वीर दुर्मुख ने भी भीमसेन के पुत्र पर तीखी नोकवाले साठ बाणों की वर्षा द्वारा उसे घायलकर युद्ध के मुहाने पर हर्षित होकर गर्जना की।

धृष्टद्युम्नं तथाऽऽयान्तं भीष्मस्य वधकाङ्क्षिणम्।
हार्दिक्यो वारयामास रथश्रेष्ठं महारथः॥ ३९॥
हार्दिक्यः पार्षतं चापि विद्ध्वा पञ्चभिरायसैः।
पुनः पञ्चाशता तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ४०॥
आजघान महाबाहुः पार्षतं तं महारथम्।
तं चैव पार्षतो राजन् हार्दिक्यं नवभिः शरैः॥ ४१॥
विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः।

इसीप्रकार भीष्म के वध की इच्छावाले आते हुए श्रेष्ठरथी धृष्टद्युम्न को हदीकपुत्र महारथी कृतवर्मा ने रोका। कृतवर्मा ने द्रुपदपुत्र को पाँच लोहे के बाणों से बींधकर फिर शीघ्रता से पचास बाणों की वर्षाकर उससे खड़ा रह, खड़ा रह ऐसा कहा। इसप्रकार उस महाबाहु ने महारथी द्रुपदपुत्र को गहरी चोट पहुँचायी। हे राजन्! द्रुपदपुत्र ने भी कृतवर्मा को नौ सीधे जानेवाले तीखे कंकपत्रों से युक्त बाणों से घायल किया।

भीमसेनं तथाऽऽयान्तं भीष्मं प्रति महारथम्॥ ४२॥
भूरिश्रवाभ्ययात् तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
सौमदत्तिरथो भीममाजघान स्तनान्तरे॥ ४३॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन रुक्मपुङ्खेन संयुगे।
तौ शरान् सूर्य संकाशान् कर्मारपरिमार्जितान्॥ ४४॥
अन्योन्यस्य रणे क्रुद्धौ चिक्षिपाते नरर्षभौ।
भीमो भीष्मवधाकाङ्क्षी सौमदत्तिं महारथम्॥ ४५॥
तथा भीष्मजये गृध्नुः सौमदत्तिस्तु पाण्डवम्।
कृतप्रतिकृते यत्तौ योधयामासतू रणे॥ ४६॥

भीष्म की तरफ जाते हुए महारथी भीमसेन पर भूरिश्रवा ने शीघ्रता से आक्रमण किया और कहा ठहर, ठहर। फिर सोमदत्तपुत्र ने युद्ध में भीम की छाती पर अत्यन्ततीखे सुनहले पंखवाले नाराच से प्रहार किया। उससमय युद्ध में क्रुद्ध हुए वे दोनों नरश्रेष्ठ एकदूसरे पर सूर्य के समान तेजस्वी लोहार के द्वारा माँजकर साफ किये हुए बाणों को छोड़ रहे थे। भीष्म के वध के इच्छुक भीम महारथी भूरिश्रवा पर तथा भीष्म की विजय को चाहनेवाला भूरिश्रवा पाण्डुपुत्र पर एकदूसरे के प्रहारों का प्रतिकार करते हुए सावधानी से युद्धस्थल में लड़ रहे थे।

युधिष्ठिरं तु कौन्तेयं महत्या सेनया वृतम्।
भीष्माभिमुखमायान्तं भारद्वाजो न्यवारयत्॥ ४७॥
सा सेना महती राजन् पाण्डुपुत्रस्य संयुगे।
द्रोणेन वारिता यत्ता न चचाल पदात् पदम्॥ ४८॥
चेकितानं रणे यत्तं भीष्मं प्रति जनेश्वर।
चित्रसेनस्तव सुतः क्रुद्धरूपमवारयत्॥ ४९॥
भीष्महेतोः पराक्रान्तश्चित्रसेनः पराक्रमी।
चेकितानं परं शक्त्या योधयामास भारत॥ ५०॥
तथैव चेकितानोऽपि चित्रसेनमवारयत्।
तद् युद्धमासीत् सुमहत् तयोस्तत्र समागमे॥ ५१॥

महान् सेना से घिरे हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को द्रोणाचार्य ने भीष्म की तरफ जाते हुए रोका। हे राजन्! युद्धक्षेत्र में द्रोणाचार्य के द्वारा रोकी हुई पाण्डुपुत्र की वह विशाल सेना, प्रयत्न करने पर भी वहाँ से एक कदम भी आगे न बढ़ सकी। हे जनेश्वर! भीष्म के प्रति जाने का प्रयत्न करते हुए क्रोध में भरे हुए चेकितान को आपके पुत्र चित्रसेन ने रोका। हे भारत! पराक्रमी चित्रसेन भीष्म के लिये पराक्रम दिखा रहा था और पूरी शक्ति से चेकितान के साथ युद्ध कर रहा था। इसीप्रकार चेकितान ने भी चित्रसेन को रोका। इसप्रकार उस दोनों में वहाँ महान् युद्ध होने लगा।

अर्जुनो वार्यमाणस्तु बहुशस्तत्र भारत।
विमुखीकृत्य पुत्रं ते सेनां तव ममर्द ह॥ ५२॥
दुःशासनोऽपि परया शक्त्या पार्थमवारयत्।
कथं भीष्मं न नो हन्यादिति निश्चित्य भारत॥ ५३॥

हे भारत! उधर बार बार रोकेजाने पर भी अर्जुन ने आपके पुत्र को युद्ध से विमुख कर आपकी सेना को रौंद दिया। दुश्शासन भी किसी तरह से भीष्म को न मार सकें, यह निश्चय कर हे भारत! पूरी शक्ति से अर्जुन को रोकने का प्रयत्न कर रहा था।

बासठवाँ अध्याय : द्रोणाचार्य का अश्वत्थामा को भीष्म की रक्षा और धृष्टद्युम्न से युद्ध हेतु कहना।

संजय उवाच

अथ वीरो महेष्वासो मत्तवारणविक्रमः।
समादाय महच्चापं मत्तवारणवारणम्॥ १॥
विधुन्वानो नरश्रेष्ठो द्रावयाणो वरूथिनीम्।
पृतनां पाण्डवेयानां गाहमानो महाबलः॥ २॥
प्रतपन्तमनीकानि द्रोणः पुत्रमभाषत।
अयं हि दिवसस्तात यत्र पार्थो महाबलः॥ ३॥
जिघांसुः समरे भीष्मं परं यत्नं करिष्यति।
सेनयोरुभयोश्चापि समन्ताच्छ्रूयते महान्॥ ४॥
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो गाण्डीवस्य च निःस्वनः।

तब संजय ने कहा कि मतवाले हाथी के समान पराक्रमी, महाबली, वीर, नरश्रेष्ठ, महाधनुर्धर द्रोणाचार्य, मतवाले हाथियों का भी निवारण करनेवाले अपने विशाल धनुष को लेकर, उसे टंकारते हुए तथा शत्रुसेना को भगाते हुए, पाण्डवों की सेना में प्रवेश करते हुए, शत्रुसेनाओं को तपाते हुए अपने पुत्र से बोले कि हे तात! यह वह दिन है, जब महाबली अर्जुन युद्ध में भीष्म को मारने का इच्छुक होकर पूरा प्रयत्न करेगा। इसलिये दोनों सेनाओं में सब तरफ पाँचजन्य शंख की ध्वनि और गाण्डीव धनुष की टंकार सुनाई दे रही थी।

ध्रुवमास्थाय बीभत्सुरुत्तमास्त्राणि संयुगे॥ ५॥
अपास्यान्यान् रणे योधानभ्येष्यति पितामहम्।
हृष्यन्ति रोमकूपाणि सीदतीव च मे मनः॥ ६॥
चिन्तयित्वा महाबाहो भीष्मार्जुनसमागमम्।
तं चेह निकृतिप्रज्ञं पाञ्चाल्यं पापचेतसम्॥ ७॥
पुरस्कृत्य रणे पार्थो भीष्मस्यायोधनं गतः।
अब्रवीच्च पुरा भीष्मो नाहं हन्यां शिखण्डिनम्॥ ८॥
स्त्री ह्येषा विहिता धात्रा दैवाच्च स पुनः पुमान्।

इसलिये यह निश्चित है कि अर्जुन युद्धक्षेत्र में उत्तम अस्त्रों का आश्रय लेकर दूसरे योद्धाओं को परे हटाकर पितामह के समीप पहुँच जायेगा। हे महाबाहु! भीष्म और अर्जुन के युद्ध के विषय में सोचकर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं और मन दुःखी हो जाता है। उस शठता के पण्डित, पापहृदयवाले पांचालकुमार शिखण्डी को आगेकर अर्जुन भीष्म से युद्ध के लिये गया है। पहले भीष्म ने कहा था कि मैं शिखण्डी पर प्रहार नहीं करूँगा क्योंकि परमात्मा ने इसे पहले स्त्री बनाया था पीछे यह पुरुष हो गया।

एतद् विचिन्तयानस्य प्रज्ञा सीदति मे भृशम्॥ ९॥
अभ्युद्यतो रणे पार्थः कुरुवृद्धमुपाद्रवत्।
मनस्वी बलवाञ्छूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः॥ १०॥
बलवान् बुद्धिमानश्चैव जितक्लेशो युधां वर।
पश्याद्यैतन्महाघोरे संयुगे वैशसं महत्॥ ११॥
हेमचित्राणि शूराणां महान्ति च शुभानि च।
कवचान्यवदीर्यन्ते शरैः संनपर्वभिः॥ १२॥
छिद्यन्ते च ध्वजाग्राणि तोमराश्च धनूंषि च।

जब मैं इस बात को सोचता हूँ, तो मेरी बुद्धि बड़ी शिथिल हो जाती है। अर्जुन ने पूरी तैयारी के साथ कुरुओं के इस वृद्ध पर आक्रमण किया है। अर्जुन मनस्वी, बलवान्, शूरवीर, अस्त्रविद्या निष्णात और शीघ्रता से पराक्रम प्रकट करनेवाला है। देखो! यह महान् घोर युद्ध में महाविनाश किया जा रहा है। झुकी हुई गाँठवाले बाणों से वीरों के स्वर्ण चित्रित, विशाल और सुन्दर कवच काटे जा रहे हैं। ध्वजाओं के अगले भाग, तोमर और धनुष छिन्न भिन्न किये जा रहे हैं।

प्रासाश्च विमलास्तीक्ष्णाःशक्त्यश्च कनकोज्ज्वलाः॥ १३॥
वैजयन्त्यश्च नागानां संक्रुद्धेन किरीटिना।
नायं संरक्षितुं कालः प्राणान् पुत्रोपजीविभिः॥ १४॥
एष संदृश्यते पार्थो वासुदेवव्यपाश्रयः।
दारयन् सर्वसैन्यानि धार्तराष्ट्राणि सर्वशः॥ १५॥
एतदालोक्यते सैन्यं क्षोभ्यमाणं किरीटिना।
महोर्मिनद्धं सुमहत् तिमिनेव महाजलम्॥ १६॥

अत्यन्तक्रुद्ध अर्जुन के द्वारा जगमगाते हुए तीखे प्रास, स्वर्ण के समान चमकीली शक्तियाँ, हाथियों पर फहराती हुई वैजयन्ती पताकाएँ, छिन्नभिन्न की जा रही हैं। हे पुत्र! दूसरों के सहारे पर आजीविका चलानेवालों के लिये यह प्राणों की रक्षा का समय नहीं है। यह श्रीकृष्ण का सहारा लेकर धृतराष्ट्र की सारी सेनाओं को सबतरफ से विदीर्ण करते हुए अर्जुन दिखाई दे रहे हैं। जैसे उत्ताल तरंगोंवाले, महान् जल के भण्डार, अत्यन्तमहान् सागर को तिमि नाम का महामत्स्य क्षुब्ध कर देता है, वैसे ही यह सेना अर्जुन के द्वारा क्षुब्ध की हुई दिखाई दे रही है।

हाहाकिलकिलाशब्दाः श्रूयन्ते च चमूमुखे।
याहि पाञ्चालदायादमहं यास्ये युधिष्ठिरम्॥ १७॥
दुर्गमं ह्यन्तरं राज्ञो व्यूहस्यामिततेजसः।
समुद्रकुक्षिप्रतिमं सर्वतोऽतिरथैः स्थितैः॥ १८॥
सात्यकिश्चाभिमन्युश्च धृष्टद्युम्नवृकोदरौ।
पर्यरक्षन्त राजानं यमौ च मनुजेश्वरम्॥ १९॥
उत्तमास्त्राणि चाधत्स्व गृहीत्वा च महद् धनुः।
पार्षतं याहि राजानं युध्यस्व च वृकोदरम्॥ २०॥

सेना के मुहाने पर हाहाकार और किलकिलाहट के शब्द सुनाई दे रहे हैं। तुम पाँचालपुत्र धृष्टद्युम्न का सामना करने के लिये जाओ, मैं युधिष्ठिर का सामना करने के लिये जाता हूँ। अमिततेजस्वी राजा युधिष्ठिर के व्यूह में प्रवेश करना समुद्र में घुसने के समान बहुत कठिन है। उसके चारोंतरफ अतिरथी योद्धा खड़े हुए हैं। सात्यकि, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, भीम और नकुल तथा सहदेव नरेश्वर राजा युधिष्ठिर की सबतरफ से रक्षा कर रहे हैं। तुम उत्तम अस्त्रों और विशाल धनुष को लेकर जाओ और द्रुपदपुत्र राजकुमार धृष्टद्युम्न तथा भीमसेन के साथ युद्ध करो।

को हि नेच्छेत् प्रियं पुत्रं जीवन्तं शाश्वतीः समाः।
क्षत्रधर्मं तु सम्प्रेक्ष्य ततस्त्वां नियुनज्म्यहम्॥ २१॥
पुत्रं समनुशास्यैवं भारद्वाजः प्रतापवान्।
महारणे महाराज धर्मराजमयोधयत्॥ २२॥

यह कौन नहीं चाहता कि अपना प्रिय पुत्र निरन्तर जीवित रहे, पर क्षत्रियधर्म पर विचारकर मैं तुम्हें इस कार्य में लगा रहा हूँ। हे महाराज! प्रतापी द्रोणाचार्य अपने पुत्र को इसप्रकार आदेश देकर उस महान् युद्ध में युधिष्ठिर के साथ युद्ध करने लगे।

तिरेसठवाँ अध्याय : भीम का अकेले दस महारथियों के साथ युद्ध।

संजय उवाच

भगदत्तः कृपः शल्यः कृतवर्मा तथैव च।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्धवश्च जयद्रथः॥ १॥
चित्रसेनो विकर्णश्च तथा दुर्मर्षणादयः।
दशैते तावका योधा भीमसेनमयोधयन्॥ २॥
शल्यस्तु नवभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत्।
कृतवर्मा त्रिभिर्बाणैः कृपश्च नवभिः शरैः॥ ३॥
चित्रसेनो विकर्णश्च भगदत्तश्च मारिष।
दशभिर्दशभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयन्॥ ४॥

तब संजय ने कहा कि भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, अवन्तीदेश के विन्द और अनुविन्द, सिन्धुराज जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण इन दस आपके योद्धाओं ने भीमसेन के साथ युद्ध किया। शल्य ने नौ बाणों से भीम पर प्रहार किया। कृतवर्मा ने तीन तथा कृपाचार्य ने उन्हें नौ बाण मारे। हे मान्यवर! चित्रसेन, विकर्ण और भगदत्त ने दस दस बाणों से भीम को ताड़ना दी।

सैन्धवश्च त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत्।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः॥ ५॥
दुर्मर्षणस्तु विंशत्या पाण्डवं निशितैः शरैः।
स तान् सर्वान् महाराज राजमानान् पृथक् पृथक्॥ ६॥
जघान समरे वीरः पाण्डवः परवीरहा।
सप्तभिः शल्यमाविध्यत् कृतवर्माणमष्टभिः॥ ७॥
कृपस्य सशरं चापं मध्ये चिच्छेद भारत।
अथैनं छिन्नधन्वानं पुनर्विव्याध सप्तभिः॥ ८॥
विन्दानुविन्दौ च तथा त्रिभिस्त्रिभिरताडयत्।

जयद्रथ ने भीमसेन को तीन बाण, अवन्तीदेशीय विन्द ने और अनुविन्द ने पाँच पाँच और दुर्मर्षण ने बीस तीखेबाण मारे। हे महाराज! तब शत्रुवीरों का दमन करनेवाले वीर पाण्डुपुत्र ने उनसब विद्यमान वीरों को अलगअलग बाण मारे। उसने सात बाणों से शल्य को और कृतवर्मा को आठ बाणों से बींधा। हे भारत! उसने कृपाचार्य के बाणसहित धनुष को बीच में से काट दिया। धनुष काटकर उन्होंने कृपाचार्य को फिर सात बाणों से बींधा तथा विन्द और अनुविन्द पर तीन तीन बाणों से प्रहार किया।

दुर्मर्षणं च विंशत्या चित्रसेनं च पञ्चभिः॥ ९॥
विकर्णं दशभिर्बाणैः पञ्चभिश्च जयद्रथम्।
विद्ध्वा भीमोऽनदद्धृष्टः सैन्धवं च पुनस्त्रिभिः॥ १०॥
अथान्यद् धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः।
भीमं विव्याध संरब्धो दशभिर्निशितैः शरैः॥ ११॥
ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान्।
गौतमं ताडयामास शरैर्बहुभिराहवे॥ १२॥

फिर दुर्मर्षण को बीस, चित्रसेन को पाँच, विकर्ण के दस और जयद्रथ को पाँच बाण मारकर भीमसेन ने हर्षित होकर सिंहनाद किया तथा जयद्रथ को पुनः तीन बाण मारे। तब रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य ने दूसरा धनुष लेकर क्रोध में भरकर भीम को दस तीखे बाणों से बींधा। हे महाराज! तब क्रोध में भरे हुए प्रतापी भीमसेन ने भी युद्ध में कृपाचार्य पर बहुत से बाणों द्वारा प्रहार किया।

सैन्धवस्य तथाश्वांश्च सारथिं च त्रिभिः शरैः।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय कालान्तकसमद्युतिः॥ १३॥
हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य महारथः।
शरांश्चिक्षेप निशितान् भीमसेनस्य संयुगे॥ १४॥
तस्य भीमो धनुर्मध्ये द्वाभ्यां चिच्छेद मारिष।
भल्लाभ्यां भरतश्रेष्ठ सैन्धवस्य महात्मनः॥ १५॥
स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
चित्रसेनरथं राजन्नारुरोह त्वरान्वितः॥ १६॥

फिर प्रलयकाल की मृत्यु के समान तेजस्वी भीम ने जयद्रथ के घोड़ों और सारथि को तीन बाणों से मृत्युलोक में भेज दिया। तब उस महारथी ने मरे हुए घोड़ोंवाले रथ से तुरन्त कूदकर युद्धस्थल में भीम पर बहुतसे तीखेबाण चलाये। हे भरतश्रेष्ठ! हे मान्यवर! तब भीम ने दो भल्लों से मनस्वी सिन्धुराज के धनुष को बीच में से काट दिया। हे राजन्! तब धनुष, रथ, घोड़ों और सारथि के नष्ट हो जाने पर वह शीघ्रता से चित्रसेन के रथ पर चढ़ गया।

अत्यद्भुतं रणे कर्म कृतवांस्तत्र पाण्डवः।
महारथाञ्शरैर्विद्ध्वा वारयित्वा च मारिष॥ १७॥
विरथं सैन्धवं चक्रे सर्वलोकस्य पश्यतः।
तदा न ममृषे शल्यो भीमसेनस्य विक्रमम्॥ १८॥
स संधाय शरांस्तीक्ष्णान् कर्मारपरिमार्जितान्।
भीमं विव्याध समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ १९॥
कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तश्च वीर्यवान्।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ चित्रसेनश्च संयुगे॥ २०॥
दुर्मर्षणो विकर्णश्च सिन्धुराजश्च वीर्यवान्।
भीमं ते विव्यधुस्तूर्णं शल्यहेतोररिंदमाः॥ २१॥

वहाँ युद्धस्थल में पाण्डुपुत्र ने बड़ा अद्भुत कर्म किया कि हे मान्यवर! उन महारथियों को बाणों से रोककर, बींधकर, सबके देखते हुए जयद्रथ को रथ से हीन कर दिया। तब शल्य भीम के उस पराक्रम को सहन नहीं कर सका और उसने लुहार के माँजे हुए तीखेबाणों का सन्धानकर, भीम को युद्ध में बींध दिया और कहा कि ठहर, ठहर। फिर शत्रुओं दमन करनेवाले कृपाचार्य, कृतवर्मा और पराक्रमी भगदत्त, अवन्तीदेशीय विन्द, अनुविन्द, चित्रसेन, दुर्मर्षण, विकर्ण और प्रतापी जयद्रथ ने शल्य के लिये शीघ्रता से भीम को घायल कर दिया।

स च तान् प्रतिविव्याध पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः।
शल्यं विव्याध सप्तत्या पुनश्च दशभिः शरैः॥ २२॥
तं शल्यो नवभिर्भित्त्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः।
सारथिं चास्य भल्लेन गाढं विव्याध मर्मणि॥ २३॥
विशोकं प्रेक्ष्य निर्भिन्नं भीमसेनः प्रतापवान्।
मद्रराजं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ २४॥
तथेतरान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः।
ताडयामास समरे सिंहवद् विननाद च॥ २५॥

तब बदले में भीम ने उनको पाँच पाँच बाणों से बींधा, शल्य पर सत्तर तथा फिर दस बाणों से वर्षा की। शल्य ने भीम पर पहले नौ बाणों से और

फिर पाँच बाणों से प्रहार किया और उसके सारथि को भल्ल से मर्म स्थल में गहरी चोट पहुँचाई। तब अपने सारथि विशोक को घायल देखकर प्रतापी भीम ने तीन बाण मद्रराज की बाहों में और छाती में मारे। दूसरे महाधनुर्धरों को भी उन्होंने सीधे जानेवाले तीन तीन बाणों से पीड़ित किया और युद्धस्थल में सिंह के समान गर्जना की।

ते हि यत्ता महेष्वासाः पाण्डवं युद्धकोविदम्।
त्रिभिस्त्रिभिरकुण्ठाग्रैर्भृशं मर्मस्वताडयन्॥ २६॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासो भीमसेनो न विव्यथे।
पर्वतो वारिधाराभिर्वर्षमाणैरिवाम्बुदैः॥ २७॥
स तु क्रोधसमाविष्टः पाण्डवानां महारथः।
मद्रेश्वरं त्रिभिर्बाणैर्भृशं विद्ध्वा महायशाः॥ २८॥
कृपं च नवभिर्बाणैर्भृशं विद्ध्वा समन्ततः।
प्राग्ज्योतिषं शतैराजौ राजन् विव्याध सायकैः॥ २९॥

तब उन महाधनुर्धरों ने युद्ध में कोविद पाण्डुपुत्र को तीन तीन तीखेबाणों से मर्मस्थलों में चोट पहुँचायी पर जैसे बादलों के द्वारा बरसायी जाती हुई जलधाराओं से पर्वत की कुछ भी क्षति नहीं होती, वैसे ही महाधनुर्धर भीमसेन अत्यधिक बींधे जाने पर भी व्यथित नहीं हुए। तब पाण्डवों के उन महायशस्वी महारथी ने क्रोध में भरकर मद्रराज को तीन बाणों से अत्यन्त बींधकर, कृपाचार्य को नौ बाणों से सबतरफ से अत्यन्त बींधकर हे राजन्! प्राग्ज्योतिषपुर के राजा पर सौ बाणों की वर्षाकर उन्हें युद्धस्थल में घायल किया।

ततस्तु सशरं चापं सात्वतस्य महात्मनः।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेद कृतहस्तवत्॥ ३०॥
तथान्यद् धनुरादाय कृतवर्मा वृकोदरम्।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचेन परंतपः॥ ३१॥
भीमस्तु समरे विद्ध्वा शल्यं नवभिरायसैः।
भगदत्तं त्रिभिश्चैव कृतवर्माणमष्टभिः॥ ३२॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु विव्याध गौतमप्रभृतीन् रथान्।
तेऽपि तं समरे राजन् व्यधुर्निशितैः शरैः॥ ३३॥

फिर उन्होंने सिद्धहस्त के समान मनस्वी कृतवर्मा के धनुषबाण को अत्यन्ततीखे क्षुरप्र से काट दिया। तब परंतप कृतवर्मा ने दूसरा धनुष लेकर भीमसेन की भौहों के बीच में नाराच से प्रहार किया। फिर भीम ने युद्ध में शल्य को नौ लोहे के बाणों से, भगदत्त को तीन, कृतवर्मा को आठ और कृपाचार्य आदि शेष रथियों को दो दो बाणों से बींध दिया। हे राजन्! उन्होंने भी युद्धस्थल में भीम को तीखेबाणों से घायल किया।

तस्य शक्तिं महावेगां भगदत्तो महारथः।
चिक्षेप समरे वीरः स्वर्णदण्डां महामते॥ ३४॥
तोमरं सैन्धवो राजा पट्टिशं च महाभुजः।
शतघ्नीं च कृपो राजञ्छरं शल्यश्च संयुगे॥ ३५॥
अथेतरे महेष्वासाः पञ्च पञ्च शिलीमुखान्।
भीमसेनं समुद्दिश्य प्रेषयामासुरोजसा॥ ३६॥
तोमरं च द्विधा चक्रे क्षुरप्रेणानिलात्मजः।
पट्टिशं च त्रिभिर्बाणैश्चिच्छेद तिलकाण्डवत्॥ ३७॥

फिर वीर और महारथी भगदत्त ने हे महामते! उनके ऊपर एक सुनहरे डंडे तथा महान् वेगवाली शक्ति को फैंका। महाबाहु राजा जयद्रथ ने उनके ऊपर तोमर और पट्टिश चलाया। हे राजन्! कृपाचार्य ने उनके ऊपर शतघ्नी का प्रयोग किया और शल्य ने एक बाण युद्धस्थल में मारा। शेष दूसरे महाधनुर्धरों ने पाँच पाँच बाण भीम को लक्ष्य कर बलपूर्वक चलाये। वायुपुत्र भीम ने क्षुरप्र के द्वारा तोमर के दो टुकड़े कर दिये और पट्टिश को तीन बाणों से तिल के डंठलों की तरह काट दिया।

स बिभेद शतघ्नीं च नवभिः कङ्कपत्रिभिः।
मद्रराजप्रयुक्तं च शरं छित्त्वा महारथः॥ ३८॥
शक्तिं चिच्छेद सहसा भगदत्तेरितां रणे।
तथेतराञ्छरान् घोरान् शरैः संनतपर्वभिः॥ ३९॥
भीमसेनो रणश्लाघी त्रिधैकैकं समाच्छिनत्।
तांश्च सर्वान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरताडयत्॥ ४०॥

उन्होंने शतघ्नी को नौ कंकपत्रयुक्त बाणों से छिन्नभिन्न कर दिया। उस महारथी ने मद्रराज के बाण को काटकर भगदत्त के द्वारा फैंकी शक्ति को भी छिन्नभिन्न कर दिया। इसके पश्चात् युद्ध की श्लाघा करनेवाले भीम ने दूसरे भयानक बाणों को भी झुकी गाँठवाले बाणों से तीन तीन भागों में काट दिया और उनसब धनुर्धरों को तीन तीन बाण मारे।

ततो धनंजयस्तत्र वर्तमाने महारणे।
आजगाम रथेनाजौ भीमं दृष्ट्वा महारथम्॥ ४१॥
निघ्नन्तं समरे शत्रून् योधयानं च सायकैः।
ततो दुर्योधनो राजा सुशर्माणमचोदयत्॥ ४२॥
अर्जुनस्य वधार्थाय भीमसेनस्य चोभयोः।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य त्रैगर्तः प्रस्थलाधिपः॥ ४३॥
अभिद्रुत्य रणे भीममर्जुनं चैव धन्विनौ।
रथैरनेकसाहस्त्रैः समन्तात् पर्यवारयत्।
ततः प्रववृते युद्धमर्जुनस्य परैः सह॥ ४४॥

तब उस महान् युद्ध के चलते हुए, महारथी भीम को युद्ध में शत्रुओं से युद्ध करते हुए तथा बाणों से उनका संहार करते हुए देखकर अर्जुन उस युद्धस्थल में अपने रथ के द्वारा आ पहुँचे। तब राजा दुर्योधन ने सुशर्मा को अर्जुन और भीम के वध के लिये प्रेरित करके वहाँ भेजा। उसके वचनों को सुनकर प्रस्थलदेश का वह राजा त्रिगर्तराज, कई हजार रथियों के साथ वहाँ युद्धस्थल में दौड़कर आया और उसने भीम तथा अर्जुन दोनों धनुर्धरों को चारोंतरफ से घेर लिया। फिर अर्जुन का शत्रुओं के साथ घोर युद्ध होने लगा।

चौसठवाँ अध्याय : भीम और अर्जुन का अद्भुत पराक्रम।

संजय उवाच
अर्जुनस्तु रणे शल्यं यतमानं महारथम्।
छादयामास समरे शरैः संनतपर्वभिः॥ १॥
सुशर्माणं कृपं चैव त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत।
प्राग्ज्योतिषं च समरे सैन्धवं च जयद्रथम्॥ २॥
चित्रसेनं विकर्णं च कृतवर्माणमेव च।
दुर्मर्षणं च राजेन्द्र ह्यावन्त्यौ च महारथौ॥ ३॥
एकैकं त्रिभिरानर्च्छत् कङ्कबर्हिणवाजितैः।
शरैरतिरथो युद्धे पीडयन् वाहिनीं तव॥ ४॥

संजय ने कहा कि अर्जुन ने तब युद्धस्थल में विजय के लिये प्रयत्न करते हुए महारथी शल्य को झुकी हुई गाँठवाले बाणों से आच्छादित कर दिया। उन्होंने सुशर्मा को और कृपाचार्य को तीन तीन बाणों से बींधा। फिर युद्ध में प्राग्ज्योतिषपुर के राजा को, सिन्धुराज जयद्रथ को, चित्रसेन को, विकर्ण को, कृतवर्मा को, दुर्मर्षण को और हे राजन्! अवन्ती के दोनों महारथियों को कंकपक्षी के पंखों से युक्त तीन तीन बाणों से घायल कर दिया। उन अतिरथी ने आपकी सेना को भी सैकड़ों बाणों से पीड़ा दी।

जयद्रथो रणे पार्थं विद्ध्वा भारत सायकैः।
भीमं विव्याध तरसा चित्रसेनरथे स्थितः॥ ५॥
शल्यश्च समरे जिष्णुं कृपश्च रथिनां वरः।
विव्यधाते महाराज बहुधा मर्मभेदिभिः॥ ६॥
चित्रसेनादयश्चैव पुत्रास्तव विशाम्पते।
पञ्चभिः पञ्चभिस्तूर्णं संयुगे निशितैः शरैः॥ ७॥
आजघ्नुरर्जुनं संख्ये भीमसेनं च मारिष।
तौ तत्र रथिनां श्रेष्ठौ कौन्तेयौ भरतर्षभौ॥ ८॥
अपीडयतां समरे त्रिगर्तानां महद् बलम्।

हे भारत! तब चित्रसेन के रथपर बैठे हुए जयद्रथ ने अर्जुन को बाणों से बींधकर शीघ्रता से भीमसेन को भी घायल कर दिया। हे महाराज! युद्धस्थल में शल्य और रथियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य ने भी अर्जुन को अनेक मर्मभेदी बाणों से बींधा। हे प्रजानाथ! हे मान्यवर! आपके चित्रसेन आदि पुत्रों ने भी युद्ध में शीघ्रता से अर्जुन और भीम को पाँच पाँच बाणों से घायल किया। उन दोनों रथियों में श्रेष्ठ, भरतकुलभूषण कुन्तीपुत्रों ने वहाँ युद्धस्थल में त्रिगर्तों की विशाल सेना को भी पीड़ित किया।

सुशर्मापि रणे पार्थं शरैर्नवभिराशुगैः॥ ९॥
ननाद बलवन्नादं त्रासयानो महद् बलम्।
अन्ये च रथिनः शूरा भीमसेनधनंजयौ॥ १०॥
विव्यधुर्निशितैर्बाणै रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः।
छित्त्वा धनूंषि शूराणां शरांश्च बहुधा रणे॥ ११॥
पातयामासतुर्वीरौ शिरांसि शतशो नृणाम्।
तत्राद्भुतमपश्याम रणे पार्थस्य विक्रमम्॥ १२॥
शरैः संवार्य तान् वीरान् यज्जाघान महाबलः।

सुशर्मा ने भी शीघ्रगामी नौ बाणों से अर्जुन पर प्रहार किया और फिर पाण्डवसेना को भयभीत करते हुए जोर से सिंहनाद किया। दूसरे शूरवीर रथियों ने भी भीमसेन और अर्जुन को सीधे जाने वाले, सुनहरे

पंखोंवाले तीखेबाणों से बींधा। उन दोनों वीरों ने शूरवीरों के धनुषों और बाणों को बहुत बार काटकर सैकड़ों लोगों के सिर काटकर गिरा दिये। वहाँ हमने अर्जुन का यह अद्‌भुत पराक्रम देखा कि उस महाबली ने अपने बाणों से उन वीरों को रोकते हुए बहुतों को मार गिराया।

पुत्रस्तु तव तं दृष्ट्वा भीमार्जुनपराक्रमम्॥ १३॥
गाङ्गेयस्य रथाभ्याशमुपजग्मे महाबलः।
कृपश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः॥ १४॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ नाजहुः संयुगं तदा।
ततो भीमो महेष्वासः फाल्गुनश्च महारथः॥ १५॥
कौरवाणां चमूं घोरां भृशं दुद्रुवतू रणे।
ततो बर्हिणवाजानामयुतान्यर्बुदानि च॥ १६॥
धनंजयरथे तूर्णं पातयन्ति स्म भूमिपाः।

तब आपका महाबली पुत्र भीम और अर्जुन के उस पराक्रम को देखकर गंगापुत्र के रथ के समीप पहुँच गया। कृपाचार्य, कृतवर्मा, सिन्धुराज जयद्रथ और अवन्ती के विन्द तथा अनुविन्द ने भी युद्धक्षेत्र का त्याग नहीं किया। तब महाधनुर्धर भीम और महारथी अर्जुन कौरवों की उस घोर सेना को युद्धस्थल में जोर जोर से खदेड़ने लगे। तब राजा लोगों ने मोरपंखयुक्त असंख्य बाणों की अर्जुन के रथ पर शीघ्रता से वर्षा की।

ततस्ताञ्शरजालेन संनिवार्य महारथान्॥ १७॥
पार्थः समन्तात् समरे प्रेषयामास मृत्यवे।
शल्यस्तु समरे जिष्णुं क्रीडन्निव महारथः॥ १८॥
आजघानोरसि क्रुद्धो भल्लैः संनतपर्वभिः।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा हस्तावापं च पञ्चभिः॥ १९॥
अथैनं सायकैस्तीक्ष्णैर्भृशं विव्याध मर्मणि।

तब अर्जुन ने उन महारथियों को सबतरफ बाण वर्षा के द्वारा रोककर उन्हें युद्ध में मृत्युलोक में भेज दिया। महारथी शल्य ने खेल सा करते हुए क्रोध में भरकर झुकी गाँठवाले भल्लों से अर्जुन की छाती में प्रहार किया। अर्जुन ने पाँच बाणों से उसके धनुष को और हाथ के दस्ताने को काटकर तीखेबाणों के द्वारा उसके मर्म स्थल में गहरी चोट पहुँचायी।

अथान्यद् धनुरादाय समरे भारसाधनम्॥ २०॥
मद्रेश्वरो रणे जिष्णुं ताडयामास रोषितः।
त्रिभिः शरैर्महाराज वासुदेवं च पञ्चभिः॥ २१॥
भीमसेनं च नवभिर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्।
ततो द्रोणो महाराज मागधश्च महारथः॥ २२॥
दुर्योधनसमादिष्टौ तं देशमुपजग्मतुः।
यत्र पार्थो महाराज भीमसेनश्च पाण्डवः॥ २३॥
कौरव्यस्य महासेनां जघ्नतुः सुमहारथौ।

तब मद्रराज ने दूसरे भार को सहन करनेवाले धनुष को लेकर और रोष के साथ अर्जुन को युद्ध में तीन बाणों से और श्रीकृष्ण को पाँच बाणों से ताड़ना दी। भीमसेन की बाहों और छाती में उन्होंने नौ बाण मारे। हे महाराज! तब द्रोणाचार्य और मगधमहारथी दुर्योधन के आदेश से उस स्थान पर आये, जहाँ हे महाराज! अत्यन्त महारथी अर्जुन और पाण्डव भीम कुरुराज की विशाल सेना का विनाश कर रहे थे।

द्रोणश्च विवरं दृष्ट्वा भीमसेनं शिलीमुखैः॥ २४॥
विव्याध बाणैर्निशितैः पञ्चषष्टिभिरायसैः।
तं भीमः समरश्लाघी गुरुं पितृसमं रणे॥ २५॥
विव्याध पञ्चभिर्भल्लैस्तथा षष्ट्या च भारत।

तब द्रोणाचार्य ने अवसर पाकर पैंसठ लोहे के तीखेबाणों से वर्षा कर भीम को घायल कर दिया। तब युद्ध की श्लाघा करनेवाले भीम ने भी पितृतुल्य उन गुरु को हे भारत! युद्ध में पैंसठ भल्लों की वर्षाकर घायल कर दिया।

अर्जुनस्तु सुशर्माणं विद्ध्वा बहुभिरायसैः॥ २६॥
व्यधमत् तस्य तत्सैन्यं महाभ्राणि यथानिलः।
ततो भीष्मश्च राजा च कौसल्यश्च बृहद्बलः॥ २७॥
समवर्तन्त संक्रुद्धा भीमसेनधनंजयौ।
तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ २८॥
अभ्यद्रवन् रणे भीष्मं व्यादितास्यमिवान्तकम्।
शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम्॥ ३२॥
अभ्यद्रवत संहृष्टो भयं त्यक्त्वा महारथात्।

अर्जुन ने तब सुशर्मा को बहुतसे लोहे के बाणों से बींधकर उसकी सेना को ऐसे छिन्नभिन्न कर दिया, जैसे वायु विशाल बादल को कर देती है। तब भीष्म, राजा दुर्योधन और बृहद्बल ये तीनों क्रोध में भरकर भीमसेन और अर्जुन पर चढ़ आये। उसी प्रकार शूरवीर पाण्डव और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न भी मुख फाड़े हुए मृत्यु के समान भीष्म पर टूट पड़े। शिखण्डी ने भी वहाँ आकर, उन महारथी से भय

को त्यागकर और हर्षित होकर भरतवंशियों के उन पितामह पर आक्रमण कर दिया।

युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्यशिखण्डिनम्॥ ३०॥
अयोधयन् रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृंजयैः।
तथैव तावकाः सर्वे पुरस्कृत्य यतव्रतम्।
शिखण्डिप्रमुखान् पार्थान् योधयन्ति स्म संयुगे॥ ३१॥

तब युधिष्ठिर आदि कुन्तीपुत्र शिखण्डी को आगे कर सारे सृंजयों के साथ इकट्ठे होकर युद्धक्षेत्र में भीष्म के साथ युद्ध करने लगे। उसीप्रकार आपके भी सारे योद्धा व्रत का पालन करनेवाले भीष्म को आगेकर युद्धक्षेत्र में शिखण्डी को आगे किये हुए पाण्डवों से युद्ध कर रहे थे।

पैसठवाँ अध्याय : दोनों तरफ के वीरों के द्वन्द्व युद्ध, भीष्म की वीरता।

संजय उवाच

अभिमन्युर्महाराज तव पुत्रमयोधयत्।
महत्या सेनया युक्तं भीष्महेतोः पराक्रमी॥ १॥
दुर्योधनो रणे कार्ष्णिं नवभिर्नतपर्वभिः।
आजघानोरसि क्रुद्धः पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः॥ २॥
तस्य शक्तिं रणे कार्ष्णिर्मृत्योर्घोरां स्वसामिव।
प्रेषयामास संक्रुद्धो दुर्योधनरथं प्रति॥ ३॥
तामापतन्तीं सहसा घोररूपां विशाम्पते।
द्विधा चिच्छेद ते पुत्रः क्षुरप्रेण महारथः॥ ४॥

संजय ने कहा कि हे महाराज! तब भीष्म के लिये पराक्रमी अभिमन्यु ने महान् सेना से युक्त आपके पुत्र के साथ युद्ध किया। दुर्योधन ने तब युद्ध में झुकी गांठवाले नौ बाणों से क्रुद्ध होकर अभिमन्यु की छाती पर प्रहार किया और फिर तीन बाण और मारे। तब अत्यन्त क्रोध में भरकर अभिमन्यु ने युद्ध में दुर्योधन के रथ की तरफ एक अत्यन्तभयानक, मृत्यु की बहन के समान शक्ति को फैंका। हे प्रजानाथ! उस भयंकर शक्ति को सहसा आते हुए देखकर आपके महारथी पुत्र ने एक क्षुरप्र के द्वारा उसके दो टुकड़े कर दिये।

तां शक्तिं पतितां दृष्ट्वा कार्ष्णिः परमकोपनः।
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ ५॥
पुनश्चैनं शरैर्घोरैराजघान स्तनान्तरे।
दशभिर्भरतश्रेष्ठ भरतानां महारथः॥ ६॥
सात्यकिं रभसं युद्धे द्रौणिर्ब्राह्मणपुङ्गवः।
आजघानोरसि क्रुद्धो नाराचेन परंतपः॥ ७॥
शैनेयोऽपि गुरोः पुत्रं सर्वमर्मसु भारत।
अताडयदमेयात्मा नवभिः कङ्कवाजितैः॥ ८॥

उस शक्ति को गिराया हुआ देखकर तब अभिमन्यु ने अत्यन्त क्रोध में भरकर दुर्योधन की बाँहों और छाती पर तीन बाणों से प्रहार किया। हे भरतश्रेष्ठ! फिर भरतवंशियों के महारथी अभिमन्यु ने पुनः दुर्योधन की छाती में दस भयानक बाण मारे। दूसरीतरफ ब्राह्मणश्रेष्ठ, परंतप, द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने युद्ध में वेगवान् सात्यकि की छाती में क्रुद्ध होकर नाराच से प्रहार किया। हे भारत! तब अमितआत्मा शिनिवंशी सात्यकि ने भी कंक पक्षी के पंखों से युक्त नौ बाणों से गुरु के पुत्र के सारे मर्मस्थलों में प्रहार किया।

अश्वत्थामा तु समरे सात्यकिं नवभिः शरैः।
त्रिंशता च पुनस्तूर्णं बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ ९॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासो द्रोणपुत्रेण सात्वतः।
द्रोणपुत्रं त्रिभिर्बाणैराजघान महायशाः॥ १०॥
पौरवो धृष्टकेतुं च शरैराच्छाद्य संयुगे।
बहुधा दारयांचक्रे महेष्वासं महारथः॥ ११॥
तथैव पौरवं युद्धे धृष्टकेतुर्महारथः।
त्रिंशता निशितैर्बाणैर्विव्याधाशु महाभुजः॥ १२॥

तब अश्वत्थामा ने युद्धस्थल में सात्यकि की बाहों और छाती पर नौ तथा फिर शीघ्रता से तीन बाणों की वर्षाकर चोट पहुँचायी। तब यदुवंशी महाधनुर्धर महायशस्वी सात्यकि ने भी द्रोणपुत्र से अत्यन्त घायल किये जाने पर तीन बाणों से उसे घायल कर दिया। उधर महारथी पौरव ने युद्धक्षेत्र में महाधनुर्धर धृष्टकेतु को बाणों से आच्छादित कर उसे अनेकबार घायल किया। उसीप्रकार महाबाहु, महारथी धृष्टकेतु ने शीघ्रता से पौरव पर युद्ध में तीखे तीस बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया।

पौरवस्तु धनुश्छित्त्वा धृष्टकेतोर्महारथः।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः॥ १३॥
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय पौरवं निशितैः शरैः।

आजघान महाराज त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः॥ १४॥
तौ तु तत्र महेष्वासौ महामात्रौ महारथौ।
महता शरवर्षेण परस्परमविध्यताम्॥ १५॥
अन्योन्यस्य धनुश्छित्त्वा हयान् हत्वा च भारत।
विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ॥ १६॥

तब महारथी पौरव ने भी तीखेबाणों से धृष्टकेतु का धनुष काटकर और उसे बींधकर जोर से सिंहनाद किया। हे महाराज! तब धृष्टकेतु ने दूसरे धनुष को लेकर पौरव पर तिहत्तर तीखेबाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया। इसप्रकार वेदोनों महाधनुर्धर, महाबली, महारथी महान् बाण वर्षा के द्वारा एकदूसरे को बींध रहे थे। उनदोनों अमर्षशीलों ने एकदूसरे के धनुष काट दिये और हे भारत! घोड़े मार दिये और फिर रथहीन होकर तलवार से युद्ध करने के लिये एकदूसरे के सामने आ गये।

आर्षभे चर्मणी चित्रे शतचन्द्रपुरस्कृते।
तारकाशतचित्रे च निस्त्रिंशौ सुमहाप्रभौ॥ १७॥
प्रगृह्य विमलौ राजंस्तावन्योन्यमभिद्रुतौ।
वासितासंगमे यत्तौ सिंहाविव महावने॥ १८॥
मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च।
चेरतुर्दर्शयन्तौ च प्रार्थयन्तौ परस्परम्॥ १९॥
पौरवो धृष्टकेतुं तु शङ्खदेशे महासिना।
ताडयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ २०॥

उन्होंने अत्यन्तचमकीली तलवारें और सौ चाँद तारों से चित्रितबैल के चमड़े की ढालें हाथों में ले रखी थीं। वे सिंहनी के लिये वन में लड़ते हुए दो सिंहों के समान, हे राजन्! निर्मल तलवारों के साथ एकदूसरे पर आक्रमण करने लगे। वे एक दूसरे को ललकारते हुए, विचित्र प्रकार से आगे बढ़ना, पीछे हटना आदि तरह तरह के पैंतरे दिखाते हुए विचरण करने लगे। तब पौरव ने अत्यन्तक्रुद्ध होकर अपनी विशाल तलवार से धृष्टकेतु की कनपटी पर प्रहार किया और 'ठहर' यह कहा।

चेदिराजोऽपि समरे पौरवं पुरुषर्षभम्।
आजघान शिताग्रेण जत्रुदेशे महासिना॥ २१॥
तावन्योन्यं महाराज समासाद्य महाहवे।
अन्योन्यवेगाभिहतौ निपेततुररिंदमौ॥ २२॥
ततः स्वरथमारोप्य पौरवं तनयस्तव।
जयत्सेनो रथेनाजावपोवाह रणाजिरात्॥ २३॥
धृष्टकेतुं तु समरे माद्रीपुत्रः प्रतापवान्।
अपोवाह रणे क्रुद्धः सहदेवः पराक्रमी॥ २४॥
सौभद्रो राजपुत्रं तु बृहद्बलमयोधयत्।
पार्थहेतोः पराक्रान्तो भीष्मस्यायोधनं प्रति॥ २५॥

तब चेदिराज धृष्टकेतु ने भी युद्ध में पुरुषश्रेष्ठ पौरव की हँसली पर विशाल तलवार की तीखी नोक से प्रहार किया। हे महाराज! तब एकदूसरे का उस महान् युद्ध में सामना करते हुए, एकदूसरे की शक्ति से घायल होकर वेदोनों शत्रुदमन भूमि पर गिर पड़े। तब पौरव को आपका पुत्र जयत्सेन अपने रथ पर डालकर युद्धक्षेत्र से बाहर ले गया। धृष्टकेतु को भी उस युद्धभूमि में पराक्रमी और प्रतापी माद्रीपुत्र सहदेव क्रुद्ध होकर अपने रथपर डालकर दूर ले गया। उधर सुभद्राकुमार पराक्रमी अभिमन्यु ने अर्जुन के भीष्म के साथ युद्ध करने में सहायक के रूप में राजकुमार बृहद्बल के साथ युद्ध किया।

आर्जुनिं कोसलेन्द्रस्तु विद्ध्वा पञ्चभिरायसैः।
पुनर्विव्याध विंशत्या शरैः संनतपर्वभिः॥ २६॥
सौभद्रः कोसलेन्द्रं तु विव्याधाष्टभिरायसैः।
नाकम्पयत संग्रामे विव्याध च पुनः शरैः॥ २७॥
कौसल्यस्य धनुश्चापि पुनश्चिच्छेद फाल्गुनिः।
आजघान शरैश्चापि त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः॥ २८॥
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय राजपुत्रो बृहद्बलः।
फाल्गुनिं समरे क्रुद्धो विव्याध बहुभिः शरैः॥ २९॥
तयोर्युद्धं समभवद् भीष्महेतोः परंतप।
संरब्धयोर्महाराज समरे चित्रयोधिनोः॥ ३०॥

कोसलनरेश ने पाँच लोहे के बाणों से अर्जुनपुत्र को बींधकर उसे पुनः झुकी हुई गाँठवाले बीस बाणों की वर्षाकर घायल किया। तब सुभद्रापुत्र ने भी कोसलराज को आठ लोहे के बाणों से घायल किया, पर फिर भी वह युद्ध में कम्पित नहीं हुआ। तब उसे फिर अनेक बाणों से घायल कर दिया। उसके पश्चात् अर्जुनपुत्र ने कोसलराज के धनुष को भी काट दिया और कंकपत्रवाले तीस बाणों की वर्षाकर उसे घायल किया। तब राजपुत्र बृहद्बल ने दूसरे धनुष को लेकर और क्रोध में भरकर अर्जुन के पुत्र को युद्ध में बहुत से बाणों से बींधा। हे परंतप महाराज! इस प्रकार विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाले उनदोनों का भीष्म के लिये क्रोध में भरकर युद्ध चल रहा था।

भीमसेनो गजानीकं योधयन् बह्वशोभत।
ते वध्यमाना भीमेन मातङ्गा गिरिसंनिभाः॥ ३१॥
निपेतुरुर्व्यां सहिता नादयन्तो वसुन्धराम्।
गिरिमात्रा हि ते नागा भिन्नाञ्जनचयोपमाः॥ ३२॥
विरेजुर्वसुधां प्राप्ता विकीर्णा इव पर्वताः।
युधिष्ठिरो महेष्वासो मद्रराजानमाहवे॥ ३३॥
महत्या सेनया गुप्तं पीडयामास संगतम्।
मद्रेश्वरश्च समरे धर्मपुत्रं महारथम्॥ ३४॥
पीडयामास संरब्धो भीष्महेतोः पराक्रमी।

भीमसेन हाथीसेना के साथ युद्ध करते हुए बहुत सुशोभित हो रहे थे। पर्वत के समान हाथी, भीम के द्वारा मारे जाते हुए, पृथिवी को प्रतिध्वनित करते हुए भूमि पर गिर रहे थे। खान से काटकर निकाले गये कोयले के ढेर के समान पर्वाताकार वे हाथी, पृथिवी पर पड़े हुए, बिखरे हुए पर्वतों के समान प्रतीत हो रहे थे। उधर महाधनुर्धर युधिष्ठिर ने युद्धक्षेत्र में विशाल सेना से सुरक्षित मद्रराज को युद्ध में पीड़ित किया। तब पराक्रमी मद्रेश्वर ने भी महारथी युधिष्ठिर को क्रोध में भरकर भीष्म की रक्षा के लिये युद्ध में पीड़ित किया।

विराटं सैन्धवो राजा विद्ध्वा संनतपर्वभिः॥ ३५॥
नवभिः सायकैस्तीक्ष्णैस्त्रिंशता पुनरार्पयत्।
विराटश्च महाराज सैन्धवं वाहिनीपतिः॥ ३६॥
त्रिंशद्भिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे।
द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण समागम्य महारणे॥ ३७॥
महासमुदयं चक्रे शरैः संनतपर्वभिः।
ततो द्रोणो महाराज पार्षतस्य महद् धनुः॥ ३८॥
छित्त्वा पञ्चाशतेषूणां पार्षतं समविध्यत।

सेनापति सिन्धुराज ने विराट को झुकी हुई गाँठवाले नौ तीखे बाणों और फिर तीस बाणों की वर्षाकरके घायल किया। हे महाराज! फिर सेनापति विराट ने भी सिन्धुराज पर तीस तीखेबाणों की वर्षाकर उन्हें छाती में घायल किया। उधर द्रोणाचार्य ने भी विशाल युद्धक्षेत्र में पाँचाल पुत्र धृष्टद्युम्न के साथ झुकी गाँठवाले बाणों के द्वारा महान् युद्ध किया। हे महाराज! फिर द्रोणाचार्य ने द्रुपदपुत्र के विशाल धनुष को काटकर उसके ऊपर पचास बाणों की वर्षाकर उसे घायल कर दिया।

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय पार्षतः परवीरहा॥ ३९॥
द्रोणस्य मिषतो युद्धे प्रेषयामास सायकान्।
ताञ्छराञ्छरघातेन चिच्छेद स महारथः॥ ४०॥
द्रोणो द्रुपदपुत्राय प्राहिणोत् पञ्च सायकान्।
ततः क्रुद्धो महाराज पार्षतः परवीरहा॥ ४१॥
द्रोणाय चिक्षेप गदां यमदण्डोपमां रणे।
तामापतन्तीं सहसा हेमपट्टविभूषिताम्॥ ४२॥
शरैः पञ्चाशता द्रोणो वारयामास संयुगे।

तब शत्रुवीरों को नष्ट करनेवाले धृष्टद्युम्न ने दूसरा धनुष लेकर द्रोणाचार्य के देखते हुए ही युद्ध में उनके ऊपर बहुत से बाण चलाये। उस महारथी द्रोणाचार्य ने उन बाणों को अपने बाणों के प्रहार से काट दिया और धृष्टद्युम्न पर पाँच बाण चलाये। हे महाराज! तब शत्रुदमन द्रुपदपुत्र ने क्रुद्ध होकर युद्ध में मृत्यु के प्रहार के समान भयानक गदा को द्रोण के ऊपर फैंका। स्वर्ण के पत्रों से विभूषित उस गदा को सहसा अपनीतरफ आते देखकर द्रोणाचार्य ने युद्धस्थल में पचास बाणों से द्वारा उसे हटा दिया।

गदां विनिहतां दृष्ट्वा पार्षतः शत्रुतापनः॥ ४३॥
द्रोणाय शक्तिं चिक्षेप सर्वपारशवीं शुभाम्।
तां द्रोणो नवभिर्बाणैश्चिच्छेद युधि भारत॥ ४४॥
पार्षतं च महेष्वासं पीडयामास संयुगे।
अर्जुनः प्राप्य गाङ्गेयं पीडयन् निशितैः शरैः॥ ४५॥
अभ्यद्रवत संयत्तो वने मत्तमिव द्विपम्।
प्रत्युद्ययौ च तं राजा भगदत्तः प्रतापवान्॥ ४६॥
त्रिधा भिन्नेन नागेन मदान्धेन महाबलः।

तब गदा को निष्फल किया देखकर शत्रुतापन द्रुपदपुत्र ने द्रोणाचार्य पर सम्पूर्ण लोहे की बनी हुई एक सुन्दर शक्ति को फैंका। हे भारत! उस शक्ति को भी युद्ध में द्रोणाचार्य ने नौ बाणों से काट दिया और महाधनुर्धर द्रुपदपुत्र को संग्राम में दूसरे बाणों से पीड़ित किया। उधर अर्जुन ने गंगापुत्र भीष्म को प्राप्त कर, जैसे एक मस्त हाथी दूसरे मस्त हाथी पर आक्रमण करे वैसे ही तीखे बाणों से उन्हें पीड़ित करते हुए सावधानी से उन पर आक्रमण किया। तब तीन स्थानों से मद बहाते हुए मदमस्त हथी पर चढ़कर महाबली और प्रतापी राजा भगदत्त ने उस पर आक्रमण किया।

तमापतन्तं सहसा महेन्द्रगजसंनिभम्॥ ४७॥
परं यत्नं समास्थाय बीभत्सुः प्रत्यपद्यत।
ततो गजगतो राजा भगदत्तः प्रतापवान्॥ ४८॥
अर्जुनं शरवर्षेण वारयामास संयुगे।
अर्जुनस्तु ततो नागमायान्तं रजतोपमैः॥ ४९॥
विमलैरायसैस्तीक्ष्णैरविध्यत महारणे।
प्राग्ज्योतिषस्ततो हित्वा पाण्डवं पाण्डुपूर्वज॥ ५०॥
प्रययौ त्वरितो राजन् द्रुपदस्य रथं प्रति।

इन्द्र के हाथी के समान उसे अचानक अपनी ओर आते देखकर अर्जुन ने बड़े प्रयत्न से उसका सामना किया। तब हाथी पर बैठे हुए भगदत्त ने बाण वर्षा के द्वारा उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। तब अर्जुन ने आते हुए उस हाथी को उस महान् युद्ध में चाँदी के समान चमकीले लोहे के तीखे बाणों के द्वारा बींध दिया। हे पाण्डु के बड़े भाई राजन्! फिर प्राग्ज्योतिषपुर का राजा पाण्डुपुत्र को शीघ्रता से छोड़कर द्रुपद के रथ की तरफ चला गया।

शिखण्डिनं च कौन्तेयो, याहि याहीत्य चोदयत्॥ ५१॥
भीष्मं प्रति महाराज, जह्येनमिति चाब्रवीत्।
ततोऽर्जुनो महाराज भीष्ममभ्यद्रवद् द्रुतम्॥ ५२॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य ततो युद्धमवर्तत।
ततस्ते तावकाः शूराः पाण्डवं रभसं युधि॥ ५३॥
समभ्यधावन् क्रोशन्तास्तदद्भुतमिवाभवत्।
नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां ते जनाधिप॥ ५४॥
अर्जुनो व्यधमत् काले दिवीवाभ्राणि मारुतः।

कुन्तीपुत्र उस समय शिखण्डी को बार बार प्रेरित करते थे कि तुम भीष्म की तरफ बढ़ो और इन्हें मार डालो। उसके पश्चात् हे महाराज! अर्जुन ने शिखण्डी को आगे करके तेजी से भीष्म पर आक्रमण किया। तब भारी युद्ध होने लगा। आपके शूरवीर सैनिक युद्ध में वेगवान् अर्जुन को ललकारते हुए उनकीतरफ दौड़े। यह एक अद्भुत बात थी। हे प्रजानाथ! जैसे आकाश में वायु बादलों को छिन्न भिन्न कर देती हैं, वैसे ही अर्जुन ने उससमय आपके पुत्रों की अनेकप्रकार की सेनाओं को तित्तर बित्तर कर दिया।

शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम्॥ ५५॥
इषुभिस्तूर्णमव्यग्रो बहुभिः स समाचिनोत्।
यथाग्निः सुमहानिद्धः कक्षे चरति सानिलः॥ ५६॥
तथा जज्वाल भीष्मोऽपि दिव्यान्यस्त्राण्युदीरयन्।
सोमकांश्च रणे भीष्मो जघ्ने पार्थपदानुगान्॥ ५७॥
न्यवारयत तत् सैन्यं पाण्डवस्य महारथः।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः शितैः संनतपर्वभिः॥ ५८॥
नादयन् स दिशो भीष्मः प्रदिशश्च महाहवे।

शिखण्डी ने तब भरतवंशियों के उन पितामह को प्राप्त करके शीघ्रता से बिना व्यग्रता के उन्हें बहुतसे बाणों से आच्छादित कर दिया। जैसे अत्यन्त ईंधन पाकर अग्नि घासफूस के वन में वायु की सहायता से विचरण करती है। उसीप्रकार भीष्म भी दिव्यास्त्रों का प्रयोग करते हुए प्रज्वलित हो रहे थे। महारथी भीष्म ने युद्ध में कुन्तीपुत्र के पीछे चलनेवाले सोमकों को मारा और पाण्डुपुत्र की उस सेना को रोक दिया। उससमय महायुद्ध में सुनहरे पंखवाले, तथा झुकी हुई गाँठवाले तीखे बाणों का प्रयोग करते हुए भीष्म अपने धनुष की टंकारों से दिशाओं और उपदिशाओं को गुंजा रहे थे।

न तत्रासीद् रणे राजन् सोमकानां महारथः॥ ५९॥
यः सम्प्राप्य रणे भीष्मं जीविते स्म मनो दधे।
तांश्च सर्वान् रणे योधान् प्रेतराजपुरं प्रति॥ ६०॥
नीतानमन्यन्त जना दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम्।
न कश्चिदेनं समरे प्रत्युद्यापि महारथः॥ ६१॥
ऋते पाण्डुसुतं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
शिखण्डिनं च समरे पाञ्चाल्यममितौजसम्॥ ६२॥

हे राजन्! उससमय युद्ध में सोमकों का कोई भी महारथी ऐसा नहीं था, जो भीष्म के सामने जाकर जीवित वापिस लौटने का विचार करता हो। भीष्म के पराक्रम को देखकर लोगों ने समझ लिया था कि युद्धस्थल में विद्यमान जितने भी योद्धा हैं, मृत्यु लोक में पहुँचे हुए के समान हैं। सिवाय कृष्ण जिनके सारथि हैं, उन श्वेत घोड़ोंवाले वीर पाण्डुपुत्र अर्जुन के और अमिततेजस्वी पाँचाल राजकुमार शिखण्डी के उस युद्धस्थल में कोई भी महारथी तब भीष्म के सामने नहीं जा पा रहा था।

छियासठवाँ अध्याय : दुश्शासन और अर्जुन का पराक्रम।

संजय उवाच
शिखण्डी तु रणे भीष्ममासाद्य पुरुषर्षभम्।
दशभिर्निशितैर्भल्लैराजघान स्तनान्तरे॥ १॥
शिखण्डिनं तु गाङ्गेयः क्रोधदीप्तेन चक्षुषा।
सम्प्रैक्षत कटाक्षेण निर्दहन्निव भारत॥ २॥
नाजघान रणे भीष्मः सर्वलोकस्य पश्यतः।

संजय ने कहा कि युद्धस्थल में पुरुषश्रेष्ठ भीष्म को प्राप्त करके उनकी छाती में शिखण्डी ने दस बाण मारे। हे भारत! तब गंगापुत्र ने क्रोध से जलती हुई आँखों से कटाक्ष द्वारा उसकी तरफ ऐसे देखा मानो उसे भस्म कर देंगे। किन्तु उन्होंने सब लोगों के देखते हुए, युद्धस्थल में, उस पर कोई आघात नहीं किया।

अर्जुनस्तु महाराज शिखण्डिनमभाषत।
अभिद्रवस्व त्वरितं जहि चैनं पितामहम्॥ ४॥
किं ते विवक्षया वीर जहि भीष्मं महारथम्।
न ह्यन्यमनुपश्यामि कञ्चिद् यौधिष्ठिरे बले॥ ५॥
यः शक्तः समरे भीष्मं प्रतियोद्धुमिहाहवे।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ६॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पितामहमवाकिरत्॥ ७॥
अचिन्तयित्वा तान् बाणान् पिता देवव्रतस्तव।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं वारयामास सायकैः॥ ८॥

तब अर्जुन ने हे महाराज! शिखण्डी से कहा कि जल्दी इन पितामह पर आक्रमण करो और इन्हें मार दो। हे वीर! इस विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। तुम महारथी भीष्म को मार दो। मैं युधिष्ठिर की सेना में हे पुरुषव्याघ्र! सिवाय तुम्हारे और किसी को नहीं देख रहा हूँ जो समरक्षेत्र में भीष्म का युद्ध के द्वारा सामना कर सके। यह मैं तुमसे सत्य कह रहा हूँ। हे भरतश्रेष्ठ! अर्जुन के द्वारा यह कहेजाने पर शिखण्डी ने शीघ्रता से पितामह पर अनेकप्रकार के बाणों की वर्षाकर उन्हें आच्छादित कर दिया। आपके पिता देवव्रत ने उन बाणों की परवाह न कर युद्धक्षेत्र में क्रुद्ध हुए अर्जुन को अपने बाणों से रोक दिया।

तथैव पाण्डवा राजन् सैन्येन महता वृताः।
भीष्मं संछादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम्॥ ९॥
स समन्तात् परिवृतो भारतो भरतर्षभ।
निर्ददाह रणे शूरान् वने वह्निरिव ज्वलन्॥ १०॥
तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम्।
अयोधयच्च यत् पार्थं जुगोप च पितामहम्॥ ११॥
कर्मणा तेन समरे तव पुत्रस्य धन्विनः।
दुःशासनस्य तुतुषुः सर्वे लोका महात्मनः॥ १२॥
यदेकः समरे पार्थान् सार्जुनान् समयोधयत्।

हे राजन्! पाण्डवों ने भी उसीप्रकार विशाल सेना के साथ भीष्म को ऐसे बाणों से आच्छादित कर दिया जैसे बादल सूर्य को ढक लेते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! चारोंतरफ से घिरे हुए उन भरतवंशी भीष्म ने युद्ध में शूरवीरों को इसप्रकार नष्ट करना आरम्भ कर दिया जैसे वन में जलती हुई आग सब कुछ जला देती है। हमने आपके पुत्र दुश्शासन का यह अद्भुत पराक्रम देखा कि वह अर्जुन से लड़ भी रहा था और भीष्म की रक्षा भी कर रहा था। आपके धनुर्धर पुत्र दुश्शासन के उस कार्य से युद्धस्थल में सारे मनस्वी लोग बड़े सन्तुष्ट हुए कि वह अकेला ही अर्जुनसहित सारे कुन्तीपुत्रों से युद्ध कर रहा था।

तं भारतमहामात्रं पाण्डवानां महारथः॥ १३॥
जेतुं नोत्सहते कश्चिन्नाभ्युद्यातुं कथंचन।
ऋते महेन्द्रतनयाच्छ्वेताश्वात् कृष्णसारथेः॥ १४॥
स हि तं समरे राजन् निर्जित्य विजयोऽर्जुनः।
भीष्ममेवाभिदुद्राव सर्वसैन्यस्य पश्यतः॥ १५॥
विजितस्तव पुत्रोऽपि भीष्मबाहुव्यपाश्रयः।
पुनः पुनः समाश्वस्य प्रायुध्यत मदोत्कटः॥ १६॥

भरतकुल के उस महाबली को जीतने के लिये या उनके सामने जाने के लिये, सिवाय श्वेत घोड़ोंवाले, तथा कृष्ण जिनके सारथी हैं, उन इन्द्रपुत्र अर्जुन के, कोई भी पाण्डवों का महारथी किसीप्रकार भी हिम्मत नहीं कर रहा था। हे राजन्! विजय नामवाले अर्जुन ने युद्ध में दुश्शासन को जीतकर, सारी सेना के देखते हुए भीष्म पर ही आक्रमण किया। भीष्म की भुजाओं का सहारा लिये हुए मदोत्कट आपका पुत्र दुश्शासन, बार बार आराम कर पुनः युद्ध में लग जाता था।

शिखण्डी तु रणे राजन् विव्याधैव पितामहम्।
शरैरशनिसंस्पर्शैस्तथा सर्पविषोपमैः॥ १७॥
न च स्म ते रुजं चक्रुः पितुस्त्व जनेश्वर।
स्मयमानस्तु गाङ्गेयस्तान् बाणाञ्जगृहे तदा॥ १८॥
उष्णार्तो हि नरो यद्वज्जलधाराः प्रतीच्छति।
तथा जग्राह गाङ्गेयः शरधाराः शिखण्डिनः॥ १९॥
तं क्षत्रिया महाराज ददृशुर्घोरमाहवे।
भीष्मं दहन्तं सैन्यानि पाण्डवानां महात्मनाम्॥ २०॥

हे राजन्! शिखण्डी तो उससमय सर्पविष के समान और वज्र के समान स्पर्शवाले बाणों से युद्ध स्थल में पितामह को ही घायल कर रहा था। पर हे जनेश्वर! वे बाण आपके पिता के शरीर में पीड़ा उत्पन्न नहीं कर रहे थे। गंगापुत्र मुस्कराते हुए उन बाणों को ग्रहण कर रहे थे, जैसे गर्मी से बेचैन व्यक्ति पानी की धारा को स्वीकार करता है, वैसे ही गंगापुत्र शिखण्डी की बाणों की धारा को स्वीकार कर रहे थे। हे महाराज! क्षत्रियों ने युद्धस्थल में देखा कि भयंकर बने हुए भीष्म मनस्वी पाण्डवों की सेना को नष्ट करते जारहे थे।

ततोऽब्रवीत्तव सुतः सर्वसैन्यानि मारिष।
अभिद्रवत संग्रामे फाल्गुनं सर्वतो रणे॥ २१॥
भीष्मो वः समरे सर्वान् पालयिष्यति धर्मवित्।
ते भयं सुमहत् त्यक्त्वा पाण्डवान् प्रति युध्यत॥ २२॥
हेमतालेन महता भीष्मस्तिष्ठति पालयन्।
तस्माद् द्रवत मा योधाः फाल्गुनं प्राप्य संयुगे॥ २३॥
अहमद्य रणे यत्तो योधयिष्यामि पाण्डवम्।
सहितः सर्वतो यत्तैर्भवद्भिर्वसुधाधिपैः॥ २४॥

हे मान्यवर! तब आपके पुत्र दुर्योधन ने सारी सेनाओं से कहा कि तुमलोग युद्धस्थल में अर्जुन पर सबतरफ से आक्रमण करो। धर्म के ज्ञाता भीष्म तुम सबकी रक्षा करेंगे। इसलिये तुम अत्यन्तमहान् भय को छोड़कर पाण्डवों के साथ युद्ध करो। सुनहरी तालवृक्ष की ऊँची ध्वजा के साथ भीष्म रक्षा करते हुए युद्धस्थल में विद्यमान हैं। हे योद्धाओं! इसलिये भागो मत। सब तरफ से प्रयत्नशील आप राजाओं के साथ मैं भी आज प्रयत्नपूर्वक युद्धस्थल में अर्जुन को प्राप्तकर उस पाण्डुपुत्र के साथ युद्ध करूँगा।

तच्छ्रुत्वा तु वचो राजंस्तव पुत्रस्य धन्विनः।
सर्वे योधाः सुसंरब्धा बलवन्तो महाबलाः॥ २५॥
ते विदेहाः कलिङ्गाश्च दासेरकगणाश्च ह।
अभिपेतुर्निषादाश्च सौवीराश्च महारणे॥ २६॥
बाह्लीका दरदाश्चैव प्रतीच्योदीच्यमालवाः।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः॥ २७॥
शाल्वाः शकास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह।
अभिपेतू रणे पार्थं पतङ्गा इव पावकम्॥ २८॥

हे राजन्! आपके धनुर्धर पुत्र के उन वचनों को सुनकर महाबली और शक्तिशाली अत्यन्त क्रोध में भरे हुए विदेह, कलिंग, दासेरक, सौवीर, बाह्लीक, दरद, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिवि, वसाति, शाल्व, शक, त्रिगर्त, अम्बष्ठ और केकय देशों के वीरों के समूह युद्धभूमि में अर्जुन पर ऐसे टूट पड़े जैसे पतंगे अग्नि पर गिरते हैं।

ते शरार्ता महाराज विप्रकीर्णमहाध्वजाः।
नाभ्यवर्तन्त राजानः सहिता वानरध्वजम्॥ २९॥
सध्वजा रथिनः पेतुर्हयारोहा हयैः सह।
सगजाश्च गजारोहाः किरीटिशरताडिताः॥ ३०॥
ततोऽर्जुनभुजोत्सृष्टैरावृताऽऽसीद् वसुन्धरा।
विद्रवद्भिश्च बहुधा बलै राज्ञां समन्ततः॥ ३१॥
अथ पार्थो महाराज द्रावयित्वा वरूथिनीम्।
दुःशासनाय सुबहून् प्रेषयामास सायकान्॥ ३२॥

हे महाराज! उन राजाओं के विशाल ध्वज छिन्न भिन्न हो गये थे, वे अर्जुन के बाणों से पीड़ित हो रहे थे। वानर की ध्वजावाले अर्जुन का वेलोग इकट्ठे होकर भी सामना नहीं कर पाये। अर्जुन के बाणों से मारे हुए रथी अपने ध्वजों के साथ गिर पड़े। घुड़सवार अपने घोड़ों के साथ गिर पड़े और हाथीसवार हाथियों के साथ गिर पड़े। उससमय भूमि अर्जुन की भुजाओं से छूटे हुए बाणों से तथा राजाओं की भागती हुई अनेकप्रकार की सेनाओं से सबतरफ व्याप्त हुई दिखाई देरही थी। हे महाराज! तब अर्जुन ने सेना को भगाकर, दुश्शासन पर बहुतसारे बाणों को छोड़ा।

हयांश्चास्य ततो जघ्ने सारथिं च न्यपातयत्।
विविंशतिं च विंशत्या विरथं कृतवान् प्रभुः॥ ३३॥
आजघान भृशं चैव पञ्चभिर्नतपर्वभिः।
कृपं विकर्णं शल्यं विद्ध्वा बहुभिरायसैः॥ ३४॥
चकार विरथांश्चैव कौन्तेयः श्वेतवाहनः।
एवं ते विरथाः सर्वे कृपः शल्यश्च मारिष॥ ३५॥

दुःशासनो विकर्णश्च तथैव च विविंशतिः।
सम्प्राद्रवन्त समरे निर्जिताः सव्यसाचिना॥ ३६॥

उस शक्तिशाली अर्जुन ने दुश्शासन के घोड़ों को मार दिया और सारथी को गिरा दिया। फिर उसने विविंशति को भी बीस बाण मारकर रथ से रहित कर दिया और उसे पाँच झुकी गाँठवाले बाणों से अत्यन्त आहत कर दिया। श्वेत घोड़ोंवाले कुन्तीपुत्र ने बहुतसारे लोहे के बाणों से कृपाचार्य, विकर्ण और शल्य को भी बींधकर उन्हें रथों से रहित कर दिया। हे मान्यवर! इसप्रकार बायें हाथ से भी बाण चलाने वाले अर्जुन के द्वारा रथों से हीन किये हुए वेसारे कृपाचार्य, शल्य दुश्शासन, विकर्ण, और विविंशति पराजित होकर वहाँ से भाग गये।

पूर्वाह्णे भरतश्रेष्ठ पराजित्य महारथान्।
प्रजज्वाल रणे पार्थो विधूम इव पावकः॥ ३७॥
तथैव शरवर्षेण भास्करो रश्मिवानिव।
अन्यानपि महाराज तापयामास पार्थिवान्॥ ३८॥
ततो भीष्मो महाराज दिव्यमस्त्रमुदीरयन्।
अभ्यधावत कौन्तेयं मिषतां सर्वधन्विनाम्॥ ३९॥
तं शिखण्डी रणे यान्तमभ्यद्रवत दंशितः।
ततः समाहरद् भीष्मस्तदस्त्रं पावकोपमम्॥ ४०॥

हे भरतश्रेष्ठ! दिन के पूर्वाह्न में उन महारथियों को पराजितकर कुन्तीपुत्र अर्जुन युद्धक्षेत्र में धूमरहित अग्नि के समान देदीप्यमान हो रहे थे। हे महाराज! जैसे सूर्य अपनी किरणों से तपाता है, वैसे ही वे अर्जुन फिर दूसरे राजाओं को भी अपनी बाणवर्षा के द्वारा सन्तप्त करने लगे। हे महाराज! फिर भीष्म ने सारे धनुर्धरों के देखते हुए, एक दिव्यास्त्र को निकालते हुए कुन्तीपुत्र अर्जुन के ऊपर आक्रमण किया। तभी कवच बाँधे हुए शिखण्डी ने युद्ध के लिये आगे बढ़ते हुए भीष्म पर आक्रमण किया। तब भीष्म ने अग्नि के समान अपने उस दिव्यास्त्र को समेटकर रख लिया।

सड़सठवाँ अध्याय : भीष्म की अद्‌भुत वीरता।

संजय उवाच

ततः शल्यः कृपश्चैव चित्रसेनश्च भारत।
दुःशासनो विकर्णश्च रथानास्थाय भास्वरान्॥ १॥
पाण्डवानां रणे शूरा ध्वजिनीं समकम्पयन्।
सा वध्यमाना समरे पाण्डुसेना महात्मभिः॥ २॥
भ्राम्यते बहुधा राजन् मारुतेनेव नौर्जले।
यथा हि शैशिरः कालो गवां मर्माणि कृन्तति॥ ३॥
तथा पाण्डुसुतानां वै भीष्मो मर्माणि कृन्तति।

संजय ने कहा कि हे भारत! उसके पश्चात् शल्य, कृपाचार्य, चित्रसेन, दुश्शासन और विकर्ण चमकते हुए रथों पर बैठकर आगये और वे शूरवीर पाण्डवों की सेना को कम्पित करने लगे। उन मनस्वियों के द्वारा मारी जाती हुई पाण्डवों की सेना उस युद्धस्थल में इस प्रकार भटकने लगी जैसे हवा के थपेड़ों से नाव पानी में चक्कर खाने लगती है। जैसे शीत का समय गायों के मर्मस्थानों को पीड़ित करता है, उसी प्रकार भीष्म भी पाण्डव सेना के मर्मस्थानों को काटने लगे।

तथैव तव सैन्यस्य पार्थेन च महात्मना॥ ४॥
नवमेघप्रतीकाशाः पातिता बहुधा गजाः।
मृद्यमानाश्च दृश्यन्ते पार्थेन नरयूथपाः॥ ५॥
इषुभिस्ताड्यमानाश्च नाराचैश्च सहस्रशः।
पेतुरार्तस्वरं घोरं कृत्वा तत्र महागजाः॥ ६॥
सेनापतिस्तु समरे प्राह सेनां महारथः।
अभिद्रवत गाङ्गेयं सोमकाः सृञ्जयैः सह॥ ७॥
सेनापतिवचः श्रुत्वा सोमकाः सृञ्जयाश्च ते।
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं शरवृष्ट्या समाहताः॥ ८॥

इसीप्रकार मनस्वी अर्जुन के द्वारा भी आपकी सेना के नये बादलों के समान दिखाई देनेवाले बहुत से हाथी मार गिराये गये। अर्जुन के द्वारा बहुतसे पैदलसैनिकों के यूथपति भी मारे जाते हुए दिखाई दे रहे थे। उनके बाणों से तथा नाराचों से आहत होकर हजारों विशाल हाथी, भयानक आर्तस्वर करते हुए भूमि पर गिर पड़े। तब युद्धक्षेत्र में सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपनी सेना से कहा कि हे सोमकों! सृंजयों के साथ गंगापुत्र पर आक्रमण करो। अपने सेनापति की बात सुनकर, भीष्म की बाणवर्षा से आहत होते हुए भी वे उनके ऊपर टूट पड़े।

वध्यमानस्ततो राजन् पिता शान्तनवस्तव।
अमर्षवशमापन्नो योधयामास सृञ्जयान्॥ ९॥

उद्विग्नाः समरे योधा विक्रोशन्ति धनंजयम्।
ये च केचन पार्थानामभियाता धनंजयम्॥ १०॥
राजानो भीष्ममासाद्य गतास्ते यमसादनम्।
एवं दश दिशो भीष्मः शरजालैः समन्ततः॥ ११॥
अतीत्य सेनां पार्थानामवतस्थे चमूमुखे।
न चैनं पार्थिवाः केचिच्छक्ता राजन् निरीक्षितुम्॥ १२॥
मध्यं प्राप्तं यथा ग्रीष्मे तपन्तं भास्करं दिवि।

हे राजन्! तब बाणों की मार खाते हुए आपके पिता शान्तनुपुत्र क्रोध में भरकर सृंजयों के साथ युद्ध करने लगे। उससमय भीष्म के भय से उद्विग्न होकर पाण्डवपक्ष के योद्धालोग अर्जुन को पुकारने लगे। जो भी कोई राजालोग अर्जुन के पीछे गये थे, वे भीष्म के सामने पहुँचकर परलोक में पहुँच गए। इसतरह सारी दिशाओं में सबतरफ अपने बाणसमूहों से पाण्डवसेना को परास्तकर भीष्म सेना के मुहाने पर विराज रहे थे। ग्रीष्मऋतु में आकाश के बीच में तपते हुए सूर्य की तरह विद्यमान उनकी तरफ हे राजन्! कोई भी राजालोग देखने का साहस न कर सके।

तथा चैनं पराक्रान्तमालोक्य मधुसूदनः॥ १३॥
उवाच देवकीपुत्रः प्रीयमाणो धनंजयम्।
एष शान्तनवो भीष्मः सेनयोरन्तरे स्थितः॥ १४॥
संनिहत्य बलादेनं विजयस्ते भविष्यति।
बलात् संस्तम्भयस्वैनं यत्रैषा भिद्यते चमूः॥ १५॥
न हि भीष्मशरानन्यः सोढुमुत्सहते विभो।

उन्हें इसप्रकार पराक्रम करते हुए देखकर देवकी के पुत्र मधुसूदन प्रसन्न होते हुए अर्जुन से बोले कि यह शान्तनुपुत्र भीष्म दोनों सेनाओं के बीच में खड़े हैं। इन्हें यदि तुम बलपूर्वक मार दो तो तुम्हारी विजय हो जायेगी। जिस स्थान पर इनके द्वारा सेना का संहार किया जा रहा है, वहीं तुम इन्हें बलपूर्वक स्थिर कर दो। हे विभो! तुम्हारे सिवाय कोई और भीष्म के बाणों को सहन नहीं कर सकता।

ततस्तस्मिन् क्षणे राजंश्चोदितो वानरध्वजः॥ १६॥
सध्वजं सरथं साश्वं भीष्ममन्तर्दधे शरैः।
स चापि कुरुमुख्यानामृषभः पाण्डवेरितान्॥ १७॥
शरव्रातैः शरव्रातान् बहुधा विदुधाव तान्।

हे राजन्! तब उससमय प्रेरणा पाकर वानर की ध्वजावाले अर्जुन ने ध्वजा, रथ और घोड़ोंसहित भीष्म को बाणों से आच्छादित कर दिया। तब कुरुश्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ उन भीष्म ने पाण्डुपुत्र के द्वारा छोड़े हुए बाणसमूहों को अपने बाणसमूहों को अनेक बार काटा।

ततः पञ्चालराजश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान्॥ १८॥
पाण्डवो भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
यमौ च चेकितानश्च केकयाः पञ्च चैव ह॥ १९॥
सात्यकिश्च महाबाहुः सौभद्रोऽथ घटोत्कचः।
द्रौपदेयाः शिखण्डी च कुन्तिभोजश्च वीर्यवान्॥ २०॥
सुशर्मा च विराटश्च पाण्डवेया महाबलाः।
एते चान्ये च बहवः पीडिता भीष्मसायकैः॥ २१॥
समुद्धृताः फाल्गुनेन निमग्नाः शोकसागरे।

तब पांचालराज द्रुपद, तेजस्वी धृष्टकेतु, पाण्डुपुत्र भीमसेन, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, चेकितान, पाँच केकयकुमार, महाबाहु सात्यकि, सुभद्राकुमार, घटोत्कच, द्रौपदीपुत्र, शिखण्डी, तेजस्वी कुन्तीभोज, सुशर्मा और विराट ये महाबली पाण्डवपक्ष के तथा दूसरे वीर जो भीष्म के बाणों से पीड़ित होकर शोक सागर में डूब रहे थे, अर्जुन के द्वारा उद्धार कर दिये गये।

ततः शिखण्डी वेगेन प्रगृह्य परमायुधम्॥ २२॥
भीष्ममेवाभिदुद्राव रक्ष्यमाणः किरीटिना।
ततोऽस्यानुचरान् हत्वा सर्वान् रणविभागवित्॥ २३॥
भीष्ममेवाभिदुद्राव बीभत्सुरपराजितः।
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ २४॥
विराटो द्रुपदश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
दुद्रुवुर्भीष्ममेवाजौ रक्षिता दृढधन्वना॥ २५॥

तब अर्जुन के द्वारा सुरक्षित शिखण्डी उत्तम आयुधों को लेकर भीष्म की तरफ ही दौड़ा। युद्ध की सारी रीतियों को जाननेवाले और किसी से भी पराजित न होनेवाले अर्जुन ने भी भीष्म के पीछे चलनेवाले सारे योद्धाओं को मारकर भीष्म पर ही आक्रमण किया। दृढ़ धनुषधारी अर्जुन से सुरक्षित होकर सात्यकि, चेकितान, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, माद्री के दोनों पुत्रों पाण्डवों ने भी युद्धस्थल में भीष्म पर आक्रमण किया।

अभिमन्युश्च समरे द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः।
दुद्रुवुः समरे भीष्मं समुद्यतमहायुधाः॥ २६॥
ते सर्वे दृढधन्वानः संयुगेष्वपलायिनः।

बहुधा भीष्ममानर्च्छुर्मार्गणैः क्षतमार्गणैः॥ २७॥
विधूय तान् बाणगणान् ये मुक्ताः पार्थिवोत्तमैः।
पाण्डवानामदीनात्मा व्यगाहत वरूथिनीम्॥ २८॥

अभिमन्यु और द्रौपदी के पाँचों पुत्र भी महान् हथियारों को लेकर युद्धस्थल में भीष्म की तरफ दौड़े। ये सब दृढ़ता से धनुष को पकड़नेवाले और युद्ध में पीठ न दिखानेवाले थे। उन्होंने शत्रुओं के बाणों को नष्ट करनेवाले बाणों से भीष्म को अनेक बार पीड़ित किया किन्तु उत्तम राजाओं के द्वारा छोड़े हुए जो बाण थे, उन्हें नष्ट करके, बिना किसी दीनता के भीष्म पाण्डवों की सेना में प्रविष्ट हो गये।

चक्रे शरविघातं च क्रीडन्निव पितामहः।
नाभिसंधत्त पाञ्चाल्ये स्मयमानो मुहुर्मुहुः॥ २९॥
स्त्रीत्वं तस्यानुसंस्मृत्य भीष्मो बाणाञ्शिखण्डिने।
जघान द्रुपदानीके रथान सप्त महारथः॥ ३०॥
ततः किलकिलाशब्दः क्षणेन समभवत् तदा।
मत्स्यपाञ्चालचेदीनां तमेकमभिधावताम्॥ ३१॥
ते नराश्वरथव्रातैर्मार्गणैश्च परंतप।
तमेकं छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम्।
तत्र भीष्मं गंगापुत्रं, प्रतपन्तं रणे रिपून्॥ ३२॥

वहाँ पितामह खेल सा करते हुए प्रतिपक्षियों के बाणों को काटने लगे पर वे भीष्म पांचालपुत्र शिखण्डी के स्त्रीत्व को स्मरण करते हुए उसके ऊपर बाण नहीं चलाते थे और बार बार मुस्कराकर रह जाते थे। उन्होंने द्रुपद की सेना के सात महारथियों को मार दिया। तब उन अकेले के ऊपर आक्रमण करते हुए मत्स्य, पांचाल, और चेदि देश के सैनिकों का महान् कोलाहल वहाँ होने लगा। जैसे विशाल बादल सूर्य को ढक लेते हैं, वैसे ही युद्धक्षेत्र में शत्रुओं को संतप्त करते हुए उन अकेले गंगापुत्र भीष्म को हे परंतप! उन्होंने पैदल, घोड़ों और रथ समूहों के द्वारा वहाँ घेर लिया और बाणों से आच्छादित कर दिया।

अड़सठवाँ अध्याय : अर्जुन का भीष्म को गिराना।

संजय उवाच

एवं ते पाण्डवाः सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
विव्यधुः समरे भीष्मं परिवार्य समन्ततः॥ १॥
स विशीर्णतनुत्राणः पीडितो बहुभिस्तदा।
न विव्यथे तदा भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु॥ २॥
विवृत्य रथसङ्घानामन्तरेण विनिःसृतः।
दृश्यते स्म नरेन्द्राणां पुनर्मध्यगतश्चरन्॥ ३॥
ततः पञ्चालराजं च धृष्टकेतुमचिन्त्य च।
पाण्डवानीकिनीमध्यमाससाद विशाम्पते॥ ४॥

तब संजय ने कहा कि इसप्रकार वे पाण्डव भीष्म को चारोंतरफ से घेरकर और शिखण्डी को आगेकर युद्धस्थल में उन्हें घायल कर रहे थे। उससमय उनका कवच छिन्नभिन्न हो गया था, किन्तु मर्मस्थानों में चोट लगने पर भी, उनसे बहुत पीड़ित होने पर भी भीष्म व्यथित नहीं हुए। वे रथ समूहों के घेरे को तोड़कर निकल आते और फिर राजाओं के बीच में प्रवेशकर वहाँ विचरने लगते थे। पाँचालराज द्रुपद और धृष्टकेतु की कुछ भी परवाह न करके हे प्रजानाथ! वे फिर पाण्डवसेना के बीच में घुस आये।

ततः सात्यकिभीमौ च पाण्डवं च धनंजयम्।
द्रुपदं च विराटं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्॥ ५॥
भीमघोषैर्महावेगैर्मर्मावरण- भेदिभिः।
षडेतान् निशितैर्भीष्मः प्रविव्याधोत्तमैः शरैः॥ ६॥
तस्य ते निशितान् बाणान् संनिवार्य महारथाः।
दशभिर्दशभिर्भीष्ममर्दयामा- सुरोजसा॥ ७॥
ततः किरीटी संरब्धो भीष्ममेवाभ्यधावत।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चास्य समाच्छिनत्॥ ८॥

फिर भीष्म ने भयानकध्वनि करनेवाले, महावेगशाली, मर्मस्थानों और कवचों को विदीर्ण करनेवाले, तीखे और उत्तम बाणों से सात्यकि, भीम, पाण्डुपुत्र अर्जुन, द्रुपद, विराट और द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न इन छै को अत्यन्तघायल कर दिया। उन महारथियों ने उनके उन तीखे बाणों को निवारणकर बलपूर्वक भीष्म को दस दस बाणों से ताड़ना दी। फिर अर्जुन ने क्रुद्ध होकर शिखण्डी को आगेकर भीष्म पर ही आक्रमण किया और उनके धनुष को काट दिया।

भीष्मस्य धनुषच्छेदं नामृष्यन्त महारथाः।
द्रोणश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः॥ ९॥
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तस्तथैव च।

सप्तैते परमक्रुद्धाः किरीटिनमभिद्रुताः॥ १०॥
तत्र शस्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महारथाः।
अभिपेतुर्भृशं क्रुद्धाश्छादयन्तश्च पाण्डवम्॥ ११॥
तेषामापततां शब्दः शुश्रुवे फाल्गुनं प्रति।
उद्वृत्तानां यथा शब्दः समुद्राणां युगक्षये॥ १२॥

भीष्म के धनुष का काटा जाना कौरवों के महारथी सहन नहीं कर सके और द्रोणाचार्य, कृतवर्मा, सिन्धुराज जयद्रथ, भूरिश्रवा, शल, शल्य तथा भगदत्त ये सात महारथी अत्यन्तक्रुद्ध होकर, अपने दिव्यास्त्रों का प्रदर्शन करते हुए अर्जुन की तरफ दौड़े। वे उन पर आक्रमण कर उन्हें बाणों से आच्छादित करने लगे। प्रलयकाल में उमड़ते हुए समुद्रों के शब्द के समान, अर्जुन के ऊपर आक्रमण करते हुए उनका भी शब्द सुनाई देरहा था।

तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः।
अभ्यधावन् परीप्सन्तः फाल्गुनं भरतर्षभ॥ १३॥
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
विराटद्रुपदौ चोभौ राक्षसश्च घटोत्कचः॥ १४॥
अभिमन्युश्च संक्रुद्धः सप्तैते क्रोधमूर्च्छिताः।
समभ्यधावंस्त्वरिताश्चित्र- कार्मुकधारिणः॥ १५॥

हे भरतश्रेष्ठ! उस तुमुल शब्द को सुनकर पाण्डवों के महारथी भी अर्जुन की रक्षा के लिये दौड़े। सात्यकि, भीमसेन, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न विराट और द्रुपद, राक्षस घटोत्कच और क्रुद्ध अभिमन्यु ये सात विचित्र धनुषों को धारण करनेवाले वीर क्रोध से मूर्च्छित होकर शीघ्रता से वहाँ दौड़े हुए आये।

शिखण्डी तु रणे श्रेष्ठो रक्ष्यमाणः किरीटिना।
अविध्यद् दशभिर्भीष्मं छिन्नधन्वानमाहवे॥ १६॥
सारथिं दशभिश्चास्य ध्वजं चैकेन चिच्छिदे।
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय गाङ्गेयो वेगवत्तरम्॥ १७॥
जघान निशितैर्बाणैरर्जुनं परवीरहा।
तदप्यस्य शितैर्बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद फाल्गुनः॥ १८॥
स छिन्नधन्वा संक्रुद्धः सृक्किणी परिसंलिहन्।
शक्तिं जग्राह तरसा गिरीणामपि दारिणीम्॥ १९॥

युद्ध में श्रेष्ठ शिखण्डी ने अर्जुन के द्वारा सुरक्षित होकर धनुष कटे हुए भीष्म को युद्ध में दस बाणों से बींधा और दस बाणों से ही उनके सारथी को घायल किया और एक बाण से उनके ध्वज को काट दिया। तब गंगापुत्र ने दूसरे अधिक वेगवान् धनुष को लेकर तीखेबाणों से अर्जुन पर आक्रमण किया किन्तु अर्जुन ने तीखे तीन बाणों से उनके उस धनुष को भी काट दिया। धनुष के कट जाने पर अत्यन्त क्रोध में भरकर अपने मुख के दोनों किनारों को चाटते हुए शीघ्रता से उन्होंने एक शक्ति को उठाया, जो पर्वत को भी विदीर्ण करनेवाली थी।

तां च चिक्षेप संक्रुद्धः फाल्गुनस्य रथं प्रति।
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य ज्वलन्तीमशनीमिव॥ २०॥
समादत्त शितान् भल्लान् पञ्च पाण्डवनन्दनः।
तस्य चिच्छेद तां शक्तिं पञ्चधा पञ्चभिः शरैः॥ २१॥
शिखण्डी तु महाराज भरतानां पितामहम्।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवभिर्निशितैः शरैः॥ २२॥
ततः प्रहस्य बीभत्सुर्व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः।
गाङ्गेयं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्॥ २३॥
पुनः पुनः शतैरेनं त्वरमाणो धनंजयः।
सर्वगात्रेषु संक्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत्॥ २४॥

अत्यन्तक्रोधयुक्त होकर उन्होंने उस शक्ति को अर्जुन के रथ की तरफ फेंका। विद्युत् के समान प्रज्वलित उसे अपनीतरफ आते देखकर, पाण्डवों को आनन्दित करनेवाले अर्जुन ने पाँच भल्लों का सन्धान किया और उन पाँच बाणों से उन्होंने उस शक्ति को पाँच स्थानों से काट दिया। हे महाराज! तब शिखण्डी ने क्रोधपूर्वक भरतवंशियों के उन पितामह की छाती में नौ तीखेबाणों से प्रहार किया। फिर अर्जुन ने हँसकर गाण्डीव धनुष को खींचते हुए गंगापुत्र पर पच्चीस बाणों की और फिर शीघ्रता से सौ बाणों की क्रोधसहित वर्षाकर उनके सारे शरीर के मर्मस्थानों को घायल किया।

एवमन्यैरपि भृशं विद्ध्यमानः सहस्रशः।
तानप्याशु शरैर्भीष्मः प्रविव्याध महारथः॥ २५॥
तैश्च मुक्ताञ्छरान् भीष्मोयुधि सत्यपराक्रमः।
निवारयामास शरैः समं संनतपर्वभिः॥ २६॥
ततः किरीटी संक्रुद्धो भीष्ममेवाभ्यवर्तत।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चास्य समाच्छिनत्॥ २७॥
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय गाङ्गेयो बलवत्तरम्।
तदप्यस्य शितैर्भल्लैस्त्रिधा त्रिभिरघातयत्॥ २८॥

इसीप्रकार और दूसरे लोगों ने भी बहुतसारे बाणों की वर्षाकर भीष्म को घायल किया, किन्तु महारथी भीष्म ने उन्हें भी शीघ्रता से अपने बाणों द्वारा आहत कर दिया। सत्यपराक्रमी भीष्म उनके द्वारा छोड़े हुए बाणों को अपने झुकी गाँठ वाले बाणों से युद्ध में तुरन्त निवारण कर देते थे। फिर अर्जुन अत्यन्त क्रोध में भरकर, शिखण्डी को आगेकर भीष्मकी तरफ ही बढ़े और उन्होंने उनके धनुष को काट दिया। तब गंगापुत्र ने दूसरा अधिक वेगवाला धनुष लिया, पर अर्जुन ने तीन तीखे भल्लों से उसे भी तीन स्थानों से काट दिया।

निमेषार्धेन कौन्तेय आत्तमात्तं महारणे।
एवमस्य धनूंष्याजौ चिच्छेद सुबहून्यथ॥ २९॥
ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नात्यवर्तत।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्॥ ३०॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासो दुःशासनमभाषत।
एष पार्थो रणे क्रुद्धः पाण्डवानां महारथः॥ ३१॥
शरैरनेकसाहस्रैर्मामेवाभ्यहनद् रणे।
अतिविद्धः शितैर्बाणैर्भृशं गाण्डीवधन्वना॥ ३२॥

उस महान् युद्ध में भीष्म जो भी धनुष हाथ में लेते थे, उसे कुन्तीपुत्र आधे फल में ही काट देते थे। इसप्रकार उन्होंने भीष्मपितामह के बहुतसारे धनुष उस युद्धस्थल में काट दिये। तब शान्तनु पुत्र भीष्म ने अर्जुन पर आक्रमण करना छोड़ दिया। तब अर्जुन ने उन पर पच्चीस बाणों से प्रहार किया। तब अत्यन्त घायल होकर उन महा धनुर्धर ने दुश्शासन से कहा कि यह पाण्डवों के महारथी कुन्तीपुत्र अर्जुन क्रुद्ध होकर युद्ध में मुझ पर हजारों बाणों का प्रहार कर चुके हैं। मैं गाण्डीव धनुर्धारी के तीखे बाणों से घायल हो गया हूँ।

वज्राशनिसमस्पर्शा अर्जुनेन शरा युधि।
मुक्ताः सर्वेऽव्यवच्छिन्ना नेमे बाणाः शिखण्डिनः॥ ३३॥
निकृन्तमाना मर्माणि दृढावरणभेदिनः।
मुसला इव मे घ्नन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः॥ ३४॥
वज्रदण्डसमस्पर्शा वज्रवेगदुरासदाः।
मम प्राणानारुजन्ति नेमे बाणाः शिखण्डिनः॥ ३५॥
नाशयन्तीव मे प्राणान् यमदूता इवाहिताः।

अर्जुन के द्वारा युद्ध में अविच्छिन्नरूप से छोड़े गये येसारे बाण वज्र और विद्युत् के समान स्पर्श वाले हैं। ये शिखण्डी के नहीं हैं। ये बाण मेरे दृढ़ कवच को भेदकर मर्मस्थानों को काट रहे हैं। ये वज्र के समान स्पर्शवाले वज्र के समान कठिनाई से निवारण किये जानेवाले हैं। मूसल के समान प्रहार करनेवाले ये बाण शिखण्डी के नहीं हैं। ये बाण मृत्यु के दूतों के समान मेरे प्राणों को नष्ट कर रहे हैं, मेरे प्राणों को व्यथित कर रहे हैं। ये बाण शिखण्डी के नहीं हैं।

गदापरिघसंस्पर्शा नेमे बाणाः शिखण्डिनः॥ ३६॥
भुजगा इव संक्रुद्धा लेलिहाना विषोल्बणाः।
अर्जुनस्य इमे बाण नेमे बाणाः शिखण्डिनः॥ ३७॥
कृन्तन्ति मम गात्राणि माघमां सेगवा इव।
सर्वे ह्यपि न मे दुःखं कुर्युरन्ये नराधिपाः॥ ३८॥
वीरं गाण्डीवधन्वानमृते जिष्णुं कपिध्वजम्।
इति ब्रुवञ्छान्तनवो दिधक्षुरिव पाण्डवान्॥ ३९॥
शक्तिं भीष्मः स पार्थाय ततश्चिक्षेप भारत।
तामस्य विशिखैश्छित्त्वा त्रिधा त्रिभिरपातयत्॥ ४०॥

क्रोध में भरे प्रचण्ड विषवाले सर्प के समान डसनेवाले और गदा तथा परिघ की चोट के समान प्रतीत होनेवाले ये बाण शिखण्डी के नहीं हैं। केकड़ी के बच्चे जैसे अपनी माता का पेट काटते हैं, वैसे ही ये बाण मेरे गात्रों को काट रहे हैं। ये अर्जुन के बाण हैं, शिखण्डी के नहीं हैं। वानर की ध्वजावाले, गाण्डीवधारी अर्जुन के सिवाय और कोई राजा मुझे अपने बाणों से इतनी पीड़ा नहीं दे सकता। हे भारत! ऐसा कहते हुए शान्तनुपुत्र भीष्म ने मानों पाण्डवों को भस्म करना चाहते हैं, ऐसा प्रकट करते हुए अर्जुन पर एक शक्ति चलाई, किन्तु अर्जुन ने तीन बाणों से उस शक्ति को काटकर गिरा दिया।

पश्यतां कुरुवीराणां सर्वेषां तव भारत।
चर्माथादत्त गाङ्गेयो जातरूपपरिष्कृतम्॥ ४१॥
खड्गं चान्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयाय वा।
तस्य तच्छतधा चर्म व्यधमत् सायकैस्तथा॥ ४२॥
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत्।
ततो युधिष्ठिरो राजा स्वान्यनीकान्यचोदयत्॥ ४३॥
अभिद्रवत गाङ्गेयं मा वोऽस्तु भयमण्वपि।
अथ ते तोमरैः प्रासैर्बाणौघैश्च समन्ततः॥ ४४॥

पट्टिशैश्च सुनिस्त्रिंशैर्नाराचैश्च तथा शितैः।
वत्सदन्तैश्च भल्लैश्च तमेकमभिदुद्रुवुः॥ ४५॥

हे भारत! तब कौरववीरों के देखते हुए भीष्म ने मृत्यु या विजय इनमें से किसी एक का वरण करने के लिये हाथ में स्वर्णभूषित ढाल और तलवार को लिया। पर वे अभी रथ से उतरे भी न थे कि अर्जुन ने उनकी ढाल को अनेक टुकड़ों में काट दिया। यह एक अद्भुत बात थी। तब युधिष्ठिर ने अपनी सेना को प्रेरणा दी कि तुम गंगापुत्र पर आक्रमण करो। तुम्हें अणुमात्र भी भय नहीं होना चाहिये। तब वे सैनिक सबतरफ से तोमर, प्रास, बाणों, पट्टिश, खड्ग, तीखे नाराच, तीखे वत्सदन्त और भल्लों को लेकर अकेले भीष्म की तरफ दौड़े।

सिंहनादस्ततो घोरः पाण्डवानामभूत् तदा।
तथैव तव पुत्राश्च नेदुर्भीष्मजयैषिणः॥ ४६॥
तमेकमभ्यरक्षन्त सिंहनादांश्च चक्रिरे।
तत्रासीत् तुमुलं युद्धं तावकानां परैः सह॥ ४७॥
दशमेऽहनि राजेन्द्र भीष्मार्जुनसमागमे।
आसीद् गाङ्ग इवावर्तो मुहूर्तमुदधेरिव॥ ४८॥

तब पाण्डवों की सेना में भयानक सिंहनाद होने लगा। इसीप्रकार भीष्म की विजय के इच्छुक आपके पुत्र भी सिंहनाद करने लगे। आपके सैनिक अकेले भीष्म की रक्षा करते हुए सिंहनाद कर रहे थे। फिर वहाँ आपके योद्धाओं का और शत्रुओं का भयंकर युद्ध होने लगा। हे राजेन्द्र! इसप्रकार दसवें दिन भीष्म और अर्जुन के युद्ध के समय दो घड़ी तक ऐसा दृश्य दिखाई दिया, जैसे गंगा के समुद्र में गिरते समय जल में उथलपुथल होरही हो।

ततः सेनामुखे तस्मिन् स्थितः पार्थो धनुर्धरः।
मध्येन कुरुसैन्यानां द्रावयामास वाहिनीम्॥ ४९॥
सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः॥ ५०॥
शाल्वाश्रयास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह।
सर्व एते महात्मानः शरार्ता व्रणपीडिताः॥ ५१॥
संग्रामे न जहुर्भीष्मं युध्यमानं किरीटिना।
निहत्य समरे राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः॥ ५२॥
न तस्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यङ्गुलमन्तरम्।

तब सेना के मुहाने पर खड़े हुए धनुर्धर अर्जुन ने कौरवों की सेना में प्रवेशकर उसे खदेड़ना आरम्भ कर दिया। किन्तु सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिवि, वसाति, शाल्वाश्रय, त्रिगर्त, अम्बष्ठ और केकय, इन देशों के मनस्वी वीर, अर्जुन के साथ युद्ध करते हुए, बाणों से आर्त, और घावों से पीड़ित होने पर भी भीष्म को छोड़कर नहीं गये। हे राजन्! उससमय सैकड़ों और हजारों वीरों को मारकर भीष्म जी की भी ऐसी अवस्था हो गयी थी, कि उनके शरीर में दो अंगुल का स्थान भी बिना घायल हुए नहीं रहा था।

एवंभूतस्तव पिता शरैर्विशकलीकृतः॥ ५३॥
शिताग्रैः फाल्गुनेनाजौ प्राक्शिराः प्रापतद् रथात्।
किंचिच्छेषे दिनकरे पुत्राणां तव पश्यताम्॥ ५४॥
सम्पतन्तमभिप्रेक्ष्य महात्मानं पितामहम्।
सह भीष्मेण सर्वेषां प्रापतन् हृदयानि नः॥ ५५॥
स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन्।
धरर्णी न स पस्पर्श शरसंघैः समावृतः॥ ५६॥

इस अवस्था में पहुँचे हुए आपके पिता, अर्जुन के तीखी नोकवाले बाणों से छिन्नभिन्न अंगोंवाले होकर, जब दिन थोड़ा ही शेष था, तब आपके पुत्रों के देखते हुए, पूर्व की तरफ सिर किये हुए, रथ से नीचे गिर पड़े। उससमय महात्मा भीष्म को गिरते हुए देखकर, हमारे हृदय भी पितामह के साथ ही गिर पड़े। सैनिकों का कोलाहल जब भूमि को गुँजा रहा था, तब वे महाबाहु भूमि पर गिरे, पर बाणों के ढेर से घिरे हुए होने के कारण उन्होंने पृथिवी को स्पर्श नहीं किया।

एवं कुरूणां पतिते शृङ्गे भीष्मे महौजसि।
पाण्डवाः सृंजयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे॥ ५७॥
सम्मोहश्चैव तुमुलः कुरूणामभवत् तदा।
कृपदुर्योधनमुखा निःश्वस्य रुरुदुस्ततः॥ ५८॥
विषादाच्च चिरं कालमतिष्ठन् विगतेन्द्रियाः।
दध्युश्चैव महाराज न युद्धे दधिरे मनः॥ ५९॥
ऊरुग्राहगृहीताश्च नाभ्यधावन्त पाण्डवान्।

इसप्रकार महातेजस्वी, कौरवों के शिरोमणि भीष्म के गिरने पर पाण्डव और सृंजय सिंहनाद करने लगे। तब कौरवों पर बड़ा मोह छा गया।

कृपाचार्य और दुर्योधन आदि सारेलोग वहाँ लम्बी लम्बी सांसें लेकर रोने लगे। दुख के कारण वे देर तक ऐसे खड़े रहे, मानों उनकी इन्द्रियाँ नष्ट हो गयी हैं। हे महाराज! चिन्ता के कारण उनका तब युद्ध में मन नहीं लगा। वे पाण्डवों पर आक्रमण नहीं कर सके। मानों उन्हें किसी बड़े ग्राह ने पकड़ लिया हो।

हतप्रवीरास्तु वयं निकृत्ताश्च शितैःशरैः॥ ६०॥
कर्तव्यं नाभिजानीमो निर्जिताः सव्यसाचिना।
सोमकाश्च सपश्चालाः प्राहृष्यन्त जनेश्वर॥ ६१॥
ततस्तूर्यसहस्त्रेषु नदत्सु स महाबलः।
आस्फोटयामास भृशं भीमसेनो ननाद च॥ ६२॥

हमारे अच्छे वीर मारे गये थे। हम तीखेबाणों से घायल हो गये थे। अर्जुन ने हमें जीत लिया था। हमें उससमय अपना कर्त्तव्य नहीं सूझ रहा था। हे जनेश्वर! उधर सोमक और सृंजय अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। वहाँ हजारों रणवाद्य बजने लगे। महाबली भीमसेन तब जोर जोर से ताल ठोकने और गर्जना करने लगे।

उनहत्तरवाँ अध्याय : युद्ध बन्द होना। अर्जुन का भीष्म को तकिया लगाना।

धृतराष्ट्र उवाच

तदैव निहतान् मन्ये कुरूनन्यांश्च पाण्डवैः।
न प्राहरद् यदा भीष्मो घृणित्वाद् द्रुपदात्मजम्॥ १॥
ततो दुःखतरं मन्ये किमन्यत् प्रभविष्यति।
अद्याहं पितरं श्रुत्वा निहतं स्म सुदुर्मतिः॥ २॥
अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम संजय।
श्रुत्वा विनिहतं भीष्मं शतधा यन्न दीर्यते॥ ३॥
यदन्यन्निहतेनाजौ भीष्मेण जयमिच्छता।
चेष्टितं कुरुसिंहेन तन्मे कथय सुव्रत॥ ४॥

तब धृतराष्ट्र ने कहा कि जब भीष्म ने दयालुता के कारण शिखण्डी पर प्रहार नहीं किया, तभी मैंने समझ लिया था कि दूसरे कौरव भी अब पाण्डवों के हाथों मारे जायेंगे। इससे अधिक और दुखदायी बात क्या हो सकती है कि मैं दुष्टबुद्धि आज अपने पितातुल्य भीष्म को गिराया हुआ सुनकर भी विद्यमान हूँ। हे संजय! मेरा हृदय अवश्य ही लोहे का बना हुआ है, जो भीष्म को गिराया हुआ सुनकर भी टुकड़े टुकड़े नहीं हो जता। हे अच्छे व्रत का पालन करनेवाले संजय! विजय को चाहनेवाले कुरुसिंह भीष्म ने युद्धस्थल में गिराये जाने पर दूसरी कौनसी चेष्टाएँ कीं? उन्हें मुझे बताओ।

पुनःपुनर्न मृष्यामि हतं देवव्रतं रणे।
न हतो जामदग्न्येन दिव्यैरस्त्रैरयं पुरा॥ ५॥
स हतो द्रौपदेयेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना।

संजय उवाच

दृष्ट्वा च पतितं भीष्मं पुत्रो दुःशासनस्तव॥ ६॥
उत्तमं जवमास्थाय द्रोणानीकमुपाद्रवत्।
भ्रात्रा प्रस्थापितो वीरः, स्वसैन्यं स विषादयन्॥ ७॥
ततो द्रोणाय निहतं भीष्ममाचष्ट कौरवः।
द्रोणस्तत्राप्रियं श्रुत्वा मुमोह भरतर्षभ॥ ८॥

देवव्रत की युद्धस्थल में गिराये जाने की बात मेरे लिये बार बार असह्य हो रही है। जो भीष्म पहले परशुराम के दिव्यास्त्रों के द्वारा भी नहीं गिराये जा सके, वे पांचाल राजकुमार द्रुपदपुत्र शिखण्डी के द्वारा गिरा दिये गये। तब संजय ने कहा कि भीष्म को गिराया हुआ देखकर आपका पुत्र वीर दुश्शासन अपने भाई के द्वारा भेजने पर, अपनी सेना को विषाद में डालता हुआ तेजी से द्रोणाचार्य की सेना की तरफ दौड़ा। फिर उस कौरव ने द्रोणाचार्य को भीष्म के गिराये जाने का समाचार सुनाया। हे भरतश्रेष्ठ! द्रोणाचार्य उस अप्रिय बात को सुनते ही मूर्च्छित हो गये।

स संज्ञामुपलभ्याशु भारद्वाजः प्रतापवान्।
निवारयामास तदा स्वान्यनीकानि मारिष॥ ९॥
विनिवृत्तान् कुरून् दृष्ट्वा पाण्डवाऽपि स्वसैनिकान्।
दूतैः शीघ्राश्वसंयुक्तैः समन्तात् पर्यवारयन्॥ १०॥
निवृत्तेषु च सैन्येषु पारम्पर्येण सर्वशः।
निर्मुक्तकवचाः सर्वे भीष्ममीयुर्नराधिपाः॥ ११॥
ते तु भीष्मं समासाद्य शयानं भरतर्षभम्।
अभिवाद्यावतिष्ठन्त पाण्डवाः कुरुभिः सह॥ १२॥

हे मान्यवर! फिर जल्दी ही होश में आकर, प्रतापी द्रोणाचार्य ने अपनी सेनाओं को युद्ध से रोक दिया। कौरवसेना को युद्ध से विमुख देखकर पांड़वों ने भी शीघ्रगामी घुड़सवार दूतों के द्वारा अपने सैनिकों को लौटा लिया। क्रम क्रम से सारी सेनाओं के युद्ध से निवृत्त हो जाने पर, राजालोग अपने कवचों को खोलकर भीष्म के पास गये। लेटे हुए उन भरतश्रेष्ठ भीष्म के पास आकर और उन्हें प्रणाम कर पाण्डव कौरवों के साथ खड़े हो गये।

अथ पाण्डून् कुरूंश्चैव प्रणिपत्याग्रतः स्थितान्।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः शान्तनवस्तदा॥ १३॥
स्वागतं वो महाभागाः स्वागतं वो महारथाः।
तुष्यामि दर्शनाच्चाहं युष्माकममरोपमाः॥ १४॥
अभिमन्त्र्याथ तानेवं शिरसा लम्बताब्रवीत्।
शिरो मे लम्बतेऽत्यर्थमुपधानं प्रदीयताम्॥ १५॥
ततो नृपाः समाजह्रुस्तनूनि च मृदूनि च।
उपधानानि मुख्यानि नैच्छत् तानि पितामहः॥ १६॥

तब प्रणाम कर अपने आगे खड़े हुए पाण्डुपुत्रों और कौरवों से वे धर्मात्मा शान्तनुपुत्र भीष्म कहने लगे कि हे देवताओं के समान महाभागों! हे महारथियों! तुम्हारा स्वागत है। मैं तुम्हारे दर्शनों से सन्तुष्ट हूँ। उनका इसप्रकार स्वागत कर अपने लटके हुए सिर से ही वे बोले कि मेरा सिर बहुत लटक रहा है। आपलोग मुझे तकिया दीजिये। तब राजालोग उनके लिये बहुत से बारीक कपड़े के बने हुए, मुलायम और बढ़िया तकिये लाये, किन्तु पितामह ने उन्हें लेने की इच्छा नहीं की।

अथाब्रवीन्नरव्याघ्रः प्रसहन्निव तान् नृपान्।
नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः॥ १७॥
ततो वीक्ष्य नरश्रेष्ठमभ्यभाषत पाण्डवम्।
धनंजयं दीर्घबाहुं सर्वलोकमहारथम्॥ १८॥
धनंजय महाबाहो शिरो मे तात लम्बते।
दीयतामुपधानं वै यद् युक्तमिह मन्यसे॥ १९॥

तब उन नरव्याघ्र ने मुस्कराते हुए उन राजाओं से कहा कि हे राजाओं! वीरशय्या पर लेटे हुए के लिये ये तकिये अनुरूप नहीं हैं। फिर सारे संसार के प्रसिद्ध महारथी, लम्बी भुजाओंवाले, नरश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र अर्जुन की तरफ देखकर वे उनसे बोले कि महाबाहु अर्जुन! मेरा सिर लटक रहा है। हे तात! जैसा तुम उचित समझते हो, वैसा तकिया मुझे दो।

फाल्गुनोऽपि तथेत्युक्त्वा व्यवसायमरोचयत्।
गृह्यानुमन्त्र्य गाण्डीवं शरान् संनतपर्वणः॥ २०॥
अनुमान्य महात्मानं भरतानां महारथम्।
त्रिभिस्तीक्ष्णैर्महावेगैरन्वगृह्णाच्छिरः शरैः॥ २१॥

अर्जुन ने भी तब जो आज्ञा ऐसा कहकर इस कार्य को स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने गाण्डीव धनुष को और झुकी हुई गाँठवाले बाणों को लेकर, तथा विचार कर, भरतवंशियों के उन महारथी महात्मा की अनुमति लेकर, तीन तीखे और महावेगवाले बाणों के द्वारा उनके सिर को अनुगृहीत कर दिया, अर्थात् सीधा कर दिया।

नोट— यहाँ तीन का अर्थ केवल तीन ही नहीं है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार तीन से विभाजित होनेवाली सारी संख्याएँ तीन शब्द से पुकारी जा सकती हैं। इसलिये यहाँ पर समझना चाहिये कि जितने बाणों की आवश्यकता थी, उतने ही बाण जो तीन से विभाजित हो सकते थे, भूमि में गाड़कर उन्होंने भीष्म के सिर के लिये तकिया सा बना दिया।

अभिप्राये तु विदिते धर्मात्मा सव्यसाचिना।
अतुष्यद् भरतश्रेष्ठो भीष्मो धर्मार्थतत्त्ववित्॥ २२॥
उपधानेन दत्तेन प्रत्यनन्दद् धनंजयम्।
प्राह सर्वान् समुद्वीक्ष्य भरतान् भारतं प्रति॥ २३॥
कुन्तीपुत्रं युधां श्रेष्ठं सुहृदां प्रीतिवर्धनम्।
एवमेव महाबाहो धर्मेषु परितिष्ठता॥ २४॥
स्वप्तव्यं क्षत्रियेणाजौ शरतल्पगतेन वै।
एवमुक्त्वा तु बीभत्सुं सर्वांस्तानब्रवीद् वचः॥ २५॥
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च पाण्डवानभिसंस्थितान्।

जब धर्मात्मा अर्जुन ने उनके अभिप्राय को समझ कर उसके अनुसार कार्य कर दिया, तब धर्म और अर्थ के तत्व को जाननेवाले भरतश्रेष्ठ भीष्म बहुत सन्तुष्ट हुए। उचित रीति से तकिया देने से उन्होंने अर्जुन की प्रशंसा की और सारे उन भरतवंशियों की तरफ देखकर, भरतवंशियों में उत्तम, योद्धाओं में श्रेष्ठ, मित्रों की प्रीति को बढ़ानेवाले, कुन्तीपुत्र अर्जुन से कहा कि हे महाबाहु! धर्म का पालन करनेवाले और बाणों के बिस्तर पर युद्धस्थल में लेटे हुए क्षत्रिय को इसीप्रकार शयन करना चाहिये। अर्जुन से ऐसा

कहकर, पाण्डवों के पास खड़े हुए सारे राजाओं और राजपुत्रों से उन्होंने कहा कि–

पश्यध्वमुपधानं मे पाण्डवेनाभिसंधितम्॥ २६॥
शिश्येऽहमस्यां शय्यायां यावदावर्तनं रवेः।
ये तदा मां गमिष्यन्ति ते च प्रेक्ष्यन्ति मां नृपाः॥ २७॥
विमोक्ष्येऽहं तदा प्राणान् सुहृदः सुप्रियानिव।
परिखा खन्यतामत्र ममावसदने नृपाः॥ २८॥
उपारमध्वं संग्रामाद् वैरमुत्सृज्य पार्थिवाः।

पाण्डुपुत्र के द्वारा लगाये गये इस तकिये को आप देखिये। मैं इस बिस्तरे पर तब तक लेटा रहूँगा, जब तक सूर्य उत्तरायण में नहीं लौटते। उससमय जो राजालोग मेरे पास आयेंगे, वे मुझे परलोक जाते हुए देखेंगे। मैं उससमय मित्रों के समान अत्यन्त प्रिय प्राणों को छोड़ूँगा। हे राजाओं! मेरे इस स्थान के चारोंतरफ खाई खोद दो। हे राजाओं! अब आप बैर को छोड़कर युद्ध से अलग हो जाओ।

उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः॥ २९॥
सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः।
तान् दृष्ट्वा जाह्नवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव॥ ३०॥
धनं दत्त्वा विसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः।
एवंगते मयेदानीं वैद्यैः कार्यमिहास्ति किम्॥ ३१॥
क्षत्रधर्मे प्रशस्तां हि प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्।
नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे॥ ३२॥

फिर उसके पश्चात् वहाँ घावों को ठीक करने में कुशल वैद्यलोग आये। वे अपने सारे उपकरणों से युक्त थे और कुशल पुरुषों के द्वारा अच्छीतरह से शिक्षा पाये हुए थे। उन्हें देखकर गंगापुत्र ने आपके पुत्र से कहा कि इन चिकित्सकों की पूजा कर इन्हें धन देकर बिदा करदो। मेरे इस अवस्था में पहुँचने पर, अब मुझे यहाँ वैद्यों से क्या काम है? क्षत्रियधर्म में जिसकी प्रशंसा की गयी है, मैं उसी उत्तम गति को प्राप्त हो गया हूँ। हे राजाओं! बाणों के बिस्तरे पर लेटे हुए मेरा अब यह धर्म नहीं है कि मैं अपनी चिकित्सा कराऊँ।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव।
वैद्यान् विसर्जयामास पूजयित्वा यथार्हतः॥ ३३॥
ततस्ते विस्मयं जग्मुर्नानाजनपदेश्वराः।
स्थितिं धर्मे परां दृष्ट्वा भीष्मस्यामिततेजसः॥ ३४॥
सहिताः पाण्डवाः सर्वे कुरवश्च महारथाः।
उपगम्य महात्मानं शयानं शयने शुभे॥ ३५॥
तेऽभिवाद्य ततो भीष्मं कृत्वा च त्रिः प्रदक्षिणम्।
विधाय रक्षां भीष्मस्य सर्व एव समन्ततः॥ ३६॥
वीराः स्वशिबिराण्येव ध्यायन्तः परमातुराः।
निवेशायाभ्युपागच्छन् सायाह्ने रुधिरोक्षिताः॥ ३७॥

उनके उन वचनों को सुनकर आपके पुत्र दुर्योधन ने तब उन वैद्यों का यथायोग्य सम्मान कर उन्हें विदा कर दिया। फिर नाना देशों से आये हुए राजा लोग, अमिततेजस्वी भीष्म की धर्म में परमनिष्ठा को देखकर बड़े विस्मित हुए। तत्पश्चात् पाण्डव और कौरव महारथी उस पवित्र बिस्तरे पर सोये हुए महात्मा भीष्म के समीप एकसाथ जाकर उन्हें प्रणाम कर, तथा तीन बार उनकी प्रदक्षिणा कर, उनकी रक्षा का सबतरफ से प्रबन्ध कर अत्यन्त दुःखी होते हुए, उनके विषय में ही सोचते हुए, खून से लथपथ वे वीर अपने अपने शिविरों में चले गये।

सत्तरवाँ अध्याय : अगले दिन अर्जुन द्वारा भीष्म की प्यास बुझाना। भीष्म का दुर्योधन को संधि हेतु समझाना।

संजय उवाच

व्युष्टायां तु महाराज शर्वर्यां सर्वपार्थिवाः।
तं वीरशयने वीरं शयानं कुरुसत्तम॥ १॥
अभिवाद्योपतस्थुर्वै क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम्।
अन्वासन्त दुराधर्षं देवव्रतमरिंदमम्॥ २॥
अन्योन्यं प्रीतिमन्तस्ते यथापूर्वं यथावयः।
सा पार्थिवशताकीर्णा समितिर्भीष्मशोभिता॥ ३॥
शुशुभे भारती दीप्ता दिवीवादित्यमण्डलम्।

संजय ने कहा कि हे महाराज! रात्रि के बीत जाने पर, सारे राजा क्षत्रियलोग, हे कुरुश्रेष्ठ! उन वीर शय्या पर शयन करते हुए क्षत्रियश्रेष्ठ भीष्म के पास गये और उन्हें प्रणाम करके उनके पास खड़े हो गए। शत्रुओं का दमन करनेवाले उन दुर्धर्ष देवव्रत के समीप वे अवस्था के क्रम के

अनुसार यथोचित रीति से प्रेमपूर्वक मिलकर बैठ गये। सैकड़ों राजाओं से भरी हुई, भरतवंशियों की वह देदीप्यमान सभा भीष्म के द्वारा ऐसे सुशोभित हो रही थी, जैसे आकाश में सौर मण्डल हो।

भीष्मस्तु वेदनां धैर्यान्निगृह्य भरतर्षभ॥ ४॥
पानीयमिति सम्प्रेक्ष्य राज्ञस्तान् प्रत्यभाषत।
ततस्ते क्षत्रिया राजन्नुपाजह्रुः समन्ततः॥ ५॥
भक्ष्यानुच्चावचान् राजन् वारिकुम्भांश्च शीतलान्।
उपानीतं तु पानीयं दृष्ट्वा शान्तनवोऽब्रवीत्॥ ६॥
नाद्यातीता मया शक्या भोगाः केचन मानुषाः।
अपक्रान्तो मनुष्येभ्यः शरशय्यां गतो ह्यहम्॥ ७॥
प्रतीक्षमाणस्तिष्ठामि निवृत्तिं शशिसूर्ययोः।
अर्जुनं द्रष्टुमिच्छामीत्यभ्यभाषत भारत॥ ८॥

हे भरतश्रेष्ठ! भीष्म उससमय अपनी पीड़ा को बड़े धैर्य से सहन कर रहे थे। उन्होंने तब राजाओं को देखकर कहा कि पानी चाहिये। हे राजन्! तब वे क्षत्रिय सबतरफ से तरह तरह की खाद्य सामग्री और ठंडे पानी से भरे हुए घड़ों को लेकर वहाँ आये। किन्तु उनके उस लाये हुए पानी को देखकर शान्तनुपुत्र ने कहा कि मेरे द्वारा त्यागे हुए मानवीय भोगों को अब मैं ग्रहण नहीं कर सकता। मैं बाणों के बिस्तरे पर लेटा हुआ हूँ और मानवलोक से परे हट चुका हूँ। अब तो मैं सूर्य और चन्द्रमा के उत्तरायण में लौटने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। हे भारत! फिर उन्होंने कहा कि मैं अर्जुन को देखना चाहता हूँ।

अथोपेत्य महाबाहुरभिवाद्य पितामहम्।
अतिष्ठत् प्राञ्जलिः प्रह्वः किं करोमीति चाब्रवीत्॥ ९॥
तं दृष्ट्वा पाण्डवं राजन्नभिवाद्याग्रतः स्थितम्।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः प्रीतो धनंजयम्॥ १०॥
दह्यतीव शरीरं मे संवृतस्य तवेषुभिः।
मर्माणि परिदूयन्ते मुखं च परिशुष्यति॥ ११॥
वेदनार्तशरीरस्य प्रयच्छापो ममार्जुन।
त्वं हि शक्तो महेष्वास दातुमापो यथाविधि॥ १२॥

तब वे महाबाहु पितामह के समीप जाकर, उन्हें प्रणाम कर, फिर हाथ जोड़कर विनम्रता से बोले कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? प्रणाम कर सामने खड़े हुए उन पाण्डुपुत्र को देखकर, हे राजन्! वे धर्मात्मा भीष्म बड़े प्रसन्न हुए और अर्जुन से बोले कि तुम्हारे बाणों से छिदा हुआ मेरा शरीर मानो जल रहा है, मर्मस्थलों में पीड़ा हो रही है, और मुख सूखा जा रहा है। हे अर्जुन! पीड़ा से पीड़ित मेरे शरीर को पानी पिलाओ। हे महाधनुर्धर! तुम्हीं मुझे उचित रीति के अनुसार जल पिला सकते हो।

अर्जुनस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारुह्य वीर्यवान्।
अधिज्यं बलवत् कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद् धनुः॥ १३॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा रथेन रथिनां वरः।
शयानं भरतश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतां वरम्॥ १४॥
संधाय च शरं दीप्तमभिमन्त्र्य स पाण्डवः।
पर्जन्यास्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः॥ १५॥
अविध्यत् पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे।

तब पराक्रमी अर्जुन बहुत अच्छा यह कहकर रथपर सवार हो गये और बलपूर्वक धनुष पर प्रत्यंचा को चढ़ाकर गांण्डीवधनुष को खींचने लगे। तब रथियों में श्रेष्ठ पाण्डुपुत्र ने सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, सोते हुए उन भरतश्रेष्ठ की प्रदक्षिणा कर, एक कान्तिमान् बाण का सन्धान कर, उसे विचार पूर्वक पर्जन्यास्त्र से युक्तकर सारे लोगों के देखते हुए, भीष्म के दाहिनी तरफ पृथिवी को उस बाण से बींधा।

उत्पपात ततो धारा वारिणो विमला शुभा॥ १६॥
शीतस्यामृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्य च।
अतर्पयत् ततः पार्थः शीतया जलधारया॥ १७॥
भीष्मं कुरूणामृषभं दिव्यकर्मपराक्रमम्।
कर्मणा तेन पार्थस्य शक्रस्येव विकुर्वतः॥ १८॥
विस्मयं परमं जग्मुस्ततस्ते वसुधाधिपाः।
तृप्तः शान्तनवश्चापि राजन् बीभत्सुमब्रवीत्॥ १९॥
सर्वपार्थिववीराणां संनिधौ पूजयन्निव।
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि कौरवनन्दन॥ २०॥

तब ठण्डे, अमृत के समान, दिव्य गन्ध और रसवाली पानी की निर्मल धारा ऊपर को आयी। उस शीतल पानी की धारा से फिर अर्जुन ने कुरुओं के श्रेष्ठ दिव्य कर्म और पराक्रमवाले भीष्म को तृप्त किया। इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन के द्वारा किये गये उस कर्म से वे राजालोग अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुए। हे राजन्! शान्तनुपुत्र भी

जल से तृप्त होकर सारे वीर राजाओं के सामने अर्जुन का सम्मान करते हुए उनसे बोले कि हे कौरवनन्दन, महाबाहु! तुम्हारे द्वारा ऐसा कार्य कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

मनुष्या जगति श्रेष्ठाः पक्षिणां पतगेश्वरः।
सरितां सागरः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम्॥ २१॥
आदित्यस्तेजसा श्रेष्ठो गिरीणां हिमवान् वरः।
जातीनां ब्राह्मणः श्रेष्ठः श्रेष्ठस्त्वमसि धन्विनाम्॥ २२॥

जैसे संसार में मनुष्य सबसे श्रेष्ठ हैं, पक्षियों में पक्षीराज श्रेष्ठ है, सरिताओं में समुद्र श्रेष्ठ है, चौपायों में गाय श्रेष्ठ है, तेजोमय पदार्थों में सूर्य श्रेष्ठ है, पर्वतों में हिमालय श्रेष्ठ है, वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसीप्रकार तुम सारे धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हो।

एतच्छ्रुत्वा तद्वचः कौरवेन्द्रो
दुर्योधनो दीनमना बभूव।
तमब्रवीच्छान्तनवोऽभि- वीक्ष्य
निबोध राजन् भव वीतमन्युः॥ २३॥

भीष्म जी की ये बातें सुनकर कौरवेन्द्र दुर्योधन उदास हो गया। तब शान्तनुपुत्र ने उसकीतरफ देखकर कहा कि हे राजन्! तुम क्रोध से रहित होकर मेरी बात को समझो।

दृष्टं दुर्योधनैतत् ते यथा पार्थेन धीमता।
जलस्य धारा जनिता शीतस्यामृतगन्धिनः॥ २४॥
एतस्य कर्मा लोकेऽस्मिन् नान्यः कश्चन विद्यते।
आग्नेयं वारुणं सौम्यं वायव्यमथ वैष्णवम्॥ २५॥
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापतेः।
धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्वैवस्वतमथापि वा॥ २६॥
सर्वस्मिन् मानुषे लोके वेत्त्येको हि धनंजयः।
कृष्णो वा देवकीपुत्रो नान्यो वेदेह कश्चन॥ २७॥

हे दुर्योधन! तुमने देखा। जिसतरह से धीमान् अर्जुन ने शीतल और अमृत के समान गन्धवाले जल की धारा प्रकट कर दी है। इसप्रकार के कार्य को करने वाला संसार में कोई और नहीं है। आग्नेय, वारुण, सौम्य, वायव्य, वैष्णव, ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म, पारमेष्ठ्य, प्राजापत्य, धात्र, त्वाष्ट्र, सावित्र और वैवस्वत इनसारे दिव्यास्त्रों को मानवलोक में केवल या तो अर्जुन जानते हैं या श्रीकृष्ण। और कोई नहीं जानता।

अशक्यः पाण्डवस्तात युद्धे जेतुं कथंचन।
अमानुषाणि कर्माणि यस्यैतानि महात्मनः॥ २८॥
तेन सत्त्ववता संख्ये शूरेणाहवशोभिना।
कृतिना समरे राजन् संधिर्भवतु मा चिरम्॥ २९॥
यावन्न ते चमूः सर्वाः शरैः संनतपर्वभिः।
नाशयत्यर्जुनस्तावत् संधिस्ते तात युज्यताम्॥ ३०॥
यावत् तिष्ठन्ति समरे हतशेषाः सहोदराः।
नृपाश्च बहवो राजंस्तावत् संधिः प्रयुज्यताम्॥ ३१॥
एतत् तु रोचतां वाक्यं यदुक्तोऽसि मयानघ।
एतत् क्षेममहं मन्ये तव चैव कुलस्य च॥ ३२॥

हे तात! जिस मनस्वी के ये अमानुष कर्म हैं, उस पाण्डुपुत्र को युद्ध में किसीप्रकार जीतना असम्भव है। ऐसे युद्ध में शोभित होनेवाले, शक्तिशाली, शूरवीर और कर्मशील के साथ हे राजन्! तुम्हारी संधि हो जानी चाहिये। इसमें देर मत करो। हे तात! जब तक झुकी गाँठवाले बाणों से तुम्हारी सारी सेना को अर्जुन नष्ट नहीं कर देते, उससे पहले तुम्हारी उसके साथ संधि हो जानी चाहिये। जब तक हे राजन्! युद्ध में मरने से बचे हुए तुम्हारे भाई और बहुतसारे राजालोग विद्यमान हैं, तब तक तुम अर्जुन के साथ संधि कर लो। हे अनघ! मैंने तुमसे जो बात कही है, वह तुम्हें अच्छी लगनी चाहिये। मैं तुम्हारे और परिवार के लिये यही बात कल्याणकारी समझता हूँ।

त्यक्त्वा मन्युं व्युपशाम्यस्व पार्थैः
पर्याप्तमेतद् यत् कृतं फाल्गुनेन।
भीष्मस्यान्तादस्तु वः सौहृदं च
जीवन्तु शेषाः साधु राजन् प्रसीद॥ ३३॥
राज्यस्यार्धं दीयतां पाण्डवाना-
मिन्द्रप्रस्थं धर्मराजोऽभियातु।
मा मित्रध्रुक पार्थिवानां जघन्यः
पापां कीर्तिं प्राप्स्यसे कौरवेन्द्र॥ ३४॥

तुम क्रोध को छोड़कर पाण्डवों के साथ संधि कर लो। अर्जुन ने अब तक जो कुछ किया है, वह पर्याप्त है। भीष्म के जीवन के अन्त के साथ ही तुम लोगों में मित्रता स्थापित हो जाये। जो लोग मरने से बचे हैं, वे अपना शेष जीवन अच्छीतरह से बितायें। हे राजन्! तुम प्रसन्न हो जाओ। तुम पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। धर्मराज युधिष्ठिर

इन्द्रप्रस्थ में चले जायें। हे कौरवेन्द्र! ऐसा करने से तुम मित्रों के द्रोही और राजाओं को मरवानेवाले पापपूर्ण कलंक को प्राप्त नहीं होगे।

ममावसानाच्छान्तिरस्तु प्रजानां
संगच्छन्तां पार्थिवाः प्रीतिमन्तः।
पिता पुत्रं मातुलं भागिनेयो
भ्राता चैव भ्रातरं प्रैतु राजन्॥ ३५॥
न चेदेवं प्राप्तकालं वचो मे
मोहाविष्टः प्रतिपत्स्यस्यबुद्ध्या।
तप्स्यस्यन्ते एतदन्ताः स्थ सर्वे
सत्यामेतां भारतीमीरयामि॥ ३६॥

मेरी मृत्यु के साथ ही प्रजाओं में शान्ति हो जाये। राजालोग प्रेम के साथ एकदूसरे से मिलें। पिता पुत्र से मिले, मामा से भानजा मिले, हे राजन्! और भाई भाई से मिले। यदि तुम मोह के बस में होकर अपनी अबुद्धि के कारण मेरे इन समयोचित वचनों को नहीं सुनोगे तो तुम अन्त में पछताओगे और इस युद्ध में तुमसबका अन्त हो जायेगा। यह मैं तुमसे सच्ची बात कह रहा हूँ।

धर्मार्थसहितं वाक्यं श्रुत्वा हितमनामयम्।
नारोचयत पुत्रस्ते मुमूर्षुरिव भेषजम्॥ ३७॥

धर्म और अर्थ से युक्त, हितकारी और दोषरहित उस बात को सुनकर आपके पुत्र को उसीप्रकार अच्छा नहीं लगा जैसे मरणासन्न बीमार को दवाई अच्छी नहीं लगती है।

☆☆☆☆☆

...............भूमिका के पृष्ठ ९६ का शेष

२२- *गंगा और दृषद्वती अलग अलग नदियाँ तथा दृषद्वती यमुना और सरस्वती के बीच में थी*- वनपर्व-अध्याय-५ श्लोक-१,२

२३- *न्यायदर्शन और उसके सिद्धान्तों का उल्लेख*- शान्तिपर्व- अध्याय-२४ श्लोक १०+१७+

२४- *बृहस्पति और उसके शास्त्र का उल्लेख*- शान्तिपर्व-अध्याय-५६ श्लोक ३८, अध्याय ५७ श्लोक-६ अध्याय-५८ श्लोक-१ और १३ अध्याय-६८ श्लोक-३ और ७ अध्याय-६९ श्लोक-२३ और ७१

२५- *प्राचेतस मनु का उल्लेख*- शान्तिपर्व-अध्याय-५७ श्लोक-४३ अध्याय-५८ श्लोक-२

२६- *राज्यशास्त्रों के प्रणेता विद्वानों का उल्लेख*- शान्तिपर्व- अध्याय-५८ श्लोक-२ और ३

२७- *सुकन्या और च्यवन ऋषि का उल्लेख*- विराटपर्व- अध्याय-२२ श्लोक-१०

२८- *लोपामुद्रा का उल्लेख*- विराटपर्व- अध्याय-२१ श्लोक-१४

२९- *धृतराष्ट्र की अनेक रानियाँ थी*- भूमिका में दर्शित प्रमाणों के अतिरिक्त-उद्योगपर्व- अध्याय-२३ श्लोक, १४, अध्याय-३० श्लोक-१४

३०- *विशल्यकरणी ओषधि*- रामायण में हनुमान् जी द्वारा जिन चार विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी और सन्धानी नाम की ओषधियों के हिमालय पर से लाने का उल्लेख है, उनमें से विशल्यकरणी ओषधि भीष्म पितामह के भी पास थी। भीष्मपर्व-अध्याय-८१ श्लोक-१०

३१- *यन्त्रचालित अस्त्रों की विद्यमानता*- उद्योगपर्व- अध्याय-१५१ श्लोक-५८

३२- *युद्ध आरम्भ होने के दिन आकाश में सातों महान् ग्रहों की उपस्थिति*- भीष्मपर्व- अध्याय-२७ श्लोक-२

३३- *द्रोणाचार्य अपने को भीष्म का ऋणी समझते थे, दुर्योधन का नहीं*- उद्योगपर्व-अध्याय-१४८ श्लोक १३,१४

× ~~३४- वेदान्तदर्शन का उल्लेख- शान्तिपर्व- अध्याय-२४ श्लोक १७+~~

३५- *प्रहलाद, विरोचन तथा बलि का उल्लेख*- वनपर्व-अध्याय-२८ श्लोक-१

नोट :- ये सारे सन्दर्भ गीता प्रैस की महाभारत के आधार पर हैं।

महाभारत की ऐतिहासिकता

भारतीय प्राचीन इतिहास के आकाश में रामायण और महाभारत की महान घटनाएँ उसके स्वर्ण और रजत युग को सूर्य और चन्द्रमा के समान न केवल पुराने युग से आज तक दर्शाती आ रही हैं, अपितु भविष्य में भी युगों युगों तक दर्शाती रहेंगी। इन महान घटनाओं के महान पात्रों से प्रेरित हो कर आज तक न जाने कितने साहसी वीरों ने महानता की सीढ़ियों पर चढ़ कर महापुरुष की पदवी पायी है और आगे भी भविष्य में वे ऐसा करते रहेंगे।

किन्तु इस देश का यह दुर्भाग्य है कि महाभारत के समय तक इसकी सभ्यता ~~के~~ के विकास का जो सूर्य आकाश में जगमगा रहा था, वह महाभारत के पश्चात् कलि युग रूपी सायँकाल की लाली बिखेरता हुआ धीरे धीरे पराधीनता की गहरी अँधियारी अमावस्या रूपी रात्रि में विलीन हो गया। उस गुलामी की रात में अज्ञान के बादलों ने भी बार बार घिर कर जनता पर मुसीबतों की कितनी वर्षा की यह तो इतिहास पढ़ने से ही पता लगता है।

उस अँधियारे युग में जहाँ मुसलमान आक्रमण कारियों ने हमारे देश के इतिहास की पुस्तकों को आग लगा लगा कर नष्ट किया, वहाँ अज्ञानी और स्वार्थी पंडितों ने भी अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिये उन पुस्तकों में असंख्य असम्भव और बनावटी बातों का प्रक्षेप कर दिया।

इस प्रक्षेप कर्म रूपी षड्यन्त्र और लम्बे समय की पराधीनता का ही यह दुष्परिणाम है कि स्वतन्त्रता प्राप्त करके भी हम, जिन्होंने हमें गुलाम बनाया और जो सर्वदा हमें अपने से नीचा समझते और समझाते आये हैं, उन्हीं देशों के इतिहास कारों द्वारा लिखित अपने देश के इतिहास को विश्वसनीय मानते हैं। किसी भी स्वतन्त्र देश का इतिहास वहाँ के नागरिकों द्वारा ही लिखा जाता है, पर हमारे देश का इतिहास हमारे देशवासी नहीं ~~के~~ अपितु विदेशी इतिहासकार लिखते हैं।

वे विदेशी इतिहास कार और उनकी पुस्तकें पढ़ कर शिक्षित कहलाने वाले उनके भारतीय शिष्य सब यह मानते हैं कि भारतवर्ष का इतिहास तो केवल गौतम बुद्ध से ही आरम्भ होता है, उससे पहले की राम और कृष्ण का वर्णन करने वाली रामायण और महाभारत की पुस्तकें सब काल्पनिक →

और माइथॉलोजी हैं, वास्तविक नहीं।
ऐसे उन भ्रमित और रूढ़िवादी लोगों को मुँहतोड़ उत्तर देने के लिये महाभारत की घटना की वास्तविकता को सिद्ध करने के लिये कुछ प्रमाण नीचे दिये जा रहे हैं जैसे :—

१- छान्दोग्य उपनिषद के तीसरे प्रपाठक के सत्रहवें खण्ड में देवकी पुत्र कृष्ण का उल्लेख है

२— इसी प्रकार कौषीतकी ब्राह्मण में भी देवकी पुत्र कृष्ण का उल्लेख है।

३- यास्काचार्य के निरुक्त में महाभारत के एक पात्र अक्रूर का "अक्रूरो ददते मणिं" वाक्य के द्वारा उल्लेख किया गया है।

४- सम्राट युधिष्ठिर ने महाभारत युद्ध में विजय प्राप्ति के उपरान्त अपने राज्यारोहण के उपलक्ष्य में एक नये संवत् को आरम्भ किया था। इस युधिष्ठिर संवत् का प्रयोग परवर्ती अनेक पुस्तकों में मिलता है जैसे —

i - शंकराचार्य जी के समकालीन चित्सुखाचार्य ने "बृहत् शंकरविजय" नाम की पुस्तक की रचना की। उस पुस्तक के बत्तीसवें अध्याय में शंकराचार्य जी के जन्म काल का वर्णन करते हुए यह लिखा गया है कि युधिष्ठिर संवत् के २६३१ वें वर्ष में शंकराचार्य जी का जन्म हुआ।

ii— शंकराचार्य जी के समकालीन राजा सुधन्वा ने आदि शंकराचार्य जी को सम्बोधित करते हुए एक ताम्र पत्र - अभिलेख तैयार कराया था। वह अभिलेख द्वारिका पीठ के एक आधुनिक आचार्य प्रणीत "विमर्श" नामक ग्रन्थ के २८ वें पृष्ठ पर छपा हुआ है। उसमें अभिलेख की तिथि २६६३ युधिष्ठिर संवत् है।

iii— एक प्राचीन जैन अभिलेख "जिन विजय" में कुमारिल भट्ट की जन्मतिथि को बताया गया है। वहाँ भी युधिष्ठिर संवत् का प्रयोग किया गया है।

IV — आदि शंकराचार्य जी ने देश में अद्वैतवाद की स्थापना के उपरान्त उसके प्रचार और प्रसार के लिये विभिन्न स्थानों पर पाँच धर्मपीठों की स्थापना की थी। उन पीठों के मुख्य आचार्य भी शंकराचार्य की उपाधि से विभूषित किये जाते हैं। प्रत्येक धर्मपीठ में अलग अलग समयों पर पीठासीन ⟶

शंकराचार्यों के नाम और समय का विवरण वहाँ के रिकार्ड में अब तक लिखा हुआ है। उनमें से शारदा पीठ और काँची काम कोटि पीठ के आचार्यों के नामों को इतिहास स्थापना से लेकर आज तक बिना किसी क्षति के अक्षुण्ण मिलता है, इसलिये वह अधिक विश्वसनीय है। शारदा पीठ के विवरण में विक्रम संवत के आरम्भ होने तक युधिष्ठिर संवत का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार विभिन्न स्थानों पर युधिष्ठिर संवत के प्रयोग महाभारत के कथानक की ऐतिहासिकता को प्रमाणित कर रहे हैं।

५- जैन "शत्रुञ्जय ~~[illegible]~~ माहात्म्य" नाम के प्राचीन ग्रन्थ में पाण्डवों के विवाहों का उल्लेख है।

६- संस्कृत के व्याकरण ग्रन्थों में महाभारत के अनेक पात्रों के ~~[illegible]~~ नामों की ~~[illegible]~~ शब्दसिद्धि की है और घटनाओं का उल्लेख किया गया है। जैसे :-

क - ~~[illegible]~~ अष्टाध्यायी में :-

i - सूत्र नं. ६/३/९ और ८/३/९५ में तथा उसकी व्याख्या करने वाली सिद्धान्त कौमुदी की टीका बालमनोरमा में युधिष्ठिर शब्द की सिद्धि करते हुए उसे पाण्डु पुत्र और धर्म पुत्र बताया है।

ii - सूत्र नं. ४/१/९५ की व्याख्या करने वाली काशिका टीका में महाभारत के पात्र अश्वत्थामा की शब्दसिद्धि की है।

iii - सूत्र नं. ४/१/१०२ की व्याख्या करते हुए उस की टीका काशिका में महाभारत के पात्र द्रोणाचार्य का उल्लेख किया गया है।

IV - सूत्र नं. ४/१/११४ की व्याख्या में काशिकाकार ने महाभारत के पात्रों वासुदेव, नकुल और सहदेव का उल्लेख किया है।

V - सूत्र नं. ४/१/११६ की व्याख्या में काशिका में कर्ण, ~~[illegible]~~ और व्यास का उल्लेख है।

VI - सूत्र नं. २/४/६६ में भी काशिकाकार ने युधिष्ठिर का उल्लेख किया है

VII - इसी प्रकार सूत्र नं. ४/१/१०२ और ६/२/३२ में काशिकाकार ने -

महाभारत शब्द का उल्लेख किया है।

ख :- उणादिकोष में :-

i - सूत्र नं० ३/१० में सिद्धान्त कौमुदी की ~~तत्व~~ तत्वबोधिनी टीका में कर्ण को कुन्तीपुत्र कहा गया है।

ii - सूत्र नं० ३/४ की व्याख्या करते हुए सिद्धान्त कौमुदी की तत्वबोधिनी टीका में कृष्ण शब्द का उल्लेख किया गया है।

iii - सूत्र नं० ३/५६ और ३/५८ की व्याख्या में सिद्धान्त कौमुदी की तत्व-बोधिनी टीका में अर्जुन का उल्लेख किया गया है।

ग - महाभाष्य में :- महाभाष्य में भी महाभारत के पात्रों और घटनाओं का अनेक उल्लेख हैं जैसे "जघान कंसं किल वासुदेवः" "संकर्षण द्वितीयस्य बलं कृष्ण स्य वर्धताम्" आदि

७ - कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा को काम क्रोधादि षट् शत्रुओं से बच कर रहना चाहिये यह बताते हुए अभिमान के कारण नष्ट हुए रावण और दुर्योधन का उल्लेख किया गया है।

८ - कल्हण की राजतरंगिणी की प्रथम और अष्टम तरंग (अध्याय) में कुन्तीपुत्र पार्थ और पाण्डवों का उल्लेख हुआ है।

९ - प्रसिद्ध प्राचीन ज्योतिष विद्वान वराहमिहिर ने अपनी पुस्तक "बृहत्संहिता" के तेरहवें अध्याय के तीसरे निम्नलिखित श्लोक में राजा युधिष्ठिर का उल्लेख किया है जैसे -

"आसन मघासु मुनयः, शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।"

१० - महाभारत की ऐतिहासिकता एक पुष्ट प्रमाण यह भी है कि यदि महाभारत की कथा ऐतिहासिक घटना न होकर एक काव्य ग्रन्थ की काल्पनिक कहानी होती, तो उस काव्य रचना का रचनाकार अपने महानतम पात्र श्रीकृष्ण को, (जिनकी स्थिति महाभारत में नायक न होते हुए भी नायक युधिष्ठिर से किसी भी प्रकार कम नहीं है) इस प्रकार की दुखद अवस्था में मरने नहीं देता, जैसी कि दुखद अवस्था श्रीकृष्ण जी की इस समय महाभारत में वर्णित है। अर्थात् उनके देहान्त से पहले उनके →

जाति भाई यादव और परिवार के लोग कुमार्गी बन गये और शराब के नशे में उनके सामने ही आपस में लड़ कर नष्ट हो गये। तब बचे खुचों को श्री कृष्ण जी ने स्वयं ही मार दिया और उसके बाद शिकारी के जहरीले बाण से उनकी अपनी भी मृत्यु हो गयी। ऐसा दुखमय देहान्त तो भारतीय काव्य परम्परा में खल नायकों का ही दिखाया जाता है, श्रीकृष्ण जैसे महान, यशस्वी, धीरोदात्त नायकों का नहीं। पर क्योंकि महाभारत काल्पनिक कहानी नहीं अपितु सत्य इतिहास है, इसलिये व्यासजी को श्रीकृष्ण जी के अन्तिम जीवन की दुखद बातें भी ज्यों की त्यों वर्णित करनी पड़ीं। यही बात महाभारत की ऐतिहासिकता का प्रमाण है।

इस प्रकार इन उपर्युक्त प्रमाणों के द्वारा यह स्पष्ट हो रहा है कि महाभारत की घटना भारतीय इतिहास के रजत युग की एक वास्तविक घटना है, काल्पनिक कथा नहीं। काल्पनिक कथा इतने विस्तृत भूभाग के जन मानस को इतने लम्बे समय तक प्रभावित नहीं करती। यह ठीक है कि प्रक्षेपकारों ने अपने कुकृत्यों से इस कथा को अच्छी तरह से रौंदा है, पर यह नितान्त अज्ञानता होगी कि इस कारण से उस महान ऐतिहासिक घटना के अस्तित्व को ही नकार दिया जाये। इसके लिये आवश्यक है कि जैसे मिट्टी मले सोने को अग्नि के द्वारा शुद्ध किया जाता है, वैसे ही समझदार लोग बुद्धिमत्ता पूर्ण अनुसन्धान के द्वारा प्रक्षेप रूपी मैल मिट्टी को दूर कर महाभारत के शुद्ध ऐतिहासिक रूप को जनता के समक्ष लाने का प्रयत्न करें, जैसे कि इस संशोधित महाभारत के सम्पादक ने प्रारम्भिक प्रयास किया है। इति

श्री यशपाल शास्त्री के द्वारा लिखित और सम्पादित रचनाएँ

१. **संशोधित वाल्मीकि रामायण**

१०"×७.५०" के ७६८ पृष्ठ। श्री यशपाल शास्त्री ने सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण का गहन अध्ययन करके उसका यह एक नये रूप में संशोधित संस्करण सम्पादित किया है। इसमें काल्पनिक, असम्भव और बाद में मिलाये गये प्रक्षिप्त वर्णनों को हटा दिया गया है। वाल्मीकि रामायण के इस संशोधित संस्करण में वर्तमान रामायण के चौबीस हजार श्लोकों की जगह केवल सवा दस हजार श्लोक हैं। इसमें कोई भी वर्णन ऐसा नहीं है, जो बुद्धि के द्वारा अग्राह्य हो। श्लोकों की हिन्दी में व्याख्या की हुई है। आरम्भ में ५८ पृष्ठों की एक विस्तृत भूमिका है, जिसमें रामायण की लगभग सारी घटनाओं की युक्ति–युक्त व्याख्या करते हुए उनके वास्तविक स्वरूप को समझाया गया है। इस प्रकार श्रीराम के जीवन को ऐतिहासिक सत्य के रूप में स्थापित करने की दिशा में सम्पादक ने संशोधित वाल्मीकि रामायण के रूप में सर्वप्रथम प्रयास किया है। मूल्य–४००.००

२. **संशोधित महाभारत**

१०"×७.५०" के १७२२ पृष्ठ, दो खण्ड। श्री यशपाल शास्त्री ने सम्पूर्ण महाभारत का गहन अध्ययन कर उसका यह एक नये रूप में संशोधित संस्करण सम्पादित किया है। इसमें काल्पनिक, असम्भव और मिलाये गये प्रक्षिप्त वर्णनों को हटा दिया गया है। महाभारत के इस संशोधित संस्करण का आकार वर्तमान महाभारत का चौथाई है। इसमें कोई भी वर्णन ऐसा नहीं है, जो बुद्धि के द्वारा अग्राह्य हो। श्लोकों की हिन्दी में व्याख्या की हुई है। आरम्भ में ७५ पृष्ठों की एक विस्तृत भूमिका है, जिसमें महाभारत की लगभग सारी घटनाओं की युक्ति–युक्त व्याख्या करते हुए उनके वास्तविक स्वरूप को समझाया गया है। इस प्रकार महाभारत की घटना को ऐतिहासिक सत्य के रूप में स्थापित करने के लिये सम्पादक ने संशोधित महाभारत के रूप में सर्वप्रथम प्रयास किया है। मूल्य–७५०.००

३. **रामकथा का वास्तविक स्वरूप**

संशोधित रामायण की विस्तृत भूमिका को सर्वसुलभ बनाने के लिये लेखक ने उसे इस नाम से एक पृथक् पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। रामायण की घटनाओं को समझने के लिये जिज्ञासुओं, अध्येताओं और चिन्तकों के लिये यह एक पढ़ने और मनन करने योग्य पुस्तक है। इसे संस्कृत अकादमी, दिल्ली सरकार ने पुरस्कृत भी किया है।

मूल्य ३०.००

४. **महाभारत का वास्तविक स्वरूप**

संशोधित महाभारत की विस्तृत भूमिका को सर्वसुलभ बनाने के लिये लेखक ने उसे इस नाम से एक पृथक् पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। महाभारत की घटनाओं को समझने के लिये जिज्ञासुओं, अध्येताओं और चिन्तकों के लिये यह एक पढ़ने और मनन करने योग्य पुस्तक है। मूल्य ५०.००